Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080290

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080290

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विश्ववाणी

क : पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक : विश्वम्भरन

080290

080296

क मूल्य ६) ]

जनवरी १९४५

[ एक अङ्क का ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


...रारक ७

३—नारी ( कविता )—स्वामी विद्यानन्द ... १२

४—हिन्दू-मुसलमानों में सांस्कृतिक मेल-जोल का प्रारम्भ—डाक्टर लतीफ़ दफ़्तरी ... १३

५—भारत की पिछड़ी हुई जातियों की समस्या—डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त ... ... १९

६—सन्त रविदास—आचार्य पण्डित क्षितिमोहन सेन ... ... ... २५

७—धरती माता ! ( कविता )—श्री 'करील' ... २८

८—अंधड़ ! ( रेखाचित्र )—श्रीमती सत्यवती मल्लिक ... ... २९

९—किसान ( कविता )—श्री रामावतार यादव 'शङ्क' ... ... ... ३२

१०—फ़िलिस्तीन में हज़रत ईसा से पहले के सुधारक—पं० सुन्दरलाल ... ... ३३

११ ...ड-भङ्ग !—आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक ३८

१३—इनसान जहाँ मक्खियों की तरह मरते हैं !—डाक्टर जोसेफ़ इरविन फ्रान्स ... ३९

१४—चेन-गैङ्ग—डाक्टर एन० एस० वर्धन ... ४२

१५—पुस्तक परिचय—स्वामी विद्यानन्द ... ४५

१६—सम्पादकीय विचार—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का साठवाँ जन्म दिन, नई बुनियादी तालीम, अन्न-संकट और ब्लैक मार्केट, कांग्रेस किसान मज़दूरों का राज चाहती है, विज्ञान मानवता के विनाश की वस्तु नहीं, युद्ध की विभीषिका, इतिहास की नवीन आवृत्ति, भारतीय संस्कृति का ध्येय, चीन जनतन्त्र का हामी, इथियोपिया क्या सचमुच मुक्त हो गया, विजय के पद चिह्न। ... ... ४६-५२


# विश्ववाणी के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से विश्ववाणी नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्ववाणी' भेजते हैं। हम अपने रजिस्टर मे विश्ववाणी भेजने की तारीख़ तक दर्ज करते हैं। किन्तु डाकख़ाने के भूत बीच में छापा मार कर कई प्रतियाँ गायब कर देते हैं। हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस बात की शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण रूप से भेजी हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर सकने में विवश हैं। विश्ववाणी हर महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है और तीन तारीख़ तक सभी ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन जब हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक नम्बर लिखना भूल जाते हैं। विश्ववाणी सम्बन्धी जाँच के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब के लिये या तो जवाबी कार्ड या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत

नित्यानन्द चैटर्जी

जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# विश्ववाणी

वर्ष ५, भाग ६ ] जनवरी, १९४५ [ अङ्क १, पूरे अङ्क ४९


## हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी

[ उद्देश्य और विवरण ]

आदमी का मन दो ज़बरदस्त ताक़तों की लड़ाई का मैदान है। इन में से कभी एक आदमी को अपने बस में कर लेती है और कभी दूसरी। इन दोनों में हमारे दिल पर क़ाबू पाने के लिए बराबर कशमकश होती रहती है।

एक ताक़त ख़ुदग़रजी या स्वार्थ की है जो हमें अपनी छोटी ख़ाहिशों के पूरा करने में लगाती है, जाने और अनजाने, ज़ोर के साथ हमारा ध्यान हमारी तुरंत की ज़रूरतों की तरफ़, विषयों के भोग की तरफ़, खींचती है। इसके असर में आकर हम न सिर्फ़ अपनी असली, ठोस और टिकाऊ भलाई को भूल जाते हैं, हमें अपने भाई बंदों की उस भलाई की भी सुध नहीं रहती जिसके बिना हमारा अपना कल्याण नहीं हो सकता।

दूसरी ताक़त हमारी समझ की वह अन्दरूनी रोशनी है जो हमारे दिल में सब से मिलकर रहने की चाह पैदा करती है। यह इन्सानियत का वह रिश्ता है जो आदमी आदमी को मुहब्बत के नाते में जोड़ता है। यह रिश्ता आदमी को मजबूर करता है कि वह अपनी आत्मा की सोई हुई ताक़तों को दूसरे आदमियों से मिलकर और उनकी मदद से जगाए, जीवन के ऊँचे ऊँचे आदर्शों को पूरा और सफल करे, और आदमी और समाज दोनों को उस मंज़िल की तरफ़ ले जाय जहाँ हमें इस दुनिया में पहुँचना है।

पहली ताक़त आदमी को आदमी से अलग करती है। और आपस के फ़र्क़ों को चमकाती है। दूसरी ताक़त आदमी को समाज के बंधनों में बाँधती है, आपस में मेल-जोल बढ़ाती है, छोटे छोटे गिरोहों को तोड़ कर बड़े बड़े गिरोहों में बदल देती है। यह ताक़त आदमी के मन को विनय और नम्रता सिखाती है, उसके सामने ऊँचे ऊँचे मक़सद रखती है, उसकी भीतरी आंख के धुंधले को दूर कर उसके सामने आदमी की सबसे ऊँची और आख़िरी मंज़िल के चमत्कार नज़ारे को खड़ा कर देती है। यह वह मंज़िल है जिसके रास्ते पर तारीख़ के पहले दिन से ह आदमी दुख और तकलीफ़ सहता खेखड़ें उठाता बढ़ चला जा रहा है।

हमारे देश में भी आज हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध पारसी, ईसाई, सिख और और और धर्मों के मानने वाले सुख शांति और बल पाने के लिये जी तोड़ कोशिशें क रहे हैं। यहां भी दो तरह के भाव काम कर रहे हैं एक तरफ़ हम अपने अपने मतों को आदमी के मन के फैलाव की आख़िरी हद मानते हैं, एक गिरोह दूसरे क अपने से जुदा अपने से बाहर समझता है। लेकिन दूसर तरफ़ एकता की ज़बरदस्त ताक़त इस अनेकता से लोहा ले रही है। इसमें शक नहीं कि इस खींचतान में हम धीरे धी ऐसे नए समाज का विकास कर रहे हैं जिसमें सब धर्म के क़ीमती उसूलों की हिफ़ाज़त होगी और नसलों, फ़िरक़ और मतों के सारे फ़र्क़ एक ऐसी सभ्यता, ऐसी तहज़ी में समा जायंगे जो अपने रंग में अनोखी और हिन्दुस्ता की तारीख़ में बेमिसाल होगी।

हमारे इस इतने बड़े देश में, जिसे हिमालय की ब से ढकी ऊँची दीवारें दुनिया से अलग करती हैं और नी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


समुद्र की गहरी खाइयां तीन तरफ़ से घेरे हुए हैं, उस ज़माने से लेकर जो तारीख़ को याद से परे है, एक के बाद एक बहुत सी नसलें और बहुत सी तहज़ीबें आईं और आकर बस गईं। लेकिन पुराने रहने वालों और नए आने वालों में शुरू के लड़ाई झगड़ों के बाद यहां की हवा और पानी के असर से हमेशा मेल जोल और शांति का दौर क़ायम हुआ, आपस के बैर मिटे, मेल मिलाप की राहें निकलीं, सहयोग और समझौते ने क़दम जमाया। हर दफ़ा जब यह समय आया और प्रेम की नींव पड़ी तो उस नींव के ऊपर एक नई सभ्यता का नया महल खड़ा हुआ जिसमें नए और पुराने के संगम से एकता की एक अनूठी शान पैदा हो गई।

एक दूसरे के बाद इस देश में इस तरह के कई मौक़े आए। सबसे पहले आर्य-द्राविड़ी तहज़ीब का डौल डला। उस तहज़ीब की बुनियाद इस निराले अनुभव पर रखी गई जो जीवन को एक अटूट और भरपूर धारा समझता था। इसी भाव को हमने अपनी भाषा और अदब में, अपने फ़लसफ़े और धर्म में, समाज और कला में ज़ाहिर किया। उस तहज़ीब की आत्मा राम और कृष्ण, महावीर और बुद्ध, चन्द्रगुप्त और अशोक, वाल्मीकि और व्यास के जीवन और उनके कारनामों में दिखाई देती है। शकों और हुणों के हमलों की आंधी ने इस सभ्यता की नदी को गंदला किया। लेकिन जब उस तूफ़ान की मौजों के थपेड़े धीमे पड़े तो गुप्त, सातवाहन, और राजपूत राजों ने नदी के बहाव को ऐसे रजबहों में बाँटा कि जिनसे जीवन की खेती सेराब हुई और समाजी खलियानों को अटाटूट भर देने वाली फ़सल पैदा हुई। सारनाथ और साँची के टोप, बाघ और अजन्ता की तसवीरें, खजुराहो और भुवनेश्वर के मंदिर, कालिदास और भवभूति के नाटक उस सुनहले ज़माने की जगमगाती यादगारें हैं।

ज़माने ने फिर पलटा खाया। नई नई नसलों ने हमारे देश में डेरा डाला। अरब, तुर्क और मंगोल हिन्दुस्तान की सरहदों में घुसे! उनके साथ समाज का एक नया संगठन आया, धर्म के नए उसूल आये जिनका ढांचा मज़बूत और तरकीब पक्की थी। हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता ने आनेवालों से कड़ी टक्कर ली। लेकिन राजकाज के मैदान की कशमकश अभी बन्द न हुई थी कि नई तहज़ीब की तामीर का काम शुरू हो गया।

इसलाम और हिन्दू धर्म जिन के बीच आसमान ज़मीन का अंतर जान पड़ता था एक दूसरे के पास आए। एक ने दूसरे की अथाह गहराई में हिलोरें उठाईं। इनके मेल से भक्ति और तसव्वुफ़ का दरिया उमड़ पड़ा। प्रेम के मतवालों और इश्क़ के दीवानों ने लोगों के दिलों को मोह लिया! इस नए पंथ के चलाने वाले साधु, दरवेशों ने समाज और सभ्यता पर गहरा असर डाला। कबीर, नानक, चैतन्य, तुकाराम, मुईनुद्दीन चिश्ती, बाबा फ़रीद, निज़ामुद्दीन औलिया और इन सरीखे सैकड़ों सूफ़ी संतों ने समाज के जीवन में हलचल मचा दी। बड़े बड़े सम्राटों और शहन्शाहों को इनके नए आदर्शों के सामने सिर झुकाना पड़ा। जिस तरंग ने हिन्दुस्तान के जीवन समन्दर को धुरनीचे तक मथ डाला उसका असर सभ्यता के हर अंग पर पड़ना लाज़मी था। इसीलिये मंझले ज़माने की कल्चर के हर पहलू पर इस मेल की छाप दिखाई देती है। शायरी और संगीत में, इमारतों और तसवीरों में, रहने सहने के तरीक़ों और चालचलन में, खेल कूद और तमाशों में, मेलों और त्योहारों में, जातों और फ़िर्क़ों में, हर तरफ़ हर जगह नई ज़िन्दगी की चमक दमक और गर्मा गर्मी महसूस होती है। नए जीवन की उमंगों में नई मौजों का उभार नज़र आता है।

एक बार फिर हिन्दुस्तान का समाजी कारोबार एकता के धागों में बँधा। समाज के जीवन की बुनियादें काम धंधों और व्यापार पर क़ायम होती हैं। इन्हीं पर समाज के निबाह का सहारा है। इन बुनियादों पर कला और फ़न, विद्या और इल्म, ज्ञान और मारफ़त का महल तैयार होता है। उस मंझले ज़माने में सिर्फ़ हमारी बुनियादी ज़िन्दगी ही एक नहीं हो गई थी, हमारी सभ्यता की इमारत के दर दीवारों, कोठे अटारियों में भी सुहावनी एकरंगी आगई थी। जातों और फ़िर्क़ों, मतों और धर्मों के अलग अलग बाजों से मिलकर एक सुरीला सङ्गीत निकलता था जो सब के दिलों को गुदगुदाने वाला था। हिन्दू और मुसलमान एक ही ज़बान बोलते थे। हर सूबे की अपनी एक अलग बोली थी जिसे दोनों एक सा इस्तेमाल करते थे। अदब की भाषाएँ दोनों की एक थीं जिनमें वे कविता लिखते और अपने दिल के भावों को ज़ाहिर करते थे। एक ही तरह के नीति के उसूल और फ़लसफ़े दर्शन के सिद्धान्त दोनों के दिमाग़ों को ख़ूराक पहुंचाते थे। दोनों की समाजों के ढचर और राज के संगठन इतने मिलते-जुलते थे कि एक दूसरे की नक़ल मालूम होते थे।

इसके बाद जब हमारी तारीख़ का मंझला ज़माना आख़िरी साँसें ले रहा था, पश्चिमी सभ्यता हमारी सभ्यता से टकराई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इस मुठभेड़ का नतीजा यह हुआ कि हमारे देश में नए विचारों, नई शक्तियों ने घर कर लिया। हमारे पुराने राज टूटे, हमारे व्यापार और धंधों का पुराना ढांचा चकनाचूर हो गया। लेकिन फिर कुछ दिनों बाद ही टूटे खंडरों की बिखरी हुई ईंटों में एक नई इमारत के आसार दिखाई देने लगे। मुर्दा बदन के अंगों में ज़िन्दगी के निशान झलकने लगे। नए जीवन और नए विचारों के असर से एक नई क़ौम बनती दिखाई दी। समाज के एक नए पुतले की शकल तैयार होने लगी। इस पुतले में नई जान और नई ताक़त है, इसमें एक नई एकता का अनुपम भाव है। अब अगर इस एकता या उसके रंग रूप को फ़िर्क़ों के झगड़े, सूबों की लड़ाइयाँ, धर्मों के बखेड़े बिगाड़ना चाहें तो नुक़सान उन्हीं का है। ऐसा करना ज़माने के बहाव के ख़िलाफ़ समाज की नाव को उलटा चलाना है। क़ुदरत ने हमारे देश को पहाड़ों और समुद्रों के एक चौखटे में बाँधा है। इन ही के ज़रिये बाहर से हमला करने वालों के मुक़ाबले के लिए क़ुदरत ने आसानियाँ पैदा की हैं। इस देश की धरती में उसने इधर से उधर तक तरह तरह के धन दौलत को छितरा रखा है। फ़ौजी ज़रूरतों की निगाह से ही नहीं खेत और खान की उपज के ख़्याल से भी हिन्दुस्तान एक है। हर इलाक़े पर दूसरे इलाके का ऐसा सहारा है कि सब मिल कर ही आराम की ज़िन्दगी बसर कर सकते हैं। हम चाहें तो अपनी इस क़ुदरती एकता को बनाए रखें और बढ़ाएँ, चाहें तोड़ें और मिट्टी में मिला दें। हमारे इख़्तियार में है कि चाहे क़ुदरत के साथ मिलकर अपने समाजी जीवन को सुखी बनाएँ और चाहे क़ुदरत की इन नेमतों को ठुकराकर मुसीबत, भूख, और मौत का शिकार बनें।

व्यापार, धंधों और कारबार के नए तरीक़ों ने हमारे देश में नई ताक़तों को दाख़िल कर दिया है। हमारी माली ज़िन्दगी एक ज़ंजीर में बंध गई है। एकता की इस नई बुनियाद पर समाज और राज के नए नए विचार और नए नए आदर्श हमारे सामने आ रहे हैं। हमारे दिमाग़ों में ख़यालों की नई नई लड़ें गुंध रही हैं। हमारी निगाहों में आदमी की क़द्र बढ़ रही है। बराबरी और इन्साफ़ के बरताव का चर्चा ज़ोर पकड़ रहा है। हमारे दिलों में एक नई समाज की तसवीर बनती जा रही है। हम चाहते हैं कि हम अपने ही बनाए हुए क़ानूनों को मानें और ऐसे शासन के हुक्मों की तामील करें जिसमें ग़ैरों का दख़ल न हो। समाज की इस आज़ादी की ज़ाहिरी निशानी राज का बल है। इसीलिए हमारे देश में आवाज़ उठ रही है कि राज बल हमारे हाथों में सौंप दिया जावे।

यह आवाज़ ठीक भी है। लेकिन इस खेंचातानी में हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि राज बल ही ज़िन्दगी का मक़सद या ध्येय नहीं है। बल तो एक हथियार है। इस हथियार से अगर समाज और आदमी की ज़िन्दगी का असली मंशा पूरा होता है तो हथियार अच्छा है, सराहने लायक़ है। और अगर इससे इन्सानी जीवन के सच्चे मतलब के हासिल करने में रुकावट पड़ती है तो हथियार बुरा है, नफ़रत के क़ाबिल है।

दुनिया की तारीख़, अपने समाज का तजरुबा और समझ, सब हमें यही बताते हैं कि हुकूमत की ताक़त का दारमदार लोगों के मेल मिलाप पर, समाज के संगठन पर, जीवन के बुनियादी उसूलों और असली नफ़े नुक़सान की एकता पर है। जहाँ लोगों के मक़सद एक होते हैं और उनके मन मिल जाते हैं, वहां उनके दिलों में एक से उमंगों की लहरें उठती हैं। उनकी भुजाओं की रगें एक साथ फड़कती हैं। उनमें हिम्मत, हौसला और बल बढ़ता है। इसके ख़िलाफ़ जहां बुनियादी उसूलों पर लोगों की रायें जुदा जुदा होती हैं, जहाँ उनके विचारों में फ़रक़ और जीवन के मक़सदों में विरोध होता है, वहां सारे समाज के बदन में लहू रुक रुक कर चलता है, और समाज के पट्ठे ढीले पड़ जाते हैं, जिसकी वजह से लोगों के चाल चलन और इख़लाक में कमज़ोरी आ जाती है।

हुकूमत का बल समाज की वह अमानत है जो आपस के समझौते पर ही क़ायम रह सकती है। ज्योंही इस समझौते में विघन पड़ा, एक दूसरे का भरोसा उठा, त्यों ही राज की साखें टूटीं और ताक़त का नाश होने लगा। हिन्दुस्तान को बल की ज़रूरत है, पर हमें यह जान लेना चाहिये कि यह बल क़ौमी आत्मा की एकता में ही बसा करता है। अगर हिन्दुस्तानी एक बार अपनी आत्मा की दुविधा को मिटा दें, अपने आपको पहचान लें तो हुकूमत की ताक़त बाँदी की तरह उनके सामने हाथ बांधे खड़ी रहेगी। लेकिन आत्मा को पाने के लिये गहरी तपस्या की ज़रूरत है, अपने दिलों की जांच करनी होगी, अपने दिमाग़ों को नियमों से बांधना होगा।

मंझले ज़माने में हमें एक मज़बूत और ख़ूबसूरत सभ्यता की शानदार इमारत खड़ी करने में सफलता मिली थी। वह इस वजह से कि हिन्दू धर्म ने अपनी आत्मा के भीतरी कुञ्ज में इसलाम को जगह दी और अपने प्रेम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दायरे को बढ़ाकर उसमें इसलामी विचारों को घेर लिया, जिससे उसकी तङ्ग नज़री कम हुई। मुसलमानों ने भी हिन्दू मज़हब और फ़लसफ़े के ऊँचे उसूलों को अपनाया, जिसका नतीजा यह हुआ कि उनका कट्टरपन नरम पड़ा। दोनों ने मिलकर एक ऐसी सभ्यता को पैदा किया जिसने अपनी आनबान और बलबूते से दुनिया को अचरज में डाल दिया। आज हमें अतीत की उस रीति को जगाना है। अपने पुराने अनुभवों को नई हालतों में फिर से दुहराना है। अपनी रवादारी और प्रेम की भूली हुई रसमों को एक बार फिर से जगाना है। हिन्दू और मुसलमानों की आत्मा के आईने से आपाधापी के मैल को साफ़ करना है ताकि वह अपने हक़ीक़ी असली रूप को पहचानें और दूसरे में अपने को देख अपनी एकता को समझें और उसका रस लें।

एक बहुत बड़ी मुद्दत से हमारी क़ौम कष्ट सहती, दुःख उठाती हुई उस दिन की बाट जोह रही है जिस दिन नए समाज और नई सभ्यता का जन्म होगा। वह दिन तो आयगा ही इसमें कोई शक नहीं। लेकिन हो सकता है कि हमारी निगाह की कमज़ोरी और हममें भरोसे की कमी उस दिन के आने में देर लगा दे। पर याद रखना चाहिये कि भावी बलवान है। इसका टलना नामुमकिन है। आयें वे सब लोग जिनकी आँखें आजकल के झगड़ों से धुंधला नहीं गई हैं। आयें और मिलें, पगडंडियों को छोड़ एक सीधे रास्ते पर चलें और आज़ादी के सूरज को अपनी पूरी आबताब के साथ उगता देखें। हमें यक़ीन है कि इसकी रोशनी में शक और शुबह के बादल छट जायंगे, दुविधा और विरोध का कुहरा दूर हो जायगा और मेल और मुहब्बत का साफ़ आसमान हमारी आँखों की ज्योति को जगा देगा।

इस मक़सद को हासिल करने के लिये हमें एक संघटन की ज़रूरत है। हमारे देश में बहुत से ऐसे लोग हैं जो देश का भला चाहते हैं, जो समझते हैं कि सब फ़िर्क़ों और गरोहों के मेल और आपस के समझौते में ही हमारा भला और हमारी निजात है। ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो इसलिए थके मांदे और निराश मालूम होते हैं कि उन्हें कोई राह दिखाने वाला नहीं मिलता। इन्हीं वजहों से ज़रूरी है कि एक ऐसी जमाअत बनाई जाय जो हठ, उदासी और आलस्य की रुकावटों को नए समाज के रास्ते से दूर करदे और उन सब ताक़तों को बढ़ाए जो समाज में आपसी बन्धनों को पक्का करती हैं और राज के इन्तज़ाम को संवारती हैं।

हमें ऐसे लोगों को साथ लेना है जिन्हें अपने देश की आने वाली बड़ाई का पूरा भरोसा है, जो देश के सवालों पर तंग नज़री के साथ जुदा जुदा फ़िर्क़ों की भलाई के ख़याल से विचार नहीं करते, जो फ़िर्क़ों और सम्प्रदायों के बखेड़ों से घबरा कर धीरज नहीं खो देते, जो कोशिश करते हैं कि हर तरीक़े से देश के रंग बिरंगे रस्मों रिवाजों का एक दूसरे से मेल बैठा कर इकरंगी सभ्यता क़ायम करें। ऐसे भाइयों और बहनों को एक जत्थे में लाना है ताकि वे एक ऐसी सभा बनावें जिससे मेल और मुहब्बत का संदेशा सारे देश में फैल सके।

इस सभा को जो काम करना होगा वह जितना ही भारी है उतना ही विशाल भी है। इसके दो पहलू हैं। एक तरफ़ तो आपस के उन शकों को दूर करना है जो हमें एक दूसरे से अलग करते हैं। दूसरी तरफ़ हमें देश के सब लोगों को लेकर एक क़ौमी ज़िन्दगी का नया ताना बाना तैयार करना है। यह काम राजनीति से सम्बन्ध रखता है लेकिन इसका दायरा राजनीति की हदों से बाहर फैला हुआ है। असली काम उस ज्ञान, उस इल्म या उस समझ को हासिल करना है जिसके ज़रिये हम अपने को पहचान सकें। काम ऐसे आदर्शों का क़ायम करना है जो सब को अपनी तरफ़ खींचें, सब के दिलों पर एक सा असर डालें, सब को मिलाकर एक राह पर चलने का न्योता दें। काम नासमझी को दूर करना है, जहालत से लड़ना है, बीते ज़माने की उलझनों को सुलझाना है, एक दूसरे के अदबी कारनामों, एक दूसरे की मज़हबी खूबियों, एक दूसरे के चलन के ऊँचे भावों को एक दूसरे पर ज़ाहिर करना है। सच्चा प्रेम तभी पैदा होगा जब हमारे दिलों में एक दूसरे की इज़्ज़त होगी और एक दूसरे की इज़्ज़त के लिये एक दूसरे को भले ढंग से जानने और समझने की ज़रूरत है।

यह काम मेल मिलाप का है। लोगों के जीवन में, रोज़मर्रा के कारबार में सैकड़ों मौक़ों पर एक दूसरे का संग साथ होता है। हम मदरसों, पाठशालाओं में, कारख़ानों, दूकानों में, हाट बाज़ारों में, खेल कूद तमाशों में, मेलों त्योहारों में एक दूसरे से मिलते हैं। संगत हमें एक दूसरे के पास लाती है, हमें प्रेम और दोस्ती की डोरियों से बाँधती है। पेशों और धन्धों, दस्तकारी और कारीगरी, व्यापार और लेनदेन की व्योहारी ज़िन्दगी में भी हमारे सभी देशवासियों को एक दूसरे से वास्ता पड़ता है। लेकिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अगर हमें अपने देश की ग़रीबी को मिटाना है तो हमें मिलकर कुल हिन्द के माली सुधार की ऐसी तरकीबें सोचनी पड़ेंगी जिन पर हमारी पूरी समझ ख़र्च हो। जिन मुसीबतों में हमारे देश भाई आज डूबे हुए हैं वे सब पर एक सा असर डालती हैं। हिन्दू और मुसलमान बराबर ही उनके शिकार हैं। इसलिए उनके दूर करने की तदबीरें भी दोनों को मिलकर ही निकालनी पड़ेंगी।

लेकिन हमारे इस काम का सब से ज़रूरी पहलू इख़लाक़ी या नैतिक है। ज़िन्दगी की हार ने हमारे दिलों को छोटा कर दिया है। हमें इस तंगी को दूर करना है। हमें अपने दिलों को इतना बड़ा, अपनी आत्माओं को इतना ऊँचा बनाना है कि हर हिन्दुस्तानी की भलाई में हम अपनी भलाई देखें। हमें अपने ज़हनों की उन दीवारों को गिराना है जिन्होंने हमें छोटे छोटे घरौंदों में बन्द कर दिया है। हमें उस प्यार और मुहब्बत की जड़ सींचना है जिसकी बेल फैलकर हमारे सब देश भाइयों को अटूट रिश्तों में बाँध दे।

हमने ऊपर आदर्शों का ज़िक्र किया है, जीवन के बुनियादी उसूलों, सच्चे मक़सदों की चर्चा की है। हमने बताया है कि हर आदमी का दिल ख़ुदा और ख़ुदी, परमार्थ और स्वार्थ, दूसरों के कल्याण और अपने भले की ख़्वाहिश की निरंतर लड़ाई का मैदान है। हम कह चुके हैं कि आदमी की अपनी ज़रूरतें और समाज की ज़रूरतें जुदा जुदा हैं। हमने कहा है कि हिन्दुस्तान के अलग अलग फ़िर्क़ों और बिरादरियों की ज़िन्दगी मिलाकर मोतियों की एक लड़ी के समान है और हमारे सब धर्मों के अन्दर एक सचाई की रोशनी है। हमने इस बात की ज़रूरत बताई है कि हमें सोच समझ कर बड़े पैमाने पर एक माली तजवीज़ तैयार करनी चाहिये। हमने अपने काम के सियासी, तालीमी, समाजी, माली, मज़हबी और इख़लाक़ी पहलुओं की तरफ़ ध्यान दिलाया है। इन सब बातों का निचोड़ यह है कि हम एक नए हिन्दुस्तान का जन्म चाहते हैं, ऐसे हिन्दुस्तान का जिसके सारे बाशिन्दों का विचार जीवन की तरफ़ एक हो, जिसके सब रहने वाले समाज और नीति के एक से आदर्श रखते हों, और जिसके कुल फ़िर्क़े सब धर्मों की असली एकता में यक़ीन करते हों।

काम कठिन है और इसके बहुत से रुख़ हैं। लेकिन असलीयत में काम एक ही है। इसके पूरा करने के लिये चाहिये कि वे सब लोग जो हिन्दुस्तान के कुल फ़िर्क़ों और गिरोहों के मेल में विश्वास रखते हैं, जो एक मिलवाँ हिन्दुस्तानी कल्चर के हामी हैं, मिलें। हम लोगों ने जिनके नाम नीचे दिये हुए हैं इस मक़सद को हासिल करने के लिये यह तजवीज़ की है कि एक सोसाइटी क़ायम करें।

इस सोसाइटी का नाम हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी होगा। सोसाइटी के मक़सद ये होंगे—

(१) एक ऐसी हिन्दुस्तानी कल्चर का बढ़ाना, फैलाना और प्रचार करना जिसमें सब हिन्दुस्तानी शामिल हों।

(२) ऐसे पढ़ाई घरों का क़ायम करना जहाँ इस हिन्दुस्तानी कल्चर की तालीम दी जाय और इनके ज़रिये, हिन्दुस्तानी कला और कल्चर के सब अंगों की जानकारी फैले।

(३) ऐसे किताब घरों का क़ायम करना जहाँ हिन्दुस्तान के इतिहास की पढ़ाई और छान बीन हो सके ताकि हमारी सभ्यता के फलों की जाँच हो, और धर्मों, फ़लसफ़ों, साहित्य वग़ैरह की खोज की जा सके।

(४) एकता फैलाने के लिये किताबों, अख़बारों, मासिक पत्रों वगैरह का छापना।

(५) सभाओं, कान्फ़रेन्सों, लेक्चरों का इन्तज़ाम करना और सब इस तरह के कामों का करना जो एकता बढ़ाने के लिये ज़रूरी समझे जावें। सब धर्मों, जातों, बिरादरिओं और फ़िर्क़ों की समाजी सेवा करना जिससे आपस में मेल बढ़े।

(६) उन सब लोगों और सोसाइटियों की मदद करना जिनका मक़सद हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी के मक़सद से मिलता हो।

(७) फण्ड जमा करना और ऐसी कार्रवाइयां करना जिनसे सोसाइटी के मक़सद और आदर्श पूरे हों।

## इन्तज़ाम

सोसाइटी की एक गवर्निंग बाडी होगी जिसके सुपुर्द सोसाइटी के सब कामों का इन्तज़ाम होगा। वह गवर्निंग बाडी यह होगी—

### गवर्निंग बाडी के सभापति

डाक्टर भगवानदास एम० ए०, डी० लिट०,



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सदस्य

(१) राइट आनरेबुल डाक्टर सर तेजबहादुर सप्रू,
(२) डा० अब्दुल हक़ डी० लिट०, सेक्रेटरी अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू,
(३) डा० सय्यद महमूद एम० ए०, पी-एच० डी०, बार-एट-ला,
(४) ख़्वाजा अब्दुलमजीद एम० ए०, बार-एट-ला, सदर आल इण्डिया मुसलिम मजलिस,
(५) मौलवी सय्यद सुलेमान नदवी,
(६) श्री मंज़रअली सोख़्ता, डाइरेक्टर पालीटेक्निक इन्सटीट्यूट, गंगाघाट, उन्नाव,
(७) डा० बेनीप्रसाद एम० ए०, पी-एच० डी०, डी-एस० सी०, प्रोफ़ेसर पालिटिक्स इलाहाबाद यूनिवर्सिटी,
(८) प्रोफ़ेसर एस० के० रुद्रा एम० ए० (कैएटब),
(९) पं० विश्वम्भरनाथ, सम्पादक विश्ववाणी,

ख़ज़ाञ्ची

डा० ताराचन्द एम० ए०, डी० फ़िल०,

मन्त्री

पण्डित सुन्दरलाल

## सोसायटी के क़ायदे

मेम्बरी

हर शख़्श मर्द या औरत जिसकी उम्र २१ साल से ऊपर हो, चाहे वह किसी भी धर्म, जाति या पोलिटिकल पार्टी का हो, सोसाइटी का मेम्बर हो सकेगा, बशर्ते कि वह सोसाइटी के मक़सदों को मानता हो, साथ में दिये हुए मेम्बरी के एलान पर दस्तख़त करदे, और गवर्निङ्ग बाडी के मेम्बर बहुमत से उसके नाम को मंज़ूर करें।

हर मेम्बर सोसाइटी को तीन रुपये सालाना चन्दा देगा।

हर ऐसा मेम्बर जो एक बार में सौ रुपये या ज़्यादा दे देगा सोसाइटी का लाइफ़ मेम्बर होगा।

जो लोग ५००) रु० या उससे ज़्यादा चन्दा देंगे उनके नाम सोसाइटी के पेट्रन यानी सरपरस्तों में लिखे जावेंगे।

## सोसाइटी के पदाधिकारी

सोसाइटी के सभापति

राइट आनरेबुल सर तेजबहादुर सप्रू, पी० सी०,

सोसाइटी के उप सभापति

(१) डा० भगवानदास, एम० ए०, डी० लिट्०,
(२) डा० अब्दुल हक़, डी० लिट्०,

गवर्निङ्ग बाडी के सेक्रेटरी और ख़ज़ाञ्ची सोसाइटी के भी सेक्रेटरी और ख़ज़ाञ्ची होंगे।

## मेम्बरी का ऐलान

"मैंने हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी के मक़सद और उसका मेमोरेण्डम आफ़ एसोसियेशन पढ़ा है। मैं सोसाइटी के मक़सदों से और उन मक़सदों को पूरा करने के लिये सोसाइटी जो जो तरीक़े काम में लाना चाहती है उनसे इत्तफ़ाक़ करता हूँ। मैं सब बड़े बड़े मज़हबों और कल्चरों की बुनियादी एकता में यक़ीन करता हूँ। मैं मानता हूँ कि पिछले ज़माने में हिन्दुस्तान के रहने वालों के अन्दर एक मिली जुली कल्चर और एक मिली जुली समाजी ज़िन्दगी पैदा हो रही थी, और आज भी हमारा भला इसी में है कि हम हिन्दुस्तानी कल्चर की एकता को बढ़ावें। मैं वादा करता हूं कि मैं सोसाइटी के मक़सदों को पूरा करने के लिये और सब धर्मों, जातों और बिरादरियों के लोगों में एक दूसरे की इज़्ज़त, मेलजोल और मुहब्बत बढ़ाने के लिये जो कुछ कर सकूँगा करूँगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# तमसो मा ज्योतिर्गमय !

श्री निकोलस रोरिक

मुझे याद है प्रसिद्ध फ्रान्सीसी चित्रकार पूविस दे चवानीस कला की विभिन्न कृतियों की सच्चे जी से प्रशंसा किया करते थे। कला की हर कृति को वह सहानुभूति के साथ देखते और परखते थे। मुझे एक दूसरे प्रसिद्ध कलाकार की बात भी याद है जो कला प्रदर्शनियों में घूमकर हर कृति की कटु आलोचना ही किया करते थे और जिन कृतियों की वे निन्दा करते थे उन्हें देखने में वे बहुत अधिक समय ख़र्च करते थे। एक बार मेरे साथ वे एक प्रदर्शिनी देखने गये। मैंने ग़ौर किया कि उनका तीन चौथाई समय बुराई करने में ख़र्च हुआ और केवल एक चौथाई समय तारीफ़ करने में। मैंने उनसे बिदा लेते हुये कहा—"यदि आपको कभी अधिक देर तक ठहराना हो तो मुझे इसका मंत्र मालूम हो गया। आपसे ऐसी चीज़ों का प्रसङ्ग छेड़ा जाय जिनसे आपको नफ़रत हो।" इस कलाकार की निन्दा बहुत परिष्कृत होती थी लेकिन उसकी प्रशंसा के शब्द बहुत नीरस और फीके होते थे। इस कलाकार के मुक़ाबले में पूविस दे चवानीस कला की दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ थे। और क्या अपनी कला की श्रेष्ठता के ही कारण उनके अन्दर कला-कृतियों के प्रति अधिक सहानुभूति नहीं थी ?

तब जहाँ सृजन का सुख अनुभव करना चाहिये वहाँ निन्दा, बुराई और कटुता की भावना क्यों रहे ?

अनन्तकाल से सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की अगणित व्याख्यायें की गई हैं और अगणित आज्ञायें दोहराई गई हैं। इसी सिद्धान्त की बुनियाद पर अनेकों सभ्यतायें और अनेकों साम्राज्य स्थापित किये गये हैं। जीवन को सुन्दर, उदार और उन्नत बनाना ही शोभन है, उचित है और धर्म है। सृजन की भावना में ही प्रेम, त्याग, ज्ञान और क्षमा निहित हैं।

तब क्या सब तरुण हृदयों को सृजन के काम में नहीं जुट जाना चाहिये ? और वे यह करते भी हैं। सृजन की पवित्र ज्वाला को दबाने के लिये असत्य और असुन्दर की बहुत सी राख चाहिये। जो कुछ सुन्दर है उसके फाटक बहुधा एक ही आवाज़ से खुल जाते हैं "सृजन करो, सृजन करो !"

पर हमारी सृजन की प्रेरणा प्रचलित रूढ़ियों के शिकंजे में कुचल कर रह जाती है। कला के क्षेत्र में आये हुये एक आगन्तुक जिज्ञासु को पहले रेखाङ्कन सीखना पड़ता है। उसके बाद उसे रङ्ग भरना सिखाया जाता है और तब उसके कल्पना चित्रों के चित्रण की बारी आती है। अगणित उदाहरण इस बात के मिलेंगे कि सृजन के निषेध-द्वार तक पहुँचते पहुँचते विद्यार्थी के हृदय की सृजन-ज्योति बुझ जाती है।

किन्तु जो अपने बचपन से ही साहस पूर्वक सृजन के पथ पर अग्रसर हुये हैं उनके हृदय में कितना आल्हाद कितना साहस और कितनी जागरूकता विकसित हो जाती है बच्चों की प्रारम्भिक रचनाओं में कितना प्रबल आकर्षण होता है किन्तु बाद में 'स्टैण्डर्ड' की घातक भावना उनके दिल को निष्प्राण और उनकी आँखों को ज्योतिहीन बना देती है।

किन्तु सृजनशीलता का वातावरण कहाँ है ? उसके अनुरूप परिस्थिति कहां है ? वह है हृदय की सचाई में हृदय की उस निर्देषक स्फुरणा में जो रचनात्मक भावना को जन्म देती है; जो सृजन करने के लिये व्यग्र है उसके निकट सांसारिक परिस्थितियों का न तो कोई मूल्य है और न कोई महत्व ! सृजन की यह भावना देश, काल और वस्तु से सीमित नहीं हो सकती। मेरे गुरु कुइन्द जी एक बात कहा करते थे कि "कलाकार को यदि जेल में बन्द कर दिया जाय तब भी वह कलाकार ही रहेगा।" किन्तु वे यह भी कहा करते थे "कि यदि तुम कांच की ढक्कन में बन्द होकर दुनिया से असंलग्न रहना चाहते हो तो तुम जितनी जल्दी मिट जाओ उतना ही अच्छा। दुनिया को इस तरह के लोगों की ज़रूरत नहीं है।" वे जीवन के संग्राम के महत्व को, प्रकाश और अन्धकार के द्वन्द को खूब समझते थे।

एक छोटी हैसियत का कोई क्लर्क कुइन्द जी के पास आया। गुरु ने उसके चित्र की प्रशंसा की पर क्लर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शिकायत की—"परिवार और दफ़्तर मेरे रास्ते में रुकावट हैं।"

गुरू ने पूछा—"कितने घण्टे तुम दफ़्तर में ख़र्च करते हो?"

"दस से पाँच तक।"

"और चार से दस तक तुम क्या करते हो?"

"चार से दस तक क्या मतलब आपका? मैं समझा नहीं!"

"मेरा मतलब चार बजे सुबह से दस बजे दफ़्तर जाने के समय तक!"

"आठ बजे तक तो मैं सोता हूँ।"

"तब तो तुम अपनी सारी ज़िन्दगी सो सोकर ही खो दोगे। जब मैं एक फ़ोटोग्राफ़र के पास रीटच करने का काम करता था तो दस से छै तक उसके पास रहता था और चार बजे सुबह से नौ बजे तक मैं अपना अभ्यास करता था और कलाकार बनने के लिये दैनिक चार घण्टे का अभ्यास भी काफ़ी है।"

ये शब्द हैं आदरणीय कला-गुरू कुइन्द जी के जिन्होंने एक गड़रिये के लड़के की हैसियत से जीवन शुरू किया और अपने अध्यवसाय और परिश्रम द्वारा रूस के कला-जगत में एक सम्माननीय पद प्राप्त किया। उनके ऊपर के उत्तरों में कठोरता नहीं है बल्कि जीवन के नियमों का, अपनी ज़िम्मेवारी का और श्रम और सृजन शक्ति की चेतना का गहरा ज्ञान है।

ख़ास बात ध्यान में रखने की यह है कि हर हवाई चीज़ से बचो। जिस तरह रिक्तता कहीं नहीं है उसी तरह हवाई चीज़ भी कहीं नहीं है। इस कला-गुरू के संस्मरण, चित्राङ्कन की कला में और जीवन की कला में, कभी भी नहीं भूले जा सकते। अनुभव के ये मील के पत्थर कितने खरी हैं और ख़ासकर उस समय जब वे परीक्षित पराक्रम और वास्तविक रचनात्मकता की गवाही दें।

मुझे याद है जब मैं इम्पीरियल एकेडमी आफ़ फ़ाइन आर्ट्स से स्नातक बनकर निकला तो ललित कला को प्रोत्साहन देने वाली इम्पीरियल सोसायटी ने मुझे अपने मासिक पत्र के उपसम्पादक बनने का निमन्त्रण दिया। मेरे गुरू इससे बहुत नाराज़ हुये और कहने लगे कि यह पदवी मेरी कला की सृजन शक्ति को बिलकुल नष्ट कर देगी; किन्तु कुइन्द जी ने दृढ़ता के साथ मुझे इस नियुक्ति को स्वीकार करने की सलाह दी। वे कहने लगे—"कर्मठ आदमी को हर बात में सफलता मिलती है, खुली आँखों से हर चीज़ दिखाई देती है किन्तु एक अन्धा आदमी चित्राङ्कन नहीं कर सकता।" मुझे याद है कि एक बार कुइन्द जी ने मेरे "यात्रा" शीर्षक चित्र की विरोधपूर्ण आलोचना की, किन्तु आधे घण्टे बाद ही वे मेरे पास हाँफते हुये स्टूडियो में पहुँचे और मुस्कराकर कहने लगे "तुम्हें हरगिज़ दुखी न होना चाहिये। कला की पद्धतियाँ भी अनेक हैं। असल में मुख्य चीज़ यह है कि गीत हृदय से फूट कर निकला हो।"

मेरे दूसरे कला-गुरू पूविस दे चवानीस, जो मानव मात्र के कल्याण के इच्छुक थे और सृजन की अनन्त शक्ति पर विश्वास करते थे, हमेशा श्रम के आत्म विस्तार और चिरन्तन सुख पर ज़ोर देते थे। उनके हृदय में मानव मात्र के प्रति प्रेम भरा हुआ था, किन्तु शुरू शुरू में उनकी कला को दुनिया ने कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। फ्रान्स के कलाकारों की समिति ने पूरे ग्यारह वर्ष तक उनके चित्रों को स्वीकार तक नहीं किया। हृदय की महत्ता को परखने के लिये इससे अधिक कठोर कसौटी और क्या हो सकती थी!

मेरे तीसरे कला-गुरू कारमॅन हमेशा व्यक्तिगत और स्वाधीन उद्यम को प्रोत्साहन दिया करते थे। वे कहा करते थे—"जब हम अपने आप में अकेले होते हैं तभी हम वास्तविक कलाकार बनते हैं।"

इस तरह के गुरू धन्य हैं जो अनुभवी और कल्याणप्रद संकेत द्वारा हमें विस्तृत क्षितिज की ओर ले जाते हैं। इस तरह के गुरुओं की याद कितनी सुखद है जिनके स्मरण मात्र से हृदय श्रद्धा से भरकर पुलकित हो जाता है।

प्राचीन भारत में गुरुओं का कितना मान होता था। गुरू को लोग ईश्वर के तुल्य समझते थे। भारत के प्राचीन शिष्य कहते थे—

गुरुर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गुरू के प्रति आदर की यही भावना इटली, नीदरलैण्ड्स और रूस के स्थापत्य कलाकारों में भी थी, किन्तु इन देशों में यह एक बीती हुई बात रह गई है जबकि भारत में यह एक जीवित भावना है और मुझे आशा है कि यह भावना कभी मरेगी नहीं।

हर आध्यात्मिक दरिद्रता लज्जा की वस्तु है। अदृश्य जगत से महान शिक्षक दुःख के साथ इसे देखते होंगे और कष्टकर सम्भावनाओं से उदास हो जाते होंगे। रास्ते की भूल भुलइयों में भी हमें अनेक बातें छोड़नी नहीं चाहियें बल्कि दृढ़ता से पकड़ रखनी चाहियें। मेरे स्वर्गीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मित्र कवि अलेक्ज़ेण्डर ब्लाक 'वर्णनातीत' बातों के सम्बन्ध में जो कहा करते थे वह मैं नहीं भूल सकता। ब्लाक ने रिलीजस-फ़िलासाफ़िकल सोसायटी में जाना बन्द कर दिया था क्योंकि उनके अनुसार "वे लोग अवर्णनीय का वर्णन करते थे।" सच तो यह है कि शब्दों की भी एक सीमा होती है। ऐसे अवसर भी आते हैं जब मन की व्यथा मन के भीतर रह जाती है और शब्द बाहर छूट जाते हैं। किन्तु भावनाओं की कोई सीमा नहीं होती। हृदय की शक्ति अपरिमित होती है।

सत्यम् शिवम् सुन्दरम् सार्वभौम सिद्धान्त है। इस शोभनीय यात्रा के सभी यात्री, सभी सच्चे खोजी, भावना के तट पर आकर अपनी किश्ती लगाते हैं। लोग आपस में चाहे कितना ही लड़ें और लड़ते लड़ते चाहे पशु ही क्यों न हो जायँ पर वे भी स्वर की एक मधुर लय को मूक होकर, सब कुछ भूलकर, सुनने लगते हैं। वास्तव में जो कुछ सुन्दर है वह शान्त है, गम्भीर है और प्रेममय है।

हज़रत ईसा के सम्बन्ध में एक बड़ी करुण ईरानी किम्वदन्ति है। "ईसा एक बार अपने शिष्यों के साथ कहीं चले जा रहे कि उन्हें सड़क के किनारे एक मुरदा कुत्ता पड़ा हुआ मिला। शिष्य उस लाश की सड़ायन से घबराकर दूर भागे किन्तु ईसा को उस शव के अन्दर भी सुन्दरता दिखाई दी और उन्होंने इङ्गित करके बताया कि उस कुत्ते के कितने सुन्दर सफ़ेद दांत हैं।"

निर्वाण के समय भगवान बुद्ध को याद रहा—"कितना सुन्दर है राजगृह और उसकी चोटी। कितने सुन्दर हैं पर्वत और उपत्यकायें! वैशाली! ओह! कितनी सुन्दर है वैशाली!"

हर बोधिसत्व को अन्य आवश्यक गुणों के साथ साथ कला में भी निपुण होना ज़रूरी है।

प्रसिद्ध यहूदी दार्शनिक रब्बी गमेलिअल कहते हैं—"धर्म का अध्ययन यदि किसी कला के साथ सम्बन्धित हो तो उसकी श्रेष्ठता बढ़ जाती है। कला मनुष्य को अधर्म से बचाती है। हर कलाहीन उद्योग मनुष्य को उद्देश्यहीन बना देता है।" रब्बी इहूदा एक क़दम आगे बढ़कर कहते हैं—"जो मनुष्य अपने बेटे को किसी प्रकार की कला नहीं सिखाता वह उसे एक डाकू बनाता है।" प्रसिद्ध यहूदी तत्त्ववेत्ता स्पायनोज़ा, जो स्वयं श्रेष्ठ कलाकार थे, कला को भावनाओं का समन्वय करने वाली और आत्मा को ऊँचा उठाने वाली मानते थे।

भारतीय संस्कृति के उदार निर्देश भी सृजनात्मक कला के मौलिक महत्व को स्वीकार करते हैं। "प्राचीन भारत में कला, धर्म, विज्ञान सब विद्या अर्थात् संस्कृति के पर्यायवाची थे। सत्यम् शिवम्, सुन्दरम्, अद्वैतम की अक्षय भावना इनके अन्दर निहित थी।"

हमें प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लूज़, पाइथागोर, अफ़लातून आदि का स्मरण भी करना चाहिये जिन्होंने जीवन की बुनियादी शिलाओं को ख़ूब समझ लिया था और इसीलिये जिन्होंने जीवन भर सत्य और सुन्दर का प्रचार किया।

जीवन के कठोर अनुभवों की गहराई से दोस्तोवस्की ऐलान करता है—"जो कुछ सुन्दर है उसी से संसार की रक्षा होगी।" रस्किन, जिसने पत्थरों को भी गौरव प्रदान किया है, इसी सिद्धान्त को दोहराता है। एक प्रसिद्ध पादरी एक बार सुन्दर चित्रों को देखकर कह उठा था—"ये चित्र क्या हैं स्वर्ग को धरती की प्रार्थना हैं!"

समस्त सृजनात्मक अन्वेषकों का मित्र लिओनार्डो द विन्सी कहता है—"जो व्यक्ति चित्रकला का तिरस्कार करता है वह दुनिया के दार्शनिक और सुसंस्कृत ज्ञान का तिरस्कार करता है क्यों कि चित्रकला प्रकृति की औरस कन्या बल्कि पौत्री है। प्रकृति ने सृष्टि को जन्म दिया और सृष्टि ने चित्रकला को। इसीलिये मैं कहता हूँ कि चित्रकला प्रकृति की पौत्री है बल्कि ईश्वर का ही प्रतिबिम्ब है। जो चित्रकला का तिरस्कार करता है वह स्वयं प्रकृति का तिरस्कार करता है।

"चित्रकार को सर्वग्राही होना चाहिये। ओ कलाकार! तेरी विविध वृत्तियाँ भी उतनी ही अगणित हों जितनी प्रकृति की हैं। जो कुछ परमात्मा की अनन्त रचनायें हैं उन्हीं में तू अपनी क्रम संख्या भी जोड़ता चल। तू किसी की नक़ल न कर। तेरी रचनायें प्रकृति की नित नवीन अभिव्यक्ति हों।"

हर युग में, हर देश में हर महान आत्मा ने सृजन के महत्व को जीवन का प्रधान उद्देश्य कहकर स्वीकार किया है। सबने अन्धकार पर प्रकाश की विजय की प्रार्थना की है। प्राचीन स्मारक आज भी भारत, मिस्र, असुरिया, मय और चीन की संस्कृतियों का यशोगान गा रहे हैं। और क्या यूनान, इटली, फ्रान्स, बेल्जियम और जर्मनी के कला के ख़ज़ाने श्रेष्ठतम सृजनशक्ति के परिचायक नहीं हैं!



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यह कितने आश्चर्य की बात है कि इस आध्यात्मिक और भौतिक के संघर्ष के समय, इस नैतिक सङ्कट काल में भी हम जो कुछ सुन्दर है उसी की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं और यह हम महज़ एक हवाई सिद्धान्तवादी की हैसियत से नहीं करते बल्कि जीवन के अनुभवों के बल पर करते हैं कि जिनकी पुष्टि इतिहास और आध्यात्मिक सिद्धान्त दोनों करते हैं। हमें यह भी न भूलना चाहिये कि जितना महत्व सृजन का है उतना ही महत्व हृदय की भाषा का भी है। क्या सालोमन के पैराबल्स ( दृष्टान्त ), डेविड के साम्स ( धर्म गीत ), भगवत् गीता और ईसा के पाँचों हुक्मनामे इसी हृदय की भाषा में नहीं लिखे गये ? और यह कितनी अनमोल बात है कि दुनिया का हर नैतिक सिद्धान्त हमें आपस में फाड़ता नहीं, हममें विभेद पैदा नहीं करता, हमें सीमित नहीं बनाता, हमें बर्बरता की ओर नहीं ले जाता बल्कि उन्नति की ओर, शक्ति की ओर और आत्मा की पवित्रता की ओर ले जाता है।

डाक्टर ब्रिएटन ने सन् १९३० में मेरे अमरीका से विदा होते समय मुझे वह बात याद दिलाई जो मैंने उनसे कही थी कि—"बर्बर मनुष्यों से सावधान रहना !" उस समय से कितने ही बर्बर मनुष्य संस्कृति के क्षेत्र में ज़बरदस्ती घुस आये हैं। आधुनिक अर्थनीति के द्वारा आत्मा की परिधि में इतने पातक किये गये हैं कि जिनका कोई उपचार ही नहीं दिखाई देता। ज्ञान और शिक्षा के मन्दिर में मूढ़ अन्याइयों द्वारा लज्जा की तख़्ती टाँग दी गई है। असभ्य, असंस्कृत और प्रतिगामी व्यक्तियों ने ज्ञान, विज्ञान और कला को बरजोरी नष्ट करना चाहा है।

धिक्कार है, जब हमने यह सुना कि शिकागो की युनिसिपैल्टी के शिक्षकों को तनख़ाह देने के लिये शिकागो की म्युनिसिपैल्टी में पैसा नहीं था ! न्यूयार्क में एक गिरजा नीलाम कर दिया गया और कन्सास के शहर में धन के अभाव में बच्चों का एक शिक्षा केन्द्र बन्द कर दिया गया। इसी तरह अनेक संग्रहालय और स्कूल भी जन्म लेते हैं और बन्द हो जाते हैं। कला और विज्ञान के कितने ही पुजारियों को असमर्थ होकर अपना काम बन्द करना पड़ता है और घुड़दौड़ पर पैसा फेंकने के लिये लाखों आदमी पहुँच जाते हैं ! धिक्कार है ! कोटि कोटि धिक्कार है !

प्राचीन स्मारकों के पत्थर इन संस्कृति-द्रोहियों के विरुद्ध मौन चीत्कार करते हैं ! संस्कृति का तिरस्कार करने वाले ये लोग क्या अपने ही पैरों के नीचे अपने कल्याण को नहीं कुचलते ? अन्धकार के इन ग़ुलामों से तो आँख के अन्धे आदमियों को अधिक दिखाई देता है।

"इन बर्बर असभ्यों से सावधान होने की ज़रूरत है !"

सृजनात्मक, सुन्दर, प्रोत्साहन से भरी हुई संस्कृति की सीढ़ियों पर ही रंग, जाति और धर्म के भेदों को भूलकर मानव मात्र इकट्ठा हो सकते हैं। इन सीढ़ियों पर चढ़कर ही हम निर्वाण और मोक्ष तक पहुँच सकते हैं।

संस्कृति को आज नारी की सहायता की विशेष अपेक्षा है। जब घर में कठिनाइयाँ होती हैं तो हम नारी का आश्रय लेते हैं, जब हिसाब किताब और अन्दाज़े ग़लत निकल जाते हैं और जब शत्रुता और पारस्परिक विद्रोह अपनी सीमा पर पहुँच जाते हैं तब हम नारी की शरण में जाते हैं, जब बुराई और पाप की शक्तियाँ हमें दबा लेती हैं तब हम नारी की सहायता की याचना करते हैं। जब गणना करने वाला हमारा दिमाग़ असहाय हो जाता है तब हमें नारी के हृदय की बात याद आती है। और आज संस्कृति का सार्वभौमिक क्षेत्र संकट ग्रस्त है। हमें विश्वास है नारी का हृदय सृजनात्मक संस्कृति की इस व्यथा को ठीक से समझ सकेगा। संस्कृति के अध्यात्मिक ह्रास से दुखी होकर नारी उसकी सहायता में तत्पर और सचेष्ट हो सकेगी।

मानवता के इस विनाश के दिनों में हमें हृदय से सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की प्रार्थना करनी चाहिये। हममें से हर एक को यह बात याद रखनी चाहिये कि जो कुछ सुन्दर है वह सब हमारी प्राप्ति के भीतर है। गड़रिये के लड़के से उन्नति करके कला-गुरू कुइन्द जी के पद को पहुँच जाना या लोमोनोसोव की तरह एक मामूली किसान से उन्नति करके प्रख्यात वैज्ञानिक बन जाना सचमुच आसान नहीं है। ज़ाहिरा उन्हें किसी से मदद नहीं मिली बल्कि सभी बातें उनके विपरीत थीं फिर भी—"प्रकाश ने अन्धकार पर विजय प्राप्त की।" साधना ने सफलता का द्वार खोला।

बचपन में हमें 'विज्ञान के शहीद' नामक पुस्तक बहुत पसन्द थी। सचमुच इस बात की बहुत ज़रूरत है कि हम इस तरह की पुस्तकें प्रकाशित करें, जैसे—'नैतिकता के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शहीद', 'कला के शहीद', 'सृजन के शहीद', । वान गॉग, गागिन, राइडर, ब्रुबेल, मेअर्स और नैतिकता के लिये अनेक शहीदों के जीवन नाटक संकेत कर रहे हैं उस पथ की ओर जिधर युवकों को जाना चाहिये। हमें इन महान आत्माओं के प्रति केवल कृतज्ञ ही नहीं होना चाहिये बल्कि हमें इनके अनुभवों से लाभ उठाना चाहिये ताकि हम अन्धकार से प्रकाश की ओर जा सकें। जब विनाश की सेना संस्कृति के दुर्ग को चारों ओर से घेरे हुये है तब हमें इन महान आत्माओं के अनुभवों के अस्त्र शस्त्रों से अपने को सुसज्जित कर लेना चाहिये ताकि हम संस्कृति के दुर्ग की सफलता पूर्वक रक्षा कर सकें। यही समय है कि हम 'अध्यात्मिक-प्रकाश' का कवच पहन कर अज्ञानरूपी अन्धकार की शक्तियों को पराजित करके तितर बितर कर सकें।

आज मानवता रंगों, जातियों और देशों के समूहों में बँटी हुई है, किन्तु क्या इस विभिन्नता के भीतर से भी मानव आत्मा सृजन का निश्चित और नियोजित कार्यक्रम लेकर सहयोग की भावना से आगे नहीं बढ़ सकती ? क्या बसन्त ऋतु में विविध रंगों और खुशबुओं के तरह तरह के फूल बाग़ में नहीं खिलते ? और क्या उनकी समन्वयात्मक सुगन्धि बसन्तोत्सव को और अधिक सम्मोहक नहीं बना देती ? क्या अनन्तकाल से इसी विभिन्नता में एकता की भावना ने बास नहीं किया है ?

स्वयं निर्माता की रची हुई इस विभिन्नता को कौन बदल सकता है ? संस्कृति इसी विभिन्नता में समन्वय पैदा कर देती है। यह विभिन्नता मानव आत्मा के पुष्कल स्वरूप की परिचायक है। किन्तु विभिन्नता में तभी तक जीवन रहता है जब तक वह स्वाभाविक हो। रूढ़ियों से ग्रस्त अस्वाभाविक विभिन्नता शिकंजा बनकर मनुष्य की प्रगति को कस देती है और अपनी दूषित और ज़हरीली सड़ायन से मानवता का दम घोटने लगती है।

जिन लोगों को भी मानव की प्रतिष्ठा से प्रेम है, जो वास्तविक पूर्णता को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें बेशर्मी के चीथड़ों को उतार कर, घृणा और झूठ का परित्याग कर मानव कल्याण की भावना से सबके साथ मिलकर काम करना चाहिये। जो भी अच्छाई के रास्ते पर आगे बढ़ते हैं वे जानते हैं कि राह की रुकावटें कितना मूल्य रखती हैं। स्थितिप्रज्ञ के लिये ये रुकावटें उसकी शक्ति के पैमाने का काम देती हैं और उसके अन्दर नित नई शक्ति का सञ्चार करती हैं। हमें भविष्य का कल्याण-पथ निर्माण करना है और उस पथ के दोनों ओर ज्ञान की छाँह देने वाले पेड़ लगाने हैं और नैतिकता के मील के पत्थर खड़े करने हैं; किन्तु उस समय तक ये मील के पत्थर नहीं खड़े किये जा सकते जब तक यह न मालूम हो कि इस पथ का अन्त कहाँ है।

यह पथ आत्मा की मुक्ति को जाता है, जहां आत्मा समस्त बन्धनों, समस्त पक्षपातपूर्ण अविचारों से रहित साकार कल्याण बन जाती है। यह पथ सुन्दरता को जाता है, सत्य को जाता है जहाँ विलास और कामाचार की कोई जगह नहीं। दिन प्रतिदिन का आवश्यक संघर्ष इस पथ को और अधिक शोभनीय बना देता है। जो साहसी हैं वे इस संघर्ष से नहीं डरते बल्कि संघर्ष में ही उन्हें रस मिलता है।

जो दुर्बल हृदय हैं वे कहेंगे—

"हृदय जब बोझिल हो जाता है तो विवशता छा जाती है।"

किन्तु जो अनन्त प्रेम में रमा हुआ है, जो आत्मा के अनुशासन में पूर्णत्व को प्राप्त कर रहा है वह कहीं बोझिल और विवश हो सकता है ? हृदय को बोझिल बनाकर ही हम अपने अनुभव के क्षेत्र को विस्तृत कर सकते हैं। चीन के एक महान ज्ञानी और सन्त ने कहा है—

"प्रभु ! मुझे चूर चूर कर डालो ! दुनिया का अधिक से अधिक बोझ मेरे ऊपर लाद दो ताकि मैं अपनी शक्ति को उसी अनुपात में बढ़ा सकूँ।

"यह बोझ गुलाब के फूलों में खिल उठेगा और सुबह के इन्द्र धनुष के रूप में तृण तृण पर ओस की बूँदों में प्रतिबिम्बित हो उठेगा !"

"इसलिये हे प्रभु ! मुझे श्रम से चूर चूर कर डालो जब मैं सुन्दरता के उद्यान की ओर जा रहा हूँ तब मुझे बोझ से क्या डर !"

ज्ञान सत्य का ही तो नाम है। प्रभात भी सत्य है सुन्दरता का उद्यान भी सत्य है, श्रम और थकावट भी सत्य है और पूर्णत्व की प्राप्ति भी सत्य है।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नारी !

स्वामी विद्यानन्द

तू छाई सारे त्रिभुवन में
सब तेरे अनुरक्त ;
तेरे इस सुकुमार भाल में
लिखे अनेकों तत्व !

नयनों में, अधरों में तेरे
निहित विश्व अमरत्व ;
चिर जन्मों की प्रीति निगोड़ी
पर तेरा ही स्वत्व !

युग-युगान्त का प्रणय अकिंचन
तेरे मन में संचित ;
तेरे अन्तस्तल में जग की
विरह वेदना अंकित !

तेरे ही हित सन्ध्या आकर
कुंकुम थाल सजाती ;
निशा ज्योत्स्ना, उषा अरुणिमा
आभा लेकर आती !

उन्मुख स्वर - लहरी तेरा
आवरण सजा देती है ;
वीणा मदमाती मोहक
झंकार जगा देती है !

तेरे मधुर प्रणय से माया
लज्जित, नव - आरक्त ;
ऋतु, दिक्, पावस, पवन, ज्वाल सब
हैं तेरे चिर - भक्त !

* * *

उद्धत नारी अखिल विश्व को
पैरों से ठुकराती ;
सभ्रम, मूर्ख पुरुष के जग में
पर अबला कहलाती !

[ गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की रचना पढ़कर ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दू-मुसलमानों के सांस्कृतिक मेल-जोल का प्रारम्भ

डाक्टर लतीफ़ दफ़्तरी एम० ए०, डी० फ़िल०

मुसलमान तुर्कों के पंजाब आने के एक सदी बाद ही हिन्दू और मुसलमानों के सांस्कृतिक समन्वय की पहली दाग़बेल मिली-जुली बोली के रूप में पड़ी। हिन्दी और फ़ारसी ने मिलकर उर्दू बोली को जन्म दिया। मिली जुली बोली की पैदायश इस बात को ज़ाहिर करती है कि उस वक़्त तक हिन्दू और मुसलमानों में एक मिली जुली समन्वयात्मक चेतना हमारी सामाजिक, नैतिक, और दिमाग़ी ज़िन्दगी के हर क्षेत्र में गहराई के साथ प्रवेश कर रही थी। इस मिली जुली चेतना ने सांस्कृतिक समन्वय की गहरी छाप हमारी कला, हमारे साहित्य और हमारे धर्म के ऊपर छोड़ी है।

भारत के इस सांस्कृतिक समन्वय के खोजपूर्ण अध्ययन की अब तक बहुत थोड़ी सी कोशिश की गई है। इस सम्बन्ध में जो चन्द पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें मौलवी सय्यद सुलेमान नदवी की 'अरब और हिन्द के ताल्लुक़ात', डाक्टर डी० आर० भण्डारकर की The Slow Progress of Islam in India, डाक्टर ताराचन्द की The Influence of Islam on Indian Culture और एक यूरोपीय विद्वान की पुस्तक Scriptorum Arabum de Rebus Indicis loci et Opuscula Inedita आदि मुख्य हैं। पिछले सैकड़ों बरस में मानव कल्याण के उपासक अनेक मुसलमान सन्तों, राजनीतिज्ञों और विद्वानों ने हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुसलमानों के मिलने से जो समस्यायें पैदा हो गई थीं उनके प्रेमपूर्ण हल खोजने में बहुत सा चिन्तन और मनन किया है। भारतीय विद्वानों द्वारा इनके उदार प्रयत्नों को जितना महत्व दिया जाना चाहिये उतना महत्व नहीं दिया गया। महत्व देना तो दूर रहा दोनों सम्प्रदायों के विद्वान अनैतिहासिक और भ्रान्त दलीलों द्वारा मिली जुली भारतीय संस्कृति को खण्ड खण्ड करने के और हिन्दू और मुसलमानों के दिलों को एक दूसरे से फाड़ने के निन्दनीय और कुत्सित प्रयत्न कर रहे हैं। हिन्दू और मुसलमानों ने सैकड़ों बरस तक जिस भारतीय संस्कृति को इतना समृद्ध बनाया है उन्हीं के वंशज आज शर्मनाक तरीक़ों से उसकी धज्जियां उड़ाने में मशग़ूल हैं।

तुर्कों का हिन्दुस्तान में आना एक उतना ही अजीब-ओ-ग़रीब क़ुदरती वाक़ा है जितना तूफ़ानों का एक जगह से दूसरी जगह मंडराना! तुर्कों ने आकर हिन्दुस्तान को उसकी जड़ों तक हिला दिया और लोगों को झकझोर कर नई सम्भावनाओं के लिये जगा कर तत्पर और सचेष्ट कर दिया। ये परिवर्तन अपने आप में फ़ायदे मन्द या नुक़सानदेह हैं इसका फैसला मैं नहीं कर सकता, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस परिवर्तन ने भारत की समाजी बुनियादों को ही बदल दिया। आर्यों के आगमन ने भारत की समाजी ज़िन्दगी को जिस तरह जड़ से हिला दिया था तुर्कों का अघात उससे थोड़ा ही कुछ कम रहा। किन्तु तूफ़ान के बाद शान्ति लाज़मी है। भूकम्प के बाद पुनर्निर्माण ज़रूरी है। जब नदियों का सङ्गम होता है तो दोनों नदियों की धारायें गरजते हुये टकराती हैं किन्तु शीघ्र ही वे शान्त होकर रल मिलकर एक धारा में बहने लग जाती हैं। प्रयाग के बाद गङ्गा यमुना की धारा में कोई अन्तर नहीं रह जाता। उसी तरह हिन्दू और मुसलमान आपस में टकरा कर एक मानव संगम में मिले थे और फिर उनकी संस्कृतियाँ रल मिल कर भारतीय संस्कृति को अखण्ड धारा बनकर बहने लगी थीं कि जिस ने सनत और हिरफ़त, कला और विज्ञान, साहित्य और कविता, चित्रकला और स्थापत्य—सभी क्षेत्रों को सर सब्ज़ और हरा भरा कर दिया था। आज हम फिर एक बार कृत्रिम उपायों द्वारा संस्कृति की, उस अखण्ड धारा को खण्ड खण्ड करने की, यमुना की धारा को गंगा की धारा से पृथक करने की लज्जाजनक चेष्टा कर रहे हैं।

भारत में तुर्कों के हमलों के तीन सौ बरस पहले से मुसलमानों में भारत की महान सभ्यता और उसके ज्ञान के अगाध भण्डार को समझने और उसके प्रति आदर प्रकट करने की लगातार कोशिश हो रही थी। भारत और अरब के बीच बहुत पुराने ज़माने से तिजारती ताल्लुक़ात चले आ रहे थे किन्तु मौजूदा ताल्लुक़ात का सिरा हम उस वक़्त से जोड़ सकते हैं जब अरबों ने अपने पूर्व साम्राज्य में तहज़ीब के नये नये केन्द्र क़ायम किये। ख़लीफ़ा उमर के ज़माने तक इसलामी दुनिया को हिन्दुस्तान के बारे में बहुत कम सच्ची जानकारी थी। हिन्दुस्तान के समुद्री किनारों के बारे में अरब और ईरान के मल्लाहों को थोड़ी बहुत वाक़फ़ीयत थी और वे हिन्दुस्तान की तिजारती दौलत की तारीफ़ के गीत गाया करते थे। जब ख़लीफ़ा उमर ने एक अरब मल्लाह से हिन्दुस्तान के बारे में पूछा तो वह तारीफ़ के पुल बाँधने लगा कि—"हिन्दुस्तान के दरिया मोतियों से भरे हैं और



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उसके पहाड़ों में हीरे जवाहरातों की खानें हैं और उसके पेड़ पौधे ख़ुशबुओं से मुअत्तर हैं।" किन्तु हिन्दुस्तान के बारे में सही सही जानकारी हासिल करने की पहली कोशिश शायद ख़लीफ़ा उसमान के ज़माने में की गई। उसमान ने ६२४ और ६६४ ईसवी के बीच हकीम बिन जबाला को मुक़र्रर किया कि वह पता लगाकर हिन्दुस्तान के बारे में सही सही ख़बरें ख़लीफ़ा को दे। जबाला ने हिन्दुस्तान आकर यहाँ के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट ( Thaghar-al-Hind ) तय्यार करके ख़लीफ़ा की ख़िदमत में पेश की।[1] इस बात के भी बहुत से सुबूत मिलते हैं कि सातवीं सदी ईसवी के शुरू में ईरान से लगे हुये हिन्दुस्तान के सूबों के साथ अरब व्यापारियों का तिजारती सम्बन्ध क़ायम था और वे जाटों और मद्रों से परिचित थे। चूंकि हिन्दुस्तान के इन हिस्सों पर एक समय ईरानियों की हुकूमत थी इसलिये इन हिस्सों के हिन्दुस्तानी क़बीलों और ईरानियों के बीच निकट सम्बन्ध रहा होगा। जब ईरान ने इसलाम क़ुबूल किया तो तिजारती सम्बन्ध के साथ साथ यह घनिष्टता और अधिक बढ़ी होगी। एक बात हमें और ध्यान में रखनी चाहिये कि एक ज़माने में ख़ुरासान, और तुर्किस्तान तथा ईरान में बौद्धधर्म का बेहद प्रचार था और बौद्ध धर्म के अनुयायी इराक़, मोसल और शाम की सरहद तक फैले हुये थे। इन देशों के निवासियों ने हालाकि बौद्ध धर्म की जगह इसलाम स्वीकार कर लिया था फिर भी उनके दिलों में हिन्दुस्तान के लिये एक मुहब्बत और इज़्ज़त की भावना ज़रूर रही होगी।

जब कि आपस के ताल्लुक़ात बहुत थोड़े थे तब भी मुसलमान हिन्दुस्तान को दुनिया का सब में अधिक तहज़ीब याफ़्ता मुल्क समझकर उसकी बेहद क़द्र और इज़्ज़त करने लगे थे। प्रमाण के तौर पर हिन्दुस्तान की तारीफ़ में इसलाम के पैग़म्बर और उनके मशहूर अनुयाइयों की रवायतें लफ़्ज़-ब-लफ़्ज़ पेश की जाती थीं। इस तरह की रवायतों की प्रामाणिकता पर थोड़ा बहुत मतभेद हो सकता है लेकिन यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि शुरू ज़माने के इसलाम के साहित्य में हिन्दुस्तान की बेहद तारीफ़ भरी पड़ी है।

उस समय के अरब सौदागरों ने गुजरात के बल्हर राजाओं और मलाबार के सामुरी राजाओं को अपनी तरफ़ बेहद मेहरबान और दोस्ती से भरा हुआ पाया। समुद्र के किनारे किनारे उन्हें अपनी बस्तियाँ बसाने और मसजिदें बनाने की इजाज़त थी। इन मुसलमानों ने हिन्दू लड़कियों से ही शादी की जिनकी मिली जुली औलादें मलाबार में 'मोफ़ला' और कोकण में 'हटिया' के नाम से मशहूर हुईं। यदि हम मलाबार के राजा चेरूमन पेरूमल के इसलाम ग्रहण करने की आमफ़हम किम्वदन्ति स्वीकार करलें तो हमें हिन्दुस्तान की मुसलिम नवाबादियों का समय पैग़म्बर की ज़िन्दगी के ही क़रीब मानना पड़ेगा। किम्वदन्ति यह है कि अरब सौदागरों का एक जत्था सिंहलद्वीप में 'आदम की चोटी' की यात्रा करने के लिये रवाना हुआ। कैंङ्गानोर के बन्दरगाह में राजा चेरूमन पेरूमल ने इन सौदागरों का स्वागत किया। सौदागरों ने पैग़म्बर मोहम्मद द्वारा चाँद के टुकड़े किये जाने की कहानी राजा को सुनाई। राजा ने इसलाम स्वीकार कर लिया और चुपचाप इन सौदागरों के साथ मदीने की यात्रा की। वापस लौटते हुये रास्ते में उसकी मृत्यु हो गई। मरते समय चेरूमन ने मुसलमानों को राज्याज्ञा द्वारा मसजिदें बनाने की अनुमति दे दी। उसी के मुताबिक़ मलाबार में कई जगह मसजिदें बनाई गईं। बलाज़ुरी भी सन् ८४२ ईसवी के क़रीब पश्चिमोत्तर भारत के एक राजा के इसलाम ग्रहण करने की घटना सुनाता है।[2] बुज़र्ग बिन शहरयार और सौदागर सुलेमान, जो नौवीं सदी में हिन्दुस्तान आये थे, लिखते हैं कि हिन्दुस्तान के राजाओं के दिलों में मुसलमानों की तरफ़ बेहद सद्भावना मौजूद थी।

पता नहीं कैसे मुसलमानों के दिलों में यह विश्वास घर कर गया है कि मानव जाति के पहले पैग़म्बर और पहले इनसान हज़रत आदम बहिश्त से निकाले जाने के बाद हिन्दुस्तान में सिंहलद्वीप में आकर उतरे। हिन्दुस्तान में जो ख़ुशबूदार फूल और जड़ी बूटी भरी पड़ी हैं वे हज़रत आदम ही बहिश्त के नन्दनवन से यहाँ लाये थे। जिस पत्थर पर हज़रत आदम उतरे उस पर उनके क़दमों का निशान आज तक मौजूद है। इसी पत्थर के निशान को सिंहल के बौद्ध भगवान बुद्ध के चरण चिह्न समझकर अभ्यर्थना करते हैं। बाद के मुसलिम लेखकों ने दूसरे देशों के मुक़ाबले में भारत की श्रेष्ठता पर इस बिना पर और अधिक ज़ोर दिया है कि हज़रत आदम मानवजाति के पहले पैग़म्बर थे और अल्लाह ने अपना हुक्म सब से पहले उन्हीं को सुनाया और आदम चूंकि उस वक़्त हिन्दुस्तान में थे इसलिये हिन्दुस्तान ही को सब से पहले ईश्वराज्ञा सुनने

१—Islamic Culture Vol. 1, No. 2, pp. 190-91.

२—फ़ुतूह अल-बलदान ( लेडेन ), पृष्ठ—४४६.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का फ़ख़ हो सकता है। सम्भव है कि शायद इसीलिये इसलाम के पैग़म्बर ने फ़रमाया है—"मैं हिन्दुस्तान से बहकर आई हुई अल्लाह के ज्ञान की मन्द मन्द सुगन्ध सूँघ रहा हूँ।" आम मुसलमानों के लिये हिन्दुस्तान की सरज़मीन की पाकीज़गी की यह आख़री और ज़बर्दस्त दलील है। इस तरह की किम्वदन्तियाँ क्यों शुरू हुईं इसकी मैं वजह नहीं खोज सका किन्तु फिर भी ये भारत के मुसलमानों के आम विश्वास का अङ्ग बनी हुई हैं। पढ़े लिखे और समझदार लोग भी इन दन्त कथाओं को लफ़्ज़-ब-लफ़्ज़ सच मानते हैं।

इब्न बतूता (१३७७ ई०) ने भी हज़रत आदम के इस पवित्र चरण चिन्ह की ज़ियारत (यात्रा) की थी। इस चिन्ह को देखकर उसने लिखा है—"हज़रत आदम का यह पवित्र चरण चिन्ह एक ऊँचे काले पत्थर पर अंकित है। यह चिन्ह पत्थर पर इतने अन्दर धंस गया है कि अब तक ज्यों का त्यों क़ायम है। यह निशान सवा आठ फ़ुट लम्बा है।"[३] इस सच्चाई को साबित करने के लिये कि हिन्दुस्तान सब देशों का सिरमौर है इस तरह की दलीलें आख़री सबूत की तरह पेश की जाती थीं। इन बातों से मुसलमान हिन्दुस्तान के और अधिक निकट आते थे और उसे अपना पाक मुल्क समझकर उससे मुहब्बत करने लगते थे। लोग उस वक्त तक दन्त कथायें नहीं गढ़ा करते जब तक कि उसके पीछे कोई ख़ास वजह न हो।

इसी तरह हिन्दू भी मुसलमानों के काबे को अपना ही धर्म-मन्दिर समझते थे। एक ज़माने में काबा, अरब और अरब के आस पास रहने वाले, सभी धर्म मज़हब वालों का एक पवित्र केन्द्र था। नीचे के उद्धरण को नामुमकिन मानते हुये भी हमें उससे हैरत में नहीं आना चाहिये। बर्टन लिखता है—

"हिन्दू पण्डित इस बात को दावे के साथ कहते हैं कि मक्के में शिव और पार्वती 'कपोतेश्वर' और कपोतेश्वरी' के रूप में विराजमान हैं···कुछ लेखकों का कहना है कि हज़रत मुहम्मद के समय मक्का के देवी देवताओं में लकड़ी में खुदी हुई कपोतेश्वर और कपोतेश्वरी की मूर्तियाँ थीं जिन्हें अली ने पैग़म्बर के कन्धों पर चढ़कर नीचे गिरा दिया था।"[४]

विलफ़ोर्ड लिखता है—

"हिन्दू कहते हैं कि मक्का अथवा 'मोक्षेश'या 'मोक्ष स्थान' में जो काला पत्थर अथवा 'सङ्ग-ए-अस्वद' वह 'मोक्षेश्वर' भगवान शिव के अवतार का प्रतीक है भगवान शिव और पार्वती अल-हेजाज़ के अपने भक्तों की तपस्या से प्रसन्न होकर मोक्षेश्वर के रूप में मक्का में अवतरित हुये थे।"[५]

समकालीन मुसलमान यात्रियों और लेखकों ने भारत का उस समय की परिस्थिति को अपने ग्रन्थों में दर्ज किया है सिन्ध के इतिहास पर पहला ग्रन्थ 'छछ-नामा' है, जो मू रूप में अरबी में लिखा गया। वह मुसलिम इतिहासका की हिन्दुस्तान पर पहली इतिहास की पुस्तक है 'छछ-नामा' के बाद इब्न ख़ुरदादबीह ने सन् ८४५ ईसवी में हिन्दुस्तान के भूगोल पर एक पुस्तक लिखी। ए दूसरी पुस्तक अबु ज़ाहिद ने सन् ९१६ ईसवी में लिखी जिसमें सुलेमान सौदागर की भारत और चीन की यात्रा का वर्णन दर्ज है। इसमें हिन्दुस्तान की धार्मिक और सामाजिक हालतों पर बहुत विस्तार से रोशनी डाली ग है। इसी ज़माने का एक दूसरा इतिहासकार अबु ज़ाहि अल बलख़ी (९३४ ईसवी) है जिसने हिन्दुस्तान इतिहास पर बहुत प्रामाणिकता और तफ़सील से लिखा और जिसका बाद के लेखकों ने भी सनद के तौर प हवाला दिया है। इनके अतिरिक्त इब्न रिस्ताह (९० ई०), अबु ज़ल्फ़ (९४३ ईसवी), अस्ताख़री (९५१ ई० मसूदी (९४५ ई०), मुताहर इब्न ताहिर, अल बेरू (९९९ ईसवी), इब्न बतूता (९४३ ईसवी), हमदुल्ल मुस्तफ़ी और बाद के दूसरे मुसलिम इतिहासकारों समकालीन हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में अत्यन्त मूल्यवा ऐतिहासिक, तिजारती, भौगोलिक और सामाजिक जानका की बातें अपनी पुस्तकों में दर्ज की हैं।

अब्बासी या अरबी संस्कृति ने यूनानी और भारतीय आ संस्कृति से ही जन्म लिया है। अरब-अब्बासी संस्कृति का वाह्य रूप यद्यपि सेमेटिक और ईरानी था किन्तु उस वैज्ञानिक और आध्यात्मिक ज्ञान, उसकी वैद्यक और उस फ़िलासफ़ी पर गहरा भारतीय और बाद में यूनानी प्रभा पड़ा। उसके अरबी ढाँचे में भारतीय आत्मा प्रकाशित रही थी। सिन्ध की विजय के बाद भारत की भौति दौलत के साथ साथ भारत की अध्यात्मिक दौलत

३—Ibn Batuta (H. A. R. Gibb), p 295.

४—Burton's Pilgrimage to Al-Madinah, Vol. 11, p. 174.

५—AS. Soc. Vols. 11I and IV.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ख़लीफ़ा के दरबार में पहुंची। भारतीय विश्वविद्यालयों में तक्षशिला में अवश्य मुसलिम विद्यार्थी रहे होंगे। काश्मीर उस ज़माने में संस्कृति का प्रधान केन्द्र था जहां ईरानी-बौद्ध विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आया करते थे। अब्बासी संस्कृति को ख़लीफ़ा के बरमकी (बौद्ध) वज़ीरों ने जो स्फूर्ति और चेतना दी वह निस्सन्देह अद्वितीय है। क़ानून और न्याय के मन्त्रियों की हैसियत से और संस्कृति के दीप-स्तम्भ की हैसियत से कोई भी ईरानी या अरब राजकुल उनका मुक़ाबला नहीं कर सकता। ये बरमकी उस समय बौद्ध धर्म से इसलाम में दीक्षित हुये थे और इन्हीं के प्रयत्न से अरबों और भारतीयों में गहरा सांस्कृतिक सम्बन्ध क़ायम हुआ था। इन्हीं के प्रयत्नों से इसलामी संस्कृति ने मुक्त हृदय से भारतीय संस्कृति की देन को दोनों हाथों से स्वीकार किया।

जब मुसलमानों ने सन् ७०७ ईसवी में सिन्ध विजय किया तो उन्होने देखा कि देश बौद्धों और ब्राह्मण शासकों में बँटा हुआ है और ब्राह्मण धीरे धीरे बौद्धों को पछाड़ते जा रहे हैं। ब्राह्मणों और अरबों के संघर्ष में बौद्धों ने अरबों का साथ दिया और इस तरह से अरबों की सिन्ध विजय को आसान बना दिया। सिन्ध विजय करने के बाद अबुल क़ासिम ने ऐलान किया कि "भारतवासी भी एकेश्वर की उपासना करते हैं और उनके मन्दिर भी ईसाइयों के गिरजों, यहूदियों के सिनागोगों और मागियों के आतिशकदों की तरह हैं और उसी तरह से ये लोग अहले किताब हैं जिस तरह से ईसाई और यहूदी"।[६] सिन्ध विजय के बाद से ही अरबों और भारतीयों में एक ऐसी दृढ़ प्रेम भावना क़ायम हो गई जिसमें ख़लीफ़ा तक ने सिन्ध में मन्दिरों को गिराने या इसलाम के प्रचार की इजाज़त नहीं दी।

अङ्गरेज़ इतिहासज्ञ सर विलियम म्यूर अफ़सोस के साथ लिखता है—

"यह बात याद रखनी चाहिये कि अरब विजेता जो रवय्या अधीन क़ौमों के साथ बरतते थे वह हिन्दुस्तान में जाकर बिलकुल उलट गया। मन्दिरों को ज्यों का त्यों सुरक्षित छोड़ दिया गया और मूर्ति-पूजा की कोई मनाही नहीं की गई। जैसा कि वेल ने लिखा है 'हिन्दुस्तान की लड़ाई धर्म युद्ध या जेहाद नहीं रह गई क्यों कि वहाँ धर्म परिवर्तन का प्रश्न ही नहीं उठाया गया।' सिन्ध में अल्लाह की परिस्तिश के साथ साथ मूर्तियों की पूजा की भी अनुमति हो गई। ... और इस तरह बावजूद इसलामी हुकूमत के भारत एक मूर्तिपूजक मुल्क बना रह गया।"[७]

जर्मन विद्वान वान क्रेमर लिखता है—

"सिन्ध में अबुल क़ासिम की हुकूमत में और उसके बाद भी ब्राह्मणों का आदर और मान ज्यों का त्यों क़ायम रहा। ज़मीन की मालगुज़ारी भी ३ प्रतिशत ज्यों की त्यों जारी रखी गई। हिन्दुओं को खुली इजाज़त थी कि वे मन माने मन्दिर बनवायें, मुसलमानों के साथ व्यापार करें और निडर होकर अपनी बढ़ती के लिये जो कुछ मुनासिब समझें करें।"[८]

इस पर आसानी से विश्वास किया जा सकता है कि इन हालतों के अन्दर दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे के प्रति बहुत दरजे तक उदार हो गये होंगे और दोनो में सांस्कृतिक सम्बन्ध सम्भव हुआ होगा। किन्तु सिन्ध ही अकेला ऐसा सूबा नहीं था जहाँ दोनों सम्प्रदायों के बीच मित्रतापूर्ण सामाजिक व्यवहार चल रहा था। भारत के तमाम पश्चिमी किनारे के मुसलमान हिन्दुओं के साथ मिल जुल कर प्रेम पूर्वक रह रहे थे। मुसलिम यात्रियों के अनुसार मुसलमानों और भारतीय बौद्धों में बेहद भाई चारा हो गया था। बुज़ुर्ग बिन शहरयार नौवीं सदी के भारत के पश्चिमी तट के बारे में अपने निजी अनुभवों के बल पर लिखता है—"बिकुर या भिक्खुओं का सम्प्रदाय सिंहल का रहने वाला है। इन्हें मुसलमानों से मोहब्बत है और मुसलमानों के प्रति ये बेहद उदार हैं।"[९] इन भिक्खुओं ने इसलाम के सम्बन्ध में जानकारी हासिल करने के लिये अपना एक प्रतिनिधि अरब भेजा। यह प्रतिनिधि ख़लीफ़ा उमर के समय अरब पहुँचा। वापस लौटते हुये मकरान में उसकी मृत्यु होगई किन्तु उसका एक साथी सही सलामत सिंहल पहुंचा और वहाँ उसने इसलाम के सम्बन्ध में अपनी जानकारी लोगों को बताई। उसने बताया कि मुसलमानों का ख़लीफ़ा निहायत सादा ज़िन्दगी बसर करता है और ग़ुरूर उसे छू तक नहीं गया। शहरयार लिखता

६—Balazuri, p. 439.

७—The Caliphate its Rise, Decline and Fall, by Sir W Muir, pp. 354-355.

८—Islamic Culture, Vol. 1, No 2, p. 205.

९—Ajaib al-Hind (ed. P.A. Von Der Lith), p. 155.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है—"यही वजह है कि बौद्ध मुसलमानों से इतना प्रेम करते हैं और उनके साथ इतनी हमदर्दी रखते हैं।"[१०] सुलेमान सौदागर लिखता है—"राजा बल्हर की तरह राजा गुज्र भी अरबों के प्रति मित्रतापूर्ण बर्ताव रखता है।"[११]

अस्ताख़री ९५१ ईसवी में हिन्दुस्तान आया था। उसके भूगोल के ग्रन्थ में हिन्दुस्तान का वर्णन है। अस्ताख़री ने सबसे पहले हिन्दुस्तान के एक सूबे सिन्ध का नक़्शा तैयार किया। अस्ताख़री के वक्त तक ख़ास ख़ास शहरों में हिन्दू-मुसलिम तिजारत के केन्द्र क़ायम हो चुके थे। एक मुसलिम लेखक के अनुसार इन केन्द्रों में हिन्दू और मुसलमानों के सामाजिक सम्बन्ध के फल स्वरूप मिले जुले रस्म रिवाज और व्यवहार के नियम बनते जा रहे थे। इब्न हौकल लिखता है—"मुलतान में हिन्दू और मुसलमान एक ही सी पोशाक पहनते हैं और एक ही फ़ैशन के बाल संवारते हैं। मनसूरा और मुलतान और आस पास के शहरों में दोनों यकसाँ अरबी और सिन्धी ज़बान बोलते हैं।"[१२] बस्सहरी लिखता है कि—"सिन्ध में अरबी, फ़ारसी और सिन्धी तीनों यकसाँ समझी जाती हैं।"[१३] अस्ताख़री और इब्न हौकल लिखते हैं कि हिन्दू इलाक़ों में मुसलमान जगह जगह बस गये थे और उन्होंने इबादत के लिये मसजिदें तामीर करली थीं। सुलेमान सौदागर सिंहल के सम्बन्ध में लिखता है कि "सिंहल में विभिन्न धर्मों के अनुयायी बसते हैं और सिंहल का राजा इन विविध धर्मावलम्बियों को अपने अपने धर्म के पालन करने की अनुमति देता है।"[१४]

यह स्पष्ट है कि व्यापार के केन्द्र सांस्कृतिक आदान प्रदान के भी केन्द्र थे। इनमें मुख्य शहर ख़ुज़दार महफ़ूज़ाह, मन्सूराह और जन्दौर आदि थे। जो मुसलमान इन शहरों में बस गये थे वे क़ौम के अरब थे। वे भारतीयों में इस दरजे मिल जुल गये कि कुछ पीढ़ियों बाद उनका पहचाना जाना भी नामुमकिन हो गया।

इन के तर्ज़ तरीक़े, आचार विचार बिलकुल हिन्दुओं जैसे हो गये। इन लोगों की एक अलग ही जमात बन गई जो समस्त दक्षिण भारत में फैल गई। इनमें एक जमात अली को शिव का अवतार समझकर पूजा करती थी।

तिजारती सम्बन्ध के साथ साथ ज्यों ज्यों सांस्कृतिक आदान प्रदान बढ़ा त्यों त्यों भारतीयों और अरबों में एक दूसरे को जानने समझने और एक दूसरे से प्रेम करने और एक दूसरे के धर्म का अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा भी बढ़ी। उदाहरण के तौर पर मसूदी लिखता है—"खम्भात का राजा मुसलमानों और दूसरे धर्मावलम्बियों के साथ, जो उसके दरबार में आते थे, धार्मिक विचारों का आदान प्रदान करता था।"[१५]

इसी तरह से बुज़ुर्ग बिन शहरयार लिखता है कि अलौर के राजा महरुग ने, जिसका राज्य उपरले और निचले काशमीर के बीच में था, मनसूरा के शासक को लिखा कि वह किसी ऐसे आदमी को भेजे जो हिन्दवी भाषा में इसलाम के उसूलों को उसे समझा सके। मनसूरा के शासक ने अब्दुल्ला नामी एक क़ाबिल शख़्श को, जो तीन बरस तक मन्सूरा में रह चुका था, अलौर भेजा। उसने क़ुरान का हिन्दी में तर्जुमा करके रोज़ राजा को सुनाना शुरू किया। राजा पर उसका गहरा असर पड़ा। इस तरह के असर पड़ने उस वक्त क़ुदरती थे। इसके बाद मुसलिम देशों में हिन्दुओं की आमद रफ़्त शुरू हुई और दोनों के बीच के सामाजिक ताल्लुक़ात और अधिक गहरे और दिलचस्प होते गये। सुलेमान लिखता है—

"इराक़ के बन्दरगाह सैराफ़ में बहुत से हिन्दू रहते हैं और जब कोई अरब सौदागर उनकी दावत करता है तो उनकी तादाद सौ तक पहुंच जाती है। उनमें से हर एक शख़्श का खाना अलग अलग रक़ाबियों में परसा जाता है क्योंकि एक ही रक़ाबी में कोई एक दूसरे के साथ नहीं खाता।"[१७] इन्हीं हिन्दुओं के मुताल्लिक बुज़ुर्ग बिन शहरयार कहता है—

"ये लोग बोल चाल की अरबी इस क़दर सफ़ाई

---

१०—Ibid, p. 481.

११—Voyage du Merchant Sulayman (Paris), p. 119.

१२—Ibn Hauqal (de Goeje), p. 232.

१३—Ahsan ut-Taqasim, p. 482.

१४—Voyage du Merchant Sulayman (Paris), p. 119.

१५—Muruj-uz-Zahab (Paris), Vol. pp. 253-54.

१६—Ajaib al-Hind, pp. 2-3.

१७—Voyage du Merchand A (Frrand), p. 139.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और धारा-प्रवाह बोलते हैं कि हमारे आलिम फ़ाज़िल मौलवी दङ्ग और हैरान रह जाते हैं। इन लोगों में आमतौर पर सिन्धी, गुजराती और मुलतानी हैं जो अनन्तकाल से हमारे मुल्कों के साथ तिजारत करते आ रहे हैं।"[१८]

इस तिजारती सम्बन्ध से हिन्दुस्तान मुसलिम मुल्कों के घनिष्ट सम्पर्क में आया और इसलामी दुनिया पर अपने ज्ञान, विज्ञान, अध्यात्म और धर्म का प्रभाव डाल पाया। अरब और ईरानी सौदागर हिन्दुस्तान से तिजारती माल के साथ साथ कला और विज्ञान के खेवे भी ले जाते थे।

दूसरी तरफ़ अब्बासी ख़लीफ़ाओं के दरबार की मानसिक उदारता और धार्मिक सहिष्णुता से आकर्षित होकर हिन्दू पंडित बड़ी तादाद में बग़दाद में इकट्ठा होने लगे। ख़लीफ़ा के दरबार में ज्योतिष और वैद्यक के सर्वोच्च पदों पर हिन्दू पण्डित ही आसीन थे। मुसलमानों के दिलों में हिन्दुस्तान के ज्ञान की रहस्यमय गहराई की थाह लेने की, ज्ञानी, ध्यानी और सृजनशील भारत को जानने की अगाध जिज्ञासा पैदा हुई। अरब के विद्वान ज्ञान के सच्चे उपासक थे और अगणित संख्या में अरब यात्री, विद्वान, इतिहासज्ञ और भौगोलिक भारत में आ आकर ज्ञान के इस अक्षय भण्डार से भिक्षा ग्रहण करने लगे। हारूँ अर-रशीद के वज़ीर यहवा बरमकी ने एक विद्वान को इस बात के लिये मुक़र्रर किया कि वह हिन्दुस्तान में प्रचलित विविध धर्मों, और हिन्दुस्तान की जड़ी बूटियों के बारे में अपनी विस्तृत रिपोर्ट पेश करे। इब्न अन-नज़ीम का कहना है कि उसने बतारीख़ ४४९ हिजरी की अलकिन्दी के हाथ की लिखी हुई इस रिपोर्ट की एक प्रति देखी है। इब्न अन-नज़ीम के अनुसार इस रिपोर्ट में बल्लभराय की राजधानी महानगर के देव मन्दिरों और मुलतान और भारत के विविध धर्मों और मतमतान्तरों का भी वर्णन था। इब्न अन-नज़ीम ने पूरी किताब का खुलासा भी दिया है। जिन मत मतान्तरों का इसमें वर्णन है उनमें से कुछ ये हैं—महाकालिया, आदित्यभक्तिया, चन्द्रभक्तिया, वक्रान्तिया (जिसके अनुयायी ज़ंजीर पहनते थे), गङ्गायात्रिया, राजपुत्रिया और एक और सम्प्रदाय जिसके अनुयायी लम्बे बाल रखते थे, मदिरा से परहेज़ करते थे, और औरतों के संसर्ग से बचते थे।[१९]

हिन्दुस्तान के पश्चिमी किनारे में जगह जगह हिन्दू मुसलमानों की जिस तरह की मिली जुली आबादियाँ उस समय बस गईं थीं और जिस तरह दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे में दिलचस्पी ले रहे थे उससे स्पष्ट है कि दोनों एक दूसरे के धर्म की अध्यात्मिक और नैतिक गहराइयों में प्रवेश पाने की कोशिश कर रहे थे। उनकी यह जिज्ञासा आपस के गहरे सम्बन्ध और मेल जोल से ही पूरी हो सकती थी।

उस समय के एक राजा की बाबत लिखा है कि उसने ख़लीफ़ा हारूँ रशीद को पत्र लिखकर किसी ऐसे मुसलिम विद्वान को भेजने की प्रार्थना की जो राजा के हिन्दू पंडितों से धार्मिक वाद विवाद कर सके। इसी घटना का एक दूसरा विवरण यह है कि राजा ने मुसलमान विद्वान को इसलिये बुलाया ताकि वह एक प्रकाण्ड बौद्ध तर्क-शास्त्री से धार्मिक तर्क कर सके। यह सही भी हो सकता है। बहरहाल वह मुसलिम विद्वान भारत आया, किन्तु उस बौद्ध तर्क-शास्त्री के सामने उसकी एक न चली। कई दिन तक बहस होती रही। मुसलमान तार्किक कुरान और हदीस को आख़री सनद कह कर पेश करता था जब कि बौद्ध तर्क-शास्त्री कुरान और हदीस दोनो से इनकार करता था। इसके बाद बहस ईश्वरवादिता पर शुरू हो गई और बौद्ध निरुत्तर होने लगा और उसने हार की शर्म से बचने के लिये, कहते हैं, एक दिन उस मुसलमान विद्वान को ज़हर देकर मरवा डाला। किन्तु इस अप्रिय घटना से ये धर्म-चर्चा रुकी नहीं और उस ज़माने के उल्लेखों में इनके ऐसे उद्धरण मिलते हैं जिनसे ज़ाहिर होता है कि हिन्दू मुसलमानों की समन्वयात्मक धर्म-चर्चा बराबर चलती रहती थी।

[ अगले अंक में समाप्त ]

---

१८—Ajaib al-Hind, p. 147.

१९—Fihrist, pp. 345-349.

२०—अरब और हिन्द के ताल्लुक़ात

२१—इस लेख के लिखने में स्व० मौलवी ज़िया उद्दीन की अप्रकाशित पुस्तक से मदद ली गई है।

—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भारत की पिछड़ी हुई जातियों की समस्या

डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त

मनुष्य-जाति-विज्ञान का इतिहास हमें बतलाता है कि आदिम मानव जातियों को जब अपने समुदाय के बाहर के अपरिचित आदमियों से काम पड़ता था तो उनके दिमाग़ में जातिगत विशेषताओं अर्थात् दैनिक तथा प्राकृतिक साम्य को देखने का प्रश्न ही नहीं उठता था। उनको उस मनुष्य के सम्बन्ध में केवल इतना ही जानने की ज़रूरत होती थी कि वह उनके अपने वंश-गत समुदाय से सम्बन्धित है अथवा नहीं।

इसी सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक मनोभावना ने प्राचीन हिन्दुओं को अपने जातीय समाज को दूसरों से भिन्न करने के लिये अपने को 'आर्य' नाम से प्रसिद्ध करने की प्रेरणा दी। प्राचीन पारसी लोगों ने भी अपने तथा ईरान के बाहर रहने वाले अन्य लोगों के बीच इसी प्रकार का एक अन्तर रखा और उन्हें 'दाहल' (Dahal) और 'साकल' (Sacal) नाम से पुकारा। इसी प्रकार प्राचीन यहूदियों ने अपने आपको अपने समुदाय या समाज से बाहर वाले लोगों से जो 'जेण्टाइल्स' (Gentiles) के नाम से पुकारे जाते थे, पृथक रखा। और इसी ढंग से प्राचीन ग्रीक-निवासियों में हेलेन के वंश को सन्तति अपने को 'हेलेनीज़' और दूसरों को 'बर्बर' (Barbarians) कहती थी।

पुरातन मानव-सन्तति में, जिसने अपनी, जाति, राष्ट्र अथवा धर्म परिवर्त्तन नहीं किया है, किसी अपरिचित को अपने समुदाय से बाहर समझने की यह भावना आज तक मौजूद है। और यही आधुनिक मनीषियों द्वारा अन्ध-विश्वास, श्रेणी-भावना तथा समुदाय-विशेष की समृद्धि के लिये हानिकारक बताकर ठुकरा दी गई है; और इसमें सन्देह नहीं कि उनकी अधिकांश विपत्तियों का मूल यही अपने समुदाय के बाहर के लोगों को अपरिचित समझने की भावना है।

उपरोक्त भावना के कारण ही प्राचीन धर्मों के भिन्न भिन्न जाति-गत आधार बन गये हैं। केवल उस काल में जाकर जब कि संसार में बौद्ध, ईसाई तथा इसलाम जैसे सार्वभौम धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ, तब उनकी सब को मिलाने और आत्मसात करने की शक्ति ही उनके भक्तों या अनुयायिओं की इस 'मेरे'-'तेरे' की भावना को कुछ सीमा तक निर्मूल कर सकी। इस प्रकार की चिन्ता-धारा के फल-स्वरूप धर्म राष्ट्रीयता का आधार बन गया। इसने लोगों को दूसरों को अपना भाई मानना सिखाया, किन्तु केवल उसी दशा में जब कि वे एक ही धर्म के मानने वाले हों। पश्चिमी एशिया में यह भावना अब तक विद्यमान है, और कुछ हद तक पूर्वी यूरोप में भी। एक समान धर्म के द्वारा एकता की इस भावना को लेकर मध्य युग में और आज भी युद्ध और रक्तपात हुए हैं और हो रहे हैं।

## राष्ट्र

किन्तु यूरोपियन संस्कृति के पुनरुत्थान और क्रान्ति के युग (Renaissence) के साथ, तथा जातियों के विभिन्न राज्यों और भाषा-विभागों में बँटते ही, यूरोप की जातियाँ अलग अलग राष्ट्रों के रूप में अवतरित होने लगीं। फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति ने तो यूरोप की सामन्तशाही सभ्यता के कफ़न में अन्तिम कील का काम किया। इस महान क्रान्ति के नारे थे मानव की समानता, और स्वतन्त्रता। जाति, धर्म और वर्ग का कोई भेद इसमें माननीय नहीं था। फ्रान्स की राज्य क्रान्ति का प्रभाव समूचे यूरोप पर पड़ा, और उन्नीसवीं शताब्दी के राष्ट्रीय यूरोप का उदय उसी का परिणाम था। किन्तु उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही कुछ देश अपने महाद्वीप के बाहर उपनिवेश अधिकृत करने लग गये थे। इस युग के पहले भी हालेण्ड, इङ्गलैण्ड तथा फ्रान्स ने अमरीका, एशिया तथा दूसरे स्थानों में उपनिवेश बनाये थे। किन्तु नेपोलियन के युद्धों के बाद तो आर्थिक आवश्यकताओं ने यूरोप के देशों के पूंजीवादी वर्ग में यह भूमि की भूख प्रबल रूप से जाग्रत कर दी, और दूसरी औद्योगिक क्रान्ति के बाद उद्योगवाद के उदय के साथ, तो उस महाद्वीप की, आर्थिक दृष्टि से उन्नत जातियों में, अधिकृत उपनिवेशों के लिये छीना झपटी और खींचातानी आरम्भ हो गई।

इस औद्योगिक पूंजीवादी श्रेणी के सिद्धान्तों ने यूरोपीय चेतना का दृष्टिकोण ही बदल दिया। वह पश्चिमी यूरोप, जो अब तक मानव जाति की स्वतन्त्रता के लिये क्रान्तियों का घर था, उसकी विचार धारा पूँजीवाद से प्रभावित और साम्राज्यवाद से आक्रान्त हो गई। इस प्रकार औपनिवेशिक साम्राज्यों के उदय के साथ, इस औपनिवेशीय साम्राज्यवाद की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये नवीन विचारों की परम्पराएँ गढ़ी गईं। इन नई राजनैतिक तथा सामाजिक विचार धाराओं का मूल-मन्त्र था 'जाति' की समस्या। अब लोगों की पहचान उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चमड़े, बालों, आँखों, रंग, सिर तथा नाक की बनावट से की जाने लगी। इसका परिणाम हुआ एक वर्गीकरण, जिसमें कुछ जातियाँ उन्नत मान ली गईं तथा कुछ हीन और पिछड़ी हुई क़रार दे दी गईं। इसके अतिरिक्त उपनिवेशों के पराधीन लोगों को सदा क़ाबू में रखने के लिये और बहुत से सिद्धान्त गढ़े जाने लगे, जैसे "जातिगत योग्यता", "श्वेत जातियों का बोझ", "जाति की परम्परागत पूँजी" इत्यादि।

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध इसी प्रकार के साम्राज्यवादी हथियारों के प्रचार का काल था, जो वैज्ञानिक सत्यों की भाँति हमारे सामने रखे जाते थे। अन्त में, साम्राज्यवादी श्रेणियों के वर्ग-चरित्र ( class-character ) के इस तथाकथित विज्ञान को ढकने के लिये दार्शनिक हेगेल का यह विचार कि जर्मन जाति ही मानवों में सर्वोपरि है, मोर्चे पर लाया गया। उसको पुराने दार्शनिक आधार से वंचित करके जाति-विज्ञान सम्बन्धी सत्य पर प्रतिष्ठित किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार जर्मन जाति, अर्थात् प्राचीन ट्यूटानिक ( Teutonic ) सन्तति के मनुष्य ही, प्राचीन आर्यों के उत्तराधिकारी थे। अतएव वे मानव जाति में सर्वश्रेष्ठ थे। इस 'जर्मनवाद' ने ही बाद में 'नारडिकवाद' का रूप धारण किया, जिसने हाल में ही 'हेरेनवोल्क'—अर्थात् स्वामी-जाति-सिद्धान्त का जामा पहना है।

## भारत पर प्रभाव

अब हमें देखना चाहिये कि इन साम्रज्यवादी विचारधाराओं का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा। हमारे इस गारिमामय देश में, जो कुछ हमारे स्वामी कहें, उसको चुपचाप मान लेने के सिवा कोई चारा नहीं है। हम अपना इतिहास, समाज-विज्ञान और मनुष्य-जाति-विज्ञान सब कुछ उन स्वामियों की आंखों से देखते और पढ़ते हैं। हमें यह विश्वास करने पर बाध्य किया जाता है कि "वैदिक काल के लोग श्वेतजातियों की एक शाखा थे जो इस गर्म महाद्वीप में कहीं दूर से आये थे। आजकल हमको सिखाया जा रहा है कि वेदों की यह श्वेत जाति, उत्तरी यूरोप की नारडिक जाति अथवा अन्य किसी ठण्ढे प्रदेश में निवास करने वाली जाति थी। फिर हमें यह विश्वास करने पर बाध्य किया जाता है कि हम प्राचीन भारत के यूरेशियन ( वर्णसंकर जाति ) हैं—जिसका जन्म नारडिक जाति तथा भारत की काली जातियों के मिश्रण से हुआ है। नारडिक लोगों के अलावा, इसके फलस्वरुप, आज के भारतीयों के मातृवंश से सम्बन्ध रखने वाले निग्रो लोगों की खोज भी भारत में की जा रही है। साम्राज्यवादी और उनके ऐजेन्ट विज्ञान का मुलम्मा चढ़ाकर इन बातों को कहते हैं, और हम आश्चर्यचकित मुद्रा से 'एवमस्तु' कह देते हैं।

इस प्रकार हमारे पूर्वजों ने अपने लिये जो कुछ कहा है उसको हमारे मस्तिष्क से उखाड़ फेंकने की चेष्टा की जाती है। बचपन से ही हमें वैज्ञानिक सत्य के इस विष को पीने और पचाने पर बाध्य किया जाता है, और आज कुछ पीढ़ियाँ बीतते ही हम उन्हें भारत के सामाजिक इतिहास का यथार्थ उद्घाटन मान बैठे हैं। किन्तु वर्तमान काल में कुछ विरोधी स्वर भी सुनाई पड़ रहे हैं। उत्सुक मस्तिष्क वैदिक आर्यों के इस नारडिक-मूल के प्रति सन्देह करने लगे हैं; वे गुर्जर-प्रतिहारों का मूल खिज़र-तुर्कों को, राजपूत तथा जाटों का मूल सकों को, तथा विस्मृत सिन्धु-घाटी की सभ्यता के मूल को अवैदिक मानने में संकोच करने लगे हैं।

## जातिगत विशुद्धता

दूसरी ओर स्वयं यूरोप के विद्वान आज वैज्ञानिक जातियों की जन्म गत विशुद्धता में सन्देह करने लगे हैं। फिर वह नया सिद्धान्त, कि ( Glandular Secretion ) ग्रन्थि-रस खोपड़ी की हड्डियों की बनावट पर प्रभाव डालते हैं, मनुष्य-शरीर विज्ञान की परम्परागत मान्यता को चुनौती दे रहा है तथा अन्तिम रूप से लेनिनग्राद के पावलोव इन्सटीट्यूट के वैज्ञानिकों ने शरीर की धमनियों और शिराजाल की कार्य विशेषता ( अर्थात् अपने को वातावरण के अनुरूप ढाल लेने की असीम शक्ति ) सम्बन्धी वर्षों की खोज के बल पर ऐसे निष्कर्ष निकाले हैं, जिनके विषय में शरीर-विज्ञान के आचार्य प्रो० पीटर अनोखिन का कहना है कि—"इस समस्या पर खोज करने से हमें यह विश्वास होगया है कि कुछ ऐसे धमनी-शिरा-केन्द्र हैं जो, ऐसा प्रतीत होता है कि, उन्हें यद्यपि प्रकृति ने सब के लिये कुछ निश्चित विशेषताओं तथा अपरिवर्त्तनीय कार्य-शक्ति से सम्पन्न किया था, तथापि कृत्रिम रूप से दबाव डालकर उन से दूसरे काम भी लिये जा सकते हैं। इससे हमने यह सिद्ध कर दिया कि कोई भी ऐसी नितान्त अपरिवर्त्तनीय शिरा-शक्तियां नहीं हैं, और वे केवल सम्बन्ध क्रम से ही स्थिर हैं। यह मनोरंजक बात है कि वर्षों की महत्वपूर्ण खोज के ये परिणाम, एक निर्वासित जर्मन

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76211



प्रोफ़ेसर ईचेन द्वारा इस जाति-सिद्धान्त की खोखली सत्ता के प्रदर्शन के लिये लिखी हुई एक पुस्तक में संग्रहीत हैं। ("मास्को न्यूज़", जून ४, १९४३)। इस खोज ने मनुष्य के निर्माण में वातावरण के प्रभाव पर ज़ोर दिया है। बर्लिन यूनिवर्सिटी के मनुष्य जाति-विज्ञान के स्वर्गीय प्रो० वान लुशेन ने भी इस बात पर ज़ोर दिया था कि वातावरण ही एक जाति की सृष्टि करता है। पुनः अमेरिकन समाज-विज्ञान के पिता प्रो० लेस्टर एफ़० वार्ड ने कहा है कि दुनिया के दृष्टिकोण में होने वाला परिवर्तन एक जाति को भी परिवर्तित कर देता है। (देखो—एपलाइड सोशियालाजी)। इस सब का अर्थ यह है कि एक समुदाय विशेष यानी 'जाति', यदि उसे वस्तुओं के नये मान दिये जाँय और उसके जीवन संबन्धी विचारों में परिवर्त्तन कर दिया जाय, तो वह अपने आपको बदल देती है। दूसरे शब्दों में, यों कहिए कि, किसी जाति के मनोविज्ञान को परिवर्त्तित किया जा सकता है। इतिहास ने इस बात की बार बार साक्षी दी है। इस प्रकार का सबसे महत्वपूर्ण परिवर्त्तन आजकल यूरोप और एशिया के सोवियत यूनियन की जातियों में हो रहा है।

अतः यह स्पष्ट है कि मनुष्यों के एक समुदाय विशेष में जिसे जाति के नाम से पुकारा जाता है, कोई अपरिवर्त्तनशील परम्परागत विशेषताऐं नहीं होतीं। 'जाति' की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि "मानवों का वह समुदाय-विशेष जो एक ही प्रकार के भाषा सम्बन्धी तथा सांस्कृतिक बन्धनों से बंधा है।" अर्थात् एक वंशानुगत इकाई है। समुदाय के भीतर भले ही भिन्न भिन्न Biotypes अर्थात् जातीय विशेषताऐं हो सकती हैं। वंश क्रम से पूर्ण रूप से विशुद्ध लोगों का कोई समुदाय, अर्थात् जिस में एक ही प्रकार का रक्त-मिश्रण ( Biotype ) हो, इस शरीर जन्य जगत में दुर्लभ है।

## अन्तर्जातीय सम्बन्धों का तरीक़ा

आजकल के सोवियत् के वंश-विज्ञान-शास्त्री कहते हैं कि आधुनिक जातियों, ( अर्थात् मानव समुदाय ), प्राचीन क़बीलों के परस्पर अन्तर्जातीय सम्बन्धों, रक्त-सम्मिश्रण तथा परस्पर सांस्कृतिक प्रभावों के योग से बनी हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि कोई भी जाति 'उच्च' अथवा 'हीन' नहीं है। ("मास्को-न्यूज़"—जनवरी १२, १९४४)। यह निष्पक्ष विज्ञान का निर्णय है। यह साम्राज्यवादी शक्तियों तथा औपनिवेशिक नीति का अनुगत नहीं है। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मानवों का एक समुदाय-विशेष, जो अपने आपको प्राचीन क़बीलों के अन्ध-विश्वासों और जंगली रिवाजों के पंजे से मुक्त करके नवीन वातावरण द्वारा उत्पन्न नवीन उत्तेजना से प्रभावित होने में समर्थ हो सकता है वह उन दूसरे समुदायों से जो मानव जाति के अग्रगामी समुदाय के साथ क़दम मिला कर चल नहीं सकते निश्चय ही अधिक उन्नत हो जाता है इसी कारण से, यह कहा जा सकता है कि कुछ लोग अधिक उन्नत हो जाते हैं जब कि अन्य लोग पिछड़े ही रहते हैं।

जाति अथवा क़बीलों के विषय में यह साधारण मत स्थिर कर लेने के बाद हमें भारत के इतिहास पर इसका प्रयोग करना चाहिये। यह तो प्राचीन भारतीय साहित्य से स्वतः सिद्ध है कि हमारे पूर्वज जानते थे कि भिन्न भिन्न प्रकार की संस्कृति के लोग देश में हैं। इसी कारण से याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों ने राजाओं को विजित जातियों के आचारों ( देशाचार, लोकचार ) पर आधारित करने की सलाह दी। इसी सूत्र को पकड़ कर शुक्र ने कहा कि स्थानीय रीति रिवाजों का सम्मान करना चाहिये जब कि उसके पहले किसी गौतम जैसे असन्तुष्ट स्मृतिकार ने यह भी कह दिया था कि स्थानीय आचार ( देश धर्म ), क़बीले अथवा जाति-गत आचार ( जाति-धर्म ) और कुटुम्ब के आचार ( कुल धर्म ) को प्रमाण रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये, यदि वे वेद-विरुद्ध न हों। ( वैदिक रूल्स ९।२०)।

इस प्रकार संस्कृति की क़ानून की पोथियों,—स्मृतियों को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ब्राह्मणों ने सदा सम्मिश्रण और संयोग ( दूसरों को अपने में मिलाने ) की नीति का प्रतिपादन किया। वे भिन्न भिन्न वंश-गत समुदायों के आचारों को बलपूर्वक नष्ट करने के पक्ष में नहीं थे। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं के आचार में भिन्नता बनी रही, जो आज भी एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाने पर मिलती है। इसी सूत्र के आधार को लेकर स्मृतियों तथा शास्त्रों ने 'वर्णाश्रम-धर्म' के अनुसार समाज को चार वर्णों में विभाजित किया तथा 'अन्त्यजों' को बाहर ही रहने दिया। यही मेदस (Medes or Mades) या मेदास ( मनु और यम संहिता ) तथा भील (Bhillas) ( ब्रह्म वैवर्त्त पुराण ) हैं। इस प्रकार वे लोग आज के तथाकथित आदिम निवासियों से भी अपरिचित न थे। शास्त्रों के अनुसार सामाजिक परम्परा का क्रम



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कार है—द्विज, सत्-शूद्र, असत्-शूद्र, अन्त्यज। हिन्दू समाज के इस निरन्तर विकास का विश्लेषण करने पर हमें ज्ञात होता है कि हिन्दू समाज में अन्त्यजों को जो प्रथम उत्कर्ष प्राप्त हुआ, वह उनका 'असत्' शूद्रों की निम्नतम कोटि को lift प्राप्त करना था। यद्यपि इस समय में उनको ब्राह्मणों के समान कर्मकाण्ड के अधिकार प्राप्त नहीं थे, फिर भी जाति के अनुसार ये नियम बदलते रहते थे। बागही लोगों में भी ब्राह्मण हैं। बंगाल के बूनो तथा संथाल जातियों को भी ब्राह्मण पुरोहित—पुजारी सुलभ हैं, और इसी प्रकार छोटा नागपुर के कुलीन कोलों (होस) को भी! इससे आगे का उत्कर्ष उन्हें प्राप्त होता है, जब कि उन्हें असत्-शूद्रों की कोटि में मान लिया गया, और वे वर्णाश्रम-व्यवस्था में सम्मिलित कर लिये गये। इस समय उनको ब्राह्मण-वर्ण के समान कर्मकाण्ड के अधिकार प्राप्त हो गये। किन्तु इससे भी अधिक उत्कर्ष उन्हें 'सत्-शूद्र' बन जाने पर प्राप्त हुआ। इसके आगे की सीढ़ी है फिर जाति की राजनैतिक और सामाजिक शक्ति के अनुसार उनके क्षत्रिय या ब्राह्मण माने जाने पर निर्भर करती है। कोई भी निष्पक्ष विचारक इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि विकास की यह पद्धति अनादि काल से हिन्दू समाज में चली आ रही है। इस प्रकार हिन्दू-धर्म वर्णाश्रम-समाज के बाहर से भी अनुयायिओं को ग्रहण करता रहा है और मध्यभारत के जंगल तो प्राचीन समय से इस प्रकार के धर्म-परिवर्तन का स्थान रहे हैं। हिन्दू समाज के संकट काल में वे अन्त्यज और निम्नकोटि के शूद्र ही उसे बचाने के लिये आगे आये थे। जब ये लोग इस प्रकार शिखर पर पहुँच गये, तो कुदरतन उन्होंने ब्राह्मणों के सारे आचार अपना लिये, और पुरोहितों ने इतिहाकाव्यों से उनकी वंशावली भी खोज निकाली। इस प्रकार हिन्दू समाज के 'चन्द्र-वंशी' और 'सूर्य-वंशी' क्षत्रिय राज्यों का इतिहास के मध्य-युग में निर्माण हुआ।

किन्तु बाहर के आक्रमणों ने इस प्राकृतिक विकास की गति में बाधा दी। शरीर-विज्ञान शास्त्री इबटसन ने जाटों तथा राजपूतों के रक्त-सम्बन्धों के विषय में कहा है कि पहले तो किसी कुटुम्ब या क़बीले का सरदार अपने भुजबल से या अन्य किसी प्रकार से राजत्व के सिंहासन पर अधिकार करता था, और फिर उसके कुटुम्ब के लोग भी उसके साथ उस ऊँची श्रेणी में पहुँच जाते थे। किन्तु तुलमानों के आक्रमणों के समय से राजत्व की यह प्रथा अवरुद्ध हो गई (केवल उत्तर भारत में ही)। अतएव और अधिक क्षत्रियों या राजपूतों का विकास नहीं हुआ। किन्तु मध्य और दक्षिण भारत में हमें ऐसी बहुत सी जातियाँ मिलती हैं जिनकी उत्पत्ति संदिग्ध है और जिनमें अनार्य रक्त का सम्मिश्रण भी स्पष्ट है, जिन्होंने सातवाहनों के साम्राज्य के पतन के बाद राजत्व की सत्ता प्राप्त की। विष्णुपुराण में इस प्रदेश के नवनाग तथा विंध्यशक्ति कुलों का वर्णन है। उनमें से प्रथम का उल्लेख एपीग्राफ़िक रेकार्ड्स में भी और शिलालेखों पर भी मिलता है, जिसमें उन्हें 'भारशिव' नाम दिया गया है, जिन्होंने गङ्गा की घाटी को विजय करके दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। दूसरों को इन लेखों में 'वाकाटक' कहा गया है जो पहले दक्षिण में रहा करते थे। यह राजा अपने आपको क्षत्रिय या ब्रह्म-क्षत्रिय कहते थे तथा उनके शासन में शैव-मत का प्रचार हुआ। इसी प्रकार हम देखते हैं कि सात वाहन-साम्राज्य के पतन के बाद दक्षिण में 'काहष्मत' नाम की एक द्रविड़ जाति शक्तिशाली होगई (देखो—डी० एन० सरकार—सकसेसर्स आफ़ दी सातवाहन, पृ० २१६), तथा स्मृतियों के अनुकूल अन्य ऐसी ही जातियाँ (जरनल हिस्टॉरिकल क्वारटरली—सितम्बर १९४०, पृ० ५६६) मिलती हैं। आज भी हम छोटा नागपुर में नागवंशी राजपूतों का अस्तित्व पाते हैं, जो अपना सम्बन्ध ऐतिहासिक नवनाग तथा गोवंशी राजपूतों से बतलाते हैं। उनके संदिग्ध पूर्वजों की छाया उनके नामों और उनकी उत्पत्ति की परम्परा में निहित है। आज भी उसी प्रदेश में असभ्य भुइयाँ तथा 'भूमिज' जातियाँ भी अपने आपको क्षत्रिय कहती हैं (देखो—रिज़ले—ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ़ बंगाल)।

## ब्रिटिश राज्य में

किन्तु इस प्रदेश में ब्रिटिश राज्य के स्थापित होते ही शूद्र जातियों के विकास और सामाजिक उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो गया। वर्ग संघर्ष की वह स्वाभाविक शक्ति जो उन्हें आगे बढ़ा रही थी और जिसने उन्हें सामाजिक-परम्परा में उच्च-स्थान दिलाया था, अब कुंठित हो गई। आजकल उन्हें मध्य भारत की जंगली जातियाँ क़रार दे दिया गया है और उनके विषय में बहुत सी मनुष्य-जाति-विज्ञान सम्बन्धी तथा सामाजिक कल्पनाएँ गढ़ली गई हैं। यह कहा जाता है कि वे हिन्दुओं के प्रभाव से आक्रान्त हैं और उनकी जातियाँ विच्छिन्न होती जा रही हैं। अतएव, इन आदिम जातियों की, जिनका अपने पड़ोसियों से कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सम्बन्ध नहीं है, अवश्य रक्षा की जानी चाहिये। इस कारण अब उन्हें बाड़ों में बन्द किया जा रहा है जिन्हें 'जाति-क्षेत्र ( Tribal Area ) कहा जाता है, ( छोटा नागपुर का कोल्हन ज़िला इसका उदाहरण है ), जहां वे अपना स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकें। उनमें किसी बाहरी आदमी को घुसने नहीं दिया जाता। बहुत से स्थानों में हिन्दू कार्यकर्ताओं को जाने नहीं दिया जाता, यद्यपि ईसाई पादरियों को उनमें धर्म-परिवर्तन करने की आज्ञा है। दूसरी ओर, उनकी एक बहुत बड़ी संख्या पहले हिन्दू बन चुकी है और आज भी बन रही है, और उन्हें क्षत्रियों की पदवी प्राप्त है, जैसा कि प्रो० घूरे ने भी साक्षी दी है ( देखो—दि एबारजिनीज़ सो काल्ड, एण्ड देअर फ्यूचर )।

सरकार उनके साथ जिस प्रकार का व्यवहार करती है, उसके विषय में बहुत से वाद-विवाद प्रचलित हैं। सन् १८८१ में भारत के मुर्दुमशुमारी के कमिश्नर मि० जे० बेन्स इन हिन्दू तथा अहिन्दू जातियों के अन्तर को घातक समझते थे। (रिपोर्ट पृ० १५८)। सर हर्बर्ट रिज़ले ने कहा था "हिन्दुत्व और पिछड़ी जातियों के धर्म के बीच कोई तीक्ष्ण विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। दोनों एक दूसरे में मिलकर धूमिल हो गये हैं।" ( दि पीपुल आफ़ इण्डिया सेकण्ड ऐडीशन, पृ० २१८, १३३, १४५ )। सर ई० ए० गेट ने कहा था "यह कहना बहुत ही कठिन है कि किस स्टेज पर किसी आदमी को हिन्दू कहा जाय।" (सेन्सस आफ़ इण्डिया १९११—जिल्द १, भाग १, पृ० १२९-३० )। बिहार और उड़ीसा की १९२१ की मर्दुमशुमारी के सुपरिनटेण्डेण्ट मि० टेलेन्ट्स ने एक animist तथा एक हिन्दू के बीच भेद स्थापित करने में इस कठिनाई को स्वीकार किया था। ( सेन्सस आफ़ इण्डिया १९२१—बिहार एण्ड उड़ीसा रिपोर्ट, पृ० १२५)। बम्बई की १९२१ की मर्दुमशुमारी के सुपरिनटेण्डेण्ट मि० सिजविक ने कहा था—

"अगली मर्दुमशुमारी में वे सब जो अभी animists की श्रेणी मे रखे गये हैं, हिन्दुओं के साथ मिला दिये जाँय।" ( बम्बई रिपोर्ट, पृ० ६७ )। १९३१ में सेन्सस कमिश्नर डा० जे० ए० हटन ने कहा था "हिन्दू धर्म तथा इन क़बीलों के धर्मों के बीच विभाजन की रेखा खींचना दुस्तर है, किन्तु इन परवर्ती लोगों को हिन्दुत्व में मिला लेना सरल है।" ( सेन्सस १९३१, पृ० ३९१-४१७ )। इस प्रकार यह साफ़ देख पड़ता है कि ऐसा एक प्रबल मत है, जो इन असभ्य कही जाने वाली जातियों तथा हिन्दू समाज की कुछ श्रेणियों में अभिनव सादृश्य स्थापित करता है, और इन दोनों के बीच खींची गई किसी भी सीमा विभाजक रेखा को बिल्कुल कृत्रिम मानता है।

## ग़लत नामकरण

उपरोक्त विवाद के आधार पर हमें यह ज्ञात होता है कि, 'जाति' शब्द से किया गया नामकरण ही ग़लत है। हम यह कह सकते हैं कि यह आदिम कहे जाने वाले वे भारतीय हैं जो पिछड़े रह गये हैं। यह उन मानवों के अवशेष हैं, जिन्हें आर्य नहीं बनाया गया था। यह कहना ग़लत है कि वे एक 'भिन्न जाति' की सन्तान हैं और इसलिये उन्हें सौतेली माँ के से दुलार भरे व्यवहार की आवश्यकता है। दूसरी ओर उन्हें 'जाति क्षेत्रों' के बाड़ों में बन्द करके, उनके साथ अन्याय किया जा रहा है क्योंकि उन्हें अपने पड़ोसियों की सभ्यता सीखने का अवसर नहीं दिया जाता। यह विचित्र बात है कि उनमें से जो ईसाई या मुसलमान बन जाते हैं उन्हें अपने पैतृक-गृह को छोड़ने का अवसर मिल जाता है, तथा शरीयत क़ानून और ब्रिटिश इण्डिया के क़ानूनों से फ़ायदा उठाने की सुविधा भी मिल जाती है।

ऐसा मालूम होता है उत्तरी अमेरिका की भाँति यहाँ भारत में भी उसी प्रकार की प्रणाली का व्यवहार किया जा रहा है। वहां पर भी इन आदिम जातियों को बाड़ों में जिन्हें 'जाति-क्षेत्र' कहते हैं, बन्द रखा जाता है और गोरी जातियों की सभ्यता और धर्म स्वीकार कर लेने पर भी उन्हें बड़ा दुखमय जीवन बिताना पड़ता है। लेखक ने अमेरिका में कनेडा की 'ओजीबवा' (Ogibwa) जाति के समान दुखी जाति दूसरी कोई नहीं देखी। उस जाति के मन्त्री ने लेखक को बताया कि उन्हें जीवन में कोई दूसरा अवसर ही नहीं दिया जाता। जबकि अमेरिका की औद्योगिक सभ्यता तेज़ी से आगे बढ़ रही है, और उनके पड़ोसी समृद्धि के सागर में गोते लगा रहे हैं, और आधुनिक सभ्यता की सारी नियामतों का उपभोग कर रहे हैं, उन्हें अमेरिका के बीते हुए युग के चिन्ह-स्वरूप उसी अवस्था में रखा जा रहा है।

किन्तु भारतवर्ष की इन 'आदिम' कही जाने वाली जातियों की समस्या इससे भिन्न है। वे भारतीय जाति की ही एक अंश हैं। वे उन जातियों की अवशेष हैं जो अभी तक भारतीय-सभ्यता के नाम से प्रसिद्ध सांस्कृतिक समन्वय में मिलाई नहीं जा सकीं। इन जातियों के लोग सुसंस्कृत भारतीय राष्ट्र के पिछड़े हुए अङ्ग हैं। यदि भारतीय इतिहास के परदे पर अङ्गरेज़ों का आगमन न होता, तो ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लोग अब तक हिन्दू समाज में मिल गये होते। प्रो० घूरे उन्हें 'पिछड़े हुए' हिन्दू कहते हैं।

## विभिन्न शक्तियाँ

ऐसा ज्ञात होता है कि इस प्रकार की विभाजन रेखा खींचने में भिन्न-भिन्न शक्तियाँ काम कर रही हैं। स्वयं हममें से बहुत से लोग तथा हमारे विदेशी शुभचिन्तक उन्हें उन बाड़ों में जिन्हें 'राष्ट्रीय पार्क' कहा जायगा बन्द रखना चाहते हैं। किन्तु हम पहले ही अमेरिकन आदिम जातियों की बुरी दशा का हवाला दे चुके हैं। वे वहीं सड़ रहे हैं। उत्तरी अमेरिका में इस प्रकार के मानव दुख का दृश्य रोमांचकारी है। इस प्रकार से भारत की इन 'आदिम' कही जाने वाली जातियों को 'राष्ट्रीय पार्क' नाम के बाड़ों में बन्द कर देने से, जहाँ वे प्राचीन भारत की यादगार और विदेशियों की उत्सुक आँखों का निशाना बन कर रहें, उनकी कोई भलाई नहीं होगी। प्रो० गैडगिल इस प्रकार आदिम जातियों की इस बनाई गई समस्या में "नवीन उपायों से देश के शोषण" का उद्देश्य देखते हैं, जो कि पश्चिम का आविष्कार है। और यह तो गोरी जातियों की प्रसार नीति तथा सारे संसार में औद्योगिक क्रान्ति के प्रचार के फलस्वरूप उत्पन्न बहुत सी समस्याओं में से सिर्फ़ एक है। ( घूरे की पुस्तक की भूमिका)। इसे यहीं छोड़कर हम कुछ और प्रश्न कर सकते हैं। क्या यह देश के शोषण और भारतीयों की ग़ुलामी को जारी रखने के लिये एक साम्राज्यवादी षड्यन्त्र तो नहीं है? बहुत दिन पहले जब लेखक जर्मनी में विद्यार्थी था, तो डा० ओटो से उसका परिचय हुआ, जो पहले गाटिंजन ( Gottengin ) और फिर मारबर्ग ( Marburg ) विश्वविद्यालय में 'उदार ईसाई दर्शन' के अध्यापक थे। वे भारत के मित्र थे उन्होंने पिछले महायुद्ध के पहले भारत की यात्रा भी की थी। एक बार भारत के विषय में बात चीत होते समय, हमने सुझाया कि ऐसा ज्ञात होता है कि ब्रिटिश सरकार की मन्शा भारतीय ईसाइयों की सहायता से एक तीसरी अल्पसंख्यक जनता की समस्या खड़ी करने की है। उन्होंने कहा कि यह सत्य है, तथा उस समय के भारत के भाग्य-विधाताओं ने, उनसे कहा कि उनकी यह योजना है कि वे इन आदिम जातियों को ईसाई बनाकर, हिन्दुओं और मुसलमानों के विपक्ष में इन्हें तीसरी अल्प-संख्यक जनता बनाकर पेश करेंगे। आज जब हम इन आदिम कही जाने वाली जातियों के विषय में बरती जाने वाली नीति को देखते हैं तो हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि मध्य प्रान्त तथा आसाम में हिन्दू कार्यकर्त्ताओं को वहाँ घुसने भी नहीं दिया जाता। जो लोग ईसाई होते जा रहे हैं वे रोमन लिपि में अपनी भाषा लिखना सीखते हैं तथा प्रत्येक प्रकार से अभारतीय बनते जा रहे हैं। इनकी समस्या भविष्य के लिये एक जटिल समस्या होती जा रही है। जबकि हमारे देश की जनता का एक बड़ा भाग अपने को मातृभूमि से किसी बन्धन से बँधा नहीं अनुभव करेगा, तो स्वतंत्र भारतीय राष्ट्रीयता का विकास कैसे होगा? अब समय आ गया है कि हमारे समाज शास्त्री, इतिहासज्ञ और राजनीतिज्ञ परिस्थति पर गम्भीरता से विचार करें। निश्चय ही इन जातियों के लिये एक मात्र उपाय यही है कि वे अपने पड़ोसियों की भाँति भारतीय नागरिक बन जायें। वे किसी भी धर्म को चुन लें, इसकी अपेक्षा नहीं, किन्तु भारत के सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक विकास से उनका सम्बन्ध जोड़ना बहुत ज़रूरी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सन्त रविदास

आचार्यप्रवर पण्डित क्षितिमोहन सेन शास्त्री एम० ए०

समस्त भारत आज "हरिजनों" की समस्या को लेकर व्यग्र है। हमें बताया जाता है कि उनकी हालत इतनी दयनीय है कि हमें उनका उद्धार करने में पूरी तरह सचेष्ट होना चाहिये। हमें यह भी बताया जाता है कि वे अध्यात्मिक ज्ञान में इतने दरिद्र हैं कि यदि हम उन्हें अपने अध्यात्म के भण्डार से भीख न देंगे तो वे सदा निकृष्ट बने रहेंगे। मुझे इस तरह के आन्दोलन में शरीक होने में शपोपेश है, इसलिये नहीं कि मैं हरिजनों को उद्धार के बाहर समझता हूँ, बल्कि जिस तरह का वातावरण हमारे मन्दिरों का है उसमें प्रवेश पाने से हरिजन ऊपर उठ सकते हैं इस बात में मुझे सन्देह है। इसके विपरीत मेरा यह विश्वास है कि यदि हम उन सन्तों के बताये हुये रास्ते पर चलें कि जो इन्हीं हरिजनों में से हुये हैं, जिनके आज हम सरपरस्त बनना चाहते हैं, तो हम निश्चय ही अपने को भाग्यवान समझ सकेंगे।

निम्न जातियों में पैदा होकर भी इन सन्तों ने अध्यात्म की अतुलनीय सम्पदा प्राप्त की—ऐसी सम्पदा जिसके लिये ब्राह्मण-श्रेष्ठ रामानन्द ने भी अपने जातिगत विशेष अधिकारों को तिलाञ्जलि दी। दक्षिण-भारत के सन्तों को छोड़िये, जिनसे उत्तर भारत के लोग कम परिचित हैं, किसने इन उत्तर भारतीय सन्तों का नाम नहीं सुना—कबीर जुलाहा, रविदास चमार, सदन कसाई, सेना नाई, धन्ना जाट, नाभा मेहतर, दादू धुनिया और इनके अतिरिक्त अन्य अनेक सन्त जो अपने जीवन और अपनी शिक्षा, दोनों में महान थे ? मैं इन सबको अपना अध्यात्म-गुरू समझता हूँ और इनका आदर करता हूँ और इसलिये हरिजनों के उद्धार कराने की बात कहकर इनके प्रति धृष्टता नहीं कर सकता।

कबीर और उनकी साखियों से सभी लोग परिचित हैं। यह भी कहा जा सकता है कि वे उस अध्यात्मिक आन्दोलन के जन्म दाता थे कि जो मध्यकालीन भारत के प्राणों में पूरी तरह समा गया था। किन्तु थोड़े ही लोग रविदास की जीवन-कथा से परिचित हैं जो गुरु-श्रेष्ठ रामानन्द के ही शिष्य और कबीर के गुरु-भाई थे।

जिसे आम तौर पर इतिहास कहा जाता है उसमें इस तरह के लोगों की मुशकिल से कोई चर्चा रहती है। जब मैंने अपनी बातचीत के दौरान में एक रमते बाउल (बंगाली सन्त) से इस दुःखद बात की चर्चा की तो उसने अपने क़ायदे के मुताबिक़ मुझे एक गीत सुनाया—

"खालेर पेंके ठेले जखन नाउ।
पिछेर दिके जे चिन थाके तातेई भेले भाउ।
गहीन जले पाल तूईल्या नाउ जाय।
पथेरे जे चिन कई बा मिलाय, केमने बा भाउ पाय॥"

अर्थात्—ज्वार उतर जाने के बाद नदी के किनारे जब नाव घसीटी जायगी तो वह पीछे पीछे कीचड़ में अपने घसीटे जाने के चिन्ह छोड़ जायगी। किन्तु जब नाव पाल खोलकर गहरे जल में चलेगी तो उसके रास्ते का कोई भी निशान पीछे न रह जायगा।

सचमुच आधुनिक इतिहास में मुख्यतया बड़े बड़े लुटेरों और हत्यारों की कलुषित ज़िन्दगी का ही वर्णन मिलता है जबकि उन लोगों का कोई ज़िक्र नहीं होता कि जिनके परिपूर्ण जीवन गहरे जल को पारकर मानव सभ्यता को उपहार देने के लिये बहुत कुछ लाये।

कबीर जन्म से ही रहस्यवादी थे। अध्यात्मिक उन्नति सहज भाव से उन्हें प्राप्त हुई थी। उन्हें अपना पन्थ बनाने की कोई आवश्यकता न थी। जिन लोगों का अध्यात्मिक प्रयास शास्त्रानुकूल होता है उन्हें ही एक निश्चित मार्ग का अनुशरण करना होता है। जब भक्त लोग कबीर के पास आकर अगम पन्थ की बात पूछते थे तो कबीर की समझ में न आता था कि वह उन्हें क्या सलाह दें। उनसे यही कहते थे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



र अहे तो पन्थ भी आहि । दूर नहीं तो पन्थ भी नाही ॥
ानी बीच मीन पियासी । मोहि सुन सुन आवत हासी ॥

और कबीर उन्हें सन्त रविदास के पास यह कहकर भेज देते थे ।

पन्तन में रविदास सन्त है । पन्थ खबर सोही जाने ॥

रविदास मानव-सेवा का रास्ता पकड़े हुये थे । वे ास्ते के काँटों को खूब जानते थे क्योंकि उन्हें अपनी गति में उन्हें एक एक कर निकालना पड़ता था । वे अपने एक गीत में कहते हैं—

कहा भइओ जउ तनु भईओ छिनु छिनु ।
प्रेम जाइ तउ डरपै तेरो जनु ॥

उस समय अध्यात्म के खोजी यात्रियों और उनके प्रगणित अनुयाइयों के अकसर समागम हुआ करते थे । इस तरह के अवसरों पर रविदास बूढ़ों और अपाहिजों और स्त्रियों और बच्चों की अनवरत सेवा करते थे । उनके असीम उत्साह के फलस्वरूप उनके चारों तरफ़ वृती युवकों का दल इकट्ठा हो गया जो "सेवा द्वारा ही पञ्च-उपासना करते थे ।" किन्तु इसके अतिरिक्त रविदास में और भी कुछ था जिससे रानियाँ तक उनके चरणों में आती थीं ।

हमारे पास इसका कोई निश्चित ऐतिहासिक सुबूत नहीं है किन्तु यह एक लोककथा है कि मीराबाई आख़ीर में रविदास की शिष्या हो गईं थीं । रानी मीराबाई कृष्ण की भक्त थीं और वे गिरधर-गोपाल की मूर्ति की उपासना करती थीं, किन्तु अपनी अध्यात्मिक प्रगति की बाद की अवस्था में वे जप-तप और कर्मकाण्ड की हँसी उड़ाने वाले और निराकार की उपासना करने वाले रविदास के चरणों में आकर बैठ गई थीं ।

शायद इस अन्त्यज सन्त के सम्पर्क के कारण ही मीराबाई के रूढ़िवादी लोग नाराज़ हो गये और उन्होंने मीराबाई को अपने पिता और पति के राजकुलों को छोड़ने के लिये वाध्य किया ।

कहा जाता है कि चित्तौर की रानी झाली भी रविदास की शिष्या हो गई थी । जब ब्राह्मणों ने राणा से इसकी शिकायत की तो राणा ने ब्राह्मणों के आरोप का उत्तर देने के लिये सन्त रविदास को तलब किया । इस पर उद्वेग से भरे हुये, प्रभु से अपने भक्त की लाज रखने की प्रार्थना करते हुये, सन्त रविदास राणा के दरबार में आये । कहा जाता है रविदास के दर्शन मात्र से ही राणा उनके वशीभूत हो गया । किम्वदन्ति है कि जब रानी ने ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया तो ब्राह्मणों ने चमार की शिष्या द्वारा दिये हुये निमन्त्रण में शामिल होने से इनकार किया, किन्तु जब वे अपने हाथ से राँधा हुआ भोजन करने बैठे तो उन्होंने क्या देखा कि उनके बीच बीच में अनेकों रविदास बैठे हुये हैं । इस दृश्य ने ब्राह्मणों के गर्व को चूर कर दिया और वे हज़ारों की संख्या में आ आकर रविदास को अपना गुरू स्वीकार करने लगे । उन्होंने कहा कि रविदास अपनी चाम के भीतर अध्यात्मिक ज्ञान का जनेऊ पहने हुये हैं ।

एक दूसरी कहानी से रविदास के जीवन की सादगी ज़ाहिर होती है । एक बार एक रमते योगी ने रविदास की ग़रीबी पर दया करके उन्हें एक पारस पत्थर दिया । रविदास ने उसे उठाकर अपने झोपड़े के छप्पर में खोंस दिया और उसकी बात बिलकुल भूल गये । एक बरस के बाद जब वह रमता योगी फिर आया तो उसने देखा कि रविदास उसी तरह ग़रीबी की हालत में बैठे हुये जूता गाँठ रहे हैं ।

इस सम्बन्ध में रविदास के वही विचार मालूम पड़ते हैं जो कबीर के थे । कबीर कहते हैं—

कहैं कबीर अस उद्यम कीजै । आप जीऐ औरन को दीजै॥

वे धन्यवाद पूर्वक परमात्मा से रोज़ ५ स्वर्ण मुद्रायें ( पंचेन्द्रियों के उपहार के रूप में ) स्वीकार करते थे । इससे हम अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि गुप्त धन द्वारा यात्रियों के लिये धर्मशाला बनाये जाने की रविदास की जो कहानी है उसमें यह गुप्त धन भक्ति और सेवा का ही गुप्त धन होगा ।

तीन शताब्दी बाद प्रियदास ने सन् १७१३ ईस्वी में जो 'भक्ति-रस बोधिनी' नामक ग्रन्थ संकलन किया है उसमें रविदास के सम्बन्ध में ये और इस तरह की अनेकों कहानियाँ संग्रहीत हैं । सन्त रविदास के जीवन और उनकी शिक्षा पर उनके भक्तों द्वारा बताए हुए उनके गीतों और उनकी कहावतों से काफ़ी रोशनी पड़ती है । ऊपर वर्णन किये हुये पारस पत्थर के सम्बन्ध में रविदास कहते हैं—

लोहा कंचन हिरण होइ कैसे । जउ पारस नहिँ परसै ॥

मनुष्य की अध्यात्मिकता के विषय में वे अपने धन्धे की मिसाल देकर कहते हैं—

नीला गुम्मट उच्च विशाल । चरमी देव जीवत कमाल ॥

'सिख रिलीजन' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचयिता मैकालिफ़ रविदास के इस कथन से भ्रम में पड़कर लिखते हैं—

"रविदास ने बाद में एक झोपड़ी बनाई, उसमें चमड़े की बनी हुई एक मूर्ति स्थापित की और उसी की पूजा करने लगे !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सामाजिक संकीर्णता और धर्मान्धता के उस युग में रविदास चमार कुल में पैदा हुये। यह कितने आश्चर्य की बात है कि एक तरफ़ तो वे बिना शर्माये हुये चमार का धन्धा करते थे और दूसरी तरफ़ मनुष्य के परम लक्ष्य के ज्ञान से उनका हृदय आलोकित था। वे यह कहते हुये नहीं शरमाते--

जाती ओछा, पाती ओछा, ओछा जनमु हमारा ॥

अथवा—

नागर जना, मेरी जाती बिखियात चमारं।
मेरी जाति कुटुम्ब ढला ढोरा ढोवंता
नितई बाराणसी आसपासा ॥

किन्तु बावजूद चमार कुल में जन्म ग्रहण करने के उन्हें उत्तराधिकार में अध्यात्म बुद्धि मिली थी। वे कहते हैं—

दुलभ जनमु पुंनफल पाईउ। बिरथा जात अविवेके ॥

और—

नरपति एकु सिंहासनि सोइया। सुपने भइया भिखारी ॥
आछत राज बिछुरत दुखु पाइया। सो गति भई हमारी ॥

उनकी आकांक्षा थी—

देहु कलाली पूरण पियाला

क्योंकि—

चंद सूर दोउ सनमुख होइ। पीयै प्याला मरै न कोई ॥

यह एक दिलचस्प बात है कि रविदास उस ज़माने में भी जीवन के सम्बन्ध में 'युटोपियन' कल्पना कर सकते थे। वे कहते हैं—

बेगमपुरा सहर को नाउ।
दुखु अंदोह नही तिहि ठाउ ॥
ना तसवीस खिराजु न मालु।
खउफु न खता न तरसु जवालु ॥
अब मोहि खूब रतन गह पाई।
ऊहाँ खैरि सदा मेरे भाई ॥
कंह रविदास खलास चमारा।
जो हमशहरी सो मितु हमारा ॥

इस तरह की क्रान्तिकारी भावनाओं के कारण यदि शासकों के हाथों रविदास पर ज़ुल्म हुये हों और उन्हें कष्ट सहना पड़ा हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

रविदास ऐसे आशावादी नहीं थे जो दुनिया में कोई बुराई न देखते हों। वे चारों तरफ़ के दोषों से परिचित थे, तभी वे कहते हैं कहाँ से ऐसी पवित्र वस्तुयें पाऊँ जिनसे प्रभु की पूजा करूँ—

दुधु तो बछरै थनहु बिटारिओ।
फुलु भंवरि जलु मीनि बिगारिओ ॥
भाई गोविन्द कहा लै चरावउ।
अवरु फूलु अनुपु न पावउ ॥
मैला बेहै है भुइ-अंगा।
बिखु अमृतु वसहिं इक संगा ॥

और इसका उत्तर वे स्वयं देते हैं—

तनु मनु अरपउ पूज चरावउ।
गुर परसादि निरंजन पावउ ॥

और इसके बाद वे कहते हैं—

बलि बलि जाउ रमइया कारणे। कारण कवन अबोल ॥

और—

पारस जोहै लोहकूँ। कृपा जोहै दीनहीन ॥
हौंसईं दीन हीन नहिं। राखु चरणि निसदिन ॥

रविदास ने स्वयं कोई पन्थ नहीं क़ायम किया किन्तु उनके अगणित भक्त और मित्र थे। इनमें सबमें प्रमुख ऊधवदास थे। ऊधवदास के एक शिष्य बीरभान ने पूर्व-उत्तर राजपूताने में बिजेस्वर नामक जगह में साध सम्प्रदाय नाम का एक सम्प्रदाय क़ायम किया। इस पन्थ के अनुयायी ईश्वर के एक नामों में 'सत्यनाम' भी कहते थे, इसी से ये लोग 'सतनामी' कहलाने लगे। मैं अनेक सतनामियों से इलाहाबाद, मिरज़ापुर और युक्त प्रान्त की दूसरी जगहों में मिला हूँ। इनके धार्मिक उसूल बहुत सीधे सादे हैं—एक ईश्वर में विश्वास, और सत्य और अहिंसा की उपासना। जिन गुणों की वे सराहना करते हैं वे हैं—ईश्वर पर भरोसा, सादगी और नम्रता। जिन दुर्गुणों की वे निन्दा करते हैं—वे हैं चोरी, लोभ, धोखा, निन्दा, कठोरता। उनकी धर्म पुस्तक उपदेश पोथी हिन्दी में लिखी हुई है। इस पन्थ के स्त्री-पुरुष शाम को इकट्ठा होकर भजन, पूजन और प्रवचन करते हैं। रविदास के जो भजन इन सतनामियों में प्रचलित हैं वे उस समय के हैं जब तक रविदास को ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई थी। उनमें से कुछ ये हैं—

कासनि वेदनि आखूँ।
हरि बिन जीव न रहै कस राखूँ ॥
तुम न तोरहु तउ हम नहीं तोरहि।
तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि ॥
जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा।
जउ तुम चन्द तउ हम भये है चकोरा ॥
जउ तुम दीवरा तउ हम बाती।
जउ तुम तीरथ तउ हम जाती ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी।
तुम सिउ जोरी अवर संगि तोरी॥
जह जह जाउ तहा तेरी सेवा।
तुम सो ठाकुर अवरु न देवा॥
तुमरे भजन कटहि जम फाँसा।
भगति हेत गावै रविदासा॥

एक दूसरे भजन में रविदास कहते हैं—

दरसन दीजै दरसन दीजै।
दीजै दरसन बिलंब न कीजै॥
दरसन तोरा जीवन मोरा।
बिन दरसन क्यों जीयै चकोरा॥
तुम बिना अब सब झूठी आसा।
सत सत भाषे जन रैदासा॥

फिर वे प्रभु के प्रेम में मगन होकर कहते हैं—

आज बसन्त फूल फूल फूलै बसन्त सब दिस।
तजि कृपनाइ सब डूबौ प्रेम अहनिस॥
आजु जागु व्याकुल मन मेरे मिलहु प्रेम सुहागु॥
तरु बन सब फूलत है लागु पीतम संग लागु॥
फीकी सूखी आज कहु नाहीं आज सब रस उमंग।
काहे उदास रविदास आज दिन लागु लागु पिव संग॥

और इस पिव के प्राप्त होने के पूर्व ही 'अहम्' नष्ट हो जाता है—

जब हम होते तब तू नाहीं। अब तो तू है मैं तो नाही॥

और तब अन्त में विजय चुनौती सुनाई देती है—

जउ हम बाँधि मोहफास हम, प्रेम बाँधनि तुम बाँधे।
अपने छुटन के जतन करहु, हम छुटै तुम आराधे॥

[ मूल बंगला में ]

---

# धरती-माता !

श्री 'करील'

१

हम निर्बल किसका बल खोजें, तेरा हमको एक सहारा।
मां तेरे मानिक मन्दिर में, इसीलिये है हाथ पसारा॥
हम तेरे ही बल जीते हैं, तू ही हम सब की सुध लेती।
तू ही अपनी दया दिखाकर, हमको मन चाहा फल देती॥
तेरे बल से बिना भेद के, सब कुछ सहज हाथ लग जाता।
इसीलिये तो तू कहलाती, सब जीवों की धरती माता॥

२

तेरी दया मया पाकर माँ, धीरे धीरे हरे हुये हम।
बनकर तेरे राजा बेटे, कितने ऊँचे चढ़े हुये हम॥
मय्या तेरी भली धूल में, गिर गिर करके खड़े हुये हम।
तेरी प्यार भरी गोदी में, मचल मचल कर बड़े हुये हम॥
इसीलिये मां दर्शन तेरा, इन आंखों को बहुत सुहाता।
इसीलिये तू कहलाती है, सब जीवों की धरती माता॥

३

तेरा मधुर दूध पी पीकर, मय्या हम फूलों से फूले।
पलकर तेरे सुघर प्रेम में, हम अपना तन मन धन भूले॥
हमें सुना दे एक बार मां, बचपन की अटपटी कहानी।
भूल भाल हम जिससे जावें, बातें अपनी और बिरानी॥
सूरज तेरे चरण चूमकर, सदा सबेरे शीश झुकाता।
इसीलिये तू कहलाती है, तीन लोक की धरती माता॥

४

बतला तो दे अरी! राम की, तू ने ली कै बार बलय्याँ!
तुझे रिझाता किस सुराग की बजा बाँसुरी कृष्ण कन्हय्या!
ईसा और मुहम्मद को भी, तू ने अपनी गोद खिलाया।
गौतम का तप-त्याग देख मां, क्या तेरा था जी भर आया!
कब से अपना सिर ऊँचा कर, तेरे गीत हिमालय गाता!
मय्या तू कब से कहलाती सब जीवों की धरती माता!

५

तेरे चरणों में अशोक का प्यार भरा बचपन लहराया।
इख़नातन, दारा, अकबर को, तूने जीवन सार सिखाया॥
तूने ही सुनयात् सेन, लेनिन को पहला पाठ पढ़ाया।
सब से प्यारा लाल लाड़ला गान्धी तेरे मन को भाया।
इसीलिये तो तेरी जय का, एक राग रह रह लहराता।
इसीलिये तू कहलाती है, सब जीवों की धरती माता॥

६

यही चाह है हम तेरे हों, मय्या तू बस रहे हमारी।
तेरे लिये निछावर होना, हमको होवे कभी न भारी॥
एक एक हम लाख लाख का तेज और बल पौरुष पावें।
आगे बढ़कर तेरे जस का, राग रसीला हिल मिल गावें॥
तेरा सुन्दर रूप मनोहर, रहे सदा हमको मन भाता।
बनी रहे तू हरी भरी हो, हम लोगों की धरती माता॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अंधड़ !

श्रीमती सत्यवती मल्लिक

ढीली ढाली लट्ठे की सलवार, मैली रेशमी कमीज़, और महीन मलमल के फटे अञ्चल से कमनीय यौवन को ढके वह उन्नीस वर्षीय सुन्दरी, आँधी पानी में भीगे नीड़-विहीन चिड़िया के बच्चे की भाँति सहसा दिखाई दी, तो बड़े-छोटे, नौकर-चाकर, सभी आँगन में बिछे तख़्त के इर्द गिर्द घेरा डाल आखड़े हुए।

पतंग, गेंद, पशु-पक्षी आदि की कौतुक क्रीड़ा का लेशमात्र भी आभास वहां न पा, बच्चों का समूह तो शीघ्र निराश हो लौट ही गया किन्तु आते जाते किसी से भी परिहास, छेड़छाड़, आलोचना, प्रत्यालोचना किए बिना न रुकने वाली युवक युवतिओं की टोली भी एक दूसरे का मुँह ताकने लगी।

वास्तव में आधे घूँघट के आवरण में छिपे, कुम्हलाए कमल की पँखुड़िओं से नेत्र, चेहरे का पीलापन, तथा कई दिनों के असँवारे रूखे केशपाश, सब मिलकर स्फटिक की नाईं उसके अन्तर का ऐसा भाव प्रकट कर रहे थे जिसे देख कुछ क्षण मानों घर की ऊँची ऊँची दीवारें तक सिहर उठीं।

व्यँग-बाण छोड़ने की इच्छा से आया हुआ सन्तसिंह ही अन्त में हाथ के चिमटे से उस सन्नाटे को भङ्ग करते हुए भारी स्वर में बोल उठा "हमारी सगी बहन है, किसकी मजाल है जो इसकी ओर आंखें उठाकर देखे।" प्रतिदिन किसी न किसी ऐरे ग़ैरे व्यक्ति के आ बैठने का समुचित विरोध भी न जाने कैसे सुशीला भाभी की मुद्रा से लुप्त हो गया।—प्रत्युत वे उसे लड़कियों के घेरे में से खींच निजी कमरे में ले गईं, मुँह धुलाया और "जाने कब की भूखी है" कह स्नेह पूर्वक मिठाई आगे रखकर खाने का आग्रह किया।

हिमालय की तलहटी में बसा हुआ यह वृहत परिवार अत्यन्त मौजी स्वभाव का है। घर के आठ नौ स्थायी-सदस्यों के अतिरिक्त गर्मियों की छुट्टियाँ काटने छै सात विद्यार्थियों का दल भी इस बार सम्मिलित था। कहीं ताश चलता रहता तो कहीं बाजा-सितार, तो कहीं तान-आलाप, तो कहीं साज-शृङ्गार। हँसी विनोद की इस तरंगित धारा में किसी नवागन्तुक के आने जाने के समय केवल दो चार घण्टे के कौतूहल एवं उदासी की क्षणिक तरंग के अतिरिक्त कुछ अन्तर न पड़ता था। इसी कारण माया के आस पास स्लेट, पट्टी, किताब, क़सीदा लेकर जाँच भाल करने की धुन प्रथम दो चार दिवस में ही समाप्त कर सब कोई पूर्ववत् मधुमय झकोरों में डोलने लगे। और इधर बच्ची को दूध पिलाने से लेकर गोदाम, रसोई, सन्दूकों की चाबिओं तक के लिए सर्वत्र माया, माया, की पुकार होने लगी। बिना माया के बच्ची दूध नहीं पीती, सब्ज़ी भाजी बेमज़ा रहती, फुलके फूलते नहीं और घर के सारे काम अधूरे पड़े रहते।

जहाँ बहुधा किसी के आने जाने का मार्ग नहीं पड़ता, ऊपर बरामदे में एक छोटी चारपाई बिछौना लेकर उसने ठिकाना बना लिया।

"हमारे यहाँ भी ऐसा गलीचा था, बर्तन थे, कामदानी चादरें थीं···बलोचिस्तान में तो मैं बुर्क़ा पहनती थी।"—ऐसी कई बे सिर पैर की बातें जब कभी यूँ ही उस अल्पभाषी मुख से धीरे धीरे निकल पड़तीं तो सब कोई मन ही मन गप समझ कर, केवल देखते रह जाते, किन्तु उसकी मन्द मन्द चाल, सदा नीची पलकें और मात्र घिसे रेशमी पोशाक (जिसे वह धोधाकर नित्य पहर लेती) इससे भी अधिक इस भरेपूरे घर में खाने पीने पहरने के प्रति कुछ ऐसा अनासक्त भाव, जिससे किसी को भी उसके बातों में बढ़ा चढ़ाकर कहने का, और प्रतिवाद करने का साहस न होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



"उसका पति लड़ाई में मर गया है और पति का बूढ़ा भाई उससे विवाह करना चाहता था, उसकी माँ भी लड़कियों को बेचने की दलाली का काम करती है। जहां जहां भी इसे बेचा गया, भाग आई। उस दिन दूध गङ्गा के निर्जन किनारे की ओर जहां साँसिओं के घर हैं, अकेले जाते देख अहमदअली ड्राइवर, इसे घर लाकर छोड़ गया था।

परिचय-स्वरूप केवल उपरोक्त लहर सी एक सिरे से दूसरे सिरे तक विकसित हो उठती। इसके आगे उसके स्वल्प जीवन के रहस्मय पर्दे को उठाकर झाँकने का अवकाश था किसे ?

कैसा धूल भरा दिन था ! निर्जन बालू तट की भाँति आषाढ़ की उदास दोपहरी दूर दूर पर्वत मालाओं तक फैली पड़ी थी। बादल कई दिनों से घिर घिर कर आते और बिना बरसे चले जाते थे। वृक्षों का पत्ता तक भी नहीं हिल रहा था। सामने मैदान में रस-विहीन तृणों पर बैठी एक गाय ऊँघ रही थी। पास ही एक पथिक सो गया था। घर के लोगों में से एक मंडली दरी तकिए लेकर चिनारों की छाँह में जा लेटी और कुछ लोग दरवाज़े बन्द कर ताश खेलते खेलते सो गए। सम्पूर्ण घाटी में जैसे धू ! धू ! भागो ! भागो ! का सा स्वर विचरने लगा।

"मर पी ! बोतल के बिना ज़िन्दा न रहेगी !" साथ ही दो थप्पड़ों की आवाज़ सुन ताश वाली मण्डली में से हम दो तीन लड़कियाँ दौड़ी दौड़ी भाभी के कमरे में जा पहुँचीं।

"गिलास, फूलदान, कांच की अन्य कोई चीज़ भले ही टूट जाती पर पूरे चार रुपए की बोतल !"

"और वह भी आजकल मिलती कहाँ है ?"

"तिस पर हिमाक़त यह कि अभी तक नीचे ही नहीं उतरी ?"

"जाने दो जी ! अधिक अपनत्व का व्यवहार भी इन लोगों को सिरपर चढ़ा देता है और इतने लम्बे घूँघट में से दिखाई भी क्या पड़े ?"

"घूँघट भी किससे—पिता जी और कृष्ण से !"—एक साथ ही तालियाँ, क़हक़हे, और हँसी के ठहाक़े कमरे में छा गये !

मूर्ख माया ! जो इतना भी नहीं जानती कि पिता जी साक्षात देवता हैं, उनसे घर भर तो क्या गली मुहल्ले तक की कोई स्त्री पर्दा नहीं करती और कृष्ण जो लम्बाई में छै फ़ुट बढ़ जाने पर भी आयु में केवल अठारह वर्ष का है।

"स्वयं अपनी आँखों से कृष्ण भय्या के कमरे के आगे मैंने उसे झाँकते देखा है ! वाह गुरू ! कैसे सफ़ेद दूध से, कपड़े पहन कर, सब के साथ खाने बैठ जाती है !"—मुँह में उँगली दबाते हुए बात चीत के रुख़ को देख रसोइया सन्त सिंह उसे 'कलजुगी नारी' कहे बिना न रुक सका—

"घत् ! नालायक !"—ऐसा कह सन्तसिंह को तो डाँट दिया गया, किन्तु "जवान तथा रूपवती लड़की को घर में पालना ख़तरे से ख़ाली नहीं" ऐसा सुझाव भाभी को दे, तेल की कटोरी हाथ में लिए दबे पाँवों ऊपर सीढ़िओं में से जाकर झाँकने का कार्य्य भार, मैंने स्वयं अपने ऊपर लिया।

चारपाई के एक पाए पर पैर रखे वह अपराधिनी सी निश्चल भाव से खिड़की से बाहर देखती रही—फिर जैसे सम्पूर्ण देह में थर थर कम्पन हुआ और उसने दोनों हाथों में सिर को कस कर दबोच लिया। फिर धीरे से "सच्चे पातशाह ! वाह गुरू !" कहते हुए छोटी गठरी खोल शीशे के टुकड़े में से इन्हीं पिछले दो महीनों में पुनः उभरते कपोलों, चमकीले सँवारे सुदीर्घ केशों, घनी भवों और पलकों को ऐसी तिरस्कार भरी दृष्टि से उसने देखा कि मैं काँप उठी; लगा कहीं वास्तव ही में इसे हिस्टीरिया आदि रोग तो नहीं ?

गत रविवार को सायंकाल की प्रार्थना के उपरान्त अकारण ही उसके लम्बे घूंघट में से छलछल ध्वनि सुनाई दी थी और उसी रात माया का पता न था। खोजने पर अगली सुबह नदी के किनारे, एकटक देखती हुई वह पाई गई। जज के सामने बयान देते हुए उसकी माँ ने भी तो कहा था कि "लड़की को उन्माद है !"

तेल की कटोरी अकस्मात् मेरे हाथों से छूट पड़ी। माया चौंक कर आगे बढ़ आई। स्मरण नहीं बात कैसे प्रारम्भ हुई; किन्तु उन नाज़ुक पँखुड़िओं सी पतली उँगलिओं के स्निग्ध स्पर्श से एक लम्बी धुंधली ऊँघ में मेरे आगे घूम गया—किसी अति सुन्दर स्वर्गीय अप्सरा के पीछे सफ़ेद दाढ़ी मूछों युक्त, विकराल आँखों वाला दैत्य, प्रभात बेला में पूर्ण विकसित गुलाब का फूल मसल देने वाले दो भोंडे हाथ, एक मीठी कुहुकती श्यामा पर झपटता हुआ बाज़ !

"कभी आप मेरी कमर देखें"—माया के मीठी बाँसुरी सरीखे कण्ठस्वर से मेरी कल्पना भङ्ग हो गई।

"रोज़ दिन में मातम पुर्सी के लिए आने जाने वाले लोगों के साथ रोना धोना चलता, और इधर साँझ होते ही बूढ़े को भूत सवार हो उठता। भला हो ! मेरे पुराने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नौकर का जिसकी सहायता से मैंने अपना कन्धा तक उसे नहीं छूने दिया। लेकिन उस रात को जब उसका नशा सीमा तक पहुंच गया था—मेरे साथ उस ग़रीब को भी बेंत पड़े। फिर बोला "कैसा मातम रचा कर बैठी हो ! मैं उसका बड़ा भाई हूं। हमारी जाति में भाई का पूरा हक़ होता है, और तुम्हें दान पुण्य में नहीं लाया गया। पाँच सौ ! पूरे पांच सौ ! तुम्हारी मां को दिए थे।" तब मैं और न सह सकी। छै महीने की बच्ची को उसी नौकर की गोद में सौंप, तूफ़ान की भांति भाग निकली। इससे पूर्व अकेले कभी क़दम बाहर नहीं रखा था। रास्ते पहिचाने न थे। सारी रात गलिओं बाज़ारों में भटकते, भोर बेला में अपने को लारिओं के अड्डे के समीप पाया। लारियां काश्मीर की ओर प्रस्थान करने को तय्यार थीं। उसी समय देखा—माँ और बूढ़ा मेरा पीछा करते आरहे हैं। माँ सम्भवतः उससे समझौता कर रही थी, कि लड़की को कहीं घुमा फिरा कर, दिल बहला कर, ( जिससे यह हाल ही के ताज़े ग़म को भूल जाए ), दो एक महीने में लौटा लाएगी। ओह भरे बाज़ार में जिस तरह बूढ़े ने मेरे दोनों जेब टटोले और कहा—"याद रख, भाग कर जहाँ भी जाएगी भूत प्रेत की भाँति पीछे पीछे आऊँगा।"

दूसरे दिन ऊँचे ऊँचे पहाड़ों और वृहत नदियों को चीरकर माँ मुझे जहां छोड़ कर चली गई वह दुमंज़ला घर जेहलम और कृष्ण गङ्गा के बीच बसे हुए, एक पहाड़ी गाँव में मुज़फ़्फ़राबाद के समीप था। ऊपर की छत में एक अकेले कमरे में अपने को पाकर मैं बहुत प्रसन्न थी, चारों ओर से मन्द मन्द पर्वतीय वायु के झकोरे आते रहते। दिन और रात एक निस्सीम शान्ति में कट जाते। यहाँ किसी प्रकार की असुविधा न थी। कोई मुझ से बात तक न करता। दोनों समय एक बारह तेरह वर्ष की भोली भाली बालिका बढ़िया बढ़िया भोजन परोस कर लाती और शीघ्र चली जाती। कभी साँझ को एक आदमी, सम्भवतः गृहस्वामी, आता और बहन ! बहन ! पुकारता।

मेरा अतीत मानो अन्धकूप सा ढका है; अथवा यूँ कहें आकाश ने मुझे फेंका और माँ धरती ने आँचल में पाला है ! पीछे जहाँ भी दृष्टि फेरती हूँ तनिक भी छाँह नज़र नहीं आती ! माया का गला रुद्ध सा हो गया। तनिक चुप रह कर बोली—इसी से जब कोई मुझे बहन ! बेटी ! कहकर पुकारता है तो मेरे अणु, अणु में पुलक भर आते हैं। फिर एक साँस लेकर—हाँ ! बीच में दो दिन वह व्यक्ति नहीं आया। वातावरण सुनसान सा पा लकड़ी की पिछली दीवार के छेदों में से मैंने झाँक कर देखा, नीचे आँगन में एक अधेड़ औरत रो रही है, और वह बालिका उसके आँसू पोंछ रही है ! कुछ समझ न सकी। सन्ध्या के भोजन के समय मैंने लड़की का हाथ थाम लिया, पूछा—"सच कहो क्या बात है ?" बालिका की निश्छल आँखों से छलछल आँसू ढुलक पड़े। काँपते स्वर में बोली "तुम्हारी माँ आई थी और मेरे पिता उसके पाँच सौ रुपए चुकाने गए हैं। मेरा भाई नहीं है...इसी से... नई माँ !" इतना कह कर वह लजा कर भाग गई। सुनकर मेरा सिर चकरा गया। रात्रि की निस्तब्धता जब घनी हो आई तो मैंने खिड़की के साथ दुपट्टा बाँधा और नीचे सड़क पर कूद पड़ी। दुपट्टे में से गज़ भर चिथड़ा मेरे साथ झटक कर आगया जिसे मैंने सिर पर कस कर रूमाल की भाँति बांध लिया।

घोर अँधियारी कालीरात, ऊँचे वृहत कगारों तक गहर गहर उछलती कृष्ण गङ्गा की लहरें ! बड़ी बड़ी भयावनी चट्टानों, झाड़िओं के मध्य में से होकर न जाने कितने मील बेतहाशा ग्रीष्म ऋतु के धूल मिट्टी से भरे वेगवान अन्धड़ की तरह भागती गई ! उस समय मेरे अन्तर बाहर सर्वत्र वैसा ही धाँय धाँय स्वर भर रहा था। जी चाहता था ध्वंस कर दूँ संसार भर को; इन सुदीर्घ घने केशों को और संगमरमर सी सुन्दर इस नारी देह को !

जाने कब तक, कई मील इसी तरह भागती गई। अन्त में पूर्व की ओर उजाला हुआ। कुछ दूर पर जेहलम नदी की झलमल धारा दिखाई दी और साथ ही पुल पर से तीन छाया मूर्तियाँ सहसा इसी ओर आती दिखाई पड़ीं। शिकारी कुत्तों के भय से बारहसिंगे की भांति झट कूद कर मैं एक झाड़ी में उलझ गई। एकाएक मेरी भयानक चीख़ से वह मधुर नीरव पर्वतीय प्रत्यूष मानों थर थर काँप उठा।

"अच्छा तुम !" वही व्यक्ति जो सौदा चुकता कर लौट रहा था, झाड़ी की ओर बढ़ा। "धोखेबाज़ ! नर पशु !" न जाने कहां से मुझे सिंहनी सी गरज प्राप्त हो गई। मेरी चीख़ दो अफ़रीदी-राहगीरों को भी खींच लाई। क़िस्सा सुनकर उन्होंने उसे बेहद फटकारा। ओह ! तब वह काला पुरुष कैसे मेरे पैरों पर आ गिरा और हाथ जोड़ने लगा। इतना कह वह पुनः चुप हो रही और मैंने मुड़ कर उसकी ओर आश्चर्य से देखा। यूनानी मूर्ति सी अद्भुत लचकीली गढ़न, गौरव से लजीला मुख ! हैं ! यही लड़की प्रायः नित्य मानों क़दम गिन गिन कर रखती हुई, पट्टी सलेट हाथ में लिए आकर जब मर्मर स्वर में कहती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



"मेरी तो बुद्धि कम है। कब मुझे तारा, कमला आदि बहनों की तरह पढ़ना लिखना आएगा? मैं भी उन सी बन सकती हूं क्या?..."

शाबाश! बहुत ख़ूब! "तुम्हारी मां सगी हैं या...? और जज ने तुम्हें जब बालिग़ क़रार दे स्वतन्त्र रूप से जहां चाहे रहने का अधिकार दिया तो उस रात तुम्हें पुन भाग जाने की क्यों सूझी?"—इत्यादि प्रश्न वहीं बीच में ही रह गए क्योंकि एकाएक भीतर झटक फटक खटखट, समाम घर के ऊपर से नीचे तक के दरवाज़े खिड़कियाँ और बाहर वृक्ष खम्भे झाड़ियां झूलने लगे—भागो! दौड़ो! आंधी! तूफ़ान! की चीत्कार से बच्चे और युवक चारों दिशाएँ गुँजाने लगे।

वायु के प्रबल बोझ से खिड़कियों के भारी पल्ले खींचते हुए माया ने क्षण भर, दूर दिगांचल तक ऐसे स्थिर गहन भाव से देखा मानों सम्पूर्ण घाटी में इधर उधर ऊँची पर्वत मलाओं से टकराता हुआ वह भीषण अन्धड़ का स्वर उसी के मसले तरुण हृदय से निकल रहा हो! उसे देख किसी क्रुद्ध सर्पिणी की फुफ़कार अथवा खूंटे से छुटी दूर भागती हुई गाय की शक्ति, जिसे कोई थाम नहीं सकता—ऐसी झलक सामने हो आती थी।

अपनी ओर मुझे ऐसे अपलक ताकते देख, माया ने तुरन्त सिर का पल्ला नीचे खींच लिया और उसी मन्द मधुर स्वर में हँस कर कहने लगी—"बच्ची का फ्राक समाप्त कर ही नीचे उतरूँगी, भाभी जी को ख़ुश करने का ढँग मैं जानती हूँ।"

किन्तु तब मैं सीढ़ियों में खड़ी किसी अज्ञात प्रेरणा से उस लम्बे घूँघट एवं चेहरे के कमनीय आवरण में छिपे, दया माया वत्सलता विहीन नारी के अन्तर की हर-हर, थर-थर को पुलक भर वन्दना कर रही थी।

# किसान

श्री रामावतार यादव 'शक्र'

पड़ती कठिन शीत अम्बर से, बरफें भी गिरतीं रह-रहकर!
मानस में आहें भरती है, जाड़े की यह रात भयंकर!
हुई प्रकृति निस्तब्ध, कुहासे में रजनी निज वदन छिपाए!
बैठा फिर भी कौन मेड़ पर, टूटी-सी झोपड़ी बनाए!

तन पर नहीं वस्त्र है पूरा, निशि कट जाती आग तापते!
जन्तु न कोई आ जावे, रहता बिरहा का स्वर अलापते!
झपकी लग जाती कुछ क्षण को, स्वप्न-लोक में त्यों जाता वह!
अपने मन में भावी सुख के सुन्दर चित्र बना लेता वह!

चलता है फिर सपना आगे, सम्मुख सब बातें आ जातीं!
पिछले जीवन की स्मृतियाँ उसके मानस में द्वन्द मचातीं!
"इससे अच्छी फसल लगी थी, किन्तु न मुझको मिली अधूरी!
ज़मींदार की कुर्की भर सब देकर भी थी हुई न पूरी!

"जुगा रहा दिन-रात इसे मैं, पर मेरा अधिकार न इसपर!
कहते हैं सब लोग—'स्यात् पट जावे अबकी सारी देकर!'
कब तक फ़ाक़ाकशी चलेगी? कब तक यों दुख-ताप सहूँ मैं!
छोड़ूंगा इस बार नहीं मैं, चाहे जगती में न रहूँ मैं!

"मेरी मेहनत का यह फल है, मौज करे इससे क्यों कोई!
जीवन की आशाएँ मेरी, क्यों रह जाएँ हरदम सोई!
सुलग उठेंगी ज्वालाएँ, सूखी हड्डी पल-पल अकुलाती!
मिटने की भावना आज मेरे अन्तर में द्वन्द मचाती।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# फ़िलिस्तीन में हज़रत ईसा से पहले के सुधारक

पण्डित सुन्दरलाल

080210

फ़िलिस्तीन निवासियों के ऊपर जिन प्रभावों को हमने पिछले लेख में बयान किया है वे केवल ख़ास ग्रन्थों या ख़ास ख़ास जिज्ञासुओं तक ही परिमित थे। ऐस्सिनी जैसे लोग स्वयं एक आदर्श जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करते थे किन्तु जन सामान्य में प्रचार के लिये न जाते थे। दूसरी ओर इसी चारों ओर फैली हुई रूहानी रोशनी में लाखों यहूदी जन सामान्य के बिगड़े हुए आचार विचार को सुधारने की भी कुछ लोग जगह जगह कोशिशें कर रहे थे। ईसा से पहले की सदियों में और ठीक ईसा के जन्म की सदी में भी फ़िलिस्तीन और मिश्र में दोनों जगह जहाँ यहूदियों की ख़ास आबादी थी, अनेक सहृदय सुधारक इस तरह के पैदा हुए जिन्होंने इस विषय में काफ़ी कोशिश की और घूम घूमकर अपने विचारों का प्रचार किया।

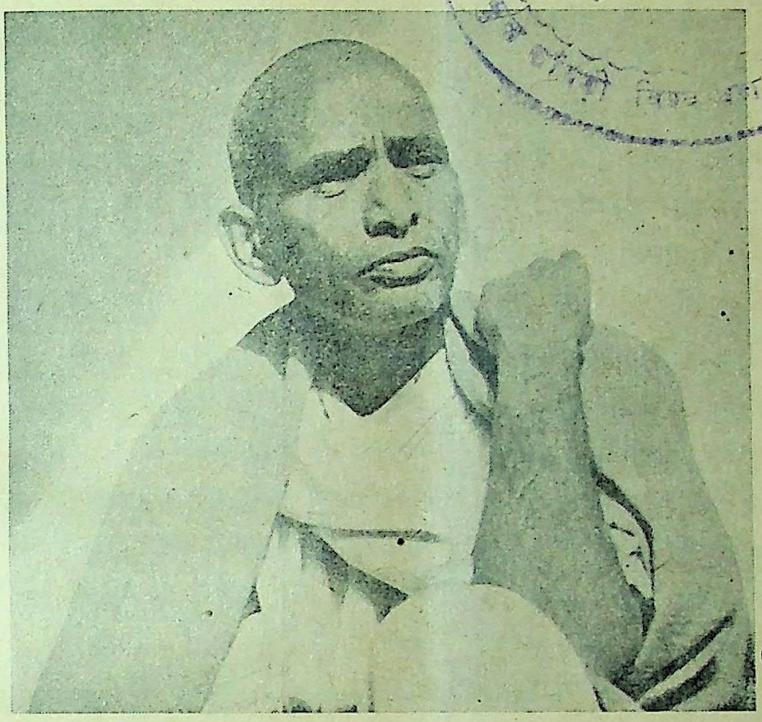

इनमें सबसे पहला नाम ईसा से दो या ढाई सौ साल पहले महात्मा ईसा ही के हमनाम सिरा या सिराक़ के बेटे ईसू [ Jesus son of Sirach ] का है। ईसू ने अनेक प्रचलित धार्मिक विश्वासों पर खुले हमले किये। ईश्वर को बजाय यहूदियों के ख़ास ईश्वर मानने के "एक, अकेला, सब में रमा हुआ, अनादि, अनन्त और सब प्राणियों पर दया करने वाला" बताया, सदाचार पर ज़ोर दिया, "सबका भला चाहना और करना" धर्म का लक्ष्य बताया, मनुष्य को "कर्म करने में स्वतन्त्र" क़रार दिया, मन्दिरों और पुरोहितों की हालत पर नज़र करते हुए कहा कि "ईश्वर ने किसी मनुष्य को पाप करने की इजाज़त नहीं दे रखी है।" उसने उपदेश दिया कि "जो मनुष्य दूसरे मनुष्य पर क्रोध करता है वह ईश्वर से कैसे आशा कर सकता है कि ईश्वर उसे चंगा कर देगा", "समय निकल जाने से पहले अपना कर्तव्य पालन करो और ईश्वर अपने समय पर तुम्हें उसका फल देगा", "श्रमजीवी के लिये अपना काम ठीक ठीक करना ही ईश्वर प्रार्थना करना है," "क्रय और विक्रय के बीच में पाप घुस जाता है", "दूसरों के साथ न्याय करना और सदाचार का जीवन व्यतीत करना यही सच्चा धर्म है", "दूसरों के साथ नेकी करना ही ईश्वर की पूजा करना है," इत्यादि। ईसाई धर्म के संस्थापक महात्मा ईसा के विचार सिरा के बेटे ईसू के विचारों से इतने मिलते हुए हैं कि इतिहासज्ञ इस ईसू को महात्मा ईसा का "सच्चा पूर्वज"* कहते हैं।

ईसू के बाद शायद उससे बढ़कर दूसरा नाम महात्मा ईसा से ठीक पहले यहूदी महात्मा हिल्लेल का (७० ई० पू० से १० ई० तक) आता है। हिल्लेल इराक़ का रहने वाला था। वह पहला यहूदी था जिसने चीनी महात्मा कुङ्ग-फ़ूत्ज़े के इस क़ीमती उपदेश के शब्दों को थोड़ा बढ़ा कर—"जो बात तुम अपने साथ किया जाना पसन्द नहीं करते, वह तुम कभी किसी दूसरे के साथ न करो"—स्वयं उपदेश दिया—"जो बात यदि तुम्हारे साथ की जावे तो तुम्हें अच्छी न लगे वह तुम भी अपने पड़ौसी के साथ कभी न करो। यही सचमुच धर्म है और जो कुछ है सब केवल इसी की व्याख्या है।" हिल्लेल अनेक बार अपने उपदेशों में इन शब्दों को दोहराया करता था। हिल्लेल के कुछ और अति प्रसिद्ध वाक्य ये हैं—"मेरी दीनता में ही मेरा गौरव है।"† "यदि मैं स्वय अपना धर्म पालन न करूँगा तो मेरा धर्म दूसरा कौन पालन करेगा?" "यदि मेरा काम केवल अपनी ही चिन्ता करना है तो मैं किस काम का?" "यदि अब नहीं तो कब?"

---

* "A true ancestor of Jesus"—Life of Jesus by Renan.

† "My abasement is my exaltation."



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पने को संघ से अलग मत करो।" "अपने पड़ौसी पर समय तक राय क़ायम मत करो जब तक कि तुम ख़ुद को स्थिति में न हो।" "जो अपने लिये नाम करना ता है वह अपना नाम खो देता है, जो अपने ज्ञान बढ़ाता नहीं वह उसे घटाता है, जो नई शिक्षा ण नहीं करता वह मृत्यु के योग्य है, जो ताज हासिल े के लिये काम करता है वह नष्ट हो चुका," "जिसे े धर्म का आदेश मिल गया उसे परलोक का जीवन गया।" इत्यादि।

हिल्लेल पुरोहितों के और उन लोगों के विरुद्ध था प्रचलित धार्मिक रूढ़ियों को महत्व देते थे और उन्हें म रखना चाहते थे। वह अत्यन्त उदार था। उसका य मनुष्य मात्र के लिये प्रेम से भरा हुआ था। वह न्त विनम्र, सहनशील और शुद्ध चरित्र था। उसकी के सैकड़ों वर्ष बाद तक लोग बड़ी भक्ति के उसे एक महान शिक्षक और नम्रता, दया और सहन-ता का प्रचारक और स्वयं इन गुणों का अवतार ते रहे।

हिल्लेल अपनी आयु भर अत्यन्त ग़रीब रहा, और ग़रीबी को अपना महान आभूषण समझता रहा। न ल हिल्लेल और महात्मा ईसा दोनों के जीवन में ही ी समानता थी, वरन् महात्मा ईसा के उपदेशों में लेल के अनेकानेक वाक्य ज्यों के त्यों मिलते हैं। इस भुत समानता के कारण ही अनेक इतिहासज्ञ हिल्लेल ईसा का "सच्चा गुरू" मानते हैं। "अपनी निर्धनता ारण और उस दीनता के कारण जिस दीनता के साथ ने उस निर्धनता को सहन किया, अपने प्रेमी स्वभाव ारण, पुरोहितों और धर्म ध्वजियों का विरोध करने के ण हिल्लेल को सचमुच ईसा का गुरू कहा जा ता है।"*

मिश्र में ईसा के क़रीब दो सौ साल पहले से अनेक न यहूदी भारतीय अध्यात्म और यूनानी दर्शन दोनों मथकर उनकी मदद से यहूदी धार्मिक विचारों को उन्नत करने की कोशिशों में लगे हुए थे। इनमें सबसे मशहूर और सबसे आदरणीय नाम सिकन्दरिया के यहूदी दार्शनिक फाइलो ( Philo ) का है जो ईसा के समय में मौजूद था। सिकन्दरिया कई सदी पहले से भारतीय और यूनानी विचारों का एक ख़ास संगम स्थान था। फाइलो भारतीय और यूनानी दर्शन दोनों का पूरा पंडित था। वह एक महान ग्रन्थकार भी था। उसके विचार अत्यन्त गहरे और उदार थे। उसके अनेक ग्रन्थ ख़ासकर एक ग्रन्थ जिसका नाम "ध्यानमय जीवन" [ Of the Contemplative Life ] है, आज तक अपने उदार और व्यापक सदाचार नियमों और अपने गूढ़ अध्यात्म के लिये आदर से पढ़ा जाता है। महात्मा ईसा की सूली के समय फाइलो की आयु ६२ वर्ष की थी और वह इसके कम से कम दस साल बाद तक जीवित रहा। फाइलो को विचार समानता की दृष्टि से "ईसा का सचमुच बड़ा भाई"* कहा जाता है।

फाइलो की ईश्वर की कल्पना अपने समय की प्रचलित यहूदी कल्पना से बहुत ऊँची और व्यापक थी। वह कहता था कि ईश्वर यहूदी या किसी दूसरी क़ौम का ख़ास ईश्वर नहीं है, वह सबका एक समान ईश्वर है। कोई क़ौम उसकी विशेष प्रेम पात्र नहीं। वह सब का पिता है। वह हर समय हमारे साथ है। वह हर एक के हृदय में विराज मान है। हमें उस पर पूरा भरोसा रखना चाहिये। उससे प्रेम करना चाहिये। मनुष्य मात्र भाई हैं इसलिये सब को एक दूसरे के साथ प्रेम और उदारता का व्यवहार करना चाहिये। इन सब विषयों पर महात्मा ईसा ने बाद में जो विचार प्रकट किये और जिन शब्दों में किये वह अनेक स्थानों पर फाइलो के विचारों और शब्दों की साफ़ गूंज मालूम होते थे। ईसा ईश्वर को सबसे ज़्यादा "अब्बा" ( पिता ) कहकर पुकारते थे। फाइलो भी ईश्वर को अब्बा कहता था।

फाइलो समस्त प्राचीन यहूदी रूढ़ियों, यज्ञों, पशुबलियों और अन्य कर्मकाण्ड को त्याज्य बताता था और केवल पवित्र जीवन और सदाचार पर ज़ोर देता था। फाइलो का अधिक हाल और उसके विचार यहूदी धर्म के सिलसिले में दिये जा चुके हैं।

[ हज़रत ईसा और ईसाई धर्म नामक पुस्तक से ]

---

* "By his poverty so meekly endured, the sweetness of his character, by his opposition to priests and hypocrites Hillel is the true master of Jesus"—Pirke Aboth, Ch. 1 and 11, Talmud etc.—Renan's life of Jesus, p. 56.

* Philo is truely the elder brother of Jesus—Renan's life of Jesus.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पाश्चात्य संस्कृति पर भारत का ऋण

डाक्टर विनयकुमार सरकार एम०-ए०, डी० एच-सी०

हम यह मानते हैं कि पश्चिमी सभ्यता ने अपने कला-कौशल, उद्योग-धन्धों और ज्ञान-विज्ञान से उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में हिन्दुस्तान और एशिया के दूसरे मुल्कों को काफ़ी प्रभावित किया है और अपने बड़प्पन को लेकर आज वह दुनिया के नेतृत्व का दावा पेश कर रही है किन्तु सांस्कृतिक इतिहास के विद्यार्थी को यह न भूलना चाहिये कि प्राचीन और मंझले ज़माने की भारतीय सभ्यता ने ही इस आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता को प्राण-रस दिया था, यानी सन् १७७६ के बाद से लेकर यूरोप और अमरीका में जो सांस्कृतिक आन्दोलन चले उन्हें भारतीय संस्कृति ने बेहद प्रभावित किया है।

जिस ज़माने में पाल वाले जहाज़ों का रिवाज था उस वक्त जहाज़रानी में भारतीय अपना सानी नहीं रखते थे। भारत के साथ यूरोप का व्यापारिक सम्पर्क क़ायम होते ही यूरोपियन सौदागर हर साल मद्रास के समुद्री तट पर मडापलम में अपने जहाज़ बनवाया करते थे। भारतीय जहाज़ बनाने वाले लोहे की हर तरह की चीज़ें बना सकते थे। मिसाल के तौर पर वे लोहे की मेखें, सलाख़ें, छड़ें, क़ब्ज़े और लङ्गर आदि बहुत बढ़िया बना लेते थे। अङ्गरेज़ यात्री टामस बावरे अपनी पुस्तक 'जिआग्राफ़िकल एकाएट आफ़ कण्ट्रीज़ राउण्ड दि बे आफ़ बेङ्गाल' (१६६९-१६७५), में लिखता है—"यहाँ पर कई लोग जहाज़ बनाने में बहुत दक्ष हैं। दुनिया में जहाँ जहाँ भी मैंने जहाज़ बनते देखे हैं इनके जहाज़ किसी से कम नहीं। ये बहुत बढ़िया क़िस्म के मस्तूल के रस्से और जहाज़ के दूसरे साज़ सामान बनाते हैं।"

जहाज़रानी के बहुत से हिन्दू तरीक़ों को यूरोपियनों ने अपना लिया। फ्रान्सीसी लेखक सॉलविन कहता है—"जहाज़ों के बनाने में अङ्गरेज़ बहुत अहतियात बरतते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने हिन्दुओं की बहुत सी ख़ूबियाँ सीख ली हैं और इससे जहाज़रानी के अपने फ़न को बहुत बढ़ाया है।" पुर्त्तगालियों ने भी जहाज़ के आगे के उभार का तरीक़ा भारतीय जहाज़ों से ही सीखा। दूसरी चीज़ जो उन्होने भारतीय जहाज़ों से ली वह तीन मस्तूलों को खड़ा करने का तरीक़ा है।

इस तरह आधुनिक यूरोप की सभ्यता जब उन्नीसवीं सदी में अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही थी तभी उसे भारत की प्राचीन सभ्यता ने सहारा दिया। अमरीकन जहाज़ी कप्तान भी इस बात को क़ुबूल करते हैं कि उनकी मछली पकड़ने वाली नावें जैसे 'स्लूप', 'याल' और 'कटर' वग़ैरह भारतीय नावों के माडेल पर ही बनाई गई थीं।

अमरीकन औपनिवेशिकों के बंगलों की स्टाइल बंगाल की झोपड़ियों की नक़ल है। इस बंगले के निर्माण के उसूल का ज़िक्र 'पद्मपुराण' में भी है। हिन्दुस्तान ने ही पश्चिम को 'कैलिको' कपड़ों की छपाई का तरीक़ा सिखाया कि जिसके लिये कालीकट का शहर मशहूर है और जिसके नाम पर ही 'कैलिको' नाम पड़ा। अमरीका में जो गर्मियों में पहनने का कपड़ा 'गिंगाम' मशहूर है वह भी हिन्दुस्तान के 'गंजाम' शहर की ईजाद है।

जहाँ तक शिक्षा के तरीक़े का प्रश्न है उस सम्बन्ध में इङ्गलिस्तान ने भारत के ऋण को स्वीकार किया है। वेस्ट-मिनिस्टर ऐबी में एण्ड्रू बेल की क़ब्र पर यह तख़्ती लगी हुई है—"ब्रिटिश साम्राज्य में ग़रीबों के बच्चों को पढ़ाने के लिये जो तरीक़ा राष्ट्रीय तरीक़ा बन गया है वह मूल रूप में शिक्षा का मद्रासी तरीक़ा है जिसे एण्ड्रू बेल ने सफलता के साथ इङ्गलिस्तान में प्रचलित किया।"

जर्मनी और इङ्गलिस्तान में साहित्य की 'रोमाण्टिक' धारा यूरोप के आधुनिक साहित्य और कला की सब में महत्वपूर्ण धारा है। इस धारा को भी प्राचीन भारत की कविता ने बेहद प्रभावित किया है।

सन् १७८९ में विलियम जोन्स ने कालिदास को 'शकुन्तला' का पहली बार अङ्गरेज़ी में अनुवाद किया। फ़ार्स्टर ने उसका उसी ज़माने में जर्मन अनुवाद किया जिसे प्रसिद्ध जर्मन साहित्यकार हर्डर (१८०३) ने देखा। हर्डर ने महाकवि गेटे से 'शकुन्तला' की चर्चा की। गेटे पर 'शकुन्तला का ही प्रभाव पड़ा जो अमरीका की खोज का भौगोलिकों पर और 'नेपच्यून' ग्रह की खोज का ज्योतिष के विद्यार्थियों पर पड़ा। गेटे की भावना इन पंक्तियों में फूट पड़ी—

"क्या तुम बसन्त के फूलों और पतझड़ के फलों की कल्पना कर सकते हो? क्या तुम ऐसी चीज़ की कल्पना कर सकते हो जो अपने आकर्षण और प्रभाव में अद्वितीय हो?

"क्या तुम ऐसी चीज़ की कल्पना कर सकते हो जो हममें प्राण-रस फूँके और हमें सन्तुष्ट करे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



"क्या तुम एक नाम के अन्दर पृथ्वी और स्वर्ग को कल्पना कर सकते हो ?

"मैं इसके लिये एक नाम बताता हूँ और वह है—'शकुन्तला' कि जिसके भीतर यह सारी कल्पना समाहित है।"

'शकुन्तला' ने प्रसिद्ध जर्मन नाटककार और कवि शिलर की कल्पना पर और उसके नाटकों और उसकी कविताओं पर बेहद प्रभाव डाला। उसकी 'Thalia' नामक रचना में भारतीय भावों की स्पष्ट छाप है। जो कुछ उसे यूनानी पौराणिक ग्रन्थों में नहीं मिली वह उसने इस भारतीय नाटक में पाई। यूरोपीय साहित्य पर 'शकुन्तला' का प्रभाव अभी हाल तक देखा जाता था। यूरोपीय संगीत में जो राग प्रसिद्ध हुये हैं उनमें हुंगेरियन संगीतज्ञ गोल्डमार्क (१८३०-१९१५) का 'शकुन्तला ओवर्चर' भी है।

आधुनिक दुनिया के जीवन और विचारों पर प्राचीन भारत की जिस दूसरी चीज़ ने बहुत अधिक प्रभाव डाला वह है भगवत् गीता। सन् १७८५ में सब से पहले गीता का अङ्गरेज़ी में अनुवाद हुआ। जर्मनी में हर्डर और हम बोल्ट ने उसका बहुत अधिक प्रचार किया। उसके बाद यूरोप और अमरीका के प्रसिद्ध दार्शनिकों के विचारों और चिन्तन पर गीता की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। शोपेन्हार के "कवित्व पूर्ण दर्शन" या "दार्शनिक कविता" की विचार-धारा से लेकर हमारे ज़माने की बर्गसन की दार्शनिक विचार-धारा पर गीता का प्रभाव दिखाई देता है।

गीता में गम्भीर आत्म-प्रेरणा द्वारा धर्म और निष्काम कर्म की दार्शनिक विवेचना है। दूसरी चीज़ यह है कि गीता जन्म और मृत्यु के रहस्य को हल करने की कोशिश करती है। यह हल उसने आत्मा की अमरता, मृत्यु की नकारात्मकता, पाप के स्थायित्व में अविश्वास और परमात्मा की अक्षय कृपा में खोजा है।

ये सिद्धान्त उस जिज्ञासु के लिये उतना ही महत्व रखते हैं जो आत्मा की बन्धन-मुक्ति खोजता है और उस साधक के लिये भी उतना ही महत्व रखते हैं जो अपनी आत्मा को बचाने के लिये देह को तिलाञ्जलि देने को तैयार हो जाता है। इस दृष्टि से भगवत् गीता ने न सिर्फ़ थामस ए केम्पिस की Imitation of Christ को ही प्रभावित किया बल्कि टेनीसन की कविता In Memoriam और ब्राउनिङ्ग के La Saisiaz को भी प्रभावित किया।

ब्राउनिङ्ग की कविता में भी उसी तरह की जिज्ञासा मिलती है जो अर्जुन ने गीता में की है। मसलन—

"Does the soul survive the body ?
Is there God's Self—no or yes ?"

अर्थात्—क्या मृत्यु के बाद आत्मा जीवित रहती है ? परमात्मा है या नहीं ? और गीता की तरह ही 'ला सैसिआज़' का जवाब 'हाँ' में है। वह पीड़ित मानवता को आशा का सन्देश है। दुख से द्रवित स्त्री-पुरुषों के दिल कितने उत्साह से भर सकते हैं यदि उन्हें यह बताया जाय कि परमात्मा दुःख के माध्यम द्वारा भी सुख का वितरण करता है। प्रसिद्ध अमरीकन दार्शनिक-कवि वाल्ट ह्विटमैन भी गीता के इसी सिद्धान्त को दोहराता है—

"इस विश्व के सम्बन्ध में विचारों में डूबे हुये मैंने देखा यहां पुण्य बहुत थोड़ा है।

"जो शीघ्रता से किन्तु निश्चित रूप से अमरता की ओर बढ़ रहा है, और विश्व का यह फैलाव जो सब पाप ही पाप है, मैंने देखा यह शीघ्रता के साथ नष्ट होकर विलुप्त हो रहा।"

सभ्यता के प्रारम्भिक युग से आज की औद्योगिक क्रान्ति के ज़माने तक संस्कृति ने जिस क्षेत्र में सब में अधिक विस्तार पाया है वह है इनसान के दिमाग़ की उन्नति। इससे हमने अपने व्यापक हितों का समन्वय सीखा है और परस्पर विरोधी विचारों को बर्दाश्त करना सीखा है। जातियों और क़बीलों के बन्धनों से दिमाग़ की इस मुक्ति में प्राचीन भारत का हिस्सा सब से महत्वपूर्ण और सब से विशेष रहा है। भारत ने ही १८ वीं सदी में यूरोपीय विद्वानों को "तुलनात्मक अध्ययन" की विधि सिखाई। इसी से उनके Unity in Diversity सिद्धान्त की नींव पड़ी।

इस आधार पर सबसे पहले 'तुलनात्मक भाषा-विज्ञान' का अध्ययन शुरू हुआ। सन् १७८४ में सर विलियम जोन्स ने कलकत्ते में एशियाटिक सोसायटी आफ़ बेङ्गाल क़ायम की। इसके दो बरस बाद सन् १७८६ में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया कि संस्कृत, ग्रीक, लैटिन गाथिक, सेल्टिक और फ़ारसी भाषायें सब एक ही मूल स्रोत से निकली हैं।

एक बार जब इण्डो-आर्यन या इण्डो-जर्मेनिक भाषाओं की एकता स्थापित हो गई तो फिर सार्वभौमिक दृष्टिकोण से लोग विचारों, आदर्शों, कर्मकाण्डों, रीति रिवाजों, रूढ़ियों, ग्राम-गीतों आदि का अर्थ करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इसी के बाद मैक्समूलर के प्रयत्नों से पुराणों और धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन शुरू हुआ। इस सम्बन्ध में उसकी Sacred Books of the East Series ने बहुत काम किया।

बाद के यूरोपीय विद्वानों ने भी युगों के इतिहास के भीतर से भारत और यूरोप के बीच न केवल धर्मों और पुराणों में ही समानतायें खोजीं बल्कि ज्ञान, विज्ञान, नागरिक-जीवन, क़ानूनी-व्यवस्थायें, जनतांत्रिक सिद्धान्त, सैन्य-संचालन, सदाचार के उसूल, और रीति-रिवाजों में भी समानतायें खोज निकालीं। मिस्र, असुरिया, बाबुल आदि की खुदाइयों में जो अवशेष निकले उनसे भारतीय दृष्टिकोण की ही पुष्टि हुई। परिणाम स्वरूप बीसवीं सदी में मानव-विज्ञान शास्त्र में जातियों के मनोविज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन शुरू हुआ।

हर दृष्टिकोण से और हर पहलू से पूर्वीय संस्कृति ने पश्चिमी संस्कृति को प्रभावित और प्रोत्साहित किया। पूर्वीय संस्कृति में कविता, नाटक, संगीत, चित्रकला, खेती, निर्माणकला, स्थापत्य, औद्योगिककला, भौतिक-विज्ञान, दर्शन, अध्यात्म, सदाचार आदि सब बातें इस तरह की मौलिक और मानवीय भावनाओं पर आधारित हैं जिससे सारी दुनिया के साथ एकता को अनुभव किया जा सकता है। हर मानव-भावना मौलिक रूप से सार्वभौमिक होती है और भारतीय संस्कृति के ज्ञान-विज्ञान की हर धारा इसी मौलिक मानवीय-भावना से प्रवाहित है।

चिकित्सा के क्षेत्र में भी भारतीय ज्ञान ने यूरोप को बहुत अधिक प्रभावित किया। छठवीं सदी ईसा पूर्व में भारतीयों को शरीर की एनाटमी का पूरा ज्ञान था। ईसा की शुरू की शताब्दियों में ही सर्जरी या चीरफाड़ से भारतीय ज़र्राह परिचित थे। भारत में हज़ारों बरस पहले से सार्वजनिक अस्पतालों का अस्तित्व मिलता है और दवाओं में खनिज द्रव्यों का इस्तेमाल भी सब से पहले हिन्दुओं ने ही प्रचलित किया। पैरासेल्सुस के समय से बहुत पहले ही भारतवासियों ने जस्ते का पता लगा लिया था। हारवे के हज़ारों बरस पहले भारतवासियों को रक्त-संचार के सिद्धान्त का ज्ञान था।

यूनान के नगर राज्यों के टाइप की ग्राम पंचायतें भारत में हज़ारों की तादाद में मौजूद थीं किन्तु इनकी बुनियाद यूनान के नगर राज्यों के विपरीत शान्ति, प्रेम और सहयोग पर क़ायम थी। भारतवासियों ने ही सब से पहले (४००-३०० ई० पूर्व) विशाल केन्द्रीय साम्राज्य क़ायम किया और चौथी सदी ईसा पूर्व में सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से भारतवासियों की मर्दुमशुमारी ली गई थी। उस ज़माने में भारतीय सेनापति छै लाख पैदल सैनिकों की बाज़ाब्ता और स्थायी सेनायें संगठित कर सकते थे। इस पैदल सेना के साथ साथ घुड़सवारों, साँड़नी सवारों और हाथियों की दसियों डिवीज़नें होती थीं। भारत के इतिहास में शार्लमैन, फ्रेडरिक और नैपोलियन जैसे सैकड़ों जनरैलों के नाम मिलेंगे। भारतीय जहाज़ी सेना का सम्पूर्ण हिन्द महासागर पर आधिपत्य था और बारहवीं सदी ईसवी तक दूर दूर के देशों के साथ भारत का घनिष्ट सांस्कृतिक और तिजारती सम्बन्ध क़ायम था। उस समय की दुनिया की तीन सब में बड़ी महाशक्तियों में भारत, चीन और अरब थे। इसलाम के यूरोपीय अनुयायी, बौद्ध-तातार और मंगोल उस ज़माने के अज्ञान के अन्धकार में डूबे हुये यूरोप की Superior race थीं। जहां तक शिक्षा, नागरिकता, अन्तर्राष्ट्रीय सदाचार और सामाजिक आदर्शों का सम्बन्ध है मञ्चू सम्राट कुङ्ग-ही और भारतीय मुग़ल सम्राट औरङ्गज़ेब के ज़माने के एशिया और लुई चौदहवें के ज़माने के यूरोप में कोई तुलना ही नहीं की जा सकती।

हज़ारों वर्ष पूर्व नालन्दा के विश्वविद्यालय में स्थायी रूप से रहने वाले ५,००० विद्यार्थी थे कि जिन्हें मुफ़्त शिक्षा के साथ साथ खाना, कपड़ा, रहने की जगह, दवादारू आदि दी जाती थी और जिन्हें पढ़ाने के लिये सैकड़ों प्रसिद्ध शिक्षा-गुरू मुक़र्रर थे। पाँचवीं सदी ईसवी तक एशिया के कोने कोने से जिज्ञासु ज्ञान की तलाश में नालन्दा आया करते थे।

यह सही है कि उन्नीसवीं और बीसवीं सदी ईसवी में तरह तरह के आविष्कारों ने दुनिया के ज्ञान के क्षितिज को बहुत विस्तृत कर दिया है किन्तु संस्कृति के विद्यार्थियों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि ज्ञान का प्रारम्भ यूरोपियन संस्कृति के दिये हुये आविष्कारों के साथ नहीं हुआ बल्कि वह हमारे पूर्वजों की हज़ारों बरस की विरासत है।

यदि दुनिया के विचारशील व्यक्तियों को पूर्व और पश्चिम की जातीय समस्याओं को हल करना है, रंगों, देशों और जातियों के बीच की अन्तर्राष्ट्रीय गुत्थी को सुलझाना है तो उन्हें इस बात पर ज़ोर देना होगा कि पूर्व और पश्चिम में कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती।

---



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# "ब्लड-बैङ्क !"

आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक

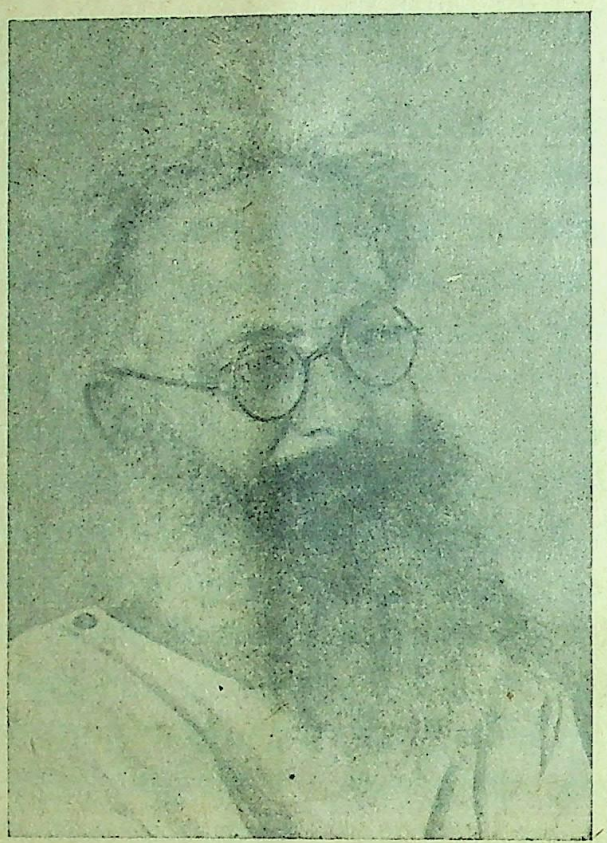

बैङ्क हैं और बेशुमार बैङ्क हैं; किन्तु इस युद्ध ने एक नये ही प्रकार के बैङ्क को जन्म दिया है। इसका नाम है—"ब्लड-बैङ्क !" (रक्त-बैङ्क !), अर्थात् इसमें युद्ध-प्रेमी देश-भक्तों द्वारा डिपाज़िट किये हुये रक्त की पूँजी से घायल सैनिकों की रक्त-हीनता को दूर किया जाता है।

जो कुछ भी हो, किन्तु मेरे दिमाग़ में इस समय एक दूसरे ही तरह के बैङ्क की बात आ रही है कि जिसका नाम ऊपर लिखे अर्थों में "ब्लड-बैङ्क" नहीं है किन्तु फिर भी जिसका कुछ न कुछ सम्बन्ध मनुष्यों के रक्त-शोषण और रक्त-पात से है। (यह दूसरी बात है कि यह रक्त-शोषण और रक्त-पात अहिंसात्मक तरीके से किया जाता है; किन्तु क्या हम लोग अहिंसा के उपासक गान्धी जी के युग में नहीं रह रहे हैं ?)।

इन बैङ्कों के जन्मदाता और इनके समर्थक ऐसे लोग हैं जिन्होंने गहरी रक़में बनाई हैं और ऐसे तरीके से बनाई हैं जो सीज़र की बीवी की तरह "सन्देह से परे" नहीं हैं। इन लोगों ने एक तरफ़ तो जनता के विश्वास और उसकी उदासीनता के कारण और दूसरी ओर लोभ की अपनी अतोषणीय भावना से अपने को भी मोटा किया है और बैङ्कों में अपनी रक़मों को भी मोटा किया है। इन लोगों ने ये रक़में न तो अपने माथे का पसीना बहाकर कमाई हैं और न इनके प्राप्त करने में उन्हें अपने साथी-मनुष्यों का ही न्याय्य सहयोग मिला है। यह धन उन्होंने कपट और पाप से पैदा किया है। कपट से इसलिये कि उन्होंने इस घातक सिद्धान्त पर अमल किया है कि "सस्ते से सस्ता माल ख़रीद कर उसे मँहगे से मँहगा बेचा जाय।" उन्होंने गन्द और धूल को इस तरह हथियाया है मानो वह हीरा हो ! लोभ के इस व्यापार में दलालों को रिश्वत देकर उन्हें चीज़ों की क़िस्म और मिक़दार की ओर से अन्धा कर दिया गया ताकि वे तयशुदा ठेकों का माल पूरा पूरा दे सकें। ये दलाल भी कुछ कम चतुर नहीं थे और इन्होंने कोयले को सोना समझ कर नहीं स्वीकार किया बल्कि सोने को कोयले की तरह सस्ता समझ कर लिया है। किन्तु ये युद्ध-जन्य धनी लोग युग युग के कठोर नियम को भूल गये हैं। यह नियम धर्म और सदाचरण का नियम है कि जिसे भङ्ग करने वाले को अपने अपराध की सज़ा भुगतनी ही पड़ती है। समृद्धि के वृक्ष की ऊँची ऊँची डालियों पर बैठे हुये ये लोग अपने को पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से मुक्त मानते हैं। इस बात को ये नहीं समझते कि अप्रकाश्य रूप से धीरे धीरे किन्तु एक निश्चित गति के साथ इस पेड़ की जड़ें हिल रही हैं और एक दिन ऐसा आयेगा जब ये लोग धम से ज़मीन पर ही नहीं गिर पड़ेंगे बल्कि सीधा अपने लोभ की क़ब्र में समा जायँगे। प्राचीन ऋषियों ने कहा है—

**अधर्म से एक आदमी फल फूल सकता है, ज़िन्दगी में बहुत से सुख देख सकता है, अपने शत्रुओं को जीत सकता है; किन्तु यह निश्चित है कि अधर्म एक दिन उस पर पूरी तरह हावी हो जायगा और उसे नष्ट कर देगा !**

इन अधर्मी धनी मनुष्यों को समय रहते उस महाजन की जीवन-कथा याद करके चेत जाना चाहिये जिसने गुरू नानक को एक बार दावत दी थी। जब गुरू नानक ने उस धनी द्वारा परसी हुई रोटी को तोड़ा तो उसमें से ख़ून चूने लगा और तब उस धनी और अभिमानी गृहस्थ को पता चला कि उसका पैसा "दरिद्र और सर्वहारा" लोगों की कमाई को चूसकर इकट्ठा किया गया है !

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# इनसान जहां मक्खियों की तरह मरते हैं !

डाक्टर जोसेफ़ इरविन फ्रान्स

"कितना अच्छा होता यदि हिन्दुस्तान को उसकी क़िस्मत पर छोड़ दिया जाता। वज़ीरे हिन्द अपने को करोड़ों बेज़बान हिन्दुस्तानियों का ईश्वर द्वारा मुक़र्रर उद्धारकर्त्ता समझते हैं। हिन्दुस्तान के करोड़ों बेज़बान अपनी झोपड़ियों में मक्खियों की तरह मरते हैं। हिन्दुस्तान के प्लेग की असली वजह ग़रीबी है और जो मक्खी इस प्लेग को फैलाती है वह ब्रिटिश सरकार है ! इङ्गलिस्तान ने हिन्दुस्तान की इस ग़ुरबत का क्या इलाज किया ? वह एक जोंक की तरह है जो मज़बूत मुल्क की हैसियत से कमज़ोर मुल्क का ख़ून चूस रहा है !"

[ अमरीकन सेनेट में एक प्रस्ताव पर दिये हुये भाषण का कुछ अंश ]

हज़रात ! एक ऐसे सुलहनामे पर अपनी मोहर लगाकर, जो सुलहनामा हिन्दुस्तान में अङ्गरेज़ पूँजीपतियों की हुकूमत को क़ायम रखना चाहता है क्या आप न्यायप्रिय कहला सकेंगे ? हिन्दुस्तान पर इन अङ्गरेज़ पूंजीपतियों की हुकूमत शोषण की एक इतनी भयंकर कहानी है जिसकी इङ्गलिस्तान के उदार अङ्गरेज़ नीतिज्ञ कई पीढ़ियों से तीव्र निन्दा कर रहे हैं।

आप अमरीकन जनता को इस बात का विश्वास नहीं दिला सकते कि हिन्दुस्तान पर अङ्गरेज़ी हुकूमत कोई फ़ैज़ पहुंचाने वाली मुफ़ीद हुकूमत है। पिछली कई पीढ़ियों से अमरीकन नौजवान अपनी माँओं की गोद में, गिरजों में, और अपने स्कूलों में हिन्दुस्तान की ग़रीबी की दर्दनाक कहानी सुनते आये हैं। उन्होंने कमज़ोर, मुफ़लिस, सूखे हुये ५ करोड़ जीवित नर कंकालों की ख़ौफ़नाक तसवीरें देखी हैं जिनके लहू और मांस को कभी न बुझने वाली भूख निरन्तर चाटती रहती है और जो अज्ञान और उदासी के आलम में डूबे रहते हैं और मौत जिन पर सदा अकाल का साया फैलाये रहती है। हमारे नौजवानों ने हिन्दुस्तान के प्लेग, हैज़े और अन्न-संकट की दर्दनाक कहानियाँ सुनी हैं और उसके लिये उदारता पूर्वक चन्दा भी दिया है। हिन्दुस्तान हमारी आर्य जाति का सब में प्राचीन घर है और कुछ अर्थों में वह आर्य जाति का सब में महान साम्राज्य रहा है। उसकी सभ्यता इतिहास के शुरू ज़माने जितनी पुरानी है। हज़रत ईसा के तीन हज़ार बरस पहले बड़े पैमाने पर बाबुल के साथ भारत की तिजारत होती थी और ईसवी सन् से दो हज़ार बरस पहले मिस्र के पेरोए-सम्राट हिन्दुस्तान का बना हुआ बारीक और मुलायम कपड़ा पहनते थे और अपने मुर्दों की पवित्र ममियों पर हिन्दुस्तान की बनी हुई मलमल की पट्टियाँ लपेटते थे। हज़ारों बरस पहले सिन्धु नदी के तट पर हमारे आर्य पूर्वजों ने एक ऐसी सभ्यता का निर्माण किया जिसके अपने रीत-रिवाज थे, जिसकी अपनी कला और निर्माण-कला थी और जिसका अपना शानदार और सुन्दर साहित्य था। वे लोहे, ताँबे, पीतल और जवाहरात के काम में बेहद दक्ष थे। उनकी स्थापत्य और मूर्तिकला सुन्दरता और पवित्रता में उसी तरह अद्वितीय थी जिस तरह यूनानियों की सङ्गमर्मर की कला। उनका दर्शन का ज्ञान मिस्रियों और यूनानियों से कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा था। हिन्दुस्तान के ब्राह्मण पण्डित चीन और मिस्र के ज्योतिष-गुरू थे। हिन्दुस्तान का ज्ञान-विज्ञान, उसकी खेती-बाड़ी और उसके उद्योग-धन्धे हज़ारों बरस तक बेहद तरक़्क़ी करते रहे और दुनिया भर की दौलत खिंच खिंच कर हिन्दुस्तान के ख़ज़ाने में इकट्ठा होती रही। पन्द्रहवीं सदी में उसकी आश्चर्यजनक दौलत की ख़बर यूरोप निवासियों को भी लगी। सब से पहले वहाँ पुर्तगाली पहुँचे। उसके बाद डच और फिर फ्रान्सीसी; किन्तु सन् १७५७ में प्लासी के युद्ध के बाद इङ्गलिस्तान के हाथों में हिन्दुस्तान की क़िस्मत की बागडोर आई। हिन्दुस्तान धन दौलत से लबरेज़ था। ब्रिटिश शोषण ने, इङ्गलिस्तान को तो उन्नत और समृद्ध बनाया किन्तु हिन्दुस्तान को असह्य ग़रीबी के गढ़े में ढकेल दिया।

सन् १७८३ में एडमण्ड बर्क ने कहा था—"हिन्दुस्तानियों की नज़रों के सामने सिवाय इसके कुछ भी नहीं है कि वे शिकारी परिन्दों की नित नई उड़ानों को असहाय होकर देखते रहें कि जिनकी भूख अपने शिकार को देख देख कर निरन्तर जागती रहती है।"

रेवरेण्ड ए० जे० दुबॉय, जो सन् १८२० में मैसूर में अङ्गरेज़ मिशनरी था, लिखता है—"अफ़सोस है कि ग़रीब हिन्दू बाइबिल नहीं मांगते बल्कि खाना और कपड़ा मांगते हैं। जब पीठ नङ्गी हो और पेट ख़ाली हो तो अच्छे से अच्छा ईसाई भी बाइबिल की तरफ़ मुख़ातिब न होगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सन् १८८० में डब्लू० डब्लू० हण्टर ने लिखा था—'हिन्दुस्तान में चार करोड़ आदमी भूखे पेट ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं।"

आसाम के चीफ़ कमिशनर सर चार्ल्स इलियट ने सन् १८८८ में कहा था—"किसानों की आधी आबादी साल के एक सिरे से दूसरे सिरे तक यह नहीं जानती कि भरपेट खाना किसे कहते हैं।"

सन् १९०० में सर विलियम डिगबी ने अपनी पुस्तक 'प्रासपरस ब्रिटिश इण्डिया' में लिखा था—"इस बीसवीं सदी के शुरू में हिन्दुस्तान में नौ करोड़ आदमी नित्य भूखे रहते हैं।"

सन् १९०२ में सर रमेशचन्द्र दत्त ने अपनी पुस्तक 'पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया' में लिखा था—"लोगों की भयंकर ग़रीबी दिनों दिन बढ़ती जा रही है। जब फ़सल बेहद अच्छी होती है तब भी पांच करोड़ आदमी भूखे पेट रहते हैं।"

सन् १९०५ में अमरीकन मिशनरी रेवरेण्ड जे० टी० सण्डरलैण्ड ने लिखा था—"हिन्दुस्तान की ग़रीबी की आप कल्पना तक नहीं कर सकते।"

भारत मन्त्री स्व० सर सेमुअल एडविन माण्टेगू ने सन् १९१७ में कहा था—"अधिकांश जनता दो चार रुपयों पर ही पूरा महीना काटती है। देश में साधनों की कमी नहीं है पर जनता बेहद ग़रीब है।"

सन् १९१९ में मिसेज़ ऐनी बेसेण्ट ने लन्दन के "डेली हेराल्ड" में लिखा था—"हिन्दुस्तान की आधी आबादी को दिन में एक जून ही खाना नसीब होता है और वह भी भरपेट नहीं। एक हिन्दुस्तानी की औसत उम्र २३ बरस है जब की अङ्गरेज़ की ४० बरस और एक न्यूज़ी लैण्डर की ६० बरस।"

सर फ्रेड्रिक ट्रीव्ज़ ने, जो इङ्गलिस्तान के बहुत मशहूर सर्जन थे अपनी भारत यात्रा के बाद, सन् १९२४ में लिखा था—"हर हफ़्ते बीस हज़ार हिन्दुस्तानी प्लेग के शिकार होते हैं और इसके दसगुने आदमी हैज़े के और एक बार ५ लाख आदमी अकाल के शिकार हुये थे।"

मैं इन उद्धरणों को लम्बा करके आपके दिल को दुखाना नहीं चाहता। नीचे के आंकड़ों से पता लगेगा कि हिन्दुस्तान कितनी भयंकर दरिद्रता का शिकार है—

| | हर आदमी पीछे औसत पूँजी | | औसत आमदनी |
|---|---|---|---|
| अमरीका | २१५४.०० | डालर | ३७२.०० डालर |
| ग्रेट ब्रिटेन | १९१३.०० | ,, | २३२.०० ,, |
| भारत | ७०.०० | ,, | ९.७५ ,, |

और हिन्दुस्तान की यह ग़रीबी रोज़ बरोज़ बढ़ती ही जा रही है। पंजाब के फाइनैन्सेल कमिशनर एस०एस० थोरबर्न ने लिखा है—"सात करोड़ हिन्दुस्तानी ऐसे हैं कि जिनकी ग़रीबी से छुटकारे की कोई सूरत नहीं।" ब्रुक्स एडैम्स अपनी पुस्तक "ला आफ़ सिविलिज़ेशन एण्ड डिके" (पृ० ३०५) में लिखता है—"करोड़ों भारतवासियों की सदियों की बचत को अङ्गरेज़ छीन कर उसी तरह लन्दन ले गये जिस तरह रोमन लोग यूनान और पौण्टु को लूटकर वहाँ की दौलत को इटली ले गये थे। यह दौलत कितनी रही होगी इसका अन्दाज़ा कोई शख़्स नहीं लगा सकता, लेकिन वह इतनी थी जिससे उस समय यूरोप में संचित तमाम जवाहरात ख़रीदे जा सकते थे।"

बंगाल के गवर्नर सर फैड्रिक जान शोर ने लिखा था—"जो जो सूबे हमारे मातहत आते गये उन पर हमने अधिक से अधिक टैक्सों का बोझ लादा। हम इस बात में फ़ख़ अनुभव करते थे कि हमने देशी राजओं के मुक़ाबले में किसानों का दसियों गुना लगान बढ़ा दिया।"

मिस्टर मारिस—मिस्टर प्रेज़िडेण्ट क्या मैं सेनेटर फ्रान्स से एक बात पूछ सकता हूँ?

चेयरमैन मिस्टर लैनरूट—सेनेटर फ्रान्स! क्या आप सेनेटर मारिस की बात का जवाब देंगे?

सेनेटर फ्रान्स—ज़रूर!

सेनेटर मारिस—ये आप हवाले किनके दे रहे हैं?

सेनेटर फ्रान्स—जिन लोगों के मैंने हवाले दिये हैं उनमें से एक रेवरेण्ड सण्डर लैण्ड अमरीकन हैं बाक़ी सबके सब ज़िम्मेवार अङ्गरेज़ हैं। मैंने जान बूझकर अङ्गरेज़ों के अलावा और किसी के हवाले नहीं दिये।

हज़रात! हिन्दुस्तान के आये दिन के दुष्कालों की वजह वहाँ के किसानों की भयंकर ग़रीबी है जिन्हें अङ्गरेज़ पूंजीपतियों ने चूस चूसकर कृषकाय बना दिया है। ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के मेम्बर केर हार्डी ने लिखा है—"किसानों से जो लगान लिया जाता है वह उनकी पैदावार का ५० से ७५ फ़ी सदी तक होता है। इसके अलावा उन्हें नज़राना, शुकराना और जाने कितनी चीज़ें चुकानी पड़ती हैं। मेरा लगभग ठीक अन्दाज़ा है कि किसान की पैदावार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का ७५ फ़ी सदी टैक्सों में निकल जाता है। यही वजह है कि हिन्दुस्तान की जनता बेबस होकर ग़रीबी की चक्की में पिसती रहती है।"

और ये वे लोग हैं जिनकी आमदनी दस डालर सालाना से ज़्यादा नहीं है। एक दूसरा ज़िम्मेवार अङ्गरेज़ लिखता है— "गाँव में आमतौर पर ऐसी औरतें दिखाई नहीं देतीं जो साबित कपड़े पहने हों। एक ऊँचा और फटा सा लंहगा, एक चिथड़े हुई ओढ़नी और एक चोली— यही उनके कपड़ों का ख़ज़ाना है और इन्हें ही पहनकर वे रात भी काटती हैं। जाड़ा, गर्मी, बरसात सब उन्हें इन्हीं चीथड़ों में काटनी पड़ती हैं।" लोगों की रहाइश का आधार यदि उसे रहाइश कहा जाय तो कुछ भी नहीं है। हिन्दुस्तान के किसान को यदि दिनभर में एक मुट्ठी चावल मिल जाय तो वह बड़भागी है। हिन्दुस्तान वास्तव में भूखा मुल्क है। केर हार्डी ने सच कहा था—

"हिन्दुस्तान के प्लेग की असली वजह ग़रीबी है और जो मक्खी इस प्लेग को फैलाती है वह साम्राज्यवादी सरकार है। चुसी हुई रक्तहीन भारतीय जनता में इस प्लेग से बचने की सामर्थ्य नहीं है और इसीलिये वह आसानी से इसका शिकार हो जाती है।"

पादरी लैण्ड ने अफ़सोस के साथ कहा था—

"इङ्गलिस्तान का बर्ताव हिन्दुस्तान के प्रति किस तरह का है? वह एक राष्ट्रीय पर-जीवी जोंक की तरह है। एक मज़बूत मुल्क एक कमज़ोर राष्ट्र का ख़ून चूस रहा है!"

जान स्कर ने ४ मई सन् १९१९ के "लन्दन हेराल्ड" में लिखा था—"अधिकांश मज़दूर इस तरह की अकथनीय घृणित हालतों में रहते हैं कि यह देखकर हैरानी नहीं होती कि लोग अकाल, प्लेग और हैज़े से मक्खियों की तरह मरते हैं!"

हज़रात! यदि हिन्दुस्तान पर हुकूमत करने की इङ्गलिस्तान की नीयत साफ़ है तो उससे पूछिये कि उसने हिन्दुस्तान के लोगों को तालीम देने की कौन सी कोशिश की है। हिन्दुस्तान का अपना एक शिक्षा का तरीक़ा था जिसे अंग्रेज़ों ने नष्ट कर डाला। हमने हर फ़िलिप्पाइन निवासी की तालीम में जबकि सालाना औसतन ४ डालर ख़र्च किये हैं अङ्गरेज़ों ने हिन्दुस्तानियों की तालीम में सालाना औसतन सिर्फ़ ०.०१५ डालर ख़र्च किया है। जबकि हमने फिलिप्पाइन्स की अपनी ३५ बरस की हुकूमत में पढ़े लिखों की तादाद ४४ फ़ी सदी कर दी अङ्गरेज़ों ने हिन्दुस्तान में अपनी १२० बरस की में सैकड़े पीछे महज़ सात आदमियों को पढ़ना सिखाया है।

पिछले महायुद्ध में करोड़ों वफ़ादार हिन्दुस्तानियों इङ्गलिस्तान को बचाने के लिये अपने प्राणों की बाज़ी थी, लेकिन बदले में उन्हें शर्मनाक रौलट एक्ट गया और इसके बाद उस मुल्क में एक ऐसी घटना जिसकी मिसाल दुनिया के इतिहास में और कहीं मिलती। ६ अप्रैल सन् १९१९ के दिन करोड़ों हिन्दुस्तानियों ने क़ौमों और मज़हब का फ़र्क़ भूलकर मन्दिरों और मसजिदों में जाकर ईश्वर से अपनी आज़ादी के लिये दुआ मांगी। इसके बाद उन्होंने अहिंसात्मक सत्याग्रह का ऐलान किया। उस बात को आज चौथाई सदी बीत चुकी है। निर्बल, निःशस्त्र, ये हिन्दुस्तानी ब्रिटिश मशीनगनों के सामने अपने को फेंक देते हैं और अपनी ग़ुलामी के विरोध में हँसते-हँसते जान दे देते हैं। इन अहिंसात्मक हिन्दुस्तानियों को ब्रिटिश मशीनगनों से भूना गया इन पर हवाई जहाज़ से गोले बरसाये गये। इङ्गलिस्तान ने इस तरह भारतवासियों की आज़ादी की माँग का जवाब दिया कि जिसे इस लड़ाई के नतीजे में हमने दुनिया के लिये ऐलान किया है।

भूसी बनने के बाद ही दाना निकलता है, सोने को तपाने के बाद ही सोने की परख होती है। हिन्दुस्तान को भी इसी तरह तपने और तकलीफ़ की भट्टी से निकलने की ज़रूरत थी।

हज़रात! क्या आप आज़ादी की उस मशाल को दुनिया का कोई कोना भी अँधेरे में पड़ा रहने देंगे मशाल वाशिंगटन, हैमिल्टन, जैफ़रसन और लिंकन हृदय के रक्त से जलाई थी!

इङ्गलैण्ड को हिन्दुस्तान में कामयाबी नहीं में कामयाबी नहीं मिली और आयर्लैण्ड में नहीं मिला क्योंकि इङ्गलैण्ड के प्रतिक्रियावादी वहां के सर्वेसर्वा हैं। इस समय अमरीका के प्रश्न है कि क्या वह एशिया और अफ़रीका ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के निर्दय शोषण देगा! आज एशिया और अफ़रीका की क़ौमें इस सवाल पर हमारा जवाब सुनने और बेचैन हैं।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चेन-गैङ्ग

डाक्टर एन० एस० वर्धन

द्वादशी का चाँद रह रहकर कुहासे की चादर हटाने का प्रयत्न कर रहा था। चाँदनी ओस की बूंदों से अलसाई आँखों को धोकर कटीले तारों से घिरी हुई दुनिया की हर दर्जन बैरकों पर कभी कभी अपनी अन्यमनस्क दृष्टि डाल लेती थी!

एक बैरक के आगे लकड़ी की ख़स्ता सीढ़ियों पर बैठे हम धीमे स्वर में बातें कर रहे थे। रात्रि की निस्तब्धता तब बैरक के भीतर से उठते हुये खुर्राटों से भङ्ग हो जाती थी। ऐसा लगता था मानो कटघरों में बन्द जङ्गली जानवर गुर्रा रहे हों। बैरक की धन्नियों में लटकी हुईं कलूटी लालटेनें अपने पज़मुर्दा चेहरों से फीकी पीली रोशनी चारों ओर फेंक रहीं थीं!

खुर्राटों के कोरस को एक हल्की सी झङ्कार इस तरह आबद्ध करने का प्रयास कर रही थी, मानों बाँसों की पसलियों से रगड़ खाता हुआ कोई बनैला पशु जा रहा हो!

"यह क्या है?" मैंने पूछा।

"ये मूँज की चटाइयाँ हैं," पहरेदार ने जवाब दिया। "जब ये लोग करवट बदलते हैं तो···आप समझे?"

"हाँ", मैंने कहा, "और यह झङ्कार?"

"ये उनकी बेड़ियों में पड़ी हुई ज़ंजीरें हैं।"

एक मच्छर भुनभुनाकर मेरी गर्दन पर बैठ गया। मैंने हथेली से उसे दबोच दिया। एक मक्खी भिनभिनाकर मेरी नाक के चारों ओर घूमने लगी!

मैं उठकर सामने के बैरक के दरवाज़े के पास आया। दरवाज़े के पास रखे हुये पेशाब के टब से उठती हुई भभकार सड़ायन हवा के झोंके के साथ मेरे दिमाग़ में घुस गई। मैं हटकर बैरक के बग़ल में टहलने लगा। धारीदार कपड़ा पहने हुये निग्रो क़ैदियों की एक क़तार ज़मीन में बिछी चटाइयों पर लेटी हुई थी। फीके प्रकाश में पसीने की बूंदें चमक रहकर उनकी नंगी छातियों पर चमक उठती थीं।

एक क़ैदी ने थके हुये हाथों से अपनी जाँघ खुजलाई, दूसरे ने कन्धे पर काटते हुये खटमल को हथेली से मसल दिया और एक, जिसकी आँखों में नींद न थी, कोहनी पर सर रखे हुये उदास आँखों से शून्य में देख रहा था।

मैंने पहरेदार से पूछा—"आख़िर इन लोगों ने ऐसा क्या किया है जो इस तरह ज़ंजीर में कसकर कटघरे में बन्द किये गये हैं?"

"यह कुछ न पूछिये! आवारा गर्दी से लेकर ये लोग क़त्ल तक के दोषी हैं!"

तीस दिन और तीस बरस के सज़ायाफ़्तों में कोई अन्तर नहीं किया गया था। एक लड़का जो मुशकिल से १७ बरस का था अपने गरम माथे को बेड़ियों के ठण्ढे लोहे से सेहला रहा था; उसके बग़ल में रह रहकर दमे से खोंखता हुआ एक दुबला पतला बूढ़ा पड़ा हुआ था जो पचासे को पार कर चुका था।

पहरेदार ने कहा—"यह क़ातिल है!"

( २ )

अमरीका में क़ैदियों के इन कैम्पों का प्रबन्ध स्टेट प्रिज़न कमीशन द्वारा मुक़र्रर वार्डन करते हैं। इस कमीशन में तीन सदस्य होते हैं जो छै बरस के लिये जनता द्वारा चुने जाते हैं। कमीशन का हैड क्वार्टर अटलाण्टा शहर में है जहाँ बहुत सी फ़ाइलों और पत्रों के ढेर के बीच कमिश्नर विवियन ई० स्टेनली नियम पूर्वक आफ़िस के समय बैठते हैं।

मिलने पर कहने लगे—"ये चेन-गैङ्ग (ज़ंजीरी टोलियाँ) अच्छी भी हैं और बुरी भी हैं। हम कोशिश कर रहे हैं कि बुरे क़ैदियों से जल्द से जल्द हमारा पीछा छूट जाय।"

मैंने पूछा—"सुना है क़ैदी बहुधा जान से मार डाले जाते हैं और अमानुषिक अत्याचारों के अपराध में कभी कभी वार्डनों को भी बर्ख़ास्त कर दिया जाता है?"

कमिश्नर स्टेनली ने उद्धत स्वर में जवाब दिया—"आपको इन सब बातों से मतलब? अपने क़ैदियों का देखभाल का काम हमारा है।"

मैंने नम्रता से कहा—"किन्तु क्या आपकी इन फ़ाइलों में अमानुषिक ज़ुल्मों के लिये क़ैदियों की शिकायतें नहीं भरी पड़ी हैं? क्या इन काग़ज़ों में बीमारियों, चोटों और मौतों पर डाक्टरों की लम्बी लम्बी रिपोर्टें नहीं हैं? क्या इन धूल से ढकी हुई फ़ाइलों के भीतर निराश ज़िन्दगियों की अनेक दर्दनाक कहानियाँ नहीं बन्द पड़ी हैं?"

कमिश्नर ज़रा नरम होकर बोला—"हमारे पास पैसा कहाँ है! सरकार हमें इतना कम पैसा देती है कि हमारे लिये सब कैम्पों की जाँच पड़ताल कर सकना असम्भव है। हमारे दफ़्तर में क़ैदियों के पास से शिकायतें आती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किन्तु पैसों के अभाव में हम उनकी छान बीन नहीं कर सकते !"

मैंने कहा—"मैं आपके कैम्पों को देखना चाहता हूँ। क्या आप मुझे इसकी अनुमति देंगे ?"

कमिश्नर ने मुझे अनुमति पत्र देते हुये कहा—"आप शौक से जाइये पर आप को अमानुषिक ज़ुल्म देखने को न मिलेंगे !"

( ३ )

इसके कई दिनों बाद मैं जार्जिया की एक सड़क दुरुस्त करते हुये एक चेन-गैंग के सामने खड़ा था। इस गैंग का वार्डन कालिज का निकला हुआ सी० एच० ह्वीटले नामक एक नौ जवान था। सड़क जगह जगह से टूटी हुई थी और उसके दोनों किनारों पर लाल कंकरीली मिट्टी के बहुत से ढेर लगे हुये थे, जिसे बेलचों से ठेलों में भर कर सड़क की टूटनों में गिराया जा रहा था। सारे बेलचे एक साथ ही मिट्टी के भीतर धँसते थे और एक साथ ही उठकर ठेलों के भीतर गिरते थे। एक तालबद्ध गति के साथ क़ैदियों की कमर झुकती थी और उठती थी। क़ैदियों में से ही एक कामदार "हैजवान !" की धुन लगा रहा था और उसी की आवाज़ पर बेलचे उठते और गिरते थे। सूरज की प्रखर किरणें उनके नङ्गे बदन को भेद रही थीं और कभी कभी उन्हें मुँह खोलकर साँस लेने की कोशिश करनी पड़ती थी, उनके माथे और उनकी पीठ से पसीने की धारें बह रही थीं। उनका धारीदार जाँघिया गीला होकर नितम्बों से चिपक गया था। वे झुकते और उठते थे; एक मिनिट में चौदह बार झुकते और उठते थे। मिनिट के बाद मिनिट और घण्टे के बाद घण्टे गुज़रते थे—और वे उसी तरह जलती दोपहरी में, सूर्योदय से सूर्यास्त तक झुकते और उठते थे, मिनिट में चौदह बार झुकते और उठते थे।

धूल उड़ उड़कर बादल बनकर हवा में छा रही थी और उनके नथनों, फेफड़ों और कानों में चादर की तहों की तरह लिपटी जा रही थी।

मेरे कानों में रह रहकर क़ैदियों के पुरदर्द गीत की कोरस-कड़ी पड़ रही थी।

*बस—करो ! बस—करो ! बस—करो ! हे प्रभू !*

हर "बस" पर बेलचा मिट्टी के अन्दर धँस जाता था और हर "करो" पर ठेले के भीतर पहुंच जाता था।

इन अभागों के इस गीत में, कि जिन्हें मुक्ति या मौत तक झुकने और उठने, झुकने और उठने का अभिशाप मिला था—एक ऐसी कसक और दिल को पिघला देने वाली एक ऐसी टीस थी कि जो बरबस प्राणों में घुसकर कलेजे में अटक कर रह जाती थी—

*हे—प्रभू ! हे—प्रभू ! बस—करो ! हे—प्रभू ! बस—करो ! हे—प्रभू ! हे—प्रभू ! बस—करो ! अङ्ग—हुआ ! चूर—चूर ! चूर—चूर ! अङ्ग—हुआ ! हे—प्रभू ! बस—करो ! हे—प्रभू ! बस—करो !*

वार्डन ह्वीटले ने हँसी का ठहाका लगाकर कहा—"क्या तुम लोग इससे और अधिक जल्दी जल्दी गीत नहीं दोहरा सकते ताकि काम ज़्यादा हो सके ?"

* * *

अटलाण्टा के दफ़्तर में जो डाक्टरी रिपोर्टें पड़ी हुई थीं उनमें दर्ज था—

( १ ) क्लार्क काउण्टी कैम्प स्टाकेड का निग्रो क़ैदी बिल हैरिस १३ जून, सन् १९३१ को चार घण्टे की बीमारी के बाद पाँच बजे शाम को मिरगी के दौरे से मर गया। ( मैं अचम्भे से सोच रहा था कि जलती दोपहरी में सुबह से लेकर शाम तक बिना विश्राम काम करने की बीमारी का नाम ही क्या मिरगी है !!! )।

( २ ) जार्जिया की सड़क बनाते हुये जार्ज जॉनसन नामक निग्रो क़ैदी, उम्र २७ वर्ष, उँचाई ५ फ़ुट १०½ इंच, वज़न १६१ पौण्ड, २३ फ़रवरी, सन् १९३१ को तीन बजे सुबह तपेदिक़ से मर गया !

( ३ ) चैथम काउण्टी चेन-गैंग का जार्ज नील, उम्र २० वर्ष तेज़ाब, तारपीन और साबुन मिलाकर पीने से मर गया ! ( मैं सोचने लगा इन ज़ंजीरी टोलियों में काम करने की अपेक्षा मौत की कल्पना इन लोगों को कितनी सुखद लगती होगी ? )।

अटलाण्टा के दफ़्तर में क़ैदियों की मौत के ढेरों सर्टिफ़िकेट ख़ूबसूरत मोटे लिफ़ाफ़ों में लाल फ़ीतों से बँधे हुये और करीने से तहाये हुये रखे थे, जिनमें मिरगी, तपेदिक़, हार्टफ़ेल, लू और इसी तरह की कई बीमारियों की खानापूरी से लैस, कीड़ों से भी गई बीती मौत की कहानियाँ दर्ज पड़ी थीं ! और देश के कोनों कतरों में काले रङ्ग की कुछ अभागी माँयें, बहनें और बीवियाँ रो रोकर अपनी आँखें सुजा रही थीं।

( ४ )

कई सप्ताह बाद मैं सेमिनल काउण्टी कैम्प के स्टाकेड ( कटीले बाड़े ) में था। गरमी से तपी हुई हवा हुमस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बनकर वातावरण का दम घोंट रही थी। टीन की छत और लकड़ी के तख़्तों की दीवारें प्रखर सूर्य-ज्वाला से तपकर बैरकों को भट्टी में तब्दील कर रहीं थीं। टूटी हुई जाली के भीतर भोजनालय में थक की थक मक्खियाँ भिनभिना रही थीं और ज़ंग लगे कंटीले बाड़ों की चहारदीवारी अपनी संकुचित छाया लाल मिट्टी पर फेंक रही थी कि जिसके दायरे में धूप की झुलस से बचने के लिये दुर्गा चीटियों की क़तारें बिल तलाश कर रहीं थीं।

इसी कड़कड़ाती धूप में हाथ पैर बँधा हुआ १६-१७ बरस का एक बालक क़ैदी खम्भे से जकड़ा हुआ पड़ा था। उसकी आँखें बन्द थीं और उसका सर ज़मीन पर इस तरह लटक गया था मानो गर्दन की हड्डी टूट गई हो।

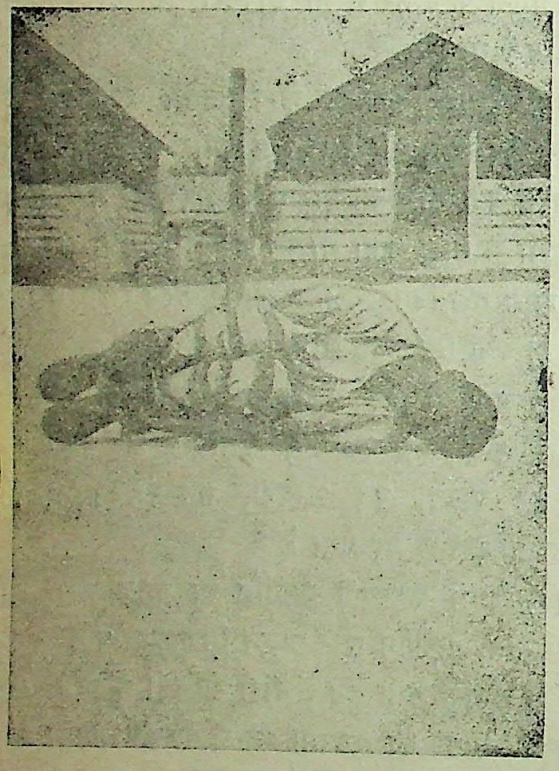

मैंने उसके पास जाकर पूछा—"बच्चे! तुम्हें बहुत तकलीफ़ है?"

प्यास से जले ओंठों को सूखी ज़बान से चाटकर गीला करते हुये उसने धीरे से आँखें खोलीं और फिर मींच लीं। मैंने वार्डन से पूछा—"इस लड़के ने क्या क़ुसूर किया था?"

वार्डन ने कहा—"इसने उलटकर पहरेदार की बात का जवाब दिया था। आप यक़ीन रखिये," वार्डन ने ज़ोर देकर कहा, "जब ये लड़के बेहोश हो जाते हैं तो हम इन्हें खोल देते हैं।'

मैंने पूछा—"इन लोगों को सज़ा देने का क्या यही तरीक़ा है?"

"नहीं, और दूसरी सज़ायें 'स्टाक' और 'रैक' की भी हैं," वार्डन ने इत्तला के तौर पर कहा।

मैं मन में सोचने लगा तीन सौ बरस पहले धार्मिक जुल्मों के दिनों में यह "स्टाक" की सज़ा दी जाती थी। लकड़ी के फ्रेम में मुजरिम के दोनों हाथ और दोनों पैर डाल कर कस दिये जाते थे। वह उसमें लटके लटके बेहोश हो जाता था। किन्तु वेब्स्टर डिक्शनरी तक में लिखा है कि यह अमानुषिक सज़ा सौ बरस पहले सदा के लिये बन्द हो चुकी है। पर जब अरली काउएटी स्टाकेड में मैंने एक १९ बरस के निग्रो लड़के को "स्टाक" में लटके देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। तीन सौ बरस पहले कम से कम मुजरिम एक तख़्ते पर बैठाकर स्टाक में कसे

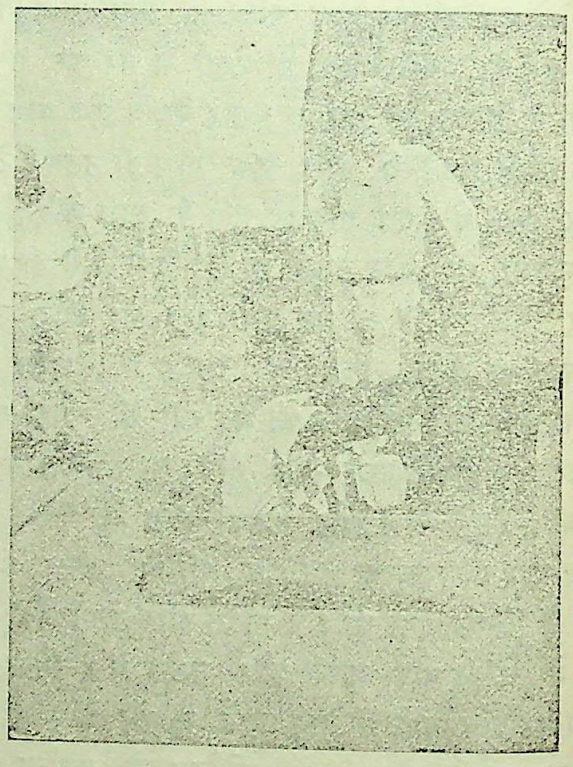

जाते थे। पर तीन सौ बरस बाद इस सज़ा में इतना संशोधन हुआ है कि हाथ पैर कस कर नीचे से तख़्ता खींच लिया जाता है और क़ैदी अधर में लटकता रहता है!

मैंने लड़के के पास जाकर देखा, वह आँख मूँदे धीमे स्वर में कह रहा था—"हे प्रभु! देख तेरे बच्चों के साथ ये लोग किस तरह का सलूक कर रहे हैं!!"

ज़मीन से तीन इञ्च ऊपर उसकी कमर लटक रही थी। हाथ पैरों की नसें सूज गईं थीं और ख़ून का दौर रुक गया था। उसकी देह का बोझ उसकी रीढ़ की हड्डी को मानो फाड़े डाल रहा था।

पसीना धारोंधार माथे से चू रहा था और आँसुओं की बूँदें टप टप उसकी आँखों से ढुलक रहीं थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मैंने पूछा—"कब तक आप इन्हें इस तरह 'स्टाक' में रखते हैं ?

वार्डन जे०डी० विलियम्स ने जवाब दिया—"एक वक्त में एक घण्टे से ज़्यादा नहीं। जब ये बेहोश हो जाते हैं तब हम इन्हें खोल देते हैं। जब ये होश में आकर ज़रा स्वस्थ होते हैं तो हम इन्हें फिर इसी तरह कस देते हैं।"

"और इसने अपराध क्या किया था ?"—मैंने पूछा।

"यह खाने के लिये नख़रे कर रहा था"—वार्डन ने तैश में जवाब दिया।

"क्या बेतों की सज़ा इससे अधिक दयापूर्ण नहीं है ?"—मैंने जिज्ञासा से पूछा। विलियम्स ने जवाब दिया—"मुझे पता नहीं! अब जो कड़ी से कड़ी सज़ा हम दे सकते हैं वह 'रैक' में इन्हें ज़रा 'तान' देते हैं।"

मैं सोचने लगा यह "रैक" में "तानना" क्या बला है !

जार्जिया की पागल कर देने वाली गर्मी में सुबह से शाम तक अथक परिश्रम करने से कभी कभी ये निग्रो क़ैदी पहरेदारों के हुक्म की नुक्ताचीनी कर बैठते हैं। मेरे सामने एक इसी तरह की घटना घटी और उस 'बदतमीज़' क़ैदी के हाथों में हथकड़ी पहना दी गई और हथकड़ी में रस्सी बाँध कर उसे "रैक" के खम्भे के पास लाया गया। उसे टख़नों से कमर तक रस्सियों से कस कर उस खम्भे में जकड़ कर बाँध दिया गया और गोरे वार्डन के हुक्म से हथकड़ी से बँधी रस्सी ख़ूब खींच तान कर सामने के दूसरे खम्भे में बाँध दी गई।

क़ैदी का धड़ आगे खिंचता चला गया और उसके दोनों हाथ कस गये। वह तकलीफ़ के मारे चीख़ने लगा !

उसके दोनों फैले हुये हाथों के बीच में उसका सिर लटक गया !

उधर उसके हाथ, गर्दन और चेहरे पर पसीने की बूँदें उभर आईं और इधर मेरे सारे बदन में सिहरन दौड़ गई।

उसके हाथ मानो कन्धों पर से उखड़े जा रहे थे।

अभागा क़ैदी भर्राये स्वर में "लार्ड जीजज़ क्राइस्ट !" की टेर लगाने लगा।

ऊपर तेज़ सूरज तड़क रहा था और उसके माथे क पसीना चू चू कर लाल मिट्टी पर कीच के लेसड़ बन रहा था।

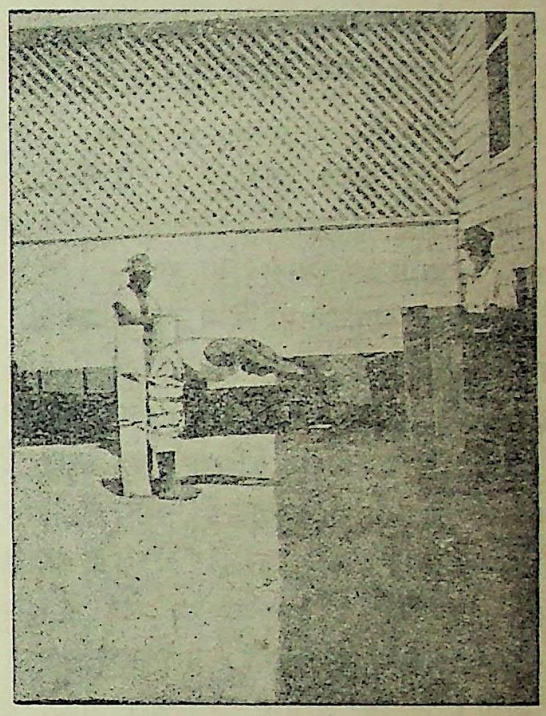

मैं घबराकर कटीले घेरे से बाहर निकला किन भर्राये हुए स्वर में प्रभु ईसा के चरणों में उसकी याचन की प्रतिध्वनि बराबर मेरे कानों में गूँजती रही।

* * *

अगले रविवार को सवेरे बेनब्रिज से ब्लैक्ले जा बाली बस में मैं सवार हुआ। सुबह की ताज़ा हव फ़र्र-फ़र्र करके मोटर की खिड़कियाँ चीर कर निकल जात थी। मोटर समतल चौड़ी सड़क पर भन्नाटे के साथ दौ रही थी।

बस में मेरी बग़ल में ही एक दया-मूर्ति पादरी बैठे हु थे जो अगले पड़ाव पर अपना धर्मोपदेश देने जा रहे थे

"क्या यह सही है" मैंने उनसे पूछा "कि ये उम्द सड़कें निग्रो क़ैदियों की चेन गैंगों द्वारा बनाई गई हैं औ क्या आप बता सकते हैं इन गैंगों के साथ कैसा सल्ल किया जाता है ?"

उसने हैरत भरी निगाहों से मेरी तरफ़ देखा।

"मुझे सचमुच नहीं मालूम" उसने नम्रता सूच मुस्कराहट के साथ कहा "क्यों कि मुझे यहाँ रहते अ केवल छै वर्ष ही तो हुये हैं।

[ लेख के चित्रों और सामग्री के लिये मैं श्री जे० ए स्पाइवाक का कृतज्ञ हूँ —लेखक। ]

---



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पुस्तक परिचय

स्वामी विद्यानन्द

**अजेय खण्डहर**—लेखक श्री रांगेय राघव; प्रकाशक पब्लिस्ट लिटरेचर पब्लिशिंग कम्पनी, आमरा; मूल्य दो रुपया; पृष्ठ संख्या ११८; डिमाइ साइज़।

इस काव्य पुस्तक में स्तालिनग्राद के युद्ध की चिरस्मरणीय घटना का वर्णन किया गया है। स्तालिनग्राद का युद्ध त्याग और बलिदान का एक पवित्र स्मारक है और संसार के सभी स्वतन्त्रता प्रेमी युग युग तक उससे प्रेरणा पाते रहेंगे। स्तालिनग्राद ने न केवल जर्मनी का पासा पलट दिया बल्कि उसने दुनिया के इतिहास के रुख को ही बदल दिया। अजेय और अविचल स्तालिनग्राद की कहानी मानव इतिहास की एक पवित्र धरोहर है। रांगेय जी के मन में उत्साह है, क़लम में प्रवाह है पर भाषा और छन्द भावों की दौड़ में पीछे रह जाते हैं। कविता के कुछ स्थल बहुत सुन्दर बन पड़े हैं किन्तु कुछ से स्थल ढीले और कमज़ोर हैं। यदि कवि के मन में सौ० पंक्तियाँ लिखने का लोभ न होता और वह केवल पचास पंक्तियों में ही सन्तोष करता तो पुस्तक बहुत सुन्दर बन पड़ती। किन्तु इसमें केवल कविता नहीं है वह कवि के हृदय से उमड़कर निकले हुये श्रद्धा के प्रसून की प्रतीक है और जो श्रद्धा की वस्तु है वह कला की दृष्टि से कसौटी पर खरी न भी उतरे तब भी आदर की पात्र है।

अजिल्द पुस्तक का मूल्य दो रुपया कुछ अधिक है।

**बंगाल का अकाल**—डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी के व्याख्यानों और वक्तव्यों का संग्रह; अनु० श्री भारती प्रसाद चन्दोला; प्रकाशक—संचयिनी, स्ट्रैण्ड रोड, कलकत्ता; मूल्य ४) रु०; पृष्ठ संख्या १२८; पुस्तक सजिल्द और सचित्र है।

प्रस्तुत पुस्तक मूल बंगला पुस्तक 'पंचाशेर मन्वन्तर' का अनुवादित है। अनुवाद सुन्दर हुआ है और अनुवाद की भाषा में प्रवाह है। पुस्तक में श्री इन्द्र दुग्गड़ द्वारा बनाये हुये चार स्केच और अन्य अनेक फ़ोटो चित्र भी हैं। बंगाल का भयानक अन्न संकट जिस बद-इन्तज़ामी और अनीति का परिणाम है वह लेखक ने अपने दृष्टिकोण से दिखाया है। "बंगाल के लाखों सुखी घराने एकदम ही किस तरह बे निशान हो गये और निरपराध नर-नारियों का तिल तिलकर जिस तरह सड़क पर पड़े पड़े मर गया—यह असहाय विनाश का दृश्य" डाक्टर मुकर्जी ने अपने व्याख्यानों और वक्तव्यों में अंकित किया है। बंगाल पर जो कुछ बीती और जो कुछ अब बीत रही है उसकी ब्योरेवार कहानी इतने थोड़े से पृष्ठों में नहीं आ सकती थी इसलिये पुस्तक में वर्णित बङ्गाल की घटनायें 'संक्षिप्त' ही कही जा सकती हैं। पुस्तक में यदि डाक्टर हृदयनाथ कुँजरू, श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित, श्री सन्तानम के वक्तव्य और "स्टेट्समैन" के कुछ अग्रलेख भी शामिल कर लिये जाते तो पुस्तक बहुत सुन्दर बन पड़ती। कुछ आँकड़े वग़ैरह देने की भी ज़रूरत थी जिनकी चर्चा श्री नियोगी आदि सदस्यों ने सेण्ट्रल असेम्बली में की थी। आशा है प्रकाशक अगले संस्करण में इन कमियों को दूर कर लेंगे। रिलीफ़ का काम और अन्न समितियों का संचालन जिस तरह दूसरे अन्य दलों ने किया है उसकी चर्चा भी होनी ज़रूरी थी। फिर भी जो कुछ भी है पुस्तक महत्वपूर्ण है और पाठकों के संग्रह करने योग्य है।

**विक्रम**—( दीपोत्सवी विशेषाङ्क ) अक्तूबर-नवम्बर १९४४; वार्षिक मूल्य ५); इस अङ्क का मूल्य ३॥); पृष्ठ संख्या—२०३; प्रकाशक—विक्रम कार्यालय, उज्जैन; सम्पादक—श्री सूर्यनारायण व्यास।

उज्जैन से निकलने वाले सहयोगी 'विक्रम' ने सम्राट विक्रमादित्य की स्मृति में अपना यह बृहत विशेषाङ्क निकाला है। प्रारम्भ में १६ पृष्ठों में योग्य सम्पादक ने 'बिन्दु-बिन्दु विचार' शीर्षक में सम्राट विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता, महामालव का भव्य अतीत, ऐतिहासिक घटना क्रम, विक्रम सम्वत, ऐतिहासिक भ्रान्तियों का निराकरण, अरब संस्कृति पर विक्रम का प्रभाव और गुप्त कालीन मुद्राओं आदि पर अमूल्य टिप्पणियाँ दी हैं। प्रमुख लेखों में, अल्लामा अब्दुल्लाह यूसुफ़अली का—महाकवि बाण की उज्जयिनी में, डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल का—श्री विशालाम् विशालम्, श्री सूर्यनारायण व्यास का ज्योतिर्विज्ञानाचार्य वराहमिहिर, श्री मदन मोहन नागर का—विक्रम संवत और इसका प्रवर्त्तक, डाक्टर देवदत्त भण्डारकर का—बेस नगर का गरुड़ स्तम्भ, श्री विजयसिंह पथिक का—विक्रम सम्वत और विक्रमादित्य, आदि लेख सुन्दर और महत्वपूर्ण हैं। कविताओं में स्व० गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की तीन कवितायें, श्री इलाचन्द्र जोशी, श्री अंचल, श्रीमती महादेवी वर्मा, कुमारी दिनेशनन्दिनी चोरड्या ( का गद्यगीत ) आदि मुख्य हैं। अङ्क में मूल्यवान चित्र भी हैं। विक्रम का यह विशेषाङ्क महत्वपूर्ण और संग्रहणीय है। ग्राहकों को यह अङ्क नियमित मूल्य में ही मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार

## हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी

इस अङ्क के शुरू में हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी का उद्देश्य और विवरण पत्र छपा है। 'विश्ववाणी' के पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे उसे ध्यानपूर्वक पढ़ें और गम्भीरता से उस पर मनन करें।

हम विश्ववाणी के ज़रिये पिछले चार बरस से भारत की जिस सांस्कृतिक अखण्डता का प्रतिपादन और प्रचार कर रहे हैं इस सोसायटी ने उन्हीं विचारों को सजीव और व्यावहारिक रूप देने के लिये जन्म लिया है।

जैसा कि सोसायटी के उद्देश्य पत्र में लिखा है "दुनिया की तारीख़, अपने समाज का तजरुबा और समझ, सब हमें यही बताते हैं कि हुकूमत की ताक़त का दारमदार लोगों के मेल मिलाप पर, समाज के संगठन पर, जीवन के बुनियादी उसूलों और असली नफ़े नुक़सान की एकता पर है। जहाँ लोगों के मक़सद एक होते हैं और उनके मन मिल जाते हैं, वहाँ उनके दिलों में एक सी उमंगों की लहरें उठती हैं। उनकी भुजाओं की रगें एक साथ फड़कती हैं। उनमें हिम्मत, हौसला और बल बढ़ता है। इसके ख़िलाफ़ जहाँ बुनियादी उसूलों पर लोगों की रायें जुदा होती हैं, जहाँ उनके विचारों में फ़र्क़ और जीवन के मक़सदों में विरोध होता है, वहाँ सारे समाज के बदन में लहू रुक रुक कर चलता है और समाज के रग पट्ठे ढीले पड़ जाते हैं, जिसकी वजह से लोगों के चाल चलन और इख़लाक में कमज़ोरी आ जाती है।... हिन्दुस्तान को बल की ज़रूरत है, पर हमें यह जान लेना चाहिये कि यह बल क़ौमी आत्मा की एकता में ही बास करता है। अगर हिन्दुस्तानी एक बार अपनी आत्मा की दुविधा को मिटा दें, अपने आपको पहचान लें तो हुकूमत की ताक़त बांदी की तरह उनके सामने हाथ बाँधे हुये खड़ी रहेगी। लेकिन आत्मा को पाने के लिये गहरी तपस्या की ज़रूरत है। इसके लिये अपने दिलों की जाँच करनी होगी, अपने दिमाग़ों को नियमों से बाँधना होगा।...

"आयें वे सब लोग जिनकी आँखें आजकल के झगड़ों से धुँधला नहीं गई हैं। आयें और मिलें, पगडण्डियों को छोड़ एक सीधे रास्ते पर चलें और आज़ादी के सूरज को अपनी पूरी आबताब के साथ उगता हुआ देखें। हमें यक़ीन है कि इसकी रोशनी में शक और शुबह के बादल छँट जायँगे, दुविधा और विरोध का कोहरा दूर हो जायगा और मेल और मोहब्बत का साफ़ आसमान हमारी आँखों की ज्योति को जगा देगा।...

"हमें ऐसे लोगों को साथ लेना है जिन्हें अपने देश की आने वाली भलाई का पूरा भरोसा है, जो देश के सवालों पर तंग नज़री के साथ जुदा-जुदा फ़िर्क़ों की भलाई के ख़याल से विचार नहीं करते, जो फ़िर्क़ों और सम्प्रदायों के बखेड़ों से घबराकर धीरज नहीं खो देते, जो कोशिश करते हैं कि हर तरीक़े से देश के रंग-बिरंगे रस्मों रिवाजों का एक दूसरे से मेल बैठाकर इकरंगी सभ्यता क़ायम करें। ऐसे भाइयों और बहनों को एक जत्थे में लाना है ताकि वे एक ऐसी सभा बनावें जिससे मेल और मुहब्बत का सँदेशा सारे देश में फैल सके।...

"काम नासमझी को दूर करना है, जहालत से लड़ना है, बीते ज़माने की उलझनों को सुलझाना है, एक दूसरे के साहित्यिक कारनामों, एक दूसरे की मज़हबी ख़ूबियों, एक दूसरे के चलन के ऊँचे भावों को एक दूसरे पर ज़ाहिर करना है। सच्चा प्रेम तभी पैदा होगा जब हमारे दिलों में एक दूसरे की इज़्ज़त होगी और एक दूसरे की इज़्ज़त के लिये एक दूसरे को भले ढङ्ग से जानने और समझने की ज़रूरत है।"

यह काम मेल मिलाप का है। हमें उस प्यार और मुहब्बत की जड़ सींचना है जिसकी बेल फैलकर हमारे सब देश भाइयों को अटूट रिश्तों में बाँध दे। काम कठिन है और इसके बहुत से रुख़ हैं। लेकिन असलीयत में काम एक ही है। इसके पूरा करने के लिये चाहिये कि वे सब लोग जो हिन्दुस्तान के कुल मज़हबों और गिरोहों के मेल में विश्वास रखते हैं, जो एक मिली जुली हिन्दुस्तानी कल्चर के हामी हैं, मिलें। इसी उद्देश्य से इस हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी का निर्माण हुआ है।

सोसायटी की गवर्निङ्ग बाडी में सभी धर्मों और विचारों के वे लोग हैं जो हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक अखण्डता और सम्पूर्णता में विश्वास रखते हैं। सोसायटी की जनरल बाडी के सभापति सर तेज बहादुर सप्रू और गवर्निङ्ग बाडी के सभापति पूज्य डाक्टर भगवान दास हैं। सोसायटी के मन्त्री 'विश्ववाणी' के संरक्षक और हिन्दू मुसलिम एकता के ज़बर्दस्त प्रचारक पण्डित सुन्दरलाल जी हैं। सोसायटी का दफ़्तर फ़िलहाल विश्ववाणी कार्यालय, १४२, साउथ मलाका, इलाहाबाद में ही है।

इस उद्देश्य पत्र के साथ मेम्बरी का ऐलान भी छपा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। 'विश्ववाणी' के पाठकों से हम इस सोसायटी के उद्देश्यों को पूरा करने में अमली मदद चाहते हैं। हम चाहते हैं वे अधिक से अधिक तादाद में इस सोसायटी के सदस्य बनें। यदि 'विश्ववाणी' के पाठकों ने इस काम में हमारा हाथ बटाया तो बहुत थोड़े समय में ही सोसायटी मज़बूत बुनियादों पर स्थायी रूप से क़ायम हो जायगी। 'विश्ववाणी' के पाठकों को प्रतिज्ञा करनी है कि वे अपने जीवन में सांस्कृतिक एकता का व्रत लेकर बिछुड़े हुये हिन्दू और मुसलमानों को एक जगह लायेंगे और इस तरह गुलामी की ज़ंजीरों में बँधे हुये अपने देश को आज़ादी के मार्ग में आगे बढ़ने में मदद देंगे। सोसायटी के सम्बन्ध में पत्र व्यवहार—मन्त्री, हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी, १४२, साउथ मलाका, इलाहाबाद के पते से किया जाय।

## डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का साठवाँ जन्म दिन

पिछले महीने देश भर में आदरणीय देश रत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी का साठवाँ जन्म दिवस मनाया गया। इस परम तपस्वी बन्दी के कर कमलों में हम भी अपना अर्घ्य चढ़ाते हैं। गुलाम देश को इस बात पर अभिमान होना चाहिये कि उसके पूज्य नेताओं के कई-कई जन्म दिन जेल के भीतर ही आते और जाते हैं।

## नई बुनियादी तालीम

पिछले १९ नवम्बर को सेवागाँव में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के शिक्षण-शिविर में शिक्षकों को उपदेश देते हुये गान्धी जी ने बताया कि और दूसरों की तरह उन्हें भी शिक्षा की मौजूदा प्रणाली से तसल्ली नहीं है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो हिन्दुस्तान के गांवों में रहने वाली जनता की ज़रूरतों के साथ जुड़ी हुई हो और वह बुनियादी दस्तकारी के माध्यम द्वारा ही दी जानी चाहिये। गान्धी जी ने कहा कि उन्हें खेती का अमली तजुर्बा नहीं है किन्तु उनका विश्वास है कि चरखा ग्रामीण जीवन के साथ बँधा हुआ है और इसीलिये उन्होंने चरखे को बच्चों की शिक्षा का माध्यम बनाये जाने पर ज़ोर दिया है।

नई तालीम के शिक्षकों को आगाह करते हुये उन्होंने कहा—"तुम्हीं इस काम के शुरू करने वाले होगे। अपने पिछले अनुभवों से न तुम्हें कोई मदद देने वाला होगा न रास्ता दिखाने वाला होगा। तुम्हें अपना रास्ता खुद ही टटोलना होगा। इसलिये तुम्हारा काम कुछ आसान काम नहीं है। फिर यह नई तालीम तुम्हें बड़ी बड़ी तनख़ाहें पाने में भी मदद न देगी किन्तु गाँवों में जाकर गाँव वालों की सेवा करना तुम्हारा विशेषाधिकार होगा। इसलिये तुम्हारी शिक्षा की योजना में बड़ी बड़ी इमारतों और क़ीमती सामानों की गुञ्जाइश नहीं है। मैं जिस तरह के स्कूलों की कल्पना करता हूँ उनके दरजे पेड़ों के नीचे खुली हुई जगह में लगने चाहियें। किन्तु यह शायद अभी न हो सके और आँधी, पानी और गरमी से बचने के लिये किसी साये की ज़रूरत पड़े। सच्ची शिक्षा बेहद सादगी की हालतों में ही दी जा सकती है।"

शिक्षकों को गान्धी जी ने यह भी बताया कि "तालीमी संघ की जिन इमारतों में आप इकट्ठा हुये हैं वे सब स्थानीय कारीगरों द्वारा स्थानीय चीज़ों से ही बनाई गई हैं। इस तरह स्थानीय जनता के साथ एक जीवित सम्पर्क क़ायम किया गया है। यह अपने आप में जनता की शिक्षा है और यही हमारे शिक्षा के काम की बुनियाद है। यदि लोगों ने नई तालीम के सिलसिले में सादगी के महत्व को समझ लिया तो आपका यहाँ तालीम पाना सफल हो गया। तब आप अपने काम की क़द्र करने लगेंगे।" आगे चलकर गान्धी जी ने बताया कि—

"काम असल में सफ़ाई का है। शिक्षा का पहला क़दम जिस्म और दिमाग़ की सफ़ाई है। झाड़ू और बाल्टी जिस तरह हमारे चारों ओर की सफ़ाई में काम आती है उसी तरह प्रार्थना हमारे दिमाग़ को पवित्र करती है। इसीलिये हम अपना काम प्रार्थना से शुरू करते हैं। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि प्रार्थना हिन्दुओं की है या मुसलमानों की, या पार्सियों की। सब का काम एक ही है, यानी दिल को पवित्र करना। परमेश्वर के अनेकों नाम हैं किन्तु मेरी राय में उसका सबसे सुन्दर और उपयुक्त नाम 'सत्य' है। इसलिये 'सत्य' हमारे जीवन के सब कामों में चाहे वे काम कितने ही छोटे क्यों न हों हमारा आधार रहे। हमारे खाने का हर कौर ईश्वर के नाम और उसकी सेवा से पवित्र हो। यदि हम उसकी सेवा के लिये अपने शरीर को निमित्त बनाकर भोजन करें तो उससे न केवल हमारे जिस्म और हमारे दिमाग़ स्वस्थ और साफ़ होंगे बल्कि उसका असर चारों ओर के वातावरण पर भी पड़ेगा हमें अपने पाखानों को भी उतना ही साफ़ रखना सीखना चाहिये जितने साफ़ कि हमारे रसोईघर होते हैं।"

आगे चलकर गान्धी जी ने कहा—

"जो बात एक व्यक्ति के लिये लागू होती है वही समाज के लिये भी लागू होती है। गाँव व्यक्तियों के समूह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का ही नाम है और दुनिया, जैसा कि मैं उसे देखता हूँ, एक बहुत बड़ा गांव है और मानव समाज एक परिवार है। ...इस विशाल जगत में प्राणी की हैसियत से मनुष्य का एक नगण्य स्थान है। शारीरिक दृष्टि से वह एक निकृष्ट प्राणी है। किन्तु ईश्वर ने उसे विवेक बुद्धि दी है जिससे वह भले बुरे में तमीज़ कर सकता है। यदि हम ईश्वर को जानने में इस विवेक का इस्तेमाल करें तो हम भलाई की ताक़त बन सकते हैं। इस शक्ति का दुरुपयोग करके हम बुराई के हथियार बनकर प्लेग और महामारी की तरह दुनिया को रक्तपात, लड़ाई-झगड़े, दुःख और कष्टों से भर सकते हैं। भलाई और बुराई की शक्तियों के बीच का संघर्ष निरन्तर और अनन्त है। भलाई की शक्ति के हथियार हैं—सत्य और अहिंसा जबकि बुराई की शक्ति के हथियार हैं—मिथ्याचार, हिंसा और पाशविक बल। जगत में ईश्वर के नाम से बढ़कर और कोई चीज़ शक्तिशाली नहीं है। यदि हम उसे अपने हृदय के सिंहासन पर बैठाकर हमेशा वहीं रखें तो हमारा भय बिलकुल छूट जाय और जीवन का महान कोष हमारे लिये खुल जाय।"

## अन्न-संकट और ब्लैक मार्केट

अपने तीन दिसम्बर के वक्तव्य में गान्धी जी ने कहा है—"लखूखा आदमियों की फ़ाक़ाकशी, चोर बाज़ार और जिसे मैं जुआ चोरी के अलावा और दूसरे नाम से नहीं पुकार सकता मुझे आज की तरह आगे भी चिंतित करते रहेंगे। मैं केवल अपने अनेक सहयोगियों से विनती कर सकता हूँ कि वे परिस्थिति को आसान बनाने में जो कुछ भी कर सकते हैं करें। मुझे पूरा विश्वास है कि जिन लोगों का इससे सम्बन्ध है वे इस बात का फ़ैसला करेंगे कि उनकी देखरेख और उनके ध्यान पर लखूखा अकाल पीड़ितों का पहला हक़ है और उन पर उनकी सबसे पहली ज़िम्मेवारी है।"

गान्धी जी ने बड़े दुख के साथ इन शब्दों को कहा है। आज देश में एक ओर हज़ारों धनी आदमी जुआ चोरी और मुनाफ़ाख़ोरी से बे हिसाब दौलत कमा रहे हैं और दूसरी ओर लाखों आदमी दाने दाने को तरस कर मर रहे हैं। फ़ाक़ेकशी ने घरों को और समाज को खोखला कर दिया है। जो लोग परिस्थिति को सुधारने में मदद दे सकते थे उन्हें सरकार ने अपने फ़ौलादी हाथों से जेल के सीख़चों के अन्दर बन्द कर रखा है और ग़रीबों का ख़ून चूस चूसकर देश के पूँजीपति अधिक से अधिक धनी बनते जा रहे हैं।

इस दयनीय परिस्थिति से देश के करोड़ों दरिद्र नारायणों को उबारने के लिये गान्धी जी ने देश के कार्यकर्त्ताओं से ज़ोरदार विनती की है। जो धनी लोग आज इस लूट खसोट और रक्त शोषण में हिस्सा ले रहे हैं देश की आत्मा उन्हें इसके लिये कभी माफ़ नहीं करेगी। कांग्रेस के हज़ारों कार्यकर्त्ता आज बाहर हैं। उनका पवित्र कर्तव्य है कि वे जनता का व्यापक संगठन बनाकर इस जुआचोरी को असम्भव कर दें।

## कांग्रेस किसान-मज़दूरों का राज चाहती है

६ दिसम्बर के एसोशियेटेड प्रेस के वक्तव्य के अनुसार प्रो० रंगा को जवाब देते हुये गान्धी जी ने लिखा है—"कांग्रेस किसान-मज़दूरों का प्रजा-राज चाहती है।" गान्धी जी के वक्तव्य के अनुसार कांग्रेस इसका ऐलान स्वराज मिलने के पहले ही करती है। वे आगे चलकर कहते हैं—"यदि हमारा स्वराज जनतंत्रात्मक होगा तो हर तरह की शक्ति जिसमें राजनैतिक शक्ति भी शामिल होगी किसानों के हाथों में होगी।"

किन्तु गान्धी जी की यह सदिच्छा तभी पूरी हो सकती है जब किसान जागरूक होकर अपने अन्दर अहिंसात्मक संघ शक्ति पैदा करें वरना जिस तरह आज उनका शोषण हो रहा है उसी तरह आगे भी उनका शोषण होता रहेगा। गान्धी जी की सदिच्छा को व्यावहारिक रूप देना सर्वथा किसानों के हाथों में है।

## विज्ञान मानवता के विनाश की वस्तु नहीं

पिछले ४ दिसम्बर को पटने में राजेन्द्र जयन्ती की सभा में बोलते हुये सर चन्द्रशेखर रमन् ने कहा—

"यह अफ़सोस की बात है कि विज्ञान के सफल प्रयोगों का मनुष्यों की हत्या करने और उनके दुःखों और उनके कष्टों को बढ़ाने के लिये उपयोग किया जा रहा है। विज्ञान का यह मुनासिब उपयोग नहीं है विज्ञान का असली उद्देश्य सृजन है न कि नाश। मानव ज्ञान को बढ़ाना ही वैज्ञानिकों का उद्देश्य है न कि मानव कष्टों को बढ़ाना।"

सर चन्द्रशेखर ने आगे चलकर कहा—"भारतवर्ष बुद्ध, महावीर और गान्धी का देश है और इन सबने दुनिया को अहिंसा का सन्देश दिया है। सन् १९३९ में स्टाकहोम में नोबुल पुरस्कार दिये जाने के अवसर पर मेरा जो स्वागत किया गया था उसमें मैंने भगवान बुद्ध



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अहिंसा के सन्देश और उनकी अहिंसात्मक शिक्षा की ही चर्चा की। आगे भी जब मुझे अधिक फ़ुरसत मिलेगी तो मैं बुद्ध की शिक्षा के प्रचार में अपना समय देकर अपने साथी वैज्ञानिकों को यह बताऊँगा कि विज्ञान का मानवता को कष्ट पहुँचाने के हेतु कभी भी उपयोग नहीं होना चाहिये।"

सर चन्द्रशेखर के इन विचारों से हम पूरी तरह सहमत हैं किन्तु जब तक समाज की पूँजीवादी व्यवस्था है तब तक साम्राज्यवाद लाज़मी है और जब तक साम्राज्यवादी नालसायें रहेंगी तब तक हिंसा का उपयोग ज़रूरी रहेगा। इसलिये अहिंसा का साम्राज्य क़ायम करने के लिये ज़रूरत समाज की परिपाटी बदलने की है और उसी पर गान्धी जी निरन्तर ज़ोर देते हैं।

## युद्ध की विभीषिका

पटना विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती के अवसर पर अभिभाषण देते हुये सर सर्वपल्लि राधाकृष्णन् ने युद्ध की विभीषिका का वर्णन करते हुये कहा—"युद्ध की क्रूरता और अन्याय के सम्बन्ध में हम सब एक राय के हैं। सातों आसमानों को पार कर उसका इतिहास ख़ून और आग में लिखा गया है और हमारी सभ्यता की लज्जा और अपमान का द्योतक है। युद्ध का अर्थ है मरते हुओं और ज़ख़्मियों की कराहें, शहरों की बमबाज़ी से घायल बच्चों की चीख़ें! दिन के बाद दिन, सप्ताह के बाद सप्ताह और वर्ष के बाद वर्ष बीत कर जब लड़ाई समाप्त होगी तो हज़ारों सैनिक और उड़ाके, अन्धे, लूले, लंगड़े, अपने कफ़ड़ों से ख़ून थूकते हुये और पागल ख़ाने की दीवारों पर अपना सर तोड़ते हुये दिखाई देंगे। मानवता की आत्मा, जो राज्यों की मशीनें चलाने वाले कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञों के हाथ में नहीं है, इस बात का ऐलान करती है कि युद्ध जुर्मों के इतिहास में सबमें भयङ्कर जुर्म है। यह एक गहरी धारणा है कि यदि हमें शान्ति स्थापित करनी है और यदि युद्ध को रोकना है तो हमें आधुनिक दुनिया के दिल और दिमाग़ में मौलिक परिवर्तन करना होगा।"

## इतिहास की नवीन आवृति

परिस्थिति का विश्लेषण करते हुये इसी व्याख्यान में सर सर्वपल्लि ने कहा—"अंधी शान, बड़प्पन के झूठे अभिमान और आर्थिक हानि के भय ने क़रीब क़रीब हर मुल्क की शासक जाति के दिमाग़ में घर कर लिया है। जीवन का ऐसा फलसफ़ा, जो विजय और अधिकार के मद को बढ़ाता है, जो युद्ध को धर्म बना देता है और सामूहिक हत्याओं को मज़हबी विश्वास बना देता है, जो डकैती को वरदी पहनाकर फिर उसे देशभक्ति कहता है और जो हत्याओं और क्रूरताओं को पवित्र और उदार कर्तव्य कहता है, इस समय उन्नति कर रहा है। उन लोगों के लिये तो क़ानून है जो दूसरों के मकान में आग लगा दें या दूसरों को क़त्ल कर दें किन्तु यदि हम शहर के शहर जला दें और हज़ारों आदमियों को क़त्ल कर डालें तो इस तरह के जुर्मों के लिये कोई सज़ा नहीं है। विचार जगत में इस झूठे फ़लसफ़े को हमें हराना है। इतिहास की आवृति में नात्सीवाद कोई आकस्मिक घटना नहीं है। यदि ऐसा होता तो हम नात्सीवाद के नष्ट होने पर शान्तिमय जीवन की आशा कर सकते थे। ...जब तक दुनिया में ये तरीक़े रहेंगे तब तक हिटलरी राज के नष्ट हो जाने पर भी हमें शान्ति नहीं मिलेगी। इसके लिये हमें आधुनिक दुर्घटना की असली वजह जाननी होगी कि लोग नफ़रत और नाश के नर्क में क्यों रह रहे हैं। विज्ञान द्वारा दिये हुये सुख के साधनों को यदि हमें अपने हाथ में लेना है तो हमें राजनैतिक व्याघातों, आर्थिक दुर्घटनाओं और मशीनी उद्योग धन्धों के बारे में गहराई से सोचना होगा जिसमें अति-उत्पादन और भुखमरी साथ साथ चल रही हैं।"

## भारतीय संस्कृति का ध्येय

इतिहास के इस नये पैटर्न के गढ़ने के सम्बन्ध में भारतीय संस्कृति का ज़िक्र करते हुये सर सर्वपल्लि ने कहा—"भारतीय संस्कृति जीवन को अपनी सम्पूर्णता में देखती है। वह धर्म, विज्ञान, राजनीति और व्यापार का समन्वय करती है। यदि हमें दुनिया को सुधारना है तो हमें नये स्टैण्डर्ड और नई उम्मीदों के साथ नये आदमी बनना होगा। मानव प्रतिष्ठा यह चाहती है कि सब मनुष्यों के साथ जड़ पदार्थों जैसा नहीं बल्कि मनुष्यों का सा व्यवहार हो। मानव प्रगति का इतिहास अधिकतर उन विशेष व्यक्तियों के प्रयत्नों का ब्योरा है जो ग़ुलामी और कष्टों में फँसी हुई ज़िन्दगी में सुधार करना चाहते थे। हिन्दुस्तान में हमने बहुत से सुधार किये हैं। इस समय करोड़ों दलित हृदयों में गान्धी जी ही आशा की ज्योति जगाये हुये हैं।...यदि विविध जातियों और विविध देशों के लोग युद्ध में सहयोग और भाई चारा बरत सकते हैं तो क्या हम वही सहयोग और भाई चारा शान्ति की स्थापना में नहीं बरत सकते?"

हर समझदार आदमी सर सर्वपल्लि की इन पुनीत भावनाओं का समर्थन करेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## चीन जनतन्त्र का हामी

जनरलिस्मो चियाङ्ग काइ-शेक ने 'न्यूज़ क्रानिकल' के सम्वाददाता को हाल में इण्टरव्यू देते हुये कहा—"जहाँ तक चीनी प्रजातन्त्र और ब्रिटिश प्रजातन्त्र के अन्तिम ध्येय का प्रश्न है दोनों में कोई ख़ास मौलिक फ़र्क़ नहीं है। फ़र्क़ केवल मात्रा का है। कुओमिङ्ग ताङ्ग पार्टी नक़ली मोरचा नहीं बनाना चाहती, न वह यही कहती है कि सच्चा जनतन्त्र राष्ट्र की सुरक्षा को ख़तरे में डाल देगा।"

चीनी सरकार और कम्यूनिस्टों के बीच के मतभेद पर प्रश्न करने पर जनरलिस्मो ने कहा—"चीनी सरकार कम्यूनिस्ट समस्या का हल खोजने का बड़े धीरज के साथ प्रयत्न कर रही है। इस सम्बन्ध में परिस्थिति में सुधार भी हुआ है। कुओमिङ्ग ताङ्ग पार्टी राष्ट्रीय सरकार के साथ किसी भी दल के सहयोग को नहीं रोकती। सचाई यह है कि वह तमाम दूसरी पार्टियों के सहयोग का स्वागत करती है।" मित्रराष्ट्रों की मदद के सम्बन्ध में जनरलिस्मो ने कहा कि ज़रूरत के अनुपात में वह मदद कुछ भी नहीं है। युद्ध समाप्त होने पर जापान में किस तरह का शासन होगा इस सम्बन्ध में जनरलिस्मो ने कहा कि अच्छा होगा यदि मित्रराष्ट्र इसके हल करने की ज़िम्मेवारी जापानी जनता के ऊपर ही छोड़ दें।

हमें विश्वास है जनरलिस्मो के इस बयान के बाद चीन और कुओमिङ्ग ताङ्ग पार्टी के सम्बन्ध में झूठ का जो प्रचार हो रहा था वह बन्द कर दिया जायगा। जिस तरह अखिल भारतीय कांग्रेस को फ़ासिस्ट कहकर बदनाम करने की कोशिश की गई उसी तरह कुओमिङ्ग ताङ्ग पार्टी को भी फ़ासिस्ट पार्टी कहा जा रहा है। चीन की अपनी समस्यायें हैं और अपनी कठिनाइयाँ हैं किन्तु जनतन्त्र उसका आदर्श है। ज़रूरत इस बात की है कि हम हिन्दुस्तान वाले हमदर्दी के साथ उसकी दिक़्क़तों को समझें और तब अपनी राय क़ायम करें। कम से कम हम अपने को झूठे साम्राज्यवादी प्रोपेगैण्डा का शिकार न बनावें।

## इथियोपिया क्या सचमुच मुक्त हो गया?

ब्रिटेन बेचारा हर ग़रीब मुल्क का बोझ ढोने को सदा तय्यार रहता है? भारत में और दूसरे उपनिवेशों में वह केवल परोपकार की भावना से ही है! अब बेचारे के सर पर इथियोपिया का भार आ पड़ा है! क्या करे बेचारा मजबूरन उठा रहा है!

"न्यूयार्क डेली मिरर" के मशहूर लेखक इ यू पीयर्सन ने लिखा है कि इथियोपिया के सम्राट हेल सिलासी ने अमरीकन सरकार से इस बात का विरोध किया है कि ब्रिटेन इथियोपिया के कुछ हिस्से पर ज़बर्दस्ती क़ब्ज़ा जमाये बैठा है। उस देश में ब्रिटेन की सेन्सरशिप इस क़दर सख़्त है कि वहां के सम्राट को बाहर वालों के सामने अपने विचारों को प्रकट करने का भी मौक़ा नहीं दिया जाता। ब्रिटिश राजनैतिक क्षेत्र इस मामले में ख़ामोश हैं, किन्तु 'मैनचेस्टर गार्जियन' लिखता है कि ब्रिटेन पर यह इलज़ाम लगाना कि उसने जान बूझकर ओगेडेन और हार पर क़ब्ज़ा कर रखा है बिलकुल बेहूदा है। ब्रिटेन वहाँ पर केवल 'शान्ति' क़ायम करने और सम्राट को 'मदद' देने के लिये ठहरा हुआ है!

ईश्वर ही बता सकता है कि यह शान्ति कब क़ायम होगी और यह मदद की गुज़ाइश कब तक रहेगी! पाठक मुसोलिनी का वह वक्तव्य न भूले होंगे जो उसने इथियोपिया पर क़ब्ज़ा करने के बाद दिया था और जिसमें उसने कहा था कि—"इटली की इथियोपिया विजय में कोई साम्राज्यवादी आकांक्षायें नहीं हैं। उसका उद्देश्य केवल 'शान्ति' की स्थापना और सभ्य बनने में इथियोपिया निवासियों को 'मदद' देना है।"

## विजय के पद-चिह्न

जैसे जैसे यूरोप के देश नात्सी अधिकार से मुक्त होते जा रहे हैं वैसे वैसे यह सवाल गम्भीर होता जा रहा है कि मुक्त यूरोप में ब्रिटेन की क्या नीति होगी। मिस्टर चर्चिल को राज घरानों से और दक्रियानूसी राजनीतिज्ञों से इस दरजे मोहब्बत है कि वे हर मुल्क में इन्ही भगोड़ों को फिर से ज्यों का त्यों स्थापित करना चाहते हैं और उन लोगों को ताक पर उठाकर रख देना चाहते हैं जिन्होंने बरसों नात्सी शासन का वीरतापूर्ण मुक़ाबला किया। तेहरान के घोषणा-पत्र में इस बात को साफ़ कर दिया गया था कि मुक्त देशों में किस प्रकार की सरकारें क़ायम होंगी, इसकी सम्पूर्ण ज़िम्मेवारी उन देशों की जनता पर ही रहेगी। किन्तु ज्यों ज्यों विजय हासिल होती जा रही है त्यों त्यों ब्रिटेन अपने दक्रियानूसी भोंडे दाँत दिखा रहा है। इटली, यूनान और बेल्जिअम इसकी ताज़ा मिसालें हैं। हमें अफ़सोस और लज्जा है कि ब्रिटिश सैनिकों के साथ साथ भारतीय सैनिक भी इन मुल्कों के देशभक्तों के शर्मनाक दमन के काम में इस्तेमाल किये जा रहे हैं!

कुछ सप्ताह पहले मिस्टर ईडेन ने इस बात का ऐलान किया था कि ब्रिटेन की सरकार इटली के वैदेशिक मन्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के पद पर काउण्ट स्फ़ोर्ज़ा को नियुक्त को इसलिये पसन्द नहीं करती चूँकि स्फ़ोर्ज़ा अपने प्रधान मन्त्री मिन्योर बोनोमी के प्रति वफ़ादार नहीं रहे। उधर बोनोमी का कहना है कि यह बात बिलकुल झूठ है और स्फ़ोर्ज़ा हमेशा—"मेरे सच्चे मददगार रहे हैं।" किन्तु बोनोमी के इस बयान से ईडेन को सन्तोष नहीं हुआ। दूसरी तरफ़ अमरीका के वैदेशिक मन्त्री स्टेटिनस का कहना है कि उनकी सरकार ने "स्फ़ोर्ज़ा की नियुक्ति का कोई विरोध नहीं किया।" इसका अर्थ यह है कि इटली के प्रति ब्रिटेन की नीति का अमरीका समर्थन नहीं करता।

यूनान में जो कुछ हो रहा है और वहाँ के देशभक्तों को कुचलने के लिये ब्रिटिश फ़ौजें जो कुछ कर रही हैं उसका इङ्गलैण्ड में ही ज़बर्दस्त प्रतिवाद हो रहा है। ब्रिटेन की सरकार इस बात पर ज़ोर दे रही है कि अनुदार पापान्द्रेओ ही प्रधान मन्त्री बना रहे और यूनान में शान्ति और सुशासन क़ायम करने के नाम पर ई० ए० एम० को चर्चिल की सरकार बुरी तरह कुचल देना चाह रही है। "लन्दन टाइम्स" के अनुसार "ई० ए० एम० में यूनान की सोशलिस्ट पार्टी, किसान पार्टी, जनवादी संघ, वामपन्थी लिबरल पार्टी और कम्यूनिस्ट पार्टी के अलावा अन्य सभी छोटी मोटी पार्टियां और दल सम्मिलित हैं।" इसी ई० ए० एम० संघ के सशस्त्र दल का नाम ई० एल० ए० एस० है। यूनान के मुक्त होने के बाद पापान्द्रेओ ने इस जनता के सशस्त्र दल एलास को तोड़ देने की माँग की और चर्चिल की सरकार ने उसका समर्थन किया। इसका साफ़ अर्थ यह है कि यूनान की जनता पर पुरानी मेटाक्सा जैसी तानाशाही क़ायम करदी जाय। परिस्थिति के गम्भीर होते ही पापान्द्रेओ उदार दल के नेता टेमिस्टोक्लीज़ सुपौली के हाथों प्रधान मन्त्री पद को सौंपने को तैयार हो गया। वामपन्थी और अति वामपन्थी दलों ने भी इस परिवर्तन का स्वागत किया किन्तु चर्चिल की सरकार ने पापान्द्रेओ को स्तीफ़ा देने से मना कर दिया और जनरल स्कोबी के अधीन फ़ौज भेजकर यूनान की जनता को पराजित करने का बीड़ा उठा लिया। किन्तु एलास लोग बहादुरी और जां फ़िसानी के साथ अङ्गरेज़ी फ़ौज का मुक़ाबला कर रहे हैं। सारी दुनिया और ख़ुद इङ्गलैण्ड की जनता चर्चिल के इस साम्राज्यवादी रुख़ की तीव्र निन्दा कर रही है।

बेल्जिअम पर जर्मन क़ब्ज़े के बाद वहाँ की सरकार इङ्गलिस्तान भाग गई थी किन्तु जनता ने अपना संगठन बना कर नात्सी शासकों का मुक़ाबला किया। जब मित्रराष्ट्रों की फ़ौजें बेल्जिअम में दाख़िल हुईं तो बेल्जिअम की गुरिल्ला और देश भक्त फ़ौजों ने अङ्गरेज़ी फ़ौजों को मदद दी और एण्टवर्प के बन्दरगाह और यातायात के दूसरे साधनों को नात्सी फ़ौजों द्वारा नष्ट होने से बचाया। बेल्जिअम विजय के बाद पेरलाट की सरकार लन्दन से लौटकर बेल्जिअम पर फिर क़ाबिज़ होगई और बेल्जिअम के जिन धनी पूँजीपतियों और कारख़ानेदारों ने नात्सियों की मदद की थी उन्हें बजाय सज़ा देने के उनका संरक्षण करने लगी। जनता ने जब इसका विरोध किया तो पेरलाट जनरल अर्सकिन की अङ्गरेज़ी फ़ौजों की मदद से जनता को ही कुचलने लगा। हालाकि अर्सकिन ने अपने वक्तव्य में यह स्वीकार किया है कि बेल्जिअम जनता की माँग उचित है, फिर भी वे पेरलाट की सरकार का क़ब्ज़ा बनाये रखना चाहते हैं। चर्चिल को यह विश्वास है कि लन्दन की ये आश्रित सरकारें भविष्य में यूरोपीय राजनैतिक शतरंज में अङ्गरेज़ी मोहरों का काम देंगी। इटली और यूनान में ब्रिटिश मदाख़लत का अर्थ केवल पूर्वी और उत्तरी भूमध्य सागर पर अपने क़ब्ज़े को सुरक्षित रखना ही मालूम हो रहा है।

पोलैण्ड और स्पेन की दोस्ती अब जाकर चर्चिल की सरकार ने तर्क की है। पोलैण्ड में सीमा के प्रश्न पर सोवियत् की जायज़ माँग का इतने बरसों बाद चर्चिल ने समर्थन किया है। स्पेन में फ्रेंको का बिस्तर बंध रहा है और म्योरा का दल शासन पर क़ाबिज़ हो रहा है। स्पेन के इस परिवर्तन ने पश्चिमी यूरोप में सोवियत् विरोधी गुट क़ायम करने की सम्भावना को समाप्त कर दिया है। जहाँ तक फ्रान्स का सम्बन्ध है सोवियत् के साथ देगाल की सन्धि ने फ्रान्स को एक ओर यूरोप की प्रथम श्रेणी की शक्ति बना दिया है और दूसरी ओर यूरोप को राजनीति में मोशियो स्तालिन के हाथों को मज़बूत कर दिया है।

यूरोप में मित्रराष्ट्रों की विजय के ये पदचिह्न स्पष्ट संकेत कर रहे हैं कि साम्राज्यवादी शिकंजा इस भयंकर तजुर्बे के बाद अब भी ढीला नहीं हुआ है और वह जनता को कुचलने के लिये पहले की तरह ही प्रस्तुत और उद्धत है। मित्रराष्ट्रों के इस आपसी संघर्ष से नात्सी फ़ायदा उठा रहे हैं और इसकी झलक पिछले सप्ताह में बेल्जिअम की सीमा पर बढ़ते हुये सफल नात्सी आक्रमण में दिखाई दे रही है। फ़ौजी दृष्टि से इस आक्रमण का चाहे अधिक महत्व न हो किन्तु नैतिक दृष्टि से यह मित्रराष्ट्रों की जन-विरोधी खोखली नीति का परिचय दे रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारतीय चीनी मिट्टियां

लेखक

पं० मनोहरलाल मिश्र एम० एस० सी०

[ सिरेमिक विभाग काशी विश्वविद्यालय ]

बेहद खोज और परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी गई है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने में बदल सकते हैं यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। चीनी मिट्टी और मिट्टी का व्यवसाय करने वालों के लिये पुस्तक बहुत उपयोगी है। २६० पृष्ठ की सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है। डाक खर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## विश्व-संघ की ओर

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल

और

श्री भगवानदास केला

पृथ्वी के सब राष्ट्रों को मिला कर उनका एक संघ किन उसूलों पर क़ायम किया जा सकता है इस गम्भीर विषय पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विश्वव्यापी शान्ति चाहने वाले सब लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। ३०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपया, डाकखर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## आरसी-रचनावली

| | | | |
|---|---|---|---|
| आरसी ( कविताएँ ) | ... | ... | ६) |
| संचयिता ( कविताएँ ) | ... | ... | ५) |
| कलापी ( कविताएँ ) | ... | ... | २॥) |
| पंचपल्लव ( कहानियाँ ) | ... | ... | २) |
| कालरात्रि ( कहानियाँ ) | ... | ... | २) |
| खोटा सिक्का ( कहानियाँ ) | ... | ... | १॥) |
| जीवन और यौवन ( कविताएँ ) | ... | | १॥) |
| चंदा मामा ( कविताएँ ) | ... | ... | १) |
| आज-कल ( कविताएँ ) | ... | ... | ।॥) |

**सभी पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्य**

संस्कृति, साहित्य और कला की सन्देशवाहक

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

## विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

सम्पादक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य के ऊपर खोजपूर्ण गम्भीर निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक-एक अंक संग्रहणीय—

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

**मैनेजर, विश्वभारती पत्रिका, हिन्दी भवन**

**पो० शान्तिनिकेतन (बंगाल)**


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




बरसों की प्रतीक्षा के बाद आख़िर छप गई

## गीता और क़ुरान

### लेखक : पण्डित सुन्दरलाल

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, क़ुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर क़ुरान की ४०० से ऊपर आयतों का लफ़्ज़ी तर्जुमा दिया गया है।

जो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्मों को समझना चाहें उनके लिये यह पुस्तक बहुत क़ीमती और बेमिसाल है।

२०० सफ़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल

**डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग**

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

पं० सुन्दरलाल जी की एक और नई पुस्तक

## हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

कागज़ की क़ानूनी दिक्क़तों से बसन्त में प्रकाशित होगी

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म भूमि फ़िलस्तीन की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के साथ साथ हिन्दुस्तान, चीन, ईरान इत्यादि दूसरे एशियाई देशों की उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक हालत के साथ हज़रत ईसा और उनके उसूलों का गहरा सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया गया है

मूल्य लगभग डेढ़ रुपया

अभी से अपनी प्रति रिज़र्व करा लीजिये

## "विश्ववाणी का एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है"—गान्धी जी

महात्मा गान्धी जी ने कहा था—"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे।"

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सर तेज बहादुर सप्रू, आचार्य क्षिति मोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० महादेव देसाई, क्यूरेटर-ब्रिटिश म्यूज़ियम (लन्दन), प्रो० तान युन-शान आदि सैकड़ों देशी और विदेशी सर्वमान्य नेताओं और विद्वानों ने गान्धी जी की उपरोक्त राय को ही दोहराया है।

**विश्ववाणी के पुराने अङ्कों में देश और विदेश के चोटी के विद्वानों के गम्भीर और महत्वपूर्ण लेख भरे पड़े हैं। विश्ववाणी के विशेषाङ्कों का तो कुछ पूछना ही नहीं।**

**क्या आप के पास विश्ववाणी के बहुमूल्य विशेषाङ्क हैं ?**

**क्या आप विश्ववाणी के महत्वपूर्ण पुराने अङ्क ख़रीदना चाहेंगे ?**

हमारे पास 'टैगोर अङ्क', 'संस्कृति अङ्क' दोनों भाग, 'बौद्ध संस्कृति अङ्क', 'चीन अङ्क', 'जैन संस्कृति अङ्क', और 'अकबर अङ्क' की थोड़ी सी प्रतियाँ बची हुई हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर अङ्कों की भी कुछ प्रतियाँ और सन् ४२ और ४३ की एक दर्जन पूरी फाइलें बची हुई हैं। जिन सज्जनों को चाहियें फ़ौरन आज ही पत्र लिखें। जिस क्रम से आर्डर आवेंगे उसी क्रम से ग्राहकों को प्रतियाँ दी जाँयगी।

**मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**


सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विश्ववाणी

संरक्षक : पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक : विश्वम्भरनाथ

वार्षिक मूल्य ६) ]

फरवरी १९४५

[ एक अङ्क का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब बम्बई, सेन्ट्रल, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काश्मीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत।

## विषय सूची

[ फ़रवरी १९४५ ]


१—नारी ( कविता ) श्री विद्यानन्द सन्यासी ... ५३
२—संस्कृति के नाम पर !—श्री निकोलस रोरिक ५४
३—हिन्दू धर्म के मुसलमान व्याख्याता—डाक्टर लतीफ़ दफ़्तरी ... ... ५६
४—बूढ़ा दरिया ( कविता )—श्री शादीराम जोशी एम० ए० ... ... ६०
५—सिंहल में बौद्ध धर्म—डाक्टर काशीनाथ अनन्त पाध्ये ... ... ६१
६—अनुरोध ( कविता )—श्री शील ... ६४
७—हज़रत ईसा के उपदेशों का सार—पण्डित सुन्दरलाल ... ... ६५
८—राज-पथ ( कविता )—श्री रामदयाल पाण्डेय ६८
९—कन्या कुमारी—श्री के० पी० पद्मनाभन् बी० ए० ६९
१०—देवगढ़ के जैन और विष्णु मन्दिर—प्रो० श्री रञ्जन ... ... ७२
११—अग्नि-दीक्षा ( कविता )—श्री देवेन्द्र तिवारी एम० एम० ... ... ६७
१२—प्रेम योगी सरमद—प्रो० मोहम्मद अहसान फ़ारूक़ी ... ... ७०
१३—मानवता के लिए सुलगती युग-युग की चिनगारी हूं मैं ( कविता )—श्री "कुमार हृदय" ... ... ८०
१४—भारतीय नृत्य कला और शान्ति निकेतन के प्रयोग—श्रीमती प्रतिमा ठाकुर ... ८१
१५—डा० सनयात सेन के जनता के तीन सिद्धान्त—( १ ) "राष्ट्रीयता"—प्रो० कृष्णकिंकर सिंह ८३
१६—बन्दी और बसन्त ( कविता )—श्री रामावतार यादव 'शक्र' ... ... ८८
१७—कांग्रेस किसान मज़दूरों का राज चाहती है—श्री शंकर गणपतराव कोकणे ... ८९
१८—बैंकिङ्ग का नया क़ानून—श्री रमेशचन्द्र गोयल बी० काम० ... ... ९१
१९—पुस्तक परिचय ... ... ९५
२०—सम्पादकीय विचार ... ... ९७
२१—सार्वजनिक सूचनार्थ ... ... १०४


## विश्ववाणी के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से विश्ववाणी नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्ववाणी' भेजते हैं। हम अपने रजिस्टर से विश्ववाणी भेजने की तारीख तक दर्ज करते हैं। किन्तु डाकख़ाने के भूत प्रेत में छापा मार कर कई प्रतियाँ ग़ायब कर देते हैं। हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस बात की शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण रूप से भेजी हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर सकने में असमर्थ हैं। विश्ववाणी हर महीने की पहली तारीख को प्रकाशित हो जाती है और तीन तारीख तक सभी ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन जब हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक नम्बर लिखना भूल जाते हैं। विश्ववाणी सम्बन्धी पत्र के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब के लिये तो जवाबी कार्ड या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत

नित्यानन्द चैटर्जी

जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# विश्ववाणी

वर्ष ५, भाग ६ ] फ़रवरी, १९४५ [ अङ्क २, पूरे अङ्क ५०


## नारी

श्री विद्यानन्द सन्यासी

विधि की अति सर्वोच्च कल्पना
की तुम प्रतिमा नारी ;
इस अनुपम देवोपहार का
मनुज सदा आभारी !

चम-चम स्वर्णिम आभूषण से
उसने तुम्हें सजाया ;
रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्रों का
सुन्दर अम्बार लगाया !

सिन्धु-गर्भ से मुक्ता-मणि
खानों से लाया सोना ;
रजनीगन्धा की सुवास से
छाया कोना कोना !

मृदु बासन्ती पुष्प-राशि
अञ्चल तेरा भर जाती ;
हिना पाद-पद्मों को तेरे
मिटती और सजाती !

लज्जा-सज्जा के रहस्यमय
आवर्तन में नारी ;
गोपनीय सीमा के भीतर
दुनिया तुमसे हारी !

हो प्रभु की कल्पना
किन्तु पुरुषों ने तुम्हें गढ़ा है ;
अपनी दुर्बल —
मनोभावनाओं से तुम्हें जड़ा है !

[ गुरुदेव की रचना पढ़कर ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# संस्कृति के नाम पर !

श्री निकोलस रोरिक

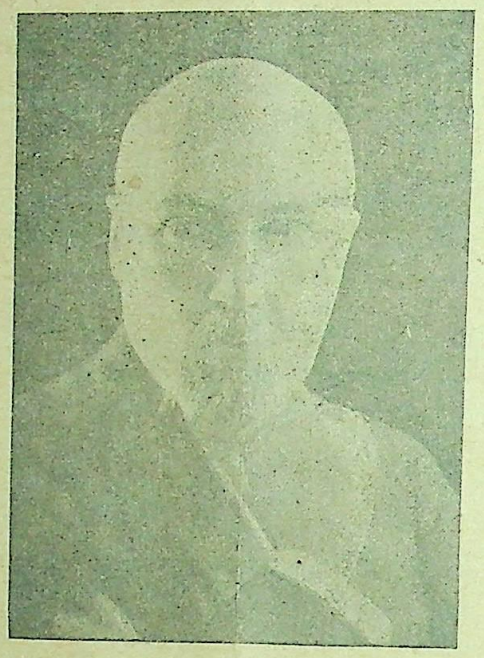

एक प्राचीन चीनी किम्वदन्ति है कि एक बार एक चीनी सम्राट ने अपनी अच्छी से अच्छी तसवीर खिंचवाने के लिये एक मशहूर कलाकार को अपने दरबार में बुलवा भेजा। कलाकार ने तसवीर खींचने के लिये बहुत बड़ा पुरस्कार माँगा, किन्तु सम्राट, जो कला का सँरक्षक था, कलाकार को हर तरह खुश करना चाहता था और उसने कलाकार को मुँहमाँगा पुरस्कार देने का वचन दिया। वह चाहता था कि कलाकार हर प्रकार से सन्तुष्ट होकर सुन्दर से सुन्दर मुखाकृति अङ्कित करे। कलाकार ने एक वर्ष के अन्दर चित्र पूरा कर देने का वचन दिया। उसके रहने के लिये एक अलग भवन में बहुत सुन्दर प्रबन्ध कर दिया गया। कलाकार अपने इस एकान्त गृह में बैठकर, जहाँ उसे हर प्रकार की सुविधायें थीं, मौन होकर चिन्तन और मनन करने में लग गया। दिन एक के बाद एक करके गुज़रने लगे और लोग हैरान होकर सोचने लगे कि आख़िर कलाकार कब चित्र बनाना शुरू करेगा! हर तरह के रङ्ग, तूलिकायें और चित्रपट प्रस्तुत थे, पर वह उनकी ओर इशारा तक न था। होते होते वर्ष समाप्त होने पर आ गया और बेचैन होकर लोगों ने उसे याद दिलाया कि करारनामे के अनुसार उसे एक वर्ष में चित्र तय्यार कर देना चाहिये। सुनकर उसने सिर्फ़ यही जवाब दिया—"मुझे परेशान न करो!" और जब निश्चित अवधि के पूरा होने में सिर्फ़ दो दिन रह गये तो उसने तूलिका उठाकर अपनी कुशल उंगलियों से चित्रपट पर एक अत्यन्त सुन्दर चित्र अङ्कित कर दिया। चित्र समाप्त होने पर उसने कहा—"चित्राङ्कन में अधिक समय नहीं लगता किन्तु प्रेरणा पाने के लिये साधना में अधिक समय लगता है।" मैं समझता हूँ मानवता को उन्नति के पथ पर चलते हुये बहुत अधिक समय बीत चुका है कि उसे प्रेरणा पाने के लिये साधना के महत्व को समझना चाहिये। साधना का अभाव मानवता के अन्दर असहिष्णुता पैदा करता है और सच्ची साधना से प्राप्त हुई प्रेरणा हमारे अन्दर लघुता और स्वार्थ का सृजन करती है। पिछली कई सदियों के इतिहास से हमें इस बात की शिक्षा लेनी चाहिये कि साधनाहीन प्रेरणा के अभाव ने मानवता को कितने कष्टकर अनुभवों से गुज़रने पर मजबूर किया है। हमें इस ज्ञानी चीनी कलाकार के उपदेश को गाँठ बाँध लेना चाहिये कि—"प्रेरणा पाने के लिये साधना में ही अधिक समय लगता है, जबकि उस प्रेरणा को शीघ्र ही मूर्त्त-रूप दिया जा सकता है।"

क्या यह सुखद संयोग की बात नहीं है कि जब मुझे तुम्हारा पत्र मिला तब मैं तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों—'चीनी ज्ञान', 'शासक कला का संरक्षक' और 'साधना-जनित-प्रेरणा'—का विश्लेषण कर रहा था? यदि इस समय मैंने यह लेख न लिखा होता तब भी मुझे इन तीनों महत्वपूर्ण मौलिक सिद्धान्तों की विवेचना करनी पड़ती। इन सिद्धान्तों की चर्चा करते हुये मैं "अग्नि-योग" का नीचे लिखा सिद्धान्त भी उद्धृत कर देना चाहता हूँ—"प्राचीन ज्ञान के अनुसार धैर्य ईश्वरीय देन है।" और तुमने निश्चय ही मेरी पुस्तक "अलताई-हिमालय" में चीनी महात्मा ताओ-ते-चिङ्ग का उपदेश पढ़ा होगा जिसमें उन्होंने सन्तों की विशेषता का वर्णन करते हुये यह कहा है—"जिसमें ताओ (सन्त) की विशेषता है वह एक निर्द्वन्द बालक की तरह है, जिसे ज़हरीले साँप नहीं काटेंगे; जिस पर जङ्गली दरिन्दे हमला नहीं करेंगे और जिस पर शिकारी गिद्ध अपना घात नहीं लगायेंगे!" ताओ के इस महान ज्ञान की छाया हमें प्राचीन चीनी कला पर भी दिखाई देती है। यह सदा सुवासित ज्ञान भविष्य के लिये कितनी चमत्कार पूर्ण मिसाल रखता है। यदि साधना के द्वारा हम अपने गुणों में पूर्ण हो गये तो हमारी यह पूर्णता हर अवसर पर प्रतिबिम्बित हो सकती है। पूर्व का समस्त ज्ञान कितना अमाध और कितना आश्चर्यजनक है। वह हृदय की पूर्णता और हृदय के भीतर की अनन्त ज्योति को प्रकट करता है।

यह देखकर कितनी शान्ति मिलती है कि इस हमारे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ज़माने में भी इस तरह की महती धारणाओं को पूर्वीय देशों में जीवित और शक्तिशाली रूप दिये जाने का निरन्तर प्रयत्न किया जाता है और तभी मन में यह आशा बँधती है कि गोधूलि-वेला का फीका रङ्ग भविष्य के स्वर्णिम-प्रभात में जगमगा उठेगा।

"अग्नि-योग" में एक जगह लिखा है—"हमारा हर आचरण और हमारा समूचा अस्तित्व भविष्य के लिये है।" भविष्य को गढ़ने में अपनी ज़िम्मेवारी को महसूस करना कितना सुखद और कितना सुन्दर है। संस्कृति के ख़ज़ाने की रक्षा करने में हमें सबसे पहले इस ज़िम्मेवारी का प्रदर्शन करना चाहिये। यह बहुत गुरुतर काम है किन्तु हमें इस बात पर ख़ुशी होनी चाहिये कि हमारे ऊपर एक महान और महत्वपूर्ण काम की ज़िम्मेवारी रखी गई है। इस महान पथ में अनेकों बाधायें हैं। किन्तु इन्हीं बाधाओं से हम शिक्षा ग्रहण करते हैं; इन्हीं बाधाओं से होकर हम उन्नति के शिखर पर चढ़ते हैं; और ये ही बाधायें हमारे अन्दर जागरूकता, साधनों की प्रचुरता और सृजनशील योग्यता पैदा करती हैं। छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी हर चीज़ में हमें बग़ैर थके इसी भावना का समर्थन करना चाहिये कि—सृजन करो, सृजन करो, सृजन करो! ईश्वर करे यह भावना जीवन की एक नियोजक भावना बन जाय। इस भावना को ध्यान में रखते हुये ही हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी नई पीढ़ी को उन्नति के पथ पर अग्रसर होने में मदद दें।

इस तरह अतीत के उत्तमोत्तम ख़ज़ाने इकट्ठा करके और वीरता, अध्यात्मिक सुन्दरता और उन्नति शीलता की नई प्रतिमा गढ़ के हम नई पीढ़ी को यह इङ्गित कर सकते हैं कि सच्चे ख़ज़ाने कहाँ हैं, महान वास्तविकता कहाँ है और मानवता की आत्मा और उसकी न्याय्यता कहाँ है?

सचमुच सौन्दर्य ही ब्रह्म है, कला ही ब्रह्म है और विज्ञान ही ब्रह्म है। हर प्रकार का गौरव, हर प्रकार की शान और हर प्रकार की महानता ही ब्रह्म है। यदि इस सिद्धान्त को हम अपने मनोभाव में उतार लें तो ज्ञान और सुन्दरता का एक नया पथ हमारे सामने खुल जायगा।

और हम अपने संघर्ष में अकेले नहीं हैं। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है—

"तुम नहीं देखते कि मैं सबसे पहले एक कवि हूँ। वह मनुष्य सच्चा धार्मिक हो ही नहीं सकता जिसमें कला के सौन्दर्य और कला की भव्यता को अनुभव करने की योग्यता न हो। कला की प्रशंसा न कर सकना घोर अज्ञान है।

"ज्ञान के प्रकाश से अपने को प्रकाशित करो।" (ओसिया १०-१२)

"मनुष्य को धरती और स्वर्ग का सहयोगी बनना है।"

"हर प्राणी एक दूसरे को प्राण-रस देता है।"

"आत्म-चेतना, मानव-भावना और साहस ये तीनों सार्वभौमिक गुण हैं किन्तु इनके व्यवहार के लिये सच्चाई चाहिये।"

"दुनिया में क्या सब बातों का इलाज नहीं है? क्या वह इलाज मानव-प्रेम नहीं है? तुम्हें दूसरों के साथ वह बात नहीं करनी चाहिये जो तुम ख़ुद नहीं चाहते कि तुम्हारे साथ की जाय।"

"यदि मनुष्य अपने ऊपर शासन करना सीख जाय तो क्या वह आसानी से सारी दुनिया पर शासन नहीं कर सकता?"

"यदि एक अज्ञानी अपने ज्ञान पर घमण्ड करे यदि एक महत्वहीन अपनी स्वतन्त्रता चाहे और यदि कोई व्यक्ति प्राचीन रिवाजों पर फिर से अमल करना चाहे तो इन लोगों को निश्चय ही मुसीबतों में पड़ना पड़ेगा।" (कन्फ़्यूशियस)।

"आज की दुनिया से क्या हमें सन्तोष है?"—नहीं हरगिज़ नहीं! दुनिया का ढाँचा ख़स्ता होकर चूर चूर हो रहा है। किन्तु जहाँ यात्री हैं, और जहाँ कुशल कारीगर हैं वहाँ ज्ञान का प्रकाश ही हमारी आशा है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपनी पुस्तक, What is Art इन शब्दों के साथ समाप्त करते हैं: "कला में हमारी अन्तरात्मा उस परम आत्मा को उत्तर देती है जो वास्तविकता की ज्योति हीन दुनिया से परे अनन्त सौन्दर्य की दुनिया में अपने आपको हमारे सामने प्रकट करता है।"

बिखरे हुये मित्रो! इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। ईश्वर करे मेरी यह आवाज़ तुम्हारे हृदय में पहुंच सके। आओ हम सुन्दरता के अदृश्य धागों से अपने आपको बाँधें।

अस्त्र शस्त्रों, लड़ाकू हवाई जहाज़ों और बम और तोपों की गड़गड़ाहट के बीच में ही आज हम निर्माण के अक्षय सिद्धान्तों पर विचार करें।

मैं संस्कृति के नाम पर हिमालय की चोटियों आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दू धर्म के मुसलमान व्याख्याता

डाक्टर लतीफ़ दफ़्तरी एम० ए०, डी० फ़िल० ( आक्सन )

पिछले लेख में हमने बताया था कि किस तरह हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आ रहे थे। एक बोली का माध्यम तय्यार हो जाने से वे और भी एक दूसरे के निकट आ गये। उनकी एक दूसरे की नज़दीकी जानकारी इस बात को ज़ाहिर करती है कि हिन्दू और मुसलमानों में काफ़ी घनिष्टता हो गई थी। उस ज़माने के अरब और ईरानी लेखकों के बयानों से इस घनिष्टता का साफ़ पता चलता है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मसूदी, जाहिज़, मक़दिसी, शहरस्तानी, इदरीसी आदि ने हिन्दुओं की धार्मिक और सांस्कृतिक प्रगति पर अपनी लिखी हुई जो कुछ सामग्री छोड़ी है वह हमारे इस अध्ययन का बहुत महत्वपूर्ण अङ्ग है। यद्यपि इन मुसलमान लेखकों की छान बीन का तर्ज़ आलोचनात्मक रहा है, फिर भी उनके दृष्टिकोण में एक उदारता और प्रशंसा का भाव पाया जाता है। उन्होंने देखे या सुने वाक़यात को बग़ैर तोड़े मरोड़े ज्यों का त्यों दर्ज कर दिया है। जहाँ तक मुमकिन हो सकता था उन्होंने हिन्दू दृष्टिकोण को अक़सर न्याय्य ठहराने का प्रयत्न किया है। जहाँ जहाँ हिन्दू और मुसलमानों के विचारों में उन्हें समानता दिखाई दी है उन्होंने तारीफ़ के साथ उनका काफ़ी प्रचार किया है। इन मुसलमान लेखकों ने इस सच्चाई की ओर बार बार हमारा ध्यान दिलाया है कि आमतौर पर हिन्दू एक ईश्वर में विश्वास करते हैं और वे इस बात पर भी विश्वास करते हैं कि मनुष्य को अपने अपने कर्मों के अनुसार दण्ड और इनाम मिलता है और मरने पर ईश्वर उन्हें स्वर्ग और नरक में भेजता है, इत्यादि।

हिन्दुस्तानियों के धार्मिक विचारों और रीति रिवाजों का इन अरब और ईरानी लेखकों ने जो अध्ययन किया उसकी कुछ मिसालें यहाँ उद्धृत करना काफ़ी दिलचस्प होगा। एक भारतीय सम्प्रदाय के सम्बन्ध में मसूदी लिखता है—

"इनका पन्थ 'समानिया' कहलाता है और ये उसी तरह पूजा करते हैं जिस तरह इसलाम से पहले क़ुरैश करते थे। ये एक ख़ास दिशा में मुँह करके पूजा करते हैं और इनमें से जो समझदार हैं उनका कहना है कि यह दिशा क़िबला की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ने के इसलामी तरीक़े से मिलता है। उनका यह भी दावा है कि वे केवल एक परमेश्वर की उपासना करते हैं। किन्तु इनमें से जो अज्ञान हैं वे इन मूर्तियों को ही ईश्वर समझ कर उनकी पूजा करते हैं।"[1]

अलजिली, ( जन्म सन् १३६५ ईसवी ), मूर्ति-पूजकों के धार्मिक विश्वास को समझाते हुये लिखता है—

"मूर्ति-पूजक यह समझ कर अल्लाह की उपासना करते हैं कि इस भौतिक दुनिया के ज़र्रे ज़र्रे में वह रौशन है किन्तु फिर भी उनसे अलग है। इन मूर्तियों में जो 'सचाई' है वही ईश्वर है और मूर्ति-पूजक केवल उसी 'सत्यभाव' की उपासना करते हैं। वे स्वयं सत्य के अनुकूल आचरण करते हैं क्योंकि उनका हृदय इस बात का गवाह है कि सदाचरण में ही उनका कल्याण है। उनका विश्वास है कि इस उपासना का पुरस्कार उन्हें दूसरे जन्म में मिलेगा··· इसलिये यदि मूर्ति पूजक इस बात को जानते भी कि अपनी मूर्ति-पूजा के कारण उन्हें कितनी यन्त्रणायें बर्दाश्त करनी पड़ेंगी तब भी वे मूर्तिपूजा करना न छोड़ते क्योंकि उसमें उन्हें अकथनीय अध्यात्मिक आनन्द मिलता है।"[2]

अल-जिली का यह विश्वास था कि ब्राह्मण इब्राहीम के अनुयायी हैं। वह लिखता है कि इन ब्राह्मणों के पास पाँच किताबें हैं। इनमें से अधिकांश को पाँचवीं किताब पढ़ना मना है। "इनके अन्दर यह मशहूर है कि जो लोग इस पाँचवीं किताब को पढ़ते हैं उनमें से अधिकांश मुसलमान हो जाते हैं।···ब्राह्मण परमात्मा के एकेश्वर रूप की उपासना करते हैं और इसके लिये उन्हें किसी पैग़म्बर या रसूल की ज़रूरत नहीं दिखाई देती।"[3]

"किताब अल-बिदवत-तारीख़" यानी सृष्टि के इतिहास का रचयिता मुताह्हर बिन ताहिर हिन्दुओं के धार्मिक विचारों और रीति-रिवाजों के बारे में बहुत सी बातें लिखता है। 'ब्राह्मण' शीर्षक के अन्तर्गत वह कहता है—

"तुम्हें यह जानना चाहिये कि हर क़ौम का एक मज़हब होता है और उनका अपना शिक्षा का क्रम और उनके अपने क़ायदे होते हैं। जिस बात से वे अपने

---

१—मुरूज अज़-ज़हब ( पैरिस ), जिल्द १, पृष्ठ २९८।

२—इनसान उल-कामिल, Quoted from Nicholson's "Studies in Islamic Mysticism," page 132.

3—Ibid, p. 133.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



को निर्भय समझें और जिस बात में अपना कल्याण देखें वही उनका धर्म है। उनकी तालीम उनके बड़प्पन का एक ख़ास सरचश्मा है। उनकी शिक्षा-दीक्षा और उनकी क़ानूनी संस्थाओं ने मिलकर उनके स्वभाव और उनके रीति रिवाजों में विशेषतायें पैदा की हैं।

"कुछ लोग कहते हैं कि भारत में ९०० प्रकार के विविध धार्मिक पन्थ हैं। इनमें ९९ ख़ास हैं कि जो ४२ सम्प्रदायों के अन्दर बँटे हुये हैं और ये ४२ सम्प्रदाय चार प्रकार के वर्णाश्रम के अन्दर समाहित हैं। ये चारों वर्णाश्रम भी दो प्रमुख वर्गों के अन्दर बँटे हुये हैं, यानी ब्राह्मण वर्ग और बौद्ध वर्ग। बौद्ध धर्मी नास्तिक हैं जबकि ब्राह्मण धर्मियों में से कुछ लोग ईश्वर के अस्तित्व और उसकी एकता पर विश्वास करते हैं, आत्मा के पुनर्जन्म के द्वारा सज़ा और जज़ा पर विश्वास करते हैं और कुछ लोग न ईश्वर में विश्वास करते हैं और न पैग़म्बरों में।···

"उनकी अपनी गणित, ज्योतिष, वैद्यक, संगीत, वादन-यन्त्र, नृत्य ···आदि की प्रणाली हैं। वे यह भी कहते हैं कि वे मन्त्रों द्वारा आश्चर्यजनक करिश्मे कर सकते हैं और मन्त्रों के बल से वर्षा और शीत को क़ाबू में कर सकते हैं···वे लोग मुसलमानों को अपवित्र म्लेच्छ समझते हैं। वे न तो मुसलमानों को छूते हैं और न उनकी छुई हुई किसी चीज़ को छूते हैं। गोमांस उनके लिये वर्जित है। गाय को भी वे अपनी माँ की तरह गोमाता समझते हैं और उतनी ही इज़्ज़त करते हैं। जो व्यक्ति गाय की हत्या करता है उसे मौत की सज़ा मिलती है।"[४]

यही लेखक कुछ प्रमुख देवताओं और उनकी पूजा का भी वर्णन करता है। इसने महादेव, काली, महाकाली और उनके पन्थों का विस्तार के साथ वर्णन किया है। जल और अग्नि के उपासकों का भी इसने ज़िक्र किया है। अध्याय को समाप्त करते हुये वह लिखता है—

"जो लोग पैग़म्बर और रोज़े महशर पर विश्वास नहीं करते वे भी अगले जन्म में कर्मों का भोग भोगने पर विश्वास करते हैं। मूर्ति-पूजा को न्याय्य ठहराते हुये वे जवाब देते हैं कि ईश्वर चूंकि नित्य है इसलिये मानव के विचार उस तक सीधे नहीं पहुँच पाते...।"[५]

"बावजूद मतभेदों के हिन्दुओं के दो वर्ग हैं—एक में बौद्ध हैं जो ईश्वर के सगुण या निर्गुण किसी रूप को नहीं मानते! दूसरे वर्ग में ब्राह्मण धर्मावलम्बी हैं। दोनों वर्ग अच्छे कर्मों के अच्छे फल पर विश्वास करते हैं; वे यह भी मानते हैं कि पाप कर्मों की सज़ा अनन्त काल तक के लिये नहीं होती और भुगतान के बाद पाप कट जाते हैं। बौद्धों के अनुसार पाप और पुण्य कर्मों का फल इसी जन्म में मिल जाता है। अपनी इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा हम उस फल को भोगते हैं। जो कुछ भी हम कर्म करते हैं वह मूर्त्तरूप होकर हमारे इसी शरीर के अन्दर व्याप्त रहता है। जब इस शरीर का साथ छूटता है तो पुनर्जन्म के साथ साथ वह कर्मफल भी हमारे साथ लगा रहता है...।"[६]

"किन्तु आमतौर पर हिन्दू ईश्वर को ही फल देने वाला मानते हैं। अपने कर्मों के फल को मेटने के लिये वे ज़बर्दस्त प्रायश्चित्त भी करते हैं। मिसाल के तौर पर वे जल में डूबकर आत्मघात कर लेते हैं और अपने आपको ज़िन्दा जला डालते हैं। उनका विश्वास है कि इस तरह वे ८४ लाख योनियों का भुगतान भुगतने के पहले ही मोक्षलाभ कर लेंगे। और बावजूद अपने अज्ञान और नास्तिकता के वे स्वर्ग के इनामों में विश्वास करते हैं।

"शैव मतवाले महादेव पर विश्वास करते हैं। उनका ख़याल है कि त्रिगुणरूप से ही समस्त सृष्टि की रचना हुई है और इन तीनों गुणों में से एक गुण महादेव हैं। महादेव ने अपने बन्धु को वध करके उसकी खाल सारी दुनिया में फैला दी, यह धरती वही खाल है, पहाड़ उसकी हड्डियाँ हैं, जल उसका रक्त है और हरियाली उसके बाल हैं...एक दूसरा सम्प्रदाय सृष्टि को अनन्त मानता है। उसका कहना है कि काल की सीमा के परे जब केवल ईश्वर था तब भी यह सृष्टि थी।"[७]

हिन्दुओं के धार्मिक विश्वासों पर रोशनी डालने वाले इस तरह के अगणित उद्धरण दिये जा सकते हैं। मैं केवल कुछ लेखकों के थोड़े से उद्धरण दूंगा। अल जाहिज़ (सन् ८६९ ईसवी), जो ऊपर के लेखक से कहीं अधिक पहले का और कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, हिन्दुओं और इस देश के सम्बन्ध में, अपने विचार प्रकट करते हुये लिखता है—

"हिन्दू गणित और ज्योतिष में बेहद निपुण हैं, उनकी अपनी ख़ास भारतीय लिपि है, वैद्यक में वे दक्ष हैं और

४—किताब अल-बिद'वत-तारीख़, जिल्द ४, पृष्ठ ९-१२।

५—उपर्युक्त, जिल्द २, पृष्ठ १९७।

६—उपर्युक्त, जिल्द १, पृष्ठ १८६।

७—उपर्युक्त, जिल्द १, पृष्ठ १४४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अपनी वैद्यक से वे कभी कभी चमत्कार कर दिखाते हैं, खासकर ऐसी दवाओं से जो भयानक रोगों में दी जाती हैं। उन्होंने अन्य कलाओं में सम्पूर्ण उन्नति की है, जैसे निर्माणकला, चित्रकला और मूर्तिकला। भारतवासियों ने ही शतरंज के खेल को ईजाद किया है···ये लोग बहुत अच्छी तलवारें बनाते हैं और सुन्दर व्यूह रचना करते हैं। ऐसे ऐसे मन्त्र जानते हैं जिनसे शरीर का ज़हर निकल जाता है और पीड़ा भाग जाती है। उनका सङ्गीत बड़ा मधुर होता है···उनकी नृत्यकला उन्नति के शिखर पर पहुंची हुई है···उनके यहाँ कई प्रकार की लिपियाँ हैं। उन्होंने कविता···दर्शनशास्त्र, साहित्य और सदाचार शास्त्र का संग्रह कर रखा है। भारत से ही हमें "कलैला दमना" ( पञ्च-तन्त्र ) नामक पुस्तक प्राप्त हुई है। इन लोगों में भले बुरे की पहचान और विवेकशक्ति है। ये लोग बहादुर होते हैं। कुछ बातों में तो ये चीनियों से भी आगे बढ़े हुये हैं। इन लोगों में बेहद सफ़ाई और पवित्रता पाई है। ये देखने में बहुत सुन्दर और इनके शरीर सुडौल होते हैं। इनके देश में सुगन्धित अगरु और लोभान होता है।···योग का उद्गम इन्हीं से हुआ है···।"[८]

एक दूसरा अरब इतिहासज्ञ याकूबी ( ८९५ ईसवी ) लिखता है—

"संसार की समस्त जातियों में हिन्दू सबमें अधिक विद्वान, बुद्धिमान और ज्ञानवान हैं। गणित ज्योतिष और दर्शन में उनसे बढ़कर होशियार कोई दूसरे देशवाले नहीं हैं। उनकी बौद्धिक शक्ति का सबमें अच्छा उदाहरण सिद्धान्तशास्त्र है। सिद्धान्त सम्बन्धी हिन्दू ग्रन्थों से यूनानियों और ईरानियों दोनों ने लाभ उठाया है। वैद्यक के सम्बन्ध में उनकी राय सर्वश्रेष्ठ है।···हिन्दुओं के पास शास्त्र, दर्शन और अन्य अनेक विषयों के इतने बड़े ग्रन्थ हैं कि उनकी चर्चा थोड़े में नहीं हो सकती।"[९]

अल इदरीसी ( सन् ११५४ ईसवी ) हिन्दुओं की प्रकृति के सम्बन्ध में लिखता है—

"हिन्दू स्वभाव से ही धर्मनिष्ठ और न्यायवान हैं। अपने व्यवहार में वे कभी न्याय का त्याग नहीं करते। उनकी ईमानदारी, उनकी विश्वासपात्रता और अपने राजा के प्रति उनकी वफ़ादारी सारी दुनिया में मशहूर है और उनके इन्हीं गुणों के कारण दुनिया भर के लोग आकर्षित होकर उनके देश में आते हैं।"[१०]

क़ाज़ी सईद ( १०७० ईसवी ) नामक प्रसिद्ध ईरानी दार्शनिक लिखता है—

"दुनिया की समस्त जातियाँ सदा से हिन्दुओं को ज्ञान और विज्ञान की संरक्षक समझती हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में जो कुछ उनका ज्ञान है उससे पता चलता है कि वे ईश्वर की एकता और उसकी पाकहस्ती पर विश्वास करते हैं। उनके अन्दर विविध सम्प्रदाय हैं—ब्राह्मण सम्प्रदाय, ग्रहों की पूजा करने वाले, प्रलय पर विश्वास करने वाले और सृष्टि की अनन्तता पर विश्वास करने वाले। ये लोग पैग़म्बरों में विश्वास नहीं करते। किसी जीव जन्तु की हिंसा करना या उसे चोट पहुँचाना इनके निकट पाप है।"[११]

सम्राट अकबर का प्रधान मन्त्री प्रसिद्ध दार्शनिक और विद्वान अबुल फ़ज़ल लिखता है—

इस मुल्क के बाशिन्दे ख़ुदा परस्त, दयावान, परोपकारी, हँसमुख, मिलनसार, अक़्लमन्द, मेहनती, न्यायवान, धैर्यवान, सहनशील, कार्यशील, नमक हलाल, दानी और वफ़ादार हैं। मुसीबतों के वक़्त उनकी असलीयत ज़ाहिर होती है। सब लोग ख़ुदा को एक मानते हैं और अगर येलोग पत्थर और लकड़ी की मूर्ति या किसी और वस्तु की पूजा करते हैं तो उसको अज्ञानी लोग मूर्तिपूजा समझते हैं। मगर मैंने बहुत से विद्वानों से मालूम किया है कि मूर्ति को बाज़ ईश्वरोपासकों ने अपनी दिलजमई का आधार बनाया है, ताकि उनका दिल दूसरी तरफ़ न भटके। वह एक ईश्वर की उपासना ज़रूरी समझते हैं। अपनी समस्त उपासना और व्यवहार में वे उसी एक ईश्वर से मदद माँगते हैं और उसी को सब में श्रेष्ठ समझते हैं।"[१२]

अल्लामा अलबेरूनी नामक एक मशहूर मुसलमान विद्वान और ज्योतिषी महमूद ग़ज़नवी के समय हिन्दुस्तान आया और कई बरस हिन्दुस्तान में रहकर उसने संस्कृत सीख कर हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। वह अपनी पुस्तक 'तारीख़े हिन्द' में लिखता है—

"हिन्दू मूर्ति पूजक कहे जाते हैं मगर मूर्तिपूजा आम

८—Rasa'il, p. 81.

९—तारीख़ इब्न याकूबी, जिल्द २, पृष्ठ १०४।

१०—तारीख़ अल-इदरीसी

११—तबाक़ात उल-उमाम, पृष्ठ ११-१५ और अरब और हिन्द के ताल्लुक़ात, पृष्ठ ११२।

१२—आईने अकबरी (Jarret), जिल्द ३, पृष्ठ ७-८।

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जनता में है, विद्वानों में मूर्तिपूजा नहीं है। विद्वान लोग एक ऐसे ईश्वर को मानते हैं, जो अनादि और अनन्त है; जो अन्तर्यामी है और पवित्र है, जो अपनी इच्छा से जो चाहता है करता है, जो सर्व शक्तिमान है, जो सर्वज्ञ है, जो जीवन देता है, जो हुकूमत करता है, जो अपनी बादशाही में निराला है, जिसकी किसी से तुलना नहीं हो सकती।"

आज़ाद बिलग्रामी अपनी पुस्तक "गिज़लान अल-हिन्द" में शेख़ अली रूमी के नीचे लिखे वाक्य उद्धृत करता है—

"जिस मुल्क में सबसे पहले किताबें लिखी गईं और जिस मुल्क में सब से पहले ज्ञान का चश्मा बहा वह हिन्दुस्तान है।···दुनिया के विद्वानों ने गणित के अधिकांश सिद्धान्त हिन्दुओं से ही सीखे···भारतवासियों की अपनी वक्तृत्व कला है···उनके ज्ञान विज्ञान इतने पुराने हैं और उनके दार्शनिक और विद्वान जिस युग में हुये हैं उस युग का अन्दाज़ा मानव कल्पना से परे है।"

मिरज़ा जान जाना मज़हर शाहिद लिखता है—

"भारतवासियों के प्राचीन ग्रन्थों से विदित होता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वरीय कृपा वेदों के अन्दर नाज़िल हुई। वेद चार हैं। इस ज़िन्दगी और इसके बाद की ज़िन्दगी को नियमित करने वाली, भूत और भविष्य का नियन्त्रण करने वाली जो शक्ति है उसका नाम ब्रह्म है और वही घट घट में व्याप्त है···।"

"हिन्दुओं के सभी सम्प्रदाय एक परम ब्रह्म परमेश्वर में विश्वास करते हैं। सृष्टि को अनादि नहीं मानते। प्रलय में विश्वास करते हैं। भले बुरे कर्मों के फल पर विश्वास करते हैं। आत्मा के पुनर्जन्म को मानते हैं। वे त्याग, तपस्या, धर्माचरण और हर प्रकार के ज्ञान विज्ञान में बहुत आगे हैं। वे हर प्रकार की कल्याणप्रद बातों में रत रहते हैं।[१३]

एक दूसरा विद्वान मुसलमान लेखक हिन्दू धर्म का विश्लेषण करते हुये लिखता है—

"हिन्दू किसी पुस्तक विशेष को मुक्ति का दाता नहीं समझता। बहुत सी पुस्तकें हैं जिनमें आदर्श की बातें हैं। लेकिन महज़ धर्म पुस्तकों से ही हिन्दू को सन्तोष नहीं होता। उसका मज़हब उसे सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति बनाता है। उसका मज़हब उसे सिखाता है कि वह इसकी परवाह न करे कि कौन हिन्दू है और कौन मुसलमान, कौन ईसाई है और कौन पारसी, कौन यहूदी है और कौन बौद्ध ? सब ईश्वर के बन्दे हैं। एक सच्चा हिन्दू किसी मज़हब को बुरा नहीं कहता और न अपने मज़हब को ही सबसे अच्छा बताता है। एक बार एक वैष्णव के दिल में एक शैव की तरफ़ नफ़रत के भाव पैदा हुये। जब वह विष्णु की पूजा में प्रवृत्त हुआ तो क्या देखता है कि विष्णु की मूर्ति का चेहरा दो हिस्सों में बँट गया है। एक तरफ़ विष्णु का चेहरा है और दूसरी तरफ़ शिव का। दोनों चेहरे उस धर्मान्ध भक्त की तरफ़ देखकर हँस रहे हैं। इस क़िस्से से यही नतीजा निकलता है कि मुक्ति के अनेकों रास्ते हैं और किसी रास्ते को बुरा न कहो।

"हिन्दू धर्म सत्य को सबसे महत्वपूर्ण और सबसे श्रेष्ठ गुण समझता है। उसके निकट सूर्य का प्रकाश, हवा का झोंका, वर्षा की बूंदें और ईश्वर सबके लिये है, और सबके हैं। हिन्दू अपने ईश्वर को 'जगन्नाथ' कहकर पुकारता है और उसे दुनिया भर की भलाई करनेवाला समझता है।

"पवित्र वेद हमें बताते हैं कि मनुष्य दो रूपों में विभक्त है। एक स्थूल रूप में जिससे देह का सञ्चालन होता है और दूसरे सूक्ष्म रूप में जिससे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर को मनुष्य स्वीकार या अस्वीकार करता है। हालाकि मनुष्य के ये दोनों रूप स्वतन्त्र हैं, लेकिन इनका सम्बन्ध उसी एक परमेश्वर की ज़ात से है जो सर्वव्यापी है। मनुष्य का स्थूल रूप ही अपने सूक्ष्म रूप के समस्त पातकों का प्रायश्चित्त झेलता है। वह जन्म जन्मान्तर तक अपने सूक्ष्म शरीर के कर्मों का फल भोगता रहता है। पशुओं और मनुष्य की ८४ लाख योनियों से उसे गुज़रना पड़ता है और जब तक उसके पापों का प्रायश्चित्त पूरा नहीं हो जाता, वह कष्ट उठाता रहता है। परमेश्वर ने मनुष्य को विवेक बुद्धि दी है जिससे वह भले बुरे की तमीज़ कर सके। इसी तरह उसने सुख-दुख, पाप-पुण्य और भिन्न-भिन्न गुणों में अन्तर बना दिया है जिससे मनुष्य का विवेक उसे ठीक मार्ग दिखा सके।

"वेदों के बाद हिन्दुओं का प्रमुख ग्रन्थ भागवत् है जिसके रचनाकार श्री वेद व्यास कहे जाते हैं। इसमें ईश्वर की तलाश, उसकी ज़ात और गुणों की विवेचना, सृष्टि की उत्पत्ति की खोज, अध्यात्म और कर्मकाण्ड, ऐतिहासिक घटना और मनुष्य और देवताओं से सम्बन्धित असंख्य पौराणिक कथायें बयान की गई हैं। वेदों की शिक्षा का सार ज्ञान है और पुराणों की शिक्षा का सार भक्ति है।"

१३—J. A. S. B., New Series, Vol. XIX., 1924, pp. 238-39.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बूढ़ा दरिया

श्री सादीराम जोशी एम० ए०

नाम का दरिया है, पर पानी नहीं है नाम को;
इस बुढ़ापे में लिये बैठा है सूखे चाम को!

अब कभी बरसात हो जाने पर आ जाता है जल;
और इस सूखे हुए पिंजर को नहलाता है जल!

रेत के कण-कण में हैं इतिहास की सदियां छुपीं,
इसकी सूखी धार में जल से भरी नदियां छुपीं!

कितनी नौकाएं यहां डूबी हुईं मिट्टी तले;
आख़िरी दम तक अड़े मल्लाह जिनके मनचले!

कितने इन्सानों को ले डूबी हैं कितनी किश्तियां,
कितने अरमानों को ले डूबी हैं कितनी सिसकियाँ!

कितने यौवन लीन यों पानी की तह में हो गए;
कितने बचपन औ' बुढ़ापे ओढ़ के जल सो गए!

इस जगह कितनी दफ़ा बस बस के उजड़ीं बस्तियाँ,
एक झटके में मिटीं इन्सान की खुरमस्तियाँ!

ऊँचे ऊँचे पेड़ बड़ औ' पीपलों के सरसरा;
गिर गए होंगे थपेड़े खा जलों के थरथरा!

बाढ़ के बढ़ते हुए पानी की लहरें देख कर,
इक तबाही सी मची होगी घरों को देख कर:

चल दिए होंगे निवासी गांव के आँसू भरे;
कह रहे होंगे "कोई क़िस्मत के आगे क्या करे!"

याद है तुझको जवानी के वे दिन बीते हुए?
चार दिन की ज़िन्दगानी के वे दिन बीते हुए?

क्या कभी बीते दिनों पर मन में पछताया नहीं?
फिर कभी जोबन की मस्ती का नशा छाया नहीं?

इस जगत में एकसे दिन कब किसी के हैं रहे?
सब के जी के आज तक अरमाँ अधूरे ही रहे!

* * *

आयगी बरसात फिर से तुझ में पानी आयगा;
हौसला रख, फिर से तू जल से उफन लहराएगा!

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सिंहल में बौद्ध-धर्म

डाक्टर काशीनाथ अनन्त पाध्ये एम० ए०, डी० लिट०

इतिहास की यह एक सर्वमान्य घटना है कि प्रियदर्शी सम्राट अशोक के पुत्र महीन्द्र और कन्या संघमित्रा ने दूसरी सदी ईसा पूर्व में सिंहल द्वीप में जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। ये लोग अपने साथ उस बोधि-वृक्ष की एक शाखा ले गये थे कि जिसके नीचे बैठकर भगवान बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। उस शाखा को अनुराधापुर में स्थापित किया गया था और जो एक वृक्ष में प्रस्फुटित होकर आज तक मौजूद है। जो लोग अनुराधापुर जाते हैं उन्हें यह पवित्र वृक्ष दिखाया जाता है।

सिंहल की अधिकांश आबादी बौद्ध धर्मावलम्बी है। महीन्द्र ने बौद्ध धर्म के जिस मौलिक हीनयान रूप का सिंहल में प्रचलन किया था वही रूप आज तक वहाँ ज्यों का त्यों चला जा रहा है। छठवीं सदी ईसवी के शुरू में महान वैदिक विद्वान बुद्धघोष ने बौद्ध धर्म स्वीकार करके सिंहल की यात्रा की थी। सिंहल में बुद्धघोष ने त्रिपिटक पर अपना भाष्य लिखा जो आज तक न केवल सिंहल में बल्कि समस्त संसार के विद्वानों में अत्यन्त प्रामाणिक समझा जाता है और आदर की दृष्टि से देखा जाता है। बुद्धघोष ने अपनी विद्वत्ता और अध्यात्मिक शक्ति के द्वारा सिंहल पर इतनी गहरी और इतनी अमिट छाप लगाई कि वे अब तक वहाँ बौद्ध धर्म के दूसरे संस्थापक माने जाते हैं। सिंहल में बौद्ध धर्म आज जो अपने मौलिक रूप में प्रचलित है उसका सम्पूर्ण श्रेय बुद्धघोष को ही है। सिंहल निवासियों के धार्मिक रीति रिवाजों पर और उनके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन पर बुद्धघोष का साफ़ असर दिखाई देता है।

## कोलम्बो

कोलम्बो सिंहल की राजधानी और वहाँ का प्रमुख बन्दरगाह है। सिंहली और तमिल दोनों वहाँ की बोली जाने वाली मुख्य भाषायें हैं। कल्याणी नदी शहर के बीच से बहती हुई हिन्द महासागर में गिरती है। कोलम्बो में चार प्रमुख बौद्ध संस्थायें हैं जहाँ बच्चों को धर्म शिक्षा दी जाती है—(१) विद्योदय, (२) विद्यालङ्कार, (३) अशोकरमय, और (४) कल्याणी-विहार। हर संस्था का एक महानायक (थेर) है जिसके अधीन बहुत से शिक्षक काम करते हैं। हमने यहाँ दो एक युवक भिक्खु देखे कि जिन्होंने बनारस में संस्कृत और पाली का अध्ययन किया था। कुछ विद्यार्थियों को हमने धारा प्रवाह संस्कृत बोलते हुये सुना। इन संस्थाओं में बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिये चीन, जापान, बर्मा, हिन्द-चीन, सियाम, पेनांग, बङ्गाल और अन्य सुदूर देशों से विद्यार्थी आते हैं। इनमें से अधिकांश विद्यार्थी अध्ययन समाप्त करने के बाद भिक्खु जीवन स्वीकार कर लेते हैं।

## विभीषण का मन्दिर

इन संस्थाओं में से एक संस्था के महानायक धर्मपाल श्री वजीरानान एक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान माने जाते हैं। एक दूसरे महानायक बहुत ऊँचे दरजे के भिक्खु समझे जाते हैं। हर संस्था में बौद्ध ग्रन्थों का एक एक पुस्तकालय भी है। इन विहारों में छोटे छोटे स्तूप भी बने हुये हैं। कल्याणी-विहार के आँगन में रावण के भाई विभीषण की दस फुट ऊँची एक मूर्ति बनी हुई है। विभीषण के मन्दिर को देखने के लिये महानायक की ख़ासतौर पर इजाज़त लेनी पड़ती है। सिंहल की जनता आमतौर से विभीषण को देशघातक समझती है।

## कल्याणी-विहार

कल्याणी-विहार कोलम्बो से छै मील दूर कल्याणी नदी के तट पर बना हुआ है। यह एक प्राचीन विहार है जहाँ पूर्णमाशी (पोया) के दिन यात्रियों के अगणित जत्थे फूल और फलों की भेंट चढ़ाने जाते हैं। पुरुष सफ़ेद कपड़े पहनते हैं और स्त्रियाँ रंग बिरंगी पोशाक पहनकर जाती हैं। इस विहार को सन् १३०१ ईसवी में फिर नये सिरे से बनवाया गया था। यहाँ एक छोटा सा किन्तु महत्वपूर्ण पुस्तकालय भी है। इस विहार के महानायक बहुत विद्वान व्यक्ति हैं। विभीषण का मन्दिर इसी विहार के अन्दर है।

## अशोकरमय-विहार

यह विहार बिल्कुल आधुनिक ढङ्ग का बना हुआ है। यहां भगवान बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ हैं जिनमें से कुछ पचास फुट ऊँची हैं। इसकी दीवालों पर और छत पर जो चित्र बने हुये हैं वे देखने योग्य हैं। इन चित्रों में आधुनिक चित्रकारों ने कला की उस प्राचीन परिपाटी को हूबहू उतारा है कि जो पुराने ज़माने में बौद्ध निर्माणकला और चित्रकला का गौरव थी। पूरे सिंहल में केवल यही एक ऐसा विहार है जहाँ निर्माणकला और चित्रकला में महायान कला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

सिंहल सम्बन्धी अपनी पुस्तक में सर इमर्सन टेनेण्ट



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंहल के बड़े बड़े तालाबों के सम्बन्ध में, लिखा है कि ये तालाब ( reservoirs ) सिंहल की प्राचीन महानता की याद दिलाते हैं। किसी भी प्राचीन जाति के अवशेषों या आधुनिक जातियों के निर्माणों में इन जलाशयों से बढ़कर विशाल चीज़ कोई दूसरी नहीं है। 'अमयवेव' नामक जलाशय सन् ५०३ ईसा पूर्व का बनवाया हुआ है। अनुराधापुर के प्रमुख जलाशयों में 'तिस्सवेव' और 'बस्सवाकुलभ' मुख्य हैं। पोलुन्नारुवा में 'मिन्नरियेव' और 'पराक्रम' नामक जलाशय मुख्य हैं।

## अनुराधापुर

अनुराधापुर सिंहल की प्राचीन राजधानी है। सन् ४३७ ईसा पूर्व से सन् ११०९ ईसवी तक, यानी पूरे १५०० वर्ष तक, अनुराधापुर सिंहल की राजधानी और सिंहल का सांस्कृतिक केन्द्र रहा। अपने गौरवपूर्ण दिनों में अनुराधापुर १६ मील के विस्तार में बसा हुआ था। यह स्वाभाविक था कि महीन्द्र और संघमित्रा ने सन् २८८ ईसा पूर्व में आकर अनुराधापुर में ही प्रसिद्ध बोधि-वृक्ष की स्थापना की। यह पेड़ अब तक अनुराधापुर में मौजूद है और बौद्ध यात्री श्रद्धापूर्वक इसे प्रणाम करते हैं। संसार भर के बौद्ध भक्तिभाव के साथ पेड़ के दर्शन करने आते हैं।

जिस जगह यह बोधि-वृक्ष लगा हुआ है उस जगह की सख्त हिफ़ाज़त की जाती है। जो पुरोहित इस वृक्ष की देखरेख करता है उसके अनुसार इस वृक्ष की तीन

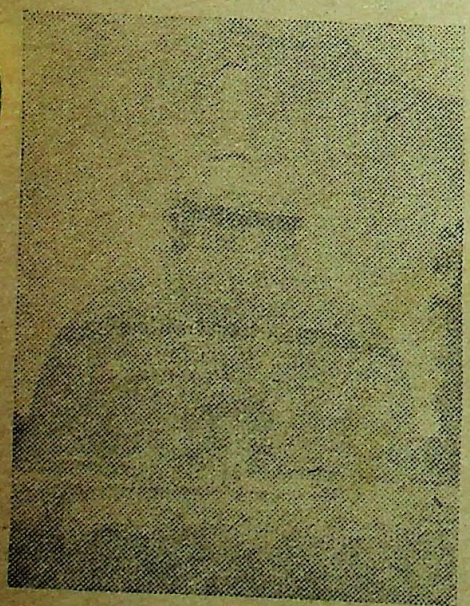

दागोबा

विशेषतायें हैं। पहली यह कि इसके तने का विस्तार एक निश्चित नाप से ज़्यादा नहीं बढ़ता। तभी इतना बूढ़ा होते हुये भी यह उम्र में कम दिखाई देता है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि जब कि अन्य वृक्षों के पत्ते दाहिनी ओर झुके रहते हैं इसके पत्ते बांई ओर को झुकते हैं। तीसरी विशेषता यह है कि इसके पत्तों के बीच का भाग सुनहले और हरे रंग का होता है। इस बोधि-वृक्ष के पत्ते तोड़ने की मनाही है।

सिंहल की प्राचीन निर्माण कला की सबमें प्रमुख चीज़ वहां के 'दागोबा' हैं। दागोबा संस्कृत शब्द 'धातु-गर्भण' का अपभ्रंश है। इन गोल स्तूपों के भीतर भगवान बुद्ध की प्राचीन यादगारें, जैसे उनके दांत, अस्थियां और बाल, सुरक्षित रखे हुये हैं। अनुराधापुर के मुख्य स्तूप ये हैं—(१) तूपराम, (२) रुआनवेलिया, (३) अभयगिरि, (४) जेतवनराम और (५) लङ्कारामय।

तूपराम सन् २४५ ईसा पूर्व में राजा तिस्स ने भगवान बुद्ध की हँसली को समाधिस्थ करके उसके ऊपर बनवाया था। शुरू में यह ४०५ फुट ऊँचा था। रुआनवेलिया स्तूप राजा दुतुगेनुबु ने सन् १३७ ईसा पूर्व में बनवाया था। पहले यह २७० फुट ऊँचा था किन्तु अब इसकी ऊँचाई केवल १५० फुट रह गई है। तलभाग में इसका व्यास पहले ३८० फुट था किन्तु अब इसकी परिधि कुल ४००—५०० फुट रह गई है।

अनुराधापुर में इन दागोबाओं के अतिरिक्त शाही इमारतों के अवशेष जैसे—स्नानागार, फ़ीलख़ाना और भगवान बुद्ध की मूर्तियां आदि भी हैं।

## पोलुन्नारुवा

सिंहल के नष्टप्राय स्थानों में यह स्थान यात्रियों के लिये सबमें अधिक दिलचस्प है। इस छोटे से लेख में यहाँ की सब चीज़ों का वर्णन कर सकना असम्भव है। यहाँ की सबमें प्रमुख चीज़ 'गल-विहार' है जहां एक ही ठोस पत्थर को काटकर, भगवान बुद्ध की एक बैठी हुई मूर्ति और भगवान के प्रिय शिष्य आनन्द की एक खड़ी हुई विशाल मूर्ति और एक भगवान बुद्ध की लेटी हुई ४६ फुट लम्बी मूर्ति बनाई गई हैं। लेटी हुई मूर्ति भगवान के परिनिर्वाण को ज़ाहिर करती है जबकि शोकमग्न आनन्द की आँखों से आँसू बह रहे हैं। ये मूर्तियाँ अत्यन्त भव्य किन्तु बिलकुल सादा हैं और एक महान धर्म की पवित्र यादगार हैं। गुफा के अन्दर भगवान बुद्ध की बैठी हुई मूर्ति है जहाँ दीवाल पर कुछ चित्रों के नमूने अब भी देखे जा सकते हैं। विशाल

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तोपिवेव तालाब भी यहीं है जो 'पराक्रम समुद्र' के नाम से विख्यात है।

यहां पर कई बड़े बड़े दागोबा भी हैं जिनमें 'किरविहार' प्रमुख है। विशाल बौद्ध मन्दिर जेतवनराम भी बहुत शानदार है। एक बड़े हाल में भगवान बुद्ध की एक बहुत बड़ी मूर्ति है जिसका चेहरा खण्डित है। मन्दिर के शिखर पर नक्काशी का सुन्दर काम है। हालांकि मन्दिर की छत नष्ट हो गई है फिर भी किसी ज़माने में यह मन्दिर नगर का आभूषण रहा होगा। दीवाल के बांई तरफ़ गणपति की एक सुन्दर मूर्ति खुदी हुई है। शायद हिन्दुओं को प्रसन्न करने के लिये यह मूर्ति बाद में गढ़ी गई है। बहरहाल यह मन्दिर सिंहल की निर्माणकला का एक सुन्दरतम नमूना है। यहाँ के अन्य अवशेषों में रङ्गकोट, पुलुम्बु-विहार, प्रासाद, राज-मलिङ्गल, पोटगल-विहार आदि मुख्य हैं। प्रासाद ( महल ) में एक सतमहला इमारत है। एक प्राचीन सभा-भवन का अवशेष भी यहाँ है। यहीं पर सम्राट पराक्रम बाहु के गुरु ऋषि अगस्त्य

ऋषि अगस्त्य

की भी एक विशाल मूर्ति है। अगस्त्य के हाथों में एक धर्म-ग्रन्थ है जिसे देखकर वे कुछ उपदेश दे रहे हैं। महल का रिज़र्वायर भी आश्चर्य जनक है।

## सिगिरिया ( सिंह-ग्रीव )

यह नाम सिंह की गर्दन का द्योतक है। इसका यह नाम इसलिये पड़ा कि इस क़िले में आने का रास्ता पत्थर के खुदे हुये एक सिंह के जबड़े के भीतर से है। पहले यह सिंह जराजीर्ण अवस्था में था पर अभी हाल में इसका जीर्णोद्धार हुआ है। एक ठोस चट्टान पर बना हुआ सिगरिया का यह क़िला संसार के आश्चर्यों में से एक है। इस क़िले को सन् ४७९ ईसवी में राजा कश्यप ने बाग़ी प्रजा से अपनी रक्षा के लिये बनवाया था। प्रजा ने यह बग़ावत इसलिये की थी कि कश्यप ने अपने धर्मात्मा और लोक-प्रिय पिता की हत्या कर डाली थी। जिस चट्टान पर यह क़िला है वह ज़मीन से ४०० फुट ऊँची है। प्राचीन शहर के भग्नावशेष इसके चारों ओर बिखरे पड़े हैं। इस ठोस चट्टान को काटकर सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। जगह जगह इस चट्टान में चित्र अङ्कित हैं। चट्टान को आधी ऊँचाई तै करने के बाद एक पालिश की हुई बहुत बड़ी दीवाल मिलती है। चट्टान में नींव काटकर इसे उठाया गया है। चित्रों की एक गैलरी इस दीवाल में बनी हुई है। यहीं भगवान बुद्ध की एक मूर्ति भी पत्थर

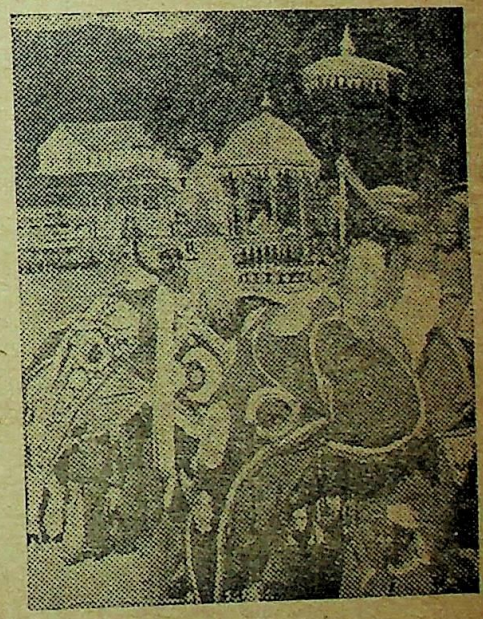

पवित्र दांतों का जुलूस

को ही काटकर बनाई गई है और पत्थर काटकर ही बहुत बड़ा नाग बनाया गया है जिसके फन भगवान के ऊपर छाया किये हुये हैं। इस बाग के फनों में कई चित्र अङ्कित हैं। वर्षा और धूप को सहकर भी चित्रों का रङ्ग अभी ज्यों का त्यों है। यहाँ पुराने म अवशेष अब तक देखे जा सकते हैं। चित्रकला निर्माणकला का यह अद्भुत उदाहरण दर्शक को इसके बनाने वाले महान कलाकारों के प्रति प्रशंस आश्चर्य से भर देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## दम्बुल्ला

११११८ फुट ऊँची सीधी खड़ी हुई इस दम्बुल्लाकी चट्टान को काटकर इसमें पाँच गुफ़ा मन्दिर बनाये गये हैं। इन गुफ़ाओं तक जाने के लिये चट्टान में ढाल बनाया गया है। इनमें से एक गुफ़ा बहुत बड़ी है जिसके भीतर भगवान बुद्ध की ४७ फुट लम्बी मूर्ति है। इस मूर्ति को एक ही ठोस पत्थर काटकर बनाया गया है। इसी गुफ़ा में भगवान बुद्ध की एक दूसरी मूर्ति भी है। इस गुफ़ा की दीवालों में भी कई चित्र अङ्कित हैं। इन चित्रों के रङ्ग अब तक ज्यों के त्यों बने हुये हैं। इसी गुफ़ा में राम और लक्ष्मण की भी मूर्तियाँ हैं किन्तु ये आधुनिक मालूम होती हैं। ये गुफ़ायें अजन्ता की गुफ़ाओं की याद दिलाती हैं। इनके चित्र भी अजन्ता के चित्रों से मिलते जुलते हैं। ये चित्र सिंहल के राजा वलगमबाहु के शासनकाल के हैं जिसने ई॰ पू॰ १०४ ईसापूर्व से ७६ ईसा पूर्व तक राज किया। अजन्ता की गुफ़ायें इसके बाद की मालूम होती हैं। यह सही है कि अजन्ता की गुफ़ाओं की निर्माणकला इन गुफ़ाओं से कहीं अधिक ऊँचे दरजे की है।

## कैण्डी

कैण्डी बौद्ध दुनिया का अत्यन्त महत्वपूर्ण तीर्थ स्थान है। सोलहवीं सदी ईसवी में कैण्डी सिंहल राजाओं की राजधानी था। मन्दिर और झील यहाँ की ख़ास चीज़ें हैं। यहाँ के 'दालदा मलिगावा' या 'पवित्र दाँत के मन्दिर' में चिता में से निकाला हुआ भगवान बुद्ध का एक पवित्र दाँत रखा हुआ है। मन्दिर की इमारत तेरहवीं सदी ईसवी में बनी है, हालाकि दाँत यहाँ ४५० ईसवी में ही लाया गया था। कैण्डी के अन्तिम राजा ने

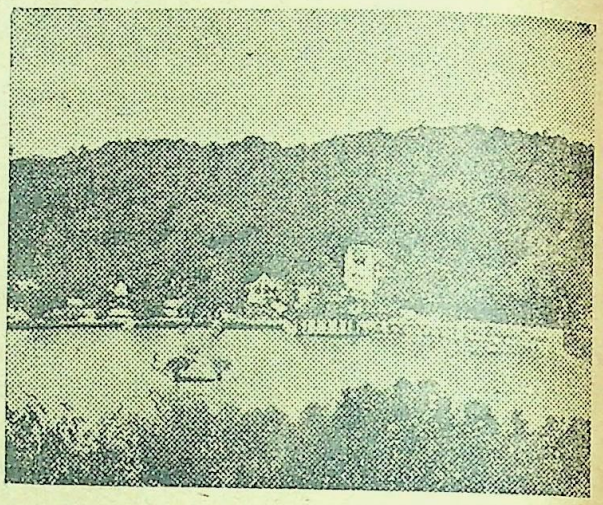

दालदा-मलिगावा

मन्दिर में एक पुस्तकालय स्थापित किया था जहाँ ताड़पत्रों पर लिखे हुये अनेक महत्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षित हैं।

भगवान बुद्ध के दाँत को बड़े यत्नपूर्वक एक सोने की कास्केट में रखा गया है और साल में दो बार यात्रियों को इसका दर्शन कराया जाता है। एक बार अगस्त के 'परिहार उत्सव' के समय और दूसरी बार वैशाखी-पूर्णिमा के दिन। इस कास्केट की कुञ्जी सीलोन के गवर्नर के पास रहती है। कैण्डी का मन्दिर गो उतना शानदार नहीं है फिर भी मन्दिर के साथ का स्तूप देखने में काफ़ी प्रभावोत्पादक है। कुछ बरस पहले बर्मियों ने अपने चन्दे से यहाँ एक और बड़ी इमारत बनवाई है।

# अनुरोध

श्री शील

उही पथ की कठिनता पर न ध्रुव विश्वास खोना!
पयों की सम्पदा को सिन्धु कब पहचान पाया?
रें खाते हुये को कब हिमालय ने उठाया?
सका कब भूमि-नभ के बीच का असमान अन्तर?
रों में ज्वार कब, कब कूप में आया बवण्डर?
य के हित लक्ष्य बनना पर न ध्रुव-विश्वास खोना!

उ चातक की लगी है प्यास है मरु की बुझानी;
रों को खोदकर ही है धरा उर्वर बनानी;
सबल हाथों में समय की डोर ले चलना यशस्वी;
दीर्घ जीवन के लिये है माँगतो बलिदान पृथ्वी!
संकटों से होड़ लेना पर न ध्रुव-विश्वास खोना!

आग-पानी के खिलाड़ी बन रहा इतिहास तेरा,
ज्योति से होकर तिरोहित भागता जाता अँधेरा;
सजग प्रहरी जागरण के मुक्ति का संगीत गाते;
मृत्यु-जीवन के विधाता हैं नई दुनिया बसाते!
लो विजय तूणीर गूँजा अब न ध्रुव-विश्वास खोना!

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हज़रत ईसा के उपदेशों का सार

पण्डित सुन्दरलाल

महात्मा ईसा के उपदेशों का सबसे सुन्दर सार सग्रह उनके सबसे प्रसिद्ध "पहाड़ी पर के उपदेश" (Sermon on the mount) में मौजूद है। संसार के धार्मिक साहित्य में यह 'उपदेश' बड़ा ऊँचा स्थान रखता है। उसके कुछ अंश ये हैं—

धन्य हैं वे जो दरिद्र हैं, स्वर्ग का राज्य उन्हीं के लिये है।

धन्य हैं वे जो शोक में डूबे हैं, उनकी अवश्य तसल्ली की जावेगी।

धन्य हैं वे जो दीन हैं, यह पृथ्वी उन्हीं को विरसे में मिलेगी।

धन्य हैं वे जो नेकी करने के लिये भूख और प्यास सहते हैं, उन्हें अवश्य तृप्त किया जावेगा।

धन्य हैं वे जो दयावान हैं, उनके साथ भी दया की जावेगी।

धन्य हैं वे जिनका हृदय शुद्ध है, वे परमात्मा के दर्शन लाभ करेंगे।

धन्य हैं वे जो मनुष्यों में सुलह कराते हैं, वे परमात्मा के ख़ास बच्चे गिने जावेंगे।

धन्य हैं वे जिन्हें नेकी करने के अपराध में यातनाएं दी जाती हैं, स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।

मत समझो कि मैं प्राचीन धर्म को या प्राचीन नबियों की आज्ञाओं को नष्ट करने के लिये आया हूँ। उन्हें नष्ट करने के लिये नहीं बल्कि मैं उनकी कमी को पूरा करने के लिये आया हूँ।

× × ×

तुमने सुना है प्राचीन धर्म की आज्ञा है 'किसी के प्राण न लो और जो किसी के प्राण हरेगा उसे परमात्मा दण्ड देंगे।'

किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ जो कोई भी अपने किसी भाई पर [ बिना कारण ] कोप करता है उसे परमात्मा की ओर से दण्ड भोगना होगा और जो कोई अपने किसी भाई को कोई हलके से हलका भी अपशब्द कहेगा उसे जहन्न (नरक) में पड़ना पड़ेगा।

इसलिये अगर तुम पूजा का सामान लेकर मन्दिर में जा रहे हो और तुम्हें याद आ जावे कि तुम्हारे किसी भाई को तुमसे कुछ भी दुख पहुँचा है तो उस सामान को वहीं छोड़कर लौट जाओ, पहले जाकर अपने भाई से सुलह करो और फिर आकर मन्दिर में पूजा करो।

× × ×

तुमने सुना है प्राचीन धर्म की आज्ञा है 'व्यभिचार न करो'।

किन्तु मैं तुम से कहता हूँ कि जो कोई किसी स्त्री को और बुरी निगाह से देखता है वह अपने दिल में व्यभिचार के पाप का दोषी हो चुका।

अगर तुम्हारी दाहिनी आँख पाप कर बैठे तो उसे निकाल कर फेंक दो क्योंकि तुम्हारे लिये ज़्यादा अच्छा है कि तुम्हारा एक अंग नष्ट हो जाय, बजाय इसके कि तुम्हारा सारा शरीर नरक में फेंका जावे।

और अगर तुम्हारा दाहिना हाथ पाप कर बैठे तो उसे काट कर फेंक दो क्योंकि ज़्यादा अच्छा है कि तुम्हारा एक अंग नष्ट हो जाय बजाय इसके कि तुम्हारा सारा शरीर नरक में फेंका जावे।

तुमने सुना है प्राचीन ग्रन्थों में कहा गया है कि 'झूठी क़सम न खाना और ईश्वर को साक्षी देकर प्रतिज्ञा करो उसे पूरा करना।'

किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कभी किसी तरह की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


क़सम न खाओ। न आसमान की क़सम खाओ और न ज़मीन की, क्योंकि आसमान परमात्मा का सिंहासन है और ज़मीन उसके पैरों की चौकी है।

न यरुसलम की क़सम खाओ, क्योंकि वह सबके महान बादशाह परमात्मा का नगर है।

न कभी अपने सर की क़सम खाओ क्योंकि तुम एक भी बाल स्याह या सफ़ेद नहीं बना सकते।

किन्तु जो कुछ कहो सिर्फ़ 'हाँ' या 'नहीं', इससे ज़्यादा शब्द जो भी दूसरों को विश्वास दिलाने के लिये तुम्हारे मुँह से निकलेंगे वे भीतर के किसी पाप के कारण ही निकलेंगे।

तुमने सुना है प्राचीन आज्ञा है कि 'जो तुम्हारी आँख निकाल ले उसके बदले में तुम उसकी आंख निकाल लो और दाँत के बदले में दांत' ( यानी जितनी हानि उसने तुम्हें पहुँचाई है उससे ज़्यादा बदला न लो )।

किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम दूसरे की बुराई का विरोध ही न करो ( Resist not evil )। बल्कि जो कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे तुम दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो।

और यदि कोई तुम्हारा कुरता लेने का दावा करे तुम अपना कोट भी उसे दे दो।

और जो कोई एक मील तुम्हें ज़बरदस्ती ले जाना चाहे तुम दो मील उसके साथ चले जाओ।

जो तुमसे मांगे उसे दो और जो तुमसे उधार लेना चाहे उससे मुँह मत फेरो और न दी हुई चीज़ वापिस मांगो और न इसकी आशा करो।

प्राचीन ग्रन्थों में कहा गया है 'अपने पड़ोसी के साथ प्रेम करो और अपने शत्रु से घृणा करो।'

किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ अपने शत्रुओं के साथ प्रेम करो, जो तुम्हें शाप दें तुम उन्हें आशिर्वाद दो, जो तुमसे घृणा करें तुम उनके साथ नेकी करो, और जो तुमसे द्वेष करें और तुम्हें यातनाएँ पहुँचाएँ तुम उनकी भलाई के लिये ईश्वर से प्रार्थना करो।

ताकि तुम अपने उस पिता परमात्मा के बच्चे कहला सको जो स्वर्ग में है, क्योंकि वह अपने सूर्य की रोशनी बुरे और भले दोनों तरह के लोगों पर एक समान भेजता है, और न्यायकारी और अन्यायी दोनों के लिये एक समान पानी बरसाता है। तुम उसी तरह पूर्ण (Perfect) बनो जिस तरह तुम्हारा स्वर्गीय पिता ( परमात्मा ) पूर्ण है।

तुम जो कुछ ख़ैरात करो वह लोगों के सामने उन्हें दिखाने के लिये न करो।

जब कभी ख़ैरात करो तो तुम्हारा दाहिना हाथ जो कुछ दे उसका पता तुम्हारे बांए हाथ को भी न होने पावे।

जो कुछ ख़ैरात करो गुप्त रीति से करो और तुम्हारा पिता जो गुप्त चीज़ों को देखता है तुम्हें उसका खुला फल देगा।

तुम जब ईश्वर से कुछ प्रार्थना करो तो मन्दिरों में और गलियों के नुक्कड़ों पर खड़े होकर प्रार्थना मत करो बल्कि अपने घर के अन्दर जाकर दरवाज़ा बन्द करके उस पिता से प्रार्थना करो जो अन्तस्तल के अन्तस्तल में मौजूद है।

जब प्रार्थना करो तो रहे हुए जुमले ( मंत्र या आयत ) मत दोहराओ। मत समझो कि तुम जितना अधिक बोलोगे उतना ही ईश्वर अधिक सुनेगा।

ऐसा मत करो, तुम्हारे कहने से भी पहले तुम्हारा पिता जानता है कि तुम्हें किन चीज़ों की ज़रूरत है।

तुम आमतौर पर इस तरह के शब्दों में प्रार्थना करो—

ऐ हमारे स्वर्ग के पिता ! तेरा नाम महान हो।

तेरा राज्य स्थापित हो, जिस तरह स्वर्ग में उसी तरह पृथ्वी पर तेरी इच्छा पूर्ण हो।

हमारी आज की रोज़ी हमें प्रदान कर।

हमारे अपराधों को क्षमा कर, हमने अपनी ओर अपराध करने वालों को क्षमा कर दिया है।

हमें प्रलोभनों में मत डाल, हमें बुराई से बचा। असली राज्य सदा के लिये तेरा ही है। तेरा ही बल है, तेरी ही शान है। आमीन ! ( शान्ति )!

यदि तुम लोगों के क़ुसूर माफ़ कर दोगे तो तुम्हारा स्वर्ग का पिता भी तुम्हारे क़ुसूर माफ़ कर देगा। किन्तु यदि तुम लोगों को माफ़ न करोगे तो तुम्हारा पिता तुम्हें भी माफ़ न करेगा।

जब तुम उपवास करो तो लोगों को दिखलाने के लिये मातमी चेहरा न बनालो, बल्कि सर पर तेल लगाओ और मुंह धोओ, ताकि लोगों को यह पता न चले कि तुमने उपवास रखा है, बल्कि तुम्हारे उस पिता को मालूम हो जो

*Compare Talmud of Babylon, shabbath 3 b, Joana 23 a.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अन्तस्तल में है। और तुम्हरा पिता जो गुप्त चीज़ों को देखता है तुम्हें खुले उसका फल देगा।

अपने लिये इस पृथ्वी के ऊपर ख़ज़ाने जमा न करो जहाँ कीड़े और जंग उसे खा जाते हैं और जहाँ चोर घुसकर चुरा ले जाते हैं।

बल्कि अपने लिये स्वर्ग में ख़ज़ाने जमा करो जहाँ न कीड़े या जंग उसे खा सकते हैं और न चोर घुसकर चुरा सकते हैं।

क्योंकि जहाँ कहीं तुम्हरा ख़ज़ाना होगा वहीं तुम्हारा दिल भी रहेगा।

मनुष्य की आँख मनुष्य के शरीर का चिराग़ है, इसलिये यदि तुम्हारी आँख रोशन होगी तो तुम्हारा सारा शरीर चमक उठेगा।

किन्तु यदि तुम्हारी आँख ख़राब (स्वार्थी) होगी तो तुम्हारे सारे शरीर में अँधेरा होगा। इसलिये यदि तुम्हारा चिराग़ ही अंधेरा (मलिन) हो गया तो फिर वह अँधेरा कैसा भयंकर होगा।

कोई आदमी एक साथ दो मालिकों की नौकरी नहीं कर सकता। वह या तो एक से घृणा करेगा और दूसरे से प्रेम और या एक की सेवा करेगा और दूसरे की अवहेलना। तुम परमात्मा और 'मैमन' (धन के देवता कुबेर) दोनों की सेवा एक साथ नहीं कर सकते।

इसलिये मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम इस बात की बिलकुल चिन्ता न करो कि तुम क्या खाओगे और क्या पिओगे और न इस बात की कि तुम क्या पहनोगे। आहार जीवन नहीं है और न कपड़े शरीर हैं।

आकाश के पक्षियों को देखो न वे बोते हैं और न काटते हैं, और न खलियानों में नाज जमा करते हैं, फिर भी तुम्हारा स्वर्ग का पिता उन्हें आहार देता है। क्या तुम्हारा मूल्य उन पक्षियों से ज़्यादा नहीं है?

तुम कपड़ों की चिन्ता क्यों करते हो? जंगल के फूलों को देखो वे कैसे उगते हैं, वे न मेहनत करते हैं और न कातते हैं।

और इस पर भी मैं तुमसे कहता हूं कि सुलेमान जैसे बादशाह का लिबास भी उसकी तमाम शान और शौकत के बावजूद इनमें से एक फूल जितना भी खूबसूरत न था।

यदि परमात्मा जंगल की घास को, जो आज बढ़ती है और कल जब सूख जाती है तो भट्टी में डाल दी जाती है, इस तरह के कपड़े पहनाता है तो क्या वह तुम्हें इससे बढ़कर कपड़े न पहनाएगा? किन्तु तुममें विश्वास की कमी है।

इसलिये इस बात की बिलकुल चिन्ता न करो कि हम क्या खाएंगे, क्या पिएंगे या क्या पहनेंगे?

तुम्हारे स्वर्ग के पिता को मालूम है कि तुम्हें किन किन चीज़ों की ज़रूरत है।

तुम सबसे पहले अपने भीतर परमात्मा का राज्य स्थापित करने और परमात्मा की नेकी खोजने की चिन्ता करो और ये सब बाक़ी चीज़ें ख़ुद बख़ुद तुम्हारे पास आ जावेंगी।

तुम कल की बिलकुल चिन्ता न करो। कल अपनी बातों की आप चिन्ता कर लेगा। हर दिन के लिये उसी दिन की बुराई काफ़ी है।

तुम प्रतिक्षण कमर बांधे, दीपक जलाए तय्यार रहो, न जाने घर का मालिक किस समय आ पहुँचे।

दूसरों की परीक्षा लेने में मत पड़ो ताकि तुम्हारी भी परीक्षा न ली जावे। क्योंकि जिस तरह तुम दूसरों की परीक्षा लोगे ठीक उसी तरह तुम्हारी परीक्षा ली जावेगी और जिस माप से तुम दूसरों को भर कर दोगे उसी से तुम्हें दिया जायगा। और तुम अपने भाई की आँख का तिल क्यों देखते हो, अपनी आँख का लट्ठा क्यों नहीं देखते?

तुम अपने भाई से यह कैसे कहोगे 'आओ तुम्हारी आँख में से मैं तिल निकाल कर फेंक दूँ' जबकि तुम्हारी अपनी आँख में लट्ठा मौजूद है! पहले ख़ुद अपनी आँख में से लट्ठा निकाल कर फेंक दो तब तुम्हें साफ़ साफ़ दिखाई देगा कि तुम अपने भाई की आँख से तिल किस तरह निकाल सकते हो।

× × ×

यदि तुम में जिज्ञासा है तो मांगो और तुम्हें मिलेगा खोजो और तुम पाओगे। खटखटाओ और तुम्हारे लि दरवाज़ा खुलेगा।

क्योंकि जो मांगता है उसे मिलता है। जो खोज है वह पाता है और खटखटाता है उसके लिये दरवा खुलता है।

तुममें कौन ऐसा है जिससे यदि उसका बेटा रोटी म तो वह उसे पत्थर दे दे? या यदि उसका बेटा मछली म तो वह उसे सांप पकड़ा दे?

फिर यदि तुम अपने अन्दर बुराई रखते हुए अपने बच्चों को अच्छी चीज़ें देना जानते हो तो तुम्हारा बाप जो स्वर्ग में है उन्हें जो उससे मांगेंगे उनकी आवश्यकता के अनुकूल आध्यात्मिक आहार क्यों न देगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसीलिये जो जो बातें तुम यह चाहते हो कि लोग तुम्हारे साथ करें। वे सब तुम लोगों के साथ करो, यही धर्म है और यही नबियों की शिक्षा का सार है।

तुम तंग दरवाज़े से अन्दर आओ क्योंकि जो रास्ता विनाश की ओर ले जाता है वह खूब चौड़ा है और उसका दरवाज़ा भी बड़ा है। अधिकांश लोग उसी दरवाज़े से जाते हैं।

किन्तु जो रास्ता जीवन की ओर ले जाता है, वह बहुत तंग है और उसका दरवाज़ा छोटा है, और बहुत कम हैं जो उसे पाते हैं।

उन झूठे नबियों से होशियार रहो जो तुम्हारे सामने भेड़ की खाल ओढ़ कर आते हैं और जबकि उनके भीतर हिंसक भेड़िया छिपा रहता है।

हर मनुष्य जो "ईश्वर! ईश्वर!" करता हुआ आयगा स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न कर पाएगा, केवल वह मनुष्य ही प्रवेश कर सकेगा जो उस पिता की इच्छा के अनुसार कार्य करेगा।

उस दिन बहुत से लोग कहेंगे—"हे ईश्वर! हे ईश्वर! क्या हमने तेरे नाम पर पेशीनगोइयां नहीं कीं? और तेरे नाम पर लोगों के भूत-प्रेत नहीं झाड़े? और तेरे नाम पर बहुत से चमत्कार (मोजज़े) नहीं किये?"

और तब ईश्वर उनसे कहेगा—"मैं तुम्हें कभी नहीं जानता था, हट जाओ मेरे पास से क्योंकि तुम कुकर्म करते हो।"

जो कोई मेरी इन बातों को ध्यान से सुनकर उन पर अमल करेगा, वह उस समझदार आदमी की तरह होगा जिसने ज़मीन को गहरा खोद कर पक्की चट्टान के ऊपर अपने घर की नींव रखी और उसके ऊपर घर बनाया।

बारिश होगी, बाढ़ आयगी, आँधियां चलेंगी और उस घर से टकराएंगी किन्तु वह घर न गिरेगा क्योंकि उसकी बुनियाद पक्की चट्टान के ऊपर है।

और जो कोई मेरी इन बातों को सुनेगा किन्तु उन पर अमल न करेगा वह उस बेसमझ आदमी की तरह होगा जिसने रेत के ऊपर बिना बुनियाद खोदे अपना मकान खड़ा कर लिया।

बारिशें होंगी, बाढ़ें आवेंगी, आँधियां चलेंगी और उस मकान से टकरावेंगी और वह भड़भड़ा कर गिर पड़ेगा।

यह सारा 'उपदेश' एक समय या एक स्थान पर दिया हुआ नहीं है। यह महात्मा ईसा के ख़ास ख़ास उपदेशों का संग्रह है। इससे ईसा के आदर्शों और उस समय के यहूदी धर्म की स्थिति पर ख़ास रोशनी पड़ती है।

[ शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली "हज़रत ईसा और ईसाई धर्म" नामक पुस्तक से ]

---

# राज-पथ

श्री रामदयाल पाण्डेय

ड़, प्रहरी बनकर खड़े, और यह जाता पथ सुदूर बाहर,
कण्ठित होकर ताक रहे, धरती पर चिपके ग्राम-नगर।
च आते कितने आकुल पद, शूलों को पन्थ बना अपना,
न-मन छिपा हुआ भीतर, बाहर मुखमण्डल धूल-सना।
धूलों में आ रहे ग्राम, इन चरणों में आ रहे नगर,
-आकर भुज बन्धन देती, उन्मुक्त प्रान्त की डगर-डगर।
चय के भूखे प्राणों को, देती हैं आँखें आश्वासन;
बाँध नहीं पाते पथ की सीमा, जन के प्यासे लोचन।
सका कहाँ जड़ बन्धन में, सौन्दर्य-पिपासित मानव मन;
टा निजत्व से कहाँ रहा, मानव का प्यार भरा जीवन।

इस पथ पर चलते एक साथ कितने धर्मों के परमेश्वर;
बनते संगीत समन्वित हो, जाने किन संस्कृतियों के स्वर।
हैं बँधे ग्राम से ग्राम, नगर से नगर, बँधे हैं ग्राम-नगर;
मानव की गति में एक साथ है बँधी जगत की डगर-डगर।
देती न जकड़ने प्राणों को गतिमय जन-उर की जिज्ञासा;
रसना को सिखा रही है वह नित नयी दिशाओं की भाषा।
हिल मिलकर मानव की पगध्वनि करती गतिमान दिगन्तों को;
ठोकर से मिटा रही है वह जड़ व्यूह-द्रुह-सामन्तों को।
कर्मों से प्रेरित मानवता लहराती बनकर एक लहर;
पन्थी है मुक्ति-पन्थ की वह पथ के पड़ाव हैं देशान्तर।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कन्या कुमारी

श्री के० पी० पद्मानाभन् बी० ए०

त्रावणकोर की राजधानी त्रिवेन्द्रम से ५३ मील दूर दक्षिण में कुमारी अन्तरीप त्रावणकोर की सब में सुन्दर जगह है। अनेक कवियों ने इसकी सुन्दरता की गाथा से अपने काव्य को अमर बनाया है। काल के विस्तार ने उपाख्यानों की माला गूँथ कर इस कुमारी के गले में पहना रखी है। विशाल भारत देश के चरणों को हिन्द महासागर, अरब समुद्र और बङ्ग सागर की शीतल लहरें यहां रह रहकर पखारती रहती हैं। सागरों की यह पवित्र त्रिवेणी कन्या-कुमारी कहलाती है।

लार्ड किचनर जब भारत में कमाण्डर इन चीफ़ थे तब एक बार वे दौरा करते हुये कन्या कुमारी आये। सागरों की इस त्रिवेणी में डुबकी लगाने के अपने लोभ का वे संवरण न कर सके। बड़ी मुशकिल से वे डूबते डूबते बचे। तैर कर एक चट्टान से वे जा लगे और तब से वह चट्टान उन्हीं के नाम से 'किचनर राक' कहलाती है।

भारत भूमि के चरणों पर बैठकर यहां यात्री प्रभात में बङ्ग सागर की तरंगों में उगते हुये सूर्य को नमस्कार करता है और सन्ध्या को जब सूर्य अरब समुद्र में दिन भर के थके हुये गोता लगाते हैं तो वह फिर उन्हें एक बार प्रणाम करता है। यदि हज़ारों मील दूर उत्तर में कैलाश देवताओं का निवास स्थान है तो इस सुदूर कन्या कुमारी में भी देवता निवास करते हैं।

अत्यन्त प्राचीन काल से कन्या कुमारी भारत के तीर्थ यात्रियों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। मालूम होता है यूनानी और रोमन यात्री एरोटास्थनीज़, टालेमी और प्लिनी कन्या कुमारी आये थे। एरियन अपने ग्रन्थ पेरिप्लस में, जो पहली सदी ईसवी का लिखा हुआ है, लिखता है—

"इसके बाद एक जगह पड़ती है जो 'कुमार' कहलाती है और जहां इसी नाम का एक अन्तरीप और बन्दरगाह है। जो लोग बुढ़ापे में अपनी ज़िन्दगी धर्म-कर्म में लगाना चाहते हैं वे इस तीर्थ स्थान में डुबकी लगाकर ब्रह्मचर्य का व्रत लेते हैं। स्त्रियां भी इस तीर्थ स्थान में आती हैं क्योंकि कहा जाता है कि किसी ज़माने में देवी पार्वती यहां निवास करती थीं और यहीं स्नान करती थीं।"

महाभारत ग्रन्थ में भी कन्या कुमारी के मन्दिर का वर्णन है। दूसरी सदी ईसवी के तमिल ग्रन्थ 'मणि मेकलाइ' में एक कथा लिखी है कि बनारस के एक ब्राह्मण की स्त्री पैदल चल कर कन्या अन्तरीप में आई और यहां समुद्र में स्नान करके उसने देवी कन्या कुमारी के चरणों में प्रणाम किया। परिणाम यह हुआ कि अपने सतीत्व के नष्ट हो जाने के पाप से वह मुक्त हो गई। 'दुर्गा गायत्री' में कन्या कुमारी देवी के सम्बन्ध में लिखा है—"कार्तन्याय विष्महे कन्या कुमारी धीमही"। इस तीर्थ के सम्बन्ध में जो किम्वदन्ति है वह ख़ासी दिलचस्प है। पुराने ज़माने में बाणासुर और मुकासुर नाम के दो भाई थे। दोनों ने तपस्या करके अमरत्व का वरदान प्राप्त किया। उसके बाद इन दोनों असुरों ने देवताओं को बहुत कष्ट दिया। देवता लोग अपना डेपुटेशन बनाकर शिवजी की शरण में गये। शिवजी सोचने लगे कि किस तरकीब से इन असुरों का दमन किया जाय। पार्वती ने सारी बातें सुनकर शिवजी से कहा—"ब्रह्मा के बरदान के कारण ये असुर उस समय तक अविजित रहेंगे जब तक कोई कुमारी कन्या इनका मुक़ाबला न करेगी।" पार्वती ने यह भी बताया कि ब्रह्मा ने उन्हीं (पार्वती) के हाथों इन असुरों के वध का आयोजन किया है। तदुपरान्त पार्वती ने कुमारी कन्या का रूप धर कर इन असुरों को युद्ध का न्योता दिया। ज़ोर शोर से लड़ाई शुरू हुई जो १८ दिन तक चलती रही और अन्त में पार्वती के हाथों ये असुर मारे गये। शिवजी को यह समाचार दिया गया किन्तु शिवजी ने कन्या रूपी पार्वती को अब अपनी अर्धाङ्गनी की तरह स्वीकार करने से इनकार कर दिया। तब पार्वती को देवताओं ने यह सलाह दी कि वे दक्षिणा-मुखम् समुद्रम यानी अधुनिक कन्या कुमारी में तप करके इस पाप से अपने को मुक्त करें। असुरों के ऊपर पार्वती की इस विजय का उत्सव हर साल केरल सम्वत्सर के दूसरे महीने में 'अम्बुचरित' के नाम से मनाया जाता है। इस उत्सव के समय हज़ारों यात्री कन्या कुमारी आते हैं और देवी कन्या कुमारी को भेंट उपहार चढ़ाते हैं।

कन्या कुमारी का यह मन्दिर निर्माण कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मन्दिर के चारों ओर पत्थर की भव्य प्राचीर है। मन्दिर भी पत्थर का ही ऐसा बना हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है कि जिसके भीतर सूर्य का प्रकाश प्रवेश नहीं कर पाता। यह मन्दिर द्राविड़ी निर्माण कला का सुन्दर नमूना है। द्राविड़ी निर्माण कला में छोटी से छोटी रूढ़ि का भी सख़्ती से पालन होता है। मन्दिर के कंगूरों में फूल-पत्ती और बेलें बनी हुई हैं और दीवालें नक़्क़ाशी से भरी हुई हैं। मन्दिर का प्रवेश द्वार बहुत शानदार और रास्ते के दोनों तरफ़ की दीवारों पर ख़ूबसूरत नक़्क़ासी की हुई है। पत्थर के स्तम्भ और मूर्तियाँ, जिन पर क़ीमती खुदाई की हुई है, और सुन्दर पच्चीकारी की हुई छतें बरबस दर्शक का ध्यान अपनी ओर खींच लेती हैं। मन्दिर के ग्रैनाइट के खम्भों से टकराकर शब्द-स्वर एक मोहक प्रतिध्वनि पैदा करते हैं। पत्थरों को खोदकर इतनी सुन्दर फूल पत्तियाँ आदि बनाई गई हैं कि कारीगरों के कौशल पर मन वाह वाह कर उठता है। मानव भावनाओं को अत्यन्त कोमलता के साथ पत्थरों पर अङ्कित किया गया है। जिन कलाकारों ने इन पत्थरों में जीवन पैदा किया है उन्हें अपने छेनी और हथौड़े पर बेहद क़ाबू रहा होगा। मन्दिर के बाहर की प्राचीर बिलकुल क़िले की दीवारों की तरह लगती है। पत्थरों के जोड़ों पर इतनी ख़ूबसूरत नक़्क़ाशी की गई है कि जोड़ दिखाई ही नहीं देते और सारी दीवाल एक ही पत्थर की बनाई हुई मालूम होती है।

मन्दिर का समुद्रवर्ती प्रवेश द्वार एक अरसे से हमेशा बन्द रहता है। पूर्ववर्ती प्रवेश-द्वार साल में दो मर्तबा विशेष उत्सवों के समय खुलता है। कहा जाता है कि पहले मन्दिर का यह समुद्रवर्ती प्रवेश-द्वार सदा चौबीसों घण्टे खुला रहता था और देवी के मुकुट में लगे हुये चमकदार रत्न बन्दरगाह के आते जाते जहाज़ों के लिये रात के समय दीप-स्तम्भ का काम देते थे। एक बार कुछ विदेशी यात्री, जिन्हें यह बात मालूम थी, रात के समय चुपचाप अपनी नौकायें किनारे पर लगाकर इन रत्नों को चुराने मन्दिर में घुसे। किन्तु देवी के मुकुट को हाथ लगाने की भी इनकी हिम्मत नहीं हुई और इन्हें चुप चाप लज्जित होकर और बहुत नुक़सान उठाकर अपने देश को लौटना पड़ा। उस दिन से यह प्रवेश-द्वार हमेशा बन्द रखा जाता है।

द्वादश-वर्षीया देवी कन्या कुमारी की मूर्ति ठोस ग्रेनाइट पत्थर की बनी हुई है। मूर्ति में सर से पैर तक रत्न जड़े हुये हैं। देवी कन्या कुमारी पवित्र जीवन की प्रतिमूर्ति हैं। "वह बरफ़ की तरह विशुद्ध और हिम की तरह निष्पाप हैं।" वह मानव आत्मा की अनन्त खोज की निशानी हैं और भारत की भौगोलिक और मनोवैज्ञानिक एकता की परिचायक हैं। मन्दिर का सारा वातावरण पवित्रता से भरा हुआ है। कोटि कोटि प्रार्थनाओं और कोटि कोटि शुद्ध विचारों से मन्दिर का कण कण मुखरित रहता है। मन्दिर सदा ऐसे दर्शकों से—जिनमें कुछ घुटने टेके हुये, कुछ साष्टांग प्रणाम करते हुये, कुछ पालथी मारे हुये, कुछ भक्ति-उन्माद में भरे हुये, कुछ ध्यानावस्थित, कुछ खड़े होकर भजन कीर्तन करते होते हैं—भरा रहता है। कन्या कुमारी के इस मन्दिर में उच्च से उच्च ब्राह्मण हरिजनों के साथ कन्धा से कन्धा भिड़ाये प्रार्थना करते हुये दिखाई देता है। यह दृश्य त्रावणकोर के महाराजा श्री बलराम वर्मा महाराज के उस साहसपूर्ण फ़रमान का प्रतिफल है कि जिसके अनुसार राज्य द्वारा नियंत्रित समस्त मन्दिरों को हरिजनों के लिये खोल दिया गया है।

रात को 'सान्ध्यदीपम्' और 'पूजन्' के समय सारा मन्दिर जगमग करने लगता है। 'दीपाराधन' की घड़ी पूजा की सबमें शुभ घड़ी समझी जाती है। उस समय मन्दिर की शान बिलकुल निराली होती है। मूर्ति को चन्दन, पुष्प रेशमी वस्त्रों, और हीरे जवाहरातों से अलंकृत करते हैं। बाँसुरी, शहनाई, नगाड़ों, शँख, और घण्टे-घड़ियालों की ध्वनि के बीच भक्तगण मन्त्र उच्चारण करते रहते हैं। देवी के ऊपर जड़े हुये हीरों, मोती, पन्नों, मणियों की चमक दमक से सारा वातावरण झलमल करने लगता है। भक्तगण पुरुष और स्त्री बालक और वृद्ध भक्ति-उन्माद में भर कर जिन मन्त्रों का उच्चारण करते हैं, मन्दिर की दीवारें उलट कर उन्हें अपनी प्रति-ध्वनि से दोहराती हैं। शीतल मन्द समीरण बहने लगता है और सारा वातावरण अगरु और धूप की सुगन्ध से महकने लगता है।

कन्या कुमारी के चरणों में तीन महान सागर नम्रतापूर्वक अपनी लहरों की भक्ति-माल चढ़ाते हैं। स्वर्गीय महादेव देसाई ने अपनी रचना 'Epic of Travancore' में लिखा है—"मुझे उमा की बात सोचने में अच्छा लगता है कि जिनके चरण हिन्द महासागर अपने दोनों हाथों, बङ्ग सागर और अरब सागर से पखारता रहता है और जो अपनी तपस्या द्वारा भारत के सुदूर उत्तर में बसे हुये अपने कैलास निवासी स्वामी की पुनः कृपा प्राप्त करने में लगी हुई हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सनातनी हिन्दू के लिये कन्या कुमारी एक अत्यन्त पवित्र तीर्थ स्थान है। महात्मा गान्धी के शब्दों में—"ध्यान करने के लिये यह जगह बहुत ही मौजूँ है। देवी की तरह आसपास की जल निधि भी कुमारी है।"

मन्दिर के तीन ओर स्नान करने के घाट बने हुये हैं। मुख्य घाट बिलकुल समुद्र के किनारे है। घाट के पास एक मण्डप बना हुआ है जिससे समुद्र की लहरें निरन्तर टकराती रहती हैं। इस मण्डप में बैठकर ब्राह्मण-मण्डली स्नान करने के बाद वेद-पाठ करती रहती है। समुद्र की लहरों की चपेट से बचने के लिये चट्टानों के बीच में एक कुण्ड बना हुआ है जहां यात्री निर्भय होकर स्नान कर सकते हैं। लहरें ज़ोर से आती हैं और कुण्ड की चट्टानों से सिर टकराकर लौट जाती हैं। बेख़बर यात्रियों की रक्षा के लिये सीढ़ियों में ज़ंजीरें लगी हुई हैं जिन्हें पकड़कर वह बहने से बच सकता है। पुराने ख़याल के यात्री यहाँ अकेले स्नान नहीं करते। पिता और पुत्र, माता और पुत्र और पति-पत्नी का साथ मिलकर स्नान शुभ समझा जाता है।

आदि-आमावस्या के दिन कुमारी अन्तरीप में स्नान करने के लिये भारत भर से हज़ारों यात्री इकट्ठा होते हैं। इस अवसर पर वे अपने पुरखों का तर्पण भी करते हैं। दशहरे के मौक़े पर भी हज़ारों यात्री यहां इकट्ठा होते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जब भ्रमण करते हुये कुमारी अन्तरीप पहुँचे तो वे यहां का भव्य दृश्य देखकर पुलकित हो उठे। वे थके हुये यहां पहुंचे थे। नाव वाले का किराया चुकाने को भी उनके पास पैसे न थे किन्तु फिर भी उनका हृदय आल्हाद से भर गया। वे समुद्र की लहरों में कूद पड़े और तैरकर एक उभरी हुई चट्टान के ऊपर जा पहुंचे और वहां बड़ी देर तक ध्यान मग्न बैठे रहे। जिस चट्टान पर वे बैठे थे वह आज तक उनके नाम के साथ प्रसिद्ध है।

देवी कन्या कुमारी के सम्बन्ध में एक और कथा प्रचलित है। कन्या अन्तरीप से कुछ मील दूर सुचन्द्रिम नामक जगह में स्थापित भगवान शिव ने एक बार कन्या कुमारी से विवाह का प्रस्ताव किया। देवी राज़ी भी होगईं। विवाह की तिथि भी निश्चित हो गई। त्रैलोक्य के समस्त प्राणी इस विवाहोत्सव को देखने के लिये अन्तरीप में इकट्ठा हुये, किन्तु ऐन मौक़े पर देवी ने अपना विचार बदल दिया! शिव ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की पर देवी किसी तरह भी विवाह करने पर राज़ी न हुईं। विवाह के लिये जो तिल और चावल वहाँ इकट्ठा किया गया था शिव जी ने ग़ुस्से के मारे उसे सारे समुद्र तट पर छितरा दिया। कुमारी अन्तरीप की रेत, रङ्ग और आकार में, इतने तरह की है कि देखकर हैरत होती है। कुछ जगह की रेत तो बिलकुल तिल की तरह है। वैज्ञानिक लोग बताते हैं कि इसका कारण यह है कि रेत में कई तरह के खनिज द्रव्य गार्नेट और मानोज़ाइट आदि हैं, किन्तु अन्ध विश्वासी इन्हें शिव जी के फेंके हुये चावल और तिल ही समझते हैं। यात्री गण किनारे पर फैले हुये शंख और सीपी ले जाकर उनके तावीज़ बनाकर बच्चों को पहनाते हैं। नीली धारी और काले धब्बे वाले सफ़ेद सीपियों की बड़ी मांग रहती है। कहते हैं इन्हें पहन कर गर्भवती स्त्रियों को प्रसव के समय ज़्यादा दर्द नहीं होता।

जिन लोगों ने कुमारी अन्तरीप को देखा है वही इसके सौन्दर्य का अन्दाज़ा लगा सकते हैं। तीनों ओर समुद्र के बृहत विस्तार को देखकर मन विस्मय से भर जाता है। नीलाकाश में सूर्य अपनी प्रखर रश्मियां फैला देता है। कुमारी कल्पनातीत रङ्गों में कलाकार के रङ्ग-पट की तरह दृष्टि में छा जाती है। जब ज्वार उतर जाता है तूफ़ान शान्त हो जाता है और हवा बादलों के इक्का दुक्का टुकड़ों को नीलाकाश की परिधि से खींच कर बाहर फेंक देती है और रङ्ग बिरङ्गी रेत के दामन पर उजले रङ्ग झाग का गोटा टँक जाता है, जब समुद्री पक्षी नील नभ मण्डल और नील समुद्र के बीच में अपने नन्हे नन्हे डैने फड़फड़ाने लगते हैं, जब मन्दिर से वादन यन्त्रों की तुमुल ध्वनि उठने लगती है और जब पूजा के यन्त्र लहरों व्याप्त होकर एक अजीब समां बांध देते हैं—तब अन्तरीप का सुहावना मौसम शुरू होता है। वास्तव में कुमारी अन्तरीप "साकार सौन्दर्य की प्रतिमा है।"

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# देवगढ़ के जैन और विष्णु-मन्दिर

प्रो० श्रीरञ्जन एम० ए०

श्री विष्णु मन्दिर जिसका शिखर गिर गया है [ मन्दिर के सामने श्री माधव स्वरूप वत्स सुपरिण्टेण्डेण्ट पुरातत्व विभाग, आगरा सर्किल, डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल और श्री यशपाल जैन सम्पादक "मधुकर" खड़े हैं ]

बुन्देलखण्ड जिस प्रकार प्रकृति की अनोखी छटा के लिये विख्यात है, उसी प्रकार शिल्प-कला एवं वास्तुकला की गौरवमयी छटा भी इस प्रदेश के कोने कोने में बिखरी पड़ी है। बुन्देल खण्ड सदियों तक चन्देलोंऔर बुन्देलों की कीर्ति की लीला स्थली रहा है। उनके संरक्षण में यहाँ कला का पूर्ण विकास हुआ है। खजुराहो, चन्देरी, अहार, देवगढ़ आदि ऐसे स्थान हैं जहां दर्शक मध्य कालीन भारतीय कला के विभिन्न स्वरूपों की मनोरम झांकी देख सकता है। कला के अलावा इतिहास की सामिग्री भी यहाँ के कछारों, कूलों और गाँओं में फैली पड़ी है। ऐसे प्रांत की सुरम्य गोद में जहाँ प्रकृति-जैनव और मानव की हस्त-कला का योग हो गया है—वहां कला और कृति अमरता और पूजा का वरदान लेकर निखर उठी हैं। देवगढ़ भी एक ऐसा ही रमणीक स्थान है, जहां मानव ने हृदय के उच्चतम भावों की व्यक्त रूप-योजना द्वारा कठोर शिला-खण्डों में जीवन और रूप की सरस धारा बहा दी है। इस प्रकृति और मानव के भाव सामंजस्य के दर्शन करने को मैं महीनों से उत्कंठित था। उस दिन लखनऊ से डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का पत्र आया। वे और श्री वत्स जी ( सुपरिनटेनडेण्ट पुरातत्व विभाग आगरा सर्किल ) देवगढ़ जा रहे थे। ऐसे विद्वानों का साथ का लोभ संवरण करना कठिन था। मेरे मन में पहले से ही वहां के नैसर्गिक-सौन्दर्य के प्रति अधिक आकर्षण था। बेतवा का सुरम्य पार्वतीय प्रदेश, विंध्य के सघन हरित उपत्यका, मेरे लिये कला के अव्यक्त स्वरूप की व्यक्त चेष्टायें थीं। सोचता था कि एक मन्दिर के लिये ऐसा क्या जादू होगा जिसके लिये पुरातत्व-विभाग में उधर दौड़ सी मच गई है। यह ठीक है कि इतिहास में गुप्त कालीन कला का एक उज्वल चित्र पाठकों के सामने रखा है, यह भी सच है कि गुप्त काल इतिहास का एक स्वर्ण-युग रहा है, फिर भी मेरे सामने ईंट-पत्थरों की रचनाओं की अपेक्षा, वे चाहे अर्वाचीन हों या प्राचीन, लीलामय प्रकृति की मनोरम अभिव्यंजना अधिक महत्व रखती है।

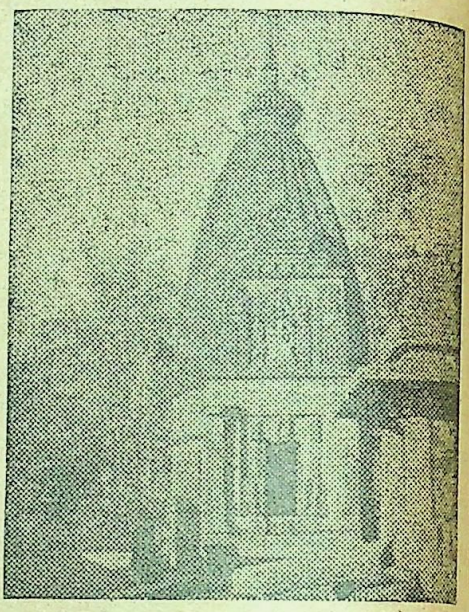

बारहवीं शताब्दी का एक जैन मन्दिर ( नं० ३० )

राह के अटपटेपन के कारण ६६ मील के मार्ग में पूरे २४ घण्टे लग गये। दूसरे दिन हम सब देवगढ़ की हरी भरी गोद में एक जैन-धर्मशाला के आंगन में बैठे थे। हमारे ठीक सामने एक लम्बी नीची पहाड़ी हरे भरे पौधों और वृक्षों का बोझ लादे खड़ी थी। सूर्य देवता को देवगढ़ के झोपड़ों और खेतों तक आते आते काफी परिश्रम करना पड़ता है। शाम अभी दूर थी। श्री विष्णु-मन्दिर का भग्न लाल कलेवर हमारे बाईं ओर थोड़ी दूर पर दिखाई पड़ रहा था। आज वहां उपासकों और दर्शकों की भीड़ न थी। दूर से ही मन्दिर के जीर्ण ढाँचे को छूती हुई हवा किसी अतीत की सदा 'सब दिन रहत न एक समान' को अपने में छिपाये बह रही थी। ताजविहीन यह देवगृह अपने सूनेपन का भार लिये किसी लम्बे युग की स्वप्निल, मुग्धकारी कल्पना में विभोर था।

राह की थकावट और धूल को स्नान आदि द्वारा धोकर हम विष्णु मन्दिर के निकट पहुँचे। पहिले पास में बने हुये एक सरकारी अजायब घर में हमने प्रवेश किया।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की प्रसन्न हँस-मुख प्रतिमा उन खंडित अतीत की प्रतिमाओं के बीच से आगे बढ़ी। उनके साथ हम सब म्यूज़िअम के अन्तर भाग में दाख़िल हुये। पत्थर पर उतारी गईं मानव की असीम भावनाओं का एक ढेर वहाँ रखा था। कोई कोई प्रतिमा शिल्पी के हस्त-चातुर्य के कारण आज भी उस गुज़रे हुये ज़माने के भीतर से साफ़ साफ़ बोल रही थी। आज उन प्रतिमाओं को तिथिवार सजा कर रखा गया है। उनके हृदय में अंकित-घटनाओं को पहिचान कर उन्हें इतिहास के पन्नों से जोड़ने की कोशिश भी हो रही है। इधर से निपट कर हमारे क़दम मन्दिर की ओर बढ़े। मन्दिर का पार्थिव शरीर क्षत-विक्षत हो चुका था पर उसमें निवास करने वाली कला और भक्ति की आत्मा आज भी उसके चारों ओर चक्कर काट रही थी। मन्दिर की रग-रग में समाई हुई भारतीय कला की व्यापकता हमारे सामने तब आती है जब हमारी सूक्ष्म दृष्टि उस संचित कला के बीच व्यापक जीवन की भाषा का अनेक रूपों में साक्षात करती है। मन्दिर के निर्माता ने इन मौन शिला खंडों के द्वारा जीवन की विविध झाँकी दर्शकों के सामने चुनकर रखदी है। म्यूज़िअम में कई एक शिला-लेख देखे पर उनसे मन्दिर के निर्माण-युग की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं होती और न उसमें बोलनेवाले सृष्टि-कर्ता का वास्तविक रूप ही हमारे सामने आता है। देव गृह के इस सजीव-श्रंगार में कला की बहिर्मुखी एवं बहुमुखी योजना अपने नाना रूपों के साथ उद्भूत हो उठी है। इसके धराशायी-शिखर ने भाव और भक्ति की इस सजीव और संश्लिष्ट स्थूल मूर्त को ओझल कर दिया है फिर भी पास पड़े हुये पाषाण-खंड अपने यौवन की मूक कहानी सुना रहे हैं। उस कहानी एवं म्यूज़िअम में संगृहीत प्रतिमाओं का सहारा लेकर हम गुप्त काल के उस मानव-निर्माण में निहित ऐतिहासिक-सृष्टि की सहज कल्पना कर सकते हैं।

ठीक हमारे संमुख गुप्त काल की वह कला-निधि अपने खंडहरों को चारों ओर लपेटे खड़ी थी और यत्र तत्र यौवन की अपूर्व रमणीयता उसके विपन्न शरीर में आज भी झलक रही है। मन्दिर के शिला-पट्टों पर अंकित शिल्प चातुर्य को देख कर कोई भी कला मर्मज्ञ आत्म मग्न हो सकता है। गुप्त कालीन शिल्प में इस प्रकार के उदार सौन्दर्य का दर्शन देवगढ़ में ही प्राप्त होता है। शोभा और कला का यह घनीभूत पुंज अपनी शतमुखी साधना की दौड़ में बहुत आगे है। चित्र, शिल्प, भाषा, वेश, आभरण आदि जीवन के सभी अंशों में सुरुचि और संयम के साथ सुन्दरता की उपासना में तत्कालीन मानव ने कुछ उठा न रखा था। हृदय और हाथ के इस पावन योग की पूर्णावस्था का ही प्रतिफल ऐसी अनुपम सृष्टि हो सकती है। शिल्पी की छेनी में जैसे विद्या, बुद्धि और भाव की त्रिवेणी उतर आई हो। और इसी कारण लोहे के उस औज़ार ने बोलती हुई कला को पत्थर के हृदय में उतार दिया है। मन्दिर में जिस श्रेष्ठ आदर्श का निर्वाह किया गया है वह अनुकरणीय है। अपने वर्तमान सुख-दुख के आघात् प्रतिघात् को भूल कर मानव किसी अपरिमेय 'आनन्द में' अपने को लय कर दे—श्रेष्ठ कला की यही साधना है। और इस साधना के कोमल साक्षात् की अनुभूति से दर्शक यहाँ आकर भर जाता है।

मन्दिर के निर्माता और निर्माण-काल के बारे में अभी तक कोई निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है। पर हाँ, सन् १९१७ में जब रायबहादुर दयाराम साहनी यहाँ पधारे थे तो उन्होंने एक खम्भे पर खुदे हुये एक संस्कृत लेख का उल्लेख किया था। वह शिला-लेख उत्तरी सर्किल की वार्षिक रिपोर्ट में प्रकाशित हुआ था। साहनी साहब के अनुसार भगवत् गोविन्द ने केशवपुरा के अधिपति देव के चरणों में इस स्तम्भ को दान किया था। यह गोविन्द सम्राट चन्द्रगुप्त के पुत्र परम भागवत् गोविन्द जान पड़ते हैं। गुप्त सम्राटों के धार्मिक निवास में वैष्णव मत की निश्चित छाप पड़ी है। "मथुरा के केशवपुरा मुहल्ले में एक विष्णु का मन्दिर गुप्त काल में बनवाया गया था। उस स्थान पर चन्द्रगुप्त का एक खंडित लेख और कुछ मूर्तियां प्राप्त हुई थीं। अनुमान होता है कि उसी प्रकार का दूसरा विष्णु मन्दिर देवगढ़ में सम्राट चन्द्रगुप्त के प्रिय पुत्र भागवत् गोविन्द गुप्त की सत्प्रेरणा से बनवाया गया था।" ( श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के एक लेख से ) इस प्रकार मन्दिर का निर्माण काल चौथी और पांचवीं शताब्दी के बीच हुआ जान पड़ता है।

कला की श्रेष्ठता के अतिरिक्त इस विष्णु मन्दिर की एक विशेषता और है जिसके कारण भारतीय शिल्पकला में इसका स्थान बहुत ऊँचा है। राम और कृष्ण के जीवन की घटनाओं का चित्रण भारतीय कला में साथ साथ सबसे प्रथम देवगढ़ के विष्णु मन्दिर में ही पाया जाता है। ये विभिन्न घटनायें शिलापट्टों पर अंकित की गई हैं। प्रत्येक पट्ट नाप में लगभग पौने तीन फ़ुट ऊँचा और पौने दो फ़ुट चौड़ा था। अनुमान से इस प्रकार के ५६ शिला प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



थे। ये पट्ट मन्दिर की कुर्सी ( अधिष्ठान ) में चारों ओर लगे थे। और मन्दिर की यह कुर्सी ज़मीन से ८½ फुट ऊँची थी। इस अधिष्ठान के निर्माण में नीचे कई रद्दे कटावदार पत्थरों के थे। इन पत्थरों के ऊपर शिला पट्ट रखे गये थे। इनके ऊपर मूर्धन्य पत्थर या उष्णीष की जगह काम आने वाले छोटे पत्थरों की एक लाइन थी जिस पर भिन्न भिन्न दृश्य खुदे थे। और इस सुसज्जित कुर्सी के बीचों बीच मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई थी। अधिष्ठान मन्दिर की चौड़ाई से तीन गुना बड़ा है। मन्दिर का गर्भ गृह ९ फुट ९ इञ्च का एक वर्गाकार है। दीवारें लगभग ३½ फुट मोटी हैं। मन्दिर का सब से आकर्षक भाग उसका मुख द्वार है, जिसका चौखटा ११ फुट २ इंच ऊँचा और १० फुट ९ इंच चौड़ा है। द्वार का चतुर्भाग अत्यन्त सुन्दर 'अभिप्राय' और मंगल चिन्हों से सजा है। बीच बीच में मूर्तियां भी बनाई गई हैं। विशुद्ध कला की दृष्टि से द्वार पर उत्कीर्ण पत्र हावली एवं उसके पार्श्व-स्तम्भ पर अंकित उपासक स्त्री-पुरुषों की मूर्तियां अत्यन्त सुन्दर हैं। उस युग के मानव के हृदय में सौन्दर्य की जो साध थी उसकी यथेष्ट अभिव्यक्ति इस मन्दिर के द्वार पर मिलती है। द्वार के सामने खड़े होकर एक क्षण के लिये हमारा अतीत के उस स्वर्ण-युग से साक्षात सा हो जाता है। मरण शील मानव की कला अमर है। नहीं तो आज मनुष्य की इतनी श्रेष्ठ भाव-व्यंजना हमारे सामने न आती।

मन्दिर के गर्भ-गृह में प्रतिष्ठित विष्णु की भव्य मूर्ति थी जो इस समय नहीं है। परन्तु अजायब घर में विष्णु का एक बड़ा सिर सुरक्षित है जो प्रधान प्रतिमा का सिर मालूम पड़ता है। मन्दिर की तीन दीवारों में बाहिरी ओर तीन शिला-पट्ट लगे हैं जो आज भी सुरक्षित हैं। उत्तर की ओर शिला-पट्ट पर 'गजेन्द्र मोक्ष' का दृश्य अंकित है। पद्मवन के भीतर एक हाथी को दो नागों ने अपने कुण्डलों में जकड़ रखा है। उसकी सहायता के लिये गरुड़ पर चढ़ कर चतुर्भुजी विष्णु बड़े संभ्रम के साथ पधारे हैं। परन्तु ग्राह या मगर के स्थान पर नागों का आना नई बात है। पौराणिक कथा से यह बात मेल नहीं खाती। पूर्व की ओर के शिला-पट्ट पर बद्रिकाश्रम में नर-नारायण की तपस्या का दृश्य बड़े भावुक तरीक़े से अंकित किया गया है। तापस-वेष धारी नर नारायण जटा जूट बाँधे और मृग चर्म धारण किये हैं। दक्षिण दिशा की ओर शेषशायी विष्णु की मूर्ति का शिला-पट्ट लगा है। कला के वैभव और भाव-विकास की दृष्टि से यह दृ सर्वश्रेष्ठ है।

जगती के ऊपर जिन शिला-पट्टों पर राम-कृष्ण जीवन की मुख्य मुख्य घटनायें अंकित थीं वे आज व पर लगे नहीं रह गये हैं। परन्तु अपने स्थान पर दो शि पट्ट आज भी लगे हैं। उनमें से एक पर नन्द-यशोदा बाल कृष्ण को गोद में लिये खड़े हैं। पीछे कुछ उत्सुक गो बनाई गई हैं। दूसरे शिला पट्ट पर त्रिविक्रमावतार दृश्य है। अजायबघर में जो शिला पट्ट सुरक्षित हैं उनमें कुछ के ऊपर अंकित दृश्यों को पहिचाना जा सकता है इस प्रकार हैं :—

### रामायण

( १ ) अहिल्या-उद्धार।
( २ ) बन-मार्ग में राम, लक्ष्मण और सीता।
( ३ ) अगस्त आश्रम में राम, लक्ष्मण, सीता और अनुसुइया।
( ४ ) शूर्पणखा के नाक-कान काटना।
( ५ ) युद्ध के लिये सन्नद्ध राम का धनुष टंकारना।
( ६ ) सुग्रीव से राम लक्ष्मण की भेंट।
( ७ ) बालि-सुग्रीव का युद्ध।
( ८ ) लक्ष्मण का सुग्रीव के प्रति क्रोध।
( ९ ) सुग्रीव लक्ष्मण सम्मेलन।
(१०) हनुमान का गन्धमूल पर्वत उठाना।
(११) अशोक वाटिका में रावण द्वारा सीता की भर्त्सना।

### कृष्णचरित

( १ ) देवकी के हाथों से नवजात कृष्ण को लेते हुये वसुदेव।
( २ ) वसुदेव का कृष्ण को लेते हुये जाना।
( ३ ) कृष्ण-बलराम को गोद में लिये यशोदा और नन्द।
( ४ ) कृष्ण कंस के बाल पकड़ कर खींच रहे हैं।

इस प्रकार राम-कृष्ण के जीवन की दो धाराओं को एक में मिला कर अंकित करने का सफल प्रयास देवगढ़ के गुप्त कालीन मन्दिर में पाया जाता है। अवतार वाद की दृष्टि से राम-कृष्ण दोनों को विष्णु का ही अवतार माना जाता है। यह बात हिन्दू समाज में सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसी भाव की पुष्टि इन दो महापुरुषों की जीवन गाथाओं को एक साथ रखकर की गई है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## जैन-मन्दिर

दूसरे दिन मध्याह्न के बाद हमारा झुण्ड सामने पहाड़ी पर स्थित जैन-मन्दिरों की ओर बढ़ा। सचमुच कला की श्रेष्ठ प्रतिष्ठा और स्थापना के लिये ऐसा सुन्दर रमणीक स्थान चुन कर जैन भक्तों ने अपने हृदय के प्रकृति प्रेम का अच्छा उदाहरण सामने रखा है। देव स्थान से थोड़ी दूर उसी रमणीय गिरि-खण्ड के चरणों को मेखलाकार परिवेष्टित करती हुई बेतवा ने सौन्दर्य के उस अपूर्व-साम्राज्य में चार चाँद लगा दिये हैं। लगभग ३० छोटे बड़े मन्दिरों का एक जमघट यहाँ खड़ा है। कोई कोई मन्दिर तो केवल संख्या वृद्धि में अपना एक स्थान रखता है। प्रधान मन्दिर और नं० १२ में अध्ययन की दृष्टि से कुछ सामिग्री मिलती है। इसके स्तम्भ पर अभी एक लेख खुदा हुआ मिला है। खुदे हुये अक्षर चूने के पलस्तर से भर दिये गये थे। शिला लेख की छाप श्री अग्रवाल जी ने ली है। उनका ऐसा अनुमान है कि यह लेख मन्दिर के इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालेगा। मन्दिर पर खुदे एक लेख से इसकी निर्माण तिथि सं० ११३३ जान पड़ती है। किन्हीं लोगों का ख़्याल है कि यह मन्दिर १० वीं शताब्दी में बनवाया गया था। मन्दिर के गर्भ गृह में १२ फ़ुट लम्बी तीर्थङ्कर की प्रतिमा है। तुलनात्मक दृष्टि से जो सौन्दर्य और लावण्यता अहार के शिल्पी की छेनी से फूट कर भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा में उद्भूत हुई है वह यहाँ अप्राप्य है। यों तो हज़ारों मूर्तियों के इतने बड़े ढेर में कला और भाव की दृष्टि से आदर्श तक पहुँचने वाली प्रतिमा तो विरली ही मिलेंगीं। फिर प्रबन्ध कारिणी ने उन प्रतिमाओं को जिस प्रकार से दीवार में चुन कर जमा दिया है वह तो अति अवाञ्छनीय है। उस सजाव में न तो इतिहास का ही सहारा लिया गया है और न रुचि का ही। फिर भी प्रधान मन्दिर और मन्दिर नं० ३० की वास्तु कला अत्यन्त श्रेष्ठ है। दीवारों पर अंकित सौन्दर्य और कला की दृष्टि से मन्दिर नं० ३० ही सर्वश्रेष्ठ है।

जैन-प्रतिमाओं के इस संग्रह को देख कर मेरा एक विचार और दृढ़ हो गया है। वह यह कि जैन शिल्प कला में चतुर्मुखी जीवन की अभिव्यक्ति शायद नहीं हुई है। सारी प्रतिमाओं में तीर्थंकर अलग अलग मुद्राओं के साथ दिखाये गये हैं। उन मुद्राओं में भी 'अभय' और 'वीतराग' मुद्रा की अधिकता है। कहीं कहीं इन तीर्थंकरों के साथ 'चतुर्भुजी देवी' अथवा अन्य हिन्दू देवी देवताओं को सेवक और प्रतिहारी के रूप में रखा गया है। परन्तु कला के केन्द्र बिन्दु पर चक्कर काटने वाली प्रधान प्रतिमा 'तीर्थंकर' ही है। व्यापक जीवन के सुख-दुख, आशा, निराशा के द्वन्दों से परिचालित मानव की भावना और उसके सँवेदन को जैसे एकदम ही दूर रख दिया गया है। गृहस्थ जीवन और 'त्याग' या मुनि जीवन के बीच अन्तर की खाई इतनी बड़ी है कि उसे कम नहीं किया जा सकता। तभी तो व्यवहार और आदर्श का अन्तर आज जैनियों में इतना विषम हो उठा है कि उसे संतुलन की सीमा के अन्दर लाना कठिन हो रहा है। यही कारण है आदर्श रूप से दूर लगने वाले सहज मानव की शतमुखी कला और साहित्य का जैन मन्दिरों में हम अभाव पाते हैं। इसीलिये दो चार जैन मन्दिर देख लेने के बाद मन और बुद्धि दोनों भर जाते हैं। कला के भक्त और विद्यार्थी के लिये ऐसे स्थलों में अध्ययन की बहुत कम सामिग्री मिलेगी। फिर भी उस युग के समाज और मनुष्य की रहन-सहन पर ऐसी चीज़ों से काफ़ी प्रकाश पड़ता है। इतिहास और समाज शास्त्र की दृष्टि से तो इन सभी चीज़ों का एक महत्वपूर्ण स्थान है ही। सभी प्रतिमायें दिगम्बर हैं, जिससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि ८ वीं शताब्दी के बाद से 'श्वेताम्बर' का प्रभाव धीरे धीरे क्षीण हो रहा था और उसके स्थान पर 'दिगम्बर-भाव' अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ा रहा था। इस 'दिगम्बर-भाव के पीछे जीवन का अति महत् दर्शन छिपा था। 'अपरिग्रह और परमहंसतत्व' की साधना जहां जाकर पूर्णावस्था को प्राप्त हो जाती है उस महत्त सिद्धि का सूचक था जैनियों का 'दिगम्बर-कल्ट'। आज 'वाह्य' तो ज्यों का त्यों बना है पर 'आत्मा' की उपासना फीकी पड़ गई है। और इसीलिये ज्ञान के उस मूलतत्व को भूल कर वह केवल 'साम्प्रदायिक-भेद' का उपकरण मात्र रह गया है।

जैन मन्दिरों से सटे हुए वन खंड को पारकर हम बेतवा के तट पर पहुंचे। २०० फ़ुट नीचे बेतवा का नील-जल मंथर गति से बह रहा था। अर्ध चंद्राकार रूप में बेतवा के वेग ने पहाड़ की इन चट्टानों को काटकर चिकना बना दिया है। इस दृश्य को देखकर गंगोत्री के निकट गंगा के रूप का ध्यान हो आता है। इस ऊँची कगार के ठीक सामने बेतवा की दो धाराओं ने हरे भ एक द्वीप की सृष्टि कर दी है। दूर सामने फैले हुये हरे-भ खेत, सर सब्ज़ वन-खंड, एवं बेतवा की नील-वर्ण धार नैसर्गिक सौंदर्य के एक मनोहर चित्रपट सी आँखो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवगढ़ में प्राप्त एक जैन उपाध्याय की संगमर्मर की प्रतिमा

सामने फैल जाती है। शीतल सघन झुरमुटों के बीच से होते हुये थोड़ी देर में हमारा दल एक पुराने धराशायी मन्दिर के निकट पहुंचा। इसे 'बाराह-मन्दिर' की संज्ञा दी गई है। श्री बराह की प्रतिमा पृथ्वी को अपनी एक भ्राँप पर उठाये है। प्रतिमा का आधार एक पौराणिक-आख्यान है। पुराण युग में बाराह पूजन काफ़ी प्रचलित था। मन्दिर के शिखर और दीवारें बिलकुल ग़ायब हैं। अधिष्ठान का कुछ अंश शेष है और उसी के साथ 'गर्भ-गृह' का एक थोड़ा भाग खड़ा रह गया है। पास में पड़े हुये कुछ शिलापट्ट और प्रतिमायें दिखलाई पड़ीं। इस स्थान पर 'विष्णु मन्दिर' के दृश्यों और मूर्तियों की नक़ल का असफल प्रयत्न किया गया है। गजेन्द्र-मोक्ष, नर-नारायण और अनंत-शायी-विष्णु की कल्पना वहीं से उधार ली है। और उसी के आधार पर खोदे गये दृश्यों के तीन शिलापट्ट इधर उधर पड़े—कला और भाव के नाम पर आँसू बहा रहे थे। वे इतने असुन्दर और भद्दे थे कि उन्हें 'गुप्त कालीन' इतिहास के साथ रखने में कला के प्रति अन्याय करना है। हां, नक़शा विष्णु मन्दिर का सा है पर 'आत्मा औघड़ की है। भक्त ने प्रयत्न किया पर चतुर शिल्पी के अभाव में वह वैसा रूप और भाव इस मन्दिर में न ढाल सका। तभी शायद इतने बाद का होने पर भी यह मन्दिर जन संवेदना और भक्ति को अपनी ओर न खींच सका और तभी आज लोक भाव और पूजा की उपेक्षा में असमय ही मुक्ति को प्राप्त हो गया। गुप्तकाल के बाद भारतीय कला का सांध्ययुग आता है और उस सांध्ययुग के बाद की सृष्टि है—यह 'बाराह मन्दिर'।

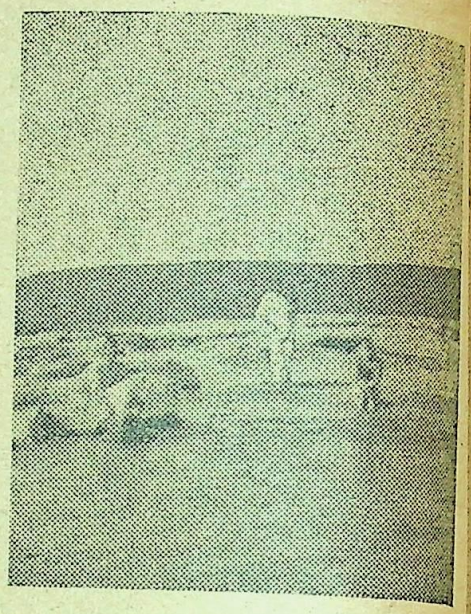

बेतवा की धारा के बीच में

# अग्नि-दीक्षा

श्री देवेन्द्र तिवारी एम० ए०, एल० टी०

अग्नि-दीक्षा का समय है, हे हृदय! पाषाण बन जा!
सुखों के संगीत-वादन, ताल-स्वर सब कुछ भुला दे;
मृदुल प्रेमल बन्धनों की चेतना को विष पिला दे!
स्वजन-जन के मोह-क्रन्दन के लिये निष्प्राण बन जा!

नष्ट कर सब स्वर्ण-सपने, मसल काँच-कुसुम अपने;
तीव्र पीड़ा की कसक सह आँसुओं को रोक पल भर!
आज व्याकुल विश्व के हित शांति का वरदान बन जा!

हो रही क्यों तीव्र धड़कन, है परीक्षा क्यों विकम्पन?
एक पल वीरत्व का या कायरों का कल्प-जीवन?
यज्ञ की आहुति रुकी है त्याग का सुप्रमाण बन जा!

CC-0. Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# प्रेम-योगी सरमद

प्रो० मोहम्मद अहसान फ़ारूक़ी एम० ए०

सरमद इसलाम के एक मशहूर और बहुत बड़े सन्त हुये हैं। शहन्शाह अकबर ने जिस 'मज़हबे इनसानी' (मानव धर्म) की बुनियादें रखीं, जिस हिन्दू-मुसलिम एकता का प्रचार किया और मुख़्तलिफ़ संस्कृतियों को जिस एक हिन्दुस्तानी कल्चर के साँचे में ढाला, कला की दुनिया में उसका सब में सुन्दर प्रदर्शन ताजमहल के रूप में हुआ है। उसी युग में जब हिन्दू-मुसलिम एकता की पुख़्ता बुनियादें पड़ रही थीं एक चमकते हुये सितारे की तरह हिन्दुस्तान के आसमान में ऋषि सरमद का उदय हुआ।

सरमद जन्म से यहूदी थे। इसलाम स्वीकार करने के बाद एक सौदागर की हैसियत से वे एक धनी तिजारती क़ाफ़िले के साथ हिन्दुस्तान आये। सिन्ध में ठट्ठा का शहर उस ज़माने में निकट पूर्व के देशों के साथ हिन्दुस्तान की तिजारत का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। जिन दिनों सरमद ठट्ठा में ठहरे हुये थे उन्हीं दिनों उनकी एक युवक जैन मुनि अभय चन्द के साथ भेंट हुई। अभयचन्द के उपदेशों का उन पर इतना गहरा असर पड़ा कि उन्होंने अपनी तमाम जायदाद ग़रीबों में बाँट दी और स्वयं वस्त्रों तक का परित्याग करके नग्न दिगम्बर मुनि बनकर हिन्दू और जैन शास्त्रों की गहरी छानबीन और खोज करने में लग गये। सरमद बचपन से ही सत्य के खोजी थी। यहूदी धर्म, ईसाई धर्म, इसलाम और ईरान के सूफ़ी धर्म की उन्होंने गहरी विवेचना की थी किन्तु किसी से भी उनकी आत्मा को तृप्ति नहीं मिली थी। भारतीय और जैन-दर्शन के अध्ययन ने सरमद के हृदय में ज्ञान की ज्वाला प्रज्वलित कर दी। वे साकार और निराकार, कुफ़्र और इसलाम, पैग़म्बर और लछमनो-राम का सारा भेद-भाव भूल गये। उनका हृदय प्रेम के धर्म में सराबोर हो गया। वे हैरान होकर ख़ुद अपने से पूछने लगे—

*सरमद बजहां बसे निको नाम शुदी*
*अज़ मज़हबे कुफ़्र सूए इसलाम शुदी*
*आख़िर चे ख़ता दीदी ब अल्लाहो रसूल*
*सरगश्ता मुरीद लछमनो राम शुदी*

अर्थात्—

"सरमद तूने दुनिया में बहुत नाम कमाया, मज़हबे-कुफ़्र छोड़कर इसलाम की तरफ़ आया, आख़िर तूने अल्लाह और रसूल में क्या ख़ता देखी, कि उन्हें छोड़कर राम और लछमन का भक्त हो गया!"

उपरोक्त पंक्तियों के कारण बहुत से रूढ़िवादी मुसलमानों ने सरमद पर मूर्ति पूजक होने का इलज़ाम लगाकर उनकी निन्दा की है और सरमद के बहुत से हिन्दू प्रशंसकों ने उन्हें हिन्दू समझ कर उनकी स्तुति की है। किन्तु असलियत यह है कि वे निन्दा-स्तुति दोनों से बहुत ऊँचे उठ गये थे। हिन्दू धर्म और इसलाम दोनों के बुनियादी उसूल उनके रोम रोम में पैवस्त थे। उन्हें अल्लाह और रसूल में सचमुच कोई ख़ता नहीं दिखाई दी थी क्योंकि उन्होंने सदा रसूल की तारीफ़ ही की है। ऊपर की रुबाई में आज़ादख़याली की वही झलक है जो ईरान के सूफ़ियों और प्रसिद्ध अङ्गरेज़ी कवि शेली की कविताओं में हमें मिलती है। रूढ़ियों में जकड़ी हुई दुनिया जिस चीज़ को धर्म कहती है उसके मुक़ाबले में इन लोगों ने अपने उन्मुक्त मानव धर्म को 'कुफ़्र' कहकर पुकारा है। इनका धर्म रूढ़ियों से बोझिल नहीं, मुक्त-प्रेम का धर्म है। जब मौलवियों ने सरमद पर 'दिगम्बर मुनि' होने का इलज़ाम लगाया तो सरमद ने जवाब दिया—

*शाहे शहानेम ज़ाहिद चूं तो उरियां नेस्तम*
*ज़ौक़ो शौक़े शोरिशम लेकिन परीशां नेस्तम*
*बुतपरस्तम काफ़िरम अज़ अहले ईमां नेस्तम*
*सूए मसजिद मी रवम अम्मा मुसलमां नेस्तम*

अर्थात्—

"ऐ ज़ाहिद मैं राज राजेश्वर हूँ, मैं तेरी तरह नङ्गा नहीं हूँ मैं ज़ौक़, शौक़ और शोरिश हूं, पर तेरी तरह परेशान नहीं हूँ मैं मूर्ति पूजक हूँ, काफ़िर हूँ और ईमान वालों में से नहीं हूं मैं मसजिद की तरफ़ जा रहा हूँ पर मैं मुसलमान नहीं हूं!"

सरमद नङ्गे-भिखमङ्गों के बीच जामा मसजिद की सीढ़ियों को ही अपना घर बनाये हुये थे पर फिर भी रूढ़ि-अर्थों में मुसलमान नहीं थे। वे जामा मसजिद भी अपनी बुतपरस्ती ले जाना चाहते थे।

दिल्ली में युवराज दारा शिकोह ने सरमद का प्रेम पूर्वक स्वागत किया। दारा उनकी "बेहद इज़्ज़त करते थे और "अक्सर इस दिगम्बर मुनि" की सेवा में उपस्थित होते थे।" सरमद और सरमद के मशहूर हिन्दू योगी मित्र लालदास का दारा पर बेइन्तहा असर पड़ा जिसकी बदौलत दारा की नज़रों से हिन्दू और मुसलमान का फ़र्क़ मिट गया और दारा के हृदय से मानव प्रेम की वह धारा फूटी जि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भारत के सामाजिक आकाश को यकरङ्गी बना दिया। दारा ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "मज़मा-उल-बहरैन" ( दो समुद्रों के सङ्गम ) में इसलामी सूफ़ीवाद और वेदान्ती रहस्यवाद का सुन्दर समन्वय किया है। सरमद ने पेशीनगोई की थी कि शाहजहाँ के बाद दारा हिन्दुस्तान का बादशाह होगा पर दारा को तो शहीदों का बादशाह बनना था, भविष्य का मार्ग निर्देशक बनना था और जन्नत का साम्राज्य हासिल करना था। मर्त्यलोक की इस पार्थिव बादशाहत से वह बहुत ऊँचा उठ गया था। काश सरमद की भविष्यवाणी पूरी हो गई होती तो भारत की इन तीन शताब्दियों का इतिहास सुनहले हरफ़ों में लिखा गया होता। भारतीय राष्ट्रीयता ने दारा के पतन के बाद सरमद की शहादत से जो भयङ्कर हानि उठाई उसका तख़मीना आसानी से नहीं लगाया जा सकता। औरङ्गज़ेब ने मुल्लाओं के फ़तवे पर ज़ाहिरा इस बिना पर सरमद को मौत की सज़ा दी कि "वे इसलाम छोड़कर दिगम्बर मुनि हो गये थे" पर वास्तव में दारा के प्रति सरमद का प्रेम ही औरङ्गज़ेब की आंखों में खटक रहा था।

सरमद अनासक्त थे और सच्चे अर्थों में अपरिग्रही थे। जिसने लखूखा रुपयों की जायदाद ग़रीबों में तक़सीम करवा दी हो उसे फिर चार गिरह लँगोटी से कोई ममता रह सकती थी? जिसकी भावनायें बच्चों की तरह निर्मल हो गई हों उसमें कहीं इन्द्रिय-जनित वासनायें बाक़ी रह सकती हैं? जिसने प्रेम का चोला पहन लिया हो क्या उसे फिर वस्त्रों के आवरण की ज़रूरत रह जाती है? सरमद के हृदय में देह-जनित शर्म की कोई गुञ्जाइश ही न रह गई थी और तभी वह औरङ्गज़ेब के सकाल करने पर गर्व के साथ अपने दिगम्बर वेश पर कहते हैं—

*आंकस कि तुरा ताजे जहांबानी दाद*
*मारा हमां असबाबे परीशानी दाद*
*पोशान लिबास हर के रा ऐबे दीद*
*वे ऐबां रा लिबासे उरियानी दाद*

अर्थात्—

"जिसने कि तुझे बादशाहत का ताज बख़्शा
उसी ने हमें परेशानियाँ बख़्शीं;
जिसमें उसने कुछ ऐब देखे उसे वस्त्र पहनाये
और वे ऐबों को उसने निर्वस्त्रता का लिबास दिया।"

यूँ तो सरमद ने इसलाम की प्रशंसा में भी बहुत कुछ कहा है किन्तु उनकी सब से सुन्दर रुबाइयाँ वही हैं जिनमें उन्होंने इसलाम और हिन्दू धर्म का समन्वय किया है। दोनों धर्मों की रूढ़ियों और कर्म काण्डों को छोड़कर उन्होंने दोनों धर्मों के मौलिक तत्त्वों के सम्मिश्रण पर ज़ोर दिया है। इन्हीं तत्त्वों के अन्दर उन्होंने अल्लाह के ज़हूर का दर्शन किया है। अल्लाह की दिखावटी परिस्तिश के बजाय अल्लाह की राह में साधना करने में ही उनका एतक़ाद था। अपनी राह की सचाई में उन्हें इतना असीम विश्वास था कि वे समझते थे कि ईश्वर अपने आप उनकी ख़बर लेगा। वे अपनी एक रुबाई में कहते हैं—

*सरमद अगरश वफ़ास्त ख़ुद मी आयद*
*वर आमदनश बजास्त ख़ुद मी आयद*
*हमवारा चरा दर पए ऊ मीं गर दी*
*सरमद अगर ऊ ख़ुदास्त ख़ुद मी आयद*

अर्थात्—

"ऐ सरमद! अगर उसमें वफ़ा है तो वह ख़ुद आयेगा, और अगर उसका आना उचित है तो वह ख़ुद आयेगा, तुम रात-दिन उसे खोजते क्यों भटकते फिरते हो! ऐ सरमद! अगर वह ख़ुदा है तो वह ख़ुद आयेगा।"

सरमद की इस ऊपर की रुबाई में तमाम धर्म मज़हबों की उत्कृष्टता निचुड़ कर इकट्ठा हो गई है। हिन्दू धर्म का विश्वास है कि भक्त के इशारे पर भगवान नाचते हैं, यही इसलाम की सर्वोच्च स्पिरिट है और ईसाई धर्म की इसी भावना को प्रसिद्ध अङ्गरेज़ रहस्यवादी कवि टामसन ने अपनी पुस्तक "Hound of Heaven" में व्यक्त किया है। अपने अन्दर ही ईश्वरीय इच्छाओं का प्रदर्शन सर्वोच्च धर्म है।

सरमद आदर्शवादी थे। वे सच्चे अर्थों में सर्वधर्म समभावी थे। यदि धर्म महती भावनाओं का नाम है तो वे सर से पैर तक धार्मिक थे। अकबर की तरह उनमें व्यावहारिकता नहीं थी। उनके प्रयत्नों का मूल्य महज़ ऐतिहासिक नहीं है। उनकी क़ीमत आध्यात्मिक है और भारत की साम्प्रदायिक समस्या के हल करने में उनके धार्मिक सिद्धान्तों का आज भी सफलतापूर्वक उपयोग हो सकता है। इस नुक़्ते नज़र से उनके ये दो सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण हैं—

Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(१) उनकी धार्मिक उदारता पन्थों और सम्प्रदायों के झगड़ों से ऊपर उठकर सभी धर्मों में एक समान सचाई के दर्शन करती है। सरमद "एक साथ ही अपने को अग्निपूजक, यहूदी, ईसाई, बुतपरस्त और मुसलमान कहते थे।" उन्होंने सभी धर्मों की मौलिक सच्चाई को देख लिया था।

(२) उन्हें सब धर्म मज़हबों की एकता में विश्वास था। उन्हें ईश्वर की एकता में विश्वास था और वे सब धर्मों में उसी एक ईश्वर का ज़हूर देखते थे।

धर्मों के गोरख धन्धे का विश्लेषण करते हुये सरमद कहते हैं—

*आशिक़ो इश्क़ बुतो बुतगरो अय्यारे कीस्त*
*काबओ दैरो मसजिद हमजा तारीकीस्त*
*गर दर आई ब चमन वहदते यकरङ्गी बीं*
*गौर कुन आशिक़ो माशूक़ो गुलोख़ार यकीस्त*

अर्थात्—

"प्रियतम और प्रेम, मूर्ति और मूर्ति गढ़ने वाला कौन है? काबा, बुतख़ाना और मसजिद सब जगह अँधेरा है! यदि तू ईश्वरीय एकता के चमन में आकर देखे; तो तू पायेगा कि प्रियतम और प्रियतमा, फूल और काँटे सब एक ही हैं।

सरमद का तीसरा विश्वास यह था कि इस सर्वोच्च धर्म तक पहुँचने के लिये रूढ़ियों और परम्पराओं के बन्धनों को तोड़ना ज़रूरी है जो इनसान को अपने सड़े गले मज़हबों से बाँध रखती हैं और इसीलिये वे कहते हैं—

*तर्क करदम चाराहाए जुमला अज़ मावाए ख़ेश*
*नूरे हक़रा दीदा अम अज़ ज़ेर ता बालाए ख़ेश*
*गर तु मी ख़्वाही चुनी हमशौ जुदा अज़ जाए ख़ुद*
*ताबे बीनी मज़हरे हक़ जुम्ला सर ता पाए ख़ेश*

अर्थात्—

"मैं समस्त रूढ़ियों के साथ अपने सम्बन्ध का त्याग करता हूँ; मैं अपने सर से पैर तक सत्य के प्रकाश को देख रहा हूँ; यदि तू मेरी ही तरह हो जाना चाहता है तो अपनी जगह छोड़ दे; ताकि तू सत्य के ज़हूर को मेरी ही तरह देख सके।"

सरमद की चौथी विशेषता यह थी कि सब पैग़म्बरों, अवतारों और सब धर्मों के संस्थापकों के लिये उनके दिल में यकसाँ इज़्ज़त थी। उन्होंने कृष्ण और मोहम्मद, राम और लछमन की यकसाँ तारीफ़ के गीत गाये हैं, क्योंकि इन महापुरुषों ने एक ही सच्चाई का प्रचार किया है। सत्य एक ही है किन्तु वह अलग अलग नाम रूपों में प्रकट हुआ है। वे ढोंगी मुल्लाओं, पुरोहितों, पण्डितों और उपाध्यायों के विरुद्ध थे जो जनता की धार्मिक भावनाओं से अनुचित फ़ायदा उठाते हैं। इनके सम्बन्ध में सरमद कहते हैं—

*यारां चे क़दर राहे दोरङ्गी दारन*
*मसहफ़ ब बग़ल दीने फ़िरङ्गी दारन*
*पैवस्ता बहम चो मोहरहाए शतरञ्ज*
*दर दिल हम फ़िक्र ख़ाना जङ्गी दारन*

अर्थात्—

"यार लोग किस क़दर दोरङ्गी चाल चलते हैं!
बग़ल में क़ुरान है और मज़हब फ़िरङ्गियों का है!
हमेशा शतरञ्ज के मोहरों की तरह
ये लोगों को लड़ाने की तरकीबें सोचते रहते हैं।"

सरमद युग-द्रष्टा थे। उस समय का भारत उनकी शिक्षा पर चलने में असमर्थ था और शायद आज का भारत भी उनकी शिक्षा पर चलने में असमर्थ है, किन्तु प्रेम धर्म के जिन सिद्धान्तों का सरमद प्रतिपादन कर गये हैं उन सिद्धान्तों की पवित्र त्रिवेणी में आज स्नान करके ही मानवता का वास्तविक उद्धार हो सकता है।

[ लेखक के सौजन्य से 'अञ्जलि' से उद्धृत ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मानवता के लिए सुलगती युग-युग की चिनगारी हूँ मैं !

श्री "कुमार हृदय"

तन की गोरी, मन की उजली, यह मेहतर कन्या-अलबेली ;
खड़ी राह पर देख रही है नगर-सेठ की खुली हवेली !

यह टूटा मिट्टी का घर है और पास में बम्पोलस है ;
मैं इस घर में रह सकती हूं—यह मुझ नारी का साहस है ;
नगर-सेठ की कोठी में जब कमी "वेंटिलेशन" की होवे ;
यह मानव-चूहे का बिल तब मेरे रहने भर को बस है !

मुझमें क्या है कमी कि जो मैं झाड़ू पंजा लिये खड़ी हूँ ;
मुझमें क्या है कमी कि जो मैं इतने नीचे गिरी पड़ी हूँ ;
मेरा कौन अभाव शाप बनकर मुझ पर ऐसा छाया है ;
विधि के स्नेह-हार की जो मैं आज तिरस्कृत छिन्न कड़ी हूँ !

एक फटी साड़ी है तन पर, गहने हैं कांसे-पीतल के ;
हाथों में चूड़ियाँ काँच की—पीछे दो दो कड़े निकल के ;
केश-राशि उलझी-उलझी है, चेहरे पर मनसिज सोया है ;
विधि की कोई भूल अजानी सिसक रही है हलके हलके !

मैं हूँ एक कि जिसे काम पर जाना पड़े रोज अंधियारे ;
मैं हूँ एक कि जिसका यौवन मैला ढोये, सड़क बुहारे ;
मैं हूँ एक कि जिसकी क़िस्मत घूरे पर बिसूर कर रोये ;
मैं हूँ एक कि जिसको कोई ममता से "रधिया" न पुकारे !

और दूसरी ओर सेठ की कन्या का है ठाठ निराला ;
तन-जड़े कंचन-गहनों का फैला है जिस पर उजियाला ;
होठों पर मुस्कान-गरल है स्वर में भी सत्ता का विष है ;
डूबे-तैरे-उतराये पीकर धन-दौलत की हाला !

मैं भी तो यौवन-पनघट पर आज खड़ी हूँ गगरी भरने ;
आज अनंग-देव की अपने आई हूँ अगवानी करने ;
नगर-सेठ की युवती-कन्या मुझे हिक़ारत से क्यों देखे ;
मैं अन्त्यज होकर सुंदर हूँ—यही बात क्या लगी अखरने !

अन्त्यज हूँ यह सच है लेकिन यह न भूलिये नारी हूँ मैं ;
स्नेह-सने मीठे बोलों की सम्मानित अधिकारी हूँ मैं ;
इसमें क्या अपमान कि मैं हरिजन होकर सेवा करती हूँ ;
मानवता के लिए सुलगती युग-युग की चिनगारी हूँ मैं !

मैं जग के जूठे भोजन पर जीवन के सपने बुनती हूँ ;
मैं वैभव से परे—शहर से दूर गीत सुख के सुनती हूँ ;
जग के "इस-उस" से क्या मतलब मेरा तो है पन्थ निराला ;
फटा पुराना वस्त्र पहन कर काँटों में साजन चुनती हूँ !

मुझ पर अरे नज़र क्यों डाली ऐसा प्रेम उमड़ क्यों पाया ;
नहीं जानते ? छुआ कि मुझको पाप दौड़ अंगुली पर आया ;
मैं हरिजन हूँ—हटो कि मैं भी अपने हरि से लगन लगाऊँ ;
पास रहूँ मानव-सेवा में मानव-पूजा के गुन गाऊँ !

मैं कुछ कड़वी बात कह सकूँ—यह मेरा अधिकार नहीं है ;
दूर-दूर हट—भले कहो पर यह मानव-व्यवहार नहीं है ;
एक बात की भूखी हूँ मैं—स्नेह-सनी मानव बोली हो ;
देखा मुझे कि नफ़रत जागी—यह मानव-संसार नहीं है !

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भारतीय नृत्य-कला और शान्ति-निकेतन के प्रयोग

श्रीमती प्रतिमा ठाकुर

अति प्राचीन काल में ही भारत में नृत्य-कला परिपूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी और नृत्यके माध्यम द्वारा गहनतम मानव भावनाओं और उन्नत-विचारों को प्रकट किया जाता था। इस बात को बहुत से प्राचीन चित्रों और ख़ासकर अजन्ता और बाघ के भित्ति चित्रों में देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भारत के सांस्कृतिक जीवन में नृत्य-कला का अत्यन्त महत्वपूर्ण और बहुत बड़ा हिस्सा था।

यह जानने के लिये कि भारतीय नृत्य-कला है क्या और उसकी विशेषता को समझने के लिये हमें भारतीय विचार धारा की गति-विधि और उसके झुकावों को पूरी तरह अध्ययन करने की ज़रूरत है। भारतीय मस्तिष्क ने सदा से ही आत्मा की गहनतम समस्याओं को समझने और व्यक्तित्व के रहस्य को हल करने की चेष्टा की है। इसलिये न केवल हमारा दर्शन, बल्कि हमारा समाज, हमारी कला हमारा साहित्य, हमारा संगीत, यहाँ तक कि हमारी आधुनिक राजनीति भी हमारी जाति की आध्यात्मिक विशेषताओं को प्रकट करती है।

देश में तीन प्रकार की प्रतिनिधि भारतीय नृत्य-कला अब तक मौजूद हैं—दक्षिण भारत की नृत्य-कला, उत्तर भारत की नृत्य-कला और मणिपुर की नृत्य-कला। दक्षिण-भारत की नृत्य-कला का प्रारम्भ बहुत प्राचीन काल में हुआ था और उसका प्रभाव सुदूर पूर्व तक के देशों में फैल गया था। जावा, हिन्द-चीन, बर्मा, सिंहल, और चीन, जापान तक की नृत्य-कला पर हमें साफ़ साफ़ दक्षिण-भारत की नृत्य-कला का असर दिखाई देता है। इसी प्रकार से हम बौद्ध कालीन भारतीय भित्तिचित्रों का प्रभाव बोरो बुदुर, अनुरुद्धपुर और सिगरिया में देख सकते हैं।

दक्षिण-भारत की पौराणिक नृत्य-कला छै प्रकार की मानव भावनाओं को प्रकट करती है। इन्हें संस्कृत में हम 'रस' कहते हैं। छै प्रकार के रसों वात्सल्य, श्रंगार, करुण, हास्य, वीर, रौद्र आदि को नृत्य कला में अभिव्यक्त किया गया है।

नृत्य-कला के हमारे प्राचीन ग्रन्थ 'नट-शास्त्र' में विविध प्रकार की सार्व भौमिक भावनाओं का सुन्दर और विस्तृत वर्णन किया गया है। उसमें यह भी लिखा है कि यदि कोई कलाकार अपना जीवन नृत्य-कला को अर्पित करना चाहता है तो उसे कौन कौन सी विशेषतायें अपने अन्दर पैदा करनी चाहियें। इन गुणों में ख़ास ख़ास ये हैं—सुडौल शरीर, गति का ज्ञान, मुद्राओं का ज्ञान और तन्मयता। तन्मयता का यह अर्थ है कि नृत्यकार दुनिया की सारी बातें भूल जाय, वह अपने दर्शकों को आकर्षित करने के प्रलोभन का भी परित्याग करे औ बाह्य-इन्द्रियों और बाह्य-दुनिया से अपने को विमुख करके पूरी तरह अपनी कला के सिरजन में अपने को लगा दे।

दक्षिण-भारत की नृत्य-कला में हाथों की विविध मुद्रायें नाटककार की भावनाओं का प्रदर्शन करती हैं। ये मुद्रायें ही नृत्य की भाषा हैं। दक्षिण-भारत की नृत्यकला जो सम्भवतः भारत की सब में प्राचीन नृत्य-कला है, अपने कथानक महाभारत और रामायण से लेती है। हम इसका दर्शन केरल के "कथा काली' नृत्य में देख सकते हैं। कथा काली नृत्य में नाटक की बहुत सी विशेषतायें प्रस्फुटित हुई हैं। इसमें भुजाओं और बाहुओं का संचालन अन्य भारतीय नृत्यों की तरह वृत्ताकार और फैलाकर नहीं होता बल्कि समकोण में रखकर होता है।

यह अङ्ग-सञ्चालन ताल और गति का अत्यन्त आकर्षक प्रदर्शन करता है और शक्तिशाली तरीक़े से भावनाओं को व्यक्त करता है। शब्द जिस तरह भावों को प्रकट करते हैं यह अङ्ग संचालन भी उसी स्पष्टता से मन की बात प्रकट करता है। मैंने एक दक्षिण भारतीय नर्त्तक को एक ही साथ एक हिरन और एक शिकारी के भावों का अभिनय करते हुये देखा है। जब वह हिरन का अभिनय करता था तो उसकी आत्मा न केवल उस भीतु मृग-छौने में बदल जाती थी बल्कि उसके कान, उसकी आँखें और यहाँ तक कि उसके शरीर का अङ्ग-प्रत्यङ्ग वन में शिकार द्वारा प्राणों के संकट में पड़े हुये मूक उस प्राणी की भयातुर भावना को प्रकट करने लगता था। हिरन का वह इतना सुन्दर और इतना अपूर्व अभिनय करता था कि दर्शक का रोम रोम सिहर उठता था। जो उत्कृष्टता उस हिरन के अभिनय में थी वही उत्कृष्टता उसके शिव ताण्डव-नृत्य के अभिनय में भी थी। उसका शिव का अभिनय दर्शक की कल्पना को इस मर्त्यलोक से बहुत दूर एक अलौकिक जगत में ले जाकर खड़ा कर देता था जहाँ वह सृजन की ऐसी विस्फोटक शक्ति अनुभव करता था जिसे शब्दों में वर्णन कर सकना असम्भव है।

हिन्दुस्तान की पूर्वोत्तर सरहद में मणिपुर की नृ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कला भारत में प्रचलित अन्य नृत्य-कलाओं की अपेक्षा इस दृष्टि से सब में अधिक शुद्ध है कि उस पर किसी प्रकार का विदेशी प्रभाव नहीं पड़ा। इस नृत्य-कला पर वैष्णव धर्म द्वारा प्रभावित बङ्गाल के पौराणिक साहित्य की गीति-मय मधुरता की छाप है। इन नृत्यों में गोपी-वल्लभ कृष्ण के जीवन के विविध पहलुओं का प्रदर्शन किया जाता है।

मणिपुर की जनता कृष्ण की उपासक है। उनकी नृत्य-कला अपने आराध्यदेव के चरणों में समर्पित उनकी नम्र भक्ति की सूचक है। नृत्य के साथ जो संगीत चलता वह 'कीर्तन' कहलाता है। नृत्य द्वारा कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन को व्यक्त किया जाता है। कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम और उस प्रेम के समस्त प्रतिरूपों और लक्षणों की तुलना तौरेत के 'Song of Songs से हो सकती है। इस दिव्य-प्रेम और भक्ति की धारा को दोष-मुक्त रखने के लिये इस प्रकार के नृत्यों को किसी भी तरह के कामुक प्रदर्शन से बचाया जाता है। नर्त्तक को अत्यन्त कड़े प्रतिबन्धों के अन्दर नाचना पड़ता है। उसे अपनी आँखों, भौंहों या हाथों के संचालन की अनुमति नहीं होती। दक्षिण भारत के नृत्यों में जो अभिनय की उत्कृष्टता होती है वह भी इन नृत्यों में नहीं होती। इसके विपरीत मणिपुर के नृत्यों में शारीरिक सौन्दर्य की सूक्ष्म से सूक्ष्म चेतना होती है, वही चेतना जो हमें, पुष्प-गन्ध में, मादक और शीतल रजत कल्पना में, काञ्चन सूर्यास्त में या प्रभात के नीलाकाश में अनुभव होती है। तरङ्गों के प्रकम्पन की तरह नर्त्तक की भाव-रेखायें हमारी आत्मा को बरबस प्रकृति की गोद में खींच ले जाती हैं।

भारतीय नृत्य-कला की तीसरी प्रणाली, जो इन दोनों से भिन्न है और जिसे हम उत्तर-भारतीय नृत्य-प्रणाली कहते हैं, भारतीय और ईरानी नृत्य-कला के सम्मिश्रण से बनी है। ईरानी प्रभाव लेकर यह प्रणाली अकबर के शाही संरक्षण में विकसित होकर उन्नत हुई। यही बात हम मुग़ल चित्रकला के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं, जिसने भारत की पुरानी फ्रेस्को टेकनीक के समन्वय से लघु-चित्रों की एक नई काङ्गड़ा-प्रणाली को जन्म दिया। मुग़ल नृत्य-कला जनता के अन्दर ज़्यादा प्रवेश न पा सकी और 'ग़ज़ल' को आधार बनाकर वह उच्च वर्ग के अन्दर मुजरों में नर्त्तकियों या 'बाइयों' तक ही सीमित रह गई। ताहम इस नृत्य-कला के अन्दर अङ्गों का सुन्दर संचालन, वासना-जन्य-भावनाओं का उत्कृष्ट प्रदर्शन और परिहास का रुचिर अभिनय प्रकट हुआ है।

इन तीन प्रधान नृत्य-प्रणालियों के अतिरिक्त भारत में और कई प्रकार के लोक-नृत्य प्रचलित हैं, किन्तु इनका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। इनका विकास ग्रामीण वातावरण में धरती के भीतर से हुआ है और ये नृत्य जनता के धार्मिक-उत्सवों, मङ्गल-मुहूर्तों, बसन्त, होली या अन्य इसी तरह के अवसरों पर लोक भावनाओं का प्रदर्शन करते हैं। कला की दृष्टि से तो ये लोक-नृत्य बहुत उन्नत नहीं हैं किन्तु जनता की विशेष भावनायें इनके अन्दर सुन्दर अभिव्यक्ति पाती हैं। यदि भारत के दूसरे नृत्य अभिनय-नाट्य की श्रेणी में आते हैं तो ये लोक-नृत्य लोकप्रिय गीतों का प्रदर्शन करते हैं।

हम अपने शान्ति-निकेतन की नृत्यशाला में नृत्यों की उन सब स्थानीय प्रणालियों को जीवित रखने की चेष्टा कर रहे हैं जो संरक्षण के अभाव में बुरी तरह नष्ट होती जा रही हैं।

हमारा पहला काम नृत्य के प्रति लोगों की दिलचस्पी को अधिक बढ़ाना है और ख़ासकर विविध प्रणालियों के टेकनीक का अध्ययन करना है। किन्तु यही सब कुछ नहीं है। हमारे अध्ययन के परिणाम स्वरूप नृत्य की एक नई प्रणाली विकसित हो रही है। परम्परा से जितनी भी प्रणालियाँ चली आ रही हैं उन सब का हम समन्वय कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में हमारे कलाकार, संगीतज्ञ और नर्त्तक पुरानी बुनियादों पर अपने विचारों और अपनी भावनाओं का अभिनव संस्करण कर रहे हैं। यह काम अभी तक प्रयोग की अवस्था में है किन्तु इसमें बहुत बड़ी सम्भावनायें हैं।

अब तक भारत में नृत्यकला या तो कुछ पेशेवर लोगों की चीज़ रही है और या देश के सुदूर भागों मे ढकी छुपी पड़ी रही है। हमने शान्ति निकेतन में नृत्य-कला को अपनी शिक्षा का एक अङ्ग और अपने विद्यार्थियों के कलात्मक जीवन और कलात्मक शिक्षा का महत्वपूर्ण भाग बना दिया है। न केवल विद्यार्थियों को पौराणिक नृत्य की ताल-गति या दुस्तर भावनाओं को व्यक्त करने के लिये नृत्य के नये माध्यम और नये पोज़ ही सिखाये जाते हैं बल्कि ऋतु-उत्सव हमारे यहाँ निश्चित रूप से मनाये जाते हैं जिससे विद्यार्थी को प्रकृति की गति के साथ नृत्य के मौलिक सम्बन्ध का अनुभव सहज भाव से हो जाता है।

---

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# डा० सनयात सेन के "जनता के तीन सिद्धान्त"—(१) "राष्ट्रीयता"

प्रो० कृष्णकिङ्कर सिंह, हिन्दी-अध्यापक, राष्ट्रीय प्राच्य भाषा अध्ययन कालेज, छेङ्कुङ्, कुमिङ् ( चीन )

चीनी प्रजातन्त्र के जनक डा० सनयात सेन के सान् मिन, चु ई—जनता के तीन सिद्धान्त—से संसार के लोग परिचित हैं। चीनी भाषा में इन तीन सिद्धान्तों के नाम यों हैं—मिन्-घु—राष्ट्रीयता, मिन्-छुआन्—गणतन्त्र और मिन्-सङ्—जीविका। ये सिद्धान्त ही आज चीनी राष्ट्र के प्राण हैं। डा० सनयात सेन ने कहा था "जनता के तीन सिद्धान्त से ही चीन का उद्धार होगा क्योंकि इससे चीन अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में, शासन के प्रबन्ध में तथा आर्थिक जीवन में अपना स्थान अन्य राष्ट्रों के समकक्ष बना सकेगा ताकि उसका अस्तित्व स्थायी रूप से बना रह सके।" चीन के लोग अपने देश की भलाई इन्हीं तीन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने में मानते हैं। चीन की एकमात्र राष्ट्रीय संस्था कुओमिनताङ् इन्हीं सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के लिये अपने जन्मकाल से ही प्रयत्नशील है और इसे इस काम में काफ़ी सफलता भी मिली है। गत सात वर्षों से चीन जापान ऐसे शक्तिशाली राष्ट्र से मोर्चा लेने में समर्थ हो रहा है। यह शक्ति उसे इन सिद्धान्तों पर विश्वास करने से ही मिली है।

डा० सनयात सेन ने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन चीन की हालत को अपने सामने रखकर किया था। उनकी नज़रों के सामने चीन का गौरवपूर्ण और उज्वल अतीत था और वर्तमान का अधःपतन तथा भविष्य की डरावनी सम्भावनायें। चीन राष्ट्र किस प्रकार वर्तमान अधःपतन के गर्त से निकलकर भविष्य के ख़तरे से बचे तथा किस प्रकार आधुनिक उन्नतिशील राष्ट्रों के समान होकर अपने अतीत सा उज्वल इतिहास की सृष्टि करे—ये बातें डा० सनयात सेन के मस्तिष्क में बराबर चक्कर काटती रहती थीं। इसलिये उनके प्रतिपादित सिद्धान्तों को समझने के लिये चीन की दशा का चित्र बराबर अपने ध्यान में रखना ठीक होगा। डा० सन् के तीन सिद्धान्तों में से पहिला सिद्धान्त राष्ट्रीयता का है।

डा० सन ने बताया है कि राष्ट्रीयता वह अमूल्य सम्पत्ति है जिससे कोई भी राष्ट्र फलता फूलता है और जिससे उस राष्ट्र में रहने वाली जाति अपना अस्तित्व सदा बनाए रखती है। दूसरे शब्दों में कहें तो राष्ट्रीयता का उद्देश्य राष्ट्र को दूसरे की ग़ुलामी से आज़ाद करना है जिससे वह अपनी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण बनाये रख सके और संसार के अन्य उन्नतिशील राष्ट्रों के समकक्ष अपना स्थान बना सके। उन्होंने बताया है कि संसार में दो प्रकार के राष्ट्र हैं। एक वह राष्ट्र है जिसका निर्माण एक जाति ( race ) के लोगों द्वारा हुआ है और दूसरा वह है जिसका निर्माण कई जातियों के लोगों ने मिलकर किया है। चूंकि डा० सन ने चीन को अपने सामने रखकर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था इसलिये उनका कहना था कि राष्ट्रीयता का सिद्धान्त 'स्टेट के सिद्धान्त" ( Doctrine of the State ) के समान है और यह परिभाषा उन्हीं राष्ट्रों के लिये लागू होती है जिनका निर्माण एक ही जाति के लोगों द्वारा हुआ है। पश्चिमी राष्ट्र इस परिभाषा के अन्दर नहीं आते क्योंकि उन देशों में एक जाति ने कई राष्ट्रों का निर्माण किया है या कई जातियों ने मिलकर एक राष्ट्र बनाया है। यहाँ पर जाति और राष्ट्र के अन्तर को भी समझ लेना ठीक होगा। स्वभावतः जो मानवीय समूह एक साथ संगठित और विकसित होता है वह जाति कहलाता है जबकि शस्त्र शक्ति द्वारा आदमी मनुष्यों के जिस समूह को संगठित करता है वह राष्ट्र कहलाता है। जाति का आधार प्राकृतिक नियम है और राष्ट्र का शस्त्र शक्ति। जाति का निर्माण पाँच प्राकृतिक नियमों—रक्त का सम्बन्ध समान भाषा, समान जीविका, समान धर्म और समान आचार व्यवहार—के आधार पर होता है। राष्ट्र का निर्माण तोप, बन्दूक, फ़ौज और मारकाट के द्वारा किया जाता है। जाति या राष्ट्र के ज़िन्दा रहने का एक ही उपाय है कि उसमें राष्ट्रीयता की भावना रहे।

संसार के नक़्शे से बहुत से प्राचीन सभ्य तथा सुसंस्कृत राष्ट्रों के नाम उठ गये हैं। बहुत सी प्राचीन जातियाँ नष्ट हो गई हैं। उनके नाश होने के कारण को ढूंढें तो साफ़ साफ़ पता चलेगा कि उन जातियों या राष्ट्रों में राष्ट्रीयता की भावना का अभाव था। जिन राष्ट्रों से राष्ट्रीयता की भावना लोप होती है वहां पर तीन प्रकार की आपदायें टूटती हैं और ये तीन आपदायें ही समय के दौरान में राष्ट्र को मिटा देती हैं। इन तीन आपदाओं में एक प्राकृतिक और दो मानवीय हैं। यह प्राकृतिक आपद जनसंख्या की समस्या है। डा० सनयात सेन ने कहा है कि कोई राष्ट्र जिसकी जनसंख्या नहीं बढ़ रही है अगर बहुसंख्यक राष्ट्र के अधीन हो जाए तो प्राकृतिक नियमानुसार बड़ी संख्या द्वारा अपने में घुला मिला लिया जाता है। अमेरिका के रेड इण्डियन इसके प्रयक्ष प्रमाण हैं। इसलिये राष्ट्र या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जाति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये जनसंख्या में वृद्धि करना बहुत आवश्यक है। डा० सनयात सेन ने मॉलथ्यू के जनसंख्या कम करने के सिद्धान्त की कटु आलोचना की है और उन्होंने बताया है कि किस प्रकार उस सिद्धान्त को मानने के कारण फ्रांस की जनसंख्या में भीषण ह्रास हुआ और अन्त में जनसंख्या की कमी की भयङ्कर समस्या को अनुभव कर किस प्रकार फ्रांस को अपनी नीति बदलनी पड़ी। अगर कोई बहु जनसंख्यक राष्ट्र अपनी बड़ी जनसंख्या के गर्व से फूल कर यह सोचता है कि उसे अल्प जन संख्यक राष्ट्र से जनसंख्या सम्बन्धी कोई ख़तरा नहीं है और इस कारण वह अपनी जनसंख्या में वृद्धि नहीं करना चाहता है तो यह ख़याल पूर्णरूप से भ्रामक है। डा० सन ने बताया है कि गत १०० वर्षों में अल्प जनसंख्या वाले शक्तिशाली राष्ट्रों में जिस रफ़्तार से जनसंख्या की वृद्धि हुई है अगर यही रफ़्तार बनी रही तो आने वाले एक सौ वर्षों में उन राष्ट्रों की जनसंख्या आज के सब से बड़ी जनसंख्या वाले राष्ट्र से भी कई गुणा अधिक बढ़ जाएगी और उस समय प्राकृतिक नियम के अनुसार आज की बड़ी जनसंख्या वाले राष्ट्रों को कल बड़े हो जाने वाले राष्ट्रों के पेट में समा जाना पड़ेगा। इसलिये संसार के अन्य देशों में जिस अनुपात से जनसंख्या की वृद्धि होती हो उसी अनुपात में जनसंख्या की वृद्धि करना राष्ट्र का एक प्रधान कर्तव्य होना चाहिए—अगर राष्ट्र अपनी सत्ता तथा स्थिति बनाये रखना चाहता है। परन्तु जनसंख्या की समस्या एक ऐसी आपद है जिसका प्रभाव बहुत धीरे धीरे और लम्बे समय के बाद ज्ञात होता है। पर दो मानवीय आपद् राजनैतिक और आर्थिक प्रभुत्व—जनसंख्या वाली आपद से कहीं अधिक भयङ्कर और द्रुतगामी हैं। ये राजनैतिक और आर्थिक प्रभुत्व एक दूसरे के ऊपर निर्भर करते हैं। एक के कमज़ोर पड़ने पर दूसरा उसकी सहायता करता है। इन दो प्रभुत्वों का सिक्का किसी भी राष्ट्र पर जम जाने से शोषण का दौर बराबर चलता रहता है।

किसी राष्ट्र के नष्ट होने का दूसरा कारण उस राष्ट्र पर दूसरे राष्ट्र का राजनैतिक प्रभुत्व क़ायम हो जाना है। अगर कमज़ोर राष्ट्र पर दूसरे शक्तिशाली राष्ट्र का राजनैतिक प्रभुत्व जम जाता है तो विजेता विजित जनता के दिलों में राष्ट्रीय भावना को उदय नहीं होने देता है। वह बराबर इस बात की चेष्टा करता है कि विजित राष्ट्र उसका सदा गुलाम बना रहे ताकि उसे शोषण करने का अवसर मिलता रहे। राजनैतिक प्रभुत्व दो तरीक़े से स्थापित होता है। पहिला सैनिक कार्रवाइयों से और दूसरा कूटनीति से। सैनिक कार्रवाइयों में तोप तलवार, हवाई जहाज़, नौ सेना आदि की शक्ति सम्मिलित है, पर कूटनीति में केवल काग़ज़, क़लम की आवश्यकता होती है। दोनों शक्तियाँ कमज़ोर और राष्ट्रीय भावनाओं से हीन राष्ट्रों पर चलती हैं। पश्चिमी राष्ट्रों ने नये नये हथियारों का आविष्कार किया और राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत होकर संसार के सब हिस्सों पर अपना झण्डा फहरा दिया। जिन राष्ट्रों में राष्ट्रीयता की भावना नहीं थी और इस कारण कमज़ोर हो गये थे उन्हें इन पश्चिमी राष्ट्रों के सामने झुकना पड़ा। पर यह सैनिक शक्ति तो एक ऐसी चीज़ है जिसका मुक़ाबला कमज़ोर राष्ट्र भी कुछ अंशों तक कर सकता है पर कूटनीति की चाल सैनिक शक्ति से भी भयङ्कर है। कुछ राष्ट्रों के प्रतिनिधि लोग एक जगह इकट्ठे होकर किसी भी कमज़ोर राष्ट्र के सम्बन्ध में अपने मनोनुकूल नीति निर्धारित कर सकते हैं और नीति पत्र पर हस्ताक्षर होते होते उधर कमज़ोर राष्ट्र का पतन प्रारम्भ हो जाता है। यह काग़ज़ क़लम की लड़ाई तोप बन्दूक की भी लड़ाई से अधिक घातक है। इसमें कमज़ोर राष्ट्रों को कुछ करते नहीं बनता और शिर झुका कर सभी बातें स्वीकार करनी पड़ती हैं। परन्तु राजनैतिक प्रभुत्व की हानि आँखों के सामने देखने में आती है। आपद आने पर मनुष्य जब उसका कारण जान जाता है तो उसका उपाय भी ढूंढ़ने लगता है। राजनैतिक प्रभुत्व इसी प्रकार की आपद है जिसे साधारण श्रेणी के लोग भी थोड़े दिनों के बाद जान जाते हैं और उसे मिटाने को उत्साहित होते हैं। परन्तु तीसरी आपद्—आर्थिक प्रभुत्व—एक ऐसी बला है जो बुद्धिमान लोगों के भी देखने और समझने में जल्दी नहीं आती है, साधारण श्रेणी के लोगों का क्या पूछना।

राष्ट्र को छिन्न भिन्न करने में आर्थिक प्रभुत्व राजनैतिक प्रभुत्व से भी कहीं अधिक तेज़ी से काम करता है। चूंकि यह बुद्धिमान लोगों के भी देखने और समझने में जल्दी नहीं आता इसलिये इसके मार्ग में रुकावट भी नहीं होती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि राजनैतिक और आर्थिक प्रभुत्व एक दूसरे के ऊपर निर्भर करता है इसलिये आज का शक्तिशाली राष्ट्र किसी भी राष्ट्र पर जब दख़ल जमाता है तो इन दोनों शक्तियों का दबाव डालता है। ताकि एक के किसी कारण से कमज़ोर होने पर दूसरी उसकी सहायता करे। आर्थिक प्रभुत्व कई प्रकार से स्थापित किया जाता है और इसमें राजनैतिक प्रभुत्व की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बराबर सहायता ली जाती है। पहिला तरीक़ा है विजित राष्ट्र को अपने तैयार माल का बाज़ार बनाना और सस्ते दामों में वहाँ का कच्चा माल ख़रीदना। विजेता राजनैतिक शक्ति के द्वारा विजित राष्ट्र के ज़कात और चुंगी पर अधिकार कर देशी माल पर अधिक कर बैठाता है और अपने माल पर कम। जिसके फलस्वरूप विदेशी माल देशी माल की अपेक्षा सस्ता पड़ता है और लोग सस्ता माल ख़रीदने की ओर झुकते हैं। देशी उद्योग धन्धे न पनप सकते हैं और न देशी माल विदेशी माल की प्रतियोगिता में ठहर ही सकता है। इस प्रकार करोड़ों की सम्पत्ति प्रति वर्ष विदेशों को जाती है—पर साधारण लोग इसे जान नहीं पाते। दूसरा तरीक़ा विदेशी बैङ्क हैं। जब राष्ट्र दूसरे के अधीन हो जाता है और उसकी राष्ट्रीय भावना मर जाती है तो वहाँ के लोगों को अपने आप पर भी विश्वास नहीं होता है। किसी भी देशी चीज़ पर, चाहे वह विदेशी चीज़ से कितनी भी अच्छी और विश्वसनीय क्यों न हो, लोगों को विश्वास नहीं होता है। विजेता विजित राष्ट्रों में अपने बैङ्क की स्थापना करता है और उपरोक्त कथित मनोवृत्ति के कारण जनता अपनी रक़म देशी बैङ्कों में न जमा कर विदेशी बैङ्कों में जमा करती है। रुपये की हुंडी एक जगह से दूसरी जगह भेजने में विदेशी बैङ्कों के ज़रिये ही विनिमय करती है। अगर विदेशी बैङ्क काग़ज़ी मुद्रा प्रचार करते हैं तो देशी चाँदी के सिक्के से भी लोग उस पर अधिक विश्वास करते हैं। शोषण के ये तरीक़े लोगों की समझ में एकदम नहीं आते हैं और विदेशी बैङ्क थोड़ी पूंजी लगाकर और राष्ट्रीय भावना हीन लोगों की मनोवृत्ति से फ़ायदा उठाकर उन्हीं के पैसे से मालामाल होते हैं। तीसरा तरीक़ा विजित राष्ट्रों के उद्योग धन्धे का नाश करना है। जैसा ऊपर कहा गया है विजेता अधीनस्थ देशों के उद्योग धन्धे को, राष्ट्र की चुंगी तथा ज़कात पर अधिकार कर नहीं पनपने देता जिसके फलस्वरूप उन्हें काफ़ी कच्चा माल सस्ते में मिल जाता है और उसे वे अपने देश में लेजाकर और माल तैयार कर पुनः विजित राष्ट्रों में भेजते और काफ़ी मुनाफ़ा कमाते हैं। इसका एक और भी पहलू है। चूँकि विजित राष्ट्र तो बराबर विजेता की दया पर निर्भर रहता है और विजेता किसी प्रकार का कारबार विजित राष्ट्रों में नहीं पनपने देता इसलिये अक्सर आयात निर्यात के लिये विजित राष्ट्रों को विदेशी जहाज़ी कम्पनी पर ही निर्भर रहना पड़ता है। विदेशी कम्पनी यह जानकर कि उसकी प्रतियोगिता करने वाली कोई देशी कम्पनी नहीं है, आयात निर्यात माल पर मनमाना किराया चार्ज करता है। इस तरीक़े से भी राष्ट्र की सम्पत्ति बाहर जाती है। फिर विजेता अपने देश के आदमियों और कम्पनियों को खानगी तौर पर विजित राष्ट्रों में कारबार करने के लिये काफ़ी सहूलियतें देते हैं जो देशी कम्पनियों या आदमियों को नहीं प्राप्त होती। जिसके फलस्वरूप विदेशी आदमियों का व्यापार अधिक फूलने फलने लगता है और वे विजित देश से लाखों का मुनाफ़ा अपने देश को भेजते हैं। इनके अलावा और भी कितने प्रकार के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष तरीक़े विजित राष्ट्र का आर्थिक शोषण करने के लिये लागू किये जाते हैं। विजित राष्ट्र को निर्धन बनाने के ये तरीक़े इतने सूक्ष्म और बारीक हैं कि साधारण लोग न इन्हें देख सकते और न समझ। इसलिये राजनैतिक दबाव को देखकर जहाँ लोग उसे उतार फेंकने को उतारू हो जाते हैं वहाँ दबाव से भी अधिक भयङ्कर आर्थिक दबाव को नहीं देखने तथा समझने के कारण उनके माथे पर शिकन भी नहीं आती है। जिसके फलस्वरूप राष्ट्र निर्धन और कमज़ोर होता जाता है। उसकी हालत दिवालिये के समान हो जाती है। देश में बेकारी बढ़ जाती है और लोगों को जीविका उपार्जन करने में भयङ्कर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उपरोक्त तीन आपदायें जो क्रमशः एक दूसरे से अधिक भयङ्कर हैं राष्ट्र को खोखला बना देती हैं और उसकी राष्ट्रीय भावना मिटा देती हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो जिन राष्ट्रों में राष्ट्रीय भावना का अभाव होता है वहां ही ये तीनों आपदायें अपना प्रभाव जमाना प्रारम्भ करती हैं।

उपरोक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय भावना हीन राष्ट्र किस प्रकार दूसरे शक्तिशाली राष्ट्रों के राजनैतिक और आर्थिक प्रभुत्व के नीचे आ जाता है और साथ साथ किस प्रकार उसे दूसरी जातियों की बढ़ती हुई जनसंख्या का डर लगा रहता है। इससे यह भी साफ़ हो जाता है कि राष्ट्र और जाति के अस्तित्व के लिये राष्ट्रीयता कितनी ज़रूरी है, पर कुछ लोग इसे संकुचित सिद्धान्त कहते हैं और राष्ट्रीयता के बदले विश्वबन्धुत्ववाद सिद्धान्त की वकालत करते हैं। विश्वबन्धुत्ववाद का सिद्धान्त जैसा कि इसके अर्थ से ही विदित होता है, अत्यन्त ही उत्तम सिद्धान्त है और सम्पूर्ण संसार में इसका प्रचार हो, इसमें दो मत नहीं हो सकते। परन्तु सब से सत्य बात यह है कि विश्वबन्धुत्ववाद कमज़ोर राष्ट्रों का सिद्धान्त नहीं है। विश्वबन्धुत्ववाद का सिद्धान्त दो बराबर दर्जे के राष्ट्रों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लागू हो सकता है। जिस संसार में एक ओर शोषक हों और एक ओर शोषित, एक ओर शक्तिशाली हों और एक ओर निर्बल—उस संसार में विश्वबन्धुत्व से काम नहीं चल सकता और न इसका सफल प्रयोग ही हो सकता है। आज के जो शक्तिशाली राष्ट्र विश्वबन्धुत्व का राग अलापते हैं अगर उन्हें कमज़ोर राष्ट्रों के ऊपर से अपना शोषण हटाने की बात कही जाती है तो वे बगलें झांकने लगते हैं। असल बात यह है कि जब शक्तिशाली राष्ट्र अपना साम्राज्य काफ़ी विस्तार कर लेता है तब उसे यह भी डर होता है कि कहीं साम्राज्य टूटने न लगे। अपनी इस सत्ता को बनाये रखने के लिये वह विश्वबन्धुत्ववाद की वकालत प्रारम्भ करता है क्योंकि उसे डर होता है कि राष्ट्रीयता की भावना उसके राजनैतिक और आर्थिक प्रभुत्व की पोल खोल देगी तथा उसके साम्राज्य को नष्ट भी कर देगी। संसार में सच्चा विश्वबन्धुत्ववाद तब तक नहीं हो सकता जब तक हर राष्ट्र में राष्ट्रीयता की भावना न हो और वह स्वतन्त्र होकर अपनी काफ़ी उन्नति न कर ले। पहिले राष्ट्रीयता की भावना होनी चाहिए, पुनः राष्ट्र का संगठन होना चाहिए और संगठित शक्तिशाली राष्ट्रों को कमज़ोर राष्ट्रों को उठाने में मदद करनी चाहिए तथा अन्याय का विरोध करना चाहिए। अन्याय के समाप्त होने पर ही विश्वबन्धुत्व क़ायम हो सकता है। डा० सन् ने कहा है कि "राष्ट्रीयता से ही विश्वबन्धुत्ववाद का जन्म होता है, इसलिये अगर विश्वबन्धुत्ववाद को क़ायम करना है तो पहिले राष्ट्रीयता की भावना को मज़बूत बनाना चाहिए। अगर राष्ट्रीयता की भावना दृढ़ नहीं होती है तो विश्वबन्धुत्व वाद कभी फल-फल नहीं सकता है।"···यूरोप के लोग जिस विश्व-बन्धुत्ववाद की वकालत करते हैं वास्तव में वह शक्ति द्वारा अनुमोदित बिना न्याय का सिद्धान्त है। उन लोगों की समझ में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली नीति ही न्याय है। असल में सन्तोष रूपी नैतिकता ही विश्वबन्धुत्व की असली भावना है। यह भावना राष्ट्रीयता के आधार पर ही क़ायम की जा सकती है। नींव पड़ जाने से उस पर दीवार निर्माण करना कठिन नहीं होता है। इसलिये विश्वबन्धुत्ववाद की दीवार निर्माण करने के लिये पहिले राष्ट्रीयता की नींव ज़रूरी है। जो संसार में शान्ति स्थापित करना चाहता है उसे पहिले अपने राष्ट्र में ही शांति स्थापित करनी चाहिये। विश्वबन्धुत्ववाद के सम्बन्ध में डा० सन् ने यह भी बताया है कि राष्ट्रीयता के बिना विश्वबन्धुत्व वाद का सिद्धान्त राष्ट्र को ख़तरे में डाल देता है। उन्नतिशील तथा शक्तिशाली राष्ट्र भी अगर राष्ट्रीयता को छोड़ विश्वबन्धुत्ववाद की ओर बढ़ता है तो विश्वबन्धुत्ववाद अपनाने की अपेक्षा वह स्वयं नष्ट हो जाता है। विश्वबन्धुत्ववाद के लगातार प्रचार से शक्तिशाली राष्ट्रों की जनता के दिमाग़ तथा दिल से भी राष्ट्रीयता की भावना मिट जाती है और वह विश्वबन्धुत्ववाद में इतना सराबोर हो जाता है कि मित्र और शत्रु के अन्तर को नहीं जान सकता है। जिसके फलस्वरूप दूसरे शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा देश पर आक्रमण करने से उस राष्ट्र की जनता में विरोध की भावना नहीं रहती है और वह आक्रमक राष्ट्र का स्वागत भाई के समान करता है। हालत यह होती है कि थोड़े दिनों के अन्दर ही वह आक्रमक राष्ट्रों के राजनैतिक और आर्थिक दबाव के नीचे कराह कराह कर करवट बदलने लगता है। इसलिये राष्ट्रीयता विहीन विश्व-बन्धुत्ववाद अपनाना अपनी मृत्यु स्वयं बुलाना है।

पर राष्ट्रीयता प्राप्त करने का उपाय क्या है? डा० सनयात सेन ने कहा है कि पहिला उपाय परिस्थिति का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना है। अगर देश की जनता इस बात को अच्छी तरह समझ जाती है कि कि राष्ट्रीयता के अभाव में किस प्रकार राष्ट्र दूसरे शक्तिशाली राष्ट्र या राष्ट्रों के राजनैतिक और आर्थिक प्रभुत्व के नीचे तबाह हो रहा है तथा उसके सभी दुःख दैन्य की जड़ राष्ट्रीयता की भावना का नहीं होना ही है तो वह निश्चय ही एक बार कमर कस कर संकट को मिटाने के लिये तैयार हो जायगी। डा० सन का एक प्रमुख मत यह भी है कि "समझना कठिन है पर करना सहल है।" अगर राष्ट्र के लोग अच्छी तरह राष्ट्रीयता के फ़ायदे और उसके अभाव में होनेवाले ख़तरे को ठीक ठीक जान जाते और समझ लेते हैं तो फिर उनका संगठन करना, उनमें राष्ट्रीयता की भावना भरना आसान है। इसलिये राष्ट्रीयता प्राप्त करने के लिये जनता की वास्तविक परिस्थिति से परिचय कराना पहला कर्तव्य है। इसके बाद दूसरा काम सङ्गठन का है। डा० सनयात सेन के अनुसार अगर राष्ट्र में किसी भी प्रकार का सामाजिक संगठन है और जिसके प्रति लोग आकर्षित होते हैं तो संगठन करने का आधार उसी सामाजिक संगठन को बनाना चाहिए। चीन का उदाहरण पेश करते हुए उन्होंने कहा है कि चीन की जनसंख्या ४० करोड़ है और अगर हर आदमी को इकाई मानकर संगठन करना प्रारम्भ किया जाय तो यह बहुत ही बड़ा कठिन कार्य होगा और समय भी अधिक लगेगा, तब पूरी सफलता भी नहीं मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इसके विपरीत चीन में लोगों को अपने कुल के प्रति बड़ी श्रद्धा भक्ति है। चीन में कुलों की संख्या ४०० के लगभग है। अगर इन कुलों को इकाई मानकर संगठन प्रारम्भ किया जाय तो चार सौ आदमियों के संगठन करने के समान होगा। चूंकि जनता को अपने कुल के प्रति श्रद्धा है इसलिये वे अपने कुल के झंडे के नीचे संगठित होंगे। जब सभी कुलों का संगठन पूरा हो जायगा तो उनके सामने यह वास्तविक बात रखी जायगी कि किस प्रकार राष्ट्रीयता के अभाव में कुलों के नाश हो जाने की सम्भावना है। इसलिये कुल की रक्षा के लिये सभी कुलों को एक में संगठित होकर राष्ट्रीयता की भावना अपनानी चाहिए। चूंकि कुलों के नाश की बात चीन का कोई आदमी बर्दाश्त नहीं कर सकता इसलिये वे सब के सब एक राष्ट्रीय झंडे के नीचे आ जाएंगे। इसके बाद 'भूखा क्या नहीं करता' वाले सिद्धान्त के अनुसार वे अपनी सारी शक्ति अपने प्रति होने वाले अन्याय के विरुद्ध लगा देंगे। पश्चिमी राष्ट्रों में राष्ट्र और व्यक्ति के बीच कोई सामाजिक इकाई नहीं है जिसे आधार मानकर वहाँ संगठन किया जाता। परन्तु जिस देश में ऐसी सामाजिक इकाई है वहाँ इसे आधार मानकर ही संगठन करना आसान होता है। फिर इससे दो फ़ायदे हैं। पहिला यह कि इन सामाजिक इकाइयों के आपसी झगड़ों को विदेशी शक्ति के विरुद्ध लड़ने में परिणित कर गृह-युद्ध से देश को बचाया जा सकता है। दूसरा यह कि जनता को इस सामाजिक सङ्गठन के नाश होने का डर दिखा कर उन्हें राष्ट्र की महान् शक्ति के रूप में सङ्गठित किया जा सकता है। डा० सन् का कहना है कि बहु-संख्यक देशों में सामाजिक इकाई को आधार मानकर ही सङ्गठन प्रारम्भ करना चाहिए। इस प्रकार का सङ्गठन हो जाने के बाद विदेशी शक्तियों का विरोध करना आसान होगा। उन्होने विरोध करने के दो तरीक़े बताए हैं—एक क्रियात्मक और दूसरा निषेधात्मक। क्रियात्मक तरीक़ा है जनता में राष्ट्रीयता की भावना भरना, गणतंत्र और जीविका की समस्या का हल निकालना तथा शक्तिशालियों से लोहा लेना। निषेधात्मक तरीक़े में सभी प्रकार की विदेशी चीज़ों तथा कामों से असहयोग तथा निष्क्रिय विरोध करना सम्मिलित है। इन तरीक़ों को काम में लाने से विदेशी राष्ट्र के प्रभुत्व की जड़ कमज़ोर पड़ जाती है और राष्ट्र की स्थिति सुधरने लगती है। संक्षेप में, लोगों को राष्ट्रीयता के अभाव में उत्पन्न हुई वास्तविक परिस्थिति कराके, विदेशी प्रभुत्व का सभी तरह से विरोध करने के लिये उन्हें संगठित करना ही राष्ट्रीयता प्राप्त करने का तरीक़ा है। डा० सन ने कहा है "संगठन हो जाने पर चाहे विदेशी राष्ट्रों का राजनैतिक, आर्थिक या जनसंख्या सम्बन्धी कितना भी दबाव क्यों न पड़ता हो, राष्ट्र फूलता फलता रहेगा।"

लेकिन राष्ट्रीयता की प्राप्ति हो जाने से ही सब काम पूरा नहीं हो जाता है। संसार के बड़े बड़े राष्ट्र जो एक दिन राष्ट्रीयता के कारण उच्च शिखर पर पहुँचे हुए थे, आज उनका नाम निशान तक नहीं मिलता। राष्ट्रीयता को चिर-स्थायी रूप देने तथा राष्ट्र की स्थिति को ऊँचा उठाने के लिये कुछ दूसरी चीज़ों की ज़रूरत होती है। उन चीज़ों के अभाव में न राष्ट्रीयता ही टिक सकती है न राष्ट्र की स्थिति ही दृढ़ रह सकती है। राष्ट्र की स्थिति को दृढ़ रखने के लिये सैनिक शक्ति की ज़रूरत होती है पर अकेले सैनिक शक्ति राष्ट्र के सम्मान को न ऊँचा उठा सकती है न उसे चिरस्थायी ही रख सकती है। राष्ट्र के सम्मान को बढ़ाने के लिये नैतिक चरित्र की आवश्यकता होती है। नैतिक चरित्रहीन राष्ट्र, चाहे उसकी सैनिक शक्ति कितनी भी बड़ी क्यों न हो, वहां के लोग राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत ही क्यों न हों, स्थायी नहीं रह सकता है। उसका पतन निश्चित है। इसलिये राष्ट्रीयता को स्थायी रखने के लिये राष्ट्र की जनता का नैतिक चरित्र उच्च होना चाहिए। नैतिक चरित्र के साथ साथ लोगों को अपने राष्ट्र की प्राचीन विद्या की अच्छी बातें भी अपनानी चाहिएं। जोश में आकर बिना अच्छी तरह मनन किये परम्परा से प्राप्त अच्छी चीज़ों को भी छोड़ बैठना अपने पांव पर स्वयं कुल्हाड़ी चलाना है। हर देश की कुछ ख़ास अपनी परिस्थितियां होती हैं। अगर कोई देश परम्परा से प्राप्त सभी अच्छी बुरी चीज़ों को छोड़ दूसरे देश की नक़ल आंख मूँद कर करता है तो यह बहुत सम्भव है कि नक़ल की हुई बातें देश की परिस्थिति के अनुकूल न पड़ें। ऐसी हालत में हानि छोड़ फ़ायदा नहीं हो सकता। राष्ट्र की इज़्ज़त उस राष्ट्र में रहने वाले लोगों के कामों से होती है। अगर व्यक्ति ही अच्छा नहीं हुआ तो राष्ट्र का सम्मान क्या बढ़ेगा? इसलिये राष्ट्र के हर व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत जीवन के रहन सहन में अनुशासन पालन करना चाहिए। उसे प्रतिदिन की छोटी से छोटी आदतों पर भी ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार से अनुशासित व्यक्ति और फिर उनका समूह ही राष्ट्र की इज़्ज़त को बढ़ाता है। एक बात और है जिसका सम्बन्ध सीधे मनोविज्ञान से है। वह है—अ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शक्ति में विश्वास करना। कोई भी राष्ट्र उन्नतिशील नहीं हो सकता अगर उसमें रहने वाले लोग यह समझते हैं कि अमुक काम उनकी शक्ति के बाहर है। साहस करना और अपनी शक्ति पर विश्वास कर कार्य में जुट जाना ही सफलता की सीढ़ी है। इसलिये राष्ट्र के चरित्र में इस गुण का विकास भी आवश्यक है। उपरोक्त सभी बातों के साथ साथ राष्ट्र के लोगों को इस बात के लिये भी अपनी आंख और दिमाग़ खुला रखना चाहिए कि वे अन्य राष्ट्रों की अच्छी चीज़ों को अपनाएँ। इस वैज्ञानिक युग में जो राष्ट्र उन्नति में पिछड़ा है उसे वैज्ञानिक साधनों से पूर्ण राष्ट्रों की सब से अच्छी और नई से नई बातें अपनानी चाहिएँ। किसी राष्ट्र को अगर दूसरे किसी राष्ट्र से कुछ सीखना है तो उसे नवीन से नवीन बातों को सीखना चाहिए। पुरानी चीज़ों को अपनाकर प्रारम्भ करने से उसे उन्नति करने में बहुत वर्ष लग जाएँगे। नवीन चीज़ों को सीखने से लाभ भी अधिक होगा और समय भी कम लगेगा। संक्षेप में, राष्ट्रीयता की भावना प्राप्त करने के साथ साथ नैतिक चरित्र का विकास करना, प्राचीन विद्याओं की अच्छाइयों को न भुलाना, व्यक्तिगत जीवन के रहन सहन में अनुशासन लाना, अपनी शक्ति पर विश्वास कर कार्य में दत्तचित्त होना तथा दूसरे देशों की सब से अच्छी और नवीन से नवीन चीज़ों को अपनाना ही राष्ट्रीयता को चिरस्थायी रखने तथा राष्ट्रीय सम्मान को ऊँचा उठाने का तरीक़ा है।

पर क्या राष्ट्रीयता प्राप्त कर लेना और राष्ट्र सम्मान को ऊँचा उठा देना भर ही यथेष्ट है? इन गुणों से पूर्ण बहुत से राष्ट्र इस समय संसार में हैं। राष्ट्रों से संसार में भलाई के बदले बुराई ही अधिक रही है। राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय सम्मान को प्राप्त शक्तिशाली राष्ट्र कमज़ोर राष्ट्रों का शोषण कर रहे। राष्ट्रीयता का उपयोग साम्राज्यवाद क़ायम करने में किया गया है। इस प्रकार राष्ट्रीयता से किसी ख़ास राष्ट्र का भले ही लाभ हो पर असल में वह संसार के लिये दुःखदायी ही सिद्ध हो रही है। डा० सनयात सेन ने कहा है कि राष्ट्रीयता प्राप्त करने के पहिले राष्ट्र को अपनी नीति साफ़ साफ़ निर्धारित कर लेनी चाहिए। यह नीति होनी चाहिए—'कमज़ोरों को बचाना और गिरों को उठाना'। इस नीति के आधार पर जो राष्ट्र अपने यहाँ राष्ट्रीयता की भावना जागृत करेगा वह राष्ट्रीयता का उपयोग मानव जाति के प्रति होने वाले अन्याय के विरुद्ध प्रयोग करेगा। वह स्वयं मज़बूत होकर केवल अपने ऊपर के राजनैतिक और आर्थिक दबाव को ही नहीं उतार फेंकेगा बल्कि निर्बल और छोटे राष्ट्रों को सताये जाते देख उसके विरुद्ध आवाज़ उठायेगा। इस नीति पर जागृत की गई राष्ट्रीयता संसार में समानता और बन्धुत्व की स्थापना करेगी ताकि कराहता और करवट बदलता हुआ संसार सुख और शान्ति की सांस ले सके। ( क्रमशः )

# बन्दी और बसन्त

श्री रामावतार यादव 'शक्र'

आज की ऊषा मंदिर रस-लीन!
कूक कोयल की सुनाता आज!
आ गया क्या लोक में ऋतु राज?
हाय, मेरा विश्व ही है और!
है जहाँ दुख-दर्द ही हर ठौर!
बस यहाँ पर आंसुओं का पर्व!
जेल को हरदम इसी पर गर्व!
और बाहर छा गया मधुमास!
खिल रहा होगा चतुर्दिक हास!
कूक है यह, या कि कोई व्यंग्य?
सुन पड़ी जो आज आधी रात!
चक्षुओं में उमड़ती बरसात!
और मैं कुछ सोचता सुधि-हीन!
आज की ऊषा मंदिर रस-लीन!

है यहाँ भी नीम का वह पेड़!
फूल जिसमें आ रहे इस बेर!
जब कभी पश्चिम पवन का ज़ोर!
सुरभि छा जाती तभी इस ओर!
और मैं इन सीखचों में बन्द!
तड़प उठता हूँ लिए दुख द्वन्द!
गा रही 'गुन-गुन' मधुप की भीड़!
जाग जाती है हृदय की पीर!

विकल मैं स्मृतियां लिए तब मौन—
सोचता—'मुझमें छिपा है कौन'?

याद आ जाती पुरानी बात!
विकल करती फिर पिकी की टेर!
है यहाँ भी नीम का वह पेड़!

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कांग्रेस किसान-मज़दूरों का राज चाहती है

श्री शङ्कर गणपत राव कोकणे

८ अगस्त सन् १९४२ का दिन कांग्रेस के इतिहास में कई कारणों से एक युग-प्रवर्त्तक दिन है। जबकि 'क्विट इण्डिया' के नारे ने देश को ओर से छोर तक हिला दिया, प्रस्ताव का एक इतना ही क्रान्तिकारी अँश आयोजित जापानी हमले के शोरगुल में जनता की नज़रों से उतर गया। राष्ट्रीय सरकार की माँग पेश करते हुये अगस्त के इस ऐतिहासिक प्रस्ताव में कहा गया था—

"राष्ट्रीय सरकार का पहला और प्रमुख काम अपनी तमाम हथियार बन्द और अहिंसात्मक ताक़त से और मित्र-राष्ट्रों की मदद से हिन्दुस्तान की हिफ़ाज़त करना और उसे बाहरी हमलों से बचाना और किसानों और कारख़ानों के मज़दूरों की उन्नति और भलाई करना होगा, क्योंकि ज़रूरी तौर पर देश की समस्त शक्ति और अधिकारों पर किसानों और मज़दूरों का ही क़ब्ज़ा होना चाहिये।"

उस समय मुल्क एक ज़बर्दस्त क़दम उठाने वाला था और वातावरण में एक बिजली सी भरी हुई थी। देश की सब से शक्तिशाली राष्ट्रीय संस्था ने इस अगस्त के प्रस्ताव के ज़रिये एक साथ ही राजनैतिक और सामाजिक क्रान्ति का ज़ोरदार क़दम उठाया था। यदि इस प्रस्ताव के पास होने के समय देश में एक क्रान्तिकारी वातावरण न होता और मुल्क पर बाहरी हमले की तलवार न लटकती होती तो प्रस्ताव के किसानों और मज़दूरों वाले अंश का काफ़ी विरोध होता और सम्भव है कांग्रेस में फूट तक पड़ गई होती; किन्तु राजनैतिक परिस्थिति की गम्भीरता के कारण प्रस्ताव का यह अंश काफ़ी रोशनी में न आ सका।

सन् १९३१ में कराची कांग्रेस ने किसानों और मज़दूरों को उनके आर्थिक अधिकारों की रक्षा का आश्वासन दिया था। इस अगस्त वाले प्रस्ताव में कांग्रेस की तरफ़ से यह ऐलान कर दिया गया कि स्वराज्य का अर्थ ही किसानों और मज़दूरों का राज होगा। एक छलांग में ही कांग्रेस ने इतना लम्बा फ़ासला तय कर लिया। यूँ यह छलांग हर तरह कांग्रेस की परम्परा के अनुरूप थी। अपने प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस बुद्धिजीवियों की एक संस्था थी जिसका काम बड़े दिन की छुट्टियों में जलसा करके केवल आवेदन-निवेदन के प्रस्ताव पास कर लेना मात्र था। पर धीरे धीरे अपने ५९ वर्ष के जीवन में वह अधिकारों पर क़ब्ज़ा करने के लिये एक संघर्षकारी संस्था बन गई।

महात्मा गान्धी ने पिछले दिनों प्रो० एन० एस० रङ्गा को एक प्रश्न का जवाब देते हुये लिखा था कि कांग्रेस का ध्येय जनतन्त्रात्मक किसान मज़दूर प्रजा राज है। महात्मा गान्धी का विश्वास है कि यदि अहिंसात्मक उपायों से स्वराज प्राप्त होगा तो वह तमाम जनता की कोशिशों से ही प्राप्त होगा और उसमें किसान-मज़दूरों का प्रमुख हिस्सा होगा और प्रमुख आवाज़ होगी। इसी बात को यदि हम दूसरे शब्दों में कहें तो यह कहेंगे कि यदि अहिंसात्मक तरीक़ों से हमें आज़ादी हासिल करनी है तो उसमें किसानों और मज़दूरों की सब में ज़्यादा कोशिश होनी चाहिये। आज़ादी हासिल करने की कोशिश में ही किसानों और मज़दूरों में राजनैतिक जाग्रति पैदा हो जायगी और देश में किसानों और मज़दूरों का बहुमत होने के कारण जब भी ताक़त मिलेगी वह उन्हीं के हाथों में जायगी। इस रोशनी में यदि हम महात्मा गान्धी के हाल के उन वक्तव्यों को पढ़ें जिनमें उन्होंने गाँओं के अन्दर रचनात्मक कार्यक्रम करने और किसानों और मज़दूरों का व्यापक और ठोस संगठन बनाने पर ज़ोर दिया है तो हम ठीक अनुपात में उन वक्तव्यों का महत्व समझ सकेंगे।

किन्तु पेश्तर इससे कि असहमत साम्राज्यवादी शक्ति से जनता सत्ता को छीनने का सफल प्रयत्न करे कुछ प्रारम्भिक शर्तें पूरा करने की ज़रूरत है। इनमें सब में पहली और सब में प्रमुख शर्त यह है कि भविष्य की एक ऐसी स्पष्ट तसवीर खींची जाय कि जिसके लिये हर शख़्श के दिल में जीने और मरने का जोश पैदा [illegible] सिद्धान्तों के लिये ही जनता बड़ी से ब[illegible] सकती है और महान आदर्शों के ना[illegible] हँसते हँसते मौत तक को स्वीकार किय[illegible] की अकथनीय यातनायें बर्दाश्त की [illegible] ठोस होना चाहिये और इसका स[illegible] रोज़मर्रा के राजनैतिक, सामाजिक [illegible] होना चाहिये। आज़ादी के ख़य[illegible] जनता जान नहीं लड़ा सकती [illegible] हो जाय कि जिस स्वराज्य [illegible] मनुष्य द्वारा मनुष्य का श[illegible] ऐसे स्वराज्य की प्राप्ति [illegible] सकती है। समय आ[illegible] में बग़ैर लगाव-छि[illegible]

[illegible] ed Banks) [illegible] सम्भव नियन्त्र[illegible] [illegible] विशेष फल[illegible] [illegible] ते के फ[illegible] वह [illegible] मुख बैङ्क के जितनी [illegible] का का[illegible] रखता [illegible] जाने पर भी नियमों [illegible] लत से उसके कारोबार [illegible] है। इस प्रकार बैंको [illegible] लाने के विषय में रिज़र्व [illegible] दे दिये गये हैं। [illegible] रा. [illegible] ३७, १३८, तथा १३९ [illegible] म स्व[illegible] १९३९ में रिज़र्व को [illegible] म्स टेलर (Sir James Taylor [illegible] लिये प्रस्ताव' नाम से एक योजना [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कि जिसके लिये जनता गान्धी जी के नेतृत्व में पिछले २५ वर्षों से लगातार संघर्ष कर रही है। स्वराज्य की इस व्याख्या करने में न तो हम किसी को बेजा ख़ुश करने का ख़याल रखें और न किसी की घुड़कियों से डरें। सन् १९१९ में जब नरम विचारों के लोग काँग्रेस से अलहदा हो गये थे तो उससे काँग्रेस का कोई नुक़सान नहीं हुआ, बल्कि नये नये लाखों आदमियों के शामिल हो जाने से काँग्रेस सैकड़ों गुना अधिक शक्तिशाली हो गई। काँग्रेस, जो पहले एक पौधे की तरह थी, लाखों आदमियों की क़ुर्बानियों ने उसे एक ऐसा विराट बट-वृक्ष बना दिया कि जिसकी लखूखा जड़ें देश की मिट्टी में दृढ़ता से जम गईं। और यदि दुर्भाग्य से किसान मज़दूर राज्य के नये आदर्श और सामाजिक न्याय के नारों से भयभीत होकर स्थायी स्वार्थ वाले—पूँजीपति, ज़मीदार, साहूकार और अन्यायी मुनाफ़ाख़ोर गान्धी जी के अहिंसात्मक ट्रस्टीशिप के आश्वासन के बावजूद भी यदि राष्ट्रीय संस्था छोड़ दें तो हानि काँग्रेस की न होगी। यदि आज़ादी की लड़ाई जीतने के लिये करोड़ों जनता की महान शक्ति को इस्तेमाल करना है तो किसान मज़दूर राज के महान आदर्श का ऐलान करना ज़रूरी है। किसानों और मज़दूरों के प्रजातन्त्र की स्थापना के ध्येय का ऐलान एक ओर जनता के अन्दर ऊँचे दरजे की राष्ट्रीय आकांक्षा पैदा कर देगा और दूसरी ओर साम्प्रदायिक पार्टियों और व्यक्तियों के आपसी लड़ाई-झगड़ों और ईर्षा द्वेष के चंगुल से जनता को रक्त कर देगा। हिन्दू और मुसलमान जनता कन्धे से कन्धा खड़ा कर स्वराज्य के इस आदर्श को प्राप्त करने के लिये [illegible] अपने त्याग और क़ुर्बानी से प्रेम की [illegible] जो विदेशी शासकों के तोड़े न टूट [illegible] पाकिस्तान के नारे का तमाम महत्व [illegible] जो बात बड़ी कोशिशों के बाद भी [illegible] रहे वह अपने आप इस ऐलान के [illegible]

आज की ऊ[illegible]
कूक [illegible]
आ गया.
हाय, मेर[illegible]
है जहां दु[illegible]
बस यहां पर
जेल को हरद[illegible]
और बाहर छा[illegible]
खिल रहा होगा
कूक है यह, या कि
सुन पड़ी जो आज
चक्षुओं में उमड़ती
और मैं कुछ सोचता सु[illegible]
आज की ऊषा मदिर [illegible]

[illegible]ारा या आदर्श अपने आप [illegible] होते हैं। दोज़ख़ का रास्ता [illegible]आ है। एक अच्छा आदर्श [illegible] रह जाता है जब तक [illegible]ने के लिये सच्चा और शक्तिशाली नेतृत्व न हो जो उचित और अमली कार्यक्रम द्वारा जनता को उत्तरोत्तर उस आदर्श तक पहुंचने में मदद दे।

पिछले ढाई वर्षों से सरकार कठोर हाथों से कांग्रेस को कुचलने का लगातार प्रयत्न कर रही है। इस दौरान में काँग्रेस के नेताओं और कार्य कर्त्ताओं को जिस अग्नि परीक्षा के बीच से गुज़रना पड़ा है उसमें काँग्रेस की मध्यम श्रेणी की नेताशाही का बुरी तरह दिवाला निकल गया। इसके लिये यथेष्ट कारण भी हैं। जनता के साथ गहरा सम्पर्क न होने से हमारे पैर ज़मीन में गड़े न रह सके। अहिंसात्मक कार्य कर्त्ता की ताक़त सोलहो आने उसके जन-सम्पर्क के ऊपर निर्भर करती है और अहिंसात्मक जन सम्पर्क का आधार रचनात्मक कार्यक्रम है।

गान्धी जी इस समस्या के प्रति पूरी तरह जागरूक हैं और रचनात्मक कार्यक्रम के आधार पर जन सम्पर्क क़ायम करने की व्यापक योजना बना रहे हैं। सब में अन्तिम समस्या जो रह जाती है वह यह है कि ऐसा कौनसा कार्यक्रम होना चाहिये जो प्रजातन्त्र की स्थापना के साथ साथ अधिकारों की पूरी बागडोर जनता के हाथों में लाने में सहायक और समर्थ हो। कार्यक्रम के सम्बन्ध में लोगों में आपस में मत भेद हो सकता है पर इससे किसी को इनकार नहीं है कि कार्यक्रम ऐसा होना चाहिये कि जिससे कोटि कोटि जनता कर्तव्य-मार्ग पर अग्रसर हो सके। इस समय कार्यक्रम की दो योजनायें हमारे सामने हैं—एक को हम गान्धी जी की योजना कह सकते हैं और दूसरी समाजवादी योजना है। समाजवादी योजना के हम विरोधी नहीं हैं; किन्तु पहले हमें गान्धी जी की योजना पर ही ईमानदारी के साथ अमल करना चाहिये; इसलिये कि गान्धी जी के आदर्शों पर चौथाई सदी से देश की जनता अमल करना सीख रही है और फिर वे आदर्श इसी भूमि की मिट्टी के हैं और विलायती पौधे के मुक़ाबले में यहाँ ज़्यादा अच्छी तरह फल फूल सकते हैं। गान्धी जी अपने ज़बर्दस्त अनुभव से हमारा नेतृत्व करेंगे और उनका महान व्यक्तित्व इस योजना को सफल बनाने में हमारी मदद देगा।

हम सब को और ख़ासतौर पर वामपक्षियों को गान्धी जी का पूरा समर्थन करना चाहिये ताकि वे किसानों और मज़दूरों का प्रजातन्त्र क़ायम करने में सफल हो सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बैंकिंग का नया क़ानून

76211

श्री रमेशचन्द्र गोयल बी० काम०, विशारद

इस द्वितीय विश्वव्यापी महायुद्ध ने भारतवर्ष को आर्थिक समस्यायों के प्रति विशेष रूप से जागरूक कर दिया है। यहाँ तक कि देश के प्रबल जनमत से प्रभावित होकर सरकार को भी अपनी तटस्थ वृत्ति छोड़कर देश के भावी पुनर्निर्माण के लिये एक स्वतन्त्र सरकारी विभाग क़ायम करना पड़ा है जो देश की भावी आर्थिक उन्नति के लिये योजनाएं प्रस्तुत करेगा। युद्धोत्तर पुनर्निर्माण की दिशा में सरकार का यह एक तरह से पहला क़दम है। यह सन्तोष का विषय है कि आर्थिक उन्नति के लिये अनिवार्य औद्योगीकरण की योजनाओं को सफलीभूत करने के विचार से देश में बैंकिंग के नियंत्रण और उन्नयन को आवश्यक जान कर सरकार एक नया बैंकिंग क़ानून बनाने जा रही है। किसी भी देश के उद्योग धन्धों की उन्नति और आर्थिक-व्यवस्था के समुचित विकास के लिये प्रचुर बैंकिंग साधनों का होना अत्यावश्यक है।

युद्ध-जनित आवश्यकताओं के कारण आज संसार की आर्थिक व्यवस्था में बहुत से क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये हैं। युद्धोत्तर काल की आर्थिक मुद्रा-नीति के संतुलन तथा अन्तर्राष्ट्रीय समीकरण की समस्याएं अर्थ-शास्त्र के विशेषज्ञों को परेशान कर रही हैं और वे इनके लिये विभिन्न योजनाएँ प्रस्तुत करने में प्रयत्नशील हैं। इङ्गलैण्ड तथा अमेरिका के माने हुए अर्थशास्त्रियों ने जो योजनाएँ इस सम्बन्ध में पेश की हैं, उनसे पता चलता है कि युद्धोत्तर आर्थिक व्यवस्था में बैंकिंग का महत्व आज से कहीं अधिक होगा। हाल में ही अमेरिका के ब्रैटन उडस (Bretton Woods) नामक स्थान पर हुई संसार के सब देशों के अर्थशास्त्रियों की कान्फ्रेन्स में जो प्रस्ताव पास हुए हैं, उनसे एक अन्तर्राष्ट्रीय बैंक स्थापित करने की योजनाओं का पता लगता है। ये संकेत बतलाते हैं कि आज हवा का रुख़ किधर है और संसार किस ओर जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक नीति में सबल रूप से भाग लेने के लिये, यह आवश्यक है कि हमारे देश की बैंकिंग व्यवस्था तथा उसका प्रबन्ध और नियमन सुचारु रूप से किया जाय। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए बैंकिंग के नये क़ानून का मसविदा जो धारासभा के सामने पेश किया गया है इस दिशा में एक सराहनीय प्रयत्न कहा जा सकता है।

इस नये बैंकिंग क़ानून के मसविदे पर विचार करने से पहले अच्छा होगा यदि हम देश के बैंकिंग के अब तक के इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डाल लें। हमारे देश में आधुनिक बैंकिंग के इतिहास का वास्तविक आरम्भ सन् १९२१ में तीन प्रेसीडेन्सी बैंकों के सम्मिलन से इम्पीरियल बैंक आफ़ इन्डिया के जन्म से समझना चाहिये, और सन् १९३४ में रिज़र्व बैङ्क आफ़ इन्डिया की स्थापना के साथ इसने अपने कैशोर काल में अथवा कह सकते हैं कि युवावस्था में प्रवेश किया है। वास्तव में हमारे इस लघु-महाद्वीप जैसे विस्तृत और आर्थिक दृष्टि से अवनत देश में बैंकिंग अभी अपनी आरम्भिक अवस्था में ही है। इसे प्रौढ़ता की पूर्णता प्राप्त करने में अभी बहुत समय लगेगा।

इन दो शताब्दियों में यद्यपि बैंकिंग के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई है किन्तु उसके साथ उस पर वास्तविक नियंत्रण नहीं हो पाया। यद्यपि १९१३ में पास हुए कम्पनी क़ानून में बैंकिंग कम्पनियों के लिये कुछ विशेष नियम बना दिये गये थे, परन्तु कोई अलग क़ानून आज तक नहीं बना। भारत सरकार द्वारा नियुक्त सेन्ट्रल बैंकिंग ऐन्क्वायरी कमेटी (१९२९-३१) के द्वारा की गई सिफ़ारिशों के आधार पर १९३६ ई० में कम्पनी क़ानून में बहुत से परिवर्तन किये गये और उसके भाग १० (ए) को विशेष रूप से बैंकिंग कम्पनियों के लिये उपयोगी बना दिया गया। किन्तु यह पूर्णतया सन्तोषजनक नहीं था। सन् १९३४ में प्रस्तुत रिज़र्व बैङ्क के विधान में भी यह बात रखी गई थी कि वह शीघ्र ही एक बैंकिंग क़ानून की रूप रेखा प्रस्तुत करे। यद्यपि रिज़र्व बैङ्क ने शैडूल्ड बैङ्कों (Scheduled Banks) की प्रथा द्वारा बैंकिंग के क्षेत्र पर यथा सम्भव नियन्त्रण करने का प्रयत्न किया था, किन्तु यह प्रयत्न विशेष फलीभूत नहीं हुआ। बैंकिंग की अन्धाधुन्ध उन्नति के फल वह सन् १९४२ में दक्षिण भारत में एक प्रमुख बैङ्क के जेतनी जाने से बैंकिंग के क्षेत्र में महान सङ्कट का कारण रखता हुआ। उस समय जाँच करने से यह जाने पर भी नियमों बैंकिंग के क्षेत्र में उपयुक्त क़ानूनीहालत से उसके कारोबार बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी, तथा है। इस प्रकार बैंकों बहुत से ऐसे दोष आ गये थे, जलाने के विषय में रिज़र्व कर ही निवारण किये जा सके दिये गये हैं।

का इलाज करने के लिये रा. ने ३७, १३८, तथा १३९ अनुभव की गई। परिणाम स्व ने १९३९ में रिज़र्व बैंक तत्कालीन गवर्नर सर जेम्स टेलर (Sir James Taylor ने 'बैंकिंग क़ानून के लिये प्रस्ताव' नाम से एक योजना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रूप रेखा सरकार के सामने रखी। यद्यपि जनमत संग्रह करने के विचार से जनवरी १९४० में सरकार ने इसको जनता के समक्ष रखा और इस पर आलोचना-प्रत्यालोचना भी हुई, किन्तु योरप में सितम्बर १९३९ में ही भीषण महायुद्ध छिड़ चुका था और यह योजना जहाँ की तहाँ रह गई।

वर्तमान महायुद्ध के इन ५ वर्षों में देश की आर्थिक व्यवस्था में कितना महान परिवर्तन हुआ है, इसका कुछ अन्दाज़ा नीचे के अंकों से हो जायगा, जो मुद्रा प्रसार की वृद्धि को प्रकट करते हैं :—

| तिथि | चलन में नोट | सिक्के | नोट चलन का Index | बैङ्कों की जमा | स्टरलिंग धन |
|---|---|---|---|---|---|
| अगस्त '३९ | १७०,२९ करोड़ | — | १०० | — | — |
| सितम्बर '४३ | ७५९,७५ ,, | — | ४४६ | — | — |
| अक्तूबर '४४ | ९५६,५४ ,, | १४०,३२ | — | — | — |
| ८ दिसम्बर '४४ | ९९९,२७ ,, | — | — | ९२,२४,६५,००० | ८,८६,३२,८९,००० |

इस प्रकार आज लगभग ११०० करोड़ रुपये की मुद्रा चलन में है। अर्थात् युद्ध के प्रारम्भ से लेकर आज तक उसमें लगभग पचगुनी वृद्धि हो गई है। मुद्रा के इस वृहदाकार आस्फालन को बैङ्कों ने सोख लिया है, और इन वर्षों में उनकी जमा रकमों में कितनी वृद्धि हुई है, यह नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जायगा—

भारत में शैडूल्ड बैङ्कों की स्थिति

| | दर्शनी जमा | मुद्दती जमा | कैश (सहस्र में) |
|---|---|---|---|
| ९३८-३९ | १,२९,९८ | १,०७,८५ | ६,६४ |
| ९४३-४४ | ४,५६,६३ | १,४२,७८ | २०,५७ |

इस प्रकार यह ज्ञात हुआ कि बैङ्कों में जमा रक़मों में ही अत्यधिक वृद्धि हुई है जिसका परिमाण ८ दिसम्बर को २,२४,६५,००० था। यह केवल शैडूल्ड बड़े बैङ्कों की या है, अन्य छोटे मोटे बैङ्कों के विषय में अङ्कों के में अनुमान से सन्तोष करना पड़ेगा। किन्तु स्पष्ट है कि इस महायुद्ध ने देश में उद्योग धन्धों साथ साथ बैंकिंग की भी अभूत पूर्व वृद्धि की नित द्रव्य के परिमाण की वृद्धि के साथ साथ है यह आगई ज्ञात होती है। पुराने बैङ्कों बस यहीं पर ी ही हैं, किन्तु उनके अतिरिक्त जेल को हरी गये हैं और होते जा रहे और बाहर छा त बैङ्क का जन्म और एक खिल रहा होगा शाखाओं का खुलना दृष्टव्य कूक है यह, या है। युद्ध कालीन मुद्रा की सून ए वृद्धि के फलस्वरूप इन बैङ्कों का जन्म हुआ है। न्तु युद्धोपरान्त मन्दी की बाढ़ में ये नवस्थापित बैङ्क तट दुर्बल वृक्षों की भांति विलीन हो जायेंगे अथवा सुदृढ़ चट्टान की तरह स्थिर रह सकेंगे, यह एक विचारणीय प्रश्न है। आज बैंकिंग के इतिहास में फिर एक बार एक महत्वपूर्ण समय उपस्थित है और समय रहते ही एक क़ानून बना कर इस अपरिमित वृद्धि को नियमित तथा नियन्त्रित करने की यह चेष्टा और स्थायित्व की आधार-शिला प्रस्तुत करने का यह प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है। गत १६ नवम्बर को यह बैङ्क बिल धारा सभा में विचारार्थ पेश किया गया था। बैङ्क बिल के विधान पर एक दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि यह वास्तव में कम्पनी क़ानून के भाग १० (ए) का ही एक परिवर्तित संस्करण है। यद्यपि इसमें मार्च १९४४ में अन्तिम महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये थे, किन्तु दिनोदिन एक अलग क़ानून बनाने की आवश्यकता बढ़ती गई और उसका पूर्ण रूपान्तर इस प्रकार आज एक विधान के रूप में हमारे सामने है। इस विधान का प्रस्तावित नाम 'दि इण्डियन बैङ्क एक्ट १९४५' है, और इसी आधार पर आशा की जाती है कि यह इस वर्ष में लागू हो जायगा। मुख्य रूप से यह विधान बैङ्कों में पूंजी जमा करने वालों के हितों की रक्षा के उद्देश्य को दृष्टि में रख कर बनाया गया जान पड़ता है। विधान को चार मुख्य भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में बैंकिंग की एक सरल तथा सम्पूर्ण परिभाषा और अन्य प्रारम्भिक बातें हैं। तीसरे भाग में बैंकिंग कम्पनियों के काम काज बन्द करने तथा उनको समाप्त करने की रीतियों का वर्णन है। चौथे भाग में विभिन्न बातें हैं। दूसरे भाग का महत्व सब से अधिक है कि इसमें बैंकिङ्ग कम्पनियों के व्यापार-नियमन सम्बन्धी सभी बातों का समावेश है।

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(१) बैंकिंग विधान की रूप रेखा पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना असमीचीन न होगा। इसमें सर्व प्रथम बैंकिङ्ग की एक सरल तथा सर्वग्राही परिभाषा प्रस्तुत की गई है। बैंकिङ्ग कम्पनी की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि जिसमें क़ानून का क्षेत्र केवल उन्हीं संस्थाओं तक सीमित रहे जिनमें सुरक्षा तथा शीघ्र वापस लेने के विचार से धन जमा किया जाता है, और जो ब्रिटिश भारत में बैंकिंग का कारोबार करती हैं; तथा कम्पनी क़ानून के अनुसार जिनको बन्द किया किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विदेशी बैंकिङ्ग कम्पनियाँ भी आ जाती हैं, क्योंकि वे भी ब्रिटिश भारत में रजिस्टर्ड होने के कारण क़ानूनन् बन्द की जा सकती हैं।

(२) इस प्रकार बैंकिङ्ग की एक सरल परिभाषा प्रस्तुत करने के अतिरिक्त बैंकिङ्ग कम्पनियों के लिये कम से कम कितनी पूँजी चाहिये इसके विभिन्न मान भी इस विधान में नियत कर दिये गये हैं। इस विषय में भी यद्यपि कम्पनी क़ानून में बनाये गये नियमों को रखा गया है पर उनके रूप में भिन्नता है। अब इस विधान के अनुसार किसी भी बैंकिङ्ग कम्पनी को व्यापार प्रारम्भ करने के लिये कम से कम १ लाख की पूँजी एकत्र करनी होगी। नगरों की जन संख्या के हिसाब से इस पूँजी का परिमाण ५ लाख तक रखा जा सकता है। यह भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया है कि बिना २० लाख की एकत्रित पूँजी तथा संचित कोष हुए कोई भी बैङ्क अपने प्रान्त अथवा रियासत के बाहर कारबार नहीं कर सकेगा। विदेशी कम्पनियाँ इस पूँजी की रक़म को पूरा करने के लिये इसी अनुपात से रुपये अथवा प्रमाणित काग़ज़ों (Securities) के रूप में रिज़र्व बैङ्क में जमा करा सकती हैं।

(३) बैंकिङ्ग कम्पनियों के किसी व्यापार में धन लगाने, वस्तुओं के ख़रीदने बेचने, सौदा करने, तथा परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से व्यापार में भाग लेने पर भी इस विचार से प्रतिबन्ध लगा दिया गया है कि वे अपने धन को जोखम में न डालें। विधान की धारा ६ में उन सब व्यापारों की एक सूची दी गई है जिनमें बैंकिङ्ग कम्पनियाँ अपना धन लगा सकती हैं, यद्यपि इस धारा का क्षेत्र कम्पनी क़ानून की धारा २७७ एफ़ के समान ही है किन्तु उससे कहीं अधिक विस्तृत है। इस धारा के प्रयोग से बैंकिङ्ग कम्पनियों की अनियमित कार्यवाहियों को रोकने तथा नियन्त्रित करने की चेष्टा की गई है, जिससे वे अपनी अमानत की रक़म को जोखम में न डालें।

(४) इस विधान में उन विदेशी कम्पनियों को भी जो ब्रिटिश भारत में रजिस्टर्ड नहीं हैं अलग नियम बना कर शामिल कर लिया गया है। इस विधान के अनुसार ब्रिटिश भारत में कारबार करने के लिये उनको एक लाईसेन्स प्राप्त करना होगा। लाइसेन्स देने का अधिकार रिज़र्व बैङ्क के हाथ में रखा गया है जो यह देख कर कि ऐसी विदेशी कम्पनी इस विधान की सब धाराओं से सुसङ्गत है, तथा जिस देश में वह सङ्गठित हुई है वह भारतीय कम्पनियों के विरुद्ध किसी प्रकार का नियम तो लागू नहीं करता, तथा अपने को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट करके उसे लाइसेन्स देगा यदि नियमों के पालन में किसी प्रकार की त्रुटि हो अथवा कम्पनी यदि अपना कारबार बन्द करदे या दिवालिया हो जाय तो रिज़र्व बैङ्क को यह लाइसेन्स ज़ब्त कर लेने का अधिकार होगा। ऐसी कम्पनियों को प्रतिमास अपने देनदारों का लेखा रिज़र्व बैङ्क को भेजना होगा, तथा उसे अन्य बातें जानने का भी अधिकार होगा।

(५) बिल के तीसरे भाग में बैङ्कों के कारोबार बन्द कर देने तथा उनको क़ानूनन् दिवालिया घोषित करने (liquidation) के तरीक़ों का सविस्तार वर्णन है। इस विषय में प्रस्तुत विधान की यह विशेषता है कि केन्द्रीय सरकार ने सारे अधिकार रिज़र्व बैङ्क को दे दिये हैं। केवल रिज़र्व बैङ्क ही क़ानूनी दिवालिया घोषित करने वाला अधिकारी हो सकेगा। अदालतों के अधिकार भी कुछ अंशों में छीन कर रिज़र्व बैङ्क को दिये गये हैं। कोई भी अदालत बिना रिज़र्व बैंक की रिपोर्ट के अथवा जब तक उसके पास अन्य पर्याप्त कारण न हों, किसी बैंक के कारोबार-बन्दी की प्रार्थना पर विचार नहीं कर सकती। रिज़र्व बैंक को यह अधिकार दिया गया है कि यदि सेक्शन २८ के मुताबिक़ किसी बैंक के हिसाब की जाँच से वह सन्तुष्ट न हो अथवा उसे यह ज्ञात हो कि वह बैंक जितनी कम से कम पूँजी रखनी चाहिये, उतनी पूँजी नहीं रखता है, और रिज़र्व बैङ्क द्वारा नोटिस दिये जाने पर भी नियमों का पालन नहीं करता है, तो वह अदालत से उसके कारोबार बन्द कर देने की प्रार्थना कर सकता है। इस प्रकार बैंकों के नियन्त्रण और सुचारु रूप से चलाने के विषय में रिज़र्व बैंक को बहुत विस्तृत अधिकार दे दिये गये हैं।

(६) कम्पनी क़ानून की धारा, १३७, १३८, तथा १३९ के अलावा भी इस क़ानून के अनुसार केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार होगा कि यदि वह यह समझे कि किसी बैंक की कार्यवाही उसके ग्राहकों के हितों के विरुद्ध हो रही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तो वह रिज़र्व बैंक को उसके हिसाब किताब के जाँचने की आज्ञा दे और उसके सम्बन्ध में रिपोर्ट मांगे। यदि हिसाब और काग़ज़ पत्रों की जाँच से बैंक की स्थिति असन्तोषजनक पाई जायेगी तो धारा २८ के अनुसार उसके ख़िलाफ़ कार्यवाही की जा सकेगी और उसका कारोबार क़ानूनन् बन्द किया जा सकेगा। इसी प्रकार यह भी विधान है कि जब रिज़र्व बैंक आवश्यक समझे तो बैङ्कों की बहियाँ, खाते, तथा हिसाब सम्बन्धी सब काग़ज़ पत्र देख सकता है।

(७) एक बड़ी विशेषता यह भी है कि इस विधान में रक़म जमा करने वालों के हितों का विशेष ध्यान रखा गया है, और रिज़र्व बैङ्क को इस विषय में सम्पूर्ण अधिकार देकर भी, केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार रहेगा कि यदि उसके विचार से कोई बैङ्क रक़म जमा करने वालों के हितों के विरुद्ध चल रहा है तो स्वयं उसके खिलाफ़ कार्यवाही करे, उसके कारोबार को क़ानूनन् बन्द कर दे, या इस विषय में रिज़र्व बैङ्क को हिदायत कर दे। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार ने यह कुञ्जी अपने हाथ में रख कर रक़म जमा करने वालों के हितों के प्रति अपनी सराहनीय तत्परता प्रदर्शित की है।

(८) साथ ही पुराने कम्पनी क़ानून के संशोधन के रूप में रिज़र्व बैङ्क को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह बैङ्कों से उनके हिसाब का सामयिक लेखा जोखा मांग सकता है, तथा अन्य सूचनाएं भी मांग सकता है और उनको प्रकाशित कर सकता है। इसके अतिरिक्त बैङ्कों को अपनी आय-व्यय इत्यादि का तलपट एक विशिष्ट प्रकार से प्रकाशित करना होगा, जिससे उनके कारोबार की वास्तविक स्थिति का पता चल सके।

इन मुख्य मुख्य बातों के अतिरिक्त विधान की धारा ४० में संचित-कोश ( Reserve fund ) सम्बन्धी नियम दिये गये हैं। उनके अनुसार जब तक कोई बैङ्क अपने मुनाफ़े का २४ प्रतिशत संचित-कोष में नहीं रखेगा तब तक उसे अपने हिस्सेदारों को मुनाफ़ा बाँटने का अधिकार नहीं होगा, और संचित कोष का परिमाण, बैङ्क के चुकता मूल धन ( paid up capital ) के बराबर होना आवश्यक है। इस प्रकार ( बैङ्कों के हिस्सेदारों को मुनाफ़ा देने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। पहले वे अपनी आर्थिक स्थिति मज़बूत कर लें, तब मुनाफ़ा बाँट सकते हैं। इसी प्रकार उनके रुपया हाथ में रखने की मर्यादाएँ भी निश्चित कर दी गई हैं। प्रत्येक बैङ्क को अपनी मुद्दती जमा का १½ प्रतिशत और दर्शनी जमा रक़मों का ५ प्रतिशत रुपया हाथ में रखना होगा, और इसका हिसाब नियमित रूप से रिज़र्व बैङ्क को भेजना होगा ताकि उनका कारबार नियन्त्रित और सुव्यवस्थित रूप से चलता रहे।

यहाँ तक तो हमने इस बैंकिङ्ग बिल के मुख्य मुख्य अंगों का वर्णन किया और अन्य मुख्य मुख्य बातों को नोट किया। अब इसकी एक साधारण समीक्षा भी असमयोचीन न होगी। प्रत्येक अङ्ग को लेकर उसका विवेचन तो इस छोटे से लेख में सम्भव नहीं है, किन्तु समूचे विधान पर सामान्य आलोचनात्मक दृष्टि से प्रकाश डालना भी अनुचित न होगा।

यद्यपि यह बिल बैंकिङ्ग सम्बन्धी क़ानून बनाने की दिशा में एक सफल प्रयत्न कहा जा सकता है, किन्तु इसका क्षेत्र अब भी सीमित ही रहा है। इसकी परिभाषा के अनुसार औद्योगिक बैंक, गिरवी रखने वाले कृषि सम्बन्धी बैंक इत्यादि विविध प्रकार की बैंकिङ्ग संस्थाएँ तो इसके अन्तर्गत आती ही नहीं। अतएव यद्यपि यह एक उत्साह वर्धक प्रयत्न है, किन्तु इसे सब दृष्टियों से सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता, और आगे चल कर समय पर इसकी परिभाषाओं के क्षेत्र को और भी विस्तृत करना होगा।

बैंकों की कारोबार सम्बन्धी सूची में भी जो नाम गिनाये गये हैं, उनमें बैंकों के कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कार्य छूट गये हैं, जो बैंकों द्वारा इस देश में भी किये जाते हैं, और अमेरिका जैसे बैंकिङ्ग की दृष्टि से उन्नत देशों में तो जिनका बहुत अधिक प्रचार है। उदाहरण के लिये सेफ़-डिपाज़िट वाल्ट अर्थात रक्षागृह का प्रबन्ध, कम्पनियों के शेअरों के लिये उनकी ओर से नियुक्त रजिस्ट्रार का कार्य, इत्यादि करना है; यदि इनको भी साफ़ तौर पर विधान में शामिल कर लिया जाता तो विधान की उपयोगिता निश्चय ही बढ़ जाती।

बाहरी बैंकों पर ब्रिटिश भारत में कारबार करने के लिये जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, वे ही रियासती बैंकों पर भी लागू होते हैं। यदि इसी का अनुकरण करके रियासतें भी अपने यहाँ ब्रिटिश भारत के बैंकों के कारबार पर प्रतिबन्ध लगाना शुरू कर दें तो समस्या बड़ी जटिल हो जायगी। वास्तविकता तो यह कहती है कि ब्रिटिश भारत और भारतीय रियासतों के बैङ्कों में कारबार के लिये कोई मौलिक मतभेद नहीं रहना चाहिये। उदाहरण के लिये देखें तो अजमेर ब्रिटिश भारत का इलाक़ा है, और जयपुर रियासत है। किन्तु क़ानून के अनुसार जयपुर का कोई भी

Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बैंक विदेशी बैंक के समान हुआ। इस प्रकार के आपसी वैमनस्य पैदा करने और बीच में क़ानून की दीवारें खड़ी करने से तो सारे भारत के बैंकिंग कारोबार में, जो वास्तव में एक ही महादेश का कारबार है, बहुत बाधा पड़ेगी, जो देश की समृद्धि के लिये घातक सिद्ध होगी। अतएव विधान की धारा ११ में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

विधान की धारा १७ में विदेशी बैङ्कों के लिये लाइसेन्स प्राप्त करने का जो नियम रखा गया है, उसे यदि इस समय जो चालू बैङ्क हैं उनपर भी लागू कर दिया जाय तो उत्तम होगा अन्यथा भारतवर्ष कभी भी बैंकिंग के क्षेत्र में विदेशों से समानता का दावा नहीं कर सकेगा। विदेशी बैङ्कों के लिये कुछ और कड़े नियम होने चाहियें। इस विषय में निम्नलिखित प्रस्ताव द्रष्टव्य हैं।

( अ ) यद्यपि विदेशी बैङ्कों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, किन्तु विदेशी पूंजीपतियों द्वारा इस देश में बैङ्क स्थापित करने पर तो कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अतएव विधान में यह नियम होना चाहिये कि कोई भी बैङ्क भारत में सङ्गठित या स्थापित नहीं हो सकेगा, जब तक कि उसका ७५ प्रतिशत मूलधन और इसी अनुपात से उसके मत-दाताओं की शक्ति भारतीयों द्वारा सञ्चालित न हो।

( ब ) इसी प्रकार भारतीय बैङ्कों को विदेशी बैङ्कों के हाथ में जाने से बचाने के लिये ब्रिटिश तथा अन्य विदेशी बैङ्कों पर प्रतिबन्ध लगाना भी आवश्यक है। इसकी पूर्ति के लिये 'भारतीय बैङ्क' की परिभाषा ही इस प्रकार करनी चाहिये कि कम से कम उसका ७५ प्रतिशत मूलधन भारतीयों के हाथ में हो।

इसी प्रकार विधान की अन्य धाराओं में भी बहुत से छोटे मोटे संशोधनों की आवश्यकता प्रतीत हो सकती है जिनको बताना विशेषज्ञों का काम है।

---

# पुस्तक परिचय

प्राचीन भारत का कला विलास, लेखक—श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक—अभिनव भारती ग्रन्थ माला, १७१-ए, हरिसन रोड, कलकत्ता, मूल्य—ढाई रुपया, पृष्ठ संख्या—१७४।

शान्ति निकेतन के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पं० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी भारतीय संस्कृति के एक अत्यन्त उच्च कोटि के विद्वान् हैं। जैसा कि नाम से प्रकट है द्विवेदी जी ने इस पुस्तक में प्राचीन भारत के कलात्मक और सांस्कृतिक जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला है। उस समय के कलात्मक जीवन के जिन ५३ भिन्न भिन्न पहलुओं का दिग्दर्शन इसमें कराया है उनमें मुख्य ये हैं—पुराना रईस, स्नान-भोजन, कला का दार्शनिक अर्थ, काव्य-कला, अन्तःपुर का सरस जीवन, विनोद के साथी-पक्षी, उद्यान-यात्रा, सुकुमार कलाओं का आश्रय, चित्रकारी, कुमारी और वधू, उत्सव में वेश भूषा, अलंकार, स्त्री ही संसार का श्रेष्ठ रत्न है, गुफ़ायें और मन्दिर, पारिवारिक-उत्सव, विवाह के अवसर के विनोद, समाज, सभा, गणिका, ताण्डव और लास्य, अभिनय, ऋतु सम्बन्धी उत्सव, विद्वत्सभा, कथा-आख्यायिका, मल्ल-विद्या, और सामाजिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि आदि। समकालीन पचासों ग्रन्थों के आधार पर द्विवेदी जी ने भारत के प्राचीन जीवन की जीती जागती तसवीर हमारे सामने खींच कर रख दी है। सारी पुस्तक इतने दिलचस्प ढङ्ग से लिखी गई है कि एक बार प्रारम्भ करके पुस्तक रखने का जी नहीं होता। पुस्तक के परिशिष्ट भाग में 'ललितविस्तर' की कला सूची, वात्स्यायन और शुक्रनीतिसार की कला सूची भी दी गई है।

भारतीय संस्कृति के प्रत्येक विद्यार्थी को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

लाल चूनर, लेखक—श्री "अंचल", प्रकाशक—अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, मूल्य २) रुपया, पृष्ठ संख्या ७२, काग़ज़ और छपाई सुन्दर।

प्रस्तुत पुस्तक श्री "अंचल" जी का पाँचवाँ काव्य संग्रह है। कुल मिलाकर इसमें २७ कवितायें हैं। भूमिका में कवि अपनी कविताओं के सम्बन्ध में लिखते हैं—"परिस्थिति-सापेक्ष ज्ञान, और मनोदशाओं के वर्गीकरण की विषमता के बोध ने मुझे प्रगति अर्थात् समाजवादी विवेक का कवि न बना कर अभी तक केवल इस महान जन संघर्ष की लम्बी और क्रान्तिकारी क्रिया या संक्रमण की लम्बी संग्राम-अवधि में पड़ने वाले विराम स्थलों और इस संघर्ष के मोरचे के पीछे बने हुये विश्राम के पड़ावों का कवि बना रखा है।" इस आत्म परिचय के बाद कवि अपनी रचनाओं को पाठकों के सामने रखते हैं।

संग्रह में—नारी, बोल अरे कुछ बोल, नारी ( दूसरी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पावस की सन्ध्या, अन्तर्वासी और मंज़िल शीर्षक कवितायें हमें सुन्दर लगीं। संग्रह की अन्य कवितायें मालूम होता है कवि ने संघर्ष से थक कर मानसिक अंगड़ाई लेते हुए लिखी हैं। 'नारी' शीर्षक कविता में नारी के मादक प्यार से अपने को उबार कर उसे ऊंचे स्तर पर उठाकर कवि कहता है—

किन्तु नारी, सिर्फ़ नारी हो—तुम्हें मैं जानता हूँ ;
तुम प्रणय की हो खिलाड़िन मैं तुम्हें पहचानता हूँ।
जानता दिल तोड़ने की शक्ति तुममें है भयङ्कर ;
जोड़ देती हो वही तुम फिर क्षणों में मोम बनकर।
इन कुलेलों में न कोई रह गया मुझको प्रलोभन ;
एक से निष्प्राण हैं सारे तुम्हारे ये प्रसाधन।
एक लम्बे तर्क सी चलती बँधी अनुकृति तुम्हारी ;
फिर वही, फिर फिर वही बस एक सी तृष्णा तुम्हारी।

इस तरह सदियों से वासनाओं की ग़ुलाम बनी हुई नारी को, ( हालाकि नारी की इस स्थिति की ९९ फ़ी सदी ज़िम्मेवारी पुरुष के कन्धों पर है पर जिसका बोध शायद कवि को नहीं है ), झकझोर कर कवि कहता है—

चाहता मैं एक नूतन देश का संवाद तुमसे ;
चाहता मैं अब न बीती प्रियतमा की याद तुमसे।
यह सुपरिचित वासना का नाद लेकर क्या करूँ मैं ?
शोषितों की इन सिसकती बिजलियों में क्या भरूँ मैं ?
आ रहा मानव प्रगति का रक्त रञ्जित वह सबेरा ;
फिर न जिसके बाद होगी रात, जड़ता का अँधेरा।

'मंज़िल' शीर्षक कविता में कवि श्रेणी-युक्त समाज युग की प्रबल चुनौती मानकर कहता है—

मैं उनसे कहता हूं जो अपने सुख में मदहोश पड़े ;
मैं उनसे कहता हूं जो अपने स्वार्थों पर लुब्ध अड़े !
क्यों असंख्य भूखे नंगों के शव पर वे बिहार करते ;
क्यों जनता को चूस चूस कर अपने राजमहल भरते !

और तब वह उन्हें चेतावनी देते हुए कहता है—

न लें वे—सोई चिनगारी प्रतिहिंसा की आज जगी ;
वयुग का ख़ूनी सर्जन ले महा क्रान्ति की आग लगी।
स विप्लव का—इन लपटों का, कोई भी प्रतिकार नहीं ;
क सके जन-ज्वाला —कोई, दमन नहीं, संहार नहीं।

कवि के सामने उद्देश्य है पर पथ के साधन के सम्बन्ध वह मौन ही रहना पसन्द करता है।

गागर में सागर, लेखक—स्वामी सत्यभक्त, प्रकाशक सत्याश्रम, वर्धा, सी० पी०, मूल्य बारह आना।

स्वामी सत्य भक्त ठोस विचारक और स्पष्ट वक्ता हैं। देश, समाज और संसार में होने वाली नित प्रति की घटनाओं को देखने परखने का उनका अपना मौलिक दृष्टिकोण है। इस पुस्तक में उन्होंने जीवन की समस्याओं को छोटी छोटी कहानियों और चुटकुलों के रूप में व्यक्त किया है। पुस्तक पढ़ने योग्य है।

लोक जीवन, ( मासिक पत्र ), सम्पादक श्री परमेष्ठी दास जैन, वार्षिक मूल्य छै रुपया, एक अङ्क का दस आना, मिलने का पता—लोक-जीवन कार्यालय, ७।३६ दरियागञ्ज, दिल्ली।

यह नया मासिक पत्र नवम्बर सन् ४४ से प्रसिद्ध जैन विद्वान् और विचारक श्री जैनेन्द्रकुमार के संरक्षण में निकलना शुरू हुआ है। पत्र के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुये सम्पादक जी लिखते हैं—"पत्र का हेतु व्यक्ति और समाज की प्रगति को अहिंसा के प्रति जाग्रत और तत्पर रखने के प्रयत्न में सहायक होना है..... आज की व्यवस्था में मनुष्य मनुष्य का आखेट हो सकता है पर लोक जीवन उस समाज के स्वप्न को और उसके निर्माण संकल्प को लेकर चलना चाहता है, जिसकी बुनियाद में शोषण न होकर विसर्जन हो और जिसमें मनुष्य दूसरे के हित जीने में अपनी सार्थकता देखे।"

किन्तु सम्पादक महोदय के वक्तव्य का प्रारम्भिक वाक्य ज़रा हमें चौंका देता है। वे लिखते हैं—"जैन-समाज में एक उच्च कोटि के पत्र का अभाव निरन्तर खटक रहा था।" तो क्या लोक जीवन के महान उद्देश्यों को केवल जैन समाज तक ही सीमित रखा जायगा ? लोक-जीवन के दोनों अङ्कों की विषय सूची और लेखों को देखकर भी हमें ऐसा ही भ्रम होता है, पर इसके लेखों में जैन धर्म सम्बन्धी मौलिक तत्वों को सर्वमान्य रूप में उपस्थित किया गया है। महात्मा भगवान दीन, श्री जैनेन्द्र कुमार, श्री शान्ति चन्द्र वर्मा, श्री अगर चन्द्र नाहटा आदि के लेख उच्चकोटि के और गम्भीर चिन्तन से भरे हुये हैं।

हमें विश्वास है श्री जैनेन्द्रकुमार जी के संरक्षण में यह पत्र व्यापक और विस्तृत परिधि से वास्तविक लोक जीवन और लोक कल्याण की उपासना में प्रवृत्त होगा। हम हृदय से इस पत्र की सफलता चाहते हैं।

—विद्यानन्द सन्यासी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार

## स्वर्गीय रोमा रोलाँ

पहली जनवरी का पैरिस से रायटर का समाचार है—"शनिवार, ३० दिसम्बर सन् ४४ को प्रसिद्ध फ्रान्सीसी लेखक रोमा रोलाँ की वेज़ले में मृत्यु हो गई। मृत्यु के समय वे ७९ वर्ष के थे।"

स्वर्गीय रोमा रोलाँ महान दार्शनिक, कलाकार, तत्ववेत्ता, और सत्य के खोजी थे। दुनियाँ भर की सताई हुई क़ौमों के वे अनन्य मित्र और प्रतिनिधि थे। अहिंसा को वे जीवन का मूल मन्त्र मानते थे। पिछले महायुद्ध में अहिंसा के प्रतिपादन के कारण ही फ्रान्सीसी सरकार ने उनके ऊपर प्रतिबन्ध लगाया; किन्तु क्या कहीं सरकारी प्रतिबन्ध महान आत्माओं को दबाने में समर्थ हो सकते हैं? दुनिया ने उनकी शिक्षाओं के मूल्य की क़द्र की और सन् १९१६ में उन्हें अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जान क्रिस्टाफ़र' पर नोबुल पुरस्कार दिया गया।

स्वर्गीय रोलाँ भारत और भारतीय संस्कृति के परम उपासक थे। भारत के प्रति अपनी भावनाओं को प्रदर्शित करते हुये उन्होंने लिखा है—"मैं फ्रान्सीसी हूँ और ऐसे परिवार में पैदा हुआ हूँ जो सदियों से फ्रान्स की सर ज़मीन में फला फूला और जब मैं केवल २० वर्ष का था और मुझे भारत के धर्म और दर्शन के सम्बन्ध में कोई निश्चित ज्ञान न था तभी से मुझे भारत के प्रति एक अगाध प्रेम हो गया।.....इसका कारण मैं यह समझता हूँ कि मेरे अन्दर पश्चिमी आर्य और पूर्वी आर्य का कोई घनिष्ट एकीकरण है। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं हिमालय से उतरते हुये विजेता आर्यों का सीधा वंशज हूँ और मेरी रगों में उनका अभिजात रक्त बह रहा है।"

सन् १९१७ में प्रकाशित अपने एक नाटक के पात्र सेण्ट लुई का चरित्र ही उनकी नज़रों में आदर्श मानव का चरित्र है। इस पात्र के सम्बन्ध में वे कहते हैं—"सेण्ट लुई का प्रमुख गुण नम्रता है और यह नम्रता उसमें इतनी अधिक है कि बलवान से बलवान व्यक्ति उसके सामने दुर्बल हो जाता है। उसके पास सिवाय अपने 'विश्वास' के और कोई दौलत नहीं है किन्तु उसके विश्वास में पहाड़ खड़ा कर देने की सामर्थ्य है। वह आत्म त्याग के द्वारा सारे देश को महानता प्रदान करता है। उसकी ज़ाहिरा पराजय भी उसकी विजय का सृजन करती है.....।"

सेण्ट लुई का यह आदर्श रोमा रोलाँ को गान्धी जी के अन्दर प्रत्यक्ष दिखाई दिया और वे गान्धी जी के महान प्रशंसक बन गये। टाल्सटाय के भी वे प्रशंसक थे पर टाल्सटाय से उन्हें सन्तोष न था। एक जगह वे टाल्सटाय और गान्धी जी की तुलना करते हुए लिखते हैं—"किन्तु मैं यह अवश्य कहूँगा कि टाल्सटाय में नेतृत्व शक्ति नहीं थी। उनकी पीड़ित महानता कोई व्यावहारिक मार्ग ढूंढ़ निकालने में सफल न हो सकी। जबकि गान्धी जी में सभी बातें स्वाभाविक, सीधी सादी, नम्र और पवित्र हैं, टालस्टाय में अभिमान से अभिमान और क्रोध से क्रोध युद्ध करता हुआ दिखाई देता है। टाल्सटाय की हर चीज़ में हिंसा है, यहाँ तक कि उनकी अहिंसा में भी हिंसा है।"

इस महायुद्ध के पहले रोमा रोलाँ ने अपने एक वक्तव्य में कहा था—"यूरोप के हम असंख्य व्यक्ति यूरोपीय सभ्यता से बिलकुल सन्तुष्ट नहीं हैं। हममें से कुछ ऐसे लोग हैं जो शान्ति की खोज में एशिया की ओर देख रहे हैं...मैं यूरोप निवासियों से यह नहीं कहता कि वे कोई एशियाई धर्म स्वीकार कर लें। मैं केवल यही चाहता हूँ कि वे वहाँ की आश्चर्यजनक आध्यात्मिकता का स्वाद लें। एशिया को देखकर ही उन्हें इस बात का पता चलेगा कि यूरोप और अमरीका की आत्मा क्या चाहती है वह चाहती है—शान्ति, धैर्य, सबल आशा और प्रशान्त आनन्द।" और इसमें कोई सन्देह नहीं यह सारी बातें रोमा रोलाँ ने एशियाई आत्मा के दर्शन करके ही प्राप्त की थीं। रोमा रोलाँ रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाओं के भी बड़े क़ायल थे। रामकृष्ण और प्रसिद्ध यूरोपियन संगीतज्ञ बिठोवन की उन्होंने अक्सर तुलना की है।

रोमा रोलाँ की मृत्यु से संसार की पददलित जनता ने एक महान प्रतिनिधि, भारत ने एक महान प्रशंसक एशिया ने एक महान हितैषी और गान्धी जी ने एक महान मित्र खो दिया; किन्तु गान्धी जी के ही शब्दों में—"फिर भी मेरे निकट और मेरी तरह करोड़ों आदमियों के निकट रोमा रोलाँ मरे नहीं हैं। वे अपनी प्रसिद्ध रचनाओं के द्वारा जी रहे हैं और उनसे अधिक अपने अज्ञात सुकर्मों के द्वारा जी रहे हैं। सत्य और अहिंसा को जिस तरह उन्होंने देखा और जिस तरह उन्होंने समझा उसी तरह अपने जीवन में उन्होंने उतार लिया। उनके हृदय में हर प्रकार के दुख के लिये सहानुभूति थी। 'युद्ध' के नाम से पुकारे जाने वाले घृणित मानव संहार के प्रति उनकी आत्मा ने विद्रोह किया।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, H

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रोमा रोलाँ का यह पार्थिव शरीर भले ही नष्ट हो गया हो पर उनकी शिक्षा और उनके विचार सदा जीवित रहेंगे क्योंकि सम्पूर्ण विनाश से बचने के लिये मानवता के पास कोई दूसरा उपाय नहीं है।

## स्वर्गीय श्री तोताराम जी

गत २२ जनवरी को आगरे में पण्डित सुन्दरलाल जी के पिता श्री तोताराम जी का लगभग ८० वर्ष की उम्र में देहावसान हो गया। वे प्रकाश में न आने वाले विनम्र व्यक्तियों में से थे। पिछली सदी में रुड़की में उन्होंने इञ्जीनियरिंग की शिक्षा पाई थी और जब पण्डित सुन्दरलाल जी सन् १९०६-१९०७ के स्वदेशी आन्दोलन में ज़ोरदार हिस्सा ले रहे थे उस समय श्री तोताराम जी सरकारी नौकरी में थे। युक्त प्रान्तीय सरकार ने उन पर ज़ोर डाला कि वे या तो अपने इकलौते लड़के को उग्र राजनीति से समझा बुझाकर अलहदा करें या सरकारी नौकरी से स्तीफ़ा दें। किन्तु एक योग्य पिता की हैसियत से उन्होंने सुन्दरलाल जी को पथ-भ्रष्ट करने की अपेक्षा सरकारी नौकरी से ही स्तीफ़ा देना उचित समझा।

स्वर्गीय तोताराम जी ने भारतीय निर्माण-कला का बड़ा गहरा अध्ययन किया था। जिन लोगों को आगरे में दयाल बाग़ के पास स्वामी बाग़ में राधा स्वामी सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी जी महाराज की समाधि बनती हुई देखने का अवसर प्राप्त हुआ है वे स्वर्गीय श्री तोताराम जी के निर्माण-चातुर्य का कुछ अन्दाज़ा कर सकते हैं। उनकी देख रेख में जयपुर के सैकड़ों कारीगर पिछले बीस वर्ष से भारतीय निर्माण-कला का यह अत्यन्त सुन्दर नमूना बनाने में लगे हुये थे। धन के अभाव में यह इमारत अब तक पूरी नहीं हो पाई किन्तु जितना हिस्सा इसका बन पाया है वह दर्शक को आश्चर्य और प्रशंसा से भर देता है। रंग बिरङ्गे भारतीय सङ्गमर्मर पर तरह तरह के फल फूल और पत्तियों की बेशक़ीमत रिलीफ़ ( उभरी हुई ) कारीगरी सब को मुग्ध कर लेती है। प्राचीन भारतीय, मुग़ल और आधुनिक यूरोपीय निर्माण कला के ऊँचे से ऊँचे सिद्धान्तों का समन्वय इस इमारत के बनाने में किया गया है। बग़ैर गारे, सहारे या जुड़ाई के संगमरमर की जो छतें तय्यार की गई हैं वे आश्चर्यजनक हैं। अनेक देशी और विदेशी इञ्जीनियरों ने इस इमारत की निर्माण कला के लिये स्वर्गीय तोताराम जी की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। हमें विश्वास है कि राधा स्वामी सम्प्रदाय उनके इस अधूरे काम को उन्हीं की योजना के अनुसार पूरा करने की कोशिश करेगा।

पण्डित जी के इस वियोग में 'विश्ववाणी' परिवार की ओर से हमारी हार्दिक सहानुभूति है।

## हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी

जनवरी में हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी के उद्देश्य पत्र के प्रकाशन के बाद 'विश्ववाणी' के अनेक पाठकों ने जो उत्साह जनक पत्र भेजकर उसके सदस्य बनने की इच्छा प्रकट की है उससे हमें यह विश्वास होगया है कि 'विश्ववाणी' अपने मिशन में बहुत कुछ सफल हुई है। जिन पाठकों ने अब तक इस उद्देश्य पत्र को नहीं पढ़ा है उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे ध्यान पूर्वक उस उद्देश्य पत्र को पढ़ें और गम्भीरता से उस पर मनन करके उसके पक्ष या विपक्ष में अपने विचार हमें लिखें। यह काम जितना शीघ्र वे करेंगे उतना ही सोसायटी के आगे के कार्यक्रम को निर्धारित करने मे हमें सहूलियत होगी।

## भ्रम का स्पष्टीकरण

कम्यूनिस्ट पार्टी के मुख पत्र 'पीपुल्स वार' और 'लोक युद्ध' आदि में प्रसिद्ध कम्यूनिस्ट नेता सय्यद सज्जाद ज़हीर का 'युक्त प्रान्त के काँग्रेस नेताओं से भेंट' शीर्षक एक वक्तव्य ३१ दिसम्बर को प्रकाशित हुआ है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि इलाहाबाद में विद्यार्थी सम्मेलन ख़तम होने के बाद—"मैं अपने पुराने मित्र, मासिक 'विश्ववाणी' के सम्पादक पं० विश्वम्भरनाथ से मिला...आजकल वे इलाहाबाद की काँग्रेस असेम्बली के सभापति हैं। उन्होंने मुझसे कहा—'कम्यूनिस्टों को काँग्रेस से अलग रखने का प्रस्ताव मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है। जहाँ तक इलाहाबाद का सवाल है मैं काँग्रेस के तमाम कामों में तुम्हारे साथियों को साथ रखना चाहता हूं। तुम अपनी इलाहाबाद पार्टी के मंत्री से पूछ सकते हो कि मेरी आजकल भी यही नीति है।"

आगे चलकर श्री सज्जाद ज़हीर लिखते हैं—"मगर विश्वम्भर जी से बातें करके मुझे कुछ ऐसा लगा कि अब उन्हें देश की मौजूदा घटनाओं में कोई दिलचस्पी नहीं रह गई है। वह अपना अधिकतर समय पुराने दिनों के सांस्कृतिक जीवन के बारे में खोजबीन करने में लगाते हैं। उनका ख़याल है कि एक नये सांस्कृतिक पुनर्जागरण के द्वारा ही हिन्दू मुसलिम एकता हो सकती है। मैंने उन्हें समझाने की कोशिश की कि हज़ार या पाँच सौ बरस पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की संस्कृतियों में एकता ढूंढ़ने से कुछ नहीं होगा। राजनीतिक स्वतन्त्रता और जनतंत्र के सिद्धान्तों की मदद से वर्त्तमान समस्याओं का हल करने से एकता होगी।"

श्री सज्जाद ज़हीर से जो कुछ मेरी बातें हुई थीं उन्हें याद कर और इस वक्तव्य को पढ़कर मैं हैरान रह गया। सौभाग्य से उस बात चीत के दौरान में इलाहाबाद कम्यूनिस्ट पार्टी के मंत्री श्री शिवसिंह भी मौजूद थे। उनसे मैंने पूछा कि क्या यह वक्तव्य सही है? उन्होंने जवाब दिया—"ज़हीर साहब ने बड़ी ग़लत बातें लिखी हैं। उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये था। आप उन्हें इसका खण्डन भेजिये।" श्री शिवसिंह की सलाह से मैंने बात चीत का सही विवरण उनके पास भेजा, किन्तु चार हफ़्ते के बाद भी कम्यूनिस्ट पार्टी के अख़बारों ने मेरा वक्तव्य छापना मुनासिब नहीं समझा। इस बीच 'विश्ववाणी' के अनेक पाठकों ने इस वक्तव्य की ओर हमारा ध्यान दिलाया। इस ग़लत फ़हमी को दूर करने के लिये मैं मोटे तौर पर उस बात चीत को यहाँ दे रहा हूं।

श्री सज्जाद ज़हीर ने कहा कि "तोड़ फोड़ के सम्बन्ध में कम्यूनिस्ट जो कुछ कहते आरहे हैं वही बात गान्धी जी और काँग्रेस के दूसरे ज़िम्मेवार नेता कह रहे हैं फिर कम्यूनिस्टों के ख़िलाफ़ अनुशासन की कार्रवाई क्यों हो रही है।"

मैंने उन्हें जवाब दिया—"ठीक है! वही बात आप भी कहते आरहे हैं जो गान्धी जी कह रहे हैं लेकिन सिर्फ़ फ़र्क़ इतना है कि वही बात कहने के लिये गान्धी जी को जेल में रहना पड़ा और आप लोग बाहर रहे; किन्तु कम्यूनिस्ट पार्टी के साथ जो हमारा बुनियादी फ़र्क़ है वह तोड़ फोड़ के सम्बन्ध में नहीं है, वह युद्ध के सम्बन्ध में है। आप लोग इस युद्ध को सन् ४१ के बाद से जनता का युद्ध कहते हैं और काँग्रेस वाले इस युद्ध को रूस के शामिल हो जाने पर भी साम्राज्यवादी युद्ध कहते हैं। इस युद्ध को जन युद्ध बनाने के ख़ातिर ही वह अगस्त का प्रस्ताव था कि जिसकी निन्दा करते हुये आपका तालू चटख़ने लगा। फिर हर संस्था का अपना अनुशासन होता है। भीतर आप चाहे जितना उसका विरोध करें किन्तु उसके तै शुदा प्रस्तावों का आपको खुला विरोध नहीं करना चाहिये था। जब आपने स्वयं अनुशासन नहीं रखा तो फिर आपको शिकायत का भी कोई अधिकार नहीं है। किन्तु आपको कमेटियों में रहने की ख़ास इच्छा क्यों हो? आप कम्यूनिस्ट पार्टी में भी तो हर एक को नहीं घुसने देते। संस्था और अनुशासन के नहीं चलतीं। केवल कमेटियों में आने के लिये आप पर प्रतिबन्ध है। बाक़ी हमारे सारे रचनात्मक कार्य क्रम हर एक के लिये खुले हुये हैं और जहां तक इलाहाबाद की कमेटी का सम्बन्ध है मैं सभापति की हैसियत से आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हम तमाम रचनात्मक कार्य क्रम में सब के साथ साथ आप से भी मदद लेंगे।"

इसके बाद हिन्दू मुसलिम प्रश्न पर बातें हुईं। श्री सज्जाद ज़हीर ने कहा कि आप लोग तो हिन्दू मुसलिम एकता के ज़बर्दस्त हामी हैं, क्यों नहीं आप लोग कांग्रेस लीग यूनिटी में हमारा साथ देते?

इसका मैंने जवाब दिया—"बेशक हम हिन्दू मुसलिम एकता के हामी हैं किन्तु इस सम्बन्ध में कम्यूनिस्ट पार्टी की नीति से हमारा मौलिक मतभेद है। आप लोग जिन्हा साहब के इस दावे के समर्थक हैं कि हिन्दू कलचर अलग और मुसलिम कलचर अलग; इसलिये हिन्दू नेशन अलग और मुसलिम नेशन अलग। हमें अफ़सोस है कि २५ वर्ष के भारतीय कलचर के इतिहास का हमारा अध्ययन हमें जिन्हा साहब के इस दावे को स्वीकार नहीं करने देता। इतिहास हमें बताता है कि इस देश में बाहर से जितनी भी संस्कृतियाँ आईं वे भारतीय संस्कृति के साथ घुल मिलकर एक हो गईं। इस सच्चाई की मिसालें हमारी प्राचीन निर्माण कला, चित्रकला, संगीत, भाषा, रहन सहन, रस्म-रिवाज आदि सब में साफ़ साफ़ दिखाई देती हैं। मध्य युग के हमारे सन्तों ने कबीर से लेकर पल्टू और मलूकदास तक इसी भारतीय संस्कृति की अखण्डता के नाम पर देश की हिन्दू और मुसलमान जनता को एक करने का प्रयत्न किया था। इन हिन्दू और मुसलमान सन्तों की वाणियों में उस एकता की ज़िन्दा तसवीर हमें दिखाई देती है। हमने अपने १००० वर्ष के मिले जुले जीवन में जिस अखण्ड भारतीय संस्कृति का निर्माण किया आज उसे क्षणिक राजनैतिक फ़ायदे के लिये हम क़ुर्बान करने पर तय्यार नहीं हैं। यदि हमारी संस्कृति अखण्ड है तो फिर सांस्कृतिक बुनियादों पर देश अलग अलग कैसे हो सकता है। यह हमारे और आप कम्यूनिस्टों के बीच में मौलिक मतभेद है। फिर आप लोग काँग्रेस-लीग एकता के नारों के बीच इस बात को बिलकुल भूल गये हैं कि हिन्दू-मुसलमानों को पाकिस्तान बनने के बाद भी एक साथ रहना है, एक साथ मरना जीना है और उस यकजाई जीवन का ठोस और प्रेम पूर्ण आधार सांस्कृतिक एकता ही हो सकती है। कितना ही साम्प्रदायिक नेता नारे लायें देश की जनता राम और रहीम में, अल्लाह और

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ईश्वर में कोई फ़र्क़ नहीं देख सकती। तो क्यों नहीं आप लोग राजनैतिक एकता के नारे के साथ साथ सांस्कृतिक एकता का भी नारा बुलन्द करते ?"

श्री सज्जाद ज़हीर ने इस बात को स्वीकार किया कि कल्चरल एकता की बात बहुत ज़रूरी है, ऐतिहासिक ग़लत-फ़हमी दूर करने का काम भी निहायत ज़रूरी है और उन्होंने हमें आश्वासन दिया कि बम्बई लौटकर वे मुसलमानों के प्रति ऐतिहासिक ग़लतफ़हमी दूर करने और सांस्कृतिक एकता का प्रचार करने वाले 'विश्ववाणी' में प्रकाशित लेखों को अपने कम्यूनिस्ट पत्रों में उद्धृत करने का प्रयत्न करेंगे। पर उद्धृत करना तो दूर रहा उन्होंने हमारे कल्चरल यूनिटी के प्रयत्नों पर हिक़ारत की बौछार कर दी। वह शायद इसीलिये कि सांस्कृतिक एकता के साथ साथ दो नेशन्स की बात नहीं चल सकती।

श्री सज्जाद ज़हीर ने हमारी हज़ार पाँच सौ बरस पहले की संस्कृति का मज़ाक़ उड़ाने की कोशिश की है। हमें सिर्फ़ इतना ही कहना है कि हमें अपनी महन्जो दड़ो से लेकर अब तक की अखण्ड भारतीय संस्कृति पर अभिमान है। हुज़ूरे वाला ! आपको २५ वर्ष की नौजवान रूसी संस्कृति के मुक़ाबले में हमारी ५००० वर्ष पुरानी संस्कृति बुढ़िया खूसट लगती होगी, पर यह न भूलिये इसी बुढ़िया ने हमें ५००० वर्ष तक जीवित और जाग्रत रखा है और हमारे मन प्राण में इसी की आत्मा रमी हुई है। आज आप अपनी इस जीवन दायिनी माँ का उपहास कर सकते हैं पर यह न भूलिये कि जिस कमसिन छोकरी पर आप रीझे हुये हैं उसने अभी प्रयोग की पहली मंज़िल भी पार नहीं की है।

## अनुशासन की बात

कम्यूनिस्ट पार्टी के मुखपत्र अपनी वकालत में श्रीमती सरोजिनी नायडू के ऐलानों को पेश करते रहते हैं। किन्तु अनुशासन के सम्बन्ध में १८ जनवरी को मद्रास में बयान देते हुए श्रीमती नायडू ने कहा है—

"कांग्रेस के अन्दर हर व्यक्ति को किसी भी सवाल के फ़ैसले में अपनी राय देने का अधिकार है, किन्तु जब एक बार फ़ैसला कर लिया गया तो जनतन्त्र का सिद्धान्त यह अपेक्षा करता है कि लोग उस फ़ैसले के प्रति वफ़ादार रहें। बहस के दौरान में हर शख़्श अपने विचार प्रकट कर सकता है किन्तु ईमानदारी इस बात में है कि बहुमत से जो कुछ फ़ैसला हो जाय सदस्यगण अपने को उससे बंधा हुआ समझें।"

हम जानना चाहते हैं कि क्या आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के ८ अगस्त १९४२ वाले प्रस्ताव पर हमारे कम्यूनिस्ट दोस्तों ने अनुशासन के नाते कोई ख़ामोशी धारण की क्या इस युद्ध के प्रति कम्यूनिस्ट भाइयों का वही रुख़ है जो कांग्रेस ने अपने प्रस्तावों में व्यक्त किया है ? क्या मेहरबानी करके वे यह बतायेंगे कि कांग्रेस के किस प्रस्ताव के अनुसार यह युद्ध लोक युद्ध है ? कांग्रेस ने हर चन्द कोशिश की कि यह युद्ध जनता का युद्ध बन जाय पर सरकार ने उसका जवाब सन ४२ के घोर दमन के साथ दिया। चर्चिल, अमेरी, रूज़वेल्ट, स्तालिन किसी के भी वक्तव्य से क्या कोई इशारा भी मिलता है कि युद्ध के बाद भारतीय जनता को गोरे साम्राज्यवादियों के शोषण से मुक्ति मिलेगी ? अगर नहीं तो हमारे कम्यूनिस्ट भाई पाँचों सवारों में अपना नाम लिखाने को क्यों उत्सुक हैं ?

एक अर्थों में बेशक यह युद्ध जनता का युद्ध हो सकता है, और वह इन अर्थों में कि रूसी जनता जर्मन जनता का गला काट रही है, और जर्मन जनता ब्रिटिश जनता का गला काट रही है; जापानी जनता चीनी जनता का गला काट रही है और निग्रो जनता जापानी जनता का गला काट रही है। पर और किसी अर्थ में यह युद्ध जनता का युद्ध है यह कम्यूनिस्ट पार्टी आफ़ इण्डिया के सदस्य ही जानें। हमारी तुच्छ बुद्धि में कम से कम यह बात नहीं धँसती कि बर्तानी भारत की प्रतिनिधि संस्थाओं—कांग्रेस और लीग आदि का सहयोग पाये हुए यह युद्ध कैसे भारतीय जनता का युद्ध है।

जैसा हमने ऊपर कहा है प्रश्न अनुशासन का है। हर पार्टी को कांग्रेस में शामिल होने का अधिकार है बशर्ते कि वह उसका अनुशासन स्वीकार करे, किन्तु हिन्दुस्तान में कम से कम कम्यूनिस्ट पार्टी का रवैया यह रहा है कि वे अपनी पार्टी का अनुशासन तो बहुत सख़्ती से मानते हैं पर जिस संस्था में वे घुसते हैं उसका अनुशासन छिन्न भिन्न करने की कोशिश करते रहते हैं। जिस समय कांग्रेस ने सन १९४१ में व्यक्तिगत सत्याग्रह की बात तय की उस समय कम्यूनिस्ट दोस्तों ने नारा बुलन्द किया कि यह मज़ाक़ बन्द करके सामूहिक सत्याग्रह शुरू होना चाहिये और जब कांग्रेस ने सामूहिक सत्याग्रह की बात तय की तो कम्यूनिस्ट पार्टी उसे घातक क़दम कहने लगी। तजुर्बे ने यह बता दिया है कि हुज़ूरे वाला ! हमारी आपकी पटरी नहीं बैठती। या तो आप संस्था का अनुशासन मानिये वरना फिर अनुशासन क़ायम रखने के लिये संस्था जो क़दम उठाये उस पर ख़फ़ा न होइये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# निर्वाणी

वर्ष ५, भाग ६ ] मार्च, १९४५ [ अङ्क ३, पूरे अङ्क ५१

संरक्षक : पण्डित सुन्दरलाल

## ...राम में स्नान !

...ा तय्यब जी

...ी सच्चे अर्थों में सर्वधर्म-समभावी हैं।

...र में वीणा लेकर

...र्षिक मूल्य ६) ] मार्च १९४५ [ एक अङ्क का ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ईश्वर में कोई फ़र्क़ नहीं देख सकती। तो क्यों नहीं आप लोग राजनैतिक एकता के नारे के साथ साथ सांस्कृतिक एकता का भी नारा बुलन्द करते ?'

श्री सज्जाद ज़हीर ने इस बात को स्वीकार किया कि कल्चरल एकता की बात बहुत ज़रूरी है, ऐतिहासिक ग़लत-फ़हमी दूर करने का काम भी निहायत ज़रूरी है और उन्होंने हमें आश्वासन दिया कि बम्बई लौटकर वे मुसलमानों के प्रति ऐतिहासिक ग़लतफ़हमी दूर करने और सांस्कृतिक एकता का प्रचार करने वाले 'विश्ववाणी' में प्रकाशित लेखों को अपने कम्यूनिस्ट पत्रों में उद्धृत करने का प्रयत्न करेंगे। पर उद्धृत करना तो दूर रहा उन्होंने हमारे कल्चरल यूनिटी के प्रयत्नों पर हिक़ारत की बौछार कर दी। वह शायद इसीलिये कि सांस्कृतिक एकता के साथ साथ दो नेशन्स की बात नहीं चल सकती।

हम जानना चाहते हैं कि क्या आल इण्डिया [illegible] कमेटी के ८ अगस्त १९४२ वाले प्रस्ताव पर हमारे [illegible] निस्ट दोस्तों ने अनुशासन के नाते कोई ख़ामोशी [illegible] क्या इस युद्ध के प्रति कम्यूनिस्ट भाइयों का वही रुख़ [illegible] कांग्रेस ने अपने प्रस्तावों में व्यक्त किया है ? क्या मेहर[illegible] करके वे यह बतायेंगे कि कांग्रेस के किस प्रस्ताव के अनु[illegible] यह युद्ध लोक युद्ध है ? कांग्रेस ने हर चन्द कोशिश [illegible] कि यह युद्ध जनता का युद्ध बन जाय पर सरकार ने उ[illegible] जवाब सन ४२ के घोर दमन के साथ दिया। चर्चि[illegible] अमेरी, रूज़वेल्ट, स्तालिन किसी के भी [illegible] इशारा [illegible] के अध्यात्म-गीत—कुमारी ज़ोरा गोरे [illegible] हर्स्टन ... ... १[illegible]

श्री सज्जाद ज़हीर ने हमारी हज़ार पाँ[illegible]
पहले की संस्कृति का मज़ाक [illegible] गायल
हमें सिर्फ़ इ[illegible] ... ... १३१
ले० सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय का भ्रमपूर्ण प्रचार—श्री महादेव साहा ... १३४
०—जिसका रक्षा-कवच अहिंसा था !—श्री राम भाई ... ... ... १३९
नहीं [illegible] पुस्तक परिचय—श्री देवेन्द्र एम० ए०, श्री महावीर प्रसाद सिनहा ... ... १५
१६—सम्पादकीय विचार—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी, खेती की पैदावार बढ़ाने की योजना, रचनात्मक कार्यक्रम और सरकारी रुख़, कस्तूर बा फण्ड की कार्य योजना, समग्र ग्राम-सेवा का आदर्श, भिन्नता में एकता, सब की बोली हिन्दुस्तानी, याल्टा सम्मेलन के फ़ैसले, मसीह के ये अनुयायी। ... १५२—१५६

# विश्ववाणी के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से विश्ववाणी नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्ववाणी' भेजते हैं। हम अपने रजिस्टर में विश्ववाणी भेजने की तारीख़ तक दर्ज करते हैं। किन्तु डाकख़ाने के भूत बीच में छापा मार कर कई प्रतियाँ ग़ायब कर देते हैं। हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस बात की शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण रूप से भेजी हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर सकने में असमर्थ हैं। विश्ववाणी हर महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है और तीन तारीख़ तक सभी ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन जब हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक नम्बर लिखना भूल जाते हैं। विश्ववाणी सम्बन्धी जाँच के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब के लिये [illegible] तो जवाबी कार्ड या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत
नित्यानन्द चैटर्जी
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ५, भाग ६ ] मार्च, १९४५ [ अङ्क ३, पूरे अङ्क ५१

# राम नाम में स्नान !

कुमारी रैहाना तय्यब जी

स्वर्गीय अब्बास तय्यब जी की सुपुत्री कुमारी रैहाना तय्यब जी सच्चे अर्थों में सर्वधर्म-समभावी हैं। कुरान, गीता और रामायण सब पर उनकी एक सी निष्ठा है। अत्यन्त मधुर स्वर में वीणा लेकर अपने बनाये हुए कृष्ण और राम की भक्ति के गीत गाकर वे आत्म-विह्वल हो जाती हैं। राम-भक्ति पर हम यहाँ उनका एक गीत दे रहे हैं।

राम नाम में स्नान कर मन, राम नाम में स्नान;
राम नाम निर्मल जल लखकर, गंगा हुई लजवान;
गंगा हुई लजवान, रे मन, राम नाम में स्नान!
कर प्रिय, राम नाम में स्नान!

राम नाम के यज्ञ - कुण्ड में, होम दे तन - मन - प्राण;
होम दे तन - मन - प्राण, रे मन, राम नाम में स्नान!
कर प्रिय, राम नाम में स्नान!

फेन समान जगत की सत्ता, एक हरी बलवान;
एक हरी बलवान, रे मन, राम नाम में स्नान!
कर प्रिय, राम नाम में स्नान!

राम नाम की मूरत रचकर, हो जा तू बलिदान;
हो जा तू बलिदान, रे मन, राम नाम में स्नान!
कर प्रिय, राम नाम में स्नान!

कमल सुवासित राम नाम का, गन्ध से हो बेभान;
गन्ध से हो बेभान, रे मन, राम नाम में स्नान!
कर प्रिय, राम नाम में स्नान!

राम नाम के सागर में अब डूब मरे 'रैहान';
डूब मरे 'रैहान', सुन प्रिय! राम नाम में स्नान!
कर प्रिय, राम नाम में स्नान!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नेह का बावला

प्रोफ़ेसर राजनाथ पांडेय, एम० ए०

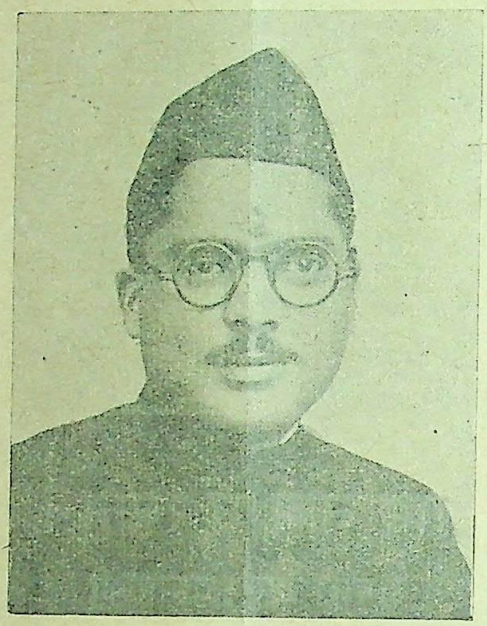

प्रेम योगी मलिक मुहम्मद जायसी* की बहुत मधुर वाणी थी। उनकी वाणी प्रेम की वाणी थी क्योंकि प्रेम वन के वह एक अनोखे योगी थे। प्रेम की वाणी प्यारी होती ही है।

जो दुनियादार हैं उनके लिये सुख दुख के विधान बहुत हैं। जो बावले हैं उन्हें सुख कहाँ, पर उन्हें दुख भी नहीं हैं। और जो प्रेम पंथ के पियादे हैं उन्हें मिलन में चिहुँक, वियोग में मीठी टपकन, और विरह में मन का वह रंग प्राप्त होता है जिससे उन्हें धूप, धूप और छाँह, छाँह नहीं रह जाती। जायसी ऐसे ही नेह के बावले थे! वह कहते थे :—

"जो हइँ नेह क बाउर तिन कहँ धूप न छाँह।"

रानी पदमावती के नेह के जिस बावले राजा रतन सेन का जायसी जी ने अपने महाकाव्य "पदुमावत" में वर्णन किया है वह बावले वस्तुतः स्वयं जायसी जी ही थे। संसार में प्रेम को छोड़ और कुछ भी लोना नहीं है। उन्होने मन में बूझ कर यह देख लिया था। इसीलिए वह प्रेम के पंथ में शिर देकर चले थे। वह कहा करते थे, "प्रेम पंथ में जो शिर नहीं देता उसे पृथ्वी में आने का कोई अधिकार नहीं है":—

जो नहिं सीस प्रेम-पथ लावा।
सो धरती महँ काहे क आवा॥

प्रेम करना कठिन कार्य है।[1] क्योंकि जो प्रेम के अपार समुद्र में पड़ते हैं वह लहरों की लहर बेसुध हो जाते हैं[2] और फिर उस अगाध से निकल नहीं पाते। संसारी को सुख तभी तक है जब तक उसका हृदय प्रेम नहीं जानता और जहां प्रेम हो गया वहां सुख और विश्राम कहाँ?[3] जिसके हृदय में प्रेम-रंग जम गया उसको भूख, नींद और विश्राम नहीं रह जाता।[4] जहां प्रेम रहता है वहां कुशल-क्षेम का निवास नहीं रह जाता।[5] प्रेम के द्वार का उलटा पंथ होता है। उलटी उसकी रीत होती है। उसमें चढ़कर जो पाताल पड़ता है वही सरग चढ़ता है।[6] जिसके प्रेम-पीर आ उपजती है उसका प्रबोधने से वह सवाई अधिक ही होती है! जिस तन में प्रेम रहता है उस तन में न रक्त रहता है, न मांस, और न आंखों में आंसू![7] जायसी ऐसे ही प्रेम-पंथ के पथिक थे।

राजा रतन सेन पदुमावती के प्रेम की सुरा पीकर छका हुआ था। इसीलिये जब पार्वती ने सिंहल गढ़ के शिव मंदिर में बेसुध पड़े रतनसेन के सामने, उसकी परीक्षा लेने को कैलाश की अप्सरा का लावण्य धारण कर उसे वरण करने का प्रस्ताव किया तब उसने कहा :—

भलेहिं रंग अछरी तोर राता।
मोहिं दुसरे सऊँ भाव न बाता॥

राजा रतन सेन का सिद्धांत ही था :—

पेम सुरा जेहि के हिअ माहाँ।
कित बइठइ महुआ के छाहाँ॥

---

* पांडेय जी का लिखा "प्रेम योगी मलिक मुहम्मद जायसी" शीर्षक एक निबंध सितंबर ४४ की 'विश्ववाणी' में प्रकाशित हुआ था। अत्यंत तन्मयता में लिखा वह लेख बहुत सुन्दर था और अनेक मित्रों ने उसे बहुत पसंद किया था। संपादक॥

१—करब पिरीत कठिन इह काजा॥
२—परा जो पेम समुंद अपारा।
लहरहिं लहर होइँ बिसँभारा॥
३—तउ लगि सुख हिअ पेम न जाना।
जहां पेम कत सुख बिसरामा॥
४—जेहि के हिए पेम रंग जामा।
का तेहि भूख नींद बिसरामा॥
५—जहां पेम कहँ कूसल खेमा॥
६—उलटा पंथ पेम के बारा।
चढ़इ सरग जो परइ पतारा॥
७—उपजी पेम पीर जेहि आई।
परबोधत होइ अधिक सवाई॥
जेहि तन पेम कहाँ तेहि माँसू।
कया न रकत नैन नहिं आँसू॥

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इस कारण पदुमावती के अतिरिक्त किसी अन्य का लावण्य उसके लिए महुआ की छाँह ही था। विद्वानों ने जायसी द्वारा वर्णित प्रेम की इस अवस्था को अस्वाभाविक कहा है क्योंकि तब तक रतन सेन ने पदुमावती को देखा तक नहीं था, सो यदि पार्वती ने कहा होता कि रानी पदुमावती मैं ही हूँ और हीरामन सुए ने भी उसका समर्थन कर दिया होता तो राजा को उस नकली पदुमावती रूपी महुए की छाया में बैठना ही पड़ता। किंतु इस प्रकार का आक्षेप व्यर्थ है। जायसी के मत में प्रेमी जब तक मलयागिरि की बास नहीं हो जाता, सूर्य होकर आकाश नहीं चढ़ता, भौंरे के रंग को नहीं प्राप्त करता, दीपक का पतंग नहीं बनता और प्रेम में ओट कर एक नहीं होता, तथा उसके हृदय से डर चला नहीं जाता तब तक वह प्रेम में कच्चा ही रहता है।* वह यह सब हो जाता है तब उसका प्रेम परिपक्व होता है। इसीलिये जायसी का रतन सेन जैसा अनोखा प्रेमी प्रेम में परिपक्व होने के पूर्व प्रियतम के मिलन की आशा नहीं कर सकता। संभवतः प्रियतम आए भी तो वह स्वागत नहीं कर सकता! इसीलिए वह पार्वती से कहता है :—

अबहिं ताईं जिअ देइ न पावा।
तोहि असि अछरी ठाढ़ि मनावा॥
जौ जिअ देइहौं ओहि के आसा।
न जनौं काह होइ कविलासा॥

अर्थात् अब तक मैं प्राण दे भी न सका और तुम्हारी जैसी अप्सरा सामने खड़ी होकर मुझे मनाने लगी। जब मैं उसकी आशा में प्राण दे दूंगा तब तो कैलाश में न जाने क्या हो जायेगा! सच ही तो है। आज तक संसार के किस अभागे प्रेमी को ऐसे अनायास ही प्रियतम की प्राप्ति हुई है? सच्चे प्रेम का मार्ग कटीले काँटों से सदैव भरा होता है। प्रियतम की अपेक्षा, प्रेमी की निराशा और पड़ोसियों की निन्दा प्रेमी में विरह की वह मीठी वेदना भरती है कि जिसकी आँच में हृदय के सभी कलुषित तत्व पिघल पिघल कर बह जाते हैं और उसका प्रेम तपाए हुए कुन्दन की भाँति जगमग हो जाता है। इसी से जिस प्रेमी को अनायास ही प्रियतम की प्राप्ति हो जाती है,* अतः प्रेम के यह उपहार जिसे नहीं मिल पाते, उसका प्रेम कभी परिपक्वता की ऊँचाई नहीं प्राप्त कर पाता। हम इसी कारण उसे अभागा कहते हैं।

परन्तु जायसी अभागे प्रेमी नहीं थे। जिस प्रेम की चिनगी के बारे में केवल सुनने ही से पृथ्वी और गगन डर कर काँपने लगते हैं, धन्य जायसी का हृदय था और धन्य वह विरही थे, जिन्होंने प्रेम की उस अग्नि को हृदय में सँजो रखा था![८] इसीलिये कभी पदुमावती का वियोगी रतनसेन बनकर, कभी रतनसेन की तपस्विनी पदुमावती बनकर, कभी रतनसेन की व्याहुता विरहिन नागमती बन कर, कभी रतनसेन की दुखिया माता बनकर, नाना रूप भाव में वह अपने अनूठे और अगाध नेह के बावलेपन को प्रकट करते रहते हैं। जैसे सूर्य की किरणें वर्ण-वर्ण का सृजन और दर्शन देती हैं और जैसे जगत के सिरजनहार की कला कभी फूलों की लाली में, कभी लताओं की लचक में, कभी सूरज की तपन में, कभी घटाओं की उमड़ घुमड़ में नाना रूपों और नाना भावों में प्रकट होती है वैसे ही जग पियारे न्यारे अपने मनभावंता के अनन्त प्रेम में और कर जायसी जी भी जगत पियारे न्यारे नेह के बावले हो गए थे। उनका मुँह पीला हो गया था! उनके नैन जल में उभके रहते थे!

वे कुछ मुँह से नहीं बोलते थे। उनके ये दोनों नैन ही प्रेम के प्रकट बैन थे! उनका तन बे सँभार रहता था, उनका मन बाउर था और वह बिलकुल लट गए थे। प्रेम में उलझ कर उनकी जटाओं में लटें पड़ गई थीं। इसीलिए वह पुकार पुकार कर कहा करते थे, "हे भाइयो! प्रेम के फन्दे में कोई मत पड़ो! प्रेम का रङ्गी कोई मत बनो! प्रीति की बेलि में कोई मत उलझो!

---

*हौं जानति हौं अब हीं काँचा।
ना वह प्रीतिरंग थिर राँचा॥
न वह भएउ मलयगिरि बासा।
ना वह रवि होइ चढ़ा अकासा॥
ना वह भएउ भौंर कर रंगू।
ना वह दीपक भएऊ पतंगू॥
ना वह पेम औटि एक भएऊ।
ना ओहि हिए माँझ उर गएऊ॥

* The path of true love did never ru
smooth as it never could.

८—मुहमद चिनगी पेम कै सुनि महि गगन डेराइ
धनि विरही औ धनि हिआ, जहँ अस अगिनि समाइ

९—बदन पिअर जल उभकहि नैना।
परगट दुअउ पेम के बैना॥
तन बिसँभर मन बाउर लटा।
अरुझा प्रेम परी सिर जटा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


(१) पेम के फन्द कोई जिनि परई ॥
(२) जिनि कोइ होइ पेम कर राता ॥
(३) प्रीति बेइलि जिनि अरुझइ कोई ॥

किन्तु प्रेम की बेलि ऐसी नहीं जिसमें उलझने के पहिले कोई भी कभी कुछ बोला हो, वा किसी ने किसी की कुछ सुनी हो। जैसे अनाथ मानव के संसार में आने के पहिले ही से उसके लिए प्रेम की बेलि का फैलाव हुआ रहता है। और यह बेलि होती भी खूब ही है। जब तक इसके पंखुए ही रहते हैं तब तक तो यह सुखद रहती है किन्तु जब बढ़ चलती है तब दुख ही बढ़ता है! इन्सान की कैसी बिसी है। भगवान को चाहिये था उसे सब्र देता या जब ब्र नहीं दिया तो वह रूप ही न बनाता जिसकी सिर्फ एक लक सहृदय को जीवन भर तड़पाने और उसकी जान ले ने के लिए बहुत होती है :—

दिल ही तो है न आए क्यों, दम ही तो है न जाए क्यों।
मुझको ख़ुदा जो सब्र दे, तुझसा हसीं बनाए क्यों॥
—ग़ालिब

बिचारे जायसी करते क्या! जिस सुघर की जोत शशि और कँवल की हो और फूल हँसे और मोती रोए; जिसके णी से जूड़े को छुड़ाकर बाल झरने से सरग और पाताल अँधेरा छा जाए तथा दिन में ही भानु की दशा छिप ाए जिससे रात समझ चन्द्रमा तारागण को लेकर प्रका- ित हो पड़े; जिसके नेत्रों के डोलते ही जगत डोल उठे; सकी बरुणी बाण साधे आमने सामने खड़ी दो ऐसी ात्रों की भाँति हों जिनके मारे हुए बाणों ने सकल सार को बेध डाला हो और ऐसा कोई न हो जो उनसे बचा ; जिसके दाँतों की ज्योति ही से रवि-ससि-नखत सब दीप्त और जिसके पैर पृथ्वी पर न पड़ें इसलिए देवतागण उसे थों हाथ लेते रहते हों, और जहाँ उसका पग पड़ जाता वहाँ वे लोग अपना शिर टेकते हों,[१०] ऐसे सुघर की ज्योति देखकर भी दिल भीतर किए रहने का किस मानव को सब्र होगा? जायसी जी का भी सुघराई के ऐसे अनन्त सागर की एक लहर देखते ही सारा सब्र जाता रहा। अनायास ही जैसे उस सुकुमार ने देखने मात्र ही से हृदय काढ़ लिया।[११] उसे नैनों के भीतर झाँप रखने के लिए वह भी लालायित हो उठे![१२]

सच है। प्रेम की हाट में न कोई छोटा है न कोई बड़ा। प्रेम न बाड़ी ऊपजै है न हाट बिकाय है; राजा परजा जिसे रुचै सीस देइ लै जाय है" यह कबीरदास कहते हैं। प्रेम का मूल्य प्रेम की लगन ही है। और यह लगन जायसी जी में चातक की अटूट लगन जैसी भरी हुई थी।

जैसे सौंदर्य के साथ प्रीति का और प्रीति के साथ बाबलेपन का स्वाभाविक नाता है वैसे ही प्रीति बेलि में उस अपार विरह का निवास है जिसकी झार में सरग पताल झुलस जाते हैं।[१३] खड्ग की धार संसार में बहुत कठिन होती है किन्तु बिरह की झार (ज्वाल) उससे भी अधिक होती है।[१४] इसी बिरह की झार में बिरहिनी जब रोती है तब उसके रक्त के आंसू भूमि पर ऐसे टूट टूट कर चूते हैं जैसे बीर बहूटी रेंग चलती हैं। बिरहिनी के बिरह की आग की लपट से सूर्य जल कर काँपता है और रात दिन उसी ताप में जलता रहता है। उसी दाह में राहु केतु दग्ध होते हैं और चन्द्रमा उसी से जल कर आधा हो रहता है। उसी ज्वाला में सब नक्षत्र-तारागण जलते हैं, और उल्काएँ टूट टूट कर पृथ्वी पर गिरती हैं। पृथ्वी भी ठांव ठांव पर उसी आग में जलती है और पलाश भी उसी से जल कर लाल लाल हुए हैं![१५]

---

-पदुमावति कवँला ससि जोती। हँसइ फूल औ रोवइ मोती॥
ी छोरि झार जौं बारा। सरग पतार होइ अँधिआरा॥
पि गै दिनहिं भानु कै दसा। लेइ निसि नखत चाँद परगसा॥
ा डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अड़ार जाहिं पलमाहाँ॥
नी का बरनौं हमि बनी। साधे बान ठाढ़ दुइ अनी॥
ा बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा॥
ह दिन दसन जोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओहि भई॥
ब ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
ता हाथ हाथ पगु लेहीं। जहँ पगु धरै सीस तहँ देहीं॥

११—देखत हिआ काढ़ि जनु लेई।
१२—घालि नैन ओहि राखिअ, पल नहिं कीजिऊ ओट।
पेम का लुबुधा पाव ओहि, काह सेा बड़ का छोट॥
१३—प्रीति बेइलि सँग बिरह अपारा।
सरग पतार जरै तेहि झारा॥
१४—जग महँ कठिन सरग कै धारा।
तेहि ते अधिक बिरह कै झारा॥
१५—रकत क आँसु चुवइँ भुइँ टूटी। रेंगि चलीं जिमि बीरबहूटी॥
बिरह क आगि सूर जरि काँपा। रातिउ दिवस जरइ ओहि तापा॥
डाढ़ा राहु केतु गा दाधा। सूरुज जरा चाँद जरि आधा॥
औ सब नखत तराईं जरहीं। टूटहिं लूक धरति महँ परहीं॥
जरइ सो धरती ठावहिं ठाऊँ। दहकि पलास जरइ तेहि दाऊँ॥

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गिरि, समुद्र, ससि, मेघ, रवि सब के सब इस आग को सहन नहीं कर सकते। अकेली सती धन्य है जो अपने प्रिय के लिए इस आग में जलती है :—

गिरि समुद्र ससि मेघ रवि, सहि न सकइँ वह आगि।
मुहमद सती सराहिए, जरइ जो अस पिअ लागि॥

जिस अपूर्व सौंदर्य के जल में उसके स्नान करते समय झलक पाने से दिन ही में रात हो जाती है और तब चकई अपने जोड़े से बिछुड़ कर कहती है, "हे नाथ, अब मिलन कहां हो क्योंकि एक चांद रात्रि में सरग में तो रहता ही है, अब एक दूसरा दिन में ही जल में उदित हुआ है।"[१६] उसी सौंदर्य की प्रथम झलक पाकर दूसरी झलक के लिए तड़पता हुआ जायसी का रतन सेन कहता है :—

आइ बसंत जो छपि रहा, होइ फूलन के बेस।
केहि बिधि पावौं भौंर होइ, कौन गुरू उपदेस॥

ऐसी ही लगने पर संसार के एक दूसरे विरही ने भी कहा —

पावौं कहाँ हरि हाय तुम्हैं धरनी में धसौं कि अकासहिं चीरौं॥
—घनानंद

रतन सेन ने फिर विह्वल होकर रुदन किया। उसने ऐसा रुदन किया जिससे रोम रोम उसका प्राण जल गया और रक्त और मांस सब रोएँ रोएँ के रोने से सूत सूत आंसू भर कर गिर पड़े![१७] हाय! ऐसा रोने वाला भी तो कोई हो। रतनसेन को गुरु भी मिले और उसने अपने प्रियतम को पाया भी! परन्तु जायसी भी तो रोए। किन्तु उनके रोने से क्या होगा? यह तो यार का मन है, माने या न माने! रूप उसने दिखाया, दिल हमें उसने दिया, प्रेम में हमें उसने उलझाया, विरह की ज्वाला में हम जले, हमने सब्र से सब सहा, जब न सहा गया तब रो पड़े और अपना रक्त-मांस आँसू बनाकर गिरा दिया, पर मालिक ने माना या न माना*। मानने या न मानने का निश्चय तो उसने हमारे पहिले ही कर लिया था। प्रेम और विरह का यही महान मर्म है जिसे मरमी जायसी ने प्रेम करके जाना। कितनी वेदना में डूबे हुए वह कहते हैं, "मालिक! तुमने अधिकार से ही काम लिया। हाय! हमारे रोने से क्या होगा, तुमने पोत (कर) का निर्णय खेत बोने के पहिले ही कर लिया था" :—

नियाउ न किएउ, किएउ ठकुराई।
बिनु पूछे लिखि दिहेउ बुराई॥
होत कहा अब हमरे रोए।
कूति लिहेउ बिनु जोते बोए॥

कुछ ऐसे ही उदासी में एक दूसरे मरमी ने भी गाया था :—

न था मैं तो ख़ुदा था, मैं न होता तो ख़ुदा होता।
मिटाया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता॥
—ग़ालिब

इसी कारण जायसी का यह कहना कितना सत्य है :—

एहि जग बहुत नदी जल जूड़ा।
कोउ पार भा कोउ बूड़ा॥

इसीलिए सच्चा प्रेमी थक कर बस इतना ही कहता है :—

मालिक! तेरी रज़ा रहे! औ' तू ही तू रहे।
बाक़ी न मैं रहूं न मेरी आरज़ू रहे॥
जब तक कि तन में जान, जिगर में लहू रहे।
तेरा ही ज़िक्र यार! तेरी जुस्तजू रहे।
—राम प्रसाद "बिस्मिल"

बस मानव का इतना ही बस है। पर यह सब जानकर भी वह यह सब करता ही है क्योंकि वह यह सब न करे तो फिर उसके लिए और करने को है ही क्या? इसीलिये जायसी जी स्वयं धीरज बाँधते हैं और दूसरों को भी धीरज बँधाने के लिए कहते हैं :—

प्रेम क आगि जरइ जेा कोई।
दुख तेहिकर न अँबिरथा होई॥

अर्थात जेा प्रेम की अग्नि में जलते हैं उनका दुख व्यर्थ नहीं होता। उनके विरह का अन्त होता ही है और विरह के अन्त में मिलन की एक घड़ी के सुख में विरह के सहस्रों वर्ष के दुख का विस्मरण हो जाता है :—

सहस बरिस दुख सहै जेा कोई।
घरी एक सुख बिसरै सेाई॥

---

१६—चकई बिछुरि पुकारै, कहां मिलौं हे नाह।
एक चांद निसि सरग मँह, दिन दोसर जल मांह॥

१७—तस रोवइ जस जिअ जरइ, गिरइ रकत औ मांसु।
रोवँ रोवँ सब रोअहिं, सूत सूत भरि आंसु॥

* "Every phenomenon arising and decaying in the three worlds is under His control. It is the same with love of the countless loves of men and women, only those are fulfilled which He approves. All the rest must drain the cup of disappointed love."—KURATA HYA KUZO'S "The Priest and His Disciples"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्रेमी के लिए उसका प्रियतम ही एक मात्र गुरू है। संसार में सब मरने ही के लिए आते हैं। कोई दूसरा किसी को नहीं मारता! मारता है तो गुरु ही और जिलाता भी है तो गुरु ही। इस कारण गुरु या प्रेम के हाथों मरने में किसी को आर नहीं होनी चाहिए। प्रेम में किसी को क्रोध नहीं करना चाहिए।[१८]

प्रेम से किसी को युद्ध ( हठ या आग्रह ) नहीं करना चाहिए।* प्रेम खड्ग के सामने प्रेमी को जल होकर ढरक जाना चाहिए। जल होने से वह सब रङ्ग में मिल सकता है। फिर जल को कौन काट सकता है? संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी ऐसे प्रेमी का बाल तक बांका नहीं कर सकती वरन् वही पानी हो जाती है! ऐसे प्रेमाग्रही या सत्याग्रही को आग भी नहीं जला सकती। पानी से आग स्वयं बुझ जाती है। यही जायसी जी का उपदेश है :—

जेहिं जिअ पेम पानिभा सोई।
जेहि रङ्ग मिलै ओहि रङ्ग होई॥
यहु सेंति बहुत जूझ नहीं करिए।
खडग देखि पानी होइ ढरिए॥
पानिहि काह खडग कै धारा।
लौटि पानि होई सोइ जो मारा॥
पानी सेंति आगि का करई।
जाइ बुझाइ जौ पानी परई॥

ऐसे ही प्रेमी की प्रीति धर्म की प्रीति होती है और ऐसे धर्मी प्रेमी को कोई नहीं मार सकता।[१९] ऐसा प्रेमी जो सदा दीन होकर प्रिय की आज्ञा में रहता है वह कुरूप भी हो तो संसार का सब से सुघर प्राणी वही होता है क्योंकि सुन्दर वही है जिसे स्वामी चाहता है।[२०] स्वामी को प्रिय से डरना भी चाहिए क्योंकि निडर ( निरंकुश ) होने से प्रिय की अवज्ञा हो जाती है।[२१] जायसी ऐसे ही मरमी प्रेमी थे। सच है जो कोई दीन होकर मालिक की आज्ञा पालता है वह चाँद जैसा निर्मल रहता है और उसका जन्म मलीन नहीं होता :—

रहइ जो पिअ के आयसु औ बरतइ होइ दीन।
सोइ चाँद अस निरमल, जनम न होइ मलीन॥

नोट:—यह निबन्ध हमारे उन १४ निबन्धों में से है जो हमने हिन्दी साहित्य के १४ रत्न कवियों के सम्बन्ध में लिखे हैं। हमने हिन्दी के १४ कवियों के, प्रत्येक के, काव्य के मुख्य तत्व को दर्शाते हुए यह निबन्ध लिखे हैं। जायसी की प्रेम की मार्मिकता हमारे मत में उनकी विशेषता है और जायसी को हमने "मरमी" कहा है। हिन्दीरत्न अन्य कवियों के नाम उनकी काव्य विशेषता के हेतु दिए हुए विशेषण के साथ स्वरचित निम्न पद्य में हमने अंकित किए हैं .—

साधक कबीर, प्रेमी विद्यापति, नेही सूर,
भक्त तुलसी जी, मरमी जायसी प्रधान हैं।
प्रेम की दीवानी मीरा, रागी रसखान, घन—
आनन्द जू बिरही उजागिर सुजान हैं॥
बिनयी रहीम, अरु रसिक बिहारी लाल,
केशव जी कवि, शूर भूषण महान हैं।
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भावुक प्रसाद,
आर्य-भाषा-रत्न चौदह ये जाहिर जहान हैं॥

---

* "Lovers without number have vowed thus (if my love is not fulfilled I'll forfeit my life) through the ages. And they have raised weak arms against fate. Then they have been cast down on the earth.

"Many unhappy souls have done likewise and are asleep in their graves." From KURATA HYAKUZO'S "The Priest and His Disciples."

१८—मरै गुरू कि गुरू जिआवै।
और को मार, मरै सब आवै॥
गुरू कहा चेला सिध होहू।
पेम बार होइ करहु न कोहू॥

१९—धरमक प्रीति तहाँ केइ मारा।
२०—लोनी सोई कंत जेहि चहै॥
२१—जेहि डर बहुत पिआरी सोई॥
जो पिअ आयसु सोइ पियारी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# काम की काहिली

महात्मा भगवानदीन जी

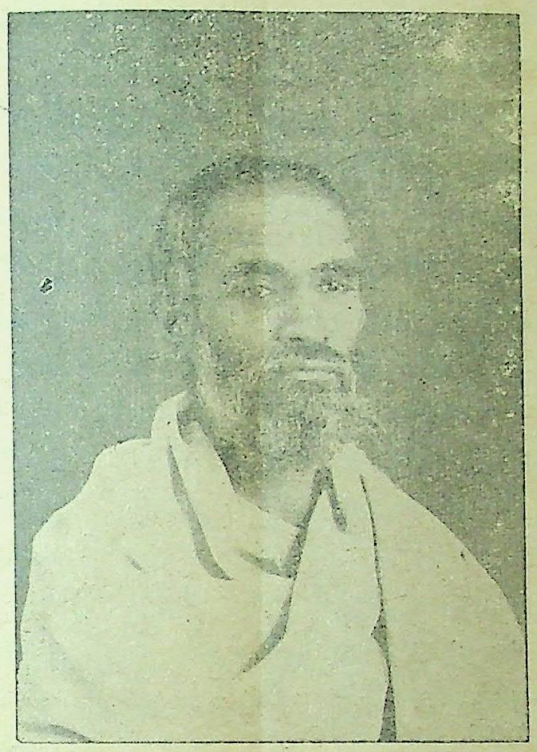

जैनों के एक फ़िरक़े के लोग अपने भगवान की मूर्ति मन्दिर में नग्न रखते हैं, पर वह भी इतनी नङ्गी नहीं होती जितने सनातनी नागे साधू। मूर्ति नग्न तो है ही पर हाथ पर हाथ धरे हुए भी है। हाथ पर हाथ धर कर बैठना एक मुहावरा है। उसका मतलब होता है निठल्ला बैठना, काहिल वजूद बनना। बुद्ध भगवान की भी कुछ मूर्तियाँ हाथ पर हाथ धरे मिलती हैं, पर महावीर और बुद्ध जैसी, अपने जीते जी भारत की काया पलट करने वाली, हस्तियाँ इतिहास में कम ही मिलती हैं, इसलिये इनकी काहिली योंही उड़ा देने वाली चीज़ नहीं हो सकती। इसका मुताला करना होगा। समझना होगा। महावीर बुद्ध भरी जवानी में सेवा के मैदान में कूदे थे, इस नाते भी जवानों को उनकी एक एक बात अच्छी तरह समझनी चाहिये। ये दोनों राजकुमार थे। काहिली की कुर्सी राज गद्दी इनको काट खाने को दौड़ती मालूम होती थी। ये उसे छोड़कर भागे और खूब भागे। काहिल कहीं भागने जैसा भी काम किया करता है? आलसियों की कहानियाँ किसने नहीं पढ़ीं सुनीं? वे अपने जलते कपड़ों को बुझाने के लिए भी दूसरों को पुकारा करते हैं। यह बात अलंकार की बोली में नहीं, हिसाब की बोली में कही जा रही है। आलसी सचमुच ऐसे ही होते हैं। ये राज कुमार भागे ज़रूर, पर पीठ दिखाकर नहीं, छाती खोलकर, रूढ़ि दुश्मन की ओर, उससे लोहा लेने के लिए, गरमियों में शिमला शैल की ओर नहीं, अफ़रीका के सहारा की तरफ़; जाड़ों में भूमध्य रेखा की ओर नहीं ध्रुव देश की तरफ़; मूसलाधार में महल की तरफ़ नहीं खुले जंगल और मैदान की तरफ़। वे एअर कण्डीशण्ड गाड़ी से भाग कर टाँगों की सवारी को ही ठीक समझते थे। उनकी दो टाँगें उन्हें हर जगह लेजा सकती थीं, इसीलिये उनको वे पसन्द थीं। वे हाथ पर हाथ धर सकते हैं, पर आलसी या काहिल वजूद नहीं बन सकते। उनकी गोदी में उनका दायाँ और बायाँ हाथ न मिलता था किन्तु बिजली का गरम तार नरम तार से मिलता था और ज्ञान की चिंगारी पैदा कर अज्ञान अंधेरे को खा जाता था। अलंकार की बोली हो ली, आइये अब मतलब की बात सुनिये।

आज का युग मशीन युग है। मशीन की जान है पहिया। अगर बिजली युग है, तो उसका भी बाप पहिया ही है। पहिये ने कब जन्म लिया, किसी को पता नहीं। यों मशीन युग बहुत पुराना है। हनुमान जी ने समुद्र तैर कर पार किया था पर आज तो काशी की गङ्गा मोटर बोट से पार की जाती है। नहीं नहीं, नागपुर के शुक्रवारी तालाब में भी मोटर बोट रहती है। मतलब यह, हम हाथ से काम नहीं लेते औज़ारों से काम लेते हैं। साइकिल से जितने तेज़ चल सकते हैं उतने पैर से नहीं। रेल, तार, हवाई जहाज़ बनाने वालों की कहानियाँ या ज़िन्दगियाँ उतने ही शौक़ से पढ़ी सुनी जाती हैं जितनी राम लक्ष्मण या भीम अर्जुन की कथाएं। रेल के इञ्जन को सोच निकालने वाला लड़का अकसर अपनी मां से फटकार खाया करता था। उसकी माँ कहा करती थी, 'क्या हाथ पर हाथ धरे बैठा है? पकती हाँडी देख रहा है, कुछ करता क्यों नहीं?' यह सुनकर वह चौंक पड़ा करता था और उसका काम रुक जाता था। वह सुस्त नहीं तो बेकार ज़रूर हो जाता था। हम आजकल हाथ को आराम देने के लिए हाथ के औज़ार बनाने की नहीं सोचते। कभी सोचते रहे हों यह दूसरी बात है। आजकल तो हम औज़ार इसलिए गढ़ते हैं कि उसी हाथ से ज़्यादा काम कर सकें। नये नये औज़ार सोच निकालना मुश्किल काम है, इसीलिए तारीफ़ के क़ाबिल है। दिमाग़ के लिए औज़ार सोच निकालना कहीं ज़्यादा मुश्किल काम है और कितनी तारीफ़ का काम है उसका अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। दिमाग़ी औज़ार तैयार करने वाले मूसा, ईसा, मुहम्मद, कार्ल मार्क्स, निट्शे, वग़ैरा हुए। हिन्दुस्तान तो इस तरह के औज़ार निकालने वालों का केन्द्र ही रहा है। महावीर, बुद्ध,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शंकर, राम मोहन राय, दयानन्द, ये सब बैठे बैठे दिमाग़ी औज़ार ही गढ़ा करते थे। दिमाग़ी औज़ार गढ़ने वाला देखने में काहिल सा जँचता है, पर वैसी काहिली तो क़िस्मत से ही किसी को नसीब होती है। हाँ, वह सीखी जा सकती है और हर जवान को सीखनी चाहिये।

बेशक, यह ज़रा साफ़ साफ़ समझना होगा कि दिमाग़ी औज़ार क्या है? कैसे गढ़े जाते हैं? और उन्हें कौन गढ़ सकता है?

दिमाग़ी मशीन का नाम है—संगठन तनज़ीम, Organization। इसके पुर्ज़े हैं वे लोग जिनके सिर कुछ ज़िम्मेदारियाँ हैं।

इन औज़ारों या पुरज़ों के गढ़ने में ख़ुदग़रज़ी छोड़नी पड़ती है, साथियों का एतबार करना होता है, और अपना एतबार जमाना होता है। हुकूमत भी की जाती है पर हुकूमत का घमण्ड सर से निकाल कर, आलिमों, ज्ञानियों की पहचान सीखनी होती है। उनको सिर आंखों पर बिठाना होता है। उल्लू पर सवार रहने वाली लक्ष्मी को क़ाबू में रखना होता है। याद रहे, सिंह वाहनी शक्ति को उल्लूक वाहनी का पहरा देने में ख़ास मज़ा आता है, इसलिए उसको तो इस काम में जुटाये ही रखना होगा; नहीं तो वह ऊधम मचा कर तुम्हें चैन न लेने देगी।

इन औज़ारों को गढ़ वही सकता है जो काम की काहिली को माहिर है। निकम्मी काहिली बुद्धि की तलवार पर ज़ङ्ग लगाती है, और काम की काहिली उस पर शान चढ़ाती है। काम की काहिली से हमारा मतलब है अपने साथियों या मातहतों के काम में कम से कम दख़ल देना। हर नई मशीन पुरानी मशीन की जगह जब ही लेती है जब वह कम से कम आदमी का दख़ल चाहे, ज़्यादा से ज़्यादा काम करे, अच्छा काम करे, आसानी से क़ाबू आसके। कम से कम दख़ल देने से हमारा मतलब यही है कि जहाँ जहाँ हमको बोलना पड़ता था वहाँ वह मशीन बोलने लगी। महावीर यह चाहते थे कि अपने गिर्दों के चाल चलन की निगरानी मुझे न करनी पड़े और मैं इस इल्लत से बच जाऊँ; साथ ही साथ वह यह भी चाहते थे कि उनका चाल चलन उनकी निगरानी के बिना भी ख़ूब अच्छा रहे। इसके लिए उन्होंने सोचा निकाला यह तरीक़ा कि हरेक आत्मा अपनी मेहनत से महात्मा हो सकता है और वह मेहनत है चाल चलन को साफ़ रखना। जेल ख़ाने में जेलर को चैन के कुछ सांस लेने के लिए गढ़े गए—क़ैदी पहरेदार और वार्डर। स्कूल में मास्टर को सुख से एक ग्लास पानी पीने को वक्त मिल जाये उसके लिए बनाए गए मानीटर। यह सब दिमाग़ी औज़ार हैं और काम की काहिली की उपज हैं। हमारी हिन्दुस्तानी कांग्रेस सन् १९२० तक अंग्रेज़ी सर्कार के बायलर की उस नली का काम करती रही जो ज़्यादा भाप देने पर उसको बाहर निकाल देती है और उसको फटने से बचाए रखती है। यह सर्कार को आराम की सांस लेने के लिए ह्यूम की गढ़ी हुई मशीन थी। सन् २० के बाद से नाम कांग्रेस ही रहा, है असल में वह हिंदुस्तानी पंचायत।

जीवन की गुत्थियों को सुलझाने की ख़ूबी ही इस बात में है कि तुम व्यक्ति के स्वार्थ का समष्टि के साथ ठीक ठीक मेल बिठा दो। फ़र्द (व्यक्ति) जमाअत (संस्था) का एक हिस्सा है सही, पर उससे बड़ा होना चाहता है। हिस्सा कुल से बड़े होने की सोचे यह अनोखी सिफ़त इस राजनीतिक दुपाये में ही पाई जाती है। इस गुन का ख़्याल रहते हुए ही तुमको चलना होगा। दो काहिलियों को टकराने से बचाना होगा। जीवन के द्वन्दों पर फ़तह पानी होगी।

हमारी हर कोशिश की मंशा यही होती है कि कोई आसान तरीक़ा काम करने का मिल जाए। कीचड़ में पड़े भारी पत्थर को उठाने में भीमसेन की कमर में भी झटका आसकता है, पर उसी को क्रेन (crane) की मदद से पतला दुबला आदमी, बिना दिक़्क़त उठा लेता है। प्रकृति पर विजय तुम नेत्रों और यंत्रों से ही पाते रहे हो। बाहर की और चीज़ों की दुनिया में उससे फ़ायदा उठाना रोज़मर्रा का काम बन गया है, पर जैसे ही अंदरूनी उलझनें सामने आती हैं या चिंताएँ आ घेरती हैं तुम उससे काम लेना भूल जाते हो। तुम तदबीरें सोचना छोड़ बैठते हो; इतना ही नहीं, शोर मचाने लगते हो कि फ़िक्रों के दूर रखने का कोई इलाज ही नहीं। लोग कहते ही रहे हवाई सवारी नहीं बन सकती और बन गई, इसलिए हम मानने को तैयार नहीं हैं कि मन और मस्तक की तकलीफ़ों के दूर करने का कोई उपाय ही नहीं है।

भीख माँगने से भीख मिल जाती है, भूख भी मिट जाती है। उधार मिल जाने से फ़ौरन की तकलीफ़ दूर हो जाती है, पर भीख और उधारी हमारे पैसा कमाने की क़ाबलियत को हमेशा के लिए मटियामेट कर देती है। भीख और उधार के ग़लीज़ पानी से पैसा कमाने की मशीन को क्यों ज़ंग लगवा रहे हो। दुविधा का रोड़ा हटाकर उस मशीन को चलता क्यों नहीं कर देते? भीख, उधार, इनाम, वज़ीफ़े तुम्हारी जानों को शिकंजे में कस रहे हैं। तुममें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दम रहने ही नहीं देते। बात बात में तुमको समझौता करना पड़ता है। ईसाई स्कूल में तुमको अपने मन के ख़िलाफ़ ईसा के गीत गाने पड़ते हैं, आर्यसमाज स्कूल में ओ३म् का बिल्ला लगाना पड़ता है, जैन स्कूल में 'जय जिन देवा' का शोर मचाना पड़ता है और इसलामी स्कूल में बिस्मिल्ला ही बिस्मिल्ला से शुरुआत करनी पड़ती है। तुम बिना समझौते ईसा के गीत गाओ, ओ३म का बिल्ला लगाओ, जय जिन देवा गाओ, ला इलाहइल्लिल्लाह पुकारो तुम्हारे दिल बढ़ेंगे तुम में दम आयेगा। सन् २१ में इन्ही नारों से हिन्दुस्तान जाग उठा था।

वह जबान जो खाने पीने पहनने ही नहीं, उठने बैठने तक के लिए दूसरों की ओर ताकता है, वह युवती जिसने स्वाधीनता को अपना दुश्मन समझ रक्खा है, जब अपनी ज़िंदगियों को अपने हाथ में लें तो वे बहुत जल्द देखेंगे कि उनकी अक़्लें काम कर रही हैं और वे दुनिया में अपनी जगह बना रहें हैं। हमारी ज़िंदगी का यह भी एक काम है और ज़रूरी काम है कि अपने रास्ते में आई हुई रुकावटों को हटाते चलें। हम बदले तो दुनिया बदल जायेगी। क़िस्मत हमको नहीं बनाती हम क़िस्मत को बनाते हैं। आज़ादी के दामों मोल ली वर्दी जब कुछ की निगाह में तुम को उठा देती है और झूठी सच्ची तड़क भड़क भी पैदा कर देती है, तब आज़ादी से पहनी वर्दी क्या न कर दिखायेगी। तुम्हें अपने अन्दर की ताक़त के ख़ज़ाने का पता चल जायेगा और काम की काहिली की देवी हाथ बाँधे तुम्हारे सामने खड़ी रहा करेगी।

कर्म योग का मतलब काम में लग जाना भर नहीं है, काम करने का कमाल हासिल करना है। काम में कमाल का मतलब ही यही है कि काम के काहिल के हाज़िर रहने से ही काम चल पड़े और ठीक ठीक होने लगे। कृष्ण ऐसे ही काहिल थे। काम की काहिली के माहिर थे। व्यास जी ने ज़बरदस्ती उनसे एक बार सुदर्शन उठवा दिया पर हज़रत मुहम्मद ने कभी अपनी कमान पर तीर चढ़ाकर न दिया। नैपोलियन की हाज़िरी के करिश्मे किसने अंग्रेज़ी किताबों में नहीं पढ़े? ऐसी शख़सियतें आफ़तों में पड़कर क्या करती हैं यही वे बातें हैं जो जान लेनी ज़रूरी हैं—

१—आफ़त आई और इनका चित्त काहिल बना। सब तरफ़ से हट कर उसी के हल में लगा।

२—ख़ूब काम करने के बाद यानी थक कर चूर होने के बाद तन मन दोनों को एक दम काहिल बना दिया यानी ढीला छोड़ दिया।

३—छोटी से छोटी आसुविधा का फ़ौरन इलाज कर डालना।

४—बोझ से दब कर हँसते हँसते कंधा बदल लेना यानी काम के बोझ से बिना घबराये, चिड़चिड़ाये आसान तरीक़ा निकाल लेना।

५—आफ़त क्यों आई, कैसे आई, कहाँ से आई यह न सोचकर उसके दूर करने में लग जाना।

६—मौत के पंजे में फँस जाने पर भी सच्चे खिलाड़ी की तरह ज़ोर लगाते रहना और बच निकलने की उम्मीद बनाए रखना।

७—आफ़त सिर पर आते ही अपने में डर पैदा करना और उस डर से, आफ़त से बच निकलने का उपाय सोचने का काम लेना।

८—अपने साथियों के साथ ऐसा सम्बन्ध स्थापित करना कि वे हर वक़्त तुम्हारे फ़ायदे की ही सोचें और कोई नुक़सान न होने दें या कम से कम नुक़सान करें।

९—अपने लिए और बिल्कुल अपने लिए कुछ न कुछ वक़्त ज़रूर निकाल लेना।

१०—अन्याय को कुचलते रहना नहीं तो वह तुम्हें कुचलेगा।

११—आफ़तों का स्वागत करना क्योंकि वे तुम्हें :—

(अ)—जगाती हैं,

(ब)—सबक़ देती हैं,

(स)—अक़्ल से काम लेना सिखाती हैं,

(द)—जीवन की गुत्थियाँ सुलझाने में सहायक होती हैं।

१२—तुम्हारा सुख तुम्हारी चित्त की एकाग्रता पर निर्भर है और वह यह कि वह कहाँ लगता है? कितनी शान्ति के साथ लगता है? कितनी दृढ़ता के साथ लगता है? और कितनी होशियारी के साथ लगता है?

काम-की-काहिली चित्त से ख़ूब काम लेने को कहते हैं, पर वह काम होगा वह जो हम लें। अपने ऊपर फ़तह हासिल करने का यही एक तरीक़ा है। अपने-पर-फ़तह-पाना औरों पर फ़तह पाने की कुँजी है। अपने पर फ़तह पाए बिना औरों पर फ़तह हासिल करने की सोचना गधे के सींग खोलना जैसा है। औरों को जीतने की सोचो ही नहीं। तुमने अपने को जीता और और तुम्हारे भक्त बने। जिसका दिल क़ाबू में है उसके लोग मुरीद बनना चाहते ही हैं, वह मुरीद बनाता नहीं। काम की काहिली यह देन तुमको देगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्प्रदायवाद, सत्य और कल्याण

श्री रघुवीरशरण दिवाकर, बी० ए०, एल-एल बी०, साहित्यालंकार

जो भी समुदाय किसी महामनुष्य के द्वारा अपने समय के लिये उपयोगी नियम व विधान लेकर मनुष्य समाज में प्रवेश करता है, वह कुछ समय तक ही मनुष्य समाज का कल्याण कर पाता है पर उसके बाद वही सम्प्रदाय पूर्व-संचित कल्याण को धीरे धीरे मिटाकर सामूहिक रूप से अकल्याणकारी होकर ही रह जाता है। इसकी परिस्थितियां और बाह्य रूप अनेक हैं, अपरिवर्तन उन सबकी अनिवार्य विशेषता है, पर इसका मूल व वास्तविक कारण यही है कि जन समाज के कल्याण के लिये जिन नियमों व विधानों को लेकर सम्प्रदायवाद आता है उनकी नींव ही प्रायः खोखली है। कल्याण-साधन की स्थायिता के लिये आवश्यक है कि वे नियम-विधान ऐसे सुदृढ़ व वास्तविक आधार पर अवलंबित हों कि उनमें सहज स्वाभाविक ढंग से धीरे धीरे समयोचित परिवर्तन होता रहे और कल्याण-वृत्ति की मूल प्रवृत्ति की ओर से वे किसी भी परिस्थिति में विमुख न हो सकें, और यह तभी संभव है जबकि कल्याण सत्य पर निर्धारित हो। सम्प्रदायवाद ने सदा से ही असत्य को भी उचित और कल्याणप्रद माना है यहाँ तक कि सद्भावनाओं व सद्वृत्तियों को असत्य पर निर्धारित करने में उसने संकोच नहीं किया है ऐसा ही नहीं है बल्कि इसे अपने कार्यक्रम का एक आवश्यक अंग भी बनाया है। ईश्वरवाद, कर्मफल का सिद्धांत तथा स्वर्ग नरक या क़यामत की मान्यता का सबसे बड़ा समर्थन उनकी यह उपयोगिता ही बताई गई है। अवतार, पैग़म्बर या सर्वज्ञ आदि की कल्पना के पीछे भी यही दृष्टि रही है। प्रमाणवाद का आधार-स्तम्भ भी यही है।

प्रश्नः—सम्प्रदायवाद की वृत्ति प्रवृत्ति विचार-आचार तथा नियम-विधान किसी न किसी सिद्धांत या मान्यता पर टिके होते हैं अतः उनको परिवर्तन करने के लिये क्या उन सिद्धांतों या मन्तव्यों में परिवर्तन करना भी आवश्यक है? क्या इतना ही काफी नहीं है कि उन नियमों व विधानों के कार्य और भावना का पारस्परिक विरोध दिखाकर उन्हीं मान्यताओं के आधार पर नये नियम व विधान बना लिये जायँ?

उत्तरः—सद्उद्देश्य व सद्भावना होते हुये भी नियम व विधान अनुपयोगी या हानिप्रद हों तो हर हालत में उन्हें बदलना अच्छा ही है लेकिन इतना ही काफी नहीं है। आज वे अनुपयोगी न सिद्ध हों तथा कल भी हानिप्रद न बन सकें इसके लिये ज़रूरी है कि उन सिद्धान्तों व मन्त[illegible] में से भी असत्य को निकाला जाय, तथा सत्य पर ही नि[illegible] व विधानों को स्थापित किया जाय। यूँ तो सम्प्रदायवाद[illegible] संगठन में नियमों व विधानों में परिवर्तन करने के लि[illegible] किसी तरह की गुंजाइश नहीं है पर यदि कदाचित [illegible] कर भी लिया जाय और मूल मान्यताओं को सुरक्षित [illegible] रहने दिया जाय तो भी न यह यथेष्ट ही है, और न [illegible] का ठीक ठीक इलाज ही है। ख़ून का विकार बाहर [illegible] हम लगाकर दूर नहीं हो सकता, उसके लिये तो कोई आ[illegible] पीकर रक्त शुद्धि ही करनी होगी।

प्रश्नः—कोई सिद्धांत भले ही दार्शनिक या तार्कि[illegible] दृष्टि से सत्य न हों लेकिन यदि उससे मनुष्य को अच्छाई [illegible] नेकी का सबक़ या कर्त्तव्य-पालन की प्रेरणा मिले तो [illegible] अनौचित्य क्या है?

उत्तरः—असत्य विचारों को सद्गुणों व सद्वृत्तियों [illegible] प्रेरक बना देने में पहिली हानि यह है कि जो अ[illegible] स्वभावतः ही भंडाफोड़ या सर्वनाश के ख़तरे में रहत[illegible] उसके साथ उन सद्गुणों का भविष्य भी ख़तरे में [illegible] जाता है। उदाहरणार्थ, नरक के दुःखों से डरकर [illegible] ईमानदारी, सचाई, वफ़ादारी और नेकी को ग्रहण कि[illegible] जाय और यदि कुछ समय के बाद नरक की मान्यता [illegible] से विश्वास उठ जाय जैसा कि उसके सत्य पर निर्धारित [illegible] होने के कारण बहुत सम्भव है तब वैसी हालत में [illegible] मान्यता के साथ ही उस असत्य का उन गुणों से सम्ब[illegible] मज़बूत था उसी अनुपात में उन गुणों की मान्यता [illegible] भी कमज़ोरी आ जायगी। दूसरी हानि यह है कि [illegible] सद्वृत्तियों व सदाचारों के लिये अच्छे और वास्त[illegible] कारण हैं और व्यक्ति के व्यक्तित्व के भीतर उनके लि[illegible] एक प्रकृति जन्य प्रेरणा भी है लेकिन जब उन्हें असत्य [illegible] साथ लटका दिया जाता है तो स्वभावतः ही उन [illegible] व स्वाभाविक कारणों व प्रेरणाओं का मूल्य कम हो ज[illegible] है और जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि उन्हें भुला[illegible] या दबाकर जो कुछ समय के लिये द्रुत गति से कल्य[illegible] होता हुआ दीखता है, आगे चलकर उससे ज़्या[illegible] अकल्याण हो जाता है। मानव-चरित्र की सभी अच्छाई[illegible] हमारे स्वभाव में प्राकृतिक रूप से विद्यमान हैं लेकिन [illegible] ऐसा न भी हो तो बाहर उन अच्छाइयों को ग्रहण क[illegible] के लिये वास्तविक तथा उचित कारण हैं। ऐसी हालत

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



झूठी मान्यताओं या कल्पनाओं पर उन्हें टिकाना उन्हें कमज़ोर बनाना है।

प्रश्न :—सदाचार-पालन तथा सद्वृत्ति ग्रहण के वास्तविक कारणों की सहायता लेकर भले ही कुछ सुशिक्षित सुसंस्कृत या विशेष बुद्धिमान व्यक्तियों को इधर प्रेरित किया जा सके लेकिन जन साधारण को इधर आकर्षित करने के लिये तो ऐसे ही कारणों की दुहाई उपयोगी हो सकती है जिनका आधार भय, प्रलोभन, अन्धविश्वास, वहम, कल्पना आदि हों।

सचमुच मस्तिष्क के उचित व स्वतन्त्र उपयोग की जगह अन्धविश्वास या अन्धानुकरण ही कुछ इत्तफ़ाक़ से, कुछ अनैतिहासिक काल से चली आई हुई पद्धति से तथा कुछ व्यक्तित्व की कमज़ोरी से बहुतों को सदाचार की प्रेरणा दे सकते हैं यह माननीय है लेकिन यह भी सत्य है कि इस तरह की अयोग्यता या मनःस्थिति का सीधा कारण तो यही अन्धविश्वास या अन्धानुकरण है। एक ऐसी ग़लती पकड़ कर बैठ जाना जो सभी विषयों पर विचार करने के ग़लत तरीक़ों को जन्म दे या उनका अनुमोदन करे, अपनी जितनी भी सत्य को समझने व ग्रहण करने की योग्यता है उसे धीरे धीरे और भी कम करना है। अन्धानुकरण की नीति के ज़बरदस्त नुक़सान यह हैं कि हम सभी मामलों को ग़लत तरीक़े से देखते हैं और प्रायः ग़लत नतीजों पर ही पहुंचते हैं जबकि फ़ायदा सिर्फ़ इतना है कि इत्तफ़ाक़ से एक दो मामलों में सही नतीजों पर आ जाते हैं। रहा प्रश्न सर्वसाधारण की योग्यता का, सो वह अनिवार्य हो तो भी हम उसे आधार बनाकर असत्य मन्तव्यों के प्रचार द्वारा उनकी अयोग्यता को न मिटने का तो अवसर देते ही नहीं हैं बल्कि उसे बढ़ाते भी हैं। जो अनिवार्य हो वह उचित या लाभप्रद भी हो यह ज़रूरी नहीं है। एक सुन्दर स्त्री को देख कर साधारण मनुष्य के हृदय में विकार या वासना का होना स्वाभाविक या अनिवार्य-सा है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हम हर मनुष्य को यह अधिकार दे दें कि किसी भी सुन्दर स्त्री के साथ वह अपनी वासना की पूर्ति कर सके। मनुष्य के दौर्बल्य को लेकर यदि हम औचित्य का निर्णय करेंगे और नियम बनायेंगे तो ग़ज़ब हो जायगा। होना यह चाहिये जो अनुचित हो वह अनिवार्य हो या न हो, हमें उसे दूर करने का प्रयत्न करना ही चाहिये। दुख अनिवार्य है फिर भी दुख को दूर करना और सुख फैलाना ही हमारा ध्येय होना चाहिये। इसी तरह असत्य कहीं भी हो, किसी भी रूप में हो, हमारा कर्तव्य यही है कि हम उसका रहस्योद्घाटन करें और सत्य को प्रतिष्ठित करें। हर हालत में असत्य से सदाचार को बाँध देना हानिप्रद ही है; अतः हमें चाहिये कि हम सदाचार और असत्य का सम्बन्ध विच्छेद करें और सम्प्रदायवाद अब तक अलग अलग सम्प्रदाय का रूप धारण करके जो मूल अपराध करता रहा है उसका प्रतिकार करें। हमें यह भी जान लेना चाहिये कि दूसरे को ऊपर उठाने के लिये ख़ुद नीचे गिर जाना अपना पतन है और दूसरे का उत्थान नहीं है।

प्रश्न :—यदि यह मान भी लिया जाय कि असत्य स्वयमेव अकल्याणकारी और सत्य कल्याणकारी है तब भी साधारणतः आज जो जन साधारण अपने अपने विचारों, सिद्धान्तों, आदर्शों आदि को लेकर अपना सामान्य मनोवृत्ति व दृष्टिकोण बना बैठे हैं और उनकी वृत्ति व प्रवृत्ति में उनकी भावना और कार्य में जो एक तरह की समानता आ चुकी है उसे देखते हुये ऐसा मालूम होता है कि एक असत्य विचार से जितनी हानि हो रही है वह हो सकती है, उसको मिटा देने से ज़्यादह हानि ही होगी क्योंकि सभी असत्य विचार मनुष्य के सोचने-विचारने और अनुभव करने की पद्धति से इतना घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं कि एक दो अलग-सी सचाइयों को वहाँ जगह देने से और स्वाभावतः उनके साथ वहां अन्य सचाइयों का प्रवेश होने से व्यक्ति के चरित्र व व्यवहार की समानता जो नैतिक जीवन के लिये बहुत ज़रूरी है नष्ट हो जायगी।

उत्तर :—पहिले तो, एक असत्य विचार का त्याग सत्य विचार का ग्रहण नहीं है। एक विचार असत्य मालूम हो इसके साथ यह अनिवार्य नहीं है कि उसका स्थानापन्न होने योग्य सत्य विचार भी तभी मालूम हो जाय। दूसरे मानव समाज के इतिहास से पता लगता है कि ग़लत तरीक़े से विचारने पर ग़लत विचार की खिड़की से सत्य ही आक्रमण किया जा सकता है और उसमें सफलता प्राप्त की जा सकती है। व्यक्ति के चरित्र व व्यवहार की समानता उक्त दोनों कारणों से नष्ट नहीं होने पाती और धीरे धीरे व्यक्ति को सत्य भी प्राप्त हो जाता है। यदि यह मान भी लिया जाय कि विचार करने का सत्य दृष्टिकोण बदले अन्यथा टुकड़े-टुकड़े करके सत्य असत्य जो खिचड़ी पकेगी उससे मस्तिष्क बौखला जायगा नैतिकता व सदाचार को चोट पहुँचेगी, तो भी कोई हर्ज़ की बात नहीं है क्योंकि ऐसी डाँवाडोल स्थिति के बाद सत्य अपना स्थान बना लेगा और वहां जमकर बैठ जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तब अपनी ज्योति से धीरे धीरे अन्य सब असत्य विचारों व मान्यताओं को प्रकाश में लाकर और उनका भंडाफोड़ करके अन्धविश्वास और अन्धानुकरण की नीति के लिये कोई स्थान न रखेगा। और तब ही मनुष्य सत्य पर निर्धारित सदाचार की ओर सच्चे अर्थों में बढ़ेगा और तभी उसका वास्तविक कल्याण जल्दी जल्दी न सही बहुत धीरे-धीरे ही सही, हो सकेगा। अयोग्यता को दूर करने के बजाय निकट भविष्य के लाभ की संकुचित दृष्टि से अयोग्यता को क़ायम रहने दिया जाय और इस तरह छोटे-से स्वार्थ के लिये एक इतनी ज़्यादह क़ीमत चुकाई जाय, यह किसी भी तरह ठीक नहीं है। सम्प्रदायवाद ने हमेशा ही वहमों और अन्धविश्वासों की पुरानी बोतलों में सत्य की नई शराब डालकर जन-साधारण को आमूल परिवर्तन करने से रोका है और इससे अकल्याण की मात्रा बढ़ी ही है।

प्रश्नः—अनेक सम्प्रदायों ने अपने अपने युग में असत्य मान्यताओं का सहारा लेकर मानव समाज का बहुत कुछ कल्याण किया है इसलिये यह कैसे माना जाय कि असत्य में मूल रूप से कल्याण करने की योग्यता या शक्ति ज़रा भी विद्यमान नहीं है ?

उत्तरः—सचमुच इतिहास हमारे सामने जैसे उदाहरण उपस्थित करता है उससे नैतिक या धार्मिक रूप धारण करके झूठी मान्यताओं व कल्पनाओं से सुख या कल्याण होता दिखा है, लेकिन वास्तव में वह असत्य की उपयोगिता का औचित्यकरण नहीं है। ऐसी हालतों में असत्य विचार के अंशतः असत्य न होने से यानी सत्य व वास्तविक तत्वों से अंशतः सूक्ष्म न होने के कारण जो कुछ सत्य वहाँ था उसी का यह शुभ कार्य था। जो असत्य वहाँ था वह बिलकुल अनुपयोगी व बेकार ही था। जो कुछ भी लाभ हुआ हुआ उसका श्रेय उस असत्य को ज़रा भी नहीं है बल्कि उस सत्य को है जो असत्य के साथ रहकर उसके अतिरिक्त तथा उसके विरोध में भी अपना काम करता रहा था।

स्पष्ट है कि असत्य का आश्रय कल्याण साधना के लिये ठीक नहीं हैं। पर यह आशा करना कि सभी व्यक्ति अमुक विचार को कभी समझ सकेंगे व्यर्थ है। एक व्यक्ति का सत्य सदा से ही दूसरे के लिये असत्य रहा है। सर्वजन-मतैक्य हो सकना एक अनहोनी बात है। हर व्यक्ति का व्यक्तित्व अलग है, उसके मस्तिष्क और हृदय की बनावट भी जुदा है, उसकी शिक्षा-दीक्षा और संस्कार भी भिन्न है, उसका वातावरण भी विशेष है, उसकी वृत्तियाँ, आदतें तथा हर बात में उसका रंग-ढंग भी अपने ही निराले ढंग का है, ऐसी हालत में विचारों की एकरूपता असंभव ही है। सत्य पर ही सद्वृत्ति स्थित करने की उपयोगिता पर ज़ोर देते हुये यह कटु सत्य हमारे सामने था फिर भी हमने इस पर जो ज़ोर दिया उसका कारण हमारी यह मान्यता थी कि जिस तत्व, सिद्धांत या आदर्श को ठीक ठीक समझकर और मानकर ही व्यक्ति अलग अलग और सामूहिक रूप से कल्याण मार्ग की ओर सच्चे अर्थों में बढ़ सकते हैं। सभी व्यक्ति सत्य को समझने में भले ही सहमत न हो सकें लेकिन वे यह तो कर सकते हैं कि पूरी ईमानदारी के साथ जिन विचारों को सत्य समझ सकें उन्हें ही ग्रहण करें और अपने निर्णीत सत्य को ही अपनी सद्वृत्तियों का आधार बनायें, या यूँ कहिये कि कोई भी व्यक्ति हर दूसरे व्यक्ति से चाहे सहमत न हो जैसा कि अनिवार्य ही है लेकिन वह विमल बुद्धि और शुद्ध अन्तःकरण से अपने लिये सत्या सत्य का निर्णय करे, यह व्यवहार्य है, वांछनीय है और व्यक्ति ऐसा करे तथा दूसरों से अधिक से अधिक व्यक्तियों से ऐसा कराये, यही व्यक्ति के वैयक्तिक और सार्वजनिक जीवन का लक्ष्य बनने योग्य भी है। स्वभावतः इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिये यह लाज़मी है कि सम्प्रदायवाद के चुंगल से छुटकारा पाया जाय।

---

# संत-साहित्य और लोक-पक्ष

प्रो० श्रीरंजन एम० ए०

संत-साहित्य की गम्भीर विवेचना और तत्व चिन्तन के भाव में हिन्दी साहित्य के एक श्रेष्ठ युग का सच्चा स्वरूप हमारे सामने न रखा जा सका। संत-युग के समय हिन्दी-साहित्य में आलोचनात्मक-साहित्य का विकास न हो पाया था। हिन्दी का वह शैशव काल था। ऐसी दशा में उससे यह आशा कैसे की जा सकती थी कि आदि काल और पूर्व-मध्य काल की रचनाओं का एक सजीव और संश्लिष्ट रूप वह हमारे सामने रखे। जिन कतिपय आलोचकों ने

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अपनी लेखनी उठाई भी वे या तो बहिरंग परीक्षा तक ही पहुँच सके या जीवन के प्रति एकांगी दृष्टिकोण से उन्होंने तत्कालीन साहित्य की आलोचना की। साहित्य मूलक भिन्न भिन्न विचार धाराओं और चेतनाओं का वे अध्ययन न कर सके। इसी कारण सन्त साहित्य के समझने में सबसे अधिक भूल हुई है। लोगों ने मन माने ढङ्ग से उसे 'वैरागियों' का साहित्य कहना शुरू कर दिया। सन्त साहित्य के प्रति यह बड़ा अन्याय है। हम उसे ठीक न समझ कर उसके अर्थ के अनर्थ करने लग जाते हैं। यह बड़े दुख की बात है। हमारे चरित्र की यही कमी हमें जीवन के कई क्षेत्रों में दिखलाई देती है। हम शुद्ध-वेदान्त को जीवन में ढालने के स्थान पर इसी अनर्थ के कारण केवल यज्ञप्रिय कर्मकांडी बन बैठे, उपनिषद् की भक्ति-मिश्रित वाणी को न समझ सकने के कारण केवल वैरागी होगये। ठीक यही बात सन्त-साहित्य के बारे में हुई। सम्भवतः सब से अधिक भ्रान्तिपूर्ण धारणायें सन्त-साहित्य के विषय में लोगों के हृदय में हैं। किसी भी बात के गम्भीर और उचित विवेचन के लिये यह आवश्यक होता है कि हम उस रचना में ओत-प्रोत लेखक या कवि के व्यक्तित्व को पहिचानें। दूसरी बात जो नितान्त आवश्यक है वह यह कि व्यक्तित्व समय के किन किन और कैसे कैसे अणु-परमाणुओं से उद्भूत हुआ है। सन्त-साहित्य शुद्ध-बुद्धि मिश्रित हृदय की पुकार है। इन्हीं दो तत्वों से किसी भी रचना की सृष्टि होती है। व्यक्तित्व प्रधान रचना चिर और अमर साहित्य का अंग बन जाती है। समय और देश की सहज प्रवृत्तियों से प्रस्फुटित साहित्य काल और देश की परिस्थितिओं की ओर संकेत करता हुआ एक प्रकार के उद्देश्यात्मक अथवा उपदेशात्मक साहित्य का अङ्ग बन जाता है। जिसमें तत्कालीन समस्याओं की ओर ही विशेष संकेत होता है। सन्त साहित्य इन दोनों प्रकार के तत्वों से पूर्ण है। उसमें जहाँ एक ओर चिर-विरह व्याकुल आत्मा की मिलन-पुकार है वहीं दूसरी ओर समय और देश की अवस्था का पूर्ण ध्यान रखते हुये बुद्धि की समस्या निरूपणात्मक प्रवृत्ति भी है। वह धारा वैरागियों की तरह लोक पक्ष की, लोक जीवन की उपेक्षा करती हुई नहीं चलती।

जो व्यक्ति सन्तों को वैरागी और उनकी रचनाओं को रहस्य का निरर्थक आलाप कहते हैं वे उस तत्व के मूल तक पहुँचने की कोशिश नहीं करते। ऐसे समालोचक अपने लेखों में बार बार दो शब्दों का प्रयोग करते नज़र आते हैं—प्रवृत्ति मूलक और निवृत्तिमूलक। दुनिया से जो चिपट कर चले वह प्रवृत्तिमूलक और जो दुनिया में घर न बसा सके और सन्यासी के वस्त्र धारण करे वह निवृत्तिमूलक। प्रवृत्ति और निवृत्ति के ऐसे अर्थ करना सर्वथा अनुचित है। वास्तव में प्रवृत्ति और निवृत्तिमूलक जीवन की व्याख्या बहुत गम्भीर है। वेदान्त की शिक्षा प्रवृत्ति और निवृत्ति का रसपाक है—दोनों का एक रसायन है। अपने स्वार्थ और सुखों के प्रति निवृत्ति-प्रधान दृष्टिकोण रखना और अपने से बाहर संसार के व्यवहार और उसके दुखमोचन के प्रति प्रवृत्ति भाव रखना ही पूर्ण जीवन की कल्पना का आधार है। वेदान्त के महत् जीवन की जो व्याख्या है वह लोक के प्रति इन दोनों भावों को लेकर चलती है—'तुम अपने लिये कुछ भी न लो, यहीं पर निवृत्ति का उदय होता है। 'सब को सब कुछ दो,' यहीं पर प्रवृत्ति का प्रकाश है। अर्थात् अपने प्रति निवृत्ति भाव तथा दूसरों के प्रति प्रवृत्ति भाव रखना ही श्रेष्ठ जीवन की कला है। इस कसौटी पर हम जब सन्तों के जीवन और उनकी वाणी की समीक्षा करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे लोक पक्ष की उपेक्षा करके चलने वाले व्यक्ति नहीं थे। उनके राम-रहीम उनके अन्दर प्रतिष्ठित होते हुये भी केवल वहीं तक सीमित न थे—

'घरनी' तन में तख्त है, ता ऊपर सुलतान ;
लेत मोजरा सबहिं का, जहलौं जीव जहान ॥

उनका लीला क्षेत्र तो व्यापक जगत ही था। जब 'घट घट गोपी, घट घट कान्ह', की जीवित चेतना उनके रोम रोम में समा चुकी थी फिर जगत से वैराग्य और उदासीनता कैसी ? और यही कारण है कि उन 'कान्ह' या 'राम' की सम्पूर्ण सृष्टि के हिताहित की भावना से उनके हृदय कभी शून्य नहीं रहे।

लेख का दूसरा अंग यह है कि यदि सन्तों का जीवन लोक-पक्ष की उपेक्षा करते हुये नहीं चला तो फिर लोक-पक्ष के प्रति उनकी रचनात्मक-प्रवृत्ति का कहां तक योग रहा ? इसकी विस्तृत विवेचना करने से पूर्व हमें यह देखना पड़ेगा कि जगत के जितने व्योपार हैं उनकी संश्लिष्ट योजना, उनकी पूर्णता, केवल स्थूल शरीर और उसके अंगों पर ही निर्भर नहीं रहती। प्रत्येक कार्य के पीछे जिस प्रकार ज्ञान, इच्छा, क्रिया के बीज छिपे रहते हैं ठीक उसी प्रकार समस्त लोक-व्यापार के पीछे तीन शक्तियां अथवा तीन सहयोग काम करते हैं—बुद्धि, हृदय और शरीर। और इन तीनों का योग आनन्द की साध्य-सीमा को सन्मुख रख कर होता है। जीवन का अन्तिम आदर्श आनन्द है। जगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के जितने कार्य हैं, जितने चेतन मानव-प्राणी हैं उनमें महत् के प्रति प्रेम के वे बीज बो दिये जाँय जिससे भौतिक असुविधाओं से उदासीन होकर व्यक्ति परम तत्व की प्राप्ति में संलग्न हो सके—वैराग्य द्वारा नहीं कर्म और प्रेम द्वारा। ऐसी अवस्था में जीवन में 'सत' के तत्वों को उद्भासित करने वाली आत्मायें क्या लोक-पक्ष से उदासीन समझी जावेंगी?

संतों की वाणी तीन धाराओं को जीवन देती हुई आगे बढ़ती है। (१) भक्ति अथवा प्रेम की धारा जिसका आलम्बन 'ब्रह्म' है। सांत और अनंत का यही योग परमार्थ तत्व का पूर्ण विकास है। (२) चरित्र-निर्माण या नीति-विषयक धारा जिसका लक्ष्य समस्त जीवन में रुचि और शील की प्रतिष्ठा द्वारा प्रेय और श्रेय की प्राण-प्रतिष्ठा करना है और (३) तीसरी धारा है—जगत में धर्म नाम से प्रचारित होने वाली हृदय-सरिता के भिन्न भिन्न रूपों और मार्गों के अन्दर से साम्य और समता की भावना द्वारा बन्धुत्व भाव की नींव-डालना। संतों की यह त्रिवेणी लोक-जीवन के तीनों अंग शरीर, बुद्धि और हृदय का स्पर्श करते हुई आगे बढ़ी है। जहाँ वे भक्ति और वैराग्य की वाणी द्वारा जनता के हृदय में निस्सीम के प्रति आकर्षण उत्पन्न करते हैं वहीं लोभ, मोह आदि असत और असामाजिक विकारों से जनता को दूर रख कर पूर्ण मानव की सजीव कल्पना वे संसार के सामने रखते हैं। और सब से महत्व पूर्ण योग जो संतों ने उस समय के निर्माण में दिया है वह धार्मिक-साम्य का प्रचार है। धर्म-साम्य की जितनी गम्भीर योजना संतों की वाणी में ओत प्रोत है वह नीति की वस्तु नहीं हृदय की पुकार है। उनकी इस वाणी ने नव-राष्ट्र की नींव डाली है, इसे कौन नहीं जानता? यदि वे जगत से दूर रहने वाले प्राणी होते तो उन्हें गली गली यह काग़ज़ लगाने की ज़रूरत ही क्या थी कि :—

'जे दुखिया संसार में, खेवो तिनका दुक्ख ;
दलिद्दर सौंप मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख ॥'

उनके प्राण लोक-कल्याण की भावना से प्लावित थे। उनके हाथ दीन-दुखियों के दुख मोचन में व्यस्त थे—उनके हृदय संसार के दग्ध और पीड़ित प्राणियों को देख रो उठते थे। सब कुछ छोड़ कर केवल आत्मज्ञान की भावना का पोषण करते हुये हिमालय की एकान्त कन्दराओं में बैठने वाले वे मुक्त योगी न थे। दुनिया के साथ क़दम से क़दम मिला, उसके सुख दुख के द्वंदों में भाग लेते हुये वे उसके साथ चलते थे :—

सृष्टि शास्त्र हैं सही, बेत्वा करै बखान ;
रज्जब कागद क्या पढ़ै, पृथ्वी पुस्तक जान।

इस 'पृथ्वी पुस्तक जान' में जीवित स्थूल जगत की उपेक्षा कहाँ? उसमें तो ज्ञान, साधना सभी की कर्म-भूमि पृथ्वी है। पृथ्वी के ऊपर लोक-व्यापार की कसौटी पर जो ज्ञान खरा नहीं उतरा वह ज्ञान ही क्या? उपरोक्त वचन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पृथ्वी के प्रति कितनी दृढ़ और अचल आत्मीयता की भावना के बीज उन संतों की वाणी से झरे और फले फूले।

विस्तृत विश्व के प्राँगण में प्राणीमात्र के प्रति प्रेम की जो निर्झरणी प्रवाहित हुई है वह जगत के सुख दुख के साथ तदात्म्य स्थापित करती हुई दिखलाई देती है। 'एक खुदाय' की भावना ने संत-हृदय की डोर को सब के हृदय से अनंत काल के लिये जोड़ दिया है। 'बरे एक खुदाय के आदि अन्त मधि अब'। और क्या चाहिये? ईशावस्योप निषद् की चिरपोषित मूल भावना की इससे श्रेष्ठ अनुभूति और क्या हो सकती है। जहाँ जगत में राम और राम के जगत का दर्शन किया जाय वही तो उच्च वेदान्त की दार्शनिक-पृष्ठ-भूमि है। :—

परि सबन की एक सी, मूरख जानत नाहिं ;
काँटा चूभै पीर है, गला काटि को खाय ॥

उनके हृदय की यह विराट-आत्मीयता केवल मनुष्य मात्र तक ही सीमित नहीं रही वरन् अपने प्रेम की सीमा में तो इसने जगत के पशु-पक्षी सभी को अपना बना लिया था। फिर यह केवल Mercy या दया भाव से प्रेरित हृदय की कोमल-माँग न थी वरन् 'एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति' की व्यापक-सत्ता-ज्ञान-जनित आत्म-चेतना का मधुर कल्याण कारी प्रकाश थी।

साधु की साधना का क्षेत्र अन्तर जगत है। उस साधना की कसौटी है स्थूल जगत। वह अन्तर जगत में जिस 'एकोहम्' की अनुभूति प्राप्त करता है प्रकाश जगत में जन जन के साथ, जीव मात्र के साथ उसकी वह अनुभूति साकार रूप धारण कर ज्योतिर्मय हो उठती है। उसे प्राणी मात्र के सुख दुख का ध्यान है। कहीं उसकी साधना एकांगी न रह जाय इसका ध्यान उन्हें सदा बना रहा। वे कहीं अपनी ही मुक्ति-साधना तक सीमित न रह जाय इस कारण वह सतर्कता के साथ 'साधु' की कसौटी तय्यार कर रख देता है। जो उस कसौटी में खरा उतरे वही साधु अन्यथा केवल वस्त्र-भेद का अन्तर ही उसे साधु कोटि में कैसे बैठा सकता है?

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साधू जन संसार में, कामै का कौत्तार ;
सींचि समावै शून्य में, आवै पर उपकार ॥

लोक जीवन में फैली हुई बुराइयों से उन्होंने आँख नहीं मींच ली थी। जहाँ उन्हें अपनी आत्म शाँति का ध्यान था, विरह की पीड़ा की कसक थी, वहीं वे ब्रह्म के साकार रूप इस नर-नारी जगत की हिता-हित की भावना से शून्य न थे। संतों का कार्य-जगत, साधना-मंच यही हाड़ माँस का संसार था। इसी में वे पैदा हुये, और इसी में लोगों के बीच उनकी आँखों के सामने वे अपनी भौतिक लीला समाप्त कर गये। जन्म मरण के इन दो उपकूलों तक पहुंचते पहुँचते उनके प्राणों का अणु अणु लोक-रंजन और लोक हित से चिंतित रहा। धार्मिक कट्टरपन और अंध विश्वास पर उन्होंने पीड़ितों और मुल्लाओं को फटकार बताई। मिथ्याचार से लोगों को सतर्क किया। आदर्श जीवन के उद्देश्य उनके संमुख रखे।

संतों की समस्त वाणी की छान बीन हम करें तो हमें भाव के उस अथाह सागर से (१) व्यवहार शुद्धि, (२) समाज सुधार और (३) आत्म-शुद्धि के बादल उठते दिखलाई पड़ेंगे। यह बादल सदियों तक उत्तरी भारत के गाँव गाँव में ऐसे बरसे कि एक बार स्वार्थ, धर्मान्धता एवं अनाचार और छल कपट से संतप्त जन-तल शीतल और हरा भरा होगया :—

दुख-सुख एक समान है, हरष-सोक नहिं व्याप ;
उपकारी निः कामता, उपजै छोह न ताप।
लोभ–मोह–अभिमान ;
हर्ष शोक ते रहै नियारो नाहिं मान अपमान।

जनता की बोली में, गीता के उच्च-दर्शन को रख कर दुरूह आध्यात्मिक तत्वों को बहुत सुबोध और सरल वाणी में उन्होंने लोगों के सामने रखा। उनके जीवन की घड़ियाँ केवल अपने ही व्यवहार शुद्धि में नहीं लगीं वरन् अपने चरित्र और व्यवहार द्वारा उन्होंने समस्त जनता के हृदय में आत्म शुद्धि के बीज बो दिये। अपनी इस आत्म शुद्धि और प्रेम साम्य की पुष्टि वे कितने मार्मिक ढंग से करते हैं :—

ज्यों आपै देखै आपको, यों जे दूसर होइ ;
तो 'दादू' दूसर नहीं, दुख नहिं पावै कोई।

संतों में सब को सम्हालने की समन्वयकारी वृत्ति थी। परस्पर स्वार्थ का मेल जमाने के लिये धूर्तों का किया हुआ समझौता न था। उनकी निस्पृहता ने उन्हें यह शक्ति दी थी कि वे बिना किसी भय के धर्माभिमानी और कर्मकाण्डी लोगों पर कोड़े लगा सकें, संसार के सामने सच्चा रास्ता रख सकें। क्या यह प्रयत्न और चेष्टा उनकी उदासीन वृत्ति की सूचक है? उन्होंने सब से बड़ा काम यह किया कि धर्म और रूढ़ि के नाम पर जो भ्रम और अंधकार सर्वत्र फैल रहा था उसे अपने सतत उपदेश और ताड़ना से छिन्न भिन्न कर दिया। उन्होंने शंका और भ्रान्ति पूर्ण धारणाओं को दूर कर विश्वास और सच्चाई का आलोक भारत के घर घर में फैलाया। उनके 'सर्वहितकारी-भाव' की पुष्टि तो इसी से होती है कि जहाँ जहाँ उन्होंने डेरा डाला, वहां के प्रत्येक नर नारी के अन्तस को मानवता की उच्च भूमि पर ले जाकर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न उन्होंने सदा ही किया। वे जो कुछ वाणी से कहते थे उसी को आचरण में उतारते थे। इसी कारण उनके उपदेश वाणी का विलास नहीं अपितु जीवन का निचोड़ हैं :—

"कथनी-वदनी छाड़ि के, करनी से चित लाय।"

समाज सुधार के बारे में भी संतों ने कम प्रयास नहीं किया। छुआछूत को उन्होंने ऐसा फटकारा कि एक बार तो स्वार्थी लोगों का सारा मूढ़ाग्रह बढ़ गया और सच तो यह है कि यह उन्हीं की प्रथम प्रेरणा और साधना का परिणाम है कि हम आज उस काम में अधिक सफल हो सके हैं। संतों का युग भारतीय जीवन के आदर्श और श्रेष्ठता का बीज काल था। 'दादू' एकै आतमा, दूजा कोई नाहिं'—जनता ने जब अद्वैत वेदान्त के इस अरिमेय ज्ञान का साक्षात संतों के जीवन में चरितार्थ होते देखा तो फिर छुआछूत ठहरती कैसे! शास्त्र धर्म को एक ओर रखते हुये उन्होंने लोक में, जनता में लोक-धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की और लोक-धर्म भी कैसा—रूढ़ियों और अज्ञान से ढका नहीं; शुद्ध और सहज, सुन्दर और सुवासित। तभी तो 'मसि कागज' के बिना भी उस युग का जन समुद्र उनकी उपदेश लहरी को सुन एक बार उमड़ पड़ा। उन्होंने लोक कल्याण की दृष्टि से ही 'विशिष्ट-सिद्धान्त निरपेक्ष' धर्म चलाया। भूत मात्र के कल्याण की भावना को उन्होंने अपने जीवन का सार-सर्वस्व बनाया। उनके जीवन की सब से बड़ी विशेषता थी विचार और कार्य का सुन्दर संगम। सादगी, संतोष, अपरिग्रह आदि को जहां वे दूसरों के लिये श्रेय बताते थे वहीं उनके जीवन का प्रत्येक कोना भीतर और बाहर ऐसे ही विचारों से ओत प्रोत था। जीवन की सम्पूर्णता के जिस स्वरूप को लेकर संतों की वाणी प्रस्फुटित हुई; तप्त और असन्तुष्ट-जन-हृदय में जिस प्रेमामृत की वर्षा हुई उसकी समता साहित्य का अन्य युग नहीं कर सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वह रास्ता !

श्री विष्णु

पिछले जाड़ों में जब ज़िला कान्फ्रेंस हुई थी तो अमजद ने प्रान्तीय सरकार के मंत्रियों के विरुद्ध इतनी ज़बरदस्त स्पीच दी थी कि सुन कर जनता काँप काँप उठी थी। उसने देश के नवयुवकों और नवयुवतियों से ज़ोरदार अपील की थी कि वे धर्म से अपना पिण्ड छुड़ा कर देश की आर्थिक और राजनीतिक आज़ादी के लिये जनता का आह्वान करें। उसने कहा था—"बिना जनता को साथ लिये आज़ादी नहीं ली जा सकती। बिना जनता में शक्ति आये हम अपने इरादे में कामयाब नहीं हो सकते। दो चार आराम कुर्सियों में लेटने वाले राजनीतिज्ञों ने क्या कभी देश को स्वतंत्र किया है ? मानता हूँ उनमें बुद्धि होती है, वे योजना बना सकते हैं, वे रास्ता सुझा सकते हैं परन्तु जब तक उनकी बुद्धि, प्लैन और सूझ के पीछे जनता की शक्ति नहीं होती तब तक वे सफल नहीं हो सकते……।

"धर्म ने कभी रास्ता सुझाया होगा, कभी उसका सहारा लेकर जनता भयंकर से भयंकर ख़तरों को पार कर गई होगी पर आज वही धर्म उनकी बुद्धि पर ज़ंग लगा रहा है, उनके पैरों में बेड़ी बन कर पड़ा है जो उन्हें न आगे बढ़ने देता है न पीछे हटने देता है…… ।"

और आगे चल कर उसने एक मार्मिक बात कही थी। उसे सुनकर मुसल्लमान बौखला उठे थे, हिन्दुओं ने घृणा से मुँह फेर लिया था परन्तु यही बात सुन कर भीड़ में खड़े निशिकान्त का मन न जाने क्यों बाग़ बाग़ हो उठा था। अमजद ने कहा था—" आप मेरी बात सुनकर गुस्सा कर रहे होंगे यह ठीक ही है। धर्म आपके रक्त में घुल मिल गया है। उसे भूलने के लिये कहने वाला नफ़रत का ही पात्र हो सकता है, परन्तु मैं एक बात कहता हूँ— हिन्दू ईश्वर को मानते हैं, वह सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है, अजर है, अमर है। मुसलमानों का ख़ुदा लाशरीक है, ईसाइयों का गाड ओमनीप्रेजेण्ट और ओमनीपोटेण्ट है। मैं भी क्षण भर के लिये यह बात मान लेता हूं परन्तु यह सब मान कर भी मेरे दिल में एक बात उठती है कि जब वह ईश्वर ऐसा है तो इन्सान क्यों उसके लिये लड़ने मरने को तैयार होता है। वह क्या अपनी हिफ़ाज़त आप नहीं कर सकता ? क्यों लोगों के बाज़ू निन्दक का गला घोंटने को फड़क उठते हैं ? क्यों वह उस सर्वशक्तिमान परमात्मा के कामों में दख़ल देता है ? क्यों नहीं सब कुछ उसी पर छोड़ देता कि जो कुछ होता है उसकी इच्छा से होता है ? क्यों वह अपने देश पर क्राविज़ अंग्रेज़ों को गालियाँ देता है ? वह सर्वज्ञ सब कुछ जानता है, वह सर्वशक्तिमान सब कुछ कर सकता है। ऐसा करके तो इन्सान उसके गुणों से इन्कार करता है, यहाँ तक कि उसकी सत्ता से भी इन्कार करता है। और कि वह अपने आप में कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है बल्कि अपनी आसानी के लिये इन्सान ने ही उसका आविष्कार किया है। वह हमारा निर्माता नहीं बल्कि हम ही उसके निर्माता हैं। आप मुझे नास्तिक, काफ़िर कह सकते हैं परन्तु यह सब मेरी सूझ नहीं है यह तो आपकी मान्यताओं की तर्कपूर्ण परिणति है। लेकिन आप मुझसे पूछें तो मैं कहूँगा कि हमें ईश्वर की चिन्ता छोड़ देनी चाहिये। जो इतने विशाल ब्रह्माण्ड का, रहस्यमय नक्षत्र लोक का और प्राणी मात्र का सृष्टा है वह क्या हमारे जैसे नगण्य प्राणियों की सहायता की अपेक्षा करता है ? सहायता भी वह जो उसके बनाये संसार में भयंकर और वीभत्स रक्तपात का कारण होती है……।

"मैं सच कहता हूँ अगर ईश्वर है तो वह हम लोगों से बेहद नाराज़ है और तभी उसने हमें इस ग़ुलामी में जकड़ा है। इसीलिये मैं कहता हूं हमें उसे छोड़ देना होगा। हमारे पास और बहुत काम हैं। हम अपने को नहीं जानते, अपने पड़ोसी को नहीं पहिचानते। अपने और पड़ोसी में अन्तर समझते हैं। जो अन्तर को मानता है वह मानव सेवा कैसे करेगा ? आज तो सब से बढ़ कर राष्ट्र सेवा का सवाल है। राष्ट्र की आत्मा आज तड़प रही है। राष्ट्र आज ख़ून से लथपथ पड़ा है। विश्व की पीड़ा उसी के कारण बढ़ रही है। वह उसी के विशाल शरीर का तो ही एक अंग है। तब अचरज है वह हमारा सर्वज्ञ ईश्वर कैसे चैन से बैठा है……।"

और इसी तरह बहुत सी बातें निशिकान्त ने सुनीं। सुन कर सोचा आदमी समझदार हैं। ऐसा सोचने के कारण थे। उसके दिमाग़ में यह प्रश्न स्वयं कई दिनों से जाग आया था। अभी अभी उसने आर्य समाज की सदस्यता से इस्तीफ़ा दे दिया था क्योंकि उसका विश्वास हो चला था कि धर्म और ईश्वर मनुष्य को अपनी सत्ता से इन्कार करने का सन्देश देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर रहे हैं। अपने से इन्कार करना आत्म-हत्या है, इसीलिये पाप है। इसीलिये अपने मस्तिष्क के इन विचारों की विस्फोट गूंज सुन कर उसको बड़ी प्रसन्नता हुई। जी में उठा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अभी चल कर अमजद को धन्यवाद दें लेकिन तभी उसने सोचा—मैं सरकारी नौकर और वह उग्र राजनीतिक कार्य कर्ता! मेरा उसका मिलन कैसा?

अचानक उसके तीन हफ़्ते बाद एक दिन वह दफ़्तर पहुँचा ही था कि बड़े बाबू ने पुकारा—निशिकान्त बाबू!

जी।

यहाँ आइये।

वह वहाँ पहुंचा तो अचरज से उसने देखा वहाँ अमजद बैठा था। मुस्कराया, बड़े अदब से आदाब अर्ज़ की। बड़े बाबू बोले—देखो निशिकान्त बाबू! आज से ये तुम्हारे पास काम करेंगे।

निशिकान्त की छाती में बड़े ज़ोर से धक्का लगा, मुँह से अचरज भरे शब्द निकले—

मेरे पास···?

हाँ—बड़े बाबू बोले—काम सीखने का सबसे अच्छा प्रबन्ध तुम्हारी ब्रांच ही में हो सकता है। नये आदमी हैं, बी० ए० तक पढ़े हैं।

और फिर मुस्करा कर कहा—शायर भी हैं।

फिर अमजद से बोले—जाइये मिस्टर। ये बाबू आपको काम बता देंगे, मन लगा कर काम करिये। शुरू का प्रभाव अन्त तक बना रहता है। अच्छा काम करोगे तो नौकरी मिल जावेगी और तरक्की के लिये भी रास्ता खुला रहेगा।

अमजद बिना बोले उठा और निशिकान्त के साथ चला आया। उसने अपनी मेज़ के पास एक कुरसी सरका कर कहा—बैठिये।

वह बैठ गये और कुछ खिसिया कर बोले—आपको कुछ ताज्जुब हुआ?

जी?

आप मुझे जानते हैं?

जी, उस दिन आपका लेक्चर सुना था। आप साम्यवादी हैं न?

जी—उनकी वाणी गिरी—मुझे बड़ी शर्म आरही है, दिल बैठा जा रहा है परन्तु क्या करूँ···!

क्या बात हुई आख़िर?

क्या कहूं, जी में यही उठ रहा है कि खुदकुशी कर लूँ पर बीवी, बच्चे हैं।

खुदकुशी तो पाप है!

बेशक।

और कोई वसीला नहीं है?

नहीं।

कोई तिजारत...?

वे हँसे—उसके लिये पैसा कहाँ से लाऊं?

ठीक कहते हैं आप!

आपकी क्या राय है?

मेरी राय?

जी।

निशिकान्त क्षण भर के लिये ठिठका, फिर बोला—मैं सरकारी नौकर हूँ। सरकार को धोखा देने की कल्पना भी मैंने कभी नहीं की। जिस दिन ऐसी बात मेरे मन में उठेगी उस दिन मैं इस्तीफ़ा देकर अलग हो जाऊँगा, परन्तु मैं मानता हूँ मैं बहुत कुछ आपके विचारों का आदमी हूँ। आपकी इज़्ज़त मेरे दिल में है इसीलिये सोचता हूँ यह नौकरी क्या आपके लिये ठीक रहेगी?

बिल्कुल नहीं—अमजद ने कहा—यह मैं ख़ूब जानता हूँ। मैंने मना भी किया था परन्तु मि० करामत अली, एम० एल० ए० ने मुझे मजबूर किया। उनका भी दोष नहीं है, मेरी हालात ही ऐसी थी कि उन्हें कोई और रास्ता न सूझ पड़ा। मुझे अपनी फ़िकर इतनी नहीं सताती जितनी अपनी बेगुनाह बीवी की·····।

कोई प्राइवेट नौकरी क्यों नहीं ढूंढ़ लेते?

वे हँसे—उन्हें आप क्या समझते हैं! वे पूँजीपति हैं और पूँजीपति Love me and love my dog में विश्वास करते हैं। वे तनिक सा भी मतभेद नहीं स्वीकार करेंगे। वे मेरे विचार जानते हैं, पास भी नहीं फटकने देंगे।

सो तो ठीक है।

फिर···?'

फिर आप बेबस हैं। आते रहिये। काम मैं बता दूँगा। यह इण्डेक्स है, फाइलें हैं, डायरियाँ हैं। आप चाहें तो आज से ही काम शुरू कर दीजिये। डाक पड़ी है; लिफ़ाफ़े बना लीजिये। अमजद ने चुपचाप डाक सँभाली और दूसरी मेज पर बैठ कर लिफाफ़े बनाने लगा। उसका हाथ काँपने लगा था, पते ठीक ठीक नहीं लिखे जा रहे थे। वह बार बार निशिकान्त के पास आता और पूछने लगता लेकिन फिर भी उसका मन नहीं जमा। उसको लेकर दफ़्तर में इधर उधर चीमागोइयां होने लगीं। वह उठा, बोला—मैं कल आऊँगा। निशिकान्त मुस्कराया—ठीक है, आप कल सबेरे दस बजे आ जाइये। विश्वास रखिये मेरे होते आपको कोई तकलीफ़ नहीं होगी।

उसने कहा—आपकी मेहरबानी है। और वह चला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गया; परन्तु उसके बाद एक एक करके अनेक फल आये पर अमजद नहीं आया। जैसे जैसे दिन बीतते गये निशिकान्त उसके लिये चिन्तित होता गया। वह घर नहीं जानता था। वह किसी से उसकी चर्चा करना भी पसन्द नहीं करता था, इसीलिये वह चिन्ता अन्दर ही अन्दर उसे विकल बनाती रही कि एक दिन एक लड़का उसके पास आया। उसका सिर घुटा हुआ था। आँखों से भयङ्करता टपक रही थी। बदन काला और नंगा था। उसने केवल एक मैला कुचैला तहमद लपेटा था। उसने आते ही कहा—निशिकान्त बाबू तुम हो। ( निशिकान्त को उसने निसिकान्त कहा था ) निशिकान्त ने जवाब दिया—हाँ मैं ही हूँ।

यह परचा अमजद मियाँ ने दिया है।

उत्सुकता और अचरज के साथ निशिकान्त ने वह परचा ले लिया, पढ़ा—

जनाब बाबू निशिकान्त साहब, तस्लीम !

क्या आप मेहरबानी करके आज शाम को बन्दे के ग़रीबख़ाने पर तशरीफ ला सकेंगे ? एक निहायत ज़रूरी मसले पर आपकी राय का मुतलाशी हूँ। बवजह अलालत आपकी ख़िदमत में हाजिर नहीं हो सकता। माफ़ी का ख़ास्तगार हूँ।

नियाज़मन्द,
अमजद

निशिकान्त मुस्कराया फिर उस लड़के से पूछा—घर कहाँ है ?

डोगरों की मस्जिद के पीछे।

कह देना, आऊँगा।

और जब सन्ध्या को निशिकान्त डोगरों के मोहल्ले में पहुँचा तो उसे नाक दबा लेनी पड़ी, माँस की बदबू वह सह न सका। छी, छी—उसने सोचा—कैसी गन्दी जगह है ? कैसे रहते हैं यहाँ ये लोग ?

कि तहमद वाला लड़का पास से गुज़रा—उधर, उधर बाबू जी, वह रहा अमजद का घर। निशिकान्त उधर देखे कि अमजद आप ही टाट का परदा उठा कर बाहर आ गया—आइये आइये। बड़ी तकलीफ़ की आपने, आदाब अर्ज़।

आदाब अर्ज़—निशिकान्त मुस्कराया—तकलीफ़ की क्या बात है ? आपकी तबियत कैसी है अब ? 'शुक्रिया, बुख़ार अब कुछ हल्का है।'

और तब तक वे दोनों टाट का परदा उठा कर अन्दर आ गये थे। जैसा कि निशिकान्त ने देखा वह एक कच्ची दहलीज़ में खड़ा था, जिसकी दीवार सील और जालों से भरी हुई थीं। जगह जगह से लेवड़े उतर रहे थे। यहाँ वहां से छत के बरगे भी खिसक गये थे और कड़ियाँ दोहरी होने के लिये बूढ़ों से होड़ ले रही थीं। परदा बेहद बोदा और काला था। सामान के नाम पर एक मोढ़ा और एक चारपाई वहाँ पड़ी थी जिस पर यथाशक्ति साफ़ बिस्तर बिछा था। उसी पर अमजद लेटा हुआ था। उसी के एक कोने पर वह बैठने लगा कि अमजद ने कहा—आप मोढ़े पर आराम से बैठिये।

यहीं ठीक हूँ।

मानिये तो···।

तकल्लुफ़ न कीजिये। आप कमज़ोर हैं, लेट जाइये।

जी बुख़ार में कमज़ोरी हो ही जाती है।

जी हाँ ! जान निकाल देता है बिल्कुल।

अमजद मुस्कराया—जान ही तो नहीं निकालता। सिसकता छोड़ देता है।

निशिकान्त भी मुस्कराया—ऐसा न कहिये, ठीक हो जाँयगे। मेरे लिये कोई ख़िदमत फ़रमाइये। अमजद ने कहा—बुलाया है तो अर्ज़ करूँगा ही। न जाने क्यों आपसे कुछ मोहब्बत सी हो गई है। निशिकान्त हँस कर रह गया।

आपने जो कुछ उस दिन कहा था वह मेरे दिमाग़ में बराबर घूम रहा है। मैं सोचता हूँ मैं नौकरी नहीं कर सकता। करनी भी नहीं चाहिये, लेकिन···?

लेकिन क्या···।

क्या बताऊँ। जीने के लिये पेट भरना ज़रूरी है और वह मैं कर नहीं पा रहा हूँ। घर की हालत जो कुछ भी है वह बता नहीं सकूँगा।

निशिकान्त ने सहानुभूति भरे स्वर में कहा—बताने की ज़रूरत भी नही है मैं देख रहा हूँ·····।

जी, यही बात है वरना निशिकान्त बाबू, मैंने तो अपनी ज़िन्दगी का यही उसूल बनाया था कि देश की आज़ादी के लिये जान लड़ा दूँगा। आज़ादी की पहिली शर्त यह थी कि देश के सब हिन्दू मुसलमान एक हों और इन्सान बनें। उसके लिये मैंने एक ही रास्ता सोचा था।

क्या !

यही कि हम सब अपने को इन मज़हब और ख़ुदा के महन्तों से बरी करलें वही भाई-भाई को लड़ाते हैं।

तुम ठीक कहते हो। मुझे भी ऐसा ही लगता है।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ज़रा सोचो तो सही, हम सब एक दूसरे से इसलिये लड़ते हैं कि मैं मुसलमान हूं और आप हिन्दू। लेकिन मुझे मुसलमान बनाया किसने ? मैंने जब से होश सँभाला तब से अपने को मुसलमान पाया और यही सुना कि हिन्दू काफ़िर हैं, गुमराह हैं, उनको रास्ते पर लाना हमारा पहिला फ़र्ज़ है। उस फर्ज़ को पूरा करने के लिये झूठ, फरेब, मक्कारी, धोखेबाज़ी, जो कुछ भी मैं करूँ सब जायज़ है। यही हालत तुम्हारी है।

कुछ ज़्यादा ही है दोस्त ! हम लोग तुम्हारी छुई चीज़ को भी नापाक समझते हैं।

हाँ ! देख लीजिये कुछ हद है हैवानियत की ?

बेशक। वह धर्म और तहज़ीब क्या जो हमें ऊँचा नहीं उठा सकती, जो हमें इन्सानियत के रास्ते पर नहीं ला सकती।

कभी कभी तो मुझे अपने मुसलमान होने पर घृणा होने लगती है।

निशिकान्त ने कहा—इसमें तुम्हारा क्या दोष ? यह तो परमेश्वर की बात है। उसी ने तुम्हें मुसलमान बनाया और मुझे हिन्दू। हम आप तो कुछ बने नहीं, तब क्यों इस बात के लिये नफ़रत या मोहब्बत करें। सोचने की बात केवल इतनी है कि क्या हम इन्सान बन सकते हैं ?

नहीं बन सकते।

क्यों ··?

क्योंकि जब तक खुदा और मज़हब हैं तब तक इन्सान की अक़्ल आज़ाद नहीं हो सकती। निशिकान्त झिझका—शायद तुम ठीक कह रहे हो लेकिन मैं सोचता हूँ ईश्वर और धर्म के विरुद्ध एकदम सीधे जेहाद बोलने से तो हम कुछ बना न सकेंगे। सारी दुनिया हमारी दुश्मन बन जावेगी।

अमजद क्षण भर के लिये ठिठका—यह तो आप ठीक कहते हैं। मेरी यही हालत है। मुसलमान मुझसे नफ़रत करते हैं। हिन्दू मेरा यक़ीन नहीं करते। कोई मुझे पास नहीं फटकने देता। दुख दर्द में मैं अकेला तड़पता रहता हूं। ग़रीबी इतना नहीं तंग करती जितनी नफ़रत।

आप ठीक कहते हैं, जहाँ सहानुभूति है वहाँ ग़रीबी रह ही नहीं सकती।

मन कहता है छोड़ इस झगड़े को। कौन पूछता है तुझे और तेरी ईमानदारी को पर दिमाग़ बोल उठता है जिस रास्ते को तू ठीक समझता है उसे केवल चन्द दुनियावी मुश्किलों की वजह से छोड़ना बुज़दिली है। उस दिन दफ़्तर चला तो गया पर अभी तक ऐसा लग रहा है कि कोई बड़ा भारी पाप किया हो·····।

निशिकान्त सहानुभूति से उमड़ा पड़ता था, बोला—एक बात कहता हूं, तुम दिल्ली चले जाओ।

दिल्ली ?

हाँ, वहाँ तुम्हारी पार्टी है, नेता हैं, संगठन है, तुम्हारी पूछ हो सकती है।

कहते तो तुम ठीक हो। सोचूंगा।

किसी को जानते हो ?

पार्टी के नेता मिस्टर ज्योतिप्रसाद को।

तब ठीक है। सुना है वे तो पैसे वाले भी हैं।

पैसे वाले होते ख़तरनाक हैं। हर चीज़ को पैसे के मापदण्ड से नापते हैं।

पर भाई, पैसे बिना क्या काम चल सकता है ? यह ख़तरा तो उठाना ही पड़ेगा।

अच्छा। अगर तुम्हारी यही राय है। तुम नहीं जानते मैं तुम्हारी राय की·····।

हां, हां, ज़रूर जाओ—बिना सुने ही निशिकान्त ने कहा। और वह उठा—अच्छा चलूं अब, देर हो रही है।

अमजद कृतज्ञता से हँसा—जायँगे। आपको बड़ी तकलीफ़ हुई लेकिन रुकिये पान लाता हूं।

नहीं, नहीं, मैं पान नहीं खाता।

आख़िर...।

यक़ीन रखिये मुझे ज़रा भी परहेज़ नहीं है।

और वह मुड़ा कि सहसा अन्दर वाले दरवाज़े पर निगाह अटक गई। दो पैर एक कोने में जमे हुये थे। उसके उठते ही तेज़ी से अन्दर ग़ायब हो गये। निशिकान्त ने साफ़ साफ़ देखा वे पैर किसी नवयुवती के थे, गोरे सुडौल और उठे हुये।

वह आदाब अर्ज़ करके बाहर निकल आया। अमजद भी दरवाज़े तक आया तब काफी गहरा अंधेरा हो आया था और बिजली की धीमी रोशनी रसोई घर की सफेदी की तरह चमक रही थी। दरवाज़े पर रुक कर अमजद ने हिचकिचाते हुये कहा—निशिकान्त बाबू...।

जी···। वह मुड़ा।

माफ़ करिये मैं एक बात···।

हाँ, हाँ, कहिये···।

आपके पास अगर दो-चार रुपये हों तो मेहरबानी करके उधार दे दीजिये। मैं जल्द अज़ जल्द लौटा दूंगा सच जानिये दवा·····।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



निशिकान्त एक दम बोल उठा—मैं जानता हूँ। मेरे पास केवल पांच रुपये हैं, उन्हें लौटाने की कोई जल्दी नहीं है।

अमजद ने हाथ बढ़ा कर रुपये ले लिये। निशिकान्त ने धुँधले प्रकाश में देखा कि हाथ कांप रहा है और चेहरा सफ़ेद होगया है। वह तब एक क्षण के लिये भी वहां नहीं रुका और शीघ्रता से आगे बढ़ गया।

× × ×

सकीना की आंखों में पीड़ा गहरी थी, उससे बोला नहीं जा रहा था। वह निढाल सी खाट पर पड़ी थी। अमजद ने उसे देखा। पूछा—तबियत ज़्यादा ख़राब है? सकीना कुछ बोली नहीं, शून्य में ताकती रही।

सकीना!

जी···।

पूछता हूँ तबियत ज़्यादा ख़राब है।

उसने मुसकराने की चेष्टा की। मुख का पीलापन गहरा हो आया। बोली—क्या कहा उन्होंने?

उन्होंने···।

जी।

सहसा चेहरे का रंग पलटा पर किसी तरह अपने को क़ाबू में करके उसने कहा—समझलो कि मना कर दिया।

समझ लूँ। क्या माने···। आंखें ऊपर उठाकर सकीना बोली।

हां सकीना! हमें समझना ही पड़ेगा। उनका कहना है, मैं बहुत घबराता हूँ मामूली बीमारी है, हकीम की दवा से ठीक हो सकती है। वे डाक्टर को बुलाकर केस बिगाड़ना नहीं चाहते। मुल्क की सेवा के लिये उन्हें मेरी ज़रूरत है···।

स्वर तेज़ होने लगा था कि सकीना मुस्कराई—ठीक तो कहा उन्होंने?

सकीना···।

मुल्क की ख़िदमत के सामने किसी की बीमारी कोई चीज़ नहीं है।

आवाज़ फिर गिरी—यह मैं मानता हूँ सकीना, पर यहां बात कुछ और ही है। बीमारी साधारण नहीं है, उसकी वजह भी आरज़ी नहीं है। पेट में डालने को जिसे पूरा पूरा खाना नहीं मिला। जिसकी कोई ख़्वाहिश कभी पूरी नहीं की गई, ग़रीबी और मुफ़लिसी ने जिसके बच्चों को उठा लिया, जिसने अपनों की ठोकरें खाईं और जो दूसरों की मोहब्बत से महरूम रहा उसकी बीमारी क्या बीमारी है? वह तो घुन है जो तन बदन की मिट्टी बना कर रहेगा।

अमजद की आंखों में नफ़रत फिर उमड़ने लगी। सकीना ने अपना पतला हाथ ऊपर उठाया, आंखों में आँसू डालीं। उनमें रोशनी नहीं थी पर एक निमन्त्रण ज़रूर था जो किसी भी कठोर हृदय को पिघला सकता था लेकिन अमजद ने उसे नहीं देखा। देखता भी कैसे, उसकी अपनी आंखों से चिनगारियां फूट रही थीं वह कहता रहा—मुझे उनसे कोई ज़्यादा शिकायत नहीं है। मैं उनके पैसे पर पलने नहीं आया था सिर्फ़ वे मुझे अपना समझते। मुझे उन्होंने सदा ग़ैर समझा। मेरा मुसलमान होना सदा उनके हिन्दू पन को ठेस पहुँचाता रहा। एक बार भी वे या उनकी बीवी तुम्हारा हाल पूछने नहीं आईं। उन्हें हमसे ज़रा भी हमदर्दी नहीं है। हमसे ज़्यादा उन्हें मोटर प्यारी है। दूसरों के लिये केवल तीन लफ़्ज़ वे जानते हैं त्याग, तपस्या और सेवा। लेकिन इसके लिये इन्सानियत की शर्तें वे नहीं मानते। उसका उन्हें ज़रा भी एहसास नहीं है। नहीं तो क्या वे एक दिन भी हमें अपने घर न बुलाते·····।

सकीना से रहा नहीं गया, बोली—क्या हो गया है तुम्हें। किसी की बुराई करना गुनाह है और फिर उसकी जो हमें पनाह दिये हुये हैं···।

चुप रहो सकीना—वह चिल्ला उठा—मैं किसी की पनाह में नहीं रहना चाहता। पनाह ग़ुलामी है। उनके पास पैसा है इसीलिये वे पनाह दे सकते हैं। क्या यह इन्सानियत है? क्या यह ख़ुदाई है? यह तो···यह तो···।

तुम्हें क्या हो गया है? तुम चुप क्यों नहीं होते। मेरा दिल बैठा जा रहा है।—सकीना ने फिर मुश्किल से अपने को सँभालते हुये कहा।

अमजद की आँखों में आँसू भर आये—मुझे अफ़सोस है मैं भी तुम्हारी बीमारी को भूल चला था। लेकिन मैं क्या करूँ, सकीना! मैं उनके पास गया, बताया कि तुम घुलती जा रही हो, इल्तजा की कि एक बार डाक्टर शर्मा या हमीद को दिखा दें तो वे चिल्ला उठे तुम्हारे दिमाग़ में भी अमीरी घुस गई है, अमीरी गुनाह है, उसे भूल जाओ। जाओ उसी दवा से ठीक हो जावेगी।

वे शायद ठीक कहते थे।

ख़ाक ठीक कहते थे। वे ढोंगी हैं, उन्हें बोलने की भी तमीज़ नहीं है। हो भी कैसे? वे दूसरे को इन्सान समझते ही नहीं। मैं·····।

सकीना ने उठना चाहा पर उठ न सकी, अधबीच में ही लड़खड़ा कर गिर पड़ी, बदन निढाल होगया, आंखें मिच गईं! अमजद ने देखा तो चीख उठा—सकीना!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वह बोल नहीं सकी, हाथ हल्की सी हरकत करके रह गया।

सकीना ! सकीना !! क्या हुआ तुम्हें·····?

अमजद घबरा उठा। जल्दी जल्दी मुँह पर पानी के छींटे दिये, हाथ पैर सहलाये, तब कहीं जाकर सकीना ने आंखें खोलीं। धीरे से बोली—घबराओ नहीं। ऐसी बात नहीं है। कमज़ोरी के कारण दिल में धड़कन बढ़ गई है। ठीक हो जावेगी।

मैं जानता हूं सकीना ! यह कब और कैसे ठीक होगी।

सकीना मुस्कराई—तुम न जानोगे तो और कौन जानेगा, मेरे सरताज !

फिर करवट लेकर सकीना ने अपने दोनों पीले हाथ अमजद की गोदी में रख दिये और आंखें मीच लीं, मानो उसे राहत मिल गई।

× × ×

उधर निशिकान्त को अमजद का कोई समाचार नहीं मिला तो हिम्मत करके एक दिन वह अमजद के मकान पर पहुँचा। उसके दरवाज़े पर टाट का फटा परदा उसी तरह पड़ा हुआ था। वह ठिठक गया, आवाज़ दी—अमजद साहब !

कोई नहीं बोला !

फिर पुकारा—अमजद साहब !

अन्दर से एक प्रौढ़ आदमी निकल आया। उसका चेहरा तना हुआ था, आँखें चमक रही थीं। बदन पर केवल एक चारखाने का तहमद था। आकर बोला—हां क्या है ?

'यहाँ अमजद साहब रहते थे ?'

रहते थे।

अब कहाँ है ?

दिल्ली ?

बच्चे भी ?

हाँ बच्चे भी। बीमार हो गई थी।

निशिकान्त ने विनम्र होकर कहा—माफ़ करियेगा, क्या आप बता सकेंगे वे यहाँ आये थे ?

आदमी ने सिर से पैर तक निशिकान्त को देखा फिर पूछा—आप क्यों पूछते हैं ? क्या मतलब है ?

मैं अमजद का दोस्त हूं।

उसने अजीब मुद्रा बना कर कहा—शायद स्कूल में साथ पढ़े होंगे नहीं तो हिन्दू की क्या दोस्ती ! बहुत दिन तक अमजद भी इसी भूल भुलैया में पड़ा रहा। न जाने क्या क्या कुफ़्र की बात करता था। दिल्ली में कोई लाला है लीडर। उनके पास जूतियाँ चटखाता रहा, बीवी मरने को होगई पर किसी ने पूछा भी नहीं। तब ख़ुदा याद आया। याद आया तो दिन भी फिरे। अब यहाँ मुस्लिम नाइट स्कूल में हेडमास्टर होगया है। कल ही आयेगा।

निशिकान्त ने सुन लिया। एक दफ़ा तो धक से रह गया, फिर सँभल कर बोला—जी अब उनके घर में ठीक हैं न ?

अब तो ख़ुदा की शुक्र ही शुक्र है।

यही चाहिये।

वह मुड़ा कि उस प्रौढ़ व्यक्ति ने पूछा—तुम्हारा नाम.....?

कोई ज़रूरत नहीं। मैं आकर मिल लूँगा।

और वह शीघ्रता से आगे बढ़ गया कि कोई पुकार न ले। वह उस वातावरण से दूर भाग जाना चाहता था। उसका दम घुट रहा था और दिमाग़ में एक अजीब उमस सी पैदा हो रही थी। वह कुछ भी स्पष्ट नहीं सोच पा रहा था और क़दम इस तेज़ी से बढ़े चले जा रहे थे कि जैसे ही वह उस बस्ती से बाहर निकला तो एक व्यक्ति से टकरा गया। उसने चौंक कर पीछे हटते हटते कहा—माफ़ करना मैं जल्दी में था।

वह व्यक्ति बोला—कोई बात नहीं···कि एक दम निशिकान्त को पहिचान कर उसने कहा—अरे आप निशिकान्त बाबू ! कहाँ गये थे ? निशिकान्त ने भी उन बन्धु को पहिचाना, बोला—ज़रा एक मित्र के यहाँ तक गया था।

कौन ?

अमजद।

वे चौंके—अमजद ! वह कब से तुम्हारा मित्र बना। धोखेबाज़ कहीं का ! साम्यवादी बनता था ! अब पाकिस्तान को अपना लक्ष्य बताता है।

हाँ सुना तो है।

उन बन्धु के साथ एक और साथी थे बोले—सुना नहीं मैंने आँखों से देखा है। जो अमजद धर्म के विरुद्ध बोलते नहीं थकता था वह आज ख़ुदा की क़ुदरत मुसलमान धर्म की वैज्ञानिकता तथा क़ुरान के फलसफ़े पर ऐसा बोलता है जैसे कोई पहुँचा हुआ मौलवी। हिन्दू-मुसलिम एकता के लिये जो प्राण तक देने को तैयार था वह अब पाकिस्तान पर क़ुरबान है। बेशक—पहिले साथी ने कहा—बेशक इस बेईमान क़ौम का क्या भरोसा ! यह क्या कभी किसी की हुई है !

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



न कभी हुई और न कभी होगी।

निशिकान्त को झुँझलाहट हो रही थी। उसे लग रहा था कि जैसे वह अपनी पराजय स्वीकार करता जा रहा है। उसने कहा—मुझे ताज्जुब होता है···।

ताज्जुब कैसा मैं तो उसे सदा से कमीना समझता रहा हूँ।

अनायास निशिकान्त के मस्तिष्क में एक बात उभर आई वह तेज़ी से बोला—बेशक वह कमीना है परन्तु इस कमीनेपन का कारण क्या है? बिना कारण के तो कभी कुछ होता नहीं। उसे यदि हम खोजें तो मेरा विश्वास है उसके पैदा होने में हमारा भी बहुत बड़ा हाथ है। तब उसका कमीनापन हमारे कारण है और यह हमारे हाथ में है कि उस कारण को नष्ट करदें जिसने उसे कमीना बनने को मजबूर किया है।

इतना कहकर वह शीघ्रता से आगे बढ़ गया। साथी अचानक भँवर में पकड़े गये तैराक की भांति बेबस देखते ही रह गये।

अमजद फिर वहीं लौट आया। अब वह स्कूल का हेडमास्टर था और स्थानीय लोग का सेक्रेटरी। उसकी इज़्ज़त थी, पूछ थी। मुसलमान अदब से सलाम झुकाते थे और मजलिसों में उसे ऊँचा पद मिलता था। निशिकान्त ने कई बार दूर से उसे देखा; चाहा, पुकार ले पर न जाने क्यों झिझक गया—देखना चाहिये वह स्वयं आयेगा या नहीं। लेकिन वह नहीं आया तब एक दिन निशिकान्त आप ही उसके घर पहुंचा। अब वह बाज़ार में एक पक्के मकान में रहता था जिसकी मरदानी बैठक में कुरसियों का प्रबन्ध था। वह सन्ध्या से पहिले गया था कि उससे अकेले बात चीत कर सके और वह तब अकेला ही था। निशिकान्त को देखा तो एक बार उसके चेहरे का रंग पलटा फिर बरबस मुस्करा पड़ा। निशिकान्त ने कहा—अमजद बाबू, क्या बात है दिखाई नहीं दिये। अमजद सहमा सहमा बोला—माफ़ करिये। काम की ज़्यादती की वजह से आपके नियाज़ हासिल न कर सका। आपको मेरी चिट्ठी मिली होगी···।

जी, शुक्रिया, मनीआर्डर मिल गया था।

जी आप शर्मिन्दा करते हैं। मैंने सोचा था मैं जाऊँगा ही पर वे बोलीं न जाने कब जाना हो मनीआर्डर कर दीजिये। जो वक्त पर काम आया था उसे ऐसा मौक़ा क्यों देते हो कि आप पर शक करे।

इस बात से निशिकान्त बड़ा प्रभावित हुआ—नहीं नहीं ऐसी बात नहीं थी।

अमजद ने कहा—आपके लिये नहीं परन्तु आज दुनि के लिये यह बात ठीक है।

होगी—निशिकान्त बोला—परन्तु मैंने सुना है कि आप मुस्लिम लीग में शामिल हो गये हैं।

क्षण भर में उसके चेहरे का रंग कई बार पलट झिझका परन्तु अन्त में दृढ़ होकर उसने कहा—बेशक आपने ठीक सुना है और मैं कहूं मुझे उसका ज़रा भी दुख नहीं है।

निशिकान्त अचकचाया—मैं दुख की बात नहीं कह परन्तु मैं तो यही जानना चाहता हूं क्या आपके ख़्याल पहिले जैसे ही हैं।

अमजद ने अपने को फिर सँभाला—ख़्यालात की यह है कि मैं अब भी मुल्क की आज़ादी का हामी हूं अब भी मुझे मज़हब और ख़ुदा से कोई ख़ास मोहब्बत नहीं है परन्तु मैं मानता हूँ मुझे कई वजूहात से इस बारे समझौता करना पड़ा।

क्या वजह हैं वे, बता सकेंगे?

वजह सब से बड़ी एक है वह यह है कि हिन्दू-मुसलम एक नहीं हो सकते। हिन्दू अमीर हैं, तंगदिल हैं, ग़रीब मुसलमानों को अपना नहीं समझ सकते।

इसलिये आप पाकिस्तान के हामी हो गये हैं।

बेशक मैं मानता हूँ पाकिस्तान के बिना इस मुल्क आज़ादी नसीब नहीं हो सकती। आज़ादी के लिये ज़ है कि मुसलमान अपने को महफ़ूज़ और ताक़तवर समझें आजकल की हालत में वे सरमायादार हिन्दुओं दया···।

निशिकान्त ने देखा अमजद कुछ तेज़ होता जा है। उसने एकदम बात टालनी चाही और पूछा—अ छोड़िये इन बातों को। कहिये आपके घर में से तो ठीक

जी हाँ—अमजद ने कहा—ख़ुदा का लाख लाख है। उसी की बीमारी ने मुझे रास्ता दिखाया है। मैं ग था अकेला था। मि० ज्योति प्रसाद बड़े नेता हैं अपने सरमायादारों का दुश्मन कहते हैं परन्तु वे हिन्दू हैं सरमायादारी धर्म की शर्त है। उन्हें हमदर्दी तो ज़रा भी थी। उनके घर में हमारा सलूक अछूतों से भी बदतर मेरी बीवी उनके घर में कहीं भी बेतकल्लुफ़ी से नहीं सकती थी। लेकिन आप कह सकते हैं ये बातें इतनी दूर नहीं हो सकतीं, मैं भी मानता हूँ। पर इन्सानियत कोई चीज़ होती है, उस दिन जब मेरी बीवी की हा माँ के थी, मुसलमान मुझ से नाला थे, नफ़रत करते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कुदरतन अपने हिन्दू दोस्त की तरफ़ मुड़ा पर सच मानना उसने मुझे बातों में उड़ा दिया। मुझे अपने पास भी नहीं फटकने दिया……।

कहते कहते अमजद का स्वर बहुत कड़ुवा हो उठा। उसने कहा—उसकी हालत गिरती ही गई तो मैं लाचार अपने एक पुराने मुसलमान दोस्त के पास गया। उसने मेरी मदद की, वह अमीर नहीं था परन्तु जो कुछ भी वह कर सकता था उसने किया। अपनी बीवी को लेकर रात रात भर मेरे घर रहा, उसने मेरी बीवी को बचा लिया। पैसा उसने दिया, पर पैसे से ज्यादा उसने मुझे वह चीज़ दी, जो इन्सान को इन्सान बनाती है, वह अहसास है, वह हमदर्दी है। उस दिन मैंने जाना अपने कौन हैं……।

भावों की उत्तेजना में वह खोने लगा था। उसकी रक्त मयी आँखों में जलकण चमक उठे थे। उसने कहा—निशिकान्त बाबू! तुम्हारी याद उस दिन भी मुझे भूली नहीं थी; आज भी ख़ुदा और मज़हब का ख्याल मुझे कंपा देता है। अब भी मैं एक ऐसी क़ौम का ख़्वाब देखा करता हूं जिसके बाहर भीतर कहीं कोई भेद न हो।

निशिकान्त मुस्करा उठा। उसने अमजद का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—दुनियां का हर बड़ा काम शुरू में सपना ही मालूम होता है, अमजद बाबू! तुम मुस्लिम लोग में शामिल हो गये हो तो फ़िक्र क्या है। पाकिस्तान होने पर भी हिन्दू मुसलमानों को यहीं और इसी तरह रहना होगा। उनके आपसी सम्बन्ध किस प्रकार सुधर सकते हैं, यह समस्या बनी ही रहेगी। उसको आप और मेरे जैसे व्यक्ति ही सुलझा सकते हैं। उसका रास्ता वही है जो एक दिन आपने सुझाया था।

और फिर उठते उठते कहा—अब चलूं! देर हो रही है। एक दिन आपके स्कूल में आऊँगा। अब आप बड़े आदमी हैं किसी दिन ग़रीबख़ाने पर तशरीफ़ लाइये।

अमजद न जाने कैसा हो चला। बोला—लेकिन आप मुझसे नफ़रत नहीं करते निशिकान्त बाबू? हिन्दू तो…।

निशिकान्त मुस्कराया—अमजद बाबू! मैं नफ़रत क्यों करूं? मैं क्या केवल हिन्दू ही हूँ?

आपही ने एक दिन बताया था कि यह धर्म हमारी कमाई नहीं है और फिर आपके दृष्टि कोण को समझने के लिये मुझे आप से और भी दोस्ताना करना होगा। आप लोग में हैं इसी कारण नफ़रत करने की बात मुझे एकदम लचर मालूम होती है…और फिर मुड़ कर उसने कहा—मुझे बड़ी प्यास लगी है पानी पिलाइये।

अमजद एक दम बोला—हाँ, हाँ! अभी लाता हूं। तशरीफ़ रखिये।

वह उठा कि अन्दर जाये पर न जाने क्यों एक दम झिझक गया—लेकिन मेरे घर का पानी क्या आप पी सकेंगे?

'क्यों न पी सकूंगा। उसमें हुआ क्या?'

अमजद अन्दर चला गया। निशिकान्त ने देखा चिक के पीछे दो क़दम एकदम पीछे हटे। उन्हें देख कर उसके मन में उठा—क्या है जो इतने भेद का कारण है। क्या मैं चाहूँ तो भी ये कारण रह सकेंगे कि अमजद ने आकर कहा—निशिकान्त बाबू! माफ़ करिये……।

निशिकान्त एक दम बोला—क्यों क्या घर में पानी नहीं है?

पानी तो है।

तो फिर…?

'तो फिर यही कि बेगम किसी भी हालत में राज़ी नहीं होतीं। वे कहती हैं कि मैं मुसलमान हूं, अपने घड़े का पानी पिला कर मैं उनका धर्म नहीं बिगाड़ना चाहती।'

'लेकिन मैं तो…।

'मैं मजबूर हूं और मुझे अफ़सोस है आप मेरे घर से प्यासे जा रहे हैं। इसके लिये क़यामत के दिन मुझे ख़ुदा को जवाब देना होगा।'

क्षण भर के लिये निशिकान्त स्तम्भित चकित शून्य में ताकता रहा, फिर बोला—बड़ा करारा तमाचा मारा है आपकी बेगम ने। कोई डर नहीं! यह हमारी कमाई है पर आप मेरी ओर से उनसे कह दीजिये कि आज न सही फिर किसी दिन उन्हें मुझे अपने हाथ से अपने घड़े का पानी पिलाना ही होगा और केवल पानी ही नहीं और कुछ भी। इसके बिना न उनका भला होगा, न मेरा।

इतना कहकर निशिकान्त बड़ी शीघ्रता से बाहर चला गया। अमजद अचरज से ठगा क्षण भर उसे देखता ही रह गया फिर एक दम ज़ोर से बोला—सकीना! वह प्यासा ही चला गया, यह ठीक नहीं हुआ।

सकीना तब तक पास आगई थी, मुस्कराकर बोली—उनका प्यासा जाना फ़िजूल नहीं है मेरे सरताज! अगर मैं उन्हें ठीक ठीक जान सकी हूं तो वह प्यास मोहब्बत के रं को गहरा ही करेगी, इतना गहरा कि तब उसे कोई धो सकेगा।

लेकिन अमजद का दिमाग़ अब भी चकराया हुआ था।

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



न कभी हुई और न कभी होगी।

निशिकान्त को झुँझलाहट हो रही थी। उसे लग रहा था कि जैसे वह अपनी पराजय स्वीकार करता जा रहा है। उसने कहा—मुझे ताज्जुब होता है···।

ताज्जुब कैसा मैं तो उसे सदा से कमीना समझता रहा हूँ।

अनायास निशिकान्त के मस्तिष्क में एक बात उभर आई वह तेज़ी से बोला—बेशक वह कमीना है परन्तु इस कमीनेपन का कारण क्या है? बिना कारण के तो कभी कुछ होता नहीं। उसे यदि हम खोजें तो मेरा विश्वास है उसके पैदा होने में हमारा भी बहुत बड़ा हाथ है। तब उसका कमीनापन हमारे कारण है और यह हमारे हाथ में है कि उस कारण को नष्ट करदें जिसने उसे कमीना बनने को मजबूर किया है।

इतना कहकर वह शीघ्रता से आगे बढ़ गया। साथी अचानक भँवर में पकड़े गये तैराक की भांति बेबस देखते ही रह गये।

अमजद फिर वहीं लौट आया। अब वह स्कूल का हेडमास्टर था और स्थानीय लीग का सेक्रेटरी। उसकी इज़्ज़त थी, पूछ थी। मुसलमान अदब से सलाम झुकाते थे और मजलिसों में उसे ऊँचा पद मिलता था। निशिकान्त ने कई बार दूर से उसे देखा; चाहा, पुकार ले पर न जाने क्यों झिझक गया—देखना चाहिये वह स्वयं आयेगा या नहीं। लेकिन वह नहीं आया तब एक दिन निशिकान्त आप ही उसके घर पहुंचा। अब वह बाज़ार में एक पक्के मकान में रहता था जिसकी मरदानी बैठक में कुरसियों का प्रबन्ध था। वह सन्ध्या से पहिले गया था कि उससे अकेले बात चीत कर सके और वह तब अकेला ही था। निशिकान्त को देखा तो एक बार उसके चेहरे का रंग पलटा फिर बरबस मुस्करा पड़ा। निशिकान्त ने कहा—अमजद बाबू, क्या बात है दिखाई नहीं दिये। अमजद सहमा सहमा बोला—माफ़ करिये। काम की ज्यादती की वजह से आपके नियाज़ हासिल न कर सका। आपको मेरी चिट्ठी मिली होगी···।

जी, शुक्रिया, मनीआर्डर मिल गया था।

जी आप शर्मिन्दा करते हैं। मैंने सोचा था मैं जाऊँगा ही पर वे बोलीं न जाने कब जाना हो मनीआर्डर कर दीजिये। जो वक्त पर काम आया था उसे ऐसा मौक़ा क्यों देते हो कि आप पर शक करे।

इस बात से निशिकान्त बड़ा प्रभावित हुआ—नहीं नहीं ऐसी बात नहीं थी।

अमजद ने कहा—आपके लिये नहीं परन्तु आज हुनि के लिये यह बात ठीक है।

होगी—निशिकान्त बोला—परन्तु मैंने सुना है आप मुस्लिम लीग में शामिल हो गये हैं।

क्षण भर में उसके चेहरे का रंग कई बार पलट झिझका परन्तु अन्त में दृढ़ होकर उसने कहा—बेशक आपने ठीक सुना है और मैं कहूं मुझे उसका ज़रा भी दु नहीं है।

निशिकान्त अचकचाया—मैं दुख की बात नहीं कह परन्तु मैं तो यही जानना चाहता हूं क्या आपके ख़्याल पहिले जैसे ही हैं।

अमजद ने अपने को फिर सँभाला—ख़्यालात की यह है कि मैं अब भी मुल्क की आज़ादी का हामी हूं अब भी मुझे मज़हब और ख़ुदा से कोई ख़ास मोहब्ब नहीं है परन्तु मैं मानता हूँ मुझे कई वजूहात से इस बात समझौता करना पड़ा।

क्या वजह हैं वे, बता सकेंगे?

वजह सब से बड़ी एक है वह यह है कि हिन्दू-मुसलम एक नहीं हो सकते। हिन्दू अमीर हैं, तंगदिल हैं, ग़रीब मुसलमानों को अपना नहीं समझ सकते।

इसलिये आप पाकिस्तान के हामी हो गये हैं।

बेशक मैं मानता हूँ पाकिस्तान के बिना इस मुल्क आज़ादी नसीब नहीं हो सकती। आज़ादी के लिये ज़ है कि मुसलमान अपने को महफ़ूज़ और ताक़तवर समझें आजकल की हालत में वे सरमायादार हिन्दुओं दया···।

निशिकान्त ने देखा अमजद कुछ तेज़ होता जा है। उसने एकदम बात टालनी चाही और पूछा—अ छोड़िये इन बातों को। कहिये आपके घर में से तो ठीक

जी हाँ—अमजद ने कहा—ख़ुदा का लाख लाख है। उसी की बीमारी ने मुझे रास्ता दिखाया है। मैं गु था अकेला था। मि० ज्योति प्रसाद बड़े नेता हैं अपने सरमायादारों का दुश्मन कहते हैं परन्तु वे हिन्दू हैं सरमायादारी धर्म की शर्त है। उन्हें हमदर्दी तो ज़रा भी थी। उनके घर में हमारा सलूक अछूतों से भी बदतर मेरी बीवी उनके घर में कहीं भी बेतकल्लुफ़ी से नहीं सकती थी। लेकिन आप कह सकते हैं ये बातें इतनी ज़ दूर नहीं हो सकतीं, मैं भी मानता हूँ। पर इन्सानियत कोई चीज़ होती है, उस दिन जब मेरी बीवी की हाल नाज़ुक थी, मुसलमान मुझ से नाला थे, नफ़रत करते थे,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कुदरतन अपने हिन्दू दोस्त की तरफ़ मुड़ा पर सच मानना उसने मुझे बातों में उड़ा दिया। मुझे अपने पास भी नहीं फटकने दिया·····।

कहते कहते अमजद का स्वर बहुत कड़ुवा हो उठा। उसने कहा—उसकी हालत गिरती ही गई तो मैं लाचार अपने एक पुराने मुसलमान दोस्त के पास गया। उसने मेरी मदद की, वह अमीर नहीं था परन्तु जो कुछ भी वह कर सकता था उसने किया। अपनी बीवी को लेकर रात रात भर मेरे घर रहा, उसने मेरी बीवी को बचा लिया। पैसा उसने दिया, पर पैसे से ज़्यादा उसने मुझे वह चीज़ दी, जो इन्सान को इन्सान बनाती है, वह अहसास है, वह हमदर्दी है। उस दिन मैंने जाना अपने कौन हैं·····।

भावों की उत्तेजना में वह खोने लगा था। उसकी रक्त मयी आँखों में जलकण चमक उठे थे। उसने कहा—निशिकान्त बाबू! तुम्हारी याद उस दिन भी मुझे भूली नहीं थी; आज भी ख़ुदा और मज़हब का ख्याल मुझे कंपा देता है। अब भी मैं एक ऐसी क़ौम का ख़्वाब देखा करता हूं जिसके बाहर भीतर कहीं कोई भेद न हो।

निशिकान्त मुस्करा उठा। उसने अमजद का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—दुनियां का हर बड़ा काम शुरू में सपना ही मालूम होता है, अमजद बाबू! तुम मुस्लिम लोग में शामिल हो गये हो तो फ़िक्र क्या है। पाकिस्तान होने पर भी हिन्दू मुसलमानों को यहीं और इसी तरह रहना होगा। उनके आपसी सम्बन्ध किस प्रकार सुधर सकते हैं, यह समस्या बनी ही रहेगी। उसको आप और मेरे जैसे व्यक्ति ही सुलझा सकते हैं। उसका रास्ता वही है जो एक दिन आपने सुझाया था।

और फिर उठते उठते कहा—अब चलूं! देर हो रही है। एक दिन आपके स्कूल में आऊँगा। अब आप बड़े आदमी हैं किसी दिन ग़रीबख़ाने पर तशरीफ़ लाइये।

अमजद न जाने कैसा हो चला। बोला—लेकिन आप मुझसे नफ़रत नहीं करते निशिकान्त बाबू? हिन्दू तो···।

निशिकान्त मुस्कराया—अमजद बाबू! मैं नफ़रत क्यों करूं? मैं क्या केवल हिन्दू ही हूँ?

आपही ने एक दिन बताया था कि यह धर्म हमारी कमाई नहीं है और फिर आपके दृष्टि कोण को समझने के लिये मुझे आप से और भी दोस्ताना करना होगा। आप लोग में हैं इसी कारण नफ़रत करने की बात मुझे एकदम लचर मालूम होती है···और फिर मुड़ कर उसने कहा—मुझे बड़ी प्यास लगी है पानी पिलाइये।

अमजद एक दम बोला—हाँ, हाँ! अभी लाता हूं। तशरीफ़ रखिये।

वह उठा कि अन्दर जाये पर न जाने क्यों एक दम झिझक गया—लेकिन मेरे घर का पानी क्या आप पी सकेंगे?

'क्यों न पी सकूंगा। उसमें हुआ क्या?'

अमजद अन्दर चला गया। निशिकान्त ने देखा चिक के पीछे दो क़दम एकदम पीछे हटे। उन्हें देख कर उसके मन में उठा—क्या है जो इतने भेद का कारण है। क्या मैं चाहूँ तो भी ये कारण रह सकेंगे कि अमजद ने आकर कहा—निशिकान्त बाबू! माफ़ करिये.....।

निशिकान्त एक दम बोला—क्यों क्या घर में पानी नहीं है?

पानी तो है।

तो फिर...?

'तो फिर यही कि बेगम किसी भी हालत में राज़ी नहीं होतीं। वे कहती हैं कि मैं मुसलमान हूं, अपने घड़े का पानी पिला कर मैं उनका धर्म नहीं बिगाड़ना चाहती।'

'लेकिन मैं तो...।

'मैं मजबूर हूं और मुझे अफ़सोस है आप मेरे घर से प्यासे जा रहे हैं। इसके लिये क़यामत के दिन मुझे ख़ुदा को जवाब देना होगा।'

क्षण भर के लिये निशिकान्त स्तम्भित चकित शून्य में ताकता रहा, फिर बोला—बड़ा करारा तमाचा मारा है आपकी बेगम ने। कोई डर नहीं! यह हमारी कमाई है पर आप मेरी ओर से उनसे कह दीजिये कि आज न सही फिर किसी दिन उन्हें मुझे अपने हाथ से अपने घड़े का पानी पिलाना ही होगा और केवल पानी ही नहीं और कुछ भी। इसके बिना न उनका भला होगा, न मेरा।

इतना कहकर निशिकान्त बड़ी शीघ्रता से बाहर चला गया। अमजद अचरज से ठगा क्षण भर उसे देखता ही रह गया फिर एक दम ज़ोर से बोला—सकीना! वह प्यासा ही चला गया, यह ठीक नहीं हुआ।

सकीना तब तक पास आगई थी, मुस्कराकर बोली—उनका प्यासा जाना फ़िजूल नहीं है मेरे सरताज! अगर मैं उन्हें ठीक ठीक जान सकी हूं तो वह प्यास मोहब्बत के रं को गहरा ही करेगी, इतना गहरा कि तब उसे कोई धो सकेगा।

लेकिन अमजद का दिमाग़ अब भी चकराया रहा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# साहित्य में प्रगति

श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद'

'साहित्य में प्रगति' से क्या मतलब होगा, यह प्रश्न आज भी अपना समाधान ढूंढ़ रहा है।

क्या साहित्य में गतिशीलता नहीं है? यदि नहीं है, तो वह किसी भी परिभाषा में साहित्य नहीं है। और यदि साहित्य में गतिशीलता है कि जो एक वैज्ञानिक तथ्य है, तो फिर आज की इस साहित्यिक 'प्रगति शीलता' का मतलब क्या है?

यहाँ हमें देखना होगा कि साहित्य है क्या? यों तो अणु-परमाणु और ग्रहों उपग्रहों को समझने समझाने वाला ज्ञान भी साहित्य है। पर उस साहित्य से यहां उतना सरोकार नहीं है। यहां जिस साहित्य से हमारा विशेष मतलब है, उसे हम अगर थोड़े से थोड़े शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते हैं—संस्कारों को छूने वाले, सहलाने वाले, हिलाने वाले और धीरे धीरे उन्हें बदलने वाले कलात्मक भाव-प्रचार का रूपमय नाम है साहित्य। और यदि परिणाम की कसौटी पर साहित्य को कसें तो यही उसका सब से बड़ा काम भी है।

यहां साहित्य का दो चीज़ों से सम्बन्ध होता है (१) संस्कारों (उसको छूने, सहलाने, हिलाने और बदलने) से और इसी के लिये (२) भाव-प्रचार से। और मूल में ये दोनों एक ही हैं।

अब सवाल बनता है—संस्कार हैं क्या? और इन संस्कारों में कौन सा तत्व है जो उसी में रहकर उसको बदलता भी है?

आदमियों ने सुख से जीने के लिये जिन जिन तौर तरीक़ों का उपयोग किया और ऐसा करते हुए संघर्षों, सफलता और विफलताओं, हर्ष और विषादों का जैसा और जो जो असर उनके मन पर पड़ा उसी को हम संस्कार कहते हैं और ये संस्कार वैसे ही वैसे मनुष्यों में आये जैसे जैसे वह रहता था। जिन उपकारणों के सहारे संस्कार आते हैं, उन्हीं उपकरणों के बदलने से धीरे धीरे एक स्मृति पट से धुंधलाते और दूसरे चढ़ते हैं। पर समाज में ऐसी भी परिस्थितियां रहती हैं, जो संस्कारों को क़ायम रखना चाहती हैं और वे परिस्थितियां समाज से प्रमुख स्थान रखने वालों के स्वार्थों (vested interests) के सहारे पनपती हैं। लेकिन इससे समाज में एक क़िस्म का विकार आने लगता है, प्रकृति में विकृति पैदा हो जाती है, जिसका नतीजा होता है संघर्ष। संस्कारों और समाज की ज़रू में जो संघर्ष होता है उसी से ज्ञान की ज्योति फूट निक है पर इस ज्ञान की ज्योति को ज़रूरत होती है वाह की, और ये वाहन समाज-संस्कार का जो तरीक़ा निका हैं, उसका नाम उस समय की परिस्थितियों के मुताबि हुआ धर्म। यहीं से धर्मों की उत्पत्ति शुरू होती है। धर्म कभी एक क़बीले की अपेक्षा से होते हैं और क बहुत से क़बीलों की अपेक्षा से। यहां आते आते अनेकों स्वार्थ संघातों में से गुज़रना पड़ता है और करते हुए भी उसको अपने को जीवित रखने के लिये स में सत्ताधारियों के हितों को देखना ज़रूरी होता है; इसी धर्म ने बहुत से न केवल ग़ैर ज़रूरी बल्कि समाज को खींचने वाले संस्कारों को भी जीवित रखा। पर ऐसा है कि पहले उपर्युक्त अवस्था आ गई और तब साहित्य जन्म हुआ। असल बात तो यह है कि उपर्युक्त बातों जानकारी भी हमें साहित्य से ही होती है; पर ये ही सा को प्रच्छन्न भाव से नियमन भी करती हैं।

हम अपने यहाँ देख सकते हैं कि ऋग्वेद धनी राजन्य पुरोहितों की क्रिया कलापों से भरा है। दान, स्तुति, राजा के युद्ध, महाकुल, मधवन आदि के क्रिया कलापों से चौंधिया जाती हैं। और वहीं धीरे से हमें मिल जाता शूद्रों के प्रति प्रताड़ना और आजन्म ग़ुलामी का नागफांस, जिसके बन्धन में वे कराहते हैं। पर उसी हमें उपनिषदों का दार्शनिक चकाचौंध भी दिखाई देता जिसमें 'महाकुलों, कुलीनों, धनियों और इन सब के रक्षक पुरोहितों के सुख वैभव को पूर्व जन्म के पुण्य प्रसाद और शूद्रों तथा दासों की दयनीय स्थिति को जन्म के पापों का फल कह कर समाज का चक्का चला दि जाता है। किन्तु ज़्यादा देर नहीं होने पाती कि फिर हमें सारे वैदिक वर्णाश्रमी धर्मों के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा साथ महावीर और बुद्ध का जै नाद सुनाई पड़ता है वर्णाश्रमी व्यवस्था के विद्रोहियों में हमें सब से पहले ज का स्वर सुनाई पड़ता है। वहीं से हमें मालूम होता है जनता की भाषा संस्कृत नहीं कुछ और है। यहीं सब पहले पहल शूद्र, दास और पतितों को मनुष्य के रूप पुकारा जाता है। बौद्धों के प्रभाव के कारण ही सब पहले कौटिल्य आर्यों के सम्पर्क में रहने वाले को 'आर्य भाषा' कह कर नागरिकता का अधिकार

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। लेकिन ब्राह्मण धर्म, द्विज धर्म रहा है, द्विजों का हित रक्षक रहा है और इसीलिये द्विजों में उसके प्रति आकर्षण का एक भाव भी रहा है। साथ ही पुरोहित श्रेणी हिन्दुस्तान में सब से ज़्यादा चालाक और नीति कुशल श्रेणी भी है इसीलिये उसने 'अर्ध तजहिं बुद्ध सर्वस जाता' के मुताबिक़ बौद्धों और जैनों के वे सभी सुधार जो द्विज श्रेणी के हितों के अनुकूल पड़ते थे, वर्ण व्यवस्था की नई परिभाषा में ले लिये। इधर बौद्धों और जैनों में कमज़ोरियां भी आ गईं थीं। नतीजा यह हुआ कि ब्राह्मण धर्म ने पहली शताब्दी आते आते बौद्ध धर्म को धर दबाया और फिर आगे की पांच शताब्दियों में उसने बौद्धों और जैनों को राख की ढेर की शकल में कर दिया।

उस समय साहित्य और समाज में जो भी गति रही, वह धर्म के माध्यम से। धर्म को छोड़ कर समाज और साहित्य की कल्पना ही नहीं होती थी। धर्म सभी तरह के साहित्य का वाहन और साथ ही नियामक भी था। संस्कारों में भी धर्म के ज़रिये ही परिवर्तन हुये; पर वे परिवर्तन धर्म और धर्म के पीछे जो राजशक्ति का हाथ था उसके हितों को देखते हुये थे। किसी भी धर्म के लिये राज-शक्ति का आश्रय ज़रूरी था। बुद्ध के समय में उनके धर्म को राज समर्थन का बल प्राप्त था। और राज-शक्ति ने उसे अपने अनुकूल कुछ मोड़ा भी। अशोक ने अपनी राज-शक्ति का उपयोग बौद्ध धर्म के लिये किया। विद्वानों का मत है कि क़रीब ८० हज़ार विहार बनवाकर उसने संघ को दान दिए। छोटे छोटे सामन्तों ने भी अपने यश के लिये ऐसा ही किया होगा। आचार्य धर्मानन्द कोसाम्बी का मत है कि यहीं से बौद्ध भिक्षुओं में पतन के कारण एकत्र होने लगे। वे जन साधारण से अपने को ऊपर समझने लगे। उनके जनता की भाषा से अलग हटकर संस्कृत भाषा की ओर मुड़ने में भी यह एक ख़ास कारण है। यहीं से मठ राजनीतिक हथकंडों के अड्डे भी बनने शुरू हुए। वर्णाश्रमी ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान पुष्यमित्र और सात वाहनों के आश्रय से शुरू होता है। भारशिव और वाकाटकों का बल शैवों को मिला। गुप्तों ने वैष्णव धर्म की ध्वजा फहराई और यही परम्परा बाद तक चलती रही।

हम कह सकते हैं—समाज और साहित्य का चलना स्वाभाविक था, वह चला भी; पर धर्म के आश्रय से। समाज जिस क्रम से चला साहित्य ने भी उसका अनुगमन किया; पर उस सब पर धर्म का नियन्त्रण भी था। धर्म के पीछे थी राज-शक्ति, सामन्त शक्ति और यह शक्ति बराबर अपने स्वार्थों पर निगाह रखती थी। इसीलिये हम अपने साहित्य में संस्कारों को छूने और सहलाने की बहुत तेज़ प्रवृत्ति पाते हैं और उसे हिलाने और बदलने की कम। रस के ब्रह्मानन्द सहोदर की उपमा की उत्पत्ति इसी मनोभाव के अनुकूल है। ट्रैजिडी का अभाव और साहित्य के अन्दर पात्रता के लिए उच्चवंश कुलीनोद्भव की क़ैद में भी यह मनोवृत्ति झाँक जाती है। पर इसका अर्थ यह नहीं कि संस्कारों के हिलाने और बदलने की प्रवृत्ति है ही नहीं। ऐसा होना सम्भव ही नहीं था। और रसों में करुण रस हमें उस ओर प्रेरित भी करता है। धर्मों में करुण और मैत्री भावना भी हमें उसी ओर मोड़ती है। और बहुत अंशों में इसी के सहारे हमारा समाज और साहित्य चला भी। यही कारण है कि भवभूति ने अपने राम के दक्षिण कठोर भुज को फटकारा और तुलसीदास जी ने अपने राम के हाथों को शूद्र तपस्वी के खून से कलंकित नहीं किया। परन्तु साहित्य पर धर्म का आधिपत्य था, इसीलिये तुलसीदास जैसे सन्त ने भी अपने 'रामचरित मानस' में शूद्रों के लिये अमानुषिकतामय नरकोपम "बाड़ा" क़ायम रखा!

इस तरह साहित्य चला, उसने संस्कारों को छुआ, सहलाया और हिलाया; पर धर्म की बेड़ी में बंधे रहने के कारण वह संस्कारों को बदल न सका और बदलना उसके बूते के बाहर भी था,- क्यों कि उसके, साहित्य के, प्रचार का ज़रिया धर्म और सामन्तों की शक्ति पर था। यह एक बहुत बड़ा कारण है कि हम अपने साहित्य में परिवर्तन—गुणात्मक परिवर्तन—नहीं पाते। परिवर्तन के अभाव में हमारा साहित्य घूम फिर कर पिछले युगों में ही रहता है। उसमें काल-व्यतिक्रम का बहुत बड़ा दोष आजाता है। धर्म से बँधे रहने के कारण हमारे साहित्यकार अपने समय की समस्याओं को सुलझाने में, अपने समय के सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान को बिना भेद भाव के कबूल नहीं कर पाते। वह अपने समय की समस्याओं को सुलझाने के लिये अपने से सदियों पीछे की धार्मिक व्यवस्थाओं का सहारा लेते हैं, उनका मुँह जोहते हैं। यही कारण है कि हमारे सम्पूर्ण साहित्य में गति है, पर बाध्यता के साथ, धर्मों से सामञ्जस्य करते हुये—धीरे धीरे। उसमें समय के साथ चलने की निर्भयता नहीं है। पर एक दम ऐसा ही है, यह भी कह देना ग़लत है। कबीर की महान मनीषा और उद्दाम व्यक्तित्व के रहते हुये ऐसा नहीं कहा जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



र कबीर तथा उनके कुछ और साथियों को छोड़ कर कोई ी काल-व्यतिक्रम से परे नहीं है।

फिर सवाल है—'साहित्य में प्रगति, या प्रगतिशीलता क्या मतलब ?

क्या प्रगतिशीलता का अर्थ सम्पूर्ण संस्कारों को बदल ना है ?—नहीं। सभी संस्कार न ख़राब होते हैं और न भी संस्कारों को बदला जा सकता है। तब आखिर प्रगतिशीलता का अर्थ क्या होगा ? संस्कारों के बुरे और भले का फैसला किस आधार पर हो ?

प्रगतिशीलता में संस्कारो को बदलने के अलावा नष्ट करना भी शरीक है; पर उन्हीं संस्कारों को नष्ट करना जो एक मनुष्य जाति को विभिन्न टुकड़ों में बांट कर और बाँध कर देखते हों या ऐसी प्रेरणा देते हों जो मनुष्य की समस्याओं को समझने में उलझन पैदा करते हों या समस्याओं का कारण समाज के अन्दर न देखकर, कहीं और देखते हों। ऐसे सभी संस्कार मानव समाज की बेड़ी की शृंखलाएं हैं। प्रगतिशीलता ऐसे क्षयी ग्रस्त संस्कारों को कभी भी बर्दाश्त नहीं कर सकती। चाहे वह कैसे भी घूंघट पट में क्यों न हों।

पर यह तो नष्ट करना हुआ, बदलना नहीं। प्रगतिशीलता उन सभी संस्कारों को बदलेगी, जो मनुष्य को समूहिकता की ओर ले जाने में सहायक नहीं हैं या सहायक नहीं हो रहे हैं। प्रगतिवादी 'आत्मा' का प्रयोग जीव के अर्थ में करेगा; सतत परिवर्तनशील और सामाजिकता के अनुकूल अर्थ में करेगा किसी परम सत्ता के अर्थ में नहीं। स्त्री के प्रति जो संस्कार भोग-सामग्री का सा है, 'नरकस्य द्वार' का है, या 'साधना' में बाधक का सा है; उसे भी प्रगतिवादी बदलेगा। प्रगतिवादी के निकट स्त्री प्रकृति की डाइरेक्ट और एक मात्र एजेण्ट है; प्रकृति का रूप है; मानव होते हुये मानव की जननी है, मानव-प्राणी का सर्वोच्च वाहन है। उसके रूप की मादकता आम के पकने की सी है, जो इस बात का सूचक है कि आम फलेगा, और नये आम के पैदे को पैदा करके आम की परम्परा कायम रखेगी। वह तुच्छ भोग की वस्तु नहीं है और न निषेध से हीन है। प्रगतिवादी मानव चिन्हधारी सभी प्राणियों को एक, अविभाज्य और अखण्ड मानेगा। ऊँच-नीच-वर्ण मशहूर ख़ानदान और बिना मशहूर ख़ानदान, कुछ पैसों वाले और कम पैसों वाले, देशी और विदेशी सभी को समान भाव से देखते हुए सभी के पूर्ण विकास का हिमायती होगा। जिस तरह देश में एक वर्ग पर हुकूमत उसे बर्दाश्त नहीं है, उसी तरह एक देश की दूसरे देश पर हुकूमत भी उसे बर्दाश्त नहीं होगी। वह हर हालत में एक देश में दूसरे देश की सत्ता का विरोध करेगा। वह आम्भीक की तरह किसी सिकन्दर को अपने देश में न लायेगा, बल्कि चन्द्रगुप्त की तरह नन्दों का नाश करते हुए स्वतन्त्र सम्राट बनकर यूनानियों से भी अपना सम्बन्ध रखेगा।

प्रगतिवाद ज्ञान विज्ञान में अपने पराये का भेद भाव भूल कर भी नहीं करेगा। वह मुक्त मन प्राण से मानव हितकारी सम्पूर्ण ज्ञान का उपयोग करेगा। वह अपने समय के सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान की जानकारी रखेगा और अपने साहित्य में उसका समुचित उपयोग भी करेगा। आज के युग में उसके नायक के हाथ में इस्तेमरारी बन्दोबस्त का काग़ज़ कभी नहीं रहेगा। अपने काल में, पर अपने काल से कहीं पीछे रहने वाले समाज की तसवीर को प्रगतिवादी समय का चित्रण नहीं मानेगा; उसके समय चित्रण में तो उसके समय का ज्ञान विज्ञान भी चमकेगा। जिस समय चित्रण में उस समय का ज्ञान-विज्ञान न चमकेगा, उसके रचयिता को प्रगतिवादी अपने काल से भी पीछे रहने वाला मानेगा। ऐसा होते ही वह समाज को आगे ले जाने वाली शक्तियों का वाहन हो उठेगा।

और इस तरह जब अपने समाज की मानसिक बनावट, उसकी प्रकृति को जानकर, पर उसकी विकृतियों को निकाल कर, छोड़कर; साथ ही अपने समय की समस्याओं के प्रति जागरूक मन से और उस मन में भी अपने समय के ज्ञान-विज्ञान का समावेश करके साहित्यकार साहित्य की रचना करेगा, तभी वह व्यापक मानवता का हित करेगा और उसकी वाणी में मानवता का स्पन्दन होगा। जिसमें यह सब कुछ होगा, वही साहित्य प्रगतिशील कहा जायगा।

Collection Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# स्टरलिंग की समस्या

श्री रमेशचन्द्र गोयल बी० काम०

आर्थिक जगत में आजकल एक बात की चर्चा बहुत ज़ोरों पर है। वह यह कि हमारा देश इस महायुद्ध की कृपा से आज क़र्ज़दार से साहूकार बन गया है। हमारे आंग्ल-देश-वासी गोरांग महा प्रभु, आज हम दासों के क़र्ज़दार हो गये हैं। हमने इस युद्ध में उन्हें इतना माल, सामान और पारश्रम के रूप में अपनी सेवाएं दी हैं कि वे उसका पूरा मूल्य नहीं चुका पाये, और हमारे खाते में जमा करते जाते हैं। यह जमा रक़म आज १००० करोड़ स्टरलिंग से अधिक हो गई है, और युद्ध यदि शीघ्र ही समाप्त न हुआ तो कहाँ तक पहुंचेगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। नीचे की तालिका से वर्त्तमान स्थिति स्पष्ट हो जायेगी :—

१२ जनवरी ४५ को रिज़र्व बैंक "इशू डिपार्टमेन्ट" की स्थिति

| | रुपया |
|---|---|
| बैंकिंग डिपार्टमेन्ट में नोट | ९,४५,७५,००० |
| चलन में नोट | १०,३०,१३,२४,००० |
| योग | १०,३९,५८,९९,००० |
| सिक्के और सोना | ४४,४१,४३,००० |
| स्टरलिंग सिक्युरिटीज | ९,२४,३२ ८९,००० |
| रुपया ( सिक्का ) | १३,००,६७,००० |
| भारत सरकार की रुपी सिक्युरिटीज़ | ५७,८४,००,००० |
| योग, | १०३९,५८,९९,००० |

प्रश्न यह उठता है कि ऐसी अनहोनी घटना घटित हो गई है कि कुछ समझ में नहीं आता। यदि किसी को अपने दास का क़र्ज़ा चुकाना पड़े तो वह अपने स्वामित्व के अधिकार का कैसा प्रयोग करेगा, यह खोलकर समझाने की आवश्यकता नहीं। साथ ही जब प्रभु की नीयत में सन्देह भी हो, तब तो बात और भी बढ़ जाती है। एक तो क़र्ज़दार स्वयं हमारे प्रभु, दूसरे कर्ज़े की रक़म इतनी अधिक बढ़ गई है कि उसकी अदायगी की सम्भावना सम्भव से असम्भव में परिणत होने लगी है, ऐसी दशा में देश के शुभचिन्तकों का चिन्तित हो कर एक स्वर से चीत्कार करना स्वाभाविक ही है। भारत को यह क़र्ज़ देना कितना मंहगा पड़ा है, इसको दुहराने की आवश्यकता नहीं। लाखों की संख्या में जन और करोड़ों की संख्या में धन देकर, उसने यह [illegible] चुकाई है। [illegible]

मुख का जो अन्तहीन कर युद्ध की सहायतार्थ मित्र राष्ट्रों को दिया गया, उसका मूल्य भी इसी में है। बिहार में अकाल और महामारी, उड़ीसा में दुर्भिक्ष और दक्षिण में जीवन की आवश्यकताओं के अभाव में जो जन हानि हुई उसकी क़ीमत भी इसमें है। इतने अकालों, बलिदानों, और त्याग की प्रतीक यह रक़म है।

न्यूयार्क की अन्तर्राष्ट्रीय-आर्थिक-कमेटी ने जो अपनी पहली रिपोर्ट* प्रकाशित की थी, उसमें उसने एक 'इकनामिक चार्टर' का ज़िक्र किया था, जिसके अनुसार विदेशों में व्यापारियों ने तथा लगाने या जमा रखने वालों को उनकी सम्पति की रक्षा का वचन दिया गया था। किन्तु यह पता नहीं कि तथा कथित 'एटलान्टिक चार्टर' की भांति वह भारतवर्ष पर लागू होगा, अथवा नहीं। 'दूध का जला छाछ भी फूँक फूँक कर पीता है' अतः हमारी स्टरलिंग थाती के विषय में हमारी यह चिन्ता स्वाभाविक ही कही जायगी। पिछले महायुद्ध के बाद भी, इङ्गलैण्ड में भारत वर्ष की इसी प्रकार की बहुत सी रक़म जमा हो गई थी, यद्यपि इस वृहतकाय पूंजी के सामने वह नगण्य थी। किन्तु जब चुकाने का प्रश्न उठा तो हमारी महामना सरकार ने कूटनीति का आश्रय लिया, और क़लम के एक वार से रुपये की विनिमय दर को बढ़ाकर दो शिलिंग कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि १-४ पेन्स की दर से ख़रीदा हुआ स्टरलिंग लन्दन में २ शिलिंग की दर से बेचा गया। यह सन १९२० ( फ़रवरी-सितम्बर ) की बात है। चाँदी की दर गिर जाने के कारण रुपये की यह ऊँची विनिमय दर टिक नहीं सकती थी। किन्तु सरकार तो हठ धर्मी पर अड़ी हुई थी—उसने लन्दन पर 'रिवर्स काउन्सिल' बेचना जारी रखा, और इस प्रकार 'पेपर-करेन्सी-रिज़र्व' की स्टरलिंग सिक्युरिटीज़, जो १५) प्रति पाउन्ड की दर से ख़रीदी गई थी, १०) प्रति पाउन्ड की दर से बेची गई; कभी कभी इनकी दर ७) प्रति पाउन्ड तक भी गिर गई। इस प्रकार भारत सरकार की नीति से देश को लगभग ३५ करोड़ का नुक़सान हुआ, और युद्ध में बहाये हुए रक्त का मूल्य पानी में बहा दिया गया ( देखो— D. R. Gadgil 'War and Indian Econonmic Policy' p. 54 )

* Committe on International Economic Policy, New york City. June 28, 1944,—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हमारी स्थिति आज भी वही है। हमारे देश में जो इस समय चलन में नोट हैं, उनके पृष्ठ पर ही लन्दन के पेपर-करेन्सी-रिज़र्व में यह स्टरलिंग सिक्यूरिटीज़ जमा हैं। केवल इतना ही अन्तर है, कि उनका परिमाण पहले की अपेक्षा कई गुना अधिक है। किन्तु क्या इस बार फिर पिछली ट्रेजेडी की पुनरावृत्ति होने को है?

इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उस समय की और अब की परिस्थितियों में एक मौलिक और महान अन्तर है। हमारा यह स्टरलिङ्ग संसार के सब युद्ध-जनित ऋणों से परिमाण में अधिक है, और हम इस प्रकार बड़े साहूकार कहे जा सकते हैं। किन्तु साहूकार चाहता है कि उसकी रक़म अब उद्योगधन्धों में लगे और देश के आर्थिक मान को ऊँचा उठाने में उपयोगी हो। उसमें इस उद्देश्य की पूर्ति किस प्रकार हो सकती है, और उसमें क्या बाधाएं हैं, इस पर हमें विचार करना है; किन्तु अच्छा होगा यदि हम इसके पहले इस रक़म के जमा होने के कारणों और इतिहास पर भी एक दृष्टि डाल लें।

मान लीजिये कि बिहार या बङ्गाल के एक गाँव ने कलकत्ते को इतना माल भेजा, इतने आदमियों की सेवाएं अर्पित कीं कि कलकत्ते वाले उन सब का मूल्य एक दम नहीं चुका सके, उन्होंने हुण्डी के तौर पर रुक्के लिख दिये। ठीक यही बात स्टरलिङ्ग सिक्यूरिटीज़ के सम्बन्ध में है। पञ्जाब के किसान ने जो गेहूँ, मध्य-अफ्रीका में फ़ौजों के लिये दिया उसका मूल्य उसे नोटों के रूप में भारत सरकार से तो मिल गया, किन्तु भारत सरकार को उसका मूल्य इङ्गलैण्ड की सरकार से नहीं मिला, बल्कि उसके खाते में जमा कर दिया गया। अर्थात् पेपर-करेन्सी रिज़र्व में स्टरलिङ्ग जमा होता रहा और उसके बल पर हमारे देश में हुण्डी या रुक्कों के तौर पर नोट चलते रहे हैं। अतः यह स्पष्ट हो गया कि यह स्टरलिङ्ग की रक़म हमारी सेवाओं, तथा अन्न, धन, वस्त्र इत्यादि के मूल्य की प्रतीक है। हमने जो कुछ दुख दैन्य सहा है, यह उसी का प्रतिफल है। और यह पहले ही लिखा जा चुका है कि इसकी क़ीमत हमें जन धन की हानि के रूप में ही नहीं, अभाव और आँसुओं के रूप में ही नहीं किन्तु अकाल और बलिदान, रक्त और मांस के रूप में चुकानी पड़ी है। अतः केवल 'तुच्छ' अथवा 'वृहत्काय' कह कर ही इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

कुछ लोग शंका करते हैं कि क्या यह रक़म वास्तव में ऋण है अथवा केवल अमानत है, और यदि है तो किस प्रकार की? इसका उत्तर देने के लिये हमें सरकारी वक्त का सहारा लेना पड़ेगा। ५ मार्च सन १९४३ को केन्द्र व्यवस्थापिका सभा में भाषण देते हुए, अर्थ-सदस्य, जरमी रेज़मैन ने इसे अस्पष्ट रूप से 'ऋण' (माल व सेवाओं के लिये एक स्थगित किया हुआ दावा) कहा था। उन्होंने बताया कि आख़िर यह एक प्रकार की दावेदारी है, जो इस समय पेश नहीं की जा सकती। साथ ही उन्होंने सभा के सामने यह भी कहा कि "मैं याद दिला देना चाहता हूँ कि भारत की रक्षा का सारा ख़र्च जो भारत की भूमि पर हो रहा है, उसे भारत सरकार नहीं बरदाश्त कर रही है, अतः इस विषय में ब्रिटेन भारत से जो ऋण ले रहा है वह शामिल है।" अर्थात भारत भूमि पर भारत की रक्षा के लिये जो ख़र्च है, उसका आधा भाग भारत सरकार और आधा भाग इग्लैण्ड की सरकार बरदाश्त करती है। यही आधा भाग ब्रिटेन को भारत को देना है, जो उसके खाते में स्टरलिंग के रूप में जमा कर दिया जाता है। इस प्रकार विविध तर्कों द्वारा उन्होंने इसे एक 'ऋण' मात्र सिद्ध करने की चेष्टा की है। किन्तु वास्तविक परिस्थिति इससे भिन्न ज्ञात होती है। 'ऋण तो उसे कहा जाता है, कि कोई वस्तु हमारे अधिकार में न हो और हमने इसे दूसरे के अधिकार में दे दिया हो, जिसे देना या न देना उसकी इच्छा पर निर्भर है।' किन्तु यह स्टरलिंग की रक़म तो हमारे रिज़र्व बैन्क के लन्दन-स्थित खाते में जमा है, और इस प्रकार हमारे अधिकार में ही है, जैसा कि प्रति सप्ताह प्रकाशित होने वाले रिज़र्व बैंक के तलपट में दिखाया जाता है। किन्तु इसका व्यावहारिक पहलू दूसरा है। यद्यपि अर्थ भी हमारे इसके इगलैण्ड में ही ख़र्च कर देने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं हैं, किन्तु हम इसे वहाँ यूं ही तो ख़र्च करना नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि इससे इगलैण्ड तथा दूसरे देशों से उद्योग धन्धों के लिये मशीनरी इत्यादि खरीदें। यहीं पर ब्रिटिश सरकार की शक्ति का अनुभव होता है। यदि वह चाहे तो विनिमय के कण्ट्रोल के बहाने इसका दूसरी मुद्रा में परिवर्तन रोक सकती है। अथवा यदि हम चाहें कि इस रकम का सोना खरीद कर भारत में ले आयें तो उस पर भी प्रतिबन्ध लगा सकती है। अतः यह रक़म 'बन्धक' रखी हुई तो नहीं, किन्तु इस पर प्रतिबन्ध अवश्य हैं, और इसलिये हम उसको, वर्तमान परिस्थिति में रुकी हुई या अटकी हुई रक़म मान सकते हैं।

किन्तु 'ऋण' का प्रश्न अभी बाक़ी है। जैसा कि हम कह चुके हैं कि यह रक़म हमारे अधिकार में ही है, तो

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ब्रिटेन हमें दुबारा तो देने से रहा। हम केवल अब यह चाहते हैं कि इस रुकी हुई रक़म को जैसे हम चाहें वैसे खर्च करने की आज्ञा मिल जाय। क़र्ज़ तो चाहें जैसे वसूल किया जा सकता है, उसके लिये आज्ञा कैसी? फिर 'ऋण' में कोई कुछ शक्ति भी तो नहीं हो सकती, किन्तु हमारी स्टरलिंग की रक़म क्रय शक्ति रखती है; यह दूसरी बात है कि उसकी क्रय शक्ति ब्रिटेन तक ही सीमित है। अतः हम इस रक़म को सरकारी तौर पर ऋण मानने को तैयार नहीं। यदि आज इसको क़र्ज़ा मान भी लें तो कौन जाने कल 'डूबत' में ही डालना पड़े; क़र्ज़ा न भी अदा हो। वास्तव में व्यवस्थापिका सभा के एक सदस्य ने ऐसी शंका भी की थी जिस पर सर जरमी रेज़मैन को स्पष्टतया कहना पड़ा था कि यह बिल्कुल साहूकारी रक़म है। किन्तु यह तो तर्क ही ग़लत है।

यह तो हुई 'ऋण' की बात। सर जरमी रेज़मैन ने दूसरी महत्त्व पूर्ण बात जो कही थी, वह यह थी कि इस रक़म का बहुत सा भाग भारतभूमि पर किया गया भारत की रक्षा के लिये वह ख़र्च है जो ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार के खाते में जमा कर दिया है। इस तर्क को लेकर उत्तर दिया जा सकता है कि हमें इससे क्या? जब हम एक बार माल या सेवाऐं ब्रिटिश सरकार को बेच चुके, तो हमें इससे क्या मतलब कि आया वह सरकार उसे हमारी रक्षा के लिये खर्च करती है अथवा दूसरों के लिये, हमारी भूमि पर खर्च करती हैं अथवा अफ्रीका की? और क्या केवल इसीलिये इस रक़म को चिरन्तन ऋण, अथा 'प्रतिबन्धक-रक़म' मान लेना होगा? इसी गोरख-धन्धे को स्पष्ट करते हुए सर कावस जी जहाँगीर ने कहा था कि ऋण तो अदा हो चुका है, वह रिज़र्व बैंक के खाते में स्टरलिंग के रूप में जमा है। अब वह ऋण नहीं रहा, वह तो हमारी पूंजी है। प्रश्न केवल यह है कि यदि इङ्गलैण्ड और अमेरिका के बीच विनिमय प्राप्य हो तो क्या भारत स्वंतत्रता पूर्वक चाहे तो अमेरिका से माल ख़रीद सकेगा? किन्तु इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न का कोई उत्तर अब तक नहीं मिला है।

वास्तविक समस्या यह है कि हम इस रक़म को कुछ भी कहें, क्या हमारे लिये युद्ध के बाद इसे भारत में लाना एक बारगी संभव होगा अथवा नहीं? युद्ध के चलते तो माल या सेवाओं के रूप में इसे पाने का सवाल ही नहीं उठता, किन्तु उसके बाद भी यह रक़म इतनी बड़ी है कि इसको एक बारगी चुकाना ब्रिटेन जैसे धनी देश के लिये भी शायद संभव नहीं होगा। एक वर्ष दो वर्ष, या दस वर्ष में भी हम इतने मूल्य का माल ब्रिटेन से नहीं मँगा सकेंगे। शायद इसीलिये कुछ अन्तर्राष्ट्रीय योजनाओं के निर्माताओं ने २० वर्ष की अवधि इसके लिये निश्चित की है। क्या हम इतनी लम्बी अवधि तक प्रतीक्षा कर सकेंगे? इसी प्रकार की कठिनाइयाँ इतनी बड़ी रक़म के डालर में परिवर्त्तन के समय उपस्थित होंगी। क्या यह आवश्यक है कि ब्रिटेन इतनी बड़ी रक़म अमेरिका में जमा कर ले कि हम चाहें तो इतनी रक़म उस मुद्रा में वसूल कर सकें! बहुत करके यह सब युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रगति पर निर्भर है। इस प्रकार हम सहज ही समझ सकते हैं कि युद्ध के बाद इस रक़म की वसूलयाबी, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दिशाओं पर निर्भर है। मुख्यतया, हम इसे माल और सेवाओं के रूप में आसानी से वसूल कर सकेंगे। हम किस परिमाण में माल पा सकेंगे, यह तो उस देश की उत्पादन शक्ति पर निर्भर है जो हमें देगा। सोने के रूप में इस रक़म को वापस लेना न तो संभव है, न उचित ही। ऐसा सोना किस काम का जिससे कान फटें। एक बारगी ही इतना अधिक सोना देश में आजाने से आर्थिक नीति का तो दिवाला ही निकल जायगा, साथ ही इतने ऊँचे दामों सोना ख़रीदने में हम ठगे भी जायेंगे। सोने की अपेक्षा तो लोहे की मशीनें ही अच्छी हैं, जो देश के उत्पादन को बढ़ा कर सुख समृद्धि की वृद्धि कर सकेंगी।

यह बात नहीं है कि केवल भारतवर्ष की स्टरलिङ्ग रक़म ही ब्रिटेन में इस प्रकार जमा है। साउथ अफ्रीका, अरजेण्टाइन, मिश्र आदि अन्य देशों की भी रक़में इसी प्रकार जमा हैं, वे नगण्य हैं। फिर भी यह द्रष्टव्य है कि दक्षिण अफ्रीका तथा अरजेण्टाइन की रक़में एक प्रकार से सोने में चुकाई जाने की गारण्टी से सुरक्षित हैं, किन्तु भारतवर्ष के लिये ऐसी कोई व्यवस्था रखने की शायद आवश्यकता नहीं समझी गई।

ऐसी दशा में जब कि हमारी रक़म की सुरक्षा की कोई गारण्टी नहीं है, हमारा आशंकित होना असमीचीन नहीं। पिछले महायुद्ध के बाद जो ट्रेजेडी घटित हुई, उसका उल्लेख प्रारम्भ में ही किया जा चुका है। अब देखना यह है कि इस महायुद्ध के बाद स्टरलिङ्ग की क्या स्थिति होती है? इस विषय में दो बातें स्पष्ट हैं। प्रथम तो यह कि युद्ध के बाद ब्रिटेन को बहुत सा रुपया चुकाना होगा, जो उसने युद्ध के लिये माल के रूप में लिया है तथा दूसरे इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसे बहुत अधिक निर्यात करना पड़ेगा। दूसरी बात की सहल तरकीब है स्टरलिङ्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की दर को घटा देना, और यह होना ही है। यदि वास्तव में स्टरलिङ्ग की दर घटा दी गई तो हमारी रक़म का बहुत बड़ा भाग यों ही हवा में उड़ जायगा।* अन्तर्राष्ट्रीय योजनाओं के निर्माताओं ने भी क़र्ज़दार देशों को अपनी मुद्रा की क़ीमत १० प्रतिशत तक घटा देने की छूट दे दी है।† अतः हम इस रक़म के रूप में, स्टरलिङ्ग के रूप में भाग्य के साथ एक बड़ा दाँव लगा बैठे हैं। हमारे लिये तो यह जीवन-मरण का प्रश्न है। अतएव, हमें स्टरलिङ्ग की क़ीमत स्थिर रखने के लिये चेष्टा करनी चाहिये, या फिर ब्रिटेन की सरकार को चाहिये कि वह अरजेण्टाइन के स्टरलिङ्ग की भाँति हमारी इस रक़म के लिये भी सोने या डालर की गारंटी करदे। हमारा भाग्य तो ब्रिटिश आर्थिक नीति के अंचल में भी अटक गया है; क्योंकि इस महा-युद्ध के बाद यदि रुपये की विनिमय की दर में फिर कोई परिवर्तन कर दिया गया तो उसका हमारी इस स्टरलिङ्ग रक़म पर वही प्रभाव पड़ेगा, जो पिछले महायुद्ध के [illegible] पड़ा था; और एक दुख भरे इतिहास की पुनरावृत्ति [illegible] जायेगी।

संक्षेप में, निष्कर्ष रूप से केवल इतना ही कहा [illegible] सकता है कि यह समस्या गुरु गम्भीर हो गई है। सब [illegible] महत्व पूर्ण बात है हमारी स्टरलिङ्ग रक़म का युद्ध के [illegible] अन्य मुद्राओं में प्राप्त होना, जो ब्रिटेन की सदिच्छा [illegible] निर्भर है। उसके पश्चात अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की विभिन्न दिशाओं की प्रगति को ध्यान में रखते हुए हमें क्रमशः थोड़ा थोड़ा करके ही इस रक़म को वापस लेना होगा, क्योंकि यह रक़म इतनी बड़ी है कि न तो एक बार में इसकी अदायगी ही सम्भव है, और न ऐसा करना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से ही वांछनीय है। इसके अतिरिक्त सामान तथा सेवाओं के रूप में वापस लेते वक्त इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि फालतू उपभोग वस्तुओं के आयात द्वारा, देश के उद्योग धन्धों को हानि न पहुँचे, वरन पूँजी-उत्पादक वस्तुओं, मशीनों इत्यादि के आयात द्वारा देश में औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि हो।

* India's Sterling Position and the war —by Dhar pp. 141

† Vide Proposals for an International Clearing Union, April. 1943.

---

# डा० सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय का भ्रमपूर्ण प्रचार

श्री महादेव साहा

डा० सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय भारतीय और अंग्रेज़ी भाषा तत्व के प्रकाण्ड पण्डित माने जाते हैं। पिछले तीस वर्षों से वे इस क्षेत्र में सफलता पूर्वक काम करते आ रहे हैं। क्लस ने मराठी के लिए, हार्नेल ने गौड़ीय भाषाओं के लिए, ट्रम्प ने सिन्धी के लिए, केलाग ने हिन्दी के लिए, तेस्सी तोरी ने राजस्थानी के लिए, काल्डवेल ने द्राविड़ के लिए जो काम किया है, उनसे कहीं अधिक उत्कृष्ट काम उन्होंने बङ्गला के लिए किया है। १९२१ में उन्होंने डाक्टरेट के लिए लन्दन विश्वविद्यालय में जो निबन्ध पेश किया था,[1] उसके वर्द्धित और संशोधित रूप में उनका महान ग्रंथ ओरिजन एण्ड डेवलपमेण्ट आफ़ बेंगाली लेंग्वेज है। इसकी भूमिका में डा० ग्रियर्सन ने कहा है कि अब तक बङ्गला व्याकरण तथा बङ्गला भाषा की उत्पत्ति के बारे में विद्वान मौन रहा करते थे। अन्यान्य पुस्तकों में इस विषय में बहुत सी निराधार बातें लिखी जाती रही हैं। बीम्स, हार्नेल और भण्डारकर आदि ने इस विषय पर लिखा है। पर उनके सामने इतनी विशाल सामग्री नहीं थी जितने का समावेश डा० चट्टोपाध्याय ने किया है। पुस्तक डा० चट्टोपाध्याय के विस्तृत ज्ञान और पाण्डित्य पूर्ण अनुशीलन का परिणाम है।

भारतीय भाषा तत्व के महा पण्डित रेल्फ़ रिल्टले टर्नर ने भी उनकी पुस्तक की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यह पुस्तक हिन्दू आर्य भाषाओं के पठन पाठन के क्षेत्र में ऐतिहासिक चीज़ है। पूरबी भारत में प्राचीन हिन्दू आर्य भाषा का लेखक ने अच्छा दिग्दर्शन कराया है।

डा० चट्टोपाध्याय के दिखाए पथ पर चलकर डा० बाबू राम सक्सेना ने अवधी, श्री उदयनारायण तिवारी

१—Origin and Development of Bengali Language 2 Vols 1926 (Calcutta University)

२—Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland ( 1928 ) pp. 668-69

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भोजपुरी, श्री गोपाल हालदार ने नोआखाली की बोली, श्री बाणी कान्त काकती ने असमिया, श्री कृष्ण पद गोस्वामी ने चटगाँव की बोली, श्री समुद्र झा ने मैथिली और डा० धीरेन्द्र वर्मा ने ब्रज भाषा के लिए काम किया है। इनमें में से कई तो सीधे उन्हीं की देख रेख में काम करते रहे हैं। इसके अलावा उन्होंने सभ्यता, संस्कृति, साहित्य भाषा तत्व भ्रमण आदि विषयों पर पुस्तकें और सैकड़ों निबन्ध लिखने के साथ ही कई पुस्तकों का अनुवाद और सम्पादन किया है और भूमिकाएं लिखी हैं।[3]

डा० चट्टोपाध्याय के साहित्य और भाषा-तत्व विषयक पांडित्य पर, उनकी मूल्यवान देनों पर हरेक भारतीय को गर्व हो सकता है। किसी भी देश के लिए ऐसे विद्वान गौरव की वस्तु हैं। उनके पाण्डित्य और ग्रंथों के विषय में लिखना अधिकारी पण्डितों का काम है। मुझ जैसे अल्पज्ञ उनकी एक अधूरी सूची ही पाठकों के सामने पेश कर सकते हैं। यहाँ मैं केवल डा० चट्टोपध्याय के एक लेख[4] की कुछ बातों के विषय में निम्नलिखित पंक्तियाँ पेश करना चाहता हूँ।

डा० चट्टोपाध्याय अन्तर्राष्ट्रीय ध्वनि विज्ञान कांग्रेस में भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से १९३८ में यूरोप गए थे। यूरोप के अन्य देशों का सफ़र करते हुए वे पोलैण्ड की राजधानी वारसा पहुँचे। वहाँ उनकी मुलाक़ात वारसा विश्वविद्यालय के भारतीय साहित्य और दर्शन के जर्मन यहूदी अध्यापक शायर[5] से हुई। इस मुलाक़ात का ज़िक्र करते हुए डा० चट्टोपाध्याय ने लिखा है—"रूस देश के तत्कालीन पाण्डित्य के बारे में अध्यापक शायर ने अपनी राय प्रकट की। हमें (डा० चट्टोपाध्याय और उनके मित्र डा० वर्धन) रूस में जाने की इजाज़त न मिलने के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि रूस में अब विद्या का अनुशीलन निरंकुश या स्वाधीन नहीं है; अब टोटालिटेरियन राजनीति की लगाम विद्या और गवेषणा की अबाध गति को नियंत्रित कर रही है, हमारा व्यक्त उद्देश्य था कुछ विषयों से ख़ास-कर भाषा-शिक्षा और भाषा तत्व के विषय में मास्को तथा दूसरे विद्या-केन्द्रों से गवेषणा और अनुशीलन की हालत को देखना और यही दिखाने में आपत्ति की गई। अध्यापक मार नामक एक पण्डित ने भाषा तत्व के बारे में एक नया मत ज़ाहिर किया है। सोवियत् सरकार द्वारा यह मत बहुत कुछ अनुमोदित है। उनके (Marristic Linguists) मार-प्रोक्त भाषा तत्व के मुताबिक़ दुनिया की भाषाओं को दो हिस्सों में बाँटा गया है—प्रोलेतारियत यानी जनतांत्रिक भाषा और बुर्जोआ यानी मध्यम वर्ग के लोगों की भाषा। जिन प्राचीन भाषाओं के साहित्य में प्राचीन आदर्शवाद निहित है, वे बुर्जोआ भाषाएं हैं, जैसे संस्कृत, प्राचीन ग्रीक, प्राचीन चीनी, लैटिन, प्राचीन स्लाव आदि। आधुनिक रूसी, चीनी, फ्रान्सीसी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं का स्वरूप जनतांत्रिक है। इस विचार पद्धति की वजह से प्राचीन साहित्य और प्राचीन भाषाओं के पठन पाठन में बहुत रुकावट पहुंच रही है। जिन पण्डितों ने इन भाषाओं के अनुशीलन में ज़िन्दगी बिताई है, और जो नौजवान विद्यार्थी इन भाषाओं को पढ़ना चाहते हैं, अति प्रगतिशील सरकार अथवा सरकारी कर्मचारी अब उन्हें अच्छी निगाह से नहीं देखते। अध्यापक शायर की ज़बानी सुना है कि मशहूर चीनी भाषातात्विक वी० अलेक्सेयेफ़, जिन्होंने प्राचीन चीनी साहित्य की चिन्ता और भाव धारा के पक्ष में भाषण दिया था, अब जेल में डाल दिए गए हैं। प्राचीन चीनी संस्कृति अब चीनी कम्यूनिस्टों के लिए भी अनादर की अस्तु बन रही है, इसीलिए रूसी शिक्षा नेताओं और राजनीतिक अधिकारियों ने यह रुख़ अख़्तियार किया है। समाय लोविच

---

३—द्वीपमय भारत, १९२७; बांगला भाषा तत्वेर भूमिका, १९२९, बांगला भाषा ओ बांगला साहित्येर कथा १९३०; Essay on Mahabharat, १९३१; पाद्री म्यानोयेल-दा-अस्सुम्प्य साम रचित बांगला व्याकरण (सम्पादित और अनूदित), १९३१; हर प्रसाद शास्त्री सम्वर्द्धना लेखमाला (सम्पादित), १९३१; Tuhafatu-l-Hind (भूमिका) १९३५, जाति, संस्कृतिओ साहित्य, १९३८; पश्चिमेर यात्री, १९३९; चरित्र संग्रह, १९४०; Indo-Aryan and Hindi, १९४२; बांगला व्याकरण, १९४२; वैदेशिकी, १९४३, Language and Linguistic Problems of India, १९४३; कृपा शास्त्रेर अर्थ मेद (अनु०), १९३९; विद्या सागर ग्रंथावली (समाज) (सम्पादित) १९३९; भारत संस्कृति, १९४४;

४—यूरोप भ्रमण, १९३८ (वारसा) नूतन लेखा, शारदीय अङ्क, १३५०, पृ० ८,९।

५—स्तानिसलास शायर (१८१९-१९४३)। On the Conception of Time Indische philosophie as problem der Gegenwart आदि के लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Ha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विख्यात रूसी तुर्क विद्या विशारद हैं। सोवियत संयुक्त राष्ट्र में तुर्की भाषा और उपभाषाओं को रोमन वर्णमाला में लिखने और छापने की जो व्यवस्था की गई थी उसे उलटकर जब सिरिलिक यानी रूसी हरूफ़ में लिखने और छापने की हाल ही में की गई व्यवस्था का उन्होंने प्रतिवाद किया तो इस प्रतिवाद के कारण उन्हें भी जेल में ठूंस दिया गया है। अध्यापक श्चेर्बात्स्की बहुत बड़े संस्कृतज्ञ पण्डित और बौद्ध दर्शन के गम्भीर विद्वान हैं।...भारतीय संस्कृति के प्रति इनकी श्रद्धा सुविदित है। इनके इस मनोभाव का अनुमोदन आज के अधिकारी नहीं करते। इसीलिए सम्भवतः इन्हें भी जेल की हवा खानी पड़ेगी, अगर इसी बीच वह वहाँ नहीं पहुँचा दिए गए होंगे।"

ऊपर डा० चट्टोपाध्याय के लेख के उस हिस्से का पूरा उल्था दे दिया गया है जिसका सम्बन्ध इस लेख से है। इससे पाठकों को सुभीता होगा और उनके लेख को तोड़ने मरोड़ने का इलज़ाम भी हम पर नहीं लगाया जा सकेगा।

अब हम मार-प्रोक्त भाषातत्व को लेते हैं। प्राचीन भाषा, साहित्य और संस्कृति वाले किसी भी देश का इतिहास जिन्होंने पढ़ा है, उन्हें यह मानने में ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं होगी कि इनका प्राचीन साहित्य जिन भाषाओं में लिखा हुआ है वह तत्कालीन जनता की आम भाषा नहीं है। डा० चट्टोपाध्याय के कथन से ही इस मत का समर्थन होता है, डा० चट्टोपाध्याय ने लिखा है कि वेद की भाषा कलात्मक भाषा ( Kunstsprache ) थी। इसे ध्यान से अध्ययन करना पड़ता था।[६] इसे उन्होंने Scholastic attainment की भाषा ( पृ० ५५ ) और पुरोहितों की ( पृ० ४८ ) ( Language of religion and higher intellectual life ) ( पृ० ६३ ) कहा है। प्राचीनतम भारतीय नाटकों में भी हम देखते हैं कि ऊँचे तबक़े के लोग और ब्राह्मण लोग तो संस्कृत बोलते थे और नीचे तबक़े के लोग और औरतें प्राकृत। संस्कृत आम जनता की भाषा थी, इसका कोई भी प्रमाण डा० चट्टोपाध्याय ने नहीं दिया है। अतएव हम देखते हैं कि १९४२ में डा० चट्टोपाध्याय ने जो कुछ कहा है उसी से मार के मत का प्रतिपादन होता है। इसी प्रकार लैटिन, प्राचीन चीनी, रूसी, यूनानी वग़ैरह भी पुरोहितों, विद्वानों, बड़े लोगों की भाषाएं थीं न कि आम लोगों की। इन भाषाओं में लिखा हुआ साहित्य भी आम जनता का साहित्य नहीं कहा जा सकता। इस साहित्य के रचना काल के पहिले ही समाज शोषक और शोषितों यानी वर्गों में बंट चुका था। वर्ग स्वार्थों के लिए संघर्ष जारी था। ऐसे समाज के शोषितों द्वारा लिखा हुआ साहित्य नहीं मिलता है। जो कुछ मिलता है वह शोषकों तथा उनके आश्रितों द्वारा लिखा हुआ है। इस साहित्य में वर्ग-संघर्ष का नग्न रूप हरेक पाठक के सामने ज़ाहिर हो जाता है। सोवियत् विरोधी विश्वविख्यात सफ़ेद रूसी समाजतात्विक सोरोकिन[७] की रचनाओं से भी मार के उपर्युक्त मत का प्रतिपादन होता है। सोरोकिन ने प्राचीन यूनानी-रोमन और भारतीय इतिहास के, न कि भाषा ही नहीं, बल्कि साहित्य, संस्कृति और सभ्यता विषयक पहलुओं का भी प्रतिपादन किया है।[८]

डा० चट्टोपाध्याय ने उपर्युक्त लेख में लिखा है कि "इस विचार के अनुसार प्राचीन साहित्य और प्राचीन भाषाओं के पठन पाठन में बाधा पहुँच रही है। अधिकारी इन्हें अच्छी निगाह से नहीं देखते हैं, इत्यादि"। लेकिन यह कथन सर्वथा निराधार है। सोवियत् संघ जीवन के सभी पहलुओं को ऐतिहासिक नज़र से देखता है। सभी ज्ञान विज्ञान का ऐतिहासिक विकास और महत्व समझे बग़ैर लेनिन के शब्दों में कोई भी अपने को सोलहों आने साम्यवादी कहलाने का दावा नहीं कर सकता। साम्यवादी

६—Indo-Aryan and Hindi ( Gujrat Vernacular Society Ahmedabad, 1942 ), page 55.

७—पित्रिम सोरोकिन इस वक्त हारवर्ड विश्वविद्यालय के समानतत्व विभाग के अध्यक्ष हैं। १९१७ की क्रान्ति के पहिले वह सेण्टपीटर्स बुर्ग (लेनिन ग्राद) विश्वविद्यालय के अध्यापक थे। क्रान्ति के बाद वे अमरीका में जा बसे। वे साम्यवाद के घोर विरोधी हैं।

८—Sorokin—Social and Cultural Dynamics ( 3 vols ), 1937, Vol. II. pp. 29-33, 44-45. Vol. III, p. 233, 238, 244, 247. See also Sorokin—A. Survey of Cychical Conceptions of Social and Historical Process ( Social forces, Sep. 1927 ), pp. 28-40; and Forms and Problems of Cultural Integration and Method of their Study—Rural Sociology ( June and Sept. 1936 ) pp. 125-141 and 344-374.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समाज के सामने दुनिया के साहित्य और वैज्ञानिक अनुशीलन का अपूर्व सुअवसर उपस्थित हो गया है। सोवियत् संघ ने प्राचीन अर्वाचीन सभी विद्याओं, साहित्यों और भाषाओं के पठन पाठन का बहुत ही अच्छा इन्तज़ाम किया है। ऐसी हालत में सोवियत् सरकार प्राचीन साहित्य और संस्कृति के पंडितों और विद्यार्थियों को बुरी निगाह से, जैसा कि डा० चट्टोपाध्याय ने लिखा है, न देखकर बड़े आदर की निगाह से देखती है। इसके कुछ उदाहरण आगे दिए जायँगे।

डा० चट्टोपाध्याय ने लिखा है कि शायर ने उनसे कहा कि चीनी विद्या विशारद एलेक्सेयेफ़[९] जेल में ठूँस दिए गए हैं। किन्तु एलेक्सेयेफ़ सोवियत् विज्ञान परिषद के ९७ सम्मानित सदस्यों में एक हैं। जिस वक्त उनके जेल में भेजने की बात लिखी गई है उसके पहिले से ही उनकी देख रेख में रूसी चीनी पण्डितों का एक दल रेवरेण्ड हेसिंथ विचुरिन द्वारा (१७वीं सदी) अनुदित Tung Chien Kang Mu को संशोधित करके प्रकाशित कर रहा था। इनमें से दो जिल्दें अब तक प्रकाशित हो गई हैं और आगे का काम जारी है।

प्राचीन चीनी साहित्य के अलावा चीन के किसान आन्दोलन और किसान-सम्बन्धी क़ानूनों के बारे में रूसी विद्वान लज़ार इसायेविच दुमान ने अपने डाक्टरेट के विषय के लिए एक पाण्डित्य पूर्ण निबन्ध लिखा है[१०]। यूरोपीय शक्तियों द्वारा चीन की औपनिवेशिक पराधीनता के बारे में एशियाई अर्थनीति और एशिया में पूँजीवाद की उत्पत्ति और विकास के सोवियत् विशेषज्ञ विक्टर मोरित्ज़ सैटीन ने एक पुस्तक लिखी है। एक चीनी दार्शनिक पर वानवीयर पेत्रोव ने डाक्टरेट का निबन्ध लिखा है।[११] इसके अलावा वांग पी और वांगची ऊंग पर भी उन्होंने एक किताब लिखी है।[१२] चीनी विभाग के अध्यक्ष एलेक्सेयेफ़ की देखरेख में चिंग और शुनिंग के अनुवाद और संशोधित संस्करण प्रकाशित हो रहे हैं। रूसी विज्ञान परिषद अपने जन्मकाल (१७२५) से ही चीनी विद्याओं में दिलचस्पी लेती आरही है। वह बराबर चीन सम्बन्धी पुस्तकों की ग्रंथ सूची भी प्रकाशित करती आ रही है। पी० इ० स्काच कोव ने ऐकेदेमी के क़ायम होने के बाद से १९३० तक रूस में प्रकाशित होने वाली चीन सम्बन्धी पुस्तकों की प्रामाणिक ग्रंथ सूची प्रकाशित की है।[१३] इसके बाद १९३०-३५ तक इसी विषय की पुस्तकों की सूची भी प्रकाशित की गई है।

अब रही चीनी संस्कृति के प्रति चीनी कम्यूनिस्टों के रुख की बात। दुनिया के सभी देशों के कम्युनिस्टों की तरह चीनी कम्यूनिस्टों को भी चीनी सभ्यता, संस्कृति और साहित्य की प्रगति शील परम्पराओं के लिए किसी से कम प्रेम नहीं है। इसी परम्परा को अपनी ऐतिहासिक परिणत में पहुँचाने के लिए वे देशी विदेशी प्रतिक्रियाशील शक्तियों से अपने लाखों साथियों की क़ुर्बानी करके एक अर्से से लोहा लेते आ रहे हैं। यह कहना रंचमात्र भी अत्युक्ति नहीं है कि चीनी संस्कृति और साहित्य की रक्षा के लिए चीनी कम्यूनिस्टों ने सब से अधिक क़ुर्बानियां की हैं। चीनी कम्यूनिस्टों के महान नेता माओ से तुंग ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि नई राजनीति और अर्थनीति के आधार पर नवीन चीनी संस्कृति का निर्माण करना ही चीनी राष्ट्र का लक्ष्य है।[१४]

तुर्की विद्याविशारद अध्यापक समायलोविच को भी, डा० चट्टोपाध्याय के कथनानुसार, सिरिलिक लिपि की जगह रोमन लिपि के समर्थन के लिए जेल भेज दिया गया है।

क्रान्ति के पहिले रूसी इतिहास से जो लोग ज़रा भी परिचय रखते हैं उन्हें यह बात अच्छी तरह मालूम है कि साम्राज्यवादी ज़ारशाही का ग़ैर रूसी जातियों की भाषा,

---

९—वैसिली मिखायलोविच एलेक्सेयेफ़ (१८८१—) सोवियत् सायंस एकेडेमी की ओरियंटल इन्सटीट्यूट के चीनी-जापानी विभाग के अध्यक्ष हैं। चीनी काव्य और चीनी भाषा की उत्पत्ति के विषय में वह दुनिया के अधिकारी विद्वानों में माने जाते हैं।

१०—Agrarnaya Politika Tsinskogo Pravitelstva Sintsiane V Kontse XVIII Veka, published as Trudy Vol. XX, 1936.

११—Van Bi (226-249): iz istorri Kitaiskoi Filosofii. published as Trudy XIII, 1936 by A. A. Petor.

१२—Studies in Chinese Philosophy: Wang Pi and Wang Chung (in Russian) by A. A. Petor.

१३—Bibliographia Kitaii (1725-1930) by P. E. Skachkov.

१४—China's New Democracy (Introduction) Mao Tse Tung. (1944)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संस्कृति आदि के प्रति कैसा रुख़ था। वह उनकी संस्कृति, साहित्य आदि को ध्वंस करके उनके राष्ट्रीय अस्तित्व को मेटा देने के लिए सदा कोशिशें करती रही, जैसा कि कोरिया में जापानियों ने और तसमानिया में ब्रिटिश साम्राज्य शाही ने किया है। पर क्रान्ति ने सभी जातियों को आज़ाद कर दिया। उन्हें मुकम्मिल तरक़्क़ी के सभी सुभीते दिए गए। वेब दम्पति, जोशुआ कुनिज, कैण्टेरबरी के डीन, हेज़र आदि ने अपनी पुस्तकों में इसका पूरा ब्योरा दिया है।[१५]

सोवियत संघ में नवीन प्रस्तर युग से लेकर आधुनिकतम समाजवादी समाज की सभी जातियां बसती हैं। इनमें कितनी ऐसी जातियां हैं जिनमें साहित्य का क्या कहना, वर्णमाला तक विकसित नहीं हो पाई। सोवियत् सरकार ने ही दुनिया में पहले इनके लिए रोमन लिपि का प्रयोग किया, दर्जनों बोलियों को इसी लिपि में लिखने का इन्तज़ाम किया। यहाँ वह बड़ी आसानी ने रोमन लिपि का प्रचार कर सकती थी। पर ऐसा नहीं किया गया। मध्य एशियाई तुर्की भाषाओं को भी उसी ने अरबी-फ़ारसी लिपि की जगह रूसी और रोमन लिपि में लिखने का इन्तज़ाम किया। डा० चट्टोपाध्याय ने अपनी पुस्तक में विभिन्न देशों में अरबी-फ़ारसी लिपि के छोड़े जाने का ज़िक्र करते हुए लिखा है कि सोवियत् रूस की तुर्की भाषाओं ने अरबी लिपि को छोड़कर रोमन और सिरिलिक ( रूसी ) को अपना लिया है।[१६]

सोवियत् संघ की ग़ैर रूसी भाषा भाषी जातियों के दस साल के ऊपर उम्र वाले सभी विद्यार्थी स्वेच्छा से अपनी मातृ भाषा के साथ ही रूसी भी पढ़ते हैं। रूसी पढ़ लेने से उसके सारे साहित्य का दरवाज़ा उनके लिए खुल जाता है और उच्च और विशेष शिक्षा में भी उन्हें सुभीता होता है। इस प्रकार से बिना किसी अनिवार्यता के अपने फ़ायदे के लिए ही विद्यार्थी रूसी पढ़ लेते हैं और उनमें रूसी लिपि का प्रचार हो जाता है। इस हालत में अगर आगे चलकर वे सिरिलिक लिपि को अपना लें तो इसमें अचरज की कौन सी बात है? प्रो० समायलोविच सोवियत् के स्वतन्त्र और सम्मानित पण्डित की हैसियत से अपना कार्य करते जा रहे हैं।

डा० श्चेर्बात्स्की के बारे में डा० चट्टोपाध्याय से शास्त्री ने कहा 'इनके भारतीय संस्कृति प्रेम का अनुमोदन आज के अधिकारी नहीं करते हैं, इसीलिए शायद इन्हें भी जेल की हवा खानी पड़े, अगर इसी बीच वह वहां नहीं पहुँचा दिए गए होंगे।' डा० श्चेर्बात्स्की ( १८६८-१९४२ ) ने भारतीय साहित्य और दर्शन आदि के लिए जो अमूल्य काम किया है, उसका ज़िक्र लेखक ने दूसरी जगह किया है। भारतीय पण्डितों से अपने विषयों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए १९११-१२ में वे हिन्दुस्तान आए थे [ उन्नीसवीं सदी के रूसी पण्डित मिनाएव भी यही उद्देश्य से आए थे ]। कलकत्ते में वे महामहोपाध्याय डाक्टर हर प्रसाद शास्त्री तथा म० म० सतीश विद्या भूषण आदि से गम्भीर विषयों पर बहस किया करते थे।[१७] भारतीय पण्डित समुदाय तथा भण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूट आदि ने विभिन्न उपाधियों से उन्हें सम्मानित किया था। पिछली लड़ाई के पहिले सेण्ट पीटर्स बुर्ग [ लेनिन ग्राद ] में उन्होंने एक बौद्ध मन्दिर भी बनवाया था। सोवियत् सरकार अन्य विद्वानों की तरह इन्हें भी बड़े आदर की दृष्टि से देखती थी और इनकी पढ़ाई लिखाई के सुभीते के लिए सब कुछ करती थी। कुछ पुस्तकों के अनुवाद और सम्पादन के सुभीते के लिए इन्हीं के सुझाव पर सोवियत् सरकार ने बौद्ध दर्शन के भारतीय पण्डित श्री धर्मानन्द कोसाम्बी को सारा ख़र्च देकर सोवियत् में बुलाया क़रीब नौ महीने तक डा० श्चेर्बात्स्की के साथ एक ही मकान में रहकर आचार्य धर्मानन्द काम करते रहे। १९३६ में जब राहुल जी ने धर्म कीर्त्ति के प्रमाण वार्त्तिक की मूल संस्कृत प्रति का उद्धार किया तो उसे देखने और सम्पादित करके प्रकाशन आदि की व्यवस्था करने के लिये अपने शिष्यों के साथ वे हिन्दुस्तान आने के लिए बेचैन हो उठे। पर इनके सुभीते के लिए सोवियत् सरकार ने राहुल जी को ही लेनिन ग्राद बुलाया। लेनिन ग्राद से वे बराबर राहुल जी को चिट्ठियाँ लिखा करते थे। अध्यापक बरनिकोव ने अपने एक लेख में लिखा था कि इनकी मृत्यु लेनिन ग्राद के हिटलरी घेरे का प्रत्यक्ष परिणाम है। अपने जीवन के अंतिम दिनों तक वे सोवियत् के एक स्वतंत्र नागरिक रहे। इन्हें जेल भेजने या बुरी निगाह से देखने की बात सोलहो आने ग़लत है।

१५—Soviet Communism, Dawn over Samarkand; Socialist Sixth of the world, Soviet Asia.

१६— Aryan and Hindi, p. 207.

१७—Both Ends of the Candle—Edward Thompson Ross ( 1943 ) 152.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सोवियत् का भारतीय साहित्य-संस्कृति के प्रति प्रेम आज इस देश के सभी शिक्षितों को मालूम है। अभी राहुल जी को सोवियत् विज्ञान परिषद के ओरियंटल इन्स्टिट्यूट ने अपने यहाँ अध्यापक नियुक्त किया है। क्या इन बातों से यही सिद्ध होता है कि सोवियत् सरकार और अधिकारी प्राचीन विद्याओं के पठन पाठन को अच्छी निगाह से नहीं देखते और विद्वानों को पकड़ पकड़ कर जेलों में भेजते जा रहे हैं? इस हालत में सवाल उठता है कि प्रोफ़ेसर शायर और डा० चट्टोपाध्याय ने इन सारा बातों को जानते हुए भी दुनिया के एक महान राष्ट्र को बदनाम करने का प्रयत्न क्यों किया? संक्षेप में इसका उत्तर यह है कि 'ज़िओ निज़म' और हिन्दूपति-पादशाही का स्वप्न देखने वाले ये दोनों विद्वान साम्यवाद और सोवियत् के घोर-विरोधी हैं। डा० चट्टोपाध्याय हिन्दू महासभाई नेता हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय के कई और अध्यापकों की तरह उन्होंने अपनी पुस्तकों और कितने ही लेखों में हिटलरी राष्ट्र का गान किया है।[१८] ऐसे प्रतिक्रियाशील और सोवियत् विरोधी लोगों को अगर सोवियत् सरकार अपने यहाँ आने का पास पोर्ट न दे तो क्या यह बहुत बड़ा कुसूर समझा जायगा?

दो साल पहिले की बात है कि गोपाल हालदार से डा० चट्टोपाध्याय की बातें हो रही थीं। जब उन्होंने सुना कि राहुल के लड़के का नाम इगोर है तो फ़ौरन नतीजा निकाल लिया कि अब रूस उग्र राष्ट्रीयतावादी बनता जा रहा है। क्योंकि तातारों से रूस की रक्षा करने वाले, वीर इगोर की सारे रूस में १९३५ में ७५० वीं जयन्ती मनाई गई है और उसके बाद से रूस में इगोर नाम प्रचलित हो गया है।[१९] लेकिन अगर उन्होंने पुश्किन से लेकर गोर्की तक के रूसी साहित्य के पात्र पात्रों के नामों पर नज़र दौड़ाई होती तो उन्हें मालूम हो जाता कि यह नाम रूस में कितना प्रचलित है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में लिखे गए अपने एक नाटक का नाम गोर्की ने 'इगोर बुलिकोव' रखा है।

डा० चट्टोपाध्याय सोवियत् विरोध से आक्रान्त हैं और अपनी विभिन्न रचनाओं में उन्होंने सोवियत् के विरुद्ध अनेक ग़लत बातों का प्रचार किया है।

१८—पश्चिमेर यात्री (१९३५), तथा आनन्द बाज़ार पत्रिका, देश आदि के विशेषांकों में प्रकाशित उनके लेख देखें।

१९—गोपाल हालदार — संस्कृतेर रूपान्तर पहला अध्याय।

---

# जिसका रक्षा-कवच अहिंसा था !

श्री राम भाई

( १ )

हवाई उड़ान के इस युग में जब पलक झपते मीलों की मंज़िल तै हो जाती है आज हम इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकते कि १३०० वर्ष पहले सत्य की शोध और ज्ञान की खोज में गोबी से भयङ्कर रेगिस्तान और हिन्दुकुश की बर्फ़ीली पर्वत श्रेणियों को पार करता हुआ महान चीनी यात्री ह्यूनत्साङ्ग किस तरह भारत आया होगा। चार वर्ष तक निरन्तर चलने के बाद वह क़ाबुल पहुंचा। अपनी इस यात्रा के बारे में वह लिखता है— 'चलते हुये छै छै महीने बीत जाते थे और हमें सिर्फ़ अपनी ही परछाईं दिखाई देती थी और जिसे देखकर हमारा दिल उदासी से भर जाता था।...गोबी के हज़ारों मील लम्बे रेगिस्तान में न आकाश में पक्षी थे और न धरती पर पशु। गरम गरम हवा चारों ओर भूत की तरह भनभनाती फिरती थी।...उत्तर भारत के बरफ़ीले पहाड़ बारहों महीने बरफ़ से ढके रहते थे और अगला क़दम रखने को जगह न मिलती थी।' ह्यूनत्साङ्ग के सामने एक ही लक्ष्य था कि ज्ञान के प्रदीप और धर्म की सच्ची भावना को उसे अपने देश चीन ले जाना है।' उसकी आत्मा की आन्तरिक ज्योति ही उदास और ख़तरनाक क्षणों में उसे ढाढ़स बँधाती और उसका पथ प्रदर्शन करती रहती थी। अफ़ग़ानिस्तान से लेकर गङ्गा के दहाने तक सारा देश बौद्ध मठों और बिहारों से भरा हुआ था। सरहद में बन्नू का ज़िला बौद्ध धर्म का केन्द्र था। खोतान में 'गोमति' नामक एक बहुत बड़ा बिहार था। पेशावर में सम्राट कनिष्क का बनवाया हुआ एक चार सौ फ़ुट ऊँचा पागोदा था। किन्तु जहाँ एक ओर देश बौद्ध मठों, बिहार और पागोदाओं से भरा हुआ था वहाँ दूसरी ओर कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शक्तिशाली केन्द्रीय शासन न होने के कारण देश भर में चारों ओर भयङ्कर डाकू और खूंखार पशु भरे हुये थे जिनके कारण मार्ग चलना दुरूह हो गया था। काबुल शहर पार कर ह्यून त्साङ्ग महानाग की ओर बढ़ा। एक जन श्रुति है कि इसी स्थान पर भगवान बुद्ध ने एक महानाग को मार कर अपनी छाया छोड़ दी थी।

ह्यून त्साङ्ग का हृदय प्रसन्नता से भरा हुआ था। लोगों ने उसे समझाया कि महानाग का मार्ग डाकुओं से भरा हुआ है पर ह्यून त्साङ्ग ने जवाब दिया—"एक करोड़ कल्पों में भी बुद्ध की असली छाया देखने को नहीं मिल सकती। क्या मैं उसे बिना देखे लौट जाऊँगा?"

समझाने वाले अनुभव शून्य न थे। वे ह्यून त्साङ्ग से कोई असत्य बात नहीं कह रहे थे। कुछ दूर जाने पर ही पाँच डाकुओं का एक गिरोह मिला। उनके हाथों में नंगी तलवारें थीं मानो हिंसा अपने कलुष पर ऊपरी चमक लगाकर आ गई हो।

'कौन है?' उन्होंने विदेशी से पूछा।

'एक यात्री।' ह्यून त्साङ्ग ने अपनी पूर्ववत् दृढ़ मुद्रा से उत्तर दिया।

'कहाँ जाना है?' स्वर में बर्बरता भरकर उन्होंने पूछा।

'मेरी इच्छा है कि मैं जाकर बुद्ध की छाया की पूजा करूँ।'

'क्या यह नहीं सुना कि इस वन प्रान्त में डाकू रहते हैं?'

'हाँ सुना है।'

'तब भी.....?'

'वे भी' ह्यून त्साङ्ग मुस्कुरा कर बोला 'आदमी ही तो हैं न? मैं तो बुद्ध की पूजा करने जा रहा हूँ। रास्ते में जंगली जानवर भी तो रहते हैं जो कि आदमियों से अधिक भयानक एवं कम बुद्धिमान हैं। मैं उनके भय से भी नहीं रुका। आप लोग तो समझदार इन्सान हैं। आप से कौन डर? पशुओं की अपेक्षा तो मनुष्य कहीं अधिक दयावान होता है।'

डाकू इस उत्तर के आगे परास्त हो गए। दिल पर शब्दों की तलवार की चोट बड़ी गहरी लगी। हाथों से लोहे की तलवार छूट कर पैरों के पास गिर पड़ी।

( २ )

बीच में डेढ़ बरस का समय बीत गया और ह्यून त्साङ्ग प्रयाग के निकट पहुंचा। गङ्गा में एक नाव के द्वारा २०-२५ आदमियों के साथ किनारों के दृश्य देखता हु वह चला आ रहा था। चलते चलते नाव एक ऐसे स्थ पर पहुँची जहाँ दोनों किनारों पर घना अशोक का वन थ यहाँ लगभग १००-१२५ नावें डाकुओं की थीं। ह त्साङ्ग की नाव देख कर वे अपनी नावें लेकर उसकी झपटे। कुछ साथी तो डर के मारे गङ्गा में कूद पड़े और गये। जो बचे उन्हें डाकुओं ने नंगा करके मुश्कें बांध ये डाकू दुर्गा के उपासक थे।

सरदार बोला 'यह साल तो हमारा खाली चला रहा था!'

'कैसे चला जाता, सरदार! मां दुर्गा स्वयं ख्याल रखती हैं।' एक डाकू बीच में बोल उठा।

'हाँ, है तो यह उसी लायक। मां ने चुनकर है।' दूसरा डाकू ह्यून त्सांग की ओर इशारा करते हुए बो

'मैं भी धर्म में दृढ़ विश्वास रखता हूँ।' ह्यून त्सांग जवाब दिया।

'तब तो और अच्छा है' सरदार बोला।

'हाँ, अगर यह निकम्मा और घृणित शरीर किसी प्रकार आपके काम आ सके तो मुझे कोई शिकायत होगी। परंतु.....'

'परन्तु क्या?'

'मैं विदेशी हूँ। दूर देश से आ रहा हूँ। मेरी इच्छा थी कि मैं पवित्र तीर्थों पर श्रद्धांजलि अर्पित करूं, ग्रंथों का मनन करूँ और भगवान बुद्ध के धर्म की शि ग्रहण करूँ। यदि तुम मुझे अपने उपयोग में ले आओ तो मुझे भय है कि तुम्हारे ऊपर कोई दैवी विपत्ति न जाए।'

'हमें तो दैवी प्रसन्नता मिलेगी और कोप के हिस्सेद तो तुम होगे।'

'अच्छा एक बात मान लो' ह्यून त्सांग फिर स्वर में बोला।

'नहीं, तुम्हारी कोई बात न मानी जायगी'—डाकु के सरदार ने कहा। फिर उसने अपने साथियों से कहा-धर्म से मिट्टी लेकर भेंट के लिए एक आसन बनाओ और उसी पर बैठाओ।'

वैसा ही किया गया। उस पर बैठने के पश्चात ह्यू त्सांग ने कहा 'अब जब कि तुम मेरी बलि चढ़ा ही दो और मेरा ऐहिक जीवन समाप्त ही हो जाएगा तो हे दयावान पुरुषो! क्या तुम दो क्षण तक मुझे शांत छोड़ सकते हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



'अच्छा इसे कुछ क्षणों के लिए शांत बैठा रहने दो।' सरदार ने आज्ञा दी।

ह्यून त्सांग ने बोधिसत्व मैत्रेय का ध्यान किया और प्रभु से विनय की कि मेरा दूसरा जन्म भारत में ही हो ताकि मैं धर्म ग्रहण कर सकूँ और ज्ञान प्राप्त करने के बाद इन लोगों का हृदय बदल कर इन्हें सन्मार्ग पर ला सकूँ, सर्वत्र धर्म का प्रचार कर प्राणि मात्र के लिये शान्ति तथा आनन्द की प्राप्ति का प्रयत्न करूँ और इसके बाद वह समाधि लगाकर बैठ गया।

समाधि में ह्यून त्सांग लवलीन था और परम सुख का अनुभव कर रहा था--भगवान बुद्ध ही उसके ध्यान में केन्द्रीभूत थे। उसके साथी यह विचार कर कि ह्यून त्साङ्ग का अन्त समय आ गया है, ज़ोर ज़ोर से रोने लगे। थोड़ी ही देर में अचानक बहुत भयानक आंधी आई। धूल और बालू के बादल उड़ उड़कर धरती और आकाश में छाने लगे और गङ्गा में इतनी बड़ी बड़ी तरङ्गें उठने लगीं कि सारी नावें जल मग्न होने लगीं प्रकृति के इस उग्र स्वरूप को देखकर डाकू बहुत भयभीत हो गये और ह्यून त्सांग के साथियों से पूछने लगे--'ये हैं कौन और कहाँ से पधार रहे हैं!' उन्होंने उत्तर दिया—'ये एक प्रख्यात सत हैं और धर्म की खोज में चीन से आ रहे हैं। अगर आपने इन्हें मारा तो आपकी मुसीबतों का ठिकाना न होगा। आप नहीं देखते कि स्वर्ग के दूतों ने ग़ज़ब ढाना शुरू कर दिया है? अपने अपराध की आप इनसे क्षमा मांगिये अन्यथा किसी की कुशल नहीं है।'

डाकू भौचक्के तो हो ही गये थे एकदम ह्यून त्सांग के चरणों पर गिर पड़े। वह महापुरुष तो समाधि में तल्लीन था और उसे इन सब बातों की ख़बर न थी। तब एक डाकू ने आदरपूर्वक उसके उत्तरीय को धीरे से छू दिया! समाधिस्थ ह्यून त्सांग ने आँखें खोलीं, पूछा, क्या बलिदान का समय हो गया! और चारों तरफ़ देखा तो दूसरा ही दृश्य था। अपने बचने का समाचार भी ह्यून त्सांग ने उसी अनासक्त भाव से सुना जिस तरह कि मृत्यु का सुना था। डाकुओं ने उनसे क्षमा माँगी और प्रण किया कि भविष्य में कभी ऐसा काम नहीं करेंगे। ह्यून त्सांग के सामने ही उन्होंने अपने समस्त अस्त्र शस्त्र गंगा में फेंक दिये। थोड़ी देर में हवा मन्द पड़ गई और लहरें भी शिथिल हो गईं। डाकुओं ने प्रसन्नतापूर्वक ह्यून त्सांग के चरणों में प्रणाम किया और बिदा हो गये।

इस बार हिंसा अपने कलुष पर आकर्षक चमक लगाए हुए ह्यून त्सांग से परास्त होकर पृथ्वी के गर्भ में छिप जाना चाह रही थी।

---

# मार्क्सवाद और साहित्य

श्री इन्द्र प्रताप तिवारी बी० ए०

मार्क्सवाद जीवन-दर्शन है। यह एक वैज्ञानिक दृष्टि कोण है। जीवन के विविध क्षेत्र होते हैं—सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक तथा वैयक्तिक। मार्क्सवाद अपने दृष्टिकोण से जीवन के इन भिन्न भिन्न क्षेत्रों की विवेचना करता है। उनसे अपना निष्कर्ष निकाल कर अपने निर्णय पर पहुँचता है। यही कारण है कि जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग होगा जिस पर मार्क्सवाद की पहुँच न हो।

साहित्य सदैव से ही समाज का दर्पण माना गया है। साहित्य के निर्माण का साधन मानव की अनुभूतियां हैं। जो कुछ चलता फिरता मानव अपने वातावरण में अनुभव करता है उसे जीवन के किन्हीं क्षणों में साहित्य का रूप दे देता है। अतएव साहित्य की जड़ें हमारे जीवन से सम्बन्धित हैं और हमारा जीवन सम्बद्ध है बाह्य परिस्थितियों से। किसी काल विशेष का साहित्य हम उस समय की आर्थिक तथा राजनैतिक पृष्ठ भूमि के सहारे ही समझ सकते हैं। साहित्य की समीक्षा के लिये, उसके गुण और दोष समझने के लिये, उसके खरे खोटे की जाँच के लिये यह आवश्यक है कि पहिले हम उस समय विशेष की परिस्थितियों से परिचय ही नहीं, पूर्ण परिचय प्राप्त करें।

साहित्य का जीवन से अटूट सम्बन्ध है। उपयोगी साहित्य जीवन को उपयोगी बनाता है। अच्छे साहित्य से जीवन की आन्तरिक शक्तियाँ सुपथ पर आरूढ़ होती हैं और बुरा साहित्य जीवन की गति कुपथ पर मोड़ देता है।

जीवन समाज में उलझा रहता है या यों कहिये कि जीवन का समाज से अलग कोई अस्तित्व ही नहीं और समाज स्वयं क्या है। मानव शक्तियों के सामाजिक नातों में निरन्तर कम होते रहने को ही समाज कहते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सृष्टि के आदि से मानव एकत्रित होकर अपनी शक्तियों का संगठन करता रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी शक्ति के अनुसार इस सङ्गठन में अपना व्योरा देता है। मानव की अतुल शक्तियाँ किस प्रकार किन किन खातों में कम की जाँय कि उनसे अधिक से अधिक उपयोगिता मिल सके यही सृष्टि के आदि से आज तक समस्या रही है। कितनी व्यवस्थायें बनीं, एक के बाद एक बनती चली गईं। एक की क़ब्र पर दूसरी का निर्माण हुआ, एक के व्यय पर दूसरी का सृजन हुआ परन्तु यह गुत्थी उलझी की उलझी ही रही।

आज की सामाजिक व्यवस्था में भी यह प्रश्न उतना ही अहम है जितना कि पहिले था। क्या इस ढांचे में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति के अनुसार समाज सेवा का अवसर मिलता है? कदापि नहीं। आज की व्यवस्था में तो अनगिनत मनुष्यों को जीवन के लाले पड़े रहते हैं। उन्हें अपनी शक्तियों के पनपाने का अवसर ही नहीं दिया जाता। हर कोने में शोषण है, जुल्म है, दानवता का नग्न नृत्य हो रहा है। अगणित मानव के श्रम का थोड़े से व्यक्ति अपहरण करते हैं और सारे सामाजिक कलाप उन्हीं के भाव भङ्गी पर आधारित हैं। आज की सामाजिक व्यवस्था विकृत है, कुरूप है, सड़ी हुई है, इस पर तो किसी को शंका हो ही नहीं सकती है। अतएव वह साहित्य, जो आज की सामाजिक व्यवस्था को ही सत्य मानता है, आदर्श मानता है, बुरा साहित्य है। दूसरे शब्दों में हम उसे दकियानूसी साहित्य कह सकते हैं। वह प्रतिगामी साहित्य है। अच्छा साहित्य वह है जो मानव की शक्ति वृद्धि में आस्था रखता है। जिसका विश्वास है कि यदि आज के सामाजिक प्रतिबन्ध तथा नियन्त्रण हटा दिये जाएँ तो मानव की शक्ति में महा वृद्धि होगी। मानव चलेगा, फलेगा वह कीड़ों की अवस्था छोड़कर मानव की अवस्था को प्राप्त कर लेगा। और यही साहित्य प्रगति शील साहित्य है। प्रगति शील साहित्य आज के सामाजिक ढांचे को जीर्ण शीर्ण समझता है। उसके विध्वंस के लिये जनता को अग्रसर करता है और परिवर्तन में दृढ़ विश्वास करता है। प्रगतिशील साहित्य प्रोपैगैण्डिस्ट साहित्य होता है। आज कल इस शब्द का ग़लत अर्थ माना जाता है, झूठ का प्रचार (बरगलाना)। जो जनता की विध्वंसक शक्तियों को जाग्रत करेगा, जो मानव को जगाने के लिये उसे गुदगुदायेगा वह अवश्य ही प्रोपैगैण्डिस्ट होगा। यही मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्त हैं जिनकी कसौटी पर वह भूत, भविष्य तथा वर्तमान की सभी साहित्यिक रचनाओं को आँकता है। अतीत में जो साहित्य समय के दुर्गुणों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाता रहा है, जो साहित्य परिवर्तन के गीत गाता रहा है वह प्रगति शील साहित्य था। जिसने अपनी परिस्थितियों से अपनी क़िस्मत बाँधकर उसी की प्रशंसा के गीत गाये वह प्रतिगामी साहित्य था। क्योंकि आदि से आज तक परिवर्तन की आवश्यकता बराबर रही है। अभी तक शोषण रहित समाज की स्थापना कभी नहीं हुई।

आज की व्यवस्था पूँजी वादी है। पूँजी ही मानव के सम्बन्धों का नियन्त्रण कर रही है। पूँजी मानव की देव वृत्तियों का संहार कर चुकी है। अतएव उत्पादन तथा विनिमय के साधनों पर पूँजी के प्रभुत्व को मिटाना है। इस वृहत कार्य के लिये सक्रिय तथा उत्पादक आन्दोलन की आवश्यकता है। अच्छा साहित्य वही होगा जो इस आन्दोलन को प्रोत्साहित करेगा। समाज के ढाँचे में रद्दोबदल लाने के लिये मार्क्सवादी आन्दोलन को जो साहित्य आगे बढ़ाता है वही प्रगतिशील है, सक्रिय है और जीवित है।

सृष्टि के आदि से मानव श्रेणियों में विभाजित रहा है। मानव इतिहास सतत श्रेणी संघर्ष का इतिहास है। एक वर्ग सदैव दूसरे वर्ग का शोषण करता रहा है, उन्नति के सारे साधन अपने अधिकार में रखकर मानव के बहुत बड़े समूह को वंचित रखता चला आया है। आज भी शिक्षा तथा सभ्यता के सारे साधन कुछ थोड़े से लोगों के हाथों में हैं। इन्सानों की बहुत बड़ी तादाद तो आज भी मलीन, दुखी तथा आहत है।

आज का साहित्य वर्ग विशेष का साहित्य है और वह है बुर्जुवा वर्ग। इसी वर्ग के लोग इस साहित्य का निर्माण करते, और इसी वर्ग के लोग ऐसे साहित्य का मूल्यांकन भी करते हैं। आज के बुर्जुवा साहित्य में तीन मुख्य दुर्गुण हैं :

(१) बुर्जुवा साहित्य की भाषा अलंकार पूर्ण होती है। भावों के रूढ़िवादी होने के कारण भाषा के चमत्कार पर अधिक ज़ोर दिया जाता है। इसका प्रमाण हमें स्वयं अपने साहित्य से मिलता है। रीति कालीन कवियों को लीजिये। कितनी अलंकारपूर्ण और चमत्कारपूर्ण भाषा है। 'ग्राम्या' और 'युग वाणी' के पहिले पन्त जी की ही भाषा लीजिये। कितनी बनावट, कितनी सजधज है। 'कुकुरमुत्ता' के पहिले 'निराला' जी की भाषा लीजिए। वह भी वैसी ही है। जो साहित्य जनता के लिये लिखा जायगा उसकी भाषा

CC-0.All Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जनता की भाषा होगी। ऐसी भाषा बुर्ज़ुवा वर्ग का वही लेखक लिख सकता है जो जनता से सम्पर्क रखता हो। उनके भावों, उनकी इच्छाओं और उनकी चाहों से परिचित हो।

(२) इस वर्ग के साहित्यकार समूह पर ज़ोर न देकर व्यक्ति विशेष पर ज़ोर देते हैं और उन व्यक्तियों के गुण तथा दोष की विवेचना पूँजीवादी नैतिकता की कसौटी के सहारे करते हैं। सेठ रामूमल अच्छे आदमी हैं या बुरे! उनकी माँ बड़ी दानी हैं! बिरला महान व्यक्ति हैं! कहने का तात्पर्य यह कि व्यक्तियों के जीवन पर, उनकी करतूतों और उनकी सफलताओं पर अधिक ज़ोर दिया जाता है।

अच्छे साहित्य का सम्बन्ध व्यक्ति से न होकर समूह से होता है। अच्छा साहित्यकार ( प्रगति शील ) समूह के किसी व्यक्ति को चुन लेता है—ऐसा व्यक्ति जो समूह का परिचायक हो-जिसे देखते ही हमें समूह का आभास हो। उसी का जीवन, उसीकी गाथा, उसकी कामनाओं और चाहों पर अपने साहित्य की विषय-वस्तु आधारित करता है। अपने साहित्य में प्रेम चन्द के उपन्यासों में हमें इस सिद्धान्त की झलक मिलती है।

(३) बुर्ज़ुवा वर्ग ऐसा वर्ग है जो नये समाज के निर्माण में बहुत कम भाग लेगा। इस वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति अपने में सीमित होता है। किसी भी प्रकार की सामूहिक चेतना इस वर्ग में नहीं रहती। इस वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति दूसरे को पनपते देख उससे डाह करता है, ईर्ष्या करता है। यही कारण है कि इस वर्ग के साहित्यकार अपनी कृति इस वर्ग के व्यक्तियों के सम्बन्धों पर आधारित करते हैं। यही कारण है कि इनकी कृतियों का कोई मूल्य नहीं होता, समाज के निर्माण में उनका कोई हाथ नहीं होता। मानव के लिये उनकी कोई अहमियत नहीं रहती। अपने वर्ग के लोगों का मनोरंजन ही इन साहित्यकारों का मसाला होता है। अपने वर्ग के लोगों के कार्य नहीं बल्कि मनोरंजन उन्हें आकर्षित करते हैं। यही कारण है कि बुर्ज़ुवा साहित्य में गम्भीरता नहीं होती उसमें छिछोरापन टपकता है। साहित्य का वास्तविक विषय समाज का वर्ग-संघर्ष है, इसका बदलता हुआ रूप है। समाज की कशमकश इसकी जीत तथा न्याय की अयोग्यता ही साहित्य का उपयुक्त विषय है।

मार्क्सवादी समाज का जन्म आज के पूँजीवादी समाज के गर्भ से होगा। अतएव वह कला ही जो आने वाली परिस्थितियों की ओर संकेत करती है, उसका शुभागमन करती है, वास्तविक कला है। ऐसी कला केवल संकेत ही नहीं करती बल्कि उस समाज के आगमन में सहायता करती है। यही अच्छी और महत्वपूर्ण कला है।

---

# डा० सनयात सेन के जनता के तीन सिद्धान्त—(२) "गण तन्त्र"

प्रो० कृष्णकिंकर सिंह राष्ट्रीय-प्राच्य, भाषा अध्ययन कालेज, छेङ् कुङ्, कुमिङ्

डा० सन यात सेन के जनता के तीन सिद्धान्तों में से दूसरा 'गणतंत्र' या जनता की मालकियत ( People's Sovereignty ) का सिद्धान्त है। इसके द्वारा वे राष्ट्र में गणतंत्र यानी लोकप्रिय शासन की स्थापना करने पर जोर देते हैं। पहिले सिद्धान्त 'राष्ट्रीयता' द्वारा देश की स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने के बाद स्वतः यह प्रश्न उठता है कि राष्ट्र की प्रभुशक्ति किसके हाथों में रहेगी। विभिन्न युगों में यह प्रभुशक्ति विभिन्न प्रकार के लोगों के हाथों में रही है। आज राष्ट्र की प्रभु शक्ति किसके हाथों में रहे इसे जानने के लिये डा० सन यात सेन ने आदिम मानव के उदय काल से वर्तमान समय तक के इतिहास पर दृष्टिपात कर उसे चार युगों में विभक्त किया है। पहिला वह युग था जब मानव सभ्यता का उदय नहीं हुआ था। मनुष्यों को अपनी रक्षा के लिये भयंकर जानवरों और सर्पों से लड़ाई करनी पड़ती थी। यह लड़ाई व्यक्तिगत रूप से आत्म रक्षा के लिये होती थी। सामूहिक शक्ति का उदय नहीं हुआ था। अगर कभी समूह में होकर लोग अपनी शक्ति प्रदर्शित भी करते थे तो काम के समाप्त हो जाने पर पुनः तितर-बितर हो जाते थे। कोई सर्वप्रिय मालकियत ( Popular Sovereignty ) नहीं थी। इस युग में आदमी और पशु में बहुत कम अन्तर था। इसे घुमक्कड़ों का युग कहते हैं। इसके बाद दूसरा युग तब प्रारम्भ हुआ जब मनुष्यों ने भयंकर जानवरों और सर्पों के साथ होने वाली लड़ाई में विजय प्राप्त की। जानवरों का भय समाप्त हो जाने पर आदमी का जीवन सुरक्षित हुआ। इस युग के मनुष्यों को अपने चारों ओर के वातावरण पर दृष्टिपात करने का अवसर मिला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये वें लोग अच्छी जगहों की तलाश करने लगे तथा समूह में रहने लगे। यह सभ्यता का आदिम युग था जिसे चरागाह युग भी कहते हैं। पहिले युग में जहाँ आदमियों को सर्पों और जानवरों से लड़ना पड़ता था वहाँ इस युग में उनका मोर्चा प्राकृतिक शक्तियों के साथ रहा। आँधी तूफ़ान, वर्षा बाढ़ आदि से बचने के लिये मनुष्यों ने उपाय तो ढूँढ़ निकाले लेकिन प्राकृतिक शक्तियों के सामने उनके कृत्रिम उपाय व्यर्थ सिद्ध होते थे। प्रकृति के धक्के से बचने का कोई उपाय न देख-कर बुद्धिमान लोगों ने प्राकृतिक शक्तियों में दैविक प्रभुता का अनुमान कर इस भावना का प्रचार सर्वसाधारण में किया। चूंकि मनुष्यों की प्रभुता के अन्दर इन प्राकृतिक शक्तियों से लोहा लेने की क्षमता नहीं थी इसलिये उनके दिलों में दैविक भावना की बातें बैठ गईं और वे इन शक्तियों के प्रकोप से अपनी रक्षा पाने के लिये उनकी पूजा पाठ कर वर प्राप्त करने की ओर झुके। बुद्धिमान लोग इस कार्य की देख भाल के लिये चुने जाने लगे और वे ही समाज के मुखिया माने जाने लगे। इस युग में इस मुखियापन के लिये मानव मानव के बीच युद्ध नहीं होता था। समाज की प्रभुशक्ति इस प्रकार के धार्मिक मुखियों के हाथों में रहती थी इसलिये इस युग को धर्म सत्ता प्रधान युग (Age of theocracy) कहते हैं। तीसरा युग तब प्रारम्भ होता है जब समाज के बड़े बड़े योद्धाओं और राज-नैतिक नेताओं ने धार्मिक शासन कर्त्ताओं से समाज के प्रबन्ध का अधिकार छीन लिया और अपने को ही धार्मिक नेता करार देकर देश का राजा मान बैठे। राष्ट्र या समाज की प्रभुशक्ति प्राप्त करने के लिये मानव मानव के बीच संग्राम इसी युग में प्रारम्भ हुआ। राष्ट्र की प्रभुशक्ति पर व्यक्तिगत अधिकार प्राप्त हुआ। प्रारम्भ में धार्मिक विश्वास और एकतंत्रवाद की मनोवृत्ति दोनों का सहारा लिया गया पर ज्यों ज्यों मनुष्यों का विश्वास धार्मिक बातों की ओर हटता गया उन्होंने यह महसूस किया कि समाज की भलाई तथा उसकी रक्षा के लिये मज़बूत शासन और दृढ़ सैनिक शक्ति की ज़रूरत है। इसी भावना से निरंकुश एकतंत्रवाद का जन्म हुआ। यह भावना इतनी दूर तक बढ़ी कि राजा और राष्ट्र में कोई अन्तर नहीं माना जाने लगा। विभिन्न प्रकार के असमान दर्जे समाज में क़ायम हो गए। इस युग में आदमियों की जो भयंकर दुर्दशा हुई उसके वर्णन से इतिहास के पन्ने काले हो गए हैं। पर एक ओर जहां अत्याचार और एकतंत्रवादी शासन व्यवस्था की निरंकुशता अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई थी वहां दूसरी ओर मनु में उसके बरदाश्त करने की क्षमता भी नहीं रह गई जिसके फलस्वरूप प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई। इसके साथ अब तक मनुष्यों की बुद्धि में काफी विकास हो चुका और जिसके कारण उसी समय आधुनिक विज्ञान का उ भी हुआ। विज्ञान के उदय से मनुष्यों को अपनी शक्ति पता चला। बुद्धि के विकास, विज्ञान की उत्पत्ति प्रतिक्रिया की भावना इन तीनों के मेल से मनुष्यों में चेतना और आत्म विश्वास पैदा हुआ और वे समाज भयंकर विषमताओं को उठा फेंकने के लिये सजग हो उ समानता और स्वाधीनता के नारे के साथ निरंकुश एक वादी सम्राटों के विरुद्ध जनता ने जंग छेड़ दी और उ उठा फेंका। इस निरंकुश शासन के समाप्त होने के साथ तीसरा युग समाप्त होता है और समानता स्वाधीनता के नाम पर हुए युद्ध से जो फल निकला गणतंत्र या लोकप्रिय मालकियत के नाम से प्रसिद्ध हो वर्तमान समय का चौथा युग है। इस युग में न्याय अन्याय के बीच, भले और बुरे के बीच, शासक शासित के बीच, शोषक और शोषित के बीच लड़ाई न रही है। लोगों की आम धारणा है और विश्वास है राष्ट्र की प्रभुशक्ति पर देश की जनता का अधिकार इन चारों युगों में आदमी अपनी मालकियत स्थापित कर के लिये संग्राम करता आया है। मानव-जीवन के इतिह के प्रारम्भ से ही भिन्न भिन्न युगों में राष्ट्र की प्रभुशक्ति भिन्न प्रकार के लोगों के हाथों में रही है। राष्ट्र की प्र शक्ति का भिन्न भिन्न प्रकार के लोगों के हाथों में होना युग की धारा और प्रवृत्ति के अनुसार ही था। आज युग की प्रवृत्ति जनता के हाथों में मालकियत का अधिक देने की ओर है। जनता के हाथों में मालकियत हो इ लिये समानता और स्वाधीनता के नाम पर हुए संग्राम नतीजा गणतंत्र है।

बहुत से लोग स्वाधीनता और समानता को प्रकृ प्रदत्त मानते हैं इसलिये गणतंत्र को भी प्रकृति की देन समझते हैं। डा० सन यात सेन ने इन दोनों बातों का प्र वाद किया है और वास्तविक स्वाधीनता और समानता विवेचना की है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी राजनैतिक दार्श रूसो के मत की कि "मनुष्य स्वाधीनता और समानता अधिकार के साथ पैदा हुआ है और ये प्रकृति प्रद अधिकार हैं जिन्हें मनुष्य छोड़ बैठा है" डा० सन यात से ने आलोचना की है। उनका कहना है कि रूसो के मत

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अनुसार जनता को उसके मालकियत का अधिकार प्रकृति की ओर से मिलता है लेकिन ऐतिहासिक प्रत्यावर्तन के अध्ययन से यह पता चलता है कि गणतंत्र प्रकृति प्रदत्त नहीं है बल्कि समय की हालतों और घटनाओं के हेर फेर से उसका जन्म हुआ है। आदिम युग से आज तक की जनता की मालकियत प्राप्ति के इतिहास में प्राकृतिक मानवीय समानता का सिद्धान्त नहीं दिखाई पड़ता है। जब प्राकृतिक संसार में समुद्र की सतह को छोड़कर कोई भी दो वस्तुयें समान नहीं हैं, जब प्राकृतिक संसार में ही समानता नहीं है; मानवीय समानता नाम की कोई चीज़ कैसे पैदा हो सकती है? मानव जाति के प्रत्यावर्तन के इतिहास में रूसो के समानता और स्वाधीनता का दर्शन या अमेरिका की क्रान्ति के स्वाधीनता के घोषणा-पत्र में वर्णित प्राकृतिक स्वाधीनता और समानता के सिद्धान्त का पता नहीं चलता है। इसलिये इन चीजों को प्रकृति प्रदत्त कहना आधार रहित है। वास्तविक बातों के आधार पर ही सिद्धान्त का निर्माण होता है, सिद्धान्त वास्तविक बातों से पहिले नहीं बनता। उपर्युक्त प्रकृति प्रदत्त सिद्धान्त वास्तविक बातों से टक्कर खाता है इसलिये वे सदा सत्य सिद्धान्त नहीं माने जा सकते। चूंकि समानता और स्वाधीनता ही जब प्रकृति प्रदत्त नहीं है तो उनके नाम पर हुए संग्राम का फल—गणतंत्र—कैसे प्रकृति प्रदत्त हो सकता है।

यद्यपि स्वाधीनता और समानता प्रकृति प्रदत्त नहीं हैं परन्तु इनसे ही जनता की मालकियत या गणतंत्र का विकास होता है अथवा समानता और स्वाधीनता जनता की मालकियत ही पर आधारित रहती हैं। लेकिन इन चीज़ों के व्यवहार में सदा सतर्क रहने की ज़रूरत है और इनके वास्तविक अर्थ को जानना ज़रूरी है। स्वतन्त्रता दो प्रकार की होती है—एक व्यक्तिगत और दूसरी सामूहिक। सामूहिक स्वतन्त्रता से मतलब राष्ट्र की स्वाधीनता से है और संक्षेप में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से प्रतिदिन कार्य करने में किसी प्रकार की रुकावट का न होना। दोनों के व्यवहार में अन्तर है। राष्ट्र स्वतन्त्र हो सकता है परन्तु यह ज़रूरी नहीं है कि वहाँ की जनता को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो। स्वाधीनता और समानता के नारे पर हुए युद्ध के पहिले यूरोपीय राष्ट्रों की यह हालत थी। आज भी बहुत से स्वतन्त्र राष्ट्रों की जनता को पूर्ण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है। दूसरी हालत यह होती है कि राष्ट्र के अन्दर लोगों को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त होती है पर राष्ट्र दूसरे के राजनैतिक और आर्थिक प्रभाव के नीचे कराहता रहता है। चीन में गणतन्त्र के पहिले या गणतन्त्र की स्थापना होने पर भी बहुत दिनों तक ऐसी ही हालत थी। इसलिये इन दोनों दशाओं में स्वधीनता के लागू करने में सतर्क होने की आवश्यकता है। व्यक्तिगत स्वाधीनताहीन राष्ट्रों में लोग चाहते हैं कि उन्हें अपने राष्ट्र के अन्दर अपनी इच्छानुसार काम करने की आज़ादी होनी चाहिए। परन्तु सब से आवश्यक बात ध्यान में रखने की यह है कि स्वाधीनता को प्रकृति प्रदत्त मानकर इतनी दूर तक नहीं बढ़ाना चाहिए कि वह अनुशासनहीन और उच्छृङ्खल हो जाए। यूरोप में व्यक्तिगत स्वाधीनता जब लोगों को प्राप्त हुई तो प्रकृति प्रदत्त मानकर उसका इतना दुरुपयोग किया गया कि अन्त में बाध्य होकर लोगों को उस पर बन्धन लगाना पड़ा। अनुशासनहीन और उच्छृङ्खल स्वाधीनता को देखकर मिल जैसे अंग्रेज़ विद्वानों को कहना पड़ा कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, जो दूसरे की स्वतन्त्रता के साथ टक्कर नहीं खाती है, सच्ची स्वतन्त्रता समझी जा सकती है। इसलिये जनसत्तात्मक शासन में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता आवश्यक है पर अनुशासन के साथ। ऊपर कहा गया है कि सामूहिक स्वतन्त्रता राष्ट्र के प्रति लागू होती है। परतन्त्र राष्ट्रों के लोगों का कर्तव्य होना चाहिए कि उनका नारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं बल्कि राष्ट्र की स्वतन्त्रता हो। व्यक्तिगत स्वाधीनता का दर्जा राष्ट्र की स्वतन्त्रता के बाद है। राष्ट्र के स्वाधीन होने पर और वहाँ जनसत्तामक शासन प्रणाली चालू करने पर जनता की शक्ति बढ़ती है और जनता की शक्ति बढ़ने पर व्यक्तिगत स्वाधीनता का भी विकास होता है। राष्ट्र को स्वाधीन बनाने के लिये व्यक्तिगत स्वाधीनता का बलिदान करना आवश्यक होता है क्योंकि बिना व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के बलिदान किये पराधीन राष्ट्रों में एकता होना कठिन है और बिना एकता के स्वाधीनता भी नहीं मिल सकती है। गणतन्त्र क़ायम होने पर ही सच्ची स्वाधीनता, चाहे वह राष्ट्र की हो या व्यक्तिगत, टिक सकती है।

व्यवहार में जो हालत स्वाधीनता की है वही समानता की भी। पश्चिमी राष्ट्रों ने समानता प्राप्त कर और उसे प्रकृति प्रदत्त मान उसका मनमाना व्यवहार किया था। समानता के नाम पर एक उच्छृङ्खल शासन (Mob rule) क़ायम कर दिया गया था। इसका कारण यह था कि लोगों ने समानता के वास्तविक अर्थ को नहीं समझा था। इसके सम्बन्ध में सब से आवश्यक बात ध्यान में रखने की यह है कि समानता प्रकृति प्रदत्त नहीं है और सब लोगों को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समान दर्जे पर कृत्रिम रूप से नहीं लाया जा सकता है। डा० सन यात सेन ने बतलाया है कि निरंकुश एकतन्त्र शासन युग में समाज में ऐसी भयङ्कर और कष्टप्रद कृत्रिम असमानता पैदा की गई थी जो युद्ध हुआ और युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद पुनः जिस कृत्रिम समानता की स्थापना हुई वह भी अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई थी और जिसके कारण उच्छृङ्खल शासन का बोलबाला हो उठा था। निरंकुश एकतन्त्र युग में सम्राट से जनता तक सम्राट, राजा, ड्यूक, मार्क्विस, अर्ल, विस्काउन्ट, बैरन और साधारण जनता नामक दर्जों की स्थापना हुई थी और क्रमशः एक से दूसरे को कम अधिकार प्राप्त थे। अधिक अधिकार वाले कम अधिकार वालों पर बराबर मनमाना अत्याचार करते थे। समानता के नाम पर हुई लड़ाई के बाद जब इस प्रकार के असमान कृत्रिम दर्जे छिन्नभिन्न हुए तो समानता के नाम पर एक कृत्रिम समानता की स्थापना हुई जिसमें महात्मा, विशिष्ट व्यक्ति, प्रतिभावान, बुद्धिमान, साधारण बुद्धि वाले, मन्द बुद्धि वाले और बुद्धिहीन में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रखा गया, अर्थात् समानता लाने के लिये बुद्धिहीन को ऊपर उठाने की अपेक्षा विशिष्ट स्थानों को नीचे कर दिया गया। आधार तो असमतल रहा और समानता बनाई गई। असमतल पर स्थित कोई चीज़ नहीं टिक सकती है। इस कृत्रिम समानता से जो भयङ्कर परिणाम हुआ उससे सभ्य संसार परिचित है। डा० सन यात सेन ने समानता की परिभाषा इस प्रकार की है—"मानव समाज में समान दर्जा किसी दूसरी चीज़ से होता है। हर आदमी अपना व्यक्तित्व प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा और योग्यता पर बनाता है। चूंकि हर आदमी में भिन्न भिन्न योग्यता और बुद्धि पाई जाती है इसलिये उनके द्वारा विकसित किया गया व्यक्तित्व भी भिन्न भिन्न होगा और चूंकि हर आदमी भिन्न भिन्न प्रकार से काम करता है इसलिये सब लोग निश्चय ही एक सतह पर काम नहीं कर सकते हैं। यही बात हम लोगों को समानता के सच्चे सिद्धान्त पर पहुँचाती है। अगर हम लोग हर आदमी में पाई जाने वाली भिन्न भिन्न योग्यता और प्रतिभा पर ध्यान न देकर समानता लाने के लिये बुद्धि और योग्यता के बल से उच्च स्थान पर चले गए मनुष्यों को घसीट कर नीचे कर देंगे तो समाज की प्रगति रुक जाएगी और मानव जाति पीछे हटती जाएगी। संसार की प्रगति चाहते हुए जब हम लोग गणतन्त्र और समानता की बात करते हैं तो उसका मतलब राजनैतिक समानता से होता है। समानता कृत्रिम चीज़ है और एक ही समानता जो हम लोग कर सकते हैं वह है राजनैतिक समानता। क्रान्ति के बाद हम लोग सभी प्रकार के मनुष्यों को राजनैतिक समानता के धरातल पर रखना चाहते हैं। यही एक सच्ची समानता है और प्रकृति का सच्चा सिद्धान्त भी। जनसत्तात्मक समाज में सब के राजनैतिक अधिकार बराबर होंगे पर लोगों को अपनी योग्यता और प्रतिभा के अनुसार काम करने की सहूलियत रहेगी। हर आदमी के काम करने के सिद्धान्त का आधार सेवा की भावना होगी, शोषण नहीं। जब यह सिद्धान्त लागू होगा तो समाज में भिन्न भिन्न प्रकार की बुद्धि के लोग अपनी पूर्ण योग्यता और क्षमता के साथ काम करेंगे और समाज में अधिक से अधिक वास्तविक समानता की भावना फैलेगी। इस प्रकार की समानता तभी हो सकती है जब राष्ट्र में दृढ़ जनसत्तात्मक शासन हो।

गणतन्त्र को अच्छी तरह जानने के लिये इसके साथ लगे तीन शब्दों की परिभाषा जान लेना भी ज़रूरी है। ये तीन शब्द हैं—जनता, जनता की मालकियत ( people's sovereignty ) और शासन या सरकार ( Government )। डा० सन यात सेन ने इन तीनों शब्दों की परिभाषा यों की है—"आदमियों का एकत्रित और संगठित समूह 'जनता' कहलाता है। सम्पूर्ण राष्ट्र में व्यवस्था लाने तथा जनता को अनुशासन में रखने का अधिकार और प्रभुत्व ही 'मालकियत' है। जब 'जनता की मालकियत' कही जाती है तो उससे जनता के राजनैतिक प्रभुत्व का बोध होता है। संक्षेप में, शासन या सरकार जनता की चीज़ है जो जनता द्वारा सम्पूर्ण जनता के कामों को नियन्त्रित करती है। यह नियन्त्रित करने की प्रभुता ही राजनैतिक मालकियत है और जहाँ जनता शासन को नियन्त्रित करती है जनता की मालकियत कहलाती है। जनसत्तात्मक शासन में राष्ट्र का राजनैतिक प्रभुत्व जनता के हाथों में रहता है और जनता द्वारा चुने हुए लोग जनता से मालकियत का अधिकार पाकर जनता के कामों की देखभाल करते हैं।

गणतंत्र नामक चीज प्राचीन यूनान और रोम में भी थी परन्तु उस समय के गणतंत्र को जनता की मालकियत नहीं कह सकते हैं और वह आधुनिक गणतंत्र से भिन्न था। आधुनिक गणतंत्र का उदय आज से २०० वर्षों के अन्दर ही हुआ है। ( अगले अंक में )।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गढ़वाली चारण-काव्य में हिन्दूपति पादशाही

श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना एम० ए०, डिप० साइ०

गढ़वाल का चारण-लोक-साहित्य भी ऐतिहासिक घटनाओं और जन-सामान्य की सांस्कृतिक चेतनाओं के सम्मिश्रण से बना है और कठिन परिश्रम और छान बीन के द्वारा उसमें से इतिहास का सत्य निकाला जा सकता है। पूर्ण साधन न होने से इस समय केवल लोक-साहित्य में जैसा उसका स्वरूप मिलता है वैसा दे रहा हूँ—

जगदेव पँवार के पूर्वज उधनीगढ़ में उत्पन्न हुए थे। धारा नगरी में उन्होंने अपना राज्य बसाया। धारा नगरी में जगदेव पँवार तक की वंशावली इस प्रकार है—सत्य पँवार के पुत्र बिंदी पँवार हुए, बिंदी पँवार के सूर्यमल, सूर्यमल के मुंदड़चा देव और मुंदड़चा देव के जयसिंह और जगदेव दो पुत्र हुए।

चच भाट के घर कालिका रूपी लड़की जगदेव के समय में हुई। इस लड़की ने पाँच वर्ष से बारह वर्ष की उम्र में अपने पिता से कहा—अपना सिर मेरे खप्पर पर दे तब मैं 'हिन्दूपति पादशाह' तुम्हें बनाऊँगी। पिता ने कहा—अगर मैं क्षत्रिय होता तो पादशाह बनता, तू अगर पादशाह बनाती है तो जगदेव पँवार को बना।

एक दिन सोमवती पर्व को कालिका मणिकर्णिका घाट पर नहाने गई और मन में विचारा कि मुझे जो कोई आज दान देगा उसे ही 'हिन्दूपति पादशाही' दूँगी। चच भाट ने उसे धारा नगरी में सोनगोत्री पँवार जयसिंह के पास दान माँगने के लिए भेजा। कालिका ने भूषण वस्त्र, पहिन नोखार ( दो सौ अड़तीस मन ) का खप्पर उठाया और धारा नगरी पहुँचकर जयसिंह से दान माँगा। जयसिंह अन्न-धन-रत्न आदि देने लगा। कालिका ने कहा—मन का ( इच्छित ) दान दे। जयसिंह ने कहा—तेरे मन का इच्छित दान क्या है? कालिका ने उत्तर दिया—मन की बात नहीं जानते तो वचन दो कि मैं दूँगा। जयसिंह ने वचन दिया। तब कालिका बोली—सिर का दान दो और 'हिन्दूपति पादशाही' लो।

राजा जयसिंह ने बावन मुसद्दियों तथा अपनी रानी बहुरानियों से इस बारे में परामर्श किया। राणा, रौथाण, झेंकाण, फर्स्वाण, रौत, वर्त्वाल, कुँवर, बागड़ी, बुटोला, हँस्वाल, कंस्वाल, नौटयाल, डियरी बुघाणा, मेवड़ जग्गी, भंडारी, कँडारी, गुरदोला, कफोला, गैरोला, नुन्याल, थपल्याल, रतूड़ी, खंडूड़ी, नेगी, महर पँवार आदि राजा के मुसद्दी थे। मुसद्दियों ने कहा—यह किसी दुश्मन की भेजी हुई जान पड़ती है।

काली ने जयसिंह से कहा—मैं जगदेव के पास जाती तो वह दान देता। तू तो कायर है!

जयसिंह ने उत्तर दिया—अगर जगदेव इकगुना देगा तो मैं दुगुना दान दूँगा।

कालिका जगदेव के पास चल दी। जगदेव की सात बहुरानियाँ थीं। पहिली रानी फूलदेई ( देवी ) चावन्या ( चौहानी ) थी। राजा ने उसको विवाह मंडप से ही अपमानित कर महल के सब से निचले खंड में रख छोड़ा था। बाकी छै रानियों से राजा ने पूछा। सब ने आश्चर्य प्रकट करते हुए सिर न देने की सलाह दी। फिर राजा फूलदेई के पास गया। फूलदेई ने कहा—'धन्य भाग्य है। ज़रूर सिर दीजिये, इसके बराबर कोई काम नहीं है।'

फिर फूलदेई ने राजा को स्नान कराया। सुमेरु, रतनगिरी, दोनागिरी, नन्दागिरी पर्वतों का नक़शा राजा के सिर पर देखा ( उसकी कल्पना की आँखें देख गईं कि अगर ये सिर दे पाये तो निश्चय इन इन पर्वतों तक इनके राज्य की सीमा फैल जावेगी )। फिर पीताम्बर तथा सुवर्ण खिलअत पहिनाई और सोनमुखी खड्ग जगदेव के हाथ में दिया।

कालिका ने जगदेव का रूप देखा और राजाओं के कवित्त, श्लोक बनाये। जगदेव ने कवित्त सुन जोश में आ अपना सिर काट कालिका के खप्पर पर चढ़ा दिया।

कालिका जगदेव का सिर जयसिंह के पास लाई। और फिर दान मांगा कि इस सिर को देख कर दान दे। जयसिंह मुकर गया। बोला—मैं सिर का दान नहीं देता।

कालिका ने बैकुण्ठ ले जाकर देवताओं को जगदेव का सिर दिखलाया और पुकार की कि मेरा वचन पूरा होना चाहिए। विष्णु-लक्ष्मी आदि देवताओं ने वरदान दिया। काली ने सिर लाकर जगदेव के धड़ में जोड़ दिया। जगदेव जीवित हो कर पूछता है—क्या पूजा चाहती हो। कालिका बोली, जेठा भाई ( जयसिंह ) तो जिमदार ( जमीदार ) हुआ, छोटा ( तू ) राजा हुआ। मेरा खप्पर भर दे।

जगदेव ने कहा—छाग छत्री, असुर छत्री ( छत्री = खत्री ) की पूजा, भादों ( भाद्रपद ) की भद्रा, चैत (चैत्र) की चित्रा अष्टमी, नवखंड पृथ्वी, घर-घर में पूजा तेरी लगाऊँगा जब खप्पर तेरा भर जावेगा।

इसी दिन सोनगोत्री पँवारों के यहाँ इस प्रकार हिन्दूपति पादशाही पैदा हुई तथा उन्हें समृद्धि प्राप्त हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Ha

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# निग्रो जाति के अध्यात्म-गीत

कुमारी ज़ोरा नील हर्स्टन

निग्रो जाति के अध्यात्म गीत महज़ गीत नहीं हैं। वे एक विचार-धारा का प्रतिपादन करते हैं। आम तौर पर लोगों की यह धारणा है कि ग़ुलामी के ज़माने के अकथनीय अत्याचारों ने निग्रो को अध्यात्मवादी बना दिया है और उसके मन की भयंकर वेदना ने इन गीतों को जन्म दिया है। किन्तु यह बात नहीं है। ग्राम-गीतों की तरह ये अध्यात्म-गीत भी रोज़ बनते हैं और रोज़ विस्मृत हो जाते हैं। उनमें ख़ाली इतना ही अन्तर होता है कि इनमें से कुछ छप भी जाते हैं और उन्हें 'बैलड्स' ( ballads ) कहा जाता है।

ये अध्यात्म गीत बावजूद छप जाने के भी अधिक दिनों तक अपने मौलिक रूप में नहीं रहते। जिसकी ज़बान पर ये चढ़ जाते हैं वह इनमें काफ़ी परिवर्तन कर देता है। मिसाल के तौर पर प्रसिद्ध अध्यात्म-गीत 'The Dying Bed Maker' से बढ़कर कोई दूसरा गीत इतना सर्व प्रिय नहीं हुआ और उसे भी न्यू ओरलीन्स के बैपटिस्ट मिशन वालों ने बदलकर 'He's a Mind Regulator' कर दिया। यह कहना कि तमाम अध्यात्म-गीत वेदना गीत हैं ग़लत है। उनमें साधारण बातों से लेकर जन्म और मृत्यु तक की फ़िलासफ़ी की चर्चा रहती है।

इन गीतों की यदि कोई परिभाषा ही देनी हो तो हम यह कह सकते हैं कि ये निग्रो जाति के धार्मिक-गीत हैं, जिन्हें एक ख़ास समूह गाता है और जो समूह स्वर माधुर्य पर ज़ोर देने के बजाय अपनी भावनाओं को व्यक्त करने पर अधिक ज़ोर देता है। अमरीका में इन गीतों को 'स्पिरिचुअल्स' ( Spirituals ) कहा जाता है।

निग्रो अध्यात्म-गीतों के नाम से जिन गीतों का यूरोप के मुल्कों में प्रदर्शन किया जाता है वे वास्तविक अध्यात्म-गीत नहीं हैं। निग्रो अध्यात्म-गीत कभी भी अकेले नहीं गाये [illegible]

हैं। उनके स्वरों की एकता [illegible] एक तीक्ष्णता होती है और [illegible] यह तीक्ष्णता नहीं होती तो [illegible] सच्चे अध्यात्म-गीत नहीं [illegible] जाते। न किसी गिरोह को [illegible] गाने के लिये शिक्षा दी जा सकती [illegible] है। शिक्षा क्रम के साँचे [illegible] इनकी सच्चाई उसी तरह मुरझा [illegible] जाती है जिस तरह गरम पानी [illegible] में फूल। सच्चे अध्यात्म गीत [illegible] एक स्वरता के कोई नियम नहीं [illegible] होते। स्वर विरोध ही उनकी [illegible] विशेषता है। ट्रेण्ड संगीतज्ञ [illegible] गीतों पर क़ाबू नहीं पा सकते। [illegible] इन गीतों में ताल के कोई नियम [illegible] नहीं हैं। गवय्यों पर कोई प्रतिबन्ध [illegible] नहीं हैं। कड़ी को चाहे जिस जगह तोड़ देते हैं। गीत [illegible] बहुधा आलाप पर क़ायम रहता है और जब चाहे राग बदल [illegible] जाता है। संगीत के नियम की अपेक्षा उसमें मनो भाव [illegible] की छाया अधिक होती है। कोई भी गीत अगले रविवार [illegible] को आप उसी राग में न सुन पायेंगे।

सच्चे निग्रो अध्यात्म-गीत वे हैं जो एक समूह द्वारा [illegible] गाये जाएं कि जो समूह लय पैदा करने के बजाय भावनाओं [illegible] को व्यक्त करने में अधिक ज़ोर दे। निग्रो गायक कोमल [illegible] मध्यम और पंचम पर भी अधिक ध्यान नहीं देता। हर [illegible] सप्तक एक बारगी ही फूटता है और सारा समूह उसे गाने [illegible] लगता है। सबके अन्दर एक ही आन्तरिक भावना होती [illegible] है। हर व्यक्ति गीत के माध्यम द्वारा उस भावना को व्यक्त [illegible] करना चाहता है। गीत गाते हुये हर व्यक्ति अपने आप को [illegible] मगन हो जाता है। इस स्वरैक्यता और स्वर विरोध तथा [illegible] एकलयता और रागों की भिन्नता से जो खिचड़ी पकती है [illegible] उससे एक ऐसा मधुर समाँ बँधता है कि जो इन निर्जीव [illegible] गीतों को वास्तविक अध्यात्म गीत बनाता है। इन [illegible] अध्यात्म गीतों की जान ही तन्मयता और उन्माद में है।*

*भारतीय पाठक इन गीतों की कल्पना वैष्णव गीतों और सूफ़ियों की क़व्वाली से कर सकते हैं।

—सम्पादक

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तन्मयता ऐसी होती है कि आदमी अपने आपको भूल जाता है। देखने वालों को ऐसा लगता है कि गायक सोते हुये गा रहे हैं। तन्मयता जब अपने शिखर पर पहुँच जाती है तो मुँह से शब्द सार्थक अर्थ पहन कर नहीं निकलते बल्कि अस्फुट ध्वनि मात्र रह जाते हैं। जब भक्ति के गहन समुद्र में 'ख़ुदी' विलीन हो जाती है तो शब्दों का अधिक मूल्य नहीं रह जाता।

निग्रो की ज़बान से निकल कर अङ्गरेज़ी भाषा में एक लचक आ जाती है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह सुबोध नहीं रह जाती। अपने विस्तार में भी शब्द ठीक वही अर्थ देता है जो साधारण शब्द का होता है केवल इसमें ज़रा संगीत की पुट भर जाती है। जैसे निग्रो को यदि 'दुनिया की सीमा' कहना हो तो वह कहेगा—'गतिमान दुनिया की कोलाहल पूर्ण सीमा' या 'अनन्त सीमा' को वह कहेगा—'शून्य की निराकार हड्डियाँ।'

चाहे निग्रो का सङ्गीत हो या साधारण बात चीत, वह साँस टूटने पर विराम नहीं लेता। ज़ोर से बीच में साँस लेना भी उसके संगीत का एक अङ्ग है और अपनी साँस को भी वह अलङ्कार पूर्ण बनाने का प्रयत्न करता है। यूरोपीय सङ्गीत तब अच्छा समझा जाता है कि जब हर अक्षर हवा के परदे पर तैरता हुआ दिखाई दे और अक्षरों को जोड़ने वाली कोई क्रिया न मालूम पड़े। वे संगीत के बीच में साँस लेने की क्रिया को हर तरह छिपाने की कोशिश करते हैं जब कि निग्रो गीत संगीत और संगीतज्ञ दोनों को अलंकृत करने की चेष्टा करता है। मैं इसे एक मिसाल देकर समझाने की कोशिश करूँगी—

एक गोरे आदमी ने एक मकान बनवाया। उसने राज को हिदायत दी कि—मकान पर इस तरह का पलस्तर करो कि ईंटों या तख़्तों के कोई जोड़ न दिखाई दें। पलस्तर चढ़ जाने पर उसने भीतर दीवाल पर सुन्दर काग़ज़ चढ़वा दिया और बाहर से उस पर सुफ़ैदी करवा दी। एक निग्रो ने भी अपने लिये मकान बनवाया किन्तु उसने दीवालों पर बजाय पलस्तर करवाने के ईंटों के जोड़ों और तख़्तों के सिरों पर आकृति रेखायें बनवा दीं और दोनों अपने अपने मकानों में जाकर सुख से रहने लगे।

निग्रो प्रचारक अपने व्याख्यान के बीच बीच में जो 'हा' का उच्चारण करता है वह उसके साँस लेने की क्रिया है। साँस जब समाप्त होने लगती है तो वह शब्दों का बोझ नहीं उठा पाती। ऐसे मौके पर निग्रो साँस को क्षीण हो कर समाप्त नहीं होने देता। वह ज़ोर से 'हा' कह कर बाक़ी साँस को निकाल देता है और लम्बा 'ओह' करके वह फिर फेफड़े भर साँस ले लेता है।

निग्रो की अपनी ज़ाहिरा अनियमित प्रार्थना में भी नियमों का एक विधान है। परम्परागत विधानों में किसी भी व्यक्ति को नित नई नवीनता लाने का अधिकार है किन्तु उस विधान को यदि बिलकुल हटा दिया जाय तो निग्रो जनता को बहुत क्षोभ होगा। निग्रो जनता नवीनता की बहुत क़ायल है। इसका अर्थ यह हुआ कि वह हर धार्मिक नवीनता को कला का अङ्ग समझती है। अपनी सुन्दरता और कलात्मकता में निग्रो प्रार्थना गीत किसी तरह 'तौरेत' के गीतों से कम नहीं हैं। ईश्वर के नाम-रूपों के लिये निग्रो के पास अगणित शब्द हैं।

निग्रो की प्रार्थना के शुरू में दो-एक प्रसिद्ध गीत गाये जाते हैं जिनमें यह मुख्य है—"O! that I knew a secret place" इस गीत के बाद थोड़ी देर ख़ामोशी रहती है। फिर ईश्वर की प्रार्थना शुरू होती है। बीच बीच में प्रार्थना कई जगह तालगति के विराम के साथ साथ रुकती है। कलाकार प्रार्थना को धरती, आकाश और जल के ज़र्रे ज़र्रे से सजा देता है। श्रोता प्रार्थना का एक एक शब्द ध्यान से सुनते हैं। प्रार्थना के भाव जब शिखर से धरातल पर आते हैं तब श्रोता भी उसमें शरीक हो जाते हैं। निग्रो-प्रार्थना में सामूहिक और व्यक्तिगत पहलू इतने साथ साथ चलते हैं और इतने ज़ोरदार रहते हैं कि उसकी विषमताओं में भी एक सामञ्जस्य पैदा हो जाता है।

[ वर्षों के बाद हम कुमारी ज़ोरा नील हर्स्टन का यह लेख छाप रहे हैं। फ़रवरी १९४२ में उनका अन्तिम लेख 'विश्ववाणी' में छपा था जिस पर अक्तूबर सन् १९४२ में अमरीकन इनफ़ार्मेशन अफ़सर ने नई दिल्ली में अपनी मुलाक़ात के सिलसिले में हमसे शिकायत की थी कि निग्रो जाति की समस्या अमरीकन जनता की घरेलू समस्या है और उसमें भारतीयों को नहीं पड़ना चाहिये। हमने बड़े अदब से उनसे उस समय भी कहा था कि 'विश्ववाणी' संसार की समस्त दलित जातियों के मौलिक अधिकारों की माँग को अपनी मांग समझती है और निग्रो जाति राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से संसार की सब से अधिक दलित और सताई हुई जाति है और इस दृष्टि से उसकी समस्या को संसार के सभी आज़ादी पसन्द लोगों को अपनी समस्या समझना चाहिये। ]

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पुस्तक परिचय

**अच्छी हिन्दी**—लेखक श्री रामचन्द्र वर्मा, प्रकाशक, साहित्यरत्नमाला कार्यालय, बनारस। मूल्य २ रुपया, पृष्ठ संख्या २००।

विकास काल में जिस प्रकार पौधों को सुन्दर, एवं सुगठित वृक्ष बनाने के लिये उनकी समुचित काट-छाँट और उनके अभिसिंचन की आवश्यकता है उसी प्रकार विकसित होती हुई भाषा को सुडौल और सुन्दर बनाने के लिये उसकी निरंतर, देखभाल, काट छाँट, और उसके संस्कार एवं परिमार्जन की आवश्यकता होती है। परस्पर सांस्कृतिक संघर्ष के समय तो इसकी और भी ज़रूरत है। यदि इसकी उपेक्षा की गई तो हमारी भाषा कुरूप और दूषित हो जावेगी और न केवल यह हमारे लिये अत्यन्त लज्जा की बात होगी प्रत्युत वह भाषा हमारे सांस्कृतिक जीवन को आगे बढ़ाने में नितान्त अक्षम साबित होगी और हमें विवश हो दूसरों के आश्रित होना पड़ेगा। भाषा का राष्ट्र के सांस्कृतिक और सभ्य जीवन से निकट सम्बन्ध है और यदि हम आगे बढ़ना चाहते हैं तो हमें अपनी भाषा का पालन-पोषण और देख-रेख उचित रूप से सतर्क होकर करनी होगी।

अब तक हिन्दी-भाषा के जानने वालों का ध्यान इस ओर बिल्कुल नहीं था और जिसने जो कुछ भी लिख दिया वही हिन्दी हो गई। परिणाम स्वरूप बहुत से बेतुके शब्दों, मुहाविरों, क्रियाओं—और उनके ग़लत प्रयोगों की हमारे साहित्य में बाढ़ सी आ गई है। पहली बार श्री रामचन्द्र वर्मा ने पुस्तक लिखकर हमारा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है। लेखक ने बड़ी ही रोचक शैली में हमारी तमाम कमियों, और कमज़ोरियों की ओर इशारा किया है। इस दृष्टिकोण से यह पुस्तक संकेत रूप में हमारे सामने आई है। साथ ही साथ हिन्दी-साहित्य के सम्मुख एक याचना—एक माँग लेकर आई है और वह है कि हम अपनी भाषा की रक्षा और अभिवृद्धि के लिए चेष्ट एवं सतर्क हों।

इसके प्रथम प्रकरण में भाषा की परिभाषा और उसके महत्व का गवेषणा पूर्ण विवेचन है। दूसरे प्रकरण में उत्तम रचना के गूढ़ सिद्धान्तों का सरल स्पष्टीकरण है जो नये लेखकों, शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिये विशेष रूप से उपयोगी है। तीसरे, चौथे और पाँचवें प्रकरण में शब्द की विविध शक्तियों का विश्लेषण है। लेखक ने उपयुक्त उदाहरणों से यह भलीभाँति समझाया है कि शब्दों का उचित स्थान तथा उचित प्रकार से प्रयोग किस [illegible] आवश्यक है। अस्पष्ट, शिथिल और जटिल शैली के उदाहरण देकर लेखक ने हमारी दैनिक छोटी किन्तु भद्दी भूलें सरलता पूर्वक समझाई हैं; जैसेः—आपका कृपा पत्र दस्तयाब हुआ—'एकत्र' के बजाय 'एकत्रित' का प्रयोग। ऐसे खटकने वाले समस्त पदों का प्रयोग जैसे 'शीशा-विशेषज्ञ' 'सांध्य-पोशाक' और ऐसी भूलें जैसे २ रा, ४ था इत्यादि।

अगले छठवें और सातवें प्रकरण में क्रियाओं, मुहाविरों, लिंग और वचन का अच्छा निरूपण है। अंग्रेज़ी मुहाविरों का हिन्दी में भद्दा अनुवाद करने वालों के लिये, हिन्दी-उर्दू के शब्दों और क्रियाओं को जोड़कर ग़लत मुहाविरे बनाने और उनका प्रयोग करने वालों के लिये ये प्रकरण निस्सन्देह लाभप्रद होंगे।

'छाया कलुषित भाषा' और 'अनुवाद की भूलें'—ये प्रकरण हिन्दी की प्रकृति से अनभिज्ञ आज कल के उन अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोगों के लिये ज़रूरी हैं जो अनुवाद से काम चलाकर लेखक बन बैठते हैं। परिशिष्ट में 'हिन्दी की प्रकृति' का विवेचन कर लेखक ने भाषा के जीवन की रक्षा की ओर संकेत किया है।

एक बात कह देना यहाँ असंगत न होगा। पुस्तक में लेखक के विचार मौलिक हैं और व्यक्तिगत अनुभव तथा रुचि पर निर्भर हैं। कई स्थानों पर लेखक ने जिन शब्दों, मुहाविरों और क्रियाओं के प्रयोग उचित अथवा अनुचित बताये हैं वे सम्भवतः सर्वग्राह्य न होंगे। इसलिये पाठकों को चाहिये कि वे सावधानी से पुस्तक पढ़ें और किसी निर्णय पर पहुँचने के पहले कई बार विचार कर लें। जिस दृष्टिकोण से लेखक ने पुस्तक लिखी है वह भी आलोचनात्मक रूप से विचार करने योग्य है। हिन्दी-उर्दू के शब्दों और क्रियाओं के सम्मिश्रण से नये व्यंजनापूर्ण मुहावरों का बनना या पुरानों को नया रूप मिलना यह सब भाषा की प्रगति का द्योतक है। हाँ, एक दम ऊटपटांग शब्द, क्रियाएं या मुहाविरे नहीं गढ़ने चाहियें और इसकी सीमा निर्धारित करना हिन्दी के उच्चकोटि के साहित्यज्ञों का कार्य है। बाहरी शब्द कहाँ तक हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध हैं इसका निश्चय करना अत्यन्त कठिन है और सम्भवतः समय ही इसका सब से उत्तम निर्णायक होगा। अगर बाहरी शब्द कालान्तर में हमारी भाषा में खप जाँय तो वे प्रकृति के अनुकूल ही हैं और उन्हें ज़बरदस्ती निकालने का प्रयास ठीक नहीं। कुछ भी हो व्यक्तिगत रुचि एवं अनुभव के आधार पर भाषा की प्रकृति का निरूपण सर्वथा ग्राह्य नहीं हो सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लेखकों के लिये विशेष रूप से नये नये लेखकों के लिये इसका अध्ययन आवश्यक है। शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिये तो यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

—देवेन्द्र एम० ए०

**कांग्रेस और कम्युनिस्ट**—लेखक श्री पूरनचन्द्र जोशी, प्रकाशक—जन प्रकाशन गृह, बम्बई। मूल्य ६ आने।

राजनीति में यदि कोई व्यक्ति या दल प्रत्येक बढ़ती हुई शक्ति के साथ सगाई करने और रिश्ता जोड़ने की कामना और चेष्टा करता है, हवा का रुख़ देख कर अपनी दिशा बदल देता है तो उसे साधारण बोलचाल की भाषा में 'अवसरवादी' कहते हैं। लेकिन यदि हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी यही करे तो उसे 'द्वंदात्मकवादी' कहा जावेगा। यदि कोई सफ़ेद को स्याह और स्याह को सफ़ेद कहे, इतिहास के मुँह पर कालिख पोतने की कोशिश करे तो उसे कहते हैं—'झूठा', लेकिन यदि कम्युनिस्ट पार्टी यही करे तो कहा जाएगा कि यह उसका अपना 'विशेष दृष्टिकोण' है। इस दृष्टिकोण का सब से बड़ा गुण यह है कि यह अपने आपको सत्य के प्रति हर प्रकार के दायित्व से मुक्त कर देता है। इसका दूसरा गुण यह है कि यह अपने को विवाद का एक अद्वितीय 'टेकनीक' का प्रयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता देता है। अर्थात, अपने विपक्षी के मुंह में ठीक वैसे ही प्रश्न रख देता है जिनका उत्तर आसानी से दिया जा सकता है, और उन प्रश्नों से कतरा जाता है जिन्हें वह सचमुच पूछना चाहता है, या फिर पकड़ जाने पर यह कह कर पल्ला छुड़ाना चाहता है कि वे प्रश्न बिलकुल महत्व नहीं रखते। यह 'दृष्टिकोण' यह भी सिखाता है कि किस तरह इतिहास की घटनाओं को ग़लत बयान किया जा सकता है और जब बात जमती हुई न दिखाई दे तो कह दिया जाता है कि पुराने मुर्दे उखाड़ने से क्या लाभ? इस दृष्टिकोण के करिश्मे प्रस्तुत पुस्तिका में पर्याप्त से अधिक मात्रा में देखने को मिलेंगे।

इस पुस्तक में कांग्रेस से कम्युनिस्टों को पृथक रखने की नीति को बदलने और कम्यूनिस्ट पार्टी के साथ ऐक्य स्थापित करने की अपील की गई है। श्री पूरनचंद्र जोशी, जो कम्युनिस्ट पार्टी के सब से पुराने सदस्यों में से एक हैं और एक लम्बे अर्से से उसके प्रधान-मंत्री हैं, 'बहुत आदर और नम्रता के साथ, अपने घुटने टेककर' कांग्रेस जनों से कुछ इस प्रकार 'निवेदन' करते हैं—'तुम बुद्धिहीन हो; किसी सवाल पर तुम्हारा दिमाग़ साफ़ नहीं है, तुम किसी समस्या पर ठीक ठीक सोच नहीं सकते। तुमको मुफ़्त में हम रास्ता दिखाने को तैयार हैं। तुम ignorant हो। न कांग्रेस का इतिहास जानते हो, न कम्युनिस्ट पार्टी का; नहीं तो तुम जानते होते कि कम्युनिस्ट पार्टी सदा से मशाल लेकर आगे आगे चली है और कांग्रेस ने उसके उजाले में अपना रास्ता देखा है। तुम विवेकहीन हो; अपना हित अहित न समझकर जो करते हो आवेश में करते हो—जिसका परिणाम यह होता है कि दो साल तक ठोकरें खाने के बाद फिर उसी जगह पहुँचते हो जहां कम्युनिस्ट पार्टी अटल खड़ी हुई है। तुम मूर्ख हो, देख नहीं सकते कि कांग्रेस एक बार सोशलिस्टों के हाथों की कठपुतली बनकर बर्बर जापानी आक्रमणकारियों का खेल खेलने जा रही थी और आज फिर उन्हीं के भुलावे में आकर बृटिश साम्राज्यशाही का खेल खेलने जा रही है। कांग्रेस की परंपरा तुम से अधिक अच्छी तरह हम जानते हैं और हमारे हाथ में वह अधिक सुरक्षित है। वर्तमान युद्ध के बारे में···लेकिन उस पर बहस क्या करना; उस पर तो इस 'प्रकार विचार करना है, जिससे दोनो एक संयुक्त दृष्टिकोण पर पहुँचें'। और अगस्त १९४२—कौन कह सकता है कि यदि तुम जेल के बाहर होते तो हमारी ही तरह कांग्रेस की पीठ में छुरी न भोंक देते? और फिर हमने तो अपने इरादे की चेतावनी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में ही देदी थी और उस इरादे को मौलाना आज़ाद ने सज्जाद ज़हीर को एकान्त में बुलाकर और महात्मा गांधी ने खुले अधिवेशन में सराहा था। कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी का मुक़ाबिला करके देख लो—जहां कांग्रेस की केवल एक विशेषता है वहां कम्युनिस्ट पार्टी की पांच; ऐसी हालत में यदि हमसे ऐक्य स्थापित नहीं करते तो तुम्हारा सर्वनाश अनिवार्य है। लेकिन हमारे साथ चाहे जो करो या न करो, कांग्रेस सोशलिस्टों को कांग्रेस से ज़रूर निकाल बाहर करो, ये जापानी और बृटिश साम्राज्यवाद दोनों ही के एजेण्ट हैं। और एक बात याद रखो—किसानों और मज़दूरों में हमारा एकाधिपत्य है, इन क्षेत्रों में क़दम रखने की जुरअत न करना; हम वहां तुम्हारे पैर नहीं जमने देंगे और तुम्हें मुंहकी खानी पड़ेगी।' यह है सारी पुस्तक का तर्ज़!

पुस्तक की छपाई और गेट अप देखते हुये छः आने मूल्य कम है। वर्तमान काग़ज़ की तंगी की कठिनाई से अपने को बिलकुल अछूता रखने के लिए जन-प्रकाशन गृह बधाई का पात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार

## हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी

हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी के उद्देश्यों के प्रति 'विश्ववाणी' के पाठकों ने आशा से अधिक दिलचस्पी और हमदर्दी दिखाई है। सोसायटी के कार्य क्रम के सम्बन्ध में जिज्ञासा से भरे हुये चारों ओर से अनेकों पत्र हमारे पास आ रहे हैं। सोसायटी का दफ़्तर संगठित हो रहा है और शीघ्र ही लोगों के पास मेम्बरी के फ़ार्म आदि पहुँच जायेंगे।

श्री सेठ रामकृष्ण जी डालमिया, सोसायटी के प्रारम्भिक खर्चों के लिये, अब तक ढाई हज़ार रुपये का दान दे चुके हैं और आगे भी २५०) रु० महीना देते रहने का उन्होंने आश्वासन दिया है। सोसायटी इसके लिये उनकी अत्यन्त कृतज्ञ है।

आगे का कार्यक्रम निश्चित करने के लिये सोसायटी की गवर्निङ्ग बाडी की मीटिङ्ग २५ मार्च को ३ बजे शाम को सोसायटी के प्रेज़ीडेण्ट राइट आनरेबुल सर तेज बहादुर सप्रू के मकान पर होगी और उसी दिन ५ बजे शाम को उसी जगह जनरल बाडी की मीटिङ्ग होगी।

अनेक सज्जनों ने सोसायटी की सालाना मेम्बरी के ३) रु० हमारे पास भेज दिये हैं। ये और अन्य सज्जन जो भी सोसायटी के सदस्य बनना चाहें हम स लिख कर मेम्बरी के फ़ार्म मँगालें ताकि २५ मार्च की गवर्निङ्ग बाडी की बैठक में मेम्बरी के लिये उनके नामों पर विचार हो सके।

सोसायटी शीघ्र ही एक रिसर्च विभाग खोलने और सांस्कृतिक एकता सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित करने का आयोजन कर रही है। भारत सरकार ने इस काम के लिये सोसायटी को दो टन काग़ज़ का कोटा भी दे दिया है। जिसके लिये सोसायटी भारत सरकार की कृतज्ञ है।

हिन्दी पाठकों के सामने 'विश्ववाणी' सोसायटी के सारे कार्यक्रम को बराबर रखती रहेगी। सोसायटी के काम को और अधिक व्यापक बनाने के लिये हम 'विश्ववाणी' का एक उर्दू संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित करने जा रहे हैं। भारत सरकार ने विशेषाज्ञा द्वारा हमें इसकी अनुमति भी दे दी है।

सोसायटी के सांस्कृतिक एकता के महान उद्देश्यों [illegible] विचारकों, कवियों, सम्पादकों, कलाकारों, प्रचारकों आदि से हमारी प्रार्थना है कि इस सम्बन्ध में वे अपने सुझाव २५ मार्च से पहले—मन्त्री, हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी, १४२, साउथ मलाका, इलाहाबाद के पते से भेजने की कृपा करें ताकि जनरल बाडी की मीटिङ्ग में हम उन सब सुझावों पर विचार कर सकें।

## खेती की पैदावार बढ़ाने की योजना

भारत सरकार अरसे से युद्धोत्तर योजनाओं का जो स्वांग रच रही है उसमें खेती की पैदावार बढ़ाने की योजना भी शामिल है। देश के पूँजीपतियों ने भी 'बम्बई योजना' नाम से भारत की औद्योगिक उन्नति के लिये जो युद्धोत्तर योजना बनाई है उसमें भी उन्होंने खेती की पैदावार बढ़ाने पर विचार किया है। इन पूँजीपतियों की राय में खेती की पैदावार को १३० फ़ीसदी बढ़ाने का लक्ष्य सामने रखना चाहिये। ये लोग लिखते हैं—"जानबूझ कर यह लक्ष्य कम रखा गया है चूँकि हमारा यह विचार है कि योजना के शुरू के वर्षों में भारत को खेती की पैदावार विदेशों में भेजने की आकांक्षा नहीं करनी चाहिये बल्कि उसे केवल इतनी पैदावार बढ़ानी चाहिये जिससे वह अपनी आबादी के लिये भर पेट अनाज उत्पन्न कर सके।" इन पूँजीपतियों के अनुमान से इस योजना में २५० करोड़ रुपये का ख़र्च पड़ेगा। भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में जो जाँच कमीशन मुक़र्रर किया था उसके संयोजक डाक्टर बर्न्स ने भी काफ़ी आंकड़े जमा करते हुये लिखा है—"यह स्पष्ट है कि कुल भारत में मिलाकर और अलग अलग प्रान्तों की आबादी जितने अधिक अनुपात से बढ़ रही है उस अनुपात से खेती की पैदावार नहीं बढ़ रही।" किन्तु डाक्टर बर्न्स जिस मिक़दार में अनाज की पैदावार बढ़ाने के सुझाव पेश करते हैं वे भी किसानों की हालत को बहुत बेहतर बनाने में मदद नहीं देते। उनकी राय में चावल की पैदावार ३० फ़ीसदी, गेहूँ की ५० फ़ीसदी और ज्वार की २० फ़ीसदी बढ़ाने से काम चल जायगा। वर्षों से प्रान्तीय सरकारें—अनाज की पैदावार बढ़ाओ—के नारे बुलन्द कर रही हैं किन्तु इन नारों का बिलकुल नगण्य सा असर हुआ है। अमरीका के हाट स्प्रिंग्ज़ में जो अन्तर्राष्ट्रीय अनाज सम्मेलन हुआ था वहां की बहसों के तर्ज़ को देखते हुये यह साफ़ मालूम हो रहा है कि युद्ध के दौरान में भारत को जिस भयंकर अन्न संकट का सामना करना पड़ा है युद्ध के बाद यह

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वैसा नहीं तो उससे कुछ कम संकट का सामना ज़रूर करना पड़ेगा।

डाक्टर बर्न्स ने इस सम्बन्ध में तीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है—(१) जनता को पौष्टिक खाना मिले और देश के उद्योग धन्धों को कच्चा माल, (२) किसानों की ग़रीबी दूर हो और (३) ज़मीन का उपजाऊपन बढ़ाया जाय।

जनता को पौष्टिक भोजन मिले इसके लिये न केवल अनाज की पैदावार बढ़ाने की ओर ही ध्यान देना होगा, बल्कि, दूध, घी, तरकारियां, फल वग़ैरह की भी पैदावार बढ़ानी होगी। आज तो ये पौष्टिक चीज़ें केवल अमीरों की ही भोज्य पदार्थ हैं। इनकी प्राप्ति ग़रीब से ग़रीब जनता के लिये भी आसान होनी चाहिये। किसानों की ग़रीबी को दूर करने के लिये जिन बातों को बुनियादी रूप में करने की ज़रूरत है, वे हैं—(१) खेती के क़ानूनों में मौलिक परिवर्तन। अकेले युक्त प्रान्त में सन् १९४३-४४ में लगभग ५४,००० किसान टेनेन्सी एक्ट की दफ़ा १७१ के अनुसार बेदख़ल कर दिये गये। जब तक किसानों के अधिकारों में कोई स्थायित्व नहीं आता तब तक किसानों की हालत अच्छी नहीं हो सकती। उनके सर पर जो निरन्तर क़ानून की तलवार लटकती रहती है, उसे हटाना नितान्त आवश्यक है। (२) किसानों के ऊपर जो ज़बर्दस्त क़र्ज़ा है कि जिसके सूद की अदायगी में उनकी ५५ फ़ी सदी पैदावार निकल जाती है वह क़ानून द्वारा फ़ौरन ख़त्म कर देना चाहिये। (३) किसानों के अन्दर सहयोग समितियाँ क़ायम करके सम्मिलित खेती का रिवाज डालना चाहिये। अब रहा ज़मीन को सुधार कर पैदावार बढ़ाने की योजना। यह दो तरह से हो सकती है—(१) अच्छी से अच्छी खाद बनाई जाय और फ़र्टिलाइज़र पैदा करने के लिये कारख़ाने खोले जांय और (२) पुराने हल बक्खरों की जगह जोतने, बोने, सींचने और काटने के लिये मशीनें काम में लाई जांय। किन्तु मशीनें इस्तेमाल करने के साथ साथ हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि खेती के धन्धे से अधिक से अधिक आदमी बेकार हो जांयगे जिनके लिये हमें ग्रामोद्योगों की नई और विस्तृत योजना बनानी पड़ेगी।

किन्तु इस सारी योजना को सफल बना सकना सर जोगेन्द्र सिंह, डा० खरे और सर सुल्तान अहमद के हाथ में नहीं है, उसे तो जनता के सच्चे प्रतिनिधि ही सफल बना सकते हैं।

## रचनात्मक कार्यक्रम और सरकारी रुख़

इधर पिछले कई महीनों से सारे देश के कांग्रेस कार्यकर्त्ता गान्धी जी के आदेशों और आदर्शों के मुताबिक़ रचनात्मक कार्यक्रम की १५ धाराओं को अमल में लाने के प्रयत्न में लगे हुये हैं; किन्तु सरकार का जो रवय्या है उससे यह ज़ाहिर हो रहा है कि वह रचनात्मक कार्यक्रम में हर तरह के अड़ङ्गे डालने पर उतारू है। बिहार, युक्त प्रान्त और उड़ीसा में जिस तरह प्रमुख नेताओं को गिरफ़्तार या नज़रबन्द किया गया है उससे गान्धी जी अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे हैं। अपने १७ फ़रवरी के वक्तव्य में उन्होंने कहा है—"बिहार में कांग्रेस जन मेरे बनाये हुये और मेरे सुझाये हुये तरीक़ों से १५ धाराओं के रचनात्मक कार्यक्रम को अमल में लाने के निश्चित उपाय तजवीज़ कर रहे थे कि उनमें से प्रमुख आदमी पकड़ लिये गये। इस कार्यक्रम में आज कल के अर्थों में कोई राजनैतिक बू नहीं है। मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि यदि हिन्दुस्तान में इसे सार्वजनिक रूप से स्वीकार करके इस पर अमल शुरू कर दिया जाय तो बिना अहिंसात्मक असहयोग या व्यवस्थापिका सभाओं के कार्यक्रम के हम पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर सकते हैं। इन दोनों तरह के कार्यक्रमों की फिर कोई ज़रूरत ही न रह जायगी। हिन्दुस्तान में रहकर शासन करने में अङ्गरेज़ों को फिर कोई फ़ायदा न दिखाई देगा। यदि वे चाहें तो यहाँ सम्पूर्ण नागरिक की हैसियत से रह सकते हैं। सन् १९४२ की भाषा में शासक की हैसियत से उन्हें हिन्दुस्तान छोड़ना होगा क्योंकि उनके सैनिकों को कोई काम ही न रह जायगा और उनके बड़े बड़े उद्योग धन्धे बेकार हो जांयगे। वह दिन मुमकिन है न आये किन्तु एक अहिंसात्मक सैनिक को इस स्वप्न को नित्य प्रति पूरा करने की कोशिश करनी चाहिये और यदि इस उद्योग में उसके बाधा आये तो वह अहिंसात्मक सत्याग्रह कर सकता है। किन्तु इस बात को मैंने बहुत साफ़ साफ़ कह दिया है कि आज कल की हालतों में सामूहिक सत्याग्रह करने की कोई योजना नहीं है और मैं जानता हूँ सारे देश के कांग्रेस जन मेरी ही सलाह पर अमल कर रहे हैं।"

रचनात्मक कार्यक्रम के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुये गान्धी जी कहते हैं—"निस्सन्देह रचनात्मक कार्यक्रम का उद्देश्य राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वाधीनता है। एक बड़े राष्ट्र की ज़िन्दगी में रचनात्मक कार्यक्रम नैतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और सर्वाङ्गीण क्रान्ति है कि जिसके पूरा होने के बाद जात-पाँत, छुआ छूत और इसी तरह की दूसरी दक़ियानूसी चीज़ें ग़ायब हो जायगी। हिन्दू और मुसलमानों के मतभेद एक बीती हुई बात बन जायँगे। अङ्गरेज़ों या यूरोपियनों के प्रति दुश्मनी को लोग बिलकुल भूल जायँगे और भारत की जनता मात्र के साथ राजा और पूंजीपति पूरी मित्रता के साथ रहने लगेंगे और जो दौलत उनके पास होगी उस पर वे जनता के हित में क़ानूनी और सच्चे ट्रस्टी होंगे। क्या इस कोशिश में कोई बुराई है? सरकार की, जो भारत की आज़ादी का दम भरती है, क्या हक़ीकत रह जायगी यदि वह केवल असम्भव शर्तों की बिना पर ही मेरे बताये हुये रचनात्मक कार्यक्रम को अमल में लाने देगी? जो ग़ैर मामूली ताक़त उसके पास है क्या उससे उसे सन्तोष नहीं है?

अपने इस बयान में सरकार के आजकल के निरंकुश शासन की चर्चा करते हुये गान्धी जी लिखते हैं कि—"क्या वह मशहूर से मशहूर और कम मशहूर लोगों को अपनी क़ैद में इसलिये रखेगी कि ये लोग देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फिर स्वाधीनता का प्रचार और उसके परिणाम रूप अहिंसात्मक कार्य करने लगेंगे? क्या वह मुक्त लोगों को फिर से उसी क्षण गिरफ़्तार कर लेगी जिस क्षण उन्होंने एक स्वाधीन आदमी की हैसियत से बोलना या अमल करना शुरू किया?" क़ैदियों के ऊपर जेल में जो असहनीय अत्याचार हो रहे हैं उन्हें रोकने की भी गान्धी जी ने विनम्र अपील की है। वक्तव्य को, गान्धी जी, इन शब्दों के साथ समाप्त करते हैं—"कहने को मैं बहुत कुछ कह सकता हूँ किन्तु फ़िलहाल अभी मैं इससे अधिक न कहूँगा।"

## कस्तूर बा फण्ड की कार्य-योजना

गत १५ फ़रवरी को वर्धा में कस्तूर बा मेमोरियल फण्ड की प्रान्तीय कमेटियों के मन्त्रियों और दूसरे कार्य कर्ताओं का एक सम्मेलन फण्ड के अन्तर्गत कार्य-योजना पर विचार करने के लिये हुआ था। इस सम्मेलन में बोलते हुये गान्धी जी ने कहा कि—"काम को आगे बढ़ाने के लिये मैं बेचैन हूँ किन्तु मैं इस बात की इजाज़त न दूंगा कि फण्ड को उड़ा दिया जाय या फ़िज़ूल ख़र्च किया जाय। यह फण्ड एक सीधी-सादी अपढ़ स्त्री के नाम पर इकट्ठा किया गया है। उसकी स्मृति में जो भी काम किया जाय वह सौ फ़ी सदी ईमानदारी का होना चाहिये।...जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं ट्रस्ट के अन्तर्गत बनी हुई प्रान्तीय कमेटियों से पुरुषों को बिलकुल अलग करके उनकी जगह स्त्रियों को भरना चाहूंगा किन्तु मैं स्त्रियों को भी उस समय तक न लूँगा जब तक कि वे यदि पुरुषों से अधिक नहीं तो कम से कम उतनी ही योग्य न हों।"

आगे चलकर गान्धी जी ने कहा कि—"यदि हिन्दुस्तान के सात लाख गांवों में यह १ करोड़ २४ लाख रुपया ख़र्च किया जाय तो वह समुद्र में एक बूँद की तरह होगा। हिन्दुस्तान इस युद्ध में रोज़ एक करोड़ रुपया ख़र्च कर रहा है किन्तु सब की नज़रों में औरतों और बच्चों की सेवा में ख़र्च करने के लिये यह १ करोड़ २४ लाख की रक़म ही बहुत अधिक दिखाई दे रही है।"

गान्धी जी ने ख़र्च को तीन मदों के अन्दर बांटा है—(१) मेडिकल रिलीफ़, (२) स्त्रियों की आर्थिक उन्नति और (३) उनमें शिक्षा का प्रचार। जहाँ तक आर्थिक दुरावस्था का प्रश्न है, गान्धी जी ने कहा—"हमें खादी और ग्रामोद्योग के ज़रिये इनकी आर्थिक स्थिति सुधारनी होगी। आज हमारे बीच स्त्रियों का मुख्य पेशा बच्चे पैदा करना और अपने पति और घर की देखभाल करना है। यह बिलकुल शर्मनाक है। न केवल स्त्रियों को घरेलू गुलामी की सज़ा दे दी गई है बल्कि जब वह मज़दूर की हैसियत से रोज़ी कमाने जाती है तो चाहे वह मर्दों के बराबर काम क्यों न करे उसे कम मज़दूरी दी जाती है। बच्चों को भी कम उम्र में मज़दूरी करने भेज दिया जाता है। इनमें से कुछ मर्दों से भी ज़्यादा परिश्रम का काम करती हैं पर उन्हें औरतों से भी कम मज़दूरी मिलती है। इस तरह की चीज़ों का हमें अन्त कर देना चाहिये।"

एक सज्जन के प्रश्न करने पर, कि सिन्ध में कार्य कर्त्ताओं का गांवों में काम करना ख़तरनाक है, गान्धी जी ने जवाब दिया—"जब तक स्त्रियाँ सामने नहीं आतीं तब तक उनकी जगह, निस्सन्देह, मर्दों को ही काम करना पड़ेगा। किन्तु मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि आपको ऐसी स्त्रियाँ मिलेंगी जो गाँव में जाकर काम करने को तय्यार होंगी। कम से कम मुसलिम औरतों को सिन्ध में काम करने से नहीं डरना चाहिये। ज़्यादा से ज़्यादा डर एक स्त्री के लिये यही हो सकता है कि उसे अपनी जान गंवानी पड़े। मुझे विश्वास है कि ऐसी स्त्री को कोई नहीं छेड़ सकता जिसमें कूवते इरादगी है, आत्म विश्वास है और जो मरने से नहीं डरती। मैं एक जवान मिशनरी लड़की को जानता हूँ जो अकेली अफ्रीका के जंगलों में निग्रो लोगों के बीच में जा रही। उसके दिल में बिलकुल डर नहीं था और किसी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उस पर कभी बुरी निगाह नहीं डाली। हमारे बीच में भी एक ऐसी स्त्री दो दिन पहले मेरे साथ थी। वह ढाका में उस वक्त अकेली गई जब हिन्दू और मुसलमान पागलों की तरह लड़ रहे थे। किन्तु उसे छूने तक का किसी को साहस नहीं हुआ। कस्तूर बा नैशनल मैमोरियल फण्ड के अन्तर्गत जो योजना बनेगी उसके परिणाम रूप हमें ऐसी स्त्रियाँ तय्यार करनी हैं जिनका डर बिलकुल छूट गया हो और जो ख़तरों का निर्भयता के साथ सामना कर सकें।"

## समग्र ग्राम-सेवा का आदर्श

सेवा गाँव में समग्र ग्राम सेवा की महीने भर की शिक्षा समाप्त होने पर गान्धी जी ने ग्राम सेवकों को पिछली १० फ़रवरी को उपदेश देते हुये कहा—

"आपको सच्चे अर्थों में गांव वालों का सेवक बनना है। आपको मेहतर बनकर गांवों में जाना है और उन्हें झाड़ना और साफ़ करना है और एक विनम्र सेवक की तरह गांव वालों की सेवा करना है। जो लोग सीखना चाहें उन्हें कातना सिखाना है और जितनी अच्छी तरह हो सके दूसरे ग्रामोद्योग सिखाना है। बाहरी मदद यदि आपको न मिले तो मन में आपको निराश नहीं होना है। आपके हृदय की पवित्रता पर ही आपकी सफलता निर्भर है न कि आपकी चतुराई और ज्ञान पर।"

## भिन्नता में एकता

अपने इसी उपदेश में गान्धी जी ने आगे चलकर कहा—"आप लोग विविध प्रान्तों से आये हैं फिर भी आप ने रुचि के साथ एक ही तरह का भोजन खाया। इससे आप हमारी एक राष्ट्रीयता को अच्छी तरह समझ सकेंगे। आचार-व्यवहार, वेश-भूषा, भोजन, और भाषा में भिन्न भिन्न प्रान्तों में एक हद तक थोड़ी बहुत भिन्नता होगी ही किन्तु इस भिन्नता के पीछे जो मौलिक एकता है उसी को पूरी तरह समझना चाहिये और यदि आपको अपने राष्ट्र के भाग्य का निर्माण करना है तो इसी भिन्नता के बीच से आपको एक व्यावहारिक मध्य मार्ग बनाना है।"

## सब की बोली हिन्दुस्तानी

इन्हीं ग्राम सेवकों को उपदेश देते हुये गान्धी जी ने उन्हें हिन्दुस्तानी सीखने और उर्दू और हिन्दी दोनों लिपियों में योग्यता प्राप्त करने पर ज़ोर दिया। गान्धी जी ने कहा—"हिन्दुस्तानी का अर्थ न तो क्लिष्ट संस्कृतमयी हिन्दी है और न फ़ारसी भरी उर्दू बल्कि एक सरल बोली है जिसे उत्तर भारत के गाँवों में हिन्दू और मुसलमान दोनों बोलते हैं। गांव वाले न तो क्लिष्ट हिन्दी समझते हैं और न मुश्किल उर्दू। गाँव वालों की बोली या तो सरल हिन्दुस्तानी है या कोई प्रान्तीय बोली है जिसे वे बग़ैर जात पांत या धर्म मज़हब के भेद भाव के बोलते और समझते हैं। क्लिष्ट और नफ़ीस हिन्दी और उर्दू शहर वालों की एक बीमारी है जो परस्पर अविश्वास से पनपी है। जब तक यह हालत रहेगी तब तक उन्हें हिन्दी और उर्दू दोनों ही लिपियां सीखनी होंगी। तीसरा दल यहां हमारे आपसी फ़र्क़ों को बढ़ाने और उनसे फ़ायदा उठाने के लिये मौजूद है। किन्तु यदि आप लोग सचमुच यह समझते हैं कि हिन्दू और मुसलमान परस्पर भाई भाई हैं और दोनों की नसों में एक ही ख़ून बहता है तो दुनिया में न तो कोई उनमें फ़रक़ डाल सकता है और न कोई उन्हें अलग रख सकता है। यह एक आम कहावत है कि झगड़ा करने के लिये दो आदमियों की ज़रूरत होती है। मैं आपसे कहता हूँ कि सच्ची अहिंसा दूसरे का रास्ता नहीं देखती। यदि हम अपना कर्तव्य समझलें और उसके मुताबिक़ अमल करने लगें तो हमें अवश्य सफलता मिलेगी।"

## याल्टा सम्मेलन के फ़ैसले

याल्टा में ज़ार के पुराने महल में ९ दिन तक परामर्श करने के बाद रूज़वेल्ट, चर्चिल और स्तालिन ने १२ फ़रवरी को अपने नतीजों का ऐलान कर दिया। इसके अनुसार (१) जर्मनी को बिना शर्त आत्म समर्पण करना होगा (२) जर्मनी के तीन टुकड़े करके उस पर तीनों राष्ट्र क़ाबिज़ हो जायंगे, अगर फ्रान्स चाहेगा तो उसे एक चौथा टुकड़ा दे दिया जायगा और जर्मनी से मुआविज़ा वसूल करने की क्या शक्ल होगी इसके लिये एक कमीशन मुक़र्रर होगा (३) पोलैण्ड और यूगोस्लाविया की सरकारों की रूप रेखा तय कर दी गई है। इन फ़ैसलों के अतिरिक्त यह भी राय ज़ाहिर की गई है कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना और रक्षा के लिये सभी मित्र राष्ट्रों के सहयोग से एक विश्वसंघ की स्थापना की जाय और उसके द्वारा सभी आर्थिक राजनैतिक और सामाजिक गुत्थियों को सुलझाकर युद्ध के कारणों का मूलोच्छेद कर दिया जाय। उक्त संघ की स्थापना के उद्देश्य से आगामी २५ अप्रैल को सैन फ्रान्सिसको में मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन किया जाय। फ्रान्स और चीन के प्रतिनिधि भी इस सम्मेलन में बुलाये जाँय। और यह भी तय हुआ कि यूरोप के अन्य राष्ट्रों को भी अपनी इच्छा के अनुसार अपने यहां [illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



करने का हक़ होगा और इसके लिये रूस, ब्रिटेन और अमरीका उन्हें हर तरह सहायता देंगे। जर्मनी पर ये देश उस वक्त तक क़ब्ज़ा रखेंगे जब तक वहाँ नात्सीवाद का नाश होकर सदा के लिये युद्ध की सम्भावना समाप्त न हो जाय।

कान्फ्रेंस के ऐलानों को लेकर ब्रिटेन, अमरीका और रूस में वाह वाही के गीत गाये जा रहे हैं। किन्तु इस ऐलान के द्वारा दुनिया की राजनीति से उन कारणों को मिटाने की कोई कोशिश नहीं की गई कि जिनका लाज़मी परिणाम ये युद्ध हैं। यूरोप की गोरी क़ौमों की आज़ादी और उनके शासन के अधिकारों की विस्तृत विवेचना की गई है किन्तु अफ़रीका और एशिया की क़ौमों की आज़ादी के बारे में गम्भीर मौन से काम लिया गया है। नये विश्व संघ की स्थापना के बारे में डम्बार्टन ओक के जिन उसूलों का हवाला दिया गया है उनमें ग़रीब एशियाई देशों की कोई गिनती नहीं। पिछली लीग आफ़ नेशन्स की स्थापना के समय मोशियो चिचेरिन ने प्रेज़ीडेण्ट विल्सन को लिखा था—"आप पोलैण्ड, सर्विया, बेल्जिअम और आस्ट्रिया-हंगरी के लोगों की आज़ादी की माँग पेश करते हैं। शायद आपका मतलब यह है कि हर जगह जनता पहले अपनी क़िस्मत का निश्चय अपने हाथ में ले ताकि बाद में वह स्वतन्त्र लीग आफ़ नेशन्स में सहयोग दे सके, किन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि आपकी माँगों में न तो आयर्लैण्ड, मिस्र और हिन्दुस्तान की आज़ादी की माँग शामिल है और न फ़िलिप्पाइन की। हमारी यह ख़्वाहिश है कि इन देशों के लोग भी अपने चुने हुये स्वतन्त्र प्रतिनिधियों द्वारा लीग आफ़ नेशन्स के संगठन में सहयोग देने का अवसर पा सकें।"

इसके बाद से आयर्लैंड ने तो लड़भिड़कर अपने लिये आज़ादी की एक सूरत निकाल ली है और अमरीका ने फ़िलिप्पाइन पर मेहरबानी करके युद्ध के बाद उसकी आज़ादी की घोषणा कर दी है। किन्तु हिन्दुस्तान और अङ्गरेज़ों के दूसरे ग़ुलाम देश जिस जगह थे अब तक वहीं हैं और फिर भी ब्रिटेन युद्ध के पश्चात् दुनिया की क़िस्मत गढ़ने वालों में से एक बनने जा रहा है। ब्रिटेन ने यूनान में जो कुछ किया उसका अमरीका ने सरकारी तौर पर विरोध किया है किन्तु हिन्दुस्तान के मामले में वह एक दम ख़ामोश है। स्तालिन महोदय ने भी अब तक ब्रिटिश, फ्रेंच और डच उपनिवेशों और अधिकृत देशों के बारे में अपनी कोई राय नहीं प्रकट की है। हमें विश्वास है उन्हें चिचेरिन का उपरोक्त पत्र अब तक याद है। भारत में आज दिन भी अङ्गरेज़ शासक जो कुछ कर रहे हैं उस गान्धी जी की हाल में दी हुई गम्भीर चेतावनी याद रखनी चाहिये—"यदि हालत इसी तरह रही तरह हिन्दुस्तान में ये लोग कर रहे हैं तो मित्रराष्ट्र भी विजय हासिल करेंगे वह बरायनाम होगी हिन्दुस्तान और दूसरे मुल्क उस समय भी उनके पर पड़े हुये ख़ून उगलते होंगे। इस तरह की विजय भविष्य में इस युद्ध से भी कहीं अधिक रक्तमय युद्ध सृजन करेगी। जैसा कि मैंने और जगह कहा है हिन्दुस्तान की क़ीमत पर जो विजय प्राप्त होगी उसका अर्थ यही होगा कि फ़ासीज़्म, नात्सीवाद और जापानी सैनिकवाद की ख़ाक से एक नया दैत्य पैदा होगा जो अपने सामने जो कुछ पायेगा चट कर जायेगा और इस प्रयत्न में ख़ुद भी ख़त्म हो जायगा और अपने पीछे क्या छोड़ जायगा मैं नहीं बता सकता।"

इस दृष्टि से याल्टा सम्मेलन के फ़ैसले थोथे, लचर और निरर्थक हैं और उनसे दुनिया में किसी तरह वास्तविक शान्ति की स्थापना की कोई आशा नहीं करनी चाहिये।

## मसीह के ये अनुयायी !

अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग संघ के संगठन मन्त्री प्रो० जे० सी० कुमारप्पा एक आदर्श ईसाई और गान्धी जी के सच्चे अनुयायी हैं। जिस समय वे जबलपुर जेल में थे उन्होंने हज़रत ईसा के उपदेशों पर एक सुन्दर पुस्तक लिखी है जिसके छपने का आयोजन हो रहा है। प्रो० कुमारप्पा के अनुसार हज़रत ईसा ने अपनी ज़रूरतों को घटा कर सादा और उदार जीवन बिताने की शिक्षा दी है। इसके विपरीत आज कल के बिशप और पादरियों को हम ठाठ बाट का जीवन बिताते देखते हैं। ईसा ने कहा था अपने भाई के प्रति ग़ुस्सा दोज़ख़ की आग की तरह है किन्तु आज कल के ईसाई, जिनमें पादरी और राजनीतिज्ञ भी शामिल हैं, उसका अर्थ करते हैं 'बिना वजह ग़ुस्सा' और इसीलिये वे अपने मौजूदा और दूसरे युद्धों को प्रेरित करने वाले अपने ग़ुस्से को 'मुनासिब ग़ुस्सा' कहते हैं और इन युद्धों को जायज़ क़रार देते हैं। सहिष्णुता ईसाई धर्म की आधार शिला है और ख़ुद हज़रत ईसा कहते हैं—"दूसरे बच्चे तुम से पहले स्वर्ग में अब्राहम की गोद में पहुँच जावेंगे।"

गान्धी जी इस सुन्दर पुस्तक की भूमिका लिख रहे हैं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारतीय चीनी मिट्टियां

लेखक

पं० मनोहरलाल मिश्र एम०. एस० सी०

[ सिरेमिक विभाग काशी विश्वविद्यालय ]

बेहद खोज और परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी गई है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने में बदल सकते हैं यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। चीनी मिट्टी और मिट्टी का व्यवसाय करने वालों के लिये पुस्तक बहुत उपयोगी है। २६० पृष्ठ की सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है। डाक खर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## विश्व-संघ की ओर

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल

और

श्री भगवानदास केला

पृथ्वी के सब राष्ट्रों को मिला कर उनका एक संघ किन उसूलों पर क़ायम किया जा सकता है इस गम्भीर विषय पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विश्वव्यापी शान्ति चाहने वाले सब लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। ३०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपया, डाकखर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## आरसी-रचनावली

| | | | |
|---|---|---|---|
| आरसी ( कविताएँ ) | ... | ... | १५) |
| संचयिता ( कविताएँ ) | ... | ... | ५) |
| कलापी ( कविताएँ ) | ... | ... | २॥) |
| नयी दिशा ( कविताएँ ) | ... | ... | २) |
| पंचपल्लव ( कहानियाँ ) | ... | ... | २) |
| खोटा सिक्का ( कहानियाँ ) | ... | ... | १॥) |
| जीवन और यौवन ( कविताएँ ) | ... | | १॥) |
| आँधी के पत्ते ( कहानियाँ ) | ... | | १॥) |
| चंदा मामा ( कविताएँ ) | ... | ... | १) |

**तारा मण्डल, मुजफ्फरपुर**

संस्कृति, साहित्य और कला की सन्देशवाहक

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

## विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

सम्पादक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य के ऊपर खोजपूर्ण गम्भीर निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक एक अंक संग्रहणीय—

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

**मैनेजर, विश्वभारती पत्रिका, हिन्दी भवन**

पो० शान्तिनिकेतन (बंगाल)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




बरसों की प्रतीक्षा के बाद आखिर छप गई

## गीता और कुरान

### लेखक : पण्डित सुन्दरलाल

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, कुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर कुरान की ४०० से ऊपर आयतों का लफ़्ज़ी तर्जुमा दिया गया है।

जो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्मों को समझना चाहें उनके लिये यह पुस्तक बहुत क़ीमती और बेमिसाल है।

२०० सफ़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल

**डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग**

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

पं० सुन्दरलाल जी की एक और नई पुस्तक

## हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

शीघ्र ही प्रकाशित होगी

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म भूमि फ़िलस्तीन की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के साथ साथ हिन्दुस्तान, चीन, ईरान इत्यादि दूसरे एशियाई देशों की उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक हालत के साथ हज़रत ईसा और उनके उसूलों का गहरा सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया गया है

मूल्य लगभग डेढ़ रुपया

अभी से अपनी प्रति रिज़र्व करा लीजिये

## "विश्ववाणी का एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है"—गान्धी जी

महात्मा गान्धी जी ने कहा था—"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे।"

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सर तेज बहादुर सप्रू, आचार्य क्षिति मोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० महादेव देसाई, क्यूरेटर-ब्रिटिश म्यूज़ियम (लन्दन), श्री० तान युन-शान आदि सैकड़ों देशी और विदेशी सर्वमान्य नेताओं और विद्वानों ने गान्धी जी की उपरोक्त राय को ही दोहराया है।

**विश्ववाणी के पुराने अङ्कों में देश और विदेश के चोटी के विद्वानों के गम्भीर और महत्वपूर्ण लेख भरे पड़े हैं। विश्ववाणी के विशेषाङ्कों का तो कुछ पूछना ही नहीं।**

**क्या आप के पास विश्ववाणी के बहुमूल्य विशेषाङ्क हैं?**

**क्या आप विश्ववाणी के महत्वपूर्ण पुराने अङ्क ख़रीदना चाहेंगे?**

हमारे पास 'टैगोर अङ्क', 'संस्कृति अङ्क' पहला भाग 'बौद्ध संस्कृति अङ्क', 'चीन अङ्क', 'जैन संस्कृति अङ्क', और 'अकबर अङ्क' की थोड़ी सी प्रतियाँ बची हुई हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर अङ्कों की भी कुछ प्रतियाँ और सन् ४२ और ४३ की एक दर्जन पूरी फाइलें बची हुई हैं। जिन सज्जनों को चाहियें फ़ौरनआज ही पत्र लिखें। जिस क्रम से आर्डर आवेंगे उसी क्रम से ग्राहकों को प्रतियाँ दी जायँगी।

**मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**


विश्ववाणी-प्रेस, नाथ मलाका, इलाहाबाद

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वेदवाणी

रक्षक : पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक : विश्वम्भरनाथ

र्षिक मूल्य ६) ]

अप्रैल १९४५

[ एक अङ्क का ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काशमीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत।

# विषय सूची

[ अप्रैल १९४५ ]

१—सम्बोधन ! ( कविता )—श्री आरसी प्रसाद सिंह ... ... १५७

२—सब धर्म मज़हबों की मौलिक एकता—डाक्टर भगवानदास ... ... १५९

३—वृहत्तर भारत का सांस्कृतिक रूप—सर यदुनाथ सरकार ... ... १६१

४—प्रभात ( कविता )—श्री विनोद ... १६४

५—बङ्गालः सांस्कृतिक एकता की रङ्ग-भूमि—डा० लतीफ़ दफ़री ... ... १६५

६—तूफ़ान उठा तो सकते हैं ! ( कविता )—श्री देवेन्द्र एम० ए० ... ... १६७

७—नानक, यही अगम की गैल ! ( एकांकी नाटक )—टी० एल० वस्वानी ... ... १६८

८—गान्धी जी का रचनात्मक कार्यक्रम—श्री मज़हरअली सोख़्ता ... ... १७०

९—गीत ( कविता )—कुमारी दिनेश नन्दिनी चोरड्या एम० ए० ... ... १७४

१०—गान्धीवादियों की किंकर्तव्य विमूढ़ता—श्री किशोरलाल मश्रुवाला ... ... १७५

११—मेरा कविता से क्या नाता ? ( कविता )—प्रो० राजनाथ पाण्डेय एम० ए० ... १७७

१२—शेष-कथा ! ( घटना-चित्र )—डाक्टर एन० एस० वर्धन ... ... १७९

१३—साहित्य और सामाजिक वातावरण—डाक्टर ए० अरानसन ... ... १८७

१४—बम्बई योजना का दूसरा भाग—श्री रमेशचन्द्र गोयल ... ... ... १८९

१५—चोंगा से गङ्गा ( आलोचना )—श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह एम० एल० ए० ... १९

१६—परिचय ( कविता )—श्री करील ... १९

१७—हिन्दू संस्कृति और हिन्दू मुसलिम एकता—पं० सुन्दरलाल ... ... १९

१८—डाक्टर सनयात सेन के जनता के तीन सिद्धान्त (२) गणतंत्र—प्रो० कृष्ण किंकर सिंह ... २०

१९—गो-रक्षा ( कविता )—जनाब 'मायल' नक़वी ... ... ... २०

२०—सोवियत् संघ में मनोविनोद के साधन—श्री रामावतार ... ... २१

२१—माया ( कविता )—श्री विद्यानन्द सन्यासी... २१

२२—पाश्चात्य मूर्तिकला की एक झलक—श्री मलिन्द ... ... ... २१

२३—पोलैण्ड का साहित्य—श्री कमल कुल श्रेष्ठ एम० ए० ... ... २१

२४—तुर्की का सांस्कृतिक नवजागरण—डाक्टर बे बुरहान बल्गी ... ... २२

२५—पुस्तक परिचय—श्री कमल कुलश्रेष्ठ ... २२

२६—सार्वजनिक सूचनायें ... ... २२

२७—वर्धा का हिन्दुस्तानी सम्मेलन—श्री रामभाई ... ... २२

२८—मेरी भारत माँ ! ( कविता )—कुमारी रज़िया बेगम नक़ी ... ... २३

२९—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की पहिली बैठक—श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी एम० एस-सी० ... २३

३०—सम्पादकीय विचार ... ... २४

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3400

## विश्ववाणी के इस अङ्क के साथ आपका चन्दा समाप्त हो रहा है

16

विश्ववाणी कार्यालय

इलाहाबाद

श्री दीनानाथ वैश्य, गुरुकुल कांगड़ी,
पो० गुरुकुल कांगड़ी,
डि० सहारनपुर

पिछले साल भर से आप विश्ववाणी के सहृदय पाठक रहे हैं। विश्ववाणी के ध्येय और उसके उद्देश्य से आप पूरी तरह परिचित हैं। साम्प्रदायिक सद्भावना और भारत की सांस्कृतिक एकता में विश्ववाणी का अखण्ड विश्वास है। सांस्कृतिक एकता की बुनियाद पर ही स्वतन्त्र भारत का भव्य महल खड़ा किया जा सकता है और भारतीय संस्कृति के सत्यम्, शिवम, सुन्दरम् सिद्धान्तों पर ही संसार का स्थायी पुनर्निर्माण हो सकता है।

(१) विश्ववाणी मनुष्य मात्र की समता और विश्वप्रेम की प्रचारक है,
(२) विश्ववाणी भारत की पूर्ण स्वाधीनता के लिये प्रयत्नशील है,
(३) विश्ववाणी धर्मों, जातियों और सम्प्रदायों के विरोध को मिटाने का अथक और निर्भीक प्रयत्न करती है,
(४) विश्ववाणी आर्थिक क्षेत्र में न्याय और समता का प्रतिपादन करती है, और
(५) विश्ववाणी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की गहन और सच्ची विवेचना करती है।

विश्ववाणी अधिक पूर्ण, अधिक समृद्ध, अधिक सुखमय, अधिक प्रेममय और अधिक संयुक्त राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन तक पहुँचने में अपनी शक्ति भर पाठकों का हाथ बटाने का प्रयत्न करती है। इस काम के लिये वह पाठकों के सामने अनमोल और अलभ्य ऐतिहासिक सामग्री रखती है और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वानों के लेखों के प्रकाशन का आयोजन करती है।

'विश्ववाणी' को अब तक जो महान सफलता मिली है वह आपही जैसे प्रेमी पाठकों के सहयोग का परिणाम है। हमें विश्वास है 'विश्ववाणी' के साथ आप अपना सहयोग बराबर बनाये रखेंगे और विश्ववाणी के प्रचार में हमें भरसक सहायता देते रहेंगे।

आप साल भर से विश्ववाणी के ग्राहक रहे हैं, अब आपका चन्दा इस अङ्क से समाप्त हो रहा है। हमारी विनम्र प्रार्थना है कि इस महीने के अन्त तक आप मनिआर्डर द्वारा विश्ववाणी का अग्रिम वार्षिक मूल्य छै रुपया हमें भेज देने की कृपा करें या फिर हमें अगले महीने की पाँच तारीख़ तक साल भर के लिये आपके पास विश्ववाणी वी० पी० से भेजने की अनुमति दें।

भवदीय

नित्यानन्द चैटर्जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ५, भाग ६ ] अप्रैल : १९४५ [ अङ्क ४, पूरे अङ्क ५२

# सम्बोधन

श्री आरसी प्रसाद सिंह

लोक-लोक के द्वार खोल दो,
मैं कर सकूँ तुम्हारा दर्शन !

तुम बैठे थे अन्तर्तम में
जाने कब से अन्तर्वासी !
मैं तुमको पहचान न पाया,
तुम भी तो प्रभु, रहे उदासी !

कहाँ किसे मैं ढूँढ़ रहा था ?
किसके लिये विकल था अब तक ?
दो बूँदें उमड़ी आँखों में ;
नत हो गया आप ही मस्तक !

पूछो मत, पूछो मत, मेरा
सुख क्या है ? कैसा आनन्द ?
ईर्ष्या करो, तपो आजीवन
समझो, मैं कितना स्वच्छन्द !

आँसू से भीगीं इच्छाएं
थीं, बन गयीं यज्ञ की इँधन !
जैसे, बिजली पकड़ ली गयी
चमकी और हुई हो निश्चल !
जैसे पारावार प्रलय का
राशि-राशि जल ही जल केवल !

यह अबाध उल्लास ज्योतिशः
महाहर्ष का झंझानिल है !
अग्नि-स्फुलिङ्ग, छन्द गानों से
मुखरित जग हो रहा निखिल है !

सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और ये
तारक-ग्रह, जैसे अचपल हों !
जैसे दिवा-स्वप्न हो टूटा
और नये ही दिग्मण्डल हों !

अवलोकन करने दो मुझको,
क्षण भर करो रहस्योद्घाटन !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जिस दिन तुमको देखा, कोई
वस्तु देखने की न रही है !
कोई काम, न कोई तृष्णा ;
अपनी ही सम्पूर्ण मही है !

अहे अनिर्वच, क्या बतलाऊँ ?
कैसा रूप तुम्हारा है यह !
दिन, नीहार, धूम, विद्युत् या
तरल अग्नि का पारा है यह !

दिग्दिगन्त के रन्ध्र खोल दो ;
लहराने दो ज्योति-समीरण !

इस विराट् जड़ पृथ्वी में हो
एक तुम्हीं बस, केवल चेतन
ज्ञात नहीं था इसके पहले,
किया न था इस रस का स्वादन !

वह अशेष सौन्दर्य सिमटकर
एक पात्र में शेष हो गया !
सार्व भौम आकाश-व्याप्त वह
एक क्षुद्र-सा देश हो गया !

शीतल किरणों की सुषमा से
तृप्त करो तुम मेरे लोचन !

इस अपार मरु में दुख के तुम
एक अमृत का स्रोत चिरन्तन !

हे अव्यक्त, करूँ मैं कैसे
ध्यान ? तुम्हारा अविकल चिन्तन !

इस नरकानल में जलते हो तुम
अमर ज्योति स्वर्गीय प्रखरतर !
हे आदित्य, प्रकट होते तुम
गहन मृत्यु का तिमिर चीरकर !

जो अतीत, अग्राह्य इन्द्रियों से
भी, अगम-अगोचर-सा है !
उसका रूप उतारूँ वाणी के
माध्यम से, दुस्तर-सा है !

वह कितना तेजोमय, कितना
पुण्यवान्, कितना सुन्दर है !
अद्वितीय वह, वह अनिकेतन,
वह अच्युत, अद्भुत्, अक्षर है !

हुआ घुनाक्षर न्याय और यह
पुरुष बना नर से नारायण !
अब तो तुमने लगा दिया इन
दिव्य चक्षुओं में ज्ञानाञ्जन !

निरावरण कर दो आत्मा को,
बन्धन-मुक्त करो दे जीवन।
और हटा लो बाह्य जगत् का
पड़ा प्राण पर जो अवगुण्ठन !

छिद्र-छिद्र में भर जाने दो
तुम प्रकाश का एक एक कण !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सब धर्म-मज़हबों की मौलिक एकता

डाक्टर भगवान दास एम० ए०, डी० लिट०

दैनिक समाचार पत्रों ने ७ फ़रवरी सन् ४५ को सूरत से भेजी हुई एसोशियेटेड प्रेस की एक ख़बर छापी थी कि "महात्मा गान्धी समझते हैं कि मूल सत्यार्थ प्रकाश पर सुधारक आर्य समाजियों द्वारा फिर से विचार होना चाहिये और उसमें दूसरे धर्मों पर जो आपत्तिजनक टिप्पणियाँ हैं उन्हें निकाल देना चाहिये।"

निस्सन्देह यह एक बहुत सुन्दर विचार है। मैं साहस करके इसमें यह सुझाव और जोड़ना चाहूँगा कि इसी तरह के संशोधित संस्करण वेद, इञ्जील और क़ुरान के भी प्रकाशित किये जाँय। नामों की तरतीब मैंने उसी क्रम से रखी है जिस क्रम से ये ग्रन्थ इनसानी दुनिया में रोशन हुये।

यह ज़्यादा अच्छा होगा कि इस तरह के संस्करण पण्डित, पादरी और मौलवी लोग मिलकर या अलग अलग या क्रमानुसार प्रकाशित करें। किन्तु यह दोनों तरीक़े यद्यपि आदर्श हैं पर शायद व्यावहारिक नहीं हैं।

यदि इन लोगों के लिये इन धर्म ग्रन्थों के इस तरह के संशोधित संस्करण निकालना सम्भव न हो तो उन्हें विद्वान लोग, जो कि उदार और परोपकारी व्यक्ति भी हों, निकाल सकते हैं। यदि इन धर्म ग्रन्थों के आक्षेप पूर्ण हिस्से निकाल दिये जाँय तो विश्वास, आकांक्षाओं और व्यवहार की इनमें एक आश्चर्यजनक एकता या समानता दिखाई देगी। इन तमाम धर्म ग्रन्थों में एतराज़ के क़ाबिल हिस्से हैं यह इस बात से निर्विवाद साबित हो गया है कि इन धर्मों के मानने वालों और अनुयायियों ने इन धर्म ग्रन्थों में एक दूसरे के विरुद्ध जो बातें हैं उन्हें ख़ुद ही प्रकाशित किया है।

धर्म ग्रन्थों के इन संशोधित संस्करणों की एक और वजह से भी बहुत ज़रूरत है। वह वजह यह है कि धर्म ग्रन्थों का आकार फिर संक्षिप्त, सूक्ष्म, सुसंहत और धरने उठाने के उपयुक्त हो जायगा। तब उन्हें आसानी से पढ़ा जा सकेगा। उनका अच्छी तरह अध्ययन भी किया जा सकेगा यहाँ तक कि उनके अनुयायी सम्भवतः उन्हें ज़बानी भी याद कर सकेंगे और अन्य धर्मावलम्बी उन्हें तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से पढ़ सकेंगे, जिससे उनके मन में इन धर्म ग्रन्थों के प्रति सहानुभूति पूर्ण प्रशंसा के भाव पैदा होंगे। इस अध्ययन से एक दूसरे के धर्म ग्रन्थों के प्रति जो लोगों में अवमानना पूर्ण विरोध भाव है वह भी दूर हो जायगा।

जब तक ये संशोधित और संक्षिप्त संस्करण प्रकाशित न हो जाँय तब तक मैं इस प्रश्न में दिल चस्पी रखने वाले सब लोगों का ध्यान अपने एक संग्रह-ग्रन्थ The Essential Unity of All Religions (सब धर्म-मज़हबों की मौलिक एकता) की ओर दिलाना चाहता हूँ। इस संकलन-ग्रन्थ में इन तीनों महान धर्मों की, और आठ अन्य ऐसे धर्मों की कि जिनके अनुयायियों की संख्या थोड़ी है, धर्म पुस्तकों के ११५० तुलनात्मक उद्धरण, मूल और अनुवाद सहित दिये हुये हैं। इन उद्धरणों में हर धर्म के ख़ास ख़ास पहलू—धर्म-सिद्धान्त सम्बन्धी, भक्ति सम्बन्धी, और व्यवहार सम्बन्धी शामिल हैं। इस पुस्तक को हाल में ही जो क़द्र की गई है वह मैं यहाँ दे रहा हूँ। क्यों कि उससे मुझे गहरा आत्म-सन्तोष हुआ है।

(नवाब) सर अहमद हुसेन (अमीन जंग, एम० ए०, एल-एल० डी०, के० सी० आई० ई०, सी० एस० आइ०) जिनकी उम्र इस समय ८० वर्ष की है और जो ४० वर्ष तक हैदराबाद के स्वर्गीय और वर्त्तमान् निज़ाम के निजी मंत्री रहे हैं, इस समय अवकाश लेकर आध्यात्मिक और धार्मिक मनन और चिन्तन में लगे हुये हैं। उन्होंने मेरी इस पुस्तक को देखा और ३०-१२-१९४३ को जो पत्र मुझे भेजा था उसमें से कुछ भाग मैं उनकी अनुमति से यहाँ दे रहा हूँ, उसमें वे लिखते हैं—

"पिछले १२ साल में, अनेक आत्मीयों की मौत और फ़िक्रों के बीच में मैं रोज़ाना कुछ देर तक तीनों धर्म-पुस्तकें क़ुरान, इञ्जील और गीता जो मेरी मेज़ पर रक्खी रहती हैं—में से एक के नियम पूर्वक दो एक पन्ने पढ़कर मनन और चिन्तन करता हूं। मार्च १९४२ से मैंने इन धर्म ग्रन्थों में आपकी पुस्तक 'दि एसेन्शियल यूनिटी आफ़ आल रिलीजन्स' भी जोड़ दी है। आपकी पुस्तक में इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तीनों धर्म ग्रन्थों और अन्य धर्म पुस्तकों का सार दिया हुआ है। आपने अपनी संक्षिप्त सुन्दर टिप्पणियों और फुटनोटों से पुस्तक को और अधिक क़ीमती बना दिया है। मैं इस पुस्तक को उतनी ही अहतियात और भक्ति भाव से पढ़ता हूँ जितनी अहतियात और भक्ति से उपर्युक्त तीनों धर्म ग्रन्थों को। इन धर्म ग्रन्थों का नाम मैंने ऊपर उसी क्रम से लिखा है जिस क्रम से मैं इनसे परिचित हुआ। आपकी यह अद्भुत पुस्तक मुझे सोचने और ध्यान करने के लिये उतना ही या वैसा ही आहार देती है।"

सर अहमद हुसेन और मैं कभी भी अपने स्थूल शरीर में नहीं मिले और उस समय तक एक दूसरे के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे जब तक कि यह पुस्तक उनके हाथ में नहीं पड़ी। निस्सन्देह अब हमारी आत्माओं का मेलन हो गया है। उनके पत्र का ऊपर जो मैंने संक्षिप्त अंश दिया है उससे उनकी गहरी आध्यात्मिक और सचमुच इनसानी और सचाईपसन्द तथा व्यापक मानवता प्रकट होती है। सब धर्म-मज़हबों में जो कुछ अच्छा और उत्तम है उसकी वे क़द्र करते हैं। सब धर्मों के प्रति उनकी उदार भावना और सचाई साफ़ झलकती है। किसी धर्म के प्रति उनके मन में पक्षपात नहीं है। ये बातें इस बात को साबित करती हैं कि विविध धर्मों में मेल पैदा करने की उनकी भावना कितनी सच्ची है।

यह ग़लतफ़हमी न हो कि मैं जन-सामान्य का ध्यान एक अपनी ही पुस्तक की ओर आकर्षित कर रहा हूँ हालाकि प्रत्येक लेखक और वक्ता जो किसी भी विषय की ओर जनता को सम्बोधित करता है व्यक्त या अव्यक्त रूप से लोगों का ध्यान अपने ही विचारों की ओर आकर्षित करता है), इस लिये मैं एक बात का ज़िक्र करना चाहता हूँ कि पुस्तक के मुख-पृष्ठ पर यह लिखा गया है कि—'इस पुस्तक का कोई कापीराइट नहीं है,' इसी तरह जिस तरह कि सचाई का कोई कापीराइट नहीं और धर्म ग्रन्थों का कोई कापीराइट नहीं है। मैंने इस पुस्तक में कोई मौलिक बात नहीं कही है और यहाँ तक कि जिस धागे में ये प्राचीन मोती गूँथे गये हैं वह भी नया नहीं है। संग्रह कर्त्ता को इस पुस्तक में कोई आर्थिक दिलचस्पी भी नहीं है। यह पुस्तक मूल्य के लिहाज़ से काग़ज़ की क़ीमत और छपाई के दामों से भी सस्ती दी जा रही है। सन् १९३९ के अन्त में जब यह छपी थी तब से इसकी ३००० प्रतियाँ बिक चुकी हैं और १००० प्रतियाँ और बाक़ी हैं। संग्रह कर्त्ता इस बात का बहुत इच्छुक है कि कोई साहसी और परोपकारी प्रकाशक काग़ज़ की दिक्क़त हल करके इस पुस्तक की कुछ हज़ार प्रतियों का एक नया संस्करण फ़ौरन प्रकाशित करने की आयोजना करे। जब तक कि तीनों धर्म ग्रन्थों और सत्यार्थ प्रकाश के आवश्यक और संशोधित संस्करण प्रकाशित न हो जाँय तब तक मेरी इस पुस्तक से ही जनता की सेवा होती रहेगी। सत्यार्थ प्रकाश के तत्व में कोई बहुत ग़लत बात नहीं है, सिर्फ़ उसके अन्तिम चार अध्याय जिस तरह से लिखे गये हैं कि जिनमें सब धर्मों में जो बुराइयाँ और अनियंत्रित बातें आ गई हैं और जो अब भी मौजूद हैं और जिनकी पक्षपात रहित आलोचना करनी चाहिये—उनको जिस तर्ज़ से सत्यार्थ प्रकाश में लिखा गया है वह नम्र, संयत, और ऐक्य-पूर्ण होने के बजाय दुर्भाग्य से उसी तरह झगड़ालू हो गया है कि जिस तरह हर एक धर्म के धर्माध्यक्ष एक दूसरे के विरुद्ध करते रहते हैं। धर्म प्रचार की इस तरह की भावना सचमुच द्वेष पूर्ण और बदनामी से भरी हुई भावना है।

[ हम 'विश्ववाणी' के समस्त पाठकों का ध्यान इस अनमोल पुस्तक की ओर दिलाना चाहते हैं। जो सज्जन अङ्गरेज़ी जानते हैं उन्हें फ़ौरन यह पुस्तक ध्यान पूर्वक पढ़नी चाहिये। हमारी आजकल की साम्प्रदायिक समस्या के हल करने में यह पुस्तक अद्वितीय साबित होगी

—सम्पादक ]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वृहत्तर भारत का सांस्कृतिक रूप

सर यदुनाथ सरकार

भारत के दक्षिण-पूर्व में थाइलैण्ड की पूर्वीय सीमा से लेकर प्रशान्त महासागर तक फैला हुआ एक बहुत बड़ा देश है जिसे फ्रेंच हिन्द-चीन कहा जाता है। इसका उत्तरीय प्रान्त टोकिन चीन से लगा हुआ है और इसका दक्षिण-पश्चिम का हिस्सा कोचिन चायना सियाम से लगा हुआ है। कोचिन चायना के उत्तर का हिस्सा कम्बोज कहलाता है। लाओ क़बीले के लोग कम्बोज के सुदूर पूर्व और पूर्वोत्तर में और अनाम के पश्चिम में रहते हैं।

यहाँ की आबादी में १ करोड़ २० लाख अनामी हैं, १५ लाख कम्बोजी हैं, १२ लाख लाओ हैं, २ लाख चाम और मलाया हैं, कुछ हज़ार हिन्दू हैं जिनमें अधिकांश तामिल हैं और ५० लाख जंगली जातियाँ हैं। ये जङ्गली जातियाँ भूत-प्रेत की पूजा करती हैं जब कि अनामी, कम्बोजी और लाओ या तो बौद्ध धर्मावलम्बी हैं और या कन्फ्यूसियस के धर्म को मानते हैं। चाम और मलायाई लोग क़रीब क़रीब सब मुसलमान हैं, केवल अनाम के बिन्हथुअन ज़िले के २५ हज़ार चाम अब तक अपने प्राचीन ब्राह्मण-धर्म को मानते हैं। जो चाम शैवधर्म के मानने वाले हैं वे अपने को 'चाम-जात' अथवा पवित्र चाम कहते हैं।

अनाम के मुसलमान-चाम शिया हैं। वे 'ओवला' अर्थात अल्लाह और 'पो देवताश्वर' अर्थात ईश्वर की उपासना करते हैं। ओवला को वे स्वर्ग का देवता कहते हैं। पाताल के देवता 'पो ओवला ताक अला' अर्थात अल्लाह ताला के नाम पर वे रोज़ दो अण्डे, एक कटोरा भात, ब्राण्डी और पान के तीन पत्ते चढ़ाते हैं। 'पो ओवला ताक अला' को वे अल्लाह ताला का अवतार मानते हैं। वे ब्राह्मणों की देवी 'पो इनो नागर' अर्थात पृथ्वी-माता या उमा-भगवती और उसके पति 'यङ्गो अमो' अर्थात शिव की भी पूजा करते हैं। इन दोनों को वे मनुष्य जाति के पहिले 'दम्पति' अर्थात आदम और हव्वा समझते हैं।

अनाम के जो हिन्दू चाम हैं वे भी अपने मुसलमान भाइयों की तरह ही उदार हैं और उन्होंने 'पो ओवला' (अल्लाह) को, कि जिसने 'पो रसूलल्लाह' और 'पोला तिला' अर्थात 'अल्लाह ताला' का निर्माण किया है, अपने देवताओं की सूची में ले लिया है। अनामी मुसलमानों का प्रधान धर्माध्यक्ष 'पोमु' (संस्कृत—गुरू) कहलाता है। पोमु के बाद 'इमाम' फिर 'खातिक' उसके बाद मुअज्जम और तब 'आचार' (संस्कृत—आचार्य) होता है। हर मसजिद में एक आचार्य अवश्य होता है। अनाम में आमतौर पर हर मुसलमान मौलवी को आचार कहा जाता है जब कि हिन्दू पुरोहितों को वहाँ 'बशाई' कहते हैं। मुसलमान आचार और हिन्दू बशाई आपस में बड़े प्रेम और मोहब्बत के साथ रहते हैं। दोनों एक दूसरे के धार्मिक और सामाजिक त्योहारों और उत्सवों में शामिल होते हैं। केवल मुसलमान इमाम ज़रा खाने पीने में थोड़ा सा परहेज़ रखते हैं, यानी वे केवल मुसलमान स्त्रियों का पकाया हुआ खाना ही खाते हैं। वहाँ एक दूसरे के प्रति इतनी धार्मिक सहिष्णुता है कि दोनों में कोई न तो गो-माँस खाता है और न सुअर का माँस।

यह है हिन्द-चीन के लोगों का आधुनिक धर्म। अब हम इस बात पर ग़ौर करें कि आख़िर इस धार्मिक सहिष्णुता की वजह क्या है। इसके लिये हमें फ्रेंच विद्वानों की मदद से सुदूर पूर्व में हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म के इतिहास और वृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति के प्रभाव पर एक नज़र डालनी पड़ेगी।

छठवीं सदी ईसा पूर्व से और शायद उससे भी पहले से जब से भारत का सिलसिलेवार स्पष्ट इतिहास हमें मिलता है, भारतीयों के अनेक समूह पहले फ़ायदे की ग़रज़ से और बाद में धर्म प्रचार के उद्देश्य से समुद्र पार करके हिन्द चीन और सुदूर पूर्व के दूसरे समुद्री किनारों पर जाकर बस गये। प्राचीन भारतीय संस्कृति के ये प्रचारक बहुत उम्दा और मज़बूत मल्लाह थे। ये साहसी लोग जिनमें—व्यापारी, सैनिक, ब्राह्मण आदि शामिल थे सम्भवतः कारोमण्डल के पूर्वी किनारे से यानी प्राचीन कलिंग, प्राचीन तेलिङ्गाना, और ख़ासकर कृष्णा और गोदावरी के दहाने से अपनी बड़ी बड़ी नावों में बैठकर सुदूर पूर्व की ओर रवाना हुये होंगे। हम अन्दाज़ा कर सकते हैं कि मद्रास के निकट जो सात पागोदा हैं वहीं कहीं से ये धार्मिक लहरें उठकर भारत की प्राचीन सभ्यता को सुदूर पूर्व के देशों तक ले गई होंगी।

प्रवासी भारतीय सुन्द द्वीप-समूह और हिन्द-चीन के सभी किनारों पर जाकर बस गये। इस क्षेत्र का नाम उन्होंने 'सुवर्ण-भूमि' रखा। हिन्द-चीन में आन्तरिक आवागमन के साधन इतने कठिन और दुर्लभ थे कि जिसके



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कारण न तो घनी आबादियाँ बस सकती थीं और न बड़े बड़े राज ही क़ायम हो सकते थे और बराबर बाहर से समुद्री हमलों का ख़तरा बना रहता था। प्रवासियों के जितने भी नये नये समूह आते थे उनके कारण आबादियाँ छिन्न-भिन्न और अस्थायी होती जाती थीं और किनारों से भीतर के प्रदेश में जाकर बसना मुश्किल होता जाता था।

इस तरह प्रवासी भारतीयों ने द्वीप समूहों के किनारे किनारे अपनी छोटी छोटी आबादियाँ, व्यापार केन्द्र और मण्डियाँ क़ायम कर वहां के मूल निवासियों के साथ अपना सम्पर्क क़ायम किया। आर्थिक दृष्टि से यद्यपि मूल निवासियों का शोषण किया गया और राजनैतिक दृष्टि से उनका दर्जा पराधीन जाति का सा हो गया फिर भी भारतीयों ने उनके अन्दर नये ज्ञान-विज्ञान, नये कला-कौशल, और संस्कृति और सभ्यता के नये नये विचारों का प्रचार किया, मसलन् उन्हें सूती कपड़ा बनाना सिखाया। जहां जहां ये भारतीय गये अपने साथ अपना धर्म, अपना जाति-भेद, अपने आचार-विचार, अपनी परम्परायें अपने कर्म काण्ड और अपनी रूढ़ियाँ, अपनी संस्थायें अपनी वर्ण-माला, अपना साहित्य और अपनी संस्कृत भाषा भी ले गये।

यह सही है कि हिन्द चीन में जो सब से पुराना शिला-लेख मिला है वह शुद्ध वैदिक संस्कृत में है और ईसा की तीसरी सदी से पहले का नहीं है। किन्तु उपनिवेश बसाने और सभ्यता के प्रसार में कई सदियों का समय लग गया होगा। तीसरी सदी ईसा पूर्व में कम्बोज में भारतीय बौद्ध धर्म भी पहुँचा और बौद्धों ने भी शैवों के साथ सुवर्ण-भूमि के भारतीयकरण में काफ़ी हिस्सा लिया।

कम्बोज के शिला लेखों से हमें पता चलता है कि तेरहवीं सदी तक कम्बोज में शैव धर्म के साथ साथ बौद्ध धर्म की जो शाखा वहां थी वह महायान शाखा थी। कम्बोज के हिन्दुओं की तरह इन बौद्धों ने संस्कृत को ही अपनी पवित्र भाषा मान लिया था।

पगु ( दक्षिण बर्मा ) पहला देश था जिसे हिन्दुओं ने जाकर बसाया और भारतीय बनाया। चामों को भी बहुत शुरू में भारतीय बनाया गया। चामों के राज्य को पुस्तकों में और राजकीय भाषा में 'चम्पा' कहा गया है। प्राचीन भारत का यह चम्पा नाम शायद चाम वंशियों ने अपने प्राचीन गोत्र के कारण रखा होगा। प्राचीन चीनी ग्रन्थों से पता चलता है कि चम्पा को चीन में 'लिन-यि' कहते थे और वहां के रहने वाले 'पो-लो-मन' अर्थात ब्राह्मण कहलाते थे। पगु और चम्पा के बाद 'ख़मरों' [illegible] भारतीयकरण हुआ। भारतीय संस्कृति, भारतीय विचार और संस्कृत भाषा के प्रचार के साथ साथ इन लोगों [illegible] क़बीले का नाम 'कम्बुज' अर्थात 'कम्बु के पुत्र' [illegible] गया। यह नामकरण सम्भवतः ईसा की पाँचवीं सदी [illegible] हुआ होगा।

चौदहवीं सदी का एक चीनी इतिहासज्ञ मातओ-अन लिन लिखता है कि कम्बोज के एक राजा कियाओ-चिन-जो ने कम्बोज की पुरानी संस्थाओं और रीति रिवाजों को बदलकर उनकी जगह भारतीय संस्थाओं और रीति रिवाजों का चलन जारी किया। किन्तु यह परिवर्तन उत्थान था न कि क्रान्ति। यह परिवर्तन इस बात का द्योतक है कि गंगा की उपत्यका से जिन लोगों ने आक्रमणकारियों व व्यापारियों के रूप में प्राचीन काल में कम्बोज में प्रवेश किया था उनके प्रभाव से स्थानीय जनता भारतीय संस्कृति को अपनाने के लिये तय्यार हो गई थी। किन्तु व्यापक रूप से भारतीय संस्कृति और भारतीय भाषा का प्रभाव ५ वीं सदी के बाद ही पड़ा होगा क्योंकि उस वक़्त तक कम्बोज निवासी अपनी ख़ुद्र भाषा बोलते थे।

जावा में जो ऐसे शिला लेख मिले हैं जिन पर कोई तिथि नहीं पड़ी है, प्रसिद्ध पुरातत्व वेत्ता केर्न उन्हें ४०० ईसवी का बताता है। इन शिला लेखों में पूर्ण-वर्मन नामक एक राजा का ज़िक्र है जो नरुमानगर में राज करता था। बोर्नियो में संस्कृत भाषा के जो शिला लेख मिले हैं उनमें भी 'वर्मन' नामक एक राजकुल का वर्णन है। [ एशियाटिक जर्नल में सुमात्रा या श्री विजय के प्राचीन वर्मन राजाओं का वर्णन जी० फ़ेरांद ने किया है।]

कम्बोज के एक राजा 'कियाओ-चिन-जो' ने 'श्रुतवर्मन' की पदवी धारण कर, कम्बोज के पहले वर्मन राज कुल की स्थापना की। उसने अपने देश में हिन्दू संस्कृति को पुख़्ता करके बढ़ाया। वह अपने को 'कौण्डिन्य' कहता था, हालांकि वह अपना निकास भारत के सोमवंशी राजाओं से बताता था। बार्थ लिखता है—

"कौण्डिन्य एक ब्राह्मण कुल का नाम है और उस समय के राजकुलों में यह एक आम बात थी कि वे अपना निकास किसी पुरोहित कुल के गोत्र से जोड़ते थे।"

इस श्रुत वर्मन पहले या कौण्डिन्य-सोम ने लगभग ४३५ ईसवी से ४९५ ईसवी तक राज किया। इसके बाद ७ वर्मन राजाओं ने लगभग ६८० ईसवी तक राज किया फिर कम्बोज में आठवीं सदी तक ज़बर्दस्त उथल पुथल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होती रही। किन्तु इतिहास से पता चलता है कि सन् ८०२ में १८ वर्मन राजाओं की फिर एक शाख शुरू हुई। इन लोगों ने लगभग ४०० वर्षों तक राज किया। इस तरह कुल मिलाकर २५ वर्मन राजाओं के नाम हमें उन शिला लेखों से मिलते हैं जिन्हें काल के नाशवान हाथों ने सुरक्षित छोड़ दिया है। चीनी उल्लेखों के अतिरिक्त ये शिला लेख ही उस समय के इतिहास की एकमात्र निशानी हैं।

कम्बोज के संस्कृत शिला लेखों से देश की उस समय की हालत और राजा, दरबार और उच्च वर्ग पर हिन्दू धर्म के प्रभाव का स्पष्ट और पूरा पूरा वर्णन मिलता है। मिसाल के तौर पर इन उल्लेखों से छठवीं सदी में शिव के नाम पर बनाये हुये भव-वर्मन के अनेकों मन्दिरों का पता चलता है। इस राजा ने एक शिव मन्दिर को महाभारत, रामायण और अनेक पौराणिक संस्कृत ग्रन्थ अर्पित किये थे। इन ग्रन्थों का नियमित पाठ उसने लाज़मी क़रार दिया था और इन ग्रन्थों के चुराने वालों के लिये बहुत बड़े अभिशाप की घोषणा की थी। शिव-लिंग स्थापित करने के भी अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। सातवीं सदी के प्रारम्भ में राजा ईशान वर्मन पहले के समय कम्बोज की राजधानी का नाम बदलकर ईशानपुर (शिव पुरी) रख दिया गया था।

कम्बोज के शिला लेखों में सक सम्वत का व्यवहार किया गया है। उस समय के भारतीय शिला लेखों में जो भाषा इस्तेमाल होती थी वही भाषा कम्बोज के शिलालेखों में भी इस्तेमाल की गई है। जैसे "मन्दिर को ध्वंस करने वाले, जब तक चाँद और सूरज रहेंगे तब तक महा रौरव नरक में सड़ेंगे।"

कम्बोज के नगरों और प्रान्तो के नाम भी संस्कृत नाम ही मिलते हैं, जैसे—पाण्डु रङ्ग, विजय, अमरावती आदि।

इन शिला लेखों से एक बात का और पता चलता है कि राजकुमारियों का विवाह पहले अकसर ब्राह्मणों के साथ ही होता था। एक उल्लेख से पता चलता है कि सातवीं सदी के अन्त में वेदों और वेदाङ्गों में पारङ्गत अगस्त्य नामक एक ब्राह्मण आर्य देश से कम्बोज में आया और वहाँ उसका यशोमती नामक एक राज कन्या से विवाह हुआ। उन दोनों की सन्तान उस देश के मातृ कुल के उत्तराधिकार के नियम के अनुसार राज गद्दी की अधिकारी हुई और उन्होंने नरेन्द्र-वर्मन उपाधि रख कर राज किया। एक दूसरे उल्लेख से पता चलता है कि राजा राजेन्द्र वर्मन की कन्या और राजा जय वर्मन की छोटी बहिन इन्द्र लक्ष्मी ने यमुना के तट पर पैदा हुये दिवाकर नामक एक ब्राह्मण के साथ विवाह किया। राजा सूर्य वर्मन पहले ने अपनी पहली रानी (जो कि एक राज-कन्या थी) की छोटी बहिन की शादी एक भारतीय विद्वान जयेन्द्र पण्डित के साथ की और स्वयं अपनी लड़की की शादी वासुदेव ब्राह्मण के साथ की।

इन उल्लेखों में एक राजा की मृत्यु का वर्णन यह कह कर किया गया है कि 'उसने शिव लोक को प्रयाण किया।' इन उल्लेखों से यह भी पता चलता है कि राजकीय प्रबन्ध को 'शासन' कहा जाता था। राजाओं का 'अभिषेक' पहले पुरोहित करते थे और फिर राज गुरु। इन राज गुरुओं का राजाओं पर बहुत असर था और ये ही उन्हें सिद्धान्त, व्याकरण, धर्म शास्त्र आदि की शिक्षा देते थे। ये ही पण्डित राजाओं से शास्त्रोत्सव, महाहोम, लक्षहोम, श्राद्ध और भुवनार्थ आदि कराते थे।

एक उल्लेख से एक बड़ी दिलचस्प घटना का पता चलता है। तिलक नाम की एक महिला को वाद विवाद में अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करने के लिये इन प्रमुख पंडितों ने बहुत से रत्नोपहार भेंट किये और उसे 'वाग्देवी' की पदवी दी।

एम० एमानियर लिखता है—

"उनकी नैतिक और मानसिक संस्कृति को देखते हुए यह बात साफ़ तौर पर माननी पड़ेगी कि प्राचीन कम्बोज और भारत में बहुत गहरा सम्पर्क था। भारत कम्बोज के नियन्त्रक लोगों की मातृभूमि थी। हिन्दुस्तान ने कम्बोज को न केवल बौद्ध धर्म और शैव धर्म दोनों धर्म और संस्कृत भाषा ही दी बल्कि आर्यों की देवनागरी और द्रविड़ों की तामिल दोनों लिपियाँ भी दीं।...नौवीं सदी में हिरण्यदम नामक एक ब्राह्मण ने चारों वेदों को मुखाग्र याद कर लिया था। कम्बोज के पण्डितों को वे सभी विषय पढ़ने पड़ते थे जो भारत में पढ़े जाते थे; जैसे वेद और ख़ासकर अथर्व वेद, वेदाङ्ग और ख़ासकर पाणिनी का व्याकरण, यह बात कम्बोज के शिला लेखों को देखकर स्पष्ट हो जाती है। कम्बोज के शिला लेखों की भाषा और ख़ासकर व्याकरण भारत के शिला लेखों की भाषा और व्याकरण से औसत दरजे कहीं अधिक शुद्ध होता है।...कम्बोज में पातञ्जल की, तुलना हजार फनों वाले शेषनाग से की गई है। कम्बोज के शिला लेखों में सुश्रुत, मनु और हरिवंश का भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ज़िक्र मिलता है। अनेक प्राचीन मूर्तियों और खुदाइयों से यह बात साफ़ हो जाती है कि कम्बोज के लोगों को रामायण और महाभारत का पूरा पूरा ज्ञान था।"

एक दूसरा लेखक डेला पोर्ट लिखता है—

"एक बार ब्राह्मणी सभ्यता के कम्बोज में स्थापित हो जाने के बाद उसकी वहाँ बहुत जल्दी प्रगति हुई होगी। केवल उन्नततर संस्कृति ही जनता को इस तरह की यादगारें खड़ा करने के लिये, और उन्हें अपने हथोड़े से इस सुन्दरता के साथ अलंकृत कर देने के लिये, धातुओं को सजा देने के लिये, अस्त्र शस्त्र बनाने के लिये और उभरे हुये भित्ति चित्रों को तरह तरह की वेश भूषा, आभूषण, बर्तन और कलात्मक उद्योग की हज़ारों दर्शनीय चीज़ों से सजा देने के लिये प्रोत्साहित कर सकती थी। फ़र्ग्युसन एक शब्द में कम्बोजी सभ्यता की महानता का वर्णन करता है जब वह लिखता है कि 'ख़म्र के रथ इतने हल्के और इतने उम्दा होते थे कि उस युग में उनसे अच्छे और उम्दा या उसी तरह के रथ पूर्व या पश्चिम का कोई भी देश बनाने में असमर्थ था।"

सातवीं सदी में हिन्दू मत मतान्तरों से मिश्रित बौद्ध धर्म भी कम्बोज में मौजूद था। शैव और वैष्णव मन्दिरों की तरह बौद्ध विहारों को भी राज्य की ओर से ज़मीन, दास और देव दासियाँ मिलती थीं। किन्तु उस युग में कम्बोज में बौद्धों की तादाद-बहुत थोड़ी थी। चामों की सभी धार्मिक भावनाओं ने शैव रूप ले लिया था। शिव की जितनी मूर्तियाँ मिलती हैं उनमें 'लिंग' या 'मुखलिंग' ही प्रमुख हैं। शिव की मानव आकृतियाँ बहुत थोड़ी हैं और जो हैं उनमें शिव को तीन आँखों वाला, जनेऊ पहने हुये और योगी के रूप में दिखाया गया है। कुछ मूर्तियों में शिव की तीस भुजायें, हर एक भुजा में विविध अस्त्र शस्त्र धारण किये हुये, ताण्डव नृत्य करते हुये क्रुद्ध मुद्रा में दिखाया गया है। शिव की नारी शक्ति उमा या शक्ति की भी बहुत सी मूर्तियां मिलती हैं।

मूर्तियों के जो कुछ अवशेष मिलते हैं उन्हें देखते हुये जान पड़ता है कि कम्बोज में ब्रह्मा को अधिक महत्व प्राप्त नहीं था पर वैष्णव धर्म का काफ़ी प्रभाव था, यद्यपि उतना नहीं जितना कि शैव धर्म का। क्षीर सागर में सात फनों वाले नाग पर शयन करते हुये विष्णु की मूर्ति भी मिलती है कि जिनकी नाभि से कमल निकला हुआ है और उससे ब्रह्मा की उत्पत्ति दिखाई गई है। लक्ष्मी की भी मूर्तियां मिलती हैं किन्तु आम तौर पर लक्ष्मी के दो ही हाथ दिखाये जाते हैं और वह १३ फनों वाले नाग पर बैठी हुई दिखाई जाती है। गणेश, स्कन्ध और नन्दी की भी मूर्तियां मिलती हैं।

डोंग डुआङ्ग के विराट बौद्ध विहार में बुद्ध की केवल थोड़ी सी मूर्तियां सुरक्षित बची हुई हैं। इनमें सिंहल टाइप का बुद्ध की एक बेहद सुन्दर पीतल की मूर्ति है।

# प्रभात

श्री 'विनोद'

रवि से छूटी किरन ज्योति द्रुत नभ में फूटी,
बिहँस उठी अवनी झलमल द्युति भू पर टूटी
छूटी भू पर, तरु तमाल गिरि-गुहा-शिखर पर;
निर्झर के संगीत-स्वरों पर सरिता सर पर।

निर्झर के संगीत-स्वरों में लसी लालिमा,
बन उपवन के कनकन में जा फँसी लालिमा,
तरु उपवन फल फूल मूल में हँसी लालिमा,
मानव की प्रतिभा-प्रज्ञा में बसी लालिमा।

अरुण किरण आलोक धान खेतों पर छाया,
घास फूस की टुटी कुटी में स्वर्ण समाया,
गेहूँ का नव-वर्ण स्वर्ण-सुषुमा में फूला,
मलिन बदन कृषकाय कृषक अपने को भूला।

भू का मादक गन्ध, पवन का मधुमय झोंका,
सुमनों की मुसकान, गान गुन गुन भ्रमरों का।
पिक कुल का कल कंठ, कठ में निर्झर का स्वर,
स्वर में नव-संगीत, गीत में जीवन खर तर।

जीवन में विश्वास मेघ गम्भीर स्वरों में,
बोल उठा मानव की जय घन गहन तिमिर में।

---

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बङ्गलाः सांस्कृतिक एकता की रङ्ग-भूमि

डाक्टर लतीफ दफ़री एम. ए, डी. फिल. (आक्सन)

लगभग आठ शताब्दी तक बङ्गाल मुसलमान शासकों के अधीन रहा। इस सारे समय में बङ्गाल के हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे से मिल जुलकर आपसी भाई चारे के साथ रहते रहे। कभी कभी कोई निरंकुश शासक बङ्गाल की गद्दी पर बैठा पर वह अपने स्वेच्छा शासन से बङ्गाल के प्रेम पूर्ण वातावरण को ज़्यादा ठेस पहुँचाने में समर्थ न हो सका। अधिकांश शासकों और सर्व साधारण जनता ने बङ्गाल में हिन्दू मुसलमानों के सांस्कृतिक समन्वय में ही योग दिया। आज हम जो हिन्दू मुसलमानों में धार्मिक असहिष्णुता और कठमुल्लापन देख रहे हैं उस ज़माने में इसका पता तक न था। समाज में और व्यक्तिगत व्यवहार में प्रेम, मित्रता और भाई चारे की भावना ही प्रमुख दिखाई देती थी।

हिन्दू मुसलमानों के सांस्कृतिक समन्वय को बङ्गाल के जिन शासकों ने प्रोत्साहन दिया और बढ़ाया उनमें सुलतान ग़यासुद्दीन, नसीरशाह, हुसेनशाह और इनके अतिरिक्त सूबेदार परागल ख़ाँ, छोटे ख़ाँ आदि के नाम मुख्य हैं। मैथिल कवि विद्यापति ने नसीरशाह की बेहद प्रशंसा की है।

नसीर शाह ने बङ्गाल पर चालीस वर्ष तक अर्थात् सन् १३२५ ईसवी तक राज किया। कहा जाता है कि नसीर शाह ने ही पहले पहल महाभारत का संस्कृत से बंगला में अनुवाद कराया। हुसेनशाह का ज़माना (१५वीं सदी) तो बंगला साहित्य का स्वर्ण युग था। जिस तरह इङ्गलैण्ड की रानी एलिज़बेथ (१६वीं सदी) ने साहित्य को अपना संरक्षण दिया और स्पेन्सर, मेरलो, शेक्सपीयर और दूसरे अनेक साहित्यकों को प्रोत्साहन और राज्याश्रय दिया उसी तरह बङ्गाल के चक्रवर्ती राजा हुसेनशाह ने बङ्गला साहित्य को प्रोत्साहन देकर प्रसिद्ध बंगाली कवि मलधर बसु, बिजय गुप्त, जसोराज ख़ाँ और अन्य अनेक साहित्यकों को संरक्षण, उपहार और आश्रय दिया।

हुसेन शाह के आग्रह पर ही सन् १४८० में मलधर बसु ने भागवत् का संस्कृत से बंगला में अनुवाद किया। इस अनुवाद के सुसम्पन्न हो जाने पर हुसेन शाह ने मलधर बसु को 'गुणराज ख़ाँ' का ख़िताब दिया। प्रसिद्ध बङ्गला कवि बिजय गुप्त ने लिखा है कि हुसेनशाह ने बङ्गला साहित्य को जितना प्रोत्साहन दिया उतना किसी अन्य राजा ने नहीं दिया। कवि जसोराज ख़ाँ कहता है—"चक्रवर्ती सम्राट हुसेन शाह, जो कि पृथ्वी के आभूषण हैं, कविता की भावनाओं से ख़ूब परिचित हैं और वे उनका बड़ा सुन्दर विश्लेषण करते हैं।"

सम्राट हुसेन शाह की इस मिसाल से सम्राट के अन्य कर्मचारी और दरबारी भी बेहद प्रभावित हुए। सम्राट के सूबेदार और सेनापति परागल ख़ाँ ने कवीन्द्र परमेश्वर को प्रोत्साहन देकर महाभारत का संस्कृत से बङ्गला में 'श्री पर्व' तक भाषान्तर करवाया। इस तरह बङ्गला भाषा में पहली बार जनता को महाभारत सुलभ हुआ। परागल चटगाँव का सूबेदार था, जहाँ वह लगभग स्वाधीन शासक की हैसियत से हुकूमत करता था। परागल का योग्य पुत्र और उत्तराधिकारी छोटे ख़ाँ भी अपने बाप की तरह ही उदार और सर्व धर्म समभावी था। छोटे ख़ाँ ने कवीन्द्र परमेश्वर के अधूरे काम को पूरा करने के लिये श्री कर्ण नन्दी को नियुक्त किया। श्री कर्ण नन्दी ने महाभारत के अनुवाद के प्रथम अध्याय में मुक्त कण्ठ से इन मुसलमान शासकों की प्रशंसा की है।

स्वर्गीय दिनेशचन्द्र सेन ने, जिनकी पुस्तक बङ्गला भाषा और बङ्गला साहित्य के इतिहास पर अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती है, लिखा है—

"बङ्गला भाषा को साहित्य के पद तक पहुँचाने में कई प्रभावों ने काम किया है, जिनमें निस्सन्देह एक सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव मुसलमानों का बङ्गाल विजय करना था। यदि हिन्दू राजाओं का अधिकार बना रहता तो बङ्गला भाषा को राज-दरबार तक पहुंचने का मुश्किल से ही मौक़ा मिल सकता था"।*

राजा कंस के उत्तराधिकारी ने इसलाम मत स्वीकार किया और कृत्तिवास द्वारा संस्कृत से बङ्गला में रामायण का अनुवाद कराने का आयोजन किया। एक दूसरे मुसलमान उमरा अलाउल ने मलिक मोहम्मद जायसी की हिन्दी पुस्तक पद्मावत का बङ्गला में अनुवाद किया। अलाउल ने और भी अनेक फ़ारसी किताबों का बङ्गला में अनुवाद किया है। दिनेशचन्द्र सेन लिखते हैं—

"इस तरह की बेहद मिसालें मिलती हैं जिनमें कि मुसलमान सम्राटों और सरदारों ने संस्कृत और फ़ारसी के

*History of Bengali Language and Literature, p. 10.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ग्रन्थों का अपनी ओर से बङ्गला में तर्जुमा करवाया और दूसरों को इस तरह के कामों में मदद दी। जब कि बङ्गाल के बलवान मुसलमान बादशाहों ने देश की भाषा को अपने दरबारों में यह उच्च स्थान प्रदान किया है तो क़ुदरती तौर पर हिन्दू राजाओं ने उनका अनुसरण किया। इस तरह हिन्दू राजाओं के दरबारों में बङ्गाली कवियों की नियुक्ति का रिवाज मुसलमान बादशाहों की देखा देखी शुरू हुआ।"*

न केवल भाषा और सामाजिक क्षेत्र में ही सांस्कृतिक समन्वय की यह धारा बह रही थी बल्कि धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान दोनों एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ रहे थे। वैष्णव धर्म के इतिहास में मुसलमान वैष्णव सन्तों की मिसालें बेहद भरी पड़ी हैं। बारहवीं सदी के बङ्गाल में हिन्दुओं का मुसलमानों की दरगाहों में मिठाई चढ़ाना, कुरान पढ़ना और मुसलमानों के त्योहार मनाना और इसी तरह मुसलमानों का हिन्दुओं के धार्मिक रिवाजों की ओर क्रियात्मक आदर दिखलाना एक आम बात थी। इसी मेल जोल में से बङ्गाल के अन्दर एक नये देवता की पूजा शुरू हुई जिसे 'सत्य पीर' कहते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों सत्यपीर की पूजा करते थे। कहा जाता है कि सम्राट हुसैन शाह इस नए सम्प्रदाय का संस्थापक था।

पन्द्रहवीं सदी के आख़ीर में बङ्गाल में महाप्रभु चैतन्य का जन्म हुआ। चैतन्य के जन्म से पहले की हालत बयान करते हुये दिनेशचन्द्र सेन लिखते हैं—

"ब्राह्मणों का प्रभुत्व बहुत कष्टकर हो गया था। जाति भेद ने शिकंजे की तरह समाज की गर्दन को जकड़ रखा था।.....नीची जातियों के लोग ऊंची जातियों के लोगों के स्वेच्छाचार के नीचे आहें भर रहे थे। इन ऊँची जाति के लोगों ने नीची जाति वालों के लिये विद्या के दरवाज़े बन्द कर रखे थे। इन लोगों के लिये अधिक ऊँचे जीवन में प्रवेश करने की मनाही थी और नये पौराणिक धर्म पर इस तरह ब्राह्मणों का ठेका हो गया था मानो वह कोई बाज़ारू चीज़ हो।"†

महा प्रभु चैतन्य ने इस स्थिति पर गम्भीरता से विचार किया। घर बार छोड़कर वे देशाटन के लिये निकले। अनेक साधुओं और फ़क़ीरों के साथ उनकी ज्ञान चर्चा हुई। चैतन्य के जीवन चरित्र का रचयिता कृष्णदास लिखता है कि वृन्दावन में चैतन्य ने कई महीने मुसलमान फ़क़ीर के साथ धर्म चर्चा की। जदु भट्टा लिखता है—

"चैतन्य के जीवन की अनेक घटनायें ऐसी हैं जि यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है कि चैतन्य को मु मानो से बेहद प्रेम था।"*

चैतन्य ने गुरु की सेवा और भक्ति का उपदेश दि जातिभेद की ज़बर्दस्त मुखालफ़त की। ब्राह्मणों के क काण्डों को त्याज्य बताया। चैतन्य के शिष्यों में हिन्दू मुसलमान, ऊँची जाति और नीची जाति के लोग, शामिल थे। चैतन्य अपने सभी शिष्यों में हरिदास को से अधिक प्यार करते थे। हरिदास पहले एक मुसलम फ़क़ीर थे बाद में वैष्णव साधु हो गये। चैतन्य चरितामृत बिजुली ख़ाँ और दूसरे अन्य पठानों के वैष्णव धर्म स्वी करने का भी वर्णन दिया हुआ है। मुसलमान शास चैतन्य को ईश्वर का अवतार समझते थे। मध्य खण्ड में एक क़ाज़ी का हाल दिया हुआ है जो चैतन्य 'ईश्वर' कहकर पुकारता था।

चैतन्य के सम्प्रदाय की एक शाखा का नाम 'कर्त्ता भज' था। उसके संस्थापक कर्त्ता बाबा को एक मुसलमा फ़क़ीर ने ही पाला था। इस सम्प्रदाय के आचार्यों में हिन्दू और कई मुसलमान हुये हैं। ये लोग केवल ए ईश्वर की उपासना करते थे, दिन में पाँच बार गुरुम जपते थे, मांस मदिरा से परहेज़ करते थे, शुक्रवार को पवि दिन मानते थे और जात-पाँत, हिन्दू मुसलमान-ईसाई ऊंच नीच में कोई भेद न करते थे।

बंगाल के समकालीन बौद्ध ग्रन्थों—'शून्य पुरा 'धर्म पूजा पद्धति', 'धर्म गजन' और 'बाद जन इत्यादि में और बौद्ध गीतों में ब्राह्मणों की तरफ गुस्सा औ बदले की भावना और मुसलमानों के प्रति मोहब्बत के भा भरे हुये हैं। इन बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि उ समय के बंगाली मुसलमान मांस से परहेज़ करते थे। ए जगह लिखा है—

"खोंकड़ मग़रिब की तरफ़ मुँह क़िये खुदा से दु माँगता है।

"कोई अल्लाह की पूजा करता है, कोई अली की औ कोई ममूँद साईं की।

*Ibid pp. 13, 14.
† Ibid.

* Hindu Castes and Sects, by Jad Bhattacharya, P. 464.

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



"मियाँ किसी जीव की हत्या नहीं करता और न मुरदार खाता है। धीमी आँच के ऊपर वह अपना भोजन पकाता है।

"जात पाँत के भेद अब धीरे धीरे टूट जायँगे क्यों कि देखो हिन्दू कुटुम्ब के अन्दर एक मुसलमान है।"

मुसलमान जो पहले कट्टरता के साथ एक ख़ुदा की उपासना करते थे धीरे धीरे हिन्दुओं के धार्मिक असर में आकर काली, शीतला, सरस्वती, शिव, विष्णु आदि अनेक देवी देवताओं की उपासना करने लगे।

मशहूर विजेता शमसेर ग़ाज़ी के बारे में कहा जाता है कि एक मर्त्तबा उसे सपने में भगवती काली ने दर्शन दिया और कहा—"देखो! टिपरा राज वाले मेरी पूजा उपासना करते हैं। यदि तुम भी मेरी उपासना करोगे और मुझ पर एक मानव बलि चढ़ाओगे तो उसके एवज़ में मैं तुम्हें वर दूँगी कि तुम सुगमता के साथ युद्ध में फ़तहयाबी हासिल करो।' दूसरी बार फिर देवी ने शमसेर को दर्शन देकर अपनी वही माँग दुहराई। इस पर ग़ाज़ी ने डरते डरते देवी से कहा—"आप हिन्दुओं की देवी हैं और मैं मुसलमान हूं, तब आप कैसे मेरी पूजा स्वीकार करेंगी?" देवी ने उसे ब्राह्मण द्वारा पूजा करने के लिये राज़ी किया और परिणाम स्वरूप वह अपने सभी युद्धों में जयी हुआ।

इमाम यातार पन्थी नामक एक समकालीन बंगला ग्रन्थ के मुसलमान लेखक ने अपनी पुस्तक सरस्वती देवी की प्रार्थना से शुरू की है। एक दूसरा लेखक करीमुल्ला अपने ग्रन्थ 'यावनी वशाल' में देवादि देव शिव की स्तुति करता है। 'जमील दिलाराम' नामक पुस्तक का कवि अफ्ताबुदीन अपने नायक से सप्तर्षियों की पूजा कराता है। एक दूसरे लेखक हमीदुल्ला की पुस्तक भेलुआ सुन्दरी में ब्राह्मण लोग कुरान की मदद से शुभ मुहूर्त निकालते हैं। 'पदों' का रचयिता अत्यन्त-प्रसिद्ध कवि करम अली अपनी अनेक कविताओं को राधा और कृष्ण को समर्पित करता है। मुसलमानों का एक फ़िर्क़ा लक्ष्मी की उपासना के गीत गा गाकर ही अपना पेट पालता था। ये लोग अब तक यही करते हैं।

ये कुछ मिसालें हैं जिनसे उस ज़माने के बंगाल के हिन्दू मुसलमानों के सांस्कृतिक मेल जोल के जीवन पर थोड़ी सी रोशनी पड़ती है।

---

# तूफ़ान उठा तो सकते हैं !

श्री देवेन्द्र एम० ए०

हैं तुच्छ धूल औ' तिनके ही, तूफ़ान उठा तो सकते हैं !

वह दीप जलाता जाता था,
दुनिया बेबस परवानों की ;
सहसा दल के दल शलभ चले
आहुति देने निज प्राणों की ;
बुझ गया दीप, उसके प्रकाश
को पीता था वह अन्धकार ;
वह बुझा दीप, वे जले शलभ
कहते थे यह जग से पुकार
दो चार जलेंगे परवाने, पर आग बुझा तो सकते हैं !

जीवन सुख-साधन से वंचित
सब की राहें हैं बन्द आज ;
रो रहा एक ही नहीं सभी,
सब पर रोकें, प्रतिबन्ध आज ;
सब के सब रुकें, किन्तु रुकते
क्यों विप्लव के उद्धत प्रहरी ?
वे आज मौन क्यों प्राण-रन्ध्र
जिनमें प्रलयंकर स्वर-लहरी ?

सहमे भविष्य के भय से क्यों ?
देखो अतीत औ' वर्तमान !
हर रात लिये आई संग में
स्वर्णिम जग-जीवन का विहान !

यह देश आज कंकाल बना
प्राणों की भीख माँगता है ;
विस्मृत बलिदानों की तुम से
फिर से अब सीख माँगता है !
दो चार मिटेंगे दीवाने, पर याद दिला तो सकते हैं !

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नानक, यही अगम की गैल !

साधु टी. एल. वस्वानी

*[ एकांकी नाटक ]*

**पात्रः**

*गुरु नानक ( गुरू बनने से पहले )*
*कालू—गुरु नानक के पिता*
*गरीब—कालू का नौकर*
*ख़रीदार—ग़रीब, अपाहज, फ़क़ीर आदि*

## दृश्य पहला

*स्थान—कालू के घर का एक कमरा*

[ कालू और ग़रीब दोनों आपस में बातें कर रहे हैं। बातें करते करते कालू गुरू नानक को आवाज़ देता है। नानक धीमे पाँव रखते हुये कमरे में दाख़िल होते हैं। उनकी आँखें जगमग हो रही हैं मानो वे अन्तरतम में कोई प्रकाशमान दृश्य देख रहे हैं। कालू चिन्तित और कुछ ग़ुस्से में भरा हुआ दिखाई देता है। ]

कालू—नानक !
तेरे तरीक़ों से मैं बेहद परेशान होगया हूँ !
मेरी समझ में नहीं आता कि मैं तेरा क्या करूँ !

नानक—( गाने लगते हैं )—

साधो यह तन मिथ्या जानो।
या भीतर जो राम बसत है साँचो ताहि पिछानो॥
यह जग है सम्पति सुपने की, देख कहा ऐड़ानो।
संग तिहारे कछू न चाले ताहि कहा लपटानो॥
अस्तुति निंदा दोऊ परिहरि, हरि-कीरति उर आनो।
जन 'नानक' सब ही में पूरन, एक पुरुष भगवानो॥

कालू—( ग़रीब से )—
नानक को तलवण्डी ले जाओ !
वहाँ इसके लिये एक आटे की दूकान खोल देना ;
यह पैसा लो ( रुपये की थैली देता है ) और इसे खुश रखना,
और यह देखते रहना कि इसका रोज़गार ठीक से चल रहा है।

ग़रीब—हाँ सरकार !

[ ग़रीब नानक को ले जाता है। नानक उसके साथ भजन गाते हुये जाते हैं। ]

## दृश्य दूसरा

*स्थान—आटे की दूकान*

[ नानक दूकान में बैठे हुये हैं। एक ग़रीब और अपाहज आदमी वहाँ से गुज़रता है। नानक तराज़ू में आटा तोलते हुये उसे बुलाते हैं। ]

नानक—क्यों भाई।
तुम तो बहुत बूढ़े, ग़रीब और भूखे मालूम होते हो।
लो यह आटा लो ( तराज़ू उसकी तरफ़ बढ़ाते हैं ),
इसकी तुम्हें कोई क़ीमत न देनी पड़ेगी !
लो इसे लो और अल्लाह के गुन गाओ !
( फिर एक दूसरे फ़क़ीर को बुलाकर )—
लो भाई यह आटा तुम्हारे लिये है !
यह मेरी मोहब्बत की सौगात क़ुबूल करो फ़क़ीर !
और लोगों को अल्लाह की नियामतों की बात बताओ !

( फिर एक बूढ़ी भिखमंगन को गोद में बच्चा लिये हुये देखकर )—
लो मेरी माँ ! यह आटा तुम्हारे लिये है !
तुम्हारे इस देवता जैसे सुकुमार छौने के लिये है !
जाओ उसी ईश्वर की महिमा का बखान करो !
( फिर एक ग़रीब मुसलमान को देखकर )
भाई ! तेरे अन्दर भी उसी अल्लाह का ज़हूर है !
उस अल्लाह का जो सब के अन्दर है और सब जिसके अन्दर हैं !

हिन्दू जपते राम नाम, मूसलमान ख़ुदाय,
इक्को राम रहीम है, मन में देखो लाय।
ऐ मेरे भाई, इस आटे से अपनी झोली भरलो,
अपना मुंह उस परवरदिगार की तरफ़ उठाओ;
और उसीके पाक नाम का सुमरन करो !

( ग़रीब लौटकर जब दूकान पर आता है तो वहाँ भीड़ को खड़ा पाता है और नानक से कहता है )—
ग़रीब—तुम्हारी दूकान पर तो ख़रीदारों की भीड़ है आज तो तुमने काफ़ी कमाया होगा। तुम्हारे बाप यह जान कर बहुत ख़ुश होंगे।
नानक—मैं जानता हूँ मेरा वह पिता ख़ुश होगा। पिता ! जिसने मुझे यहाँ भेजा है !

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ग़रीब—अब तक तुमने कितना कमाया ?

नानक—इतना कि जिसे मैं बयान नहीं कर सकता !

ग़रीब—कितना ? लाओ देखूं तुम्हारा सन्दूक़ ?

(सन्दूक़ खोलकर देखता है तो उसे छूछा पाता है) हैं ! रुपये कहां हैं ?

नानक—मेरा ख़ज़ाना इन आंखों से नहीं दिखाई देता !

ग़रीब—नानक, भइया ! बता दो रुपये कहां हैं। नहीं तो मैं तुम्हारे बाप से जाकर शिकायत करूँगा।

नानक—त्याग के बने मेरे रुपये हैं !

अपरिग्रह मेरी दौलत है !

तर्कें दुनिया ही ज़िन्दगी की सब से बड़ी कमाई है !

और राम नाम ही सच्चा लेन देन है !

( वह फिर आटा तोल तोल कर ग़रीबों को मुफ़्त देते हुये गाते हैं )—

जो नर दुख में दुख नहिं माने।
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके कंचन माटी जाने॥
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके, लोभ मोह अभिमाना।
हर्ष सोकतें रहै नियारो, नाहिं मान अभिमाना॥
आसा मनसा सकल त्यागि के जगतें रहे निरासा।
काम क्रोध जेहि परसें नाहिंन, तेहि घट ब्रह्म निवासा॥
गुरु-किरपा जेहि नर पै कीन्हीं तिन यह जुगति पिछानी
नानक लीन भयो गोविन्द सों ज्यों पानी संग पानी॥

ग़रीब—( बहुत दुखी होकर ), नानक, तुम तो बिलकुल पागल हो गये हो !

नानक—धन्य हैं ऐसे पागल !

और नियामत है यह पागल पन !

क्यों कि ये पागल असहायों और दुखियों में,

उस सारी दुनिया के शहन्शाह को देखते हैं !

जो नाना रूप और नाना भेदों में पृथ्वी में व्याप्त है !

धन्य हैं, धन्य हैं, ऐसे पागल !

वे दौलत ग़रीबों में बाँट देते हैं !

और उसके नाम की महिमा का बखान करते हैं !

## दृश्य तीसरा

[ नानक गाते हैं और आटा बाँटते हैं और गाते हैं। दूसरे दिन दूकान बन्द हो जाती है आटा बचा ही नहीं जिसे ग़रीबों में बाँटा जाता। ग़रीब कालू के पास जाकर "पागल" नानक की शिकायत करता है और कालू बेहद लाल पीला हुआ आता है। ]

कालू—तुमने मेरी ज़िन्दगी तलख़ करदी नानक।

तुमने अपने ख़ानदान का नाम डुबा दिया नानक !

तुमने नवाब की नौकरी से इनकार किया, मैंने तुम्हें यह दूकान कर दी !

लेकिन तुमने दे देकर दूकान का भी सफ़ाया कर दिया !

नानक—पिता जी ! अपने इस अज्ञान बेटे पर ख़फ़ा न होइये !

यह देना ही सब से बड़ा पाना है पिता जी !

क्यों कि चीथड़ों में लिपटे हुये इन दुखियों के वेश में ही वह सारे जगत का राजा आता है !

कालू—लेकिन तुमने तो मेरी सारी दौलत लुटा दी !

नानक—मैंने यह सब उसी परम पिता के नाम पर किया जिसने मुझे यहाँ भेजा है।

कालू—मैंने तुम्हें कमाने के लिये भेजा था लुटाने के लिये नहीं !

नानक—मुहब्बत की राह में कोई चीज़ नहीं लुटती, पिता जी।

वह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती है।

सच्चाई के महल में इसका लेखा जोखा होकर भण्डार लगता जाता है।

कालू—पागलचन्द ! तुम मुझे अमीर से ग़रीब कर दोगे !

नानक—धन्य हैं वे ग़रीब क्यों कि उनके पास रामनाम की अथाह दौलत है !

कालू—क्यों बकवास करते हो। तुम्हें कोई नहीं समझा बुझा सकता। चलो वापस। व्यापार रोज़गार तुम्हारे बस का नहीं है !

नानक—पिता जी ! राम नाम ही मेरा व्यापार है।

दुखियों से ही मेरा लेन देन है।

उन्हीं के हृदय के भीतर जो सतमंज़ला महल है वहीं ईश्वर वास करता है और जब उसकी मेहर होती है तो वह हमारे दिलों की गाँठ खोलकर हमें त्याग में जो रहस्यमय सत्य छिपा हुआ है उसके दर्शन कराता है !



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गान्धी जी का रचनात्मक कार्यक्रम

श्री मज़हर अली सोख़्ता

महात्मा गान्धी के रचनात्मक कार्यक्रम की मंशा यह है कि देश भर के सदाचार को ऊँचा उठाकर इनसानी हमदर्दी को फिर से क़ायम किया जाय और लोगों के दिलों और दिमाग़ों को उभारने और बढ़ाने के लिये देश के उद्योग धन्धों और कारीगरियों को साधन बनाया जाय और इसी बुनियाद पर तालीम का मन्दिर खड़ा किया जाय।

सदाचार को ऊँचा उठाने से महात्मा जी का मतलब यह है कि ज़िन्दगी के सब कामों में, उद्योग-धन्धों में, व्यापार में, राजनीति में और सामाजिक व्यवहार में सत्य और अहिंसा को बुनियाद मानकर नेकी और सदाचार के उसूलों का कड़ाई से पालन किया जावे। समाज के अन्दर इनसानी हमदर्दी को फिर से क़ायम करने से उनका मतलब यह है कि आदमी आदमी के बीच के सब कामों और व्यवहारों में आपाधापी और ख़ुदग़र्ज़ी की जगह वह तरीक़ा काम में लाया जाय जो एक कुटुम्ब के अन्दर और भाई भाई के बीच काम में आता है। गान्धी जी की बुनियादी तालीम वह नया तरीक़ा है जिससे लोगों के दिलों, दिमाग़ों और चलन को इस तरह ढाला जा सकता है।

गान्धी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का मतलब यह है कि जिन लोगों को इस तरह की तालीम मिल चुके उनके ज़रिए देश की माली हालत में, राजनीति में और एक दूसरे से बर्ताव में सत्य और अहिंसा को बुनियाद मानकर एक ऐसी क्रान्ति पैदा की जाय जिससे यह देश ही नहीं बल्कि दुनिया के सारे आदमी प्रेम और तसल्ली के साथ एक कुटुम्ब की तरह रह सकें।

महात्मा गान्धी मानते हैं कि आदमी की ज़िन्दगी—चाहे एक आदमी की हो चाहे सारे समाज की अलग अलग टुकड़ों में नहीं बांटी जा सकती। आदमी की सारी ज़िन्दगी एक इकाई है जिसके सब हिस्से और सब पहलू एक दूसरे में गुंथे हुए हैं और उन सब को मिलाकर और उन्हें एक सिद्धान्त के मातहत चलाकर ही आदमी सुखी रह सकता है।

रचनात्मक कार्य-कर्त्ताओं के चुनने में इस बात का ख़ास ख़याल रखना चाहिये कि कर्त्ता इस तरह के काम के लिये योग्यता जिसमें उनकी तबियत लगती हो, महात्मा गान्धी के उसूलों में उन्हें सच्चा विश्वास हो और रचनात्मक कार्यक्रम के मतलब को वे पूरी तरह समझते हों। अगर इन बातों का ध्यान न रक्खा गया तो मानव ताक़त जिस तरह हो सके पैसा कम में ही ख़र्च होगी, इस योजना का असली मतलब नष्ट हो जावेगा और उससे लाभ की जगह हानि होगी क्योंकि इस तरह कार्यक्रम की असली कामयाबी इसी बात में है कि कार्यक्रम के सारे पहलू साथ साथ और एक बराबर और तरक़्क़ी करें।

अब तक देश के राजनीतिक और रचनात्मक काम इस बात से बड़ा नुक़सान पहुँचा है कि काम करने वाले गुज़ारे का सवाल ठीक तरह हल नहीं किया जा सका किसी भी देश की सरकार को छोड़कर और कोई भी संस्था या सभा-सोसाइटी हज़ारों काम करने वालों को नक़द तनख़्वाह देकर नौकर नहीं रख सकती, और कोई सेवक चाहे वह कितना भी सच्चा, ईमानदार और लगन वाला क्यों न हो तब तक देश की सेवा में अपना वक़्त नहीं दे सकता जब तक उसके गुज़ारे का पूरा इन्तज़ाम न हो। रचनात्मक काम हो चाहे और कोई भी काम हो जब तक काम करने वाले का गुज़ारा उसी काम से निकल सके तब तक वह लगकर और पूरी तरह सेवा नहीं कर सकता।

ग्रामोद्योग केन्द्रों में काम करने वालों को यह भी समझनी होगी कि उनकी दस्तकारियां उनके असली का का सिर्फ़ एक छोटा सा पहलू हैं। इन दस्तकारियों चलने का असली मतलब सिर्फ़ यह है कि गाँव के लोग अपने धन्धों में स्वावलम्बी हों यानी अपने पैरों पर खड़े हो सकें और दूसरों की या विदेशियों की लूट से या उनकी व्यापारी ग़ुलामी से बचे रहें। यह स्वावलम्बन और आज़ादी ही ग्राम सेवकों को अपने आस पास के लोगों की ज़िन्दगी में पैदा करनी है। हमारे ग्राम उद्योग केन्द्रों में काम करने वाला सेवक उस वक़्त तक आराम नहीं बैठ सकता जब तक कि उसके इस छोटे से केन्द्र

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


गांव की ज़िन्दगी का हर धन्धा शामिल न हो जावे और जब तक कि वहां की बनी हुई चीज़ें उस इलाक़े के लोगों की सब ज़रूरतों को पूरा न करने लगें। जब तक वह दिन न आ जावे तब तक ग्राम सेवक को उस दिन के लाने के लिए अपनी पूरी ताक़त लगाये रखनी होगी।

इसके बाद गांव की सफ़ाई और गांव वालों की तन्दुरुस्ती का सवाल आता है। इसके लिए हमें गाँव की सारी ज़िन्दगी को ही जड़ से बदल देना पड़ेगा। हमें हर गांव के अन्दर चारों तरफ़ गन्दगी और ख़तरनाक गन्दगी देखने को मिलती है। सेवक को बड़ी होशियारी और धीरज के साथ काम करना होगा। उसे उपदेशक की तरह नहीं बल्कि एक साथी और सच्चे सेवक की तरह प्रेम और नरमी के साथ इस सम्बन्ध में काम करना चाहिये। इस काम में चाहे कितनी भी कम कामयाबी हो उसे हिम्मत नहीं हारनी चाहिये। लोगों में सुस्ती, और बेपरवाही और गन्दी आदतें इतनी पुरानी हो गई हैं कि उन्हें छुड़ा देना आसान काम नहीं है। सेवक जब तक अपनी बेलाग सेवा के ज़रिये लोगों के दिलों को अपनी तरफ़ न खींच लेगा तब तक उसे इसमें कामयाबी न होगी।

इसके बाद ग्राम सेवक के लिए सब से बड़ा और सब से मुश्किल काम अपने इलाक़े के अन्दर उन पांच तरह के रचनात्मक कामों को पूरा करना रह जाता है जिनका गान्धी जी ने हमें सब से पहले उपदेश दिया था, यानी उस इलाक़े से छुआ छूत को दूर करना, विविध सम्प्रदायों में एक दूसरे से प्रेम और मेल मिलाप पैदा करना, शराब और दूसरी नशे की चीज़ों को बन्द करना, खद्दर में और दूसरे धन्धों में लोगों को स्वावलम्बी यानी अपने पैरों पर खड़े होने के क़ाबिल बनाना और सब को लिखना पढ़ना सिखाना।

हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिये कि गांव वालों को उनके धन्धों के लिहाज़ से स्वावलम्बी बनाना यानी खद्दर और दूसरी ज़रूरी चीज़ें हर इलाक़े के अन्दर इतनी काफ़ी पैदा कर लेना जिससे उस इलाक़े वालों का अच्छी तरह काम चल जावे और थोड़ा बहुत बच रहे, देश के लिए उतना ही ज़रूरी है जितना शरीर के लिए नाड़ियों में ख़ून का चलते रहना। फिर भी यह चीज़ देश की जान नहीं है। हमारी असली ग़रज़ यह है कि रचनात्मक कार्यक्रम का जो राजनीतिक मतलब है और लोगों के रहन सहन, चाल चलन, आपसी व्यवहार में जो हम तरक़्क़ी और अदल बदल करना चाहते हैं वह भी मतलब पूरा हो सके।

रचनात्मक कार्यक्रम की सब से बड़ी ग़रज़ यह है कि लोगों के अन्दर उनके इरादे की ताक़त इतनी मज़बूत हो जावे और उनका संगठन इतना अच्छा और इतना फैला हुआ हो जावे कि वे अपनी राजनीतिक हालत को बदल सकें और अपनी भीतर और बाहर की सारी ज़िन्दगी को जिस ढङ्ग की चाहें बना सकें। हम इस बात पर जितना ज़ोर दें उतना ही कम है कि रचनात्मक कार्यक्रम को अगर बिना अच्छी तरह समझे सिर्फ़ मशीन की तरह पूरा कर दिया जाय तो उससे कोई फ़ायदा नहीं हो सकता। उससे फ़ायदा तभी हो सकता है जब कि हर तरह के अन्याय और ज़ुल्म का हिम्मत के साथ मुक़ाबला करने और हर तरह की तिजारती ग़ुलामी से लड़ने का ख़्याल रचनात्मक काम के साथ साथ चलता और बढ़ता रहे। तभी यह कार्यक्रम हमारे अन्दर अच्छे से अच्छे गुण पैदा कर सकता है और देश के बहादुर और हिम्मतवर लोगों के दिलों को अपनी तरह खींच सकता है। इस तरह के आदमी ही इस प्रोग्राम को चमका सकते हैं और उसे सचमुच कामयाब बना सकते हैं। इसके लिये हमें सेवकों को समझाना और उनके दिमाग़ों को रोशन करना होगा। उनमें अनुशासन की आदत डालकर उनके सदाचार को ऊँचा करना होगा। उनके दिलों में जोश पैदा करना होगा और गाँव की दस्तकारियों की उन्हें पूरी पूरी तालीम देनी होगी। ये सब काम साथ साथ करने होंगे।

ग्राम सेवक को हमेशा याद रखना चाहिये कि लोगों के दिलों में घर कर लेने और उनके प्रेम को जीतने का सब से पक्का और सब से आसान तरीक़ा यही है कि उनकी हर तरह सेवा की जावे। ख़ास कर अपने इलाक़े भर के ग़रीबों, कंगालों और बीमारों की जब जब भी मौक़ा मिल सके सच्ची सेवा की जावे और उन्हें मदद दी जावे। इससे सेवक उन दुखियों और बीमारों के दिल तो अपनी तरफ़ कर ही लेगा, लेकिन इसके साथ साथ इलाक़े भर के और सब लोगों के प्रेम और श्रद्धा को भी अपनी तरफ़ कर लेगा। लेकिन लोगों के दिलों को जीत लेना ही उसकी सेवा की ग़रज़ नहीं है। असली ग़रज़ यह है कि उनके दिलों को हाथ में लेकर वह समाज की बुराइयों को एक एक कर कम करके मिटा सके। लोगों की इन बुराइयों का एक एक करके मिटते जाना ही इस बात की कसौटी है कि ग्राम सेवक को अपने काम में कहां तक सच्ची कामयाबी मिली। अगर ग्राम सेवक ने इन बुराइयों की तरफ़ ध्यान नहीं दिया और वह इनको कम करने में बिल्कुल नाकामयाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रहा तो समझ लेना चाहिये कि ग्राम सेवक या तो अपने काम के क़ाबिल नहीं है और या उसमें लगन की कमी है। ऐसी हालत में उसे समझाने-बुझाने, सिखाने, मदद देने और उसमें लगन पैदा करने की हर तरह कोशिश होनी चाहिये।

जहां तक ग्राम सेवकों की तनख़्वाह का सवाल है, उन्हें चाहिये कि गांव में आमतौर पर लोग जिस तरह रहते हैं उसी तरह अपने को भी ढालने की कोशिश करें। उन्होंने ऐसा न किया तो उनके केन्द्र का ख़र्च एक ऐसा बोझ हो जावेगा जिसे केन्द्र सह न सकेगा, फिर या तो उन्हें पूँजी में से खाना पड़ेगा और या बार बार बाहर से मदद माँगने की ज़रूरत पड़ेगी। दोनों में से किसी हालत में भी काम देर तक न चल सकेगा, और केन्द्र अपने बोझ से ही बैठ जावेगा। कोई भी ऐसा केन्द्र जो अपना ख़र्च ख़ुद न निकाल सके गांव की ज़िन्दगी को स्वावलम्बी नहीं बना सकता और गाँव वालों को सचमुच अपने पैरों पर खड़े होने के क़ाबिल नही कर सकता। कोई ग्राम सेवक जो गांव के मामूली रहन सहन की सी ज़िन्दगी नहीं बिता सकता कभी भी जनता की कोई सच्ची सेवा करने के क़ाबिल नहीं बन सकता।

ग्राम सेवकों को ज्यादा क़ाबिल और ज्यादा काम का बनाने की ग़रज़ से उन्हें ग्रामोद्योग के साथ साथ थोड़ा बहुत गाँव की सफ़ाई का काम, शरीर की सफ़ाई का काम तन्दुरुस्ती के उसूल, कुदरती तरीक़ों से बीमारियों का इलाज, सुलभ और सस्ती दवाओं से बीमारियों का इलाज, जानवरों और दरख़्तों की बीमारियों का इलाज भी सिखाया जावे। इन चीज़ों के जानकारों से सलाह करके हम इस नतीजे पर पहुंच गये हैं कि तीन ही महीने के अन्दर और सब चीज़ों के सिखाने के साथ साथ इन चीज़ों की भी इतनी काफ़ी जानकारी सेवकों को कराई जा सकती है जिससे इन सब बातों में भी वे गाँव वालों की काफी मदद कर सकें। हमारी यह भी तजवीज़ है कि इन केन्द्रों में ही इस तरह के दवाख़ाने खोल दिये जावें जिनसे आस पास के लोगों को भी फ़ायदा पहुंचे और जिनमें इस बात का भी इन्तज़ाम हो कि जो रोगी या दूसरे लोग अपनी ख़ुशी से मदद के तौर पर कुछ देना चाहें उनसे ले लिया जावे ताकि सारे काम का ख़र्च भी निकलता रहे।

एक औसत दर्जे के केन्द्र के अन्दर क्या क्या चीज़ें होनी चाहियें, क्या काम होना चाहिये और उससे क्या ग़रज पूरी होनी चाहिये, यह सब हम थोड़ा बहुत बता चुके हैं। हम कह चुके हैं कि इन केन्द्रों की ग़रज़ सिर्फ तिजारती नहीं है, बल्कि राजनैतिक और सामाजिक भी है। ग़रज़ यह है कि सारे समाज के सदाचार को ऊँचा किया जावे और लोगों में इतने ज़ोरदार इरादे की ताक़त पैदा कर दी जावे जिसे कोई रोक न सके और इतना फैला हुआ और गहरा संगठन खड़ा कर दिया जावे जिसके ज़रिये जनता अपने इरादे को पूरा कर सके और उसे अपनी ज़िन्दगी का अंग बना सके। इतने बड़े और दूर दूर तक फैले हुये संगठन में हमारे केन्द्र ऐसे ही होंगे जैसे आदमी के शरीर में जगह जगह बिखरी हुई शिरा ग्रन्थियाँ। इन केन्द्रों से ही वह ज़बर्दस्त शक्ति पैदा होगी जो हमारे देश के सारे शरीर को एक कर देगी, उसमें एक सा ख़ून दौड़ा देगी और उसे इस क़ाबिल कर देगी कि उसके ज़रिये हम अपने देश और अपने समाज के राजनैतिक और सामाजिक मक़सद तक पहुँच सकें।

रचनात्मक काम की योजना में हमने बताया है कि अलग अलग बातों में हमें कम से कम कितना काम कर लेना चाहिये। ग्राम उद्योग में जिसमें खादी भी आ गई, हमें कम से कम स्वावलम्बी यानी अपने पैरों पर खड़े हो जाने के क़ाबिल हो जाना चाहिये, राजनीति में हमें साम्प्रदायिक एकता क़ायम कर लेनी चाहिये। धर्म में हमें छुआछूत मिटा देनी चाहिये। सदाचार में हमें लोगों की शराब और दूसरे नशों की आदत छुड़ा देनी चाहिये और लोगों की जानकारी बढ़ाने के मामले में यह देखना चाहिये कि देश में कोई अनपढ़ न रह जावे।

यह सब शुरू की सीढ़ी है। यह सब वह तैयारी है जिससे आगे को हम धीरे धीरे देश वासियों की समझ बूझ, उनकी चेतनता और उनके बल को ऊँचा ऊँचा ले जा सकें। हमारी यह समझ बूझ, हमारी चेतनता, और हमारा बल उस वक्त तक बराबर बढ़ता रहना चाहिये जब तक कि देश वासियों का सदाचार इतना ऊँचा न हो जावे और उनमें इतनी ताक़त न आ जावे कि वे अपनी ज़िन्दगी की बुनियादी राजनैतिक और समाजिक बुराइयों से पूरी कामयाबी के साथ लड़कर उन्हें देश से उखाड़कर न फेंक सकें।

रचनात्मक काम के इस पहलू को हमने कभी पूरी तरह नहीं समझा और न उसकी ठीक क़दर की। हमने इस प्रोग्राम को हमेशा एक लम्बी मुसीबत ही समझा जिसे न जाने कब तक जारी रखना पड़ेगा। और जिससे न जाने कभी कोई काम का नतीजा भी निकल सकेगा या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



निकल सकेगा। क़ुदरती तौर पर हमारे दिल हिंसा और मार काट के उन तरीक़ों की तरफ़ ज़्यादा झुकते हैं जिनसे इतिहास में सैकड़ों बार काम लिया गया है। हम समझते हैं कि इन तरीक़ों से हम बहुत जल्दी अपने राजनैतिक और समाजी मक़सद को पूरा कर सकेंगे। इन बातों की वजह से रचनात्मक काम की तरफ़ हमारी बेपरवाही और भी बढ़ गई है। हम यहाँ पर अहिंसा और हिंसा की बहस में पड़ना नहीं चाहते। हम सिर्फ़ इतना ही कहते हैं कि जिन लोगों को हिंसा के तरीक़ों से कामयाबी हासिल करने में यक़ीन है उनके लिये हिंसा के तरीक़े खुले हुये हैं। लेकिन जिन्हें अहिंसा के तरीक़ों के ठीक होने और कामयाब होने में यक़ीन हो उन्हें यह नया तरीक़ा ही अपनाना और काम में लाना चाहिये। हर सूरत में हमें समझ लेना चाहिये कि यह दोनों अलग अलग तरीक़े यानी हिंसा का तरीक़ा और रचनात्मक तरीक़ा एक दूसरे के ख़िलाफ़ हैं, देश की आख़िरी लड़ाइयों के लिये दोनों में दो अलग अलग तरह की तय्यारी की ज़रूरत होगी, और तैय्यारी के तरीक़े बिलकुल एक दूसरे को काटते हैं। इनमें मेल नहीं हो सकता। अगर हम एक साथ और एक जगह दोनों को मिलाने की कोशिश करेंगे तो दोनों एक दूसरे को नष्ट कर देंगे, दोनों निकम्मे हो जायंगे। हमें इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये और जिस तरह भी हो सके इस ग़लती से बचना चाहिये। सेवकों या देश के काम करने वालों के लिये इससे ज़्यादा नासमझी की और कोई बात नहीं हो सकती कि वे इन दोनों अलग अलग तरीक़ों को मिलाकर चलाने की कोशिश करें और देश सेवा के काम में आपस ही में एक दूसरे के काम को निकम्मा कर दें। हिंसा के तरीक़े में विश्वास रखने वाला अगर तामीरी काम को फ़िज़ूल और बंजर समझता है तो तामीरी काम करने वाले सेवक को अकेले ही अपनी ज़मीन में हल चलाते रहना चाहिये। लेकिन अगर हिंसा के तरीक़े में विश्वास रखने वाला भी यह समझता हो कि असली हिंसा का रास्ता उसके लिये बन्द है और न जाने कब तक बन्द रहेगा, और हिंसा के रास्ते में कच्चे क़दम उठाने से और ज़्यादा कमज़ोरी, नाउम्मीदी और लोगों की मुसीबतें बढ़ती हैं, तो हिंसा का मानने वाला भी इस नये तरीक़े पर चाहे तो आजमाइश के तौर पर एक बार चलकर देख सकता है, लेकिन अगर वह ऐसा करे तो जब तक वह इस रास्ते पर चले उसे पूरे दिल से ईमानदारी और सच्चाई के साथ उस पर चलना चाहिये।

रचनात्मक काम के रास्ते में असली कठिनाई दिल की है। हमारे दिलों में यक़ीन की कमी है। इसी लिये हमें इस रचनात्मक काम के पूरे हो सकने या न चल सकने का डर लगा रहता है। नहीं तो इस डर की कोई वजह नहीं। दुनियाँ की ऊपरी चीज़ों का हमारे दिलों पर इतना गहरा असर है कि हम यह भी नहीं देख पाते कि हमारी ग़ुलामी की जड़ें हमारी समाजी ज़िन्दगी में और हमारे रहन सहन और चाल चलन में बहुत गहरी गई हुई हैं। महात्मा गांधी समझते हैं कि इस वक़्त हिन्दुस्तान अपनी असली कल्चर और अपनी असली आत्मा से बिल्कुल फिरा हुआ है। हमारी आज कल की ज़िन्दगी और हमारी असली आत्मा में मेल जाता रहा, यही हमारे दुख का ख़ास कारण है। गांधी जी का यह भी ख़्याल है कि हमारी राजनैतिक ग़ुलामी ही हमारे नैतिक गिराव और हमारी अधिक बरबादी का सब से बड़ा सबब है। इसलिये गांधी जी ने इस राजनैतिक ग़ुलामी को ख़तम करना ही अपनी ज़िन्दगी का सब से पवित्र उद्देश्य बना रक्खा है। लेकिन वे इस ग़रज़ को हिंसा और मारकाट के ज़रिये राज्य की ताक़त अपने हाथ में लेकर पूरा करना नहीं चाहते। वे इसके लिए पहिले देश वासियों के दिलों और दिमाग़ों के अन्दर एक ऐसा इनक़लाब पैदा करना चाहते है जिसकी बुनियादें हमारे सदाचार पर होंगी। गांधी जी का ख़्याल है कि हमारी ग़ुलामी को उखाड़ फेंकने का यह तरीक़ा ज़्यादा टिकाऊ ज़्यादा सस्ता और दूसरे तरीक़े से कहीं ज्यादा रचनात्मक कहीं ज़्यादा प्रेम पूर्ण और कहीं ज़्यादा इन्सानियत का है इसलिए अगर गहराई में जाकर देखा जावे तो रचनात्मक प्रोग्राम उतना ही ज़ोरदार राजनैतिक प्रोग्राम है जितना कोई भी दूसरा शुद्ध राजनैतिक प्रोग्राम हो सकता है यही उसकी ग़रज़ और मतलब है। फ़रक़ सिर्फ़ इतना है कि यह प्रोग्राम हिंसा और मार काट के प्रोग्राम की निस्बत ज़्यादा ऊँचे उसूलों पर क़ायम है और आदमी की ज़िन्दगी की ज़्यादा गहरी छान बीन करके इस प्रोग्राम को तै किया गया है। महात्मा गांधी समझते हैं कि हमारी राजनैतिक ग़ुलामी की जड़ें हमारे समाज के चाल चलन, उसके रहन सहन, आचार विचार और कल्चर में गहरी चली गई हैं और जब तक हम इन सब चीज़ों को ठीक न करेंगे हम उन जड़ों को उखाड़ कर नहीं फेंक सकते। महात्मा गांधी का रचनात्मक प्रोग्राम इसी बात को निगाह में रखकर बनाया गया है कि हम अपनी ग़ुलामी की उन जड़ों तक पहुँचकर उन्हें हमेशा के लिए उखाड़ कर फेंक सकें।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ऊपर के दिखावटी कामों में हम बहुत ज़्यादा वक़्त और बहुत ज़्यादा शक्ति ख़र्च करते हैं। इस तरह की चीज़ों का वैसा ही असर होता है जैसा पानी के ऊपर बुलबुलों का। उनसे आँखें ज़रूर ख़ुश होती हैं पर कोई टिकाऊ असर बाक़ी नहीं रहता। रचनात्मक प्रोग्राम देश की ज़िन्दगी की गहराइयों में जाकर वहाँ हिलोरें लेकर देश की छिपी हुई और दबी हुई ताक़तों को जगाने का काम करता है। यह ताक़त जब एक बार जाग जावेगी तो वह तूफ़ान खड़ा कर देगी जो अपने आगे आगे देश की सब बुराइयों के कूड़े-कचरे को बहा ले जावेगा। अगर हम इतना समझ लें और रचनात्मक प्रोग्राम के पूरे मतलब को जान जावें तो हमारी गहरी से गहरी राजनैतिक इच्छायें इसी से पूरी हो जावेंगी लेकिन हम इतनी जल्दी नतीजे देख लेना चाहते हैं कि उससे हमारी आँखों पर परदा पड़ जाता है और हम चीज़ों को ठीक ठीक देख नहीं पाते। नतीजा ठीक उल्टा होता है। हमारी चाल और भी ज़्यादा धीमी हो जाती है।

इस वक़्त ऐसा मालूम होता है कि जल्दबाज़ी और घबराहट के लिये कोई गुंजाइश नहीं है। हमारी राजनैतिक शक्ति के बढ़ने के सब रास्ते बन्द कर दिये गये हैं। यह भी डर है कि यह सब रास्ते अभी कुछ दिनों और बन्द रहेंगे। पिछले कुछ वर्षों के अन्दर राजनीति में जो हमें नाकामयाबी सी दिखाई देती है उसका एक यह भी नतीजा हुआ है कि ऊपर के दिखावटी प्रोग्राम की तरफ़ से लोगों की तबियतें कुछ फिर गई हैं और हमारी आँखें किसी ऐसी चीज़ को देखना चाहती हैं जो ज़्यादा ठोस हो और जिससे ज़्यादा टिकाऊ नतीजे की उम्मीद हो। देश कुछ निकम्मा सा बैठा है। लेकिन दूसरी तरफ हमारी आँखें भी कुछ कुछ खुल गई हैं। अगर इस फ़ुरसत के वक़्त भी पूरे दिल के साथ हम रचनात्मक काम को हाथ में ले लें और उसमें डटकर लग जावें तो हम देखेंगे कि महात्मा गांधी ने रचनात्मक काम से जो जो उम्मीदें हमें दिलाई हैं वे सब पूरी होंगी। सच यह है कि हमने रचनात्मक काम को कभी पूरी तरह आज़मा कर देखा ही नहीं। इसलिये हमें इस बात का कोई अन्दाज़ा नहीं है कि इस काम में देश के अन्दर जान डाल देने की कितनी क़ाबलियत है। यह प्रोग्राम अगर एक बार पूरे ज़ोर से चल पड़ा तो इसके अपने अन्दर इतनी ताक़त पैदा हो जावेगी और इसे रोक सकना इतना नामुमकिन हो जावेगा कि यह काम हमारी सब रोगों को अपने सामने बहा ले जावेगा। फिर किसी को यह डर न रहेगा कि इस प्रोग्राम को पूरा करने के लिये युगों की ज़रूरत है। जिस काम में हम समझते थे कि हमें वर्ष लग जावेंगे वह चन्द साल के अन्दर पूरा होता हुआ दिखाई देगा। राजनीति के मैदान में यह प्रोग्राम क्या कुछ कर सकता है इस बारे में भी हमारे शक दूर हो जावेंगे। ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि हम एक बार पूरे दिल और सच्चाई के साथ इसमें लग जावें।

महात्मा गांधी ने एक बार बड़े दुख के साथ और भरे हुये दिल से कहा था कि "मैं हज़ारवीं बार इस बात को दोहरा रहा हूँ कि जब तक रचनात्मक प्रोग्राम को एक बहुत बड़े दर्जे तक पूरा न कर लिया जावेगा तब तक स्वराज नहीं मिल सकता और अगर मिल भी गया तो हम उसे क़ायम न रख सकेंगे और अगर क़ायम भी रख लिया तो वह स्वराज वह स्वराज न होगा जिसका स्वप्न मैं देख रहा हूँ।"

हमें रचनात्मक कार्यक्रम पर अमल करने में गान्धी जी की इस बात का बराबर और कड़ाई के साथ ध्यान रखना चाहिये। हमें याद रखना चाहिये कि अभी तक इस बात में गान्धी जी का विश्वास ज़रा भी बदला नहीं है, और अगर हम उनके तरीक़े पर चलकर कामयाब होना चाहते हैं तो हमारा फ़र्ज़ है कि उन्हीं के बताये हुये रास्ते से चलें और उन्हीं के उसूलों पर अमल करें।

# गीत

कुमारी दिनेशनन्दिनी चोरड्या एम. ए.

सखि चिता सी जल रही है!

कौन कुन्तल कृष्ण खोले, अधर चुप—पर नयन बोले
क्षितिज के उस पार वह, काली-घटा सी घुल रही है!
सांस निशि की रुँध रही है, काल कलिका मुँद रही है
स्निग्ध मलयज मेघ वह, अँचल डुला कर झल रही है!

रँग भरी सूरज शिखायें, पाप सी कुण्ठित दिशायें
मूक यौवन की गिरा अब स्पन्दनों में पल रही है!
ताड़ तरु उर डोलता है, यम यमी से बोलता है
छोड़ 'जगते' स्वप्न को, जगती सदा से चल रही है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गान्धीवादियों की किंकर्तव्य-विमूढ़ता

श्री किशोरलाल मश्रुवाला

रचनात्मक कार्यक्रम किस तरह शुरू किया जाय इस चीज़ को लेकर अनेक कांग्रेसजनों और दूसरे कार्यकर्ताओं में थोड़ी सी हैरानी और परेशानी दिखाई दे रही है। रचनात्मक कार्यक्रम की प्रशंसा करने में लोगों में इस समय एक अपूर्व एकता दिखाई दे रही है। उसे आगे बढ़ाने के लिये सभी व्यग्र हैं, किन्तु जब वे अपनी-अपनी योजना लेकर गांधी जी के पास जाते हैं तो उन्हें ऐसा महसूस होता है कि गांधी जी उनके काम में काफ़ी मददगार नहीं हैं। वे समझते हैं कि वे गांधी जी के ही विचारों को ऐसे तरीक़ों से आगे बढ़ाने के लिये व्यग्र हैं जो ज़ाहिरा उन्हें उपयुक्त और पर्याप्त दिखाई देते हैं। यह देख कर उन्हें इसलिये और भी अधिक परेशानी होती है कि गांधी जी तब भी उनके तरीक़ों की प्रशंसा करते दिखाई नहीं देते। यह भावना न सिर्फ़ उन्हीं लोगों की है जो इससे पहले राजनीति और पार्लिमेण्टरी तरीक़ों में अपने उत्साह के लिये प्रसिद्ध थे बल्कि उन लोगों में भी दिखाई देती है जो रचनात्मक कार्यक्रम में अपना सारा वक्त लगा रहे थे।

हम में से अधिकांश कार्यकर्ताओं ने अपनी ज़िन्दगी का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसी संस्थाओं के चलाने में ख़र्च किया है कि जिनका बहुत अच्छा संगठन विधान, क़ायदे क़ानून और पदाधिकारी आदि होते थे। हमें अपने काम को संगठित करने और उसका प्राचार करने में सभाओं, सम्मेलनों और कमेटियों की आदत पड़ी हुई है। हम किसी तय शुदा प्रस्ताव के मुताबिक़ या किसी बाज़ाप्ता मुक़र्रर अफ़सर के हुक्म से काम करने के आदी हैं। इसलिये जब हम से अब कहा जा रहा है कि हम रचनात्मक कार्यक्रम के ऊपर अपनी सारी शक्ति लगावें तो कांग्रेस कमेटियों के अभाव में हम उसी तरह की कोई दूसरी संस्थाएं क़ायम करने की बात सोचते हैं। हम सोचते हैं कि काम तभी सब में अच्छा होगा यदि कोई नियंत्रक केन्द्रीय संस्था हो और उसकी प्रान्तीय ज़िला और दूसरी कमेटियां हों। जनता को अपने विचारों का परिचय देने के लिये हम चाहते हैं कि पहले अखिल भारतीय सम्मेलन हों और फिर उसके बाद प्रान्तीय, ज़िला और ग्राम सम्मेलन हों। हम यह भी चाहते हैं कि हमारे इस तरह के प्रचारक हों जो घूम घूम कर प्रचार करें और काम के लिये व्यापक सूचनाएं भी हों। इसके अतिरिक्त काम में मदद देने के लिये विज्ञप्ति पत्र, साप्ताहिक पत्र और मासिक पत्र आदि की भी ज़रूरत हमें मालूम होती है। चूंकि दो बरस से अधिक हो गया इन सब बातों में हमारा उपवास चल रहा है इसलिये शायद इन सब चीज़ों के लिये हमारी भूख और भी ज़्यादा तेज़ हो गई है।

किन्तु जब हम गांधी जी के पास अपने ये सब विचार लेकर जाते हैं तो हमें उनसे हौसला बढ़ाने वाली हमदर्दी नहीं मिलती। यह दूसरी बात है कि वे हमारी योजनायें सुन लेते हैं और फ़ौरन नहीं काटते। सादगी और विकेन्द्रीकरण के लिये उनके दिल में इस समय इतना उत्साह है कि वे चीजों को भद्दे और बेढंगे तरीक़े से भी किया जाना पसन्द करेंगे। कुछ लोग सोचते हैं कि गांधी जी में पहले यह बात नहीं थी। तो क्या वे बदल गये? यदि बदल गये तो क्या यह इस बात की निशानी है कि वे चीज़ों को और अधिक स्पष्ट और ज़ोरदार तरीके से सोचने लगे हैं, अथवा इस बात की कि बुढ़ापे के कारण अब उनका दिमाग़ ठीक काम नहीं करता।

इस बात का जवाब पाने के लिये हमें अगस्त १९४२ के प्रस्ताव पर एक नज़र डालनी पड़ेगी। प्रस्ताव के अन्तिम शब्द ये हैं—

"एक वक्त ऐसा आ सकता है कि हिदायतें देना सम्भव न होगा और यदि हिदायतें दी भी गईं तो उनका जनता तक पहुंचाना सम्भव न होगा और न कोई कांग्रेस कमेटियां ही काम करती हुई बाक़ी रहेंगी। जब ऐसी हालत पैदा हो जाय तब हर ऐसे मर्द और औरत को कि जिसे आज़ादी की ख़्वाहिश है और जो उसके लिये कोशिश करना चाहता है ख़ुद ही अपना नेता बनना पड़ेगा और आज़ादी के मुशकिल रास्ते पर ख़ुद ही अपने को आगे बढ़ाना पड़ेगा कि जिस रास्ते में आराम करने के लिये कोई मंज़िलें नहीं हैं और जिसका अन्तिम लक्ष्य आज़ादी और भारत की मुक्ति है।"

यदि मुझे ठीक ठीक याद है तो पहले पहल सन् १९४० में जब व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हुआ तो गांधी जी ने यह ऐलान किया था कि अपनी गिरिफ़्तारी के बाद वह किसी को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करना नहीं चाहते और उन्होंने यह इच्छा प्रगट की थी कि उनकी गिरिफ़्तारी के बाद हर कांग्रेस वाला ख़ुद ही अपना नेता बने। क़रीब क़रीब इसी तरह का एक प्रस्ताव सन् १९३१ में गांधी-इरविन समझौते से कुछ पहले कांग्रेस की वर्किङ्ग कमेटी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पास किया था। अपने इस ऐलान को अमल में लाने का मौक़ा गांधी जी को उस समय मिला जब वे बीमारी के कारण रिहा किये गये। जहाँ तक उनका सम्बन्ध है ९ अगस्त १९४२ के दिन से ही अगस्त प्रस्ताव पर उनका अमल शुरू हो गया था और अब भी उस पर अमल हो रहा है। कुछ थोड़ी सी कांग्रेस कमेटियों को छोड़ कर बाक़ी सब कांग्रेस कमेटियां ग़ैर क़ानूनी हैं और उनके ज़रिये काम नहीं हो रहा है। इस लिये हर मर्द और औरत का यह कर्तव्य है, बल्कि विशेषाधिकार है कि वह ख़ुद ही अपना नेतृत्व करे। गाँधी जी चाहते हैं कि तमाम छोटे और बड़े कार्यकर्ता अपने कर्तव्य को पूरा करें अथवा यूं कहना चाहिये कि अगस्त प्रस्ताव द्वारा जो अधिकार उन्हें हासिल हुआ है उसका इस्तेमाल करें।

यह महज़ बकवास नहीं है। गांधी जी यह महसूस करते हैं कि हमारे उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह एक ज़रूरी शर्त है। ग़लत या सही गांधी जी के ऊपर कभी-कभी यह इल्ज़ाम लगाया गया है कि वे अपने सहयोगियों और अनुयाइयों को उनके अपने तरीक़ों से काम करने की आज़ादी या पहल नहीं देते। अक्सर निजी और व्यक्तिगत आचरण की भी छोटी से छोटी बात भी या तो उनसे पहले पसन्द करवा ली जाती है या उन्हीं के द्वारा तय की जाती है। ग़लती करने का अधिकार वह महज़ अपने तक ही सीमित रखना चाहते हैं। उनके आलोचकों का कहना है कि इसी के कारण कार्यकर्ताओं में बहुत सी कमियां रह गई हैं। लोगों को हर बात में उनसे ब्योरेवार हिदायत लेने की ऐसी ज़बरदस्त आदत हो गई है कि अब बग़ैर उनसे पहले सलाह लिये हुये किसी फ़ैसले पर पहुँचने की लोगों की तबियत ही नहीं होती, या दूसरे शब्दों में बग़ैर उनका "आशीर्वाद" प्राप्त किये कोई काम शुरू ही नहीं किया जाता।

गांधी जी के ख़िलाफ़ इस इल्ज़ाम में चाहे सचाई हो अथवा न हो किन्तु गांधी जी की इस समय यह बहुत बड़ी ख़्वाहिश है कि कार्यकर्ता—चाहे वे राजनैतिक कार्यकर्ता हों या रचनात्मक—इसके बाद से उन्हें अपनी ही ज़िम्मेवारी पर काम शुरू करने की आदत होनी चाहिये और अपने अन्दर ग़लतियां करने का और उन ग़लतियों से फ़ायदा उठाने का साहस होना चाहिये। वह कार्यकर्ताओं को इस तरह ट्रेन करना चाहते हैं ताकि वे स्वयं अपना कार्यक्रम बना सकें, उस कार्यक्रम को अमल में ला सकें, उसकी उन्नति कर सकें, उसके लिये उपयुक्त आदमी और तरीक़े निकाल सकें और यह सारा काम ख़ुद अपने आप कर

पिछले कई वर्षों से किन्तु ख़ास तौर पर अपने के बाद उन्होंने अपने विचारों, अपनी रुचियों और तरीक़ों को अधिक से अधिक ज़ाहिर किया है। अब जब कोई उनसे ज़्यादा प्रकाश पाने के लिये उनकी पूछता है तो यदि उन्हें यह विश्वास हो जाय कि वाला अपने आप सोचने और फ़ैसला करने का भार नहीं रहा है तो वे इनकार नहीं करते। स्वराज की जो कल्पना है यही उसकी असली कुंजी है। डिक्टेटरी का चाहे जितना इलज़ाम लगाया गया हो इसके लिये कभी उत्साह नहीं रहा कि संस्थाएं ऊपर से देकर काम चलाएं। उन्होंने अनेक अखिल संस्थाएं क़ायम की हैं किन्तु कभी इस बात पर विश्वास किया कि संस्थाएं अपने इसी अखिल भारतीय रूप में काम करें। उनकी हमेशा यह ख़्वाहिश रही है कि नीचे से उभरें और फैलें यानी एक एक गाँव से। और केन्द्रीय संस्थाओं के वे विरुद्ध नहीं रहे हैं उन्होंने चाहा है कि छोटी छोटी संस्थायें मिलकर बनायें अर्थात् संस्थायें नीचे से ऊपर की ओर बढ़ें ऊपर से नीचे की ओर। राजनैतिक संस्थाओं में भी स्वराज उनके मुताबिक़ एक ऐसी पंचायत न होगी केन्द्रीय या प्रान्तीय धारा-सभा बनायेंगी बल्कि वह पंचायत होगी जिसे ख़ुद गाँव वाले मिलकर क़ायम करें केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों को ग्राम पंचायतें ही मिल बनायेंगी और उनको केवल वही शक्ति हासिल होगी ग्राम पंचायतें उन्हें देंगी। यदि ग्राम पंचायतें कोई करेंगी तो जो लोग उन्हें सज़ा देने या मुअत्तिल करने अधिकारी होंगे वह गान्धी जी की राय में स्वयं वाले ही होने चाहियें न कि प्रान्तीय या केन्द्रीय सरकार किन्तु यदि प्रान्तीय या केन्द्रीय सरकार ठीक तरह काम न करें तो उन्हें बरख़ास्त करने का अधिकार ग्राम पंचायतों को ही होना चाहिये।

ये क़रीब क़रीब उनके निश्चित विचार हैं। किन्तु जानते हैं कि देश में और भी बहुत से लोग हैं जिनमें कुछ जन भी शामिल हैं और जो उनसे भिन्न विचार रखते हैं ये लोग "मज़बूत" केन्द्रीय संस्थाओं में विश्वास करते ऐसी केन्द्रीय संस्थाओं में जो एक सरीखी योजनाओं और उन योजनाओं के छोटे से छोटे ब्योरे पर एक तरह अमल कर सकें। अपने से भिन्न विचार वाले आदमियों पूरी स्वतन्त्रता देना यह उनकी अहिंसा का एक अङ्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शेष-कथा !

डाक्टर एन० एस० वर्धन

प्रसिद्ध भारतीय क्रान्तिकारी श्री बटुकेश्वर दत्त और 'विश्ववाणी' के बीसों अन्य लेखकों और पाठकों के पत्र भेजकर तुमने सम्पादक की हैसियत से मुझे यह सूचना दी है कि 'विश्ववाणी' में प्रकाशित मेरे घटना-चित्रणों को तुम्हारे पाठक बेहद पसन्द करते हैं। इन पत्रों में यह आग्रह किया गया है कि मैं कोई ऐसी घटना तुम्हारे पाठकों को सुनाऊँ जिसमें प्रेम का मार्मिक विश्लेषण हो। प्रेम के भिन्न भिन्न भेद-रूपों का निराकरण न तो इष्ट है और न रुचिकर। अपने जो निकट हैं उनके पोस्टमार्टम का काम भला किसको भा सकता है; पर बीसों भद्र पुरुषों के आग्रह को टालने में भी कुछ अवमानना सी हो जाती है।

तो लो सुनो। तीन बरस हुये मेरे एक निकटतम मित्र मांस के उस लोथड़े की प्रतिक्रिया में, जिसे जन-सामान्य 'दिल' कहते हैं, भयानक रूप से आक्रान्त हो गये और आज जब वे इस संसार में नहीं हैं, तुम्हारे पाठकों के आग्रह से मैं उस घिनौने शव पर पड़ी हुई काली चादर हटाने का जहाँ तहाँ से प्रयत्न करूँगा।

१

प्रकाश मेरे अनन्य मित्र थे। घनी स्नेह छाया में उनके साथ ही मेरे बचपन के दिन बीते थे। लोगों की नज़रों में हम सगे जुड़वाँ भाई की तरह लगते थे। विद्यार्थी जीवन के बाद परिस्थितियों ने हमें एक दूसरे से जुदा कर दिया। दिन वर्ष बनते गये और वर्ष काल की सीमा में खोते गये और हम एक लम्बे अरसे तक एक दूसरे से न मिल पाये।

उन्हें सार्वजनिक कामों से रुचि थी और सेवा भाव उनके जीवन का आदर्श था। अपनी समस्त पैतृक सम्पत्ति उन्होंने त्याग दी थी और एक अनासक्त गृहत्यागी की तरह ही वे अपना जीवन बिताते थे। कई बार उनके विवाह की चर्चा उठी किन्तु उन्होंने अरुचि के साथ सदा ही इनकार किया और फिर न जाने कैसे सहसा अमिता का उनके जीवन में प्रवेश हुआ।

मैं अकसर उन्हें याद करता था और सोचा करता कि क्या अब भी उन्हें मुझसे उसी प्रकार स्नेह होगा। फिर अचानक अक्तूबर सन् १९४२ में अत्यन्त दयनीय परिस्थिति में दिल्ली में मुझे उनके दर्शन हुये। वे मृत्यु शय्या पर पड़े हुये थे, शरीर सूखकर काँटा हो गया था और मृत्यु रह रहकर पलकों की ओट से उनकी ओर झांक उठती थी। उनकी ज्योतिहीन काया देखकर मैं सिहर उठा। उनकी स्निग्ध आँखों के नीचे कलिमा फिरी हुई थी। चेहरा मुरझाया हुआ, ओठ सूखे हुये और गला भरा हुआ था। बड़ी कोशिश के बाद वे बातें कर पाते थे। कहने लगे—"मरने से पहले तुम्हारे इस प्रकार दर्शन हो सकेंगे इसकी न आशा थी और न सम्भावना। तुम आ गये, मृत्यु को अब सुविधा हो जायगी। फिर एक गहरी सांस खींचकर वे चुप हो गये।

सन्ध्या के घनीभूत होते अन्धकार में बाहर शहतूत की शाख पर बैठी हुई एक टिटिहरी टें टें पुकार उठी और एक अकेला परवाना लैम्पशेड में रह रहकर सर धुनने लगा। मैं बड़ी देर तक उनकी जीर्ण उंगलियाँ अपने हाथों में लिये मौन और निस्तब्ध बैठा रहा।

२

मैंने देखा एक भयङ्कर पीड़ा उनके प्राणों को व्याकुल कर रही है। मैं उनके माथे पर धीरे धीरे हाथ फेरता रहा। दारुण कष्ट के साथ उन्होंने कहना शुरू किया—

"अमिता के साथ मेरे स्नेह का यह अन्तिम अध्याय इस तरह मुंदते देखकर तुम्हें क्षोभ होता होगा। तुम मेरे मित्र हो और तुम्हारा कातर होना स्वाभाविक है। प्रेम का क्रम शायद इसी अज्ञेय रूप से चलता है। अमिता का प्यार अचानक और अनायास ही मैंने पाया था। उसने अपने प्यार से मेरे अन्तर के शून्य को भर दिया था। ऐसा कोई व्यक्ति जब आत्मा का बन्द ताला खोलता है तब आत्मा अपने सम्पूर्ण रहस्य के साथ प्रकाशित होती है। ऐसे व्यक्ति को पाकर हम उसके सुख में सुखी होते हैं और दुख में दुखी। उसके स्पर्श से हम पुलकित हो जाते हैं। उसके विपरीत स्वभाव के साथ हम अपने स्वभाव का मेल बैठाकर जीवन में एक सामंजस्य, एक स्वर-माधुर्य पैदा करते हैं और वह स्वर-माधुर्य हमारे जीवन को सुनहला बना देता है। केवल अमिता ही मेरे जीवन में वह स्वर-माधुर्य पैदा करने में सफल हुई। मेरे निकट अमिता सौन्दर्य की साकार प्रतिमा थी। उसकी बड़ी बड़ी आंखें, लम्बी सुडौल नाक, पतले ओठ, गोल ठोड़ी और कृश काया—मेरे लिये जीवन की अनुपम विभूति थी। वह मेरे निकट उन स्वर्गीय आदर्शों की प्रतिनिधि थी जो संसार को अपनी नैसर्गिक आभा से मुखरित करते हैं।

संसार में करोड़ों अरबों व्यक्ति होते हैं किन्तु एक विशेष व्यक्ति ही हमारी आत्मा को सचेतन करके उसमें अद्भु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अपनापा पैदा करता है। वह सिर्फ़ छू देता है और हमारी सोई हुई भावनायें जाग उठती हैं। एक ख़ास तरह की मुखाकृति, एक ख़ास तरह का रंग रूप, एक ख़ास तरह का हाव भाव और एक ख़ास तरह की स्वर लहरी ही हमें अनुकूल लगती है और हम अपना समस्त जीवन उसके लिये दांव पर लगा देते हैं। और ऐसा क्यों होता है—न इसकी कोई विवेचना कर सकता है और न व्याख्या। इस तरह के व्यक्ति का रहस्यमय स्पर्श हमारी आत्मा को नई स्फूर्ति, नई चेतना और नव जीवन देता है। जीवन अपनी नई मर्यादा में हमारे सामने खुलता है और हम उसकी नई व्याख्या करते हैं।"

इतना कहकर वे थक से गये और उनके चौड़े ललाट पर मोतियों से स्वेद बिन्दु उभर आये। कुछ देर बाद उन्होंने फिर कहना शुरू किया—

"अमिता मुझ से कहा करती थी कि वह हमेशा हमेशा के लिये मेरी है। उसे इस बात की आशंका रहती थी कि कहीं उसके प्रति मेरा प्रेम किसी दिन ख़त्म न हो जाय और फिर वह भय-मिश्रित ईर्षा से कहती थी कि अगर मैंने किसी दूसरी लड़की को प्यार किया तो वह मेरा गला घोट देगी। अपने प्रति उसका यह ईर्षालु अधिकार मन ही मन मुझे गर्व से भर देता था। सैकड़ों ही रतजगे हमने मीठी मीठी बातों में काटे और हमारी बातों का सिलसिला ऐसा होता था कि कभी टूटता ही न था। चार दिन भी अगर हम एक दूसरे से न मिलते थे तो हमारी आत्मा व्याकुल हो जाती थी और किसी काम में मन न लगता था। खोये खोये से दिन जाते थे और जब महीनों साथ रहने का अवसर मिलता तब ऐसा हो जाता कि दिनों को पर लग जाते थे और यकायक हमारी जुदाई की घड़ी आ जाती थी। हम भरे हुये दिल से एक दूसरे से बिदा होते थे। हमारे मिलन में भी बेचैनी होती थी और जुदाई में भी। मिलन में इसलिये कि जुदाई की आशंका व्याकुल करती रहती और जुदाई में इसलिये कि वियोग की घड़ियाँ काटे न कटतीं।

"इस असह्य सुख का यह अर्थ न था कि हमें केवल दुःखहीन प्रेम की आकांक्षा थी—ऐसा दुःखहीन प्रेम कि जिसमें फूलों की सुगन्ध आती हो, जिसमें ज्योत्सना छाई रहती हो और जिसमें बसन्त वातास बहता हो। बल्कि सच तो यह है कि ऐसा आत्महारा प्रेम हमारा लक्ष्य था—जिसमें प्रेम की अनन्त प्यास होती है, जिसमें हृदय निश्वास भरता है और जिसमें आँखों से निरन्तर आँसू झरते हैं। जब ऐसे आत्महारा प्रेम की प्राप्ति होती है तब हृदय स्वयं अपने को भूल जाता है और चेतना अचेतन हो जाती प्रेम का यही परिमार्जित रूप हमारा ध्येय था किन्तु स्थिति तक पहुँचने के लिये हमें दैहिक वासनाओं के से ही गुज़रना था। हमारी बेचैनी हमारे प्रेम की गहराई पैमाना थी।

कई वर्षों की प्रेम अवधि के बाद अमिता ने मुझे कि उसके पिता ने हमारे विवाह की स्वीकृति दे दी है वह नौकरी की तलाश में है ताकि मेरे साथ घर का बंटा सके। जब मैंने उसे लिखा कि क्या हमारा रजिस्ट्री आफ़िस में होगा तो उसने आवेश में जवाब कि वह जीवन में एक ही बार विवाह करेगी और धार्मिक रीति से। जब वह सदा सदा के लिये मेरी है मैं सिविल मैरिज की बात क्यों सोचता हूं। फिर उसने लिखा कि हमें अपने छोटे से घर को किस तरह सजा होगा, कौन सा और किस तरह के फर्नीचर का मुझे प्रबन्ध करना होगा। यह पढ़कर मैं मन ही मन प्रसन्नता से जाता कि हम अपने गोपन प्रेम को अब प्रकाशित सकेंगे। अपने भावी कौटुम्बिक जीवन की कितनी सुनहली तसवीरें मैंने कल्पना के कैनवास पर खींच डाली अपने अनुपम सौभाग्य पर मैं मन ही मन फूला न समाता इसी सुखद प्रतीक्षा में कई महीने बीत गये।"

३

"अमिता एक नौकरी की तलाश में दिल्ली और उसे महीनों वहाँ ठहरना पड़ा। इसके पूर्व अमि हर तीसरे चौथे दिन मुझे प्रेम से भरा पत्र अवश्य लिख थी। दिल्ली पहुँचने के थोड़े दिनों बाद तक उसका क्रम चलता रहा। किन्तु बाद में हफ़्तों बीत जाते और उसका पत्र नसीब न होता और जब उसका पत्र मिलता उसमें प्रेम की तीव्रता का सर्वथा अभाव होता। एक मैंने इसकी शिकायत की तो उसने जवाब दिया कि रातें भी नहीं जो उसे प्रेम पत्र लिखने के लिये प्रोत्साहन मिले। उसके जवाब की मुझ पर यही प्रतिक्रिया हुई प्रेम गहराई में जाकर शायद इसी तरह अन्तर्मुखी हो जा करता है। इसके बाद ही अमिता ने मुझे ज़रूरी भेजकर दिल्ली आने का अनुरोध किया।

"दिल्ली पहुँचकर मैंने देखा अमिता मुझसे मिला पहले की तरह प्रसन्न नहीं हुई। जितनी देर मैं उसके बैठता वह अनमनी सी खोई खोई बैठी रहती। ऐसा गया था कि मुझसे करने लिये उसके पास बातें ही रही थीं। मैं मन ही मन आशंका से काँप उठा। मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
76211


देने पर बड़े बोझिल हृदय से अमिता ने विवाह की तिथि निश्चित की। अपने पिता की मरज़ी के अनुसार अमिता ने रजिस्ट्री आफ़िस में जाकर विवाह का नोटिस दे दिया और ४ सितम्बर तारीख़ भी मुक़र्रर कर दी।

"किन्तु अमिता के इस आकस्मिक परिवर्तन से मैं भीतर ही भीतर सहम सा गया। नोटिस के दिनों में मैं बराबर उससे मिलता, बातें भी करता किन्तु मुझे ऐसा लगता कि वह मन ही मन मुझसे कुछ छुपा रही है। वह सारे दिन उदास बैठी रहती। उसके ओठों की हंसी और प्रसन्नता सब ग़ायब हो गई थी। हफ्ते भर के बाद मुझे आभास मिला कि किसी और मानव छाया ने आकर अमिता के दिल की सफेदी पर काला आवरण डाल दिया है। जब यह सच्चाई मुझ पर प्रकट हुई तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मानो सारे संसार ने मेरा परित्याग कर दिया है। मुझे अपना सारा अस्तित्व ही उन्मूल होता हुआ दिखाई दिया। धर्म के जिस रूप से मैं परिचित था या अधर्म को जिस रूप में मैंने स्वीकार किया था वह मेरे ज़ख़्मी हृदय पर मलहम का काम न कर सका।"

कहते कहते उनका गला भर सा आया। वे खांसने लगे और कफ़ के साथ कई क़तरे खून के बाहर आ गये। थोड़ी देर तक आँख मूंदे वे निस्तब्ध पड़े रहे। मैंने उठकर उनके माथे का पसीना पोंछा और बरफ़ के टुकड़े से उनके ओठ गीले किये। १०-१२ मिनिट के बाद उन्होंने आँखें खोलीं और फिर कहना शुरू किया—

"अमिता की मैंने कटु शब्दों में भर्त्सना की और फिर कई दिन तक उसके यहाँ नहीं गया। मन ही मन मैं कल्पना करता कि अमिता के साथ मेरा सारा सम्बन्ध समाप्त हो गया। किन्तु मेरी यह हालत ज़्यादा देर तक न रहती और मैं देखता कि मैं निरन्तर अमिता का ही ध्यान करता रहता हूँ। अमिता के साथ अपने सम्बन्ध की समाप्ति पर कभी मुझे अपने ऊपर गम्भीर सन्तोष होता, कभी कटु सहानुभूति होती, कभी दुख होता और कभी पश्चाताप; किन्तु जब मैं अपने मन के अँधेरे कोने को टटोलता तो मुझे अमिता के साथ अपने सम्बन्ध की समाप्ति पर उतना ही विश्वास होता जितना इस बात पर कि धरती का अन्त हो गया है।

"मैं मन ही मन सोचता कि क्या हमारा विच्छेद सम्भव है? अमिता क्या सचमुच मुझसे जुदा हो सकती है? नहीं, कभी नहीं! हरगिज़ नहीं! क्या हमने एक दूसरे का चुम्बन नहीं किया है? क्या हमने एक दूसरे के साथ पति पत्नी का सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है? क्या हमने एक दूसरे से कानों-कान प्रेम की गम्भीर चर्चा नहीं की है? और क्या उस चर्चा ने हमें एक दूसरे के बेहद समीप नहीं कर दिया है? क्या हमने अपने प्रेम के बढ़ते हुए विस्तार में अपनी प्रथम लज्जा और संकोच का अन्त नहीं किया है? निस्सन्देह अमिता मेरी है और मैं अमिता का हूँ। हमारा संघर्ष, हमारी कटुता, हमारा विछोह, हमारी दूरी—सब हमारे प्रेम की अक्षुण्णता के गौण रूप हैं। अन्धकार में अकेले पड़े पड़े बेचैन होकर मैं अमिता की ही बात सोचा करता। उसकी रुचिर स्निग्ध आँखें, उसका रोमांचक स्पर्श, उसका मुग्ध आकर्षण और उसके सुखदायी मिलन की स्मृतियाँ मेरी निरीह आत्मा को बेबस और बेचैन कर देतीं।

"जब जब मेरी कल्पना सचेत होती अमिता सहज भाव से मेरे मन में छा जाती। मैं निरन्तर उसीकी बात सोचा करता। रात को मैं उसे साफ़ साफ़ सपनों में देखता। उसकी आंखों में आंसू होते और चेहरा रो रोकर सूजा हुआ दिखाई देता। उसकी कोमल केशराशि अस्त व्यस्त उड़ती होती और वह एक टक मेरी ओर निहारती रहती। ये स्वप्न मेरे मन को उदासी और चिन्ता से भर देते और अमिता को देखने की अतृप्त और उत्कट चाहना मुझे व्याकुल कर देती। इसी कशमकश में मैं दो दिन तक अमिता के पास नहीं गया।

"तीसरे दिन सुबह मैंने अमिता के पास जाने का पक्का इरादा किया। बरसात का दिन फटे हुए बादलों की कथड़ी ओढ़े असमंजस में खड़ा था। मैं सात मील दूर पैदल ही चल दिया। मेरी जर्जर पेशावरी चप्पल की ऐड़ी आधे रास्ते में ही टूटकर अलग हो गई। तल्ले से लटकती हुई कीलें मेरी एड़ी को लहूलुहान कर रही थीं फिर भी मैं विचारों में डूबा चलता गया, परन्तु अमिता की जगह आते आते मेरे दोनों पैर मन मन भर के होने लगे।

"आशंका से सहमा हुआ मैं हलके से परदा हटाकर अमिता के कमरे में दाख़िल हुआ। मुझे देखते ही अमिता के चेहरे का रंग पीला पड़ गया। कहने लगी—"तुम...!" अमिता की कठोर मुखाकृति पर कुछ करुणा मिश्रित दया सी दौड़ गई। उसने मेरा बायाँ हाथ अपने दोनों हाथ में ले लिया और मित्रता के स्वर में मुझसे कहना शुरू किया—'अब वह सब असम्भव है रिक्की! हमने ग़लत की थी! अब हालत बदल गई, सदा सदा के लिये बद


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गई। मुझे तुम पर दया आती है किन्तु मैं विवश हूँ। अब हम दोनों का रास्ता अलग अलग है।'

"साकार आरोप की तरह मैंने गुमसुम होकर अमिता की बात सुनी। ऐसा लग रहा था कि चोट से बिलकुल सुन्न हो गया हूँ। मेरी विचार शक्ति हारकर मानो मेरे इस भयानक आविष्कार को संज्ञाहीन देख रही थी। दस मिनिट के बाद जब मेरी चेतना लौटी तो एक बर्बर पशु की तरह मैं चीत्कार कर उठा। मैंने बेरहमी से अपने बांये हाथ की हथेली दाँतों से काट ली।

"अमिता ने सकातर मेरी ओर देखकर कहा—'तुम जानते हो रिक्की, अब मैं गुल को प्यार करती हूँ। अपनी सम्पूर्ण आत्मा से गुल को प्यार करती हूँ। उनसा उदार और उनसा सच्चा व्यक्ति मैंने अपने जीवन में कोई दूसरा नहीं पाया।'

"किन्तु अमिता, बात काटकर मैंने कहा, गुल मुझसे स्वयं कह चुके हैं कि वे सन्तोष को प्यार करते हैं और उसी से विवाह भी करेंगे। सन्तोष ने भी उन्हें यही आश्वासन दिया है कि वह जीवन भर उन्हीं की प्रतीक्षा करेगी। तुम्हारे इस उदार और सच्चे व्यक्ति का क्या सन्तोष के प्रति यह विश्वासघात नहीं है? ज़रा बताओगी गुल की यह दोहरी सचाई जीवन के किस नैतिक नियम के अनुसार है? क्रोध से मेरा चेहरा तमतमा उठा। विषाक्त स्वर में मैंने कहा—अमिता तुमने जिस तरह मेरे साथ छल किया है, जिस तरह मेरे साथ विश्वासघात किया है उसका मोचन केवल मृत्यु है।

"अमिता ने तिरस्कृत भाव से उत्तर दिया—'तुम कसाई हो! तुम्हारे साथ एक दिन जीवन बिताने की अपेक्षा मौत मेरे लिये कहीं अधिक खुशगवार है। यदि तुम में हिम्मत हो तो मैं मरने को तय्यार हूँ।'

"मैंने कहा—तो ज़िन्दगी मेरे लिये अब निषेधात्मक है और मौत तथ्यपूर्ण!

"कहने लगी तो चलो, जमना खूब बढ़ी हुई है। इसी समय, अभी चलो! इसी मिनिट चलो!' अमिता का स्वर अधिकाधिक रोष पूर्ण होता गया—'चलो उठो, फ़ौरन चलो! इसी समय चलो।' यह कहकर मेरी बांह पकड़कर वह मुझे बाहर घसीट ले चली!

४

"बाहर दोपहर का सन्नाटा था। सड़क पर उदासी छाई हुई थी। केवल इक्का दुक्का मोटरें रेडियो स्टेशन या सारपुर के सेक्रेटेरियट के साहबों को लंच के लिये लाती जाती दिखाई दे जाती थी। नीम के पेड़ पर बैठा हुआ एक कउआ अबाध स्वर में काँव काँव कर रहा था। सद्यः स्नाता सड़क की कीच बहकर एक किनारे लग रही थी। करील की झाड़ी में बैठा हुआ एक गिरगिट एक चींटे की ओर देख रहा था। अमिता मेरे दाहिने पार्श्व में चुपचाप चली जा रही थी। उसके माथे की रेखायें किसी कर गवाही दे रही थीं कि कुछ अतीत-स्मृतियाँ उसे ही मन उथल पुथल कर रही हैं। ख़ामोशी इतनी गहरी थी कि मैं अमिता की सांस की गति को साफ़ साफ़ सुन रहा था। उसके चप्पलों की हलकी पगध्वनि उदासी के वातावरण को और अधिक गहरा करती जाती थी। जमना का वह दस मिनिट का रास्ता ऐसा हो गया था मानो हमारे जीवन की पूरी मंज़िल हो। हमारे मार्ग की एकस्वरता केवल एक ही बार भंग हुई थी जब हमारी आहट पाकर एक सियार रास्ता काटता हुआ दूसरी ओर झाड़ियों में भाग गया था और गूलर के वृक्ष पर बैठा हुआ हरियल का एक जोड़ा उसकी कायरता पर चिहुक उठा था।

"जमना इस किनारे से उस किनारे तक एक अथाह जल राशि थी। वर्षा ऋतु जमना के अथाह जल में अपने यौवन की परछाहीं देख रही थी। मटियाले पानी में तरंगित लहरें ऐसी लगती थीं मानो कोई पांचालकुमारी मुलतानी मिट्टी से अपनी केशराशि धो रही हो। किनारे लगे हुये जलमग्न कास के फूल जमना के परिधान में रुपहले गोटे से लग रहे थे। बांध के अन्तिम छोर पर एकाग्र बैठा हुआ एक व्यक्ति जल में वंशी डाले किसी अभागी मछली की प्रतीक्षा कर रहा था। जब हम दोनों बांध से नीचे जल की ओर उतरने लगे तो नीचे पत्थर पर धूप लेता हुआ एक पनियल सांप सर-र-र से जमना में उतर गया।

"मैं मन ही मन अमिता के साथ अपने छै वर्ष के प्रेम अवधि की सैकड़ों स्मृतियों को उदासी से सोच रहा था। इतने अनुपम प्रारम्भ का यह दुःखद अन्त रह रह कर मेरे मन को मसोस देता था। मेरी चप्पल की निकली हुई कीलों ने मेरी एड़ी को छील डाला था। मैंने उन्हें निस्पृह भाव से उतारकर एक ओर फेंक दिया। उस समय मैं अपनी काया को भी उतने ही अनायास भाव से उतार कर फेंक सकता था और ऐसा करने में मुझे विश्वास है उसी दरजे राहत पहुंचती। जमना की टकराती हुई लहरें अपने मातृ-स्नेह के अंचल में मुझे आश्रय देने के लिये व्यग्र थीं। मेरा हृदय पके हुये फोड़े की तरह फूटकर बहने को हो रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



"हम दोनों जल के पास जाकर खड़े हो गये। अमिता ने अपनी बड़ी बड़ी नीली आँखें उठाकर मेरे मुँह पर डालीं। उसकी सन्तप्त दृष्टि मेरे अन्तर तक को भेद गई। मैं निष्प्रभ होकर उसके क़दमों पर गिर पड़ा और फूट फूटकर रोने लगा। अमिता विचलित होगई। अपने अंचल से मेरे आंसू पोंछकर कहने लगी—'रिक्की, मुझे माफ़ करो! मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है। मुझ पर यदि विश्वास कर सको रिक्की, तो तुमसे विवाह करके मैं आजीवन तुम्हारे प्रति सच्ची रहूँगी। तुम्हें इस तरह दुखी देखकर मेरा कलेजा फटता है!'

"मैंने निश्चेष्ट भाव से उत्तर दिया—'अमिता, जीवन अब मेरे लिये भार हो गया है। मौत से ही शायद अब मेरे दुर्भाग्य का प्रतिशोध सम्भव हो!'

"अमिता ने बात काटकर मेरे ओठों पर अपने पतले गुलाबी ओठ रखकर कहा—'नहीं बेबी, ऐसा नहीं करते! चलो लौट चलो। मैं तुम्हें इस तरह मरने न दूँगी।'

५

"जमना तट से पथ-भ्रष्ट सा मैं वापस आ गया। अपनी क्रूरता पर अमिता का पश्चाताप दो दिन भी न रह पाया। गुल से मिलकर उसकी सारी दया भावना यकायक फिर लुप्त होगई। उसकी निर्दयता और कटुता कहीं अधिक तीव्र वेग से फिर जाग उठी। उसके ज़हरीले शब्दों से मैं तलमला उठता। मेरे प्रेम को उसने निर्दयता के साथ पैरों से रौंद डाला। मेरी भी शान्ति नष्ट होती गई और मैंने पाया कि मैं विक्षिप्त सा हो गया हूँ।

फिर यकायक चुटीले नाग की तरह मेरी आत्मा विकृत हो उठी। भयंकर प्रतिहिंसा की भावना मेरे मन को मथने लगी। मेरी हर सांस मुझे प्रतिकार के लिये उकसाने लगी। अमिता और उसके प्रेमी की बात सोचकर मेरा उद्धत क्रोध रह रहकर फेनिल हो उठता। मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा करली कि अमिता का यह प्रेमी अमिता को कभी न पा सकेगा चाहे मुझे इसके लिये दोनों की हत्या ही क्यों न करनी पड़े। यदि मैं कामयाब हुआ तो मुझे इसकी फ़िक्र नहीं कि क़ानून मुझसे क्या क़ीमत वसूल करेगा। प्रतिहिंसा के सैकड़ों प्रकार, सैकड़ों योजनायें और सैकड़ों परिस्थितियाँ मेरे क्षुब्ध मन को अधिकाधिक ग्रसित करने लगीं। अमिता से जितना असीम प्रेम था अब उससे उतनी ही प्रबल घृणा हो गई। जैसा असह्य सन्तोष उसके साथ सृजन की भावना में था वैसा ही असह्य सन्तोष मैंने उसके विनाश की भावना में भी पाया। शायद मानव जीवन भावना की जिस सरिता में बहता है उसी के एक किनारे का नाम प्रेम है और दूसरे किनारे का नाम घृणा!

"मेरे मन में अब न हर्ष रह गया था न विषाद, न अभिमान रह गया था न अवमानना। ईश्वर और मनुष्य मात्र के प्रति विद्रोह और जीवन में अपनी मौलिक स्थिति के प्रति विद्रोह की प्रचण्ड आग मेरी आत्मा को झुलसाने लगी। अनिश्चित धारणा से मेरा मन अब व्याकुल न था। मेरा उद्देश्य मेरे सामने स्पष्ट था। जो कुछ मुझ पर बीती है उसका मैं प्रतिशोध लूँगा और उसके बाद अपने प्राण दे दूंगा; हाँ बदला लूँगा और प्राण दे दूँगा। जो अमिता मेरी आँखों में आखें भरकर मुसकराई थी, जिसने अपने प्रेम के स्थायित्व के अगणित वादे किये थे, जो मुझे अपनी सम्पूर्ण आत्मा से प्यार करती थी, प्रेम से ओत प्रोत जिसने मुझे सैकड़ों पत्र लिखे थे, जो कहती थी मैं उसके रोम रोम में समाया हुआ हूँ—अमिता ने, हाँ! उसी अमिता ने, विपरीत परिस्थिति के एक झोंके में ही इतने सहज भाव से एक अज्ञात व्यक्ति की वासनाओं पर अपने को समर्पित कर दिया। हाँ, उस अमिता के मैं प्राण ले लूँगा। मैं दोनों के प्राण ले लूंगा और फिर अपना भी गला काट लूंगा। मुझे जीने से साफ़ इनकार है और मैं देखूंगा दुनिया की कौन सी ताक़त मुझे जीने पर मजबूर करती है। इस तरह का मैंने दृढ़ निश्चय किया। मेरा मन प्रचण्ड पागलपन से भर गया। मैं उन्माद में चिल्लाने लगा—मैं हत्या करूंगा! मैं हत्या करूंगा!! मैं दोनों की हत्या करूँगा!!

"एक दिन रात को मैं नई दिल्ली में तालकटोरे के पास घनी झाड़ियों में अपने उन्माद में घूम रहा था। हत्यारी भावनायें मेरे मन को पागल बना रही थीं कि सहसा मैंने अपने उन्माद में बड़े यत्न से प्राप्त किये रिवाल्वर को अपने कुरते की जेब से निकाल कर शून्य हवा में तीन मर्तबा दाग़ दिया। बुलेट वातावरण को चीरते हुये निकल गये। रात चौंक पड़ी और सहमे हुये पेड़ों ने क्षीण पड़ती हुई प्रतिध्वनि में एक दूसरे से मेरे इस कार्य की आलोचना की। शारदीय द्वादशी के चाँद ने बादल की ओट में मुँह छुपा लिया और इक्का दुक्का झिलमिलाते तारे भय से पीले पड़ गये। इसके थोड़ी देर बाद एक धीर और सुगंभीर निश्चिन्तता के साथ वृहत और शान्त रात्रि ने फिर नीरवता की चादर ओढ़ ली। मेरा अभिशाप, मेरी अधार्मिकता और मेरी प्रार्थना सब उस निस्तब्धता में विलीन हो गईं।

"फिर यकायक मेरा दिल भर आया। मेरे ख़ून में एक नई चेतना सी दौड़ गई। मन ही मन मुझे प्रतीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हुआ कि मैं अमिता की हत्या करना नहीं चाहता। मैं घृणा नहीं प्रेम, अशान्ति नहीं शान्ति का इच्छुक हूँ; मैं किसी मूल्य पर भी शान्ति चाहता हूँ। इसके बाद मैं रोने लगा। फूट फूटकर रोने लगा!

( ६ )

"दुःसह वेदना में समय रित रित कर बीतता गया। न दिन में चैन मिलता और न रात में आराम। रतजगों से मन थक गया था और कभी कभी अगर झपकी आ जाती तो सपने में अमिता की बहुत बदसूरत शक्ल मुझे दिखाई देती और मेरी दुर्गति उससे और अधिक बढ़ जाती। अमिता मेरी नज़रों में संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। मेरे लिये उसके रूप में अद्भुत लालित्य, अनिर्वचनीय चारुता और प्रबल आकर्षण था। वह मेरी समस्त भौतिक आकांक्षाओं और अभिमान की केन्द्र थी। मेरे दिल में जिस अनुपात में उसका महत्व था उसी अनुपात में मेरी वेदना भी असह्य हो उठी। अमिता मेरे लिये साकार आत्म-सम्मान थी। अमिता को इस तरह खो देना न केवल एक कलंक था बल्कि उसमें अपयश था, अपमान था, और अपकीर्ति थी। अमिता मेरे समस्त अरमानों की प्रतिनिधि थी। और तब ऐसा लगता कि मानो स्वयं अमिता मेरी असफलता और पराजय का उपहास कर रही हो।

"रोज़ सुबह मैं यही उम्मीद लेकर उठता था कि अमिता का बिछोह मिटते हुये स्वप्न की धुँधली पड़ती हुई रेखा के समान समाप्त हो रहा है और उसका हृदय मेरे प्रति करुणार्द्र हो गया है। यह विचार ही मुझे असम्भव मालूम होता था कि वास्तव में हम एक दूसरे से हमेशा के लिये जुदा हो गये हैं!

"वासना मेरे प्यार का ध्येय न थी और न मेरे प्यार में कौतुक ही था। मैं जी जान से अमिता को चाहता था। अपने प्रेम की गुरुता के कारण ही शायद मैं असंयमित दीखता था। प्रेम की जो अशेष रागिनी मेरे हृदय में झंकृत होती थी उस पर गा सकना मैं सम्भव न पाता और तब ऐसा लगता कि मेरी ही आत्मा मेरा उपहास कर रही है। अपनी विफलता में मेरा हृदय एक बार हो अनाथ शिशु की तरह उच्च स्वर में क्रन्दन करने लगता। मेरा एकाकी जीवन मुझे डसने लगता। मैं अपने प्रेम की टूटी हुई वीणा को उठाकर नितान्त उन्माद में बजा उठता और उससे जो दारुण और आहत प्रतिध्वनि उठती उस पर मैं अपने प्रमाद का विषम गीत गाता। मेरा भयङ्कर सूनापन तब दुःख का ही आह्वन करते हुए कहता—

"ए दुःख, तू ही आ! तू ही आ!
मेरा हृदय बिलकुल अकेला है!
ऐ दुःख मैं तुझे जननी का स्नेह दूंगा!
अपने हृदय के रक्त से तेरा पोषण करूंगा!
अपना हृदय धन बनाकर तुझे हृदय में रखूंगा!
तेरे श्रान्त कपोल पर अपने प्राणों की निश्वास
पंखा झलूंगा!
ऐ दुख, मैं बिलकुल एकाकी हूं!
मुझे एक साथी चाहिये!
आ दुख तू ही आ!
मेरे प्राणों के मर्मर के पास जो रिसरिस कर
बहता है बस उसी के पास बैठा रहा!"

"और तब एक दिन सहसा मैंने देखा कि गरमी
भरी दुपहरी में अमिता और गुल दोनों मेरे पास आये
मुझे देखकर अमिता की आँखें सजल हो गईं। पश्चात
के स्वर में वह बोली—

"रिक्की, मेरी हरगिज़ यह इच्छा न थी कि तुम
साथ मैं दुर्व्यवहार करूँ। इधर दो वर्ष से मैं तुमसे न
मिली, किन्तु मैं हमेशा तुम्हारे बारे में सोचती रहती
तुम्हारे लिये मेरे मन में सदा ही प्रेम रहा है, लेकिन
प्रेम में इतनी शक्ति न थी कि मेरा हृदय द्रवित होता।
मति भ्रम सी हो गई थी। मैं खुद महसूस करती थी
मेरी अक्ल मारी गई है। तुम्हारे ऊपर अपने जुल्म
मैं देख रही थी लेकिन समझ नहीं पा रही थी कि
क्यों कर रही हूं। मालूम होता था कि मैं बेबस
लाचार किसी जादू के ज़ोर पर चल रही हूँ।

"मैंने सर झुकाये हुये कहा—अमिता मैं
शीलहीन व्यवहार पर लज्जित हूँ। तुम्हारे प्रेम के
का अब मुझे कोई अधिकार नहीं। तुमसे भी क्षमा प्रार्थी
गुल। तुम जानते हो मेरे हृदय में अमिता के
असीम स्नेह है और वह स्नेह ही मेरे
का केन्द्र बिन्दु है, इसीलिये अमिता को तुम्हारी देख
सर्वथा तुम्हारी देखना मेरे वश की बात नहीं। तब
उचित है कि मैं अपने जीवन की दिशा मोड़ लूं
तुम्हारी नज़रों से दूर, बहुत दूर चला जाऊँ। अपनी
ताक़त से अपने मन को दूसरे कामों में लगाऊँ।
अमिता की ऐच्छिक चाहना ही तो प्रेम का सम्पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नहीं है। यही मुनासिब है कि मैं अमिता को बिलकुल भूलने की कोशिश करूँ। यह दूसरी बात है कि जानता हूँ कि यह कोशिश कभी कामयाब न होगी।

"मैंने सर उठाया तो पाया कि अमिता एकटक गुल को देख रही थी। थोड़ी देर की ख़ामोशी के बाद उसने कहा—'गुल, तुम जानते हो मैं रिक्की को प्यार करती हूं। अपने मन की बात को मैं किन शब्दों में ज़ाहिर करूँ लेकिन मैं यह नहीं चाहती कि रिक्की इस तरह मुझसे अलग हो। मेरे लिये···'

"गुल ने बात काटकर कहा—'किन्तु यह कैसे होगा?'

"अमिता बोली—'यही कहना तो बहुत कठिन है। ज़िन्दगी में इससे पहले कभी भी मैंने अपने मन की थाह पाने की कोशिश नहीं की थी, लेकिन यह मुझे साफ़ दिखाई देता है कि मैंने रिक्की के साथ मुनासिब बर्ताव नहीं किया। रिक्की मुझ पर कितना एतबार करता था। वह हर तरह मेरे ऊपर निर्भर था। मैं ही उसकी एक मात्र भरोसा थी। मैं ही उसकी ज़िन्दगी की उम्मीद थी। मुझे छूकर वह पुलकित हो जाता था। मैं उसके लिए बड़े से बड़ा दैवी वरदान थी। मुझे मुकुट बनाकर वह अपनी ज़िन्दगी को अलंकृत करना चाहता था। मेरे प्यार पर उसे घमंड था। उसी पर वह जीवित था। गुल हम कैसे इससे इनकार कर सकते हैं कि जब हमने और तुमने मिलना शुरू किया तो वह रिक्की के प्रति मेरा विश्वासघात था और जब यह हमारी हत्या करने पर उद्धत था तब भी मेरे दिल में इसके लिये दया थी। अब मैं समझ सकती हूँ कि कितने भीषण मानसिक सन्ताप और परिताप के बीच से यह गुज़रा होगा! कितना दारुण अपमान, कितनी ज़बरदस्त ज़िल्लत इसने सही होगी!'

"मैंने कहा, अमिता यह ठीक है, किन्तु मैं नहीं देखता···।

"बीच ही में अमिता बोली—'मैं स्वयं नहीं देखती रिक्की, मैं सिर्फ़ देखने की कोशिश कर रही हूँ। मैं स्वयं नहीं जानती थी कि तुम अप्रकाश्य रूप से मेरे जीवन के अंग बन गये हो। मैं जितना गुल को जानती हूँ उससे कहीं ज़्यादा तुम्हें जानती हूँ। सच तो यह है कि मैं तुम्हें अपने सम्पूर्ण हृदय से जानती हूं। उस समय मैं तुम्हारे प्रेम की गहराई को न समझ पाई थी—ऐसी गहराई जो मुझे जीवन में और किसी के निकट न मिल सकेगी। तुम्हारे प्रेम की क़ीमत अब मैंने जानी है। तुम मेरे जीवन में पिरोये हुए हो। मैं तुम्हें अलग नहीं कर सकती। तुम कहोगे मैंने तुम्हें जान बूझकर फेंक दिया था लेकिन तब मेरे दिल पर परदा पड़ा हुआ था।'

"किन्तु तुम गुल को प्यार करती हो—मैंने कहा।

"अमिता ने कहा—'प्रेम विलक्षण वस्तु है रिक्की! लेकिन क्या सिर्फ़ एक ही प्रेम होता है? और गुल, मैं जानती हूँ, मैं तुम्हें प्यार करती हूं, किन्तु तुम्हारे प्रति मेरा यह प्यार है क्या? तुम्हारे प्रति मेरी भावनाओं का समूह—तुम्हारे उठने-बैठने, बोलने-चालने, देखने-सुनने की विधि के प्रति मेरा आकर्षण और उस आकर्षण से आत्म-सुख की प्राप्ति। इसके अलावा तुम्हारा नम्र व्यवहार और तुम्हारे ख़ुशामद के शब्द भी मेरे प्रेम पर मुलम्मा चढ़ाते रहे हैं। तुम मेरी तारीफ़ करते हो और वह मुझे अच्छी लगती है। उससे मेरा आत्म-गर्व सचेष्ट होता है और तुम्हारे प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता है। फिर मेरे मन की गहराई में व्याप्त चित्त-वृत्तियों और मेरी कायिक आकांक्षाओं से भी तुम्हें सहायता मिलती है। मैं समझती थी कि नारी की मनस्पूर्ति के लिये यही नितान्त सब कुछ है किन्तु वह मेरी छलना थी, मेरा भ्रम था। देखने में वही सब कुछ प्रतीत होता था लेकिन दरअसल बात यह न थी। मैं कैसे तुम्हें समझाऊँ, मुझे मुनासिब शब्द नहीं सूझते! मेरे मन पर भ्रम का परदा था, और वह परदा अब हटता जा रहा है और मेरा प्रेम अपने सम्पूर्ण प्रकाश के साथ मेरे दिल को रोशन कर रहा है।'

"गुल ने कहा—'किन्तु तुम्हें तो एक ही व्यक्ति चुनना है।'

"अमिता बोली—'हाँ! इसी तरह हमें शिक्षा दीक्षा मिली है। हमारे धर्म-ग्रन्थों में भी यही लिखा है। पौराणिक उपाख्यानों में भी इसी की चर्चा है। लोग इसी तरह सोचते हैं और इसी पर अमल करते हैं। नारी को यही बताया जाता है कि किसी दिन उसके जीवन में एक पुरुष आयेगा और वही उसके लिये सब कुछ होगा। उसके अतिरिक्त कोई कुछ न होगा। सब कुछ छोड़कर नारी को उसी में व्याप्त होकर रहना होगा।'

"गुल—'किन्तु पुरुष को भी तो यही बताया जाता है कि किसी दिन एक स्त्री आकर उसके जीवन की अधीश्वरी बनेगी।'

"अमिता बोली—'अन्तर केवल इतना है कि पुरुष इस कथन की सचाई पर विश्वास नहीं करते। इसकी असलियत जानने के लिये कुछ अधिक अनुभव की ज़रूरत


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नहीं। पुरुष स्वभाव से ही इस पर विश्वास नहीं करते। जहाँ तक स्त्री का प्रश्न है वह स्वभाव से किसी चीज़ पर विश्वास नहीं करती। वह शुद्ध संस्कारों में पलती है। वह अपनी गोपनीय भावनाएं स्वयं अपने से छुपाती है। मैंने खुद कभी संस्कारों पर विश्वास नहीं किया। यदि कभी मैंने यह समझा था तो वह मेरी भूल थी। रिक्की को इस तरह बिदा करना मूर्खता है। जितना और जिस अंश में भी मैं इसे प्यार करती हूँ इसे हमेशा के लिये इस तरह बिदा करना अन्याय है। ऐसे फ़ैसले में क्रूरता है, अमानुषिकता है और कुरूपता है। पराजित शत्रु के साथ भी कोई ऐसा व्यवहार न करेगा और इस निर्दय व्यवहार के बाद क्या मैं जीवन में कभी सुखी हो सकूंगी? जीवन का जो भी नियम इस क्रूरता की पुष्टि करता है वह घोर अनैतिक है! इससे अधिक खुदग़रज़ी और क्या हो सकती है? इसमें निरी पशुता और बर्बरता है।'

"कहते कहते अमिता का गला भर आया। उसकी आखें द्रवित हो गईं। भर्राई हुई आवाज़ में उसने कहा 'तुम्हें छोड़ सकना मेरे लिये नामुमकिन है रिक्की! मुझसे यह जुल्म न होगा। तुम मेरी आत्मा के अंग हो। मेरा गोपन प्रेम तुममें साकार हुआ है। तुम्हीं से मैंने प्रेम का पहला पाठ सीखा है। तुम्हारी चाहे जो कुछ भावना हो किन्तु मैं तुम्हें अपना ही अंश समझती हूं। तुम मेरे रक्त में घुल मिल गये हो। मेरी हड्डियों में, मेरी धमनियों में, मेरे रोम रोम में समा गये हो। मैं तुम्हें और तुम्हारी आकांक्षाओं को अब समझ पाई हूँ। क्या मैं तुम्हारी ज़िन्दगी की साध पूरा करने में तुम्हें मदद दे सकती हूं रिक्की'?

"दया की अश्रुपूर्ण मूर्ति की तरह उत्कण्ठा और लालसा से वह मेरी ओर देखने लगी। उसकी आँखों में मुझे आत्माहारा प्रेम की वह गरिमा दिखाई दी जो मर्त्यलोक में स्वर्ग का सृजन करती है और जो मानव को देवत्व का गौरव प्रदान करती है। मैं मन ही मन तड़प उठा। जी में आया मैं उसकी कोमल उँगलियाँ लेकर अपने ओठों से लगा लूँ किन्तु मैंने यह देख लिया कि अमिता का स्पर्श मेरी समस्त आग्रह-भावना का अन्त कर देगा। मैंने गुल की ओर देखा तो वह द्विविधा और असमंजस में खड़े थे। मुझे उन पर दया आई।

× × ×

इसके बाद अमिता चली गई। मैं मूर्ति की तरह एकटक चुप खड़ा रहा और अमिता चली गई—मेरे जीवन पथ से बाहर, मेरे जीवन से बाहर और उसके साथ साथ मेरे जीवन से चांदनी और प्रकाश सब कुछ चला गया। उसके अन्तिम शब्द झाईं की तरह मेरे कानों में अधिकाधिक वेग के साथ गूंजते रहे—

"क्या तुम मेरी प्रतीक्षा करोगे!

"क्या तुम मेरी प्रतीक्षा करोगे!!

"क्या तुम मेरी प्रतीक्षा करोगे!!!

८

"उसके बाद दिन आते हैं और चले जाते हैं। अमिता के लिये मेरी दलित तृष्णा अपने सम्पूर्ण वेग से मुझे त्रसित करती रहती है। मेरी आत्मा के भीतर सांय सांय होता रहता है। अन्धकार में तकिये में सर गड़ाये मेरा हृदय अमिता के लिये चीत्कार करता रहता है जब कि चारों ओर आल्हाद और प्रमोद की ध्वनि गूँजती रहती है और वातावरण सुखी मनुष्यों की अचिन्तना से फूला फूला रहता है। मैं पड़ा रहता हूं और रोता रहता हूं जब कि लक्ष लक्ष तारे धुंध को चीरते हुये खिड़की से झांक उठते हैं और रात मेरी हमदर्दी में रो रोकर धरती के अंचल को ओस की बूंदों से गीला करती रहती है।"

इतनी लम्बी कहानी सुनाने के बाद प्रकाश चुप हो गये। उनके रुग्ण पीले मुख पर सन्तोष की रेखा झलक पड़ी। दूर से सेक्रेटेरियट की घड़ी ने रात के तीन बजाये और बाहर एक सन्तरी 'होशियार रहो' की आवाज़ लगाता हुआ निकल गया। मैंने देखा प्रकाश का जी बहुत कुछ हलका हो गया है। उन्होंने आँखें मूँदकर अपना जीर्ण हाथ मेरी गोद में रख दिया।

प्रकाश को अमिता की भी प्रतीक्षा है और मृत्यु की भी, किन्तु लगता है मृत्यु ही पहले आकर उन पर अपने स्नेहांचल फैलायेगी। और जीवन से विदाई की अन्तिम घड़ी तक प्रकाश मन ही मन अमिता को आश्वासन देते रहेंगे—

"अमिता मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ!

"अमिता मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ!

"अमिता मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं!"

और तब किसी दिन शिशिर प्रभात में मृत्यु धीरे से आकर उनकी इस चिर आकांक्षा के स्मृति-पट पर उनकी प्रेम-कथा का उपसंहार लिख देगी।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# साहित्य और सामाजिक वातावरण

डाक्टर ए० अरॉनसन बी० ए० ( कैण्टब ), पी-एच० डी०

साहित्य दो प्रमुख तत्वों से निर्मित होता है—कलाकार के वैयक्तिक स्वभाव से तथा उस सामाजिक वातावरण से जिसमें कि वह रहता है।

जब जब भौतिक उन्नति होती है, समाज में एक स्थिरता सी आती है तब तब साहित्य की भी उन्नति होती है। यूनान में पैरिक्लीज़ के युग में, फ़्लोरेन्स में मेडीसाई वंश के राज्यकाल में तथा इङ्गलैण्ड में महारानी एलीज़ाबेथ के समय में साहित्य का अत्यधिक निर्माण हुआ। इन युगों में एक ऐसा विलासी समाज वर्ग बन गया था जिसके पास पर्याप्त धन था और जो अपना समय कलाओं के विकास में दिया करता था। इस वर्ग की प्रेरणा से रचा हुआ साहित्य इसी वर्ग का प्रतिनिधि होता था। इस कारण इस समय के साहित्य को लेकर जब हमें यह बताया जाता है कि इस साहित्य में युग का प्रतिनिधित्व है तो इसका अर्थ यह है कि यह प्रतिनिधित्व केवल एक बड़े भौगोलिक क्षेत्र में बसे हुए एक छोटे से सामाजिक वर्ग का है न कि सारे समाज का। वास्तव में युग का प्रतिनिधि समाज का वह बड़ा अंश है जो रोटी की चिन्ता से कभी मुक्त नहीं रहता। इसी कारण सच्चे मायनों में जो साहित्य युग का प्रतिनिधि होता है, परिस्थितियों के कारण एक दरजे तक उसमें निराशावादी प्रवृत्तियाँ रहती हैं।

सामाजिक अभिरुचि में सदा परिवर्तन होता रहता है। इन बदलती हुई अभिरुचियों के बीच जो साहित्य स्थायी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का द्योतक होता है उसे 'क्लासिकल' कहा जाता है। जर्मनी के गेटे, लेसिंग तथा शिलर इसके उदाहरण हैं। यूरोपीय साहित्य में क्लासिकल युग के पश्चात परिवर्तनशील सामाजिक अभिरुचियों के कारण रोमाण्टिक युग आया। यह युग एकाएक आ अवश्य गया किन्तु इसके मूल में कला की प्रेरणा न होकर समाज की प्रेरणा थी। इस युग में शासन प्रणाली में परिवर्तन हुआ। पहले उच्च वर्ग का शासन था परन्तु अब मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग के शासन का समय आया। यह एक महान परिवर्तन था। इसका प्रभाव चारों तरफ़ पड़ा। 'बुर्जुवा' लेखकों से तात्पर्य उन्नीसवीं शताब्दी के उन लेखकों से है जो क्रांति की उन ऐसी प्रवृत्तियों से हीन होते थे जो उन्हें उनके अपने समय से मेल नहीं खाने देतीं। फ्रांसीसी भाषा में बुर्जुवा शब्द का अर्थ 'नगर निवासी' होता है। अठारहवीं शताब्दी में इसका अर्थ मध्यवर्गी नागरिक हो गया। सन् १८३० ई० से मध्य वर्ग का भी आध्यात्मिक पराभव होने लगा और इस शब्द का अर्थ 'अर्द्धसभ्य', 'क्रांति की प्रवृत्तियों से हीन' हो गया। प्रत्येक आत्म-सम्मान से भरे हुए लेखक का कर्त्तव्य 'अर्द्ध सभ्यों का उपहास एवं उन पर आक्रमण करना' हो गया।

यहां पर एक बात जानना काफ़ी मनोरंजक होगा कि इङ्गलैण्ड में मध्य वर्गी संस्कृति के शुरू होते ही बुर्जुवा शब्द मध्य वर्ग के नागरिकों तथा मज़दूरों दोनों के लिए समान रूप से इस्तेमाल होने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब कि यूरोप काफ़ी व्यवसायिक हो चुका था, तो वहाँ एक सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता हुई। यह परिवर्तन हुआ भी। मध्यवर्ग निम्नवर्ग को कुछ नीची दृष्टि से देखने लगा। प्रसिद्ध अमरीकन दार्शनिक वाल्ट ह्विटमैन पहला लेखक है जिसने निम्नवर्ग के मज़दूर को अपने 'भाई' के रूप में चित्रित किया है।

संक्षेप में यूरोप के समाज के विकास का यह एक चित्र है। अब हम इस सामाजिक चित्र को ज़रा साहित्य से मिलाकर देखें।

पहले उपन्यासकार को स्वतन्त्रता थी कि वह कहीं से भी अपनी विषय-वस्तु चुन सकता था। पहले वह उच्च वर्ग के गौरव गान तथा उन्हीं की वीरताओं के चित्रण करने में व्यस्त था। उसके पश्चात 'असंभव' घटनाओं के चित्रण की प्रवृत्ति बढ़ी। साहित्यकार ऐसी घटनाएं चित्रित करने लगे जिनका घट सकना सर्वथा असंभव था। सत्रहवीं शताब्दी में टामस नैश का 'अन्फारचुनेट ट्रेवलर' ( अभागा यात्री ) नामक उपन्यास इसका प्रमाण है। स्टर्न, फील्डिंग, डिकेन्स और थैकरे में पहली बार 'संभव' घटनाओं का चित्रण मिलता है। संभव घटनाओं के आधार पर ही लिखा हुआ उपन्यास मध्यवर्ग को पसन्द आता है। जब कि अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में मध्यवर्ग का ज़ोर बढ़ा तो मध्यवर्ग की रुचि का प्रभाव भी साहित्य में बढ़ा। इस सदी के अङ्गरेज़ी उपन्यासकारों में वर्जीनिया वुल्फ़, डी० एच० लारेन्स तथा जेम्स जोयस ने 'संभव' ही नहीं वरन् 'अवश्यम्भावी' घटनाओं का चित्रण किया है।

अब प्रश्न यह है कि समाज की सतत परिवर्तनशील अभिरुचि के प्रति साहित्यकारों का क्या दृष्टिकोण है? एक ओर तो यह मालूम होता है कि लेखक को इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सामाजिक प्रवृत्तियों में ही अपने व्यक्तित्व को सीमित रखना चाहिए। दूसरी ओर यह भी लगता है कि लेखक को अपना व्यक्तित्व इनसे ज़रा ऊपर रखना चाहिए क्योंकि साहित्य समाज के दर्पण के साथ ही साथ उसका दीपक भी है। यदि साहित्यकार अपनी पसन्द के साहित्य को दीपक बनाना चाहता है, मौजूदा समाज का नई, राजनैतिक और सामाजिक प्रथाओं से परिचय कराना चाहता है तो उसे अपना सम्पर्क समाज के एक छोटे बौद्धिक अङ्ग से ही रखना पड़ेगा क्योंकि नये विचार जनता के दिमाग़ से नहीं वरन् जनता के एक छोटे भाग के दिमाग़ से निकला करते हैं। इस प्रकार साहित्यकार एक तरह से उस छोटे वर्ग का दिमाग़ी प्रतिनिधि हो जाता है।

यह समस्या पहले की अपेक्षा आज और अधिक पेचीदा है। वे लेखक जो कि समाज के बड़े वर्ग की मनचाही बात नहीं लिखते, समाज के द्वारा पढ़े नहीं जाते और वे लेखक जो उसकी मनचाही बात लिखते हैं, खूब पढ़े जाते हैं। प्रेस की सुविधाओं से यह बात और बढ़ गई है। अब समाज का प्रत्येक सदस्य सरलता से साहित्य पढ़ सकता है। और उस पर अपनी राय क़ायम कर सकता है।

मध्ययुग में पुस्तकें जो लिखी भी जाती थीं उनका इतना अधिक प्रचार नहीं होता था। उच्चवर्ग की प्रेरणा से वे लिखी जाती थीं। उच्चवर्ग ही उन्हें पढ़ता था और उस वर्ग की रुचि पर ही लेखक को निर्भर करना पड़ता था।

इङ्गलैण्ड में मध्यवर्ग के विकास एवं शक्तिशाली होने पर लिखना पढ़ना मध्यवर्ग में भी फैला। ज़ाहिर है मध्यवर्ग के सदस्यों की संख्या उच्च वर्ग के सदस्यों से बहुत अधिक है। इस कारण लेखक को उच्चवर्ग की रुचि पर निर्भर रहने की ज़रूरत नहीं रह गई। परन्तु अभी भी उच्चवर्ग ने अपना हाथ साहित्य से नहीं हटाया। अब उच्चवर्ग प्रकाशक के रूप में आकर खड़ा हो गया। इङ्गलैण्ड में प्रारंभ में तो प्रकाशक मध्यवर्ग के ही होते थे और पुस्तकें चन्दे से प्रकाशित हुआ करती थीं। किन्तु यह चन्दा देने वाले भी उच्चवर्ग के ही थे। बाद में ये उच्चवर्ग के सदस्य स्वयं प्रकाशक बन गये और साहित्य पर उन्होंने अब प्रकाशक की हैसियत से अधिकार जमा लिया। इस प्रकार आधुनिक लेखक दो पाटों के बीच में पीसा जाने लगा—एक जन अभिरुचि या सामाजिक परिस्थितियों का पाट तथा दू धनी प्रकाशक का पाट।

प्राचीनकाल से ही साहित्य रचना को व्यवसाय क एक घृणित काम समझा जाता रहा है। टामस ग्रे ने अ सुप्रसिद्ध एलिजी के प्रकाशन के लिये प्रकाशक से विक धन नहीं लिया क्योंकि अपनी रचना को वह रुप तोलना आत्म सम्मान के विरुद्ध समझता था। इ अतिरिक्त जनता भी कवियों तथा लेखकों का अ नासमझी के कारण सम्मान नहीं कर पाती थी। उपन्या आदि में भी कवि का कोई स्थान नहीं था। कहीं पर उनमें वह पात्र के रूप में नहीं आता था। चैटर्टन नाम नाटक में पहली बार एक कवि कथा-नायक के रू आता है और वह भी ग्लानि से आत्म-हत्या कर लेता क्योंकि जनता उसके साहित्य को समझ नहीं पाती।

पुस्तकों के प्रकाशन का अधिकार प्रकाशक ने हथि लिया और ये प्रकाशक अपने प्रकाशनों में साहित्यिक मूल्य की अपेक्षा बाज़ार के मूल्य का अधिक ध्यान रखने लगे प्रकाशक यदि साहित्यिक मूल्य का ध्यान रखना भी चा तो भी नहीं रख सकते क्योंकि वे ख़ुद योग्य और विद्वा नहीं होते। वे प्रायः अपनी ही रुचि का साहित्य जन को दिया करते हैं और इसका परिणाम यह होता कि जनता और साहित्य के बीच एक खाई तैयार हो जाती है।

साहित्य के प्रसार में दमन नीति से भी काफ़ी का लिया जाता है। यदि कोई कृति किन्हीं कारणों से अनुचि समझी जाती है तो सामाजिक दबाव से या सरकारी आ से उसका प्रचार नहीं होने पाता। इस नीति के परिणा स्वरूप साहित्य के उस भाग से जिसका अकसर समाज गहरा सम्बन्ध होता है, प्रचार नहीं हो पाता।

अन्तिम बात जो कि साहित्य और सामाजिक परिस्थि तियों के विषय में हम कह सकते हैं, वह समाज की गति है। हमने ऊपर बतलाया है कि शान्ति और व्यवस्था काल में साहित्य अपने उत्कर्ष पर रहता है परन्तु मूलत साहित्य को सामाजिक क्रान्ति से अधिक प्रेम है, क्रान्ति से जिसमें विनाश और सृजन दोनों ही का समावे रहता है।

साहित्य तथा सामाजिक परिस्थितियों के आपसी सम की संक्षेप में यही रूप रेखा है।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बम्बई-योजना का दूसरा भाग

श्री रमेशचन्द्र गोयल बी० काम०, विशारद

नव वर्ष के आगमन के साथ साथ देश की आर्थिक उन्नति की योजना का दूसरा भाग भी प्रकाशित हो गया है। यद्यपि इसका उतना ज़ोरदार स्वागत नहीं हुआ जितना कि योजना के प्रथम भाग का हुआ था, परन्तु केवल इसीलिये इसका महत्व कम नहीं हो जाता। योजना के प्रथम भाग में सम्पत्ति की उत्पत्ति के साधनों तथा उत्पादन की सम्भावनाओं और उसकी वृद्धि पर विचार किया गया था। ठीक एक वर्ष के लम्बे अध्ययन तथा मनन के पश्चात यह दूसरा भाग प्रकाशित हुआ है जिसमें मनीषियों ने उत्पादित सम्पत्ति के वितरण तथा राज्य के अधिकार और सम्बन्ध के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। यह खेद का विषय है कि योजना के पूर्व निर्माताओं में से सर आरदेशिर दलाल का नाम वे लोग इसमें नहीं दे सके, क्योंकि योजना के पहले भाग के प्रकाशित होने के कुछ समय बाद ही वे सरकार की ओर से औद्योगिक सदस्य बना दिये गये थे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि सरकार इसी योजना का पालन करेगी। यह कार्य तो वास्तव में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना के बाद सामने आयेगा। अभी केवल उसकी रूप रेखा मात्र खींची जा रही है।

इस भाग में उत्पादित सम्पत्ति के वितरण तथा औद्योगिक उन्नति में राज्य का क्या हाथ रहेगा, इन समस्याओं की विवेचना की गई है। राष्ट्रीय सम्पत्ति तथा आय का देश के निवासियों में असमान वितरण सदा से आलोचना का प्रधान विषय रहा है, और मुख्यतया इसी असमानता को लक्ष्य बनाकर आलोचकगण पूंजीवादी औद्योगिक उन्नति का कटु विरोध तथा समाजवादी व्यवस्था का प्रतिपादन करते आये हैं। वर्त्तमान योजना के निर्माताओं ने इस कशमकश से बचने के लिये एक मध्यम मार्ग का आश्रय लिया है। वे पूँजीवाद तथा पूर्ण समाजवाद के बीच एक सामंजस्य का प्रतिपादन करते हैं। अपने विचार उन्होंने निम्न लिखित शब्दों में प्रकट किये हैं—'एक ओर तो हम मानते हैं कि व्यक्तिगत उद्योग तथा स्वामित्व पर टिकी वर्त्तमान आर्थिक व्यवस्था राष्ट्रीय आय का समुचित वितरण करने में असमर्थ रही है; किन्तु दूसरी ओर हम देखते हैं कि इन कमियों के बावजूद भी उसमें कुछ ऐसी बातें हैं जो समय की कसौटी पर खरी उतरी हैं और सफलता का सेहरा उनके सिर बंधा है। यद्यपि वर्तमान व्यवस्था की कमज़ोरियों की ओर से आँख मूँद लेना अक़्लमन्दी न होगी, किन्तु हमारा विचार है कि उस व्यवस्था को जो अब तक बहुत सी दिशाओं में सफल रही है, एकबारगी उखाड़ फेंकना भी उतनी ही बड़ी भूल होगी।'*

अतः समस्या के समाधान की यह दिशा निश्चित कर लेने के बाद वे सम्पत्ति के असमान वितरण का उल्लेख करते हैं; और इस बात को महसूस करते हुए कि जब तक जनता की क्रयशक्ति नहीं बढ़ेगी, तब तक देश की सर्वांगीण उन्नति सम्भव नहीं है, वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यदि आय की ये असमानताएँ बनी रहने दी जायें, तो उत्पादन की वृद्धि की योजना ही बेमायनी हो जायेगी। अतएव इस विषय में उनकी नीति के दो पहलू होंगे। (१) प्रत्येक मनुष्य की आय कम से कम इतनी हो जाय कि वह जीवन की आवश्यकताओं को प्राप्त कर सके, और (२) विभिन्न श्रेणियों तथा व्यक्तियों के बीच अधिक असमानता न होने पाये। इसके साथ ही वे इन असमानताओं को बिलकुल उड़ा देने के ख़िलाफ़ हैं। उदाहरणस्वरूप उन्होंने रूस के 'स्टाखानोविज़्म' की मिसाल पेश की है। रूस में औद्योगिक उन्नति के साथ अधिक उत्पादन करने वाले मजदूरों को विशेष श्रेणी में गिना जाता है, जिन्हें 'स्टाखानोवाइट' कहते हैं। इन्हें अन्य मज़दूरों की अपेक्षा अधिक मज़दूरी मिलती है। प्रमाण के लिये उन्होंने लार्ड कीन्स के तर्क की सहायता ली है, जिनका कथन है कि आय और सम्पत्ति के बंटवारे में सामाजिक तथा मानसिक दृष्टि से भी थोड़े से वैषम्य के लिये तो गुञ्जाइश है ही, किन्तु आज कल की सी वृहदाकार असमानताओं का अस्तित्व नहीं रहना चाहिये।

सम्पत्ति के वितरण के सम्बन्ध में अपनी नीति स्पष्ट करने के पश्चात वे उत्पत्ति के साधनों के स्वामित्व के प्रश्न को लेते हैं। कुछ थोड़े से पूंजीपतियों के हाथ में उत्पत्ति के सारे साधन सिमट कर जमा हो गये हैं। योजना के निर्माताओं की सजग दृष्टि इस ओर से भी उदासीन नहीं है। वे इस बात का भी अनुभव करते हैं कि सम्पत्ति के असमान वितरण का विषाक्त प्रभाव आय पर

* A Plan of Economic Development for India—pp. I. Part II (Distribution—Role of the state)



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पड़ता है, और प्रच्छन्न रूप से विषमता को बढ़ाने में सहायक होता है। अतः उत्पादन के साधनों रूपी सम्पत्ति को व्यक्तियों के हाथ में जमा होने से बचाने के लिये कुछ पाश्चात्य देशों की भाँति मृत्यु कर ( Death duties ) तथा इसी प्रकार के अन्य सम्पत्ति पर लगाये जाने वाले करों की उन्होंने सिफ़ारिश की है, क्योंकि उनके विचार से यह सम्पत्ति के वितरण की विषमता को कुछ हद तक दूर करने में सहायक होंगे। भूमि सम्बन्धी क़ानूनों में सुधार की बात भी उन्होंने उठाई है। उद्योग धन्धों के क्षेत्र में वे विकेन्द्रीकरण की नीति के पक्षपाती हैं, और ग्रामोद्योगों तथा छोटे उद्योगों की उन्नति चाहते हैं। उनके विचार से औद्योगिक विकेन्द्रीकरण की नीति उत्पादन के साधनों के एकत्रीकरण में बाधक होगी और सहकारिता आन्दोलन पूंजी के समान वितरण में सहायक होगा। इसी प्रकार कुछ आधारभूत बड़े बड़े उद्योग धन्धों का राज्य के द्वारा प्रबन्ध भी सम्पत्ति के वितरण की विषमता को दूर करने में सहायक होगा। उत्पादन के साधनों के स्वामित्व और प्रबन्ध में विकेन्द्रीकरण, तथा राज द्वारा प्रबन्ध के साथ वे यह भी आवश्यक समझते हैं कि उन साधनों से उत्पादित धन का उन साधनों में समुचित वितरण किया जाय, जिससे विषमता अधिक न बढ़ने पाये। आम तौर से यद्यपि मज़दूरी, सूद तथा लाभ में मांग के अनुसार अन्तर रहेगा ही, किन्तु इस बात का ध्यान रखा जाये कि मज़दूरी की दर एक निश्चित मान से नीचे न गिरने पाये, तथा सूद की दरें और लाभ पर भी नियन्त्रण रखा जाये। यह कार्य मूल्य-निर्धारण, लाभ, वितरण पर नियन्त्रण तथा कर-नीति के उचित प्रयोग द्वारा सम्पन्न हो सकता है।

इसके पश्चात उन्होंने विभिन्न आनुषंगिक विषयों पर अपने विचार प्रकट किये हैं। खेती के धन्धे में आंशिक बेकारी और उद्योगों में बेकारी न बढ़े तथा सब को पूरा काम मिल सके, ऐसी व्यवस्था करने की वे आशा करते हैं। उद्योगों तथा कृषि का संतुलन इस प्रकार हो कि किसी एक अंग पर जनता का विशेष भाग निर्भर न हो और श्रमिकों की कार्य शक्ति में वृद्धि हो। इसी प्रकार एक कम से कम मज़दूरी की दर निश्चित कर देने तथा ग्रामों और शहरों में मज़दूरी की दर में जो विराट अन्तर रहता है, उसको भी वे दूर करना चाहते हैं। कृषि सम्बन्धी विभिन्न तरीक़ों और भूमि की समस्याओं पर भी उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं, जिन्हें विस्तार भय से यहाँ लिखना सम्भव नहीं। किन्तु इतना स्पष्ट ज्ञात होता है कि योजना के निर्मातागण अपनी योजना में एक नवीन वस्तु की ओर दृष्टि लगाये हुऐ हैं और वह है पूंजीवाद और समाजवाद का एक सामंजस्य। उनके विचार से पूंजीवाद और समाजवाद के बीच का अन्तर कुछ बहुत बढ़ाकर दिखाया जाता है जब कि वह वास्तव में इतना अधिक नहीं है। उनकी राय में "कोई भी आर्थिक व्यवस्था तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक कि वह प्रत्येक प्रकार की विचार धारा के समुचित सम्मिश्रण को अपना आधार न बना ले।* योजना के निर्माताओं का यह नूतन, उदार, रचनात्मक दृष्टिकोण ही सारी योजना का प्राण है, और विचारकों के लिये आने वाली ऊषा वेला की दिशा का ध्रुव-संकेत है।

निर्माताओं के कथनानुसार जब उपर्युक्त योजनाओं और सुधारों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय के परिमाण में वृद्धि हो जायगी, और उसके वितरण में समुचित संतुलन रहेगा, तो देश की आर्थिक अवस्था का आधार अधिक विस्तृत हो जायगा। लोगों को विभिन्न दिशाओं में विविध प्रकार का काम बहुतायत से मिल सकेगा, जिससे भूमि पर जो अत्यधिक भार है, उसमें कमी होगी और उद्योग धन्धों में लगे हुए लोगों की आय में वृद्धि होगी। आज जितनी जन संख्या खेती पर आश्रित है उसका एक बड़ा भाग उद्योग धन्धों में लग जायेगा। योजना के निर्माताओं के मतानुसार यदि १९४७ में यह पंचदशवर्षीय योजना कार्यान्वित हो सके, तो उसकी समाप्ति पर सन् १९६२ में परिस्थितियाँ बहुत कुछ बदल जायेंगी। विभिन्न पेशों में लोगों का विभाजन कैसा होगा तथा १९६२ में उनकी आय में कितनी वृद्धि होगी यह नीचे की तालिकाओं से स्पष्ट हो जायगा।

पेशों के अनुसार जन संख्या का विभाजन

| | १९३१ | १९६२ |
|---|---|---|
| कृषि | ७२ प्रतिशत | ५८ प्रतिशत |
| उद्योग धन्धे | १५ ,, | २६ ,, |
| सेवा-कार्य† | १३ ,, | १६ ,, |

इस प्रकार खेती की ओर से लेकर जन संख्या का एक बड़ा भाग भूमि का भार कम करने के लिये तो उद्योग धन्धों में लगाया ही जायगा; किन्तु उत्पादन में वृद्धि होने पर उनमें आय का विभाजन भी निम्न प्रकार होगा।

* Ibid

† इसके अन्तर्गत राज्य की सरकारी नौकरियाँ, रेल इत्यादि तथा घरेलू नौकरियाँ भी सम्मिलित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



काम में लगे प्रति मनुष्य की औसत आय (रुपयों में)

| | १६३१ | १६६२ | प्रतिशत वृद्धि |
|---|---|---|---|
| कृषि | ११४ | २२० | ६३ |
| उद्योग-धन्धे | १६१ | ३६८ | १२६ |
| सेवा-नौकरी | २६४ | ३६७ | ५० |

जनता की प्रति मनुष्य आय में वृद्धि और जीवन के मान की उन्नति के लिये दो प्रकार के उपाय काम में लाये जायेंगे। एक तो वे जो उनकी आय की वृद्धि में सहायक होंगे, और दूसरे वे जो उनकी जीवन की आवश्यकताओं के ऊपर होने वाले व्यय में कमी करने में सहायक होंगे। योजना के निर्माताओं का कथन है कि "हम भारत में आय के स्तर को ऊंचा उठाने के लिये जिन उपायों को काम में लाने का प्रस्ताव करते हैं, उनमें सब को अधिक काम मिलना सब से अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है।" आज की पूरी और अधूरी बेकारी के रहते कभी भी लोगों के जीवन का मान ऊँचा नहीं हो सकेगा। और सब लोगों को अधिकाधिक परिमाण में काम देने की इस महती समस्या को ध्यान में रखकर ही उन्होंने पेशों के विभाजन में आमूल क्रान्तिकारी परिवर्त्तन की आशा की है।

जीवन की आवश्यकताओं पर लोगों को कम से कम खर्चा करना पड़े, इसके लिये वे दो प्रकार के उपाय बतलाते हैं। प्रथम तो बिना मूल्य ही सामाजिक सुविधाएँ, प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा चिकित्सा की सुविधाएँ इत्यादि, तथा दूसरे आवश्यक उपयोगिता की सुविधाएँ जैसे बिजली, पानी तथा यातायात की सुविधाएँ, जो योजना के अन्तर्गत दी जायेंगी। इनसे निश्चय ही लोगों के रहन सहन के खर्च में कमी होगी। किन्तु वे इस बात से अवगत हैं कि उनकी योजना आय की स्थिरता के लिये कोई स्कीम नहीं पेश करती। बीमारी, बुढ़ापे तथा अन्य प्रकार से बेकारी की हालत में मज़दूरों के भरण पोषण के प्रबन्ध के लिये एक सम्पूर्ण योजना की आवश्यकता है, किन्तु उसका बनाना अभी संभव नहीं। फ़िलहाल तो इस सम्बन्ध के कानूनों में आवश्यक सुधार ही उनका लक्ष्य है।

इसके पश्चात वे आय-कर की समस्या पर पहुंचे हैं। अब तक उन्होंने राष्ट्रीय सम्पत्ति के समान वितरण के प्रथम पहलू अर्थात् रहन-सहन के दर्जे को ऊपर उठाने की समस्या पर प्रकाश डाला; किन्तु उसका दूसरा पहलू है कि अभी आय में और धन के वितरण में जो विषमता मौजूद है, उसको कैसे दूर किया जावे। इसके लिये सब से सरल उपाय है आय पर सीधा कर लगाना जिससे धनी श्रेणियों की आय का एक बड़ा भाग सरकार के पास पहुँच जाता है, और फिर अन्य रूपों में ग़रीब श्रेणियों के पास लौट आता है। अतः एक ऐसा आय कर जो व्यक्तिगत आय को निश्चित सीमा से अधिक न बढ़ने दे उनकी दृष्टि में बहुत उपयोगी होगा। साथ ही दूसरे देशों के समान मृत्यु कर की व्यवस्था भी जिसके अनुसार मृतक की सम्पत्ति का एक निश्चित उसके वारिसों को न मिलकर सरकार के पास चला जाता है; सम्पत्ति के वितरण की वर्तमान विषमता को दूर करने में सहायक होगी। इसके अतिरिक्त योजना को कार्यान्वित करने के लिये भी सरकार को अधिक धन की आवश्यकता होगी और सरकार के लिये अधिक धन वसूल करने का सब से सरल उपाय सीधा कर लगाना है, किन्तु इस कर-नीति की वकालत करते समय वे यह चेतावनी देना नहीं भूले हैं कि यह नीति केवल एक राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही काम में लाई जानी चाहिये। साम्राज्यवादी परम्परा की अनुयायिनी विदेशी सरकार के हाथ में ऐसी नीति का होना करेले का नीम पर चढ़ना होगा।

देश के इस आर्थिक पुनर्निर्माण में सरकार का क्या हाथ है और होना चाहिये—इस विषय पर भी योजना के निर्माताओं ने अपने विचार प्रकट किये हैं। आर्थिक-व्यवस्था का सुधार कैसा होना चाहिये, इस विषय में उनके विचार पहले दिये जा चुके हैं। कार्य तो दो प्रकार का है, एक तो योजना को कार्यान्वित करना तथा, जब वह कार्यान्वित हो जाये तब देश की आर्थिक व्यवस्था और प्रगति पर नियंत्रण रखना। अतः दोनो ही दशाओं में किसी भी योजना के निर्माण अथवा कार्यान्वित करने में सरकार का हाथ अवश्य रहेगा ही। कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है कि किसी योजना को कार्यान्वित करने के लिये रूस अथवा जर्मनी जैसी एकाधिकारी सत्ता आवश्यक है। किन्तु व्यक्ति स्वतंत्रता का इतना अपहरण ठीक नहीं। यद्यपि यह आवश्यक है कि हमारे देश में जहाँ कि अभी पुनर्निर्माण की दागबेल डाली जाने को है, सरकार का पूरा हाथ और कन्ट्रोल रहेगा और सामाजिक सुव्यवस्था के दृष्टिकोण से रहना भी चाहिये; किन्तु प्रजातंत्र के उस अमोघ अस्त्र-व्यक्ति-स्वतंत्रता का पूर्णतया अपहरण वांछनीय नहीं है। जब एकाधिकारिणी सत्ताओं के मुकाबले में प्रजातंत्र युद्धक्षेत्र में सफल हो सकता है तो कोई कारण नहीं है कि वे ही शक्तियाँ सामाजिक शत्रुओं, ग़रीबी, बीमारी और अज्ञान पर विजय पाने में सफल न होंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अब प्रश्न यह उठता है कि सरकार के इस हस्तक्षेप का स्वरूप और ढंग क्या होगा ? योजना के निर्माताओं ने इसके तीन प्रकार बतलाये हैं। सरकार का पूर्ण स्वामित्व, कन्ट्रोल और आर्थिक व्यवसायों का प्रबन्ध। सरकार द्वारा स्वामित्व तथा कट्रोल की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि "जनता के लाभ अथवा सुरक्षा के लिये किये गये किसी भी काम में, जहाँ सरकार का ही रुपया लगा हो, सरकार का पूर्ण स्वामित्व आवश्यक हो जाता है। इसी प्रकार जहाँ जनता के हित की दृष्टि से ऐसा करना अवश्यक हो वहाँ भी सरकार किसी उद्योग का स्वामित्व स्वीकार कर सकती है। किन्तु शर्त यह है कि केवल कन्ट्रोल से वहाँ काम न चलता हो।" उनके मतानुसार युद्ध-सामग्री का निर्माण, और आवश्यक साधनों यथा तार डाक इत्यादि का प्रबन्ध ऐसी ही वस्तुएँ हैं जिनका स्वामित्व पूर्णतया सरकार के पास होना चाहिये। अब अन्य प्रकार के साधनों पर सरकार का नियंत्रण कैसा होना चाहिये, यह तो विभिन्न दशाओं के अनुसार निश्चित होगा, किन्तु जनता के लाभ और हित की दृष्टि से चलाये जाने वाले आधारभूत उद्योगों पर सरकार का नियंत्रण रहना ज़रूरी है। यह नियंत्रण, क़ीमत निश्चित करने, डिवीडेन्ड या लाभ बांटने की सीमा निर्धारित करने, मज़दूरों के काम का समय और मज़दूरी की दरें निश्चित करने, लाइसेन्स देने तथा अपने प्रतिनिधि उद्योगों के प्रबन्धक संसद में रखने इत्यादि के कितने ही रूपों में हो सकता है।

जब किसी उद्योग की स्वामी सरकार होगी, तो उसे ही उसका प्रबन्ध भी करना पड़ेगा। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि जिन उद्योगों की स्वामी सरकार हो, उन सभी का प्रबन्ध भी वही करे। इसके लिये तीन तरीके हो सकते हैं। एक तो सरकार खुद प्रबन्ध करे, दूसरे अन्य व्यक्तियों को दे दे, तीसरे 'पबलिक कारपोरेशन' द्वारा प्रबन्ध कराये। इस विषय में प्रबन्ध-क्षमता ही एक ऐसी वस्तु है जो इस प्रश्न को हल कर सकती है कि किसी उद्योग का प्रबन्ध किन हाथों में हो। कोई एक सी नीति नहीं बनाई जा सकती और प्रत्येक मामला अपनी दशा और परिस्थितियों के अनुसार पृथक विचार तथा निर्णय का अधिकारी है। इसके आगे भी यदि कहीं पर कार्य-समता में वृद्धि और जनता के हितों में संघर्ष उत्पन्न होने की सम्भावना हो तो उस स्थान पर हमें एक प्रकार का व्यावहारिक समझौता कर लेना पड़ेगा। उन्होंने श्री जी० डी० एच कोलकी पुस्तक 'Great Britain in the Post war world' से एक उद्धरण दिया है, जिसका अर्थ होता है कि उत्पादन सारे साधनों को एक बारगी ही सामाजिक सम्पत्ति देने की तो ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु कुछ आवश्यकतानुसार समाज या सरकार को सौंप दिया सकता है, और यदि यह तरीक़ा कामयाब न हो तो पर नियन्त्रण रखते हुए, उस उद्योग को फिर व्यक्ति अधिकार में भी दिया जा सकता है। अतः यह रेखा स्थिर नहीं हैं। निर्णय की कसौटी केवल कार्य-स तथा उत्पादन में समाज-हित की दृष्टि से वृद्धि है।

योजना के निर्माताओं के विचार से योजना के रहने के काल में भी बहुत सी वस्तुओं के उत्पादन वितरण पर भिन्न भिन्न प्रकार के नियन्त्रण ( कट्रोल ) रहना आवश्यक होगा। उसके बिना योजना की सफ़ की गति मन्द पड़ जायगी। ये नियन्त्रण विशेषकर उत्पा वितरण, उपभोग, इन्वेस्टमेण्ट, विदेशी व्यापार तथा विनि और मज़दूरी तथा मज़दूरों की हालत के सम्बन्ध में ही होंगे इस प्रकार के प्रयत्नों के पश्चात जिस आर्थिक व्यवस के आविर्भाव की आशा की जाती है; वह निर्माताओं शब्दों में ही प्रो० पीगू की पुस्तक Socialism Capitalism में वर्णित सामाजिक व्यवस्था के सम होगी; जिसमें अभी तो पूंजीवाद की ही प्रधानता रहे किन्तु धीरे धीरे उसमें सुधार की आशा की जाती जिसमें आय कर तथा मृत्यु कर के अस्त्र वर्त्तमान आर्थि असमानता को दूर करने के लिये काम में लाये जायें जिसमें जनता के हित के लिये उनके स्वास्थ्य और चरित्र सुप्रबन्ध में रुपया लगाया जायगा, जिसमें अधिकांश आध भूत उद्योग, जैसे अस्त्र शस्त्र निर्माण, कोयला, रेल इत्यादि राष्ट्र की सम्पत्ति होंगे, तथा धीरे धीरे अन्य उद्यो के राष्ट्रीयकरण का भी प्रयत्न किया जायगा। इसी प्र राजनैतिक क्षेत्र में भी वर्तमान व्यवस्था को उखाड़ फें का प्रयत्न नहीं होना चाहिये, किन्तु धीरे धीरे निर्माण क तथा वस्तु व्यवस्था को नवीन रूप देने का प्रयत्न हो चाहिये। किन्तु यह ध्यान रहे कि धीमी गति का अभि गति और कार्य ही हैं, स्थिरता और अवरोध नहीं।

योजना के दूसरे भाग की यह संक्षिप्त रूप रेखा इसके औचित्य-अनौचित्य की समीक्षा विद्वानों का काम किन्तु यह एक महान प्रयत्न की भूमिका अवश्य जिसका उद्देश्य गौरव पूर्ण और आशामय है। सूर्योदय दिशा चाहे निश्चित न हो किन्तु उसका उदय निश्चित और यह ऊषा के अग्रगामी अरुण का गान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# 'वोल्गा से गंगा'

श्री व्योहार राजेन्द्रसिंह एम. एल. ए.

"मुझे लोग दुर्मुख कहते हैं क्योंकि कटु सत्य बोलने की मुझे आदत है"—ये शब्द राहुलजी अपनी "वोल्गा से गङ्गा" नामक कहानी संग्रह की एक कहानी के पात्र से कहलाते हैं। पुस्तक पूरी पढ़ने के बाद मैं सोचता हूँ, क्या यही नाम राहुलजी के लिये उपयुक्त नहीं होगा? होगा, किन्तु थोड़े अन्तर के साथ, उनमें कटुता के साथ असत्यता का भी मिश्रण है।

इनके सिफ़ारिसी श्री कौसल्यायन जी कहते हैं कि ऐसी पुस्तक किसी भारतीय भाषा में नहीं। किन्तु यदि इसमें भरे विद्वेष, घृणा और अश्लीलता का विचार किया जावे तो शायद सारे संसार में ऐसी अनुपम पुस्तक मिलना दुर्लभ होगा। यह पुस्तक ज्ञान से नहीं किन्तु उक्त त्रिगुणों के भार से अवश्य दबी हुई है। इन्हीं बातों को देखकर श्री स्वामी जी ने "नग्नवादी वेदनिन्दक" की उपाधि से राहुल जी को विभूषित किया था। किन्तु "सर्वनिन्दक" का विशेषण उनके लिये अधिक उपयुक्त रहेगा। क्योंकि दोष दृष्टि ही उनका प्रधान गुण है और वह भी विद्वत्ता और ऐतिहासिकता की ओट में। किसी ने कहा है कि उनकी कहानियों में कहानीपन कम और इतिहास अधिक है। यह भी होता तो ग़नीमत था उनमें तो ऐतिहासिकता के बदले कौसल्यायन जी के ही शब्दों में "कल्पना का हाथ विशेष है।"

वे यह कहकर आलोचकों का मुंह बंद करना चाहते हैं कि पुस्तक का प्रिय लगना या अप्रिय लगना अपनी अपनी रुचि ही की नहीं किन्तु योग्यता की भी बात है। हम स्वीकार करते हैं कि हममें न तो इतनी परिष्कृत रुचि ही है जो अश्लील बातों को भला कह सके और न इतनी योग्यता ही है कि असत्य को ऐतिहासिकता मान सके।

दूसरा तर्क उनके समर्थन में यह दिया जाता है कि "सभी कहानियों के पीछे ऐतिहासिक और साहित्यिक प्रमाण मौजूद हैं। और उनके लिये ऋग्वेद से लेकर "खण्डन खण्ड खाद्य" तक की दुहाई दी गई है। यदि सुधार का यह अर्थ है कि इन कहानियों में उल्लिखित नाम, वातावरण और शब्दावली उस काल के उपर्युक्त रचने में राहुलजी ने अपने महापाण्डित्य को ख़र्च किया है तो हमें कोई आपत्ति नहीं। किन्तु जहां तक ऐतिहासिक सत्यों तथा उससे निकलने वाले परिमाणों और निष्कर्षों का संबंध है। हमें यही कहना पड़ता है कि राहुलजी ने अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग किया है और सभी युगों में अपने विचारों और मतों को ठूसने की कोशिश की है। अपने मत का प्रचार करने का अधिकार सभी को है किन्तु ऐतिहासिक व्यक्तियों के मुखों में अपने विचार रखना और उन्हें अपना अवैतनिक प्रचारक बनाकर संसार के सामने लाना उन व्यक्तियों के प्रति घोर अन्याय है।

कौसल्यायन जी ने इस "युगान्तकारी कृति" की प्रशंसा करते हुये इसमें "हमारे देश के एक असाधारण चिन्तक के जीवन भर के अध्ययन के परिणाम समाविष्ट" बतलाये हैं किन्तु "असाधारण चिन्तक" को इतना द्वेष पूर्ण, अश्लीलतम और अनर्गल प्रलापी नहीं होना चाहिये। उन्होंने स्वतंत्र चिन्तकों को यह चुनौती दी है कि यदि कोई निष्कर्ष उन्हें ग़लत लगे तो वे उसे वैसा सिद्ध करें "हम इस लेख में यही करने का प्रयत्न करेंगे।"

पुस्तक की जो सब से बड़ी विशेषता है हम उसका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकते और वह है—आदिम युग से आधुनिक काल तक की परंपरा का कहानियों के रोचक रूप में दिग्दर्शन। यह हिन्दी के लिये राहुलजी की अमूल्य देन है।

प्रथम चार कहानियाँ प्रागैतिहासिक काल से संबंधित हैं। पहिली कहानी निशा में गिरि गुहा निवासी आदिम मानव का वह चित्र बड़े सुन्दर ढंग से अंकित किया गया है जब नर नारी स्वच्छन्द नग्नावस्था में बरफीले स्थानों पर विचरण करते और शिकार से जीविका चलाते थे। द्वितीय कहानी "दिवा" में मातृकुला (Matriorchal) प्रणाली का यथार्थ चित्रण है। तीसरी कहानी में उस समाज का चित्रण है जब मनुष्य पशु पालक बन गया और गोचर भूमियों की चिन्ता में अपने आवास बदलने लगा। सम्मिलित परिवारों के बदले अलग अलग परिवारों और व्यक्तिगत संपत्ति की भावना का उदय हुआ। चौथी कहानी 'पुरहूत' में हम प्रस्तर युग से आगे बढ़कर धातुयुग में प्रवेश करते हैं और इस नवीनता के विरुद्ध प्रतिक्रिया का प्रदर्शन भी पाते हैं।

"पुरुथान" में हम आर्यों और असुरों के संघर्ष की कहानी नये रूप में पाते हैं। असुरों में दासत्व तथा राजाबी प्रथाओं का प्रथम परिचय मिलता है और कला कौशल और व्यापार के उदय के साथ स्त्री आभूषणों का भी प्रचार होता है। अंगिरा में अर्थ सभ्यता को असुर सभ्यता के दुष्परिणामों से बचाने का प्रयत्न है जिनमें मुख्य है राज्य



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्ता, दास प्रथा, जाति भेद, शिश्न पूजा आदि। "सुदास" में राजा पुरोहित, यज्ञ याग आदि प्रथाओं के प्रचलन की कहानी है। "प्रवाहण" में यज्ञादि के बदले ब्रह्मवाद के प्रचार का वर्णन है। बंधुल मल्ल में हम बौद्ध युग में प्रवेश करते हैं और ब्रह्मवाद के बदले अनात्म, अनित्य और दुःख वाद का प्रचार पाते हैं।

'नागदत्त' में भारत और पारस के संबंध स्थापन की कहानी है। "प्रभा" में अश्वघोष द्वारा यूनानी नाटक के अनुसार भारतीय नाटक का प्रचार होता है। 'सुपर्वयोपेय' में गुप्त काल का चित्र है। 'दुर्मुख' में भी हर्ष के काल का दृश्य मिलता है। 'चन्द्रपाणि' में चकमक के समय के भारत के पराजय की कहानी है। 'बाबा नूरदीन' में हिन्दू मुसल्मानों के प्रथम संघर्ष का चित्रण है और 'सुरैया' में अकबर कालीन हिन्दू मुस्लिम संबंध का। राहुल जी 'रेखा भगत' में हमें कम्पनी के राज्य में पहुँचाते हैं और 'मंगलसिंह' में सन् १८५७ के गदर का दृश्य दिखलाते हैं। 'सफ़दर' में वे हमें हवाई जहाज़ से बिल्कुल आधुनिक काल में उतार देते हैं।

राहुलजी अन्य सभी बातों को आर्थिक प्रेरणा से प्रेरित बतलाते हैं:—कर्मकाण्डी "वसिष्ठ, विश्वामित्र ने भी पेट के लिए वेद रचे" और "ब्रह्मवादी प्रवाह ने भी अपने पेट के साथ हज़ार वर्षों के लिये बेटे पोतों के पेट का प्रबन्ध करने के लिये" अपना ब्रह्मवाद चलाया। आप ब्रह्मवाद को "सिर्फ़ मन की कलाबाज़ी" ही नहीं समझते किन्तु "इसके पीछे राजाओं और ब्राह्मणों का बड़ा भारी स्वार्थ छिपा हुआ" बतलाते हैं। वह "प्रजा की मशक्कत की कमाई को मुफ़्त में खाने का तरीक़ा है। यह राजवाद ब्राह्मणवाद तथा यज्ञवाद से भी ज़्यादा नफ़े का व्यापार है" और "भोग अर्जन का बड़ा भारी रास्ता" है। शायद नास्तिकवाद और भौतिक विज्ञानवाद ही ईमानदारी और निस्वार्थता का एक मात्र रास्ता है।

आपने केवल ब्राह्मण धर्म ही पर आक्षेप नहीं किये किन्तु बौद्ध और जैन मतों को भी नहीं छोड़ा। अजित केशकम्बल को भी आप जड़वादी मानते हैं और उन पर आरोप करते हैं कि उन्होंने सामन्तों के कोप से बचने के लिए अपने जड़वाद को धर्म का रूप दिया बुद्ध भगवान के उपासक होते हुये भी आप उन पर आक्षेप किये बिना नहीं रहे :—

"यदि गौतम केवल जड़वाद का प्रचार करते तो निश्चय ही श्रावस्ती के श्रेष्ठ राजन अपनी थैलियां खोलते और ब्राह्मण क्षत्रिय सामन्त तथा राजा उनके आगे सिर नवाने के लिये होड़ लगाते।"

"नागदत्त" में फिर आपने धर्म पर आक्षेप करते कहा है:—मैं धर्म को ढोंग समझता हूँ। धर्म केवल अपहारकों को शांति से परधन उपयोग का अवसर के लिये है। (पृ० १५५)।

यदि धर्म की ओट में किसी दासत्व प्रथा या श्यता का समर्थन किया तो इससे धर्म मात्र को कहाँ दोष दिया जा सकता है यह विचारणीय है। अस्तु।

इस कहानी में आपने चाणक्य तक को अपशब्द हैं:—"लेकिन विष्णु गुप्त चाणक्य को झूठी सच्ची विद्या से क्या वास्ता। उसके लिये तो जो आवश्यक है उचित है।"

"प्रभा" में आपने वाल्मीकि और कालिदास को पेट निन्दा कर अश्वघोष को श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। आप अनुमान लगाते हैं:—"कोई ताज्जुब नहीं यदि वाल्मीकि शुंगवंश के आश्रित कवि रहे हों और शुंगवंश की राजधानी की महिमा बढ़ाने के लिये उन्होंने जातकों के दशरथ की राजधानी वाराणसी से बदलकर साकेत या अयोध्या कर दी और राम के रूप में शुंग सम्राट पुष्य मित्र या अग्नि मित्र की प्रशंसा की—वैसे ही कालिदास ने रघुवंश के रघु और कुमार संभव के कुमार के नाम से पिता-पुत्र चन्द्रगुप्त और कुमारगुप्त की प्रशंसा की।"

ऋषि वाल्मीकि के शुंगवंश के राज्याश्रय की कल्पना करना उतना ही लचर है जितना कालिदास को चन्द्रगुप्त का प्रशंसक बतलाना।

यह बात भी काल्पनिक जान पड़ती है कि अश्वघोष ने ग्रीक नाटककारों के अनुकरण पर संस्कृत नाटकों की रचना की और "नाटक के चित्रपटों का नामकरण उन्होंने यवन कला के स्मरण रूप में यवनिका" किया (पृ० १८८)। यह कहानी भी बौद्ध धर्म को सब से उदार धर्म सिद्ध करने और ब्राह्मणों के पाखण्डों दिवान्धता "जड़ता को अभिमान की निन्दा करने ही के लिए लिखी गई जान पड़ती है। यह तो निश्चय है कि आपका "घृणा से सर्वगात्र जलता है" (पृ० १९७) और उसी की चिनगारियाँ हमें जहाँ तहाँ मिलती हैं।

आप इस बात के प्रबल समर्थक हैं कि काव्य वस्तु साकार सौंदर्य से प्रेरित हुये बिना पूर्ण नहीं होता पड़ता है। प्रायः प्रत्येक कहानी में हमें इसके उदाहरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मिलते हैं। यदि अश्लीलता का नमूना देखना हो तो "बन्धुलमल्ल" पढ़ लीजिये। आप शृङ्गारी कवियों से भी एक क़दम आगे बढ़कर नैतिक मर्यादा को भी मानने के लिये तैयार नहीं है।

आप समाज की सर्वोच्च आदर्श अवस्था वही समझते हैं जिस "ज़िन्दा युग में स्त्री ने अपने को पुरुष की जंगम संपत्ति होना स्वीकार नहीं किया था। इसलिये उसे अस्थायी प्रेमी बनाने का अधिकार था। (पृ० ३७)। यदि नागार्जुन के समान आप यह मानते हैं (आप ही ने नागार्जुन के मुख में ये शब्द रक्खे हैं) कि "पाप पुण्य आचार दुराचार सभी कल्पनाएं हैं" तो फिर हमें कुछ नहीं कहना। आचार-दुराचार को न मानते हुये भी आप साहित्य को उस नंगे नाच से बचा सकते थे जो आपने जयचन्द्र के चरित्र में प्रत्यक्ष दिखाया है (चक्रपाणि पृ० २५३-५९)। राहुल जी के नग्न शृङ्गार के अश्लील वर्णनों को पढ़कर रीति कालीन के छायावादी कवि भी लज्जा के मारे सिर नीचा कर लेंगे।

मध्य कालीन भारत का भी आपने वैसा ही काला चित्र खींचा है जैसा कि प्राचीन भारत का। गुप्त, जिन्होंने कि भारत को विदेशी साम्राज्य वादियों से स्वतन्त्र कर भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार कर धर्म कला और साहित्य को इतना आश्रय दिया, उनको राहुल जी "धर्म ध्वंसक" की उपाधि से विभूषित करते हैं और कहते हैं कि "नन्दों, मौर्यों, यवनों, शकों और हूणों ने भी जो पाप नहीं किया वह इन गुप्तों ने किया।" (पृ० २२३)। आप नन्दगुप्त मौर्य विक्रमादित्य समुद्रगुप्त और सर्वाश्रधिक कुमार गुप्त का वर्णन करते हुए कहते हैं:—"यह धोखा किस लिये? भात और मधुर मांस-सूप के लिये, राष्ट्र की गन्धशालिका सारी सुन्दरियों को रनिवास में भरने के लिये, कृषि शिल्प के काम में मरने वाली प्रजा की गाढ़ी कमाई को मौज करने में पानी की तरह बहाने के लिये।"

गुप्त सम्राटों की निन्दा राहुलजी ने शायद इसीलिये की है कि उन्होंने विकृत हुये बौद्ध धर्म के स्थान पर हिन्दू धर्म का पुनर्जागरण कर उसकी पुनरस्थापना की थी और उन्होंने ब्राह्मणों को उसका सहायक होने के कारण दिवान्ध "छल छन्द फैलाने वाले तथा स्वार्थी" कहकर कोसा है। यहां तक कह डाला है कि "ब्राह्मणों ने अपने को राजाओं के हाथ बेच डाला है" (पृ० २२५)।

ऋषियों और ब्राह्मणों के साथ उस काल के कालिदास आदि महाकवियों को भी आपने खूब खरी खोटी सुनाई है:—"वशिष्ठ विश्वामित्र भी कालिदास की भाँति प्रासाद और सुन्दरी के लिये यह सब पाप करने को उतारू थे।"

"राजाओं के हर पाप के लिये धर्म की दुहाई देना" "क्योंकि बिना उसके राज शक्ति दृढ़ नहीं हो सकती।" गुप्तों ने जो धार्मिक पुनरुत्थान किया उसे भी आप 'धर्म को सैकड़ों तरह से अपनी सत्ता दृढ़ करने में इस्तेमाल करना' कहते हैं। जनता की आर्थिक दशा सुधारने के लिये उन्होंने जो कला या व्यापार की उन्नति का आयोजन किया उसके पीछे भी आप केवल 'कर वृद्धि करने का उद्देश्य' समझते हैं। न जाने राहुलजी किस ऐतिहासिक प्रमाण से यह कहने का साहस करते हैं कि—"गुप्त राजाओं ने कर उगाहने में अपने पहिले के सारे शासकों को मात कर दिया।" उनके राज्य की व्यापार तथा सम्पत्ति वृद्धि का वर्णन करते हुये भी आप उसका श्रेय गुप्तों को देने को तैयार नहीं हैं। क्योंकि आपकी समझ में उसका लाभ कृषक और शिल्पियों को नहीं वरन् "इस लूट के छोटे हिस्सेदार बनियों" को, मिलता था (पृ० २२६-२२७)। इसके लिये हम कालिदास का एक ही श्लोक उद्धृत करना चाहते हैं:—

इक्षुच्छाया निशा दिन्य स्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमार कथो द्घातं शालि गोप्यो जगुर्यशः॥"
(रघु० ४-२०)

किन्तु कालिदास की गवाही व्यर्थ है। क्योंकि वह तो कालिदास की राजा के सम्बन्ध की दास मनोवृत्ति' से प्रेरित थी (पृ० २२१) और 'कालिदास गुप्तराज मन्त्री तथा उसके परम सहायक ब्राह्मण धर्म के ज़बर्दस्त समर्थक थे।' न जाने आपने यह बात कहां से खोज निकाली है कि वे "आचार्य दिङ्नाग को इस काम में ज़बर्दस्त बाधक समझते थे। वे कहते थे इस द्रविड़ नास्तिक के सामने विष्णु क्या पैंतीस कोटि देवताओं का सिंहासन हिलता है।" (पृ० २२१)।

गुप्तों के सम्बन्ध में यदि कोई प्रामाणिक विद्वान हो सकता है तो वह स्वर्गीय काशीप्रसाद जायसवाल हैं जिन्होंने गुप्त युग पर विशेष परिश्रम के साथ खोज की है। वे गुप्तों के सम्बन्ध में क्या कहते हैं उसका उद्धरण यहां देना आवश्यक जान पड़ता है—

"अब गुप्तों का वंश ऐसे विदेशियों का वंश नहीं रह गया जो राज्य पर अनुचित रूप से अधिकार करने वाले समझे जाते थे बल्कि परम हिन्दू मागधों का एक ऐसा वंश बन गया था जो धर्म ब्राह्मण, गौ तथा हिन्दू भारत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साहित्य, कला, धर्मशास्त्र, भाषा, राष्ट्रीय संस्कृति और राष्ट्रीय सभ्यता के संरक्षक और समर्थक थे।"

( अन्धकार युगीन भारत पृ० २५७ )

गुप्तों की विलासिता के विरुद्ध उनका एक ही वाक्य काफ़ी है:—"हम उन्हें हिन्दू मुग़ल कह सकते हैं किन्तु न तो इनमें मुग़लों वाली क्रूरता थी और न चरित्र भ्रष्टता ही।" [ ये दोनों बात मिथ्या हैं —सम्पादक ]

उस काल की आर्थिक दशा के सम्बन्ध में "समुद्रगुप्त और उसके अधिकारियों ने भारत को धन धान्य से भली भांति पूर्ण कर दिया था और समपन्यता वैभव तथा संस्कृति की स्थापना कर दी थी।"

राहुलजी ने गुप्तों पर बड़ा लांच्छन यह लगाया है कि उन्होंने "प्रजा तन्त्रों का अन्त कर दिया।" यह बात भी ऐतिहासिक दृष्टि से असत्य है। श्री जायसवालने डा० विन्सेन्ट स्मिथ के इस मत का खण्डन किया है कि प्रजातन्त्र गुप्त साम्राज्य की सीमाओं पर थे और यह सिद्ध किया है कि "वे सब साम्राज्य के अन्तर्मुक्त राज्य थे और सब प्रजातन्त्र गुप्त साम्राज्य के अङ्ग बन गये थे।" ( पृ० ३२२ )

गुप्तों पर साम्राज्य विस्तार का जो दोषारोपण किया गया है उसके लिये जायसवाल जी का निम्न प्रमाण यथेष्ट होना चाहिये :—

"मनुस्मृति में पश्चिमी भारत की जो सीमा निर्धारित की गई है उसी सीमा तक समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया था और उसके आगे वह कभी नहीं बढ़ा। यदि समुद्रगुप्त चाहता तो सासानी राजा के राज्य पर आक्रमण कर उसका राज्य अपने साम्राज्य में मिला सकता था। वह कभी स्वेच्छाचारी सेनापति नहीं बना था, न उसने अपनी सैनिक शक्ति के मद से मत्त होकर कभी मर्यादा का उलंघन किया था।" ( ३४८-४९ )।

कालिदास ने अपने काव्यों और नाटकों में जिस उच्च राज धर्म का वर्णन किया है न्यायी राजाओं की प्रशंसा और अग्नि वर्ण आदि विलासी राजाओं की निन्दा की है उससे भी यही बात पुष्ट होती है। वह राहुलजी के प्रमाण हीन प्रलाप से कलुषित नहीं हो सकता।

राहुल जी ने गुप्त साम्राज्य पर एक लांच्छन लगाया है कि वह दासों की शक्ति के बल पर "स्थापित था और यदि ऐसा शासन शताब्दियों तक चलता रहा तो यह देश सर्फ़ दासों का देश रह जावेगा।" यद्यपि आप स्वीकार करते हैं कि ग्रामों में दरिद्रता है किन्तु वहाँ दिल बहलाने वाले दृश्य कम दिखलाई पड़ते हैं। वहाँ पशुओं की भाँति बिकने वाले दास दासियों का न हाट लगता है न उनके नंगे शरीरों पर कोड़े पड़ने का दृश्य दिखाई देता है' पृ० २२७-२२८ ) इससे यही ध्वनि निकलती है कि नगरों में यह दृश्य साधारण था। इतिहास से यह बात प्रमाणित नहीं होती। चीनी यात्री फाहियान् जो उसी समय भारत में आया था लिखता है कि भारत में दास प्रथा प्रचलित ही नहीं थी। पाठक चीनी यात्री के प्रत्यक्ष प्रमाण तथा राहुल जी के काल्पनिक वर्णन से यथार्थवाद का पता लगा सकते हैं। कालिदास को दास प्रथा का समर्थक बतलाकर राहुल जी ने तो कमाल ही कर दिया है।

कालिदास के बाद आप बाण कवि पर आपने विष बाण छोड़ते हैं। हर्षवर्धन के मुंह से कहलाते हैं—"उसे ( लंपटता ) से हटाकर अच्छे रास्ते लगाना चाहा यद्यपि वह बहुत ऊपर नहीं उठ सका और कालिदास के कदमों पर चल सिर्फ़ खुशामदी कवि ही बना रहा।' (पृ० २३४)। खुशामद ही नहीं चोरी का अभियोग भी वे बाण पर लगाते हैं:—"नागानन्द रत्नावलि और प्रिय दर्शिका मेरे नाम पर रचकर तो उसने अनर्थ ही कर डाला।" ( पृ० २३५ ) आगे बाण भी आत्म कथा कहते हुये स्वीकार करता है कि यदि "इन नाटकों के रचयिता के रूप में प्रगट हो जाता तो नाटक का सूत्रधार न रह पाता और पर्यटन तथा आनन्दोपभोग का क्या होता ?"

वह यह भी स्वीकार करता है कि "मेरी अभिनेत्रियाँ अधिकतर इन्हीं रनिवासों से आती थीं।" इसका कारण बतलाते हुये वह कहता है "एक दिन का चुम्बन एक दिन का आलिंगन या एक दिन की सहशय्या के बाद जहां लाखों तरुणियां अन्तःपुरों में बन्द करके रख दी जावें वहाँ कलाकार को स्त्रियां कहां से मिलें ?" और इस तरुणाई की मांग की पूर्त्ति करने ही के लिये उनको अपनी नाटक मण्डली में बाणभट्ट ने शामिल कर लिया था। इस प्रकार बाण ने अपने स्वामी हर्ष, उसकी लाखों रानियों, तथा स्वयं अपने को व्यभिचारी बतलाने में कोई संकोच नहीं किया। उस पर 'भले लोगों को कायर बनाने का दोष' लगाया है और यह कामना की है कि "जिस दिन यह धर्म इस देश से उठ जावेगा उस दिन पृथ्वी का एक भारी कलंक उठ जावेगा" ( पृ. २४८ )।

सब से बड़ा आश्चर्य हमें तब होता है जब आप आचार्य मज़दक को रूस के समान इन विचारों का समर्थक बतलाते हैं कि "प्रेम स्वेच्छा पर रहे और सन्तान सब की सम्मिलित मानी जावे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दू संस्कृति और हिन्दू मुस्लिम एकता

पण्डित सुन्दरलाल

इस हिन्दू मुस्लिम एकता के बहुत से पहलू हैं, इसके कई रुख हैं। इस सवाल को हम कई तरफ़ से देख सकते हैं। जिस तरह से मैं आज आपके सामने अपने ख़्यालात को ज़ाहिर करना चाहता हूँ वह भी इसका एक ख़ास पहलू है। आज मैं हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति की निगाह से अपने विचार प्रगट करूंगा। सन् १९४२ में जेल जाने से पहले मुझे भाई परमानन्द जी के साथ बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैं आपको बता दूं कि भाई परमानन्द जी से मेरा परिचय कम से कम चालीस पैंतालीस साल से है और वह परिचय भी मामूली नहीं है, गहरा परिचय है। हम महीनों और वर्षों साथ रह चुके हैं। हममें प्रेम है। मैं जब पिछली बार लाहौर में भाई जी से मिला और उनसे यह इच्छा प्रगट की कि हम देश के इस नाज़ुक सवाल के ऊपर कुछ विचार करें तो भाई जी ने जो पहला सवाल मुझ से किया वह यह था कि अगर आप हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति को खोकर इस मुल्क को आज़ाद करना चाहते हैं और उसके लिये हिन्दू मुस्लिम एकता ज़रूरी है तो मुझे ऐसी आज़ादी की ज़रूरत नहीं है और तब हमारे और आपके बीच में कोई कामन ग्राउंड नहीं है। लेकिन अगर आपकी यह राय नहीं है तो हम दोनों बातचीत कर सकते हैं। इसका जो जवाब मेरा उस दिन था, वही आज है। हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति जिस तरह मैं उसे समझता हूँ और जिस तरह समझने की मैंने अपनी ज़िन्दगी भर कोशिश की है, मेरी समझ में यही आया है कि हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति की दृष्टि में ईश्वर गाड और अल्लाह एक है। मैं यह दावे के साथ कहने के लिये तैयार हूँ कि हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति को त्यागकर मैं एक मिनट के लिये भी आज़ादी ख़रीदने के लिये तैयार नहीं हूं। हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिये भी मेरे दिल में कम तड़प नहीं है लेकिन इस क़ीमत पर मैं उसे भी लेने को तय्यार नहीं। इस थोड़ी सी भूमिका के बाद मैं यह बताने की कोशिश करूँगा कि वह हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म क्या चीज़ है जिसकी हम दुहाई देते हैं। हम हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति की दुहाई देते हैं और आपस में मिल नहीं पाते। मुझे एक मकूला याद आ रहा है—धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः, अर्थात धर्म की तुम रक्षा करो वह तुम्हारी रक्षा करेगा। अगर धर्म को तुम ख़त्म कर दोगे तो वह तुम्हें ख़त्म कर देगा। हिन्दू धर्म के सच्चे भाव हम लोगों के अंदर होते और हम उस धर्म के पालन करने वाले होते तो आज इस मुल्क की यह हालत न होती! हम धर्म की रक्षा नहीं कर रहे हैं, हमने धर्म को ख़त्म कर दिया है। इस छोटे से मैदान के अंदर जो लोग मेरी बात सुन रहे हैं, मैं उनको याद दिलाना चाहता हूं कि इस वक्त क्या हालत है। हमारे देश के मुख़्तलिफ़ हिस्सों में जाकर अगर आप देखें तो आपको सैकड़ों बच्चे सड़कों पर पड़े हुये मिलेंगे जिनके मुँह में कोई अन्न का दाना डालने वाला भी नहीं है। इस समय जगह जगह इफ़्लूएन्जा, कालरा और पेचिश से सैकड़ों लोग प्राण दे रहे हैं। अगर हमने सचमुच अपना चलन ठीक रखा होता, अपने धर्म का पालन किया होता तो हमारी यह हालत नहीं हो सकती थी। जो लोग यहां पढ़े लिखे मौजूद हैं वह एक मिनट के लिये सोचें कि हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति क्या चीज़ है? जिसकी रक्षा की कोशिश करते हुये भी हमारी यह दुर्दशा है। सचमुच हम हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म से पीछे हट गये हैं। मैं ख़ास कर अपने पढ़े लिखे भाइयों से बातचीत करना चाहता हूँ। हिन्दू धर्म की आदि पुस्तक ऋग्वेद के ज़माने से लेकर महाभारत और गीता के ज़माने तक मैं आपको ले जाना चाहता हूं। आप शान्ति के साथ एक मर्तबा हिन्दू धर्म की तरफ़ निगाह डालने की कोशिश करें और यह देखें कि हिन्दू संस्कृति हमें क्या सिखाती है।

मुझे दावा है कि अगर हमने हिन्दू धर्म को ठीक ठीक समझा होता, हिन्दू धर्म का पालन किया होता तो यह मुल्क एक सेकण्ड के लिये भी ग़ैरों का ग़ुलाम नहीं हो सकता था। अगर हमने हिन्दू धर्म का पालन किया होता तो हिन्दू और मुसलमानों के अंदर आज यह वैमनस्य न दिखाई पड़ता। धर्म तो एक दूसरे की सेवा की चीज़ है। धर्म फाड़ने वाली चीज़ नहीं है। वह एक दूसरे को मिलाती है। ऋग्वेद हिन्दुओं की सब से पुरानी पुस्तक है। ऋग्वेद का जब समय था तो उस आदि काल में आप देखेंगे कि हिन्दू जाति का यह नाम भी न था। 'हिन्दू' नाम को शुरू हुये अभी तीन हज़ार वर्ष भी नहीं हुये। इस जाति का नाम उस समय आया था आर्य लोग उन दिनों इन्द्र, वरुण, मित्र, सूर्य आदि देवताओं के उपासक थे। उसके बाद जब यह और आगे बढ़ा इसने उन्नति की, यह अपने विकास को प्राप्त हुआ तो इसने इन अनेकों में एक ही परमात्मा को देखने की कोशिश की मैं अपने को मवहिहद यानी एक ईश्वर का उपासक गिनत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ, पर एक ईश्वर को मानते हुये भी उसके अलग अलग अंगों, अलग अलग गुणों या पहलुओं की अलग अलग रूपों में उपासना को मैं ग़लत नहीं मानता। मैं और आप इस चीज़ को समझ सकते हैं कि कोई भी इनसान उस परम पिता परमात्मा को उसके असली रूप में नहीं देख सकता। यह एक मोटी सी चीज़ है कि जब कभी कोई मनुष्य ईश्वर की कल्पना करने की कोशिश करता है, उस परवरदिगार का ध्यान अपने मन में लाने की कोशिश करता है तो वह उसके किसी न किसी ख़ास पहलू या गुन की कल्पना कर सकता है। शुरू की अनेक देवताओं की पूजा का यही असली रूप था और यही उसका मतलब था।

मैं एक छोटा सा क़िस्सा इस बारे में बयान करूँगा। आपमें से कुछ ने मौलाना रूम का नाम सुना होगा। वह एक मशहूर फ़क़ीर और सूफ़ी सन्त थे। उनकी मसनवी में एक क़िस्सा आता है कि हज़रत मूसा एक पहाड़ पर चले जा रहे थे। उन्होंने देखा कि उस पहाड़ के ढाल पर एक गड़रिया पड़ा हुआ कुछ बक रहा है। मूसा पीछे से जाकर उसकी बात सुनने लगे कि वह क्या कह रहा है। गड़रिया लेटा हुआ था। उसकी भेड़ें नीचे खड्ड में चर रही थीं। उसका डंडा दाहिनी तरफ़ पड़ा था। कम्बल एक तरफ़ रखा था और गड़रिया कुछ बक रहा था। ईरानी ज़बान में ख़ुदा को यज़दान कहते हैं। वह गड़रिया कह रहा था—"ऐ यज़दान! अगर तू मुझे कहीं मिल जाय, तो तेरे पाँव थक गये होंगे, मैं तेरी मुट्ठी चम्पी कर दूंगा। अगर तू कहीं मुझे मिल जाय तो तेरी चप्पल फट गई होगी, मैं अपने हाथों से तेरी चप्पल सी दूँगा। ऐ यज़दान! तू भूखा होगा मैं जंगल से लाकर तुझे ताज़ा शहद का प्याला पिलाऊँगा। ऐ यज़दान! तू कहाँ है? तू मुझे क्यों नहीं मिलता? अगर तू मुझे मिल जाय तो मैं तेरे बिछौने को अच्छी तरह बिछा दूँगा, एक भी सलवट नहीं रहने दूंगा। अगर तू मुझे मिल जाय तो तेरे कम्बल में जुएँ पड़ गए होंगे उन्हें मैं एक एक कर बीन दूंगा। ऐ यज़दान! अगर तू कहीं मिल जाय तो तेरे बिस्तर पर मैं रात को फूल बिछा दूँगा, तुझे मीठी मीठी नींद आयगी। ऐ यज़दान! तू मुझे क्यों नहीं मिलता?" गड़रिया इस तरह बक रहा था और उसकी आँखों से लगातार आँसू टपक रहे थे। हज़रत मूसा ने जब यह गुफ़्तगू सुनी तो उन्हें ग़ुस्सा आया। उन्होंने सामने आकर उस गड़रिये की तरफ़ देखा। दोनों की निगाहें मिलीं। हज़रत मूसा ने कहा—"ऐ चौपान! तू क्या कह रहा है। तू किससे बातें कर रहा है?" गड़रिये ने कहा—"मैं यह कह रहा हूँ।"

उसने फिर वही बातें दुहरा दीं और कहा कि—"मैं [illegible] से बातें कर रहा था।" मूसा बोले—"तू यज़दान की [illegible] में यह सब कुफ़्र बक रहा था! तूने जो कुछ कुफ़्र [illegible] उसकी अगर आग बन जावे तो न केवल तू ही उस [illegible] में जल जायगा बल्कि दोनों जहान भी उसमें जल जायँ।" गड़रिये ने घबराकर पूछा—"मूसा! मुझसे इतना [illegible] क़सूर हो गया है? मूसा! मेरे गुनाह का कोई हल, [illegible] कफ़ारा या प्रायश्चित्त नहीं है?" मूसा ने जवाब दिया—"नहीं! तू उस अल्लाह की शान में कह रहा था कि [illegible] पड़ गये होंगे, चप्पल फट गई होंगी। क्या अल्लाह [illegible] जुएं पड़ सकते हैं? क्या उसे तेरे शहद की ज़रूरत है? [illegible] बहुत बड़ा गुनाह किया है। तूने उस वहदहूलाशरीक [illegible] शान में इतनी गन्दी बातें कही हैं कि जिसका कोई [illegible] श्चित नहीं।" गड़रिया बोला "मूसा! फिर सोच ले। [illegible] मेरे गुनाह का कोई प्रायश्चित्त नहीं है? जब उसे मू[illegible] कोई जवाब तसल्ली देने वाला नहीं मिला तो उसने [illegible] लाठी हाथ में ली, कम्बल कन्धे पर डाला और अपनी [illegible] को वहीं छोड़कर चल दिया। मूसा खड़े देख रहे [illegible] चौपान सामने की पहाड़ी पर ऊपर को चढ़ा। जब [illegible] पहाड़ी के दूसरी तरफ़ जाकर मूसा की निगाह से गुम [illegible] गया तो मूसा लौटे। उसी समय आकाश वाणी [illegible] अल्लाह ने मूसा के दिल में आवाज़ दी। मूसा को हु[illegible] हुआ। अल्लाह ने मूसा से कहा—"मूसा! तूने [illegible] किया?" मूसा ने पूछा "या अल्लाह! क्या मैंने [illegible] किया?" अल्लाह ने जवाब दिया—"मूसा! तूने [illegible] बड़ा क़ुसूर किया।" मूसा ने फिर पूछा—"अल्लाह! [illegible] क्या किया?" अल्लाह ने कहा—"मूसा! क्या तुझे [illegible] मालूम नहीं कि हमारी असलियत तेरी दिमाग़ी कल्प[illegible] भी उतनी ही दूर है जितनी उस मोटी अक़्ल वाले [illegible] मोटी कल्पना से। मूसा! हम तक पहुँचने का [illegible] दिमाग़ नहीं है। हम तक पहुँचने का रास्ता दिल है। [illegible] वह गड़रिया उस दिल के दरवाज़े पर बैठा हुआ था। [illegible] अभी उससे दूर है। तुझे उससे सबक़ लेना चाहिये था, [illegible] उल्टा उसे उपदेश देना चाहा।" अल्लाह ने मूसा से कहा—

"मज़हबे इश्क़ अज़ हुमा मिल्लत जुदास्त।
आशिक़ांरा मज़हबो मिल्लत ख़ुदास्त।
मूसिया! आदाबदानां दीगरन्द।
आशिक़ां सोज़े दरूनां दीगरन्द।
तू बराए वस्ल करदन आमदी।
नै बराए फ़स्ल करदन आमदी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यानी "मूसा ! आशिक़ों का मज़हब सब मज़हबों से अलग है, उनके लिए ख़ुदा ही मिल्लत है। ऊपर के कर्मकाण्ड दूसरी चीज़ हैं। जिनके दिल में आग लगी है वह प्रेमी दूसरे होते हैं और बाहरी कर्मकाण्ड जानने वाले दूसरे हुआ करते हैं। इश्क़ का मज़हब, प्रेम का मज़हब अल्लाह की चीज़ है। हमने तुझे मिलाने के लिये भेजा था, अलहदा करने के लिये नहीं भेजा था। तूने हमारे भक्त को हमसे अलहदा कर दिया···इत्यादि" मूसा ने पूछा—"अल्लाह ! अब मैं क्या करूँ ?" अल्लाह ने कहा "मूसा ! उसी चौपान के पास जा और उससे कह कि उसके लिए सब माफ़ है।" मूसा को तीन वर्ष उस चौपान को ढूंढ़ने में लग गये। अन्त में वह एक पहाड़ पर मिला। मूसा उसके पास पहुँचे। गड़रिये की आँखें आसमान की ओर लगी हुई थीं। वह अकेला जंगल में खड़ा था। गड़रिये ने पूछा—"मूसा ! अब कैसे आये ?" मूसा ने जवाब दिया—"मैं तुझे यह ख़ुश ख़बरी सुनाने आया हूँ कि अल्लाह कहता है कि तू ठीक था और मैं ग़लत था। तेरे लिए सब माफ़ है।" चौपान ने जवाब दिया "मूसा ! तुम किससे बात कर रहे हो। उस वक़्त से अब तक मैं सैकड़ों वर्ष का रास्ता तय कर चुका हूँ। मैंने उस पुराने गड़रिये के दिल को पीसकर उसके ख़ून में स्नान कर रखा है। मेरी ख़ुदी अब मिट चुकी।"

यह कहानी मैंने आपके सामने इसलिए रखी कि हम ईश्वर को अलहदा अलहदा कई तौर से मानते और पूजते हैं। उसकी अंश पूजा या अलग अलग देवताओं के रूप में पूजा को मैं ज़रूरी तौर पर तौहीद या एकेश्वरवाद के ख़िलाफ़ नहीं समझता।

अब हम जरा आगे बढ़ें। थोड़े दिनों बाद जब आर्य धर्म का और अधिक विकास हुआ तो उपनिषदों का समय आया। मैं कह सकता हूँ कि तौहीद यानी एकेश्वरवाद पर उपनिषदों से बढ़कर दुनिया में और कोई किताब नहीं लिखी गई। ये वह जवाहरात हैं जो ईश्वर ने हमारी ज़िन्दगी को रोशन करने के लिये हमें दिये हैं। इनमें सब से पहला ईशोपनिषद है, जिसमें लिखा है—"ईशावास्य-मिदं सर्वं यत किंचित्जगत्याम जगत्, तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मागृधः कस्यस्विद्धनं।" अर्थात इस दुनिया में जितनी चीज़ें हैं सब बदलती रहती हैं। एक परमेश्वर इस सबके अन्दर रमा हुआ है और सब को ढंके हुए है। हम जो कुछ करें या भोगें उसी परमेश्वर को अर्पण करके, की सबी लिल्लाह, करना चाहिये। किसी चीज़ का भी लोभ नहीं करना चाहिये, संसार की धन सम्पत्ति किसी के पास भी टिकने वाली नहीं है। उपनिषदों की बार बार आज्ञा है कि—जो आदमी सब प्राणियों को अपने अन्दर देखता है और अपनी ही तरह समझता है और सब के अन्दर अपनी आत्मा को देखता है वह संसार में कभी धोखा नहीं खा सकता। उपनिषद किसी भी सम्प्रदाय विशेष का या किसी भी रूढ़ि विशेष, पूजा विधि या किसी ख़ास रस्म रिवाज के पालन का हमें उपदेश नहीं देते। उपनिषदों की तालीम का निचोड़ ये है कि ईश्वर एक है। वह आदमी के ख़याल से भी परे है। वह अचिन्त्य और अनिर्वचनीय है, वह निराकार है। केवल एक उसी की पूजा करनी चाहिये, सब प्राणियों के अन्दर और सब तरीक़ों के अन्दर एक ही आत्मा को देखना चाहिये सब को अपनी तरह समझना चाहिये और सदा सबके भले में लगे रहना चाहिये। यह बात उपनिषदों में बार बार कही गई है और यही उपनिषदों की शिक्षा का सार है। सचमुच यह तालीम हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति की चोटी की सुन्दर और शानदार चीज़ थी। इस धर्म के मानने वालों और उस पर अमल करने वालों का दुनिया के किसी दूसरे धर्म के पालन करने वालों से कभी झगड़ा नहीं हो सकता। उपनिषदों के अनुसार आत्मा एक है, जीवन एक अखण्ड समुद्र है। उपनिषदों ने हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति को, बल्कि कहना चाहिये आर्य धर्म और आर्य संस्कृति को मानव धर्म और मानव संस्कृति यानी सारी दुनिया का धर्म और दुनिया की संस्कृति बनाकर खड़ा कर दिया।

इसके बहुत दिनों बाद वह समय आया जिसे हम मोटे तौर पर पुराणों और महाभारत का समय कह सकते हैं।

हमारे पुराण लिखे गये। शक्ति, शैव और वैष्णव इष्ट देवों के अलग उपासक पैदा हो गए, अलग अलग सम्प्रदायों में तरह तरह के तिलक लगाये जाने लगे। कोई १११ नम्बर का, कोई इस तरह का और कोई उस तरह का। जनेउ कोई तीन धागे का, कोई छै का तो कोई नौ धागों का तरह तरह के देवी देवताओं की पूजा शुरू होगई। यह पौराणिक समय था। उसी समय महाभारत का युद्ध हुआ। महाभारत ग्रन्थ का ही एक हिस्सा भगवत गीता है। उपनिषद हिन्दुओं में से किसी ने पढ़े या न पढ़े हों, मैं समझता हूँ काफी भाई ऐसे होंगे जिन्होंने भगवत गीता जरूर पढ़ी होगी। मैं चंद मिनट के लिये प्रार्थना करूंगा कि वह मेरे साथ साथ भगवत गीता की तालीम पर विचार करें। हमारी यह बदक़िस्मती है कि आज गीता


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जैसी पुस्तक के होते हुए भी हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति असली रूप में हमारे दिलों के अंदर नहीं समाने पाती। मुझे आज हिन्दू और मुसलमान, ईसाई और पारसी सब के अन्दर एक ही आत्मा दिखाई दे रही है। मैंने यह भगवत गीता ही से सीखा है। अगर हिन्दुओं ने भगवत गीता ध्यान से पढ़ी होती और उस पर अमल किया होता तो आज इस देश की यह दुर्गति न होती। थोड़ी देर के लिये पहले अध्याय से लेकर १८वें अध्याय तक सरसरी तौर तर गीता को दुहरा जाइये। गीता से पता चलता है कि उस समय देश के अंदर तरह तरह के धर्म और तरह तरह के सम्प्रदाय या रस्म रिवाज चल रहे थे। अर्जुन ने युद्ध में हिस्सा लेने के ख़िलाफ़ जो सबसे पहली और सबसे बड़ी दलील पेश की थी वह यह थी कि अगर मैं युद्ध में हिस्सा लूंगा तो हमारे कुल धर्म और जाति धर्म ( जाति धर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः) सब नष्ट हो जायेंगे और कुल धर्म और जाति धर्म ही नष्ट नहीं होंगे बल्कि हमारे सब मरे हुये पितर भी वर्ण संकर हो जाने की वजह से नरक को जायेंगे। मुल्क के अंदर उस समय अलहदा अलहदा जातियां थीं। जातियों से मतलब वर्ण का नहीं है। इन जातियों को महाभारत में शातियाँ भी कहा गया है। जातियां अलग थीं, वर्ण और कुल अलग थे। इन सब के अलहदा अलहदा धर्म यानी रस्म रिवाज थे। इन रस्म रिवाजों के अंदर···लुप्तपिण्डोदक-क्रिया···पिण्डदान भी शामिल था। अर्जुन ने एतराज़ किया कि अगर मैं इस लड़ाई में हिस्सा लूंगा तो बुज़ुर्गों के जो तरीक़े और रिवाज चले आ रहे हैं वह सब मिट जायेंगे। हमारे अंदर वर्णसंकर हो जायगा और हम सब नरक में चले जायेंगे। इसके जवाब में गीता में भगवान कृष्ण ने स्पष्ट कहा कि—अशोच्यानवशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे, गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः ॥ अर्थात्—हे अर्जुन! तू क्या पागल की सी बातें कर रहा है। तू पंडित बनता है और पागलों की सी बातें करता है। यह बेकार चीज़ें, ये रिवाज और वह रिवाज, सोचने के क़ाबिल भी नहीं हैं। पंडित यानी समझदार आदमी का काम इनके रहने या मिट जाने की फ़िक्र करना नहीं है। गीता से मालूम होता है कि उस समय अलहदा अलहदा देवी देवताओं की पूजा भी होती थी और ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य और शूद्र जन्म से माने जाते थे। यज्ञों में देवताओं के नाम ले लेकर आहुतियां दी जाती थीं, पत्र पुष्प चढ़ाये जाते थे। जो इस वक्त हिन्दू धर्म का रूप है वह उस समय शुरू हो चुका था। आश्रम धर्म के भी नियम थे। अर्थात् सन्यासी अमुक काम न करे या अमुक काम करे। सारी चीज़ें भी उस समय थीं। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से [illegible] की कि मुझे इस गोरखधंधे के अंदर रास्ता दिखाई देता, आप मुझे रास्ता दिखाइये। श्रीकृष्ण ने जो [illegible] दिखाया, वही गीता का उपदेश है। गीता मनुष्य को [illegible] रूढ़ियों और रीति रिवाजों से ऊपर उठने का उपदेश [illegible] है। Gita is a standing protest against [illegible] forms। दुनिया की कोई किताब आदमी को कर्म कांड [illegible] जाल से इतना नहीं बचाती जितना गीता बचाती है। [illegible] वर्ण भेद को भी गुण, धर्म और स्वभाव के अनुसार मान [illegible] है···चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। गुण और कर्म के मुताबिक़ दोनों में कोई फ़र्क़ नहीं है। दोनों ही [illegible] करते हैं। दोनों का वर्ण एक है। गीता के मुताबिक़ [illegible] पंडित जवाहरलाल ब्राह्मण हैं तो महात्मा गांधी और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ब्राह्मण क्यों नहीं हैं। महात्मा गांधी और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद भी पंडित हैं। [illegible] जन्म से जाति का खण्डन करती है। वह हमें सारे [illegible] अलग धर्मों से ऊपर उठाकर यह सीधा धर्म बतलाती [illegible] कि एक ईश्वर को मानो, अपनी इन्द्रियों को वश में [illegible] और सब से बढ़कर यह कि अपने अन्दर एक ईश्वर [illegible] देखने की कोशिश करो। "अपने अन्दर ईश्वर को, सब [illegible] अन्दर ईश्वर को, ईश्वर के अन्दर सब को, अपने अन्दर [illegible] सब को और सब के अन्दर अपने को जो देखता है [illegible] ठीक देखता है।" गीता का सार भगवान कृष्ण ने [illegible] अध्याय के एक श्लोक में कहा है। वे कहते हैं··· धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। मैं हिन्दुओं से प्रार्थना करूँगा कि वे इन शब्दों पर ध्यान दें। भगवान कहते हैं 'सब धर्मों को छोड़कर केवल एक मेरी शरण आ।' आप पहले अध्याय से इसको मिला लीजिये। जहाँ अर्जुन ने कुल धर्मों और जाति धर्मों का ज़िक्र किया है। इस अध्याय में भगवान कृष्ण कहते हैं कि इन सब धर्मों को छोड़ एक मेरी शरण आ। ईमानदारी की बात यह है कि [illegible] धर्म को आप अपना धर्म कहकर पुकार रहे हैं वह धर्म [illegible] संकीर्णता है। जो जाति धर्म और कुल धर्म अर्जुन के [illegible] में सब से बड़े पत्थर थे वास्तव में वही रूढ़ियां, कर्म कांड और रस्म रिवाज हैं जो हिन्दू और मुसलमानों को [illegible] किये हुए हैं और जिनकी वजह से ये दोनों अलग [illegible] नामों से पुकारे जाते हैं। बहुत से धनी हिन्दुओं ने [illegible] को जनता में लाखों की तादाद में बांटा, बहुतों ने गीता [illegible] पढ़ा है। मन्दिरों के अन्दर गीता के पाठ होते हैं। गीता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दृष्टि से यह हमारी आजकल की जन्म से जातिपांति, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, लाला, पण्डित, ठाकुर इत्यादि और हमारी छुआछूत सब ग़लत है। यह चीज़ किताबों में ही रखने की नहीं है, यह अमल करने की चीज़ है। श्रीमदभगवत गीता हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति की चोटी का फूल है। गीता कहती है—विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि, शुनि चैव श्वपाकेच पंडिताः समदर्शिनः अर्थात् पण्डित वह है जो समदर्शी है, जो विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चांडाल सब को एक निगाह से देखता है। हिन्दुओ! ज़रा अपने आज कल के धर्म को इस कसौटी पर कसकर देखो कि जिस चीज़ को तुम हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति कहकर पुकार रहे हो वह इस कसौटी पर खरी उतरती है या नहीं। ईश्वर किसी के साथ अन्याय नहीं करता। उस परवरदिगार के दरबार में दूसरी क़ौमों के गुनाहों पर तुम्हें दण्ड नहीं दिया जा सकता है। दूसरों के क़ुसूर के लिये तुमको सज़ा नहीं मिल सकती। अगर आज हमारी हालत गिरी हुई है, हमारे मुल्क की हालत अबतर है, तो कहीं न कहीं क़ुसूर हमारा है। हम अपने धर्म के आदर्श से गिर चुके हैं। हमने धर्म के नाम पर पाप किये हैं, हमें उसकी सज़ा भुगतनी पड़ेगी। सच यह है कि इस झूठी जाति पांति को लेकर और इस छूआछूत को लेकर, ब्राह्मण और चमार के भेद को लेकर हमने अन्याय किया है। हमने दूसरों का दिल दुखाया है। अपने इसी पाप से चिपटे रह-कर क्या हम दुनिया में इज़्ज़त से ज़िन्दा रहने की उम्मीद कर सकते हैं? ईं ख़्यालस्तो महालस्तो जनूँ। हमारा यह ख़याल ही पागलपन है। हमने छोटी कहलाने वाली जातियों के साथ अन्याय और पाप किया। हम गीता के पाठ को भूल गये। उपनिषदों की तालीम को भूल गये। हम राम लखन तिवारी और घसीटा चौधरी में, रामप्रसाद और ख़ुदाबख़्श में दो राम देखने लगे। इसी का नतीजा है जो हम आज भुगत रहे हैं। एक मिनिट के लिए हम मुसलमानों की बात तो छोड़ दें, हम दस करोड़ अछूत कहलाने वाले इन्सान के बच्चों को अपने से छोटा और गिरा हुआ मानते हैं। सदियों से हमने जो बर्ताव उनके साथ किया है उसकी सज़ा हमें अभी कम मिली है। हम ३० करोड़ हिन्दुओं के अन्दर भी एक राम को नहीं देख सके। हम गीता की तालीम से कोसों दूर हैं। गीता के अनुसार हम सब ने अपनी ज़िन्दगी बसर की होती तो आज इस देश की यह हालत न होती! अगर आप बाहर निगाह डालें तो आप को मालूम होगा कि सरकारी रिपोर्टों के मुताबिक़ ही आज २० करोड़ से ऊपर मनुष्य इस देश में ऐसे हैं जिन्हें २४ घण्टे में एक बार पेट भर अन्न नहीं मिलता। मैंने हज़ारों ऐसी औरतें गोंडवाने में देखी हैं जो दिन भर एक बालिस्त भर की चिन्धी लपेटे अपनी शर्म को ढके रहती हैं। नाभि से ऊपर और घुटने से नीचे वे नंगी रहतीं हैं। शाम को अपनी झोपड़ी के अन्दर घुसकर वे उस छोटी सी चिन्धी को भी अपने बदन से उतार कर अपने बच्चों को सर्दी से बचाने के लिये उन पर ढाँक देती हैं। यूरोप के देशों की ओर निगाह डालिये तो दिखाई देगा कि छोटी छोटी क़ौमें आज दुनिया के तख़्ते को पलट रही हैं, दूसरों की क़िस्मत का फ़ैसला कर रही हैं, और हम चालीस करोड़ इन्सान के बच्चे महज़ इस बात के मुन्तज़िर हैं कि हमारे सर के ऊपर अंग्रेज़ रहेंगे या जापानी; जरमन रहेंगे या रूसी! इस दिल के अन्दर एक दर्द है! मुझे मालूम है कि एक दिन यह मुल्क महान रह चुका है! इस देश के रहने वाले किसी दिन दुनिया में चमक चुके हैं। मैं फिर उस दिन को वापिस लाना चाहता हूँ। मैं इस मुल्क को फिर से आज़ाद और ख़ुशहाल देखना चाहता हूँ। फिर से महान देखना चाहता हूँ। और इस अधमरी क़ौम में फिर से ज़ोर आया हुआ देखना चाहता हूँ। मैं उस हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति की बात कह रहा हूँ जो उस संस्कृति की चोटी का फूल है, जो सारी दुनिया को ख़ुशबू पहुंचा सकता है। दूसरों को लड़ाने के लिये, या मुसलमानों और दूसरे ग़ैर हिन्दुओं से लड़ने के लिये चमारों, मेहतरों आदि को अपने से छोटा समझने के लिये, जिस हिन्दू धर्म की दुहाई दी जाती है वह उस दरख़्त के तने की सूखी हुई छाल है। हिन्दू धर्म के नाम पर आज हम उस विशाल दरख़्त के चारों तरफ़ की छाल को चाट रहे हैं। इस गन्दी हरकत से हम न केवल अपनी ज़बान ही को लहूलोहान कर रहे हैं बल्कि हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति को भी दुनिया की नज़रों में मज़ाक़ की चीज़ बना रहे हैं और अपने इस प्यारे देश की क़िस्मत को ख़राब करते जा रहे हैं। कबीर और दादू जैसे सन्तों ने इसे ठीक समझ लिया था। उन्होंने हिन्दू धर्म ही नहीं सब धर्मों के अन्दर, प्राणि मात्र के अन्दर, एक ईश्वर को देखा था। गीता की असली तालीम को उन्होंने पूरी तरह समझा और अपनाया था कि हम सब प्राणी मात्र के अन्दर एक ईश्वर और एक ईश्वर के अन्दर प्राणी मात्र को देखें। यही शिक्षा उपनिषदों की है। हिन्दू संस्कृति इसी चीज़ का नाम है। कहा जाता है कि महात्मा बुद्ध ने ईश्वर की हस्ती तक से इन्कार किया, उन्हें विष्णु के १० अवतारों में गिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। यह हिन्दू धर्म की महानता, उसकी विशालता थी। हज़रत मोहम्मद और हज़रत ईसा को भी हम विष्णु के अवतारों में क्यों न गिन लें? अवतार अधिकतर अंश अवतार ही होते हैं। विष्णु सहस्र नाम में विष्णु के एक हज़ार नाम लिखे हुये हैं। इसका यह मतलब नहीं कि जो नाम वहां लिखे हैं वही विष्णु के नाम हो सकते हैं। इसका यही मतलब है कि विष्णु के अनन्त नाम हैं। सब नाम उसीके नाम हैं। वह ईश्वर सबका ईश्वर है। अनन्त अवतार हैं। सब मज़हबों के पैग़म्बरों और ऋषियों के अन्दर जो आत्मा काम कर रही थी वह एक ही परमात्मा को देखती थी। सच्चे हिन्दू धर्म की निगाह से जन्म से जातियां जायज़ नहीं हो सकतीं। सच्चा हिन्दू धर्म दुनिया के सब लोगों का धर्म है। वह छुआछूत का धर्म नहीं है। ब्राह्मण अब्राह्मण का धर्म नहीं है। हिन्दू धर्म वह व्यापक धर्म है जो उपनिषदों के अन्दर बन्द है, जो गीता के अन्दर चिल्ला रहा है। यह सब छुआछूत और जांत पांत मिटेंगी। सवाल सिर्फ़ यह है कि कब और किस तरह? मुझे इस समय एक मिसाल याद आ रही है। बंदरिया अकसर अपने मरे हुए बच्चे को छाती से चिपटाए रखती है। अगर बच्चा गिर जाय तो ठीक, लेकिन अगर वह उससे चिपटा ही रहे तो बंदरिया के जिस्म में भी एक दिन सड़न पैदा हो जाती है और बंदरिया ख़ुद उसी से मर जाती है। अब अगर हमने इस सदियों के कचरे को न फेंका तो दुनिया हमारा इन्तज़ार नहीं करेगी। आज दुनिया का तख़्ता पलट रहा है। आप इस झूँठे ख़याल में न रहें कि आप सड़ी गली रूढ़ियों, जाति पांति और छुआछूत के इस कचरे को छाती पर रखकर अपने आपको ज़िन्दा रख सकेंगे। अगर आपको ज़िन्दा रहना है तो इस कचरे को फेंकना ही पड़ेगा। ब्राह्मण और चमार के भेद को मिटाना ही पड़ेगा। समझने की बात है। कोई ब्राह्मण और कोई क्षत्रिय नहीं है। कोई चमार या मेहतर अलग अलग नहीं हैं। सबके अन्दर एक ही परमात्मा का प्रकाश है, एक ही अल्लाह का नूर है। ऋग्वेद में आया है 'नान्ये पन्था विद्यते अयनाय' केवल यही मार्ग हिन्दू भावना की रक्षा कर सकता है। बुद्ध, नानक, कबीर और दादू ने यही मार्ग बताया है। हिन्दू आज अपनी इस ग़लती को सुधार लें तो छुआछूत जड़ से मिट जावे। हिन्दू और मुसलमान का सवाल हल करने में एक मिनिट की भी देर न लगे। सब संकीर्णता दूर हो जावे। हमारा पानी दूसरे के छू लेने से नापाक हो जाता है। ज़रा अपने दिलों के अन्दर देखो। दो नेशन्स का उसूल आज आपको कड़ुवा लग रहा है। देश मौलाना आज़ाद भी अगर किसी पण्डितजी के यहां जायें तो वह अपनी बीवी से सलाह करेंगे कि इनको के गिलास में पानी पिलावें या पीतल के में। इस दो के उसूल के क़ायम करने वाले हम हैं, मिस्टर जिन्नाह हैं। यह हमारे दिमाग़ों के अन्दर पैदा हुआ। यह ग़लत है। यह वह फ़ुज़ला है जो हिन्दू मुसलमानों दिमाग़ों में कुछ वर्षों से जमा हो रहा है। बुराई हर अन्दर आ जाती है, उसे निकालना पड़ेगा। आत्मा है। शरीर नाशवान है। शरीर के अन्दर बीमारियां जाती हैं। इसी तरह धर्म की आत्मा अमर है। शरीर यानी कर्मकाण्ड, रस्म और रिवाज बदलते रहते अपनी आत्मा को ऊँचा उठाओ और ईश्वर सब के है, उसके दर्शन करने की कोशिश करो। यही हमारे उपदेश देते हैं। वेदों और उपनिषदों में भी यही गया है। यही गीता का पाठ है। तुम इस पर सचाई से चरण करो और हिन्दू मुसलमानों के सवाल का हल अपने आप हो जावेगा। पहले अपने दिलों को चौड़ा कर

मैंने हिन्दू धर्म की दृष्टि से यह बतलाने की कोशिश की है कि अगर हिन्दू सचमुच अपने धर्म के ऊपर अमल करें तो देश की सारी समस्यायें एक मिनिट के अन्दर होती हुई दिखाई देंगी। अगले मर्तबे मैं मुस्लिम नुक्ते से इसी बात को बतलाने की कोशिश करूँगा। मेरी निगाह में हिन्दू धर्म और इसलाम दोनों में धर्म के एक ही तत्व एक ही रोशनी है जो तरह तरह के शीशों में से चमक रही है। सब का एक ही अल्लाह है। हम एक मुल्क रहनेवाले, एक ही गली में रहने वाले, एक कुवें का पीने वाले, हमें किसने बहका दिया जो हमारी यह हालत हो रही है। हम सब किस तरफ़ जा रहे हैं! इतनी तेज़ी के साथ हम इस ग़लत रास्ते पर बढ़ रहे हैं कि हमारी हस्ती मिटती जा रही है। हमें इस घमण्ड में नहीं रहना चाहिये कि हम ४० करोड़ हैं। फूट का रास्ता हमारी बरबादी का रास्ता है। सिर्फ़ प्रेम का रास्ता ही वह रास्ता है जिस पर चल कर हम ज़िन्दा रह सकते हैं। मैं इलाहाबाद का रहने वाला हूँ। इलाहाबाद में गंगा जमुना का संगम है। हिन्दू मुसलमान दोनों को गंगा जमुना के जल को मिला हुआ देखना चाहता हूँ कि कोई तमीज़ न कर सके कि कौन सा जल गङ्गा का है और कौन सा जमना का।

[ ग्वालियर कन्सिलियेटरी बोर्ड के तत्त्वावधान में हिन्दू हुआ एक भाषण ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# डा० सनयात सेन के जनता के तीन सिद्धान्त (२) गणतन्त्र

प्रो० कृष्ण किंकर सिंह

[ पिछले अङ्क से आगे ]

यह पहिले ही कहा जा चुका है कि स्वाधीनता और समानता के लिये हुए युद्धों के फल को गणतन्त्र के नाम से पुकारा गया। डा० सनयात सेन ने इन युद्धों से प्राप्त फल को छानबीन कर यह बताया है कि पश्चिमी राष्ट्रों का गणतन्त्र वास्तविक गणतन्त्र की अवस्था को अब तक नहीं प्राप्त कर सका है क्योंकि उसकी प्रगति के मार्ग में बहुत बाधायें हुई हैं। पश्चिमी राष्ट्रों में स्वाधीनता और समानता के लिये हुई तीन क्रांतियां प्रसिद्ध हैं। पहली इङ्गलैण्ड की राजक्रान्ति कार्नवाल के नायकत्व में, दूसरी अमेरिका की स्वाधीनता की लड़ाई और तीसरी फ्रांस की राजक्रान्ति। इनमें पहली सफल होकर भी असफल हो गयी और बकिये दोनो क्रान्तियों में काफ़ी संघर्ष के बाद मालकियत जनता के में हाथों आई। पर इस मालकियत या गणतन्त्र की प्रगति के मार्ग में तीन बार रोड़े अटके। प्रथम अमेरिका की स्वाधीनता के युद्ध के बाद गणतन्त्र के दकियानूसी समर्थकों ने जनता की मालकियत के ऊपर ख़ास ख़ास प्रतिबन्ध लगाकर पूर्ण जनसत्तात्मक शासन नहीं क़ायम होने दिया। दूसरा, फ्रांस की राजक्रान्ति की सफलता के बाद निरंकुश गणतन्त्र के समर्थकों ने ( Absolute Democracy ) पूर्ण सत्ता अपने हाथों में पाकर समानता लाने के लिये अपने बुद्धिमान नेताओं तक को क़त्ल किया और एक उच्छृङ्खल शासन की स्थापना कर दी। इससे जनता को भयंकर मुसीबतों का सामना करना पड़ा तथा गणतन्त्र लोगों के लिए हौआ हो गया। तीसरा, बिसमार्क ने शान्ति के रास्ते से स्टेट साम्यवाद ( State Socialism ) का प्रचार कर दिया। उसने स्टेट साम्यवाद के द्वारा जनता की छोटी छोटी मांगों की पूर्ति कर उनके दिलों में जनता की मालकियत की भावना नहीं उठने देने की परिस्थिति पैदा कर दी। इस प्रकार गणतन्त्र को अपने उदय काल में पहिले एकतन्त्र से लोहा लेना पड़ा। एकतन्त्र पर जब विजय मिली तो गणतन्त्र के दकियानूसी तथा उग्रवादी दोनों प्रकार के समर्थकों ने उसका दुरुपयोग कर उसके मार्ग में रोड़े अटकाये और अन्त में गणतंत्र की भावना को शक्ति द्वारा नहीं दबाने योग्य समझकर बिसमार्क ने शान्ति के रास्ते जनता के दिलों में उसकी भावना नहीं आने देने के सभी अवसर प्रदान कर भारी रुकावट डाल दी। इन अड़चनों के होते हुए भी गणतंत्र की भावना संसार में फैलती ही गई और अधिक से अधिक लोग इसके हिमायती होते जाते हैं। इसका कारण यह है कि वर्तमान युग गणतंत्र का युग है और युग के प्रभाव से कोई अपने को अछूता नहीं रख सकता है। यह युग की ही देन है कि अड़चनों के होते हुए भी गणतन्त्र की भावना का विकास होता जा रहा है। यह वर्तमान युग की वेगवती धारा है जो रुकावट पाकर कुछ क्षण के लिये रुक भले ही जाय परन्तु पुनः अपने धक्के से अड़चनों को दूर कर घहराती हुई और अपना मार्ग बनाती हुई आगे बढ़ती है। आज गणतंत्र संसार की एक बड़ी समस्या हो गई है।

अब तक जिन जिन राष्ट्रों में गणतन्त्र की स्थापना हुई है वहां उसकी प्रगति बड़ी धीमी रही है। डा० सेन ने इस प्रगति के इतिहास पर विचार कर बताया है कि गणतन्त्र का व्यावहारिक पहलू अब तक केवल जनता के देने के अधिकार के रूप में ही देखने को आता है। आधुनिक गणतन्त्र के उदयकाल में आज तक के लगभग तीन सौ वर्षों के बीच अधिकांश जनसत्तात्मक शासन स्थापित राष्ट्रों में गणतन्त्र की इतनी ही प्रगति हुई है कि जनता वोट दे सकती है और स्वयं प्रतिनिधि होने के लिये उम्मेदवार भी हो सकती है। जनता के इस मालकियत अधिकार से एक ही काम हो सकता है और हुआ है— पार्लमेंटरी या प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन प्रणाली की स्थापना। इस शासन प्रणाली में बिना प्रतिनिधि सभा के सदस्यों की अनुमति के कोई राष्ट्रीय कार्य नहीं हो सकता है। पर केवल वोट देने का अधिकार और प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन व्यवस्था जनता की मालकियत के अधिकार और जनसत्तात्मक शासन व्यवस्था के वास्तविक आदर्श से बहुत दूर हैं। तथाकथित प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन व्यवस्था की बुराइयों से आधुनिक संसार परिचित है। एक बार जनता द्वारा चुने जाने के बाद निश्चित समय के लिये प्रतिनिधि सर्वेसर्वा हो जाते हैं। निश्चित समय के अन्दर प्रतिनिधि गण अपने मनोनुकूल कोई काम कर सकते हैं। जनता के पास उन पर प्रत्यक्ष रूप से अंकुश रखने का उपाय नहीं रहता है। जिसके फलस्वरूप प्रतिनिधि गण स्वार्थी हो जाते हैं और निश्चित समय के अन्दर अधिक से अधिक अपना स्वार्थ पूरा कर लेना चाहते हैं



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जनता, जिसे मालकियत के ऊपर वास्तविक अधिकार है, एक बार अपनी मालकियत का अधिकार दे देने के बाद नेःसहाय हो जाती है। यह अवस्था वास्तविक गणतन्त्र से बहुत दूर है।

तो प्रश्न उठता है कि वास्तविक जनसत्तात्मक शासन व्यवस्था का रूप क्या है? इस प्रश्न के उत्तर के पहिले गणतन्त्र शासन लागू किये गये राष्ट्रों की जनता की मनोवृत्ति की छानबीन करनी होगी। डा० सनयात सेन ने गणतंत्र शासन प्रणालीयुक्त राष्ट्रों की शासन व्यवस्था के विषय में कहा है कि इन देशों की सरकार वर्तमान समय के एकतंत्र या अन्य दूसरे प्रकार की शासन प्रणाली वाले देशों की सरकार से कमज़ोर है। उन राष्ट्रों में प्रगति नहीं हो रही है। एक सौ वर्ष पहिले और आज के गणतन्त्र में बहुत कम अन्तर हुआ है। आज लोगों में गणतन्त्र की नई भावना है पर उसे लागू करने की प्रणाली पुरानी है। गणतन्त्र राष्ट्रों में अब तक के स्थापित प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन प्रणाली का कटु अनुभव जनता को हो चुका है। वह सदा इस बात से डरती है कि शक्तिशाली जनसत्तात्मक शासन प्रणाली भी शक्तिशाली एकतंत्र के समान उनके लिये बरबाद होगी। आज तक के उनके अनुभव ने उन्हें यही समझने को मजबूर किया है। इसलिये वह मालकियत तथा शासन दोनों का अधिकार अपने पास ही रखती है। इसके फलस्वरूप गणतन्त्र राष्ट्रों की सरकार कमज़ोर है। सरकार के प्रति जनता की यह मनोवृत्ति भयावनी है और इसका कारण यह है कि जनता ने जनसत्तात्मक शासन के असली अर्थ को नहीं समझा है। शासनतन्त्र का निर्माण भी वैज्ञानिक नियम पर होता है। किसी चीज़ की स्थापना के लिये उसमें विश्वास का होना आवश्यक है। जनता जब यह समझ जाएगी कि मालकियत का अधिकार उसके पास है और वह शक्तिशाली सरकार को भी अपने प्रभुत्व के ऊपर अपने नियंत्रण में रख सकती है तब उसकी मनोवृत्ति में परिवर्तन होगा और तभी वह देश की सरकार को शक्तिशाली बना सकेगी। वास्तविक जनसत्तात्मक शासन व्यवस्था तभी क़ायम हो सकती है जब जनता के शक्तिशाली सरकार विरोधी रुख में परिवर्तन हो। आज संसार के सभी गणतन्त्र देशों के लोग जनता के रुख परिवर्तन की ज़रूरत महसूस करते हैं पर अब तक इस परिवर्तन करने के सही रास्ते का आविष्कार नहीं हुआ है। डा० सनयात सेन ने इसका मौलिक रास्ता यों बताया है—"पश्चिमी देशों में गणतंत्र को लेकर जो समस्या उठ खड़ी हुई है उसके समाधान न होने का कारण यह है कि उन देशों में मालकियत और योग्यता के बीच अन्तर नहीं माना गया है।" अर्थात् वास्तविक गणतंत्र लागू करने के लिये मालकियत और योग्यता के बीच अन्तर मानना ज़रूरी है। अब तक होता यह आया है मालकियत का अधिकार रखने वाला शासन भी करता है। परन्तु मालकियत का प्रभुत्व एक चीज़ है शासन करना दूसरी चीज़। पहिला प्रभुता का द्योतक है और दूसरा योग्यता का। मालकियत की प्रभुता से युक्त सभी व्यक्ति योग्य ही हों यह ज़रूरी नहीं है। प्रायः बात ठीक इसके विपरीत होती है और जब जनता के हाथ में मालकियत होती है तो यह सोचना कि हर जनता योग्य है सब से ग़लत बात होगी।

डा० सनयात सेन ने योग्यता के ख़याल से मनुष्यों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है। इस योग्यता का आधार उन्होंने प्रकृति प्रदत्त प्रतिभा और बुद्धि को माना है। पहिली श्रेणी में वे लोग हैं जो किसी काम को पहिले ही देखते, सोचते और समझते हैं। दूसरी श्रेणी उन लोगों की है जो देखने पर और समझाने पर काम को समझते हैं। तीसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो न देखने पर न समझाने पर काम को समझते हैं बल्कि अनुकरण कर केवल काम करना जानते हैं। अर्थात् आविष्कारक, उन्नायक और व्यावहारिक काम करने वाले—ये तीन प्रकार के लोग समाज में पाये जाते हैं। समाज का हर काम इन तीन प्रकार के लोगों के सहयोग से ही होता है; एक के भी असहयोग से प्रगति रुक जाती है। इसके विपरीत इच्छापूर्वक तीनों श्रेणियों के पूर्ण सहयोग से प्रगति की रफ़्तार कई गुना अधिक हो जाती है। इन तीनों श्रेणियों के कार्यक्षेत्र भिन्न भिन्न हैं। एक का काम दूसरे के हाथों में देने से गड़बड़ी पैदा हो जाती है। समाज में सब से अधिक संख्या तीसरी श्रेणी के लोगों की होती है?, उससे कम दूसरी की और सब से कम पहिली श्रेणी की। इन तीनों श्रेणियों का सम्मिलित नाम ही जनता है। जनसत्तात्मक शासन प्रणाली में जनता के पास मालकियत होती है और जनता में तीसरी श्रेणी के लोगों की संख्या अधिक है इस कारण उनमें शासन करने की योग्यता का अभाव होता है। अब अगर मालकियत प्राप्त जनता के हाथों में शासन प्रबन्ध का भी भार दिया जाय, जिसमें प्रतिभा और योग्यता की आवश्यकता होती है, तो जनता प्रतिभा और योग्यता के अभाव में समाज को प्रगति की ओर ले जाने की अपेक्षा नीचे लुढ़काने में अधिक सफल होगी। इसलिये डा० सनयात सेन ने कहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि राष्ट्र की प्रभुशक्ति को दो भागों में विभक्त करना चाहिए। पहिला राजनैतिक प्रभुत्व जो जनता के हाथों में होगा और दूसरा शासन प्रबन्ध का कार्य जो जनता द्वारा नियुक्त योग्य, प्रतिभा सम्पन्न और वफ़ादार लोगों द्वारा होगा। अब तक गणतंत्र राष्ट्रों में सब से बड़ी कमी यह रही है कि शासन व्यवस्था का कार्य योग्य आदमियों के हाथों में नहीं दिया गया है जिसके फलस्वरूप जनसत्तात्मक सरकार दृढ़ नहीं हो सकी है। इसलिये जनसत्तात्मक शासन को ठीक तरह से लागू करने के लिये मालकियत और योग्यता में अन्तर कर इनको अपने अपने क्षेत्रों में रखना आवश्यक है।

पर यह कैसे विश्वास किया जाय कि मालकियत और योग्यता में अन्तर करने के बाद जब योग्य आदमियों के हाथों में शासन प्रबन्ध का भार दिया जाएगा तो वे लोग जनता की भलाई और जनता के मनोनुकूल ही कार्य करेंगे? जनता के पास ऐसा कौन सा राजनैतिक प्रभुत्व होगा जिससे वह प्रत्यक्ष रूप से सरकार को अपने नियंत्रण में रख सकेगी? पहली बात तो यह है कि जनता को योग्य तथा वफ़ादार आदमियों पर बहुत दूर तक विश्वास करना पड़ेगा। लेकिन केवल विश्वास से काम नहीं चल सकता है। अगर विश्वास के साथ उसके पास कोई ऐसी ताक़त हो जिसके द्वारा वह प्रत्यक्ष रूप से सरकार का नियंत्रण कर सके तो उस सरकार के निरंकुश होने का भय बहुत दूर तक जाता रहेगा। डा० सेन ने बताया है कि शासन प्रबन्ध के दो अंग हैं। एक शासन प्रबन्ध करने वाले अधिकारी गण और दूसरा कानून जिसके द्वारा अधिकारी गण शासन करते हैं। अगर इन दोनों अंगों पर जनता का प्रत्यक्ष नियंत्रण रहे तो इस बात का डर कतई नहीं होगा कि सरकार दूषित हो जाएगी या बेवफ़ा सिद्ध होगी। जनसत्तात्मक शासन में पूर्ण मालकियत जनता के पास रहती है। परन्तु अब तक मालकियत के व्यवहार करने की प्रणाली पूर्ण रूप से सभी देशों में लागू नहीं हो सकी है। जैसा कि आगे कहा गया है अधिकांश देशों में इस मालकियत के व्यवहार करने का एक ही तरीका लागू है। जनता अपनी मालकियत का प्रभुत्व दे सकती है। इसे वोट देने का प्रभुत्व ( Power of Suffrage ) कहते हैं। इस अधिकार के द्वारा जनता प्रतिनिधि या अधिकारी चुनती है और शासन करने का अधिकार उसे प्रदान करती है। परन्तु प्रतिनिधि या अधिकारी लोग अधिकार पा जाने के बाद अगर बेवफ़ा हो जाते हैं तो जनता उनसे अधिकार ले नहीं सकती है। अर्थात् जनता को नियुक्त करने का तो प्रभुत्व प्राप्त है पर बरख़ास्त करने का नहीं। जिसके फलस्वरूप जनता प्रतिनिधियों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं रख सकती है। सरकारी अधिकारियों या चुने हुए प्रतिनिधियों को अपने नियंत्रण में रखने के लिये जहां जनता को नियुक्त करने का अधिकार है उसे बरख़ास्त करने का भी प्रभुत्व होना चाहिए। इसे प्रत्यावर्तन का प्रभुत्व (Power of Recall) कहते हैं। इन दोनों प्रभुत्वों के प्राप्त हो जाने से पहिले तो जनता योग्य और वफ़ादार लोगों के हाथों में शासन प्रबन्ध का भार देगी और दूसरे, अगर किसी कारण से ये योग्य अधिकारी लोग निरंकुश होकर मनमानी करना चाहेंगे तो जनता तुरत उनके हाथों से अधिकार छीन लेगी। योग्य आदमी अच्छी तरह शासन कार्य चलायेंगे इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है और इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि उनके बिगड़ जाने पर जनता उन्हें तुरन्त हटा भी देगी। इस प्रकार जनसतात्मक शासन व्यवस्था में जनता के पास वोट देने और प्रत्यावर्तन करने के प्रभुत्व होंगे तो शासन प्रबन्ध के प्रथम अंग पर वह प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण रख सकेगी।

शासन प्रबन्ध का दूसरा भाग क़ानून है। अधिकारीगण क़ानून के बल पर ही शासन करते हैं। अब तक जनता को प्रत्यक्ष रूप से अपनी भलाई के लिये नये क़ानून बनवाने का तथा बने हुए पुराने कानून में सुधार करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। उसे इन बातों के लिये अपने द्वारा नियुक्त किये गये प्रतिनिधियों का मुंह जोहना पड़ता है। इसलिये शासन प्रबन्ध के इस दूसरे भाग पर भी जनता का प्रत्यक्ष नियंत्रण हो इसके लिये जनता को और दो राजनैतिक अधिकार होना चाहिएँ। पहिला यह कि अगर सभी जनता यह सोचती है कि अमुक कानून उन लोगों के लिए हितकर होगा तो उस कानून के निर्णय करने तथा सरकार को निर्णय किये हुए कानून को कार्य रूप में लाने को कहने का अधिकार होना चाहिए। इसे प्रवर्तन का अधिकार (Power of Initiative) कहते हैं। दूसरा यह कि अगर हर आदमी यह सोचता है कि सरकार का कोई पुराना क़ानून या नीति जनता के लिये अहितकर है तो उसे उसमें संशोधन ( सुधार ) करने तथा सरकार को उस संशोधित क़ानून को चालू करने तथा पुराने को रद्द करने का अधिकार होना चाहिए। इसे सुधारक अधिकार ( Power of Referendum ) कहते हैं। नये क़ानून बनाने तथा पुराने में सुधार करने का प्रभुत्व रहने से जनता किसी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय में ऐसे नये क़ानून को लागू करा सकेगी जो उसके लिये हितकर होगा और जिसे अधिकारी लोग अपनी इच्छा से लागू नहीं करना चाहेंगे। दूसरा यह कि जनता के लिये अहितकर किसी पुराने क़ानून का सहारा लेकर अगर अधिकारी वर्ग जनता पर मनमानी करना चाहेंगे तो जनता तुरत उस क़ानून में सुधार कर सकेगी। इस प्रकार कानून का सहारा लेकर अधिकारियों को जनता पर मनमाना करने का अवसर नहीं प्राप्त होगा बल्कि उन्हें जनता की भलाई को ध्यान में रखते हुए क़ानून का व्यवहार करना पड़ेगा। इस प्रकार जनता को शासन प्रबन्ध पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रखने के लिये ये चार राजनैतिक प्रभुत्व—वोट देने का, प्रत्यावर्तन का, प्रवर्तन का और सुधार करने का—प्राप्त होने चाहिएँ। इन चार राजनैतिक प्रभुत्वों को लोकप्रिय अधिकार और शासन प्रबन्ध नियंत्रण करने का प्रभुत्व भी कहते हैं। डा० सन यात सेन ने कहा है कि जब जनता को ये चारों राजनैतिक प्रभुत्व प्राप्त होंगे केवल तभी हम लोग कह सकते हैं कि गणतंत्र की पूर्ण प्रणाली स्थापित हुई और जब ये चारों राजनैतिक प्रभुत्व प्रभावोत्पादक ढंग से चालू किये जायेंगे तभी हम लोग कह सकते हैं कि प्रत्यक्ष और पूर्ण लोकप्रिय मालकियत काम कर रही है। राष्ट्र के शासन के ऊपर प्रत्यक्ष नियंत्रण रखने के लिये यह ज़रूरी है कि जनता इन चार लोकप्रिय मालकियत के प्रभुत्वों को काम में लाए।"

राष्ट्र प्रभुशक्ति का दूसरा भाग राष्ट्र की सरकार है। जिस प्रकार सरकार पर नियंत्रण रखने के लिये जनता को राजनैतिक प्रभुत्व की आवश्यकता है उसी प्रकार सरकार को भी व्यस्थित ढंग से जनता के कामों को करने के लिये जनता द्वारा दिये गए अधिकार और कार्य-प्रणाली होनी चाहिए। जन सत्तात्मक शासन प्रणाली के सम्बन्ध में डा० सन यात सेन ने कहा है—"संगठित शासन संस्था द्वारा सरकार को अच्छी तरह काम चलाने के लिये पञ्च-शक्ति विधान (Quintuple-Power Constitution) का होना जरूरी है। यह पहिले ही कहा गया है कि जन-सत्तात्मक शासन व्यवस्था लागू करने के लिये दृढ़ सरकार जरूरी होती है। चार राजनैतिक अधिकारों से जनता की मालकियत मज़बूत होती है उसी प्रकार पञ्च शक्ति विधान से सङ्गठन दृढ़ होता है। बिना पञ्च शक्ति विधान के पूर्ण लोकप्रिय शासन की स्थापना नहीं हो सकती है। जनता की मालकियत और सरकार इन दोनों के बीच सन्तुलन के लिये दोनों के अधिकार अलग अलग होने चाहिएँ। इस पञ्च शक्ति विधान से सरकार का सङ्गठन पाँच भागों में विभक्त होता है। ये विभाग यों हैं—शासन विभाग, व्यवस्थापक विभाग, न्याय विभाग, राजकीय परीक्षा विभाग और निन्यत्रण विभाग (Executive, Legislative, Judicial, Civil Service examination and Censorship or Control) ये पाँचों विभाग ही सरकार के प्रभुत्व हैं। "जब जनता के ये राजनैतिक प्रभुत्व सरकार के शासन करने के पाँच प्रभुत्व का नियत्रण करते हैं तभी पूर्ण जनसत्तात्मक शासन की व्यवस्था कायम होती है और जनता तथा सरकार की शक्ति संतुलित रहती है।"

उपरोक्त पञ्च शक्ति विधान के शासन विभाग, व्यवस्थापक विभाग और न्याय विभाग तो बहुत से देशों में चालू हैं और पहिले पहिले इन तीनों विभागों को स्वतंत्र रूप से स्थापित करने का श्रेय अमेरिका को है। परन्तु राजकीय परीक्षा विभाग और निन्यत्रण विभाग डा० सनयात सेन की अपनी सूझ है जिन्हें उन्होंने प्रचीन चीन के राजनैतिक सङ्गठन से लिया है। चीन के एकतन्त्र शासन युग में भी ये दोनों विभाग सम्राट् के निरंकुश अधिकार से अपना अलग अस्तित्व रखते थे। राजकीय परीक्षा विभाग द्वारा योग्य तथा बुद्धिमान लोगों को सरकारी पदों की ज़िम्मेवारी सौंपना है और नियन्त्रण विभाग द्वारा सभी विभागों के सरकारी अधिकारियों की जाँच पड़ताल करना तथा आय व्यय का निरीक्षण करना है। इस विभाग में सरकारी अधिकारियों पर अभियोग लगाने तक के अधिकार निहित हैं।

इन नौ शक्तियों का क्षेत्र अलग अगल है और उन्हें अपने अपने क्षेत्र में काम करने की आज़ादी होनी चाहिए। सरकार को जब बिना बन्धन के इन पाँच विभागों द्वारा काम करने का अवसर मिलेगा तो वह अधिक शक्तिशाली अधिक दृढ़ होगी और जनता की भलाई के लिये उतना ही अधिक कार्य करेगी और जब जनता को सरकार पर नियन्त्रण रखने के चार लोकप्रिय मालकियत के प्रभुत्व प्राप्त होंगे तो वह शक्तिशाली सरकार से भयभीत नहीं होगी और जब सरकार को गुमराह होते हुए देखेगी तो अपने प्रभुत्व से तुरत रोक देगी। इस प्रकार गणतन्त्र प्राप्त राष्ट्रों के शक्तिशाली सरकार की स्थापना का जो भय हुआ है वह इन प्रभुत्वों के कायम होने से जाता रहेगा। डा० सन यात सेन ने कहा है—"इन नौ प्रभुत्वों के लाए होने तथा संतुलन रखने से गणतन्त्र की समस्या ठीक हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हो जायगी और सरकार को व्यवस्था करने का एक निश्चित रास्ता मिलेगा।.....सरकार की प्रतिष्ठा बढ़ेगी और जनता के प्रभुत्व में वृद्धि होगी। इस प्रकार की शासन व्यवस्था प्राप्त सरकार और इस प्रकार की राजनैतिक प्रभुत्व प्राप्त जनता से 'सर्वशक्तिशाली सरकार द्वारा जनता की भलाई होने' के आदर्श की पूर्ति होगी और उस राष्ट्र की सरकार वास्तव में जनता की होगी जो जनता के द्वारा जनता की भलाई के लिये कार्य करेगी।"

—सनयात सेन।

देश में जनसत्तात्मक शासन स्थापना करने के लिये डा० सन यात सेन ने तीन सीढ़ियाँ बनाई हैं। एकाएक जिस राष्ट्र में पूर्ण गणतत्र स्थापित किया जाता है वह अधूरा होता है और उसमें बहुत सी बुराइयां घुस जाती हैं। पश्चिमी राष्ट्रों के उदाहरण इसके प्रमाण हैं। क्रान्ति की सफलता के बाद राष्ट्र में सैनिक सत्ता की स्थापना होनी चाहिए। यह पहिली सीढ़ी है जिसे सैनिक कार्यवाही काल ( Period of Military operations ) कहते हैं। इस काल में सरकार का काम देश को संगठित करना और क्रान्ति विरोधी भावनाओं को दूरकर पूर्ण गणतन्त्र के लिये मैदान साफ करना होना चाहिए। इसके बाद दूसरी सीढ़ी प्रारम्भ होगी जिसे राजनैतिक रक्षा काल ( Period of Political Tutelage ) कहते हैं। इस काल में मालकियत चुने हुए कुछ व्यक्तियों के हाथों में होगी। सरकार का मुख्य काम होगा देश के पुनर्निर्माण के कामों को करना जनता को पूर्ण गणतन्त्र की जिम्मेवारी उठाने के लिये शिक्षित करना, पूर्ण गणतन्त्र का विधान तैयार करना तथा पञ्चशक्ति विधान के अनुसार शासन विभाग, व्यवस्थापक विभाग, न्याय विभाग, और राजकीय परीक्षा विभाग की स्थापना करना। इसके बाद तीसरी सीढ़ी प्रारम्भ होगी जिसे वैधानिक शासन काल ( Period of Constitutional Government ) कहते हैं। इस काल के प्रारम्भ तक सरकारी सङ्गठन के उपरोक्त पांच विभाग की स्थापना करने का काम पूरा हो जाना चाहिए और दलगत सरकार को जन सम्मेलन बुलाकर सारी नैतिक मालकियत जनता के हाथों में सौंप देनी चाहिए। यही पूर्ण जनसत्तात्मक शासन व्यवस्था है।

---

# गो-रक्षा

जनाब 'मायल' नक़वी, सेक्रेटरी, अंजुमन तरक़्क़ी अदब, भोपाल

जनाब मायल साहब भोपाल के मशहूर गोसेवक और गोरक्षक हैं। उनकी यह सीधी सादी कविता हम खुशी से यहाँ छाप रहे हैं।

भारत के दुखी पल जायेंगे, एक गौ की रक्षा करने से!
फिर लाभ की बदली बरसेगी, फिर धरती माता हरषेगी!
हरियाली राधा नाचेगी, व्यापार की मुरली बाजेगी!
घी, दूध, दही जब खाएँगे, बालक अतिशय बल पाएंगे!
ये रूख जले फल जायेंगे एक गौ की रक्षा करने से!

दिन विपदा के टल जायेंगे एक गौ की रक्षा करने से!
सब काम रुके चल जायेंगे एक गौ की रक्षा करने से!
ठण्डे दीपक जल जायेंगे एक गौ की रक्षा करने से!
फिर 'मायल' गीत बनाएँगे औ देश की महिमा गाएँगे!
सिक्के अपने ढल जायेंगे एक गौ की रक्षा करने से!!

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सोवियत संघ में मनोविनोद के साधन

श्री रामावतार

सोवियत-समाजवादी-संघ प्रजातन्त्र की सांस्कृतिक प्रगति में श्रमजीवियों की विनोद शालाएं एवं सांस्कृतिक उपकरणों का विशेष महत्व है। समाजवादी क्रांति का सफल होना क्या था मानों वहाँ की सदियों से दलित एवं पर-पद-मर्दित जनता के भाग्य जग गये। वहां के सभी राज प्रासादों एवं धनीमानी लोगों के महलों को मजदूर संघों तथा दूसरी सार्वजनिक संस्थाओं के हवाले कर दिया गया, ताकि जनता उनका खुलकर प्रयोग कर सके। उन्हीं राज प्रासादों में सर्व-प्रथम जनता के लिए मनोविनोद गृह, जादू घर, पुस्तकालय, तथा विश्रामालय निर्माण किये गये। लेकिन सांस्कृतिक प्रगति की लम्बी दौर में सिर्फ़ इतने गृहों से ही काम नहीं चल सका और सोवियत सरकार को अन्य गृहों का निर्माण कार्य भी शुरू करना पड़ा। फल-स्वरूप बड़ी संख्या में सांस्कृतिक गृहों के निर्माण हुए और आज भी हो रहे हैं। युद्ध का इनकी प्रगति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। सोवियत यूनियन के सभी भूभागों तथा प्रजातन्त्रों में इस प्रकार के गृहों की भरमार है। यहाँ तक कि कलकारखानों में भी मनोविनोद के साधनों की कोई कमी नहीं है। वहाँ ऐसा प्रचलन सा हो गया है कि नवीन कलकारखानों के निर्माण के साथ विनोद गृहों का निर्माण आवश्यक है। कल कारखानों के विनोद गृहों को 'सांस्कृतिक विभाग' के नाम से संबोधित किया जाता है।

संसार भर में केवल सोवियत देश ही एक ऐसा मुल्क है जहाँ पर काम के घण्टे सब से कम रखे गये हैं। श्रमिकों कमकरों को अधिक से अधिक ६ या ७ घण्टे ही काम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जो समय बचता है उसे वे अपनी सांस्कृतिक प्रगति एवं मन बहलाव के काम-में सर्फ़ करते हैं। इस प्रकार वहाँ के प्रत्येक श्रमजीवी, इन्जिनियर आफ़िस-कर्मचारी तथा दूसरे लोगों को आत्मोन्नति के लिए काफ़ी समय मिल जाता है।

सांस्कृतिक-गृहों में श्रमजीवियों की सभी प्रकार की उन्नति करने की पूर्ण व्यवस्था रहती है। उन्हें सब तरह की शिक्षा दी जाती है। उनकी दक्षता को बढ़ाने के लिए विभिन्न साधनों से काम लिया जाता है।

सन् १९३९ में सोवियत-संघ के क्लबों की संख्या ३,६०० थी यानी क्रांति के पहले की संख्या से ४३५ गुना अधिक। सर्वसाधारण के लिए पुस्तकालयों की संख्या ४,००० थी। बहुत से क्लबों के साथ थियेटर, चल-चित्र आदि की भी व्यवस्था रहती है। लेनिनग्राद में 'सांस्कृतिक-गृह' बड़ा ही विशाल एवं आकर्षक है। उसके हाल में दो हजार व्यक्ति आसानी से बैठ सकते हैं। सोवियत की प्रमुख सिनेमा कंपनियाँ उसमें बहुधा अभिनय का प्रबन्ध करती हैं।

सोवियत-संघ की समाजवादी सरकार सांस्कृतिक उत्थान के कामों में काफ़ी धन खर्चती है। पिछले दस वर्षों के भीतर सांस्कृतिक उत्थान के कार्यों में ख़र्च की जाने वाली रक़म पहले की अपेक्षा बीस गुना अधिक बढ़ गई है। इसके अलावा मजदूर संघ, सरकारी समितियाँ तथा दूसरी सार्वजनिक संस्थाएँ भी प्रचुर मात्रा में रुपए ख़र्च करती हैं। सन् १९३८ में सांस्कृतिक उत्थान के कार्यों में ४२,००,००,००,००० रूबल व्यय किये गये थे।

सोवियत क़ानून के अनुसार सभी औद्योगिक संस्थाओं कार्यालयों और इन्सटीट्यूशनों को अपनी आय का एक प्रतिशत मजदूर संघों को देना पड़ता है, ताकि वह रक़म मजदूरों तथा उनके परिवार के लोगों के सांस्कृतिक उत्थान में लगाई जा सके। श्रमजीवियों के वेतन से इस प्रकार की रक़म नहीं वसूली जाती है। इस प्रकार से देखा जाय तो सन् १९३८ में श्रमजीवियों की तनख़्वाह के रूप में ९६,४२,५०,००,००० रूबल व्यय किये गये थे। उसके अनुपात से १,००,००,००,००० रूबल सांस्कृतिक प्रगति के लिए निश्चित किये गये थे। इसके अतिरिक्त मजदूरों के सदस्य शुल्क में से भी सांस्कृतिक कामों पर ख़र्च किया जाता है।

ज्यों ज्यों श्रमजीवियों तथा उनकी तनख़्वाह में वृद्धि होती जाती है त्यों त्यों सांस्कृतिक एवं शिक्षा सम्बन्धी कार्यों पर अधिक धन ख़र्चने की व्यवस्था की जाती है। सन् १९२७ ई० के बाद से इस प्रकार के कार्यों में ख़र्च की जाने वाली रक़म दस गुना अधिक बढ़ गयी है। सन् १९३८ में इस प्रकार से १,३८,७३,८१,००० रूबल व्यय हुए।

मजदूर संघों द्वारा संचालित बहुत से ऐसे भी सांस्कृतिक गृह हैं, जिनके काम बड़े पैमाने पर होते हैं और जिनके पास लाखों की सम्पत्ति होती है। इस प्रकार के गृहों में मास्को स्थित रेलवे मजदूरों के सांस्कृतिक उत्थान संबंधी "केन्द्री गृह" का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वह अपने श्रमजीवियों की सांस्कृतिक प्रगति के लिए प्रत्येक वर्ष १,७०,००,००० रूबल खर्च करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मनोविनोद-गृहों के संचालन के लिये बोर्ड बने हुए हैं, जिनके सदस्य श्रमजीवियों की सार्वजनिक सभाओं तथा सम्मेलनों में निर्वाचित होते हैं। सदस्यों की संख्या ११ या १५ से अधिक नहीं होती है।

सोवियत रूस के सांस्कृतिक गृहों के क्षेत्र बहुत ही विस्तृत होते हैं। उनके अंदर थियेटर, विज्ञान एवं राजनीति सम्बन्धी व्याख्यान माला, चलचित्र, नृत्य, गायन, चौपर, सिलाई पिरोई, चित्रकारी आदि सभी उपकरणों की पूर्ण व्यवस्था रहती है।

सन् १९३९ में श्रमजीवी संघों के तत्वावधान में काम करने वाले ५, ९७२ सांस्कृतिक-गृह थे। उनमें बीस लाख आदमी आसानी के साथ बैठ सकते हैं। सोवियत के बड़े बड़े तथा मशहूर थियेटर उन्हीं क्लबों में अभिनय करते हैं। हॉल के साथ-साथ प्रत्येक क्लबों में वाचनालय, अनुसंधान गृह, क्लास-गृह आदि की पूर्ण व्यवस्था रहती है। इस पर भी क्लबों की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उनके विश्राम गृह बड़े ही उपयोगी होते हैं, जहाँ पर दर्शनार्थी आराम के साथ विश्राम कर सकते हैं। मज़दूरों के उन क्लबों में प्रति दिन आने वाले दर्शकों की संख्या ६० लाख होती है।

सोवियत के श्रमजीवी क्लबों तथा "लाल कोने" (फैक्टरी के साथ सम्बन्धित क्लब) के राजनीतिक स्वाध्याय मंडल, शिक्षण शिविर, अभिनय मंडल आदि में सम्मिलित होने वालों की संख्या जो सन् १९३४ ई० में ४७,३०,२०० थी बढ़कर सन् १९३८ में ६५,७३,५०० हो गयी थी।

सोवियत यूनियन में ललित कला का भी काफी अभ्युत्थान हुआ है। वहां के लाखों निवासी संगीत, चित्रकारी, मूर्तिकला, नृत्य और अभिनय में काफ़ी रुचि रखते हैं। छुट्टी के पश्चात् हजारों मज़दूर क्लबों में जाकर मनोविनोद के विभिन्न साधनों द्वारा मज़ा उठाते हैं। वहाँ पर ललित कला के विकास के निमित्त ७०,००० केन्द्र बने हुये हैं। खुशकिस्मती की बात है कि समाजवादी रूस ने अपने यहां आला से आला दर्जे के लोगों को पैदा किया है। उनमें मैक्सिम गोर्की भी एक थे। मनोविनोद गृहों को उन्होंने "बुद्धि-विकास का शिक्षण केन्द्र" के नाम से सम्बोधित किया है। सोवियत के अन्यान्य विख्यात अभिनेताओं और संगीतज्ञों ने अपनी प्रथम शिक्षा श्रमजीवी क्लबों में ही ली थी।

क्लबों के सदस्यों को मनोविनोद संबंधी सभी प्रकार के उपकरणों का प्रयोग करने की पूरी स्वतन्त्रता रहती है। ललित कला गृहों के संचालन के लिये अनुभवी शिक्षक एवं कलाकारों की नियुक्ति होती है। कुछ क्लब ऐसे भी हैं जिनके अपने कला विभाग हैं, जिनमें सैकड़ों मज़दूर, आफिस कर्मचारी तथा उनके परिवार के लोग भाग लेते हैं। लेनिनग्राद के 'गोर्की सांस्कृतिक गृह' के अन्दर उक्त प्रकार के २४ कला-केन्द्र हैं, जिनमें १,३१७ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं।

कुछ वर्ष पहले की बात है। सोवियत की ललित-कला केन्द्रों के सदस्यों ने लन्दन में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय नृत्योत्सव में सक्रिय रूप से भाग लिया था। उनके जीवन से ओत-प्रोत नृत्य की ब्रिटेन की दर्शक जनता पर अमिट छाप पड़ी थी। आखिर वे नृत्यकार कौन थे, जिन्होंने दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर रक्खा था? उनमें से एक धातु के खाने में काम करने वाला श्रमिक था, एक कुर्सी बनाने वाला श्रमजीवी था, एक आंकड़ा इकट्ठा करने वाला था, एक बिजली कर्मचारी था, और एक खजान्ची था। उन सबों की शिक्षा दीक्षा श्रमजीवी क्लब के ललित-कला केन्द्र में हुई थी।

सोवियत जनता के बीच भ्रातृत्व का सम्बन्ध और जातीय एवं वंशानुगत घृणा के अभाव ने सोवियत संघ की जातीय (राष्ट्रीय कला को सर्वमान्य एवं उच्चकोटि के स्तर पर पहुंचा दिया है। वहां की विभिन्न जातियों की ग्राम कला सम्बन्धी बहुमूल्य निधियों के विकास के फलस्वरूप सम्पूर्ण देश की कला का खुलकर विकास हुआ है।

अन्तर्राष्ट्रीयता की इस लगन एवं उत्साह का प्रभाव श्रमजीवी क्लबों के कार्यों पर भी ज़बर्दस्त पड़ा है। उदाहरण के लिए हम रोस्तोव दोन में स्थित कृषि सम्बन्धी औज़ार के कारखाने को ले सकते हैं। उसके अपने चार-रूसी, यूक्रेनियन, यहूदी और तातार—अभिनय केंद्र हैं। ठीक यही बात ब्लादि वोस्तक के नाविक क्लब के बारे में भी कही जाती है, जिसके भी तीन विनोद-गृह हैं; जिनमें से पहला यूक्रेनी भाषा का कला गृह है।

सोवियत भूमि के क्लबों से सम्बन्धित सैकड़ों ऐमच्योर सोम्फनी औरचेस्ट्रा हैं, जिन्हें, प्राचीन संगीत कला की दुरूह से दुरूह गीतों की रचना करनी पड़ती है। अभी हाल के एक काम्पटीशन में मास्को के वैज्ञानिकों के औरचेस्ट्रा, ऐस्तोव-दोन एवं कीव के श्रमजीवियों, लेनिनग्राद सहयोग समितियों के कर्मचारियों आदि ने भाग लिया था।

बहुत से अभिनेता दलों ने उच्च कला के अभिनय में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली है। शेक्सपियर के "टेमिङ्ग आफ़ दी श्रू" का अभिनय मास्को स्थित श्रमजीवी क्लब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


के कमरों में, और "ट्वेल्थ नाइट" का अभिनय लेनिनग्राद के तम्बाकू श्रमजीवियों के क्लब ने किया था। इसी प्रकार से और भी बहुत से उच्चकोटि के अभिनय हुए हैं, जिनका स्थान अभिनय कला में अद्वितीय समझा जाता है।

विद्यार्थियों द्वारा बनाए गए चित्र की प्रदर्शिनी का सोवियत में सुन्दर आयोजन किया जाता है। इस कार्य को भी वहां के क्लब ही करते हैं, जिनका वहां के श्रमिकों के जीवन से गहरा सम्बन्ध रहता है। सुदक्ष एवं होशियार विद्यार्थी चित्रकार के लिए विशेष प्रबन्ध की व्यवस्था रहती है ताकि उसकी कला-शक्ति और निखर सके। उनके लिए कला-गृहों का सुप्रबन्ध रहता है। इस प्रकार के कला-गृह सोवियत के प्रायः सभी नगरों, लालसेना की टुकड़ियों तथा ग्रामों में स्थापित हैं, ताकि इनके द्वारा नवीन कलाकारों को आगे बढ़ाया जा सके। उन कला-गृहों के सदस्यों की संख्या भी काफी है। मास्को के स्तालिनग्राद जिला में स्थित मज़दूर संघ की केन्द्रीय कौंसिल के कला-गृह के ४३२ सदस्य हैं जिनमें श्रमजीवी, इन्जीनियर और आफिस कर्मचारी सम्मिलित हैं। उनमें से बहुत से ऐसे हैं जिन्हें अपने पेशे से वंचितकर उनकी यूनियन की केंद्रीय कमेटी एवं कला की अखिल संघीय समिति की तरफ से वृत्ति दी जाती है ताकि वे कलात्मक कार्यों में सिद्ध हस्त हो सकें। अधिकांश लोगों को उनके अतिरिक्त समय में ही कला की शिक्षा दी जाती है। जिस प्रकार से सोवियत रूस के अन्य शिक्षक संस्थाओं में ट्यूशन की पढ़ाई के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाता, उसी प्रकार से कलात्मक शिक्षा के लिए भी इस तरह का कोई शुल्क नहीं लिया जाता।

कला के सभी क्षेत्रों में कुछ ऐसे केंद्र भी हैं, जिनकी प्रगति इतनी पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी है कि, उनकी गणना पेशेवर कला भवनों में की जाने लगी है। कला के अधिकांश शिक्षार्थियों को जिनका प्रवेश संगीतालयों, अभिनय विद्यालयों और भवनों में हो जाता है, उनकी प्राथमिक शिक्षा श्रमजीवी-क्लबों में ही दी जाती है।

प्रायः सभी कला-भवनों के अपने निजी पुस्तकालय होते हैं। कुछ पुस्तकालय तो ऐसे हैं, जिनके पास विभिन्न विषयक पुस्तकों का सुन्दर से सुन्दर संग्रह है। रोस्तोवदोन के कृषि-यन्त्रों की फैक्टरी के क्लब-पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या ६६,४०० है। उसके सहायकों की संख्या ९,०९३ है। उसके कार्यों का एक हिस्सा साहित्य सम्बन्धी सुन्दर व्याख्यानों एवं वाद विवाद की व्यवस्था करना है। सन् १९३८ में शेक्सपियर, पुश्किन, लेरमोन्तोव, तारासकार गोगोल, गोर्की, मायाकोवस्की तथा अन्य सुप्रसिद्ध लेखक एवं कवियों के सम्बन्ध में एक सुन्दर व्याख्यान माला आयोजन किया गया था।

मजदूर संघों के बड़े बड़े पुस्तकालयों ने (जिनके कम से कम एक हजार पुस्तकों से कम नहीं है) जिन स्थायी सहायकों तथा पाठकों की संख्या सन् १९३४ ४६,७३, २०० थी, उसे बढ़ाकर सन् १९३८ में ६०,१ १०० कर लिया था।

सोवियत क्लबों का एक प्रमुख काम विभिन्न विष पर व्याख्यान माला का आयोजन करना भी है सन १९३८ के दस महीनों के अन्दर लेनिनग्राद के के क्लब द्वारा आयोजित २५७ व्याख्यानों में ५५,००० व्य उपस्थित हुए थे। उक्त व्याख्यान माला का आयो समसामयिक था और उसमें विभिन्न विषयों सम्मिश्रण था।

वहाँ यह भी चलन है कि, श्रमजीवी क्लबों सांस्कृतिक गृहों के तत्वावधान में उनके सदस्यों एवं प्रति सोवियत नागरिकों की, जिनकी ख्याति राष्ट्रव्यापी हो होती है; संयुक्त सभाएं होती हैं। श्रमजीवी क्लबों में बहु लाल सेना के अफसर, प्रसिद्ध उड़ाकू, वैज्ञानिक, स्ताखा कमकर, अभिनेता आदि आते रहते हैं और उनका निरी करते हैं। उत्तरी ध्रुव तथा अमरीका के लिए प्रस्थान क समय ग्रोमोव, वोरोप्यानोव, स्वर्गीय चकलोव तथा अ विश्व विख्यात सोवियत हवाबाजों ने क्लबों की सभाओं अनेकों बार व्याख्यान दिये थे। बढ़िया से बढ़िया अभिने कलाकार और लेखक क्लबों की सभाओं में बहुधा भा देते रहते हैं तथा उनके कार्यों की प्रगति के संबंध वादविवाद करते रहते हैं। फलस्वरूप श्रमजीवी समाज तरफ से उन्हें बहुमूल्य सुझाव मिलते हैं, जिनसे क्रियात्म कला की रचना में प्रचुर मदद मिलती है। मास्को मकान-निर्माण-श्रमजीवी-क्लब के तत्वावधान में नवीन के निर्माण के सम्बन्ध में बहुधा वाद विवाद का आयोज किया जाता है, जिसमें सोवियत के ओफान, मोर्दविन तथा दूसरे उच्चकोटि के शिल्पी क्रियात्मक रूप से ले लेते हैं।

क्लबों की तरफ से श्रमजीवियों तथा इन्जिनियरों मार्के की सफलताओं का व्यापक प्रचार किया जाता है, उनसे आम कमकर सबक सीख सकें और औद्योगिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



को और सुन्दर ढंग से सम्पादित कर सकें। क्लबों की तरफ से दर्शकों के रहने तथा मनोविनोद का पूरा सामान रहता है, ताकि वे आनंद की जिन्दगी बिता सकें। उनके लिए कोशी काफ़े, आराम-गृह, शतरंज-गृह, नृत्य-गृह आदि की सुन्दर व्यवस्था रहती है। क्लबों की ओर से पिकनिक, भ्रमण, म्युजियम देखने आदि का भी प्रबंध किया जाता है।

गर्मी के दिनों में क्लबों की तरफ से बहुत से मनोविनोद जैसे, गेंद, कार्निवल, या दूसरे आकर्षक एवं मन बहलाने लायक खेलों का प्रबन्ध पार्कों अथवा खुले मैदानों में किया जाता है। इतना ही नहीं बल्कि इन कार्यों के द्वारा सोवियत जनता में एक नवीन प्रकार के भाई चारे का बीज बोया जा रहा है। इस मार्ग की सब से बड़ी रुकावट मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण था, जिसे सोवियत रूस से सदा के लिए निर्मूल कर दिया गया है। उक्त नवीन सम्बन्ध की सफलता ईमानदारी के साथ कार्यों की पूर्ति, एक दूसरे के प्रति सहानुभूतिसूचक व्यवहार, परस्पर प्रतिष्ठा, आपसी मदद, मातृभूमि के लिए अटूट प्रेम तथा समाजवाद की विजय सम्पूर्ण राष्ट्र के सम्मिलित प्रयत्न पर ही निर्भर है।

सोवियत यूनियन कम्यूनिस्ट पार्टी और साम्यवादी सरकार श्रमजीवी वर्ग के लिए कमूनिस्ट शिक्षा पर विशेष ध्यान देती है। इसके लिए सोवियत संघ में बहुतेरे क्लब हैं, जहां पर लोगों को सुन्दर से सुन्दर शिक्षा दी जाती है, ताकि वे समाजवादी समाज को पराकाष्ठा तक पहुँचाने में सहायक हो सकें।

---

# माया !

श्री विद्यानन्द सन्यासी

शून्य क्षेत्र में निशि-दिन ही
एकत्रित करती हो मेला !
किसे प्यार करती हो रानी—
उषः काल, सन्ध्या वेला ?
किसकी करतीं अवहेला ?
किसको बन कर चुभतीं शूल ?
फिर अंचल से भरतीं फूल !
जिसे प्यार करतीं प्रभात में
सन्ध्या को कर जातीं धूल !!

पर तुमको निष्ठुर कह सकता—
यह साहस किसमें रानी ?
करती रहतीं मनमानी !
इतने पुष्प, गन्ध, लतिकायें
कण-कण में पराग छाया ;
मन ही मन जग भरमाया !
तू ही कह यह कैसी नीति ;
हँसकर करती रीत अनीति ;
सारी रात व्यथा में जलना ;
तू ही कह, यह कैसी प्रीति ?

टेढ़ी ग्रीवा ही से करतीं
सारी वसुधा मायामय !
सारी वसुधा छायामय !
पुलकित प्रेम - वेदना तेरी
कर देती है हृदय अभय !
कर देती है विश्व सदय !
तुझे न कोई समझा रानी
तेरी है नित नई कहानी !
बन जाते हैं प्राण अभागे
हँसकर रोकर अज्ञानी !!

तेरा शासन युग सहस्र से
छाया जग के प्राणों पर !
दसों दिशाओं में सत्त्वर !
मृदु - कौतुक, मुसकान छुपी है
तेरे कोमल अधरों पर !
बिजली सी घन अम्बर पर !!
तू है चंचल वायु विहंगनि
बेड़ी मेरे पैरों पर !
जीत रही है अखिल विश्व तू
अपने अद्भुत छल-बल पर !!



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी तुझे खोजता फिरता
निविड़ अँधेरी यामिनी !
ऐ मेरी मायाविनी !

तिमिराच्छिन्न दिशायें सारी
अप्रकाश्य सम्पूर्ण गगन !
सप्त लोक हैं स्वप्न मगन !!

चुप चुप कुछ कौतूहल ले,
आती हो अम्बर तल से ;
लाती हो प्रकाश की रेखा
सात लाख नक्षत्र किरण से !

फिर छुप जातीं कहीं अचानक
ऐ एकाकिनि अनावृता ;
हो जातीं चिर-मौन वृता !

छाती चारों ओर भयङ्कर
मृत्युमयी मरु निर्जनता !
अभिशापित सी सज्जनता !!

होता सूर्य शशी का चक्कर !
चलते रहते युग युगान्तर !
पर तेरी कर्मक्षय प्रथा में
आता रानी नेक न अन्तर !!

फिर एकान्त साधना में तुम
करतीं अपना नव-शृंङ्गार ;
जग पाता शत शत उपहार !

हास्य-राशि उच्छ्वसित चतुर्दिक
नयनों को करती अनिमेष !
होता नव-जीवन अभिषेक !

पुलकित होते जग के प्राण ;
गाता वह यश गौरव गान !
पर रजनी के शेष चरण में—
होता उसे पराजय भान !!

मन में हिंसा दीप्त और—
नयनों में फिर भरता उन्माद ;
निहित निमेषों में अवसाद !

और समूची वसुधा में—
छा जाता तेरा ध्वंस-प्रलाप !
हो जाता जीवन अभिशाप !!

फूली सन्ध्या का आलोक
भरता दुख-सुख, कातर शोक !
होता अगर फैसला अन्तिम
होती अगर न कोई रोक ?

तुम अपनी मुट्ठी में लेकर
घूम रही हो अरबों प्राण !
करतीं नाश और निर्माण !

इति-अथ का इतिहास तुम्हारा
मन में भर जाता अभिमान !
मानो देतीं जीवन दान !

अंकित शत शत मायावास
हाथों में ले दुर्गम पाश !
किसमें बल है अबला नारी
कर सकता तेरा उपहास ?

जब तक मृत्यु न तब तक पुष्पित
होती है जीवन की बेल !
तब तक रूप-राशि का खेल !

जितनी बढ़ती व्यथा—साथ में
उतना बढ़ता जाता प्रेम !
यही तुम्हारा अद्भुत नेम !!

तुम परिवेष्टित कारागार !
जिसका कोई आर न पार !
जब तक तुम्हें नहीं पहचाना
तब तक तुमको करता प्यार !

[ गुरुदेव की रचना पढ़ कर ]

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पाश्चात्य-मूर्ति-कला की एक झलक

श्री मलिन्द

पाश्चात्य-मूर्ति कला का प्रारंभिक इतिहास एक प्रकार से उलझा हुआ है। श्री हेमेन्द्रनाथ दास का यह कथन सत्य प्रतीत होता है—"हैलेनिक तथा उसके पहले की मूर्ति निर्माण कला से ही पश्चिमी मूर्ति निर्माणकला प्रस्फुटित हुई है।" कुछेक लोगों का ऐसा भी विचार है कि पाश्चात्य-मूर्ति-कला की जड़ जमाने में किसी एक बड़ी शक्ति का हाथ नहीं है। मिस्र, सीरिया और मेसोपोटामिया के सम्मिलित प्रभाव ने पाश्चात्य-मूर्तिकला की जड़ जमायी है। इस वाद-विवाद में न पड़कर मैं पाश्चात्य-मूर्ति कला की प्रमुख बातों को संक्षेप में कहना चाहता हूँ।

प्रारंभिक - रोमन - मूर्ति-कला में हेलेनिक मूर्त-कला का प्रभाव स्पष्ट है। ये मूर्तियां पुरुषत्व एवं सुदृढ़ता का प्रतिनिधित्व करती हैं। रोमन-मूर्ति-कला के कुशल शिल्पी, मांस पेशियों से युक्त पुरुषत्व की प्रेरणा से प्रेरित हुए, न कि स्त्रियों की कोमल एवं सुन्दर आकृतियों से। पर ग्रीस के शिल्पी इनसे सर्वथा भिन्न थे। वे सौंदर्य, और विशेषतः नारी - सौंदर्य से प्रभावित हुए थे। इसी से हम प्रत्यक्षतः पाते हैं कि संपूर्ण ग्रीक-युग ने वाह्य-सौंदर्य के विचारों को उकसाया है। इस प्रकार उनकी दृष्टि एक मात्र वाह्य-रूप पर जा टिकी, और अंतस्तल में प्रवेश करने की उसने कभी कोशिश न की।

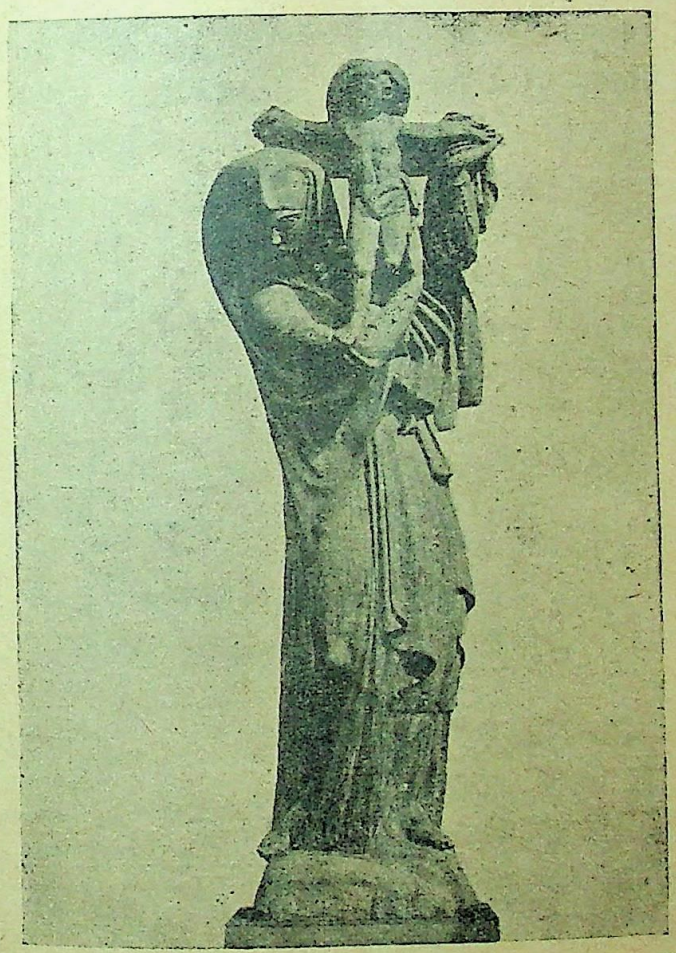

कुमारी मेरी और बालक ईसा

ग्रीक और रोमन-युग के बाद हम, पाश्चात्य मूर्ति-कला के सुविस्तृत क्षेत्र में, इस त्रिमूर्ति को पाते हैं—माइकेल-एंज्लो, रोदाँ और एप्सटीन; जो अपनी अपनी विशेषता के लिए पाश्चात्य-मूर्ति-कला के इतिहास में अमर रहेंगे। इन लोगों ने ही इटली की मूर्ति-कला के साथ बीसवीं सदी की मूर्तिकला को संबन्धित कर, यूरोप के कुशल शिल्पियों को उन्नति करने का सुअवसर प्रदान किया है। इनमें प्रत्येक अपनी शैली एवं अपनी विचार-धारा में मौलिक हैं और पाश्चात्य-मूर्ति-कला के प्रांगण में प्रत्येक ने नई कला प्रस्तुत की है। इन तीनों की मूर्ति-कला में इतना विभेद है कि हम, सहज में ही, ऐसा कह सकते हैं कि इनमें से प्रत्येक ने अपनी नवीन धारा से मूर्ति-कला-जगत् को आश्चर्य में डाल दिया है।

## माइकेल एंज्लो-(१४७३-१५६४)

नवीन-युग (Renaissance) का यह कलाकार, ग्रीक-मूर्ति-कला से, वाह्य-रूप-अंकन प्रणाली में मिलता-जुलता होने पर भी प्रकटीकरण के क्षेत्र में सर्वथा मौलिक था। ग्रीक-शिल्पियों ने आरूप रूप को अंकित कर आँखों को सुख पहुँचाने का प्रयत्न किया है। दर्शकों के समक्ष उलझन पैदा करने की हिम्मत उन्होंने बराबर की है। पर माइकेल एंज्लो की मूर्तियां अनिंद्य-सौंदर्य और सुघड़ भाव-भंगिमा के अलावा कुछ और भी प्रस्तुत करती हैं। उनमें उलझन कम होती है। उनमें अंतरात्मा की अति-प्रसन्नता अंकित होती है।

ग्रीक-शिल्पियों की भांति एंज्लो की भी मूर्तियां प्रायः नग्न होती हैं फिर भी दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर स्पष्ट है। ग्रीक-मूर्तियों में हम एक प्रकार का ऐन्द्रिक सुख प्राप्त करते हैं और इंद्रिय-प्रिय भाव-भंगिमायें नग्नता का प्रचार करती हैं। पर इस दृष्टि कोण से एंज्लो सर्वथा मौलिक है। उसकी नग्न मूर्तियों में हम एक प्रमुख विशेषता यह पाते हैं कि वे किसी भी प्रकार की कुभावना या ऐंद्रिकोत्तेजना नहीं पैदा करती हैं। उदाहरणार्थ—ऐंज्लो-कृत लीडा। उसकी शिल्प कुशलता अनोखी होकर भी कहीं कहीं थोड़ी कृत्रिम हो आयी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह भाव-भंगिमाओं को इस भांति सहेजता है कि दर्शकों का मस्तिष्क गम्भीर-पुरुषत्व की बात सोचने लगता है और दर्शकों की दृष्टि आवश्यकता से अधिक उन अङ्गों की ओर भटकने नहीं पाती जो कामुकता को जागृत करते हैं।

ग्रीक-मूर्ति-कला में भाव-भङ्गिमायें प्रतिरूपात्मक थीं अवश्य, पर उनका आदर्श जन-साधारण जैसा न था, अपितु वे अति-मानव ( Superhuman ) का उद्‌बोधन करती थीं। मानवीय-सौंदर्य, और विशेषतः नारी-सौंदर्य का अंकन वे उच्छृङ्खलता पूर्वक करते थे और कभी-कभी तो प्रतिमा की सुन्दरता में चार-चाँद लगाने के हेतु वे अतिशयोक्ति का विचार भी भुला बैठते थे। पर माइकेल-एंज्लो की प्रतिमाओं में हम ऐसी कोई बात नहीं पाते हैं। एंज्लो की मूर्तियां न अधिक सूक्ष्म हैं और न अधिक क्लिष्ट पर वे वैसी हैं कि जैसी साधारण जीवन में सम्भव है। इन सबों के बावजूद एंज्लो का शैली-निर्वाह ऐसा था कि जिससे वीरता, और भद्रता का उद्‌बोधन होता था। मि० हुड ने कहा है—उसकी नग्न वीरता भरी कृतियाँ करुणा एवं जीवन की व्यर्थता अभिव्यक्त करती हैं तथापि उनमें दर्शनिक भाव हैं। उनमें शरीरिक सौंदर्य भी है जो अपेक्षाकृत अधिक उभर गया है। मैडसाई टूम्ब को सजाने के लिए जिन प्रतिमाओं का सृजन एंज्लो ने किया है वे उसकी सर्वोत्कृष्ट प्रतिमायें हैं: दिवस ( day ), रात्रि ( night ), संध्या ( evening ), प्रभात ( dawn ) आदि। माइकेल एंज्लो ही वह प्रथम नवीन युगीन-शिल्पी था जिसने ऐसे ऐसे अति मानवीय-विषयों को अंकित किया है। अपनी मूर्ति-कला में थोड़ी कृत्रिमता के दोष से वह नहीं बच सका, यही एक विशेष बात है। और क्या?

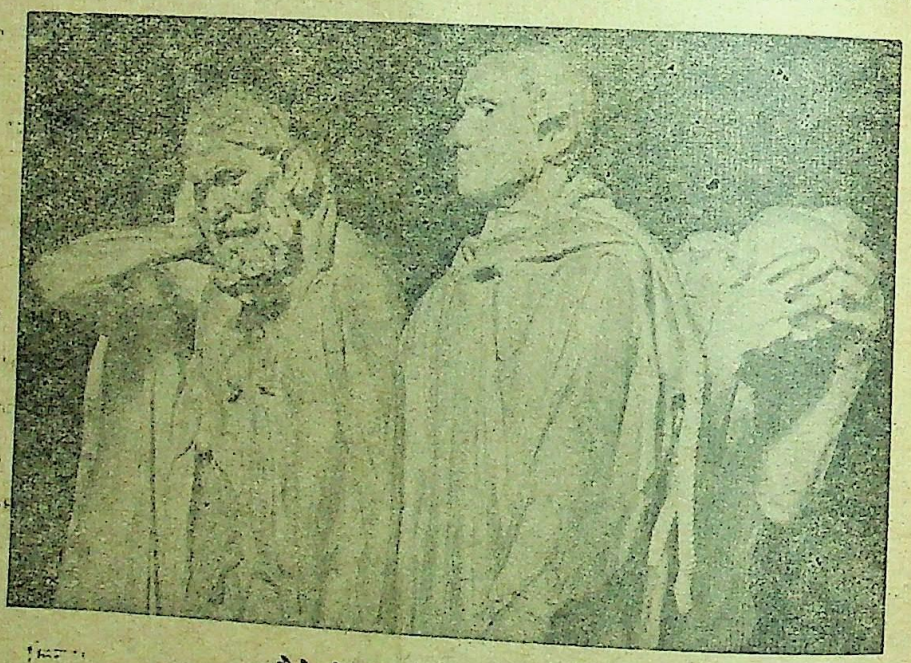

कैले के बन्दी नागरिक—रोदाँ

## रोदाँ (१८४०-१९१७)

यह कुशल शिल्पी सर्वथा, अपनी कला में स्वाभा... था। उसकी शरीर-विद्या ( anatomy ) और पृ... सादृश्य ( proportion ) ही केवल स्वाभाविक ... वरन् उसका शैली-निर्वाह भी समुचित-रूपेण स्वाभा... था। रोदाँ ने परम्परागत-विचारों के बावजूद प्रकृति ... ज़ोर डाला। उसकी प्रक्रियांकन-कला बहुत साधारण थी... वह अधिक शृंगारिक-प्रकृति का था। मांसल-सौंदर्य स्फु... प्रस्फुटित हो उसकी यही कोशिश रहती थी। उस... यथार्थता से पूर्ण मूर्तिकला में हम न अधिक नग्नता पा... हैं न ग्रीकों जैसी क्लिष्टता, और न एंज्लो जैसी कृत्रिमता... आम जनता की रुखड़ाई को उसने उभाड़ा है। श्री हेमेन्द्र... नाथ दास का कथन है कि "उसने यथार्थ का उपयोग भा... की व्यंजना के माध्यम के रूप में किया। उसकी कला... चरित्र चित्रण तथा विचार एवं उन्मत्त भावनाओं पर ... दिया जाता है... रसानुकूलि... ( sentiment... tion) एवं वि... षतः 'रोमान्... — रोदाँ ... विशिष्ट स्... हैं, गो कि ... सभी प्रकार ... शैलियों का ज्ञा... है। उसकी प्र... मायें— 'चुम्... 'बन्दी नागरि... आदि- उच्चको... की रचनायें ... और ऐसी प्रतिमायें न पहले कभी बनी हैं और सम्भवतः ... आगे कभी बनेंगी।

ये प्रतिमायें—जीवन - यौवन - रसात्मकता, एवं विर... वेदनाओं से भरी पड़ी हैं। उपरोक्त प्रतिमाओं को देख... से जान पड़ता है कि बड़ी कुशलता-पूर्वक पथरीले चट्... को काटकर ये मूर्तियां बनाई गई हैं। इन मूर्तियों को देख... से आँखों को सुख पहुँचता है और हृदय आनन्द-वि... करता है। रोदाँ की मूर्ति-कला जीवन को रोमान्स... चमत्कृत कर देती है। सच पूछा जाये तो रोदाँ अपने ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


का अकेला था। जीवन के यथावत् चित्रण में उसका शैली-निर्वाह, उसकी विचार-शृंखलायें, ऐसा लगता है जैसे उसकी मृत्यु के साथ ही सो गईं और पुनः उन्हें जगाया नहीं जा सकता है।

## एप्सटीन ( १८८० )

रोदाँ के बाद के समकालीन शिल्पियों में सर्वश्रेष्ठ है जेकब एप्सटीन। पहले-पहल वह उच्चकोटि का चित्रकार था पर अब वह अपनी पूर्व-धारा को छोड़, यथार्थवाद की ओर मुड़ा है। सहसा कल्पना-लोक से यथार्थ जगत में आ उतरने का कारण अज्ञात है। लाइसेस्टर गैलरी में प्रदर्शित स्वनिर्मित एप्स्टीन दम्पति का चित्र देख जब एक ने उसे सराहा था तब एप्सस्टीन ने इन शब्दों में जवाब दिया था। "यदि मैंने कुछ भी ऐसा किया है तो मैंने कुछ भी नहीं किया। मैंने केवल जो कुछ देखा है उसी की नक़ल कर दी है।" इन दिनों, अपना अधिकांश समय एप्स्टीन रूप-कालंकरिक एवं सूक्ष्म विषयों को अंकित करने में व्यतीत करता है। दिवस ( Day ), रात्रि ( Night ), उत्पत्ति (Genesis ) ईसा, ( Christ ) आदि उसकी रूपकालंकारिक मूर्तियाँ हैं। सेन्ट जेम्स पार्क के तहख़ाने को सजाने के लिए उसने इन मूर्तियों को बनाया था। इन मूर्तियों ने जनता में खलबली पैदा कर दी थी। इन दिनों एप्स्टीन की शैली यथार्थ से कोसों दूर विकृत-रूप-रंग का निर्वाह कर रही है चूंकि निग्रो-आर्ट को प्रधानता देने के लिए एप्स्टीन ने इस नये स्कूल का सृजन किया है। इसकी टेकनीक बेडौल है एवं एनॉट्मी औ प्रोपोर्शन विकृत हो गए हैं। पर एप्स्टीन के मतानुसार, निग्रो-आर्ट का यह बेढंगा प्रकटीकरण वास्तव में मानवी-मस्तिष्क पर ज़रूर प्रभाव जमाता है बजाय पाश्चात्य-मूर्ति-कला के अन्यान्य शैली-निर्वाह के। हां, अपनी हाल की रचनाओं में उसने निग्रो आर्ट और निग्रो-टेकनीक का न केवल पूर्णोपयोग किया है बल्कि उसने निग्रो आर्ट की टेकनीक का उपयोग कर मिश्रित-रूपेण मूर्ति-सृजन किया है। एप्स्टीन से पूर्व के शिल्पियों ने बराबर, दर्शकों को सुख पहुंचाने की कोशिश की है पर वह दर्शकों को वशीभूत कर लेने की कोशिश करता है और इसकी क्षमता रखता है। काम के समय वह एकाग्र-चित्त हो आता है। यही वजह है कि उसकी मूर्तियां विकलांगिनी हो जाती हैं।

ग्रीस के प्राचीनतम कुशल शिल्पी एकमात्र बाह्य रूप पर ध्यान जमाते थे। वे अन्तरात्मा तक प्रवेश कर जाने का प्रयत्न न करते थे। माइकेल एंज्लो ने इसी से अपनी विचार-धाराओं को भाव-भंगिमा के सहारे बांध रखा है। उसकी मूर्ति-कला में हम Deformiy या Malproportion का दोष नहीं निकाल सकते हैं। उसकी प्रतिमायें सूक्ष्म होने पर भी जीवित-सी लगती हैं। एंज्लो में केवल यही दोष था कि वह यत्र तत्र कृत्रिमता का सहारा लिया करता था। रोदाँ की मूर्तियों में हम इस सुन्दरतम-प्रकटीकरण का भाव पाते हैं पर उसका शैली-निर्वाह थोड़ा बहुत रूखड़ा एवं क्लिष्ट था ग्रीक-मूर्तिकला के ठीक विपरीत। एप्स्टीन की मूर्तिकला में हम यह बात पाते हैं कि शिल्पी का हाथ न केवल शरीर-विद्या में ही कांपता है अपितु प्रोपोर्शन में भी। उसकी हाल की रचनाओं में वस्तु जगत का पूर्ण विरोधाभास हम पाते हैं। एप्स्टीन के शिष्य एक ऐसे स्कूल की स्थापना करना चाहते हैं जो प्राकृतिक और यथार्थ का प्रतिनिधित्व कदापि न करे। इस स्कूल के प्रमुख शिष्यों में से एक है—लियो अन्डरवुड। रोदाँ का एक प्रमुख शिष्य है बर्डले जो एक अनोखे ही स्कूल का संस्थापक है।

पाश्चात्य-मूर्तिकला के क्षेत्र में ये तीनो—माइकेल एन्ज्लो, रोदाँ और एप्स्टीन इसीलिए महान हैं चूंकि तीनों ने पाश्चात्य-मूर्ति-कला की धारा को अपने ढङ्ग से मोड़ने में सफलता प्राप्त की है।

पाश्चात्य मूर्तिकला का भविष्य समय के गर्भ में है और गर्भ की बात कौन जानता है! पर हम इतना तो अनुमान अवश्य लगा सकते हैं कि पाश्चात्य मूर्ति कला की धारा अब, एप्सटीन के बाद बेढंगा रुख ही अख़्तियार करेगी। चूँकि आधुनिक शिल्पी एप्स्टीन की ही नक़ल करने लगे हैं। अस्तु !!

अन्त में हमें यही कहना है कि—

"रूप और शैली कैसी भी हो, भावनात्मक लाने के लिए मूर्ति निर्माण कला के मूल में यथार्थ की आवश्यकता है अन्यथा कलाकार असफल रहेगा।"

—



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पोलैण्ड का साहित्य

श्री कमल कुलश्रेष्ठ एम० ए०

सोलहवीं शती में पोलैण्ड के निवासियों ने अपने साहित्य की रचना के लिए लैटिन भाषा को हटाकर पोलिश भाषा को स्थान दिया। उस समय से आज तक के पोलिश साहित्य के इतिहास को हम निम्न सात कालों में बाँट सकते हैं:

१—स्वर्णयुग ( १५४३-१५९६ ई० )

इस युग के प्रमुख व्यक्तित्व मीकोलाय रेय, फित्स्ज़मोद-ज़ेवस्की तथा कॉहॉनावस्की हैं। रेय सामयिक विषयों पर छोटी बड़ी कविताएं लिखा करता था। परन्तु वह कवि की अपेक्षा एक प्रतिभाशाली निबन्ध एवं व्यंग लेखक अधिक अच्छा था। वह अपने अशिक्षित बन्धुओं को इसी माध्यम से अपने सन्देश सुनाया करता था। सन् १५४३ ई० में इसकी पहली रचना प्रकाशित हुई और उसी समय से पोलिश साहित्य का जन्म हुआ। मोदज़ेवस्की ने जनता के लिए अपनी लेखनी उठाई थी। उसने उच्च वर्ग के बड़े भाग तक अपनी आवाज़ को उठाने के लिए लेटिन भाषा में पोलिश भाषा की अपेक्षा अधिक लिखा। इसका गद्य बड़ी ऊँची कोटि का है।

इस युग का सब से बड़ा कवि काहानावस्की है। यह अपने विद्यार्थी जीवन में ही फ्रांस और इटली में रहा था और फ्रांसीसी साहित्य के जन्मदाताओं की संगति का इसे सौभाग्य प्राप्त हो चुका था। यह अपने विद्यार्थी जीवन में ही विदेशों से अपने मित्रों के पास अपनी कविताएं भेजा करता था और मित्र उनकी प्रशंसा करते थे। फलतः सिगिस्मण्ड द्वितीय ने इसे अपना राजकवि नियुक्त कर लिया। इसके गीत प्रायः ग्राम जीवन से सम्बन्धित होते थे। इसने कई ऐलिजियां* भी लिखीं उनमें वह ऐलिजी जिसे इसने अपनी पुत्री उर्सुला की मृत्यु पर लिखा था सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसने कुछ व्यंगात्मक काव्य भी रचा है; किन्तु काहानावस्की की कीर्ति का सब से बड़ा आधार 'डेविड के गीत' का पोलिश अनुवाद है। तुलसी के राम चरित मानस की भांति यह पोलैण्ड में अत्यन्त लोक प्रिय है। वहाँ शायद ही कोई घर हो जिसमें इसकी एक प्रति न हो। पोलैण्ड के प्रत्येक गिरजेघर में इसका ९१ वां गीत हमेशा गाया जाता है। इसने एक नाटक भी लिखा जो पोलिश साहित्य का आदि नाटक माना जाता है। पोलिश साहित्य में आदि मौलिक गीतकाव्यकार भी यही है।

१—जागृति युग ( १५९६-१७०० ई० )

पिछले पचास वर्षों में पोलिश साहित्य की रचना द्वारा पोलिश भाषा का परिमार्जन हुआ। इसमें मुहावरे का भी निर्माण हुआ जिनसे भावी लेखकों को बड़ी सहायता मिली। किन्तु इस समय पोलिश संस्कृति ईसाई पादरियों के अत्यधिक प्रभाव में आ गई और इस कारण साहित्य को क्षति पहुंची। सत्रहवीं शताब्दी में पर्याप्त साहित्य रचा गया परन्तु उसका अधिकांश निम्न कोटि का है। १७५० ई० तक पोलैंड का पश्चिम से सांस्कृतिक सम्बन्ध टूटा रहा और इससे उसे बड़ी हानि हुई। कॉहॉनावस्की के ग्राम जीवन सम्बन्धी गीतों की परम्परा में इस युग में शिमॉनॉविच ने गीत लिखे। उनमें इस कलाकार ने सामाजिक तथा आर्थिक एकता का प्रश्न भी उठाया। ऑपालीनस्की की कविताओं में भी इसी विचारधारा के दर्शन होते हैं। इस युग में एण्ड्रू मार्शतीन ने फ्रांसीसी व्यंजना की शैली में अपने प्रेम के गीत लिखे। जान पासेक ने अपने संस्मरण गद्य में लिखे जो कि इस शताब्दी के गद्य के ज्वलंत उदाहरण हैं। इस योद्धा ने कई युद्धों में भाग लिया था और देश विदेश देखे थे। इसके संस्मरण पढ़ने में ऐतिहासिक रोमांस पढ़ने का सा आनन्द आता है।

२—क्लासिकल पुनरुत्थान युग ( १७५०-१८०० ई० )

विशप इग्नेत्स क्राशीत्स्की इस युग का सर्व प्रधान कवि है। इसकी अक्षय कीर्ति का आधार छोटी छोटी उपदेशात्मक एवं व्यंजनात्मक कहानियां हैं। वह अपने विश्व प्रेम की भावना का प्रचार अपनी इन कहानियों द्वारा करता था। पादरियों एवं सामयिक समाज सुधार के प्रति यह विशेष सजग था। इसके उपन्यास एक आदर्श संसार की कल्पना में व्यस्त हैं। क्राशीत्स्की का दृष्टिकोण आशावादी था। वह समाज से पहले व्यक्ति का सुधार चाहता था। इसके पश्चात् फ्रांशिस कास्पीनस्की तथा वॉयशीएह का नम्बर आता है। पहला एक सुप्रसिद्ध गीत काव्यकार था और दूसरा पोलिश नाट्यमंच का संस्थापक। इस युग में लोकप्रिय नाटक का प्रारम्भ पोलैण्ड में हुआ। इसका एक नाटक 'आश्चर्य' पोलैण्ड में ही १७९०-१८२० ई० में १४० बार खेला गया था। पादरी स्ताशीक ने नीति एवं राजनीति विषयक दो ग्रंथ लिखे।

* एलिजी (Elegy)—एक प्रकार की शोक विषयक कविता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



४—रोमांसवादी युग ( १८००-१८६० ई० )

रूसो, हरडर एवं बर्न्स के द्वारा प्रतिक्रियात्मक विद्रोह की भावनाएं सारे यूरोप में १७९९ के लगभग फैलाई जा चुकी थीं। साहित्य में स्वदेश-स्वतन्त्रता के रूप में यह विद्रोह १८१५ ई० के बाद दिखाई पड़ा। इस युग का सर्वश्रेष्ठ कवि आदाम मीत्स्कीएवीच है। इसकी कविता के विषय जन साहित्य से लिए हुए थे। इसने एक 'पूर्वज' शीर्षक नाटक भी लिखा। इसकी रचनाओं में पोलैण्ड अपने इतिहास के पृष्ठों की मनोरम झांकियां दिखला रहा है। इसका 'यौवन का गीत' ( १८२२ ) उस समय अत्यन्त लोकप्रिय था और यूरप की कई भाषा में अनूदित भी हुआ। यह पोलैण्ड का महान राष्ट्रीय कवि था। यह साहित्यकार होने के साथ देश में एक क्रियात्मक कार्यकर्त्ता भी था। अपनी राष्ट्रीय कार्यशीलता के कारण रूस की सरकार ने इसे पर्याप्त कष्ट देश निकाला और कारावास के रूप में दिए। १८३०-३१ वाले राष्ट्रीय युद्ध में यह कवि बराबर अपने देश को जगाता रहा। उसकी उन कविताओं को पढ़कर आज भी खून में उबाल सा आ जाता है। पोलैंड की माताओं को जो सन्देश कवि ने दिया है, वह अमर है।

मीत्स्कीएवीच के साथ ही साथ यूलीउस स्लावत्स्की तथा सिगिस्मंड क्राशीन्स्की का नाम भी स्मरणीय है। इनमें स्लावत्स्की तो क्रान्तिकारी था और सिगिस्मंड एक निराशा वादी दार्शनिक। मीत्स्कीएवीच की भांति इनको भी राजकीय कोप का भाजन बनना पड़ा था और इनकी रचनाएं पोलैंड में ज़ब्त थीं। स्मरणीय एवं द्रष्टव्य यह है कि स्लावत्स्की क्षय रोग से ग्रस्त था। 'स्विटज़रलैंड में' 'बेनीवस्की' 'नृपात्मा' 'वैलाडीना' 'लीलाबेनेडा' तथा 'माज़ेपा' उसकी सुप्रसिद्ध रचनाएं हैं। इसके नाटकों पर शेक्सपियर का प्रभाव है। वह एक महान गीत-काव्यकार, प्रतिभा-वान नाटककार और निर्भय तथा खरा आलोचक था। १८३०-३१ के युद्ध की गहरी छाप इसकी रचनाओं पर भी है। व्यंग के द्वारा भावों की व्यंजना इसका अपना गुण है। इसकी भावनाओं में विशेष गहराई है।

केसीन्स्की ने अपने 'भौतिक सुखान्त नाटक' के द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त की थी और 'भविष्य के गीत' लिखकर अमरता। प्रारम्भ से पिता से असंतुष्ट रहने के कारण यह कवि इस युग में बेचैनी, अस्थिरता और घबराहट का सब से बड़ा कवि है। 'हरीडियन' में कवि ने प्रेम और घृणा की समस्या पर ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि को लेकर प्रकाश डाला है। समाज के लिए यह आशावादी था। उसकी बहुत सी कविताओं में संसार की उन्नति के स्वप्न मिलते हैं। कहीं कहीं यह कवि रहस्यवादी भी हो उठा है।

इन साहित्यकारों के अतिरिक्त इस युग में मालचेवस्की, जालेस्की और गोज़ल्स्जिनस्की प्रसिद्ध हैं। एलेक्जेंडर फ्रेंड्रो ने इस युग में सुखान्त एवं आशावादी नाटकों की रचना की। इसकी रचनाओं में भावनाओं की अपेक्षा विचारों को अधिक स्थान मिला है। यह स्वयं नेपोलियन की सेना में रह चुका था। इसे हम पोलैण्ड का मालियर कह सकते हैं। 'मिस्टर जोवियलिटी' और 'स्त्रियां और हुस्सार' इसके सुप्रसिद्ध नाटक है।

५—यथार्थवादी युग ( १८६०-१८९० ई० )

रोमांसवादी युग की संध्या का धुंधला प्रकाश यथार्थ-वादी युग के प्रारम्भ की सूचना दे रहा था। प्रतिभावान कवि रोमांसवादी युग में प्रायः देश निकाला प्राप्त कर रहे थे और इस युग में भी यह प्रवृत्ति चलती रही। इस युग में स्त्रियों ने सबसे पहले साहित्य रचना में भाग लिया। मेरी कोनोपतित्स्का का नाम इस दिशा में उल्लेखनीय है। उसकी कविताओं में यथार्थवाद के साथ साथ सामाजिक न्याय के प्रति तीव्र पुकार थी। वह अपने साहित्य में पोलैंड के उगते राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए बड़ी चिंतित थी। आज भी उसके गीत और कहानियां स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं। उसने एक महाकाव्य भी रचा जिसका नाम 'ब्रेज़िन में बालत्सर' है। इसमें देश निकाला प्राप्त पोलैंड निवासियों का मार्मिक चित्र खींचा गया है। इस युग का दूसरा प्रसिद्ध कवि आदाम आसनिक है।

छोटे छोटे पेम्फलेटों, पत्रकार कला एवं उपन्यासों की विशेष उन्नति इस युग में हुई। सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं पर एलेकज़ेन्डर स्वीएताचावस्की ने बहुत सी पेम्फलेटें लिखीं। उसकी शैली बड़ी मार्मिक है। उपन्यास के क्षेत्र में एलिज़ा आरज़ेशकावा का नाम भुलाया नहीं जा सकता। उत्तरी पूर्वी पोलैंड के कृषक जीवन का सुन्दर चित्रण इस लेखिका ने अपने 'नीएमेन पर' तथा 'बूर' में किया है। उसके उपन्यास पढ़ते समय जार्ज इलियट की याद आती है और कहानियां पढ़ते समय हार्डी की। कथा साहित्य में दूसरा उज्ज्वल नाम बोलसलाव प्रूस का है। उसकी कहानियां आज भी हाई स्कूलों के विद्यार्थी पढ़ा करते हैं। उसने उपन्यास भी लिखे और पोलैंड के ग्रामीण जीवन का चित्रण किया। परन्तु उससे अधिक यश हेनरी सीएनकीएवीत्स्ज़ को मिला है। वास्तव में यह व्यक्तित्व साहित्य के इतिहास के दृष्टिकोण से विशेष महत्व पूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यह एक पत्रकार और कहानी लेखक था। इसने अपनी रचनाओं के द्वारा देश में साहस जगाया और पोलैंड पर किए गए अत्याचारों से बदला लेने की हिम्मत बंधवाई। यह पहला पोल था जिसे साहित्य का नोबुल पुरस्कार मिला।

६—नवीन विकास युग ( १८६०–१६१८ ई० )

पोलैंड साहित्य के उपर्युक्त अन्तिम तीन युग पीड़ित पोलैंड की आत्मा की कराहों से भरे थे। एक राष्ट्र अपनी सत्ता की रक्षा के लिए विकल था। रोमांसवादी सपनों को छोड़ वह यथार्थ के धरातल पर आया और वहां भी उसे शान्ति न मिली तो उसने अपने विकास को धीमें से मोड़ा और महायुद्ध की पृष्ठ भूमि को तैयार करने लगा।

इस युग में साहित्य एक बड़े परिमाण में रचा गया। सच तो यह है कि इतना साहित्य देखकर पोलिश साहित्य के एक साधारण विद्यार्थी को आश्चर्य में रह जाना पड़ता है। यान कासप्रॉवीत्स्ज़ जो कि एक साधारण किसान का लड़का था, इस युग का सब से बड़ा कवि है। एक साधारण नागरिक का पुत्र स्तानीस्लाव विसपीआनस्की इस युग का एक महान नाटककार है। त्सासीमीर इस युग का एक बड़ा गीत काव्यकार है। इस युग में लूत्सीयन रिडेल ने धार्मिक नाटकों की रचना की। व्लाडिस्लाव रेमान्ट ने उपन्यास लिखे। सन् १९२४ में, अगले युग में इसी उपन्यास को नोबुल पुरस्कार मिला है। स्तीफेन जेरॉमस्की ने इस युग में समाजवादी उपन्यासों की रचना की।

इस युग का सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार कासप्रॉवीत्स्ज़ है। यह मौलिक रचना के साथ ही साथ अनुवादों के द्वारा भी अपने साहित्य के भण्डार को भर रहा था। इसने शेली और ब्राउनिंग की अङ्गरेजी कविताओं का बड़ा सुन्दर अनुवाद पोलिश भाषा में किया है। मौलिक रचनाओं में उसने पाप पुण्य तथा व्यक्ति और समाज की जो व्याख्या की है वह पाठक के हृदय पर गहरी चोट करती है। यह अपने विचारों में साम्यवादी था। इसकी 'दीनों की पुस्तक' सबसे अधिक प्रसिद्ध रचना है। यह स्मरणीय है कि इस लेखक की रचनाएँ साधारण पाठक के लिए पर्याप्त दुरूह हैं।

विसपीआनस्की के नाटकों में राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना कूट कूटकर भरी हुई है। पोलैंड को उठाने का, जगाने का और स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने की प्रेरणा वह पोलिश साहित्य का लक्ष्य मानता था। रेमॉन्ट ने साधारण जनता के चित्र अपने उपन्यासों में खींचे। उसका 'कृषक' उपन्यास सारे यूरोप में प्रसिद्ध हुआ। जेरॉमस्की क्रांतिकारी विचारों से भरा हुआ था। उसकी कृतियों में दलितों के लिए करुण सम्वेदना है और उन्हें उठाने के प्रयत्न का चित्र है। एक साहित्यकार इससे अधिक कुछ भी नहीं कर सकता। 'बेनाम जनता' और 'राख' उसकी सुप्रसिद्ध कृतियां हैं।

इसके अतिरिक्त इस युग में तीन उपन्यासकार और प्रसिद्ध हैं—वात्स्लाव सीएरोशेवस्की, योसेफ वेहस्तेनहे तथा मारी रादज़ीएवीत्स्ज़ोवना। पहले को देश निकाला मिला था। उसने साइबोरिया के सुन्दर चित्र खींचे हैं। दूसरे अपने विचारों में साम्यवादी था। दूसरे की सर्वश्रेष्ठ कृति 'पादफीलोपस्की का जीवन' है।

७—स्वतंत्र युग ( १६१६—१६३६ ई० )

इस युग के समस्त पोलिश साहित्य की एक मात्र पुकार प्रजातंत्रवाद की है। इस युग के सभी बड़े साहित्यकार निम्न वर्ग अथवा निम्न मध्य वर्ग के हैं। स्त्रियों भी ने साहित्य रचना में पर्याप्त हाथ बँटाया है।

लेओपाल्यस्ताफ तथा रॉस्तॉवरॉवस्की इस युग के सुप्रसिद्ध एवं प्रतिभावान कवि हैं। इनकी रचनाएं क्लासिकल शैली में लिखी गई हैं। लेचॉन तथा तूवीम इस काल के उल्लेखनीय गीत नाटककार है और रीत्तनर तथा व्लॉदज़ीमीएर्ज़ प्रतिभावान नाटककार।

गद्य की विविध शैलियों का विकास हो रहा है। जीवन साहित्य भी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के कारण पनप उठा। निबंध साहित्य अभी विशेष उन्नति नहीं कर सका। सामाजिक उपन्यास इस युग में विशेष लोक प्रिय है। वान्दा नाल्कोवस्का, मारीआ दाब्रॉवस्का, आन्द्रू स्नूगवर बेरनेट इस युग के प्रतिभाशाली उपन्यासकार हैं।

संक्षेप में पोलिश साहित्य का यही इतिहास है।

पोलिश साहित्य में जीवन दर्शन की अपेक्षा जीवन की प्रगति के चित्र अधिक हैं। पोलैंड के निवासियों के पास इतना समय कभी नहीं रहा कि वे जीवन-दर्शन सम्बन्धी वाद विवाद को अपने साहित्य में स्थान दे सकें। पोलिश साहित्य में व्यङ्ग और आशावाद को हरदम स्थान मिलता रहा है। आध्यात्मिकता की यहां पर पर्याप्त कमी है। पोलिश साहित्य में नारी का स्थान बड़ा ही प्रमुख रहा है। प्रमुख से हमारा तात्पर्य ऊँचे से नहीं है। यहां पर नारी नर की सहचारिणी के रूप में पर्याप्त चित्रित हुई है। एक स्वतन्त्र राष्ट्र का साहित्य होने के नाते यह हरदम स्वतन्त्रता का हामी रहा है। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र सभी की स्वतन्त्रता में इसका दृढ़ विश्वास है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# तुर्की का सांस्कृतिक नव-जागरण

डाक्टर बे बुरहान बल्गी

तुर्की में पिछले बीस वर्षों में जो ज़बरदस्त राजनैतिक और सामाजिक नव जागरण हुआ है उसकी तड़क भड़क ने तुर्की जीवन की कई बुनियादी बातों को प्रकाश में नहीं आने दिया। अधिकांश लोगों को यह ग़लत फ़हमी है कि तुर्की राष्ट्र ने न केवल अपनी वेश भूषा और रहन सहन पर ही पाश्चात्य रङ्ग चढ़ा लिया है बल्कि तुर्की की आत्मा भी विलायती वेश में रङ्ग गई है। किसी तुर्क से यदि आप बात करें तो वह आप को जवाब देगा कि तुर्की ने ज़ाहिरा पाश्चात्य सभ्यता की इसलिये नक़ल नहीं की है कि तुर्की-संस्कृति को पाश्चात्य सभ्यता की ज़रूरत थी बल्कि इसलिये कि तुर्की को कोई न कोई तरीक़ा अपनाना था। उसे यह फ़ैसला करना था कि अया उसे पहले की तरह एक पूर्वीय देश बना रहना है या उसे यूरोपीय राजनीति में सफल हिस्सा लेना है। पहले यूरोपीय युद्ध के नारों के साथ साथ पैन-इसलाम और पैन-तूरान के नारे भी ख़त्म हो गये थे और तुर्कों को अपनी आइन्दा की ज़िन्दगी के लिये एक ऐसा फैसला करना था कि जिसका ताल्लुक़ उनकी क़ौम की हस्ती से था। यदि उसे सीधी सादी पूर्वीय शक्ति बना रहना होता तो वह अपना पूर्वीय रहन सहन क़ायम रखकर उन तमाम नतीजों का सामना करने के लिये तय्यार रहता जो आज पूर्वीय मुल्कों को भुगतने पड़ रहे हैं। इसका अर्थ यह होता कि उसे इसलामी मुल्कों की दक़ियानूसी नीति को अपने गले में फाँसी की तरह लटकाये रहना पड़ता और इसके लिये नव-तुर्की के नेता तय्यार नहीं थे। उसे पश्चिमी देशों के शोषण के लिये अपना आत्म समर्पण करना होता और तुर्कों की नई पौध को इससे सख़्त नफ़रत थी। इन सब बातों ने उसे मजबूर कर दिया कि वह एक पश्चिमी देश बने और पश्चिमी देशों के साथ अपने सम्बन्ध को बढ़ाये और जब उसे पश्चिमी देश बनना ही है तो उसने फैसला किया कि वह अपने झगड़े चोगों और दसवीं सदी के रीति रिवाजों को क़ायम रखकर यूरोपीय देशों के बीच न केवल घाटे में रहेगा बल्कि एक ऊल-जलूल तमाशा मालूम पड़ेगा। किसी तुर्क से यदि आप पूछें तो वह आपको जवाब देगा कि "हमने हैट और पैण्ट इसलिये पहनने शुरू किये कि पश्चिमी संस्कृति के साथ हमारा मेल बैठ सके।" किन्तु तुर्कों की पश्चिमी वेश भूषा किसी बात का कारण नहीं बल्कि परिणाम है। तुर्कों का यह फैसला बुनियादी है क्यों कि बग़ैर इसके तुर्की व्यापारी यूरोपीय तरीक़ों, यूरोपीय बाज़ारों और यूरोपीय तिजारती संगठन से बेख़बर रहते और तुर्की जनतंत्र को जो धन की ज़रूरत पड़ती वह पूरी न होती क्यों कि उसे अपनी औद्योगिक उन्नति के लिये धन पश्चिम से ही मिल सकता था।

किन्तु न केवल यूरोपीय वेश भूषा और रहन सहन ही तुर्की के ऊपर छा गया बल्कि उसके साथ साथ उन्होंने और भी बहुत सी फ़ायदेमन्द बातें अपनाईं। उन्होंने सब से बड़ी बात यह सीखी कि तुर्क जनता के लिये लाज़मी और उचित शिक्षा बेहद ज़रूरी है। पढ़े लिखे तुर्क तुर्की प्रजातंत्र के लिये बहुत लाभप्रद साबित होंगे और इसलिये तुर्की में कला, साहित्य और विज्ञान को ख़ूब प्रोत्साहन दिया जाना शुरू किया गया। इस शिक्षा के क्षेत्र में पश्चिमीकरण ख़ाली शिक्षा के तरीक़ों में हुआ, शिक्षा की भावना और उसका भाव सब शुद्ध तुर्क ही रहे। शिक्षा का तरीक़ा उनका फ्रान्सीसी है। फ्रान्स के स्कूलों, कालिजों, नार्मल स्कूलों और विश्वविद्यालयों में जिस ढंग और प्रणाली से शिक्षा दी जाती है वह ढंग और प्रणाली तुर्की में अपनाई गई है। किन्तु पाठ्य-क्रम में तुर्की विद्यार्थियों को उनका अपना इतिहास, अपना तुर्की साहित्य, अपनी कविता और अपनी कला को ज़ोर देकर सिखाया जाना शुरू किया गया। इस काम को प्रोत्साहन देने के लिये तुर्की में एक आन्दोलन शुरू किया गया जिसे "तुर्कोदजाग" आन्दोलन कहा जाता था। इस आन्दोलन के ज़रिये तुर्की का जो पारिवारिक संगठन था उसको क़ायम रखने पर ज़ोर दिया गया। इस आन्दोलन के ज़रिये तुर्की कला और साहित्य के समस्त रूप, तुर्की उद्योग-धन्धों और रस्म रिवाज को जीवन देने का प्रयत्न किया गया। तुर्की के पुराने उस मानी साम्राज्यवाद ने इन चीज़ों को हर तरह दबाने की कोशिश की थी और नई पाश्चात्य सभ्यता के असर में आकर तुर्कों के इसे भूल जाने का ख़तरा था। इस आन्दोलन के ज़रिये तुर्कों ने अपने तुर्कपन को प्राणपण से जीवित और जाग्रत बनाये रखा। नतीजा यह हुआ कि तुर्क ऊपर से तो यूरोपीय बन गए किन्तु उनके भीतर तुर्क आत्मा क़ायम रही। कमाल अतातुर्क ने इस आन्दोलन का संरक्षण किया। उनके हृदय में प्राचीन तुर्की के गुणों की क़द्र थी। इस आन्दोलन के फलस्वरूप तुर्की की वह समस्त कला अक्षुण्ण रखने की कोशिश की गई जिसने सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में सारी दुनिया में बोल बाल



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



था और जो मुसलमानों की सर्वोच्च कला समझी जाती थी। सुलेमान सलीम और अहमद के ज़माने की तुर्की की मसजिदों की कलापूर्ण भीतरी नक़्क़ाशी और पच्चीकारी, तुर्की की मिनियेचर चित्रकला, तुर्की के बेल बूटे और सुन्दर हस्तलिखित ग्रन्थ, इमारती निर्माण कला और धर्म स्थान आदि को फिर नये सिरे से और विनम्र तरीक़े से तुर्की में आज जीवित करने की कोशिश की जा रही है। तुर्की के जनतंत्र के पहले के तीन या चार सुलतानों के ज़माने में जो भी कला का सृजन किया गया उसमें १६ वीं सदी की श्रेष्ठ तुर्की कला के बजाय हमें लुई फ़िलिप और प्रारम्भिक विक्टोरियन कला ही अधिक दिखाई देती है। तुर्की की प्राचीन कला को इन सुलतानों ने निर्दयतापूर्वक नष्ट भ्रष्ट कर उसकी जगह यूरोप की बेढंगी कला लादने की भरसक कोशिश की। इसकी मिसालें हमें सुलतान यिलदिज़ और सुलतान अब्दुल अज़ीज़ के बाग़ों और सरायों की इमारतों में देखने को मिलती हैं।

किन्तु आज यद्यपि कुस्तुनतुनिया का शहर रोज़ बरोज़ ज़्यादा से ज़्यादा यूरोपीय रंग में रँगता जा रहा है किन्तु उसकी इमारतों की शैली और इस्ताम्बूल के बीचों बीच नई बनी हुई इमारतों की शैली और इसी तरह की दूसरी इमारतों की शैली हर तरह से पूर्वीय है और प्राचीन और शुद्ध तुर्की निर्माण कला यानी सेलजूक तुर्कों की निर्माण कला के अनुरूप है जिनकी इमारतों के शानदार अवशेष अब तक कोनिया में मौजूद हैं और जिसका एक गौरवपूर्ण नमूना अब भी कुस्तुनतुनिया की पुरानी इमारत 'चिनली किआस्क' के रूप में खड़ा हुआ है और जिसे बहुत मुनासिब तरीक़े से तुर्की की उसमानी कला का म्यूज़िअम बना दिया गया है। तुर्की के प्राचीन अवशेषों को सुरक्षित रखने की हर प्रकार कोशिश की जा रही है और पुरातत्व विभाग के अन्तर्गत तुर्की की प्राचीन बाइज़नटाइन कला की इमारतें और अवशेष भी शामिल हैं। पुरातत्व की खोजों में सभी तुर्क विद्वान दिलचस्पी लेते हैं और अपने देश के पुरातन इतिहास पर गौरव अनुभव करते हैं। म्यूज़िअम में जनता की दिलचस्पी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। सिराइ के म्यूज़िअम में जनता इस्ताम्बूल के सुलतानों की बेशक़ीमत दौलत को निरख परख सकती है। म्यूज़िअमों में जाने वाले दर्शकों की बेशुमार तादाद देखकर हैरत होती है। उन तमाम विदेशी पुरातत्ववेत्ताओं को प्रजातन्त्र की ओर से हर प्रकार की सुविधायें दी जाती हैं। इस्ताम्बूल के पुराने 'सेरासकेरात' (जंग के दफ़्तर) में अब एक विश्वविद्यालय खुल गया है। अंकारा एक ऐसी तुर्की की राजधानी जो वास्तविक अर्थों में तुर्क है। कुस्तुनतुनिया तुर्की प्राचीन और पवित्र शहर है। पहले वह एक यूनानी था और वहां इस बात को साफ़ साफ़ देखा जा सकता कि किस तरह उस शहर में पूर्वीय और पश्चिमी संस्कृति का समन्वय हुआ। सांस्कृतिक समन्वय का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले के लिये कुस्तुनतुनिया में बेहद सामग्री मिलती है जिसका अध्ययन करके आधुनिक तुर्क अपनी रुचियों को परिष्कृत कर सकते हैं। उसका बहुमूल्य प्राचीन ख़ज़ाना आज दर्शकों के लिये खुला हुआ है और उसके हस्तलिखित ग्रन्थों के ढेर का अवलोकन और उसकी प्राचीन इमारतों का अध्ययन किया जा सकता है। इस्ताम्बूल में एक म्यूज़िअम में उसमानी तुर्कों की कला है और एक दूसरे म्यूज़िअम में खत्ती, असुरी और प्राचीन आर्य कला के अवशेष संग्रहीत हैं। वहां के विश्वविद्यालय में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों और चित्रों का एक अच्छा ज़ख़ीरा जमा किया गया है जिसकी वजह से इस्ताम्बूल तुर्की संस्कृति का आज प्रधान केन्द्र बना हुआ है।

कुस्तुनतुनिया में अब तुर्की रंग-मंच (स्टेज) का संगठन भी हो गया है। पुराने तर्ज़ के तुर्क हमेशा यूनानी या जर्मन एक्टरों के अभिनय को पसन्द करते थे। अब एक शुद्ध तुर्की अभिनय-मंडली बन गई है जिसका इन्तज़ाम कुस्तुनतुनिया की म्युनिसिपैल्टी के हाथों में है और जिसके अभिनेता और अभिनेत्रियां सब तुर्क हैं। इन लोगों का अभिनय अत्यन्त ऊँचे दरजे का होता है और उसका दुनियाँ के किसी भी रंग मंच से मुक़ाबला किया जा सकता है। शेक्सपीयर और इब्सन के नाटकों को तुर्की जामा पहनाकर बड़ी सुन्दरता के साथ अदा किया जाता है।

तुर्की के इस सांस्कृतिक नवजागरण के अन्दर कोई संकुचित भाव नहीं हैं। पाश्चात्य सभ्यता की ज़्यादती के ऊपर यह नवजागरण एक अंकुश का काम करता है। जैसे ज़िन्दगी का ढङ्ग और रहन सहन बदलते जा रहे हैं वैसे वैसे प्राचीन जीवन में जो कुछ सर्वोत्तम था तुर्क उसे अंगीकार करते जा रहे हैं। इसी में तुर्की के सांस्कृतिक नव जागरण का रहस्य है और इस तरह प्राचीन जीवन के उन सर्वोत्तम अवशेषों की रक्षा हो रही है जो सुलतानों की हुकूमत में फीके पड़ते जा रहे थे और नई अधकचरी हवा के असर में जिन्हें लोग अवज्ञा के साथ छोड़ते और भुलाते जा रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पुस्तक परिचय

यहाँ आँसू बहाना है मना—( कहानी-संग्रह )—लेखक, राधेश्याम मिश्र; प्रकाशक, विद्या मन्दिर लिमिटेड, कनाट सरकस, नई दिल्ली; मूल्य १॥), पृष्ठ संख्या १२३।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक की ६ कहानियों का संग्रह है। सारी कहानियों का विषय भारतीय जेलों का जीवन है। वास्तव में इस संग्रह को पढ़ने पर हमारी आँखें इस दिशा में खुल जाती हैं। हमारी जेलें सुधार करने के बदले मनुष्य को कितना पतित बना देती हैं, इसके यथार्थ चित्र इस पुस्तक में मिलते हैं। 'नंगा' शीर्षक कहानी में मनुष्य की शिष्टता का विनाश दिखाया गया है कि कैसे मनुष्य जेल में जाकर स्त्रियों के सामने भी नंगा होने में शर्म नहीं खाता। कैदी के इस मनोवैज्ञानिक पतन का चित्र इस कहानी में बड़ा ही मार्मिक है। 'माल' में लेखक ने दिखलाया है कि अत्यन्त गन्दा गुड़ भी जो कि चोरी से जेल में कैदी बाहर से मँगवा लेते हैं, उतना ही स्वादिष्ट समझा जाता है जितना हम घी, दूध, मिठाइयों, और मेवों को समझते हैं। 'मुर्ग़ दिल मत रो यहाँ आँसू बहाना है मना' में लेखक ने दो भाइयों का मनोवैज्ञानिक पतन दिखलाया है। आत्मसम्मान को सर्वस्व मानने वाले ये भाई जेल में जाकर परिवर्तित होते हैं। एक तो शासकों का चापलूस बनकर मानवता का शत्रु बन जाता है और दूसरा मानवता के शत्रु की उत्पादक संस्था का शत्रु। पहला भाई बड़ा है और दूसरा छोटा। अन्त में बड़ा भाई छोटे को अफसरों की आज्ञा से बेतों की सज़ा देता है और इससे छोटा भाई पागल हो जाता है। इसके पुरस्कार स्वरूप बड़े भाई को कैदी वार्डर बना दिया जाता है। यह कहानी संग्रह में मास्टरपीस है। 'रंग में भङ्ग' कैदियों पर की गई सख़्ती की कहानी है। इसमें दिखाया गया है कि कैदियों को गाने तक की आज्ञा नहीं रहती। 'एक बीड़ी के लिए' में एक कैदी का मनोवैज्ञानिक पतन बीड़ी के लिए दिखलाया गया है। 'बदला' में जेल के अप्राकृत व्यभिचार का चित्र है।

जेल विषयक कहानी संग्रहों का हिन्दी में अभाव सा है, यद्यपि जेल जाने वालों की कमी नहीं। यह पुस्तक उस अभाव की पूर्ति करने के लिए है। यह कहानी संग्रह कला की दृष्टि से भी सुन्दर है। सभी कहानियाँ ऐतिहासिक शैली में लिखी गई हैं और मनोवैज्ञानिक होने के साथ साथ वातावरण पर अपनी नज़र गड़ाए हैं। हम इस पुस्तक का स्वागत करते हैं और पाठकों से अनुरोध करते हैं कि भारतीय जेलों से परिचित होने के लिये वे इसे अवश्य पढ़ें। साथ ही साथ हम यह भी अनुरोध करते हैं कि इसका अनुवाद अङ्गरेज़ी में हो तथा उसका प्रचार विदेशों में भी किया जाए।

समाज और साहित्य—( निबंध संग्रह )—लेखक, अंचल; प्रकाशक, मातृभाषा मंदिर, दारागंज, प्रयाग, मूल्य २) ; पृष्ठ संख्या २२१।

प्रस्तुत पुस्तक कवि अंचल के निबन्धों का संग्रह है। इसमें समाज और साहित्य के बीच के विभिन्न रिश्ते तो कम दिखाए गए हैं, हिन्दी प्रगतिवाद की व्याख्या करने की चेष्टा अधिक की गई है और प्रगतिवादी साहित्य तथा समाज के बीच का सम्बन्ध पर्याप्त स्पष्ट कर दिया गया है। प्रगतिवाद क्या है, इसकी, लेखक ने एक सीमित व्याख्या दी है। एक मात्र मार्क्सवादी साहित्य ही प्रगतिशील साहित्य कहा जाएगा, यह प्रगतिवाद को विशेष सीमाओं में बांधना है। प्रगतिवाद की सीमाएँ और अधिक विस्तृत हैं। प्राचीन भारतीय आदर्श जिनका लक्ष्य आध्यात्मिक सफलता था, आज टूट-से गए हैं। अब भारतवर्ष भौतिकवादी बन रहा है। इस भौतिकवाद से जीवन को जो मार्ग सफलता देगा, वही प्रगतिवादी कहा जाएगा। इसमें संदेह नहीं कि मार्क्सवाद उस समस्या का एक सुलझाव है अवश्य, परन्तु भारतीय संस्कृति की परंपराओं में उसके परिवर्तित स्वरूप को ही हम खपा सकते हैं। प्रसन्नता की बात है कि कम्यूनिस्ट लेखकों का ध्यान इस ओर जा रहा है। अन्य जो मार्ग सफलता के हैं उन पर प्रगतिवादी लेखकों का ध्यान अवश्य नहीं जा रहा है। परन्तु उन मनीषी आलोचकों का ध्यान जाना चाहिए जो साहित्य को दीपक दिखाते हैं। खेद है कि अंचल का ध्यान इस ओर नहीं गया।

लेखक के पास छोटे छोटे एक दो विचार हैं, उनको वह बार बार दुहरा रहा है। कहीं कहीं उसने हमें कुछ बहुत नई बातें बतलाई हैं। प्रेमचद में 'ससम्भव' का तत्त्व नहीं है। पता नहीं उसने प्रेमचन्द का 'प्रेमाश्रम' पढ़ा है अथवा बिना पढ़े ही वह वाक्य लिख दिया है। कहीं कहीं पर उसने बिना तर्क दिए हुए कुछ बातें लिखी हैं, जैसे, प्रत्येक सत्य शिव नहीं होता और सुन्दर तो होता ही नहीं। पता नहीं परीक्षा करने पर ऐसी बातें हीरा निकलेंगी अथवा कांच।

आशा है, लेखक भविष्य में अधिक सोचकर कोई पुस्तक लिखेगा। वैसे यह संग्रह सुपाठ्य है और अपने ढङ्ग का अनोखा है। मार्क्सवादी प्रगतिवाद का दृष्टिकोण लेखक ने पर्याप्त स्पष्ट कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**अपरिचिता**— ( कहानी-संग्रह )— लेखक, कुंअर केशरीचंद्र सेठिया; प्रकाशक, कला मन्दिर, बीकानेर; मूल्य १।); पृष्ठ संख्या ९२।

लेखक अपनी अपरिचिता को लेकर हमें अपना पचिय दे रहा है। लेखक की ये कहानियां साधारणतया अच्छी हैं। समाज की विभिन्न समस्याओं की ओर ये कहानियां हमारा ध्यान खींचती हैं। आशा है, लेखक भविष्य में अधिक उन्नति करेगा।

**निवाचन पद्धति**—( नागरिक शास्त्र )—लेखक दया-शङ्कर दुबे तथा भगवानदास केला; प्रकाशक, भारतीय ग्रन्थ-माला कार्यालय, दारागञ्ज, प्रयाग; मूल्य ।॥) ; पृष्ठ संख्या ८२। चौथा संस्करण।

वर्तमान प्रजातन्त्रवाद के युग में 'वोट' की शक्ति एक बड़ी शक्ति है। भारत में इसकी क्या स्थिति है, प्रस्तुत पुस्तक का यही मुख्य विषय है साथ ही साथ निर्वाचन पद्धति के अन्य सैद्धान्तिक अङ्गों पर लेखकों ने प्रकाश ड है। पुस्तक का यह संस्करण युद्ध जनित परिस्थितिव कारण काया में क्षीण परन्तु प्राणों में दृढ़तर है।

पुस्तक पाठकों के लिए विशेष उपादेय है।

**भारतीय शासन**— ( नागरिक शास्त्र )— भगवानदास केला; प्रकाशक, भारतीय ग्रन्थमाला, मूल्य १॥); पृष्ठ संख्या २५२। नवां संस्करण।

इस पुस्तक की रचना लेखक ने आज से तीस पहले की थी। इन तीस वर्षों में इसके संस्करणों को दुहराता रहा है। परीधीनता मूलक शासन पद्धति को वर्ष तक बार बार दुहराना उसे विशेष कष्टकर रहा प्रस्तुत संस्करण में उसने यत्र तत्र हेर फेर कर दिए हैं कि उसकी उपादेयता बढ़ गई है। आशा है पुस्तक का ही स्वागत होगा।

—कमल कुल

---

# सार्वजनिक सूचनायें

## गुरुकुल का वार्षिकोत्सव

गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी का ४३वां वार्षिकोत्सव १९ चैत्र से २२ चैत्र २००१ तदनुसार ३१ मार्च तथा १, २, ३ अप्रैल १९४५ को बड़े समारोह के साथ गुरुकुल-भूमि में मनाया जायगा।

गुरुकुल भारत का सब से बड़ा राष्ट्रीय शिक्षणालय है। यहां वैदिक और संस्कृत साहित्य के साथ साथ इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, दर्शन, रसायन आदि विविध विषयों की उच्चतम शिक्षा राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जाती है। गुरुकुल में उच्च मानसिक शिक्षा के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य के नियमों और आश्रम-प्रणाली द्वारा विद्यार्थियों के चरित्र-सुधार के लिए विशेष उद्योग किया जाता है। इस समय गुरुकुल कांगड़ी तथा उसकी शाखाओं में एक हज़ार से ऊपर विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। गुरुकुल में शिक्षा-प्राप्तकर जितने भी विद्यार्थी अब तक स्नातक हुए हैं, उनका बड़ा भाग देश, जाति, धर्म और साहित्य की सेवा में अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

इस अनुपम शिक्षणालय का वार्षिकोत्सव अपना एक विशेष स्थान रखता है। आर्यसमाज का यह सब से बड़ा धार्मिक मेला है। इसमें दूर दूर से हज़ारों नर नारी सम्मिलित होते हैं। इस वर्ष गुरुकुल का उत्सव महत्वपूर्ण होगा। ईस्टर की छुट्टियों का सदुपयोग हुए आप गुरुकुल के उत्सव पर अवश्य आइये।

इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल

## वनस्थली विद्यापीठ

वनस्थली विद्यापीठ एक स्वतन्त्र शिक्षण संस्था विद्यापीठ की विचारधारा का आधार भारतीय संस्कृति राष्ट्रीयता है। विद्यापीठ की ओर से कार्यकर्ताओं मासिक निर्वाह व्यय दिया जाता है जिसका निर्णय सम्म कार्यकर्ता से बातचीत करके कर लिया जाता है। वनस्थ के कार्यकर्ताओं का रहन सहन ऐसा होना चाहिए कि एक छोटे से ग्राम में अच्छी तरह से रह सकें। कार्यकर्ता और उनके परिवारों के लिए खादी अनिवार्य है। वि पीठ में प्रथम स्थान महिलाओं का है, परन्तु महिलाओं अभाव में पुरुष कार्यकर्त्ता भी लिए जाते हैं। विद्यापीठ प्रायः नीचे लिखे अनुसार कार्यकर्ताओं की आवश्यकता पड़ती रहती है—

(१) हिन्दी, संस्कृत, दर्शन शास्त्र, राजनीति, इति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अर्थ शास्त्र और अंग्रेज़ी के एम० ए० जो इंटरमीजियट अथवा बी० ए तक अपने अपने विषयों को पढ़ा सकें—

(२) ऐसे बी० ए० जिन्हें अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल, अर्थ शास्त्र, राजनीति, नागरिक शास्त्र, हिन्दी, गृह-विज्ञान आदि विषयों का अच्छा ज्ञान हो—

(३) ऐसे बी. एस-सी. जिन्होंने बी. एस-सी. में या कम से कम इंटरमीजियट में गणित अथवा बायलाजी ली हो—

(४) छोटी कक्षाओं के लिए ऐसे कार्यकर्ता जो बच्चों के जीवन में रस ले सकते हों और जिन्होंने बुनियादी तालीम में अथवा दूसरी नई पद्धतियों में शिक्षण प्राप्त किया हो—

(५) कताई, खेल, व्यायाम-आसन, चित्रकला एवं संगीत के विशेषज्ञ [ वाद्य संगीत में सितार के अच्छे अभ्यासी की विशेष आवश्यकता है ]—

(६) योग्य और अनुभवी डाक्टर, वैद्य, कम्पाउंडर और नर्स—

(७) कार्यालयों के काम का तथा बही खाते का और कृषि, गो पालन आदि के कामों का अनुभव रखने वाले—

(८) छात्रावास के लिए ऐसी देवियां जो भले ही पढ़ी लिखी कम हों पर जो छोटी बड़ी लड़कियों को माता का अथवा बड़ी बहिन का सा प्यार दे सकें और उन्हें आराम से रख सकें।

मंत्री, वनस्थली विद्यापीठ

## प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ का रूप

श्री नाथूराम जी प्रेमी की सेवा में भेंट किये जाने वाले अभिनन्दन ग्रंथ को यथा शीघ्र तैयार करने का प्रयत्न बड़ी तत्परता के साथ चल रहा है। ग्रंथ के आदर्श रूप की कल्पना करके इस आयोजन की कार्य समिति के अध्यक्ष डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने प्रत्येक विभाग की सामग्री सुझाई है और पुष्ट विभाजन किया है। हम हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं के साहित्यकारों से प्रार्थना करते हैं कि वे ग्रंथ की सामग्री जुटाने में विभागीय सम्पादकों को अपना बहुमूल्य सहयोग देने की कृपा करें। रचनायें यदि इस मास के अन्त तक प्राप्त हो जायगी तो विशेष सुविधा होगी। विस्तृत विवरण मन्त्री से प्राप्त किया जा सकता है।

प्रेमी अभि० ग्रंथ कार्यालय — यशपाल जैन
टीकमगढ़, सी० आई० — मन्त्री
३ मार्च, १९४५

## लोकवार्ता परिषद

टीकमगढ़ ( मध्य भारत ) में महाराजा ओरछा के संरक्षण में प्रसिद्ध लेखक तथा पत्रकार श्री कृष्णानन्द गुप्त के प्रयत्नों से एक लोकवार्ता परिषद की स्थापना हुई है जिसका उद्देश्य विशेष तौर से मध्य भारत तथा बुन्देलखंड के नृतत्व तथा लोकवार्ता का अध्ययन करना है। डाक्टर वेरियर एलविन डी० एस सी० ( आक्सफोर्ड ) इसके सभापति हैं और श्री कृष्णानन्द जी गुप्त इसके मन्त्री हैं। इनके अतिरिक्त मि० एन० सी० मेहता आई० सी० एस० रिटायर्ड, मि० डबल्यू० जी० आर्चर आई० सी० एस०, राव बहादुर सरदार माधवराव विनायक किबे एम० ए०, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल एम० ए०, पी-एच० डी०, पं० रामनरेश त्रिपाठी, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, बा० वृन्दावन लाल वर्मा, तथा श्री गणेश चौबे मान्य सदस्य हैं। परिषद एक त्रैमासिक पत्रिका 'लोकवार्ता' प्रकाशित कर रही है जिसमें नृतत्व तथा लोकवार्ता सम्बन्धी उपयोगी लेख प्रकाशित होते हैं। पत्रिका का मूल्य ५ रुपया वार्षिक है।

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

## समाचार पत्र और सरकारी दमन

अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सङ्घ के कानपुर अधिवेशन के प्रस्ताव सं० ५ में निश्चय किया गया था कि सङ्घ सरकारी दमन के शिकार होने वाले पत्रों और प्रेसों का लेखा तैयार करे। उसके अनुसार आप से प्रार्थना है कि आप अपने पत्र या अन्य किसी पत्र अथवा प्रेस के विषय में इस सम्बन्ध में जो सहायता दे सकते हैं, वह भेजने का कष्ट करें।

(१) पत्र का नाम (२) छापेखाने का नाम (३) जमानत कितनी बार कब-कब मांगी गई (अ) प्रेस से, (ब) पत्र से (४) भारत रक्षा विधान के अन्तर्गत किये गये आक्रमणों की सूची (५) अनुमानित हानि, (६) सम्पादकीय स्टाफ—( जेलों में ) (७) अन्य ज्ञातव्य, (८) हस्ताक्षर.....

रामगोपाल
मन्त्री



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वर्धा का हिन्दुस्तानी सम्मेलन

श्री रामभाई

सारे देश में आज एक तूफ़ान मचा हुआ है। भाषा के मामले में गांधी जी के नये क़दम से लोगों के दिल में काफ़ी बेचैनी पैदा हो गई है और क्या अख़बारों में और क्या सभाओं में, उस पर जो कड़ी और अशिष्ट आलोचना की जा रही है उसको देखकर यह ज़रूर कहा जा सकता है अगर लोगों के सामने कान्फ्रेन्स का पूरा पूरा और सही सही हाल रख दिया जाता तो बहस में इतनी गरमा गरमी न पैदा होती, इस लेख में मेरी यही कोशिश होगी कि उस कान्फ्रेन्स में जो कुछ मैंने सुना और देखा उसको पूरी तौर से क़लमबन्द कर दूँ। हां, जो मैं उद्धृत कर रहा हूँ वह संक्षिप्त है परन्तु वक्ता का सार उनमें आगया है, ऐसा मेरा दावा है।

सोमवार का दिन, फ़रवरी की २६ तारीख़, गोविन्द राम सेकसरिया कामर्स कालिज का विशाल हाल। उसकी चिट्टी दीवारों पर महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, जवाहरलाल नेहरू, जमनालाल बजाज, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, दीनबन्धु ऐन्ड्रूज़, श्री कृष्णदास जाजू, गोविन्दराम सेकसरिया, मोतीलाल नेहरू और ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ के चित्र टँगे हुए थे। हर चित्र के ऊपर पड़े हुये रंग बिरंगे फूलों के हारों की सुगंध से सारा हाल महक रहा था। वायु भी मज़े के साथ, कभी धीरे कभी तेज़ चल रही थी। चार बजने में दो मिनट पर बापू पधारे। गर्मी में पैदल ही लपक कर आये थे। जैसे ही तख़्त पर बैठे जमनालालजी की पुत्री श्रीमती मदालसा बहन पंखा झलने लगीं। डा० सुशीला नायर ने एक शीशी दी जिसमें से कुछ घूँट बापू ने पीं। मदालसा बेन का पुत्र भारत बापू के बग़ल में आकर बैठ गया जिसे उन्होंने चिपटा लिया।

तख़्त के ऊपर बापू की बांई ओर डा० सैयद महमूद विराजमान थे। बापू का इन दिनों रोज़ ही मौन चलता है, फिर उस दिन तो सोमवार भी था। डा० महमूद ने कहा कि उनका सन्देश हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के मन्त्री श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल जी पढ़ेंगे। डा० महमूद के आदेशानुसार मन्त्री महोदय खड़े हुए और उन्होंने यह सन्देश पढ़ा—

भाइयो और बहिनो,

"मुख्य अध्यापक श्री श्रीमन्नारायण के निमन्त्रण से आप लोग यहां जमा हुए हैं, इससे मैं ख़ुश हुआ हूँ। डा० अब्दुल हक़ साहब आज ही आने वाले थे, उम्मीद है कि कल ज़रूर आ जायेंगे। उनकी मदद यह हिन्दुस्तानी प्रचार सभा और मैं लेना चाहता हूँ। इसी तरह श्री टंडन जी आने वाले थे और मैं ख़ुश हो रहा था कि वे आवेंगे। भाई श्रीमन्नारायण ने उनको तार भी दिया था। दुःख है कि वे बीमार पड़ गये हैं और इस कारण नहीं आ सकते हैं। हम उम्मीद करें कि वे जल्द अच्छे हो जावेंगे।

"आपके सामने काम एक तरह से छोटा है, और दूसरी तरह उतना ही बड़ा है जैसे छोटा। हमें जो काम है, वह छोटा है लेकिन नतीजे के हिसाब से बहुत बड़ा है। डा० ताराचन्द हमें कहते हैं कि असल में जिसे हम अलग बहुत नामों से पुकारते हैं वह एक ही भाषा थी जो उत्तर में हिन्दू-मुसलमान बोलते थे। दुःख है कि जो एक थे, वे दो हो गये हैं और उनकी भाषा भी दो जैसी हो गई है या हो रही है—हिन्दी और उर्दू। टंडन जी की मेहनत से कांग्रेस ने कानपुर में दोनों बोल सकें ऐसी भाषा को 'हिन्दुस्तानी' नाम दिया और दो लिपियां रखीं:—नागरी और उर्दू—लेकिन कांग्रेस ठहराव के मुताबिक़ काम न कर सकी। उस काम को स्व० जमनालालजी के प्रयास से इस सभा ने सन् १९४२ में उठा तो लिया पर वे बीच में चल दिये। १९४२ में कांग्रेस के जो लोग और दूसरे गिरफ़्तार हो गये उनमें मैं भी था। बीमारी के कारण मैं छूटा। बीमारी में भी मैंने भाई नानावती जी का हिन्दुस्तानी के बारे में काम देखा। मुझे ख़ुशी हुई और मैंने पाया, उस काम में कामयाबी हासिल हो सकती है। जो एक भाषा पहले दोनों बोलते थे वह आज क्यों नहीं बन सकती, मैं नहीं जानता। उत्तर में उन्हीं हिन्दू मुसलमानों की औलाद हैं जो एक बोली बोलते थे और लिखते थे। हिन्दी उर्दू अलग बनाने में जो मेहनत पड़ती है उससे आधी भी पुरानी बोली को ज़िन्दा करने में पड़नी नहीं चाहिये। उत्तर के देहातों में रहने वाले हिन्दू मुसलमान एक ही बोली बोलते हैं, कोई लिखते भी हैं। हमारी यह मेहनत हम कैसे सफल कर सकते हैं इसका विचार करना आपका काम है और उस विचार के मुताबिक़ काम करना हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का काम है।

"मुझे खेद है कि मैं कमज़ोरी के कारण दिन भर पड़े वहाँ तक ख़ामोश रहता हूँ। इन तीन मास में शायद तीन बार दिन में बोलना पड़ा था। आज तो सोमवार का ही मौन है। लेकिन मुझे उम्मीद है कि मेरी ख़ामोशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


न हमारे काम में कुछ बाधा होगी न आपके काम में कुछ असुविधा होगी।

"अब यह सम्मेलन मैं आपके ही हाथों में छोड़ता हूं। भाई श्रीमन्नारायण बाक़ी काररवाई करेंगे और करवायेंगे।

"आपका सम्मेलन मेरी हाजरी में तो ठीक साढ़े पांच बजे तक बैठेगा। कल हमारा काम तीन बजे से शुरू होगा। उस वक्त में अपने और विचार आपके सामने रक्खूंगा।

"आप लोगों को रहने में और खाने-पीने में कुछ असुविधा है तो आप माफ़ करेंगे। श्रीमती जानकी देवी ने हो सके इतना बन्दोबस्त बजाजबाड़ी में किया है।"

इसके बाद मंत्री जी ने अपनी रिपोर्ट पढ़कर सुनाई जिसमें सभा के पदाधिकारियों के नाम थे और सभा का मक़सद वगैरह बतलाया गया था। आपने इस बात के लिये माफ़ी चाही कि इस सभा में थोड़े-से ही आदमियों को बुलाया गया है क्यों कि सभा का काम का भी रूप रखना था, ज़्यादा भीड़ में चर्चा कम हो पाती है। अपनी रिपोर्ट देने के बाद मन्त्री ने बाहर से आने वाले संदेशे पढ़कर सुनाये। इन सन्देशों के भेजने वालों में ख़्वाजा अब्दुल मजीद, बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन, डा० ज़ाकिर हुसैन, आचार्य बद्रीनाथ वर्मा, डा० आबिद हुसैन, पं० हजारी-प्रसाद द्विवेदी आदि थे।

इतना हो चुकने के बाद डा० महमूद ने कहा कि अब कुछ तक़रीरें होंगी और पहले मैं ही कहूँगा। आये हुए लोगों का स्वागत करते हुए डा० सैयद महमूद ने कहा कि—

जैसा अभी गाँधी जी ने कहा है यह बहुत बड़ा काम है। यह वह काम है जिस पर विदेशी लोग हम पर इलज़ाम लगाते हैं। यह बात निहायत अहम और ज़रूरी है। बरसों के सोच-विचार के बाद सन् १९४२ में गाँधी जी इस नतीजे पर पहुँचे और जैसा मन्त्री साहब ने रिपोर्ट में कहा है कि हमारी ज़बान का नाम हिन्दुस्तानी हो और जो एक लिपि जानता हो वह दूसरी ज़रूर सीख ले। मंझले ज़माने के हिन्दुस्तान में इख़्तिलाफ़ थे, फ़र्क़ थे और झगड़े भी होते थे, मगर इनके बावजूद आपस में सोशल और कल्चरल ताल्लुक़ थे। हम एक थे। आज भी हिन्दू मुसलमानों में शादी मौत में बहुत से रस्मो-रिवाज एक से हैं। जिसको हम हिन्दुस्तानी कहते हैं उस पर यह एतराज़ किया जाता है कि हम नई ज़बान पैदा कर रहे हैं। मैं अर्ज़ करता हूँ कि यह बात नहीं है। जैसा गांधी जी ने भी इशारा किया है यह दोनों नाम एक ही ज़बान के हैं। आप लेखकों के सामने तफ़सील से इस पर कुछ कहना बेजा होगा। इस ज़बान की नस्र (गद्य) सब से पहले चौदवीं सदी में सैयद मोहम्मद गेसूदराज़ ने लिखी और शायरी अमीर ख़ुसरो ने की जिसके चन्द शेर मौजूद हैं। शाहजहां के वक्त में अब्दुल हमीद लाहौरी ने इसकी बाबत लिखा। कैफ़ी साहब की किताबों में आपको यह बहुत सी बातें मिलेंगी। मैं ख़ुद तो इस आम ज़बान के लिये 'हिन्दी' नाम ज़्यादा ख़ूबसूरत समझता हूं मगर मजबूरन हिन्दी उर्दू न कह कर हिन्दुस्तानी कहना बेहतर समझता हूँ। अलबेरूनी ने लिखा है कि उर्दू नाम किसी संस्कृत शब्द से निकला है। ग़ालिब ने भी इन्हीं मानों में इस्तेमाल किया है। इस चीज़ में रिसर्च की ज़रूरत है। दोनों लिपि सीख जाने पर हम एक दूसरे के इतने क़रीब आ जायेंगे जिसकी हद नहीं। बोझा उत्तरी हिन्दुस्तान वालों पर तो उतना नहीं है जितना गुजरातियों और दक्षिणी हिन्दुस्तानियों पर। उनसे मैं कहूँगा कि इसे हिन्दुस्तान का टैक्स समझकर अदा करें। लड़ाई झगड़ों में एकता की बातें ओझल हो जाती हैं। इस मरतबा जेलों से हिन्दू भाइयों के ख़त आ रहे हैं, एक-दो नहीं दर्जनों ख़त। उनमें लिखा है कि हम क़ुरान पढ़ना चाहते हैं और इसलाम की बाबत बातें जानना चाहते हैं। हक़ीक़त में हम एक हैं। सबका दिमाग़ एकता की तरफ़ ही जा रहा है। लोग झगड़ों को समझने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन बदक़िस्मती से लड़ाई की बातें ज़्यादा सामने आती हैं। आज हम एकता और ज़बान की इमारत का बुनियादी पत्थर रख रहे हैं। बरगद के दरख़्त की तरह जड़ें मज़बूत कर रहे हैं। अगर इसमें कामयाबी हो गई तो सारी चीज़ें एक तरफ़ यह हमारा जो असली मक़सद है वह हासिल हो जायेगा।"

इसके बाद आज़मगढ़ के प्रसिद्ध विद्वान मौलाना सुलेमान नदवी साहब ने कहा कि हिन्दुस्तान एक देश है जिसमें आप अपनी अपनी बोलियाँ रखिये पर इसके साथ ही साथ हमें एक बोली भी जरूरी है। दिल की यकजाई ज़बान की यकजाई पर मुनहसर है। मैं तो समझता हूँ कि हिन्दी, उर्दू में जो फ़र्क़ बढ़ गया इसकी बड़ी भारी वजह अङ्गरेज़ी है। ज़ाहिर है कि हिन्दू भाइयों ने अङ्गरेज़ी को अपना बना लिया जिसका नतीजा यह हुआ कि जितनी ही ज़्यादा क़ाबलियत हुई उतना ही ज़्यादा अलग हो गये। काम की बुनियाद यह रखी गई है कि जितने लफ़्ज़ या शब्द बोलने मे आ गये उन्हें रख लिया जाये। डा० ताराचन्द और डा० अब्दुल हक़ साहब ने जो डिक्शनरी तैयार की है उसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


८०% से ज्यादा लफ़्ज़ हिन्दुस्तानी के हैं, २० फ़ीसदी हिन्दी उर्दू के हैं। कमेटी ने एक उसूल रखा है जो पहले भी बर्ता जा चुका है कि कुछ लफ़्ज़ों को साथ साथ रख दिया है, जैसे 'दुःख-दर्द,' 'भाई-बिरादर' और ये शब्द पहले से चल रहे हैं। हम लोगों के सामने बड़ा मसला तालीम का है। इन्तज़ाम रियासत (राजनीति) का है, राजपाट का है। इनमें पहली चीज़ आ जाती है भाषा या ज़बान। दक्षिण वालों को थोड़ी-सी क़ुरबानी करनी पड़ेगी। मसला दो क़ौमों या एक क़ौम का नहीं है। जितने मुसलमान आये उन्होंने एक-दो नस्लों में मादरी ज़बान को भुलाकर मुल्क की बोली को अख़्तियार कर लिया। पूरे देश को देश बनाने वाली एक चीज़ है—बोली। सन् १६—१७ में मैंने लिखा था 'होम रूल से पहले होम लैंगवेज़ की ज़रूरत है'। गांधी जी की निगरानी में आज भी हम समझ जायें तो बहुत ही अच्छा होगा। तमाम हिन्दुस्तान के मुसलमान एक बोली के ख़ैर-मक़दम को तैयार हैं; लेकिन जहां तक हिन्दू भाइयों का सवाल है उन्होंने कभी ग़ौर नहीं किया है। उर्दू और हिन्दी में उतना फ़र्क़ है जितना गुजराती हिन्दू और गुजराती मुसलमान में या बंगाली हिन्दू और बंगाली मुसलमान में है। कुछ लफ़्ज़ तो दोनों में लाज़मी अलग अलग होंगे जैसे रोज़ा, नमाज़, मस्जिद, इफ़्तार, आत्मा, व्रत, उपवास, पूजा, ध्यान वग़ैरह। बादशाह राम और बेगम सीता पर तूफ़ान खड़ा कर देना छोटी चीज़ है। 'गुन' को 'गुण' कहना मेरे नज़दीक मुनासिब नहीं। जिस रूप में बाज़ारों में बोले जाते हैं वही ठीक है। संस्कृत और अरबी धातु नहीं लेनी चाहिये। बरस को वर्ष कहना ठीक नहीं। इसी से फ़र्क़ पैदा होता है। इसी तरह बरसात को वर्षा ऋतु कहते हैं। दो ज़बानें बनाने की जो कोशिशें हैं वे रोकी जायें।"

दिल्ली से आये हुए श्री जैनेन्द्र कुमार जी ने कहा कि—"आदरणीय बुज़ुर्ग नदवी साहब के बाद कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। अंग्रेज़ों के कारण हमारी ज़िन्दगी में धड़ सिर से अलग हो गया है और फाँकें पड़ गई हैं। एक ज़बान हमारी है, सारी जनता उसी से काम चलाती है। उसका विधिवत् प्रचार नहीं हुआ, उसको बांधा नहीं गया। हम जो सिर के प्रतिनिधि हैं, लिखने वाले लोग हैं, उन्होंने ताक़त नहीं पहुंचाई जिसकी वजह से सिर धड़ से अलग हो गया है। वह चीज़ जिसमें देश का प्राण बहता रहा है, जिसे अंग्रेज़ और अंग्रेज़ी भाषा का राज्य छू नहीं सकते, वह हिन्दी या उर्दू या हिन्दुस्तानी है, और जिसे उत्तर भारत के हिन्दू मुसलमान बोलते हैं लेकिन अब इधर [illegible] उसके दो रूप बन गये हैं और साहित्यिक शैलियाँ उसे [illegible] दूर ले जा रही हैं। लेखक की हैसियत से मैं जानता [illegible] कि उर्दू-हिन्दी वालों में वास्तव में नासमझी पैदा हो [illegible] जो दूर हो जायेगी, लेकिन सवाल यह है कि जो [illegible] आज भी चलती है उसकी तारीफ़ क्या है—वह फ़ारसी [illegible] है, संस्कृत नहीं है। ऐसा होने पर तो बहुत बारीक [illegible] रह जाती है जिसे पकड़ नहीं सकते। हम तो चाहते हैं [illegible] वह इतनी वसीह रहे कि अबुलकलाम या ज़ाकिर [illegible] और प्रसाद व मैथिली शरण और क्यों न, ग़ालिब [illegible] तुलसीदास, इसमें आ सकें। भाषा तो एक ही है। [illegible] लिपियाँ दोनों सीख लीजिये। ज़मीन जमीन, बरसात [illegible] काग़ज़, कागद दोनों हों। परिभाषा के लिये मैं कहूँ कि हम नक़शे की नदी की तरह रखें। नक़शे की [illegible] तो चौड़ी होती है, पर जो दिल्ली में बहती है, जिसमें [illegible] नहाते हैं वह बहुत छोटी होती है। उसमें पानी होता [illegible] पानी वाली धारा बनाई नहीं जाती क्योंकि वह नहर नहीं [illegible] इस्तक़लाल के साथ, ठहरकर काम करना है, जल्दी [illegible] ज़रूरत नहीं है। लिखने वालों को चाहिये कि किसी [illegible] का बहिष्कार न करें। नदी के अनायास प्रवाह पर [illegible] बंदिश न डालें। अंग्रेज़ी से काम नहीं चल सकता [illegible] न चलाना ही है। कठिनाइयां जैसी हों, हल करना ही [illegible] लौटना नहीं है। यह संकल्प हमको कर लेना चाहिये [illegible] हमको शहर की तरफ़ नहीं, गांव की तरफ़, जनता [illegible] तरफ़ जाना है। कैसे अफ़सोस की बात है कि हम बर्नार्ड [illegible] को जानते हैं, उसकी चर्चा कर सकते हैं पर एक दूसरे [illegible] नहीं जानते। अगर हमको आज़ाद होना है तो आज [illegible] से यह कोशिश शुरू कर देनी चाहिये।"

इसके बाद 'हमारी ज़बान' के वयोवृद्ध सम्पादक [illegible] मीरी पंडित, अल्लामा बालकृष्ण दत्तात्रय कैफ़ी साहब, [illegible] कहा—"महात्मा जी, प्यारी बहनो और प्यारे भाइयो! [illegible] पिछली बार मुझे महात्मा जी के दर्शनों की ख़ुशी [illegible] हासिल हुई थी तब पहली लड़ाई का ज़माना था। [illegible] उन्हें याद हो कि अलीपुर रोड पर गौर्मिण्ट हाउस में [illegible] सभा हो रही थी जिसमें एक रिजोल्यूशन का समर्थन [illegible] वह एक दम चले गये थे और न रुके, न कुछ बोले। [illegible] आज भी लड़ाई चल रही है और हम पोस्टवार रिकंस्ट्रक्शन की बातें सुनते हैं। क्या ही अच्छा होता कि [illegible] सरकार के ज़रिये हम भी कहते कि हम फलां चीज़ें [illegible] इतनी तादाद में तैयार करेंगे। पहले और अब आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ज़माने में काफ़ी फ़र्क़ हो गया है। मैं आपके सामने यह बताऊँगा कि यह फ़र्क़ किस चीज़ का है। वह एक कामा का है जो हमें उस सन्देशे में मिलता है जो अभी बम्बई की उर्दू कान्फ्रेन्स में गांधी जी ने भेजा है। उसमें आप फ़रमाते हैं कि Now, I do not believe in supporting Hindi or Urdu only यह कामा वही है जो now के बाद में है।

सभा में हर एक को बोलने को दस ही मिनिट दिये गये थे। अल्लामा कैफ़ी को खटका हुआ कि शायद मेरा वक़्त पूरा होने आया। उन्होने मौन सभापति की तरफ़ देखकर पूछा कितने मिनिट हैं? बापू ने एकदम घण्टी बजा दी और हँसी ध्वनि से सारा हाल गूँज उठा। मूक बापू की वह अनोखी हँसी कान्फ्रेन्स की एक विशेष और अद्वितीय चीज़ थी।

सोमवार के दिन आख़री बोलने वाले इलाहाबाद के मशहूर लेखक और सम्पादक, ठाकुर श्रीनाथ सिंह जी थे। आपने बताया कि किस तरह से बापू की विचार धारा चली है। पहले वह हिन्दी कहते थे, फिर हिन्दी यानी हिन्दुस्तानी कहा और अब हिन्दुस्तानी कह रहे हैं। जहाँ तक हमारे यहां की बात है बचपन में ही हम लोग दोनों लिपियाँ सीखते हैं। अगर कोई उर्दू सीखते हुए डरता था तो हम लोग कहा करते थे—

'अलिफ़' 'बे' हउआ।
मां बाप चील कौआ॥

इसी तरह से जो हिन्दी नहीं सीखता था उसके लिये कहा जाता था—

'ऊ' 'उ' न आइया।
गुड़ की भेली न पाइया॥

यह हिन्दी उर्दू का जो अलग अलग ख़याल है यह शहरों, पत्रों और पढ़े लिखों की चीज़ है; देहात के अन्दर ऐसा नहीं है। मेरा कहना है कि हिन्दी वाले हिन्दी का वह स्वरूप निर्माण करें जो बापू के मन में है। उस रूप की तरफ़ अगर हम बढ़ने लगें तो वही हिन्दुस्तानी है। आज हिन्दी में बहुत से ऐसे शब्द हैं जो हिन्दी में नहीं हैं, जैसे कांग्रेस, इन्क़लाब वग़ैरह और जिन्हें पूरी तरह देश ने अपना लिया है। जहां तक बेगम सीता और बादशाह राम की बात है हमको इन शब्दों से एतराज़ नहीं होना चाहिये बल्कि इस पर कि इन शब्दों के नाम लेने पर एक दूसरी ही तसवीर हमारे सामने खड़ी होती है जो असली से भिन्न है। उर्दू और हिन्दी दोनों ही लिपियाँ हमको सीखनी चाहियें, हमारे यहाँ तो कहा भी जाता है—

सैयाँ का तोता हिन्दी पढ़त है।
उर्दू पढ़ें मोरी मैना॥

ठाकुर साहब ने अन्त में कहा कि—जो बापू के मन में संकल्प है, मैं समझता हूँ उससे ही राष्ट्र का उद्धार होगा।"

साढ़े पांच बज चुके थे। सोमवार की कार्रवाई ख़तम की गई।

## अगले दिन की कार्रवाई

मङ्गलवार के दिन सम्मेलन की कार्रवाई सबेरे ९-३८ पर शुरू हुई। डा० महमूद ने कहा कि जो भाई ख़यालात ज़ाहिर करना चाहें करें। इस बैठक में बापू मौजूद नहीं थे।

सब से पहले उस्मानिया विश्वविद्यालय के डा० जाफ़र हुसैन साहब ने अपना लेख पढ़ा। आपने बताया कि "हमारे मुल्क की हालत बिगड़ गई है, नेताओं के पैग़ाम या बयान, शहरों के खाते-पीते घरानों की ख़तो किताबत—सभी चीज़ें अंग्रेज़ी में होती हैं। दोनों का जितना नुक़सान अंग्रेज़ी के कारण है उसका एक चौथाई भी आपस के झगड़ों से नहीं है। दोनों एक होते जायेंगे, दोनों से हिन्दुस्तानी का प्रचार होगा। कानपुर में की गई उर्दू कान्फ्रेन्स का दावतनामा अंग्रेज़ी में था। हैदराबाद की हिन्दी प्रचार सभा का दावतनामा भी अंग्रेज़ी में था। हमारी कोशिश होनी चाहिये कि तलफ़्फ़ुज़ या उच्चारण आसान हो, जैसा लिखें वैसा पढ़ें, और जैसा बोलें वैसा ही लिखें। मेरी राय में तो सैकड़ों-हज़ारों लफ़्ज़ हम नये बना सकते हैं, जैसे Right angle को समकोण न कहकर 'सीधा कोना' कहें, Lowland को 'निचली ज़मीन' कहें, और Law of Diminishing Returns को घटती उपज का क़ानून इत्यादि। बिहार कमेटी ने भी कुछ लफ़्ज़ बनाये हैं जैसे Planet के लिये 'चलतारा'। चाहे दूसरा फ़रीक़ माने या न माने आप अपने रास्ते पर चलिये। पंडित ब्रजमोहन दत्तात्रेय कैफ़ी ने Oil engine के लिये 'तिलंजन' शब्द बनाया है, explosive के लिये 'भड़कोल' flora tribute के लिये 'फूल चढ़ावा', antidote के लि 'ज़हर तोड़', census को हिन्दी में जन गणना औ उर्दू में मर्दुमशुमारी कहते हैं। एक जगह लिख था कि एक जगह मर्दुमशुमारी में इतने हज़ार लाख भैंसें थीं! हम क्यों नहीं 'गिनावा' या 'गिना


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शब्द का इस्तमाल करें । इस चीज़ के लिये थोड़ी-सी कोशिश से काम चल सकता है । उर्दू से 'सीन', 'स्वाद', जैसे फ़रक़ निकाल दिये जायें, हिन्दी से ङ, ञ, ऋ, ऌ, वग़ैरह निकाल दिये जायें । अफ़सोस की बात है साहित्य सम्मेलन पुरानी लिखावट पर चल रहा है न कि वर्धा वाली लिखावट पर जिसमें इ, उ, ए, की जगह अ पर मात्राओं का इस्तेमाल किया जाता है । हिन्दुस्तानी हिन्दी और उर्दू का संगम है ।"

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के राष्ट्र भाषा प्रचार मन्त्री श्री आनन्द कौसल्यायन जी ने कहा कि कल और आज के भाषणों से मुझे तो निराशा हुई है, आशा कम । हमको विचारना यह है कि जिस भाषा का हम प्रचार करें, उसका रूप क्या हो । आनन्द जी ने राष्ट्र भाषा प्रचार और दक्षिण हिन्दी प्रचार सभाओं की पहली किताबों से पढ़कर सुनाया और फिर गुजरात में चलाई नानावती जी की हिन्दुस्तानी बालपोथी से पढ़कर सुनाया और पूछा कि इन सब में क्या कोई भेद आपको दीखता है । कहीं ऐसा तो नहीं कि उसी जलेबी को आप दूसरा रंग देना चाह रहे हों या उसी शीशी पर नया लेबिल लगा रहे हों । उसके बाद आनन्द जी ने 'थोड़े से बदनाम आदमी' राहुलजी की नई किताब 'भागो नहीं, दुनिया को बदलो' से 'तनिक अरज़' पढ़कर सुनाई, भाषा के बाद आनन्द जी लिपि पर आये और आपने कहा कि भाषा तो एक है, लिपि दो क्यों ? साहस के साथ उर्दू क्यों नहीं कह देते ? आज तो राष्ट्र भाषा के लिये दो लिपि, कल को कहीं प्रान्तीय भाषाओं के लिये तो दो दो लिपि आप नहीं रखेंगे ? बापू जी के स्वाथ्य से बढ़कर यह जाति के स्वास्थ्य का सवाल है । आपको देखना होगा कि कहीं राष्ट्र की शक्ति का वेस्ट तो नहीं करने जा रहे हैं ? चिन्तन की ग़लती में गोले न जाने कहाँ से कहां पड़ेंगे ? मुझे आशा है कि आप लोग बैठकर गम्भीरता से विचार करेंगे ।

पंजाब के कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं की नई असेम्बली के नये प्रधान चौधरी मोहम्मद यासीन साहब ने कहा कि मेरे सोच विचार का नतीजा आनन्द जी वाले से थोड़ा-सा भेद रखता है । ज़बान के मसले को थोड़ी-सी सियासी पोज़ीशन भी हासिल हो चुकी है । जुदा करने वालों में एक ज़बान है, मगर मुश्तरका चीज़ हमको निकालनी ही होगी । यक़ीन करना चाहिये कि मुल्क ने अर्से के ख़्याल सोच के बाद यह तै किया है कि यह यह रास्ता है । सवाल यह है कि जो लाइन सोची जा चुकी है उसे कैसे बढ़ायें । चालीस करोड़ की वह किस तरह ख़िदमत कर सकती है ? असल बुनयादें यह है । इस कान्फ्रेंस में मैंने तड़प देखी, लोग आपस में बेचैन और माहौल से उन्हें इतमीनान नहीं है । दूसरी चीज़ कि हर दिमाग़ उसके लिये रास्ता निकालने की कोशिश रहा है पर अभी तक कोई रास्ता नहीं है । मैंने भी लिये कुछ सोचा है, अब तक कोई ऐसी जमात मुल्क नहीं है जो लोगों के दिलों को चैन दे सके और वह रहे हैं कि कोई चीज़ मिलनी चाहिये । यह बैठक लिये है । मैंने जो चन्द चीज़ें सोचीं वह यह कि पहले हम यह तै कर लें कि आज के बाद हम संस्कृत, फ़ारसी के डिक्टेटर या तर्जुमान बनकर कोशिश न करेंगे जितने बैठे हैं आप सब यह फैसला करें कि हिन्दी उर्दू रहनुमाई छोड़ देंगे और हिन्दुस्तानी के तर्जुमान बनेंगे । हिन्दुस्तानी का तर्जुमानी आप लाज़मी तौर पर कर सकते हैं क्यों कि ख़ुदा ने क़ाबलियत दी है । हम लोग जो लिखें तो चालीस करोड़ इन्सानों के फ़ायदे के लिये न कि अपनी क़ाबलियत दिखलाने के लिये । दूसरी चीज़ यह है कि लिपियों को मानना ही होगा । कई चीज़ों को अपनी हालत के मुताबिक़ हल करना है ।

इसके बाद राष्ट्र भाषा के पुराने और प्रसिद्ध सेवक दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान मंत्री पं० सत्य नरायन जी खड़े हुए । आपकी मातृभाषा तैलगु है । आपने कहा कि दक्षिण में काम पहले हिन्दी प्रचार से शुरू हुआ था । हम बराबर तीनों लब्ज़ों का प्रयोग करते चले आये हैं । लिपि हिन्दी की ही रखी, उर्दू की कम जिक्र हमको अफ़सोस है । आज और कल की स्पीचों से मुझे डर पैदा हुआ है कि कहीं २५-२६ साल जो हमने काम किया वह बेकार चीज़ तो नहीं है । मगर हम जानते कि हमने यह वक्त बेकार नहीं खोया है । हमने ठीक किया है । जो आप तै करने जा रहे हैं वह हमने पहले सोच निकाला है । हिन्दुस्तान के बीस करोड़ लोगों आपकी हिन्दी, उर्दू से कोई ताल्लुक़ नहीं, मगर हमें क़ौमियत का ख़्याल है, सब की किताबें लेकर हमने काम किया । अब तक उसी नुक़्ते निगाह से काम जो कल स्पीचों में कहा गया था । सारा कोर्स हमने में बाँट लिया है—चौथी मंज़िल तक का कोर्स वह को मन्ज़ूर है । १९२७ में हम लोग साहित्य सम्मेलन अलग हो गये । अब तो हम इस नतीजे पर पहुँच कि ज़रूरत पड़े तो मुल्क की ख़ातिर नाम बदल रस्मुलख़त बदल देंगे पर लेंगे वही जो क़ौम को मंज़ूर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जिससे उसका फ़ायदा हो। जब तक हम आप की चीज़ लेते रहते हैं तब तक आप हमारी पीठ ठोंकते हैं, पर जहां कहा यह हमारी भी फ़रियाद सुन लीजिये तो आप लोग कह देते हैं—अजी आप अपने तक ही रखिये। सवाल यह है कि यह मसला इतनी मुश्किल का हुआ कैसे? लिखने वालों ने अलग अलग तबक़ा बना लिया। तामिल, तेलेगु, बंगला ने २५ साल पहले इसको हल किया। वह आप आज शुरू कर रहे हैं। जनता में जाइये, उनसे जाकर पूछ लीजिये और शब्द आपको मिल जायेंगे। हर एक यह समझता है मुझे लेना है, देना नहीं। हम लोगों ने बीस लाख अल्फ़ाज़ इकट्ठे किये और फिर बुनियादी ज़रूरतों को सामने रखकर बेसिक भाषा के आठ हज़ार लफ्ज़ों की बोली बनाई है। हम जैसे ग़रीबों की भी याद कर लिया कीजिये। तैलेगु में हिन्दुस्तानी के पांच हज़ार शब्द हैं। मैंने अपनी ज़बान में एक लेख लिखा था जिसका हर तीसरा शब्द हिन्दुस्तानी था। आप लोग अपना घर ठीक करिये। पहले अपने सूबों में आपको काम शुरू कर देना चाहिये आप बुनियादें क़ायम करके शुमाली हिन्दुस्तान में पहले एक महल बनाइये जिसे हम भी आकर देखें और आज़ादी के साथ घूमकर यह कह सकें कि यह हमारा है।

आंध्र राष्ट्र हिन्दी प्रचार संघ के मंत्री श्री राजगोपाल कृष्णय्या ने बताया कि दस्तावेज़, दस्तख़त, निगरानी, मुद्दई, दावा, असल, क़ायदा, अमानत वग़ैरह हिन्दुस्तानी के बहुत से लफ़्ज़ हिन्दुस्तान की सब भाषाओं में मिलेंगे। बिल्ली भी जब आना चाहती है तो पूछती है 'मैं आऊं, मैं आऊं', इसी तरह कौवा, कुत्ता वग़ैरह तक हमारी हिन्दुस्तानी बोलते हैं, जैसा हमारे प्रधान मंत्री सत्यनारायण जी ने कहा आप उत्तर वालों को अपने यहां क़दम रखना है और रोशनी डालनी है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार की कर्नाटक शाखा के मंत्री पं० सिद्धनाथ पंत ने ( जिनकी मातृ भाषा कन्नड़ है ) कहा कि उत्तर भारत में राजनीतिक, आर्थिक, साहित्यिक—सभी क्षेत्रों में अलग अलग शैलियाँ हैं। लिपि के मामले में भिड़ का छत्ता छेड़ना अच्छा नहीं। मेरी तो राय है कि पहले जो आसान मालूम हो वह सीख ली जाये फिर जब समय हो तो दूसरी और जब आप दोनों लिपियों में हिन्दुस्तानी लिखने को कहते थे तो मैं क्या यह नहीं पूछ सकता कि हम हिन्दुस्तानी भाषा को अपनी कन्नड़ लिपि में ही क्यों न लिख लिया करें। कलकत्ते में एक बार डा० अब्दुल हक़ ने मुसलमान भाइयों से कहा था कि हिन्दुस्तानी सीख लो, और अगर लिपि कठिन मालूम हो तो बंगला में ही लिखो, नहीं तो रोमन में लिखो, उन्होंने हिन्दी लिपि का नाम नहीं लिया। मेरी विनय है कि लिपि वाली बात में हमें कुछ न कुछ राय तो दे दीजिये।

इस हिन्दुस्तानी सम्मेलन की तीसरी और आख़री बैठक मंगल को तीन बजे शुरू हुई। बापू आज पांच मिनिट पहले ही पहुंच गये। उस पांच मिनिट में उन्होंने सवेरे की कार्रवाई जान ली। ठीक तीन बजे बापू ने अपना भाषण शुरू कर दिया जो इस प्रकार था—

भाइयो और बहिनो, मुझे इतना दर्द तो है कि आप लोगों को मैं जितना वक्तव्य देना चाहता हूँ नहीं दे सकता, जिसके लिये मुझे माफ़ करें। मेरी खामोशी सारा दिन चलती है। वह ऐसी नहीं है कि जो टूट ही न सके। लेकिन मैं चाहता हूँ कि जितने दिन रह सकूँ रहूँ, और मेरा काम ठीक से चले। इसलिये ख़ामोशी रखता हूं। अगर मैं अपनी ताक़त एकदम खर्च कर डालूं तो एक महीने में टूट जाऊँ। मेरा सत्याग्रह और मेरी अहिंसा वह नहीं सिखाती। जहाँ ज़रूरत हो वहाँ दोनों हाथ लुटा दूं। वरना कंजूस भी हो सकता हूँ। आज वह कंजूसी चलती है। सुबह जब आपकी मजलिस हुई तो मैं मालिश करा रहा था।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा क्या है, यह मैं आपको बता दूं। हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का मक़सद यह है कि ज़्यादा से ज़्यादा लोग हिन्दी और उर्दू शैलियाँ और नागरी और उर्दू लिपियां सीखें। एक दिन था जब उत्तर में रहने वाले तो एक ही ज़बान बोलते थे। उन्हीं की औलाद हम हैं। आज हम यह महसूस कर रहे हैं। आज हम यह महसूस कर रहे हैं कि हिन्दी और उर्दू एक दूसरे से दूर होती जा रही हैं। हिन्दी वाले कठिन संस्कृत के और उर्दू वाले कठिन अरबी फ़ारसी के लफ़्ज़ चुनचुन कर इस्तेमाल कर रहे हैं। मैं मानता हूं कि यह चीज़ चलने वाली नहीं है। देहात के लोगों को तो रोटी की पड़ी है। वह जो ज़बान आज तक बोलते आये हैं, वही आगे भी बोलते रहेंगे।

हिन्दी और उर्दू के जो दो अलग अलग फ़िरक़े पैदा हुये हैं उन्हें रोकने का काम मेरे और जमनालाल जी जैसे लोगों का है। मैं दोनों से कहूंगा कि आपका यह तरीक़ा ठीक नहीं है। आपके इन बड़े-बड़े लफ़्ज़ों को देहाती लोग समझेंगे भी नहीं। अगर हम दोनों लिपियों को सीख जाय तो आख़िर में दोनों भाषायें एक हो जायंगी। लिपियों का सवाल इतना टेढ़ा नहीं है। भले ही हमेशा के लिये दो लिपियां रहें या दोनों को छोड़कर हरेक प्रान्त अपनी अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लिपि में राष्ट्र भाषा लिखने लगें तो भी कोई हर्ज नहीं। मगर ज़बान तो एक हो जानी चाहिये। हम आज आलसी बन गये हैं। अंग्रेज़ी का बोझ आज हमारे सिर पर है। लेकिन अंग्रेज़ी भी इतनी मुश्किल नहीं है। छः महीने में हम अंग्रेज़ी सीख सकते हैं, मगर हम तो अङ्गरेज़ी में विचार करना और शास्त्र सीखना चाहते हैं, इसलिये वक्त लगता है। अङ्गरेज़ी के पीछे ज़िन्दगी के चौदह उम्दा साल हम बरबाद करते हैं और इतना करने पर भी पूरी तरह सीख नहीं पाते। आज अगर अङ्गरेज़ीदां ही से कहो कि हिन्दुस्तानी में अपनी बातें समझाओ तो वह कहता है कि कैसे समझाऊं ? क्योंकि अंग्रेज़ी में पढ़ाई होने के कारण वह हिन्दुस्तानी में अपने ख़यालों को ज़ाहिर नहीं कर सकता। फिर वह हिन्दुस्तानी लड़कों को कैसे सिखावेंगे ? यह है हमारी दुर्दशा ! इसमें से आलस भी पैदा होता है।

तो दो लिपियाँ सीखने में डरना क्या ? कोई कहे कि आठ दस दूसरी अच्छी लिपियां हैं तो क्यों न सीखें ? मैं तो कहता हूँ कि दक्षिण की भी एक लिपि सीख लो ! ज़बानें भी वहां चार ही हैं ! तो आप भड़कें नहीं।

आप हिन्दुस्तान में रहते हैं। हिन्दुस्तानियों की सेवा-ख़िदमत करना चाहते हैं। तो इसके लिये दो लिपियां सीखने की मेहनत से डरना क्या ? ज़बान तो एक ही सीखनी है न ? हमारी बदनसीबी है कि हमें दो लिपियां लेनी पड़ती हैं। मगर मैं तो हिन्द की सब ज़बानें खुशी से सीख लूं। दिल में शौक हो तो मेहनत कम पड़ती है। आपकी तादाद आज बहुत ही कम है, भले ही हो। मैं विनय से अदब से कहना चाहता हूँ कि आप तो दो लिपियां सीख लें। इसका नतीजा कितना बड़ा होगा इसमें मैं नहीं जाना चाहता।

कुछ मुसलमान बड़ी बड़ी बातें कहते वक्त जिन लफ़्ज़ों का इस्तेमाल करते हैं, उन्हें सुनकर मैं घबड़ा उठता हूँ, हालांकि उनके साथ मैं काफी बैठता उठता हूं। तो ऐसा क्यों हो ? मैंने इसका जवाब पाया है और उसको आपके सामने रखा है। उर्दू मैंने सीख ली है, आपको सिखा सकता हूँ। ऐसा ही आप सब को करना चाहिये। आप भी हिन्दुस्तान के हैं। इसका नतीजा कितना बड़ा होगा, इसमें मैं नहीं जाना चाहता।

हम क्या करें, कैसे करें, इसका एक ठहराव बनाया है। दूसरे ठहराव में कमेटी बनेगी। कल तो सोचा था कि सब नाम साथ दें मगर यह देखा कि कमेटी के दो जेल में पड़े हैं, टंडन जी वहां पड़े हैं उनसे पूछना होगा, ४-६, १० रोज़ में देख लेंगे। अब मैं इससे ज़्यादा आपका नहीं लूंगा, बाक़ी आख़ीर के हिस्से में।

बापू के बाद अन्जुमन तरक़्क़ीऐ उर्दू के मंत्री प्रसिद्ध लेखक डा० अब्दुल हक़ साहब का भाषण हुआ। आपने कहा कि मैं कल नहीं हाज़िर हो सका इसका मुझ पर नहीं गांधी जी पर है ( बापू ने फ़ौरन कहा नहीं है)। वीमेन्स कान्फ्रेन्स ने मेरा घर घेर लिया और गांधी ने सत्याग्रह का गुर ऐसा सिखाया है कि वह हटी ही मन्ज़ूर न हुई थी। मुझे तफ़सील में जाने की ज़रूरत है। उर्दू के मुताबिक़ दो तीन लब्ज़ कहूंगा। यह लोगों की ज़बान है। बाज़ारों से, ग़रीबों के से, फ़क़ीरों के तकियों से यह घरों में घुस गई मुसलमानों की हुकूमत तक किसी ने मुँह भी नहीं बहादुरशाह का अख़बार फ़ारसी में निकलता शाह आलम ने भी इसे नहीं माना था। सैयद अहमद ने बहुत सादा ज़बान लिखनी शुरू की, ऐसी जो घर नौकर और सईस भी समझ सके। मैंने नागपुर में जी से अर्ज़ किया था कि उर्दू में हिन्दी की ७०, सदी कहावतें हैं। जिस तरह अब हिन्दुस्तानी बन रही उर्दू वैसे ही बनी थी। अभी आल इण्डिया रेडियो यह बताया था कि इसकी राय में हिन्दुस्तानी क्या मगर आज मुझे एक नमूना मिला है, वह है—सत्यनारा अगर यह है हिन्दुस्तानी तो उर्दू वालों की तरफ़ से को एतराज़ नहीं हो सकता। इन दखन वालों का भी ख़ूब चलता है और ज़बान भी। उर्दू में भी को ज़बान दखन वाले लेकर आये थे, आज भी यह से आये हैं। मैं इन्हें मुबारकबाद देता हूँ और अगर कहीं पीर मुरशिद होते तो इनके क़दम पकड़ लेता। किसी उर्दू वाले ने इनकी ज़बान को मानने से इ किया तो उसे हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दूँगा।

इस पर बापू ने कहा यह तो मुश्किल है। डा० का मतलब है कि जात से अलग कर दिया जाय। इसके बाद बापू की तरफ़ इशारा करते हुए श्री सत्यनारा जी ने कहा कि यह हमने बापू के चरणों से सीखा डा० हक़ ने दुआ की कि ख़ुदा करे और भी देशी सीखें।

पहला ठहराव सम्मेलन के सामने पंडित सुन्दर जी ने रखते हुये कहा—"मुझे कोई ताज्जुब नहीं कि लन और अन्जुमन दोनों हम से दूर हैं, बल्कि यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है कि इतने पास हैं, बापू आप जिस रास्ते पर चल रहे हैं, उस पर अगर एक दो धुनी भी चलने लगें तो काफ़ी है। इस वक़्त रवीन्द्रनाथ का वह गीत मुझे याद आ रहा है "एकला चल, एकला चल, ओरे ओरे ओ अभागा !" आज से ३५ साल पहले हम ठीक एक ज़बान बोलते थे। कोई पञ्जाबी हिन्दू औरत न मिलेगी जो ईश्वर के लिये 'रब' न कहती हो। पंजाब की मुसलमान औरत बेटे को 'पुत्तर' कहकर ही पुकारती है। शादी के रिवाज, तेल चढ़ाया जाना, द्वारचार वग़ैरह आदि रस्में मुसलमानों में निकाह के बाद वैसी ही होती हैं जैसी कि हिन्दुओं में। ज़रा हटकर कहूँ तो मुझे तो सारी दुनिया एक कल्चर की तरफ़ जाती हुई दिखलाई दे रही है। हम लोग कुएँ के मेंढक की तरह बन गये हैं और 'आवश्यकता' या 'ज़रूरत' में ही मरे जाते हैं कि एक के इस्तेमाल करने पर एक की कल्चर का नाश हो जायगा। मेरी नज़र में दोनों एक हैं, दोनों में कोई भेद नहीं। संकीर्ण भावनाओं को निकालकर हम लोग मानव धर्म की तरफ़ बढ़ें। हमारी एक ज़बान पैदा होगी, एक कामन कल्चर होगी, तभी सचमुच यह मुल्क आज़ादी का मुस्तहक़ होगा।

इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए चौधरी मोहम्मद यासीन ने कहा कि बड़ी ख़ुशक़िस्मती है कि महात्माजी ने इस मसले के हल करने के लिये कमर कस ली है। साथ ही साथ हम लोग दिमाग़ से सोचें तो इसी नतीजे पर पहुंचेंगे कि जो महात्मा जी ने बताया वही हमारी मुश्किल का बेहतरीन हल है। जैसा मैंने सुबह आपके सामने अर्ज़ किया था सिवाय इसके कोई दूसरा और इससे बेहतर रास्ता हमारे सामने नहीं है।

इसी ठहराव का अनुमोदन करते हुए हिन्दी के मशहूर कहानी लेखक श्री सुदर्शन जी ने कहा कि आज कल हमारे देश में ज़माना रोने का है। क्या ही अच्छा हो कि आज होली के दिन यह हमारा रोना ख़त्म हो जाये और हम एक दूसरे से गले मिलकर एक साथ चलें। हमको यह ताने दिये जाते हैं कि तुम स्वराज्य के क़ाबिल नहीं हो। अब ज़िम्मेदारी लिखने वालों पर आ जाती है। हिन्दी वाले यह सोचकर लिखें कि संस्कृत की बेटी हिन्दी में नहीं बल्कि उर्दू की बहन हिन्दी में लिख रहे हैं। इसी तरह तरह उर्दू वाले भी समझें। आज कल हमारे यहाँ ऐसे लफ़्ज़ चलते हैं जैसे दुःख-दर्द वग़ैरह, तो क्यों नहीं हम नये लफ़्ज़ इस्तेमाल करें जैसे शान-शोभा, सब्र-सन्तोष; गुलबदन की तरह प्रेम-आशना कहें और इसी तरह और बहुत से। यह अदबी ज़बान भी बन सकती है। आज दुनिया के महापुरुषों में से एक हमारे साथ है। मुझे उम्मीद है कि इस काम में कामयाबी ज़रूर होगी।

इसके बाद बापू ने पूछा कि किसी को इसके ख़िलाफ़ कुछ कहना है। जैसे कांग्रेस की चाल है मैं वैसा ही करता जाऊँगा।

तब कुछ कहने के लिये आनन्द जी खड़े हुए। आपने कहा कि स्वामी भदन्त आनन्द को इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है बल्कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के राष्ट्र भाषा प्रचार मन्त्री को ज़रा-सा ? ( question-mark ) उठाना है। बापू से मेरी बात पहले भी हो चुकी है और आज सुबह आप लोगों के सामने भी मैंने कुछ निवेदन किया था। मैं चाहता हूँ कि बापू इस पर कुछ प्रकाश डालें। बापू ने आनन्द जी के बैठने के बाद कहा कि मैं समझता हूँ इस पर मैं बाद में कहूंगा।

दूसरा प्रस्ताव सम्मेलन के सामने डा० ताराचन्द जी ने रखते हुये कहा कि आज बंगला में, तामिल में, हिन्दुस्तान की और सूबों की ज़बानों के अपने साहित्य हैं, मगर यह सब मानते हैं कि अंग्रेज़ी के मुक़ाबले में अगर कोई बोली खड़ी हो सकती है तो वह हिन्दुस्तानी ही। मैंने इस मसले को थोड़ा बहुत समझने के लिये अपनी उम्र का काफ़ी हिस्सा ख़र्च किया है। मेरे ख़्याल में हर ज़बान के तीन पहलू होते हैं—पहला ध्वनियाँ, दूसरा क़ायदे या व्याकरण और तीसरा लफ़्ज़। इन तीनों में लफ़्ज़ तो हमेशा बदलते रहते हैं। हर मुल्क में वहाँ के विद्वानों की एक एकाडेमी रहती है जो वक़्तन फ़वक़्तन लफ़्ज़ों को हटाती रहती है और उनकी जगह नये लफ़्ज़ रखती जाती है। अगर आप लफ़्ज़ों पर न जायें तो हिन्दी उर्दू में बहुत बड़ा फ़र्क़ जो दिखलाई पड़ता है वह दूर हो सकता है। हिन्दुस्तानी वह ज़बान है जो देहली, मेरठ और रुहेलखंड में बोली जाती है। यह खड़ी बोली शौर सैनी से निकली है जो कि ख़ुद अपभ्रंश से निकली है। यह अपभ्रंश निकली तीसरी प्राकृत से जो दूसरी प्राकृत से निकली और यह प्राकृत संस्कृत से निकली। संस्कृत से एकदम सीधी कोई ज़बान नहीं निकली। खड़ी बोली बोली है, हिन्दी और उर्दू उसकी अदबी सूरतें हैं। भंडारकर के विल्सन लेक्चर से उद्धरण देते हुए डा० ताराचन्द जी ने कहा कि संस्कृत के व्याकरण और खड़ी बोली के व्याकरण में बहुत फ़र्क़ है। खड़ी बोली में संयुक्त व्यंजन, ह्रस्व स्वर, हलन्त वग़ैरह नहीं होते। रीति को रीत कहते हैं, प्रीति को प्रीत। खड़ी बोली



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


की ध्वनि-धारा संस्कृत से भिन्न है। जहां तक ग्रामर की बात है सवाल की जमा सवालात और वजह की जमा वजूह जो उर्दू में लिखा जाता है यह हिन्दुस्तानी पर अत्याचार है। इसी तरह हिन्दी वालों का इतिहास से ऐतिहासिक बनाना, उचित से औचित्य बुरा है। अदब के लिहाज़ से बन्दानवाज़ गेसूदराज़ कड़ी से कड़ी ज़बान में लिखते थे। दखन में चौदहवीं से अठारहवीं सदी तक यह बढ़ती रही। अब तक इसका नाम हिन्दी ही दिल्ली में था। दिल्ली के ज़वाल के ज़माने में जब इस ज़बान के लोग दिल्ली आये तो उर्दू-ए-मोअल्ला शुरू हो गई। उस वक्त से उर्दू हमारे सामने आती है। उन्नीसवीं सदी के बीच में ग़ालिब ने कहीं हिन्दी कहीं उर्दू इसको कहा है। इस बीच ब्रजभाषा, अवधी बढ़ती रहीं। खड़ी बोली में इस बीच अरबी, फ़ारसी की कुछ आवाज़ें आ गईं थीं जैसे कैंची, चाकू, क़लम, काग़ज़। उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज़ों ने ब्रजभाषा के पंडित रखे, उर्दू के मौलवी रखे पर हिन्दी के नहीं। गिलक्राइस्ट की वजह से वह भाषा बनना शुरू हुई जो अब हिन्दी कहलाती है। सर जार्ज कैम्पबेल ने बिहार में कहा कि उर्दू तो रंडियों की ज़बान है, दोग़लों की जबान है। इस तरह दो बोलियां तैयार होनी शुरू हो गईं। एक तरफ़ से जितनी खींच होती दूसरी तरफ़ से उतनी तान। १९०५ की राष्ट्रीय तहरीक से यह झगड़ा और भी बढ़ गया। इस वक्त कोई दूसरी सूरत नहीं है सिवाय इसके जो महात्माजी ने बतलाई है। हिन्दुस्तानी तो मौजूद है। मैं आपके सामने हाली की एक नज़्म पढ़कर सुनाता हूँ जो बिल्कुल हिन्दुस्तानी है।

डा० ताराचन्द ने अपना चालीस मिनिट का भाषण उस नज़्म के साथ पूरा किया। मौलाना सुलेमान नदवी ने खड़े होकर उनके प्रस्ताव का समर्थन किया और फ़ौरन बैठ गये।

हिन्दी के प्रसिद्ध सम्पादक पंडित बनारसी दास जी चतुर्वेदी ने डा० ताराचन्द जी के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि यह एक बड़ा भारी रचनात्मक काम है। पंडित पद्मसिंह शर्मा ने 'हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी' नाम की किताब में डा० ताराचन्द जी से ज़्यादा अच्छी तरह इस मसले को हमारे सामने रखा है। भाषा और लिपि के मामले में मैं तो पंडित जवाहरलाल की राय पढ़कर आपके सामने सुनाता हूँ जिसमें उन्होने कहा है कि यह दफ़्तरी बहसें बन्द करके बुनियादी प्रश्न हम में से हर कोई करे कि मैं किसके लिये लिख रहा हूं? डा० अब्दुल हक़ को हम लोग समझने की कोशिश ही नहीं करते हैं। उन्होंने १५० किताबें लिखी हैं। उनमें से कुछ १६) क़ीमत वाली हैं। हम अपने अन्दर से ज़हर को दूर करें इसके लिये पहले यह ज़रूरी है कि ६-७ आदमी बैठकर एक कोष बनालें।

इसके बाद बापू ने अपने भाषण में कहा—

डा० ताराचंद जी को जल्दी ख़तम करने को मैं नहीं कह सकता था, क्योंकि मैं ख़ुद उनकी बातों में गिरफ़्तार हो गया था। उन्होंने ऐसी बातें कहीं, जिन्हें वे पंडितों की मज़्मों में भी कह सकते हैं। हम तो पंडित नहीं हैं, फिर भी सब लोगों के साथ मैं भी रस से सुन रहा था। फिर उन्होंने कोई बात दुबारा नहीं कही, इसलिये मैंने उन्हें नहीं रोका।

श्री आनन्द कौसल्यायन जी ने जो कहा वह मैं समझा। वह दब-दबकर बोले हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की तरफ़ से उन्होंने यह कहा कि दो लिपियों के बोझ को हो सके तो निकाल दिया जाय। मैं आज भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन में हूँ। उसमें मैं अपने आप नहीं गया था। जमनालाल जी जिस काम में जाते थे अपने साथ मुझे भी ले जाते थे। वे मुझे इन्दौर ले गये। वहाँ मैंने नई चीज़ दी। सो उसे सब हड़प कर गये। मैंने कहा था हिन्दी वह ज़बान है जिसे हिन्दू मुसलमान दोनों बोलते हैं और दोनों लिपियों में लिखते हैं। मेरा वह प्रस्ताव मंज़ूर हुआ। बाद में मैंने उसे सम्मेलन के नियमों में दाख़िल कराया। फिर वह बदल गया, यह दूसरी बात है। इसलिये अगर आज मैं उसमें से निकल जाऊँ तो मुझे दुःख न होगा।

हममें से कई ऐसे हैं जो हिन्दी और उर्दू को मिलाने की कोशिश करते हैं। कोई कहते हैं, 'इसकी क्या आवश्यकता है?' मैं तो सच्ची डेमोक्रेसी (जनतंत्र) चाहता हूं। सिर्फ़ हाँ-में-हाँ मिलाने से डेमोक्रेसी हिपोक्रेसी (ढोंग) बन जाती है। इसलिये मैंने कहा कि सिर्फ़ हाँ-में-हाँ न मिलाइये, अपनी सच्ची राय बताइये।

मैं नहीं चाहता कि हिन्दी मिट जाय या उर्दू नष्ट हो जाय। मैं सिर्फ़ इतना ही चाहता हूँ कि दोनों मेरा काम कर दें। सत्याग्रह का क़ानून है कि उसमें एक हाथ की ताली हो सकती है; वह बजती नहीं मगर हर्ज नहीं होता। आप एक हाथ लावेंगे तो दूसरा अपने आप हट जावेगा। हक़ साहब ने नागपुर में जो बात कही थी उसे उस वक्त मैं समझ सका। 'हिन्दी यानी उर्दू' यह मैंने स्वीकार नहीं किया। उस वक्त उनकी बात मान लेता तो अच्छा होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वे दोस्त बनने आये थे, मगर विरोध किया और दुश्मन बने। लेकिन मेरा दुश्मन तो कोई है ही नहीं; फिर हक़ साहब भी मेरे दुश्मन कैसे बन सकते हैं? इसीलिये हम आज एक मंच पर खड़े हो गये हैं। नागपुर में भारतीय साहित्य सम्मेलन किया था, लेकिन वहां आरम्भ हुआ और वहीं ख़तम; क्योंकि दोस्त बनने बैठे, तो दुश्मन से बन गये। तो उससे क्या फायदा होता? वह हिन्दुस्तानी नहीं बल्कि भारतीय साहित्य सम्मेलन था, इसलिये उस वक्त के भाषण में मैंने संस्कृत के शब्द भर दिये थे। आज भी अगर उनके सामने बोलना पड़े तो वही करूँगा।

आनन्द जी कहते हैं कि सब को दो लिपियां सीखने में बड़ी मुसीबत उठानी पड़ेगी। मैं कहता हूँ कि उसमें कुछ भी मुसीबत नहीं है और अगर हो तो भी उसे पार तो करना ही होगा। क्योंकि अगर उसे पार न किया जाय तो दूसरी उससे भी बड़ी मुसीबतों का मुक़ाबला हम कैसे कर सकेंगे? मैं हिन्दू-मुसलिम एकता के लिये जीता हूं। मैं जानता हूं कि हिन्दुस्तानी के प्रचार से हिन्दू-मुसलिम एकता होगी! मगर यह लालच मैं इस वक्त न दिखाऊँगा।

मैं कहता हूं कि हिन्दी और उर्दू दोनों का भला हो। उनकी मार्फ़त मुझे काम लेना है। हिन्दुस्तानी आज मौजूद है, मगर उसे हम काम में नहीं लाते। यह ज़माना हिन्दी का भी है, और उर्दू का भी। वे दो नदियाँ हैं। उनमें से हिन्दुस्तानी की तीसरी नदी प्रकट होने वाली है, इसलिये अगर ये दोनों सूख जावेंगी तो मेरा काम नहीं चल सकता।

देहाती लोग मेरी ज़बान समझ लेंगे। जिसमें संस्कृत या अरबी फारसी के शब्द ठूंस ठूंस कर भरे हुये हों ऐसी भाषा को वे नहीं समझ सकेंगे। अगर हिन्दी साहित्य सम्मेलन कहे कि हम तो संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही चलायेंगे तो वह मेरे लिये मर जाता है। देहाती ज़बान तो एक ही चीज़ है। वह दो नहीं हो सकती। बाद में हो तो हो। हिन्दी वाले चाहते हैं कि मैं हिन्दी की ही नौबत बजाता रहूं, उर्दू का नाम न लूं। मगर मैं तो अहिंसा को मानने वाला सत्याग्रही हूं। मैं यह कैसे कर सकता हूं। मैं अकेला यह काम नहीं कर सकता। इसमें सब की मदद चाहिये। मैं महात्मा हूं तो इसका कारण यही है कि मैं अपनी मर्यादाओं को समझकर उनसे बाहर नहीं जाता। इसी लिये मौलवी हक़ साहब आये हैं। मेरे पास पंख नहीं हैं। बड़े बड़े बुज़ुर्गों को इसीलिये बुलाया है कि वे मुझे पंख दें। तब मैं भी उड़ूंगा और कहूंगा, 'देखो काम तो अच्छा हो गया न?' नहीं तो ख़ाक में पड़ा ही हूं, ख़ाकसार हो जाऊँगा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन में मैं भी एक बड़ा आदमी समझा जाता हूं। मगर उस हैसियत से नहीं, बल्कि आम तौर पर मैं यह कहना चाहता हूं कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ख़िलाफ़ कोई काम न होगा। मगर दोनों लिपियां सीखने की तकलीफ़ तो गवारा करनी ही होगी। मैं तो आनन्द जी की मार्फ़त भी काम कराना चाहता हूं।

मुझ से कहा गया कि मुसलिम लड़के तो नागरी लिपि नहीं सीखते, मैंने कहा तुमने नहीं खोया, उन्होंने खोया। एक लिपि सीख ली तो उससे क्या? इतनी सी बात से इतना बड़ा हित होता है। यही बात मैंने हसरत मोहानी साहब से भी कही थी। लेकिन उस वक्त वह काम न चला, क्योंकि सत्याग्रह शुरू हो गया। मैं यह नहीं कहता कि आप सब लोग जेल जायं, मगर मैं गया। दूसरे जो जेलों में पड़े हैं वह भी कोई मूर्खता की बात नहीं है। जवाहरलाल, वल्लभ भाई, मौलाना साहब जेल में बैठे हैं, वह कोई पागल नहीं हैं। अगर वे ख़ुशामद करके बाहर आ जायेंगे तो मेरी नज़र में मर जायेंगे। अगर वे अन्दर ही मर जायेंगे तो मैं एक भी आंसू नहीं बहाऊँगा। कहूंगा, 'अच्छे मरे!' क्योंकि वहां बैठे-बैठे भी वे हिन्द की ख़िदमत कर रहे हैं।

अगर हिन्दी और उर्दू मिल जाँय तो गंगा जमुना से भी बड़ी सरस्वती हुगली की तरह बन जायगी। हुगली तो गंदी है। मैं उसका पानी नहीं पीता। मगर यह हुगली बन गयी तो वह बड़ी ख़ूबसूरत होगी।

नदवी लिखें, हक़ साहब लिखें, टंडन जी लिखें, मेरी दावत को क़बूल कर लें, दिल से क़बूल कर लें।

अब रही पैसे की बात। पैसे का ख़रच तो है ही। ताराचन्द का मुंह बहुत बड़ा है। जो पैसा देना चाहते हैं तो मेरे पास या श्रीमन जी के पास भेज दें जो जितना दे सके दे मगर नाम वाले से मैं एक पैसा नहीं लूँगा। जो पैसा दे दिल से दे नाम के लिये न दे।"

साढ़े पांच बज रहे थे। एक काम बाक़ी था अल्लामा कैफ़ी की हिन्दुस्तानी में एक नज़्म। बापू ने उन्हें बुलाया। कैफ़ी साहब ने अपनी यह नज़्म पढ़कर सुनाई—

दुःखी हैं तो क्यों आप झुँझला रहे हैं
किये का ही तो अपने फल पा रहे हैं!
कभी उनके कामों में भी मन लगाते
जो अगलों के गुन रात दिन गा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जो उल्टी समझ है जो है काम उल्टा
कि वह सीधी बातों को उलझा रहे हैं!
नई उलझनें और पड़ती हैं आकर
यह क्या गुत्थियाँ आप सुलझा रहे हैं?

किधर जा रहे हैं नहीं इसकी सुधबुध
जो हैं अपनी धुन में चले जा रहे हैं।
नहीं खेल लड़कों का है देश भक्ति
यही कब से हम तुमको समझा रहे हैं।

जो हो प्यार आपस में तो भाग जागें
तुम्हें बात यह गुर की बतला रहे हैं।
नहीं साँच को आँच मूलो न इसको
वह पछतायेंगे अब जो इतरा रहे हैं।

वही बात है साथ के डूबने की
जो बहके हुए हैं वह बहका रहे हैं।
है एक आपका और उसका विधाता
हरिजन से क्यों आप कतरा रहे हैं?

यह क्या उल्टी गंगा बहाने की सूझी
कि भाई से भाई छुटे जा रहे हैं।
न आना कभी उनकी बातों में देखो
जो अन बन यहां हममें फैला रहे हैं।

कड़ा जी को रखना कि विपदा के बादल
जहाँ जायें सिर पे वां मँडला रहे हैं।
न जाने यह चक्कर कहां जाके ठहरे
अभी से ही क्यों आप घबरा रहे हैं?

सुनी अनसुनी करदें क्या इससे हमको
जो कहना है कैफ़ी कहे जा रहे हैं।

वयोवृद्ध कैफ़ी साहब अपनी नज़्म पढ़कर ही चुके थे कि हाथ का परचा बापू ने झट छीन लिया। सारी सभा हँस पड़ी। बापू खड़े हुए, बिदा ली और चल दिये।

और हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का यह सम्मेलन इस तरह ख़तम हो गया।

---

# मेरी भारत माँ!

कुमारी रज़िया बेगम नक़ी, रायपुरी

भारत की इस स्वर्ण-भूमि पर, रचीं ऋचायें तत्वज्ञों ने;
साम-गीत, सङ्गीत सुधा से, मुग्ध किया जग वेदज्ञों ने।
यहीं बुद्ध की सौम्य मूर्ति ने, जग का पथ निर्देश किया था;
सत्य अहिंसा विमल-मार्ग का, जीवन में आदेश दिया था।
नीति-कुशल चाणक्य-जन्म-भू, 'प्रियदर्शी' की धर्म-भूमि यह;
अश्वघोष औ' कालिदास की, कविता-कानन, रम्य-भूमि यह।
विक्रम, गुप्त, कनिष्क—पताका यशवर्ती जिनकी फहराई;
वाकाटक, चोलों, शैवों की, कीर्ति दुन्दुभी जग में छाई।
अकबर से सम्राट—धर्म था जिनका मानवता संस्थापन;
आदि सन्त ज्ञानी कबीर का, प्रेम-धर्म का पुण्याराधन।

अगणित कला प्रेमियों ने, मेरी माँ का शृङ्गार किया है
मोहन-जे-दाड़ो से अब तक, लक्ष लक्ष उपहार दिया है
तक्षशिला औ' रुचिर अजन्ता, सांची, खंडगिरी मन-भावन
माँ के अङ्ग अङ्ग में नग सम, जड़े हुये तीरथ अति-पावन
मुग़लों की गौरव गरिमा ने, जग मग भारत देश किया था
ताज, कुतुब, दुर्गों, चित्रों में, कला-ज्ञान निःशेष किया था
तुलसी के मानस में व्यापी, राम नाम की महिमा सुन्दर
भक्ति-मग्न लख सूरदास को, होता था ईर्षालु पुरन्दर
मीरा, दुर्गा, रज़िया, लक्ष्मी, की ही जननी मेरी माता
था वह दिन जब सारा जग, मेरी माता को सीस नवाता

विश्व शान्ति की वरदात्री, मेरी माँ तुझे प्रणाम अनेकों!
संस्कृति की चिर भव्य-मूर्ति; मेरी माँ तुझे सलाम अनेकों!

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की पहली बैठक

श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी एम० एस-सी०

हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की पहली बैठक सोसायटी के प्रेज़ीडेण्ट सर तेज बहादुर सप्रू के बङ्गले पर २५ मार्च, इतवार के दिन, शाम को पांच बजे शुरू हुई। सोसायटी को अपने उद्देश्य मक़सद में सफलता कामयाबी मिले इसके लिये देश भर से लोगों ने हौसला बढ़ाने वाले सन्देसे भेजे थे।

उसी दिन तीन बजे शाम को सोसायटी की गवर्निंग बाडी की बैठक भी सर तेज के यहाँ हुई। गवर्निंग बाडी के प्रेज़ीडेण्ट डा० भगवानदास जी बीमारी की वजह से बनारस से न आ सके थे इसलिये उनकी ग़ैरहाज़िरी में सर तेज की सदारत में ही गवर्निङ्ग बाडी की बैठक भी हुई। गवर्निङ्ग बाडी ने सोसायटी के आगे के काम पर सलाह मशविरा किया और जनरल बाडी के लिये कुछ प्रस्ताव तै किये। इसी बैठक में बम्बई के भूत पूर्व प्रधान मन्त्री श्री बी० जी० खेर को गवर्निङ्ग बाडी की मेम्बरी के लिये कोआप्ट किया गया। सोसायटी की मेम्बरी में लोगों को शामिल करने का अख़्तियार गवर्निङ्ग बाडी ने एक छोटी कमेटी के सुपुर्द कर दिया जिसके मेम्बरों में डाक्टर ताराचन्द, डाक्टर बेनी प्रसाद, पं० विश्वम्भरनाथ और पण्डित सुन्दरलाल हैं। सोसायटी के लिये धन इकट्ठा करने पर भी गवर्निङ्ग बाडी ने विचार किया और श्री सेठ रामकृष्ण जी डालमिया और श्री सेठ लालचन्द जी को उनके दान के लिये धन्यवाद दिया।

इसके बाद सोसायटी का जल्सा शुरू होने के पहले सर तेज बहादुर सप्रू ने मेम्बरों को चाय की दावत दी। चाय के बाद सर तेज की सदारत में जल्से का काम शुरू हुआ। जो लोग मौजूद थे उनमें ख़ास ख़ास नाम ये हैं—पण्डित सुन्दरलाल, डाक्टर ताराचन्द, डाक्टर हफ़ीज़ सय्यद, पण्डित विश्वम्भरनाथ, मौलाना मोहम्मद अल फ़ारूक़ी, सय्यद मुज़फ़्फ़र हसन, मन्त्री, यू० पी० कांग्रेस प्रतिनिधि असेम्बली, डाक्टर ज़ुबैद अहमद, श्री महीपतराम नागर, न्यूज़ एडीटर 'लीडर', श्री भगवानदास केला, श्रीमती पूर्णिमा बैनर्जी, श्रीमती इन्दिरा गान्धी, श्री भगीरथ प्रसाद दीक्षित, श्री शङ्कर दयालु श्रीवास्तव, सहकारी सम्पादक "भारत", डाक्टर बेनी प्रसाद, डा० एम० एच० फ़ारूक़ी, प्रो० भगवती प्रसाद पान्थरी, श्री० एस० एन० मिश्र, रीडर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, प्रिन्सिपल गोकल चन्द, मि० मोहम्मद अजमल ख़ाँ, एडीटर 'हिन्दुस्तानी', प्रो० डब्लू० एस० गूल्ड, कैप्टेन सय्यद ज़ामिन अली, प्रोफ़ैसर उर्दू, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, श्री० ओ० पी० भटनागर, श्री लक्ष्मण प्रसाद, रिटायर्ड शेशन्स जज, श्री देवेन्द्र दत्त तिवारी एम० ए०, एल० टी०, लेक्चरार बेसिक ट्रेनिङ्ग कालेज, मि० कलीमुर्रहमान, प्रोप्रायटर 'किताबिस्तान', श्री शिवसिंह, मन्त्री इलाहाबाद कम्यूनिस्ट पार्टी, श्री कृष्णदास एम० ए०, ख़ान आगा अली ख़ाँ और श्री सुरेशशरण अगरवाल।

मुन्शी ईश्वर शरण, प्रो० नईमुर्रहमान, डा० बाबूराम सकसेना, डा० पी० के० आचार्य और डा० अमरनाथ झा बीमारी के सबब ख़ुद जल्से में शरीक न हो सके पर उन्होंने अपनी शुभकामना के सन्देसे भेजे। बाहर से जिन लोगों के सन्देसे आये उनमें सर जोगेन्द्रसिंह, सर अब्दुल क़ादिर, श्री० बी० जी खेर, सर रुस्तम मसानी, श्री किशोर लाल मश्रुवाला, प्रो० तान युन-शान, सय्यद अब्दुल्ला ब्रेलवी, श्री सम्पूर्णानन्द, श्री एस० के० पाटिल, ख़ान बहादुर असादुल्ला, लाइब्रेरियन, इम्पीरियल लाइब्रेरी, कलकत्ता डाक्टर अब्दुल, हक़, सय्यद सुलेमान नदवी, श्री एम० सत्यनारायन, मन्त्री दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, प्रो० एस० के० रुद्रा, श्री विद्याभास्कर, सम्पादक 'आज', श्री आरसी प्रसाद सिंह आदि के नाम मुख्य हैं। सदर के हुक्म से ये सारे सन्देसे पढ़कर सुना दिये गये।

## सेक्रेटरी की रिपोर्ट

इसके बाद बैठक की कार्रवाई सोसायटी के मन्त्री पण्डित सुन्दरलाल जी की रिपोर्ट से शुरू हुई जो पढ़ी गई और मंज़ूर हुई। पण्डित जी ने अपनी रिपोर्ट में कहा—

"मई सन १९४२ में डा० तारा चन्द से मेरी इस बात पर बातचीत हुई कि एक ऐसी सोसाइटी बनाने की ज़रूरत है जो उन ग़लतफ़हमियों को दूर करे जो बदक़िस्मती से हिन्दुस्तान की अलग अलग जमातों या सम्प्रदायों में मन मुटाव पैदा कर रही हैं। हम दोनों की यह राय हुई कि इस वक्त के झगड़े का इस वक्त सबब भले ही राजकाजी हो लेकिन कुछ ऐसी बातें भी हैं जो बहुत दिनों से चली आ रही हैं और जिन्होंने हिन्दू और मुसलमानों की उस कलचरल एकता को, उस मिली जुली संस्कृति और समाजी मेल मिलाप को जो हमारे इतिहास के बीच के ज़माने में बराबर बढ़ता चला जा रहा था रोक दिया है। इसलिए राजकाजी समझौता तो इस वक्त ज़रूरी है ही



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर इस सवाल का टिकाऊ और पक्का हल तभी हो सकता है कि जब हम उन ताक़तों को फिर से जगावें जो एक मिली जुली हिन्दुस्तानी कलचर और मिली जुली सभ्यता तहज़ीब को बढ़ा रहीं थीं।

डा० भगवानदास बहुत बड़े विद्वान हैं। हिन्दू और मुसलमानों दोनों के ख़यालों और दोनों के धर्म मज़हबों की उन्हें बहुत गहरी जानकारी है। कलचर यानी संस्कृति की बातों में उनकी निगाह बड़ी गहरी है और चीज़ों की जड़ तक, बुनियादी उसूलों तक पहुंचती है। इस लिए इस तरह की सोसाइटी के काम को चलाने और उसे ठीक फ़ैसले करने में मदद देने के लिए हिन्दुस्तान में उनसे बढ़ कर कोई नज़र नहीं आया। हम दोनों उनसे मिले, उन्होंने हमारी कोशिशों को सराहा, हमें दुआ दी। हमारा हौसला बढ़ाया और सोसाइटी की गवर्निङ्ग बाडी का प्रेज़ीडेन्ट होना मंज़ूर कर लिया।

सर तेज बहादुर सप्रू ज़िन्दगी भर हिन्दू मुसलमानों के मेल की तरफ़ रहे हैं। उनमें ज़बरदस्त क़ाबिलीयत है। वे सब के साथ बराबर की हमदर्दी रखते हैं। उन्होंने हमेशा हिन्दुस्तान की मिली जुली कलचर को क़ायम रखा और बढ़ाया है। हमारी प्रार्थना पर उन्होंने सोसाइटी का प्रेज़ीडेन्ट होना मंज़ूर कर लिया।

जून सन १९४२ में सोसाइटी ने सन् १८६० के एक्ट नं० २१ के मुताबिक़ रजिस्टर होने की दरख़ास्त दी। १७ सितम्बर सन् १९४२ को रजिस्ट्री का सर्टीफिकेट मिला। अगस्त और सितम्बर सन् १९४२ में मुल्क में जो कुछ हुआ और उसके जो नतीजे हुए उनसे सोसाइटी का काम रुक गया। सोसाइटी का सेक्रेटरी जो यह रिपोर्ट लिख रहा है और सोसाइटी की गवर्निंग बाडी के तीन और मेम्बर क़ैद कर दिये गए। मुल्क की हालत ऐसी न रही जिसमें सोसाइटी अपना मक़सद पूरा कर सके।

फिर भी कुछ मामूली काम काज के लिए गवर्निंग बाडी की दो बैठकें हुईं। एक ४ अप्रेल सन् १९४३ को और दूसरी १३ मई सन् १९४३ को। सेक्रेटरी जेल में था इस लिये मि० अबदुल मजीद ख़्वाजा ने सेक्रेटरी की जगह काम किया। नवम्बर सन् १९४३ में जेल से रिहा होने के बाद सेक्रेटरी को कई महीने अपनी तनदुरुस्ती ठीक करने में लगे।

सन् १९४४ के बीच से सोसाइटी का काम शुरू कर दिया गया। ख़ास काम सोसाइटी के आदर्शों मयारों का प्रचार करना और फण्ड जमा करना था।

इन दोनों का थोड़ा सा हाल सोसाइटी की इत्तला के लिए नीचे दिया जाता है।

श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी एम० एस-सी के साथ, जो एक नौजवान और जोशीले काम करने वाले हैं और जिन्होंने आपसी मेल मिलाप और कलचरल एकता के लिए ज़िन्दगी दे रक्खी है, सेक्रेटरी ने सेण्ट्रल इण्डिया का दौरा किया। ग्वालियर रियासत के सेन्ट्रल कनसिलिएटरी बोर्ड के बुलावे पर हम लोग ग्वालियर गए। ग्वालियर में हजारों हिन्दू और मुसलमानों ने सेक्रेटरी के लेकचरों में शामिल होकर उन्हें ध्यान से सुना और पसन्द किया। ग्वालियर से हम लोग भेलसा और उज्जैन गए। उज्जैन में ६ लेकचर हुए जिनमें से एक वहाँ की मुसलिम लीग की तरफ़ से हुआ। वहाँ से हम लोग इन्दौर कांग्रेस कमेटी और इन्दौर प्रजा-मंडल के बुलावे पर इन्दौर गए। इन्दौर में सेक्रेटरी के १४ लेकचर हुए। इनमें से एक जलसा औरतों की तरफ़ से था, एक वहाँ के मुसलमानों की तरफ़ से और एक कांग्रेस कमेटी, मुसलिम लीग और ख़ाकसार तीनों की तरफ़ से मिल कर था। दो जलसे इन्दौर के दोनो कालेजों में हुए। इन्दौर में हमने वहाँ के ख़ास ख़ास हिन्दू और मुसलमानों का एक एकता बोर्ड बना दिया और उसके काम करने के लिये क़ायदे और उसूल तय्यार कर दिये।

इन्दौर से हम धार बुलाये गए जहां बदक़िस्मती से हमारे पहुँचने के चन्द रोज़ पहिले ही एक हिन्दू मुसलिम दंगा हो चुका था और हवा बिगड़ी हुई थी। इन्दौर और धार के दोस्तों की मदद से हम वहाँ के हिन्दू और मुसलमानों में फिर से मेल जोल पैदा कर सके। हिन्दू और मुसलमान दोनो ने मेरे लेकचरों को पसंद किया। वहाँ भी हम कुछ असर वाले लोगों का एक एकता बोर्ड क़ायम कर सके।

इसके बाद हम आसपास के शहरों बड़वाहा, सनावद, बड़नगर, बदनावर और सिहोर गए। सब जगह हिन्दू और मुसलमान मर्दों और औरतों के बड़े बड़े जलसे हुए। हमें यक़ीन है कि इन जलसों में सेक्रेटरी के लेकचरों का सब पर बहुत अच्छा असर रहा।

कुछ दिन तक हम भोपाल ठहरे। वहाँ पर भी हिन्दू और मुसलमानों के मिले जुले बहुत बड़े बड़े जलसे हुए और सेक्रेटरी के लेकचरों का अच्छा असर रहा। भोपाल में भी उसी तरह का एक एकता बोर्ड क़ायम होगया।

सोसाइटी के मेम्बरों के बाक़ी कामों में से एक के ख़ास तौर पर बयान करने की ज़रूरत है। जो बड़े काम की

...ic Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कान्फ़रेन्स हिन्दी और उर्दू को मिलाने और हिन्दुस्तान के लिए एक आम क़ौमी भाषा को तरक़्क़ी देने के लिए महात्मा गान्धी ने वर्धा में बुलाई थी उसमें इस सोसाइटी की गवर्निंग बाडी के ६ मेम्बरों ने पूरा पूरा हिस्सा लिया।

सोसाइटी के प्रेज़ीडेन्ट साहब की इजाज़त से मैं यहाँ उस बड़े काम का भी ज़िक्र कर देना चाहता हूं जिसमें हमारे प्रेज़ीडेन्ट साहब ख़ुद महीनों से लगे हुए हैं, यानी इस मुल्क की अलग अलग पार्टियों, गिरोहों और जमातों के बीच राजकाजी समझौते के लिए बुनियादी बातों का पता लगाना जिन पर आगे का समझौता चल सके।

सोसाइटी के लिए फ़ण्ड जमा करने में भी थोड़ी सी कामयाबी मिली है। हम सेठ रामकृष्ण जी डालमियाँ के मशकूर हैं जो अप्रेल सन् १९४४ से सोसाइटी को २५० रु० महीना देते रहे हैं। वह हमारे एक पेट्रन हैं। उज्जैन के सेठ लालचंद जी ने भी हमें ५०१ रु० दिये हैं और वह भी सोसाइटी के एक पेन्ट्रन हैं।

जनवरी सन् १९४५ में सेक्रेटरी ने गवरमेण्ट आफ़ इण्डिया को इस बात की दरख़ास्त दी कि सोसाइटी के रिसालों, पत्रिकाओं और किताबों के छापने के लिए सोसाइटी को काग़ज़ ख़रीदने की इजाज़त दी जावे। हमें यह कहते तसल्ली होती है कि गवरमेण्ट ने ५२८ पौण्ड माहवारी नागरी और उर्दू में दो माहवारी पत्रिकाओं के लिए, दो टन सालाना किताबों के लिए और ४५० पौण्ड तिमाही दफ़्तर की और ज़रूरतों के लिए ख़रीदने की इजाज़त दे दी है।

सोसाइटी का दफ़्तर विश्ववाणी कार्यालय के मकान में खोल दिया गया है। श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी जिन्होंने सेक्रेटरी के दौरे में उन्हें बड़ी मदद दी थी अपने गुज़ारे के लिए सिर्फ़ ४० रु० माहवार लेकर सोसाइटी का काम कर रहे हैं।

इस रिपोर्ट को ख़तम करने से पहिले मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि हाल में मैं बम्बई गया था और वहाँ के चार बड़े बड़े चैरिटेबल ट्रस्टों के ओहदेदारों से मिला। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि सोसाइटी के मक़सदों से उन्हें पूरी हमदर्दी है।"

रिपोर्ट की मंज़ूरी के बाद सदर के हुक्म से डाक्टर ताराचन्द जी ने गवर्निंङ्ग बाडी के प्रेज़िडेण्ट डाक्टर भगवानदास का व्याख्यान पढ़कर सुनाया जो बीमारी के सबब ख़ुद न आने की वजह से उन्होंने लिखकर भेज दिया था।

## डाक्टर भगवानदास जी का व्याख्यान

प्यारे दोस्तो और साथियो!

मेरा जी तो बहुत चाहता था कि आप से मिलकर एक ऐसे मसले पर कि जिसका हमारे देश की आगे की भलाई के साथ गहरा सम्बन्ध है बातें करता और ख़ुश होता पर बदक़िस्मती से मेरा जिस्म मेरे दिल का साथ नहीं दे रहा है। इसलिये मैं अपने कुछ ख़याल लिखकर आपके सामने रख रहा हूँ और इसी में सन्तोष मान लेता हूं। मैंने आपसे बहुतेरा कहा फिर भी आपने अपनी गवर्निङ्ग बाडी की सदारत का भार मुझ पर रखना ही ठीक समझा। मैं इस भार को उठाने के क़ाबिल नहीं हूँ क्योंकि मैं स्वभाव से ही चीज़ों के अमली पहलू को शायद कम समझता हूँ और अपनी राय और अपने उसूलों में कुछ कट्टर भी हूँ। इसलिये जो कुछ मैं कहने वाला हूं उसमें आपको बहुत सी कमियां दिखाई देंगी। मेरी प्रार्थना है कि आप धीरज के साथ उन्हें सह लेंगे। मुझे बरसों से यह एक बान सी पड़ गई है कि जिन ख़ास ख़ास शब्दों को हम अपने पबलिक कामों में या निजी कामों में भी बरतते हैं उन शब्दों के अर्थ और उनके मायने मैं बिल्कुल साफ़ साफ़ समझ लेने की कोशिश करता हूँ। हमारी सोसायटी का नाम 'हिन्दुस्तानी कलचर सोसायटी' है। किसी भी सभा-सोसायटी का नाम एक ख़ास चीज़ है। नाम ही से लोगों को पता चलता है या कम से कम पता चलना चाहिये, कि वह सभा सोसायटी क्या चाहती है, उसका असली, मक़सद या उद्देश्य क्या है, वह क्यों बनाई गई, उसके बनाने की क्या ग़रज़ है, और वह सोसाइटी क्या करना चाहती है? हमारी सोसाइटी के नाम में 'हिन्दुस्तानी' शब्द के बारे में तो कोई शक नहीं होना चाहिये। 'हिन्दुस्तानी' के साफ़ मायने हैं—'हिन्दुस्तान की चीज़' या 'हिन्दुस्तान में पैदा हुआ और यहाँ पला हुआ आदमी, इस भारत मां का बच्चा' और 'इस तरह के आदमी की सब चीज़ें या उसके सब मामले।' सोसायटी शब्द के मायने भी काफ़ी साफ़ हैं, 'सोसायटी' के मायने हैं—कुछ ऐसे लोगों की एक जमात जो मिलकर कोई काम करना चाहते हों और जिनका एक दूसरे से वैसा ही नाता हो जैसा किसी भी ज़िन्दा देह के अन्दर रग पट्ठों और हाथ पैरों का एक दूसरे से।

लेकिन 'कलचर' शब्द इतना आसान नहीं है। मुझे नहीं मालूम कि हम सब 'कलचर के एक ही मायने समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं या अलग अलग। मुझे शक है कि हम सब एक मायने नहीं समझ रहे हैं। कलचर किस बात में है, या कलचर में क्या क्या चीज़ें शामिल हैं इस पर हम सब का एक ही मत नहीं है। एक ख़ास तरह के कपड़े पहनना? शायद! ख़ास तरह से बोलना? एक दरजे तक। एक दूसरे को ख़ास तरह से सलाम करना? हाँ! यह भी। तालीम का एक ख़ास ढङ्ग? बेशक, कुछ तो। लेकिन किस चीज़ की तालीम और किस तरह की? इसमें भी अपने अपने ढङ्ग हो सकते हैं। ज्ञान का भंडार? कुछ तो। लेकिन फिर किस तरह का ज्ञान? तरह तरह का। लेन देन और और आपसी व्यवहार में एक ख़ास तरह का ढंग? हाँ! यह भी। और घरेलू जीवन में घर वालों में आपसी बर्ताव? हाँ ठीक! घर में ख़ास ख़ास मौक़ों को जैसे बच्चा पैदा होना, ब्याह शादी, वग़ैरह मनाने का ढङ्ग? हाँ, बेशक। एक ख़ास तरह का मज़हबी जज़बा या धार्मिक भावना? हाँ शायद। आर्ट, कला, गाना बजाना, चित्रकारी जैसे हुनर में से किसी एक या ज़्यादा की तरफ़ ख़ास झुकाव? हाँ, यह भी। मेले, तमाशे, जलसे, मौसम के त्योहार, दूसरे त्योहार और अपने इतिहास के ख़ास ख़ास दिन मनाना? हां! खान पान, दावतों और ज्योनारों के ख़ास ख़ास तरीक़े? हाँ! कुछ तो ये भी। मकान बनाने का कोई ख़ास ढङ्ग? हो सकता है या शायद है, इसमें भी बहुत से अलग अलग ढङ्ग रहेंगे। अपना एक ख़ास साहित्य यानी अदब और अपनी साइन्स यानी विज्ञान? ज़रूर थोड़ा बहुत। एक ऐसी बोली जिसे सब बोल समझ सकें? बिला शक! एक दूसरे को समझने और एक दूसरे से बात चीत करने के लिये ज़रूरी है।

ऊपर के सवालों में शायद कोई ख़ास सिलसिला मालूम नहीं होता। उनके जवाब भी जो जैसे मुझे सूझे कुछ झिझकते हुए मैंने लिख दिये। ये सब जवाब नामुकम्मिल और अधूरे हैं और जैसा चाहिये साफ़ नहीं हैं। फिर भी हर जवाब में कुछ न कुछ सचाई ज़रूर है। कलचर की ऐसी क्या परिभाषा या तारीफ़ की जावे जो अधूरी न हो, जो मुकम्मिल हो, जिससे कलचर एक अलग साफ़ चीज़ दिखाई दे और जिसे अक़्ल भी मानले। अब हम पहले यह देखना चाहते हैं कि हिन्दुस्तानी ज़बान में 'कलचर' के लिए ठीक शब्द क्या होना चाहिये? अङ्गरेज़ी में सिविलीज़ेशन' और 'कलचर' इन दोनों शब्दों का बिलकुल एक ही मतलब तो नहीं है, लेकिन फिर भी ये दोनों शब्द बहुत मिलते जुलते हैं। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि कलचर से आदमी की अन्दर की हालत का पता चलता है और 'सिविलीज़ेशन' उस अन्दर की हालत की बाहर रूप रेखा को कहते हैं। 'कलचर्ड' और 'सिविलाइज़्ड' दोनों शब्दों को लोग आम तौर पर एक ही मायने इस्तेमाल करते हैं। हिन्दुस्तानी में कलचर को कहेंगे 'शिष्टता' 'संस्कृति', 'तहज़ीब' 'तादीब' या 'शाइस्तगी' और सिविलीज़ेशन को कहा जाता है—'सभ्यता' 'समुचार' 'तहज़ीब' या 'तौर तरीक़'। इससे ज़्यादा आसान शब्द जिन्हें सब समझते हैं—चाल, ढङ्ग, तरह—हैं, लेकिन इनसे पूरा मतलब नहीं निकल सकता। हम एक बात भी ध्यान में रखें कि शायद सिविलीज़ेशन और सभ्यता दोनों का निकास एक ही सा है, यानी 'सभा', 'सिविल' जमात, शहर। सिविलाइज़्ड और सभ्य दोनों के मायने हैं—वह आदमी जो 'शहरी' कहलाने के या सभा सोसायटी में बैठने के क़ाबिल हो। दूसरी तरफ़ 'कलचर' लैटिन शब्द 'कल्टस' (cultus) से निकला है। कल्टस के मायने हैं—'हल'। ज़मीन पर खेती करना और आदमी के दिल और दिमाग़ को कलचर करना दोनों एक ही से काम हैं। दोनों में हल चलाना पड़ता है, जोतना पड़ता है, ज़मीन तय्यार करनी होती है, मिट्टी को बारीक करना होता है और फिर अच्छे क़ीमती और काम के बीज उसमें बोने होते हैं। ये बीज माद्दी भौतिक, इख़लाक़ी नैतिक और दिमाग़ी मानसिक, तीनों तरह के हो सकते हैं। बीज ऐसे होने चाहिएं जिनसे जिस्म और रूह दोनों को तन्दुरुस्ती देने वाली जिस्मानी और रूहानी खूराक़ तय्यार हो सके। संस्कृति मांजना, इसका भी यही मतलब है। यही शाइस्तगी और तहज़ीब का मतलब है। इन सब शब्दों में संस्कार करना सुधारना, फिर से साफ़ करना, ज़्यादह अच्छा बनाना चमका कर सुन्दर रंग रूप देना, ये सब बातें शामिल हैं। अङ्गरेज़ी की डिक्शनरी में कलचर और सिविलीज़ेशन दोनों के मायनों में 'रिफ़ाइनमेंट' शब्द आता है जिसका मतलब है फिर फिर साफ करना। इसलिये 'कलचर' की असली निचोड़ इसी बात में होना चाहिये कि आदमी को उसके जीवन के सब पहलुओं में माँजा और फिर फिर साफ़ किया जावे। सिविलीज़ेशन' का मतलब वह सब ऊपर की चीजें हैं जो इस तरह के मँजे हुये लोगों की बनी नेशन, कोई क़ौम या उनका कोई गिरोह अपने मिले जुले जीवन के सब पहलुओं में करता और दिखाता है। आदमी के अन्दर जो चीज़ दबी छिपी रहती है उसी बाहर के रूप फैलाव का नाम ही 'सिविलिज़ेशन' है।

अब हमें यह देखना है कि आदमी के स्वभाव के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अप्रैल १९४५ ]

ख़ास ख़ास पहलू कौन से हैं और उनमें से किस किस का मिली हुई क़ौमी ज़िन्दगी के किस किस पहलू के साथ ख़ास सम्बन्ध है ? हमारे जीवन के तीन ख़ास पहलू ये हैं—दिमाग़ यानी मस्तिष्क, कैरेक्टर या चरित्र, और जिस्म या शरीर। दिमाग़ का सम्बन्ध ज्ञान इल्म से है, कैरेक्टर या चरित्र का इच्छा ख़्वाहिश से, और जिस्म का क्रिया फेल से। आदमी का दिमाग़ अच्छा और मज़बूत हो, कैरेक्टर अच्छा और मज़बूत हो और जिस्म अच्छा और मज़बूत हो तो इन्हीं तीनों से अच्छी और मज़बूत कलचर बने। दिमाग़ के अच्छेपन का मतलब यह है कि आदमी को बहुत सी और काम की चीज़ें मालूम हों यानी उसके पास ज्ञान का अच्छा भण्डार हो, और वह बुराई और भलाई में, नफ़े और नुक़सान में फ़रक़ कर सके और पहचान सके कि किस चीज़ में उसका सच्चा नफ़ा है और किसमें नुक़सान। दिमाग़ के मज़बूत होने का मतलब यह है कि आदमी सब तरह की चीज़ों को जल्दी से समझ सके, उसकी याददाश्त अच्छी और पक्की हो और वह चीज़ों का ठीक ठीक फ़ैसला कर सके। कैरेक्टर या चरित्र की मज़बूती का मतलब यह है कि आदमी में इतनी हिम्मत हो कि वह जिन चीज़ों को करना चाहे उन्हें करे और जिनसे बचना चाहे उनसे बच सके। कैरेक्टर के अच्छेपन का मतलब यह है कि आदमी अपनी तबियत को और अपने हाथ पैरों को नेक कामों की तरफ लगावे। इसका मतलब यह है कि ख़ुदी यानी अपने निजी सुख की इच्छा दबी रहे और सब के भले की इच्छा काम करे। जिस्म के अच्छे होने का मतलब यह है कि हाथ पैर और सब अङ्ग सुडौल हों और सूरत शक्ल प्यारी लगे। जिस्म की मज़बूती का मतलब यह है कि बदन में जान हो, बल बूता हो, सख़्ती हो, कड़ाई हो, बर्दाश्त की ताक़त हो, रग पुट्ठे मज़बूत हों, मन में धीरज हो और आदमी सब काम तेज़ी से और बिना लड़खड़ाए कर सके। जिस आदमी का जिस्म, जिसका कैरेक्टर और जिसका दिमाग़ तीनों इस तरह के हों वही पूरी तरह और ठीक ठीक कलचर्ड समझा जा सकता है। इसी तरह इतिहास में जितनी बड़ी बड़ी सभ्यताएं, तहज़ीबें हुई हैं—जैसे बीती हुई सभ्यताओं में मिस्री, असुरी ( असीरियन ), बाबुली, यूनानी, रोमन, मैक्सिकन और पेरूवियन, और ज़िन्दा सभ्यताओं में चीनी, हिन्दुस्तानी, यहूदी, ईरानी, अरब और आज कल की यूरोपियन—इन सब सभ्यताओं के तीन ख़ास पहलू हैं—(१) उनका तालीम का एक ख़ास ढङ्ग और ज्ञान, साइन्स और फ़िलासफ़ी का अपना भण्डार; (२) हरेक का एक ख़ास धर्म मज़हब, सदाचार इख़लाक़ और रहन सहन का एक ख़ास तरीक़ा, घरेलू ज़िन्दगी और समाजी ज़िन्दगी का एक ख़ास ढङ्ग और इनके साथ ही साथ इनसे मिली जुली चीज़ें—आर्ट, कला, चित्रकारी, संगतराशी गाना बजाना, शायरी, ख़ास तरह की मज़हबी और दूसरी इमारतें बनाना, खेल तमाशे, छुट्टियें, त्योहार, जलसे, रीति रिवाज, मज़हबी किताबें, मन्दिर, मसजिद, तीर्थ; ( ३ ) व्यापारी तिजारती और राजकाजी कामों के कुछ ख़ास तरीक़े, खेती, उद्योग-धन्धे, व्यापार, सट्टा, बढ़ बढ़कर दूसरे मुल्कों में अपनी बस्तियाँ बसाना, जङ्ग करना, एक राजा का राज, अमीरों का राज, आम लोगों का राज वग़ैरह।

अब कलचर और सिविलिज़ेशन यानी संस्कृति और सभ्यता दो चीजें हुईं और हर एक के तीन तीन पहलू। जितने सवाल जवाब हमने ऊपर लिखे हैं और जितने सवाल जवाब इस तरह के और लिखे जा सकते हैं वे सब इन्हीं दो में या इन्हीं छै में आ जाते हैं। इनसे हमें पता चल जाता है कि असली कलचर या असली सभ्यता क्या चीज़ है। असली कलचर आदमी के अन्दर की नेकी, और बड़ाई है। और असली सिविलिज़ेशन या सभ्यता अन्दर की नेकी का बाहरी फैलाव है।

जितनी बढ़िया कोई कलचर होगी उतने ही अच्छे ज्ञान, अच्छी ख़्वाहिशों और अच्छे कामों से भरी हुई वह सभ्यता होगी जो उस कलचर का जिस्म और उसका रंग रूप है। इसी तरह बाहर की सभ्यता का असर अन्दर की कलचर पर पड़ता रहेगा और दोनों का मिलकर एक अच्छा सुन्दर, दायरा या चक्र बन जायगा, जो आदमी को नेकी की तरफ़ ले जायगा।

मुझे डर है कि मेरी इन बातों में शब्दों का आडम्बर दिखाई देगा, लेकिन अगर इनमें कुछ भी सचाई है तो मुझे मालूम होता है कि हमारी छोटी सी सोसायटी एक बहुत बड़ा लेकिन बहुत ही क़ीमती काम हाथ में ले रही है। यह सोसायटी एक हिन्दुस्तानी कलचर और हिन्दुस्तानी सिविलीज़ेशन का बीज बो रही है, उसकी नन्ही सी पौध को रोप रही है। हमारी यह हिन्दुस्तानी कलचर और हिन्दुस्तानी सभ्यता सबसे पहले हिन्दुस्तान की पुरानी कलचर और अरब ईरान की कलचर, या दूसरे शब्दों में हिन्दू कलचर और मुसलिम कलचर, इन दोनों के अच्छे से अच्छे और ज़रूरी पहलुओं को मिलाने की कोशिश करेगी।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इस बीज में अंकुर फूटें और यह पौध फूले फले इसके लिये हमें अपने काम के तीन हिस्से करने होंगे।

१—सब से पहले आम लोगों को एकसा ज्ञान का भण्डार देने के लिये—

(अ) कुछ नौजवानों को इस तरह तैयार करना चाहिये कि वें एक हिन्दू और एक मुसलमान, दो दो मिल मिलकर साथ साथ काम करें। दोनों में से हर एक संस्कृत भी जानता हो और फ़ारसी भी, और अगर हो सके तो थोड़ी सी अरबी भी। इन लोगों को ख़ास तौर पर वेदान्त और तसव्वुफ़ की अच्छी से अच्छी किताबें पढ़ लेनी चाहियें, और दोनों धर्मों की किताबों के ख़ास ख़ास और काम के हिस्से जान लेने चाहियें। ये साथ साथ मुल्क का दौरा करें, एक ही प्लैटफ़ार्म से और एक ही जल्से में सब जगह साथ साथ लेक्चर दें।

(ब) हिन्दी और उर्दू के लिखने वालों को इस बात के लिये राज़ी करना चाहिये कि उनमें से हर एक संस्कृत और फ़ारसी शब्दों के क़रीब क़रीब पाँच सौ जोड़े जैसे राजनीति सियासत, सभ्यता तहज़ीब, इख़लाक़ी नैतिक अच्छी तरह याद करले, और अपने लेखों और मज़मूनों में हर जोड़े के दोनों शब्दों को साथ साथ काम में लावे। इस तरह उनके पढ़ने वाले भी बहुत जल्दी इन सब जोड़ों को जान जावेंगे। यह भी कोशिश करनी चाहिये कि उर्दू के लिखने वाले इज़ाफ़त का और हिन्दी के लिखने वाले समासों का बहुत ही कम इस्तेमाल करें।

(स) देश भर में अख़बारों के जो एडीटर इस नेक काम से हमदर्दी रखते हों उनसे मदद ली जावे और हिन्दी और उर्दू के रोज़ाना, साप्ताहिक और माहवारी रिसालों पत्रिकाओं में इस तरह के अच्छे अच्छे लेख छपवाए जावें जैसे "विश्ववाणी" में बहुत से निकलते रहते हैं, जो लोगों को अच्छे भी लगें और जिनसे उन्हें इन चीज़ों की जानकारी भी हो।

(द) इस तरह की चुनी हुई छोटी छोटी किताबें निकाली जावें जिनमें हर किताब के अन्दर उर्दू लिखावट और नागरी लिखावट दोनों में ठीक वही ज़बान और वही शब्द हों। नागरी और उर्दू दोनों एक दूसरे के आमने सामने के पन्नों पर हों। अङ्गरेज़ी और दूसरी यूरोप की ज़बानों में बहुत सी इस तरह की किताबें निकल चुकी हैं जिन्हें लोग आम तौर पर पसन्द करते हैं। उनमें से अच्छी से अच्छी किताबों के ढङ्ग पर हमारी किताबें भी निकल सकती हैं। इन किताबों में जितनी तरह की जानकारी दी जा सके देनी चाहिये, ख़ास तौर पर हिन्दुओं और मुसलमानों का इतिहास देना चाहिये और थोड़ा सा इनसानी क़ौम मात्र जाति का इतिहास भी देना चाहिये। इन किताबों में हिन्दुओं और मुसलमानों के दोनों तरह के धार्मिक रीति रिवाज और एतक़ाद विश्वास भी हों, एक वे जो ज़रूरी समझे जाते हैं और दूसरे वे जो इतने ज़रूरी नहीं समझे जाते। इन किताबों में ऐसी किताबें भी होनी चाहियें जिनमें मोटे तौर पर लोगों को यह बताया जावे कि रोज़ी कमाने के ख़ास ख़ास तरीक़े कौन से हैं और हर आदमी अपने लिये जीविका रोज़गार का ठीक फ़ैसला कैसे करे जिसमें उसे कामयाबी मिले।

इस तरह हम अपने देश के लोगों में अच्छे और मज़बूत दिमाग़ तय्यार कर सकेंगे जिनमें अच्छे और उपयोगी कारामद ज्ञान का भण्डार भरा हो। ये हमारी हिन्दुस्तानी कलचर के काम का एक तिहाई हिस्सा हुआ।

२—हमारे काम का दूसरा हिस्सा यह है—मज़हब, इख़लाक़ सदाचार, तौर तरीक़े, आर्ट कला, घरेलू ज़िन्दगी और समाजी जीवन, रोज़े व्रत, दावतें ज्योनार, मेले तमाशे, त्योहार और छुट्टियाँ, सोग के दिन और ख़ुशी के दिन, इन सब के बारे में लोगों के अन्दर एक सी उमंगें और एक से आदर्श मयार पैदा किए जावें, इन उमंगों को बढ़ाने और मज़बूत करने के लिए और लोगों को इन मेल मिलाप की चीज़ों का शौक दिलाने के लिए उनमें इन चीज़ों की ठीक ठीक जानकारी पैदा करनी और फैलानी होगी। हिन्दुओं और मुसलमानों के ऐसे गिरोह जिनमें एक दूसरे से पूरी हमदर्दी पैदा होगई है, जो एक दूसरे के पक्के दोस्त हैं और जो एक दूसरे को समझते हैं ऐसे मेलों, तमाशों और त्योहारों के मौक़ों पर जलसे करके, जलूस निकाल कर और तरह तरह से जनता के सामने मिसाल क़ायम करें। जितने आन्दोलन, जितनी तहरीकें सत्य, अहिंसा, इन्साफ़, परहेज़गारी, पाकी, नेकी, समझदारी, हिम्मत, धीरज, सब्र और इसी तरह की उन अच्छी अच्छी चीज़ों को फैलाने के लिए चलाई जाती हैं जिन्हें सब धर्म मज़हबों के लोग और सब तौर तरीक़ों के मानने वाले मानते और पसन्द करते हैं, ऐसे ही पाक चीज़ें खाना, पाक चीजें पीना, नशे की सब चीज़ों से परहेज़ करना, इस तरह की सब कोशिशें हमारे इस काम में बहुत मदद देंगी।

३—हमारे काम के दो हिस्से ऊपर बयान किए जा चुके हैं। हिन्दुस्तानी कलचर का तीसरा और आख़िरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हिस्सा यह है कि इस तरह के धंधों, दस्तकारियों, व्यापारों और तिजारतों को जारी किया जावे और बढ़ाया जावे जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों हिस्सा लें और दोनों मिलकर काम करें। रचनात्मक या तामीरी काम की जितनी कोशिशें हो रही हैं, जैसे माँ और बच्चे के बचाव और भलाई के तरीक़े, गाँव की हालत को सुधारना, घरेलू धंधे, खेती के काम को तरक़्क़ी देना और उसकी पैदावार को बढ़ाना, जंगलों की हिफ़ाज़त, गाँव और शहरों की सफ़ाई, बीमारों के इलाज के लिए जो तरह तरह के तरीक़े चल पड़े हैं उन सब को मिलाकर उनसे फ़ायदा उठाने की कोशिश, जानवरों की नसल को बढ़ाना, यह सब चीज़ें हमारी हिन्दुस्तानी कलचर को हर तरह से मदद ही देंगी और उस कलचर के इस दूसरे हिस्से को पूरा करेंगी, लेकिन शर्त इतनी ही है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों मिल कर इनमें हिस्सा लें और हर काम में दोनों का मेल बढ़ता चला जावे। हमारी सोसाइटी को अपनी पूरी ताक़त से इस मेल जोल के बढ़ाने में हर तरह की मदद करनी चाहिये।

थोड़े से में नई हिन्दुस्तानी कलचर का बुनियादी काम यह होना चाहिये कि वह सब तरह के लोगों, सब तरह की चीज़ों, जातियों, नसलों, धर्म मज़हबों, तौर तरीक़ों, आचार विचारों और अलग अलग तबीयतों को मिलाकर उनमें एकता, मेल मिलाप और एक समन्वय पैदा करें और हर एक को अपनी अपनी जगह, अपने अपने वक़्त पर और अपनी अपनी तरह से काम करने, फलने फूलने और दूसरों के लिए उपयोगी मुफ़ीद साबित होने का मौक़ा दें।

अब मैं सारी बात को थोड़े से शब्दों में दुहराता हूँ। हर सभ्यता, हर कलचर में तीन बातें होती हैं—(अ) हर एक में ज्ञान का, साइन्स का, विद्या का, भाषा का एक भंडार होता है जिसमें कुछ उसकी ख़ास चीज़ें होती हैं और कुछ चीज़ें सब में एक सी होती हैं। हर कलचर के इस तरह के भंडार में जड़ और चेतन, माद्दा और रूह के बेशुमार जहूरों और रंग रूपों में से कुछ एक दिखाई दे जाते हैं, (ब) हर कलचर को अपने अलग अलग काम पूरे करने होते हैं, हरेक के अलग अलग आदर्श मयार, अलग अलग उत्साह उमंगें, अलग अलग जोश, अलग अलग हुनर और धंधे, अलग अलग आर्ट और कला, खेल तमाशे, मारतें, शहर, पूजा के तरीक़े; और धर्म मज़हब होते हैं। (स) हर कलचर के रहन सहन के अपने तरीक़े होते हैं, राज काज के अपने ढंग, चाल चलन, सट्टा व्यापार, दूसरे देशों में जाकर बसना, दूसरे देशों को जीतना और अपने अपने कारबारी ढंग होते हैं। जिस कलचर में ये तीनों बातें जितनी अच्छी और ऊँची होंगी उतनी ही वह कलचर ऊँची और महान होगी। किसी भी कलचर में ज्ञान का भण्डार जितना ज़्यादह होगा, उस भण्डार में जितनी तरह तरह की चीज़ें होंगी, वे सब चीज़ें जितनी सोच समझ कर होशियारी और समझ के साथ जमा की गई होंगी और लोगों के आदर्श मयार, उनके शौक़, उनकी उमंगें, उनके भाव जितने ऊँचे, जितने सुन्दर, जितने पाक होंगे और सब की भलाई के ख़याल से भरे हुए होंगे, और लोगों के रहन सहन के तरीक़े जितने सुथरे होंगे, उनके कारबार और व्यापार जितने फैले हुए और दुनिया भर के सब आदमियों की भलाई करने वाले होंगे उतनी ही वह कलचर, वह सभ्यता बड़ी, महान, ऊँची, सुन्दर और देर तक टिकने वाली होगी। सब से ऊँची, सबसे सुन्दर और सब से अच्छी सभ्यता वह होगी जिसने इस बात को समझ लिया हो और इस पर अमल करना शुरू कर दिया हो कि दुनिया के सब आर्थिक यानी माली और राजकाजी यानी सियासी झगड़ों का सिर्फ़ एक ही इलाज है और वह यह है कि सारे मानव समाज को दुनिया के सब आदमियों को एक साइनटिफ़िक निज़ाम, एक वैज्ञानिक संगठन में लाया जावे। सब साम्प्रदायिक फ़िरक़े वाराना झगड़ों का भी आख़ीर में बस एक ही इलाज है और वह उस मज़हबे इन्सानियत, उस मानव धर्म को क़ायम करना है जो सब अलग अलग धर्म मज़हबों की जड़ है, जो सब की तह में है, जो सब में एक बराबर मौजूद है और जो इन सब अलग अलग धर्म मज़हबों को एक दूसरे से मिलाता और उनका नाता जोड़ता है। दुनिया की वही कलचर सब से अच्छी और ऊँची कलचर होगी जिसे सब धर्म मज़हबों की बुनियादी एकता में और सब इन्सानों के एक कुटुम्ब होने में पक्का विश्वास हो।

हमने ऊपर हिन्दू और मुसलमानों की ख़ास तौर पर बात कही है। लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिये कि और भी जितने धर्म मज़हब हिन्दुस्तान में हैं उन सब के मानने वालों की मदद की हमें ज़रूरत है और उन सब में हम वैसा ही मेल मिलाप और प्रेम चाहते हैं जैसा हिन्दू मुसलमानों में। हिन्दुस्तानी कलचर का यही आदर्श यही मयार हमारे सामने रहना चाहिये। ज़ाहिर है कि इस तक पहुंचने के लिए हमें बहुत लम्बा रास्ता तय करना पड़ेगा। लेकिन हम अभी से इस रास्ते पर चलना शुरू कर सकते हैं। अगर हम एक एक क़दम आगे बढ़ते रहे तो एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पड़ाव से दूसरे पड़ाव हम अपनी मंज़िल के ज़्यादह ज़्यादह नज़दीक पहुंचते ही जांयगे। ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि हमारा आदर्श, हमारा मयार हमारी आँखों से किसी वक्त भी ओझल न होने पावे।

## सोसायटी के ठहराव

इसके बाद वे ठहराव पेश हुये जिन्हें हिन्दुस्तानी कलचर सोसायटी की गवर्निङ्ग बाडी ने सर तेज बहादुर सप्रू की सदारत में २५-३-४५ को पास किया और जिन्हें उसी दिन सोसायटी की आम सभा ने एक राय से मंज़ूर किया—

( १ )

यह कमेटी फ़ैसला करती है कि सोसाइटी के आदर्शों और मक़सदों का प्रचार करने के लिए दो माहवारी पत्रिकाएँ निकालने का काम फ़ौरन हाथ में लिया जावे। कमेटी को यह जान कर तसल्ली हुई कि गवरमेण्ट आफ़ इण्डिया ने इन दोनों पत्रिकाओं के लिए काग़ज़ ख़रीदने की इजाज़त दे दी है। यह कमेटी तय करती है कि सोसाइटी हिन्दी माहवारी 'विश्ववाणी' को उसके मौजूदा मालिकों से अपने हाथ में ले ले। सोसाइटी के सेक्रेटरी और ख़ज़ाञ्ची इसके लिए शर्तें तय करलें और गवर्निङ्ग बाडी के प्रेज़ीडेन्ट से उन शर्तों की मंज़ूरी हासिल करलें। 'विश्ववाणी' को लेकर उसे सोसाइटी के मुख पत्र के तौर पर चलाया जावे और जितनी जल्दी हो सके ऐसी ही एक माहवारी पत्रिका उर्दू में भी निकाली जावे। सोसाइटी की तरफ़ से क्या क्या और किस तरह की किताबें और पैम्फ़लेट निकाले जावें इसे तय करने के लिए नीचे लिखे साहबों की कमेटी बनाई जावे—

(१) डा० भगवानदास, (२) पं० सुन्दरलाल, (३) डा० ताराचन्द, (४) डा० वेनी प्रसाद, (५) पं० विश्वम्भरनाथ और (६) डा० सैयद महमूद।

( २ )

सोसाइटी के उद्देश्यों और मक़सदों के प्रचार करने वालों का एक गिरोह तय्यार करने के लिए यह कमेटी तय करती है कि एक कैम्प किया जावे जिसमें हिन्दुस्तान भर से बहुत से काम करने वाले जमा किये जावें, जो कई हफ़्ते तक एक जगह एक साथ रहें और एक मिली जुली ज़िन्दगी में हिस्सा लें। इस कैम्प में हिन्दुस्तानी कलचर के अलग अलग पहलुओं पर लेकचर कराये जावें, बातें हों, चर्चा हो और हिन्दुस्तान में रहने वाली अलग अलग जमातों के बीच जो बहुत से सवाल पैदा होते रहते हैं उन पर वहाँ ग़ौर किया जावे और समझा जावे। इस कैम्प को करने के लिए नीचे लिखी कमेटी बनाई जाती है—

(१) डा० ताराचन्द, (२) डा० अब्दुल हक़, (३) मि० अब्दुल मजीद ख़्वाजा, (४) पं० विश्वम्भरनाथ और (५) पं० सुन्दरलाल।

इस कमेटी को अपने में और मेम्बर बढ़ाने का अख़्तियार होगा।

( ३ )

यह सोसाइटी तालीमी संस्थाओं जैसे यूनीवरसिटियों, कालेजों और स्कूलों, इल्मी सोसाइटियों और कमेटियों, अख़बारों, लेखकों और आम जनता के नेताओं से अपील करती है कि वे हिन्दुस्तान की अलग अलग जमातों के लोगों में मेल जोल और प्रेम पैदा करने और बढ़ाने की हर तरह से कोशिश करें।

( ४ )

नीचे लिखा ठहराव २५-३-४५ को हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी के आम जलसे में सर तेज बहादुर सप्रू की सदारत में पेश हुआ और पास हुआ।

अपने मुल्क की हालत और दुनिया की हालत को देखते हुए, हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी की राय है कि हिन्दुस्तान के लोगों में प्रेम और मेल जोल पैदा करने, एक दूसरे पर शक और बेएतबारी के कारणों को दूर करने और आपस के उन झगड़ों को तय करने के लिए जो हमारे देश की तरक़्क़ी के रास्ते में रुकावटें हैं, जितनी जल्दी हो सके डट कर कोशिशें करनी चाहियें। हिन्दुस्तान का पिछला इतिहास इतना ऊँचा और शानदार है, क़ुदरत ने उसे इतने करोड़ इन्सानों का घर बनाया है, उसकी ज़मीन के अन्दर और ऊपर तरक़्क़ी के तरह तरह के सामान का इतना बड़ा भंडार भरा हुआ है और एशिया के ठीक बीच में हिन्दुस्तान की जगह इतनी ख़ास है कि इसमें शक नहीं हो सकता कि हिन्दुस्तान दुनिया में बहुत बड़ा काम कर सकता है। लेकिन इसके लिए पहले देश के अन्दर के समाजों और कलचरल मसलों को हल करना बहुत ज़रूरी है। इसलिए यह सोसाइटी गवर्निङ्ग बाडी पर ज़ोर देती है कि वह सोसाइटी के मक़सदों को पूरा करने के लिए फ़ौरन क़दम बढ़ावे। सोसाइटी गवर्निङ्ग बाडी का ध्यान ख़ास तौर पर नीचे के कामों की तरफ़ दिलाती है—

(अ) गवर्निङ्ग बाडी एक सेन्ट्रल लाइब्रेरी क़ायम करे

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जिसमें काफ़ी अदबी यानी साहित्य की चीज़ें, छपी हुई किताबें, हाथ की लिखी किताबें, रिसाले और पत्रिकाएं हों जहां बैठकर विद्या प्रेमी लोग और नौजवान लोग हिन्दुस्तान की कलचरों की खोज कर सकें, पढ़ सकें, छानबीन कर सकें और इस सोसाइटी के आदर्शों, आपस की रवादारी, और एक दूसरे की सेवा और प्रेम के भावों को फैलाने के लिए अपने को तय्यार कर सकें।

(ब) किताबों और पत्रिकाओं के पढ़ने वालों के लिए पढ़ाई घर खोले जावें जहाँ लेकचर दिये जा सकें और लोग मिल बैठ कर पढ़ें पढ़ावें।

(स) मुल्क के अलग अलग हिस्सों में कलचर की बातों पर लेकचर देने के लिए दौरों का इन्तज़ाम किया जावे।

(द) इस तरह की किताबों, लेकचरों, पैम्फ़लेटों के निकालने का इन्तज़ाम किया जावे जो ज़्यादहतर हिन्दुस्तानी ज़बान में हों और जब कभी ज़रूरत हो अलग अलग सूबों की ज़बानों में भी हों, ताकि लोग हिन्दुस्तानी कलचर के सब अलग अलग पहलुओं की जानकारी हासिल कर सकें और जिन बातों से या जिन ख़यालों से झगड़ा और मनमुटाव फैलता है उन्हें दूर किया जा सके।

(क) गवर्निङ्ग बाडी की देख रेख में नागरी और उर्दू लिखावटों में अख़बार, रिसाले और पत्रिकाएं निकाली जावें।

(ख) त्योहारों और इसी तरह के दूसरे मौक़ों पर एक दूसरे की मदद करके, मिली जुली हिन्दुस्तानी कलचर के जलसे करके, कवि सम्मेलन और मुशायरे करके, और दूसरे इस तरह के काम करके जिनमें सब जमातों के लोग शामिल हो सकें, लोगों में मेल मिलाप, साथ मिलकर काम करने की आदत एक दूसरे की सेवा की आदत और एक दूसरे से प्रेम बढ़ाने की कोशिश की जावे।

(ग) सोसायटी को चाहिये कि हिन्दुस्तानी भाषा को इस तरह से बढ़ावे कि हिन्दुस्तान के अलग अलग हिस्सों के भी लोग उसमें बात चीत और लिखा पढ़ी कर सकें।

( ५ )

श्री शङ्कर दयालु, श्री वास्तव सहकारी सम्पादक "भारत" के प्रस्ताव पर सोसायटी ने यह फ़ैसला किया कि—आइन्दा से सोसायटी की कार्रवाई हिन्दुस्तानी में हुआ करेगी।

## सर तेजबहादुर सप्रू का व्याख्यान

इन ठहरावों के पास हो जाने के बाद हिन्दुस्तानी कलचर सोसायटी के प्रेज़ीडेण्ट सर तेजबहादुर सप्रू ने सदर की हैसियत से हिन्दुस्तानी में बोलते हुये कहा—

डाक्टर भगवानदास जी के आलिमाना मज़मून को आपने ग़ौर से सुना। उसके बाद मैं नहीं समझता कि मैं कोई लम्बी चौड़ी तक़रीर करूँ। पण्डित सुन्दरलाल और डाक्टर ताराचन्द की कोशिशों से इस हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी का आग़ाज़ (प्रारम्भ) हुआ। इस अच्छे काम के लिये हम सब इनके मशकूर ( कृतज्ञ ) हैं।

पिछली दो सदियों में हमारे ऊपर जो सब से बड़ा ज़ुल्म हुआ है वह यह है कि हमें बिलकुल ग़लत तारीख़ (इतिहास) पढ़ाई गई है। जो इख़्तिलाफ़ात (मतभेद) इस वक्त हिन्दुओं और मुसलमानों में हमें दिखाई देते हैं उनकी वजह इसी ग़लत तारीख़ का ज़हर है। इसी तारीख़ को पढ़कर हिन्दू मुसलमानों को ज़ालिम और मुतास्सिब समझते हैं और मुसलमान हिन्दुओं को काफ़िर और बुत परस्त। लेकिन अगर आप हिन्दी और फ़ारसी ज़रियों से १५ वीं सदी से लेकर १९ वीं सदी तक की तारीख़ पढ़ें तो आपको पता चलेगा कि जो तारीख़ हमें पढ़ाई जाती है वह असली तारीख़ का मुँह चिढ़ाना है। जो सही तारीख़ मैंने पढ़ी है उसकी बिना पर मैं दावे के साथ यह कह सकता हूँ कि सल्तनते मुग़लिया के आग़ाज़ के साथ साथ इस मुल्क में एक मिली जुली तहज़ीब शुरू हुई। यह कह सकना आसान है कि फलाँ बादशाह ने मज़हबी तास्सुब से ज़ुल्म किया लेकिन इसे साबित कर सकना आसान नहीं। अगर उस ज़माने की यूरोप और हिन्दुस्तान की तारीख़ का आप सदी ब सदी और साल ब साल मुक़ाबला करें तो आपको पता चलेगा कि यूरोप के मुक़ाबले में हिन्दुस्तान में मुसलमान बादशाहों की तरफ़ से कोई ज़ुल्म हुये ही नहीं। उस ज़माने में यूरोप में तो किसी दूसरे मज़हब के ख़िलाफ़ तास्सुब का सवाल ही नहीं था। ज़ालिम और मज़लूम दोनों एक ही मज़हब के थे। १५ वीं या सोलहवीं सदी में चार्ल्स बारहवें ने पोलैण्ड में अपने हम मज़हबों के ऊपर जो ज़ुल्म किये उसकी कोई मिसाल हमारे इस मुल्क में नहीं मिलती। मैं यह नहीं कहता कि हिन्दुस्तान में ज़ुल्म हुये ही नहीं लेकिन ज़्यादहतर मौक़ों पर उनकी वजह सियासत ( राजनीत ) थी।

हिन्दुस्तान में १५ वीं सदी से लेकर १९ वीं सदी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आख़ीर तक कल्चर की एक ही धारा बह रही थी, वह कल्चर न हिन्दू थी और न मुसलिम, बल्कि मिली जुली हिन्दुस्तानी कल्चर थी और उस धारा में हिन्दू और मुसलमान साथ साथ बह रहे थे। आज अलग अलग हिन्दू और मुसलिम कल्चर की बात करना एक फैशन सा हो गया है, पर मैं आपसे एक बात कहूंगा कि आप और हम दोनों एक ही क़ौम के हैं और हमारी आपकी एक ही कल्चर है। इसे साबित करने के लिये मैं आपके सामने दो मिसालें रखूँगा, एक 'अस्फ़ल' ( नीचे दर्जे की ) और एक आला ( ऊँचे दरजे की )—

उन बिगड़े हुये हिन्दुस्तानियों की बात छोड़ दीजिये जिन्होंने फ्रेन्च और जर्मन म्यूज़िक सीखी है, बाक़ी सब लोग हिन्दुस्तानी म्यूज़िक ही पसन्द करेंगे। कोई मुसलमान हिन्दुस्तानी म्यूज़िक के मुक़ाबले में जिसे वह पीढ़ियों से सुनता आया है अरबी म्यूज़िक को पसन्द नहीं कर सकता। दूसरी मिसाल यह है—ऐसे कितने मुसलमान हैं जो ग़ुस्सा आने पर अरबी या फ़ारसी में गाली देंगे और ऐसे कितने हिन्दू हैं जो ख़फ़ा होकर संस्कृत में गाली देंगे ?

आप अपने मुल्क के आर्किटेक्चर (इमारत बनाने की कला ) को ही ले लीजिये। ख़ालिस मुसलिम आर्किटेक्चर अगर आपको देखना है तो अरब में जाकर देखिये। दक्षिण भारत में आपको ख़ालिस हिन्दू आर्किटेक्चर के नमूने भी मिलेंगे लेकिन उत्तर भारत में आपको मिला जुला आर्किटेक्चर ही मिलेगा। कितने अफ़सोस की बात है कि आज हिन्दुस्तानियों को इस बात में तो फ़ख़ होता है कि वे जर्मन, फ्रेन्च और अंगरेज़ी के आलिम हैं लेकिन इस बात में नहीं कि वे हिन्दी, उर्दू, संस्कृत और फ़ारसी के आलिम हैं। मैंने बचपन में मक़तब में तालीम पाई है। मेरी और मुसलमान लड़कों की तालीम में कोई भी फ़र्क़ नहीं था, पर आज हम लोग एक दूसरे की ज़बान न जानने पर फ़ख़ करते हैं। आजकल की तालीम का यह क़ुदरती नतीजा है कि हम एक दूसरे को बुरी निगाह से देखने लगे हैं। हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी का यह पहला फ़र्ज़ होना चाहिये कि वह इन पिछले ५०० बरसों की सही तारीख़ लिखाने की कोशिश करे। [illegible] तारीख़ से वाक़िफ़ होने के बाद फिर हम एक दूसरे [illegible] बुरा न समझेंगे।

सियासियात ( राजनीति ) छोड़कर हमें रोज़मर्रा [illegible] बातों में आपस में मोहब्बत और रवादारी ( उदारता ) बरतनी चाहिये। हम इसी मुल्क में पैदा हुये हैं और [illegible] मरेंगे। कोई मुसलमान यह नहीं सोचता ) कि वह अरब [illegible] जाकर रहेगा और वहाँ मरेगा।

जहाँ तक ज़बान का ताल्लुक़ है मैं ख़ुश होऊँगा [illegible] आप एक ऐसी ज़बान निकालें जिसे मैं भी समझूँ [illegible] सम्पूर्णानन्द जी भी समझ सकें। हिन्दुस्तानी से मेरा [illegible] बैर नहीं पर मैं उर्दू को सिर्फ़ मुसलमानों की ज़बान [illegible] समझता। हिन्दुस्तान के बाहर किसी भी दूसरे मुल्क [illegible] ज़बान उर्दू नहीं है।

मैं पण्डित सुन्दरलाल और डाक्टर ताराचन्द [illegible] दरख़्वास्त करता हूँ कि वे पिछले ५०० बरस की सही [illegible] तारीख़ लोगों के सामने रखें। इस ज़माने की मैंने [illegible] तारीख़ पढ़ी है और आज कल जो तारीख़ पढ़ाई जाती [illegible] उसका जब मैं मुक़ाबला करता हूं तो मैं हैरान रह जा [illegible] हूँ कि या ख़ुदा यह कैसी और कौनसी तारीख़ है! [illegible] पिछले ५०-६० बरस की तालीम ने हमें एक दूसरे [illegible] अलहदा अलहदा कर दिया।

मैं चाहता हूँ कि आप इस हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाय [illegible] के जल्से हर दूसरे तीसरे महीने किया करें। इससे हिं [illegible] और मुसलमानों को साथ साथ बैठने का और आपस [illegible] ख़यालात के तबादले का मौक़ा मिलेगा वरना यह नत [illegible] कि हिन्दू और मुसलमान साथ साथ बैठकर मोहब्बत से [illegible] करें एक सपने की चीज़ रह जायगी।

## प्रेज़िडेण्ट को धन्यवाद शुक्रिया

इसके बाद डाक्टर ज़ुबैद अहमद साहब ने प्रेसिडेंट साहब का शुक्रिया अदा किया जिसमें सब लोगों ने [illegible] दिया और इसके साथ साथ सोसायटी का जल्सा [illegible] हुआ।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार

## स्व० गणेश जी की याद में !

बीते मार्च की २५ तारीख़ को अमर शहीद गणेश शङ्कर विद्यार्थी की बरसी थी। आज जब कि देश के हिन्दू और मुसलमानों के बीच में फूट का एक बड़ा दरिया लहराता नज़र आता है तो मन में टीस उठती है कि क्या गणेश जी की .कुरबानी फ़िज़ूल गई ! इन १४ बरसों के अन्दर आपसी फूट का यह फोड़ा पक कर पीप बहा रहा है और उसकी सड़न और दुर्गन्ध से न सिर्फ़ इसी देश के लोग बल्कि सारी दुनिया के लोग हैरान और परेशान हैं। छोटे छोटे मुल्क तरक़्क़ी और तहज़ीब की दौड़ में हमारे पास से नाक बन्द करके निकल जाते हैं और हम अपने इस पके हुये फोड़े के घिनौने मवाद पर भिनभिनाती मक्खियों तक को उड़ाने के अपने को नाक़ाबिल पाते हैं। पर जो फोड़ा फूट चुका है वह जल्दी ही साफ़ भी होगा और देर सवेर उसका ज़ख़्म भी भरेगा, सिर्फ़ इस ज़ख़्म पर मलहम पट्टी की ज़रूरत है और इस मलहम पट्टी की दो मिसालें पिछले महीने हमें अपने देश में देखने को मिलीं—(१) वर्धा में हिन्दुस्तानी प्रचार सम्मेलन और (२) इलाहाबाद में हिन्दुस्तानी कलचर सोसायटी का जल्सा।

## हिन्दुस्तानी प्रचार सम्मेलन

इसी 'विश्ववाणी' में एक दूसरी जगह पाठकों ने हिन्दुस्तानी प्रचार सम्मेलन की कार्रवाई पढ़ी होगी। सचमुच इस भाषा के सवाल ने आपस में जितनी कड़आहट पैदा की है उतनी शायद किसी दूसरी चीज़ ने नहीं की। इस बात को सब लोग मानते हैं कि देश को सब की बोली की ज़रूरत है, ऐसी बोली जिसे सब आसानी से समझ सकें। हिन्दी के मददगार यह कहते हैं कि उर्दू कोई अलग ज़बान नहीं है वह हिन्दी की ही एक शैली है और उर्दू के हमदर्द यह कहते हैं कि हिन्दी उर्दू का ही एक दूसरा रूप है। झगड़ा सिर्फ़ शब्दों का है। देश के करोड़ों बेपढ़े हिन्दू और मुसलमान एक ही बोली से अपना काम चलाते हैं, पर हम जो पढ़े लिखे लोग हैं ऐसा करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इलाहाबाद के मशहूर शायर अकबर ज़बान के इस मर्ज़ की तह तक पहुंच गये थे। तभी उन्होंने कहा था—

इल्म पर भी इश्क़ की तासीर आख़िर पड़ गई;
तख़लिये की बात पब्लिक के दिलों में गड़ गई !
वस्ल की शब मैंने उस बुत से मिलाई थी ज़बान,
यह असर इसका हुआ—उर्दू से हिन्दी लड़ गई !

सब की बोली बनाने के काम को आसान करने के लिये वर्धा के हिन्दुस्तानी सम्मेलन ने नीचे लिखे दो ठहराव मंज़ूर किये हैं—

### पहिला ठहराव

"इस कानफ़रेन्स की राय में हिन्दुस्तानी ज़बान को फैलाने और तरक़्क़ी देने के लिए इस बात की ज़रूरत है कि हिन्दी जानने वाले उर्दू लिखावट को और उर्दू जानने वाले नागरी लिखावट को जल्दी से जल्दी सीख लें, और जो इनमें से किसी को भी नहीं जानते वे भी दोनों ही को सीखें ताकि सब लोग हिन्दुस्तानी के तीनों रूपों हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी को पढ़ और समझ सकें। हिन्दुस्तानी की किताबें भी दोनों लिखावटों में ही लिखी और छापी जानी चाहियें।"

### दूसरा ठहराव

"देश के सब लोग इस बात को मानते और समझते हैं कि हमारे क़ौमी जीवन को मज़बूत करने और अलग अलग सूबों के लोगों में मेल जोल और व्यापार की एक भाषा बनाने के लिए चाहिये कि हिन्दुस्तानी ज़बान को तरक़्क़ी दी जावे और उसकी रूप रेखा ठीक की जावे क्योंकि इस बात के लिए यही भाषा सब से ज़्यादा काम की है।

"यह कानफ़रेन्स फ़ैसला करती है कि ज़्यादा से ज़्यादा १५ मेम्बरों की एक कमेटी बनाई जावे जो हिन्दुस्तानी भाषा की डिक्शनरियाँ तय्यार करे, भाषा के क़ायदे तय करे, उसके लफ़्ज़ों का भंडार बढ़ाये, उनके रूप बाँधे और उसमें अच्छी अच्छी और काम की किताबें लिखवाये।

"यह कानफ़रेन्स फ़ैसला करती है कि महात्मा गान्धी, सैयद सुलेमान नदवी और डा० ताराचन्द तय करके और रज़ामन्दी लेकर कमेटी के मेम्बरों के नाम बाद में जितनी जल्दी हो सके एलान कर दें।

"यह कमेटी अपने में और मेम्बर शामिल कर सकेगी लेकिन कुल मेम्बर १५ से ज़्यादा न होंगे। किसी मेम्बर की जगह ख़ाली होगी तो उसे बाक़ी मेम्बर भर सकेंगे। कमेटी का एक कनवीनर होगा जो मुनासिब वक़्त और जगह पर कमेटी की मीटिंग बुलाया करेगा।

"यह कमेटी अपने काम का एक ढाँचा तय्यार करेगी ख़र्च का ब्योरा बनायेगी और उसे महात्मा गान्धी के पास मंज़ूरी के लिए भेजेगी और महात्मा जी को समय समय पर अपने काम की रिपोर्ट देती रहेगी।"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हम दिल से हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की कामयाबी चाहते हैं और हमें पूरी उम्मीद है गान्धी जी के रास्ता दिखाने से यह मामला अब जल्दी ही सुलझ जायगा।

## हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी

पाठक इसी नम्बर में हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की पहली मीटिंग की ब्योरेवार कार्रवाई पढ़ेंगे। सोसायटी ने जो ठहराव पास किये हैं वे भी पाठकों के सामने हैं। सोसायटी के सामने बहुत बड़ा काम है। छोटी छोटी कल्चरल रुकावटें ही राजनीति में पहाड़ बनकर सामने खड़ी हो जाती हैं और मुल्क की तरक़्क़ी की राहें और आज़ादी की सारी कोशिशें बेकार कर देती हैं और इसी के सबब हमारी बड़ी से बड़ी क़ुरबानियाँ ज़ाया हो जाती हैं। हमें कोशिश करके अपने दिलों और दिमाग़ों को साफ़ करना है और अपने देश की उस समूची संस्कृति के दर्शन करना है जिसके बनाने और सँवारने में आर्य और द्रविड़, मुसलमान और पारसी सब ने हिस्सा लिया है। जिस दिन हम उस अखण्ड और समूची संस्कृति के दर्शन कर लेंगे उस दिन हमारे देश के सब रहने वाले प्रेम और मोहब्बत के सागर में सराबोर हो जायंगे। हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी उस दिन को नज़दीक लाने में कोई कोशिश बाक़ी न रखेगी। इस इतने बड़े काम में हमें विश्वास है कि 'विश्ववाणी' के पाठक हमें हर तरह की और पूरी पूरी मदद देंगे।

## हिन्द-ईरानी कल्चर कमेटी

ईरान और हिन्दुस्तान में नज़दीकी सांस्कृतिक रिश्ता क़ायम करने के लिये सर जोगेन्द्र सिंह की सदारत में एक छोटी सी कमेटी मुक़र्रर कर दी गई है। इस कमेटी के मेम्बरों में ईरान के ऐलची आगाअली मोतामेदी के अलावा सर तेज बहादुर सप्रू डाक्टर पन्नालाल, डाक्टर सैयद हसन, डाक्टर ज़ाकिर हुसेन वग़ैरह हैं। इस कमेटी की बैठक २१ जनवरी सन् १९४५ को नई दिल्ली में हुई और इस हिन्द-ईरानी कल्चर सोसायटी क़ायम करने पर ग़ौर किया गया। सोसायटी का उद्देश्य मक़सद होगा कि पुराने ज़माने और पुराने ईरान की मिलवाँ जुलवाँ कल्चरल पूँजी की तफ़सील से जाँच की जाय और दोनों मुल्कों के बीच कल्चरल मेल जोल को बढ़ाया जाय। इस तरह की सोसायटी तेहरान में पहले ही बन चुकी है।

हमारी इस काम से पूरी हमदर्दी है। सच पूछा जाय ईरान और हिन्दुस्तान की संस्कृतियाँ बुनियादी तौर पर एक हैं। ईरान नाम ही 'आर्याना' यानी 'आर्यों के देश' का बिगड़ा हुआ रूप है। बीते ज़माने के बहुत सुख में दोनों मुल्कों में वैदिक आर्य लोग रहते थे। ईरानियों का पुराना धर्म ग्रन्थ ज़ेन्द-अवस्ता और ऋग्वेद इतने अधिक मिलते जुलते हैं कि देखकर आदमी हैरान रह जाता है। दोनों की भाषाओं संस्कृत और फ़ारसी में ख़ास रिश्ता है। फ़ारसी संस्कृत की सगी बहिन ज़ेन्द की बेटी है। हज़ारों बरस तक दोनों का एक दूसरे के साथ बेहद नज़दीकी रिश्ता रहा है। यूरोपीय साम्राज्यशाही के धावे ने हमारी उस मोहब्बत की ज़ंजीर को तोड़ दिया है अब हमें फिर से उस प्रेम की ज़ंजीर को पुख़्ता करना है और फिर से आपस के कल्चरल रिश्ते को जानदार बनाना है।

## नागरिकों पर बमबाज़ी

९ मार्च को सेण्ट्रल असेम्बली की बैठक में एक्ज़ीक्यूटिव कौन्सिल के ख़र्च की माँग पर कटौती के प्रस्ताव पर बोलते हुये मिस्टर अब्दुल क़य्यूम ने कहा—"सूबा सरहद में नागरिकों पर जो बिला लिहाज़ हवाई बमबाज़ी होती रहती है यह किसी भी सरकार के लिये शर्म की बात है। सन् १९३५ में इसी असेम्बली ने सूबा सरहद की बमबाज़ी के ख़िलाफ़ अपनी राय का इज़हार किया था। मैंने हाल में एक रिपोर्ट देखी है कि सरहदी क़बीलों पर पिछले पांच महीने से बराबर बमबाज़ी हो रही है! क्या यह किसी भी तहज़ीबयाफ़्ता सरकार के लिये फ़ख्र की बात हो सकती है?" जवाब में सर ओलाफ़ कैरो ने कहा कि यह बमबाज़ी निहायत मुनासिब और बहुत ज़रूरी थी और इसके लिये हमें बिलकुल अफ़सोस नहीं है। हां, हम बमबाज़ी के पहिले लोगों को आगाह कर देते हैं।

सन् १८३७ से लेकर अब तक सरहदी क़बीलों को दबाने की कितनी ही कोशिशें की गईं लेकिन यह क़बीले वाले अङ्गरेज़ सरकार के क़ाबू में नहीं आये। हर साल सरकार क़बीलों के दमन पर भारत के ख़ज़ाने से करीब चार करोड़ रुपया ख़र्च करती है मगर फिर भी वहां अमन क़ायम करने में उसे कामयाबी नहीं मिली है। मुग़लों के ज़माने में ख़ैबर और बोलन के दर्रों से करोड़ों रुपयों की तिजारत होती रहती थी और साल में हज़ारों क़ाफ़िले आते जाते रहते थे पर लूटमार या क़त्ल के कोई क़िस्से सुनने में न आते थे। मोहमन्द और अफ़रीदी, वज़ीरी और उत्मन ख़ैल और दूसरे क़बीले वाले मुग़ल बादशाहों की तरफ़ से इन दर्रों पर पहरा देते थे और क़ाफ़िलों की जान माल की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हिफ़ाज़त के लिये ज़िम्मेवार रहते थे। इसके लिये उन्हें मुग़ल दरबार से तनख़्वाह मिलती थी। मुग़लों के पतन और इस तिजारत के बन्द हो जाने के बाद इन क़बीले वालों के पास पेट भरने का कोई ज़रिया नहीं रहा। वहां की पथरीली ज़मीन खेती के क़ाबिल नहीं और कोई दूसरे उद्योग धन्धे नहीं जिससे वे अपना पेट भर सकें।

जैसा ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां ने कहा था कि सरकार इन्हें दबाने में जितना ख़र्च करती है उसका दसवां हिस्सा भी वहां उद्योग धन्धे खोलने में लगा दे तो क़बीलों की यह लूटमार चार दिन के अन्दर बन्द हो जाय पर सरकार की नीयत साफ़ हो तब न! जिस तरह लोग अपने बाग़ के चारों तरफ़ कटीली नागफनी लगा देते हैं शायद वही काम सरकार का इन क़बीलों से निकल रहा है। हम ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां और डाक्टर ख़ान साहब से सहमत हैं कि जिस दिन जनता के हाथ में सच्ची ताक़त आयेगी ये लूटपाट उसी दिन बन्द हो जायगी। हमें मिस्टर क़य्यूम से हमदर्दी है पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से यह उम्मीद करना कि वह कोई मानवीय क़दम उठायगी बालू से तेल निकालने की तरह है।

## सब धर्म मज़हबों का सम्मेलन

बम्बई में पिछली ९, १०, ११ मार्च को हिन्दुस्तान के तमाम धर्म मज़हबों का एक सम्मेलन हुआ जहां इस बात पर विचार किया गया कि दुनिया की मौजूदा समस्याओं को हल करने में धर्म क्या हाथ बटा सकता है। सम्मेलन में एक दूसरे के धर्म मज़हबों की अच्छी अच्छी बातों को समझने और उनकी इज़्ज़त करने के मसले पर भी ग़ौर किया गया।

हम दिल से इस सर्वधर्म सम्मेलन की योजना की तारीफ़ करते हैं। हमें हर सूबे और हर शहर में इस तरह के सम्मेलनों का आयोजन करना चाहिये जिसमें सभी धर्म-वाले इकट्ठा होकर एक दूसरे के धर्म की अच्छी बातों को देख सुन सकें। असल में सब धर्मों की बुनियादी भावना एक है, फ़रक़ ख़ाली कर्मकाण्डों का है और जिन्हें ज़माने की ज़रूरत को देखते हुये बदलते रहना चाहिये। दुनिया की आजकल की मुसीबतों का सबब ही यह है कि धर्म को राजनीति से बिलकुल अलहदा कर दिया गया है। इसी का नतीजा है कि हम इनसान से हैवान बने और अब हैवान से शैतान बनते जा रहे हैं। दुनिया को आज धर्म की नहीं यानी कर्मकाण्डों और रूढ़ियों की नहीं बल्कि 'धर्म' यानी 'मानव धर्म' की ज़रूरत है। गान्धी जी पिछले २५ बरस से राजनीति के क्षेत्र में धर्म का यह प्रयोग कर रहे हैं। अभी उस प्रयोग को ज़्यादा कामयाबी नहीं मिली पर जितनी भी मिली है उससे सारी दुनिया की निगाहें उस तरफ़ लग गई हैं। दरअस्ल हिन्दुस्तान के पास ही वह नुसख़ा है जिससे दुनिया की सारी बीमारियां दूर हो सकती हैं, पर उस नुसख़े का अमली प्रयोग पहले इस मुल्क को अपने ऊपर ही करना होगा।

## किसान कौन है?

मद्रास के श्री भक्तवत्सलम् के पूछने पर गान्धी जी ने बताया कि—"किसान वही है जो ख़ुद अपने हाथ से अपने या दूसरे के खेत पर काम करे।" गान्धी जी श्रम को बेहद महत्व देते हैं और उस समाज की कल्पना करते हैं जिसमें ऐसे आदमी की कोई जगह न होगी जो श्रम न करता हो और सच पूछा जाय तो समाज से तभी शोषण, दूसरों की कमाई पर ज़िन्दा रहने का लोभ और सामाजिक भेदभाव दूर हो सकते हैं जब श्रम को समाज का आधार बनाया जायगा। गान्धी जी इस बात को भी साफ़ कर चुके हैं कि स्वराज्य की असली ताक़त इन्हीं किसानों और मज़दूरों के हाथों में हमें सौंपनी होगी।

## किसान सभायें और कांग्रेस

इसी मुलाक़ात में, एसोशियेटेड प्रेस की १२ मार्च की ख़बर के मुताबिक़, गान्धी जी ने श्री भक्तवत्सलम् से कहा कि अखिल भारतीय किसान सभायें कांग्रेस से स्वाधीन रहें पर फिर भी वे कांग्रेस के अनुशासन को मानें।

इधर पिछले कई बरस से किसान सभाओं को मुख़्तलिफ़ पार्टियों की ख़ुदग़र्ज़ नेता शाही अपने मतलब को पूरा करने के लिये इस्तेमाल कर रही है। किसानों को पार्टियों के नारों के नाम पर बराबर कांग्रेस से दूर और बरगश्ता करने की कोशिश की गई है। इसीलिये जब जब युक्त प्रान्त में कांग्रेसजनों को अलग किसान सभायें क़ायम करने की बात कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की तरफ़ से उठाई गई तब तब पण्डित जवाहरलाल ने इस विचार को प्रोत्साहन देने से साफ़ इनकार किया। नतीजा यह हुआ कि युक्त प्रान्त में ज़िला कांग्रेस कमेटियां ही सभी मायनों में किसान सभाओं में तब्दील हो गईं। और यहां के किसान गुटबन्दियों में पड़कर तबाह होने से बच गये। इस वक्त आल इण्डिया किसान सभा कम्यूनिस्टों और किसान कार्यकर्त्ताओं की आपस की छीछालेदर में पड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छिन्न भिन्न हो रही है। हमारी राय में किसानों का फ़ायदा तभी हो सकता है जब वे सरकारी गुटबन्दियों के लेबिल उतार कर कांग्रेस के अनुशासन और रहनुमाई में अपना विशाल, दृढ़ और आज़ाद सङ्गठन क़ायम करें।

## करो या मरो—का सच्चा मतलब

अकोला में होनेवाली बरार के कांग्रेसजनों की जो सभा ग़ैर क़ानूनी क़रार दी गई थी उस पर गांधीजी ने बयान देते हुये कहा कि—"यह समझ के बाहर की बात है किस तरह एक सभा जहाँ ख़ाली बहस होती युद्ध की कोशिशों को नुक़सान पहुँचा सकती है; या रचनात्मक कार्यक्रम ही उसे चाहे जितने असरदार तरीक़े से क्यों न पूरा किया जाय युद्ध के चलाने में कोई अड़चन डाल सकता है। क्या मैजिस्ट्रेट कहता एक चीज़ है और उसका मतलब कुछ और है? क्या उसका मतलब यह है कि यदि असरदार तरीक़े से रचनात्मक कार्यक्रम को अमल में लाया जाय तो जापानियों के साथ युद्ध नामुमकिन हो जायगा। इसके लिये सबूत की ज़रूरत होगी लेकिन इस बात को ज़ाहिर करने के लिये किसी सुबूत की ज़रूरत नहीं है कि रचनात्मक कार्यक्रम की योजना युद्ध की कोशिशों में किसी तरह की रुकावट डालने के लिये नहीं बनाई गई। रचनात्मक कार्यक्रम का उद्देश्य गाँव वालों को अपने घरों में रोज़ी और रोटी देना है और इसके अलावा उन्हें सुखी और पढ़ा लिखा बनाना है।

"या सरकार यह नहीं चाहती कि असरदार कांग्रेस जन किसी तरह की भी जनता की कोई सेवा करें? यदि यह बात है तो फिर उसने कांग्रेस वालों को छोड़ा ही क्यों? बहरहाल कांग्रेसजन जिनका पेशा ही जनता की सेवा करना है चुपचाप जनता की सेवा करेंगे बग़ैर इस बात की परवाह किये हुये कि इस सेवा के एवज़ में उन पर क्या बीतेगी।

यही 'करो या मरो' का सच्चा मतलब है।"

## ये अमरीकन सैनिक!

"लोक युद्ध" अपने ११ मार्च के अङ्क में लिखता है—

"कलकत्ते से इस तरह की बहुत सी रिपोर्टें आई हैं कि अमरीका सिपाही किस प्रकार महिलाओं के साथ छेड़ छाड़ करते हैं···हालत ऐसी होगई है कि अब कलकत्ते में स्त्रियाँ शाम सवेरे घर से बाहर निकलने में भी डरती हैं···।

"अक्तूबर १९४४ में विजय दशमी के दिन किसी भ्रान्त घराने की कुछ स्त्रियां एक टैक्सी पर सेण्ट्रल एवेन्यू होकर जा रही थीं। भीड़ की वजह से चौराहे पर [illegible] अपनी मोटर रोकनी पड़ी। उसी समय अमरीकी [illegible] से भरी एक बड़ी लारी आई। स्त्रियों को देखते ही [illegible] टैक्सी पर झपट पड़े। एक महिला तो वहीं बेहोश हो [illegible] बाक़ी दो को पकड़ कर वे लारी में बैठाकर ले गये···

इस पर टिप्पणी करते हुये "लोक युद्ध" कहता है "रास्ता चलती हुई महिलाओं को ये अमरीकन [illegible] गन्दे इशारे करते हैं और उन्हें पास देख कर [illegible] गाली बकते हैं। इन सैनिकों का व्यवहार इतना [illegible] हो गया है कि ट्रामों या बसों पर उन्हें चढ़ता देख [illegible] महिलायें स्वयं ही नीचे उतर जाती हैं···।···जो [illegible] मंडल हिन्दू और मुसलिम माताओं और बहिनों की [illegible] की रक्षा नहीं कर सकता उसको जीवित रहने का [illegible] अधिकार है?···"

इन सारी बातों को पढ़कर हर शख़्स का दिल निहायत ही बेचैनी और ग़ुस्से से भर जायगा। जहाँ तक मण्डल का सवाल है वह मर गया और दफ़न कर दिया गया पर बात वहीं नहीं ख़तम होती। हम अपनी बहिन बेटियों को बेआबरू होते नहीं देख सकते। बक़ौल गान्धी जी के यदि हम इस तरह की चीज़ों को अहिंसात्मक तरीक़े से नहीं रोक सकते तो हमें हिंसा से इस तरह की चीज़ें रोकनी चाहियें मगर डर की वजह से इस तरह की चीज़ों को बर्दाश्त करने का मतलब यह होगा कि इन बलात्कारियों के ज़ुल्म रात दिन बढ़ते जायंगे। क्या अमरीकी अधिकारी हिन्दुस्तान और अमरीका के बीच किसी तरह का मैत्री भाव क़ायम नहीं रहने देना चाहते? क्यों? इसका नतीजा इसके सिवाय और क्या हो सकता है!

रही "लोक युद्ध" की बात तो हम उससे और अन्य कम्यूनिस्त दोस्तों से बड़े अदब के साथ कहना चाहते हैं—"प्यारो! ये है तुम्हारा जनता का युद्ध और ये हैं तुम्हारे जन युद्ध के सिपाही।"

## चिमूर और आष्टी के बन्दी

सारा देश आज एक स्वर से चिमूर और आष्टी के ७ राज बन्दियों की प्राण-रक्षा के लिये जी जान से याचना कर रहा है। गान्धी जी ने बड़े मार्मिक शब्दों में इन नवयुवकों की प्राण रक्षा की अपील की है। इन्हें फाँसी पर चढ़ाना न्याय नहीं किन्तु न्याय की हत्या है। किन्तु क्या साम्राज्यवादी विदेशी सरकार से न्याय की कोई आशा की जा सकती है? शायद···हाँ! शायद···नहीं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारतीय चीनी मि.

लेखक

पं० मनोहरलाल मिश्र एम० एस-सी०

[ सिरेमिक विभाग काशी विश्वविद्यालय ]

बेहद खोज और परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी गई है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने बदल सकते हैं यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। चीनी मिट्टी और मिट्टी का व्यवसाय करने वालों के लिये पुस्तक बहुत उपयोगी है। २६० पृष्ठ की सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है। डाक खर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## विश्व-संघ की ओर

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल

और

श्री भगवानदास केला

पृथ्वी के सब राष्ट्रों को मिला कर उनका एक संघ किन उसूलों पर क़ायम किया जा सकता है इस गम्भीर विषय पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विश्वव्यापी शान्ति चाहने वाले सब लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। ३०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपया, डाकखर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## आरसी-रचनावली

| | | | |
|---|---|---|---|
| आरसी ( कविताएँ ) | ... | ... | १५) |
| संचयिता ( कविताएँ ) | ... | ... | ५) |
| कलापी ( कविताएँ ) | ... | ... | २॥) |
| नयी दिशा ( कविताएँ ) | ... | ... | २) |
| रंचपल्लव ( कहानियाँ ) | ... | ... | २) |
| खोटा सिक्का ( कहानियाँ ) | ... | ... | १॥) |
| जीवन और यौवन ( कविताएँ ) | ... | | १॥) |
| आँधी के पत्ते ( कहानियाँ ) | ... | | १॥) |
| चंदा मामा ( कविताएँ ) | ... | ... | १) |

**तारा मण्डल, मुजफ्फरपुर**

संस्कृति, साहित्य और कला की सन्देशवाहक

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

## विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

सम्पादक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य के ऊपर खोजपूर्ण गम्भीर निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक एक अंक संग्रहणीय—

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

**मैनेजर, विश्वभारती पत्रिका, हिन्दी भवन**

पो० शान्तिनिकेतन (बंगाल)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का फ़ायदा
बरसों की प्रतीक्षा के बाद आख़िर छ लेबिल

होकर जा रही थीं। भीड़
अपनी मोटर रोकनी पड़ी
से भरी एक बड़ी ला


## गीता और क़ुरान

**लेखक : पण्डित सुन्दरलाल**

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, क़ुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर क़ुरान की ४०० से ऊपर आयतों का लफ़्ज़ी तर्जुमा दिया गया है।

जो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्मों को समझना चाहें उनके लिये यह पुस्तक बहुत क़ीमती और बेमिसाल है।

२०० सफ़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल

**डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग**

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

## हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

प्रकाशित हो गई

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म भूमि फ़िलस्त की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के साथ साथ हिन्दुस्तान, चीन, ईरान इत्यादि दूसरे एशियाई देशों की उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक हालत के साथ हज़रत ईसा और उनके उसूलों का गहरा सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया गया है

मूल्य, डेढ़ रुपया, डाक ख़र्च छै आने अलग

अभी से अपनी प्रति रिज़र्व करा लीजिये

## "विश्ववाणी का एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है"—गान्धी जी

महात्मा गान्धी जी ने कहा था—"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे।"

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सर तेज बहादुर सप्रू, आचार्य क्षिति मोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० महादेव देसाई, क्यूरेटर-ब्रिटिश म्यूज़ियम ( लन्दन ), प्रो० तान युन-शान आदि सैकड़ों देशी और विदेशी सर्वमान्य नेताओं और विद्वानों ने गान्धी जी की उपरोक्त राय को ही दोहराया है।

**विश्ववाणी के पुराने अङ्कों में देश और विदेश के चोटी के विद्वानों के गम्भीर और महत्वपूर्ण लेख भरे पड़े हैं। विश्ववाणी के विशेषाङ्कों का तो कुछ पूछना ही नहीं।**

**क्या आप के पास विश्ववाणी के बहुमूल्य विशेषाङ्क हैं?**

**क्या आप विश्ववाणी के महत्वपूर्ण पुराने अङ्क ख़रीदना चाहेंगे?**

हमारे पास 'टैगोर अङ्क', 'संस्कृति अङ्क' पहला भाग, 'बौद्ध संस्कृति अङ्क', 'चीन अङ्क', 'जैन संस्कृति अङ्क', और 'अकबर अङ्क' की थोड़ी सी प्रतियाँ बची हुई हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर अङ्कों की भी कुछ प्रतियाँ और सन् ४२ और ४३ की एक दर्जन पूरी फाइलें बची हुई हैं। जिन सज्जनों को चाहियें फ़ौरन आज ही पत्र लिखें। जिस क्रम से आर्डर आवेंगे उसी क्रम से ग्राहकों को प्रतियाँ दी जाँयगी।

**मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**


सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वेदपताका

सम्पादक : विश्वम्भरनाथ

धक : पण्डित सुन्दरलाल

क मूल्य ६) ]

मई १९४५

[ एक अङ्क का ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काश्मीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत।

# विषय सूची

[ मई १९४५ ]


१—बुद्ध वाणी—आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक २५१

२—अन्तःपुर ( कविता )—श्री आरसीप्रसाद सिंह ... ... २५२

३—हज़रत मुहम्मद के जन्म दिन पर—डाक्टर भगवानदास ... ... २५३

४—मुसलिम संस्कृति और एकता का प्रश्न—पण्डित सुन्दरलाल ... ... २५५

५—उर्वशी ( कविता )—श्री विनोद कुमार सेठ ... २६२

६—डाक्टर सन यात-सेन के जनता के तीन सिद्धान्त प्रो० कृष्णकिंकर सिंह ... ... २६३

७—चीथड़ों का छकड़ा ( कविता )—श्री शादीराम जोशी ... ... ... २७०

८—कन्नड़ भाषा में जैन साहित्य—प्रो० एस० एस० मालवाडा ... ... २७१

९—गीत ( कविता )—श्री नरेश कुमार ... २७२

१०—रोमन लिपि का सवाल...श्री "रेशमी-सूती" २७३

११—खाली मधु रस-घट भर दो ! ( कविता )—श्री कुसुमलता ... ... २७५

१२—काव्य क्या है ?—श्री देवेन्द्र एम० ए० ... २७६

१३—साहित्य में आदर्श और यथार्थवाद—प्रो० श्रीरंजन एम० ए० ... ... २८२

१४—नारी का प्राप्य—श्री सुनीतिचन्द्र ... २८५

१५—समस्या ( कविता )—श्री रामावतार यादव 'शक्र' ... ... ... २९०

१६—'गान्धी और कबीर' में डा० बड़थ्वाल का स्वरूप—श्री शंभुप्रसाद बहुगुना एम० ए० २९१

१७—दो कुम्हार (कहानी)—स्वामी सत्य भक्त ... २९५

१८—हिन्दी के विस्मृत मुसलमान कवि जान—श्री रावत सारस्वत बी० ए० ... ... २९७

१९—सिंहली कला पर भारत का असर—डाक्टर भवानी चरण लाहा ... ...

२०—किसान से ( कविता )—श्री राजेन्द्रप्रताप सिंह

२१—समृद्ध भारत की ग़रीबी की बुनियादी वजह—प्रो० पी० ए० वाडिया ... ...

२२—कंबल परेड ( कहानी )—श्री भारत चन्द्र बी० ए० ... ...

२३—संगीत का सगुण और निर्गुण रूप—प्रो० श्री कृष्ण रतनजनकर ... ...

२४—अरब मुल्कों का फ़ेडरेशन—डाक्टर वे बुरहान बल्गी ... ... ...

२५—बन्दी के गीत ( कविता )—श्री प्रभाग चन्द्र शर्मा ... ... ...

२६—निग्रो जनता के विरोध-गीत—कुमारी ज़ोरा नील हर्स्टन ... ...

२७—गीत ( कविता )—श्री सुधांशुशेखर चौधरी 'शेखर' ... ...

२८—गीत ( कविता )—श्री हेमन्त कुमार वर्मा बी० ए० ... ...

२९—मुक्त यूरोप की राजनैतिक और सामाजिक प्रवृत्तियाँ—श्री विद्यानन्द सन्यासी ...

३०—दान वीर जगदेव पँवार—श्री अगरचन्द नाहटा ... ... ...

३१—चिट्ठी पत्री ... ...

३२—पुस्तक परिचय ... ...

३३—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी का देशव्यापी स्वागत—श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी ...

३४—व्यतिरेक—कुमारी दिनेशनन्दिनी चोरड्या ...

३५—सम्पादकीय विचार ...


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# नवनीत

वर्ष ५, भाग ६ ] मई : १९४५ [ अङ्क ५, पूरे अङ्क ५३


## बुद्ध-वाणी

आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक

एक बारगी हवा में जान सी आ गई। दरख़्त मानो बिलकुल घबड़ा गए। उनकी चोटियां इस तरह तेज़ी के साथ इधर उधर हिलने लगीं जिस तरह उन राक्षसों के सर जो एक दूसरे पर ख़ंजरों के वार करना चाहते हों!

फिर एक पल के लिए हवा रुकी जिस तरह सुबह पौ फटने के वक्त सूरज निकलने से ठीक पहिले की हालत होती है!

आसमान में एक अकेला छोटा सा बादल किसी की रोशनी से चमकता हुआ दिखाई देने लगा।

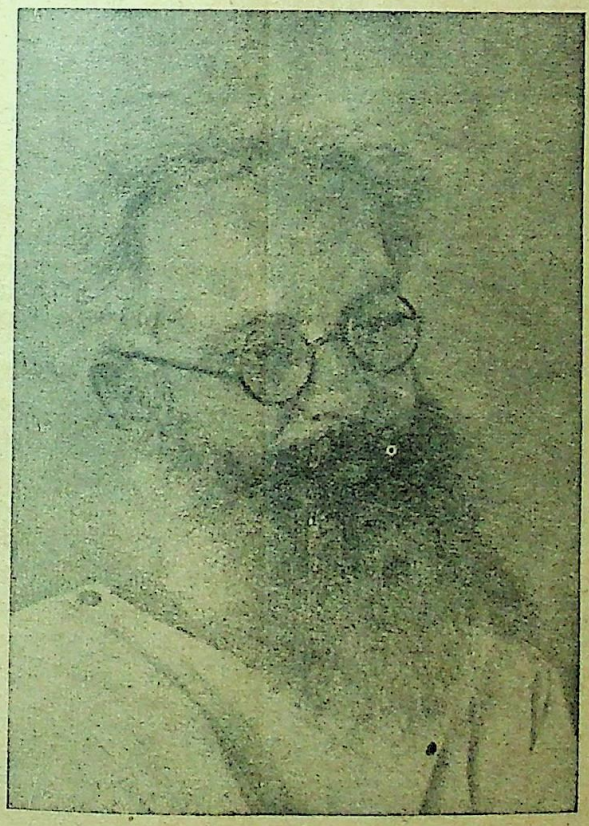

भगवान के आगमन पर खुश होकर पत्तों में सनसनाहट हुई। मालूम होता था उस सनसनाहट की गूँज से "जय हो! जय हो!" की सुरीली आवाज़ आ रही है।

फ़ौरन ही फिर ख़ामोशी छा गई!

मेरी आत्मा ने एक सपना, एक झाँकी देखी! दया की मूर्ति भगवान बुद्ध पीले रंग की चौकी पर बैठे हुए थे। उनके चारों तरफ़ घोड़े के नाल की तरह, पीले रंग के कपड़े पहिने हुए यात्री खड़े थे। घोड़े के नाल भाग्य जागने की निशानी समझी जाती है।

चौकी का सुनहला पहिया घूमा।

भगवान ने अपने मुसकराते हुए ओंठ खोलकर रुपहली आवाज़ में कहा:

"ज्योति के बच्चो! तुम्हारी आत्माओं का राग यह होना चाहिये—जो लोग अनजान हैं जो हठधर्मी हैं और जो भाई भाई की हत्या करते हैं उन सब पर सदा दया करते रहो, क्योंकि नासमझी, हठ, गुस्सा और लालच इन सब को सिर्फ प्रेम समझ और मेल जोल से ही जीता जा सकता है।"

पहिया घूमना बन्द हो गया।

दया की मूर्ति भगवान बिदा होने के लिए खड़े हो गए; यात्रिओं ने झुककर प्रणाम किया। उनकी चमकती हुई आंखों ने भगवान को हिमालय के अन्दर अपने निवास की तरफ लौटते हुए देखा। उनके दिल गद गद होकर चिल्ला उठे—"जय हो! जय हो!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अन्तःपुर

श्री आरसीप्रसाद सिंह

पुनर्जन्म लेकर आया हूँ,
पुनर्वार ले नूतन जीवन!

क्या सचमुच तूने पहिचाना?
वही पुरुष क्या मैं हूँ, जिसको
अब तक तूने जाना, माना?

भ्रम में मत पड़ हे पुरुषोत्तम,
मैं ही वह निर्द्वन्द, सनातन!

यह भी एक मनोरथ मेरा;
पड़ा युगों में कभी दिखाई
कोई जिस पर, वह पथ मेरा!

अब तो मैं हो गया अग्रसर—
नहीं दीनता, नहीं पलायन!

बिजली कभी चमक जाती है;
और हंसी से जो दुनिया की
सहसा आँख दमक जाती है!

इस विलास के पीछे है
विस्फोट, अशेष वज्र का गर्जन!

हाहाकार भरा है इसमें;
पत्थर-सा हो गया हृदय है;
फिर भी प्यार भरा है इसमें!

यह सुख की बड़वाग्नि, वक्ष पर,
जिसके प्रलय-सिन्धु-आलोड़न!

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हज़रत मुहम्मद के जन्म-दिन पर

डाक्टर भगवान दास

ता० ११-३-१९४५ की शाम को, बनारस के टौनहाल में, हिन्दू और मुसलमानों ने जमा होकर हज़रत मुहम्मद का दिन मनाया। रेवरेंड राजेन्द्र चन्द्र दास [ ईसाई मिशनरी ], पण्डित रामनारायण मिश्र [ हिन्दू आर्य ], मिस्टर वान-डि-पोल [ डच थियोसोफ़िस्ट ], श्री जगतनारायण सिंह [ हिन्दू ], श्री गंगाधर नीलकंठ गोखले [ हिन्दू ] और बाबा ख़लीलदास [ मुस्लिम ] ने भाषण तक़रीरें कीं। डा० भगवानदास सभापति मुक़र्रर किये गये थे। उनका भाषण नीचे दिया जाता है।

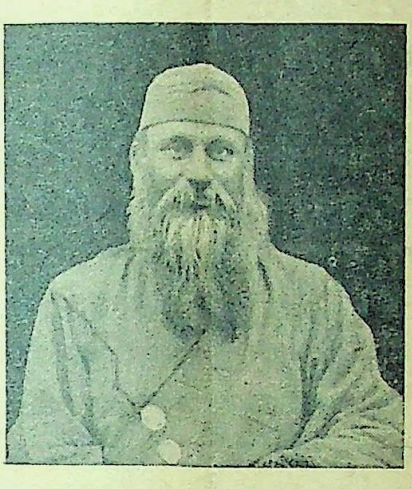

दोस्तो, मित्रो—आज हम लोग यहां इसलिये जमा हुए हैं कि जो एहसान, जो उपकार, हज़रत मुहम्मद ने, बनीआदम, आदि मनु की सन्तान, पर किया है, उनको याद करें। बड़े लोगों की बड़ी बातें, बड़े काम, याद करने से दिल में नेकी आती है, मन पवित्र और शुद्ध होता है, बुद्धि को उत्तम ज्ञान मिलता है, अक़्ल सलीम और आरिफ़ होती है, दुनिया और आक़बत, यह लोक और परलोक, दोनों सधते हैं, अच्छे बनते हैं। जिन लोगों को एक साथ रहना है, जिनकी ज़िन्दगी को ख़ुदा ने, परमेश्वर ने, एक साथ बांध दिया है, जो एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते, वे अगर एक दूसरे की बोली समझें, एक दूसरे के अच्छे गुणों, ख़ूबियों को देखें और जानें, एक दूसरे के ऐबों, दोषों पर या तो पर्दा डालें या उनको नर्मी से, मृदुता से दूर करने का जतन करें, तभी सबकी ज़िन्दगी में अधिकतर सुख और कमतर दुख हो। एक दूसरे के ऐब ढूँढ़ते रहने से अपने भीतर भी मैलापन, रंज, दुख, और हर तरह के फ़साद ही बढ़ते हैं। ऐब किसमें नहीं हैं? सिर्फ़ एक अल्ला परमात्मा की ज़ाति-ला-सिफ़ात् निर्गुण, ऐसी है, जो ज़ात ही ज़ात है, और उसमें सिफ़ात नहीं। आदमी का हाड़ मांस का चोला पहिनकर, चाहे मसीह, अवतार, रसूल, नबी, ऋषि, महर्षि ही क्यों न हो, बिल्कुल बे ऐब हो नहीं सकता। मगर हमको, दूसरों के ऐब, ख़ासकर ऐसे बुज़ुर्गों के ऐब देखते रहने से क्या फ़ायदा हो सकता है? हमको तो अपने ऐब, और दूसरों के हुनर, ख़ासकर बुज़ुर्गों के हमीदा औसाफ़, प्रशंसनीय सद्गुण देखने और सीखने चाहियें।

इसलिये निहायत ज़रूरी है कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी, बौद्ध, जैन, यहूदी वग़ैरह मज़हबों के मानने वाले जो सभी इस देश में बसते हैं, एक दूसरे के धर्मों की उत्तम बातें जानें, दूसरे की दिली ख़्वाहिशों को, इच्छाओं को, माबूदों इष्टों को पहिचानें और एक दूसरे के साथ हमदर्दी, समवेदना, अनुकम्पा, करें। इसका एक सहल उपाय यह है कि हर मज़हब के बड़े से बड़े बुज़ुर्गों, पैशवाओं, नबी, रसूल, मसीह, अवतारों के कारनामों की याद की जाय, और उनकी दी हुई नसीहतें, शिक्षाएं, दुहराई जांय। ऐसा करने से साफ़ मालूम हो जाता है कि सबने आदमियों के भले के लिये, बड़ी बड़ी तकलीफें सहीं, बड़े बड़े स्वार्थ त्यागे, ख़ुदी की क़ुर्बानियां कीं और सबने, अपने अमल से, आचरण से भी और ज़बानी उपदेश नसीहत से भी, वही वही उसूली तात्विक मार्मिक बातें दुनिया को सिखाईं। चुनाचे हज़रत मुहम्मद के ज़रिये से, क़ुरान में, परमेश्वर अल्लाह ने, यह पैग़ाम आदमियों के लिये भेजा है कि—

"इन्नहू ल फ़ी ज़ुबूरिल् अथलीन्; लिकुल्ले क़ौमिन् हाद; इन् मिन् उम्मतिन् इल्ला ख़ला फ़ी हा नजीर; ला नोफ़र्रिक़ो बईना अहदिम् मिन रुसुलेह्; व मा असल्ना मिन् क़ब्लिका मिर रसूलिन् इल्ला नूहि इलै है अन्नहू, ला इलाहा इल्ला अना, फाबुदून।"

यानी, 'यह जो मैं इस वक्त तुमसे कह रहा हूं, यह सब उन बुज़ुर्गों की दी हुई शिक्षा में, हिदायत में आ चुका है, जो पहिले गुज़रे हैं। मैंने हर क़ौम के लिये, हादी, हिदायत करने वाले, शिक्षक, आदेशक, भेजे हैं; इन हादियों रसूलों में कोई फ़र्क़ नहीं है; सब के ज़रिये से, मैंने, परमात्मा अल्ला ने एक ही बात इन्सान को सिखाई है, कि मुझ परमात्मा अल्ला के सिवा और कोई दूसरा ख़ुदा नहीं है, मेरी, अल्ला परमात्मा की ही इबादत, भक्ति दासता, करो। बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट, यानी यहूदी तौरेत में, हज़रत इशाया की किताब में भी, बिजिन्स यही बात बार बार कही है कि मेरे सिवा, मुझ अल्ला परमात्मा के सिवा, कोई दूसरा नहीं है। हज़रत ईसा ने भी कहा है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



"आइ कम्, नाट टु डिस्ट्रॉय दि ला ऐंड दि प्राफ़ेट्स, बट् टु फ़ुल्फ़िल्", यानी, 'मै गुज़श्ता, प्राचीन, विगत, पैग़म्बरों, नबियों ऋषि-मुनियों की शिक्षा का विरोध करने, मुख़ालिफ़त करने, उनको और उनकी हिदायतों को रद्द करने के लिये नहीं आया हूँ, बल्कि और मज़बूत और पूरा करने के लिये'। यही बात श्री कृष्ण ने, गीता में, कही है, "एवम्परम्पराप्राप्तं इमं राजर्षयो विदुः, स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः, परन्तप!", अर्थात्, जिस योग को, इहलोक-परलोक, दुनिया-आक़िबत, में सुख देने वाले, दुःखों के पार तारने वाले, निजात, मुक्ति, देने वाले, उपाय को, उत्तम धर्म को मैं तुमसे कह रहा हूं, वह सब, परम्परा से, पुश्त-दर-पुश्त, ऋषि-महर्षि कहते चले आये हैं।

सब धर्मों मज़हबों रिलिजनों के बड़े बुज़ुर्गों का आदर ताज़ीम करने से उनके बड़े औसाफ़, विभूतियों को पहिचानने से, उनके आदेशों, हिदायतों, की एकता, वहदत को मन में बिठालने से, चारों तरफ़ मेल मुहब्बत की हवा फैलेगी, हर काम में, सब मज़हबों के आदमी एक दूसरे की मदद करेंगे; और सब मुश्किलें, कठिनाइयाँ आसानी से, सरलता से तै होंगी "दो दिल् यक् शवद्, विश्कनद् कोहरा", दो दिल अगर एक हो जायँ, तो पहाड़ को तोड़ सकते हैं। इस देस में मसल् मशहूर है—'एक और एक ग्यारह'।

इन्सान की, मनुष्य की प्रकृति, फ़ितरत में ही ख़ुदा के जुज़्व के साथ ख़ुदी का जुज़्व परमात्मा के अंश के साथ क्षुद्रात्मता का अंश भी मिला हुआ है। वक्त् वक्त् ख़ुदा की रोशनी पर ख़ुदी की तारीकी ग़ालिब हो जाती है, विद्या के प्रकाश पर अविद्या और स्वार्थ का अंधेरा उत्तम-स्व की स्वच्छता पर अधम-स्व का मल छा जाता है, तब इन्सान भी हैवान, मनुष्य भी पशु हो जाता है, तफ़र्क़ें में, भेदभाव और कलह में, ज़्यादा रस मानता है, और मेल मुहब्बत, वहदत इत्तिहाद, एकता में कम। "तफ़्क़ा दर् नफ़्सि हैवानी बुवद्, रूहि वाहिद् रूहि इन्सानी बुवद्""।

हिन्दुस्तान में साठ सत्तर बरस पहिले तक हिन्दू, मुसल्मान, ईसाइयों में बहुत कुछ मेल मुहब्बत, रवादारी, सम्मर्ष, एक दूसरे के दुनियावी और मज़हबी कामों में, रस्म-रिवाज में, नीति-रीति में शिरकत हो रही थी। इधर, कई वजहों से, जिनका इस मौक़े पर विस्तार से, तफ़सील से बयान करने की ज़रूरत नहीं है, यह सब अच्छी बातें भूल गई हैं और भूली जा रही हैं। उनकी याद को फिर से ताज़ा करने की बहुत ज़रूरत है। इस संसार-चक्र, चक्रि के नाम ही से ज़ाहिर है कि नेकी और बदी, उ और अँधेरा, मुहब्बत और दुश्मनी, 'ऐक्शन' 'रिऐक्शन', रफ़्तन् व बाज़-गश्तन्, उरूज और नज़ूल, और प्रतिक्रिया, आरोह-अवरोह के, जोड़े चक्कर खाते हैं। "ख़ल्क़्ना मिन् कुल्ले शयीन् ज़ौजैन," द्वंद्वमयं जगत्", अल्ला परमात्मा ने सब चीज़ें ज़िद्दैन्, द्वं-द्वं, जोड़ा-जोड़ा, पैदा की हैं। यह चक्र दुनियाँ में देख पड़ता है, इसी ज़िद्दैन का नतीजा है। तफ़र्क़ें का, भेद भाव का दौर दौरा, बहुत दौर दौरा हो चुका है, अब हवा का रुख़ बदलना चाहिये।

मन मिलने से रोटी का, जीविका का, रिज़्क़ का मसला भी सहज में तै हो सकेगा। सब लोग इस देश इस वक़्त, जो भारी परीशानी में हैं, उसका ख़ास मुख्य कारण सारी दुनियाँ में फैले हुए जंग के अलावा रोज़गारी बेकारी है। रोटी के वास्ते झगड़े होते हैं, झगड़ों से रोटी की पैदावार में और भी कमी होती मिलकर रोज़गार चलाए जायँ, तो सब को काफ़ी कपड़ा मिल सकता है। इस जगह पर याद रखना चाहि कि, आदमी को दो तरह की रोटी, दो क़िस्म की आहार, चाहिये; 'स्पिरिचुअल् ब्रेड' भी औ "मैटेरि ब्रेड' भी, रूहानी भोजन आध्यात्मिक ख़ूराक भी, शारीरिक जिस्मानी भी। रूहानी अध्यात्मिक मज़हबी मेल होने से, और मिलकर एक साथ बैठ ठण्ढे दिल और दिमाग़ से सोच विचार करने से, जमा की तन्ज़ीम, समाज की व्यवस्था के वे तरीक़े मालूम जायँगे, जिनसे सब के लिये रोटी-कपड़े की सुविधा, आ इश हो, जाय, और सब को अपनी अपनी लियाक़त तबीयत, योग्यता और रुचि के मुताबिक़, रोज़गारी मिल जाय।

इसीलिये क़ुरान में कहा है, "कुल् तआलौ कलेमतिन् सवाइम् बईन-अना व बईन-कुम", जिन उसूलों पर हमारा तुम्हारा एक मत है, उन पर रहकर, हम तुम सब, साथ साथ, आगे बढ़ें। वेद यही कहा है, "समानी वः आकूतिः, सामाना हृद वः, समानं अस्तु वो मनो, यथा वः सुसहास संगच्छध्वं, संवदध्वं संवोमनांसि जानतां", तुम सब लोगों का मंशा, मक़्सद, अभिप्राय, एक हो, हृदय मिलें, मन मिलें, सब एक आवाज़ उठाओ, एक बोलो, सब साथ साथ चलो, यों ही सब का भला होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मुसलिम संस्कृति और एकता का प्रश्न

पण्डित सुन्दरलाल

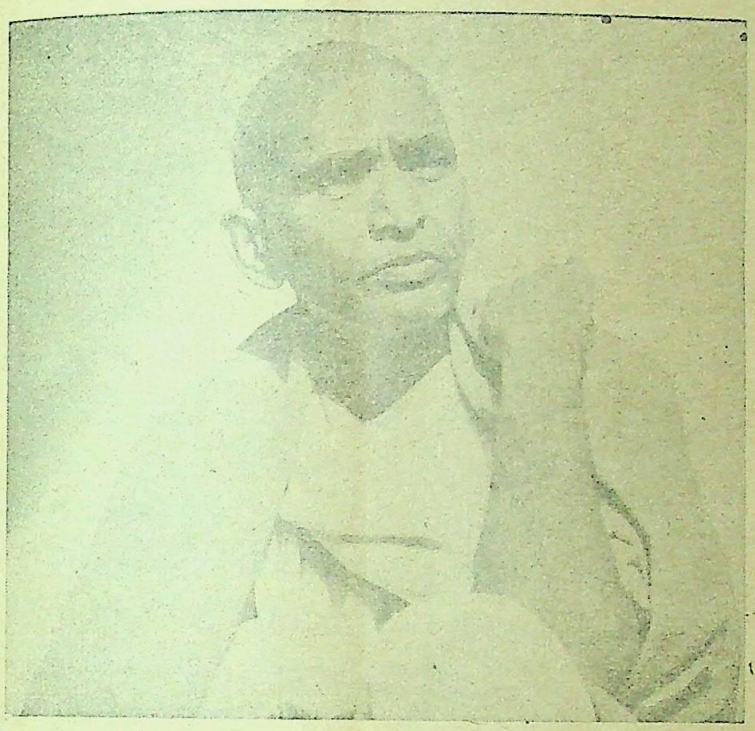

पिछली बार मैंने आपसे हिन्दू संस्कृति और हिन्दू मुसलिम एकता के बारे में बात चीत की थी आज मैं इस्लाम धर्म और मुसलिम संस्कृति के बारे में अपने ख़याल बताऊँगा। इससे पहिले थोड़ा सा मेल बैठाने के लिये मुझे फिर श्रीमद्भगवत गीता की बात कर लेने दीजिए। श्रीमद्भगवत गीता को मैं संसार की अमर पुस्तकों में से मानता हूं। जब तक मनुष्य जाति ज़िन्दा है तब तक यह ग्रन्थ जीवित रहेगा। मैं मानता हूँ कि किसी भी खोजी आत्मा को सन्तोष देने के लिए गीता बिल्कुल काफ़ी चीज़ है, लेकिन जैसी मेरी उस दिन की शिकायत थी हमारा जीवन गीता की तालीम से कोसों दूर है। गीता हमारे लिये केवल एक पाठ कर लेने की चीज़ रह गई है या अगर सेठ जी के पास पैसा हुआ तो लाखों की तादाद में छपवा कर बटवा देने की चीज़ रह गई है। मैं इस बारे में आपका अधिक समय नष्ट न करूंगा। गीता जिस समय लिखी गई थी उस समय देश के अंदर तरह तरह के मत मतान्तर मौजूद थे, तरह तरह के धर्म मौजूद थे। धर्म से मेरा मतलब कर्मकाण्डों और रस्मो रिवाज से है। गीता के पहिले अध्याय में जिन जाति धर्मों और कुल धर्मों का ज़िक्र किया गया है, जिस तरह के वर्ण धर्म का ज़िक्र अर्जुन के मुख से हुआ है, गीता ने इन सब चीज़ों का मेल बैठाने और उन्हें ठीक करके एक सूत्र में बांधने की कोशिश की है। भगवान ने अर्जुन को यह बतलाया है कि इन सब अलग अलग धर्मों के मानने वालों के अलग अलग रास्ते होते हुए भी वे ठीक रास्ते पर हैं। यही गीता का समन्वय है, यही उसकी सिन्थेसिस है। 'ये यथा माम् प्रपद्यन्ते तान्स्तथैव भजाम्यहम्; मम वर्तमानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।' इन मत मतान्तरों का ज़िक्र करते हुये श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं कि जो जिस रास्ते से चलकर मेरे पास पहुँचता है, मैं उसी रास्ते से उसको मिलता हूं। पार्थ, लोग अलग अलग दिशाओं से चलकर भी अन्त में सब मेरे ही पास पहुंचते हैं। आप यहां एक सरकिल में दायें बांयें बहुत से लोग बैठे हुये हैं। आप सब एक ही दिशा को चलकर मेरे पास तक नहीं आ सकते। यह विश्व भी एक सरकिल है। ईश्वर उसका केन्द्र यानी मरकज है। मान लीजिये कि एक खम्भा है जिसके चारों तरफ़ दूर दूर तक आप लोग बैठे हुये हैं। अगर आप लोग उस खम्भे तक जाना चाहें तो आप में से किसी को पश्चिम दिशा में किसी को पूर्व की दिशा में किसी को दक्षिण की दिशा में और किसी को उत्तर की दिशा में, चलना पड़ेगा। यही गीता के इस श्लोक का भावार्थ है। गीता इस दृष्टि से सब धर्मों का समन्वय है। वह सब धर्मों को एक दृष्टि से देखने की कोशिश करती है। इसके यह मायने नहीं है कि जो कुछ भी हम समझते हैं वह ग़लत नहीं हो सकता या हमारे पूजा के तरीक़ों में कोई ग़लती नहीं है। ग़लतियां भी सब धर्मों में यानी उनके मानने वालों के तौर तरीक़ों में पैदा हो ही जाती हैं। लेकिन इसका मतलब यह है कि अगर आदमी का दिल साफ़ और सच्चा है तो अन्त में सब धर्म उसी परमात्मा से जा मिलाते हैं। अगर मैं गीता को पहिले अध्याय से लेकर १८ वें अध्याय तक आपको पूरी तरह बतलाने की कोशिश करूं तो एक लेक्चर नहीं कई लेक्चरों की ज़रूरत होगी। मैंने आपके सामने इस चीज़ का सार या लुब्बे लुबाब रख दिया है।

दूसरे अध्याय में अर्जुन के सवाल करने पर स्थित प्रज्ञ की तारीफ़ करते हुए गीता हमें बतलाती है कि धर्म का असली तत्व अपनी आत्मा के संयम करने में है। 'काम एशः क्रोध एशः रजोगुण समुदभव, महाशनो महापाप्मा



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विद्धै नमिहवैरिणम्। गीता बताती है कि हमारे अंदर जो सांप छिपा है पहिले हम उसे मारें, पहिले अपने अन्दर के काम और क्रोध को जीतें। यही हमारा सब से बड़ा बैरी और सब से बड़ा पाप है। गीता आत्म संयम का उपदेश देती है। छोटी छोटी रस्मों, रिवाजों और कर्म काण्ड के मुताल्लिक गीता बड़ी शान और सफ़ाई के साथ कहती है—सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकम् शरणम् व्रजः। अर्थात् इन सारे धर्मों को छोड़कर, मत मतान्तरों को लात मारकर, हे अर्जुन! सीधा एक परमेश्वर को मान और केवल उसी की पूजा कर। गीता कहती है कि पिण्ड दान आदि सब कर्म कांडों और इसी तरह के सब परम्परा से चले आए हुए जाति धर्मों और कुल धर्मों को छोड़कर जो अशोच्य हैं, यानी जो सोचने के भी क़ाबिल नहीं हैं, 'वर्ण संकर' आदि के वहम से ऊपर उठकर केवल एक निराकार परमेश्वर की उपासना और आत्म संयम यानी सदाचार की तरफ़ आओ, यही सच्चा धर्म है। आख़ीर में गीता ने आत्मा को पहिचानने का तरीक़ा और मुक्ति प्राप्त करने का तरीक़ा भी बताया है। सीधे सादे शब्दों में अपने अंदर एक ईश्वर को, सब के अन्दर अपने को और उस एक ईश्वर के अंदर सब को देखो। अपनी नज़र के अंदर जब आप इस बात को पैदा कर लेंगे तो यही मुक्ति है। यही गीता की मुक्ति का आदर्श है। जिस वक्त यह समता आत्मा में पैदा हो जाती है तो यही समता मुक्ति के नाम से पुकारी जाती है। गीता के इसी आदर्श के अनुसार मैं हिन्दू मुसलमानों की एकता की बड़ हांकता रहता हूँ, इसमें मुझे कोई शर्म नहीं है। मुझे इससे संतोष है कि मैं अपने जीवन में अपने कमज़ोर हाथ और पैरों से अपने दोस्तों को मिलाने की कोशिश करता हूँ। मैं दिल से चाहता हूं कि हमारा जीवन गीता के अनुसार हो। हिन्दू ज़रा आंखें खोलकर देखें। वे भगवत्गीता का नाम लेते हैं और उनमें छुआ छूत, जाति पांत भरी हुई है। इनका पानी दूसरों के छूने तक से नापाक हो जाता है। विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि; शुनिचैवश्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः। गीता बतलाती है कि पंडित वही है जो गाय, हाथी, कुत्ता ब्राह्मण और चांडाल को एक निगाह से देखता है। इसका मतलब यह नहीं कि बजाय गाय दुहने के हम कुत्ते को दुहने लगें उसका मतलब यह है कि इन सब के अंदर हम एक ही आत्मा को देखें, झूठा भेद भाव न बरतें किसी को ग़ैर न समझें। एक कानस्टिबिल जो एक दुबे के घर में पैदा हुआ है एक उस कानिस्टबिल से जो मुसलमान या ठाकुर के घर में पैदा हुआ है गीता के अनुसार अपनी श्रेष्ठता का दावा नहीं कर सकता। इस इस्लाम की तरफ़ आता हूँ। मैंने उसी प्रेम के साथ क़ुरान मजीद को पढ़ा है जिस प्रेम के साथ मैंने गीता का अध्ययन किया है।

मुझे तो गीता में क़ुरान और क़ुरान में गीता नज़र आती है। इन दोनो किताबों में कोई फ़रक़ या झगड़े की चीज़ नज़र नहीं आती। यही चीज़ है जिसे मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। आज बहुत से हिन्दुओं के दिल के अन्दर इसलाम के पैग़म्बर की जो इज़्ज़त और क़द्र होनी चाहिये, वह नहीं है, कलाम मजीद की जो इज़्ज़त होनी चाहिये, वह नहीं है। ऐसे ही मुसलमानों के दिलों में गीता और कृष्ण की जो इज़्ज़त होनी चाहिये, वह नहीं है। हम एक दूसरे को समझा नहीं है। इसीलिए हम एक दूसरे को दिल से प्यार नहीं कर रहे हैं। जब तक हम एक दूसरे की क़द्र न करेंगे, जब तक एक दूसरे को ठीक समझ न लेंगे तब तक हमें दूसरे की शक्ल में शीशे की तरह अपनी शक्ल दिखाई न देगी, तब तक हम सच्ची मुहब्बत और सच्ची एकता तक नहीं पहुँच सकते। मैं अब थोड़े में आपके सामने उस ज़माने की हालत का चित्र आपके सामने रखने की कोशिश करूंगा, जिस समय कि मोहम्मद साहब का जन्म हुआ था।

मोहम्मद साहब का जन्म जिस समय अरब में हुआ था उस समय की हालत का अंदाज़ा लगाइये। महज़ धार्मिक और नैतिक हालत को अभी छोड़ दीजिये केवल राजनैतिक हालत को लीजिये। आज चालीस करोड़ हिन्दुस्तान के लोग हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए बेताब हैं। जैसी राजनैतिक हालत इस वक्त हिन्दुस्तान की है उस वक्त अरब की हालत इससे कहीं बिगड़ी हुई थी। हिन्दुस्तान में एक अंग्रेज़ क़ौम ही हमारी मालिक बनी हुई है। मैं 'मालिक लफ़्ज़ फ़ख्र के साथ नहीं कह रहा हूँ जब मैं यह लफ़्ज़ कहता हूँ तो वह मेरे दिल में तीर की तरह चुभता है। मतलब यह है कि इस वक्त हमारे ऊपर एक ग़ैर क़ौम की हकूमत है और उस समय अरब के ऊपर तीन तीन ग़ैर मुल्कों की हकूमत थी। पूर्वी हिस्से में ईरान के बादशाह ख़ुसरो की हुकूमत थी। उत्तर में रोम के सम्राट की हुकूमत थी। पच्छिम में ज़्यादातर अबीसीनिया के ईसाई बादशाह का राज था और दक्षिण का थोड़ा सा हिस्सा ईरान और अबीसीनिया के सम्राटों के मातहत था। अरब का केवल एक छोटा सा बीच का टुकड़ा जिसमें मक्का और मदीना के शहर थे आज़ाद था। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आज़ाद टुकड़े पर भी इन तीनों बाहर की ताक़तों के दाँत थे। यहां तक कि मोहम्मद साहब की पैदायश के चन्द ही साल पहले अबीसीनिया के ईसाई सम्राट ने ख़ुद मक्के पर हमला किया था जिसका क़ुरान के अन्दर भी ज़िक्र आता है। इस तरह तीन पोलिटिकल पावर्स रोम, अबीसीनिया और ईरान अरब पर ज़बरदस्ती क़ब्ज़ा किये हुए थे और उनके बीच में केवल एक छोटा सा हिस्सा आज़ाद था। अब सवाल यह है कि जिस तरह हम आज़ादी के लिये हाथ पांव मारते हैं, वह क्यों नहीं मारते थे। इस वजह से क्योंकि वह नाक़ाबिल थे। उस दिन का अरब सैकड़ों छोटे छोटे क़बीलों के अन्दर बँटा हुआ था। हर क़बीले का अपना अलग अलग देवता था। किसी का देवता किसी जानवर की शक्ल का, किसी का मादा, किसी का नर, किसी का तांबे का, किसी का पत्थर का तो किसी का गुंदे हुये सूखे आटे का। मतलब यह है कि हर क़बीला अपना अलग देवता रखता था। यह अरब की मज़हबी हालत थी। जब इन क़बीलों में लड़ाई होती थी तो उसके मुक़ाबले में हमारे यहां के हिन्दू मुसलमानों की लड़ाइयां पानी भरती हैं। कई कई क़बीलों में सैकड़ों वर्षों तक लड़ाई जारी रहती थी। हर क़बीला दूसरे क़बीले का जानी दुश्मन था। अरब की ज़िन्दगी ज़िन्दगी नहीं थी। सदाचार का यह हाल था कि वहां के लोग फ़ख़ के साथ शायरी में अपने बाप दादों के सामने अपने अपने दुराचार की बातों का बखान करते थे। किसी ज़माने के राजपूतों की तरह अरबों में जब लड़की पांच या छै वर्ष की होती थी तो उसका बाप एक दिन अपनी बीवी से कहता था कि इसे अच्छे अच्छे कपड़े पहिना दो तो मैं इसे इसकी माँओं के यहाँ पहुँचा आऊँ। माँ उसको कपड़े पहिना देती। बाप उसे साथ ले जाता, जङ्गल में अपने हाथ से एक चार फ़ुट गहरा गढ़ा खोदकर उसमें उसको धक्का दे देता, और ऊपर से मट्टी ढककर चला आता। हज़ारों लड़कियां इस तरह ज़िन्दा दफ़न कर दी जातीं? शराब पी पीकर लोगों की मौतें एक मामूली बात थी। जुआ भी शराब के साथ साथ ख़ूब चलता था। जुए में लोग अपनी बीवियाँ तक हार देते थे। यह उस वक्त अरबों की हालत थी और यह था उनका इख़लाक।

जब दो क़बीलों में लड़ाई होती थी और हारे हुए क़बीले के लोग जब क़ैद होकर आते थे तो उनके साथ उनके देवता भी क़ैद करके लाए जाते थे। ऐसी हालत में अरब में एक अद्भुत व्यक्ति पैदा हुआ। गीता में "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत"—और "परित्राणाय साधूनाम विनाशायच दुष्कृताम्, धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युग युगे", ग़लत नहीं कहा गया। जिस जिस समय धर्म की ग्लानि हो जाती है, अंध विश्वास बढ़ जाते हैं, हम लोगों के बीच में आकर वह शक्ति हमें रास्ता बतलाती है। उसे अवतार, पैग़म्बर या तीर्थङ्कर जिस नाम से भी चाहे पुकारो असलीयत वही है। वही सनातन सीधा रास्ता बतलाने के लिये मोहम्मद साहब अरब में पैदा हुये। चालीस साल की उम्र तक वह अपने मुल्क की हालत पर सोचते रहे। रात और दिन वह इस बात पर विचार करते रहे कि उनके प्यारे वतन और आस पास की दुनिया की हालत कैसे सुधरे। इन चालीस साल में से आख़िरी तीन चार साल उन्होंने गहरी तपस्या में बिताये। मक्के के पास एक छोटी सी पहाड़ी हिरा नाम की है। उस पहाड़ी में मोहम्मद साहब चालीस दिन तक कभी कभी बग़ैर खाये पिये पड़े रहते थे। वे रातों अपने अल्लाह के सामने रोते थे और दुआ करते थे कि ऐ अल्लाह मेरी क़ौम को रास्ता दिखा, मुझे रास्ता दिखा कि मैं उसे ठीक रास्ते पर ला सकूँ। चालीस चालीस दिन तक वह हिरा के ग़ार में बग़ैर दाने पानी के पड़े रहते थे। इस गहरी और सच्ची तपस्या के बाद उन्हें एक दिन रोशनी दिखाई दी। सच्ची और खोजी आत्माओं को इसी तरह हर देश और हर युग में अल्लाह से रोशनी मिलती रही है। इनसान तक उस परमेश्वर का सन्देश पहुंचाने वाले हर क़ौम में हुये हैं। तुम अगर दूसरे के बाप को बाप नहीं कह सकते तो चचा कहना सीखो। हम कभी कभी शिष्टता से भी गिर जाते हैं। दूसरों के बुज़ुर्गों की इज़्ज़त अपने अन्दर पैदा करो। हम आज़ाद और महान होना चाहते हैं। लेकिन इससे पहले हममें सच्ची आदमियत पैदा होने की ज़रूरत है। मुसलमानो! अगर तुम सचमुच आज़ाद और ख़ुशहाल होकर रहना चाहते हो तो दूसरों के धर्म ग्रन्थों को देखो, भगवत् गीता को पढ़कर देखो। हिन्दुओ! अगर सचमुच तुम्हें आज़ाद और ख़ुशहाल होना है तो मोहम्मद साहब की ज़िन्दगी और कलाम मजीद को प्रेम के साथ पढ़ो। तुम्हें दोनों को गीता के अन्दर कुरान और कुरान के अन्दर गीता दिखाई देगी। जब मोहम्मद साहब ने अपने अल्लाह के सामने रो रोकर दुआएँ मांगीं तो अल्लाह ने उन्हें रास्ता दिखलाया। वह दुनिया में इसी काम के लिए आए थे। हम बजाय ख़ुदा के ख़ुदी को बड़ा समझते हैं, अपने दिलों के काबे में हमने ख़ुदी को बैठा रखा है। ख़ुदी को धक्का देकर बाहर करो तो ख़ुदा वहाँ बैठा हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दिखाई देगा। इस रोशनी ही के नतीजे की शक्ल में वह किताब पैदा हुई जिसे कलाम मजीद, कलाम पाक या .कुरान शरीफ़ कहते हैं। मुमकिन है कि कलाम मजीद की तालीम के बारे में मेरी राय उसी तरह कुछ मुसलमानों की राय से न मिले जिस तरह श्रीमद्भगवद् गीता की तालीम के बारे में कुछ हिन्दुओं की राय से। मैं मजबूर हूँ, मैंने जो देखा और पढ़ा है और जिसे मैं ठीक समझता हूँ मैं वही कह सकता हूं। जिस तरह मैंने गीता का सार आपके सामने रखा उसी तरह कलाम मजीद का सार रखने की कोशिश करूँगा। .कुरान और गीता में आपको बहुत सी मिलती जुलती बातें दिखाई देंगी। दोनों को शुरू से आख़ीर तक मिलाकर पढ़ने से बहुत दरजे तक एक की तस्वीर दूसरे में दिखाई देगी। कलाम मजीद में अपने धर्म के दुशमनों से लड़ाई का सवाल आता है। गीता में भी "तस्माद्युध्यस्व भारत"—इसी तरह की लड़ाई का ज़िक्र है। महाभारत के युद्ध में दोनों तरफ लड़ने वालों में मामा, चाचा, भाई, दादा और दूसरे सगे रिश्तेदार मौजूद थे। गीता में अर्जुन ने ऐतराज़ किया था कि हे कृष्ण! यह जो मेरे सामने लड़ने को खड़े हुये हैं यह सब मेरे चाचा, ताया, मामा वग़ैरह हैं। अरब के अन्दर भी मक्के के एक एक घर में कुछ आदमी मुसलमान हो गए तो बाक़ी अपने पुराने बुतों को पूजते रहे। इसलिए जब मुसलमानों और ग़ैर मुसलमानों में लड़ाई हुई तो उनमें भी मामा, चाचा, दादा, और दूसरे रिश्तेदार दोनों तरफ़ मौजूद थे। गीता के अन्दर जिस तरह ख़ास हालतों में इन सबसे लड़ाई की इजाज़त दी गई है उसी तरह .कुरान में भी। तेरह बरस तक .कुरान का मिशन पूरी शान्ति के साथ चला। .कुरान ने इन तेरह साल तक अरब के उन ग़ैर मुसलमानों के ऊपर भी हाथ उठाने की इजाज़त नहीं दी जो मुसलमानों को उनके नए दीन की वजह से तरह तरह की तकलीफ़ें दे रहे थे। .कुरान में इसका बार बार ज़िक्र मौजूद है।

यहूदियों की किताब तौरेत में हुकुम है कि तुम जान के बदले में जान ले सकते हो, आँख के बदले में आँख, नाक के बदले में नाक, कान के बदले में कान और दाँत के बदले में दाँत, ऐसे ही अगर कोई तुम्हें घायल कर दे तो तुम उसका भी बदला ले सकते हो लेकिन जो कोई माफ़ कर दे और बदला न ले तो उसके लिये ज़्यादा अच्छा है, इससे माफ़ कर देने वाले के पापों का प्रायश्चित हो जायगा।" (५-४)

"बुराई और भलाई बराबर नहीं हो सकती बुराई का बदला भलाई से दो और तुम देखोगे कि जिसे तुमसे दुश्मनी थी वह भी तुम्हारा गहरा दोस्त हो जायगा।" (४१-३४)।

"बुराई का बदला भलाई से दो।" (२३-९६)।

इसी तरह की और बहुत सी आयतें हैं जिनमें सख़्त लफ़्ज़ों में अरब के उन ग़ैर मुसलमानों का ज़िक्र करते हुए जिन्होंने मुसलमानों को उनके घरों से निकाल दिया था और जो उन्हें तरह तरह की तकलीफ़ें दे रहे थे, मुसलमानों को बार बार यही सलाह दी गई है कि इन सब मुसीबतों को सब्र के साथ बरदाश्त करो और बुराई का बदला भलाई से दो। "इन्नल्लाह युहिब्बुल मोहसनीन" यानी अल्लाह उन्हीं को प्यार करता है जो दूसरों के साथ नेकी करते हैं।

बराबर तेरह बरस तक .कुरान की आवाज़ बदली नहीं। यह बातें ज़रा ग़ौर से सुनने की हैं। मैं मुसलमानों से पूछना चाहता हूँ कि वे कलाम मजीद के अन्दर मुझे एक भी आयत ऐसी बता दें जिसमें ज़बरदस्ती तलवार के ज़ोर से किसी को अपने मज़हब में लेने की इजाज़त दी गई हो। या .कुरान ने किसी सख़्श के ऊपर उसके मज़हब की वजह से हमला करने की इजाज़त दी हो। .कुरान का हुक्म है—"ला इकरहा फ़िद्दीन··· (२-२५६) ला माने नहीं इकरहा माने ज़बरदस्ती। फ़ी माने इन दी मैटर आफ़ बारे में। दीन यानी धर्म। यानी मज़हब के मामले में किसी के साथ कोई ज़बरदस्ती नहीं की जा सकती।" यह .कुरान का साफ़ और सरीह हुकुम है। एक दूसरी जगह मोहम्मद साहब से कहा गया है इन लोगों से कह दो कि—"तुम्हारा मज़हब तुम्हारे लिये है और मेरा मज़हब मेरे लिये।" .कुरान के अन्दर इस तरह की भी काफी आयतें हैं कि—"ऐ मुहम्मद! जो लोग तेरी बात नहीं मानते क्या तुझे उन पर चौकीदार मुकर्रिर करके भेजा गया है? क्या तू किसी से ज़बरदस्ती करेगा? मोहम्मद! कह दे कि तेरा काम सिर्फ शान्ति से समझा देना है और बस।

कुरान ने तेरह वर्ष की इन लगातार ज़्यादतियों के बाद जो अरब के ग़ैर मुसलमान मुसलमानों के साथ करते आए थे, मुक़ाबला करने की इजाज़त दी। इन ज़्यादतियों की एक दो मिसालें मैं आपके सामने रखता हूं। कई मुसलमानों को गरम रेत के ऊपर नंगा पटककर ऊपर से पत्थर रख दिया जाता था। अरब की गरमी और धूप के अन्दर उन्हें छोड़ दिया जाता था और कहा जाता था कि "मोहम्मद को गालियां"। "छोड़ो इस्लाम"। यासिर और उसकी बीवी समीआ दोनों को केवल अरब के कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पूजा छोड़कर एक निराकार अल्लाह की पूजा शुरू कर देने के गुनाह में बरछियाँ भोंक भोंककर मार डाला गया। अदी के बेटे ख़ुबैब को बड़ी बेरहमी के साथ सताया गया। शिकंजे में कसकर उससे कहा गया—'इसलाम छोड़ दो और हम तुम्हें छोड़ देंगे"। उसने जवाब दिया—"सारी दुनिया हाथ से जाती रहे पर इसलाम नहीं छोड़ूंगा"। उसके हाथ पाँव एक एककर काटे गये। ख़ुबैब के टुकड़े टुकड़े कर दिये गये। माँस की एक एक बोटी हड्डियों से अलग कर दी गई। ख़ुबैब शहीद हो गया। पर एक निराकार परमेश्वर और उसका संदेशा सुनाने वाले पर यक़ीन ख़ुबैब के दिल या ज़बान से न उठ सका। वह कोई छोटी मोटी हस्ती नहीं थी जिसने अरब के उन जाहिलों को इतना ज़बरदस्त पाठ पढ़ा दिया और उनके अन्दर यह बल बूता पैदा कर दिया। उसके अन्दर उस पाक परवरदिगार का एक अंश मौजूद था। क़ुरान देखने की चीज़ है। उसमें आयत पर आयत भरी पड़ी हैं जिनमें यह साफ़ साफ़ कहा गया है कि—

"मैं कोई नया मज़हब क़ायम नहीं कर रहा हूं।" क़ुरान अपने से पहिले के सब मज़हबों को सच मानता है। क़ुरान केवल उन्हीं पुरानी सचाइयों को दुहराता है। "दुनियाँ में ऐसी कोई क़ौम नहीं जिसके अन्दर पैग़म्बर पैदा न हुए हों, जिसके अन्दर कोई रसूल न भेजा गया हो।" "दुनिया में कोई ऐसा ज़माना नहीं हुआ जब कि अल्लाह की तरफ़ से कोई किताब न आई हो"। "हर ज़माने के लिए एक किताब है।" "मोहम्मद कोई नया पैग़म्बर नहीं। कोई अनोखा रसूल नहीं।" ऐसे ऐसे लाखों रसूल दुनिया में पैदा हो चुके हैं। "उनमें से क़ुरान के अंदर चंद के नाम दिये गये हैं बाक़ी के नाम नहीं दिये गये।" क़ुरान उन सब पहले के मज़हबों को तस्दीक़ करता है। उन्हें वेरीफाई करता है। उन्हें सच्चा ठहराता है।" ये सब क़ुरान की मुखतलिफ़ आयतों के लफ़्ज़ी तरजुमे हैं। अपने से पहिले की धार्मिक किताबों के लिये भी क़ुरान मजीद में 'क़ुरान' लफ़्ज़ का इस्तेमाल किया गया है। क़ुरान के मत से वेद और गीता 'क़ुरान' हैं। क़ुरान कहता है इस्लाम कोई नया मज़हब नहीं है। जो भी केवल एक अल्लाह को मानता है और नेक काम करता है वह मुसलमान है। क़ुरान की रू से एक ईश्वर को मानने वाले सब मुसलमान हैं। मुसलमान के लफ़्ज़ी माने यही हैं। एक अर्थ तो यह किया जाता है कि जो भी शान्ति यानी सुलह चाहता है वही मुसलमान है। दूसरा अर्थ यह है कि जिस किसी ने एक अल्लाह के सामने सर झुकाया वही मुसलमान है। यही क़ुरान मजी में मुसलमान की तारीफ़ है।

एक अल्लाह को मानने और नेक काम करने अलावा क़ुरान में और कोई मज़हब नहीं बताया गया कलाम मजीद में केवल पाँच बातें ऐसी बताई गई हैं जिनक हर मुसलमान को मानना लाज़मी है—(१) अल्लाह (२) फ़रिश्ते, हर मज़हब में किसी न किसी तरह के ऐ देवताओं या दूसरी हस्तियों को माना गया है। ज़ाहिर है कि मनुष्य और ईश्वर के बीच में इस तरह की योनियां हैं ज मनुष्य से ऊँची हैं; (३) तीसरी चीज़ दुनिया के स पैग़म्बरों को मानना है। वह आदमी मुसलमान नहीं है ज इसलाम से पहिले के सब पैग़म्बरों को नहीं मानता है। क़ुरा की आयत का तर्जुमा है कि—"जो लोग फ़र्क़ करते एक नबी में और दूसरे नबी में, एक को छोटा और दूस को बड़ा मानते हैं। एक को मानते हैं और दूसरे को न मानते वह सचमुच काफ़िर हैं;" (४) क़ुरान और उस पहिले की सब ईश्वरीय किताबें; (५) कर्मों का फल।

अब मैं कुरान और गीता की कुछ बातों का मुक़ाबल आपके सामने करना चाहता हूं। कुरान के पहिले सूरे परमात्मा का एक नाम "रब्बुलआलमीन" आया है। उस लफ़्ज़ी मानी 'सर्व लोक महेश्वरम' हैं। यानी इ दुनियाओं का मालिक। गीता में भी परमात्मा को सर्व लो महेश्वर कहा गया है। पहले सूरे में अल्लाह से प्रार्थना क गई है—'हमें सीधा रास्ता दिखा" (एहदेनस्सेरातल मुस्तकीम)। ऋग्वेद का मंत्र है 'अग्ने नय सुपथा।' ईश्वर हमें सीधे रास्ते पर ले चल। गीता के अन्द ईश्वर की "ज्योतिषामपितज्ज्योतिः" कहा गया है यानी ज्योतियों की ज्योति। कलाम मजीद में ईश्वर 'नूरुल अला नूरिन' कहा गया है। दोनों के ठीक ए ही माने हैं। इसी तरह की और भी बहुत सी मिस दी जा सकती हैं। मेरे पास वक्त नहीं है। संस्कृत एक धातु 'इल्' है जिसका अर्थ स्तुति करना या पूजा कर है। ऋग्वेद में ईश्वर के लिये इसका प्रयोग किया ग है। अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देव...इस इल धातु 'इला' शब्द बनता है, जिसके अर्थ है—वह जिसकी स्तु की जावे या पूजा की जाय। 'इला' शब्द को वेदों में जग जगह ईश्वर के लिये इस्तेमाल किया गया है। ऋग्वेद क एक पूरा सूक्त 'इला' के नाम पर है। ऋग्वेद के 'इला और कुरान के अल्लाह में कोई फ़र्क़ नहीं है। एक नदी एक समुद्र है जो अरब से हिन्दुस्तान तक और हिन्दुस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ने अरब तक हिलोरें मार रहा है। आखिर अल्लाह एक
और हम सब उसके बंदे हैं। मुझे कोई फ़र्क़ दिखलाई नहीं
ता। तब यह फ़र्क़ कहां से आया? हमारे अंदर जो शैतान
वह दुई का शैतान है, जो हमें एक अल्लाह को नहीं
खने देता। वही हमें एक नहीं होने देता। इस शैतान को
निकालकर बाहर करो। यही मुक्ति का रास्ता है। सियासी
क़ते नज़र से भी हमें आज़ादी मिलने का यही रास्ता है।
सके सिवाय मुक्ति का और कोई मार्ग नहीं है। मैंने आपके
ामने यह बतलाया था कि मोहम्मद साहब जब पैदा हुये
उस वक्त अरब की क्या हालत थी। उस वक्त हिन्दुस्तान
ी निस्बत मज़हबी दृष्टि से, सामाजिक दृष्टि से या राज-
तिक दृष्टि से वहां की हालत बहुत ज़्यादह गिरी हुई
ी। मोहम्मद साहब ने केवल २० साल तक उपदेश
या उसका नतीजा क्या हुआ? महज़ २० साल में
न्होंने जो कोशिश की उसका नतीजा यह हुआ कि उनकी
न्दगी में वह अरब जो पहले पांच टुकड़ों में बँटा हुआ
ा और दूसरों के क़ब्जे में था एक मुत्तहिदा और आज़ाद
क हो गया। जो अरब सैकड़ों कबीलों में बँटा हुआ था
क मुत्तहिदा क़ौम एक संयुक्त राष्ट्र बन गया। अरब जो
रों की गुलामी में था, जो ईरान के सम्राटों के जूते चाटा
ता था, रोम के मुक़ाबले की एक ज़बरदस्त शक्ति होकर
गे बढ़ा। मैंने दुनिया की तवारीख के वर्के लौटे हैं।
क दुनिया की हिस्ट्री के अन्दर दूसरा ऐसा कोई इन्सान
ी दिखलाई दिया जिसने २० साल की ज़िन्दगी के अन्दर
चीज़ पैदा कर ली हो। मुझे ऐसी कोई आत्मा नहीं
खलाई पड़ती जिसने इस थोड़े से समय में सैकड़ों,
ीलों को मिलाकर एक क़ौम बनाकर इस तरह आसमान
बिठा दिया हो। 'मोहम्मद वाज दि ग्रेटेस्ट पेट्रीअट
दि वर्ल्ड'। केवल देश भक्त की हैसियत से भी मोहम्मद
ब से बढ़कर सफल देश भक्त दुनिया में कोई पैदा नहीं
ा।

अगर हम इसलाम की तरफ निगाह डालें तो देखेंगे
कुरान और हदीसों में उसी तरह नेक काम करने की
ायतें भरी पड़ी हैं जिस तरह दूसरी धार्मिक किताबों
अन्दर। बार बार मोहम्मद साहब से पूछा गया कि इस-
ा किसे कहते हैं? मोहम्मद साहब ने जवाब दिया—
बान को पाक रखना और मेहमान की ख़ातिर करना"
गया कि ईमान क्या है जवाब मिला—"सब्र करना
दूसरों की भलाई करना"। फिर किसी ने पूछा कि
न क्या है जवाब दिया—"जब तुझे नेक काम करने
से खुशी हो और बुरा काम करने से दुःख हो तब तू ईमान
वाला है" एक और जगह मोहम्मद साहब ने कहा है—
"ईमान आदमी को हर तरह के ज़ुल्म से रोकने के लिये
है। कोई मोमिन किसी पर ज़ुल्म नहीं कर सकता।" एक
और जगह कहा है—"वह आदमी मोमिन नहीं है जो खुद
पेट भरकर खा लेता है और उसका पड़ौसी पास ही भूखा
रहता है।" मोमिन वह है जिसके हाथों में सब आदमी
अपनी जान और माल को सौंप कर बेखटके रहें। कुरान
में लिखा है कि—"क्या तुमने सोचा है कि दीन को झूठा
ठहराने वाला आदमी कौन है? दीन को झूठा ठहराने
वाला आदमी वह है जो किसी यतीम को सताता है और
जो ग़रीबों को खाना देने पर ज़ोर नहीं देता। ऐसा आदमी
जब नमाज़ पढ़ता है तो उस पर अफ़सोस है, क्योंकि वह
नमाज़ के असली मतलब की तरफ ध्यान नहीं देता। वह
सिर्फ दिखावा करता है।" एक और जगह मोहम्मद साहब
ने कहा है कि—"जो आदमी एक तरफ तो नमाज़ें पढ़ेगा,
रोज़े रक्खेगा और ख़ैरात करेगा और दूसरी तरफ किसी
को बुरा कहेगा या किसी का माल खा जायेगा या किसी का
खून बहायेगा या किसी को दुःख पहुँचायेगा, ऐसे आदमी
की नमाज़ें उसके रोज़े और ख़ैरात कोई उसके काम न
आवेंगे। मुहम्मद साहब से किसी ने एक बार पूछा कि
नमाज़ कै बार पढ़ी जाए। जवाब मिला कि ५ बार। उसने
फिर कहा कि व्यापार व और काम काज की वजह से मुझे
इतनी फ़ुरसत नहीं मिलती तो जवाब मिला कि तीन बार
पढ़ लिया करो। उनसे फिर कहा कि और रिआयत कर
दीजिए। जवाब मिला कि "सुबह शाम पढ़ लिया करो।"
हज़रत मुहम्मद ने ईरानी मुसलमानों को फ़ारसी में और
यूनानी मुसलमानों को यूनानी में नमाज़ पढ़ने की इजाज़त
दी थी। मुसलमानो! कुरान के मुताबिक कोई ज़बान
दूसरी ज़बान से ज़्यादह पाक नहीं। सच यह है कि उस
पाक परवरदिगार की नज़रों में न संस्कृत अरबी
से ज़्यादा पाक है और न अरबी संस्कृत से। उसकी नज़रों
में सब ज़बानें बराबर हैं और सब से बढ़कर दिल की
ज़बान है। मेरी नज़र में वेद के मंत्रों और कुरान की
आयतों में कोई फ़र्क़ नहीं है। मुझे तो आजकल के हिन्दू
और मुसलमान दोनों ज़्यादहतर कर्मकाण्डी और सिर्फ
दिखावे के नमाज़ रोज़ों में लगे हुये दिखाई पड़ते हैं। एक
हिन्दू शास्त्रकार का कहना है कि जो लोग कर्म काण्डों में
फंसे हुये हैं वे गायों के रंगों को देखते हैं और जो ज्ञानी हैं
वे दूध को देखते हैं। गाएं तरह तरह के रंग की होती हैं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मई १९४५ ]

लेकिन दूध सब का सफेद। हिन्दुओं और मुसलमानो! गीता और कुरान दोनों की बिना पर ही में यह सब कुछ कह रहा हूँ। हमारा ध्यान आज सिर्फ ख़तने, चोटी, डाढ़ी और जनेऊ जैसी ऊपरी चीज़ों की तरफ़ जा रहा है। अगर हम दिलों को देखें तो हमें उनमें परवरदिगार मिल जावे। मज़हब इश्क की चीज़ है। प्रेम की चीज़ है। वह लड़ाई की चीज़ नहीं है। हम इस जन्नत की चीज़ को आज कहाँ कीचड़ में घसीट रहे हैं। धर्म का सार मैंने आपके सामने रख दिया। नौजवानो! मेरे दिल के अन्दर एक आग सी लगी है। मैं आप सब से अपील कर रहा हूं कि इस मुल्क को बना लो! यह कम्बख़्त आपसी फूट ही इस देश का नाश कर रही है और इस जन्नत निशान हिन्दोस्तान को दोज़ख़ बना रही है। कुरान में लिखा है "अल्लाह किसी क़ौम की हालत नहीं बदलता जब तक वह क़ौम ख़ुद अपनी हालत नहीं बदलती।" हिन्दू मुसलमान दोनों ज्यादहतर बड़े बड़े नेता जो अपने अपने धर्म को बचाने की डींग हांकते हैं मुझे धर्म और दीन से कोसों दूर दिखाई देते हैं। अगर इन दोनों क़ौमों के ख़ास ख़ास नेताओं की गर्दन से नीचे की तस्वीरें ली जावें तो एक सी दिखाई देंगी। ये सब के सब अंग्रेज़ ही दिखाई देंगे। मैं किसी भी ख़ास संस्था की बुराई नहीं कर रहा हूं। अगर ग़लती इसमें है तो उसमें भी है, कांग्रेस, हिन्दू सभा, या मुस्लिम लीग कोई ग़लती या ज़िम्मेवारी से बिल्कुल खाली नहीं है। मैं सिर्फ़ इतना ही कहना चाहता हूं कि हमारी समस्यायें लड़ाई झगड़े से नहीं सुलझ सकतीं। वह ईश्वर अल्लाह जो हम सब के ऊपर है उसे चाहे संस्कृत में याद करो चाहे अरबी में याद करो वह किसी से कोई फ़र्क़ नहीं मानता। चाहे पूर्व के रास्ते से जाओ चाहे पच्छिम के रास्ते से वह सब रास्तों से मिलता है। उसे किसी नाम से आवाज़ दो, किसी नाम से उसे पुकारो अगर नाम दिल से लिया गया है तो वह बोलेगा। तुम खुशी से अपनी अपनी पूजा नमाज़ करते रहो। अपने सब रीति रिवाजों को छोड़ ही दो, यह मैं नहीं कह रहा हूँ लेकिन अलग अलग संस्कृतियों के नाम पर अपने रोज़मर्रा के रहन सहन और मिली जुली ज़िन्दगी के टुकड़े टुकड़े मत कराओ। मिसाल के तौर पर ज़बान के सवाल को लो, एक सीधी सादी मिली जुली हिन्दुस्तानी ज़बान को एक ओर संस्कृत की तरफ और दूसरी ओर अरबी फ़ारसी की तरफ़ खींचकर उसके दो टुकड़े कर देने की प्रवृत्तियां ग़लत और मुल्क के लिये नाशकर हैं। ज़बानें बाहर के शब्दों को लेकर ही मालामाल होती हैं। फारसी अरबी तुर्की वगैरह के सैकड़ों लफ़्ज़ हमारी मिली जुली क़ौमी ज़बान की निधि बन चुके हैं। अंगरेज़ी के सैकड़ों शब्द भी हमेशा के लिए हमारे हो चुके। जब रेल पर टिकट लेने जाते हो तो 'प्रवेश पत्र' कहने से काम नहीं चल सकता। टिकट, रेल, इंजन, स्टेशन, पार्सल को नहीं भुलाया जा सकता। अंग्रेज़ इस मुल्क से निकल जावेंगे लेकिन रेल, टिकट और पार्सल कभी नहीं निकाले जा सकते। उन चीज़ों से हिन्दुस्तानी ज़िन्दगी और हिन्दुस्तानी कलचर को चार चाँद ही लगे हैं। हमारी आए दिन की ज़िन्दगी में आधे से ज़्यादा शब्द दूसरी भाषाओं के इस्तेमाल होते हैं। किस किसको निकाल कर फेंकोगे? क्या 'गुलाब' को निकाल कर फेंकोगे? क्या 'हलवे' का नाम बदल दोगे या खाना छोड़ दोगे। मुसलमानों की शादियाँ भी मैंने देखी हैं। वही अंगन, तेल, कलेवा, हल्दी क्या क्या नहीं होता। यह सारी की सारी रस्में जब मौलवी साहब निकाह पढ़ाकर चले जाते हैं तब घर के अन्दर जिस तरह हिन्दुओं में होती हैं उसी तरह मुसलमानों में भी अदा की जाती हैं। कनछेदन और नकछेदन कौन मुसलमान नहीं जानता। मेरा तो कहना यही है कि कलाकन्द भी दोनों मिल कर खाओ और बरफ़ी भी। ग़लती करो तो मिलकर करो अगर आप यह सब व्यर्थ का भेद भाव छोड़ दें तो आज़ादी आपके पैर चूमती हुई दिखाई दे। हिन्दू और मुसलमानो! होश की दवा करो। कल्चर मेल जोल की चीज़ है। कल्चर तुम्हें अलहदा अलहदा करने की चीज़ नहीं है। गीता और कुरान दोनों का ज़िक्र मैंने आपके सामने किया है। हिन्दू ग्रन्थों में "वसुधैव कुटुम्बकम्" कहा गया है अर्थात् सारा संसार एक कुटुम्ब है। कलाम मजीद की आयत भी साफ़ है—वमा कानन्नास इल्ला उम्मतुं वाहेदा, यानी सारी मनुष्य जाति एक क़ौम है। हिन्दू और मुसलमान आज कह रहे हैं कि हिन्दू क़ौम अलहदा और मुस्लिम क़ौम अलहदा। सच पूछो तो क़ौमें अलहदा नहीं, किस्मतें ख़राब हैं। शायद अभी इस मुल्क को और बदतर दिन देखना है। मैं किसी को इलज़ाम नहीं देता। मुल्क की सलामती 'मोहब्बत' के अन्दर बन्द है और मुल्क की बरबादी 'फूट' के अन्दर। इनमें से जो रास्ता चाहते हो वह चुन लो।

[ ग्वालियर का एक भाषण ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उर्वशी

श्री विनोदकुमार सेठ

उर्वशी तुम जननी हो न दुहिता हो, न पत्नी हो,
तुम केवल नारी, केवल नारी छलनामयी।
म्लान रवि नभ को तपाकर निज किरणों से,
नीचे गिर पड़ते हैं; और थकित सन्ध्या भी,
मुरझाया हास लिये पश्चिम में आती है।
अमृत-कलश से व्योम सिन्धु के हृदय को चीर,
चन्द्र चन्द्रिका के ले यामिनी के शिथिल अंग
वसुधा पर शान्ति बरसाते से आते हैं;
बोलो अयि देवि! तब नवल वधू सी क्या,
अधरों में हास भर, नयनों में लाज भर
दीपक में प्रकाश भर, उर में कुछ कम्पन भर,
पुष्प-शय्या की ओर मुसकाती जाती हो।

सृष्टि के प्रथम वसन्त में, प्रभात में,
सिन्धु के हृदय से ऊर्म्मियों की पहिर मालायें,
पवन प्रकम्पित नलिनी सी सुगन्धिमयी,
तुम निकली थीं मुग्ध, सर्प सा समुद्र क्रुद्ध
चूमता था सुन्दरी! तुम्हारे इन चरणों को।

ज्योतिरिंगणों से जब निशीथ में, अम्बर में,
तारे टिमटिमाते थे, और समीर सरिता से,
खेल खेलता था, सुत कुञ्जों को रिझाता था,
तनिक प्रणत हो चन्द्रिका ने क्या चूमा था,
सुन्दरी! तुम्हारे बालिका से सरल ओठों को।
बोलो, क्या छुआ था बाल-रवि की प्रथम किरणों ने
पालने में सोये इन तुम्हारे मृदु अंगों को।

याद है उस दिन की, जब कि सुर-लोक में,
आये थे शक्र-पुत्र, और अप्सराओं ने,
कितना अपूर्व मधु-उत्सव मनाया था।
और थी निशीथ, तब काम मोहिता हो तुम,
केशों में गूँथ फुल्ल फूलों की मालायें,
जाती थीं अर्जुन पास। श्वासों के सौरभ से
प्रान्तर महकता था; नूपुर की रुनझुन से
जगती थीं कलियाँ कल, लहर रहा था कच-जाल
वायु मण्डल में, और नील वस्त्रों से, श्याम घन मण्डल
दामिनी से अङ्ग तव;
नूतन अपूर्व मधु आभा फैलाते थे।
किन्तु हाय भाग्य! तुम असफल हुई थीं,
और क्रुद्धिता हो अर्जुन को शाप दे डाला था,
क्षुब्ध सर्पिणी सी तुम विह्वला, भयङ्करा थी।
रूप में भी हन्त! कैसी ज्वाला छिपी रहती है।

जब कि सुरलोक में सुरम्य सिंहासन पर,
बैठते हैं इन्द्र, और बैठते हैं चारों ओर,
देवगण मत्त से विलास वासना से पूर्ण।
अयि रूप-राशि! तुम नवगति भर पद तल में,
मदिरा भर नयनों में, लचका कर अङ्गों को,
थिरक थिरक नाचती हो, होता प्रकम्पित विश्व
यौवन की पीड़ा से। शस्य पूर्ण खेत लहलहाते,
और सागर की लहरें तुम्हें छूने को,
उठती चली जाती हैं, कलियों के काव्य भ्रमर
तेरे मधु रूप पर गूँजते हैं, तपस्वी भी तपस्या का
समस्त फल, फेंक देता तेरे इन,
सुर वांछित चरणों पर।

वायु को अशांति से कँपाती हो देवि,
जग अपने अश्रु जल से तुम्हें आर्द्र कर देता है।
रँगता है तुम्हारे चरण अपने हृदय रक्त से।
लहरों से प्रकम्पित, कामना के कल सरसिज पर,
मायाविनी सुन्दरी! तुम करती निवास हो।
और कवि मानस में भावों के झूलों पर,
झूली थीं, झूल रहीं, झूलोगी अनन्त तक।

[ गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की "उवशी" शीर्षक रचना पढ़कर ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# डा० सनयात सेन के "जनता के तीन सिद्धांत"—(३) जीविका

प्रो० कृष्णकिंकर सिंह

[ पिछले अङ्क से आगे ]

डा० सनयात-सेन के जनता के तीन सिद्धान्तों में से तीसरा 'मिन-सङ् चु इ' यानी जनता की जीविका का सिद्धान्त है। मनुष्य जब पैदा होता है तो उसके साथ खाने पीने आदि की समस्या भी लगी हुई पैदा होती है। ज्यों ज्यों संसार की जन संख्या बढ़ती जाती है, ज्यों ज्यों सभ्यता का अधिक से अधिक विकास होता जाता है यह समस्या केवल बढ़ती ही नहीं जाती है बल्कि जटिल से जटिल होती जाती है। जब तक मानव समाज में शारीरिक श्रम का प्राधान्य था यह समस्या उतनी जटिल नहीं थी। परन्तु गत सौ वर्षों के बीच संसार की भौतिक सभ्यता में बहुत प्रगति होने तथा उद्योग-धन्धे में बहुत विकास होने के कारण मानव जाति की उत्पादन शक्ति बढ़ गई है। इस उत्पादन शक्ति के बढ़ने का श्रेय मशीन के आविष्कार को है। एक आदमी एक मशीन द्वारा कम समय तथा कम खर्चे में बहुत सहूलियत के साथ सैकड़ों आदमियों के कामों को अच्छी से अच्छी तरह कर सकता है। इसलिये मशीन की उत्पादन शक्ति और मानवीय श्रम की उत्पादन शक्ति में महान अन्तर हो गया है। मशीन ने आदमी की जगह ले ली है और मशीन अधिकारियों ने उन लोगों के पास से धन हरण कर लिया है जिनके पास मशीन नहीं है। मशीन के आविष्कार से छोटे छोटे उद्योग धन्धे जो हाथ से चलते थे, समाप्त हो गये हैं और इस प्रकार हर प्रकार के हाथ से काम करने वालों की बड़ी संख्या बेकार हो गई है और उन्हें अपने खाने की समस्या को हल करने के लिये कोई काम नहीं मिलने लगा है। इसलिये काम करने वालों को महान संकट का सामना करना पड़ रहा है। "संकट को मिटाने के लिये की गई कार्रवाइयों के फलस्वरूप गत सौ वर्षों के बीच विकट सामाजिक समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं।"

डा० सन का जीविका का सिद्धान्त इसी समस्या को सुलझाने का सिद्धान्त है। उन्होंने मिन-सङ् या जनता की जीविका को इन शब्दों में बताया है—"यह जनता की जीविका, समाज के अस्तित्व, राष्ट्र की भलाई और समूह के जीवन की द्योतक है। जीविका का सिद्धान्त साम्यवाद (Socialism) है, समाजवाद (Communism) है और मनोराज्यवाद (Utopianism) है।" डा० सन ने साम्यवाद की अपेक्षा मिन-सङ् शब्द को जीविका की समस्या सुलझाने के लिये क्यों अपनाया, उसका कारण उन्होंने यों बताया है—पहली बात यह है कि साम्यवाद शब्द के अन्दर चाहे जो अर्थ निहित हो पर इसके सुनने मात्र से जीविका की समस्या की ओर ध्यान नहीं आकर्षित होता है। इसलिये वह साधारण लोगों के बीच बिना अर्थ समझाये प्रभाव नहीं डाल सकता। परन्तु मिन-सङ् यानी जीविका शब्द सामाजिक समस्या के मूल पर ही आघात करता है और उसके वास्तविक रहस्य को खोल देता है। साथ साथ इसको सुनते ही हर आदमी यह समझने लगता है कि यह उसके प्रतिदिन के जीवन की आवश्यक बातों का द्योतक है। दूसरी बात यह है कि साम्यवाद का कोई निश्चित रास्ता अब तक नहीं दिखाई पड़ता है जिसका अनुसरण किया जाय। प्रथम महायुद्ध के पहिले हर देश में साम्यवाद विरोधी और साम्यवाद समर्थक ये ही दो दल थे। सभी देशों के साम्यवादी अपने को एक सूत्र में बंधा समझते थे। परन्तु महायुद्ध के बाद साम्यवादी दल में फूट पड़ गई और समाजवादी, स्टेट साम्यवादी, सामाजिक गणतन्त्र वादी (Social Democrates) आदि नामक कितने दल हो गये। इतना ही नहीं, एक देश के अन्दर के साम्यवादी दल में भी भिन्न-भिन्न मत रखने वाले पैदा हो गये जो साम्यवाद को लागू करने का अलग-अलग रास्ता बताने लगे। इन मतभेदों से एक ऐसी स्थिति पैदा हो गई है जिसमें आदमी की समझ में नहीं आता है कि कौन सा रास्ता सही है और इस कारण सामाजिक समस्या सुलझने की अपेक्षा जटिल ही हो गई है। तीसरी बात यह है कि जीविका की समस्या साम्यवाद से भिन्न नहीं है। साम्यवाद प्रथमतः समाज की आर्थिक समस्या का अर्थ यानी जीने की सार्वजनिक समस्या का द्योतक है और इस दृष्टि से सामाजिक प्रश्न आर्थिक प्रश्न भी है तथा जीविका साम्यवाद का प्रधान विषय है।

पर जीविका का सिद्धान्त साम्यवाद का एक पहलू या साम्यवाद ही जीविका के सिद्धान्त में निहित है—यह प्रश्न विचारणीय है। इसके लिये साम्यवाद की उत्पत्ति इतिहास पर एक दृष्टि डालनी होगी। औद्योगिक क्रान्ति के बाद जब काम करने वालों को अपने श्रम के बेचने पर भी उसका खरीदार नहीं मिलने लगा तो भूख से छटपटाने लगे। इस संकट को देखकर सामाजिक समस्या के अध्ययन करने वाले कुछ चरित्रवान लोगों ने साम्यवाद के सिद्धान्त



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रतिपादन किया। उन लोगों ने एक ऐसे सुखद और शान्ति मय समाज की कल्पना की जिसमें किसी प्रकार की तकलीफ़ किसी को नहीं होगी। पर उत्पन्न हुए संकट को मिटाने का कोई वास्तविक रास्ता उन लोगों ने नहीं बताया। इस प्रकार के कल्पना प्रधान लोग ही मनोराज्यवादी कहलाये। इसके बाद मार्क्स ने अपने सामाजिक प्रश्नों के अध्ययन में पहिले पहल अपने से पहिले के सभी प्रकार के साम्य-वादियों के मतों का तुलनात्मक ढङ्ग से विवेचन किया और अपने मत को वास्तविक बातों तथा इतिहास के तथ्यों पर आधारित किया। उन्होंने सामाजिक प्रश्नों के आर्थिक हालतों में होने वाले परिवर्तनों की ब्योरेवार ढङ्ग से मौलिक व्याख्या की और समस्या के हल का क्रान्तिकारी तरीका बताया। इनके अनुयायी वैज्ञानिक साम्यवादी कहलाये। परन्तु वैज्ञानिक साम्यवादियों में भी बाद में विरोध पड़ गया और मार्क्स के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने में भिन्न-भिन्न मत रखने वाले लोग पैदा हो गये। अब प्रश्न आता है कि जब मार्क्स ने अपने मत को वैज्ञानिक ढङ्ग से वास्त-विक बातों और ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित कर समस्या के हल का उपाय बताया तो फिर उनके अनुयायियों में फूट क्यों हुई? इस प्रश्न के उत्तर के लिये मार्क्स के मुख्य मतों का विवेचन करना ठीक होगा। मार्क्स ने बताया कि संसार में मनुष्यों की सभी कार्रवाइयां जो पुश्त दर पुश्त से लिखित रूप में सुरक्षित हैं, इतिहास कहला सकती हैं और इस प्रकार सभी मानवीय इतिहास भौतिक शक्ति की ओर आकर्षित होते हैं। अर्थात अगर जीवन के भौतिक आधार में परिवर्तन होता है तो संसार में भी परिवर्तन होता है। साथ साथ आदमी के कार्य भौतिक वातावरण से निर्धारित होते हैं इसलिये मानव-सभ्यता का इतिहास भौतिक वातावरण की कहानी है। पर डा० सनयात सेन मार्क्स के इस इतिहास की भौतिक व्याख्या को ग़लत मानते हैं। उनके अनुसार मॉरिस विलियम द्वारा प्रतिपादित इतिहास की सामाजिक व्याख्या ठीक है। विलियम ने बताया है कि मार्क्स के अनुयायियों में मार्क्स के सिद्धान्त को लेकर फूट पड़ने का कारण मार्क्स के मूल सिद्धान्त का ही ग़लत होना है। विलियम के अनुसार सामाजिक समस्या ही वह केन्द्र है जो इतिहास की गति निर्धारित करता है, भौतिक शक्तियाँ नहीं तथा सामाजिक समस्या का केन्द्र जीने के लिये रोज़ी की खोज करना है। प्राचीन काल से ही आदमी की शक्तियाँ अपने अस्तित्व को बचाये रखने वाली वृत्ति की समस्या को सुलझाने में लगी हुई हैं और यह अस्तित्व को बनाये रखने के लिये निरन्तर जूझा रहना ही [illegible] प्रगति का नियम है। अर्थात् जीविका सामाजिक प्रगति केन्द्रीय शक्ति है और सामाजिक प्रगति इतिहास इसलिये जीविका की तलाश ही इतिहास की निर्धारित करती है; भौतिक शक्तियां नहीं। इस जीविका का सिद्धान्त सामाजिक समस्या को सुलझाने सिद्धान्त है और साम्यवाद समाज की आर्थिक का। चूंकि आर्थिक समस्या सामाजिक समस्या का अङ्ग है, इसलिये जीविका का सिद्धान्त साम्यवाद से भी कुछ अधिक है और सामाजिक प्रश्नों को साम्यवाद अपेक्षा अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है।

यह जीविका का सिद्धान्त प्रगति के नियम से खाता है जब कि मार्क्स के भौतिक सिद्धान्त से प्रगति कोई निश्चित नियम नहीं निकलता है। इसलिये शक्तियाँ इतिहास की गति को निर्धारित करने वाली मानी जा सकतीं। मार्क्स के अनुसार समाज की वर्ग-युद्ध से होती है। भौतिक शक्तियों में सब से उत्पादन का स्थान है। यह उत्पादन पूँजी, मशीन मानवीय श्रम के सहयोग से होता है। इस उत्पादन मुनाफे का बहुत अधिक भाग पूँजीपति मार बैठते हैं मज़दूरों को बहुत कम मिलता है। इस प्रकार पूँजीपति और मज़दूरों के स्वार्थ में मेल नहीं खाने से वर्ग संघर्ष होता है और जिसके फलस्वरूप समाज की प्रगति होती मार्क्स के अनुसार भूतकाल की सभी प्रकार की प्रगति इतिहास वर्ग संघर्ष का ही इतिहास है। अर्थात् वर्ग संघर्ष कारण है और सामाजिक प्रगति फल। परन्तु डा० सेन आधुनिक समाज की प्रगति की छानबीन कर के बताते कि सामाजिक प्रगति समाज के विभिन्न वर्गों के स्वार्थों सामंजस्य होने से होता है, स्वार्थों के बीच टक्कर से नहीं। गत कुछ दशाब्दियों में पश्चिमी समाज में प्रगति हुई है जिनमें सामाजिक आर्थिक प्रगति के चार ध्यान देने योग्य हैं। ये चार रूप हैं—सामाजिक औद्योगिक सुधार, माल ढोलाई और यातायात के पर सार्वजनिक स्वामित्व की स्थापना, पूँजीपतियों प्रत्यक्ष कर निर्धारण और वितरण का समाजीकरण।

प्रथम सुधार के द्वारा मज़दूरों की शिक्षा, स्वास्थ्य पुतलीघरों की हालतों तथा मशीन आदि में सुधार होता है जिससे मजदूरों के काम करने की शक्ति में वृद्धि होती और वे स्वेच्छापूर्वक काम करते हैं तथा उत्पादन बढ़ता है। दूसरे सुधार का अर्थ है सभी प्रकार के रेल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


डाकघर, तार, टेलीफोन आदि के कामों को सरकारी प्रबन्ध और नियंत्रण में रखना। इससे माल ढोलाई ( Transportation ) तथा यातायात का काम ठीक से होता है। उपर्युक्त कामों पर से व्यक्तिगत अधिकार के उठ जाने तथा उन कामों का सरकार के अधिकार में चले जाने से उनसे हुआ लाभ सम्पूर्ण समाज द्वारा उपभोग किया जाता है। तीसरे सुधार से पूँजीपतियों के ऊपर आय कर तथा पैतृक कर आदि के रूप में प्रत्यक्ष कर निर्धारण होता है। इससे सरकार को सीधे पूंजीपतियों से कर मिलता है और उसकी आय में वृद्धि होती है। सरकारी आय में वृद्धि होने से सरकार चन्द तरह के सामाजिक सुधारों के कार्यों को अपने हाथों में लेती है। चौथे सुधार के द्वारा देश में पैदा होने वाली चीजों का वितरण व्यवसायियों द्वारा न होकर संगठित सामाजिक संस्थाओं द्वारा होता है। इससे खपत करने वालों ( Consumers ) को व्यक्तिगत व्यवसाय करने वालों द्वारा अधिक मुनाफा लेने के बोझ से छुटकारा मिल जाता है। साथ साथ सामाजिक संस्थायें जो भी मुनाफा लेती हैं वह पुनः समाज की भलाई में ही लगता है, व्यक्तिगत आदमियों के पेट भरने में नहीं। इन चारों सुधारों के होने से पश्चिमी समाज में बड़ी प्रगति हुई है। डा० सन ने बताया है कि "इन सुधारों में सब से अच्छा सुधार सामाजिक वितरण प्रणाली की प्रगति है जिससे व्यापारियों का एकाधिकार नष्ट हो जाता है। पूंजीपतियों की आमदनी और पैतृक सम्पत्ति पर भारी कर लगने से स्टेट की आय बढ़ती है जिस से स्टेट अपने हाथों में माल ढोलाई और यातायात आदि के प्रबन्ध का भार लेने में समर्थ होता है तथा मज़दूरों की शिक्षा, स्वास्थ्य और पुतलीघरों के मशीन में सुधार करता है और इस प्रकार समाज की उत्पादन शक्ति को बढ़ाता है। जब उत्पादन की हुई चीज़ें अच्छी और अधिक होती हैं तो पूंजीपतियों को स्वभावतः अधिक मुनाफा होता है और अधिक मुनाफा होने से वे मज़दूरों को अधिक उजरत देते हैं। अर्थात् अगर पूंजीपति मज़दूरों की स्थिति में सुधार और उसकी उत्पादन शक्ति में वृद्धि करते हैं तो मज़दूर पूंजीपतियों के लिये अधिक से अधिक माल पैदा करते हैं। इससे पूँजीपतियों को अधिक माल मिलता है और मज़दूरों को अधिक उजरत। यहां पूजीपतियों और मज़दूरों के स्वार्थ में सामंजस्य आता है—टक्कर नहीं। जिसके फलस्वरूप समाज की प्रगति होती है। यह प्रगति आर्थिक स्वार्थों के मेल खाने से होती है। चूंकि मनुष्य शान्ति पूर्वक ज़िन्दा रहना चाहता है इसलिये ही वह भिन्न भिन्न स्वार्थों में मेल रखना चाहता है। इसलिये जीविका की समस्या ही सामाजिक प्रगति का नियम है। वर्ग-संघर्ष सामाजिक प्रगति का कारण नहीं है बल्कि उसकी प्रगति में विकसित एक रोग है। इस रोग का कारण जीने की असमर्थता है और इस रोग का फल संघर्ष। इसलिये मार्क्स सामाजिक रोग के निदान करने वाले कहे जा सकते हैं, उपचारक नहीं।"

वर्ग संघर्ष के सम्बन्ध में मार्क्स का कहना है कि पूंजीपतियों द्वारा हड़प लिये जाने वाली "अतिरिक्त बचत" ( Surplus Value ) का सम्पूर्ण श्रेय औद्योगिक मज़दूरों को ही है। परन्तु डा० सन का कहना है कि किसी चीज़ की उत्पत्ति का श्रेय केवल पुतलीघरों में होने वाले कामों को ही नहीं मिलना चाहिए क्योंकि वह केवल पुतलीघरों के अन्दर होने वाले श्रम से ही नहीं होती है बल्कि समाज के बहुत से उपयोगी और शक्तिशाली प्रतिनिधियों द्वारा जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कम या अधिक उत्पादन या खपत में सहायता करते हैं। मसलन जब पुतलीघरों में कपड़ा तैयार होता है तो उससे होने वाले 'अतिरिक्त बचत' का श्रेय केवल पुतलीघरों में काम करने वाले मज़दूरों को ही नहीं है बल्कि पुतली घरों के बाहर कपास पैदा करने वाले, कृषि के लिये औजार तैयार करने वाले, खाद बनाने वाले, वैज्ञानिक ढंग से खेती करने की शिक्षा देने वाले, पुष्ट बीज तैयार करने वाले, कपास तोड़ने वाले, कपास को पुतलीघर तक पहुंचाने वाले, चूंकि रेल, जहाज द्वारा कपड़ा (तैयार होने पर) एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता है इसलिये रेल, जहाज के बनाने वाले, उनके कर्मचारी आदि इस प्रकार और भी कितने प्रकार के समाज के लोगों का है। फिर माल तैयार हो जाने से ही अतिरिक्त बचत नहीं हो जाती है। अतिरिक्त बचत माल के खपत होने पर होती है और केवल पुतलीघरों के मजदूर ही सब कपड़ों की खपत नहीं करते हैं। इसलिये अतिरिक्त बचत का श्रेय समाज के खपत करने वाले लोगों को भी है अर्थात् अतिरिक्त बचत का श्रेय समूह को है। जब "अतिरिक्त बचत" का श्रेय समूह को है तो केवल पूंजीपतियों और मजदूरों के बीच ही वर्ग संघर्ष नहीं होगा बल्कि समाज के बहुत से उपयोगी वर्ग पूंजीपतियों के विरुद्ध होंगे। पर ये अनगिनत सामाजिक प्रतिनिधि जीविका चाहते हैं और आर्थिक संघर्ष को मिटाना चाहते हैं इसलिये ये सामाजिक-आर्थिक दिशा में चन्द तरह के सुधार करते हैं ताकि राष्ट्र के अन्दर बहुत दूर तक आर्थिक स्वार्थों में सामंजस्य पैदा हो जाए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज में शान्ति और प्रगति इस सामंजस्य से ही पैदा होती है।

डा० सन यात-सेन ने आधुनिक इतिहास की घटनाओं से तुलना कर मार्क्स की और कई बातों को गलत और अयुक्ति संगत बताया है। चूंकि मार्क्स ने मूल में ही वर्ग संघर्ष को कारण और सामाजिक प्रगति को फल मानने की गलती की इसलिये उनके बहुत से अनुमान भी पीछे चलकर गलत निकले। मार्क्स के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने की प्रणाली को लेकर प्रथम अन्तरराष्ट्रीय और द्वितीय अन्तरराष्ट्रीय के बीच हुए मतभेद का प्रधान कारण यही था। अपने अध्ययन में मार्क्स इस नतीजे पर आए थे कि जैसे जैसे पूंजीवाद की उन्नति होगी, इसके अन्दर ही भयंकर प्रतियोगिता होगी और छोटे छोटे पूंजीपति बड़े पूंजीपतियों के पेट में समा जायेंगे। अन्त में समाज में दो ही वर्ग—एक एकदम धनी और एक एकदम निर्धन—रह जायेंगे। जब पूंजीवाद इस स्थिति में आएगा तो वह स्वतः ढहने लगेगा और पूंजीवाद स्टेट की स्थापना होगी। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप स्वभावतः ही साम्यवाद का आगमन होगा और स्वतंत्र साम्यवादी स्टेट की स्थापना होगी। मार्क्स ने अपने ही समय में पूंजीवाद को चरम सीमा पर पहुँचा हुआ बताया था और निकट भविष्य में ज़रूर क्रान्ति होगी इस बात की आशा की थी। परन्तु मार्क्स के बाद आज तक के सौ वर्षों के इतिहास ने मार्क्स के अनुमान को ग़लत सिद्ध किया। इतना ही नहीं, ज्यों ज्यों दिन बढ़ता जाता है पूंजीपतियों के मिटने की अपेक्षा उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है। मार्क्स ने यह भी बताया था कि आठ घंटे काम की मांग पूंजीपति यों ही स्वीकार नहीं करेंगे जब तक मजदूरों की ओर से क्रान्तिकारी तरीकों का उपयोग नहीं किया जायगा। परन्तु मज़दूरों को क्रान्तिकारी तरीकों का उपयोग नहीं करना पड़ा और पहिले पहल बिसमार्क ने केवल आठ घण्टे काम का नियम ही नहीं बनाया बल्कि लड़के लड़कियों के काम करने की आयु तथा घण्टों पर भी प्रतिबन्ध लगाया। बाद में यह आठ घण्टे काम की नीति को हर राष्ट्र में सरकार की ओर से कानून का रूप दे दिया गया। मार्क्स ने कहा था कि आठ घण्टे काम से उत्पादन क्षेत्र में कमी होगी परन्तु जिन जिन राष्ट्रों में आठ घण्टे काम वाला नियम लागू हुआ वहां पर सिद्ध हो गया कि सोलह घण्टे काम की अपेक्षा आठ घण्टे के काम से अधिक उत्पादन होता है क्योंकि आठ घण्टों तक मजदूर अपनी पूरी शक्ति तथा ध्यान के साथ काम करते हैं। मार्क्स ने बताया था कि 'अतिरिक्त बचत' के लिये कम काम के अधिक घंटे और तैयार मालों के दाम करना—ये तीन बातें आवश्यक हैं। परन्तु मार्क्स बातें वर्तमान काल की वास्तविक बातों से टक्कर बड़े बड़े पुतलीघरों के मालिकों ने केवल काम के नहीं कम कर दिये हैं बल्कि पुतली घरों में सुधार स्वास्थ्य आदि के देखभाल का भी प्रबन्ध किया है मज़दूर स्फूर्ति के साथ अच्छी तरह काम कर सकते है लिये उत्पादन अधिक और अच्छा होता है। अधिक होने से मिल मालिक उजरत भी काफ़ी अधिक उजरत के अलावा पुतलीघरों की ओर से बीमार होने पर दवा का प्रबन्ध, उनके बच्चों के लिये का प्रबन्ध, आकस्मिक दुर्घटना तथा वृद्धावस्था के बीमे का प्रबन्ध भी किया जाता है। इतना करने पर चीज़ों का दाम कम रखते हैं जिससे बाज़ार में काफ़ी होती है। काफ़ी खपत होने से पुतलीघरों के मालिक मुनाफ़ा भी काफ़ी होता है। मार्क्स ने बताया था कि पतियों और व्यापारियों इन दोनों में से पहिले पूंजीपति होंगे। परन्तु वर्तमान काल में वितरण के समाजीकरण प्रथा चल पड़ने से पहिले व्यापारियों का ही नाश होरहा इतना ही नहीं, बड़े बड़े व्यापारी व्यवसाय छोड़कर उत्पा का काम करने लगे हैं। मार्क्स का कहना है कि उत्पा धन्धे की वृद्धि उत्पादन पर निर्भर करती है और उत्पा पूंजी पर अर्थात् अधिक उत्पादन और बड़ी पूंजी से उत्पा धन्धे का विस्तार होता है। परन्तु आधुनिक समय में बड़े उद्योग-धन्धे इन दोनों चीज़ों के रहने पर भी कम गये। इसका कारण यह है कि उद्योग-धन्धे का विस्तार केवल उत्पादन और पूंजी पर ही निर्भर नहीं करता इसके लिये खपत का बाज़ार चाहिए। खपत करने वालों समूह ही उद्योग धन्धों के केन्द्र हैं। इसलिये उद्योग-धन्धों का विस्तार उत्पादन, पूंजी और खपत करने वालों के योग से होता है। डा० सन ने कहा है कि "यह करना सभी आदमियों के जीवित रहने में सहायता है अर्थात् यह जीविका का प्रश्न है। इसलिये उद्योग जनता की जीविका पर निर्भर करते हैं।" उनकी मार्क्स ने केवल भूतकाल की बातों पर ही अपना आधारित किया था। वे होने वाली चीज़ों का ठीक अनुमान नहीं कर सके थे। इसलिये उनके प्रतिपादित और वर्तमान काल की वास्तविक बातों में बहुत अन्तर है और वास्तविक बातों में अन्तर पड़ने के कारण मार्क्स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अनुयायियों में मतभेद है और इसलिये सामाजिक सुधार का कोई निश्चित रास्ता नहीं मिल रहा है।

जीविका समाज की सांस्कृतिक प्रगति की, आर्थिक संगठन की, उन्नति की, नैतिक विकास की तथा सभी ऐतिहासिक घटनाओं की केन्द्रीय शक्ति है। यह सभी सामाजिक घटनाओं को आगे ले जाने वाली शक्ति है। जीविका की समस्या के हल नहीं होने के कारण ही सभी प्रकार की बुराइयाँ जैसे वर्ग-संघर्ष, मज़दूरों के प्रति निर्दयता का व्यवहार तथा अन्य तरह के शोषण, नैतिक ह्रास, आर्थिक संगठन का नहीं सुधरना, सामाजिक संस्कृति का आगे नहीं बढ़ना आदि होता है। अर्थात् जीविका की खोज कारण है और सामाजिक प्रगति फल। डा० सन का कहना है कि "जिस प्रकार सौर मंडल के केन्द्र को समझने में गलती करने के कारण नाना प्रकार की गड़बड़ी पैदा हो गई थी उसी प्रकार भौतिक शक्तियों को सामाजिक प्रगति का केन्द्र मानने से हो गई है। सामाजिक विज्ञान के अन्दर की गड़बड़ी तभी दूर होगी जब भौतिक शक्तियों की ओर नहीं बल्कि जीविका की समस्या की ओर इतिहास की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक घटनाओं के आकर्षित होने के सिद्धान्त को लोग समझेंगे। इसे समझने के बाद ही सामाजिक समस्या का ठीक-ठीक हल पाया जा सकता है।

पश्चिमी राष्ट्रों में सामाजिक प्रश्नों को हल करने के विचार रखने वालों के दो दल हैं। पहिला दल मार्क्सवादियों का है जो उग्रवादी ( radicals ) कहलाते हैं। ये क्रान्ति द्वारा सभी राजनैतिक तथा आर्थिक और मज़दूरों के अधिनायक तंत्र ( dictatorship of the proleta reat ) की स्थापना कर सभी सामाजिक प्रश्नों का हल करना चाहते हैं। दूसरा दल उन साम्यवादियों का है जो शान्तिमय रास्ते से राजनैतिक तरीकों द्वारा समाज के भिन्न भिन्न वर्गों में सामंजस्य स्थापित करना चाहते हैं। इन दोनों दलों की कार्य प्रणाली भी भिन्न-भिन्न है। रूस ने मार्क्स के क्रान्तिकारी तरीकों को प्रधानतः आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिये अपनाया। परन्तु उससे केवल राजनैतिक समस्या हल हुई। आर्थिक समस्यायें पूर्ण रूप से हल नहीं हो सकीं। "जिससे ज्ञात होता है कि क्रान्तिकारी तरीकों से आर्थिक समस्या पूर्णरूपेण हल नहीं हो सकती है।"* मार्क्स के अनुयायियों का कहना है कि मार्क्सवादी तरीके से आर्थिक समस्यायें हल हो सकती अगर वह बहुत समृद्ध उद्योग-धन्धे तथा व्यापार से पू देशों में जहां आर्थिक संगठन परिपक्व हो चुका है, ला किया जाय। रूस में क्रान्तिकारी प्रणाली के असफल हो का कारण रूस के उद्योग-धन्धे का विकसित न होना त आर्थिक संगठन का अपरिपक्व होना था। दूसरे दल के लो क्रान्तिकारी तरीकों से सामाजिक प्रश्नों के हल होने में न विश्वास करते। वे राजनैतिक तरीकों को व्यवहार में लान चाहते हैं। परन्तु राजनैतिक तरीकों से सुधार एक दिन नहीं हो सकता इसलिये वे लोग क्रमिक प्रगति, सामंजस्य स्थापित करना और शान्तिमय रास्ते में विश्वास करते और समृद्ध उद्योग धन्धे वाले देशों में भी क्रान्तिका तरीक़ा नहीं बर्तना चाहते। ये क्रान्तिमय तरीके वे चा सामाजिक-आर्थिक सुधार हैं जिनका ज़िक्र ऊपर चुका है। यद्यपि इससे मनोनीत फल अब तक नहीं प्रा हो सका है परन्तु उन लोगों का विश्वास है कि धीरे-धी इन्हीं से सामाजिक समस्या सुलझेगी। पर पूंजीपति इ दोनों दलों का विरोध करते हैं और अपने व्यक्तिगत स्वा की रक्षा के लिये तथा सामाजिक प्रगति में रोड़े अटकाने लिये सभी प्रकार के अत्याचार और अन्यायपूर्ण तरी को बर्तने में नहीं हिचकते। दूसरे दल वाले यद्यपि जन की भलाई के लिये शान्तिमय तरीके को ही अच्छा समझ हैं परन्तु उससे पूंजीपतियों की हानि नहीं होते देख इ तरीके को अव्यावहारिक समझने लगे हैं और जिसके प्रति क्रिया स्वरूप बहुत से शान्तिवादी क्रान्तिकारी तरीकों अपनाने पर जोर देने लगे हैं। इस प्रकार सामाजिक प्रश्न को हल करने का कोई निश्चित मार्ग पश्चिमी देशों नज़र नहीं आता है।

पूंजीपतियों के अत्याचार को देखकर कुछ लोग प्राची समाजवादी प्रणाली की स्थापना पर जोर देते हैं। आदि युग में मनुष्यों ने भयंकर जानवरों और सर्पों पर विज प्राप्त करने के बाद समाजवादी समाज की स्थापना थी। उस समाज में शोषक और शोषित वर्ग नहीं थे सबों को जीविका उपार्जन करने की आज़ादी और सुवि थी। लोग अपनी ज़रूरत की चीजें एक दूसरे से अद बदल लेते थे। न मुद्रा का प्रचार था न व्यापारिक प्रणाल पर एक दूसरे की ज़रूरत को पूरा करते थे। समाज में मु के प्रचार से जब स्वतंत्र व्यापार चला तो यह प्रणा टूटने लगी और अधिक रुपये वाले व्यापारी पूंजीपति हुए मशीन के आविष्कार से व्यापारी वर्ग की प्रधानता ज

* डा० सन ने ये बातें सन् १९२४ ई० में कही थीं। उस समय रूसी क्रान्ति का छठा वर्ष चल रहा था।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रही और उसकी जगह मशीन अधिकारी पूंजीपति हुए। इन पूंजीपतियों ने संसार की बहुमूल्य चीज़ों पर अपना एकाधिकार स्थापित कर दूसरे वर्गों के लोगों को गुलाम-सा बना रखा है। उन्हें अपने उत्पादन के लिये मज़दूरों पर निर्भर रहना पड़ता है पर वे मज़दूरों को उनके पसीने की कमाई से वंचित रखते हैं। इस प्रकार समाज में दो भिन्न स्वार्थ रखने वाले वर्ग पैदा हो गये हैं जिसमें वर्ग संघर्ष होता है। इस युग में मानव मानव के बीच का संग्राम समाज को उच्छृङ्खल अवस्था में रखे हुए है। इस संघर्ष का कारण यह है कि शोषित वर्ग अपनी भूख मिटाना चाहता है, अपनी जीविका की समस्या हल करना चाहता है। यह संघर्ष तभी बन्द हो सकता है जब मनुष्यों को अपनी भूख मिटाने के लिये पर्याप्त भोजन मिले और पर्याप्त भोजन तभी मिल सकता है जब समाज का सङ्गठन समाजवादी तरीक़े से हो। डा० सन का कहना है कि "जीविका का सिद्धान्त व्यावहारिक समाजवाद है। यह मार्क्स द्वारा प्रतिपादित मार्क्सवादी समाजवाद नहीं है बल्कि आदिम युग में लागू किया गया समाजवाद है जो समस्या को हल कर आदमी को आराम की अवस्था में रखना चाहता है। समाजवाद और जीविका के सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं है अन्तर है केवल लागू करने की प्रणाली में।"

जीविका उपार्जन करने के दो प्रधान साधन हैं—कृषि और उद्योग-धन्धे। कृषि के लिये भूमि चाहिए और उद्योग-धन्धे के लिये पूंजी। डा० सन यात सेन ने जीविका के सिद्धान्त लागू करने के दो तरीक़े बताये हैं। पहिला, भूमि के स्वामित्व में साम्य स्थापित करना (Equalization of Landownership) है और दूसरा पूंजी का नियंत्रीकरण ( Regulation of Capital )। उनका कहना है कि ये तरीके हर देश के लिये लागू नहीं होते हैं। संसार के विभिन्न देशों को अपनी परिस्थितियों और विभिन्न परिमाण में विकसित पूंजीवादी प्रगति के अनुसार दूसरी प्रणालियों का भी अनुसरण करना चाहिए। परन्तु चीन ऐसे देश में, जहां उद्योग-धन्धे का विकास नहीं हुआ है जहाँ के पूंजीपति दूसरे देशों के पूंजीपतियों की तुलना में एकदम ग़रीब हैं, जहां के भूमि मालिकों के पास बहुत अधिक परिमाण में ज़मीन नहीं है वहां उपरोक्त दो तरीकों से ही जीविका का सिद्धान्त लागू किया जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन और पूंजीवादी विकास का क्रम भूमिपतियों से प्रारम्भ होकर व्यापारियों के हाथों से गुज़रता हुआ पूंजीपतियों तक पहुंचता है। उद्योग-धन्धे के विकास से ज़मीन की समस्या और भी जटिल हो गई तथा होती जा रही है। औद्योगिक केन्द्रों के पास की ज़मीन में अपरिमित वृद्धि हो गई है। जिससे वे ज़मीन मालिक उसे बेचकर चाल-की-बात में पूंजीपति हो जाते हैं जब कि उतनी ही ज़मीन रखने वाले दूसरी जगह के लोग ग़रीब के ग़रीब ही बने रहते हैं। उद्योग-धन्धे से हुए पूंजीपति और ज़मीन से हुए पूंजीपति में महान अन्तर है। पहिला कम से कम कुछ परिश्रम कर, दिमाग लगा, मज़दूरों को कुछ देकर धन उपार्जन करता है पर दूसरा बिना हाथ-पैर हिलाये ही पूंजीपति हो जाता है। औद्योगिक देशों में भूमि की समस्या और भी जटिल हो गई है। ज़मीन के फाटकेबाज़ी ( Speculation) के कारण मूल्य में और भी असमानता आने लगी है। पश्चिमी देशों के भूमिपति भूमि के मूल्य में वृद्धि होने के कारण बड़े-बड़े पूंजीपति होकर काफ़ी शक्तिशाली हो गये हैं। वहां भूमि की समस्या का हल करना और भी कठिन हो गया है और पश्चिमी राष्ट्रों ने इसके हल का कोई उपयोगी तरीका भी नहीं निकाला है। डा० सन ने भूमि की समस्या हल करने का तरीका यों बताया है—"अगर ज़रूरत हो तो सरकार सभी ज़मीन को भूमि-कर और ज़मीन के मूल्य के अनुसार ख़रीद ले।" ज़मीन के मूल्य निर्धारण का तरीका उन्होंने यह बताया है कि ज़मीन मालिक स्वयं अपनी ज़मीन का मूल्य लगायें। हर देश में भूमि कर ज़मीन के मूल्य का एक फ़ीसदी होता है। अब ज़मीन मालिक अपनी ज़मीन का मूल्य स्वयं बतायेंगे तो सरकार उस मूल्य के अनुसार ही उस ज़मीन पर भूमि कर बैठायेगी। पर ज़रूरत पड़ने पर कभी भी सरकार उसी मूल्य पर ज़मीन खरीद भी लेगी। इस प्रकार ज़मीन मालिक न तो अपनी ज़मीन का मूल्य कम आंकेंगे न अधिक ही। क्योंकि कम आंकने से यद्यपि उन्हें कम कर देना पड़ेगा पर सरकार द्वारा उसी मूल्य पर ज़मीन खरीद लेने पर उन्हें काफ़ी घाटा उठाना पड़ेगा। अगर वे अधिक मूल्य आंकेंगे तो उन्हें सरकार को अधिक कर देना पड़ेगा और यह बात तो सरकार के ऊपर निर्भर करेगी कि वह कब ज़मीन खरीदेगी। इस प्रकार इस प्रणाली में दो बातें हुईं—एक तो भूमिपतियों द्वारा ज़मीन का मूल्य निर्धारित होना और उसी के अनुसार सरकार का भूमि कर लगाना तथा दूसरी बात कि ज़रूरत पड़ने पर उसी मूल्य पर सरकार द्वारा ज़मीन का खरीद लेना। ज़मीन का मूल्य निर्धारण हो जाने के बाद सरकार यह कानून बनायेगी कि अब से भविष्य में उस ज़मीन के मूल्य में जो अधिक वृद्धि होगी उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पर भूमिपतियों का नहीं बल्कि समाज का अधिकार होगा। डा० सन का कहना है कि समाज में उन्नति ही से तथा उद्योग-धन्धे के विकास से ज़मीन के मूल्य में वृद्धि होती है। मसलन, एक परती ज़मीन जिसका मूल्य आज ५०) रु० है अगर बीस वर्षों के बाद उस जगह पर किसी उद्योग धन्धे के प्रारम्भ होने से उस परती ज़मीन का मूल्य १०००) रु० हो जाता है तो यह ९५०) रु० की वृद्धि का श्रेय समाज को है। क्योंकि "मूल्य में वृद्धि इसलिये हुई कि समाज के लोगों ने उस ज़मीन के चारों ओर उन्नति की तथा प्रतियोगिता कर उसके मूल्य को बढ़ा दिया। फिर जब ज़मीन का मूल्य बढ़ता है तो समाज के हर चीज़ के मूल्य में भी वृद्धि होती है। इस प्रकार समाज के लोग अपने वाणिज्य व्यापार द्वारा जो उपार्जन करते हैं वह अप्रत्यक्ष रूप से भूमिपतियों की जेब में जाता है।" इसलिये इस बढ़े हुए मूल्य पर समाज का अधिकार होना चाहिए। "भविष्य में ज़मीन से होने वाले लाभ पर समाज का अधिकार होना ही भूमि के स्वामित्व में साम्य स्थापित करना है। इस नीति के अनुसार मूल्य निर्धारित की हुई ज़मीन पर यद्यपि व्यक्तिगत अधिकार ही रहेगा पर उससे होने वाले लाभ पर समाज का अधिकार होगा। डा० सन की राय में यह वर्तमान का नहीं, भविष्य का समाजवाद है—सम्पत्ति में सभी का हिस्सा होना। पर इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने की है कि उपरोक्त मूल्य की बात केवल परती ज़मीन से सम्बन्ध रखती है। अगर ज़मीन पर मकान आदि बना है तो सरकार ज़मीन को ख़रीदने के समय मकान का दाम भी देगी पर भूमि कर केवल ज़मीन के मूल्य पर ही बैठायेगी। भूमिपतियों द्वारा ज़मीन पर किये गये दूसरे सुधारों के लिये भी सरकार ख़रीदने के समय मुआवज़ा देगी।

डा० सन ने बताया है कि इससे कई फ़ायदे होंगे। पहली बात तो यह होगी कि जिस देश में उद्योग-धन्धे की वृद्धि नहीं होने के कारण ज़मीन से ही व्यक्तिगत पूंजी इकट्ठा की जाती है वह रुक जाएगी। दूसरी बात यह कि ज़मीन के मूल्य के अनुसार भूमि कर लग जाने से सरकार बहुत से सामाजिक सुधार के कामों को कर सकेगी जिसके लिये उसे दूसरे प्रकार का कर जनता पर बैठाना पड़ता है। इस प्रकार जनता को दूसरे प्रकार के करों से छुटकारा मिलेगा और सरकार को अपनी बढ़ी आय से काम करने में सहूलियत होगी। तीसरी कि भविष्य में सम्पत्ति की आय का उपयोग सम्पूर्ण समाज द्वारा होगा।

जीविका के सिद्धान्त को लागू करने का दूसरा तरीका पूंजी का नियंत्रीकरण है। जहाँ उद्योग-धन्धे की प्रधानता नहीं है वहां पूंजी का ज़रिया ज़मीन ही है। इसलिये ज़मीन के स्वामित्व पर साम्य स्थापित हो जाने से व्यक्तिगत पूंजी का होना रुक जाएगा। दूसरे देशों में पूंजीपतियों के ऊपर इनकम टैक्स या अन्य तरह के कर लगाकर पूंजी पर नियंत्रण किया जाता है। अक्सर व्यक्तिगत पूँजी लोग उद्योग-धन्धे में लगाकर मुनाफा कमाते हैं और शोषण करते हैं। अगर उद्योग-धन्धे कल कारखाने आदि स्टेट के नियन्त्रण में आ जाएं तो व्यक्तिगत पूंजी से होने वाली बुराइयां रुक जाएंगी। स्टेट के अधिकार और प्रबन्ध में बड़े बड़े उद्योग धन्धे और कल कारखानों के आ जाने से व्यक्तिगत पूंजी को पनपने का अवसर नहीं मिलेगा। पर स्टेट के अधिकार में उद्योग-धन्धे चले आयें इसके लिये राष्ट्रीय पूंजी ( State Capital ) का विकास करना पड़ेगा। व्यक्तिगत पूंजी के नियन्त्रण के साथ साथ राष्ट्रीय पूंजी के विकास से जीविका की समस्या बहुत दूर तक हल हो जाएगी। राष्ट्रीय पूंजी का विकास अक्सर तीन तरीकों से होता है—यातायात के साधन के विकास से, खान खुदाई द्वारा और पुतली घरों का निर्माण कर माल तैयार करने से। जहां उद्योग-धन्धा प्रारम्भ नहीं हुआ है वहां प्रारम्भ से ही सरकार को राष्ट्रीय पूंजी का विकास करना चाहिए। नहीं तो व्यक्तिगत पूंजी के विकास हो जाने पर समाज में बहुत असमानता पैदा हो जाती है और विकसित हुई पूंजी पर नियन्त्रण करना भी कठिन हो जाता है। डा० सन का कहना है कि जिन देशों में यातायात के साधनों के विकास करने, खान खोदने तथा पुतली घरों का निर्माण कर माल तैयार करने के लिये राष्ट्रीय पूंजी और अनुभवी लोग न हों, उन देशों को विदेशी पूंजी का कर्ज़ और विदेशी अनुभवी आदमियों की मदद लेनी चाहिए। उन्होंने बताया है कि चीन में उपरोक्त तीन बड़े कामों के विकास के लिये विदेशी पूंजी और विशेषज्ञों की ज़रूरत है। जब देश में उपरोक्त तीन उद्योगधन्धों का विकास राष्ट्रीय पूंजी से हो जाएगा तो राष्ट्र की वार्षिक आय बहुत बढ़ जाएगी। चूंकि राष्ट्र द्वारा ये उद्योग धन्धे चलाये जायेंगे इसलिये इनसे हुए लाभ में सम्पूर्ण समाज का हिस्सा होगा। राष्ट्रीय पूंजी से जनता की भलाई होगी और व्यक्तिगत पूंजी से होने वाली हानि रुक जाएगी। इसी से भविष्य में राष्ट्र में समाजवादी समाज की स्थापना होगी। इस प्रकार जीविका की समस्या हल करने की पूंजी को नियन्त्रण करने की प्रणाली में व्यक्तिगत पूंजी का नियंत्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना, देश के बड़े बड़े उद्योग धन्धों को सरकारी प्रबन्ध में लेना, इसके लिये राष्ट्रीय पूंजी का विकास करना और राष्ट्रीय पूंजी के विकास के लिये ज़रूरत हो तो विदेशी पूंजी का क़र्ज़ लेना आवश्यक है। पर यह ध्यान रखना चाहिए कि डा० सन ने उपरोक्त प्रणाली चीन की परिस्थिति को ध्यान में रखकर चीन के लिये बताई है। दूसरे देश अपनी परिस्थिति के अनुसार दूसरी प्रणाली का भी अनुसरण कर सकते हैं।

डा० सन ने जीविका के सिद्धान्त द्वारा चीन की सामाजिक-आर्थिक समस्या का हल उपरोक्त दो तरीक़ों से ही बताया है। वे मार्क्स के तरीक़ों को चीन में अव्यावहारिक समझते हैं क्योंकि चीन की परिस्थिति मार्क्सवादी तरीके लागू करने के योग्य नहीं है। उनका कहना है कि जीविका की समस्या को हल करने के लिये हम लोग कोई अव्यावहारिक या उग्रवादी तरीक़ा नहीं अपनाना चाहते हैं, न राष्ट्र के उद्योग धन्धे के विकास होने तक ठहर चाहते हैं। जीविका के सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित उपा इस प्रकार की योजना है जो ख़तरे को पहले से रो और आकस्मिक दुर्घटना से बचाता है; जो व्यक्तिगत के विकास को रोकता है और धनी तथा निर्धन के भयङ्कर असमानता रूपी सामाजिक रोग को दूर करता इस प्रकार की योजना हम लोगों की तात्कालिक समस्या ज़रूर हल करेगी। सामाजिक समस्या के हल में जीविका के सिद्धान्त का उद्देश्य भी वही है जो राष्ट्रों का अर्थात् हर आदमी को सुखी और सन्तुष्ट तथा सम्पत्ति के असमान वितरण से हुई तकलीफ़ों से को मुक्त करना। इससे जनता का, केवल राष्ट्र के उ में ही नहीं बल्कि हर चीज़ में समाजवादी हिस्सा और तभी राष्ट्र 'मिन-सङ' यानी जीविका के सिद्धान आदर्श को प्राप्त करेगा। [ समाप्त ]

---

# चीथड़ों का छकड़ा

श्री शादीराम जोशी एम० ए०

है लदा छकड़ा पुराने चीथड़ों के बोझ से,
झड़ चुके, जीवन के पक्षी के, परों के बोझ से।
हैं अनाथों और दुखियों के फटे आंचल लदे,
बोरियाँ भर भर के हैं आँखों के मुक्ताफल लदे।
हर फटे आंचल में है इतिहास जीवन का छुपा,
इन गिरे पत्तों में है मधुमास जीवन का छुपा।
शायद इस अम्बार में शगुनों की चोली हो कोई,
जिसमें भिक्षा प्रेम की मांगी थी, झोली हो कोई।
हो कहीं इस ढेर में सोहाग की चूनी कोई,
राख के अम्बार में हो प्रेम की धूनी कोई।
लाज कितनी देवियों की मुंह छुपाए है यहाँ,
ज़िन्दगी सोई हुई मृत्यू के साए है यहाँ।
चीथड़ा कोई निशानी है किसी के प्रेम की,
औ' कोई वर्का कहानी है किसी के प्रेम की।

झाँकती हर एक घूँघट से जवानी है कोई,
हर फटे वर्के में जीवन की कहानी है कोई।
तार ये किस किस के कोमल कर कमल हैं छू चुके,
कितनी आँखों का उबलता प्रेम-जल हैं छू चुके।
इक निराली रागिनी है हर पुराने तार में,
हैं बहुत से स्वर मिले वीणा की इस झंकार में।
जगत के बीते हुए दुख-सुख का यह अम्बार है,
जागती करुणा है औ' सोया हुआ शृङ्गार है।
देश के दुख दर्द मिलकर हैं चले फ़रयाद को,
लादकर ले आए हैं अपमान की हर याद को।
समझता है कौन इस फ़रियाद की भाषा यहाँ,
कौन सुनता है दुखों की लड़खड़ाती दास्ताँ।
हां, कोई कवि देख ले तो समझ ले इस भेद को,
औ सरल भाषा में समझाता चले इस भेद को।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कन्नड़ भाषा में जैन साहित्य

प्रो० एस० एस० मालवाडा एम० ए०, बी० ई० एस०

जैनी लोग कन्नड़ साहित्य के आदि कवि हैं। बौद्धों ने भी कन्नड़ में साहित्य की रचना की है पर वह साहित्य आज उपलब्ध नहीं है। कन्नड़ साहित्य का जो सबसे प्राचीन काव्य ग्रन्थ मिलता है वह नृपतुंग का 'कविराज मार्ग' है। कन्नड़ के आदि कवि पंप भी जैन थे। कर्नाटक देश की राजनीति से भी जैन धर्म का किसी समय निकट सम्बन्ध था। कन्नड़ साहित्य में तो जैनियों का प्रधान स्थान रहा है। कन्नड़ के प्राचीन कवि रन्न की तुलना भवभूति से की जाती है। रन्न के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गदायुद्ध' और 'अजितनाथ पुराण' कन्नड़ साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। कन्नड़ के प्रमुख कवियों में पोन्न, रन्न, जन्न, कवि चक्रवर्ति और जैन रत्न त्रय गिने गये हैं। इनमें पंप कर्नाटक का आदि कवि माना जाता है। पंप जिस तरह कन्नड़ साहित्य का आदि कवि है कान्ति उसी तरह कन्नड साहित्य की ख्यातिनामा आदि कवियत्री है। महामहिम कवि नागचन्द्र ने कवियत्री कान्ति को 'अभिनव वाग्देवी' की उपाधि से विभूषित किया था। कान्ति भी जैनी थी।

'वीतराग चरित्र' के रचयिता जिनोपासक नागचन्द्र की यदि एक शैली है तो नेमिनाथ की दूसरी। 'व्यास मुनीन्द्र सन्ह वचनामृत वार्धि' पंप का प्रमुख ग्रन्थ है और रामायण कथा में नागचन्द्र ने श्रीराम के चरित्र का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। यदि पंप ने एक ओर 'विक्रमार्जुन विजय' नामक ग्रन्थ लिखा है तो दूसरी ओर अहिंसा धर्म की महिमा को बतलाने के लिये अत्युत्तम रीति से 'यशोधर चरित्र' रचा है। पंप के समय कन्नड़ साहित्य में संस्कृत शब्दों की बेहद ठूँस ठांस शुरू हो गई थी। इसके जवाब में शुद्ध कन्नड़ भाषा में 'कब्बिगर काव' नामक एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ लिखा गया। कवि बन्धुवर्मा और रत्नाकर कवि भी उस समय के प्रसिद्ध जैन कवि हैं। रत्नाकर के "भरतेश वैभव" नामक ग्रन्थ ने काफ़ी ख्याति पाई है।

कन्नड़ भाषा को शिष्ट भाषा बनाकर उसमें सब से पहले काव्य रचने वाले जैनी हैं। संस्कृत साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति को कन्नड़ साहित्य में भर देने वाले भी जैनी हैं। कन्नड़ साहित्य से अलंकार का बोझ हलका करके उसमें सरल सुगम ग्रन्थ रचने वाले भी जैनी हैं। कन्नड़ भाषा को विधिवत सरल बनाने की कोशिश सबसे पहले केशीराज ने 'शब्दमणि दर्पण' नामक ग्रन्थ रचकर की। 'शब्दमणि दर्पण' आज भी कन्नड़ भाषा का अभ्यास ग्रन्थ बना हुआ है। कन्नड़ 'अमरकोष' का निर्माण भी जैन वैयाकरणी नाचीराज ने किया है। 'कर्नाटक संजीविनी भावार्थ रत्नाकर' नामक प्रसिद्ध शब्दकोश भी एक जैन विद्वान का संग्रह किया हुआ है। साल्व ने 'रस रत्नाकर' की रचना की और 'शारदा विलास' नामक ध्वनि काव्य भी उसीका रचा हुआ है।

कन्नड़ जैन ग्रन्थों में जीव तत्व और अजीव तत्व की विस्तृत विवेचना की गई है। उनमें तर्कशास्त्र, तत्वज्ञान और विज्ञान आदि विविध विषयों का भी समावेश है। स्याद्वाद, अनेकान्तवाद को लेकर परीक्षा प्रधान दृष्टि से विमर्श करने पर जैन तत्वज्ञान निर्दोष सिद्ध होता है। जैन तीर्थंकरों के चरित्र केवल धर्म ग्रन्थ ही नहीं हैं बल्कि श्रेष्ठ काव्य भी हैं। आदि पंप ने अपने 'आदि पुराण' में काव्य धर्म तथा धर्म रहस्य को श्रेष्ठ तरीके से बताया है। साहित्य सृजन में जैन कवियों का ध्येय केवल मनोरंजन नहीं था बल्कि साहित्य की अभिवृद्धि, लोकोद्धार और जन-समूह में तत्वज्ञान का प्रचार आदि था। साहित्य और दर्शन के अतिरिक्त कन्नड़ साहित्य में वैद्यक पर भी अनेक जैन ग्रन्थ उस काल में रचे गये हैं। इनमें मंगराज का 'खगेन्द्र मणि दर्पण', कीर्ति वर्मा का 'गोवैद्य', जगदल सोमनाथ का 'कर्नाटक कल्याण कारक', श्रीधर देवता का 'वैद्यामृत', साद्व का 'वैद्य सागन्य' आदि वैद्यक ग्रन्थ मुख्य हैं। ज्योतिष में श्रीधर आचार्य का 'जातक तिलक' बहुत श्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता जाता है। श्रंगार साहित्य पर भी अनेक जैन ग्रन्थ हैं जिनमें अंडय्या का 'कब्बिगर काव' और नेमिचन्द्र का 'लीलावती' ग्रन्थ मुख्य हैं।

कन्नड़ काव्य में काव्य लक्षण के प्रतिपादन में शान्त रस का निरूपण जैनियों की अपनी विशेष भेंट है। कन्नड़ जैन कवि यही प्रार्थना करते हैं—"हे भगवान! शान्त रस ही आपका एक परम गुण रस है, अन्य रस स्वप्न में भी मेरे पास न आवें, इतना कर दीजिये।" राग भावना को दूर करके विरागी तीर्थङ्कर जीवन को चित्रित करते हुये शान्त रस को जैन कवियों ने अपने काव्य का आधार बनाया है।

कन्नड़ में चंपू काव्य के आदि कर्त्ता जैन हैं। लक्षण ग्रन्थों को रचकर उनके अनुसार प्रौढ़ चंपू काव्य की सृष्टि की गई है। कन्नड़ साहित्य में रन्न का 'गदायुद्ध' वीर रस प्रधान ग्रन्थ है। इसमें दुर्योधन के गदायुद्ध का बड़ा सजीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वर्णन है। जन्न के 'यशोधर काव्य' में अहिंसा का बड़ा सुन्दर प्रतिपादन किया गया है।

पंप रन्न की महाभारत, नागचन्द्र की रामायण कन्नड़ के महान ग्रन्थ हैं। भारत की समकालीन राजनैतिक स्थिति को पंप ने 'विक्रमार्जुन विजय' में बड़ी अच्छी तरह चित्रित किया है। रन्न ने महाभारत कथा का भी चित्ताकर्षक तरीक़े से वर्णन किया है। नागचन्द्र ने प्रचलित कथा में कुछ हेर फेर करके 'रामचन्द्र चरित्र पुराण' की रचना की है। महाभारत के वीरों के सम्बन्ध में पंप कहता है—"हठ में दुर्योधन, दान में कर्ण, पौरुष में भीमसेन, बल में माद्राधिपति, पितृ भक्ति और प्रतिज्ञा में भीष्म, चाप विद्या में द्रोणाचार्य, निर्मल चित्त में धर्मराज आदि इन महावीरों से महाभारत लोकपूज्य ग्रन्थ बन गया है।" रन्न कवि ने अपने 'गदा युद्ध' काव्य में दुर्योधन को अत्यन्त साहसी वीर बना दिया है। 'गदा युद्ध' को पढ़कर पाठकों का हृदय दुर्योधन के लिये द्रवित हो जाता है।

जैन कवियों ने महाभारत की कथा-वस्तु में कोई ख़ास परिवर्तन नहीं किया पर रामायण में ख़ासा हेर फेर किया गया है। महाभारत की कथा में पंप ने द्रौपदी के पाँच पतियों के बारे में आपत्ति की है। जैन रामायण के अनुसार रावण का केवल एक सिर था। 'दसशिर' तो उसकी उपाधि थी। वैसे ही हनुमान इत्यादि कपि नहीं थे किन्तु कपि-द्विज थे। रावण का वर्णन भी पाठकों के हृदय में रावण के लिये सहानुभूति से भर देता है। प्रारब्ध ने दुर्योधन और रावण को निमित्त बनाकर जो खिलवाड़ की उसमें जैन कवियों ने दोनों के साथ हमदर्दी दिखाकर उन्हें सद्भावना का पात्र बनाकर चित्रित किया है।

जैनियों ने कन्नड़ साहित्य को ही नहीं अपितु विश्व भारत को अनेकों काव्य ग्रन्थ दिये हैं। कन्नड़ के इन जैन कवियों को कर्नाटक के राजाओं द्वारा उदार सहायता मिली है। उसी उदारता का यह परिणाम है कि आज ताड़ पत्र पर लिखे हुये जैन कवियों के कन्नड़ भाषा में हज़ार ग्रन्थ सुरक्षित रखे हुये हैं। इन कवियों को प्रोत्साहन देने वाले सभी राजा जैनी नहीं थे पर वे इन कवियों की प्रतिभा से बेहद प्रभावित हुये थे। वास्तव में प्राचीन कन्नड़ साहित्य जैनियों का अत्यन्त ऋणी है।

---

# गीत

श्री नरेश कुमार

क्या प्रभाती तक सजल यह दीप मेरा जल सकेगा ?

निठुर मेरी रागिनी में लय विकम्पित स्वर सशंकित
मिट गये मेरी कहानी के तिमिरमय सर्ग अङ्कित
मैं किसे उपहार या सन्देश भेजूँ ;
मूक ध्वनि का गान किसके देश भेजूँ ?
मोम का यह देवता, चिनगारियों पर चल सकेगा ?

खो चुका दीपक पुजारी ! और इसकी तम-कहानी,
जलन के संकेत पर ही थी इसे निधियाँ लुटानीं,
तरल विद्युत् से भरा आकाश मेरा ;
आज प्रिय के पंथ में तम का सबेरा ;
धूम्र का बन्दी कहो अङ्गार में भी घुल सकेगा ?

जो कहा मेरे गगन ने प्रलय ने स्वीकृति सु
ज्वाल श्वासों में पिघल किसने इसे गाथा लि
प्राण मेरे चल पड़े अज्ञात इंगित को रि
मत कहो कितने मुझे वे शेष क्षण अब भी दि
यह तुम्हारा मेघ क्या मेरे लिए भी गल सके

कह चुकी अपनी कथा जो, मैं वही भूली दिशा
जो अधर को चूमते ही बुझ गई, मैं वह तृषा
यह समय की भूल का है चिर उ
वायु की हिचकी, हुई होगी इसे संपूर्ण
यह अवधि का प्रश्न मुझमें अब कहाँ तक पल सके

क्या प्रभाती तक सजल यह दीप मेरा जल सकेगा ?

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# रोमन लिपि का सवाल

श्री "रेशमी-सूती"

हिंदुस्तानी की लिखाई नागरी और फ़ारसी दोनों लिपियों में होती रही। एक ज़माने में फ़ारसी बहुत फैली, दूसरे में नागरी, परंतु जब से फ़ारसी हमारे देश में दाख़िल हुई, तब से दोनों चल पड़ीं। कुछ बहुत बड़े विद्वानों ने दोनों लिपियों का मुहावरा किया। साधारण विद्वान और पढ़े लिखे लोगों ने किसी एक ही का। दोनों लिपियों में किताबें और पत्र निकलने लगे। साथ ही बीच में देशाभिमान की जो हवा चली उसमें हमारी पुरानी भाषाओं के लिए एक नयी बहार आ गयी और संस्कृत, अरबी और फ़ारसी की पढ़ाई में फिर से जान आ गई। पहले तो उसका उपयोग सिर्फ़ अंगरेज़ी से मुक़ाबला करने के लिये ही हुआ। यानी, साधारण बोली में या विज्ञान ( सायन्स ) के कामों में अंग-रेज़ी शब्दों का उपयोग करने का जो शौक एक वक्त बहुत बढ़ गया था, उससे उलटा शौक अब पैदा हुआ और हमारे छोटे बड़े सब पंडित बहुत मेहनत उठाकर नये नये शब्द गढ़ने में लग गये। जो संस्कृत जानने वाले थे, उन्होंने उसका आसरा लिया। अरबी-फ़ारसी वालों ने उनका साधारण बोली में भी प्राकृत और अपभ्रंश शब्द हटाकर शुद्ध संस्कृत अरबी-फ़ारसी लफ़्ज़ों को बरतने का फ़ैशन चलाया। साहित्य (अदब) की भाषा और साधारण लोगों की बोलचाल की भाषा का फ़र्क़ बढ़ता गया। इसमें अपने अपने दीन धर्म का अभिमान भी शामिल हुआ।

इसका नतीजा यह हुआ कि हिंदी और उर्दू लिखा-वट-शैलियों-का प्रवाह जुदा होता गया, और अब दोनों एक दूसरे से इतनी दूर चली गई हैं कि एक में पला हुआ दूसरे की भाषा ठीक समझ भी नहीं पाता। इस परि-णाम को मिटाने के लिए हम लोग अब यह प्रचार कर रहे हैं कि सभी को दोनों लिपियां अच्छी तरह सीख लेनी चाहिएँ और दोनों लिखावटों ( शैलियों ) का मुहावरा रखना चाहिये।

इस प्रचार के विरुद्ध मुझे कुछ कहना नहीं है। मैं मानता हूँ कि दोनों शैलियां नज़दीक आनी ही चाहियें, और जिस तरह अंग्रेज़ी का लेखक लैटिन, ग्रीक, सैक्सन आदि में से किसी भी भाषा से बना हुआ शब्द बगैर पक्ष-पात के, जैसा ठीक समझे काम में लाता है, वैसे ही हम संस्कृत-अरबी-फ़ारसी से बने हुये शब्दों के बारे में भी करें, और सभी से पोसी हुई एक बड़ी भाषा-गंगा को बहावें। यह तभी हो सकता है जब आज के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा विद्वान दोनों शैलियों के साहित्य को अच्छी तरह सीखें और आम पढ़ने वाले दोनों लिपियों का एक सा मुहावरा रखें।

फिर भी इस प्रचार की कठिनाई का तथा इसके पीछे असली चीज़ जो है उसका भी हमें ख़याल कर लेना ज़रूरी है। हमें यह याद रखना चाहिये कि यह सम्भव नहीं कि सब के सब पढ़े-लिखे लोग दोनों लिपियां सीख लेंगे। जो सीखेंगे उनमें से भी बहुत बड़ा हिस्सा एक को नाम लेने के लिये ही सीखेगा; दोनों का अच्छा मुहावरा हो जाय इतना सीख न सकेगा; एक बार मुहावरा कर लेने पर भी दोनों में लिखे हुये साहित्य की पढ़ाई चालू रखने वाले लोग और भी कम रहेंगे। चन्द विद्वान् दोनों लिपियों और शैलियों के अच्छे जानने वाले हो सकते हैं। उनमें जो लेखक होंगे वे दो तरह के होंगे : एक, सब के काम की हिन्दुस्तानी शैली बनाने की कोशिश करने वाले और दूसरे, फ़ारसी में लिखने के वक्त उर्दू ढङ्ग पसन्द करने वाले और नागरी में लिखते समय हिन्दी ढङ्ग। जो लेखक आज दोनों शैलियों के जानकार हैं, मालूम होता है कि उनका ज़्यादा हिस्सा दूसरी तरह का है। फिर भी, दोनों में लिखने की ताक़त रखने वाले लेखक थोड़े ही हैं। ज़्यादातर तो एक ही लिपि और ढङ्ग में लिख सकते हैं। हठ भी उसी तरफ़ झुकता है।

फिर, नागरी और फ़ारसी दोनों लिपि सीखने का भा सिर्फ़ हिन्दी-उर्दू भाषा बोलने वाले या महाराष्ट्र-गुजरा के प्रान्तों पर होता, तो उन्हें केवल एक ही ज़्यादा लि सीखने का बोझ उठाना पड़ता। लेकिन, जिन प्रान्तों अपनी अलग अलग लिपियाँ भी हैं, उन्हें नागरी-फ़ार सीखने से पहले अपनी लिपि और—कहने में हर्ज़ न कि—रोमन लिपि भी सीखनी पड़ेगी। यानी, उन्हें च लिपियों का मुहावरा करना ज़रूरी होगा। लिपि भेद कारण भाषा सीखना कितना मुश्किल होता है, और आ पर इसका कितना बोझ पड़ता है, यह अनुभव से ही ज जाता है।

तब, मेरी राय में एक हिन्दुस्तानी भाषा की कोशि तब तक अच्छी तरह सफल न होगी, जब तक हम उ लिये किसी एक लिपि को भी क़ायम नहीं कर लेते।

यह लिपि कौन सी हो ? बहुत सोच विचार के बा इस राय की ओर झुकता जा रहा हूँ कि इसके लिये र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लिपि ही ज़्यादा अनुकूल होगी। इसके कारण ये हैं—

१—नागरी तथा हिन्दुस्तान की दूसरी लिपियों के मुक़ाबले में रोमन लिपि के रूप ( forms ) सब से ज़्यादा आसान हैं, और संख्या में कम हैं।

२—दुनिया में वह सब से ज़्यादा फैली हुई है।

३—हिन्दुस्तान में भी जिसने चौथी पुस्तक तक पढ़ा है और अपना पढ़ने-लिखने का मुहावरा जारी रक्खा है, वह शायद ही इतना अज्ञानी पाया जायगा कि रोमन लिपि पहचान भी न सके।

४—आज हमारे देश में भी लाखों न हों, फिर भी सैकड़ों लोग ऐसे हैं, जिनकी वही एक मात्र लिपि है। जैसे एंग्लो इण्डियन, पोर्चुगीज़, दक्षिण भारत के कुछ ईसाई सन्थाल वगैरा, कई आदिवासी जातियाँ इत्यादि। दक्षिण भारत में तामिल तेलगु, मलयालम आदि कई भाषाओं में यह रिवाज चल पड़ा है कि वे एक रोमन लिपि में ही लिखते हैं, और अपने नाम के शुरू हर्फ़ रोमन में और बाक़ी का नाम अपनी लिपि में लिखते हैं। जैसे T. S. S. राजन्, K. मुदलियार। अच्छी अच्छी किताबों और दुकान के पट्टों पर इसे आप सारे दक्षिण भारत में देखेंगे।

५—जिन अंगरेज़ों को देशी भाषायें सीखनी पड़ती हैं, वे रोमन लिपि से ही अकसर उन्हें सीखते हैं। वैसी पुस्तकें भी बनाई गई हैं।

६—देशी भाषाओं को रोमन लिपि में लिखने की रुचि और रिवाज न होने के परिणाम ये हुये हैं कि ( क ) तार वग़ैरा अंगरेज़ी में ही भेजे जाते हैं, (ख) नेताओं के बयान-निवेदन अङ्गरेज़ी में निकाले जाते हैं, (ग) टाइपराइटर का उपयोग आजकल बहुत आम है और व्यापारी तथा बहुत लिखा पढ़ी करने वाली संस्थाओं को बिन छुट- ( अनिवार्य, लाज़मी ) सा हो गया है। सभी की अंगरेज़ी और देशी दोनों टाइपराइटर रखने की ताक़त नहीं रहती। फिर देशी भाषा के टाइप राइटर अभी इतने संतोष देने वाले नहीं हैं। इससे, जिन्हें बार बार एक-सां चिट्ठी ( परिपत्र-सरक्यूलर ) निकालनी पड़ती है या ज़्यादा नक़लें बनानी पड़ती हैं, वे जब भी यह जानते हैं कि सामने वाला शख़्स अङ्गरेज़ी समझता है, सिर्फ़ टाइपराइटर की सहूलियत के लिये अङ्ग-रेज़ी में लिखते हैं। यानी लिपि छोड़ने के बजाय हम भाषा ही छोड़ बैठते हैं, (घ) हिंदुस्तानी में दिये हुये भाषणों की, तार से भेजने की रिपोर्ट भी अङ्गरेज़ी में बनाकर भेजी जाती हैं। परिणाम यह कि हिंदी अख़बार में भी हिंदी भाषण असली रूप में नहीं आ सकता, बल्कि अङ्गरेज़ी से किया हुआ तरजुमा आता है। वह हर एक में अपने अपने ढंग से और बहुत अशुद्ध भी होता है, ( च ) इतना होने पर भी देशी भाषाओं के शब्दों और कभी कभी वाक्यों के भी लिये रोमन लिपि को बिलकुल छोड़ तो सकते ही नहीं, सिर्फ़ उसे हम अशुद्ध रीति से बरतते हैं। इस कारण से रोमन स्पेलिंग से देशी शब्दों का शुद्ध उच्चारण समझना मुश्किल होता है और वे ग़लत रीत से लिखे जाते हैं। नीचे उदाहरण के लिये अख़बारों से लिये हुये कुछ शब्द देता हूं :

| | शुद्ध उच्चारण | अशुद्ध लिखाई |
|---|---|---|
| Dhenkanal | ढेंकानाल | धेनकनाल |
| Hathisingh | हठीसिंह | हाथीसींग, हाथीसिंह |
| Howrah | हावड़ा | हावरा, –ह |
| Baroda* | बड़ोदा | बरौडा |
| Sinha | सिंह | सिंहा सिन्हा |
| Jinnah | झीणा | जिनाह, जिन्ना |
| Thatte | थत्ते | तट्टे, ठट्टे |
| Brahma | ब्रह्म ? ब्रह्मा ? ब्राह्म ? | |

७—हिन्दुस्तान के लिए ग़ैर मुसलिम प्रान्तों के लिए नागरी ही एक लिपि हो, ऐसी एक हलचल है। यह सफल नहीं हो रही है, क्योंकि हरेक प्रान्त को अपनी अपनी लिपि से प्रेम है। ऐसी ही बात फ़ारसी लिपि वालों की है। वे फ़ारसी को छोड़कर नागरी को अपनाने के लिये राज़ी नहीं। लेकिन, मैं देखता हूँ कि आज के बहुत से मुसलमान विद्वान रोमन लिपि के तरफ़दार होते जा रहे हैं। तब हाल यह है कि प्रान्तीय लिपियों को हटाकर नागरी लिपि को अपनाने पर भी उर्दू का प्रश्न वैसा ही खड़ा रहेगा और रोमन लिपि—जैसे अशुद्ध रूप में आज बरती जा रही है, वैसे या उसके किसी सर्वदेशी ( अन्तर देशीय ) रूप में रहने को ही है। हो सकता है कि मुसलिम युनिवरसिटियाँ उसे अपना भी लें। हिन्दुस्तान के बाहर के मुसलिम देशों का रुख़ इसी तरफ़ जाता हुआ दीखता है।

परिणाम यह कि रोमन लिपि का विरोध या निषेध करने से कोई फ़ायदा नज़र नहीं आता। इसका नतीजा इतना ही होता है कि इसका अशुद्ध व्यवहार ही हम करते हैं और हमारे कामों के लिए जितनी ज़रूरी है उतनी

* यह दूसरी बात है कि Baroda भी Vadodara ( बड़ोदरा ) होना चाहिये था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri





उसके सुधार की और उसके उपयोग की हद क़ायम करने का फ़र्ज़ हम छोड़ देते हैं।

इस बहस का मतलब यह नहीं कि रोमन लिपि को अपनाने में कोई मुश्किलें नहीं हैं, और वैसा करने से हमारी सब समस्याओं का तुरन्त हल मिल जाता है। हमारी भाषाओं के लिये हमें रोमन लिपि में कुछ सुधार करना ज़रूरी है। वे इतने मुश्किल न हों, तो भी उनके लिये काफ़ी मेहनत की दरकार है। यह मेहनत उठाकर उसे एक प्रामाणिक (Standardized) रूप देना होगा। इसमें हाथ की लिखाई, टाइपराइटर, छपाई और तार—चारों की सहूलियतें देखनी होंगी। अगर हरेक लेखक उसे मनमाने ढङ्ग से लिखने लग जाय, तो जितने लेखक उतनी लिपियां हो जांयगी।

और यह भी नहीं कि रोमन लिपि को अपनाने पर फ़ारसी, नागरी और प्रान्तीय लिपियां बिलकुल हट जांयगी। हो सकता है कि हरेक भाषा प्रान्तीय और रोमन दोनों लिपियों में कई सालों तक लिखी जाती रहें।

और इसका मतलब यह भी नहीं कि फ़ारसी और नागरी लिपियों में संशोधन की ज़रूरत नहीं। सच पूछा जाय तो हरएक लिपि इतनी शुद्ध और सरल बनानी चाहिये कि कोई भी भाषा उसमें शुद्ध रूप में लिखी जा सके।

इस लेख को पूरा करने से पहले यह बता देना ठीक होगा कि रोमन लिपि को प्रमाण रूप देने के लिये हमें कौन सी बातों का फ़ैसला करना होगा—मेरी राय में वे नीचे दी हुई हैं:—

१—अ-आ, इ-ई, उ-ऊ, त-ट, द-ड न-ण-ँ, के फ़र्क़ दिखाने का तरीक़ा।

२—च, ज्ञ, ड़, लिखने की रीत।

३—उर्दू, हिन्दी और भिन्न भिन्न प्रान्तीय भाषाओं की कुछ खास आवाज़ें दिखाने का तरीक़ा: उदाहरण के लिये अ़, ख़, ग़, ल़, ष (या श ?), तथा ह्रस्व ए, ह्रस्व ओ वगैरा।

४—इन सब या कम से कम पहली दो बाबों को तार में रोमन लिपि के २६ अक्षरों द्वारा ही लिखने का तरीका।

५—शब्द कोश (डिक्शनरी) के लिये रोमन लिपि का हमारे देश के लिये स्वर और व्यंजनों का अनुक्रम (सिलसिला)।

६—लेखन या उच्चारण के कुछ भेद जो लिखने में जुदा-जुदा दिखाये नहीं जाते, लेकिन शब्द कोश में बताना ज़रूरी हो, उनके निशान: जैसे, ذ-ز-ض-ظ; ث-س-ص; ح-ه; ز-ژ; ت-ط

इन बाबतों में तरह तरह की रीत आज चलती है। कम से कम १,२,४ और ५ के बारे में कोई एक रूप पक्का करना ज़रूरी है। ३ और ६ के बारे में लेखकों और मुद्रकों को अपना अपना ढंग रखने की छुट्टी हो सकती है, अथवा तुरन्त कोई राय क़ायम न हो तो भी चल सकता है।

# खाली मधु-रस घट भर दो !

श्री कुसुमलता

छलका दो प्राणों में जीवन,
बरसा दो नयनों में छबिकण,
साथ रहे दुर्गम नव पथ में,
हृदय हृदय का मृदु अभिनन्दन,
अँधरे, अकरुण शङ्कित मन को,
अविकल साहसमय कर दो।
ख़ाली मधु-रस-घट भर दो।

चट्टानों की देह बना दो,
ज्वाला का परिधान पिन्हा दो,
पर इन प्रस्तर-ज्वालाओं में,
कब का सोया मान जगा दो,
छीन कल्पना के स्वर्गों को,
मेरा बचपन का घर दो,
खाली मधु-रसघट भर दो।

ठोकर में दो बूँदें पा लें,
घृणा-मध्य सुख से मुसका लें,
सुख-दुख-के मधु-कटु अनुभव से,
टूटा निज संसार बचा लें
विवस साधना की नीरसता—
रस से भर जग में धर दो।
खाली मधु-रस-घट भर दो।

बाधाएं आकर अपनाएं,
विजय माल पहना कर जायें,
एक स्वेद शोणित-कण भू पर
सौरभमय नव कुसुम खिलाए,
मानवता के लाञ्छित उर में,
अविरल ममता का वर दो।
खाली मधु-रस-घट भर दो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# काव्य क्या है ?

श्री देवेन्द्र एम० ए०

काव्य जीवन की आलोचना है। मानव अनुभूतियों का—संवेदनाओं का शब्द चित्रण है। कवि और चित्रकार में केवल साधनों का अन्तर है, साधना का नहीं। एक शब्दों का आश्रय लेता है तो दूसरा रेखाओं और सुवर्ण रंगों का। और जिस प्रकार कवि की अद्भुत शक्ति से शब्दों में मर्म स्पर्शी व्यंजना आ जाती है उसी प्रकार चित्रकार की प्रतिभा से रेखाओं और रंगों में असाधारण अभिव्यक्ति। जितनी ही तीव्र कवि में मर्म की अनुभूति होगी और जितना ही तीव्र हमारे ऊपर उस अनुभूति की व्यंजना का संघात होगा, उतना ही सफल वह कवि है और उतनी ही अमर उसकी कविता। कवि की अनुभूति कविता का तत्व है और शब्दों द्वारा उस अनुभूति की व्यंजना कविता का रूप है। या यों समझिये कि अनुभूति कविता का प्राण है और शब्द व्यंजना उसका शरीर। यदि काव्य में मर्म स्पर्शी शब्द व्यंजना नहीं तो उसका लेखक सच्चा कवि नहीं और साथ ही साथ यदि कविता के प्रवाह का उद्गम कवि के कोमल एवं भावुक मर्माङ्क से नहीं हुआ तो कविता निष्प्राण है। कविता के लिये असाधारण भावुकता और व्यंजनात्मक शैली दोनों ही आवश्यक हैं। यदि दोनों में से किसी एक का भी अभाव हुआ तो कवि असफल और उसकी कला अपूर्ण है।

काव्य का मूल आधार कवि का भावुक हृदय है—उसकी भावना और अनुभूति है। हमें काव्य के इस तत्व को भलीभाँति समझना चाहिये। काव्य का यह तत्व अपरिवर्तनशील है क्योंकि मानव की भावुकता भी, जो काव्य का आधार है, अपरिवर्तनशील है। आदि मानव भी भावुक था इसमें सन्देह नहीं; उसमें भी सौन्दर्य के प्रति आसक्ति थी—उसे भी संयोग और वियोग के क्षणों का अनुभव था; उसका अन्तर भी प्यार और घृणा के तूफ़ानों से चंचल हो उठता था और आज तक मानव-हृदय की उस भावुकता की प्रकृति में परिवर्तन नहीं हुआ। आज भी हमारा हृदय अपने प्रियजन से वियुक्त होने पर रो पड़ता है। आज भी हममें सौन्दर्य के प्रति आसक्ति और आकर्षण है। काल और स्थल के परिवर्तनों ने हमारे हृदय की उस प्रकृति पर कोई प्रभाव नहीं डाला है। हमें इसी प्रसंग में भावुकता की प्रकृति अथवा शक्ति (Power to feel) और उसके स्वरूप ( Form of feeling ) में अन्तर समझ लेना चाहिये। भावुकता की प्रकृति अपरिवर्तनशील है—समय और स्थल से अप्रभावित है—यह हृदय की भावना का स्थायी तत्व है किन्तु भावुकता या भावना का [illegible] परिवर्तनशील और समय तथा स्थल से सीमित [illegible] नियन्त्रित है—"Power to feel does not change what changes is the form of feeling" यह [illegible] है कि आज मानव के प्रणय-व्यवहार उस प्रकार के [illegible] जैसे शताब्दियों पूर्व थे अथवा स्नेह बन्धन वैसे नहीं [illegible] पहले थे और यह भी ठीक है कि आज हमारे सौन्दर्य [illegible] वह कल्पना नहीं जिससे पहले लोग पागल हो उठते [illegible] किन्तु यह कहना बिल्कुल ग़लत है कि कालिदास के [illegible] दूत' में निर्वासित वियोगी यक्ष के उच्छ्वासों में आज [illegible] वियोगी की वियोगातुर भावुकता नहीं है या आज [illegible] हृदय में रोने और हंसने की वह शक्ति बदल गई है जो [illegible] दिन पहले थी। आज का मानव उसी प्रकार—[illegible] साधनों से अपनी भूख नहीं मिटाता जिस प्रकार प्राग [illegible] मानव—यह कथन जितना सत्य है, उतना ही यह [illegible] भ्रमपूर्ण और भ्रामक है कि प्राचीन मानव को कुछ [illegible] ढङ्ग से भूख लगती थी और आज के मानव को कुछ [illegible] ढङ्ग से, अथवा भूख की भावना (Instinct of hung[illegible] में कुछ परिवर्तन हो गया है। एक लेखक ने अच्छे ढङ्ग [illegible] इस बात को कहा है—"These things that [illegible] the deepest and finest echoes in men's hearts are not the things that change. They are stranger than custom and creed and they are still the only foundations on which men can build themselves in a living poetry."

मानव हृदय के इस अपरिवर्तनशील स्व[illegible] ( Power to feel ) और उसकी भावुकता के स्व[illegible] ( Form of feeling ) में अन्तर समझ लेने पर [illegible] समझना आसान है कि यदि कविता सचमुच कविता है [illegible] वह स्थायी और सत्य होगी क्यों कि उसका आधार [illegible] हृदय की भावुकता और अनुभूति है जो चिरस्थायी [illegible] अपरिवर्तनशील है। काव्य का स्वरूप ( Form [illegible] poetry ) समय और स्थल से प्रभावित रहने पर [illegible] काव्य, जहाँ तक अनुभूति और भावुकता का प्रश्न [illegible] अमर है और समय एवं स्थल से परे है। अर्थात् [illegible] वर्ष पहले यदि कोई वाल्मीकि पीड़ित क्रौंच पक्षी की दु[illegible] पर सहानुभूति में रो पड़ा था या विक्षुब्ध एवं क्रुद्ध हुआ [illegible] और यदि सदियों पहले कोई कालिदास निर्वासित [illegible]

Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अथवा अभिशप्त शकुन्तला की वियोग-व्याकुलता का अनुभव कर कवि बना होगा तो आज भी वह कवि है। आज भी उन कवियों की अमर पंक्तियाँ हमारे हृदय के तारों को छूकर सुख विभोर कर देती हैं। काव्य का यह सत्य, यह चिर स्थायी स्वभाव धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं जातीय विभिन्न और विरोधी धाराओं के बीच भी अचल और अपरिवर्तित रहता है क्यों कि प्रत्येक मनुष्य भावुक था, है और भविष्य में भी रहेगा। यह भावुकता जीवन की विभिन्नता, वैषम्य और विरोधों के बीच भी मानव में एकता स्थापित करती है। यदि सचमुच काव्य है तो हमारे स्वार्थ के विरुद्ध ही क्यों न हो हम द्रवित हो जायेंगे। उर्दू के एक अच्छे आधुनिक कवि ने "ग़रीब की ईद" पर एक नज़्म लिखी है उसे सुनने पर ग़रीब और अमीर सभी रो पड़ेंगे। प्राचीन कवियों में कालिदास, भवभूति और उनके बाद सूर, तुलसी, कबीर, रसखान तथा आधुनिक कवियों में निराला, पन्त और बच्चन की अनेक पंक्तियाँ ऐसी हैं जो अमर हैं और मानव के मर्म का स्पर्श युगों तक करती रहेंगी। जब तक मानव-हृदय की भावुकता की प्रकृति नहीं बदलती—जब तक मानव हँसता-रोता रहेगा—प्यार और घृणा से युक्त होगा तब तक जो कविता जीवित न रहे वह कविता नहीं कुछ और है।

काव्य के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया कि काव्य सत्य और अमर है क्यों कि मानव की भावुकता अमर है। काव्य में परिवर्तनशील केवल उसका स्वरूप है अर्थात् भावुकता को अभिव्यक्त करने की शैली और भावुकता को उत्तेजित करने वाली परिवर्तनशील परिस्थितियाँ जो काव्य का विषय बन जाती हैं। यह शैली जीवन के परिवर्तनों के साथ—समय और स्थल की उथल पुथल के साथ बदलती रहती है। वाल्मीकि ने व्याध के अत्याचार से क्रुद्ध होकर उसका जीवन अभिशप्त कर दिया था, आज व्याध का अत्याचार नहीं और न आज वह देव भाषा ही है—किन्तु आज शोषकों का अत्याचार है और मनुष्य की परिवर्तित भाषा—काव्य का विषय और काव्यों की शैली बदल गई है। किन्तु अत्याचार के विरुद्ध आज के कवि की करुणा और क्रोध की भावुकता वही है जो वाल्मीकि की थी। उस आदि कवि और आज के कवि की भावना (Feeling) में कोई अन्तर नहीं। परिवर्तन केवल व्यंजना के ढङ्ग में है और परिस्थितियों में हैं अथवा काव्य की शैली और विषय में है। आज के कवि की प्रेरणा का उद्गम जीवन की वर्तमान परिस्थिति है जो निश्चय ही अतीत में नहीं थी लेकिन कवि की भावुकता जो उस प्रेरणा का प्राण है आज तक अविकल है—अपरिवर्तित है। भावुकता को समय और स्थल की सीमा में रखना या उसको समाज की विभिन्न दशाओं से बांधना नितांत भ्रम है। कवि किसी वर्ग विशेष, देश विशेष, अथवा जाति विशेष का नहीं होता। यदि वह सचमुच कवि है तो वह कवि है सम्पूर्ण मानवता का। यदि संसार के शोषण और अत्याचार से, दासता और विवशता से कोई कवि रो पड़ता है और क्षुब्ध हो उठता है तथा अपने हृदय के उस क्रन्दन और क्षोभ को—उस अनुभूति को शब्दों में अभिव्यक्त करता है तो यह निश्चय है कि पाषाण-हृदय शोषक और हिंसक अत्याचारी भी कवि की व्यंजना के संघात को न सह सकेंगे, रो पड़ेंगे—क्षुब्ध हो उठेंगे। यदि काव्य में क्षोभ उत्पन्न करने वाली—आन्दोलन और उथल पुथल मचाने वाली शक्ति नहीं तो वह काव्य काव्य नहीं। भारतीय कवि के हृदय से निकला हुआ स्वतंत्रता का गीत उसे गुलाम रखने वालों का पाषाण-हृदय भी पिघला सकता है। भव्य प्रासाद में आनन्द विभोर शोषक के वियोग का गीत प्रणयी मज़दूर के वियोग के उच्छ्वासों से जा मिलेगा। इसीलिये F. L. Lucas ने कहा है—"These things reach on across space and time, while moralities change from frontier to frontier and from generation to generation."

जिस प्रकार मानव में यह देखने के पहले कि उसमें प्रगति है या नहीं यह देखना ज़रूरी है कि उसमें जीवन है या नहीं, उसी प्रकार काव्य में 'प्रगति' से पहले 'गति' देखना आवश्यक है। यदि काव्य में आन्दोलन मचाने वाली शक्ति नहीं—सतप्त मानव के उर के लिये अमृतमय अभिसिंचन नहीं तो वह काव्य नहीं। आज हमारी काव्य-धारा को झूठे 'प्रगतिवाद' के विशाल मरुस्थल की ओर बरबस मोड़ा जा रहा है और यदि हम सावधान और सचेत न हुये तो अवश्य ही वह उसमें बहकर सूख जायेगी—गति हीन हो जायेगी। हम तिरंगे झंडे को छोड़ कर 'प्रगति' के चक्कर में रूसी झंडे का गान ही क्यों न गायें लेकिन उस 'प्रगतिशील' गान को काव्य कहना तब तक धृष्टता है जब तक उसमें हमारे हृदय के सुप्त स्वरों को उद्बुद्ध करने की शक्ति न हो—जब तक उसमें वह अनुभूति और व्यंजना नहीं—जो हमें विश्व-एकता, समानता और स्वतंत्रता के उस रक्त वर्ण प्रतीक के प्रति श्रद्धा से विभोर कर दे—जो रोम-रोम में उसके लिये सम्मान और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अभिमान भर दे और जो उसकी रक्षा के लिये हमें प्राणों की आहुति देने के लिये विकल कर दे। यदि उस गान में यह 'गति' नहीं तो 'प्रगति' की बात करना उपहासास्पद है। काव्य के इस स्थायी अङ्ग को सुरक्षित रखना प्रगति हीनता नहीं प्रत्युत उसकी जीवन-गति है। उसका प्राण है। हाँ, समय और परिस्थितियों के अनुकूल उसके स्वरूप को न बदलना प्रगति के अभाव का द्योतक अवश्य है। "Not to act in accordance with or feel for the environment will be folly but definitely we cannot stop feeling till we are human." लेकिन आज भारतीय साहित्य क्षेत्र में 'प्रगतिवाद' के नाम पर काव्य की उपर्युक्त मीमांसा की उपेक्षा की जा रही है। "प्रगतिशीलों' का कहना है—'मार्क्स की विचार-धारा के अनुसार विश्व में हर एक वस्तु-परिवर्तन अच्छाई के लिये होता है—जिसमें परिवर्तन नहीं उसमें प्रगति नहीं, वह प्रगतिशील नहीं" इस विचार धारा में प्रारम्भ ही ग़लत है क्योंकि वे परिवर्तनशील विश्व में अपरिवर्तनशील तत्व को देखने में अक्षम हैं। उन्हें यह भ्रम है कि मानव आज उस तरह प्रेम और घृणा की भावना नहीं रखता जैसी सदियों पहले उसके पास थी—उसी प्रकार उसे भूख-प्यास नहीं लगती जैसी पहले लगती थी। प्रेम, घृणा एवं भूख-प्यास की तृप्ति के साधनों में अन्तर और परिवर्तन देखकर वे साधना अथवा भावना की एकता और अपरिवर्तनशीलता नहीं देख पाते। 'प्रगतिवादियों' से हमारा यह दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक मतभेद है। सम्भव है कि हम एक दूसरे को न समझा सकें लेकिन मिथ्या प्रगति के नाम पर काव्य के सत्य रूप को विकृत करना साहित्य के जीवन के लिये घातक है। आप समाज को अपने लक्ष्य की ओर प्रेरित कीजिये, हमें विरोध नहीं लेकिन प्रेरित करने का साधन काव्य होना चाहिये। उसमें मर्म स्पर्शी भावुकता और व्यंजना होनी चाहिये। हमें यह न भूलना चाहिये कि सत्य काव्य की साधना केवल कवि कर सकता है, सब नहीं। हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि श्री नरेन्द्र के 'लाल निशान' गीत को कविता कहना अनुचित है। उसमें कदाचित् प्रगति हो लेकिन उसमें गति नहीं—उसके शब्दों में हृदय को छूने की शक्ति नहीं—जब वह कविता ही नहीं तो उसमें 'प्रगति' ढूँढ़ना भ्रम है—हाँ अधिक से अधिक उन शब्द समूहों में प्रगति देख सकते हैं। साथ ही साथ श्री नरेन्द्र की ही उन पंक्तियों में—"मैं सब दिन पाषाण नहीं था....." सत्य काव्य का अनुभव न करना भूल है।

काव्य की विवेचना करते समय यह कभी न भूलना चाहिये कि कविता प्रधान रूप से हृदय से सम्बन्ध रखती है, बुद्धि से नहीं। उसका उद्गम, प्रवाह और लक्ष्य सभी हृदय भावना के विश्व में ही है। कवि के हृदय से कविता निकल कर हृदय पर चोट करती है। काव्य में बौद्धिक अपील (Intellectual appeal) हो भी तो उसका आधार भावना ही है—हृदय की भावुकता ही है। दर्शन के गूढ़ तत्वों का विवेचन या इतिहास के उदर में विलीन घटनाओं की खोज और उनका स्पष्टीकरण अथवा आर्थिक व्यवस्था के नियमों का उल्लेख आदि, उपादेय और महत्वपूर्ण साहित्य के अंग हो सकते हैं पर काव्य नहीं। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की गति का बौद्धिक अनुभव अथवा ज्ञान (Intellectual Interpertation) सामाजिक विज्ञान का अच्छा साहित्य हो सकता है पर काव्य नहीं। काव्य में जीवन का भावनात्मक ज्ञान अथवा अनुभव (Emotional Intepretation) है और साहित्य के विभिन्न अंगों में चाहे दर्शन हो या अर्थ शास्त्र, समाज विज्ञान हो या इतिहास जहां भी सम्वेदनात्मक संघात (Emotional bhit) अथवा मार्मिक स्पर्श ( Emotional appeal ) रहेगा उसका स्वरूप चाहे जो कुछ हो पर उसमें कविता का अंश निःसन्देह है। हम अधिकतर जीवन को भावनात्मक रूप से ही (Emotionally) समझते हैं। सम्भव है मानव की यह भावुकता कुछ लोगों को अप्रिय और त्याज्य प्रतीत हो पर मानव जब तक मानव है और मशीन अथवा देव नहीं बन जाता तब तक भावुकता दूर हो सकेगी या जीवन से समस्याओं को सुलझाने के लिये भावुकता का प्रयोग न किया जायगा इसमें संदेह है। हमारे जीवन में सर्वाङ्गीण समानता लाने के प्रयास में, शोषण को नष्टकर एक नवीन व्यवस्था लाने की आशा में अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। बौद्धिक अपील ( Intellectual appeal ) रखते हैं। सम्भवतः सब की समझ में न आये और शायद कवि भी न समझता हो लेकिन यद्यपि कवि की वाणी में बौद्धिक अपील नहीं, फिर भी असमानता और शोषण के विनाश और एक नूतन सृष्टि के निर्माण की जो प्रेरणा कवि की वाणी में होती है उसका महत्व कम नहीं। शोषण से मुक्ति और नूतन सृष्टि की आशा में यदि कवि—

ऐसी दुनिया जिसमें कोई
भूखा न रहे—प्यासा न रहे,
औरों के सुख को छीन कहीं
जीने की अभिलाषा न रहे!

CC-0. Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


यह कहने के बजाय शोषण के कारण—उन्हें दूर करने की आवश्यकता और उसके पश्चात नूतन सृष्टि की व्यवस्था के सुखों का वर्णन करे तो वह काव्य नहीं किन्तु साहित्य में समाज विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग अवश्य हो सकता है। हां, काव्य वहीं पर रहेगा जहां मार्मिक स्पर्श और भावुकता होगी जहां हृदय की बात हृदय को अप्रयास ही समझ में आ जायेगी।

पहले कहा जा चुका है कि काव्य में भावुकता या हृदय की अनुभूति के साथ साथ चुभती हुई व्यंजना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में कविता की भाषा और शैली ऐसी होनी चाहिये जो कवि की भावना को—उसकी अनुभूति को दूसरों के हृदय में ठीक ठीक उतार दे। यह कहना ग़लत नहीं कि काव्य की शैली हृदय की भावना या अनुभूति का शब्द-चित्रण है। कवि अपनी भावुकता से शब्दों में एक चमत्कार और जादू भर देता है। अनुभूति को दूसरों तक ठीक ठीक पहुँचाना ही शैली है। यदि कवि अपनी अनुभूति को दूसरों तक न पहुँचा सका अर्थात् उसमें वह अद्भुत शैली न हुई तो केवल शब्द-जाल में काव्य कला को ढूँढ़ना चमकीले सिकता कणों में चाँदी के भ्रम के समान है। काव्य में यह व्यंजना-शक्ति वर्षों की साधना और तपस्या के बाद कवि को प्राप्त होती है। कविता कोई चंचल, छबीली युवती नहीं जो क़लम उठाते ही वरमाला पहना दे। काव्य तो वह आराध्य देवता है जो वरदान देने के पहले अनवरत उपासना और असीम श्रद्धा से विभोर याचक का जीवन-समर्पण चाहता है। इसीलिये कवि की वाणी में जो व्यंजना होती है वह दूसरों की वाणी में नहीं। 'विश्ववाणी' के पिछले अंक में एक 'प्रगतिशील' लेखक ने 'कुकुरमुत्ता' के पहले निराला और 'युगवाणी' के पहले पन्त की भाषा बनावट से भरी हुई बतलायी है। जिन कवियों ने वर्षों के परिश्रम और साधना के पश्चात् सरस्वती का वरदान प्राप्त किया हो उनकी भाषा के कारण भर्त्सना करना सर्वथा अनुचित है। सच्चे कवि की भाषा में और कोई भी दोष हो पर बनावट का दोष नहीं हो सकता और यदि है तो निःसन्देह वह कवि कहलाने का अधिकारी नहीं है।

काव्य के प्रसंग में उसकी भाषा का प्रश्न भी विचारणीय है। भाषा और शैली में जो अन्तर है उस पर ध्यान रखना चाहिये। शैली कविता का प्राण है—उसमें कवि का व्यक्तित्व झलकता है। साधारण लोगों द्वारा किसी भाषा में वह प्रभाव नहीं रहता—वह चोट नहीं रहती जो कवि के द्वारा प्रयुक्त हुये उन्हीं शब्दों में रहती है। इस अन्तर को ही शैली समझना चाहिये। जिसमें यह शैली नहीं वह कवि है इसमें सन्देह है। काव्य के लिये भाषा के रूप का महत्व अधिक नहीं लेकिन शैली का महत्व बहुत अधिक है। यदि अंग्रेज़ी में लिखी गई शेली, कीट्स और शेक्सपियर की पंक्तियाँ काव्य हैं तो संसार के एक कोने में बोली जाने वाली ब्रज या अवधी की भाषाओं में लिखने वाले सूर और तुलसी की पंक्तियाँ भी कविता से ओत प्रोत हैं। गाँवों में गाये जाने वाले गीतों में उतना ही अमर काव्य हो सकता है जितना किसी भी सुसंस्कृत और परिमार्जित भाषा में। भाषा का स्वरूप कुछ भी हो, नाम कुछ भी हो काव्य में इसका महत्व अधिक नहीं। महत्व की बात तो यह कि उस भाषा में शैली है या नहीं, अनुभूति और व्यंजना है या नहीं। उसमें दूसरों के हृदय को विचलित और क्षुब्ध करने की शक्ति है या नहीं। आजकल यह सुनने में आता है कि कवि की भाषा 'जनता की भाषा' होनी चाहिये। 'जनता की भाषा'—यह एक अस्पष्ट पद है। यदि यह मान लिया जाये कि भारतीय जनता के अन्तर्गत यहां के किसान और मज़दूर हैं तो यह साफ़ ज़ाहिर है कि उनकी कोई एक भाषा नहीं—कोई हिन्दी बोलता है तो कोई बङ्गाली और कोई गुजराती। यही नहीं, इन विभिन्न भाषाओं के भी स्थानीय अनेक भिन्न रूप हैं। और यू० पी० के सुदूर पश्चिम का ग्रामीण सुदूर पूर्व के ग्रामीण की भाषा नहीं समझ सकता। हिन्दी में ग्राम भाषा के विख्यात कवि 'रमै काका' ने जो रेडियो से रुचिकर ग्राम गीत सुनाया करते हैं, एक कवि सम्मेलन में कुछ गीत सुनाये। वह ठेठ अवधी में लिखते हैं और गाज़ीपुर के ग्राम-निवासी मेरे एक मित्र उन्हें बिलकुल न समझ सके। तो क्या 'रमै काका' के गीतों में काव्य नहीं था। ऐसी बेसमझी की बात मेरे मित्र ने मुझसे कभी नहीं कही। और क्या यूरोपीय जनता के संस्कृत न जानने के कारण कालिदास को विश्वकवि न समझा जायेगा। बात यह है कि यदि कवि को काव्य-कला की सिद्धि है तो भाषा के रूप का कोई अधिक महत्व नहीं। ग्राम-भाषा में लिखी हुई पंक्तियाँ भी काव्यमय हो सकती हैं यदि लिखने वाला कवि हो। हमारे बँगला न जानने के कारण रवीन्द्र को विश्व कवि की उपाधि न दी जाये यह भ्रमपूर्ण और मिथ्या बात है। असल बात यह है कि कवि की भाषा वही है जिसमें वह अपनी भावुकता और अनुभूति सफल रूप से व्यक्त कर सके। भाषा का रूप कवि के लिये केवल शिक्षा की बात है और बतलाने की ज़रूरत नहीं कि सत् काव्य के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शब्द-ज्ञान अथवा भाषा ज्ञान अनिवार्य नहीं। एक अशिक्षित भी कवि हो सकता है। यदि कवि शिक्षित है तो वह जितनी अच्छी काव्य-रचना परिष्कृत भाषा में कर सकेगा, उतनी स्थानीय अपरिष्कृत भाषा में नहीं; और अगर वह मिथ्या 'जन-कवि' बनने के लिये स्थानीय भाषा का असफल प्रयोग करेगा, तो निश्चय ही वह अपना कवित्व खो बैठेगा। इसीलिये एक अशिक्षित ग्राम-कवि के लिये यह अवांछनीय है कि सुसंस्कृत भाषा में अपनी अनुभूति को व्यक्त करने का असफल प्रयास करे और अपनी काव्यात्मक व्यंजना खो बैठे। किसी स्थानीय बोली में भी अपनी अनुभूति की व्यंजना करने वाला कवि विश्व का—सम्पूर्ण मानव जाति का कवि हो सकता है। वह केवल उस स्थान का कवि नहीं जहाँ वह रहता है या जहां की वह बोली बोलता है। कवि अपनी परिस्थिति और वातावरण के प्रभाव से उस भाषा को ग्रहण करता है, जो उसके जीवन में समा जाती है और जिस पर उसका अधिकार हो—उसी भाषा का प्रयोग उसके लिये आवश्यक और उपादेय है, अन्यथा उसकी भाषा में व्यंजना शक्ति नहीं आ सकती और यदि व्यंजना नहीं तो उसमें काव्य कला भी नहीं हो सकती। आजकल बहुत से कवि 'जन-कवि' बनने के लालच में जन भाषा ही सफल रूप से ग्रहण कर ही नहीं पाते हैं प्रत्युत अपना कवित्व भी खो बैठते हैं। वे यह नहीं समझते कि ठेठ ब्रज और अवधी में लिखने वाले सूर और तुलसी तथा परिमार्जित भाषा में लिखने वाले गुप्त, निराला, पन्त और बच्चन सभी अमर रहेंगे। अमरत्व भावना और व्यंजना में है। भाषा के रूप में नहीं। भाषा के पीछे अपनी काव्य मय अनुभूति और व्यंजना खो बैठना बुद्धिमानी नहीं। कहाँ तक कहा जाये 'जन-भाषा' के जोश में कुछ कवि या लेखक साहित्य में 'हरामी के पुतले' इत्यादि ऐसे शब्दों का भी प्रयोग करने लगे हैं। ऐसे प्रयोगों में कैसी तीव्र एवं सुन्दर व्यंजना है यह केवल प्रयोग करने वाले ही समझ सकते हैं।

"काव्य क्या है ?" यह प्रश्न समझ लेने पर यह समझना मुश्किल नहीं कि उसका विषय क्या है। काव्य मानव-अनुभूतियों का—उसकी भावुकता का चित्रण है और इससे स्पष्ट है कि काव्य हमारे जीवन से अलग नहीं। मैथ्यू आर्नल्ड की परिभाषा—काव्य जीवन की आलोचना है—सम्भवतः सर्वग्राही होगी। कवि भावुक होता है और अपने चारों ओर सुख दुख की परिस्थितियों से प्रभावित होकर—उनसे अपना सम्बन्ध स्थापित कर अपनी अनुभूतियों को शब्दों में अभिव्यक्त करता है। जितना अधिक जो कवि अपनी परिस्थितियों के प्रति—जीवन विभिन्न अंगों के प्रति सचेत और भावुक हो उतना अधिक उस कवि का जीवन कवित्वमय है। कवि सौन्दर्य का अवलोकन कर सुख में विभोर हो जाता है और मनुष्य के शोषण को देखकर करुणा और क्रोध से भर जाता है। यदि कवि केवल सौन्दर्य से ही प्रभावित हो और भूखे भिखमंगों की दुर्दशा उसे व्याकुल एवं विक्षुब्ध न करे—विक्षुब्ध तो करे किन्तु शब्दों में साकार न बने तो भावुक नहीं—वह कवि नहीं। यदि उसे जीवन की विभिन्न स्थितियां प्रभावित नहीं करतीं—यदि उसमें हृदय नहीं जो थोड़ी सी आँच पाकर भी पिघल उठे—यदि वह भावना नहीं जो अत्याचार के प्रति आग उगले—तो वह सचमुच कवि नहीं।

काव्य के सम्बन्ध में ही ज़िक्र करते हुये एक 'प्रगतिशील' लेखक ने लिखा था—"बुर्जुआ वर्ग के कवि व्यक्ति पर ज़ोर न देकर व्यक्ति विशेष पर ज़ोर देते हैं—जैसे रामूमल अच्छे आदमी हैं...बिरला महान् व्यक्ति हैं" इनके कहने का यह मतलब था कि किसी व्यक्ति विशेष के गुण-दोष, सुख-दुख का वर्णन करना काव्य नहीं!—राष्ट्र के प्राण गाँधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उठना काव्य नहीं? सत्य तो यह है कि गौरव और अभिमानपूर्वक यह कहने में जितना काव्य है—'Stalin is our comrade' 'स्टालिन हमारा साथी है' उतना काव्य (और उससे अधिक ही) है गांधी के दिव्य-गुण गान में और युग से प्रपीड़ित शोषितों के करुण क्रन्दन और प्रलयंकर गानों में।

काव्य-जगत् में आजकल एक चर्चा बहुत ज़ोरों से हो रही है और वह है काव्य के उद्देश्य के सम्बन्ध में। कुछ "प्रगतिशीलों" की विचार धारा यह है—"जीवन में प्रत्येक कार्य का कुछ उद्देश्य होता है और वह उद्देश्य है मानव के शोषण का अंत और एक ऐसी सृष्टि का निर्माण जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समानता हो। जो इस उद्देश्य से प्रेरित होकर काव्य रचना नहीं करता वह प्रगतिशील नहीं—जो व्यक्तिगत आशा और निराशा में पड़ा रहता है वह निष्क्रिय बुर्जुआ कवि है" इस विचार धारा के अनुसार कविता जीवन की केवल उन अनुभूतियों का चित्रण है जो समाज को किसी दिशा की ओर ले जाय और वह दिशा है वर्गहीन समाज की स्थापना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



काव्य का यह स्वरूप संकुचित और अपर्याप्त है। यह तो वही कहना हुआ—"जो कुछ हम कहते हैं, वह काव्य है और सब तो बेकार है। सब गलत सोचते हैं क्यों कि सही सोचने की ठेकेदारी तो हमने ले रक्खी है।" जीवन का उद्देश्य वास्तव में, सुख की प्राप्ति है। सुख क्या है—इसके विषय में विभिन्न और विरोधी विचार हैं। पांडिचेरी में योगाभ्यास करने वाले श्री अरविन्द, सेवाग्राम के तपस्वी गांधी और रूस के स्टालिन के सुखों की कल्पना और उनकी प्राप्ति के साधन कितने भिन्न एवं विरोधात्मक हैं, यह स्पष्ट है। कवि भी जीवन को अपने भावुक दृष्टि कोण से समझता है। वह सदैव, या यों कहिये कि बहुधा जीवन को हृदय समझता है और उसी के अनुसार काव्य द्वारा समाज को प्रेरणा प्रदान करता है। कवि इस उलझन में नहीं पड़ता और न पड़ सकता है कि समानता और स्वतंत्रता की प्राप्ति के कौन साधन उपयुक्त हैं और कौन अनुपयुक्त—यह दार्शनिक का विषय है कवि का नहीं। कल्पना के विश्व की व्यवस्था किस प्रकार होगी यह समाज विज्ञान के अन्तर्गत है काव्य के नहीं। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि कवि शोषण के अन्त के लिये व्याकुल नहीं या वह उस विश्व की प्राप्ति और उसका भोग नहीं करना चाहता जिसमें सब समान हों। वह भी विह्वल है, बुद्धि के कारण नहीं, हृदय के कारण। भावुकता उसे शोषण के लिये—रूढ़ियों को छिन्न भिन्न करने के लिए प्रेरित करती है और वह भी गा उठता है :—

"वह, क्षीर सिन्धु में जो सोया
जिसने प्रभु को प्रभुता दी है,
निर्धन को निर्धन किया और
दुर्बल को दुर्बलता दी है;
चौंके, व्याकुल हो उठे, देख
उस महा प्रलय की कुछ घड़ियाँ;
उसकी निर्धारित रीति-नीति—
उसकी सीमायें हथकड़ियाँ!
हो जांय खत्म, हों टूक टूक
कह दो उससे विश्राम करे;
बेहतर है मानव की दुनिया
में मानव अपना काम करे!"

कवि की बात में तर्क नहीं, दलील नहीं—शायद वह समझा भी न सके यह सब कैसे होगा और क्यों होना चाहिये—वह यह सब कह उठता है क्यों कि वह भावुक है, क्यों कि यह कहे बिना वह रह नहीं सकता—उसके हृदय को शांति नहीं मिल सकती। वह हृदय से समझता है और हृदय से ही दूसरे उसे समझते हैं। जिसके पास बुद्धि हो और हृदय नहीं वह उसे नहीं समझ सकता।

वास्तव में उद्देश्यों की उलझन में काव्य को काव्य न कहना भ्रम है, हाँ काव्य को अपने विचारों और भावनाओं के अनुसार यह कह सकते हैं कि उसमें प्रगति है या नहीं। लेकिन हमें यह न समझना चाहिये कि जो कुछ हम कहें वही प्रगति है क्यों कि दुनिया में समझदारी केवल हमारी बपौती है।

जहाँ तक व्यक्तिगत आशा और निराशामय अनुभूतियों की व्यंजना का प्रश्न है यह कहना असंगत न होगा कि हम जीवन के सुख और आदर्शों की प्राप्ति के प्रयास के बीच व्यक्तिगत प्रेम, घृणा और आशा-निराशा नहीं भूल सकते। हां, तब भूल सकेंगे जब दुर्बल मानव दुर्बल न रहकर संन्यस्त योगी हो जायेगा, बंधनों से उन्मुक्त हो जाएगा। लेकिन आज हम इन अनुभूतियों को नहीं छोड़ सकते—यह सम्भव नहीं कि हमारा हृदय माता के प्रगाढ़ वात्सल्य से गद्‌गद् न हो उठे। अथवा हम प्रियजनों से मिलने के लिये जीवन के संघर्षों के बीच भी व्याकुल न हों अथवा उनसे वियुक्त होने पर रो न पड़ें। इन अनुभूतियों की व्यंजना को काव्य न कहना काव्य को संकुचित बनाना है और जीवन से काव्य को अलग करना है। क्या कस्तूरबा के निधन पर यह लिखने वाला कवि—कवि नहीं!

'आज युगों के बाद हिमालय रोया!

लेकिन साथ ही साथ हमें यह भी न भूलना चाहिये कि जो पीड़ित मानव-समाज की पीड़ा से द्रवित नहीं होता—जो विषमता-विवशता के पाप को नष्ट करने के लिये आतुर नहीं होता—उस समाज की स्थापना के लिये प्रेरणा नहीं प्रदान करता जिसमें सब सुखी हों और केवल व्यक्तिगत आशा-निराशा में पड़ा रहता है वह भी अपूर्ण भावुक है और इसलिये अपूर्ण कवि है, इसमें सन्देह नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# साहित्य में आदर्श और यथार्थवाद

प्रो० श्रीरंजन एम० ए०

प्राचीन संस्कृत साहित्य के प्रणेताओं ने साहित्य की भूमिका में दो शब्दों का प्रयोग प्रायः किया है। भावकत्व (imagination) और दूसरा भोजकत्व (Delight)। इन दो पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या पर लिखे गए कई एक संस्कृत विद्वानों के नोट सामने आये हैं। भारतीय दर्शन के महान् पंडित श्री अभिनव गुप्त ने इन दो शब्दों की व्याख्या बड़े सुन्दर ढंग से की है। वे एक स्थान पर लिखते हैं कि जब हम एक सुन्दर कविता या रचना को पढ़ कर मुग्ध होते हैं तो हम अपने परम आत्म-तत्व का बोध करते हैं। इस अवस्था में हमारी अहं की संकीर्ण चेतना अपने महत् के व्यापक बोध में डूब जाती है। उस समय हमारे सामने संसार का व्यापक रूप प्रधान हो जाता है। रस की पूर्ण परिसमाप्ति यहीं पर होती है। साहित्य समीक्षकों ने जिसे भोग कहा है वह सत्व, रज, एवं तम से अनुशासित और बाधित हमारी देव-भावचेतना के प्रकाशन और प्रचार का ही दूसरा नाम है। क्योंकि हमारी देव-चेतना (higher nature) तत्वतः आनन्दमय है। इस कारण ऐसी अवस्था में प्राप्त हमारा आनन्द भी ब्रह्मानन्द का एक अंग होता है। समीक्षात्मक दृष्टि से देखें तो यह प्रगट होता है कि साहित्य को पूर्णत्व के निकट रखने के लिए इन दोनों तत्वों की अनिवार्य आवश्यकता है।

उपरोक्त तथ्य को सामने रखते हुए हम यदि आदर्श और यथार्थ की व्याख्या करें तो यह साफ प्रगट होगा कि दोनों तत्व ही साहित्य अभियान के दो पहिये हैं...उनमें से एक के भी अभाव में साहित्य कोरा शरीर अथवा निराधार प्राण ही रह जायगा। स्थूल भौतिक जगत को न तो वैसा साहित्य स्थायी आनंद ही दे सकता है और न उसकी भौतिक रूप रेखा ही अनुकरणीय और प्रेय बना सकती है। भारतीय दर्शनशास्त्र के दो शब्द 'श्रेय' और 'प्रेय' का सुमिलन ही श्रेष्ठ साहित्य की कसौटी है। हम न कोरे श्रेयत्व को लेकर जीवित रह सकते हैं और न केवल सेमर के फूल की सुन्दरता वाली किसी प्रिय वस्तु का स्वागत कर सकते हैं। जीवन के स्थूल कठोर सत्य की उपेक्षा न करते हुए भी हम स्वभावतः परिशान्ति के लिए उत्सुक रहते हैं। 'संघर्ष मानव जीवन का अंतिम साध्य नहीं हो सकता, वह तो किसी विशेष तत्व तक पहुँचने का एक साधन मात्र ही है और रहेगा। अतः आदर्श और यथार्थवाद के चक्कर में पड़ने से पूर्व पाठक एक बात पर विचार करें। आखिर साहित्य की सृष्टि क्यों होती है। पाठक इतने पढ़ने लिखने में अपने अमूल्य समय को क्यों गंवाते हैं? जिस समय में वे शारीरिक कार्य करके कुछ पैसा कमा सकते थे उस समय को आखिर साहित्य के पठन-पाठन में क्यों व्यय किया जाता है? भले ही पठन-पाठन के इस व्यसन से कुछ लेखक कुछ पैसा कमा लेते हों परन्तु ऐसे लेखक को भी देखा गया है जो अपनी इस साधना में पड़ कर आजन्म रोटियों के मोहताज़ ही बने रहे। जब ऐसी बात है तो प्रश्न उठ सकता है कि आखिर इस 'कला कला' की बात में रक्खा क्या है। बहुत विचार करने के उपरान्त इस नतीजे पर पहुँचा जा सकता है कि पठन पाठन से हमारे मन को एक प्रकार की शान्ति अथवा संतोष की उपलब्धि होती है। जब ऐसी बात है तब 'कला कला के लिए' अथवा 'कला जीवन की साध्य और संस्कृत रूप है' या कला विश्व की यथातथ्य वस्तु स्थिति का चित्र मात्र है, इन कथनों में कोई सार है? दूसरी ओर आवाज़ उठाई जाती है कि साहित्य या कला जीवन का प्रतिबिम्ब है। या हमारे ठोस चक्षु जगत का एक manifestation या प्रदर्शन है। कला और साहित्य का विचार आज इस चक्की के पाटों के बीच पिस रहा है। एक अपनी अवास्तविकता और काल्पनिक आदर्श के बोझ से उसे ऊपर से दबाता है दूसरा उसे निरा पार्थिव रूप दे संसार की नग्न एवं वीभत्स क्रिया कलापों से उसे नीचे से कुचल रहा है। दोनों अपनी अपनी प्रमाण राशि लेकर आते हैं। साहित्य क्षेत्र में लेखादि द्वारा कुछ क्षण के लिए खासी चहल पहल मच जाती है। ऐसा क्यों है? हमारा सारा दृष्टिकोण आज एकाकी और एकांगी हो गया है। हममें आज यह क्षमता नहीं रही कि एक ही वस्तु को अलग अलग पलड़ों से तोल कर कोई समन्वयात्मक परिणाम निकाल सकें। हमारे पत्र पत्रिकाओं में यथार्थवाद और आदर्शवाद का एक वितण्डा छिड़ा हुआ है। आज की भाषा में उन्हीं को प्रगति और अप्रगति का नाम धारण कर लिया है। आज हमारे सामने रोटी का सवाल है। रोटी के सवाल को हल करने के बाद आखिर हमें क्या मिलेगा? यही न कि मानव के जीवन में एक प्रकार की तृप्ति और संतोष का भाव दिखलाई देगा। यह ठीक है कि जीवन में इन आवश्यकताओं की उपेक्षा करके हम एक क़दम भी नहीं बढ़ सकते। लेकिन साथ ही साथ केवल रोटी से पेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लेने मात्र से ही अगर हमारे सुख संतोष का प्रश्न हल होता तो आज दुनिया के करोड़ों लोग उस सुख शान्ति के नज़दीक पहुँच गए होते। पर ऐसा हुआ नहीं। रुपयों के ढेर के बीच भी वे मस्त और संतुष्ट न रह सके। आखिर क्यों? उन स्थूल सुख-साधनों की प्राप्ति से परे उनके लिए कुछ और प्राप्त करना शेष रह गया था जिसके अभाव में वे धनी होकर भी सुखी न हो सके। सम्पन्न होकर भी जीवन में बंधुत्व और समता का प्रकाश न देख सके। उपर्युक्त तथ्य को सामने रखकर हम इस निश्चय पर पहुंचते हैं कि जीवन की साधना किसी स्थूल नेत्र जगत से परे ऐसे तत्व के लिए है जिसे पाकर हम अपने में एक प्रकार से पूर्णता अथवा उसके किसी अंश का बोध करने लगते हैं और इसी साध्य को लेकर अमर कलाकार की वाणी उसके हृदय के छिपे आह्लाद और आवेग को लेकर लेखनी द्वारा फूट निकलती है। उसका सीमित अंतस किसी व्यापक सौन्दर्य के आलोक से देदीप्यमान हो उठता है और तब वह प्रत्यक्ष जीवन और जगत का अपने अंतस से एक गूढ़ सम्बन्ध पाता है। इसी सहृदयता और समन्वय के कारण यह सारा बिखरा विश्व और जीवन मनुष्य के समीप आ जाता है। इसी सार्थकता के कारण कला जीवन की अपेक्षा अधिक स्थायी, सत्य और सुन्दर है और इसी सत्य और सुन्दर की प्राप्ति के लिए हमारे प्रयत्न कम या अधिक अंश में चलते रहते हैं। जीवन की क्षणिकता और कठिनाइयों का परिहार करने के लिए आदि कलाकार ने प्रकृति के रूप में मनुष्य को सुन्दर सुन्दर उपहार दिये हैं। उनकी सुषमामय शान्त उपस्थिति मन में एक प्रकार का असीम आकर्षण पैदा करती है। अपने को इनके बीच पाकर मानव अपनी पीड़ा से कुछ क्षण के लिए मुक्त हो जाता है। प्रकृत पुरुष ने इसी प्रकृति और अपने हृदय की सहानुभूति के सामंजस्य से साहित्य की सृष्टि की है। लेकिन इस साहित्य या कला के निर्माण काल में वह व्यापक मानव की चिर आवश्यकताओं और युग की मांग की उपेक्षा नहीं कर सका है। यही कारण है कि प्राचीन कलाकार महत् के उस व्यापक संदेश को लेकर भी ठोस जगत को भूल नहीं गए थे। वे यह भली प्रकार समझते थे कि ऊंची से ऊंची कला और काव्य के लिए आखिर आधार इस जगत को ही चुनना पड़ेगा। कलाकार केवल कल्पना को लेकर जीवित नहीं रह सकता। उसकी उस मनोहर सुनहली कल्पना को खड़े होने के लिए कोई आधार चाहिये। कवि या कलाकार इस आधार या बिन्दु का चुनाव पृथ्वी की किसी जड़ या चेतन वस्तु से ही करता है। उसके बाहर रह कर कलाकार केवल स्वप्नदर्शी हो सकता है युग निर्माता नहीं। अतः कला की सुन्दर और संश्लिष्ट योजना के लिए हमें स्थूल का सहारा लेना ही पड़ेगा। पर केवल स्थूल के मोह से जुड़ कर हम पृथ्वी पर ही लेटे नहीं रह सकते। पृथ्वी पर निर्मित अपनी रचना को हमें ऊपर ही उठाना पड़ता है। बिना इसके कला का विकास कैसा? हम अपने भौतिक कार्यों से आकाश को छू लेना चाहते हैं, पृथ्वी के निकट ही बने रहने में हमें कभी संतोष नहीं होता। हमारे चालीस मंज़िल के मकान आज इसी बात के सूचक हैं। सम्पन्न देश भौतिक साधनों से आकाश को छूना चाहता है। कलाकार कल्पना और भावना के योग से अपने गगन-स्पर्शी महल का निर्माण कर, उसमें किसी असाधारण सुख और त्याग का समावेश कर अपने ऊपर उठने का दावा करता है। भारतवर्ष में जीवन और कला के मूल्य को कभी अलग अलग नहीं आंका गया है। जीवन का कला से और कला का जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। उन दोनों के बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध की पुष्टि होती रही है। जीवन से दूर साहित्य या कला निर्जीव मानी गयी है। लेकिन आज सौन्दर्य के निर्णय का प्रश्न है। एक दल कला का सौन्दर्य स्थूल वास्तविकता के चित्रण में मानता है। दूसरा उसी सौन्दर्य की व्याख्या करते समय मानव जीवन के चिर श्रेष्ठ आनन्द की उपस्थिति नहीं भूल सकता। एक कहता है जैसा जो है उसे वैसा देखने में ही सुख और सौन्दर्य है। दूसरा कहता है जैसा जो है उसे भाव और आदर्श का सम्मिलित रूप देकर देखने में ही शिवं और सुन्दरं की सृष्टि होती है, वहीं दोनों का भेद प्रारम्भ होता है। यह ठीक है कि जीवन और कला का सौन्दर्य एक दूसरे से अलग नहीं होना चाहिये। पर प्रश्न यह है कि यथार्थवाद सौन्दर्य की माप केवल सुख दुख की प्रतीतिवाहिनी धमनियों के आधार पर करता है। 'The one is a satisfaction of sensuous pleasure produced by combination of form and colour, the other a satisfaction of curiosity apart from any question of relation of these things to the purpose of life.'

आदर्शवाद का मूल मंत्र सीमित आत्म-बोध से मुक्ति करना है जिसे हम प्रतिदिन अपने व्यवहार में पाते हैं। जो साहित्य या कला केवल ऐन्द्रिक सुख की बोध गम्य है वह समय और स्थान के घेरे से बंधी हुई है। उससे महत् की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अनुभूति कैसे हो सकती है ? सच्ची और श्रेष्ठ कला वह है जो इस जगत के कण कण में व्याप्त महत् और व्यापक सत्ता को प्रकाश में लाकर हमारे सामने व्यवहार रूप में खड़ा कर दे, जो क्षणिक को चिर में बदल दे, सीमा को बंधनहीन कर दे।

आत्म परिष्कृति और जीवन के महत् में लय होना भारत के सामूहिक जीवन के स्वर रहे हैं। अतः जीवन और कला का सौन्दर्य एक दूसरे में प्रतिबिम्बित होना चाहिये। प्राचीन भारत का साहित्य जीवन के ऐसे आनन्दमय संगीत से अनुप्राणित हो चुका है। यह कला और जीवन के अविच्छिन्न संबन्ध के स्वीकारात्मक भाव का ही परिणाम है कि यहां का काव्य न तो केवल स्वप्नदर्शी ही हो सका है, और न निरे पेट की बात को लेकर ही उसने दौड़ लगानी शुरू की है। यही कारण था कि यहां की सभी श्रेष्ठ रचनाओं का स्रोत मानव के दैनिक दुख-दर्द, भौतिक आकांक्षाओं आदि से दूर नहीं रहा है। इस देश की यही परम्परा रही है कि जीवन की हीनावस्था में किसी अनुकरणीय कला की सृष्टि हो ही नहीं सकती। इसलिए कला को आदर्श रूप देने के लिए हमें जीवन को आदर्श और महान बनाना होगा। इन दोनों के विकास की मांग हमारे साहित्य द्वारा पूरी हुई है। हमें आज ऐसे ही साहित्य की आवश्यकता है जो एक ओर हमें सीमाहीन मानव के प्रेमलोक का अधिवासी बना दे और दूसरी ओर अपने पड़ोस के बिलखते-बालकों के आंसुओं एवं अर्ध-नग्न नारी की असमर्थता के पीछे छिपी हुई विषमता का उत्तर भी दे सके। साहित्य तो अखंड जीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। वह एक ओर हमारी कमजोरी पर व्यंग करके हमें उससे सावधान करता है तो दूसरी ओर हमारे आगे बढ़ने के लिए सुंदर भाव-मार्ग भी तैयार करता है। वह उपचारात्मक भी है और विकासात्मक भी। साहित्य एक साथ हमारी इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। डाक्टर की भाषा में वह रोग को रोकता भी है और रोग का उपचार भी करता है। इसलिए कला में आदर्श का तत्व उसे विकास की ओर ले जाता है एवं यथार्थ की अनुभूति उपचारादि द्वारा उसे सप्राण और समर्थ बना देती है। वह अनुकूल आदर्श को ग्रहण कर सके इस योग्य हृदय भूमि को तैयार कर देता है। 'कला कला के लिए' वाली बात यहीं बैठ जाती है। इस भौतिक जीवन के घेरे में कोई चीज अपने लिए ही नहीं होती। हमारे प्रत्येक व्यापार, चिंतन, एवं क्रिया के पीछे कोई इच्छा-शक्ति काम करती रहती है। वह इच्छा शक्ति किसी अनुकूल रागात्मक तत्व की प्राप्ति का एक निकट फल होती है। फिर कला को कला के लिए पूजने वाले पुजारी यहां कहां ? जीवन की सत्य अनुभूति और चेतना से शून्य कला बिचारी स्वतः सूखकर नष्ट हो जायगी। उपरोक्त तर्क और विचार के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साहित्य या कला न तो हमारी ठोस भौतिक आवश्यकता की प्रतीक है और न काल्पनिक आदर्श की छाया मात्र। वह तो जीवन के 'श्रेय' और 'प्रेय' का सुयोग है। और इस सुयोग से सुसम्पन्न साहित्य ही श्रेष्ठ साहित्य का स्थान पा सकता है।

गेटे के शब्दों में ससीम को असीम के समीप ले जाने की हमारी सतत चेतना भावमय होकर कला या काव्य के रूप में प्रकाशित होती है। ससीम की यह चेतना सौन्दर्य के अनादि रोग द्वारा अपने को बन्धनमुक्त करना चाहती है। उसकी यह व्याकुलता ही युग युग से कलाकार के शब्दों द्वारा प्रगट होती रही है :

'Each age has sung of beauty--
He who perceives it, is from himself set free.—Goethe.

"प्रत्येक युग ने अपने अपने सौन्दर्य के गान गाये हैं और जिसने इस संगीत को भली प्रकार समझ लिया है वह ससीम के बन्धन से मुक्त हो गया है।"

अतः हमें आज आदर्श और यथार्थ के झमेले में न पड़कर भीतर से ऐसे जीते-जागते चित्र खींचने होंगे मानव और समाज के भीतर ऐसी भावमयी वाणी प्रवाहित करनी होगी जो आदर्श की सीमा को छूते हुए भी जीवन के व्यवहार पक्ष की उपेक्षा न करे, जिसके वर्तमान अभाव के पीछे भावी का सुन्दर निर्माण छिपा हो, जिसके आंसुओं के अन्दर किसी अभावशून्य लोक की झांकी जगमगा रही हो और जो आज के खून से लथपथ मानव के भीतर से समता और प्रेम से युक्त मानव का दर्शन करा सके। आदर्श और यथार्थ का यह मिलन साहित्य में उपयोगिता और सौन्दर्य की सृष्टि करता है, उसे सतत अनुकरणीय बनाता है।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नारी का प्राप्य

श्री सुनीतिचन्द्र

शरत्चन्द्र ने नारी की अनमोल प्रतिमायें गढ़ी हैं। उन प्रतिमाओं में वह प्राण भी फूंक गये हैं। तभी तो वे उठती-बैठती, चलती-फिरती और बातें करती मालूम होती हैं। उनकी सजीवता वास्तविक जगत की सजीवता से कहीं बढ़कर है और इसका रहस्य है उनके साथ शरत् की एकता। शरत् उनके अन्दर ही लीन हो गये। अपने को देकर उन्होंने उन प्रतिमाओं को अनुप्राणित किया है। यह लवलीनता, एकरसता दीर्घकालीन साधना के फल-स्वरूप ही सम्भव हो सकती है। शरत् चन्द्र ने यह साधना की थी। तभी नारी के अन्तःकरण में प्रवेश करके सम्पूर्ण भाव से वह उसे देख पाये।

नारी के लिये शरत् की आन्तरिक श्रद्धा को माप सकना अत्यन्त दुरूह कार्य है। हम इस निरर्थक प्रयास में नहीं पड़ेंगे। इस श्रद्धा का ज़िक्र हमने यह दिखाने के लिये किया है कि शरत् ने नारी के मूल्य को अपनी समस्त अन्तर्वेदना के साथ समझा था और इसलिये वह इसकी इतनी भक्ति कर सके। यह भक्ति उन्हीं के द्वारा सम्भव थी। इतना विराट् अर्घ्य नारी को देने के लिये आवश्यक तपस्या और किसी में नहीं थी।

आदि काल से ही पुरुष समाज ने नारी के महत्व को नहीं समझा और उसकी वह हमेशा अवहेलना करता आया है। अवहेलना ही नहीं बल्कि अपने स्वार्थ के लिये वह उस पर अत्यन्त नृशंस अत्याचार करता आया है। इसके अनेक उदाहरण दुनिया के विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के इतिहास में भरे पड़े हैं। हिन्दू जाति ऐतिहासिक दृष्टि से एक अत्यन्त ऊँची और सभ्य जाति मानी जाती है। परन्तु वही अपने तवारीख इतिहास को उठा कर देख ले कि उसने नारी के साथ कैसा हीन व्यवहार किया है। "महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः" मात्र कहने से ही हम दूध के धुले नहीं हो जाते हैं। अभी १०० साल से कुछ ही अधिक की तो बात है जब उपर्युक्त विशेषणों से नारियों को विभूषित करने वाले पूर्वजों की यह सुसभ्य सन्तान ही पति के मरने पर पत्नियों को उसके शव के साथ ही चिता में झोंक देती थी। उस बर्बर प्रथा को मिटाने के लिये जब प्रातःस्मरणीय राजा राममोहनराय ने अपनी प्रतिभा, प्रभाव और अथक परिश्रम से क़ानून बनवाया तो हमारी यही हिन्दू जाति ही तो उन पर गालियों की बौछार के साथ फट पड़ी थी। धर्म की पताका फहराने वाले पोंगापंथियों ने सनातन धर्म की रक्षार्थ उस सुधार के विरुद्ध विलायत तक अपील की ताकि यह जघन्य व्यापार अबाधित रूप से चलता रहे। जब हिन्दू जाति जैसी उदार और न्यायप्रिय कौम ने नारी का प्राप्य नहीं देना चाहा तो दूसरों से ही हम इस सम्बन्ध में क्या अपेक्षा कर सकते हैं। शरत् चन्द्र की समस्त व्यथा यहीं केन्द्रित थी। नारी पर किये गये आघातों में हमारे समाज का आघात ही उनके अन्तर में जाकर सबसे अधिक बजा और उनका चीत्कार उनका पार्थिव शरीर उठ जाने पर भी आज भी हमारे कानों में बज बज उठता है।

शरत् नारी जाति के परम भक्त और मित्र थे। उन्होंने उसके गौरव को प्रतिष्ठित करने के लिये अथक परिश्रम किया। उपन्यासों के अतिरिक्त 'नारी का मूल्य' नामक निबन्ध में उन्होंने इस समस्या पर और भी अनेक दृष्टियों से प्रकाश डाला है। अन्यान्य उदाहरणों का उल्लेख करके उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला या उन्हें इसी निष्कर्ष पर पहुंचना पड़ा कि पुरुष ने नारी को भी अपनी सम्पत्ति का एक अंश माना और उसके साथ हमेशा वही व्यवहार किया। इसके विरुद्ध अपनी सारी शक्ति के साथ उन्होंने अपनी व्यथापूर्ण आवाज़ उठाई है। हमारा फ़र्ज़ है कि हम उस मनस्वी की पुकार को सुनें और समय रहते नारी को उसका प्राप्य दें। बिना नारी को उसका समुचित स्थान दिये हम एक सुखी और सर्वाङ्ग सुन्दर समाज की रचना नहीं कर सकते।

लेकिन शरत् की सारी अपील भावना के स्वर पर ही है। उसमें ओज है, तेज है, शक्ति है, परन्तु फिर भी वह भावना प्रधान ही है। शरत् ने स्त्री की आर्थिक आज़ादी के पहलू को छूकर ही छोड़ दिया है। उसको उसके आख़िरी नतीजे ( logical conclusion ) पर वे नहीं ले गये। हम इस प्रश्न पर इसी दृष्टि से विचार करना चाहते हैं। हम समझते हैं कि सिर्फ़ भावना के स्तर पर चाहे कितनी ही ज़बरदस्त अपील क्यों न हो वह कामयाब नहीं हो सकती। दिल में दर्द और बेचैनी पैदा कर देना ही काफ़ी नहीं है। अपनी अपील को क्रियात्मक स्वरूप देने के लिये कोई साधन भी खोज निकालना आवश्यक होता है।

हमारी धारणा है कि अपनी आर्थिक निर्भरता के कारण नारी को असह्य यन्त्रणायें भोगनी पड़ी हैं। नारी ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



क्यों पुरुष समाज में से ही जिन लोगों को आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है उनको क्या नहीं सहन करना पड़ता ? आर्थिक वैषम्य के कारण मानव समाज के तीन चौथाई से भी अधिक अंश को पशुओं के समान अपना जीवन व्यतीत करना होता है। इन सर्वहाराओं का जगत ही भिन्न बन गया है जहां सौन्दर्य का नाम नहीं, जहां अभाव और दैन्य का एकाधिपत्य है, वहां जीवन की न्यामत कहने लायक इस जगत में कोई वस्तु देखने में नहीं आती। जो कुछ है वह सब अत्यन्त वीभत्स और कुत्सित है। यह जगत असहायों का एक वृहत् समुदाय है। जो किसी प्रकार 'श्रीमान जगत' की गुलामी करते हुये आधा पेट खाकर और अर्धनग्न रहकर अपने दिन काटता है। आर्थिक निर्भरता के दुष्परिणामस्वरूप ही सर्वहाराओं का यह विराट समाज पशुओं से भी जघन्य जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य हुआ है। जिन पर इसे अपनी जीविका के लिये निर्भर करना पड़ता है, वह अपने धन दौलत के बल पर निरन्तर इसका शोषण करते हैं। इसके श्रम से विलास और ऐश्वर्य का एक मनोरम जगत निर्माण करके उसमें सुख से विहार करते हैं।

यही आर्थिक निर्भरता ही नारी की दुर्दशा के मूल में भी है। अन्तर इतना ही है कि उसके जीवन में यह और भी व्यापक और सम्पूर्ण भाव से समाई हुई है। मज़दूर की आर्थिक गुलामी में उसकी इच्छा अनिच्छा की फिर भी थोड़ी गुञ्जाइश है क्योंकि वह एक मालिक की गुलामी छोड़कर दूसरे की गुलामी करने के लिये एक हद तक आज़ाद है। नारी के लिये इतनी आज़ादी भी नहीं। उसे सर्वतोभावेन अपने भर्त्ता के ऊपर निर्भर करना पड़ता है। यही कारण है कि पुरुष समाज उस पर मनमाना अत्याचार करता आया है। और उसे उस अत्याचार को धैर्यपूर्वक सहन करना पड़ा है। नारी ने अगर कभी सम्मान पाया भी है तो वह पुरुष के विवेक के कारण नहीं परन्तु पुरुष की सौन्दर्यानुमति के कारण। इस सम्मान के पीछे एक नैसर्गिक नियम था, नारी का प्राप्य समझकर वह उसे नहीं दिया गया।

कुछ लोग इस कथन का प्रतिवाद सहस्र मुखों से करने के लिये अधीर हो उठेंगे। वह मनु महाराज के श्लोक ले आयेंगे, अनेक गृहों के उदाहरण देकर चीत्कार करके कहेंगे नारी हमारे गृहों की दीप्ति हैं, शोभा हैं, उनका वहां एकक्षत्र राज्य है, वह वहाँ की रानी हैं। पर हम उनसे थोड़ा धैर्य की प्रार्थना करेंगे और इस प्रश्न को व्यक्तियों और परिवारों में न बांटकर समग्र भाव से इस पर विचार करने के लिये कहेंगे। थोड़ी गहराई से देखिये कि हमारे घरों की [illegible] का 'रानीपन' क्या एक प्रवंचना मात्र नहीं है ? जब तक [illegible] अपनी ख़्वाहिशों, अपनी अभिलाषाओं, अपनी महत्त्वाकांक्षा [illegible] को मारकर आप के बनाये एक ख़ास मार्ग पर चलती [illegible] तब तक वह रानी हैं, उससे बाहर उनका भेड़ बकरी [illegible] मूल्य भी नहीं। यह 'रानीपन' का उपहास नहीं तो क्या [illegible] हम उच्छृङ्खलता के पोषक नहीं, हमारा अभिप्राय केवल इतना ही है कि आज़ादी ऊपर से लादे हुये बन्धनों का नाम नहीं है, स्वेच्छा से स्वीकार की हुई मर्यादा के अन्दर चलने का नाम है। और यह स्पष्ट है कि हमारी रानी को हमारे बनाये हुये दायरे के अन्दर ही कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटते रहने की आज़ादी है। उसके बाहर से बाहर आते ही किसी रावण द्वारा अपहरण का हमने उनके सर पर लटका रक्खा है।

और यह पुरुष द्वारा निर्मित मर्यादा मानकर नारी चलती क्यों हैं ? इसीलिये कि उसके लिये और कोई [illegible] नहीं है। इसके लिये पुरुष की निर्भरता के अतिरिक्त [illegible] सभी मार्ग बन्द हैं। घर से पैर बाहर रखते ही एक अ[illegible] समुद्र उसके सामने गरजता है, जो मुंह बाये उसे [illegible] जाने के लिये अधीर हो रहा है। क्या यह रानीपन [illegible] बिडम्बना नहीं है ? थोड़ा और सूक्ष्म दृष्टि से विचार [illegible] के देखिये। हर घर में प्रत्येक नारी को अपने को [illegible] दबाकर चलना पड़ता है। इसमें परिवार का कल्याण [illegible] निहित है, यह सही है, पर यह देखने की बात है कि [illegible] क्या यह समस्त संयम और ज़ब्त नितान्त स्वेच्छा से [illegible] है ? उसके पीछे कोई दबाव नहीं है ? इस प्रश्न का [illegible] को अपने मन लायक उत्तर नहीं मिल सकेगा। नारी [illegible] दीर्घकालीन अभ्यास के कारण उस दबाव को दबाव [illegible] माने, परन्तु उससे हमारे विश्लेषण में कोई अन्तर [illegible] पड़ता। नारी के १०० संयमों में से कम से कम ७५ [illegible] दबाव के कारण ही हैं। हमें इस कथन की सत्यता में [illegible] भी सन्देह नहीं है। ऐसे बलात् संयमों ने नारी जाति [illegible] जितेन्द्रिय और शक्तिशाली नहीं बनाया है, उसे हीन [illegible] दुर्बल कर दिया है। तभी तो उसके अन्दर अत्याचार [illegible] प्रतिरोध करने की प्रवृत्ति तक नहीं दिखाई देती।

हमारे यहाँ आर्थिक पहलू को हमेशा गौण स्थान [illegible] हुआ है। पता नहीं क्यों हमने उसकी उपेक्षा करने [illegible] गौरव माना है। लेकिन यह उपेक्षा वास्तव में हवा [illegible] रही है। वास्तविक जीवन में अर्थ संग्रह के लिये [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अन्दर कम आग्रह नहीं था। अब तो उसकी मात्रा और भी अधिक है। तो भी हम चिपटे अपनी पुरानी धारणाओं से ही हैं। अभी भी मानव समाज की व्यवस्था में आर्थिक पहलू को हम अहमियत देने के लिये तैयार नहीं होते। नारी के लिये आर्थिक स्वतंत्रता का नाम भी हमारे कानों में पहुंचने से दोष होता है और इसीलिये बहुतों को तो राम नाम लेकर कान ही बन्द कर लेने पड़ते हैं। इस जड़ता ने ही हमें इस दीनावस्था में पहुँचा दिया है, परन्तु हम अपनी दुर्दशा से सबक़ लेना नहीं सीखते।

हमें अपनी सामाजिक ज़िन्दगी में आर्थिक व्यवस्था को आवश्यक महत्व देना ही होगा। उस पर आवश्यक नियन्त्रण करके हम नर नारी के सम्बन्ध को एक बहुत ऊँचे धरातल पर ले जा सकेंगे। वहां किसी पर किसी का दबाव न होगा। नर नारी को एक सूत्र में बाँधने का साधन होगा उनका सहज आकर्षण और प्रेम। उस अपूर्व बन्धन में और कोई विजातीय मिश्रण न होगा। पर उसके पूर्व नारी को आर्थिक दासता से मुक्त कर देना होगा। वह पुरुष पर निर्भर करने वाली असहाय अबला न होगी वरन् उसकी सहगामिनी बनकर उसके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलेगी और इस प्रकार उसकी बाधा न होकर उसका मार्ग प्रशस्त करने वाली होगी। उस हालत में यह प्रश्न गौण होगा कि कौन अर्थ संचय करता है कौन नहीं। हो सकता है दोनों करें और यह भी सम्भव है कि एक ही करे। पर उसमें अनिवार्य किसी के लिये कुछ न होगा। अपने जीवन को सुन्दर और सुचारु बनाने के लिये जो कुछ आवश्यक होगा दोनों करेंगे। उनकी आज़ादी ही उनका बन्धन और उनकी मर्यादा होगी।

परन्तु यह सुख-स्वप्न पूरा होने के लिये समस्त मानव समाज की आर्थिक दासता हमेशा के लिये दूर होना लाज़िमी है। नारी को महज़ कानूनी अधिकार दे देना काफ़ी नहीं है। प्रकृति ने उसे शारीरिक दृष्टि से एक कोमल यंत्र बनाया है। वह क़ानूनी अधिकार पाकर पुरुष के साथ प्रतियोगिता नहीं कर सकती। प्रतियोगिता उसके लिये अथवा समाज के लिये स्वास्थकर भी नहीं है। प्रकृति ने उसे गढ़ा है सहयोग के लिये, प्रतियोगिता के लिये नहीं। अतः उसकी दी हुई आर्थिक स्वतंत्रता एक ख़ास आर्थिक प्रणाली में ही लाभदायक हो सकती है। कहने के लिये तो यूरोप ( रूस को छोड़ कर ) और अमरीका में नारी को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त हैं परन्तु वह वहां अपने को बहुत ऊँचा नहीं उठा पाई है। यही नहीं बल्कि कई महत्वपूर्ण दृष्टियों से तो उसकी स्थिति भारतीय नारी से भी दयनीय हो गई है। ऊपर की टीम टाम और आडम्बर चाहे कितना ही हो 'आधुनिका' आज सुख और आनन्द के सच्चे वैभव से वंचित है।

इसका कारण है उन देशों की पूंजीवादी व्यवस्था। नारी को क़ानूनी पुस्तकों में अधिकार प्राप्त हो गये हैं। परन्तु है वह आज भी दासी ही। यह दासता मानव समाज की वृहत् दासता का ही एक अंश है। मुट्ठी भर लोग सारे समाज का शोषण करते हैं और उसके रक्त मांस पर अपनी विलासिता और वैभव का भवन खड़ा करते हैं। नारी भी उनकी याचक बनकर रहती है और उनके लिये उसे अपना सर्वस्व अर्पित करने के लिये प्रस्तुत होना पड़ता है।

नारी अपने सम्पूर्ण गौरव के साथ अपने निर्दिष्ट आसन पर समाजवादी व्यवस्था में ही प्रतिष्ठित हो सकती है। समाजवादी व्यवस्था से मेरा अभिप्राय रूस के अनुकरण से नहीं है। उसके अभूतपूर्व प्रयोग से हम सबक ले सकते हैं परन्तु उनका अन्धानुकरण आवश्यक नहीं है, मुनासिब भी नहीं है। किन्तु यह स्पष्ट है कि आर्थिक क्षेत्र में 'व्यक्तिवाद' को हटाकर समाजवाद का कोई न कोई रूप प्रतिष्ठित करना होगा। उस अवस्था में उत्पत्ति के साधन व्यक्तियों के मातहत न होकर समाज के मातहत होंगे। समाज उन साधनों का समाज के लिये उपयोग करेगा, व्यक्ति के व्यक्तिगत लाभ के लिये नहीं। उस व्यवस्था में नारी अपना सम्पूर्ण सहयोग प्रदान करके अपना प्राप्य पा सकेगी क्योंकि उसमें एक दूसरे का शोषण करने की सुविधा किसी को नहीं रहेगी। किन्तु ऐसी व्यवस्था के लिये तो अभी न जाने कितने काल तक सर्वहाराओं को अपना रक्त बहाना पड़ेगा। नारी उस काल तक अपनी यंत्रणाओं को श्रेयपूर्वक सहन करके घरों में नहीं बन्द रह सकती। उसे बाहर आना ही है और सर्वहाराओं के प्राणान्त कर देने वाले युद्ध में हिस्सा बँटाना है। इस बीच में उसे अपने अन्यान्य अधिकारों के साथ साथ पुरुष के समान ही सम्पत्ति का भी समानाधिकार मिलना ही चाहिये। इसके प्रतिपादन के लिये या इसका औचित्य दिखाने के लिये बहुत तर्क वितर्क की आवश्यकता नहीं है। जो वस्तु सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट है उसे दिखाने के लिये दिया जलाने की आवश्यकता नहीं। नेत्रों के अभाव में सम्भवतः अन्धों को ही यह बात दूसरी तरह कौशल से समझाने की आवश्यकता हो, नेत्र वालों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नहीं। आशा है, अपने विवेक का सद्व्यवहार करने की सद्बुद्धि भगवान् हमें देंगे।

"स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु"

## नैतिक दृष्टि

परन्तु पुरानी परम्परा में पले हुये अनुभव के भार से दबी पलकों वाले बुज़ुर्ग शंकित हृदय से प्रश्न करेंगे—"लेकिन तुम्हारी नई व्यवस्था में पतिव्रत धर्म का क्या स्थान होगा?" यह प्रश्न बहुतों के कान खड़ा करेगा, बहुतों के दिलों में असमंजस और द्विधा पैदा करेगा। लेकिन यह प्रश्न करना केवल अपनी रूढ़प्रियता का परिचय देना है। नई व्यवस्था में हमें अपने पुराने मानव मूल्यों का मोह छोड़ना होगा। तभी तो नवीन व्यवस्था नवीन होगी अन्यथा 'नवीन' कहने के लिए उसमें रह ही क्या जायगा। नैतिकता आदि सापेक्ष चीज़ें हैं। एक वस्तु एक ख़ास स्थान और काल में नैतिक मानी जाती है और दूसरे स्थान तथा काल में वही वस्तु अनैतिक हो जाती है। ईसाई दुनिया में एक पत्निवाद एक धार्मिक नियम है परन्तु वह नियम तिब्बत वालों की दृष्टि में घोर स्वार्थपरता है, अतः अनैतिक है। कौन वस्तु या नियम नैतिक है और कौन अनैतिक इसका निर्णय किन्हीं पूर्व निश्चित धारणाओं पर नहीं हो सकता। इसको नापने की कसौटी हमें मानव समाज के समस्त कल्याण को मानना होगा। कोई वस्तु प्राचीन होने के नाते ही ग्राह्य मान लेने से हम प्रगति के मार्ग को हमेशा के लिये बन्द कर देंगे। अतः प्राचीन और नवीन के व्यर्थ के झगड़े में न पड़ कर हमें केवल यह देखना है कि हमारा सर्वतोमुखी कल्याण किसमें है। साथ ही यह भी देखना है कि हमारे मानस की नैसर्गिक माँग क्या है। इस निर्णय में हमारा विवेक हमें जिधर ले जाये उधर ही चलना चाहिये।

पतिव्रत धर्मादि बहुत अच्छी ऊँची चीज़ें हैं। यह वांछनीय आदर्श हैं। मानव समाज की सुव्यवस्था के ख़्याल से भी ऐसे आदर्श बहुत उत्तम हैं। किन्तु कोई भी आदर्श किसी से बलात् नहीं मनवाया जाता। आदर्श स्थिर करना और उसके अनुसार चलना यह हमारे अन्तर में स्थित किसी दैवी प्रेरणा की माँग है। यह भी मानव समाज का एक अङ्ग है। आदि काल से ही मानव विभिन्न प्रकार के आदर्श अपने सामने क़ायम करता आया है और उनके अनुसार अपने जीवन को भी ढालने की कोशिश करता आया है। यह उसके अन्तःकरण की पुकार थी। परन्तु कोई आदर्श किसी के ऊपर लादा नहीं जा सकता। उसकी सार्थकता भीतर से फूट पड़ने में है, ज्यों ही उसमें बाहरी दबाव पड़ा वह दूषित हुआ। उसको पालन करने के लिए मनुष्य विविध प्रकार के अन्य प्रयास भी करता आया है परन्तु उस सब में भी बाहरी दबाव की गुञ्जाइश नहीं।

'पतिव्रत' अथवा 'पत्निव्रत' के लिए भी यही कसौटी लागू होती है। ये सुन्दर नियम हैं, बहुत भव्य हैं, परन्तु इनकी भव्यता, इनका सौन्दर्य तभी तक है जब तक यह नर नारी के अन्तःकरण से अनायास ही फूट निकलते हैं। ज्योंही इनमें बाहरी दबाव आया त्योंही यह विषाक्त होकर उनके जीवन के लिये अभिशाप बन बैठते हैं, फिर तो लोगों के दाम्पत्य सम्बन्ध में इन महाव्रतों का लेकर मात्र रह जाता है। भीतर या तो 'बोतल' खाली होती है अथवा उसमें 'लेबेल' के अलावा और कोई दूसरा ही द्रव्य होता है।

नारी को सम्पत्ति अथवा स्वतन्त्र रूप से अपनी जीविका अर्जन के अधिकार से वञ्चित करके उसे पुरुष के ऊपर सम्पूर्ण रूप से निर्भर होने के लिए बाध्य किया जाता है। अतः उसके दाम्पत्य सम्बन्ध में यह 'बाध्यता' ही प्रकट हो उठती है चाहे उसका नग्न-स्वरूप हमारी आँखों से ओझल ही क्यों न रहे। उस स्थिति में उसकी यह लाचारी ही उसके जीवन का सत्य हो उठता है, उसका पति-प्रेम अथवा पतिव्रत धर्म नहीं। बलपूर्वक लादे हुये ऐसे आदर्श का क्या मूल्य? अब हम थोड़ा अपने वर्तमान् समाज पर भी नज़र डालकर देख लें सती सीता और सावित्री शायद आज भी अनेक निकल आयेंगी; किन्तु मैं पूछता हूं क्या वे नारी की संज्ञा देने लायक हैं? क्या हमारे बन्द घरों ने उनके चेतन मन की सत्ता ही नहीं नष्ट कर दी है और उन्हें मांस पिण्डों के अलावा और कुछ नहीं रक्खा है? ऐसी सीताओं से रूढ़िप्रियता संतुष्ट हो सकती है मानव का विवेक नहीं। ऐसी 'असूर्यंपश्या' सीताओं के मांसपिण्ड से जाग्रत् चेतन 'बसन्त सेनायें' हज़ार दर्जे भली हैं। उनके सहयोग से हम चेतनाशील शक्तिशाली समाज का निर्माण कर सकते हैं। सीताओं के मांसपिण्ड तो पीठ का मूल ही साबित होंगे।

तात्पर्य यह कि नारी को ज्ञान के प्रकाश से वंचित रखकर घरों में बन्द करके 'सीता' और 'सावित्री' [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




तोता रटन्त से ये आदर्श सजीव नहीं हो सकेंगे। उन्हें बन्धनपाश से मुक्त करके प्रकाश में लाना होगा जहां जगत का समस्त वैभव उनके सम्मुख होगा। स्वच्छन्द नागरिक के अधिकारों से भूषित होकर ज्ञान के उज्ज्वल प्रकाश में वह अपना मार्ग चुन लें और उस पर अपने समस्त अन्तर के आनन्द के साथ चल पड़ें। ऐसे उन्मुक्त वातावरण में रहते हुये यदि उक्त आदर्श उनके जीवन से फूट निकलें तो हम अपने भाग्य की सराहना करें। ऐसा न हो सके तो उसकी शिकायत भी न करें। मानव कल्याण मार्ग का पथिक है। उस हालत में भी कल्याण उससे छिटककर दूर नहीं जा सकेगा।

फिर मानव स्वभाव तो कोई पत्थर पर खींची हुई लकीर नहीं है। अनन्त तहें हैं मानव के अन्तर में। कभी कोई तह खुलती है कभी कोई। अतः जिन जोड़ों को अनुस्वार और विसर्ग पढ़कर बांध दिया गया है वह अन्तर से भी हमेशा के लिये बंध जांय, यह एक असाध्य साधन ही है। ऐसा करना बलात्कार का ही दूसरा रूप है। यह सही है कि इस रीति से भी कभी कभी अँधेरे में फेंका हुआ पत्थर निशाने पर जा लगता है, परन्तु यह तो कोई समझदारी की रीति नहीं है। यह जीवन का सौदा है। जिन्हें एक साथ ज़िन्दगी काटनी है उन्हें समझदारी के साथ एक दूसरे को परखकर यह सौदा करना चाहिये और समाज को इसका सुभीता देना चाहिये। इस पर भी भूल हो सकती है। अतः समाज को इस भूल सुधार की भी सुविधा अपने नागरिकों को देनी चाहिये। यह स्वयं सिद्ध बातें हैं। इनके लिये वाद विवाद और तर्क की आवश्यकता नहीं, फिर चाहे सीता सावित्री का आदर्श ठहर सके या न ठहर सके। पर यदि हम राम और सत्यवान बन सकेंगे तो शायद सीताओं और सावित्रियों का अभाव नहीं होगा।

आइये, एक बार फिर हम अपने वर्तमान समाज पर दृष्टिपात कर लें। देखिये वहां क्या वीभत्स व्यापार चल रहा है। कितने ऐसे विवाह हैं जो सम्पूर्ण रूप से सफल होते हैं। हमने बहुत से दम्पतियों को देखा है। ऊपर ऊपर से उनका जीवन अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है। परन्तु भीतर उनके अन्दर कितनी ज्वाला है इसका अन्दाज़ लगाना कठिन है। यह सही है वह ज्वाला प्रकट नहीं होती। लेकिन ऐसा इसलिये कि वह जानते हैं कि इसके प्रगट करने से कोई लाभ नहीं। समाज ने उनके लिये अलग होने का सम्मानजनक कोई मार्ग नहीं रक्खा है। अतः वह भीतर भीतर अपने अन्तर के असन्तोष का पोषण करते हुये घुलते हैं और अपने जीवन के अभिशाप से मुक्त होने के लिये यमराज की प्रतीक्षा में अपने दिन काटते हैं। इसके अलावा ऐसे भी हैं जो दूसरे उपायों द्वारा अपने जीवन में किसी प्रकार जीने के कुछ उपकरण ढूँढ़ना चाहते हैं। पर यह प्रयास और भी दुःखजनक साबित होता है। हमने रूढ़िप्रियता में पड़कर किस अनर्थ की सृष्टि कर ली है। इसका आभास हज़ार तरह से हमें मिल रहा है फिर भी हम आँखें नहीं खोलना चाहते। हम भूल गये हैं कि अन्तःकरण का आदान प्रदान हुये बिना विवाह एक प्रवंचना मात्र है। अन्तःकरण यदि नहीं मिल पाये तो चाहे फिर कितने ही मन्त्र और श्लोक पढ़े जायें उनका मूल्य नहीं। भांवरें ७ नहीं ७ हज़ार पढ़वाई जायें वे भी बेकार हैं। तो भी हम सारभाग की चिन्ता न करके छिलके के साथ ही चिपटे हुये हैं। हमारी नैतिकता अनुस्वार, बिसर्ग और भांवरों में रह गई है। मानो यही जीवन का सत्य है, मानव का अन्तर कोई चीज़ ही नहीं, उसका जीवन के चरम सत्य से कोई सम्बन्ध ही नहीं! यह हमारी कैसी समझ है!

## अभागिन बहिनें

आइये हम अपने इस वैभवपूर्ण समाज के एक और अङ्ग पर भी दृष्टिपात करते चलें जो उसका कोढ़ है। इस कोढ़ में से जो मवाद निरन्तर बह रहा है उसे वह चाट चाट कर अपने असाध्य रोग की और भी वृद्धि करता जा रहा है। यह कोढ़ है हमारी अभागिन बहिनें। इनके नारकीय जीवन को थोड़ा ध्यान से देखिये। विचार कीजिये इस गलित अङ्ग की किसने सृष्टि की है। किसने इन बहिनों को जीवन से सदा के लिये निर्वासन दंड दिया है। हमारी आर्थिक विषमता और हमारी नीति विषयक स्वार्थांधता तथा ठगबाज़ी ने। हमने न तो उन्हें अपने घरों में स्थान दिया और ना उनके लिये ससम्मान जीविकोपार्जन का कोई मार्ग ही खुला रक्खा। फलतः वह सैकड़ों हज़ारों नहीं बल्कि लाखों की तादाद में अपने नारीत्व का व्यापार करने के लिये बाध्य हुई हैं। इस पर भी हम मनु और पाराशरों की दोहाई देते हैं। अपने कण्ठ फाड़-फाड़ कर नैतिकता, धर्म, सतीत्व आदि के गुण-गान करते फिरते हैं। हम भूल जाते हैं कि अपने सतीत्व का सौदा करने वाली यह अभागिनें हमारे ही घरों की सीता सावित्रियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हैं। समझदारी का दावा करने वाले लोग भी कितने जड़ और मूर्ख हो सकते हैं यह उसी का ज्वलन्त उदाहरण है।

हमें नैतिकता के मिथ्या आडम्बर को हटाकर नारी के अन्तर में स्थित नारीत्व के महत्व को हृदयंगम करना होगा और उसको अपनी श्रद्धा देकर उसे उसके गौरव से प्रतिष्ठित करना होगा। जब तक हम उसे हर क्षेत्र में समानाधिकारों से विभूषित करके उसे अपने समकक्ष नहीं खड़ा कर लेंगे तब तक हम उसे ठगते ही रहेंगे। हम इस से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

---

# समस्या

श्री रामावतार यादव 'शक्र'

कड़ी धूप, जल रही अवनि, नभ से पावक वर्षण है जारी!
पश्चिम पवन वेग से चलकर धूल उड़ाता या चिनगारी!
पल-पल लू की लपटें आतीं, घर से बाहर आना दुस्तर!
ऐसे कठिन समय में भी वह कौन दीखता आज सड़क पर!

काला तन होगया झुलसकर, पर फावड़ा लचाए जाता!
उड़ती हुई धूल में सनकर निज अस्तित्व मिटाए जाता!
सूख गया है रक्त देह का, दिखलाते तन पर न स्वेद-कण!
मांसहीन सूखे शरीर में छिपा कहां बैठा मानवपन!

कमर झुकाए रहा देर तक, ज़रा खड़ा हो सुस्ताता वह!
उठते हैं कुछ भाव हृदय में, लगता तभी सोचने यह वह—
"हंसता आज महल यह मुझ पर, जाने क्यों यह उसको भाया!
अपने अरुण रुधिर से मैंने क्या न सींच कर उसे बढ़ाया!

"उसकी गोदी में कुछ मानव सोए सभी श्रान्ति निज खोकर!
ठंढक मिलती रहे, खींचता पंखा कोई बैठा बाहर!
सुनता मैं झिड़कियां उन्हीं से जो करते आराम अभी हैं!
मैं जलता ही रहूँ सदा, आती करुणा जिनको न कभी है!

"आया था कल ज़रा देर कर, किन्तु कटी आधी मज़दूरी!
हाय, ग़रीबों की दुनिया में क्या दुख की ही निधियां पूरी?
छोड़ूं यदि यह काम आज, उनका मोटर चढ़ाना रुक जावे!
कल से भूखे बच्चों को पर कौन आज जाकर समझावे!

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# 'गांधी और कबीर' में डा० बड़थ्वाल का स्वरूप

श्री शंभुप्रसाद बहुगुना एम० ए०, डिप० साइ०

सन् १९३३ ई० में काशी विश्वविद्यालय से जिस 'तरुण-दार्शनिक' ने ए० बी० कीथ जैसे विश्व-विश्रुत विद्वानों को अपनी 'हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा' ( The Nirgun School of Hindi Poetry ) से चकित कर[1] भारत और हिन्दी का भाल उज्ज्वल कर उसी दिसम्बर में सर जगदीशचन्द्र वसु और सर शिवस्वामी अय्यर के साथ साथ डाक्ट्रेट ( डी० लिट० ) की उपाधि पाई थी, उसे ही हम दो वर्ष बाद सन् १९३५ में 'गांधी और कबीर' की विचार-धारा के चिंतन में व्यस्त पाते हैं। भारतीय विश्वात्मवाद का यह सत्य खोजी विकासवाद का प्रबल समर्थक होने से 'गांधीत्व की गङ्गा का गोमुख मूलतः' कबीर की शिक्षाओं में देखने में समर्थ हुआ और अपने इस दर्शन की झलक अपने 'गांधी और कबीर' में दिखलाकर उसने उन सब परमुखापेक्षी विद्वानों को अपनी पैतृक संपत्ति की ओर भी दृष्टि डालने के लिये बाध्य कर दिया "जो महात्मा गांधी की विचार-धारा का मूल स्रोत ढूंढ़ने के लिये रूस, इंगलिस्तान और अमरीका जाते हैं।" अपने निबन्ध में इस दार्शनिक ने, जिसे हम डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल के नाम से जानते हैं, बतलाया है कि "गांधी के निर्माण में टालस्टाय, रस्किन और संभवतः लायड गैरिस्सन आदि के विचारों का भी हाथ रहा है सही, पर गौण रूप से। गांधीत्व की गङ्गा का गोमुख मूलतः कबीर की शिक्षाओं में है, जिन्हें उन्होंने माता के दुग्ध के साथ पान किया था और जो इसी कारण उनकी नस-नस में व्याप्त हैं। टालस्टाय आदि के विचार तो उनके हृदय में सोती हुई उस चिनगारी को सुलगाने मात्र में कारण हुए हैं जिसे उन्होंने अपनी माता के द्वारा कबीर से आध्यात्मिक दाय में प्राप्त किया था।" महात्मा गांधी और कबीर की विचारधारा से इस सूक्ष्म दूरी तक परिचित इस व्यक्ति को अन्य सामान्यों की तरह सन् १९३५ में अपनी हरिजन यात्रा के सिलसिले में काशी आये हुए महात्मा गांधी से कबीर-मठ में यह सुनकर विस्मय नहीं हुआ था कि 'मेरी माता कबीर पंथी थीं'। वरन् लोगों के विस्मय को दूर करने और महात्मा जी के सरल सत्य को स्पष्ट कर दिखाने के लिये ही उसे 'गांधी और कबीर' लिखने की आवश्यकता पड़ी। दोनों की विचारधाराओं में घना साम्य और परिस्थितिजनोचित वैषम्य दिखलाते हुए लेखक ने तो प्रश्न रूप में यहाँ तक संकेत कर दिया है कि गांधी के चरखे का कबीर के करघे से कोई सीधा लगाव है और इस लगाव में उस गरीबी की, उस मनुष्यता और उस आध्यात्मिकता की रक्षा होती है जो मानव जाति के सुख और शांति की सहायक है और जिनमें गर्व के बिना आत्म-प्रतिष्ठा, मूर्खता के बिना सरलता और गुलामी के बिना विनय प्रतिष्ठित हैं और जो मनुष्य को परालंबी नहीं स्वावलंबी और उद्योगी बनाती हैं।

"औद्योगिक उत्थान को गांधी वास्तविक सुख-शांति का प्रसारक बनाना चाहते हैं। नामदेव और त्रिलोचन की जीवनी से कबीर ने जो शिक्षा प्राप्त की थी—

'हाथ पाँव कर काम सब चित्त निरंजन नालि'[2]

वह गांधी के हृदय में भी प्रतिष्ठित है। सत्य के प्रकाश के सम्मुख खुली रहने वाली उनकी आँखों को वर्तमान औद्योगिक सभ्यता की चकाचौंध चौंधिया नहीं सकती। चकाचौंध मात्र से मशीनों को स्वीकृति नहीं मिल सकती। वे तभी स्वीकार की जा सकती हैं जब मानव जीवन में सुख और शांति की वृद्धि करने में अपनी व्यावहारिक योग्यता सिद्ध कर सकें। वर्तमान परिस्थिति में तो कलें मनुष्यों को पीसती हुई चल रही हैं। वर्तमान औद्योगिक सभ्यता में आत्मा को कोई स्थान ही नहीं। इसीलिये वह अग्राह्य है। चरखा और सीने की कलें भी कलें ही हैं परंतु वे इसलिये ग्राह्य हैं कि उनके द्वारा मनुष्य की मनुष्यता, उसकी आध्यात्मिकता नष्ट नहीं होती। वे मानव जाति की सुख शांति में सहायक होती हैं।"

---

१—देखिये, विशाल भारत, अक्टूबर १९४४ में श्री भक्तदर्शन एम० ए० का 'स्व० डा० बड़थ्वाल' शीर्षक लेख, पृ० ११३-११६

२—त्रिलोचन एक महाराष्ट्री साधु थे। नामदेव की प्रशंसा सुनकर वे बड़ी उत्कंठा से उनके दर्शनों को गये। वहाँ जाकर देखा तो उन्हें छींट छापते हुए पाया। उन्होंने नामदेव से ग्लानिपूर्वक पूछा—

नामा माया मोहिया, कहैं त्रिलोचन मीत।
काहे छापै छाइलै राम न लावै चीत॥

नामदेव ने इसका उत्तर निर्विकार रूप से दिया—

नामा कहै तिलोचना मुखाँ राम सँभालि।
हाथ पाँव कर काम सब चित्त निरंजन नालि॥

कबीर ने ये दोहे आदि ग्रंथ में संग्रहीत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



"मनस्यन्यद्वचनस्यन्यद् ने ही आज सब धर्मों को चौपट कर रखा है। सिद्धान्त रूप से तो सब परमात्मा की सर्वव्यापकता मानते हैं, सबमें परमात्मा का अंश और सब को परमात्मा के सम्मुख बराबर समझते हैं, परन्तु जब सिद्धान्तों को कार्य रूप में परिणत करने का अवसर आता है तब मनुष्य का आभिजात्य गर्व, अहंकार और अधिकार-मद ठेस खाकर व्याकुल हो उठता है और जो परमात्मा के सम्मुख बराबर हैं वे आदमी के सम्मुख ऊँच नीच हो जाते हैं। हमारे सब दर्शनों का जन्म ही संसार-दुःख का अन्त कर देने के उद्देश्य से हुआ है। परन्तु मनुष्य अपने ही व्यवहार से जिन विषमताओं, अन्यायों और अत्याचारों का अन्त कर सांसारिक जीवन में यत्किंचित शांति और सुख-संचार कर सकता है दार्शनिक क्षेत्र का परमार्थ और व्यवहार-भेद कथनी और करनी-भेद का आवरण बन कर उसे भी नहीं होने देता। कबीर का पदानुसरण करते हुए गांधी ने इस स्थिति के निराकरण का प्रयत्न किया है। इसी ने दोनों को 'पद-दलित शूद्रों का बन्धु' और विश्वात्म प्रेम का सच्चा मूर्तिमान व्यवहार तथा सत्य का सबसे बड़ा समर्थक बनाया है, गांधी और कबीर दोनों कथनी और करनी में पूर्ण साम्य के समर्थक हैं। जो वे कहते हैं वही करते भी हैं। वे मन, वचन और कर्म—सब में सामंजस्य बनाये रखते हैं। जीवन की वह शुद्धता जिसको वे लक्ष्य करते हैं, वाणी तक ही सीमित नहीं। वे उसे 'रहकर' दिखाते हैं। यही कारण है कि उनके विरोधी को भी उनकी सत्यता में अविश्वास नहीं होता और यही कारण है कि जगत के कोने कोने में उनकी सत्य-प्रसारक-वाणी श्रद्धा के साथ सुनी जाती है।"

सत्य आध्यात्मिक प्रेरणा को अपने जीवन का आदर्श बनाकर चलने के कारण ही गांधी और कबीर एक ही धारा के दो विभिन्न रूप हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी में जिसने कबीर का नाम पाया वही आध्यात्मिक प्रेरणा आज गांधी कहकर पुकारी जाती है। समय के इस अन्तर के होते हुए भी गांधी की सब से बड़ी विशेषता जो उन्हें कबीर के साथ ले जाकर रखती है, उनकी आध्यात्मिक प्रेरणा है। वे हमेशा उस परम तत्व तक पहुंचने का प्रयत्न करते रहे हैं जिसे उन्होंने कबीर के से शब्दों में अनिर्वचनीय ज्योति अथवा परमप्रकाश कहा है। उसी परम ज्योति में अपनी जीवन ज्योति मिला देने का उन्होंने सफल प्रयत्न किया है, उनकी आत्म कथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है। उनके सब कार्यों में वही ज्योति [illegible]

दुर्बल से शरीर को लोक-कल्याण में प्रवृत्त होने की शक्ति उसी ज्योति के दर्शन से प्राप्त हुई है।

"उसके दर्शन ने उनको सत्य का सबसे बड़ा [illegible] बनाया है। कबीर की ही भांति उनके लिए सत्य ही मात्र परमात्मा है। सत्य की स्वानुभूति के प्रकाश में वे जगत की सब बातों को देखना चाहते हैं। उनके कार्याकार्य का वही एक मानदण्ड है। अपने प्रत्येक के लिये वे उसी की अनुज्ञा चाहते हैं। उसी के शब्द की ओर वे हमेशा अपने कान लगाये रहते हैं, उसीके आदेश के अनुसार आचरण करने का करते हैं। फिर चाहे ऐसा करने में सारी दुनिया के जाना पड़े। इसी अभिप्राय से कबीर अपने को 'सत्यराम उपासक' और गांधी अपने जीवन को 'सत्य के प्र कहते हैं।

मनुष्य के हृदयस्थित सत्य परमात्मा को ही एक परमात्मा मानने और चराचर में उसके ही प्रेम के करने में गांधी और कबीर एक हैं, और सच्चे हिन्दू ही इसका पूर्ण विकास पाने से दोनों ने उसके प्रति दिखाई है और उसके असत्य अहितकर रूप को हटा का यथाशक्य अथक प्रयत्न किया है। जिस राम गुण गांधी जी गाते हैं वह कबीर के राम की भाँति ही दूसरा नाम है। "जहाँ कबीर कहते हैं, "दशरथ तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना", गांधी जी के सेक्रेटरी भी लिखते हैं—"प्रार्थना में का ध्यान निराकार सर्वव्यापी प्रभु की ओर रहता राम जिसको वे पूजते हैं, उनकी कल्पना का है, न रामायण का, न वाल्मीकि का।" ईश्वर अवतार अवश्य, परन्तु उसी अर्थ में जिसमें प्रत्येक मनुष्य का अवतार है। कबीर का अनुसरण करते हुए के हृदयस्थ परमात्मा की ओर संकेत कर जन सामने महत्व का अभिनव मार्ग खोल रहे हैं। लगन और दृढ़ सचाई के साथ यह मार्ग सब के सुगम है। मनुष्य को यदि अपने इस तात्विक महत्व सच्चा अनुभव हो जाय तो वह कितना ऊँचा उठ सके सच्चे देवलोक को, (इन्द्रिय लोलुपों के कल्पित स्व अभिप्राय नहीं) पृथ्वी पर उतार ला सकता है। और कृष्ण हो सकते हैं। गांधी का वह व्यवहार प्रयोगानुमोदित संदेश अन्याय और अत्याचार खुली ललकार है।

गांधीजी का धर्म सब विशेषताओं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से शून्य सरल धर्म है, जो सर्वदा और सर्वत्र एकरस रहता है। यदि कबीर के शब्दों में गांधी के धर्म का सार बतलाना चाहें तो कह सकते हैं—"साईं सेंती साँच रहु, औरों सूँ सुध भाइ।" परमात्मा में सच्ची लगन और प्राणि मात्र के साथ शुद्ध व्यवहार—यह धर्म का सार है। इसको काम में लाने के उपाय देश और काम की परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं, परन्तु यह मूल धर्म स्वयं बदल नहीं सकता। कबीर सब धर्मों में से पाखंड को हटा कर धर्म के इसी शुद्ध स्वरूप को लोगों के सामने रखना चाहते थे और गांधी भी सब धर्मों के आवरणों की ओर दृष्टिपात न कर इसी मूल तत्व की ओर दृष्टिपात करते हैं। इसी कारण सब धर्म और सब धर्म-प्रवर्तकों में उनकी श्रद्धा है। हिन्दू धर्म में उनकी विशेष श्रद्धा का कारण यह है कि वे उसी में इस सिद्धान्त का पूर्ण प्रतिपादन पाते हैं। वह उनकी दृष्टि में सार्वभौम अथवा विश्वधर्म है। गांधी जाति से हिन्दू हैं सही, परन्तु उनकी आत्म-कथा से पता चलता है कि उन्होंने हिन्दुत्व को अपने लिये फिर से ढूंढ़ा है। हिन्दुत्व की जो विशेषता गांधी जी को हिन्दुत्व के क्षेत्र में रख सकी वही जात मुसलमान होने पर भी कबीर को हिन्दुत्व के क्षेत्र में खींच लाई थी। कबीर हिन्दू भावनाओं और आदर्शों से इतने ओत-प्रोत थे कि मिस्टर विलसन को यहाँ तक संदेह हो गया कि हो न हो कबीर किसी हिन्दू सुधारक का उपनाम मात्र है।

मनुष्य की अहंमन्यता धर्म के वास्तविक रूप को केवल सिद्धान्त की ही वस्तु बना डालती है। व्यवहार में वह अपने स्वार्थों को देखने लगता है। हिन्दू धर्म में वर्णाश्रम व्यवस्था आरम्भ में समाज की शृङ्खला को सुरक्षित रखते हुए आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर प्रत्येक व्यक्ति के बढ़ सकने के उद्देश्य से ही की गई थी किन्तु समय के साथ मनुष्य के अहंकार ने उसमें ऊँच-नीच की ऐसी विषमता भर दी कि नीचों के प्रति घृणा की भावना, व्यवहार में अत्याचार तक पहुंच जाती है। अछूतों और दलित वर्गों की अवस्था हिन्दू समाज में कई युगों से इस प्रकार की हो गई है। मध्ययुग में कबीर ने और वर्तमान युग में गांधी जी ने पददलित शूद्रों के उद्धार का बीड़ा उठाया। कबीर के उद्धार में कमी थी तो यह कि मुसलमान वंश में उत्पन्न होने से उन्हें वर्ण-व्यवस्था का पूर्ण ज्ञान न था और गांधी जी के हरिजन आन्दोलन में दुर्बलता है तो यह कि हरिजन कहकर हरिजन शब्द का अर्थ (हरि भक्त) भी नहीं रह गया है और समाज की सुव्यवस्थित शृङ्खला में उच्छृङ्खलता फूट पड़ने लगी है। दूसरे की सहानुभूति के आश्रित होने की वृत्ति की प्रबलता इस आन्दोलन से इतनी बढ़ गई है कि उन्हें ऐसा अनुभव होने लग गया है कि जो हरि भक्त नहीं उसका जीवित रहने का अधिकार नहीं और शूद्र होना बुरा है। और उनका भविष्य नैराश्यपूर्ण होता जा रहा है। इन दुर्बलताओं और कमियों के बीच भी कबीर तथा गांधी के सदुद्देश्यपूर्ण हृदय की भावनाओं को पहचानकर उन्हें उनका उचित सम्मान डाक्टर बड़थ्वाल ने दिया है और वर्ण-व्यवस्था की समस्या तथा उन उत्पन्न परिस्थितियों की विषमता दूर करने वाले कबीर तथा गांधी जैसे सत्य खोजी महात्माओं की विचारधाराओं पर एक गम्भीर तेजोमय नवीन प्रकाश डालकर अपनी सत्यान्वेषिणी प्रतिभा और सार्वभौम विश्वधर्म की गहरी अनुरक्ति का परिचय दिया है।

"इस प्रकार गाँधी जी के हरिजन आन्दोलन का आरम्भ कबीर ने ही कर दिया था। कबीर के लिये हरिजन होने से बढ़कर जाति नहीं—'हरिजन सबीं न जाति'। इसलिये शूद्रों को हरिजन बनने का आदेश दिया है। गांधी भी उन्हें हरिजन कहकर यही जता रहे हैं कि हरिजन का पद सब जातियों से ऊपर है। पर कबीर ने हरिजन शब्द को शूद्र का पर्याय नहीं बनाया है। सब शूद्रों को हरिजन न कहते हुए भी उन्होंने शूद्रों को नीच समझने के लिये हिन्दुओं को खूब फटकारा है।

"जात मुसलमान होने के कारण कबीर को वर्ण व्यवस्था का विशेष ज्ञान न था। जिस व्यवस्था में शूद्रों के साथ ऐसा अन्याय होता है उसे उनकी दृष्टि में अवश्य ही हेय होना चाहिए। साथ ही उनका यह भी मत था कि वर्ण व्यवस्था आध्यात्मिक महत्त्व से सर्वथा शून्य है उसका ध्येय आदमी को केवल धन्धों पर जोतना है, जिनसे सकाम कर्म बढ़ जाते हैं और आवागमन का बन्धन दृढ़तर होता जाता है। इसीलिये उन्होंने क्षत्रियों को उद्दिष्ट कर कहा है—

खत्री कषै खत्रिया धरमो, तिनकूँ होय सवाया करमो।
जीवहिं मारि जीव प्रतिपारैं, देखत जनम आपनो हारैं।

परन्तु गांधी का मत इससे भिन्न है। उनकी विचार दृष्टि से देखें तो कबीर को उत्तर दिया जा सकता है कि फल से पेड़ पहचाना तो अवश्य जाता है, परन्तु यह भूल जाना चाहिए कि उचित रक्षा, कर्षण और सिंचन के अभाव में कभी कभी पेड़ और फल दोनों विकार-ग्रस्त हो जाते हैं। ऐसी दशा में उचित उपचार वृक्ष का समूल ना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कर देना नहीं है, प्रत्युत विकार के कारणों को हटाकर विकार को हटाने का प्रयत्न करना है। गान्धी जी तो यहाँ तक कहते हैं कि वर्ण व्यवस्था के बिना काम ही नहीं चल सकता। किसी न किसी रूप में वर्ण-व्यवस्था सर्वत्र है, परन्तु हिन्दू धर्म ही उसे पूर्ण वैज्ञानिक स्वरूप दे सका है, जिसके कारण हमारे जीवन को भौतिक लक्ष्य की दृढ़ एकमुखता प्राप्त होती थी तथा भौतिक जीवन के अनिश्चय और संदेह से मुक्त हो जाने के कारण आध्यात्मिक अन्वेषण के लिये कुछ अवकाश भी सुलभ हो जाता था।

आध्यात्मिक प्रेरणा को कबीर और गांधी दोनों ने अपने जीवन का परम आदर्श अवश्य माना है किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने भौतिक आवश्यकताओं की उपेक्षा ही कर डाली हो। बिना भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हुए आध्यात्मिक क्षेत्र में बढ़ सकना कठिन ही नहीं असंभव है। इस पर डा० बड़थ्वाल कहते हैं—

"प्राचीन काल में अध्यात्मवादी लोग भौतिक वस्तुओं को इतना तुच्छ समझते थे कि सब छोड़ छाड़कर जंगलों में जाकर एकांत सेवन करते थे। जगत् उनके महान सिद्धान्तों का व्यावहारिक लाभ नहीं उठा सकता था। काननों में सिंह मुनियों के तलुए सुहलाया करते थे और बस्तियों में महाभारत होते थे। राजा जनक का पदानुसरण करते हुए कबीर ने एक और पहलू से भी तपस्या को देखा। उन्होंने उस निर्बल तप की तुच्छता बतलाई, जिसका लोभ, मोह, मद, मत्सर से दूर काननों और कन्दराओं में ही निर्वाह हो सकता है। जिस तप में इतना बल नहीं कि इनके बीच में रहकर इनसे प्रभावित न हो वह नाम ही का तप है। तप का उद्देश्य शृङ्गी ऋषि बनाना, जनक बनाना है। वास्तविक तप वह है जिसके सामने मायिक शक्तियाँ स्वयं अप्रतिभ हो जायँ। लोक को क्षेत्र बनाकर चलने वाला तप वास्तविक अन्तः शुद्धि का स्वतः प्रमाण है और साथ ही लोक-शुद्धि का जनक भी। इसी मत ने रामानन्द और कबीर को मध्ययुग की बहुत सी सामाजिक विषमताओं को दूर करने के प्रयत्न में लगाया था।

"परंतु गांधी इससे एक पग आगे और बढ़ गये हैं। वे सामाजिक ही नहीं, राजनैतिक क्षेत्र में भी आध्यात्मिक भावना का प्रयोग करना चाहते हैं। उनकी शिकायत है कि सारी बुराई की जड़ आध्यात्मिकता का अभाव है। यही कारण है कि और जगह जो छल-कपट समझा जाता है वह राजनीति की सीमा में अनुचित नहीं माना जाता। राजनीति की सब निरंकुशताओं को दूर करने के लिये वे राजनीति के क्षेत्र में भी धर्म-भावना का उदय चाहते हैं। इसलिये उन्होंने सत्याग्रह के अस्त्र का निर्माण किया है। उन्हींके शब्दों में सत्याग्रह राजनीति में धर्म भावना के प्रवेश कराने का प्रयत्न है। राजनैतिक जीवन की कुटिलताओं को वे उसके द्वारा दूर करना चाहते हैं। इसीलिये उनके अनुसार वह बड़े से बड़े अत्याचारी को घुटनों पर ला सकता है।

"यह कबीर की आध्यात्मिक प्रवृत्ति के विरुद्ध नहीं बल्कि उनके सिद्धान्तों का सर्वांङ्गीण प्रयोग मात्र है। यदि कबीर आज होते तो वे भी संभवतः गांधी की ही भाँति राजनीति में आते दिखाई देते।

"परंतु गांधी जी के कार्य-संपादन के शस्त्रास्त्रों में आमरणोपवास अथवा भूख हड़ताल वाला उपाय शायद कबीर को पसंद न होता। आमरणोपवास की तो बात ही क्या है, कबीर व्रतोपवास तक में विश्वास नहीं करते थे। व्रतोपवास के संबंध में कबीर ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है—

अन्ने बाहर जे नर होवहिं, तीन भवन महिं अपनो खोवहिं।
अन्ने बिना न होय सुकाल, तजिए अन्न, न मिले गोपाल।

अन्न त्यागने से गोपाल नहीं मिल सकते, आध्यात्मिक सिद्धि नहीं हो सकती, यह कबीर का मत है।

"परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यदि कबीर गांधी जी के स्थान में होते तो वे भी आमरणोपवास का व्रत ठान बैठते। क्यों कि जिन महापुरुषों को किसी लक्ष्य की एकतान लगन होती है, औरों के लिये उनके विचारों की गति समझना बहुत कठिन काम है। सामान्य तर्क वहाँ बेकाम हो जाता है। ऐसे लोग बहुधा तर्काश्रित होने के बदले भावनाश्रित हो जाते हैं।

मेरा हृदय इस बात का तीव्र अनुभव करता है कि इस मंगलमूल भावनाश्रितता के आगे संसार का सारा तर्क निछावर कर दिया जा सकता है। संसार में यदि शास्त्रार्थी तार्किकों के स्थान पर टालस्टाय के मूर्ख ईवानों की सृष्टि होती, जिन पर गांधी इतने अनुरक्त हैं तो संसार अधिक शांत और सुखी होता।

"जनता गांधी को विशेष कर स्वराज-आन्दोलन के नायक के रूप में जानती है। परन्तु उनका स्वराज भी आध्यात्मिक है। जनता का भौतिक स्वराज्य तो उसका एक बाहरी लक्षण मात्र है। स्वराज्य से उनका मूल अभिप्राय अपने 'स्व' के ऊपर यम, नियम, शम, दम के द्वारा राज करना है। इंद्रियों को वश में कर काम, क्रोध, लोभ, मोह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri





आदि षड्रिपुओं के प्रभाव से बाहर निकलकर 'स्वराट्' होना ही असली स्वराज्य है। इसके प्राप्त हो जाने पर देश का स्वराज्य अपने आप साथ लगा चला आवेगा। इसी शर्त पर उन्होंने एक वर्ष के भीतर स्वराज्य ले आने का आश्वासन दिया था। परन्तु उनकी शर्त असंभव सी थी। सबका गांधी होना, स्वराट् होना असाध्य है। इसीसे लोगों की आशा पूरी नहीं हुई और चाहे जो हो, गांधी जी के लक्ष्य के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। इसमें भी संदेह नहीं कि कबीर ने भी शुद्ध संयत जीवन के द्वारा आध्यात्मिक राज्य में प्रवेश करने की ही प्रेरणा जन समाज को की थी।

"गांधी की शांति प्रसारक वाणी जगत के कोने-कोने में पहुँच चुकी है। सारा जगत आज उन्हें एक स्वर से इस युग का सबसे बड़ा महापुरुष मानता है। मुँह से कहने में चाहे कोई हिचके, परन्तु रङ्क से लेकर सम्राटों तक के हृदय में उनके प्रति अटूट श्रद्धा अंकित है। कबीर का नाम भी झोपड़ियों से लेकर महलों तक में अत्यन्त आदर के साथ लिया गया है। इसका कारण यह है कि दोनों भारतीय आध्यात्मिकता के सच्चे प्रतिनिधि हैं। भारत अग्रजन्माओं का देश है, जो अपने चरित्र से संसार को शिक्षा देते रहे हैं। भारत का यह अग्रजन्मत्व पांच शताब्दी पहले कबीर के रूप में प्रकट हुआ था और आज गांधी के रूप में प्रकट हुआ है। परमात्मा की जो विभूति, मानवता का जो महत्व पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर कहलाया, वही आज गांधी है। केवल आवरण का भेद है, तथ्य का नहीं।

"यदि कबीर अपनी ही कविता के समान, सीधी-सादी भाषा में उल्लखित आदर्श हैं तो गांधी उसकी और भी सुबोध क्रियात्मक व्याख्या। यदि प्रत्येक व्यक्ति इस विशद व्याख्या की प्रतिलिपि बन सके तो जगत का कल्याण हो जाय।"

इस भांति 'कबीर और गांधी' में डाक्टर बड़थ्वाल एक साहित्यिक आलोचक के रूप में ही नहीं वरन् एक भावुक तार्किक, सहृदय कवि, उदारचेता महात्मा, तरुण दार्शनिक और चिंतनशील तपस्वी और सत्य मानवता की वाणी बनकर आई हुई दिव्य विभूति के रूप में सामने आते हैं।

---

# दो कुम्हार

स्वामी सत्यभक्त

( १ )

कुम्हारों के दो कुटुम्ब थे। दोनों पड़ोस में रहते थे दोनों के घरों के बीच में सिर्फ एक मैदान ही था।

दोनों के कुटुम्ब दिन रात परिश्रम करते थे। क्या बच्चे क्या बड़े, क्या पुरुष क्या स्त्रियाँ सबको क्षण भर भी फुरसत नहीं थी। कोई मिट्टी लाता, कोई पानी भरता, कोई मिट्टी सानता, कोई चक्का घुमाकर मिट्टी के बर्तन बनाता और फिर आवा लगाकर अच्छी तरह से पकाता। कोशिश यह होती कि बर्तन इतनी अच्छी तरह से पकें कि ये लोहे की नहीं तो पत्थर की होड़ अवश्य करने लगें। दोनों कुम्हार कुटुम्ब इसी काम में दिन रात लगे रहते। उनकी मिहनत को देखकर कोई भी धन्य धन्य कह उठता।

और शाम के समय वे दोनों कुम्हार कुटुम्ब उसी मैदान में आ जाते और अच्छी तरह पकाये हुए मिट्टी के बर्तन एकत्रित करते और फिर उन बर्तनों का द्वंद-युद्ध कराया जाता। दोनों ही कुम्हार अपने अपने बर्तन एक दूसरे के बर्तनों से लड़ाते अधिकांश बिलकुल फूट जाते सो उनकी खपड़ियाँ मैदान की शोभा बढ़ाने के लिये छोड़ दी जातीं। कुछ के टुकड़े तो न होते पर उनमें पतली दरार पड़ जाती उन्हें बड़े यत्न के साथ और कोशिश की जाती कि क्या से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सुधारे जा सकते हैं जिससे दूसरे दिन फिर भिड़ाने के काम में आ सकें। पर जो बिलकुल साबित रह जाते उन्हें मालाएं पहनाई जातीं और उनका जुलूस निकाला जाता। घर लाकर उन्हें सम्मान के साथ ऊंचे स्थान पर रख दिया जाता।

यही थी उन दोनो कुम्हार कुटुम्बों की दिन चर्या, या जीवन चर्या। इसके द्वारा उन्होंने बड़ा नाम कमाया था।

( २ )

छुट्टी में जब मैं घर आया तो मैंने भी उन कुम्हार कुटुम्बों की शोहरत सुनी। पर उनके पागलपन पर मुझे बड़ी हंसी आई और हँसी से ज्यादा आई दया। मैंने सोचा—गधों के साथ रहते रहते बेचारे खुद गधे हो गये हैं और जीवन बर्बाद कर रहे हैं साथ ही मनुष्य जाति की भी बड़ी हानि कर रहे हैं। जो घड़े मनुष्य को ठंडा पानी पिलाते, खाने पीने की वस्तुओं को सम्हालने में काम आते वे मैदान में खपड़ियां बिछा रहे हैं, खुद भी बर्बाद हो रहे हैं और मैदान भी खराब कर रहे हैं।

सोचा, शाम के समय घूमते घूमते उसी मैदान की तरफ चलूँ। यह तमाशा देखूं और उन मूर्ख और आत्म-घाती कुम्हारों को समझाऊँ।

( ३ )

शाम को जब मैं घूमने निकला तब मैंने कुम्हारों पर रोब डालने के लिये अपनी सरकारी पोशाक पहिन ली थी। जब मैं मैदान में पहुँचा तब बर्तनों का द्वंद-युद्ध खूब ज़ोरों से चल रहा था। दोनों कुटुम्बों के बूढ़े जवान, पुरुष स्त्रियाँ सब सारी शक्ति और पूरी तन्मयता से उसीमें लगे थे। उस समय किसी को बात करने की भी फ़ुरसत नहीं थी।

जब द्वन्द-युद्ध समाप्त हो गया। घड़ों की खपड़ियों से मैदान पट गया और बचे हुये दो तीन घड़े लेकर कुम्हार कुटुम्ब अपने अपने घर जाने लगे तब मैंने एक कुटुम्ब के मुखिया से कहा—यह क्या गधापन करते हो! दिन रात घड़े बनाते हो और इस तरह फुड़वा डालते हो। जगह खराब करते हो, अपना परिश्रम बर्बाद करते हो और कंगाल बनते हो! जरा सोचो तो यह सारी शक्ति अपनी और जगत की भलाई में ख़र्च करो तो कितना अच्छा हो।

मुखिया ने सिर से पैर तक मुझे देखा और फिर हंसने व्यक्ति की तरह मुसकरा दिया।

मैंने कहा—मुसकराने का क्या मतलब? क्या मैं ठीक नहीं कह रहा हूँ।

उसने कहा—ठीक तो कह रहे हो, पर एक असती के मुँह से सतीत्व की बातें अच्छी नहीं मालूम होतीं।

मैं मन ही मन क्षुब्ध हो उठा। उसकी बात का अर्थ तो समझ में न आया पर मेरे लिये असती की उपमा दी गई है, इतना तो समझ ही गया। और मुझ सरकारी सैनिक का यह कितना घोर अपमान था इस कल्पना से ही मैं सिहर उठा। रेलगाड़ी में बड़ों बड़ों का अपमान करने वाला मैं इस तरह अपमानित हो जाऊं यह कल्पना भी असह्य थी पर उस समय शान्ति से काम करने के सिवाय दूसरा कोई उपाय न था इसलिये मैंने ज़रा शान्त रहकर ही कहा—यह तुम मुझसे क्या कह रहे हो?

उसने कहा—आप फ़ौजी सिपाही हैं न?

मैंने कहा—हाँ।

वह तो ठीक ही कह रहा हूँ। मैं थोड़े से मैदान में अपने हाथ के बनाये हुये घड़े फुड़वाकर खपड़ियाँ बिछवा रहा हूँ पर तुम परमात्मा की बनाई हुई मानव देह को फुड़वा कर खोपड़ियाँ बिछाते हो। लाखों मील ज़मीन बर्बाद कर देते हो। अरबों खर्बों रुपयों की बर्बादी कर देते हो। करोड़ों आदमियों का परिश्रम इसी बर्बादी के काम में बर्बाद करते हो? ज़रा सोचो तो यह सारी शक्ति अगर अपनी और जगत की भलाई में ख़र्च करो तो कितना अच्छा हो? दुनिया यहीं स्वर्ग बन जाये। पर तुम इसे कहाँ सोचते हो? अब बताओ मेरा गधापन बड़ा या तुम्हारा?

अनिच्छापूर्वक ही मेरे मुँह से निकल गया 'मेरा'।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दी के विस्मृत मुसलमान कवि जान

श्री रावत सारस्वत बी० ए०, विशारद

हिन्दी के मुसलमान साहित्यकारों का विस्तृत विवेचन करने की इच्छा से जब हमने यह कार्य सँभाला तो हमें बहुत से ऐसे लेखकों एवं कवियों के नाम मिले जो अब तक हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों को अज्ञात हैं। कवि 'जान' उनमें से एक हैं। शिवसिंह 'सरोज', मिश्रबन्धु और आचार्य शुक्ल के इतिहास में कहीं भी इनका नामोल्लेख नहीं किया गया है। कुछ वर्ष पहिले 'राजस्थानी' पत्रिका में पण्डित झाबरमल्ल शर्मा ने 'नवाब अलफ़खाँ और उनकी हिन्दी कविता' शीर्षक एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने जान कवि कृत 'कवि वल्लभ', 'सतवन्ती सत' तथा 'ज्ञान दीप' (?) इन तीन ग्रंथों का विवरण दिया था। श्री अगरचन्द्रजी नाहटा ने भी सम्मेलन पत्रिका में 'हमारे संग्रह के कतिपय अप्रसिद्ध हिन्दी ग्रंथ' नामक लेख में जान कृत 'शिक्षा सागर' और 'वैदक सत' नामक दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है। श्री मेनारियाजी ने अपनी खोज रिपोर्ट में जान का निर्देश किया है। किन्तु यह सब अत्यन्त अपर्याप्त ही है।

पण्डित झाबरमल्ल जी ने अपने लेख में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि फतेहपुर के नवाब अलफ़ खाँ ही कवि जान थे। किन्तु इस कथन की सत्यता का कोई भी पुष्ट प्रमाण न तो उन्होंने दिया और न कवि की ही रचनाओं में कहीं मिलता है। इसके विपरीत उक्त सिद्धांत की अप्रमाणिकता के उदाहरण हमें मिलते हैं जिनसे कम से कम यह तो अवश्य सिद्ध किया जा सकता है कि कवि जान और नवाब अलफ खाँ एक व्यक्ति नहीं थे।

जान कवि का असली व पूरा नाम क्या था इसका पता उनके ग्रंथों से नहीं मिलता। उन्होंने सभी जगह इसी नाम का प्रयोग किया है। हो सकता है कि इनका नाम जान मुहम्मद रहा हो और अपने असली तथा प्रचलित नाम में अधिक अन्तर न देखकर उसको स्पष्ट करने की आवश्यकता न समझी हो। परन्तु अपनी जीवन सम्बन्धी अन्य सूचनायें देने में भी तो हमारा कवि उतना ही उदासीन है। जो कुछ हम खींचतान कर निकाल सकते हैं वह यही है कि वे जाति के मुसलमान थे। इनका मुहम्मद स्मरण इनके मुसलमान होने का साक्षी है—

सुमिरन करौं मुहम्मद जी कौ है प्यारौ सब ही काहू कौ।
मुसलमान बन नबी न ध्यावै मुसलमान क्यों नाम कहावै॥
(नल-दमयन्ती)

इनका निवास-स्थान 'बागड़' प्रान्त में था क्योंकि इन्होंने स्वयं लिखा है—

"रहवो बागर मांझ किम भाषा आवै भली।"
(कँवलावती)

ग्रंथ 'पुहुप वरिखा' में दिए हुए इनके दौलत खान के प्रशंसात्मक वर्णन तथा अन्यान्य स्थानों पर उपलब्ध अलफ़ ख़ाँ के यशोगान से भी यह अनुमान किया जा सकता है कि हमारे कवि फ़तेहपुर नवाब से सम्बन्धित थे और फ़तेहपुर ही उनका निवास स्थान था। इनके ग्रंथों की सम्पूर्ण प्रतिलिपि भी फ़तेहपुर निवासी ताराचन्द सुत फतेहचन्द डीडवाणिया ने संवत् १७७७ में इनकी मृत्यु के लगभग ५० वर्ष बाद ही की थी। संभवतः एक स्थान पर एकत्रित इनके सम्पूर्ण ग्रंथों की दूसरी प्रति और कहीं भी उपलब्ध नहीं। हाँ, फुटकर ग्रन्थ बहुत सी जगह अवश्य मिलते हैं।

प्रेममार्गी सूफी शाखा के अन्यान्य मुसलमान कवियों की भाँति जान ने भी अलख, पैगम्बर, पीर और शाह की वंदना के बाद ग्रंथ का प्रारम्भ किया है। इन्होंने हाँसी के शेख़ मुहम्मद को अपना पीर लिखा है—

अब हौं करौं पीर परनाम सेख मुहम्मद जाको नाम।
हाँसी में जिनको बिश्राम संतत अबू हनीफ़ इमाम॥
(नल-दमयंती)

इनका रचना काल संवत् १६७० से लेकर १७२३ तक पड़ता है जो इनके विभिन्न ग्रंथों से प्राप्त होता है। ५३ वर्ष के इस दीर्घ रचनाकाल में इन्होंने मुग़ल सत्ता के वैभव और अवनति दोनों के दिन देख लिए थे। जहाँगीर से औरङ्गज़ेब तक के समृद्धिशाली समय में हमारे कवि ने अनेकों प्रेम कहानियाँ लिख लिखकर जनता का मनोरञ्जन किया। यद्यपि जहाँगीर, शाहजहाँ और औरङ्गज़ेब इन तीनों की ही वन्दना इनके विभिन्न ग्रंथों में मिलती है किन्तु इन्होंने अपने बहुत से ग्रंथ शाहजहाँ के समय में ही लिखे।

अपने ५३ वर्ष के इस दीर्घ रचनाकाल में हमारे कवि ने क्या ७० ग्रंथ ही लिखे यह एक विचारने का विषय है। इस शङ्का का कारण यह नहीं है कि यह संख्या कम है। इनके लगभग सभी ग्रंथों में यह उल्लेख किया गया है कि अमुक ग्रंथ इतने दिनों में या इतने पहरों में सम्पूर्ण हुआ। इन्होंने अपने बड़े से बड़े ग्रंथ के बनाने में १२ दिन से अधिक नहीं लगाये और कम से कम तो एक-दो पहर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भी इन्होंने ग्रंथ रचना की है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इनकी पद्य बनाने की प्रतिभा कितनी उच्च थी। इसके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

कथा पुरंदर की कथी सन सहस तेईस।
दोइ पहर में जान कवि भाषी बिसवाबीस॥
( कलावंती )

बहुत उतावर में करी
( रूप मञ्जरी )

ये आशु कवि थे। पद्य बनाने में इन्हें तनिक भी प्रयास नहीं करना पड़ता था। ये स्वयं लिखते हैं—

भाषा आनी जो मुख आई

तथा—

भाषा तुक जो मुख तें आई।
तातें बहुरि न उलटि बनाई॥

जब इनकी सभी रचनाएँ पहरों, घड़ियों और कुछ दिनों में ही की गई हैं तो यह सोचना अनुचित नहीं कहा जा सकता कि इनके ग्रंथों की संख्या और भी अधिक रही हो।

आधुनिक कहानियों और एकांकियों के लेखक जिस प्रकार अपनी रचनाओं पर मिनटों और सेकिण्डों में समय का उल्लेख करते हैं उसी प्रकार हमारे कवि ने भी अपनी रचनाओं में ऐसा उल्लेख किया है।

सुलभ कथा यहु जान कवि रूपमञ्जरी नाम।
स्रवन सुनी मुख उच्चरी लगे तीन ही जाम॥

वर्तमान लेखकों की भाँति हमारे कवि का उद्देश्य भी अल्प समय में जनता का मनोरञ्जन करना था, किन्तु इसका यह आशय नहीं समझ लेना चाहिये कि वे निरे तुक्कड़ थे। उनकी विद्वत्ता और वास्तविक भावुकता के सैकड़ों उदाहरण अनेक स्थलों पर मिलते हैं। तत्कालीन विभिन्न भाषाओं का जितना समुचित ज्ञान उन्हें था उतना शायद ही किसी अन्य मुसलमान कवि को रहा हो। अपने भाषा ज्ञान का उन्हें उचित गर्व भी है—

जौ लौं जगु मांहि वैस थिर रहै दोऊ नदी।
तौ लौं यही रहै विधि भाषा नदी जान की॥

संस्कृत साहित्य से इनका बहुत अच्छा परिचय था। इन्होंने "सिंगार तिलक", "रसुतरंगिनी" तथा "नाम माला अनेकार्थी" आदि ग्रंथों की भाषा टीका भी की है—

संस्कृत से भाषा भये है सकहीं आसान।

इसके अतिरिक्त "कवि-वल्लभ" जैसे अलङ्कार ग्रंथ की रचना इनकी विद्वत्ता का सर्वोच्च प्रमाण है। हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों एवं सभ्यताओं के विभिन्न ग्रंथों का इनका अध्ययन अत्यन्त विस्तृत था। इसीलिए 'जायसी' की भाँति अप्रतीत्व दोष इनमें कहीं भी नहीं आने पाया है।

इनकी भाषा अत्यन्त मधुर और प्राञ्जल है। इतनी सरस और शुद्ध भाषा का गर्व मुसलमान तो क्या हिन्दू कवियों में भी बहुत कम ही कर सकते हैं। इनके शृङ्गार और शान्त रस के चित्रण अत्यन्त सुन्दर हैं। इन्हें अपनी उक्तियों की मौलिकता पर अभिमान है जो उचित ही है—

मथन ग्रन्थ करिहैं जो कोई।
वाकी उकति न कहिहैं सोई॥
( कंवलावती )

इनकी भावपूर्ण और सरस भाषा के दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। भक्त की करुणापूर्ण वाणी में इन्हें कवि कह रहे हैं—

ना जप, ना तप, संजम ना, अपराधन सों सब देह भरी है
मोख उपाइ कियौ कछु नाहिंन, दोष के कीवे की बान परी है
चेतन नाहिं अचेत महाचितु, जौ परछाँहि जै आव ढरी है
एक अधार मुहम्मद जी को, और भली करनी न करी है

इनकी उक्तियों की नवीनता और मार्मिकता देखिए—

अति कारे लांबे अधिक, बार सचिक्कन नाम।
तीस टूक निस ह्वै गई, घरी कहत जग नाम॥

प्रस्तुत ग्रंथ में हमें कवि जान की ७० रचनाएँ मिली हैं किन्तु इसके आदि और अन्त के कुछ पत्र नहीं हुए हैं। संभव है यदि सम्पूर्ण ग्रंथ उपलब्ध होते तो रचनाओं की संख्या और भी अधिक होती। इन ग्रंथों के नाम तथा रचना संवत् पुस्तक में दिये हुए क्रम के अनुसार इस प्रकार हैं :

१—रतनावत सं० १६९१, २—लैले मजनू [illegible] १६९१ मकर संक्रांति, ३—रतन मञ्जरी हिजरी सन् १०[illegible] ४—नलदमयंती हि० सन् १०७२, ५—पुहुप बति[illegible] हि० सन् १०३७, ६—कंवलावती हि० सन् १०[illegible] ७—बारहमासा, ८—बरवा, ९—षट् ऋतु (बरवा बंध) १०—षट ऋतु ( पंवंगमछंद ), ११—छबि सागर [illegible] कलावंती हि० सन् १०२३, १३—[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मई १६४५ ]

१६९३, १४—रूपमञ्जरी सं० १६८५, १५—मोहनी सं० १६९४, १६—चन्द्रसेन राजा सीलनिधान सं० १६९१, १७—अरदसेर पातिसाह सं० १६९०, १८—कामरानी व पीतमदास सं० १६९१, १९—पाहन परिछा २०—सिंगार सत सं० १६७१, २१—भाव सत सं० १६७१, २२—विरह सत सं० १६७१, २३—बलूकिया बिरही हि० सन् १०४४, २४—तमीम अनसारी हि० सन् १०५५, २५—कलंदर सं० १७०२, २६—निरमल सं० १७०४, २७—सतवंती सं० १६७८, २८—सीलवंती सं० १६८४, २९—कुलवन्ती सं० १६९३, ३७—खिजरखां साहिजादा वा देवलदे सं० १६९४, ३१—कनकावती सं० १६७५, ३२—कौतूहली सं० १६७५, ३३—सुभटराय सं० १७२०, ३४—बुधि सागर सं० १६९१, ३५—चेतन नामा, ३६—सिख ग्रंथ, ३७—सुधा सिख, ३८—बुधिदायक, ३९—बुधि दीप, ४०—घूंघट नावा, ४१—दरस नावा, ४२—अलक नावा, ४३—दरसन नावा, ४४—बारह मासा (फुनिंग छंद), ४५—सत्त नावा सं० १६९३, ४६—वर्न नावा, ४७—बांदी नावा, ४८—बाज नावा, ४९—कबूतर नावा, ५०—गूढ़ ग्रंथ, ५१—देसावली, ५२—रस कोष सं० १६७८, ५३—उत्तम शब्द, ४४—शिक्षा सागर, सं० १६९५, ५५—वैदक सत सं० १६९५, ५३—सिंगार तिलक टीका सं० १७०९, ५७—पैमसागर सं० १६९४, ५८—वियोग सागर हि० सन् १०६६, ५९—रसु तरंगिनी टीका ( भानुदत्त ) हि० सन् १०६५, ६०—कंदर्प कल्लोल ६१—भावकल्लोल हि० सन् १०६६, ६२—पंदनामा लुकमान का हि० सन् १०७४, ६३—जफर नामा सेर खां हि० सन् १०७४, ६४—मान विनोद, ६५—विरही को मनोरथ सं० १६९४, ६६—पेम नामा सं० १६७५, ६७—नाम माला अनेकार्थी ( संस्कृत से अनूदित ), ६८—कविवल्लभ ( अलङ्कार ग्रंथ, ) ६९—सुधासागर, ७०—स्वास संग्रह।

अभी हाल ही में बीकानेर निवासी हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री अगरचन्द जी नाहटा को उनकी खोज यात्रा में झूंझणूं ( जयपुर स्टेट ) नामक शहर में जान कवि कृत "कायमरासो" और "अलफ़ख़ां की पीढ़ी" ( पञ्जाबी-मिश्रित ) नामक दो ग्रंथ मिले हैं जिनमें हमारे कवि ने स्पष्टतया लिखा है कि वे फ़तेहपुर के नवाब अलफ़ख़ां के दूसरे पुत्र थे और आपका नाम नियामत खां था। इन्होंने शाहजहाँ को अपना एक ग्रंथ भेंट किया था।

हिन्दी साहित्य के अन्वेषण का अङ्ग अभी कितना अधूरा है इसका सबसे बड़ा प्रमाण जान जैसे कवि की अज्ञातावस्था है। न जाने कितने ही महाकवि और प्रतिभाशाली कलाकार विस्मृति के आवरण तले दबे पड़े हैं। इस आवरण को अब शीघ्र ही हटा देने की आवश्यकता है। हिन्दी के इतिहास का सत्य स्वरूप हमें तभी मिल सकता है जब हमारे प्राचीन साहित्य की पूरी खोज हो जायेगी। इसके लिए साहित्य सेवियों को पर्याप्त द्रव्य और लगन लेकर कार्य में जुट जाना चाहिये। अभी तो सम्पूर्ण उत्तरी भारत इस दृष्टि से अछूता ही पड़ा है। जब तक राजस्थान के गांव गांव और घर घर में सड़ने वाले प्राचीन ग्रन्थों की छानबीन न हो जायगी तब तक हम हिन्दी साहित्य के इतिहास को पूर्ण नहीं मान सकते। सम्भव है एक थोड़े से प्रयत्न से हमारे आज तक के प्रतिपादित मत उलट पलट हो जाएं और हिन्दी के प्राथमिक इतिहास की तो शायद कायापलट ही हो जाय।

[ कवि जान की ग्रंथ सूची में जिन ग्रंथों का उल्लेख है उनकी पोथी ( अंतिम तीन को छोड़ कर ) हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग में उपलब्ध है। जिस पोथी के आधार पर यह लेख लिखा गया है वही पोथी हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने अगस्त के माह में खरीद ली थी। इस पोथी में दो ग्रंथ शेख़ अहमद कृत 'वियोग सागर' तथा 'मोहिनी' भी मिलते हैं। जान कवि के सभी ग्रन्थ आकार में छोटे हैं। बड़े से बड़ा ग्रन्थ बीस-पचीस पृष्ठों का है और अधिकतर ग्रन्थ तीन-तीन चार-चार पृष्ठों के हैं। उपरोक्त सूची में सभी ग्रन्थ प्रेमाख्यान नहीं हैं। प्रेमाख्यानों की संख्या लगभग बीस ही है। शेष प्रायः शृङ्गार रस, नायक नायिका भेद तथा वैद्यक शास्त्र के ग्रन्थ हैं। जान कवि की रचनाओं के विस्तृत परिचय के लिए पाठकों को 'हिन्दुस्तानी' १९४४ ई० की फाइल भी देखनी चाहिए —सम्पादक ]



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सिंहली कला पर भारत का असर

डा० भवानी चरण लाहा

इसमें ज़रा भी शक और शुबहा नहीं है कि ईसवी सन के पहले से लेकर चौदहवीं सदी ईसवी तक भारत और सिंहल की कला एक दूसरे के मेल जोल से साथ साथ बढ़ती रहीं। हमारे पास इस बात के काफ़ी ऐतिहासिक सुबूत हैं कि प्रियदर्शी सम्राट अशोक के समय भारत और सिंहल का घनिष्ट सम्बन्ध था। लेकिन उस बहुत बीते हुये ज़माने में भारत इस अपने पड़ोसी टापू को ज़रा भय की निगाह से देखता था। यहाँ के लोग समझते थे कि लंका सोने की बनी है और वहाँ बेहिसाब दौलत है। समझा जाता था कि लंका में नाग और यक्ष लोग बसते हैं। वह रहस्य और चमत्कार का देश समझा जाता था। रामायण में लंका का जो वर्णन है उससे पता चलता है कि वहां की सभ्यता और वहाँ की दौलत से लोगों को ताज्जुब होता था और वे उसकी बेहद तारीफ़ें करते थे। लंका पर दशानन रावण का राज्य था। राम सीता और रावण की कहानी आज भी भारत की सांस्कृतिक धमनियों में रक्त संचार करती रहती है। जनश्रुति के रहस्य से ढंकी हुई एक परम्परा है कि लंका का बङ्गाल से भी सम्बन्ध था। कहा जाता है कि बङ्गाल के राजा सिंह बाहु का पुत्र विजय अपने पिता की नाराज़ी के कारण एक जहाज़ में बैठाकर बङ्गाल से बाहर निकाल दिया गया। इधर उधर भटककर बुद्ध के महापरिनिर्वाण के दिन उसका जहाज़ लङ्का से जा लगा। उसने लङ्का के यक्ष बाशिन्दों का बध करके ताम्मपन्नि नामक शहर आबाद किया। उसके अनुयायी और साथी लंका द्वीप में बस गये। उन्होंने बहुत से शहर बसाकर विजय को अपना राजा बना लिया। इस घटना को रहस्य और आख्यायिका के आवरण में इस आश्चर्यजनक रीति से गूँथ दिया गया है कि जब हम सिंहल के ऐतिहासिक काल में आते हैं और सिंहल के इतिहास 'महावंश' और 'दीपवंश' को देखते हैं तब भी हमें वास्तविकता का कोई पता नहीं चलता। सच तो यह है कि इन ग्रंथों में ऐसी ऐसी अजीब घटनाओं का वर्णन है कि अनेक विद्वान इन इतिहास ग्रंथों को प्रामाणिक न मानकर केवल आख्यायिका मानते हैं। रिस डेविड्स के अनुसार—"ये ग्रन्थ अपने समय की परम्पराओं के दिग्दर्शक हैं और इनसे हम पुराने ज़माने की हालत का उसी तरह अन्दाज़ा लगा सकते हैं" जिस तरह फ्रान्स और इङ्गलिस्तान के पुराने इतिहासों से। गीगर भी रिस डेविड्स के मत का समर्थन करता है।

विजय के सिंहल पहुंचने का हाल सिंहल के रोज़नामचों में मिलता है। इन्हीं रोज़नामचों में कुछ अधिक विस्तार के साथ अशोक के पुत्र महीन्द (महेन्द्र) की सिंहल यात्रा और सिंहल निवासियों का महेन्द्र से बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का वर्णन भी है। किन्तु चूंकि अशोक के शिला लेखों में महेन्द्र की इस यात्रा का कोई वर्णन नहीं मिलता इसलिये कुछ इतिहासज्ञ इस यात्रा की प्रामाणिकता पर सन्देह करते हैं। किन्तु एक ठोस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। काठियावाड़ में गिरनार में जो अशोक का शिला-लेख उसमें इस बात का उल्लेख है कि अशोक ने ताम्रपन्नि में बौद्ध धर्म के प्रचारक भेजे। हालांकि ताम्रपर्णी नाम की दक्षिण भारत में एक नदी भी थी, फिर भी सिंहल के रोज़नामचों में यह दर्ज है कि ताम्बपन्नि सिंहल का एक भाग था। अशोक का यह 'ताम्मपन्नि' बाद 'तप्रोबेन' हो गया। चीनी यात्री हुएन-त्साङ्ग ने भी द्वारा सिंहल के बौद्ध धर्म स्वीकार किये जाने की बात लिखी है। 'महावंश' और 'दीपवंश' और सिंहल की अन्य भी सब एक राय से इस बात को मानते हैं कि महेन्द्र ने संघमित्रा के प्रयत्नों से ही सिंहल ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। गीगर ने इस प्रश्न को लेकर काफ़ी खोज की और उसका निश्चित मत है कि इस सम्बन्ध में जो प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं की ही प्रतिध्वनि करती हैं। सिंहल के इन रोज़नामचों में महेन्द्र के सिंहल विजय से पहले की उस घटना का वर्णन है जब सिंहल के राजा नामपिय तिस्स (२४७-२०७ ई० पू०) ने सम्राट अशोक के पास उपहार लेकर एक प्रतिनिधि मंडल भेजा था। सम्राट ने उन उपहारों को स्वीकार करते हुये अपनी ओर से ख़िलअत आदि के साथ अपना प्रतिनिधि भेजकर नामपिय का दूसरी बार राज्याभिषेक कराया और यह आदेश दिया कि वह "भगवान बुद्ध के बताये हुये मार्ग पर दृढ़ रहे।" अशोक का एक दूसरा शिलालेख इस बात का उल्लेख करता है कि जिन मुल्कों में सम्राट ने दूत बँटवाई उनमें सिंहल भी एक था। इन सब बातों से पता चलता है कि सिंहल का भारत के साथ नज़दीकी सम्बन्ध था और इसीलिये यह कुदरती था कि सिंहल भारत की सभ्यता और संस्कृति से बेहद प्रभावित होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अशोक के समय बौद्ध धर्म की उन्नति के साथ साथ कला का भी आश्चर्यजनक प्रादुर्भाव हुआ था। बौद्ध धर्म के कारण देश की नई ज़िन्दगी ने नये तरह की निर्माण कला, मूर्ति कला और चित्र कला को जन्म दिया। यही हाल बौद्ध धर्म स्वीकार करने के साथ साथ लङ्का का भी हुआ। वहाँ आध्यात्मिक, दिमाग़ी और कला के क्षेत्र में नई जाग्रति का दौर शुरू हुआ। यही बात बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद सुदूर पूर्व के देशों की भी हुई। सिंहल में उस ज़माने से कला के क्षेत्र में कला के भारतीय रूप को स्वीकार कर लिया गया।

सिंहली परम्परा के मुताबिक़ महेन्द्र सबसे पहले सिंहल में मिहिन्तेल की पहाड़ी पर उतरे। और मिहिन्तेल में ही सिंहल की कुछ सबसे प्राचीन इमारतें हैं जिनमें अम्बोस्थल और महाशय दागोबा ख़ास हैं। किन्तु सिंहली निर्माण कला के सर्वोत्तम अवशेष सिंहल की प्राचीन राजधानी अनुराधापुर में हैं। दागोबा भारतीय स्तूपों का एक वृहत गोलार्ध रूप है। वह देखने में भव्य किन्तु अपने प्रभाव में कठोर है। कहा जाता है कि साँची के स्तूप के माडेल पर ही शुरू शुरू के दागोबाओं का निर्माण हुआ। साँची के स्तूप के इस प्रभाव की एक दिलचस्प घटना बयान की जाती है। इस प्रभाव का कारण लोग महेन्द्र को बताते हैं। कहा जाता है कि महेन्द्र की माँ विदिशा की राजकुमारी थी और सिंहल जाते हुये महेन्द्र उससे चैत्यगिरि के बिहार में मिले थे। साँची को ही पहले चैत्यगिरि कहा जाता था जो महेन्द्र की माँ का ही बनवाया हुआ बताया जाता है और जहाँ वह भिक्खुनी की तरह रहती थी। इसलिए इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि महेन्द्र द्वारा बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के बाद देवनामपिय तिस्स ने महेन्द्र की सलाह से सांची के माडेल पर पहला दागोबा बनवाया। बहरहाल सिंहल के दागोबाओं पर भारतीय असर साफ़ साफ़ दिखाई देता है। इसकी एक प्रमुख मिसाल अनुराधापुर का तूपराम दागोबा है जिसे कहा जाता है भगवान बुद्ध की हँसली की हड्डी सुरक्षित रखने के लिये देवनामपिय तिस्स ने बनवाया था। अनुराधापुर में दुत्तगामिनी द्वारा बनवाया हुआ रुआनवेल दागोबा नामक महास्तूप का विस्तृत वर्णन हमें 'महावंश' में मिलता है। दुत्तगामिनि (१०१-७७ ई० पू०) सिंहल का सब में महान शासक था। यह दागोबा २७० फुट ऊँचा था। इसका धरातल भी इतना ही चौड़ा था। इसमें ७-७ फुट चौड़े तीन चबूतरे थे। नीचे ५०० फुट चौड़ी कुर्सी थी। दूसरे दागोबाओं ने भी इसी परम्परा को क़ायम रखा। किन्तु सिंहल के स्तूप ठोस हैं और ईंटों के बने हुये हैं। असल में अनुराधापुर टाइप के दागोबा कृष्णा की उपत्यका के अमरावती, नागार्जुन कोण्डा आदि के स्तूपों से ज़्यादा मिलते हैं। सिंहल के दागोबाओं में हर मोड़ पर एक चौकोर छज्जा बाहर की ओर निकला हुआ मिलता है जिसे 'वहलकड' कहते हैं। यह वहल कड नागार्जुन कोण्डा के स्तूपों के 'अयक खम्भ' से मिलता जुलता है। यह सही है कि रूप आकार में ये दागोबा भारतीय स्तूपों से मिलते हैं किन्तु उनकी निर्माण कला और उनकी सजावट में उनका अपना सिंहलीपन है। भारतीय स्तूपों से विपरीत सिंहली दागोबाओं में वहलकड या चबूतरों या सीढ़ियों को छोड़कर और कहीं सजावट नहीं होती। रेलिंग भी बहुत कम दागोबाओं में मिलती है। भारत में स्तूप का कलश पत्थर पर पत्थर रखकर गोल उठाया जाता है, सिंहल में उसे चौकोर उठाया जाता है। यह स्टाइल भारतीय स्तूपों की 'हर्मिका' से मिलती जुलती है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिस तरह आज तक बंगाल के बहुत से हिस्सों में गाँव के कलाकारों को 'पोतुआ' कहा जाता है और वे ज्यादातर सूत्रधार या बढ़ई जाति के होते हैं, उसी तरह सिंहल के संगतराश भी अपने को बढ़ई कहते हैं। अनुमान यह है कि ये संगतराश पहले पहल लकड़ी के मकान बनाया करते होंगे। तब से बढ़ई शब्द का इस्तेमाल मैमार और बढ़ई दोनों के लिये होने लगा।

अनुराधापुर के बाद पोलुन्नारुवा सिंहल की राजधानी बना। पोलुन्नारुवा की निर्माण कला में हमें साफ़ साफ़ द्राविड़ी असर दिखाई देता है। सदियों तक भारत और सिंहल के बीच न सिर्फ़ प्रेमपूर्ण और शान्तिमय सम्बन्ध क़ायम था बल्कि तामिलों या जैसा कि सिंहली उन्हें कहते थे दामिलों के बीच बहुधा युद्ध भी हुआ करते थे। चोल राजाओं ने एक बार सिंहल पर अधिकार भी कर लिया था और अपने वायसराय की मार्फ़त कुछ समय तक सिंहल पर शासन भी किया। यह बात ठीक ही है कि पोलुन्नारुवा मध्य कालीन निर्माण कला की स्टाइलों का एक म्यूज़ियम है। पोलुन्नारुवा में जो बौद्ध इमारतें हैं उनमें 'तूप राम' पर द्राविड़ मन्दिरों की छाप है। उसकी मेहराबें पटावदार हैं और उसकी सकरी तिकोनी खिड़कियां बुद्ध गया के मन्दिर की तरह हैं। पोलुन्नारुवा के हिन्दू मन्दिर चोलों के समय में बने हैं और उनकी स्टाइल भी चोल स्टाइल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जिस तरह निर्माणकला में उसी तरह मूर्तिकला में भी सिंहल की अपनी स्थानीय विशेषता पग पग पर चमकती है। सबसे प्राचीन मूर्तियाँ अनुराधापुर में मिलती हैं। वहाँ मन्दिरों की देहली पर एक के बाद एक अर्ध चन्द्राकार पत्थर जड़े हैं जिन पर फूल पत्ती और पशुओं या हंसों के झुण्ड अंकित हैं। हालाकि इनके खोदने का तरीक़ा भारतीय है फिर भी इनकी कल्पना सौ फ़ी सदी सिंहली है। देखने में यह चीज़ अत्यन्त सुन्दर मालूम होती है। नागों की आकृति भी भारतीय स्टाइल से मिलती जुलती है। इसरुमुनिया में जो दम्पति की मूर्ति है वह उत्तर भारत की गुप्त कालीन मूर्तियों से बिलकुल मिलती जुलती है। अब तक निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सका है कि दम्पति की यह मूर्ति किसकी है। मेरा यह सुझाव है कि यह मूर्ति विजय और यक्षिणी कुवेनी की है। मुझे नहीं मालूम कि यह सुझाव किसी और ने भी किया है। अनुराधापुर में बुद्ध की तीन विशाल खड़ी हुई मूर्त्तियाँ और दो बोधिसत्वों की मूर्तियाँ अपनी सजावट में अमरावती की मूर्तियों से मिलती हैं। ईसुरुमुनिया में जो पत्थरों को खोदकर अत्यन्त विशाल और आकर्षक मूर्तियाँ बनाई गई हैं उनकी तुलना मामल्लपुरम की पल्लव मूर्तियों से ही की जा सकती है। ईसुरुमुनिया की जो मूर्ति है वह निस्सन्देह कपिल की मूर्ति है। अनुराधापुर में बुद्ध की जो विशाल बैठी हुई मूर्ति है उसकी तुलना इसी तरह की उड़ीसा की मूर्तियों से की जा सकती है; हालाकि उड़ीसा की मूर्तियाँ बाद की हैं। सिंहली मूर्तिकार चालुक्य, चोला और पल्लव सब तरह की कलाओं का समन्वय कर अपनी छेनी को सजीव बनाते थे। किन्तु सिंहली मूर्तिकार की नकलची प्रवृत्ति नहीं थी। उसकी कला-आकृतियों में उसका अपना व्यक्तित्व सजीव होकर चमकता है। वह पुराने विचारों को अपना नया सिंहली जामा पहनाता है। उसकी बनाई हुई छोटी छोटी पीतल की मूर्तियाँ भी अत्यन्त सुन्दर [illegible] होती हैं। उसकी बनाई हुई सुन्दर मूर्ति स्वामी [illegible] मनिक्क वचगर की पीतल की मूर्तियों का बहुत [illegible] अध्यात्मिक और कलात्मक मूल्य है और ये मूर्तियाँ [illegible] तरह भी दक्षिण भारत की बनी हुई मूर्तियों से अपने [illegible] त्मक मूल्य में घटिया नहीं हैं। अन्दाज़ा यह लगाया जा [illegible] है और जो सही भी मालूम होता है कि इन मूर्तियों [illegible] दक्षिण भारत की कला का असर पड़ा है। फिर भी पार्वती देवी की पीतल की मूर्ति जो इस समय ब्रिटिश म्यूज़ियम में है और पराक्रम बाहु की प्रस्तर मूर्ति ने इस बात को साबित कर दिया है कि सिंहली कलाकार कलात्मक सृष्टि की कितनी ऊँची चोटी तक पहुँच सकते हैं।

जहाँ तक भित्ति-चित्रों का सम्बन्ध है पाँचवीं सदी में बने हुये सिगरिया की गुफ़ा के चित्र अपनी स्थापना अजन्ता से मिलते जुलते हैं और इस बात को साबित करते हैं कि चित्रकला में सिंहल ने कुछ कम उन्नति नहीं की। सिगरिया की परम्परा पोलुन्नारुवा के गल विहार में, पाटगल विहार और शिव देवल नं २ और त्रिंकोमगहर के भित्ति चित्रों में भी, जो सौ वर्ष बाद के हैं, दिखाई देती है। इन चित्रों में हमें वही सजीवता, सौन्दर्य, वही कोमलता और मृदुता और हरे भरे वृक्षों के बीच में सुन्दर और सुगठित लड़कियों की बोलती आकृतियाँ मिलती हैं जो सिगरिया की पुरानी कला में सिगरिया में आकाश से फूल बरसाती हुई अप्सराओं के चित्र हैं और पोलुन्नारुवा में अधिकतर जातक कहानियों को चित्रित किया गया है।

# किसान से ?

श्री राजेन्द्रप्रताप सिंह

तुम्हारे ही कन्धे पर आज
खड़ी मानवता की दीवार,
तुम्हारे ही सीने पर आज
खड़ा वह दिल्ली का प्रासाद,
जहाँ लगता है नित दरबार;
हुआ करते हैं जिसमें नित्य
तुम्हारे शोषण के प्रस्ताव !
विचारो तो—सारा धन धान्य,
रक्त से भरा हुआ वह थाल,
लिए जाते क़ानूनी चोर,
बने हो तुम असहाय निरीह !
तुम्हारी संतति के बल आज
विजय हो रहे अनेकों युद्ध;
युद्ध में शौर्य प्रदर्शन हेतु
मिल रहे स्वर्ण-पदक, औ क्रास !
कर रहे ग़ैरों को आज़ाद—
किन्तु कब होगे स्वयं स्वतन्त्र !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
76211

# समृद्ध भारत की ग़रीबी की बुनियादी वजह

प्रोफ़ेसर पी० ए० वाडिया एम० ए०

चारों तरफ़ आजकल भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण की बात सुनाई देती है। किन्तु मैं इसे बजाय 'पुनर्निर्माण' के 'निर्माण' ही कहूंगा और वह इसलिये कि जब भारत का आर्थिक निर्माण ही नहीं हुआ तो फिर पुनर्निर्माण की बात कैसी! मेरी सलाह है कि जब भी हम भारत के आर्थिक निर्माण की बात करें हमें इस देश के आर्थिक जीवन की कुछ बुनियादी सचाइयां समझ लेनी चाहियें।

हममें से ज़्यादातर लोग इस बात को जानते हैं कि भारत एक ऐसा देश है जहाँ बेहिसाब दौलत है किन्तु जहां दुनिया के सबमें ग़रीब लोग बसते हैं। इसी तथ्य के अन्दर भारत की समस्त आर्थिक समस्या की कुंजी है। जिन लोगों को भी इस देश की भलाई में दिलचस्पी है उन्हें आर्थिक निर्माण की योजना बनाने से पहले इस बुनियादी सत्य को हमेशा अपनी नज़र के सामने रखना चाहिये। एक दिन वह आयेगा और ज़रूर आयेगा जब हम उतने ही समृद्ध होंगे जितना समृद्ध हमारा यह देश है; पर उससे पहले आर्थिक योजना की वही स्कीम सफल हो सकती है जो हमारी ग़ुलामी और ग़रीबी को ध्यान में रखकर तय्यार की जाय।

यह मुल्क अपनी दौलत के लिये हमेशा से मशहूर रहा है। युगों से अपनी धनराशि के लिये उसकी ख्याति चली आती है। झुण्ड की झुण्ड लुटेरी विदेशी क़ौमें यहां आईं और यहां के लाल-रत्नों से अपनी ख़ाली झोली भर-कर ले गईं। आज भी बावजूद भारत की इस अथाह ग़रीबी के इङ्गलैण्ड और अमरीका में वहां के व्यापारी इस बात की योजना बना रहे हैं कि कैसे भारत का पूरा पूरा आर्थिक शोषण किया जा सकता है।

हमारे देश का रक़बा १,८०,००० वर्ग मील है जिसमें लगभग १,१०,००० वर्ग मील ब्रिटिश भारत का रक़बा है। भारत की ४० करोड़ आबादी में लगभग ३० करोड़ आबादी ब्रिटिश भारत की है। उत्तर से दक्षिण तक इस देश की लम्बाई लगभग २००० मील है और पूर्व से पश्चिम तक लगभग २५०० मील। यह देश क्या है एक पूरा महाद्वीप है। यहां का रक़बा ग्रेट ब्रिटेन के रक़बे से १५ गुना ज़्यादा है। हमारी स्थल-सीमा लगभग ६००० मील की है और जल-सीमा क़रीब ५००० मील लम्बी है। हमारी भौगोलिक स्थिति इस क़िस्म की है कि हमारा देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र बन सकता है या कम से कम एशिया, यूरोप अफ़रीका और आस्ट्रेलिया के व्यापार का मर्मस्थल हो सकता है।

प्रकृति ने हमें बेहिसाब सुविधायें दी हैं। सारे देश में ऊँचे पहाड़ खड़े हुये हैं जो मौसम के नियन्त्रण का काम करते हैं। हिमालय की पर्वत श्रेणियों के बारे में स्व० इक़बाल ने कहा है—

पर्वत वो सब से ऊँचा, हमसाया आस्माँ का,
वह सन्तरी हमारा, वह पासबाँ हमारा।

हाल की खोजों से पता चला है कि अकेले हिमालय के प्राकृतिक साधनों से ५ करोड़ किलोवाट जल-बिजली आसानी से बनाई जा सकती है। इस जल-बिजली से समस्त उत्तर भारत में बेशुमार औद्योगिक केन्द्र बनाये जा सकते हैं। पूर्वी और पश्चिमी घाट दक्षिण भारत की और विन्ध्या की पर्वत-श्रेणियां मध्य भारत की आवश्यकताओं को पूरा कर सकती हैं। देश में बड़ी बड़ी नदियां उत्तर से दक्षिण-पूर्व और उत्तर से दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती हैं। कुछ नदियां पूर्व से पश्चिम और कुछ पश्चिम से पूर्व की ओर बहती हैं। गङ्गा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी, तुङ्ग-भद्रा, कावेरी, ताप्ती, नर्मदा, कृष्णा न केवल जीवन दान देने वाली नदियाँ हैं बल्कि भारत के पवित्र धार्मिक जीवन में उनका विशिष्ट स्थान है। बड़े बड़े पर्वत, बड़ी बड़ी नदियाँ और उपजाऊ उपत्यकायें ही केवल इस देश को प्रकृति की देन नहीं हैं; हमारे यहां हर तरह का मौसम और हर तरह की आबहवा है। कुछ सौ मील का सफर करके हम गर्मी से ठण्ढे भाग और ठण्ढे भाग से गरम भाग में पहुंच सकते हैं।

अगर हम अपने पेड़ पौधों की दुनिया पर नज़र डालें तो हमें वहां भी प्रकृति की वही उदारता नज़र आवेगी। दालें, सब्ज़ी, तेलहन, जड़ी-बूटी, कपास आदि चीज़ें बहुत बड़ी मिक़दार में भारत में होती हैं। दुनिया का $\frac{1}{4}$ चावल और $\frac{1}{3}$ गेहूं हिन्दुस्तान में होता है। गेहूं और चावल के अतिरिक्त, ज्वार, बाजरा, चाय और जूट इस देश में बहुत



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अधिक होता है। जूट में तो हमारा एकाधिपत्य है। दूसरी फ़सलें जो यहां बहुतायत से होती हैं, वे हैं—जौ, मक्की, दालें, चना, गन्ना, आलू, रेशम, मूँगफली, नारियल, तिल, सरसों, नील, कहवा, अफ़ीम, तम्बाकू, सिनकोना, रबर और तरह तरह की इमारती लकड़ियां। हर तरह की आबहवा होने के कारण हमारे यहां पशुओं की भी बहुत क़िस्में हैं। उनकी तादाद भी बहुत है। इनमें जङ्गली और पालतू दोनों तरह के पशु शामिल हैं। बङ्गाल, आसाम और भारत के समुद्री किनारों पर मछलियों का काफ़ी बड़ा धन्धा चल सकता है।

जहां तक आधुनिक उद्योग धन्धों के लिये कच्चे माल की ज़रूरत है प्रकृति ने हमारे साथ दरिया दिली बरती है। हर तरह के आधुनिक उद्योग को चलाने के लिये सभी तरह के रसायनिक पदार्थ काफ़ी मिक़दार में यहां मिल सकते हैं और इस मामले में हम बिलकुल आत्मनिर्भर हो सकते हैं। कोयला, लोहा, जस्ता, सीसा, मैंगनीज़, ब्रोमाइट, टिन, अबरक, अम्बर, चूना, पेट्रोलिअम, प्लैटिनम, सोना, नमक, जवाखार आदि तरह तरह के खनिज पदार्थ हमारे यहाँ प्राप्य हैं। कोयला हमारे यहाँ इतना हो सकता है कि उससे हमारी सारी औद्योगिक ज़रूरतें पूरी हो सकती हैं। लोहा भी काफ़ी मिक़दार में होता है। कोयला और लोहा ही किसी भी देश के औद्योगीकरण के लिये बुनियादी चीज़ें हैं और ये दोनों यहाँ बहुतायत से मिल सकती हैं।

सौभाग्य से हमारे यहाँ इतनी बारिश होती है और इतनी बरफ़ गिरती है कि उससे हम सौ करोड़ किलोवाट बिजली बना सकते हैं जब कि हमें अधिक से अधिक औद्योगीकरण के लिये केवल एक करोड़ किलोवाट बिजली की ज़रूरत होगी।

इस सरवे से यह एकदम स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगीकरण के लिये भारत में बेहद स्वाभाविक साधन हैं। 'The Wealth of India' के अनुसार—"यहाँ खेती के लिये विस्तृत रक़बा है और ज़मीन काफ़ी उपजाऊ है। हर तरह के क़ीमती खनिज द्रव्य यहाँ मिल सकते हैं। हिन्दुस्तान में बड़ी बड़ी नदियाँ हैं और तिजारत के लिये समुद्री किनारा है। यहाँ वे समस्त साधन हैं जो किसी मुल्क को दौलत से भर सकते हैं।" किन्तु प्रकृति की उदारता हमारी ग़ुलामी की मोहर से बन्द जकड़ी है। दुनिया के सबमें अमीर देश के रहने वाले दुनिया के सब से ग़रीब आदमी हैं और जहाँ ग़ुलामी एक इशारा ऐसे ऐसे अकाल और महामारियाँ पैदा है जिसमें पचासों लाख आदमी स्वाहा हो जाते हैं। देश की ऊन, रेशम और कपास दुनिया की लाज सकती है वहाँ आज सैकड़ों द्रौपदियां वस्त्राभाव से हत्या कर रही हैं। जो क़ौम सोने के महल खड़ा करने क्षमता रखती है वहां के लोग चूहों के बिलों में अपनी ज़िन्दगी काटते हैं। भारत ग़रीब है किन्तु हमें न भूलना चाहिए कि इसकी बुनियादी वजह हमारी ग़ुलामी है। सैकड़ों न्यायप्रिय अङ्गरेज़ आज इस बात को मानते कि भारत में करोड़ों आदमी ऐसे हैं जिनकी समूची ज़िन्दगी में कभी एक दिन के लिये भी भूख नहीं बुझती। जब अमरीका के रहने वालों की औसत आमदनी १०० रु. है हमारे यहाँ की औसत आमदनी केवल ५४ रुपया है हमारे पास साधन हैं, खनिज द्रव्य हैं, धन जन है, महान् आकांक्षायें हैं और इन सबके अतिरिक्त एक साख है कि इतना बड़ा साधन-सम्पन्न देश आज इसीलिये ग़रीब चूंकि दुनिया की बागडोर आज जिन पूंजीवादी साम्राज्यवादी हाथों में है वे उसे केवल अपने शोषण एक ज़रिया मात्र बनाये रखना चाहते हैं।

आर्थिक निर्माण के लिये आधुनिक साधनों औद्योगीकरण की ज़रूरत है जिसके लिये देश की नैतिक आज़ादी पहली शर्त है और राजनैतिक आज़ादी प्राप्त करने का एक मात्र उपाय वही है जो गान्धी जी बता रहे हैं और गान्धी जी के बताये हुये मार्ग बुनियादी ईंट चरखा और ग्रामोद्योग है। यह दलीलों एक ऐसा अकाट्य सिलसिला है जिसको नज़र अन्दाज़ करके हम कभी सफल नहीं हो सकते। दूसरे रास्ते से में भले ही दस पाँच बिड़ला, टाटा और मोदी हो जाएं हैं पर देश समृद्ध नहीं हो सकता। देश की समृद्धि का बुनियादी क़दम इस समय चरखा ग्रामोद्योग ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कंबल परेड

श्री भारतचन्द्र बी० ए०

क़ैदी नंबरदार बीससाली था। ख़ून के ज़ुर्म में सज़ा हुई थी उसे। दिखता तो लड़का सा था पर एक ही नज़र में लगता था कि है पका हुआ, छंटा हुआ। सात साल पूरे कर रहा था। नाम उसने बतलाया था गोविन्द! ऐसे तो सीधे बोलना यदि वह जानता भी रहा हो तो क़रीब क़रीब भूल चुका था। 'आप' उसे याद था, ख़ास ख़ास वक्त इसीसे काम लेता। मेरे ही गुनहखाने (सेल) से लगा हुआ उसका गुनहखाना था। कभी कभी आ बैठता तो गुनहखानों के क़िस्से सुनाया करता; ऐसे ऐसे कि सुनकर दया आती, रोमांच होने लगता, डर लगने लगता, प्यार आता, उबाल आता और आता अपनी बेबसी पर तरस। ग़रज यह कि गुन्तारे ही में समय कटता।

आफ़िसरान राऊण्ड ले चुके थे। गोविन्द हल्का हो मेरे पास बोझिल बना खड़ा था। मैंने समझा शायद ब्लेड मांगने का ही यह बहाना है। हो सकता है बीड़ी ही मांग बैठे। पर ऐसा उसने कुछ न किया। चुप ही रहा।

मैंने पूछा—कहो गोविन्द। वह कातर हो मेरे बन्द सींकचों के पास आकर बैठ गया। पहली ही बार वह मेरे सामने इस तरह कमज़ोर बना बैठा था।

बीड़ी चाहिये क्या?—मैंने पूछा। प्रश्न का कोई जवाब न दे वह चाबियां खनखनाता हुआ चला गया। मैं इस असाधारण व्यवहार पर सोच ही रहा था कि वह फिर आया।

—भय्या, छूटने का वक्त क़रीब आ गया है। दया की दरख्वास्त दी है; शायद मंजूर हो जाय। गहरी सांस लेकर वह कहने लगा आप मुझे एक पैजामा और एक कमीज़ देंगे क्या? मैंने उसे हृदयहीन, रूखा और कठोर ही पाया था। मेरी उत्कण्ठा बढ़ी। मैंने उसे खोदना शुरू किया—छूटकर घर जाओगे गोविन्द?

शून्य दृष्टि उसकी भटकी। घर जाऊँगा—आकाश की ओर देखते हुए उसने कहा।

तुम्हारी शादी हो गई है न?—जैसे वह मचल पड़ा हो। प्यार, मोह और आतुरता एक साथ ही उन धंसी हुई तेज़ आंखों में चमकी। सम्हलते हुए उसने रुक रुककर कहा—शादी हुई थी; मां थी, बाप था, मैं था। मैं आगया। बाप मर गया। माँ को भूखों मरे थोड़े ही दिन हुए हैं और औरत क्या जाने हो, न भी हो? अनमना सा होकर वह जाने लगा।

मैंने समझा शायद आंसू पोछने ही गया होगा। घूमते हुए 'गोल अफ़सर' आता दिखाई दिया। गोविन्द का एकाएक चला जाना समझा। मुझसे बातें करते पाया जाना उसके हक़ में जुर्म था। आंखें बचाकर चले जाने का प्रयत्न किया था उसने। असफल रहा। उसकी 'पेशी' हुई। दो-दो चार चार बातें होगईं। 'नंबरदारी' उसकी छिन गई और अपने ही उस गुनहखाने में वह धांध दिया गया। दीवाल भर की आड़ थी। आवाज आ जा सकती थी। मैं सुन रहा था उसका खटखटाना। मैंने भी प्रत्युत्तर में खट-खटाया। धीरे धीरे उसने कहना शुरू किया—"मैंने कोई खून थोड़े ही किया था। पर जुर्म लगाया गया। मैं आ गया। अब चला भी जाऊँगा। हरा हरा आया था वीरान होकर जाऊँगा।...आशंका से खटखटा कर उसने पूछा—'भय्या'—और वह चुप हो रहा।

मैं उसकी आतुरता और उस उतावलेपन पर ज्यादा सोचता था। उसकी नम्बरदारी का चला जाना मुझे अखरा था नहीं, नहीं मालूम। मैं उसका जेल से बाहर का भविष्य सोच रहा था। खटखट सुन पड़ा, कहने लगा—झगड़ा होगया था गोल आफिसर से इसी कारण अपने इसी गुनहखाने में धांधा गया हूँ। मालूम नहीं क्या हो!

उसकी तुलना में मैंने एक तिहाई भी जेल नहीं काटी थी। क्या हो क्या नहीं, यह मैं क्या बतलाता। हां, इतना था कि कुछ होगा अवश्य ही। इतने क़ैदियों के बीच गोल आफ़िसर से ज़ुबान लड़ाने की सज़ा केवल गुनहखाना ही हुई तो क्या हुई। मैंने इतना फ़र्क़ पाया कि अब उसने बाहर की बातें न सोचकर क्या होगा इसी पर तर्क शुरू किया था। शायद है 'माफी' कट जाय, शायद मुझे कुछ साल और यहां रहना पड़े, शायद...शायद! और उसका सोचना प्रायः बंद हो गया। वह चुप हो रहा। मैंने पुकारा, गोविन्द, गोविन्द! पर वह चुप रहा। दीवाल पर कान लगाकर मैंने उसकी हरकत का अंदाज़ लगाना शुरू किया। मैं सुन रहा था, वह सिसका था और फिर हंसा; फिर खटखटा कर उसने बड़बड़ाते हुए कहा और फांसी ही हो जाती तो? मैंने समझा बेचैनी में सिर फिर गया दीखता है। मैं भी सोने की कोशिश करने लगा।

हर तीसरे घण्टे पहरा बदलता था। हर बदलते पहरे पर हमें उठाया जाता। हम कुछ न कुछ जवाब देते तभी पहरेवाला हटता नहीं तो पानी का छींटा देता या वह कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नहीं तो रे, तू, बकता और कुछ न कुछ कहने पर मजबूर करता ही। ऐसा ही पहरा बदला था। नींद उचटा दी गई थी। उस नींद में मैं सीमेंट की क़बर ( Bunk ) पर पड़ा पड़ा अपना अतीत सोच रहा था कि आंखों को धुंधला प्रकाश दिखा। कानों ने फुसफुसाहट सुनी और होशियारी से चलते हुए क़दमों की भनक आई। ख़याल हुआ दिन निकलने वाला होगा या कोई फांसी पर ले जाया जाता होगा। पर दूसरे ही क्षण लगा तो इतनी होशियारी की क्या ज़रूरत? रतजगे, कैदी (Night-watchmen) अपनी अपनी "ड्यूटी सब ठीक है" चिल्ला चिल्लाकर बजा रहे थे। मैं अपने सन्देह को उनकी आवाज़ में डुबाने का प्रयत्न करते हुए अपना ध्यान बँटाना चाहता था। पर सिर विद्रोह करता हुआ लगा।

अंधेरा डराने सा लगा था। मेरे गुनहखाने की दीवार पर खपरेल से खरोंच कर मोटे हरफ़ों में एक ओर लिखा था रमबतिया, और दूसरी ओर लिखा था 'हे रामचन्द्र मालिक दया कर! बम्बें'। मेरी आँखें उस भयावने अंधेरे में भी उन लेखों को साफ़ साफ़ देखने लगीं, उनसे सम्बन्धित सारी बातें एक साथ सिर में आ आकर टकराने लगीं। मेरा सिर डगमगाने लगा। गोबिन्द ने ही तो बताया था कि वह 'रमबतिया' बड़ी ही खूबसूरत थी। पर वह भी बच्चे के क़त्ल के अपराध में तख़्तों पर चढ़ा दी गई। बड़ी चीखती चिल्लाती थी। और वह 'बम्बें' वाला पागल कोई छः माह बाद पागलखाने भेजा गया था। मैं सोचता गया कौन कौन इसमें नहीं रह गया है। इसकी दीवारों में, इसके कण कण में केवल अपराध, चीख़ और चिल्लाहट ही है। इन्हीं के बीच में मैं आज पड़ा हूँ। मुझे वहां का विषाक्त वातावरण खाने लगा। रात बढ़ती जाती थी और उसके साथ साथ मेरा रोआँ रोआँ जैसे उठता जाता था। मैं कूदकर खड़ा होगया। एक छोटा सा कंकर मेरे सिर पर गिरा। उफ़! मैंने सच ही ज़ोरों से दीवाल खटखटाई। गोविन्द ने चौंककर पूछा—क्या है बाबू? पहरेवाला आया। डांटकर वह फिर अंधेरा कर गया। मैं अपनी क़बर ( Bunk ) पर बैठ गया। सोचता रहा कि मैं कितना डर गया था। मेरे लिये इस तरह डर जाना क्या उचित था?—और इसी बीच वह पागल 'बम्बें' वाला, वह बच्चे का क़त्ल करने वाली खूबसूरत 'रमबतिया' और यह आशंकायुक्त गोविन्द एक साथ ही मुझ पर प्रहार करने लगे। घूमता हुआ वार्डर देख रहा था कि मैं अपनी जगह सोया नहीं था; बैठा था। रात में बैठने का हुक्म नहीं था। मैं जुर्म कर रहा था। पर मैं बैठा ही था! आंखें झपने लगीं। झपते झपते पुनः होशियार क़दम बढ़ते हुए सुन पड़े। मैं पसीना पसीना हो गया—चार कैदी, चारों के पास कंबल थे। मेरे पड़ोस से ताले के खुलने की आवाज़ आई थी—फिर धम्म धम्म की—मैं सोया नहीं था। दिन में भी मेरी आंखें भयभीत थीं। मैं अस्पताल भेज दिया गया। मुझे ज़ोरों का बुखार था। अस्पताल में ही मैंने सुना गोविन्द मर गया है। डाक्टर इंजेकशन दे रहे हैं! लाश चीर-फाड़ के लिये ले जाई जा रही है। मैंने समझा शायद बुखार ज़्यादा है! मैं अकेला पड़ा था, डरा हुआ, सहमा हुआ। धीरे धीरे मैं अच्छा हो गया। डाक्टर के सिवाय मैं किसी से भी न मिल सकता था। मेरा अस्पताली खाना आया। खाते खाते लाने वाले को मैंने देखा, और देखा यह तो गोविन्द है। एक दम कांटा, अब तब का मेहमान बना हुआ। आवाज़ उसकी मुश्किल से निकली थी। धीरे धीरे हाथ के इशारे से उसने बतलाया कि कोई अफ़ीसर है। मैंने उसे बीड़ी दी। और फिर आने को कहा। उसका हाल जानने को मैं उत्सुक था। ख़ाली समय पा 'तिकड़म' से वह आया। थोड़े में उसने कहा उस रात कंबल-परेड हुई थी। वह तो ग़नीमत समझो मैं था—नहीं तो कंबल परेड से आज तक कोई नहीं बचा। मैंने चार चार परेडें देखीं हैं। क्या मज़ाल कि मार का एक भी निशान दिख जाय। देख रहे हैं न आप मेरे इस शरीर को; मरते तक मारा गया था और कहीं भी मार नहीं है। ले देकर बच गया हूँ। डाक्टर कहता था साल भर में शायद कुछ अच्छा हो जाऊँगा। शायद मर भी जाऊँ। बीड़ी लेकर चला गया। मुझे बरबस याद आया वह 'बम्बें' वाला पागल छः माह बाद पागल खाने में भेजा गया; वह बच्चे का क़त्ल करने वाली खूबसूरत रमबतिया धाड़ मार मारकर मरी। दया की दरखास्त की मंजूरी का सपना देखने वाला खूनी करार दिया हुआ व्यक्ति आख़िरी वक़्त देख रहा है—मैं एकटक अपने हाथ के उस भारी गिलास की ओर देख रहा था; गिलास खाली हो गया था।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सङ्गीत का सगुण और निर्गुण रूप

प्रो० श्रीकृष्ण रतनजनकर

कुछ वर्ष पूर्व एक संगीत परिषद में एक बड़े प्रसिद्ध गायकवर अपने मधुर कण्ठ से निकलते हुये आलापों से जनता का चित्त आकर्षित करते हुये गा रहे थे। इतने में श्रोताओं में से एक सज्जन उठकर खड़े हुये और उन्होंने गायकवर से पूछा—"महाशय, क्या आप मुझे समझा सकते हैं कि गाने और रोने में भेद क्या है?" यह प्रश्न साधारण नहीं है बड़ा मार्मिक है। इस प्रश्न का उत्तर एक रूपक देकर दिया जा सकता है। संगीत और रोने में वही भेद है जो एक सुन्दर मन्दिर में और एक निरे ईंट, चूने और पत्थर के ढेर में अथवा एक नयनाभिराम चित्र में और रंगों की ऊटपटाँग पुताई में।

मनुष्य के कण्ठ में एक अनुपम तथा आनन्ददायी सौन्दर्य का बीज है। इसका पता मनुष्य को कब और कैसे चला यह कह सकना कठिन है। साधारण बोलचाल में कण्ठ-नाद की उच्च-नीचता, सूक्ष्म-बृहत्ता, ह्रस्व-दीर्घता तथा विरामों के द्वारा शब्दों में संजीवनी आती है, चैतन्य आता है जिससे वह इष्ट परिणामी होती है। सिवाय इनके, निरे शब्दों से भाषा भी प्रेतवत हो जाती है। इन्हीं बातों में संगीत का बीज है। कंठ-नाद के इन सब विकारों को सुसंगठित, सुव्यवस्थित करके उनकी रमणीय रचना होने पर संगीत की उत्पत्ति होती है। इसी से सामवेद का सुस्वर उद्गम और उसीसे आगे चलकर संगीत की उत्पत्ति हुई होगी। हमारे शास्त्रकार बड़ी श्रद्धा के साथ लिखते हैं कि—

सामवेदादिदं गीतं सं जग्राहपितामहः

कहीं भी संगीत की उत्पत्ति ईश-स्तोत्रों में से ही होती है, यह कहना भ्रामक न होगा।

संगीत-कला की श्रेष्ठता इस बात में है कि यह स्वयं मनुष्य की बिना आदर्श के बनाई हुई वस्तु है और उसमें कलाकार को अपने स्वत्व का साक्षात्कार ही कराना होता है। कविता को भाषा-साहित्य की सहायता है जिसके द्वारा मनुष्य एक दूसरे से व्यवहार करते हैं। चित्रकला को रंग, कूची, फलक तथा प्रत्यक्ष अथवा पूर्वानुभूत दृश्यों की सहायता है। वैसे ही शिल्पकला इत्यादि को जड़ वस्तुओं की सहायता है। पर संगीत का साहित्य ऐसी वस्तुओं में मिलता है जिनका आदर्श सृष्टि में नहीं है और अगर है तो वह भी स्थिर नहीं है। संगीत की उत्पत्ति वायु से है जो अति सूक्ष्म, अति चंचल और अदृश्य वस्तु है। इसका अधिष्ठान ही मनुष्य के कण्ठ में है।

किसी कलाकृति के आकर्षण के कई कारण हो सकते हैं, जैसे सादृश्य, दुःसाध्यता, रचना-सौष्ठव, अद्भुतता, नवीनता, हृदयान्तः साक्षातकार इत्यादि। इन पर रुचिभेद होता है। किसी को मेघ गर्जना की भांति गर्जना करने वाले गमकों से युक्त अथवा छोटे से जल प्रवाह की ललित लहरों की भांति छुलबुल करने वाले स्वरालाप या महा-सागर की ऊंची ऊंची मौजों की भांति खलबली मचाने वाले तानालाप; किसी को कठिन स्वर-विस्तार, किसी को स्वरों का सुन्दर जोड़, किसी को आश्चर्य उत्पन्न करने वाली स्वरों की कृतियाँ, किसी को नये नये राग, नये गीत, नई गायकियाँ और किसी को स्वयं गायक के अन्तःस्थ भावनाओं से भरा हुआ संगीत प्रिय लगता है। इस प्रकार भिन्न भिन्न श्रोताओं की रुचि के अनुसार तथा स्वयं गायकों के कण्ठनाद के गुण धर्म और अंग स्वभाव के अनुसार संगीत का स्वरूप भिन्न होता है।

रुचिभेद के कारण संगीत का स्वरूप व्यक्तिशः भी भिन्न हो सकता है, यह हम देख चुके हैं। तथापि इन्हीं भिन्न-रुचि व्यक्तियों का, जिनके स्वभाव में साधारणतया कुछ बातें मिलती जुलती होने के कारण उनका एक संगठित समाज बन सकता है, सङ्गीत भी स्थूल प्रमाण में एक सा बन सकता है। जिस वातावरण में, जिस संगीत में, जिस समाज में उन व्यक्तियों के दिन बीतते हैं, उस वातावरण के दृश्यों का, उस समाज के आचार-विचार मनो भावनाओं का प्रभाव उनकी रुचि पर पड़ता है। देहात में रहने वाले मनुष्यों को ढोलक के ताल पर गाये हुये ग्राम-गीत ही प्रिय लगेंगे। उनके मन पर रागदारी संगीत चाहे जैसा शास्त्र शुद्ध घरानेदार क्यों न हो कुछ भी असर न डाल सकेगा। हमेशा फ़िल्म संगीत का सुनने वाला ख्याल, ध्रुवपदादि गायन को काहे को पूछेगा। रागदारी संगीत के भक्त देहाती या फ़िल्म के गानों की ओर दृष्टि तक नहीं उठायेंगे।

इन श्रोताओं के अन्दर एक वर्ग काव्य-प्रेमियों का होता है। ये लोग संगीत को काव्य की दृष्टि से देखते हैं। बिना शब्दों का संगीत इन्हें रुचिकर नहीं लगता। काव्यमय संगीत के साथ फिर रस, भाव इत्यादि वस्तुओं का विचार भी आवश्यक होता है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भारतीय संगीत में प्राचीन काल में ज्ञातियाँ गाई जाती थीं। ये ज्ञातियाँ गीत ही थे। इन गीतों के सांगीतिक भाग को विशेषतः ज्ञाति कहते थे। इन्हीं ज्ञातियों का स्वतन्त्र विचार, कविता को छोड़कर होने लगा और उसमें से आगे चलकर रागोत्पत्ति हुई। अर्थात् संगीत काव्य से अलग कला है, यह बात स्पष्ट हो गई। रागालाप का प्रचार हुआ। इसमें न भाषा का सम्बन्ध रहता है और न काव्य का। राई अपने तईं स्वयं अपने सौंदर्य से खिलते हैं। इसका प्रमाण यही है कि वर्षानुवर्ष ये राग गाये जाते हैं तब भी उनके आकर्षण का अन्त नहीं होता। गायक की गायन शैली के ही नहीं बल्कि व्यक्ति स्वभाव के अनुरूप राग की सुन्दरता में विविधता, विचित्रता आ जाती है पर उसका रागांग नष्ट नहीं होता। निरे रागों के अन्दर मेरे विचार से शृङ्गार, करुणा, वीरादि भावों का अन्तर्भाव नहीं होता। रागों में से उच्चार शैली, गति, कंठस्वर का नियमन, कुछ दृश्य हाव भाव, वातावरण तथा शब्दों की सहायता से रस-भावों का आविर्भाव हो सकता है। पर यह संगीत शुद्ध संगीत का स्वरूप नहीं होता। एक स्वांग दूसरे की भूमिका लेकर आता है। अपनी स्वाभाविक सुन्दरता प्रकट करने में असमर्थ होता है। इस सुन्दरता की सजावट में शब्द, हाव-भाव इत्यादि की विशेष आवश्यकता नहीं होती। संगीत स्मरण में इनका स्थान गौण ही रहता है। अगर ठीक स्वर, लय तथा उच्चार के साथ गाया जाय तो निरे आलापों के द्वारा हर राग अपना अपना स्वतन्त्र परिणाम श्रोता के चित्त पर कर देता है। स्वरों का परिणाम शरीर पर भी होता है। स्वर से स्नायुओं को चेतना मिलती है। कुछ रागों में स्वर-रचना ऐसी होती है जो स्नायुओं को जगा देती है। कुछ की स्वर-रचना ग्रस्त स्नायुओं को शान्त कर देती है। गायकों के कण्ठ स्वर में भी ऐसा परिणाम करने के गुण धर्म रहते हैं। उनके कण्ठ के तथा उनके अंग स्वभाव के अनुरूप उनकी गायकियाँ बनती हैं। इस संगीत का उद्देश्य नायक-नायिकाओं की क्रीड़ा, देव-दैत्यों का युद्ध अथवा विरहिणी का विलाप दिखलाने का नहीं होता है। सुस्वर गाये हुए राग का परिणाम गायक, श्रोता तथा राग के परस्पर भेद-भाव को मिटाकर तीनों की एकता होना ही है।

'तादात्म्य' अथवा 'तल्लीनता' ऐसे एक ही शब्द से संगीत का परिणाम समझाया जा सकता है। सुन्दर दृश्य देखकर, सुवासित फूल सूँघकर, शीतल वायु का स्पर्श कर जो आनन्द मिलता है, जो 'तल्लीनता' होती है वही परिणाम सुस्वर संगीत सुनकर होता है। सन्ध्या समय दरिया के बैठकर सूर्यास्त का दृश्य देखने वाला, सुबह दर्शनीय तथा सुवासित फूलों से भरे उद्यान में बैठकर शीतल वायु का सुख स्पर्श अनुभव करते हुये उषा देवी की शोभा देखने वाला, चाँदनी रात में चन्द्रमा का दिगन्त प्रवास अवलोकन करने वाला, किसी पहाड़ के शिखर पर बैठकर असमन्तात् सृष्टि शोभा देखने वाला—इन सब की जो मनःस्थिति होती है वैसी ही मनःस्थिति कुशल गायक के कण्ठ से रागों का विस्तार सुनने वाले की होती है। ऐसी सुखावस्था में चंचल मन स्थिर हो जाता है, इन्द्रियों के वश में नहीं रहता है। मन तथा शरीर एक अवर्णनीय आनन्द में लीन होते हैं। यह आनन्द न शृङ्गार है, न वीर है न करुण।

सर्व साधारण जनता से इस आनन्द की इच्छा तथा अनुभव की अपेक्षा करना व्यर्थ है। जनता अधिकतर मूर्ति पूजक होती है। शुद्ध रागालाप चाहे जैसी कुशलता के साथ गाये जांय इनकी समझ में नहीं आते। हां, उन्हें को सुन्दर शब्दों में बाँधा जाय, शब्दों के भावार्थ का विपर्यास न हो, कण्ठ स्वर, उच्चार, दृष्टि-क्षेप, हावभाव लय का अनुसन्धान इत्यादि के द्वारा उक्त भावार्थ का पोष हो तो उसमें से एक मूर्ति उत्पन्न होती है और उसका आकलन सहल होता है। इस मूर्ति की सजावट में मनुष्य का आरोपण होता है। मनुष्य के आचार-विचार भावनाओं और मनुष्य के दृश्य-स्वरूप का भी साक्षात्कार इसमें कराया जाता है। यह एक प्रकार की संगीत सगुण उपासना है। ईश्वर के सम्बन्ध में जैसी जिसकी कल्पना होती है वैसी उसकी मूर्ति बनाकर वह उसको पूजता है। यही बात संगीत के सम्बन्ध में भी होती है। इसके स्वरूप में विविधता आती है और इस विविधता से शृङ्गार-वीरादि भावों का ही नहीं बल्कि एक अच्छे नाट्य का प्रयोग उत्पन्न हो सकता है। पर इस प्रयोग से प्राप्त होने वाले आनन्द और शुद्ध संगीत के आनन्द में भेद यही है कि एक तात्कालिक और दूसरा चिरस्थायी होता है, एक लिप्त होता है तो दूसरा शुद्ध और एक बहिर्मुख होता है तो दूसरा अन्तर्मुख।

[ मूल अंजली है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अरब मुल्कों का फेडरेशन

डाक्टर बे बुरहान बल्गी

मौजूदा जङ्ग के बाद मध्यपूर्व के देश अपनी भौगोलिक स्थिति और अपने तेल के ज़ख़ीरे के कारण इङ्गलैण्ड और अमरीका की नज़रों में चढ़ रहे हैं। पिछले बीस वर्षों से भूमध्य सागर में विविध शक्तियों के बीच सन्तुलन बनाये रखने के लिए अङ्गरेज़ों ने अरब मुल्कों को बराबर अपनी कूटनीति का शिकार बनाया है। पिछली सदी के अन्त में सुलतान अब्दुल हमीद ने यूरोपीय सङ्कट के खिलाफ़ "पैन इसलाम" का नारा बुलन्द किया था और इस जंग के बाद उठने वाले शोषण के बादलों से अपने को बचाने के लिये नहस पाशा ने अरब फ़ेडरेशन की चर्चा शुरू की। नहस पाशा को अङ्गरेज़ी कूटनीति का शिकार होकर मिस्र के प्रधान मंत्री पद से स्तीफ़ा देना पड़ा किन्तु इसके कारण अरब फ़ेडरेशन की चर्चा रुकी नहीं। याल्टा सम्मेलन के बाद स्वर्गीय रूज़वेल्ट इब्न सऊद से ख़ास तौर पर मिलने गये ताकि अरबी तेल के ज़ख़ीरे में से अमरीका को भी ख़ासा अच्छा हिस्सा मिल सके।

सब मिलाकर अरबों की लगभग चार करोड़ आबादी है। इसमें एक करोड़ सत्तर लाख मिस्र की है। अरब प्रायद्वीप की आबादी ७० लाख, सीरिया और इराक़ की ३०-३० लाख, फ़िलिस्तीन की १० लाख और ट्रान्सजोरडान की ५ लाख है। इनके अलावा कुवैत, बहरैन, अदन और ईरान की खाड़ी के दूसरे अरब टापुओं की क़रीब पांच लाख आबादी है। थोड़े से कबीलों जैसे ख़ुर्द और असीरियनों को छोड़कर इस सारे ख़ित्ते की ज़बान अरबी है। एक ज़बान होने की वजह से इनमें काफी एकता है। भाषा के साथ साथ इनकी एक संस्कृति, एक से सामाजिक आचार-विचार और एक सी ख़ासियतें हैं। इसमें कोई शक नहीं कि इन्हें एक धागे में पिरोये रखने के लिये इसलाम एक बड़ा ज़बर्दस्त ज़रिया है। ३० लाख ईसाई और यहूदी यहां की राजनीति पर कोई ख़ास असर नहीं डालते। इसलाम यहां का ख़ास मज़हब है और इसलामी क़ानून और शरीयत के मुताबिक़ ही लोगों की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी चलती है।

जितने पढ़े लिखे अरबों से मैंने बात की वे सब अरब फ़ेडरेशन को अधिक से अधिक ताक़तवर बनाने के कायल हैं लेकिन उन सबका यही ख़्याल है कि जब तक अङ्गरेज़ इस एकता के बीच हायल हैं तब तक यह फ़ेडरेशन नामुमकिन है। हर नौजवान अरब एकता का नारा लगाता है और आम जनता में किसी क़िस्म की प्रान्तीयता नहीं है। सीरिया का फ़ेला (किसान) मिस्र के फ़लाहीन (किसान) को विदेशी नहीं समझता और न दमिश्क का अरब बग़दाद के अरब को ग़ैर समझता है। लेकिन जनता की यह यकजाई होते हुये भी अरब शासकों ने अपनी आपसी प्रतिस्पर्धा की वजह से अरब फेडरेशन के सपने को मूर्तरूप लेने में काफी रुकावटें डालीं।

इब्न सऊद और अमीर अब्दुल्ला दोनों अरब फेडरेशन के हामी हैं मगर दोनों चाहते हैं कि फेडरेशन की बागडोर उनके अपने अपने घरानों के हाथों में रहे। इसी को लेकर उन्हें एक दूसरे से सख़्त नफ़रत है। अब्दुल्ला की नज़रों में इब्न सऊद की हैसियत बच्चा सक़्क़ा की है और इब्न सऊद को हाशमी घराने से नफ़रत है। यमन और बग़दाद के दोनों हाशमी घराने भी एक दूसरे से डाह करते हैं और ये सब मिलकर मिस्र के शाह फ़ारूक़ को ख़तरे की निगाह से देखते हैं।

जहां तक इब्न सऊद का ताल्लुक़ है पिछले साल हज के मौक़े पर मक्के में सुलतान इब्न सऊद से एक प्रसिद्ध मिस्री पत्रकार मिला था और उसने इब्न सऊद से अरब फेडरेशन के बारे में जो बातें की थीं उन्हें प्रकाशित करते हुये उसने "अल क़ाहिरा" में लिखा था—

"शाही महल के पश्चिमी रुख़ बड़े कमरे में बैठकर जिसकी फ्रेंच खिड़की से पवित्र काबा दिखाई दे रहा था वहाबी सुल्तान ने बातें शुरू करते हुये कहा—

"अपने मुल्क और अरब क़ौम की तरफ से मैं आपका इस्तक़बाल करता हूँ। आप बड़ी दूर से आये हैं मगर आप इसे अपना वतन और अपना घर समझें। इसलाम के इस पवित्र शहर में आपको अपने विचारों की पूरी आज़ादी है।"—यह कहकर सुलतान ने हमारी तरफ दिल-चस्पी की निगाह से देखा।

कुछ ज़रा सा झिझकते हुए मैंने सुलतान से सवाल किया—

"दुनिया भर के करोड़ों मुसलमान अरब में जो कुछ होता है उसे बड़ी फिक्र के साथ देखते हैं। इधर जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


घटनायें ग़ैरवहाबी मुसलमानों के साथ आपके हुक्म से घट रही हैं उससे लोगों को यह शुबहा हो रहा है कि आप अरब मुल्कों की एकता के हक़ में नहीं हैं बल्कि वहाबी ताक़त और वहाबी उसूलों को ही अरब क़ौम के ऊपर लादना चाहते हैं।" सवाल करते हुये मैं सुलतान पर निगाह गड़ाये हुये था। सुलतान के चेहरे के हाव-भाव और हाथों के हिलाने के ढङ्ग से मैं यह जानना चाहता था कि मेरे सवाल की सुलतान पर क्या प्रतिक्रिया हो रही है, लेकिन वह बुत की तरह निश्चल बैठा रहा। मेरे चुप होने के बाद सुलतान ने धीमी किन्तु स्थिर आवाज़ में कहना शुरू किया—

"हम वहाबियों को आप इसलाम का 'प्यूरिटन' कह सकते हैं। जो कुछ वहाबी करते हैं उसकी नैतिक ज़िम्मेवारी लेने को वे तय्यार हैं। आप जानते हैं वहाबी सत्ता क़ायम होने के पहले शाह हुसेन का क्या रवय्या था? वह विदेशी यूरोपीय ताक़तों का ज़रख़रीद ग़ुलाम था। ऐसी ताक़तें जो इसलाम की दुशमन थीं और जिनसे, तारीख़ गवाह है, इसलाम का कभी नफ़ा नहीं हुआ। शाह हुसेन के ज़ुल्म से पूरी अरब क़ौम परेशान हो गई थी। जिस वक्त शाह हुसेन हेजाज़ छोड़कर भागा वह अपने साथ ५१ ऊँटों में करीब दस लाख पौण्ड कीमत का सोना लाद कर ले गया। हम वहाबियों के साथ जो ज़ुल्म उसने किया वह एक दर्दनाक दास्तान है। वहाबियों के साथ कुत्तों का सा सलूक किया जाता था और उन्हें पवित्र काबे तक में जाने की इजाज़त न थी। हमने ख़ामोशी के साथ अल्लाह से दुआ मांगी कि वह हमें इन ज़ुल्मों को बर्दाश्त करने की ताक़त दे। उसके बाद अल्लाह ने इस पाक मुक़ाम की ख़िदमत हमें बख़्शी। जिस वक्त हुकूमत हमारे हाथों में आई उस वक्त शराब पीने से लेकर दुनिया भर के दुराचार अरबों में प्रचलित थे। ऐसा लगता था मानो इसलाम अरब से रुख़सत हो गया है। हमने इसलाम की रू के मुताबिक समाजी सुधार जारी किये, शराब बन्दी की, जुआ खेलना रोका, कबरों की पूजा बन्द की, लूट मार का दमन किया और इन सबके अलावा इसलाम और अरब क़ौम की आत्मा को मुक्त किया जिसे शाह हुसेन ने विदेशियों के हाथों में बेच दिया था। उसके बाद हमने हर चन्द कोशिश की कि अरब क़ौम एक इत्तहाद के धागे में बँधे। इसी मक़सद को पूरा करने के लिये हमने आज से बीस बरस पहले 'आल वर्ल्ड मुसलिम कांग्रेस' की नींव डाली। आज भी हम हर तरह से अरब फ़ेडरेशन के हक़ में हैं।"

इब्न सऊद अरब क़ौम का एक ऐसा शासक है जिस पर अङ्गरेज़ों को बहुत एतबार है। लेकिन वह भी मजबूर जनता के रुख को देखते हुये अरब फेडरेशन का हामी हो नहीं बल्कि दावेदार है।

अरब फेडरेशन की कल्पना और उसकी ख़्वाहिश हर अरब के दिल और दिमाग़ में है। सन् १९४० में भूतपूर्व मिस्री मन्त्री अब्दुल रहमान अस्सम बे ने नीचे लिखा बयान "न्यूयार्क टाइम्स" में छपवाया था—

"पिछली उन्नीसवीं सदी के मध्य तक अरब क़ौम बिलकुल आज़ाद थी। उस पर किसी यूरोपियन देश की हुकूमत नहीं थी। पिछले जंग के बाद बहुत सी नई आज़ाद अरब रियासतें कायम कर दी गईं। इससे थोड़े दिनों के लिए तो अरब क़ौम धोखे में रही। मगर बाद में वह समझ गई कि यह आज़ादी की नहीं बल्कि ग़ुलामी की चमकदार सूरत है।

"जब मौजूदा लड़ाई शुरू हुई तो अरबों ने समझा शायद अब हमारी उम्मीदें पूरी उतरें। हर अरब के दिल में यह ख़याल पैदा हुआ कि इस लड़ाई से और हमारे भविष्य से मुमकिन है कोई ताल्लुक़ हो। एक एक अरब के दिल में यूरोपियनों की ग़ुलामी से सख़्त नफ़रत पैदा हुई है।

"अरब अपनी आदत से और अपने मज़हबी अक़ीदों से आज़ादी पसन्द इनसान हैं। इस लड़ाई का चाहे कोई नतीजा हो लेकिन अरब ग़ैरों की गुलामी का जी तोड़ मुक़ाबला करेगा। चाहे वह ग़ुलामी सीधी हो या क़ानूनी हो। राष्ट्रीय अभिमान के ख़याल से नहीं बल्कि अपनी हिफ़ाज़त के भी ख़याल से वे यह ज़रूरी समझते हैं कि पूर्वी भूमध्यसागर की अरब क़ौमें अपना एक अलग राष्ट्रीय संघ क़ायम करें।

"राजनैतिक कारणों के अलावा भी अरब अपने जातीय और सामाजिक सुधार के लिये आपस में एकता क़ायम करना चाहते हैं। मिस्र जैसे कुछ अरब मुल्क हैं जो घने बसे हुये हैं और इराक़ और सीरिया जैसे मुल्कों की आबादी बहुत कम है। अरब फेडरेशन की स्थापना सिर्फ़ अरबों के राजनैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक उत्थान के लिये ज़रूरी है बल्कि उसकी वजह से पश्चिमी ताक़तों की आपसी डाह भी ख़त्म हो जायेगी और भूमध्य सागर में राजनैतिक शान्ति रहेगी।

"इस तरह का अरब फेडरेशन अरबों को दुनिया की तहज़ीब याफ़्ता मुल्कों की क़तार में लाकर खड़ा कर देगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इससे अन्तर्राष्ट्रीय तिजारत भी बढ़ेगी। पिछली जंग में ब्रिटेन ने इस तरह के अरब फ़ेडरेशन के क़ायम करने में मदद देने के बीसों वादे किये और इस बार भी कर रहा है पर अरब जनता को अङ्गरेज़ों के इन वादों पर अब कोई एतबार नहीं रह गया है।"

असल में अरबों को अपनी आपसी एकता का ख़याल बजा तौर पर उस वक़्त पैदा हुआ जब यूरोप का पूंजीवाद अपनी चोटी पर पहुँचा। यूरोप के औद्योगिक इनक़लाब और पूंजीवाद के लिये तिजारती रास्तों और मण्डियों की ज़रूरत थी। भूगोल की दृष्टि से इसलामी दुनिया कुछ ऐसी वाक़े है कि भूमध्य सागर के तीन बड़े दरवाज़े यानी दर्रे दानियाल, नहर सुएज़ और जिब्राल्टर मुसलमान इलाक़ों में हैं। इसके अलावा मिट्टी के तेल का काफ़ी बड़ा ज़ख़ीरा इसलामी इलाक़े में पाया जाता है। यही कारण है कि पच्छिमी पूँजीवाद व साम्राज्य की सब से पहले इसलामी मुल्कों से टक्कर हुई और पश्चिमी तिजारत ने सदियों तक अरबी तिजारत और जहाज़रानी को मिटाया। दो सौ बरस लगातार मुक़ाबला करने के बाद आख़िरकार इसलामी दुनिया और उसके बादशाह पश्चिमी साम्राज्य के पाबन्द हो गये।

मुसलमानों की आँखें पिछली जंग के बाद तब खुलीं जब वारसाई सन्धि के मुताबिक़ तुर्की हुकूमत के टुकड़े किये गये। जो लोग तुर्कों के ख़िलाफ़ अरब एकता के परदे में अङ्गरेज़ों से साज़िशें कर रहे थे उन्हें अब अन्दाज़ हुआ कि साम्राज्यी पालिसी को अरब एकता से ज़्यादा यहूदियों को आबाद करने की ज़रूरत है। अङ्गरेज़ी साम्राज्य का सबसे बड़ा मक़सद यह था कि उन्हें इराक़ के तेल के चश्मे और नहर सुएज़ की हिफ़ाज़त के विचार से हवाई केन्द्र बनाने के लिये हैफ़ा का शहर मिल जाय। चुनांचे वारसाई की सन्धि ने उन्हें यह सब कुछ दे दिया। इस सुलहनामे के बाद उनकी पकड़ पहले से ज़्यादा मज़बूत हो गई।

इस जंग के दौरान में अरब जनता में आज़ादी की भावना बेहद प्रबल हो गई है। लैबवान और फ़िलिस्तीन के आन्दोलन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इराक़ में रशीद अली की बग़ावत इसका तुर्श नमूना है पर नहाश पाशा का सुलझा हुआ पथ प्रदर्शन भी अङ्गरेज़ साम्राज्यवादियों को असह्य हुआ। रशीद अली की बग़ावत के दिनों में इब्न सऊद ने अङ्गरेज़ों का पूरा पूरा साथ दिया। इब्न सऊद के सम्बन्ध में लार्ड स्ट्राबोल्गी ने लिखा है—"मध्य पूर्व में इब्न सऊद अङ्गरेज़ों का सब में बड़ा दोस्त है।"

चर्चिल ने अपने २७ फ़रवरी के पार्लिमेण्ट के बयान में इब्न सऊद से अपनी मुलाक़ात की चर्चा करते हुये कहा—युद्ध के बाद अरब दुनिया में और ख़ासकर मध्य-पूर्व में पूरी तरह शान्ति और अमन क़ायम हो जायगा। इङ्गलैण्ड और अमरीका दोनों इस सम्बन्ध में प्रयत्न कर रहे हैं।

पूंजीवादी और साम्राज्यवादी मुल्कों का यह गठबन्धन किस तरह की शान्ति और अमन मध्य पूर्व में क़ायम करेगा इसके सोचने के लिये कुछ बहुत अधिक कल्पना की ज़रूरत नहीं है। बावजूद हर तरह की रुकावटों के अरब फ़ेडरेशन क़ायम हो रहा है। अरब जनता अपनी बन्दिशों से आज बेचैन और परेशान है। भले ही ब्रिटिश साम्राज्य-वाद के इशारों पर नाचने के लिये आज कोई इब्न सऊद और शाह फ़ारूक मिल जाएं पर अरब जनता अपनी आज़ादी के लिये बेताब है। यमन, सऊदी अरब, इराक़, मिस्र, सीरिया और लेबनान की अरब जनता ने अपना एक संयुक्त मोरचा बना लिया है।

अरब मुल्कों के सम्बन्ध में ब्रिटेन और अमरीका के रुख़ पर टिप्पणी करते हुये लार्ड स्ट्राबोल्गी ने लिखा है—

"इस दूसरे जंग के दौरान में अमरीकनों को मध्य पूर्व का पता चला। अमरीका के तेल के व्यापारी बहुत पहले से इराक़ के तेल के ख़्वाहिशमन्द थे। पर आज अमरीका के बड़े बड़े व्यापारी चार करोड़ अरबों को अपने मातबर ग्राहकों के रूप में देख रहे हैं। वे समझते हैं कि अरबों के देशों को आर्थिक दृष्टि से उन्नत किया जा सकता है और इस दृष्टि से अरब और उनका फ़ेडरेशन ध्यान देने की चीज़ें हैं।"

शायद इस तवज्जह का नतीजा ही स्वर्गीय रूज़वेल्ट और इब्न सऊद का मिलन था। इङ्गलैण्ड और अमरीका अरबों के शोषण की सम्मिलित स्कीमें बना रहे हैं पर अरब जनता भी अपने उद्धार के लिये आज सौ फ़ी सदी कटि-बद्ध है। उनके मनोरथ को विफल करने वाली जो उनके शासकों की कड़ी है उसे या तो अपनी जनता का साथ देना पड़ेगा या उसके टुकड़े टुकड़े हो जाएंगे।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बन्दी के गीत

श्री प्रभागचन्द्र शर्मा

जबलपुर सेण्ट्रल जेल के सीखचों में मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक धाराओं के सहज स्वाभाविक उद्वेग की प्रतिक्रिया स्वरूप इन गीतों की सृष्टि हुई है। ये तीन गीत तीन भिन्न मनोदशाओं के चित्र हैं —लेखक।

[ एक ]

मेरा मन उड़ता है
कारा की काली, पथरीली दीवारों से—
भोला मन उड़ता है!

दर्शन - व्यापार बन्द,
स्पर्शन-सम्भार बन्द,
एकाकी बन्दी के जीवन—
का प्यार मन्द,
चंचल है स्मृति का तल, विस्मृत उद्गारों से;
यह कैसी जड़ता है?
पागल मन उड़ता है।

पंछी सब तरु पर हैं,
तारक नभ भर पर हैं,
मैं हूँ एकाकी प्रिय!
बन्धन पिन्जर पर है
रुकता हूँ पर रह-रह, चंचल संस्कारों से—
कँप जाती दृढ़ता है!
सब दिन मन उड़ता है!

[ दो ]

मेरा मन छलता है
मुझमें, मुझसे हटकर जाने क्या चलता है!

दिखती है धूम शिखा,
चित्रित कुछ भी न दिखा,
युग-युग का द्रष्टा मैं,
जग देखा, 'मैं' न दिखा
अणु-अणु ले गर्वित था, कण कण खो लज्जित था—
जाने क्या खलता है।
मेरा मन छलता है।

रेखा ली, रङ्ग लिये,
हाव - भाव सङ्ग लिये,
लय की निश्चल गति पर
कितने युग निलय किये,
मन में क्या क्या न बना, मन में क्या क्या न मिटा;
युग पर युग ढलता है!
मेरा मन छलता है!

[ तीन ]

मेरा मन सबका है
मनवन्तर लांघ चुका, फिर भी अब - अब का है
मेरा मन सबका है।
मेरा दुख जग का दुख,
जग का सुख मेरा सुख,
मुझमें—जग में अन्तर;
जग व्यापक, मैं आमुख
सीमा - संकेत लिये छूता निस्सीम चरण
जाने, प्रण कब का है?
मेरा मन सबका है।

मैं बन्दी सुनता हूँ,
प्रिय का मन गुनता हूँ,
अपने गीतों के बल
जग का स्वर चुनता हूँ,
फिर भी मैं एकाकी जग के कोलाहल में
विभ्रम किस मग का है;
मेरा मन सबका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# निग्रो जनता के विरोध-गीत

कुमारी जोरा नील हर्स्टन

पहली जनवरी सन् १८६३ को राष्ट्रपति लिंकन ने समस्त अमरीका से ग़ुलामी की प्रथा के अन्त की घोषणा की थी और ९ अप्रैल सन् १८६५ को ग़ुलामी के समर्थक जनरल ली ने जनरल ग्रान्ट को आत्म समर्पण किया था। समझा जाता था कि उस दिन से अमरीका से निग्रो जाति की आपदाओं का अन्त हो गया, पर उनकी यह आशा बहुत क्षण-भंगुर निकली। आज़ाद होकर एक असहाय और दयनीय परिस्थिति में निग्रो ने अपने को पाया और उसकी सामाजिक स्थिति ने उसे अमरीका की गोरी जाति का शिकार बनने के लिये मजबूर किया। तब से निग्रो का जिस तरह क्रूर शोषण किया गया उसकी कुछ झलक हमें निग्रो के इन प्रचलित विरोध गीतों में मिलती है।

जब निग्रो दासता से मुक्त हुआ तब पहले पहल तो उसे असीम आनन्द हुआ, पर उसकी यह ख़ुशी चार दिन में ही मुरझा गई। उसे आज़ादी थी कि वह अपने मालिकों के खेतों और कारख़ानों को छोड़कर जा सकता था, किन्तु वह जाता तो कहाँ जाता? और कैसे जाता? दुनियावी पूंजी के नाम पर न उसके पास रुपया पैसा था न कपड़ा लत्ता। हज़ारों की तादाद में आज़ाद निग्रो भूखे प्यासे सड़कों पर डोलते फिरते थे। एक बूढ़े निग्रो ने अपनी इस दयनीय अवस्था, अपने दुःख, निराशा और उदासी को नीचे लिखे गीत में व्यक्त किया है--

जब मुझे आज़ादी मिली—
स्वामी से, खेत से, कारख़ाने से, ग़ुलामी से
आज़ादी मिली, स्वर्णिम आज़ादी मिली,
सुन्दर आज़ादी मिली!
किन्तु थी समस्या प्रबल—
जाऊँ तो जाऊँ कहाँ?
पैसा एक पास न था!
प्रभु, कैसे स्वतन्त्र बनूँ?
निग्रो को बैठने का ठौर न था,
पैरों में जूते न थे,
खाने को कौर न था!
ओरे हत भागे!
क्या दासता ही धर्म तेरा?
चालिस वर्ष जिसने
जी तोड़कर परिश्रम किया!
कितनी असहायता
औ कितनी निराशा है?
अपनी कह सके--
एक कौड़ी न पास उसके!

उसके बाद निग्रो की कहानी दर दर भटकने की कहानी है और इस कहानी को वह नीचे लिखी पंक्तियों में व्यक्त करता है--

भूखा, प्यासा, भटकता अटलाण्टा गया,
इसके पूर्व मैंने अटलाण्टा न देखा था;
गोरे वहां लाल लाल पके सेब खाते हैं
निग्रो को केवल छिलका ही मिलता है!

चार्ल्सटन भी देखा पर वह भी था नया शहर
गोरे वहां सोते हैं फ़ैदर के गद्दों पर!
निग्रो की क़िस्मत में नंगी ज़मीन लिखी!

रैले भी देखा पर वह भी था नया शहर
गोरी जाति सुन्दर आवरणों से शोभित थी
निग्रो बस पहने था चन्द फटे चीथड़े!

हैवेन भी देखा पर वह भी था नया शहर
गोरी जाति शानदार महलों में रहती थी
निग्रो फुट पाथ से खदेड़ दिये जाते थे!

जार्जिया में और दूसरी रियासतों की तरह अदालतें निग्रो के लिये भी खोल दी गईं। किन्तु यदि निग्रो मुक़दमा हारता था और भारी मुआविज़ा न दे पाता था तो उसकी क़िस्मत में चेन-गैङ्ग की मज़दूरी लिखी होती थी। निग्रो को मज़दूरी न देना, ज़्यादा काम कराने के लिये घड़ी पीछे कर देना यह एक आम बात है। एक निग्रो नाई स्थानीय बैङ्क में अपने ५० डालर जमा कराने गया, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैशियर ने ५० डालर के बजाय उसके ५० सेंट जमा किये। जब उसने विरोध किया तो उसे लात मारकर बाहर निकाल दिया गया। ये सारे ज़ुल्म नीचे लिखे गीत में व्यक्त किये गये हैं--

निग्रो गोरे से जाकर काम मांगता है
गोरा कहता है, "निगर—
नज़र से दूर हटो।"

निग्रो सुबह से शाम तक चुनता कपास है
मांगता मज़दूरी जब ? देता है गोरा उसको छदाम नहीं !

छोटी मक्खियां रस जमा करती हैं
किन्तु बड़ी मक्खियां खाती हैं मधुर मधु !
निग्रो कपास चुनता है, नाज साफ़ करता है
पर गोरा ही पाता है खेती की आमदनी !

दासता औ' स्वतन्त्रता — दोनों का अथ एक !
नाम हैं भिन्न किन्तु अन्तर है नेक नहीं !

उस समय हज़ारों निग्रो ऐसे थे जिनका न घर था, न कोई ठिकाना। ख़ानाबदोश इधर उधर घूमते थे। कुछ अपने बीवी बच्चों के साथ लेकर फिरते थे—काम ढूंढ़ते हुये --एक दिन यहां तो एक दिन वहां; किन्तु काम उन्हें मिले कहां ? नीचे लिखे गीत में उनकी मानसिक अवस्था को व्यक्त किया गया है--

गाँव में काम मिल जाता है कभी उसे;
कभी काम करता है शहर में नगर में;
और जब काम नहीं होता है उसके पास ?
नदी में डूबकर काम ख़त्म करता है !

अधिकांश निग्रो ईसाई हैं किन्तु ईसाई धर्म को जिस भावना के साथ वह व्यक्त करते हैं उसका दिग्दर्शन हमें नीचे के गीत में मिलता है—

गोरे चलाते हैं हन्टर
चलाना जानते हैं बन्दूक;
धरती बनी है सिर्फ़ गोरों के वास्ते
निग्रो अभागे की जगह है बादलों में !

निग्रो धर्म-जीवी है
पढ़ता है बाइबिल, करता है प्रार्थना;
गोरा व्यस्त रहता है--
दुनिया की दौलत चुराने में, लूटने में !

गोरे चलाते हैं हन्टर
चलाते हैं बन्दूक;
तुम्हींने--ओ बाइबिल ! ओ' ईसा !
गुलाम किया निग्रो को !

पिछले युद्ध के एक निग्रो सिपाही ने नीचे लिखी पंक्तियों में अपनी विरोध-भावना को व्यक्त किया है:

निग्रो तुम भी वीर हो !
बहता है धमनियों में तुम्हारे भी गरम लहू !
देखो आता वह गोरा है—
हाथ में उसके पिस्तौल है, छुरा है !
देखो ! भय न करो !
निग्रो के साथ निग्रो को खड़ा होना है।
कन्धे से कन्धा मिलाकर—
भागो मत निग्रो तुम
होते हैं प्रोत्साहित इससे ही ज़ालिम ये !

क्षोभ और आशा से भरा हुआ एक दूसरा निग्रो गीत है—

निग्रो काले कूड़े का पुलन्दा मात्र !
गोरों की दुनिया का भार उठाये हुये !
प्रभु ! क्या तुम सुन पाते नहीं उसकी कराह करुण
गोरा कुचलता है निग्रो की आत्मा को !!!

निगर स्वतन्त्र होगा,
निगर स्वतन्त्र होगा,
निगर स्वतन्त्र होगा—
जब प्रभु की कृपा होगी !

एक निग्रो बालक अपनी और गोरे बालक की तुलना करते हुये हसरत के साथ कहता है—

कालिज बने हैं ये गोरे बालकों के लिये,
निग्रो के ललाट में खेत पर काम लिखा !
गोरे के लिये हैं—ये पुस्तकें पढ़ेगा वह
लिखना भी सीखेगा।
निग्रो की क़िस्मत में फावड़ा कुदाल लिखे !

कैसे ही व्यतीत करो अपना समय—अर्थहीन,
दुनिया की दौड़ में गोरा बढ़ जावेगा।

जब जब चुनाव होते हैं विविध रियासतें अपने यहां सड़कें पक्की सुथरी कर लेती हैं। इन सड़कों को बनाने निग्रो चेन गैंग के क़ैदी होते हैं। इन गैंगों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बढ़ाने के लिये ज़रा ज़रा सी बात पर निग्रो पकड़ लिये जाते हैं और उन्हें कम से कम तीन महीने की चेन गैंग की सज़ा मिल जाती है। गोरे पुलिस वाले इसलिये बिला वजह निग्रो को चपत मार देते हैं कि यदि वह विरोध करे तो उसे अमन में ख़लल डालने के जुर्म में अच्छी ख़ासी सज़ा देकर चेन गैंग में काम करने के लिये भेज दिया जाय। इसको लेकर एक निग्रो गीत की पंक्तियाँ हैं—

सड़क की मोड़ पर खड़ा हुआ
करता प्रतीक्षा था, बस की, घर जाने को ;
आया एक पुलिस मैन, कन्धा दबोच लिया,
सीटी बजाने लगा, आई एक पुलिस वान ;
कर लिया गिरिफ़्तार—जुर्म ? कल बतायेंगे !

कोर्ट में जज ने इशारा किया आँखों से,
गोरे पुलिस मैन ने इशारों से जवाब दिया ;
कोई बयान नहीं, कोई सुबूत नहीं;
सज़ा—छै महीने की चेन गैंग—मिली मुझे !

जकड़े हुये पैर ज़ंज़ीरों से सड़क पर—
इसी तरह मास छै बिताने पड़ेंगे मुझे !
प्राणाधिके ! प्रेयसी ! तुम्हारी याद आती सदा
हाय ! क्यों निग्रो की पत्नी बनी थीं तुम ?
हाय ! क्यों काली बहूटी बन जन्म लिया ?

सरकारी रिकार्ड जितना बताते हैं उससे कहीं ज़्यादा मिसालें निग्रो को लिंच करने की मिलती हैं। स्थानीय अधिकारी निग्रो की इस तरह की हत्याओं को प्रकाश में नहीं आने देते। यदि सरकारी काग़ज़ों में कोई रिपोर्ट दर्ज भी करनी पड़े तो लिख दिया जाता है—"स्वाभाविक कारणों से मृत्यु हुई !" क़ानूनी मसौदों में पैसा ख़र्च होता है और ग़रीब निग्रो के पास इतना पैसा नहीं। बहुधा इस तरह बग़ैर सरकारी ज्ञान या अनुमति के निग्रो पैदा होता है, शादी करता है और मर जाता है। इन्हीं सब बातों को व्यक्त करते हुये एक निग्रो गीत की पंक्तियाँ हैं—

भाई और बहिनो, तुम निग्रो हो भूलो नहीं—
तुम्हा माँगते हो, उस जगत्पति ईश्वर से ?
तथ्यहीन, सारहीन, मूल्यहीन !
इसमें धरा है क्या ?
काला मुख देखकर, नफ़रत से, घृणा से
मुँह फेर लेता है—वह जो परमेश्वर है !

हृदय जब बोझिल हो दारुण उदासी से,
चिन्ता से जीर्ण, थका मस्तक हमारा हो;
दुख में, पराभव में बोलो कहां निग्रो जाय ?

दफ़न कर रहे हैं हम ऐसे एक भाई को
मारा जिसे गोरों ने विनोद ही विनोद में !
ठहरो ज़रा, बारी तुम्हारी भी आवेगी !

किन्तु बन्धु निग्रो, सेब नहीं है तुम्हारा सिर
तोड़ लिया जिसको किसी पेड़ से विनोद में !
देह में प्राण है, धमनियों में रक्त है—
लाठी पकड़कर ज़रा सीधा हो तने रहो !
रक्त का बदला हां रक्त से लेना सीखो;
गोरे तब समझेंगे—हां, तुम भी एक मानव हो !

चेन गैंग के क़ैदियों को किसी तरह का कोई मुआविज़ा नहीं मिलता। एक दिन मैंने देखा एक भूखा फटे हाल निग्रो सड़क पर लड़खड़ाता चला आ रहा है। वह उसी दिन चेन गैंग जेल से छूटा था। १८ महीने उसने सज़ा काटी थी और छूटने के बाद उसे खाने के लिये या रेल के टिकिट के नाम पर एक धेला भी नहीं दिया गया था। नीचे के गीत में चेन गैंग के ऐसे क़ैदी की मानसिक स्थिति को व्यक्त किया गया है—

रात को देर से सोने को मिलता था,
उषा से पहले उठ जाने का नियम था;
क़ैदियों की दुनिया में १२ बजे दोपहर न होता था !
दिन रात आहिनी ज़ंजीरों से पैर बँधे रहते थे !

सड़कों को कूटने में सुबह से शाम तक—
बिना आराम किये, बिना विश्राम लिये;
देह चूर होती थी, हाथ थक जाते थे,
बैठ यदि जाता था–
मार अलग पड़ती थी, सज़ा बढ़ जाती थी !

न्यायाधीश ! कैसे हो न्यायाधीश ?
गोरों और कालों का न्याय जुदा करते हो ?
प्रभु के समक्ष क्या उत्तर न देना होगा ?
प्रभु है अत्यन्त निकट, न्याय अत्यन्त दूर
दुनिया की धुंध में देख नहीं पाता है—
पैरों में पड़ी हुई आहिनी ज़ंजीरों की
उठती हुई नित प्रति की करुण-ध्वनि, सुनता नहीं !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ईसाई पादरी निग्रो ईसाइयों को बराबर उपदेश देते रहते हैं कि 'प्रभु कष्ट में ही परीक्षा लेता है,' 'स्वर्ग का राज्य तुम्हारे लिये है', 'रोज़े महशर के दिन तुम्हारे साथ न्याय होगा,' आदि। किन्तु निग्रो के सब्र की इन्तहा हो चुकी है। वह अब इसी दुनिया में न्याय पाने के लिये व्यग्र है। पादरी के लिये अब उसके दिल में कोई इज़्ज़त बाक़ी नहीं रही। नीचे की पंक्तियों में इसी भावना की प्रतिध्वनि है—

धर्म भूषण है आत्मा का, बाइबिल में लिखा है;
पादरी के उदर में उसकी गुञ्जाइश नहीं !
"प्रभु पर विश्वास करो, बाइबिल की राह चलो"
'न्याय के दिन' सब चुकता हो जावेगा !

पादरी को प्रभु बहुत मोटा बनाता है
मोटा औ चमकदार बीवर के टोप जैसा !

खाता है तुम्हरा डिनर, लेता है तुम्हारी भेड़
"स्वर्ग के राज्य में जो कुछ तुम्हारा है"—
कहता है—मिलेगा तुम्हें !

ईसा के भक्त,
दो निग्रो चेन गैङ्ग क़ैदी;
९० बरस की सज़ा, करते हैं प्रतीक्षा—
'ईसा छुड़ायेंगे ज़मानत पर उनको !'
ये है सत्य घटना एक !

ईश्वर बनाता तुम्हें कृशकाय, निरापन्न
जिससे प्रदर्शन हो त्यागवृती भक्तों का !

अमरीका में एक आम कहावत है 'निग्रो को गोली पहले मारो तनख़्वाह बाद में दो।' अब हालत यह हो गई है कि जो काम पहले केवल निग्रो से ही कराया जाता था उसके लिये भी अब गोरे होड़ लगाते हैं। दक्षिण कारोलिना में इस युद्ध के ज़माने में भी २५ फ़ी सदी निग्रो मज़दूर बेकार हैं। निग्रो में क़बीले की आदतें हैं। इतिहास की हर सताई हुई क़ौम की तरह वह रक्षा के लिये आपस में ही एक दूसरे का सहारा लेते हैं। ज़रूरत पड़े तो आख़िरी पैसे को भी वे पांच हिस्सों में बाँटेंगे। एक क़ानून के मुताबिक़ पेशगी लेना जुर्म है। गोरे मालिक निग्रो को पेशगी लेने का प्रलोभन देते रहते हैं। यदि निग्रो नौकरी छोड़कर जाना चाहे तो एकाध डालर पेशगी की जगह उसके बक़ीया २५-३० डालर काट लिये जाते हैं। जब वह विरोध करता है तो पेशगी लेने के जुर्म में उस पर मुक़दमा चल जाता है और जुर्माना कर दिया जाता है। गोरा मालिक ज़मानत ले लेता है और तब तक उसे काम करने के लिये मजबूर करता है जब तक वह जुर्माने की रक़म अदा न हो जाय। कुछ रियासतों में एक "वैग्रैन्सी क़ानून" है। इसके मुताबिक़ कोई निग्रो यदि बेकार मिले तो वह गिरफ़्तार कर लिया जाता है और कोई गोरा मालिक उसे मनचाही रोज़ी पर अपने यहाँ काम पर रख सकता है। इस तरह पचासों तरीक़े से निग्रो की दासता जारी है। इस सम्बन्ध में कुछ पंक्तियाँ हैं—

माँ बिदा हुई इस दुनिया से !
पापा भी स्वर्ग सिधार गये !
मैं हूँ अनाथ इस दुनिया में—
क़िस्मत में लिखी दासता है !!

गोरे मालिक या कामदार हमेशा इस बात का ख्याल रखते हैं कि नौकरी छोड़ते समय निग्रो के पास एक छदाम न हो ताकि वह बराबर काम करने के लिये विवश रहे। इसी तरह के एक निराश्रित, भूखे, छदामहीन नौकरी छोड़े हुये निग्रो का एक पथ-गीत है—

४१ दिन बीते जब बिस्तर पर सोया था।
जन्म से अब तक—
लगातार तीन बार पेट भर खाया नहीं!
डालर की नज़रों में कब का मैं मर चुका !

चेन-गैंग टोली करती प्रतीक्षा मेरी
यद्यपि अपराध नहीं मैंने किया है कोई
चाहता हूं मात्र सोने का ठौर एक,
रूखा सूखा खाने को, पीने को पानी ज़रा !

वस्त्र तार तार हुये, जूतों में तला नहीं;
दुनिया में शरण मिले ऐसी कोई जगह नहीं !
दरबदर फिरता हूं ठोकरें खाता हुआ !

कोई नहीं ऐसा, मुझको जो प्यार करे,
निग्रो का जीवन दुख-दर्द का पर्यायवाची !
जीवन जो दिया प्रभु सहन नहीं होता है
ले लो ये देन अपनी,
चाहना न इसकी मुझे ;
मृत्यु में ही शायद कुछ त्राण मिले मुझको !

दक्षिण कारोलिना में जेल के एक मेहरबान वार्डन ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मुझे जेल देखने की इजाज़त देते हुये कहा—"जब तक सह सकी ठहर सकती हो!" इतना गन्दा जेल था वह कि सांस नहीं ली जाती थी। हफ़्तों से गलिहारे की सफ़ाई नहीं हुई थी। पेशाब, पसीने, कचरे और गरमी की भभक से एक ऐसी तेज़ बू उठ रही थी कि मालूम होता था कि बिड़िया घर में कोई शेर बन्द है। ६×६ फुट के सेल में ४-५ क़ैदी बन्द थे। वे सबके सब बिलकुल नंग धड़ङ्ग थे। कपड़ा फट न जाय इसलिये केवल दिन में ही उन्हें कपड़ा पहनने की इजाज़त थी। वे नीचे ज़मीन पर लेटे हुये थे, वहाँ गर्द की इञ्चों मोटी तह जमी हुई थी। उनकी ज़बानें मुँह से बाहर निकली पड़ती थीं मानों कुत्ते हाँफ़ रहे हों! जब तक मुमकिन हुआ मैं वहाँ खड़ी रही। नीचे लिखे गीत की पंक्तियां वहीं मेरे कानों में पड़ीं—

सारे ग्रीष्म बाहर रह धूप में परिश्रम किया
सुबह से शाम तक बीस बीस घण्टे तक!
अथक परिश्रम किया!
ईश! इस क्रिसमस में होगे क्या सदय ज़रा?

सरदी और गरमी की चिन्ता नहीं है,
कैसी ही गरम हवा बहती हो बहने दो,
पैरों में पड़ी हुई झनझन ज़ंजीरों की,
चिन्ता नहीं है मुझे!

कभी कभी लगता है ध्वंसकारी ज्वाल प्रबल
लपटें जिसकी विशाल अम्बर तक हाथें उठ;
हे प्रभु वह प्रलय-दिवस बोलो कब आयेगा
नरक से बदतर जब दुनिया बह जाये यह?

---

# गीत

श्री सुधांशुशेखर चौधरी 'शेखर'

पथिक, खोजते क्या समीर में?

जीवन के वे स्वप्न सुनहले,—
देखा करते थे जो पहले,
आज बना इतिहास पड़ा है,
इन नयनों के तरल नीर में!

युग युग से संचित कारा में,
बहा दिया निर्मम धारा में,
प्राण-तरी को विकल खोजते
आज पथिक तुम इसी तीर में!

चले गये जो जीवन मग पर,
नव-साहस का सम्बल लेकर,
देख रहे हो बाट आगमन की
उनके रथ की लकीर में!

---

# गीत

श्री हेमन्त कुमार वर्मा बी० ए०

फूलों में ना मधुपों में गा!

अन्तर के प्रश्नों का उत्तर, उत्तर में ना, प्रश्नों में पा!

तू मानव है तुझमें जलती, प्रतिपल आशा की ज्वाल प्रबल
तू स्वयं अरे बल का साधन, तुझको जग हो कैसे संबल!
तू स्वयं बसा अपनी नगरी, जिसके घेरे में अग जग ला!

रे नित्य नवल निर्वाण नयन में, अश्रु बूंद ढल ढल जायें
वे ही पलकों के ये सपने, पल दो पल भी ना पल पायें;
तू निशि दिन संस्मृति-वाहक बन, अम्बर में ना, आँखों में छा!

तू स्वयं पूर्ण है अपने में, क्यों लिखे गीत ये सपने में!
तू सत्य विश्व है स्वप्न तरल, अपनी वाणी के कँपने में;
खोजने तत्व आकर्षण का, छवियों में ना, कवियों में जा!

फूलों में ना, मधुपों में गा!

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मुक्त यूरोप की राजनैतिक और सामाजिक प्रवृत्तियाँ

श्री विद्यानन्द सन्यासी

यूरोप के मुक्त देशों में कौन कौन से राजनैतिक परिवर्तन हो रहे हैं इसकी भारतीय पाठकों को ठीक ठीक ख़बर नहीं मिल रही है। पिछले सप्ताह जो ब्रिटिश समाचार पत्र मिले हैं उनमें से दो के उद्धरण को देखकर पता चलता है कि युद्ध के कारण यूरोप में कितने गहरे सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं। "टाइम्स" का विशेष सम्वाददाता रोम से लिखता है—"जो लोग उत्तरी इटली से आ रहे हैं वे बताते हैं कि समूचा उत्तरी इटली कम्यूनिस्त हो गया है—गांवों में रहने वाले किसान और शहरों में बसने वाले मज़दूर दोनों। इटली के मज़दूरों में यह भावना काम कर रही है कि ब्रिटेन और अमरीका दोनों धनी देश हैं, इसीलिये वे इटली जैसे ग़रीब मुल्क के हितों को नहीं समझ सकते। इनके मुक़ाबले में सोवियत् रूस यूरोप के भावी इतिहास में इटली का सब में बड़ा दोस्त होगा।" इटली की राजनैतिक दुनिया में यह एक आश्चर्यजनक परिवर्तन है। अब सुनिये चर्चिल के सुपुत्र मेजर रैण्डल्फ़ चर्चिल की बात, जो मार्शल टिटो के हेड क्वार्टर में ब्रिटिश प्रतिनिधि हैं। एक क्रोट पत्रकार से वे क्या कहते हैं—"मुझ पर इस बात का बेहद असर पड़ा कि स्थानीय सीमा बन्धनों को तोड़कर यूगोस्लाविया के सैनिक राजनैतिक स्वत्वों में समता का जो पैटर्न बुन रहे हैं वह यूरोप के दूसरे मुल्कों के लिये नक़ल करने की चीज़ है। मार्शल टिटो ने यह साबित कर दिया कि वह जितने बड़े सेनानी हैं उतने ही बड़े राजनीतिज्ञ भी हैं।" तीन बरस पहले मेजर चर्चिल ने टिटो को "लाल लुटेरा" कहकर सम्बोधित किया होता। असल में यूरोप के विविध देशों की सामाजिक क्रान्ति सेन्सरशिप के द्वारा तो नहीं रोकी जा सकती।

यूरोप के मुक्त मुल्कों में जगह जगह अनस्थायी सरकारें बन रही हैं जिनमें धुरी-विरोधी संयुक्त मोरचे के सभी दल के लोग शामिल हैं। किन्तु ये पंचरंगी सरकारें अधिक दिनों तक नहीं टिक सकतीं। आपस में मौलिक सैद्धान्तिक मतभेद होने के कारण जल्दी या देर में इनमें एक पार्टी के हाथों में सारी ताक़त आ जायेगी। इनमें कम्यूनिस्त और जनतन्त्रवादी दलों को औरों की अपेक्षा सर्वसाधारण अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि इन्हीं दलों ने हिटलरी शासन का घोर विरोध करते हुये काफ़ी यातनायें सही हैं। यों तो सोवियत रूस ने यह साफ़ साफ़ ऐलान कर दिया है कि वह इन मुल्कों के सामाजिक ढांचे में किसी क़िस्म का परिवर्तन करने में ज़रा भी मदद न देगा और टिटो ने भी इस बात की घोषणा कर दी है कि उसका मक़सद सोवियत प्रजातन्त्र की स्थापना नहीं है, किन्तु यह सब दिखावा है। क्योंकि यदि वाम पक्षी दल चुनाव में बहुमत में आ जायेंगे और जिन रक़बों पर लाल सेनाओं का क़ब्ज़ा है वहां यह बहुत सम्भव है तो इन मुल्कों में कुछ ऐसी ही सरकारें बनेंगी जो सोवियत प्रजातन्त्र से मिलती जुलती होंगी। यूरोप के इन मुल्कों के राजघरान और फ़ासिस्टों में जो गहरा सम्बन्ध था उसके कारण इन देशों में जनतन्त्र की प्रवृत्ति बहुत अधिक हो गई है। रूमानिया के शाह कारोल ने १९४० में भीषण दंगों के बाद गद्दी छोड़ दी थी। उसका बेटा शाह मिखाइल जर्मनी की एक कठपुतली साबित हुआ। बलगारिया के शाह बोरिस ने जर्मनी के साथ समझौता करके अपने तीनों पड़ोसी राष्ट्रों को लूटने में हिस्सा लिया। उसने यह अहतियात ज़रूर बरती कि सोवियत् के साथ लड़ाई नहीं छेड़ी। पिछले साल उसकी मृत्यु हो गई। उसका लड़का सीमियन सिर्फ़ सात बरस का है। प्रतिक्रियावादी रीजेंसी कौंसिल बरख़ास्त कर दी गई है और शाह बोरिस ने बलगारिया के कम्यूनिस्तों को जिस तरह सताया था उसके लिये सोवियत बलगारिया को कभी माफ़ नहीं करेगा। यूगोस्लाविया का शाह पीटर बहुत अरसे तक मिहाइलोविच का समर्थन करता रहा और एंग्लो-सोवियत् दबाव से मजबूर होकर उसने टिटो के साथ समझौता किया। यूगोस्लास्टिया के कम्यूनिस्तों ने इस बात का साफ़ साफ़ ऐलान कर दिया है कि पीटर को वे पक्का फ़ासिस्ट समझते हैं। यूनान के राजा ने भी बहुत विवश होकर इस बात का ऐलान किया है कि वह अपने को जनता के वोट के ऊपर छोड़ता है।

पश्चिमी और उत्तरी यूरोप के कुछ थोड़े से राजाओं ने बदली हुई परिस्थिति के साथ अपना मेल बैठा लिया था और युद्ध के बाद इनके सही सलामत बच जाने की ज़्यादा सम्भावना हैं। किन्तु इन मुल्कों में भी जनतन्त्रवादी भावना जीवित है। इंगलैण्ड में भी एक अच्छा ख़ासा जनमत है जो राजघराने के विरुद्ध है। हाला कि यह एक आश्चर्य की बात है कि इङ्गलैण्ड का मज़दूर दल टोरी पार्टी के मुक़ाबले में कहीं अधिक राज भक्त है। राजा की जितनी जय जयकार लन्दन के ग़रीबों के मोहल्ले ईस्ट एण्ड में होती है उतनी अमीरों के मोहल्ले वेस्ट एण्ड में नहीं—शायद राजा का दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सम्पन्नता के साथ ग़रीबों का एक मात्र सम्पर्क है जिसे वे अपना कह सकें। इङ्गलैण्ड में राजा के विरोधियों को बिलकुल पागल समझा जाता है। क्रिप्स भी इन्हीं लोगों में से एक था। किन्तु सम्भवतः उसने राजा के सम्बन्ध में उसी तरह अपनी राय बदल दी होगी जिस तरह उसने ब्रिटिश साम्राज्य के सम्बन्ध में बदल दी है। क्रिप्स की नज़रों में ब्रिटिश साम्राज्य अब एक बहुत उपयोगी चीज़ हो गया है। एच० जी० वेल्स राजा की ज़रा भी ज़रूरत नहीं समझते। सन् १९३२ में वेल्स ने इङ्गलैण्ड के राजा पर इस बात का इलज़ाम लगाया था कि वह साहूकारों के हितों में ग़रीबों को पीसने के लिये एक चक्की का काम देता है। वेल्स ने मज़दूर दल को इस बात के लिये बुरा भला कहा था कि "राजा के बारे में जो बात कहनी चाहिये उसे वह नहीं कहता।" इस अपमानजनक टिप्पणी के विरोध में एक तूफ़ान खड़ा हो गया था। सन् १९३९ में वेल्स ने फिर राजा के सम्बन्ध में 'न्यूज़ क्रानिकल' में लिखा—"पिछली दो सदियों से ब्रिटेन के राजघराने का हमारे समाज, हमारे विचारों, हमारे साहित्य, कला, विज्ञान से ज़रा भी सम्बन्ध नहीं रहा है। हमारी सैनिक-व्यवस्था और हमारे राजनैतिक जीवन में हमारे राजघराने के हस्तक्षेप का ज़रा भी मूल्य नहीं रहा है।" समाचार पत्रों में राजघराने की जिन छोटी छोटी घटनाओं को बढ़ाकर छापा जाता है उससे वेल्स को नफ़रत है। किन्तु अङ्गरेज़ मन ही मन इस बात को जानता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लिये ब्रिटेन का राज घराना एक बहुत ज़रूरी चीज़ है।

इस युद्ध के दौरान में औरतों से काम लेने के लिये 'वीमेन्स आक्ज़िलरी कोर' बना दी गई हैं, किन्तु रूस में शायद औरतों के लिये इस तरह की कोई अलग संस्था नहीं है और अगर है तो उसकी रूप-रेखा ही कोई दूसरी होगी। जो याङ्क (अमरीकी सैनिक) और टामी (ब्रिटिश सैनिक) १९४४ माडेल की रूसी लड़कियों से चीज़-केक और मीठी मीठी नखरैल बातों की उम्मीद करते थे उन्हें वहां गुरिल्ला टाइप की सख्त अनुशासन वाली लड़कियां दिखाई दीं जो पंचवर्षीय योजना और यौन-विज्ञान के समाजवादी कार्य क्रमों की छाया में पली और बढ़ी थीं। सोवियत् के शहरों में न तो कोई "पूंजीवादी चकले घर" हैं, न रात्रिक्लब, न जन्नती बाग़ जहाँ अफ़लातून के अर्धाङ्गों का सम्मिलिन होता है; न वहाँ काकटेल की दूकानें ही हैं। यूरोप के दूसरे शहरों की तरह सोवियत् के शहरों में रेलवे प्लेटफ़ार्म या सड़क के मोड़ पर खड़ी हुई कोई लड़की काम पिपासा का साधन बनने के लिये नहीं मिलेगी। युद्ध के मोर्चों पर जितनी गम्भीरता है उससे कम गम्भीरता पीछे नहीं है। नवम्बर क्रान्ति, ग्रह युद्ध, समाजवादी योजना और टोटल वार की ज़रूरतों ने रूसी स्त्री में एक ऐसी मनोवैज्ञानिक क्रान्ति पैदा की है जिसकी परछांई तक अमरीकी या अङ्गरेज़ लड़की को नहीं लगी। सन् १९१७ की क्रान्ति ने रूस के सामाजिक ढाँचे को उथल पुथल कर दिया था और गृह-युद्ध ने उसे चकनाचूर कर दिया। इसको लेकर सोवियत के मुक्त प्रेम की चर्चा से साम्राज्यवादी और पूंजीवादी राजनीतिज्ञों ने काफ़ी कूटनीतिक रक़म बनाई। सोवियत के विरुद्ध गन्दे से गन्दा प्रचार किया गया। दुनिया भर के लोगों को बताया गया कि "सोवियत् देश में ७०-७० गज़ लम्बे शयनागार हैं जहाँ मर्द और औरतें इकट्ठा सोते हैं और हर एक को आज़ादी है कि वह चाहे जिसके साथ सो सके। हालत यह है कि यदि कोई पुरुष रात में हाल के एक तरफ़ सोता है तो वह सुबह दूसरी तरफ़ उठता है।" बर्नर्ड शा की पुस्तक On the Rocks का स्टैनली बाल्डविन ने जो ख़ाका खींचा था उसमें "औरतों के इस समाजीकरण" के बारे में लिखा था—"ज़मीन सब के लिये कामन बनाना चाहें बना लीजिये, उद्योग धन्धे का सब को मालिक बनाना चाहें बना लीजिये पर मेहरबानी करके हमारी औरतों को सब की कामन मिल्कीयत न बनाइये।"

और आज यदि स्टैनली बाल्डविन ज़िन्दा होते तो सोवियत और इङ्गलैण्ड के सामाजिक आचार की तुलना करते हुये देखते कि इङ्गलैण्ड की लड़कियों ने इस युद्धकाल में सदाचार को उठाकर ताक पर रख दिया है और वे हर वक्त अपने आपको किसी भी मर्द के सुपुर्द करने को तैयार रहती हैं। जिसे देखकर यार्कशायर का एक पादरी लिखता है कि—"इङ्गलिस्तान के सभ्य समाज तक की लड़कियों ने अपने आप को इतना सस्ता बना दिया है कि देखकर दिल दहल जाता है।"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दानवीर जगदेव पँवार

श्री अगरचंद, भंवरलाल नाहटा

'विश्ववाणी' के गत मार्च के अंक में श्री० शंभुप्रसाद बहुगुना का गढ़वाली चारण-काव्य में हिन्दू पद पादशाही शीर्षक एक लघु लेख छपा है। इस लेख में जगदेव पँवार ने अपना मस्तक कालिका को भेंट किया और इससे उसने प्रसन्न होकर हिन्दूपति पादशाही का वरदान दिया लिखा है। इस सम्बन्ध में राजस्थानी साहित्य में विस्तृत वर्णन पाया जाता है। अतः उसके आधार से जगदेव पंवार की दान वीरता एवं असाधारण व्यक्तित्व पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

जगदेव पमार एक ऐतिहासिक व्यक्ति था, इसका उल्लेख मुहणोत नेणसी की ख्यात में भी पाया जाता है। वह पाटण के सिद्धराज सोलंकी का स्वामी-भक्त सेवक था और उसने उसीकी दीर्घायु के लिए अपना मस्तक कंकाली को भेंट कर दिया था। अतः जगदेव का समय १२ वीं शती निश्चित होता है। ख्यात के अतिरिक्त जगदेव पंवार की बात भी राजस्थानी साहित्य में पाई जाती है और "ख्यात जगदेव कंकाली का"[1] भी राजस्थान में पर्याप्त प्रसिद्ध है। यहां जगदेव पँवार की बात का सारांश दिया जा रहा है।

मालवदेश के सुप्रसिद्ध धारा नगरी के राजा पंवार उदयादित्य की दो राणियां थीं। पटरानी बाघेली जिससे रिणधवल कुमार का जन्म हुआ राजा को बड़ी प्रिय थी। दूसरी रानी सोलंकी से जगदेव जन्मा। किसी कारणवश जगदेव की माता से राजा का मन अप्रसन्न रहता था। कुमार जगदेव सांवला होने पर भी बड़ा तेजस्वी और रूपवान था। राजा उदयादित्य उसे बड़ा होनहार समझकर बहुत प्रेम किया करते थे परन्तु पटराणी बाघेली जगदेव से द्वेष करती थी। इसी कारण उसे पिता का राज्य छोड़कर गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह की सेवा में जाना पड़ा। जगदेव का विवाह टोडा के राजा टंक चावडा की पुत्री और कुमार बीज की बहिन वीरमती से हुआ था।

विमाता के असद् व्यवहार से रुष्ट होकर जगदेव अपनी ससुराल जाकर पटनी को ले पाटण रवाने हो गया और रास्ते में उसने बीहड़ जङ्गल में भयानक नाहर और नाहरी को मारकर लोगों को निर्भय बना दिया।

चावड़ी वीरमती भी बड़ी पतिव्रता और वीर क्षत्राणी थी। उसके साथ जब नौकरी के लिए जगदेव पाटण पहुँचा तो जगदेव शहर में मकान ठीक करने गया और तालाब पर बैठी हुई चावड़ी को वहां की वेश्या जांबवती जगदेव को बुवा होने का प्रपञ्च रचकर अपने यहां ले गई। उसके पुत्र शहर कोतवाल ढूंगरसी का पुत्र लालकुंवर आया जाया करता था। रात में चावड़ी को उसे जगदेव बतलाकर धोखे से कमरे में प्रवेश कराके दरवाज़ा बन्द कर दिया। चावड़ी को जब यह प्रपंच ज्ञात हुआ तो उसके लिए अपने पवित्र पातिव्रत धर्म की रक्षा करना एक समस्या हो गई पर उसने बुद्धिमानी और धैर्य से काम लिया। लालकुँवर को बारुणी के घोर नशे में व्याप्त कर चावड़ी ने उसका काम तमाम कर दिया। और उसकी गंठरी बांध कर खिड़की के द्वारा सड़क पर फेंक दिया। पहरेदार उसे माल समझकर प्रातः काल कोतवाल के पास ले गये। गठड़ी को खोलते ही अपने पुत्र का शव देखकर कोतवाल के होश हवास जाते रहे। वह तत्काल जांबवती वेश्या के घर आया और चावड़ी वीरमती को पकड़ने के लिए खिड़की की राह से सिपाहियों को चढ़ाया। वहां जो भी व्यक्ति जाकर माथा डालता तो चावड़ी एक झटके से उसका काम ख़तम कर देती। इस प्रकार पांच आदमियों को मार देने पर कोई भी उसके पास नहीं फटका और यह ख़बर महाराज सिद्धराज जय सिंह के कानों तक पहुँची। महाराज स्वयं घटनास्थल पर पहुंचा, साथ में जगदेव भी हो गया। महाराजा ने चावड़ी से परिचय प्राप्त कर जगदेव से मिलाया स्वयं चावड़ी को धर्म पुत्री कहकर धैर्य दिलाया और दास दासियों के साथ एक सामग्रीपूर्ण महल में भेज दिया। महाराजा ने कोतवाल को पदच्युत कर वेश्या के घर लूट लिए। उन्होने जगदेव को बड़े सम्मान के साथ दरबार में रखा और प्रति दिन २०००) वेतन कर दिया।

जगदेव बड़े मौज से दान पुन्य करता हुआ पाटण में रहने लगा। गुर्जरेश्वर के समस्त कर्मचारी जगदेव से ईर्ष्या ही मन ईर्ष्या रखते क्योंकि राजा उसे बड़ा सम्मान देता व ६०,००० मासिक वेतन भी। उसे पाटण में सुख पूर्वक रहते ६ वर्ष हो गए। इस समय जगदेव के पुत्र भी दो थे जिनमें बड़ा जगधवल और छोटे का नाम वीरमल था।

---

१—यह ख्यात बाबूलाल चिडावे वाले रचित और श्याम लाल हीरालाल मथुरा वाले द्वारा प्रकाशित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एक बार भादों की मेंह अंधियारी अर्द्ध रात्रि में महाराजा को औरतों के गाने और रोने का शब्द सुनाई दिया। महाराजा ने जगदेव से कहा, औरतें जहां रोती और गाती हैं तुम जाकर इसका कारण ज्ञात करो। जगदेव तत्काल उठकर रवाने हुआ। दूसरे उमरावों, पहरेदारों को भी राजा ने आज्ञा दी तो वे परस्पर में एक दूसरे को जाने को कहकर सो गये। कुछ उमरावों ने कहा, जगदेव चिरकाल से मुफ़्त का बड़ी वेतन पाता है ऐसे समय में वही जायगा। परीक्षार्थ राजा जगदेव के पीछे पीछे हो गया। जगदेव तेजी से घटनास्थल पर जा पहुँचा और रोने व गाने का कारण पूछा। रोने वाली पाटन की योगिनियां थीं और गाने वाली दिल्ली की। कारण पूछने पर पता लगा कि कल प्रातःकाल सवा प्रहर दिन चढ़ने पर सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु होगी। राजा के दीर्घायु होने का उपाय पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसके आत्म भोग देने पर महाराजा दीर्घायु हो सकेंगे। तो वह योगिनियों को थोड़ी देर प्रतीक्षा करने की प्रार्थना कर तत्काल अपने महल में आया और स्वपत्नी चावड़ी से सारा वृतान्त कहते हुए स्वामी के लिये आत्म-भोग देने के सम्बन्ध में सलाह मांगी। चावड़ी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा—जिसका नमक खाते हैं उससे उऋण होने का यह अच्छा अवसर है। पुत्रों के साथ मैं भी आपसे पीछे नहीं रहूंगी। जगदेव अपनी प्राणप्रिया की बातों से प्रसन्न हो तत्काल अपने दोनों पुत्रों व प्रिया के साथ योगिनियों की सेवा में आ उपस्थित हुआ और राजा की आयु चारों जीवों के भोग देने पर ४८ वर्ष बढ़ाने की प्रार्थना कर बड़े बेटे का सिर धड़ से अलग कर दिया। जब दूसरे को सम्मुख लाया गया तो योगिनियों ने जगदेव के सत्य साहस पर प्रसन्न होकर उपर्युक्त ४८ वर्ष का वरदान देने के साथ साथ बड़े पुत्र को भी जीवित कर दिया। जगदेव सपरिवार घर लौटा और राजा भी बड़ी प्रसन्नता के साथ गुप्त रूप से सारा वृतान्त देखकर महलों में लौट आया।

प्रातः काल होने से पूर्व ही राजा ने जगदेव को बुला भेजा। वह पूजा पाठ करके दरबार में आया। राजा ने स्वागतपूर्वक अपने पास ही दूसरे सिंहासन पर उसे बैठाया और दूसरे उमरावों से रात की बात का वृतान्त पूछा। उन लोगों ने कहा अमुक अमुक व्यक्ति गये थे, मुसाफिरों में एक के पुत्र जन्मा और दूसरे के घर मृत्यु हुई थी इसीसे रोना और गाना हो रहा था। राजा ने कहा—"ज़रूर! आप लोग लाख लाख के पट्टेदार हैं आपके बिना दूसरा कौन सच्ची खबर लाता!" फिर उन्होंने जगदेव से कहा—"आप बतलाइए रात्रि की हकीकत।" जगदेव ने कहा "ये लोग जो कहते हैं वही बात है!" राजा ने कहा—"मेरी कसम, सत्य बात कह दो!" जगदेव ने कहा—"मैंने कुछ विशेष देखा हो तो कहूं! मुझे लम्बी चौड़ी हांकनी नहीं आती।" तब महाराजा ने सबको सम्बोधित कर कहा—"आज मेरी तो मौत थी, इन्होंने ही ४८ वर्ष का राज्य मुझे दिलाया।" और रात की सारी नज़र देखी बात प्रकट कर २०००गांव, २००० घोड़े हाथी, ११०० पालकी, २०० रथ १,००,००० रुपया प्रति दिन के वेतन देने के साथ साथ अपनी बड़ी राजकुमारी का विवाह भी जगदेव के साथ कर दिया।

इसके २-३ वर्ष बाद सिद्धराज जयसिंह ने जाड़ेची रानी से विवाह किया। यह नवविवाहिता बड़ी सुन्दरी थी। ५००) रुपयों के अतर फुलेल से प्रतिदिन स्नान किया करती थी। उसकी खुशबू से आकर्षित होकर काला भैरव प्रतिदिन रानी के महल में आता और राजा को पलंग के नीचे दबाकर स्वयं राणी के साथ शयन करता। उसने राजा को चेतावनी दे दी कि कभी दूसरी रानी के महल में मत जाना और न मेरी बात किसी के सामने प्रकट करना। अगर ऐसा करोगे तो मैं तत्काल तुम्हें मार डालूंगा। भैरव के इस अपमान से राजा दिन दिन दुर्बल होता हुआ चिन्ता-ग्रस्त रहने लगा।

जगदेव ने राजा की हालत देखकर कारण जानने का आग्रह किया और राजा ने रात के समय छिपे रहकर देख लेने का निर्देश कर दिया। जब भैरव की करतूत जगदेव ने देखी तो तत्काल उसने भैरव को पलङ्ग से गिराकर ललकारा। दोनों में खूब ज़ोरों से कुश्ती होने लगी। रात थोड़ी रहने पर भैरव निर्बल हो गया। जगदेव ने पाद-प्रहार से भैरव को लङ्गड़ा कर दिया और उसकी मुश्कें बांधकर अपने घर के तहख़ाने में कैद कर दिया। जब प्रातःकाल जगदेव दरबार में गया तो राजा ने फिर २००० गांव उसे दिये।

इस प्रकार भैरव को गिरफ़्तार हुए ७ दिन बीत गए। माता चामुण्डा देवी के अखाड़े में उसकी अनुपस्थिति रहने लगी। देवी ने उसे कई बार मना किया था कि जगदेव की उपस्थिति रहते पाटण मत जाना पर वह नहीं माना और अब उसे लङ्गड़ा होकर क़ैद सहनी पड़ती है। देवी चामुण्डा उसे बन्धन मुक्त कराने के लिए भाटिनी का रूप धारणकर मनुष्य लोक में आई। वह रंग काला, लंबा दुबला देह लंबे दांत [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हुई लटाएं, ललाट पर सिन्दूर लगाए, श्याम वस्त्र और तेल से गरक़ाब हुई खुले सिर, त्रिशूल धारण किये हुये, इस रूप में पाटण में महाराज सिद्धराज जयसिंह के दरबार में उपस्थित हुई। उसने महाराज को बायें हाथ से आशीर्वाद दिया। जगदेव ने उसकी ओर नज़र कर मूंछों पर हाथ फेरा। कंकाली ने तत्काल माथे को वस्त्राञ्चल से ढँक कर दाहिने हाथ से आशीर्वाद दिया और गद्दे पर बैठ गई। जगदेव वहां से उठकर अपने घर आ गया।

महाराज ने कंकाली से उसका परिचय पूछा, उसने कहा—मैं भाटिनी हूँ। नवखंड में राजा, सती, दातार जूझारों की खोज में फिररही हूं! महाराज ने कहा—तुमने मस्तक पर अंचल किसे देखकर रखा और जगदेव को दाहिने हाथ से आशीर्वाद दिया इसका कारण। कंकाली ने कहा—उसके मूंछों पर हाथ लगते ही मुझे ऐसा लगा कि पृथ्वी तल पर इसके सदृश कोई दातार नहीं है। महाराजा ने कहा—अच्छा तुम जगदेव से दान ले आओ मैं फिर उससे चौगुना दान दूंगा! कंकाली ने कहा--पृथ्वी पर पँवारों से दान में बाज़ी लगाने वाला कोई नहीं क्योंकि—

पृथ्वी बड़ा पँवार प्रिथमी पँवारा तणी।
एक उज्जैणी धार बीजौ आबू बैसणौ॥

अतः आप उसके समान दान न दे सकेंगे। राजा ने कहा—अच्छा! तुम पहले वहां का दान लाओ! फिर मैं चौगुणा देने की प्रतिज्ञा करता हूँ। वह तत्काल जगदेव के यहां गई। उसने पँवारा को कड़ाई करते हुए कहा कि सिद्धराज जय सिंह ने तुम्हारे से चौगुना दान देना स्वीकार किया है अतः तुम दान दो फिर राजा को दिखाया जाय! जगदेव ने अपनी स्त्री से पूछा—राजा से अपने किसी बात में बराबरी नहीं कर सकते तुम कहो तो मैं अपना मस्तक दान कर दूं! राणी ने कहा—अपना सर्वस्व दे सकते हैं, पर ऐसी भाटिनिएं बहुत सी आवेंगी आप मस्तक किस किस को देंगे! इतने में जगदेव की एक अप्रिय राणी फुलमादे ने कहा—जीवन सर्वस्व! आपके विचार बड़े सुन्दर हैं। इस दान से ही सिद्धराज हारेगा एक आपका और दूसरा मेरा मस्तक दे डालें! महाराजा कहां से ८ मस्तक दान करेंगे? जगदेव ने कहा, धन्य क्षत्राणी! पहला मेरा मस्तक ले जाकर उसे दो फिर अपना विचार करना! जगदेव ने तुरत अपना मस्तक काटकर दिया। राणी फुलमादे ने उसे थाल में ढँककर कँकाली को समर्पण कर दिया। कँकाली ने खोलकर जगदेव का मस्तक देखा तो वह हँस रहा था। उसने थाल लेकर आशीर्वाद देते हुए कहा कि—इसके धड़ का यत्न रखना, उसके ऊपर मस्तक भी न बैठे! में अभी सिद्धराज को लज्जित कर आती हूँ और इस दातार शिरोमणि को जीवित करती हूं!

कंकाली मस्तक दान लेकर जा रही थी! मार्ग में उसे जगदेव का भाणजा जगत सिंह खीची मिला। उसने मामा का मस्तक देख कर कहा मामा जी की बराबरी तो नहीं हो सकती पर मेरे एक ही आंख है जिसे तुम लो यह मेरी तुच्छ भेंट है। कंकाली नेत्र लेकर फुरती से राज दरबार में गई उसने कहा राजन्! जगदेव से चौगुणा दान लाओ अपना, पटरानी का, युवराज का और पट्ट अश्व का मस्तक और ४ नेत्र। राजा विस्मयपूर्वक उठकर राणी के पास गया और प्रतिज्ञा की बात कही। रानी ने कहा--नाम तो लिया जावे, मस्तक नहीं दिया जाता। इसी प्रकार युवराज का उत्तर मिला। राजा ने कँकाली से कहा--मेरा और घोड़े का मस्तक तैयार है! कँकाली ने कहा--अच्छी बात है लाओ! राजा ने कहा खड्ग से उतार लो! उसने कहा—मैं भिक्षुक हूं, दिया हुआ लेती हूं। राजा ने कहा—ऐसा काम तो मुझसे नहीं होगा। तब कँकाली ने कहा, तुम अटारी पर चढ़कर ज़ोर से ७ बार पुकारो कि जगदेव जीता और मैं हारा, फिर सात बार उसके मस्तक के नीचे से निकलो तो तुम्हें माफ़ी! राजा ने झट वैसा ही करके अपने प्राण बचाये। कंकाली जगदेव के यहां आई, उसके धड़ पर मस्तक लगाकर उसे पुनर्जीवित कर दिया और जगत सिंह को भी एक के बदले दो नेत्र दिए। उसने जगदेव पँवार से भैरव का दान माँगा। जगदेव ने भैरव को बन्धन मुक्त कर दिया।

लेख विस्तार भय से जगदेव पँवार का बालकाल, विवाहादि का वर्णन एवं पीछे के जीवन की चर्चा नहीं नहीं की गई है। पाठकों को उसके लिये 'जगदेव पँवार की बात' ( नवयुग साहित्य मन्दिर दिल्ली से प्र० राजस्थान की बातां ) एवं फार्बस साहब की "राजमाला" का प्रथम भाग ( गुजराती अनुवाद ) देखना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चिट्ठी-पत्री

मार्च के अन्तिम सप्ताह में प्रकाशित दिसम्बर के 'हंस' में डा० रामविलास शर्मा ने 'प्रगतिशीलता' के सम्बन्ध में उठाये गये मेरे प्रश्न का जो उत्तर दिया है वह मूल प्रश्न को टालते हुये यों है :—

'देखो, यह व्यक्ति हमें देश की विस्तृत राष्ट्रीय परम्परा के बजाय, एक संकुचित गुटबन्दी करने को कहता है। यह हमें देश-द्रोह का पाठ पढ़ाता है। पर हम देशभक्ति को हरगिज़ नहीं छोड़ सकते।'

इस कथन पर बंगला की एक कहावत "अती भक्ति चोरेर लक्खन" का स्मरण हो आता है।

हम डाक्टर शर्मा से पूछते हैं—१९२० से १९४२ तक गान्धी जी बराबर देशभक्त रहे हैं या नहीं? अगर १९२० से १९४२ तक गान्धी जी बराबर देशभक्त रहे हैं तो १९४१ में गान्धी जी की देशभक्ति को आदर्श मानकर कविता लिखने वाले श्री सोहनलाल जी द्विवेदी और श्री सुधीन्द्र एम० ए० को आपने "बापू के छौने" कहकर उनका उपहास क्यों किया है? क्या १९४१ में प्रगति-शीलता का एक सिद्धान्त था और अब १९४२ में दूसरा? अगर हां, तो आपकी देश-भक्ति की परम्परा की कसौटी क्या है?—समाज के विकास क्रम से या ऊपर से आरोपित? अगर विकास क्रम से तो क्या आप गान्धी जी की देश-भक्ति को समाज के अन्दर से विकसित नहीं मानते? अगर नहीं मानते तो क्यों? और अगर आप गान्धी जी की देश-भक्ति को समाज के अन्दर से विकसित मानते हैं, तो जुलाई १९४१ के 'हंस' में आपने "बापू के छौने" लिखकर गान्धी जी और गान्धी भक्त कवियों का उपहास क्यों किया?[1]

इसके अलावा अगर देश-भक्ति की परम्परा प्रगतिवाद की पूंजी है तो श्री यशपाल का "गान्धी वाद की शव परीक्षा" का क्या मतलब है? और प्रगति शील "हंस" में उसकी प्रशंसा किस आधार पर छपी थी?

क्या गांधी जी की देश-भक्ति को आप 'अस्वस्थ' और 'अजनवादी' मानते हैं? अगर हाँ, तो इसे स्पष्ट और सप्रमाण कहिये।

अब आइये अपने दूसरे पहलू पर। गान्धी जी और जिन्ना दोनों देशभक्त हैं या नहीं? अगर दोनों देशभक्त हैं तो दोनों में एकता क्यों न हो सकी? अगर दोनों की एकता न हो सकने का कारण दोनों में या एक में कहीं कुछ ख़राबी है, तो वह क्या है और उसकी उत्पत्ति का भारतीय समाज और राजनीति में कारण कहाँ मिलता है?

डा० अम्बेडकर देशभक्त हैं या नहीं? अगर हैं तो अछूतों के पृथक अधिकार की कोशिश क्यों करते हैं? सवर्ण हिन्दुओं पर उनके विश्वास न करने का कुछ कारण है या नहीं? अगर है तो क्या?

अछूत नेताओं, मुसलिम लीगियों, कांग्रेसी देश-भक्तों और कम्युनिस्टों की देशभक्ति में कुछ फ़रक है या नहीं? अगर सब में कुछ कुछ फ़रक़ है तो आपकी प्रगतिशीलता कैसी देशभक्ति को अपना आदर्श मानती है?

अब आइये अपने अन्तिम पहलू पर, जिसमें आपने मुझ पर हमला किया है। प्रो० विनय सरकार, आचार्य नरेन्द्रदेव और डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त इत्यादि विद्वान हिन्दुस्तान के इतिहास में श्रेणी-संघर्ष मानते हैं? क्या आप उसे नहीं मानते?

इन पंक्तियों के लेखक ने प्राचीन साहित्य के अन्दर श्रेणी-संघर्ष को देखा है और उसकी राय में प्रगतिवाद का

---

१—"बापू के छौने" की कुछ खास लाइने यहां दी जाती हैं। जिन्हें ज़्यादा देखनी हों, वह जुलाई १९४१ का "हंस" देख लें। यह "भैरवी" और "प्रलय वीणा" की आलोचना है।

(क) "दोनों पुस्तकें कविता की हैं और दोनों का सम्बन्ध गान्धीवाद से है।"

(ख) "भैरवी" कविता में पुराने गौरव को द्विवेदी जी ने खूब याद किया है परन्तु यह गौरव क्यों धूल में मिल गया, यह नहीं लिखा। वह इसलिये धूल में मिल गया कि उस समय भी गान्धी जी जैसे नेता और पं० सोहनलाल द्विवेदी जैसे कवि वर्तमान थे।"

(ग) "किसान संस्कृति का रक्षक है, संसार का अन्नदाता है, तपस्वी है, धर्मावतार है, इसीलिये कि उसे भरपेट भोजन नहीं मिलता, तन ढंकने को वस्त्र नहीं जुड़ते। यही त्याग है, यही वैराग्य है, यही गान्धीवाद है। अफीम की घूंटी देते रहो, जिसमें कहीं रोटी कपड़ा न मांगने लगे।"

(घ) "राजनीति में गान्धीवाद के मिटते प्रभाव की पूर्ति वे साहित्य में बापू के गुणगान द्वारा करना चाहते हैं।"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्येय है श्रेणी-हीन समाज। इसी ओर संसार का छठवां हिस्सा जा चुका है और बाकी को भी अपनी भौगोलिक और सामाजिक परिस्थितियों के मुताबिक जाना होगा। इसलिये श्रेणी-संघर्ष को मानने का अर्थ ऐतिहासिक सत्य को स्वीकार करना है। और सत्य को छोड़कर चलने का मतलब ही है या तो अपने को धोखा देना या दुनिया को।

रही ढाई चावल की खिचड़ी की बात। सो मैं शर्मा जी से पूछता हूँ कि यूरोप में फ़ैसज़िम के ख़तरे के ख़िलाफ़ जो संयुक्त मोर्चे बने थे, या आज भी बने हुये हैं, उनमें श्रेणी-संघर्ष के बुनियादी सिद्धान्त को मानने वालों ने क्या अपने इस सिद्धान्त को छोड़ दिया है? रूस ने क्या श्रेणी-संघर्ष के सिद्धान्त को छोड़ दिया? कम्युनिस्ट चीन ने क्या श्रेणी-संघर्ष के सिद्धान्त को छोड़ दिया? (ज़रा कर बताइये कि) हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी ने क्या श्रेणी-संघर्ष के सिद्धान्त को छोड़ दिया?

हिन्दुस्तान में सभी राजनीतिक दलों के सहयोग से राष्ट्रीय सरकार बनेगी, उसमें क्या श्रेणी-संघर्ष को मानने वाले अपने इस सिद्धान्त को छोड़ देंगे? या क्या दूसरे राजनीतिक दल अपने स्वार्थों को छोड़ देंगे? अगर राष्ट्रीय सरकार में विभिन्न स्वार्थों को लेकर चला जा सकता है तो सिर्फ़ साहित्यिक आन्दोलन में वह बात क्यों नहीं हो सकती?

बैजनाथ सिंह 'विनोद'

---

# लेखकों और प्रकाशकों से

सन् १९३५ में श्री प्रोफ़ेसर दयाशंकर जी दुबे और मैंने यह जांच की थी कि हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति सम्बन्धी किस किस विषय की कौन कौन सी पुस्तकें हैं और खास तौर से किन किन विषयों की पुस्तकों की कमी है। हमारी जांच का नतीजा था—'हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य' पुस्तक। हिन्दी के पाठकों, लेखकों, और पुस्तकालयों के संचालकों ने उस पुस्तक का अच्छा स्वागत किया। अब वह पुस्तक समाप्त हो गई है। इधर गत दस वर्षों में कितनी ही नई पुस्तकें प्रकाशित हो गई हैं, और बहुत सी पुस्तकों के नये संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण छप गये हैं। हम चाहते हैं कि इस समय इन विषयों का जितना भी साहित्य मौजूद है उस सबका परिचय दिया जाय और उसमें जो कमी है, उस पर विचार किया जाय। आपके ध्यान में खासकर पिछले दस वर्ष की जो जो पुस्तकें हों, उनके बारे में नीचे लिखी बातें लिखकर इस शुभ कार्य में हमारा हाथ बटावें—

१—पुस्तक का नाम

२—लेखक, प्रकाशक, पृष्ठ संख्या, आकार, मूल्य

३—यदि किसी पुस्तक का अनुवाद या किसी के आधार पर है तो मूल पुस्तक और उसके लेखक का नाम आदि

४—पुस्तक की विशेषता और दूसरी उल्लेखनीय बातें

५—अगर नया सूचीपत्र हो तो भेज दें

६—अगर किसी पुस्तक के सम्बन्ध में अपनी सम्मति देने के लिए हमें उसको देखने की आवश्यकता हो, तो क्या आप उसकी एक प्रति हमारे पास भेज सकेंगे?

भगवानदास केला

भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


THE MIND OF MAHATMA GANDHI (गान्धी जी की विचार-धारा); संकलन कर्त्ता, श्री आर० के० प्रभु और श्री यू० आर० राव; आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता; पृष्ठ संख्या सब मिलाकर २००, बढ़िया काग़ज़, खादी की सुन्दर जिल्द; मूल्य तीन रुपया।

पुस्तक के अन्दर भिन्न भिन्न ३५ विषयों पर गान्धी जी के विचारों का बड़ी सुन्दरता और परिश्रम के साथ वर्गीकरण किया गया है। पुस्तक एक बार हाथ में लेकर ही अन्दाज़ हो जाता है कि संकलनकर्त्ताओं ने कितने अध्ययन और कितने अध्यवसाय के साथ पुस्तक को तय्यार किया होगा। 'यङ्ग इण्डिया' और 'हरिजन' के अतिरिक्त गान्धी जी की पुस्तकों तथा श्री महादेव देसाई, श्री प्यारे लाल और अनेक देशी और विदेशी विद्वानों की रचनाओं और समाचार पत्रों से इस पुस्तक के संकलन में सहायता ली गई है। पुस्तक आद्योपान्त गान्धी जी के अपने शब्दों में है। पुस्तक को पढ़कर जीवन के सम्बन्ध में गान्धी जी की जो विचार-धारा है, जो फ़िलासफ़ी है, वह पाठकों के सामने बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। सत्य, अहिंसा, प्रार्थना, जीवन की समग्रता, शान्ति और युद्ध में अहिंसा, सत्याग्रह का सिद्धान्त, प्रेम का सिद्धान्त, हिन्दू धर्म, मन्दिर और मूर्ति-पूजा, उपवास, ब्रह्मचर्य, अभय, श्रम, मनुष्य और मशीन, स्त्री अबला नहीं, बर्थ कन्ट्रोल, शैतानी सभ्यता, कम्यूनिज़्म और सोशलिज़्म, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता, स्वराज्य का अर्थ, भारत का मिशन, आश्रम की प्रतिज्ञायें आदि विषयों पर जगह जगह से चुनकर गान्धी जी के विचार इस तरह रखे गये हैं जो पाठकों के लिये बहुत उपयोगी साबित हो सकते हैं। Obiter Dicta शीर्षक में फुटकर विचारों जैसे गाय, मृत्यु, भोजन, डाक्टर, मादक द्रव्य, अमरत्व, इन्श्योरेन्स, वकील, दवा, पाप और पापी, निन्दा, धूम्रपान, अस्पृश्यता आदि को एक सूत्र में पिरोकर रखा गया है। प्रारम्भ में सर सर्वपल्लि राधाकृष्णन के दो शब्द हैं जिनमें गान्धी जी के सिद्धान्तों की विवेचना करते हुये सर सर्वपल्लि ने पुस्तक के सम्बन्ध में लिखा है—This book, where we find collected together the relevent extracts from Gandhi's own writings on the central principle of his faith and conduct, will help to make Gandhi's position clearer to the Modern mind.

पुस्तक के शुरू में कनु गान्धी द्वारा गान्धी जी का एक सुन्दर कार्य मग्न चित्र है और अन्त में गान्धी जी के जीवन की ख़ास ख़ास घटनाओं की तिथियाँ दी हुई हैं। पुस्तक के अन्दर भारतीय संस्कृति, साम्प्रदायिक एकता, देशी राज्य, आदि पर गान्धी जी के विस्तृत विचारों का न होना ज़रा खटकता है। अस्पृश्यता पर भी जितनी सामग्री होनी चाहिये नहीं है। पर मूलतः पुस्तक का उद्देश्य गान्धीवाद के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण है और यह इस पुस्तक से पूरा हो जाता है। हम चाहते हैं यह छोटी-सी पुस्तक प्रत्येक विचारशील व्यक्ति के हाथों में हो।

GANDHI—JINNAH TALKS—Text Correspondence and Relevent Matter, प्रस्तावना लेखक, सी० राजगोपालाचारी; प्रकाशक हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली; कीमत—एक रुपया।

बम्बई में पिछले वर्ष गान्धी जी और जिन्नाह साहब के बीच जो बात-चीत और पत्र-व्यवहार हुआ उसका इस १०४ पृष्ठ की पुस्तक में संकलन कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त राजगोपालाचारी का फ़ारमूला, मुसलिम लीग का लाहौर अधिवेशन का पाकिस्तान वाला प्रस्ताव, कांग्रेस वर्किंग कमेटी का प्रस्ताव, वार्तालाप भङ्ग होने पर गान्धी-जिन्नाह वक्तव्य, 'न्यूज़ क्रानिकल' को गान्धी जी का वक्तव्य, जिन्नाह की प्रेस कान्फ्रेंस, वार्त्तालाप से पहले गान्धी-जिन्नाह पत्र व्यवहार, राज गोपालाचारी जिन्नाह पत्र व्यवहार और इस वर्त्तालाप से सम्बन्धित समस्त बातों का इस पुस्तक में समावेश है। पुस्तक में कई चित्र 'शङ्कर' के अनेक कार्टून, हिन्दुस्तान का नक़्शा और प्रान्तवार आबादियों और पाकिस्तानी प्रान्तों की ज़िलेवार आबादियों की तालिका देकर पुस्तक को बहुत उपयोगी बना दिया गया है।

देश की राजनीति में दिलचस्पी रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के पास यह पुस्तक होनी चाहिये।

वैशाली—(प्रथम वैशाली महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित वैशाली सम्बन्धी संग्रह-ग्रंथ)—सम्पादक डाक्टर सुविमल चन्द्र सरकार एम० ए०, डी० फ़िल० और प्रोफ़ेसर योगेन्द्र मिश्र एम० ए०; प्रकाशक, वैशाली निकुञ्ज मुज़फ़्फ़रपुर; पृष्ठ संख्या १३१, मूल्य दो रुपया। पुस्तक में एक मानचित्र और चार सादे चित्र हैं।

गत ३१ मार्च और १ ली अप्रैल १९४५ को भारत के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



प्राचीन संस्कृति केन्द्र वैशाली की स्मृति में श्री जगदीश चन्द्र माथुर आइ० सी० एस० के प्रयत्नों से मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के अन्तर्गत वैशाली ग्राम में वैशाली महोत्सव का आयोजन किया गया था। उस महोत्सव की स्मृति में और इस उद्देश्य से कि जनता वैशाली की सांस्कृतिक महानता का परिचय पा सके इस ग्रंथ के प्रकाशन का आयोजन किया गया है। 'दिनकर' जी की कविता 'वैशाली' और श्री सूर्यदेव नारायण श्रीवास्तव के "वैशाली गौरव" (एकांकी नाटक) के अतिरिक्त "संस्कृत महाकाव्यों और पुराणों में वैशाली के लिच्छवि" "वैशाली की दिव्य विभूति," "लिच्छवि जीवन", "वैशाली के भग्नावशेष," "प्रजातन्त्र वैशाली", "वैशाली सम्बन्धी साहित्य", "बसाढ़ की खुदाई" आदि निबन्ध इस पुस्तक में संग्रहीत हैं। पुस्तक से वैशाली का यथेष्ट परिचय मिलता है।

—विद्यानन्द सन्यासी

**ब्रजभाषा साहित्य में नायिका-निरूपण**—(नायिका-भेद)—लेखक, श्री प्रभुदयाल मीतल; प्रकाशक, अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल भवन, मथुरा; मूल्य २); पृष्ठ संख्या ४००।

'ब्रज भारती' और 'ब्रज साहित्य मंडल' से परिचित व्यक्ति प्रभुदयाल मीतल के नाम से परिचित हैं। 'डायर शाही', 'राष्ट्रीय आन्दोलन', 'मेवाड़ की गाथाएं' लिखने वाला व्यक्ति हमारे सामने नायिका-भेद पर एक ग्रंथ लेकर आया है।

पुस्तक के प्रारंभ में लेखक ने ब्रजभाषा की उत्पत्ति एवं उसके विकास पर प्रकाश डाला है जो कि पुस्तक की विषय वस्तु से कोई भी संबंध नहीं रखता। उसके पश्चात् चारण-काल-भक्ति-काल एवं रीति-काल का विश्लेषण दिया है। वह भी न तो विषय से संबंधित ही दिखाई पड़ता है और न मौलिक। फिर रीति कालीन साहित्य का अति साधारण विश्लेषण दिया गया है। रस के विवेचन में लेखक ने डा० छैल बिहारी लाल गुप्त के महत्वपूर्ण ग्रंथ 'ए क्रिटिकल स्टडी आव रस इन दि लाइट आव मार्डन साइकॉलॉजी' का कोई भी उपयोग नहीं किया। शृङ्गार साहित्य की परंपरा में भी लेखक ने कुछ भी नहीं लिखा। राधा-कृष्ण के व्यक्तित्व का संक्षिप्त और बिलकुल व्यर्थ इतिहास भी लेखक ने दिया है। दिव्य शृङ्गार के लौकिक शृङ्गार में परिवर्तनों के कारण की विवेचना भी सारहीन है। लौकिक और अलौकिक शृङ्गार में क्या भेद था, इसको संभवतः लेखक मथुरा में रहता हुआ भी समझ नहीं पाया। मध्ययुगी राजदरबारों में धर्म की क्या व्यवस्था थी, इस पर भी लेखक की दृष्टि नहीं गई।

नायिका-भेद की परंपरा प्रारंभ होने के क्या कारण थे, इस पर प्रकाश न डालकर लेखक ने संस्कृत में कौन कौन से लेखकों ने कितनी नायिकाएं मानी हैं, इसका विवेचन दिया है जो कि अति साधारण है। हिंदी में सूरदास के ग्रंथों में जो नायिका-निरूपण मिलता है उस पर लेखक ने कुछ भी नहीं लिखा। संभव है कि उसे यह सूझा ही न हो कि इन ग्रंथों में लक्षण-विहीन नायिका-भेद है। इसके पश्चात हिन्दी में नायिका-भेद की विवेचना करने वाले कितने कवि हुए यह लेखक ने प्रकाशित सामग्री के आधार पर दिया है। फिर लगभग चालीस पृष्ठों में नायिका-भेद दिया गया है। ये चालीस पृष्ठ ही मूल विषय के हैं और विवेचना में पर्याप्त स्पष्ट हैं। लेखक ने विकसित मनोदशा के दृष्टिकोण से नायिकाओं में एक क्रम दिया है—स्वाधीन पतिका, वासकसज्जा, उत्कंठिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा, खंडिता, कलहांतरिता, प्रवत्स्यत्प्रेयसी, प्रोषित पतिका और आगत पतिका। यह विप्रलब्धा तक तो ठीक है परन्तु इसके पश्चात ठीक नहीं बैठता। प्रोषित पतिका और आगत पतिका दोनों प्रकार की नायिकाएं स्वाधीन पतिका हो सकती हैं। लेखक ने ग्रन्थ में एक बड़े मज़ेदार बात लिखी है—'अनेक व्यभिचारी, कामुक और स्त्री-रहित पुरुषों की काम-पिपासा को शांत करने का साधन सामान्या (गणिका) ही हो सकती है। यदि समाज से इसका पूर्ण बहिष्कार कर दिया जावे तो उपर्युक्त दुष्ट प्रकृति के पुरुष गृहस्थ की कुलशीला नारियों की ताक में रहेंगे, जिसके परिणामस्वरूप उनका जीवन सदैव अरक्षित रहेगा। इस दृष्टि से सामान्याएं स्वयं अपवित्र जीवन व्यतीत कर आचारवती कुलशीला नारियों के पवित्र चरित्र की रक्षा करती हैं।' लेखक अपना यह मत यदि बंगाल गवर्मेंट के पास भेजे तो शायद अधिक उपयोगी हो।

पुस्तक के पूर्वार्द्ध का यही चित्र है। उत्तरार्द्ध में परिशिष्टियाँ है। पहली परिशिष्टि में कवियों के उद्धरण दिए गए हैं। दूसरी में भिन्न भिन्न कवियों और आचार्यों का नायिका-भेद-क्रम का सूचीपत्र दिया गया है।

साधारणतया पुस्तक हिन्दी में अपने विषय की अकेली है, इस कारण महत्वपूर्ण है। नायिका-भेद पर वैज्ञानिक खोज का कार्य डा० छैल बिहारीलाल गुप्त कर रहे हैं। उनकी ओर हमारी आशाभरी आखें लगी हैं।

—कमल कुलश्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी का देशव्यापी स्वागत

श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी एम० एस-सी०

हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी के मक़सद और उसके सांस्कृतिक एकता के काम के साथ हिन्दुस्तान के कोने कोने से हमारे पास समर्थन और सहानुभूति के पत्र आ रहे हैं। बङ्गाल, युक्तप्रान्त, काश्मीर, बम्बई और मद्रास में सोसायटी के मेम्बर बनाने का काम ज़ोरों से शुरू हो गया है। श्रीनगर ( काश्मीर ) के श्री रामाधार सोसायटी के अब तक सब में उत्साही मित्र साबित हुये हैं। एक महीने के थोड़े से अरसे में उन्होंने अकेले श्री नगर से ४० से अधिक सोसायटी के हिन्दू और मुसलमान सदस्य बनाये हैं। वे सारे काश्मीर में सोसायटी के काम को मज़बूती के साथ चलाने की कोशिश में लगे हुये हैं।

बम्बई में शीघ्र ही सोसायटी के काम को फैलाने के लिये एक विस्तृत योजना बन रही है। बम्बई के सर्वप्रिय काँग्रेस नेता और भूतपूर्व प्रीमियर श्री बी० जी० खेर ने लिखा है कि वे शीघ्र ही बम्बई में सोसायटी की प्रान्तीय शाखा खोलने जा रहे हैं। इस काम में उन्हें बम्बई प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी के मंत्री श्री एस० के० पाटिल, आल इण्डिया न्यूज़ पेपर एडीटर्स कान्फ्रेंस के सभापति सय्यद अब्दुल्ला ब्रेलवी, बम्बई के भूतपूर्व मेयर श्री नगीनदास मास्टर, बम्बई के प्रसिद्ध पारसी नेता सर रुस्तम मसानी, प्रसिद्ध काँग्रेसी नेता श्री आबिद अली जाफ़र भाई, इण्डियन पी. ई. एन की मंत्री और "आर्यन पाथ" की सम्पादिका मैडम सोफ़िया वाडिया, बम्बई ला कालेज के प्रिन्सिपल मि० ए० ए० फ़ैज़ी और प्रो० नजीब अशरफ़ नदवी आदि का पूरा सहयोग प्राप्त है।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के यशस्वी प्रधान मंत्री श्री एम० सत्यनारायण ने मद्रास प्रान्त में सोसायटी के काम को संगठित रूप से चलाने की ज़िम्मेवारी ली है। वे जल्दी ही मद्रास में सोसायटी की प्रान्तीय शाखा खोलने की कोशिश कर रहे हैं।

'विश्ववाणी' के सहायक सम्पादक श्री बैजनाथसिंह 'विनोद' कलकत्ते में सोसायटी के सदस्य बना रहे हैं और वे शीघ्र ही प्रभावशाली बन्धुओं के सहयोग से कलकत्ते में सोसायटी की शाखा खोलने जा रहे हैं। इसके अलावा पेशावर, लाहौर, दिल्ली, पटना, जबलपुर, मसूरी, टीकमगढ़, कोटा, उदयपुर आदि स्थानों से भी लोगों ने सोसायटी की शाखा क़ायम करने के लिये लिखा है। सोसायटी के तरफ़ लोगों की यह दिलचस्पी, हमदर्दी और मदद इस बात को ज़ाहिर करती है कि मुल्क की इस नाज़ुक हालत में सोसायटी ने जिस काम को उठाया है उसकी अहमीयत और महत्व को सभी बुद्धिमान और समझदार आदमी पूरी तरह समझ रहे हैं।

सोसायटी के उद्देश्य के साथ सहानुभूति दिखाते हुये जो सैकड़ों पत्र हमारे पास आये हैं उनमें से कुछ हम यहां उद्धृत कर रहे हैं :

**श्री बी० जी० खेर ( बम्बई के भूतपूर्व प्रीमियर)**

हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी के उद्देश्यों से मैं पूरी तरह सहमत हूँ। मैं इन उद्देश्यों को आगे बढ़ाने का यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूँ। मैंने काम शुरू कर दिया है। आप विश्वास रखिये अगले महीने के शुरू में ही हम कल्चर सोसायटी की बम्बई प्रान्त की शाखा खोल देंगे।

**मैडम सोफ़िया वाडिया--**

सोसायटी के उद्देश्यों में मेरी हार्दिक सहमति है। मैं सौ रुपये का चेक भेज रही हूँ। कृपया मुझे आजीवन सदस्य बना लीजिये। सोसायटी के निमित्त आप मेरी नम्र सेवाओं पर निर्भर कर सकते हैं।

**सर रुस्तम मसानी**

आपके सांस्कृतिक एकता के काम में मैं दिल से और अमल से हर तरह आपके साथ हूँ। सांस्कृतिक एकता से ही इस मुल्क की नाज़ुक समस्या हल होगी। यह मेरा आज का नहीं ज़िन्दगी भर का विश्वास है।

**मि० आसफ़ ए० ए० फ़ैज़ी ( प्रिन्सिपल गवर्नमेन्ट ला कालेज, बम्बई )--**

मुझे सोसायटी के मक़सद से दिली इत्तफ़ाक़ है। मुझे मेहरबानी करके दस बरस के लिये सोसायटी का मेम्बर बना लीजिये। इसका तीस रुपया चन्दा मैं भेज रहा हूँ।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवी--**

सोसायटी के मक़सद के साथ मेरी पूरी हमदर्दी है। इस तरह की सोसायटी बहुत पहले बननी चाहिये थी। मैं हर तरह सोसायटी के साथ हूँ। मेहरबानी करके मुझे मेम्बर बना लीजिये।

**श्री एस० के० पाटिल—**

सोसायटी ने जिस मिशन को लेकर जन्म लिया है उसके लिये मेरे दिल में ज़बर्दस्त विश्वास है। सोसायटी के काम को आगे बढ़ाने की मैं हर तरह कोशिश करूंगा।

**श्री एस० एल० मर्चेंट, एडवोकेट, बम्बई—**

सोसायटी के उद्देश्यों से मुझे बेहद दिलचस्पी है। कृपया मुझे मेम्बर बना लीजिये। चूँकि कई मित्रों ने सोसायटी के मेम्बर बनने की इच्छा प्रकट की है इस लिये थोड़े से मेम्बरी के फ़ार्म और उद्देश्य-पत्र आदि भेज दीजिये। मैं चाहूँगा अधिक से अधिक मित्र सोसायटी में शामिल हों।

**श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला ( सेवाग्राम )--**

कल्चर सोसायटी के काम की पूरी सफलता चाहता हूँ।

**श्री सत्यनारायण, प्रधान मन्त्री, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास--**

मुझे सोसायटी के मक़सद बहुत पसन्द आये। ऐसी एक सोसायटी की ज़रूरत बहुत थी और इसके पहले ही इस तरह की सोसाइटियां देश के हर सूबे में शुरू होनी चाहिये थीं और काम भी होना चाहिये था। मैं चाहता हूँ सोसायटी की शाखा मद्रास में खोली जाय और उसका संगठन, अगर आप इजाज़त दें, तो मैं ख़ुद करने की कोशिश करूँगा। मैं ख़ुद इसका मेम्बर बन रहा हूँ, फारम साथ है। तीन रुपये अलग मनीआर्डर से भेजे हैं।

**खान बहादुर के० एम० असदुल्ला, लाइब्रेरियन इम्पीरियल लाइब्रेरी गवर्नमेण्ट आफ़ इण्डिया, कलकत्ता--**

मेहरबानी करके मुझे अपनी सोसायटी का मेम्बर बना लीजिये। सोसायटी का मेम्बर बनने में मुझे बेहद ख़ुशी है।

**श्री सम्पूर्णानन्द भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री यु० पी०-**

मैं बराबर ऐसा मानता हूँ कि भारत में पिछले कई सौ वर्षों में एक ऐसी संस्कृति का उदय हुआ है जिसके सर्जन में यहां के रहने वाले हिन्दू मुसलमानों का समान रूप से हाथ है, हमारी कला यहां के निवासियों की समान रूप से सम्पत्ति है। हमको इस समान संस्कृति को बढ़ाने का भरसक जतन करना चाहिये। इस दृष्टि से मुझे हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी के उद्देश्यों से पूर्ण रूपेण सहानुभूति है।

**सर अब्दुल क़ादिर ( चीफ़ जज, बहावलपुर)-**

मैं हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी के मक़सदों से पूरी तरह इत्तफ़ाक़ करता हूँ। मेहरबानी करके मुझे इसका मेम्बर बना लीजिये।

**श्री धनीराम भल्ला ( कानपुर )--**

वक़्त की ज़रूरत है कि हम विविध धर्मों की आपसी सद्भावना को बढ़ायें। समस्या को जिस दृष्टि से आप देखते हैं उससे मैं पूरी तरह सहमत हूँ। मैं तमाम धर्मों और संस्कृतियों की बुनियादी एकता में विश्वास करता हूँ और आपकी सोसायटी के उद्देश्यों से पूरी तरह सहमत हूँ। कृपा करके मुझे अपनी सोसायटी का सदस्य बना लीजिये।

**प्रो० तान युन-शान ( चीना भवन, शांति निकेतन )–**

एकता में ही बुद्धिमानी है, एकता में ही शक्ति है। मैं सच्चे हृदय से आपकी सोसायटी की सफलता चाहता हूँ।

**श्री विद्याभास्कर (सम्पादक, आज, बनारस)—**

सोसायटी के उद्देश्यों से मैं सहमत हूँ और उनकी पूर्ति के लिये मेरे योग्य जो कार्य आप बतायेंगे उसे करने की भरपूर कोशिश करूँगा।

**डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त (कलकत्ता)—**

मैं हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी के उद्देश्यों से पूरी तरह सहमत हूँ। अपने समस्त जीवन भर मैं उसी दिशा में काम किया है।

**श्री आरसीप्रसाद सिंह (दरभंगा)—**

हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी के उद्देश्यों को पढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आप लोग एक अत्यन्त आवश्यक कार्य का सम्पादन करने जा रहे हैं। भगवान प्रत्येक पद पर आप लोगों को सफल करे। मेरी सेवा भी आप ले सकते हैं उससे मैं प्रसन्नता ही लाभ करूँगा।

**श्री आर० एन० सिंह (एडीशनल डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशन जज टीकमगढ़)**—

मैं हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की एक शाखा ओरछा राज्य के केन्द्र टीकमगढ़ में खोलना चाहता हूँ। कृपया अपने दफ़्तर से इस सम्बन्ध के नियम और फार्म आदि भिजवा दीजिये। कृपा होगी।

**सर जोगेन्द्र सिंह (वायसराय की कौन्सिल के सदस्य)**—

"हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की स्थापना की बात सुनकर मुझे बेहद ख़ुशी हुई। सांस्कृतिक एकता बढ़ाने के लिये हम जो भी कर सकें हमें करना चाहिये। हमारे अभागे मुल्क में आज अनैक्यता की जो भट्टी सुलग रही है उसे शान्त करने की हमें भरसक कोशिश करनी चाहिये।"

इसी तरह के पचासों पत्र हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी के कार्यालय में आ रहे हैं। देश के कोने कोने से भारतीय संस्कृति की एकता में विश्वास रखने वाले सज्जन कल्चर सोसायटी को ज्यादा से ज्यादा मज़बूत बनाने में योग दे रहे हैं।

हम सोसायटी के काम में "विश्ववाणी" के पाठकों का अधिक से अधिक क्रियात्मक सहयोग चाहते हैं। हमें विश्वास है सांस्कृतिक एकता के पुनीति-कार्य में हमारे पाठक पीछे नहीं रहेंगे।

---

# व्यतिरेक

कुमारी दिनेश नन्दनी चोरड्या एम० ए०

*मृत श्वान को देखकर एक ने कहा, "हमारे मन्दिर के प्रवेश द्वार के सुरभित वातावरण को यह अपनी दुर्गन्ध से गंदा कर रहा है।"*

*दूसरे ने नाक भौं सिकोड़ते हुए कहा, "इसके झुर्रीदार चमड़े पर गाढ़े रक्त के चकत्ते जम गये हैं।"*

*तीसरे ने कहा, "इसकी गर्दन पर वही रस्सी लटक रही है जिससे चोर को फाँसी के तख्ते पर लटकाया गया था।"*

*चौथे ने घृणा के साथ मरे कुत्ते पर डंडे का प्रहार किया।*

* * *

*संझा के झुटपुटे में मरियम का पुत्र चीथड़ों में आराधना के लिये आया।*

*"क्या उसके दाँत बहुमूल्य मोतियों से सुन्दर नहीं हैं?"—उसने कहा और झुककर कुत्ते के ओठ चूम लिये!*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार

## स्वर्गीय—
## डाक्टर बेनी प्रसाद
## प्रेज़ीडेण्ट रूज़वेल्ट
## अलेक्सी टाल्सटाय

हिन्दुस्तान, अमरीका और सोवियत् रूस आज अपने देश की इन महान विभूतियों को खोकर दुखी हैं। डाक्टर बेनी प्रसाद एक महान विचारक थे, प्रेज़ीडेण्ट रूज़वेल्ट मित्र राष्ट्रों के एक महान नेता थे और अलेक्सी टाल्सटाय सोवियत् के एक महान साहित्यकार थे।

पिछले २५ मार्च को हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की बैठक में डाक्टर बेनी प्रसाद से अन्तिम बार भेंट हुई थी। सोसायटी के क़ायम करने में उनका बहुत बड़ा हाथ था। उसकी गवर्निङ्ग बाडी के वे मेम्बर थे। भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक गुण पर उनका ज़बरदस्त विश्वास था। जातीय या साम्प्रदायिक पक्षपात उनको छू तक न गया था। हिन्दू मुसलिम प्रश्न पर उन जैसे उदार व्यक्ति बिरले ही मिलेंगे। वे गान्धी जी के परम भक्तों में से थे और अहिंसा के बड़े क़ायल थे। उनकी लिखी हुई—"हिस्ट्री आफ़ जहाँगीर" इतिहास की एक अनमोल पुस्तक है। उनकी दूसरी पुस्तक—"दि हिन्दू मुसलिम क्वेश्चन्स" साम्प्रदायिक समस्या पर एक अत्यन्त विचार पूर्ण ग्रन्थ है। डाक्टर बेनी प्रसाद सादगी और सरलता की मूर्ति थे। वे भीतर से जितने दिग्गज विद्वान थे बाहर से उतने ही नम्र थे। वैधानिक राजनीति पर उन्होंने गहरा चिन्तन और अध्ययन किया था। हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की बैठक में मुझसे कहने लगे—"साम्प्रदायिकता का यह अस्वाभाविक वातावरण ज़्यादा दिनों तक नहीं ठहरेगा क्योंकि इतिहास के ज़बर्दस्त सुबूत इसके ख़िलाफ़ हैं। हमें सिर्फ़ हिम्मत और लगन के साथ सांस्कृतिक एकता के प्रचार करने की ज़रूरत है।" डाक्टर बेनी प्रसाद आज नहीं हैं पर क्या ही अच्छा हो कि उनके ये शब्द झाँई की तरह उस समय तक हमारे सारे देश में गूँजते रहें जब तक साम्प्रदायिकता के ये बादल छटकर एकता का प्रखर सूर्य न चमकने लगे।

प्रेज़ीडेण्ट रूज़वेल्ट फ़ासिस्ट विरोधी मित्र राष्ट्रों के एक ज़बर्दस्त नेता थे। अपने देश में और सारी दुनिया के देशों में वे जनतन्त्र की स्थापना का पुनीत स्वप्न देखते थे। जनतन्त्र वादी वाशिंगटन और लिंकन के साथ रूज़वेल्ट भी अमरीकी इतिहास में चिरकाल तक याद किये जायंगे। यह रूज़वेल्ट के अध्यवसाय और साहस का ही नतीजा है कि इस युद्ध में आज मित्र राष्ट्रों की फ़ौजें उद्धत जर्मनी को रौंद रही हैं। अत्यन्त गाढ़े समय में यदि सोवियत् को रूज़वेल्ट की मदद न पहुँची होती तो आज इतिहास कुछ दूसरी ही तरह लिखा जाता। स्तालिनग्राड के सोवियत वीरों और अमरीकी युद्ध के सामान ने बोल्गा के किनारे हिटलर की क़िस्मत पर मोहर लगाई थी। स्तालिन और रूज़वेल्ट के आपसी सम्बन्ध पर ही भावी दुनिया की अच्छाई बुराई निर्भर करती थी। इङ्गलैण्ड एक स्वार्थी बदनाम और साम्राज्यलोलुप राष्ट्र है और चर्चिल साम्राज्यवाद के सबसे बड़े समर्थक हैं; किन्तु रूज़वेल्ट से दुनिया को बहुत कुछ उम्मीद थी और सान फ्रान्सिसको में जब रूज़वेल्ट के सपनों के मूर्तरूप पाने की उम्मीद थी तभी यकायक रूज़वेल्ट की मृत्यु हो गई। भारत के साथ उनकी हमदर्दी का पता उनके निजी भारतीय प्रतिनिधियों क्रिप्स आदि के रवय्ये से लगता है। यह सचमुच एक दुर्भाग्य की बात है कि दुनिया के गाढ़े वक्त पर रूज़वेल्ट की मृत्यु हुई। जहाँ तक संसार की दलित क़ौमों का सम्बन्ध है सान्फ्रान्सिसको से उन्हें अब कोई उम्मीद नहीं रह गई।

अलेक्सी टाल्सटाय सोवियत् के अत्यन्त महान कथाकार और साहित्यिक थे। मैक्सिम गोर्की, मिखाइल शोलोकाव और अलेक्सी टाल्सटाय की ही त्रिमूर्ति ने आधुनिक रूसी साहित्य की परम्परा क़ायम की है। अलेक्सी टाल्सटाय महान रूसी सन्त लिओ टाल्सटाय के वंशज थे और न केवल रूस के बल्कि दुनिया के महान साहित्यिकों में उनका गौरवपूर्ण स्थान है। अलेक्सी टाल्सटाय की मृत्यु से संसार को जो क्षति हुई है उसका सही सही तख़मीना आज युद्ध के शोरगुल में दुनिया नहीं लगा पा रही है पर शीघ्र ही वह जानेगी कि इस महान रूसी साहित्यकार की मृत्यु से दुनिया की बहुत बड़ी क्षति हुई है।

## सामूहिक सुरक्षा की योजना

दुनिया को भावी युद्धों से बचाने के लिये और सामूहिक सुरक्षा की नीति निर्धारित करने के लिये कुछ महीने पहले डम्बार्टन ओक्स में अमरीका, ब्रिटेन, रूस और चीन के प्रतिनिधियों ने मिलकर नीचे लिखे सिद्धान्तों पर एक विश्व-सुरक्षा-संघ क़ायम करने की तजवीज़ की थी—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा स्थापित करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लिये सामूहिक रूप से इस तरह की बन्दिशें करना जिससे शान्ति भङ्ग न हो। जिन अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों से शान्ति भंग होने का ख़तरा हो उन्हें शान्तिमय उपायों से सुलझाना और शान्ति भङ्ग करने वालों तथा आक्रमणकारियों को रुकाना।

(२) राष्ट्रों के बीच मैत्री भाव पैदा करना और विश्व शान्ति की बुनियादें मज़बूत करने के लिये दूसरे मुनासिब उपायों को काम में लाना।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक तथा दूसरी समस्याओं को हल करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना को बढ़ाना।

(४) इन मक़सदों को पूरा करने के लिये और तमाम कोशिशों को एक धागे में पिरोने के लिये एक केन्द्र क़ायम करना।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्वर्गीय रूज़वेल्ट ने उस समय के वैदेशिक मंत्री श्री हल तथा वैदेशिक-सम्बन्ध-समिति और सेनेट की एक विशेष समिति की मदद से एक योजना बनाई थी जिसकी ख़ास ख़ास बातें ये हैं—

१—एक प्रधान विश्व-परिषद जिसमें तीन महान राष्ट्रों के अलावा चीन भी रहे।

२—संसार के राष्ट्रों का एक संघ जिसमें ३५ मित्रराष्ट्रों के अलावा ऐसे तटस्थ देश भी रहें जो मुनासिब रुख ज़ाहिर करें।

३—आगे के लिये किसी देश द्वारा सैनिक हमले का मिलकर मुक़ाबला करने के लिये एक समझौता हो जिसमें मुख्यतः महा शक्तियाँ हों।

४—विश्व-संघ की फिर से स्थापना।

५—बजाय अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस की स्थापना करने के प्रत्येक शक्ति अपना सैनिक बल सुरक्षित रखे। आदि।

इस योजना पर टिप्पणी करते हुये श्रीमती कमला देवी लिखती हैं—

"पहले विश्व-परिषद् की बात लीजिये। महान् पञ्चराष्ट्र इसके स्थायी सदस्य रहेंगे। इनके साथ परिवर्तन के क्रम से तीन छोटे राष्ट्र और रहेंगे। ऐसी स्थिति में इस बात का कभी भी ख़तरा न रहेगा कि छोटे राष्ट्र बड़े राष्ट्रों के मत को रद्द कर सकें। आक्रमण रोकने के हेतु शक्ति का प्रयोग करने के लिए चार महान् राष्ट्र निश्चय ही सर्वसम्मति से मत देंगे। इसके साथ ही प्रत्येक को वीटो (विशेषाधिकार) प्राप्त रहेगा। जुई फिशर के शब्दों में इसका अर्थ यही होगा कि विश्व का नया सङ्गठन स्वयं अपने ही प्रमुख सदस्यों का आक्रमण रोकने में कभी समर्थ न होगा। मसलन मान लीजिये अमेरिका ने कोई आक्रमणात्मक काररवाई की और उसके विरुद्ध यदि कोई प्रतिशोधात्मक काररवाई की गई तो उसे वह अपने विशेषाधिकार द्वारा विफल कर देगा। इसी प्रकार ब्रिटेन, रूस, चीन अथवा फ्रांस कोई भी राष्ट्र दूसरों पर आक्रमण करने की स्थिति में अपने प्रति प्रतिशोधात्मक काररवाई होने से अपनी रक्षा कर लेगा।'

"इस व्यवस्था में सब से ख़तरे की बात यही है कि जो शक्तियाँ आक्रमण कर सकतीं हैं वे स्वयं महती शक्तियाँ हैं और ये ही शक्तियाँ किसी भी महत्व के प्रश्न पर, फिर वह चाहे युद्ध-समाप्ति का प्रश्न हो अथवा युद्ध न होने देने के लिए धमकी देने का हो, पञ्च का आसन ग्रहण करेंगी। यह सङ्गठन स्वयं ही किसी शक्ति द्वारा किये जानेवाले आक्रमण में हस्तक्षेप करने में समर्थ न होगा। वाल्टर लिप-मैन इस पर ज़ोर देते हुए कहते हैं कि 'नये सङ्घ की नियमावली में' हमें सैनिक शक्ति को सङ्कट में डालने जैसा कोई नियम न बनाना चाहिये·····वरन् ज़बरदस्ती शान्ति क़ायम करने के सिद्धान्त पर नहीं बल्कि निरन्तर परामर्श के सिद्धान्त के आधार पर नियम बनाना चाहिये। इसका केवल यही खेदजनक निष्कर्ष निकलता है कि स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहती है। इससे इन महती शक्तियों को अपने व्यापक क्षेत्र में, जहाँ भौगोलिक अथवा सैनिक दृष्टि से प्रत्येक ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया है, एक मात्र सत्ताधारी होने का अवसर मिल जाता है और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से अपने प्रभावक्षेत्र में अपना प्राधान्य रखने के लिए क़ानूनी स्वीकृति मिल जाती है।

"दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि आक्रमण रोकने के लिए चार में से प्रत्येक महती शक्ति अपना महान सैनिक बल सुरक्षित रखेगी। ऐसा प्रस्ताव रखा गया है कि जब कभी सम्भव होगा तब प्रत्येक देश की सेना का 'अपने स्वाभाविक क्षेत्र में प्रयोग किया जायगा।' यह प्रस्ताव उपर्युक्त राजनीतिक विभाजन पर मुहर लगा देता है। कारण, यदि किसी अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति की स्थापना नहीं की जाती और विश्व के किसी अञ्चल में आक्रमण न हो सके इस दृष्टि से चारों महती शक्तियाँ अपनी विपुल सैनिक शक्ति सुरक्षित रखती हैं तो नियन्त्रण तथा कार्य की दृष्टि से सारे संसार को विभाजित कर लेने की बात तो उसमें स्वतः आ जाती है। जैसे, बालकन में कोई कार्य करने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो यह रूसी सेना के 'स्वाभाविक क्षेत्र' में आ ही जायगा। इसी भाँति दक्षिणी अमेरिका का क्षेत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के क्षेत्र में आ जायगा। सर्वत्र इसी पद्धति से काय होगा। इन महाशक्तियों के नक्कारख़ाने में चीन ने तूती की-सी आवाज की थी कि 'जिस राष्ट्र का झगड़ा हो, वह परिषद् का स्थायी सदस्य हो अथवा न हो, किसी निणय के लिए कोई मत न दे सके।' ज्ञात हुआ है कि महाशक्तियों ने चीन का यह प्रस्ताव यह कहकर उड़ा दिया कि उसे पश्चिमी सभ्यता का कुछ भी ज्ञान नहीं है। अतः श्री रूजवेल्ट ने हाल में प्रभाव-क्षेत्र रद्द करने का जो आश्वासन दिया था वह वास्तविक न होकर लोगों को बहकावे में रखने के लिए ही था। कारण, निर्णय भले ही सामूहिक रूप से हो, कार्य तो एकपक्षीय होगा।"

## सान्फ्रासिसको सम्मेलन और भारत

विश्व-शान्ति की स्थापना के लिए सानफ्रान्सिसको में जो सम्मेलन हो रहा है उस पर गान्धी जी ने नीचे लिखा वक्तव्य दिया है—

"यद्यपि मैं जानता हूँ कि कुछ कहने या लिखने से मौन रहना अच्छा है किन्तु इस नियम की भी एक सुनिश्चित सीमा है। सानफ्रांसिस्को-सम्मेलन के शीघ्र होने की घोषणा की गई है। मुझे इसके कार्यक्रम का पता नहीं। सम्भवतः किसी भी बाहरी आदमी को इसका पता नहीं। कार्यक्रम जो भी हो, सम्मेलन को युद्ध की तथा कथित समाप्ति के पश्चात् के भावी संसार के सम्बन्ध में बहुत कुछ करना है। मुझे इस बात का बड़ा भय है कि संसार की सुरक्षा का जो ढाँचा खड़ा किया जा रहा है उसके पीछे युद्ध को जन्म देने वाली अविश्वास और भय की भावना छिपी हुई है। अतएव, जीवन भर युद्ध का विरोधी और शान्ति के पुजारी होने के नाते यह उचित जान पड़ता है कि इस सम्बन्ध में मैं अपने विश्वास को लिपिबद्ध कर दूं।

"मैं अपने इस विश्वास को दुहरा देना चाहता हूँ कि मित्रराष्ट्रों के लिए अथवा संसार में तब तक शान्ति की स्थापना नहीं होगी जब तक युद्ध और तज्जनित भयङ्कर छल-छद्म की उपयोगिता में विश्वास का परित्याग नहीं कर दिया जाता और सभी जातियों एवं राष्ट्रों की स्वतन्त्रता और समानता के आधार पर सच्ची शान्ति की स्थापना का निश्चय नहीं किया जाता। युद्धों का सदा के लिए अन्त करने का प्रयत्न करने वाले संसार में एक राष्ट्र के शोषण और आधिपत्य के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता।

"इसी प्रकार के संसार में सैनिक दृष्टि से निर्बल राष्ट्र शोषण और दमन के भय से मुक्त रह सकते हैं।

"शान्ति की स्थापना की एक अनिवार्य प्रथम आवश्यकता सभी विदेशी नियन्त्रण से भारतवर्ष की सम्पूर्ण मुक्ति है, केवल इसीलिए नहीं कि साम्राज्यवादी शोषण का यह सबसे ज्वलन्त उदाहरण है वरन् विशेषतया इस कारण कि यह एक महान् प्राचीन और सभ्य देश है जो १९२० से ही बोधपूर्वक सत्य और अहिंसा के ज़रिये ही अपनी स्वाधीनता के लिए संग्राम कर रहा है।

"यद्यपि भारतीय सैनिक भारतवर्ष की स्वाधीनता के लिए युद्ध नहीं करता रहा है किन्तु भारतीय सैनिक युद्ध सम्बन्धी गुणों में कम से कम उत्तम सैनिकों की बराबरी का है। यह उसने इस युद्ध में इतनी स्पष्टता के साथ दिखला दिया है जितना कि इससे पहले कभी नहीं दिखलाया था। मैं यह इस आरोप का उत्तर देने के लिए कह रहा हूँ कि भारतवर्ष का शान्तिपूर्ण संग्राम उसमें सैनिक गुणों के अभाव के कारण है। इससे मैं इस अनिवार्य निष्कर्ष पर पहुंचता हूँ कि वीरों की अहिंसा उनकी हिंसा की तुलना में कहीं अधिक प्रभावकर है। यह बात और है कि इस प्रकार की अहिंसा का विकास भारत में अभी तक न हो पाया हो। अगर ऐसा हो तो उससे इस वक्तव्य का महत्व कम नहीं होता कि भारतवर्ष ने स्वतन्त्रता के लिए अहिंसात्मक ढङ्ग से युद्ध किया है और इसमें उसे काफ़ी सफलता मिली है।

"भारतवर्ष की स्वाधीनता पृथ्वी की सभी शोषित जातियों को इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण दे देगी कि उनकी स्वतन्त्रता भी निकट है और भविष्य में किसी भी दशा में उनका शोषण नहीं होगा।

"शान्ति न्यायपूर्ण होनी चाहिये। इसके लिए आवश्यक है कि वह प्रतिशोधात्मक अथवा दण्डात्मक न हो। जर्मनी और जापान का अपमान न किया जाय। विजय के फल का सब समान रूप से उपभोग करें। प्रयत्न यह होना चाहिये कि इन राष्ट्रों को भी मित्र बनाया जाय। मित्रराष्ट्र अपनी लोकतन्त्र की भावना को और किसी प्रकार प्रमाणित नहीं कर सकते।

"ऊपर की बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि बलपूर्वक निःशस्त्र किये गये लोगों पर सशस्त्र शान्ति नहीं लादी जानी चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस का प्रबन्ध शान्ति का प्रतीक न होकर मानवीय निर्बलता के पक्ष में रिआयत करने का परिचायक होगा।

"यदि शान्ति स्थापना की ये आवश्यक शर्तें स्वीकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मई १९४५ ]

कर ली जाय तो सानफ्रांसिसको-सम्मेलन के लिए ब्रिटिश साम्राज्यशाही द्वारा नामज़द भारतीय प्रतिनिधियों के दिखावे को रोक देना चाहिये। इस प्रकार का प्रतिनिधित्व कोई भी प्रतिनिधित्व न होने से भी बुरा है। सानफ्रांसिस्को सम्मेलन में या तो भारतवर्ष के निर्वाचित प्रतिनिधि भेजे जाँय या कोई प्रतिनिधि भेजा ही न जाय।

"८ अगस्त १९४२ के कांग्रेस प्रस्ताव का निम्नलिखित अंश इस प्रश्न पर स्वतन्त्र भारत की नीति को स्पष्ट करता है—

'यद्यपि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी सङ्कट की इस घड़ी में भारत की स्वतन्त्रता और रक्षा अपना मुख्य कर्तव्य समझती है पर उसका मत है कि भविष्य में शान्ति, सुरक्षा और विश्व की व्यवस्थित उन्नति के लिए स्वतन्त्र राष्ट्रों का एक सङ्घ बने। इसके अतिरिक्त आधुनिक विश्व की समस्या हल करने का कोई दूसरा उपाय नहीं। इस प्रकार के सङ्घभूत राष्ट्रों की स्वतन्त्रता, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के निषेध, अल्प मतों की रक्षा, पिछड़ी जातियों की उन्नति और सर्वसाधारण की भलाई के लिए संसार भर के साधनों के सम्मिलित उपयोग का आश्वासन दे सकेगा। इस सङ्घ की स्थापना द्वारा ही सभी देशों का निरस्त्रीकरण सम्भव होगा। राष्ट्रों को पृथक् जल, स्थल और वायुसेना की फिर आवश्यकता न रहेगी और विश्व-राष्ट्र-सङ्घ की सेना शान्ति की रक्षा करेगी और आक्रमण को रोकेगी। स्वतन्त्र भारत प्रसन्नतापूर्वक ऐसे विश्व राष्ट्र-सङ्घ का सदस्य बनेगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान करने में दूसरे देशों के साथ समानता के आधार पर प्रसन्नतापूर्वक सहयोग करेगा।'

"इस प्रकार भारत की स्वतन्त्रता की मांग किसी प्रकार भी स्वार्थ की भावना से युक्त नहीं। इसकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता की परिचायक है।"

क्या सान्फ्रान्सिसको में इकट्ठा हुये ४६ राष्ट्रों के प्रतिनिधि गान्धी जी की इस चेतावनी पर ध्यान देंगे? हम समझते हैं कभी नहीं। इक्का दुक्का जार्ज बर्नर्ड शा लोरेनसेन और डाबी भले ही गान्धी जी की बात का समर्थन करें लेकिन सोवियत और चीन को छोड़कर जो बीड़ यहां इकट्ठा हुई है वे सब के सब अफ़रीका और एशिया की कौमों को आज़ाद होने और जनतन्त्र का उपभोग करने के लिये अपने वश भर कभी कोई मौका न देंगे।

## सुदूर पूर्व के देश

मि० चर्चिल इस बात का ऐलान कर चुके हैं कि हिन्द-चीन, सुमात्रा और जावा को जापानियों के हाथों से आज़ाद करके फिर से फ्रान्स और हालैण्ड के सुपुर्द कर दिया जायगा। इन अभागों के गले से मन मन भर की जापानी तौकें उतारकर फिर सवा सवा मन की पैरिस और एमसटरडम की बनी हुई तौकें पहना दी जांयगी। मिस्टर चर्चिल मुक्त हृदय से आज इन देशों पर डच और फ्रांसीसी साम्राज्यवादी के दावे का समर्थन कर रहे हैं ताकि बर्मा, मलाया, सिंगापुर और हाँगकाँग पर निरंकुश ब्रिटिश साम्राज्यवाद का दावा ज्यों का त्यों अक्षुण्ण बना रहे।

अमरीका भी इन साम्राज्यवादी मुल्कों की लकीर पर चलने का उपक्रम कर रहा है। प्रशान्त महासागर के जिन द्वीप समूहों पर अमरीका ने क़ब्ज़ा किया है उन्हें हड़प जाने की उसकी नीयत दिखाई दे रही है। दसियों बरस पहले से अमरीकी सेनेटर और कांग्रेसमेन इन द्वीप समूहों पर अमरीका के कब्ज़े की बात कहते आ रहे हैं। अमरीका के समुद्री प्रधान सेनापति एडमिरल किंग ने साफ़ साफ़ इस बात का ऐलान कर दिया है कि युद्ध के बाद इन जीते हुये द्वीप समूहों पर क़ब्ज़ा जमाये रखने के लिये अमरीका को प्रशान्त महासागर में अपना जहाज़ी बेड़ा रखना पड़ेगा। अमरीका की प्रशान्तस्थित समुद्री सेना के प्रधान सेनापति एडमिरल निमिज़ ने भी एडमिरल किंग के इस ऐलान का यह कहकर समर्थन किया है कि "ये द्वीप समूह भविष्य में हमारी रक्षा के लिये बहुत महत्वपूर्ण और ज़रूरी हैं।"

इस साम्राज्य लोलुप भेड़िया-वृत्ति के बाद कौन-सा एशियावासी सानफ्रान्सिसको सम्मेलन के विश्व-शान्ति और सामूहिक सुरक्षा के दावे पर ज़रा भर भी विश्वास करेगा?

## दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानी हाई कमिश्नर

बावजूद भारतीय सरकार की प्रार्थना पर जातिगत विद्वेष का क़ानून क़ायम रखने की साउथ अफ़रीका की नीति के सम्बन्ध में हाउस आफ़ कामन्स में प्रश्न करते हुये मज़दूर सदस्य मिस्टर स्लोन ने पूछा कि क्या भारत मंत्री भारत सरकार को हिदायत देंगे कि वह भारतीय हाई कमिश्नर को वापस बुला ले? इसका जवाब देते हुये मिस्टर अमेरी ने कहा—"इस सवाल का ताल्लुक बिलकुल भारत सरकार से है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



९ फ़रवरी को सेण्ट्रल असेम्बली ने श्री लालचन्द नवल राय के प्रस्ताव पर एक मत से दक्षिण अफ्रीका के ख़िलाफ़ आर्थिक प्रतिबन्ध न लगाने के लिये भारत सरकार की भर्त्सना की। कांग्रेस, मुसलिम लीग, हिन्दू सभा, लिबरल आदि सभी दल के नेताओं ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था। भूतपूर्व हाई कमिश्नर सर रज़ाअली ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुये कहा कि दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की हालत इतनी नाज़ुक है कि भारत सरकार अब किसी तरह तिजारती प्रतिबन्ध लगाने की बात नहीं मुल्तवी कर सकती। असेम्बली के उस फैसले के बाद भी भारत सरकार ने सर शफ़ात के उत्तराधिकारी को दक्षिण अफ़रीका रवाना कर दिया। नैटाल इण्डियन कांग्रेस ने भी फ़रवरी में ही भारत सरकार से प्रार्थना की थी कि सर शफ़ात की जगह कोई हाई कमिश्नर न भेजा जाय। किन्तु भारत सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

डा० खरे से जब इसकी हकीक़त पूछी गई तो उन्होंने जवाब दिया कि नया हाई कमिश्नर वायसराय की एक्ज़ीक्यूटिव कौन्सिल की राय से ही भेजा गया है जिसमें ख़ुद डाक्टर खरे भी शामिल हैं। नया हाई कमिश्नर भेजकर भारत सरकार ने अपने को और इस मुल्क को दुनिया की नज़रों में ज़लील कर लिया अन्यथा सानफ्रान्सिसको सम्मेलन में यह बात स्पष्ट हो जाती कि मार्शल स्मट्स की सरकार अगोरों के साथ कितना वहशियाना बर्ताव करती है। पर वायसराय की कौन्सिल की हिन्दुस्तानी कठपुतलियों से इस क़िस्म की उम्मीद करना फ़िज़ूल था।

## मध्यपूर्व और भारत

भारत सरकार ने प्रेस प्रतिनिधियों का जो दल मध्य पूर्व भेजा था उसमें 'लीडर' और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के विशेष प्रतिनिधि श्री दुर्गा दास भी थे। उन्होंने अपनी यात्रा का विवरण देते हुये १० अप्रैल के 'लीडर' में लिखा है—

"हिन्दुस्तान की यह परम्परा रही है कि उसने कभी अपने पड़ोसी मुल्कों पर हमला नहीं किया इसलिये ये पड़ौसी मुसलिम देश यह समझते हैं कि हिन्दुस्तान एक आज़ाद और महान औद्योगिक देश की हैसियत से निकट पूर्व और मध्य पूर्व के राष्ट्रों की आज़ादी का एक बहुत बड़ा सहारा होगा—चूंकि ये मुल्क हिन्दुस्तान की स्ट्रेटिजिक सीमा के अन्दर आते हैं, वे समझते हैं कि सुएज़ और बसरा हिन्दुस्तान के प्रवेश द्वार हैं और ईरान की खाड़ी हिन्दुस्तान की झील है, इसलिये हिन्दुस्तान अपनी आज़ादी की रक्षा के लिये इन समस्त देशों की आज़ादी की रक्षा करेगा। सच तो यह है कि ये मुसलिम मुल्क अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से हिन्दुस्तान की अपेक्षा कहीं अधिक जाग्रत हैं। इनके मुल्क विश्व युद्ध के मोरचे रहे हैं और यहाँ की सरकारें महाशक्तियों के हाथों में कठपुतली रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय कड़ी में वे अपने मुल्कों की आज़ादी को हिन्दुस्तान की आज़ादी और हिन्दुस्तान की औद्योगिक और सैनिक शक्ति के साथ बँधी पाते हैं।...ये लोग अरब राष्ट्र संघ के लिये आन्दोलन कर रहे हैं और इन्हें यह देख कर बड़ी हैरत होती है कि हिन्दुस्तान में ऐसे भी लोग हैं जो मुल्क के टुकड़े टुकड़े करना चाहते हैं। इसलामी राज का विचार भी उनके दिमाग़ में नहीं धँसता। वे समझते हैं कि औद्योगिक राष्ट्र खेतिहर राष्ट्रों के ऊपर हावी होंगे और आइन्दा ज़माने में विविध देश मज़हबी बुनियादों पर नहीं बल्कि आर्थिक बुनियादों पर एक दूसरे के साथ मेल और समझौता करेंगे।"

इन पंक्तियों पर हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायवादियों को ध्यान देना चाहिये। मुसलमानों को इसलिये कि वे मध्य पूर्व के अपने हम मज़हब राष्ट्रों पर मज़हबी बुनियाद पर निर्भर नहीं कर सकते और हिन्दुओं को इसलिए कि वे मध्य पूर्व के मुसलिम देशों को जिस तरह हौआ समझते हैं वह सब कितनी मूर्खता और नासमझी की बात है।

## लैटिन अमरीका में पाकिस्तानी नतीजे

प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक डाक्टर मेघनाथ साहा और डाक्टर एस० के० मित्रा वैज्ञानिक मिशन के सदस्य की हैसियत से अमरीका गये थे। वहाँ उन्होंने प्रसिद्ध अमरीकी वैज्ञानिकों से बातें कीं। लैटिन अमरीका के सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध अमरीकी वैज्ञानिक ने इन लोगों को बताया कि लैटिन अमरीका तीस पाकिस्तानी रियासतों में बंटा हुआ है और वहाँ की जनता उतनी ही दरिद्र है जितनी हिन्दुस्तान की। आर्थिक दृष्टि से एक भी रियासत आत्मनिर्भर नहीं है। उनमें से हर रियासत एक एक चीज़ पैदा करती है। कोई केला पैदा करता है तो कोई काफ़ी। हालाकि उनके यहाँ देश को उन्नत करने के प्रचुर साधन हैं फिर भी वे सरहदी बटवारे और आर्थिक और चुंगी की रोक थाम की वजह से तरक्की नहीं कर पाते। राजनैतिक दृष्टि से इन तमाम रियासतों में निरन्तर एक दूसरे से संघर्ष बना रहता है। नतीजा यह है कि राज़ी से या मजबूरी से लैटिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अमरीका को अपनी सुरक्षा के लिये संयुक्त राष्ट्र अमरीका पर निर्भर करना पड़ता है।

क्या देश को टुकड़े टुकड़े करने वाले भाई इस वक्तव्य के महत्व पर ग़ौर करेंगे ?

## महिलायें और सामाजिक पाबन्दियां

बोरिविली ( बम्बई ) में कस्तूर बा महिला शिक्षण शिविर में व्याख्यान देते हुये गांधी जी ने कहा—"एक और साथी ने मुझसे पूछा है कि अनेक नैतिक पाबन्दियों के रहते हुये महिलायें कस्तूर बा स्मारक निधि के मातहत गाँवों में काम करने के लिये कैसे जा सकती हैं? इसके जवाब में यही कह सकता हूँ कि शिविर में सबसे पहले महिलाओं को यह सोचना है कि वे अपने मार्ग में आने वाली तमाम सामाजिक पाबन्दियों को तोड़ दें।

"लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं कि वे नैतिक मर्यादाओं को भी उड़ा दें। पुरुष समाज का नैतिक मापदण्ड काफ़ी गिर चुका है। जो लोग विधान का रूप देकर एक पत्नी विवाह का समर्थन और प्रचार करना चाहते हैं वे स्वयं अपने सिद्धांत के अनुसार आचरण नहीं करते। यही प्रवृत्ति महिलाओं में भी घर करती जा रही है। मुझे ऐसी शिक्षित लड़कियों का पता है जिन्हें किसी ऐसे पुरुष के साथ शादी करते हुए ज़रा भी झिझक नहीं होती जिसकी पहली धर्म पत्नी जीवित है। महिलाओं का यही पतन है।

"इन बुराइयों के पक्ष में यह नहीं कहा जा सकता कि सामाजिक अन्धविश्वासों के उड़ जाने के कारण यह बुराइयां फैल रही हैं। क्या महिलाओं की उन्नति का अभिप्राय यह है कि वे इस मामले में पुरुषों की नकल करें? नहीं, कदापि नहीं। उक्त मार्ग का अनुसरण करते हुए भारत स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकेगा। सामाजिक स्वाधीनता क़ायम करने के लिए नैतिक पवित्रता अत्यन्त आवश्यक है। जो व्यक्ति नैतिक दृष्टि से शुद्ध नहीं है उसे बुरी सामाजिक पाबन्दियों के ख़िलाफ़ जेहाद बोलने का हक़ नहीं।

"निस्सन्देह गांवों में अस्पृश्यता की समस्या जटिल है। लेकिन जो गांवों में काम करने जायंगे वे उसका समूलोन्मूलन करने का संकल्प करके जायंगे। उन्हें अपना काम भंगियों से आरम्भ करना चाहिए। दुर्भाग्य से तथाकथित अछूतों में भी अपने ढङ्ग की अस्पृश्यता प्रचलित है। हमें उनके साथ घुलमिलकर, उनके साथ खाना पीना चाहिए, बशर्ते कि वे सफ़ाई और स्वच्छता के नियमों का पालन करें। हम उनके लिए खाना तैयार करें और उनके मकान साफ़ करें। इससे उनकी आदतें जाती रहेंगी।"

## कस्तूर बा निधि और दान देने वाले पूंजीपति

अपने इसी व्याख्यान में गांधी जी ने कस्तूर बा निधि में दान देने वाले पूंजीपतियों के विषय में उठाई हुई शंकाओं का जवाब देते हुये कहा—

"यह आशंका प्रकट की गई है कि कस्तूरबा निधि के लिए अधिकांश पैसा पूंजीपतियों ने दान दिया है और उन्हें विभिन्न कमेटियों में भी लिया गया है, इसलिए उक्त संस्था पर उन्हीं का प्रभुत्व रहेगा। किन्तु यह आशंका निर्मूल है। धनियों का धन स्वीकार करते हुए मैंने उनको ही मानने का वायदा नहीं किया और उन्हें मुझ से ऐसी कोई आशा भी नहीं होनी चाहिए।

"अधिकांश धनीमानी लोग ट्रस्टियों के बोर्ड में हैं। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि वे समूची संस्था पर अपना प्रभुत्व क़ायम करना चाहते हैं। असलीयत यह है कि चन्दा जमा होने के बाद वे स्वेच्छा से बोर्ड से पृथक हो जाने को तैयार थे और यदि मैं चाहता तो वे अलग भी हो जाते। मैं न केवल उनका धन बल्कि उनकी बुद्धि, सद्भावनायें और सेवायें भी चाहता था, इसलिए वे बोर्ड में बने रहे।

"मैं यह नहीं मानता कि सब पूंजीपति दूसरे लोगों की की अपेक्षा निकृष्टतम हैं। इस विश्व में हर व्यक्ति अपूर्ण है। दूसरे लोगों के बारे में कोई निर्णय करने में मैं स्वयं भी अपूर्ण हूं। मेरी अहिंसा ने मुझे सिखाया है कि मैं अपनी कमियों पर कठोर नियंत्रण रखूँ। लेकिन दूसरों की ग़लतियों पर काफ़ी उदार रहूं। अतएव यदि हम लोग दूसरों की बुराइयां देखने के स्थान पर पहिले अपने अभ्यन्तर को देखें और आत्म शुद्धि पर ध्यान देवें तो पूंजीपतियों पर भी इसका प्रभाव पड़ेगा। मैं पूंजीपतियों से यह नहीं कह सकता कि जब तक वे अपनी सारी सम्पत्ति को लात न मार दें, तब तक मैं उनसे काम न लूंगा। अपनी सम्पत्ति का पूर्ण त्याग बिरले ही कर सकते हैं। हम तो पूंजीपतियों से इतनी ही आशा कर सकते हैं कि वे अपनी सम्पत्ति को थाती समझें और उसका प्रयोग समाज-सेवा के लिए करें। इससे ज़्यादा के लिए


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ज़ोर देना सोने के अंडे देने वाली मुर्ग़ी को मार देना होगा।"

## कपड़े की समस्या

पिछले कई महीनों से कपड़े की समस्या देश में इतना भयानक रूप धारण कर रही है कि बंगाल से और मुल्क के दूसरे हिस्सों से बराबर यह ख़बरें आ रही हैं कि वहाँ अनेक हिन्दू और मुसलमान बहिनें लज्जा न ढंक सकने के कारण आत्म हत्या कर रही हैं। इस सम्बन्ध में सरकार का जो रवय्या है वह निहायत लचर है और उससे समस्या के समाधान की कोई सूरत निकलती नज़र नहीं आ रही। बंगाल, बिहार और युक्त प्रान्त में साड़ियों का तो एकदम अभाव नज़र आ रहा है। कपड़ा ख़रीदने के लिये सैकड़ों आदमियों का घण्टों एक एक दूकान में क्यू बनाकर बैठना बड़ी ज़िल्लत की बात मालूम होती है। यह सब होते हुये भी सप्लाइ डिपार्टमेण्ट के सेक्रेटरी सर अकबर हैदरी और टेक्सटाइल कमिश्नर मिस्टर वेलोडी का कहना है कि देश में कपड़े का अकाल नहीं है। आख़िर जब अकाल नहीं है तो यह कपड़ा जाता कहाँ है? सर अकबर हैदरी ने ११ अप्रेल को बम्बई में टेक्सटाइल बोर्ड की मीटिङ्ग में कहा कि कपड़े के अभाव के लिये कपड़े के व्यापारी और ख़रीदार दोनों दोषी हैं। कपड़े के व्यापारी इसलिये कि वे चोर बाज़ार में कपड़ा बेचते हैं और ख़रीदार इसलिये कि वे दूकानदारों को घेरकर ज़रूरत से ज़्यादा कपड़ा ख़रीद लेते हैं। किन्तु ये दोनों बातें इतनी ग़लत हैं कि इस पर विस्तार से कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। लोग दूकानों को घेरते ज़रूर हैं पर उन्हें कपड़ा नहीं मिलता। हमें इलाहाबाद का पता है जहाँ सन् १९३९ तक हर महीने कपड़े की २००० गाँठों की खपत थी। सन् १९४३ में इलाहाबाद में कपड़े की कुल १२०० गाँठें मासिक आने पाईं। सन् १९४४ के अन्त में केवल ४०० गाँठें ही हर महीने आईं और मार्च १९४५ में इलाहाबाद का कपड़े का माहवारी कोटा सिर्फ़ १६१ गाँठ का हो गया। जिस जगह महीने में २००० गाँठों की खपत थी वहाँ १६१ गाँठ में लोगों का कैसे काम चल सकता है? देश में कपड़े का यह अकाल होते हुये भी भारत सरकार ने पिछले साल ५७, ६१४ टन कपड़ा बाहर भेजा। इसके अतिरिक्त जो कपड़ा बग़ैर परमिट के विदेशों में भेजा गया उसका हिसाब किताब अलग है। "हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड" ने अपने ११ अप्रेल के अंक में कोटा-होल्डर्स एसोशियेशन कलकत्ता के नाम बंगाल के टेक्सटाइल कण्ट्रोलर श्री टी० जोन्स का लिखा हुआ एक पत्र छापा है जिसमें लिखा है—

"भारत सरकार की हिदायत के मुताबिक़ इस पत्र के आप श्री एस० एस० वू का, जो ताइ क्यो ट्रेडिङ्ग कम्पनी कलकत्ता के मैनेजर हैं, परिचय प्राप्त करेंगे। इस डिपार्टमेण्ट ने मिस्टर वू को इजाज़त दी है कि वे जितना भी कपड़ा चाहें ख़रीद कर शीघ्र ही चीन भेजें। यह बिलकुल ज़रूरी है कि उन्हें कपड़ा दिया जाय। मुझे उम्मीद है कि आप मि० वू को सन्तुष्ट करेंगे। मिस्टर वू के पास लाइसेन्स नहीं है किन्तु उन्हें बग़ैर लाइसेन्स के ही कपड़ा ख़रीदने की इजाज़त दी गई है।"

इस बात का कोई रिकार्ड नहीं है कि इस तरह कितना कपड़ा चीन तिब्बत नैपाल या दूसरे मुल्कों में भेजा गया है। युद्ध के पहले लगभग ८० लाख गज़ कपड़ा विदेशों से भारत आता था और अब दसियों जहाज़ भरकर कपड़ा भारत से विदेश जा रहा है। एक बात ध्यान में रहे कि इसमें फ़ौजी ज़रूरतों का कपड़ा शामिल नहीं है। इस दारुण परिस्थिति से निकलने का कोई रास्ता लोगों को दिखाई नहीं दे रहा। भारतीयों के साथ बर्बर बर्ताव करने वाले दक्षिण अफ्रीका को भी पिछले साल यहाँ से ५७६ टन कपड़ा भेजा गया है जब कि यहाँ हालत यह है कि लोग अक्षरशः कफन खसोट बन रहे हैं।

किन्तु ऐसी बात नहीं है कि इस परिस्थिति से निकलने का कोई रास्ता नहीं है। गांधी जी की बताई हुई खादी एक ऐसी चीज़ है जो इस समय वस्त्र संकट की समस्या को हल कर सकती है। पंजाब के सिविल सप्लाईज़ डिपार्टमेण्ट के सेक्रेटरी श्री आई० ई० जोन्स ने ७ अप्रेल को एक प्रेस कान्फ्रेंस में वक्तव्य देते हुये कहा कि मौजूदा कपड़े का अकाल हाथ से कती और हाथ से बुनी खादी से ही दूर हो सकता है।

देश के सभी भाई बहिनों से हमारी अपील है कि वे शीघ्र ही अवकाश के समय अपने अपने घरों में चरखा चलाना शुरू करें ताकि कपड़े के अभाव में उन्हें घरों में नंग और ज़िल्लत न सहनी पड़े।

## युद्ध का यह अन्त नहीं!

समाचार पत्रों ने मोटे मोटे शीर्षकों से ऐलान किया है कि मुसोलिनी कुत्ते की मौत मारा गया और हिटलर समर क्षेत्र में अन्तिम घड़ी तक रहकर शहीद हुआ।

ऐसे भोले भाले लोग जो राजनैतिक विकास के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


को नहीं समझते उनकी ख़ुशी का आज वारापार नहीं। उनकी नज़रों में इन दोनों व्यक्तियों पर ही दुनिया के महान कष्टों की ज़िम्मेवारी थी, इन्होंने ही दुनिया के लहूलुहा जन सामान्य को मौत के घाट उतारा, करोड़ों परिवारों को शोक में डुबा दिया, यूरोपीय सभ्यता के सौ साल के चमकते हुये निर्माण को धूल में मिला दिया और पश्चिम की सांस्कृतिक धारा को पाशविक बर्बरता में रँगकर कलङ्कित किया! किन्तु दुनिया के ऐतिहासिक विकास क्रम का जिन्होंने ज़रा भी अध्ययन किया है वे इस इलज़ाम के थोथेपन को ख़ूब समझते हैं। हिटलर और मुसोलिनी विकृत साम्राज्यवादी देह के पके हुये फोड़े थे और वे बह गये। आज मवाद बह जाने से यूरोप और अमरीका को भले ही थोड़ी सी राहत मिले पर इसका यह अर्थ नहीं कि साम्राज्यवादी रूपी देह में अब किसी तरह की ख़राबी (foreign matter) नहीं बची है। वह तो ज्यों की त्यों मौजूद है और उसके अन्त होने का कोई लक्षण भी नहीं दिखाई देता। जो शरीर ही विजातीय द्रव्य से विकृत हो गया हो उसमें दो फोड़े आज यदि अच्छे भी हो गये तो कल को दसियों फोड़े और निकलेंगे। जब तक यूरोपीय साम्राज्यवाद और अमरीकी पूँजीवाद एशिया और अफ़रीका की करोड़ों जनता का मिलकर शोषण करते रहेंगे, जब तक दुनिया की करोड़ों जनता राजनैतिक और आर्थिक ग़ुलामी की दासता में बँधी रहेगी, जब तक दुनिया में रङ्ग और जाति भेद भूलकर मानव के विरुद्ध मानव की प्रतिष्ठा क़ायम न होगी तब तक ये महायुद्ध दुनिया का एक स्वाभाविक क्रम बने रहेंगे। आज मुसोलिनी के शव पर थूकने से काम नहीं चलेगा। थूकने की ज़रूरत है अपने कुकृत्यों पर, साम्राज्यवाद की शोषण नीति पर और करोड़ों जनता को अपने बूटों से कुचलने वाली चर्चिल, अमेरी और लिनलिथगो की डायरशाही प्रवृत्ति पर। आज मुजरिमों को दण्ड देने की बात की जाती है। हिटलर और मुसोलिनी वार क्रिमनल थे इससे हमें इनकार नहीं, पर भारतीयों की नज़रों में चर्चिल, अमेरी और लिनलिथगो मानव प्रतिष्ठा के निकट, मानव कल्याण के समक्ष और मानव स्वतन्त्रता के प्रति किसी तरह भी कम अपराधी नहीं हैं। मानवता की दृष्टि में फ़ासिज़्म और साम्राज्यशाही दोनों दुनिया के लिये भीषण अभिशाप हैं। एक ने मैदाने जङ्ग में ६ वर्ष के भीतर डेढ़ करोड़ आदमियों को मौत के घाट उतार दिया तो दूसरा १५० साल से पचासों करोड़ आदमियों की गर्दनें रेत रेत कर उन्हें मौत के घाट उतार रहा है। एक यदि बाहर की चोट से अपने उड़न बमों के ज़रिये इङ्गलैण्ड के पचास हज़ार आदमियों की जान ले सकता है तो दूसरा भीतर की चोट से अपने काग़ज़ी क़ानूनों के ज़रिये बङ्गाल के पचास लाख आदमियों को सफ़ाये हस्ती से मिटा सकता है। दोष-क्रम का विवेचन अधिक महत्व नहीं रखता परिणाम पर ही इतिहास दृष्टि डालेगा।

क्या यह सही नहीं है कि दसियों वर्ष तक आस्टिन और नेवील चेम्बरलेन, ईडेन और होर मुसोलिनी के तलुवे सोहलाते रहे, इथियोपिया पर इटली के भयङ्कर अत्याचारों को सहते रहे, स्पेन के गृहयुद्ध में जनतन्त्र को दम तोड़ते हुये देखते रहे, आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया की ग़ुलामी पर मोहर लगाते रहे, सोवियत के ख़िलाफ़ हिटलर के साथ मिलकर षडयन्त्र रचते रहे और विश्व-व्यापी शोषण का पैमाना भरते रहे? जापान के पक्ष में चीन के विरुद्ध बर्मा रोड बन्द करने की ज़िम्मेवारी क्या चर्चिल और अमेरी के कन्धों पर नहीं है? चीनी जनता का गला काटने वाली तलवारें क्या अमरीका में नहीं ढली थीं? इथियोपिया में हब्शियों की आज़ादी कुचलती हुई जो मोटरें दौड़ रही थीं वे क्या फ़्रान्स में नहीं बनी थीं। सैकड़ों अङ्गरेज़ देशभक्त जो स्पेन के मैदान में जनतन्त्र की रक्षा के लिये मशीनगनों के शिकार हुये, वे मशीनगनें क्या बरमिंघम और लीड्स में नहीं ढली थीं? जापान के टैंक जिस पैट्रोल से चीन को रौंदते हुये दौड़ते थे वह पैट्रोल क्या स्टैंडर्ड आयल कम्पनी का दिया हुआ नहीं था? अपराध एक दो हैं जो गिनाये जाँय! और इन सब अपराधों को ढकने के लिये कितने बड़े बड़े जाल और कितने बड़े बड़े फ़रेब इस युद्ध के दौरान में लोगों को दिग्-भ्रम करने के लिये फैलाये गये। अटलाण्टिक चार्टर?—आज उसकी धज्जियाँ उड़ी हुई पड़ी हैं! रीहैबिलिटेशन?—आज उसका सम्बन्ध केवल गोरी चमड़ी वाले यूरोपीय देशों से है। सोशल सिक्यूरिटी?—उसका आयोजन केवल इङ्गलैण्ड और अमरीका की जनता के लिये ही हो रहा है। सामूहिक सुरक्षा?—वह केवल महान शक्तियों के दाँव पेंच का ही केवल एक खेल रह गया है! डम्बार्टन ओक्स के प्रस्ताव?—वे केवल एशियाई और अफ़रीकी जनता के शोषण की आयोजना मात्र बन रहे हैं, आदि आदि!!

सान्फ्रान्सिको कान्फ्रेंस की जो कुछ कर्रवाई प्रकाश में आ रही है उससे पता चलता है कि संसार के जनपक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के प्रतिनिधि सोवियत् के ख़िलाफ अमरीका और इङ्गलैण्ड ने एक ज़बर्दस्त गुटबन्दी कर ली है। अर्जेण्टाइन को कान्फ्रेंस में सम्मिलित करने के लिये प्रतिनिधियों को विचारने का मौक़ा दिया जाय—मोलोताफ़ का यह उचित प्रस्ताव भी ४ के विरुद्ध ३१ वोटों से गिर गया। पोलैण्ड के प्रश्न पर बोलते हुये मोलोतोफ़ ने कहा कि—"दुनिया जानती है कि हिन्दुस्तान स्वतन्त्र देश नहीं है किन्तु फिर भी हमने ब्रिटेन के इस सुझाव को स्वीकार कर लिया कि मौजूदा परिस्थिति में भी हिन्दुस्तान को कान्फ्रेंस में शामिल होने के लिये दावत दी जाय क्योंकि एक वक्त ऐसा आयगा जब स्वतन्त्र भारत की आवाज़ कान्फ्रेंस में सुनाई देगी।" सम्मेलन की हफ्ते भर की कार्रवाई से यह पता चला गया कि हवा का रुख़ किधर है!

असल में एशिया और अफ़रीका की शोषित और ग़ुलाम क़ौमों को अपने ही पैरों पर खड़ा होना है। उन्हें अपनी आज़ादी प्राप्त करने के लिये अपना एक संयुक्त मोरचा बनाना है। जिस दिन एशिया और अफ़रीका की ग़ुलाम और शोषित क़ौमें साम्राज्य और औद्योगिक पूँजीवाद के शिकंजे से मुक्त हो जायँगी उस दिन फ़ासिस्ट मनोवृत्ति का भी दुनिया से ख़ात्मा हो जायगा। जब तक यह नहीं होता तब तक क़ैसर और हिटलर की जमात का कोई न कोई प्रतिनिधि उभरेगा, शक्ति संचय करेगा और अपने समय के फिर से उठाये हुये सभ्यता के महल को खण्डहर में बदल देगा। जब तक सुरक्षा सम्मेलन इस दृष्टि से चीज़ों पर विचार नहीं करता तब तक दुनिया में शान्ति और सुरक्षा की बात एक धोखे की टट्टी है।

जहां तक युद्ध में दण्ड देने का प्रश्न है हम जर्मन जनता को अपमानित और लांछित करने के किसी भी प्रस्ताव का घोर विरोध करेंगे। इस युद्ध के लिये ग़रीब जर्मन जनता उतनी ही ज़िम्मेवार है जितने मङ्गल ग्रह के रहने वाले तथा कथित लोग! बारसाई के बाद यदि जर्मन जनता को उतनी बुरी तरह कुचला न गया होता तो आज युद्ध में जर्मन सिपाही इतने कट्टर न साबित होते। "घृणा से घृणा और हिंसा से हिंसा शान्त नहीं हो सकती। घृणा का प्रेम से और हिंसा का अहिंसा से ही शमन हो सकता है।"

## भारत में कोई भी गांधीवादी नहीं!

बम्बई में १६ अप्रैल को गांधी जी ने एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—"हिन्दुस्तान में एक भी गांधीवादी नहीं है। मैं स्वयं भी नहीं हूँ। मैंने किसी पन्थ की स्थापना नहीं की है। मैं तो सत्याग्रही होने का दावा करता हूं अतः मैं अहिंसात्मक भी हूँ अथवा उसके लिये प्रयत्न कर रहा हूँ। मैं आप लोगों को भी उसके लिए निमंत्रित करता हूं। मैंने अफ्रीका में १९०६ में पार्लमेन्ट्री कार्यक्रम के स्थान पर अत्यधिक असुविधाओं के उपस्थित होने पर ही यह मार्ग निकाला था। मैं स्वयं कभी भी किसी पार्लमेन्ट्री बोर्ड का सदस्य नहीं रहा हूँ और न किसी बोर्ड का सदस्य हुआ हूं। मैंने यह अनुभव किया है कि अहिंसात्मक असहयोग ही शक्तिशाली साधन है। रचनात्मक कार्यक्रम में १५ बातें आती हैं। उनमें केवल स्वराज्य ही नहीं वरन उससे कहीं अधिक है।

"मेरे लिए सत्याग्रह नीति नहीं है वरन मेरा धर्म है। मुझे आशा है कि मैं इसके ज़रिये परमात्मा के दर्शन करूँगा। यदि सत्याग्रह में इतनी शक्ति है तो राजनैतिक स्वराज्य एक साधारण सी वस्तु रह जाती है। मेरा सत्याग्रह मुझे यह सिखाता है कि हमें उन व्यक्तियों को भी सहन करना होगा, जिन्हें हम तनिक भी पसन्द नहीं करते हैं और जिनके साथ पार्लमेन्ट्री कार्यक्रम के द्वारा चलना चाहते हैं।

"आप अपने विश्वास के अनुसार आचरण कीजिये। मेरा कोई भी शत्रु नहीं है—न तो अंग्रेज़ ही और न अंग्रेज़ अधिकारी ही। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं उनका अनुकरण करूँ। मैं अपने मार्ग पर चलता हूँ। सरकारी तरीक़ा यह है कि देश पर शासन किया जाय और मेरा मार्ग है देश की सेवा करना। सरकारी अधिकारी सब चाहते हैं, मैं केवल सारी शक्ति से सेवा करना चाहता हूँ और वह भी परमात्मा के नाम पर। अतः मैं समस्त विरोध के विरोध का सामना कर सकता हूँ क्योंकि मेरी धारणा है कि परमात्मा मेरे साथ है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारतीय चीनी मिट्टियां

लेखक

पं० मनोहरलाल मिश्र एम० एस-सी०

[ सिरेमिक विभाग काशी विश्वविद्यालय ]

बेहद खोज और परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी गई है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने में बदल सकते हैं यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। चीनी मिट्टी और मिट्टी का व्यवसाय करने वालों के लिये पुस्तक बहुत उपयोगी है। २६० पृष्ठ की सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है। डाक खर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## विश्व-संघ की ओर

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल

और

श्री भगवानदास केला

पृथ्वी के सब राष्ट्रों को मिला कर उनका एक संघ किन उसूलों पर क़ायम किया जा सकता है इस गम्भीर विषय पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विश्वव्यापी शान्ति चाहने वाले सब लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। ३०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपया, डाकखर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## आरसी-रचनावली

| | |
|---|---|
| आरसी ( कविताएँ ) ... ... | १५) |
| संचयिता ( कविताएँ ) ... ... | ५) |
| कलापी ( कविताएँ ) ... ... | २॥) |
| नयी दिशा ( कविताएँ ) ... ... | २) |
| पंचपल्लव ( कहानियाँ ) ... ... | २) |
| खोटा सिक्का ( कहानियाँ ) ... ... | १।) |
| जीवन और यौवन ( कविताएँ ) ... | १।) |
| आँधी के पत्ते ( कहानियाँ ) ... | १।) |
| बूढ़ा मामा ( कविताएँ ) ... ... | १) |

**तारा मण्डल, मुजफ्फरपुर**

संस्कृति, साहित्य और कला की सन्देशवाहक

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

## विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

सम्पादक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य के ऊपर खोजपूर्ण गम्भीर निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक एक अंक संग्रहणीय—

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

**मैनेजर, विश्वभारती पत्रिका, हिन्दी भवन**

पो० शान्तिनिकेतन (बंगाल)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




बरसों की प्रतीक्षा के बाद आख़िर छप गई

## गीता और क़ुरान

### लेखक : पण्डित सुन्दरलाल

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, क़ुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर क़ुरान की ४०० से ऊपर आयतों का लफ़्ज़ी तर्जुमा दिया गया है।

जो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्मों को समझना चाहें उनके लिये यह पुस्तक बहुत क़ीमती और बेमिसाल है।

२०० सफ़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल

**डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग**

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

पं० सुन्दरलाल जी की एक और नई पुस्तक

## हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

प्रकाशित हो गई

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म-भूमि फ़िलस्तीन की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के साथ साथ हिन्दुस्तान, चीन, ईरान इत्यादि दूसरे एशियाई देशों की उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक हालत के साथ हज़रत ईसा और उनके उसूलों का गहरा सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया गया है

मूल्य, डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग

अभी से अपनी प्रति रिज़र्व करा लीजिये

## "विश्ववाणी का एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है"—गान्धी जी

महात्मा गान्धी जी ने कहा था—"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे।"

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सर तेज बहादुर सप्रू, आचार्य क्षिति मोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० महादेव देसाई, क्यूरेटर-ब्रिटिश म्यूज़ियम (लन्दन), प्रो० तान युन-शान आदि सैकड़ों देशी और विदेशी सर्वमान्य नेताओं और विद्वानों ने गान्धी जी की उपर्युक्त राय को ही दोहराया है।

**विश्ववाणी के पुराने अङ्कों में देश और विदेश के चोटी के विद्वानों के गम्भीर और महत्वपूर्ण लेख भरे पड़े हैं। विश्ववाणी के विशेषाङ्कों का तो कुछ पूछना ही नहीं।**

**क्या आप के पास विश्ववाणी के बहुमूल्य विशेषाङ्क हैं?**

**क्या आप विश्ववाणी के महत्वपूर्ण पुराने अङ्क ख़रीदना चाहेंगे?**

हमारे पास 'टैगोर अङ्क', 'संस्कृति अङ्क' पहला भाग, 'बौद्ध संस्कृति अङ्क'. 'चीन अङ्क', 'जैन संस्कृति अङ्क', और 'अकबर अङ्क' की थोड़ी सी प्रतियाँ बची हुई हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर अङ्कों की भी कुछ प्रतियाँ और सन् ४२ और ४३ की एक दर्जन पूरी फाइलें बची हुई हैं। जिन सज्जनों को चाहिये फ़ौरन आज ही पत्र लिखें। जिस क्रम से आर्डर आवेंगे उसी क्रम से ग्राहकों को प्रतियाँ दी जाँयगी।

**मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**


सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कल्याण

सम्पादक : पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक : विश्वम्भरनाथ

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

जून १९४५

[ एक मई का ॥-)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काशमीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत।

# विषय सूची

[ जून १९४५ ]


१—असफल क्रान्तिकारी के प्रति ( कविता )—विद्यानन्द सन्यासी ... ... ३३९

२—विचार-कण—आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक ३४१

३—शब्द ( कविता )—श्री आरसीप्रसाद सिंह ... ३४५

४—बुद्ध की दृष्टि—भदन्त शान्ति भिक्षु ... ३४६

५—दीपक ( कविता )—श्री राङ्गेय राघव ... ३५४

६—इसलाम और दो नेशन्स का उसूल—सय्यद रहमअली अल हाशमी ... ... ३५५

७—हिन्दुस्तानी प्रचार—डाक्टर जाफ़र हसन ... ३६३

८—जैन कर्म सिद्धान्त—श्री कैलाश चन्द्र शास्त्री ३६७

९—अभियान ( कविता )—श्री शील चतुर्वेदी ... ३७२

१०—प्राचीन ईरान का सांस्कृतिक और कलात्मक जीवन—पण्डित सुन्दरलाल ... ३७३

११—सैन फ्रैंसिसको सम्मेलन ( कविता )—श्री देवेन्द्र तिवारी एम० ए० ... ... ३७८

१२—सङ्गम ( एक झाँकी )—श्री सुधीन्द्र ... ३७९

१३—गीत ( कविता )—श्री उपेन्द्र ... ३८०

१४—शास्त्रोक्त विवाह का अभिशाप—रायबहादुर ज्ञानशङ्कर पण्ड्या ... ...

१५—मँगतू स्वराजी—श्री भारत चन्द्र ...

१६—भारत में नागा सम्प्रदाय—श्री उमेशचन्द्र माथुर ... ... ...

१७—विज्ञान : वरदान या अभिशाप !—डाक्टर लतीफ़ दफ़्तरी ... ...

१८—सन्त और दार्शनिक कवि वाल्ट ह्विटमैन—श्रीमती जे० फ़ोर्ड ... ...

१९—पुस्तक परिचय ... ...

२०—हिन्दुस्तान में विज्ञान की अवनति के कारण—स्व० आचार्य प्रफुल्ल चन्द्रराय ...

२१—बोल्गा से गङ्गा—एक प्रत्यालोचना—श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' ... ...

२२—जगत और जीवन ( कविता )—श्री मदन मोहन प्रसाद वर्मा ... ...

२३—बम्बई में हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की शाखा—श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी ...

२४—सम्पादकीय विचार ... ...


# विश्ववाणी के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से विश्ववाणी नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्ववाणी' भेजते हैं। हम अपने रजिस्टर मे विश्ववाणी भेजने की तारीख़ तक दर्ज करते हैं। किन्तु डाकख़ाने के कुछ बीच में छापा मार कर कई प्रतियाँ ग़ायब कर देते हैं। हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस बात की शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण रूप भेजी हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर सकने विवश हैं। विश्ववाणी हर महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है और पाँच तारीख़ तक सब ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन जब हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक नम्बर लिखना भूल जाते हैं। विश्ववाणी सम्बन्ध जाँच के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब के लि या तो जवाबी कार्ड या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत

नित्यानन्द चैटर्जी

जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ५, भाग ६ ] जून : १९४५ [ अङ्क ६, पूरे अङ्क ५४

# असफल क्रान्तिकारी के प्रति !

विद्यानन्द सन्यासी

आज पराजय - गीतों की ध्वनि
रह रह जन - पथ पर छाती ;
नत मस्तक जीवन - गरिमा
करुणा, विषाद से सकुचाती !

किन्तु पराजित बार बार
होकर भी वीर, न आहें भर ;
अपने भाई साथ न दें
तब भी किंचित परवाह न कर !

बन जायें साथी कृतघ्न
फिर भी तू आगे बढ़ता जा ;
अपने ही दुर्दिन से सत्वर
ओ हतभागे लड़ता जा !

युद्ध क्षेत्र सूना - सूना है
रण - भेरी, रण - गीत नहीं ;
माना भाई भाई में आपस में
कोई प्रीति नहीं ;

बढ़ता चल एकाकी मग में
यद्यपि कोई मीत नहीं ;
इस पथ पर चलने वालों में
भय की कोई रीति नहीं !

इस पथ पर साहस ही सम्बल
कातर होना शर्म यहाँ ;
हार - जीत का मूल्य न कोई
मूल्यवान है कर्म यहाँ !

ज़रा सब्र कर तूफ़ाँ—
लहरों से लहरों पर छाएगा ;
अत्याचारों के दुर्गों पर—
एक क़हर सा ढाएगा !

दुनिया का अन्तर गाएगा
भैरव प्रलयङ्कर संगीत ;
मृदुल वायु के कण कण में
गूँजेंगे नवल विभा के गीत !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ओ कविता, तू अपनी गति में
भरना वह तूफ़ानी राग ;
कायर से कायर मन में
उपजे अतुलित, अनुपम अनुराग !

दुनिया भर के आराजक
ऐसी प्रचण्ड कर दें ज्वाला ;
बलशाली सत्ता समझे तब
पड़ा किसी से है पाला !

यह तो युद्ध क्षेत्र का क्रम है
प्रबल, कभी धीरे धीरे ;
आगे बढ़ते वीर, कभी
फिर हटते हैं खन्दक़ तीरे !

इस हटने को जीत समझता
अत्याचारी अभिमानी ;
हम भी यही समझने लगते
रूठी आज़ादी रानी !

चुप होता इतिहास,
ज़बां पर पड़ जाता भारी ताला;
मक़तल के बाहर क़ातिल
फैला देता परदा काला !

वक्ता की वाणी, लेखक की कृतियां
गुमशुम सो जातीं ;
कवि के रागों की कड़ियां !
मिस्तब्ध हवा में खो जातीं !

तरुणों की पलकें आपस में
मिल नीचे को झुक जातीं ;
मन की गहन वेदनायें
मन के ही भीतर रुक जातीं !

चलता अत्याचार असीमित
आज़ादी बलि बलि जाती ;
अरमानों की चिता दहकती !
तब भी रहती मुसकाती ;

प्रिय के क्षणिक पराभव पर
वह ज़रा न मन में शरमाती;
प्रिय के मुरझाये अधरों में
चुम्बन - मदिरा भर जाती !

हो जाते फिर बन्द शूरता
औ' कुरबानी के उद्यम ;
फिर न शहीदों की क़ब्रों पर
जुड़ता है मेलों का क्रम !

ज़र्रा ज़र्रा भूमि देश की
'ग्लानिर्भव' हो जाती है ;
व्यथित निराशा जन - जन को
हतप्रभ, निष्प्राण बनाती है !

पर यह क्षणिक भावना, सैनिक!
होना ज़रा न साहसहीन ;
केवल मृत्यु बना सकती है
तुमको नीरव औ' गतिहीन !

आगे तब तक बढ़ते जाओ
प्राप्य तुम्हारा मिल न सके ;
जीवन की सुरभी लतिका में
हँसती कलिका खिल न सके !

या स्वतन्त्रता की माधुरिमा
या फांसी के तख़्ते हों
या होंगे स्वाधीन—
अन्यथा जेल सींख़चे हँसते हों !

विजय कामना निश्चय ही
हम समझ रहे हैं श्रेयस्कर ;
हँसते हँसते बलि चढ़ जाना
किन्तु कहीं उससे बढ़कर !

सतत यत्न की पुण्य - साधना
करते हम स्वागत तेरा ;
तुझमें आज़ादी की प्रतिछवि
देख रहा है मन मेरा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विचार-कण

आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक

## शान्ति सम्मेलन !

ईसा पुकार रहे हैं !

दुनिया के प्रमुख राष्ट्र सान-फ्रान्सिसको में इकट्ठा होकर शान्ति की योजना बना रहे हैं। इस योजना के बनाते समय क्या उन्हें ईसा की आवाज़ सुनाई दे रही है अथवा वे फिर एक बार ईसा की आवाज़ की ओर, उनके उपदेशों की ओर और उनके निर्धारित किये हुये जीवन के मूल्यों की ओर उदासीन रहेंगे ?

यदि वे बाइबिल की कहानियों की उस मूर्ख कुमारी की तरह जो उस समय भी सोती रही थी जब ईश्वरीय दूल्हा उसके और उसके मित्रों के पास आया तो ईस्टर के समारोह का असली तात्पर्य फिर एक बार पूरा न होगा। अफ़सोस तो यह है कि सदा से ही इन लोगों ने यहूदी ईसा के प्रति वफ़ादारी दिखाई है न कि क्राइस्ट की तरफ़ जो अपने स्वर्गस्थित पिता की इच्छा और उसके बताये हुये ज्ञान के मार्ग पर चला—हालांकि जिस पर चलने की क़ीमत उसे सूली पर चढ़कर देनी पड़ी—और जिसने सम्प्रदायों और मज़हबों की सीमा को लाँघकर भ्रातृभाव की उस सीमा में प्रवेश किया जहाँ हर एक के सिर पर धर्म और प्रेम का सूर्य चमकता है और जहाँ एक इनसान दूसरे इनसान से बराबरी की हैसियत से मिलता है।

अब तक शान्ति की जब जब भी सन्धियाँ लिखी गईं तो वे शेक्सपियर के शायलाक की भावना से ही लिखी गईं, असिसी के सन्त फ़्रान्सिस की भावना से नहीं। सन्धि के लिये जो दलीलें दी जाती हैं और पराजित राष्ट्र पर जो शर्तें लादी जाती हैं उनमें ज़ोर "मेरे देश" पर ही दिया जाता है और जो इसलिये अन्यायपूर्ण है क्यों कि तिजारत में और कौन्सिल-टेबुल पर यह भावना अपने ही देश के व्यक्तिगत दावे का समर्थन करती है।

इन्हीं सब बातों के कारण तो हज़रत ईसा को बार बार ज़हर का प्याला पीना पड़ता है और सूली पर लटकना पड़ता है। जब जब उनके अनुयायी शक्तिशाली हुये उन्होंने तब तब तिजारती बन्दिशों ( tariff in-trade ) के पेड़ पर अपने मसीहा को सूली पर लटकाया और जाति-भेद (colour-bar) के द्वार पर मानवता को अपने पैरों से रौंदा।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय शासन प्रबन्ध में ईसा-विरोधी भावना अभी तक इतना अधिक काम कर रही है कि आशंका है कि विविध देशों के प्रधान मन्त्रियों और प्रतिनिधियों के दिल और दिमाग़ में वह भावना एक अप्रकाश्य रूप से और कहीं अधिक भयानक और कहीं अधिक विध्वंसक महायुद्ध के बीज बो रही है।

तब शान्ति सम्मेलन का नेतृत्व कौन करेगा ? ईसा अथवा शैतान ? क्या दुनिया के राष्ट्र अपनी अपनी आस्तीनों में ख़ंजर छुपाकर एक दूसरे को आलिंगन करेंगे या ईश्वर की राह पर चलने वाले साथियों और भाइयों की तरह नम्रता और प्रेम से एक दूसरे को और सबको गले लगायेंगे ?

## शिक्षा के क्षेत्र में शोषण की वृत्ति !

इस बीसवीं सदी का तरह तरह से बखान किया गया है। इस सदी के लिये एक परिभाषा यह भी है कि यह शोषण की सदी है। तत्कालीन इतिहास का कोई विद्यार्थी इसका समर्थन करेगा। यदि इसके लिये किसी सुबूत की ही ज़रूरत है तो वह सुबूत हमें अपने अस्तित्व के दो सिरों में मिलेगा, यानी अपने व्यक्तिवाद और साम्राज्यवाद में और इस युद्ध के रूप में प्रकट होने वाले उनके ज़बरदस्त क्लाइमेक्स में।

किन्तु जब शोषण की वृत्ति शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करने का उपक्रम करती है तो मानवता के हर प्रेमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अपनी समस्त शक्ति और अपने समस्त औचित्य के साथ खड़े होकर शिक्षा को शोषण की घातक वृत्तियों से बचाने का प्रयत्न करना चाहिए। क्यों कि यदि शिक्षा में शोषण की भावना का दाग़ लग गया तो फिर वह भावना चाहे कितनी ही पवित्र क्यों न हो उसे ज़बरदस्त ख़तरे की आशंका है और जो कुछ भी जीवन में सत्य, शिव और सुन्दर है उस सब के नष्ट हो जाने की सम्भावना है।

यह गर्हित भावना अनेक रूपों में पिछले बीसों बरस से अपना काम कर रही है। जिन लोगों का भी शिक्षा के क्षेत्र से किसी तरह का कोई सम्बन्ध रहा है वे उसे भली-भाँति जानते हैं। मिसाल के तौर पर, कौन इस बात से नहीं परिचित कि हमारे स्कूल मास्टर बग़ल में बेत दबाये हुये दिखाई देते हैं; हेडमास्टर की 'अनुशासन' की तलवार हर वक्त शिक्षकों के सर पर लटकती रहती है; स्कूल की मैनेजिंग कमेटी जिन शिक्षकों को नियुक्त करती है वह उनके चरित्र और योग्यता के कारण नहीं बल्कि कमेटी के मेम्बरों के रिश्तेदारों या कलेक्टर की सिफ़ारिश पर; एजूकेशन डिपार्टमेण्ट किसी टेकस्टबुक को इसलिये अधिक पसन्द नहीं करता कि उसमें कोई विशेषता है बल्कि इसलिये कि उसे मंज़ूर करने के लिये बहुत से नाजायज़ दबाव पड़ते हैं और इन सबके अलावा बच्चों के कोमल दिमाग़ों को निरन्तर साम्प्रदायिकता की छेनी से गढ़कर तय्यार करने की नापाक कोशिश की जाती है।

किन्तु इस शोषण का एक और विशेष पहलू है कि जिसे अपना बदशकल चेहरा उठाने की इजाज़त नहीं मिलनी चाहिये और वह पहलू है—मालिकाना स्कूल क़ायम करने की भावना—अर्थात् ऐसे स्कूल जो सद्भावना से नहीं बल्कि तिजारती भावना से चलाये जाते हैं। ये स्कूल पैण्डोरा की उस पिटारी की तरह हैं कि जिसमें हर तरह की बुराइयाँ भरी हुई हैं और इसके अतिरिक्त इनमें हो ही क्या सकता है जबकि इन स्कूलों का मालिक, ऐसे प्रभाव शाली व्यक्तियों की एक मैनेजिंग कमेटी की आड़ में बैठकर कि जिनका शिक्षा के आदर्शों या अनुभवों से कोई सम्बन्ध नहीं, सब काम व्यापारी भावना से करता है! इस तरह की मालिकाना संस्थायें बहुत जल्दी लोगों के अपवित्र इरादों को पूरा करने का साधन बन जाती हैं और जिनमें शिक्षक और विद्यार्थी दोनों शतरंज के मोहरों की तरह इस्तेमाल किये जाते हैं। यदि राज्य ने अपना कर्तव्य पालन किया होता तो इस तरह के शोषण को उसने बहुत पहले धूल में मिला दिया होता।

मालिकाना हितों का यह अपवित्र तरीक़ा कि [illegible] शिक्षा संस्थाओं का शोषण किया जाता है हाल में [illegible] बड़े शहरों में अपना अजगर रूप दिखा रहा है। [illegible] शिक्षा का मोहकमा उस नमक या चांदी के प्रति [illegible] है कि जो जन सामान्य के पसीने को निचोड़कर [illegible] रेवन्यू के रूप में इकट्ठा की जाती है तो उसे शिक्षा के [illegible] में इस पाप को शीघ्र ही बन्द करना चाहिये। ऐसा दिख [illegible] दे रहा है कि कुछ लोगों ने, जिनकी थैलियाँ ख़ुद [illegible] मुनाफ़ों से भर गई हैं, स्कूलों की बिक्री का कारबार [illegible] कर दिया है। उनका तरीक़ा यह है कि वे एक स्कूल [illegible] लेते हैं, ऐसा स्कूल कि जिसके सामने कोई आर्थिक [illegible] नाई हो; फिर कुछ दिनों तक उसे बड़ी तड़क भड़क के [illegible] चलाते हैं ताकि पास पड़ोस के लोग स्कूल के नये [illegible] चर्चा शुरू करें और लड़कों की तादाद बढ़ जाय और [illegible] अपने 'गुड विल' के साथ (क्या ही अच्छा गुडविल है [illegible] जिसे सोने में तोला जा सकता है!) किसी और बड़े [illegible] शाह के हाथों बेच देते हैं कि जिसके पास रुपया [illegible] पड़ा है। इस तरह से सरस्वती के मन्दिर को इन [illegible] ने स्टाक एक्सचेंज में बदल दिया है। क्या ही अच्छा हो यदि शिक्षा विभाग इन लोगों के साथ वैसा ही उग्र [illegible] गुस्से का बर्ताव करे कि जिस तरह हज़रत ईसा ने [illegible] फ़रोशों को यरुसलम के मन्दिर से निकाल कर किया था।

## जब मैं पहिली बार अदालत गया!

अदालतों के जाल में फंसकर ईश्वर भी रो देता है।

हाल ही में कराची की एक अदालत में मुझे इस [illegible] सचाई का पता चला। जो तजरुबा मुझे वहाँ हुआ [illegible] सचमुच मैं कभी नहीं भूल सकता। किसी अदालत में [illegible] का वह मेरा पहला मौक़ा था। जब मैं अदालत के [illegible] बरामदे को पार करता हुआ न्याय के उस मन्दिर की [illegible] जा रहा था तो चारों ओर से लोगों ने गर्दनें उठाकर [illegible] पर निगाहें डालीं, यह समझ कर नहीं कि मैं कोई दूसरा [illegible] बल्कि यह समझ कर कि मैं कोलतार में रंगा हुआ [illegible] भयानक मुजरिम था। वे इस तरह घूर घूर कर मुझे [illegible] रहे थे कि मेरे दिल पर सचमुच यह असर पड़ने लगा [illegible] मैं सदा जेल में रहने वाला एक दोबारा (habitual) [illegible] क़ैदी हूँ!

उसी समय सूरज की किरणों पर चढ़कर एक [illegible] सन्देशवाहक मेरी आत्मा के कानों में कह गया—"[illegible] न्याय ही संसार पर हुकूमत करता है!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अन्त में मैं एक अलग जगह जाकर लकड़ी की एक सस्ता बेंच पर बैठ गया और इस इतनी बड़ी दुनिया के उस छोटे से कोने में न्याय का विस्तृत तमाशा देखने लगा।

कई काले कोट पहने हुये साहब, (वे काले रंग के कोट क्यों पहने थे? क्या यह दिखाने के लिये कि हमारी इन अदालतों में न्याय सदा मातम मनाया करता है?), उस न्याय के मन्दिर में इधर से उधर फिर रहे थे। इन लोगों के पीछे पीछे कुछ चुस्त क़िस्म के लोग चलते थे। उनकी ऐंठी हुई मूंछें, जिनकी नोकें ऊपर को उठी हुई थीं, मानों यह बता रहीं थीं कि हम मानव आत्माओं को न्याय केवल ऊपर स्वर्ग में ही मिल सकता है।

न्याय मन्दिर में घुसते ही ये लोग न्याय के देवता को इस तरह आदर से सर झुकाते थे जो आदर स्वर्ग के न्यायाधीश के प्रतिनिधि की हैसियत से उसे मिलना चाहिये। आदर दिखाकर ये लोग कुर्सियों पर बैठ जाते थे और जगत्पति ब्रह्मा का नाटक शुरू होता था।

टेबुल पर रखी हुई घण्टी बजी कि पीछे के कमरे से अरदली ने निकलकर न्याय के देवता को लम्बा सलाम बजाया। हुकुम लेकर उसने बाहर जाकर मुद्दई मुद्दालेह को आवाज़ लगाई। माननीय न्यायाधीश ने इस्तग़ासा की नक़ल सामने रखी जो एक दिन पहले मुद्दई ने दाख़िल की थी।

माननीय न्यायाधीश के पेशकार ने उनसे ईश्वर को हाज़िर नाज़िर जानकर सच और सिर्फ़ सच बोलने की प्रतिज्ञा कराई। जिस वक्त यह प्रतिज्ञा दोहराई जा रही थी मुझे ऐसा सुनाई पड़ा कि महात्मा सुक़रात बेचैनी के साथ अपनी क़ब्र में करवट ले रहे हैं।

इसके बाद डाक्यूमेण्ट्स, बहस, ख़िलाफ़ बहस, गवाही, जिरह का ऐसा समा बँधा कि वह पढ़ पढ़ कर बाल सफ़ेद करने वालों के देखने की बात थी। अक़्ल और सूझ का वह द्वन्द युद्ध था। सुन सुनकर मेरी हड्डियाँ सर्द होकर ठिठुरने लगीं। दलीलों का जादू चल रहा था—दलीलें जो मक़्तल के जल्लाद की छुरी की तरह काटती थीं, छाँटती थीं और जिगर तक घुस जाती थीं। अदालत का कमरा क्या था मानो कराची क्रिस्टल आइस फैक्टरी का बरफ़-ख़ाना था जहाँ सारी मानव भावनायें सर्द होकर जम गई थीं। वहीं इनसानी जज़्बात के समुद्र को मथा जा रहा था जिसमें अमृत की मुशकिल से कुछ ही बूँदें निकलती थीं और गरल निकल निकल कर चारों ओर फैल रहा था। लगता था मानो ईसा और सीज़र ज़िन्दगी और मौत की लड़ाई लड़ रहे हैं।

अदालत उस दिन के लिये उठ गई। मैं भी घर चलने के लिये उठा। और जब मैं सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था तो मैंने अपने मन में कहा—"यह कैसा मन्दिर है? यह स्वर्ग के मन्दिर का बिलकुल उल्टा है! स्वर्ग में जिस जिसमें जो कुछ अच्छाई है वह अपने को प्रकट करती है; यहाँ बुराई पर, जो मानव स्वभाव का एक अङ्ग है, ज़ोर दिया जाता है। वहाँ न्याय की देवी माँ की तरह प्रेम से शासन करती है, यहाँ वह सास की तरह कठोरता और कटुता से काम लेती है। वहाँ मुजरिम के पाप धुल जाते हैं और यहाँ वह ज़िल्लत और क़र्ज़ के बोझ से लद जाता है।"

इस समय तक मैं अपने डेरे पर पहुँच गया था। सूरज देवता डूब रहे थे। दुनिया के तरीक़ों को देखकर आकाश लाल हो रहा था, मैं कह नहीं सकता, गुस्से से या शर्म से!

## जेल के फाटक पर

जेल के भारी और हृदयहीन लोहे के बन्द फाटक के सामने खड़े होकर दोनों तरफ़ के दृश्य देखकर घर लौटते हुये टामस-ए-कैम्पिस के शब्द दिमाग़ में घूमने लगते हैं—

"जब मैं मनुष्यों के बीच में जाकर वापस लौटता हूँ तो मैं अपने को पाता हूं कि मैं अब मनुष्य से भी निकृष्ट हो गया।"

उस दिन ऐसा हुआ कि संयोगवश मैंने अपने आपको जेल के फाटक पर खड़े पाया। हम बाहर खड़े होकर एक मित्र की प्रतीक्षा कर रहे थे जो जेल के भीतर अपने एक निकट आत्मीय से भेंट ( interview ) करने गये थे। अनेकों स्त्री, पुरुष और बच्चे—हर सम्प्रदाय और हर धर्म के ( पाप के मार्ग में भी हमारी एकता है! )—उस साफ सुथरे बुहारे हुये मैदान में खड़े या बैठे थे! उनसे थोड़ी ही दूर पर बड़ी बड़ी मूंछों वाले, लम्बे चौड़े, बड़ी पेटी से लैस और किरच-बन्दूक से दुरुस्त सन्तरी खड़े हुये पहरा दे रहे थे। ये मुलाक़ाती स्त्री-पुरुष अपने अपने नामों के पुकारे जाने की प्रतीक्षा में थे कि बारी आने पर वे अपने परिवार के किसी व्यक्ति की या किसी मित्र की मुखाकृति का चन्द मिनटों के लिये दर्शन करेंगे जो इस समय भारी विकराल और अवरुद्ध सीख़चों के भीतर बन्द है।

जब तब उस विशाल फाटक की छोटी सी खिड़की सावधानी के साथ खुलती थी जिसमें से लोग सिर झुकाकर अन्दर जाते और बाहर आते थे ताकि दुनिया जाने कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क़ानून के आगे व्यक्ति का कोई महत्व नहीं। सन्तरी को देखकर मुझे ऐसा ही लगा कि मानो कोई गड़रिया नोकीली हँकनी लेकर बाड़े के फाटक से अपनी भेड़ों को अन्दर या बाहर कर रहा है।

सब में करुणाजनक बल्कि हृदय विदारक दृश्य वह था जब ग़रीब मुलाक़ातियों को केवल फाटक की मोटी जाली के पार खड़ा करके अपने कैदी सम्बन्धियों पर बस एक नज़र डालने की इजाज़त दी जाती थी। उन्हें उस शक्ति वाली मानवी स्पर्श से वंचित रखा जाता था कि जिसे छूकर दुखिया अपने भीतर दुख झेलने की शक्ति पाता है और हमदर्दी से सिहर उठता है।

यह एक ऐसा दृश्य था जो किसी कलाकार की आत्मा और उसके अध्ययन के उपयुक्त था। एक नवयुवती पत्नी छै महीने के अपने शिशु को गोद में लिये हुये अपने पति से मिलने आई, जिसे ज़ाहिर है किसी जुर्म में सज़ा हुई थी और जिसका जुर्म न्यायाधीश की नज़रों में, यानी ताजीरात हिन्द की नज़रों में, गम्भीर समझा गया। जब पहरेदार सन्तरी ने कड़ी और भारी आवाज़ से कैदी का नाम पुकारा तो वह युवती जो एक पेड़ के साये में बैठी हुई थी, उठी और फाटक की तरफ़ लपकी। उसके पैर ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे और उसमें वही बेताबी थी जो किसी को भी अपने प्रियतम से मिलने के लिये होती है। पत्नी की आँखों से पति की आंखें मिलीं और फिर दोनों की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। अबोध शिशु ने अपने नन्हे नन्हे दोनों हाथ उठाकर अपने पिता को छूना चाहा पर लोहे की जाली से वे हाथ टकराकर रह गये। पिता ने भी अपनी दोनों बाहें अपने लख़्ते जिगर को कलेजे से लगाने के लिये फैलाईं पर वे ज्यों की त्यों रह गईं। लोहे के सींख़चे, लोहे की जाली और डण्डा लिये वह पहरेदार अपनी कठोर मुद्रा से मानो मौन भाव से कह रहा था—"नहीं, इसकी इजाज़त नहीं है।" मानव भावना पर मानव स्पर्श की भी इजाज़त नहीं है।

फाटक से ज़रा दूर खड़े बन्दूक लिये सन्तरी जब कोई अफ़सर जेल के फाटक से बाहर निकलता या अन्दर आता तो बन्दूक उठाकर उसकी अभ्यर्थना करते थे। इसे अंग्रेज आमतौर पर 'गार्ड आफ़ आनर' कहते हैं। कौन कह सकता है कि जब जब किसी अफ़सर को इस तरह सलामी दागी जाती थी तो उसे याद दिलाया जाता था कि उसका कर्तव्य मनुष्य के सम्मान की रक्षा करना है। अगर वह भी यही समझता तो उसके लिये यह समझना मुश्किल न होता कि मानव स्पर्श इस दिशा में मानव के अन्दर परमात्मा का स्पर्श है—ऐसा स्पर्श जो मानव आत्मा की प्रतिष्ठा, सम्मान और सुख का स्रोत है।

## किसका अपराध अधिक है ?

किसका अपराध अधिक है—रिश्वत देने वाले का या रिश्वत लेने वाले का ?

अब वक्त आ गया है कि जब इस प्रश्न पर उन लोगों को विचार करना चाहिये जिनका अदालतों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। क़ानून जिस तरह से बना हुआ है उसको देखते हुये जब कोई रिश्वत का मामला आता है तब उस व्यक्ति के अपराध पर क़ानून अधिक महत्व नहीं देता जो दूसरे को इस ग़रज़ से लालच देता है ताकि दूसरा अपनी नीयत बिगाड़कर एक नापाक ख़्वाहिश को पूरा कर सके। अक़सर फ़ैसला इसी दलील पर किया जाता है कि जो लालच हाथों से पकड़ा गया, यानी रिश्वत क़बूल करते हुये पकड़ा गया उसके साथ कहीं अधिक सख़्त सुलूक करना चाहिये बमुक़ाबले उस आदमी के कि जिसने अपराधी के हाथ रगड़ रगड़ कर लाल किये।

प्रश्न उठता है कि क्या बाहरी बर्ताव किसी अपराधी को सज़ा देने के लिये काफ़ी है ? उसका जवाब 'नहीं' में होना चाहिये। जिस तरह एक व्यक्ति, जो तमाम मज़हबी कर्मकाण्डों का पूरा पूरा पालन करता है, कोई ज़रूरी नहीं कि वह धार्मिक व्यक्ति हो, उसी तरह एक अपराधी भी ज़रूरी तौर पर दुष्ट और बुरा नहीं होता।

दूसरे शब्दों में यह ज़रूरी नहीं है कि किसी आँखों देखी बात से किसी ठीक नतीजे पर पहुँचा जा सके। आँखें देखती हैं कि सूरज ज़मीन के चारों ओर घूमता है। किन्तु क्या यह सही है ? नहीं, सच्चाई बिलकुल इसके विपरीत है। इसी तरह किसी अपराध के करने के समय की समस्त परिस्थितियों की ध्यान से जाँच पड़ताल की जाय तो एक बात का पता चलेगा कि अपराधी के पक्ष में बहुत सी ऐसी बातें हैं जिनके कारण उसके अपराध की गुरुता कम हो जाती है।

शेक्सपियर का पढ़ने वाला हर विद्यार्थी "ओथेलो" की दुःखान्त घटना से परिचित है। नायिका को इसलिये दण्ड मिलता है कि उसके सतीत्व के सम्बन्ध में नायक के मन में एक ऐसा आदमी शङ्का पैदा कर देता है कि जो नायक द्वारा अपनी आकांक्षाओं के कुचले जाने के बाद उसका ज़बर्दस्त दुश्मन बन जाता है। यही दुश्मन नायिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


की मृत्यु में अपनी प्रतिहिंसा को शमन होते पाता है। नायक केवल एक ही बात से नायिका के सम्बन्ध में फ़ैसला कर लेता है कि उसका दिया हुआ रूमाल नायिका के पास नहीं मिलता और ग़ुस्से और ईर्षा से झट इस नतीजे पर पहुँच जाता है "कि उसने किसी ऐसे व्यक्ति को वह रूमाल दे दिया होगा जिसे वह गुप्त रूप से प्यार करती है।" परिणाम यह होता है कि वह ठण्ढे दिल से अपनी सच्चरित्र स्त्री का ख़ून कर देता है।

अफ़सोस! "ओथेलो" की इस दुर्घटना की पुनरावृत्ति रोज़ ही हमारी अदालतों में होती रहती है, यानी जुर्म की ज़िम्मेदारी परिस्थिति पर बिना कोई विचार किये हुये केवल घटना के बाह्य प्रकरण पर अपराधी को सज़ा मिल जाती है। इसीलिये लोगों के दिल में यह बात घर कर गई है कि असली मुजरिम बचकर निकल जाता है और उस पर कोई आँच तक नहीं आती। क्या ही अच्छा हो यदि प्रत्येक न्यायाधीश के साथ साथ एक मनोवैज्ञानिक अन्वेषक भी बैठे जो अपराध के परिस्थिति जन्य उद्देश्य से न्यायाधीश का परिचय करा सके। होता यह है कि न्यायाधीश ताज़ीरात हिन्द के बोझ से दबा पड़ा रहता है और इसीलिये वह मानव मस्तिष्क की रहस्यमय अचेतन वृत्तियों के पेचीदा तरीक़ों से अपरिचित होता है।

इसका एक दूसरा पहलू भी है। जिन लोगों को अदालत सज़ा देकर जेल में भेजती है उनमें से हर एक के लिये समाज ज़िम्मेवार है, चूंकि वे समाज के ही सदस्य होते हैं। हर अपराधी समाज में प्रचलित हालतों, रस्मरिवाजों, परिस्थितियों और परम्पराओं का शिकार होता है। इसलिये यह सुझाव पेश करना बहुत युक्तिसंगत है कि सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का एक ऐसा सङ्गठन होना चाहिये जो समाज का सुधार करना अपना कर्तव्य समझे। इस तरह का सङ्गठन हमारी अदालतों से भी सम्बन्धित हो सकता है ताकि न्यायाधीश को न्याय करने में सहायता मिल सके।

---

# शब्द

श्री आरसीप्रसाद सिंह

बज रहा है शंख, प्रति-ध्वनि से भरा संसार!
दिश-विदिश में में गूंजता है एक वह ओङ्कार!
एक वह झङ्कार अवरित हो रही सब ओर;
छू रहीं जिसकी तरङ्गें सूर्य-शशि का छोर!
बज रहा है एक ही वह, कौन जाने, तार!
और सातों स्वर सुरीले कर रहे झङ्कार!
राग-रागिनियाँ विविध ये, रङ्ग रूप अपार;
सब उसी का गीत गाते कर रहे शृङ्गार!
मेघ का गर्जन, प्रपातों का अजस्र निनाद;
कोकिला की कूक, वीणा का मधुर सम्वाद!
एक ही वह शब्द अव्यय, एक ही उल्लास!
व्याप्त है जिससे जगत, पाताल से आकाश!
ध्वनि-प्रतिध्वनि, विम्ब औ प्रतिविम्ब का जो ध्यान,
आत्म-साक्षात्कार ही देगा तुझे वह ज्ञान!
शब्द के पीछे कहाँ तू जायगा किस ओर!
शब्द का उद्गम पकड़ तू, शब्द का घर छोर!
बज रहा है शंख, युग से हो रहा घन-नाद!
व्याप्त है चारों दिशाओं में अमर आह्लाद!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बुद्ध की दृष्टि

भदन्त शान्तिभिक्षु

बुद्ध के समय कितने ही लोग संसार के दुःखों से घबराकर दुनिया को छोड़कर भाग रहे थे। ऐसे लोगों को देखकर बुद्ध ने कहा है—

बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च।
आराम रुक्ख चेत्यानि मनुस्सा भयतज्जितान।
नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरण मागम्म सब्बदुनखा पमुच्चति॥
(धम्मपद)

बहुत से लोग भय से घबराकर पर्वत और वनों की शरण जाते हैं। बाग़-बाग़ीचे, वृक्ष और चैत्यों की शरण जाते हैं। पर यह शरण लेना क्षेमकर नहीं है। यह उत्तम शरण नहीं है। इनकी शरण जाने से सब दुखों से छुटकारा नहीं मिलता।

पर दुनिया के सब लोग बनों में और पर्वत पर न जा सकते थे। उन्हें यहीं रहना था। ऐसे लोग जिस दार्शनिक भाव से जीवन बिताते थे उसका समझना आज भी कठिन नहीं है। जीवन के बारे में आज भी हम उसी दार्शनिक भाव से सोचते हैं। संसार का दुःख किस भाव से है? यह हमारे पूर्व कर्म का फल है।

इस दार्शनिक दृष्टि के सहारे हम समझ तो सकते हैं कि हमारा दुःख पूर्व कर्मों के कारण है। पर जो कारण इस दुनिया में न होकर पिछली दुनिया में है, उसका हम उपाय नहीं कर सकते। हमारे लिये एक ही उपाय है और वह यह कि हम सहिष्णु हों और दुखों को सहें।

बुद्ध ने भी इस कर्मफलवाद को माना है पर जैसा बुद्ध के पूर्ववर्ती विचारक इस वाद को मानते थे वह ठीक वैसा ही नहीं है। मिलिन्द प्रश्न में इस कर्मफल वाद के बारे में मिलिन्द और भदन्त नागसेन का संवाद है। संवाद बड़ा रोचक है और वह बुद्ध के जीवन की एक घटना से सम्बन्ध रखता है। बुद्ध राजगृह में गृध्रकूट पर्वत की छाया में टहल रहे थे। देवदत्त ने, जो बहुत दिनों से बुद्ध से द्वेष करने लगा था, पर्वत पर चढ़कर सोचा कि श्रमण गौतम को जान से मार दूं। उसने एक शिला फेंकी पर शिला दो बड़े पत्थरों के बीच में आ जाने से बुद्ध तक न पहुँची। फिर भी पत्थरों से टक्कर खाने से एक पपड़ी उछली और बुद्ध के पैर में आ लगी। बुद्ध को बड़ी चोट आई, पैर से खून भी बह निकला। तब लोग बुद्ध को डोली में बिठाकर वहां नज़दीक दूसरी जगह मइकुच्छि ले गए।

इस घटना को ध्यान में रखकर मिलिन्द ने नागसेन से पूछा क्या सभी अकुशल कर्मों के समाप्त हो जाने पर बुद्धता मिलती है या कुछ कर्म बच रहते हैं। नागसेन ने कहा सभी अकुशल कर्म समाप्त हो जाने पर बुद्धत्व अकुशल कर्म शेष नहीं रहते। नागसेन के ऐसा कहने पर मिलिन्द ने कहा, बुद्ध को पैर में चोट लगने से पीड़ा हुई थी, यदि यह कहो कि सब अकुशल कर्म समाप्त हो गए थे तो यह कहना कि बुद्ध को पैर में चोट लगने से दुःख हुआ था यह बात मिथ्या है और यदि कहो कि पैर में चोट लगी थी तो यह कहना मिथ्या है कि उनके कर्मफल समाप्त हो गए थे। क्योंकि संसार में जो कुछ दुःख होता है वह कर्म के कारण ही है।

इस पर नागसेन ने बुद्ध वचनों का तात्पर्य बताते हुए कहा कि सब दुःख पूर्व कर्म के कारण नहीं होते। प्राणियों के दुःख के आठ कारण हैं—वात, पित्त, कफ, सन्निपात, ऋतु परिणाम, विषमाहार, उपक्रम, और कर्मविपाक। यदि पित्त आदि के द्वारा उत्पन्न पीड़ा भी कर्मफल के कारण होती तो उनका दुनिया में न तो इलाज हो सकता और न उनके अलग अलग निदान होते। नागसेन ने उदाहरण देकर समझाया कि महाराज! देखो वात का प्रकोप इन कारणों से होता है। सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, अति भोजन, देर तक खड़े होना, अधिक श्रम और दौड़ने से तथा कर्मफल से भी वात का प्रकोप होता है। पर इनमें जो कारणों से वात का प्रकोप होता है वह इसी भव में होता है, उसका पूर्वभव से कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह सब कारण इसी भव में होते हैं पूर्वभव या आगभव में नहीं। इसी तरह प्रत्येक कारण की व्याख्या कर नागसेन ने कहा "न सब्बा वेदना कम्म विपाकजा", 'अप्पं कम्म विपाकजं बहुतरं अवसेसं" सब दुःख कर्म विपाक के कारण नहीं होते कर्म विपाक का दुःख तो यहाँ थोड़ा ही है पर बहुत सा दुःख तो दूसरे कारणों से होता है।

अभिप्राय यह है कि जो दुःख इस ठोस जगत् के कारणों से है और जिसका उपाय कुछ नहीं हो सकता उसके लिये यदि कहा जाये कि वह पूर्व कर्म के कारण है तो ठीक है पर जिस दुःख का निदान यहीं है उसके लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




यह नहीं कहा जा सकता कि वह पूर्व कर्म के कारण है। संयुक्तनिकाय में बुद्ध का वचन है—

एवं वादिनो···यं किंचायं पुरिस पग्गलो पटि संवेदेति सुखं वा दुक्खं वा अदुक्खमसुखं वा सब्बे "ये ते समण ब्राह्मणा तं पब्बेकतहेतूहि। यं चसामं जातं तं अति धावन्ति···तस्मा तेसं समण ब्राह्मणानं मिच्छाति वदामि।"* अर्थात् जो साधु ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि पुरुष का सब दुःख सुख उसके पूर्व कर्मों के कारण है वे जो बात ठीक है, जानी हुई उसका अतिक्रमण करते हैं सो मैं कहता हूं कि उन साधु ब्राह्मणों का वह कहना मिथ्या है।

कर्मफलवाद की यह नई व्याख्या थी जो बुद्ध वचनों में ओतप्रोत है। इस नई दृष्टि से अनेकों बातें अपने आप सुलझ जाती हैं कि हमारा वर्तमान दुःख पूर्व कर्म के कारण है तो उसका उपाय करने पर भी यदि कहीं असफलता हुई तो हम शिथिल हो जाते हैं और यह नहीं सोचते कि हमारे उपायों और साधनों में दोष है प्रत्युत हम यह समझते हैं कि यह असफलता हमारे पूर्व कर्मों के कारण है। पर जब हम यह समझते हैं कि हमारे दुःख के जो कारण इस जगत् में हैं वे पूर्व कर्म के कारण नहीं हैं तो हम उनका यहाँ प्रतिकार कर सकते हैं। कर्मफलवाद के इस दृष्टिकोण का मुख्य अभिप्राय अदृष्ट जगत् की बातें न सोच कर दृष्ट जगत् के प्रति चिन्तनशील होना है।

बुद्ध ने एक जगह कहा है—

"वनं छिन्दथ मासक्खं वनतो जायती भयं॥"

(धम्मपद)

जंगल को काटो, वृक्ष को नहीं। भय तो जङ्गल से जगता है।

कर्मफल वाद की इस व्याख्या ने सचमुच जङ्गल काटा है, वृक्ष नहीं। जिस कर्मफलवाद के कारण हम अपने दुःख के मूल को अदृष्ट में खोजते थे और समझते थे कि इन दुःखों का यहाँ उपाय है ही नहीं, "जाही विधि राखै राम ताही विधि रहिये", बुद्ध की दृष्टि के अनुसार उसी कर्मफलवाद को मानकर भी हम अपने दुःखों को इसी जन्म में, इसी जगत् में दूर कर सकते हैं"

अब आप स्वयं सोचिये कि आपको कौनसी दृष्टि पसन्द है। क्या आप यह मानकर कि आपका दुःख पूर्व कर्मों का फल है चुपचाप सहते रहेंगे? या आप सर्वथा स्वच्छन्द रीति से अपनी समस्याओं को सोचेंगे और पुराने विचारकों के विचारों से कुछ भी लाभ न उठायेंगे? अथवा आप इन दोनों के बीच का रास्ता चुनेंगे जिसे कि बुद्ध ने चुना है? आप शासन पर श्रद्धा रखिये, पूर्व जन्म के फल को भी मानिये पर केवल इतनी निगाह रख लीजिये कि पहले की करनी का दुःख तो और कारणों से ही है। मेरा ख़्याल है कि यह बिचला रास्ता अधिक सुविधाजनक है।

दुःख का कारण हमारी इस ठोस धरती पर ही है। पर वह क्या है? भगवान ने कहा है दुःख का कारण तृष्णा है। आज के जगत में दुःख के इस मूल कारण को समझना समझाना दोनों ही कठिन हैं। जो लोग पेट की आँच से, जल रहे हैं उनको यह समझाना कि तुम्हारा दुःख तुम्हारी तृष्णा के कारण है सचमुच बड़ी निर्दयता है। उनसे यह कहना कि तुम सब्र कर लो, सचमुच बड़ी क्रूरता है। जो सुखी हैं, जिनके पेट भरे हुए हैं, उनको तृष्णा का दुःख-दायी रूप समझने की आज फ़ुरसत नहीं है। मज्झिम निकाय के महादुःख स्कन्ध में बुद्ध ने तृष्णा के अनेकों दुष्परिणामों की चर्चा की है। बुद्ध ने अपने समय में तृष्णा का भयङ्कर तांडव अपनी आँखों से देखकर कहा है: काम राग के कारण ही युद्ध, मार-काट, हत्या और ख़ून होते हैं। आज हम एक भयङ्कर युद्ध के बीच से पार हो रहे हैं। इस युद्ध में कितनी स्त्रियाँ अपने पतियों के लिये रो रही होंगी, कितनी माताएँ अपने पुत्रों के लिये विलाप कर रही होंगी, कितने बच्चे अनाथ हो गये होंगे, कितने घर उजाड़ हो चुके होंगे, मनुष्य को मनुष्य के हाथों इस युद्ध में कितना अपमान, कितनी पीड़ा कितनी यन्त्रणाएँ मिली होंगी क्या इनका वर्णन किया जा सकता है? निरीह जन समाज जिसे युद्ध की इच्छा नहीं है, युद्ध से उसका स्वार्थ नहीं है, युद्ध में पिस रहा है। पर यह क्यों? युद्ध के भौतिक कारण भले कुछ हों पर जब उसके आध्यात्मिक कारणों पर विचार करना हो तो मानना पड़ेगा कि यह युद्ध हमारे अन्तर में रमे हमारे काम राग, हमारे दुनिया के स्वार्थ का क्रियात्मक रूप है। यह युद्ध अपने आप में रोग नहीं है। यह रोग का ऊपरी रूप है। रोग का कारण तो भीतर बैठा हुआ है, वह है हमारा काम राग, हमारा सांसारिक स्वार्थ, हमारी तृष्णा। इसी स्वार्थ और तृष्णा के वश में होकर हम अपनी मनुष्यता भूल जाते हैं। आज सभी देशों में देशाभिमान का नशा है। स्वदेश के लिये लोग दूसरे देश के लोगों का गला काटने में बिलकुल नहीं हिचक रहे हैं।

* मिलिन्द प्रश्न मेण्डक १।६४ में उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मनुष्य ने अपनी मनुष्यता केवल अपने देश के लिये रख छोड़ी है। दूसरे देश वालों के लिये वह पशु और महापशु बन गया है। बुद्ध ने मनुष्य हृदय में बैठी इस तृष्णा पिशाची को देखकर कहा था—

तं वो वदामि भद्दं वो यावन्नेत्थ समागता।
तण्हाय मूलं खणथ उसीरत्थोव वरिणं॥
(धम्मपद)

तुम सब यहाँ जो आए हो उन तुम सबका कल्याण हो। जिस तरह उशीर या खस चाहने वाला तिनकी जड़ें खोदता है वैसे ही तृष्णा की भी जड़ें खोदो।

हमारे परस्पर के युद्ध, मार काट और कलह में ही तृष्णा नहीं पिरोई हुई है, प्रत्युत हमारे सभी अच्छे बुरे कामों में तृष्णा का हाथ है। हमारे धर्म कर्म, दान, पुण्य, त्याग तप सब में तृष्णा का बड़ा हाथ है। एक मुट्ठी भर अन्न, एक हाथ कपड़ा दानकर हम उस लोक में दिव्य भोजन और दिव्य वस्त्र चाहते हैं और यहां हमारे मन में यह भाव रहता है कि लोग हमें दानशील और धर्मात्मा कहें। एक सच्चा तपस्वी अपने शरीर को तप से सुखाता है, अपनी वासनाओं को मारता है पर उसके हृदय में स्वर्ग और मोक्ष की महावासना भरी रहती है। स्वर्ग आदि लोकों या मोक्ष आदि में हमें जो बने रहकर सुख भोग की इच्छा है उसे भगवान् ने भवतृष्णा कहा है। हमारा सभी धर्म कर्म इस भवतृष्णा के लिये ही तो है।

परलोक पर जिन्हें विश्वास नहीं है, लोक में जो दुःखी हैं वे अपने इस जीवन को ही दुःख का कारण समझकर इसकी समाप्ति के इच्छुक रहते हैं। यदि इस जीवन में अकारण जिए, यदि यहां दुःख से बहुत घबराए तो आत्मघात कर लेते हैं। वे समझते हैं कि ऐसा करने से वे दुःख से छूट जाएंगे। एक दुःख से बचने के लिये वे दूसरे दुःख का यत्न करते हैं। भगवान ने इस तृष्णा को विभव तृष्णा कहा है।

हमारे जीवन में जितने काम होते हैं सब इन्हीं तृष्णाओं से चालित होकर, इन्हीं से प्रेरित होकर। जो लोग भोग विलास को ही सब कुछ समझते हैं वे भी तृष्णा के वशीभूत हैं। जो दान पुण्य, जप तप, व्रत उपवास में लीन हैं वे भी तृष्णा के शिकार हैं। जो सुख भोगी हैं वे तृष्णाभिभूत हैं, जो तपस्वी हैं वे तृष्णा से विरत नहीं हैं और जो असहाय होने के कारण क्लेश सह रहे हैं उन्हें तो सतृष्ण और वितृष्ण कहने में भी संकोच होता है।

तृष्णा के कारण बुद्ध ने मानव जीवन की विषमताओं को देखकर कहा था कि जीवन के दो किनारे हैं। एक है काम सुख का अनार्य जीवन और दूसरा है अपने को तपाने का अनार्य जीवन।

हम अपने सुख के लिये दूसरों को और अपने को पीड़ा देते हैं। यदि हम अपने सुख के लिये दूसरों को पीड़ा न दें तो संसार का दुःख बहुत हलका हो सकता है पर अत्यन्त प्राचीन युग से मनुष्य अपने लिये दूसरों को पीड़ा देता आया है और इसी पर-पीड़न ने ही संसार में बहुत अधिक दुःख बढ़ा रक्खा है।

तृष्णा के कारण होने वाले मनुष्य के पतन की अग्गञ्ञ सुत्त में बड़ी रोचक कहानी है। प्रलय के बाद जब सृष्टि होती है तो उस समय सभी जगह पानी ही पानी होता है। चाँद सूरज तारे कुछ नहीं होते। उस समय जो जीव होते हैं उनमें स्त्री पुरुष का भेद नहीं होता। उनके शरीर प्रकाशमान होते हैं। बहुत समय बाद उस जल पर रसा फैलती है जैसे कि दूध पर मलाई फैलती है। एक प्राणी जो कि उनमें लालची था यह सोचकर कि यह क्या है उसे उंगली से चाटने लगा। उसकी देखा देखी दूसरे प्राणियों में तृष्णा उत्पन्न हुई वे भी चाटने लगे, हाथों में ले लेकर खाने लगे। उनकी इस तृष्णा से उनके शरीर की प्रभा चली गई, चाँद सूरज नक्षत्र तारे प्रकट हुए। रात दिन होने लगे। इस तरह रसा खाते खाते उनमें वर्ण का रंग के भेद जान पड़ने लगे। जो तत्त्व सुन्दर थे वे कुरूप से अपने को ऊँचा समझने लगे। उनके इस अभिमान के कारण रसा अन्तर्धान हो गई। और अहिच्छक के समान पपड़ी प्रकट हुई। वे प्राणी पपड़ी खाने लगे। वे खाते खाते उनके शरीर के रंग में फिर परिवर्तन आया होने लगा तथा सुन्दर प्राणी कुरूपों से अपने को ऊँचा समझने लगे। उनके इस अभिमान से वह पपड़ी भी अन्तर्धान होगई। पपड़ी के बाद इसी तरह मडलता उत्पन्न हुई और चली गई। उसके बाद बिना भूसी का चावल उत्पन्न हुआ और चला गया। चावल खाते खाते उनमें स्त्री पुरुष के भेद प्रकट हुए और स्त्री पुरुषों का काम राग का सम्बन्ध शुरू हुआ। फिर वे लोग काम सम्बन्ध को छिपाने के लिये घर बनाकर रहने लगे। बाद में आलस्य बढ़ जाने से उनमें संग्रह की प्रवृत्ति हुई और वे चावल इकट्ठाकर अपना घर भरने लगे। जिसके कारण चावल पर भूसी निकल आई। फिर लोगों ने खेत बाँट लिये। तृष्णा बढ़ती गई और उनमें कितने ही चोरी करने लगे। चोरी के कारण उनमें परस्पर मार पीट होने लगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इन सब के निपटारे के लिये लोगों ने राजा चुना और क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ। संसार के झगड़ों से तंग आकर कुछ वन में रहकर तप ध्यान आदि करने लगे वे ब्राह्मण कहलाए। बचे लोग और तरह तरह के कार्य करने लगे वे वैश्य कहलाए। जो लोग बहुत क्षुद्र काम करते थे वे शूद्र कहलाए। इन चारों वर्णों में से जो अपने धर्म को ठीक न समझकर अधिक कल्याण चाहते थे वे श्रमण हो गए।*

यह कहानी बहुत पौराणिक ढङ्ग से कही गई है पर रंग भेद, वर्ण भेद, संग्रह की प्रवृत्ति सब के भीतर बुद्ध के हिसाब से तृष्णा का हाथ है, स्वार्थ का संघर्ष है। जब आदमी अधिक से अधिक संग्रह करने लगता है तो बहुत से ऐसे भी लोग बच जाते हैं जिनके पास कुछ नहीं रहता। ऐसे खाली हाथ लोग जब और किसी तरह बसर नहीं कर पाते तो चोरी पर उतारू होते हैं। चक्रवर्ती सीहनाद सूत्र में किसी ने चोरी की। राजा ने उससे पूछा तुमने चोरी क्यों की? उसने उत्तर दिया कि देव रोज़ी नहीं चलती थी। बुद्ध ने स्पष्ट रूप से इस बात को समझा था कि चोरी आदि अपराध निर्धनता के कारण ही होते हैं। और निर्धनता है संग्रह की प्रवृत्ति के कारण। जब एक आदमी अधिक अधिक इकट्ठा करना चाहता है और अधिक से अधिक धनी होना चाहता है तो ऐसे समाज में निर्धनों का होना भी ज़रूरी है।

बुद्ध ने मनुष्य जीवन की इन विषमताओं को देखकर मनुष्य की तृष्णा को एक सुथरा रूप देना चाहा था और वह यह था कि मनुष्य न अपने को पीड़ित करे और न दूसरों को निपीड़ित करे, साथ साथ काम भोग में न फंसे और संयत जीवन बिताए। भगवान ने स्पष्ट कहा है—

सेय्यो अयोगुलो भुत्तो तनो अग्गसिखूपमो।
यंचे भुञ्जेय्य उस्सीलो रट्ठ पिंडं असंयतो॥
(धम्मपद)

असंयत और दुःशील होकर राष्ट्र का अन्न सेवन करने से यह कहीं अच्छा है कि आग की लपट के समान गरम लोहे के गोले को खा लिया जाए।

बुद्ध के बताए इस दुःख के कारणवाद को हृदयंगम कर लेने के बाद आप यह ज़रूर समझ सकेंगे कि बुद्ध कितना अधिक मनुष्य के अन्तस्तल तक पहुंचे थे। बुद्ध ने मनुष्य के दुःख के हेतु को पुरबले कर्मों में नहीं देखा था प्रत्युत इस लोक में मनुष्य की तृष्णाओं में देखा था सो वह पुरबले कर्मों से बिना इनकार किये ही कहते थे कि "सब कुछ पुरबले कर्मों से होता है यह मिथ्या है।"*

इस धरती पर हमारा दुःख हमारी ही तृष्णाओं के कारण है, अदृष्ट का उसमें हाथ बहुत कम है इस विचार ने उस समय ज़रूर खलबली मचाई होगी। दृष्ट को छोड़ कर अदृष्ट की चिन्ता में रहने वाले तत्वचिन्तकों की विचार-धारा को एक बड़ा धक्का लगा होगा। वर्धमान महावीर ने अपने अवध सिंह सेनापति से कहा था कि बुद्ध अकर्मवादी है उसके दर्शन करने जाना बेकार है। वस्तुतः कर्मवाद जिसे लोग दुःख का मुख्य कारण समझते थे, बुद्ध ने उसे गौण बना दिया था और इस नये विचार के प्रति विरोध होना बहुत स्वाभाविक था। भारतीय जीवन की भित्ति इसी कर्मवाद पर ठहरी हुई है। इस पर धक्का लगते ही सारी दीवार गिरते देर नहीं लग सकती थी पर बुद्ध ने उसे पूरा पूरा गिराया नहीं। हाँ, इस योग्य ज़रूर कर दिया कि उस पर कोई और मकान न बनाया जा सके।

एक ओर बुद्ध ने जहाँ पुरबले कर्मों को इस जन्म की समस्याओं में महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया वहाँ दूसरी ओर उन्होंने उस लोक के लिये किये जाने वाले इस जन्म के कार्यों का महत्व कम कर दिया। परलोक की चिन्ता में घुलते मनुष्य के मस्तिष्क को इस लोक के दुःख के प्रति संवेदनशील बनाया। मरने के बाद क्या होता है, आत्मा क्या है, इस विषय में बुद्ध के समकालीन और परवर्ती विचारकों में अनेक मत रहे हैं। बुद्ध ने साफ़ कह दिया कि तुम्हारे इन मतों के रहते या न रहते संसार का दुःख तो कम नहीं होता फिर इनके पीछे बेकार क्यों पड़े हो। वर्तमान के पीछे पड़ो। जो बीता सो बीता, जो नहीं आया उसकी चिन्ता करना बेकार है (भद्देकरत्त सुत्त ३।४।१)

इस तरह परलोक और कर्मफलवाद को इस जन्म में गौण ठहराकर बताया कि इस जन्म का दुःख मनुष्यों की तृष्णायें हैं। तृष्णा से कैसे दूर रहा जाय? इसके लिये बुद्ध ने अपनी दार्शनिक दृष्टि प्रदान की। बुद्ध की इस दार्शनिक दृष्टि को लोगों ने समझने का बहुत कम यत्न किया है।

---

* वसबन्धु ने इस सारी कहानी को एक श्लोक में यों कहा है—

प्रागासन् रूपिवत्सत्त्वा रसरागात्ततः शनैः।
आलस्य संग्रहंकृत्वा भागादि क्षत्रयोभृतः॥
(अभिधर्म कोश)

* मिलिन्द प्रश्न मेण्डक १।६४ मे उद्धृत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका विरोध ही अधिक हुआ है। तृष्णा क्यों होती है? बुद्ध के विचार से तृष्णा का कारण आत्मदृष्टि है। आत्मदृष्टि से अभिप्राय है शरीर के भीतर एक नित्य आत्मा को मानना। नित्य से अभिप्राय अपरिवर्तनशील से है। जिस चीज़ पर हमें भरोसा है कि वह नित्य रहेगी उस पर हमारा राग होना स्वाभाविक ही है। आत्मा ही नहीं हमारे दार्शनिकों ने और भी कितनी वस्तुओं को नित्य माना है। चार्वाक बिल्कुल अध्यात्मवादी नहीं है। खाओ, पिओ, मौज उड़ाओ उसका दर्शन है पर इससे कहीं यह समझ लेना कि चार्वाक दर्शन प्रवर्तक बृहस्पति अनाचार के फैलाने वाले थे, ठीक न होगा। हाँ यह ज़रूर है कि वे भौतिकवादी थे। और इतने भौतिकवादी कि इन्द्रियजन्य सुख ही उनके यहां सार है। कहा है—

त्याज्यं सुखं विषय संगमजन्म प्रंसां
दुःखोपसृष्टमिति मूर्खविचारवैषा
व्रीहरि जिहासति सितोत्तमतण्डुलाढ्यान
को नाम भोस्त्विषकणोपट्टितान हितार्थ॥

( सर्वदर्शन संग्रह में चार्वाकदर्शन )

विषय भोग से उत्पन्न सुख इसलिये त्याज्य है कि दुःखानुबद्ध होता है। यह केवल मूर्खों का ख़्याल है। भला हित चाहने वाला ऐसा कौन है जो सफ़ेद उत्तम चावल वाले धानों को इसलिये त्याग दे कि वे भूसी वाले हैं। इतने अधिक भौतिकवादी का तत्त्ववाद नित्य दृष्टि से ख़ाली नहीं है। पृथिवी, जल, तेज और वायु मात्र ही चार तत्त्व हैं जिनसे चार्वाक विश्व का विकास मानता है। और इन तत्त्वों के परमाणु उसके हिसाब से नित्य हैं। तीर्थंकर महावीर के अनुयायी जैन ईश्वर को नहीं मानते पर नित्य आत्मा मानते हैं। कपिल का भी यही हाल है। पुरुष और प्रकृति दोनों ही उनके यहाँ नित्य हैं। कणाद के मत में जीव, ईश्वर, पृथिवी, जल, तेज, वायु के परमाणु आकाश, काल, दिक्य, मन को नित्य मानते हैं। याज्ञिक वेद और जगत् को जैसा का तैसा नित्य मानते हैं, उपनिषद् के दार्शनिक ब्रह्म या आत्मा को नित्य मानते हैं। बुद्ध से पहले भी नित्यवादी मत थे और बाद में भी नित्यवादी मत रहे। पर बुद्ध ने आत्मा ही नहीं किसी वस्तु को भी नित्य मानने से इनकार कर दिया। इस आत्मा के लिये माने गए सिद्धान्त पुनर्जन्म, कर्म फल, स्वर्ग, नरक आदि को बुद्ध ने मान लिया यद्यपि उस मान्यता में उन्होंने कहीं कहीं कुछ अपनी व्याख्या ज़रूर की पर आत्मा के नित्यत्ववाद के साथ उन्होंने कोई समझौता नहीं किया। उन्होंने उससे साफ़ ही इनकार कर दिया है। उन्होंने नित्य या अपरिवर्तनशील आत्मवाद से क्यों इनकार किया? सब्बासव सुत्तन्त के ( मज्झिम १।१।२ ) में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि कितने ही लोग अपने जीवन को ग़लत ढङ्ग से सोचते हैं। अपने वर्तमान जीवन के बारे में वे सोचते हैं—मैं क्या हूं, मैं कैसा हूँ, यह प्राणी कहाँ से आया है, कहाँ जाने वाला है। अपने भूत अर्थात् इस जन्म से पूर्व के बारे में सोचते हैं मैं था या नहीं था, क्या था, कैसा था, क्या होकर हुआ था। भविष्य के बारे में सोचते हैं—मैं होऊँगा या न होऊँगा? क्या होऊंगा, कैसा होऊंगा? क्या होकर क्या होऊंगा?

इस तरह ग़लत सोचने से उनमें छै दृष्टियों में कोई एक दृष्टि उत्पन्न होती है। (१) मेरा आत्मा है। (२) मेरे भीतर आत्मा नहीं है। (३) आत्मा को ही आत्मा समझता हूँ। (४) आत्मा को अनात्मा समझता हूं। (५) अनात्मा को आत्मा समझता हूं (६) आत्मा अविपरिणामधर्मा है, अनन्त वर्षों तक वैसा ही रहेगा।

इस तरह सोचने से मनुष्य में कामास्रव उत्पन्न होता है, भवास्रव उत्पन्न होता है अविद्यास्रव उत्पन्न होता है।

अपने आत्मा के होने और न होने की फ़िक्र करते ही सब तरह की कामनाएं उठ खड़ी होती हैं। यदि आत्मा के अस्तित्व और नास्तित्व से छुट्टी ले ली जाए तो सब मामला ही ख़तम है। तृष्णा के लिये तो आलम्बन चाहिये जिसके सहारे वह टिके। जब उसका आलम्बन ही नहीं तो टिके भी कहाँ। आचार्य शान्तिदेव ने साफ़ कहा है—

यदा न भावो नाभावो मतेः संतिष्ठते पुरः।
तदान्य गत्य भावेन निरालम्बा प्रशाम्यति॥

( बोधिचर्यावतार )

जब बुद्धि के सामने भाव भी नहीं रहता और अभाव भी नहीं रहता तब दूसरा कोई उपाय न मिलने से आलम्बन न रहने से बुद्धि को शान्ति मिल जाती है।

यह बात सच्चे अनुभव के बल पर कही गई है। हमारे मन में विक्षोभ दोनों अवस्थाओं में हुआ करते हैं। जिस चीज़ का हमें अभाव रहता है उसके लिये हमें चिन्ता रहती है, हैरानी रहती है, परेशानी रहती है। जो हमारे पास है जिसका हमें अभाव नहीं है उसके बारे में भी हमें कम फ़िक्र नहीं रहती। आत्मा है और रहेगा यह सोच कर हमारे मन में तरह तरह की चिन्ताएं उठती हैं। आत्मा कुछ नहीं है, हम नहीं रहेंगे इससे भी हमें शान्ति नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शान्ति तभी मिल सकती है जब हम दोनों के बारे में न सोचें। एवं बुद्ध का आत्मवाद न तो भाववाद ही है और न अभाववाद ही, न शाश्वतवाद ही है और न उच्छेदवाद ही है। प्रत्युत वह कारणकार्यवाद है। प्रतीत्य समुत्पाद है।

परवर्ती दार्शनिकों ने बुद्ध के इस अनात्मवाद को ठीक ठीक नहीं समझा है। उन्होंने बुद्ध के अनात्मवाद को अभाववाद समझा है। शंकराचार्य ने बौद्ध सिद्धान्त को वैनाशिक सिद्धान्त कहा है : "अनुपपन्नो वैनाशिक समयः स्थिरमनुयादि कारण मनभ्युय गच्छताम् अभावात् भावोत्पत्तिरित्येदापद्यते।" २।२।२६ परशारीरिक भाष्य। पर सारे बौद्ध ग्रन्थों से इस तरह की चर्चा ढूंढ़ निकालना संभव नहीं है कि जहाँ अभाव से भव की उत्पत्ति बताई गई हो। कारण से कार्य की उत्पत्ति बताई गई है और कारण को परिवर्तनशील कहा है।

बुद्ध के हिसाब से सभी वस्तुएं परिवर्तनशील हैं। आत्मा भी इसका अपवाद नहीं है। इस क्षण क्षण बदलने वाले आत्मा को दूसरे लोग न मान सके। उन्होंने इस सिद्धांत की आलोचना की और इस पर जो आक्षेप किये वे कम रोचक नहीं हैं। यहां एक आक्षेप की चर्चा कर लें तो शायद बहुत अरोचक न होगा। बुद्ध आत्मा को क्षण क्षण बदलने वाला मानते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार जो आत्मा कर्म करता है वह फल भोगने के समय कहीं नहीं रहता। तब तक बदल जाता है। एवं जिसने कर्म किया वह तो रहा नहीं और जिसने कर्म नहीं किया उसे फल मिला। इस आपत्ति को कहते हैं कृतहानि और अकृताभ्यागम। यह आपत्ति की गई है क्षण क्षण परिवनर्तशील आत्मा पर। अब आप ज़रा नित्य या कूटस्थ अथवा अपरिवर्तनशील आत्मा की जांच इस तर्क के अनुसार कीजिये। इस तर्क का मर्मस्थल है कि जो कर्म करता है वही भोगता है, पर नित्य आत्मा तो कूटस्थ है, अपरिवर्तनशील है, क्रिया तो परिवर्तन का ही धर्म हो सकती है। जिसमें क्रिया है उसमें परिवर्तन हुए बिना नहीं रह सकता। पर आत्मा को निष्क्रिय मानते हुए भी उसे कर्ता और भोक्ता माना जाता है वह कैसे? आत्मा तो कर्ता नहीं, कर्ता शरीर है; पर जो शरीर कर्म करने के समय होता है वही फल पाने के समय नहीं होता है। फलतः निष्क्रिय आत्मा जिस शरीर से कर्म का कर्ता माना जाता है उससे ही वह भोक्ता नहीं होता है। फलतः यहाँ भी वही आपत्ति आती है जो कि आत्मवाद पर की गई है। यहां पर भी कृतहानि और अकृताभ्यागम दोष बना ही रहता है। आचार्य शान्ति देव ने स्पष्ट ही इस बात को मान लिया है—

"हेतुमान् फलयोगीति दृश्यते नैष सम्भवः॥"

(बोधिचर्यावतार)

अनात्मवाद की दृष्टि से कर्ता ही भोक्ता नहीं होता दीखता। हां, फिर भी एक तरह से हम उन्हें एक मान लेते हैं और वह इस युक्ति से कि—

सन्तानस्यैक्यमाश्रित्य कर्त्ता भोक्तेति देशितर।

(बोधिचर्यावतार)

प्रतिक्षण बदलते आत्मभाव की परम्परा बनी रहती है और इस परम्परा के कारण उसमें एकता का ख़्याल कर लिया जाता है। किसी तरह जब वे एक हो गए फिर उनको कर्ता भोक्ता मानने में अड़चन नहीं रहती।

इस सत्ता की एकता को दीपक के उदाहरण से समझना बहुत कठिन नहीं है। तेल का दीपक जलाइये। दीप की शिखा या लौ क्षण क्षण तेल खींचती रहती है और जलती रहती है। तेल रहने तक वह निरन्तर जलती रहेगी और हमें यह भान नहीं होगा कि पहले क्षण वाली दीप शिखा में और दूसरे क्षण वाली दीप शिखा में कोई अन्तर है। यद्यपि शिखा निरन्तर बदल रही है। आत्मभाव का परिवर्तन भी बहुत कुछ इसी तरह है। दीप शिखा को एक समझा जाता है उसके प्रकट के कारण। आत्मभाव को भी एक समझा जाता है उसके प्रवाह के कारण

इसी प्रवाह की एकता को समझने के लिये नदी का उदाहरण भी बहुत उपयुक्त है। हम गङ्गा में एक डुबकी लगाते हैं; दूसरी डुबकी लगाते हैं और इस तरह से बहुत सी डुबकी लगा लेते हैं। पहले डुबकी हमने जिस जल में लगाई है वह जल बहकर क्षण भर में न मालूम कहां चला जाता है, हम दूसरी डुबकी दूसरे जल में लगाते हैं। फिर भी हमारे मन में यह नहीं होता कि हमने पहली डुबकी जिस गङ्गा में लगाई थी वह कोई और थी। यह क्यों? केवल प्रवाह की एकता के कारण। प्रवाह चलता रहता है इसलिये हम उसे एक समझ लेते हैं। यद्यपि वह एक नहीं है।

खैर यह तो हुआ दार्शनिकों का तर्कवाद। जांच करने पर ठीक भी हो सकता है ग़लत, भी पर देखना यह है कि इस नैरात्म्यवाद से हमें जीवन में क्या सहायता मिलती है? नैरात्म्यवाद का प्रयोजन आत्मवाद को निषेध करना है। पर आत्मवाद से बुद्ध या बुद्ध के अनुचरों को कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



था नहीं जो उन्होंने उसका प्रत्याख्यान किया। इसलिये उस कारण को समझना चाहिए कि जिसके कारण उसका आदर नहीं किया गया। बुद्ध ने कहा है—

पुत्तामत्थि धनेमत्थि इति बालोविहञ्ञति।
अत्ताहि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्ता कुतो धनम्।
( धम्मपद )

पुत्र मेरे हैं', 'धन मेरा है' सोच सोच अज्ञानी मरता पचता रहता है। अपना आत्मभाव ही जब नहीं है तो कहां पुत्र और कहां धन ?

आचार्य नागार्जुन ने आत्मवाद के दोषों को समझाते हुये कहा है—

आत्मनि सति परसंज्ञा स्वपर विभागात् परिग्रहद्वयं।
अनयोः सम्प्रतिबद्धाः सर्वे दोषाः प्रजायन्ते॥"
( बोधिचर्यावतार पंजिका में उद्धृत )

आत्मा या अपनापन होने पर ही पराये का भाव पन्न होता है। फिर अपने पराये का भेद हो जाने से हम सी को चाहते हैं, किसी को बुरा मानते हैं। अर्थात् किसी हमारा राग होता है, किसी से द्वेष। और इन दोनों के रण ही सभी बुराइयां उत्पन्न होती हैं। बुद्ध ने इस त्मवाद की दृष्टि को कामास्रव, भवास्रव और अविद्यास्रव उत्पन्न करने वाली कहा है। सो बहुत साफ़ है कि वान् ने अनात्मवाद का प्रतिपादन आध्यात्मिक जीवन सहायता देने के लिये किया था। अनात्मवाद के सहारे होने जीवन में उस आदर्श की प्रतिष्ठा करनी चाही है में राग के कारण संकट नहीं है, द्वेष और मोह के ण संघर्ष नहीं है।

अपनापन यदि न रहा तो स्वर्ग के प्रति लोभ हो सकता, नरक से भय नहीं रह जाता, देवताओं सरोकार नहीं रहता, और ब्रह्मा जिसे विश्व का ा समझा जाता है उससे मतलब नहीं रहता। सबके मतलब न होते हुए भी इनकी मना करने जरूरत नहीं रहती। देवताओं की अनेकों कथाओं पटक भरा हुआ है। बौद्धों में देवताओं की चर्चा ाती हो सो बात नहीं, होती है और खूब होती है। पालि वाङ्मय क्या संस्कृत वाङ्मय दोनों में से ाओं की चर्चा निकाल दी जाये तो वह बहुत सा दिखाई पड़ेगा।

देवताओं की चर्चा पालि में बहुत कुछ अपने ढंग से है। भगवान् ने कहा कि एक बार मैं उक्कट्ठ के वन में साल-राज के नीचे विहरता था। उस समय बक ब्रह्मा को बुरी धारणा हुई कि यह ब्रह्मलोक नित्य है, ध्रुव है। उस समय मैं बक ब्रह्मा के चित्त की बात जानकर ब्रह्मलोक में प्रकट हुआ। ब्रह्मा ने मुझे देखकर कहा आओ मार्ष, स्वागत मार्ष, बहुत दिनों के बाद आना हुआ। मार्ष यह ब्रह्मलोक नित्य है, ध्रुव है। ऐसा कहने पर मैंने बक ब्रह्मा से कहा अविद्या में पड़ा है अहो बक ब्रह्मा! अविद्या में पड़ा है यही बक ब्रह्मा जो अनित्य को नित्य और अध्रुव को ध्रुव कहता है! उस समय मार एक ब्रह्मपार्षद के शरीर में प्रविष्ट होकर मुझसे बोला—मत इन ब्रह्मा का अपमान करो। यह ब्रह्मा, ईश्वर कर्ता, भूमध्य प्राणियों के पिता हैं। तब मैंने मार से कहा : पापी, मैं तुझे जानता हूं। यह ब्रह्मा और ब्रह्मसर्वद सभी तेरे वश में हैं। पर मैं तेरे वश में नहीं होने का। ( ब्रह्मनिमंतस्मिद )

यह कथा ब्रह्मलोक की अनित्यता बतलाने के लिये है। ब्रह्मलोक को ही नहीं सभी लोक लोकान्तरों को, सम्पूर्ण विश्व को बुद्ध ने अनित्य या परिवर्तनशील कहा है। और इनकी अनित्यता का प्रतिपादन करने में बुद्ध का अभिप्राय केवल इतना ही था कि लोग इनके प्रति सतृष्ण हो कहीं अपने वर्तमान जगत् के दुःख के, अपनी पीड़ाओं और यन्त्रणाओं के दूर करने के प्रति उदासीन न हों। ब्रह्म लोक के बारे में यह ख़याल किया जाता था कि वह परम आनन्दमय लोक है। और उसी लोक को परम गति—या मोक्ष समझा जाता था। याज्ञवल्क्य ने बृहदारण्यक में कहा है : एषास्य परमागतिः, एषास्य परमा सम्पत्, एषोऽस्य परम आनन्दः। वह किस तरह का है? याज्ञवल्क्य ने बताया है—

यो मनुष्याणां समृद्धः* स मनुष्याणां परम आनन्दः।
ये शतं मनुष्याणामानन्दाः एक पितृणां जितलोकानामानन्दः
ये शतं पितृणां जितलोकानामानन्दाः सएको गन्धर्वलोक आनन्दः
ये शतं गन्धर्वलोकआनन्दाः सएकः कर्मदेवानामानन्दः
ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः सएकः आजानदेवानामानन्दः
ये शतमाजानदेवानामानन्दाः सएकः प्रजापति लोकआनन्दः
ये शतं प्रजापति लोक आनन्दाः सएको ब्रह्मलोक आनन्दः

*मनुष्यों में समृद्ध मनुष्य का परम आनन्द है।

१०० मानव आनन्द = १ एक जितलोक पितर-आनन्द
१०० जितलोक पितर आनन्द = १ गन्धर्व लोक आनन्द
१०० गन्धर्व लोक आनन्द = १ कर्मदेव आनन्द
१०० कर्मदेव आनन्द = १ आजानदेव आनन्द
१०० आजान देव आनन्द = १ प्रजापति लोक आनन्द
१०० प्रजापति लोक आनन्द = १ ब्रह्मलोक आनन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह ब्रह्म लोक की कामना सचमुच हमारी तृष्णा का विकास है। मनुष्यों में जो समृद्ध है उनको आनन्द है पर समृद्ध लोगों को शरीर के क्लेश कम हैं पर मन के क्लेश बहुत हैं। धन धान्य होते हुए भी उन्हें शान्ति नहीं है, अपने उतने सुख से सन्तोष नहीं है, और अधिक से अधिक सुख की इच्छा ही उन्हें इस ठोस धरती से ब्रह्मलोक तक दौड़ाती है। अक्षपाद के न्याय दर्शन पर भाष्य करते हुये वात्स्यायन ने कहा है—

सुख की तृष्णा ही जब दूर नहीं तो मोक्ष कहाँ। तृष्णा तो बन्धन है। सुख की तृष्णा से मोक्ष के लिये यत्न करने वाला मोक्ष पा ही नहीं सकता क्यों कि वह तृष्णा के बन्धन से बँधा है। जब तृष्णा का बन्धन है फिर मुक्त कैसे? मुक्ति का रूप शान्ति है।

बुद्ध ने इस महा तृष्णा को 'मार' कहा है। मनुष्य से लेकर देवताओं तक सब मार के वशवर्ती हैं। इस मार या महातृष्णा से बचने के लिये ही बुद्ध ने इस लोक से परलोक तक सब को अनित्य, अध्रुव और बेटिकाऊ माना है। इस अनित्यवाद एवं अनात्मवाद का यही उपयोग है कि आप पृथ्वी से लेकर ब्रह्मलोक तक मानें। देवी देवताओं से इनकार भी न करें और परम्परा से चली आई विविध प्रकार के देवताओं की चर्चा का रस लें और रस लेते हुए भी आप उनके प्रति सतृष्ण न हों। आप यह समझलें कि देव लोक के सुन्दर वर्णन आप के कौतुकी हृदयों को तृप्त कर सकते हैं किन्तु परलोक में होने वाले कल्प वृक्षों से आप यहाँ भोजन नहीं पा सकते, वस्त्र नहीं पा सकते और अपनी व्याधियाँ नहीं दूर कर सकते। वे वृक्ष जो—

बिना सूत के ही नाना रंग वाले, उज्ज्वल, सुनहले काम वाले पतले, घने वस्त्र देते हैं उनसे आप अपना तन नहीं ढंक सकते। और वे स्वर्ग सुन्दरियाँ—

जिनके बारे में कहा है—

जिस तरह सूर्य के उगने पर उसकी चमक दीपक की ज्योति को क्षीण कर देती है वैसे ही अप्सराओं की शोभा मानव लोक की स्त्रियों की कान्ति को फीका कर देती है। उनसे आप को कोई सरोकार नहीं हो सकता है।

इस तरह हमने देखा है कि बुद्ध ने मनुष्य जीवन के लिये एक सरल दार्शनिक दृष्टि दी है :

(१) हमारा इस धरती का दुःख हमारे पुरबले कर्मों के कारण उतना नहीं जितना कि इस जन्म में हमारे कर्मों के कारण है।

(२) हमारा दुःख हमारी तृष्णाओं के कारण है।

(३) तृष्णा से बच निकलने का दार्शनिक सिद्धान्त अनात्मवाद या अनित्यवाद है।

इन दृष्टियों में जो सबसे बड़ा गुण है वह यह कि इनके मानते हम पुराने उन सब सिद्धान्तों को जो बुद्ध से पहले या पीछे थे, लेकर चल सकते हैं। कर्मफल, आवागमन, स्वर्ग नरक, देवी-देवताओं सब के साथ रहते सब से बिन इनकार किये हम इस लोक की समस्याओं को सोच सकते हैं। लोक की वे विषमताएं जिन्हें लोगों ने नित्य मान रक्खा है, हमेशा चली आती हुई मान रक्खा है, हमारी ग़ुलामी, हमारी ग़रीबी, हमारे भीतर की ऊँच नीच भावनाएँ जिन्हें हमने भाग्यवादी बनकर सहने का अभ्यास कर लिया है, उनके सुलझाने की ओर हम जागरूक हो सकते हैं। जगत् में दुःख है, यह एक श्रेष्ठ सच्चाई है और यह दुःख साधारण है यह भी श्रेष्ठ सच्चाई है। हमारा दुःख आकस्मिक नहीं है, स्वभाव से ही है, किसी ईश्वर या देवता की देन नहीं है। वह हमारी देन है। और उसे हमी सुलझा सकेंगे। अपनी उलझनों को सुलझाने में हम कहीं इधर उधर न भटक जाएं। अपने इस साकार और दृष्ट दुःख को दूर करने पर विचार करते हुये हम निराकार और अदृष्ट जगत् के ख्याली पुलाव न पकाने लग जायें, इसीसे बुद्ध ने अपनी अपनी दृष्टि दी है, अपनी जानी दृष्टि दी है। अपने धर्म का प्रवचन किया है। और इसीके लिये बुद्ध ने कहा है—

सब्बाम् सब्ब विदूहमस्मि सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बंजहो तण्हखये विमुक्तो सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं।

मैंने सब का अभिभव किया, मैं सब जानता हूं, सब धर्मों में अलिप्त हूं, सब कुछ छोड़ चुका हूँ, तृष्णा के भय से मुक्त हो गया हूं। मैंने स्वयं इसे जाना है। मैं किसे अपना शास्त्र बताऊं।

बुद्ध ने अपनी इस जानी हुई दृष्टि के बारे में कहा है कि मेरा धर्म बेड़े की तरह समझो। वह पार होने के लिये है। पार होने के बाद सिर पर ढोने के लिये नहीं। आशा है, बुद्ध की इस दृष्टि से चारों ओर फैली दृष्टियों की बाढ़ को पार करने में मदद मिलेगी। पार करना बुद्ध दृष्टि की योजना है। पार हो गए तो उसकी फिर ज़रूरत नहीं।

कोलोपमं धर्मपर्यायभाजानद्भिः धर्माएव
प्रहातव्याः प्रागेवाधर्माः ॥*

---

* श्री तुलसी पुस्तकालय, कलकत्ता, द्वारा आयोजित सांस्कृतिक व्याख्यान माला का २८ अप्रैल को दिया हुआ व्याख्यान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दीपक

श्री रांगेय राघव

जल दीपक, दीपक जल जल रे
अन्ध तिमिर रे
सघन कुहर रे
क्षीण किरण आलोकित करदे
दीपक जल रे

प्राण तृषा में व्याकुल व्याकुल
आज विमुग्ध अंतर्तम आकुल
दिशि दिशि में झंकार मचल तू
दिशि दिशि में झंकार मुखर तू
मेरे पांथ हृदय को छूकर
क्षण भर का पाथेय अमर दे
दीपक जल रे

आज मरण की शय्या के तल
मां ! यह दीपक कैसा जलता
जो युग युग के अंधकार को
दूर हटा कर हर्षित करता
आज थके पाँवों में कैसी
श्रम गति आती, जीवन लाती,
जो निर्द्वंद्व बनी ज्योतिर्मय
वह प्रतिमा प्राणों को भाती,
विकल पराजय पास न आये
इन नयनों में नव छवि छाये
ओ जीवन की अमर रागिनी
भयद तिमिर को खंडित करदे
दीपक जल रे

एक बुझा कल दीप यहां पर
जलता है फिर नूतन आकर
इसी दीप की सलज शिखा में
देख रहा हूँ दुख का सागर
क्षण क्षण करके बुन्द बुन्द कर
यह अतीत का सिंधु गहरता
इतिहासों का सार्थवाह वह
पगचिन्हों को ढूंढा करता
अगनित कवि सम्राट दार्शनिक
आते हैं गर्वोन्नत कैसे !
हो नतशीश चले जाते हैं

ओ मेरे नयनों की तारा !
ओ माँ की गोदी के चिर धन !
ओ सुहागिनी के चिर कुंकुम !
ओ पथभूले की चिर आशा !
सघन विपिन में प्रथम किरण तू !
सिंधु प्रलय में मौन किनारा !
अंधकलुष के रुद्ध वक्ष पर
चिर निर्मल उन्माद सलोने !
चिर रहस्यमय तम-घाटी में
अमल चेतना के लघु जुगनू !
हे वैश्वानर !
रन्ध्र रन्ध्र में
तन्तु तन्तु में
तुम चिर छांह बने रहते हो,
जलधर पंक्ति गरजती नभ में
तुम संचय वितरण करते हो !

एक यहां दीपक जलता है—
अणु अणु में अब वह प्रतिछाया
झिलमिल करती मोहक माया
ग्रह उपग्रह नक्षत्र विभा में
स्वर है एक यही जो गाया
आज वही मन में जलता है !

एक सांत्वना
जब कि विश्व में घिरी हुई है
कठिन पाश बन सघन यातना

ओ करका के बज्रनाद रे
आलोकित कर मेरा दीपक !

बहती जाये अथक अरुकसी
ये निरुपम यौवन की धारा
भस्मसात् करदे ओ छविमय
ओ आलोकपुञ्ज ! भयकारा
चमक रही तलवार सदृश तू
तम को छिन्न भिन्न तू करदे
दीपक जल रे,
दीपक दीपक जल जल रे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# इसलाम और दी नेशन्स का उसूल

सय्यद रहमअली अलहाशमी

"फ़िरआन ( Poroah ) ने घमण्ड में भरकर मुल्क के लोगों को टुकुड़ो टुकड़ो में बाट दिया"।

—क़ुरान मजीद, २८ : ४।

"हम एक क़ौम हैं और हमारी एक अलग संस्कृति है, अलग सभ्यता है, अलग साहित्य और निर्माणकला है, अलग परिभाषायें हैं, अलग मूल्यांकन और अलग परिमाण हैं, अलग क़ानून और अलग नैतिक नियम हैं, अलग रस्म रिवाज और अलग पञ्चांग हैं, अलग इतिहास और अलग परम्परा हैं. और अलग स्वभाव और अलग आकांक्षायें हैं। संक्षेप में ज़िन्दगी पर और ज़िन्दगी का हमारा अपना एक अलग दृष्टिकोण है। अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून की सभी व्यवस्थाओं के अनुसार हम एक अलग नेशन ( क़ौम ) हैं।

—मिस्टर एम० ए० जिन्नाह

जब से तहज़ीब ने होश संभाला है तब से नैशनालिटी यानी क़ौमियत पैदायश के ऊपर क़ायम है और भौगोलिक सीमाओं से बँधी हुई है। दुनिया की हर सभ्य भाषा में 'नेशन' शब्द की व्युत्पत्ति उसके धातु अर्थ 'पैदा होने' ( To be born ) से हुई है। यूनान में पैदा हुआ एक आदमी यूनानी रहता है फिर चाहे ज़िन्दगी के बारे में या ज़िन्दगी पर उसके दृष्टिकोण में कितना ही मतभेद क्यों न हो। यही हाल दुनिया के दूसरे मुल्कों का है और अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनों के अनुसार किसी मुल्क का स्वाभाविक बाशिन्दा बनने के लिये इसकी क़तई ज़रूरत नहीं है कि आप अपना सांस्कृतिक या सामाजिक दृष्टिकोण बदलें। इसके लिये सिर्फ़ मुल्क बदलने और वहाँ के मुक़ामी क़ानूनों को मानने से ही काम चल जाता है। जैसे जैसे समाज विज्ञान और राजनीति शास्त्र की तरक़्क़ी हुई उन्होंने क़ौमियत की शर्त में थोड़ी सी बातें और जोड़ दी हैं, जैसे समान आर्थिक-हित, समान या मिलती जुलती भाषा आदि; किन्तु क़ौमियत का बुनियादी उसूल अब भी वही है और आम तौर पर भौगोलिक सीमायें ही किसी नेशन को रूप और आकार देती हैं। दुनिया का इतिहास इस बात की ताईद करता है और मुसलिम इतिहास ख़ास तौर पर इस मामले में बहुत साफ़ और नुमायाँ है। मुसलमान अरब अपनी बढ़ोतरी के दिनों में जिस जिस देश में जाकर बसे और उन्हें आबाद किया वहीं की क़ौमियत उन्होंने स्वीकार कर ली। ईरान में जाकर वे ईरानी बन गये और चीन में चीनी। यही उन्होंने स्पेन, मराक़श, मिस्र, यमन, अफ़ग़ानिस्तान, तुर्किस्तान, जार्जिया, कोहक़ाफ़ वग़ैरह में किया। ऐसे भिन्न भिन्न मुल्कों की भी, जो एक ही भाषा बोलते थे, अपने मुल्क की भौगोलिक सीमाओं की वजह से अलग अलग क़ौमियत रही।

मराकश, तूनिस, अलजिअर्स, त्रिपोली, इराक़, यमन, हेजाज़ और मिस्र के लोग सब एक ही ज़बान यानी अरबी बोलते हैं, मगर एक मिस्री मुसलमान मिस्री है, वह कभी अपने को अरब नहीं कहेगा और न अफ़ग़ान ही अपने को इसलिये ईरानी कहेगा चूँकि दोनों ईरानी ज़बान बोलते हैं। और बहुत से मुल्कों की आबादी में भी मज़हबी फ़र्क़ हैं किन्तु इन फ़र्क़ों की वजह से किसी भी मुल्क की क़ौमियत में बँटवारा नहीं हुआ है। मिस्र का एक क़ुब्ती ईसाई उतना ही पक्का मिस्री है जितना कि मिस्र का रहने वाला मुसलमान। मुख़्तलिफ़ मुल्कों में रहने वाले यहूदियों ने भी अपने को उन्हीं मुल्कों की क़ौमियत में शामिल कर लिया है। जहाँ पर उन्होंने अपने को अलहदा रखा और उस मुल्क की क़ौमियत में शामिल नहीं हुये वहाँ उन्होंने अपनी अलहदगी के बुरे नतीजे उठाये। उसी तरह से हिन्दुस्तान के लोग, उनका मज़हब चाहे जो कुछ हो, सारी दुनिया में हिन्दुस्तानी ही कहलाते हैं। अमरीका में हर हिन्दुस्तानी को हिन्दू कहा जाता है फिर चाहे वह ईसाई, सिख, पारसी, या मुसलमान कोई भी क्यों न हो। भारत में आकर सदियों तक हुकूमत करने वाले मुग़ल और पठानों ने भारतीय क़ौमियत को क़ुबूल कर लिया और इतिहास गवाह है कि एक मर्तबा भी उन्होंने अपने लिये अलग किसी क़ौमियत का दावा नहीं किया। अङ्गरेज़ यहाँ पर हुकूमत करने के लिये आता है, रहने के लिये नहीं। वह हिन्दुस्तानी क़ौमियत क़ुबूल करना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझता है क्यों कि यह मुल्क हिन्दुस्तान उसका ग़ुलाम मुल्क है और वह यहाँ का मालिक है। फिर भी बहुत से ऐसे अङ्गरेज़ परिवार हैं जो इसी देश में बस गये हैं और जिन्हें अपने को हिन्दुस्तानी कहने में कोई शर्म नहीं मालूम होती, हालाकि उनमें वे



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सारे फ़र्क़ मौजूद हैं जिन्हें आज अलग क़ौमियत के लिये दावे के तौर पर पेश किया जा रहा है।

इन नुमायाँ बातों के होते हुये भी मुसलमानों में एक तबक़ा है जो मिस्टर एम० ए० जिन्नाह के नेतृत्व में दो नेशन्स के उसूल पर बड़ी आश्चर्यजनक दलीलें पेश कर रहा है। इन लोगों को देश की राजनैतिक उन्नति को रोकने में इसलिये कोई शर्म नहीं महसूस होती चूँकि दूसरे लोग उनकी एक अस्वाभाविक और अधार्मिक माँग को क़ुबूल करने में अपने को लाचार पाते हैं। इस दो नेशन्स के उसूल की ताईद में जो दलीलें दी जाती हैं उनमें कुछ महज़ नारे हैं और कुछ गुमराह करने वाले लफ़्ज़। मिस्टर जिन्नाह ने गान्धी जी के नाम अपने पत्र में ऐसी ऐसी वेग़रज़ बातें लिखी हैं जिससे असली मसले से हटकर लोगों की आँखों में धूल झोंकी जा सके। हमारा ख़याल है कि मिस्टर जिन्नाह अन्तर्राष्ट्रीय विधानों और शब्दकोशों में नेशन या क़ौम का जो अर्थ दिया हुआ है उससे बेख़बर न होंगे। अङ्गरेज़ी ज़बान का कोई भी विद्यार्थी साफ़ इस बात को देख लेगा कि मिस्टर जिन्नाह ने दलीलों को शब्दों के समुद्र के भीतर डुबा दिया है। मिस्टर जिन्नाह ने अलग नेशन के उसूल की परिभाषा में जो शब्द इस्तेमाल किये हैं उनसे अलग नेशन नहीं बनता। एक अरब जो इङ्गलैण्ड में बस जाता है अङ्गरेज़ों की तरह इङ्गलिशमैन बन जाता है हाला कि उसकी और अङ्गरेज़ों की संस्कृति में, सभ्यता में, भाषा में, साहित्य में, निर्माण कला में, नाम और परिभाषाओं में, रीति और रिवाजों में, इतिहास और परम्पराओं में और पंचाङ्गों में बहुत बड़ा फ़र्क़ होता है। जहाँ तक स्वभाव और आकांक्षाओं का, किसी चीज को देखने के तरीक़े का और ज़िन्दगी के और ज़िन्दगी पर दृष्टि कोण का सम्बन्ध है, हमें एक ही घर में रहने वाले और एक ही माँ बाप की औलादों में बहुत बड़ा और मौलिक फ़र्क़ दिखाई देता है। लेकिन इन फ़र्क़ों की वजह से वे अपने लिये अलग अलग क़ौमियत का दावा नहीं पेश करते। मिस्टर जिन्नाह इस बात से बेख़बर न होंगे कि एक ही माँ बाप के इस तरह के दो बेटे हो सकते हैं कि जो हर बात में एक दूसरे के विपरीत हों और फिर भी कल्पना की कोई उड़ान यह साबित नहीं कर सकती कि ये दोनों बेटे दो विभिन्न क़ौमों के हैं। हिन्दुस्तान में असंख्यों मुसलमान हैं जिनका इन बहुत सी बातों में मिस्टर जिन्नाह से बहुत बड़ा फ़र्क़ है और क़ौमियत की मिस्टर जिन्नाह कोई भी परिभाषा क्यों न बनायें लेकिन इन लोगों की भी वही क़ौमियत है और रहेगी जो मिस्टर जिन्नाह की है। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और मुफ़्ती किफ़ायतउल्लाह और मिस्टर जिन्नाह में इन बातों में काफ़ी फ़र्क़ है, लेकिन इन फ़र्क़ों के होते हुये भी इनकी एक क़ौमियत में थोड़े ही फ़र्क़ पड़ सकता है।

इस तरह की नक़ली बातों पर क़ायम किया हुआ कोई भी राजनैतिक सिद्धान्त इस क़ाबिल नहीं कि उस पर गम्भीरता से विचार किया जाय। महज़ शब्दों की बालू पर जो भी राजनैतिक ढाँचा खड़ा किया जायगा उसका शीघ्र ही ढह जाना अवश्यम्भावी है। किन्तु चूँकि बहुत से मुसलमान शब्दों के जाल में फँसकर मिस्टर जिन्नाह के विचारों के समर्थक होते जा रहे हैं और बजाय "अल्लाहो अकबर" का नारा लगाने के "क़ायदे आज़म ज़िन्दाबाद" के नारे लगा रहे हैं इसलिये मैं ज़रा विस्तार से यहाँ इस बात की जाँच करना चाहूंगा कि इस दो नेशन्स के सिद्धान्त का क्या किसी भी धार्मिक, नैतिक और वैज्ञानिक तिथि द्वारा समर्थन किया जा सकता है? यदि इससे थोड़े भी आदमियों की नज़रों से धुँये के बादल छँट सकें तो मैं अपनी मेहनत को सुफल समझूँगा।

## १—कसौटी

दुनिया के किसी मज़हब का अपने पैरोकारों पर इतना असर नहीं कि जितना इसलाम का है। आमतौर पर महफ़ूज़ मुसलमानों को बहुत बड़ी अपील करता है। ज़ाहिरा तौर एक स्वास्थ्यवर्धक चीज़ है, लेकिन बदक़िस्मती से हमारे नेता लामज़हबी और अस्वाभाविक सिद्धान्तों को मज़हब के नाम पर रायज़ करते जाते हैं और सीधी सादी मुसलमान जनता बग़ैर इस बात की जाँच पड़ताल किये हुये कि वे कहाँ तक सही बात कह रहे हैं और उनका इसलामी शरीयत से कहां तक मेल है, उनकी बातों पर एतबार कर लेते हैं। मज़हबी फ़र्ज़ के तौर पर क़ुरान मजीद किसी बात पर इतना ज़ोर नहीं देता जितना कि इस बात पर कि हर शख़्स को अपनी अक़्ल इस्तेमाल करनी चाहिये और किसी बात को बग़ैर दलील के क़ुबूल नहीं करना चाहिये। क़ुरान में तर्क को जितना महत्व दिया गया है उतना नमाज़ को भी नहीं दिया गया। किन्तु बावजूद इस और सीधी हिदायत के जनता के दिमाग़ को सोचने के नाक़ाबिल बना देने में हमारे नेताओं को ज़रा भी महसूस नहीं होती। इन नेताओं ने वक़्त की तङ्गी या किसी वजह से ख़ुद अपनी अक़्ल से काम लेना बन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दिया है और ये चाहते हैं कि इनके अनुयायी भी अपनी अक़्ल इस्तेमाल न करें और अनुशासन के नाम पर महज़ शब्दों के जाल और थोथे नारों में पड़े रहें। वे नहीं चाहते कि मुसलमान अक़्ल और दलील से काम लें और इस तरह वे अल्लाह की साफ़ हिदायत मानने से जनता को रोकते हैं। इस लेख से मेरी यही मुराद है कि वाक़यात और दलीलों की रोशनी में मुसलमान जनता आज के इस सब से बड़े सवाल पर ग़ौर करे कि अया हिन्दुओं से अलग मुसलमानों की कोई जुदा क़ौमियत है ? मैं सबसे पहले इस सवाल के मज़हबी पहलू पर ग़ौर करूँगा। चूँकि हर मुसलमान के लिये क़ुरान मजीद ही सबसे बड़ी मज़हबी हिदायत है इसलिये हम इस बात को देखेंगे कि इस दो नेशन्स के उसूल की क़ुरान कहां तक ताईद करता है।

यह अफ़सोस की बात है कि दो नेशन्स के उसूल की ताईद में मज़हबी किताबों से जो उद्धरण पेश किये जाते हैं उनमें कहीं भी लफ़्ज़ "क़ौम" नहीं आता। "क़ौम" ही नेशन का लफ़्ज़ी तर्जुमा है और चूँकि यह लफ़्ज़ क़ुरान में और हदीसों में बार बार इस्तेमाल हुआ है इसलिये क़ुरान के ऐसे उद्धरणों को न पेश करके कि जिनमें "क़ौम" लफ़्ज़ आता है दो नेशन्स के दावेदार मुसलमान जनता के साथ साफ़ धोखा बरत रहे हैं।

मुझे हज़रत पैग़म्बर की ज़िन्दगी का एक वाक़या याद आ रहा है। एक मर्तबा एक यहूदी ने हमारे पैग़म्बर से यह दरख़ास्त की कि वे बीच में पड़कर एक दूसरे यहूदी के साथ उसके झगड़े का फ़ैसला कर दें। हज़रत पैग़म्बर ने उससे अपनी मज़हबी किताब 'पेण्टाट्यूश ( Pentateuth ) लाने को कहा। जब वह पेण्टाट्यूश लाया तो हज़रत ने उससे वे आयतें पढ़ने के लिये कहीं कि जिनका उसकी शिकायत से कुछ ताल्लुक़ था। उस आदमी ने ऐसी आयतें को कि जो उसके ख़िलाफ़ जाती थी उँगली से दबाकर दूसरी आयतें पढ़नी शुरू कीं। पैग़म्बर यहूदियों के क़ानून से वाक़िफ़ थे। वे उसकी इस चाल से धोखे में नहीं आये और उन्होंने उस यहूदी से उँगली के नीचे दबी हुई आयत पढ़ने के लिये कहा। जब वह आयत पढ़ी गई तो वह बिलकुल मुद्दई के ख़िलाफ़ जाती थी और हज़रत पैग़म्बर ने उसी के मुताबिक़ मुद्दई के ख़िलाफ़ फैसला दिया। हम देख रहे हैं कि दो नेशन्स के उसूल के समर्थक ठीक वही बात आज क़ुरान के साथ कर रहे हैं जो उस यहूदी ने पेण्टाट्यूश के साथ की थी। अल्लाह इन लोगों को ठीक ठीक रास्ता दिखाये!

क़ुरान में आदमियों के गिरोहों के लिये कई लफ़्ज़ इस्तेमाल हुये हैं, किन्तु नेशन के लिये क़ुरान में लफ़्ज़ "क़ौम" ही इस्तेमाल किया गया है और यह लफ़्ज़ सर्वमान्य है। क़ुरान में यह लफ़्ज़ बार बार एक ही मायनों में इस्तेमाल किया गया है इसलिये उसके अर्थ के बारे में किसी तरह का कोई शुबहा नहीं रह जाता। मैं नीचे यहां कुछ उद्धरण दे रहा हूँ जिनसे पता चलेगा कि क़ुरान ने महान पैग़म्बरों को उनके अपने मुल्क के अविश्वासी देशवासियों के साथ एक ही क़ौम में रखा है। क़ुरान की ये आयतें मैं अल्लामा अब्दुल्ला यूसुफ़अली के अनुवाद से ले रहा हूँ। सिर्फ़ फ़र्क़ इतना है कि "क़ौम" लफ़्ज़ को मैं ज्यों का त्यों दे रहा हूँ। हर उद्धरण के साथ क़ुरान की आयत का हवाला है।

## हज़रत मूसा

याद रखो मूसा ने अपनी क़ौम से कहा, 'ऐ मेरी क़ौम अल्लाह ने जो बरकतें तुम्हें अता की हैं उनके लिये अल्लाह का शुक्रिया अदा करो।'—५:२२।

'ऐ मेरी क़ौम उस पाक मुल्क में दाख़िल होओ जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये तै किया है।'—५:२३।

मूसा की क़ौम ने मूसा की ग़ैर हाज़िरी में अपने गहनों से ( ढालकर ) एक बछड़े की मूर्ति बनाई ( पूजा करने के लिये )।—७:१४८।

तब मूसा ग़ुस्से और तकलीफ़ के साथ अपनी क़ौम के पास आये।—७:१५०।

और मूसा ने हमसे मिलने के लिये अपनी क़ौम के ७० आदमी चुने और तब वे लोग बुरी तरह कांपने लगे।—७: १५५।

मूसा की क़ौम में एक ऐसा तबक़ा है जो सचाई की रोशनी में इन्साफ़ करता है और रास्ता दिखाता है।—७:१५९।

लेकिन मूसा की क़ौम के कुछ आदमियों को छोड़कर फ़िरआन और उसके सरदारों के डर की वजह से और कोई लोग मूसा पर एतबार नहीं लाये।—१०:८३।

हमने मूसा और उसके भाई को यह इलहाम दिया कि, 'मिस्र में अपनी क़ौम को जाकर बसाओ'।—१०:८७।

हमने मूसा को अपनी निशानी (और अपनी हिदायत) देकर भेजा, 'अपनी' क़ौम को अँधेरे गढ़े से रोशनी में लाओ।—१४:५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



याद रखो मूसा ने अपनी क़ौम से कहा : अल्लाह की नियामतों को याद करो।—१४:६।

तब मूसा सदमे और ग़ुस्से में अपनी क़ौम के पास आया। उसने कहा' 'ऐ मेरी क़ौम क्या अल्लाह ने तुमसे एक अच्छा सा वादा नहीं किया ?'—२०:८६।

कारूँ, बिलाशक, मूसा की ही क़ौम का था किन्तु वह उससे बदतमीज़ी के साथ पेश आया।—२८:७०।

## हज़रत इब्राहीम

उन्होंने ( हज़रत इब्राहीम ने ) कहा, 'ऐ मेरी क़ौम ! मै ( अब ) अल्लाह के साथ किसी दूसरे को शरीक़ करने के तुम्हारे ( गुनाह ) से मुक्त हो गया।—६:२८।

उसकी ( हज़रत इब्राहीम की ) क़ौम ने उसकी बात नहीं मानी।—६:८०।

यही दलीलें थीं जो हमने उसकी क़ौम के ख़िलाफ़ इब्राहीम को दीं।—६:८३।

और ( हमने ) इब्राहीम ( को भी बचाया ) उसने अपनी क़ौम से कहा 'अल्लाह' की राह पर चलो और उससे डरो।—२९:१६।

( इब्राहीम की ) क़ौम का सिर्फ़ यही जवाब था—'उसे मार डालो या जला दो।—२९:२४।

उन्हें इब्राहीम की ( कोई ) कहानी सुनाओ। देखो उसने अपने पिता और अपनी क़ौम से कहा : तुम किसकी पूजा करते हो ?—२६: ७०,७१।

## पैग़म्बर नूह

हमने नूह को उसकी क़ौम के पास भेजा। नूह ने कहा : ऐ मेरी क़ौम ! अल्लाह की इबादत करो।—७:५९।

नूह की क़ौम के नेताओं ने कहा : ऐ नूह ! हम देख रहे हैं कि ज़ाहिरा तौर पर तेरा दिमाग़ भटक रहा है।—७:६०।

नूह ने कहा—ऐ मेरी क़ौम ! मेरे दिमाग़ में कोई भटकन नहीं है।—७:६१।

हमने नूह को उसकी क़ौम के पास भेजा ( एक मिशन के साथ )। —११:२५।

किन्तु उसकी क़ौम में जो अविश्वासी थे उनके नेताओं ने कहा—हम तेरे अन्दर कोई ख़ास बात नहीं देखते। तू भी हमारी ही तरह एक आदमी है।—११:२७।

उसने कहा—ऐ मेरी क़ौम ! तुम अगर देखो तो तुम्हें दिखाई देगा कि मेरे पास अल्लाह की साफ़ निशानी है।—११:२८।

और ऐ मेरी क़ौम ! मैं तुमसे बदले में कोई दौलत नहीं चाहता।—११:२९।

और ऐ मेरी क़ौम ! मेरी कौन मदद करेगा अल्लाह के ख़िलाफ़ यदि मैंने उन्हें भगा दिया।—११:३०।

नूह को यह इलहाम हुआ था कि सिवाय उनके कि जो तुझ पर ऐतबार ला चुके हैं तेरी क़ौम में से और कोई तुझपर एतबार नहीं लायेगा।—११ : ३६।

इसके बाद उसने किश्ती बनानी शुरू की। हर बार जब उसकी क़ौम का कोई सरदार वहाँ से गुज़रता था तो वह ( नूह का ) मज़ाक़ उड़ाता था।—११:३८।

हमने नूह को उसकी क़ौम के पास भेजा। उसने कहा—ऐ मेरी क़ौम ! अल्लाह की इबादत करो।—२३ : २३।

उसकी क़ौम के जो लोग ईमान नहीं लाये वे उसके नेताओं ने कहा : वह हमारी ही तरह एक आदमी है।—२३ : २४।

और जब नूह की क़ौम ने अपने पैग़म्बर को मानने से इनकार किया तो हमने उन्हें डुबा दिया।—२५:३९।

नूह की क़ौम ने नूह ( को पैग़म्बर मानने ) से इनकार किया।—२६ : १०५।

## पैग़म्बर हूद

उसने (पैगम्बर हूद ने) कहा—ऐ मेरी क़ौम ! सिर्फ़ की इबादत करो।—७ : ६५।

पैग़म्बर हूद की क़ौम के अविश्वासी लोगों के नेताओं ने कहा— आह ! हम देख रहे हैं कि तुम ( हूद ) नाकारा हो।—७ : ६६।

उसने कहा—ऐ मेरी क़ौम ! मैं नाकारा नहीं हूँ। मैं दुनियाओं के पालनहार और मालिक का एक दूत हूँ।—७ : ६७।

उसने कहा, ऐ मेरी क़ौम ! अल्लाह की परिहिति करो।—११ : ५०।

ऐ मेरी क़ौम ! ( ईश्वर के ) इस सन्देशे के लिये मैं तुमसे कोई इनाम नहीं चाहता।—११ : ५१।

ऐ मेरी क़ौम ! अपने गुनाह के लिये अल्लाह से माफ़ी माँगो।—११ : ५२।

## पैग़म्बर सलीह

पैग़म्बर सलीह ने कहा : ऐ मेरी क़ौम ! अल्लाह की इबादत करो।—७:७३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उसकी क़ौम के घमण्डी नेताओं ने कहा जो लोग शक्तिहीन थे वे ही (सलीह पर) विश्वास लाये।–७ : ७५।

उसने कहा—ऐ मेरी क़ौम! क्या तुम देखते हो!—११ : ६३।

### पैग़म्बर लूत

हमने लूत को भी भेजा। उसने अपनी क़ौम से कहा—तुम इतनी ज़्यादा अय्याशी करते हो कि जितनी तुमसे पहले (कभी भी) सृष्टि की उत्पत्ति के समय से (लेकर अब तक) किसी ने नहीं की।–७ : ८०।

और उसकी क़ौम ने सिवाय इसके कोई जवाब नहीं दिया कि इन्हें शहर से बाहर निकाल दो।–७ : ८२।

उन्होंने (फ़रिश्तों ने) कहा (पैग़म्बर इब्राहीम से)–डरो नहीं! हमें लूत की क़ौम के ख़िलाफ़ भेजा गया है।–११ : ७०।

उसने (पैग़म्बर इब्राहीम ने) हमसे लूत की क़ौम की सिफ़ारिश करनी शुरू की।—११ : ७४।

लूत की क़ौम ने पैग़म्बर को मानने से इन्कार किया।–२६ : ६०।

उसकी क़ौम ने सिवाय इसके कोई जवाब नहीं दिया कि अगर तू (लूत) सच्चा है तो ख़ुदा का क़हर हम पर नाज़िल कर।–२९ : २९।

### पैग़म्बर शुएब

उसने (पैग़म्बर) शुएब ने) कहा—ऐ मेरी क़ौम! अल्लाह की इबादत कर।–७ : ८५।

उसकी क़ौम के घमण्डी मुखियों ने कहा–ए शुएब! हम तुझे सचमुच शहर बदर कर देंगे।—७ : ८८।

पैग़म्बर शुएब ने प्रार्थना की–ऐ मेरे परवरदिगार! तू ही मेरे और मेरी क़ौम के बीच में फ़ैसला कर।—७ : ८९।

उसकी क़ौम के अविश्वासी नेताओं ने कहा कि अगर तुम शुएब के पीछे चलोगे तो सच मानो बर्बाद हो जाओगे।–७ : ९०।

शुएब ने उन्हें छोड़ते हुये कहा—ऐ मेरी क़ौम! अल्लाह ने जिस लिये मुझे भेजा था वह सन्देशा मैंने तुम्हें सुना दिया।—७ : ९३।

### पैग़म्बर यहूना

एक भी ऐसा शहर नहीं था (जिन्हें हमने आगाह किया और जो) विश्वास नहीं लाये और उनके विश्वास लाने से उन्हें फ़ायदा (न) हुआ (हो)—सिवाय यहूना की क़ौम के।—१० : ९८।

### पैग़म्बर ज़करिया

पैग़म्बर ज़करिया ने अपने घर से निकलकर अपनी क़ौम को इशारा किया कि सुबह शाम अल्लाह से प्रार्थना करो।–१९ : ११।

### कुमारी मरियम

आख़ीर में वह (कुमारी मरियम) बच्चे को अपनी गोद में उठाकर अपनी क़ौम के पास ले गई। उन्होंने कहा–ऐ मरियम! सचमुच तू एक बहुत अजीब चीज़ लाई है।—१९ : २७।

ये क़ुरान के चन्द हवाले हैं जिनमें हम देखते हैं कि इन तमाम ईश्वरीय सन्देशों में लफ़्ज़ क़ौम भौगोलिक अर्थों में ही इस्तेमाल हुआ है और ऊँचे आदर्शों और चरित्र वाले बड़े बड़े पैग़म्बरों को निकृष्ट और असभ्य लोगों के साथ उन्हीं की क़ौमों में शामिल कर दिया गया है।

क़ुरान में ज़ुलक़रनैन की कहानी में क़ौम लफ़्ज़ ऐसे लोगों के लिये इस्तेमाल हुआ है जो एक ख़ास भौगोलिक क्षेत्र में रहते थे। इसको देखते हुये क़ौम लफ़्ज़ के ठीक अर्थ के बारे में कोई शुबहा नहीं रह जाता। मैं उस कहानी के तीन फ़िक़रे यहाँ पर दर्ज कर रहा हूं—

"जब वह (ज़ुलक़रनैन) ऐसी जगह पहुँचा जहाँ सूरज डूब रहा था तो उसने देखा वहाँ पानी का चश्मा बह रहा था। उसके पास उसने एक क़ौम देखी।—१८ : ८६।

"जब वह ऐसी जगह पहुँचा जहां सूरज निकल रहा था तो उसने देखा वहाँ एक क़ौम के सर पर सूरज चमक रहा है कि जिसे हमने सूरज की गरमी से बचने के लिये कोई साया नहीं दिया।"—१८ : ९०।

"और जब वह (ज़ुलक़रनैन) दो पहाड़ों के बीच में (एक मैदान में) आया तो उसने वहां भी एक क़ौम देखी जो मुशकिल से एक लफ़्ज़ समझ पाती थी।"—१८: ९३।

ऊपर के तीनों उद्धरणों में लफ़्ज़ क़ौम बिला शुबहा एक ख़ास भू-भाग में बसे हुये लोगों के लिये उसी अर्थ में इस्तेमाल किया गया है जिस अर्थ में हम आज लफ़्ज़ 'नेशन' इस्तेमाल करते हैं।

जहां तक हमारे हज़रत पैग़म्बर का सवाल है हम देखते हैं कि क़ुरान में उनके साथ भी 'क़ौमियत' को इसी अर्थ में इस्तेमाल किया गया है। सूरा ६, आयत १३५ में अल्लाहताला पैग़म्बर को मुख़ातिब होकर कहता है—


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"कहो—ऐ मेरी क़ौम ! जो तुम कर सकते हो करो। मैं भी ( अपना फ़र्ज़ पूरा करूँगा ) इसके बाद जल्दी ही तुम देखोगे कि कौन ठीक राह पर है। सच जानना बुराई करने वाले फलें फूलेंगे नहीं।"

एक दूसरे स्थल पर .कुरान में पैग़म्बर को मुख़ातिब करके कहा गया है—

"अगर वह तुम्हारे मिशन को झूठा समझते हैं तो उनसे पहले की क़ौमों ने भी अपने पैग़म्बरों के साथ यही किया है। नूह, आद और समूद की क़ौमें, इब्राहीम और लूत की क़ौमें ( इसी तरह पेश आईं ); मिदियान के लोगों के साथी और मूसा ( की इसी तरह ) बात नहीं मानी गई।"—२२:४२,४३।

यह चीज़ बिलकुल साफ़ है कि बहुत से ईश्वरीय आदेशों में क़ौमियत का फ़र्क़ भौगोलिक सीमाओं को आधार मान कर ही किया गया है, मज़हब या कल्चर की बिना पर नहीं। इसी बिना पर दुनिया के इतिहास लिखे गये हैं। अल्लाह ने भी इसी .कुदरती बुनियाद पर अपने ज़हूर को रोशन किया है और किसी भी सच्चे मुसलमान के लिये यह मुनासिब नहीं कि वह अल्लाह के मुक़र्रर किये हुये इस .कुदरती तरीक़े को बदल कर क़ौमियत की एक बिलकुल नई परिभाषा पेश करे। उन लोगों के अन्दर जो एक ख़ास भू-भाग में रहते हैं आपसी मोहब्बत को बढ़ाने के लिये—भाई-लफ़्ज़ का इस्तेमाल .कुरान मजीद में किया गया है। मैं यहाँ उसके कुछ हवाले दे रहा हूं—

"आद के लोगों के पास ( हमने ) पैग़म्बर हूद को भेजा ) जो कि उनका ( अपना ) भाई था।"—७:६५।

"समूद के लोगों के पास ( हमने ) पैग़म्बर सलीह को भेजा जो कि उनका (अपना) भाई था।"—७ : ७३।

"मिदियान के लोगों के पास हमने पैग़म्बर शुयेब को भेजा जो कि उनका ( अपना ) भाई था।"।—७:८५।

"समूद के लोगों के पास हमने पैग़म्बर सलीह को भेजा जो कि उनका ( अपना ) भाई था।"–११ : ६३।

"देखो, उनके ( अपने ) भाई पैग़म्बर हूद ने उनसे कहा—'क्या तुम डरोगे नहीं ( अल्लाह से ) ?"—२६ : १२४।

"देखो, उनके भाई पैग़म्बर नूह ने उनसे कहा—क्या तुम डरोगे नहीं ( अल्लाह से )!"—२६ : १०६।

"देखो उनके भाई सलीह ने उनसे कहा—क्या तुम डरोगे नहीं (अल्लाह से) ?" २६ : १४२।

इस तरह अल्लाह के ये पाक पैग़म्बर जो कि ज़िन्दगी में बहुत बड़े मिशन लेकर आये थे अपनी क़ौमियत और भाई चारे में अपने उन देश वासियों के साथ अल्लाह की नज़रों में एक समझे गये जो अल्लाह पर ईमान नहीं लाते थे, दुराचारी थे और कहना नहीं मानते थे। दोनों में ज़िन्दगी के दृष्टिकोण में ज़मीन आसमान का फ़र्क़ था लेकिन फिर भी वह फ़र्क़ क़ौमियत के स्वाभाविक वर्गीकरण को नहीं बदल सका। यही नहीं बल्कि अल्लाह ने नज़दीकी भाई चारे का रिश्ता क़ायम करके उस क़ौमियत को और भी पुख़्ता किया।

.कुरान में इस तरह की भी एक मिसाल आती है जब एक शासक को इस बात के लिये ज़बर्दस्त सज़ा मिली चूँकि उसने एक ही मुल्क में रहने वाले लोगों को दो टुकड़ों में बाँट दिया। इस सम्बन्ध में यहाँ .कुरान के सूरा २८ आयत ४ के फ़िक़रों को दिया जा रहा है—

"सचमुच फ़िरआन ने घमंड के साथ मुल्क के रहने वालों को कई टुकड़ों में बाँट दिया"

मुल्क में रहने वालों के इस तरह के बटवारे की सूरा-६, आयत १५९ में और ज़्यादा बुराई की गई है—

"जो लोग क़ौम को इस तरह टुकड़े टुकड़े करके उन्हें हिस्सों में बाँटकर तोड़ देते हैं उनके साथ तेरा बिल्कुल कोइ ताल्लुक़ न होगा।"

## मिल्लत और नेशन

इस लेख के शुरू में मैंने इस बात की चर्चा की है कि दो नेशन्स के उसूल की ताईद करने वालों ने नेशन की जगह "मिल्लत" लफ़्ज़ इस्तेमाल करके लोगों में भ्रम पैदा करने की कोशिश की है। मिल्लत लफ़्ज़ अरबी ज़बान में कभी भी नेशन के मायनों में इस्तेमाल नहीं हुआ। .कुरान मजीद में पैग़म्बर यूसुफ़ की कहानी में, कि जिसमें अपने साथी क़ैदियों के साथ यूसुफ़ की बातें दर्ज हैं, इन दोनों लफ़्ज़ों के अर्थों को और अधिक साफ़ कर दिया गया है। .कुरान में लिखा है—

"मैंने ( मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं ) क़ौम की ऐसी मिल्लत को छोड़ दिया है जो .खुदा पर एतबार नहीं लाती।"–१२ : ३७।

"मैं अपने बाप दादों–इब्राहीम, इसहाक़ और याक़ूब की मिल्लत को मानता हूँ।"–१२:३८।

इन आयतों में हम मिल्लत और क़ौम दोनों शब्दों को पाते हैं और इसमें ज़रा भी शुबहा नहीं कि ये दोनों लफ़्ज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अलग अलग मायनों में इस्तेमाल हुये हैं। ज़ाहिर है मिल्लत से तात्पर्य एक मज़हबी गिरोह से है कि जिसका क़ौमियत के साथ कोई ताल्लुक़ नहीं। जैसा मैंने ऊपर दिखाया है क़ौमियत का ताल्लुक़ किसी मुल्क में पैदा होने से है, धार्मिक मतभेद से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। दो नेशन के उसूल की ताईद करने वाले अपने समर्थन में लफ़्ज़ मिल्लत इस्तेमाल करते हैं, क़ौम नहीं।

इसलाम अल्लाह की तरफ़ कुछ फ़र्ज़ आयद करता है और कुछ साथी इन्सानों की तरफ़। ज़्यादा ठीक तरह से इसे कहा जाय तो यह है कि इन्सान का अल्लाह के तरफ़ क्या फ़र्ज़ है और दूसरे साथी इन्सानों की तरफ़ क्या फ़र्ज़ है, और इन दोनों फ़र्ज़ों की दो अलग अलग बुनियादें हैं। 'मिल्लत' और 'क़ौम' लफ़्ज़ असल में इन्हीं दोनों अलग अलग फ़र्ज़ों के लिये इस्तेमाल हुये हैं। एक शख़्श का अपनी मिल्लत में अपने भाई की तरफ क्या फ़र्ज़ है, वह बिलकुल जुदा है उस फ़र्ज़ से—जो क़ौम में वह अपने भाई की तरफ़ अदा करता है। इन दोनों को एक में मिलाना एक बहुत बड़ा धर्म द्रोह है, गुनाह है। मिल्लत की बिना पर जो मज़हबी सम्बन्ध क़ायम होता है वह तमाम भौगोलिक सीमाओं से और जातियों, क़बीलों और रंगों के भेद से ऊपर उठकर क़ायम होता है। इंगलिस्तान का एक मुसलमान मिल्लते इसलाम में अफ़्रीका, चीन और हिन्दुस्तान के मुसलमान का भाई है, लेकिन इन तीनों की क़ौमियत से उसका कोई ताल्लुक़ न होगा। दूसरी तरफ़ एक ही बाप के ऐसे दो बेटे—जिनमें एक मुसलमान है और दूसरा ग़ैरमुसलमान दो अलग अलग मिल्लतों में जायेंगे। लेकिन बावजूद उन सब फ़र्क़ों के कि जिनको मिस्टर जिन्नाह क़ौमियत की बुनियाद मानते हैं, कल्पना की कोई उड़ान इन दोनों भिन्न धर्मावलम्बी भाइयों को अलग अलग क़ौमियत में तक़सीम नहीं कर सकती।

यह बात अब बिल्कुल साफ़ हो गई कि मिस्टर जिन्नाह के दो नेशन के उसूल की क़ुरान मजीद से किसी तरह की कोई भी ताईद नहीं होती, बल्कि क़ौमियत का जो आधार क़ुरान ने क़ायम किया है वह बुनियादी तौर पर मिस्टर जिन्नाह के दो नेशन के उसूल के ख़िलाफ़ जाता है और चूँकि एक सच्चे मुसलमान के आचरण के लिये क़ुरान ही खरी कसौटी है इसलिये इस सवाल पर किसी तरह की बहस की गुञ्जाइश ही नहीं रहती और मुसलमानों के सामने यह सवाल पैदा होता है कि वे या तो क़ुरान मजीद की बात मानें और या मिस्टर जिन्नाह की बात मानें। मुसलमान अपने आम आचरण के लिये क़ुरान के अलावा पैग़म्बर की हदीसों, सहाबा (पैग़म्बर के साथियों) के आचरणों और इसलाम के इतिहास का भी सहारा ले सकता है, लिहाज़ा हम इस दो नेशन्स के उसूल को इन चीज़ों की बिना पर भी ग़ौर करें।

## हदीस और इतिहास

इसलाम के इतिहास में इस तरह के सुबूत भरे पड़े हैं कि हज़रत पैग़म्बर और उनके उत्तराधिकारी और बाद में इसलाम के दूसरे नेताओं ने कभी भी अपने को अपने मुल्क वालों की क़ौमियत से इस बिना पर अलहदा नहीं किया कि उनके साथ उनके सांस्कृतिक और धार्मिक मतभेद थे। जिन लोगों ने पैग़म्बर के मिशन का लगातार कट्टर विरोध किया और जिन लोगों ने पैग़म्बर और उनके मुसलमान रिश्तेदारों और दोस्तों को सताने में हर तरह के अमानुषिक तरीक़े बर्ते उन्हें भी पैग़म्बर ने, और उनके निकट अनुयायियों ने उसी तरह 'मेरी क़ौम' कहकर सम्बोधित किया कि जिस तरह दूसरे पुराने पैग़म्बरों ने अपनी अपनी क़ौमों को किया था। इसलाम के इतिहास में तायफ की घटना बड़ी मशहूर है। महज़ अपने धर्म-प्रचार की वजह से वहां के लोगों ने हज़रत पैग़म्बर को पत्थर मार मारकर लहू लुहान कर दिया था। जब पैग़म्बर लौटकर अपने दोस्तों के बीच में आये और जब उनसे यह कहा गया कि वे तायफ़ वालों को श्राप दें तो पैग़म्बर ने नीचे लिखी प्रार्थना की—

"ऐ मेरे अल्लाह! मेरी क़ौम को ठीक ठीक रास्ता दिखा। ये अज्ञान हैं।"

इन लफ़्ज़ों में जितनी महानता और उदारता है उतनी ही क़ौमियत की ज़बर्दस्त और अटूट भावना है कि जिस पर तायफ़ के लोगों के अमानुषिक व्यवहार करने पर भी ज़र्ब नहीं आता।

हज़रत पैग़म्बर के मन में ज़िन्दगी भर क़ौमियत की यही भावना बनी रही और जब भी उन्होंने अपने देश वासियों को या उनके सरदारों को मुख़ातिब करके कुछ कहा या लिखा तो उन्हें अपनी "क़ौम" ही कह कर सम्बोधन किया। चूँकि हदीसों के मुस्तनद (प्रामाणिक) होने पर लोगों में मतभेद है और चूँकि हदीस उस तरह से अकाट्य नहीं मानी जातीं जिस तरह कि क़ुरान, इसलिये मैं बहस बचाने के लिये हदीसों से विस्तार के साथ हवाले न दूँगा। फिर भी एक बात बहुत दावे के साथ कही जा सकती है कि हदीसों में एक भी हदीस ऐसी नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसमें हज़रत पैग़म्बर ने कोई ऐसी बात कही हो कि जो क़ौमियत की उस परिभाषा से भिन्न हो जो हज़रत नूह, हज़रत मूसा, हज़रत इब्राहीम और दूसरे पैग़म्बरों ने की है। फिर हदीसों में ऐसे फ़िक़रे भी हैं जिनमें लफ़्ज़ क़ौम और मिल्लत दोनों इस्तेमाल हुये हैं और इसलिये उनके अलग अलग मायने साफ़ हो जाते हैं। मैं इस तरह का एक वाक्य मिसक़ात की हदीस से यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

"अहमद और अबु दाऊद को मुआविया से यह मालूम हुआ कि हज़रत पैग़म्बर ने कहा था कि—"मेरी मिल्लत से बहुत सी ऐसी क़ौमें पैदा होंगी जिनमें वहशियाना ख़ाहिश इतनी ज़्यादा हो जायगी जिस तरह एक पागल का हरकत करता हुआ सारा नरवस सिस्टम।"

हदीसों में कुछ ऐसी हदीसें भी हैं जिनसे ज़ाहिर होता है कि हज़रत पैग़म्बर के वक्त में ग़ैर मुसलमान भी ठीक इन्हीं मायनों में क़ौम लफ़्ज़ इस्तेमाल करते थे। मैं यहाँ बद्र की लड़ाई का एक वाक़ा पेश कर रहा हूँ जिसमें पैग़म्बर के ज़बर्दस्त दुश्मन अबु जेहल ने मैदाने जङ्ग में दम तोड़ते हुये कहा था—

"यह कोई फ़ख्र की बात नहीं है कि आदमी अपनी ही क़ौम के हाथों मारा जाय।"

जो सुलहनामे मुख़्तलिफ़ क़बीलों और क़ौमों के साथ किये गये उनमें, और जो ख़त मुख़्तलिफ़ मुल्कों के हुक्मराओं के पास भेजे गये उनमें, और दोस्तों के और जीते हुये मुल्कों के लिये इन्तज़ाम करने के वास्ते जो अफ़सर मुक़र्रर किये गये उन्हें जो हिदायतें भेजी गईं उनमें, लफ़्ज़ क़ौम हर जगह एक ही मायनों में इस्तेमाल हुआ है और क़ौमियत का ताल्लुक़ हर जगह अटूट तरीक़े से पैदायश के मुल्क से ही दिखाया गया है, फिर चाहे उस क़ौम के अन्दर कितने ही मुख़्तलिफ़ और परस्पर विरोधी सांस्कृतिक जत्थे क्यों न रहे हों।

इसके बाद शुरू के इसलाम की तारीख़ में भी हमें क़ौमियत का ख़याल ठीक इन्हीं मायनों में व्यक्त मिलता है। जब अरब क़ौम एक जीते जागते और सच्चे मज़हब से प्रभावित होकर फैलने और बढ़ने लगी तो जिस जिस मुल्क को भी उन्होंने फतह करके आबाद किया वहीं की क़ौमियत को भी उन्होंने क़ुबूल कर लिया और ख़ुलफ़ाय राशदून (पहले चार ख़लीफ़ों) के ख़ात्मे के एक सदी बाद हम देखते हैं कि अरबी ज़बान बोलने वाले लोग अब उन मुख़्तलिफ़ क़ौमों के नाम से पुकारे जाने लगे कि जिन मुल्कों में वे आबाद हो गये थे। जैसे जैसे वे पूरब और पश्चिम की ओर बढ़ते गये वैसे वैसे एक ही धर्म का पालन करने वाले और अक्सर एक ही अरबी ज़बान बोलने वाले लोगों की क़ौमियत की तादाद व शुमार भी बढ़ती गई। कुछ अरबों के बाद स्पेनी, मूर, मिस्री, यमनी और दूसरे लोग बिलकुल अलहदा अलहदा क़ौम बन गये और हाला कि वे सब अरबी ज़बान बोलते थे और उनकी एक ही सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परम्परा थी, लेकिन उन्होंने अपनी क़ौमियत को भौगोलिक चौहद्दियों में बाँट लिया और हर गिरोह अपनी अपनी ख़ास क़ौमियत पर फ़ख्र महसूस करने लगा। अरबों के बाद इसलामी दायरे में ईरानी तुर्क और अफ़ग़ानों का प्रवेश हुआ। इनकी अपनी अलग क़ौमी ज़बानें थीं। हालाकि ज़िन्दगी का और ज़िन्दगी पर उनका वही नज़रिया था जो कि अरबों का था, फिर भी वे अपनी जुदा जुदा क़ौमियतों के नाम से मशहूर हुये। तुर्क तुर्क थे, ईरानी ईरानी थे, अफ़ग़ान अफ़ग़ान थे और अरब अरब थे, यह दूसरी बात है कि वे ज़िन्दगी के बुनियादी मसलों को एक ही नुक़्ते निगाह से देखते थे और उसी एक पाक काबा की तरफ मुँह करके नमाज़ पढ़ने में शरीक होते थे। इसलाम की तारीख़ में शुरू से आख़िर तक क़बीलों, गिरोहों और क़ौमियत का एक ही उसूल अमल में आता रहा। दुनिया के किसी हिस्से में जहां जहां मुसलमान बसे हुये हैं वे उन्हीं मुल्कों में बसी हुई क़ौमों के साथ अपनी क़ौमियत में एक हैं और दुनिया के दूसरे हिस्सों में बसे हुये अपने हम मज़हब मुसलमानों से बिलकुल साफ़ अलग दिखाई देते हैं। इस तरह एक चीनी मुसलमान चीनी है और अपने मुल्क में रहने वाले बौद्धों और ईसाइयों के साथ उसकी कहीं ज़्यादा हमजिन्सियत और एकता है बमुक़ाबले अरबों या उत्तरी अफ़रीका के रहने वाले मुसलमानों के साथ; और चीनी मुसलमान इन मुल्कों में रहने वाले अपने हममज़हब ग़ैर चीनियों के साथ कभी भी क़ौमियत के धागे में नहीं बँध सकता। ऐसे मुल्क जिनकी हदें लगी हुई हैं और जो एक ही ज़बान बोलने वाले हैं जैसे ईरानी मुसलमान जो अफ़ग़ान मुसलमानों से अलग क़ौमियत में बिलकुल जुदा हैं और हालाकि दोनों अलग ज़बान बोलते हैं और दोनों की भौगोलिक सरहदें बिलकुल मिली हुई हैं। इसी तरह एक मिस्री मुसलमान अलग क़ौमियत में अपने कुफ़्ती ईसाई देशवासी से ज़्यादा क़रीब है बमुक़ाबले एक अरब के, हालाकि दोनों अरबी ज़बान बोलते हैं और दोनों मुसलमान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दुस्तानी प्रचार

डाक्टर जाफ़र हसन, अध्यापक उस्मानिया यूनिवर्सिटी

## हिन्दुस्तानी प्रचार के तरीक़े :

हिन्दुस्तानी भाषा का प्रश्न हमारे देश के अत्यन्त कठिन प्रश्नों में से एक है। एक तरफ़ प्रान्तीय भाषाएं बढ़ती हुई अहमियत हासिल कर रही हैं, दूसरी तरफ़ हिन्दी उर्दू की फूट ज़्यादा बढ़ती जा रही है। उस पर तुर्रा यह कि सारे देश पर अंग्रेज़ी छाई हुई है और इसका ज़ोर धीरे धीरे बढ़ता ही जा रहा है। अब वह समय नहीं रहा कि अंग्रेज़ी केवल सरकारी दफ़्तरों और पाठशालाओं की ज़बान हो। अब तो अंग्रेज़ी हमारी व्यापारी, राजकारी, साइन्सी और समाजी ज़बान भी होती जा रही है। साधारण व्यापारियों से लेकर बड़े बड़े ताजरों तक अक्सर दुकानों, फ़र्मों और कम्पनियों के नाम, साइनबोर्ड और दफ़्तरी कारबार सभी अङ्गरेज़ी में होता है। बैङ्कों और कारख़ानों का भी यही हाल है। कांग्रेस, मुसलिम लीग, हिन्दू-महासभा और दूसरी राजकारी संस्थाओं का कामकाज ज़्यादातर अङ्गरेज़ी में ही होता है। तमाम तजवीज़ें अङ्गरेज़ी में ही लिखी जाती हैं। नेताओं के पयाम और बयान अङ्गरेज़ी में ही निकलते हैं। इनका हिन्दी अनुवाद या उर्दू तर्जुमा अगर छपता भी है तो ग़लतसलत या अधूरा। बनारस की हिन्दू यूनिवर्सिटी और अलीगढ़ की मुस्लिम यूनिवर्सिटी दोनों के यहां अङ्गरेज़ी का राज है।

समाज में भी अङ्गरेज़ी का बोलबाला होता जा रहा है। शादी ब्याह के कार्ड छपते हैं तो अङ्गरेज़ी में। समाजी मुलाक़ातों में भी बातचीत होती है तो अङ्गरेज़ी में। बाप बेटे को, बेटा माँ को, बीवी मियाँ को और पति पत्नी को ख़त लिखता है तो अङ्गरेजी में और यह हाल तमाम शहरों के खातेपीते घरानों का है।

इसीलिये मेरा यक़ीन है कि हिन्दी हो या उर्दू, दोनों में इतना आपसी वैर नहीं जितना दोनो का अङ्गरेज़ी से है। हिन्दी और उर्दू में थोड़ा सा आपसी झगड़ा ज़रूर है मगर दोनों को जितना नुक़सान अङ्गरेज़ी के कारण हो रहा है उसका पाई भी आपस के झगड़े की वजह से नहीं हो रहा है। अगर हिन्दी प्रेमी और उर्दू के हामी एक दूसरे का पीछा करना छोड़कर अपने अपने घरबार को अङ्गरेज़ी से और हिन्दुस्तान की हद तक भूली बिसरी ज़बानों से बचाने की कोशिश करें तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी उर्दू दोनों की भलाई होगी, दोनों आप ही आप एक दूसरे के क़रीब होती जायेंगी और इन दोनों के मेल से हिन्दुस्तानी का प्रचार होगा। गोया हिन्दुस्तानी प्रचार के लिये यह प्रोपेगेण्डा अवश्य करना चाहिये कि हिन्दी प्रेमी और उर्दू के हामी अपनी अपनी ख़ैर मनायें, आपस के झगड़े टण्टे कम करें, जिससे हम दोनों को घाटा हो रहा है।

मिसाल के तौर पर देखिये कि उर्दू घरानों में उर्दू की कैसी बेइज़्ज़ती हो रही है और हिन्दी प्रेमियों के कारण हिन्दी का कैसा घोर अपमान हो रहा है। सरकारी ज़बान उर्दू हो या हिन्दी, देश के हर प्रान्त में हज़ारों मालदार और तालीम पाये हुए ख़ान्दानों के सपूत अङ्गरेज़ी की पूजा करते हैं। बच्चे और नौजवान सब के सब अङ्गरेज़ी मदरसों, हाई स्कूलों और कालेजों में तालीम पाते हैं। माँ को ममी, बाप को डैडी, ख़ाला को आण्टी और मामा को अंकिल कहना मासूम बच्चों को सिखाया जाता है। पिताजी या अब्बाजान कहलाये जाने में इन्हें शर्म आती है। आपको याद होगा कि दो तीन बरस पहिले कानपुर में उर्दू की कुल हिन्द कानफ्रेंस हुई थी। इस कानफ्रेंस की तरफ़ से बाज़ रुक्के और दावतनामे तकसीम हुए थे, जो अंग्रेज़ी में छपे हुए थे। हैदराबाद की हिन्दी प्रचार सभा ने दावती रुक्का भेजा तो अंग्रेज़ी भाषा में। खुद मैं ऐसे बीसियों उर्दू घरानों को जानता हूँ, जहां अंग्रेज़ी अख़बार आता है। माहाना रिसाले भी अंग्रेज़ी के होते हैं। कई हिन्दी घरानों में एक भी दैनिक, सप्ताहिक पत्र हिन्दी का नहीं आता। टाइम्स डेली या वीकली पढ़ा जाता है। अच्छे हिन्दी के प्रेमी या उर्दू के हामी हैं जो अंग्रेज़ी पत्रों के पढ़ने से हिन्दी या उर्दू की तरक़्क़ी चाहते हैं!

हिन्दुस्तानी की तरक़्क़ी के लिये एक तरीक़ा तो यही है जिसका मैंने अभी ज़िक्र किया है, यानी लोगों को यह बताना, समझाना और लगातार प्रोपेगेण्डा के ज़रिये यह यक़ीन दिलाना कि हिन्दी की तरक़्क़ी चाहो या उर्दू की तरक़्क़ी, हर हालत में अपने आपको अंग्रेज़ी से बचाकर अपनी मातृभाषा के सच्चे भक्त बनना लाज़मी है। और अपनी मातृभाषा के सच्चे भक्त बनने के लिये अपनी ज़बान को आसान बनाना लाज़मी है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़बान को आसान बनाने के तीन तरीक़े हैं। एक तो यह कि तलफ़्फ़ुज़ या उच्चारण आसान हो और हम चाहे नागरी अक्षरों में लिखें या उर्दू हरफ़ों में, जैसा लिखें वैसा ही पढ़ें और जैसा बोलते हैं वैसा पढ़ें। मतलब यह कि दोनों लिखावटों को आसान कर दिया जाय और आख़िर में जो नये नये शब्द या इस्तलाहें बनानी पड़ें, उन्हें जहां तक बन पड़े, चालू लफ़्ज़ों की सहायता से बनाने की कोशिश करें। इस कोशिश से उर्दू और हिन्दी दोनों एक दूसरे से क़रीब होती जायेंगी और दोनों भाषाओं में मिले जुले लफ़्ज़ों की जो पूंजी है उसमें इज़ाफ़ा होगा।

मैं जानता और मानता हूँ कि अदबी उर्दू या साहित्यिक हिन्दी को बदलना मुमकिन नहीं। मुझे हिन्दी साहित्य से उतना ही प्रेम है जितना कि अंग्रेज़ी या जरमन लिटरेचर और उर्दू अदब से है। मैं कभी नहीं चाहूँगा कि कबीर और तुलसीदास, वृन्द और भूषण, रहीम और मलिक मुहम्मद जायसी के ग्रन्थों को समझने वाले और इनसे आनन्द उठाने वाले कम हो जायें। इसी तरह ग़ालिब, अनीस, हाली और इक़बाल के अदब में जो अनमोल अदबी ख़ज़ाना है उसकी क़दर हर शख़्श करेगा, जिसे अदब से लगाव है। ज़ाहिर है कि इन महाकवियों की ज़बान बदलना मुमकिन नहीं और न हम वह चाहेंगे कि आइंदा जो बड़े बड़े अदीब और शायर हों, वे अपनी ज़बान बदलकर ऐसी ज़बान लिखें जो किसी को पसन्द न आये मगर हम यह ज़रूर कर सकते हैं और हमें आपस के फ़ायदे के लिये और ख़ुद अपने फ़ायदे के लिये यह करना ही होगा कि अपने इलमी, साइंसी और कारोबारी शब्दों को ऐसा आसान बनायें जो हिन्दी और उर्दू दोनों के लिये मौजूँ हो सकें। मैं समझता हूं कि हर इस्तलाह के लिये किसी ऐसे शब्द की तलाश करना जो उर्दू में चल सके मुमकिन नहीं। मगर थोड़ी सी कोशिश से इस क़िस्म के बीसियों ही नहीं, सैकड़ों बल्कि हज़ारों लफ़्ज़ बन सकते हैं। मसलन Right Angle को हिन्दी में समकोण और उर्दू में ज़ाक्ये क़ायमा कहते हैं। अगर इसे हम सीधा कोना कहें तो दोनों के लिये आसानी है। Low land को निम्न भूमि या नशेबी ज़मीन कहने से निचली ज़मीन कहना बहरहाल बेहतर है। Law of Diminishing Return के लिये पच्चीस या तीस साल हुए क़ानून तक़्लील हासिल की डरावनी इस्तलाह बनाई गई थी। इसी को हिन्दी की वैज्ञानिक भाषा में क्रमागत ह्रास का नियम कहा जाता है। पाँच छै साल हुए इसका तरजुमा घटती उपज का क़ानून किया गया है, जो हिन्दी और उर्दू दोनों ज़बानों में चल सकता है। बिहार की हिन्दुस्तानी कमेटी ने Planet के लिये चलतारा; Isthmus के लिये ज़मीन जोड़; Strait के लिये पनजोड़ Axiom के लिये आप सच Postulate के लिये मान सच जैसे शब्द तजवीज़ किये हैं। मेरी राय में ये लफ़्ज़ बहुत अच्छे हैं और उर्दू और हिन्दी दोनों में चल सकते हैं। हिन्दी प्रेमी ऐसे शब्दों के बनाने में बिला वजह संस्कृत से मदद लेते हैं और उर्दू के हामी फ़ारसी और अरबी से। यह भी एक वजह है कि हिन्दी को हिन्दी के नाममात्र प्रेमियों से और उर्दू को उर्दू के नामनिज़ाद हामियों से बड़ा नुक़सान हो रहा है। दोनों अपनी ज़बान को भारी भारी और भयानक शब्दों से कठिन और बोझिल बना रहे हैं। सच्चा हिन्दी प्रेम बहुत कम लोगों में पाया जाता है। अक्सर हिन्दी प्रेमियों के दिल और दिमाग़ में अंग्रेज़ी लगन, संस्कृत की पूजा और उर्दू का विरोध पाया जाता है। हिन्दी से लगन, हिन्दी की पूजा और हिन्दी की सेवा करने का ध्यान बहुत ही कम लोगों को है।

यही हाल उर्दू के हामियों का है। वे उर्दू पर फ़रेफ़्ता (आशिक़) हैं। अरबी और इससे ज़्यादा फारसी से इनके दिल व दिमाग मरऊब हैं। और इन्हें हिन्दी से कपट है। तभी तो ये लोग आसान लफ़्ज़ों को छोड़कर भारी भारी अरबी फ़ारसी अलफ़ाज़ डिक्शनरियों से तलाश कर करके निकालते हैं और आसानी का ज़िक्र किया जाय तो कहते हैं देखो हिन्दी वालों को, कैसे संस्कृत के शब्द हमारी ज़बान में ठूँस रहे हैं। मैं हिन्दी प्रेमियों और उर्दू के हामियों दोनों से कहता हूँ कि दूसरा फ़रीक़ माने या न माने, तुम ख़ुद ठीक रास्ते पर चलो और जीत उसी की होगी जो अपने बोझ को हलका करेगा। संस्कृत शब्दों से लदी हिन्दी और अरबी फारसी लफ़्ज़ों और तरकीबों से लदी हुई उर्दू ख़ुद आपको आपको ज़्यादा नुक़सान पहुंचाती हैं। इसीलिये मैं हिन्दी प्रेमियों से कहता हूँ कि आपको सबसे ज़्यादा नुक़सान अंग्रेज़ी और कठिन हिन्दी की वजह से हो रहा है और इन दोनों से होशियार रहिये। उर्दू वालों को मुख़ातिब करके कहता हूँ कि आपको हिन्दी से ज़्यादा नुक़सान नहीं हो रहा बल्कि अंग्रेज़ी से और मुशकिल उर्दू से। लिहाज़ा हिन्दी प्रेमी हों या उर्दू के हामी, दोनों का फ़र्ज़ है कि जहां तक बन पड़े अपनी ज़बान और लिखावट को आसान बनायें। इसका एक तरीक़ा तो यही है कि चालू शब्दों के सहारे नये नये शब्द बनाये जायें और सिर्फ़ मजबूरी की सूरत में ही हिन्दी संस्कृत से और उर्दू फ़ारसी से मदद ले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आपकी आज्ञा से मैं चन्द और लफ़्ज़ों को बतौर मिसाल पेश करना चाहता हूं। जो मेरे ख़याल में आसान उर्दू या सरल हिन्दी के अच्छे नमूने हैं। Colourblind के लिये उर्दू में अमीउल लोब जैसी तरकीब इस्तेमाल हो चुकी है। मौलवी अब्दुल हक़ साहब ने अंग्रेज़ी उर्दू डिक्शनरी की तरतीब के वक़्त Colourblind और Colourblindness के लिये रंगोदा और रंगोदिया लफ़्ज़ बनाये हैं जो रंग और अन्धा से रतोंदा के वज़न और तरकीब पर बनाये गये हैं। हम हिन्दी या उर्दू में रात, रंग और अन्धा तीनों बोलते हैं। लेहाज़ा रतोंदा और रंगोदा बोलना और समझना आसान है, रतोंदा पुराना; रंगोदा नया लफ़्ज़ है और बहुत अच्छा है। पंडित ब्रजमोहन दत्तात्रय कैफ़ी ने भी बाज़ बहुत उम्दा लफ़्ज़ बनाये हैं। मसलन Oil Engine के लिये तिलअन, Explosive के लिये भड़कील।

Propaganda के लिये हिन्दी या उर्दू में कोई निजी लफ़्ज़ नहीं, और यह अंग्रेज़ी के ज़रिये आया हुआ है। लातीनी भाषा का यह शब्द सारे देश में चल पड़ा। एक मरतबा Counter Propoganda के लिये मैंने उर्दू में जवाबी प्रोपेगेण्डा की नई इसतलाह देखी। मुझे ख़्याल आया कि Counter Propaganda के लिये अगर तोड़ प्रोपेगेण्डा लिखा जाता तो और बेहतर होता। इसी वज़न और तरीक़े पर हम Counter Revolution को तोड़ इनक़लाब; Counter attraction के लिये तोड़ कशिश; Counter act के लिये तोड़ अमल कह सकते हैं। मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर मैंने Floral Tribute के लिये फूलचढ़ावा और reverse या reversal के लिये पिछलाना और पिछलाव, Census के लिये गिनावा इस्तेमाल किया है। Census को उर्दू में मरदुमशुमारी और हिन्दी में मनुष्यगणना कहते हैं। आप हिन्दी प्रेमियों से पूछिये कि वे मरदुमशुमारी क़बूल कर सकते हैं। मरदुम का लफ़्ज हिन्दी तो हिन्दी, उर्दू में भी जनहा इस्तेमाल नहीं होता और census में सिर्फ़ इनसानों की शुमारी ही नहीं होती बल्कि धन दौलत की सभी चीज़ों की शुमार होती है। लिहाज़ा Census को सिर्फ़ गिनाव या गिनावा कहना मरदुमशुमारी की मुशकिल तरकीब से आसान भी है और बेहतर भी। Pentagon और Hexagon को हिन्दी में पंचभुज और षटकोण कहने की कोशिश करवाई जाती है। उर्दू के फारसी अरबी जानने वाले मख़मस और मुसद्दस या शशगोश की तरकीब बताना चाहते हैं। इनके बजाय पंचकोनियां या छकोनियां की तरकीब कितनी आसान हैं। इसी तरह हम तिकोनियां, चौकोनियां,, सतकोनियां, अठकोनियां की तरकीबें बना ले सकते हैं। ग़रज़ यह कि थोड़ी सी कोशिश से ग्रामर, हिसाब, जुगराफ़िया, तारीख़ और राजकार के सैकड़ों हज़ारों आसान लफ़्ज़ बनाये जा सकते हैं, जो उर्दू और हिन्दी दोनों ज़बानों में चल सकते हैं। ऐसे ही शब्दों को बनाना और चलाना हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का सबसे बड़ा कर्तव्य होना चाहिये।

आसान लफ़्ज़ों के बाद ज़बान को आसान बनाने का दूसरा उपाय आसान तलफ़्फ़ुज़ या सरल उच्चारण है और सरल उच्चारण से मुराद आमतौर पर प्रचलित उच्चारण से है। जो लफ़्ज़ हिन्दी में या उर्दू में जिस तरह आमतौर पर बोला जाता है, वही सही है। जो लफ़्ज़ पढ़े लिखे लोग, इनके ख़ानदान वाले और मुख़तलिफ़ पेशों और तबक़ों के नुमाइन्दे जिस तरह बोलते हैं, वह सही है। चाहे वह लफ़्ज़ अरबी का हो या फ़ारसी का, संस्कृत का हो या अंग्रेज़ी का, हिन्दुस्तानी प्रचार के लिये यह उसूल हमेशा याद रखना चाहिये कि हमें हिन्दुस्तानी प्रचार की हद तक, संस्कृत, अङ्गरेज़ी, अरबी और फ़ारसी के उच्चारणों से कोई वास्ता नहीं रहेगा। जो लफ़्ज़ हमारी माँ, बहिनें, बीवियाँ और बेटियाँ जिस तरह बोलती हैं और जिस लफ़्ज़ का जो तलफ़्फ़ुज़ हममें से अक्सर पढ़े लिखे लोग ख़ुद करते हैं उसे ग़लत ठहराना बड़ी भारी भूल है। हर ज़बान का ख़ास उच्चारण होता है और जो लफ़्ज़ दूसरी ज़बान से आकर इस ज़बान में घुलमिल जाते हैं, उनका तलफ़्फ़ुज़ बदल जाता है। यह तबदीली बिलकुल समझदारी की और लाज़मी है। दुनियाँ की हर ज़बान में हमेशा से यह होता आ रहा है, और यही होता रहेगा। हम भी अपने घरों में या आम बोलचाल में ग़ैर ज़बानों के हर लफ़्ज़ को इसी तरह बोलते हैं जैसे सब लोग बोलते हैं। मगर हममें से आज लोग अपनी क़ाबलियत जताने के लिये या ज़बांदानियत का रोब गाँठने के लिये कहते हैं कि फलाँ लफ़्ज़ का तो तलफ़्फ़ुज़ यों नहीं यों है। यह तलफ़्फ़ुज़ बिगड़ गया है। यह शब्द अपभ्रंश है। गरम चाय कहना ग़लत है क्यों कि गरम फ़ारसी लफ़्ज़ है। दीवाली सही नहीं। दिवाली दीपावलि का बिगड़ा हुआ रूप है। राज नहीं राज्य बोलना चहिये, क्योंकि राज अपभ्रंश है।

हम लोगों के लिये क़ाबिल अफ़सोस और शर्मनाक छुटपन (Inferiority complex) का इससे बढ़कर सुबूत क्या हो सकता है कि हम जिस ज़बान का प्रचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहते हैं उसी पर ग़ैर ज़बानों के उसूल और क़ायदे लादकर चलती गाड़ी में रोड़े अटका रहे हैं। मैं जब कभी किसी किताब में बिगाड़ या अपभ्रंश पढ़ता हूँ मुझे दुख होता है और जब कभी मैं किसी उर्दू के हामी को यह कहते हुये सुनता हूं कि फलाँ लफ़्ज़ का सही तलफ़्फ़ुज़ यों नहीं है और जब कभी कोई हिन्दीप्रेमी कहता है कि फलाँ शब्द का शुद्ध उच्चारण यह नहीं यह है तो मेरा यह यक़ीन पक्का हो जाता है कि हिन्दी को हिन्दी के नाममात्र प्रेमियों और उर्दू को उर्दू के नामनिहाद हामियों से जितना नुक़सान पहुँच रहा है उतना आपस के झगड़ों से नहीं।

संस्कृत की पूजा करने वाले लोकप्रचलित हिन्दी उच्चारण को अशुद्ध ठहराते हैं और हमारे उच्चारण को हिक़ारतआमेज़ लफ़्ज़ से ताबीर करते हैं। अरबी और फ़ारसी की क़दर करने वाले उर्दू में अरबी फ़ारसी लफ़्ज़ों में जो तबदीली क़ुदरती तौर पर होती है उसी की बिगाड़ से ताबीर करके हमारी तौहीन करते हैं। हिन्दी उर्दू के इन नादान दोस्तों की कोशिशें कभी सफल नहीं हो सकतीं। मगर इनके कारण हिन्दी की उन्नति या उर्दू की तरक़्क़ी में दिक़्क़तें पैदा हो रही हैं और हिन्दुस्तानी के फैलने की रफ़्तार बहुत धीमी है। हिन्दुस्तानी प्रचार के लिये इस उसूल का प्रचार भी ज़रूरी है कि जो शब्द जनता में जिस प्रकार प्रचलित हो चुका है वह हिन्दुस्तानी भाषा का शब्द है। इसका जो उच्चारण हम करते हैं वह शुद्ध है और हमें इससे कोई बहस नहीं कि यह शब्द कहां से आया, असल में इसका क्या तलफ़्फ़ुज़ था या अब भी दूसरे देशों में कैसे बोला और लिखा जाता है। हिन्दुस्तानी प्रचार के लिये आम समझ लफ़्ज़ों का ख़याल रखना और आसान तलफ़्फ़ुज़ को सही मान लेना लाज़मी है।

हिन्दुस्तानी प्रचार के लिये मिले जुले लफ़्ज़ों और आसान उच्चारण के अलावा आसान लिखावटें भी लाज़मी हैं। लिखावट के बारे में तफ़सील से ज़िक्र करने का यह मौक़ा नहीं। हिन्दी और उर्दू लिखावटों को आसान बनाने के लिये मौजूदा लिखावटों में से हमआवाज़ हरफ़ों को यानी एक ही तरह से बोले जाने वाले हरफ़ों में से एक को रख कर दूसरों को छोड़ देना चाहिये। मसलन यह कि उर्दू में से ط, ض, ص, ث, ح, ذ और ع निकाल दिये जायें कि इनके हमआवाज़ ت, ز, س मौजूद हैं। हिन्दी लिखावट में से ऋ, ॠ, ङ, ञ, और ष को भी निकाल देना चाहिये और जहाँ एक ही हरफ़ दो मरतबा आता है या दो हरफ़ मिलाकर लिखे जाते हैं उनकी असल शक्ल बरक़रार रखनी चाहिये। उर्दू लिखावट को आसान बनाने की मुनज्जम कोशिश अब तक किसी जमाअत ने शुरू नहीं की। महात्मा गान्धी जी की लीडरी में राष्ट्र भाषा प्रचार समिति ने हिन्दी लिखावट को आसान बनाने की कोशिश शुरू की है। मगर अफ़सोस है कि हिन्दी संसार की बात है खुद हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने भी इस सिफ़ारिश को अख़्तियार नहीं किया है और राष्ट्र भाषा प्रचार के उसूलों को मानते हुए भी वह अपनी तमाम पुरानी और रिसाले पुरानी लिखावट में छाप रहा है।

आख़िर में मैं हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के अग्रवाल जी का शुक्रिया अदा करता हूँ कि उन्होंने यह मौक़ा दिया कि मैं अपने विचारों को प्रकट कर सकूं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि अक्सर लोग मेरे मुताल्लिक़ होंगे। और न सिर्फ़ हिन्दी प्रेमी बल्कि उर्दू के हामी भी बुरा भला कहेंगे। मगर हिन्दुस्तानी की तरक़्क़ी के लिये यह हैं कि उर्दू के कट्टर हामी और हिन्दी के कट्टर प्रेमी चाहे थोड़े बहुत नाराज़ हो जायें, लेकिन एक ऐसा रास्ता अख़्तियार किया जाये जो इनके नज़दीक ही चलता हो और आख़िर में इनसे जा मिलता हो। जिस तरह गंगा और जमुना का संगम प्रयाग में होता है वैसे ही हिन्दी और उर्दू का संगम हिन्दुस्तानी है। जिस तरह गंगाजी का पाक साफ़ पानी मुख़्तलिफ़ नदियों से आता है उसी तरह हिन्दुस्तानी की भी भिन्न भिन्न धाराएँ हैं। अरबी और मुशकिल उर्दू कठिन हिन्दी, राजस्थानी, पंजाबी, देहाती बोली और दक्खिनी, भाँति भाँति की ये धारा अपनी अपनी जगह भी बहुत अहम हैं और इनके अलग बहने में भी कोई ख़राबी नहीं, बशर्ते कि ये नुक़्ते पर आ मिलें और वह नुक़्ता है—हिन्दुस्तानी यानी आसान उर्दू या सरल हिन्दी। *

---

* हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा के सलाना जलसे में दी हुई तक़रीर। हम पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी के आभारी हैं कि जिन्होंने यह पूरा भाषण हमें 'विश्ववाणी' में प्रकाशित करने के लिये भेजा। इस भाषण की रिपोर्ट अप्रैल की 'विश्ववाणी' में निकल चुकी है। —सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# जैन कर्म सिद्धान्त

श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री

प्रत्येक प्राणी जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। मोटे तौर से यही कर्म सिद्धान्त का आशय है। इस सिद्धान्त को आत्मवादी दर्शन तो मानते ही हैं किन्तु अनात्मवादी बौद्ध दर्शन भी मानता है। साधारण तौर से जो कुछ किया जाता है उसे कर्म कहते हैं। परलोकवादी दार्शनिकों का मत है कि हमारा प्रत्येक अच्छा या बुरा कर्म अपना संस्कार छोड़ जाता है। अतः यद्यपि कर्म क्षणिक होता है तथापि उसका संस्कार फल-काल तक स्थायी रहता है। और संस्कार से कर्म तथा कर्म से संस्कार की परम्परा अनादि काल से चली आती है। इसी का नाम संसार है। किन्तु जैन दर्शन के अनुसार कर्म का स्वरूप किसी अंश में इस मत से भिन्न है।

## जैन दर्शनानुसार कर्म का स्वरूप

जैन दर्शन के अनुसार कर्म दो प्रकार के होते हैं—एक द्रव्य कर्म और दूसरा भावकर्म। यद्यपि अन्य दर्शनों में भी इस प्रकार का विभाग पाया जाता है और भावकर्म की तुलना अन्य दर्शनों के संस्कारों के साथ तथा द्रव्य-कर्म की तुलना योग दर्शन की वृत्ति और न्याय दर्शन की प्रवृत्ति के साथ की जा सकती है, तथापि जैन दर्शन के कर्म और अन्य दर्शनों के कर्म में बहुत अन्तर है। जैन दर्शन में कर्म केवल एक संस्कार मात्र ही नहीं है किन्तु एक वस्तुभूत पदार्थ है, जो रागी द्वेषी जीव की क्रिया से आकृष्ट होकर जीव के साथ उसी तरह घुलमिल जाता है जैसे दूध में पानी। वह पदार्थ है तो भौतिक, किन्तु उसका कर्म नाम इसलिए रूढ़ हो गया है क्योंकि जीव के कर्म अर्थात् क्रिया की वजह से आकृष्ट होकर वह जीव से बँध जाता है। आशय यह है कि जहाँ अन्य दर्शन राग और द्वेष से आविष्ट जीव की प्रत्येक क्रिया को कर्म कहते हैं और उस कर्म के क्षणिक होने पर भी तज्जन्य संस्कार को स्थायी मानते हैं वहाँ जैन दर्शन का मन्तव्य है कि राग द्वेष से आविष्ट जीव की प्रत्येक क्रिया के साथ एक प्रकार का द्रव्य आत्मा में आता है, जो उसके राग द्वेष रूप परिणामों का निमित्त पाकर आत्मा से बँध जाता है। कालान्तर में यही द्रव्य आत्मा को शुभ या अशुभ फल देता है। इसका खुलासा इस प्रकार है—

जैन दर्शन छै द्रव्य मानता है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। अपने चारों ओर जो कुछ हम चर्म चक्षुओं से देखते हैं, सब पुद्गल द्रव्य है। यह पुद्गल द्रव्य २३ तरह के वर्गों में विभक्त है। उन वर्गों में से एक कार्मण वर्ग भी है, जो समस्त संसार में व्याप्त है। यह कार्मण वर्ग ही जीवों के कर्मों का निमित्त पाकर कर्म रूप में परिणित हो जाता है। जैसा कि आचार्य कुन्द-कुन्द ने ने लिखा है—

"परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोस जुदो।
तं पविसदि कम्मरयंणाणावरणादि भावेहिं ॥ ६५ ॥"
—प्रवचनसार

अर्थात्—जब राग-द्वेष से युक्त आत्मा अच्छे या बुरे कामों में लगता है, तब कर्मरूपी रज ज्ञानवरणादिरूप से उसमें प्रवेश करता है।

इस प्रकार जैन सिद्धान्त के अनुसार कर्म एक मूर्त पदार्थ है, जो जीव के साथ बन्ध को प्राप्त हो जाता है।

जीव अमूर्तिक है और कर्मद्रव्य मूर्तिक। ऐसी दशा में उन दोनों का बन्ध ही सम्भव नहीं है। क्योंकि मूर्तिक के साथ मूर्तिक का बन्ध तो हो सकता है, किन्तु अमूर्तिक के साथ मूर्तिक का बन्ध कदापि सम्भव नहीं है। ऐसी आशंका की जा सकती है, जिसका समाधान निम्न प्रकार है—

अन्य दर्शनों की तरह जैन दर्शन भी जीव और कर्म के सम्बन्ध के प्रवाह को अनादि मानता है। किसी समय यह जीव सर्वथा शुद्ध था बाद को उसके साथ कर्मों का बन्ध हुआ, ऐसी मान्यता नहीं है। क्योंकि इस मान्यता में अनेक विप्रतिपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। पञ्चास्तिकाय में जीव और कर्म के इस अनादि-सम्बन्ध को जीव पुद्गल कर्म चक्र के नाम से अभिहित करते हुए लिखा है—

जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।
परिणामादो कम्मं कम्मादो होदि गदिसु गदी ॥१२८॥
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इन्दियाणि जायते।
ते हिन्दु विसयगहणं तत्तो रागो व दोसो वा ॥१२९॥
जायदि जीवस्सेवं भावो संसार चक्कवालम्मि।
इदि जिणवरेहिंभणिदो अणादिणिधणो सणिधणो वा ॥
॥१३०॥

अर्थात्—जो जीव संसार में स्थित है अर्थात् जन्म और मरण के चक्र में पड़ा हुआ है उसके राग और द्वेष रूप परिणाम होते हैं। परिणामों से नये कर्म बँधते हैं। कर्मों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गतियों में जन्म लेना पड़ता है। जन्म लेने से शरीर होता है। शरीर में इन्द्रियाँ होती हैं। इन्द्रियाँ विषयों को ग्रहण करती हैं। विषयों के ज्ञान से राग और द्वेष रूप परिणाम होते हैं। इस प्रकार संसार रूपी चक्र में पड़े हुये जीव के भावों से कर्म और कर्म से भाव उत्पन्न होते रहते हैं। यह प्रवाह अभव्य जीव की अपेक्षा से अनादि अनन्त है और भव्य जीव की अपेक्षा से अनादि सान्त है।

इससे स्पष्ट है कि जीव अनादिकाल से मूर्तिक कर्मों से बँधा हुआ है। जब जीव मूर्तिक कर्मों से बँधा है, तब उसके जो नये कर्म बँधते हैं वे कर्म जीव में स्थित मूर्तिक कर्मों के साथ ही बँधते हैं, क्यों कि मूर्तिक का मूर्तिक के साथ संयोग होता है और मूर्तिक का मूर्तिक के साथ बन्ध होता है। अतः आत्मा में स्थित पुरातन कर्मों के साथ ही नये कर्म बन्ध को प्राप्त होते रहते हैं। इसी प्रकार परम्परा से कथञ्चित् मूर्तिक आत्मा के साथ मूर्तिक कर्म द्रव्य का सम्बन्ध जानना चाहिये।

सारांश यह है कि अन्य दर्शन क्रिया और तज्जन्य संस्कार को कर्म कहते हैं किन्तु जैन दर्शन जीव से सम्बद्ध मूर्तिक द्रव्य और उसके निमित्त से होने वाले राग द्वेषरूप को कर्म कहता है।

## कर्म अपना फल कैसे देते हैं

ईश्वर को जगत का नियन्ता मानने वाले वैदिक दर्शन जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र और उसका फल भोगने में परतन्त्र मानते हैं; जैसा कि महाभारत में लिखा है—

"अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गंवाश्वभ्रमेव वा॥"

अर्थात—यह अज्ञप्राणी अपने सुख और दुख का स्वामी नहीं है ईश्वर के द्वारा प्रेरित होकर वह स्वर्ग अथवा नरक में जाता है।

भगवद् गीता में भी लिखा है—

'लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हितान्॥'७-२२॥

अर्थात्—मैं जिसका निश्चय कर देता हूँ वही इच्छित फल मनुष्य को मिलता है।

इस प्रकार कर्मों का फल ईश्वराधीन होने पर भी फल का निर्णय प्राणियों के अच्छे बुरे कर्म के अनुरूप ही किया जाता है। जैसा कि भगवत्गीता में लिखा है—

'नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः' ।५-१५।

अर्थात्—परमेश्वर न तो किसी के पाप को लेता है और न पुण्य को, अर्थात् प्राणिमात्र को अपने कर्मानुसार सुख दुःख भोगने पड़ते हैं।

इस प्रकार जो परमेश्वर को सारी सृष्टि का संचालक मानते हैं, उनके मत से कर्म फल का देने वाला परमेश्वर से भिन्न कोई दूसरा हो ही कैसे सकता है? किन्तु जैन दर्शन ईश्वर को सृष्टि का नियन्ता नहीं मानता, अतः कर्म फल देने में भी उसका हाथ हो ही कैसे सकता है? ऐसी दशा में यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि तब कर्मफल कौन देता है? अचेतन कर्मों में स्वयं तो यह शक्ति हो नहीं सकती, कि वे अपना अच्छा या बुरा फल स्वयं दे सकें। उसके लिए तो कोई बुद्धिमान चेतन ही होना चाहिए।

जैन दर्शन कहता है कि कर्म अपना फल स्वयं देते हैं, उसके लिए किसी अन्य न्यायाधीश की आवश्यकता नहीं है। जैसे, शराब नशा करती है और दूध पुष्टई करता है। जो मनुष्य शराब पीता है उसे बेहोशी होती है और जो दूध पीता है उसके शरीर में पुष्टता आती है। शराब या दूध पीने के बाद यह आवश्यकता नहीं होती, कि उसका फल देने के लिए कोई दूसरी नियामक शक्ति हो। उसी तरह जीव के प्रत्येक कायिक, वाचिक, और मानसिक परिस्पन्दन के साथ जो कर्म परमाणु जीवात्मा की ओर आकृष्ट होते हैं और राग-द्वेष का निमित्त पाकर उससे बँध जाते हैं, उन कर्म परमाणुओं में भी शराब और दूध की तरह अच्छाई और बुराई करने की शक्ति रहती है, जो चैतन्य के सम्बन्ध से व्यक्त होकर उस पर अपना प्रभाव डालती है और उसके प्रभाव से मुग्ध हुआ जीव ऐसे काम करता है जो उसे सुखदायक या दुःखदायक होते हैं। यदि कर्म करते समय जीव के भाव अच्छे होते हैं तो बँधने वाले कर्म परमाणुओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और कालान्तर में उससे अच्छा ही फल मिलता है। तथा यदि बुरे भाव होते हैं तो बुरा असर पड़ता है और कालान्तर में उसका फल भी बुरा ही मिलता है। मानसिक भावों का अचेतन वस्तु के ऊपर कैसे प्रभाव पड़ता है और उस प्रभाव की वजह से उस अचेतन का परिपाक कैसे अच्छा या बुरा होता है, इत्यादि प्रश्नों के समाधान के लिए हमें डाक्टरों और वैद्यों के भोजन सम्बन्धी नियमों पर एक दृष्टि डालनी चाहिये। वैद्यकशास्त्र के अनुसार भोजन करते समय मन में किसी तरह का क्षोभ नहीं होना चाहिये। भोजन करने से आधा घण्टा पहले से लेकर भोजन करने के आधा घण्टा बाद तक मन में कोई अशान्तिकारक विचार न आना चाहिये। ऐसी दशा में जो भोजन किया जाता है उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


परिपाक अच्छा होता है और वह विकारकारक नहीं होता, किन्तु इसके विपरीत यदि काम क्रोधादि भावों की दशा में भोजन किया जाये तो उसका परिपाक ठीक नहीं होता। दूसरे स्पष्ट है कि कर्ता के भावों का असर अचेतन पर पड़ता है और उसी के अनुसार उसका विपाक होता है। अतः जीव को कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र मानने की आवश्यकता नहीं है।

यदि ईश्वर को फलदाता माना जाता है तो जहाँ एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का घात करता है वहाँ घातक को दोष का भागी नहीं होना चाहिये क्योंकि उस मनुष्य के द्वारा ईश्वर मरने वाले को मृत्यु का दंड दिलाता है। जैसे राजा जिन पुरुषों के द्वारा अपराधियों को दण्ड दिलाता है वे पुरुष अपराधी नहीं कहे जा सकते क्योंकि वे राजाज्ञा का पालन करते हैं। उसी तरह किसी का घात करनेवाला घातक जिसका घात करता है उसके पूर्वकृत कर्मों का उसे फल भुगताता है, क्योंकि ईश्वर ने उसके पूर्वकृत कर्मों की यही सज़ा नियत की होगी तभी तो उसका बध किया गया। यदि कहा जाये कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है अतः घातक का कार्य ईश्वरप्रेरित नहीं है किन्तु उसकी स्वतन्त्र इच्छा का परिणाम है तो कहना होगा कि संसार दशा में कोई भी प्राणी वस्तुतः स्वतन्त्र नहीं है, सभी अपने कर्मों से बँधे हुये हैं। जैसा कि महाभारत में लिखा है—'कर्मणा बध्यते जन्तुः' अर्थात् प्राणी कर्म से बँधता है। और कर्म की परम्परा अनादि है ऐसी परिस्थिति में 'बुद्धिः कर्मानुसारिणी' अर्थात् कर्म के अनुसार प्राणी की बुद्धि होती है। न्याय के अनुसार किसी भी काम को करने या न करने के लिए मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है। शायद कहा जाये कि ऐसी दशा में तो कोई भी व्यक्ति मुक्ति लाभ नहीं कर सकेगा, क्योंकि जीव कर्म से बँधा है और कर्म अच्छे भी होते हैं और बुरे भी होते हैं। अतः अच्छे कर्म का अनुसरण करने वाली बुद्धि मनुष्य को सन्मार्ग की ओर ले जाती है। सन्मार्ग पर चलने से मुक्तिलाभ और कुमार्ग पर चलने से बन्ध लाभ होता है। अतः बुद्धि के कर्मानुसारिणी होने से मुक्तिलाभ में कोई बाधा नहीं आती।

जब उक्त प्रकार से कर्म करने में जीव स्वतन्त्र नहीं है तो घातक का घात रूप कर्म उसकी किसी दुर्बुद्धि का ही परिणाम होना चाहिये और बुद्धि की दुष्टता उसके किसी पूर्व कृत कर्म का फल होना चाहिये। किन्तु जब हम कर्म का फल ईश्वराधीन मानते हैं तो उसका उत्पादक ईश्वर को ही कहा जायगा। यदि हम ईश्वर को फलदाता न मानकर जीव के कर्मों में ही स्वतः फलदान की शक्ति मान लें, जैसा कि हम ऊपर बतला आये हैं, तो उक्त समस्यायें आसानी से हल हो जाती हैं क्योंकि मनुष्य के बुरे कर्म उसकी बुद्धि पर इस प्रकार के संस्कार डाल देते हैं जिससे वह क्रोध में आकर हत्या तक कर बैठता है। किन्तु जब हम ईश्वर को फलदाता मानते हैं तो हमारी विचार-शक्ति कहती है कि किसी विचारशील फलदाता को किसी व्यक्ति के खोटे कर्म का फल ऐसा देना चाहिए जो उसकी सज़ा के रूप में हो, न कि दूसरों को उसके द्वारा सज़ा दिलवाने के रूप में। उक्त घटना में घातक द्वारा ईश्वर दूसरे का घात कराता है, क्योंकि एक व्यक्ति को ज़रिया बनाकर उसे दूसरे को सज़ा दिलवानी है। किन्तु घातक की बुद्धि को दुष्ट करने वाले कर्मों का क्या फल मिला? इस फल के द्वारा तो दूसरे को सज़ा भोगनी पड़ी। अतः ईश्वर को कर्म फलदाता मानने में इसी तरह अन्य भी कई एक आपत्तियाँ खड़ी होती हैं, जिनमें से एक इस प्रकार है—किसी कर्म का फल हमें तुरन्त मिल जाता है, किसी का कुछ माह बाद मिलता है, किसी का कुछ वर्ष बाद मिलता है और किसी का जन्मान्तर में मिलता है। इसका क्या कारण है? कर्म-फल के उपभोग में यह समय की विषमता क्यों देखी जाती है? ईश्वरेच्छा के सिवाय इसका कोई सन्तोषकारक समाधान ईश्वरवादियों की ओर से नहीं मिलता। किन्तु कर्म में ही फलदान की शक्ति मानने वाला कर्मवादी जैन सिद्धान्त उक्त प्रश्नों का बुद्धिगम्य उत्तर देता है जैसा कि हम आगे बतलायेंगे। अतः ईश्वर को फलदाता मानना उचित प्रतीत नहीं होता।

## कर्म के भेद

कर्म के भेद शास्त्रकारों ने दो दृष्टियों से किये हैं—एक विपाक की दृष्टि से और दूसरे विपाक काल की दृष्टि से। कर्म का फल किस किस रूप में होता है और कब होता है प्रायः इन्हीं दोनों बातों को लेकर भेद किये गये हैं। कर्म के भेदों का साधारणतया उल्लेख तो प्रायः सभी दर्शनकारों ने किया है किन्तु जैनेतर दर्शनों में से योग दर्शन और बौद्ध दर्शन में ही कर्माशय और उसके विपाक का कुछ विस्तृत वर्णन मिलता है और विपाक तथा विपाककाल की दृष्टि से कुछ भेद भी गिनाये गये हैं। परन्तु जैन दर्शन में उसके भेद प्रभेदों और विविध दशाओं का बहुत ही विस्तृत तथा सांगोपांग वर्णन पाया जाता है। तथा, जैन दर्शन में कर्मों के भेद तो विपाक की दृष्टि से ही गिनाये गये हैं किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


विपाक के होने, न होने, अमुक समय में होने वग़ैरह की दृष्टि से जो भेद हो सकते हैं, उन्हें कर्मों की विविध दशा के नाम से चित्रित किया गया है। अर्थात् कर्म के अमुक भेद हैं और उनकी अमुक अमुक अवस्थाएँ होती हैं।

हम पहले बतला आये हैं कि जैन दर्शन में कर्म से आशय जीव की क्रिया के साथ जीव की ओर आकृष्ट होने वाले कर्म परमाणुओं से है। वे कर्मपरमाणु जीव की प्रत्येक क्रिया के समय जिसे जैन दर्शन में योग कहा जाता है, आत्मा की ओर आकृष्ट होते हैं और आत्मा के राग, द्वेष, मोह आदि भावों का, जिन्हें जैन दर्शन में कषाय कहते हैं, निमित्त पाकर आत्मा से बँध जाते हैं। इस तरह कर्म परमाणुओं को आत्मा तक लाने का काम योग अर्थात् जीव की कायिक, वाचिक और मानसिक क्रिया करती है और उसके साथ बन्ध कराने का काम कषाय अर्थात् आत्मा के राग-द्वेष रूप भाव करते हैं। सारांश यह है कि आत्मा की योग-शक्ति और कषाय, ये दोनों ही बन्ध के कारण हैं।

इस प्रकार योग और कषाय से आत्मा के साथ कर्म परमाणुओं का बन्ध होता है। वह बन्ध चार प्रकार का होता है—प्रकृति बंध, प्रदेश बंध, स्थिति बंध और अनुभाग बंध। स्वभाव को प्रकृति कहते हैं। बंधने वाले कर्म परमाणुओं की संख्या को प्रदेश कहते हैं तथा काल की मर्यादा की स्थिति और फलदान शक्ति को अनुभाग कहते हैं। आत्मा की ओर आकृष्ट होने वाले कर्मों में अनेक प्रकार का स्वभाव पड़ना तथा उनकी संख्या का हीन वा अधिक होना, ये दो काम योग पर निर्भर हैं। तथा उन्हीं कर्म परमाणुओं का आत्मा के साथ कम या अधिक काल तक ठहरे रहना और तीव्र या मन्द फल देने की शक्ति का पड़ना ये दो काम कषाय करती है। इस तरह प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग से होते हैं और स्थिति बन्ध और अनुभाग बंध कषाय से होते हैं। इन बन्धों में से प्रकृति बन्ध के आठ भेद हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु नाम, गोत्र और अन्तराय। ज्ञानावरण आत्मा के ज्ञान गुण का घात करता है। इसी की वजह से कोई अल्प ज्ञानी और विशेष ज्ञानी देखे जाते हैं। दर्शनावरण आत्मा के दर्शन गुण का घात करता है। आवरण यानी ढाँकने वाली वस्तु, अर्थात् वह चीज़ जो ज्ञान या दर्शन को ढाँकती है, उन्हें प्रकट नहीं होने देती। वेदनीय, जो सुख या दुःख की वेदना अनुभव कराता है। मोहनीय, जो आत्मा को मोहित करता है, उसे सच्चे मार्ग का भान नहीं होने देता, तथा सच्चे मार्ग का भान हो जाने पर भी उस पर चलने नहीं देता। आयु, जो अमुक समय तक जीव को किसी एक शरीर में रोके रहता है। इसके छिद जाने पर ही जीव की मृत्यु कही जाती है। नाम, जिसकी वजह से अच्छे या बुरे शरीर अंग-उपांग वग़ैरह की रचना होती है। गोत्र, जिसकी वजह से जीव ऊँचे कुल का या नीच कुल का कहा जाता है। अन्तराय, जिसकी वजह से इच्छित वस्तु की प्राप्ति में विघ्न पड़ता है। इन आठ भेदों में से जिन्हें आठ कर्म कहते हैं, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय—ये चार कर्म घातिकर्म कहे जाते हैं; क्योंकि ये चारों आत्मा के गुणों का घात करते हैं। शेष चार कर्म अघाती कहे जाते हैं, क्योंकि वे आत्मा के गुणों का घात नहीं करते। इन आठ कर्मों में से भी ज्ञानावरण के पाँच, दर्शनावरण के नौ, वेदनीय के दो, मोहनीय के अट्ठाईस, आयु के चार, नाम के तिरानवे, गोत्र के दो और अन्तराय के पाँच भेद हैं। घाती कर्मों में भी दो विभाग हैं—देशघाती और सर्वघाती। जो कर्म आत्मगुण के एक देश का घात करता है वह देशघाती है और जो उसका पूरी तरह से घात करता है, वह सर्वघाती है। चार कर्मों के ४७ भेदों में से २६ देशघाती हैं और २१ सर्वघाती हैं। घाति कर्म तो पाप कर्म ही कहे जाते हैं, किन्तु अघाती कर्म के भेदों में से कुछ पुण्य कर्म हैं और कुछ पाप कर्म।

जैन दर्शन में वर्णित कर्म के इन भेदों की तुलना के योग्य कोई भेद इतर दर्शनों में वर्णित भेदों में नहीं पाया जाता। योग दर्शन में कर्म का विपाक तीन रूप से बतलाया है—जन्म के रूप में, आयु के रूप में और योग के रूप में। किन्तु अमुक कर्माशय आयु के रूप में अपना फल देता है, अमुक कर्माशय जन्म के रूप में अपना फल देता है और अमुक कर्माशय भोग के रूप में अपना फल देता है यह बात वहां नहीं बताई गई है। यदि यह भी वहाँ बताया गया होता तो योग दर्शन के आयु विपाक वाले कर्माशय की जैन दर्शन के आयु कर्म से और जन्म विपाक वाले कर्माशय की नाम कर्म से तुलना की जा सकती थी। किन्तु वहाँ तो सभी कर्माशय मिलकर तीन रूप फल देते हैं। जो कर्माशय दृष्ट जन्म वेदनीय होता है वह केवल दो ही रूप फल देता है, जन्मान्तर में न जाने से उसका विपाक जन्म रूप से नहीं होता। हम पहले ही लिख आये हैं कि इस ढंग का श्रेणि-विभाग इतर दर्शनों में नहीं पाया जाता। इतर दर्शनों में कर्म के जो भेद गिनाये गये हैं, जैन दृष्टि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कर्मों की विविध दशाएँ हैं, जैसा कि आगे के वर्णन से स्पष्ट है।

## कर्मों की विविध दशाएं

जैन सिद्धान्त में कर्मों की दस मुख्य अवस्थाएं अथवा कर्मों में होने वाली दस मुख्य क्रियायें बतलाई गई हैं, जिन्हें करण कहते हैं। उनके नाम—बन्ध, उद्वर्तन, अपवर्तन सत्ता, उदय, उदीरणा, संक्रमण, उपशम, निधत्ति और निकाचना हैं। कर्म परमाणुओं का आत्मा के साथ सम् बन्ध होने को बन्ध कहते हैं। यह सब से पहली अवस्था है। इसके बिना अन्य कोई अवस्था हो ही नहीं सकती। इसके चार भेद हैं–प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध। अर्थात् जब कर्म परमाणु आत्मा के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं तो उनमें आत्मा के योग और कषाय रूप भावों से चार बातें होती हैं। प्रथम तुरन्त ही उनमें ज्ञानादिक को घातने वग़ैरह का स्वभाव पड़ जाता है, दूसरे उनकी स्थिति बंध जाती है कि ये अमुक समय तक आत्मा के साथ बंधे रहेंगे। तीसरे उनमें तीव्र या मन्द फल देने की स्थिति पड़ जाती है। चौथे वे नियत परिणाम में आत्मा से सम्बद्ध हो जाते हैं। जैसा कि पहले स्पष्ट रूप से बताया गया है। दूसरी अवस्था या क्रिया उद्वर्तना है। स्थिति और अनुभाग के बढ़ने को उद्वर्तना कहते हैं। तीसरी अवस्था अपवर्तना उससे ठीक उल्टी है। अर्थात् स्थिति और अनुभाग का घटना अपवर्तना कहा जाता है। बन्ध के बाद ये दोनों क्रियायें होती हैं। किसी अशुभ कर्म का बन्ध करने के बाद यदि जीव अच्छे काम करता है तो उसके पहले बांधे हुए बुरे कर्म की स्थिति और फलदान शक्ति घट सकती है। जैसे, राजा श्रेणिक ने मुनि के गले में मरा हुआ सांप डाला तो उस समय इस बुरे काम के निमित्त से उसने सातवें नरक की आयु का बन्ध किया था। किन्तु बाद को जब उसे अपने उक्त काम पर पश्चात्ताप हुआ और उसने भगवान महावीर की शरण में क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त किया तो शुभ परिणामों के प्रभाव से उसकी बांधी हुई आयु घटकर पहले नरक की ही रह गई थी। यह सब अपवर्तना करण का ही कार्य है। इसी तरह अशुभ कर्म की जघन्य स्थिति बांधकर यदि कोई और भी बुरे काम करने लगे तथा उसके परिणाम पहले से भी अधिक कलुषित हो जायें तो बाँधे हुए कर्म की स्थिति और फलदान शक्ति बुरे भावों का असर पाकर बढ़ सकती है। इस उद्वर्तना और अपवर्तना के कारण कोई कर्म जल्द फल देता है और कोई देर में। किसी का तीव्र फल होता है और किसी का मन्द।

बँधने के बाद कर्म तुरन्त ही अपना फल नहीं देता, कुछ समय बाद उसका फल मिलता है, इसका कारण यह है कि बँधने के बाद कर्म अस्तित्व रूप में रहता है। जैसे शराब पीते ही अपना असर नहीं करती किन्तु कुछ देर बाद अपना असर करती है। उसी तरह कर्म भी बँधने के बाद कुछ समय तक सत्ता रूप में रहता है। इस काल को जैन परिभाषा में अबाधाकाल कहते हैं और यह कर्म की स्थिति पर निर्भर है। एक कोटी-कोटी सागर की स्थिति में एक सौ वर्ष प्रमाण अबाधाकाल होता है। अर्थात् यदि किसी कर्म की स्थिति एक कोटी-कोटी सागर बाँधी हो तो वह कर्म सौ वर्ष के बाद अपना फल देना प्रारम्भ करता है और तब तक फल देता रहता है, जब तक उसकी स्थिति पूरी न हो। आयु कर्म की अबाधा के नियम में कुछ अपवाद हैं। इस प्रकार बंधने के बाद कर्म के फल न देकर मौजूद रहने मात्र को सत्ता कहते हैं। और कर्म के फल देने को उदय कहते हैं। यह उदय दो तरह का होता है—एक फलोदय, दूसरा प्रदेशोदय! जब कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाता है तो वह फलोदय या विपाकोदय कहा जाता है किन्तु जब कर्म उदय में आकर भी बिना फल दिये नष्ट हो जाता है तो उसे प्रदेशोदय कहते हैं। फलोदय की उपमा सधवा युवती से और प्रदेशोदय की उपमा विधवा युवती से दी जा सकती है।

बौद्ध दर्शन में कर्म के भेद बतलाते हुए कुछ कर्म बताये गये हैं, जिनका विपाक-काल नियत है और कुछ ऐसे कर्म बताये गये हैं, जिनका विपाक काल नियत नहीं है। जैन दर्शन में भी नियत काल में कर्म के फल देने को उदय कहा जाता है और नियत काल से पहले अर्थात् अनियत काल में कर्म के फल देने को उदीरणा कहते हैं। जैसे आम के मौसम में आम बेचने वाले आमों को जल्दी पकाने के के लिए पेड़ से तोड़कर भूसे वग़ैरह में दबा देते हैं, जिससे वे पेड़ में पकने की अपेक्षा जल्दी पक जाते हैं। इसी तरह कर्म का भी कभी कमी नियत समय से पहले विपाक हो जाता है। यही विपाक उदीरणा कहा जाता है। इस उदीरणा के लिए पहले अपवर्तनाकरण के द्वारा कर्म की स्थिति को कम कर दिया जाता है। स्थिति घट जाने पर कर्म नियत समय से पहले उदय में आ जाता है। जब कोई आदमी पूरी आयु भोगे बिना असमय में ही मर जाता है तो उसकी लोक में अकाल मृत्यु कही जाती है। इसका कारण आयु कर्म की उदीरणा का हो जाना ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अपवर्तना हुए बिना उदीरणा नहीं हो सकती।

एक कर्म का दूसरे सजातीय कर्म रूप हो जाने को संक्रमण कहते हैं। यह संक्रमण कर्म के मूल भेदों में नहीं होता है। अर्थात् पहले गिनाये हुए कर्मों के आठ भेदों में से एक कर्म दूसरे का कर्म रूप नहीं हो सकता। अर्थात् ज्ञानावरण दर्शनावरण रूप नहीं हो सकता और न दर्शनावरण ज्ञानावरण रूप हो सकता है। यही बात अन्य कर्मों के बारे में भी जाननी चाहिये। किन्तु एक कर्म के अवान्तर भेदों में से एक भेद अपना सजातीय अन्य भेद रूप हो सकता है। जैसे वेदनीय कर्म के दो भेद—सातावेदनीय और असातावेदनीय का परस्पर में संक्रमण हो सकता है। सातावेदनीय असातावेदनीय रूप हो सकता है और असातावेदनीय सातावेदनीय रूप हो सकता है। यद्यपि संक्रमण सजातीय प्रकृतियों में ही होता है, किन्तु आयु-कर्म इसका अपवाद है। चार आयु-कर्मों में परस्पर में संक्रमण नहीं होता। नरक की आयु बाँध लेने पर जीव को नरक में ही जाना होता है, वह किसी अन्य गति में नहीं जा सकता।

कर्म की उदय, उदीरणा, निधत्ति और निकाचना इन चारों ही क्रियाओं के अयोग्य कर देने को उपशम अवस्था कहते हैं। कर्म को उद्वर्तन और अपवर्तन के सिवाय शेष करणों के अयोग्य कर देने को निधत्ति कहते हैं और समस्त करणों के अयोग्य कर देने को निकाचना कहते हैं।

इस तरह दर्शनों में से केवल योग दर्शन (व्यासभाष्य), में ही हमें कर्मों की कुछ अवस्थाओं का वर्णन मिलता है। भाष्यकार ने अदृष्ट जन्म-वेदनीय अनियत कर्म की तीन अवस्थाएँ बतलाई हैं : १—किये हुए कर्म का बिना विपाक हुए ही नष्ट हो जाना, २—प्रधान कर्म में आवापगमन, ३—नियत विपाक वाले प्रधान कर्म के द्वारा अभिभूत होकर बहुत कल तक बने रहना। साधारण तौर से इनमें से दूसरी अवस्था को संक्रमणकरण और तीसरी को निधत्ति वगैरह कहा जा सकता है। योग दर्शन में ही कर्माशय के मूल कारण क्लेशों की भी चार अवस्थाएँ बताई गई हैं—प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार। जैन सिद्धान्त के अनुसार ये क्लेश भावकर्म से पृथक वस्तु नहीं हैं। अतः ये चारों अवस्थाएँ भी प्रकारान्तर से कर्म की ही अवस्थाएँ समझनी चाहिएँ। जिनमें से कर्म का बंध होने के बाद जब तक उसका उदय नहीं होता तब तक की अवस्था को प्रसुप्त कहा जा सकता है। कर्म का उपशम अथवा क्षयोपशम उनकी तनुत्व अवस्था है। अपनी किसी विरोधी प्रकृति के उदय वगैरह के कारण किसी कर्म प्रकृति के उदय का रुक जाना विच्छिन्न अवस्था है। उदय उदार अवस्था है। कर्म में होने वाली ये दस अवस्थाएं मुख्य हैं। इनमें से बन्ध, उदय और सत्ता के ध्रुव अध्रुव, और सान्तर निरन्तर वगैरह भेद की अपेक्षा से अन्य भेद भी होते हैं।

कर्म की इन विविध दशाओं के सिवाय जैन दर्शन में कर्म का स्वामी, कर्म की स्थिति, कब कौन प्रकृति बंधती है, किसका उदय होता है, किसकी सत्ता रहती है, किसका क्षय होता है आदि कर्म विषयक चर्चा के प्रत्येक आवश्यक अंग का वर्णन किया गया है। अन्य दर्शनों में कर्म सिद्धान्त स्वतन्त्र विषय नहीं समझा गया और इसलिए उसकी चर्चा के लिए स्वतन्त्र ग्रन्थ निर्माण की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। किन्तु जैन दर्शन में इसका प्रमुख स्थान होने के कारण कर्म विषयक साहित्य अपना स्वतन्त्र स्थान रखता है और उसका जैन साहित्य में महत्व-पूर्ण स्थान है।

# अभियान

श्री शील चतुर्वेदी

नौजवान चल ! नौजवान चल !

मन्दवायु को—प्रभंजनीय वात में—
जो लहर रुके, उसे प्रबल प्रपात में—
दासता-निशा, स्वतन्त्रता प्रभात में—
आज अब बदल; आज अब बदल !

देश-प्रेम-अग्नि आज, अब भभक उठे,
आज उठ कि क्रान्ति की किरण चमक उठे,
इस प्रकार बढ़ कि यह धरा धमक उठे—
बाँध दल निकल; बाँध दल निकल !

अग्निपूत उठ कि आज सह न यातना,
क्रान्तिदूत की पुकार को न क्या सुना!
कर सदैव इनक़लाब की उपासना,
बल बने सफल; बल बने सफल।

त्राहि त्राहि है तड़प रही विकल मही,
जन-स्वतन्त्रता निमित्त आग जल रही,
देखता नहीं कि लालिमा निकल रही,
लाल-सा कमल; खिल उठे नवल!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# प्राचीन ईरान का सांस्कृतिक और कलात्मक जीवन

पण्डित सुन्दरलाल

पण्डित सुन्दरलाल जी की नई, महत्वपूर्ण और अत्यन्त रोचक पुस्तक "ज़रथुस्त्री धर्म और ईरानी संस्कृति" इस समय प्रेस में है। उसी पुस्तक का थोड़ा सा अंश हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं —सम्पादक।

## ईरानियों का चरित्र

ईरानियों का सब से बड़ा गुण उनकी सचाई थी। ईरानियों में सचाई पर ख़ूब ज़ोर दिया गया है। अहुरमज़्द स्वयं 'सत्य' रूप है। सम्राट दारा अपने एक शिला-लेख में झूठ की बुराई करते हुए लिखता है—"झूठ पाप का ही दूसरा नाम है।"। झूठ बोलने से ज़्यादह अपमानजनक और बड़ा अपराध ईरानी समाज में दूसरा न था। ईरानी सम्राट यदि किसी को वचन देते थे तो उसे पूरा करने में उन्हें चाहे कितनी भी हानि क्यों न हो उसे अवश्य पूरा करते थे। किसी मुल्क या क़ौम के किसी आदमी को भी कभी इस बात की शिकायत नहीं हुई कि ईरानियों ने कोई वादा किया हो और उसे पूरा न किया हो या तोड़ा हो।

पुराने ईरानी क़र्ज़ से बहुत बचते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि क़र्ज़दार अकसर झूठ का सहारा लेता है। ख़रीद फ़रोख़्त करते समय दाम के घटाने बढ़ाने से उन्हें बहुत नफ़रत थी। ईरानी सदा साफ़ साफ़ बात करने वाले, दोस्ती और मेहमाँनवाज़ मशहूर थे।

## ईरानियों का सैनिक संगठन

सेना का एक प्रधान सेनापति होता था जो आम तौर पर सम्राट होता था। सम्राट के नीचे फ़ौज कई दस्तों या डिवीज़नों में बँटी होती थी।

सेना में पैदल और घुड़सवार ज़्यादह होते थे। ईरानियों को रथों से नफ़रत थी। पैदल सिपाही लम्बी चुस्त बाहों का कुर्ता तक लम्बा कुरता पहनते थे। चमड़े का चुस्त पाजामा, ऊँचे बूट और सर पर फ़ेल्ट टोपी। सात फ़ुट का भाला, ख़ंजर, फरसा, तलवार और तीर-कमान उनके हथियार थे। घुड़ सवार सिर और बदन पर लोहे की हेल्मेट और ज़िरह पहनते थे। उनके घोड़े फ़ुरतीले और चुस्त होते थे। वे कठिन से कठिन पहाड़ों पर आसानी से चढ़ जाते थे। बाद के ईरानी लड़ाई में हाथियों का भी उपयोग करते थे। दीवाल तोड़ने के इंजनों का भी उन्हें पता था। लड़ाकी पशु में सेना की तादाद किसी समय दस लाख थी। हर मातहत देश अपनी अलग फ़ौज रखता था।

सफ़रमैना पलटन आगे आगे रास्ता बनाती चलती थी। सफ़रमैना के अलावा एक दुश्मन-सुंघिया पलटन भी दुश्मन की ख़बर रखने के लिये आगे आगे चलती थी। फ़ौज ख़ेमों में पड़ाव डालती थी। कमसेरियट (रसद) का इन्तज़ाम बड़े पैमाने पर होता था। ईरानियों को कभी किसी लड़ाई में रसद की कमी नहीं हुई। केवल सम्राट कम्बुजिय की इथियोपिया की लड़ाई में सैनिकों के भूखे मरने का ज़िक्र आता है।

अपने जहाज़ी बेड़ों की बदौलत वह किसी समय रूम सागर में सर्वेसर्वा थे। सम्राट क्षयर्ष के जहाज़ी बेड़े में पाँच हज़ार जङ्गी जहाज़ थे।

## सम्राट और राजकुल

सम्राट जब लड़ाई में जाता था तो नीले रंग का सफ़ेद धारी वाला ऊंचा मुकुट पहनता था। जिसमें हीरे जवाहरात जड़े होते थे। यही सम्राट की पहचान थी। दरबार में सम्राट सिंहासन पर बैठता था। राजदण्ड और चंवर उसके साथ रहते थे। तरह तरह के क़ीमती जवाहरात उसके बदन पर होते थे। राजमहल में १५,००० आदमी तक रोज़ भोजन करते थे। यदि सम्राट की एक से ज़्यादह रानियाँ होती थीं तो उनमें एक पटरानी कहलाती थी। राजमाता की बड़ी इज़्ज़त होती थी। हखामनीषी ज़माने में परदे का भी रिवाज था। इसीलिए हमें प्राचीन ईरानी कला में स्त्रियों की मूर्तियां नहीं मिलतीं। सड़कों पर स्त्रियाँ बन्द रथों में निकलती थीं।

राजकुल के अलावा सात ख़ास कुल ऊँचे समझे जाते थे। इनके मुखिया सम्राट के सलाहकार होते थे। इन मुखियों को हर वक़्त सम्राट के पास आने जाने की इजाज़त थी।

हर सम्राट ख़ुद मृत्यु से पहले अपना मक़बरा बना जाता था। शव सुनहले कफ़न में रखा जाता था। शव रखने के बाद मक़बरे का रास्ता चुन दिया जाता था। दूसरी दुनिया में सम्राट के इस्तेमाल के लिये ज़ेवर, कपड़े, शस्त्र आदि कई तरह की चीज़ें क़ब्र के अन्दर रख दी जाती थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## रहन सहन

ग़रीब जनता सिपाहियों की तरह चमड़े के कुरते और पाजामे पहनती थी। अमीर लोग रेशमी कपड़े पहनते थे, गले में सोने और मोतियों की मालाएं डालते थे। शुरू के ईरानी गेहूँ और जौ की रोटी और भुना हुआ मांस खाते थे और पेय चीज़ों में केवल पानी पीते थे। वे दिन में सिर्फ़ एक बार भोजन करते थे। बाद के ईरानी जब ऐश परस्त हो गए तब भी उनमें एक बार ही भोजन का रिवाज रहा। किन्तु फिर उनका एक बार भोजन कभी कभी १२ बजे दोपहर से शुरू होकर १० बजे रात को ख़त्म होता था। एक के बाद एक व्यंजन उनके सामने आते थे और पानी के बजाय शराब के दौर चलने लगे थे। बकरे, घोड़े, गधे, ऊँट और बैल का मांस वे चाव से खाते थे।

समाज में व्यवहार के कड़े नियम थे। छोटे बड़ों को साष्टांग प्रणाम करते थे। बड़े उन्हें उठाकर उनका मुँह चूमते थे। बराबर वाले एक दूसरे के होंठ चूमते थे। शुरू में स्त्रियां लड़ाई में साथ जाती थीं। किन्तु बाद में परदे की वजह से यह रिवाज बन्द हो गया। वेश्याओं के नाच और गाने का भी रिवाज था। स्त्रियों में काजल, उपटन और मेंहदी लगाने का रिवाज था।

## बच्चों की तालीम

पाँच साल तक बच्चे मां के पास रहते थे। उसके बाद उनकी तालीम शुरू होती थी। सूरज निकलने से पहले हर बच्चे को उठाया जाता था। दौड़ना, पत्थर फेंकना, तीर चलाना, खुखरी चलाना उन्हें सिखाया जाता था। सात साल की उम्र में उन्हें घोड़े पर चढ़ना और ख़ासकर दौड़ते हुए घोड़े पर उछलकर चढ़ना सिखाया जाता था। और बड़े होने पर उन्हें शिकार खेलना सिखाया जाता था। सख़्त से सख़्त ठण्ड और गरमी बरदाश्त करने की बच्चों को आदत डाली जाती थी। तैरने और सरदी में रात को खुले में सोने का अभ्यास कराया जाता था। कभी कभी लड़कों को दो दो दिन में केवल एक बार भोजन दिया जाता था। कभी कभी उन्हें केवल जंगली फलों पर रखा जाता था ताकि उनमें छुटपन से बरदाश्त की आदत हो। खेती करना, ज़मीन खोदना आदि सख़्त मेहनत के काम उनसे लिये जाते थे। फिर उन्हें धार्मिक कविताएं और कहानियां याद कराई जाती थीं। इस सब में उनके गुरू उन्हें सच बोलने और सच्चा व्यवहार करने का सदा आदेश देते रहते थे। सत्य की नींव पर उनकी सारी तालीम की इमारत खड़ी होती थी। शिक्षा का यह तरीक़ा बिना ग़रीब अमीर के भेद भाव के ५ साल की उम्र से लेकर २० साल की उम्र तक सब के लिए एक सा था।

शिष्य को 'ऐत्रय' (Aethrya) या 'हाविष्ट' कहते थे और गुरू को 'ऐत्रय पति' (बुद्धि का स्वामी)। मानिकजी नसरवान धल्ला लिखते हैं कि गुरू की पदवी बड़ी इज़्ज़त और ज़िम्मेवारी की चीज़ समझी जाती थी।

"एक आदर्श गुरू सारी रात रात जागकर शिक्षा की उपासना करता था···जो शिक्षक अपने शिष्यों को पूरी सहायता नहीं देता वह पापी समझा जाता था।"

ज़रथुस्त्र की मृत्यु के एक सदी बाद ईरान में 'सायन' नाम का एक बहुत बड़ा आचार्य हुआ जिसके १०० प्रमुख शिष्य थे।

लड़कों को ख़ास ख़ास कहावतें और पद्य ज़बानी याद कराए जाते थे। धर्म, वैद्यक और नीति शास्त्र ख़ासतौर पर पढ़ाए जाते थे। छोटी उम्र की लड़कियां मदरसों में लड़कों के साथ पढ़ सकती थीं। पुजारी के घर का बरामदा या आतिशकदा का एक हिस्सा आमतौर पर मदरसे का काम देता था।

## ईरानी समाज में स्त्रियाँ

परदे का रिवाज ज़रथुस्त्र के कुछ दिनों के बाद ईरानियों ने असुरिया वालों से सीखा। लेकिन स्त्रियों की सामाजिक हालत और उनके अधिकारों में उससे ज़्यादह फ़रक़ नहीं पड़ा। स्त्रियां जायदाद रख सकती थीं, पंचों के सामने गवाही दे सकती थीं, ख़ुद पंच चुनी जा सकती थीं, और अपनी सन्तान की मालिक होती थीं। पति की ज़्यादती के विरुद्ध वे अदालत में दावा दायर कर सकती थीं। पति अपनी बेटी का ब्याह बिना अपनी पत्नी की रज़ामन्दी के न कर सकता था।

धार्मिक संस्कारों में वे पति के साथ बराबर का हिस्सा लेती थीं। वे मन्दिरों की पुजारिन भी बन सकती थीं। घर का सारा प्रबन्ध उनके सुपुर्द होता था। मामूली गृहस्थ के यहां आटा पीसना, खाना पकाना, जानवरों को रखना, दूध दुहना, कातना और बुनना सब औरतों के सुपुर्द होता था। वही नाज बोती थीं, वही खेत निराती थीं, वही फ़सल काटती थीं और वही नाज मांड़ती थीं। वही बच्चों की परवरिश की ओर ध्यान देती थीं। लेकिन घर में उनकी हैसियत पति के मुक़ाबले में एक छोटे साझेदार (Junior Partner) की होती थी। पूजा की आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


समिधा यानी लकड़ी डालना पुरुष ही का काम था। पवित्र सदरा और जनेऊ स्त्रियां भी पहनती थीं। नज़दीक और दूर की तरह तरह की रिश्तेदारियां उतनी ही ज़्यादह मानी जाती थीं जितनी हिन्दुस्तान में। घर की मालकिन सब रिश्तेदारों का उचित आदर करती थी।

सती स्त्रियों का समाज में आदर था। ज़रथुस्त्र ने उन्हें अच्छे कामों में अपने पति से आगे बढ़ने का उपदेश दिया है। स्त्री की सबसे बड़ी और पाक दौलत उसकी देह समझी जाती थी। व्यभिचार समाज का सब में बड़ा शाप समझा जाता था। ग़रीबों, ख़ासकर ग़रीब लड़कियों की शादी करा देना बहुत बड़ा पुण्य माना जाता था। विधवाओं के विवाह का निषेध न था। लड़की जब वर को पसन्द कर लेती थी तब उसकी शादी होती थी। शादियों की बाक़ायदा लिखा पढ़ी होती थी।

व्यभिचार की सज़ा बहुत सख़्त दी जाती थी और उस सज़ा के अलावा व्यभिचार से जो सन्तान होती थी उसके और उसकी माँ के भरण पोषण का ज़िम्मा उस पुरुष पर होता था। यदि लापरवाही से इस तरह के बच्चे की मृत्यु हो जाय तो वह पुरुष मनुष्य-हत्या का अपराधी होता था। गर्भपात कराने की सज़ा भी मौत थी।

### न्याय

अवस्ता में 'न्याय के लिये 'दाता' शब्द इस्तेमाल किया गया है, इसी से बाद की फ़ारसी का 'दाद' शब्द बना। दाता ईरानी 'दा' धातु से है जिसका अर्थ 'क़ायम करना' है ( संस्कृत-स्था )। मज़दा धर्म "दाता विदेव" कहलाता था यानी ऐसा धर्म जो देवों के विरुद्ध समाज क़ायम करे।

मुक़दमों का फ़ैसला तजरुबेकार पंचों द्वारा कराया जाता था। पञ्च के लिये क़ानून का जानने वाला और इससे भी ज़्यादह धार्मिक तबियत और ऊँचे चरित्र का होना ज़रूरी था। मन्दिर पञ्चायत घर के लिये इस्तेमाल होते थे।

पंचायत घर में मुद्दई, मुद्दायला और गवाह जमा होते थे। पंचायत घर में शोर मचाने की सख़्त मनाही थी। पंचायत घर में झगड़ा करने पर सज़ा मिलती थी। मुजरिम की ज़मानत पर छोड़ने का भी रिवाज था। पंचायतें भी पहले इस बात पर ज़ोर देती थीं कि मुद्दई मुद्दायला आपस ही में फ़ैसला कर लें। पंचायत के अन्दर निश्चित समय के अन्दर गवाही, बयान, जिरह और बहस सब ख़त्म हो जाना आवश्यक था। पंचायत की मदद के लिए वकील होते थे और ग़रीब आदमियों को वकील मुफ़्त में मिलते थे। ग़ैर ईरानियों के साथ भी बिना भेद-भाव के न्याय किया जाता था।

क़र्ज़ की रक़म पर ब्याज़ लेने का ईरान में रिवाज था। सौकेन्त ( सौगन्ध ) का बड़ा महत्व था। मिस्र की तरह ईरान में भी झूठी सौगन्ध खाने की सज़ा मौत थी।

ज़रथुस्त्र ने लोगों को उपदेश दिया—"अपना वादा कभी न तोड़ो। चाहे वह वादा तुमने ईरानी से किया हो या ग़ैरईरानी से। क्योंकि वादा परमात्मा को साक्षी देकर किया जाता है। वह ईरानियों और ग़ैरईरानियों के बन्धन से अधिक पवित्र है।"

चोरी की सज़ा जुरमाना, क़ैद, मेहनत या दाग़ देना थी। दूसरी बार जुर्म करने पर सज़ा बढ़ जाती थी। छूत की बीमारी और गन्दगी फैलाने वाला भी सज़ा पाता था। सन्तान निग्रह के लिये दवाओं का इस्तेमाल कराने वाले मर्द को चार सौ कोड़ों की सज़ा दी जाती थी। मनुष्य-हत्या, बलात्कार, राजद्रोह और रिश्वत लेने या देने, इन सब की सज़ा मौत थी।

## आचार विचार

जिस बरतन से कोई एक आदमी पानी या कोई चीज़ पीता था बग़ैर मांजे उस बरतन से कोई दूसरा उससे न पीता था। ईरानी आम तौर पर मुंह से गिलास न लगाते थे बल्कि ऊपर से डालकर पानी पीते थे। वे रोज़ नहाते थे।

किसी के मरने पर क्रियाकर्म करने वाला अलग रहता था और दसवें दिन पाक होता था। पाक होने के लिये वे हिन्दुओं की तरह गोमूत्र इस्तेमाल करते थे। जिसे वे 'गोमेज़' कहते थे। गोमूत्र छिड़ककर वे मकान, पहिनने ओढ़ने के कपड़े, बर्तन वग़ैरह पवित्र करते थे। नए बच्चों को सब से पहले गोमूत्र चटाया जाता था।

## बीमार और डाक्टर

हखामनीषी काल से पहले समझा जाता था कि बीमारी अंग्रमैन्यु की छाया से होती है और बीमार के साथ पापी का सा व्यवहार किया जाता था। लेकिन हखामनीषी काल में बीमार के साथ बहुत अच्छा सलूक होने लगा। जगह जगह डाक्टर, सर्जन और पशुओं के डाक्टरों का अलग अलग प्रबन्ध हो गया। डाक्टर की फ़ीस रोगी की हैसियत के मुताबिक़ कम या ज़्यादह होती थी।

सड़क पर खाना पीना या जहाँ चाहे थूकना, या छींकना या पेशाब करना उनके यहां असभ्यता थी। राजा


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के मरने पर जनता अपने कपड़े फाड़कर शोक प्रकट करती थी। युद्ध के मैदान में सिपहसालार की मृत्यु पर सब सैनिक अपना सर मुंड़वाते थे और घुड़सवार अपने घोड़ों के अयाल काट देते थे।

मेहमान का आदर करने के लिये ईरानी उसे सदा अपने दाहिनी ओर बिठाते थे।

साल बारह महीने का होता था। महीने में तीस दिन होते थे और हर साल के अन्त में अपने साल को सूरज की गति से मिलाने के लिये पांच दिन और जोड़ दिये जाते थे। साल को 'यारे' या 'सरेध' कहते थे और महीने को 'मौनगाह' ( Maonghah )। ईरान में सात महीने जाड़ा और पांच महीने गरमी पड़ती थी।

## ईरानी निर्माण-कला

ईरान की पुरानी दस्तकारी और चित्रकारी के बहुत थोड़े नमूने बाक़ी रह गए हैं। सिकन्दर ने अपनी विजय के बाद ईरान की राजधानी पर्सुपोली को जलाकर राख कर दिया। सिकन्दर के उस ग़लत काम से कला और साहित्य के हज़ारों क़ीमती नमूने नष्ट हो गए। अब केवल पर्सुपोली की बुनियादों और टूटी फूटी दीवारों से ईरानी फ़ने-तामीर का कुछ अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

सम्राट आर्तक्षत्र म्नेमन के समय तक ईरान में मन्दिरों का कोई महत्व न था। उससे पहले के ग्रन्थकारों ने ख़ास इमारतों में केवल महलों और मक़बरों का ज़िक्र किया है। हगमतान में, सुसा में और पर्सुपोली में या उसके आस पास उस ज़माने के कई महलों के खंडहर मिलते हैं।

ये महल बहुत ऊंची कुरसियां देकर उन पर बनाए गए हैं। इनकी तामीर में पत्थर के जो भारी भारी चौरस टुकड़े दूर की खदानों से लाकर लगाए गए हैं उनका काटना, ढोना और ठीक जगह बैठाना कुछ कम होशियारी का काम नहीं था। केवल कुरसी कहीं कहीं सैकड़ों फ़ुट ऊंची है और लम्बे चौड़े चबूतरे देकर तीन तीन मंज़िल में पूरी की गई है। ऊपर चढ़ने के लिए चौड़ी सीढ़ियां हैं। पर्सुपोली के महल तक जाने के लिए एक एक सीढ़ी २२ फ़ुट चौड़ी और चार इंच ऊंची है जिस पर एक साथ दस घुड़ सवार आसानी से चढ़ सकते थे। दीवारों पर तरह तरह की चित्रकारी और सम्राटों के नाम खुदे हैं। इनमें दारा, क्षयर्ष और आर्तक्षत्र के बनवाए हुए महल हैं। बड़े बड़े दीवान आम हैं। दारा के रहने का महल १३० फ़ुट लम्बा, १०० फ़ुट ऊंचा रहा होगा। दारा का दरबार ख़ास ५० फ़ुट लम्बा और उतना ही चौड़ा था जिसमें लकड़ी के खम्भे थे, जिन पर सोने चांदी के पत्तर मढ़े थे। दीवारें १६-१७ फ़ुट आसार की थीं। सम्राट क्षयर्ष की बनवाई हुई एक इमारत ज़्यादह आलीशान थी। इसमें १०० सतूनों का एक ही बड़ा हाल था। जिसका पोर्टिको १८३ फ़ुट लम्बा और ५२ फ़ुट चौड़ा था और १६ सतूनों पर खड़ा था। हाल २२७ फ़ुट लम्बा और उतना ही चौड़ा था। हाल का रक़बा ५,००० मुरब्बा फ़ुट था। सतून दो क़तारों में और ३५ फ़ुट ऊंचे थे। हर सतून दूसरे से २० फ़ुट के फ़ासले पर था। चारों ओर की दीवार १०½ फ़ुट मोटी रही होगी। पोर्टिको में बड़ी बड़ी बैल की मूर्तियां थीं। एक दूसरी इमारत थी जिसे चेहल-मीनार कहते थे जो ३५० फ़ुट लम्बी और २४६ फ़ुट चौड़ी थी। इसके केवल टूटे हुए सतून बाक़ी हैं, जिनकी कारनिशों पर बैल, घोड़े और शेरों की सुन्दर मूर्तियां खुदी हुई हैं।

## सम्राट कुरु की समाधि

आज कल के शहर मुरग़ाब के पास सम्राट कुरु की समाधि के खण्डहर बाक़ी हैं। यह इमारत १४७ फ़ुट लम्बी और ११६ फ़ुट चौड़ी थी। यह सात संगमरमर के चबूतरों के ऊपर बनी हुई है। चबूतरों के चारों तरफ़ संगमरमर के २४ सतून थे। समाधि के अन्दर दीवालों पर कोई शिलालेख न था। केवल सुनहले कफ़न में कुरु का शव रखकर समाधि का दरवाज़ा चुन दिया गया था।

## सम्राट दारा की समाधि

पुलवर घाटी में एक पहाड़ की चट्टानें काटकर सम्राट दारा की समाधि बनी हुई है। ज़मीन से बहुत ऊंचाई पर, जहां न नज़र जाती है और न चढ़ना आसान है, दारा को दफ़न किया गया था। चार और सम्राटों की क़बरें भी वहीं बनी हुई हैं। दारा की क़ब्र पर तीन ज़बानों में शिला-लेख खुदे हुए हैं। शिल्पियों ने जिस चतुराई के साथ ये क़बरें बनाई हैं और जिस तरह इस ऊंची और ख़तरनाक जगह में खड़े होकर शिला-लेख खोदे हैं वह काफ़ी आश्चर्य की बात है।

## ईरानी कला की विशेषता

ईरानी इमारतों की ख़ास ख़ूबी उनकी सादगी और चौरसपन ( regularity ) है। दीवारें और सतून सीधी लाइन में हैं। सतूनों के बीच का फ़र्क़ बिल्कुल बराबर है। सब तरफ़ यकसां असर रहे इसका ध्यान रखा जाता था। एक दरवाज़ा दूसरे दरवाज़े का जवाब, एक सतून दूसरे सतून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का जवाब, एक कमरा दूसरे कमरे का, एक खिड़की के मुक़ाबले में ठीक उसी तरह की दूसरी खिड़की और ताक़ के मुक़ाबले में ठीक उसी तरह का दूसरा ताक़ ( Niche )—यही ईरानी इमारतों की विशेषता थी। इमारत का आधा हिस्सा दूसरे आधे हिस्से का ठीक जवाब होता था। वह औरत का इतना अच्छा ख़याल रखते थे और इमारत के अलग हिस्सों में उनका फ़ासला इतना बराबर और नपातुला होता था कि इसी से उनकी इमारतों में एक ख़ास सुन्दरता पैदा हो जाती थी।

### ईरानी शिला-चित्र

उनकी दीवारों पर चार तरह के चित्र होते थे—(१) पौराणिक कथाओं के दृश्य, (२) पहरेदारों, दरबारियों, सुराहियों और ख़िराज़ लाते हुए विदेशियों के दृश्य, (३) सम्राट के चलते हुए, सिंहासन पर बैठे हुए, या पूजा करते हुए चित्र और (४) साँड़ों और शेरों के अलग अलग या लड़ते हुए चित्र।

इतिहास लेखक रागोज़िन के अनुसार सतूनों और ईंटों के सहारे ख़ास ख़ास तरह के बड़े हाल ईरानियों की अपनी ईजाद थी। फिर भी ईरानी साम्राज्य के अलग अलग देशों के अच्छे अच्छे कारीगरों ने एक मिली जुली और ज़्यादह सुन्दर कला पैदा कर दी थी। ईरानी समाज में भी नए नए परिवर्तन हो रहे थे। पराजित देशों की लाखों स्त्रियाँ पत्नी और रखैल के रूप में ईरानियों के यहाँ आ रही थीं। फ़ौजों में दूसरे देशों के लाखों सिपाही भरती हो गए थे। इनमें से बहुत सों ने वहीं रहकर ईरानी स्त्रियों से शादियाँ कर ली थीं। इस तरह बहुत सी क़ौमों के ख़ून का ईरानियों में मेल जोल हो रहा था। साम्राज्य के क़ायम रहने के बाद अब किसी तरह की अलग नसल का दावा ईरानी क़ौम को न हो सकता था।

### ईरानी लिपि

ईरानियों की लिपि ३६ या ३७ कोनेदार अक्षरों (क्यूनिफार्म) की एक वर्ण माला थी। पुराने शिला-लेख जो भी मिले हैं वे कुल १८० साल के फैलाव के हैं, यानी सम्राट कुरु से शुरू होकर आर्तक्षत्र ओकस के समय तक के। इसके बाद ईरान में एक दूसरे के बाद दो तरह की और लिपियां प्रचलित हुईं, यानी कुल तीन तरह की पुरानी ईरानी लिपियाँ मिलती हैं—

पहली कोनेदार लिपि जिसमें हखामनीषी शिला-लेख हैं। दूसरी ज़ेन्द लिपि जो अवस्ता की लिपि है और तीसरी पहलवी जिसमें सासानी काल में किताबें लिखी गयीं। पुरानी ईरानी भाषा वैदिक संस्कृत से मिलती है और अवस्ता की भाषा पुरानी ईरानी भाषा की बहिन मालूम होती है। इसी में गाथा और दूसरे धार्मिक ग्रन्थ लिखे गए हैं। लिपि इन लोगों ने अपने से पहले के ईरान के रहने वालों से सीखी।

## धार्मिक भावना

ईरानियों के हर काम में उनकी धार्मिक भावना बनी रहती थी। क्लीमेण्ट हुवार्ट लिखता है—

"ईरानी फ़ौजों के साथ नए और अच्छे धार्मिक भाव चलते थे। ईरानी सम्राटों ने अगर उदार नीति से संग्रामों को लड़ा और हारी हुई क़ौमों के साथ नरमी और प्रेम का बर्ताव किया, अगर उन्होंने अपने धर्म पर चलने की, अपने क़ानून मानने की और यहां तक कि अपने राजाओं को क़ायम रखने की इजाज़त दी तो वह इसलिये कि लड़ाई और विजय में भी ईरानी अपना धार्मिक कर्तव्य न भूलते थे।"*

## सभ्यताओं का संगम

हुवार्ट के अनुसार ईरान में उस समय ज़माने की सब सभ्यताओं के मेल से एक नई और महान सभ्यता की रचना हो रही थी। वह लिखता है—

"पर्सुपोली के खण्डहरों में हमें एक ऐसी कला के दर्शन होते हैं जिसके बनाने में साम्राज्य के हर देश, असुरिया, मिस्र, एशियाई यूनान वग़ैरह, सब ने हिस्सा लिया था। उन खण्डहरों में हमें ज़बर्दस्त एकता और महानता दिखाई देती है।"

---

* "Ancient Persia and Iranian Civilization by Clement Huart.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सैन फ्रैन्सिस्को सम्मेलन

श्री देवेन्द्र तिवारी एम० ए०

हो रहा है—
सैन फ्रैन्सिस्को में सम्मिलन !
शान्ति औ' सुरक्षा के विधान पर—
होता विनिमय-परामर्श !
विश्व के भविष्य का निर्णय होगा वहाँ !!
बड़े-बड़े ज्ञानी, अनुभवी, कूटनीति-दक्ष
प्रतिनिधि सभी राज्यों के—
होंगे एकत्र वहां
भारत को छोड़ कर।
क्यों कि वह—
दास है,
दलित है,
पराजित है,
जिसका नहीं है अधिकार निज भाग्य पर,
निश्चित करेगा क्या दूसरों की गतिविधि ?
भारत के प्रतिनिधि—
गौरव के प्रतीक,
आज बन्द हैं
वे प्रतिनिधि—
जिनके सामने
तुच्छ, अति तुच्छ हैं
सैन फ्रैन्सिस्को में आज जो मिल रहे
गहरे दांव-पेंचों वाले।
सब हो जाते मलिन
जैसे पूर्णचन्द्र-ज्योतित
नभस्थल में—
झिलमिल
तारक दल !
यदि जाते वे—
कर देते ज़बान बन्द
नत-मस्तक, लज्जित कर देते उन्हें
हिमि-गिरि-सम अपनी उच्चता से !
अद्वितीय योग्यता से,
कह देते—
"विश्व-शांति तब तक असम्भव है धरातल पर
जब तक प्राची के प्रांगण में
गुलाम हैं,
भूखे हैं, नंगे हैं,
एक दो नहीं—
पूरे चालीस कोटि !
जो तुम्हारी तरह—
हाथ, पैर, मुंह वाले
मानव हैं;
पर केवल नाम को ही,
क्यों कि पशु से भी बुरा जीवन है
भारत के निवासियों का !
जिनके चरण चूमने में
कितने आमन्त्रितों के पूर्वज
गौरव समझते थे !
पर यह सब स्वप्न है !
भारत की कठपुतलियां
नृत्य दिखाती वहां
गैरों के इशारे पर
भिन्न-भिन्न देशों के आमंत्रित, सम्मानित
प्रतिनिधि आये वहां।
और ?
भारत की विजय-लक्ष्मी
होती सम्मानित,
यदि होता स्वतन्त्र देश !
कर फैलाये भीख मांगती है,
स्वतन्त्रता की, जीवन की,
द्वार-द्वार जाकर
प्रतिनिधियों के
फेरे लगाती है !
भारतीय हृदय
फटता है—
तीव्र वेदना से;
सोच-सोच—
अपनी असमर्थता, विवशता, लाचारी को।
लगता है, भारत के निवासियों की—
रगों में ख़ून नहीं !
पानी है !
सर्द पानी है !!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक झाँकी

# सङ्गम

प्रो० सुधीन्द्र एम० ए०, साहित्यरत्न

[ 'त्रिवेणी-सङ्गम' में जैसे सरस्वती जैसी धाराओं का लोक चक्षुओं के लिये अदृश्य होते हुये भी मानस चक्षुओं से ही दर्शन होता है, उसी प्रकार इस सङ्गम में अनेक पुण्य सलिलाओं के दर्शन करने का प्रयत्न है। यदि ऐतिहासिक क्रम के अनुसार कोई धारा तब न भी रही हो तो भी मुझे उसके दर्शन से आत्मसंतोष मिला है। मैं पाठकों से भी इसी सहानभूति की अपेक्षा करता हूँ। —लेखक ]

## स्थान, रामानन्द स्वामी का मठ, काशी

भक्त कबीर, धन्ना जाट, रैदास चमार, वैष्णव धर्माचार्य भगवान् रामानन्द के दोनों ओर बैठे हैं। एक ओर राजसी वेष पहने गागरोन गढ़ (कोटा राज्य) के अधिपति भी हैं।

करताल और मंजीरों के बीच कीर्तन हो रहा है।

कीर्तन

राम रामेति रामेति राम रामे मनोरमे।
सहस्र नाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने।

[ कीर्तन बन्द हो जाता है ]

रामानन्दः—कितने आनन्द का अवसर है आज! गुरु राघवानन्द के मठ को छोड़ते समय जो संकल्प लेकर चला था, उसे आज पूर्ण होते हुए देख रहा हूँ। द्रविड़ देश की कुमारी, यह भगवद्भक्ति आज उत्तरापथ की सम्राज्ञी हो गई है, क्यों कबीर!

कबीरः—शंकर का अद्वैतवाद—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' नाम का मायावाद आज आपकी रामभक्ति की गङ्गा में डूब गया है, गुरुदेव!

हमरा भरमु गवा भउ भागा।
जब राम नाम चित लागा।

रामानन्दः—भगवान् रामानुजाचार्य की आत्मा भी भगवद्भक्ति की इस गङ्गा को प्रवाहित होते देखकर कितनी तृप्त हो रही होगी कबीर! गुरु राघवानन्द के आशीर्वाद से ही 'राम' का सन्देश मैं घर-घर में पहुंचा सका हूँ; क्यों रैदास!

रैदासः—गुरुदेव, मैं तो जब देखता हूँ कि समस्त आर्यावर्त आज भगवान् के प्रेमानन्द में मग्न हो रहा है तो सारे दुःख द्वन्द्व को भूल जाता हूं। प्रभु! समस्त उत्तरा खंड के नर नारी भगवान् के दर्शन के लिए आतुर देखकर मेरे मानस में सागर की लहरें तरंगित होने लगती हैं। भगवन्! राज मन्दिरों से लेकर घास-फूस की कुटियों तक आपने राममक्ति का गीत गुँजा दिया है। अटक से लेकर कटक तक आज राम के नाम का साम्राज्य फैल गया है।

रामानन्दः—राम! राम!! राम! राम!!

सबै भूमि है राम की तामें अटक कहा?
जाके मन में अटक है सोई अटक रहा?

कबीर—धन्य है प्रभु! तभी तो गागरौन गढ़ के राजा प्रतापसिंह आज उस राम-नाम के राज्य में अपने राज को मिलाने के लिए यहाँ आये हैं, इससे बढ़कर भगवन्, आपकी विजय और क्या होगी?

रैदास—महाराज! राजा प्रतापसिंह को श्री-चरणों की सेवा और 'राम' नाम का मंत्र दीजिए।

राजा प्रतापसिंह—( स्वामी रामानन्द के चरणों में प्रणाम कर ) यह तुच्छ सेवक भगवान् रामानन्द के चरणों में अपना राजमुकुट रखकर प्रणाम करता है। राज-सिंहासन में वह परमानन्द कहां जो आज रामानन्द के चरणों में है!

( स्वामी रामानन्द आशीर्वाद का हाथ देते हैं )।

रैदास—तुम धन्य हो राजा प्रतापसिंह!

प्रतापसिंह—अब राजा नहीं हूं भगत! अब तो मैं रामानन्द महाराज के दरबार में एक चाकर हूं।

रामानंद—इस दरबार में राम को छोड़ और कोई राजा नहीं। आज से तुम पीपा भगत हुए राजा प्रताप!

पीपा—महाराज! मेरे साथ आया हुआ एक युवक सेना भी श्री चरणों का स्पर्श पाना चाहता है। परन्तु वह तो नाई है महाराज! यदि चरण स्पर्श न पा सके तो दूर से ही दर्शन का अवसर दें। बाहर ही ठहरा है।

रैदास—रामानन्द भगवान के यहाँ कोई छोटा बड़ा नहीं है पीपा भगत! यहाँ तो प्रताप राजा भी पीपा भगत बनकर सेना भगत के साथ बैठकर भगवान के प्रेमामृत का पान कर सकता है।

कबीर—देखते हो ( धन्ना भगत की ओर इंगित करके ), वे धन्ना भगत जाट हैं।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


धन्ना--हाँ, पीपा भगत !

कबीर-और जानते हो मैं कौन हूँ ?

तनना बुनना तज्या कबीर
राम नाम लिखि लिया सरीर
जाति जुलाहा, मति को धीर
हरषि हरषि गुन रमै कबीर

रैदास--और पीपा भगत ! जानते हो मैं कौन हूं ? मैं वह हूँ जिसकी छाया तक से तिलकधारियों को छूत लग जाती है।

जाति भी ओछी करम भी ओछा
ओछा कसब हमारा।
नीचै सै प्रभु ऊँच कियो है
कह रैदास चमारा।

कबीर--चमड़े के टुकड़ों को राम नाम के धागों से जोड़कर देह पर धारण करने योग्य तो बनाते हो तुम रैदास !

धन्ना—भगवान रामानन्द के चरणामृत का पान करके तो अपवित्र भी पवित्र बन जाता है पीपा भगत !

रामानन्द—इन सबने सच कहा पीपा ! राम का दरबार तो सबके लिये खुला है बन्धन नहीं।

जाति पांति पूछै नहिं कोई।
हरि का भजै सो हरि का होई।

आज तो धन्ना चाहे जाट हो तो भी भगत है, नाई तो भी भगत हैं, कबीर मुसलमान हो तो भी भगत रैदास चमार हो तो भी भगत हैं और पीपा राजपूत भी भगत हैं। यहां सब एक हैं। रामानन्द का यही है। भगवान रामानुज ने जो नहीं किया वह मैं आज रहा हूँ। मेरा यह सन्देश तुम सब घर घर पहुँचा दो। और मुसलमान कबीर के शब्दों में दो आँखे हैं—दो भगवान का रूप तो अलग अलग नहीं देख सकती हिन्दुओ ! यह ऊँच-नीच का भेद यदि राम का नाम मिटा सके तो फिर वह नहीं मिटेगा। मुसलमानों के के दरबार में भी तो सब एक हैं और राम और एक ही है। नाम के भेद के पीछे लड़-लड़ कर मरते कबीर, तुम गाओ तो अपना वह पद—सन्तो, देखो बौराना !

( कबीर पद गाते हैं )

सन्तो देखत जग बौराना।
साँच कहौ तौ मारन धावै, झूठे जग पतियाना
हिन्दु कहै मोहिं राम प्यारा, तुरुक कहै रहमाना
आपस में दोउ लरि लरि मूये, मरम न काहू जाना
कहत कबीर सुनो हो सन्तो, ई सब भरम भुलाना
केतिक कहौं कहा नहिं मानै, आपुहि आप समाना

( पटाक्षेप )

---

# गीत

श्री उपेन्द्र

बलिदान यहां इतिहास बना करता है !

जो खेल गए तलवारों की धारों पर
उद्दाम सिंधु लहरों पर, हुँकारों पर ;
हो उठी धरा विचलित ठोकर से उनकी
आह्वान अमर उल्लास बना करता है !

जो बढ़े एक दिन लहराते सागर पर
जो चढ़े एक दिन हिमगिरि पर, अम्बर पर,
हट गई मृत्यु जिनके सम्मुख भय-कंपित
कलहास प्रलय का हास बना करता है !

जिनके स्वागत में लिए मुंड की माला
कर में ले रंजित तप्त रुधिर का प्याला;
है खड़ी स्वयं रणचंडी, उन वीरों को
वरदान प्रखर अभिशाप बना करता है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शास्त्रोक्त विवाह का अभिशाप

रायबहादुर ज्ञानशङ्कर प्रेमशङ्कर पण्ड्या एम० ए०, एम० ओ० एल०

हिन्दू लॉ के अन्तर्गत शास्त्रोक्त विवाह को हमने इतना जकड़कर कस दिया है कि फिर चाहे कैसी ही असंगत, कठिन, क्रूर और अनैतिक परिस्थितियाँ क्यों न पैदा हों, एक बार शास्त्रोक्त रीति से जो विवाह हो चुका वह न केवल इसी जन्म के लिये बल्कि जन्म जन्मान्तर तक के लिये हो चुका। धर्म परिवर्तन करके हिन्दू धर्म से भी साथ छूट सकता है किन्तु यदि हिन्दू पत्नी पति के धर्म परिवर्तन के कारण दूसरा विवाह कर ले तो वह दो पति बनाने की गुनहगार होगी। यह वास्तविकता उसे दोष मुक्त नहीं कर सकती कि उसका पहला पति धर्म परिवर्तन के कारण हिन्दू धर्म से सदा के लिये कटकर अलग हो गया।

जहाँ तक मैंने स्मृतियों का अध्ययन किया है उसके अनुसार मैं इस दावे का समर्थन नहीं कर सकता कि शास्त्रोक्त हिन्दू विवाह चाहे जैसी परिस्थितियाँ पैदा हो सदा अखंड है। मुझे ऐसा लगता है कि न केवल अदालतें ही हिन्दू शास्त्रों पर यह ग़लत मतलब पहनाती हैं बल्कि हमारे शास्त्री और पण्डित भी हमारी स्मृतियों की मूल भावना के अनुरूप व्यवस्थायें नहीं देते। परिणाम यह है कि आज संसार के सभ्य समाज में हमारे ऊपर यह इलज़ाम लगाया जाता है कि हमने अपनी बहिनों, बेटियों और माँओं के लिये ज़िन्दगी को एक अभिशाप बना दिया है। उनको हमारी अनुदारता के कारण आज अनेकों कठिनाइयों और असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। हम उन्हें क़िस्मत के सुपुर्द करके छोड़ देते हैं। और यह सब धर्म-द्रोह हम करते हैं पवित्र शास्त्रों के नाम पर!

सदियों की दकियानूसी प्रवृत्ति ने हमारे दिल में यह विश्वास जमा दिया है कि हिन्दू विवाह एक धर्माचरण है, एक धार्मिक क्रिया है। हमारे मन में एक ग़लतफ़हमी ने घर कर लिया है कि केवल हिन्दू विवाह ही शास्त्रोक्त विवाह है यानी अखंड है और बाक़ी सब विवाह सौदे और ठेके हैं यानी वे तोड़े या ख़त्म किये जा सकते हैं। किन्तु शास्त्रोक्त विवाह का यह अर्थ लगाना अपनी अज्ञानता और मूढ़ता का परिचय देना है। शास्त्रोक्त विवाह केवल मात्र एक संस्कार है। वह उसी तरह से आवश्यक, ऐच्छिक और स्वीकारोक्त है जिस तरह से अन्य संस्कार। अपराध होजाने या टूट जाने पर प्रायश्चित्त द्वारा उसका भी उसी तरह शमन किया जा सकता है जिस तरह कि अन्य संस्कारों का। मैं समझता हूँ कि शास्त्रोक्त का वास्तविक अर्थ यह है कि विवाह एक भव्य संस्कर है जिसे धर्म ने पवित्रता दी है। मूल रूप में वह शास्त्रोक्त नहीं है बल्कि और दूसरे मानव विवाहों की तरह एक सौदा है। मानव विवाह में यह फ़र्ज़ किया हुआ है कि पुरुष और स्त्री हमेशा के लिये पति और पत्नी की तरह रहेंगे और उन्हें इस तरह रहने का अधिकार है और समाज उनके इस आपसी सम्बन्ध में कोई दख़ल न देगा। महाभारत में श्वेतकेतु की कहानी से यह स्पष्ट है क्यों कि उस समय तक विवाह की संस्था अस्तित्व में नहीं आई थी। दूसरी मिसाल द्रौपदी की है। द्रौपदी के प्रति मैं अशिष्ट भाव नहीं प्रकट कर रहा किन्तु पांच पतियों की पत्नी होने का यह स्वाभाविक प्रबन्ध रहा होगा कि एक ओर पतियों में आपस में और दूसरी ओर पतियों में और द्रौपदी में कोई न कोई समझौता और नियन्त्रण ज़रूर रहा होगा और एक मर्तबा इस तरह के सौदे या समझौते को तोड़ने के कारण अर्जुन को बनवास का दण्ड भुगतना पड़ा था। नल के ग़ायब हो जाने पर दमयन्ती के दूसरे स्वयम्वर रचने से यह स्पष्ट है कि पति को पत्नी के ऊपर सर्वाधिकार प्राप्त नहीं था। इस तरह की और अनेकों मिसालें देकर यह दिखाया जा सकता है कि यद्यपि विवाह एक धर्म संस्कार था किन्तु मूल रूप से यह एक पवित्र सौदा था जो स्थायी समझकर किया जाता था किन्तु जिसे उचित और स्पष्ट परिस्थितियों में तोड़ा भी जा सकता था।

अपनी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिये मैं यह कहूंगा कि हर विवाह अंश रूप में एक सौदा है और अंश रूप में एक धर्म संस्कार है। दुनिया के समस्त स्मृतिकारों का विवाह के सम्बन्ध में यही विचार रहा है; यह दूसरी बात है कि सभ्यता के चढ़ाव उतार में मुख़्तलिफ़ मुल्कों में विवाह के मुख़्तलिफ़ क़ानून रहे हैं। समस्त युगों में समस्त स्मृतिकारों की विवाह के सम्बन्ध में एक प्रमुख धारणा यह रही है कि पुरुष की एक ही पत्नी और स्त्री का एक ही पति हो। बहुपतिवाद या बहुपत्नीवाद को किसी स्मृतिकार ने कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। आज ईसाई मुल्क तलाक़ के पीछे पागल हैं परन्तु रोमन कैथालिक सम्प्रदाय में तलाक़ का कोई रिवाज नहीं और उनमें शादियों का बन्धन उसी तरह अटूट समझा जाता है जिस तरह हिन्दू सम्प्रदाय में। हालकेन ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'The woman thou gavest me' (जो स्त्री तुमने मुझे दी थी'), में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रोमन कैथालिक लड़की का बड़ा सच्चा ख़ाका खींचा है जिसमें छल से वह लड़की विवाह बन्धन में बँध गई थी और फिर तलाक़ के लिये कोशिश कर रही थी कि जिसके लिये उसका समाज उसकी निन्दा और भर्त्सना कर रहा था। इसलामी शरीयत के मुताबिक़ कोई शख़्श चार शादियाँ कर सकता है किन्तु हज़रत मुहम्मद ने समाज का बड़ा कल्याण किया कि जहां पहले पचासों शादियाँ करने का रिवाज था वहां पत्नियों की तादाद केवल चार तक ही सीमित कर दी, और क़ुरान में इस बात की साफ़ हिदायत की गई है कि अगर अल्लाह ने तुझे एक से ज़्यादह दिल दिये होते तो तू ख़ुशी से उतनी शादियाँ कर लेता। एक हदीस में पैग़म्बर ने कहा है कि अगर किसी ने एक से ज़्यादा शादियाँ कीं और वह दिल से उनके साथ यकसाँ बर्ताव न कर पाया तो क़यामत के दिन उसका आधा अङ्ग कटकर गिर पड़ेगा। इससे यह साफ़ है कि इसलामी शरीयत की भी प्रमुख भावना यह है कि औरत और मर्द केवल एक ही ख़ाविन्द और एक ही बीवी की ख़ाहिश करें और ताज़िन्दगी उसके तरफ़ दिलोजान से वफ़ादार रहें।

अब मैं यहाँ पर कुछ स्मृतियों के हवाले दूँगा जिनसे मेरी इस धारणा की पुष्टि होती है। इनसे यह साफ़ पता चलेगा कि स्मृतिकारों में काफ़ी व्यवहार बुद्धि, औचित्य और न्याय की भावना थी जो हमें आजकल के व्यवस्थाकारों और अङ्गरेज़ी अदालतों के न्यायाधीशों में नहीं मिलती। ऋग्वेदीय ब्रह्मकर्म समुच्चय के संस्कार प्रकरण में कन्या का पिता वर को कन्यादान करते हुये स्पष्ट शब्दों में कहता है।

ततो दता—

अव्यंगे, अपतिते, अक्लीवे, दशदोष विवर्जिते।
इमाँ कन्याँ प्रदस्यमि देवाग्निद्विजसन्निधा॥

मैं अपनी यह कन्या तुम्हें विवाह में यह समझकर देता हूं कि तुम अव्यंग, अपतित, अक्लीव और दशदोष विवर्जित हो। यह चारों ज़रूरी शर्तें हैं कि जिनके पूरा न होने पर विवाह बन्धन टूटा हुआ समझा जाना चाहिये।

नारद स्मृति में साफ साफ लिखा है—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिने पतौ।
पचत्स्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

इसके अनुसार इन परिस्थितियों में पत्नी क़ानूनन् शादी कर सकती है यदि पति मर गया हो, खो गया हो, अपने पापों के कारण जातिच्युत कर दिया गया हो, नपुंसक हो गया हो या उसने सन्यास ले लिया हो। कात्यायन के अनुसार वर के दशदोष ये हैं—

उन्मत्तः पतितः कष्टि षंढश्च वा सगोत्रजः।
चक्षुःश्रोत्रविहीनश्च तथा पंस्यारदूषितः॥

विष्णु कहते हैं—

कुब्जवामन जात्यंधः क्लीव पीडितं रोगिणाम्।
व्रतचर्या भवेत तेषां य वज्जीवमसंशयम्॥

जिन लोगों में उपर्युक्त दोष हैं उन्हें कदापि विवाह वेदी के पास न जाना चाहिये। हिन्दू स्मृतियों के अनुसार विवाह एक संस्कार है और ये अनुपयुक्त व्यक्ति विवाह धार्मिक संस्कार के लिये अयोग्य ठहराये गये हैं। यह केवल सुझाव मात्र ही नहीं है बल्कि स्मृतियों का यह एक निर्देश है ताकि इन दोषों के रहते हुये यदि कोई विवाह करे तो वह विवाह नजायज़ समझा जाय। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर कन्या का पिता अपनी कन्या को वापस लेकर इन दोषों से मुक्त किसी दूसरे उपयुक्त वर को विवाह में दे सकता है।

विवाह भङ्ग करने के लिये वशिष्ठ ख़ास तौर पर दो उदाहरण देते हैं। एक—"विधर्मी" होने पर अर्थात् धर्म परिवर्तन करने पर और दूसरा—"कुल शील विहीन" होने पर यानी जिस व्यक्ति का चरित्र हिन्दू धर्म और नियमों के अनुसार धर्म विरुद्ध हो उसके साथ विवाह बन्धन टूट सकता है। ऐसी स्थिति के लिये वशिष्ठ कहते हैं—

दत्तामपि हरेत् कन्यां

यानी ऐसे निकम्मे पति के साथ विवाह भङ्ग करने का कन्या को अधिकार है।

वे आगे कहते हैं—

कुलशील विहीनस्य षंढादि पतितस्य च।
अपस्पारि विधर्मस्य रोगिणांवेशधारिणाम्।
दत्तामपि हरेत कन्यां सगोत्राढां तथैव च॥

मनु (९-१७४) एक परित्यक्ता स्त्री के सम्बन्ध में कहते हैं कि यदि वह बिना उचित कारण के पति द्वारा छोड़ दी गई है तो उस स्त्री को अपनी मरज़ी के मुताबिक़ दूसरा पति चुनने का अधिकार है। यदि विधवा होने पर वह विवाह करती है तो 'पुनर्भू' कहलाती है किन्तु यदि पति द्वारा परित्यक्त किये जाने पर वह विवाह करती है तो भी "पुनर्भू" कहलाती है।

या पत्या परित्यक्ता विधवा वा स्वेच्छया
उत्पादयेत् पुनर्भूत्वा स पौरभव उच्यते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वशिष्ठ भी कहते हैं।

या क्लीवं पतित उन्मत्तं वा भर्तारमनुसृज्य अन्य पति विंदते मृते वा सा पुनर्भू पनीत ॥

वशिष्ठ ने स्पष्ट तौर पर भर्तारमनुसृज्य कहा है जिसका अर्थ है अपने पति द्वारा त्याग दिया जाना।

बौधायन कहते हैं कि ऐसी सूरत में जब कि विवाह में छल या बल इस्तेमाल किया गया हो तो उस स्त्री को दूसरा विवाह कर लेना चाहिये क्योंकि ऐसी सूरत में उसका दरजा "कन्या" (कुमारी) का ही रहता है—

बलाच्चेत प्रहृता कन्या मंत्रयदि न संस्कृता।
अन्यस्मै विधिवत देया यया "कन्या" तथैव सा ॥

और अधिक उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं मालूम होती। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि स्मृतिकार स्त्री का एक अलग व्यक्तित्व मानते थे कि जिसके व्यक्तिगत अधिकार पुरुष के बराबर होते थे। पुरुष को अपने स्वार्थवश कोई अधिकार नहीं था कि वह दूसरा विवाह करे चाहे इसके लिये उसे अपनी पहली पत्नी से अनुमति भी क्यों न मिल गई हो।

तलाक़

इस सब से यह बात साफ़ हो जाती है कि शास्त्रोक्त विवाह संस्कार को उस ज़माने के स्मृतिकार किस रूप में देखते थे। तलाक़ चाहे अच्छी चीज़ हो या बुरी किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि विशेष स्थितियों में यह बिलकुल ज़रूरी और उचित हो जाता है। किन्तु इस सम्बन्ध में आज क़ानूनी स्थिति क्या है? आज क़ानून की नज़रों में हिन्दू-विवाह एक ऐसा फन्दा है जिसे मौत ही तोड़ सकती है। पागलपन, बैलानापन, कोढ़ जैसे असाध्यरोग, धर्म परिवर्तन, छल, बल, सामाजिक बहिष्कार, पति का पत्नी से उम्र में छोटा होना, पत्नी की अनुमति के बिना विवाह होना या उचित अभिभावक की मर्ज़ी के बिना कन्या को विवाह में देना, क्रूरता, परस्त्री गमन करना आदि बातें ऐसी हैं कि जो शास्त्रोक्त विवाह को भङ्ग करने के लिये उचित और जायज़ हैं।

हिन्दू-ला के लिये यह एक बड़े शर्म की बात है कि स्मृतियों की मूल भावना को ताक पर रखकर फ़ैसले दिये जाते हैं। ऐसा लगता है मानो हिन्दू धर्म के ख़िलाफ़ क़ानून की आड़ में एक भयङ्कर षडयन्त्र रचा गया है। यदि क्रूरता, नपुंसकता, छल बल या पति द्वारा घर में वेश्या रखने की बात को छोड़ भी दिया जाय तो भी पति के धर्म परिवर्तन की सूरत में तो विवाह टूट जाना चाहिये किन्तु इस मामले में भी हिन्दू-ला बजाय पत्नी के पति को संरक्षण देता है और विवाह तोड़ने की स्वीकृति नहीं देता। यह साफ़ उसके अधिकार के बाहर की बात है। न सिर्फ़ यह बात विवाह के लिये ही है बल्कि हिन्दू-ला की पूरी स्पिरिट अनुन्नत और दक़ियानूसी है।

विडो रिमैरिज एक्ट एक ख़ासा बड़ा क़दम था किन्तु उसके बाद हिन्दू समाज में स्त्रियों की स्थिति में कोई ख़ास फ़रक़ नहीं पड़ा। हिन्दू ला, समाज का दक़ियानूसी अङ्ग और खुद अपढ़ स्त्रियां भारतीय नारी को अनुन्नति के शिकजे में इस तरह जकड़े हुए हैं कि वह आज़ादी की सांस तक नहीं ले सकती। सच तो यह है कि भारतीय नारी के साथ आज अन्यायपूर्ण और औचित्य से हीन बर्ताव किया जा रहा है।

---

# मँगतू स्वराजी !

श्री भारतचन्द्र बी० ए०

चार छः माह में एक बार हुज़ूर कमिश्नर साहब दलबल सहित पधारा करते थे। न मालूम क्यों वे आते थे पर कहा यही जाता था कि वे 'निसपेशन' (Inspection) के लिये आते थे। कमिश्नर साहब का 'निसपेशन' कैदियों की मौत थी। स्वराजी और उनमें भी आगे बढ़े हुए, अथवा 'सी' से ऊपर वाले ही अपनी शिकायत रखने की हिम्मत करते थे। कभी कभी तो ये भी ऊबकर इस निर्णय पर पहुँच जाते थे कि सभी एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं, क्या छोटे, क्या बड़े। कोई सुनवाई होती नहीं व्यर्थ शब्द ख़राब होते हैं। साहब के सामने गिड़गिड़ाना पड़ता है। बस। कोई भी शिकायत न करता—जेल वालों की छाती फूल जाती। क्या ही सुन्दर व्यवस्था है। बड़ा अच्छा डिसिप्लिन है! लोगों के निर्णय का उल्टा ही परिणाम होता था!



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे ही एक समय हुज़ूर का 'निसपेशन' राउण्ड था। दो रोज़ पहले से ही क़ैदियों को कपड़े धोकर साफ़ रखने का हुकुम हो गया था। जेल की सड़कों पर रोलर चल गये थे। शानदार छिड़काव कर दिया गया था। अफ़ीसरगण नियत दिन कड़क स्त्री किया हुआ ड्रेस पहन हाज़िर हो गये। ऐसे अवसरों पर जिस किसी भी क़ैदी के कपड़े फटे होते हैं उसे ज़्यादातर कारख़ाने के पीछे भेज दिया जाता है ताकि वह सामने न पड़ जावे! और नाम के इन्सपेकशन करने वाले बड़े लोग भूल कर भी अपनी इच्छा से यहाँ वहाँ जाकर इन चीज़ों को देखने की या पूछ ताछ करने की तकलीफ़ नहीं करते।

आंदोलन (!) में उमड़ उमड़कर लोगों ने जेलें भर दी थीं। ऐसे अवसरों पर 'डिसिप्लिन' का ख़याल कम रहता है। जनरल डिसिप्लिन ख़राब न हो जाय इस ग़रज़ से ऐसे लोग अलग एक बैरक में रख दिये जाते हैं।

हम काँग्रेसी इसे वरदान समझते थे। क्रिमिनलों के साथ रहने में हमें तकलीफ़ भी होती थी। छोटे बड़े हर तरह के लोग चले आये थे। एक छोटी संख्या ऐसों की भी थी जो प्रायः बेघरबार ही थे। उनमें से एक धोती के नाम पर लंगोटी लगाये बैठा चोंगी पी रहा था। राउण्ड इसी बैरक का था। जेल अफ़िसरान स्वराजियों के व्यवहार से अत्यधिक अप्रसन्न थे। 'सरकार एक दो' पर खड़े हो कर नीची नज़र रखकर 'हिस्ट्री टिकट' बतलाने की आदत इन स्वराजियों को नहीं थी। यही सब से बुरी बात थी। अफ़सरों को लग रहा था न जाने साहब क्या कहें— यकायक साहब की नज़र उस लंगोटिया पर पड़ गई जो 'चोंगी' बुझाकर सिरहाने रखने की तजवीज़ कर रहा था। इशारे से उन्होंने बुलवाया। पूछा—क्या नाम है तुम्हारा?

"मँगतू!" सहमकर झुकी हुई आँखों को संयत करते हुए मँगतू ने कहा।

"बाहर क्या करते थे।"

दोनों हाथ जोड़े हुए स्वराजी ने सँभलकर कहा— "नपैया हूं हुजूर।"

निकालो साले को! गांधी का सत्याग्रह क्या [illegible] ऐरे ग़ैरे नत्थू ख़ैरे सभी जेल चले आये। बाहर [illegible] एक रोटी भी नहीं मिलती जेल चले आये चैन की [illegible] बजाने। निकालो, अभी फाटक के बाहर करो!

स्वराजी नपैया दयनीय रूप से कोनों में हँसा। [illegible] आँखों, काठमारे हुए स्वराजी साथियों को नाना [illegible] विचारों के साथ देख चुप हो वह बिस्तर की ओर [illegible] लौटकर, तनकर, बुक-बुक देखते हुए लोगों को [illegible] कर, धीरे से, पर विश्वास और आत्माभिमान से [illegible] कहा—"मालिक, क्या होगा निकालने से! कल फिर [illegible] लाना होगा। स्वराज की लड़ाई बन्द तो हुई नहीं।" [illegible] नम्बरदारों ने उसे पकड़कर बाहर कर दिया। अपना [illegible] झाड़ता हुआ वह चल पड़ा।

साहब लौट गये।

मैंने साथी से कहा क्या सचमुच ऐसे लोग अन्दर [illegible] आ सकेंगे? क्या ही अच्छा होता यदि ऐसे ही लोगों [illegible] काँग्रेस होती और ऐसे ही लोग स्वतन्त्रता के सैनिक [illegible] बात पूरी भी न कर पाया था कि झल्लाकर साथी ने [illegible] "जी, काँग्रेस है किनकी यदि ऐसों की नहीं है तो!" [illegible] उन्हें देखता रहा। आँखें बन्द कर लेने से तो बुराई [illegible] नहीं हो जाती। ऐसे लोग नहीं हैं सैनिक। वह दूसरी [illegible] बात है कि ऐसे ही लोगों के लिये तो हमारी सेना [illegible] हमारी लड़ाई है! यही मैं उन्हें समझा रहा [illegible] कानाफूंसी शुरू हो गई। मुश्किल से कोई दो घण्टे [illegible] होंगे 'निसपेशन' को—

नम्बरदार ने 'आमद' लिखी है—आफ़िस से आने [illegible] ने बतलाया। कोई स्वराजी आया है। बड़ी ही मुश्किल [illegible] समय कटने लगा। उचक उचककर हर आने वाले [illegible] देखते शायद अब साथी आया, अब आया!

वह आया अवश्य। पर हम सब स्वयं हँस पड़े [illegible] देखा कि वह और कोई नहीं मँगतू ही था।

काश! एक बार और कमिश्नर साहब का राउण्ड [illegible] जाता!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भारत में नागा सम्प्रदाय

श्री उमेशचन्द्र माथुर

'पुरानी चीज़ें बदलती हैं और नई चीज़ों को अपनी जगह देती हैं'—यह एक अङ्गरेज़ी का मुहाविरा है किन्तु अक्सर यह होता है कि जो नई चीज़ पुरानी चीज़ की जगह लेती है उसका केवल रङ्ग रूप नया होता है किन्तु वह होती पुरानी चीज़ ही है।

सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य दिगम्बर परमहंस की तरह नङ्गा ही रहा करता था। उस समय समाज की बहुत थोड़ी और सीधी सादी आवश्यकतायें थीं। किन्तु जैसे जैसे सभ्यता शताब्दियों की चादर ओढ़ती गई वैसे वैसे वे सीधी सादी आवश्यकतायें बर्बरता की पहचान समझी जाने लगीं। वस्त्रों का प्रचलन शुरू हुआ और वे मानव जीवन के लिये नितान्त ज़रूरी चीज़ बन गये। यही नहीं वे सभ्यता के वैज समझे जाने लगे। १६वीं—१९वीं सदी में तो कपड़ों का रोग इतना बढ़ा कि मन भर का आदमी १७ मन वज़न के कपड़े अपने बदन पर लाद कर फिरता था। ढाका की मलमल के कई कई थान एक एक आदमी लपेट लेता था। किन्तु अब ऐसा लगता है कि युगों का पहिया एक चक्कर घूम गया। लोग फिर निःवस्त्र और नग्न अवस्था का स्वप्न देखने लगे। यूरोप और अमरीका के सैकड़ों मनुष्य आर्थिक, नैतिक और स्वास्थ्य की दृष्टि से आज नग्नवाद ( Nudism ) को आदर्श समझने लगे हैं और आधुनिक समाज में उसका प्रचलन करने पर वाद विवाद करने लगे हैं।

इस नग्न अवस्था के पीछे प्रकृति के साथ साहचर्य की वही पुरानी भावना काम कर रही है। किन्तु यह भावना, जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, सदा एक न एक रूप में यहाँ मौजूद रही है। आत्मा की सर्वोच्च अध्यात्मिक अवस्था की वह एक निशानी समझी जाती रही है। इस ज्ञान को ही रूपक के रूप में कदम्ब के पेड़ पर बैठकर भगवान कृष्ण ने कालिन्दी में नहाती हुई गोपियों के सामने प्रकट किया था। प्रसिद्ध अङ्गरेज़ तत्ववेत्ता टामस कार्लाइल ने इस चीरहरण लीला का बड़े ही दार्शनिक रूप में विवेचन किया है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि आत्मा पर पड़ी हुई समस्त विकारों की साड़ी को हटाकर तब भगवान का साक्षात्कार करो।

भारतवर्ष में हिन्दुओं का अवधूत सम्प्रदाय और जैनियों की दिगम्बर सम्प्रदाय निःवस्त्रता को अपना चरम आदर्श मानती है। यहाँ हज़ारों नागे ऐसे हैं जो नंगे ही रहते हैं और जो हिन्दू समाज में साधुओं में सब से ऊँचे समझे जाते हैं। 'नागा' शब्द से यह ज़ाहिर होता है कि नागा सदा नङ्गे रहते हैं; किन्तु यह बात नहीं है। बहुत से नागा साधू कपड़ा पहनकर घूमते हैं और फिर भी नागा कहलाते हैं। वे सदा नङ्गे नहीं रहते लेकिन हाँ समस्त धार्मिक अवसरों पर वे नंगे रहते हैं।

नागा अपने को शंकराचार्य के अनुयायी कहते हैं। नागा शिव के परम भक्त होते हैं। शिव की उपासना द्वारा ही वे ब्रह्मलाभ की आशा रखते हैं। उन्हें अपने आदि गुरू तातराइ के लिये असीम श्रद्धा है। तातराइ का जन्म शंकराचार्य से पहले हुआ है। जहाँ जहाँ नागा रहते हैं वहाँ वहाँ आदि गुरू की समाधि अवश्य रहती है। वहीं नियत समय पर पूजा उपासना और आरती आदि होती है। इनकी समाधि में हरिजनों को जाने का कोई अधिकार नहीं होता। यदि तमाम शर्तें मानकर कोई हरिजन नागा सम्प्रदाय में दीक्षा लेना चाहे तब भी उसे स्वीकार नहीं करेंगे।

श्री महन्त और अन्य नागा महन्त दर्शकों और भक्तों को निश्चत और नियत समय पर दर्शन देते हैं और उनसे वार्तालाप करते हैं। मैंने कई मर्तबा यह देखा है कि ये लोग स्त्रियों से अधिक देर तक बातें करना पसन्द नहीं करते। बल्कि स्त्रियों से मिलने जुलने में उन्हें एक प्रकार की नफरत रहती है।

नागा अपनी सवारी के लिए बड़ी अच्छी जाति के घोड़े रखते हैं। नागा लोग बड़े अच्छे क़िस्म के घुड़सवार समझे जाते हैं। अपने घोड़ों की जितनी क़द्र और उनकी जितनी ख़िदमत नागा करते हैं वह सचमुच प्रशंसा के योग्य है।

नागा सम्प्रदाय में दीक्षित होने के लिए कुम्भ और अर्ध कुम्भ के अवसर नियत हैं और लोगों को हर छठवें वर्ष नागा सम्प्रदाय में दीक्षित किया जाता है। दीक्षा का संस्कार बड़ा लम्बा चौड़ा होता है और इसमें छै वर्ष का समय लग जाता है। यदि कोई गृहस्थ नागा होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है तो उसे कुम्भ या अर्ध कुम्भ तक ठहरना पड़ता है। दीक्षा समारम्भ 'ब्रजहवन' के साथ शुरू होता है और तीन दिन तक चलता है। उसके बाद वह साधारण साधू समझा जाने लगता है। साधू होने के बाद उसे छै वर्ष तक एक नियमित जीवन बिताना पड़ता है। तब एक महन्तों की पंचायत और श्रीमहन्त उसकी परीक्षा लेते हैं। अनेक प्रकार की भौतिक और आध्यात्मिक परीक्षायें उसे देनी पड़ती हैं और यदि वह उन सब में ठीक उतरा तो फिर नागा पन्थ में दीक्षित कर लिया जाता है किन्तु यदि वह इन परीक्षाओं में असफल होता है तो फिर उसे छै वर्ष तक उसी प्रकार प्रतीक्षा करनी पड़ती है। सैकड़ों मनुष्य हर छठव वर्ष नागा सम्प्रदाय में दीक्षित होते हैं किन्तु उन्हें इन सारी कठिन परीक्षाओं से गुज़रना पड़ता है। नागा बनने के लिये उम्र की कोई क़ैद नहीं है किन्तु हरिजनों को और स्त्रियों को नागा नहीं बनाया जाता। यदि कोई नागा शादी करके अपने ब्रह्मचर्य धर्म को तोड़ता है तो फिर वह नागा नहीं रह जाता और श्रीमहन्त की आज्ञा से उसका नाम नागा श्रेणी से हटा दिया जाता है।

नागाओं की सब से बड़ी विशेषता उनका आश्चर्य जनक संगठन है। हालां कि उनकी कोई विधिवत गणना नहीं है फिर भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में उनकी तादाद कम से कम ६०,००० है। नागा लोग विविध अखाड़ों में बँटे हुये हैं और उनका अपना अलग अलग संगठन है। हर अखाड़े में कम से कम १००० नागा रहते हैं। अखाड़े की एक मज़बूत कार्य-कारिणी समिति उन पर नियंत्रण रखती है। हर अखाड़े में चार श्रीमहन्त होते हैं और चार महन्त होते हैं। इनके अतिरिक्त काम चलाने के लिये उनके अपने कोतवाल, कोठारी, भण्डारी, पुजारी वग़ैरह होते हैं।

श्रीमहन्त अखाड़े का कुलपति होता है जिसकी आज्ञा हर नागे के लिये शिरोधार्य है। श्रीमहन्त के बाद महन्त और कोतवाल आदि का पद होता है। हर व्यक्ति या टुकड़ी के लिये उनके अखाड़े में कार्य निश्चित रहता है। श्रीमहन्तों और महन्तों की एक पंचायत होती है जो समस्त महत्वपूर्ण प्रश्नों पर फ़ैसला देती है।

अखाड़े के सभासद मनमाने तरीक़े से नहीं मुक़र्रर होते बल्कि उनका हर छठवें साल कुम्भ या अर्धकुम्भ के अवसर पर चुनाव होता है। इस तरह इन चुनावों के कारण गवर्निङ्ग बाडी में हमेशा परिवर्तन होते रहते हैं। इन चुनावों में चुनाव के नियमों का कड़ाई के साथ पालन होता है।

मेलों और नहान में जब भी जुलूस निकलते हैं उसमें नागे इस बात पर बहुत ज़ोर देते हैं कि उनका जुलूस पहले निकले। फिर नागों में भी विविध अखाड़ों में छुटाई बड़ाई का सवाल रहता है। इस बात को लेकर कभी कभी झगड़े भी उठ खड़े होते हैं। हर अखाड़े के अपने निशान और झण्डे होते हैं जो जुलूस में आगे आगे रहते हैं। हर अखाड़े के जुलूस में हर नागे का अपना अलग स्थान नियुक्त होता है जिसमें इस बात का ख़याल रखा जाता है कि वह कब सम्प्रदाय में दीक्षित हुआ। जुलूस में आगे निशान और नगाड़ा चलता है। उसके बाद श्री ठाकुर जी महाराज चलते हैं। इसके बाद हाथियों पर श्री महन्त चलते हैं और फिर अपने अपने पद और गौरव के अनुरूप अन्य लोग।

भारत जैसे देश में जहाँ इतना कड़ा परदा पालन किया जाता है वहाँ निःवस्त्रता का स्वप्न देखना मूर्खता है। महात्मा गान्धी ने आधुनिक नग्नवाद ( Nudism ) पर एक बार कहा था—"पश्चिमी दुनिया में और भारत में व्यवहार रूप में इस नग्नवाद को फैलने की इजाज़त नहीं दी जा सकती। यह समझकर चलना ठीक नहीं है कि सभी स्त्री और पुरुष बड़े पवित्र दिल और दिमाग़ वाले हैं। इसलिये इस नग्नवाद को मैं बहुत ख़तरनाक समझता हूं।"

समाज की मौजूदा परिस्थिति में हर व्यक्ति गान्धी जी की इस राय से सहमत होगा पर फिर भी भारत में परिस्थिति की नकल पर अनेक Nude club बन गये हैं जिनके युद्ध के पहले तक ज़ाब्ते से कैम्प लगते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विज्ञान : वरदान या अभिशाप !

डाक्टर लतीफ़ दफ़री

विज्ञान उन्नीसवीं सदी का सबसे बड़ा देवता था। उसने प्रकृति के ऊपर मनुष्य की हुकूमत क़ायम की, उत्पत्ति के मानव साधनों को सैकड़ों गुना अधिक बढ़ा दिया और विश्व के अधिकांश रहस्यों में हमारा प्रवेश करा दिया।

किन्तु १९ वीं सदी की यह आशा, जिसने विज्ञान का वरदान के रूप में परिचय कराया था, निराशा में परिणित होने लगी। दुनिया ने सहमकर देखा कि विज्ञान से जिस लाभ की उम्मीद थी वह सन्देहजनक है किन्तु उससे पैदा होने वाले नुक़सान वास्तविक, बढ़ते हुये और भयानक हैं।

पहले हम उसके तथा कथित वरदानों के ऊपर एक निगाह डालें। प्रकृति पर विजय पाने का नतीजा यह हुआ कि वस्त्र बहुत सस्ते हो गये। लोग ६० मील की रफ़्तार से धरती पर, १५० मील की रफ़्तार से जल पर और ३०० मील की रफ़्तार से। आकाश में सफ़र करने लगे। किन्तु इसके साथ ही साथ सड़ायन, दुर्गन्ध, धुंआ-धक्कड़, गर्द, गन्द, भीड़ आदि नियामतें हमें दक्षिणा के रूप में मिलीं कि जिनके दम घोटू वातावरण से भागकर गांव में ही चैन मिलता है कि जहां प्रकृति अब भी मनुष्य पर हावी है।

यह सच है कि मशीनों ने पैदावार को बेशुमार बढ़ा दिया है; नतीजा यह है कि जहां पहले जितने वक्त में १०० मनुष्य जितनी पैदावार करते थे आज उसी वक्त में एक आदमी उतनी पैदावार कर लेता है। इससे यदि यह समझा जाय कि मज़दूरी के बोझ में सौ फीसदी कमी हो गई है सो बात नहीं है। पैदावार जिस रफ़्तार से बढ़ी है उसी रफ़्तार से ज़िन्दगी की दौड़ और लोगों की ज़रूरतें भी बढ़ी हैं। आज लोगों की ज़रूरतों में और उत्पादन में एक होड़ सी लगी हुई है। नतीजा यह है कि औद्योगिक और व्यापारी दुनिया में चीज़ों के इतने तरह तरह के नमूने निकलते हैं, उनमें इतनी सुन्दरता और सफाई लाने की जी तोड़ कोशिश होती है और ख़रीदार हर छै महीने में अपने को सभ्यता की इस दौड़ में इतना पिछड़ा हुआ पाते हैं कि जिन आविष्कारों से लोगों में एक सुरुचि, और एक विस्तार पैदा होता उसके बजाय खीझ और परेशानी में लोग नई नई चीज़ों के दाम देते हैं।

एक हम ऐसी ठोस मिसाल लें कि जिससे सभी परिचित हैं। विज्ञान द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त करने से पहले मनुष्य प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच रहना अधिक पसन्द करता था। अपनी व्यापारी पेढ़ी या दूकान से दो मील इर्द गिर्द वह रहता था और आध घण्टे में चलकर वह अपनी जगह पहुँच जाता था। वह प्रकृति के बीच रहता था, चलने से उसका व्यायाम हो जाता था और वह अपना काम भी कर लेता था। उसके बाद ट्रेनें निकलीं, फिर ट्यूब लाइनें निकलीं। अब दो मील पांच मिनिट में लोग आने जाने लगे। समझा गया कि बहुत बड़ी बाज़ी जीत ली। अब लोग बजाय दो मील के अपने दफ़्तर से १२ मील दूर रहने लगे और उतने ही समय में वहां पहुंचने लगे जितने समय में पहले पहुँचते थे, या जहां वे पहले रहते थे वहीं रहते रहे और अब १० मिनिट में ही दफ़्तर पहुँचने लगे। नतीजा यह हुआ कि शहर फैलने लगे। लन्दन जैसा शहर पचासों मील के घेरे में फैल गया। जहां पहले लोगों का सरलता से प्रकृति से साक्षात हो जाता था, व्यायाम हो जाता था, खुली हवा मिल सकती थी वहां अब वह चूहे की तरह धरती के गर्भ में घुसकर, भीड़ में ठुंसकर, थका मांदा दफ़्तर या घर पहुंचता है। हवास गुम शुम, मिज़ाज़ तेज़, न दफ़्तर में काम के लायक न घर में बीवी बच्चों के साथ मिठास की बातें करने योग्य।

गति के साथ विज्ञान ने रसायनिक शास्त्र में भी काफ़ी उन्नति की। और जब रसायन शास्त्री और इञ्जीनियर दोनों युद्ध के हेतु एक हो गये तो हमें नाश और बर्बादी के वे नज़ारे दिखाई देने लगे कि जो क़यामत से भी बड़ी क़यामत बरपा कर रहे हैं। सभ्यता अपूर्व गति से विज्ञान की मदद से जो कुछ निर्माण करती है वह मानों युद्ध की भयंकर भट्टी में प्रति क्षण झोंकने के लिये।

क्या कारण है कि विज्ञान की अभूतपूर्व महान देनें आज इस नाशकर रूप में इस्तेमाल हो रही हैं। इसका जवाब ढूंढ़ने के लिये कहीं दूर नहीं जाना पड़ेगा। विज्ञान से मानव आकांक्षायें नहीं बदल जातीं बल्कि विज्ञान की



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सहायता से पूरी की जा सकती हैं। विज्ञान मानव वासनाओं की प्रज्वलित अग्नि में घी की आहुति का काम देता है। सारी चीज़ इस पर निर्भर करती है कि मानव आकांक्षायें लाभप्रद हैं या नुक़सानदेह हैं। यदि लाभप्रद हैं तो विज्ञान की मदद से उन्हें अधिक लाभप्रद बनाया जा सकता है और यदि वे नुक़सानदेह हैं तो और अधिक नुक़सानदेह साबित हो सकती हैं।

विज्ञान ने आज बीसवीं सदी के सभ्य मानव को हर प्रकार से बर्बर और जङ्गली बना दिया है। दो विश्वव्यापी युद्धों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि मानव संस्कृति की बुनियादें बालू पर खड़ी की गई हैं। उसका बौद्धिक दावा बिलकुल झूठा है। वह तर्क का सहारा अवश्य लेता है किन्तु केवल इसलिये कि तर्क को वह अपने दानवी कृत्यों और विश्वासों के समर्थन का सहारा बनाता है।

बावजूद सभ्यता और संस्कृति की डींग के आज का इनसान अब भी उसी तरह का मूर्ख, अज्ञान, भावुक मौजी जीव है जिस तरह वह हमेशा था। उसमें अद्भुत वीरता प्रदर्शन की भी शक्ति है और अमानुषिक क्रूरता प्रदर्शन की भी। विज्ञान ने जो भी किया है वह सिर्फ यह किया है कि प्रस्तर-युग की बर्बर तबियत वाले आज के इस मानव को भयङ्कर और शक्तिशाली अस्त्र शस्त्रों से लैस कर दिया है। केवल अपरिमित बुद्धि के साथ ही इस तरह के हथियारों का मुनासिब प्रयोग किया जा सकता है वरना ये अस्त्र शस्त्र दुधारू तलवार की तरह हैं।

किसी स्कूली बच्चे के हाथ में एक एयर-गन दे दीजिये तो वह उससे या तो किसी खिड़की का काँच तोड़ देगा या किसी गौरय्या चिड़िया को ज़ख़्मी कर देगा। किन्तु यदि उसके हाथ में ली-मेटफ़ोर्ड राइफल या टामीगन पकड़ा दीजिये तो वह जनता के लिये बहुत बड़ा ख़तरा बन जायगा। विज्ञान ने बिलकुल यही आधुनिक इनसान के साथ किया है। उसने एक अबोध बच्चे के हाथ में दियासलाई की डिबिया पकड़ा दी है।

यह एक सोचने की बात रही है कि अथवा मानव जाति अपनी महान आत्माओं द्वारा ईजाद किये हुये ज्ञान का समुचित उपयोग करने में समर्थ है अथवा नहीं। यह प्रश्न इस समय जीवन मरण का प्रश्न बन गया है। विज्ञान के कारण आज इस बीसवीं सदी में यह परिस्थिति पैदा हो गई है कि मानव को आज जितना ज्ञान प्राप्त है उस अनुपात में उसका उपयोग करने में आज वह जितना असमर्थ है उतना पहिले कभी भी नहीं था।

मशीनों के सम्बन्ध में उसका ज्ञान इतना बढ़ गया है कि वह उसकी सामाजिक बुद्धि और उसकी सांस्कृतिक उन्नति दोनों को बहुत पीछे छोड़ गया है। उसने रेडियो और ब्राडकास्टिङ्ग की ईजाद की है और उसे परस्पर घृणा और विद्वेष के ज़बरदस्त प्रचार का साधन बनाया है। उसने तेज़ से तेज़ मोटरकार बनाई है और गाँवों के सौन्दर्य को नष्ट कर दिया है। वह मशीनें ईजाद करता है और उनसे अपना घृणित काम कराता है और उन्हें बजाय इस तरह इस्तेमाल करने के कि स्वयं मुक्त रहकर उनसे अपने लिये मेहनत मशक्कत कराये वह स्वयं उनका गुलाम बन जाता है और सारी ज़िन्दगी उन्हें पोंछता रहता है।

सैमुअल बटलर ने अपने उपन्यास "Erewhon" में दिखाया है कि किस तरह एरेव्होनियनों ने मशीनों को इस लिये नष्ट कर दिया चूँकि उन्हें यह भय हो गया था कि ये मशीनें उनके तन-बदन और धन-जन पर क़ब्ज़ा कर लेंगी।

जो बात बटलर के लिये एक महज़ उड़न-कल्पना थी वह आज सच साबित होती दिखलाई दे रही है और यदि परिस्थिति यही रही तो हमारी अगली पीढ़ी मनुष्यों की गुलामी करने के बजाय मशीनों की गुलामी करेगी।

मानवता के सामने इस समय यह एक गम्भीर प्रश्न है कि क्या वह विज्ञान की देन इन मशीनों को नष्ट कर दे अथवा इन्हें कहीं अधिक रक्तमय और भयङ्कर तीसरे, चौथे और पाँचवें महायुद्ध के लिये इस्तेमाल करके अपने को ही नष्ट कर देगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सन्त और दार्शनिक कवि वाल्ट ह्विटमैन

श्रीमती जे० फ़ोर्ड

"पैसेज टु इण्डिया", "पैसेज टु मोर दैन इण्डिया" "सैलूट आ माण्डे"—आदि अपनी कविताओं में प्रसिद्ध अमरीकन दार्शनिक, तत्त्ववेत्ता और कवि ह्विटमैन ने भारत और भारतीय संस्कृति के लिये अपने अगाध प्रेम को व्यक्त किया है। वाल्ट ह्विटमैन की आत्मा तमाम रूढ़ियों के बन्धनों से मुक्त थी. इसीलिये पश्चिमीय सभ्यता के रूढ़िवादी वातावरण में उसको शान्ति नहीं मिल सकी। वह पहला अमरीकन दार्शनिक और कवि था जो देशों की सीमा लांघकर महाद्वीपों की एकता में, गृहों की एकता में, ब्रह्माण्ड की एकता में विश्वास करता था और भूतकाल की महानता का क़ायल था। उसकी आत्मा ब्रह्माण्ड के दर्शन करती थी। उसकी आत्मा संसार के समस्त स्त्री पुरुषों में अपने ही रूप का प्रतिबिम्ब देखती थी, फिर वे स्त्री पुरुष चाहे अमरीकन हों, निग्रो हों, चीनी हों, भारतीय हों, ईरानी हों या मिस्री हों। और इस दृष्टि से सारी दुनिया की सभ्यता की देन का वह अपने को हक़दार मानता था।

अपने गीत 'पैसेज टु इण्डिया' में वह लिखता है—

भारत का मार्ग !
ऐ आत्मा, तू देख नहीं पाती क्या—
प्रभु का इस धरती पर
पहला आदेश ?
पृथ्वी इकाई एक
सम्बन्धित, सम्प्राणित।
भिन्न-भिन्न जातियां, क़बीले सब एक हैं
ब्याह यदि करने लगें आपस में मिल जुल।
सागरों को पारकर
लाना समीप है
दूरी को आपस की।
देशों की एकता औ, नूतन उपासना का
गाता मैं गीत नया।
ऐ आत्मा ! मुक्त औ' विहङ्गम
आओ दोनों हम साथ साथ
यह जो है विश्व
कर डालें प्रदक्षिणा।
तर्क के प्रारम्भिक स्वर्ग में
मन की महायात्रा में
ज्ञान के जन्म के महोत्सव में होने को सम्मिलित ;
ज्ञान जो अन्यतम सहज बुद्धि द्वारा
होता था नियन्त्रित।
कालों की सीमा के पार
चलें उस समारोह में
विधिना ने की थी जब
सृष्टि की रचना शुरू।

× × ×

ऐ वर्ष ! मैं देखता हूँ तुझमें
विराट इस जगती को,
इसका सभी लेन देन
यूरोप से एशिया औ एशिया से अफ़्रिका
सब हों सम्बन्धित सुदूर अमरीका से।
आत्मा का चिन्तन रख देता है सामने—
दुनिया के देशों में सब में महान देश !
सब में समृद्ध देश !
मानव का महाक्षेत्र !
सिन्धु और गङ्गा की निर्मल जल धारा को,
साथ साथ उनकी पृष्ठवर्त्ती नदियाँ-अनेक।
अपने इस देश अमरीका के तट से मैं
करता हूँ निरीक्षण—
ऐतिहासिक प्रगति का !
सिकन्दर की सेना का विजय मार्ग—
फ़िलिस्तीन, सूरिया, अरब औ असूरिया,
बाबुल, ईरान से पञ्चनद का प्रदेश
जहाँ से दूर अति दूर बंग खाड़ी है।
ज्ञान, विज्ञान और कविता का महास्रोत
बहता है जहां से !
धर्म, अध्यात्म, जात-पाँत, सम्प्रदायों का
अनुपम जुलूस एक देता है दिखाई।
सृष्टि के रचयिता, वृद्ध ब्रह्मा के साथ साथ
साक्यमुनि गौतम की तपःशील मुद्रा
मध्य और दक्षिण तक फैले हुये साम्राज्य
साथ साथ उनका आडम्बर अनुपम असीम !

## आत्मा की विश्व-यात्रा

'सैलूट आ माण्डे' ह्विटमैन की लम्बी कविता है। कुछ लोगों की राय के मुताबिक़ इस कविता में बड़ी एक-रसता आगई है—कुछ पंक्तियों के बारे में यह कहा भी जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सकता है—किन्तु इस कविता के सम्बन्ध में कोई एक निर्णय हमारे सामने कवि के हृदय को आलोड़ित करने वाली उस भावना को स्पष्ट नहीं कर सकता कि जिस भावना से उसने प्राच्य देशों का, वहाँ की जनता का और उनके उद्योग व्यवसाय का वर्णन किया है। सचमुच यह कविता आश्चर्यजनक है। कवि अपनी कल्पना और अपनी भावना में "अभूतपूर्व प्रेम और निश्चय के साथ सारी धरती की परिक्रमा करने निकलता है।" कवि कहता है—

अनन्त सीमा की कल्पना करो !
जो अपने विस्तार में सीमाओं से परे है—
और जिसकी कोई सीमायें नहीं हैं।

और तब कवि स्वयं अपने को सम्बोधन करके कहता है—

वाल्ट ह्विटमैन लो ! मेरा हाथ गहो !

फिर स्वय अपने से पूछता है—

तुम कुछ सुन रहे हो वाल्ट ह्विटमैन ?
तुम कुछ देख रहे हो वाल्ट ह्विटमैन ?

और फिर कवि एक के बाद एक अनेकों मुल्कों की चर्चा करता है—

मैं सुदूर देशों को देख रहा हूँ जिनके निवासियों की नज़रों में वे उतने ही वास्तविक और उतने ही निकट हैं जितना निकट और वास्तविक मेरे लिये मेरा देश है,
मैं तेहरान को देख रहा हूँ, मसकाट को देख रहा हूं, मदीना को देख रहा हूँ और देख रहा हूँ अनन्त रेगिस्तान जिनमें क़ाफिले चले जा रहे हैं ;
मैं मिस्र को देख रहा हूं और मिस्त्रियों को देख रहा हूं और पिरेमिड्स और उनकी चोटियों को देख रहा हूँ;
मैं हथौड़े और छेने से तराशे हुये इतिहासों को देख रहा हूं, और ग्रैनाइट पत्थरों और सैण्डस्टोन में कटे हुये गीतों और दर्शन शास्त्रों को सुन रहा हूँ;
मैं मेम्फिस की समाधियों में बन्द ममियों को देख रहा हूँ जो कि मलमल से लिपटी हुई मसालों से सुरक्षित सदियों से नींद में पड़ी हुई हैं;
मैं थेबाँ में बड़ी बड़ी आंखों वाली, झुकी हुई गर्दन और सीनों पर रखे हुये हाथों वाली आकृतियों को देख रहा हूँ;
ऐ विश्व की ऐतिहासिक परम्परा ! तुझे नमस्कार है !
जिन नगरों में प्रकाश और गर्मी का प्रवेश होता है मेरी आत्मा भी वहां पहुँचती है;
जिन द्वीप समूहों में पक्षी अपने डैने फड़फड़ा कर उड़ते हैं वहाँ मेरी आत्मा भी अपनी कल्पना के पंख लेकर पहुँच जाती है।

इसी विचार का वर्णन करते हुये कवि कहता है—

मैं उन तमाम महान आत्माओं को देख रहा हूं जो कि
भी देश में शुभ कामों के लिये शहीद हुई !
बीज थोड़े हैं, फिर भी कोई चिन्ता नहीं क्योंकि इन शहीदों
की फ़सल कभी समाप्त नहीं हो सकती !

पूर्वीय लोगों को पश्चिम वाले अक्सर अवज्ञा के साथ निठल्ले घुमक्कड़ कहा करते हैं। ह्विटमैन की गणना इन्हीं घुमक्कड़ों में थी। उसके बहुत से आलोचक "सड़क पर निरन्तर घूमने के कारण" उस पर दोष लगाते हैं उसे छोटा दिखाते हैं और उसकी निन्दा करते हैं।

किन्तु यह घुमक्कड़पन आख़िर था क्या ? पीठ पर झोला डालकर हाथ में पुस्तकें और काग़ज़ लेकर सड़क पर या समुद्र के किनारे टहलते हुये यह तथाकथित "निठल्ला घुमक्कड़" अद्भुत कल्पनाओं के स्वप्न देखता था। इस सम्बन्ध में कवि स्वयं लिखता है—

मैं घूम घूमकर अपनी आत्मा को निमंत्रण देता हूँ;
अवकाश पाकर घूमता हूं और झुककर घास के तृण
को देखता हूँ।
देश और काल ! जिसकी मैंने कल्पना की थी अब वह
सामने सत्य है।
घास पर घूमते हुये जिसका मैंने अन्दाज़ किया था; और जिस
मैंने अन्दाज़ किया था अकेले अपने बिस्तर पर पड़े हुये
और जब मैं बुझते हुये सितारों की टिमटिमाहट में
के समय समुद्र के किनारे घूमता था।

इसी घुमक्कड़ी के दौरान में कवि के प्रसिद्ध कविता संग्रह Leaves of Grass की रचना हुई। जिसे कवि घुमक्कड़पन से नफ़रत है उसे इस कविता-संग्रह से भी नफ़रत होनी चाहिये क्योंकि यह उसी घुमक्कड़पन का परिणाम है।

ह्विटमैन का दिमाग़ इमर्सन से बहुत कुछ मिलता जुलता है और दोनों नित्य प्रति बड़ी देर तक आपस में बातें भी करते थे। दोनों के अन्दर जो रहस्यवाद था उसने उन्हें भाव से दोनों को एक दूसरे के निकट ला दिया, हालांकि दोनों के स्वभाव में बड़ा अन्तर था। इमर्सन में प्रकाश की कमी नहीं थी किन्तु तबियतन वह गोशा नशीन था। ह्विटमैन जनता का आदमी था। इमर्सन ने जो कुछ लिखा है वह गहरे अध्ययन से और ह्विटमैन ने जो कुछ लिखा है खुले आकाश के नीचे मन्द मन्द समुद्री वायु से प्रेरणा पाकर। ह्विटमैन स्वयं लिखता है—

मेरे अन्तर का कवि कोमल और भीगती हुई रात
प्रेरणा पाकर सिहर उठता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ह्विटमैन को पुस्तकों से प्रेम था और प्रेम न था। ह्विटमैन को पुस्तकों से अगाध प्रेम था और इसकी पूर्ति इमर्सन के पुस्तकालय से होती थी। ह्विटमैन को इमर्सन के पुस्तकालय में ही मौलाना रूम और हाफ़िज़ के दीवानों का अनुवाद देखने को मिला। इमर्सन ने हाफ़िज़ की "आज़ाद ख़याली और दरिया दिली" पर एक सुन्दर निबन्ध लिखा है। दोनों महा पुरुष हाफ़िज़ के भक्तों में से थे।

कहा जाता है कि "लीव्ज़ आफ़ ग्रास" से किसी व्यक्ति ने कुछ उद्धरण सुनाकर एक अरब से पूछा कि—"बता सकते हो कि इनका लिखने वाला कौन है?" उस अरब ने जवाब दिया—"बेशक! सिवाय एक अरब के दूसरा कौन इस तरह लिख सकता है?"

ह्विटमैन के ऊपर डाक्टर रिचर्ड एम० बक से ज़्यादा समझ और सहानुभूति के साथ किसी दूसरे ने नहीं लिखा। ह्विटमैन ने स्वयं इसे स्वीकार किया है। ह्विटमैन की कल्पना के मूल स्रोत का बड़ा सुन्दर विश्लेषण बक ने किया है। बक लिखता है—

"ह्विटमैन में साधारण मनुष्यों से विपरीत एक मानसिक क्रम-विकास है और यह क्रम-विकास साधारण अनुभूति से पैदा हुआ है कि जिस अनुभूति को आमतौर पर लोग दबा देते हैं।...यही अनुभूति कवि के प्रभाव और उसके शब्दों के प्रवाह का उद्गम है।

"ब्रह्म ज्ञान की चेतना से पूर्वी और पश्चिमी दुनिया के अधिकांश विचारक परिचित हैं और सभी देशों के सभ्य स्त्री-पुरुष आज उन महान आत्माओं को प्रणाम करते हैं कि जिनमें यह ब्रह्मज्ञान मौजूद था। इस तरह के ब्रह्मज्ञानियों में गौतम बुद्ध, ईसू ख़ीस्त, पाल और मोहम्मद थे कि जिनके बताये हुये मार्ग पर पिछले दो हज़ार वर्षों से दुनिया के सभ्य स्त्री पुरुष चल रहे हैं।"

इन नामों में पेरोए इख़नातन और गान्धी जी का नाम भी जोड़ा जा सकता है।

ह्विटमैन को अपने इस ब्रह्मज्ञान की चेतना थी। इस सम्बन्ध में ह्विटमैन ने लिखा है—

"यह नया अनुभव मुझे सन् १८५३ में हुआ।... यह अनुभव इतना पवित्र है कि मुझ जैसे गुनहगार को इसे कलुषित नहीं करना चाहिये। इस तरह का अनुभव वाह्य इन्द्रियों और कर्मों से मुक्त रहना चाहिये। मानव को इसे बन्धनों में नहीं बाँधना चाहिये और न इस पर हावी होना चाहिये। दोनों को इस तरह रहना चाहिये जैसे वे सहयोगी हों।"

जिस व्यक्ति की आत्मा एशिया की स्पिरिट में पूरी तरह घुल मिल गई है वही इस तरह लिख सकता है। प्राचीन पैग़म्बरों और अर्वाचीन दार्शनिकों ने जिस पारलौकिक विभूति के दर्शन किये थे उसी ने ह्विटमैन के हृदय में प्रकाश पाया था। ह्विटमैन दलित और पतित सर्वहारा वर्ग के उन्नायक थे। उन्होंने जनता को, मज़दूरों को और पीड़ितों को आशा का सन्देश सुनाया। हालाकि ह्विटमैन चीन और भारत के अध्यात्म को पूरी तरह नहीं अपना पाये फिर भी ब्रह्माण्ड की जिस एकता के उन्होंने दर्शन किये थे उसकी सहज अनुभूति से प्रेरित होकर उन्होंने भाईचारे के भाव से एशिया की ओर हाथ बढ़ाया। पश्चिमी दुनिया से अधीर होकर वे पूर्वी देशों और पूर्वी जनता की ओर मुख़ातिब हुये। उनके दिमाग़ ने, जो अबाध रूप से समन्वयात्मक था, उन्हें केवल अपने देश से सन्तोष न करने दिया। वह अधिक से अधिक ज्ञान की खोज में थे—वे अपने को उतना ही पूर्वीय समझते थे जितना कोई भी पूर्वीय समझ सकता है। उनके धार्मिक विचारों में किसी तरह की संकीर्णता, रूढ़िवाद या अन्ध विश्वास न था। सेवा पर उनका अटल विश्वास था। बीमारों की सेवा करने और ख़ासकर युद्ध के घायलों की सेवा करने में उन्होंने अपने को खपा दिया।

ह्विटमैन पुराने अंगरेज़ी वर्ग के कवि नहीं थे। अमरीका की यह नई दुनिया एक नई भाषा और एक नये कवि की तलाश में थी। और वह कवि और द्रष्टा उसे ह्विटमैन के अन्दर मिला।

जब कोई व्यक्ति विश्वात्मा के दर्शन कर लेता है तो वह सम्पूर्ण मानव जाति के साथ अपनी एकता को अनुभव करने लगता है फिर वह राष्ट्रीयता, जाति-पांति या सम्प्रदाय के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। वह सभी संकुचित अर्थों से ऊपर उठकर सर्वदेशीय हो जाता है।

और जैसा कि ह्विटमैन कहा करते थे उनकी "उदारतम महिला मित्र" एन गिल क्राइस्ट ने लिखा है—"कवि का हृदय प्रेम का वह अथाह सागर था जो सब की प्यास बुझाने के लिये तृषित ओठों की तलाश में रहता था। अमरीका ऐसी सन्तान पाकर ख़ुशक़िस्मत है।"

इस सार्वभौमिकता का परिचय स्वयं ह्विटमैन के शब्दों में मिलता है—

"ईश्वर गवाह है! मैं ऐसी कोई नियामत स्वीकार न करूँगा जो सब को प्राप्त नहीं हो सकती!

"मैं पृथ्वी के समस्त अधिवासियों को प्रणाम करता हूँ!"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पुस्तक परिचय

**हिन्दुस्तान की बुलबुल ( सरोजिनी नायुडू )** —लेखक श्री रामानन्द शर्मा; प्रकाशक—दक्षिण भारत न्दी प्रचार सभा, मद्रास, मूल्य छै आने; पृष्ठ संख्या २४।

अत्यन्त सरल हिन्दुस्तानी भाषा में लेकिन बहुत रोचक ौर सुन्दर ढङ्ग से श्री रामानन्द शर्मा ने यह पुस्तक बच्चों ; लिये लिखी है। इस पुस्तक में सरोजनी नायुडू के जीवन विविध पहलुओं—बचपन, पढ़ाई लिखाई, विलायत ाना, ब्याह, राजनीति में प्रवेश और कांग्रेस की सभानेत्री ाने आदि पर बड़े दिलचस्प तरीक़े से प्रकाश डाला गया । पुस्तक प्रत्येक बच्चे के हाथ में होनी चाहिये। पुस्तक अन्त में श्रीमती नायडू की जिस कविता का हिन्दी ानुवाद दिया गया है वह बहुत सुन्दर है किन्तु बच्चों के ाये बेमौज़ूँ मालूम होती है।

**हैदरअली ( जीवनी )**—लेखक पं० रघुवरदयालु ाश्र; प्रकाशक उपर्युक्त, मूल्य बारह आने, पृष्ठ संख्या ६४।

ब्रिटिश भारत के इतिहास में मैसूर के दैव-सुल्तान दर अली का व्यक्तित्व बेहद महत्वपूर्ण है। भारत में ंटिश सत्ता का जितना सक्रिय और सफल विरोध हैदर ली ने किया उतना किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं किया। दि हैदरअली के जीवन में दस वर्ष और बढ़ गये होते भारत में ब्रिटिश सत्ता के ख़ात्मे का इतिहास आज से ढ़ सौ वर्ष पहिले ही लिखा गया होता। किन्तु भारत की दनसीबी से हैदरअली ने असमय में ही ज़िन्दगी से छुट्टी ली। हैदरअली अपढ़ होते हुये भी चतुराई और बुद्धिमत्ता ा भण्डार था। वह बहादुर न्यायप्रिय, उदार, सहिष्णु ौर योग्य शासक था। नाना फड़नवीस के साथ मिलकर ह अङ्गरेज़ों को भारत से बाहर निकलाने की योजना बना ा था किन्तु योजना सफल होने के पहिले ही मैदाने जङ्ग उसकी मृत्यु हो गई।

प्रस्तुत पुस्तक में हैदरअली के प्रारम्भिक जीवन से कर मृत्यु पर्यन्त, संक्षेप में, सब बातों पर सुन्दर प्रकाश ाला गया है। पुस्तक की भाषा सरल हिन्दुस्तानी है। तिहास के प्रत्येक विद्यार्थी को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी ाहिये। पुस्तक में उद्धृत रेवरेण्ड बुल के इस कथन से म सहमत हैं कि—Hyder Ali may be accounted ne of greatest figures in Indian History... His was a national ideal; and he very nearly achieved his aim.

पुस्तक के कवर पर जो हैदर अली का चित्र दिया हुआ है वह अनैतिहासिक और बिलकुल ग़लत है। आशा है कि प्रकाशक अगले संस्करण में इस ग़लती को सुधार लेंगे। प्रसिद्ध फ्रेंच इतिहासज्ञ एम० एम० डी० एल० टी० के अनुसार हैदर अली ने जीवन में कभी दाढ़ी मूँछें नहीं रखीं। विक्टोरिया मेमोरियल कलकत्ता में जो हैदरअली का समकालीन चित्र है वह एम० ए० डी० एल० टी० के इस कथन की पुष्टि करता है।

**सतरंगिनी ( कविता संग्रह )**—रचयिता श्री बच्चन प्रकाशक, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या १८९, मूल्य अजिल्द का २।) रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रवेश-गीत मिलाकर बच्चन की ५० कविताओं का संग्रह है। हम प्रकाशक के इस वक्तव्य से सहमत हैं कि—"सतरङ्गिनी की प्रगति निराशा से आशा की ओर, सन्देह से विश्वास की ओर, विरक्त से अनुरक्ति की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर हुई है।" यह संग्रह निश्चय ही बच्चन के प्रगति के पथ पर अग्रसर होने का साक्षी है। इस भौतिक दुनिया की समस्याएं सब कुछ भूलकर मस्ती में खो जाने से हल नहीं होंगी बल्कि उनका हल अपने विश्वास के सहारे, अपने पुरुषत्व के ज़ोर से और अपने बाज़ुओं के बल पर खोज निकालना होगा क्यों कि दुनिया का भला बुरा वातावरण कवि तक ही सीमित नहीं है, वह अपने चिरंजीवि अस्तित्व के लिये उसे सुन्दरतर बना जाना चाहता है। तभी तो वह कर्तव्य शीर्षक अपनी कविता में कहता है—

जैसी हमने पाई दुनिया आओ इससे बेहतर छोड़ें,
शुचि-सुन्दरतर इसे बनाने से अपना मुँह कभी न मोड़ें।
क्यों कि नहीं है इससे नाता जब तक जीवन काल हमारा,
खेल, कूद, पढ़, बढ़ इसमें ही रहने को है लाल हमारा।

अपनी 'साधना' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

नवल स्वप्नों के लिये भरने लगा है जोश मन में,
और कवि के सामने दुनिया का वास्तविक संघर्ष है तभी तो वह कहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दुनिया यह स्वर्ग-बेलि,
दुनिया यह स्वर्ग-बीज,
अश्रु - खेद - लोहू से
जिसको जब सींच-सींच
मनुज बढ़ा लेता है,
अमृत फल देता है।

और इस संघर्ष के लिये कवि अपने नवीन उत्तर दायित्व से खूब परिचित दिखाई देता है तभी तो हम उसे घोषित करते पाते हैं—

कवि का मन्तव्य नवल,
कवि का कर्तव्य नवल,
कवि का भवितव्य नवल।
कवि का व्यक्तित्व नवल,
कवि का अस्तित्व नवल,
उत्तरदायित्व नवल।

और वह अपना नवीन उत्तरदायित्व व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रखता वह उसका समष्टि के कल्याण के लिये उपयोग करना चाहता है—

कर सकेंगी मानवों का जो सदा कल्याण,
विश्व की उन हलचलों को आयु मेरी दान;

और अब तक के अपने आदर्शों और तौर तरीक़े के लिये वह अपनी भूल स्वीकार करते हुये कहता है—

भूल थी मेरी कि वादा कर लिया था और
एक युग से और था मेरा तरीक़ा-तौर;

और कवि जिस 'आशा की पुकार' पर अपना तौर तरीक़ा बदलने को तय्यार हुआ है उसके मँहगेपन के सम्बन्ध में वह लिखता है—

ज़मीन है न बोलती न आसमान बोलता,
जहान देखकर मुझे नहीं ज़बान खोलता,
नहीं जगह कहीं जहां न अजनबी गिना गया,
कहाँ कहाँ न फिर चुका दिमाग़ दिल टटोलता,
कहीं मनुष्य है कि जो उमीद छोड़कर जिया
इसीलिये अड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो।

और इस पुकार को सुनने के बाद वह अपने को सम्बोधन करके कहता है—

भूल जा तू अब पुराना गीत औ गाथा पुरानी,
भूल जा तू अब दुखों का राग दुर्दिन की कहानी,
ले गया जीवन नई झनकार, वीणा बोलती है,
छू गया है कौन मन के तार, वीणा बोलती है।

सारे संग्रह में हम कवि के हृदय को आशा से झंकृत होते पाते हैं। आज उसे अपने अब तक के दुर्दिनों का कारण मिल गया है और तभी वह अपनी 'प्रत्याशा' कविता में कहता है—

दुनिया गई जलाई तेरी, दुनिया गई मिटाई तेरी;
सोने का संसार जहाँ था, वहां लगी मिट्टी की ढेरी,

क्यों कि हृदय के अन्दर तेरे थी वह शक्ति कि जिसके द्वारा महानाश की छाती पर तू कर सकता था नव-निर्माण।

'सम्मानित' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

अमर वेदनाओं से अन्तर मथा गया तेरा निशि-वासर,
(यह तुझ पर अन्याय नहीं था),
क्यों कि यही था सबसे बढ़कर तेरी छाती का सम्मान!

पथ के शूलों का अब वह सहर्ष स्वागत करता है क्यों कि—

शूल कुछ ऐसे, पगों में चेतना की स्फूर्ति भरते,
तेज़ चलने को विवश करते हमेशा जब कि गड़ते,

अपने इस नये पथ पर कवि अपने गीतों की प्रेरणा का नया वरदान मांगता है—

स्वर्ग प्रसन्न हुआ यदि मुझसे मुझको ऐसा गान मिले,
जिसको सुनकर मरे हुओं को जीवन का वरदान मिले।

शायद इसी वरदान की प्रेरणा से कवि ने 'विकल विश्व' की भावनाओं का चित्रण किया होगा। हम कवि का यह नया कविता संग्रह देखने के लिये उत्सुक हैं।

हमें इस बात की ख़ुशी है कि बच्चन जी ने अपनी कविताओं के प्रवाह को संकुचित संस्कृति निष्ठ हिन्दी के घेरे में नहीं बांधा। उन्होंने प्रवाह को अधिक गति देने के लिये मुक्तरूप से अरबी फ़ारसी आदि शब्दों को भी प्रेम से अपनाया है।

पुस्तक में कहीं कहीं प्रूफ की ग़लतियां रह गई हैं और कहीं कहीं क्रियाओं का अचिन्त्य प्रयोग भी हुआ है। इस में कोई सन्देह नहीं इस संग्रह ने वेग के साथ बच्चन जी को प्रगति की धारा में लाकर खड़ा कर दिया है।

—विद्यानन्द सन्यासी

**कादंबरी-परिचय**—(परिचयात्मक-कथा) लेखक, श्री राजनाथ पांडे एम० ए०; प्रकाशक, श्री लक्ष्मी प्रकाशन मंदिर, गोरखपुर; मूल्य २।); पृष्ठ संख्या, १९६।

प्रस्तुत पुस्तक संस्कृत न जानने वाले व्यक्तिओं को बाण भट्ट कृत कादम्बरी से परिचय कराने के लिए है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लेखक ने प्रारम्भ में लगभग ४० पृष्ठों में भूमिका लिखी है जिसमें इस छायानुवाद की आवश्यकता दिखलाई है। हिंदी के लेखकों से उसे शिकायत है कि वे भाषा को अंगरेज़ी के प्रभाव से भरकर नष्ट कर रहे हैं। दूसरी भाषाओं का प्रभाव अपनी भाषा के लिए सदा अहितकर ही होगा, यह नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक भाषा का विकास दूसरी भाषाओं के प्रभाव से होता है। 'वह पैसे से भरा था' हो सकता है, यह वाक्य अंगरेजी के 'ही वाज़ फुल आफ़ मनी' के प्रभाव स्वरूप लिखा गया हो परन्तु इसको यह कहकर ग़लत कहना कि 'आदमी की पेटारी, जेब या थैली पैसे से भरी हो सकती है पर यह पैसा भरा आदमी कैसा होता है यह समझ में नहीं आता'—यह मतलब रखता है कि लेखक अभिधा के अतिरिक्त लक्षणा और व्यंजना से सरोकार नहीं रखता। ऐसी ही अर्थहीन गलतियों की ओर लेखक ने हमारा ध्यान खींचा है। 'तसवीर खींचना या उतारना' भी लेखक के दृष्टिकोण से अंगरेज़ी का 'कुप्रभाव' है। लेखक फ़ारसी को भी 'कुप्रभाव' के अंतर्गत ही रखता है और उसे कादम्बरी की भाषा इसी कारण पसंद है क्योंकि उस समय भाषा पर फ़ारसी और अंगरेज़ी का प्रभाव न था। लेखक अत्यन्त गर्व से कहता है, 'यदि कोई सज्जन हिन्दी में ऐसी पुस्तक चाहते हों जिसमें भाषा सर्वत्र एकरस और पुनीत है तो उन्हें यह पुस्तक ( कादम्बरी-परिचय ) देखनी चाहिए'। पुस्तक में आए हुए समस्त सुन्दर शब्दों का एक अनावश्यक कोष भी अंत में दिया गया है। इसके अर्थ दृष्टव्य हैं : सहचर = वयस्य ; समाधान = विवाद भञ्जन ; मानुषी = मानवी ; मौन = वाणी के व्यापार से रहित होना ; याचना = याञ्चा ; दग्ध = भस्मीकृत ; निरंतर = निरवधि ; एकाग्र = अनन्यासक्त चित्त ; उत्कट = अतीव। इस शब्द कोष के लिए एक दूसरे शब्द कोष की आवश्यकता है। कहीं कहीं अर्थों में अंगरेज़ी भी दी गई है : स्थगित = छिपा हुआ ( Shelved ); विलेपन = जिससे लेप किया जाए ( Cream ), बैठका = बैठने का निश्चित गृह ( Drawing Room ), बैठने के लिए पीढ़ा ( Seat ) आदि।

स्वतः भावानुवाद की भाषा दर्शनीय है। 'उस बिचारी का क्या हुआ सो कृपा करके कहिए' ( पृष्ठ १४३ ); 'छाती कूट कूटकर प्रलाप करने लगी ( पृष्ठ ) १४३; 'राजा के ऐसा कहने पर, कहां है मेरे पुत्र को जिलाने वाली मेरी बहू, यह कहती हुई विलासवती झट उठ जाकर अचेतन अवस्था में ही अपने हाथ से गोद में लेकर, मूर्च्छा से मुँदे नेत्रों की दूनी शोभावाला उसका मुँह देख, चद्रकला के समान शीतल अपना गाल उसके गालों पर, ललाट ललाट पर और नेत्रों पर नेत्र रखती तथा हाथ हृदय पर फेरती कहने लगी, धीरज रखो बेटी' ( पृष्ठ १४३ ); 'आप उनसे कह देना' ( पृष्ट १६८ ) इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। विराम चिन्हों का प्रयोग भी कहीं कहीं इस तरह हुआ है—पुत्र अकेली का क्या हुआ ? यह जान नहीं पड़ा ?' दुसरा प्रश्नवाचक अनावश्यक है।

साधारणतया पुस्तक अच्छी है और संस्कृत न जानने वाले एवं 'आवाज़', 'इरादा', 'उम्र', 'कोशिश', 'हमेशा', 'महल', 'याद' जैसे फ़ारसी के शब्दों से घबराने वाले कादंबरी के पाठकों के लिए विशेष उपादेय है।

**भारतीय सहकारिता आंदोलन**-( अर्थशास्त्र ) लेखक, श्री० शंकरसहाय सक्सेना एम० ए०; प्रकाशक, भारतीय ग्रंथमाला, दारागंज, प्रयाग ; मूल्य २॥); पृष्ठ संख्या, २९२।

पुस्तक का द्वितीय नवीन परिवर्द्धित संस्करण हमारे सामने है। हिन्दी की यह लाड़ली पुस्तक है। पुस्तक के प्रथम और इस संस्करण के बीच बहुत सी, कांग्रेस मंत्रिमंडल आदि के आने जाने की घटनाएं घट चुकी हैं जिनका प्रभाव भारतीय सहकारिता आंदोलन पर पड़ा है। उन सब का समावेश इस संस्करण में कर दिया गया है। आशा है पुस्तक का स्वागत पूर्ववत ही होगा।

**भावना-योग**—( धर्म )—लेखक, उपाध्याय अमर राम जी महाराज; प्रकाशक, एस० एस० जैन यूनियन, लुधियाना ; मूल्य ।॥); पृष्ठ संख्या १०८।

जैन आगमों में आत्मिक शुद्धि के लिए भावना अनुपेक्षा का महत्व आधिक्य में पाया जाता है। इस भावना योग की विवेचना प्रस्तुत पुस्तक का लक्ष्य है। सारे ग्रंथ में भावना योग की विवेचना ईश्वर प्रार्थना के रूप में ही की गई है। पुस्तक की शैली भावुकता से पूर्ण और वैज्ञानिकता से विहीन है। जैन धर्म का अवलंबन करने वाले सज्जनों को यह पुस्तक पढ़ना चाहिए।

—कमल कुलश्रेष्ठ एम०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दुस्तान में विज्ञान की अवनति के कारण

स्व० आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय

यह कहना कि हमारा हिन्दुस्तान सदा से ब्राह्मण-शासित और जाति-भेद तथा शास्त्रवाद ग्रस्त और कुसंस्कारों में डूबा हुआ रहा है, ठीक नहीं है। प्राचीन भारत में भी अनुसंधान की बड़ी प्रबल इच्छा थी और स्वतंत्र चिन्तना की धारा बराबर बहती आई है। यहां तक कि महर्षि कपिल ने ईश्वर के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं किया है।* प्राकृतिक विज्ञान के अनुशीलन में प्राचीन भारत तत्कालीन दूसरे सभ्य देशों के मुक़ाबले में काफ़ी आगे बढ़ा हुआ था। जब सुश्रुत, रसाणवितंत्र, रस रत्नसमुच्चय आदि प्राचीन ग्रंथों में लिखी हुई परीक्षाओं और पर्य वेक्षणों का विवरण पढ़ता हूँ तो मन में क्षोभ होता है। पहले क्या था और अब क्या होगया! जिस देश के सुश्रुत ने कहा था—"शव की चीर फाड़ के बग़ैर चिकित्सा विद्या सीखना असम्भव है," उसी देश में शव को स्पर्श करना तक निषिद्ध कर दिया गया। जिस देश का अभिजात वर्ग सोने, रत्न-परीक्षा, धातु-विद्या, धातु और औषधियों की संयोग क्रिया का ज्ञान, क्षारनिष्काशन वग़ैरह विविध विद्याओं में पारंगत होना गौरव की वस्तु समझते थे, उसी देश में सोनारों और लोहारों का काम ऊँची जाति वालों की अवज्ञा की वस्तु बन गया। उसी देश के वैद्य शरीर विज्ञान की परीक्षाओं की अवज्ञा करके चिकित्सा विद्या की अध्यापना करने लगे।

प्राचीन भारत में स्वतंत्र विचार धारा उच्चता के शिखर पर पहुंच गयी थी, यह चार्वाक के दर्शन के अध्ययन से मालूम हो जाता है। इसके बाद बौद्ध धर्म के प्रचार से समानता, मित्रता और विश्व भ्रातृत्व का भारत में प्रचार हुआ। इससे ज्ञानोन्नति का दरवाज़ा सब के लिए खुला, सर्वशास्त्रों की सम्यक समालोचना आरम्भ हुई। बौद्धों ने ख़ास तौर से रसायन और चिकित्सा शास्त्र को काफ़ी समुन्नत किया। इसके लिये सिर्फ नागार्जुन का नाम लेना काफ़ी होगा। ऐसी जनश्रुति है कि इन्होंने सुश्रुत तन्त्र को परिवर्द्धित किया और नए सिरे से उसका निर्माण किया था। वास्तव में सुश्रुत में बौद्धमत के काफी प्रमाण मिलते हैं। इसमें शव के चीर फाड़ की सुन्दर नियमावली दी गई है और लिखा है कि प्रत्यक्ष प्रमाण के बग़ैर कुछ भी ग्रहण मत करो। अष्टांग हृदय प्रणेता वाग् भट्ट भी बौद्ध थे, कहीं ब्राह्मणवादी उनके मतों को स्वीकार न कर लें इस पर व्यंग करते हुए उन्होंने लिखा है:—"अगर ऋषि प्रणीत होने के कारण ही किसी ग्रंथ की श्रद्धा की जाती है, तो सिर्फ चरक और सुश्रुत का ही क्यों अध्ययन किया जाता है? इसलिए सिर्फ ग्रंथ में लिखे विषयों के प्रति ध्यान रख कर उस ग्रंथ के सार तत्व पर विचार करना चाहिए।" आगे चलकर उन्होंने लिखा है—"जब औषधि के गुणों पर ही विचार करना है तो स्वयं ब्रह्मा उसका प्रयोग करें या कोई दूसरा इसमें कोई हर्ज नहीं।"

## प्राचीन भारत में विज्ञान साधना

वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में लिखी चौसठ कलाओं में निम्नलिखित कलाओं का नाम भी है:—

धातुविद्या—धातु निष्काशन और रसायन का अध्ययन,

सुवर्णरत्न परीक्षा—स्वर्ण तथा दूसरे रत्नों की परीक्षा और उनका मूल्य निरूपण।

मणिरागाकर ज्ञान—मणि-रत्नादि के वर्ण और उनकी खानों का ज्ञानार्जन।

शुक्राचार्य की 'शुक्रनीतिसार' में भी विभिन्न कलाओं का विवरण दिया गया है। जैसे, 'पाषाण धात्वादिदृतिस्तद् भस्मीकरणं कला' अर्थात् धातु तथा पत्थरों में सूराख़ करने और उनका भस्म तैयार करने की कला। धात्वौषधीनां संयोगक्रियाज्ञानं कला स्मृता' धातु तथा लताओं की संयोग क्रिया कला समझी जाती थी।

धातु सांकर्य पार्थक्य करणान्तु कला स्मृता।
संयोगपूर्व विज्ञानं धात्वादीनां कला स्मृता॥

धातु मिश्रण तैयार करना ( Alloying ) और उसका विश्लेषण भी विभिन्न कलाओं में से था।

कवि बाण के एक मित्र धातु निष्कासन का व्यापार करते थे। संस्कृत साहित्य में 'लौहविद्' और 'धातुविद्' आदि शब्दों के बहुत प्रचार से मालूम होता है कि उस समय धातु निष्काशन करने वाला सम्प्रदाय समाज में सम्मानित समझा जाता था। रंजन शिल्प ने भी एक समय भारत में सफलता और समृद्धि पाई थी।

---

* भारतीय दार्शनिक परम्परा में नास्तिकों की संख्या काफ़ी रही है। —सम्पादक



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागार्जुन ने इस देश में रसायनविद्या को यथेष्ठ उन्नत किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। चक्रपाणि ने लिखा है कि उन्होंने जिस लौह रसायन की व्यवस्था दी थी, उसका प्रथम विवरण नागार्जुन ने ही दिया था। रसेन्द्र चिन्तामणि कार के मातानुसार वही तिर्यकपातन प्रक्रिया के आविष्कारक हैं।

प्राचीन भारत में सिर्फ़ दर्शन और साहित्य में ही उन्नति नहीं हुई थी। आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, रसायन आदि शास्त्रों में भी काफ़ी उन्नति हुई थी। आर्यभट्ट ब्रह्मगुप्त, बराहमिहिर आदि मनीषियों ने ज्योतिष और गणितशास्त्र में उन्नति की थी। लेकिन अब प्रश्न उठता है कि क्या ये विद्याएं और विज्ञान साधना लुप्त हो गए?

## विज्ञान की अवनति का कारण

कुछ लोगों का कहना है कि मुसलमानों के आधिपत्य से राजन्य वर्ग विध्वस्त हो गए और इसलिए विज्ञान की अवनति हुई। लेकिन तत्कालीन इतिहास को देखने से यह तर्क सारहीन मालूम होता है। मुसलमानों के हिन्दुस्तान में आने के बहुत पहिले से ही हिन्दुओं में अनुसंधान की प्रवृत्ति घटने लगी थी। और अगर मुसलमानों के आगमन के बाद ही विज्ञान के ह्रास की बात सही होती तो पूर्वोक्त सभी विद्याएं दक्षिण में आश्रय लेतीं, क्योंकि वहाँ कभी भी मुसलमानों के पैर नहीं जम पाए। मुसलमानों के शासनकाल में बंगाल ख़ासकर नवद्वीप और विक्रमपुर में हिन्दू शास्त्रों का काफ़ी अनुशीलन होता था। ये दोनों स्थान नवाबों की राजधानी के निकट थे। मोटे तौर से ऐसा कहा जा सकता है कि उपनिषद काल से बौद्ध धर्म की प्रौढ़ावस्था तक भारतीयों का बौद्धिक विकास मानसिक विचार द्वारा बहुत सी गौरवमय चीज़ें कर चुका था। पुरातत्व के पण्डित इस काल (ई० पू० ६००—७०० ई०) को उन्नति का और स्वतंत्र विचार का युग कहते हैं।

हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के युग में भारतीय समाज में जो विशाल परिवर्त्तन दिखाई पड़ा था, भारत में विज्ञान की अवनति के कारणों पर विचार करते समय उसे भी भुलाया नहीं जा सकता। शङ्कराचार्य के द्वारा परिवर्द्धित और परिवर्त्तित वेदान्त दर्शन में पार्थिव सुख सुविधाओं की सारहीनता पर इतना अधिक ज़ोर दिया गया है कि भारत में विज्ञानानुशीलन की प्रेरणा फिर प्रतिष्ठित नहीं हो सकी। विज्ञानानुशीलन क्रमशः अधिकाधिक निन्दनीय समझा जाने लगा।

शास्त्र शासित, जाति-भेद प्रथा से जर्जरित, परलोक में विश्वासी हिन्दू जाति की कुशाग्र बुद्धि और अपरिमित मनीषा विज्ञान के क्षेत्र से भटककर अंधकार में चक्कर काटने लगी। गौरवमय अतीत का इतिहास किसी दिन उसमें फिर प्रेरणा पैदा करेगा, इसी लिए हिन्दू रसायन विद्या के इतिहास को आज जानने की ज़रूरत है।*

---

* आचार्य प्रफुल्ल चन्द्रराय ने अपने दीर्घ जीवन के वैज्ञानिक गवेषणागार में ही नहीं बिताया, बल्कि देश और समाज की उन्नति के लिए उनकी देन उनके वैज्ञानिक देन की तरह ऐतिहासिक है। सिर्फ़ विज्ञान ही नहीं, संस्कृत के वह कितने महान साधक थे यह उनकी पुस्तक A History of Hindu Chemistry (2 Vols) से स्पष्ट हो जाता है। यह ग्रन्थ केवल प्राचीन भारत के विज्ञान और रसायन विद्या के इतिहास के लिए ही अमूल्य नहीं है, बल्कि प्राचीन भारतीय संस्कृति की गवेषणा के लिए भी यह उनकी एक विशाल देन है, लेकिन कठोर परिश्रम करके जिस उद्देश्य से उन्होंने इसे लिखा था, वह अभी तक पूरा नहीं हुआ है। भारत अपनी विस्तृत वैज्ञानिक परम्पराओं को समझने और विज्ञान के नए विकासों को अपनाने के लिए संघर्षशील है। प्राचीन ब्राह्मण्यवाद, कुसंस्कार तथा दूसरे हज़ारों प्रकार के नाग फांस से वह आज भी मुक्त नहीं हो सका है। लेकिन फिर भी आचार्य प्रफुल्लचन्द्र ने दिखाए महान पथ पर भारतीय वैज्ञानिक विज्ञानानुशीलन में दत्तचित्त हैं। भारतीय वैज्ञानिक आज मौलिक गवेषणाओं के लिए पाश्चात्य वैज्ञानिकों की श्रद्धा प्राप्त कर रहे हैं। भारतीय स्वतंत्रता ही वैज्ञानिकों के रास्ते की बाधाओं को दूर करेगी।

प्रोफेसर बार्नल ने The Social Function of Science में ठीक ही लिखा है कि भारत में विज्ञान की उन्नति के लिए लड़ने वालों में आज राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं का स्थान प्रमुख है। आज से एक वर्ष पूर्व आचार्य प्रफुल्लचन्द्र ने हमारे बीच से बिदा ले ली है। आगामीकाल का विज्ञानोन्नत भारत उनकी महान देन को कृतज्ञता के साथ स्मरण करेगा। यह लेख हमने उनकी A History of Hindu Chemistry तथा "हिन्दू रसायनी विद्या ओ ताहार उत्पत्ति" इन दोनों ग्रंथों से संकलित किया है।] —महादेव साहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वोल्गा से गङ्गा—एक प्रत्यालोचना

श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद'

मेरे एक मित्र ने, जो पेरिस और लन्दन यूनिवर्सिटी के साहित्य के डाक्टर हैं, राहुल जी की आलोचना करते हुये कहा—"राहुल जी ने जो लिखा है, उसका आधार तो है, पर उससे प्राचीन परम्परा का भवन ढह जाता है। राहुल जी ने मामूली लोगों के हाथों में ऐसा हथियार दे दिया है जो नहीं देना चाहिये था।" यदि हम आलोचना में "प्राचीन परम्परा" की जगह ब्राह्मण्यवादी संस्कृति (द्विज संस्कृति जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को शूद्रों पर हर तरह के अत्याचार करने का अधिकार देती है) कह दिया जाय, तो हमारे उन मित्र की बात ठीक बैठेगी।

राहुल जी ने इधर जो साहित्य दिया है, उससे ख़ास क़िस्म लोगों में क्षोभ, जन-साधारण में आश्चर्य और कुछ पण्डित मण्डली में मतभेद दिखाई पड़ा है। इन पंक्तियों के लेखक का ऐसे कई विद्वानों से परिचय है, जिन्होंने "वोल्गा से गङ्गा" नामक कहानी संग्रह पर कहीं कहीं अपना मतभेद ज़ाहिर किया है। पर वहीं उन्होंने यह भी कहा है कि राहुल जी के पास भी काफ़ी प्रमाण हैं। राहुल जी का दृष्टिकोण ऐतिहासिक भौतिकवाद है। पुराने विद्वानों का दृष्टिकोण ऐसा नहीं था। यही कारण है कि जिन तथ्यों को पुरानों ने छोड़ दिया, उनका राहुल जी ने संग्रह किया और समाज के विकास में उनको आधार माना। इस तरह राहुल जी के साहित्य में उपेक्षित ही प्रधान हो उठा; यही कारण है कि भिन्न भिन्न स्तर के लोग, उसे भिन्न भिन्न रूप में ले रहे हैं।

अप्रैल की "विश्ववाणी" में व्योहार राजेन्द्र सिंह जी ने "वोल्गा से गङ्गा" की आलोचना जिस रूप में की है, उसे हम सामन्ती दृष्टिकोण कह सकते हैं। शायद इनकी "व्योहार" उपधि राज्य की देन है। शायद ये साठ गाँवों के ज़मींदार हैं। पर फिर भी इनकी आलोचना की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इनकी आलोचना से हमें सामन्ती दृष्टिकोण का ही परिचय मिलता है। उन्होंने राहुल जी पर ये आक्षेप किये हैं—

१—"वोल्गा से गङ्गा" में अश्लीलता है।

२—"वोल्गा से गङ्गा" अप्रमाणिक है।

३—"वोल्गा से गङ्गा" में सभी चीज़ों की मूल प्रेरणा 'अर्थ' है, और वह ग़लत है।

पहले हम यह कह देना चाहते हैं कि "वोल्गा से गङ्गा" न केवल इतिहास है और न केवल कहानी। उसमें जो इतिहास है वह सिर्फ़ राजारानी और ऊपरी तबक़े का नहीं है और जो कहानी है उसका अर्थ सिर्फ़ मनोरंजन नहीं। उसमें समाज का विकास दिखाया गया है, इसलिये उसमें वहां तक इतिहास है, जहां तक समाज शास्त्र की सीमा है, और उसकी कहानी में कल्पना वहीं तक है जहां तक इतिहास की इजाज़त उसे मिली है।

राहुल जी की कहानियों में चुम्बन वहीं तक खुलकर है, जिस काल तक इसका प्रचलन था। सभी कहानियों में चुम्बन का एक सा प्रयोग नहीं है। "बन्धुल मल्ल" कहानी में नायक ने नायिका के स्तनों को शिकार के वक्त बांध दिया है। और उस काल में हम यह प्रवृत्ति साधारण सी पाते हैं। बुद्ध ने इस भोगवाद को सीमित किया। उसके पहले के समाज में तो हम इस प्रवृत्ति को पराकाष्ठा पर पाते हैं। यम यमी के आख्यान को कम से कम इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वह सगे भाई बहिन के प्रणय का विरोधी है, अर्थात् उस काल से कुछ ही पहले सगे भाई बहनों में प्रणय मामूली बात थी और उसमें बैल की तरह आलिंगन की बात कही जाती थी। खुद शाक्यों की उत्पत्ति भाई बहिन से है; और बुद्ध के काल में रिश्ते की बहिनों से शादी सम्भव थी। ऋग्वेद का बृहद्देवता वाला काल बुद्ध से बहुत पहले का है। और वहां रोमशा ब्रह्मवादिनी के साथ इन्द्र का संवाद है। यह संवाद आज के हम लोगों की नज़रों में इतना फूहड़ है कि उसे यहां अनुवाद करना हमारे बूते के बाहर है। उसके मूल वचन को हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं:—

इन्द्रः सखित्वादथ तामुवाच
रोमाणिते सन्ति न सन्तिराज्ञि
सा बालभावादथतांजगाद
उपोपमें शक्र परामृशेति ॥
उपोपमें परामृश मामे दभ्राणिमन्यथा
सवाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥

दे० बृह० ४; ऋग्वेद १।१२६।७

जिसे आज का लम्पट वेश्या से भी नहीं पूछ सकता, उसे इन्द्र ब्रह्मवादिनी से पूछता है और जिसका जवाब आज की निकृष्टतम वेश्या भी नहीं दे सकती, उसका जवाब एक ब्रह्मवादिनी दे रही है। छान्दोग्योपनिषद् के "न कांचन परिहरेत" और शंकराचार्य के शब्दों में "न कांचन कामयमानां परित्यजेत्" से भी सामाजिक शिष्टता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पता चल जाता है। और विनयपिटक में वर्णित षड्-वर्गीय भिक्षु और भिक्षुणियों का वृत्तान्त भी बता देता है कि उस काल में श्लीलता कैसी थी। उसे भी छोड़कर अपने क्रान्तिदर्शी कालिदास पर आइये। "रघुवंश" १९।२५ का अर्थ तब तक समझा ही नहीं जा सकता, जब तक व्यानत, करिपद, हरिविक्रम और धैनुक (मैथुन के आसनों) का परिचय न हो। उपनिषद् की जाबाला की उस कहानी को भी याद रखिये कि किस तरह उसने नचिकेता को प्राप्त किया था। और इन सारी बातों को देखकर तब राहुल जी पर विचार करिये। तब आपको मालूम हो जायगा कि राहुल जी ने बहुत शिष्टता से उस काल के समाज का विकास दिखाया है।

अब आइये इतिहास ज्ञान पर। व्योहार जी दास प्रथा के मामले में फ़रमाते हैं कि—"चीनी यात्री फाहियान जो उसी समय भारत में आया था, लिखता है भारत में दास प्रथा प्रचलित ही नहीं थी।" पहले वेद लीजिये। ऋग्वेद ८।८६।७ में दासों का ज़िक्र है। ऋग्वेद ८।१९।१३ में गुलामों को उपहार रूप में देने का ज़िक्र है। राजा पुरुकत्स के लड़के राजा त्रसदास ने ऋचा बनाने वाले ऋषि को ५० गुलाम दिये (ऋग्वेद ८।१९।३६) यानी ऋषि महानुभाव भी दासों का दान स्वीकार करते थे। अथर्ववेद १२।३।१३ में दासों के धान कूटने का ज़िक्र है। बुद्ध ने दासों को प्रव्रज्या देने से मना किया (महावग्ग १।३।४।६ और हिन्दी विनय पिटक पृ० ११८)। कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में 'दास-कल्प' एक अध्याय ही है। वर्तमान मनुस्मृति को स्व० के० पी० जायसवाल ने अपने "मनु एण्ड याज्ञवल्क्य" के टैगोर लेक्चर में पुष्य मित्र के काल में माना है। और मनुस्मृति में—(१) संग्राम में जीता हुआ, (२) भोजन के बदले रहने वाला, (३) दासी पुत्र, (४) खरीदा हुआ, (५) दूसरे का दिया हुआ, (६) पैत्रिक और (७) दण्ड के धन को चुकाने के लिये जिसने दासता स्वीकार की हो, (मनु० अ० ८।४१५) इस तरह कुल ७ तरह के दास गिनाये गये हैं। और अध्याय ८—४१३ में साफ़ कह दिया गया है कि शूद्र चाहे ख़रीदा हुआ हो या बिना खरीदा, उसे दासता करनी चाहिये। क्यों कि स्वयंभू ब्रह्मा ने उसे दासता के लिये ही बनाया है।* जैन ग्रन्थ भगवती आराधना १११९ और ११६२ में दासों का ज़िक्र है। अवगार धर्मामृत अध्याय ५, श्लोक १२१ की टीका में पं० आशाधर जी ने दास शूद्र का अर्थ "दासः क्रमक्रीतः कर्मकरः" किया है। फिर में ब्राह्मणों के पास दासों के १४ ग्राम तक का ज़िक्र है। (बुद्धचर्या पृ० ४१-४२)। ईस्वी सन् १३१७ के आसपास भारत भ्रमणकारी इब्न बतूता ने बंगाल का वर्णन करते हुए लिखा है—"यहाँ तीस गज़ लम्बे सूती वस्त्र दो दीनार में और सुन्दर दासी एक स्वर्ण दीनार में मिल सकती है। मैंने स्वयं एक अत्यन्त रूपवती 'आशोरा' नामक दासी इसी मूल्य में तथा मेरे एक अनुयायी ने छोटी अवस्था का 'लूलू' नामक दास दो दीनार में लिया।" (काशी विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित इब्न बतूता की भारत यात्रा, पृ० ३६)। अब बताइये कि आप अपने चीनी यात्री का दम भरेंगे या इन प्रमाणों को स्वीकार करेंगे। एक जगह आपने कह दिया है कि राहुल जी ने नागार्जुन के मुख में ये बातें ("पाप पुण्य आचार दुराचार सभी कल्पनाएँ हैं") रख दिये हैं। जैसे राहुल जी को मध्यमिक कारिका आप ही ने पढ़ाया हो। पर माध्यमिक कारिका राहुल जी को पढ़ाते समय आपने उसके ८-१२-५ को देखा ही नहीं। वर्ना राहुल जी की उस बात का मतलब आपकी समझ में आ जाता। इसी तरह विष्णुगुप्त चाणक्य की बात भी आपकी समझ में नहीं आई है। पर यदि आप पढ़ने का कष्ट उठाकर कौटिल्य अर्थ शास्त्र का कोशाभिसंहरण प्रकरण (९०) देख लें, तो फिर ऐसी शंका की गुञ्जाइश नहीं रह जायगी।

आपने गुप्त सम्राटों के सम्बन्ध में, गुप्तों की बकालत के अभिप्राय से "अन्धकार युगीन भारत" पृ० २५७ के उद्धरण दिये हैं। किन्तु उसी ग्रन्थ में ४४९ से ४६६ तक में लिखित "गुप्त साम्राज्यवाद के परिणाम" को आपने ओझल कर दिया है। उसी किताब के ४६३ पृष्ठ में लिखा

---

* मेगस्थनीज़ ने यह लिखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में दास प्रथा बुरी समझी जाती थी। चाणक्यनीति में लिखा है कि किस प्रकार दास मुक्ति प्राप्त कर सकता है। अशोक के शिला लेखों में भी दासों का वर्णन है कि उनके के दिन उनसे सद्व्यवहार किया जाता है। मौर्य काल में दास प्रथा थी, इसके ये पर्याप्त प्रमाण हैं। मौर्य काल में तीन ही महत्वपूर्ण राजा हुए हैं। बिन्दुसार एक तीसरा महत्वपूर्ण राजा कहा जाता है परन्तु समय के पानी से उसके इतिहास के पन्ने धुल गए हैं। वैसे बिन्दुसार चन्द्रगुप्त का पुत्र और अशोक का पिता था। उसके राज्यकाल में भी दास प्रथा होगी, यह अनुमान सुनिश्चित प्रमाण न होने पर भी सत्य है।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




है—"समुद्रगुप्त ने भी सिकन्दर की भाँति अपने देश की स्वतन्त्रतावादी भावना की हत्या कर डाली थी। उसने उन मालवों और यौधेयों का विनाश कर डाला था जो स्वतन्त्रता को जन्म देने वाले और उसकी वृद्धि करने वाले थे और उन्हीं की तरह के और भी बहुत से लोगों का उसने नाश कर डाला था। जब एक बार इन स्वतन्त्र समाजों का अस्तित्व मिट गया, तब वह क्षेत्र भी नहीं रह गया, जिसमें आगे चलकर वीर देशहितैषी और राजनीतिज्ञ उत्पन्न होते थे। स्वयं गुप्त लोग मातृ पक्ष से भी और पितृ-पक्ष से भी उन्हीं गणतन्त्री समाजों के लोगों से उत्पन्न हुये थे। वे स्वयं उन्हीं बीज-समाजों की पैदावार थे, परन्तु उन्हीं बीज समाजों का उन्होंने पूरा पूरा नाश कर डाला था।" और पृ० ४६५ पर फिर देखिये—"हिन्दुओं ने समुद्रगुप्त का नाम कभी कृतज्ञतापूर्वक नहीं स्मरण किया; और जिस समय अल बेरूनी भारत में आया था, उस समय उसने लोगों से यही सुना था कि गुप्त लोग बहुत ही दुष्ट थे। यह उस चित्र का दूसरा अंग है। यद्यपि वे लोग व्यक्तिगत प्रजा के लिये बहुत अच्छे शासक थे, परन्तु फिर भी हिन्दुओं की राष्ट्र संगठन सम्बन्धी स्वतन्त्रता के लिये वे नाशक ही सिद्ध हुये थे।" इसलिये गुप्तों की प्रशस्ति में आप महान इतिहासज्ञ जायसवाल का नाम न लीजिये।

धर्मों की मूल प्रेरणा 'अर्थ' ही है, यह नहीं कहा जा सकता। पर प्राचीन काल में धर्म ( ? ) सामन्तों, मठाधीशों (और ऋषियों का भी) और सत्ताधारियों की सत्ता का संरक्षक रहा है। इतिहास के अधिकतर प्रमाण ग़रीबों ( दासों, शूद्रों, कमकरों ) के लिये धर्म को अफ़ीम सिद्ध करते हैं। विश्वामित्रों और वशिष्ठों की लड़ाइयां क्या राज पुरोहिती के लिये नहीं हुई थीं? ये सर्वत्यागी ( ? ) ऋषि लोग राजपुरोहिती के लिये क्यों लड़े? किन्तु नहीं, ठोस प्रमाण आपको चाहिये। लीजिये—"चूंकि तुमसे पहले महाविद्या ब्राह्मणों के पास नहीं गई इसलिये सारे लोक में क्षत्र ( क्षत्रिय ) का ही शासन हुआ। ( बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।१०। )

धनात्कुलं प्रभवति धनाद्धर्मः प्रवर्धते ।
नाधनस्यास्त्ययं लोको न परः पुरुषोत्तम ॥
नाधनो धर्मकृत्यानि यथावदनुतिष्ठति ।
धनाद्धिधर्मः स्रवति शैलादभिनदी यथा ॥

महाभारत, शान्ति० १०।२२-२३

व्योहार राजेन्द्र सिंह जी ने "वोल्गा से गङ्गा" की आलोचना में जो कुछ लिखा है, वह सब अप्रामाणिक आधारों पर और आवेश में लिखा है। मुझे ऐसी बातों के जवाब में कोई आनन्द नहीं आ रहा है। अगर यह आलोचना "विश्ववाणी" जैसी प्रामाणिक और महत्वपूर्ण पत्रिका में न छपती कि जिसकी इस परम्परा को क़ायम रखना मेरा कर्तव्य है तो मैं कुछ न लिखता। इस प्रत्यालोचना का यह अर्थ नहीं कि "वोल्गा से गङ्गा" में जो कुछ है, उससे हमारा कहीं मत भेद ही नहीं है। उसमें प्रतिपादित जाति - सिद्धान्त ( Race theory ) से हमारा काफ़ी मतभेद है। पर यह एक बिलकुल दूसरा विषय है।

# जगत और जीवन

श्री मदन मोहन प्रसाद वर्मा 'पूर्णेन्दु' साहित्य भूषण

जगत है विस्तृत आँगन गेह
सघन-क्षण-बन में माया-सदन;
और यह जीवन शिशु का खेल
पलक में हास, पलक में रुदन।
जगत है काली छाया - रात
पुलक-भर मानस-छवि उस पार;
और यह जीवन शयन ललाम
उनींदे स्वप्नों सा निर्भार!
जगत है हँसता एक प्रसून
सजल दल लज्जा कोमल एक;
और यह जीवन परिमल गंध
मोह छल भौरें व्यस्त अनेक!

जगत है सावन की बरसात
सलिल चल आँसू की लघुधार;
और यह जीवन तड़ित-प्रवाह
क्षणिक सित आशा श्रुति का तार!
जगत है ज्वालामुखी अशेष
क्रोध का जलता सा अंगार;
और यह जीवन शिखा अतन्द्र
अंत में उड़ती उड़ती छार!
जगत है अनुभव का आगार
भाव की भावुकता उन्मेष
और यह जीवन कवि का भाव
उमड़ती कविता का आवेश!



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बम्बई में हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की शाखा

## सोसायटी को पाँच हज़ार रुपयों का दान

पिछले महीने महाबलेश्वर, पूना और बम्बई में 'हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी के सेक्रेटरी पं० सुन्दरलाल जी के कई व्याख्यान हुए जिनका बहुत अच्छा असर हुआ। सब जगह लोग देश के आपसी झगड़ों से ऊबे हुए मालूम होते हैं और इस तरह की सोसाइटी की अगवानी के लिये दिल से तय्यार हैं।

बम्बई में वहाँ के मशहूर नेता और हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी की गवर्निंग बाडी के मेम्बर श्री बी. जी. खेर ने १७ मई सन १९४५ की शाम को बम्बई के इण्डियन मरचेण्ट्स चेम्बर के हाल में शहर और आस पास के कुछ ख़ास ख़ास लोगों को पं० सुन्दरलालजी से मिलने, हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी के बारे में बातचीत करने और बम्बई में सोसाइटी की एक शाख़ कायम करने पर ग़ौर करने के लिए दावत दी थी। क़रीब १५० लोग जमा हुए थे जिनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, रोमन कैथालिक, प्राटेसटेन्ट, यहूदी, जैन, सिक्ख सब धर्मों और जमातों के भाई बहिन शामिल थे। पहिले श्री बी. जी. खेर ने क़रीब एक घंटे तक सोसाइटी के मक़सद पर तक़रीर की। उन्होंने सोसाइटी के मेमोरेण्डम और डा० भगवान दास जी की २५ मार्च सन ४५ की तक़रीर से बहुत से टुकड़े लोगों को पढ़ कर सुनाए। उसके बाद श्री. बी. जी. खेर के कहने पर पं० सुन्दरलाल जी ने क़रीब एक घंटे तक सोसाइटी के मक़सद, एक हिन्दुस्तानी कलचर को बढ़ाने और फैलाने की ज़रूरत और अँगरेज़ों से पहले के अपने देश के सच्चे इतिहास की तरफ़ से हमारी ग़ैर जानकारी पर बात चीत की। इसके बाद थोड़ी सी बहस हुई जिसमें सबने हिस्सा लिया। सबने इस तरह के काम की ज़रूरत पर ज़ोर दिया और एक राय से यह ठहराव पास किया कि बम्बई में हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी की एक शाख़ क़ायम की जावे और सोसाइटी के काम को बढ़ाया जावे। काम को आगे बढ़ाने के लिए क़रीब १० आदमियों की एक छोटी सी कमेटी वहीं पर बना गई जिसकी पहली बैठल अगले दिन पं० सुन्दरलाल जी की मौजूदगी में श्री बी. जी. खेर के आफ़िस में हुई। सब से पहिला काम जो इस कमेटी ने अपने हाथ मे लिया वह बम्बई के अन्दर हिन्दुस्तानी कलचर सोसाइटी के ज़्यादा से ज़्यादा मामूली मेम्बर और लाइफ़ मेम्बर बनाने का काम है।

बम्बई की मशहूर संस्था 'सोनू चाँदी तोलनार वेपारी मन्डलनो धर्मनो काँटो' खारा कुआँ, बम्बई की तरफ़ से संस्था के आनेरेरी सेक्रेटरी सेठ वली मोहम्मद हाजी अलारखिया सोनावाला ने सोसाइटी के काम के लिए पं० सुन्दरलाल जी को ५०००) रुपये का चेक भेंट किया।

इसी महीने उज्जैन के पं० लक्ष्मी नारायण जी हफ़्ते तक इलाहाबाद में ठहरे रहे। उनके पास अकबर से लेकर शाह आलम दूसरे के वक्त तक के बहुत असली शाही फ़रमान, सनदें और परवाने मौजूद हैं जिन मुग़ल बादशाहों ने उज्जैन और आस पास के मंदिरों जागीरें वग़ैरह दी हैं और जिनसे उस ज़माने के आर्थ सम्बन्ध पर काफ़ी रोशनी पड़ती है। इलाहाबाद यूनीवर्सि के डा० ताराचन्द, डा० बनारसी प्रसाद और प्रोफ़ेसर नईमुर्रहमान, मि० अजमल खाँ एम. ए. एल. एल. सैयद मक़बूल हसन समदनी और कुछ और विद्वानों मिलकर बड़ी मेहनत से इन काग़ज़ों को पढ़ा, उन तरजुमे किए, नक़लें कीं और फोटो लिए। हमें उम्मीद कि यह सब चीज़ें जल्दी ही देशवासियों की भेंट जायेंगी।

पुरुषोत्तम त्रिपाठी

हिन्दुस्तानी कलचर सोसायटी
१४२, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार

## मुग़लों की धार्मिक नीति पर नया प्रकाश

हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की ओर से भारत की सांस्कृतिक एकता के प्रचार के सिलसिले में कई महीने पहले मध्य भारत का दौरा करते हुये पण्डित सुन्दरलाल जी उज्जैन भी पहुँचे। उज्जैन के अपने एक व्याख्यान में पण्डित जी ने मुग़लों की धार्मिक नीति पर प्रकाश डालते हुये यह बताया कि बुरे से बुरा मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब भी अपने समय के अच्छे से अच्छे ईसाई बादशाहों के मुक़ाबले में कहीं अधिक उदार और कहीं अधिक सहिष्णु साबित होता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अरैल के सोमेश्वरनाथ महादेव के मन्दिर को सम्राट औरंगज़ेब द्वारा दी हुई जागीर का उल्लेख किया कि जिसका फ़रमान मन्दिर के पुजारी के पास अब तक सुरक्षित है। औरंगज़ेब द्वारा बनारस के एक मन्दिर को जागीर देने वाले इसी तरह के एक फ़रमान की चर्चा कई वर्ष हुये "स्टेट्समैन" अख़बार में निकली थी। उस फ़रमान का फ़ोटो भी "स्टेट्समैन" में छपा था। पण्डित जी का व्याख्यान सुनकर उज्जैन के अनेकों मन्दिरों के स्वामी लक्ष्मीनारायण, जो प्राणायाम के भी बड़े प्रसिद्ध आचार्य हैं, पण्डित जी से मिले और उन्होंने बताया कि उनके पास १५० से अधिक मुग़ल बादशाहों के फ़रमान सुरक्षित रखे हुये हैं जिनके द्वारा उज्जैन के मन्दिरों को जागीरें अता की गई हैं। इन फ़रमानों में अकबर से लेकर सम्राट शाह आलम सानी तक के फ़रमान हैं। सम्राट औररंगज़ेब के भी इनमें कई फ़रमान हैं जिनसे साबित होता है कि इस बुतशिकन (!) बादशाह ने भी उज्जैन के कई मन्दिरों को ज़ागीरें अता की हैं। इन समस्त फ़रमानों से एक बात की पुष्टि होती है कि मन्दिरों को जगीरें देना मुग़लों की धार्मिक साहिष्णुता की स्थायी नीति थी। वह इक्का दुक्का किसी सम्राट के निजी रूप से अच्छे होने या न होने के ऊपर निर्भर नहीं थी। और अनेक बहस तलब बातों पर भी इन फ़रमानों से रोशनी पड़ती है। मसलन आम तौर पर यह कहा जाता है कि उज्जैन का महाकालेश्वर मन्दिर इन्हीं बादशाहों में से किसी की आज्ञा से तुड़वा दिया गया था किन्तु फ़रमान यह साबित करते हैं कि उस मन्दिर को बराबर मुग़ल बादशाहों की ओर से जागीरें अता होती रहीं। इन फ़रमानों से उस समय की धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक हालतों पर भी काफ़ी रोशनी पड़ती है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डाक्टर बनारसी प्रसाद अन्य विद्वानों की मदद से इन फ़रमानों का सम्पादन कर रहे हैं। फ़ोटो लेने की सामग्री प्राप्त हो जाने पर इन फ़र्मानों के चित्र, इनकी मूल प्रतिलिपि और इनके अनुवाद पुस्तक के रूप में सम्पादक की टिप्पणियों के साथ हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की ओर से प्रकाशित किये जांयगे। सांस्कृतिक एकता के क्षेत्र में कल्चर सोसायटी का यह पहला ठोस क़दम होगा और इससे मुग़लकालीन अनेक ऐतिहासिक भ्रान्तियों का खण्डन हो जायगा।

## बंगाल के अकाल पर जाँच कमेटी की रिपोर्ट

ब्रिटिश प्राइम मिनिस्टर मिस्टर चर्चिल ने हाउस आफ़ कामन्स में साल भर पहिले अपने एक वक्तव्य में कहा था कि लड़ाई में लगे हुये मुल्कों में सबमें कम आदमी हिन्दुस्तान में मरे व ज़ख़्मी हुये और इसके लिये हिन्दुस्तानियों को अंगरेज़ों की फ़ौलादी छत्रछाया को धन्यवाद देना चाहिये। मिस्टर सोरेन सेन और विलियम डाबी ने उसी समय चर्चिल से यह सवाल किया था कि बंगाल के दुष्काल में मरने वालों के बारे में मिस्टर चर्चिल का क्या कहना है? मिस्टर चर्चिल ने उस समय कुछ कन्नी-कटे जवाब देकर आलोचकों को यह कहकर सन्तुष्ट करना चाहा था कि इन मौतों का लड़ाई से क्या वास्ता; किन्तु हाल में बंगाल के अकाल पर वुडहैड कमीशन की जो रिपोर्ट निकली है उससे इतनी बात तो साफ़ होगई है कि यह अकाल लड़ाई की वजह से हुआ और इन मौतों के लिये भी लड़ाई को ही ज़िम्मेवार ठहराना चाहिये। हाल में ब्रिटिश सरकार ने जो बयान प्रकाशित किया है उसमें युद्ध में हताहतों की संख्या १५ लाख बताई गई है जब कि इस फ़ैमीन इन्क्वायरी कमीशन के मुताबिक़ बंगाल के अकाल में केवल मरे हुओं की तादाद भी कम से कम १५ लाख है। कमीशन की राय है कि यदि यह युद्ध न होता तो ये मौतें भी न हुई होतीं।

कमीशन की रिपोर्ट पढ़कर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारों ने मुस्तैदी से काम लिया होता तो दुष्काल ने इतनी भयंकर शक्ल अख़्तियार न की होती। किन्तु युद्ध ने तो इन सरकारों के दिमाग़ चढ़ा दिये थे। इनके निकट डी० आइ० आर० की ख़ास ज़रूरत इसीलिये थी कि जनता की ज़रूरतों और इच्छाओं को ये अपने पैरों के तले रौंद सकें। हर ज़िले का कलेक्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अपने को हिटलर से कम न समझता था और एक्ज़िक्यूटिव को खुली छूट दे दी गई थी कि वह मनमाने तरीक़े से जनता के साथ पेश आ सके। बंगाल के अकाल के कारणों पर बहस करते हुये कमीशन की रिपोर्ट में लिखा है—

"बंगाल के दुष्काल की आश्चर्यजनक विशेषता यह थी कि चावल के भाव का बढ़ जाना अकाल की ख़ास वजह थी। जहाँ तक हम समझते हैं हिन्दुस्तान के अकालों के इतिहास में इसी कारण यह अकाल एक ख़ास महत्व रखता है। इसके विपरीत हिन्दुस्तान के ज़्यादातर अकाल बारिश के न होने और फ़सल के सूख जाने के कारण हुये।"

यह सही है कि कुछ जिलों में 'आमन' की फ़सल अच्छी नहीं हुई थी किन्तु इसकी वजह वर्षा की कमी नहीं थी। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि एक बहुत बड़ी मिक़दार में चावल के बंगाल से बाहर चले जाने के कारण भाव चढ़ने लगा और ग़रीब आदमी उस भाव पर चावल ख़रीदने में अपने को बिलकुल असमर्थ पाने लगा। बंगाल सरकार ने इसी उतरा चढ़ी में कुछ चावल इकट्ठा किया और उसमें से कुछ जनता को सस्ते दामों में दिया भी किन्तु इसका एक बड़ा हिस्सा सरकारी गोदामों में पड़ा पड़ा सड़ गया और जनता को नहीं दिया गया।

कमीशन की राय में अकाल के उग्र रूप धारण करने की एक वजह चावल को एक जगह से दूसरी जगह लाने ले जाने की दिक़्क़त थी। पूर्वी बंगाल के अधिकांश हिस्सों में नावों द्वारा ही आया जाया जा सकता है। बरमा युद्ध के बाद सरकार ने जनता की लगभग १८,००० नावें सरकारी डिपो में इकट्ठा कीं, ३४०० नावें नष्ट कर दीं, ४००० नावें डुबा दीं, १६०० नावें फ़ौजी इस्तेमाल के लिये ले लीं और २०,००० नावें और कहीं आश्रय पाने की उम्मीद में बिहार और यू० पी० के तरफ़ चल दीं। कमीशन लिखता है कि—"यदि १९४२ में ली हुई १८,००० नावें काम के योग्य हालत में रखी गई होतीं तो वे १९४३ के दुष्काल में अनाज इधर से उधर लाने ले जाने में बड़ी उपयोगी साबित होतीं।"

नावों की ज़ब्ती के अलावा फ़ौजी ज़रूरतों के लिये जनता की जो ज़मीनें और खेतियां ज़ब्त की गईं और जो लोग बेघरबार और उद्यमहीन हो गये उनकी बहुत बड़ी संख्या में अकाल में आहुतियां चढ़ीं। इन लोगों के सम्बन्ध में कमीशन की रिपोर्ट में लिखा है—

"जो ख़बर हमें मिली है उससे पता चलता है कि इसके कारण ४०,००० से ज़्यादा परिवारों को अपना घर और खेतियां छोड़नी पड़ीं। यह सही है कि उन्हें मुआविज़ा दिया गया किन्तु यह भी सही है कि १९४३ के अकाल में इन परिवारों के बेहद लोग मरे।"

जहां तक चावल के बाहर भेजे जाने का सम्बन्ध है, और जिस सच्चाई को मानने से उस समय बङ्गाल सरकार ने इनकार किया था, कमीशन कहता है—

"डिवीज़नल कमिश्नरों ने निरंकुश रूप से बङ्गाल के बाहर दूसरे प्रान्तों में चावल का जाना बन्द करने के लिये ज़ोर दिया।"

अनियंत्रित रूप से यह चावल का बाहर भेजा जाना १६ जुलाई सन् ४२ की एक सरकारी विज्ञप्ति द्वारा बन्द कर दिया गया किन्तु परमिट द्वारा चावल बाहर भेजे जाने की तब भी सुविधा रही। हाउस आफ़ कामन्स में सेक्रेटरी आफ़ स्टेट ने यह स्वीकार किया था कि इस 'परमिट' के मातहत मध्य पूर्व के देशों में बङ्गाल का चावल भेजा गया था। सन् १९४३ के शुरू से ही राजनैतिक कार्यकर्ताओं और समाचार पत्रों ने सरकार को चेतावनी देनी शुरू कर दी थी कि अनाज की भयंकर रूप से कमी हो रही है और मुफ़स्सिल ज़िलों में अकाल सर उठा रहा है परन्तु उस वक़्त के बङ्गाल के गवर्नर सर जान हरबर्ट के कानों में जूँ तक न रेंगी। अकाल जब सर पर आ गया तब भी "अकाल" कहकर उसे नहीं स्वीकार किया गया। परिस्थिति को संभालने के लिये बजाय इसके कि सर्वदली मिनिस्ट्री बनती सर जान ने मुसलिम लीग के हाथों में प्रान्त की बागडोर सौंप दी। मुसलिम लीग के सामने भी जनता से अधिक पार्टी के हित थे। कमीशन लिखता है—

"एक सर्वदली मंत्रिमण्डल ने शायद ज़्यादा विश्वास पैदा किया होता किन्तु ऐसा कोई मन्त्रि मण्डल अस्तित्व में नहीं आया।"

मुसलिम लीगी मन्त्रिमण्डल के तरीक़ों पर प्रकाश डालते हुये कमीशन की रिपोर्ट में लिखा है—

"चावल बाँटने वाले एजेण्टों की मुक़र्ररी में इस क़दर देरी हुई कि हिन्दू और मुसलमान एजेण्टों की संख्या निश्चित थी। यह बात बड़ी अफ़सोसनाक थी! ऐसी अवस्था में जब कि देरी करने से चावल न मिलने से लोगों की जान के लाले थे मन्त्रिमण्डल साम्प्रदायिक सन्तुलन क़ायम रखने के प्रयत्न में था।"

केन्द्रीय सरकार के बारे में कमीशन की राय है "जब कि बहुत बड़ी संख्या में मौतें हो रही थीं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


घर द्वार छोड़ रहे थे, ऐसी हालत में भारत सरकार को चाहे जो कुछ वैधानिक स्थिति रही हो प्रान्तीय सरकार के साथ लोगों की जान बचाने की ज़िम्मेवारी लेनी चाहिये थी।"

किन्तु उस अङ्गरेज़ जाति को कलंकित करने वाले लिनलिथगो नामक व्यक्ति पर इन लाखों मौतों का कोई असर न हुआ। उसने दिल्ली छोड़कर बङ्गाल जाने तक की तकलीफ़ गवारा न की। उसकी टुच्ची हिन्दुस्तानी कठपुतलियां भी उसी के रवय्ये का समर्थन करती रहीं। सच तो यह है सर जान हरबर्ट और लिनलिथगो इन १५ लाख मौतों के लिये व्यक्तिगत रूप से ज़िम्मेवार हैं। सर जान की आत्मा इस समय कुम्भीपाक नर्क में सड़ रही होगी पर लिनलिथगो अब भी बेशर्मी के साथ जब तब हिन्दुस्तानियों को उपदेश देने की धृष्टता करता रहता है। कमीशन का कर्तव्य था कि इस व्यक्ति को 'वार क्रिमकल' ऐलान करता और इसके 'समरी ट्रायल' की तजवीज़ करता। यदि केन्द्रीय सरकार चाहती और दख़ल देती, जैसा कि लार्ड वावेल के दख़ल देने से साबित है, तो बङ्गाल का यह अकाल इतना न चल पाता और दो हफ़्ते में ही परिस्थिति क़ाबू में आ गई होती।

कमीशन इस सम्बन्ध में लिखता है—"मुख़्तलिफ़ ज़िलों से कलेक्टर और कमिश्नर १९४३ के शुरू से ही अन्न संकट के समाचार भेज रहे थे किन्तु बङ्गाल की सरकार ने जून १९४३ तक वास्तविक परिस्थिति की रिपोर्ट ज़िलों से नहीं मँगाई और अगस्त १९४३ तक सहायता के लिये कोई हिदायतें नहीं भेजीं। अकाल का भी ऐलान नहीं किया गया। सहायता की समस्या का सामना करने में देरी करने और अकाल के ऐलान न करने का ही स्वाभाविक परिणाम यह बदक़िस्मत प्रचार था कि अन्न की कमी नहीं है! यह प्रचार अप्रैल से जून १९४३ तक चलता रहा और भारत सरकार इस प्रचार का समर्थन करती रही। जब कि अकाल का ख़तरा सर पर नाच रहा था ऐसा प्रचार अनुचित था।"

देसी व्यापारियों ने भी इस महान संकट के समय गिद्धों की तरह बङ्गाल के लाखों नर कंकालों को नोचा खसोटा। कमीशन इस सम्बन्ध में लिखता है—

"नतीजा यह था कि एक तरफ़ ऐसे लोग बेमिसाल लूटमार करके रईस हो रहे थे जिन्हें ख़ुद अपने लिये कोई ख़तरा न था और दूसरी तरफ़ असम्भव तरीके से क़ीमतें बढ़ रही थीं और लोग मर रहे थे कि जिनकी तादाद शायद १५ लाख तक पहुँच गई थी। यह तख़मीना लगाया गया है कि १९४३ में चावल ख़रीदने और बेचने में सरकार को १५० करोड़ रुपये का फ़ायदा हुआ;" (यानी हर मौत पीछे १००० रुपया वसूल हुआ)।

इतनी अधिक मौतों के लिये कमीशन नीचे लिखी वजहें बताता है—

(१) अकाल के कोड के अनुसार अकाल का ऐलान न किया जाना;

(२) सहायता पहुंचाने के लिये शीघ्र ही मुनासिब संगठन न बनाना; और

(३) सरकार के पास जो भी अनाज था उसे इधर से उधर पहुँचाने के लिये जल्दी कोई प्रबन्ध न कर पाना।

सरकारी सहायता पर टिप्पणी करते हुये कमीशन कहता है—

"ऐसा लगता है कि १९४३ में एक स्टेज पर आर्थिक वजहों से सहायता पर ख़र्च कम कर दिया गया। हमारी राय है कि जब जनता की ज़िन्दगी और मौत का सवाल था तो आर्थिक हालत पूरी पूरी मदद न देने की कोई उचित वजह न थी। यदि ज़रूरत पड़ती तो भारत सरकार या रिज़र्व बैङ्क की सलाह से क़र्ज़ भी लिया जा सकता था।"

ग़ैरसरकारी मदद पहुँचाने के सम्बन्ध में कमीशन को यह बताया गया कि कलकत्ते से सरकारी ग़ल्ले को किस तरह प्रान्त में वितरित किया जाय इस पर कलकत्ते के व्यापारियों ने सरकार को कोई मदद नहीं दी।

इस तरह इस महायुद्ध का सब में दुःखान्त अध्याय नौकरशाही के निकम्मेपन के कारण १५ लाख आदमियों को मौत के मुँह में ढकेल कर बन्द होगया और अपने पीछे छोड़ गया बंगाल के सामाजिक, नैतिक और अध्यात्मिक ढाँचे का उथल पुथल स्वरूप। लाखों परिवार हमेशा के लिये नष्ट हो गये, लाखों बच्चे निरीह होगये, हज़ारों कुलशीला स्त्रियों को अपनी लज्जा और अपनी देह भात के दो कौर के लिये मजबूर होकर बेचनी पड़ी और लाखों बढ़ती हुई सन्तानों का स्वास्थ्य सदा के लिये नष्ट होगया। इस विरासत के अलावा अकाल के कारण पैदा हुई महामारियाँ मिलीं जिनमें फिर लाखों आदमियों की बलि चढ़ गई।

सच तो यह है भारत के ऊपर ब्रिटिश शासन के इतिहास में इससे बढ़कर हमें जघन्य और कुत्सित, घृणित और गर्हित कोई दूसरी मिसाल नहीं मिलती। १५ लाख आदमियों की मौत चर्चिल, अमेरी और लिनलियगो के दिल पर रंज का कोई गहरा असर नहीं छोड़ गई। किन्तु


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इतिहास जिस दिन इङ्गलैण्ड और भारत के बीच फ़ैसले की कहानी लिखेगा उस दिन इन मौतों का मुनासिब मुआविज़ा अङ्गरेज़ जाति को अदा करना पड़ेगा।

## शर्मनाक सौदा

हिन्दुस्तान के उद्योगवादियों का एक ग़ैर सरकारी प्रतिनिधि-मण्डल पिछले महीने इङ्गलैण्ड और अमरीका की यात्रा के लिये गया है। श्री बिड़ला के अनुसार यह प्रतिनिधि-मण्डल वहाँ विविध उद्योग धन्धों का अध्ययन करेगा; वहाँ के उद्योग पतियों से बातें करेगा और इस तरह उसे जो अनुभव प्राप्त होगा उस अनुभव से भारत में नये नये उद्योग व्यवसायों का संगठन करेगा। प्रतिनिधि मण्डल के भारत छोड़ने से पूर्व गान्धी जी ने उन्हें चेतावनी देते हुये अपने एक बयान में कहा है—

"एतराज़ करने वालों को यह डर है कि यह तथा-कथित ग़ैर सरकारी प्रतिनिधि-मण्डल इङ्गलैण्ड और अमरीका जाकर मुआयना करेगा या शर्मनाक सौदा करेगा किन्तु जब तक वर्किङ्ग कमेटी के प्रमुख नेता, जो भारत की आज़ादी के लिये किसी दूसरे का नहीं बल्कि अपना ही ख़ून बहाने को तत्पर हैं और जिन्हें महज़ अपनी सचाई के जुर्म में बग़ैर मुक़दमा चलाये हुये जेल में रखा गया है, नहीं छूटते तब तक ये लोग न मुआयना करने के लिये जाने की हिम्मत कर सकते हैं और न कोई शर्म नाक सौदा कर सकते हैं।"

गान्धी जी की यह चेतावनी बिलकुल सामयिक थी। प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्य टाटा, बिड़ला और नलिनी रंजन सरकार ने अपनी अपनी सफ़ाई में कहा है कि उनके प्रतिनिधि-मण्डल का कोई सम्बन्ध भारत सरकार से नहीं है और वे लोग अपने ख़र्च पर इस यात्रा में जा रहे हैं। किन्तु बावजूद इस सफ़ाई के देश को इन उद्योग पतियों की आन्तरिक मन्शा पर ज़बर्दस्त सन्देह है। यूँ तो इन लोगों ने अक्सर प्रस्ताव पास किये हैं कि भारत की कोई योजना उस समय तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि यहाँ राष्ट्रीय सरकार क़ायम नहीं होती और राष्ट्रीय सरकार उस समय तक क़ायम नहीं हो सकती जब तक कि वर्किंग कमेटी के मेम्बर जेल में हैं। देश किस योजना को अपनाये और चलाये इसका फैसला राष्ट्रीय सरकार ही कर सकती है। अन्य कोई योजना यदि बग़ैर जनता की सहमति के ग्रेट ब्रिटेन के पूँजी पतियों की मदद और नौकरशाही के सहयोग से चलाई जायगी तो जनता उसे न केवल स्वीकार ही न करेगी बल्कि उसका विरोध करना उसका परम धर्म हो जायगा। पिछले साल अङ्गरेज़ उद्योग पतियों के प्रतिनिधि के रूप में प्रो० ए० वी० हिल हिन्दुस्तान आये थे। अभी हाल में उन्होंने एक वक्तव्य दिया है जिसमें यह कहा है कि यदि हिन्दुस्तानी अपने देश के उद्योग धन्धों को बढ़ाना चाहते हैं तो उन्हें "ग्रेट ब्रिटेन के लोगों के साथ आधा साझा करना पड़ेगा— वरना ग्रेट ब्रिटेन के लोगों को ऐसे देश में उद्योग धन्धों को बढ़ाने में क्या दिलचस्पी हो सकती है कि जहाँ उनका नाम मात्र का नियंत्रण हो।" नई दिल्ली की सरकार ने प्रो० हिल के इस मन्तव्य का समर्थन किया है। प्रो० हिल के इस बयान से ग्रेट ब्रिटेन की सरकार और वहाँ के पूंजीवादी उद्योग पतियों की मनोवृत्ति स्पष्ट हो जाती है। इस आधे साझे का अर्थ यही होगा कि फ़ायदे का ९५ फ़ीसदी ब्रिटेन पूँजीपतियों के पास जायगा और ५ प्रतिशत देशी पूँजी पतियों के पास। हिन्दुस्तानी कभी इस तरह की स्थिति स्वीकार नहीं कर सकते। लोगों के दिलों में यह एक डर घर कर गया है कि ब्रिटिश पूंजीपतियों ने भारतीय उद्योगवादियों को अपनी राय का बनाने के लिये इस प्रतिनिधि मण्डल को निमंत्रण दिया है। भारत सरकार के वोस्स मेम्बर सर आरदेशिर दलाल पहले से ही इङ्गलैण्ड में मौजूद हैं। और इन सब के बीच में कोई सौदे की बात चल रही है। महज़ यह कह देने से कि हम अपने ख़र्चे से और ग़ैर सरकारी रूप में जा रहे हैं जनता के शंकाएं नहीं हो सकते!

इधर श्री नलनी रंजन सरकार ने इङ्गलैण्ड जाने के पहले कलकत्ते की एक सभा में अपने व्याख्यान में साफ़ कह दिया है कि यह सही है कि वर्किंग कमेटी के सदस्य छूटें और राष्ट्रीय सरकार बने पर इसके लिये ज़्यादा प्रतीक्षा नहीं कर सकते। देश के औद्योगीकरण का काम हमारा चलता रहना चाहिये। श्री टाटा ने भी अपने वक्तव्य में कहा है—"जब कि छोटे और बड़े दूसरे देश आगे बढ़ रहे हैं तब हिन्दुस्तान चुपचाप रुके रहना गवारा नहीं कर सकता।"

इन वक्तव्यों से यह शुबहा और पक्का हो जाता है कि ये सज्जन ब्रिटिश कूट नीति के शिकार बनने के लिये तत्पर थित हैं और ब्रिटिश पूँजी पतियों के साथ किसी शर्मनाक समझौते की भूमिका तय्यार हो चुकी है। गान्धी जी ने जब श्री बिड़ला ने अपनी सफ़ाई देते हुये आशीर्वाद की बात कही तो उन्होंने जवाब दिया—"एक मूर्ख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नये भारत के रूप में ही तुम्हें मेरा आशीर्वाद और प्रार्थना मिल सकती है।"

हमारी समझ में नहीं आता कि जब तक देश सूली पर लटका हुआ है, ब्रिटिश साम्राज्यवाद हर तरह से हमारी राष्ट्रीय आकांक्षायें कुचलने पर उद्धत है, निर्माण की किसी योजना में जनता का कोई हाथ नहीं है, पौएड पावने की समस्या जहाँ की तहाँ अटकी हुई है, तब तक ये पूँजीपति करोड़ों भूखी और नंगी जनता के हित में कैसे कोई सफल क़दम उठा सकते हैं! हमें दुख है इन लोगों ने गान्धी जी की सलाह मानकर अपनी यात्रा स्थगित नहीं की। ऐसा करके इन्होंने भारतीय राष्ट्रीयता और भारतीय पूँजीवाद के बीच की खाई को अपने ही हाथों अधिक चौड़ा किया है।

## पठान आज़ादी के दिलदादा

अपनी सरहद की यात्रा के बाद डाक्टर सय्यद महमूद ने नीचे लिखा वक्तव्य दिया था—

"यह देखकर मुझपर बहुत असर पड़ा कि सरहद के मुसलमान आज़ादी के इतने ज़्यादा शैदा हैं। आज़ादी के लिये पठान का जोश दूसरों को भी हिम्मत बँधाता है। पठान उस फैले हुये झूठ को भी काट देते हैं कि जिसके मुताबिक़ कहा जाता है कि मुसलमानों का आज़ादी के आन्दोलन से कोई ताल्लुक़ नहीं है।"

जहाँ तक लाल कुर्त्ती वाले स्वयंसेवकों के अनुशासन का सम्बन्ध है डाक्टर महमूद ने कहा कि "हिन्दुस्तान के हमारे और स्वयंसेवक इनसे अनुशासन की तालीम ले सकते हैं।" पठानों के बीच में ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँ के काम का वर्णन करते हुये डाक्टर महमूद ने कहा कि— "पठानों को क़ाबू में लाने का जो काम ब्रिटिश सरकार भारत का करोड़ों रुपया ख़र्च करके और लड़ाइयाँ लड़कर भी पूरा न कर सकी वह ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ और सरहदी कांग्रेस ने दस वर्ष के अन्दर कर लिया। इससे साबित होता है कि ब्रिटिश सरकार पिछले ६०-७० वर्ष से एक निकम्मी और बंजर नीति बरत रही थी।"

पठानों की मेहमाँनवाज़ी और दरियादिली की तारीफ़ करते हुये डाक्टर महमूद ने कहा कि कोई दूसरा उनसे इन गुणों में बाज़ी नहीं ले जा सकता। डाक्टर महमूद ने यह भी कहा कि "किसी भी बाहरी आदमी को एक बात ख़ास तौर पर यहाँ दिखाई देती है कि सिख और हिन्दू भी फ़ख्र के साथ अपने को पठान कहते हैं।"

## जनता धीरज के साथ ताक़त बढ़ाये

पिछले महीने काँग्रेस जनों को उपदेश देते हुए गान्धी जी ने देश की मौजूदा हालत पर रोशनी डालते हुये कहा—

"इस बात की कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती कि ब्रिटिश अधिकारी हिन्दुस्तान की तरफ अपनी नीति बदलेंगे। एक ऐसी शासन प्रणाली आज भी सारे देश में चल रही है जो लोगों का दम घोंट रही है। ऐसी परिस्थिति में काँग्रेस वर्किङ्ग कमेटी के मेम्बरों के छूटने की कोई सम्भावना नहीं है। काँग्रेस वर्किङ्ग कमेटी के सदस्य अपनी शर्तों पर बाहर आ सकते हैं। पण्डित नेहरू, मौलाना आज़ाद और सरदार पटेल देश की मौजूदा हालत को कभी भी बर्दाश्त नहीं करेंगे। वे फिर सारे देश में इसका विरोध करते हुये घूमेंगे और सरकार को फिर उन्हें जेल में बन्द करना पड़ेगा। मैंने इस सारी स्थिति को चुप चाप बर्दाश्त करने का फ़ैसला कर लिया है और जनता को भी अपने धीरज में ही शक्ति बढ़ानी चाहिये। यदि काँग्रेस के कार्यकर्त्ता अपनी शक्तियाँ रचनात्मक कार्यक्रम में लगायें तो स्वराज और रामराज्य अधिक दूर नहीं हैं।"

गान्धी जी अपने हृदय की सम्पूर्ण शक्ति के साथ बार बार इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि रचनात्मक कार्यक्रम से ही जनता की शक्ति बढ़ेगी और जनता की शक्ति बढ़ने से ही स्वराज निकट आयगा। कांग्रेसजन जिस दिन इसके महत्व को पूरी तरह समझ जांयगे उस दिन आज़ादी के संग्राम की सूरत ही बदल जायगी।

## 'हिन्दुस्तानी' के सम्बन्ध में ग़लतफ़हमी

जब से महात्मा गान्धी ने एक आसान और आम हिन्दुस्तानी ज़बान के सवाल पर विचार करने और उसे रंग रूप देने के लिए वर्धा में एक कानफ़रेन्स बुलाई थी तब से हमारी इस राष्ट्र भाषा या क़ौमी ज़बान के सवाल को लेकर हिन्दी और उर्दू के अख़बारों में और अलग अलग हिन्दी और उर्दू के प्रेमियों में तरह तरह की बहसें हो रही हैं। ख़ासकर जब कोई हिन्दी का भक्त कोई अजीब सी बात कह देता है तो उर्दू प्रेमी उससे और भी भड़के हुए दिखाई देने लगते हैं और अगर कोई उर्दू प्रेमी कुछ कह बैठता है तो उससे वैसी ही घबराहट हिन्दी के भक्तों में दिखाई देने लगती है। देश की आजकल की हालत में ऐसा होना स्वाभाविक ही है। हम सब के विचार अभी तक अपने अपने छोटे छोटे तंग दायरों से ऊपर नहीं उठ पा रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। जिस तरह के शक दोनों तरफ़ से उठाए जा रहे हैं उनका निचोड़ मोटे तौर पर यह है—कुछ हिन्दी प्रेमियों को शक है कि हिन्दुस्तानी की आड़ में उनके गलों से उर्दू उतारने की कोशिश की जा रही है; इसी तरह उर्दू वालों को शक है कि हिन्दुस्तानी का प्रचार उनके गलों से हिन्दी उतार देने का एक बहाना है। हमें पूरा विश्वास है कि यह सब शक हमारे अधिकतर देशवासियों के दिलों से उस वक्त दूर हो जावेंगे जब हिन्दी और उर्दू दोनो के थोड़े से विद्वानों की वह कमेटी जिसको वर्धा के ठहराव के अनुसार हिन्दुस्तानी ज़बान की रूप रेखा तय करने का काम सौंपा गया है, अपनी मेहनत के नतीजों को देश के सामने रख देगी।

हिन्दी और उर्दू के अलग अलग प्रेमियों में थोड़ा बहुत अपनी अपनी शैली के लिए पक्षपात और मोह होना भी एक कुदरती चीज़ है। देश की एकता के हित में इस तरह का मोह भी धीरे धीरे ही मिट सकता है। यह भी हो सकता है कि इस तरह की टीकाएं और शंकाएं ऊपर की हिन्दुस्तानी कमेटी को अपने पवित्र कर्तव्य के ठीक ठीक पालन करने में मदद दें और उसे इधर या उधर ग़लत झुक जाने से रोकती रहें; इसलिए एक हद तक हमें इन टीकाओं और शंकाओं का स्वागत करना चाहिये।

इन टीकाओं में एक ख़ास बाबू पुरुषोत्तदास जी टंडन की तरफ़ से अप्रेल के आख़ीर में अख़बारों में छपी थी। कहा गया है कि टंडन जी ने पूना में लेकचर देते हुए इस बात पर ज़ोर दिया कि "केवल हिन्दी ही को हिन्दुस्तान की राष्ट्र भाषा कहा जा सकता है.....मैं जान बूझ कर हिन्दी की शैली को बदलने या उसमें विदेशी शब्द जोड़ने की नहीं सोच सकता.....अँग्रेज़ी की तरह उर्दू भी एक ऐसी ज़बान है जो मुसलमान बादशाहों ने हमारे ऊपर थोप दी थी। भारत की संस्कृति और भारत की विचार धारा की दृष्टि से उर्दू बिलकुल विदेशी है।"

श्री टंडन जी जैसे विद्वान और देशभक्त से इस तरह की बात की आशा नहीं की जा सकती थी। इसमें दो साफ़ बातें हैं जिनसे हमें और बहुत सों को मतभेद हो सकता था। एक हम यह मानते हैं कि हमारी क़ौमी ज़बान न वह हो सकती है जिसे आमतौर पर हिन्दी कहा जाता है और न वह जिसे आमतौर पर उर्दू कहा जा सकता है बल्कि इन दोनों का आसान संगम होगी जिसे हिन्दुस्तानी कहना ज़्यादा ठीक होगा, और दूसरी यह कि उर्दू कोई विदेशी भाषा नहीं है, न मुसलमान बादशाहों ने उसे ज़बरदस्ती देश पर थोपा है। उर्दू इस देश से बाहर किसी मुल्क में नहीं बोली जाती, वह इसी तरह इस मुल्क के अन्दर पैदा हुई और यहाँ की आबोहवा में परवान चढ़ी जिस तरह हिन्दी। फिर भी टंडन जी के इन शब्दों को लेकर साम्प्रदायिक उर्दू के कुछ अख़बारों में काफी शोर मचा और टंडन जी की तरफ़ से उर्दू वालों की शंकाएं बढ़ीं। हमें बड़ी खुशी है कि टंडन जी ने अपने हाल के एक बयान में जो २५ मई के 'लीडर' में छपा है इस बात को बिलकुल साफ़ कर दिया। इस बयान में और बातों के साथ साथ उन्होंने कहा है कि—

"जब कभी सूबों सूबों के बीच के काम के लिए मैं हिन्दी का ज़िकर करता हूं तो हमेशा उसमें उर्दू शामिल होती है क्यों कि उर्दू हिन्दी ही का एक रूप है..... अपने (पूना के) लेकचर में मैंने फ़ारसी भाषा की मिसाल दी थी.....जो बात मैंने फ़ारसी के बारे में कही थी वही अँगरेज़ी के रिपोर्टर ने ग़लती से उर्दू के साथ जोड़ दिया। भाषाओं का जो कुछ ज्ञान मुझे है उसे रखते हुए मैं यह कहने की ग़लती नहीं कर सकता था कि उर्दू कहीं बाहर से लाई गई। मैंने यह फ़ारसी के बारे में कहा था..... मैंने अपनी स्पीच में यह कहा था कि राष्ट्रीय दृष्टि से इसकी ज़रूरत है कि हिन्दी और उर्दू एक दूसरे के ज़्यादा नज़दीक आवें यहाँ तक कि दोनों मिलकर एक हो जावें, और दोनों की मिलकर एक आम ज़बान बने। संस्कृत और अरबी दोनों आर्य भाषाएं हैं। दोनों का एक ही जगह से निकास है और दोनों सुन्दरता के साथ मिलकर हमारे देश में एक आम क़ौमी ज़बान को रूप दे सकती हैं।"

वर्धा कान्फरेन्स के फ़ैसलों का ज़िकर करते हुए टंडन जी ने इस बयान में कहा है कि—"जहाँ तक पहले फ़ैसले का सवाल है मैं गान्धी जी से इस बात में पूरी तरह सहमत हूं कि हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाकर एक आम ज़बान बनानी चाहिये.....लेकिन मैं उस कान्फरेन्स के दूसरे फ़ैसले से सहमत नहीं हूँ कि हमारे देश के हर आदमी को हिन्दी और उर्दू दोनों ज़बानें और दोनों अलग अलग लिपियें सीखनी चाहियें.....मेरा दिमाग़ नहीं मानता कि यह एक अमली सुझाव है.....कांग्रेस में अपना प्रस्ताव पेश करते हुये मैंने 'हिन्दुस्तानी' शब्द का उपयोग किया था। वह हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियों के लिए था। 'हिन्दुस्तानी' का मतलब था हिन्दी और (या) उर्दू। मेरे दिल की यह आन्तरिक इच्छा है कि हम में इतनी हो कि हम अपनी पुरानी साम्प्रदायिकता से ऊपर उठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


और नेकनीयती के साथ हिन्दी और उर्दू को मिलाकर एक ज़बान बनाने के सवाल को हल कर सकें और उसके लिए हम एक ही लिपि का उपयोग करें।"

इसमें शक नहीं कि अब भी टंडन जी के विचारों और हमारे विचारों या महात्मा गान्धी के विचारों में फ़रक़ है। हम वर्धा कान्फ़रेन्स के दोनों ठहरावों से पूरी तरह सहमत हैं लेकिन फिर भी टंडन जी के इस हाल के बयान ने उनकी तरफ़ से बहुत बड़ी ग़लतफ़हमी को दूर कर दिया। यह भी ज़ाहिर है कि गान्धी जी या वर्धा कान्फ़रेन्स के फ़ैसलों और टंडन जी में धीरे धीरे दूरी कम होती जा रही है।

टंडन जी हिन्दी और उर्दू दोनों को अलग अलग भाषाएं नहीं बल्कि एक ही भाषा के दो रूप मानते हैं। यही हम भी मानते हैं। टंडन जी हिन्दी और उर्दू दोनों को मिला कर दोनों के मेल से एक आम क़ौमी ज़बान बनाना चाहते हैं, यही हम भी चाहते हैं। इस मिली जुली क़ौमी ज़बान को टंडन जी शायद अभी तक भी 'हिन्दुस्तानी' की जगह 'हिन्दी' कहना ज़्यादा पसन्द करते हैं। लेकिन उन्होंने यह भी साफ़ कहा है कि उन्हें इसे 'हिन्दुस्तानी' कहने में भी एतराज़ नहीं है। हिन्दी और उर्दू दोनों के मेल को उन्होंने अपने कांग्रेस के प्रस्ताव के अन्दर और इस बयान के अन्दर भी 'हिन्दुस्तानी' कहा है। हम देश की उस मिली जुली आम ज़बान को जो हिन्दी और उर्दू दोनों को एक बराबर अपनावेगी और दोनों से बराबर दूरी पर या दूसरे शब्दों में दोनों के एक बराबर नज़दीक होगी इस तीसरे नाम 'हिन्दुस्तानी' से पुकारना ही ज़्यादा ठीक समझते हैं। यही वर्धा कान्फ़रेन्स और महात्मा गान्धी का फ़ैसला है।

टंडन जी को सब से बड़ा एतराज़ वर्धा के उस दूसरे ठहराव पर है जिसमें देश के हर आदमी से यह अपील की गई है कि वह नागरी और उर्दू दोनों लिपियों को सीखे। टंडन जी इस प्रस्ताव को अव्यावहारिक समझते हैं। हमारा केवल यह कहना है कि इस वक्त भी देश में हज़ारों बल्कि लाखों आदमी ऐसे मौजूद हैं जो कई कई लिखावटों की अच्छी जानकारी रखते हैं। मद्रास और दक्खिनी प्रान्तों के अन्दर तो हज़ारों लोग उधर की कई कई प्रान्तीय भाषाओं की अलग अलग लिखावटों के अलावा रोमन, नागरी और उर्दू तीनों लिखावटों को सीख चुके हैं और सीख रहे हैं। श्री सत्यनारायण जी मन्त्री दक्खिन भारत हिन्दी प्रचार सभा जिन्हें उन चारों प्रान्तों में राष्ट्र भाषा के प्रचार का सबसे ज़्यादा अनुभव है और जो हिन्दुस्तानी के सब से बड़े हिमायतियों में से हैं, कहते थे कि दो लिखावटों के सीखने की कठिनाई कम से कम दक्खिन भारत के लोगों के लिए कोई कठिनाई नहीं है। बात केवल दिल की है। सच यह है कि अगर हम हिन्दी और उर्दू दोनों का सचमुच मेल चाहते हैं तो हमें पक्षपात छोड़कर दोनों ही को सीखना होगा। जिन चीज़ों को हम जानते तक नहीं उन्हें मिला कैसे सकते हैं? उर्दू शैली को जानने के लिए उर्दू लिपि को जानना और हिन्दी शैली को जानने के लिए नागरी लिपि को जानना ज़रूरी है। तभी हम दोनों से प्रेम कर सकेंगे, दोनों को अपना सकेंगे, और दोनों का सुन्दर संगम बना सकेंगे। हमें विश्वास है कि ख़ासकर लेखकों और साहित्यकारों या अदीबों के लिए केवल दोनों लिपियों को सीख लेना ही काफी नहीं है। उन्हें हिन्दुस्तानी ज़बान के इन दोनों रूपों और दोनों के साहित्य की अच्छी जानकारी हासिल करनी होगी, तभी वे एक आम, सरल और सुन्दर हिन्दुस्तानी भाषा की तरफ़ धीरे धीरे अपनी ज़बान और अपनी लेखनी को ले जा सकेंगे।

इसी बीच श्री सम्पूर्णानन्दजी के भी कई बयान निकल चुके हैं जिनसे शुरू में काफ़ी ग़लतफ़हमी भी हुई। हाल में २८ मई के 'लीडर' में उनका एक बयान छपा है जिसमें उन्होंने कहा है कि—"यह कहना ग़लत है कि मैं इस मामले में गान्धी जी के ख़िलाफ़ हूँ। मुझे शिकायत है कि ख़ुद गान्धी जी ने या और किसी नेता ने अभी उस तजवीज़ को पूरी तरह बयान नहीं किया है। मैं एक क़ौमी ज़बान के पक्ष में हूं! उसका नाम मैं हिन्दी रखना ज़्यादा पसन्द करूँगा। लेकिन मैं हिन्दुस्तानी नाम रखने के लिए भी तैयार हूँ, बशर्ते कि उसका रूप साफ़ कर दिया जावे। इसके लिए मैं कुछ उसूल सुझाता हूं। बाहर के शब्दों को हम ज़रूरत के मुताबिक़ ले लेंगे और जो शब्द रिवाज में आ गए हैं उन्हें भी रहने देंगे। दूसरी बात यह है कि इन विदेशी शब्दों को हिन्दी ग्रामर के मुताबिक़ ढाल लेना चाहिये, ख़ासकर बहुवचन बनाने के लिए। अपने शब्द कोष को हमें सबसे पहिले प्रान्तीय भाषाओं से, संस्कृत से और फ़ारसी के ऊँचे साहित्य से शब्द लेकर मालामाल करना चाहिये, क्योंकि फ़ारसी उसी इण्डो-आर्यन नसल से है जिससे हमारी और ज़बानें हैं और क़ुदरती तौर पर हमारी ज़बानों से मिलती जुलती है।" आख़ीर में श्री सम्पूर्णानन्दजी ने कहा कि—"जो शब्द हम हिन्दुस्तानी ज़बान में लें उनका ठीक रूप काम में लावें.....हम यह नहीं मान सकते कि हमारी राष्ट्रीय भाषा को विदेशी भाषाओं के शब्दों से बहुत ज़्यादा भर दिया जावे या उन्हें


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हमारी असली मातृ भाषा के बराबर मान लिया जावे। हमें डर है कि जो कमेटी डिक्शनरी तैयार करने के लिए वर्धा में मुक़र्रर की गई है उससे हमारी तसल्ली न हो सकेगी क्योंकि 'नैशनल लैङ्गवेज़ आफ़ इण्डिया' नाम की किताब में, जो इस कमेटी के मेम्बरों ने लिखी है, उर्दू को हिन्दुस्तानी का नाम दिया गया है।" उन्होंने और आगे चलकर कहा है कि "अगर हम भाषा के इस सवाल पर पक्षपात छोड़ कर विचार करें तो हम उसे हल कर सकेंगे लेकिन बिना उसूलों को साफ़ किए केवल नाम बदल देने से काम न चलेगा।"

हम श्री सम्पूर्णानन्द जी की ज़्यादातर बातों से सहमत हैं। कुछ छोटे मोटे फ़रक़ भी हैं। शब्दों के रूप एक ज़बान से दूसरी ज़बान में और ख़ुद एक ही ज़बान में बदलते रहते हैं। हम न 'परदेसी' को 'परदेशी'। कहना पसन्द करेंगे और न 'खरबूज़े' को 'खुरपुज़ा' यह ठीक है कि हिन्दुस्तानी में 'वकील' का बहुवचन 'वकीलों' होना चाहिये 'वुकला' नहीं, उसी तरह 'प्रचारिणी सभा' का 'प्रचार सभा' और 'अतः' का 'इसीलिए' होना चाहिये। 'नैशनल लैङ्गवेज़ आफ़ इण्डिया' नाम की अंग्रेज़ी किताब बहुत से विद्वानों के लेखों का संग्रह है। हमने उसे पढ़ा है। उनमें कोई कोई लेख आज बीस बरस से ऊपर के लिखे हुए हो चुके। एक लेख महात्मा गान्धी का भी है जिसकी बाबत ख़ुद महात्मा गान्धी ने कहा था कि वह, जिस तरह इधर उधर से ले लिया गया है, गान्धी जी के विचारों को ठीक ज़ाहिर नहीं करता। श्री सम्पूर्णानन्दजी को यह भी मालूम होगा कि वर्धा की उस कमेटी के मेम्बरों के नाम अभी तक ऐलान नहीं किए गए (३० मई तक) और सब नाम अभी शायद आख़िरी तौर पर तय भी नहीं हैं।

हिन्दी प्रेमियों में तीसरा एक बयान श्री आनन्द कौसल्यायन का २३ मई के 'भारत' में छपा है। हमने उसे पढ़ा है। हमें उसमें कौसल्यायन जी की सबसे बड़ी शिकायत यही दिखाई देती है कि हिन्दुस्तानी का अभी "कोई स्वरूप ही स्पष्ट नहीं है", "हिन्दुस्तानी प्रचार सभा अभी तक किसी भी विधायक कार्यक्रम को हाथ में नहीं ले सकी है," "यदि हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का काम भी कभी अग्रसर हुआ तो भी हमें उसकी विशेष चिन्ता नहीं है, अभी तो वह कुछ लोगों में थोड़ा बुद्धि भेद पैदा करने मात्र में सफल हुई है.....अभी तक हिन्दुस्तानी प्रचार आन्दोलन का मतलब बहुत कुछ उर्दू प्रचार से ही है।"

कौसल्यायनजी की शङ्का बिलकुल साफ़ है और कोई अनोखी चीज़ नहीं है। इसीलिए वह हिन्दी ही को राष्ट्र भाषा कहते हैं और चाहते हैं कि—"जिस प्रकार सभी अहिन्दी भाषा भाषियों को राष्ट्रभाषा हिन्दी से परिचित होना चाहिये उसी तरह उर्दू भाषा भाषियों को भी.....हिन्दी के ज्ञान के लिए भी उर्दू शैली का ज्ञान उपयोगी है।"

हमें विश्वास है कि बहुत जल्दी इस तरह के शुबहों के बादल छटेंगे और कौसल्यायन जी जैसे बहुत से निष्पक्ष देशभक्त विद्वान ऊपर के शब्दों को थोड़ा सा बदलकर यह कहेंगे कि—"जिस तरह सभी ग़ैर-हिन्दुस्तानी भाषा भाषियों को राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी से जानकारी होनी चाहिये उसी तरह अलग अलग हिन्दी और उर्दू के प्रेमियों को भी होनी चाहिये।"

इसी तरह के शक शुबहे कई उर्दू प्रेमियों की तरफ़ से भी ज़ाहिर किये जा रहे हैं। ख़ासकर अञ्जुमन तरक़्क़ीए उर्दू, दिल्ली, के मुख पत्र 'हमारी ज़बान' में कई ऐसे लेख और नोट छपे हैं जिनमें इस हिन्दुस्तानी की तरफ़ को बेहद शक की निगाह से देखा गया है। इस तरह के कई लेखों को पढ़कर हमें दुःख हुआ। पर हम यह जानते हैं कि अञ्जुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू के सेक्रेटरी डाक्टर अब्दुल हक़ बरसों से हिन्दुस्तानी ज़बान के समर्थक रहे हैं। वह उस बिहार हिन्दुस्तानी कमेटी के एक मेम्बर थे जिसके बाक़ी मेम्बर राजेन्द्र बाबू, डा० ताराचन्द, काका कालेलकर और डा० सय्यद महमूद आदि थे। डा० अब्दुल हक़ वर्धा कान्फ़रेन्स में भी गये थे। उस कान्फ़रेन्स के अन्दर श्री सत्य नारायन जी के आध घंटे से ऊपर के लेक्चर को सुनकर डा० अब्दुल हक़ ने खड़े होकर यह कहा था कि—"जिस ज़बान में सत्यनारायन जी बोले हैं वही असली और ठीक हिन्दुस्तानी है। मैं उसे पूरी तरह क़ौमी ज़बान मानता हूँ।" डा० अब्दुल हक़ उस समय बढ़ कर यहाँ तक कह गये कि—"जो मुसलमान इसे क़ौमी ज़बान न माने उसे हिन्दुस्तान से निकाल देना चाहिये।" श्री सत्यनारायन जी ने जिस भाषा में व्याख्यान दिया था वह कान्फ़रेन्स के क़रीब क़रीब सब लोगों को हिन्दुस्तानी का सुन्दर नमूना मालूम हुई। 'हमारी ज़बान' के सम्पादक पं० बृजमोहन दत्तात्रेय कैफ़ी ने कान्फ़रेन्स में हिन्दुस्तानी ज़बान के अन्दर एक अपनी बनाई हुई नज़्म पढ़ी थी जो सारे जलसे को बेहद पसन्द आई थी और जिसे महात्मा गांधी ने पढ़ने के बाद उनके हाथ से लेकर रख लिया था।

हमें पूरा यक़ीन है कि ये दोनों तरफ़ के शक बहुत बड़े दरजे तक केवल शक हैं। हिन्दुस्तानी कमेटी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जून १९४५ ]

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का काम बढ़ने और उसके नतीजे सामने आने पर इस तरह के ज़्यादहतर शक शुबहे अपने आप दूर हो जायंगे। हमें इस चीज़ की भी आशा है कि एक न एक दिन बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन और मौलवी अब्दुल हक़, बाबू सम्पूर्णानन्द और क़ैफ़ी साहब जैसे दोनों तरफ़ के विद्वान एक ही प्लेटफार्म पर हिन्दुस्तान की आम ज़बान हिन्दुस्तानी का समर्थन करते हुये दिखाई देंगे और हिन्दुस्तानी की तहरीक उसी तरह सब देश भक्तों को अपनी तरफ़ खींच लेगी जिस तरह आज़ादी की तहरीक।

## एकता घातक है!

पिछले महीने "लन्दन टाइम्स" ने अपने अग्रलेख में भारतीय सैनिकों की बहुत प्रशंसा की है और कहा है कि उनमें ज़बरदस्त एका और भ्रातृभाव है और उनमें सब जातियों और सम्प्रदायों के सैनिक शामिल हैं। "लन्दन टाइम्स" बड़े गर्व के साथ इस बात की चर्चा करता है कि आपसी एकता भारतीय सैनिकों की विशेषता रही है। इस पर सहयोगी 'लीडर' लिखता है कि १८५९ में सर जान लारेंस ने एकता पर टिप्पणी करते हुये लिखा था कि "ग़दर के पहिले की हमारी सेनाओं में जो कमियाँ थीं उनमें सबमें बड़ी कमी और जो हमारे विरुद्ध बहुत घातक रूप से अमल में आई वह थी उनकी भाई चारे की भावना।"

बेचारे "लन्दन टाइम्स" के सम्पादक मालूम होता है भारतीय एकता के सम्बन्ध में चर्चिल और अमेरी की नीति से नावाक़िफ़ हैं।

## भाड़े के सैनिक!

पञ्जाब के गवर्नर बर्ट्राण्ड ग्लान्सी ने भारतीय सैनिकों की प्रशंसा करते हुये उन लोगों को बहुत भला बुरा कहा कि जो "धुरी राष्ट्रों के प्रचार से प्रभावित होकर भारतीय सैनिकों की आलोचना करते हुये कहते हैं कि भारतीय सैनिक किराये के टट्टू हैं और पेट के लिये फ़ौज में भरती होते हैं।" पिछले दिनों ईडन कमीशन के सदस्यों ने भारतीय सैनिकों की स्थिति की जांच करते हुये जो गवाहियां ली थीं उनमें अनेक गवाहों ने, और जो गवाह अङ्गरेज़ थे, भारतीय सैनिकों को भाड़े के सैनिक बताया है। पिछले दिनों इसी प्रश्न को लेकर कौंसिल आफ़ स्टेट में ख़ासी आवेशपूर्ण बहस रही। इस बहस को हम 'लीडर' के यहां उद्धृत कर रहे हैं—

राजा ग़ज़नफ़र अली ख़ां: माननीय लेफ़्टेनेण्ट कर्नल नवाब सर अकबर ख़ां ने कहा है कि हमारे पास पैसा नहीं है और इसी लिये हम २०) रुपये के वास्ते फ़ौज में भर्ती होने के लिये तय्यार हैं। यह बात बिलकुल ग़लत है।

सर अकबर ख़ाँ: जी हां! यह बिलकुल ख़ालिस पैसे का सवाल है।

राजा ग़ज़नफ़र अली ख़ाँ: मुझे विश्वास है कि मेरे माननीय दोस्त अपने ही आश्चर्यजनक सूबे (सरहद) का ज़िक्र कर रहे हैं कि जहां लोगों को रोटी के वास्ते किसी आदमी को गोली मार देना मामूली बात है।

सर अकबर ख़ाँ: तुम ख़ुद भुखमरें लोग हो।

सर बरट्राण्ड ग्लासी यह ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं कि ये दोनों महानुभाव धुरी प्रचार से ज़रा भी प्रभावित नहीं हैं।

## अभागा बर्मा

रंगून, पगु, मांडले और बसईं पर अङ्गरेज़ी फ़ौजों का क़ब्ज़ा होते ही शाही ऐलान के ज़रिये बर्मा के गले में फिर भगोड़े अंग्रेज़ गवर्नर की फांसी का फन्दा डाल दिया गया। फ़रमान निकल गया कि बर्मा पर अगले तीन बरस तक गवर्नर की तानाशाही हुकूमत रहेगी। बर्मा के बाद जितने भी एशियाई देश मुक्त होंगे हिन्द-चीन, मलाया, डच ईस्ट इंडीज़—उन पर फिर फ्रांसीसियों अंग्रेज़ों और डचों की निरंकुश हुकूमतों का ऐलान कर दिया जायगा। हमने तो एक मिनिट के लिये भी इस बात पर कभी विश्वास नहीं किया कि ये धूर्त और पाखण्डी साम्राज्यवादी कभी भी एशियाई देशों की स्वाधीनता की बात सोचेंगे। जहां तक जनतन्त्र के उसूलों को अमली रूप देने का सवाल है वहां तक फ़ासिस्ट जापान और चर्चिली इङ्गलैण्ड में, हमारे तजरुबे ने बता दिया कि, कोई अन्तर नहीं है। जो शासक इन देशों की निरीह जनता को बग़ैर लड़े आख्याचारी जापान की दया पर छोड़ आये थे उनको आज पुरस्कृत किया जा रहा है और जिस जनता ने डटकर मुक़ाबला किया था उसे और अधिक कठोर ग़ुलामी की सज़ा मिल रही है।

हमें अपने बर्मी भाइयों के साथ पूरी सहानुभूति है। उन्हें निराश होने की ज़रूरत नहीं है। साम्राज्यवाद के पैर, बावजूद ठाठबाट और दिखावे के, लड़खड़ा रहे हैं। ज़रूरत है एशियाई देशों की जनता के मज़बूत सङ्गठन की। जिस दिन एशियाई देशों की जनता संगठित होकर गान्धी जी के बताये हुये अहिंसात्मक तरीक़ों से खड़ी हो जायगी उस दिन एशिया से ब्रिटिश, फ्रांसीसी, डच और जापानी साम्राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


का अन्त हो जायगा। इस समय एशियाई देशों का यह नारा होना चाहिये—एशियाइ जनता एक हो!

## यूनान में फ़ासिस्टी शासन

रायटर ने लन्दन से अपने १३ मई के तार में लिखा है कि लार्ड स्ट्राबोलगी ने ग्रीक मैरी टाइम यूनियन के संघ की एक मीटिङ्ग में बोलते हुये कहा कि 'बावजूद मित्रराष्ट्रों की शानदार विजय के अब भी यूरोप में कहीं कहीं काले धब्बे बाक़ी हैं। इनमें से एक यूनान है। वहाँ ब्रिटिश सङ्गीनों के सहारे एक तानाशाही हुकूमत क़ायम कर दी गई है जो ब्रिटिश सम्मान के सहारे फ़ासिस्टी तरीक़ों से काम कर रही है। ई० ए० एम० के ५० हजार समर्थक इस समय अफ़रीकन रेगिस्तान में कन्सनट्रेशन कैम्पों में बन्द हैं और ३५ हजार समर्थक एट्रिका के कन्सनट्रेशन कैम्पों में। एथेन्स में जो फ़ासिस्ट इस समय हुकूमत कर रहे हैं वे बिना किसी तमीज़ के हमारे मित्रों पर अत्याचार कर रहे हैं जिनमें ऐसे बिशप, प्रोफ़ेसर, ट्रेड यूनियन लीडर और सिविल सर्वेंट्स शामिल हैं जिन्होंने जर्मनों का डटकर मुक़ाबला किया था।"

हमें लार्ड स्ट्राबोलगी से पूरी हमदर्दी है पर यह उसी ग़लतफ़हमी का नतीजा है कि जिसके अनुसार आपने इस युद्ध को जन युद्ध समझा था। अब आपको यक़ीन हुआ कि यह युद्ध सौ फ़ी सदी साम्राज्यवादी भावनाओं के साथ लड़ा गया है।

## विजय दिवस और शा

विजय दिवस के सिलसिले में बर्नड शा ने अपने एक वक्तव्य में कहा है—

"मैं उन मूर्खों में शामिल होना नहीं चाहता जो इस शान्ति के बारे में वाद विवाद कर रहे हैं और इस तरह यह समारोह मना रहे हैं मानो सारी समस्याएं हल हो गईं। यूरोप में आज जो विनाश और बर्बादी फैली हुई है उसको देखते कोई भी गम्भीर व्यक्ति कैसे ख़ुशी मना सकता है? लाखों आदमी भूखों मर रहे हैं जिनमें छोटे छोटे बच्चे भी शामिल हैं। बड़े बड़े शहर खण्डहर बन रहे हैं। लाखों जानें चली गई हैं और लाखों के अङ्ग भङ्ग हो गये हैं। हम बर्लिन को आग की लपटों की भेंट करके कैसे विजय दिवस मना सकते हैं। बर्लिन उसी तरह संसार का केन्द्र है जिस तरह न्यूयार्क और लन्दन हैं। आप सदियों की संस्कृति को नष्ट करके उसे विजय नहीं समझ सकते। वह दिन ख़त्म हो गये जब युद्ध में एक पक्ष की विजय होती थी। आप युद्ध को इस तरह बन्द नहीं कर सकते। जब तक लोगों के पास घूसे हैं तब तक स्थायी शान्ति नहीं हो सकती...।"

शा के इन गम्भीर विचारों पर हर सोचने वाला ध्यान देगा। वास्तव में यह विजय पशुता के ऊपर पशुता की, हिंसा के ऊपर हिंसा की और हैवानियत के ऊपर हैवानियत की विजय है। असली विजय दिवस उस दिन मनाया जायगा जब अहिंसा के उस सिद्धान्त को दुनिया स्वीकार करेगी जिस पर अमल करने से इनसान इनसान का दुश्मन न रह जायगा और आपसी विरोध मैदाने जङ्ग में नहीं बल्कि प्रेमपूर्ण तरीक़ों से सुलझाये जायंगे।

## फ़रांसीसी साम्राज्यवाद

सैन्फ्रान्सिसको सम्मेलन ने अभी हाल में ही इस उद्देश्य पर बहस की थी कि राजनैतिक फ़ैसले बल प्रयोग द्वारा न किये जायं। किन्तु अभी इस बहस की कार्रवाई की स्याही सूखने भी न पाई थी कि फ़रांसीसियों ने सीरिया, लेबनान और अलजीरिया में अपने मनहूस संगीनी दांत दिखाने शुरू कर दिये। सन् १९४० में फ्रान्स हिटलर के क़दमों पर चारों खाने चित पड़ा था। आज फ्रान्स को अमरीकी और अङ्गरेज़ी सङ्गीनों के बल अपना मुल्क वापस मिल गया है और जनरल दे गाल वहाँ की अस्थायी सरकार के प्रधान हैं। फ्रान्स की सामाजिक और आर्थिक हालत भी बहुत बुरी है पर ऐसी हालत में भी फ्रान्स दूसरे साम्राज्यवादी देशों की तरह अपने पुराने साम्राज्य का ख़्वाब देख रहा है।

सीरिया और लेबनान में फ्रान्स की मुख्य मांगें ये हैं—(१) फ्रान्स के साम्राज्यी हक़ों की हिफ़ाज़त के लिये सीरिया और लेबनान में उसे समुद्री और हवाई अड्डे दिये जावें; (२) इन दोनों मुल्कों में फ्रान्स के विशेष आर्थिक अधिकार स्वीकार किये जावें; (३) इन मुल्कों की तालीम का तरीक़ा फ़रांसीसी हो और (४) सीरिया और लेबनान की फ़ौजें फ़रांसीसी हाइकमाण्ड के मातहत हों।

सान्फ्रान्सिसको में फ़रांसीसी प्रतिनिधि सीरिया और लेबनान के प्रतिनिधियों पर इस बात का ज़ोर डाल रहे हैं कि वे फ्रान्स की इन शर्तों को क़ुबूल कर लें किन्तु सीरिया और लेबनान के प्रतिनिधि सभी देशों के साथ बराबरी की शर्तें बरतना चाहते हैं, वे फ्रान्स को विशेषाधिकार नहीं देना चाहते। जब ज़बानी बातों का कोई असर नहीं हुआ तो दे गाल ने फ़रांसीसी फ़ौजों को इन मुल्कों में उतार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दिया। इस पर समस्त सीरिया और लेबनान में विरोध की लहर उठ खड़ी हुई। दोनों मुल्क फरांसीसी बल प्रयोग का साहस के साथ मुक़ाबला कर रहे हैं। फरांसीसी फ़ौजों ने बेरूत, दमिश्क़, और एलेप्पो में निहत्थी अरब जनता पर गोलियां चलाईं जिसमें अनेकों आदमी मरे और घायल हुये।

फरांसीसी फौजों के ये शर्मनाक ज़ुल्म न सिर्फ़ सीरिया और लेबनान में ही चल रहे हैं बल्कि अलजीरिया की अरब जनता के ऊपर स्वाधीनता के लिये प्रदर्शन करने पर काफ़ी गोलाबारी की गई है कि जिसके परिणाम स्वरूप लगभग छै हज़ार अरब हताहत हुये हैं। गांवों की निरीह आबादी को वहां हवाई जहाज़ से मशीन गन किया जा रहा है। मार्शल ला का ऐलान कर दिया गया है और रायटर की एक ख़बर के मुताबिक़ अलजीरिया पर इतना ज़ुल्म हो रहा है जितना पहले कभी नहीं हुआ था।

फरांसीसियों के इन ज़ुल्मों से सारी अरब दुनिया में एक तहलका सा मच गया है। ४ जून को अरब कौंसिल की एक बैठक में इस प्रश्न पर विचार होगा और इस बीच सीरियन अरब फ्रान्स की इन ज़्यादतियों का मुक़ाबला करने की पूरी तैयारी कर रहे हैं। अङ्गरेज़ अमरीकन और मिस्री सरकारें बीच बचाव करने के लिये तैयार हैं परन्तु जनरल दे गाल अपने मनमाने तरीक़े से फरांसीसियों की संगीनों के बल अपने पुराने वादों से मुकर जाना चाहते हैं।

हमें पूरा विश्वास है कि मध्यपूर्व की अरब जनता डट कर इस साम्राज्यशाही का मुक़ाबला करेगी और हरगिज़ अपनी आज़ादी पर ख़म न आने देगी। अपने इस काम में उसे समस्त एशियाई जनता की सहानुभूति प्राप्त है।

## तुर्क पहले तुर्क हैं

सानफ्रान्सिसको में "अमृत बाज़ार पत्रिका" के विशेष प्रतिनिधि डाक्टर श्रीधर्णी अपने २६ मई के सम्वाद में लिखते हैं—

"मैं तुर्की प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य फ़िलाह रिफ़की आते से मिला। आते ने मुझसे कहा—'हिन्दुस्तान न उस वक्त तक समृद्ध हो सकता है और न आज़ाद हो सकता है जब तक वहां धर्म को राजनीति से अलग नहीं किया जाता। सबसे अच्छी बात तो यह होगी कि हिन्दुस्तान के मुख़्तलिफ़ धार्मिक सम्प्रदायों के लोग एक राजनैतिक उद्देश्य से इकट्ठे हो जायें।' आते ने यह भी कहा कि 'हिन्दुस्तान को रोमन लिपि अपना लेनी चाहिये।' पाकिस्तान के बारे में पूछने पर आते ने कहा कि 'मैं पहले तुर्क हूँ और फिर मुसलमान। हिन्दुस्तानियों को भी इसी तरह सोचना चाहिये।' अरब लोग के बारे में सवाल करने पर आते ने कहा 'आजकल छोटा मुल्क होना एक गुनाह है इसलिये बहुत से छोटे छोटे मुल्कों का संगठन करके ही बड़ी ताक़तों से न्याय की उम्मीद की जा सकती है।"

## ट्रीएस्ट का सवाल

प्रसिद्ध अङ्गरेज़ इतिहासज्ञ सर जान के ने लिखा है कि "अङ्गरेज़ी कूटनीति का प्रधान उसूल यह है कि जो काम इन्हें खुद करना होता है उसका इलज़ाम पहले यह दूसरों पर लगा देते हैं।" ठीक यही बात अंग्रेज़ तानाशाह मार्शल टिटो के साथ कर रहे हैं। रायटर के समाचारों द्वारा सारी दुनिया पर यह असर डालने की कोशिश की जा रही है कि मार्शल टिटो ज़बर्दस्ती ट्रीएस्ट को हथियाना चाहते हैं और वहाँ की इटालियन जनता पर यह एक बहुत ज़बर्दस्त ज़ुल्म है। और अंग्रेज़ बेचारे तो हर इस तरह के ज़ुल्मों के प्रतिकार के लिये कमरबस्ता हैं।

हाल में संयुक्त यूगोस्लाव सरकार के उपप्रधान मन्त्री मि० एडवर्ड कार्डेली ने स्थिति को साफ़ करते हुये जो बयान दिया था वह यह है—

"यूगोस्लाव जनता ने इस क्षेत्र को आज़ाद किया है। पिछली जंग के बाद इस क्षेत्र को इटली ने हड़प लिया था। यहां ज़्यादा तादाद में यूगोस्लाव जनता रहती है और हमेशा से यह यूगोस्लाविया का समुद्री दरवाज़ा रहा है। ट्रीएस्ट के लिये हमारी मांग का समर्थन ट्रीएस्ट में रहने वाली केवल स्लोवीन जनता ही नहीं कर रही बल्कि बाहर रहने वाली अधिकांश इटालियन जनता भी करती है।"

फ़ील्ड मार्शल अलेक्ज़ेण्डर ने ट्रीएस्ट पर मार्शल टिटो के क़ब्ज़े की निन्दा करते हुये कहा है—"इस तरह की कार्रवाई से हिटलर, मुसोलिनी और जापान की करतूतों की याद आजाती है। ऐसी चीज़ों को रोकने के लिये ही तो हम इस युद्ध में लड़ रहे हैं!"

इस पर टिप्पणी करते हुये "लोकयुद्ध" लिखता है—"यूगोस्लाविया की फ़ौजों और स्थानीय छापेमारों ने इस क्षेत्र को आज़ाद किया और वहां पर जनता की एक स्वतन्त्रता समिति क़ायम की। यही समिति इस क्षेत्र की शासक है। इसका अध्यक्ष एक इटालियन है और दो उपाध्यक्षों में एक स्लोवीन और एक इटालवी है।"


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इससे साफ़ है कि ट्रीएस्ट के सम्बन्ध में इटालियन और यूगोस्लाव जनता में कोई मतभेद नहीं है। इटली और इंगस्तिान के फ़ासिस्ट यह मतभेद पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। मार्शल टिटो ने अपने २८ मई के वक्तव्य में कहा है—"यूगोस्लाविया सिर्फ़ इसी बात की प्रार्थना करता है कि उसकी जनता जिनसे उसका रक्त-सम्बन्ध है, उसकी सीमाओं की ढांचे के अन्दर रहे।" देखना यह है कि क्या यूगोस्लाविया की इस न्यायपूर्ण मांग का शान्ति सम्मेलन उचित फ़ैसला करेगा?

## चीन में एक दली शासन का अन्त

कुओमिङ्गताङ्ग कांग्रेस के छठवें अधिवेशन में जनरलिस्मो चियाङ्ग काइ शेक के प्रस्ताव पर कांग्रेस ने यह फ़ैसला किया कि चीन की राष्ट्रीय सरकार के अन्तर्गत दूसरे दलों को जायज़ स्वीकार किया जाय और शासन में हाथ बटाने का उन्हें अधिकार दिया जाय। इस तरह चुङ्गकिङ्ग की सरकार के ऊपर जो एक पार्टी के क़ाबिज़ होने पर एतराज़ किया जाता था वह दूर हो गया। अगले नवम्बर में चीनी जनता का एक कन्वेन्शन बुलाया जायगा, जिसमें बालिग़ मताधिकार के अनुसार एक राष्ट्रीय विधान तय्यार किया जायगा और उस विधान के अनुसार चुनाव होकर चीनी जनतन्त्र का शासन बहुमत वाले दल के सुपुर्द कर दिया जायगा।

हम कुओमिङ्ग ताङ्ग के इस नये क़दम का स्वागत करते हैं और चाहते हैं कि चीनी जनतन्त्र में वहां के सभी दल शामिल होकर चीन को शक्तिशाली और मज़बूत बनायें। जहां तक चीन के कम्यूनिस्टों का सवाल है जिन प्रान्तों में उनका बहुमत है वहां उन्हें आन्तरिक शासन में पूर्ण स्वाधीनता देनी चाहिये और बाक़ी प्रान्तों में भी सर्वहारा जनता के हाथों में शासन सौंपने का पूरा प्रयत्न करना चाहिये।

## चर्चिल बनाम डी वैलरा

विजय के उन्माद में मिस्टर चर्चिल ने श्री डी वैलरा के ख़िलाफ़ अपना अशिष्ट प्रलाप बक डाला। चर्चिल को डी वैलरा की तटस्थ नीति पर बेहद क्रोध था। उन्होंने बताया कि आयर्लैंड की तटस्थ नीति को बल प्रयोग द्वारा तोड़ने का उन्होंने फैसला कर लिया था पर कुछ सोच समझकर वे रह गये। यह अच्छा ही हुआ वरना आयर्लैंड और इङ्गलैण्ड के बीच की खाई फिर हमेशा के लिये कभी न भरती। मिस्टर डी वैलरा तटस्थता के फैसले में अकेले नहीं थे। आयर्लैंड का पिछला चुनाव ही इसी तटस्थता की नीति को लेकर हुआ था और देश ने ज़बर्दस्त बहुमत से डी० वैलरा के ऊपर अपना विश्वास ज़ाहिर किया था। यदि ऐसी सूरत में चर्चिल बल प्रयोग करते तो वे डी० वैलरा के शब्दों में "ब्रिटेन और आयर्लैंड के बीच जो रक्त से लथपथ सम्बन्ध है उसमें एक भयङ्कर अध्याय और जोड़ देते।" ब्रिटेन ने पिछले १५० वर्षों में आयर्लैंड के साथ जो ज़ालिमाना बर्ताव किया है आयर्लैंड की यह तटस्थ नीति उसी का प्रतिफल है। वही ग़लती ब्रिटेन भारत में भी दुहरा रहा है और अगर यही कैफ़ियत रही तो ऐसा दिन आ सकता है जब ब्रिटेन और भारत के बीच की कटुता का कभी भी शमन न हो सकेगा।

## जर्मनी के साथ मानवीय समझौता

मित्रराष्ट्रों की ओर से जर्मनी के विरुद्ध आज जिस तरह का प्रचार किया जा रहा है उससे अन्दाज़ होता है कि सुलह की बड़ी कठोर और अमानुषिक शर्तें जर्मनी के ऊपर लादी जायंगी। पिछले दो तीन वर्षों में लार्ड वन्सी टार्ट जर्मन जनता के साथ कठोर से कठोर और क्रूर से क्रूर बर्ताव करने के गीत गाते चले आ रहे हैं। दुनिया भर में जर्मन अत्याचारों के क़िस्से बग़ैर सुबूत और प्रमाण के आज चारों ओर फैलाये जा रहे हैं ताकि अङ्गरेज़ और अमरीकन जनता का दिल प्रतिहिंसा की आग से उबलने लगे। किन्तु इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं कि पिछले महायुद्ध के ज़माने में ब्रूमेल्स में लाशों की फ़ैक्टरी का जो क़िस्सा जर्मनी के विरुद्ध गाया किया गया था उसे ब्रिटेन के वैदेशिक अण्डर सेक्रेटरी सर आर्थर पोनसोनबी (लार्ड स्ट्राबोलगी) ने स्वीकार कर लिया था कि वह झूठा था और बेईमानी से गढ़ा गया था। उस वक्त वारसाई की सन्धि के परिणामस्वरूप जर्मन जनता को जिस तरह कुचला गया था इस युद्ध की भीषणता उसी का परिणाम है। हिटलर चाहे जो कुछ रहा हो जर्मन जनता उसकी पूजा करती थी। लिसबन से ख़बर प्रकाशित हुई थी कि उसकी मृत्यु की ख़बर सुनकर वहाँ जर्मन स्त्री पुरुष ज़ार ज़ार गिरजों में जाकर रोते थे और प्रभु से हिटलर की आत्मा के लिये शान्ति की प्रार्थना करते थे। अभी वेमर में मित्र राष्ट्रों के स्थानीय अधिकारियों ने जर्मन जनता का जो जनमत लिया उसके अनुसार हिटलर की मृत्यु पर ६५ फ़ीसदी लोगों ने कहा कि उन्हें दुःख हुआ। जब तक जर्मन जनता की यह भावना है तब तक किसी भी तरह की ज़्यादती उनके मन में प्रतिहिंसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




के भाव जगाती रहेगी और उससे युद्ध की सम्भावना ज्यों की त्यों बनी रहेगी। जर्मनी यूरोप का मर्म स्थल है और अगर उसमें गहरा घाव कर दिया जायगा तो उसका मवाद सारे यूरोप के मन प्राण को ज़हरीला बनाता रहेगा और पीढ़ियों तक संसार के शान्तिमय वातावरण को भङ्ग करता रहेगा।

## जैसे नागनाथ वैसे सांपनाथ

प्रसिद्ध भारतीय इतिहासज्ञ स्वर्गीय मेजर रामनदास वसु विभिन्न ब्रिटिश राजनैतिक दलों की चर्चा उठने पर हमसे कहा करते थे कि भारत के हित में कोई अङ्गरेज़ पार्टी अच्छी हो सकती है इस भ्रम में न रहो। वे कहते थे—"देखो, दो तरह के सांप होते हैं, एक ज़हरीले और दूसरे ग़ैर ज़हरीले किन्तु बेचारे मेंढक को तो दोनों ही निवाला बना लेते हैं।" इस १५ वर्ष के अनुभव ने बता दिया कि उनकी बात में बहुत बड़ा तथ्य था। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है सर स्टाफ़र्ड क्रिप्स जैसा कम्यूनिस्ट भी कट्टर से कट्टर अनुदार साबित हुआ।

आज इङ्गलैण्ड में नये पार्लिमेण्ट के चुनाव की धूम है। श्री राजगोपालाचारी जैसे व्यक्ति मज़दूर दल की विजय कामना कर रहे हैं किन्तु हम श्री गोविन्द वल्लभ पन्त से सहमत हैं कि भारत इस बात पर कोई महत्व नहीं देता कि चुनाव में जीत टोरी दल की होती है या मज़दूर दल की, क्यों कि जीत जाने पर भी मज़दूर दल में इतनी शक्ति नहीं कि वह अपने वादों को इङ्गलिस्तान के जनमत के विरुद्ध पूरा करा सके। पार्लिमेण्ट के चुनाव में मज़दूर दल की जीत से हमारा काम नहीं चलेगा। जीत के लिये तो हमें त्याग और बलिदानों का ज़बर्दस्त आयोजन भारत में ही करना पड़ेगा।

## दक्षिण भारत और हिन्दुस्तानी

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के प्रधान मंत्री श्री मो० सत्यनारायन ने सभा के मुख पत्र "हिन्दी प्रचार समाचार" के मई सन् ४५ के अङ्क में हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में अपने बहुत महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये हैं। वे लिखते हैं—

"हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के वर्धा सम्मेलन के बाद, सम्मेलन के प्रस्तावों को लेकर हिन्दी के पत्र-पत्रिकाओं में काफ़ी विवाद होने लगा है। और उस विवाद में महात्मा गांधी की हिन्दुस्तानी नीति पर काफ़ी टीकाएँ भी होने लगी हैं। मौलवी अब्दुल हक़ और दूसरे उर्दू के हिमायतियों के "हिन्दुस्तानी कान्फ्रेन्स" में शामिल होने के सम्बन्ध में लोगों की तरफ़ से काफ़ी शंका भी पैदा हो गई है। जैसे हिन्दी के हिमायती हिन्दुस्तानी की नीति को शक की नज़र से देखते हैं वैसे उर्दू के हिमायती भी हिन्दुस्तानी की नीति को शक से देखने लगे हैं। यह देश की बदनसीबी का एक बड़ा सबूत है। वाक़ई में महात्माजी का यह क़दम, जो उन्होंने राष्ट्रभाषा को "हिन्दुस्तानी" करार देकर, उठाया है; देश के हित के लिए ही है। इसको समझने में न कोई दिक़्क़त हो सकती है न उस पर अमल करने में कोई कठिनाई हो सकती है। यह नया क़दम ज़माने के ख़याल से और विचारों की शुद्धता की दृष्टि से बहुत ही आवश्यक और उपयोगी है। अगर इस वक्त राष्ट्रभाषा के सवाल को लेकर देश में जो धांधली मची है उसको दूर करने की कोशिश न की जायगी तो राष्ट्रभाषा के सवाल के हल करने की हम लोगों की गत २५, ३० साल की मेहनत फ़िज़ूल हो जायगी। इसलिये इस पर शान्त मन से और संयत भावनाओं से विचार करना ज़रूरी है। यह सवाल किसी प्रान्त विशेष या सम्प्रदाय का नहीं है। यह सारे देश का सवाल है। इसलिये सारा देश महज़ राष्ट्रीय दृष्टि से ही इस पर विचार करेगा और निर्णय करेगा।

"राष्ट्रभाषा के सवाल को लेकर ज़्यादा से ज़्यादा कशमकश उन प्रान्तों में चलती है, जहाँ राष्ट्रभाषा का कोई सवाल ही नहीं उठ सकता। यू० पी०, बिहार, मध्य भारत राजपूताना और कुछ हद तक पंजाब में क़रीब-क़रीब बोलचाल की भाषा, जो सभ्य तथा शिक्षित समाज में बोली जाती है, एक ही है। हरेक व्यक्ति या समाज भिन्न-भिन्न संस्कृति और आवश्यकताओं को लेकर अपनी भाषा का उपयोग करता रहता है। उसकी भाषा के शब्दों में, या वाक्य-रचना में स्थान व विषय को लेकर फ़रक़ भी आ सकता है। अगर इस भाषा को वहां का सभ्य समाज हिन्दी माने तो उसी को लेकर अपने साहित्य तथा संस्कृति का विकास कर सकता है। उसको जिस ढाँचे में ढालना चाहे ढाल सकता है। यह काम अलग-अलग सूबे अलग-अलग या सम्मिलित रूप से भी कर सकते हैं। अगर वे सूबे अपने अपने सवाल को सारे राष्ट्र की आवश्यकताओं को ख़्याल में रखकर हल करना चाहें तो राष्ट्र का पूरा बोझा अपने सिर पर उठायेंगे जो उनके लिए आवश्यकता से अधिक ही नहीं बल्कि हानिकर भी है। इसलिये बेहतर यह होगा कि प्रत्येक प्रान्त अपनी अपनी आवश्यकताएँ, इतिहास और समाज को लेकर अपनी भाषा के विकास का निर्णय करे और राष्ट्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की आवश्यकताओं का निर्णय सामूहिक ढङ्ग से करे। इससे यह स्पष्ट हो जायगा कि सूबे की क्या आवश्यकता है और राष्ट्र की क्या। इस तरह के विभाजन को ख़याल में रखने से राष्ट्रभाषा के स्वरूप तथा विकास के बनाने और बढ़ाने में सारे राष्ट्र की निर्लिप्त सहायता प्राप्त हो सकती है। अगर ऐसा नहीं किया जाय, तो कुछ सूबों का बोझा सारे राष्ट्र को उठाना पड़ेगा और सारे राष्ट्र का बोझा कुछ सूबों को अपने सिर पर लेना पड़ेगा। यह स्थिति कदापि वांछनीय नहीं है।

"२५ साल तक राष्ट्रभाषा का प्रचार करने के बाद भी आज यह सवाल उठा है कि हमारी राष्ट्रभाषा का क्या स्वरूप होना चाहिए और उसका नामकरण क्या हो। जिस वक्त राष्ट्रभाषा का काम शुरू हुआ था, यही कहा गया था कि हमारी राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दी या हिन्दुस्तानी है और वह नागरी और उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जाती है। हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों ने इस भाषा के बनाने और उसके साहित्य के निर्माण में काफ़ी काम किया और उसे आगे बढ़ाया। राष्ट्रभाषा की भिन्न भिन्न शैलियों और भिन्न-भिन्न दायरों को ख़याल में न रखने से और उन सब को एक साथ आगे बढ़ाने का प्रयत्न न करने से उसमें गैर-समझी हो गई है। इसका कारण यही था कि उसके निर्माण का कार्य कुछ इने-गिने लोगों तक सीमित रहा और उसके कार्य में सभी शैलियों के निर्माताओं का हाथ नहीं रहा। राष्ट्रभाषा की लिपियां यद्यपि नागरी और उर्दू मानी गई हैं लेकिन राष्ट्र-लिपि के नाम से नागरी का अधिक प्रचार हुआ और उर्दू लिपि में क्या साहित्य बना और राष्ट्रभाषा का विकास कैसे हो रहा है इसकी जानकारी से अधिकांश राष्ट्रभाषा प्रेमी वंचित रहे। इसलिए राष्ट्रभाषा के पूरे स्वरूप को समझने और उसके प्रचार करने में काफी दिक्कत हुई। कम से कम अब इस दिक्कत को दूर करना ज़रूरी है, जिससे आगे का रास्ता साफ़ हो जाय। इस दिक्कत को दूर करने के लिए सब से बड़ी और उपयोगी नीति यही है कि जो लोग हिन्दी को अपनी मातृभाषा मानते हैं, वे उसे उसी पद पर बनाये रखें और उसके विकास का भरपूर प्रयत्न करते रहें और जो लोग अपनी मातृभाषा उर्दू मानते हैं वे भी उसके साहित्य का निर्माण करते रहें। इन दोनों का जो स्वाभाविक विकास होगा उसमें से उन प्रान्त के निवासी जिनकी मातृभाषा न हिन्दी है न उर्दू, एक ऐसी भाषा हासिल कर सकते हैं जो राष्ट्रभाषा का काम देगी।

"वाक़ई में यह राष्ट्रभाषा का सवाल उन्हीं प्रान्तों का है जिनकी भाषा जुदा है और जिन्हें राष्ट्रभाषा के प्रचार की सच्ची आवश्यकता है। आज ऐसे प्रान्तों की आबादी क़रीब २० करोड़ है। अगर यह सवाल ग़ैर-उर्दू वालों ऊपर छोड़ा जाय तो बहुत मुमकिन है कि वे ऐसी राष्ट्र बना सकेंगे जो हिन्दी और उर्दू वालों को मान्य होगी जिसके निर्माण करने में सारे राष्ट्र का पूरा हाथ रहे यही कारण है कि महात्माजी चाहते हैं कि राष्ट्रभाषा दोनों लिपियाँ राष्ट्रभाषा चाहने वालों को सीखना चाहि ऐसी हालत में, वे उन दोनों भाषाओं की सहायता राष्ट्रभाषा बना सकते हैं। इसी हिन्दुस्तानी के प्रचार वास्ते हिन्दुस्तानी प्रचार सभा क़ायम हुई है। हम विश्व रखते हैं कि इस सवाल को लेकर लोग फ़ज़ूल बातचीत को न बिगाड़ कर और पूरी वस्तु स्थिति को समझ राष्ट्रभाषा के विकास, निर्माण तथा प्रचार के काम दिलोजान से लग जायंगे।

"हमें यह कहते बड़ा संतोष हो रहा है कि दक्षिण ज़बानी हिन्दुस्तानी की आयोजना काफी लोकप्रिय बन है। दक्षिण भारत के कई केन्द्रों में, इस आयोजना मुताबिक़ वर्ग खोले गये हैं और हज़ारों की तादाद विद्यार्थी शामिल किये जा रहे हैं। वाक़ई में मौखिक से भाषा को सीखने और सिखाने में काफी दिलचस्पी है, और उससे न विद्यार्थियों के ऊपर बोझा पड़ता है टीचर पर। सभा ने प्रचारकों के उपयोग के वास्ते पुस्तिका 'ज़बानी हिन्दुस्तानी' प्रकाशित की है। हम रखते हैं कि इस साल हज़ारों की तादाद में विद्यार्थी पाठ्य-क्रम समाप्त करेंगे और आगे की तरक़्क़ी के लि अपना रास्ता साफ़ करेंगे।"

## दुरुस्त करके पढ़ें

सफ़ा ३६३ से ३६६ पर प्रकाशित डाक्टर जाकिर साहब के लेख 'हिन्दुस्तानी' में कुछ ग़लतियाँ रह गई मेहरबानी करके उन्हें इस तरह दुरुस्त करके पढ़ें—

| पृष्ठ | कालम | पंक्ति | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ३६५ | १ | ४ | लोव | की जगह | लौन |
| ,, | ,, | ६ | वख़्त | ,, ,, | वक्त |
| ,, | ,, | १४ | भड़कोल | ,, ,, | भकड़ौल |
| ,, | ,, | ३१ | हैं। | ,, ,, | है! |
| ,, | २ | २० | मां | ,, ,, | माँएँ |
| ,, | ,, | २६ | समझदारी | ,, ,, | क़ितरी |
| ,, | ,, | ३९ | छुटपन | ,, ,, | छुटबेहन |
| ३६६ | १ | १४ | को हिक़ारत- आमेज़ | ,, ,, | को अपन हिक़ारत |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विश्ववाणी

भाग ९, अङ्क ४९-५४
जनवरी–जून १९४५

संरक्षक
पण्डित सुन्दरलाल
सम्पादक
विश्वम्भरनाथ

प्रकाशक
विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# लेखकवार विषय-सूची


श्री अगर चन्द नाहटा
१ – दानवीर जगदेव पँवार ... ३२०

श्री आरसी प्रसाद सिंह
१—सम्बोधन ( कविता ) ... १५७
२—अन्तः पुर ( कविता ) ... २५२
३—शब्द ( कविता ) ... ३४५

श्री इन्द्र प्रताप तिवारी
१—मार्क्सवाद और साहित्य ... १४१

श्री उपेन्द्र
१—गीत ( कविता ) ... ३८०

श्री उमेशचन्द्र माथुर
१—भारत में नागा सम्प्रदाय ... ३८५

डाक्टर ए० अरानसन
१—साहित्य और सामाजिक वातावरण ... १८७

श्री कमल कुलश्रेष्ठ
१—पोलैण्ड का साहित्य ... २१८

श्री 'करील'
१—धरती माता ( कविता ) ... २८
२—परिचय ( कविता ) ... १९८

डाक्टर काशीनाथ अनन्त पाध्ये
१—सिंहल में बौद्ध धर्म ... ६१

श्री किशोरलाल मशरूवाला
१—गान्धीवादियों की किंकर्तव्य विमूढ़ता ... १७५

श्री कुमार हृदय
१—मानवता के लिये सुलगती युगयुग की चिनगारी हूँ मैं ( कविता ) ... ८०

श्री कुसुमलता
१—खाली मधुरस घट भर दो ( कविता ) ... २७५

श्री के० पी० पद्मनाभन
१—कन्या कुमारी ... ६९

श्री कैलाश चन्द्र शास्त्री
१—जैन कर्म सिद्धान्त ... ३६७

प्रो० कृष्ण किंकर सिंह
१—डाक्टर सनयात सेन के जनता के तीन सिद्धान्त—( १ ) राष्ट्रीयता ... ८३
२—डाक्टर सनयात सेन के जनता के तीन सिद्धान्त—( २ ) गणतन्त्र ... १०
३— ,, ,, ... १०
४—डाक्टर सनयात सेन के जनता के तीन सिद्धान्त ( ३ ) जीविका ... १२

आचार्य गुरुदयाल मल्लिक
१—ब्लड-बैंक ... १
२—बुद्ध-वाणी ... २
३—विचार-कण ... ३

डाक्टर जाफ़र हसन
१—हिन्दुस्तानी प्रचार ... ३

श्रीमती जे० फोर्ड
१—सन्त और दार्शनिक कवि वाल्ट ह्विटमैन ... ३

कुमारी जोरा नील हार्स्टन
१—निग्रो जाति के अध्यात्म-गीत ... ३
२—निग्रो जाति के विरोध-गीत ... ३

डाक्टर जोसेफ़ इरविन फ्रान्स
१—इनसान जहां मक्खियों की तरह मरते हैं ! ... ४

साधु टी० एल० वस्वानी
१—नानक यही अगम की गैल ( एकांकी ) ... ४

कुमारी दिनेश नन्दिनी चोरड्या
१—गीत ( कविता ) ... ४
२—व्यतिरेक ... ४

श्री देवेन्द्र
१—अग्नि दीक्षा (कविता) ... ४
२—तूफ़ान उठा तो सकते हैं (कविता) ... ४
३—काव्य क्या है ? ... ४
४—सैन फ्रैन्सिसको सम्मेलन (कविता) ... ४

श्री नरेश कुमार
१—गीत (कविता) ... ४

डाक्टर एन० एस० वर्धन
१—चेन-गैङ्ग ( घटना चित्र ) ... ४
२—शेष कथा ( ,, ,, ) ... ४


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



श्री निकोलस रोरिक
१—तमसो मा ज्योतिर्गमय ! ... ७
१—तमसो मा ज्योतिर्गमय ! ... ५४
२—संस्कृति के नाम पर !
श्री पी० ए० वाडिया
१—समृद्ध भारत की ग़रीबी की बुनियादी वजह ... ३०३
श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी
१—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी ... १
२—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की पहली बैठक ... २३७
३—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी का देश व्यापी स्वागत ... ३२७
४—बम्बई में हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी की शाखा ... ४००
श्रीमती प्रतिमा ठाकुर
१—भारतीय नृत्यकला और शान्ति निकेतन के प्रयोग ... ८१
स्व० आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय
१—हिन्दुस्तान में विज्ञान की अवनति के कारण ... ३९५
श्री प्रभाग चन्द्र शर्मा
१—बन्दी के गीत (कविता) ... ३१२
डाक्टर बे बुरहान वल्गी
१—तुर्की का सांस्कृतिक नवजागरण ... २२१
२—अरब मुल्कों का फेडरेशन ... ३०९
श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद'
१—साहित्य में प्रगति
२—प्रभात (कविता) ... १२८
३—चिट्ठी पत्री ... १६४
४—वोल्गा से गङ्गा—एक प्रत्यालोचना ... ३२३
डाक्टर भगवानदास
१—सब धर्म मज़हबों की मौलिक एकता ... ३९७
२—हज़रत मुहम्मद के जन्म दिन पर ... १५९
महात्मा भगवान दीन जी
१—काम की काहिली ... २५३
श्री भवानी चरण लाहा
१—सिंहली कला पर भारत का असर ... १११
श्री भारत चन्द्र
१—कमल परेड (रेखा चित्र) ... ३००
१—मंगल स्वराजी ... ३०५
... २८३
डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त
१—भारत की पिछड़ी हुई जातियों की समस्या १९
श्री मज़हरअली सोख़्ता
१—गान्धी जी का रचनात्मक कार्य क्रम ... १७०
श्री मदन मोहन प्रसाद वर्मा
१—जगत और जीवन ... ३९९
श्री मलिन्द
१—पाश्चात्य मूर्त्ति कला की एक झलक २१५
श्री महादेव साहा
१—डाक्टर सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय का भ्रमपूर्ण प्रचार ... १३४
श्री 'मायल' नक़वी
१—गो-रक्षा ( कविता ) ... २०९
प्रो० मालवाड़ा
१—कन्नड़ भाषा में जैन साहित्य ... २७१
प्रो० मोहम्मद अहसान फ़ारुक़ी
१—प्रेमयोगी सरमद ... ७०
सर यदुनाथ सरकार
१—वृहत्तर भारत का सांस्कृतिक रूप ... १६१
श्री रघुवीर शरण दिवाकर
१—सम्प्रदायवाद, सत्य और कल्याण ... ११४
कुमारी रज़िया बेगम नक़ी
१—मेरी भारत माँ (कविता) ... २३७
श्री रमेश चन्द्र गोयल
१—बैंकिङ्ग का नया क़ानून ... ९१
२—स्टरलिंग की समस्या ... १३१
३—बम्बई योजना का दूसरा भाग ... १८९
सय्यद रहमअली अल हाशमी
१—इसलाम और दो नेशन्स का उसूल ... ३५५
श्री राङ्गेय राघव
१—दीपक (कविता) ... ३५४
श्री राजनाथ पाण्डेय
१—नेह का बावला ... १०६
२—मेरा कविता से क्या नाता ( कविता ) ... १७७
श्री राजेन्द्र प्रताप सिंह
१—किसान से ( कविता ) ... ३०२
श्री व्योहार राजेन्द्र सिंह
१—वोल्गा से गङ्गा ( आलोचना ) ... १९३
श्री रामदयाल पाण्डेय
१—राज-पथ ( कविता ) ... ६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



श्री राम भाई
१—जिसका रक्षा कवच अहिंसा था ... १३९
२—वर्धा का हिन्दुस्तानी सम्मेलन ... २२६
श्री रामावतार
१—सोवियत संघ में मनोविनोद के साधन ... ३१०
श्री रामावतार यादव 'शक्र'
१—किसान ( कविता ) ... ३२
२—बन्दी और बसन्त ( कविता ) ... ८८
३—समस्या ( कविता ) ... २९०
श्री रावत सारस्वत
१—हिन्दी के विस्मृत मुसलमान कवि जान २९७
श्री 'रेशमी सूती'
१—रोमन लिपि का सवाल ... २७३
कुमारी रेहाना तय्यब जी
१—राम नाम में स्नान ( भजन ) ... १०५
डाक्टर लतीफ़ दफ़्तरी
१—हिन्दू मुसलमानों के सांस्कृतिक मेल जोल का प्रारम्भ ... १३
२—हिन्दू धर्म के मुसलमान व्याख्याता ... ५६
३—बंगाल सांस्कृतिक एकता की रंगभूमि ... १६५
४—विज्ञान : वरदान या अभिशाप ... ३८७
श्री विद्यानन्द सन्यासी
१—नारी ( कविता ) ... १२
२—नारी ( कविता ) ... ५३
३—माया ( कविता ) ... २१३
४—मुक्त यूरोप की राजनैतिक और सामाजिक प्रवृत्तियाँ ... ३१८
५—असफल क्रान्तिकारी के प्रति ( कविता ) ३३९
डाक्टर विनय कुमार सरकार
१—पाश्चात्य संस्कृति पर भारत का ऋण ... ३५
श्री विनोद कुमार सेठ
१—उर्वशी ( कविता ) ... २६२
श्री विष्णु
१—वह रास्ता ( कहानी ) ... १२०
स्वामी सत्यभक्त
१—दो कुम्हार ( कहानी ) ... २९५
श्रीमती सत्यवती मल्लिक
१—अन्धड़ ( रेखा चित्र ) ... २९
श्री सुधांशु शेखर चौधरी
१—गीत ( कविता ) ... ३१७
प्रो० सुधीन्द्र
१—सङ्गम ( एक झांकी )
श्री सुनीतिचन्द्र ... ३७
१—नारी का प्राप्य
पंडित सुन्दरलाल ... २८
१—फिलिस्तीन में हज़रत ईसा से पहले के सुधारक
२—हज़रत ईसा के उपदेशों का सार ... ३१
३—हिन्दू संस्कृति और हिन्दू मुसलिम एकता ... ६१
४—मुसलिम संस्कृति और एकता का प्रश्न १११
५—प्राचीन ईरान का सांस्कृतिक और कलात्मक जीवन ... १७३
श्री शंकर गणपति राव कोकणे
१—कांग्रेस किसान मज़दूरों का राज चाहती है ८१
श्री शम्भु प्रसाद बहुगुना
१—गढ़वाली चारण काव्य में हिन्दूपति पादशाही ... १२७
२—गान्धी और कबीर में डाक्टर बड़थ्वाल का स्वरूप ... २११
श्री शादी राम जोशी
१—बूढ़ा दरिया ( कविता ) ... ६०
२—चीथड़ों का छकड़ा ( कविता ) ... २७०
श्री शान्ति भिक्षु
१—बुद्ध की दृष्टि ... ३४१
प्रो० श्रीकृष्ण रतनजनकर
१—सङ्गीत का सगुण और निर्गुण रूप ... ३४१
प्रो० श्रीरञ्जन
१—देवगढ़ के जैन और विष्णु मन्दिर ... ७१
२—सन्त साहित्य और लोक पक्ष ... ११६
३—साहित्य में आदर्श और यथार्थवाद ... २८१
श्री शील ...
१—अनुरोध ( कविता )
श्री शील चतुर्वेदी ... ३७१
१—अभियान ( कविता )
श्री हेमन्त कुमार वर्मा ... १५१
१—गीत ( कविता )
आचार्य क्षितिमोहन सेन ...
१—सन्त रविदास
राय बहादुर ज्ञानशङ्कर पण्डया ...
१—शास्त्रोक्त विवाह का अभिशाप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार


जनवरी

१—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी
२—डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का साठवाँ जन्म दिन
३—नई बुनियादी तालीम
४—अन्न संकट और ब्लैक मार्केट
५—कांग्रेस किसान मज़दूरों का राज चाहती है
६—विज्ञान मानवता के विनाश की वस्तु नहीं
७—युद्ध की विभीषिका
८—इतिहास की नवीन आवृत्ति
९—भारतीय संस्कृति का ध्येय
१०—चीन जनतंत्र का हामी
११—इथियोपिया क्या सचमुच मुक्त हो गया
१२—विजय के पद चिन्ह ... ४६–५२

फ़रवरी

१३—स्वर्गीय रोमाँ रोलाँ
१४—स्वर्गीय श्री तोताराम जी
१५—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी
१६—भ्रम का स्पष्टीकरण
१७—अनुशासन की बात
१८—सेण्ट्रल कन्सिलियेटरी बोर्ड ग्वालियर
१९—मुसलमान और कांग्रेस
२०—राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य
२१—शिक्षा का माध्यम
२२—सोवियत् का निर्णायक क़दम
२३—जनरलिस्मो च्यांग का नया ऐलान
२४—अरब स्त्रियों में जाग्रति
२५—घृणा करना सीखो

मार्च ... ९७-१०४

२६—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी
२७—खेती की पैदावार बढ़ाने की योजना
२८—रचनात्मक कार्य क्रम और सरकारी रुख़
२९—कस्तूरबा फण्ड की कार्य योजना
३०—समग्र ग्राम सेवा का आदर्श
३१—भिन्नता में एकता
३२—सब की बोली हिन्दुस्तानी
३३—वाल्टा सम्मेलन के फ़ैसले
३४—मसीह के ये अनुयायी ... १५२–१५६

अप्रैल

३५—स्व० गणेश जी की याद में
३६—हिन्दुस्तानी प्रचार सम्मेलन
३७—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी
३८—हिन्द ईरानी कमेटी
३९—नागरिकों पर बमबाज़ी
४०—सब धर्म मज़हबों का सम्मेलन
४१—किसान कौन है ?
४२—किसान सभायें और कांग्रेस
४३—करो या मरो का सच्चा मतलब
४४—ये अमरीकन सैनिक
४५—चिमूर और आष्टी के बन्दी ... २४७–२५०

मई

४६—स्व० डा० बेनी प्रसाद, प्रेज़ीडेन्ट रूज़वेल्ट, अलेक्सी टाल्सटाय
४७—सामूहिक सुरक्षा की योजना
४८—सान्फ्रान्सिसको सम्मेलन और भारत
४९—सुदूर पूर्व के देश
५०—दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानी हाइ कमिश्नर
५१—मध्यपूर्व और भारत
५२—लैटिन अमरीका में पाकिस्तानी नतीजे
५३—महिलायें और सामाजिक पाबन्दियाँ
५४—कस्तूरबा निधि और दान देने वाले पूंजीपति
५५—कपड़े की समस्या
५६—युद्ध का यह अन्त नहीं
५७—भारत में कोई गान्धीवादी नहीं ... ३३०–३३८

जून

५८—मुग़लों की धार्मिक नीति पर नया प्रकाश
५९—बंगाल के अकाल पर जाँच कमेटी की रिपोर्ट
६०—शर्मनाक सौदा
६१—पठान आज़ादी के दिलदादा
६२—जनता धीरज के साथ ताक़त बढ़ाये
६३—हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में ग़लतफ़हमी,
६४—एकता घातक है
६५—भाड़े के सैनिक
६६—अभागा बर्मा, ... ४०१–४१४


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


६७—यूनान में फ़ासिस्टी शासन
६८—विजय दिवस और शा
६९—फ़रांसीसी साम्राज्यवाद
७०—तुर्क पहले तुर्क हैं
७१—ट्रीएस्ट का सवाल
७२—चीन में एक दली शासन का अन्त
७३—चर्चिल बनाम डी वैलरा,
७४—जर्मनी के साथ मानवीय समझौता
७५—जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ
७६—दक्षिण भारत और हिन्दुस्तानी
७७—दुरुस्त कर के पढ़ें। ४०१-४१४

## पुस्तक परिचय

### जनवरी

१—अजेय खण्डहर ... श्री विद्यानन्द सन्यासी ४६
२—बंगाल का अकाल ,, ,, ,,
३—विक्रम ( दीपोत्सवी विशेषांक ) ,, ,, ,,

### फ़रवरी

४—प्राचीन भारत का कला विलास ,, ,, ९५
५—लाल चूनर ,, ,, ,,
६—गागर में सागर ,, ,, ९६
७—लोक जीवन ,, ,, ,,

### मार्च

८—अच्छी हिन्दी ... श्री देवेन्द्र एम० ए० १२०
९—कांग्रेस और कम्यूनिस्ट श्री म० प्र० सिन्हा १५१

### अप्रैल

१०—यहां आंसू बहाना है मना श्री कमल कुलश्रेष्ठ २२२
११—समाज और साहित्य ,, ,, ,,
१२—अपरिचिता ,, ,, २२१
१३—निर्वाचन पद्धति ,, ,, ,,
१४—भारतीय शासन ,, ,, ,,

### मई

१५—The Mind of Mahatma Gandhi श्री विद्यानन्द सन्यासी ३१९
१६—Gandhi Jinnah talks ,, ,, ,,
१७—वैशाली ,, ,, ,,
१८—ब्रजभाषा साहित्य में नायिका निरूपण श्री कमल कुलश्रेष्ठ ३३६

### जून

१९—हिन्दुस्तान की बुलबुल सरोजिनी नायुडू ... श्री विद्यानन्द सन्यासी ३९१
२०—हैदरअली ,, ,, ,,
२१—सतरंगिनी ,, ,, ,,
२२—कादम्बरी परिचय— श्री कमल कुलश्रेष्ठ ३९१
२३—भारतीय सहकारिता आन्दोलन ,, ,, ३९४
२४—भावना योग ,, ,, ,,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारतीय चीनी मिट्टियां

लेखक

पं० मनोहरलाल मिश्र एम० एस-सी०

[ सिरेमिक विभाग काशी विश्वविद्यालय ]

बेहद खोज और परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी गई है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने में बदल सकते हैं यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। चीनी मिट्टी और मिट्टी का व्यवसाय करने वालों के लिये पुस्तक बहुत उपयोगी है। २६० पृष्ठ की सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है। डाक खर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## विश्व-संघ की ओर

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल

और

श्री भगवानदास केला

पृथ्वी के सब राष्ट्रों को मिला कर उनका एक संघ किन उसूलों पर क़ायम किया जा सकता है इस गम्भीर विषय पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विश्वव्यापी शान्ति चाहने वाले सब लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। ३०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपया, डाकखर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## आरसी-रचनावली

| | | |
|---|---|---|
| आरसी ( कविताएँ ) | ... ... | १५) |
| संचयिता ( कविताएँ ) | ... ... | ५) |
| कलापी ( कविताएँ ) | ... ... | २॥) |
| नयी दिशा ( कविताएँ ) | ... ... | २) |
| पंचपल्लव ( कहानियाँ ) | ... ... | २) |
| छोटा सिक्का ( कहानियाँ ) | ... ... | १॥) |
| जीवन और यौवन ( कविताएँ ) | ... ... | १॥) |
| आँधी के पत्ते ( कहानियाँ ) | ... ... | १॥) |
| चंदा मामा ( कविताएँ ) | ... ... | १) |

**तारा मण्डल, मुजफ्फरपुर**

संस्कृति, साहित्य और कला की सन्देशवाहक

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

## विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

सम्पादक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य के ऊपर खोजपूर्ण गम्भीर निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक एक अंक संग्रहणीय—

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

**मैनेजर, विश्वभारती पत्रिका, हिन्दी भवन**

पो० शान्तिनिकेतन (बंगाल)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरसों की प्रतीक्षा के बाद आख़िर छप गई

## गीता और .कुरान

### लेखक : पण्डित सुन्दरलाल

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, .कुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर .कुरान की ४०० से ऊपर आयतों का लफ़्ज़ी तर्जुमा दिया गया है।

जो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्मों को समझना चाहें उनके लिये यह पुस्तक बहुत क़ीमती और बेमिसाल है।

२०० सफ़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल

**डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग**

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

पं० सुन्दरलाल जी की एक और नई पुस्तक

## हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

प्रकाशित हो गई

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म-भूमि फ़िलस्तीन की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के साथ साथ हिन्दुस्तान, चीन, ईरान इत्यादि दूसरे एशियाई देशों की उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक हालत के साथ हज़रत ईसा और उनके उसूलों का गहरा सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया गया है

मूल्य, डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग

अभी से अपनी प्रति रिज़र्व करा लीजिये

## "विश्ववाणी का एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है"—गान्धी जी

महात्मा गान्धी जी ने कहा था—"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे।"

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सर तेज बहादुर सप्रू, आचार्य क्षिति मोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० महादेव देसाई, क्यूरेटर-ब्रिटिश म्यूज़ियम (लन्दन), प्रो० तान युन-शान आदि सैकड़ों देशी और विदेशी सर्वमान्य नेताओं और विद्वानों ने गान्धी जी की उपर्युक्त राय को ही दोहराया है।

विश्ववाणी के पुराने अङ्कों में देश और विदेश के चोटी के विद्वानों के गम्भीर और महत्वपूर्ण लेख भरे पड़े हैं। विश्ववाणी के विशेषाङ्कों का तो कुछ पूछना ही नहीं।

**क्या आप के पास विश्ववाणी के बहुमूल्य विशेषाङ्क हैं?**

**क्या आप विश्ववाणी के महत्वपूर्ण पुराने अङ्क ख़रीदना चाहेंगे?**

हमारे पास 'टैगोर अङ्क', 'संस्कृति अङ्क' पहला भाग 'बौद्ध संस्कृति अङ्क', 'चीन अङ्क', 'जैन संस्कृति अङ्क', और 'अकबर अङ्क' की थोड़ी सी प्रतियाँ बची हुई हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर अङ्कों की भी कुछ प्रतियाँ और सन् ४२ और ४३ की एक दर्जन पूरी फाइलें बची हुई हैं। जिन सज्जनों को चाहिये फ़ौरन आज ही पत्र लिखें। जिस क्रम से आर्डर आवेंगे उसी क्रम से ग्राहकों को प्रतियाँ दी जाँयगी।

**मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# केशववाणी

...क : पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक : विश्वम्भरनाथ

...क मूल्य ६) ]

जुलाई १९४५

[ एक अङ्क का ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काशमीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत।

# विषय सूची

[ जुलाई १९४५ ]

१—शान्तिदायिनी माँ जगदम्बिके !—सन्त निकोलस रोरिक ... ... १

२—ज्ञानलाभ ( कविता )—श्री करील ... ४

३—आने वाला हिन्दुस्तान—डाक्टर मेघनाथ साहा ५

४—आज की दुनिया और बौद्ध धर्म—डाक्टर बी० एम० बड़ुआ ... ... ८

५—क्षितिज पर क्या है ? ( कविता )—श्रीमती कुसुमलता ... ... १४

६—शेख़सादी की करीमा—पण्डित सुन्दरलाल १५

७—गीत (कविता)—श्री विद्याधर कुलश्रेष्ठ 'कुसुम' २२

८—बङ्गला उपन्यास की भूमिका—डाक्टर सदाकत समरक़न्दी ... ... २३

९—घनानन्द का विरह निवेदन—श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना ... ... २७

१०—सांस्कृतिक एकता की रङ्गभूमि चीन और भारत—श्री मलिन्द ... ... ३३

११—मामूली अक़्ल की कसौटी पर दो नेशन्स का उसूल—सय्यद रहमअली अल हाशमी ... ३९

१२—निमि ( एकांकी )—श्री आरसीप्रसाद सिंह ४७

१३—सम्राट बाबर का गुप्त वसीयतनामा—अनु० रायबहादुर ज्ञानशङ्कर पण्ड्या ... ४९

१४—सामाजिक आचार और निषेधाज्ञायें—डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त ... ... ५१

१५—संवेदना के अश्रु (कविता) श्री जगन्नाथ एम० ए० ५८

१६—सिपाही की टाँग ( कहानी ) डाक्टर अख़्तर हुसेन रायपुरी ... ... ५९

१७—आर्थिक योजना के कुछ बुनियादी उसूल—श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला ... ६१

१८—हिन्दुस्तान के लिये आर्थिक योजना—श्री जे० सी० कुमारप्पा ... ... ६१

१९—गीत ( कविता )—श्री देवेन्द्र एम० ए०... ६३

२०—भारत की आर्थिक उन्नति के लिये गान्धीवादी योजना पर एक दृष्टि ( आलोचना )—श्री रमेशचन्द्र गोयल ... ... ६६

२१—कवि और दार्शनिक ( गद्य काव्य )—श्री सुनीतिचन्द्र ... ... ६९

२२—ये नापाक विवाह !—श्रीमती लता देसाई एम० ए० ... ... ७०

२३—नैनी जेल में कविता-सुन्दरी के बिछोह पर ! ( कविता )—विश्वम्भरनाथ ... ७१

२४—चार आँसू—पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी ७६

२५—जापान की चित्रकला—श्री विनोद बिहारी मुकर्जी ... ... ७८

२६—जर्मनी और सुलह की शर्तें—श्री शङ्कर गणपति कोकणे ... ८१

२७—रोग क्यों ?—प्रो० श्री नारायण अग्रवाल ८४

२८—हिन्दुस्तानी—श्री सुशील कुमार ... ८६

२९—हिन्दुस्तानी की ओर !—प्रो० राजनाथ पाण्डेय एम० ए० ... ... ८८

३०—बट-वृक्ष ( कहानी )—श्री गिरीश ... ९१

३१—पुस्तक परिचय ... ... ९५

३२—सम्पादकीय ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


# विश्व-वाणी

वर्ष ५, भाग १० ] जुलाई : १९४५ [ अङ्क १, पूरे अङ्क ५५


## शान्तिदायिनी माँ जगदम्बिके !

सन्त निकोलस रोरिक

बहुत पुराने ज़माने से औरतें अपने केशों की वेणी के जूड़े को फूलों के हार से सजाती आई हैं। और क्या यह सजावट एकता की सजावट नहीं है ? राशि राशि केशों के एक सूत्र में, एक समष्टि में बँध जाने पर फूलों का उपहार ! और क्या यह एकता स्त्री जाति का सब से पवित्र कर्तव्य और सबसे सुन्दर मिशन नहीं है ? स्त्रियों के मुँह से हम यह चर्चा सुनते हैं कि हमें तोपों और जङ्गी जहाज़ों में निःशस्त्र होने की उतनी ज़रूरत नहीं है जितनी आत्मा को निःशस्त्र करने की। और इस सिद्धान्त का व्यावहारिक प्रतिपादन हमें कहाँ देखने को मिलता है ? केवल माँ के व्यवहार में। पूर्व और पश्चिम को, सभ्यताओं और संस्कृतियों को इस एकता के सूत्र में बाँधने वाली शक्ति है—मातृत्व !

पुरातन और आधुनिक हिन्दू इसी सर्वशक्तिदात्री राजराजेश्वरी माँ के प्रार्थना गीत गाता है। वह जगदात्री अम्बिका की मूर्ति स्थापित करता है। उनके चरणों में धूप-दीप, नैवेद्य और अपनी आराधना चढ़ाता है और फिर जल में उसका विसर्जन कर देता है ताकि संसार की इस सत्यम् शिवम् सुन्दरम् प्रतिमा को कोई कलुषित साँस स्पर्श न कर सके। हिमालय की सर्वोच्च चोटियाँ, जहाँ अब तक किसी का प्रवेश नहीं हो सका, जगदम्बिका के निवास के लिये समर्पित कर दी गई हैं, क्योंकि प्रलय के दिन जब समस्त चराचर के प्राणी त्राहि मां ! त्राहि मां ! पुकारेंगे उस वक्त माँ अपना वरद हस्त सृष्टि के ऊपर फैलायेंगी। उनकाशी पवन और प्रकाश से आभूषित अनन्त काल और समय की प्रभुता के रूप में माँ ज्योतिस्तम्भ की तरह अडिग खड़ी रहेंगी !

समस्त पूर्व में और समस्त पश्चिम में इसी माँ जगदम्बिका की मूर्ति लोगों के हृदय में स्थित है और सभी इसकी प्रशंसा का मंत्रोच्चार करते हैं। माँ के मुँह के भावों को उनकी जटाओं ने छुपा रखा है और तभी लोग उनकी आँखों में व्याप्त इस भाव को नहीं देख पाते—

"संसार का कल्याण हो !"

"संसार में शान्ति हो !"

जब क्रोध दिमाग़ की विवेक शक्ति को, भले बुरे की पहचान को हर लेता है तब उचित मार्ग प्रदर्शन में हृदय ही सहायता करता है। और कहाँ है ऐसा हृदय जो स्त्री के हृदय की जगह ले सके ? स्त्री का हृदय जो कठिन से कठिन ग्रन्थि के पड़ जाने पर भी अपना धीरज नहीं छोड़ता। हज़ारों ही कष्ट वह मन ही मन सहती है पर ओठों पर जिसके मुस्कराहट बनी रहती है। कौन इस धीर शान्त साहस की समता कर सकता है ? किसके हृदय में उपकार की ऐसी महती भावना है जो स्त्री के हृदय में है ?

विश्व की स्त्री जाति, माँ जगदम्बिका की बेटियो ! तुम्हीं अपने अनुपम त्याग से बुनकर सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की शान्तिदायिनी पताका हिंसा और स्वार्थ से जर्जर इस विश्व में फहरा सकती हो !

* * *

माँ के वे प्राचीन मन्दिर आज टूट कर खण्डहर हो रहे हैं। युद्ध में चलने वाली दारुण तोपों के गोलों ने मन्दिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हृदय को विदीर्ण कर डाला है और शान्तिदायिनी माँ आज क्षत विक्षत होकर भूमि पर पड़ी हैं।

सैकड़ों वर्ष पूर्व पुर्तगाली अपने जहाज़ों से जब गोआ के निकट उतरे तो उन्होंने माँ मैडोना की महान पूजा के नाम पर गोआ निवासियों को अपनी बन्दूकों की गोलियों से भून डाला! यह उन्होंने किया माँ के नाम पर!

स्पेन में सेवील में अलेक्ज़ेण्ड्रो फर्नण्डीज़ की चित्रित की हुई एक तसवीर है जिसका शीर्षक है 'La Virgin de Los Conquistadores' अर्थात् 'विजय दायिनी कुमारी मां!' चित्र के ऊपर के हिस्से में प्रकाश के स्वर्गिक पुञ्ज के बीच में मुसकराती हुई पवित्र कुमारी खड़ी हैं और उनका चौड़ा अञ्चल सैनिकों और विजेताओं के ऊपर अपनी छाया फैला रहा है। नीचे उद्धत समुद्र है जिस पर युद्ध पोत अपनी पालें ताने नये देश विजय करने के लिये जाने को तय्यार हैं। शायद यही युद्ध-पोत एलिफैण्टा के पवित्र गुफ़ा मन्दिरों को नष्ट करेंगे। और दया की मुस्कराहट से सदय कुमारी इन विजेताओं को देख रही हैं मानों वे स्वयं इन्हें अन्य देश वालों को नष्ट करने की प्रेरणा दे रही हैं। यह किसी पैग़म्बर के श्राप का चित्र नहीं है बल्कि माँ का है। मानो शान्तिदायिनी मां स्वयँ अपनी सन्तानों की बलि का आयोजन कर रही हैं।

मेरे एक मित्र को यह चित्र देखकर बड़ा क्रोध आया। वे कहने लगे—"देखो इस तसवीर का मन्शा बिलकुल साफ़ है। इसमें यूरोप का समस्त मनोविज्ञान चित्रित कर दिया गया है। ये लोग दूसरे मुल्कों के धन जन पर क़ब्ज़ा करना चाहते हैं और समझते हैं कि उनके इस काम में जगदम्बिका उनकी रक्षा कर रही हैं। उसके मुक़ाबले में एशिया की भावना कितनी विपरीत है जहां करुणाशीला माँ क्वान यिन अपने अञ्चल की छाया में अपने समस्त बच्चों को हिंसा और ख़तरे से बचा रही हैं।"

एक दूसरे मित्र पश्चिम की मनोवैज्ञानिक भावना का समर्थन करते हुये कहने लगे कि ये चित्र एक युग विशेष की मनोदशा चित्रित करते हैं। ज़ुरबरान या हालबीन के ऐसे भी चित्र हैं जिसमें पवित्र कुमारी उन सबके ऊपर अपना स्नेहांचल फैला रही हैं जो उनकी छाया में आते हैं। यह मित्र पूर्व की बात करते हुये दुर्गा के उस नृत्य का भी ज़िक्र करते हैं जिसमें वह मुण्डमाल पहने हुये शिव की छाती पर काल-नृत्य कर रही हैं। किन्तु पूर्व वाले कहते हैं कि यह केवल एक भावना-चित्र है जिसमें यह दिखाया गया है कि किस तरह असंयत और बेलगाम चित्त वृत्तियों को क्रम में किया जा सकता है।

पूर्व के भक्त तूरफ़ान मैडोना की मूर्ति की मारीचि से तुलना करते हैं कि जो पहले बच्चों का भक्षण करती थी किन्तु बाद में कुबेर की सहचरी और बच्चों की प्राणदायिनी रक्षा शक्ति बन गई। प्राण-प्रद प्रगति की इस परम्परा की चर्चा करते हुये मुझे तिब्बत का एक रिवाज याद आ रहा है जिसमें लामा लोग ऊँचे पहाड़ों पर चढ़कर अनजान यात्रियों की सहायता के लिये घोड़े की छोटी छोटी मूर्तियां हवा में चारों ओर बखेर देते हैं। इस रिवाज में परोपकार की कितनी महान प्रवृत्ति छुपी हुई है। पश्चिम के भक्त कहते हैं कि सन्त प्रोकोपिअस भी अनजान यात्रियों के लिये इसी तरह की प्रार्थना किया करते थे। पश्चिम में 'केफ़ालोफ़ोरी' नामक सम्प्रदाय का त्याग का आदर्श यह था कि—"वे शीश उतार कर अपने हाथों में ले लेते थे। त्याग की यह चरम सीमा है।" इन सब बातों में अनजान आत्माओं के प्रति परोपकार की वही भावना है, त्याग का वही आदर्श है जो हमें एशिया के ज़र्रे ज़र्रे में मिलता है। पूर्व के भक्त कहते हैं कि पूर्व में इस आत्म त्याग की भावना को बहुत ऊँचे और विस्तृत स्तर तक पहुंचा दिया गया था। पूर्व के किसी मन्दिर, किसी मूर्ति और किसी प्राचीन चित्र के नीचे हमें उनके बनाने वाले कलाकारों का नाम अङ्कित नहीं मिलता। इस पर पश्चिम के वकील जवाब देते हैं कि समस्त बाइज़नटाइन, प्राचीन इटालियन, प्राचीन नीदरलैण्ड और रूसी आइकन की कला कृतियों पर भी किसी के दस्तख़त नहीं हैं और वे यह कहते हैं कि यह दस्तख़त की प्रथा तो बहुत बाद की है।

धेनु के चरय्या श्रीकृष्ण की जब चर्चा उठती है तो प्राचीन स्लाव लेल की तस्वीर आँखों के सामने घूम जाती है। लेल भी गाय चराते थे और उनका चरित्र हर तरह श्रीकृष्ण से मिलता जुलता है। श्रीकृष्ण और गोपियों की प्रेम कथा के अगणित गीत हम सुनते हैं और बरबस हमारा ध्यान चला जाता है स्लावों के नृत्य और लेल के गीतों की ओर। गङ्गा के किनारे खड़े होकर हिन्दू स्त्री का आरती करने का तरीक़ा और स्लाव आर्यों का नदी के किनारे त्रिमूर्ति पर माला पहनाने का तरीक़ा अपनी पूरी भावना में एक हैं।

मलाबार के किनारे पर जिस तरह का जादू टोना चलता है वह साइबीरिया के शमनों, फ़िन्नी तांत्रिकों स्काच बजय्यों और रेड इण्डियन पुरोहितों के मंत्र तंत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



से बेहद मिलता जुलता है। प्रकृति के सम्बन्ध में जनता की जो भावना है वह सब जगह एक है। समुद्र, पहाड़ या रेगिस्तान बीच में पड़कर उसमें कोई फ़रक़ पैदा नहीं कर सके। तिब्बत, फ्रान्स और क्रेट सब जगह पुरोहितों और पादरियों का एक सा ही क्रम है।

पूर्व और पश्चिम के फ़र्क़ बताते बताते हम इस नतीजे पर पहुँच गये कि दोनों में कितनी समता है। कहाँ है वह पूर्व और कहाँ है वह पश्चिम जिसे हम एक दूसरे का इतना विरोधी और विपरीत समझते हैं? और तब धीरे से मन में यह प्रश्न उठता है कि आख़िर पूर्व और पश्चिम की सीमायें कहाँ अलग होती हैं? और क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि मिस्र, अलजीरिया और तूनिस जो यूरोप के ठीक दक्षिण में हैं सचमुच पूरबी देश समझे जाते हैं और बलकान और यूनान जो उनसे पूर्व में हैं पश्चिमीय देश माने जाते हैं?

मुझे याद है साहित्य के एक प्रोफ़ैसर के साथ सान फ्रान्सिसको में समुद्र के किनारे घूमते हुये हम दोनों ने एक दूसरे से जिज्ञासा की—"हम सचमुच हैं कहाँ? एकदम पश्चिम में या एकदम पूर्व में?" यदि चीन और जापान निकट पूर्व की तुलना में सुदूर पूर्व हैं तब भी इसी दलील के अनुसार अमरीका का पूर्वी हिस्सा भी सुदूर पूर्व क्यों नहीं? फिर यूरोप का क्या होगा जो दोनों तरफ़ से "पूर्व" से घिरा हुआ है?

रूसी क्रान्ति के दिनों में साइबीरिया को जातिगत समता के कारण फ़िन्नी लोग अपना बताते थे और उस पर अपने का दावा पेश करते थे। अलास्का भी साइबेरिया को छूता है और रेड इण्डियनों का चेहरा मंगोलों से कितना मिलता जुलता है? दरअसल उनका चेहरा बिलकुल एशियाई चेहरा है।

इस तरह सोचने से यह पूर्व और पश्चिम का मतभेद बिलकुल पिघलता हुआ दिखाई देता है। इस विचार को पुष्ट करने वाली तमाम रूढ़ियां और अन्ध विश्वास नष्ट हो जाते हैं और पश्चिम के सनातनी पादरी अनेक भुजाओं वाली करुणामयी क्वान यिन की उपासना करते नज़र आते हैं और पूर्व वाले फ़ा एंगेलिको के चित्रों की प्रशंसा करते दिखाई देते हैं। दुर्गा, इश्तर, दुखर, पवित्र कुमारी आदि सभी देवियां उस जन सामान्य की एक सी कल्पना हैं कि जो जन सामान्य काल और देश के भेद भावों से प्रभावित नहीं होता।

इस तरह अलगाव और खण्ड-भावना के बोझ से मुक्त होकर हम विश्वजननी जगदम्बिका की आराधना कर सकते हैं। यह कहते हुये हमें एक इटालियन पादरी की बात याद आती है जो अपने भक्तों से कहा करता था कि—"अपनी प्रार्थनाओं से त्राणकर्त्ता ईसु ख्रीस्त को बोझिल न करो। ज़्यादा अच्छा है कि पवित्र मरियम से प्रार्थना करो। वह तुम्हारी प्रार्थनाओं का समुचित प्रबन्ध कर देंगी।"

एक मर्तबा एक कैथालिक पादरी, एक हिन्दू, एक मिस्री और एक रूसी इस बात का पता लगाने निकले कि क्रास का चिन्ह कैसे शुरू हुआ। सब अपने अपने मतलब के नतीजे पर पहुँचे किन्तु मूलरूप से सबकी भावना एक थी। साहित्य में भी एक बार इस बात की कोशिश की गई थी कि क्राइस्ट और कृष्ण के पीछे एक ही मूल कल्पना है। इसी तरह आयोसाफ़ और बुद्ध में भी समता ढूंढने की कोशिश की गई थी। और चूँकि उस समय जगजननी के आशीर्वाद से सन्देह का परदा हटा हुआ था इसलिये यह सारी बहस शान्ति से हो सकी।

ऐसा हो जाय कि जगदम्बिका के विविध रूप—मैडोना, काली, दुख़र, इश्तर, क्वान यिन, मरियम, गौरतारा, राज राजेश्वरी, निउका—ये सब की सब दयामयी मूर्तियां एक ही समन्वयात्मक एकता के नगीने में जड़कर सारी विचार धारा जगमग करने लगें। और ये सब देवियाँ ने अपनी अपनी भाषा में किन्तु सबके समझने योग्य, इस बात का ऐलान करें कि सृष्टि का लाभ मानवता को खंड खंड करने और नाश में नहीं है बल्कि एकता और निर्माण में है। सब इस बात की घोषणा करें कि वात्सल्यमय मातृत्व के अञ्चल के नीचे ही मानवता का कल्याण है। तब एकता की सुखद मुस्कराहट में सभी बातें सहल और आसान हो जांय। विश्व के कोने कोने से जगदम्बिका, जगजननी माँ की प्रशंसा में गीत गाये जाने लगें। चीन के प्राचीन पुस्तकालयों से, प्राचीन मध्य एशिया की कन्दराओं से माँ की प्रार्थना के अति प्राचीन गीत लोगों के लिये सुलभ हो जांय जिनमें इसी एक विश्व जननी, शान्तिदायनी, अन्नपूर्णा, दयामयी, करुणामयी माँ की उपासना की गई हो। तब यह सबके निकट स्पष्ट हो जाय कि एक मात्र इसी माँ के अञ्चल में विश्वात्मा को शान्ति मिल सकती है। और तब सृष्टि का रूप कितना बदल जाय?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शाम-लाभ

श्री 'करीत'

चन्दन छिड़के महल तुम्हारे, हमने टूटा छप्पर पाया।
साथी बनकर तुमने लूटी आज हमारी सारी माया॥
अपने पापों के बल तुमने खुल खुल कर आनन्द मनाया।
तुमने अपने कल, बल, छल से दुनियां में उत्पात मचाया॥
हमें सिखाया तुमने 'हमको बदी यही बस फटी लँगोटी'!
तुम उपजे धन दौलत लेकर हम उपजे ले रूखी रोटी!!

तुमने अपने रास-रंग में सींचा हरदम ख़ून हमारा।
तुमने अपनी मनमानी का हम पर कोमल जाल पसारा॥
तुमने भोगों के रोगों पर बुरे भले का भाव बिसारा।
पंडित गाता सुजस तुम्हारा मुल्ला भी इक़बाल तुम्हारा॥
तुमने हमको पाठ पढ़ाया 'हम उपजे क़िस्मत ले खोटी'!
तुम्हें बदी हैं ये रँगरलियां हमें बदी यह रूखी रोटी!!

तुम्हीं कहाते आलिम फ़ाज़िल, तुम विद्यासागर कहलाते।
अपने दिल पर पत्थर रखकर गीत तुम्हारे हम सब गाते॥
तुम ले जलती लाल मशालें दर्द भरे ये प्राण जलाते।
हम ग़रीब मिहनत के मारे टुकड़ों पर गिर गिर मर जाते॥
कुछ लोगों ने डाढ़ी रख ली कुछ लोगों ने रख ली चोटी!
उलझे राम रहीम बराबर छिनी हाथ की रूखी रोटी!!

तुम उड़ते हो आसमान में, जल में चले जहाज़ तुम्हारे।
एक बड़ी हलचल बन छाये ये जीवन के साज तुम्हारे॥
फूटे गोलों के शोलों में खेल नाश के आज तुम्हारे।
धरती की छाती में फैले लम्बे चौड़े राज तुम्हारे॥
तुमने हमको सदा सिखाया 'यह फूटी क़िस्मत ही खोटी'!
तुम्हें मिले सब सुख के साधन हमें मिली यह रूखी रोटी!!

मन्दिर के ऊँचे कलशों ने सदा तुम्हारी शान बढ़ायी।
मसजिद की इन मीनारों में बान तुम्हारी ही लहरायी॥
तुमने मज़हब धर्म उजाड़े तुमने अपनी बात बनायी।
अपने पाप भरे जीवन में तुमने मौज-बहार उड़ायी॥
इतने दिन तक हमने माना था अपनी ही क़िस्मत खोटी।
तुम उपजे लेकर सुख सारे हम उपजे ले रूखी रोटी॥

मौत चबाती हरदम हमको, गले लगाती तुम्हें जवानी।
आज तुम्हारी रस धारा से सूखा इन आँखों का पानी॥
तुमने सबके मालिक बनकर अब तक की अपनी मनमानी।
पर हमने अब इतने दिन पर यह अपनी क़िस्मत पहचानी॥
जाग पड़े ये भाग हमारे यह तक़दीर नहीं अब खोटी।
हम उपजाते अपने हाथों अपनी और तुम्हारी रोटी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आने वाला हिन्दुस्तान

डाक्टर मेघनाथ साहा, डी० एस-सी०, एफ़० आर० एस०

[ डाक्टर मेघनाथ साहा डी० एस० सी०, एफ़० आर० एस०, एफ़० ए० एस० बी० पहिले इलाहाबाद विश्वविद्यालय में फ़िज़िक्स के प्रोफ़ेसर थे। उन्हींके प्रयत्न से यू० पी० एकेडेमी आफ़ सायन्स क़ायम हुई और वे ही उसके पहिले सभापति बनाए गये। सन् १९३४ में वह इण्डियन सायन्स कांग्रेस के सभापति चुने गये। १९३९ से वह कलकत्ता यूनिवर्सिटी के पालित प्रोफ़ेसर आफ़ फ़िज़िक्स और उस डिपार्टमेंट के अध्यक्ष हैं। वह नैशनल इन्स्टिट्यूट आफ़ सायन्सेज़ इण्डिया के सभापति और नैशनल प्लैनिंग कमेटी के मेम्बर हैं। वह कलकत्ते से निकलने वाले "सायन्स एण्ड कल्चर" मासिक पत्र के सम्पादक हैं। इण्डियन गवर्नमेंट ने हाल ही में इङ्गलैंड और अमरीका जाने के लिए जो मिशन भेजा था, उसके भी आप मेम्बर थे। अब आपको सोवियत् एकेडमी आफ़ सायन्सेज़ की तरफ़ से रूस जाने का निमन्त्रण मिला है। आप ऐस्ट्रो-फ़िज़िक्स (Astro-physics) के दुनिया के माने हुए विद्वानों में से हैं। आपकी कुछ किताबों और 'पेपरों' के नाम नीचे दिए जाते हैं :— On the Measurement of the Pressure of Radiation, Selective Radiation Pressure, Theory of Thermal Ionization and Physical Theory of Stellar Spectra, Theory of Solar Corona आदि। ]

आधुनिक युग और मध्य युग में काफ़ी अन्तर है, इसकी व्याख्या तरह तरह से की जा सकती है। कोई कहता है कि हम भाप और बिजली के ज़माने में रह रहे हैं। कोई कहता है कि हम 'नए-टेकनिक' (Neo-Technique) के युग में रह रहे हैं। बड़े बड़े कल कारखाने वाले जिस युग में विशाल मशीनों की मदद से माल तैयार करते हैं उसी को 'नया-टेकनिक' युग कहते हैं। इस युग के मुक़ाबले में मध्य युग को 'प्राचीन-टेकनिक' (Paleo Technique) युग कहते हैं, यानी जिस युग में कारीगर उत्पादन के छोटे मोटे औज़ारों से चीज़ें तैयार करते थे। कहा जा सकता है कि इस तरह से युगों की व्याख्या कुछ पडिएताऊ सी है। कौन युग क्या है और किस दरजे प्रगतिशील है, इसे साफ़ साफ़ जानने के लिए एक मात्र माप दण्ड है 'शक्ति सूचक इनडेक्स' (Energy Index)। औसत हरेक आदमी देश की सारी शक्ति से जितनी शक्ति ले सकता है उसी को 'शक्तिसूचक इनडेक्स' कहते हैं। बहुत से लोगों को सुनकर अचरज होगा कि मध्य युग में 'शक्ति-सूचक इनडेक्स' था—अस्सी यूनिट और आज के युग में मझोले उन्नत देशों में वह दो हज़ार यूनिट तक पहुंच गया है। अमरीका और कनाडा जैसे ख़ास उन्नत देशों में यह क़रीब तीन हज़ार यूनिट तक पहुंच गया है।*

उपर्युक्त 'शक्ति सूचक' संख्या से क्या नतीजा निकलता है? इससे यही नतीजा निकलता है कि आधुनिक युग में

---

*यहाँ पर शक्ति का 'यूनिट' एक किलोवाट घण्टा यानी एक किलोवाट शक्ति वाली एक मशीन एक घण्टे में जितना काम कर सकती है उसी को 'यूनिट' कहते हैं। यह घण्टे में १½ घोड़े की ताक़त के बराबर है। आदमी की शक्ति आम तौर से एक घोड़े की ताक़त के दसवें हिस्से के बराबर होती है, इसलिए एक जवान आदमी आठ घण्टे मेहनत करता है तो वह मेहनत एक यूनिट, किलोवाट घंटा के बराबर होती है। कोई भी इलेकट्रिक कम्पनी एक यूनिट शक्ति देने के लिए कारख़ाने वाले से एक आने मज़दूरी या क़ीमत लेती है। इससे यह साफ़ है कि एक जवान आदमी के आठ घण्टे मेहनत की क़ीमत ढाई पैसे है। लेकिन आम तौर से आदमी के काम में सिर्फ़ हाथ से किया जाने वाला काम होने पर भी कुछ अक़्ल की ज़रूरत होती है, इसलिए क़ीमत भी कुछ ज़्यादा हो जाती है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


किसी भी उन्नत देश ( जैसे स्वीडेन ) का एक आदमी मध्य युग के आदमी से पच्चीस गुना ज़्यादा धनवान है, क्योंकि धन श्रम-शक्ति के बराबर औसत का होता है। हाँ, यह दूसरी बात है कि सभी देशों में क़ौम की दौलत बराबर नहीं बँटी हुई है, मेरा कहना है कि अगर पैदावार ही नहीं होती है तो बाँटा क्या जायगा ? मध्य युग से अब तक चिपके हुए ईरान या चीन जैसे देश अपनी अतीत की गौरवमय परम्परा अथवा ज्ञानी गुणी व्यक्तियों के आधिक्य के होते हुए भी सुख और धन की दृष्टि से आधुनिक स्वीडेन के बराबर नहीं हो सकते।

अब सवाल उठता है कि यह क्रान्तिकारी रूपान्तर सम्भव कैसे हुआ ?

मध्य युग में ज़्यादातर काम हाथ और जानवरों ( बैल, घोड़े वग़ैरह ) की मदद से होता था, क़ुदरती ताक़त से बहुत कम मदद ली जाती थी। आधुनिक युग में हम कोयले से भाप की और बिजली की, तेल से डिज़ेल इञ्जन की और पानी से हाइड्रो-इलेक्ट्रिक की ताक़त पैदा करते हैं। इन ताक़तों की मदद से हम अपना कार बार करते हैं। इसलिए अब हम गणित के क़ानूनों से हिसाब लगाकर बता सकते हैं कि तेल, पानी कोयला वग़ैरह से हम कितनी ताक़त सप्लाई कर सकते हैं। एक साल की ताक़त के कुल जोड़ को देश की कुल आबादी से भाग करने पर भाग फल 'शक्ति-सूचक' इन्डेक्स Energy Index होगा।

स्वीडेन और स्विज़रलैण्ड जैसे मुल्कों में जहाँ कोयला बिल्कुल नहीं है, उन्हें पानी से तैयार होने वाली बिजली पर निर्भर करना पड़ता है। सन् १९४२ ई० में स्वीडेन का 'शक्ति सूचक' १७०० था। इङ्गलैण्ड जैसे मुल्क जहाँ आम तौर से भाप ही से ताक़त मिलती है, वहाँ का ठीक ठीक हिसाब बताना मुश्किल है। १९३८ ई० में इङ्गलैण्ड में सिर्फ़ कोयले से तैयार होने वाली बिजली का 'शक्ति सूचक' ६५० यूनिट था और भाप तथा दूसरे तरीक़ों से तैयार होने वाली ताक़त का शक्ति-सूचक १४०० था।* तो इङ्गलैण्ड का 'शक्ति-सूचक' २१०० यूनिट हुआ। अमरीका और कनाडा का और ज़्यादा ३००० के क़रीब है। अमरीका और कनाडा की इस उन्नति की वजह यह है कि उन्होंने पानी से सबसे ज़्यादा काम लिया है। पानी से तैयार होने वाली बिजली की मिक़दार इतनी बढ़ा दी है कि दुनिया में अमरीका और कनाडा आज 'शक्ति-सूचक' माप की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ और सर्वोन्नत हैं।

'शक्ति-सूचक' के हिसाब से अगर दुनिया के देशों के नाम गिनाए जायं तो सब से आख़ीर में हिन्दुस्तान, चीन और क्रान्ति के ( सन् १९१७ के ) पहले वाले रूस के नाम आएंगे। १९४४ ई० हिन्दुस्तान का 'शक्ति-सूचक' किसी भी हालत में ९० यूनिट से ज़्यादा नहीं हो सकता। इसमें ६० यूनिट आदमी की अपनी ताक़त से, १५ यूनिट जानवरों की ताक़त से, ९ बिजली से और १० यूनिट भाप और तेल से मिलती है। कहाँ हमारा ९०-९५ और कहाँ यूरोप अमरीका का २००० से भी ऊपर !

एक हिन्दुस्तानी की सालाना औसत आमदनी ६५) रु० ( नैशनल प्लैनिङ्ग कमेटी के हिसाब से ) है। एक स्वीडेन वाले की १८०० क्रोनर यानी १३००) रु०, यानी एक हिन्दुस्तानी की आमदनी से बीस गुना ज़्यादा। इसकी वजह भी साफ़ है। पैदावार में स्वीडिश एक हिन्दुस्तानी से २० गुनी ज़्यादा ताक़त लगा सकता है।

इसी बात को दूसरी तरह कहा जा सकता है। एक अमरीकन या यूरोपीय शक्ति के ज़ोर से १०-१५ आदमियों का काम कर लेता है। एक हिन्दुस्तानी डेढ़ आदमियों का काम करता है, एक अपनी निजी ताक़त से और आधा क़ुदरती या जानवरों की ताक़त से। यानी एक हिन्दुस्तानी की काम करने की ताक़त एक गदहे की काम करने की ताक़त से आधी है।

अरसे से बहुत से लोगों ने हिन्दुस्तान की क़ुदरती ताक़त, खुशहाली और धन दौलत बढ़ाने के बारे में सिर खपाया पच्ची की है और योजनाएं बनाई हैं। इधर सिर्फ़ 'नैशनल प्लैनिङ्ग कमेटी' ने ही अमली योजना बनाई और सोच विचार किया है। इस कमेटी का काम १९३९ में तफ़ बम्बई में पण्डित जवाहरलाल नेहरू की सदारत हुआ। इस सभा में तै हुआ था कि अगर हिन्दुस्तान आर्थिक हालत में तरक़्क़ी करनी है तो अगले दस बरसों अन्दर हमें कम से कम ४,००० करोड़ यानी ४० यूनिट 'शक्ति' तैयार करने का इन्तज़ाम करना होगा। अचानक देखने में मालूम होगा कि यह तादाद बहुत है। परन्तु बात ऐसी नहीं। सालाना ४० अरब 'शक्ति' तैयार होने से सालाना फ़ी आदमी १०० पड़ेगा यानी हिन्दुस्तान का शक्ति-सूचक' १०० होगा। दूसरे देशों के मुक़ाबले में क्या यह ज़्यादा है

* इसमें सन्देह है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


जुलाई १९४५ ]

यह 'शक्ति' हम कोयले से नहीं तैयार कर सकते, करना मुनासिब भी नहीं है। क्योंकि हिन्दुस्तान में यूँ ही कोयला ज़रूरत से बहुत कम है। मुल्क की दूसरी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए इसे जहाँ तक हो सके बचाकर रखना चाहिए। हमें दूसरे तरीक़ों से 'शक्ति' इकट्ठी करनी चाहिए। अपनी ज़रूरत के लिए ज़्यादा 'शक्ति' हम पानी से पैदा कर सकते हैं यानी हाइड्रो-इलेक्ट्रिक ही हमारी 'शक्ति' का भण्डार होगी।*

कोयला सिर्फ़ कम ही नहीं है बल्कि हिन्दुस्तान में बहुतेरी जगहों में तो कोयला है ही नहीं। पंजाब, बम्बई और दक्खिन को अन्य प्रान्तों के कोयले पर निर्भर करना पड़ता है। इन इलाक़ों में पानी की ताक़त को काम में लाना बहुत ज़रूरी है। 'हाइडेल' शक्ति के फैलाव और बढ़ाव के बग़ैर हिन्दुस्तान में शक्ति की समस्या तथा उससे सम्बन्धित ग़रीबी, बीमारी और भूख को दूर करना मुमकिन नहीं।

अपने मुल्क की हाइडेल शक्ति की कुछ मिसालें दी जा सकती हैं। सर विश्वेश्वरैया और सर मिर्ज़ा इस्माइल के उद्योग से अब कावेरी नदी और जगझरने से मैसूर राज में बिजली की 'शक्ति' सप्लाई की जा रही है। कावेरी और जग का काम पूरा हो जाने पर मैसूर में 'शक्ति सूचक' क़रीब २०० यूनिट यानी हिन्दुस्तान के लिये नैशनल प्लैनिंग कमेटी ने जितना तै किया है उसका दूना हो जायगा। दूसरे सूबों में बम्बई की तरक़्क़ी का ज़िक्र किया जा सकता है। पश्चिमी घाट में ताता कम्पनी ने जो तीन बड़े बिजली के सप्लाई सेण्टर बनाये हैं, उसी से यह तरक़्क़ी सम्भव हुई। इन सेण्टरों से बम्बई के कारख़ानों को बिजली की सप्लाई मिलती है। बम्बई के बाद मद्रास का नाम लिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में मद्रास की 'पैकारा' योजना का ज़िक्र किया जा सकता है।

क़ुदरती ताक़तों का पूरे तौर से इस्तेमाल न करना ही हमारे मुल्क की ग़रीबी की सब से बड़ी वजह है। व्यक्तिगत धन दौलत और क़ौमी दौलत, सब कुछ श्रम शक्ति और कर्म शक्ति पर निर्भर करती है। पच्छिमी मुल्कों की तरह अगर हम अपने मुल्क की दौलत बढ़ाना चाहते हैं तो जानवरों की ताक़त या अपनी ताक़त पर भरोसा करने से नहीं चलेगा। जो लोग समझते हैं कि वैज्ञानिक तरीक़ों से क़ुदरती ताक़त से काम लेने या काम करने की ताक़त को बढ़ाने की ज़रूरत नहीं है, अपने हाथों या जानवरों की ताक़त से ही हम पच्छिम के मुल्कों के बराबर दौलतमन्द और ताक़तवर हो जाँयगे, वे मूर्खों की दुनिया में रह रहे हैं।

नये सोवियत् रूस को बनाने वाले लेनिन ने 'शक्ति' बढ़ाने की बात बहुत पहिले ही महसूस की थी। इसीलिये बोलशेविक पार्टी के हाथों में ताक़त आते ही लेनिन का पहला काम था प्रोफ़ेसर क्रज़िज़ा नोवस्की की सदारत में इस काम के लिये एक कमीशन बैठाना। बात यह है कि 'पांच साला योजना' का काम शुरू होने के बहुत पहिले से ही सोवियत् रूस ने 'शक्ति' बढ़ाने की योजना पर विचार शुरू कर दिया था। दुनिया में मशहूर 'नीपिर डैम' बनाने का काम १९२८ में 'पहली पांच साला योजना' के काम शुरू होने के पहिले ही ख़त्म हो चुका था।*

इसलिये हिन्दुस्तान की मरकज़ी सरकार को चाहिये कि वह सारे मुल्क की ताक़त का हिसाब लगाने के लिये विशेषज्ञों की एक कमेटी बैठाए। किसी भी पुनर्निर्माण की योजना के बारे में माथापच्ची करने के पहिले मुल्क की कुल ताक़त और वह कहां कहाँ से मिल सकती है इसका हिसाब और पता लगाना बहुत ज़रूरी है।

---

* १९२२ ई० में मायर्स की खोज से पता चलता है कि हिन्दुस्तान की 'हाइडेल शक्ति' ( Hydro Electric ) २ करोड़ किलोवाट है। इस अन्दाज़ को ठीक मान लेने पर भी आज तक हम इसका $\frac{१}{१००}$ हिस्सा भी तैयार नहीं कर पाए हैं। किन्तु मायर्स के इस हिसाब के ग़लत होने की सम्भावना अधिक है। जिस जल्दबाज़ी में उन्होंने यह हिसाब लगाया था उसमें ग़लती होना कोई अचरज की बात नहीं है। सोवियत रूस में १९१८ ई० के पहिले के हिसाब से पता चलता है कि उसकी 'हाइडेल शक्ति' २ करोड़ किलोवाट थी। लेकिन अब सोवियत सरकार ने विशेषज्ञों से सारे मुल्क की जांच पड़ताल कराके देखा है कि सोवियत के पास १८ करोड़ किलोवाट 'हाइडेल' शक्ति है। इस हिसाब से हिन्दुस्तान में २ करोड़ किलोवाट से कई गुना ज़्यादा हाइडेल शक्ति है, इसमें सन्देह नहीं।

*१९४२ में हिटलरी नाज़ियों के काम न आ सके इसलिये दुनिया का यह सब से बड़ा डैम उड़ा दिया गया था। १९४३ में लाल सेना ने इस पर फिर से क़ब्ज़ा कर लिया और इसे नये सिरे से बनाना शुरू कर दिया। काम बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा है। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आज की दुनिया और बौद्ध धर्म

डाक्टर बी० एम० बड़ुआ एम० ए०, डी० लिट ( लन्दन ), अध्यापक कलकत्ता विश्वविद्यालय

बौद्ध मत या अन्य किसी मत का मेरे निकट धर्म के रूप में यदि कोई आकर्षण है तो वह एकमात्र इसलिए कि स्वतन्त्रता उसका प्राण है। बुद्ध ने सच ही कहा है, "जिस प्रकार समुद्र का पानी कहीं भी पिया जाए वह खारा ही होगा ( एक रसो लोणरसो ) उसी प्रकार निर्वाण की भावना से ही ( विमुत्तिनासो ) मेरा सारा पंथ और शिक्षाएं भरी हैं।" बौद्ध धर्म पूर्ण निर्वाण की सद्भावना के स्पंदन से सर्वत्र अनुप्राणित है।

निर्वाण या मुक्ति बुद्ध की परिभाषा के अनुसार कल्पना में आ सकने वाली समस्त स्थितियों से छुटकारा पाना है। स्वतन्त्रता की परिभाषा चेतना, मन या इच्छा शक्ति की मुक्त स्थिति के रूप में की गई है। स्वतन्त्रता का यह प्रगतिशील पथ इस प्रकार बड़े बंधनों की स्थिति से छोटे बंधनों की ओर या थोड़ी स्वतन्त्रता की स्थिति से बड़ी स्वतन्त्रता की ओर जाने की एक अवस्था है, एक अवस्था से दूसरी अधिक उन्नत अवस्था में जाने की सजग भावना है।

बुद्ध ने हमसे दासता, बन्धनों और गुलामी के मुकाबले में अपने स्वतन्त्रता अथवा निर्वाण सम्बन्धी विचार छिपाए नहीं हैं। निर्वाण के विषय का विवेचन करते हुए और बन्धन से उसका विरोध दिखलाते हुए, उन्होंने बद्ध व्यक्ति के दुःख, रोग, क्लेश तथा स्वतन्त्र व्यक्ति के सुख आह्लाद आदि की विवेचना की है और बन्धन मुक्त व्यक्ति की तुलना ऋणमुक्त, कारामुक्त, रोगमुक्त व्यक्तियों से की है। वे कहते हैं कि दास की अपनी इच्छाएं नहीं होतीं, वह पूरी तरह से अपने स्वामी की इच्छाओं का दास होता है और स्वतन्त्र व्यक्ति इसके ठीक विपरीत होता है। दूसरों की इच्छाओं के अनुसार कार्य करते समय उसके मन में भाव उठते हैं—जब मैं इसके समान ही एक मनुष्य हूँ तो फिर उसके और मेरे भाग्य में यह अन्तर क्यों है? और क्या मेरी हालत बदलने की कोई भी सूरत नहीं है?' बुद्ध स्वीकार करते हैं कि जो कुछ मनुष्य के अधिकार में है, शुभ है और जो कुछ परिस्थितिओं के अधिकार में है, अशुभ है। जीवन की खुशिओं में भाग लेने को ( प्रसिद्ध पाली विद्वान ) बुद्धघोष व्यक्ति की स्वतन्त्रता की कसौटी मानते हैं और दूसरे की इच्छाओं पर चलने को परतन्त्रता की।

कौटिल्य विष्णुगुप्त ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि दासता म्लेच्छों के लिए कोई अपराध नहीं है परन्तु आर्यों के लिए है। और उसने अपने इसी ग्रंथ में दासों के वास्ते स्वतन्त्रता प्राप्त करने के नियम लिखे हैं। बुद्ध ने कहा है कि उपासकों को दासों के व्यापार से दूर रहना चाहिए।

यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़, जो कि चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में था, स्पष्टतया लिखता है कि "भारतीयों की बहुत सी प्रथाओं में उनके प्राचीन दार्शनिकों द्वारा चलाई गई एक प्रथा अत्यन्त प्रशंसनीय है। उनके यहाँ नियम है कि कोई किसी का दास न होगा और सब समान रूप से स्वतन्त्र होंगे क्योंकि भारतीय यह मानते हैं कि वह व्यक्ति सबसे अधिक भाग्यवान है जो न तो किसी की इच्छाओं का दास बनता है और न किसी को अपना इच्छाओं का दास बनाता है। नियम सबके लिए समान होने चाहिएँ, हाँ, सम्पत्ति का बँटवारा असमान रूप से करने की इजाज़त दी जा सकती है।" बाद के यूनानी लेखक एरियन को मेगस्थनीज़ की पुस्तक 'इण्डिका' से पता चलता है कि उस समय दास-प्रथा न थी। लेकडेमोनीय तथा भारतीयों के विचार इस सम्बन्ध में मिलते जुलते हैं। फ़र्क़ इतना है कि लेकडेमोनीय विदेशियों को दास बना लेते थे परन्तु भारतीय किसी को भी नहीं।

कोई भी यह स्पष्ट देख सकता है कि मेगस्थनीज़ ने जो कुछ लिखा है, सब सच है। वह केवल यही कहना चाहता था कि जीवन का दार्शनिक दृष्टिकोण और राजकीय नियम दोनों मनुष्यों की समानता में दृढ़ विश्वास रखते थे। और यह कहना कि क़ानून की दृष्टि में सब समान हैं दास प्रथा से इनकार करना नहीं है।

स्वतन्त्रता एवं प्रगतिशील विकासवाद की समस्या हमें सृष्टि विज्ञान एवं प्राणि विज्ञान की ओर ले जाती है। उसके कारण हमें मनुष्य की घरेलू, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शिक्षा सम्बन्धी, रूढ़ि सम्बन्धी तथा वैयक्तिक परिस्थितिओं की ओर ध्यान देना पड़ता है। अपनी इच्छा के विरुद्ध हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि जन्मगत और जातिगत दृष्टि से, स्थानीय और स्वाभाविक परिस्थितियों की दृष्टि से, रहन-सहन की दृष्टि से, शारीरिक उन्नत और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अनुन्नत अवस्था की दृष्टि से, बुद्धि, प्रतिभा, प्रकृति, स्वभाव, योनि आदि की दृष्टि से, इच्छाओं और भावनाओं की दृष्टि से और शिक्षा की दृष्टि से सभी मनुष्य असमान हैं।[1] कुछ साधारण बातों को छोड़कर समानता एक काल्पनिक वस्तु है।

जीवों के बीच में शरीर का सम्बन्ध ऐतरेय आरण्यक के अनुसार 'भोजन और भोजन करने वाले' का है। बड़ी बड़ी ह्वेल मछलियां, जातकों में लिखा है कि छोटी छोटी मछलियों को ही अपना आहार बनाती हैं।

तिमि (ह्वेल), तिमिंगिल (ह्वेल को निगलने वाली), तिमिंगिलगिल (ह्वेल को निगलने वाली को निगलने वाली) और राघव (तिमिंगिलगिल को खानेवाला) मत्स्य न्याय के सिद्धान्त की अर्थात् जिसकी लाठी उसकी भैंस के सिद्धान्त की पुष्टि करती हैं। भारतीय ग्रन्थों में मत्स्य न्याय का अर्थ निर्बल का सबल के द्वारा भक्षण है। मानवता का इतिहास यही बतलाता है कि 'सत्य ही शक्ति है' के स्थान पर 'शक्ति ही सत्य है' सिद्धांत का सदा पालन किया गया है।

अस्तित्व के लिए प्रारम्भिक संघर्ष की मूल भावना का पता इसीसे लगता है कि प्रत्येक जीव अपनी जीवन रक्षा के लिये किसी न किसी प्रकार के आहार पर निर्भर करता है। दैहिक आवश्यताओं के कारण यह सिद्धान्त बनाया गया है कि जीवित रहने के लिए आहार आवश्यक है और आहार के लिए हिंसा आवश्यक है अथवा अहिंसा का अर्थ अनाहार है और अनाहार का अर्थ जीवित न रहना है। पार्श्व तथा जिनकाल्पिकों को मानने वाले आजीविक साधुओं को अहिंसा का पूर्ण पालन करने के लिए सिवाय इसके कोई उपाय दिखाई नहीं दिया कि वे अपने ऐहिक जीवन को निराहार रहकर धार्मिक अपघात द्वारा समाप्त कर लें। अहिंसा के भव्य सिद्धान्त जीवों को कष्ट न देने के सिद्धान्त के पालन करने की दृष्टि से उनका यह काम तर्क-संगत था किन्तु उन्होंने अपनी स्थिति की अस्थिरता उस समय तक नहीं महसूस की जब तक उनके आलोचक बौद्धों ने यह प्रश्न नहीं उठाया कि जब तुम्हें दूसरों की हिंसा का अधिकार नहीं है तो अपनी हिंसा का अधिकार कैसे है? जैन सिद्धान्तों की बुद्ध ने जो आलोचना की है वह यह है कि जिस तरह इस सृष्टि का निर्माण हुआ है उसके कारण चलने, सांस लेने आदि में हिंसा होती है[1] इसलिये जहां तक हो सके सजग रूप से हिंसा नहीं करनी चाहिए और अपने विचारों को शुद्ध रखना चाहिए। यहां पर जैन कह सकते हैं कि कार्यों को कर्ता की भावना के अनुसार परखने का अर्थ 'भूलों' को बढ़ने देना होगा।

इस प्रकार का सैद्धान्तिक वाद-विवाद यह स्पष्ट कर देता है कि जीवन की घाटी कहीं कहीं पर इतनी दुर्गम और अंधेरी है कि हम वहाँ पर चाहे जैसे चलें, किसी न किसी दृष्टिकोण से हमारी आलोचना की जा सकती है। भूकम्प, ज्वालामुखी, आंधी और बाढ़ जैसी भीषण प्राकृतिक घटनाएं हमें बतलाती हैं कि सृष्टि में कोई स्थिर वस्तु नहीं है। विश्व युद्ध जैसी घटनाएं भी हमें बतलाती हैं कि व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के बीच सम्बन्ध असन्तोषजनक है। ये समस्त घटनाएं हमें बतलाती हैं कि मानव जीवन बड़ी अस्थिर वस्तु है कोई भी स्वरूप शाश्वत नहीं है, बुद्ध के के शब्दों में निर्माण का अर्थ जन्म है और जन्म का अर्थ मृत्यु की तैयारी है। जीवन में से किसी भी क्षण को ले लीजिए। इसमें तीन स्थितियां होंगी—जन्म, स्थिति और विनाश अर्थात् 'उत्पत्ति' 'थिति और 'भंग'। ये उपनिषदों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय से साम्य रखती हैं। जैनी भी स्वीकार करते हैं कि उनके अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर ने अपने शुरू के उपदेशों में इन्हीं तीनों स्थितियों की चर्चा की है। राजाओं की वंश परम्पराओं का अध्ययन पेश करते हुए इब्न ख़ाल्दून ने भी बचपन, यौवन और बुढ़ापा ये तीन ही स्थितियां बतलाई हैं।

जब कि आहार जीवित रहने के लिये आवश्यक है तो जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिये—जीवित रहने के लिये भोजन करना या भोजन करने के लिये जीवित रहना? यदि भोजन करने का अर्थ किसी प्रकार के खाने पर आधारित रहना है तो किस प्रकार के जीवन के लिये किस प्रकार का भोजन आवश्यक है? क्या जीवन की पूर्णता के लिये एक ही प्रकार का भोजन पर्याप्त है और यदि बहुत प्रकार के भोजनों की ज़रूरत है तो किस प्रकार का भोजन सबसे अधिक आवश्यक है?

बुद्ध तथा अन्य पूर्वीय विचारकों के अनुसार हम जीवित रहने के लिये आहार करते हैं और जीवन की पूर्णता के लिये पांच प्रकार का आहार आवश्यक है: पेट

१—अत्थसालिनी पृष्ठ ६४

१—मज्झिम निकाय। फ़ारसी कवि सादी भी कहते हैं—'धीरे चल, नहीं तो तेरे पैरों से चींटियां मर जाएंगी।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


के लिये, मस्तिष्क के लिये, पंचेंद्रियों के लिये, विचार के लिये, तथा आत्मा या चित् के लिये। पहला आवश्यक है और पांचवां जीवन का चरम लक्ष्य है। दूसरी ओर साम्यवादी सिद्धान्तों के निर्माता कार्ल मार्क्स का कहना है कि हम आहार के लिये रहते हैं।

इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि मार्क्सवाद के सिद्धान्त के आधार पर ही रूस को समाजवादी बुनियादों पर अपने राष्ट्रीय जीवन का पुनर्निर्माण करने में कामयाबी मिली। जीवन की इस नई योजना का परिणाम बोलशेविज़्म या इस सोवियत् द्वारा सर्वहारा की डिक्टेटरी का प्रचार है। इसने धर्म और व्यक्तिगत जायदाद के विचार दोनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति श्रमिक और सैनिक दोनों हैं। बोलशेविक विचारधारा—पेट के लिये आहार पर जितना अधिक ज़ोर देती है उतना कलात्मक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक आहार पर नहीं। उस विचार धारा में आहारों को गौण स्थान है।

मैं दुख के साथ इस सचाई से परिचित हूँ कि आज सारे संसार के युवकों का रुझान साम्यवादी विचार धारा की ओर है। किन्तु यह समय है जब कि हमारे पूर्वीय नवयुवकों को सोच लेना चाहिये कि हम रहने के लिये आहार करते हैं या आहार करने के लिये रहते हैं। मुझे इस बात का सदा दुख होता है कि पश्चिम में जो आंदोलन प्रारम्भ होता है उसे हम पूर्वीय लोग बिना परीक्षा किये ही सही मान लेते हैं और उसका स्वागत करने लगते हैं। किन्तु मैं आप को बता देना चाहता हूँ कि किसी भी विदेशी वस्तु का बिना पूरा पूरा ज्ञान के स्वागत करना अकल्याणकर है। हर ऐसी वस्तु का देश की परम्पराओं एवं जाति की परम्पराओं से मेल होना चाहिये। प्रश्न यह है कि क्या हम भारतीय परम्पराओं से मेल खाने वाला कोई ऐसा आर्थिक सामाजिक सङ्गठन बना सकते हैं जिसका सिद्धान्त हो 'आहार जीवित रहने के लिये है'?

जीवन की बोलशेविक योजना में धर्म को कोई जगह नहीं। आजकल के युवकों के दिमाग़ दुनिया में जो घटनाएं घट रही हैं उन्हें देखकर अत्यन्त विकल हो उठे हैं। धर्म उन्हें नहीं भाता। मानव भावना को ग़ुलाम बनाने और जातियों और सम्प्रदायों के बीच में फ़रक़ पैदा करने के अलावा धर्म का कोई दूसरा उपयोग आज उन्हें नहीं दिखाई देता। मुक्ति, पवित्रता एवं ईश्वर के नाम पर धर्म एक व्यापार सा बन गया है। धर्म का जीवित रूप नष्ट हो चुका है, केवल बच रही है उसकी मुर्दा रूढ़ियां। इसी कारण हमारे युवक सभी धर्मों पुरोहितों की ओर वैमनस्य से देखकर मुनासिब तौर पर यह सवाल पूछते हैं कि 'क्या सचमुच हमें धर्म की कोई ज़रूरत है'? धर्म के प्रति इस नवयुवकों की इस उदासीनता के लिये क्या हमें इन पर रोष करना चाहिये या साहस के साथ उनके प्रश्न का उत्तर देना चाहिये? युग की प्रवृत्तियां कुछ ऐसी प्रबल हैं कि जब तक हम उन्हें तर्क के आधार पर यह न बतलाएँ कि धर्म के बिना जीवन में वास्तविक उल्लास, आनन्द और उन्नति की आशा नहीं है तब तक हम उनकी इन प्रवृत्तियों को दबा नहीं सकते। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि धर्म मानवता का पथ प्रदर्शक बनेगा तो उसका स्वरूप क्या होगा?

यह निश्चित है कि पुरोहितों के आधिपत्य एवं सम्प्रदायों की विभिन्नता के दिन यदि अब तक समाप्त नहीं हो गये हैं तो गिनती के ही शेष बचे हैं। आज का नवयुवक विश्व बंधुत्व से भरा हुआ एवं तर्कसम्मत धर्म ही स्वीकार कर सकता है। विशेषाधिकारयुक्त किसी पुरोहित वर्ग को वह स्वीकार नहीं कर सकता। इस कारण यदि धर्म को सर्वग्राह्य होना है तो उसे स्पष्ट एवं पारदर्शी बनना पड़ेगा।

अपनी उच्चता के घमण्ड और मन में जमी हुई गहरी नफ़रतों के कारण आर्य और म्लेच्छ, प्रशंसित और अभिशप्त, यूनानी और बर्बर, ईसाई और पेगन, मुसलमान और काफ़िर आदि के जो भेद भाव चल रहे हैं उनसे दुनिया बिलकुल ऊब गई है। वह ऐसी किसी बात को मानने के लिये आज तय्यार नहीं है जिसके कारण एक धर्म और एक समाजवाले दूसरे धर्म और दूसरे समाजवालों को हीन और ओछा समझकर उनसे नफ़रत करते हैं।

आज के आधुनिक युग के हम लोग अपने पूर्व पुरुषों की अपेक्षा अधिक लाभजनक स्थिति में हैं। हम आज सारे संसार में एक ही भाषा में बातचीत कर सकते हैं। प्रेस की सुविधाओं के कारण पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं और हम उन्हें, वे चाहे किसी भी भाषा की क्यों न हों, पढ़ सकते हैं। इतिहास के अध्ययन द्वारा हम मानवता के विकास की प्रगति परख सकते हैं। यात्रा की सुविधाएं भी अब हो गई हैं। हम विचारों का परस्पर आदान प्रदान कर सकते हैं। शिक्षा के द्वारा हम विश्व की समस्त ज्ञान सम्बन्धी पैतृक सम्पत्ति से लाभ उठा सकते हैं।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जूलियन हक्सले मानवता की विकसित एवं उन्नत जातियों के बीच सहयोग की आवश्यकता बतलाता हुआ कहता है कि प्राणि विज्ञान के दृष्टिकोण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुलाई १९४५ ]

है यह पूरी तरह साफ़ है कि किसी प्रकार के फ़ेडरेशन का संगठन सहयोग के आधार पर बनना चाहिये। यह संगठन व्यापारियों एवं राजनीतिकों का क्षणभंगुर संगठन नहीं बल्कि शाश्वत तत्वों के आधार पर विश्व कल्याण चाहने वालों का होना चाहिये। डेढ़ शताब्दी पहले कान्ट ने अनुभव किया था कि मनुष्य के विकास के लिये एक संगठन आवश्यक है और यह भी बतलाया था कि प्रगति इस ओर बढ़ भी रही है। आज के संसार में राष्ट्र की भावना कुछ वैसी ही वस्तु है। इसमें 'देश' (राष्ट्र) ईश्वर का स्थान ले रहा है। पिछले सौ वर्षों से धर्म का स्थान राष्ट्रीयता ने ले लिया है। राष्ट्रीयता स्वयं धर्म बन रही है। यह संसार को एक विचित्र परिस्थिति में लिए जा रही है जैसा कि प्रत्येक अपूर्ण सिद्धान्त ले जाता है।[1]

यही लेखक अपने 'धर्म और विज्ञान' विषयक लेख को समाप्त करते हुए भाव भरे शब्दों में लिखता है, 'पृथ्वी के इतिहास का एक परिच्छेद मनुष्य के आगमन के साथ समाप्त हुआ। सोचने विचारने और सौन्दर्य से प्रेम करने के लिये मनुष्य को अन्तःप्रवृत्ति मिली। सृष्टि में आत्मा का आविर्भाव हुआ और तब एक नया परिच्छेद प्रारम्भ हुआ जिसमें हम सभी पात्र हैं। भौतिक तत्व आत्मा के रूप में विकसित हुये। आत्मा ने अब पदार्थों को स्वरूप दिया। आत्माओं के इस स्वरूप की रचना का एक पहलू विज्ञान है, दूसरा कला है और तीसरा धर्म है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि ये रचना तत्व आपस में एक दूसरे का विरोध न करें वरन् सहयोग रखें।"[2]

यदि उन्नति ही जीवन की वास्तविक प्रगति है तो हम क्रमशः समानता, संघर्ष, एकरूपता, मेल और एकता ये पांच क्रमशः सम्भाव्य परिस्थितियां मान सकते हैं। जन्म से हम कुछ मनुष्यों के समुदाय के सम्पर्क में आते हैं जो अपने में पूर्ण (Self sufficient) होते हैं और इसी कारण परस्पर विभिन्न होते हैं। जब वे ऐसे नहीं रहते तो एक दूसरे पर आक्रमण करके उनसे अपनी आवश्यकता की वस्तुएं छीनने लगते हैं। इसमें संघर्ष के दर्शन होते हैं। इस संघर्ष के फलस्वरूप राष्ट्रीय भावना का उदय होता है और विश्व में एकरूपता की आने लगती है। इसके बाद सहयोग की भावना का जन्म होता है। किन्तु व्यक्तित्व का विनाश इसमें नहीं हो पाता। जब यह एकरूपता धीमे धीमे व्यर्थ सी हो जाती है तब सब में मेल होता है और व्यक्तित्व लय होने लगता है। जब धीमे धीमे वह भी प्रभाहीन हो जाता है तो एकता का जन्म होता है और मनुष्य समुदाय अपनी शक्तिओं पर विश्वास कर उसी समष्टि की एकता में अपनी उन्नति चाहने लगता है। प्रथम चार परिस्थितियों में निजी व्यक्तित्व क़ायम रहता है। इसी कारण सपनों और कल्पनाओं को स्थान रहता है। उनका प्रभाव समुदाय या राष्ट्र के जीवन के निर्माण पर पड़ता है। समाज और राज्य व्यवस्था व्यक्ति के विकास को सरल बनाने के लिए होती है। इससे धर्म की भावना जिसका अभिप्राय व्यक्तित्व का विकास, ज्ञान की वृद्धि, चरित्र की पूर्णता, सत्य का आनन्द और जीवन का सौन्दर्य है, सबमें प्रमुख वस्तु बन जाती है।

संकीर्णता, सुधार, विद्रोह और क्रांति उन्नति के चार सुस्पष्ट प्रवाह हैं। इतिहास के अध्ययन से प्रत्येक के लाभ हानि हमें विदित हो जाते हैं। विचारों के आधार पर या तर्क के आधार पर हम एक ऐसी परिस्थिति पर पहुँच जाते हैं जब कि व्यक्ति, राष्ट्र आदि के भेद भावों को भूल-कर 'सम्मिलन' के लिए तैयार हो जाते हैं।[1]

कुछ विशेष महत्वशील बातों में सम्प्रदायगत धर्म के तौर तरीक़ों और दावे विज्ञान के तौर तरीकों और दावों से भिन्न होते हैं। मोटे तौर पर सम्प्रदायगत धर्म की परम्परा यह है कि वह एक पुस्तक को सबमें अधिक प्रामाणिक मान लेता है और यह विश्वास करता है कि उसके अन्दर जो शब्द हैं उन्हींके ज़रिये ईश्वर ने या पारलौकिक गुरू ने सम्पूर्ण सत्य, ज्ञान, कल्याण, सुन्दरता, व्यवस्था और अनुशासन को प्रकट किया है। वह इस तरह के अध्ययन की, भाष्य की, जांच की, अन्वेषण की प्रवृत्ति हमारे अन्दर बढ़ाता है ताकि पुस्तक में जो कुछ निहित है वह और अधिक स्पष्ट हो जाय। यदि यह कुछ आचारों और प्रयोगों का आदेश देता है तो वह इसलिये नहीं कि हम किसी नये नतीजे पर पहुँचें बल्कि पहले से निश्चित नतीजों पर ही हमें पहुँचाना चाहता है। अनजान में भी ईश्वरीय पुस्तक के विरुद्ध कुछ कह देना नास्तिकता, गर्व और अधार्मिकता समझा जायगा। उसका सबमें प्रमुख दावा यह होता है कि उसके शब्दों में सत्य और ज्ञान के आख़िरी शब्द हैं और उसके संस्थापक के मानव व्यक्तित्व की महानता

१—ऐसेज़ आफ़ ए बायोलाजिस्ट (पैलिकन सीरीज़) पृष्ठ ८२

२—वही पृष्ठ २३६

१—बड़आ : थाट्स आन प्रोग्रेस 'कलकत्ता रिव्यू'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या उसका देवत्व प्रगति के इतिहास में सबमें महान और सबमें श्रेष्ठ है।

दूसरी ओर विज्ञान हमें इस तरह के दावे को फिर चाहे वह ईश्वरीय दावा हो या मानवीय स्वीकार करने से मना करता है। वह विश्वास नहीं सिखाता। अतीत के तमाम अनुभवों से वह लाभ उठा भी सकता है और नहीं भी। विज्ञान सभी वस्तुओं का तुलनात्मक अध्ययन करता है। इसका कोई फ़र्ज़ किया हुआ सिद्धान्त आज सत्य हो सकता है और कल नहीं। क्योंकि उसकी नज़रों में कोई सिद्धांत अन्तिम नहीं है।[1] यदि यह नये प्रयोगों की ओर क़दम बढ़ाता है तो या तो नये परिणामों पर पहुँचने के लिए या पुरानों की पुनर्परीक्षा के लिए। विज्ञान सदा नवीनता का स्वागत करता है।

विज्ञान के युग में युवकों को धर्म के प्रति अवज्ञा का का रुख़ अख़्तियार करते देखकर और धर्म एवं विज्ञान के इस अन्तर को ध्यान में रखकर बौद्ध धर्म से यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या वह आधुनिक नवयुवकों के लिए कोई आकर्षण रखता है? यदि हाँ, तो कैसे और यदि नहीं, तो क्यों?

पक्ष और विपक्ष दोनों के तर्कों की परीक्षा करने के के उपरांत मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यदि बौद्धधर्म आधुनिक नवयुवकों के लिए कोई आकर्षण रखता है तो उसके कारण निम्न हैं :

( १ ) जो कारण मुझे सबमें अधिक आकर्षित करता है वह यह कि बौद्ध धर्म ( मेरा आशय उस धर्म से है जिसके बारे में कहा जाता है कि बुद्ध ने उसका प्रतिपादन किया ) अकेला ऐसा धर्म है जिसका यह स्पष्ट मोटो है कि आओ और देखो ( एहिपस्स )। एक वैज्ञानिक की तरह बुद्ध अपनी प्रणाली के सत्य का प्रदर्शन करने के लिये प्रस्तुत हैं। किन्तु वह सत्य क्या है?

बुद्ध और उनके अनुयायियों ने हमें दृढ़ आचार प्रणाली दी है जो कि विश्लेषणात्मक मनोदशा के ऊपर निर्भर है। अभिधम्म पिटक की पहली पुस्तक में मनोविज्ञान की नियमानुकूल प्रणाली पर प्रकाश डाला गया है और इसे अभिधम्म के बाद के साहित्य पाली और संस्कृत में भी विकसित रूप में पेश किया गया है। मनोवैज्ञानिक आचार पूर्ण सिद्धान्तों की विधिवत सूची बनाई गई है, उनका वर्गीकरण किया गया है और उनकी परिभाषायें भी दी गई हैं। इस सबका एक व्यावहारिक नक़्शा हमारे सामने पेश कर दिया गया है कि जिसके अन्दर दिमाग़ की क्रिया प्रणाली, उसके अमल के तरीक़े, विचारों पर उसका असर, शब्दों और व्यवहार में उसका असर, संक्षेप में मानसिक आचार पर उसका असर दिखाया गया है, चेतना के दायरे और अनुभव के क्षेत्रों को उत्तरोत्तर रूप में रख दिया गया है और उनके बारीक फ़र्क़ भी दिखाये गये हैं। चेतना के विविध रूप और उनसे पैदा होने वाले मानसिक प्रतिघातों को भी बहुत सावधानी के साथ विश्लेषण करके विशेष तत्वों या कारणों में बांट दिया गया है। रूप या आत्मा के शारीरिक पहलू का अध्ययन करके उसका भौतिक दृष्टि से, शरीर विज्ञान की दृष्टि से विश्लेषण किया गया है और मनोवैज्ञानिक आचार की दृष्टि से जड़ और चेतन और शरीर और शारीरिक क्रियाओं के परस्पर संबंध की गहरी जिज्ञासा की गई है। भावदर्शन ( पनय, प्रत्यय को पत्थन और उसके विविध भाष्यों में उन्नत रूप दिखाया गया है इससे तात्पर्य यह था कि विद्यार्थी मन और मन के विविध सम्बन्धों में, एक मनोदशा और दूसरी मनोदशा में, मन और शरीर में, शरीर और मन में, कार्य के उद्देश्य और उसके स्रोत के बारे में, विविध मानसिक दशाओं और उनके व्यक्त करने में, इन्द्रियों और उनके व्यवहार में और इसी तरह की अन्य बातों में फ़र्क़ कर सकें। मनोवैज्ञानिक आचार के विविध रूपों को मन की विविध दशाओं और अनुभव के विविध क्षेत्रों के लिहाज से अलग अलग कोटि में रखा गया है। इस बात को दिखाने की साफ़ साफ़ कोशिश की गई है कि एक मनोदशा दूसरी मनोदशा को किस तरह काटती है, एक मनोदशा दूसरी मनोदशा को किस तरह सहायता देकर मज़बूत करती है और जब एक मनोदशा रहती है तो दूसरी किस तरह लुप्त हो जाती है आदि आदि। इन सारी स्थितियों के नतीजों को जाँच के लिये, परीक्षा के लिये, दोबारा ग़ौर करने के लिये, मूल्यांकन के मुक़ाबले के लिये और नये प्रयोगों और अन्वेषण का निर्णय करने के लिये ब्योरेवार और ढङ्ग से दिया गया है। इसमें कोई बात छुपाई नहीं गई है। नये अनुभवों और अध्ययन के नतीजों को देखने परखने

१—सर मुहम्मद इक़बाल ने भी कहा है कि दार्शनिक विचारशीलता में कोई बात अन्तिम नहीं है। ज्ञान के विकास से नवीन द्वार खुलते हैं और उनसे नवीन दृश्य दिखाई पड़ते हैं जो कि संभवतः अपेक्षाकृत अधिक सही होते हैं। रिलीजस थॉट इन इस्लाम, भूमिका—पृष्ठ ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




लिये रख दिया गया है उस तालिका का अध्ययन कर लीजिये और आपको मालूम हो जायगा कि मानसिक विकास की किस सीढ़ी पर आप खड़े हैं। आपको कितना अनुभव है और आपकी कैसी मनोदशा है और कौनसा क़दम उठाने से आपके चरित्र का उत्थान या पतन हो सकता है और किस तरह से आप अपनी नीयत को पाक और साफ़ कर सकते हैं आदि आदि।

(२) बुद्ध के इस सिद्धान्त 'आओ और देखो' को जब अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया गया तो बुद्ध दूसरों के मार्ग प्रदर्शन के लिये इसके अतिरिक्त कोई दूसरी निश्चित सलाह दे ही नहीं सकते थे कि ठीक राह पर चलने के लिये अपने अपने अनुभवों और ऐसे वैज्ञानिक तर्कों के ऊपर निर्भर करो जो जाँचे परखे जा सकें और कसौटी पर कसे जा सकें। बुद्ध के अनुसार बनी बनाई रायों का शिकार बनना मुनासिब नहीं और इसीलिये वह हमें पुराने कालमों की तरह उपदेश देते हैं कि "किसी बात को महज़ इसलिये तर्कपूर्ण और कल्याणप्रद न समझो चूँकि दूसरों ने उसका अध्ययन किया है या परम्परा ने ईश्वरीय सन्देश कहकर उसे दिया है या एक के बाद दूसरी पीढ़ियाँ उसे उपदेश रूप में स्वीकार करती आई हैं या हर ज़माने में लोग उसे मानते रहे हैं या वह धर्म ग्रन्थों के उपदेशों से मिलती है या वह तार्किक दृष्टि से ठीक है या वह चलन में उचित है या वह ठीक तरह से प्रतिपादित की गई है या वह बहुत ग़ौर करने के बाद और तकलीफ़ें उठाकर एक सिद्धान्त के रूप में पेश की गई है या उसे एक सुन्दर आदमी ने कहा है और या उसे हमारे ही अपने माने जाने गुरुओं ने कहा है।"[1]

(३) ऊपर की शिक्षा से यह लाज़मी नतीजा निकलता है कि बुद्ध इनसान के दिमाग़ की इस तरह की रूढ़िवादी भावना को नापसन्द करते थे कि जिसके अनुसार इस तरह की दिमाग़ी अलहदगी और आत्म तुष्टि बुरी है कि जो केवल अपने ही सिद्धान्तों और अपनी ही चीज़ों की तारीफ़ करती है और उन्हें ऊँचा बताती है और दूसरों के सिद्धान्तों को छोटा बताकर उनकी निन्दा करती है। मानव स्वभाव की इस तरह की भावना इन शब्दों में व्यक्त होती है कि—"जो कुछ हमारे पास है वही सत्य, ठीक और मानने योग्य है। और बाक़ी सब झूठ, ग़लत, बुरा और तिरस्कार के योग्य है।[2] बुद्ध की यही उदार शिक्षा सम्राट अशोक के दिमाग़ में रही होगी जब उन्होंने नीचे लिखे शब्दों में अपनी धार्मिक सहिष्णुता की घोषणा की—

"देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी अनेक उपहारों और आदरणीय तरीक़ों से विविध सम्प्रदायों के सन्यासियों, त्यागियों और गृहस्थों का आदर करता है। देवताओं का प्रिय राजा भेंट उपहार आदि चढ़ाने की वहाँ तक परवाह नहीं करता जहाँ तक ये बातें समस्त सम्प्रदायों में धर्म के तत्वों को बढ़ाने में मदद दें। धर्मों के तत्वों का विकास भी कई तरह से होता है। किन्तु उसकी जड़ यह है कि ज़बान पर क़ाबू हो। जिसका अर्थ यह है कि बिना मतलब न अपने सम्प्रदाय की तारीफ़ हो और न दूसरे सम्प्रदायों की बुराई। यदि किसी बात में बुराई भी की जाय तो वह बहुत हल्की और किसी बात में दूसरे सम्प्रदायों की मुक्त कंठ से प्रशंसा भी जाय। ऐसा करने से अपने सम्प्रदाय का यश बढ़ता है और सम्प्रदायों का भी उपकार होता है। इसके विपरीत करने से लोग अपने ही सम्प्रदाय की जड़ खोदते हैं और दूसरे सम्प्रदायों को भी नुकसान पहुँचाते हैं···इसलिये प्रेम भाव अच्छा है और लोगों को एक दूसरे के सिद्धान्तों को सुनना चाहिये। देवताओं के प्रिय राजा की यह इच्छा है कि समस्त सम्प्रदाय सब बातों से अच्छी तरह वाक़िफ़ हों और उनकी एक सुन्दर परम्परा हो।"

यह ठीक ही कहा गया है कि 'अशोक ने सहनशीलता का पाठ पढ़ाकर सम्प्रदायों को एक दूसरे से अलग करने वाले भेद नष्ट कर दिए। उसने लोगों को दूसरे के सिद्धांतों का आदर करना सिखाया और इस प्रकार धर्म की आत्मा के विकास करने में मदद दी कि जो प्रायः सभी धर्मों में एक समान है। यही बुद्ध की शिक्षा थी और बौद्ध धर्म का सार्वभौमिकता का यही तत्व अशोक ने पहिचाना था।[1] (४) मानवता को पतन की राह से हटाने के लिए, कुछ अधिक तर्कसम्मत सिद्धांतों पर मनुष्यता के निर्माण करने के लिए समाज जाति और सभ्यता के साधारण स्वर अधिक मीठा करने के लिए, मनुष्य के सम्बन्धों को अधिक प्रेममय बनाने के लिए, शासन संस्थाओं में कल्याण की भावना भरने के लिए, मानवता एवं संस्कृति की उन्नति के लिए मानव शक्तिओं को स्वतन्त्र बनाने के लिए, थोड़े शब्दों में जीवन के उच्चतर आदर्शों के निर्माण के लिए ही बुद्ध ने शिक्षा दी है और यही उन्होंने सारे

१—अंगुत्तर, १, पृ० १८८ फ़ोलियो।
२—अंगुत्तर, १, पृष्ठ ८८, १८८ फ़ोलियो।

१—भण्डाकर : अशोक (संशोधित संस्करण पृष्ठ २५०



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


धर्मों का सार बताया है। अंधविश्वास न करना बौद्ध धर्म का एक ऐसा गुण है जो आधुनिक दिमाग़ को सही प्रतीत होगा। ज्ञान में, मनुष्यता में और नैतिक सिद्धांतों के विकास में सब धर्म एकमत हो सकते हैं; विश्वासों, आचारों और परम्पराओं में नहीं। एकमत होने पर जो विश्वास आचार और परम्पराएं बनेगीं उन्हें ही हम स्वीकार करेंगे। इसी कारण गृहस्थों के लिए बुद्ध ने कोई आचार ग्रंथ नहीं बनाया।

(५) यह बात भी महत्वपूर्ण और ध्यान देने योग्य है कि मिशनरी उत्साह से भरी हुई एक ऐसी बौद्ध जमात क़ायम हो गई और उसके आचार व्यवहार के तरीक़े और अनुशासन के ऐसे नियम काम में आने लगे कि जो जर्मनी के सैनिक अनुशासन से भी कहीं अधिक व्यापक और कठोर थे। बुद्ध ने कभी इस बात को न सोचा होगा कि वे इस तरह के किसी सम्प्रदाय के संस्थापक समझे जाएंगे क्यों कि इस तरह के नियमों की बुराई को उनसे अधिक कोई दूसरा नहीं समझता था। इसीलिये पहले से कोई नियम बनाकर नहीं रखे गये और कोई नियम ऐसे नहीं समझे गये कि जिनमें सुधार न हो सकता हो या वे रद्द न किये जा सकते हों। बुद्ध ने जो कुछ किया वह केवल यही किया कि उन्होंने ऐसे नियमों पर अपनी मुहर लगा दी जो समय की भावना के अनुरूप थे और उस सम्प्रदायके जिनके लिये वे नियम बनाए गये थे उस समय उनकी सख़्त ज़रूरत को महसूस करते थे। जब कि बौद्ध सम्प्रदाय वालों ने अपने आचार विचार के लिये अनेक नियम उपनियम बना लिये बुद्ध के लिये केवल 'एहि एस्थ' 'तुम आओ' काफ़ी था कि जिस सीधे सादे वाक्य से उन्होंने अपने चारों ओर साथी और अनुयायी इकट्ठा कर लिये।

(६) अन्तिम बात है यह कि बोधिसत्वनाय महायान में समर्पित जीवन का यह एक माना हुआ आदर्श था कि उस समय तक हरगिज़ निर्वाण स्वीकार न किया जाय जब तक कि अन्य प्राणी निर्वाण की अवस्था न प्राप्त कर लेंगे या जब तक दुनिया के उद्धार का प्रण पूरा नहीं जायगा। बुद्ध ने कभी किसी को निर्वाण का वादा नहीं किया और न उन्होंने कभी इसी बात की इच्छा प्रकट की कि कोई स्त्री या पुरुष किसी ऐसे इनाम की चाहना करे जिसके लिये उसने स्वयं कोई प्रयत्न न किया हो। यद्यपि उन्होंने उत्तरोत्तर उन्नति को जीवन की अनन्त भावना बताया है उन्होंने कहीं भी इस बात का दावा नहीं किया कि सत्य और जीवन का उन्होंने जो रास्ता दिखाया है वह अनन्त काल तक चलता रहेगा या कोई दूसरा धर्म उनके बताये हुये धर्म की जगह न ले लेगा।

# क्षितिज पर क्या है ?

सुश्री कुसुमलता

निष्पलक क्यों, रे सजीले !
क्षितिज पर क्या है ?

कल्पना पर कल्पना क्या ? स्वप्न पर सपना बना क्या ?
तृप्ति पाकर भी सलिल पर लिख सका कोई तृषा क्या ?
इन्द्रधनुषी रंग सुन्दर
झर सके आलोक-निर्झर ?
क्षितिज कल्पित, कामना का स्वर्ग पर क्या है ?
क्षितिज पर क्या है ?

मिटें, दौड़ें प्राण कितने, दे पुजारी अर्घ्य जितने—
दे सका भ्रम में सिमटकर बूंद भर भी जल न मृगजल !
सामने खिलता किरण-दल—
भर सका कोई न अञ्चल !
वेदना निशि-चन्द्रिका के वदन पर क्या है !
क्षितिज पर क्या है !

पूर्ण-छाया मूर्ति-रचना कह सकी प्रिय-हृदय-रटना !
अवधि में निःसीमता की पूर्णता का हास कैसा !
भूमि पर तारे न तारे
फूल से झरते बिचारे,
शून्य जिसका आदि-अन्तिम गगन पर क्या है !
क्षितिज पर क्या है !

चेतना का हास-कलरव, दुःख-सुख औ' रुदन उत्सव
क्षितिज तक ही, बाद में कुछ भी नहीं—आभास केवल
स्वप्न-स्रष्टा ! जगत् में आ
क्षितिज तजकर हृदय में आ
पास में है मृत्यु-जीवन दूर पर क्या है !
क्षितिज पर क्या है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शेख़ सादी का "करीमा"

पण्डित सुन्दरलाल

शेख़ सादी फ़ारसी के ऊँचे से ऊँचे विद्वानों और कवियों में से हैं। उनका जन्म सन् ११८४ ई० में ईरान के शीराज़ शहर में हुआ था। उनका असली नाम मुशरिफ़-उद्दीन था। उनके बाप का नाम मुसले उद्दीन था। 'सादी' उनका तख़ल्लुस यानी उपनाम था।

शुरू उमर में उन्होंने बग़दाद में तालीम पाई। सन् १२२६ से १२५६ तक ३० बरस उनके देशाटन में गुज़रे। वह सच्चे अर्थों में परिव्राजक थे। इस अरसे में वे बल्ख़ गए, ग़ज़नी गए, और पंजाब आए, वहाँ से गुजरात पहुंचे। सब जगह वह बड़े प्रेम और श्रद्धा के साथ अलग अलग मज़हबों के देवालयों के दर्शन करते थे। गुजरात में वह सोमनाथ के मंदिर को देखने के लिए भी गए। बहुत दिनों दिल्ली रहे। वहाँ उन्होंने हिन्दुस्तानी ज़बान सीखी। फिर यमन, अफ़्रीका, मक्का और मदीना गए। लौटकर सीरिया यानी शाम के मशहूर शहर दमिश्क़ में कुछ दिनों ठहरे। दमिश्क़ में शेख़ सादी बहुत मशहूर हो गए थे। वह एक बहुत बड़े सूफ़ी सन्त थे। चारों तरफ़ से लोग उनके दर्शनों को और उनका उपदेश सुनने आते। वह बोलने वाले भी बहुत ऊँचे दरजे के और निडर थे। कुछ दिनों बाद शहर की ज़िन्दगी से ऊबकर जेरूसलम के पास एक जंगल में चले गए और वहां एकान्त में रहने लगे। उन दिनों यूरोप के ईसाइयों और पश्चिम एशिया के मुसलमानों में क्रुसेड की लड़ाइयां जारी थीं। कुछ ईसाई सिपाही शेख़ सादी को जंगल से पकड़कर ले गए। त्रिपोली की ईसाई छावनी में बहुत दिनों तक उनसे एक मामूली मज़दूर की तरह मिट्टी खोदने की बेगार ली जाती रही। आख़ीर में अलेपो के किसी मालदार सौदागर ने उन्हें पहचाना और बहुत सा धन देकर ईसाइयों से छुड़ाया। शेख़ सादी फिर देश देश घूमने लगे। उन्होंने सारी एशिया कोचक और आस पास के देशों का सफ़र किया। ७२ वर्ष की उमर से वह फिर अपनी जन्म भूमि शीराज़ में आकर रहने लगे। इसके बाद उनका सारा समय 'सलूक' यानी योगाभ्यास और ध्यान में गुज़रता था। सन् १२९१ ई० में १०७ बरस की उमर में शेख़ सादी का शरीर छूटा।

शेख़ सादी की लिखी दरजनों किताबों में 'गुलिस्तां' और 'बोस्तां' सब से ज़्यादा मशहूर हैं। शायद फ़ारसी की कोई और किताबें संसार के इतने ज़्यादा देशों में इतने दिनों तक और इतने बड़े पैमाने पर नहीं पढ़ाई गईं जितनी 'गुलिस्तां' 'बोस्तां' और 'करीमा'। हिन्दुस्तान में भी १३ वीं सदी से लेकर आज तक ये किताबें फ़ारसी की किताबों में सबसे ज़्यादह पढ़ी जाती रही हैं। 'गुलिस्तां' का मतलब है 'गुलाब का बाग़'। 'बोस्तां' के माने हैं 'फलों का बाग़'। यह दोनों बड़ी बड़ी किताबें हैं और दुनिया के हर मज़हब और हर तरह के लोगों के लिए अच्छी से अच्छी नसीहतों से भरी हुई हैं। 'करीमा' शब्द के माने हैं 'हे दयालु ईश्वर!' 'करीमा' एक छोटा सा काव्य है, और किताब के पहले शब्द 'करीमा' से उस का नाम करीमा पड़ गया।

करीमा का पूरा हिन्दी तरजुमा नीचे दिया जाता है

*बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम*

## ईश्वर के नाम से जो दयालु और कृपालु है

हे दयालु ईश्वर! मेरे हाल पर दया कर,
मैं मोह के जाल में फंसा हुआ हूँ।
सिवाय तेरे और कोई नहीं जिससे मैं फ़रियाद करूँ,
पापियों के पाप क्षमा कर सकने वाला एक तू ही है।
मुझे बुराई के रास्ते से बचा,
बुराई से बचा और भलाई का रास्ता दिखा।

## मोहम्मद साहब की तारीफ़ में

जब तक मेरे मुंह में ज़बान है,
मोहम्मद की तारीफ़ करना मुझे पसन्द हो।
वह ईश्वर का दोस्त और नबियों ( Prophets ) में बढ़कर था।
ऊँचा आसमान उसका तकिया था।
वह बुराक़ ( बिजली के ) घोड़े पर सवार, दुनिया को वश में करने वाला,
इस नीली छत वाले महल ( पृथ्वी ) से पार निकल गया।

## अपनी आत्मा से

तेरी प्यारी उम्र के चालीस बरस गुज़र गये,
तेरे मिज़ाज से अभी तक बचपन न गया।
तू हमेशा लोभ और मोह में फँसा रहा,
एक पल के लिये भी तूने नेकी की तरफ़ ध्यान न दिया।
यह उम्र ठहरने वाली नहीं है, इस पर भरोसा मत कर,
काल की लीला से बेख़बर मत हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## दया की तारीफ़ में

ऐ दिल ! जिस किसी ने दया का ख़ान ( वह कपड़ा जिस पर खाना परसा जाता है ) बिछा दिया,

वह दया के संसार में नाम पा गया।

दया तुझे ज़हान का सरदार बना देगी,

दया तुझे शान्ति के मैदान में विजयी कर देगी।

दया से बढ़कर दुनिया में कोई काम नहीं,

दया के बाज़ार से ज़्यादा गरम कोई बाज़ार नहीं।

दया सुख की पूंजी है,

दया इस जीवन का सार है।

तू अपनी दया से दुनिया के दिल को ताज़ा रख,

जहान में तेरी दया का चर्चा हो।

तू हमेशा दूसरों पर दया करने में लगा रह,

क्योंकि जानदारों का पैदा करने वाला ईश्वर भी सब पर दया करता है ( ईश्वर का एक नाम 'करीम' है जिसके माने दयालु हैं )।

## दान देने की तारीफ़ में

जो ख़ुशक़िस्मत है वह दानशीलता अख़्तियार करता है,

और दानशीलता से ही आदमी ख़ुशक़िस्मत होता है।

अपने प्रेम और दानशीलता से दुनिया को वश में कर,

प्रेम और दानशीलता की दुनिया में तू सरताज बन।

दान देना दिल वालों का काम है।

दान देना उनका पेशा है जो ईश्वर के प्यारे हैं।

दानशीलता आदमी की बुराइयों को इस तरह बदल देती है जिस तरह कीमिया तांबे को सोना करती है,

दानशीलता आदमी के सब दर्दों की दवा है,

जब तक तुझमें हिम्मत है दानशीलता को मत छोड़,

दानशीलता से ही तू अपने कल्याण की गेंद को मैदान से जीत ले जायगा।

## कंजूसी की बुराई में

अगर आसमान कंजूस आदमी की इच्छा पूरी करने में लग जावे,

और अगर क़िस्मत उसकी ग़ुलाम हो जावे,

अगर उसके हाथ में क़ारूँ ( कुबेर ) का खज़ाना आ जावे,

और सारी दुनिया उसके क़ब्ज़े में आ जावे,

तब भी कंजूस आदमी इस क़ाबिल नहीं है कि उसका नाम ले,

चाहे सारा ज़माना उसकी चाकरी करने लगे।

कंजूस के माल की तरफ़ तू कभी ध्यान न दे,

उसके धन और माल का तू कभी नाम भी मत ले,

कंजूस अगर जल और थल में सबसे बढ़कर पूजा करे,

तब भी उसे स्वर्ग नहीं मिल सकता, यह सच कहना है।

कंजूस आदमी अगर खूब धनवान भी हो जावे,

तब भी अपनी ज़िल्लत ( नीचता ) से वह कुत्ते की तरह मार खायगा।

दान देने वाले अपने धन से मीठा फल खाते हैं,

कंजूस अपने चाँदी सोने का ग़म खाते हैं।

## दीनता की तारीफ़ में

ऐ दिल ! अगर तू दीनता अख़्तियार करे,

तो सारी दुनिया तेरी दोस्त हो जावे।

दीनता तेरे रुतबे को इस तरह बढ़ा देगी,

जिस तरह सूरज की रोशनी चाँद को रोशन देती है।

दीनता मित्रता की कुँजी है,

दीनता ही से मित्रता का रुतबा ऊँचा होता है।

दीनता आदमी का सिर ऊँचा करती है,

दीनता सरदारों की पहचान है।

आदमी वही है जो दीनता बरते,

दीनता ही में सच्ची आदमीयत है।

जो जितना समझदार है वह उतनी ही दीनता बरतता है,

जिस तरह दरख़्त की टहनी जितनी ज़्यादा फल से लदी रहती है उतनी ही ज्यादा ज़मीन से मिलती है।

दीनता तेरे मान को बढ़ाने वाली है,

दीनता तुझे स्वर्ग तक पहुँचाने वाली है।

दीनता ही स्वर्ग के दरवाजे की कुंजी है,

दीनता सरदारी और रुतबे का ज़ेवर है।

जिस किसी को दूसरों पर बड़प्पन हासिल है,

उसके लिये और भी अच्छा है कि दीनता बरते,

और जिस किसी को दीनता की आदत है,

मान और बड़ाई की उसे परवाह नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




दीनता तुझे दुनिया का प्यारा बना देगी,
लोग दिल से तुझे उतना ही प्यार करेंगे जितना अपनी जान को।
तू लोगों से दीनता बरतना कभी न छोड़,
किसीसे तलवार की तरह गरदन अकड़ी मत रख।
दीनता बड़ों को शोभा देती है,
फ़क़ीर के लिये दीनता उसकी आदत ही है।

## घमण्ड की बुराई में

ऐ बेटा! तू कभी घमण्ड मत कर,
क्योंकि घमण्ड एक न एक दिन तुझे सिर के बल गिरा देगा।
अक़लमन्द आदमी घमण्ड को पसन्द नहीं करता,
जिसे होश है वह कभी घमण्ड नहीं करता।
घमण्ड करना जाहिलों का काम है,
जिनके दिल है वह घमण्ड नहीं करते।
घमण्ड ने ही शैतान को ज़लील किया,
उसे लानत के क़ैदख़ाने में गिरफ़्तार कर लिया।
जिस किसीको घमण्ड की आदत हो जाती है,
वह अपने ही ख़याल में अपने को ऊँचा समझता रहता है।
घमण्ड बदक़िस्मती की पूंजी है,
घमण्ड बदज़ाती की जड़ है।
जब तू यह सब जानता है तो घमण्ड क्यों करता है,
अगर करता है तो बुरा करता है – बुरा करता है।

## विद्या की बड़ाई में

आदमी विद्या से ही कमाल को पहुँच सकता है,
मान, बड़ाई, रुतबे और माल असबाब से नहीं।
विद्या सीखने में अपने को इस तरह घुला देना चाहिये जिस तरह मोमबत्ती अपने को जल जलकर घुला देती है।
क्योंकि बिना विद्या के आदमी ईश्वर को नहीं पहिचान सकता।
बुद्धिमान आदमी को चाहिये कि विद्या की तलाश करे।
विद्या का बाज़ार हमेशा गरम रहता है।
जिस किसीको ईश्वर ने सौभाग्य दिया है,
वही विद्या हासिल करने में लगता है।
विद्या हासिल करना आदमी का धर्म है,
विद्या के लिये सारी ज़मीन को छान डालना चाहिये।
जा और विद्या के पल्ले को मज़बूती के साथ पकड़,
विद्या ही तुझे स्वर्ग तक पहुँचा सकती है।
अगर तू अक़लमन्द है तो सिवाय विद्या के और कुछ मत सीख,
क्योंकि बिना विद्या के रह जाना ग़फ़लत में पड़े रहना है।
तेरे लिये दीन और दुनिया दोनों के लिए विद्या ही काफ़ी है,
तेरा सारा काम विद्या ही से सुधर सकता है।

## जाहिलों से बचने में

ऐ दिल! अगर तू अक़लमन्द और होशियार है,
तो जाहिलों (अज्ञानियों) की संगत मत कर।
जाहिलों से तीर की तरह भाग,
उनके साथ दूध और चीनी की तरह मिलकर मत रह।
अजगर से दोस्ती करना ज्यादह अच्छा है,
बजाय इसके कि कोई जाहिल तेरा दोस्त हो।
अक़लमन्द आदमी तेरी जान का दुश्मन भी हो तो अच्छा है,
बजाय इसके कि कोई जाहिल तेरा दोस्त हो।
जाहिल की तरह दुनिया में कोई ज़लील नहीं होता,
जाहिल रहने से ज्यादा नासमझी का कोई काम नहीं।
जाहिल सिवाय बुराई के और कुछ कर नहीं सकता,
कोई उससे सिवाय बुरी बात के और कुछ नहीं सुन सकता।
जाहिल आख़िर जहन्नुम (नरक) को जाता है,
जाहिल का आखीर अच्छा नहीं हो सकता।
जाहिलों का सिर सूली पर रहे यही ठीक है,
जाहिल ज़िल्लत में पड़ा रहे यही ठीक है।
जाहिल से दूर रहना ही अच्छा है,
यह लोक और परलोक दोनों उससे शर्म करते हैं।

## इन्साफ़ की तारीफ़ में

जब कि ईश्वर ने यह काम तेरे सुपुर्द किया है,
तो तू इन्साफ़ क्यों नहीं करता।
जबकि इन्साफ़ ही बादशाहों का लिबास है,
तू इन्साफ़ करने के लिये अपने दिल को मज़बूत क्यों नहीं रखता,
तेरी बादशाही देर तक क़ायम रहे
अगर इन्साफ़ तेरी मदद करे।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौशेरवां ने इन्साफ़ को अख़्तियार किया,
इसीलिये उसका नाम-कीर्त्ति अभी तक क़ायम है।
इन्साफ़ से देश को सुख मिलता है।
इन्साफ़ ही से लोगों की मुरादें पूरी होती हैं।
तू इन्साफ़ से दुनिया को आबाद रख,
जो इन्साफ़ चाहने वाले हैं उनके दिलों को ख़ुश रख।
इन्साफ़ से बढ़कर दुनिया को बनाने वाला दूसरा कारीगर नहीं है,
इन्साफ़ से बढ़कर कोई दूसरा काम नहीं है।
इससे ज़्यादा तुझे और क्या चाहिये,
कि लोग तेरा नाम इन्साफ़पसन्द बादशाह रखें।
अगर तू अपनी ख़ुशक़िस्मती चाहता है
तो दुनिया वालों के ऊपर ज़ुल्म का दरवाज़ा बन्द रख।
प्रजा की हिफ़ाज़त में कभी कमी न कर,
जो लोग तेरे पास फ़रियाद लेकर आवें उनके दिल की मुराद हमेशा पूरी कर।

## ज़ुल्म की बुराई में

ज़ुल्म करने वाला दुनिया को इस तरह बरबाद करता है,
जिस तरह पतझड़ की हवा हरे भरे बाग़ को उजाड़ देती है।
किसी हालत में भी ज़ुल्म की इजाज़त मत दे,
ताकि तेरी बादशाहत का सूरज डूबने न लगे।
जिस किसीने दुनिया में ज़ुल्म की आग लगाई,
लोगों के दिलों से उसके लिये आहें निकलीं।
जिस पर ज़ुल्म हुआ है उसके दिल से अगर आह निकले,
तो उसकी लपट से मिट्टी और पानी में भी आग लग जाए।
कमज़ोरों और लाचारों के साथ ज़बरदस्ती न कर,
आख़ीर में क़ब्र की तंगी से डर।
किसी सताए हुए को दुःख मत दे,
जनता के दिल के धुएँ से बेख़बर मत हो।
ऐ नासमझ! लोगों को मत सता,
ऐसा न हो कि ईश्वर का कोप तेरे ऊपर उतरे।
कमज़ोरों और ग़रीबों पर सितम मत कर,
जो ज़ुल्म करता है उसके नरक में पड़ने में कोई सन्देह नहीं।

## सन्तोष की तारीफ़ में

ऐ दिल! अगर तू सन्तोष करे,
तो सुख के संसार में सरदारी करे।
अगर तू ग़रीब है तो अपनी ग़रीबी की शिकायत मत कर,
समझदार आदमी के सामने धन दौलत कूड़े चीज़ें हैं।
अक़्लमन्द आदमी फ़क़ीरी से शर्म नहीं करता,
क्योंकि नबी ( मोहम्मद साहिब ) को भी फ़क़ीरी का फ़ख्र ( गर्व ) हासिल था।
मालदार आदमी के लिये सोना चांदी ऊपरी सजावट की चीज़ें हैं,
फ़क़ीर को अपनी ग़रीबी से अन्दर का आराम मिलता है।
अगर तू मालदार नहीं है तो बेचैन मत हो,
क्योंकि कोई बादशाह वीरान जगह से टैक्स नहीं लेता।
हर हाल में सन्तोष करना अच्छा है,
जो ख़ुशक़िस्मत हैं वह सन्तोष करते हैं।
अगर तू ख़ुशक़िस्मती चाहता है,
तो सन्तोष के प्रकाश ( नूर ) से अपनी जान को रोशन कर।

## लोभ की बुराई में

जो आदमी लोभ के जाल में फंस जाता है,
वह लोभ का प्याला पीकर मस्त और बेअक़्ल हो जाता है।
धन जमा करने में अपनी उम्र को मत खो,
धन ठीकरी है और उम्र मोती।
जो आदमी लोभ के जाल में पड़ गया,
उसने अपनी ज़िन्दगी के खलियान को हवा में उड़ा दिया।
मान लो कि, क़ारून का ख़ज़ाना तुझे मिल जावे,
दुनिया भर की सुख सामग्री तुझे मिल जावे,
आख़िर एक दिन तुझे मिट्टी में मिल जाना पड़ेगा,
बेबसों की तरह और दर्दभरे दिल के साथ।
धन के पागलपन में अपने को क्यों गलाता है,
गधे की तरह मेहनत का बोझ क्यों उठाता है।
धन के लिये तू इतना परिश्रम क्यों करता है,
जबकि एक दिन तुझे अचानक चला जाना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तूने अपना दिल दिरम ( एक सिक्का ) के नक़्श को
इस तरह दे रखा है,
कि उसकी चाह में तू शरम से भी हाथ धो बैठा है।
धन की सूरत का तू ऐसा आशिक़ हो गया है,
कि घबराया हुआ और परेशान है।
जिसका तू शिकार करना चाहता है उसका तू ख़ुद
इस तरह शिकार हो रहा है,
कि तुझे उस दिन की भी याद नहीं आती जिस दिन
सबको अपने कर्मों का फल भुगतना पड़ेगा।
उस तुच्छ आदमी का दिल कभी ख़ुश नहीं रह
सकता,
जिसने दुनिया ( धन ) के लिये अपने दीन ( धर्म )
को बरबाद कर दिया।

## ईश्वर की सेवा और भक्ति की तारीफ़ में

सौभाग्य जिस किसी का ग़ुलाम होता है,
उसका दिल सदा ईश्वर की सेवा में लगा रहता है,
ईश्वर की सेवा से दिल को फेरना नहीं चाहिये,
सच्ची दौलत सेवा ही से मिलती है।
सेवा से ख़ुशक़िस्मती प्राप्त होती है,
सेवा के प्रकाश से दिल रोशन हो जाता है।
यदि तू सेवा के लिये कमर कस ले,
तो कभी नष्ट न होने वाली दौलत का दरवाज़ा तेरे
लिये खुल जावे।
अक़्लमन्द आदमी सेवा से कभी मुँह नहीं मोड़ता,
क्योंकि सेवा से बढ़कर कोई हुनर नहीं है।
भक्ति के पानी से सदा वुज़ू को ताज़ा रख ( अपने को
पवित्र रख ),
ताकि कल तू नरक की आग से बच सके।
सचाई के साथ नमाज़ ( पूजा ) करता रह,
ताकि हमेशा रहने वाली दौलत तुझे मिल सके।
सेवा से भीतर की आत्मा रोशन होती है।
तू अपने पैदा करने वाले की पूजा कर,
उसकी भक्ति के महल में बैठने वाला बन।
अगर तू हक़ ( सत्य ) या ईश्वर की पूजा करना
अख़्तियार कर ले,
तो दौलत की दुनिया का बादशाह हो जावे।
संयम का जामा हमेशा पहिने रह,
क्योंकि स्वर्ग संयमी लोगों ही के रहने की जगह है।
अपनी जान के चिराग़ को तू तपस्या से रोशन कर,
ताकि ख़ुशक़िस्मत आदमियों की तरह तू भी ख़ुश-
क़िस्मत हो।
जो धार्मिक जीवन बिताता है,
वह कर्मों के फल से नहीं डरता।

## शैतान ( विषय-वासना ) की बुराई में

ऐ दिल ! जिस किसीने शैतान ( विषय-वासना ) का
कहना माना,
वह रात दिन गुनाह के जाल में फंसा रहा।
जिस किसीने शैतान को अपना अगुवा बनाया,
लौटकर वह ईश्वर के रास्ते पर कैसे आ सकता है।
ऐ दिल ! तू गुनाह का इरादा कभी न कर,
ताकि सबका पालने वाला ईश्वर तुझ पर रहम करे।
समझदार आदमी गुनाह से बचता है
जैसे शक्कर पानी से, क्योंकि पानी से शक्कर के घुल
जाने का डर रहता है।
ख़ुशक़िस्मत आदमी गुनाह से बचता है,
क्योंकि सूरज की रोशनी भी बादल से छिप जाती है।
तू अपनी विषय-वासना के पीछे मत चल,
ऐसा न हो कि अचानक नरक में जा पड़े।
अगर तेरा दिल पाप से नहीं फिरता,
तो फिर नरक ही में तेरा ठिकाना होगा।
अपने जीवन के घर को
बदकारियों और पापों की बाढ़ से बरबाद मत कर,
अगर तू पाप और बुराइयों से दूर रहेगा,
तो स्वर्ग के बाग़ से नज़दीक रहेगा।

## प्रेम की मदिरा के बयान में

ऐ साक़ी ( गुरू ) ! मुझे आग की सूरत वाली शराब दे,
जिसमें वह मस्ती हो जिसकी दिल वाले आदमी चाह
रखते हैं।
लाल शराब सोने के प्याले में,
जो प्रीतम के होठों की तरह मेरी आत्मा को बल दे।
जो लोग प्रेम के मतवाले हैं उनकी चाह की आग
कैसी प्यारी है,
जो लोग प्रेमी हैं उनके दर्द की लज़्ज़त कितनी अच्छी
है।
वह शराब ला जो अमृत की तरह अमर बना देने
वाली है,
जिसकी ख़ुशबू ही से दिल ग़म से छूट जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुबारिक वह दिल है जिसमें प्रीतम ( ईश्वर ) को पाने की लालसा हो,

मुबारिक वह आदमी है जो उसके प्रेम में पागल हो।

मुबारिक वह दिल है जिसमें प्रीतम के दर्शन की चाह है,

मुबारिक वह दिल है जिसकी मंज़िल प्रीतम की गली है।

वह शराब जो प्रीतम के जीवन देने वाले होठों की तरह है,

वह पाक शराब जो प्रीतम के साफ़ साफ़ मुखड़े की तरह है।

जो लोग दिल वाले हैं उनका यह शराब पीना कैसा अच्छा है,

जो लोग दिल दे चुके हैं ( यानी प्रीतम में लीन हो चुके हैं ) उनकी यह मस्ती कैसी अच्छी है।

## वफ़ा ( वचन निबाहना ) की तारीफ़ में .

ऐ दिल ! तू वफ़ा में हमेशा पक्का रह,

बिना वफ़ा के जीवन ऐसा ही निकम्मा है जैसा बिना मुहर का सिक्का।

अगर तू वफ़ा की राह से अपनी बाग न फेरेगा,

तो दुशमनों के दिल में भी दोस्त बन जायगा।

अपने दिल को वफ़ा की गली से मत मोड़,

नहीं तो तुझे प्रीतम ( ईश्वर ) के सामने शर्माना पड़ेगा !

वफ़ा की गली से पाँव बाहर मत रख,

क्योंकि दोस्तों को जफ़ा ( वफ़ा का उलटा ) शोभा नहीं देती।

दोस्तों से जुदाई करना बुरा है,

मित्रों से नाता तोड़ना वफ़ा के ख़िलाफ़ है।

बेवफ़ाई औरतों की आदत है,

तू औरतों की यह बुरी आदत मत सीख।

## ईश्वर को धन्यवाद देने ( शुक्र ) की बड़ाई में

जिस किसी का दिल सत्य को पहचानता है,

उसे चाहिये कि ईश्वर को धन्यवाद देने से कभी अपनी ज़बान को बन्द न करे।

हरदम ईश्वर को धन्यवाद देता रह,

जो दुनिया को पालता है उसको धन्यवाद देना तेरा फ़र्ज़ है।

धन्यवाद देने (शुक्र करने) से तेरी सुख सम्पत्ति बढ़ेगी,

धन्यवाद के रास्ते से तेरी विजय होगी।

अगर तू क़यामत के दिन तक भी ईश्वर का धन्यवाद करता रहे तो भी तेरे फ़र्ज़ का हज़ारवां हिस्सा भी पूरा नहीं होता।

फिर भी शुक्र करना बड़ी अच्छी बात है,

ईश्वर का शुक्र करना इसलाम (धर्म) का ज़ेवर है।

अगर तू ईश्वर के शुक्र से अपनी ज़बान बन्द न करे,

तो तू वह दौलत पावे जो हमेशा रहने वाली है।

## सब्र ( धीरज ) के बयान में

अगर धीरज तेरे हर वक्त साथ रहे,

तो तू हमेशा ठहरने वाली दौलत हासिल करे।

सब्र करना पैग़म्बरों का काम है,

जो दीनदार ( धर्मात्मा ) हैं वह सब्र से मुँह नहीं मोड़ते।

सब्र ज़िन्दगी के मक़सद का दरवाज़ा खोलता है,

क्योंकि सिवाय सब्र के उस दरवाज़े की कोई और कुंजी नहीं है।

सब्र करना तेरे दिल की मुराद को पूरा करेगा,

इसीसे जो जानने वाले हैं वह तेरी मुशकिल को हल करेंगे।

सब्र करना हमारी कामनाओं के दरवाज़े की कुंजी है,

यह कुंजी कामना ( आरज़ू ) की सलतनत को खोलने वाली है।

सब्र करना हर हाल में अच्छा है,

इसमें बहुत सी भलाइयाँ छिपी हैं।

सब्र से ही तेरा मक़सद पूरा होगा,

रंज और बला से तुझे छुटकारा मिलेगा।

अगर तुझमें दीन (धर्म) का ख़याल है तो सब्र कर,

जल्दी करना शैतानों का काम है।

## सच बोलने की तारीफ़ में

ऐ दिल ! अगर तू सचाई को अख़्तियार कर ले,

तो दौलत तेरी दोस्त और भाग्य तेरा मददगार हो जावे।

बुद्धिमान को चाहिये कि सचाई से कभी मुँह न मोड़े,

क्योंकि सचाई ही से नाम ऊँचा होता है।

सुबह की तरह अगर तू सचाई के सांस लेने लगे,

तो अपने अन्दर के अज्ञान के अंधियारे से निकलकर ज्ञान के उजियाले में आ जावे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तू बिना सचाई के कभी दम मत मार,
इज़्ज़त दौलत से बढ़कर है।
इस दुनिया में सच बोलने से बढ़कर कोई काम नहीं,
सच्चाई वह गुलज़ार है जिसमें कोई कांटा नहीं।

## झूठ की बुराई में

जिस किसी ने झूठ को अख़्तियार किया,
वह क़यामत के दिन किसी तरह नहीं छूट सकता।
जिस किसी की ज़बान को झूठ की आदत होगई,
उसके दिल का चिराग़ कभी रोशन नहीं हो सकता।
झूठ बोलना आदमी को शरमिन्दा करता है,
झूठ बोलने से आदमी का मान जाता रहता है।
अक़्लमन्द आदमी झूठ बोलने वाले से दूर रहता है,
कोई आदमी झूठ बोलने वाले को गिनती में नहीं लाता।
ऐ भाई! तू कभी किसी हालत में झूठ न बोल,
क्योंकि झूठ बोलने वाला बेइज़्ज़त होता है और कोई उसका एतबार नहीं करता,
झूठ बोलने से ज़्यादा बुरा कोई काम नहीं है, ——
ऐ बेटा! झूठ बोलने से आदमी का यश मिट्टी में मिल जाता है।

## ईश्वर ( हक़ताला = परम सत्य ) की दुनिया के बारे में

इस सुनहले गुम्बद की तरफ़ निगाह डाल,
जिसकी छत बिना किसी खम्भे के सीधी फैली हुई है।
इस घूमने वाले आसमान के परदे को देखो,
उसके अन्दर मोमबत्तियाँ जलती हुई देखो।
दुनिया में कोई दरबान है और कोई बादशाह,
कोई फ़रियादी है और कोई महसूल लेने वाला।
कोई ख़ुश है और कोई दर्द मन्द,
कोई सफल मनोरथ है और कोई लाचार।
किसी के सिर पर ताज है और कोई दूसरे को टैक्स देता है,
कोई सरदार है और कोई ख़ाकसार।
कोई चौखिये पर बैठा है और कोई तख़्त पर,
कोई ऊन पहिने है और कोई रेशमी कपड़े।
कोई मोहताज है और कोई मालदार,
कोई नामुराद है और कोई कामयाब।

कोई धन की ख़ुशी में है और कोई ग़रीबी के दुःख में,
किसी को ज़िन्दगी हासिल है और किसी को मौत।
कोई तन्दुरुस्त है और कोई कमज़ोर,
कोई बूढ़ा है और कोई जवान।
कोई पुण्य में लगा है और कोई पाप में,
कोई दूसरों को दुआ दे रहा है और कोई दूसरे के साथ दग़ा कर रहा है।
कोई नेक काम करता है और विश्वासी ( आस्तिक ) है,
और कोई पाप और बदकारियों के दरिया में डूबा हुआ है।
कोई मिलनसार है और कोई बदमिज़ाज,
कोई सहनशील है और कोई लड़ाका।
कोई आनन्द में है और कोई दुख में,
कोई मेहनत कर रहा है और कोई आराम।
कोई मान बड़ाई की दुनिया में पड़ा है,
कोई मुसीबत के जाल में क़ैद है।
कोई आनन्द के बाग़ में बैठा है,
कोई ग़म, रंज और मेहनत में पड़ा है।
किसी के पास बेहिसाब धन दौलत है,
किसीको अपने बाल बच्चों के लिये रोटी का ग़म है।
कोई फूल की तरह ख़ुशी से खिल रहा है,
किसी का दिल ग़म से मुरझाया हुआ है।
किसी ने ईश्वर की सेवा में कमर कस रखी है,
किसी ने सारी उमर पाप में ख़त्म कर दी!
कोई रात दिन धर्म ग्रन्थ हाथ में लिये हुए है,
कोई शराब ख़ाने के कोने में मस्त सोया हुआ है।
कोई शरअ ( ऊपरी रीत रिवाज ) के दरवाज़े पर कील की तरह गड़ा हुआ है,
कोई कुफ़्र की राह में जनेऊ कमर से बांधे है।
कोई ख़ुशक़िस्मत, विद्वान और होशियार है,
कोई बदक़िस्मत अज्ञानी और शरमिन्दा है।
कोई बहादुर, फुरतीला और पहलवान है,
कोई बुज़दिल सुस्त और डरपोक है।
कोई मुन्शी, ईमानदार और दिल वाला है,
कोई नाम का मुन्शी और दिल का चोर है।

## दुनिया के लोगों से आशा रखने के ख़िलाफ़

इसके बाद तू ज़माने के ऊपर भरोसा मत कर,
कि न जाने कब अचानक मौत आ घेरे।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी बेशुमार फ़ौज के ऊपर भरोसा मत कर,
कि शायद उसकी मदद तेरे किसी काम न आ सके।
मुल्क और रुतबे और लशकर के ऊपर भरोसा मत कर,
क्योंकि तुझसे पहिले तेरी तरह के बहुत से हुए और तेरे बाद भी होंगे।

तू किसी के साथ बुराई न कर नहीं तो तू अपने नेक दोस्त से भी बुराई पावेगा,
बुरे बीज से कभी अच्छा फल पैदा नहीं हो सकता।
बहुत से बादशाह और बड़े बड़े सुलतान,
बहुत से पहलवान मुल्कों को जीतने वाले,
बड़े बड़े बलवान सेनाओं को तहस नहस कर देने वाले,
बहुत से शेर मर्द तलवार के धनी,
बड़े बड़े ख़ूबसूरत लोग शमशाद (एक दरख़्त) के से क़द वाले,
बहुत से नाज़नीन सूरज के से मुखड़े वाले,
बहुत से नौजवान चाँद के से मुँह वाले,
बहुत सी नव-वधू सजी हुईं,
बहुत से यशस्वी और बहुत से कामयाब लोग,
बहुत से सर्व (दरख़्त) के से क़द वाले और बहु
फूलों के से गालों वाले,
जब उन्होंने अपनी उम्र के कपड़े को फाड़ा,
और मिट्टी के गिरेबान में अपना मुँह छिपाया,
तो उनकी उम्र का खलियान इस तरह हवा में उड़
कि फिर किसीने उनका निशान तक न बतलाया।
तू इस मौत के पड़ाव से अपना दिल न लगा,
इस पड़ाव में तुझे एक भी दिल खुश न दिखाई दे
इस लुभावनी हवा के महल से तू दिल न लगा,
कि इसके आसमान से बला बरसती है।

ऐ बेटा! इस दुनिया में कोई चीज़ टिकने
नहीं है,
तू इसमें ग़फ़लत के साथ अपनी उम्र को मत
मुल्क और बादशाहत के ऊपर भरोसा मत कर,
क्योंकि जब भी अचानक हुक्म आ जावेगा तुझे
देनी होगी।
इस न ठहरने वाली दुनिया के ऊपर दिल मत
"सादी" की इसी एक बात को याद रख।

---

# गीत

[ विद्याधर कुलश्रेष्ठ 'कुसुम' ]

मैं किसी के शाप का वर हूँ!

विरह तापित भाव मेरे
खिल उठे जो फूल बनकर,
शोक मलयज बह चला औ'
हृदय कोकिल का करुण स्वर,
इस बसन्ती वेश में भी मौन पतझर हूँ।
मैं किसी के शाप का वर हूं!

ज़िन्दगी का गान गाने के
लिए वीणा सजाई,
और निज को भूल जाने के
लिए वंशी बजाई,
किन्तु सहसा रो उठा उस गीत का स्वर हूँ।
मैं किसी के शाप का वर हूँ!

मृत्यु-विष का पानकर
अमरत्व जीवन पा चुका हूं,
छोड़कर भव-नर्क कल्पित—
स्वर्ग में मैं जा चुका हूँ,
जो कि लिखकर मिट चुका वह दीन अक्षर हूं।
मैं किसी के शाप का वर हूं!

दीप हूँ जो बुझ चुका है
किन्तु जिससे जग प्रकाशित,
फूल जो मुरझा चुका, पर
वाटिका जिससे सुवासित,
पीर थककर सो गई है वह विकल उर हूं!
मैं किसी के शाप का वर हूं!

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बङ्गला उपन्यास की भूमिका

डाक्टर सदाक़त समरक़न्दी

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शासन, बंगाल मंत्रिमंडल के निकम्मेपन और देशी मुनाफ़ाख़ोरों की अर्थलोलुपता की देन—१३५० (सन् १९४३) का मनवन्तर। कहा जाता है कि १३५० की यह लोमहर्षण लज्जाजनक घटना १३५१ में साहित्यकों के हाथों में विलास की चीज़ बन गई है। मनवन्तर काग़ज़ी तौर से तो ख़त्म हो गया पर सचाई यह है कि किसी न किसी रूप में यह आज भी जारी है। इसलिए बंगला साहित्य में जो बात १३५१ में दिखाई पड़ी थी, वह भी मनवन्तर की तरह ही इतनी ज़ल्द ख़त्म नहीं हुई है और हो सकती भी नहीं।

बंगला कविता, नाटक और उपन्यासों पर मनवन्तर की मुहर लगी है। इसके अन्दर से साहित्य में एक नयी दिशा का संकेत मिलता है। शुरू में ही कह दूँ कि इसके सत्यानाशी अकाल के अन्दर लेखकों की चेतना भी बढ़ी है। उनका आकाशचारीपन कम हुआ है, वास्तविकता बढ़ी है, वे इसे व्यक्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं, साहित्य के अधिकांश अङ्गों के लिए यह बात लागू होती है। कविता में एक नई ऋजुता और सबलता दिखाई पड़ रही है। नाटकों को लेकर एक नई परीक्षा हो रही है। एक ही काल के ऐतिहासिक पर्व के विभिन्न दृश्यों को नाटक का रूप देने की कोशिशें जारी हैं। ताराशङ्कर के मनवन्तर, पञ्चग्राम, गोपाल हालदार के १३५०, पंचासेर पथ, पंचासे, उपान्त में यही आयोजन दिखाई पड़ता है। विभिन्न लेखकों के आधे दर्जन कहानी संग्रहों में भी इसकी झलक स्पष्ट है। उपन्यास में अब लेखक ऐतिहासिक सचाई को कला में रूपान्तरित करना चाहते हैं। कुछ तो सामाजिक या राष्ट्रीय अध्याय को उद्घाटित करना चाहते हैं। आंद्रेमालरो, स्टाइनवेक, डन पासोस, अप्टन सिन्क्लेयर आदि ने पश्चिम में उपन्यास के लिए जो सड़क बना दी है, बङ्गला औपन्यासिक भी अपनी अपनी समस्याओं को लेकर उसी पर चलना चाहते हैं।

१९४३-४४ के बङ्गला साहित्य को देखने से मालूम होता है कि उपन्यासकार साहित्य के दूसरे अङ्गों के साधकों की अपेक्षा अधिक रूढ़िमुक्त और अग्रगामी रहे हैं। बङ्गला उपन्यास में एक नवयुग आ गया है। वह इस युग में महाकाव्य जैसी विशालता प्राप्त करना चाहता है। वह व्यक्तिप्रधान न होकर घटनाप्रधान जीवन चित्र बनाने के प्रयास में है। वह नित्य परिवर्त्तनशील समाज और राष्ट्र के रूपान्तर को प्रत्यक्ष करना चाहता है।

इस समय यह बताना कठिन है कि यह चेतना और प्रचेष्टा कितने दिनों तक स्थायी होगी। '४३—'४४ की चेतना एक दिन में नहीं आई है, इसकी सामाजिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि एक अर्से से तैयार हो रही थी। इसलिए इसके अचानक लुप्त होने की कोई सम्भावना नहीं। क्योंकि यह सार्थक, अपेक्षाकृत कम सार्थक या असार्थक फ़ैशन नहीं है। बंगला उपन्यास की धारा इसी ओर बढ़ रही थी। अकाल और मन्वन्तर ने उसे गति प्रदान की। बंगला के अधिकांश औपन्यासिक अच्छे कहानीकार भी हैं। बल्कि कितने ही तो कहानीकार से ही औपन्यासिक बने लेकिन उन्होंने कहानी लिखना छोड़ नहीं दिया है। बंगला के सामयिक पत्रों में कहानी की बेहद माँग है। लेखकों की आर्थिक हालत भी उतनी अच्छी नहीं, कहानी से तत्काल दक्षिणा मिल जाती है। अच्छी कहानी के स्रोत के न सूखने का यह भी एक कारण है। लेकिन अधिकांश कहानियों की मृत्यु सामयिक पत्रों में ही हो जाती है। उपन्यास और कहानियों के बाज़ार भी अलग हैं। आज के ज़माने में यह भी कोई छोटी बात नहीं है।

उपन्यास और कहानी दोनों कथा साहित्य के अंग हैं। कहानी बड़ी होने पर उपन्यास नहीं बन सकती और Tabloid उपन्यास भी कहानी नहीं बन सकता। बड़े कहानीकारों को बड़े औपन्यासिकों से कोई छोटा नहीं समझता। मोपासां, चेखव इसके दृष्टान्त हैं। कहानीकार रवीन्द्रनाथ औपन्यासिक रवीन्द्रनाथ से छोटे तो हैं ही नहीं, बल्कि बड़े हैं, कवि रवीन्द्रनाथ के तुल्य हैं। 'गल्प गुच्छ' के रवीन्द्रनाथ कवि रवीन्द्रनाथ के तुल्य हैं, यह कोई अत्युक्ति नहीं है। कहानी भी कुछ अंशों में खण्ड कविता सी है, दोनों की वास्तविकता कुछ एक सी होती है। आधुनिक 'निबन्ध' कोटि की रचनाएं भी सगोत्रीय हैं, हां, उनकी लेखन कला में विभिन्नता ज़रूर है, इन दोनों के लिए सघनता और अखण्डता की ज़रूरत होती है। इनकी मांग भी इसीलिए है।

उपन्यास की विशेषता सिर्फ आख्यान या 'प्लाट' में ही नहीं है। मानव और घटनाएं अर्थात् मानव तथा उसके चारों ओर के वातावरण ही उपन्यास के उपादान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इन्हींको एक सूत्र में बांधकर 'प्लाट' बनता है, व्यक्ति की दृष्टि से जब हम इस घटनावली को देखते हैं उसमें हमें उसका निर्माण, ध्वंस, उत्थान, पतन आदि दिखलाई पड़ते हैं। उपन्यास का काम सिर्फ़ घटनाओं का चित्र उपस्थित करना नहीं, बल्कि उनका निर्माण करना भी है। घटनाओं से मनुष्य का सम्पर्क जहां इतना सक्रिय हो जाता है, वहां उसके व्यक्तित्व का विकास विशेषता प्राप्त करता है।

सभ्यता के पिछले युगों में समाज इतना जटिल नहीं था। पेचीदगियां आज जैसी असंख्य नहीं थीं। लेकिन जीवन की विचित्रताएं भी इतनी न थीं। विचित्र गुणों के अधिकारी होने के सुयोग भी कम थे। उसकी विशेषताएं सुप्त रह जाती थीं। प्राचीन महाकाव्यों, गाथाओं और कथाओं में मानव के 'टाइप' और वर्ग के चित्र मिलते हैं, कुछ चित्रों में व्यक्ति की विशेषता का संकेत भी मिलता है। युधिष्ठिर, दुर्योधन कैसे भी क्यों न रहे हों पर कृष्ण और अर्जुन सीधे जीव नहीं थे। सीता, सावित्री जैसी रही हों, पर द्रौपदी में विशेष व्यक्तित्व का अभाव है। समाज के विकास के साथ पेचीदगियां भी बढ़ीं। मानव के विकास के लिए आवश्यकताएं भी बढ़ीं। सामन्तशाही के बाद पूंजीवादी युग आया। उपन्यास इसी युग की देन है।

पूंजीवादी युग व्यक्ति स्वतंत्रता का युग भी कहलाता है। इस युग में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की तलाश में अधिक लीन दिखाई पड़ता है। उपन्यास इस युग का महाकाव्य है। मानव और घटनाओं के क्रियाशील सम्पर्क को उद्घाटित करने के लिए उपन्यास साहित्य में सर्वश्रेष्ठ साधन है। उपन्यास मानव का समग्र जीवन है। उपन्यास में घटनाओं की स्वच्छंदता (Freedom of movement) कितनी व्यापक है, इसे जिसने समझ लिया है, उसे चतुर्थ आयतन का भी आविष्कार कर लिया है।

इस सत्य को आज के चेतनाशील औपन्यासिक दिन-व दिन पहचानते जा रहे हैं, लेकिन यह काम आसान नहीं है। हमारे मुल्क का सामन्ती ढांचा पूरी तरह ख़तम नहीं हुआ है। मानव के अधिकार प्रतिष्ठित नहीं हुए हैं। इसके बारे में हम सचेत अवश्य हुए हैं।

अंग्रेजी शिक्षा दीक्षा के साथ इस विषय में हम अधिक सचेत हुए हैं। अंग्रेजों ने यहां आकर अपने पूंजीवादी स्वार्थों के लिए सामन्ती समाज के ढांचे में इतनी बड़ी दरार कर दी है कि उसकी मरम्मत नहीं हो सकती। लेकिन अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों की वे अर्द्ध-सामन्ती व्यवस्था को भी ज़िन्दा रखना चाहते साम्राज्यशाही के पिट्ठुओं राजे-रजवाड़ों, जमींदारों के बीच व्यक्तित्व के विकास की सुविधा भी को ही है। अपनी ज़रूरत के लिए साम्राज्यवादियों रानी' शिक्षा का प्रचलन किया। इसी लिए हमारे के अधिकार भी संकुचित हैं। अंग्रेज़ी पूंजीवाद में इतिहास का अचेतन अस्त्र रहा है, हम उसके कर्ज़दार नहीं, पर अंग्रेज़ी साहित्य के अवश्य हैं, हमारा लाभ हुआ है। बंगला उपन्यास, शायद उपन्यास का इतिहास भी शुरू होता है बंगला के ग्रैजुयेट बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय से। इसके साथ ही राय का नाम भी लिया जाना चाहिए। क्योंकि आंशिक रूप में मानव को देखा था, पर दूसरों ने देवियों और उनके भक्तों के देखने में ही अपनी खपा दी। पहिले कहा गया है कि अंग्रेजी साहित्य हमें 'मानव के अधिकार' के बारे में सचेत किया। मानव का आविष्कार किया। विशिष्ट विचित्र व्यक्ति अधिकारी मानव को। इसीके बीच बंकिम की प्रतिभा सृजन हुआ। बंकिम की कविताएं प्रसिया के फेदर कविताओं की तरह ही बेतुकी हैं। लेकिन कोई उ योग्य कविता नहीं लिखने पर भी उनमें काव्य विकसित हुई थी। इसका प्रमाण है काव्यमय कुण्डला'। लेकिन बंकिम की प्रतिभाओं में उपन्यास ही प्रधान है। उनकी महान शक्ति का पता हमें घटनाओं और मानव के सम्बन्धों के वर्णन अर्थात् चरित्र चित्रण और आख्यान में मिलता है। लेकिन ने जिस समय उपन्यास लिखना शुरू किया, उस समय शिक्षित लोग व्यक्ति स्वातंत्र्य का मूल्य बहुत ही बड़े अर्थों में समझ सके थे। प्राचीन परिवार—केन्द्रीय धारा पुराने आचार अनुष्ठान के बंधने शिथिल नहीं थे। समाज के शासन, आचार, नियम आदि को मूंदकर मानते चलना ही तत्कालीन नियम थी। मतलब यह नहीं कि व्यक्ति स्वाधीनता ही न थी। समाज से बाहर सन्यासी या साधु बन कर तथा स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती थी। दूसरी काय में नहीं चिन्ता धारा में। इसकी परम्परा भी अति प्राचीन काल से चली आ रही है, अत्याचारों षड़यंत्रों और जुल्मों से उसका साहित्य लुप्त भले ही कर दिया गया हो, के पहिले क्रान्तिकारी विचारक राममोहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


शताब्दी में उसे फिर से जाग्रत किया। हिन्दू कालिज के विद्यार्थी (स्थापित-१८१७ ई०) इस दिशा में अग्रदूत रहे हैं। लेकिन फिर भी इनकी संख्या आटे में नमक के बराबर थी।

अंग्रेज़ों के ज़माने में हमारी चेतना जहां तक अग्रसर हुई थी, उसे भी व्यक्त करने के लिए दो प्रकार की बाधाएं थीं। पहली थी इस देश के आचार आचरण की परम्परा की बाधा और दूसरी थी साम्राज्यवादी स्वार्थ की बाधा। देश जब आगे बढ़ना चाहता तो देशी विदेशी बाधाएं उसके सामने खड़ी दिखाई पड़तीं। इस हालत में व्यक्ति चेतना का अन्तर्मुखीन होना ही स्वाभाविक है। इसलिए तत्कालीन चेतनासम्पन्न व्यक्ति मानसिक क्षेत्र में स्वतंत्रता की घोषणा करने के लिए जहाँ तक आगे बढ़े, अपने सामाजिक वातावरण से उतनी गहराई तक सक्रिय सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सके। उपन्यास की विशेषता, उसका मौलिक सत्य उस समय के लेखक की पकड़ के बाहर सा ही रहा। बंकिम के बाद जो उपन्यास लिखने लगे वे भी उपन्यास नहीं लिख सके। उस काल के एक मात्र सार्थक औपन्यासिक हैं रवीन्द्रनाथ। वह शिक्षा, दीक्षा से मानवता के अन्तर्मुखीन कवि थे। वह दुनिया के सर्वश्रेष्ठ गीत कवि हैं, उनकी प्रतिभा भी गीतधर्मी है। उपन्यासों में भी वह मन को ओर ज़्यादा ज़ोर देते हैं। नष्ट नीड़, चोखेर बालि, नौकाडुबि ने बङ्गला उपन्यास साहित्य में मनस्तात्विक उपन्यासों का प्रारम्भ किया। क्रमशः उनके उपन्यासों में यही अन्तर्लीलाएं उद्घाटित होने लगीं, सिर्फ उपन्यास ही नहीं मानव भी 'आइडिया' का रूपक बन गया। चतुरंग में यह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। दादाजी, की विलास दामिनी, शचीश की गणना व्यक्ति चरित्रों में नगण्य है। वे वर्ग चरित्र नहीं, रूपक चरित्र हैं। अन्त की ओर योगा योग की कुमु भी इसी ओर चली। गोरा की विस्तृत पृष्ठ भूमि में जीवन गतिशील है, मनुष्य आते जाते हैं, उसके ज्ञान में एक जीवन दर्शन स्पष्ट है, और यह जीवन दर्शन इतना व्यक्त है कि इसके कारण यह उपन्यास रूपक सा, एक 'आइडिया' का घटनामय चित्र सा मालूम होता है। 'गोरा' में 'आइडिया' इतना बड़ा बन जाता है कि उसके प्रभाव से स्रष्टा मानव की ओर से निहारकर रूपक चरित्र की सृष्टि करने लगता है। आनन्दमयी, परेश बाबू विचित्र हैं, पर हैं वे रूपक ही। गोरा खुद रूपक होकर भी मनुष्य ही बना रहा। 'आइडिया' के प्रति रवीन्द्र का यह आकर्षण उनके आगे वाले 'घरे बाहरे', 'योगायोग' में और भी अच्छी तरह दिखाई पड़ता है। बिलकुल अन्त की ओर की रचनाओं ('मालञ्च', 'दुईबोन', 'चार अध्याय', 'लेबोरेटरी') में वह संयत हो जाता है, लेकिन रवीन्द्रनाथ की अपनी अन्तर्मुखीनता का प्रभाव उनके उपन्यासों में भी दिखाई पड़ता है, उनमें चरित्र और घटनाएं मुख्य नहीं हैं। इसीलिये रवीन्द्रनाथ की विशेषता उनके उपन्यासों में होने पर भी वह सम्पूर्ण नहीं हो पाई है। उपन्यास की सचाई को उनकी प्रतिभा आसानी से ग्रहण नहीं कर सकती थी। शायद 'गोरा' औपन्यासिक रवीन्द्रनाथ की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें उपन्यास की महाकाव्यमय सम्भावना को रवीन्द्रनाथ से स्पष्ट कर दिया।

'नष्टनीड़' 'नौका डुबि' 'चोखेर बालि' में रवीन्द्र नाथ मनस्तात्विक उपन्यास की ओर हमें ले जाते हैं। औपन्यासिक मानव के मन को भूल नहीं सकता, सिर्फ घटना-चित्रों के बल पर ही उपन्यास खड़ा नहीं हो सकता। चरित्र सृष्टि की ज़रूरत पड़ती है। उसके भीतरी और बाहरी दोनों पहलुओं को लेना पड़ता है। बाहरी जीवन के घात प्रतिघात से मानव में नई चेतना उत्पन्न होती है, मन गतिशील होता है। बाहरी जीवन को अपने मन के अनुसार बनाने की बात सोचता है। बाहरी से अपने मन का सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयास करता है, अपने वातावरण को बदलता है और खुद भी बदलता है। अन्तर्जीवन का यह परिवर्त्तन कभी जाने और कभी अनजाने हुआ करता है, कभी आधे जाने और कभी आधे अनजाने हुआ करता है। उपन्यास के चरित्र हमारे लिए आश्चर्य और आकर्षण की वस्तु इसलिए बनते हैं कि उनके मानसिक विकास, अन्तर्जीवन का इतिहास हमारे सामने औपन्यासिक उपस्थित करता है। समग्र जीवन को पुंखानुपुंख रूप से विभिन्न दिशाओं से चित्रित करने की जितनी सुविधा औपन्यासिक को है उतनी किसीको भी नहीं है।

कोई औपन्यासिक ज़ोर देते हैं घटनामय बाहरी जीवन पर, जैसे फिल्डिंग, और कोई ज़ोर देते हैं विचित्र मानसिक जीवन पर जैसे, रिचार्डसन। लेकिन वास्तव में अन्तर्जीवन और बाहरी ज़ीवन को अलग अलग नहीं देखा जा सकता है। इसीलिये एकांगी उपन्यासों के चरित्र भली-भांति विकसित नहीं हो पाते हैं और चरित्रों की सृष्टि करना ही उपन्यास का प्रधान कार्य है। इघर समाज में जब व्यक्ति स्वाधीनता क्रमशः प्रतिष्ठित होने लगती है, उस


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


समय उसके दो विरोधी लक्षण भी दिखाई पड़ते हैं। मनुष्य की मर्यादा ही जब सबसे बड़ी चीज़ है तो साधारणत गैर से ही मनुष्य के देखने की ओर झुकाव दिखाई पड़ता है। मनुष्य को सिर्फ़ कई भावनाओं ( प्रधानत: यौन कामना ) का खिलौना समझने या उसे कुछ सामयिक भावों और तरंगों की सृष्टि मानने या उसे अज्ञान-अचेतन समझने की प्रवृत्तियां दिखाई पड़ती हैं। यह बात सच है कि ये बातें उस हालत में दिखाई पड़ती हैं जब पूंजीवादी समाज में मनुष्य का स्वाभाविक विकास सम्भव नहीं होता, तभी व्यक्ति स्वाधीनता के नाम पर व्यक्तित्व का यह विनाश और विभाजन होता है। मनुष्य के अंश मात्र को ( Fraction ) मनुष्य मान लेने की आवाज़ सुनाई पड़ती है। नाटकों, उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की बजाय फ़रमायशीचित्र ( पहिले की तरह Heroic Type नहीं, आज के Standardised, average type, regimented fascist type ) चित्रित किये जाने लगते हैं।

अब बंगला उपन्यास की बात लीजिए। रवीन्द्रनाथ ने अपने उपन्यासों में मनुष्य को पूरी तरह भुलाकर उसके मन को ही समग्र मानव नहीं मान लिया था। यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है कि वे मनुष्य को घटनाओं के बीच चित्रित करने के लिए आगे नहीं बढ़े। लेकिन उनके समसामयिक किसी भी बंगाली औपन्यासिक ने उपन्यास के इस सत्य को नहीं समझा। इसके मुक़ाबले में शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय ने उपन्यास के सत्य को अधिक समझा था। इसीलिए साहित्य क्षेत्र में आते ही उनका आसन प्रतिष्ठित हो गया।

शरतचन्द्र ने जब लिखना शुरू किया उसके पहिले ही व्यक्ति और समाज का द्वन्द लोगों के सामने साफ़ होता जा रहा था। शरतचन्द्र ने समाज को अच्छी तरह देखकर यह भली भांति से समझ लिया था कि नई घटनाओं के घात प्रतिघात से मनुष्य किस तरह प्रतिक्रिया ( react ) कर रहा है। इसके फलस्वरूप उसके अन्दर किस तरह नई विशेषताएं दिखाई पड़ रही हैं, मानव विचित्र और विशिष्ट बनता है। शरतचन्द्र ने इस सत्य को चित्रित किया कि बंगाली समाज का जीवन कितना जटिल होता जा रहा है। यहाँ तक कि हमारे मध्यम वर्ग के निचले हिस्से के विभिन्न अंक एक एक कर के सामने आते जा रहे थे, उनके उपन्यासों में उन सब का चित्रण दिखाई पड़ता है। 'विन्दुर छेले' 'निष्कृति' 'सेलेकर' 'पथेरदावी,' 'शेष प्रश्न,' 'विप्रदास' तक समाज के निम्न मध्यवर्ग का चित्र है। उस समय के और औन्यासिक उपन्यास के मूल सत्य को समझकर अपने सामने के मनुष्यों से उपन्यास लिखने की प्रेरणा ली 'प्लाट' न ढूढ़कर विलायती किताबों से प्लाट की तलाश करके उसे कुछ बदलकर अपनाना चाहते थे, जैसे चार बैनर्जी। लेकिन किसी उपन्यास के 'प्लाट' व वातावरण को कुछ बदलकर खड़ा करने में तरह तरह की गड़बड़ियां दिखाई पड़ती हैं। हिन्दी, बंगला, उर्दू, मराठी आदि में इस तरह के कितने ही उपन्यास देखने में आते हैं। अति उत्साही लेखक ऐसा करने से बाज़ नहीं आते। खुशी की बात है कि इस तरह के लेखकों की तादाद इनी गिनी है। बंगाल की समसामयिक महिला उपन्यास लेखिकाएं ( निरुपमा देवी, अनुरूपा देवी, हैमवती बाला घोष, जाया ) ने अधिक सार्थक उपन्यास लिखे हैं। उनके विचार अधिकतर पुराने हैं, वे आज के ज़माने में भी प्राचीन काल की प्रथाओं का पक्ष लेती देखी जाती हैं। लेकिन उन्हें 'प्लाट' के लिए विदेशी किताबों के पन्ने उलटने की ज़रूरत नहीं पड़ती इसीलिए ये मानव को पहचान सकी हैं, क्योंकि इनके चरित्र उधार लिये हुये नहीं बल्कि अपने चिर परिचित हैं, यही कारण है कि उपन्यास के सत्य को आंशिक रूप में इन्होंने ग्रहण किया है। लेकिन फिर भी यह सच है कि उपन्यास के मूल सत्य को न समझने के कारण शरतचन्द्र के अंतिम जीवन के सभी सामयिक बंगाली औपन्यासिकों की नज़र हक्सले, लारेंस, अर्लेन, विवर्ले, निकोलुस और उसके बाद जायेस, प्रुस्त आदि के कथानकों, हाव-भाव आदि को इन्होंने बंगला भाषा में रखने की कोशिश की। इस कोटि के लेखकों में कुछ तो सुलेखक हैं पर औपन्यासिक नहीं। इसका कारण है इनकी सत्यान्धता। इनके पहिले वाले इसी कोटि के औपन्यासिक विलायती चरित्रों को देशी जामा पहनाते थे, पर आजकल के औपान्यासिकों को इतना भी कष्ट उठाने की ज़रूरत नहीं। क्योंकि इन्होंने Dialogue, Opinion, Essays और मनस्तत्व को ही उपन्यास का सब कुछ मान लिया। इन मालों के लिए देशी लैबिल की ज़रूरत नहीं रही। हक्सले जैसी निबन्धपूर्ण या लारेंस जैसी काव्यमयी भाषा में मन के भावों को व्यक्त करने वाले कुछ लोग यहां हैं। लेकिन यहीं पर हम देखते हैं कि इन निर्जीव रचनाओं के युग का अन्त करने के लिए आज ऐसे लेखकों का एक समूह दिखाई पड़ रहा है जिन्होंने सिर्फ किताबें पढ़ कर नहीं बल्कि अपनी आंखों से देखकर मनुष्य को पहचाना है और मनुष्य को ही उपन्यास का बड़ा सत्य माना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# घनानन्द का विरह-निवेदन

श्री शम्भु प्रसाद बहुगुना एम० ए०, डिप० साइ०

## संयोग

एक दिन प्रेमी के सामने प्रेम की मूर्ति खड़ी थी। सुन्दर गौर वर्ण मुख, कानों को छूने वाली आवाज़, लाज से लिपटी भेद-भरी चितवन, कपोलों पर कलोल करती हुई लटें, गले में कमलों की माला, अंग अंग में उठने वाली रूप की तरंगें, मुख पर मीठी हँसी सभी मन को आकर्षित करने वाली बातें थीं। अनेक बार प्रेमी ने इस रूप-राशि को जी भरकर देखा था। एक बार प्रेमी के आगे मानो बिजली स्थिर होकर श्याम घटा में लिपटी आई हो या धूप के पुञ्ज में शीतल प्रकाश की माला हो। दूसरी बार वही मंजनकर कंचन की चौकी पर बैठकर जूड़ा बाँध रही थी। भाल पर बेंदी लगी थी, माँग में सिंदूर। वह मुख शरद के शशि से भी मनोहर था। एक बार 'मन भावन मीत' को रिझाने के लिये 'अच्छी' बनकर वह शोभा आई। आँखों में अंजन था; शरीर पर भूषण थे, भौंहें कुछ तनी हुई थीं, अंग-अंग में शोभा की लहरें उठ रही थीं, शोभा की नदी भवनों को भरती हुई चली जा रही थी—

मीत मन भावन रिझावन कौ जान प्यारी,—
आई घन आनन्द घुमड़ आछी बनि है।
मंजन कै, अंजन दै, भूषन वसन साजि,
राजि रही भृकुटी जुटौंही बंक तनि है।
अंग अंग नूतन निकाई उलझनि छाई,
मौन भरि चली शोभा नदी लौं उफनि है।

प्रेमी ने कितनी ही बार उस रूप को देखा था, लेकिन हर प्रत्येक बार नया ही नया नज़र आता था। हृदय तो एक ही है। उस रूप पर तो हज़ार हृदय न्योछावर किये जा सकते हैं। आँखें उसी रूप को पीकर जीवित रहती हैं। उनके प्रेम से ही उनके हृदय और अपने हृदय के बीच पड़ा हुआ हार भी पहाड़ लगता है। उनके मिलने से महासुख होता है, जिसमें अंग-अंग रस जाते हैं, इस सुख का वर्णन नहीं हो सकता। रूप की उन तरंगों की प्राप्ति से अधिका-धिक चाह चित्त में चढ़ गई है। उसे जैसे जीवन भर पीकर भी तृप्ति नहीं होगी। उनकी लीलाओं के रंग में डूबकर अपने की विचित्र दशा हो जाती है। प्राणों की पीड़ा प्राण ही जानते हैं। उनका प्रेम सदेह को भी अदेह कर देता है। उनके समीप होने से सब वस्तुएं सुखद हो जाती हैं। पतझड़ कभी हृदय को दुःखित नहीं करता। प्रिय के तन में सदैव आनन्द का बसंत सुरभित रहता है। प्रेमी के सुख का अंत नहीं।

## वियोग

और एक दिन अपनी दारुण विपत्ति से चकित होकर प्रेमी कहता है—पता नहीं क्या हुआ, वे ही तो मेरे सहाय थे, उन्हें न जाने क्या सूझी, सारा सुख अपने अंचल में समेटकर मुझे वियोग का दुःख देकर चले गये। एक बार मेरे अंगों को प्रेम से सींचा और अब उसमें विषाद का बीज बोकर चले गये। हाय! जब वे विजयी की भाँति गये थे मेरे पापी प्राण उन्हींके साथ क्यों नहीं चल गये? मुझे मौत क्यों न आ गई?

और अब दिन फिर चले हैं, सुधा से विष झर रहा है, फूलों से कांटे उग रहे हैं। चन्द्रमा तम उगल रहा है। जल अंगों को जलाता है और राग स्वर भंग कर रहा है, संपत्ति विपत्ति ला रही है। कैसी उलटी बातें हो रही हैं! औषधि को पीता हूँ, वह भी रोग को पोषती है; दिनों का फेर है।

न जाने किस विधाता ने किस विचित्रता से 'नेही की रहनि' को रचा है। न सोया ही जाता है न जागा ही। न हँसा ही जाता है न रोया ही। बिना मौत के ही जीवन और मरण के बीच की दशा आ गई है। हृदय की दशा बवंडर में पत्ते की सी हो रही है। मुझे विश्वास देकर भुला दिया। पर स्नेह खेल भी तो नहीं है। ज्वाला में भली भाँति जलना ही होगा। अचानक बैरी-वियोग के आ जाने से, सुख भी पखेरू की भाँति उड़ गये हैं, अब दुःख झेलना ही पड़ेगा।

आसमान से झरकर पृथ्वी पर पड़ने वाली यह चाँदनी अब आग बरसा रही है। प्रिय के समीप होने पर तो यह हृदय को शीतलता देती थी किन्तु आज अनंग की आँच से अंगों को जला रही है। यह कितनी विपरीत हो गई है। उन दिनों आँखें प्रिय की शोभा पीकर जीवित रहती थीं अब सोच से जली जा रही हैं। हाय एक दिन हृदयों के बीच हार पहाड़ लगते थे आज पहाड़ ही बीच पड़ गये हैं। रात-दिन दुख अपनी सेना लेकर आक्रमण करता रहता है, इस बजमारे वियोग की चालों को मैं क्या कहूँ! बल क्षीण हो गया है, मेरा कुछ भी उपाय नहीं चलता, मेरे उपाय सब बासक ही नाव हो गये हैं। मैं 'अकुलानि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पानि' पड़ गया हूँ। वे ही इस विरह को दूर कर सकते थे लेकिन उन्होंने तो निठुर होकर पहिचान ही मिटा डाली। जिससे मुझे स्नेह है उसे निठुराई से स्नेह हो गया है। मेरे साथ धोखा है। पहिले तो मीठे-मीठे बोल बोलकर ठग लिया जब मैं मोहित होकर आगे बढ़ गया तो बीच धार में मुझे छोड़ दिया। यदि ऐसा ही करना था तो क्यों हँसकर के देखा था और हृदय में चाह उत्पन्न की थी? स्नेह बढ़ा करके तोड़ना क्या उचित है? अपनी बसाई बस्ती को कोई भी नहीं उजाड़ता। बधिक भी अपने मारे हुए पक्षी की सुधि लेता है। यदि स्नेह करना तुम्हें नहीं आता, स्नेह का नाम लेते ही तुम्हारे मुँह में छाले पड़ने लगते हैं तो कहीं स्नेह का सबक़ सीख लो। तुम तो बहुतों के बीच हो। तुम अकेलों की वेदना कैसे समझ सकते हो। मेरी दशा का पता तो तुम्हें तब चलता जब घड़ी भर के लिये तुम्हें अपनों से अलग होना पड़ता। मुझ पर जो कुछ बीत रही है वह तो सब सह लूँगा, जब ओखली में सिर दिया है तब मूसलों से क्या डर; पर मुझे बर्बाद कर तुम्हें क्या मिल जायगा!

मैं तो अपना निश्चय बदलने से रहा पर यह भी देखूँगा कब तक तुम मौन बने रह सकते हो। एक न एक दिन मेरी कूकभरी मूकता तुम्हें बुला ही लेगी। तुम मेरे साथ कपट व्यवहार कर रहे हो। निर्दयी हो रहे हो लेकिन मैं भी तुममें दया उपजाकर रहूँगा। भरोसे की शिला आशा की रस्सी से छाती पर बाँधकर प्रेम-सिंधु में उतरूँगा, लाखों भाँति की दुःसह दशाओं को सहूँगा। साहस समेटकर आरे से सिर तक भी चिरवा लूँगा, जो कुछ भी बीतेगी सब सहलूँगा पर तुम्हारे अन्दर दया उपजाकर ही रहूँगा—

आसा गुन बाँधि के भरोसो सिल धरि छाती
पूरो पन सिंधु मैं बूड़त न सकाय हौं।
दुख दव हिय जारि अन्तर उदेग आँच
निरन्तर रोम रोम त्रासनि तचाय हौं।
लाख लाख भाँति की दुसह दसानि जानि
साहस सहारि सिर आरे लौं चलाय हौं।
ऐसे घनआनन्द गही है टेक मन माहिं
एरे निरदई तोहि दया उपजाय हौं॥

इस दृढ़ प्रतिज्ञा को लेकर प्रेमी जीवन में बढ़ता है किन्तु विश्व की वास्तविकता उसे पद-पद पर दुख देती है। बन में खिले किंसुक उसके हृदय की ज्वाला के रंग में प्रकट होकर दुख देते हैं, हृदय में शूल उत्पन्न करते हैं, आशाओं को छिन्न-भिन्न कर देते हैं।—

किंसुक पुन्ज से फूलि रहे सुलगी उर दौ जु वियोग तिहारे,
मातो फिरै न घिरै अबलानि पैं जान मनोज यों डारत मारे,
है अभिलाषनि पातनि पात कढ़े हिय सूल उसासनि डारे,
है पतझार बसंत दुहूँ घनआनंद एकहि बार हमारे।

वर्षा के मेघ हृदय को अधीर कर आँसुओं की वर्षा करने लगते हैं। पतझड़ और बसन्त को एक साथ ही अपने लिये आया देखने वाला विरही वर्षा के बादलों को देखकर विकल हो जाता है—

घन आनन्द जीवन मूल सुजान की कौंधनहूँ न कहूँ दरसै,
सुन जानिए धौं कित छाय रहे दृग चातिक प्रान तपे तरसै,
बिन पावस तौ इन्हें ध्यावस हौं न, सुक्यों करि ये अब सो परसै,
बदरा बरसै ऋतु मैं घिरि कै, नितही अँखियाँ उघरी बरसै।

बूँदों को गिरता देख उसके हृदय में ताप बढ़ने लगता है। वह अपनी बढ़ती व्यथा की बात सोचता हुआ एकांत में टप टप आँसू गिरता है।

विरहा रवि सों घट व्योम तच्यो बिजुरी सी घिवैं इकली छतियाँ,
हिय सागर ते दृग मेघ भरे उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ,
घनआनंद जान अनोखी दसा न लखौं दई कैसे लिखीं पतियाँ,
नित सावन डीठी सु बैठक मैं टपकै बरुनी तिहि ओलतियाँ।

और थककर ठंडी साँस छोड़कर वह कहता है—पर से सुलगती आग तो सुनी थी पर पानी से लगती आग देख भी ली है—

सावन आवन हेरि सखी, मन भावन आवन चोप बिसेखैं,
छाए कहूं घनआनँद जान सम्हारि की ठौर लै भूल न लेखैं,
बूँदैं लगै सब अंग दगै उलटी गति आपने पापनि पेखैं,
पौन सों जागत आगि सुनी ही पै पानी सों लागत आँखिनि देखैं।

विरह की भावना प्रेमी को चेतन अचेतन भेद ज्ञान से मुक्त कर देती है। वह चराचर को जीवन दान देने वाले मेघ को देख विरही यक्ष की भाँति बातें करने लगता है और बिसासी सुजान के आँगन में उसके आँसुओं को जाकर बरसा देने की प्रार्थना करता है—

परकाजहि देह को धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ,
निधि-नीर सुधा की समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ,
घनआनँद जीवन दायक हो कछू मेरियौ पीर हिएँ परसौ,
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन यों अँसुवानिहिं लै बरसौ।

अपनी व्यथा में प्रिय उसे सब जगह दिखाई देते हैं भी जब आनन्द बर्षाते नहीं जान पड़ते तब वह मीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




कामना करने लगता है[1] किंतु मौत को भी आता न देख कर अधीर हो उठता है—

अंतर ही किधौं अंत रही दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं,
आगि जगौं अकि पानि परौं अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं,
जो घन आनँद ऐसी बची तौ कहा बस है अहा प्राननि पीरौं,
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं धरनी में धँधौं कै अकासहि चीरौं।

और कातर स्वरों में पुकारने लगता है तुम मुझे प्यास से क्यों मारते हो—

मीत सुजान अनीति करो जिन हा हा न हूजिये योंही अमोही,
दीठि को और कहूं नहिं ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही,
एक बिसास की टेक गहें लगि आस रहे बसि प्रान बटोही,
हौ घनआनँद जीवन मूल दई कित प्यासनि मारत मोही।

मुझे एक ही आश है, एक ही बिश्वास है, तुम्हारे अतिरिक्त किसी से पहिचान नहीं है। आठों पहर आँखें तुम्हारी ही ओर लगी रहती हैं यदि तुम ही रूखे हो जाओगे तो जीवन की सार्थकता ही किसलिये है ?—

एकै आस, एकै बिसवास, प्रान गहैं बास,
और पहिचानि इन्हें रही काहू सो न है।
चातक लों चाहै घनआनंद तिहारी ओर,
आठो जाम नाम लै बिसारि दीनौ मौन है॥
जीवन अधार प्रान सुनिये पुकार नेक,
आनाकानी दैवो दैया घाय कैसो लोन है।
नेह निधि प्यारे गुन भारे ह्वै न रूखे हूजै,
ऐसो तुम करौ तौ बिचारन के कौन है ?

मैंने तुम्हें देखने के लिये सबसे अनदेखी कर ली है, यदि तुम्हीं न देखोगे तो कौन देखेगा ! तुम चाहे मुझे न चाहो किंतु मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूं। चन्द्रमा को चकोरों की कमी नहीं है किन्तु चकोरों को तो चन्द्रमा एक ही है—

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनंदघन
प्रीति रीति विषय सुरोम रोम रमी है।
मोहि तुम एक, तुम्हैं मो सम अनेक आहि
कहा कछु चन्दहिं चकोरन की कमी है॥

किन्तु अपनी दशा को देखकर वह सोच में पड़ जाता है। वह देखता है जिससे मुझे नेह है उसे निठुराई से नेह है, जिससे मेरी पहिचान है वह पहिचान को पीठ दे बैठा है फिर किससे अपनी व्यथा कही जाय। असह्य वेदना का हृदय में अब अधिक निर्वाह भी तो नहीं हो सक रहा है, कहाँ जाऊँ ! क्या करूँ ! रात-दिन कहीं घड़ी भर के लिये भी तो चैन नहीं है ! तकदीर ही अपनी ऐसी है किसी को दोष क्यों दिया जाय—

जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह
कैसे करि जिय की जरन सो जताइये।
महा निरदई दई कैसे कै जिवाऊं जीव
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइए॥
दुख के बखान करिबे को रसना कै होति
अैसै कहूं वाको मुख देखन न पाइयें,
रैन दिन चैन को न लेस कहूं पैयै, भाग–
आपने ही ऐसे, दोष काहि धौं लगाइयै॥

जो जानते हुए भी अनजान बनता है, प्राण-बेधकर पीड़ा नहीं पहिचानता, रोना और गाना एक समझता है उससे हृदय की व्यथा कहना ही बेकार है। प्राण मरेंगे, व्यथा भरेंगे पर अमोही से किसी का स्नेह न लगे—

जीव की बात जनाइये क्यों करि जान कहाय अजाननि आगौ,
तीरनि मारिकै पीर न पावत एक सो मानत रोइबो रागौ,
ऐसी बनी घनआनन्द आनि जु आन न सूझत सो किन त्यागौ,
प्रान मरैंगे भरैंगे विथा पै अमोही सो काहू को मोह न लागौ।

प्रिय की निष्ठुरता पर आश्चर्य करते हुए वह कहता है—

तेरे देखिबें कों सब ही तें अनदेखी करी
तू हूँ जो न देखै तो दिखाऊँ काहि गति रे।
सुनि निरमोही एक तोही सों लगाव मोहि
सोही कहि कैसें ऐसी निठुराई अति रे॥
बिष सी कथानि मानि सुधा पान कर्‌यो जान
जीवन निधान है बिसासी मारि मति रे।
जाहि जो भजे सो ताहि तजै घनआनन्द कों
हति कै हितूनि कहौ काहू पाई पति रे॥

[1] घर बन बीथिनि मैं जित तित तुम्है देखौं
इतेहू पैं मैं न भई नई बिरहा मई।
बिजय उदेग आगि लपटै अतर लागैं
कैसै कहौं जैसे कछू तचनि महा तई॥
फूटि फूटि टूक टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियौ
चचिचो अचंभो भीचौ निदर करै गई।
आनन्दघन लखें अनलखें दुहू ओर
दई मारी, हारी हम, आप हौ निरदई॥



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्नेह की इन झिड़कियों को और भी स्निध तथा करुण बनाता हुआ वह प्रिय को उलाहना देता है—भोली भोली बातें सुनाकर भोले प्राणों को फाँसी से भी सरस तीखी हँसी के फंदे में ले आये और फिर अविश्वास किया। देखो हितू होकर तुमने यह क्या किया—

चोर्‌यो चित चोपनि चितौनि मैं चिन्हारी करि
चाह सी जनाय हाय मोहि कै मनौ लियो।
भोरी भोरी बातनि सुनाय जान भोरे प्रान
फाँसी तें सरस हांसी फंद छन्द सों दियो॥
छलनि छबीले आय छाय घनआनन्द यों
उघरे बिसासी अन्त निरदै महा हियो।
बारी मति हारी गति जाहिं कहां नाहिं ठौर
मानत परेखौ देखौ हितू ह्वै कहा कियो?

प्राणों को बजमारा वियोग घेरे रहता है। उपाय काम नहीं देते। यदि अब भी नहीं सँभालते तो प्रेम के खेत में बलिदान होकर ही तुम्हारे घनानन्द की कहानी चलेगी—

राति द्योस कटक सजेही रहै दहै दुख
कहा कहौं गति या वियोग बजमारे की।
लियो घेरि औचक अकेलौ कै विचारौं जीव
कछू न बसाति यों उपाय बल हारे की॥
जान प्यारे लागो न गुहार तौ जुहार करि
जूझि है निकसि टेक गहे पन धारे की।
हेत खेत धूरि चूरि चूरि ह्वै मिलैगो तब
चलैगी कहानी घनआनंद तिहारे की॥

तुम्हारे आने की अवधि नहीं, आशा भी नहीं रह गई है किंतु मैं फिर भी एक सी बाट जोहता रहता हूँ। मेरी विचित्र दशा देखकर लोग कारण पूछते हैं। तुम्हीं बतला दो मैं उन्हें क्या जो उत्तर दूं! मेरे भाग्य में तो दुःख ही बदा है। जब व्यथा ले ही ली है तब कैसे तुम्हें दोष दूं! तुम्हें जो अच्छा लगे करो। मैं तो तुम्हारी ही बातों के आसरे जीता रहूँगा पर ईश्वर करे तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट न हो, तुम चतुर कहाकर जीते रहो मेरा यही आशीष है जहाँ कहीं रहो ईश्वर तुम्हारा मंगल करे।

घन आनँद प्यारे सुजान सुनौ जिहि भाँति न हौं दुख सूल सहौं,
नहिं आवनि औधि न रावरी आस, इतेकपै एक सी बाट चहौं,
यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझै तौ उत्तर कौन कहौं,
जिय नेकु विचारि कै देहु बताय हहा पिय दूरि तें पाय गहौं।

इन बाट परी सुधि रावरे भूलनि, कैसे उराहनो दीजिये जू,
अब तो सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजिये जू,
घनआनँद जीवन प्रान सुजान तिहारियै बातनि जीजिये जू,
नित नीके रहौ तुम चाटु कहाय असीस हमारियौ लीजिये जू।

फिर प्रेमी सोचने लगता है।—यह मेरी परीक्षा हो रही होगी क्या? पर कैसी कठोर परीक्षा है जैसे कोई मछली को ही पानी से अलग फेंक रहा हो। फिर अपनी हालत देख सोचने लगता है—क्या मुझे प्रेत लग गया होगा! तुरंत मैंने खो दी, सुधि सो गई है, रोते रोते हँसने का उन्माद जग गया है। क्या ये प्रेम के चिन्ह हैं या मुझे भूत ही लग गया होगा? कभी हँसना याद आता है, कभी प्रिय की लड़काली बातें करना, कभी सहसा ही नाचते गति लेना, कभी ललित बीन बजाना, कभी प्रेम भरी दृष्टि से देखना, आज एक एक सुध बेसुध कर रही है।—

वहै मुसकानि वहै मृदु बतरानि वहै
लड़काली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैनि औ बजावनि ललित बैन
वहै हंसि दैन हियरा ते न टरति है।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छवि
वहै छैल ताई न छिनक बिसरति है।
आनन्द निधान प्रान प्रीतम सुजान जू की
सुधि सब भांतिन सौं बेसुधि करति है।

होश में आने पर विरही पूछता है—इन उजड़ी आँखों को कब बसाओगे विरह की ज्वाला से मुझे जलता जानकर कब आकर आनन्द के घर बरसाओगे? कब अपना शोभन मुख, मोहन-हंसी दिखलाओगे?

छवि को सदन मोद मंडित बदन चंद
तृषित चषनि लाल कबधौं दिखायहौ।
चटकीलौ भेष करें मटकीली भांति सौं ही
मुरली अधर धरें लटकत आयहौ।
लोचन दुराय कछु मृदु मुसिक्याय नेह
भीनी बतियानि लड़काय बतराय हौ।
बिरह जरत जिय जानि आनि प्रान प्यारे
कृपानिधि आनंद को घन बरसाय हौ॥

मुझे तुम्हारा ही आसरा है तुम उदार हो। मैं दीन हीन होकर तुम्हारे ही द्वार पड़ा हूं। मुझे तुम कब तक तरसाते रहोगे—

तुम तों उदार दीन हीन आनि पर्‌यो द्वार,
सुनिये पुकार याहि कौं लौं तरसाय हौ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तुम्हारी आशा से ही मैंने बावरे लोगों की चिन्ता न की, सबसे अनदेखी की, किसी से पहिचान न रखकर अपनी कहानी उपहासजनक करवा ली है। केवल 'एक विसास की टेक' 'गहकर' ही मैंने यह होने दिया। तुम चतुर जी की जानने वाले हो। फिर मुझे बिना दर्शनों के बिना पानी की मछली कर रहे हो। क्या तुम्हें यही शोभा देता है?—

आस लगाय उदास भए सु करी जग मैं उपहास कहानी,
एक विसास की टेक गहाय कहा बस जो डर औरहि ठानी,
ए हो सुजान सनेही कहाय दई कित बोरत हौ बिन पानी,
यों उघरे घनआनन्द छाय सुहाय परी पहिचानि पुरानी।

मेरा ही जीव मुझे मार रहा है तुमसे क्या कहूं, पर मैं तुम्हें ही क्यों दोष दूं आज आँखों ने भी मुझसे पहिचान छोड़ दी है और तुम अनजान हो रहे हो।

मेरोई जीव जो मारत मोहिं तो प्यारे कहा तुमसों कहनो है,
आँखिनहूं पहिचान तजी कछू ऐसोहि भागनि को लहनो है,
आस तिहारियै हौं घनआनन्द कैसें उदास भए रहनो है,
जान है होत इतै पै अजान जौ तौ बिन पावक ही दहनो है।

आँखों को रो रोकर फोड़ डालता, कानों को भी बहरा कर देता, जीभ में विष उँडेल देता पर क्या करूँ? एक यही आशा ऐसा करने से रोक देती है कि हो सकता है 'जीवन की किसी वेला में प्रिय आ जायँ'। इसी आशा से प्राण धारण किये रहता हूँ—

दृग नीर सों दीठिहुं देहुँ बहाय पै वा मुख कौं अभिलाष रही,
रसना बिस बोरि गिराहि गसी वह नाम सुधा निधि भाजि रही,
घनआनन्द जान सुबैननि त्यों रचि कान बचे रुचि साखि रही,
नव जीवन पाय पलै कबहूँ, पिय कारन यों जिय राखि रही।

तुमने आने की अवधि दी थी। आँखे रास्ते पर बिछी हुई थीं। हृदय में लाखों अभिलाषाएं भरी हुई थीं। बरौनियां कांप रही हैं। पर अब विश्वास उखड़ने लगा है आने की अवधि का अन्त हो चुका है और तुम आते दिखाई नहीं देते।

प्रानपखेरू परें तरफैं लखि रूप चुगौ जु फँदे गुन गाथन,
क्यों हतिये हित पालि सुजान दया बिन व्याध वियोग के हाथन,
सालत बान समान हियै सुलहे घनआनन्द जे सुख साथन।
देहु दिखाई दई मुखचन्द लग्यो अब औधि दिवाकर आथन।

तुम न जाने कहां बरस रहे हो, जीवन बीता जा रहा है।

जबतैं तुम आवन आस दई तबतैं तरफौं कब आय हौ जू,
मन आतुरता मन ही मैं लखौ मनभावन जान सुभाय हौ जू,
विधि के दिन लौं छिन बाढ़ि परे, यह जानि वियोग बिताय हौ जू,
सरसौ घनआनन्द वा रस कों जु रसा रस सो बरसाय हौ जू।

अभिलाखनि लाखनि भांति भरी बरुनीन रुमांच है कांपति हैं,
घनआनन्द जान सुधाधर मूरति चाहनि अंक मैं चांपति हैं,
टक लाय रहीं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपहि झाँपति हैं,
जब ते तुम आवनि औधि बदी तब तें अँखियां मग मांपति हैं।

मग हेरत दीठि हिराय गई जब तें तुम आवन औधि बदी,
बरसों कितहूं घनआनन्द प्यारे पै, बाढ़ति है इत सोच नदी,
हियरा अति औंटि उदेग की आंचनि च्वावत आंसुन मैन मदी,
कब आय हौ औसर जान सुजान बहोरि लों बैस तौ जाति लदी।

और यदि स्वयं नहीं आते तो मुझको ही क्यों नहीं बुला लेते?—

बिलंब छाड़ि आइये किधौं बुलाय लीजिए।

क्या यह तो एक अभूतपूर्व बात न होगी? चन्द्रमा का चकोर की चाह करना, स्वाति का पपीहे को पुकारना, पानी का मछली के लिये तड़फना आज तक देखा नहीं गया है। मुझे अपने पास बुला लो यह अपूर्व बात भी हो जावेगी—

चंद चकोर की चाह करै घनआनन्द स्वाति पपीहा कों धावै,
त्यों बस रैन के ऐन बसै रबि मीन पै दीन ह्वै सागर आवै,
मो सों तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि नेह निबाहिबौ यौ छबि पावै,
ज्यों अपनी रुचि राचि कुबेर सुरंकहि लै निज अंक बसावै।

प्रतीक्षा करते करते जब आशा-विश्वास साथ छोड़ने लगे तक निराश हो एक दिन प्रेमी कहता है—उड़ जाने को व्याकुल प्राणों को मैं आशा दिलाकर जिलाये था! बहुत दिनों की अवधि बीतने पर वे अवश्य आवेंगे। पर अब झूठी बातों के विश्वास से उदास होकर ये अधर लगे प्राण चलना चाहते हैं—

बहुत दिनानि को अवधि आस पास परे
खरे अरबरनि भरे हैं उड़ि जान कौ।
कहि कहि आवन संदेसौ मन भावन कौ
गहि गहि राखत हौं दै दै सनमान कौं॥
झूठी बतियान में प्रत्यान तें उदास ह्वै कै
अब न घिरत घनआनन्द निदान कौं।
अधर लगे हैं आनि करि के पयान प्रान
चाहत चलन ये संदेसौ सुनि सुजान कौ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रेमी के इस कथन में प्राणों की कितनी विकलता कितनी आतुरता, कितनी स्निग्धता विद्यमान है। विश्वास और आशा से उदास होकर भी प्रेमी ने आशा नहीं छोड़ी है।

किन्तु जीवन में आनन्द घने अन्धकार के आलोक से ही निखर कर आता है। प्रभात होने से ही पूर्व रात्रि का अन्धकार घनतम होता है। इस अँधेरी रात ( Dark night of soul ) के पश्चात् ही अन्धकार के आलोक से प्रेम के प्रकाश की किरणें फूटने लगती हैं। प्रेमी को जीवन में फिर एक बार आशा की ज्योति जगमगाती दिखाई देने लगती है।

सच है घन तम में खो जाते श्रोत सुनहले दिन के।
पर प्राची से झरने वाली आशा का तो अंत नहीं ॥

घनानन्द की दुःख की रात अब शांति के प्रभात में बदलने वाली थी, इसलिये उनके मन में भाग्य तथा विधाता की बातों की चिंता न करने की बात आती है। वे दुःख का भार कृपानिधान पर छोड़कर भक्ति पथ में लग जाते हैं—

काहे को सोचि मेरे जियरा परी तोहि कहा बिधि बातनि की है,
हैं घनआनँद स्याम सुजान सम्हारि तू थातिक ज्यों सुख जीहै,
ऐसे रसामृत पुंजहिं पाय कै को सठ साधन छीलर छीहै,
जाकी कृपा नित छाय रही दुख ताप तें बौरे बचाय ही लीहै।

ब्रज-भूमि के दर्शन की अभिलाषा प्रबल होती है और वे माधुरी के उस प्रदेश में—जिसके लता गुल्म होने तक की चाह प्रेमियों ने की है—यमुना के पावन पुलिन पर पड़े रहने के लिये चल देते हैं—

गुलम लता है सीस धर्‌यौ चाहैं धूरि जाकी,
कहिए कहा निकाई महिमा सरस की।
भूम्योई रहत सदा आनन्द को घन जहां,
चातकी भई है मति माधुरी बरस की।
आंखिन लगी है प्रीति पूरन पगी है अति,
आरति जगी है ब्रजभूमि के दरस की॥
गुरनि बतायौ राधा मोहन हू गायौ तदा,
सुखद सुहायो वृंदावन गाढ़े गहि रे।
अद्‌भुत अभूत महि मंडन परे ते परे,
जीवन को लाहु हा हा क्यों न ताहि लहि रे॥

आनंद को घन छायो रहत निरंतर ही,
सरस सुदेस सों पपीहा पन गहि रे।
यमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे।

यमुना को देखने से उनको जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन एक कवित्त में बड़े सुंदर ढंग से वे करते हैं—

आंखिन को जो सुख निहारे जमुना के होत,
सो सुख बखाने न बनत देखिबेई है।
गोरे स्याम रूप आदरस है दरस जाको,
गुपित प्रगट भावनो विसेखिबेई है।
जुग कूल सरस सलाका दीठि परस ही,
अंजन सिंगार रूप अविरेखिबेई है।
आनन्द के घन माधुरी की झर लागि रहै
तरल तरंगिनि की गति लेखिबेई है।

इस पुण्य सलिला यमुना के तट पर उन्हें जब पड़ता है मानो उनके ही भाग्य से निरन्तर ब्रजभूमि आनन्द का ही घन सरसा रहता है। बिना बजे ही बाँसुरी की ध्वनि कानों में आती रहती है। प्रेम अमृत भरे बहुरंगे फूलों से रुचिर वृन्दावन को देखते ही बनती है—और इसी समय प्रेमभरी बांसुरी उठती है—

प्रेम अमी मकरंद भरे बहुरंग प्रसूनन की रुचि राजै
देखत आज बनै बनराजहिं रूप अनूपम ओप विराजै
रागरची अनुराग जची सुनि है घनआनन्द बाँसुरी बाजै
मैन महीप बसंत समीप मतौ करि कानन सैन है साजै

और घनानन्द देखते हैं पीत बसन मोर मुकुट धारे किये कोई सामने खड़ा मुसकरा रहा है—

मंजु मोर चन्द्रिका सहित सीस साँवरे के
कैसी आछी फबी छबि पाग पँचरंग की।
दारिम कुसुम के बरन झीने नीमा मधि
दीपति दिपति सुललित लोने अंग की।
मंजन करत तहां मन बनितान के निहारि
मोती मालाहि बिचारि धार गंग की।
आनन्दनि भरो खरो मुरली बजावै मीठी—
धुनि उपजावै राग रागिनी तरंग की।

शुद्ध सामीप्य की प्राप्ति हो गई। जीवन की साध आज पूरी हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सांस्कृतिक एकता की रंगभूमि चीन और भारत

श्री मलिन्द

विश्व की सम्पूर्ण जनसंख्या का आधा भाग इन दो विशाल देशों में जीवन-यापन कर रहा है। निःसन्देह, विश्व में सबसे अधिक आबादी इन्हीं दो देशों में है। और यहां के वासी भी प्राचीन राष्ट्र के लोग हैं जिनकी प्राचीनतम सभ्यता की गाथाएं आज भी लोग चाव से पढ़ते हैं। इन दो देशों के अलावा कोई ऐसा तीसरा देश नहीं है जो इतनी विस्तृत आबादी और प्राचीनता का दावा कर सके।

इन दोनों प्राचीन राष्ट्रों के लोग प्रारम्भ से ही शांतिप्रिय रहे हैं एवं सदा से एक दूसरे के साथ मित्रता का व्यवहार करते आये हैं। कभी भी एक ने दूसरे पर अधिकार पाने की चेष्टा नहीं की। हाँ, "विचारों एवं सिद्धान्तों का आदान-प्रदान अवश्य होता रहा है।"—(डा० सनयात सेन)।

यथासम्भव दोनों राष्ट्रों ने पारस्परिक संस्कृति एवं व्यवसाय का अटूट सम्बन्ध स्थापित करने का भगीरथ प्रयत्न किया है और वे सफलता के बहुत पास पहुँच चुके हैं।

चार जनवरी, सन् '४३ को पूना-स्थित 'भण्डारकर रिसर्च इंस्टी-ट्यूट' की रजत-जयन्ती के अवसर पर, अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा था—मध्य-एशिया की मरुभूमि से होकर चीन की दीवार तक व्यापारियों के यात्रा-पथ और भारतीयों की नई आबादी का पता सर ऑरिल स्टीन ने लगाया है। ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी के लगभग भारत की सीमा पारकर अंगीलत देशों में बुद्ध-धर्म ने विस्तार पाया। कनिष्क के शासन काल से लेकर हर्ष वर्धन तक (लगभग ६०० वर्षों तक) भारत एवं चीनवासियों के बीच सांस्कृतिक एकता की जड़ जमी रही। भारत आये हुए चीनी यात्रियों ने अपनी यात्रा का बहुमूल्य वृत्तान्त लिख छोड़ा है और बहुत सी बौद्ध धर्म सम्बन्धी रचनायें—जो मूलतः खो गई हैं—अनुवाद के रूप में आज भी चीन, जापान, और तिब्बत की भाषाओं में सुरक्षित हैं।[1]

जगत प्रसिद्ध बौद्ध धर्म के ही विस्तार के कारण अंशतः चीन और भारत के बीच सांस्कृतिक एकता का सूत्रपात हुआ। चीन में सुरक्षित ऐतिहासिक सामाग्रियों (Records) से प्रमाणित है कि बौद्ध धर्म भारत से चीन में बहुत पहले गया था।[2] जुलाई ४२ के 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में प्रोफेसर तान युन शान ने लिखा था—"According to the record of Chinese history, it is Yung-Ping tenth year of Minti of the Han-Dynesty, namely 674 A D., when Buddhism formally reached China for the first time." आगे चलकर वे पुनः लिखते हैं कि "अन्य पुस्तकों से पता चलता है कि 'शीन-राज्य' (ई० पू० २४६-२२७) से पूर्व बौद्ध-धर्म चीन पहुँच चुका था।"

प्रो० तान युन शान का कथन है कि चीन की प्राचीन—पुस्तक LEITH-TZU में, एक स्थान पर कन्फ्यूसियस कहता है—"मैंने एक ऐसे साधु पुरुष के विषय में सुन रखा है जो 'पच्छिम' में बिना कानून के शासन करता है। लोगों का उस पर अखण्ड विश्वास है। उसका स्वरूप इतना विराट है कि उसकी तेजस्विता के सामने कोई पार्थिव व्यक्ति नहीं टिक सकता है।" हम जानते हैं कि चीनी संत कन्फ्यूसियस (ई० पू० ५५१—४७८) गौतम बुद्ध (ई. पू० ५६०—४८०) का समकालीन था। पुराने ज़माने में 'पच्छिम'—शब्द का प्रयोग चीनवासी भारत के लिए करते थे और प्रायः 'पाश्चात्य-राज्य' या 'पाश्चात्य-स्वर्ग' के नाम से पुकारा करते थे, जब कि स्वयं चीन देश के लिए 'मध्य-राष्ट्र' या 'स्वर्ण-राष्ट्र' जैसे नाम व्यवहार में आते थे। इस प्रकार बहुत संभव है कि कंफ्यूसियस का संकेत बुद्ध और उनकी शिक्षा की ओर रहा हो। इसकी पुस्तक 'चिनलु' (Chinese Records) में लिखा है—"चिन-राज्य के राजा चेंग के शासन-काल के चौथे वर्ष में पहले पहल, अठारह बौद्ध-भिक्षु, शिन-ली-फान के नायकत्व में पच्छिम प्रांतर से चीन आये और अपने संग बुद्ध की मूर्तियों के अलावा बौद्ध धर्म के ग्रन्थ भी लाये।" वे संभवतः ई० पू० २६८ में चीन गए थे।

चीन के अन्यान्य बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों में सामान्य उल्लेख पाये गये हैं। इन सबसे हम इस निष्कर्ष पर आ पहुँचते हैं कि चीन में बौद्ध धर्म सन् ६७ से बहुत पहले पहुँचा और प्रो० तान-युन-शान के मतानुसार दोनों राष्ट्रों में सांस्कृतिक-

---

१—ए० बी० ओ० आर० आई० २४:४-५ अगस्त १९४३ में प्रकाशित।

२—हिन्दुस्तान रिव्यू-जुलाई ४२,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एकता का सूत्रपात आज से दो हजार वर्ष पूर्व ही हो गया था।

इस विचार से अनेकानेक लेखक सहमत हैं कि संभवतः चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी के पूर्व ही हो गया था। प्रो० विनय सरकार ने भी यह प्रमाणित करने की पर्याप्त चेष्टा की है।[3] चाउ काल के प्रथम-सम्राट का समकालीन अशोक था जिसके समय में चीनवासी एक नये धर्म ( बौद्ध-धर्म ) से परिचित भर थे। अशोक जैसे, अन्तर्राष्ट्रीय राजा के समय में बौद्ध-धर्म की गन्ध चीन भी जा पहुँची यह बात अनैतिहासिक नहीं जान पड़ती है। इसके अलावा पता चला है कि 'हान' वंशीय-सम्राट ( ई० पू० १४० ) पश्चिमीय एवं मध्य-एशिया का एक महान् अन्वेषक था। प्रो० सरकार के मतानुसार··· 'यदि वास्तव में चीन में भारत से बौद्ध धर्म के प्रचार नहीं गए थे तो भी इतना मानना ही पड़ेगा कि उस समय भारत और चीन के बीच बड़ी सदभावना थी और चीनी लोग उस समय बौद्ध धर्म से परिचित थे। यह तो एक मनो-वैज्ञानिक आवश्यकता थी।'

जब चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार हो गया तब चीनी भिक्षु एवं छात्र-गण विशेष-अध्ययन के लिए भारत आये और भारत से चीन में बौद्ध-धर्म के विस्तृत-प्रचार के लिये भिक्षुओं एवं दूतों की टोली गई। इतिहास से पता चलता है कि चीन से फहियान, हुएनसंग, इत्सिंग ( ६७५ से ६८५ तक नालन्दा में विद्यार्थी था ) जैसे, विद्वान यात्री भारत आये और भारत से कश्यप मतंग, कुमार जीव[3] एवं गुनरत्न जैसे प्रसिद्ध अनुवादक चीन गए और संस्कृत से चीनी भाषा में पहले ने लगभग ९८ पुस्तकों और दूसरे ने लगभग ६४ पुस्तकों का सहजा-नुवाद किया। फाहियान भारत आया और १५ साल बाद जब वह लौटा तब बुद्ध के रंग से वह पूर्णतः रंग गया था। बौद्ध धर्म के ग्रन्थ 'त्रिपिटिक' का सर्व प्रथम अनुवाद हुएन-संग एवं इत्सिंग ने किया था। अपने साथ चीन को हुएन संग ६५७ पुस्तकों के ५२० पोथे ( Bundles ) ले गया था जिसमें से ७५ पुस्तकों का अनुवाद वह कर पाया था। इत्सिंग अपने संग ४०० पुस्तकें ले गया था और कुल ५६ पुस्तकों का ही अनुवाद कर पाया। सभ्यता के इतिहास में ये गौरवपूर्ण कार्य सदा अमर रहेंगे।

फु-त्सु-ची नामक पुस्तक के ४३ वें अध्याय में श्रीमती ची-पी-आन ने अनुवादकारिणी समिति के जिन दो मुख्य अंगों पर प्रकाश डाला है उनका अध्ययन भी आवश्यक है।[4]

'प्रवासी' में प्रकाशित अपने एक लेख 'प्राचीन एवं भारत' में श्री सुजित कुमार मुखोपाध्याय ने जिन प्रसिद्ध अनुवादकों का नामोल्लेख किया है वे ये हैं :—

अमोघ वज्र—उत्तरी भारत का ब्राह्मण कुलीन श्रमण, जो सन् ७१९ ई० में चीन गया, भारत और लङ्का के शास्त्र पर लगभग ५०० हस्तलिखित पुस्तकें संग्रहित करता रहा ( ७३२-४६ ई० ) और उसे चीन-सम्राट ने 'प्रज्ञाकोष' की उपाधि दी। 'त्रिपिटक-महन्त' की भी उपाधि इसे मिली। इसकी लगभग १०८ पुस्तकों ( अनुवाद सहित ) का पता चला है।

आन-शि-काओ—सन् १४८ में यह पार्थियन-युवराज राज-त्याग कर चीन गया। सूत्रों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। इसने लगभग ५५ पुस्तक लिखी हैं।

इत्सिंग—चीनी श्रमण ने ६७१ ई० में चीन छोड़ा। तीसेक देश-भ्रमण कर ६९५ ई० में देश लौटा और अपने सङ्ग ४०० के लगभग पुस्तकें लाया और सन् ७१३ ईस्वी में मरा। इसने त्रिपिटक का शेष अनुवाद किया। इसकी लगभग ५६ अनूदित पुस्तकें उपलब्ध हैं।

उ-लो च्छा—खोतान के भिक्षु ने चु शु-त्यान से मिल कर एक सूत्र का अनुवाद किया।

उपशून्य—( ५३८-५६८ ई० ) मध्य भारत में ही राजकुमार की पांचेक पुस्तकें उपलब्ध हैं जिनमें विमल कीर्ति-निर्देश बहुत प्रसिद्ध है।

कश्यप मातंग—सन् ६७ में भिक्षुओं की टोली में चीन गया—बौद्ध धर्म का प्रचार किया, मध्य भारत में ब्राह्मण कुल में जन्म ले, चीन के 'श्वेत मठ' में मरा।

कुमार जीव—परम्परागत मंत्रियों के कुल का एक भारतीय श्रमण जो सन् ३८३ में चीन गया और जिसने सन् ४१२ तक लगभग ९८ पुस्तकों का अनुवाद किया। चीन में ३०००, से ज्यादा उसके शिष्य थे। संभवतः ४१५ ई० में वह मरा। लगभग ५० पुस्तकें उपलब्ध हैं।

गौतम धर्मज्ञान या धर्मप्रज्ञा—बनारस के [illegible] प्रज्ञा रुचि का बड़ा लड़का जो ५७७ ई० में उत्तरीय-चाउ

३—देखिए चाइनीज़ रिलिज़न थ्रू हिन्दू आइज़—सन् १९१९ में शंघाई से प्रकाशित।

४—'प्रवासी'—ब० सं० १३५० ज्येष्ठ अंक, [illegible]

पृष्ठ संख्या ९६-१०३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



राजकुमार के अधीन एक ज़िला का 'लाट' बनाया गया। एक पुस्तक उसने लिखी है।

गौतम प्रज्ञा रुचि—( ५३८—५४३ ई० ) बनारस का ब्राह्मण, इसकी १३ पुस्तकें उपलब्ध हैं।

गौतम संघदेव—काबुल का श्रमण, जो सन् ३८२ में चीन गया। इसकी चार पुस्तकें उपलब्ध हैं।

गुनभद्र—ब्राह्मण कुलीन भारतीय श्रमण जो महायान बौद्ध-धर्म से पूर्ण-परिचित था, सन् ४३५ में चीन गया, सन् ४४३ तक अनुवाद करता रहा, ७५ वर्ष की अवस्था में सन् ४६८ में मरा।

गुनरत्न—भारतीय श्रमण, ६४ पुस्तकों का अनुवादक।

चु-शु-ला—चीन में पैदा हुआ, ५२ पुस्तकों का अनुवाद किया। एक भी उपलब्ध नहीं है।

दिवाकर—भारतीय श्रमण ( ६७६–६८८ ई० ), १९ पुस्तकों का प्रणेता, सभी उपलब्ध हैं।

दानपाल—यह भारतीय श्रमण सन् ९८० में चीन गया। चीन-सम्राट द्वारा प्रतिष्ठित, ७७७ पुस्तकों (उपलब्ध) का प्रणेता।

देव—जालंधर ( काश्मीर ) का श्रमण, सन् ९८० में चीन गया, बीस वर्षों तक अनुवाद-कार्य करता रहा, सन् १००० में मरा। १८ पुस्तकों (उपलब्ध) का प्रणेता था।

धर्मदेव—नालन्दा विहार का वह श्रमण (९७३-१००१ ई०) जिसे चीन-सम्राट ने 'महाधर्माचार्य' के उपनाम से विभूषित किया। ११८ उपलब्ध पुस्तकों का प्रणेता।

धर्मकला—सन् २२२ में यह भारतीय भिक्षु चीन गया, सन् २५० में 'प्रति मोक्ष' का अनुवाद किया जिसकी प्रति खो गई है।

धर्मनन्दी—सन् ३८४ में यह श्रमण चीन गया, पांच पुस्तकों का अनुवाद किया जिनमें दो उपलब्ध हैं।

धर्म प्रिय—इस भारतीय श्रमण ने केवल एक ही सूत्र का अनुवाद किया।

धर्म रक्षा—गोवर्धन या भरत के नाम से भी प्रसिद्ध, विनय में पटु, भारतीय श्रमण, कश्यप-मातंग के बाद चीन गया, मिल-जुलकर पांचेक पुस्तकों का अनुवाद किया।

धर्म रक्षा-(२६६–३७७ ई०) ३६ भाषाओं का पंडित, अनेकानेक पुस्तकों का प्रणेता जिनमें ९० उपलब्ध हैं।

धर्म रक्षा—सन् ४१४ ई० में यह भारतीय श्रमण चीन गया, सन् ४२१ तक अनुवाद कार्य करता रहा, जिनमें एक दर्जन के लगभग पुस्तकें उपलब्ध हैं। ४९ वर्ष की अवस्था में मिथ्या सन्देह पर मार डाला गया।

धर्म रक्षा—मगध का यह भारतीय श्रमण सन् १००४ में चीन गया और मृत्यु पर्यन्त अनुवाद कार्य करता रहा। सम्राट द्वारा विशेषतः प्रतिष्ठित हुआ, ९६ वर्ष की अवस्था में मरा। दर्जनों पुस्तकों का वह प्रणेता था।

धर्म रुचि—भारतीय श्रमण, (५०१-५०७ ई०), इसकी दो पुस्तकें उपलब्ध हैं।

धर्म विक्रम या धर्मासुर—चीनी भिक्षु, १५ मित्रों के संग सन् ४२० में भारत आया। इसने सन् ४५३ में देश लौटने के पूर्व एक पुस्तक का अनुवाद किया।

नरेन्द्र व्यास—भारतीय श्रमण, ( ५५७ ५८९ ई० ), १५ पुस्तकें उपलब्ध हैं।

परमार्थ—गुनरत्न एवं कुलनाथ के नाम से भी प्रसिद्ध, उज्जैन का यह श्रमण, ५४८ ई० में चीन गया। इसने ५५७-५६९ ई० के अन्दर ४० पुस्तकों का अनुवाद किया जिनमें ३२ उपलब्ध हैं। ७१ वर्ष की उम्र में सन् ५६९ में वह मरा। उसके अनुवादों में अश्वघोष की दो पुस्तकें, और आचार्य बसुबन्धु का जीवन चरित प्रमुख हैं।

प्रभाकर मित्र—( ५५७–५८९ ई० ), केवल तीन पुस्तकें इस भारतीय श्रमण की उपलब्ध हैं।

प्रज्ञा—( ७८५–८१० ई० ), काबुल का श्रमण, पुस्तकें अनुपलब्ध हैं।

प्रमिति—भारतीय श्रमण ( ७०५ ई० ), इसकी एक पुस्तक उपलब्ध है।

फाहियान—प्रसिद्ध चीनी भिक्षु, सन् ३९९ में बुद्धभद्र के साथ साथ उसने अनेकानेक पुस्तकें लिखीं। स्वानुवादित पुस्तकों में केवल चार उपलब्ध हैं। ८६ वर्ष की अवस्था में वह मरा।

बोधी रुचि—उत्तरी भारत का श्रमण जो सन् ५०८ में चीन गया। अनूदित ग्रन्थों में लगभग तीस उपलब्ध हैं।

बोधी रुचि कश्यप—ब्राह्मण कुलीन, दक्षिण भारतीय श्रमण, पूर्व नाम धर्म रुचि था, ( ६८४–७०५ ई० ), ५३ ग्रन्थों का अनुवाद किया जिनमें ४१ उपलब्ध हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि वह १५६ वर्ष की उम्र में मरा।

बुद्ध भद्र—भारतीय श्रमण, चीनी भाषा में १५ पुस्तकों का अनुवाद किया। कुमार जीव से वह परिचित था, ९१ साल की उम्र में सन् ४२९ में मरा।

बुद्धशांत—इस भारतीय श्रमण की (५२४–५३९ ई०) ९ पुस्तकें उपलब्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मैत्रेय भद्र—मगध का भारतीय श्रमण, लिआ-ओ शाखा के राजा का यह गुरु था ( ९०७-११२५ ई० ) ५ उपलब्ध पुस्तकों का प्रणेता।

रत्न मति—भारतीय श्रमण, ( ५०८ ई० ) दो पुस्तकों का प्रणेता।

रत्न-चिन्ता—एक श्रमण, (६९३-७२७ ई०) काश्मीर निवासी, सात पुस्तकों का अनुवादक। सौ वर्ष जिया।

वज्र बोधी—ब्राह्मण कुलीन दक्षिण भारतीय श्रमण, सन् ७१९ में चीन गया और वहीं ७१ वर्ष की अवस्था में मरा। ११ पुस्तकों का प्रणेता।

वाष्प—तिब्बत का श्रमण, कुबलाई ख़ाँ का सलाहकार, इसने सन् १२६९ में मंगोलियन भाषा की रूप रेखा तैयार की।

संघ वर्मन—( ५०६-५२० ई० ) श्याम देशीय श्रमण, ९ ग्रन्थों का अनुवादक।

सुभाकर सिंह—भारतीय श्रमण, नालान्दा बिहार से सन् ७१६ में चीन गया, सन् १७५ में ९९ वर्ष की अवस्था में मरा। ५ पुस्तकों का प्रणेता।

हुई-ची ( प्रज्ञा )—भारतीय श्रमण, चीन में पैदा हुआ, पिता ब्राह्मण थे, सन् ६९२ में एक पुस्तक का अनुवाद किया जो उपलब्ध है।

ज्ञानगुप्त—( ५६१—६०० ई० ) गांधार का श्रमण, ३८ पुस्तकों का प्रणेता, सभी उपलब्ध हैं। ७८ वर्ष की अवस्था में मरा।

ज्ञान श्री—सन् १०५३ में यह भारतीय श्रमण चीन गया। दो उपलब्ध पुस्तकों का प्रणेता।

इनके अलावा भारत से चीन जाने वाले कुछ लोगों का पता राधाकृष्णन् के 'इंडिया ऐंड चाइना' से चलता है। प्रमुख लोगों में, संघभूति ( ३८१ ई० ), गौतम संघदेव ( ३८४ ई० ), पुण्य मत और उनका शिष्य धर्माशय (३९७ ई०), बुद्धाशय (चौथी शताब्दी), विमलाक्ष (४०६ ई०), धर्मक्षेम ( ४१४ ई० ), बुद्ध जीव ( ४२३ ई० ), गुण-वर्म (४३१ ई०), बोधी धर्म ( ५२० ई० ), विमोक्ष सेन (५४१ ई०) एवं धर्मगुप्त ( ५९० ई० ) विशेष-उल्लेखनीय हैं।[५]

यह ज्ञातव्य है कि उपर्युक्त अनुवादक न केवल चीन और भारत के ही श्रमण या गृहस्थ थे अपितु गांधार, खोतान, तिब्बत, श्याम एवं सुदूर लङ्का तक के निवासी थे। बौद्ध-धर्म से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थों के अनुवाद के अलावा भारतीय संस्कृति विषयक ग्रन्थ भी अनुवादित हुए थे, यह विचारणीय है। अनूदित ग्रन्थों में दो विशेष महत्व के हैं—( १ ) स्वर्ण सप्तती शास्त्र और ( २ ) वैशेषिक पदार्थ शास्त्र। पहली पुस्तक 'सांख्य-करिका' की टीका है और दूसरी कणाद के वैशेषिक दर्शन पर लिखी गई है।[६]

जे. एच. कजिन्स ने एक स्थान पर लिखा है—"अशोक के समय में, चीन और भारत में, पारस्परिक सांस्कृतिक एकता फल फूल रही थी। भारत के पुरोहित एवं कलाकार चीन में आश्रय पाते थे। एक समय राजधानी लो-यंग में तीन सहस्र भारतीय योगियों के अलावा दस हजार भारतीय परिवार जीवन-यापन करते थे। ये अपने साथ अजन्ता और एलौरा की चित्र-कला के आदर्श ले गए थे। इन्होंने ही चीनियों को लिपि-ज्ञान कराया। बौद्ध धर्म के साथ साथ भारतीय कला एवं विद्या चीन पर ई० पू० पहली शताब्दी में ही अपना प्रभाव जमा गई।

"चीन में बौद्ध-कला से हिन्दू कला गले से गले मिली फलतः भारतीय शैली बदलकर चीनी हो गयी……।"[७]

बौद्ध-धर्म के 'सत्य' का स्वागत चीनवासियों ने मुक्त हृदय से किया। चीन की विचार धारा के साथ जब भारत की सांस्कृतिक धारा मिल गयी, तब एक नये चीन देश का जन्म हुआ जिसका अस्तित्व आज तक है। चीन पर भारतीय अध्यापकों का कैसा प्रभाव पड़ा है इसका परिचय इन शब्दों में मिलता है—"चीन पहले बौद्ध मिशनरियों को नहीं भूल सकता। अनुवाद और प्रचार के अति कठिन कार्य उन्होंने बड़ी सचाई, ईमानदारी और सफलता के साथ किये।"[८]

तीसरी शताब्दी के मध्यकाल में ( इत्सिंग के अनुसार ) चीन से बीसेक सन्यासी भारत आये थे जिनके लिए किसी 'गुप्त-सम्राट' ने बोध गया के पास एक 'चीन-संघाराम' बनवा दिया था। इनके अलावा चे-मांग (४०४-४२४ ई०), सुंग-युन ( ५३० ई० ), वांग-हुएन-सो ( ६३४-६४७ ई० ) आदि की भारत-यात्रा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।[९]

---

५—राधा कृष्णन्—इण्डिया ऐंड चाइना, पृष्ठ २७

६—एस. सी. गुहा—'इन्डो-चाइनीज़ कार्डिनल थ्रू एज़ेज'—जे. बी. एच. यू. भाग ८९ पृष्ठ २१

७—जे० एच० कजिन्स—दी कल्चरल युनिटी ऑफ एशिया, खण्ड दो, पृष्ठ ७७

८—रीकेल्ट ( Reichelt )—ट्रुथ ऐण्ड ट्रैडिशन इन चाइनीज़ बुद्धिज़्म

९—राधा कृष्णन्—इण्डिया ऐण्ड चाइना, पृष्ठ २६-२९ तथा पृष्ठ १२-१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


साधारणतः चीन में बौद्ध धर्म ग्रन्थों को लोग 'त्रिपिटिक' के नाम से जानते हैं जिसमें केवल विनय, अभिधम्म और सूत्र' ही हैं। 'चीनी त्रिपिटक' से ऐसा भास होता है कि चीनी भाषा में विभिन्न धर्म-ग्रन्थ सुरक्षित हैं। अभी हाल में जापान से ताई-शाओ नामक चीनी त्रिपिटक का एक नया संस्करण निकला है जिसमें २१८४ सूत्र हैं। पहले संस्करणों में २२७८ सूत्रों का पता चला है, पर खो जाने के कारण अब केवल २१८४ सूत्र ही बच रहे हैं। इतिहास साक्षी है कि बौद्ध धर्म के विरुद्ध होने के कारण दो-एक चीनी साम्राटों ने बहुत-से मठ जला दिये थे जहां बहुमूल्य पुस्तकें संग्रहीत थीं।

भारत के इन दो स्थानों, (१) चीन भवन, विश्व-भारती, शांतिनिकेतन (२) मूल गंध कुटी बिहार, सारनाथ, में निम्नांकित चीनी-त्रिपिटकों के संस्करण देखे जा सकते हैं—(क) सुंग शाखा का संस्करण (९६०-१२७६ ई०), जिसे ट्रैगन एडीशन भी कहते हैं, (ख) चिंग-शाखा का संस्करण (१६४४-१९११ ई०) और (ग) संघाई संस्करण एक पूरक (supplement) सहित। (क) में १९२१, (ख) में १६६६ और (ग) में १९१६ रचनाओं का पता पूरक के पूर के साथ चलता है।

एक चीनी बौद्ध विद्वान लु-चेंग के मतानुसार चीनी-त्रिपिटक के १६ संस्करण हुए हैं—४ सुंग शाखा में, ५ युआन-शाखा में, १ मिंग शाखा में, ४ चिंग शाखा में और २ वर्तमान प्रजातंत्र शाखा में।

भारतीय-संस्कृति का प्रभाव चीनवासियों के जीवन के इन अंगों पर समान रूप से पड़ा है—यह ध्यान में रखने योग्य है। साहित्य में गद्य एवं पद्य के क्षेत्र में, चिन-राज्य (२६५-४२३ ई०) और थांग-राज्य (६१८-९०७ ई०) ने कमाल कर दिखाया है। आगे चलकर मिंग-शासन में (१३६८-१६४३ ई०) दार्शनिक रचनाओं का विकास हुआ।

थान-शासन काल में शोन-वेन नामक एक बौद्ध भिक्षु ने संस्कृत में वर्णित भारतीय लिपि शास्त्र के आधार पर चीनी लिपि को परिष्कृत कर छोटा रूप (३६ वर्णों का) दिया। पर खेद का विषय है कि यह वर्ण माला जन साधारण के बीच पनप न सकी।

ललित कलायें—मूर्तिकला, वास्तु कला आदि पर आज भी, चीन के पैगोडा आदि को देखने पर[१०] भारतीय प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

भारत के प्राचीन साहित्य की ओर, विशेषतः संस्कृत साहित्य की ओर दृष्टिपात करें तो सहज में ही पता चल जायगा कि यत्र तत्र सर्वत्र चीन विषयक उद्धरण भरे पड़े हैं। रामायण और विशेषतः महाभारत में चीनवासियों का उल्लेख हैं। रामायण का एक उदाहरण लीजिये—

चीनानं परचीनांश्च तुखारान बर्बरानपि।
काञ्चनैः कमलैश्चैव काम्बोजानपि संवृतान् ॥[११]

महाभारत में चीनवासियों का वर्णन बहुत बार आया है। उदाहरण के लिए हम आदि पर्व और सभा पर्व के पन्ने उलट सकते हैं। सभा पर्व में एक स्थल पर हम ऐसा वर्णन पाते हैं कि अर्जुन की विजयी सेना को रोकने के हेतु भागदत्त ने लड़ाई मोल ली और उस समय उसके साथ अन्य सैनिकों के अलावा चीनी सैनिक भी थे—

स किरातैश्च चीनश्च वृतः प्रग्जेतिषोऽभवत्.....।

उद्योग पर्व में भी दुर्योधन को भागदत्त द्वारा चीनी सैनिक दिये जाने का वर्णन है:

तस्य चीनैः किरातैश्च काञ्चनैरिव संवृतम्।

उद्योग पर्व में ही अन्य स्थल पर चीनी घोड़ों का वर्णन आया है:

वाजिनां च सहस्राणि, चीनदेशोद्भवानि च

पुनः उसी पर्व में—

अर्कजश्च बलीहानां चीनानां घौत मूलकः।

वाण पर्व में,

हार हूणांश्च चीनांश्च तुषारान् सैन्यवां स्तथा।

भीष्म पर्व में,

तथैव रमणाश्चीना स्तथां च देशमात्रिकाः।

कर्ण पर्व में,

सुमांनगांश्च वगांश्च निषादान् पुण्ड्रचीनकान्।

इस प्रकार 'महाभारत' से हमें यह पता चलता है कि भारतीयों की फौज में चीनी सैनिक रहा करते थे और उनसे क्षत्रियों जैसा व्यवहार किया जाता था। वे यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित भी किये जाते थे। परन्तु 'मनुसंहिता' का लेखक अचानक उन्हें शूद्रों की श्रेणी में ले जाकर पटकता है।

१०—एस० सी० गुहा—इंडो-चाइनीज़ कौर्डिएलिटी पृ. एजेंस, पृष्ठ २२
१०

११—रामायण=सं० गैरस्पर गोरेसिओ (पेरिस १८८४) ५:४४:१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ललित विस्तर में हम चीनी लघु लेखों का उल्लेख पाते हैं—

ब्राह्मी-खरोष्टीम् अंगलिपिं बंगलिपिं, चीन लिपिं, हूण लिपिं.....चतुःषष्टि सिपीनां कतमांत्वं शिक्षयिष्यसि ?

कथा सरित् सागर में 'चीनपिष्टम्' का वर्णन आया है जिसे सोहागिन नारी अपने ललाट पर कुंकुम-बिन्दु के रूप में लगाती हैं। हेमचन्द्र के अभिधान चिन्तामणि में उसे ही 'सिन्दूरम्' भी कहा गया है :

सिन्दूरनागजं नागरशृङ्गारभूषणं चीन पिष्टम्।

आज भी चीना सिन्दूर औरतों के बीच बहुत प्रचलित है।

पाली टेक्स्ट-सोसायटी से प्रकाशित—'अट्ठशालिनी' में अट्ठकथा या धम्म संगिनी के भाष्य में हम, यासां वासेन दिसा भागा चीन पिट्ठ आदि का वर्णन पाते हैं। सुत्रनिपात में एक शब्द आया है 'चीनक' जिसका अर्थ टीका में है—एक प्रकार का यान। विष्णु पुराण में भी ज्यों का त्यों ऐसा ही प्रयोग हुआ है। अपने 'अभिधान चिन्तामणि' में हेमचन्द्र भी 'चीनक' को यान ही बताता है। हेमाद्री-कृत चतुरंग चिन्तामणि में भी वही बात है। शायद शीत काल में ज़ोरों से पाई जाने वाली 'मूंगफली' का मूल स्थान चीन ही है। चूँकि दूसरे शब्दों में 'चिनिया बादाम' हमारे बालकों को बहुत प्रिय है।

राजनिघंट में चीन की विभिन्न वस्तुओं का वर्णन आया है—चीन कपूर, चीन कर्कटी, चीनज, चीन बंग आदि।

चीन कर्पूर का वर्णन भाव प्रकाश में भी आया है। 'सुश्रुत संहिता' में 'चीन पट्ट' का विशेष उल्लेख है। 'दश कुमार चरित' में चीनी वस्त्र का भी वर्णन है—

चीनाम्बरादिना नानबिधेन परिमलद्रव्यनिकरेण मनोभवमर्चयन्ती रेमे।

वृहत्-संहिता में चीन का नाम आया है। शक्ति सङ्गम तन्त्र में चीन का यों वर्णन आया है—

मानसेशाच्च दक्षिणे मानसेशादक्ष पूर्वे चीनदेशः प्रकीर्तितः।

महाचीनाचार तन्त्र एवं चीनाचार प्रयोग विधि नामक दो पुस्तकें तन्त्र पर लिखी गई हैं।

कालीदास के अमर नाटक शकुन्तला में चीनांशुक का उल्लेख है

चीनांशुकामिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य।

कुमार सम्भव में भी

चीनांशुकैः कल्पित केतुमालम्

जैसा वर्णन आया है। मालविकाग्नमित्र में भी चीन शुक शब्द का उल्लेख है। महाभारत में ऐसा वर्णन है कि चीन देश से ५००० वर्ष पूर्व युधिष्ठिर के राज्य-तिलक के समय रत्नादि ढेरों की संख्या में उपहार-स्वरूप आये थे।

चीन और भारत दोनों राष्ट्रों के विद्वान मनीषी साधु पुरुष प्रेम जैसे अमोघ अस्त्र से अतीत काल में सांस्कृतिक-एकता क़ायम कर गये—क्या वह स्थिर रह सकेगी, यह आज का प्रश्न है।

हजारों वर्षों के बाद आज फिर दोनों राष्ट्रों को एक दूसरे की सहानुभूति मिलने लगी है। सन् १९२४ में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की चीन-यात्रा ने सांस्कृतिक एकता को नई पुस्तक में एक और अनूठा अध्याय जोड़ दिया। प्रो० तान युन शान ने विश्व कवि के विषय में लिखा था—"चीन पर गुरुदेव की यात्रा का जो प्रभाव पड़ा है वह अतीत में साधु संतों का भी नहीं पड़ा। चीनी जनता इन्हें और महात्मा जी को आधुनिक बुद्ध मानती है।"

फिर सन् ३९ में पण्डित नेहरू की चीन यात्रा काफी महत्वपूर्ण रही।

अभी हाल में ही गत वर्ष मई '४४ में राधाकृष्णन् भी चीन को भारत का सन्देश सुना आये हैं।

९।५।४४ को राधाकृष्णन् को चुंकिंग में जो प्रतिवेदन दिया गया था उसमें आनरेबुल-मिनिस्टर चेन-ली फु ने शब्दों में स्वागत करते हुए कहा था—"हम सर राधाकृष्णन का स्वागत इस कारण भी करते हैं क्यों कि भारत के प्रतिनिधि विद्वान हैं और भारत का घनिष्ट हमारे चीन देश से रहा है। भारत और चीन की का परस्पर आदान प्रदान बहुत पहले से ही रहा अतीत में भारत का बहुत प्रभाव चीन पर पड़ा चीन का भारत पर....."।[१२]

चीन और भारत जैसे दो समुन्नत-राष्ट्रों के सांस्कृतिक एकता का गठ-बन्धन दृढ़ से दृढ़तर हो— यही चाहते हैं। बस !!

[ साहित्य परिषद्, गया में पठित ]

१२—राधाकृष्णन्—इण्डिया ऐण्ड चाइना,



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मामूली अक़्ल की कसौटी पर दो नेशन्स का उसूल

सय्यद रहमअली अल हाशमी

दो नेशन्स के उसूल को मामूली अक़्ल की कसौटी पर कसने से पहले हम यह तय कर लें कि अङ्गरेज़ी ज़बान में क़ौमियत का असली मतलब है क्या ?

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका जिल्द ( १९, ११ वें संस्करण ) में क़ौमियत की नीचे लिखी परिभाषा दी हुई है—

"किसी नेशन या राज्य की सदस्यता का मयार है राजनैतिक बहसों में उसका व्यापक दायरा, व्यक्तियों का एक समूह, एक जाति, एक भौगोलिक क्षेत्र या एकता का कोई बन्धन यद्यपि यह ज़रूरी नहीं कि उसे स्वाधीन राजनैतिक इकाई समझा जाय। इस अन्तिम अर्थ में यह शब्द बहुधा आइरिश, आर्मीनियन और चेक लोगों के लिये इस्तेमाल हुआ है। इन अर्थों में क़ौमियत एक समान भावना और एक संगठित दावे को ज़ाहिर करती है। उसके लिये कोई नपी तुली परिभाषा या स्पष्ट गुण नहीं है।"

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका की इसी जिल्द में अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून के मातहात किसी देश के स्वाभाविक नागरिक अधिकार की प्रक्रिया को नीचे लिखे शब्दों में व्यक्त किया गया है—

"सामन्ती क़ानूनों के मुताबिक़ किसी देश में जन्म लेना ही क़ौमियत की प्रधान पहचान थी। इङ्गलैण्ड और अमरीका में आज भी क़ौमियत की यही प्रधान कसौटी है। जिन मुल्कों ने न्याय के रोमन उसूलों को स्वीकार कर लिया है वे पिता की क़ौमियत को क़ौमियत की असली पहचान मानते हैं।

"अनेक मुल्कों में नागरिक अधिकार के लिये एक लम्बा अधिवास ज़रूरी है। बेल्जिअम, ग्रेटब्रिटेन, उत्तर अमरीका और रूस में इस तरह के सीमित अधिवास की अवधि पाँच साल है, फ्रान्स, यूनान और स्वीडेन में तीन साल, अर्जेंटाइन के जनतन्त्र में दो साल जब कि पुर्तगाल में नागरिक अधिकारों के लिये सिर्फ़ एक साल वहाँ रहना ज़रूरी है। जर्मनी और इटली में इसके लिये कोई अवधि मुक़र्रर नहीं है जब कि आस्ट्रिया में में दस बरस की रहाइश के बाद यह हक़ मिल जाता है।"

वेब्स्टर की डिक्शनरी में नेशन या क़ौमियत की यह परिभाषा दी गई है—

"किसी मुल्क के बाशिन्दों की एक जमात जिन्हें अपने मुल्क की आज़ाद हुकूमत एक धागे में बाँधती है।"

इस डिक्शनरी के मुताबिक़ लफ़्ज़ 'नेशन' मुख़्तलिफ़ यूरोपियन ज़बानों के ऐसे लफ़्ज़ों से निकलता है जिनका लफ़्ज़ी तर्जुमा है—'पैदा होना'। अङ्गरेज़ी की कन्साइज़ डिक्शनरी में 'नेशन' शब्द की परिभाषा में लिखा है—"ऐसे लोग जो किसी ख़ास भौगोलिक क्षेत्र में रहते हों और एक-सी राजनैतिक संस्थाओं द्वारा शासित होते हों। इस तरह के लोगों की जमात जो वही या मिलती जुलती ज़बानें बोलते हों।"

ऊपर की परिभाषाओं का यदि सार निकाला जाय तो यह होगा कि जो ख़ास ख़ास गुण क़ौमियत बनाते हैं वे ये हैं—

( अ ) किसी मुल्क में पैदाइश या रहाइश,

( ब ) मिली जुली राजनैतिक संस्थायें और

( स ) क़ौमी ज़बान या मिलती जुलती ज़बानें

अब अगर नेशन लफ़्ज़ दो नेशन्स के उसूल में इस्तेमाल किया जाता है तो उसमें उपर्युक्त गुण होने चाहियें। किन्तु यह साबित करने के लिये बहुत लम्बी चौड़ी दलीलों की ज़रूरत नहीं है कि हिन्दुस्तान के रहने वाले हिन्दू और मुसलमान एक ही नेशन हैं क्योंकि—

( अ ) इनकी पैदाइश और रहाइश एक ही मुल्क में है,

( ब ) एक ही राजनैतिक संस्था यानी ब्रिटिश गवर्नमेण्ट उन पर हुकूमत करती है और

(स) वे एक ही क़ौमी ज़बान या उससे मिलती जुलती ज़बानें बोलते हैं।

ऊपर की दो बातें बिलकुल साफ़ हैं। तीसरी बात के सुबूत में जो भी शख़्स हिन्दुस्तान में घूमा है उसने देखा होगा कि बङ्गाल और मद्रास के मुसलमान वही ज़बान अपने घरों और बाज़ारों में बोलते हैं जो कि वहां के उनके ग़ैर मुसलिम पड़ोसी बोलते हैं। जहाँ तक स्थानीय बोलियों का सवाल है उनके छोटे से छोटे फ़रक़ भी हिन्दू और मुसलमानों में यकसाँ हैं। उर्दू ज़बान मुल्क में चारों तरफ़ सब लोगों में बोली जाती है। इसके बोलने वाले हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। यद्यपि हिन्दुओं का एक तबक़ा अपनी अनुदारता और अपनी कल्पना शक्ति की कमी के कारण इस बात को मानने से इनकार करता है किन्तु जिस आदमी के भी आँख कान हैं और जो आदमी देख सुन सकता है उसके सामने यह बात साफ़ है कि उत्तर भारत में, दक्षिणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हिस्से में और हैदराबाद में तथा दक्षिण के उत्तरी हिस्से में साधारण बात चीत में हमें उर्दू ही सुनाई देती है और साम्प्रदायिक मतभेद इस सम्बन्ध में कोई फ़रक़ नहीं पैदा करते। हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों में भी पढ़े लिखे और कल्चर्ड मुसलमान उर्दू समझते हैं और बोलते हैं और यही हालत पढ़े लिखे कल्चर्ड हिन्दुओं और ग़ैर मुसलमानों की है जो साथ साथ स्कूलों और कालिजों में तालीम पाते हैं। जिनकी आपस में दोस्तियाँ हैं और आपसी तिजारती ताल्लुक़ात हैं।

क़ौमियत का यह क़ुदरती उसूल इतना ज़बर्दस्त है कि यदि कोई भी अल्पमत वाला इसे तोड़ने की कोशिश करता है तो इसके बुरे नतीजे उसे उसी तरह भुगतने पड़ते हैं जिस तरह किसी भी अस्वाभाविक उसूल के पैरोकारों और अनुयायियों को भुगतने पड़ते हैं। मैं इस तरह भुगतने वालों की मिसालें यहाँ पर पेश न करूँगा चूंकि उससे इन सिद्धान्तों के मानने वालों की कोमल भावनाओं को चोट पहुँचेगी, किन्तु कोई समझदार आदमी इस तरह की मिसालें एशिया और अफ़रीका के अनेक मज़हबी गिरोहों में आसानी से देख लेगा। क़ौमियत की एक ख़ास मिसाल मिस्री क़ुप्तियों की है। ये लोग अपने को क़ौमियत के नुक़्ते नज़र से मिस्री समझते हैं। इनकी तुलना उन यहूदियों और आर्मीनियनों से कीजिये कि जो अपनी अलग क़ौमियत पर ज़ोर देते हैं। मैं नहीं समझता कि कोई भी मुसलमान या ख़ुद मिस्टर जिन्नाह उन नैतिक या राजनैतिक हालतों में रहना चाहेंगे कि जिन हालतों में इन क़ौमियतों के ये हिस्से रहते हैं।

तहज़ीबयाफ़्ता ज़िन्दगी के बहुत शुरू से हिन्दुस्तान एक अखण्ड मुल्क समझा जाता रहा है और पिछले ज़माने में हिन्दुस्तान के महान शासकों और राजनीतिज्ञों ने हमेशा मुल्क को एक राजनैतिक इकाई में गूँथने की कोशिश की है। यह काम हिन्दू शासकों ने शुरू किया और इसमें बहुत बड़ी कामयाबी मुग़ल शासकों की हुकूमत में मिली कि जिन्होंने हिन्दुस्तान की जनता के मुख़्तलिफ़ हिस्सों को एक राजनैतिक इकाई में ढाल लिया जो इकाई ताज जैसी सुरुचि-पूर्ण और भव्य इमारत के लिये और सांस्कृतिक उन्नति की समान बातों के लिये यकसाँ गर्व करती है। देश भर के लिये एक यकसाँ क़ौमी ज़बान भी मुग़ल शासन की ही उपज थी।

बहुत बीते हुये ज़माने को अगर हम देखें तो हम पायेंगे कि आर्य, यूनानी, शक और दूसरी विदेशी कौमें जो हिन्दुस्तान आईं हिन्दुस्तान को उन्होंने अपना घर बना लिया और अपनी क़ौमियत छोड़कर यहाँ की क़ौमियत में मिल जुल गईं। इनके बाद जो अरब, अफ़ग़ान और मुग़ल आये वे भी पूरी तरह हिन्दुस्तानी हो गये और यद्यपि उन्होंने अपना अलग मज़हब और अपनी अलग कल्चर क़ायम रखी फिर भी उन्होंने कभी अपने लिये अलहदा क़ौमियत की माँग का दावा नहीं किया।

सारे मुल्क को एक ही राजनैतिक ढांचे के अन्दर ले आने की क्रिया ब्रिटिश शासन के अन्दर पूरी हुई और आज कन्या अन्तरीप से लेकर हिमालय तक हमारी गुलामी की निशानी यूनियन जैक फहरा रहा है। लेकिन साथ ही साथ वह हिन्दुस्तान की एकता को भी ज़ाहिर करता है और हालाकि उस एकता पर गुलामी का दाग़ है फिर भी इसकी वजह से हमें इस फ़ायदे को नहीं छोड़ना चाहिए कि जिसे हासिल करना हमारे मशहूर बुज़ुर्गों की एक बहुत बड़ी ख़्वाहिश थी। क्या यह ज़रा भी अक़्लमन्दी की बात होगी कि हम तमाम इतिहास भूल जाँय और सदियों की कोशिशों को नष्ट करके फिर उसी जङ्गली युग में पहुँच जाँय जब लोग छोटे छोटे गिरोहों में रहना ज़्यादा पसन्द करते थे।

क़ौमियत की जो परिभाषा शब्द कोषों में मिलती है वह इस समय की हिन्दुस्तान की एकता की हालत की ताईद करती है और मामूली अक़्ल का यह तक़ाज़ा है कि जिस तरह पहले चीज़ें थीं और जिस तरह आज हैं उन्हें हम क़ुबूल करें और इस तरह की नई बातों में न पड़ें कि जिनके नतीजे बहुत फ़ायदेमन्द न होंगे और जो दुनिया के इतिहास में बहुत सी परेशानियों और ख़ूंरेज़ी के लिये ज़िम्मेवार हैं और इस मुल्क में भी जिनके इसी तरह के नतीजे होंगे।

## इस जंग का सबक़

इस जङ्ग ने इस बात को बहुत साफ़ कर दिया है कि छोटी क़ौमियतें अपने शक्तिशाली पड़ोसियों की दया पर निर्भर करती हैं। हमने बड़ी बड़ी हुकूमतों का अस्तित्व हिटलरी जत्थों और जापान के लालच के सामने मिटते देखा। पूर्वी और दक्षिणी एशिया की एक बहुत बड़ी आबादी और सारा यूरोप बावजूद बहुत शक्तिशाली मित्र राष्ट्रों की मदद के रौंद डाला गया। इस तरह की क़ौमियतें कि जिनको बाद में मित्र राष्ट्रों ने आज़ाद किया, अपने अतीत को देखते हुये खुश नहीं हैं क्योंकि वे बग़ैर विदेशी मदद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




के, कि जो बिना कीमत उन्हें न मिलेगी, न तो अपने राष्ट्रीय स्वार्थों की हिफ़ाज़त कर सकते हैं और न पुनर्निर्माण कर सकते हैं। यूनान में आज जो वारदातें हो रही हैं, उन्हें हर अख़बार पढ़ने वाला जानता है और उनके यहाँ बयान करने की ज़रूरत नहीं। ईरान ने मित्रराष्ट्रों को अपने मुल्क पर निर्विरोध कब्ज़ा करने दिया, और आज ईरानी तेल की दौलत को लेकर इन क़ाबिज़ मुल्कों में आपस में ही संघर्ष चल रहा है, और ईरानी ग़रीब अपने त्राणकर्त्ताओं के डर के मारे अपनी ही क़िस्मत के बारे में कोई फ़ैसला नहीं कर सकते। तुर्की अपने बाज़ुओं के ज़ोर पर नहीं बचा, बल्कि अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण बचा। पिछली जंग के बाद सर्ब, क्रोट और चेक लोगों ने अपने अपने लिये अलग अलग क़ौमियत का दावा पेश किया मगर बीस बरस नहीं बीते कि उन्हें अपने फ़ैसले के लिये पछताना पड़ा। इस युद्ध के बाद यूरोप का नक़शा शायद उतना रंग बिरंगा न होगा, क्योंकि उसकी बहुत सी क़ौमियतें इसी बात में अक़्लमन्दी समझेंगी कि दूसरी क़ौमियतों के साथ मिलकर किसी संघ शासन में शरीक हो जायँ।

मौजूदा युद्ध की मशीनरी बड़ी क़ीमती है और कोई मुल्क उस वक्त तक अपनी आज़ादी कायम नहीं रख सकता जब तक उसके पास काफ़ी हथियारों की ताक़त और हमला रोकने के साधन न हों। इसके लिये फ़ौजों को खिलाने के लिये रसद के एक बड़े स्टोर के अलावा धातुओं, रबर और पेट्रोल की एक बहुत बड़ी मिक़दार की ज़रूरत है। इसके लिये बहुत बड़े पैमाने के आधुनिक जंग के हथियार बनाने के लिये कल-कारख़ानों की ज़रूरत है, यानी दुनियाँ को नष्ट भ्रष्ट करने के लिये और आबादियों को खंडहर बनाने के लिये विज्ञान ने हवाई जहाज़, टैंक और बमों की जो निहायत बढ़िया है, उन्हें बनाने के साधन होने चाहियें। इन नाशकर अस्त्र शस्त्रों से अपनी हिफ़ाजत करने के लिये खनिज द्रव्यों और उनको इस्तेमाल करने के साधन होने चाहियें। अगर दो नेशन्स के उसूल पर हिन्दुस्तान के दो टुकड़े कर दिये गये, तो इन चीजों में एक टुकड़ा दूसरे टुकड़े के मुकाबिले में ग़रीब होगा और वह मज़बूत टुकड़े की मेहरबानी पर मुनहस्सर करेगा। केवल संयुक्त भारत ही अपनी आज़ादी क़ायम रखने के लिये काफ़ी साधन इकट्ठा करने की उम्मीद कर सकता है।

आजकल काफ़ी जन-शक्ति और भौतिक साधनों पर लड़ाई की हार जीत निर्भर करती है। हमने यह देखा है, कि जब तक इन बातों में मित्रराष्ट्रों की तैयारी काफ़ी नहीं थी, तब तक वे लड़ाई में हारते रहे और दुश्मन मज़बूत पड़ता रहा। यूरोप के दूसरे मोर्चों पर मित्रराष्ट्रों की मज़बूती की वजह उनके हथियारों की अच्छाई थी और इसी वजह से यूरोप के युद्ध में उन्हें कामयाबी हुई।

युद्ध जीतने के लिये एक या दो मोरचों पर हथियारों का ज़्यादा होना काफ़ी नहीं है इसके लिये सभी मोरचों पर काफ़ी हथियारों की ज़रूरत है और इस बात की भी ज़रूरत है कि हथियारों की सप्लाई कभी भी टूटने न पाये। हवाई जहाज, टैंक और दूसरे मैकेनाइज़्ड हथियारों के लिये काफ़ी, पेट्रोल की जरूरत है। बगैर पेट्रोल के यह चीज़ें काम नहीं दे सकतीं और बग़ैर रसद के फौज़ें देर तक और अच्छी तरह नहीं लड़ सकतीं इसलिये हथियारों, रसद या पेट्रोल की कमी युद्ध में हरा सकती है। ईरान में बहुत बड़ी मिक़दार में पेट्रोल होता है मगर ईरान को बगैर एक बूंद खून बहाए इसलिये हथियार डाल देने पड़े चूंकि जो मशीनें पेट्रोल पीती हैं वह उसने बनाई ही नहीं थीं। जापान को सबसे पहले बरमा पर इसलिये धावा बोलना पड़ा चूँकि जापान को पेट्रोल की ज़रूरत थी कि जिस पेट्रोल से उसकी मशीनें दक्षिण प्रशांत सागर की तरफ बढ़ सकती थीं और मित्र राष्ट्र बरमा के तेल के कुओं पर इसलिये जापानियों के क़ब्जे को न रोक सके क्योंकि जापानियों ने उनसे बढ़कर लड़ाई की तैयारी कर रखी थी।

अफ्रीका के युद्ध की भी यही कहानी है। जब तक मित्रराष्ट्रों की तैयारी पूरी नहीं हुई तब तक बावजूद अपने पक्ष में न्याय होते हुये भी और जोश के रहते हुये भी वे हार पर हार खाते रहे। अब इस बात को सभी जानते हैं कि मित्रराष्ट्रों की जिस फ़ौज के सामने जर्मन जनरैल अर्निम ने हथियार डाले वह उस फ़ौज से अपने हथियारों और सपलाई में कहीं ज़्यादा बेहतर थी उस फ़ौज के मुक़ाबले में कि जिसे रेगिस्तान में रोमेल ने खदेड़ा था।

मगर इस युद्ध से हमने महज़ फ़ौजी ताक़त की कामयाबी का रहस्य ही नहीं सीखा है। हमने शान्तिकालीन सुरक्षा का बहुत बड़ा सबक़ सीखा है कि जो सुरक्षा औद्योगिक उन्नति और बहुत बड़े पैमाने पर जन-शक्ति से क़ायम होती है। क्या संयुक्त राष्ट्र अमरीका की यही सुरक्षा शक्ति नहीं थी कि जिसने युद्ध के पलड़े को पलट दिया? इस ठोस ताक़त ने अन्तिम विजय के लिये लोगों के मन में जितना विश्वास पैदा किया उतना ब्रिटिश प्रीमियर के ज़बानी वादों ने नहीं किया। इस तरह केवल संयुक्त भारत ही एक क़ौमियत के प्रत्येक इरादे की भावना से आज कल के



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तित्व के संघर्ष में अपने को बचाने और क़ायम रखने में सफल हो सकता है। संयुक्त भारत अपनी चालिस करोड़ जन शक्ति को मैदान में उतार सकता है। वह दक्षिण के खनिज पदार्थों को, उत्तर की खेती की पैदावार को और मध्य भारत और उत्तर भारत के जंगलों को युद्ध में और शान्ति में अपने को मज़बूत बनाने के उपयोग में ला सकता है ताकि हम विदेशी हमलों से अपने मुल्क को सफलता के साथ बचा सकें। हिन्दोस्तान का समुद्री किनारा एक लाइन में दूर तक फैला हुआ है और लम्बे लम्बे फ़ासिलों पर स्वाभाविक बन्दरगाह बने हुये हैं और अगर हिन्दोस्तान के टुकड़े टुकड़े कर दिये जाँय तो समुद्री हमले से अपने मुल्क को बचाना बंटे हुये भारत के लिये एक मुश्किल काम हो जायगा। केवल संयुक्त भारत की जल सेना ही हिन्दोस्तान के नाज़ुक मुक़ामों की हिफ़ाज़त कर सकती है।

केन्द्रीय सरकार ने इस युद्ध में राशनिङ्ग और कन्ट्रोल की जो नीति बरती है उसकी अख़बारों और मीटिङ्गों में काफ़ी आलोचना की गई है। लेकिन इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि केवल एक केन्द्रीय संगठन ही हिन्दोतान की हालत को बदतर होने से बचा सकता है। अगर बङ्गाल को उसकी अपनी क़िस्मत पर छोड़ दिया गया होता और सारा मुल्क उसकी मदद न करता तो बङ्गाल में मरने वालों की तादाद कहीं ज़्यादा पहुँच गई होती।

इस लड़ाई के बाद हमें आर्थिक परेशानी, तिजारती ढिलाई और बेकारी का सामना करना पड़ेगा और परिस्थिति को हम तभी सुधार सकते हैं जब पूरा देश मिलकर इसकी कोशिश करेगा। बरख़ास्त किये हुये सैनिकों की बहुत बड़ी तादाद यदि मुल्क के एक हिस्से में आकर इकट्ठा होगी तो खाने पीने के सामान का बहुत बड़ा स्टाक दूसरे सूबों में इकट्ठा होगा। ऐसी सूरत में अगर एक सूबा एक तरफ़ चला और दूसरा सूबा दूसरी तरफ़ चला तो देश का जोड़ तोड़ मिलाना मुश्किल हो जावेगा।

इस बात को लेकर युद्ध पश्चात निर्माण की महत्वपूर्ण समस्या हमारे सामने आती है। आजकल इस पर गम्भीरता के साथ योजनायें बनाई जा रही हैं। अगर हम इसे कुल हिन्दुस्तान के नुक़्ते नज़र से ग़ौर न करेंगे, तो तराजू ठीक न बैठेगी। चूँकि मुल्क के साधनों को काम में लाने के लिये, और बड़े पैमाने के लिये उद्योग धन्धे शुरू करने के लिये धन की, श्रम-शक्ति की और साधनों की ज़रूरत है, और ये सारी शर्तें टुकड़े हुआ भारत पूरी नहीं कर सकता इसलिये ऐसी कोई योजना जो संयुक्त भारत की दृष्टि से बनाई जायेगी, कभी सफल न होगी। टाटा और जैसी फैक्टरियां और जमालपूर जैसे टेकनिकल शिक्षा केन्द्र एक दिन में नहीं बना करते और अगर ये सब हुये भारत के एक हिस्से में पड़ गये तो दूसरे हिस्से को बड़ा नुकसान हो जायेगा। भारत के भावी औद्योगिक में इनका बड़ा महत्वपूर्ण हाथ होगा, और मुल्क के एक हिस्से को इनसे फ़ायदा उठाने की इजाज़त न दी जाये हिन्दुस्तान का जो हिस्सा इन बड़े बड़े औद्योगिक केन्द्रों फ़ायदा उठाने में महरूम रहेगा वह बहुत बड़े घाटे रहेगा। फिर इसके अलावा दक्षिण की सोने और की खानें भी बड़ी क़ीमती चीज़ें हैं। जिस हिस्से में ये न पड़ेंगीं, वह हमेशा के लिये ग़रीब रह जायेगा। खेती की पैदावार से इनकी कमी को पूरा नहीं किया सकता, क्योंकि जिनके पास औद्योगिक दौलत और सोना वे खेती की पैदावार को जब चाहे आसानी से ख़रीद सकते हैं। आने वाले हिन्दुस्तान में बहुत बड़े पैमाने कल कारखाने बनेंगे और अगर इन्सान की कल्पना की क़ीमत है, तो इस बात की भविष्यवाणी की जा सकती कि खेती की पैदावार के मुक़ाबिले में औद्योगिक बेशुमार बढ़ जायेगी। और जिस टुकड़े में खानों बाड़ी पड़ेगी, वह आर्थिक दौड़ में हार जायेगा आर्थिक ग़रीबी के साथ साथ सभ्य जीवन के तमाम में ग़रीबी छा जायेगी।

अगर दो नेशन्स के उसूल के वीर प्रचा ने इन समस्याओं पर अब तक ग़ौर नहीं किया मैं ऊपर लिखे वाक़यात उनकी नज़र करने की करता हूँ।

## कल्चरल पहलू

क़ब्ल इसके कि दो नेशन्स के उसूल पर बहस की मैं यहाँ पर हिन्दुस्तान की आबादी के बँटवारे के आँकड़े दूँगा जो इस बात को दिखा सकें कि और मुसलमान मुख़्तलिफ़ सूबों की आबादियों में किस मिले जुले रहते हैं और जिसकी वजह से दो नेशन्स उसूल के मुताबिक़ भौगोलिक दृष्टि से मुल्क का कर सकना नामुमकिन है। नीचे के आंकड़े जो १९४१ मरदुमशुमारी रिपोर्ट से लिये गये हैं अपनी कहानी कहते हैं। यह आँकड़े लाखों में दिये गये हैं:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## मर्दुमशुमारी के आंकड़े

| सूबे या रियासतें | हिन्दू | मुसलमान |
|---|---|---|
| मद्रास | ४२८ | ३९ |
| बम्बई | १६५½ | १९⅛ |
| बङ्गाल | २५०½ | ३३० |
| यू० पी० | ४५८ | ८४⅛ |
| पञ्जाब | ७५½ | १६३⅛ |
| बिहार | २२९ | ४७⅛ |
| सी० पी० | ९९½ | ४½ |
| बरार | ४५½ | ३½ |
| आसाम | ४२⅛ | ३४½ |
| सूबा सरहद | १⅜ | २८ |
| उड़ीसा | ६८½ | १½ |
| अजमेर-मारवाड़ | ३⅜ | १ |
| बलूचिस्तान | ½ | ४¾ |
| सिन्ध | १०⅛ | ३२ |
| दिल्ली | ५½ | ३ |
| बड़ौदा | २२ | ४⅛ |
| कोचीन | ९ | १ |
| ग्वालियर | ३४½ | २½ |
| हैदराबाद ( दक्खन ) | ६८ | २१ |
| काश्मीर | ८ | ३०¾ |
| मैसूर | ६½ | ½ |

इनके अलावा ६०½ लाख हिन्दुस्तानी ईसाई, १⅛ लाख एंग्लो इन्डियन, १½ दूसरे ईसाई, ५७ लाख सिख, १४ लाख जैन, १⅛ लाख पारसी, २½ लाख बौद्ध, ⅛ लाख यहूदी तमाम हिन्दुस्तान में फैले हुये हैं और दूसरे सम्प्रदायों के साथ मिले जुले हैं। कबीलों के लोग कि जिनकी तादाद २५४½ लाख और दूसरे अन्य ४ लाख इन सब के अलावा हैं। कबीलों के लोग और दूसरे सम्प्रदायों से अलहदा रहते हैं और उन लोगों के लिए एक सबक हैं कि जो दो नेशन्स के उसूल में विश्वास करते हैं। मुझे उम्मीद है कि दो नेशन्स के मानने वाले अपने सम्प्रदायों को क़बीलों की तरह पतित और निकम्मा न बनायेंगे। इन कबीलों के अलावा बाकी तमाम हिन्दुस्तानी जमातें मुख़्तलिफ़ क्षेत्रों की आबादी में इतनी मिली जुली हैं कि इनके बीच मेंकी है लकीर नहीं खींची जा सकती। यह एक आम तजुरबा है कि मुल्क के किसी भी हिस्से में कोई हिन्दू १०० मील तक बग़ैर मुसलमानों से मिले हुये सफ़र नहीं कर सकता—यही हालत एक मुसलमान की भी होगी। ऐसे हिस्से कि जहां किसी एक सम्प्रदाय की बहुत ज़्यादा आबादी है लगातार नहीं जैसे पंजाब और सरहद में मुसलमान आबादी बहुत ज़्यादा है और सुदूर पश्चिमी भाग में बसी हुई है जब कि बंगाल में मुस्लिम आबादी का बहुमत ठेठ पूरब में बसा हुआ है और इनके बीच में लम्बा चौड़ा उपजाऊ भू-भाग फैला हुआ है कि जिसकी घनी आबादी में हिन्दुओं की तादाद बहुत ज़्यादा है। ज़ाहिर है कि पंजाब की सरहद का बंगाल से मिल सकना भौगोलिक दृष्टि से बिल्कुल नामुमकिन है। तब दो नेशन्स के उसूल के मुताबिक़ इन दोनों हिस्सों की सरकारें किस तरह आपस में सहयोग करेंगी? और बीच के सूबों बिहार और यू० पी० में रहने वाले मुसलमानों की क्या हैसियत होगी? दो नेशन्स के प्रचारकों ने अब तक इन सवालों के हल का कोई सन्तोषजनक तरीक़ा नहीं पेश किया है।

आल इण्डिया मुसलिम लीग के लाहौर अधिवेशन की तजवीज़ के मुताबिक़ हिन्दुस्तान की भौगोलिक सरहदों का इस तरह बटवारा होना चाहिये कि जिन लगातार रक़बों में मुसलमानों का बहुमत है वहाँ स्वाधीन मुसलिम रियासतें क़ायम की जा सकें और इसी तरह जिन लगातार रक़बों में हिन्दुओं का बहुमत हो वहाँ स्वाधीन हिन्दू रियासतें क़ायम हों। इस तरह के रक़बों में आबादी के आंकड़ों को देखते हुये कि जहाँ मुसलमान या हिन्दू बहुमत में हैं पञ्जाब के पूरबी १२ ज़िले ऐसे हैं कि जहाँ साफ़ हिन्दू बहुमत है और इसी तरह पश्चिमी बङ्गाल के १२ ज़िले ऐसे हैं कि जहाँ हिन्दू बहुमत है। हिन्दू बहुमत वाले पञ्जाब और बङ्गाल के ये ज़िले न सिर्फ़ एक दूसरे से मिले हुये हैं बल्कि हिन्दुस्तान के दूसरे बहुमत वाले प्रान्तों से भी मिले हुये हैं। लिहाज़ा इन ज़िलों को मुसलिम क्षेत्रों में शामिल नहीं किया जा सकता। लगातार मुसलिम बहुमत वाले रक़बों में सिन्ध, बलूचिस्तान और सूबा सरहद के तीनों प्रान्त और पञ्जाब और बङ्गाल का आधा हिस्सा बच रहता है कि जिनकी मुसलिम हुकूमतें बनाई जा सकती हैं। इन रक़बों की मुसलिम आबादी ३½ करोड़ से कुछ ज़्यादा है जबकि ५ करोड़ से ज़्यादा मुसलमान हिन्दू बहुमत वाले दूसरे प्रान्तों में फैले हुये हैं कि जिनकी हिन्दू रियासतें बनेंगी। यह कौनसी अक़्ल की बात है कि पांच करोड़ मुसलमानों को ३½ करोड़ मुसलमानों के ऐसे फ़ायदे के लिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कुरबान कर दिया जाय कि जिन फ़ायदों के बारे में अब भी सन्देह है। दो नेशन्स के मानने वालों को इसका जवाब देना अब भी बाक़ी है।

हिन्दुस्तान एक ऐसा मुल्क है कि जहां हर तरह का मौसम और आबोहवा है और जिसका हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों पर यकसां असर पड़ता है। उत्तर में बर्फ़ से ढकी हुई हिमालय की चोटियां हैं। फिर गङ्गा सिन्धु और ब्रह्मपुत्र के उपजाऊ मैदान हैं। उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में ज़्यादा गरमी नहीं पड़ती जबकि दक्षिण में काफ़ी गरमी पड़ती है। पूरब में बेहिसाब बारिश होती है और राजपूताने में रेगिस्तान है। पश्चिमी घाट में जंगल से लदे हुए पहाड़ हैं तो सिन्ध में सूखी पहाड़ियां हैं। हर हिस्से की भौगोलिक हालत, मौसम और आबोहवा बग़ैर जात पाँत या मज़हबी लिहाज़ के वहाँ के लोगों के खान पान और वेषा भूषा पर असर डालती है। मुल्क के भीतरी हिस्सों में हिन्दुओं और मुसलमानों में तमीज़ करना बहुत मुशकिल है, चूँकि दोनों यकसां खाना खाते हैं और यकसां कपड़े पहनते हैं। काशमीर के गोरे चेहरे और दक्षिण के साँवले चेहरे हिन्दू और मुसलमानों दोनों में यकसां हैं। मुल्क के किसी भी हिस्से में साम्प्रदायिक आबादियों का बँटवारा ज़ाहिरा लकीर खींचकर नहीं किया जा सकता। और ये लोग बिना धर्म या जाति के लिहाज़ के सारी दुनिया में हिन्दुस्तानी कहलाते हैं। इस बड़े मुल्क का कोई भी बाशिन्दा यदि बाहर जायगा, चाहे वह पड़ोसी मुल्कों अफ़ग़ानिस्तान या ईरान में ही क्यों न जाय, विदेशी समझा जायगा और मज़हबी बिना पर उसके साथ कोई ख़ास रियायतें न की जांयगी।

हमारे मुल्क की सीमाओं में उत्तर में महान हिमालय है, उत्तर-पश्चिम में हिन्दुकुश है, उत्तर-पूर्व में चीनी पहाड़ियां हैं और पूरब में अरब समुद्र और दक्षिण और पश्चिम में हिन्द महासागर है। ये सारी सीमायें हमारे देश को एक भौगोलिक इकाई बनाती हैं कि जिसके टुकड़े नहीं किये जा सकते। उत्तर और दक्षिण तक के हिस्से नहीं किये जा सकते क्योंकि दोनों के बीच में कोई भौतिक या सांस्कृतिक अलहदगी नहीं है। मध्य भारत उत्तर और दक्षिण के बीच में एक कड़ी है कि जो हर अर्थों में देश में एक लगातार क्षेत्र की भावना क़ायम रखती है। रेलें, सड़कें और तिजारत व सांस्कृतिक सम्पर्क के आजकल के तरीक़ों ने जो छोटी मोटी रुकावटें कभी रही होंगी उन्हें भी ख़त्म कर दिया।

दो नेशन्स के उसूल के मातहत देशी राज्यों की समस्या सुलझाना कुछ आसान नहीं। निज़ाम और काशमीर की दो मिसालें बहुत साफ़ हैं। दोनों के बीच में हज़ारों मील का फ़ासला है। काशमीर में मुसलमान आबादी का बहुमत है और राजा हिन्दू है जबकि हैदराबाद दखन में हिन्दू बहुमत है और शासक मुसलमान है। यदि काशमीर को मुसलिम रियासत में शामिल किया जायगा तो हैदराबाद हिन्दू शासन में देना पड़ेगा। किन्तु क्या हम इस परिवर्तन की बात सोच सकते हैं?

आबादियों के ऊपर दिये हुये आंकड़ों की रोशनी में अब हम कुछ दूसरी समस्याओं पर भी ग़ौर करें। हिन्दुस्तान के उत्तरी हिस्से में घनी आबादी वाला और खूब उपजाऊ फैला भूभाग है। यहां के रहने वालों में हिन्दुओं की तादाद ज़्यादा है। पञ्जाब और सरहद इसके पश्चिम में हैं और बङ्गाल पूर्व में है। लेकिन मुल्क के इसी हिस्से में मुसलमानों की सबसे प्यारी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक यादगारें हैं। लाल क़िला, कुतुब मीनार और जामा मसजिद वाली दिल्ली जोकि सदियों तक हिन्दुस्तान में मुसलिम हुकूमत का केन्द्र रही है और जहां पर मुसलिम संस्कृति और सभ्यता फली फूली है, इसी क्षेत्र में है। आगरे का शहर कि जहां ताज की सुन्दर इमारत है और जहां अकबर की शान शौक़त की याद दिलाने वाली फतहपुर सीकरी है वह भी इसी क्षेत्र में है। कला, विद्या और शाही उदारता की बुझती हुई मुशल मशाल को कुछ देर तक थामे हुये प्रकाश फैलाने वाला लखनऊ का शहर भी इसी क्षेत्र में है। शर्की सुलतानों की राजधानी जौनपुर, कि जहां अनेकों आलीशान मस्जिदें बनी हुई हैं, इसी इलाक़े में है। इसी इलाक़े में महान मुसलिम सन्तों जैसे हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया, हज़रत ख़्वाजा मुइनुद्दीन अजमेरी, हज़रत ग़ुलाम साबिर (कलियर शरीफ़), मख़दूम अब्दुल हक़ (रुदौली) शाह अब्दुर रज़्ज़ाक़ (बन्सा) और दूसरे तमाम मुसलिम सन्तों की दरगाहें इसी क्षेत्र में बनी हुई हैं जहां बेशुमार मुसलमान हर साल मेलों में इकट्ठा होते हैं। इन तमाम दरगाहों को भी हिन्दू हुकूमत के सुपुर्द करना पड़ेगा कि जो मुसलमानों को बहुत प्रिय न लगेगा। इसके अलावा मुसलिम भारत का संस्कृति केन्द्र अलीगढ़ भी इसी क्षेत्र में है। उसे भी हिन्दू हुकूमत के सुपुर्द करना पड़ेगा। अलीगढ़ के कुछ प्रोफ़ेसरों ने इसी डर से अपने विद्यालय को हिन्दू हुकूमत में जाने से बचाने के लिये हिन्दुस्तान के बँटवारे के लिये एक ऐसी योजना बनाई है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri





कि जिसमें एक कारीडोर के ज़रिये अलीगढ़ को पंजाब के साथ जोड़ा गया है। कारीडोर की अच्छाई बुराई पर और बहस किये ही योजना का निकम्मापन आसानी से समझा जा सकता है। क्योंकि मैनपुरी, एटा, बुलन्दशहर, दहाबूँ और दूसरे ज़िलों के लोग जो अलीगढ़ में तालीम पावेंगे नौकरी की तलाश में पंजाब न जायेंगे और अगर वे भी तो उन्हें बहुत कामयाबी न मिलेगी। पंजाबियों का पंजाबीपन और उनकी प्रांतीयता बहुत मशहूर है जिसके उल्लेख की यहाँ ज़रूरत नहीं। इस प्रांतीयता के निकट भविष्य में न तो दबने की उम्मीद है और न मरने की। अलीगढ़ का सारा महत्व समाप्त हो जायेगा यदि वहां के ग्रेजुएटों को अपने प्रान्त में नौकरी न मिलेगी। यदि कारीडोर बना तो यही हालत होगी। और अगर यह न किया गया तो अलीगढ़ को मृत्यु या निर्वासन दोनों में से एक चीज़ चुननी पड़ेगी और सर सय्यद अहमद का महान सपना और मुसलमान शिक्षा शास्त्रियों की मेहनत बेकार जायेगी।

हिन्दुओं के साथ भाईचारा क़ायम करने के अपने जोश में और राष्ट्रीयता के बन्धनों को मज़बूत करने की ख्वाहिश से मुसलमानों ने अपनी मातृभाषा फ़ारसी को छोड़कर हिन्दुओं की सहायता द्वारा मुक़ामी हिन्दुस्तानी बोलियों से उर्दू नाम की एक नई ज़बान निकाली जिसने एक सदी से ज़्यादह हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एक समान संस्कृति की कड़ी और एकता के सूत्र का काम दिया। अब हिन्दुओं की एक जमात इस सांस्कृतिक सूत्र उर्दू का इसलिये विरोध कर रही है चूँकि मुसलमानों से इसका सम्पर्क रहा है। किन्तु मुसलमानों ने इस नई ज़बान के बनाने में अपनी तमाम किश्तियां जला दीं और अब वे फ़ारसी और अरबी ज़बान पर उसी तरह वापस नहीं जा सकते जिस तरह हिन्दू संस्कृत को अब अपनी बोलचाल की भाषा नहीं बना सकते। उर्दू ज़बान में भारतीय संस्कृति का समन्वयात्मक रूप और भारतीय मुसलमानों की सांस्कृतिक परम्परा सुरक्षित है। उर्दू उस क्षेत्र में सबसे ज़्यादा प्रिय है कि जो क्षेत्र दो नेशन्स के बटवारे में हिन्दू स्थान के अन्तर्गत चला जायगा। उर्दू के दो माने हुये केन्द्र लखनऊ और दिल्ली इसी क्षेत्र के भीतर हैं। डाक्टर अब्दुल हक़ और डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद के सम्मिलित बयान में कि जिसमें भारत की क़ौमी ज़बान की समस्या पर विचार किया गया था लिखा है कि—"हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तान की राष्ट्र भाषा होगी" और हिन्दुस्तानी से उनका मतलब था—"उत्तर भारत में बोली जाने वाली और सब में ज़्यादा समझी जाने वाली ज़बान।" अगर हिन्दुस्तान को दो नेशन्स के उसूल के मातहत बाँट दिया जायगा तो यह क़ित्ता भी जो क़ौमी ज़बान का केन्द्र होगा हिन्दू हुकूमत में चला जायगा।

सिर्फ़ ज़बान के मामले में ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक जीवन के दूसरे पहलुओं में भी मुसलमानों ने अपनी संस्कृति छोड़कर संस्कृति के शुद्ध भारतीय रूप या ज़रा से सुधरे हुये रूप को अपना लिया और इन सारी चीज़ों के अपनाने में उन्होंने हमेशा अपने सामने भारतीय राष्ट्रीयता को रखा। इस तरह पोशाक, बोलने के तर्ज़, दरबारी तरीक़ों, चित्र कला, निर्माण कला, ग्रामगीत और नृत्य आदि में भारतीय मुसलमानों ने अपने को इतना अधिक राष्ट्रीय बना लिया कि अब उन्हें उससे अलग नहीं किया जा सकता।

अख़बारों के पाठक इस तरह की नई और पुरानी कम्पनियों के विज्ञापन से अपरिचित न होंगे, कि जिनके डाइरेक्टरों में हिन्दू और मुसलमान दोनों के नाम पाये जाते हैं। हर तरह की ऊँची, सामाजिक और राजनैतिक हल-चलों में हिन्दू और मुसलमान साथ साथ काम करते नज़र आते हैं। प्रथक साम्प्रदायिक चुनावों द्वारा चुने हुये हिन्दू और मुसलमान साथ साथ काम करते हैं और सरकारी कृपा पाने और ज़िन्दगी में एक दूसरे की मदद से तरक़्क़ी करने में प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। स्थानीय संस्थाओं, म्युनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड, असेम्बली, कौंसिलों में ख़ालिस हिन्दू वोटों से चुने हुये हिन्दू और ख़ालिस मुसलमान वोटों से चुने हुये मुसलमान इन संस्थाओं की मुख़्तलिफ़ कमेटियों में एक दूसरे के वोट से चुने जाते हैं। इस तरह अपने अपने सम्प्रदाय के ग़रीब वोटरों को तो इन्होंने दूसरे सम्प्रदाय के प्रतिनिधि चुनने से वंचित कर दिया है लेकिन खुद अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिये दूसरे सम्प्रदाय के चुने हुये मेम्बरों के वोटों से अपने को चुनवाने में ये कोई शर्म अनुभव नहीं करते। प्रथक निर्वाचन से कोई ग़रीबों का फ़ायदा नहीं हुआ बल्कि थोड़े से मध्य वर्ग के ऊपरी लोगों का फ़ायदा हुआ है। देश के बँटवारे से जिस वर्ग का फ़ायदा होगा वह यही मध्य वर्ग है। ग़रीब मुसलमानों और ग़रीब हिन्दुओं का इस बँटवारे से कोई फ़ायदा न होगा।

दो नेशन्स के उसूल को मानने से जो समस्यायें पैदा



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


होती हैं उनमें से कुछ का ज़िक्र मैंने यहां किया है। हर तरह की और बीसों समस्यायें रोज़मर्रा के अनुभव मे सामने आ सकती हैं। इस तरह यह दो नेशन्स का सिद्धान्त बजाय साम्प्रदायिक समस्या हल करने के बीसों और उलझनें पैदा कर देता है। और इससे इतनी कटुता और दुर्भावना पैदा हो सकती है कि जिससे सारे देश में सनसनी पैदा होती रहे और जो गृह युद्ध को जन्म देती रहे। इससे न हिन्दुओं का भला होगा और न मुसलमानों का। इस तरह से बँटा हुआ भाग कभी शान्ति से नहीं रह सकता और अल्पमत वालों की फ़र्ज़ी और वास्तविक तकलीफ़ें कभी इस हिस्से और कभी उस हिस्से में, बदले की भावना पैदा करती रहेंगी। देश का चाहे जिस तरीक़े से बँटवारा किया जाय हिन्दू हिस्से में मुसलमानो की और मुसलमान हिस्से में हिन्दुओं की एक बड़ी तादाद बनी रहेगी और आपसी बदगुमानियां पैदा करती रहेगी। मुसलिम लीग की क़ायम की हुई पीरपुर की रिपोर्ट में कांग्रेसी सरकारों पर इन सूबों ( युक्त प्रान्त, बिहार, मध्य प्रान्त और बम्बई ) को लेकर काफ़ी इलज़ाम लगाये गये थे। और यही सूबे, जहां कि मुसलमानों पर कांग्रेसी सरकारों ने तथाकथित ज़ुल्म किये थे, दो नेशन्स के बँटवारे में हिन्दुओं की दया पर छोड़ दिये जायेंगे। मुसलमानों को अपने मसीहा की सूझ पर ताली बजानी चाहिये। दो नेशन्स के उसूल का यह सबमें गहरा मज़ाक़ है।

## समाप्ति

मैंने बहुत संक्षेप में दो नेशन्स के कुछ पहलुओं का यहां ज़िक्र किया है और इसके दूसरे पहलू आर्थिक, वैधानिक, क़ानूनी आदि पर इसलिये बहस नहीं की चूँकि आम मुसलमान इन पहलुओं पर सोचने में कोई दिलचस्पी नहीं लेते। फिर भी मैंने काफ़ी इशारे कर दिये हैं कि जो घटनाओं और आंकड़ों की मदद से तर्क द्वारा हमें इस समस्या पर सोचने के लिये उभारेंगे और हमें इस बहुत ख़तरनाक, अधार्मिक, अस्वाभाविक और नाशकर दो नेशन्स के उसूल पर संजीदगी से ग़ौर करने के लिये बाध्य करेंगे, कि जो उसूल किसी तरह भी मुसलमानों को इस मुल्क में सुखी और स्वस्थ जीवन बिताने में मदद न देगा और जिससे समस्या बजाय सुलझने के और भी उलझ जायेगी।

दो नेशन के समर्थकों के पास अपनी वकालत के लिये कोई मज़बूत दलीलें नहीं हैं और इसलिये वे हमेशा बोदा जवाब देने में बगलें झांकते हैं। शुरू शुरू में इन लोगों ने क़ुरान और हदीस से अपने इस सिद्धान्त का समर्थन किया किन्तु उनको जब यह दिखाया गया कि क़ुरान और हदीस के ये हवाले उनकी बात का समर्थन नहीं करते, बल्कि क़ुरान और हदीस में तमाम ऐसे वाक्य हैं जो उनके सिद्धांत का खण्डन करते हैं तो ये लोग पैंतरा बदलकर कहने लगे कि यह शुद्ध वैधानिक सवाल है और इसका ताल्लुक आज कल की परिस्थितियों से है और इसकी कोई नज़ीर उस ज़माने में नहीं मिलती जब इसलाम पैदा हुआ था। कोई भी मुसलमान कैसे इस बात को मान सकता है कि इसलाम की शिक्षा सब ज़माने और सब हालतों के लिये नहीं है। फिर भी हम मिस्टर जिन्नाह से इस एक ख़ास प्वाइन्ट पर सफ़ाई चाहेंगे कि वे इस बात का ऐलान करें कि उनके इस दो नेशन के उसूल को इसलाम की शिक्षा क़ुबूल करती है या नहीं?

पिछले पृष्ठों में मैंने यह बात साबित की है कि बंटवारे का यह उसूल न केवल अधर्मी है बल्कि विधर्मी है। इसके अलावा यह अस्वाभाविक और अनुचित भी है और आधुनिक परिस्थितियों के बिलकुल अनुपयुक्त है। मैं चाहूँगा कि मेरे मुसलमान भाई थोथे नारों और शब्दजाल के फेर से निकलकर ठण्ढे दिल से इस बात पर ग़ौर करें। तब वह देखेंगे कि उनके नेता उन्हें बहकाकर ऐसे रास्ते पर ले जा रहे हैं, कि जिसमें ऐसी सूरतें पैदा होंगी, जो आज की अपेक्षा बहुत ज़्यादा बदतर होंगी। नेताओं की चमक दमक और क़ायदे आज़म के नारों से लोगों की तर्क शक्ति कुंठित न होनी चाहिये। इसलाम इस बात की शिक्षा देता है कि हम अपने सोचने की शक्ति को इस्तेमाल करें और जो आदमी ऐसा करने से हमें मना करता है, उसकी बात सुनने से हम इनकार कर दें। इसी की मदद से हम भटकने से बच सकते हैं। लम्बे चौड़े शब्दों और आकर्षक में गूंजने वाले नारों के भ्रम जाल से हम अपनी रक्षा कर सोचने की शक्ति द्वारा बच सकते हैं और साम्प्रदायिक राष्ट्रीय समस्याओं को ठीक ठीक रोशनी में देख सकते हैं।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# निमि

श्री आरसीप्रसाद सिंह

[ प्राचीन मिथिला का एक विख्यात सम्राट। अन्तः पुर में अकेला बैठा एक प्रकार का तत्कालीन वाद्य यन्त्र, जो आधुनिक वीणा से बहुत कुछ मिलता जुलता है, बजा रहा है और धीरे-धीरे गा रहा है। रात के लगभग ग्यारह बजे हैं। ]

दरबारी कानड़ा

तीन ताल

गीत

माया, माया, तू माया है!
तू तो मेरी ही छाया है!
तुझको रूप मिला मतवाला,
लेकिन, दिल है काला-काला!
तेरे जादू ने सिर पर चढ़
दुनिया को चकमे में डाला!
देख मोहिनी लीला तेरी
परमेश्वर भी चकराया है!
माया, माया, तू माया है!

[ सहसा एक सन्तरी प्रवेश करता है। ]

सन्तरी

महाराज!

[ निमि नहीं सुनता। यन्त्र और गीत के साथ जैसे उसके प्राण उलझे हैं और वह गाता ही जा रहा है—माया, माया, तू माया है!..... ]

सन्तरी

पृथ्वीपति!

निमि

क्या है?

[ सम्राट ने सन्तरी की ओर देखा तक नहीं। उँगलियां चल रही हैं, कंठ से गीत झंकृत हो रहा है। ]

सन्तरी

समाचार है दारुण,
जिसे निवेदन करने आया।

निमि

क्या कोई है अशकुन?
बोलो, जल्दी बोलो।

सन्तरी

स्वामी, अग्नि-काण्ड है भीषण
मचा हुआ सम्पूर्ण नगर में।
त्राहि-त्राहि पुरजन करते हैं।

[ निमि सन्तरी की ओर देखता है। ]

निमि

बस, इतनी-सी ही बात? और यह हलचल?
जाओ,
कह दो तुम मन्त्री से। देखें, वह घटना स्थल।
जाओ।

सन्तरी

महाराज, मंत्रीवर तो हैं वहाँ उपस्थित।
लेकिन, काण्ड भयानक है, उत्पात प्रचण्ड अपरिमित।
रुकता नहीं अग्नि का उत्सव।

निमि [ झुँझला कर ]

मैं कहता हूँ, जाओ।
भागो शीघ्र यहां से।
मुझको ज्ञान नहीं सिखलाओ।

[ सन्तरी चला जाता है। और निमि पुनः गाने लगता है। ]

माया, माया, तू माया है!
तू तो मेरी ही छाया है!
तू ने किसका हृदय लुभाया?
पर, क्या भेद किसी ने पाया?
तू है ऐसा परदा, जो भी
आया, उसका ज्ञान भुलाया!
तू मेरे पीछे है, जैसे
आत्मा को घेरे काया है!
माया, माया, तू माया है!

निमि [ आप ही आप ]

अह, ये भी मानव हैं कैसे? मूढ, अन्ध, कुत्सित, जड़
करने देते नहीं जो किसी को आनन्द निमिष-भर।
आग लगी, क्या हुआ? गगन तो फटा नहीं, प्रलयंकर
हर ने खोला तो न त्रिलोचन? एक क्षुद्र-सी घटना
और यहां कोलाहल इतना, ज्यों भूगोल उलटना!

[ सहसा सेनापति का प्रवेश ]

महाराज, बढ़ती ही जाती आग भयानक प्रतिक्षण।
जलता है सम्पूर्ण नगर, ज्यों दावानल से कानन।

निमि

सुना, नगर में आग लगी है। समझा, और भयानक।
लेकिन, मैं क्या करूँ! बताया इसे न तू ने अब तक?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सेनापति, यदि सचमुच कोई मंत्र जानता होता।
तो मैं अभी नगर को सागर में तत्काल डुबोता।
किन्तु, यहाँ तो मूल्य चुकाना मुझको केवल घट का।
जाओ सेना लेकर, मन का दूर करो तुम खटका।
विघ्न करो मत मेरे सुख में, कौतुक में, क्रीड़ा में!
लेने दो आनन्द प्रलय की संवेदन-पीड़ा में।

[सेनापति निराश होकर जाता है और निमि की वीणा फिर बजने लगती है। इस बार स्वर और मधुर हो उठता है और यंत्र करुणा से रोता हुआ जान पड़ता है।]

माया, माया, तू माया है!
तू तो मेरी ही छाया है!
तूने कंचन-शिखर बनाया;
नभ-चुम्बी प्रासाद उठाया!
मरकत-सिंहासन में तूने
हीरा-माणिक-रत्न सजाया!
कंकड़-पत्थर के टुकड़ों पर
लोभी का मन ललचाया है!
माया, माया, तू माया है!

[सहसा राजमहल के आस-पास नागरिकों का भयानक कोलाहल प्रारम्भ होता है। मंत्री का प्रवेश।]

मंत्री : राजन्, दुःसम्वाद!

निमि ( मुस्करा कर )

मंत्रिवर, सकुशल तो पुरवासी?
और आप?

मंत्री : सर्वत्र नगर का वातावरण विनाशी।
अग्नि-चक्र चल रहा वेग से। भस्म सभी होते हैं।
स्वयं मग्न आनन्द-राग में।
धैर्य नहीं खोते हैं।
आप-सदृश विज्ञान-पुरुष।

मंत्री : आपत्ति-काल है भारी,
महाराज, है खेल रही लपटों में नगरी सारी।
गृह-विहीन शोकार्त्त प्रजा-गण करते हैं कोलाहल राजमहल के नीचे।

निमि

फिर क्यों आप हुए हैं चंचल?
दुश्चिन्ता क्यों?

मंत्री

महाराज, हो गया भस्म पुर सारा।
किसी नागरिक का न कहीं भी कोई रहा सहारा।
गज शाला जल गयी, जले नाना गृह-मन्दिर।
राज-भवन भी रह न सका इस वह्नि-पर्व में सुस्थिर।
सभी पण्य, पथ, गृह, प्रकोट हो गये अग्नि के अर्पित।
एक भस्म अवशेष, शेष सब स्वाहा भूतल-लुण्ठन।
और आप निश्चिन्त, प्रभो! ज्यों नहीं विवर्तन तिल-भर।
इतना बड़ा अनर्थ हो गया!

निमि

धन्यवाद, मंत्रीवर!
कहिये, क्या आज्ञा होती है? राज-कोष की अथवा
दण्ड-मुकुट की? सिंहासन की? जो चाहें, सो दिलवा
मैं तत्काल आपको दूं! पर, अग्नि बुझेगी केवल
जल से ही तो? कर सकता है उसमें क्या दृग का जल?

[ सहसा रानी का प्रवेश, हताश, उदास और घबड़ायी हुई ]

रानी

महाराज, छोड़ें यह वीणा; करें पलायन सत्वर।
अन्तःपुर में पहुँच गयी है आग, मची है भगदड़।
भाग रहे हैं दास-दासियां, पड़े जान के लाले।
सभी प्राणियों के, अपने घर छोड़ रहे घर वाले।
चलें आप भी भाग।

निमि ( हँस कर )

देवि, मैं कहां भाग कर जाऊँ!
कौन स्थान है ऐसा, अपने को मैं जहां छिपाऊँ?
जिसके घर हैं, वे छोड़ें घर, वे ही भागें घर से।
मेरा भी क्या घर है कोई, जिसको छोड़ूँ डर से!
अग्नि, मृत्यु के महा-जाल से भाग सकूँगा बचकर
मैं कैसे? जलने दो रानी, यदि जलती दुनिया भर।
जिसने इसे बनाया, मिटते देख उसी को निश्चय।
चिन्ता हो। मेरा क्या बिगड़ा? मेरा जग तो अक्षय।
मैं श्मशान से राग भरूँगा जीवन का सुन्दरतम।
लाओ, तुम वीणा दो मेरी। रानी, यह क्षण अनुपम।
प्रलय-नृत्य हो रहा। इसीमें गूँजेगी स्वर-लहरी
मेरी तंत्री के तारों की। होगी निद्रा गहरी,
जिसकी घनीभूत छाया में सो जायेगा जीवन।
मेरा मन लेकर डूबेगा निखिल जगत् का क्रन्दन।

[धीरे-धीरे पटाक्षेप। रानी और मंत्री हतबुद्धि-से खड़े रह जाते हैं। नेपथ्य में भयानक कोलाहल। वीणा में एक बार पुनः दरबारी का स्वर हाहाकार करता है और निमि गाने लगता है ]—

माया, माया, तू माया है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्राट बाबर का गुप्त वसीयतनामा

अनु० रायबहादुर ज्ञानशङ्कर पण्ड्या एम० ए०, एम० ओ० एल०

भोपाल की हमीदा पब्लिक लायब्रेरी में मुग़ल सम्राटों द्वारा समय समय पर जारी किये हुये पचासों फ़रमानों का संग्रह है। इनमें अपने बेटे हुमायूँ के नाम बाबर के वसीयतनामे की मूल प्रति सबमें अधिक महत्वपूर्ण है। वसीयत के मूल शब्द हैं—

अल हम्दोलिल्लाह

९३३ हिजरी

ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर बादशाह बहादुर ग़ाज़ी

वसीयतनामा मख़फ़ी ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर बादशाह ग़ाज़ी ब शहज़ादा नसीरुद्दीन मुहम्मद हुमायूँ

तूल अल्लाह उम्रहु।

व इस्तिहकाम सल्तनत नविश्ता शुद, ऐ फ़र्ज़न्द मुमलकते हिन्दुस्तान अज़ मज़ाहब मुख़्तलिफ़ मामूर अस्त। व हम्द अल्लाह कि हक़्क़ सुभान हु त'आला बादशाही आँ बा तो करामत फ़रमूद। बायद कि तासुबाते मज़हबी रा, अज़ लौहे दिल पाक नमूदा मुवाफ़िक़ तरीक़े हर मिल्लत मादलत कुन। ख़सूसन अज़ क़ुरबानी गाओ बे परहेज़ कि तसख़ीरे क़ुलूबे अहले हिन्दुस्तान अस्त। व रय्यत ई वलायत ब एहसानाते बादशाही वाबस्ता शवद। व मनादिर व मासूदगाह हर क़ौमे कि ज़ेर फ़रमान बादशाही अस्त ख़राब मकुन। चुनां अदल गुशतरी इख़्तियार कुन कि शाह अज़ रय्यत व रय्यत अज़ बादशाह आसूदा शवद। तरक़्क़ि ए-इसलाम अज़ तेग़े एहसान बिहतर अस्त न अज़ तेग़े ज़ुल्म। अज़ मुनाक़िशाते अहले सुन्नत व शिया चसुम पोशी कुन व इल्ला ज़ो'फ़े-इसलाम मौजूद अस्त। व रय्यते मुख़्तलिफ़ुल क़ुलूब रा ब हुक्मे शरअ अनासर क़ायम कुन कि जिस्मे सल्तनत अज़ अमराज़े मुख़्तलिफ़ा आमान बाशद। व करनाम ए-हज़रत तैमूर साहेबे क़रानी पेशे नज़र बायद दाश्त कि बा उमूरे शहरयारी पुख़्ता शवद।

व मा इलऐन इल्ला अल बलाग़

यकुम जमादि-उल-अव्वल ९३३ हिजरी

आमीन

अर्थात्—

"शहज़ादा नसीरुद्दीन मुहम्मद हुमायूँ के नाम ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर बादशाह ग़ाज़ी की मख़फ़ी (निजी) वसीयत।

"ऐ मेरे फ़र्ज़न्द सल्तनत को स्थायी रखने की ग़रज़ से यह वसीयतनामा लिखा गया है। हिन्दुस्तान का मुल्क मुख़्तलिफ़ मज़हबों से भरा हुआ है। उस अल्लाह की तारीफ़ है कि जो न्यायवान, दयावान और महान है कि जिसने तुझे बादशाही बख़्शी है। यह मुनासिब है कि तू अपने दिल से तमाम मज़हबों की तरफ़ अपने तास्सुबों को निकाल दे और हर मिल्लत के तरीक़े से उनके साथ अदल व इन्साफ़ कर। ख़ास तौर पर गाय की क़ुरबानी से परहेज़ कर क्योंकि इस तरह तू हिन्दुस्तान के दिल को जीत लेगा और इस विलायत की रय्यत का दिल इस अहसान से दबकर तेरी बादशाही के साथ रहेगा। तेरी बादशाही में हर क़ौम के जितने मन्दिर और पूजा घर हैं उनमें किसी को तू ख़राब न करना। न्याय करना जिससे रय्यत शाह से और शाह रय्यत से आसूदा रहे। इसलाम की तरक़्क़ी ज़ुल्म की तेग़ के मुक़ाबले में अहसान की तेग़ से ज़्यादा अच्छी हो सकती है। शिया और सुन्नियों के झगड़ों को नज़र अन्दाज़ करना क्योंकि इन झगड़ों से इसलाम कमज़ोर होता है। चारों तत्वों की तरह मुख़्तलिफ़ मज़हबों के पैरोकारों के प्रति बर्ताव करना ताकि सल्तनत का जिस्म मुख़्तलिफ़ बीमारियों से पाक साफ़ रहे। हज़रत तैमूर के कारनामों को अपनी नज़र के सामने रखना ताकि सल्तनत के काम में तुम पुख़्ता हो जाओ।"

"और हमारा काम महज़ तुम्हें सलाह देना है।"

हिजरी ९३३, जमादि-उल-अव्वल की पहली तारीख़ (११ जनवरी, १५२९ ई०)।

यह है बाबर का मख़फ़ी (निजी) वसीयतनामा जो उसने अपने बीस बरस के बेटे और जाँनशीन के नाम जारी किया था। सन् १५२६ में ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर दिल्ली के तख़्त पर बैठा। उसकी यह वसीयत धौलपुर के बाग़ में सन् १५२९ में ९ और २० जनवरी के बीच उस समय लिखी गई जबकि बाबर वहाँ ठहरा हुआ अपनी भारतीय सल्तनत के लिये चश्मों और रिज़र्वायर आदि की योजनायें बना रहा था। जहाँ जहाँ वह जाता था बहते हुये चश्मे और फूटते हुये झरने देखने के लिये उसका जी तरसा करता था। हिन्दुस्तान में इन चीज़ों की कमी उसे बेहद खटकती थी। यहाँ आकर उसे अफ़सोस भी था और ख़ुशी भी थी। ख़ुशी थी यहाँ की शानदार तहज़ीब देखकर मगर उसकी आत्मा पहाड़ी नज़ारों को देखने के लिये तरसती रहती थी।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उसकी बेटी गुलबदन बेगम, जो ख़ुद अपने खानदान वालों की तरह बड़ी अच्छी लेखक थी, लिखती है कि बाबर ने २७ नवम्बर सन् १५२८ को पोते के जन्म पर अपने बेटे हुमायूँ को लिखा—"बादशाहत से बड़ा बन्धन कोई दूसरा नहीं है लेकिन हुकूमत बेपरवाही से नहीं चलती।" शेख़सादी का नीचे लिखा हवाला भी उसने अपने ख़त में दिया है—

*अगर तेरे पैरों में बेड़ियां पड़ जांय*
*तो उनकी परवाह न कर;*
*गर अकेला ही चलना पड़े*
*तब भी अपनी ही अक़्ल से चल।*

अपने इसी ख़त में बाबर ने लिखा है—"अल्लाह का शुक्र है। अब तुम्हारा वक्त आगया है कि तुम ज़िन्दगी में ख़तरे उठाओ और तलवार खींचो। क़िस्मत ने जो काम तुम्हें दिया है उसकी तरफ़ लापरवाही न दिखाओ। हुकूमत के साथ सुस्ती और आराम का मेल नहीं।" हुमायूँ और उसके भाई कामरान ने, अब तक जो भी काम उनके सुपुर्द किये गये थे उनमें, अपने बाप जैसी क़ाबलीयत और हिम्मत नहीं दिखाई थी। इसी लिये उन्हें हुक्म हुआ—"चाहे हिसार की तरफ बढ़ो, चाहे समरक़न्द की तरफ़ और चाहे हेरात की तरफ़। क़िस्मत जिधर तुम्हारा साथ दे उसी तरफ़ बढ़ो।"

छै हफ़्ते के बाद बाबर ने अपना यह वसीयतनामा लिखा। इस पर शाही मोहर के साथ ९३३ हिजरी की तारीख़ पड़ी हुई है। यह वसीयतनामा सोना छिड़के हुये हाथ के बने काग़ज़ पर बड़ी ख़ूबसूरत लिखावट से छोटे छोटे हरूफ़ों में लिखा हुआ है। वसीयतनामा सीधी सादी फ़ारसी ज़बान में पाँच सतरों में लिखा हुआ है और आख़ीर में क़ुरान की एक आयत है। यह वसीयतनामा भोपाल की एक बेशक़ीमत दौलत है। कब और कैसे यह वसीयतनामा भोपाल पहुँचा उसके बारे में कुछ ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता।

बाबर के इस वसीयतनामे पर टीका की ज़रूरत नहीं है—आजकल भी नहीं जब कि हमारे दिल इतने छोटे होगए हैं कि हम न दूसरे की भलाई सुन सकते हैं न अपनी बुराई। बाबर न्याय और उदारता की नसीहत करता है और सभी सम्प्रदायों को उसी तरह एक सूत्र में बाँध देना चाहता है जिस तरह प्रकृति के चार तत्त्व बंधे हुए हैं। राजा और प्रजा को वह न्याय और मुहब्बत के रेशमी बन्धनों में बांधना चाहता था। कभी न भूलने वाले शब्दों में इसलाम के पैग़म्बर की तरह उसने अपने सहधर्मियों को ऐलान किया—

तरक़्क़ि-ए-इसलाम अज़ तेग़े एहसान बिहतर अज़
न अज़ तेग़े ज़ुल्म।

अहसान की तेग़ से इसलाम की तरक़्क़ी ज़्यादा अच्छी होगी ज़ुल्म की तेग़ से नहीं।

वह अपने बेटे हुमायुं को मज़हबी झगड़ों से अलग उठने की सलाह देता है। जो शब्द बाबर ने धौलपुर के कमल बाग में लिखे थे वह युगों के दौर में गूँजते हुये आज हमारे पास पहुँचे हैं। चार सदी बीत चुकीं जब तैमूरी राज घराने के संस्थापक ने अपनी सल्तनत बनाये रखने के लिये यह सन्देश दिया था। समय ने इस दरमियान दुनिया की शक्ल ऐसी बदल दी कि जैसी शायद पहले कभी नहीं बदली थी, लेकिन इन शब्दों के पीछे ज्ञान की जो धारा थी उसकी सचाई आज भी ज्यों की त्यों क़ायम है। बाबर ने जिन उसूलों का उस समय ऐलान किया था वे उसूल सभ्य देशों की जमात में हिन्दुस्तान की या किसी भी देश की हस्ती क़ायम रखने के बिलकुल बुनियादी और ज़रूरी हैं।

यह बात ध्यान देने की है कि बाबर का फ़रमान कोई अकेला फ़रमान नहीं है। मुग़ल बादशाहों ने समय समय पर जो अनेक फ़रमान इसी तरह के जारी किए हैं उनमें बाबर का फ़रमान भी एक है। इनमें से कुछ फ़रमानों को नाथद्वारा के गोस्वामियों ने प्रकाशित कराया है। अकबर की माँ हमीदा बानू ने एक फ़रमान के ज़रिये ब्रजमण्डल के गोस्वामियों को गाय चराने के लिये मुफ़्त चरागाह की ज़मीनें अता की थीं। अकबर और जहाँगीर ने तो सप्ताह में कई दिन हर तरह के जानवरों का वध बन्द करवा दिया था। यही उदार नीति शाहजहां के वक्त में भी बरती जाती रही। दूसरे शब्दों में मुग़ल बादशाहत की जितनी शान शौकत बढ़ी हुई थी उतना ही वे बिना धर्म या जाति के लिहाज़ के अपनी सारी रिआया के साथ सहिष्णुता और उदारता की नीति बरत रहे थे। बाबर कम से कम इतना दूरदर्शी तो था ही कि यह देख सके कि सल्तनत के क़ायम रहने के लिये सहिष्णुता एक ज़रूरी शर्त है। यह उसके लिये एक और भी तारीफ़ की बात थी कि उसने उस ज़माने में इस नीति के महत्व को समझ लिया जब कि राजनैतिक ग़र्ज़ को पूरा करने के लिये धार्मिक अनुदारता बरतना एक आम बात थी। सत्रहवीं सदी के आख़ीर में बाबर की इस नीति का छोड़ दिया जाना ही मुग़ल सल्तनत के ढाँचे को कमज़ोर कर देने का करण हुआ कि जिसकी वजह से अन्त में सल्तनत का ख़ात्मा हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सामाजिक आचार और निषेधाज्ञायें

डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त ए० एम०, डीआर० फिल०

आमतौर पर यह कहा जाता है कि ब्राह्मणों या सनातनी हिन्दुओं की ख़ास विशेषता उनका आचार है। आचार का मतलब है शुद्धता या अशुद्धता के सम्बन्ध में सामाजिक भाव। ब्राह्मणवाद के अन्दर व्यक्तिगत पवित्रता की भावना और चीज़ों या व्यक्तियों के बारे में शुद्धता या अशुद्धता की भावना बहुत कड़ी है। इन प्रतिबन्धों के कारण बहुत से ऐसे नियम बन गये हैं जिन्हें जातिविज्ञान शास्त्री या समाजविज्ञान शास्त्री "टैबू"[1] कहते हैं। आजकल का हिन्दू जीवन इन्हीं तरह तरह के टैबू यानी सामाजिक, यौन सम्बन्धी और खानपान सम्बन्धी बातों के चारों तरफ़ बुना हुआ है।

ये तमाम नियम यह असर डालते हैं कि हिन्दू समाज एक विचित्र समाज है और जिस अजीब तरीक़े से इसकी उन्नति हुई है उसके कारण वह सारी मानवता से बिलकुल अलग एक समाज दिखाई देता है। इसके पूर्व कि हम इस परिणाम को स्वीकार करें हमें इस सम्बन्ध में दूसरी प्राचीन और आधुनिक क़ौमों की हालत का समन्वयात्मक अध्ययन करना चाहिये। इस वास्ते इस मामले में हमारी यह जाँच प्राचीन देशों से शुरू होनी चाहिये।

## मिस्र

प्राचीन मिस्र के पवित्र ग्रन्थों में एक ख़ास तरह के बैलों को उस ज़माने में बलि करने की इजाज़त थी। किन्तु बछिया के वध की सख़्त मुमानियत थी। इस मनाही पर सख़्ती से अमल करने के लिये बछिया को पवित्र समझा जाने लगा।[2] इस तरह शुद्धता की भावना ने निषेध के नियमों को जन्म दिया और निषेध के नियमों ने पवित्रता का विचार पैदा किया और इस पवित्रता के विचार ने ही गाय को अन्य सभी जानवरों से अधिक पूज्य और पवित्र समझने की पृथा डाली। (हेरोडोटस, II. 41)। नतीजा यह हुआ कि मिस्री उन तमाम लोगों को नफ़रत से देखने लगे कि जिनका धर्म गोवध करने और गाय को खाने की अनुमति देता था। इस विचार को इतनी दूर तक पहुँचा दिया गया कि "किसी भी मिस्री स्त्री या पुरुष को इस बात के लिये राज़ी न किया जा सकता था कि वह एक यूनानी के ओठों का चुम्बन करे या उसका चाकू, या उगालदान या खाने के बर्तन इस्तेमाल करे या यूनानी के हाथों से क़त्ल किये हुये किसी अन्य पशु के मांस को चखे।"[3] इस तरह निषेध की भावना ने पवित्रता की भावना पैदा की और शुद्ध और अशुद्ध चीज़ों के फ़र्क़ को जन्म दिया और तरह तरह के टैबू भी इसी से पैदा हुये।

फिर मिस्रियों में खाने से पहले हाथ धोने का रिवाज था। यह शुद्धता क़ायम रखने का एक नियम था।[4]

ऊपर की बातों में हम देखते हैं कि जहाँ तक चीज़ों और व्यक्तियों के बारे में शुद्धता और अशुद्धता का विचार है प्राचीन मिस्र में उससे लोग अपरिचित न थे। जहाँ तक खानपान और छुआछूत के टैबू का सम्बन्ध है हिन्दुओं में और प्राचीन मिस्रियों में काफ़ी समानता थी।

## बाबुल

बाबुल के लोगों में शुद्धता का विचार मन्त्र तन्त्र आदि के साथ मिलजुल गया था। पुरोहितों द्वारा बढ़ाये चढ़ाये हुये धार्मिक सिद्धान्तों ने शुद्धता के विचारों पर असर डाला। बाबुल में "शुद्धता का विचार प्रारम्भिक टैबू के विचार से ही निकला है कि जिसके अनुसार दोनों हालतों में ऐसे व्यक्ति को छूना निषिद्ध समझा जाता था कि जो या तो बेहद पवित्र हालत में हो या बेहद अपवित्र हालत में हो।"[5] इराक़ में नहाकर शुद्ध होने का रिवाज भी प्रचलित था। "नहाने धोने के पीछे जो भावना है वह छूत को हटाना है। और बहुधा पानी द्वारा उस छूत को बहा देना है कि जो

---

१—"टैबू" शब्द ख़ुद कई जगह अथर्ववेद में आता है (V. 13. 10.)। आन्ध्र के कुछ मित्रों के अनुसार तैलगु भाषा में इसका रूप "तपु" है। पालीनेशिया में भी यह इसी रूप में व्यवहार होता है। इस शब्द के बारे में अधिक जानने के लिये देखिये—S. Levi "Pre-Aryan and Pre-Dravidian in India," P. 25, translated by P. C. Bagchi.

२—Sir I. G. Wilkinson "The Manners and Customs of the Ancient Egyptians, Vol. III, ch. XV, P. 44.

३—Ibid.

४—Hastings Encyclopaedia of Religions and Ethics, Vol. 10, P. 477.

५—M. Jastrow, "Aspects of Religious Belief and Practice in Babylonia and Assyria, P. 366.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उसके तथाकथित कर्त्ता ने फैलाई थी। मिसाल के तौर पर मिट्टी या मोम की चुड़ैल बनाकर लोग बहा देते थे।"[६]

इससे एक बात साफ़ है कि शुद्धता के विचार के साथ छूत का विचार भी लगा हुआ है। यौन सम्बन्धी शुद्धता का विचार भी यहाँ प्रचलित था क्योंकि "मैथुन के बाद शुद्ध होने की ज़रूरत समझी जाती थी।"[७]

## फ़िलिस्तीन

भोजन और यौन सम्बन्धी शुद्धता और टैबू के यहूदियों के विचार सबको मालूम हैं। सनातनी यहूदी अब तक इनका पालन करते हैं। जहाँ तक सेक्स टैबू का सम्बन्ध है इस बात के नियम थे कि अपनी जाति, वर्ग या परिवार में किससे शादी करनी चाहिये और किससे न करनी चाहिये। (Numbers, XXXVI, 5-12)। इस बात के भी नियम थे कि मृत्यु के कारण कितनी अशुद्धता आती थी। (Numbers, XIV, 3-6, 14-15)।[८] रजस्वला काल की अशुद्धता के नियम थे। (Isiah LXIV, 6, Esther, XIV, 6)। अजनबियों के बारे में भी टैबू थे। (Egekiel XLIV, 7-9) खानपान के बारे में भी टैबू थे। Egekiel XLIV, 31)। छुआछूत के भी टैबू थे। (Egkiel XLIV, 25)। एबे दुबाय कहता है—"शुद्धता और अशुद्धता के सम्बन्ध में यहूदियों के रिवाज बहुत अंशों में हिन्दुओं से मिलते हैं।"[९]

## ईरान

मागी पुरोहितों को शुद्धता का बड़ा ख़याल रहता था और यह उनका आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था।[१०] चूँकि बहुत से ज़रथुस्त्री उल्लेख यूनानी और अरब हमलों में नष्ट हो गये इसलिये हमें प्राचीन ईरानी रिवाजों का विस्तृत पता नहीं लग सकता। फिर भी हम यह जानते हैं कि मिट्टी, आग और दूसरे तत्त्व पवित्र समझे जाते थे और प्राचीन ज़रथुस्त्रियों को पवित्रता और अपवित्रता के विचारों का निश्चित ज्ञान था। "शरीर और मन की पवित्रता ज़रथुस्त्री धर्म और हिन्दू धर्म का ज़रूरी सिद्धान्त थी और इस सिद्धान्त ने अनेकों विधि-विधान और नित्य प्रति के कर्म पीने, पहनने आदि में अनेक नियमों को जन्म दिया।"[११] ज़रथुस्त्रियों पर जितने अधिक ज़ुल्म किये गए उतने ही वे ग़ैर ज़रथुस्त्रियों से अलग होते गये···यह विधान बन गया कि एक ज़रथुस्त्री किसी ग़ैर ज़रथुस्त्री को छूकर गाय के गोबर (निरङ्ग) से अपने को शुद्ध करे। (Kandia Shaper Rivayat 16 A. D.)···किसी ज़रथुस्त्री को किसी ग़ैर ज़रथुस्त्री का बनाया हुआ भोजन न करना चाहिये चाहे वह सफ़र ही क्यों न कर रहा हो। (Kans, Mahyas Rivayat)।[१२] ज़रथुस्त्री को ग़ैर ज़रथुस्त्री का तैयार किया हुआ घी और शहद भी नहीं खाना चाहिये। ज़रथुस्त्रियों के छुए हुये फल भी धोकर खाने चाहियें (Nariman Hashang Rivayat) ग़ैर ज़रथुस्त्रियों के साथ शादी की सख़्त मुमानियत है।"[१३]

इस तरह समान परिस्थितियों में ज़रथुस्त्रियों में खान पान और शादी ब्याह के सम्बन्ध में हिन्दुओं की तरह सख़्त निषेध आज्ञायें प्रचलित हो गईं। "पारसियों के निकट खान पान एक धार्मिक आचार है।"[१४]

## यूनान

यूनानियों में भी शुद्धता का बहुत अधिक विचार था। न केवल क़त्ल, ख़ून बल्कि मुरदों या परलोकगत दुष्टात्मा वालों से किसी प्रकार का सम्पर्क अशुद्ध समझा जाता था। मरे व्यक्ति के लोगों को सूतक लगता था[१५] और मनुष्य

६—Hastings Encyclopaedia, Vol. 10, P. 467.

७—सनातनी ब्राह्मण भी इसका आदेश देते हैं।

८—हिन्दुओं के अशौच्य रिवाज से तुलना करो।

९—Abbe Dubois, "Hindu Manners, Customs and Ceremonies," P. 46.

१०—Hastings, "Encyclopaedia, Vol. 10, P. 321.

११—S. C. Roy, "Caste, Race and Religion in India, Man in India, Vol. XIV, June, 1934, No. 2, P. 175.

१२—रिवायत का अर्थ है रिपोर्ट या व्यवस्थायें जो भारत के ज़रथुस्त्रियों का आचार निश्चित करने के लिये ईरान से सन् १४७८ से १७६८ ईस्वी के बीच भारत भेजी गईं।

१३—Hastings Encyclopaedia, Vol. P. 153-54.

१४—I. I. Modi, "Anthropological Papers," pt. II, pp. 63-64.

१५—Hastings Encyclopaedia, Vol. p. 486.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


के साथ जाने वाले सब अपवित्र समझे जाते थे। जापे के समय[16] ज़च्चा और बाप दोनों अशुद्ध समझे जाते थे और बच्चे का जन्म खुद अशुद्धता का स्रोत समझा जाता था। यद्यपि यूनानियों में पवित्र या अपवित्र जानवरों का विचार न था किन्तु धार्मिक पूजा में शामिल होने के लिये मन्दिरों के कुछ आचार यह ज़रूरी क़रार देते थे कि एक ख़ास वक्त तक कुछ खास खास चीज़ें न खाई जांय। इन खानों में नमकीन मछली, पनीर, लहसन और (शायद एशियाई प्रभाव के कारण) सुअर के मांस की मनाही थी।[17]

इस तरह जहां तक यूनानियों का सम्बन्ध है उनमें हिन्दुओं से भी ज़्यादा छुआछूत की भावना मौजूद थी। जहां तक पनीर और लहसन की मनाही का सवाल है वह हिन्दुओं के स्मृति ग्रन्थों से बहुत मिलती है।[18]

## रोम

प्राचीन रोमियों में भी शुद्धता और टैबू की अपनी भावना थी। फ़्लामास दियालिस के पुजारी को "सख्त निषेधाज्ञायों और बहुत से टैबू मानने पड़ते थे। वह किसी ऐसे जानवर को जिसे रोमियों की धार्मिक भावना अपवित्र मानती थी न छू सकता था, न उसके पास जा सकता था और न उसका नाम ले सकता था। न वह मुरदा, अर्थी, कच्चा मांस, सेम, कुत्ता, बकरी या घोड़े को ही छू सकता था। अर्थी में बजने वाले बाजों को सुनने की भी उसे मुमानियत थी। एक शब्द में उसे मुरदे से या मुरदे के किसी क्रिया कर्म से किसी भी तरह का कोई सम्पर्क रखने की सख़्त मनाही थी।"[19] इसके अलावा उसे और भी मनाहियाँ थीं। "यदि बेड़ियां पड़ा हुआ कोई आदमी उसके मकान में घुसता था तो फ़ौरन ही वह मुक्त कर दिया जाता था और उसकी ज़ंजीरों को घर के बाहर इसलिये फेंक दिया जाता था कि घर अपवित्र न हो। दास उसे छू नहीं सकता था और एक आज़ाद आदमी ही उसके बाल काट सकता था।[20] वह केवल कांसे[21] के छुरे से अपनी दाढ़ी बनवा सकता था।"

नये पैदा हुये बच्चे को शुद्ध करना भी ज़रूरी समझा जाता था। ख़ास मौकों पर औरतों पर और लोहे के इस्तेमाल पर टैबू थे। रोमियों की आम और खास रूढ़ियों में कुछ पुराने टैबू बच गये थे। जैसे अजनबी को ख़तरनाक समझा जाता था। कुछ जगहों के बारे में भी टैबू थे। जैसे मुरदे गाड़ने की जगह अशुद्ध समझी जाती थी। धार्मिक निषेधों का सम्बन्ध जगह और समय से भी होता था। इस तरह हम देखते हैं कि प्राचीन रोमियों में जानदारों और बेजान चीज़ों के सम्बन्ध में शुद्धता और अशुद्धता के विचार प्रचलित थे। उनकी शुद्धता की भावना ने कुछ निषेध पैदा किये जो टैबू कहलाने लगे। इनकी निषेधाज्ञायें अनेक बातों में हिन्दुओं की निषेधाज्ञाओं से मिलती जुलती थीं।

## आधुनिक अनुन्नत जातियाँ

शुद्धता के ऐसे क़ायदे कि जो बन्दिशें लगाते हैं और जिन्हें टैबू कहते हैं दुनिया की तमाम अनुन्नत जातियों में पाये जाते हैं। पालीनीशियनों में[22] मज़हबी, राजनैतिक और सामाजिक टैबू पाये जाते हैं।[23] "पुरोहित और सरदार इन टैबुओं को अपने ही स्वार्थ के लिये इस्तेमाल करते हैं।" इसके अन्दर वर्ग भावना दिखाई देती है।[24] पालीनीशियन की नज़रों में हर पुरोहित और भद्रजन टैबू (पवित्र) है। इसके अलावा आजकल की अनेक अनुन्नत जातियों और क़बीलों के खानपान और छुआछूत के बारे में अपने अपने शुद्धता और टैबू के विचार हैं। अमेरिकन इण्डियनों का विश्वास है कि "यदि कोई चीज़ किसी पवित्र चीज़ के सम्पर्क में रख दी जाय तो उसके अन्दर भी पवित्रता आ जाती है और इस तरह पवित्र की हुई चीज़ फिर खाने या पकाने के काम में इस्तेमाल नहीं हो सकती।"[25] दक्षिण अफ़रीका के काफ़िर मृत्यु का सूतक

---

१६—Ibid.
१७—Ibid.
१८—मनुस्मृति, ५—५-६
१९—Hastings, Encyclopaedia, Vol. 10, p. 486.
२०—ब्राह्मण भी दास को छूकर अपवित्र समझे जाते थे।
२१—वेदों में भी तांबे के छुरे से हजामत बनाने का उल्लेख आता है।
२२—Problem of Polynesian Origins by Dr. Graighill Handy, IX, 9.
२३—E. Crawley—The Mystic Rose, p. 10.
२४—Vide Max Schmidt, "Ethnologie.
२५—Crawley, "The Mystic Rose" pp. 80; 61—65.


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनाने वालों को, तांत्रिकों को और क़ातिलों को "अशुद्ध" समझते हैं। मैलेनेशिया में हर शख़्स के साथ टैबू की भावना जुड़ी रहती है। कास्टा रिका के रेड इण्डियनों में "दो तरह की विधि विधान की अशुद्धता मानी जाती है। फ़िजी में टैबू युक्त लोग चश्मे में नहाकर सुअर आदि जानवरों पर अपने हाथ पोछते हैं और वे जानवर सरदार के लिये पवित्र हो जाते हैं। यह क्रिया उस व्यक्ति को टैबू से मुक्त कर देती है।" माओरिओ में "यदि कोई आदमी बग़ैर कपड़े उतारे पवित्र जगह ( बाही तापू ) के अन्दर प्रवेश करे तो उसके कपड़े फिर इस्तेमाल के क़ाबिल नहीं रहते।" इफाते में मृत्यु और बच्चे के जन्म में अशुद्धता समझी जाती है। इस अशुद्धता के विचार को वहां 'नमीन' कहते हैं। यदि कोई पवित्र आदमी नमीन के सम्पर्क में आता है तो उसकी पवित्रता नष्ट हो जाती है।[२६]

इस तरह की और बहुत सी मिसालें देकर यह दिखाया जा सकता है कि छुआछूत, शुद्धता और टैबू का विचार सामाजिक उन्नति की हर अवस्था में लोगों में रहा है। उनके शुद्धता और पवित्रता के विचार इसी टैबू की भावना से निकले हैं।

## हिन्दू समाज में शुद्धता और टैबू की भावना

अब हम हिन्दुओं की अवस्था पर ग़ौर करें। खानपान और छुआछूत के सम्बन्ध में हिन्दुओं के विचार अनेक संस्कृत ग्रन्थों में बिखरे पड़े हैं। शुद्धता से पैदा होने वाले निषेधात्मक विचारों को हम तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं—(१) जन्य दोष (कार्य में ही जिसका अपराध निहित है), (२) स्पर्श दोष ( जिनमें छूने से दोष पैदा हो ) और (३) दृष्टि दोष ( जिसमें देखने से ही दोष पैदा हो )। शुद्धात्मक या निषेधात्मक जितने भी कर्मकाण्ड हैं वे सब इन्हीं तीनों दोषों से निकले हैं। क़ुदरती तौर पर दोष और उसकी शुद्धता यानी प्रायश्चित्त और निवारण यानी टैबू धार्मिक, सामाजिक और यौन सम्बन्धी होते हैं। मानव शास्त्र प्याज़, लहसुन और कुछ दूसरी कन्दें तीनों द्विज जातियों को खाने से मना करता है। ( ५-५ )। कुछ पेड़ों से निकलने वाला लाल रंग का द्रव्य पदार्थ और उस गाय का गाढ़ा किया हुआ दूध जो दस दिन पहले ब्यायी हो ब्राह्मणों को नहीं पीना चाहिये। ( ५-६ )। फिर जिन जानवरों का दूध पिया जा सकता है उनका दूध बियाने के १० दिन बीतने के बाद पीना चाहिये। ऊँटनी का दूध, घोड़ी का दूध, गधी का दूध, जिसका बछड़ा मर गया हो ऐसी गाय का दूध नहीं पीना चाहिये। ( ५-८ )। भैंस को छोड़कर किसी जंगली पशु का दूध नहीं पीना चाहिये। स्त्री की छातियों का दूध भी ( बच्चों को छोड़ कर ) नहीं पीना चाहिये। ( ५—९ )।

मांसाहारी पक्षियों जैसे चील घरेलू पक्षियों जैसे कबूतर, एक कुबड़ वाले पशु ( सिवाय उनके कि जिनको यज्ञ में आहुति दी जाय ) जैसे गधा इनका मांस नहीं खाना चाहिये। ( ५—११ )। इसी तरह मछली भी नहीं खानी चाहिये। ( ५—१५ )।

ये कुछ धार्मिक निषेध या टैबू हैं। अब हम सामाजिक निषेध या टैबू पर विचार करें। "यदि दाँत निकलने के बाद कोई लड़का मरता है या उपनयन संस्कार के बाद किसी की मृत्यु होती है तो उसके कुटुम्बियों को छूत लग जाती है। पैदायश के बाद भी उसी तरह की छूत लगती है।" ( ५-५८ )। "जिस तरह किसी कुटुम्बी के मरने पर लोग अशुच हो जाते हैं उसी तरह बच्चे के जन्म के समय भी वे अशुच होते हैं। (५—६१) "गुरु के मरने पर चेला तीन रात तक अशुच रहता है। गुरु के बच्चे या पत्नी की मृत्यु पर चेला एक दिन और एक रात अशुच रहता है।" ( ५—८० )। "किसी चाण्डाल को छूने से, रजस्वला स्त्री को छूने से, ब्रह्महत्या के अपराधी को छूने से, १० दिन के बच्चे को छूने से, मुरदे को छूने से, और जिसने मुरदा छुआ है उसको छूने से नहाकर शुद्ध हुआ जा सकता है।" (५— ५)। "यदि द्विज जातियां आदमी की ताजा हड्डी छुयें तो नहाकर शुद्ध होंगे, यदि वे सूखी हड्डी छूदें तो गाय को छूकर या कुल्ला करके सूर्य के दर्शन करने से शुद्ध हो जायंगे।" ( ५—८४ )। ये कुछ सामाजिक छूत छात या टैबू हैं।

अब हम तीसरी श्रेणी के टैबू यानी यौन ( सेक्स ) सम्बन्धी टैबू पर ग़ौर करें। "यदि गर्भाधान के तीन से छै मास के बीच में गर्भपात हो जाये तो वह स्त्री उतने ही महीनों तक अशुच रहेगी। रजस्वला स्त्री ५ दिन बाद धार्मिक समारोह में भाग लेने के योग्य होती है किन्तु तीन रातों के बाद वह पति के साथ सोने योग्य शुद्ध हो जाती है।" ( ५-६६ )। "प्रतिलोम विवाहों की सन्तानें यज्ञ में भाग लेने योग्य नहीं होतीं।" ( ५-८६ )। "जो स्त्रियां अवैदिक धर्म को मानती हैं और कई पुरुषों से संसर्ग करती हैं, जो गर्भपात करती हैं, जो अपने पतियों को मारती हैं, जो द्विज वर्ण की स्त्रियां मद्य पान करती

२६—Ibid.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


है, इनका अन्तिम श्राद्ध कर्म नहीं होता।" (५-९०)। किसी स्त्री को नीच जाति के पति द्वारा बच्चा नहीं पैदा करना चाहिये। ऐसी सूरत में वह इस दुनिया में भी बदनाम होती है और मरने के बाद उस पुत्र द्वारा स्वर्ग नहीं प्राप्त होती।" (५-१६१)। "कोई स्त्री यदि ऐसे पुरुष द्वारा पुत्र पैदा करे कि जो उसका पति नहीं है या जिसके साथ वह नियोग नहीं कर रही है तो वह पुत्र न तो उस स्त्री का पुत्र समझा जायगा और न उस पुरुष का। इसलिये समस्त सच्चरित्र स्त्रियों को यह आदेश दिया जाता है कि वे दूसरा पति न करें। (५-१६२)। यदि कोई स्त्री अपने वर्ण का पति छोड़कर किसी अपने से ऊँचे वर्ण वाले पुरुष को पति बना ले तो वह इस दुनिया में दोषयुक्त हो जायगी और लोग कहेंगे कि इस स्त्री का पहले भी एक पति था।" (५-१६३)। "यदि कोई स्त्री अपने पति के प्रति वफ़ादार नहीं रहती तो वह अपने पति को भी कलंकित करती है और दूसरे जन्म में कोढ़ी होती है और उसे कोढ़ जैसी बीमारियाँ हो जाती हैं। (५-१६८)।

ये कुछेक सेक्स टैबू हैं। इनके अतिरिक्त खानपान और छुआछूत के अगणित टैबू हैं। पुराणों में बड़े विस्तार के साथ तरह तरह के भोजन और छुआछूत के पुण्य पाप की विवेचना की गई है।[२७] मालूम होता है कि गुप्तकाल में, जब पुराणों का अन्तिम बार संशोधन हुआ था छुआछूत की भावना ने निश्चित रूप ले लिया था। यह सामन्तशाही युग था। यह वह समय था जबकि जन्म और रक्त, वर्ग और उत्तराधिकार की भावना ने हिन्दू समाज में निश्चित रूप ले लिया था और 'उच्च वर्ग', 'अन्त्यज' और 'अस्पृश्यता' आदि प्रश्न ब्राह्मणवाद के अङ्ग बन गये थे।

जब उच्च वर्ग कुछ बातों को टैबू क़रार देता है तो उसके पीछे वर्ग अभिमान और जातिगत श्रेष्ठता की भावना छिपी रहती है। उच्च वर्ग अपनी विशेष सुविधाओं को सुरक्षित रखने के लिये शुचिता और निषिद्धता के अनेकों कर्मकाण्डों के बाड़े के पीछे खड़े होकर अपने को बाकी समाज से उच्चतर साबित करने का दम्भ भरता है।

यदि हम हिन्दुओं के निषेधात्मक नियमों का विश्लेषण करें तो हम देखेंगे कि ऊपर के तीन वर्णों के लिये प्याज़, लहसन आदि खाने की मनाही जन्मदोष वर्ग के भीतर आती है। यानी उस काम में ही दोष माना गया है। टीकाकार कुल्लुक भट्ट[२८] अपनी मीमांसा में लिखता है—कन्द और तरकारियाँ गन्दी जगह होती हैं और गन्दी चीज़ों की खाद इन्हें दी जाती है इसलिये इन्हें द्विज नहीं खा सकते। किन्तु ये चीज़ें शूद्रों के लिये वर्जित नहीं हैं। शास्त्रकारों के अनुसार यहां बुराई चीज़ों की उत्पत्ति में है इसलिये वे मना की गई हैं। किन्तु जब शूद्रों के लिये इनकी अनुमति दे दी गई तो इसमें वर्ग भावना आ गई।

अब हम दूसरी श्रेणी के दोष यानी दृष्टिदोष पर विचार करें। दूसरे के देख लेने से 'नज़र लग जाती है' यह अन्धविश्वास सारी दुनिया में फैला हुआ था। ब्राह्मणवाद का प्रमुख ग्रन्थ 'मानव शास्त्र' इसका ज़िक्र नहीं करता। किन्तु बाद के एक ग्रन्थ पद्मपुराण में इसकी चर्चा आती है। उसमें लिखा है—"इस तरह खाओ ताकि दूसरे लोग तुम्हें खाते पीते न देख सकें। हर अच्छी बुरी चीज़ को एकसां समझो। यही खाने का तरीक़ा है। इसी तरह तुम्हें खाना चाहिये।" अनुन्नत समाजों में तो लोग एकान्त में खाते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि खाते हुये यदि कोई दूसरा देखले तो खाया पिया बराबर हो जाता है।

अहतों, माओरियों और सियामियों में मौन होकर खाने का रिवाज है। मौन रहने से समझा जाता है कि बाहरी असर से बचा जा सकता है। हिन्दुओं में भी शूद्रों की दृष्टि बचाने का रिवाज है ताकि द्विज लोग उनकी बुराइयों के शिकार न हो सकें। इसमें जातिगत ऊँच नीच की भावना छिपी हुई है।

अब हम तीसरी श्रेणी के दोष यानी स्पर्श-दोष पर विचार करें। मानव शास्त्र के अनुसार यदि कोई आदमी किसी चांडाल को छू दे तो वह नहाकर पवित्र हो सकता है। (५-१८५)। अन्त्यज के छूने का यह प्रायश्चित्त है। वैदिक काल के बाद भी अन्त्यज चाण्डाल ब्राह्मणों के लिये एक टैबू रहा है।[२९] पद्मपुराण में लिखा है—"यदि कोई ब्राह्मण किसी ऐसे मनुष्य की अन्त्येष्टि क्रिया करता है जो शूद्र का अन्न खाकर मरा है तो उसे प्रेतयोनि मिलती है।... जो ब्राह्मण अपना यजमान छोड़कर किसी शूद्र की यजमानी

---

२७—इस खानपान के टैबू ही के कारण हिन्दुओं में 'कच्चे' और 'पक्के' खाने का प्रश्न उठा।

२८—Vide commentary of Kulloka Bhatta on aphorism 5 : 5 of Manu. Crawley the Myslic Rose p. 129.

२९—Vide Fick, "Sociale Gliederung".

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


करता है या उसका खाना पकाता है तो वह भूतयोनि पाता है।"[३०] एक दूसरी जगह पद्मपुराण में लिखा है—"कश्यप कहते हैं, ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी एक चाण्डाल के साथ रहकर तुमने अपने को पतित कर लिया। तुम्हारे पुरखे अवश्य नरक में पड़े होंगे।"[३१] पद्मपुराण में ही कश्यप और गरुड़ के सम्वाद में म्लेच्छों का अछूत कहकर ज़िक्र किया गया है। इसके शब्द हैं—"ब्राह्मण-वध के पाप से डरकर कश्यप मुनि ने गरुड़ से कहा 'तुम ब्राह्मणों के साथ चारों ओर म्लेच्छ भी उगलो।' पक्षिराज गरुड़ ने, अपने पिता की आज्ञा सुनकर और उनके अपराध को जानकर विविध जङ्गलों और पहाड़ों में म्लेच्छों के साथ साथ ब्राह्मणों को भी उगला।...इस तरह म्लेच्छ अलग नाम से अलग जगह रहने लगे। जो आदमी उन्हें छू ले उसे कपड़े समेत नहाना पड़ता है। किन्तु अफ़सोस इस कलियुग में लोग खुदग़रज़ी से इन अधर्मी म्लेच्छों के साथ रहते हैं।"[३२] मनु और पातञ्जलि में शकों और यवनों को अन्त्यजों से ऊपर शूद्र वर्ण में रखा गया है। किन्तु पद्म-पुराण में डाढ़ी रखाये हुये, घोड़े पर चढ़े हुये और गोमांस खाने वाले तुरुष्कों (तुर्कों)[३३] को म्लेच्छों का एक गिरोह समझा गया है जिनका स्पर्श चाण्डाल के स्पर्श की तरह अशुद्ध करने वाला है।[३४] स्पष्ट है यह आदेश उस वक्त लगाया गया जब मध्य एशिया की क़ौमों और आर्यों में घमासान संघर्ष शुरू हुआ। इस आदेश के अन्दर द्विज हिन्दुओं की विदेशियों के प्रति नफ़रत स्पष्ट चमकती है।

पद्मपुराण में एक सूची दी हुई है जिसमें जाति से बाहर निकाले हुये व्यक्ति को, कोढ़ी को, चाण्डाल को, गोमांस भक्षक को, कुत्ते को, रजस्वला स्त्री को, भील को अपवित्र माना गया है और इन्हें छूकर नहाने का आदेश है।[३५] इनके अलावा और अनेक चीज़ों को भी अशुद्ध समझा गया है। इस ग्रन्थ में लिखा है "किसी को सूखी मछली, सड़ी हुई चीज़ें अशुद्ध चीज़ें, जूठन या दूसरे के लिये पकाया हुआ भोजन नहीं खाना चाहिये। किसी बेईमान आदमी का न तो साथ करना चाहिये न उसके साथ सफ़र करना चाहिये। किसी अछूत के साथ, किसी जाति से बाहर निकाले हुये के साथ और किसी ऐसे व्यक्ति से जिसे ग़ुस्सा चढ़ा हो बात नहीं करनी चाहिये।"[३६] यहाँ हम देखते हैं कि खाने पीने की चीज़ों और सामाजिक आचार को साथ रख दिया गया है। दूसरी ओर हड़ खाने को बड़ी प्रशंसा की बात समझा गया है।[३७]

बौद्धों की आदतों का पता लगाने से मालूम हुआ है कि वे भी कुछ चीज़ों में छुआछूत मानते हैं। गुप्तकाल के बाद चीनी बौद्ध भिक्खु इ-त्सिंग भारत आया था। उसने भारत के बौद्धों के नीचे लिखे रिवाजों को अपनी पुस्तक में दर्ज किया है[३८]।

"शुरू से ही सिखाया जाता था कि जूते पहनकर पवित्र स्तूप की परिक्रमा नहीं करनी चाहिये।...और भिक्खु को स्लीपर पहनकर मन्दिर में नहीं जाना चाहिये।" (ch. II)।

"भारत में भिक्खु भोजन से पहले अपने हाथ पैर धोते हैं और अलग अलग चौकियों पर बैठते हैं।...चौकियाँ इस तरह रखी जाती हैं कि बैठने वाले एक दूसरे को न छू सकें। जूठन को बचाकर रखना भारतीय आचार के अनुकूल नहीं है।"...(ch. III)।

"भारत में यह रिवाज है कि चाहे भिक्खु हों चाहे साधारण आदमी शुद्ध और अशुद्ध खाने का वे बहुत ख़याल रखते हैं। यदि किसी थाली से एक कौर भी खा लिया जाता है तो वह भोजन और वह थाली अशुद्ध हो जाती है और फिर इस्तेमाल नहीं होती...कहीं दावत में या सार्वजनिक भोज में एक दूसरे को छूना मुनासिब नहीं समझा जाता।...यह रिवाज ग़रीबों और अमीरों दोनों में है और यह रिवाज न केवल बौद्धों के अन्दर है बल्कि ब्राह्मण भी इसे मानते हैं। यदि कुल्ला करने से पहले कोई दूसरे को छू दे तो जिसे छुआ गया है उसे भी कुल्ला करना पड़ेगा।" (ch. IV)।

"भिक्खुओं की दावत में भिक्खु चौकी पर बैठते हैं..." मिट्टी के कोरे बर्तन इस्तेमाल किये जा सकते हैं...लकड़ी

---

३०—पद्मपुराण, १,३२, ४७-५०

३१—पद्मपुराण १,४७,५९-६०

३२—उपरोक्त १,४७, ६७-७५

३३—पद्मपुराण की भाषा और भाव यह ज़ाहिर करते हैं कि वह तुर्कों के आगमन के समय लिखा गया।

३४—पद्मपुराण १,४७,७२

३५—पद्मपुराण १,४८,३१

३६—पद्मपुराण ९,४९,१०८-११०

३७—पद्मपुराण ९,६०,२

३८—I-tsing, "A Record of the Buddhist Religion as pracitised in India and the Malaya Peninsula" 671-95-A. D.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


के बर्तन खाने में एक बार इस्तेमाल किये जा सकते हैं किन्तु उन्हीं बर्तनों को दूसरी बार इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। विनयपिटक में इसकी मुमानियत है।"

बौद्धों के भोज्य पदार्थों के सम्बन्ध में यह चीनी यात्री लिखता है—

"पंच भोग नियम और पंच खाद नियम विनय में इस प्रकार दिये गये हैं। पंचभोगनीय ये हैं—(१) चावल, (२) उबले हुए जौ और मटर, (३) पका हुआ आटा (रोटी?), (४) मांस* (५) फुलका। पांच खाद-नियम ये हैं—(१) मूल, (२) गूदा, (३) पत्ते, (४) फूल, (५) फल...दूध, दही वग़ैरह इन दोनों समूहों के बीच में आ जाते हैं। भारत के पाँचों खण्डों में लोग किसी तरह का प्याज़ (कुल्लुक में प्याज़ की मनाही है, ५, ३४, १) या कच्ची तरकारी नहीं खाते।" (ch ix.)।

इसके बाद यह यात्री शारीरिक सफ़ाई के नियमों के बारे में लिखता है—

"पाख़ाना जाकर आदमी अशुद्ध हो जाता है इसलिये हाथ, मुँह और देह धोना ज़रूरी समझा जाता है। इसी तरह कपड़े भी अशुद्ध हो जाते हैं।" (ch. xvii)।

चीनी यात्री की गवाही इस बात को साबित करती है कि बौद्धों में भी खाने और छूने की बन्दिशें थीं। इनमें से कुछ का ब्राह्मणों के आचार विचारों से मेल था। विनय पिटक में आचार के कठोर नियमों का उल्लेख है। ये नियम इस बात को साबित करते हैं कि ये कोई ख़ास ब्राह्मणों की विशेषता न थे बल्कि समस्त देश में इनका प्रचार था और ये ब्राह्मणवाद और बौद्ध धर्म के पहले की उपज हैं और भारतीय जनता के आम टैबू थे।

समाज विज्ञान शास्त्री टोटेम और टैबू का आपसी सम्बन्ध बताते हैं। कुछ टैबू टोटेम के निषेधों से निकले हैं। दुनिया की बहुत सी अनुन्नत जातियों के टैबू उनके टोटेम पन्थों से निकले हैं। भारत की तथा कथित जङ्गली जातियों में टोटेम भी हैं और टैबू भी हैं। हिन्दू धर्म के सम्पर्क में आने के बाद उनके टोटेम तो ख़त्म हो गये किन्तु टैबू बाक़ी रहे। इस तरह बहुत से निषेधात्मक नियम असल में पुराने जमाने के टैबू ही हैं।

बहुत से लोगों का ख़याल था कि इण्डो-यूरोपियन और सेमेटिक जातियों में टोटेम की अवस्था कभी रही ही नहीं किन्तु फ्रायड लिखता है—"बहुत से पुराने रिवाजों के ऐसे अवशेष मिलते हैं कि जो हमें इस नतीजे पर पहुँचाते हैं कि असभ्य आर्य और यूरोप की सेमेटिक जातियों में कभी टोटेम की पृथा अवश्य थी। बहुत से खोजियों का झुकाव यह स्वीकार करने की तरफ़ है कि हर जाति की उन्नति के लिये टोटेम की अवस्था एक आवश्यक अवस्था है।[३९]

प्राचीन यूरोप की इण्डो यूरोपियन जातियों में टोटेम के सम्बन्ध में वार्ड फाउलर कहता है—"टोटेम के सम्बन्ध में जो कुछ मुझे कहना है वह यह है···राबर्टसन स्मिथ के बताये रास्ते पर चलकर डाक्टर जेवन्स को यूनान और इटली में बहुत से टोटेम के अवशेष मिले हैं जिनका ज़िक्र उन्होंने हिस्ट्री आफ़ रिलीजन की भूमिका में किया है।"[४०]

इण्डोलाजिस्ट वेदों में किसी तरह के टोटेम का आम-तौर पर ज़िक्र नहीं करते। किन्तु फिर भी हापकिन्स, ओल्डेन बुर्ग और मैक्डोनेल जैसों के दिमाग़ में कुछ शंका पैदा हो गई है। हापकिन्स कहता है—"ऋग्वेद में मत्स्य और शुनक जातियों का ज़िक्र टोटेम के अवशेषों का सन्देह पैदा करता है। यही ओल्डेन बुर्ग का भी सुझाव है।"[४१] मैक्डोनेल और कीथ के अनुसार "मत्स्य जाति शायद आर्य थी।"[४२] मैक्डोनेल लिखता है "वेदों में जल, नदी, पहाड़, आकाश और पृथ्वी के साथ साथ औषधियों का भी जगह जगह आह्वान किया गया है। एक पूरी की पूरी ऋचा (ऋग्वेद ९. ७) औषधियों की प्रशंसा में भरी हुई है। बाद के वैदिक ग्रन्थों में वृक्षों पर चढ़ावे चढ़ाने और विवाह के समय उनकी पूजा का ज़िक्र आता है।"[४३] यहाँ पर यह न भूलना चाहिये कि सोम के पौधे को देवता के तुल्य माना गया है। पौधों, पेड़ों, नदियों और जानवरों को देवत्व का दरजा देने से लोगों को इनके मूल में टोटेम का सन्देह होता है।

---

* बौद्धों को तीन प्रकार का पवित्र मांस खाने की इजाज़त है—महावग्ग, ६,३१

३९—S. Freud, "Totem and Taboo," p. 5.

४०—W. Warde Fowler, The Religious Experiences of the Roman People, p. 26.

४१—E. W. Hopkins, The Religions of India, pp. 430, 537.

४२—Macdonell and Keith Vedic Index, Vol, I. p. 378.

४३—A. A. Macdonell, History of Sanskrit Literature, p. III



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ वेदों में टोटेम के कोई स्पष्ट लक्षण हमें नहीं मिलते किन्तु यह न भूलना चाहिये कि वेदों में एक ऐसी जाति का वर्णन है कि जो सामाजिक दृष्टि से काफ़ी उन्नत थी। हड़प्पा और मोहन-जो-दड़ो की खोजों में हमें "जानवरों और दरख़्तों की पूजा के निशान मिलते हैं और इससे सन्देह होता है कि उस समय जानवरों के टैबू का कोई न कोई रूप प्रचलित रहा होगा।[४४] बेशक इन अवशेषों में टोटेम का कोई स्पष्ट सुबूत नहीं मिला।

निषेध या बन्दिश की भावना कोई इण्डो-आर्यों या हिन्दुओं की विशेषता नहीं है। न यह किसी बाहरी असर से पैदा हुई। ये धार्मिक, सामाजिक या यौन सम्बन्धी टैबू जिन्हें हिन्दुओं का आचार नियम कहा जाता है कोई हिन्दुस्तान की ख़ास उपज नहीं हैं। एगलिंग सच कहता है कि "इस बात के काफ़ी सुबूत इकट्ठे हो रहे हैं कि शादी ब्याह और सबके साथ खान पान की बन्दिशें दूसरी आर्य जातियों जैसे यूनानी, जर्मन, रूसी आदि में भी थीं। भारत के प्राचीन आर्यों के उत्तराधिकारियों के अन्दर इस तरह की बन्दिशों का होना कुछ उनकी विशेषता साबित नहीं करता। क़बीले के अन्दर और क़बीले के बाहर विवाह के निषेध नियम कोई हिन्दुस्तानी या आर्य नहीं हैं बल्कि सारी दुनिया के नियम हैं। न केवल अपनी भावना में बल्कि वास्तविक विस्तार में आधुनिक भारत के जाति पांति के भेदभाव न केवल प्राचीन नियमों से मिलते हैं बल्कि दुनिया भर में एक दरजे तक इनका प्रचलन था।"[४५]

४४—Sir J. Marshall, "Mohen-jo daro and the Indus Civilization, Vol I, pp. 65-74.

४५—H. D. Eggeling, Hastings, "Encyclopaedia of Religions and Ethics.

# संवेदना के अश्रु

श्री जगन्नाथ एम० ए०

क्या सुख में रोना पागलपन ?

सुख को लग जाती नज़र यहाँ,
जलती ईर्षानल प्रखर यहाँ;
इससे फूलों के सङ्ग सङ्ग,
क्या कांटे बोना पागलपन ?

मिलकर सुख कहीं न खो जाए,
जग की तक़दीर न सो जाए;
इससे, सुख की फिर नींद यहां—
क्या कभी न सोना पागलपन ?

जम जाता मैल हेम पर भी,
अति उत्तम भोग क्षेम पर भी;
क्या निज, राका को आत्मविवेचन
जल से धोना पागलपन ?

क्या यह सब सचमुच अपना है ?
यह बस दो दिन का सपना है;
क्या एक ऋणी का अनायास—
मुख धूमिल होना पागलपन ?

तुम कहते जिसे सहानभूति,
वह दुर्बलता की है विभूति;
क्या अपनी असफलताओं का—
इतिहास सँजोना पागलपन ?

इस विकल जगत में कल कैसा ?
छप्पर के बीच महल कैसा ?
फिर सबके संग में अपनी भी—
क्या नाव डुबोना पागलपन ?

कांटों में सुमनोल्लास सखे !
जग में सब कुछ अभ्यास सखे !
फिर मन में सुमन खिलाने को,
क्या शूल चुभोना पागलपन ?

क्या रुदन हास का सार नहीं ?
करुणा सुख का शृङ्गार नहीं ?
क्या विधि का हँसते फूलों पर—
हिम अश्रु पिरोना पागलपन ?

माना पतझड़ अनिवार्य यहाँ,
सम्भव सब दिन मधुमास कहाँ ?
क्या सतत असम्भव के पीछे—
निज जीवन खोना पागलपन ?

क्या सुख में रोना पागलपन ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सिपाही की टाँग

डाक्टर अख़्तर हुसेन रायपुरी डी० लिट० ( पेरिस )

दूसरे दर्जे के यात्रियों में विचार-विभिन्नता कम होती है। इसलिये सबने सर्दार झंडासिंह के इस ऐलान को जी भरकर सराहा कि युद्ध बिना मानव-जीवन दूभर हो जावेगा। सर्दार जी ने सबके सामने कपड़े उतारते और छिपी हुई तोंद का भेद उजागर करते हुए कहा "लड़ाइयां बंद हो जायें तो सब लोग नामर्द हो जायें।" तोंद पतलून की पकड़ से मुक्त होते ही ग़ुब्बारे की तरह फूल गई और सर्दार जी के क़हक़हों के उतार-चढ़ाव के अनुसार उसमें ज्वार-भांटा आने लगा।

सर्दार जी की देखा-देखी और लोगों ने भी कमर ढीली करना शुरू किया और थोड़ी देर में रोशनी के आस-पास मँडलाने वाले पतिङ्गों ने देखा कि डिब्बे में पिलपिले शरीरों का ढेर लगा हुआ है। वह इतने आत्महीन हैं कि अगर उन्हें काट कर कसाई की दूकान में उलटा टांग दिया जाये तो ग्राहक की समझ में न आये कि इनमें बकरा कौन है और बैल कौन।

सर्दार जी ने सोने से पहिले गुरु-नाम का जाप किया, हाज़मे की दवा खाई जिसका असर एक ज़ोरदार डकार की सूरत में ज़ाहिर हुआ। फिर तकिये पर सिर रखकर चश्मे की कमानी को डाढ़ी के उलझटों से निकाल कर अपनी डायरी का अध्ययन शुरू किया जिसमें सरकारी ठेकों का ब्योरा दर्ज था।

लाला नत्थूमल ने सफ़ेद कमीज़ के अन्दर छिपी हुई बनियान को उतारते हुए तोंद की सिलवटों में एक अदद पिस्सू का अन्वेषण किया और चादर पर पान की पीक टपकाते हुए कहा—

"कलकत्ते में ज़िंदगी मुसकिल हो गई है।"

ऊपर की बर्थ पर एक डिपटी साहिब एकांत में कपड़े बदल रहे थे। कालर का पिछला हिस्सा किसी आंख-ओझल कील में अटक गया था और उनकी समझ में न आ रहा था कि गर्दन क्यों भिंच गई है। इस खींचातानी में उनका चेहरा विस्मयसूचक चिन्ह बन गया था!

जब सब लोग अपने अपने बिस्तर पर लेट गये तो, सिपाही ने चादर से मुंह निकालकर इधर-उधर देखा। हवा अड़चन से उसका शरीर ऊपर उभरा और फिर एक नक़ली टांग हवा में अधर लटककर रौशनी में चमकने लगी। लकड़ी की यह सुडौल टाँग सियालकोट के कारख़ाने से बनकर निकली थी। सरकार ने लँगड़े सिपाही को इस टांग के साथ एक बैसाखी भी भेंट की थी। भगवान की दी हुई टांग पर भला इतना अच्छा रंग-रोग़न कहाँ होता है। लड़ाई में सिपाही की टांग ग़ायब हो गई थी। उसे खुद नहीं मालूम कि यह दुर्घटना कैसे हुई। वह खाई में बंदूक छतियाये बैठा था कि पास में एक धमाका हुआ और उसकी आंख बन्द हो गई। बहुत देर बाद जब सुध आई तो शरीर हलका-फुलका और साथ ही साथ अचल अटल हो गया था। टांग खाई से उड़कर एक पेड़ के डुंड पर जा अटकी थी। सिपाही यह दावा तो न कर सकता था कि वह चीज़ जो अलगनी पर मैले कपड़े की तरह फैली हुई थी उसकी अपनी वियोगिनी टाँग थी। पर इस बात का क्या जवाब था कि उसकी एक टाँग बेकहे सुने ग़ायब हो गई थी। बेहोशी की हालत में सिपाही को ऐसा लगा कि वह नमकहराम टांग बाक़ी शरीर से नाता तोड़कर अकेली हवाख़ोरी कर रही है।

सिपाही ने नक़ली टाँग उतार कर बैसाखी बग़ल में दबायी और इधर-उधर उचककर उसकी निपुणता को जाँचने लगा। बची हुई टाँग ने किसी विधवा के समान अकेले दम जीवन-भार उठाने से इनकार कर दिया और बैसाखी के गुदगुदे हत्थे बग़ली घूंसे के समान उसके कांधे से टकराये। जो भी हो, बैसाखी निस्संदेह नयी थी और उसमें से ताज़ा वार्निश की बू आ रही थी।

सिपाही को नींद आ गई और उसने सपने में देखा कि कोई देव-दूत आया और उसके घुटनों में जीवन-रस इस तरह सींचा कि उसकी जड़ों से एक तना और पांच टहनियां उग आयीं। हर टहनी में अनगिनत टांगें लटक रही थीं। यह पेड़ लंगड़ों का कल्प-वृक्ष था, जो उससे टांगें नोच नोचकर अपने बदन में जोड़ते और फिर बछेड़ों की तरह उछलते-कूदते चले जाते थे।

जब आंखें खुलीं तो पूरब की गहराइयों से सूरज अंगारा सा मुँह निकाले घूर रहा था। सिपाही ने फ़ुर्ती से वर्दी पहिनी, सियाल कोटी टाँग लगाई और बेचैनी से अगले स्टेशन की प्रतीक्षा करने लगा जहां उतरकर उसे अपने गाँव पहुँचना था। उसके दिल की धड़कन तेज़ हो गई क्योंकि अब तक घर वालों को इस दुर्घटना की सूचना न मिली थी और उसके लिये यह सोचना असम्भव था कि उन पर टाँग के वियोग का क्या असर होगा। सच तो यह है कि जीवन में पहिली बार उसे टाँग के महत्व का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दाज़ा हुआ। शरीर के प्रत्येक अवयव को किसी न किसी सेवा की ज़रूरत होती है। पर टाँग बेचारी बचपन से बुढ़ापे तक पहाड़ जैसे बदन और उसके पापों का बोझ लादे सर्दी गर्मी में मारी मारी फिरती रहती है। लड़ाई के मैदान में ही ऐसा होता है कि वह अपने मालिक का बायकाट करके अकेली भाग खड़ी हो।

इतने में एंजिन ने सीटी दी, रेल की गति धीमी हो गई और प्लेटफ़ार्म पर देहाती बाजों का शोर सुनायी दिया। सिपाही नब्बू ख़ाँ ने वर्दी ठीक करके अकड़ने की कोशिश की लेकिन दाहिने घुटने ने आँखों तक बेतार की तार बर्क़ी से ऐसा संदेशा भेजा कि उनमें आंसू डबडबा आये। जब प्लेटफ़ार्म से 'नब्बू ख़ाँ ज़िन्दाबाद' की आवाज़ आयी तो सिपाही मन मारकर सीट पर बैठ गया।

किसी ने पुकार कर कहा, "यह रहे नब्बू ख़ां—अरे नीचे आओ यार!"

प्लेटफ़ार्म पर देहातियों की भीड़ लगी हुई थी। वह बाजा और हार लिये अपने सूरमा की आवभगत के लिये आये थे जो समुद्र पार से मैदान मारकर घर लौट रहा था।

नब्बू ख़ाँ ने छड़ी का सहारा लेकर ज़मीन पर क़दम रखा। बाप ने गले लगाया, किसी ने हार पहिनाया, किसी ने हाथ मिलाया और बाजे ने "मैं तो छोरा को भरती करा आई रे!" का भैरव राग छेड़ दिया।

अचानक कोई पुकार उठा—"नब्बू ख़ाँ की टाँग!" सब की निगाहें सिपाही की दाहिनी टांग की ओर गयीं। और सब चुप हो गये।

नब्बू ख़ाँ ने जल्दी जल्दी कहना शुरू किया, अब्बा यह वही टाँग है जो बचपन में जल गई थी। इसके बदले मुझे नई टाँग मिली है जिसे बाज़ार में ख़रीदना चाहो तो ढाई सौ से कम न लगें। जब पुरानी हो जाये यो बदलवा लो। कहो कैसी है?"

लोगों ने देखा कि नब्बू ख़ाँ की नयी टाँग धूप में हीरे की छड़ी के समान चमक रही है। वह जब चाहे उसे बेचकर बैल की एक जोड़ी ख़रीद सकता है। गोया उसकी टाँग से दो बैल बंधे हुए हैं।

लेकिन असली या नक़ली टाँग की क़ीमत रुपयों में किस तरह आंकी जा सकती है। किसानों ने सियालकोटी टाँग को बहुत ठोक-बजाकर देखा और उनमें से एक विचारक ने कहा, "इसमें शक नहीं कि यह देखने में सुहावनी है और इसे कभी कोई रोग नहीं लग सकता। नब्बू खां इसे बेचकर सरकार से कह सकता है कि गुम हो गई और इसे फिर नई टांग मिल जायेगी। यह कारोबार बुरा नहीं। फिर भी अल्लाह मियां की दी हुई टाँग में वह गुण होता है!"

* * *

घर पहुँचने के बाद नब्बू ख़ाँ को यह देखकर बड़ा अचंभा हुआ कि सब चुप चुप से रहते हैं। बूढ़ी माँ बैसाखी को छूकर रोने लगती है। शाम के धुंधलके में उसके बच्चे खेत की मेंड पर बैठे चुपके चुपके बातें करते हैं। अब्बा एक जर्मन को पकड़ने दौड़े और एक गड्ढे में गिर पड़े। लेकिन उनकी टांग ने वैरी का पीछा न छोड़ा और उसके पीछे पीछे दूर निकल गई।"

"भय्या, आदमी एक दूसरे को मारते क्यों हैं?"

भाई ने अपने नन्हे से सिर को खुजाते हुए कहा, मैं क्या जानूं। हां, यह मालूम है कि लोग रुपयों के लिये ऐसा करते हैं। जो सिपाही जितने ज़्यादा आदमियों को मारे उसे उतना ही ज़्यादा इनाम मिलता है। मैं भी बड़ा होकर सिपाही बनूंगा और बंदूक़ से बहुत से बैरियों को मारूँगा। सबसे पहिले तो जिल्लो की जान लूंगा जिसने आज मुझे गली में पीटा था।"

नब्बू खां के माँ बाप जब कुंवें की जगत पर मिल कर बैठते हैं तो उनकी बातचीत का केन्द्र एकलौते बेटे की गुमशुदा टाँग होती है। बेटे से ज़्यादा उन्हें इसके गुम होने का दुख है। दोनों ने मिलकर उसे पैदा किया और पाला पोसा। अब जो वह एक हरी भरी टहनी बन गयी तो वह समुद्रपार के किसी देश में छोड़ आया। अब देखो कि वह एकरंगे मुर्ग की तरह बैसाखी की मूठ पर नाच रहा है।

बूढ़ा अपने रुंधे हुए गले को साफ़ करके कहता है, "बड़ी बी, पीर जमाल शाह की दरगाह पर मानता मानो, शायद नब्बू अच्छा हो जाय।"

नब्बू खाँ की समझ में न आता था कि सारा गाँव उसकी भली-चंगी टांग को नहीं बल्कि उसकी कुलटा बहिन को ढूँढ़ता है। उसकी चमकती हुई बैसाखी का रोब उसके रंग के समान कम होने लगा। और हर ऐरा-ग़ैरा उसे देख कर पसीजी हुई आवाज़ में कह उठता: "ऐसा अच्छा जवान बेकार हो गया!"

नब्बू ख़ां के दोस्त जब नहर में तैरते या घोड़ों की नंगी पीठ पर तरारे भरते निकल जाते हैं तो उसके घायल घुटने के डुंड पर खुजली सी होती है और वह भी चाहता है कि पानी और हवा की लहरों को चीरता हुआ निकल जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पर सबसे कठिन घड़ी वह होती है जब उसकी पत्नी रह घुटने पर मालिश करती हुई पास-पड़ोस के जवानों से देर दहाड़े आँख मिलाती है और उसकी हर अदा ुकारती है कि मुझे जीवन का रस कौन देगा ?

चलते में वह लड़खड़ाती है गोया आप अपने बोझ से दबी जा रही हो। उसकी आंखें सामने नहीं बल्कि दायें-बायें देखती हैं और जब वह खेत में जाती है तो धान की बालियाँ सर हिला कर जताती हैं कि अन्दर—और अन्दर—इस झुरमट में तेरा यार मेहर छिपा बैठा है। जब वह खेत से बाहिर निकलती है, तो उसके कपड़े घास के तिनकों से मढ़े हुए होते हैं—

नब्बू ख़ाँ सब समझता है और बैसाखी पत्नी से पूछ-ताछ भी करती रहती है। फिर भी औरत के जवान बदन की ऐंठन किसी और क़िस्म की चोट चाहती है।

नब्बू ख़ाँ इस चिन्ता में घुला जाता है कि एक टाँग की कमी या ज़्यादती कितनी काया पलट कर सकती है। उसे दूसरों की दया से चिढ़ है, फिर भी सब उस पर तरस खाते हैं। कोई उससे सीधी तरह नहीं मिलता। माँ बाप तरस से, पत्नी ढिठाई से और बच्चे सहमकर मिलते हैं। पीठ से हमेशा एक भिनभिनाहट सुनने में आती है—नब्बू लंगड़े की टाँग!

धीरे धीरे गुमशुदा टाँग का ख़याल लंगड़े सिपाही पर भूत की तरह हो जाता है। पहिले वह इसे मामूली सी बात समझता था। लेकिन अब उठते, बैठते, चलते फिरते इसी ध्यान में रहने लगा कि दोबारा एक टाँग पैदा करे और अपनी पत्नी को उसके नीचे कुचल दे, फिर पूछे कि अब क्या हाल है ?

* * *

रात का समय था—अँधेरी रात। सब गर्मी के सताये हुए बाहर सो रहे थे, पर बुख़ार के सबब से नब्बू ख़ां कमरे में पड़ा हुआ था। एकाएक उसकी आंख खुल गई। क्या देखता है कि पास के मैदान में, माचिस की तीली जली और बुझ गई। इस संकेत पर, उसकी पत्नी चारपाई से उठी और इधर-उधर देखकर दबे पांव चल खड़ी हुई।

नब्बू ख़ाँ दम साधकर देखता रहा। मेहर—वह आवारा जिसके पास न घर था न ज़मीन, नब्बू ख़ां से किस बात में बढ़कर है। आख़िर वह क्यों बाज़ारू कुतिया की तरह उसके पीछे फिरा करती है। अचानक उसे याद आया कि यह टाँग का चमत्कार है—वह चीज़ जो किसी दाम पर नहीं मिल सकती।

नब्बू ख़ाँ ने उठकर अन्दर की कोठरी से गंडासा निकाला। पांव दबा दबाकर जैसे वह रणक्षेत्र में बैरी की टोह लेने निकला हो, उसी रोशनी की तरफ़ चलने लगा। समीप आकर उसने छड़ी फेंक दी और ज़मीन पर रेंगने लगा।

चारों ओर सन्नाटा था—बस जामुन के पेड़ के नीचे किसी के हांपने और किसी के खिलखिलाने की आवाज़ आ रही थी।

नब्बू ख़ां को सेना के वह सब दांव-घात याद आ गये जो बैरी पर छापा मारते समय काम में लाये जाते हैं। उसकी आँखें चीते की तरह चमक उठीं और उसने अंधेरे में वह देखा जो न देखना चाहिये था.....

उसके गँड़ासे का भरपूर वार मेहर की दाहिनी टाँग पर पड़ा और वह रान से कटकर अलग हो गई।

एक डरावनी चीख से हवा गूँज उठी। जब गाँव वाले पहुंचे तो उन्होंने देखा कि मेहर लहू में शराबोर बेसुध पड़ा हुआ है। औरत डर के मारे बेदम हो गई है—और नब्बू ख़ां अपने घायल घुटने से वह लहूलुहान टाँग बाँधे पागलों की तरह हँस रहा है।*

---

* डाक्टर अख़्तर हुसेन रायपुरी का भारतीय कहानी कारों में बहुत ऊँचा स्थान है। उनकी कहानियों में जो सजीवता, जो यथार्थता और जो सूझ होती है वह अन्य लेखकों की कहानियों में बहुत कम दिखाई देती है। ख़ुशी की बात है कि डाक्टर साहब की कहानियों का संग्रह अब शीघ्र ही "आग और आँसू" के नाम से प्रकाशित होने जा रहा है।

—सम्पादक



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आर्थिक योजना के कुछ बुनियादी उसूल

श्री किशोरलाल घ० मश्रूवाला

जब मैंने 'बम्बई योजना' का दूसरा भाग पढ़ा, तब मैंने महसूस किया कि कुछ उसूल जिन्हें मैं भारत की किसी भी आर्थिक योजना के लिए बुनियादी मानता हूं, वे 'बम्बई के नियोजकों' की मान्यताओं के बिलकुल ख़िलाफ़ पड़ते हैं। मैंने यह अधिक उपयुक्त समझा कि इनको अनेक प्रमेयों की भाँति क्रमशः लिख दिया जाय, भले ही मैं उन पर विस्तार से न लिख सकूँ। इस कारण पाठक बिना तर्कों के प्रारम्भ करने के लिए क्षमा करेंगे।

१—मेरी राय के मुताबिक़ सबसे महत्वपूर्ण बात भोजन को अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्य तथा सस्ते से सस्ता—लगभग जल के समान—बनाना है। दुर्भाग्य से जल भी भारत में जितना चाहिए उतना बहुतायत से तथा सस्ता नहीं है। किन्तु शुद्ध तथा ताज़े पानी का वितरण सारे संसार की म्युनिसिपैलिटियों के क्षेत्र में लोकोपयोगी सेवा मानली गई है और अच्छी म्युनिसिपैलिटियाँ यथाशक्ति सस्ता, बाहुल्य से तथा प्रत्येक नागरिक को बिना उसके राजकर पर ध्यान दिए, इसे वितरित करने की चेष्टा करती हैं। इसी प्रकार सस्ते तथा बहुतायत से भोजन का वितरण भी जनप्रिय शासन के लिए गम्भीर चिन्ता के विषय की भाँति लोकोपयोगी सेवा समझी जानी चाहिए। शिक्षा, उपचार तथा बिजली को सस्ती अथवा मुफ़्त बनाने के स्थान पर—अथवा उससे भी पहले—भोजन को सस्ता बनाना चाहिए। इसके लिए कुछ समय की आवश्यकता पड़ने पर इसका भिन्न देशों से आयात भी किया जा सकता है। अतः मैं किसान को उसकी फसल का 'उचित मूल्य' दिलाने की नीति में विश्वास नहीं करता।

२—रैयतवाड़ी प्रथा ज़मीदारी प्रथा की अपेक्षा राज्य तथा प्रजा के बीच से एक मध्यस्थ कम कर देने के कारण अच्छी हो सकती है। किन्तु सिद्धान्ततः यह किसी भी दूसरी अनुपस्थित भूस्वामी प्रणाली से भिन्न नहीं है। कृषक तथा जनता के दृष्टिकोण से, ज़मीदार के स्थान पर राज्य के अनुपस्थित भूस्वामी बन जाने से कोई भलाई नहीं होनेवाली। रैयतवाड़ी प्रणाली में सरकार अनुपस्थित भूस्वामी से किसी भी प्रकार कम नहीं है, जिसका केवल लगान उसूल करने तथा अवसर पड़ने पर बढ़ा देने में ही स्वार्थ रहता है। रैयतवाड़ी प्रणाली में अविच्छिन्न स्वामित्व की शर्त निश्चित किये हुए लगान का नियमित रूप से देते जाना है। इसके स्थान पर किसान को लगान नक़द अथवा जिस के रूप में चुकाने की ज़िम्मेदारी के बिना निर्वाह-वेतन दिया जाना चाहिए। किन्तु उसे राज्य के (जिसका प्रतिनिधित्व स्वराज्य पंचायत द्वारा हो) नियन्त्रण में भूमि जोतने को तथा जैसे उसे सलाह दी जाए वैसा सुधार करने को बाध्य होना चाहिए, तथा उन सुधारों के लिए वह साधन सुविधाएं जुटाए। जब तक राज्य भूमि के, जिसका कि वह स्वामी होने का दावा करता है, सुधारने की ज़िम्मेवारी अपने ऊपर नहीं लेता तथा स्वयं मौसम तथा खेती की खराबी का उत्तरदायित्व लेते हुए किसान को उसकी भूमि की वास्तविक पैदावार का ध्यान न करते हुए निर्वाह-वेतन उसको नहीं दिलाता वह अनुपस्थित भूस्वामी से किसी भी हालत में अच्छा नहीं है, बल्कि उससे बुरा ही है, कारण कि यह तो एक अव्यक्तिगत लालफ़ीताशाही शासन ही तो है।

३—स्थानीय स्वराज्य पंचायतें उस क्षेत्र में उगाये जाने वाले भोजन तथा अन्य कृषि पदार्थों का परिमाण, जाति तथा क़िस्म निर्धारित करें। यह निश्चय करके कि भोजन तथा उस क्षेत्र के लिए आवश्यक अन्य पदार्थ कम तो न पड़ेंगे। निस्सन्देह इस कार्य में उसे अन्य केन्द्रीय संस्थाओं से मार्ग प्रदर्शन मिलेगा।

४—निर्वाह-वेतन की मेरी धारणा यह है कि एक वयस्क पुरुष के प्रतिदिन औसतन ७ घण्टे और वयस्क स्त्री के प्रतिदिन औसतन ५ घण्टे काम करने पर उन्हें एक व्यक्ति के स्वस्थ तथा साधारण, किन्तु उचित रूप से पूर्ण जीवन निर्वाह के व्यय का क्रमशः तिगुना और दुगुना मूल्य प्राप्त हो जाना चाहिए। मैं इस मान पर निम्न बातों को ध्यान में रखने के कारण पहुँचा हूं। साधारणतया किसी देश की जन-संख्या का ४०% काम करने वाली जनता मानी जाती है, अथवा एक औसत परिवार ५ व्यक्तियों का माना जाता है, जिसमें से २ कमाने वाले होते हैं तथा ३ आश्रित। स्त्री को साधारणतया आदमी से कम मजदूरी मिलती है, किन्तु यह न्यायपूर्ण नहीं है। उसका काम पुरुष की अपेक्षा न तो हलकाही है और न कम ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


केवल मजदूरनी की तरह ही काम करना पड़ता है, किन्तु उसे मजदूरी के काम से पहिले और बाद को भी गृहणी की भाँति काम करना पड़ता है। मैं उसे दर कम नहीं दूँगा, किन्तु उसका काम कम हो जाना चाहिए चाहे इससे उसकी आमदनी कम हो जाए। कुछ भी हो, यदि राष्ट्र को उचित रीति से भोजन दिया जाना है तथा उनका पालन पोषण किया जाना है तो उन दो व्यक्तियों को ५ व्यक्तियों की सभी उचित मांगों की पूर्ति के योग्य मुआवज़ा मिलना चाहिए। इससे थोड़ा भी कम मिलने का मतलब ग़रीबी, कमी तथा उसके परिणामस्वरूप कुशलता का ह्रास होगा।

यदि हम रविवार, त्योहार, बीमारी तथा आकस्मिक छुट्टियों की गणना करें तो क्रमशः ७ तथा ५ घण्टे, प्रतिदिन का औसत क्रमशः ९ तथा ६½ घण्टे प्रतिदिन काम करने से पड़ता है।

५—उपरोक्त कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक व्यक्ति का, दो घण्टे के हलके परिश्रम अथवा एक घण्टे के कड़े परिश्रम के बाद पूरा भोजन प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। उसके काम के बाक़ी घण्टे भोजन के अतिरिक्त अन्य आवश्यकताओं के लिये तथा उसके आश्रितों के हेतु किये जाने वाले परिश्रम के लिए माने जाने चाहिएँ। परिणामतः बिना आश्रितों वाले व्यक्ति को दो घण्टे कठिन परिश्रम अथवा तीन घण्टे के हलके परिश्रम द्वारा ही अपना निर्वाह कर सकना चाहिए।

६—प्रत्येक गाँव अथवा दूसरी इकाइयों में एक अन्न बैंक होना चाहिए, जहाँ जनता अपना अन्न जमा कर सके तथा उनसे उसी प्रकार व्यवहार करे, जैसा कि लोग रुपये के सम्बन्ध में बैंकों से करते हैं।

७—अनुपस्थित भूस्वामी को लगान देने तथा निष्क्रिय पूँजीपति को ब्याज़ देने में सिद्धान्ततः कोई भेद नहीं है। दोनों ही एक-सी बिना मिहनत के प्राप्त आमदनी हैं, तथापि यदि इस प्रणाली को सहन ही करना है तो दरें नाममात्र की ही होनी चाहिएँ। वास्तव में भूमि का कोई कर न होना चाहिए, चाहे भूमि का स्वामी ज़मीदार हो अथवा सरकार। किसान से भी दूसरे पेशेवालों की भाँति आय कर ही लिया जाना चाहिए। तथा इसी प्रकार रुपये का भी कोई ब्याज़ न होना चाहिए, क्योंकि रुपया स्वयं कुछ उत्पन्न नहीं कर सकता। कृषि के अतिरिक्त अन्य उत्पादनों में कच्चे पदार्थों पर संगठन तथा (अथवा) श्रम का व्यय ही वस्तुओं का उत्पादन करता है।

८—केवल न्यूनतम निर्वाह-वेतन अथवा कर-मुक्त आय निर्धारित करना ही पर्याप्त नहीं है। अधिकतम सीमा भी निर्धारित कर दी जानी चाहिए। उस सीमा से अधिक सारी आय जनता की होनी चाहिए। इसी प्रकार व्यक्तिगत संपत्ति की भी न्यूनतम तथा अधिकतम सीमा निर्धारित करदी जानी चाहिए।

९—रुपया औद्योगिकता को प्रोत्साहन देने का एकमात्र अथवा मुख्य साधन नहीं है और न उसे वह बना दिया जाना चाहिए। आर्थिक गुणों के माप के कौशल, श्रम तथा दूसरे ही मान निर्धारित किये जाने चाहिएँ।

१०—बम्बई नियोजकों के यह दो प्रमेय कि:—

(१) "जन संख्या का कुछ प्रतिशत सदैव बेकार रहेगा" और

(२) "उत्पादन की प्रणाली में परिवर्तन हो जाने के कारण तथा माँग में घटाबढ़ी होने के कारण काम में लगे बहुत मज़दूर लगातार बेकार होते जा रहे हैं"—अधिक ख़तरनाक तथा ग़लत परिणाम हैं। बेकारों के प्रति यह दृष्टिकोण रखकर प्रारंभ करने वाले नियोजक इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि बेकारी जीवन की अटल स्थिति है। उत्पादन कला में परिवर्तन होने के कारण बेकारी को कोई स्थान न होना चाहिए। अतः उसके कारण होने वाली बेकारी का बिना हिसाब लगाए तथा उसका प्रबन्ध किये बिना कोई भी परिवर्तन नहीं करने देना चाहिए।

११—ईश्वर वृक्षों तथा प्राणियों को जीवन-लीला प्रारम्भ करने से पहले ही पर्याप्त भोजन का प्रबन्ध कर देता है। इसी प्रकार हमें भी करना चाहिए। संभवतः कुछ ऐसे भी होंगे जिन्हें यदि उदारता से भोजन दिया जाय तो वे अधिक के लिए काम करना न चाहेंगे। किन्तु अधिकांश व्यक्ति अपनी स्थिति सुधारना चाहेंगे और हमारे देश सरीखे कच्चे माल के धनी देशों में उद्योग शीघ्रता से बढ़ेगा, बशर्ते कि उन्हें जीवन का एक उद्देश्य प्राप्त हो जो उन्हें अभी एक ग़ुलाम प्रथा शोषित देश में प्राप्त नहीं है।

[ लोक जीवन

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दुस्तान के लिए आर्थिक योजना

श्री जे० सी० कुमारअप्पा

हिंदुस्तान की आर्थिक स्थिति सुधारने की दृष्टि से इधर कुछ दिनों से कई योजनाएँ जनता के सामने पेश हुई हैं। हर एक में कुछ न कुछ गुण-दोष हैं। उनमें से किसी का दावा नहीं है कि वही सर्वकश और इसीलिए स्वयं पूर्ण है। भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से लोगों की माली हालत सुधारने के लिये भिन्न-भिन्न दिशाओं में प्रयत्न करना युक्त होगा। इसका विहंगावलोकन करना ही हर एक योजना का मक़सद है। विश्वसनीय आंकड़ों के तथा अन्य जानकारी के अभाव में कोई भी योजना एकदम सही होने का दावा नहीं कर सकती। विशेषज्ञों की बनाई बम्बई योजना के नाम से मशहूर योजना में भी कई ख़ामियाँ रह गई हैं। उदाहरणार्थ उसमें नितान्त आवश्यक चीज़ों जैसे जंगल की सम्पति का उपयोग, नदियों का सदुपयोग, विशेषतः यातायात योग्य नहरें आदि बनाना, इसका कहीं ज़िक्र तक नहीं है। विदेशों से होनेवाले कच्चे माल के व्यापार को अत्यधिक महत्व दिया गया है और रास्तों द्वारा होनेवाले यातायात के सम्बन्ध में गलत धारणा दिखाई गई है, इत्यादि। अर्थात् इन सब पर चर्चा होकर संशोधन हो सकता है। इसलिये आज ही उनके पीछे लट्ठ लेकर पड़ने की ज़रूरत है।

पर एक बात मेरे ख़्याल से सभी महसूस करेंगे कि पेश की हुई किसी भी योजना में हमारा ध्येय क्या है या क्या होना चाहिये, इसका ज़िक्र तक नहीं है। वह होना नेहायत ज़रूरी है। सबों ने माली हालत सुधारने की जरूरत का प्रतिपादन करने की धुन में मानवता की दृष्टि करीब करीब भुला ही दी है। क्या हम मानव को सुप्रबंधित गौशाला की दुधारू गाय ही बना देना चाहते हैं? क्या यह सोचना उचित नहीं कि आर्थिक हालत सुधारने की धुन में मनुष्य के व्यक्तित्व पर तो प्रहार नहीं हो रहा है?

दूसरी बात यह है कि समय की मर्यादा वाली किसी भी योजना में जबरदस्ती करनी ही पड़ती है और उसका आख़री अंजाम हिंसा होता है। गीता कहती है कि 'जहाँ ममत्व आया वहाँ हिंसा आये बिना नहीं रहती।' केवल माली हालत सुधारने वाली किसी भी योजना को हिंसा की सहायता बिना अमल में लाया नहीं जा सकता। कृत्रिम आवश्यकताएँ निर्माण करना और उनकी पूर्ति के लिए कृत्रिम जोश पैदा कर मज़दूरों से ज़बरदस्ती काम करवाना, इस झंझटमय जीवन की अपेक्षा क्या वह सादगी भरा जीवन अधिक इष्ट नहीं, जिसमें अपनी ज़रूरतें मर्यादित की गई हैं, और जो हैं वे भी हमारा सांस्कृतिक विकास कर सकती हैं, तथा जिन्हें स्वतन्त्र आदमी स्वेच्छापूर्वक पूरी कर सकते हैं? रूस और जर्मनी ने पहली पद्धति का अवलम्बन किया और उसका परिणाम कितना भयंकर हुआ! क्या हम अब भी यूरोप और जापान का अन्धानुकरण करेंगे?

कोई भी योजना बनाते समय एक बात कदापि नहीं भूलनी चाहिए कि हिन्दुस्तान में मनुष्य-बल काफी पैमाने पर मिल सकता है। इसलिए यहाँ केन्द्रित उत्पादन की कम से कम गुञ्जाइश है और हम जो भी कोई योजना बनावें, वह ऐसी हो कि उसमें उत्पादन के लिये इस मनुष्यबल का अधिक से अधिक उपयोग हो। केन्द्रित उत्पादन पद्धतियों पर 'ज़हर' ऐसा लेबल लगाकर उनका उपयोग दवाई के तौर पर बहुत थोड़े प्रमाण में महत्व के उद्योगों, सार्वजनिक उपयुक्तता, तथा जंगल, खदानों और जल-प्रपातों के कामों तक ही सीमित रहेगा। इस प्रकार की आर्थिक व्यवस्था में आवश्यकता के अनुसार उत्पादन होगा और किसी भी वस्तु की खपत के लिए ज़बरदस्ती न की जायगी। वितरण स्वयं उत्पादन और खपत का अविभाज्य अंग बन जायगा। इसलिए न्याय्य विभाजन के लिए ख़ास कोशिश करने की जरूरत न रहेगी।

जब हमारी योजना इस मनुष्य बल के इर्द-गिर्द बनेगी, तब सिक्का अपने योग्य स्थान पर आप ही आप चला जायगा अर्थात् वह एक विनिमय का साधन मात्र बना रहेगा, सारे व्यवसाय में उसकी ही तूती न बोल सकेगी। और उस हालत में करोड़ों रुपयों के नोट छपने पर भी हमारी व्यवस्था में कोई ख़लल न पड़ेगा।

कई योजनाओं में प्रति व्यक्ति औसत आमदनी बढ़ाने पर बहुत तूल दिया गया है। यह प्रतिव्यक्ति औसत आमदनी एक धोखे की टट्टी है, इसलिए उस पर से कुछ निश्चित अनुमान नहीं लगाये जा सकते। यद्यपि प्रतिव्यक्ति सालाना आमदनी रु० ६५ के आसपास कूती गई है तथापि खेती का एक मजदूर रोजाना २, ३ आने से अधिक नहीं पाता और शायद वही उसके सारे कुटुम्ब की भी कमाई होगी। हिसाब से यह आमदनी सालाना १५ से २० रुपये प्रति व्यक्ति पड़ती है। कभी-कभी इतना मिल जाय, तो भी ग़नीमत है।

केन्द्रित उद्योगों द्वारा उत्पादन बढ़ाने पर कभी कभी बहुत ज़ोर दिया जाता है। दूसरे देशों का उदाहरण देकर इस बारे में प्रचार करना एक पोची दलील मात्र है। ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रचारक इधर तो कहेंगे कि देखो इङ्गलैण्ड उद्योग प्रधान देश है और रहेगा क्योंकि उस दशा में वह हमारे देश से अधिक उत्पादन कर सकता है। उसी समय वह यह भी प्रतिपादन करेंगे कि देखो इंग्लैण्ड में प्रति एकड़ पैदावार हमारे यहाँ से अधिक होती है। यदि मौजूदा युद्ध जन्य परिस्थिति के बावजूद इंग्लैण्ड में प्रति एकड़ अधिक पैदावार हो सकती हो तो उन्हींके तर्क शास्त्र के अनुसार क्या यह युक्तियुक्त न होगा कि इंग्लैण्ड खेती पर ज़ोर दे और हिन्दुस्तान लोहे के कारखानों पर? यह सब दिखावटी दलीलें छोड़कर युक्तियुक्त उत्पादन का हमें विचार करना चाहिये। अर्थात् हमारी सारी ज़रूरत की चीज़ें अपने अपने स्थानों पर बननी चाहिएं। ऐसा होगा, तभी युद्धों की कम सम्भावना रहेगी। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सिर्फ़ अतिरिक्त और शौक की चीज़ों का रहेगा। ऐसे मामलों में रुपये पैसों की कूती गई कीमत ही एक मात्र कसौटी न रहेगी।

कई लोग यह ग़लत धारणा किये बैठे हैं कि हिन्दुस्तान में या हिंदुस्तान के लिए योजना बनाने का यह पहला ही मौक़ा है। पर हिन्दुस्तान के लिए ऐसी व्यवस्था कोई नई चीज़ नहीं है। सम्भव है कि जड़ सम्पत्ति प्रधान योजना रूस जर्मनी और अमेरिका ने पनपाई हो। परन्तु व्यक्तित्व-निष्ठ योजना तो हिन्दुस्तान के लिए हिन्दू-संस्कृति जितनी ही पुरानी है। वर्णाश्रम धर्म यह हिन्दू धर्म की एक ऐसी सांस्कृतिक योजना है, जो किसी भी जड़ सम्पत्ति प्रधान योजना से कहीं बेहतर है।

गांधीजी की ऐसी योजनाओं के बारे में क्या धारणा है, इस सम्बन्ध में लोगों में अजीब कल्पनाएँ हैं, जो उनके मन की असली बात जानना चाहते हैं, उनको चाहिये कि वे गांधीजी के देश के सामने रखे हुए रचनात्मक कार्यक्रम को चलाने के लिए अखिल भारतीय चर्खा संघ, अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ आदि जो राष्ट्रीय संस्थाएँ चल रही हैं, उनकी उत्पत्ति, घटना और कार्य-पद्धति आदि का अध्ययन करें। क्योंकि ये संस्थाएं गांधी जी की कल्पनाओं को कार्यान्वित कर रही हैं। भौतिक उत्पादन बढ़ाने के साथ ही साथ कार्य की शैक्षनिक उपयुक्तता द्वारा कार्य-कर्त्ता का उत्कर्ष कराना यही उनका ध्येय है। मनुष्य केवल खाना खाकर ही नहीं जीता है। बहुधा देखा जाता है कि भौतिक उत्पादन पर विशेष ज़ोर देने से मनुष्य का अधःपतन होने लगता है। हिन्दुस्तान की मौजूदा राजकीय परिस्थिति के कारण बड़े बड़े केन्द्रीय उद्योगों का संचालन गांधीजी की कल्पनाओं के अनुसार होना सम्भव नहीं। हमें चाहिए कि जो बातें व्यक्ति तथा संस्थाएँ खानगी रूप से कर सकती हैं, उन्हीं से काम शुरू कर दें। और तब तक हम अपनी जरूरतें उन्हीं चीजों तक सीमित रखें, जो हमारे आस पास बनती हैं। एक ऐसा दिन अवश्य आवेगा जब हम अपनी सारी ज़रूरियात की चीज़ें, दूसरों को लूटकर नहीं, बल्कि उनकी राजी खुशी से और मानव प्रगति को साधते हुए आसानी से प्राप्त कर पूर्ण और सन्तोषप्रद क़ीमत प्राप्त कर सकेंगे।

---

# गीत

श्री देवेन्द्र एम० ए०

दिशा-दिशा में निश्चित पथ हैं,
निश्चित गति, निश्चित इति अथ हैं!
बन्धन-संकुल इस जग में मैं, कैसे मुक्ति-भरे स्वर गा लूं!

मुझे न जग-बन्धन अप्रिय हैं,
मुझे न वे संयम अप्रिय हैं,
जिनमें सब का सुख हो पर कुछ मैं अपने भी सुख को पा लूं!

जहां न निश्चित गति, इति, अथ हों
जहां न आशायें प्रतिहत हों
जिस पर सुख के क्षण बिखरे हों, मैं कैसे वह राह निकालूँ!

---


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भारत की आर्थिक उन्नति के लिये गान्धीवादी योजना पर एक दृष्टि*

श्री रमेशचन्द्र गोयल बी० कास०

युद्धोत्तर पुनर्निर्माण की जितनी योजनाएँ पिछले दो तीन वर्षों में देश के सामने रखी गई हैं, उनमें से श्रीमन्नारायण अग्रवाल की गाँधीवादी योजना आर्थिक क्षेत्र में एक नये पथ की ओर संकेत करती है। यह वस्तुतः बम्बई की औद्योगिक योजना के बाद प्रकाशित हुई है, और अधिकतर इसमें विपक्षी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। आरम्भ में ही विद्वान लेखक ने बहुत से पाश्चात्य मनीषियों की रायें पेश की हैं कि वास्तविक पुनर्निर्माण की योजना किन आधारभूत सिद्धान्तों के अनुकूल होनी चाहियें। यहाँ उनकी सत्यता या असत्यता को लेकर वाद-विवाद का प्रश्न नहीं है, किन्तु आम तौर पर इतना तो उन सभी ने स्वीकार किया है कि प्रत्येक आर्थिक योजना का एकमात्र उद्देश्य जन साधारण के रहन सहन के दर्जे को ऊँचा करना है।

अब यदि हम जीवन के मान की उन्नति को ही पुनर्निर्माण का उद्देश्य मानकर इस योजना को व्यावहारिकता की कसौटी पर कसें तो वस्तिविकता ज्ञात हो सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि इसे महात्मा गांधी जैसे विश्व-वंद्य नेता का आशीर्वाद प्राप्त है किन्तु देखना यह है कि आर्थिक सिद्धान्तों की कसौटी पर यह कहाँ तक पूरी उतरती है। गाँधीवाद के सिद्धान्तों से किसीको कोई विरोध शायद नहीं हो सकता, किन्तु उनकी व्यावहारिकता में सन्देह करने की गुन्जाइश हो सकती है। जैसा कि विद्वान लेखक ने स्वयं ही उल्लेख किया है कि आर्थिक समानता के बिना राजनैतिक समानता कभी वास्तविक नहीं हो सकती, अतः देखना यह है कि क्या इस योजना के अनुसार भारतवर्ष संसार के अन्य आर्थिक दृष्टि से उन्नत देशों के साथ समानता और बराबरी का दावा आर्थिक अथवा राजनैतिक क्षेत्र में कर सकेगा?

हमने जो कसौटी क़ायम की है, वह है जनता के जीवन के मान को ऊँचा करना, अर्थात उसको जीवन की अधिक सुविधायें देना। इसका सीधा अर्थ है उपभोग्य वस्तुओं का अधिक उत्पादन और उसके द्वारा हमारी विशाल जन-संख्या की भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति। यह तभी सम्भव हो सकता है कि जब हमारे पास उत्पादन की वृद्धि के साधन प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हों। सारे अर्थशास्त्री गाँधीवादी, समाजवादी, और अन्यवादी इस बात पर एकमत हैं कि हमारे पास प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता है, किन्तु उनका पूर्ण उपयोग नहीं हो रहा है। उद्योगपतियों की योजना में उनका उपयोग मशीनों की सहायता, बड़े उद्योगों की स्थापना तथा औद्योगिक केन्द्रीकरण की नीति के द्वारा सम्भव बताया गया था, किंतु इस गांधीवादी योजना में वही बात 'सादगी, विकेन्द्रीकरण तथा ग्रामोद्योगों' के द्वारा सम्भव बताई गई है। उद्देश्य तथा लक्ष्य एक होते हुए भी दोनो योजनाओं में मूलतः दो ध्रुवों की दूरी जान पड़ती है।

जन साधारण को भूख और ग़रीबी से छुटकारा दिलाने के लिये तथा उनके रहन सहन के दर्जे को ऊँचा उठाने के लिये यद्यपि बहुत सी योजनाएँ संसार के विभिन्न देशों में बनाई गई हैं, किन्तु उनमें रूस की पंचवर्षीय योजनायें ही सर्वतोभावेन सफल कही जा सकती हैं। विद्वान लेखक ने रूस की पुनर्निर्माण योजनाओं का उल्लेख किया अवश्य है किन्तु उसे धन की व्यावहारिक उपयोगिता को स्वीकार करने से इन्कार है। उसने यह तो स्वीकार किया है कि रूस में उत्पादन के साधनों पर सरकार का आधिपत्य है किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं कि सरकार पर किसका आधिपत्य है। यह तो निर्विवाद तथा सर्वसम्मत है कि रूस में जनता की सरकार है, और इस प्रकार उत्पादन के साधनों पर कुछ व्यक्तियों का नहीं किन्तु सारे समाज का अधिकार है। मुख्य बात तो यह है कि उत्पादन के साधनों पर आधिपत्य किसी का भी हो, किन्तु उत्पादित वस्तुओं का वितरण समुचित तथा समान रूप से होता है या नहीं? इस बात को सभी स्वीकार करेंगे कि रूस ने जन साधारण को भूख और ग़रीबी से निजात दिलाने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण जन-साधारण की सबल शक्ति और उसकी बर्लिन विजयिनी लाल सेनाएँ हैं। किन्तु लेखक ने प्रत्यक्ष-प्रमाण की सत्यता में भी सन्देह किया है। यद्यपि इसका यह अभिप्राय नहीं कि रूस की योजना ही आदर्श है, और वह उसी रूप में भारत में भी सफल हो सकती है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जिन सिद्धान्तों के आधार पर वे योजनाएँ बनाई गई थीं वे बहुत अंशों में सर्वव्यापी हैं और उन्हीं के आधार पर हमारी योजनाएँ भी सफलता की ओर अग्रसर हो सकती हैं।

---

* The Gandhian Plan of Economic Development for India by Shrimannarayan Agrawal; foreword by Mahatma Gandhi, Padma Publications Ltd. Bombay, Price Rs 2/8/—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सादगी, ग्रामोद्योग तथा विकेन्द्रीकरण में लेखक ने अटूट विश्वास प्रकट किया है। किन्तु प्रश्न उठता है कि जीवन के मान को कितना सादा बनाया जा सकता है, क्या इसकी कोई निश्चित सीमा है! जीवन की आवश्यकताओं को कम करने का नाम सादगी है। किन्तु यह तो जीवन के मान को, रहन सहन के दर्जे को नीचा करना है। सादगी का उपदेश कुछ लोगों के लिए ठीक और ग्राह्य हो सकता है, किन्तु इस देश की जनता तो वर्षों से नहीं, सदियों से भीषण ग़रीबी और अभाव की शिकार है, उसे सादगी का पाठ पढ़ाना तो जले पर नमक छिड़कना होगा। सम्भव हो सकता है कि खादी के कुरता धोती पहननेवाले किन्तु महलों में रहने और मोटरों में बैठनेवाले कुछ व्यक्तियों के लिए सादगी का उपदेश आवश्यक हो, किन्तु भारत के गाँवों में रहनेवाली देश की ९० प्रति शत जनता को, जो मिट्टी के कच्चे घरौंदे में रहती है एक वक्त भरपेट भोजन और तन ढाँकने को एक वस्त्र भी मुश्किल से पाती है, क्या अभी और सादगी का सबक़ सिखाने की आवश्यकता है! क्या यह उनकी ग़रीबी का उपहास नहीं? किन्तु भाग्य की विडम्बना है कि देश के नेता देश की नंगी भूखी जनता को सादगी का पाठ पढ़ाते हैं। जीवन का मान ही तो एक आरम्भिक तथा आधारभूत कसौटी है जो हमारी उन्नति की द्योतक है। उसको ऊँचा उठाने की अपेक्षा, इस प्रकार नीचे गिराने की चेष्टा किसी भी आर्थिक निर्माण की योजना की निर्धारित नीति का अंग नहीं हो सकती।

इसी प्रकार ग्रामोद्योगों के प्रसार और उन्नति का सिद्धान्त भी कुछ अंशों में ही मान्य हो सकता है। उन्हें देश की आर्थिक व्यवस्था में आज भी एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और रहेगा, किन्तु ग्रामोद्योगों के लिए ही इस मशीन के युग से चरखे के युग में लौटने के लिए, दुनिया कहां तक तैयार होगी, यह विचारणीय है। सैद्धान्तिक रूप में खादी की आर्थिक उपयोगिता से कोई इन्कार नहीं करता, किन्तु व्यावहारिक रूप में उसकी उपयोगिता अत्यन्त सीमित है। उदाहरण के लिए खादी के प्रचार का पिछला २५ वर्षों का इतिहास देखा जा सकता है। अखिल भारतीय चरखा संघ के अनवरत उद्योग, महात्मा जी की प्राणपण से चेष्टा तथा देश के अधिकांश नेताओं और महान संस्था कांग्रेस के समर्थन के बावजूद भी आज खादी का कहाँ तक प्रचार हो पाया है, यह सबको मालूम है। स्पष्ट है कि खादी कभी भी मिल के कपड़े की प्रतियोगिता में नहीं चल सकती, चाहे उसके पीछे नैतिकता और देशभक्ति का कितना ही बल क्यों न लगाया जाये। दुनियाँ आज चरखे और करघे के युग से बहुत आगे बढ़ आई है और वह किसी के कहने से भी लौटना नहीं चाहती, शायद लौट भी नहीं सकती। सभ्यता की दौड़ में आगे की राह खुली है, पीछे की नहीं।

खादी के उत्पादन के विषय में विद्वान् लेखक ने आंकड़े देकर बताया है कि यदि यह मान लिया जाय कि औसत १ गाँव की आबादी ५०० प्राणियों की होगी और उसमें ३७५ वयस्क और काम करने योग्य होंगे, तो यदि वे ३७५ प्राणी रोज केवल एक घंटा सूत कातें तो सारे गाँव के लिये कपड़ा जुटा सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक ग्राम कपड़े के लिये अपनी आवश्यकता आप पूरी कर सकेगा और दूसरों पर निर्भर न रहकर स्वाधीन हो जायेगा। ग्राम-स्वराज्य की स्थापना ही लेखक की सबसे प्रिय कल्पना है। किन्तु क्या यह प्रश्न किया जा सकता है कि सबके लिये १ घंटा रोज़ सूत कातने का यह बंधन अनिवार्य क्यों? यह कैसा स्वराज्य और कैसी स्वतंत्रता? इस प्रकार तो कोई भी सरकार अथवा ग्राम-पंचायत यदि चाहे तो अपने निवासियों से रोज़ १ घंटा चक्की पीसने की भी आज्ञा कर सकती है, गोया कि सारा देश एक बड़े जेल में परिणत किया जा सकता है। अब यदि मान लिया जाय कि सब लोग अनिवार्य रूप से ऐसा न करना चाहेंगे तो उत्पादन का परिमाण कम हो जायगा, और फलस्वरूप कपड़े की कमी होगी। और जब इस प्रकार सारे ग्राम आत्म-निर्भरता की अवस्था को प्राप्त हो जायेंगे, तो इन मिलों का क्या होगा, सारे देशी और विदेशी व्यापार का क्या होगा? यदि आँकड़ों की गहराई में न जाकर केवल ऊपरी दृष्टि से देखा जाय, तो ज्ञात होगा कि आज हमारे देश की इतनी मिलें हाथ के करघे और चरखे, सब मिलकर इस देश की विशाल जनता को औसतन १४ गज़ कपड़ा प्रति वर्ष प्रति-मनुष्य दे सकते हैं, तो केवल चरखे करघे तो उसे १ चौथाई से भी कम कर देंगे। विद्वान लेखक की योजना का उद्देश्य तो है कपड़े की मात्रा बढ़ाकर २० गज़ प्रति मनुष्य कर देना, किन्तु उत्पादन बढ़े बग़ैर यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है? यह तो घोड़े के आगे गाड़ी रखने के समान है।

अतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आज की आर्थिक व्यवस्था में ग्रामोद्योगों के लिये एक परिमित स्थान ही प्राप्त हो सकता है। वे मशीनरी का स्थान नहीं ले सकते, और केवल उन्हींके बल पर देश को उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं किया जा सकता। हम चाहें तो अपने देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


को केवल ग्रामोद्योगों पर निर्भर रख सकते हैं, पर प्रश्न यह उठता है कि क्या संसार के दूसरे देश हमें चैन से रहने देंगे ? क्या हम उनके बल पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार-प्रतियोगिता में ठहर सकेंगे ? इस युग में जब कि हमारी आर्थिक तथा व्यापारिक नीति संसार के सभी अन्य देशों के सहयोग पर आश्रित है, हम चाहते हुए भी अपने आपको उससे पृथक नहीं कर सकते। सारे संसार के विभिन्न देशों की आर्थिक व्यवस्था में जो परिवर्तन होते हैं, उनका प्रभाव हमारे देश की आर्थिक अवस्था पर पड़े बिना नहीं रह सकता। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को हम बन्द नहीं कर सकते और यदि उसे कम करें तो हानि हमारी ही होगी। अतः ऐसी दशा में जब कि हमें दूसरे देशों के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चलना है, हममें इतनी शक्ति होनी चाहिये कि हम उनके साथ व्यापारिक प्रतियोगिता में टिक सकें। गांधीवादी योजना में इसकी कोई स्पष्ट रूप रेखा नहीं है। आत्मनिर्भरता का ज़माना चला गया। आज कोई भी देश केवल अपने भरोसे नहीं रह सकता, ख़ास करके भारतवर्ष, जो कि औद्योगिक प्रतियोगिता की दौड़ में पीछे रह गया है। उसे अपनी कमी पूरी करने के लिये पग पग पर अन्य देशों से विविध प्रकार की सहायता लेनी होगी। अतः 'कूप-मण्डूक' बनना न तो सम्भव है और न वांछनीय ही।

विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त भी स्पष्ट रूप से समझाने की विद्वान लेखक ने चेष्टा नहीं की है। उद्योगों के अत्यधिक केन्द्रीकरण के दुष्परिणाम गिना देने मात्र से तो समस्या हल नहीं हो जाती। केन्द्रीकरण के लाभ इतने अधिक हैं कि उनके सामने दुष्परिणामों की कोई क़ीमत नहीं रह जाती। फिर भी जहां सम्भव हो सकेगा वहां उद्योगों को फैलाया जा सकेगा। किन्तु कृषि की व्यवस्था में तो विकेन्द्रीकरण की अपेक्षा आज अत्यधिक केन्द्रीकरण की आवश्यकता है। विद्वान लेखक ने भूमि सम्बन्धी क़ानूनों में आमूल परिवर्तन का प्रस्ताव किया है तथा वह सारी भूमि को राष्ट्र की सम्पत्ति बना देने के पक्ष में है। वर्त्तमान राजनैतिक व्यवस्था में भूमि पर से व्यक्तिगत अधिकार किस प्रकार उठाया जा सकेगा, यह विचारणीय है। साथ ही ऐसा करने से ज़मींदार और सम्पन्न कृषक-वर्ग की ओर से जो आन्दोलन होगा उसका कोई उपचार नहीं बतलाया गया। यदि राष्ट्रीयकरण ही करना है तो राष्ट्र की सारी सम्पत्ति का ही किया जाय केवल भूमि का ही क्यों ? यदि इस आर्थिक व्यवस्था को पलटना है तो उसमें जिन मौलिक और मूलभूत परिवर्तनों की आवश्यकता है, उनको सर्वांश में पलटे बग़ैर ऊपरी लीपा पोती से किसी लाभ की सम्भावना नहीं।

किन्तु कृषि और भूमि सम्बन्धी कुछ मौलिक समस्याओं की ओर लेखक का ध्यान नहीं गया है। १९४१ की जन-गणना के अनुसार हमारे देश में संसार की १ तिहाई जन संख्या अर्थात लगभग ३९ करोड़ प्राणी निवास करते हैं। इनके लिये कुल खेती योग्य भूमि ३५३ मिलियन एकड़ है, जिसमें केवल २६७ मिलियन एकड़ भूमि बोई-जोती जाती है।* इस प्रकार मोटे तौर पर विभाग करने से प्रति-मनुष्य के हिस्से में पौन एकड़ भूमि भी नहीं पड़ती, और यही कारण है कि आज कृषक परिवारों में से अधिकांश आधे आधे एकड़ के टुकड़े पर अपनी जीविका चलाने को बाध्य हैं। सर टी० विजयराघवाचार्य के मतानुसार भारत में खेती योग्य भूमि प्रायः सभी काम में ले ली गई है, और जो शेष है, वह ऐसी है कि सरकार ही उसे बहुत रुपया खर्च करके खेती के योग्य बना सकती है।† अतः कृषि योग्य भूमि का परिमाण तो बढ़ नहीं सकता, और हमारी जनसंख्या का हाल यह है कि दस वर्ष में ही ३३·८ करोड़ से बढ़ कर ३९·० करोड़ हो गई। सन १८९१ से लेकर १९४१ तक जन संख्या में कुल ३९% प्रतिशत वृद्धि हुई है। ऐसी दशा में भूमि से इतने मुखों के योग्य भोजन उत्पन्न करने का एक ही उपाय है। वह है कि सारी कृषि योग्य भूमि को सामूहिक बड़े बड़े खेतों में बांट कर उनमें Intensive cultivation के द्वारा अधिक उपज की जाये। यह रूस के 'कोल खोज' के नमूने पर भली प्रकार सफल हो सकती है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी बातें है, जैसे सिंचाई की व्यवस्था, जल-बिजली का उत्पादन, कृत्रिम खाद का उत्पादन; किन्तु चूँकि वह शायद ग्रामोद्योगों के क्षेत्र से बाहर की वस्तुएँ है, इसलिये लेखक ने उनपर विशेष ध्यान नहीं दिया।

अन्य पुनर्निर्माण योजनाओं की भाँति प्रस्तुत योजना में भी औसत भारतीय की वार्षिक आय को १२) से ७२) कर देने का स्वप्न देखा गया है। किन्तु यह प्रति-मनुष्य आय एकदम से चौगुनी कैसे हो जायगी, इसकी कोई

---

* Times of India Year Book, 1943-44. and Who's Who

† Sir T. Vijayaraghavacharya— The Land and its Problems.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




निश्चित रूप रेखा हमारे सामने नहीं आती। औद्योगिक योजना में योजना के कार्यान्वित होने की अवधि तथा उसकी रूप रेखा निश्चित है, किन्तु इस योजना की गवेषणा करने पर ऐसा ज्ञात होता है कि केवल सिद्धान्त मात्र स्थिर किये गये हैं।

योजना के दूसरे भाग में औद्योगिक योजना के ढङ्ग पर योजना को कार्यान्वित करने का हिसाब लगाया गया है। प्रथम १० वर्ष में लगने वाली पूंजी ३,५०० करोड़ होगी। यह पूंजी, उधार लेकर, करेन्सी बढ़ाकर तथा ऊँचे कर आय-कर, कारपोरेशन-कर इत्यादि के द्वारा प्राप्त की जायेगी। इसके पश्चात चालू ख़र्चा लगभग २००) करोड़ वार्षिक का रहेगा, जो राज्य की आमदनी से चलेगा। यह आँकड़े औद्योगिक-योजना के आंकड़ों की अपेक्षा बहुत नीचे जान पड़ते हैं, फिर भी जब कि औद्योगिक योजना में प्रति मनुष्य आमदनी को केवल दुगुना कर देना ही लक्ष्य है इस योजना के अनुसार वह चौगुनी हो जायगी।

इस योजना के मतानुसार आधारभूत उद्योगों की मालिक सरकार होनी चाहिये, किन्तु यह समझ में नहीं आता कि आधारभूत उद्योगों के अलावा अन्य उद्योगों की भी मालिक सरकार क्यों न हो? तथा अन्य उद्योगों के स्थान पर ग्रामोद्योग और ग्राम-पंचायत ही क्योंकर काफ़ी होंगे।

वास्तव में यह एक चक्रव्यूह है। हमारे राष्ट्रीय जीवन में दीवारें खड़ी हो गई हैं। हमारे उद्योग और कृषि पनपने नहीं पाते। कृषि की उन्नति इसलिये नहीं हो पाती, कि उस पर आवश्यकता से अधिक प्राणियों का भार है और भूमि का परिमाण कम है। उद्योगों की उन्नति इसलिये नहीं हो पाती कि उनके माल की खपत देश में नहीं क्योंकि अधिकांश जनता क्रय-शक्ति-विहीन है। आवश्यकता इस बात की है कि शीघ्रातिशीघ्र जन-संख्या के एक विशाल भाग को कृषि की ओर से हटाकर अन्य उद्योगों की ओर लगाया जाय, तथा बड़े पैमाने पर उद्योग धन्धे खोले जाँय जो साथ में ग्रामोद्योगों को जन्म दें। किन्तु इसके विपरीत केवल ग्रामोद्योगों से आज की दुनिया में काम चलना बहुत कठिन ही नहीं, असम्भव भी है। हमें संसार के अन्य देशों के साथ चलना ही पड़ेगा। यह अस्तित्व क़ायम रखने की पहली शर्त है।

# कवि और दार्शनिक

श्री सुनीतिचन्द्र

एइ चित्त आभार वृन्त केवल,
तारि 'परे विश्व कमल···

महाकवि की यह अनुभूति उनके गीत के अन्दर से फूट पड़ी है। अनेक दार्शनिकों ने भी इस विराट विश्व का आधार चित्त को ही माना है। यहाँ उनकी स्थापना और कवि के कथन का सादृश्य दिखाने का हमारा अभिप्राय नहीं है। कवि और दार्शनिक का लक्ष्य चाहे अन्ततोगत्वा एक ही हो, परन्तु उनके मार्ग सर्वथा भिन्न हैं इसमें किसी को शङ्का के लिये स्थान नहीं है। दार्शनिक सत्य की तह में पहुँचने के लिये अत्यन्त निर्मम भाव से चीज़ों की चीर फाड़ करेगा, उसे किसी का मोह नहीं, किसी की ममता नहीं। पर कवि किसी पर आघात नहीं कर सकता। वह सौन्दर्य का महापुजारी है। उसकी दृष्टि प्रत्येक उपकरण के सौन्दर्य पर है। उस सौन्दर्य का उपभोग करना और कराना ही उसका काम है। ऊपर के कथन में सादृश्य चाहे कितना ही हो किन्तु दृष्टि बिल्कुल भिन्न है। जो भिन्नता कवि तथा दार्शनिक में होना अनिवार्य है।

कवि आनन्दविभोर होकर गा उठा मेरे चित्त के वृन्त पर विश्व का यह प्रकाशमय कमल खिल उठा है। उसमें तल्लीनता है, मुग्धता है, छानबीन चीरफाड़ की प्रखर, दृष्टि नहीं। दार्शनिक भी यही कहता है कि विश्व की सत्ता हमारे मानस के कारण ही है। पर उस कथन और कवि के इस आत्म मुग्ध गीत में कोई समानता नहीं। और दार्शनिक क्या कहता है हम इस पचड़े में पड़ें ही क्यों! कवि के इस गीत में समस्त विश्व का सत्य, उसका वैभव बिना प्रयास ही फूट पड़ा है। हमें और चाहिये ही क्या! भगवान के इस अपार विश्व में अपार सौन्दर्य राशि राशि बिखरा पड़ा है। हम उस सौन्दर्य के महासागर में डुबकी लगाकर अपनी तृप्ति भर उस आनन्द रस का पान करें। हमें इसकी क्या चिन्ता कि किसकी सत्ता किससे है?

और कवि भी तो सत्य-द्रष्टा ही है। वस्तु से उसका गुण, उसका स्वभाव कौन पृथक कर सकता है? विश्व का सत्य और सत्य का वैभव दो भिन्न इकाइयां थोड़े ही हैं? कवि सत्य को उसके वैभव, उसके ऐश्वर्य के द्वारा ग्रहण करता है। हम भी इस सरसता और माधुरी के मार्ग को छोड़कर दार्शनिकता की मरुभूमि से होकर सत्य की खोज में क्यों जायँ! गाओ कवि, गाओ और हमें भी अपनी गीत की मदिरा से मदहोश कर दो।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# ये नापाक विवाह !

श्रीमती लता देसाई एम० ए०

"वह चली गई !"

"कौन ?"

"माधुरी ! चली क्या गई भाग गई और यह पत्र तुम्हारे लिये छोड़ गई है।"

"मेरे मुँह की तरफ़ एकटक क्या देख रही हो ? इसे पढ़ लो।"

पत्र में लिखा था—

"प्यारी आशा,

जिस वक्त तुम्हें यह पत्र मिलेगा उस वक्त मैं तुमसे दूर, बहुत दूर पहुँच चुकी होऊँगी। इतनी दूर कि जहाँ मुझे पिताजी की धमकियाँ और घुड़कियाँ सुनने को न मिलेंगी। आख़िरकार मैंने अपनी क़िस्मत अपने हाथों में ले ली है और उसे अशोक के साथ मिलकर मन के अनुरूप गढ़ने की कोशिश करूँगी। अल-विदा मेरी बहन—

तुम्हारी

माधुरी"

हाँ, यह सब करने वाली माधुरी ही थी और कौन उसे इसके लिये दोष देगा ? माधुरी और आशा एक गुजराती साहूकार की मातृ हीना लड़कियाँ थीं। पिता ने पहले उन्हें स्कूल भेजा और फिर कालिज, ताकि वे बिरादरी में पहली ग्रैजुएट लड़कियां कहला सकें। सन् ३० के नमक सत्याग्रह में पिता ने उन्हें भारत माता के हित में छै महीने जेल में बिताने की अनुमति भी दे दी। और इसके बाद पिता का प्रगतिशील माथा ढप होकर रुक गया। और जब उसकी लड़कियों ने अपनी पसन्द के युवकों से विवाह करना चाहा तो पिता ने न केवल असहमति ही प्रकट की बल्कि उनकी इच्छा को ठुकराकर कुचल देना चाहा।

कातर होकर माधुरी ने कई बार पिता से प्रार्थना की, अनुनय की, किन्तु पिता ने हमेशा न केवल कठोर स्वर में इनकार किया बल्कि माधुरी का सर तोड़ देने की भी धमकी दी। माधुरी को आज्ञा मिली कि यदि वह अशोक के साथ कभी दिखाई देगी तो उसका भुरता बना दिया जायगा।

जिस समय माधुरी बालिग़ और वयस्क हुई उसी दिन उसने घर छोड़ दिया और अपने मन चहते अशोक से सिविल मैरिज एक्ट के अनुसार विवाह कर लिया। साल भर के बाद वह एक गुदगुदे से गोलमटोल बेबी को लेकर अपने पिता के घर लौटी और शीघ्र ही दोनों दन्तहीन मित्रों, नाना और धेवते, में गहरी दोस्ती हो गई। नाना मुश्किल से अपने धेवते को आंखों से ओझल होने देते। और तब भी वृद्ध में इतनी उदारता नहीं थी कि वह अपने बर्ताव के लिये बेटी से क्षमा याचना करता क्योंकि सम्भव था उसकी 'नाहीं' इस प्यारे मासूम शिशु को दुनिया में आने का अवसर ही न देती।

## सहिष्णुता क्यों नहीं ?

यह क्या बात है कि माता पिता हमेशा इसी तरह का रुख़ लेते हैं ? क्या उन्हें इनकार करने में कुछ आनन्द मिलता है अथवा बच्चों की अपनी पसन्द उनके अभिमान को ठेस पहुँचाती है ? अब वक्त आ गया है कि माता पिता को अपने बच्चों की शादी के सम्बन्ध में ज़्यादा मानवीय रुख़ लेना चाहिये। ऐसा करके वे अपने कलेजे के टुकड़ों का बहुत सा कष्ट और सन्ताप, कटुता और दुख और कुछ अवसरों पर आत्महत्या को भी बचा सकते हैं। यदि वे अपने बच्चों की राय से ज़रा भी सहमत नहीं हो सकते तो उदासीन रहें। इस हाय तोबा मचाने और तबेले में लतियाव करने से उन्हें क्या हासिल होता है! आख़िर ज़माना और परिस्थितियों को देखते हुये बूढ़ों और बच्चों की रुचि में भिन्नता हो सकती है, तब सहिष्णुता से ही क्यों न काम लिया जाय ?

यह देखकर बड़ा प्रोत्साहन मिलता है कि दिन प्रति दिन ज्यादा से ज्यादा तरुण और तरुणियाँ खुद अपने हाथों अपनी क़िस्मत गढ़ने का प्रयत्न कर रही हैं और अपने प्रयोग पर सन्तोष और सुख की सांस ले रही हैं। किन्तु अब भी ग़ल्ले में कुछ भेड़ें हैं कि जो आँख मूँदकर चलती जाती हैं और फिर अपनी क़िस्मत को बैठकर रोती हैं!

## उसके पास बैंक बैलेन्स नहीं था !

मैं एक ऐसी बहिन को जानती हूँ जिनका दुर्भाग्यवश एक ऐसे व्यक्ति से प्रेम होगया जिसके पास अपने व्यक्तित्व के सभी दोषों पर रुपहला मुलम्मा फेरने के लिये "बैंक बैलेन्स" न था। और इसी बुनियाद पर मां-बाप ने उसके दावे को ख़ारिज कर दिया। बहिन ने जब आग्रह किया तो उसे झिड़की मिली—एक ग़रीब आदमी से शादी करने में भला क्या तुक है ? प्रेम ? प्रेम की बात खूब कही! ख़ाली हवा और प्रेम पर तो कोई ज़िन्दा रह नहीं सकता! जब ग़रीबी सदर दरवाज़े से प्रवेश करती है तो प्रेम पीछे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रास्ते से भाग खड़ा होता है। किसी भी समझदार लड़की का यह कर्तव्य है कि वह जिससे शादी करना चाहती है पहले उसकी आर्थिक अवस्था को खूब ठोंक बजाकर देख ले।"

और इस तरह सारा परिवार कुल्हाड़ी लेकर इस ग़रीब प्रेमी के ख़िलाफ़ खड़ा होगया। ऐसे ऐसे रिश्तेदार जिन्होंने पहले कभी इस बहिन में दिलचस्पी न ली थी आ आकर अपनी सलाहों से उसे परेशान करने लगे। मौक़े बेमौक़े उसे बताया जाने लगा कि यह क्या ग़ज़ब ढाने जा रही हो। पिता ने उसे अन्तिम रूप से कह दिया कि 'यदि वह उस लड़के से मिलेगी तो वह ख़ुदकुशी कर लेंगे।' ग़रज़ यह कि उसकी ज़िन्दगी बवाल होगई।

उस लड़के ने कई बार इस बहिन से मिन्नत की कि घर छोड़कर वह फ़ौरन उससे शादी कर ले, पर यह बहिन जैसी कि वह साहसहीन थी, उसकी आरज़ू को बराबर टालती आई। "दया करके थोड़ा ठहर जाओ और तब मैं घर छोड़ दूँगी।" वह चाहती थी कि कोई दैवी घटना हो जाय। कैसे? यह वह नहीं जानती थी और इस तरह चार बरस बीत गये और कोई ऐसी दैवी घटना नहीं हुई जिससे उसके माता पिता उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते। और वह बराबर अपने प्रेमी से धीरज रखने की प्रार्थना करती रही। किन्तु वह, जो इस प्रेम के सहारे जी रहा था, कब तक धीरज रखता? उसकी शिरा-ग्रन्थियों ने जवाब दे दिया और उसे आश्रय मिला मेण्टल हास्पिटल के एक वार्ड में।

और वह बहिन आज इस दुनिया में बिलकुल अकेली है। उसके सुख की हत्या करनेवाले उसके माता और पिता बादलों के उस पार कहीं बैठे हैं और वह अकेली धन-जन से हीन। जिन रिश्तेदारों ने उसे समय समय पर सलाह दी थी उनमें से अब किसी के भूले भटके भी दर्शन नहीं होते।

वह आज दूसरों के बच्चों को पढ़ाने का काम करती है। उसकी आंखों के सामने एक दृश्य घूम जाता है जब ऐसे बच्चों की स्वयं वह भी मां हो सकती थी। सन्ध्या के झुटपुटे हुये प्रकाश में घर लौटते समय जब किसी युगल प्रेमी पर उसकी दृष्टि पड़ती है तो उसका एकाकी और उदास हृदय कड़ुये आंसुओं में डूबने उतराने लगता है!

कौन, हां, कौन, इस अभागी बहिन की मर्मान्तक पीड़ा, इसकी जीवन मृत्यु के लिये उत्तर दायी है?

## दूसरा विवाह

"तुमने कुछ सुना?"

"क्या?"

"रमेश ने पहली पत्नी के होते हुये भी दूसरा विवाह कर लिया।"

"मैं इस पर विश्वास नहीं करता।"

और फिर भी यह बात सही थी जैसा बाद में मुझे स्वयं रमेश ने बताया। रमेश ने जब मैट्रिकुलेशन पास किया तो उसके पिता एक ही शर्त पर उसे कालिज में पढ़ाने को राज़ी हुये और वह शर्त यह थी कि वह विवाह करले। वह यदि विवाह नहीं करता तो फिर पढ़ने का सुपना छोड़कर उसे स्टाक एक्सचेंज में काम करना पड़ता और भावुक रमेश के लिये स्टाक एक्सचेंज की सज़ा अनमनी शादी से कहीं अधिक भयंकर थी और तब बचाव की कोई सूरत न देखकर उसने अपने को विवाह की बलिवेदी पर 'बलिदान' करने के लिये पिता के सुपुर्द छोड़ दिया।

कालिज के ज़माने में वह कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शरीक होगया और तन्मयता के साथ उसके कार्य-क्रम को आगे बढ़ाने में लग गया। राजनैतिक हलचलों में उसके मन की दारुण व्यथा चूर-चूर होकर सो जाती थी। मन उसको भुलाने की और वह मन को भुलाने की कोशिश करता। किन्तु जीवन कब आसानी से जीवन का सौदा पटाने देता है और तब विद्यार्थियों की एक सभा में मालती से उसकी भेंट हुई और वह उसके प्रेम में गिरफ़्तार होगया। उसने अपनी भावना का विरोध किया, तिरस्कार किया और उससे अनवरत युद्ध किया। किन्तु अपने मन पर उसका कोई वश नहीं चला। उसने कई बार निश्चय किया कि वह मालती से नहीं मिलेगा किन्तु उसका निश्चय दो दिन भी क़ायम न रह पाता। सौ बहाने निकालकर वह उससे मिलने जाता। मालती का इससे गया बीता हाल था। वह यह जानती थी कि रमेश विवाहित है पर दिल से निकला हुआ तीर तो अपने निशाने पर बैठ चुका था। रमेश को प्यार न कर सकना मालती के बस की बात न थी। वह अपने प्रेम के प्रति उदार थी, सच्ची थी और साहसी थी।

रमेश वहां से चला गया यह सोचकर कि दूर जाकर वह मालती को भूल जायगा किन्तु वियोग ने उसे मालती के प्रति और अधिक आकृष्ट कर दिया। उसे ऐसा लगता मानो मालती की बड़ी बड़ी नीली आखें कोरों में आंसू भरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उससे प्रश्न करना चाहती है, "रमेश क्या तुम अपनी मालती को भूल गये ?" उसे चौबीसों घण्टे ऐसा लगता मानो मालती करुणाभरे स्वरों में उसे पुकार रही है और तब एक दिन भी मालती से अलग रहना उसके लिये असह्य होगया।

अन्त में रमेश और मालती ने कुल और मर्यादा को तिलाञ्जलि देकर आर्य समाज मन्दिर में जाकर अपनी शादी करली। मैं सोचती हूं क्या कोई समझदार आदमी इन दोनों को दोष दे सकता है? क्या हममें कोई ऐसा है जो इन पर पहला पत्थर फेंकने का साहस करे?

## प्रेम या विलास?

रञ्जना ने अपने तन को बचाने के लिये अपने मन को बेच दिया!

कालिज के पहले साल से ही रञ्जना मेरी अभिन्न साथी और सहेली थी। पढ़ाई के घण्टों से छुट्टी पाकर हम दोनों बैठ जाते और दुनिया भर की चीज़ों पर आलोचना प्रत्यालोचना कर डालते। यह एक साधारण बात थी कि बहस चाहे गान्धी जी के सत्याग्रह से शुरू होती या आइन्स्टाइन की थियरी आफ़ रिलेटिविटी से पर निश्चित रूप से ख़त्म होती थी प्रेम और शादी से। हम दोनों इस बात से सहमत थे कि पैसों के लिये शादी करने में और वेश्या वृत्ति करने में कोई अन्तर नहीं है और प्रेम एक कमरे वाले संसार में भी फल फूल सकता है।

और तब अचानक रञ्जना का मन हमारे क्रिकेट कैप्टन के ऊपर आ गया। सौभाग्य से यह दुर्भाग्य से उसके पास इतने साधन न थे कि वह अपनी सीडन कार में बैठकर कालिज के पोर्च तक आता और एक अन्दाज़ से फुटबोर्ड पर खड़ा होकर चारों ओर लड़कियों को देखता कि क्या वे उसकी लाफ़ान मार्का उम्दा टाई को प्रशंसा की दृष्टि से देख रही हैं या नहीं। उसकी क़िस्मत में तो यही था कि रोज़ सुबह बेस्ट कम्पनी की मोटरबस उसे कालिज के गेट पर उतार जाती थी।

किन्तु कैप्टेन की यह हालत अधिक दिनों तक नहीं रही। उसके एक अमीर प्रशंसक ने उसे हाथों हाथ ले लिया या साफ़ शब्दों में कहिये कि कैप्टेन की हैसियत एक उपग्रह की सी हो गई। वह स्वयं लोकप्रिय न हो सकता था इसलिये किसी दूसरे की लोकप्रियता में वह साझीदार बन गया।

और इसके बाद से रञ्जना की बहुत बड़े पैमाने पर ख़ातिर तवाजो होने लगी। मोटर की सैरें, पार्टियाँ, ग्रीन होटल में डिनर, ताजमहल होटल में काकटेल कैबरेट, और वरसोवा और जुहू में चांदनी रात में पिकनिक और नहाने की दावतें। रञ्जना की ख़ुशी का ठिकाना न था और वह कैप्टेन को अधिकाधिक प्यार करने लगी। अमीर प्रशंसक भी दोनों को अधिक से अधिक सुखी बनाने का प्रयत्न करता रहता।

इसके बाद एक दिन अचानक अमीर मित्र बीमार पड़ गया और महीने भर के लिये बाहर चला गया। कैप्टेन अब भी रञ्जना को घुमाने ले जाता पर रंचना अब ख़ुश न दिखाई देती। जब कैप्टेन उसे घर वापस पहुँचा कर जाता तो मैं अक्सर देखती कि रंचना की आंखों में आंसू भरे हुये हैं। उसने स्वीकार किया कि वह और कैप्टेन अब अक्सर बुरी तरह लड़ पड़ते हैं।

"क्या बात है रंचना? क्या तुम दोनों अब एक दूसरे को प्यार नहीं करते?"—मैंने पूछा।

"हम करते हैं और मैं तो उसके बिना जी नहीं सकती। पर तुम्हीं सोचो वह मुझे अब ट्राम में बैठाकर इसलिये मैटिनी शो में ले जाता है कि कन्सेशन टिकट मिल सके। (उसके गालों पर आंसू ढुलक ढुलककर बहने लगते हैं)। वह वही पुरानी टाई बांधे रहता है और कहता है कि ट्राम के लिये यह ठीक है। यह कितना अपमानजनक है और कभी कभी अपने इस अपमान पर मुझे उससे नफ़रत हो जाती है।" यह कहते कहते वह पलङ्ग पर लुढ़क गई और ज़ार ज़ार रोने लगी।

रंचना उस साल इण्टरमीडियट (आर्ट) के इम्तहान में फेल हो गई। साल भर वह कालिज पढ़ने नहीं आई और एक्स स्टूडेन्ट की हैसियत से वह इम्तहान में बैठी। रंचना अब 'मिस' नहीं थी। उसने शादी करली थी—क्रिकेट कैप्टेन से नहीं, उसके अमीर प्रशंसक से।

मैं उसे अक्सर मैरीन ड्राइव में अपनी ख़ूबसूरत कार से उतरते हुये देखती हूँ। वह अपनी बेशक़ीमत साड़ी में बड़ी प्यारी लगती है। उसके गले से बड़े बड़े असली मोतियों का हार लटकता रहता है। किन्तु उसकी आंखें मानों शून्य में देखती रहती हैं और उसके कन्धे झुक गये हैं। उसकी चाल में अब वह ज़िन्दगी और चंचलता नहीं रही!

प्रेम या विलासिता? क्या रंचना का रास्ता सच्चे प्रेमियों का रास्ता है? नहीं, कम से कम शारदा और किशोर का तो नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## दो मुक्त आत्मायें

जब उन दोनों ने अपने प्रेम के लिए अपने अभिभावकों से "लाइसेन्स" चाहा तो उन पर क्रोध और अपशब्दों की ज्वालामुखी फूट पड़ी। शारदा को वही दादी अम्मा के ज़माने की मारपीट की धमकी दी गई और किशोर को उसके चाचा ने घर से निकाल बाहर करने की चेतावनी दी। किशोर पर इसका कोई असर नहीं हुआ। वह जानता था कि पिता मरने के समय कुछ सम्पत्ति उसके लिये बिल कर गये हैं और चूँकि अब वह बालिग़ हो गया है चचा को झक मार कर वह उसके हवाले करनी पड़ेगी।

ग़रीब किशोर को यह पता नहीं था कि 'नाबालिगों के अभिभावकों' की यह जमात किस धातु की बनी होती है। उसके चचा ने न केवल उसके नाम की सारी सम्पत्ति फाटके में उड़ादी थी बल्कि जैसे ही वह २१ वर्ष का हुआ उससे इधर उधर के बहानों से 'भर पाये' की रसीद भी लिखवा ली थी। इस पुरज़े को देखकर उसे पता चला कि अब उसकी एक पाई भी चचा के ऊपर नहीं निकलती।

किशोर के पैरों के तले से धरती खिसक गई। उसकी ऐसी हैसियत न थी कि वह अदालत में जा सके। मुक़दमे के ख़र्चे का कोई इन्तज़ाम न था। कुछ बरस के बाद वह इसका प्रबन्ध कर सकता था पर तब तक तीन बरस की मियाद ख़त्म हो जाती। ऐसी हालत में किशोर क्या करता?

इसलिये शारदा और किशोर ने यह फ़ैसला किया कि जब तक उसे नौकरी न मिल जाय दोनों दिल दाबे इन्तज़ार करें। वे चुपचाप मिलते थे और गुप्तरीत से पत्र-व्यवहार करते थे। किन्तु सच्चे प्यार के रास्ते में फूल नहीं काँटे बिछे होते हैं। किसी ने उनके अभिभावकों से इसकी शिकायत कर दी। किशोर घर से बाहर निकाल दिया गया और शारदा को कमरे में बन्द करके ख़ूब पीटा गया। कालिज की एक मित्र ने पुलिस को ख़बर देकर शारदा का उद्धार किया। शारदा वयस्क हो चुकी थी। एक होस्टल में उस समय तक उसके रहने का प्रबन्ध कर दिया गया जब तक कि उसकी शादी नहीं हो गई।

यदि आप कभी एक ख़ास सड़क के एक ख़ास मकान के पास से होकर गुज़रें तो आपको दो कमरों का एक फ्लैट दिखाई देगा। दो स्वस्थ और तन्दुरुस्त बच्चे अपनी तोतली बोली, और शरारत भरी मुसकान के साथ आपका स्वागत करेंगे। वहां ख़ातिर के नाम पर शायद आपको एक कप चाय मिल जाय और सुबह की बची हुई एक आध चपाती। पर जब आप शारदा और उसके बच्चों से विदा लेंगे तो आपका हृदय शान्ति से भरा होगा क्योंकि आपने ऐसी दो मुक्त आत्माओं का संसार देख लिया कि जिनके जीवन में नित प्रति सन्तोष का सोना बरसा करता है।

## जिसने ऊँची बोली बोली वह जीता!

"दूल्हे की क्या क़ीमत है"—यह एक ऐसी चट्टान है जिससे टकराकर सिन्ध में और मैं समझती हूं और कई प्रान्तों में, बहुत सी लड़कियों की भाग्य-नौका डूब जाती है। सिन्ध की एक जाति में ई० आर० (England Returned) वर्ग लड़कियों के हृदय के साथ और उनके पिता की थैलियों के साथ काफ़ी ग़ज़ब ढाता है।

आइ० सी० एस० लड़के की तो बोली बहुत ऊँची पहुँच जाती है। प्रतिद्वन्दी अभिभावक आइ० सी० एस० लड़के के लिये होड़ सी बांध बैठते हैं। जो सबमें ऊँची बोली बोलता है वही जीतता है। और फिर भी लड़की की आंख में कोई दोष निकालकर हज़ार हज़ार के दस नोट और ज़्यादा बढ़वा लिये जाते हैं। आइ० सी० एस० दूल्हे की साधारणतया क़ीमत है—४०,०० रुपये।

जिनके हाथ आइ० सी० एस० दामाद नहीं लगता वह किसी दूसरी इण्डियन सरविस वाले की फ़िक्र करते हैं और इनकी क़ीमत है—३०,००० । हां, लड़की तो रूँगे में चढ़ती है। और इस तरह से वर की सामाजिक हैसियत देखते हुये क़ीमत नीचे घटती जाती है। हां जब भी लड़की की आंख में कोई दोष हो या उसकी नाक आवश्यकता से अधिक लम्बी हो या रंग सांवले पर कालाई का एक पुट चढ़ा हो तो इसका अतिरिक्त मुआविज़ा भी देना पड़ता है।

यह रोग इस हद तक सामाजिक जीवन में प्रवेश कर गया है कि ४० रुपया पाने वाले क्लर्क भी अपने सिर की क़ीमत—मेरा मतलब हाथों से है—५,००० रुपया रखता है। नतीजा यह होता है कि ग़रीब मां बाप की लड़कियां अनब्याही रह जाती हैं और एक ज़बर्दस्त सामाजिक समस्या बन जाती हैं। इनके पिता पुराने ख़याल के होते हैं जो यह समझते हैं कि विवाह में ही अपनी और लड़कियों की मुक्ति है।

किन्तु इधर हाल में ऐसी लड़कियों ने अपनी एक सहयोग समिति बना ली है जो नीलाम पर चढ़ने से या दूल्हा ख़रीदने से इनकार करती हैं।

धन्य हैं ये साहसी आत्मायें!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नैनी जेल में कविता-सुन्दरी के बिछोह पर !

विश्वम्भरनाथ

तुम्हें खोजता फिरता था
तुम कहाँ रहीं अनुगामिन ;
सन्ध्यातल के निविड़ अँधेरे में
मेरी मन - भामिन !

बलिदानों के उन मेलों में
क़लम निगोड़ी सोई ;
गीतों की मन्थर-गति सारी
रूप - राशि में खोई !

उधर गूंजती थी रण - भेरी
मैं करता था क्रन्दन ;
जाने किसकी अलकों का मैं
बना हुआ था बन्धन !

खींच रहा था अधरों की मैं
अनुरञ्जित सीमायें ;
सजा रहा था नित मानस में
अनुप्राणित प्रतिमायें !

घूम रहा था मैं
चुम्बन आलिङ्गन की भाषा में
अप्रत्याशित प्रेम - राशि में
भाषित प्रत्याशा में !

कोटि - कोटि माँ की सन्तानें
यदि नङ्गी भूखी थीं ;
अस्थि - माल से ढकी
अजस्रा धारायें सूखी थीं !

"मेरे हतभाग्ये शिशु को
यदि दूध नहीं मिलता था ;
रोग-ग्रस्त मेरी पत्नी का
हृदय नहीं खिलता था !"

ये 'हविषा विधेम !' की बातें—
कलाहीन हैं सारी ;
मैं ही एक कला का रक्षक
बाक़ी सब व्यापारी !

रूप, गन्ध, लावण्य, सुधा,
सौन्दर्य जहाँ बहुतेरा ;
ऐसे स्वप्न - राज्य में तेरे
बसता मानस मेरा !

नर्तन करती आशा मेरी
भामिनि तव पदतल में ;
अन्तरतम में, शून्य विश्व में,
जल में, औ नभ, थल में !

संस्मृतियाँ आकुल हो होकर
कथा अनेकों कहतीं ;
मधुर, तरल आनन्द सरोवर में
सद्य : तर रहतीं !

सुखद, सुरीली स्वर लहरी
वातायन में मुसकाती ;
पुलकित, उत्फुल्लित प्राणों से
सरस व्यथा कह जाती !

छाई रहती अर्ध निमीलित
नयनों में विह्वलता ;
आर्द्र, सिक्त परिधानों में
अभिमुख फिरती व्याकुलता !

उधर झूमती लाश लटकतीं
फाँसी के तख्तों पर ;
बेंच रहे सम्मान इधर हम
मँहगे या सस्ते पर !

कला कला के लिये सुरक्षित
मेरी कविता रानी ;
मेरे स्वर्णिम भाग्य गगन की
मुखरित सविता रानी !

आ तेरे मंगलाचरण में
जनरव ज़रा न होगा ;
नङ्गे भूखे नादानों से
प्राङ्गण भरा न होगा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तेरी स्वप्निल जगती में
मेरा मानस मतवाला ;
बेसुध सा कुछ पीता रहता है
अमृत या हाला !

झंकृत करती हृदय
कल्पना मोहक सुख साजों से ;
होती है पीड़ा अनुप्रेषित
नये नये रागों से !

तेरे स्वर्णिम काव्य - गगन का
है विस्तार निराला ;
गूंथा करती माल
रश्मियों वाली प्रमुदित बाला !

कुछ बैठे रहते
हाला प्याला लेकर मतवाले ;
कुछ बैठे रहते राधा के
मुख पर घूँघट डाले !

ओस बिन्दुओं पर मीरा का
छमछम होता नर्तन ;
झंझा के स्वर में कबीर का
होता है आवर्तन !

विश्व प्रेम की घटा सघन
घिर आती मधुशाले में ;
जीवन - सम्बल ढलता रहता
है हीरक प्याले में !

मुसकाती तारक वलियों पर
छाती अजब ख़ुमारी ;
मुग्धा कविता नाचा करती
पहन कुसुम्भी सारी !

ग्राम-वधू बन कभी नाचती
प्रगतिशील तालों पर ;
ओठों में सिन्दूर
महावर पीत वर्ण गालों पर !

स्तालिन की पुरी
बधाई लेकर सखियां जातीं ;
दुनिया भर का दर्द
कलेजे की टीसों में पातीं !

अहमदनगरी क़िला
वहां हैं फ़ासिस्टी प्रति गामी ;
टीटो औ चू - तेह के यदि ये
हो सकते अनुगामी !

नान्यः पन्थः ! छोड़
देश के बलि-पन्थी आराधक ;
मति - भ्रम होकर बने हुये थे
जापानी स्वर - साधक !!

उस दारुण युग में भारत की
प्रगतिशील सुकुमारी ;
अधरों में आसव
नयनों में लेकर अजब ख़ुमारी !

लोकतंत्र की नज़रों में
भारत की लाज बचाने ;
रङ्ग, रक्त, स्वामी, चाकर के
सारे भेद मिटाने !

कभी हुमक कर स्तालिन को
गलबहियां देती थी ;
कभी सकुचकर रूज़वेल्ट का
आलिंगन लेती थी !

भारत की जनता मशीनगन से
भुनती भुनने दो ;
प्रगति - वधू को अपना
उप-प्रियतम ख़ुद ही चुनने दो !

"अभी मास्को दूर
लाल सेना क्या कभी झुकेगी ?
फ़ासिस्टी अभिशाप चूर कर
बर्लिन पहुँच रुकेगी !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की जेलों में सड़ते
मार्ग - भ्रष्ट प्रतिगामी ;
देसी से नफ़रत
विदेशियों को सौ बार सलामी !

"बुद्धि नहीं जो समझ सको तुम
इस वैज्ञानिक क्रम को ;
राजनीति के चक्रव्यूह को
विश्लेषण के श्रम को !"

लाज, हया, असमत सारी
इसकी जनहित में खोई ;
गंगा तट को छोड़
वोल्गा पर जाकर यह रोई !!

कुलशीला षोडशी बनी
यदि हो बेबस परकीया ;
भूल न जाना कल तक थी वह
साध्वी, सती, स्वकीया !

लिक्खेगा इतिहास किसी दिन
इसका त्याग अनूपम ;
तब तुम समझ सकोगे
अपने जीवन का दारुण भ्रम !!

---

# चार आँसू !

पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी

जोधपुर-निवासी मुन्शी देवीप्रसाद जी द्वारा लिखित "खानखाना-नामा के" द्वितीय भाग में निम्नलिखित वाक्य पढ़ कर हम अपने आँसू न रोक सके :—

"खानखाना रहीम का मकबरा ( समाधि-स्थान ) जहाँ उनको गाड़ा था पुरानी दिल्ली में खण्डहर पड़ा है, जिसके देखने से बहुत अफ़सोस होता है कि जो मनुष्य उम्र भर लोगों की भलाई करता रहा था लोग उसकी कब्र के पत्थर तक खोद ले गये।"

सर सैयद अहमद ख़ाँ की 'आसारउल सनादीन' में, जो सन् १८६३ में लिखी गई थी, इस मकबरे का यह हाल लिखा है—

"यह मकबरा शाहजहानाबाद से चार मील निज़ामुद्दीन की दरगाह और बारेपुले के पास है। इसको खानखाना ने अपनी बीवी के वास्ते बनाया था, पर उसको तो यहां दफ़न होना नसीब न हुआ, आप दफ़न हुए। यह मकबरा भी किसी ज़माने में बहुत तोफ़ा बना हुआ था। इसके बुर्ज़ तमाम संगमरमर के थे। जगह जगह लाल पत्थर से सफ़ेद पत्थर की धारियां लगी हुई थीं और बेलबूटे बने थे, पर अफ़सोस कि यह बिल्कुल उजड़ गया है। लोगों ने इसका तमाम संगमरमर उखाड़कर बेंच डाला और ऐसे मकबरे को ढहा डाला। कहते हैं कि आसिफ़ुद्दौला के वक्त में इसका तमाम पत्थर उखाड़कर लखनऊ भेज दिया गया था। यह मकबरा बिल्कुल लुण्डा रह गया है। इस मकबरे का ताबूत ( क़ब्र का चिन्ह ) भी लोग उखाड़कर ले गये हैं। अब इसमें गाय भैंस बँधती हैं और गोबर की बदबू से अन्दर जाना मुश्किल है। देखो क्या अज़मत और शान थी खानखाना की, और अब क्या हाल है! खानखाना के नाम निशान के लिये यह मकबरा था, सो यह भी न रहा। जिसके दीवानखाने में सैकड़ों मन गुलाब छिड़का जाता था अब उसके मकबरे में हज़ारों जानवरों का मूत्र पड़ा है!"

महाकवि रहीम हमारे प्रिय कवि रहे हैं। उनके बहुत से दोहे साधारण जनता की ज़बान पर हैं—

तबहीं लगि जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम॥
रहिमन मोहिं न सुहाय, अमी पियावत मान बिनु।
जो विष देइ बुलाइ, मान सहित मरिबो भलो॥
धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम किहिं काज!
जिहि रज मुनि पतनी तरी, तिहि खोजत गजराज॥
'रहिमन' वे नर मरि चुके, जो कहुँ मांगन जाहिं;
उनसे पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत 'नांहिं'।
कहु रहीम उत जाय के, गिरधारी सों टेरि—
अब दृग जल भर राधिका, ब्रजहिं डुबावति फेरि॥
रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी चोर लबार।
जो पत राखनहार है, माखन-चाखन हार॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जो गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग॥
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय॥
नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लौन पर, अरु मीठे पर लौन॥

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्कालीन साहित्य मन्त्री श्रद्धेय पं० लक्ष्मीधर जी वाजपेयी ने सम्मेलन कार्यालय द्वारा प्रकाशित रहिमन विनोद की भूमिका में लिखा है:—

"पढ़े लिखे लोगों की बात तो जाने दीजिये—देहातों में झोपड़ियों में रहने वाले देहाती निरक्षर गँवार भी रहीम के दोहों से परिचित हैं और गोस्वामी तुलसीदास जी के दोहे चौपाइयों तथा गिरिधर कविराय की कुण्डलियों की तरह रहीम के दोहे भी वे अपनी दिन प्रतिदिन की मामूली बातों में दृष्टान्त के तौर पर कह दिया करते हैं। रहीम की कविता पढ़ने से ही मालूम हो जाता है कि उन्होंने अपने को पूर्णतया हिन्दू भावों में मिला दिया था। हिन्दू धर्म, हिन्दू समाज, हिन्दू सभ्यता को पूर्णतया उन्होंने अपने अङ्गीकृत कर लिया था। यदि ऐसा उन्होंने न किया होता तो उनके हृदय से ऐसी हिन्दू स्वभावोक्तियां कैसे निकल सकती थीं? भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने ऐसे भगवद्भक्त मुसलमान कवियों को लक्ष्य करके ही कहा है कि "इन एक-एक हरिजनन पै कोटिन हिन्दू वारिये" और यह बिल्कुल सच है। क्योंकि मुसलमान धर्म का पालन करते हुए भी यदि कोई मुसलमान हिन्दी भाषा, हिन्दू मन्दिरों, हिन्दू देवी-देवताओं, हिन्दू सभ्यता और हिन्दू भावों में ही अपने को तल्लीन कर सकता है—इन सब को अपने ही धार्मिक भावों—बल्कि उनसे भी अधिक आदर देता है तो वह हिन्दू जाति के लिये वन्दनीय साधु है।"

और उस हिन्दू जाति के लिये वन्दनीय साधु की समाधि पर आज सैकड़ों जानवर मलमूत्र का त्याग करते हैं!

रहीम रत्नावली के सम्पादक स्वर्गीय पं० मयाशंकर जी याज्ञिक ने उक्त पुस्तक की भूमिका में लिखा था :—

"रहीम ने अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। उन्हें इन भाषाओं का केवल साधारण ज्ञान ही नहीं था, वे इनके साहित्य को अच्छी तरह जानते थे और इन भाषाओं में कविता भी करते थे। उनका पुस्तकालय प्रख्यात था और विद्वान लोग उनके व्यापक पांडित्य की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त रहीम ने शास्त्रों और दर्शनों का भी अध्ययन किया था। वे विद्वानों और कवियों का ऐसा आदर करते थे कि उनसे बढ़कर शायद ही किसी ने किया हो। वे स्वयं गुणी थे और दानी भी थे, तो फिर गुणीजनों को उनसे पूर्ण उत्साह और सहायता मिलती, इसमें क्या आश्चर्य है! अनेक कवि उनके आश्रित थे। रहीम यदि स्वयं लेखक वा कवि न होते और कविजनों के आश्रयदाता ही रहे होते तो भी उनका नाम साहित्य संसार में सदा के लिये स्मरणीय हो जाता परन्तु उनका-सा आश्रयदाता और कवियों के लिये मानप्रद कोई बादशाह भी नहीं हुआ। जितने कवियों ने रहीम की प्रशंसा लिखी है, उतने कवियों ने अन्य किसी की महिमा नहीं गाई। गङ्ग, प्रसिद्ध, मण्डन, सन्त, लक्ष्मी-नारायण, बाण आदि अनेक कवि रहीम के आश्रित थे और सब प्रकार से उनके कृतज्ञ भी थे। एक छप्पय पर गङ्ग को रहीम ने ३६ लाख रुपये का इनाम दिया था, सो प्रसिद्ध ही है। गोस्वामी तुलसीदास जी से भी रहीम का घनिष्ट सम्बन्ध था और कविवर मतिराम की कृति पर रहीम की गहरी छाप है। केशव ने जहांगीर चन्द्रिका रहीम के पुत्र एलच बहादुर के लिये रची थी। तुलसीदास जी का बरवै रामायण रहीम की प्रेरणा का फल है।"

उस महाकवि, महान् साहित्यिक और साहित्यसेवियों के आश्रय-दाता के समाधिस्थल की यह दुर्दशा!

क्या हिन्दी साहित्य-सम्मेलन और अंजुमन तरक़्क़ए दोनों पारस्परिक सहयोग से महाकवि रहीम की समाधि के लिये कुछ नहीं कर सकते? 'हिन्दी' और "हमारी ज़बान" के सम्पादकों को मिलकर यह काम उठा लेना चाहिये। लड़ने झगड़ने के तो मौके बहुत आया करते हैं और इस ग़ुलाम मुल्क के दुर्भाग्य से भविष्य में भी वे आते रहेंगे, यह पुण्य-कार्य हमें सहयोग का एक दुर्लभ अवसर प्रदान करता है।

क्या रहीम की समाधि ऐसा स्थल नहीं है जहां श्रद्धेय टण्डन जी तथा आदरणीय मौलवी अब्दुलहक़ साहब दोनों साथ साथ उस महाकवि के प्रति श्रद्धाञ्जलि प्रकट कर सकें?

सुना है कि दिल्ली में अनेक हिन्दी साहित्य प्रेमी रहते हैं। शायद उनमें रहीम के भी कोई प्रेमी हों। उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे रहीम की समाधि का पता तो लगावें।

तब तक हम अपने आँसू उस महापुरुष की समाधि के लिये भेजते हैं, जो महान कवि था, साहित्यिकों का आश्रयदाता था, बहुभाषाविज्ञ था और था हिन्दी-साहित्य का एक अनन्य सेवक।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# जापान की चित्रकला

श्री विनोद बिहारी मुकर्जी

जब भी हमें कला की कोई अपरिचित परम्परा दिखाई देती है तो उसका अजनबीपन हमें अपनी ओर आकर्षित करता है और हमारे मन में उसके प्रति एक कौतूहल पैदा होता है। जो कला-परम्परा हमारी नहीं होती उसे हम "विचित्र" समझते हैं। जब तक किसी खास कला-परम्परा के प्रति अजनबीयत की भावना हम दबा नहीं देते तब तक उस कला की अपील हमारे निकट कमोबेश दिमाग़ी रहती है। कभी कभी उसकी नवीनता या अजनबीपन में बेहद आकर्षण होता है और कभी कभी उससे तबियत एकदम फिर जाती है। कई बार हमने देखा है कि ऐसे लोग भी, जिनका बहुत तेज़ और सुरुचि पूर्ण दिमाग़ है, इन दोनों विपरीत प्रतिक्रियाओं से ऊपर नहीं उठ पाते। वे अपने मुल्क के अलावा किसी दूसरे मुल्क की कला को न तो समझ सकते हैं और न उसकी प्रशंसा कर सकते हैं। एक ज़माना था जब पश्चिमी आलोचक भारतीय कला को इसलिये कुरूप समझते थे कि भारतीय देवताओं की मूर्तियों के दो से अधिक हाथ होते थे। इसी की तुलना में यूनानी कला के नमूने, जिसमें शरीर आदमी का और धड़ जानवर का होता था उन्हें अजीब नहीं लगते थे। जब पहले पहल यूरोप को जापानी कला का परिचय मिला तो हिरोसिगे और हाकुसी की नवीन कलाकृतियों की तरफ़ लोग बेहद आकर्षित हुये। जल और पहाड़ी को सजाने का कोरिन का तरीक़ा लोगों को बहुत पसन्द आया। किन्तु सुदूर पूर्व की कला के प्रति यह उत्साह और प्रशंसात्मक भाव कुछ सच्चे प्रेम या सच्ची परख के कारण नहीं पैदा हुआ था बल्कि उसकी नवीनता या उसके टेकनीक के कारण था।

जापानी चित्र कला के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने में मुझे यही डर है कि कहीं मैं भी इसी प्रकार के किसी पक्षपात से प्रभावित न हो जाऊँ। फिर भी मेरा विश्वास है कि बावजूद व्यक्तिगत पक्षपात के मैं जापानी कला को उसकी वास्तविक रोशनी में पेश कर सकूँगा यह दूसरी बात है कि उसकी कुछ ख़ूबियों को मैं नज़र अन्दाज़ कर जाऊं।

इसके लिये मैं जापानी कला को मोटे तौर पर तीन हिस्सों में बाँटूंगा। पहले हिस्से में जापान की वह कला है कि जिस पर चीन या बौद्ध कला का प्रभाव नहीं पड़ा। इस ज़माने की कला कमोबेश पुरातत्ववेत्ताओं के दिलचस्पी की है। इस काल की हनीवा की मिट्टी की मूर्तियाँ यद्यपि उन्नत कला की नमूना नहीं समझी जा सकतीं ताहम वे यह ज़ाहिर करती हैं कि उस ज़माने के जापानी कलाकारों को मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का यथेष्ट ज्ञान था। मुझको इस हनीवा कला में विशेष दिलचस्पी है क्योंकि कुछ बङ्गाली और दक्षिण भारत की मूर्तियों से इसका अजीबोग़रीब मेल बैठता है।

जापानी कला का वास्तविक इतिहास उस समय शुरू होता है जब वह चीनियों के और फिर उनके मार्फ़त बौद्ध धर्म के संसर्ग में आई। जहाँ तक धार्मिक कला का सम्बन्ध है हमें एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि नारा मन्दिर के और लोहान की शुरू की चित्र कला के कुछ मशहूर नमूने पूरी तरह जापानी नहीं हैं। जापानी चित्रकारों की कला का सच्चा स्वरूप उस समय प्रकट हुआ जब कला का रुख़ धार्मिक परम्परा से हटकर निकट की चीज़ों में प्रोत्साहन खोजने लगा। उन्होंने जिस नई कला को जन्म दिया वह नाटक के दृश्यों की तरह हमारे सामने स्पष्ट हो जाती है जब हम कला कृतियों की उन लम्बी लम्बी कुण्डलियों पर दृष्टि डालते हैं कि जिनमें युद्ध का मैदान, महलों का मुहासिरा, अपने ज़ख़्मी घोड़े के साथ सामुराई आदि आदि दृश्य बड़ी कुशलता के साथ अंकित किये गये हैं। हम चित्रों की इन कुण्डलियों में वास्तविक जापानी कला के दर्शन पाते हैं। दृश्यों की इन कुण्डलियों के अतिरिक्त हमें पक्षियों, पशुओं और फूलों की भी चित्रकारी मिलती है। इन तमाम चित्रों को देखकर जो भावना उत्पन्न होती है उसे बयान कर सकना मुशकिल है किन्तु वह वही भावना है जो चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने देखकर पैदा होती है।

इस समय की जापान की इस चित्र कला को देखकर जो एक तथ्य सबमें ज़्यादा दिमाग पर असर डालता है वह यह है कि बावजूद अपने आश्चर्यजनक और कोमल चित्राङ्कन के इस युग की जापानी कला में प्राकृतिक जीवन के लिये एक बेचैनी दिखाई देती है और परमात्मा की सृष्टि की ओर कुछ बच्चों जैसा आश्चर्य झलकता है फिर चाहे वह चित्र किसी जानवर का हो, या लैण्डस्केप का हो अथवा युद्ध के दृश्यों की लम्बी कुण्डलियाँ हों। सभी चित्र अपनी प्रारम्भिक शक्ति और नाटक की ज़बर्दस्त अपील का असर डालते हैं। मैं यह कहूँगा की जापानी चित्रकला और जापानी मेधाशक्ति के प्रदर्शन में ड्रैमेटिक अंश एक विशेष महत्व रखता है। शक्तिशाली ड्रैमेटिक भावना और प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri





के प्रति उन्मुक्त प्रेम इन दो विशेषताओं ने जापानी कला को अपूर्व बना दिया है।

अब यदि हम जापानी चित्रकला की चीनी चित्रकला के साथ तुलना करें तो हम जापानी कला की इस विशेषता को और अधिक सफ़ाई से देख सकते हैं। जापानी चित्रकला पर चीनी चित्रकला की प्रतिक्रिया इतनी महत्वपूर्ण है कि यदि एक बार हम इस बात को सफ़ाई से जान लें तो जापानी कला की महत्ता हमारे सामने चमकने लगेगी। जब से बौद्ध धर्म का जापान में प्रवेश हुआ तब से जापानी कला चीनी कला के प्रभाव में फली फूली। एक लम्बी अवधि तक जापान के सभी प्रसिद्ध कला गुरु चीनी स्रोतों से प्रोत्साहन लेते थे। इसलिये यदि हम चीनी प्रभाव से जापानी कला को मुक्त कर के देखें तो हमें जापानी कला की विशेषता साफ़ साफ़ दिखाई देगी। चीनी प्रभाव पड़ते ही जापानी कला ने चित्राङ्कण में भारी और ठोस हो गई किन्तु इसके साथ ही साथ यह भी मानना पड़ेगा कि इसी के बाद से जापानी चित्रकला के दृष्टिकोण में एक व्यापकता और विचारों में एक विस्तार आ गया। किन्तु जैसे जैसे चीनी प्रभाव कम होता गया वैसे वैसे जापान की कला हल्की और मुक्त होती गई और साथ ही साथ उसकी व्यापकता भी कम होगई।

जब हम किसी चीनी लैण्डस्केप या भारतीय माडेल को देखते हैं तो वह निस्सन्देह हमारे अन्दर एक बहुत ऊंचे दरजे की सुरुचिपूर्ण भावना पैदा करता है। किन्तु उस सुरुचिपूर्ण भावना के ऊपर एक बौद्धिक प्रभाव भी होता है। यह बौद्धिक भावना चीनी और भारतीय कला के ह्रास काल में और आसानी से महसूस की जा सकती है। जब बौद्धिक भावना अपने आपको पूरी तरह दबा पाई तभी भारत और चीन अपनी सर्वोत्तम कला कृतियाँ पैदा कर सके। इसीलिये हम देखते हैं कि चीन और भारत की कला कई बार महज़ हवाई और लाक्षणिक होकर रह गई है। दूसरी ओर एक आदर्श जापानी तसवीर आकस्मिक बिजली के कौंधने की तरह हमें आश्चर्य से भर देती है। अकस्मात किसी को अनपेक्षित सुख से रोमांचित कर देना यह कला जापानी कलाकारों ने फूलों के अपने अद्वितीय अध्ययन से पैदा की कि रंग, रूप और आकृति में जिनका चित्रण निष्कलंक और सम्पूर्ण होता है। इन चित्रों के पीछे कोई बौद्धिक भावना नहीं होती। भारतीय और चीनी कलाकारों का तर्ज़ बिलकुल दूसरा है। बुद्धि मार्ग से वे भावना के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। किन्तु जब और जहाँ सृजन की शक्ति ऊँचे दरजे की नहीं होती तो कला प्रयास निरर्थक घसीटन होकर रह जाता है। न वह बुद्धि को अपील करता है और न भावना को। जापानी कला में भावना और अनुभूति बुद्धि के क्षेत्र में ले जाती हैं। जब भावना शक्तिशाली नहीं होती तो जापानी कला एक महज़ फोटोग्राफी मात्र रह जाती है।

दोनों परम्पराओं की यह संक्षिप्त तुलना एक सुझाव हमारे सामने रखती है कि जापानी अकसर वास्तविकता की ओर जाता है। जो कलात्मक संयम और अनुशासन जापान ने चीन से सीखा उसने जापानी कला को नक़लची बनाने से बचा लिया। किन्तु दूसरी ओर यह बात भी सही है कि जब जब जापानी प्रतिभा अपने को इन बन्दिशों से मुक्त करने में सफल हुई तब तब नतीजे आश्चर्यजनक हुये। यहाँ पर एक बात हमें और ध्यान में रखनी चाहिये कि इस देश की सब में बड़ी और स्वाभाविक प्रतिभा ललित कला नहीं बल्कि उद्योग कला है।

अब तक मैंने जापानी चित्रकला का एक सरसरा वर्णन किया है। अब मैं जापान के कुछ ऐसे प्रमुख और अमर कला गुरुओं की चर्चा करने का प्रयत्न करूँगा कि जो अपने पीछे अक्षय सुख का भण्डार छोड़ गये हैं। मैं समझता हूँ इन समस्त चित्रकारों में कोरिन सबमें अधिक सर्वप्रिय है, ख़ासकर यूरोप और अमरीका में। निस्सन्देह कोरिन अपने क्षेत्र में उस्ताद है किन्तु हम उसे अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न नहीं कह सकते। उसका अपना एक बिलकुल अलग तर्ज़ है और वह उस आकस्मिक रूप से मन को मोह लेता है कि जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। वह श्रेष्ठ कला का आचार्य था कि जो कला सुन्दर थी और सस्ती नहीं थी। उसकी कृतियों में कोई दोष नहीं है किन्तु निर्दोषिता निरन्तर प्रयत्न से आई है। दूसरी ओर यदि हम कोरिन के गुरु सोतारसु की कृतियों को देखें, कि जो वास्तव में जापान का सच्चा और महान कला गुरु था, तो कोरिन की कृतियों की नीरसता स्पष्ट हो जाती है। फिर भी मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सोतारसु की अपेक्षा कोरिन की ही कृतियों में जापान की अपनी विशेष प्रतिभा ज़्यादा अधिक प्रकट हुई है। इस सम्बन्ध में मैं एक बात और कहना चाहूँगा। आजकल पश्चिमी कला के नियम किसी कला कृति के निर्माण के पहलू और उसकी अमूर्त अपील पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं। हम पूर्वीय कलाकारों में से अनेक इसे सुरुचि के क्षेत्र में एक नई ईजाद समझते हैं। किन्तु यदि हम सोतारसु के कुछ कला-पट्ट और कानो स्कूल के कुछ श्रेष्ठ नमूने देखें तो हमें उनका रचनात्मक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अमूर्त रूप एकदम दिखाई देगा। पश्चिमी दृष्टिकोण से बहुत थोड़े आदमी इन दोनों गुणों में सोतारसु के निकट खड़े हो सकते हैं। सोतारसु के अलावा मैं एक दूसरा नाम कोएत्सु का भी पेश करूँगा। ऐतिहासिक दृष्टि से दोनों समकालीन थे। सेत्सु भी एक महान कला-गुरु हुआ है। सेत्सु और कोरिन दोनों कला के क्षेत्र में एक दूसरे से बिलकुल विपरीत हैं। कोरिन हालाकि बहुत बड़ा कलाकार नहीं है फिर भी उसने जापानी दिमाग़ की सारी गतिविधि को बहुत घनिष्टता के साथ चित्रित किया है। सेत्सु कोरिन से कहीं बड़ा कलाकार था किन्तु सेत्सु की आत्मा पूर्णतया चीनी है।

चीन के साथ अपने लम्बे अटूट सम्बन्ध के बाद जापानी चित्रकला पश्चिम की सभ्यता और कला के सम्पर्क में आई। अरसे तक जापानी कला पर यूरोपीय प्रभाव के कोई आसार नहीं दिखाई दिये। कभी कभी रेखाओं द्वारा दृश्य अङ्कित करने की कोशिश की जाती थी और लम्बे काल तक जापानी कला पर पश्चिमी कला की ज़ाहिरा यही एक प्रतिक्रिया थी। किन्तु सहसा जापानी कला नया रूप रंग, नया रेखाङ्कन, नये विषय, नये दृश्य और आश्चर्यजनक और व्यापक कलात्मक दृष्टिकोण लेकर अवतीर्ण हुई। जापान की यूकेआय प्रणाली अब भी हमारे लिये एक आश्चर्य की चीज़ है। यूकेआय प्रणाली और उसके कलाकारों के बारे में लोगों में काफ़ी मतभेद है। प्राचीन परम्परा के दृष्टिकोण से इन कलाकारों में कुछ सुरुचि और संस्कृति की कमी है। किन्तु इस कमी को उन्होंने अपनी शक्तिपूर्ण कला और जीवन के प्रति आश्चर्यजनक कौतूहल से पूरा कर लिया कि जिससे उन्हें अपनी कला में प्रोत्साहन मिलता है। इन्होंने प्राचीन गुरुओं की सर्वोत्तम परम्परा का अनुसरण किया और नित्य बदलते हुये दैनिक जीवन के चल चित्रों को उसी आश्चर्य की भावना और बचपने के कौतूहल से देखा। फूल के अध्ययन की जगह अब पनचक्की का दृश्य आ गया किन्तु दोनों में बनावटीपन की कमी थी और दोनों का वास्तविकता से लगाव था। यूकेआय प्रणाली ने जापानी कला को गहरी और स्थायी बुनियादों पर खड़ा कर दिया। इस दृष्टि से यूकेआय आधुनिक जापानी कला के पूर्ववर्ती समझे जा सकते हैं। यूकेआय प्राचीन और आधुनिक जापानी कला के इतिहास को जोड़ने वाली कड़ी है।

यूकेआय कला के ह्रास के बाद जापानी कला विविध दिशाओं में फैलती रही। इस समय कलाकारों के अनेक समूह हैं। इनमें से हर एक के अपने अलग अलग आदर्श हैं। आज यथार्थवाद जापानी कला का मूलभूत सिद्धान्त है। फिर भी एक गिरोह है जो प्राचीन और परम्परानुगत आदर्शों के अनुकूल चलता है। किन्तु नवयुवक कलाकार बावजूद अपनी परम्परागत शिक्षा के यथार्थता के पुजारी और पश्चिमी कला के अधिक निकट हैं। ऐसा क्यों है। पश्चिम का लगातार सम्पर्क इसका एक कारण हो सकता है किन्तु असली कारण जापानियों का स्वभाव है जो यथार्थता की ओर जाता है। एक बार चीनी सुरुचि ने जापानी कलाकार को यथार्थता के नग्न चित्रण से बचाया था किन्तु आज वे पश्चिमी कला की मदद से फिर वही वापस लाये जा रहे हैं। आधुनिक जापान के कुछ माने हुए कला-गुरु पश्चिमी आदर्शों पर अरसे तक काम करके फिर जापान की पुरानी कला को अपना रहे हैं।

आधुनिक पश्चिमी कला का जापानी कला पर एक और प्रभाव भी पड़ा है। जापान के शुरू के तैल चित्र और वाटर कलर चित्र जापानी वातावरण से भरे हुये हैं और उनमें स्थानीय रङ्ग इस्तेमाल हुये हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश इस पीढ़ी की कला में यह बात दो एक अपवादों को छोड़कर नहीं दिखाई देती। उनके चित्रों से किसी दूसरे ही चित्र और किसी दूसरी ही प्रणाली की ध्वनि निकलती है। जहाँ तक रेखाङ्कन और चतुराई का प्रश्न है वे निर्दोष हो सकती हैं किन्तु उनमें प्रतिभा की कमी देखकर बहुत दुख होता है। जापान में मैंने जितनी कला प्रदर्शनियाँ देखी हैं उनसे मुझे यही पता चला कि पिकासो और मतिसे जापानी तैल चित्रकारों पर सबसे ज़्यादा असर डाल रहे हैं। इन दोनों के अनुयायियों के अतिरिक्त फ्रान्सीसी चित्र प्रणालियों के भी जापान में काफ़ी अनुयायी हैं। इनमें Surrealism और impressionism आदि मुख्य हैं।

एक और चीज़ जो जापानी कला में मुझे दुःखद दिखाई दी वह जापानी कलाकारों का 'स्टाइल' पर ख़ास ज़ोर देना है। हर कलाकार 'स्टाइल' की चिन्ता में ही रत दिखाई दिया। समझ में नहीं आया कि 'स्टाइल' पर इस क़दर ज़ोर देने के पीछे क्या उद्देश्य था। बहरहाल यह 'स्टाइल' की भावना ज़हर की तरह जापानी कला की जड़ों को नष्ट कर रही है।

आधुनिक जापान के तैल चित्रकारों को नज़र अन्दाज़ नहीं किया जा सकता ख़ासकर उस वक़्त जब उनकी तुलना भारतीय तैल चित्रकारों से की जाय इस क्षेत्र में जापानियों की श्रेष्ठता स्पष्ट है। विदेशी माध्यम बरतने में वे हमसे बहुत बढ़कर हैं। [ मूल अङ्गरेज़ी से ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# जर्मनी और सुलह की शर्तें

श्री शङ्कर गणपति कोकणे

जर्मनी आज पराजित होकर मित्रराष्ट्रों के पैरों पर पड़ा हुआ है। एक समय जो विजेता था वह आज पराजित होकर समाप्त हो गया है। नात्सीवाद का आज कहीं नामोनिशान भी नहीं दिखलाई पड़ता। दुर्दान्त अष्टभुजी हिटलर जो कि सारे यूरोप को पदाक्रान्त करना चाह रहा था आज सारे संसार से उपेक्षित और अभिशप्त सर्द बरफ़ीली क़ब्र में पड़ा सो रहा है। किसी की आंख में उसके लिये एक भी आंसू नहीं है। सन् १९३९ में उसने युद्ध की जो प्रचंड आग सुलगाई थी वह बुझकर राख हो गई है।

युद्ध में विजय प्राप्त करना एक कठिन काम है परन्तु विजय प्राप्त करने के पश्चात् शांति स्थापित करना और भी कठिन है। मित्रराष्ट्रों की सशस्त्र विजय समय असमय होने वाले युद्धों को सर्वदा के लिये शांत नहीं कर सकती। विजय स्वयं केवल दूसरे भयानकतर युद्ध की प्रस्तावना हो सकती है।

'जर्मनी का तो पतन हो गया किन्तु इसके बाद क्या हो?'—यह प्रश्न मित्रराष्ट्रों की बुद्धि की परीक्षा ले रहा है और इसके उत्तर पर यूरोप की ही नहीं वरन सारे संसार की शांति निर्भर करती है। इस प्रश्न के महत्व से कोई इन्कार नहीं कर सकता। यूरोप के हृदय में स्थित होने के कारण जर्मनी यूरोप का जन्मजात नेता है। उसे दबाने, निःशस्त्र और निर्व्यवसाय करने के सारे प्रयत्न भावी अशांति के बीज बोयेंगे।

विजय के उन्माद को ठंढा करना या दबाना बुद्धि की अपेक्षा रखता है। विजयी मित्रराष्ट्रों को चाहिये कि वे जर्मनी को शांतिप्रिय, प्रजातन्त्रवादी और विश्वात्मवादी राष्ट्र बनावें। सारे जर्मनी को कुचलने वाली संधि जो कि हिटलरवादी और अहिटलरवादी जर्मनी को एक आंख से देखने का प्रयत्न करेगी, विश्व शांति के लिए भयंकर होगी और वह आग को बुझावेगी नहीं, उस पर राख डालने का प्रयत्न करेगी। महात्मा गांधी का स्वर्गिक आदेश है, "संधि न्यायसम्मत होनी चाहिए; न तो वह बदले की भावना से ही भरी हो और न दूसरे को नष्ट करने की भावना से। जर्मनी और जापान के आत्मसम्मान को नष्ट करना मुनासिब नहीं और ताक़तवर बदला नहीं लेता। शांति का फल सब को बराबर बराबर मिलना चाहिये। जर्मन जनता को मित्र बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। मित्रराष्ट्र अपने प्रजातन्त्रवाद को अन्य साधनों से साबित कर सकते हैं।"

मित्रराष्ट्र बड़े घमण्ड के साथ कहते हैं कि वे जर्मनी को कुचलकर ऐसा पाठ पढ़ाएंगे जिससे कि वह कभी भी विश्वशांति में ख़लल न डाल सके। और इतिहास के समस्त सबक़ों को बालाए ताक़ रखकर समझते हैं कि इसका एक ही उपाय है कि जर्मनी को कुचल दिया जाय, उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये जाँय और उसके पास से वे समस्त भौतिक साधन छीन लिये जाँय जो किसी देश को सैनिक और आर्थिक दृष्टि से मज़बूत बनाते हैं। संक्षेप में वे जर्मनी को हथियारों के बल वश में रखना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि काश ऐसा ही हो सकता क्यों कि साध्य साधनों को न्याय्य बना देता है फिर चाहे साधन कितने ही बुरे क्यों न हों। यह दलील दी जा सकती है कि एक युद्ध प्रेमी राष्ट्र को भाले की नोक के बल पर भी दबाकर रखना पड़े तो दबाना चाहिये बजाय इसके कि उसे दुनिया की शांति भङ्ग करने को छोड़ दिया जाय। हम यह मानते हैं किन्तु जब इसे अमली रूप देना पड़ेगा तो अनगिन दिक़्क़तें पेश आयेंगी।

## विजयी राष्ट्रों की योजना

यह निश्चित है कि मित्रराष्ट्रों के राजनीतिज्ञ सच्चे दिल से ही जर्मनी की सैनिक शक्ति को सदा के लिये नष्ट करना चाहते हैं किन्तु वे वारसाई के अनुभव को कैसे भूल सकते हैं? जब संधिपत्र पर दस्तख़त हो रहे थे, तभी अङ्गरेज़ स्वयं एच० ए० एल० फिशर के शब्दों में संधि की शर्तों को उनकी कड़ाई के कारण दोष दे रहे थे। साधारणतया यह सभी समझ रहे थे कि जर्मनी कम से कम दो पुश्तों के लिये समस्या न बन सकेगा। किन्तु फ्रांस सोचता था कि, "क्लीमेन्सू ने एंग्लो सैक्सनों को ख़ुश रखने के प्रयत्न में शत्रु को यूरोप और दुनिया की शान्ति भङ्ग करने के लिये बहुत शक्तिशाली छोड़ दिया है।" इसलिये यूरोप और सारे संसार की शांति ख़तरे में है। फ्रांस चाहता था कि जर्मनी सदा के लिये अधीन बना लिया जावे।

उपनिवेश छिन जाने पर, निःशस्त्र कर दिए जाने पर और पूरी तरह कुचल दिए जाने पर यह विश्वास था कि जर्मनी कम से कम अगले पचास वर्षों तक किसी प्रकार भी सिर नहीं उठा सकेगा। परन्तु कुछ ही वर्षों में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आशा के विपरीत घटनाएं घटित होने लगीं। वारसाई की संधि ने, जिसे मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी के ऊपर अपनी सबसे बड़ी विजय समझा था, एक ऐसा पुत्र उत्पन्न किया जो अपनी माँ की हालत पर लज्जित था और जिनके कंधों पर उसकी माँ की दुर्दशा का उत्तरदायित्व था उनसे वह बदला लेने की आग में जल रहा था। यह व्यक्ति हिटलर था। इसके पश्चात जो घटनाएं हुईं उन्हें गिनाना व्यर्थ है। इतना कहना काफी है कि जर्मनी ने कुछ ही वर्षों में करवट बदली और वारसाई द्वारा लगाए गए बंधनों को प्रतिशोध की एक अंगड़ाई में ही तोड़ डाला। यदि मित्रराष्ट्रों ने वारसाई जैसी घटना की पुनरुक्ति करनी चाही तो यह निश्चित है कि इतिहास भी अपनी पुनरुक्ति से नहीं चूकेगा।

## अदूरदर्शी नीति

जब तक मित्रराष्ट्रों के नेता जर्मनी को सदा के लिए अपने अधिकार में रखने को तैयार न होंगे, सांप को घायल हालत में छोड़ देने से कोई भी लाभ न होगा। किन्तु यह असंभव है कि जर्मनी को सदा के लिए मित्रराष्ट्र अपने अधिकार में बनाये रख सकें। अभी से इस प्रश्न को लेकर मित्रराष्ट्रों में स्वयं मतभेद पैदा हो रहा है और जर्मनी इस मतभेद से लाभ उठाने का प्रयत्न करेगा। विश्व शांति को भङ्ग करने के लिए यह काफ़ी होगा।

वारसाई के प्रतिशोध की भावना से भरे हुए हिटलर ने पहले कम्यूनिज़्म के विरोधी पूँजीवादी देशों को अपनी ओर मिलाया। सच तो यह है कि इङ्गलैंड के पूँजीवादियों पर ही हिटलर के अभ्युत्थान की पूरी ज़िम्मेवारी है। फरवरी सन् १९३५ में 'लन्दन टाइम्स' में बड़े कवित्वपूर्ण ढङ्ग से लार्ड लोदियन ने हिटलर को पूर्वीय यूरोप में 'खुला हाथ' देने पर ज़ोर दिया ताकि कम्यूनिज़्म के ख़तरे से सभ्यता को बचाया जा सके और इसके लिये यदि यू० एस० एस० आर० से युद्ध भी करना पड़े तो हिटलर का समर्थन किया जाय।

लायड जार्ज ने भी, जो उस समय केवल 'मिस्टर' थे, २८ नवम्बर सन् १९३४ को हाउस आफ़ कामन्स में कहा था कि, "बहुत जल्दी ही शायद एक या दो वर्षों के अंदर इस देश के कन्ज़रवेटिव लोग जर्मनी को यूरोप में कम्यूनिज़्म से रक्षा करने वाले राष्ट्र के रूप में देखने लगेंगे।" चैम्बरलेन की नीति यही थी कि जर्मनी और रूस को लड़वा दिया जावे जिससे कम्यूनिज़्म की एक मात्र हुकूमत नष्ट हो जावे।

हालाकि युद्ध ने इङ्गलैण्ड और सोवियत दोनों को मित्रता के सूत्र में बांध दिया है फिर भी एक नाव के यात्री होने पर भी इङ्गलैंड के पूँजीवादी गिरोह और रूस के कम्यूनिस्टों में कोई ख़ास मुहब्बत नहीं है। चर्चिल, जिन्होंने सन् १९१९ के शान्ति सम्मेलन में कम्यूनिज़्म को 'दानवता' कहा था, कोई कल्पना नहीं की सकती कि आज उन्हें उसके प्रति कोई खास आकर्षण हो गया है कि जो उन्हीं के शब्दों में "दिमागी नैतिक बीमारी का भयंकर स्वरूप" था। जब तीन बड़ों के बीच में यह मुँह-देखी एकता है तो जर्मनी के लिये यह कहीं आसान होगा कि वह किसी न किसी उपाय से इन तीनों को अपने हित में लड़वा दे।

## कुचलने वाली संधि नहीं

सारांश यह कि कोई नकारात्मक कुचलने वाली प्रतिशोध की भावना से भरी संधि जर्मनी की समस्या को हल नहीं कर सकती। सम्भव है मित्रराष्ट्रों की योजना को कामयाब बनाने के लिये कुछ क्षणिक प्रतिबन्ध लगा दिये जांय कि जिससे जर्मनी को जनतन्त्रवादी खुशहाल बुनियादों पर खड़ा किया जा सके! किन्तु जब तक इन प्रतिबन्धों के साथ साथ रचनात्मक, शिक्षा सम्बन्धी, राजनैतिक और आर्थिक योजना न होगी तो ये सारे प्रतिबन्ध उलटे मित्र-राष्ट्रों के सर पर आ पड़ेंगे।

जैसा कि सर वाल्टर लेटन ने कहा है कि "शान्ति की सम्भावना विफल होगी यदि जर्मनी अपने को एक बराबरी का सबल और आत्म सम्मानित और दुनिया की समृद्धि में हिस्सा बँटाने वाला राष्ट्र नहीं समझेगा।" शांति चिरस्थायी होने के लिए विधायक होनी चाहिए, विध्वंसक नहीं। विजयी राष्ट्रों की कोई शर्तें किसी को कुचलने की भावना से प्रेरित होकर निर्धारित नहीं करनी चाहिएँ। सबल राष्ट्र पराजय स्वीकार करनेवालों से बदला नहीं लिया करते। यदि मित्र राष्ट्रों की विजय प्रतिशोध का नहीं वरन् न्याय और सत्य का मार्ग तैयार करेगी तो सारा संसार उसका चिर कृतज्ञ रहेगा।

इसके लिए सबसे पहले सबल प्रजातन्त्रवादी जर्मन राष्ट्र के निर्माण की आवश्यकता है। और इस दिशा में मित्र राष्ट्रों को अतीत के अनुभव से बहुत कुछ सीखना पड़ेगा। १९१८ की 'नवम्बर क्रांति' में जर्मन प्रजातन्त्रवाद के लिए बढ़े थे और उसके दूसरे वर्ष ही चुनाव में प्रजातन्त्रवादी उम्मीदवार काफ़ी संख्या में नैशनल असेम्बली के लिए चुने गए थे। किन्तु शीघ्र ही वारसाई की सन्धि की शर्तों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




छड़ेपन ने जर्मनी के इतिहास का पृष्ठ पलट दिया। बावजूद इस बात के कि जर्मन जनतन्त्रवादियों ने मुजरिम क़ैसर को हूज़ के महल में क़ैद कर दिया था, जर्मनी पर लड़ाई का दुर्ज लगाया गया। जर्मनी की आर्थिक रीढ़ तोड़ दी गई। उसकी उन्नति के स्वप्नों को सदा के लिए नष्ट करने का प्रयत्न किया गया। जर्मन नवयुवकों की रगों के गरम खून को ग़रीबी और निशस्त्रीकरण की बर्फ़ से ठंडा करने की कोशिश की गई। फ्रांस ने पवित्र राइनलैण्ड पर अपना अधिकार कर लिया। इन सब कारणों से ही आशा की किरण दिखलाने वाले हिटलर के हाथों में जर्मनी ने अपना भाग्य सौंप दिया और सारा देश उसके प्रतिक्रियावादी झंडे के नीचे आकर जमा हो गया।

## क्या इतिहास की पुनरुक्ति होगी ?

यदि मित्रराष्ट्र अपने पराजित शत्रु के साथ अधिक बुद्धिमानी का व्यवहार करते और जर्मनी के प्रजातन्त्रवादी दल को सहायता देते तो यूरोप का युद्धोत्तर कालीन इतिहास कुछ दूसरा ही होता। उस समय बड़ी ही अज्ञान से भरी चाल मित्रराष्ट्रों ने चली और इसी से हिटलर ने कुछ ही वर्षों के बाद उन्हें घृणा से ठोकर मारी जिसके कि वे हक़दार थे।

क्या वैसी ही दुःखान्त घटना फिर घटेगी ? विश्व की शांति के लिए हम चाहते हैं कि उस घटना की पुनरुक्ति फिर न हो। याल्टा सम्मिलन की प्रतिज्ञाओं को भूलना इस समय मित्रराष्ट्रों की भारी भूल होगी। नीतिशास्त्र कहता है कि नात्सीवाद का समूल नाश कर जर्मनी की प्रजातन्त्रवादी शक्तियों का सुसंगठन करवाना चाहिये क्योंकि क्रीमिया में तीन बड़ों ने जर्मनी की उन्नति के लिए जर्मनी से नात्सीवाद के नाश का विचार किया है। यदि जर्मनी की आर्थिक उन्नति के रास्ते खुले न रखे गए तो प्रजातन्त्रवादी या कोई भी अन्य सरकार वहाँ एक क्षण भी स्थापित नहीं रह सकती। व्यावसायिक उन्नति के लिए कच्चा माल और बाज़ार चाहिए। यदि मित्रराष्ट्र सच्चाई के साथ विश्वशांति स्थापित करना चाहते हैं तो जर्मनी के इस आर्थिक पहलू पर स्वयं कुछ नुक़सान सहकर भी उन्हें उदारता बरतनी चाहिए।

## लड़ाई का कारण और उसका क्षेत्र

शांति और प्रजातन्त्रवाद के फ़ायदे साधारण जनता को भी प्राप्त होने चाहिएँ। जनता को यह बतलाना चाहिए कि युद्ध से कोई लाभ नहीं। मित्रराष्ट्रों को चाहिये कि वे जर्मनी को नारमन एंजिल के शब्दों में "वे सभी साधन दें जिससे जर्मनी शांतिपूर्वक जीवन की आवश्यकताओं को उत्पन्न कर सके। क्योंकि अगर वह इन साधनों को शान्तिपूर्ण तरीक़े से प्राप्त न कर सका तो वह निश्चय ही उनके लिए उसी प्रकार लड़ेगा जैसा कि हम लड़ते।"

तो क्या मित्रराष्ट्रों को जर्मनी को उसके उपनिवेश लौटा देने चाहिएँ जिससे वह शक्तिशाली बन सके और शांति के अस्तित्व पर फिर किसी समय प्रश्नवाचक चिन्ह लगा सके ? क्या उसे छोटे छोटे टुकड़ों में बाँटकर शक्तिहीन नहीं बना देना चाहिए ? इस प्रकार के स्वाभाविक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। एक मज़बूत आर्थिक इकाई की हैसियत से कि जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में हिस्सा लेने का जर्मनी को अवसर मिले जर्मनी को युद्ध से दूर रखा जा सकता है। वरना वह महज़ अपने अस्तित्व को क़ायम रखने के लिये दुनिया को फिर युद्ध की आग में ढकेल सकता है।

इस प्रकार जर्मनी के अङ्ग भङ्ग का प्रश्न ही दूर हो जाता है यदि मित्रराष्ट्र आर्थिक दृष्टि से उसका गला नहीं घोंटना चाहते। जहाँ तक उपनिवेशों और साम्राज्य का प्रश्न है वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बाधक हैं और साम्राज्यवादी राष्ट्रों को इनकी क़ीमत दुनिया में व्यवस्था क़ायम रखने के लिये अपने साम्राज्य भङ्ग करके देनी पड़ेगी। जब कि आधी पृथ्वी में घृणा, अशांति और विद्रोह के कीड़े पल रहे हैं तो सार्वभौम शाश्वत शांति स्थापित ही कैसे हो सकती है ? डम्बरटन ओक्स की भांति-कोई ऐसी लीग आफ़ नेशन्स शांति स्थापित नहीं कर सकती जिसमें साम्राज्यवादी देशों का बोल बाला हो। वह तो चोरों की रसोई की तरह होगी कि जिसे देखकर उपनिवेशविहीन राष्ट्रों के मुँह से लार टपटकती रहेगी। मिसाल के तौर पर अपने क्षेत्रों से सौ गुना ज़्यादा साम्राज्य के स्वामी की हैसियत से ब्रिटेन को क्या अधिकार है कि वह जर्मनी के आक्रमण नीति की बुराई करे ? ऐसी शक्तियों को, जो उपनिवेशों की स्वामिनी हैं, मुजरिमों पर पत्थर फेंकने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। जर्मनी को शिक्षा देने का काम इन साम्राज्यवादी देशों को पहले अपने देश में अपने व्यवहार से शुरू करना चाहिये। वरना शान्ति के झूठे दावों से कोई लाभ न होगा क्योंकि जब तक फ़ासिस्टवाद के सगे भाई साम्राज्यवाद का पूरी तरह अन्त नहीं होता तब तक दुनिया में कोई स्थायी शान्ति क़ायम नहीं हो सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# रोग क्यों ?

प्रो० श्रीनारायण अग्रवाल एम० ए०, बी० काम० ( वर्धा )

आज चारों तरफ बीमारियों का बोलबाला है। जिधर देखो उधर लोग बीमार ही नज़र आते हैं। किसी को वर्षों से सरदर्द है तो किसी को अपचन। कोई क़ब्ज़ की शिकायत करता है तो कोई भूख न लगने की। आँख और कान की बीमारियाँ तो मामूली बातें हैं। पढ़े लिखे शहराती स्त्री पुरुषों में ५० प्रतिशत से भी अधिक लोग चश्मे का उपयोग करते हैं। बाक़ी ज़ाहिरा भले चंगे और मोटे ताज़े दिखाई देनेवाले लोगों से, जिनका वज़न डाक्टरों के हिसाब से नार्मल है, यदि सहानुभूति पूर्वक पूछा जाय तो वे भी सुस्ती, कमज़ोरी, अनिद्रा, दिन में बुरे विचारों और रात्रि में दुःस्वप्नों के पंजे में जकड़े हुये पाये जायेंगे। आज हम ऐसे ऐसे रोगों को देखते हैं जिनका हमारे पूर्वजों ने नाम भी न सुना था। कैन्सर, मेनिनजायटिज़ ( गरदन तोड़ बुखार ), कोलायटिस ( अंत्र दाह ) इत्यादि बीमारियाँ इतने बड़े पैमाने पर आधुनिक सभ्यता की ही देन हैं। जैसे जैसे डाक्टरों की संख्या बढ़ रही है वैसे ही वैसे नयी नयी व्याधियों की उत्पत्ति भी हो रही है, मानो डाक्टरों और व्याधियों में अपना अपना वर्चस्व और संख्या बढ़ाने की अहोरात्रि प्रतिस्पर्धा चल रही हो।

उपर्युक्त बातों पर विचार करने से प्रश्न उठता है कि आख़िर यह सब क्यों ? क्या मनुष्य बीमार रहने के लिये ही जन्मा है ? मनुष्य की स्वाभाविक दशा बीमारी की है या तन्दुरुस्ती की ? ईश्वर दयालु होते हुये भी अपने बालकों को इतना कष्ट क्यों भुगताता है ? और यदि इसी तरह नित नई बीमारियाँ उत्पन्न होती गईं तो उनके परिणामस्वरूप शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ह्रास कहां जाकर रुकेगा ? क्या मानव जाति नष्ट प्रायः हो जायगी ? इन सारे प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट है। तमाम व्याधियों का मूल कारण एक है और वह यह कि हम प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं। आज जीवन के तमाम क्षेत्रों में बनावटीपन आ गया है। हम अपनी स्वाभाविक दशा को—प्राकृतिक रहन सहन को भूल गये हैं। चमकीली और भड़कीली चीज़ों के पीछे पागलों की तरह बेतहाशा दौड़ रहे हैं। इसके कारण हम शरीर की विश्रांति गवाँ बैठे, मन की शांति खो बैठे और आत्मा की शुद्धता नष्ट कर चुके हैं। हम इतने जड़ हो गये हैं कि 'आत्मा' और 'परमात्मा' का नाम सुनकर अविश्वास की हँसी हँस देते हैं मानो ये चीज़ें हैं ही नहीं और यदि हैं तो हमारे जीवन से इनका कोई सरोकार नहीं। हममें यह समझने की शक्ति भी नहीं कि ये बातें बूढ़ी दादी अम्माँ के सठियाये हुये दिमाग़ की उपज नहीं बल्कि जीवन और विश्व के अटल सत्य हैं; जिनके बग़ैर जीवन जीवन न रहे और विश्व के अगणित आकाश-पिंड आपस में टकराकर प्रलय मचा दें।

हमारी समझ में यह कब आयेगा कि मनुष्य प्रकृति माता से जितनी दूर जायेगा उतना ही उसे सुख से वंचित रहना होगा और दुःख का भागी बनना पड़ेगा। प्राकृतिक नियमों का सबसे अधिक उल्लङ्घन हमने खान पान के क्षेत्र में किया है। भोजन और शरीर का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि एक की अवहेलना करके हम दूसरे को क़ायम नहीं रख सकते। अंग्रेज़ी में एक कहावत है 'A man is what he eats.' आदमी वैसा ही बनता है जैसा वह खाता है। एक अन्य विद्वान ने कहा है—"Tell me what you eat and I shall tell you what you are." "मुझे बतलाओ कि तुम क्या खाते हो और मैं बतला दूँगा कि तुम कैसे हो।" इससे स्पष्ट है कि भोजन का शरीर और मन से निकट का सम्बन्ध है और उनका मनुष्य के आचार और शील स्वभाव पर गहरा असर पड़ता है। मांसाहारी प्राणी हिंस्र और खूँखार होते हैं परन्तु शाकाहारी और फलाहारी जानवर सौम्य, सात्विक और शांत होते हैं। कुत्ते को यदि सिर्फ़ माँस पर रखा जाय तो उसका स्वभाव क्रूरता की ओर झुकता है किन्तु यदि उसे निरामिष आहार दें तो उसकी क्रूरता शनैः शनैः कम होकर एकदम लुप्त हो जाती है। मांसाहारी और शाकाहारी जातियों में भी यही फ़र्क़ है। कुछ ही दिन पहले इङ्गलैण्ड की सुप्रसिद्ध स्वास्थ्य पत्रिका Health For All 'हैल्थ फ़ार आल' में हैरी बेंजामिन नामक विद्वान लेखक ने "भोजन और सदाचार का सम्बन्ध" शीर्षक लेख में यह प्रतिपादित किया था कि जब तक पश्चिम के लोग अन्य प्राणियों की हत्या अपने उदर निर्वाह के लिये करते हैं तब तक वे संसार को शांति प्रदान नहीं कर सकते। सदियों के मांसाहार ने उनमें इतनी तामसिकता, स्वार्थ परता और क्रूरता भर दी है कि वे अन्य जातियों से भाई-चारे का और न्याय का व्यवहार करने के अयोग्य हो गये हैं। अतएव यदि संसार में सुराज और सुख की स्थापना करनी है तो पश्चिमीय सभ्यता को चाहिये कि वह मांसाहार का परित्याग कर शाकाहार और फलाहार की तरफ़ आए। इसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अमेरिका में भी लीडज़हर संस्था और डा० केलॉग इत्यादि विद्वान इसी दिशा में प्रचार करके आहार क्षेत्र में नया क्रांतिमत बना रहे हैं।

भोजन साधारणतः पांच भागों में बाँटा गया है:—

(१) कार्बोहाइड्रेड—कार्बन और शक्कर,

(२) प्रोटीन,

(३) चरबी,

(४) विटामिन और प्राकृतिक लवण और

(५) पानी

पहली श्रेणी में तमाम चीज़ें हैं जिनमें स्टार्च यानी श्वेतसार और शक्कर पाई जाती है जैसे गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा; सभी मीठी चीज़ें जैसे गन्ना, शक्कर, मीठे फल इत्यादि। ये पदार्थ शरीर में स्फूर्ति देते हैं। परन्तु इनको अधिक मात्रा में नहीं खाना चाहिये। अधिक श्वेतसार अड़ियों में जाकर सड़ता है और ख़ून को दूषित कर देता है। इस सड़ने की क्रिया को अंग्रेज़ी में फ़रमनटेशन (Fermentation) कहते हैं। जैसे पश्चिमी लोग मांसाहार के दोषी हैं वैसे ही भारतीय अधिक श्वेतसार खाने की ग़लती करते हैं। अतएव इसकी मात्रा कमसे कम होनी चाहिये। मिल की सफ़ेद शक्कर तो सफ़ेद ज़हर ही है। आज हम सफ़ेद, शुभ्र चीज़ों के पीछे मुग्ध हैं। परन्तु यह भूल जाते हैं कि सभी क्षेत्रों में सफ़ेदी श्लाघ्य नहीं। ज़हर भी सफ़ेद होता है। शक्कर को गंधक इत्यादि ज़हरीले रासायनिक द्रव्यों से धो धोकर हम उससे उसके तमाम विटेमिन और प्राकृतिक लवण अलग करके फेंक देते हैं जिससे वह ख़ून में खटाई या अम्लता पैदा करके नाना रोगों की जननी बन जाती है। अधिक शक्कर खानेवाले बच्चों की हड्डियाँ कमज़ोर और टेढ़ी हो जाती हैं जिसे रिकेट्स कहते हैं। कारण यह कि ऐसी शक्कर जिसका स्वाभाविक चूना हमने धो धोकर फेंक दिया, हज़म होने के लिये हड्डियों का चूना खींच लेती है। इसलिये जिन्हें कोई भी शिकायत हो उन्हें चाहिये कि सफ़ेद शक्कर हमेशा के लिये त्यागकर उसकी जगह शहद, गन्ना, गुड़ या किशमिश, अंजीर, खजूर इत्यादि से मिठास ग्रहण करें।

दूसरी श्रेणी में प्रोटीन यानी सभी द्विदल जैसे दालें, बादाम, काजू, मूँगफली, और माँस मछली, अंडा, दूध आदि आते हैं। ये शरीर की घिसावट या भोजन की पूर्ति करते हैं और टूटे हुये अंगों को एवं माँस पेशियों को बनाते हैं। बच्चों का शरीर बढ़ता रहता है इसलिये उन्हें इन पदार्थों की अधिक आवश्यकता है। परन्तु ३०-३५ वर्ष की उम्र के बाद इनका उपयोग कम करके ५० वर्ष की उम्र तक दूध, छाछ छोड़कर इस श्रेणी के सभी पदार्थों को त्याग देना चाहिये। ये हज़म मुश्किल से होते हैं और बदहज़मी में आंतों में सड़कर भयङ्कर ज़हर पैदा करते हैं जिन्हें अङ्गरेज़ी में प्यूट्रिफ़ेक्शन (Putrefaction) की क्रिया कहते हैं। बीमारों के लिये ये चीज़ें एकदम वर्जित हैं।

चर्बी हमारे शरीर को गरमी पहुंचाती है और सांधें और जोड़ों को चिकना रखती है। घी, तेल इत्यादि स्निग्ध पदार्थ देर से हज़म होने वाले हैं अतएव इनका उपयोग भी कम ही करना चाहिये। वनस्पति घी का तो एकदम बहिष्कार करके उसकी जगह शुद्ध तेल का व्यवहार किया जाय। तली हुई चीज़ें बहुत गरिष्ट होती हैं। और तलने में उनका गुण भी नष्ट हो जाता है।

हमारे शरीर के लिये विटामिन और प्राकृतिक लवण का महत्व इसीसे समझा जा सकता है कि यदि शरीर में इनमें से एक की कमी हो तो तरह तरह की बीमारियाँ आकर घर कर लेती हैं। लवण शरीर को शुद्ध रखते हैं। ख़ून का खारापन (Alcalinity) बढ़ाते हैं। रोगों के प्रतिकार करने की ताक़त को सबल करते हैं। यदि हम खाद्य पदार्थों को प्राकृतिक दशा में ग्रहण करें तो विटामिन और लवणों की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं। ये ज़्यादातर पदार्थों के छिलके के नज़दीक और बाहरी हिस्से में होते हैं और अधिक गरमी से या पालिश करने से नष्ट हो जाते हैं।

पानी का महत्व इसीसे जाना जा सकता है कि हमारा शरीर ७० प्रतिशत पानी है। शुद्ध पानी उतना प्रतिशत ही धीरे धीरे पीना चाहिये जितनी प्यास हो। वह भी शरीर में उसी प्रकार हज़म होता है जैसे अन्न। खाना खाते समय पानी कम पीना चाहिये। उसकी जगह पतली छाछ का उपयोग कर सकते हैं। जो लोग नमक, मिर्च मसाले अधिक खाते हैं उन्हें अधिक प्यास लगती है। ये चीज़ें कम करके यदि फलों पर ही रहा जाय तो एकदम कम प्यास लगेगी।

खाने के विषय में सबसे महत्वपूर्ण नियम यह है कि भूख लगने पर सात्विक और प्राकृतिक पदार्थों को खाना चाहिये और वह भी इतनी मिक़दार में कि भोजनोपरांत पेट में भारीपन और सुस्ती न मालूम हो। थकावट, अप्रसन्नता या बीमारी की हालत में भोजन एकदम बन्द कर देना चाहिये। ऐसे वक्त पर किया हुआ भोजन शक्ति देने के बजाय शक्ति का अपहरण करता है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन का विषय इतना विस्तृत और गहरा है कि इस छोटे से लेख में उसकी पूरी मीमांसा करना असम्भव है। जिज्ञासु पाठक यदि इस दिलचस्प विषय का अधिक अध्ययन कर अपने पर प्रयोग करें तो उन्हें स्वयं नये और अनोखे अनुभव होंगे।

आज संसार के रथी, महारथी, और धुरंधर राजनीतिज्ञ नवयुग-निर्माण की चर्चा और चेष्टा कर रहे हैं। उन्हें यह पता नहीं कि मनुष्य के विचार और उसके कार्य उसके आहार-विहार पर निर्भर हैं। प्राचीन भारत के ऋषि मुनियों ने इस सनातन सत्य को सहस्रों वर्ष पहले समझ लिया था और उन्होंने इस सम्बन्ध में निश्चित नियम निर्धारित किये थे। महात्मा गान्धी—आधुनिक युग के अन्यतम अधिनायक भी इस सम्बन्ध में कितने सतर्क हैं यह बात ज़ाहिर है। यदि नवयुग-निर्माण करना है तो सबसे पहले आहार क्षेत्र से तो बनावटीपन निकालना ही होगा। शक्कर, पालिश किये हुये चावल, मैदा, मांस इत्यादि बेचना जुर्म क़रार देना होगा। हमें समझ लेना चाहिये कि हम प्रकृति माता की बनाई चीज़ों को अपने खिलवाड़ से सुधार नहीं सकते। क़ुदरत से जितना सहयोग करेंगे उतना ही हमारा शरीर, मन और आत्मा शुद्ध और नीरोग होंगे और उसी हद तक आज का पीड़ित मानव आदर्श, सर्वसम्पन्न और सुखी संसार के निर्माण के सनातन स्वप्न को कृति में परिणत करने में कृत्यकार्य होगा।

---

# हिन्दुस्तानी

श्री सुशीलकुमार

हिन्दी है हिन्दुओं की भाषा, उर्दू है मुसलमानों की भाषा और हिन्दुस्तानी है हिन्दुस्तान की भाषा—जिसका किसी जाति विशेष से पक्षपात नहीं। यह है हिन्दुस्तान राष्ट्र की भाषा जिसमें हिन्दू भी शामिल हैं, मुसलमान भी, और है मुख्यतया उस जनता की भाषा जिसकी जाति है मजदूर-किसान, जिसके स्वार्थ एक हैं चाहे वह किसी भी वर्ग का हो, और जिनकी संख्या देश में अधिक है—ऐसा हमारे देश के महान नेता, राष्ट्र के शुभचिन्तक महात्मा गान्धी कहते हैं।

चूँकि हिन्दुस्तानी कोई बनी-बनाई भाषा नहीं है—ऐसा हम सभी स्वीकार करते हैं—तभी तो यह आवश्यक है कि हम भाषा की समस्या हल करें। लोग एतराज़ करते हैं कि इन नेताओं को भाषा की समस्या हल करने को कौन कहता है? इनका कार्य-क्षेत्र तो राजनीति है। यह काम तो लिंग्विस्ट्स का है। मगर देश जब तक इन नेताओं से नेतृत्व की मांग करता है, जब तक उनके वचनों को प्रमाण मान कर चलता है तब तक वह यह भी आशा करेगा ही कि उसको इस समस्या का उचित हल मिले। और यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिये कि देश और जाति के सुधार में भाषा का प्रश्न महत्वपूर्ण है।

ज़रा रुककर पहले हमें यह सोच लेना चाहिये कि हिन्दुस्तानी है क्या चीज़? ज़ाहिर है, जैसा कि महात्मा जी ने कई व्यक्तिगत पत्रों में लिखा है कि…हिन्दी और उर्दू के मेल से पैदा होनेवाली एक भाषा है, जिसकी धारा अभी हमारे सामने स्पष्ट नहीं। लेकिन उसके स्पष्ट होने की आशा की जाती है…गंगा और जमुना के मेल से एक तीसरी नदी।

जहाँ तक राष्ट्रभाषा का सवाल है, आप यह स्वीकार करेंगे कि हिन्दुस्तान राष्ट्र की वह एक ही भाषा होगी। चार राष्ट्रभाषाएं न सम्भव हैं, न उनकी आशा की जा सकती है। हाँ, अगर राष्ट्रभाषा का प्रश्न उठाकर अलग रख दिया जाय तब तो देश में कई भाषाएं और बोलियां हैं ही जिनको मातृत्व का अधिकार प्राप्त है। हिन्दी की अपनी शैली है, उर्दू की अपनी। अपने भावों को या तो आप हिन्दी में प्रकट कर सकते हैं या उर्दू में दोनों को मिलाकर बोलें तो विचार धारा रुक जायगी। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मजबूर होकर अपनी अभ्यस्त शैली में भाषण करना होगा।

चूँकि यह एक कठिन समस्या है, चूँकि दोनों को एक दूसरे की परवाह करने की ज़रूरत नहीं, चूंकि दोनों में बहुत साम्य है, और चूंकि दोनों आत्म-निर्णय का अधिकार चाहती हैं इसलिये हमें यहां विचार करना ही पड़ता है।

जिन्होंने हिन्दुस्तानी कान्फ्रेन्स की रिपोर्ट को पढ़ा है वे जानते हैं कि हिन्दुस्तानी की रचना के बारे में कई विद्वानों की कई रायें हैं। कोई कहते हैं कि हिन्दी कोष के सरल शब्द और उर्दू कोष के सरल शब्द लेकर एक नया कोष बनाया जाय। इसे हिन्दुस्तानी-भाषा-कोष करार दिया जाय। कोई कहते हैं कि सम्पूर्ण हिन्दी-उर्दू-कोष मिला दिये जायं और उसका नाम हिन्दुस्तानी रखा जाय। कोई कहते हैं कि हिन्दी-उर्दू के आम शब्दों को मिला दिया जाय और अभी काफी जगह इस मतलब के लिये छोड़ दी जाय कि देहात में बोले जानेवाले बहुत से शब्द ज्यों-ज्यों मिलते जाँय कोष में मिलाये जाँय।

विद्वानों की इन बातों से पता चलता है कि समस्या के हल करने का उन्होंने प्रयत्न किया है। अगर इनमें से यह बात स्वीकारी जाय कि सम्पूर्ण दोनों कोष एक कर दिये जायं तो कोष बहुत ही बड़ा हो जायगा और फिर साधारण इस्तेमाल के लिये छोटे-छोटे कोष बनाने पड़ेंगे और सम्भावना यही है कि फिर हिन्दी-संस्करण, उर्दू-संस्करण हमारे सामने आएं। इसलिये ज़्यादा योग्य बात यही स्वीकारी जायगी कि दोनों के सरल शब्द इकट्ठे कर दिये जाएं और देहाती शब्द-प्रयोगों की खोज जारी रखी जाए। दोनों धाराओं को ठीक रास्ते पर लाने का काम यही कोष करेगा। जिस अखबार या पुस्तक ने जो शब्द लिये हैं, उसे इसमें से निकालकर दिखाने होंगे या अपने नये शब्द की आवश्यकता सिद्ध करनी होगी।

भाषा की समस्या का हल महात्मा जी ने जो एक सम्मिलित-भाषा के रूप में देश के सामने रखा है उसको तो प्रायः सब लोग मानने लगे हैं। क्योंकि इस प्रकार किसी तरफ पक्षपात की गुञ्जायश नहीं रह जाती। हाँ लिपि की बात पर बहुत लोगों को एतराज़ हैं। कहते हैं—यह कैसी नागवार बात है कि एक भाषा को लिखने के लिये दो लिपियां हों। लेकिन मजबूर होकर इसे मानना पड़ता है। यहाँ कोई तीसरा हल हमारी कल्पना में नहीं आता जिसका हम आश्रय लें। जब तक देवनागरी में लिखी भाषा 'देव-भाषा' और उर्दू-लिपि में लिखी भाषा 'नबी जी की ज़बान' समझी जायगी, स्पष्ट है कि हमारी धार्मिक भावनाएं हमें उचित बात सोचने देने से मना करेंगी।

लेकिन कुछ विचारक कहते हैं कि उसका भी हल हमारे सामने बना बनाया तैयार है और वह है रोमन लिपि। यह जनता के सामने तभी रखी जायगी जब कि उसकी सहन-शक्ति अधिक बढ़ जाय।

दो लिपियों के विषय में महात्मा जी कहते हैं कि अगर बचपन से दोनों लिपियां सीखी जाएं तो दोनों का सीखना ज़रा भी कठिन नहीं। ऐसे भी आप रोमन और देवनागरी सीखते हुये कोई एतराज़ करते दिखाई नहीं देते, अगर रोमन को छोड़ दिया जाय तो उसका स्थान उर्दू को बड़ी आसानी से मिल जाना चाहिये।

आम जनता के कल्याण की चिन्ता करने वाले, राष्ट्र-सेवी यह देख रहे हैं कि महात्मा जी का ग्राम-प्रोग्राम जो हाल ही में बना है, किधर जा रहा है। उसका मतलब स्पष्ट है कि गाँव में बसनेवाली अधिकांश साधारण जनता के आत्म-निर्णय के अधिकार की रक्षा हो। इस आर्थिक आन्दोलन का रुख भी साधारण जनता की ही ओर है और इस भाषा-आन्दोलन का रुख भी उसी ओर।

अगर यह चीज़ देश में किसी प्रकार सफल हो गई तो शहर में बसने वाले ५,१० प्रतिशत शिक्षित, साहित्यिक लोग साधारण जनता पर शासन और भाषा-पक्ष का रोब न गांठ सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दुस्तानी की ओर !

प्रोफेसर राजनाथ पांडेय, एम० ए०

हिन्दी और उर्दू का समन्वय टण्डनजी भी चाहते हैं और महात्माजी तो कहते हैं कि 'अगर हिन्दी और उर्दू मिल जाँय तो गङ्गा और जमुना से भी बड़ी सरस्वती हुगली की तरह बन जायगी।' किन्तु लक्ष्य एक होते हुए भी लक्ष्य तक पहुँचने के तरीक़ों के प्रति आस्था न होने से मतभेद तथा ग़लतफ़हमी फैल जाती है। जो मौजूदा हालत है उसमें मतभेद का न फैलना ही अस्वाभाविक होता। अब यह देखना चाहिये कि जो बातें हम किसी जलसे में बैठकर कह डालते हैं उन्हें अमल में भी लाया जा सकता है या नहीं? कुछ काम करने से ही, काम में लग जाने पर, हमारा बोलना कुछ कम होगा और जितना ही अब इस सम्बन्ध में बोलना कम करके काम करना शुरू किया जायगा उतनी ही अधिक सच्ची जानकारी हासिल होगी और मतभेद में रोज़ ब रोज़ उतनी ही कमी पड़ती जायगी। इसी बात को ध्यान में रखकर हमने लगभग सौ शब्दों की यह लिस्ट तैयार की है। कठिन हिन्दी या संस्कृत तथा सकील उर्दू या अरबी फ़ारसी शब्दों के साथ ही साथ सहल ज़बान या हिन्दुस्तानी के शब्द भी दिये गये हैं। मैंने अभी थोड़े से शब्द ही प्रस्तुत किये हैं। हो सकता है, मेरे दिये हुए शब्दों से भी कोई अच्छे शब्द मौजूद हों। जो भाई हमें और अच्छे शब्दों की सूचना देंगे हम उनका यश मानेंगे। यह एक बड़ा काम है। अपनी अपनी रुचि के अनुसार थोड़ा-थोड़ा भी हाथ लगने से बहुत सा काम आगे बढ़ चलेगा और यह समस्या जितनी कठिन आज है उतनी कठिन कल न रह जायगी। धीरे-धीरे अँधेरा घटता जायगा और प्रकाश की किरनें फूटती नज़र आने लगेंगी!

ईरान में जितने शब्द अंग्रेज़ी के अपनाये गये उतने और कहीं नहीं। सेक्रेटरी से सिकत्तर, फिलासफ़ी से फ़लसफा वग़ैरह बना लिए गए। तो क्या वजह है कि अरबी-फ़ारसी के शब्द हम न अपना लें? या संस्कृत के शब्द उर्दूवाले न अपना लें? सच्ची बात यह है कि इस समय आदान-प्रदान का सिलसिला रुक गया है। आदान-प्रदान द्वारा अपनाने की उदार प्रवृत्ति किसी की कुण्ठित नहीं हुई है। अब इस आदान-प्रदान का सिलसिला जारी करना चाहिये पर दो अलग अलग फ़िरकों के रूप में नहीं, वरन् जो शब्द अब तक प्रचलित हो चुके हैं उनके संग्रह के रूप में और नये शब्दों की क़ीमत की जाँच करके उन्हें भी ग्रहण करने के रूप में। जब हिन्दी और उर्दू दोनों अंग्रेज़ी के हॉस्पिटल को अस्पताल करके तथा कोचमैन को कोचवान करके ग्रहण कर सकती हैं तो क्या वजह है कि संस्कृत या फ़ारसी के शब्द भी इसी प्रकार न अपनाये जायें?

हमें यह तसलीम करना चाहिये कि कष्ट, स्पष्ट, आवश्यकता जैसे कठिन शब्द मुसलमान भाई आसानी से नहीं बोल सकते। इसी प्रकार उन्हें भी यह स्वीकार करना चाहिये कि दस्तख़त, मिज़ाज़ जैसे शब्द आम भारतीय जनता आसानी से नहीं बोल सकती। पर नई बात सीखने के लिये कुछ कष्ट भी उठाया जाना चाहिये। उर्दू को ग्रहण करने के लिये आरम्भ में हिन्दू ही अधिक तत्पर रहते थे पर जब उर्दू ने साथ छोड़ना आरम्भ किया तो वह जनता से छूटती गई। तब उर्दू को इसकी परवाह नहीं थी। पर इस बीच ज़माना बदल गया है और यह ख़ुशी की बात है कि उर्दू जनता के क़रीब आना चाहती है। हमें उसे इस काम में मदद देनी चाहिये। पर इसके लिये उर्दू भी कुछ कष्ट उठाए और पिछड़ी हुई दूरी तै करने के लिये तेज़ी से क़दम बढ़ाये। हिन्दी भी रुककर झुककर उसे साथ ले ले और दोनों को कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़े।

इस काम के लिये केवल लिपि के बदलने से ही कुछ अधिक लाभ न होगा। जनता में जो शब्द जैसे बोले जा रहे हैं उन्हें वैसे ही बोलना चाहिये और दोनों लिपियों में उन्हें वैसा ही लिखना भी चाहिये। संस्कृत शब्दों का रूप उर्दू में और फ़ारसी-अरबी शब्दों का हिन्दी में जो रूप आ चुका है, एक बार उसे स्वीकार करके देखिए न, और एक बार हिम्मत करके एक ऐसा कोष बनाइए जिसमें जनता में प्रचलित केवल तद्भव शब्द हों! उच्चकोटि के विद्यार्थियों के लिये क्लिष्ट हिन्दी तथा क्लिष्ट उर्दू का जो साहित्य बन चुका है उसे समझने व जीवित रखने के लिये अलग अलग प्रत्येक के कोष हैं ही। धार्मिक ग्रंथों में भी दूसरी कोटि के शब्द होंगे। पर जब हिन्दी जनता है तथा जनता हिन्दी है तब एक राष्ट्रभाषा के निर्माण में मुख्य ध्यान जनता पर ही क्यों न रहे? इस समय हिन्दी और उर्दू दोनों साहित्य जनता से छूट गये हैं। कृपा करके एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बार जनता से उनका साथ करा दीजिये। जनता के पास तुलसी, कबीर, जायसी, नज़ीर, अनीस, रतननाथ, प्रेमचन्द आदि हैं। आज की नई-नई बातें जनता एकदम नहीं जानती। वह जिन्हें जानती है उनकी भाषा व शैली में आप पहिले उसको साधारण ज्ञान-विज्ञान तथा देशकाल की जानकारी प्रदान कीजिए तब सुरुचिपूर्ण आधुनिक काव्य, आलोचना आदि को वह समझ सकेगी।

विद्यार्थियों के लिये भी एक निश्चित कक्षा तक गद्य और पद्य के मिलवाँ संग्रह तैयार किए जाएं। हिन्दी और उर्दू दोनों साहित्यों का एक मिलवाँ इतिहास भी निश्चित कक्षा के विद्यार्थियों के लिये तय्यार हो। उस निश्चित वर्ग तक सबके लिये इन पुस्तकों का पढ़ना अनिवार्य कर दीजिए। उसके पश्चात् हिन्दी और उर्दू साहित्य का अलग अलग जो गहरा अध्ययन करना चाहे उनके लिये भी सुविधा दीजिये। साथ ही आम जनता के लिये हिन्दी के अमर ग्रंथों के सरल अंशों का संकलन फारसी लिपि में तथा उर्दू के अमर ग्रंथों के सरल अंशों का संकलन नागरी लिपि में छपाइए।

अपने इन्हीं विचारों से प्रेरित हो हमने हिन्दुस्तानी की ओर एक क़दम उठाया है। मेरी यह प्रार्थना है कि हिन्दी पत्रों के सम्पादक मेरे इस लेख की चर्चा अपने पत्रों में करें और मेरी यह आवाज़ हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के लोगों तक पहुँचायें।

| कठिन हिन्दी या संस्कृत | सक़ील उर्दू या अरबी-फ़ारसी | सहल ज़बान या हिन्दुस्तानी |
|---|---|---|
| अंगुष्ट | अंगुश्त | अंगूठा |
| अग्नि पूजक | आतिश परस्त | अगिनपुजवा |
| अधिक | अशद | बहुत |
| अध्यवसाय | इस्तकलाल | लगन |
| अनुकृत | तकलीदी | नक़ली |
| अभ्र | अब्र | बादल |
| अरुण | कलील | कम |
| अश्रु | अश्क़ | आंसू |
| अष्ट | दश्त | आठ |
| आंगुरीय | अंगुश्तरी | अंगूठी |
| आकर्षण | दिलकश | लुभावना |
| आकर्षण | जाज़िब | खिंचाव |
| आशंका | अंदेशा | डर |
| आश्चर्य | तअज्जुब | अचरज |
| उत्सर्ग | सदक़ा | निछावर |
| उर्वर | ज़रखेज़ | उपजाऊ |
| उष्ट्र | शुतुर | ऊँट |
| कटु | तल्ख़ | कड़ुवा |
| कृमि | किर्म | कीड़ा |
| कृषि | जराअत | खेती |
| क्रांति | इनक़लाब | उथल-पुथल |
| काक | ज़ाग़ | कौवा |
| कार्य | किरदार | काज |
| कुब्ज | कूजपुश्त | कुबड़ा |
| कुवाच्य | दुश्नाम | कुबात |
| गर्व | तक़ब्बुर | गुमान |
| ग्रामीण | दहकान | देहाती |
| घृणा | कराहियत | घिन |
| चित्ताकर्षक | दिलपज़ीर | मनभावन |
| छत्र | चतर | छतरी |
| छद्म | फन्द | छलन |
| जलप्रपात | आबशार | झरना |
| तांबूल | तम्बोल | पान |
| तिमिर | तारीकी | अन्धेरा |
| तिरस्कार | तौहीन | अपमान |
| तिर्यक् | उरेब | तिर्छा |
| तुंड | तुन्द | टूँड़ |
| दंत | दंदाँ | दांत |
| दर्शनीय | दीदारू | देखनोक |
| दुर्बल | नकीह | दुबला |
| दुर्भिक्ष | क़हत | अकाल |
| देवस्थान | इबादतगाह | पूजाघर |
| धनलोलुप | ज़रपरस्त | पैसापूजक |
| नम्र | खाकसार | दीन |
| नारिकेल | नारजील | नारियल |
| निर्देश | इरशाद | हुकुम |
| निर्वासित | जलावतन | देशनिकाला |
| नीलोत्पल | नीलोफर | नीलकमल |
| पत्रवाहक | कासिद | हरकारा |
| पक्षपाती | जानिबदार | तरफ़दार |
| परिचय | तआरुफ़ | पहिचान |



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| परीक्षित | आजमूदा | अजमाया | वांछा | तमन्ना | हिंछा |
| पर्णकुटी | काशाना | झोंपड़ी | विकलता | आशुफ़्तगी | बेचैनी |
| पारद | सीमाब | पारा | विकृत | मुहर्रफ़ | बिगड़ा |
| प्लीहा | तिहाल | पिलही | विक्रय | फ़रोख़्त | बिक्री |
| पुष्ट | पुख्ता | पोढ़ा | विपत्ति | कुलफत | आपत, विपत |
| पृष्ठ | पुश्त | पीठ | शत्रु | गनीम, दुश्मन | वैरी |
| प्रकट | आश्कार | उजागिर | श्वसुर | खुसर | ससुर |
| प्रकार | तर्ज़ | रीत | शृंगार | तजम्मुल | सजाव |
| प्रकृति | ख़ासियत | सुभाव | श्वास | नफ़स | साँस |
| प्रतिशोध | इन्तक़ाम | बदला | शीर्षक | उनवान | सिरनामा |
| प्रतेजन | तरग़ीब | उसकाना | शुष्क | खुश्क | सूखा |
| प्रमाद | तसादुल | लापरवाही | शूकर | खूक | सुअर |
| प्रबन्धकर्ता | कारपरदाज़ | कारिंदा | श्लेषात्मक | जूमानी | दोअरथी |
| भरण पोषण | नान नफका | गुजारा | षण्मासिक | शशमाही | छमाही |
| भग्न | ख़स्ता | टूटा | ऐक्य | इत्तहाद | एका |
| भारवाही | हम्माल | बोझिया | संतप्त | ग़मज़दा | दुखी |
| भ्रू | अब्रू | भौं | सम्पन्न | तवंगर | धनी |
| मधुशाला | मैख़ाना, ख़ुमखाना | कलवरिया | संशोधन | तरमीम | सुधार |
| मनवांछित | हस्बख़्वाह | मनचाहा | सज्जनता | खुल्क | भलमनसी |
| मृगनाभि, मृगमद | मुश्क | कस्तूरी | समीक्षण | इम्तियाज़ | परख |
| मृत्तिका | तुराब | मांटी | सर्वसाधारण | अवामुन्नास | जनता |
| मासिक | दरमाहा | माहवारी | सृष्टि | कायनात | जगत |
| मूलधन | ज़रेअस्ल | मूर | स्वागत | इस्तक़बाल | अगवानी |
| मेष | नरमेष | मेंढ़ा | स्वामिन | ख़ाविंद | मालिक |
| लुञ्ज | लंग | लंगड़ा | स्मित | तबस्सुम | मुसकुराहट |
| बिन्दु | नुक़्ता | बिन्दी | सुसज्जित | आरास्ता | सजाया |
| बिन्दु | क़तरा | बूंद | हस्तक्षेप | दस्तन्दाज़ी | दख़ल |
| व्यतीत | गुजश्ता | बीता | हस्तिशाला | फीलखाना | हथसार |
| व्यवस्थापक | मोहतमिम | करता-धरता | दुग्ध | शीर | दूध |
| | | | त्रुटि | ख़ामी | कमी |
| | | | ज्ञान | दानिश्त | जानकारी |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बट-वृक्ष

श्री गिरीश

"भाई अपना नन्हा तो अब सयाना हो गया !"—कहते हुये राज्य श्री ने उस युवा बट-वृक्ष की ओर संकेत किया। प्रत्युत्तर में गर्व से उस पर दृष्टि डालते हुए सम्राट हर्षवर्धन ने कहा—"हां बहिन, साथ ही साथ कितना सुन्दर भी तो हो गया है।"

शर्म से बट-वृक्ष की आंखें झुक गईं पर अल्हड़ पवन ने झोंका देकर उसके चिबुक को ऊपर उठा दिया। राज्य श्री ने मुस्कुराते हुए फिर कहा—"अच्छा हो यदि सामने की आम्र मंजरी से इसका विवाह कर दिया जाय।"

हर्षवर्धन ने स्वीकृति देते हुए कहा, "ठीक है, मैं तुम्हारे प्रस्ताव से सहमत हूं।"

बट-वृक्ष ने अल्हड़ पवन की बार बार की धृष्टता को रोषपूर्ण नेत्रों से देखा और एक बार घटना स्थल में पूर्ण शांति छा गई।...

सम्राट हर्षवर्धन व राजकुमारी राज्य श्री के चले जाने के बाद बट-वृक्ष बड़ी देर तक अपने भावी सुख-स्वप्नों में ही खोया सा रहा।

सम्राट हर पाँचवें साल प्रयाग आया करते थे। इसी शुभ अवसर पर नन्हें को भी सम्राट की असीम उदारता व उत्कृष्ट दानशीलता देखने का सौभाग्य मिलता था। इस बार ६४३ ई० में सम्राट अपनी बहिन के साथ छठीं बार प्रयाग आए थे। साथ में था चीन का प्रसिद्ध यात्री हुएन-सांग। अपने स्थान पर ही खड़े खड़े नन्हें ने भी पहले दिन भगवान बुद्ध की सौम्य मूर्ति की स्थापना देखी। देश के विज्ञ कलाकारों व शिल्पियों ने इस अद्वितीय और अपूर्व मूर्ति का निर्माण किया था। दूसरे दिन शिव, सूर्य, विष्णु आदि की भी मूर्तियां स्थापित की गईं। वह भी अपूर्व दृश्य था जब लाखों यात्रियों के समारोह ने इनकी एक साथ वन्दना की थी।

इसके उपरांत सम्राट ने लगभग ५ लाख बौद्ध भिक्षुओं व ब्राह्मणों के दान-यज्ञ में अपना समस्त राज्य कोष रिक्त कर दिया था। स्थान स्थान पर यज्ञ भवनों में वेदों का पाठ, मठों में बौद्धों की जातक कथाओं और जैन मन्दिरों में धर्मोपदेश का प्रबंध किया गया था। लगातार बीस दिनों तक सम्राट हर्ष ने देश विदेश से आए हुए बौद्धों, अनेक ब्राह्मणों, असंख्य लूले लँगड़ों व असहायों को दान में सोने चांदी के बर्तन, महल के जड़ाऊ ज़ेवर, राज कोष का सारा धन देने के बाद अपने किरीट, कुण्डल, मुकुट, मुद्रा, आदि भी भेंट कर दिये और जो दीन अनाथ अब भी शेष बच रहे उन्हें अपने शरीर के वस्त्र उतार कर दे दिये। दानशीलता का कितना ज्वलंत आदर्श था! चारों दिशाएं बोल उठीं 'जय हो! सम्राट हर्षवर्धन की जय हो! सारा समारोह विस्मय विमूढ़ था। हुएनत्सांग भारत के वैभव पर चकित सा था और इससे भी अधिक आश्चर्य हो रहा था उसे सम्राट के अमर त्याग व दानशीलता को देख कर।

और कौन जानता था कि इतिहास की इस स्वर्णाक्षर अङ्कित घटना से ही सम्बधित होंगी 'नन्हे' के जीवन की शुभ घड़ियाँ। क्योंकि इसी शुभ अवसर पर सम्राट हर्षवर्धन ने राज्य श्री की इच्छानुसार समारोह के साथ साथ मनाया था नन्हे व आम्रमंजरी का विवाहोत्सव। जाते समय सम्राट हर्ष व राजकुमारी राज्य श्री दोनों ने उसे आशीर्वाद दिया और बड़े प्यार से उस पर हाथ फेरा। राज्य श्री के अन्तिम वाक्य नन्हे को अब भी याद थे, "अब आम्र मंजरी का उत्तरदायित्व तुम पर पड़ा नन्हे!"

आम्र मंजरी बट वृक्ष की ओर बढ़ने लगी और बट वृक्ष ने उसे प्यार से अपनी भुजाओं में समेट लिया। दोनों में से किसी को स्वप्न में भी यह धारणा न थी कि यह सुख की घड़ी कभी बदल भी जाएगी।

बट वृक्ष को इस बात का गर्व था कि सम्राट हर्षवर्धन से उसने पैतृक स्नेह पाया था। जब प्रथम बार वह प्रयाग आए थे तो झाड़ झंखाड़, ऊँची नीची, पठारी व कङ्करीली ज़मीन में उगी हुई कोमल धानी रंग की छोटी छोटी पत्तिओं से सुसज्जित एक हरी टहनी पर दृष्टि पड़ी थी राज्य श्री की। पवन की दिशा में उसका मन्द मन्द झूमना देखकर वह उस पर मुग्ध हो उठी। चारों तरफ से काटों आदि से घेर कर उसे पशुओं द्वारा अकाल काल कवलित होने से बचाया गया। दूसरी बार जब राज्य श्री प्रयाग आईं तो वह टहनी अब काफी बढ़ चुकी थी और अनेकानेक पत्ते निकल आए थे। इसी बार पौधे का नामकरण किया उसने 'नन्हे'। सम्राट भी नन्हे को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। अबकी बार उसके चारों तरफ़ एक गोल चबूतरा भी बना दिया गया और जाते समय राज्य श्री ने उसके बदन पर हाथ फेरकर कहा था—"जल्दी ही आऊँगी नन्हे!"

तीसरी बार प्रयाग आने पर नन्हे और बढ़ गया था। संगम तट पर उगे हुए उस शिशु वृक्ष की ओर सम्राट हर्ष ने बड़े ही प्यार और अनुग्रह से देखा। राज्य श्री बार बार

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उससे पूछती, "नन्हे तुम खूब घने व छायादार कब बनोगे ?" कितना सुख अनुभव करता था नन्हे उस समय ! शैशव में वह यही अलभ्य प्यार पाकर पलता और पनपता रहा और धीरे धीरे उसके अशक्य शरीर में बल का संचार होने लगा। चेहरे में आई चेतना व स्फूर्ति में जवानी ने अपने आगमन की सूचना दे दी। स्वरूप विकसित व लावण्यमय हो गया। वसन्त की इठलाती पवन से वह दिन रात खेलता, गङ्गा यमुना की लहरों में अपना प्रतिबिम्ब देखता, मन में कभी इच्छा हो जाती चाँद को छूने की व कभी गङ्गा यमुना के शीतल जल के स्पर्श की। कोयलों के समूह को वह सुन्दर संगीत सुनने के लिए बाँहें उठाकर बुलाता··· । बलिष्ट हो गई थीं उसकी डालियाँ; चिकना व सुन्दर हो गया था उसका तना। आकार हो गया था उसका मंडप के समान। उसमें दिन रात अनेक चिड़ियाँ विहार करतीं। सुन्दर हरे हरे नव पल्लव हिलहिल कर रात दिन कानाफूसी करते।

इसी बीच वट-वृक्ष की मैत्री हुई थी सामने की आम्र मंजरी से और पवन के मृदुल झोंके दोनों का पारस्परिक विचार विनमय करा देते। दोनों ने पाया था एक दूसरे के प्रति अभिन्न आकर्षण। राज्य श्री की ही अभिलाषा के परिणामस्वरूप फिर दोनों में एक चिर सम्बन्ध स्थापित हो गया था। कितने उज्ज्वल रंग में रंगे थे उस बट-वृक्ष के अतीत के चित्र ! जिनके ध्यान में ही वह डूबा हुआ रहा करता।

उस सुखद संस्मरण में उसे याद न रहा कि आम्रमंजरी के बाद कितने बसन्त आए और चले गए ? हर्ष वर्धन के बाद कितने सम्राट सिंहासनारूढ़ हुए ? भारत में एक के बाद एक कितनी सत्ताएँ स्थापित हुईं और मिट गईं ? मुग़ल, मराठा और विदेशी शक्तियां कब कब प्रबल हुईं ? अंग्रेज़ों व फ्रांसीसियों के पारस्परिक युद्ध से कितने इतिहास पृष्ठ रंगे गए ? भारतवासियों में अंग्रेज़ी सत्ता के विरुद्ध कब राष्ट्रीय जागृति की लहर आई। आदि आदि। वह इन सबको एक चलचित्र की ही भाँति देखता रहा। अपने ही स्थान पर कितने समय तक, इसका उसे ज्ञान न रहा !··· गङ्गा यमुना से हिन्द महासागर को कितना जलदान मिल चुका था, कितनी शताब्दियाँ बीत चुकी थीं, संसार का रूप कितना बदल चुका था, इसका उसको आभास हुआ पर कब ? ऐसा लगता था जैसे सब देखते हुए भी वह निद्रामग्न था।···

और आज अपने परिवर्तन पर उसे स्वयं यकायक आश्चर्य सा हो रहा था। वह चारों ओर के संसार को देखकर विस्मय विमूढ़ था ? बचपन के बड़े छोटे सभी वृक्ष न जाने कहाँ चले गए थे। सदैव ठंडक पहुंचाने वाली गङ्गा यमुना का किनारा भी कहाँ से कहाँ छोड़कर चला गया था ? सबसे अधिक ठेस उसके दिल पर उस समय पहुँची थी कि जब बुढ़ापे में उसकी जीवन सहचरी आम्र मंजरी भी साथ छोड़कर चली गई।

अब वह स्वयं इन चोटों से बूढ़ा, जर्जर व लावण्य हीन हो गया था ! पपड़ियाँ उखड़ उखड़कर झुर्रियों को आवरण दे रही थीं। डालियाँ बुरी तरह से इधर उधर फैली और मटमैले भद्दे पीले व भूरे रंग की सूखी नीरस पत्तियों से लदी थीं। बन्दरों का समूह लटकी हुई जटायें पकड़कर चढ़ जाते और ऊधम मचाते। गिलहरियों व कठफोड़ों का क्रीड़ास्थल बन चुका था उसका जर्जर शरीर। हवा चलती तो सूखे पत्तों में होती चरचराहट, डालियों में होती कड़कड़ाहट। इसीसे पथिक दूर से ही उसे प्रणाम करते थे क्योंकि भय था न जाने कब कौनसी डाल ऊपर टूट पड़े। पक्षीगणों ने उसमें निवास करना छोड़ दिया था क्योंकि उसमें अब प्रायः फल आने भी बन्द हो गये थे। इसके अतिरिक्त अनेक पिशाचों व भूतों की कहानियों से वह सम्बन्धित हो गया था। किन्तु जर्जर और जीर्ण होते हुए भी वह जी ही रहा था, बिना किसी उपयोगिता के। रात रात भर अनेक आकाश दीपों के प्रकाश में वह अपनी अतीत स्मृतियों की छाया देखा करता।···

फिर यकायक १८८७ ई० में इसीके निकट प्रयाग विश्वविद्यालय की नींव पड़ी। सेनेट हाल के सामने लान में ही अपने जर्जर जीवन का भार ढोता हुआ बूढ़ा बट वृक्ष खड़ा था। अब फिर एक बार उसके चारों ओर गोल चबूतरे का निर्माण हुआ। फूलों की क्यारियाँ उसे चारों ओर से घेरकर इठलाने लगीं। सुगन्धित पवन ने उसका एक बार फिर स्पर्श किया। बट वृक्ष अपनी जीवन सहचरी आम्र मंजरी की स्मृति से एक बार सिहर उठा। तब से न जाने कितने दार्शनिकों व कवियों ने अपने भव्यतम विचारों की श्रद्धांजलि उस पर चढ़ाई है। आज उसे 'विद्या के मन्दिर में जितनी शाखाएँ उतने ही वृक्ष' की सूक्ति से सम्बोधित कर दिया गया है।

रास्ता चलनेवाले बूढ़े पथिक अपने बच्चों को बतलाते हैं "ई बरगद तो बड़ा पुरनिया बा।" कौन कह सकता है कि उसके दिन फिर से चमके हैं अथवा अतीत की तुलना में धुँधले हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पुस्तक परिचय

**महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र**—(जीवनी)-लेखक, इंद्र विद्यावाचस्पति ; प्रकाशक, विजय पुस्तक भण्डार, श्रद्धानंद बाजार, दिल्ली ; मूल्य १॥), पृष्ठ संख्या २१६। सचित्र।

प्रस्तुत पुस्तक आर्य समाज के इतिहास के द्वितीय खंड के रूप में पहले प्रकाशित हो चुकी है। अब उपयोगिता के दृष्टि कोण से अलग से प्रकाशित की गई है। कुछ परिच्छेद इसमें बढ़ा दिए गए हैं।

पुस्तक वैज्ञानिक दृष्टि कोण से लिखी गई है। जीवनी भी साहित्य का एक अङ्ग है और साहित्यकता का पूर्ण समावेश इसमें हुआ है। इसकी शैली बड़ी सजीव है—"प्रारंभ से अपने विचारों को प्रगट करने के लिए स्वामी जी तीन उपाय काम में लाते थे। व्याख्यान देते थे, विज्ञापन निकालते थे और शास्त्रार्थ के लिए ललकारते थे।" "जिस वीर योद्धा पर काशी के हथियार नाकामयाब हुए उस पर मथुरा के हथियार क्या असर डाल सकते थे?"

हिन्दू समाज के महान सुधारक स्वामी दयानन्द की सच्ची झांकी देखने के लिए यह ग्रंथ अन्यतम है। अन्त में लेखक ने संसार के महान व्यक्तित्वों की स्वामी दयानन्द विषयक सम्मतियां संकलित कर पुस्तक की उपादेयता बढ़ा दी है।

**चित्तौड़**—(काव्य)—लेखक, 'परदेशी' साहित्यरत्न ; प्रकाशक, ग्वालियर प्रकाशन मंडल, गुना (ग्वालियर स्टेट) ; मूल्य, १) ; पृष्ठ संख्या ९२।

चित्तौड़ वीरों की भूमि है। इसने बहुत से कवियों को प्रेरणा दी है परन्तु अभी तक इस पर किसी सुन्दर काव्य की रचना नहीं हो सकी। श्री श्याम नारायण पांडे ने एक काव्य 'हल्दी घाटी' लिखा है परन्तु उत्कृष्ट काव्य की दृष्टि से उसमें कोई विशेषता नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक चित्तौड़ पर लिखी गई है। इसमें कवि ने चित्तौड़ के वैभव के गुण गाए हैं। लेखक का विचार है :

'इस पर मोहित है जग सारा।'
'यह तीन लोक से है न्यारा।'
'यह इंद्र लोक है भारत का।'
'वीरों का सच्चा तीर्थ यही
इससे शुचि कोई जगह नहीं।'
'हां, यही भूमि अपने दिल से
चुन ली सोने को वीरों ने।
'इसमें दुनियां की शान भरी।'
'इसमें मेघों का गर्जन है।'
'इस सूने उपवन में अब भी
गाती बुलबुल, वन की रानी।'

पता नहीं अमरीका, जापान, जर्मनी, चीन, इटली, तुर्की, अरब आदि देशों को लेखक 'जग' के अन्दर मानता है या नहीं, पता नहीं तीन लोकों की कौन-कौन सी विशेषताएं लेखक इङ्गित कर रहा है। पता नहीं भारत के इन्द्रलोक से कवि का क्या तात्पर्य है। इन्द्रलोक तो अप्सराओं का लोक है जहां वीरता के दर्शन तो दुर्लभ हैं, हां शृंगार एवं काम चेष्टाएं ही सतत होती रहती हैं। क्या लेखक चित्तौड़ को भी ऐसा ही मानता है? पता नहीं लेखक क्यों समझता है कि मेवाड़ से बढ़कर वीर संसार में कहीं भी नहीं हुए। नैपोलियन, नैल्सन, हातिम और हिटलर आदि को लेखक क्यों भूल जाता है! पता नहीं दुनियाँ की शान से लेखक का क्या तात्पर्य है? और पता नहीं मेघों के गर्जन से लेखक का क्या तात्पर्य है? वैसे तो सभी जानते हैं चित्तौड़ वृष्टि के सौतेले पुत्र राजपूताने में है। पता नहीं हिन्दुस्तान में रहने वाला वीर रस का कवि बुलबुल को वन की रानी कैसे मानता है? और पता नहीं चित्तौड़ में बुलबुल होती भी हैं या नहीं?

इसी प्रकार का हवाई गुणगान सारे काव्य में भरा है। वैसे कहीं कहीं पर कवित्व के भी दर्शन होते हैं :

'तेरी गाथा मैं क्या गाऊं
तू खुद चित्तौड़ कहानी है।'
'मां के मस्तक जो मुकुट धरे,
वह मिला न मुझको लाखों में।
पर कैसे कह दूं ज्वाल नहीं
चित्तौड़ चिता की राखों में।'

काव्य पर 'हल्दी घाटी' की वर्णन शैली का प्रभाव है। लेखक के पास अपना कोई भाव या व्यंजना सम्बन्धी मौलिक प्रयोग या दृष्टि कोण नहीं है। लेखक ने पुस्तक के प्रारम्भ में जो तीन सम्मतियां दी हैं उसमें मैथिली शरण गुप्त को केवल राष्ट्र कवि और श्यामनारायण पांडे को महाकवि के विशेषणों से आभूषित किया है। तीसरी सोहनलाल द्विवेदी की सम्मति है। लेखक ने शायद डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का दो वर्ष पहले 'माधुरी' में प्रकाशित हुआ 'सोहनलाल द्विवेदी की काव्य प्रतिभा' विषयक लेखक पढ़कर ही उन्हें कविवर मात्र लिखा है। मैथिलीशरण गुप्त के अतिरिक्त अन्य दोनों सम्मतियां महत्वहीन हैं।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**लोकमान्य-लोकमत** का संयुक्त कला-उद्योग विशेषांक, सम्पादक गिरीश चन्द्र त्रिपाठी बी० ए०

लोकमान्य एवं लोकमत—दो पत्रों ने यह संयुक्त रूप से विशेषांक प्रकाशित किया है। इसमें कला एवं उद्योग के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। लेखों में जर्नलिस्टक टच है। कुछ लेख 'रोना भी एक कला है', 'भीख मांगना एक कला है', 'जी हां, चोरी भी···' आदि विशेष मनोरंजक हैं। साथ ही कुछ कविताएं भी इस अङ्क में दी गई हैं। कला के इतने विविध पहलुओं पर अभी तक हिन्दी के किसी पत्र में प्रकाश नहीं डाला गया। विशेषांक निस्संदेह सुन्दर एवं संग्रहणीय है।

**रामराज्य ( पत्रकार अंक )**—सम्पादक—पं० बनारसी दास चतुर्वेदी।

संस्कृति प्रधान साप्ताहिक 'रामराज्य' ने पत्रकार अंक के रूप में अपना विशेषांक प्रकाशित किया है। इसके लेखकों में बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, सम्पूर्णानन्द तथा सुनीति कुमार चाटुर्ज्या उल्लेखनीय हैं। अच्छा होता यदि पत्रकार कला पर इस विशेषांक में वैज्ञानिक रूप से प्रकाश डाला जाता। फिर भी हिन्दी पत्रकार कला पर जो स्वयं अभी अल्प विकसित अवस्था में है थोड़ा बहुत महत्वपूर्ण प्रकाश अवश्य डाला गया है। इस अंक में अनेक कहानियां एवं कविताएं भी दी गई हैं। यों तो पत्र पत्रिकायें अनेक विषयों पर बड़े बड़े विशेषांक निकाला करते हैं किन्तु पत्रकारों पर स्वयं कोई विशेषांक निकालना यह 'रामराज्य' की ही सूझ थी और इस दृष्टि से वह हमारे बधाई का पात्र है।

**विक्रम**—(सिंहस्थ अङ्क) उज्जैन से प्रकाशित होने वाले विक्रम का सिंहस्थ-अङ्क हमारे सामने है। इसकी लेख सूची में ऐतिहासिक उज्जयिनी ( लेखक-सान्दीपनिर्व्यास ), महान विक्रमादित्य ( लेखक—सूर्यनारायण व्यास ), राजर्षि भर्तृहरि ( लेखक,—राधेश्याम द्विवेदी ), चंबल के कछार में ( लेखक—नारायण प्रसाद भूषण ) तथा आर्यावर्त में सम्राट विक्रम ( लेखक—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति ) प्रमुख हैं। सबसे पहला उज्जयिनी विषयक लेख वास्तव में गहरे वैज्ञानिक ऐतिहासिक अनुसंधान का परिणाम है। कहानी कविताएं साधारण हैं। विशेषांक संग्रह के योग्य है।

**बाल प्रश्नोत्तरी**—(उपदेश)-लेखक-रामावतार विद्या भास्कर; प्रकाशक, एच० एल० विजाही 'विचित्रानंद' धौलपुर स्टेट; पुस्तक मिलने का पता बुद्धि सेवा आश्रम, पो० रतनगढ़, ज़िला बिजनौर; मूल्य ॥), पृष्ठ संख्या ६७।

इस पुस्तक का लक्ष्य बालकों एवं नवयुवकों को उपदेश देना है। छोटे छोटे किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण उपदेश शृंखला बद्ध प्रश्नोत्तरों के रूप में दिए गए हैं जिससे नवयुवक गण सत पथ पर चलते हुए आत्मोन्नति करें। किन्तु बावजूद इस दावे के कि पुस्तक की भाषा बालोचित है वह बालकों के लिये बहुत कठिन और क्लिष्ट है। आशा है अगले संस्करण में भाषा को सरल कर दिया जायगा। पुस्तक उपयोगी है।

**आजकल**—(मासिक पत्र) सम्पादक, कुँवर किशोर सेठ; प्रकाशक यूनाइटेड पब्लिकेशन्स, पोस्ट बक्स १६६, दिल्ली; वार्षिक मूल्य ५) और एक प्रति का ।=)।

मई मास से यह पत्र प्रकाशित होने लगा है। काग़ज़, छपाई, चित्र आदि को देखकर सहसा स्तंभित रह जाना पड़ता है कि युद्ध काल में यह सामग्री प्रकाशक ने कहाँ से जुटाई है। परन्तु ध्यान से पत्रिका पढ़ने पर पता चलता है कि युद्ध-प्रचारक होने के नाते यह सब प्रकाशक को सुलभ है। पत्र में विविध विषयक युद्ध प्रचार के रस से भरे लेख, कहानियाँ तथा कविताएं प्रकाशित होती हैं।

**बालहित**—( मासिक पत्र ) सम्पादक—कालूलाल श्री माली, जनार्दनराय; प्रकाशक विद्या भवन, उदयपुर; वार्षिक मूल्य २) और एक अङ्क का ≈)।

माता पिता और शिक्षकों के लिए बालकों के हित के दृष्टिकोण से यह मासिक पत्र पिछले दस वर्षों से निकल रहा है। इसका जून महीने में निकला हुआ फरवरी १९४५ का अङ्क हमारे सामने है। इसमें बालकों की शिक्षा के लिए 'बालकों के आभार निर्माण में खेल का स्थान (लेखक, एस० पी० कगल), 'बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा का व्यावहारिक पक्ष' ( लेखक दयालचन्द्र ) और 'डॉल्टन पद्धति' ( लेखक, ज० प्र० पोटा ) विशेष उपयोगी हैं। 'घर में बालक' स्तम्भ में घर में जीते हुए बालक का घरेलू दृष्टि से अनुभव, प्रयोग आदि लेकर वर्णन रहता है। अन्त में अन्य विविध पत्रों से उपयोगी सामग्री संकलित कर दी जाती है।

हम चाहते हैं कि इस पत्र का अधिक से अधिक प्रचार हो।

कमल कुलश्रेष्ठ एम०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय-विचार

## नेताओं की रिहाई

लगभग तीन बरस के बाद काँग्रेस वर्किङ्ग कमेटी के मेम्बर गत १५ जून को देश की विविध जेलों से रिहा कर दिये गये। सारे देश में इस ख़बर को सुनकर एक उम्मीद और ख़ुशी की लहर दौड़ गई। सोई हुई जनता यकायक जागरूक हो गई और ठण्ढी नसों में फिर से ताज़ा और गरम ख़ून चक्कर मारने लगा।

अपने नेताओं की ग़ैर हाज़िरी में मुसीबतों का एक पहाड़ ही देश की जनता पर टूट पड़ा था। कितने कष्ट, कितनी विपत्तियाँ, कितनी आफ़तें और कितने जुल्म लोगों ने सहे हैं उनका कोई अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। सन् ५७ की क्रान्ति के बाद शायद इतने ज़बर्दस्त पैमाने पर और इतने संगठित रूप में कभी भारतीय जनता पर इतने जुल्म नहीं हुये। जुल्म करने वालों में बक़ौल पंडित जवाहरलाल जी के "सुबार्डिनेट जुडीशियरी के थोड़े से लोगों को छोड़कर बाक़ी तमाम सीग़ों के सरकारी नौकर शामिल थे।...रिश्वतों से, जुआ खिलाकर और तमाम कमीनेपन से नापाक पैसा कमाकर सरकारी नौकरों का एक नया धनी वर्ग बन गया है।" सरकारी नौकरों के अलावा हिन्दुस्तानी व्यापारियों ने चोर बाज़ार में जितना मुनाफ़ा कमाया है वह सब भी अत्यन्त लज्जाजनक है। इन व्यापारियों के बारे में पण्डित नेहरू ने तड़पकर कहा है, "मैं एक कीड़े तक को मारना पसन्द नहीं करता लेकिन यदि इन बड़े बड़े मुनाफ़ाख़ोरों को खुली जगहों में फाँसी पर लटका दिया जाय तो मुझे इन्तहाई ख़ुशी और तसल्ली होगी।" अगस्त आन्दोलन में जिन लोगों ने कष्ट सहे हैं और शहीद हुये हैं उनके प्रति पण्डित नेहरू ने बेहद सम्मान प्रदर्शित किया है और वर्किङ्ग कमेटी के व्यक्तिगत सदस्य की हैसियत से आन्दोलन की तमाम ज़िम्मेवारी अपने कन्धों पर ली है।

आज देश अपने इन महान त्यागवृती नेताओं को अपने बीच में पाकर फिर एक बार उत्साह और साहस से भर उठा है।

## नई समस्यायें

पिछले तीन वर्षों से अन्न और वस्त्रों की ज़बर्दस्त कमी देश महसूस कर रहा है। इसके निवारण के सम्बन्ध में हम अपने नेताओं की योजना की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे। जो अनेक समस्यायें इन नेताओं को सुलझानी हैं उनमें मुख्य हैं—(१) देश के लिये औद्योगिक योजना, (२) हिन्दू मुसलिम कार्यकारी समझौता, (३) सामाजिक सदाचरण क़ायम करना और (४) काँग्रेस के सङ्गठन को नया स्वरूप देना।

जहाँ तक औद्योगिक योजना का सम्बन्ध है जब तक किसानों की आर्थिक अवस्था को ध्यान में रखकर कोई योजना न बनाई जायगी तब तक उसकी सफलता की कोई उम्मीद हमें नहीं दिखाई देती और किसानों की आर्थिक अवस्था तभी सुधर सकती है जब उनमें सम्मिलित खेती की प्रथा डाली जाय और उनके फ़ुरसत के समय के लिये उनमें ग्रामोद्योग का प्रचार किया जाय। जब तक यह नहीं होता तब तक बड़े पैमाने पर कारखाने क़ायम करके अधिक मिक़दार में चीज़ें बनाने से कोई फ़ायदा न होगा क्योंकि उनके लिये बाज़ार और ख़रीदार न मिलेंगे।

जहाँ तक हिन्दू मुसलिम समस्या का सम्बन्ध है देश एक ऐसी जगह पहुँच गया है कि जहाँ से आगे बढ़ने के तमाम दरवाज़ों पर ताला पड़ा हुआ है। यदि केवल राजनैतिक समझौतों पर निर्भर करके इस समस्या को हल करने की कोशिश की जायगी तो वह हल क्षणिक और अस्थायी होगा। दोनों तरफ से प्रतिक्रिया वादी शक्तियाँ खड़ी होकर इस कामकाजी समझौते में अड़ङ्गा डालती रहेंगी। हमें इसमें कोई एतराज़ नहीं है कि हिन्दू मुसलिम जनता के समान कष्टों को दूर करने के लिये मुसलिम लीग के साथ किसी न किसी समझौते पर पहुँचा जाय परन्तु उस समझौते को मज़बूत करने के लिये यह ज़रूरी है कि काँग्रेस मुसलिम जनता के साथ अपना सीधा सामाजिक और सांस्कृतिक सम्पर्क क़ायम करे। जहाँ तक जनता का सम्बन्ध है वह इस राजनैतिक ऐंठन से ऊब चुकी है और हर सीधे सम्पर्क का वह स्वागत करेगी।

इन तीन बरसों की मुसीबतों ने देश और राष्ट्र की हैसियत से इस बात को हमारे सामने बहुत साफ़ कर दिया है कि हममें पारस्परिक सामाजिक सदाचार की बेहद कमी होगई है। जब कि लाखों आदमी भूख से तड़प तड़प कर मर रहे थे तब हमारा व्यापारी वर्ग चोर बाज़ारी और मुनाफ़ा ख़ोरी में व्यस्त था। एक दूसरे की मुसीबत के लिये हममें लेश मात्र भी सहानुभूति बाक़ी नहीं बची है। रिश्वतों, चोर बाज़ारों और मुनाफ़ा खोरी ने हमारी आत्माओं को इतना कलुषित, पतित और हृदय हीन बना दिया है कि अपने अक्स को देखकर हम स्वयं सहम जाते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयभीत हो जाते हैं। इस भयानक परिस्थिति को सुधारने के लिये एक व्यापक नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक आन्दोलन की ज़रूरत है। जब तक इन घृणित सरकारी और पुलिस के नौकरों और नराधम भारतीय व्यापारियों के साथ बेहद सख़्ती और कठोरता का बर्ताव नहीं किया जायगा तब तक देश के मन प्राण से यह ज़हर नहीं दूर होगा और तब तक देश के बड़े बड़े नेता भी वायसराय की कौंसिल में जाकर ज़र्रा भर भी फ़ायदा नहीं पहुँचा सकेंगे।

अब रहा काँग्रेस संगठन का प्रश्न। काँग्रेस देश की एक सैनिक जमात है लेकिन हवाई जनवादी तरीक़ों से उसे इतना भारी भरकम कर दिया गया है कि वह क्रान्तिकारी उथल पुथल के ज़माने के लिये बिल्कुल बेकार होगई है। अगस्त आन्दोलन में हमने एक बात देख ली कि काँग्रेस जहां तक चुनाव जीतने का सम्बन्ध है वहाँ तक तो एक स्पृहणीय संस्था है किन्तु जहाँ तक देश की हुकूमत जीतने का प्रश्न है वह किसी काम की नहीं साबित हुई। उसका लम्बा चौड़ा और ऊँचा ढाँचा सच्ची क्रान्ति के एक धक्के में धराशायी हो गया। शान्ति के काल में भी उसका वर्ष में आधा समय चुनाव लड़ने और मातहत कमेटियों के झगड़े सुलझाने में बीतता था। यह परिस्थिति नितान्त असन्तोषकर है। पिछले तजरुबों ने हमारे सामने यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर दी है कि काँग्रेस के मौजूदा संगठन विधान से देश की आज़ादी नहीं जीती जा सकती। काँग्रेस की प्रगति के पहियों से स्वार्थियों, सत्ताधारियों और निकम्मे आदमियों का इतना कीचड़ चिपट जाता है कि गाड़ी मुश्किल से आगे बढ़ पाती है। इसलिये यदि कांग्रेस को अधिक शक्तिशाली, अधिक व्यापक और आज़ादी छीनने का अचूक ज़रिया बनाना है तो अधिक से अधिक हलका कर के उसे एक सैनिक रूप हमें देना होगा और अनुशासन का कड़ाई के साथ पालन करना होगा।

## वावेल योजना

छै सप्ताह से अधिक भारत से ग़ैर हाज़िर रहकर लार्ड वावेल अपनी जो योजना लेकर हिन्दुस्तान वापस आये उसी के मातहत कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों की रिहाई हुई। जहाँ तक योजना का प्रश्न है वह बुनियादी सवालों को न छूकर केवल एक अस्थायी और क्षणिक ज़िम्मेवारी लेने के लिये ही देश की संस्थाओं से आग्रह करती है। पण्डित जवाहरलाल जी के शब्दों में वह 'भविष्य के फ़ैसलों के लिये एक रास्ता खोलती है।' क्रिप्स योजना में कम से कम एक बात तो थी कि वह देश के भावी संगठन विधान का एक ढांचा पेश करती थी, किन्तु वावेल योजना का सम्बन्ध केवल अस्थायी वर्त्तमान से है। क्रिप्स योजना का आधार राजनैतिक था, वावेल योजना का आधार साम्प्रदायिक है। यह सही है कि नई एक्ज़ीक्यूटिव कौन्सिल में वायसराय और कमाण्डर-इन-चीफ़ को छोड़कर सभी सदस्य हिन्दुस्तानी होंगे किन्तु यदि सभी सदस्य शासन के सम्बन्ध में यकसाँ प्रगतिशील दृष्टिकोण न रक्खेंगे तो इस हिन्दुस्तानियत से कोई ख़ास फ़ायदा न निकलेगा। फिर जहाँ तक डिफ़ेन्स का सवाल है कमाण्डर इन-चीफ़ न केवल लड़ाई के मोर्चों की नीति के ही लिये ज़िम्मेवार होंगे बल्कि डिफ़ेन्स का हर सीग़ा उनके मातहत होगा। क्रिप्स योजना में एक ख़ूबी यह भी थी कि मतभेद होने पर उसके एवज़ दूसरी बातें एक मत होकर सुझाई जा सकती थीं किन्तु वावेल योजना को या तो आप एकदम मानिये या एक दम इनकार कर दीजिये। जिस 'वीटो' के सवाल पर ही क्रिप्स योजना भङ्ग हुई थी वह भी इसमें ज्यों का त्यों मौजूद है केवल यह आश्वासन दिलाया जा रहा है कि "उसका इस्तेमाल बेजा तौर पर न होगा।" ब्रिटेन के व्यापारी हितों की रक्षा के लिये वायसराय के अलावा एक हाइकमिश्नर भी मुक़र्रर किया जायगा। स्कीम का सब में मतभेद पूर्ण अङ्ग सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बराबरी (Parity) क़ायम करना है। रियासतों की जनता के हितों का बिलकुल कोई ज़िक्र ही नहीं किया गया है। प्रश्न उठता है कि क्या इस तरह की थोथी चीज़ को स्वीकार करने के लिये ही अगस्त आन्दोलन की ज़बर्दस्त क़ुर्बानी की गई थी? इसका जवाब देश के नेता महात्मा गान्धी, मौलाना आज़ाद और पण्डित जवाहरलाल नेहरू साफ़ साफ़ दे चुके हैं। हमें यक़ीन है कि अगर इस समय की परिस्थिति में दो बातें न होतीं तो कांग्रेस इस योजना की तरफ़ आँख उठाकर भी न देखती और न उसे देखना चाहिये था। पहली बात तो कि कहा जाता है कि यह योजना सिर्फ़ थोड़े से समय के लिये है और इसमें हिस्सा लेने से हिन्दुस्तान की आज़ादी का मार्ग आगे के लिये ज़्यादा साफ़ हो जाने की सम्भावना है। दूसरी और इससे ज़्यादा गहरी बात जिसने काँग्रेस के नेताओं को इस वक़्त इस योजना को मंज़ूर कर लेने पर मजबूर किया, वह यह है कि अगस्त सन् ४२ से लेकर इस समय तक जो भयङ्कर अत्याचार अगस्त के आन्दोलन को दमन करने के नाम पर ज़िले ज़िले और गाँव गाँव में किये गये हैं, अन्न और कपड़े का देशव्यापी अकाल और युद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के चन्दों के नाम पर जगह जगह जुल्म और ज़बर्दस्ती, इन सबको मिलाकर देश की जनता में इस समय त्राहि त्राहि मची हुई है। कोई भी सहृदय देशभक्त जनता के इस दुःख को देखकर चुप नहीं बैठ सकता। कांग्रेस के नेता और काम करनेवाले अगर वावेल साहब की थोथी और एक दरजे तक अपमानजनक योजना में हिस्सा लेने की ज़िल्लत सहकर जनता के इन दुःखों को किसी हद तक भी कम कर सकेंगे तो वे अपने को धन्य समझेंगे।

## शिमला सम्मेलन

बहुत बहस मुबाहिसे के बाद कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने शिमला सम्मेलन में शामिल होने का फैसला किया और कांग्रेस के सदर और महात्मा गान्धी को अपना प्रतिनिधि नियुक्त कर दिया। कांग्रेस के भूतपूर्व प्रीमियरों को भी सम्मेलन में शामिल होने की हिदायत दे दी गई।

२५ जून से शिमले में सम्मेलन का इजलास शुरू हुआ और लार्ड वावेल ने बड़े पंच की हैसियत से प्रतिनिधियों को एकता करने और देश को फ़ायदा पहुँचाने का उपदेश दिया, मानो इन दोनों कैफ़ियतों के लिये देश ही ज़िम्मेवार है! गान्धी जी ने केवल व्यक्तिगत हैसियत होने के कारण सम्मेलन में शामिल न होने का ही फ़ैसला किया और यह विश्वास दिलाया कि वे कांग्रेस प्रतिनिधियों को हर वक्त अपनी सलाह देते रहेंगे। इस तरह जिस कांग्रेस को वायसराय ने सवर्ण हिन्दुओं की प्रतिनिधि के रूप में आमंत्रित किया था उसके नेतृत्व का भार पड़ा कांग्रेस के सदर मौलाना अबुल कलाम आज़ाद पर।

सम्मेलन की पहले दिनों की कार्रवाई यद्यपि गुप्त रखी गई पर फिर भी जो चीज़ें प्रकाशित हुई हैं उनसे पता चलता है कि मौलाना आज़ाद ने नीचे लिखी बातों की ओर सम्मेलन का ध्यान ख़ास तौर पर खींचा था—( १ ) कांग्रेस का आख़री लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता है लेकिन वह अस्थायी व्यवस्था की तजवीज़ पर ग़ौर करने के लिये तय्यार है, (२) वायसराय इस बात का इतमीनान दिलाये कि अगर कोई बात सबकी राय से तै होगी तो 'वीटो' के हक़ का इस्तेमाल नहीं किया जायगा, ( ३ ) वायसराय बतायें कि केंद्रीय विभाग में क़बीलों के इलाक़े भी शामिल हैं या नहीं, ( ४ ) कांग्रेस इस बात की ज़रा भी परवाह नहीं करती कि किस जाति या किस फ़िरक़े को कितनी सीटें मिलती हैं। उसे सिर्फ़ एक ही बात का लिहाज़ है कि अगर वे प्रतिनिधि जनता के प्रतिनिधि हैं या नहीं, और (५) शिमला सम्मेलन पर कांग्रेस की तरफ़ से आख़री फैसला आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी करेगी, चुनांचे उस संस्था पर से रोक हटा ली जाय और तमाम राजबन्दियों को फ़ौरन रिहा कर दिया जाय।

दूसरे दिन एक घण्टे इजलास के बाद सम्मेलन इसलिये मुल्तबी होगया ताकि पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त और मिस्टर जिन्नाह आपसी सुलह का कोई तरीक़ा निकाल सकें। पन्तजी ने कांग्रेस के राष्ट्रीय संगठन को देखते हुये यह मांग पेश की कि मुसलिम प्रतिनिधियों में से दो को कांग्रेस को चुनने दिया जाय। मि० जिन्नाह के इनकार करने पर उन्होंने कांग्रेस द्वारा ख़ाली एक मुसलिम प्रतिनिधि चुने जाने की मांग रखी। मि० जिन्नाह ने इसे भी अस्वीकार कर दिया और इस तरह आपसी बातचीत भङ्ग हो गई।

जिन्नाह साहब ने अपने वक्तव्य में कांग्रेस के इस अधिकार को मानने से क़तई इनकार किया है और इस बात की शिकायत की है कि लार्ड वावेल छोटे छोटे अल्पमतों को प्रतिनिधित्व देकर मुसलमानों की बराबरी—( parity ) को $\frac{1}{3}$ के अल्पमत में कर देना चाहते हैं। इसके लिये वे इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि कार्यकारिणी के सदस्य १२ से अधिक न हों। उनका ख़याल है कि पूर्ण स्वाधीनता का उद्देश्य होने के कारण सिख, हरिजन और अन्य अल्पमत कांग्रेस का ही साथ देंगे। एक ज़माना था जब मिस्टर जिन्नाह यह दावा पेश करते थे कि मुसलिम लीग ही भारत की समस्त अल्पमत जातियों का प्रतिनिधित्व करती है। यदि पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य होने के कारण ये अल्पमत कांग्रेस का साथ देंगे तो मुसलिम लीग का भी तो लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता है। मिस्टर जिन्नाह के इस बयान को पढ़कर हमें यह महसूस हुआ है कि वे न केवल बराबरी चाहते हैं बल्कि बहुमत चाहते हैं।

आपसी समझौते के भङ्ग होने के बाद सम्मेलन ने अपने इजलास में यह फ़ैसला किया कि सम्मेलन १४ जुलाई तक के लिये मुल्तबी कर दिया जाय और इस बीच ६ जुलाई तक हर एक दल अपनी अपनी एक नामावली पेश करे। कांग्रेस और मुसलिम लीग के प्रतिनिधियों को अपने पाँच नामों के अलावा और भी ७ नाम पेश करने की अनुमति दी गई है। इसी तरह यूनियनिस्ट पार्टी, अछूत और सिक्खों को भी एक से ज़्यादह नाम पेश करने के लिये कहा गया है। यदि १४ जुलाई की बैठक में सम्मेलन ने एक मत से प्रतिनिधि चुन दिये तो ठीक वरना वायसराय खुद उन्हीं नामावलियों में से कार्यकारिणी के सदस्य



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नामज़द करेंगे। यह देखने की बात है कि यदि उन्होंने ५ मुसलमान सदस्यों में से कोई मुसलिम लीग के बाहर से लिया तो फिर मुसलिम लीग क्या रवय्या अख़्तियार करेगी? जहां तक कांग्रेस के नेताओं का सम्बन्ध है वे हर तरह इस सम्मेलन को सफल करना चाहते हैं ताकि लोगों की ज़बर्दस्त मुसीबतों में कुछ तो कमी की जा सके। पण्डित जवाहरलाल, मौलाना आज़ाद और महात्मा जी के वक्तव्य आदि से यही ज़ाहिर होता है।

३० जून को एसोशियेटेड प्रेस को अपना वक्तव्य देते हुये गान्धी जी ने कहा है कि—"अस्थायी सरकार में चोटी के आदमी जाने चाहियें और इस बात की परवाह नहीं करनी चाहिये कि वे किस जाति, रंग या सम्प्रदाय के हैं।" कुछ लोगों की राय है कि मौलाना आज़ाद, सरदार वल्लभ भाई, राजेन्द्र बाबू और पण्डित जवाहरलाल जैसे नेताओं को कैबिनेट में शरीक होना चाहिये क्योंकि इस वक़्त की देश की समस्यायें इन जैसे नेता ही सुलझा सकते हैं।

## फ़्रिस्को सम्मेलन का घोषणा पत्र

९ सप्ताह की बहस मुबाहसे के बाद आख़िर फ़्रिस्को सम्मेलन की कार्रवाही समाप्त हो गई। सम्मेलन ने डम्बार्टन ओक्स की तजवीज़ों के आधार पर एक घोषणा-पत्र भी प्रकाशित कर दिया है। यह सही है कि इस घोषणा-पत्र में मानव अधिकारों की विवेचना की गई है, छोटे बड़े सब देशों के बीच समता का प्रचार किया गया है, सामाजिक उन्नति की बात कही गई है और ज़िन्दगी का स्तर ऊँचा उठाने का दावा पेश किया गया है फिर भी यह घोषणा पत्र गहरी बुनियादों तक नहीं जाता। आज मानव मानव के बीच, देश देश के बीच, पूर्व पश्चिम के बीच, और वर्ग वर्ग के बीच एक निरन्तर संघर्ष चल रहा है। जब तक बुनियाद में जाकर इस संघर्ष की वजह को न दूर किया जायगा, जब तक वह परिस्थिति न सुधारी जायगी कि जिसके कारण करोड़ों आदमी भूखे पेट रहने को मजबूर होते हैं, जब तक एक क़ौम या एक देश दूसरी क़ौमों या देशों को अपनी ग़ुलामी में जकड़कर रखे हुये है—तब तक कोई घोषणा-पत्र सच्ची सुरक्षा का सृजन नहीं कर सकता और और तब तक दुनिया ऐसी ज्वालामुखी के ऊपर बैठी रहेगी जो जब चाहे भड़क सकती है। आख़िर ये युद्ध यकायक नहीं होते। ये विकृत सामाजिक अवस्था के परिणाम होते हैं। इस युद्ध के पहले दुनिया भर में बेकारी फैली हुई थी। एक ओर लोग भूखों मर रहे थे और दूसरी ओर चीज़ें नष्ट की जा रही थीं। सभी तरफ़ व्यापार का बुरा हाल था। ये बहुत सी वजहें थीं जिन्होंने मिलकर ऐसी सामाजिक कैफ़ियत पैदा की कि जिसका नतीजा यह वर्त्तमान युद्ध है और इन प्रश्नों पर न तो डम्बार्टन ओक्स में ही कोई विचार किया गया और न सैन फ़्रान्सिसको में। श्रीमती विजया लक्ष्मी पण्डित ने इस सम्बन्ध में अपने एक वक्तव्य में कहा है—

"मानवता के फ़ायदे के चन्द अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त हलकेपन से नज़र अन्दाज़ कर दिये गये और जैसा कि घोषणा पत्र दावा करता है बजाय भविष्य की सुरक्षा के अधिक महत्व निकट वर्तमान को ही दिया गया है। मिसाल के तौर पर मैं चाहती थी कि ऐसे सिद्धान्तों के साथ कोई समझौता न किया जाता जैसे तमाम लोगों की स्वाधीनता का सवाल। क्योंकि अब तक जो लड़ाई लड़ी गई है वह इसी सिद्धान्त की रक्षा के लिये लड़ी गई है...।"

सुरक्षा समिति ( सिक्यूरिटी कौंसिल ) के ११ सदस्यों में ५ स्थायी सदस्य होंगे जिनमें सोवियत्, ब्रिटेन, रूस, चीन, और फ़्रान्स हैं; बाक़ी छै सदस्य असेम्बली चुनेगी। जब तक ये स्थायी सदस्य अपनी सम्मति न दे देंगे तब तक किसी शक्ति के ख़िलाफ़ सैनिक कार्रवाई न की जा सकेगी। फ़र्ज़ कीजिये यदि कोई इस कौंसिल से बाहर का राष्ट्र किसी देश के प्रति कोई इलज़ाम लगाता है और सैनिक कार्रवाई की मांग पेश करता है और यदि पांच स्थायी सदस्यों में से एक भी उस मांग का विरोध करता है तो उस सदस्य का प्रस्ताव वहीं ख़त्म हो जायगा। यह वीटो का सिद्धान्त ख़ास तौर पर सोवियत् यूनियन के आग्रह से रखा गया है। किन्तु इसका अर्थ यह भी होगा कि इन पाँच राष्ट्रों में से हर एक अपनी मन मानी करता रहेगा और वीटो शक्ति के कारण उस पर कोई कार्रवाई न की जा सकेगी।

किन्तु इन सब कमियों के बावजूद भी सेन्फ्रान्सिसको एक दृष्टि से भविष्य के लिये काफ़ी आशा रखता है और वह इसलिये कि सिक्यूरिटी कौंसिल में सोवियत् रूस और अमरीका की प्रधान और महत्वपूर्ण हैसियत है और यदि इन दोनों देशों में किसी तरह का कार्यकारी समझौता हो जायगा तो भविष्य में चीज़ों के बहुत कुछ आसान होने की उम्मीद है।

## भारत और दक्षिण अफ़्रीका

सर मुहम्मद ज़फ़रुल्ला ने अपने एक वक्तव्य में कहा है—"दक्षिण अफ़्रीका में रहने वाले भारतीयों की हालत ऐसी है कि उनकी सर परस्त कोई सरकार नहीं है। वे वोट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नहीं दे सकते। उन्हें उन्हीं मुहल्लों में रहना पड़ता है जो मुक़र्रर कर दिये गये हैं। वे सीमित जायदाद ही रख सकते हैं। उनके बच्चे दक्षिण अफ़रीका के साधारण स्कूलों में नहीं भरती हो सकते और न वे स्वयं दक्षिण अफ़रीका के नागरिक बन सकते हैं हाला कि अधिकतर परिवार वहां कई पीढ़ियों से बसे हुये हैं।"

वहां की परिस्थिति की जांच के लिये यूनियन सरकार ने जो ब्रूम कमीशन मुक़र्रर किया था उसने अपनी रिपोर्ट में एक जगह लिखा है—"हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञों के मौजूदा रवय्ये पर कमीशन को सख्त एतराज़ है। इस रवय्ये ने दक्षिण अफ़्रीका के भारतीयों के स्थानीय नेताओं को उकसाया है कि वे ऐसी मांगें रखें कि जिनके बारे में जानते हैं कि ये बिलकुल अक़्ल से ख़ारिज ज़बर्दस्ती की मांगें हैं, मसलन—बालिग़ मताधिकार, प्रान्तीय निषेधाज्ञाओं का हटाना और रङ्ग भेद की बन्दिशों को दूर करना।"

ये छोटी छोटी साधारण मांगें भी दक्षिण अफ़रीका के गोरों को असम्भव मांगें दिखाई दे रही हैं। दूसरी ओर ख़ैर फ्रान्सिसको में बैठे बैठे मार्शल स्मट्स फ्रिस्को सम्मेलन के घोषणा पत्र को "मानवता का घोषणा पत्र" कह रहे हैं कि जो इतिहास में अपूर्व है। वे कहते हैं—"यह घोषणा तब समस्त मानव जाति के लिये है।" हम मार्शल स्मट्स से यह पूछना चाहते हैं कि अया दक्षिण अफ़रीका के हिन्दुस्तानी मानव जाति के अन्तर्गत आते हैं या नहीं? यदि नहीं आते तो लम्बी चौड़ी बातें करके स्मट्स महोदय किसे मूर्ख बनाने की कोशिश कर रहे हैं?

## सिंकियांग के चीनी कम्यूनिस्ट

मशहूर अख़बारी लेखक ड्रयू पीयर्सन ने पिछले महीने चीनी कम्यूनिस्टों की बग़ावत का ज़िक्र करते हुये यह लिखा था कि सिंकियाङ्ग की बग़ावत पोलैण्ड के सवाल से भी ज़्यादा पेचीदा चीज़ है और चारों महान शक्तियां वहां की परिस्थिति को दिलचस्पी और उत्सुकता के साथ देख रही हैं। ड्रयू पियर्सन के अनुसार इस बग़ावत में "सोवियत रूस एक पक्ष का साथ देगा और हम लोग दूसरी तरफ़ होंगे।" सिंकियाङ्ग की भौगोलिक हालत ऐसी है कि सोवियत् को मजबूरन वहां दिलचस्पी लेनी पड़ेगी। उसके दक्षिण में तिब्बत है, दक्षिण पश्चिम में अफ़ग़ानिस्तान है और पश्चिम में रूस है। मोरचे बन्दी के लिहाज़ से उसका एक महत्व-पूर्ण स्थान है। ड्रयू पीयर्सन के अनुसार इङ्गलैण्ड और अमरीका चुङ्गकिङ्ग की सरकार को सिंकियाङ्ग के झगड़े में प्रोत्साहन दे रहे हैं और उससे मदद का वादा कर रहे हैं।

चीन की आन्तरिक नीति को सुलझाने और चलाने की ज़िम्मेवारी पूरी तरह चीनियों की है और उसमें बाहर की किसी भी शक्ति को दखल देने की कोशिश करके उसे और अधिक पेचीदा बनाने की ग़लती नहीं करनी चाहिये। अभी हाल में चीन के प्रधान मन्त्री डाक्टर सूँग मास्को गये हैं और निश्चय ही वे सिंकियाङ्ग के प्रश्न पर भी बातें करेंगे। हमारी दिली अभिलाषा है कि सोवियत् और चीन अच्छे पड़ोसियों की तरह आपस में प्रेम और सहानुभूति के साथ रहें।

## जापानी शहरों की बमबारी

अमरीका के ६० ईसाई पादरियों ने हिम्मत करके एक सम्मिलित वक्तव्य में जापानी शहरों की बमबारी की निन्दा की है। वे अपने वक्तव्य में कहते हैं—"जापान के घने बसे शहरों पर बम बरसाना और अरक्षित स्त्रियों और बच्चों को जलाना सैनिक दृष्टि से इतना कामयाब नहीं हो सकता कि मानवता और दुनिया की आगामी शान्ति की कोई परवाह ही न की जाय।" जवाब में यह कहा जा सकता है कि पर्ल हार्बर में जापानियों ने बमबारी की थी, किन्तु पर्ल हार्बर की बमबारी शुद्ध सैनिक लक्ष्यों पर थी और उसके मुआविज़े में अरक्षित जापानी स्त्रियों और बच्चों पर गोलाबारी करना न सिर्फ़ न्याय्य ही नहीं है बल्कि भयानक पैशाचिकता है। जर्मनी ने सब से पहले यह चीज़ शुरू की थी और उसे सारा ऋण चक्र ब्याज़ समेत चुका दिया गया। किन्तु क्या मित्रराष्ट्र, जो इन्सानियत और मानवता का दम भरते हैं, जापानी सैनिकवाद का ग़ुस्सा अबला जापानी स्त्रियों और बच्चों पर उतारेंगे?

## आभार प्रदर्शन

जून और जुलाई १९४५ में 'विश्ववाणी' में सय्यद रहम अली अल हाशमी के दो लेख छपे हैं। लेख हाशमी साहब के अङ्गरेज़ी मस्विदे Two Nations theory के अंश हैं। क़ुरान की आयतों का जैसा सुन्दर अनुवाद होना चाहिये वैसा नहीं बन पड़ा। फिर भी उससे मूल विषय में कोई फ़रक़ नहीं पड़ता।

हमें बड़ी ख़ुशी है कि यह मस्विदा शीघ्र ही पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने जा रहा है। सय्यद हाशमी साहब ने हमें इस महत्वपूर्ण मस्विदे को लेखों के रूप में इस्तेमाल करने दिया उसके लिये हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी

देश भर में चारों तरफ़ से लोग हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी के सदस्य बन रहे हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, जैन सभी इस सांस्कृतिक धारा में डुबकी लगाने के लिये उत्सुक हैं। यहां हम सोसायटी के सदस्यों की क्रमवार सूची दे रहे हैं—

| नाम | स्थान |
|---|---|
| १—श्री एच० बी रिचर्डसन | इन्दौर |
| २—मोहम्मद अजमल खां साहब | कलकत्ता |
| ३—श्री पंढरीनाथ अम्बुलकर | ब्यावर ( राजपूताना ) |
| ४—श्री भगवान दास कायल | डिबरूगढ़ (आसाम) |
| ५—श्री रामाधार | श्रीनगर (काशमीर) |
| ६—प्रो० श्री रंजन | वर्धा (सी० पी०) |
| ७—श्री विष्णु प्रभाकर | दिल्ली |
| ८—श्री विश्वनाथ प्रसाद | गोरखपुर |
| ९—कैप्टन रामसिंह | अलवर (राजपूताना) |
| १०—सैयद मोहम्मद मियां अलफ़ारुक़ी | इलाहाबाद |
| ११—प्रो० राजनाथ पांडे | गोरखपुर |
| १२—ब्रह्मचारी उमेश चन्द्र | वृन्दाबन |
| १३—डा० जाफ़र हुसैन | हैदराबाद (दकन) |
| १४—डा० मोहम्मद हम्माद फ़ारुकी | इलाहाबाद |
| १५—श्री राधाकिशन रैना | श्रीनगर (काशमीर) |
| १६—श्री मंगीलाल शर्मा | लश्कर (ग्वालियर) |
| १७—श्री नन्दलाल कौल | श्रीनगर (काशमीर) |
| १८—श्री दीना नाथ कौल | श्रीनगर (काशमीर) |
| १९—श्री मुकुन्द राव | श्रीनगर (काशमीर) |
| २०—श्री तारा चन्द | श्रीनगर (काशमीर) |
| २१—श्री बख़्शी केशवनाथ | श्रीनगर (काशमीर) |
| २२—गुलाम अहमद किताली साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| २३—पीर शरीफ़ दीन साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| २४—सोने खां साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| २५—श्री शान्ति कुमार तिवारी | लशकर (ग्वालियर) |
| २६—डा० मेहदी हुसैन साहब | कलकत्ता |
| २७—हबीब अल्लाह साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| २८—ख़लीफ़ा अहमद ख़ां साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| २९—मोहम्मद सुलतान वानी साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ३०—पीर गुलाम नबी साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ३१—गुलाम अहमद साहब | जि० महाराजगञ्ज ,, |
| ३२—श्री ताराचन्द रैना | श्रीनगर (काशमीर) |
| ३३—पीर मजीउद्दीन इन्द्रानी साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ३४—गुलाम अहमद रफूगार | श्रीनगर (काशमीर) |
| ३५—श्री जानकीनाथ रैना | श्रीनगर (काशमीर) |

| नाम | स्थान |
|---|---|
| ३६—गुलाम हसन साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ३७—अमीर उद्दीन साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ३८—श्री जानकीनाथ | श्रीनगर (काशमीर) |
| ३९—वली बानी साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ४०—गुलाम मोहम्मद साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ४१—मोहम्मद ख़लील साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ४२—श्री रामनाथ जैन | श्रीनगर (काशमीर) |
| ४३—श्री देवी नारायण कपूर | श्रीनगर (काशमीर) |
| ४४—लाम्बोधर रैना | श्रीनगर (काशमीर) |
| ४५—श्री मुल्ला मोहम्मद | श्रीनगर (काशमीर) |
| ४६—अली शाह साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ४७—गुलाम नबी साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ४८—अब्दुल गफ़्फ़ार साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ४९—श्री श्यामलाल | श्रीनगर (काशमीर) |
| ५०—मोहम्मद कासिम कुरैशी साहब | श्रीनगर (काशमीर) |
| ५१—श्री विष्णुदेव शास्त्री | श्रीनगर (काशमीर) |
| ५२—खान बहादुर के० एम० असादुल्लाह | कलकत्ता |
| ५३—प्रो० नजीब अशरफ़ नदवी | अन्धेरी (बम्बई) |
| ५४—श्री सत्यनारायण | मद्रास |
| ५५—मौ० तुफ़ैल अहमद साहब | अलीगढ़ |
| ५६—मैडम सोफ़िया वाडिया | बम्बई |
| ५७—प्रिन्सपल ए० ए० ए० फ़ैज़ी | बम्बई |
| ५८—श्री राज नारायण | दिल्ली |
| ५९—श्री भगवानदास केला | इलाहाबाद |
| ६०—लतीफ़ अहमद साहब | आगरा |
| ६१—मीर मुशताक़ अहमद साहब | नई दिल्ली |
| ६२—सैयद हसन उद्दीन साहब ख़ामोश | सोहोर (भोपाल) |
| ६३—रहमअली अब्बासी साहब | दिल्ली |
| ६४ श्री इन्द्रदत्त स्वाधीन | कोटा (राजपूताना) |
| ६५—सर अब्दुल क़ादिर | बहावलपूर (पंजाब) |
| ६६—प्रो० नईमुर रहमान साहब | इलाहाबाद |
| ६७—डा० बूलचन्द | बनारस यूनिवरसिटी |
| ६८—श्री चतुरभुज पाठक | टीकमगढ़ (मध्य भारत) |
| ६९—श्री जगदीश प्रसाद जकेटिया | नजीबाबाद (बिजनौर) |
| ७०—राय मिट्ठनलाल बहादुर | आगरा |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारतीय चीनी मिट्टियां

लेखक

पं० मनोहरलाल मिश्र एम० एस-सी०

[ सिरेमिक विभाग काशी विश्वविद्यालय ]

बेहद खोज और परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने बदल सकते हैं यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। ... मिट्टी और मिट्टी का व्यवसाय करने वालों के लिये ... बहुत उपयोगी है। २६० पृष्ठ की सचित्र और सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है। डाक अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## विश्व-संघ की ओर

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल

और

श्री भगवानदास केला

पृथ्वी के सब राष्ट्रों को मिला कर उनका एक संघ किन उसूलों पर क़ायम किया जा सकता है इस गम्भीर विषय पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विश्वव्यापी शान्ति चाहने वाले सब लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। ३०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपया, डाकखर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## आरसी-रचनावली

| | | |
|---|---|---|
| ...सी ( कविताएँ ) | ... ... | १५) |
| ...विता ( कविताएँ ) | ... ... | ५) |
| ...ती ( कविताएँ ) | ... ... | २॥) |
| ...दिशा ( कविताएँ ) | ... ... | २) |
| ...लव ( कहानियाँ ) | ... ... | २) |
| ...सिका ( कहानियाँ ) | ... ... | १॥) |
| ...न और यौवन ( कविताएँ ) | ... | १॥) |
| ...ी के पत्ते ( कहानियाँ ) | ... | १॥) |
| ...भाषा ( कविताएँ ) | ... ... | १) |

**तारा मण्डल, मुजफ्फरपुर**

संस्कृति, साहित्य और कला की सन्देशवाहक

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

## विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

सम्पादक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य के ऊपर खोजपूर्ण गम्भीर निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक एक अंक संग्रहणीय—

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

**मैनेजर, विश्वभारती पत्रिका, हिन्दी भवन**

पो० शान्तिनिकेतन (बंगाल)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरसों की प्रतीक्षा के बाद आख़िर छप गई

# गीता और .कुरान

## लेखक : पण्डित सुन्दरलाल

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, .कुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर .कुरान की ४०० से ऊपर आयतों का लफ़्ज़ी तर्जुमा दिया गया है।

जो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्मों को समझना चाहें उनके लिये यह पुस्तक बहुत क़ीमती और बेमिसाल है।

२०० सफ़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल

**डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग**

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

पं० सुन्दरलाल जी की एक और नई पुस्तक

# हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

प्रकाशित हो गई

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म-भूमि फ़िलस्तीन की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के साथ साथ हिन्दुस्तान, चीन, ईरान इत्यादि दूसरे एशियाई देशों की उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक हालत के साथ हज़रत ईसा और उनके उसूलों का गहरा सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया गया है

मूल्य, डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

# "विश्ववाणी का एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है"—गान्धी जी

महात्मा गान्धी जी ने कहा था—"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे।"

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सर तेज बहादुर सप्रू, आचार्य क्षिति मोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० महादेव देसाई, क्यूरेटर ब्रिटिश म्यूज़ियम (लन्दन), प्रो० तान युन-शान आदि सैकड़ों देशी और विदेशी सर्वमान्य नेताओं और विद्वानों ने गान्धी जी की उपर्युक्त राय को ही दोहराया है।

विश्ववाणी के पुराने अङ्कों में देश और विदेश के चोटी के विद्वानों के गम्भीर और महत्वपूर्ण लेख भरे पड़े हैं। विश्ववाणी के विशेषाङ्कों का तो कुछ पूछना ही नहीं।

**क्या आप के पास विश्ववाणी के बहुमूल्य विशेषाङ्क हैं?**

**क्या आप विश्ववाणी के महत्वपूर्ण पुराने अङ्क ख़रीदना चाहेंगे?**

हमारे पास 'टैगोर अङ्क', 'संस्कृति अङ्क' पहला भाग, 'बौद्ध संस्कृति अङ्क', 'चीन अङ्क', 'जैन संस्कृति अङ्क', और 'अकबर अङ्क' की थोड़ी सी प्रतियाँ बची हुई हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर अङ्कों की भी कुछ प्रतियाँ और सन् ४२ और ४३ की एक दर्जन पूरी फाइलें बची हुई हैं। जिन सज्जनों को चाहिये फ़ौरन आज ही पत्र लिखें। जिस क्रम से आर्डर आवेंगे उसी क्रम से ग्राहकों को प्रतियाँ दी जाँयगी।

**मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वैश्यवाणी

संरक्षक : पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक : विश्वम्भरनाथ

[ वार्षिक मूल्य ६) ]

अगस्त १९४५

[ एक अङ्क का ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विषय सूची

[ अगस्त १९४५ ]


१—युद्ध और शान्ति—श्री एच० जी० वेल्स ... १०१
२—जीवन-दर्शन—श्री अलबर्ट आइनस्टीन ... १०३
३—मूल्याङ्कन ( कविता )—विश्वम्भरनाथ ... १०५
४—युद्ध के बाद विश्वशान्ति की समस्या प्रो० श्रीरञ्जन ... ... १०६
५—ममता ( कविता )—श्री करील ... ११०
६—नई हिस्ट्री—प्रो० ई० जे० बिङ्गले ... १११
७—मीनार (कविता) श्री विद्याधर कुलश्रेष्ठ ... ११९
८—जापान में बौद्ध-धर्म—प्रो० विलफ्रिड हाइट हाउस ... ... १२०
९—शेष-पत्र (घटना-चित्र)—डाक्टर एन० एस० वर्धन ... ... १२३
१०—अगम्यवाद—श्री अम्बालाल पुराणी ... १२८
११—हिन्दी काव्य-धारा में राष्ट्रीयता का विकास—श्री 'पलायनवादी' ... ... १३२
१२—अहल्याबाई होलकर—विश्वम्भरनाथ ... १३६
१३—अमर कवि तुलसीदास की जै ( कविता )—कुमारी रज़िया नक़ी रायपुरी ... १५८
१४—वे दोनो ( कहानी )—श्री विष्णु ... १३९
१५—वीरशैव पन्थ—श्री ज्योहार राजेन्द्रसिंह ... १४३
१६—आकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द—श्री किशोरलाल मशरूवाला ... ... १४६
१७—सलूनो (कहानी)—स्व० अल्लामा राशदुल ख़ैरी १४८
१८—अल्लाहो अकबर ! ( गद्य-गीत )—श्री सुनीति चन्द्र ... ... १५९
१९—कस्तूर बा शिक्षण शिविर में—आचार्य गुरुदयाल मल्लिक ... ... १६१
२०—हमारी स्त्रियों का स्वास्थ्य—श्री राम प्रताप गौंडल ... ... १६५
२१—मानव धर्म—श्री टीकाराम विनोदी ... १७१
२२—दारा शिकोह—कुमारी दिनेशनन्दिनी चौरड्या ... ... १७५
२३—भावी-विधान ( कविता )—डाक्टर बलदेव प्रसाद मिश्र ... ... १८१
२४—शिमला-सम्मेलन के बाद—डाक्टर पट्टाभी सीतारामय्या ... ... १८५
२५—मैं दिल के नग़मे गा न सका ( कविता )—श्री देवेन्द्र ... ... १९०
२६—अहिंसात्मक स्वराज और चरखा—महात्मा गान्धी ... ... १९१
२७—नयी व्यवस्था में एशिया का स्थान—आचार्य नरेन्द्रदेव ( "आज" से ) ... १९९
२८—पुस्तक परिचय ... ... १९९
२९—सम्पादकीय विचार ... ... १९९


## विश्ववाणी के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से विश्ववाणी नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्ववाणी' भेजते हैं। हम अपने रजिस्टर मे विश्ववाणी भेजने की तारीख़ तक दर्ज करते हैं। किन्तु डाकख़ाने के बीच में छापा मार कर कई प्रतियाँ ग़ायब कर देते हैं। हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस बात की शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण रूप से भेजी हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर सकने में विवश हैं। विश्ववाणी हर महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है और पाँच तारीख़ तक सब ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन जब हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक नम्बर लिखना भूल जाते हैं। विश्ववाणी सम्बन्धी जाँच के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब के लिये या तो जवाबी कार्ड या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत
नित्यानन्द चैटर्जी
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्ववाणी

वर्ष ५, भाग १० ] अगस्त : १९४५ [ अङ्क २, पूरे अङ्क ५६

# युद्ध और शान्ति

श्री० एच० जी० वैल्स

अभी पिछले सप्ताह मैं और मेरी पत्नी समुद्र के किनारे एक होटल के लान पर बैठे हुये थे। जर्मनी के साथ युद्ध की समाप्ति पर सारा देश खुशी और छुट्टियाँ मना रहा था। नौजवान और नवयुवतियाँ लम्बे अर्से के बाद चिन्ता-मुक्त होकर समुद्र की तरंगों में अठखेलियाँ कर रहे थे। कुछ लोग टेनिस कोर्ट से बातें करते हुये आ रहे थे। सारा समुद्री किनारा सुखी मनुष्यों के समूह से भरा हुआ था। समुद्र-तट की बालुका बच्चों की मस्ती के साथ झूम रही थी। तट के सिरे पर बजता हुये बैण्ड का ताल कभी कभी दूर तोपों की छूटती हुई गर्जना से भङ्ग हो जाता था। हमारे चारों ओर कुर्सियों पर संयत और समृद्ध मुसकराते हुये भद्रजन बैठे हुये थे जो बीच बीच में सर पर मंडराते हुये हवाई जहाज़ों की मैनूवर को देखकर प्रसन्नता से भर जाते थे और उनके मुँह से अनायास निकल पड़ता था—"आश्चर्य जनक!"

मौजूदा युद्ध की विभीषिका से बचे हुये जो सैकड़ों बच्चे मेरे चारों ओर फिर रहे थे इनमें से पचासों बीस वर्ष के बाद जो तीसरा महायुद्ध आयगा उसकी भेंट चढ़ जायंगे। इनकी क़िस्मत में ज़हरीली गैस से दम घुटकर मरना लिखा है। विस्फोटक बमों से इनकी देह की धज्जियाँ उड़ जायंगी। लंगड़े, लूले, रुधिर में सने हुये मृत्यु के मुख में बैठे ये क्षीण आवाज़ में सहायता की गुहार करेंगे। कुछ बराबाथी इमारतों के मलबे में दम घुट घुटकर मरेंगे। कुछ पंगु हो जायंगे और कुछ जो बचेंगे आजीवन मुफ़लिस और मोहताज रहेंगे। किन्तु इसकी न तो इनको और न इनके अभिभावकों को ही कोई चिन्ता है। ये लोग जीवन को गम्भीरता से देख ही नहीं रहे हैं। कटी-छटी दूब के ऊपर कुछ फौज़ी अफसर घूम घूमकर किसी 'लैण्डिङ्ग आपरेशन' की बातें कर रहे थे और अपने चारों ओर हँसते हुये वे लोगों को कनखियों से भी नहीं देख रहे थे, मानो विनोद और हास्य के लिये इनके ओठों पर ताला लगा हुआ है; तभी तो ये लाखों अङ्गरेज़ों को ठण्ढे दिल से मौत के घाट उतरने के लिये भेज देते हैं।

मेरे पास से जरा हटकर एक वृद्ध दम्पति युद्ध और इङ्गलैण्ड की घटती हुई जन संख्या की समस्या पर भय और आशंका से बातें कर रहे थे। वह अपनी उमर रसीदा पत्नी को युक्तियों और तर्क से इङ्गलिस्तान की छीजती हुई महानता की बात बता रहे थे और जवाब में उनकी सहधर्मिणी निटिंग करते हुये शायद स्वभाववश केवल सर हिला देती थी।

वृद्ध ने अज्ञात आशंका से कहा—"समझ में नहीं आता कि आनेवाली दुनियां का क्या स्वरूप होगा।" खुश क़िस्मत वृद्ध! शायद तुम कभी भी न समझ सकोगे।

आज दुनिया की अधिकांश आबादी युद्ध को रोकने के सम्बन्ध में उसी तरह कुछ नहीं सोच रही है जिस तरह ख़रगोशों का कोई समूह शाट-गन को दुनिया से नष्ट करने की बात नहीं सोच रहा है। लोग युद्ध को जड़मूल से नष्ट करने की कोई बात सोचना ही नहीं चाहते। यह सचमुच एक आश्चर्य की बात है कि लोग उन्हीं सब बातों को इतनी आसानी से स्वीकार कर लेते हैं कि जिससे उन्हें आइन्दह क़तल किया जायगा। हमें रोते कलपते एक क़यामत से निकलते देर नहीं होती कि हम हंसते-खेलते दूसरी क़यामत की ओर अग्रसर हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्ध के बुनियादी कारणों पर ग़ौर करने के बजाय साधारणतः लोग आज इसी बात पर अधिक ज़ोर दे रहे हैं कि एक अङ्गरेज़ी भाषा बोलनेवाले ब्रिटेन और अमरीका को किस तरह स्थायी एकता के सूत्र में बाँधा जा सकता है। लोग समझते हैं कि केवल इसी में इङ्गलैण्ड की सुरक्षा है।

डम्बार्टन ओक्स और सैन फ्रान्सिसको सम्मेलन की लम्बी चौड़ी कार्रवाई को पढ़कर और उसके चार्टर की धारायें उलटकर लोगों को यह ग़लत फ़हमी हो गई है कि सुरक्षा सम्मेलन ने भावी महायुद्ध पर अंकुश लगा दिया है। अब उनके लिये केवल यही कर्तव्य शेष रहा है कि वे उसकी स्थानीय कमेटियाँ बनने पर चन्दा दें और हर साल उसके तत्वावधान में गार्डन पार्टी करके लम्बी लम्बी तक़रीरें कर लिया करें बस दुनिया पर सदा के लिये शान्ति छाई रहेगी। अनेक भयभीत आदमियों को फ्रिस्को चार्टर अफीम बनकर सुला देगा। यदि लोगों को इस तरह की थोथी सुरक्षा का शिकार न बनाया जाय तो शायद वे अधिक चुस्ती और अधिक समझ बूझ के साथ युद्ध फैलाने वालों के ख़िलाफ़ संगठित मोरचा ले सकें।

आधुनिक पैमाने पर कोई युद्ध बग़ैर सोना, तेल, रुई, ऊन, रबड़, तांबा, जस्ता, जूट और खाने योग फैट (मक्खन आदि) के अधिक दिनों तक नहीं चल सकता। शान्ति की स्थापना करने वालों को दुनिया के अधिकांश गेहूँ और माँस पर भी बन्दिश लगानी होगी। हमें इस बहस में नहीं पड़ना चाहिये कि आक्रमक देश कौन है और युद्ध के लिये कौन ज़िम्मेवार है। हमारे ऐसा करने से युद्ध के वास्तविक कारणों पर परदा पड़ जाता है। संक्षेप में हमें अपना सम्मिलित क़दम जमाकर खड़ा हो जाना चाहिये और कहना चाहिये—"इस युद्ध को बन्द करो" और वह बन्द हो जायगा।

ये विचार हमें दुनिया भर के स्कूलों के लड़कों को डिक्टेशन की तरह लिखाने चाहियें। हम यदि स्वयं चाहें तो समस्त युद्धों को बन्द कर सकते हैं।

किन्तु इस 'हम' में कौन शामिल है?

फ्रिस्को सम्मेलन इसका जवाब देता है—ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत् रूस, अमरीका और चीन। किन्तु ये पाँच महादेश किस रूप में युद्ध को रोकेंगे? इसका कोई निश्चित उत्तर फ्रिस्को सम्मेलन का घोषणा पत्र नहीं देता। जब तक ये महादेश कम से कम अपनी वैदेशिक नीति को परित्याग कर वैदेशिक मामलों में एक संघ-नीति नहीं बनाते तब तक अलग अलग शतरंज की गोटियाँ बैठाई जाती रहेंगी। अब पिछले लीग आफ़ नेशन्स की तरह छोटे-बड़े, सभ्य, असभ्य, दुर्बल-सशक्त देशों की एक डिबेटिंग सोसायटी नहीं बनानी है। महाशक्तियों को वैदेशिक मामलों में अपना अलग क़दम उठाने का लोभ छोड़ना होगा। उन्हें अपने अन्दर व्यावहारिक बुद्धि पैदा करनी होगी अन्यथा वे छिपे दबे पैरों परन्तु द्रुतगति से इस युद्ध की तरह तीसरे महायुद्ध के नाशकर ख़न्दक़ की ओर बढ़ते जायेंगे।

अमरीका में आज नारा लगाया जा रहा है कि इस युद्ध की समाप्ति पर फिर समस्त युद्ध ग़ैरक़ानूनी क़रार दिये जाँय। कैसा उम्दा नारा है? मैं यह भी कल्पना कर सकता हूँ कि बजाय बीस-साला सन्धि के सौ-साला सन्धि का आयोजन महान शक्तियों के बीच हो जाय और इस सन्धि का समारोह पार्टियाँ करके, भाषण ब्राडकास्ट करके, हाथ मिलाकर, गले लगकर किया जाय। किन्तु क्या इन उत्सवों और समारोहों से वास्तविक शान्ति की दागबेल पड़ सकती है? मैं समझता हूं भविष्य के लिये युद्धों को समाप्त करने में कहीं अधिक श्रम, कहीं अधिक त्याग और कहीं अधिक अध्यवसाय की ज़रूरत है। दिखावटी तमाशों से युद्ध नहीं बन्द हो सकते। इसके लिये हमें अपने नौजवानों को नये रूप में इतिहास का अध्ययन कराना होगा और उन्हें नये तरह की तालीम देनी होगी। उन्हें यह बताना होगा कि मानव जीवन के पीछे केवल आर्थिक और राजनैतिक सिद्धान्त ही नहीं हैं बल्कि प्राणि-विज्ञान के सिद्धान्त भी हैं। इस तरह की व्यापक तालीम के बाद ही हम सुरक्षा के उपायों की सफलता की उम्मीद कर सकते हैं। इस बीच आगामी महायुद्ध को रोकने का सबसे कामयाब तरीक़ा यह है कि अधिक से अधिक आदमी इस बात की प्रतिज्ञा करें कि उनका आगामी महायुद्ध से कोई सरोकार न होगा; न वे उसमें लड़ने के लिये फ़ौज में भरती होंगे और न उसके लिये कोई काम करेंगे और बावजूद इसके यदि युद्ध सर पर आ ही जाय तो वे, फिर चाहे वह युद्ध कैसा ही क्यों न हो, टैक्स देना बन्द कर देंगे।

जो लोग युद्ध को बचाने का पहले से कोई प्रयत्न नहीं करते उन्हें कोई अधिकार नहीं कि जब युद्ध उन्हें जकड़ ले तो वे भुनभुनाना शुरू करें। पिछला युद्ध युद्ध ख़त्म करने के नारों के साथ लड़ा गया था और इस युद्ध के बारे में भी यही कहा जा रहा है। राजनीतिज्ञों और शासकों के इस वादे को पूरा कराने की ज़िम्मेवारी हमारी है और इसके लिये हमें सम्मिलित प्रयत्न करना चाहिये।

[ डा० आनन्द के सौजन्य से प्राप्त ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## अलबर्ट आइनस्टीन

इस पृथ्वी में हममें से प्रत्येक का अस्तित्व वास्तव में विस्मयजनक है। हम सभी यहाँ आते हैं कुछेक दिनों के लिए ही, किसलिये यह हमें मालूम नहीं पर आने का कोई उद्देश्य है ज़रूर।

रोज़मर्रा के जीवन पर विचार करने पर एक चीज़ हमारी समझ में आ जाती है कि मनुष्य इस दुनियां में आता है दूसरे मनुष्यों का उपकार करने के लिए, ख़ासकर उनके उपकार के लिए जिनकी ख़ुशी और मंगल पर उसका सुख स्वाच्छन्द्य बहुत कुछ निर्भर करता है और इसी तरह के अगणित अपरिचित मनुष्यों के लिये जिनके जीवन से उसका जीवन सहानुभूति के सूत्र से बंधा हुआ है। दिन भर में मैं इसी बात को कई बार सोचता हूँ कि मेरे इस बाहरी और भीतरी जीवन का कितना बड़ा हिस्सा मेरी ही तरह के आदमियों की मेहनत से बनाया हुआ है। इसीलिए क्या यह मेरा कर्तव्य नहीं है कि मैं भी यथा साध्य परिश्रम करके जिस चीज़ को मैंने क़र्ज़ में लिया है उसे लौटा दूं। बहुधा इस बात को सोचते हुए मेरी मानसिक शान्ति भङ्ग हो जाती है। मैं सोचता हूँ कि दूसरों से मैंने अपने जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा क़र्ज़ लिया है।

हम क्यों ज़िन्दा हैं, जीवन का मतलब क्या है, इन बातों पर वास्तविक दृष्टिकोण से विचार करना मेरी राय में निरर्थक है। फिर भी हममें से हरेक का एक आदर्श है जिस आदर्श से रोशन रास्ते पर हम अपनी आशा-आकांक्षा और विचार-बुद्धि का संचालन करते हैं। जिस आदर्श ने मेरे जीवन-पथ को आलोकित किया है और जिसका अनुसरण करके मैंने ज़िन्दा रहने का आनन्द उठाया है वह सत्य, शिव और सुन्दर का आदर्श है। जीवन में भोग या सुख कभी मेरा आदर्श नहीं रहा है। जीवन का यह दर्शन जो इस मूलमन्त्र पर स्थापित है मेरी राय में पशु जीवन के उपयुक्त दर्शन है।

सामाजिक न्याय और ज़िम्मेदारी के प्रति सदा से मेरा गहरा आग्रह रहा है, पर अचरज की बात है कि इस आग्रह के तीव्र होते हुये भी नर-नारियों से प्रत्यक्ष सामाजिक सम्पर्क या सम्बन्ध कभी मेरा काम्य नहीं रहा। जीवन-रथ को मैं अकेला ही खींचना चाहता हूँ। गिरोह बनाकर पैर मिलाकर चलना मेरे बूते के बाहर की बात है। मैंने अपनी देश या राष्ट्र के वास्तविक सदस्य की हैसियत कभी नहीं समझी। अपने दोस्तों की टोली या परिवार में भी मैं कभी अपनी निजी सत्ता को मिला नहीं सका। इन बन्धनों में भी मैंने हमेशा ही अपने को अलग रखा है और यह अकेलापन यानी अपने अन्दर अपने को समेटकर रखने का आग्रह उम्र बढ़ने के साथ ही मानों बढ़ता नज़र आता है।

मेरा राजनैतिक आदर्श जनतन्त्र है। व्यक्ति की हैसियत से प्रत्येक श्रद्धेय है, लेकिन अंधे की तरह किसी की पूजा करना मुनासिब नहीं है। जीवन में मुझे भी काफ़ी श्रद्धा, सम्मान और प्रशंसा मिली है। इसे तक़दीर की करामात ही समझना चाहिये। जनसाधारण की अपूर्ण इच्छा व आकांक्षा तथा अपरिणत भाव को मैं अपनी वैज्ञानिक साधना के द्वारा कुछ नियन्त्रण में ला सका हूँ शायद इसी लिये मेरे प्रति सभी की इतनी श्रद्धा और इतना प्यार दिखाई पड़ता है।

जो कुछ अज्ञेय और समझ में नहीं आने वाली बात है, सिर्फ़ वही सुन्दर है—यह सिद्धान्त सभी कला शिल्प और विज्ञानों का उद्गम-स्थल है। जो इस विश्व ब्रह्माण्ड की असीम अज्ञेयता और अबोध्यता को हृदयंगम नहीं कर सकता है, इस विशाल विस्मय की ओर विह्वल दृष्टि से निहार नहीं सकता है, मेरी राय में वह प्राणहीन है, वह अन्धा है। जीवन के गहरे रहस्य के प्रति यह अन्त र्दृष्टि शङ्काओं से भरी हुई होने पर भी सभी धर्मों का मूल स्वरूप है। एकमात्र इसीलिए मैं अपने को धर्म भाव सम्पन्न समझता है।

मैं ऐसे किसी देवता की कल्पना नहीं कर सकता जो सभी का शान्ति-दाता और भाग्य-नियन्ता है, जो अच्छे कामों के लिए अच्छे आदमियों को इनाम देता है, अर्थात् जो साधारण आदमियों की तरह ही काम करता है और जो हम लोगों की तरह ही कमज़ोर और तरफ़दारी करने वाला है। मृत्यु के बाद किसी परलोक में मैं विश्वास नहीं करता। घमंडी और कायर लोग ही उस पार के जीवन में विश्वास करते हैं। चेतनायुक्त जीवन के दुर्ज्ञेय रहस्य की बात गहराई में सोचना मुझे अच्छा लगता है। इस विशाल पृथ्वी की जटिल और विस्मयपद बनावट की विचित्रता को ध्यान-निमीलित नेत्रों से मैं देखता रहता हूँ और जितनी दूर तक मैं विश्व-प्रकृति की लीला-विचित्रता और रहस्य को अपनी बोध शक्ति द्वारा समझ सकता हूँ, उतना ही मुझे आनन्द होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## पुनश्च

बहुत दिनों के बाद दो परस्पर विरोधी ख़याल पैदा हुए। मैंने एक दिन जो कुछ लिखा था वह कितना सच है पर सत्य के लंगर को तोड़कर मैं कितनी दूर चला आया हूँ और पृथ्वी भी सरक गई है। यह सम्भव कैसे हुआ?

सचेत मनुष्य ने जीवन को सर्वदा ही दुःसाहसिक अभियान समझा है, वह अभियान जिसने मौत को जीतकर जीवन की अबाध प्रगति को प्रतिष्ठित किया है। अब तक मनुष्यों पर जो ख़तरे थे वे अधिकांश में बाहरी थे। किसी ने ज़ीने से गिरकर सिर फोड़ लिया, किसी ने सांसारिक झंझटों में पड़कर सर्वस्व खो दिया। मानव समाज में मानव के ख़तरे एक ही तरह के थे,—बाहरी और दैवी। यह सही है कि समाज की नींव किसी दिन कांप नहीं उठी। नीति और रुचि की दृष्टि से विचार करने पर वह समाज आदर्श समाज था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हां, उस समाज में आदमी आमतौर से अपनी ज़िन्दगी को ख़तरे से ख़ाली समझता था। समाज के इस गुण और निर्भर-योग्यता को कभी किसी ने अस्वीकार नहीं किया। सभी उसके महत्व, सत्य के आदर्श को ज़िन्दगी की बाज़ी लगाकर बचाना ही वाजिब समझते थे।

महायुद्ध ने इस निरापद स्थिति और निर्भरता को धूल में मिला दिया। जीवन की पवित्रता चौपट हो गई, व्यक्ति की स्वाधीनता ख़त्म हो गई। बेरोक-टोक घूमना फिरना भी बन्द हो गया। [ पिछली लड़ाई १९१४-१८ के पहिले 'पासपोर्ट' नाम की चीज़ नहीं थी—सम्पादक ] झूठ और ठगहारी राजनीतिक कार्य-सिद्ध के अचूक हथियार समझे जाने लगे। तब सभी ने समझा था कि लड़ाई भी सिर्फ़ एक बाहरी घटना है, यह आदमी की इच्छा कृत या पूर्व संयोजित घटना नहीं है। लेकिन बाद वाली घटनाओं से जो सचाई ज़ाहिर हो गई है, वह अत्यन्त मर्मभेदी है। पहिले प्रेसिडेण्ट विलसन के उद्योग से विश्व-संघ क़ायम हुआ था सभी राष्ट्रों की सम्मिलित सुरक्षा के आधार पर। ठीक इसके बाद ही फासिस्त राष्ट्रों के अभ्युदय का शोचनीय इतिहास शुरू हुआ और इसके साथ शुरू हुआ संधियों का तोड़ना और छद्मवेशी बर्बरता का शर्मनाक इतिहास। विश्वराष्ट्र संघ का सम्मिलित निरापदता का आदर्श ताश के घर की तरह ढह गया। इसका नतीजा ख़तरनाक साबित हुआ। इस संकट का कारण है दूसरे राष्ट्रों, ख़ासकर यूरोप के जनतांत्रिक राष्ट्रों की अदूरदर्शिता और कायरता।

दिन ब दिन हालत बिगड़ती ही गई। शायद कोई निराशावादी (Pessimist) मानव के भाग्य के इस तरह नहस होने की बात सोच भी नहीं सका होगा। राइन के पूरब तक की चिन्ताशीलता और मनीषा की साधना लुप्त हो गई, राष्ट्रीय डकैतियां और स्वेच्छाचारिता ने सिर ऊँचा किया, झूठ और ठगहारी की जीत का ऐलान कर दिया गया। राजनैतिक गुण्डाशाही के शौर्य-वीर्य और अत्याचार से सभी की आँखें चौंधिया गईं। साफ़ दिखाई पड़ा कि सभ्यता की रीढ़ में घुन लग गया है, जवानों की जमात की इतिहास-प्रसिद्ध न्याय-निष्ठा और आदर्श-प्रियता काफ़ूर हो गई है। उन्हें झूठों से भुलाकर रखा जा सकता है, यहां तक कि ठगकर झूठ के लिए उन्हें अपनी ज़िन्दगी अर्पण करने के लिए भी उभाड़ा जा सकता है। अतीत में जिस आदमी ने आज़ादी के लिए, सचाई के लिए अपने को क़ुर्बान करने में ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई, इस बार देखा कि उसने भी फासिस्त गुण्डेशाही और ज़ुल्म के सामने सिर नीचा कर दिया, सारे संसार में अशान्ति की नरकाग्नि प्रज्वलित करने को प्रोत्साहन दिया।

आज अपनी ज़िन्दगी के हरेक क्षण में मैं सिर्फ़ इन्हीं बातों पर विचार करता हूँ। सोचता हूँ, यह कैसे सम्भव हुआ? कैसे यह महा संकट मानव-सभ्यता की ओर अपना ख़ून से लथपथ घिनौना चंगुल इस तरह से फैलाने की हिम्मत कर सका? इतने दिनों तक इन बातों पर विचार नहीं किया था, अपने आदर्श की बात सोचने में ही डूबा हुआ था। आज अपने पुराने लेख को पढ़ने पर यही बातें बारम्बार याद आ रही हैं।*

---

* परिचय

[ जगद्विख्यात वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्सटीन का जन्म १४ मार्च १८७९ का स्वीट्ज़रलैंड के ज़ुरिखनगर में हुआ था। स्वीट्ज़रलैंड और जर्मनी में शिक्षा समाप्त करने के बाद वह ज़ुरिख, प्राग, प्रुसियन एकेडेमी, बर्लिन विश्वविद्यालय, कालेज द फ्रांस में गणित और भौतिक विज्ञान के अध्यापक तथा बर्लिन के कैसर विलियम फ़िज़िक्स इन्सटिट्यूट के डायरेक्टर रहे। दुनिया के दर्जनों देशों की विज्ञान परिषदों ने उन्हें अपना सदस्य निर्वाचित कर अपने को सम्मानित किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मूल्याङ्कन !

विश्वम्भरनाथ

तुम्हें न प्रिय पहचान सका था !
तुम पर स्वत्त्व चिरन्तन, बस केवल मैं इतना जान सका था !

बासन्ती बयार बहती थी, रजत चाँदनी मुसकाती थी ;
प्रिये तुम्हारी भव्य-साधना, शब्दों के ढिग सकुचाती थी !

नयन कोर से देखा करता था, तुमको उपहार सजाते ;
प्रेम-भाव से दूभर अपनी मधु-चितवन में तुम्हें लजाते !

कुन्तल केश तुम्हारे जब मैं कर में ले अपने दुलराता ;
स्नेहपूर्ण घड़ियों में जब मैं अहं भाव से तुम्हें बुलाता !

तुम दृग में आंसू भरकर कहती थीं मैं निर्धन हूँ राजा !
रिक्त-हस्त, निधि-हीन, अकिंचन को क्या प्यार करोगे राजा ?

* * *

दिवस निरन्तर अब भी आते, अब भी आतीं क्रम से रातें ;
पर जब से तुम गईं यहां अब हैं केवल वियोग की बातें !

मेरा उद्धत दर्प आज टीसों से भर कर क्रन्दन करता ;
जहां तुम्हारे पाद-चिह्न उस चरण-धूलि का चुम्बन करता !

आज तुम्हें प्रिय जीवन में मैं प्रथम बार पहचान सका हूँ ;
इस अपने दारुण-वियोग में मोल तुम्हारा जान सका हूँ !

[ गुरुदेव के गीत की छाया ]

---

रायल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल ने अपनी १५० वीं वर्ष गांठ के मौके पर सर जान मार्शल और स्वीडेन वासी डा० स्वेन हेडिन के साथ ही इन्हें भी अपना सम्मानित सदस्य बनाया था। The Golden Book of Tagore (Edited by Ramanand Chatterjee) और गांधी जी की ७० वीं वर्ष गांठ के मौके पर राधाकृष्णन ने जो लेखों का संग्रह समर्पित किया था इन दोनों में ही आइन्स्टीन ने निबन्ध भेजे थे। वह भारतीय स्वतंत्रता और सोवियत-राष्ट्र के मित्रों में से हैं। उन्हें आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, ग्लासगो जुरिख, मैड्रिड, पेरिस, बुएनस् आयर्स, रोसटोच, ब्रुसेल्स, जेनेवा, मैनचेस्टर, प्रिंसटन, हारवर्ड, लन्दन आदि विश्वविद्यालयों ने डाक्टरेट की उपाधि देकर सम्मानित किया है। फोटो इलेक्ट्रिक इफेक्ट (Photo-Electric Effect) के लिये उन्हें १९२१ में नोबेल पुरस्कार दिया गया था। १९३३ में वह जर्मन नागरिक बन गये थे पर जर्मनी में नाज़ी राज क़ायम होने के बाद यहूदी होने के कारण अपनी जान बचाने के लिये उन्हें जर्मनी छोड़ देना पड़ा। आजकल वह संयुक्त-राष्ट्र अमरीका की प्रिंसटन यूनिवर्सिटी के उच्चतम शिक्षा-विभाग के स्थायी अध्यापक हैं। प्रिंसटन में अध्यापन के साथ ही वह १९४३ से संयुक्त राष्ट्र नेवी आर्डनैंस ब्यूरो में विस्फोटकों पर गवेषणा कर रहे हैं। उनकी प्रकाशित पुस्तकों में—Relativity 1920, Zur Einheitlichen feldtheorie 1929, About Zionism 1930, Why War ? (with Sigmund Freud) 1933, My Philosophy 1930, The World as I see it 1935, Evolution of Physics (with Leopold Infeld) 1938. Numerous papers on molecular Physics, including experimental research on magnetism appeared in the Proceedings of Prussian Academy of Sciences, Physikalische Zeitscraft, Proceedings of German Physical Society, Annaelender Physik and elsewhere. Space-Time (Article) in Encyclopaedia Brittanica. ] —महादेव साहा



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# युद्ध के बाद विश्व-शान्ति की समस्या

प्रो० श्रीरञ्जन एम० ए०

विश्व युद्ध का एक पक्ष खत्म हो गया है। यूरोप से लड़ाई के बादल साफ़ हो चुके हैं। लेकिन यह कहना कि यूरोपीय विजय के बाद मित्रराष्ट्रों के सामने अब कोई समस्या नहीं रही, शायद बड़ी भूल होगी। अधिक गम्भीर और कठिन सवाल तो जङ्ग के ख़त्म होने के बाद शुरू होने वाले हैं। जर्मनी और जापान की लड़ाई के बाद राजनीतज्ञों और राष्ट्र-सञ्चालकों के सामने समस्याओं का एक तूफान आनेवाला है। उन समस्याओं को सुलझाने में युद्ध-सञ्चालन से कम बुद्धि और शान्ति की ज़रूरत न पड़ेगी। संसार में विजेता का श्रेष्ठ और स्थायी कार्य तो विजय के बाद ही शुरू होता है। इस बार भी युद्ध के बाद फ़ौरन दो प्रकार की समस्यायें मित्रराष्ट्रों के सामने आने वाली हैं—(१) आर्थिक और (२) राजनैतिक। दोनों में कोई भी कम-महत्वपूर्ण नहीं है। इन समस्याओं को मित्रराष्ट्र किस प्रकार और किस हद तक हल करते हैं इसी पर संसार की भावी-शांति क़ायम है। युद्ध के बाद की थोड़ी उपेक्षा और अदूरदर्शिता किसी तीसरी जङ्ग के बीज बो सकती है।

## आर्थिक समस्यायें

सबसे पहिला प्रश्न उठेगा पराजित और बर्बाद देशों की रोटी का। लड़ाई ख़त्म होने के बाद फौरन ही यह उम्मीद करना कि सभी देश स्वावलम्बी हो जांयगे ग़लत होगा। लड़ाई ने जिस प्रकार का संहार किया है उससे केवल मनुष्यों का ही ख़ात्मा नहीं हुआ है वरन् जमीन और इमारतें बेशुमार बर्बाद हुई हैं। ऐसी हालत में हारे हुये देश एकदम अपने पैरों पर खड़े हो सकें यह नामुमकिन होगा। इसलिये जब तक ऐसे देश स्वयं खेती के योग्य न हो जाएं उनके लिये अन्न का सवाल सामने रहेगा। जर्मनी और उसके समभागी दूसरे देशों को उस समय तक ज़िन्दा रखना होगा जब तक कि वे स्वावलम्बी न हो जाएं। इसके लिये यह आवश्यक है कि स्थिति के सम होने तक ग्रेट ब्रिटेन और अमरीका युद्ध के बाद दो वर्ष तक अपने यहाँ राशनिंग जारी रखें। ऐसा हो सकता है कि लड़ाई के बाद भी राशनिंग होने से अमेरिकन और ब्रिटिश-सरकार अपने यहाँ अप्रिय हो जाँय परन्तु करोड़ों लोगों को रोटी पहुँचाकर इतनी अप्रियता मोल लेना बुरा नहीं क्योंकि उसका अञ्जाम हमेशा अच्छा ही होगा। ऐसा सम्भव हो सकता है कि पहिले जर्मनी और जापान को कम से कम खाद्य सामग्री दी जाय परन्तु विश्व-व्यापी भुखमरी से [illegible] को बचाने के लिए अपने देशों में और पराजित देशों [illegible] इतनी कठोरता मित्रराष्ट्र व्यवहार में लाये भी तो [illegible] अनुचित नहीं होगी। फिर मित्र-राष्ट्रों में क्षमता और सहयोग है तो खाद्य की समस्या अधिक दिनों तक [illegible] रहेगी।

नष्ट हुये औद्योगिक केन्द्र और इमारतों को फिर से खड़ा करना दूसरा सवाल होगा। जर्मन मज़दूरी से पुनर्निर्माण कार्य लेने की रूस की पद्धति पूँजीवादी देशों में सफल न होगी। रूस के बाहर कहीं भी निर्माण के मानी 'पूँजी' और आज मित्रराष्ट्रों के अन्दर अमरीका को छोड़कर ऐसा कोई देश नहीं है जिसमें पूंजी लगाने की क्षमता हो। अगर इस प्रकार अमेरिकन पूंजी को बाहर लगाया जाता है तो फिर अमरीकन लोगों को उसी पूंजी को अपनी आवश्यकताओं पर खर्च करने की इच्छा को कम करना पड़ेगा और यदि यूरोपीय निर्माण में सारी पूंजी अमेरिका के कुछ पूंजीपति लगाने को तैय्यार हों तो ऐसी हालत में उस पूंजी के व्याज की गारन्टी अमेरिकन सरकार को देनी पड़ेगी क्योंकि वहां से यूरोपीय सरकारों पर विश्वास कैसे किया जा सकता है। इसके मानी यह होंगे कि सरकार अपना कन्ट्रोल खर्च और 'पूँजी' दोनों पर रखे। घुमा फिराकर इसे इस प्रकार रख सकते हैं कि अमेरिकन सरकार का यूरोपीय सरकारों के आर्थिक-मामलों में काफी दखल रहे। इस प्रकार की नीति का शायद कहीं समर्थन न हो लेकिन जिसके सामने नष्ट हुये पुलों, घरों, फेक्टरियों और तेल के कुयें बनवाने का सवाल है उसे यह विचार लेना चाहिये कि पुनर्निर्माण का यह कार्य केवल व्यक्तिगत तरीके से पूरा होने का नहीं। बिना सरकारी हस्तक्षेप के आज कल ऐसे काम असम्भव हैं।

मेरा ख्याल है कि दुनिया की समझदार सरकारें आर्थिक-तंगी के इस चक्र को समझ गई होंगी जिसके कारण आज चारों ओर बेरोजगारी और भुखमरी दिखलाई देती है। आज इस बारे में सभी अर्थशास्त्री एकमत हैं कि यदि बेरोजगारी और दबाव के इस कुचक्र को खत्म करना है तो खर्च और पूँजी पर सरकारी कन्ट्रोल आवश्यक होगा। व्यक्तिगत पूंजी और उद्योग-व्यवसाय पर रोक लगाये बिना यह विश्व-व्यापी बेरोजगारी बन्द नहीं की जा सकती और यह सब बिना सरकारी हस्तक्षेप के हो नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हो सकता जिसे कि कुछ रूढ़ि व्यक्तिवाद के समर्थक सहन न करेंगे।

विदेशी व्यवसाय पर भी कन्ट्रोल रखना होगा इसलिये नहीं कि इसके क्षेत्र को संकुचित बनाया जाय बल्कि इस लिये कि इसका अधिक अच्छे से अच्छा उपयोग हो। पहिले ऐसा करने की जरूरत इसलिये होगी कि बर्बाद देश स्वावलम्बी हो सकें लेकिन लम्बे अर्से के बीच इस आर्थिक यंत्रवाद को पतन से रोकने के लिये इस कन्ट्रोल की आवश्यकता बराबर रहेगी।

## ग़रीबों की ग्राहक शक्ति

ग्रेट ब्रिटेन में मुक्त व्यवसाय युग के अलावा यह आम कहावत है कि विभिन्न देशों के आर्थिक-हित एक दूसरे से हमेशा टकराते ही हैं। इस कथन में बहुत कुछ सत्य है शायद जितना सोचा गया है उससे भी ज्यादा। एक समृद्धि-शाली देश व्यवसायिक खेल में केवल प्रतिद्वन्दी ही नहीं होता वरन वह एक अच्छा खरीदार या गाहक भी होता है। ग़रीब देश अच्छा गाहक तो भला क्या होगा लेकिन जीवन की गिरी हुई रहन-सहन के कारण वह एक खतरनाक प्रति-द्वन्दी बन जाता है। युद्ध के बाद दो देशों के आर्थिक हित बहुधा सम होते दिखलाई देंगे। परन्तु आगे चलकर ऐसा रहता नहीं। यह बात जर्मनी, जापान तथा कुछ देशों पर ही लागू होगी। सैनिक दृष्टि से यह निहायत जरूरी होगा कि मित्रराष्ट्र उनके विशाल उद्योग-धंधों को कम करें लेकिन उनके पड़ोसियों की अपेक्षा उन्हें अधिक ग़रीब रहने देना कभी भी हितकर न होगा। इस समय मित्रराष्ट्रों को ऐसे साधन खोजने चाहियें जिससे कि जर्मनी की सैन्य शक्ति के बिना बढ़ाये ही उनके जीवन को समृद्ध और सुखी बनाया जा सके। क्योंकि मित्रराष्ट्रों के सामने यह बात हमेशा रहनी चाहिये कि अपनी उदारता और इन्सानियत से इसकी हालत को ऐसा बना देना है कि जिससे यह अपने वर्तमान से संतुष्ट हो जाय और इस संतोष का प्रधान कारण आर्थिक सम्पन्नता और राजनैतिक समता हो सकती है।

## बेरोजगारी

तीसरा आर्थिक सवाल जंग के बाद उठेगा लड़ाई में लगे हुये इतने लोगों को काम देना। यह एक ऐसा अहम सवाल है जिस पर सभी देशों को स्वतंत्र रूप से भी और मिलकर भी सोचना चाहिये। आज लड़ाई ने हमारी रहन सहन को बहुत ऊँचा उठा दिया है—हमारी आवश्यकतायें भी बढ़ गई हैं ऐसी हालत में इस सन्तुलन को कैसे कायम रखा जाय। ऐसे कौन से काम हो सकते हैं जिसमें करोड़ों आदमियों को खपाया जा सकता है। काम से हटे हुये लोगों का एक बहुत बड़ा भाग तो निर्माण के काम में लग सकता है परन्तु केवल इतना ही काफी नहीं होगा। इसके लिये राष्ट्रीय व्यवसाय की योजनायें तैयार करना राष्ट्रीय सरकारों का काम होगा।

## राजनैतिक समस्यायें

आर्थिक रचना का कोई भी उपाय उस समय तक स्थायी नहीं रह सकता जब तक कि राजनैतिक समस्याओं का कोई उचित हल न ढूंढ़ निकाला जाए क्योंकि ये राजनैतिक समस्यायें ही हमेशा युद्ध की जड़ में छिपी रहती हैं। मनोविज्ञानशास्त्री के शब्दों हम यह कह सकते हैं कि युद्ध समाप्त होने के बाद पुनर्निर्माण और थकावट इन्सान को कम से कम २० वर्षों तक किसी भी झगड़े में पड़ने से रोके रहेगी लेकिन हमारे विश्व-निर्माण की सारी योजनायें व्यर्थ होंगी अगर बनाना पूरा भी न हो पाये कि और हम उसे फिर नये सिरे से बर्बाद करने लग जायें। अभी तक शांति और सुरक्षा के नाम पर जो कुछ भी हुआ है उसे हम भविष्य में युद्ध को रोकने के लिये काफ़ी नहीं समझते। जो भी बड़ी घोषणायें राजनीतज्ञों और नेताओं द्वारा की गई हैं उनमें शांति और सुरक्षा को क़ायम रखने की कोई स्थायी ताक़त नहीं है। ऐसी हालत में हम यही उम्मीद कर सकते हैं कि किसी असाधारण व्यक्ति की प्रतिभा युद्ध के अन्त तक शायद हमारे सामने कोई ऐसा हल रख दे जिससे दुनियां में जंग नाम की कोई चीज़ ही न रहे पर परन्तु आत्मविश्वास के साथ आज हम वैसा नहीं कह सकते।

## शांति की मूल समस्या

भावी शांति दुनिया में स्थायी रूप से क़ायम रहे, इस बात का उत्तर तीन चीज़ों पर निर्भर करता है: (१) युद्ध के बाद जर्मनी और जापान के साथ व्यवहार किस प्रकार का होता है? (२) छोटे छोटे देशों की समस्या को किस प्रकार से हल किया जाता है? (३) बड़े राष्ट्रों का अन्य राष्ट्रों के प्रति कैसा सम्बन्ध रहता है?

जहाँ तक जर्मनी और जापान के साथ व्यवहार की बात है वहां मित्रराष्ट्र यदि अपने दृष्टिकोण में बहुत ही उदार हैं तो कम से कम वे इतना करेंगे कि जर्मनी और जापान में बिल्कुल निशस्त्रीकरण कर दें और ऐसे प्रतिबन्ध लगा दें कि निकट भविष्य में वे अपनी सैन्य शक्ति की वृद्धि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साधन ही न जुटा सकें। इसके माने यह होंगे कि उनके बड़े बड़े कल-कारखानों पर मित्रराष्ट्रों या राष्ट्र-संघ का नियंत्रण हो। लेकिन इस प्रकार की नीति अधिक समय तक नहीं चलाई जा सकती। शांति की स्थायी सफलता की माँग यह है कि धीरे धीरे जर्मनी और जापान को स्वेच्छापूर्वक विश्व की शांति योजना में शरीक किया जाय। जब तक वे स्वयं शांति और सुरक्षा के भागीदार न बन जाएं तब तक तलवार की नोक से उनके विद्रोह को दबाये रखना सच्ची राजनीतज्ञता नहीं है। असल बात यह है कि उनके विचारों और भावनाओं में आमूल परिवर्तन हो। मित्रराष्ट्रों के अति-विशेष की ज्वाला शांत हो। इस प्रकार के हृदय परिवर्तन के लिये यह ज़रूरी होगा कि अभी से उनके आर्थिक-हितों की रक्षा की जाय और साथ ही साथ उनके राजनैतिक-गौरव को अधिक चोट न पहुँचाई जाय। हाँ, वहाँ शिक्षा-प्रणाली पर राष्ट्र-संघ कुछ दिनों तक अपना प्रभाव रखें। लेकिन व्यक्तिगत रूप से किसी भी मित्रराष्ट्र का प्रभाव वहाँ नहीं रहना चाहिये। और इसके साथ ही साथ उन पर लगाये प्रतिबन्धों को जब कि उनकी आवश्यकता प्रतीत न हो, ढीला करना चाहिये।

मित्रराष्ट्रों के प्रत्येक कार्य से दो बातों को साफ हल करना चाहिये (१) किसी भी देश के आक्रमण के सफल होने का अब ज़माना नहीं रहा (३) सहयोग की भावना का उचित पुरस्कार सभी को मिलेगा।

जहाँ तक छोटे राष्ट्रों का प्रश्न है वहाँ तक डम्बरटन ओक्स में जिन सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है यदि उन पर ठीक ठीक अमल किया जाता तो पारस्परिक रक्षा के प्रश्न को और अधिक मजबूत बनाया जा सकता था परन्तु फ्रिस्को सम्मेलन में जिस रूप से यह चीज़ तय हुई है उससे ऐसा साफ प्रकट होता है कि छोटे राष्ट्रों के मन में बड़ों के प्रति काफ़ी सन्देह मौजूद है। इसी कारण वहाँ तय्यार की गई किसी योजना में भी ऐसी कोई बात नहीं दिखलाई देती जिसकी सहायता से ये छोटे छोटे राष्ट्र बड़ों से या किसी बड़े से अपनी रक्षा कर सकें। 'वीटो' और संरक्षण के प्रश्न ने छोटे देशों की स्थिति को और भी अधिक गम्भीर बना दिया है। अतः भविष्य में यदि किसी युद्ध की आशंका होगी भी तो वह इन्हीं पांचों में से किसी के द्वारा प्रारंभ होगा। जिस आशंका और सन्देह के वातावरण में फ्रिस्क-शांति-पत्र तैयार हुआ है उससे तो कोई बहुत आशा नहीं की जा सकती। क्यों कि बड़े राष्ट्रों के निजी स्वार्थों ने छोटे देशों के मन में काफी संदेह पैदा कर दिया है। ऐसा लगता है कि संरक्षण या ट्रस्टीशिप के नाम से अपने अपने अधिकारों को बढ़ाने का सवाल है। क्योंकि पाँच बड़ों के विशेषाधिकार के उस समय क्या अर्थ होते हैं जब कि आगे बढ़कर आक्रमण करनेवालों में या अनुचित करनेवालों में इन्हींमें से कोई एक हो। उस समय संगठित राष्ट्र अपने 'वीटो' का पूरा पूरा इस्तेमाल करेगा ही और जिसके मानी यह होंगे कि अन्य चार अनुचित समझते हुये भी उसका प्रतिकार नहीं कर सकते—सुरक्षा समिति और राष्ट्र-संघ सब कुछ चाहते हुये भी कोई भी क्रियात्मक कदम इस दिशा में नहीं उठा सकता क्योंकि पाँचों एकमत नहीं हैं। इस प्रकार राष्ट्र-संघ के अस्तित्व और अनस्तित्व में क्या फर्क रह जाता है? यहाँ पर परोक्ष रूप से घोषणा पत्र अपने पिछले क़दमों पर ही लौट गया है। इस प्रकार फ्रिस्को सम्मेलन ने दुनियाँ को पाँच या चार महारथियों की दया पर छोड़ दिया है। और इस कारण शांति-घोषणा-पत्र की धारायें तभी तक सार्थक हैं जब तक अशांति का कारण इन पांच के अलावा कोई और है। लेकिन इस 'वीटो' के साथ मान लो आज फ्रांस अपने सीरिया के अधिकार पर डटा रहना चाहता है तो क्या सुरक्षा-समिति उसे रोक सकती है? शांति-सम्मेलन ऐसा जान पड़ता है कि यह मानकर चला है कि ग़लती इन पांच से तो कभी होने की नहीं जब कि दुनियां का विश्वास है कि आगे ग़लती होगी तो इन्हीं से। फिर फ्रिस्को में जिस Aggressive आक्रमण के विरोध की बार बार आवाज़ उठाई गई है वह वहीं तक अनुचित है जहां तक वह किसी शत्रु पक्ष की ओर से होता है। महान पांच की ओर से किया गया ऐसा आक्रमण अनुचित न होगा क्योंकि वह शांति के नाम पर किया जायगा।

## प्रभाव-क्षेत्र

किसी भी विचारक की पैनी निगाह से यह सचाई छिपी नहीं रह सकती कि आखिर में जाकर ये प्रभाव-क्षेत्र ही विवाद और झगड़े के मूल कारण बनेंगे। यह हो सकता है कि दुनियां की मौजूदा हालत में मित्रराष्ट्रों को इससे अच्छा कोई और उपाय न दिखाई पड़ा हो लेकिन आज सवाल तो यह है कि क्या यह व्यवस्था एक पीढ़ी के अन्दर ही हमें दूसरे युद्ध की ओर न ले जायगी। अधिकार, लोभ और न्याय दोनों साथ साथ नहीं चलते। इस तथ्य को मित्रराष्ट्रों द्वारा भुलाया नहीं जाना चाहिये था। क्योंकि इस समस्या को हल करने के लिये प्रभाव-क्षेत्र का जो सिद्धान्त निकाला है वह कारगर नहीं होगा। जर्मनी के ये चार [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मित्र-राष्ट्रों में आपसी वैमनस्य के बीज बोये बग़ैर न रहेंगे। अगर दुनियां के नक़शे को खूब अच्छी तरह फैलाकर पांचों के संरक्षित देशों को ज़रा दूर दूर करके रखा जाता तो शायद किसी प्रकार कुछ समय तक के लिये शांति क़ायम रहती लेकिन आज की जो हालत है उससे तो ऐसा लगाता है कि इनमें आपस में कहीं जल्दी ही तनातनी न हो जाय। आज तो पोलेण्ड में रूस जो कुछ चाहता है करता है। यूनान में इङ्गलैण्ड जो कुछ चाहता है करता है लेकिन यह निश्चय है कि वर्तमान हद बन्दी की यह नीति आगे चलकर 'विवाद' का प्रश्न बन सकती है।

सच बात तो यह है कि अगर दुनियां को फिर जल्दी लड़ाई में पड़ने से रोकना है तो मौजूदा हल से कोई अच्छा रास्ता खोजना होगा। परन्तु अपने अपने स्वार्थ की ओर प्रधान रूप से देखनेवाले राष्ट्रों से किसे ऐसे निष्पक्ष और संतुलित हल की उम्मीद हो सकती है। सबसे पहिला काम यह होना चाहिये कि झगड़े और विचार के जितने भी कारण हैं या हो सकते हैं उन्हें न्यायपूर्ण संधियों और समझौतों से तय कर लेना चाहिये और उसके बाद किसी शांति और सुरक्षा की स्थायी व्यवस्था को खड़ा करने के लिये मैदान साफ़ हो जायगा।

## सुरक्षा के तीन जरूरी क़दम

पहिला क़दम मित्रराष्ट्रों का यह होना चाहिये कि पराजित और विजेता में एक सद्भावना बढ़े। छोटे बड़े राष्ट्रों के बीच यह भावना पैदा करें कि पारस्परिक झगड़ों में 'ले-दे' कर समझौता करने की नीति युद्ध की अपेक्षा हमेशा हितकर होती है। इस ख्याल का जोरदार शब्दों में खूब प्रचार होना चाहिये कि बड़ी बड़ी लड़ाइयां सभ्यता और विकास के लिये अभिशाप होती हैं। साथ ही साथ इस विचार को भी प्रसार मिलना चाहिये कि केवल 'लेने' की नीति युद्ध से भी अधिक भयङ्कर होती है। ऐसी एकतरफ़ा मांगों का एक निष्पक्ष विचारपूर्ण कमेटी द्वारा विरोध होते रहना चाहिये। क्योंकि ऐसी एकतरफ़ा मांगें फिर लड़ाई को निमन्त्रण दे सकती हैं।

दूसरा महत्वपूर्ण क़दम मित्रराष्ट्रों द्वारा यह उठाया जाना चाहिये कि यह राष्ट्र-संघ योग्य और प्रभावशाली बने और इसके अन्तर्गत छोटे-बड़े सभी राष्ट्र शान्तिपूर्ण तरीकों से ही अपने झगड़े तय करें। Aggression बड़े राष्ट्रों द्वारा ही क्यों न हो उसका सम्मिलित विरोध होना चाहिये। हर प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और विश्वास के आधार पर उस विनाश और बर्बादी को बचाया जाय जिसकी कि सम्भावना तीसरी लड़ाई से हो सकती है।

तीसरा महत्वपूर्ण क़दम यह उठाना चाहिये कि आपसी सन्देह और शङ्का को दूर किया जाय। रूस और पश्चिमी राष्ट्रों के बीच जिस सन्देह का वातावरण बन गया है उसे दूर करना निहायत ज़रूरी है। इस सन्देह के कारणों का निराकरण बड़ी आसानी से किया जा सकता है।

इस प्रकार युद्ध के बाद के वर्ष हमें केवल पुनर्निर्माण ही में खर्च नहीं करना हैं वरन् उस अमूल्य समय को ऐसे सहयोगी साधनों के जुटाने में लगाना है जिससे कि भविष्य में किसी भी लड़ाई की फिर सम्भावना भी न रहे। हमें महा संहार और विनाश के यह दिन फिर न देखना पड़ें। इसके लिये साम्राज्यवादी मित्रराष्ट्रों को यह चाहिये कि वे छोटे राष्ट्रों के नैतिक बल को अपने पक्ष में करें ऐसा करने के लिये उन्हें अपने उस सदियों से चले आये हुये 'स्वार्थ' भी छोड़ना पड़ें क्योंकि कोई भी राष्ट्र-संघ बिना लड़े उस समय तक सफलतापूर्वक शांति को क़ायम नहीं रख सकता जब तक की दुनियाँ के पर्दे से वह 'शासक और शासित' दोनों शब्दों को न हटा दे। आज जिस बात की सबसे अधिक ज़रूरत है वह एक ऐसी घोषणा की है जो मित्रराष्ट्रों को सन्देह की नज़र से ऊपर उठाकर उन्हें सच्ची स्वतन्त्रता का मसीहा बना दे और यह तभी सम्भव होगी जब इङ्गलैण्ड, फ्रांस, बेलजियम, नीदरलैण्ड और हालैण्ड अपनी उस विघैली-साम्राज्यवादी मनोवृत्ति से स्तीफ़ा दे दें। इसके लिये इङ्गलैण्ड को पथ-प्रदर्शक होना चाहिये जिस दिन इङ्गलैण्ड और फ्रांस पराधीन देशों को आजाद करके अपने स्वार्थों को छोड़ देते हैं उसी दिन सफल शांति का आधा-आयोजन मानो पूरा हो गया। बिना इस प्रकार के नैतिक वातावरण को पैदा किये शांति और सुरक्षा के सारे उपाय अस्थायी और प्रभाव शून्य होंगे। अगर दुनिया की पशुता और बर्बरता से रक्षा करनी है तो ब्रिटेन, फ्रान्स और अमरीका आदि अपने स्वार्थों से अलग हो जाएं अन्यथा कोरे सिद्धान्त वाक्य और चर्चायें दुनिया को भावी ख़तरे से रक्षा नहीं कर सकतीं।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# ममता

श्री करील

इन फूलों के मुँह से फूटी लेकर सुख का साज जवानी।
इस बसन्त में कोयल कूकी बन तेरे आँगन की रानी॥
सिर पर काले बादल छाये ले अपनी माया मनमानी।
तन का मन का भेद बताती साजन तेरी प्रेम कहानी॥
मन्दिर में तू ही खुल खेला, मस्जिद में तेरा सुर गूंजा।
गिरजे की छाया में होती जीवन धन तेरी ही पूजा॥

धरती के चरणों में तेरा रस पाकर सागर लहराता।
सूरज की किरणों में उतरा प्यारे तेरा जस मुसकाता॥
बस तेरा यह सुन्दर दर्शन मेरे मन का प्यार जगाता।
दिलवाले बढ़ते दिल खोले बस उनको बढ़ना ही आता॥
वे कहते मन्दिर में तू ही मस्जिद में तेरा सुर गूंजा।
गिरजे की छाया में होती जीवन धन तेरी ही पूजा॥

कुछ कहते हैं ध्यान लगाकर आज उन्होंने तुमको देखा।
करते तेरी दया-मया का कुछ भूली दुनियां में लेखा॥
पर तू मुसकाकर कहता है "मेरा कोई रूप न रेखा"!
हाथ उठाकर, शीश झुकाकर कब किसने तुझको है देखा॥
राम अरे! मन्दिर का तू ही मस्जिद का अल्लाहो अकबर!
गिरजे की गहरी छाया में मालिक तेरी माया का घर॥

डोला लेकर नई उमङ्गें आज पवन का मन मतवाला।
आज छिड़ा सारी दुनियां में प्रीति-रीति का राग निराला॥
मैंने अपने गीत सजाये, गूँथी इन हाथों से माला।
आ! मेरी आंखों में भर दे ओ मेरा सिरताज! उजाला॥
मैं कहता मन्दिर में तू ही मस्जिद में तेरा सुर गूंजा।
गिरजे की छाया में होती जीवन धन तेरी ही पूजा॥

पागल बनकर वन-वन भटका पर तू मेरे हाथ न आया।
चन्दन फूल चढ़ाकर मैंने तुझे हृदय में देख न पाया॥
पण्डित तुझको बिलकुल भूला मुल्ला ने मनको भरमाया।
तूने अपना रूप पसारा मैंने तेरा दर्शन पाया॥
तू ही मन्दिर में खुल खेला मस्जिद में तेरा सुर गूंजा।
गिरजे की छाया में होती जीवन धन तेरी ही पूजा॥

गीता की पोथी भी तेरी, है कुरान भी तेरी लीला।
तुझमें ही इञ्जील बसाती अपना भाग-सुहाग रसीला॥
आज निछावर तुझ पर मेरा यह सारा संसार सजीला।
आंखें मेरी बरस रही हैं अन्तस तेरे रस से गीला॥
मैं मन्दिर में बना पुजारी मस्जिद में मेरा सुर गूंजा।
गिरजे की छाया में करता जीवन-धन मैं तेरी पूजा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नई हिस्ट्री

प्रोफेसर ई० जे० विङ्गले एम० ए०, पी-एच० डी०

हिस्ट्री की क्या ज़रूरत है ? और फिर किसी नई हिस्ट्री की क्या ज़रूरत है ? पुरानी हिस्ट्री ही क्या कुछ कम ख़राब थी। स्कूल में या और कहीं पढ़ते हुए हममें से बहुतों को हिस्ट्री याद करने की मुसीबत उठानी पड़ी है। हिस्ट्री का श्रीगणेश और उसकी इति, उसका शुरू और उसका आख़ीर, बस यही मालूम होता था कि कुछ सन, कुछ लड़ाइयों के नाम और कुछ और इधर उधर की बातें—कब क्या हुआ था, छुटा दी जावें। इस पर भी हमें बहुत ही कम बातें याद रहती थीं। हाल में इङ्गलैंड में इस बारे में बहस करते हुए दो स्कूल मास्टरों ने तय किया कि 'हिस्ट्री वह चीज़ है जो याद रह सके। उन्होंने कुछ अँग्रेज लड़कों पर आज़मा कर देखा कि उन्हें क्या क्या याद रह गया था। पता चला कि उन सबको मिलाकर सिर्फ़ दो सन याद रह गए थे, और दोनों दो लड़ाइयों के सन थे। मुझे भरोसा है कि हिन्दुस्तानी बच्चों की याददाश्त इससे ज्यादा अच्छी है पर उन्हें भी बहुत करके थोड़े से सन और और लड़ाइयों के नाम ही याद रह जाते हैं। इसीको वे हिस्ट्री कहते हैं।

असल में यह हिस्ट्री नहीं है। मैं यह बताना चाहता हूँ कि हिस्ट्री राजाओं के कारनामों, लड़ाइयों और सनों से कुछ बढ़कर चीज़ है और कैसे है ? पर सन और लड़ाइयाँ बिल-कुल बुरी चीज़ें ही नहीं हैं उनसे भी कुछ काम निकलता है, कुछ पता चलता है, बशर्ते कि उन्हें हम पूरी हद के अन्दर रक्खें। बहुत से सन तो फर्ज़ी होते हैं, लोगों ने गढ़ रक्खे हैं फिर भी उनसे क्या चीज पहिले हुई और क्या पीछे इसका कुछ पता चलता है। मैंने एक दफ़े एक कैलेन्डर में छपा हुआ देखा था कि कोई बड़ा आदमी सन १७०३ में पैदा हुआ था और सन १७०१ में मर गया। यह ग़लती छापे की मामूली ग़लती थी। सनों ही का तो मामला था। सच है। पर इससे हमें यह याद आ जाता है कि सनों और तारीखों से हम क्या कुछ समझ सकते हैं। रही लड़ाइयों की बात। क्या यह याद रखना भी कुछ समझ की बात है कि कभी कभी बड़ी बड़ी बातें लड़कर तय की जाती हैं ? पिछले यूरोपीय महायुद्ध में सितम्बर सन १९१४ में मार्न की लड़ाई हुई थी। जिन्हें उसका ख़याल रह गया है उन्हें याद होगा कि उस युद्ध की वह ख़ास लड़ाई थी। उससे सारे युद्ध का रंग पलट गया। जो युद्ध मालूम होता था कि थोड़े दिनों में ख़तम हो जायगा वह दिखाई देने लगा कि अभी बहुत दिन लेगा। उसी लड़ाई से जर्मनी जीतते जीतते आख़ीर में हारता चला गया फिर भी हमें सनों और लड़ाइयों की तरफ़ बहुत ज्यादा ध्यान नहीं रखना चाहिये। और भी चीज़ें हैं जो आदमी की हिस्ट्री का उतना ही बड़ा हिस्सा है जितना सन और लड़ाइयाँ। मेरा मतलब आर्ट, कला साइन्स, विज्ञान धर्म, और राज काज जैसी चीज़ों से है।

हम जो नई हिस्ट्री चाहते हैं वह कब से शुरू होगी ? अच्छी हिस्ट्री सब हमारे इस ज़माने से शुरू होनी चाहिये वर्तमान से शुरू होनी चाहिये। नई हिस्ट्री भी वर्तमान ही से शुरू होगी। हम हिस्ट्री को एक पुराने ज़माने की चीज़ समझते हैं। एक दरजे तक यह सच भी है पर हम यह भूल जाते हैं कि वह पुराना ज़माना हमारे इस ज़माने, हमारे हाल या वर्तमान ही का पुराना ज़माना था। जो लोग उस ज़माने में जिन्दा थे उनके लिए उस समय वह हाल या वर्तमान ही था। हम पिछले ज़माने को हमेशा इस ज़माने की ऐनक से देखते हैं। हमारे अपने ज़माने में जो सवाल, जो समस्याएं जो मसले और जो कठिनाइयां हमारे सामने रहती हैं उन्हीं से हम बीते ज़माने की चीज़ों का रंग-रूप तय करते हैं।

मैं इसकी एक मिसाल देता हूँ। गिबन की अंग्रेज़ी किताब 'डिक्लाइन एण्ड फाल आफ़ रोमन एम्पायर' हिस्ट्री की बड़ी से बड़ी किताबों में से है। वह किताब लिखी कैसे गई ? सन् १७६४ में गिबन सिर्फ़ २७ वर्ष का नौजवान था। वह रोम गया। वह अपनी आत्म-कथा में लिखता है कि रोम में १५ अक्टूबर सन १७६४ को 'कैपीटाल' के खंडहरों में बैठा हुआ वह कुछ सोच रहा था। शाम का वक्त था पास ही जुपिटर का पुराना मंदिर था। (जुपिटर ईसाई धर्म से बहुत पहिले रोमवालों का एक पुराना देवता था जो वैदिक 'द्यौपितर' है—संपादक) अब वह गिरजा बना हुआ है। गिबन ने देखा कि नंगे पैर ईसाई पादरी उस पुराने मंदिर में दुआएं पढ़ रहे थे और ईसाई धर्म के भजन गा रहे थे। ज़माने के इस इतने बड़े उलट-फेर को देखकर वहीं बैठे बैठे गिबन के मन में रोम के धीरे धीरे गिरने और ख़तम होने की हिस्ट्री लिखने का ख़्याल पैदा हुआ। यह देखकर कि ईसाई धर्म से पहिले के रोमन साम्राज्य के एक शानदार देवालय में ईसाई महन्त अपनी दुआ पढ़ रहे हैं। गिबन के दिमाग़ के सामने से रोमन साम्राज्य का पूरा ज़माना इधर से उधर तक सिनेमा के खेल की तरह निकल गया। किस तरह ईसाई धर्म ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पुराने धर्मों को मिटाया और फिर किस तरह आख़ीर में एशिया की अर्द्ध सभ्य क़ौमों ने यूरोप में घुसकर रोमन साम्राज्य को ख़त्म कर दिया। इस सबमें दो हज़ार बरस निकल गए। गिबन बड़े तीखे शब्दों में इसे 'जङ्गलीपन और मज़हब की जीत' कहता है। उस किताब को लिखने में गिबन ख़ुद बताता है कि उसे कितनी ज़बरदस्त मेहनत करनी पड़ी। जितनी हिस्ट्रियें और मिलती जुलती किताबें उसे मिल सकीं वे सब उसे पढ़नी पड़ीं। लेकिन इन किताबों ही से काम नहीं चल सकता। गिबन के अपने अन्दर भी उस गहरी सूझ बूझ की ज़रूरत थी जिससे इस ज़माने की एक अजीब-सी चीज़ देखकर बीते ज़माने के कपाट एकाएक उसके सामने खुल गए। उसे न जाने ज्ञान का कितना बड़ा भण्डार दिखाई देने लगा। उसने बहुत अच्छी हिस्ट्री लिख डाली। पर वह हिस्ट्री भी गिबन के १८ वीं सदी वाले नेशनलिज़्म यानी देशवाद या राष्ट्रवाद के रंग में गहरी रंगी हुई है।

अब मैं अपने यहाँ की एक मिसाल देता हूं। फ़र्ज़ कीजिये आजकल की हिस्ट्री का बहुत बड़ी सूझ बूझ का कोई आदमी मदरास पहुंचा। उसने वहाँ की कुछ बड़ी बड़ी इमारतें देखीं। जैसे मैलापुर का मन्दिर, सैनठाम का गिरजा, फोर्ट सेन्ट जार्ज का क़िला। जिन लोगों के आँखें हैं उन्हें आजकल की इन चीज़ों में दक्षिण भारत का सारा बीता ज़माना दिखाई दे जायगा। हमारे देश की आजकल की भी कुछ समस्याएं, कुछ कठिनाइयां ऐसी हैं जो इन इमारतों में चमक उठती हैं और जिन्हें हम उस बीते हुए ज़माने की जानकारी हासिल करके ही समझ सकते हैं और हल कर सकते हैं। हिन्दुओं का धर्म और उनकी संस्कृति बड़े सुन्दर रूप में उस शानदार मन्दिर से झलकती है। उसी के पास पच्छिम का मज़हब है, पच्छिम का साम्राज्यवाद है। उनकी तिजारत और उनके हकूमत करने के चुनाव के ढङ्ग—इन सब चीज़ों को हम कैसे समझ सकते हैं जब तक हम पहिले बीते ज़माने को न समझ लें। हम अपने ज़माने से कितना भी पीछे हटकर देखें हम उस बीते हुए ज़माने को केवल आजकल की निगाह से यानी इस ज़माने में खड़े होकर ही अपनी जगह से देख सकते हैं। हमारी आजकल की जैसी निगाहें हैं। जैसी हमारी सूझबूझ है उसका असर हमारी पिछले ज़माने की जानकारी पर पड़े बिना नहीं रह सकता। हमारी ऐनक का रंग उस ज़माने की चीज़ों को रंगेगा ही। इसी तरह जब हम पिछले ज़माने पर निगाह डाल चुकेंगे तो इस ज़माने की चीज़ें भी हमें फिर कुछ की कुछ दिखाई देने लगेंगी। जो लोग हिस्ट्री पढ़ते हैं और जिनके दिमाग़ उसी ढङ्ग के हो जाते हैं उन्हें आजकल की चीज़ें भी उस तरह दिखाई नहीं देतीं जिस तरह और मामूली आदमियों को दिखाई देती हैं। उनकी नज़रों में फिर चीज़ों की क़ीमतें बदल जाती हैं। वे किसी चीज़ पर कम ज़ोर देने लगते हैं किसी पर ज़्यादा। उनकी निगाहें कुछ की कुछ हो जाती हैं।

## दृष्टिकोण में तब्दीली

इससे पता चला कि हर नसल के आदमी अपनी तरह हिस्ट्री पढ़ते हैं और अपनी ही हिस्ट्री को किताबों से हमारे बाप-दादा का काम चल गया या उनसे हमारा नहीं चल सकता। इसके दो बड़े बड़े सबब हैं। एक यह कि हिस्ट्री का जो मसाला, इतिहास की जो सामग्री हमारे पास होती है वह एक नसल से दूसरी नसल में बदलती रहती है। दुनिया को नई नई सामग्री मिलती रहती है। दूसरा सबब यह है कि एक ही मसाले या एक ही सामग्री पर हमारी निगाहें बदल जाती हैं। उसी सामग्री को हमारे बाप-दादा एक तरह देखते थे हम दूसरी तरह देखने लगते हैं। हमारे इस ज़माने के अन्दर पिछले इतिहास की सामग्री इतनी तेज़ी के साथ बढ़ी है कि पहिले कभी नहीं बढ़ी थी। मुझे अभी तक कुछ ऐसे विद्वानों की याद है जो समझते थे कि कुल हिस्ट्री हज़रत ईसा से चार हज़ार बरस पहिले से शुरू होती है। इस कुल छै हज़ार बरस से कम के ज़माने को वे आसानी से समझ सकते थे और याद रख सकते थे। उस नसल के लड़कों के लिए हिस्ट्री एक आसान चीज़ थी। पर अब हमारे लिए यह ज़माना बहुत बढ़ गया, और बढ़ता चला जा रहा है। क़रीब क़रीब हर साल पुराने इतिहास की खोज करने वाले किसी न किसी ऐसी पुरानी सभ्यता को खोदकर हमारे सामने रख देते हैं कि जिसका पहले से हमें गुमान भी नहीं था। इन पुराने शहरों और पुरानी सभ्यताओं को खोदकर निकालनेवालों के अलावा जब हम ज़मीन के अन्दर चीज़ों का पता लगानेवालों, आदमियों और जानवरों की पुरानी नसलों का पता लगानेवालों और दूसरे तरह के साइन्सवालों की खोजों और ईजादों पर निगाह डालते हैं तो पहिले हमें पता चलता है कि हमारी हिस्ट्री कम से बरस पहिले से शुरू होनी चाहिये, और फिर हम धीरे धीरे लाखों बरस पीछे तक पहुँच जाते हैं, यहाँ तक कि हमारा सिर चकराने लगता है। हमें पता चलता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हम समझे थे हिस्ट्री उससे कहीं लम्बी और पुरानी चीज़ है। स्कूल की किताबों में यह सब बहुत कम मिलता है। स्कूल के मास्टर अभी तक उस सारे ज़माने के इतने छोटे छोटे टुकड़े कर डालते हैं कि जिनसे उनके इम्तहान के परचों का काम चल सके, जैसे इङ्गलैन्ड में ट्यूडर राजाओं का ज़माना, हिन्दुस्तान में मुसलमानों का ज़माना या अंग्रेज़ों का ज़माना। लेकिन अब हमें मालूम है कि हिस्ट्री के इस तरह टुकड़े करना हिस्ट्री को झुठलाना है, उसका असली रूप बिलकुल बदल देना है। सच यह है कि सच्ची हिस्ट्री लिखने के लिये वैज्ञानिकों का सा दिमाग़ चाहिये और साथ ही बड़े बड़े नावेल या उपन्यास लिखने वालों की सी सूझ-बूझ। तभी हम हिस्ट्री के सच्चे रूप को देख और समझ सकते हैं। यही वजह है कि बहुत से बड़ी उमर के आदमियों ने जितनी हिस्ट्री एच० जी० वेल्स की किताबों से सीखी है उतनी स्कूल कालेज की किताबों से नहीं सीखी।

## हमारे सामने पूरी दुनिया की हिस्ट्री हो

एक और तरह देखें तो पुरानी हिस्ट्रियों की निगाह बहुत तङ्ग होती थी। उनका दायरा कम दूर तक होता था। नई हिस्ट्री की निगाह ज़्यादह दूर तक फैली हुई है। उसका दायरा बहुत बड़ा है। आजकल हमारी हिस्ट्री में सारी दुनिया की हिस्ट्री आ जानी चाहिये। इससे कम में अब हमारा काम नहीं चल सकता।

इसके कई अजीब अजीब नतीजे दिखाई देंगे। अभी कुछ बरस हुये हिस्ट्री के दो विद्वानों ने इस बात को बयान करना चाहा कि पच्छिमी सभ्यता कैसे बढ़ी। इसके लिये उन्हें बहुत दूर पीछे उस ज़माने तक जाना पड़ा जब कि पूर्वी या पच्छिमी का कोई फ़रक़ नहीं था और जब कि सभ्यता नाम की भी कोई चीज़ पैदा नहीं हुई थी। उस ज़माने से लेकर अपने ज़माने के और पास आते हुये उन्हें दुनिया की और सब सभ्यताओं का भी हाल लिखना पड़ा। जिन किताबों को वे पच्छिमी सभ्यता की हिस्ट्री कहते थे वे अब 'दुनिया की हिस्ट्री' बन गईं और उन्हें अपनी किताबों के नाम भी बदलने पड़े। दुनिया की हिस्ट्री में पच्छिमी सभ्यता के बढ़ने और फैलने की ही हिस्ट्री से काम नहीं चलता। आजकल आप पच्छिमी सभ्यता या किसी भी और सभ्यता को तब तक समझ ही नहीं सकते जब तक सारी दुनिया की तरक्की और उसके बढ़ने का हाल आपकी आंखों के सामने न हो। यह एक बहुत बड़ा काम है। यह क़रीब क़रीब नामुमकिन सा मालूम होता है। सारी दुनिया की कोई अच्छी हिस्ट्रियाँ इस वक्त नहीं हैं कोई एक अकेला विद्वान इस काम को पूरा कर भी नहीं सकता। और जहाँ कहीं कई कई विद्वानों ने मिलकर इस तरह की हिस्ट्री लिखने की कोशिश की है वहाँ भी बहुत करके जैसी चाहियें वैसी किताबें नहीं लिखी जा सकीं। कुछ भी हो हमें 'दुनिया की एक हिस्ट्री चाहिये'। हम एक ऐसे ज़माने में रह रहे हैं जब कि दुनिया के हर हिस्से का हर दूसरे हिस्से पर असर पड़ता है। हम आजकल बिना सारी दुनिया की हालत को नज़र में रक्खे न अलग कुछ सोच सकते हैं, न कर सकते हैं। जिन्हें मेरी यह बात अनोखी सी मालूम होती हो वे ज़रा अपने सुबह के रोज़ाना अख़बार पर निगाह डालें। हमारी हिस्ट्री की किताबें भी उसी दुनिया से मिलनी चाहियें जिस दुनिया में हम रोज़ रहते हैं। मेरे दिल में मि० एच० जी० वेल्स की 'हिस्ट्री आफ़ दी वर्ल्ड' की क़दर है फिर भी मैं चाहता हूं कि हम अभी तक एक ऐसे क़ाबिल विद्वान की बाट जोह रहे हैं और हमें एक ऐसे विद्वान की बहुत बड़ी ज़रूरत है जो 'दुनिया की हिस्ट्री' हमें लिख दे।

इस सवाल का एक और पहलू है। अगर सन और लड़ाइयें हमारे लिए हिस्ट्रियें नहीं हैं तो नई हिस्ट्री और क्या होगी? इसका जवाब बड़ा सीधा है। हमारी नई हिस्ट्री वह होगी जो हमें भावे और जिससे हमारा भला हो। जिस तरह और सब चीज़ों की जानकारी में होता है उसी तरह हिस्ट्री में हम अपने मन की चीज़ें चुन लेते हैं। जिधर को हमारी तबियत ज़्यादा जाती है वैसी ही हम चीज़ें चुनते हैं। हिस्ट्री की पुरानी किताबों को अगर हम देखें तो ये बात साफ़ समझ में आ जाती है। जो लोग हकूमत और बहादुरी के कारनामों में ज़्यादा आनन्द लेते थे उन्होंने उस ज़माने में बड़े बड़े मुल्क जीतनेवालों, उनकी लड़ाइयों और जीतों का हाल लिखा और लिखवाया। उसके बाद वह ज़माना आया जब लोग राजकाज और हकूमत के तरीक़ों पर सोचने लगे। इन लोगों को बड़े बड़े राज काजी लोगों और उनकी तरह तरह की हकूमतों की हिस्ट्रियाँ पसन्द आने लगीं। फिर वह ज़माना आया जब लोगों के सामने रोटी, पैसे और धन दौलत का सवाल सबसे बड़ा सवाल दिखाई देने लगा। उन्हें इसी सवाल में दुनिया की सबसे बड़ी मुसीबतें और इसी के हल में दुनिया की आख़िरी भलाई मालूम होने लगी। इस तरह के लोगों को पुराने ज़माने का सारा इतिहास भी धन-दौलत के बँटवारे का इतिहास या उसी


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बेइन्साफ़ियों और सुधार की कोशिशों का इतिहास दिखाई देने लगा। अभी तक लोगों की निगाह इधर ही को ज़्यादा है क्योंकि हमारी नसल के सामने बड़ा सवाल यही रोटी पैसे और धन दौलत का सवाल रह गया है। हिस्ट्री में से उन सब बातों को चुनना, जिनसे लोगों के माल असबाब के घटने-बढ़ने, जगह जगह जमा होने या बट जाने का पता चलता है, इतना ज़्यादा बढ़ गया कि बहुत से लोग अभी तक इस तरह की चीज़ों को हिस्ट्री समझते हैं। पर अब साइन्स का ज्ञान चारों तरफ़ इतना बढ़ता जा रहा है और उससे दुनिया के रहन सहन और विचारों में इतने नए नए उलट फेर होते जा रहे हैं कि हम चाहें या न चाहें हमारा ध्यान अब एक दूसरी तरह की हिस्ट्री की तरफ़ जा रहा है। जैसे कलचर या संस्कृति, आर्ट यानी कला और साहित्य यानी अदब और आदमी की आत्मा से वास्ता रखनेवाली चीज़ें ये सब कुछ लोगों के लिए इन्सान और क़ौम के सबसे बड़े कारनामे हैं। इस तरह के लोग बिलकुल एक दूसरी तरह की हिस्ट्री माँगते हैं। इन सब चीज़ों पर बहुत सी अलग अलग हिस्ट्रियाँ हैं लेकिन हमें जिस चीज़ की ज़रूरत है और जिसे दुनिया माँग रही है वह है आदमी के इन सब कामों को मिलाकर एक मिली हुई हिस्ट्री। अभी हमारे पास न इस तरह की कोई हिस्ट्री है न हमें उसके लिखनेवाले का पता है। कुछ ऐसी किताबें हैं जिनमें यह सब चीज़ें शामिल कर लेने की कोशिश की गई है। पर आमतौर पर ये किताबें नीरस और फीकी हैं। इसके लिए कोशिश की जानी चाहिये। आजकल हमारी कलचर की जो हालत है वह ज़ोरों के साथ इस चीज़ को माँग रही है। हम न्यूटन का क्रामवेल से या गौतम बुद्ध का नेपोलियन से मुक़ाबला किस तरह करें ? आप कह सकते हैं कि यह हो ही नहीं सकता। पर हमें यह करना पड़ेगा। दुनिया ने आइन्सटोन को हिटलर के साथ एक ही तराज़ू में तौल डाला। उसके नतीजे भी हम सबको मालूम हैं। हम दुनिया की तरह तरह की चीज़ों में जिसकी जितनी क़दर करते हैं उसी का अक्स हमारी हिस्ट्री पर पड़ता है। इस तरह से हिस्ट्री फ़िलासफ़ी की एक शाख़ है।

जो कुछ मैंने कहा है यह सब लोगो को चक्कर में डाल देनेवाली चोज़ है पर हमारी हालत इस वक़्त है ही ठीक इसी तरह की। हमारी दुनिया इतने दिमाग़ी चक्कर में पड़ी हुई है कि हम उसे देखकर हैरान और बेबस से रह जाते हैं। हिस्ट्री लिखनेवाला हमें किस तरह मदद दे सकता है ? उसकी लिखी किताबें हमारे लिए क्या कर सकती हैं ? हिस्ट्री यह चाहती है कि जिस दुनिया में हम रह रहे हैं पहिले उसको हम साफ़ साफ़ देख सकें। यह बात अभी मुशकिल है। अच्छी हिस्ट्री की किताब आजकल की दुनिया पर हमारी निगाह ही को पक्का देगी। हिस्ट्री पढ़ने के लिए ज़रा सूझबूझ की ज़रूरत है, लेकिन हिस्ट्री केवल उपन्यास भी नहीं है। हिस्ट्री के लिए फ़िलासफ़ी समझने की ज़रूरत है, लेकिन हिस्ट्री केवल फ़िलासफ़ी भी नही है। फ़िलासफ़ी में मन दौड़ाने से ही हिस्ट्री समझ में नहीं आ सकती, हिस्ट्री समझने के लिए पहिले इस बात को मानना ज़रूरी है कि इस वक़्त हमारी जो कुछ हालत है वह हमारी इससे पहिले की हालत का नतीजा है। इसलिए हमारे लिए यह जानना ज़रूरी है कि हम अपनी इस हालत तक किस किस तरह पहुँचे और दुनिया के जो कुछ इस समय के दुःख हैं वे कैसे पैदा हुए। इसीके साथ साथ हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि हर नसल के लोग अपने ही ढङ्ग से अपनी पिछली हिस्ट्री गढ़ लेते हैं। यह बात ग़लत है कि हिस्ट्री सदा सबको एक सी दिखाई देती है। हाल में जब अलग अलग मुल्कों के लोगों में अपने अपने मुल्कों और अपनी अपनी क़ौमों की जा-बेजा तरफ़दारी ज़ोरों के साथ चल पड़ी तो फ़ैसिस्ट मुल्कों में, हिन्दुतान में और जगह जगह हिस्ट्री नए सिरे से लिखी जाने लगी। आजकल की इस तरह की किताबों में अपनी अपनी क़ौमों के और दुनिया के नई तरह के नफ़े-नुकसान और नए नए क़ौमी और झूठे क़िस्से और नई नई गप्पें तक जोड़ी जा रही हैं। इनमें कुछ चीज़ें क़ुदरती हैं और कुछ बुरी हैं, पर यह सच्ची हिस्ट्री नहीं है। इन किताबों में पुराने लेखों, इमारतों, सिक्कों और दूसरी चीज़ों से निकाल निकालकर बातें रख दी जाती हैं। इन अपनी अपनी क़ौमी निगाह से लिखी हुई हिस्ट्रियों में बुराई यह नहीं है कि उनमें कहानियाँ लिखी हैं। कहानी तो हिस्ट्री है ही, लेकिन सच्ची हिस्ट्री वह कहानी है जो सचाई की कसौटी पर परखी और कसी जा सके। अपनी क़ौमी निगाह से लिखी हुई हिस्ट्रियाँ कसौटी पर खोटी साबित होती हैं।

## नई हिस्ट्री क्या हो ?

इस पर भी अगर दुनिया की नई हिस्ट्री से हम बहुत बढ़ बढ़कर उम्मीदें बाँधें तो वे पूरी नहीं होंगी। उससे हमारे सवाल हल नहीं होंगे पर इन सवालों पर कुछ रोशनी ज़रूर पड़ेगी। हम अपने आजकल के ज़माने को भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ठीक ठीक और एक नए ढंग से समझने लगेंगे। हम यह जान जायेंगे कि आदमी की हिस्ट्री जितना हम समझते थे उससे कहीं ज़्यादह पुरानी है। हो सकता है कि हमारी आगे की हिस्ट्री भी इतनी लम्बी हो। नई हिस्ट्री से हममें कुछ नम्रता, कुछ दीनता आवेगी। उसे पढ़कर इन मायूसी के दिनों में जब सब तरफ अन्धेरा ही अन्धेरा दिखाई देता है हमें उम्मीद की एक किरन दिखाई देगी।

हम दुनिया की नई हिस्ट्री कहाँ से शुरू करें इसका जवाब यह है कि शुरू से शुरू करिये। लेकिन शुरू है कहाँ? हिस्ट्री का असली शुरू हमारा अपना ज़माना है और यहीं से हम हिस्ट्री शुरू कर सकते हैं। हम जिस दुनिया को जानते हैं वह सिर्फ़ हमारे ज़माने की और इस नसल की दुनिया है। जिन लोगों को हम अच्छी तरह जानते हैं वह हम ख़ुद हैं। हम जो हिस्ट्री बना सकते हैं वह इसी सामग्री और इन्हीं कागज़ों, सिक्कों, इमारतों, हड्डियों और दूसरी पुरानी चीज़ों से बना सकते हैं जो हम तक पहुँच पाई हैं। जिसे हम बीता ज़माना कहते हैं उसका सब मसाला और गवाहियें आज हमारे चारों तरफ जमा हैं। ऐसी हालत में सबसे अच्छा यही मालूम होता है कि हम अपने इस ज़माने से शुरू करके पीछे को हटते हुये हिस्ट्री के शुरू तक पहुंचने की कोशिश करें। एक दर्जे तक विद्वान लोग ऐसा ही करते भी हैं। हम सब विद्वान नहीं हैं लेकिन हम विद्वानों की मेहनत और उनके नतीजों पर भरोसा कर सकते हैं और हम एक और काम भी कर सकते हैं। वह यह है कि अपने इस ज़माने से शुरू करें और पीछे हमें जहाँ कहीं शुरू दिखाई दे वहां तक छलाँग मारकर फिर आगे को बढ़ें।

हर हालत में हमें शुरू अपने ही से करना होगा। हम आजकल आदमी के स्वभाव को जैसा समझते हैं और दुनिया को जैसा समझते हैं वहीं से तो हम पीछे को छलाँग लगा सकेंगे। मैं इसकी मिसाल देता हूं। सर लियोनार्ड वूली मिश्र के पुराने शहर तलल अमार्न में खुदाई कर रहे थे। यह शहर हज़रत ईसा से १४०० बरस पहिले का है। बहुत सी इमारतें खोदने से निकलीं। इनमें से कुछ की बाबत यह समझा गया कि वे मज़दूरों की झोपड़ियाँ हैं जो कतारों में बनी हुई थीं। एक झोपड़ी मिली जिसके आगे का दरवाज़ा चुनकर बन्द कर दिया गया था और जिसके पीछे आने जाने के लिये रास्ता बना लिया गया था। बाकी झोपड़ी में भी इसीके मुताबिक हेर फेर कर लिया गया था। यह हेर फेर क्यों किया गया था? विद्वानों ने यह नतीजा निकाला कि उस झोपड़ी का रहने वाला मज़दूर पुराने ज़माने का एक ग़ुलाम था जो अपने उसी पेशे से बँधा हुआ था। वह अपनी झोपड़ी छोड़कर कहीं नहीं जा सकता था। उसने अपने उन पड़ोसियों से बचने के लिये जिनसे उसे सुख नहीं मिलता था और जो शायद उससे दुश्मनी रखते हों आगे के दरवाज़े को बन्द कर लिया था। इस ख़्याल में इन्सानी हमदर्दी तो है पर यह पिछले ज़माने में आजकल के या बाद के ज़माने को पढ़ना है। हिस्ट्री लिखने वाला इससे बच भी नहीं सकता। वह आदमी के स्वभाव को जितना ख़ुद समझता है उसीसे तो अन्दाज़े लगायेगा।

## तब्दीली और अटूट सिलसिला

हमारी हिस्ट्री का यही अनोखापन है कि हम, जहाँ तक हमसे हो सकता है, पीछे जाने की कोशिश करते हैं, क्योंकि जितनी तबदीलियाँ और उलट फेर दुनियां में हुये हैं हम उन सबको समझना चाहते हैं। हमारे ज़माने की सबसे बड़ी और सबसे चमकती हुई बात तबदीली है। पुराने ज़माने की बाबत जो कुछ सामग्री हमारे पास मौजूद है उससे पता चलता है कि उस ज़माने में और भी बड़ी बड़ी तबदीलियाँ हुई हैं। पर इन सब तबदीलियों के अन्दर से हमें इतिहास की एक लगातार धारा, एक अटूट सिलसिला साफ़ नज़र आता है जिससे हमारा और पिछले ज़माने के लोगों का नाता जुड़ जाता है। उसी अटूटपन की वजह से हम उन लोगों के दिलों और दिमाग़ों को थोड़ा बहुत समझ सकते हैं। हिस्ट्री लिखने या पढ़ने में हमें इस अटूटपन को ज़ोरों के साथ पकड़े रहना चाहिये। उनकी दुनिया हमारी दुनिया से एक अलग दुनिया थी। फिर भी अलग अलग ज़मानों की यह सब दुनियाएं एक डोर में बँधी हुई हैं। हिस्ट्री की कुँजी इन्हीं दो शब्दों में है—तबदीली और अटूटपन। यह दोनों बातें इस तरह एक दूसरे में मिली हुई हैं कि कोई उन्हें अलग अलग नहीं कर सकता।

## धरती की उम्र

हिस्ट्री में हम कितना पीछे जा सकते हैं? हमारी इस ज़मीन की उमर का अन्दाज़ा क़रीब क़रीब दो अरब बरस किया जाता है। कहा जाता है कि क़रीब ३० करोड़ बरस से इस धरती पर जानदार चीज़ें रहती हैं। आदमी की नसल को यहां रहते हुए क़रीब तीस हज़ार बरस हो गए। यह सब आंकड़े क़रीब क़रीब ठीक हैं, बिलकुल नपे तुले नहीं। सर जेम्स जीन्स की यह भी राय है कि हमारी यह धरती अभी दस लाख बरस और चल सकती है। इससे यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ख़याल होता है कि आजकल के लड़कों को स्कूल की हिस्ट्री की किताबों की कितनी भी मुसीबत उठानी पड़ती हो, उस मुसीबत के सामने वह बहुत कम है जो इस धरती के मिट जाने से एक साल पहिले के लड़कों को उठानी पड़ेगी और उन लड़कों को आजकल से कहीं ज़्यादा होम-वर्क करना पड़ेगा।

इस तरह के आँकड़ों का हमेशा हम पर बड़ा असर होता है। पर साथ ही वे हमें हमेशा कुछ फ़र्ज़ी से जँचते हैं। हम अपनी नई हिस्ट्री इस बात से शुरू कर सकते हैं कि यह धरती और यह दुनियां कैसे बनी पर इसमें अलग अलग धर्मों की धार्मिक या पौराणिक कहानियें बीच में आकर गड़बड़ करेंगी और हमें बहुत सी ऐसी बातें फ़र्ज़ कर लेनी पड़ेंगी जिनका ठेका धर्मवालों ने ले रखा है। इसके बाद हम यह बयान कर सकते हैं कि यह धरती धीरे धीरे किस तरह बढ़ती गई। किस तरह पहिले यह सूरज से टूटा हुआ सिर्फ़ एक टुकड़ा था। फिर धीरे धीरे नारंगी की शकल की एक गोल चीज़ बन गई। फिर किस तरह यह धरती ठंडी होती गई, फिर किस तरह जगह जगह नये सिरे से गर्माती गई, किस तरह ज़मीन के बड़े बड़े टुकड़े बने, किस तरह बड़े बड़े समुद्र बने, किस तरह बहुत छोटे से कीड़ों से शुरू करके जानदार बनने लगे और किस अजीब तरह बहुत पुराने ज़माने में एक घर के लोग मिलकर रात दिन रहने लगे। इस तरह की हिस्ट्री लिखी जा सकती है। लोगों ने लिखी भी है, मैंने नहीं। इसके लिए बड़े पक्के और सधे हुए साइन्स जाननेवाले की ज़रूरत है, और ऐसे साइन्स जाननेवाले की जिसकी सूझबूझ भी ख़ूब बढ़ी हुई हो। इससे बड़ा फ़ायदा भी होगा। इससे हमें पता चल जायगा कि हमारी हिस्ट्री के पीछे क्या है यानी किन चीज़ों से हिस्ट्री बननी शुरू होती है। इससे हमें याद आ जायेगा कि ज़िन्दगी एक कितनी छोटी सी चीज़ है। करोड़ों बरसों में करोड़ों मीलों के अन्दर और इस धरती और इन चाँद सूरज जैसी करोड़ों ही दुनियाओं में जहाँ एक गोले और दूसरे गोले में अरबों खरबों मील का फ़ासला है, आदमी बेचारा क्या छोटी सी चीज़ है? यह सवाल एक बार एक अमरीकन पादरी से किया गया। उसने झट से जवाब दिया—"आदमी वह है जो इस सारी ज्योतिष विद्या को जानता है।" इतनी बढ़कर बातें करते हुए भी साइन्स वाले हमें यह एक ख़ास चीज़ बताते हैं कि आदमी की ज़िन्दगी सबसे अलग एक अनोखी ही चीज़ है। जहाँ तक साइन्सवालों की राय है सिवाय हमारी इस धरती के और कहीं आदमी की नसल नहीं है और न इस नसल के पैदा होने का कहीं और सामान मौजूद है। इससे नतीजा निकला कि वह मामूली हिस्ट्री लिखनेवाला भी जो सिर्फ़ आदमी ही की हिस्ट्री लिखता है, वह भी अपने ढंग की एक ख़ास चीज़ लिखता है। इसलिए इन बातों की खोज करना कि हुकूमत करने का रिवाज, लोगों की अपनी निजी जायदादों का रिवाज, ब्याह-शादी, मज़हब, कला, भाषा, जितनी चीज़ों का सम्बन्ध केवल आदमी से है, इतना असंगत या ग़ैरज़रूरी नहीं है जितना ऊपर से देखने में मालूम होता है।

## सीधे सादे सवाल

यहाँ पहुँचकर हमें एक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। बदक़िस्मती से यहाँ एक झगड़े की सी बात आ जाती है। सीधे सादे आदमी हर सवाल के सीधे सादे जवाब चाहते हैं। इतिहास लिखनेवाला जिस तरह के जवाब देता है वे अकसर गोलमोल होते हैं। इतने साफ़ नहीं होते, इसीसे मामूली आदमी चिढ़ने लगता है। जैसे यह सवाल है कि आदमी और औरतों ने शादी करना क्यों शुरू किया? हिस्ट्री लिखनेवाला यही कह सकता है कि कबसे यह हमें नहीं मालूम, शादी का रिवाज बहुत पुराने ज़माने से चला आता है, लेकिन उसकी शकल धीरे धीरे इतनी बदली है कि पुरानी शकल पहिचानी नहीं जा सकती। कभी आदमियों में यह रिवाज था कि औरतें अपने क़बीले या गोत्र के बाहर से ली जाती थीं, किसी इसके ख़िलाफ़ क़बीले या गोत्र के अन्दर से लिए जाने का रिवाज था। इन दोनों रिवाजों के किसी तरह मिल जाने से ही शादी का रिवाज पड़ा होगा। यह भी हो सकता है कि आस्ट्रेलिया के पुराने बाशिन्दों की तरह किसी बहुत पुराने पूजा-पाठ के तरीक़े में से धीरे धीरे शादी का रिवाज पैदा हो गया हो। ऐसी ही बहुत-सी चीज़ें हो सकती हैं लेकिन असली बात क्या है यह हम नहीं जानते। इसी तरह की एक दूसरी मिसाल लीजिये। आपको चकमक पत्थर का एक पुराना औज़ार दिखाया गया। साइन्सवाला कहता है कि यह बहुत ही पुराने ज़माने का है। मामूली आदमी फट से पूछता है "कितने पुराने ज़माने का?" इसके जवाब में हिस्ट्री लिखनेवाला ज़मीन की खुदाई करनेवालों के हवाले देता है। वह अलग अलग ज़मानों या युगों के बड़े बड़े नाम लेता है। लेकिन ठीक ठीक तारीख़ या सन् भी नहीं बता सकता। मामूली आदमी को स्कूल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हुए तो तारीख़ों और सनों से नफ़रत होती है, लेकिन इस जवाब से उसकी बिलकुल तसल्ली नहीं होती। वह समझता है कि हिस्ट्री लिखनेवालों का ख़ास काम ही हर चीज़ की तारीख़ बताना है।

मामूली आदमी को जब उसके किसी सवाल के जवाब में विद्वान लोग उलटे सुलटे जवाब देने लगते हैं, कभी कुछ और कभी कुछ तो वह और भी घबरा जाता है। मिसाल के तौर पर आदमी की बोलने की ताक़त को लीजिये। सवाल है भाषा कैसे शुरू हुई? ठीक ठीक तारीख़ न सही लेकिन कैसे और कहाँ तो पता चले। हमारे विद्वान पुरखों को इस बात का पूरा भरोसा था कि आदमी की जितनी बेशुमार भाषाएं और बोलियें हैं वे सब शुरू में एक ही बोली थी और एक ही से धीरे धीरे बढ़ते बढ़ते इतनी बोलियाँ बन गईं। पर आजकल की भाषा की हिस्ट्री लिखनेवाले इस बात से बिलकुल साफ़ इनकार करते हैं। वे कहते हैं कि शुरू में सब आदमियों की एक ही बोली थी इसका कोई सबूत नहीं। कुछ बोलियों में जैसे लैटिन, ग्रीक, रूसी और संस्कृत, जिन्हें मिलाकर इन्डो-यूरोपियन बोलियाँ कहा जाता है इतनी समानता है, वे एक दूसरे से इतनी मिलती हैं कि मुमकिन है वे सब एक ही बोली से निकली हों और शुरू में इनकी जगह कोई एक आर्य बोली रही हो। पर हम न ठीक ठीक जानते हैं और न भरोसे के साथ कह सकते हैं। इसी तरह फ़र्ज़ कीजिये आप यह जानना चाहें कि शुरू की बोलियाँ थोड़े से शब्दों की सीधी सादी और आसान बोलियाँ थीं या नहीं? इसका जवाब आपको अलग अलग तरह से मिलेगा। एक कहेगा कि "हाँ, शुरू की बोली में बहुत ही थोड़े शब्द थे।" दूसरा कहेगा, "नहीं, शुरू की बोलियों में बहुत ज़्यादा शब्द थे।" यह क्यों? क्योंकि सीधी सादी बोली जिसे आम आदमी बहुत पसन्द करता है असल में बहुत ही तरक़्क़ी करने के बाद बहुत ही सोचने, परखने और चीज़ों के अलग अलग गिरोह बनाने के बाद पैदा होती है। शुरू के नीम जंगली आदमी में इतनी सूझ और समझ नहीं थी। वह हरएक चीज़ को अलग अलग देखता था और हरएक के अलग अलग नाम रखता था। जैसे फ़ुएजियन कहलाने वाले नीम जंगली आदमी जिसे हम हिन्दुस्तानी में 'वह' कहते हैं, या जिसे अंग्रेज़ी में 'ही' (He) और 'शी' (She) कहा जाता है उसके लिए बीस अलग अलग शब्द काम में लाते थे।

इसी तरह अगर हम यह जानना चाहें कि आदमी की अलग अलग नसलें कैसे चलीं तो उतने ही गोलमाल जवाब मिलेंगे। कुछ लोगों को अलग अलग नसलों या जातियों में साफ़ फ़रक़ दिखाई देता है। वे पूछते हैं कि यह फ़रक़ कबसे शुरू हुआ। पर विद्वानों को अलग अलग नसलों या जातियों में यह फ़र्क़ इतना साफ़ साफ़ नज़र नहीं आता। उनके लिये एक जाति के आदमियों को दूसरी जाति के आदमियों से अलग कर देना इतना आसान काम नहीं है। यह पता लग चुका है कि सिर के माप के फ़रक़ या रंग के फ़रक़ आस पास के हालात बदलने के साथ साथ धीरे धीरे बिलकुल बदल जाते हैं और मिट जाते हैं। हमें नहीं मालूम कि इस तरह के फ़रक़ कहाँ कब और किस तरह शुरू हुए।

## आदमी की नियामतें

तो फिर हमें क्या मालूम है? जहाँ तक हमारे पास जानने का सामान मौजूद है हमें यही पता चलता है कि आदमी की हिस्ट्री शुरू होते वक़्त दो ख़ास ताक़तें उसमें पैदा हो गई थीं। एक उसके हाथ और दूसरे उसकी ज़बान। इन दोनों की मदद से वह और सब जानदारों से बढ़ता चला गया। हम यह नहीं बता सकते कि यह दोनों चीज़ें उसमें कैसे आईं। हम इतना भर कह सकते हैं कि उसके हाथ और ख़ासकर उसका अंगूठा इतना अच्छा हो गया कि वह दूसरे जानदारों के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा अच्छे औज़ार बना सकता था। यही आजकल के सारे उद्योग धन्धों और बड़े बड़े कल-कारख़ानों का बीज था। बोलने की ताक़त क्यों और कैसे पैदा हुई हमें नहीं मालूम। ख़ाली अन्दाज़े हम दौड़ा सकते हैं पर उनके लिए कोई सुबूत नहीं है। इतनी बात पक्की है कि सारी साइन्स, आर्ट, मज़हब, फ़िलासफ़ी, क़ानून, राजकाज, साहित्य और और बड़ी बड़ी चीज़ें इसी बोलने की ताक़त से निकलीं। आदमी का इतिहास शुरू होने के वक़्त एक और तीसरी ताक़त उसके पास शुरू से मिलती है यानी आग। यहाँ भी हम नहीं जानते कि आग आदमी को कब मिली। अन्दाज़े हम लगा सकते हैं।

एक क़िस्सा मशहूर है कि आदमी देवताओं के यहाँ से आग चुरा लाया। इससे कम से कम यह तो पता चलता है कि आदमी की तरक़्क़ी में आग ने कितना ज़बरदस्त हिस्सा लिया। एक ज़माना वह था जिसे आख़िरी बरफ़ का ज़माना कहा जाता है कि जिसमें आग ही ने आदमी को बचाकर रक्खा।


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आदमी की ही हिस्ट्री का जबसे पता चलता है तबसे वह दोनों हाथ, औज़ार, आग और बोलने की ताक़त से लैस है। हिस्ट्री लिखनेवाले का इस बात की खोज करना काम नहीं है कि यह चारों चीज़ें आदमी के पास कैसे और कबसे आईं। उसका काम यह पता लगाना है कि यह धीरे धीरे बढ़ती कैसे गईं? सब साइन्सवालों का काम चीज़ों के शुरू या उनके आख़ीर तक पहुंचना नहीं है। उनका काम सिर्फ़ चीज़ों की बढ़ौती घटौती और उनके हेर फेर को समझना है। साइन्सवाला ज़िन्दगी के रहस्यों को हल नहीं करता लेकिन वह आपको यह अकसर बता सकता है कि यह रहस्य किस तरह बदलते और घटते-बढ़ते रहे हैं।

## नियोलिथिक ज़माना (नया पत्थर का ज़माना)

इन्सानी क़ौम की तरक़्क़ी में एक बहुत बड़ा ज़माना वह था जिसे नियोलिथिक ज़माना या नए पत्थर का ज़माना कहा जाता है। उस ज़माने में आदमी के औज़ार बराबर ज़्यादा बढ़िया और ज़्यादा पैने होते चले गए। पत्थर की कुल्हाड़ियाँ पहले छीलकर नुकीली की जाती थीं, रगड़ी जाती थीं और फिर पानी की मदद से तेज़ की जाती थीं। शुरू में आदमी चकमक पत्थर औज़ारों के लिए काम में लाता था। फिर वह दूसरे पत्थरों को काम में लाने लगा। फिर धीरे धीरे ज़मीन के अन्दर से निकालकर ताँबा, काँसा और लोहा काम में लाने लगा। गेहूं या चावल का इस्तेमाल, कपड़ा बुनना, कातना, मिट्टी के बरतन बनाना, हल चलाना, कुम्हार का चाक, मकान बनाना, कपड़े पहिनना, जानवर पालना—यह सब आदमी की बड़ी से बड़ी ईजादों में से हैं और ये सब ईजादें नियोलिथिक ज़माने की हैं। मोटे तौर पर हम यह कहते हैं कि यह सब ईजादें दस-बारह हज़ार साल पहिले की हैं। पर बड़ी से बड़ी चीज़ें ईजाद करनेवाले आदमियों के हम नाम तक नहीं बता सकते। सिर्फ़ कुछ बातें हमें मालूम हैं। इन बड़ी बड़ी ईजादों में से कई एक ख़ास देश से चली हैं। अमरीका की शुरू की सभ्यताओं में कुम्हार का चाक और घोड़ा कभी नहीं पहुँचे। मिट्टी के बरतन बनाना कुछ क़ौमों या क़बीलों ने सीख लिया और कुछ ने नहीं सीखा। गेहूँ का इस्तेमाल सबसे पहिले शायद मिस्र में शुरू हुआ। अब गेहूं दूर दूर तक काम में आता है। इससे कई तरह के सवाल पैदा होते हैं। मसलन यह कि इस तरह की इजादें एक एक आदमी ने की थीं या बहुतों ने मिलकर। हमें ठीक तो नहीं मालूम पर अन्दाज़ा यह है कि ख़ास ख़ास क़ौमों में एक एक आदमी ने ही यह ईजादें की होंगी। कुछ क़ौमें ऐसी भी थीं जो किसी ईजाद के बहुत पास तक पहुंचकर वहीं रुक गईं, जैसे घोड़ा बहुत दिनों तक खाने के काम में आता रहा। फिर बहुत ज़माने के बाद घोड़े को पाला जाने लगा और सवारी और बारबरदारी के काम लाया जाने लगा। जबसे घोड़ा बोझ ढोने के काम में आने लगा तबसे लड़ाई के तरीक़ों में और आदमी के एक जगह से दूसरी जगह जाने में बहुत-बड़ा फ़रक़ पड़ गया। आदमी की ज़िन्दगी में यह एक ज़बरदस्त इनक़लाब था। घोड़े को इस काम में लाना पहिले उन क़ौमों ने शुरू किया जिनके यहाँ बड़ी बड़ी घास की ज़मीनें थीं। कई बड़ी बड़ी सभ्यताएं ऐसी हो चुकी हैं जहां घोड़े का निशान नहीं था। मिस्र में ईसा से १५०० बरस पहले तक घोड़े को कोई जानता तक न था। यह बड़ी बड़ी ईजादें फैलीं कैसे? कुछ लोगों का ख़याल है कि इन्सानी सभ्यता एक जगह से यानी मिस्र से चारों तरफ़ फैली। दूसरों का ख़याल है कि अलग अलग चीज़ें अलग अलग जगहों में ईजाद होती रहीं। इस बारे में अभी पक्की बात कुछ नहीं कही जा सकती लेकिन बहुत शुरू के ज़माने में भी लोगों में थोड़ा बहुत एक मुल्क से दूसरे मुल्क आना जाना और एक चीज़ के बदले में दूसरी चीज़ जैसे अम्बर, सोना, कांसा बदलाव में लेकर एक तरह की तिजारत भी शुरू से होती थी।

आदमी के समाज का संगठन कैसे शुरू हुआ जिससे आख़ीर में जाकर राज कायम हो गये? इसका भी कुछ कुछ पता चल सकता है। किस तरह से तरह तरह के रिवाज पड़ते चले गये और उन रिवाजों से होते होते क़ानून बनने लगे? किस तरह पहिले जब झगड़े होते थे तो लोग एक दूसरे को मार डालते थे? फिर कुछ चीज़ें जुर्म बन गईं। जुर्माने होने लगे, जेलखाने बने और लोगों को सज़ा देने का रिवाज पड़ा। तरह तरह के मज़हबी रीत रिवाज कैसे पैदा हुए? कैसे लोगों को धर्म का ख़्याल हुआ? मरने के बाद की ज़िन्दगी में यक़ीन कैसे होने लगा? पाप का ख़्याल, बुराई का ख़्याल, ईश्वर या देवताओं का ख़्याल, शादी का रिवाज, कुटुम्ब के मिलकर रहने का रिवाज, इनसानी समाज के यही बुनियादी संगठन हैं। इन सब सवालों पर बहुत मेहनत की जा चुकी है। फिर भी हिस्ट्री लिखनेवाले इन ईजादों का ठीक ठीक वक्त और ब्योरा नहीं बता सकते। जहाँ बताते भी हैं वहाँ उनकी राय एक दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


से नहीं मिलती। आदमी की एक कृति ऐसी है जिसमें मालूम होता है कभी तरक़्क़ी होती रहती है और कभी इसका उलटा होता रहता है,—जैसे कला। पैलियोलिथिक ज़माने के आर्टिस्ट अपने बाद के नियोलिथिक ज़माने के आर्टिस्टों से कहीं ऊँचे दरजे के थे।

ख़ुलासा यह कि आज से दस-बारह हज़ार साल पहिले के नियोलिथिक ज़माने के आदमी का रहन-सहन ऐसा था जिसे हम आजकल थोड़ा बहुत समझ भी सकते हैं। ये बड़ी बड़ी ईजादें शुरू कहाँ से हुईं इसका पता लगाने में ज़्यादा कामयाबी नहीं हुई। हमें तो यही मानकर चलना पड़ता है कि आदमी की हिस्ट्री जब से शुरू हुई तब से वह इन चीज़ों को काम में लाता था। हिस्ट्री का सबसे बड़ा काम और उसका असली आनन्द और फ़ायदा इसी में है कि हम यह देखें कि यह सब चीज़ें धीरे धीरे किस तरह बदलती, फैलती और बढ़ती गईं।

---

# मीनार

श्री विद्याधर कुलश्रेष्ठ 'कुसुम'

खड़ी मीनार यह कैसी ?
सदा ऊँचा किये मस्तक न नीचे नेत्र करती है;
मनुष्यों के हृदय में मोदमय आनन्द भरती है;
बड़े आश्चर्य से यह भ्रान्त दुनियाँ कह रही हमसे—
'खड़ी मीनार यह कैसी ?'

हमारे प्राण की नीवें, हमारे मांस का गारा;
हमारे हाड़ की ईंटें, हमारा ही विभव सारा,
हमारी देह दुख-आक्रान्त होकर कह रही हमसे—
'खड़ी मीनार यह कैसी ?'

हमारी आँख का पानी; हमारी स्नेह - चिकनाई,
हमारी सांस की सीढ़ी, हृदय की व्योम - ऊँचाई;
हमारी तप्त आहें क्लान्त होकर कह रहीं हमसे—
'खड़ी मीनार यह कैसी ?'

गए झुक हम, मगर यह गर्व से मस्तक उठाये है;
गए मिट हम, मगर यह स्वर्ग का अमरत्व पाए है;
'हँसो हा' मृत्यु अति दुर्दान्त होकर कह रही हमसे—
'खड़ी मीनार यह कैसी ?'

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# जापान में बौद्ध धर्म

प्रोफ़ेसर विलफ़्रिड ह्वाइटहाउस एम० ए०

जापान के बौद्धों का दावा है कि सच्चा बौद्ध धर्म जापान में ही बाक़ी बचा है। अपनी जन्मभूमि भारतवर्ष में तो बौद्ध धर्म ख़त्म ही हो गया है। बर्मा, सियाम तथा लंका के निवासियों का बौद्ध धर्म 'हीनयान' सम्प्रदाय का होने के कारण नीचे दरजे का है और यद्यपि चीन में बौद्ध धर्म ताङ्ग और सुङ्ग राजकुल के पहले का है, फिर भी पिछली सदियों में उसका ह्रास शुरू हो गया था। इधर उसके पुनरुद्धार का प्रयत्न हो रहा है किन्तु इसकी कोशिशें बहुत ठोस नहीं कही जा सकतीं।

'हीनयान' या प्रारम्भिक बौद्ध धर्म दक्षिणी देशों का धर्म है। मठों के कठोर अनुशासन का पालन करना उसकी विशेषता है। व्यक्तिगत योग्यता पर उसमें ज़ोर दिया जाता है और बुद्धावस्था प्राप्त करने के लिए अनासक्त भावना और सम्पूर्ण अपरिग्रह पर ज़ोर दिया जाता है। इसके विपरीत जापान का महायान 'सहज उपायों' से सभी मनुष्यों को बुद्धावस्था प्राप्त करने की शिक्षा देता है।

ईसा की सातवीं शताब्दी में जापान में 'हीनयान' का प्रवेश हुआ। परन्तु हीनयान चीन तथा कोरिया के भौगोलिक रास्ते और सांस्कृतिक माध्यम से वहाँ जा सका था। फलतः उसका विशुद्ध भारतीय स्वरूप वहां न पहुँच सका। उसका स्वरूप बदल चुका था और वह बदला हुआ रूप भी वहाँ पर बहुत दिनों तक नहीं टिक सका, महायान ने उसकी सर्वथा जगह ले ली।

जापानी बौद्ध धर्म के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वहां का बौद्ध धर्म यद्यपि वास्तव में भारतीय बौद्ध ग्रंथों पर ही आधारित है परन्तु जापानी विशेषताओं का उसके अन्दर काफ़ी समावेश हुआ है। वह सनातन महायान सम्प्रदाय के मूल तत्वों को ही नहीं अपितु बौद्ध धर्म के मूल तत्वों को भी पीछे छोड़ चुका है और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल एक विशेष राष्ट्रीय धर्म का स्वरूप ग्रहण कर चुका है। वह केवल नाम के लिये 'बौद्ध धर्म' है, उससे मौलिक सिद्धान्त और उसके अनुयाइयों का आचरण बिलकुल भिन्न है।

जापान के पुराने और महायान सम्प्रदाय के अय सनातनी पन्थों में एक 'केगान' (Kegon) पन्थ है। जापान में इसका आयात ईसा की आठवीं शताब्दी में हुआ था और एक दूसरा पन्थ 'टेण्डाइ' (Tendai) सन् ८०४ ई० में भिक्खु सैचो (Saicho) लाया था जो 'देंग्यो दायशी' (Dengyo Daishi) के नाम से भी मशहूर है। ये उपसम्प्रदाय वास्तव में लोकप्रिय न थे। ये बौद्ध दर्शन का पाण्डित्यपूर्ण अध्ययन करनेवाली धार्मिक संस्थाएं मात्र थीं।

'शिङ्गान' (Shingan) यानी सत्य शब्द की उत्पत्ति के साथ ही साथ हम उस बौद्धधर्म के दर्शन करते हैं जो कि अपने रूप, रंग और आत्मा में जापानी है। इसे सन् ८०६ ई० में जापानी भिक्षु किकाइ (Kikai) ने चलाया था। किकाइ को कोबो दायशी (Kobo Daishi) भी कहते हैं। शिंगों गुरुओं के प्रभावस्वरूप जापान के शिन्तो धर्म (देवताओं का मार्ग) और बौद्ध धर्म के बीच सामंजस्य की क्रिया शुरू हुई। इसमें सन्देह नहीं कि यद्यपि शिन्तो धर्म की निश्चित रूप रेखायें नहीं थीं उसका धार्मिक आकार प्रकार नहीं बन पाया था, उसमें नैतिक नियमों का अभाव था और उसका सम्पूर्ण लक्ष्य केवल विविध गोत्रों के पूर्वजों की पूजा करके उन्हें खुश करना मात्र था फिर भी वह इतना मज़बूत साबित हुआ कि बौद्ध धर्म को उसका जायज़ अस्तित्व स्वीकार करके उसे जगह देनी पड़ी। प्रकृति के देवताओं के अलावा जापानियों के इष्टदेवों और देव तुल्य जापानी सम्राटों के पूर्वजों को जिनकी पूजा शिन्तो धर्म में होती थी बुद्ध या बोधिसत्व का अवतार माना जा लगा।

शताब्दियों तक शिन्तो धर्म जीवित रहा और बौद्ध धर्म के सहयोग से अनुप्राणित होता रहा। इस प्रकार धीरे धीरे जापानी क़बीलों का सृष्टिकर्त्ता या आदि पुरुष 'अमेतराठ' (Amaterasu) सर्वशक्तिमान देवता के गुणों से विभूषित कर दिया गया।

बौद्ध धर्म का दूसरा जापानी स्वरूप ज़ेन (Zen) था। कहा जाता था कि इसका सम्बन्ध हिन्दू सन्त बोधिधर्म से था, परन्तु इस पर अधिक असर लाओ-त्ज़े का था। तेरहवीं शताब्दी के बाद विकसित होनेवाले ज़ेन दर्शन का कोई सम्बन्ध बौद्ध धर्म से नहीं रह गया। ज़ेन धर्मावलम्बियों के अनुसार बौद्ध धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करनेवाले, हर करनेवाले और बाल की खाल निकालनेवाले हैं। ज़ेन जापानी संस्थापक कहता है, "बौद्ध ग्रंथों के बारह परिच्छेद काग़ज़ के एक टुकड़े के बराबर हैं।" दूसरी ओर बौद्ध धर्म वलम्बी अनेक बौद्ध धर्म सम्बन्धी पुस्तकों के रचयिता प्रोफ़ेसर रसेल से सहमत हैं कि ज़ेन धर्म "महामूर्खता खान है। यदि यह मान लिया जाए कि जापान के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


धर्म मूर्खता से भरे हैं तो यह मानना पड़ेगा कि ज़ेन धर्म मूर्खता में सबसे बाज़ी मार ले गया है।"

इसी समय दो और बौद्ध सम्प्रदाय क़ायम हुए जिनके नाम 'जोडो' और 'शिन्शु' हैं और जिन्हें एक साथ 'जोडो शिन्शु' कहते हैं। ये बौद्ध धर्म के सच्चे स्वरूप से बहुत दूर थे और आज भी जापान में इतने प्रचलित हैं कि हम आज के जापानी बौद्ध धर्म को 'जोडो-शिन्शु' के नाम से ही पुकार सकते हैं। ये दोनों सम्प्रदाय अपने मूल रूप में भी जापानी हैं और उनका कोई भी सम्बन्ध भारत या चीन के बौद्ध धर्म से नहीं है।

जोडो सम्प्रदाय ११७५ ई० में गेंकु भिक्षु के द्वारा संस्थापित हुआ। गेंकु को होनेन भी कहते हैं। उसने लोगों को उपदेश दिया कि पवित्र नाम के जाप से ही बुद्धावस्था बड़ी सरलता से प्राप्त की जा सकती है। महायान सम्प्रदाय यम-नियम पर ज़ोर देता था परन्तु जोडो सम्प्रदाय में इसकी आवश्यकता ही नहीं थी। इसके अनुसार हमें (दैवी) 'अनुग्रह' की प्रतीक्षा मात्र करनी चाहिए। उस अनुग्रह के ही द्वारा हम निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। हमें स्वयं कोई प्रयत्न नहीं करना होगा। वास्तव में जोडो धर्म परिस्थिति-जन्य था। आज के युग में बुद्ध के उपदेशों और सिद्धान्तों को हम समझ भी नहीं सकते। वे ठीक समय विशेष के थे और उसी समय ठीक ठीक समझे जा सकते थे। जापानी बौद्ध इसी कारण बुद्ध की मृत्यु के बाद के समय को हज़ार-हज़ार सालों के तीन भागों में बाँटते हैं :

(१) सच्चे बौद्ध धर्म का युग,
(२) नक़ली बौद्ध धर्म का युग,
(३) पतितावस्था का युग।

आज का समय तीसरे युग का है। इसलिये हम लोगों से यह आग्रह नहीं कर सकते कि बुद्ध की सच्ची शिक्षा को मानें। हम केवल 'अमिदा' (Amida) में ही विश्वास रख सकते हैं। अमिदा ही हमारी रक्षा करेगा। ज़ाहिरा देखने में 'जोडो' ईसाई धर्म के समान प्रतीत होता है। ईसाई धर्म में भी अनुग्रह पर ज़ोर दिया गया है और कहा गया है कि इसीके सहारे मनुष्य स्वर्ग तक जा सकता है।

जोडो-शिन्शु का दूसरा सम्प्रदाय 'शिंशु' शिनरान शोनिन (११७३-१२६२) का क़ायम किया हुआ है। इन दोनों सम्प्रदायों के अनुयाइयों का कहना है कि इनके सिद्धान्तों का प्रतिपादन स्वयं साक्यमुनि ने किया था और उन सिद्धान्तों का प्रचलन लगभग ७५० वर्षों के बाद शिनरान शोनिन ने किया।

इन सम्प्रदायों का यह कहना भी है कि बौद्ध धर्म बहुत जटिल है इस कारण साक्यमुनि ने अपने शिष्यों को दूसरे मार्ग बतलाये। ये मार्ग एक ही लक्ष्य की ओर हमें ले जाते हैं परन्तु उनके सूक्ष्म विश्लेषण करने पर पता चलता है कि एक से मनुष्य अस्थायी रूप से मोक्ष प्राप्त करता है और दूसरे से स्थायी रूप से। पहले को हीनयान कहते हैं और दूसरे को महायान। हीनयान द्वारा लक्ष्य को सम्पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता अपितु उसकी एक अवस्था तक पहुँचा जा सकता है जब कि महायान द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इस कारण महायान हीनयान से बड़ा है।

महायान निर्वाण के दो रास्ते बतलाता है—एक रास्ता यह है कि मनुष्य अपने आप यम-नियमों के पालन द्वारा निर्वाण या मोक्ष प्राप्त कर सकता है और दूसरा रास्ता यह है कि अमिदा के अनुग्रह द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त किया सकता है। यह दूसरा मार्ग ही जोडो सम्प्रदाय का मूल मार्ग है। जोडो का कहना है कि पहला मार्ग असाधारण बुद्धि की अपेक्षा रखता है परन्तु दुर्बल मानवों के लिए दूसरा मार्ग ही प्रशस्त है।

शिंशु सम्प्रदाय वाले कहते हैं कि बौद्ध धर्म को जापान में लानेवाले भिक्खु शोतोकु तैशी (५७२-६२१ ई०) थे। भारत का करुणामूलक बौद्ध धर्म चीनी बौद्ध धर्म तथा जापान की अपनी विशेषता यानी साहस से मिलकर जीवन और कर्म का सन्देश देने लगा। शोतोकु तैशी के हाथों जापानी बौद्ध धर्म जापान की क्रियाशीलता और व्यवहारिकता से भरा हुआ दर्शन बन गया।

शोतोकु तैशी जन श्रुतियों के अनुसार न केवल बौद्ध धर्म ही बल्कि जापान के समस्त गुणों का आदि प्रवर्त्तक समझा जाता है। कहा जाता है कि भारत में उत्पन्न होने और चीन होकर जापान पहुँचने तक बौद्ध धर्म में बहुत से अवगुण आ गए थे और उन अवगुणों ने जापानी बौद्ध धर्म के बहुत से गुणों को ढँक लिया। इस युग के पश्चात तेन्दाई (Tendai) पन्थ के प्रवर्त्तक देंग्यो दायसी (Dengyo Daishi) और शिंगो सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक कोबो दायसी (Kobo Daisi) ने चीनी बौद्ध धर्म की बहुत सी विशेषताओं के स्थान पर जापानी विशेषताएं अंगीकृत कीं।

ज़ेन मत जो कि कामाकरू काल (१२-१४ ईसवी) में अपने शिखर को पहुँचा, उसी युग में प्रचलित जोडो तथा शिन्शु सिद्धान्तों से मेल नहीं खाता। जोडो तथा


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिन्शु जहां व्यक्ति के अपने प्रयत्नों पर ज़ोर न देकर किसी दूसरे के अनुग्रह पर ज़ोर देते हैं वहां ज़ेन मत व्यक्ति के अपने प्रयत्नों पर ही ज़ोर देता है।

अन्त में हम एक दूसरे बौद्ध सम्प्रदाय का ज़िक्र करेंगे कि जो ख़ास तौर पर जापानी है। यह जापान में जोडो नेम्बुस्तु के ही समान लोकप्रिय और उसी तरह बौद्ध धर्म से दूर है। यह जापानी देशभक्त निचिरान (Nichiran) द्वारा चलाया गया था। इसके सिद्धान्त म्योहोरेंगे-क्यो अर्थात् 'सद्धर्म पुण्डरीक सूत्र' पर अवलम्बित हैं। उसने जापान को चीनी भिक्षुओं के प्रभाव से बचाया। उसने अपने विचार रिशो-आंकोकु-रान (Rissho-Ankoku-ron अर्थात् सद्धर्म पुस्तक) में व्यक्त किए हैं। इसमें उसने अन्य सम्प्रदायों की भी आलोचना की है। उसके अनुसार अमिदिस्तियों ने बुद्ध का नाम बदल दिया है। हीनयान के सिद्धान्तों को वह नहीं जानता था किन्तु उसने नाराकाल के प्रारम्भिक स्वरूप का खण्डन किया। ज़ेन सम्प्रदाय को वह शैतान की करामात कहा करता था। उसने अपनी पुस्तक में राज से निवेदन किया कि वह इन मत-मतान्तरों को रोक दे। वह लिखता है—"मैं जापान का स्तम्भ बनूंगा। मैं जापान की आंख बनूंगा। मैं जापान का त्राण-कर्त्ता बनूंगा।"

शायद इसकी आवश्यकता नहीं है कि मैं जापानी बौद्ध सम्प्रदाय तथा अन्य दक्षिणी देशों के हीनयानी बौद्ध धर्म की और अधिक तुलना करूँ। अस्थायी रूप से सम्प्रदाय में दीक्षित होने की कोई प्रथा वहाँ नहीं है। धार्मिक आचारों को मानने पर कोई ज़ोर नहीं दिया जाता। हीनयान का जापान में कोई सम्प्रदाय नहीं है। सनातनी महायान मत जैसे केगान और तेन्दन को छोड़कर जो कि अब भी किसी तरह जिये चले जा रहे हैं, जापान में तीन प्रमुख बौद्ध पन्थ हैं—(१) ज़ेन, (२) अमिदवाद और (३) निचिरान।

जापान और अन्य देशों में जो स्थान बौद्ध धर्म का है उसकी तुलना की भी कोई आवश्यकता नहीं है। थाईलैण्ड और जापान में जो संधि हुई थी उस पर एक बौद्ध मठ में बौद्ध रीति एवं आचारों के साथ हस्ताक्षर हुए थे। बौद्ध धर्म के लिए इस प्रकार की आदर की भावना जापान में नहीं है। वहाँ का सम्राट बौद्ध धर्म का उन्नायक नहीं है। वह बौद्ध धर्म को भी नहीं मानता। बौद्ध धर्म को कोई सरकारी मदद नहीं दी जाती। स्कूलों, सरकारी दफ़्तरों और सेना के रहने के स्थानों में कोई धार्मिक समारोह नहीं होता वहां धार्मिक दृष्टिकोण से बौद्ध धर्म के मन्दिर भी नहीं बने। जो मन्दिर आज मिलते हैं वे केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं।

इस विश्लेषण से काफ़ी साफ़ हो जाता है कि बौद्ध-धर्म में जापान का आज कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं। नारा-युग के बाद अर्थात् ईसा की नवीं शताब्दी के बाद से जापान बौद्ध धर्म के विकास से मेल नहीं खाता। जापान में धार्मिक सम्प्रदायों का विकास नेस्तोरियन ईसाई धर्म की प्रवृत्तियों से साम्य रखता है, बौद्ध धर्म से नहीं। ईसा की १४ वीं और बहुत सचेष्ट रूप से १७ वीं शताब्दी से जापानी बौद्ध धर्म का पतन प्रारम्भ हो गया। न तो उसके बाद कहीं बौद्ध धर्म का कोई बड़ा सन्त ही उत्पन्न हुआ और न कोई बड़ा आन्दोलन ही चला। शिन्तो सम्प्रदाय ने इसकी मृत्यु को और अधिक नज़दीक बुलाया। परन्तु साथ ही साथ एक बात ध्यान देने योग्य यह भी है कि शिन्तो सम्प्रदाय ने ही इसे पूरी तरह से नष्ट होने से भी अभी तक बचाया है। शुरू में तो बौद्ध धर्म और शिन्तो धर्म में सामंजस्य होता रहा। और जैसा कि हम ऊपर बतला आए हैं कि प्रारम्भ में तो शिन्तो देवता बुद्ध के अवतार तक स्वीकृत हुए।

किन्तु तोकुगव युग के समाप्त होने पर शिन्तो धर्म का संशोधित रूप तैयार किया गया और वह जापान का राष्ट्रीय धर्म बना दिया गया। इसके अनुसार जापान के सम्राट के पूर्वपुरुष तथा स्वयं उसकी अमतेरासु ओमि कामी (Amaterasu Omi Kami) के रूप में पूजा होने लगी। इस धर्म में बौद्ध धर्म के लिये कोई स्थान नहीं था। शिन्तो धर्म और राज शासन में सामंजस्य उत्पन्न किया गया। राजनैतिक एवं धार्मिक संगठन के लिए शिन्तो मत को स्वीकार किया गया किन्तु शासन और धर्म का यह गठ-बन्धन अधिक दिनों तक न चल सका। इसके मूल में शिन्तो मतावलम्बियों में एकता का अभाव था। सच तो यह है कि इस समय शिन्तो धर्म की रूप-रेखा भी स्पष्ट नहीं थी। हज़ारों साल पुरानी किताबों में से धर्म-तत्व निकाल निकाल कर उसे बनाया जा रहा था।

आज शिन्तो धर्म का मेजी के युग के मुक़ाबले में अधिक निश्चित रूप है। शिन्तो जापान का सैनिक धर्म बन गया है और जिस तरह जापानी राजनीति फ़ासिस्ट सिद्धान्तों के आधार पर चल रही है उसी तरह धर्म के क्षेत्र में भी शिन्तो धर्म सब धर्मों की जगह लेकर जापान को नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक घमण्डी इकाई बनाने के प्रयत्न में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शेष-पत्र

## डाक्टर एन० एस० वर्धन

'शेष कथा' के सम्बन्ध में तुम्हारे भेजे हुये 'विश्ववाणी' के पाठकों के अनेक पत्र मुझे मिले। तुम्हारे पाठक चाहते हैं कि प्रेम के विवेचनात्मक विश्लेषण के साथ साथ स्त्री-हृदय की परिवर्तनशील मनोदशा और समाज की आधुनिक समस्याओं से उनके सम्बन्ध का कोई घटना-चित्रण मैं पाठकों के सामने रखूँ। मुझे प्रसन्नता है तुम्हारे ये पाठक मनोवैज्ञानिक स्तर से सम्बन्धित तर्कों का अनुशीलन करना चाहते हैं। यह श्रेयस्कर भी है और वांछनीय भी।

लगभग दो वर्ष से एक स्वर्गस्थ मित्र के पत्रों का बण्डल मेरे पास पड़ा हुआ है जिनमें इस दृष्टि से उपरोक्त समस्या पर प्रकाश पड़ता है। मैं इन अत्यन्त बहुमूल्य पत्रों की प्रतिलिप 'विश्ववाणी' के लिये भेज रहा हूं। ये मेरे मित्र के 'शेष-पत्र' हैं। इनसे यदि तुम्हारे पाठकों को कोई लाभ पहुँचे तो मुझे प्रसन्नता होगी साथ ही साथ सन्तोष भी। —वर्धन

[ इन अनमोल पत्रों को हम धारावाहिक रूप से 'विश्ववाणी' में प्रकाशित कर रहे हैं—सम्पादक ]

### परिचय

मेरे एक अनन्य मित्र थे जो मुझे घना प्यार करते थे; पर वे चले गये और अब उनके और मेरे बीच में मौत की एक अलंघ्य खाई है।

उनकी मृत्यु के दुःखद संवाद के साथ साथ मुझे उनकी वसीयत के अतिरिक्त उनके पत्रों का एक बण्डल भी मिला। वसीयत के शब्द थे—

"तुम मेरे मित्र हो और मित्रता के नाते सम्भव है इन पत्रों के भाव तुम्हें उचित लगें। मेरे हृदय की पीड़ा की एक झांकी तुम इन पत्रों में पाओगे। मुझे विश्वास है तुम इनकी तह तक पहुंचने का प्रयत्न करोगे। सम्भव है तुम्हें ये पत्र अन्त तक रहस्यमय लगें किन्तु विश्वास करो इनके अन्दर कोई गोपनीयता नहीं हैं, हां व्यक्त करने की अक्षमता हो सकती है। यदि तुम समझो कि इन पत्रों में कुछ थोड़े से व्यक्ति अपने अव्यक्त प्रश्नों का उत्तर पा सकेंगे और अपने जीवन के कड़ुए अनुभवों के प्रति सहानुभूति और अपनापा अनुभव कर सकेंगे तो तुम इन पत्रों का जिस तरह चाहो उपयोग कर सकते हो—केवल मेरा नाम इनके साथ न देना। मृत्यु अपनी काली चादर जब मेरे टिमटिमाते जीवन पर ढक देगी तब मेरे नाम के प्रकाशन से न तो किसी का ज्ञान ही बढ़ेगा और न आनन्द।"

उस बण्डल में मुझे अपने मित्र के ये पत्र मिले। पत्रों में न तो तिथियां थीं और न तरतीब थी। किस विशेष क्रम से उन्हें पढ़ना चाहिये यह बताने में मैं असमर्थ हूँ। वसीयत में इसका कोई उल्लेख न था। यह भी कह सकना कठिन है कि ये पत्र किसी वास्तविक व्यक्ति के नाम हैं अथवा काल्पनिक? ये प्रेषित पत्रों की प्रतिलिपि हैं या अप्रेषित? ये गम गलत करने के लिये लिखे गये हैं या दिल बहलाव के लिये? इनके लिखने का सम्भव है कुछ और भी उद्देश्य हो। फिर भी एक बात निश्चित है कि ये पत्र किसी ऐसे व्यक्ति के नाम हैं, गतात्मा के जीवन में जिसकी घनिष्ट जगह थी।

इन पत्रों के रचयिता कवि और कलाकार दोनों थे। साहित्य से उन्हें बेहद रुचि थी। परिस्थितियों के थपेड़ों ने उन्हें मानव-चरित्र का अच्छा परिचय करा दिया था। वे यात्री भी थे किन्तु बहुत बड़े नहीं। हाँ, अपने देश से वे भली भांति परिचित थे। प्रकृति के वे उपासक थे और जीवन की धूप-छाँह का मोल सागर की इठलाती लहरों, मन्द मृदुल दक्षिणी वातास, मुस्काती चाँदनी और खिल-खिलाती धूप से आँका करते थे। उनकी मृत्यु अचानक ही एक आकस्मिक दुर्घटना से हुई—२१ नवम्बर सन् १९४३ को। मेरा अनुमान है कितनी ही अबाध और अतृप्त उमंगें जीवन के साथ साथ उनके प्राणों में घुट घुट-कर मरी होंगी। उनके पत्रों का यह बण्डल तो मुझे आविष्करण की तरह ही मिला।

इन पत्रों को प्रकाश में लाने से पूर्व मैंने एक आदर-णीय मित्र से परामर्श किया। पत्रों के स्वर्गीय रचयिता उनका अत्यन्त सम्मान करते थे। पत्रों को आद्योपान्त पढ़-कर उन्होंने कहा—

"आलोचक कहेंगे कि इन पत्रों में कवित्व का अना-वश्यक पुट है और भावुकता की मात्रा भी अधिक है। जिनके जीवन में सदा चाँदनी हँसती रहती है उन्हें अमा-वस्या के अन्धकार की तरह ये पत्र रुचिकर न लगेंगे किन्तु दुःख की भट्टी में जिनका जीवन पिघलता रहता है, निराशा और पीड़ा छाया की भांति जिनके साथ रहती हैं उनके लिये ये पत्र निस्सन्देह अतुलित सान्त्वना के निमित्त होंगे।"

इस परामर्श के बाद मैंने इन पत्रों के प्रकाशन का साहस किया। ये जिस क्रम में मुझे मिले थे उसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मैंने इन्हें रखा है। कुछ पत्रों में व्यक्तिगत बातों की काट छांट की स्वतन्त्रता मैंने अवश्य ली है। कुछ बिलकुल निजी पत्रों का प्रकाशन मैंने उचित नहीं समझा। एक बात और—मित्र के अन्तिम अनुरोध का आदर करते हुये मैंने उनके नाम को गोपनीय रखना ही अधिक उचित समझा।

[एक]

प्रिय...!

जो कुछ सा यह जीवन—जितना असह्य है उतना ही पेचीदा है। लगता है मानों घने अँधेरे में आगे बढ़ रहा हूँ। पग पग पर ठोकरें खाता हूँ, गिरता हूँ, उठता हूँ फिर राह के सिरे जोड़ता जाता हूँ। कोई प्रकाश की किरण नहीं जिससे रास्ता दिखाई दे। तुम इतनी दूर हो और हम दोनों के बीच में सदा की तरह एक दीवार है, बहुत ऊँची नहीं लेकिन फिर भी जिसे लांघ सकना सदा की तरह ही असम्भव है। ईश्वर जाने भाग्य हम दोनों से क्या चाहता है!

दिन में मैं तुम्हारी ही बात सोचता हूँ और रात में तुम्हारे ही सपने देखता हूं। दूर बहुत दूर उन सफ़ेद बादलों के बीच में तुम बैठी होगी। सूरज क्षितिज में डूबता होगा और नीले आसमान के ऊँचे ऊँचे शिखर सांझ के अलाव में पिघलकर रात के मुलम्मे में ढलते होंगे। यहां मेरे चारों ओर का वातावरण तो अत्यन्त संकुचित है—सभी वस्तुयें क्षुद्र और निकृष्ट। मन में अरमानों की भूख है लेकिन इनका कोई उपचार नहीं। भीतर की टीस को कैसे सान्त्वना दूं? सम्भव है जीवन का अध्याय अधूरा रह जाय! किसी कवि के शब्दों में—

*न कर फिक्रे दवा, रहने भी दे, ये चारागर होगा,*
*कि इसका नाम है दर्दे-जिगर, ये उम्र भर होगा!*

सम्भव है इस तपस्या का दूसरे जन्म में कोई परिणाम निकले। मुझे दर्द से राहत मिले और मेरी उपासना स्वीकार हो। और यदि उपासना शाश्वत और अक्षय है तो क्या तुम उसे जीवन की अन्यतम पूंजी नहीं समझतीं?

उपासना का भाव भी एक विवादग्रस्त विषय है। उसके विविध पहलुओं को लेकर स्त्रियों में ख़ासा मतभेद है। क्षमा करना, सच तो यह है, स्त्रियों में किसी विशिष्ट उदाहरण से साधारण नियम के अनुमान करने की क्षमता ही नहीं होती। न उन्हें ऐसे अनुमान में कोई रुचि होती है। व्यक्तिगत प्रश्नों का व्यक्तिगत उत्तर ही वे दे सकती हैं। यही नहीं, यदि प्रश्न का सम्बन्ध किसी दूसरे व्यक्ति से है तो उसका उत्तर बहुत कुछ उस व्यक्ति के प्रति उनकी भावना पर निर्भर करेगा। तुम्हीं अपने मन में सोचो। सम्भव है अनेक व्यक्ति जीवन पर्यन्त अपनी उपासना तुम्हारे चरणों पर चढ़ाने के लिये उत्सुक और व्यग्र हों, किन्तु उनकी उपेक्षा करके तुम किसी विशेष व्यक्ति के थोड़े से प्रेम भाव को अधिक मूल्यवान समझ सकती हो। इसका यह अर्थ नहीं कि इस विशेष व्यक्ति की थोड़ी सी उपासना इन अनेक व्यक्तियों की जीवन पर्यन्त उपासना से अधिक मूल्य रखती है, बल्कि शायद इसके विपरीत ही हो। मैं तुम्हींसे पूँछता हूँ स्वतः चरणों पर चढ़ाई हुई किसी व्यक्ति की सम्पूर्ण उपासना को तुम श्रेयस्कर समझोगी या किसी की अनायास क्षणिक उपासना को, जिसमें उत्सर्ग की भावना से अधिक कौतूहल की मात्रा हो? तुम कहोगी कि इस प्रश्न का उत्तर बहुत कुछ उस व्यक्ति की वृत्ति पर निर्भर करता है। लेकिन क्या यह ठीक है? मैं चाहता हूं तुम अपने समस्त परिचितों, प्रशंसकों और प्रेमियों पर एक दृष्टि डाल जाओ और फिर बताओ कि किस तरह का व्यक्ति तुम्हें सबमें अधिक आकर्षित करता है? ऐसा व्यक्ति, जो सहज भाव से अपने हृदय की सम्पूर्ण आस्था तुम पर न्यौछावर करदे या ऐसा व्यक्ति जो यदि स्त्री होता तो दुर्बोध और अज्ञेय कहा जाता? यदि तुम इस समस्या को व्यक्तिगत समीकरण में देख सको तो इसके समाधान में तुम्हें रञ्च मात्र भी परेशानी न होगी; किन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि तुम्हारे मित्रों में दो व्यक्ति ऐसे होने चाहियें जो उपरोक्त दो नमूने के हों।

तुम्हारे उत्तर देने से पूर्व मैं तुमसे एक बात कहना चाहूंगा। बहुत से पुरुष ऐसे होते हैं जो किसी स्त्री के प्रति अपनी सम्पूर्ण भक्ति का प्रदर्शन एक सांस में, या एक दर्शन में अथवा एक निश्चित अवधि में कर देते हैं। प्रेम के आघात के अनुपात और तीव्रता पर इस अवधि का विस्तार निर्भर करता है। इन आघातों का एक निश्चित परिणाम होता है। या तो इसमें व्यक्ति को सफलता मिलती है और या वह हारकर किनारे लग जाता है। यदि सफलता मिलती है तो वह व्यक्ति, जैसा भी वह है, वरदात्री के निकट अपने को स्वीकृत पाता है और साकारणतया विवाह की वेदी इस अध्याय की इति श्री समझी जाती है। सात फेरों के बाद जो नया अध्याय शुरू होता है उसकी भूमिका में वह पुरुष यह समझता है कि उपासक और प्रेमी की हैसियत से उसका कर्तव्य समाप्त हो चुका। इसके बाद प्रेम की ज्योत्स्ना फीकी पड़ने लगती है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वास्तविकता की काली घटा जीवन में छाने लगती है। विनम्र आत्मसमर्पण के बाद वह व्यक्ति फिर एक बार अपने व्यक्तित्व के अंधेरे कोने से अपने 'पौरुष' को झाड़ पोंछकर बाहर निकालता है। प्रेयसी के चरणों में पड़ा हुआ उसका 'स्व' फिर एक बार मस्तक उठाता है। जीवन के इतिहास की इस अप्रामयिक ग़लती का वह शुद्ध-बुद्ध होकर संशोधन करता है।

मेरी सलाह मानो तो स्त्रियों को इस तरह के पुरुषों से बचना चाहिये और मेरा विश्वास है यदि स्त्री उचित अवसर पर अपनी सहज-बुद्धि से काम ले वह कभी धोखा नहीं खा सकती। किन्तु कठिनाई यह होती है कि अभ्यर्थना के मीठे मीठे बैन स्त्री को स्थितप्रज्ञ रहने नहीं देते।

तुम कहोगी कि तुम यह सब जानती हो। मुमकिन है यह ठीक हो और तुम्हारी यह चेतन-बुद्धि बधाई की पात्र है। लेकिन इस सत्य से तुम कैसे इनकार कर सकती हो कि समाज में अगणित प्रतिष्ठित महिलायें आज इसीलिये मन ही मन रोती हैं क्योंकि उन्होंने अपनी सहजबुद्धि से उचित अवसर पर यह उचित प्रश्न नहीं पूछा और यदि पूछा तो उसके उत्तर की परवाह नहीं की। आम तौर पर लड़कियां अपने आपसे इस तरह का प्रश्न बहुत कम करती हैं। कभी कभी उनकी आत्मा कुरेद कर उनसे कहती है —"तुम गड्ढे में गिर रही हो। ईश्वर जाने बाहर निकलने के लिये कितना संघर्ष करना पड़ेगा!" किन्तु आत्मा की इस चेतावनी को वह सुनी अनसुनी कर देती है। आलिंगन में आबद्ध जिस पुरुष को वह बार बार चुम्बन मदिरा ढालकर देती है—वह बदल सकता है, इसकी वह कल्पना ही नहीं कर सकती। वह सोचती है—"कितनी उपासना यह मेरे चरणों पर चढ़ा रहा है। प्रेम की कितनी अमूल्य और सुखप्रद ग़िज़ा पर यह मुझे रख रहा है; यह क्या बदल सकता है? नहीं, हरगिज़ नहीं।" उसका मन स्वप्न में भी कभी अपने प्रियतम के हृदय-परिवर्तन की बात नहीं सोच सकता। "मैं इसके हृदय के सिंहासन पर बैठकर साम्राज्ञी बनी हुई इस पर हकूमत करती हूँ। इसका व्यक्तित्व साष्टांग मेरे चरणों पर पड़ा हुआ है। यह मेरी आंखों से देखता है और मेरे कानों से सुनता है। मैं शब्द बनकर इसके हृदय में गूँजती हूँ और यह मेरी लय पर झूमता है—यह बदल सकता है? असम्भव! सर्वथा असम्भव!"

इसके बाद शीतकाल के किसी धूमिल प्रभात में वह अचानक अपने आप को सिंहासन से पदच्युत ज़मीन पर पड़ी हुई पाती है। स्त्री का हृदय प्रेम की ही सबमें अधिक चाहना करता है। उसे खोकर उसकी असहायता और निरुपायता दयनीय हो जाती है। उसका प्रेमी जो अब पति के पद पर आसीन है उसे छूकर रोमांचित नहीं होता। प्रेम की उसमें जैसे कोई प्रातारणा ही नहीं रह जाती। दुनिया के बीसों काम उसे अब प्रेम करने का अवकाश ही नहीं देते। जिस क्षमता ने किसी दिन उसके प्यार की भावनाओं को जगाया था वह अब खुद सोई पड़ी है। तबियत में न आवेग रह गया है, न उद्वेग है। मन की वीणा के सातों तार ऐसे शिथिल पड़े हुये हैं कि जो अब आलिंगन में कस कर भी नहीं झनझनाते। उस स्त्री के प्रति, जो अब उसकी पत्नी है, अपने प्यार में पूर्ववत् उपासना भाव दिखाना उसे ऐसा लगता है जैसा अपने अनुचर से भोजन करने की अनुमति चाहना; ऐसा भोजन जिसकी उसने क़ीमत चुकाई है और जिसे खाना न खाना उसकी अपनी मरज़ी की बात है

पत्नी नामधारी बेचारी स्त्री! चुपचाप मौत के दिन तक वह जीवन का बोझ ढोती है। छुटकारे का कोई मार्ग नहीं। एडवर्ड कारपेन्टर ने लिखा है—"पुरुष के अन्न धन पर पलनेवाली स्त्री सदा दासी ही रहेगी और जब तक स्त्री आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन नहीं होती दुनिया में प्रेम की मर्यादा क़ायम नहीं हो सकती।" ईवान ब्लाख़ के अनुसार "स्त्री जब तक आर्थिक दासता से मुक्त नहीं होती तब तक प्रेम मुक्त पदार्थ न होकर उपयोग की वस्तु बना रहेगा!" प्रेम समता के सहारे खड़ा होता है और आर्थिक समता ही नैतिक और अध्यात्मिक समता पैदा कर सकती है। और जब तक समाज में यह आमूल परिवर्तन नहीं होता तब तक ये ट्रैजेडीज़ चलती रहेंगी।

प्रिय श्री! सन्ध्या की धूमिल वेला में मेरा मन इधर उधर भटक रहा है और तुम वहाँ नरम-नरम बादलों के फाहों में बैठी हुई ज्योत्स्ना के सरस संस्मरण सुन रही होगी। दुनिया की छोटी छोटी बातें यहाँ इस एकान्त में विराट बनकर स्मृति में घूम जाती हैं। किन्तु यही छोटी छोटी बातें साधारण स्त्री पुरुषों के लिए आजीवन सुख या दुख का सृजन करती हैं।

तुम्हें याद है सन्ध्या के समय तुम सोफ़ा पर लेट जाती थीं और मुझसे कहती थीं कि मैं तुम्हें कहानियाँ और कविताएं पढ़कर सुनाऊँ। तुम थकी थकी सी होती थीं और अधखुले नेत्र मेरे मुँह पर गड़ाए हुए एकाग्र सुनती रहती थीं। जीवन की कठिन लड़ाई जो तुम अकेले लड़ रही थीं उसकी हल्की हल्की छाप तुम्हारी मनोदशा पर पड़ रही थी। मैं असहाय-सा सब कुछ देख समझ रहा था। उस



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समय जिस व्यावहारिक सान्त्वना की तुम्हें आवश्यकता थी वह तुम मुझसे न पा सकीं। सम्वेदना मैं तुम्हें दे सकता था किन्तु उससे भी मैंने तुम्हें वंचित रखा। मुझे याद है कभी कभी शिथिल होकर तुम मेरी ओर इस प्रकार ताकती रहती थीं मानो शून्य में अपनी भेंअन्तर्दी दृष्टि गड़ा रही हो। इस बात को जाने कितने वर्ष बीत चुके। ठण्डी सांसों से सींच कर उन मुरझाई हुई स्मृतियों को ताज़ा करने का सुखद काम अब मेरे निकट शेष रह गया है।

कहीं दूर के घण्टे रात के दो बजा चुके हैं। नीम के फूले हुए घने पेड़ रजत चांदनी में नहा नहाकर निखर रहे हैं। जुही की कलियां समीरण का अंचल अपने अनुराग से भर रही हैं। बादलों के दो चार सफेद टुकड़े आकाश की नीलिमा में निरुद्देश्य इधर उधर तैर रहे हैं। हवा मौन साधे खड़ी है। कुछ घण्टे पहले यही हवा तूफ़ान होकर सनसनाकर बह रही थी, तब ऐसा मालूम होता था कि वह अपनी खोई हुई आत्मा के लिए दारुण विलाप कर रही है। जब वह सामने की उस गुमटी पर अपना सर धुनती थी तो ऐसा लगता था कि कह रही है कि—"मैं फूली हुई सरसों और धान की बालियों के उस देश से आ रही हूँ जहाँ गोमती का मटमैला जल सांस थामे खड़ा रहता है, जहां घड़ियाल दिन में धूप सेंकते हैं और रात को मर्कट कदम्ब की डालों पर किलकारी भरा करते हैं।"

तूफ़ान निकल गया है और अपने पीछे छोड़ गया है मृत्यु की सी निस्तब्धता। मैं सोचता हूँ तूफ़ान की वह व्याकुल आत्मा इस समय कहां होगी? दक्षिणी वातास उसे यहां से उत्तर की ओर उड़ा ले गया है किन्तु मुझे आशा नहीं कि तुम्हारे पास पहुँचकर वह तुम्हें मेरी मनोव्यथा की बात सुना सके!

[ दो ]

प्रिय……!

तुम कहती हो लिफ़ाफ़े की काया मेरे जिन पत्रों को आत्मा की भांति समेटकर तुम्हारे पास ले जाती है और जिन पर तुम्हारा नाम, पद और प्रतिष्ठा अंकित होती है उनकी अपेक्षा मेरे ये अप्रेषित पत्र तुम्हें कहीं अधिक उत्कृष्ट और रुचिकर लगते हैं। तुम पूछती हो कि इनमें से कुछ पत्र क्या सचमुच मैंने तुम्हारे लिये नहीं लिखे? मैं इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से क्या कहूँ? अनुभूति, कल्पना और तारतम्य तीनों की प्रेरणा से इन पत्रों को जन्म मिला है। तुम तर्क के सिरे को उलट कर पूछती हो कि क्या सचमुच ये पत्र……के लिए हैं? व्यक्तिगत प्रश्नों का अनिश्चित उत्तर आशय को और जटिल बना देता है। पर मजबूरी को कोई क्या करे? ये पत्र……के लिए हो सकते हैं जिनकी मेरे निकट केवल स्मृति ही शेष रही है। तुम पसन्द करो तो ये पत्र तुम्हारे लिये भी हो सकते हैं या उन सबके लिये हो सकते हैं जिन्हें ये रुचें। मैं समझता हूं तुम मेरे इन अप्रेषित पत्रों को इसलिए पसन्द करती हो क्योंकि ये अपेक्षाकृत स्वच्छन्द और अनियंत्रित होते हैं। इनके लिखते समय मेरी विचार-धारा सम्भावनाओं और व्यक्तित्व के कूलों में नहीं बँधती। इसके विपरीत जब मैं सजग होकर तुम्हें पत्र लिखता हूँ तो मुझे अपनी क़लम पर नियंत्रण रखना पड़ता है और हर विचार सतर्क होकर उपयुक्त शब्दों में प्रकट करना पड़ता है। इतने सीमा बन्धनों के बाद पत्रों का विषय-चयन दुष्कर हो जाता है। मेरी असमर्थता बढ़ जाती है। मैं उड़ती चिड़िया के परों की विवेचना तो कर नहीं सकता न अपने पड़ोसी की बिल्ली का ही वर्णन कर सकता हूं। न यही मेरी इच्छा है कि मेरे पत्र व्यक्तिगत बदनामियों के ढोने का वाहन बनें। इसका परिणाम यह होता है कि तुम्हें पत्र लिखते समय मैं अस्वाभाविक, अशक्त, अविज्ञ और नीरस हो जाता हूँ। कुदरतन् तुम्हें शिकायत होती है कि मेरे पत्र अरुचिकर होते हैं। किन्तु……को पत्र लिखते समय कुछ और ही भावना होती है। अव्वल तो वह स्वर्ग में है और स्वर्ग में चूंकि विवाह नहीं होते तो पति महोदय से भी सतर्क होने की आवश्यकता नहीं रह जाती। रहे प्रेमी—तो मुझे उनकी अधिक चिन्ता नहीं क्योंकि उनके कोई जायज़ अधिकार ही नहीं होते और न उनके कारण कोई ग़लतफ़हमी ही हो सकती है। तुम्हें पत्र लिखते समय मुझे यह भी आशंका रहती है कि कहीं इन पत्रों पर किसी दूसरे की दृष्टि न पड़ जाय और इस विचार मात्र से ही मेरी क़लम ठिठककर रह जाती है।

सम्भव है तुम यह उत्तर दो कि मुझे अपने पत्रों में कोई ऐसी बात ही नहीं लिखनी चाहिये जिसे तुम्हारी छोटी बहिन या तुम्हारे पिता न पढ़ सकें। मुमकिन है तुम्हारी बात ठीक हो। किन्तु साधारणतया होता यह है कि प्रिय का पत्र पाकर आह्लाद हृदय की सीमा में समाता नहीं। प्रेम व्यक्तिगत परिधि से ऊपर उठकर मानव कल्याण साधना का पथ प्राप्त करता है। मन में कामना उठती है कि जिसे हम प्यार करते हैं उसके गुणों पर सब मुग्ध हों। अपने प्रिय के पत्र इस आकांक्षा को सींचते हैं। हृदय से निकला हुआ यह विद्युत साहित्य कालिदास और शेक्सपियर की अपेक्षा हमें अधिक मुग्ध करता है। और फिर जब तुम्हारे पत्रों का प्रश्न हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पत्र लिखने की तुम्हारी असाधारण क्षमता, तुम्हारी मृदुल चुटकियाँ, तुम्हारा सरस विनोद, तुम्हारे तीखे डंक सब इतने उत्कृष्ट होते हैं कि मन में यह भावना होती है कि दूसरों के साथ बाँटकर मैं अपना अभिमान चक्रवृद्धि ब्याज की गति से बढ़ा लूं।

यह मेरा सौभाग्य है कि पत्र भेजनेवाले अनेक मित्रों की सूची में मेरा नाम है और यह स्वीकार करने में मुझे गर्व है कि मेरे मित्रों में तुम सबमें प्रमुख हो। इन मित्रों से पत्र व्यवहार करते समय मैंने एक बात अनुभव की है और यदि मेरी नुक्ताचीनी से मेरे मित्र अपमान अनुभव न करें तो मैं यह स्वीकार करूँगा कि कभी विनोद से और कभी दुख के साथ मैंने उनके पत्रों में ज़मीन आसमान का परिवर्तन महसूस किया है। उनके पहले पत्र में और अन्तिम पत्र में उतना ही अन्तर होता है जितना किसी लैण्डस्केप को दूरबीन के एक तरफ से देखने में और फिर उलटकर दूसरी तरफ से देखने में। शुरू शुरू में उनके पत्र छलकता हुआ प्यार लेकर आते हैं। उनकी दिलचस्पी का विस्तार बहुत व्यापक होता है और फिर देखते देखते वह संकुचित होता जाता है और फिर अदृश्य बिन्दु तक पहुँच जाता है। मैत्री भाव के पौधे को पल्लवित करनेवाली उनकी समस्त प्रेम भावना अन्तर्धान हो जाती है। यदि तुम मुझे क्षमा करो तो मैं कहूंगा कि तुम भी इस प्रतिक्रिया की शिकार होने से नहीं बच सकीं। अपने दिल पर हाथ रखकर बताओ कि क्या तुम्हारे पत्रों में अब भी वही प्रेम भाव बाकी है? मेरे सम्बन्ध में क्या कोई दिलचस्पी तुम्हें अब रह गई है? अपने विचारों, अपनी आशाओं और अपनी आशंकाओं के सम्बन्ध में बहुत डरते डरते ही मैं तुम्हें लिख सकता हूँ। मैं तुमसे उन्मुक्त और निर्भय होकर यह तक नहीं पूछ सकता कि कहो तुम पर क्या बीत रही है और ज़िन्दगी कैसी कट रही है? मुझे विश्वास है यदि मैं पूँछू भी तो मुझे उत्तर ही न मिलेगा अथवा तुम बादन वाइलर के बरफीले मैदानों का वर्णन करने लगोगी। यदि यह नहीं तो हेम नदी की वोटिंग का या फिर अमरीका की सेनेट में डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन पार्टियाँ कौन सा सुयोग और सुअवसर खो रही हैं इसकी चर्चा करोगी। सच तो यह है व्यक्ति और दल उस समय से सुयोग और सुअवसर खो रहे हैं जब ईसा से १८२० वर्ष पहले बाबुली सम्राट हामुराबी ने अपना साम्राज्य खोया था। लोग अवसर खोते हैं, उस पर दुख प्रकट करते हैं लेकिन फिर दोबारा खोते हैं। ऐसा मालूम होता है मानों हर दल और हर व्यक्ति को दूसरों के अनुभव से लाभ उठाने से नफ़रत है। तुम कहोगी कि मैं व्यर्थ और निरर्थक बात कह रहा हूँ। मुमकिन है तुम ठीक हो, किन्तु मैं अपने दावे के समर्थन में केवल एक बात कहना चाहूंगा। इस डर से कि कोई निन्दक हमें बदनाम न करे और मित्र तरह तरह से असुविधाजनक प्रश्न न पूछें—हम केवल अर्थहीन और मधुर बातें ही लिखें—इसकी अपेक्षा मैं न लिखना ही अधिक उचित समझता हूँ। पुरुष अपनी स्त्री मित्रों को चाहे जो कुछ भी लिखें तोड़ मरोड़कर उसके अनुचित और अशिष्ट अर्थ करनेवालों की कमी नहीं है। कम से कम यह मेरी सामर्थ्य के बाहर है कि मैं अपनी किसी स्त्री मित्र को ऐसा पत्र लिखूँ जिसके शंकित व्यक्तियों द्वारा दूषित अर्थ न किये जा सकें। जान अनजान में अपने किसी मित्र को संकट में डालने की अभिभावना अनुचित ही नहीं गर्हित है। इसलिए अपने दिमाग से कृपया यह विचार दूर कर दो कि ये पत्र तुम्हारे लिये लिखे गये हैं और यदि इन पत्रों में तुम्हें सुपरिचित पात्रों, दृश्यों या परिस्थितियों का वर्णन मिले तो इसे महज़ इत्तफ़ाक़ और संयोग की बात समझना।

तुम कहोगी शुद्ध और अमिश्रित कथा की कल्पना सहज कल्पना नहीं है। लेकिन तुम जानती हो मैं रमता राम हूं। उम्र घूमने फिरने में ही कटी है। वैसे अधिकांश गल्पों का आधार सत्य घटनाएं ही होती हैं। सत्य में नाममात्र का मिश्रण करने से ही गल्प तैयार हो जाती है। यदि तुम्हें मेरी गल्पें सत्य घटनाओं की तरह लगती हैं तो विश्वास करो यह मेरा मिश्रण-चातुर्य है। तुम कहती हो मेरी गल्पों ने तुम्हें प्रभावित किया है। मुझे वरदान मिला—बस यही मेरी आकांक्षा का चरम लक्ष्य था। तरह तरह की परिस्थितियाँ यात्री के जीवन को अकसर अजीब और सौन्दर्यपूर्ण बना देती हैं। विविध धर्मों, जातियों और वर्णों के स्त्री पुरुषों के सम्पर्क में यात्री आता है, उन्हें निकट से देखता है, उनका विश्लेषण करता है और अपनी कल्पना और अनुभूति के रंग से उनका चित्रण करता है। तुम्हारी प्रेमपूर्ण सहानुभूति पाकर मेरा यह चित्रण सचमुच सजीव हो उठता है। मेरी सफलता की तह में तुम्हारी ही कृपा है। मेरे प्रति तुम्हारे अनुराग ने इन पत्रों पर गोल्ड प्लेटिङ्ग की है।

मुझे विश्वास है, नीरस सत्य तुम्हारे मन में न उत्कंठा पैदा करता है और न दिलचस्पी। मैं जानता हूँ सत्य घटनाओं के वर्णन से केवल गलतफ़हमियाँ ही पैदा होतीं क्योंकि तुम्हें इनकी सच्चाई पर कभी विश्वास ही न होता।

[ क्रमशः ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अगम्यवाद

श्री अम्बालाल पुराणी

लेखक का कहना है कि चूँकि 'विज्ञान' आर्य मीमांसा का एक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ सुनिश्चित है इसलिये साइन्स के लिये उसका प्रयोग न होना चाहिये, ऐसा होने से अर्थ में गड़बड़ी हो सकती है। मैटर को हम भूत कहते हैं अतः मैटर के साथ सम्बन्ध रखने के कारण साइन्स को भौतिक शास्त्र कहना ज़्यादा उचित होगा।

पिछली शताब्दी में जब भौतिक शास्त्रों की उन्नति का सूर्य मध्यान्ह में पहुँचा था उन दिनों पदार्थ-विज्ञान-मीमांसा और साहित्य के क्षेत्रों में एक सम्पूर्ण आत्म-विश्वास की भावना पाई जाती थी और वे सोचने लगे थे कि भला संसार में अज्ञेय या अगम्य वस्तु हो ही कैसे सकती है। बुद्धिमान लोग किसी अगम्य पदार्थ को स्वीकार करने में अपनी बुद्धि का अपमान मानते, बहुतेरे इसे बहम बताते और प्रायः सभी इसे मानसिक निर्बलता का चिन्ह समझते थे। वे भौतिकशास्त्री जिनके अन्दर प्रयोगात्मक जिज्ञासा होनी चाहिये-वे अगम्य अथवा सूक्ष्म के नाम से ही भड़क उठते और यदि कोई क्षेत्र में भी प्रयोग कर देखने की प्रार्थना करता तो उसे अपमान भरे शब्दों से ठुकरा दिया जाता।* नीति और आचार के व्यवहारिक नियमों को ही तत्वज्ञान और आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा माननेवाले ये लोग अगम्य शब्द से ही नाक भौं सिकोड़ने लगते और शायद आज भी सिकोड़ते हों।

लेकिन सभी कर्मों के आदि प्रवर्तक, पैग़म्बर, महान तत्व-द्रष्टा और साहित्य में चिरंजीवी सृजन कहे जानेवालों में शायद ही कोई ऐसा मिले जो इस अगम्य अथवा रहस्य-वाद से पूरी तरह बच सका हो। और तो और नैपोलियन जैसे सेनापतियों पर भी इसका असर साफ़ दिखाई देता है।

यह आशा की जाती थी कि जैसे भौतिक शास्त्रों की गवेषणाएँ आगे बढ़ेंगी वैसे अगम्यवाद का नाम निशान मिटता जाएगा पर यह आशा फलीभूत न हो सकी। यही नहीं बल्कि स्वयं भौतिक शास्त्रों के क्षेत्र में पिछले पचास वर्षों में बहुत सी 'अगम्य' और 'गूढ़' होने के कारण अछूत कहलानेवाली चीज़ें घुस पड़ी हैं। भौतिक शास्त्रियों में भी प्राचीन प्रिय और रूढ़ि रक्षक पण्डितों का अभाव नहीं है। परन्तु उनका विरोध होते हुए भी सर आलिवर लाज, सर विलियम क्रुक्स, सर आर्थर कोनन डाइल, डा० जीले, मो० रीशे आदि अनेक प्रामाणिक भौतिक शास्त्रियों ने अगम्य क्षेत्र को स्वीकार करके उसमें परीक्षणात्मक प्रयोग शुरू कर दिये। मानव जिज्ञासा के पीछे एक स्वीकृत मान्यता छिपी हुई है कि समस्त सृष्टि और उसके अन्तर्गत मनुष्य का भी अन्तिम सत्य एक निरपेक्ष वास्तविक तत्व है। मानव उसीकी खोज में है और कोई बाधा उसे रोक सकने में समर्थ नहीं है। 'अगम्य' कहानेवाले वाद का कहना है कि यह अन्तिम सत्य—फिर उसे चाहे परमात्मा, भगवान, ब्रह्म, सच्चिदानन्द, हक, या ईश्वर किसी भी नाम से क्यों न पुकारा जाए—मनुष्य की इन्द्रियों या बुद्धि का विषय नहीं है। बहुत से मीमांसकों ने इस विचार को स्वीकार किया है। प्लेटो के आइडिया (Idea,) केण्ट के परात्पर ( Transcendental ), बर्गसां के 'लेन्युइस्यो क्रिएत्रिस' या सर्जक सहज ज्ञान, युस्पेंस्की के इगटयूटिव कॉशंस-सहज ज्ञानमय चैतन्य में न्यूनाधिक रूप से और भिन्न भिन्न प्रकार से "अगम निगम" का उल्लेख है। यही नहीं केवल स्थूल जगत को ही इन्द्रियों द्वारा जानने का दावा करनेवाला भौतिक शास्त्री भी जब पदार्थ ज्ञान की उच्चतम सीढ़ियों पर पहुँच जाता है और जब उसके अन्तिम सत्य को अपने बिलकुल ही समीप आया हुआ पाकर उसे पकड़ने के लिये दौड़ता है तो ईश्वर के चक्कर, इलेक्ट्रोन के आन्दोलन, दिशा की वक्रता और क्वांटा की अज्ञेय संज्ञा रास्ता रोककर उसे फिर अगम्य की ओर ढकेल देती हैं!

जरा गहराई में उतरते ही मानव की ज्ञान-शक्ति की परिमितता का ख्याल आने लगता है। क्या कोई छाती पर हाथ रखकर कह सकता है कि मैं प्रतिदिन होनेवाले गौरवभरे, शान्त और भव्य सूर्योदय की लीला को समझता हूं? और अनन्त नीहारिकाओं में तैरते हुए अपरिमेय विश्वों में ऐसे न जाने कितने सूर्योदय हुआ करते होंगे! यदि हम यह कहें कि हमारे छोटे से सौर मण्डल में जैव पहुंचाना ही सूर्योदय का उद्देश्य है तो इसके तो यह मानी होंगे मानों सूर्य की सार्थकता उसके दीपक होने में है! कैसी हास्यजनक बात है! घर की अपेक्षा दीपक चौदह लाख गुना बड़ा!

अच्छा, पृथ्वी पर इधर से उधर लोटते हुए एक [illegible]

---

* सर विलियम क्रुक्स के निवेदन के उत्तर में लिखे गए रायल सोसायटी के पत्र को देखिये जिसकी उद्धतता भौतिक शास्त्रियों के लिये कोई शोभास्पद चीज़ नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रूप को ही लीजिये। यदि कोई इसे पूरी तरह जानने का दावा करे तो यही कहना होगा कि वह अपनी अज्ञता का परिचय दे रहा है। अभी तक तो यह भी तय नहीं हो पाया कि आखिर वह है क्या? मानव के हृदय की गहराइयों से निकलनेवाले एक निःश्वास, जीवन में दिखाई देनेवाली असंख्य दृष्टियों में से सारे जीवन की कायापलट कर देने वाले एक अविस्मरणीय दृष्टिपात, ज्योति की एक आध अमूल्य किरण, बादलों में से गरज उठनेवाली प्रचण्ड विद्युत, सुप्त शिशु के मुख पर छाई हुई मुस्कान की रेखा या किसी नाजुक फूल की सुन्दर सी पंखड़ी के बारे में ही मनुष्य कितना जानता है?

आज हम पदार्थों और भिन्न भिन्न शक्तियों का अधिक सफलता के साथ उपयोग कर सकते हैं परन्तु इसका मतलब तो इतना ही है कि हम उनके उपयोग के बारे में बहुत सी बातें जानते हैं पर इसका यह अर्थ तो नहीं हो सकता कि हम उनके स्वरूप से भी अभिज्ञ हैं।

इसके कारण देखें तो हमें मालूम होगा कि व्यष्टि और समष्टि दोनों के दो स्वरूप हैं—१-बाह्य, दृश्य या इन्द्रिय २-आन्तर—अदृश्य या इन्द्रियातीत। मानव अन्तःकरण के भी दो भाग आसानी से दिखाई देते हैं—एक वह जो बाह्य जगत की ओर लगा रहता है और दूसरा वह जो स्वयं अपने अन्दर ही मग्न रहता है। मानव का यह अदृश्य सूक्ष्म भाग उसके दृश्य स्थूल भाग की अपेक्षा कहीं अधिक समर्थ है और स्थूल में प्रकट होती हुई बहुत सी घटनाओं का कारण सूक्ष्म में ही निहित होता है। मानव जीवन में ये सबकी सब सूक्ष्म भूमिकाएं पूरी तरह व्यक्त नहीं होतीं। ग्रामोफोन की चूड़ी की तरह सब संस्कारों की प्रतिध्वनि रखनेवाली अवचेतना (Subconscious) को तो आज सभी स्वीकार करते हैं। मनुष्य मूर्छित अवस्था में, बहुत बड़ी व्याधि के समय, अनिद्रा (Somnambulism) आदि की दशा में इसी अवचेतना के संस्कारों के अधिकार में रहता है परन्तु सामान्य जीवन में उसे प्रकट होने का अवसर कम ही मिलता है। इसके अतिरिक्त कल्पना, बुद्धि, निर्णय, भाव, कामना आदि अनेक सूक्ष्म शक्तियाँ और क्रियाएं ऐसी हैं जो मानव जीवन में पूरी तरह व्यक्त नहीं हो पातीं।

परन्तु अगम्य शब्द का प्रयोग तब किया जाता है जब किसी चीज़ में कार्य-कारण का सामान्य नियम भी लागू नहीं हो, सामान्यतः परिचित घटना भी किसी ऐसे ढंग से घटे जिसकी आशा न हो, जिसे बुद्धि द्वारा जाना और समझा न जा सके। सामान्य व्यवहार में हम सम्मोहन,* विचार-विनिमय और भावी की पुरोगामी सूचनाओं के उदाहरण देखते ही हैं। जब इस प्रकार की घटना का असर हमारी स्थूल भूमिका पर होता है तो हम उसे चमत्कार कहा करते हैं। चमत्कार का अर्थ है किसी भी स्थूल पदार्थ के सामान्य नियमों का व्युत्कर्ष।

अब यहाँ पर दो प्रश्न उठते हैं। एक तो यह कि क्या अगम्यवाद सचमुच कोई वास्तविक चीज़ है अथवा यूँही बहमों का समूह और हवाई महल है? क्या उसे प्रमाणित किया जा सकता है? दूसरा सवाल यह है कि यदि वह सत्य है तो क्या सर्वथा अगम्य ही है? पहले प्रश्न के उत्तर में हमें कहना होगा कि किसी अनुभूति को अन्तिम दृष्टि से वास्तविक सिद्ध करना तो भौतिक शास्त्र के लिये भी असम्भव है। इन्द्रियां किसी भी पदार्थ के अन्तिम या वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं दे पातीं।

यदि व्यक्ति या समाज पर प्रभाव डालने की शक्ति को वास्तविकता का एक प्रमाण मानें तो यह निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि अगम्यवाद ने बहुत दूरगामी परिणाम पैदा किये हैं। अब ज़रूरत है उदारणों-साक्षियों की। अगम्यवाद के विशुद्ध आध्यात्मिक और धार्मिक साक्षात्कार तो केवल व्यक्ति के विकास के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं इसलिये उनकी वास्तविकता के बाह्य प्रमाण जुटाना असम्भव और अनावश्यक है। कहा जा सकता है कि इसी तरह तो बहमों, अंधश्रद्धा और असत्य आभासों को पोषण मिलता है और बात है भी किसी हद तक ठीक परन्तु फिर भी ऐसी बातों में व्यक्ति की अन्तरात्मा को ही अन्तिम निर्णायक मानने का रिवाज ठीक जान पड़ता है। हम देखते हैं कि ऐसे लोगों की कमी नहीं जो वैष्णव मन्दिर में होनेवाली पूजा को तो अन्धश्रद्धा की पराकाष्ठा मानते हैं पर स्वयं मेडिकल सायंस द्वारा निकाले गए किसी आधुनिक इंजेक्शन पर एक वैष्णव की अपेक्षा कहीं ज़्यादा अन्धी श्रद्धा रखते हैं। हम भौतिक शास्त्र, व्याकरण, रसायन या हवाई जहाज की बनावट के बारे में प्रश्न करते हुए अपनी मर्यादा से बाहर नहीं जाते, जिस विषय में हमारा प्रवेश न हो उसकी मान्यताओं पर कुठाराघात करने की नहीं ठानते पर मज़ा यह है कि अगम्यवाद पर और आध्यात्मिक अनुभूतियों पर धड़ल्ले से बोलने का हक़ हर एक मान बैठता है। यदि इस प्रकार के प्रश्न करनेवालों

*Hypnotism, telepathy and premonition.


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और विरोधियों के नरेन्द्रनाथ दत्त ( पीछे से स्वामी विवेकानन्द ) की सी तीव्र जिज्ञासा या दिल की सचाई हो तो भी एक बात है। जिस दिन उन्हें अपनी जिज्ञासा का ठीक उत्तर मिल गया उसी दिन से उन्होंने उसे आजीवन व्रत के रूप में स्वीकार किया और उसके पीछे झोली ले ली। रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें प्रयोगात्मक पद्धति से ही हराया और अनुभूति के द्वारा ही निःशङ्क और प्रश्नरहित किया था।

लेकिन प्रश्न करने के अधिकार को छोड़कर हमें यह देखना है कि क्या कोई ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं जिनसे इस अगम्य कहानेवाले वाद को प्रमाणित किया जा सके। इतिहास में पाइथागोरस, ईसा और अन्य बहुत से ईसाई संतों तथा अन्य धर्मों में भी मुहम्मद, कृष्ण आदि के चमत्कारों का उल्लेख मिलता है। अनेक साधु, महन्त, योगी, परम हंसों के जीवन में अगम्य कहानेवाली शक्तियों और सिद्धियों का वर्णन आता है। इतिहास में फ्रांस को बचानेवाली जोन आफ आर्क तथा ज्योतिष द्वारा हसन का भावी राजपद देखकर उसे मुक्त करने वाले गङ्गू ब्राह्मण की बात सुप्रसिद्ध है। बिना औषध-प्रयोग के रोग मिटाने वाली क्रिस्चियन सायंस नामक पद्धति आज भी यूरोप में प्रचलित है। मृतात्माओं के साथ वार्तालाप करने के प्रयोग आज स्वयं भौतिक शास्त्रियों की देख रेख में हो रहे हैं। विचार-विनिमय और सम्मोहन विद्या तो आज सर्वस्वीकृत हैं। एमिल कुए की स्व-सूचन पद्धति रोग मिटाने में काफी सफलता प्राप्त कर चुकी है। जुल रोमा ने प्रयोग द्वारा साबित किया है कि शरीर के अणुओं में चक्षुरिन्द्रिय विद्यमान है। रणजीत सिंह के ज़माने में हरिदास महाराज को छः महीने तक सन्दूक में बन्द करके जमीन में गाड़ रखा था और वे उसके बाद फिर जीवन धारण कर सके थे। यह सारा कार्य लाहौर में यूरोपियन डाक्टरों की बड़ी निगरानी में किया गया था और एक डाक्टर ने ही उसका वर्णन किया है। काशी के भास्करानन्द सरस्वती और तैलङ्ग स्वामी की इस प्रकार की अनेक शक्तियों का अनुभव बहुत से हिन्दुओं और यूरोपियनों को हुआ था। इस प्रकार के उदाहरण गिनने बैठें तो एक पोथी तैयार हो सकती है।

जिन्हें चमत्कार कहानेवाली किसी भी घटना पर विश्वास न करने का आग्रह हो वे मेरे अहमदाबाद निवासी मित्र डा० सुमन्त मेहता से पूछ देखें और देखें कि उन्हें तटस्थ साक्षी के रूप में क्या अनुभव हुआ है। एक फकीर ने लक्ष्मीविलास राजमहल में सर सयाजी राव गायकवाड़ और अन्य बहुत से अफसरों को नंगे पैर आग पर चलाया था। डा० मेहता भी उसमें से एक थे। कुछ समय पूर्व बम्बई में बहुत से डाक्टरों के सामने प्रो० आतशी (बर्मी) ने बहुत से लोगों को आग पर चलवाया था। 'सर्वभक्षी' नाम से प्रसिद्ध एक स्वामी ने मद्रास में मेडिकल बोर्ड के सामने हलाहल जहर खाकर दिखाए थे। कीले, कांच, सांप आदि खाने के बाद उसका जो एक्सरे फ़ोटो लिया गया था वह अब भी मद्रास मेडिकल कालिज में मौजूद है इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि वह कुछ चालाकी करता था और सचमुच जहर न खाता था। उसी स्वामी ने बम्बई के डाक्टरों के सामने नाइट्रिक एसिड, एल्फ्यूरिक एसिड और हलाहल हाइड्रोसाइनिक एसिड का पान किया था।

इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण अहमदाबाद निवासी मेरे मित्र डा० हरि प्रसाद देसाई बताते हैं। वे अगम्यवाद के हिमायती नहीं हैं पर फिर भी उन्होंने परीक्षण करके देखा है कि गृध्रसी के जो रोगी किसी भी दवा से ठीक न हो सके थे वे मन्त्र से बिलकुल अच्छे हो गए। ये दो नाम तो केवल इन घटनाओं की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये दे दिये हैं, नहीं तो हमारे चारों तरफ प्रतिदिन ऐसी घटनाएं घटा करती हैं और साधारण आदमी उन्हें वहम, ढोंग, ढकोसले से जुदा नहीं कर पाता।

अब दूसरे प्रश्न पर आएं। अगम्यवाद इतना कहकर ही नहीं रुक जाता कि जगत का एक अन्तिम तत्व है और वह इन्द्रियों और बुद्धि के लिये अगम्य है। नहीं वह रहस्य चैतन्य के विकास की विशिष्ट पद्धति द्वारा गम्य है। हां, अगम्यवादी कहाने वालों ने अपने लिये गम्य हुए इस तत्व की बुद्धि द्वारा या हृदय द्वारा भिन्न भिन्न व्याख्याएं की हैं। कुछ लोग इस भिन्नता को ही अगम्यवाद के झूठे होने का प्रमाण मान लेते हैं। परन्तु इसके जवाब में हम केवल इतना ही पूछना चाहते हैं कि क्या भौतिक शास्त्र में किन्हीं प्रयोगों के बारे में मतभेद होने से भौतिक शास्त्र को झूठा ठहराया जा सकता है? और यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि अगम्यवाद के हिमायतियों में अन्तिम साक्षात्कार के बारे में एकता है ही नहीं। ईसा के मैं और मेरे पिता परमेश्वर एक हैं, (I and my father are one)—सूफी के अनल हक़ और वेदान्ती के अहं ब्रह्मास्मि में कितना साम्य है!

अगम्यवादियों की व्यावहारिक प्रयोगों सरणियों का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि उनका अनुसरण करने से चैतन्य की जो अवस्थाएं प्राप्त होती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उनमें बहुत साम्य है, उनमें आदर्श तथा साधन मार्ग की समानता दिखाई देती है। अध्यात्मिक पुरुषों ने कठिन साधना के बाद जो प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किये हैं उन्हें यूंही झूठा ठहराने का कोई कारण नहीं नजर आता। हमारे देश में तो इस अगम्य मार्ग का अनुसरण करने के लिये गुरु-परम्परागत सैकड़ों पद्धतियां हैं। उनमें से कई मानव शास्त्र के मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर खड़ी हैं, कइयों का आधार प्राणशक्ति के नियमन पर है, कोई हृदय के भावों के विकास और विशुद्धि पर जोर देती हैं तो कोई तप, शक्ति, लड़कुल-बल और शारीरिक क्रियाओं के आधार पर बनी हैं। पर इन सब का मुख्य लक्ष्य एक ही होता है—मानव-चैतन्य का विकास, उसकी विशुद्धि, सत्वबृद्धि, और मुक्ति। और शायद ही कोई ऐसी पद्धति द्वारा अगम्य साक्षात्कारों का उल्लेख न हो। ज्ञान, कर्म, राज, तन्त्र या हठ किसी भी योग प्रणाली या साधना मार्ग को ले लीजिये। आप उसमें मन से परे की अवस्था के साक्षात्कारों का उल्लेख अवश्य पाएंगे। इस प्रकार की अनुभूतियों के वर्णन में यदि भिन्नता पाई जाती हो तो वह समझ में आनेवाली बात है। इन अनुभूतियों का आधार होता है साधना मार्ग के ध्येय पर और उस पर भी जब ये अनुभूतियां भिन्न भिन्न व्यक्तियों के मानसिक वातावरण में से गुजरकर भाषा में व्यक्त होती हैं तो उनमें भेद होना स्वाभाविक है। कई बार एक ही व्यक्ति के जीवन-विकास में परस्पर विरोधी मालूम होनेवाली अनुभूतियां हो सकती हैं, इतना ही नहीं एक समय जो साक्षात्कार उच्चतम और अन्तिम माना जाता हो वही आगे चलकर गौण बन जाता है। यहाँ रामकृष्ण परमहंस का उदाहरण देखने लायक है। उन्होंने वेदान्त और तन्त्र जैसी परस्पर विसंवादी कहानेवाली साधना प्रणालियों के अनुभव का समन्वय किया था, रूढ़ि के अनुसार विरोधी कहानेवाली ईसवी और मुस्लिम साधना प्रणालियों के साक्षात्कारों का वेदान्त और तन्त्र के साथ समन्वय स्थापित किया था! उन्होंने मंसूर के अनल हक़ और वेदान्त के तत्वमसि की व्यावहारिक एकता को प्रत्यक्ष किया था, यह तत्व न्यूनाधिक रूप से कबीर, नानक, गोरख, दादू, ज्ञानेश्वर, बुद्ध, चैतन्य, ईसा, रामानन्द, रामतीर्थ, रामकृष्ण आदि अनेकों के जीवन में दिखाई देता है।

नैतिक नियमों के एकनिष्ठ उपासक सब प्रकार की अगम्य मालूम होने वाली बातों से कन्नी काटते हैं। एक महानुभाव ने गांधी जी के धर्म के बारे में लिखते हुए कहा है कि उन्होंने अहिंसा और प्रेम को अन्तिम सत्य मानकर अगम्यवाद का खातमा कर दिया है। पर क्या 'प्रेम' और 'अहिंसा' दोनों ही अगम्य क्षेत्र की वस्तुएं नहीं हैं? मेरा ख्याल है कि जैसे जैसे हम इन दोनों के कारण की तलाश करें और इसके बारे में छान बीन करें वैसे वैसे ही ये अगम्य बनते जाते हैं। खाली प्रेम कह देने से तो काम नहीं चलता। प्रेम क्या है, किसलिये, कैसे? क्या ये प्रश्न अगम्य क्षेत्र में नहीं ले जाते? हम देखते हैं कि महात्मा जी ने अपने जीवन के जो बड़े से बड़े निर्णय किये हैं वे बुद्धि के द्वारा नहीं किये गए। जब जब उनका तर्क कमज़ोर मालूम हुआ है तब तब उन्होंने अन्दर की आवाज़ का आश्रय लिया है और क्या यह आवाज़ अगम्य नहीं है?

अब रह जाता है यह सवाल कि इस सबसे लाभ क्या और इसकी उपयोगिता क्या है? जब तक हमें इन सूक्ष्म भूमिकाओं का ज्ञान नहीं है तभी तक वे अनुपयोगी मालूम होती हैं। जिस तरह प्रत्येक अच्छी चीज का दुरुपयोग हो सकता है उसी तरह सूक्ष्म शक्तियों का भी दुरुपयोग किया जा सकता है परन्तु इतने से ही हम उन्हें निरर्थक नहीं ठहरा सकते। मनुष्य ज्योतिष द्वारा भविष्य की बातें जान सके या औषधोपचार के बिना रोग मुक्त हो सके, मन्त्र द्वारा सांप के जहर से बच जाए और अग्नि की दाहक शक्तियों पर विजय प्राप्त कर सके तो ऐसा ज्ञान ज्ञान की खातिर भी उपयोगी है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में आत्मा द्वारा प्राप्त की गई विजय को अथवा किसी भी क्षेत्र को निरर्थक समझना एक भूल है। लोभवश कुछ लोग ज्योतिष के पीछे पागल हो जाएं तो इससे ज्योतिष का क्या दोष है? क्या सबमेरीन और विषैली गैसों के कारण भौतिक शास्त्र को निरुपयोगी ठहराया जा सकता है? क्या यही सबमेरीन भयङ्कर तूफानों के समय काम नहीं आ सकती? क्या विषैली गैस रोगों को नष्ट करने में सहायक नहीं हो सकती?

बुद्धिशाली वर्ग में जो अगम्यवाद के प्रति अरुचि दिखाई देती है उसका एक कारण यह भी है कि प्रेतावाहन, मंत्रविद्या, जादू, विचार विनिमय, वशीकरण, मारण, सम्मोहन अदि गूढ़ और सूक्ष्म शक्तियों के साथ ही साथ उसमें बिना औषध रोग मिटाना, कीमिया बनाना आदि बहुत सी चीजों का समावेश होता है। विशुद्ध अध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में भी मन से परे चैतन्य की अवस्थाओं के साक्षात्कार का उल्लेख आता है परन्तु इतने से ही ये दोनों एक नहीं हो जाते। अगर यह अच्छी तरह समझ लिया जाए कि विशुद्ध आध्यात्मिकता इनसे भिन्न है तो बहुत सी ग़लतफ़हमियां अपने आप दूर हो जाएंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दी काव्य-धारा में राष्ट्रीयता का विकास

श्री 'पलायनवादी'

कवि की अन्तर्मुखी या बहिर्मुखी प्रवृत्ति का कला, काव्य और समाज से बहुत अधिक सम्बन्ध है। इन प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया कवि के दिल और दिमाग़ दोनों पर होती है, जिसका प्रभाव उसके काव्य पर होता है। और चूँकि काव्य का सम्बन्ध सीधा समाज से है इसलिए उसका असर जनता की विचार-धारा पर होता है जहाँ से सब प्रकार की क्रियाओं की उत्पत्ति है। इसीलिए कवियों का महत्व अधिक है क्योंकि वे जन-रुचि की परख कर लेते हैं और उसको आवश्यकता के अनुकूल ढाल लेते हैं। इससे कवि का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है। इस प्रकार से कार्य-कारण का विवेचन करने के पूर्व अब तक की कविता को भूमिका के रूप तथा ऐतिहासिक और सामाजिक प्रकाश में देख लेना अधिक तर्कसंगत होगा।

पाश्चात्य साहित्य और सभ्यता के सम्पर्क में आने के कारण हमारे सामाजिक जीवन में महत्वांकाक्षाएं जाग्रत होने लगीं। पूँजीवाद के आश्रय में मध्यवर्गीय लोग भी अभिजातता का ढोंग रचने लगे। व्यक्ति का महत्व बढ़ाया जाने लगा पर देश की परिस्थिति, और समाज की रूढ़ियों के कारण उनकी मनोभावनाएँ पूर्ण विकसित नहीं हो पाईं। गृहस्थियों की आर्थिक दशा चिन्तनीय थी, समाज के बन्धन बढ़ते जा रहे थे और देश की राजनैतिक परिस्थिति भी दिनों-दिन गिरती जा रही थी; इन कारणों से जनता में निराशा के भाव फैलने लगे। फलस्वरूप उस विलासिता का क्रम और अधिक बढ़ गया जो रीतिकाल और मुग़ल दरबारों में से होकर आ रही थी। यहाँ तक कि सुख-प्राप्ति की इच्छा से दबकर वह इन्द्रिय-जनित सुख की ओर एक ख़ास दिलचस्पी लेकर अग्रसर होने लगा जिसका नमूना 'मारुफ़ो' है। इस प्रकार कवि मानसिक व्यभिचार या टी० एस० इलियट के शब्दों में 'cheering oneself up' की प्रवृत्ति के साथ-साथ आत्म समर्थन और स्व-मत-रक्षा का आग्रह करने लग गये। इसी पर प्रभाकर माचवे लिखते हैं कि 'इसी आत्म-समर्थन में जब स्त्रैण आत्म-निपीड़क ( मैसौकिस्ट ) प्रवृत्तियाँ मिल जातीं हैं। जिसका मूल कारण है राजनीति में अहिंसावाद का बोलबाला। तब एक विचित्र प्रकार का घोर करुण-व्यंगमय साहित्य निर्मित होता है जिसमें 'फ्रस्ट्रेशन ही फ्रस्ट्रेशन नज़र आता है; राह कहीं सूझती नहीं।' या तो कविगण जीवन से निराश, समाज को उपेक्षित दृष्टि से देखकर और संसार को माया समझकर कहेंगे—

'आओ सो जाएँ मर जाएँ'—बच्चन

'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे'—प्रसाद

'कौन पहुंचा देगा उस पार'—महादेवी वर्मा

या ऐसी प्रार्थनाएँ करेंगे कि प्रलय हो जाए:—

'आमि चिर दुर्दम, दुर्विनीत, नृशंस
महाप्रलय आमि नटराज, आमि साइक्लोन, आमि ध्वंस
'आमि महाभय, आमि अभिशाप पृथ्वीर !
आमि दुर्वीर !
बोलोवीर
बोलो उन्नत ममशीर'—नज़रुल इस्लाम

'गरज कर भरो रुद्र हुंकार,
यहाँ पर करो नाश का साज !'—भगवती चरण वर्मा

'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाये।'—नवीन

'नचे तीव्र गति भूमि कील पर, अट्टहास कर उठें धराधर,
उपजे अनल फटे ज्वालामुख, गरजे उथल-पुथल का सागर
—दिनकर

इतना होते हुए भी समाज में देशभक्ति से पूर्ण जीवन-दायिनी एक धारा अपनी स्वाभाविक गति से बह रही थी, जिसके दोनों किनारे ऊपर दिए हुए उदाहरण कहे जा सकते हैं। इस धारा का इतिहास सं० १००० से प्रारम्भ होता है, जब कि राजपूत राजा 'स्वयम्बर-कुमारियों' के लिए परस्पर युद्ध करते थे, और बाहरी आक्रमण के समय केवल धर्म से प्रेरित होकर शत्रु से अवरोधात्मक युद्ध कर लेते थे क्योंकि देश-प्रेम का दृष्टिकोण सिर्फ़ उनके राज्य की सीमा से सीमित था। 'खुमानरासो', 'बीसलदेवरासो', 'पृथ्वीराजरासो', 'विजयपालरासो' और 'आल्हा-उदल' हमारी विजय हमारी विजय के कीर्ति स्तम्भों की सुदृढ़ ईंटें हैं। मुग़लकाल में जिनकी रक्षा तुलसी, भूषण, लाल कवि, सूदन, जोधराज, और चन्द्रशेखर वाजपेयी ने की है वरना विलासिता और बढ़ते हुए नैराश्य से उत्पन्न नपुंसकता के कारण उनका ढह जाना बहुत सम्भव था। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी उस क्षेत्र में चेतना भरने का प्रयास किया, पर वे समाज के संस्कार रूप प्रचलित धर्म में अधिक उलझे रहे। यह हिन्दुस्तान के सामाजिक इतिहास में दूसरा अवसर था जब कि चारों ओर अराजकता फैल रही थी; जो कि अपना उग्र रूप धारण करने के पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ब्रिटिश साम्राज्य हो जाने के कारण दब गई। और लोगों में एक नये प्रकार का उत्साह आ गया :—

'तब लौ बहु सोये वत्स तुम जागे नहहिं कोऊ जतन,
अब तो रानी विक्टोरिया, जागहु सुत भय छाँड़ि मन।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

'उठो आर्य संतान सकल मिलि बस न विलम्ब लगाओ,
ब्रिटिश राज स्वातन्त्र्यमय समय व्यर्थ न बैठ बिताओ।'
—प्रेमघन

'यह दुर्दशा देश की लख के नीला मन में हुई अधीर।
क्रोध सहित पति को ललकारा "नाहक बनता है तू वीर"!
—लाला भगवानदीन

इनके साथ ही साथ बदरीनारायण चौधरी, प्रताप नारायण मिश्र, श्रीधर पाठक, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' ने भी देशभक्ति से ओत-प्रोत कविताएँ लिखीं, पर उनमें राजभक्ति भी मिश्रित थी। मुग़लों से हमारा धार्मिक विरोध हो सकता था पर आख़िरकार वे रहते तो हिन्दुस्तान में ही थे जिनके साथ हमारा मिल जाना सम्भव है जब कि अंग्रेज़ी राज्य लन्दन से भेजे गये चुनिन्दा लोगों द्वारा होता है। इस प्रकार हमारा संघर्ष देशीय न रहकर विदेशी बनता गया। त्रिशूल सनेही, रामनरेश त्रिपाठी और वियोगी हरि ने इस ओर ध्यान खींचा। भारतीय पूँजीवादियों ने अंग्रेज़ों से मिलकर सामन्तवाद को तो नष्ट कर दिया पर स्वयं अंग्रेज़ पूँजीवादियों के शोषण का भाजन बन गये। आख़िरकार वह दबी हुई अराजकता फिर उठी और सन् '५७ में ग़दर हो ही गया जो कि राज्य के प्रति घोर असन्तोष का प्रतीक था। इसके साथ ही बंग-भङ्ग का भी जनता पर बुरा प्रभाव पड़ा। ऐसे समय में बंकिम बाबू ने 'वंदेमातरम्' गीत जन-जन के मन में पहुंचा दिया। मैथिली शरण गुप्त ने 'भारत-भारती' का मन्त्र सा फूँक दिया। उसमें गुप्त जी ने 'भूत-भविष्य और वर्तमान तीनों समय की दशा का चित्र खींचकर लोगों को फिर नये सिरे से आशा बंधवाई। व्यवहार रूप में इस भावना को गाँधी जी के सत्याग्रह-आन्दोलन ने सहयोग दिया। प्रसाद जहाँ 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' कहकर रुक गये वहाँ भाकन लाल चतुर्वेदी ने कहा,

"मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पर जावें वीर अनेक॥"

जब गांधी जी को सत्याग्रह आन्दोलन में सफलता नहीं मिली तो 'नवीन' ने शीघ्र 'पराजय गान' गाया—

'आज खड्ग की धार कुंठिता है खाली तूणीर हुआ!
विजय पताका झुकी हुई है, लक्ष्य-भ्रष्ट यह तीर हुआ!

और दूसरे ओजस्वी कवियों ने भी अतीत के बड़े मार्मिक चित्र खींचे क्योंकि जनता में जोश की भावना भरने के लिए या तो पुरातन की स्मृति या वर्त्तमान पतित दशा से चिढ़ भावी में किसी शक्ति का सहयोग होना बहुत आवश्यक है। यह भावी-शक्ति किसी भी उस समय के देशभक्त कवि के पास नहीं थी क्योंकि वे राजनीति में भी प्रेम द्वारा हृदय-परिवर्त्तन करके विजय पा लेना चाहते थे। इसलिए अधिकांश कवियों ने अतीत का अवलम्बन लिया। सुश्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'विजयादशमी,' 'विदाई,' 'स्वदेश के प्रति' के साथ, झांसीवाली रानी की याद दिलाई।

दिनकर ने भी कई सुप्त ऐतिहासिक स्थलों को जगा कर आज़ादी का पता पूछा। 'नई दिल्ली' होते हुए वह 'हिमालय' पर पहुँचता है, जहाँ से 'चांदी का शंख' ले हिन्दुस्तान वालों को अपने 'भैरव हुंकार' में जय का संदेश सुनाता है:

'फेंकता हूँ लो तोड़ मरोड़, अरी निष्ठुरे बीन के तार;
उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख, फूंकता हूँ भैरव-हुंकार।'

जिसकी शब्द ध्वनि है—

'जागरूक की जय निश्चित है, हार चुके सोने वाले!'

इसीमें अपना स्वर मिलाकर 'निराला' कहते हैं—'जागो फिर एक बार!', और 'नवीन'—'कस्त्वं? कोऽहं?' का उत्तर देते हैं:

'है दुनियाँ बहुत पुरानी यह, रच डालो दुनिया एक नई,
जिसमें सर ऊँचा कर विचरें, इस दुनियाँ के बेताज कई;'

इन्हीं शब्दों की प्रति क्रिया हमारे 'चित्र जगत्' पर होती हैं। जो इसीकी प्रतिध्वनि है—

'एक नया संसार बसालें, आओ एक नया संसार,
ऐसा एक नया संसार कि जिसमें धरती हो आज़ाद,
कि जिसमें जीवन हो आज़ाद,
कि जिसमें भारत हो आज़ाद,
जनता का हो राज जगत में, जनता की सरकार;
देश देश के लोग मनायें नवयुग का त्यौहार।'

'नेपाली' भी 'रागिनी' में 'जग के क्षणिक बुलबुले फूटें, चिर-विप्लव का राग जगे' के द्वारा कहते हैं—


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



'मरते हैं डरपोक घरों में,
बांध गले रेशम का फीता।
यह तो समर, यहाँ मुट्ठी भर;
मिट्टी जिसने चूमी, जीता॥,

× ×

यह खेत ख़ून की खादों का,
आबाद, हरा दिखलाई दे;
बंदों की गांधी टोपी में
अब चाँद ज़रा दिखलाई दे।'

इसी प्रकार 'प्रेमी' भी 'राखी' के निमन्त्रण में मांगते हैं कि—

'जन्म भूमि हो रही अनाथ,
वे ही आज बढ़ावें हाथ,
जिन्हें न प्यारा हो निज माथ',

और उर्दू के प्रसिद्ध कवि डाक्टर इक़बाल बेचैन होकर कह उठते हैं, जाग या नींद में मरजा

'हे हिन्द! देख तेरी दशा, मुझे रोना आता है।'

और 'जोश' फ़र्माते हैं—

'नाज़नीनों का यह आलम मादरे हिंद आह आह;
किसके जौरे नारखा ने कर दिया तुझको तबाह।
हुन बरसता था कभी दिन रात तेरी ख़ाक पर;
सच बता ऐ हिन्द तुझको खागई किसकी नज़र?
बाग तेरा क्यों जहन्नुम का नमूना हो गया?
आह क्यों तेरा भरा दरबार सूना हो गया?'

जब कि 'मधुर' जी 'राजाओं से' निवेदन कर रहे हैं—

'ऊपर अम्बर रोता है नीचे धरती अकुलानी।
यह मुकुट बेच दो राजा, यह महल बेच दो रानी॥
विस्तृत साम्राज्य तुम्हारा मर भूखों की बस्ती है।
परवानों की हस्ती क्या मर मिटने की मस्ती है॥
इन कोटि कोटि प्राणों में, है एक आग तूफ़ानी।
यह आग बुझाओ राजा, यह आग बुझाओ रानी॥'

जब कि वीरेन्द्र कुमार जन-शक्ति के प्रचंड वेग को जानकर कहते हैं—

'बहता पानी फाट सके—जग में ऐसी तलवार नहीं है!
ज़ालिम, ज़ुल्म करो तुम जी भर, हमें ज़रा इन्कार नहीं है!'

यहीं पर नीलकंठ तिवारी की पंक्तियाँ देना अनुचित न होगा, जो उन्होंने 'मिस मेयो की भारत महिमा' को पढ़कर आने वाले अमरीकन सज्जन से व्यक्त कीं। कवि लिखता है—

'पंथी मत पूछो इतिहास हमारा,
होकर भी है नहीं आज तो यह धरती आकाश हमारा।
ओ विदेश के उत्सुक पंथी! शायद तुम हो पहले प्राणी,
शासक गर्वरहित मानव के मन सी कोमल जिसकी वाणी।
नीली आँखों में भर आई, करुणा की गीली हमदर्दी,
पिघली आज पूर्व के रवि से पश्चिम की बर्फ़ीली सर्दी।
आज तुम्हारा स्वागत करते, अपना धर्म निभाते पंथी,
पर हम बंदी, बँधे हाथ हैं, वरना गले लगाते पंथी।
तुम हमसे ही पूछ रहे हो, कैसे लम्बी कथा सुनायें!
ठोकर मारो धूल उड़ेगी, कह देगा इतिहास हमारा,

इसी प्रकार के राष्ट्रीय रंगों से शराबोर कई गीत आपको सोहनलाल द्विवेदी की 'भैरवी', सुधीन्द्र की 'प्रलयवीणा', डा० श्याम दीक्षित की 'भारती', नटवर लाल 'स्नेही' की 'अन्तर्ज्वाला', प्रह्लाद पांडे 'शशि' की 'विद्रोहिणी' और 'तूफ़ान', जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' के 'नवयुवक के गान' और सियाराम शरण की 'राष्ट्र वन्दना' में मिल जायेंगे। अनूप शर्मा और भगवती चरण वर्मा तथा गुरुभक्त सिंह ने भी कई अच्छे अफ़सानों की रचना की है। [देश-भक्त कवि स्वर्गीय सुब्रह्मण्य भारथी की तामिल भाषा में लिखी 'देशीया गीतांगल' १६ अक्टूबर १९४३ को मद्रास सरकार द्वारा फिर जब्त कर ली गई है।] 'हिन्दू हैं हम चालीस करोड़' जैसे कई गाने शहरों में प्रचलित मिलते हैं। गांवों तक में हमारी यह धारा अपने पूर्ण वेग से प्रवाहित हो रही है। हिन्दुस्तान में कई ऐसे देश भक्त कवि हो गए हैं, जिनको सूली पर चढ़ा दिया गया। उस समय उनकी पेशानी पर शिकन तक न आती थी और वे गाते ही रहते थे। उन्हीं शहीदों के ख़ून के चन्द क़तरों का यह प्रभाव है जिनकी आत्माओं से बल लेकर हमारे आज के कवि बढ़ सकेंगे। इन राष्ट्रीय-विचारों को लेकर चलनेवाले कवियों को अवश्य ही प्रगतिशील कहा जायगा और वे हैं भी। परंतु साथ ही यदि सचेत होकर इन लोगों ने अपना अगला क़दम नहीं बढ़ाया तो यह निश्चित है कि ये भी उसी भूल या ग़लती के शिकार होंगे, जिसके शिकार भारतेन्दु काल के देशभक्त कवि हो चुके हैं। क्योंकि राष्ट्रीयता का जो रूप हमारे समाज में प्रचलित है, वह पूर्ण रूप से पूँजीवादी समाज की देन है, जिसमें उसके हित उलझे हुए हैं। अथवा व्यापारिक हित सिद्ध करना तथा विदेशी पूँजीवाद को उखाड़ फेंकना बिना इस प्रकार की राष्ट्रीयता का प्रचार जनता में किए कभी भी सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए यह पूर्ण आवश्यक हो जाता है कि राष्ट्रीय कवियों को अपनी एक निश्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तथा स्पष्ट नीति निर्धारित करनी होगी, एक दृष्टिकोण बनाना होगा वरन् वे जनता तक वास्तविक उद्देश्य पहुँचाने के अग्रदूत ही होंगे। और एकाएक परिस्थिति के परिवर्त्तन होने पर योन नागुची और डैनङ्जियो की तरह बहक जाना बहुत सम्भव हो सकता है। आज की देश-काल-परिस्थिति की भी मांग यही है क्योंकि (१) युद्ध के कारण फैली हुई आर्थिक कठिनाइयों को सुलझाने के लिए सामूहिक रूप की आवश्यकता है, (२) जनता के सामने कोई स्पष्ट लक्ष्य नहीं है और वह किसी अनजान आशंका से भयग्रस्त है, (३) देश में जगह जगह अन्न-समस्या का प्रश्न उठा हुआ है, (४) समाज में विलासिता, निष्क्रियता तथा नैराश्य की भावनाएँ दिनों दिन बढ़ती जा रही है और (५) जनता व्यक्तिशः रूप में अपने विचारों की पूर्त्ति के लिए मन चाहे कार्य करके अपनी शक्ति नष्ट कर रही है। कहने का अभिप्राय यह है कि इनमें से कुछ की उत्पत्ति तो संक्राति काल की देन है और शेष राजनीति, और समाज में फैली आराजकता का प्रमाण है जिसको साहित्यकार को इस रूप में समझाना होगा कि 'न हींग लगे न फिटकरी' और 'रंग आ जाये चोखा।' हमको यह देखना होगा कि सान्ती चक्रवर्ती किस हालत में मर गये ? रनेश दास गुप्ता पर क्यों हमला किया गया ? आज की हर एक छोटी घटना, हमारी प्रेरणा-स्रोत होनी चाहिए तभी हम पूर्ण जागरूकतात्मा पायेंगे। तब हमें जीने का हक़ तभी है, जब हम निश्चित कर लेंगे कि दुनिया में वर्गहीन समाज रहना चाहिए या नहीं, उस प्रकार के समाज के लिए साम्राज्यवाद, फैसिज़्म और समाजवाद में से किसको जीवित रखना होगा ? इन प्रश्नों के उत्तर के साथ ही साथ हमारे कार्य की निश्चित तथा स्पष्ट रेखा भी बनती जायगी। जिस पर चलना हर एक साहित्यकार का कर्तव्य हो जाता है और उस लक्ष्य की पूर्ति में सहयोग देना ही साहित्य सेवी का धर्म है। यदि राष्ट्र के कवि इन प्रश्नों तथा समस्याओं को नहीं सुलझा सकते, अपनी वाणी के ओज से नेताओं को नहीं छुड़ा सकते, जनता में अभय की भावनाएँ भरकर निश्चित लक्ष्य नहीं बतला सकते, देश के स्वातन्त्र्य तथा फासिज़्म के नाश के लिए यदि पथप्रदर्शक या रहबर नहीं हो सकते तो यह बिल्कुल निश्चित है कि एक दिन उनको या तो ख़ुदकुशी करनी पड़ेगी या वे जनता के हाथों मारे जायेंगे, क्योंकि जनता खोज में निकली पगली जनता और किसको पकड़ेगी ! यहाँ यह कहना भी आवश्यक हो जाता है कि एक दिन पंत, नरेन्द्र शर्मा, अंचल और शिवमंगल सिंह 'सुमन' भी इसी प्रकार के राष्ट्रीय विचारों वाले थे। पर उनकी बौद्धिकता ने उनको बहुत शीघ्र ही इस बात को बतला दिया कि वास्तविक रूप में हमारे देश तथा समाज की क्या दशा है और उसका छुटकारा उससे किस रूप में हो सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर के साथ ही उनकी विचार धारा की दशा भी परिवर्तित हो जाती है। कवियों को नरेन्द्र के इस कथन से अपने को मुक्त कर लेना होगा कि 'जिनकी दृष्टि अन्तर्मुखी थी उन्हें सब 'हालीमैन' के रूप में दिखलाई पड़े और जिनकी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी थीं, उनके सामने 'वेस्टलैण्ड' का प्रसार था।' इसी प्रकार प्रकाशचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि 'जो कलाकार वर्ग-संस्कृति के हिमायती हैं, वे अब भी जीवन की विषमताओं से साहित्य को बचाकर रखने के पक्ष में हैं। जो नव-संस्कृति के निर्माण में सहायता दे रहे हैं, उनकी वाणी में नए स्वर और ताल हम सुनते हैं।' 'नव-संस्कृति का निर्माण सामाजिक वर्ग-संघर्ष की प्रतिक्रिया के मूल में है, जिसका क्रम ऐतिहासिक-क्रिया द्वारा पूरा होता रहता है।'

पंत जी की 'ग्राम्या' में लिखी गई 'भारत-माता', 'चरखा-गीत', 'राष्ट्र-गान', '१९४०!' आदि कविताएं इस बात की द्योतक हैं कि उनका राष्ट्रीयवाद एक अलग प्रकार का बौद्धिक राष्ट्रीयवाद है जो सामयिक समस्याओं के प्रति भी कवि का झुकाव प्रकट करता है। उनके पास राष्ट्र को देखने का बौद्धिक रूप है फिर भी वह सच्ची दिशा के प्रति अनभिज्ञ नहीं हैं। बाबू मैथिलीशरण गुप्त की तरह आप समय के साथ अपनी कविता-धारा को उचित पथ पर मोड़ देते हैं। यही हाल नरेन्द्र शर्मा का है। अंचल' भी 'किरण-वेला' में 'ओ मानवता के संकेतक, युग माँग रहा है पन्थ-दान' की ध्वनि से लिखते हैं कि—

'यह नस्ल जिसे कहते मानव, कीड़ों से आज गई बीती,
बुझ जाती तो, आश्चर्य न था; हैरत है पर कैसे जीती !

के द्वारा वह 'सर्वहारा' 'बढ़ते आते···' से 'जागरण का पर्व' आता है जहाँ से हम 'करील' में पहुँचते हैं। सुमनजी ने भी इस प्रकार की कविताएँ लिखी हैं।

आज हिंदी साहित्य को माइकोवस्की से कवि की आवश्यकता है जो कि जन-सम्पर्क के द्वारा अपना संदेश घर-घर में जन-जन तक पहुँचा दे। इसी में उसका, साहित्य का, समाज और देश का कल्याण निहित है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अहल्याबाई होलकर

विश्वम्भरनाथ

मलहरराव होलकर महाराष्ट्र मंडल के प्रमुख सदस्यों में से था। उसका एक ही बेटा कुण्डीराव था जो असमय में ही कुम्भेर की लड़ाई में मारा गया। कुण्डीराव का विवाह शिंदे परिवार की अहल्याबाई के साथ हुआ। कुण्डीराव की दो सन्तानें थीं। मालीराव नामक एक पुत्र और मुक्ताबाई नामक एक कन्या। मलहरराव के मरने के बाद उसका पौत्र मालीराव गद्दी पर बैठा किन्तु दुर्भाग्य से तख्त पर बैठने के छै महीने के बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। मालीराव निस्सन्तान मरा। इसलिये राज्य का सारा भार अहल्याबाई के कन्धों पर आकर पड़ा।

तख़्त पर बैठने के बाद ही अहल्याबाई ने तुकाजी होलकर को अपनी समस्त सेनाओं का प्रधान सेनापति नियुक्त किया और उसकी मदद से अपनी सेना का भली भाँति संगठन किया। सेना के भली भाँति संगठित हो जाने पर उसे निश्चय था कि फिर कोई कमज़ोर जानकर उस पर हमला करने की हिम्मत न करेगा।

सेना के संगठित हो जाने पर अहल्याबाई ने राज-प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया। मालवा और निमाड़ का कर अहल्याबाई ही वसूल करती थी और बुन्देलखण्ड तथा दक्षिण का कर वसूल करने का काम तुकाजी के सुपुर्द था। फ़ौजी और दीवानी ख़र्च निकालकर सारा धन राज के ख़जाने में जमा कर दिया जाता था। सारे ख़र्च का बहुत साफ़ साफ़ हिसाब रखा जाता था। इसमें से निजी ख़र्च के लिये अहल्याबाई एक पैसा तक न लेती थी। इसके लिये उसने चार लाख रुपये सालाना की जागीर अलग कर रखी थी।

विविध भारतीय राज्यों से अपना राजनैतिक सम्बन्ध क़ायम करने के लिये अहल्याबाई ने पूना, हैदराबाद श्रीरङ्ग पट्टन, नागपुर, लखनऊ और कलकत्ता इत्यादि विभिन्न राजधानियों में अपने दूतावास क़ायम किये। इससे उसे भारत की राजनैतिक हलचलों का निश्चित पता चलता रहता था।

अहल्याबाई रोज़ दरबार में बैठती थी। उसके शासन का पहला सिद्धान्त था—प्रजा से हलका लगान लिया जाय। किसानों और वेतनदारों पर उसकी बड़ी कृपा रहती थी। वह स्वयं प्रजा की हर एक शिकायत सुना करती थी। अहल्याबाई के न्याय की तारीफ़ करते हुये सर जान मैलकम लिखता है—

"वह हर एक की फरियाद ख़ुद सुनती थी और यद्यपि वह सदा विविध मुक़दमों को न्यायालयों और पञ्चायतों के सुपुर्द करती रहती थी और कभी कभी फैसले के लिये अपने मंत्रियों के हवाले कर देती थी, तथापि जो अभिवादी चाहता था, किसी समय भी उसके पास तक पहुंच सकता था। उसके अन्दर अन्याय के सम्बन्ध में कर्तव्य-परायणता का भाव इतना प्रबल था कि कहा जाता है कि जब कभी किसी मुक़दमे की अपील उसके सामने जाती थी, वह न केवल धैर्य के साथ ही सब बातें सुनती थी बल्कि अत्यन्त तुच्छ से तुच्छ मुक़दमे की जाँच में अथक परिश्रम करती थी।[1]

अहिल्याबाई अत्यन्त परिश्रमशील थी। राज के कामों से फ़ुरसत पाकर वह अपना सारा समय भक्ति और परोपकार में लगाती थी। उसके हर काम पर धार्मिकता की गहरी छाप रहती थी। वह अक्सर कहा करती थी—"अपनी हुकूमत के एक एक काम के लिये मुझे परमात्मा के सामने जवाब देना होगा।" जब उसके मंत्री किसी पर सख्ती करने की सलाह देते थे तो अहल्याबाई कह बैठती थी—"हम नश्वर तनधारियों को ध्यान रखना चाहिये कि हम उस सर्व शक्तिमान के रचे हुये पदार्थों को नष्ट न करें।"[2]

अहल्याबाई नित्य ब्राह्ममुहूर्त में उठा करती थी। नित्य-कर्म से निवृत्त होने के बाद वह सन्ध्योपासना करती थी। फिर कुछ देर तक धार्मिक ग्रन्थों का पाठ सुनती थी। इसके बाद अपने हाथ से ग़रीबों को दान देती थी और अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराकर तब स्वयं भोजन करती थी। अहल्याबाई सर्वथा निरामिष-भोजी थी। भोजन के बाद वह फिर ईश्वर प्रार्थना करती थी। फिर थोड़ी देर विश्राम के बाद दो बजे दरबार पहुँच जाती थी। दरबार में वह प्रायः छै बजे शाम तक रहती थी। दरबार समाप्त होने के बाद पूजा पाठ और थोड़े से आहार के बाद नौ बजे रात को वह फिर दरबार में आ जाती थी और ११ बजे रात तक काम करती रहती थी। इसके बाद अहल्याबाई का सोने का समय होता था। मैलकम के अनुसार इस दैनिक कार्यक्रम में सिवाय व्रतों, विशेष त्योहारों अथवा राज्य की विशेष आवश्यकताओं के और किसी कारण कभी परिवर्तन न होता था।

---

१—A Memoir of Centrel India, including Malwa—by Major-General Sir John Malcolm, Vol. 1, p. 176.

२—Ibid, p. 177.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अपने आस पास के दूसरे राजाओं के साथ अहल्या बाई का सम्बन्ध इतना अच्छा था कि कभी किसी दूसरे राजा ने उसके राज पर हमला नहीं किया। केवल एक बार उदयपुर के महाराणा ने अहल्या बाई पर चढ़ाई की। अहल्याबाई ने तुरन्त अपने मुसलमान सेनापति शरीफ़ भाई को सेना सहित मुक़ाबले के लिये भेजा। पलसोरा नामक गाँव के पास दोनों ओर की सेनाओं का आमना सामना हुआ। उदयपुर की सेना पराजित हुई। महाराणा ने सुलह की प्रार्थना की। अहल्या बाई ने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया।

अहल्याबाई को अपनी प्रजा पर शासन करना मालूम था। वह अपनी शान्त प्रजा के साथ दयावान थी और अपनी उपद्रवी प्रजा के साथ उसका व्यवहार कड़ा, किन्तु न्यायपूर्ण होता था। राज के मन्त्रियों को वह कभी नहीं बदलती थी। उसके अफ़सर ताउम्र अपने अपने पदों पर बहाल रहते थे। अहल्याबाई अपने राज में चारों ओर ख़ुशहाली पैदा करने का अथक प्रयत्न करती थी। जब वह अपने राज्य के महाजनों, व्यापारियों, किसानों और काश्तकारों की उन्नति करते देखती तो उसे बड़ी ख़ुशी होती। वह उन पर टैक्स बढ़ाने के बजाय अपनी कृपा बढ़ाती। इन्दौर पहले एक छोटा सा गाँव था। अहल्या बाई के प्रयत्न से ही वह बढ़ते बढ़ते एक विशाल धनवान नगर हो गया।

अपने सामन्त नरेशों के साथ अहल्याबाई का व्यवहार अत्यन्त उदार होता था। कई छोटे मोटे राजपूत सरदारों ने राज्य में उपद्रव मचाकर लूटमार शुरू की अहल्या बाई ने उन्हें प्रेम से जीत कर राज्य के शान्त और स्वामि भक्त नागरिक बना दिया। सतपुड़ा घाट के गोंड और भील होलकर राज्य में उपद्रव मचाया करते थे। अहल्याबाई ने पहले उनसे प्रेम से काम चलाना चाहा किन्तु वे बाज़ न आये। तब विवश होकर कई आदमियों को सूली पर लटकाना पड़ा। गोंड भीलों के दिल दहल गये। उन्होंने क्षमा चाही। उदार महारानी ने उन्हें खेती के लिये ज़मीनें दीं और पहाड़ों से माल से लदी गाड़ियों के सुरक्षित गुज़रने के लिये दो पैसे फ़ी गाड़ी कर वसूल करने का अधिकार दिया। इस तरह धीरे धीरे उन्हें शान्त और सुखी नागरिक बनाने की चेष्टा की। सर जान मैलकम लिखता है कि थोड़े दिनों में महारानी अहल्या बाई का राज प्रबन्ध सब नरेशों के लिये आदर्श हो गया।

अहल्या बाई ने अपने राज्य में कई क़िले बनवाये और विन्ध्याचल की चोटी पर 'जौम' नामक एक क़िला बनवाया। महेश्वर में उसने कई मन्दिर और धर्मशालायें बनवाईं। राज्य भर में उसने सैकड़ों कुयें खुदवाये। भारत के समस्त तीर्थ स्थानों में मन्दिर और धर्मशालायें बनवाईं। साधुओं के लिये सदाव्रत खुलवाये। बनारस का प्रसिद्ध मणिकर्णिका घाट महारानी अहल्या बाई का ही बनवाया हुआ है। इलाहाबाद का बाई का बाग़ भी अहल्या बाई के नाम से ही है। गया में श्रीराम और सीता की मूर्ति के पास अहल्या बाई की भी एक मूर्ति है। यही मूर्ति अहल्या बाई की सच्ची मूर्ति बताई जाती है। दक्षिण के अनेक दूर दूर के मन्दिरों में मूर्तियों के स्नान के लिये गङ्गा जल पहुंचाने का प्रबन्ध अहल्या बाई ने अपने ख़र्च पर कर रखा था। वह रोज़ ग़रीबों को खाना खिलाती थी। जनता के लिये खेल तमाशों और आमोद प्रमोद का प्रबन्ध करती थी। गर्मी में ठण्ढे जल के प्याऊ खुलवाती थी और जाड़े में ग़रीबों में कम्बल बटवाती थी। नदियों में वह मछलियों को खाना खिलवाती थी और पक्षियों के लिये उसने बाग़ लगवा दिये थे।

सर जान मैलकम ने अपनी पुस्तक में एक प्रसिद्ध भारतीय विद्वान का उद्धरण देते हुये लिखा है—

"दक्षिण के निज़ाम और टीपू सुलतान अहल्याबाई का उतना ही आदर करते थे जितना कि पेशवा करता था और मुसलमान और हिन्दू, दोनों, अहल्याबाई के चिरजीवी होने और उसकी सौख्य वृद्धि की ईश्वर से प्रार्थना करते थे।"[3]

६० वर्ष की उम्र में ३० वर्ष तक राज करने के बाद सन् १७९५ में महारानी अहल्याबाई का स्वर्ग वास हुआ। अहल्याबाई मामूली क़द की दुबली पतली स्त्री थी। रङ्ग गेहुआँ था और जीवन की अन्तिम घड़ी तक उसके चेहरे से शान्ति और भलाई झलकती थी। अहल्याबाई बड़ी हँसमुख थी किन्तु लोगों के ज़ुल्म और ज़्यादतियों पर जब उसे क्रोध आता था तो उसके अत्यन्त नज़दीकी अनुचर भी डर से काँपने लगते थे। धार्मिक ग्रन्थों से उसे विशेष प्रेम था। राज्य प्रबन्ध में वह अत्यन्त चतुर और दक्ष थी। जब वह बीस वर्ष की भी न थी उसे पति वियोग सहना पड़ा। पुत्र भी उसका केवल नौ महीने राज करके स्वर्ग सिधारा! वैधव्य के बाद कभी उसने रंगीन कपड़े नहीं पहने। ख़ुशामद से उसे सख्त नफ़रत थी। एक ब्राह्मण कवि उसकी प्रशंसा में एक पुस्तक लिखकर लाया। उसने

३—Ibid, p. 189.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े धैर्य के साथ सुना। जब वह समाप्त कर चुका तो कहने लगी—"मैं तो एक पापी और दुर्बल स्त्री हूँ। मैं इस प्रशंसा की पात्र नहीं।" कवि की पुस्तक नर्मदा में फिकवा दी गई।

अहल्याबाई के चरित्र पर दृष्टि डालते हुये सर जान मैलकम लिखता है—

"उसका चरित्र अद्भुत था। वह स्त्री थी किन्तु उसमें अभिमान न था। वह अपने धर्म की कट्टर विश्वासी थी किन्तु उसमें अनुदारता न थी। अपनी प्रजा के उन लोगों के साथ, जो दूसरे धर्मों के थे, अहल्याबाई का व्यवहार अनुग्रह और उदारता का होता था...अत्यन्त योग्यता और क्रियात्मकता के साथ वह अपना शासन चलाती थी...वह अपने कामों पर कड़ी से कड़ी नैतिक रोक थाम रखती थी। दूसरों की कमजोरियाँ और उनके अपराधों को वह हद दरजे तक क्षमा करने को तय्यार रहती थी।...मालवा के लोग अहल्याबाई को देवी समझते हैं और उसे अवतार मानते हैं।...अपने दायरे के अन्दर संसार के सब से अधिक पवित्र और आदर्श चरित्र नरेशों में उसकी गिनती की जानी चाहिये।"[४]

अहल्याबाई की प्रशंसा में टारेन्स लिखता है—

"मनुष्य के चरित्र पर अनुत्तरदायी सत्ता का जो बुरा प्रभाव पड़ता है, उस पर एक उच्च और पवित्र आत्मा किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकती है, इस बात का शायद संसार में सबसे अधिक ज्वलन्त उदाहरण अहल्याबाई के जीवन में मिलता है। अहल्याबाई तीस वर्ष तक शान्ति के साथ मालवा की धन-जन सम्पन्न भूमि पर राज्य करती रही। आसपास के नरेश उसका मान और आदर करते थे और जिन लोगों को उसकी प्रजा होने का सौभाग्य प्राप्त था वे उसे अपनी भक्ति का पात्र समझते थे।...वह अपने आस पास के दूसरे नरेशों के साथ व्यवहार करने में उतनी ही कुशल थी जितनी कि रूस की महारानी कैथराइन, किन्तु कैथराइन के समान अहल्याबाई ने अपने पति की हत्या करके उसके रक्त से अपने पलंग को गीला नहीं किया था। वीरता और सुजनता में वह इङ्गलिस्तान की महारानी एलिज़बेथ से कम न थी किन्तु एलिज़बेथ के समान अहल्याबाई ने अपने बन्दी प्रतिस्पर्धियों को जेलख़ाने के अन्दर क़त्ल नहीं किया। अहल्याबाई को लगभग वैसी ही परिस्थिति में राजसिंहासन मिला था जिस परिस्थिति में डेनमार्क की महारानी मार्गरेट को किन्तु मार्गरेट के समान अहल्याबाई ने न धनवानों को कुचला, न निर्धनों को सताया, न अपने चरित्र को ही कलंकित किया।...अहल्याबाई ईसाई न थी किन्तु वह दयावान थी, आत्मसंयमी थी, शासन के कर्तव्यों को पूरा करने में परिश्रमी थी, सबके साथ न्याय करने में सच्ची थी। और यद्यपि उसका सार्वजनिक जीवन लम्बा था तथा उसका चरित्र सदा निर्दोष और निरपवाद रहा...अपने प्रियजनों की अकाल मृत्यु के कारण उसके हृदय पर शोक का हलका रंग छाया हुआ था, शानो शौकत में भी वह विनीत रहती थी, सिंहासन पर बैठ कर भी उसमें महत्त्वाकांक्षा का पता न था...।"[५]

४—Ibid, p. 194-95.

५—Empire in Asia, by W. M. Torrens M. P. pp. 95-96.

---

# अमर कवि तुलसीदास की जै

कुमारी रज़िया नक़ी रायपुरी

अखिल विश्व में छिड़ी हुई है, भारतीय संस्कृति की तान।
महामना तुलसी के स्वर में मुखरित हुआ अगम अभिज्ञान॥
रमी रही रमते जोगी में, राम-भक्ति अनुपम सुख-धाम।
कहा जगत है 'सियाराममय,' वैमनस्य का तब क्या काम॥
विष्णु दास हैं शिव-शंकर के, शंकर शिव हैं उनके दास।
तुम्हें दिखाई देगा आत्मा में ही परमात्मा का वास॥
लहरें प्रेम-प्रीति की जीवन के अति गहन स्रोत से खींच।
सीय राम-पद परम प्रीति से, भक्त जनों के मन को सींच॥
दान, त्याग, तप, संयम ही हैं, बुद्धि-मार्ग के भाव प्रखर।
सकल कामनाहीन रहे हे कवि! तुम शाश्वत अजर अमर॥
कीर्ति व्याप्त है दिगदिगन्त में, गुण गाते सुर नर-किन्नर।
जै जै की ध्वनि दीन कंठ की, स्वीकृत करिये श्रीकविवर॥

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री विष्णु

उस दिन एक छोटे से जंकशन पर अचानक मेरी उससे भेंट होगई। मैं ट्रेन बदलने को रुका था और उसे आगे जाना था। रास्ते दो होकर भी हमें काफ़ी देर साथ रहने का अवसर था। पहिले उसी की दृष्टि मुझ पर पड़ी। वह चिल्लाया—हलो हरि !! हरि !!! किधर, कहां···?

मैं मुड़ूँ कि मेरे दोनों कन्धों को झकझोरता हुआ वह मेरे सामने आ खड़ा हुआ। वह मेरा बचपन का प्यारा साथी था। मैं हर्ष से चीख उठा—रमन...रमन... तुम... ?

हाँ हरि, मैं—वह मुस्कराया। उसके नेत्रों में तरल स्नेह था, उसका रोम रोम पुलकित था।

मेरी आँखें भर आईं। मैंने धीरे से कहा—कैसा आकस्मिक मिलन है पर कितना अच्छा···?

उससे बोला नहीं गया। एक बेंच की ओर संकेत करता हुआ वह स्वयं उस पर बैठ गया मानों उमड़ आये भावों को दबाना चाहता हो। मैं भी उसके पास उससे सट कर बैठा। मौसम सरदी का था पर प्रेम और स्नेह क्या मौसम के मन्त्र की अपेक्षा करते हैं। अपनी भावुकता को छिपाने के लिये वह हँसा और बोला—हाँ अब कहो। कहाँ हो ? क्या करते हो ?

मैंने कहा—क्या करता हूँ ? अकबर ने अपने एक शेर में आज के इन्सान के लिये चार काम गिनाये हैं। मैं एक कर चुका हूं, दूसरा कर रहा हूँ। दो बाक़ी हैं।

यानी !—वह हँसा।

बी० ए० कर चुका। नौकरी कर रहा हूं। भला हो महायुद्ध का। युद्ध-विभाग में डेपुटेशन पर आया हूं। ३५०) मासिक मिलते हैं। बस अब पेन्शन लेना और मरना बाक़ी है।

रमन उसी तरह हँसता रहा—माँ कहा है ?

दिल्ली मेरे पास है।

विवाह किया ?

हाँ!

कितने बच्चे हैं ?

अभी चार हैं, दो लड़के, दो लड़कियाँ। आगे और हो सकते हैं।

अब रमन खिलखिला पड़ा—तो यूँ कहिये सृष्टि का क्रम ठीक ठीक चल रहा है और फिर सहसा गम्भीर सा होकर बोला—क्यों हरि ! बचपन की बात याद है ?

मैंने कहा—सच कहता हूँ, रमन ! इतना व्यस्त जीवन है कि ऐसा लगता है सब कुछ आज ही शुरू हुआ है। हाँ, कभी कभी जब एकान्त मिलता है, अपने बच्चों को खेलते और झगड़ते देखता हूँ तो मुझे मेरा बचपन याद आ जाता है। सिनेमा में देखे किसी दृश्य की तरह क्षणिक आमोद, क्षणिक हर्ष, क्षणिक दर्द और फिर वही वास्तविकता का हृदयहीन चक्कर.....पर रमन। तुमने नहीं बताया।

क्या बताऊँ, हरि !—वह हँसा—कुछ बताने को हो तो ?

'आख़िर क्या करते हो ?

'कोई निश्चित काम नहीं; लिखने का शौक है लिख लेता हूं। कभी स्कूल खोलकर बच्चे पढ़ाने लगता हूं और और कभी हमारी सरकार की कृपा हो जाती है तो उसके आतिथ्य का मज़ा ले लेता हूं।'

'कांग्रेस में काम करते हो ?'

'हाँ,

'विवाह किया ?'

'ज़रूरत ही नहीं पड़ी।'

'माँ कहा है ?'

'मर गई।'

मुझे बड़ा अजीब सा लगा। मन भारी हुआ, घबराया सा बोला—रमन। लगभग पन्द्रह वर्ष बाद हम एक दूसरे के आमने सामने बैठे हैं। इसी बीच दुनिया कहाँ से कहाँ पहुंच गई। आज की ज़िन्दगी मौत से भी भयानक है पर रमन ! तुमने अपना क्या कर डाला ? कैसे जीते हो दोस्त ? लेकिन रमन था खिलखिला पड़ा—कैसे जीता हूँ। वैसे ही जैसे जीना पड़ता है। तुम्हें यह सब अजीब सा लगता है पर मेरे लिये तो सब स्वाभाविक है जैसे तुम्हारे लिये सरकारी काग़ज़ों पर टिप्पणी लिखना और प्रणय-केलि के बाद बच्चे पैदा करना।.....।

और वह आगे कुछ कहे कि एक बालिका वहाँ आ गई। लगभग पाँच वर्ष की होगी। सुन्दर हँसमुख और स्वस्थ्य। बोली—चाचा जी ! अम्मा आपको बुलाती हैं।

रमन ने कहा—अभी चलते हैं, बिट्टी।

और मेरी ओर देखकर बोला—इसे पहिचान सकोगे ? मैंने सोचना चाहा पर एकदम कुछ सूझा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कहा—इसे कैसे पहिचानूँगा रमन। इधर आये युग बीत गया।

'नहीं हरि। याद करो! बचपन के सब साथियों के बारे में सोचो! किसी से इसका चेहरा मिलता है? किसी का भोलापन है इसकी आंखों में? सोच लो, बिलकुल बाप को पड़ी है।'

कि मेरी आँखें खुलीं। मस्तिष्क का चक्कर बड़ी तेज़ी से उल्टा घूमा, धीरे धीरे सभी साथी सामने आये और चले गये। सबसे अन्त में एक भोला चेहरा आया और जाने लगा कि मैं झिझका—नारायण!

रमन के नेत्र चमक उठे। शाबास —उसने कहा—तुम्हें याद है हरि! यह नारायण की ही एकमात्र बालिका है।

मैं विजय गर्व से मुस्करा उठा। बच्ची को अपनी ओर खींचकर मैंने कहा—कहां है वह पागल जो क्लास का मानिटर होकर भी सदा हमसे दबता रहता था।

रमन यथाशक्ति स्वर की स्वाभाविकता बनाये रखते हुये बोला—उहँ ऐसा ही था, हरि! और अन्त तक ऐसा ही रहा।

मैं हठात चौंका—रहा, क्या मतलब?

'मतलब यही कि उसने देश के अर्थात हमारे लिये अपने प्राणों का मोह नहीं किया। हँसता हँसता फांसी पर चढ़ गया।'

फांसी हुई...मैंने बालिका को ज़ोर से अपनी ओर खींचा मानों किसी ने मुझे ही फांसी का हुक्म सुनाया हो।

हां, हरि।—रमन कुछ गम्भीर कुछ द्रवित वाणी से बोला—गत वर्ष उसे अगस्त आन्दोलन के दिनों में रेल की पटरी उखाड़ने के अपराध में फांसी दे दी गई। क्या तुमने यह सब अख़बारों में नहीं पढ़ा.....? और फिर उसी क्षणव्यंग से मुस्कराकर कहा—तुम्हें क्या मतलब इन बातों से। तुम तो उनके हो।

मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया। क्रोध, लज्जा और ग्लानि से मैं तिलमिला उठा। आंखों में आंसू भर आये। रमन ने मुझे देखा, मेरे आंसुओं को देख जैसे हड़बड़ा उठा हो—अरे! मैं तो भूल गया। आओ हरि! नारायण की मां है, बहू है.....

और फिर मुझे खींचता हुआ पीछे की ओर ले गया जहां छोटे से वेटिंग रूम में वृद्धा बेंच पर चादर लपेटे लेटी थी। उसीके पास बैठी एक युवती शायद बाहरी सड़क पर देख रही थी। रमन ने दूर से ही पुकार कर कहा—देखो तो अम्मा! यह कौन आया है?

कौन है रे—अम्मा उठती उठती बोली। युवती ने गरदन घुमाकर मुझे देखा और झट घूँघट खींच लिया। अम्मा ने ग़ौर से मुझे देखा। मैं उन्हें प्रणाम करूँ कहूँ कि बोल उठी—शुक्ल जी के बेटे की सी होर आवे है। हरि है क्या?

रमन हँसा—वही हजरत है अम्मा। नारायण का लँगोटिया यार। बार बार तुम्हारी मार खाकर भी रात रात भर इन्हीं के घर तो हम सब पड़े रहा करते थे। शुक्ल जी की कहानियाँ और शुक्लानी चाची के गोल गप्पे! क्यों हरि...अरे, अरे! रोता है, पागल! चुप कर। नारायन ने कोई ऐसा काम नहीं किया जिसके लिये किसी को रोना पड़े।

लेकिन मुझे न जाने क्या हुआ? मैं नारायण की माँ के पास बैठकर सुबक उठा। माँ की आँखों से भी अविरल धारा बह चली। बहू ने एक बार फिर घूंघट उठाकर देखा कि रमन ने फिर कहा—इस बार उसके स्वर में तीव्र आदेश ध्वनि थी—हरि! खबरदार जो रोये। वीरों की समाधि पर आँसुओं का नहीं, रक्त का अर्घ दिया जाता है। उसके लिये रोना उसके कार्य्य का तिरस्कार करना है।

मैंने आँसू पोछ डाले। नारायण की अम्मा भी शान्त हो गई और पूछने लगी—

क्यों भइया। शुक्ल जी कहाँ हैं अब?

मैंने कहा—जहाँ एक दिन सब जाते हैं।

उन्हें दुख हुआ—मर गये। कब रे? और माँ कहाँ है?

माँ दिल्ली है।

और तूने विवाह किया न? क्या करता है?

मैंने उसी तरह स्वाभाविक बनने की कोशिश करते हुये कहा—विवाह किया है, बच्चे हैं, नौकर हूं इत्यादि इत्यादि!

और कहकर पूछा—नारायण ने एक यही लड़की छोड़ी है?

हाँ बेटा! एक यही है।

कि रमन बोल उठा—उसे इस एक की भी ज़रूरत नहीं थी। वह देश के लिये मरा है। मौत ने उसे अमर कर दिया है। जीवन सबको एक तल पर रखता है पर मौत महान आत्माओं का निर्वाचन करती है।

बेशक रमन—मैंने कहा—जिसने दूसरे के लिये प्राण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दिये हैं वही जिया है। हमारा क्या है कुत्तों की तरह पेट भरते रहते हैं।

रमन ज़ोर से हंसा—आत्मनिन्दा आत्मश्लाघा के समान पाप है, हरि! यह विशुद्ध कायरता है।

मैंने कहा—और क्या तुम हमें बहादुर समझते हो?

उसी अल्हड़ता से वह बोला—तुम मनुष्य हो हरि। और मनुष्य कब क्या कर सकेगा यह कौन जानता है। सच कहना क्या कभी तुमने सपने में भी सोचा था कि वह भोला और दब्बू नारायन किसी दिन हँसते हँसते फाँसी को गले लगा लेगा.....।

मुझे लगा कि उसका स्वर स्वाभाविक अल्हड़ता और दृढ़ता को छोड़कर कुछ उत्तेजित होने लगा है। मुझे उसकी यह मुद्रा बड़ी सुन्दर लग रही थी। वह कुछ बोलने के मूड में था; लेखक था न? पर अचानक उसी वक्त दो तीन मनुष्य वहाँ आ धमके। उन्होंने फ़ौजी वर्दी पहिनी थी और वे आते ही अकड़कर बोले—आप यह कमरा खाली कर दीजिये।

रमन ने अचरज से उन्हें देखा और नम्रता से कहा—क्यों भइया, क्या बात है?

'यहाँ हम बैठेंगे।'

'लेकिन यहाँ तो हम बैठे हैं।'

उनमें से एक अकड़ पड़ा—यह तो हम देख रहे हैं कि आप बैठे हैं पर अब हट जाइये।

रमन कुछ कहे कि मैं उठकर उसके सामने आखड़ा हुआ—और अगर न हटें तो...।

तो हम हटा देंगे—वह बोल उठा।

अच्छी बात है हटा दीजिये तब...मैंने उसी तरह कहा।

कि रमन जोर से हँस पड़ा और तभी बाहर से दो पुरुष और दो स्त्रियाँ वहाँ आगईं। वे सब जाट जान पड़ते थे। उनका पहनावा भला था। पुरुष दोनो वृद्ध थे। उन्होने कुरता धोती पहिना था। हाथों में बेतें थीं और पैरों में मुंडे जूते। स्त्रियों में एक वृद्धा थी। सादा घाघरा और ओढ़नी पहिने थी पर दूसरी स्त्री की जो युवती थी, पोशाक चटकदार थी। उसके हाथ पैर ज़ेवरों से भरे थे। उसने गहरा घूंघट निकाला था। उनको देखकर रमन ने पूछा—कहाँ जा रहे हैं आप?

'दिल्ली।'

'किसी मेले में।'

११

एक वृद्ध जो तब तक कुरसी पर बैठ चुके थे बोले—हां भइया मेला ही है। बेटे की मौत का मेला है।

हम सब चौंके—मौत। यहाँ भी मौत की चर्चा है। रमन ने फिर पूछा—बात क्या है, चौधरी जी।

'भइया। बात क्या होती बड़े लाट ने बुलाया है। लड़का था लड़ाई में मारा गया पर था बहादुर। मरा भी तो जीत का रास्ता खोलकर मरा। राजा ने खुश होकर विक्टोरिया क्रास का तमग़ा दिया है।

विक्टोरिया क्रास। किसे! क्या नाम था उसका?

'भरत सिंह।'

'भरतसिंह। पांचवी जाट रेजिमैन्ट का सिपाही जिसने मध्य बर्मा में लगातार हमला करके जापान को पीछे हटाया था, जिसने दुश्मन की मशीनगनों से आती हुई गोलियों के बीच, बिना आदेश पाये ही उस चौकी पर हमला किया था जो हार जीत का पासा पलटने वाली थी।

हाँ, हाँ, वही—अचरज से उस वृद्ध के मुँह से निकला और वे सब स्त्री पुरुष रमन को देखने लगे—तुम तो सब कुछ जानते हो, भइया।

रमन उसी शान्ति से बोला—हाँ मैंने अख़बार में पढ़ा था कि उसने प्राण दे दिये पर उस चौकी को दुश्मन से छीन लिया। वह सचमुच बहादुर था। आप शायद उसके पिता हैं।

'जी। उसके चचा हैं, वह माँ है, और उधर उसकी घरवाली है। ये सब भाई और साथी हैं।'

'कोई बच्चा है।'

'हां! एक लड़का है गोद में।'

'ठीक है वह भी बाप जैसा बहादुर बने यही हम चाहते हैं। अच्छा! आप लोग बैठिये। हम बाहर चले जावेंगे।'

और यह कहकर उसने अम्मा जी से कहा—चलो अम्मा!

मैंने अचरज से यह सब देखा। मुझे बुरा लगा। मैं देख रहा था वे लोग भी कुछ घबरा रहे थे। मैंने तीव्रता से कहा—नहीं रमन! हम यहां पहिले बैठे थे। हम नहीं जावेंगे। जिन्हें तुम बहादुर कहते हो वे दूसरों के टुकड़ों पर जीनेवाले भाड़े के टट्टू हैं.....मैं आगे और भी कुछ कहता कि रमन का स्वर काँप उठा—हरी! किसी का अपमान मत करो। मैं मानता हूँ वह नहीं जानता था कि वह किसके लिये अपने प्राण दे रहा है पर वह प्राण देना तो जानता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



था। और जिन्हें प्राणों का मोह नहीं है वे वीर पुरुष हैं। वीर पुरुष सदा आदर के पात्र हैं।

और उसने मुड़कर फिर कहा--चलो अम्मा! इन्हें बैठने दो। इन्हें रात भर यहीं रहना है। हमारी गाड़ी तो लगभग २-३ घण्टे में आ जावेगी।

वे उठीं कि वृद्ध बोल उठे—नहीं, नहीं। आप बैठिए! किसने कहा आपसे जाने को।

मैं एकदम तेज़ी से बोल उठा—तुम्हारे इन साथियों ने जो फौज की भाड़े की वर्दी पहिनकर अपने को अफलातून का बाप समझ रखा है वे जानते नहीं कि जिन्हें वे दुरदुराना चाहते है वे सदा मौत के साथ खेलते हैं। यह बात दूसरी है कि तुम्हारी तरह उन्हें सिर कटाने का पारितोषक नहीं मिलता बल्कि कुछ अन्धे लोग उन्हें घृणित समझते हैं और बैठने का स्थान देने से भी इन्कार करते हैं।

मैं क्रोध से उमड़ा पड़ता था और रमन को मेरी इस अवस्था से बहुत वेदना पहुंच रही थी परन्तु वे वृद्ध थे कि तिलमिला उठे। हाथ जोड़कर बोले, आप गुस्सा न करिये। हम आपको जानते नहीं अगर इन बच्चों ने कुछ कहा हो तो माफ कर दीजिये।

दूसरे वृद्ध ने जो अब तक चुप थे कहा—आप कांग्रेस में काम करते हैं?

मैंने कहा--मैं तो नहीं करता पर ये करते हैं।

ये इनकी मां हैं।

जी नहीं, इनकी नहीं ये अब सबकी माँ हैं। इनका लड़का हम सब के लिये ही फांसी पर चढ़ा था।

फांसी.....! हठात वे सब चौंक उठे।

जी हां! अगस्त सन् १९४२ की आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लेने के अपराध में इनके नवयुवक पुत्र को उसी सरकार ने जो तुम्हारे स्वर्गीय पुत्र को विक्टोरिया क्रास देने जा रही है, फांसी पर लटका दिया.....रमन से अब नहीं रहा गया। वह बड़ी तेज़ी से हँसा, बोला--अरे! यह तो चलता ही रहता है, पर हरी, बहादुर आदमी इस तरह भावों के गुलाम नहीं हुआ करते जिस तरह तुम। आओ हम बाहर चलें तुम्हारी गाड़ी भी आनेवाली है। आओ अम्मा, भाभी, पुष्पा बिट्टी आओ। और चौधरी की तरह मुड़कर बोला--ख़्याल न करना चौधरी साहब! दुनिया में सब इसी तरह चलता है। एक का पुण्य दूसरे का पाप है पर आपस में यह कड़ुवाहट नहीं होनी चाहिये।

और उसने बाहर जाने को किवाड़ खोले कि वे दोनों जो युवक थे आगे बढ़ आये और बड़ी नम्रता से बोले--आप हमारी ख़ता माफ कर दें। हम शर्मिंदा हैं। आप सचमुच बहादुर लोग हैं हम आपको इज़्ज़त करते हैं।

दूसरे ने मुस्करा कर कहा—और जब आप लोग राज सँभालेंगे तो हम क्या ज़रूरत पड़ने पर देश के लिये मरने से पीछे हटेंगे। आप हमारी बात मान लीजिये। जब तक गाड़ी नहीं आती अम्मा जी को यहीं बैठने दीजिये। बाहर जाड़ा है।

रमन उसी तरह हँसा पर उसे कुछ कहने की ज़रूरत नहीं पड़ी क्योंकि दोनों पुत्रहीना वृद्धायें तब तक चुपचाप एक दूसरे से बातें करने लगी थीं और विक्टोरिया क्रास विजेता सिपाही की पत्नी ने पुष्पा को अपनी गोद में लिटा लिया था। नारायन की पत्नी बार बार घूंघट उठाकर उन्हें देख रही थी।

हम बाहर जाने को उठे पर मैं मान लूँ मैं अब भी रमन की बात नहीं समझ पा रहा था कि गुलामी की जड़ उखाड़ने के लिये प्राण देनेवाला वीर और अपने मालिक के टुकड़ों के लिये जान देने वाला गुलाम दोनों महान कैसे हैं?

शायद इसलिये कि उन दोनों को प्राणों का मोह नहीं था और जिन्हे प्राणों का मोह नहीं होता वे ही महान हैं।

शायद.....!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वीर शैव पन्थ

श्री व्यौहार राजेन्द्रसिंह

यह पंथ कर्नाटक में उदय होकर सारे दक्षिण में विस्तृत हुआ। इसके प्रचारक श्री वसवन्ना थे जो कि १२ वीं शताब्दी में उत्पन्न हुए थे। वे विज्जल नामक राजा के मंत्री थे। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने पर सामाजिक और धार्मिक विचारों में बहुत उदार थे। अछूत समझी जानेवाली जातियों तथा स्त्रियों की दशा को उन्नत करना इस पंथ की विशेषता है। कुड़ल संगम नामक गोदावरी और कावेरी के संगम पर इनका मुख्य तीर्थ स्थान है। सभी जातियों, को स्त्री-पुरुष के भेद-भाव बिना, पंथ में शामिल होने की स्वतन्त्रता मिल गई। उनमें रोटी-बेटी का व्यवहार भी चल पड़ा यद्यपि आगे चलकर उनमें भी कट्टरता आ गई। अपने संप्रदाय के भीतर पूर्ण समानता और भ्रातृ भाव का बर्ताव करते हुए भी दूसरे सम्प्रदायों के प्रति ये लोग कुछ अनुदार थे। यहां तक कि उनके देखे हुए भोजन को खाना भी वे अपवित्र समझने लगे थे। तो भी नैतिकता, संयम, उदारता, भक्ति की उत्कंठा तथा सामाजिक समानता की दृष्टि से इनके सन्तों की वाणी बड़ी महत्वपूर्ण है। इनकी भाषा कन्नड़ थी जिनमें इन्हींके संतों के आधार पर "वचन" 'आगम' नामक वृहत् साहित्य का उदय हुआ। शैव साहित्य और शैव पंथ में इस मत का विशेष स्थान है। लिंगायत भी इन्हींका उपभेद जान पड़ता है। ये लोग गले में शिवलिंग पहना करते हैं, उसी की पूजा करते हैं और मंदिरों आदि में नहीं जाते।

यद्यपि संतों में महेश्वर और भक्त इन्हीं दो विभेदों को माना है किन्तु बाद में इस पंथ में भी चार वर्णों का उदय हो गया। वचनकारों ने सामाजिक सुधारों पर सदा दृष्टि रक्खी। जन्म की अपेक्षा कर्म ही पर इनका अधिक ज़ोर था जैसा कि इनके वचनों से प्रगट होता है। वसवन्ना ने ज्ञान, कर्म और भक्ति का अद्भुत सामञ्जस्य किया है। इस कारण अन्य शिव शरणों ('भक्तों') में उनका विशेष स्थान है। इनका ईश्वर 'विश्वास' नम्रता तथा त्याग इद्द दर्जे को पहुँच गया था। वीरता भी इतनी थी कि अपने मालिक विज्जल की भी परवा न कर उन्होंने संतों की सेवा में धन खर्च कर दिया।

एक देव की पूजा, समान पूजा विधान तथा समान सामाजिक नियम और आचार के द्वारा आगमकारों ने समाज में एकता स्थापित की। इनका एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह था कि भिक्षा न माँगकर सबको, जंगमों (सन्यासियों) तक को, अपनी जीविका के लिए कुछ न कुछ करना चाहिए। जाति लिंग एवं अवस्था—बाहरी भेदों को मिटाकर आत्मिक एकता पर ही इन्होंने जोर दिया।

पुरुषों के साथ ही स्त्री संत भी इनमें हुई हैं। अक्का महादेवी उनमें सर्व श्रेष्ठ हैं। बाह्य आचारों के कारण किसी को ऊँच नीच समझना अथवा जन्म, धन या अवस्था के कारण इस प्रकार के भाव लाना अनुचित बतलाया। बाह्याचारों की अपेक्षा नैतिक नियमों की श्रेष्ठता स्वीकार की। पंथ में दीक्षित होने के बाद स्वयं समानता स्थापित हो जाती है। संप्रदायबाह्य लोग चाहे ब्राह्मण भी क्यों न हों एक बराबर त्याज्य हैं। शिवकुल में शामिल हो जाने पर सब एक जाति ही नहीं वरन एक कुल के बन जाते हैं। धोबी, मोची, कोरी, बसोर, सभी जातियों के संतों को एक ही बराबर आदर की दृष्टि से देखा जाता है। शिवकुल में शामिल होते ही मनुष्य का अपने कुल या जाति से कोई संबंध नहीं रह जाता। जब तक कि वे भी शिव कुल में शामिल न हो जावें।

भक्ति के मार्ग में स्त्री पुरुष दो शरीर होकर भी एक आत्मा हैं जैसे दोनों आँख मिलकर एक दृष्टि होती है। उसी प्रकार स्त्री और पुरुष मिलकर ही पूर्णता को प्राप्त हो सकते हैं।

सब कर्म शिवार्पण करना सर्वोच्च आदर्श है—सब वस्तुओं को उसीका प्रसाद समझकर उपभोग करना चाहिए।

स्त्री विलास की सामग्री नहीं किन्तु शक्ति स्वरूपा है, जगत्माता और विश्वजननी है। वह स्वयं महादेवी का अवतार है। बाद में चलकर लिंगायतों में कुछ परिवर्तन हुए। शूद्रों और स्त्रियों को प्रणवरहित मंत्र की दीक्षा देना प्रचलित हुआ। किन्तु इनके पहिले वचनकारों के उद्गार इस प्रकार थे।

"मैं वेदों को कसौटी पर रक्खूंगा। मैं शास्त्रों को हवा में उड़ाऊँगा। आगमों को फाड़ डालूंगा। मैं तो छन्नैया के घर का अन्त्यज हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


श्रम की महत्ता के प्रभाव स्वरूप एक और उदाहरण उद्धृत किया जा सकता है। "जब मंगन के रूप में शिव छन्नैया के घर आये तो उन्होंने उसके श्रम से उत्पन्न की हुई "कांजी" को ग्रहण किया और जब दासियैया के घर गये तो उसके हाथ के बुने कपड़े ही को उन्होंने पसन्द किया।"

इस सम्बन्ध में वसवन्ना का वचन है:—

"मुझे ऐसा किसान भक्त बताओ जो अपने पसीने की कमाई से अतिथि की सेवा करता है, उसका शरीर स्वच्छ है, हृदय शुद्ध है, उसका चरित्र कलंकहीन है और वाणी दिव्य है।"

ऐसे थे इन उदार वीर शैवों के सन्त शिरोमणि वसवन्ना!

## भक्त वसवन्ना की सूक्तियां

एक मनुष्य लोहे पर काम करता है और लुहार ही रह जाता है इसी प्रकार कपड़े धोनेवाला धोबी, बुननेवाला जुलाहा, और वेद पढ़नेवाला ब्रह्मण हो जाता है। क्या कोई ऐसा भी है जो कान से पैदा हुआ हो? (जन्म से सब एक हैं, कर्म विलग है)

ईश्वर! वे मेरे नहीं हैं—अगर होते तो अन्य (जाति) पर कोई ध्यान न देते।

ईश्वर! मुझपर उच्चजाति का भर मत रखिये। कक्कैया (अछूतभक्त) फिर मुझे अपने भोजन से पवित्र न करेगा।

अन्त्यज छन्नैया मेरा पिता है। मोची कक्कैया मेरा बाबा है; चिक्कैया मेरा गुरू है। नोम्मैया मेरा भाई है। क्या आप मुझे नहीं जानते?

यदि वह भंगी है तो इससे क्या हुआ? वह हमारी जाति का है क्योंकि वह शिव का भक्त है।

जिस प्रकार सिंहासन पर बैठने के बाद राजा की जाति पूंछना व्यर्थ है—उसी प्रकार शिवभक्त हो जाने पर उसकी जाति पूंछना व्यर्थ है।

ईश्वर निन्दक से राज्य प्राप्त करने की अपेक्षा अन्त्यज शिव भक्त का सेवक होना अच्छा है।

चाहे वह कोई भी क्यों न हो मैं खुशी से उसकी थाली से जूठन खाने को तैयार हूं तथा उसका जूता साफ करने को तैयार हूँ जो कि शिव का सच्चा भक्त है।

यदि भंगी भी अपने गुणों से प्रकाशित है तो हम उसके विरुद्ध छुआछूत का विचार नहीं कर सकते।

मुझसे नीच कोई नहीं है और शिव भक्त से ऊँचा कोई नहीं है।

क्या मैं कहूं कि शास्त्र महान् है? किन्तु वह तो क्रिया कलाप की प्रशंसा करता है! यदि वेद को बड़ा कहूँ तो वह हिंसा की बात करता है। यदि धर्म शास्त्र को बड़ा मानूं तो वह अभी तक खोज कर रहा है, तत्त्व तक नहीं पहुँचा है।

ईश्वर! आप इसमें से एक में भी नहीं हैं—आप सिवा अपने भक्तों की त्रिविध सेवा के और कहीं नहीं मिल सकते।

यह संसार ईश्वर का परीक्षालय है—जो यहां पास हो जाता है वह वहाँ भी पास है—जो यहाँ फेल है वह वहां भी फेल है।

क्या संसार में कोई ऐसा आदमी है जो कहता है आप मेरा रूप धर लीजिए और मेरे बदले खा भी लीजिए। ईश्वर की सेवा अपने मन से करो—उसकी सेवा अपने हृदय से करो। यदि सेवा करके भी अपनी देह और मन उसे नहीं दिया तो ईश्वर वह सेवा स्वीकार कैसे करेगा?

लोग पत्थर के सर्प को तो दूध अर्पण करते हैं पर जीवित सर्प को मार डालते हैं। ईश्वर का सेवक जो कि खा सकता है उसे तो वे भगाते हैं किन्तु शिव लिंग जो कि खा भी नहीं सकता उसको भोजन अर्पण करते हैं।

ईश्वर और भक्त के बीच में यही बन्धन है कि वे सत्य बोलें और उसके अनुसार चलें। जो सांसारिक मनुष्य झूठ बोलता है और कहने के विरुद्ध चलता है उसकी सेवा ईश्वर स्वीकार नहीं करता।

भाइयो सुनो! ईश्वर की दुनियाँ और मनुष्यों की दुनियाँ अलग अलग नहीं है। सत्य बोलना ईश्वर की दुनियाँ है असत्य भाषण मनुष्यों की। स्वच्छता ही स्वर्ग है गंदगी ही नरक। ईश्वर! तुम सबके साक्षी हो।

वह धर्म ही क्या जिसमें दया नहीं है? दया ही धर्म का मूल है। ईश्वर दूसरा कुछ नहीं चाहता।

चोरी मत करो, हिंसा मत करो, झूठ मत बोलो, क्रोध असंतोष आत्मप्रशंसा या परनिन्दा मत करो—यही आन्तरिक शुद्धि है; यही बाहरी पवित्रता है! इसीसे तुम ईश्वर को संतुष्ट कर सकते हो!

मैं ब्रह्मा का उच्च पद नहीं चाहता, न शिव या विष्णु को ही चाहता हूं! मैं यही उच्चता चाहता हूँ कि मैं आपके सन्तों के चरणों को जानूँ!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अब कौवा या मुर्गी अन्न का दाना देखती है तब क्या वह अपने जातिवालों को नहीं बुलाती ? यदि शिवभक्त को अन्य भक्तों के प्रति प्रेम नहीं तो क्या वह कौए या मुर्गे से नीच नहीं है ?

यदि मैं सबेरे उठने के बाद अपने स्त्री-पुत्रों के लिए चिन्ता करूँ तो मेरी आत्मा इसका साक्षी हो ! संत लोग इस बात पर आपत्ति करते हैं कि मैं अविश्वासी विज्जल के चरणों के नीचे बैठता हूँ। मैं इस आदेश का उत्तर दूँगा। मैं नीच तथा गुलाम की भी सेवा अपने शरीर से करूँगा—केवल भक्तों की सेवा के लिए। यदि मैं शारीरिक आवश्यकताओं की चिन्ता करूँ तो मेरा सिर कट जावे। हे ईश्वर ! मैं यही मांगता हूँ।

मेरे प्रशंसकों ने मुझे झूठी प्रशंसा की सूली पर बिठा दिया है। उनकी प्रशंसा ने मुझे नष्ट कर दिया है—वह कटारी के समान है; उसे अब और अधिक सहन नहीं कर सकता हूं। हे ईश्वर यदि आप दयालु हैं तो मेरी प्रशंसा को रोकिये।

एक पत्थर का टुकड़ा या मिट्टी का दीपक, वृक्ष, पुष्प सब कुछ ईश्वर है—इन असंख्य ईश्वरों के बीच में पैर रखना भी मुश्किल है। हम नहीं समझते कि कुडल-संगम ही एक ईश्वर है।

मैं विषधर नाग, ज्वलन्त अग्नि तथा तलवार की तीक्ष्ण धार से उतना नहीं डरता जितना परस्त्री से डरता हूँ। एक दूसरी चीज़ से भी डरता हूँ और वह है—परधन। रावण जो इनसे नहीं डरता था उसकी क्या दशा हुई ?

आप नदियों में नहाते हैं ? पहिले परस्त्री तथा परधन की आकांक्षा अपने हृदय से धो डालो। यदि बिना आत्मा को शुद्ध किये शरीर को धोओगे तो सब नदियां व्यर्थ होंगी।

सारा विश्व तुम्हारी माया है, आवृत है और मेरे मन ने तुमको आवृत कर लिया है। तुम विश्व से महान् हो और मैं तुमसे भी महान् हूं। जैसे हाथी झरने में समा जाता है उसी प्रकार तुम मुझमें समाये हुए हो।

जो मनुष्य हिंसा करता है या अशुद्ध भोजन करता है वह अन्त्यज है। केवल ईश्वर के भक्त जो कि तप का फल खाते हैं जातिवन्त हैं।

क्या श्रिमाल बनिया है ! क्या मच्छैया धोबी है ! क्या ककैया को मोची और छुनैया को अछूत कह सकते हैं ! क्या मैं अपने को ब्राह्मण मान सकता हूँ ? मेरा ईश्वर मेरी इस मूर्खता पर करुणा करेगा।

बिना अशुचिता के संपर्क में आये कोई बालक ही उत्पन्न नहीं हो सकता। जन्म की प्रणाली सबकी एक ही है। सबमें कामना, विकार, और भावनाएँ एक ही सी हैं। केवल पढ़ने से क्या होगा ? जातीय समानता का क्या भाव है ? इस प्रकार के भेद उपहासास्पद हैं। जो मेरे प्रभु की सेवा जानता है वही जाति का है।

मैं किसी से नहीं डरता। जीते जी मेरी खाल खींचो, मेरी बोटी बोटी काट डालो; मुझे चीर डालो, मैं धैर्य्य नहीं खोऊँगा। सिर कटने पर भी प्रभु का नाम मेरी जिह्वा पर रहेगा।

मेरा धन सम्पत्ति नष्ट कर डालो—मेरे बच्चों को टुकड़े टुकड़े कर डालो—मेरी आंखों के सामने मेरी स्त्री को बेइज़्ज़त करो—मुझे भी मारो, टुकड़े टुकड़े कर डालो, मेरी आँखों की पुतली निकालो—निर्दयता से मुझे घसीटो, तो भी मैं शिव-लिंग की पूजा करूँगा; भक्तों की सेवा करूँगा। ईश्वर की सेवा में मैं यदि तिल भर भी डिगूँ तो मेरी जान मार दो।

सारा संसार दो युद्ध-घोषों से निनादित है—ईश्वर कहता है—मैं तुम्हें मारूँगा—और भक्त कहता है—तुम्हें जीतूँगा।

भक्त सत्य रूपी खडग की सहायता से सदा विजयी हुए हैं।

एक मनुष्य का क्रोध मेरा क्या करेगा ? और सारे समाज का रोष भी मेरा क्या बिगाड़ेगा ? वे मेरे बच्चों की शादी न होने देंगे—चाहें तो उन्हें खाना न मिलने देंगे। पर इससे होगा क्या ? कुत्ते भोंकते रहते हैं हाथी अपनी चाल चलता है। जब तक प्रभु मेरा है तब तक डर क्या ?

मैं भक्त नहीं हूँ, धोखेबाज़ हूँ—अशौच ही मेरा नाम है। मैं केवल आपके सेवकों का सेवक हूँ।

मुझमें भक्ति का अणु न होते हुए भी लोग मुझे भक्त कहते हैं—मेरा दुर्भाग्य ! पकने के पहिले काटने से क्या लाभ ! मुझमें जो बात नहीं वह मुझ पर लादने से क्या फ़ायदा !

—



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आकारान्त पुल्लिंग शब्द

श्री किशोरलाल घ० मश्रुवाला

[ बड़ी खुशी की बात है कि दूसरे प्रान्तों के श्री मश्रुवाला जैसे विद्वान हिन्दुस्तानी की रूप-रेखा तय करने में इस तरह हिस्सा ले रहे हैं। प्रथमा में 'घोड़ा' और 'घोड़े ने' दोनों रूप होते हैं, विद्वान लेखक ने सिर्फ़ 'घोड़ा' लिखा है। द्वितीया में 'घोड़ा' और 'घोड़े को' दोनों आते हैं। तृतीया में 'घोड़े से' चाहिये, 'घोड़े ने' शायद ग़लती से लिखा गया है। चतुर्थी में 'घोड़े के लिए' भी आता है। ऐसे ही सप्तमी में 'घोड़े पे' और 'घोड़े पर' भी आते हैं। बहुवचन में 'ओ' भी और 'अे' भी आता है। ]

—सम्पादक

हिन्दुस्तानी में 'आ'कारान्त पुल्लिंग शब्दों के विभक्तियों के रूप कुछ मुश्किल पैदा करते हैं। 'घोड़ा' शब्द लीजिअे, और उसके रूप देखिअे—

| संबोधन | अै घोड़े | अेकवचन |
|---|---|---|
| १ ली | | घोड़ा |
| २ री | | घोड़ा |
| ३ री | | घोड़े ने |
| ४ थी | | घोड़े को |
| ५ वीं | | घोड़े से |
| ६ ठी | | घोड़े का-की-के |
| ७ वीं | | घोड़े में |

यहाँ दीख पड़ता है कि सिर्फ़ प्रथमा को छोड़कर और सब रूपों में मानों 'घोड़े' शब्द है, ऐसा समझकर प्रत्यय लगाये जाते हैं। सिर्फ़ प्रथमा एक वचन ही 'घोड़ा' है। सभी तरह के नामों के लिए बहुवचन के लिये 'ओं' प्रत्यय होता है, इसलिये बहुवचन को छोड़ देता हूं।

अब 'आकारान्त' के अलावा दूसरे नामवाचक शब्द लीजिए। उदा० घर, राजा, हरि, हाथी, पहलू, गोखले, मॉस्को, जगत् आदि, इन सबमें इन्हीं प्रकृतियों को विभक्तियों के प्रत्यय लगाये जाते हैं। सिर्फ़ बहुवचन में वे 'ओं' के साथ होते हैं। राजा शब्द 'आ'कारान्त होने पर भी 'राजें को' नहीं बोला जाता। घोड़ा और इन शब्दों में इतना ही फ़र्क़ है कि इन शब्दों में प्रथमा के एकवचन तथा बहुवचन के लिये कोई प्रत्यय ही नहीं, लेकिन 'घोड़ा' वर्ग के शब्दों में प्रथम एकवचन का प्रत्यय 'आ' है और वह 'घोड़े' का 'अे' हटाकर 'आ' जाता है। दूसरी ओर से 'अे'कारान्त शब्दों में कभी कभी अनादर दिखाने के लिये प्रथमा एक वचन में 'आ' बोला जाता है। उदा० "कौन रेगे ? हम रेगा-बेगा किसी को नहीं मानते !"

यहाँ पर शङ्का यह उठती है कि व्याकरणकारों ने 'घोड़ा' जैसे शब्दों का प्रथमा का एकवचन का रूप देख कर उन्हें 'आ' कारान्त पुल्लिंग शब्द बताया है, यह कहाँ तक ठीक है ! उन्हें क्यों 'अे'कारान्त न कहा जाय, और बता दिया जाय कि इनके प्रथमा के एकवचन के 'अे' का 'आ' हो जाता है !

नामों के लिंग याद रखने के लिये शब्दों का प्रथमा का एक वचन बोलने की संस्कृत में रूढ़ि है। लेकिन, प्रथमा के एकवचन पर से शब्द की प्रकृति का निश्चय नहीं किया जा सकता। फिर भी देशी भाषाओं के व्याकरणों में यही रूढ़ि चल पड़ी है। जिस तरह हिन्दी में यह शिक्षा है, वैसा ही गुजराती और मराठी में भी इस प्रकार के शब्दों के बारे में हुआ है, और वैसी ही मुश्किल पैदा करता है।

इसका नतीजा यह है कि हिन्दी सीखनेवाले इन प्रान्तों के लोग घोड़े ने,—को,—से आदि की जगह घोड़ा ने-से-को आदि करने की भूल करते हैं। प्रथमा का एकवचन और अन्य विभक्तियों के पूर्व की प्रकृति में जो बाहरी फ़र्क है वह उन्हें बरदाश्त नहीं होता, या मुश्किल में डाल देता है। डा० सुनीति कुमार चटर्जी तथा दूसरे 'राष्ट्रीय हिंदुस्तानी' की एक अलग भाषा बनाने वालों की हिमायत करने वालों की सूचना है कि घोड़ा को-से-ने आदि रूप ही मान्यकर लिये जायँ।

दूसरी तरफ से सच्चे 'आ' कारान्त शब्दों के विषय में हिन्दी बोलनेवाले कभी कभी भूल करते हैं; उदा० मुमकिन है कि वे यह मानें कि 'मशरूवाला' एक वचन है, इसलिये उसका बहु वचन—'वाले' कहना चाहिये और फिर विभक्ति का प्रत्यय लगानेवाला—'वाले ने' कहना अच्छा मालूम होगा, और '—वालों ने' कहने से भ्रम होगा। इस डर से मुश्किल टालने के लिये '—वाले जी ने' कहना बनाते हैं, याने 'आ'कारान्त शब्द को 'जी'कारान्त 'ई'कारान्त करने की युक्ति करनी पड़ती है।

मेरी नम्र राय में 'घोड़ा' वर्ग के शब्दों को 'आ' कारान्त बनाने के बजाय, 'ये'कारान्त बनाना चाहिये। प्रकृति समझने के लिये उस शब्द के प्रथम एकवचन के बजाय संबोधन का एकवचन लेना ज़्यादा ठीक होगा।

आशा करता हूँ, इस पर व्याकरण के अधिक जानकार प्रकाश डालेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सलूनो

स्वर्गीय श्री० अल्लामा राशदुलख़ैरी

सलूनो हिन्दुओं का त्योहार है, मुसलमानों से कोई वास्ता नहीं। मगर ज़रा बहादुरशाह का दरबार और सलूनो का जश्न देखिए कि दोनों क़ौमें इस त्योहार में बराबर की शरीक हैं। पहिले इसकी हक़ीक़त पर नज़र डालिए, और फिर लोगों की फ़राग़ हौसलगी और वज़ेदारी व इत्तफ़ाक़ की दाद दीजिए।

शाहआलम का बाप अज़ीजुद्दीन आलमगीर सानी अपने सीधे-सादे मामलात और भोली-भाली बातों की वजह से दौर आख़िर में एक ख़ास वक़त रखता है। इसका नमकहराम वज़ीर ग़ाज़ीउद्दीन ख़ाँ, जिसकी दिली ख़्वाहिश यह थी कि बादशाह को अपनी मुट्ठी में रखे और जिस क़दर इनामो-एकराम में सरफ़ हो, अपनी ज़ात पर ख़त्म कर दे। दरबार का यह रंग देखकर कि हर छोटा-बड़ा अपने मक़सद में कामयाब है, अंगारों पर लोटने लगा और इस फ़िक्र में हुआ कि किसी तरह बादशाह को क़त्ल करके अपने भतीजे को तख़्त पर बैठा दे। इस मन्सूबे की तकमील में उसने बाज़ अराकीन को शामिल किया, और एक रोज़ जब बादशाह असर की नमाज़ से फ़ारिग़ हुए, तो अर्ज़ किया—"जहाँपनाह, एक फ़क़ीर रोशने-ज़मीर कोटला में तशरीफ़ फ़रमा हैं।" बादशाह चूँकि फ़क़ीरों के आशिक़ थे, तारीफ़ सुनते ही बेताब हो गये और फ़रमाया—"फ़ौरन बुलाओ।" चुनाँचे दो आदमी रवाना किये गये, जिन्होंने आकर अर्ज़ किया—"आलीजाह, शाह साहब की त्यौरी पर तलवी का नाम सुनते ही बल आ गया। हुज़ूर वह तो दुनिया की हर दौलत से बेफ़िकर हैं। अन्देशा है, वह शायद यहां क़याम भी न करें और रात-ही-रात कूच कर जायँ।"

अज़ीजुद्दीन जैसे बादशाह इतना सुनते ही कांप गये और फ़ौरन उठ खड़े हुए कि ऐसा न हो, फ़क़ीर की दुआ बरबाद कर दे। कोटला पहुँचे, तो यहां फ़क़ीर के बदले अल्लाह का नाम था। पाँच आदमी पहले से तैयार थे। मस्जिद में दाख़िल होते ही एक शख़्श ने पेट में खंजर भोंका, दूसरे ने पुश्त में। चन्द लमहे में बादशाह तड़पकर ठण्डे हो गये। उनकी लाश दरिया की तरफ़ फेंक दी गई। यह वाक़ा रात के इब्तदाई हिस्से में हुआ। इत्तिफ़ाक़ से रात चाँदनी थी और बादशाहकी ख़ून-आलूदा लाश जंगलमें पड़ी थी।

जहाँगीर के अहद में जिस तरह जंज़ीर लटकती थी कि हर फ़रियादी किला शाही पर हाज़िर होकर बादशाह को अपनी कहानी सुना सके, इसी तरह अज़ीज़ुद्दीन ने भी इन्तज़ाम किया था कि वे अलस्सुबह बाहर आ बैठते और लोग उनकी ज़ियारत कर लेते।

एक बिरहमन औरत रामकुँवर जमुना के स्नान से वापिस आ रही थी। पहले तो एक आदमी को सोता देख झिझकी, मगर ग़ौर से देखा तो पहचान लिया कि लाश बादशाह की है और ख़ून बह रहा है। वहीं बैठ गई और रोने लगी।

रातका बड़ा हिस्सा इसी तरह बसर हुआ। जब बादशाहकी वापिसी में देर हुई, तो बक़िया अराकीन व उमरा, अज़ीज़ व अक़ारब परेशान हुए और कोटला पहुंचे। अन्दर जाकर चप्पा-चप्पा और कोना-कोना छान मारा। न फ़क़ीर का पता चला न बादशाह का। चारों तरफ़ ढूंढ़ते फिरे; नीचे झाँककर देखा, तो एक लाश और एक औरत दिखाई दी। पास पहुँचे, तो मुफ़स्सिल कैफ़ियत मालूम हुई। शहर में कुहराम मच गया। सुबह हुई, तो नहलाधुला बादशाह की लाश हुमायूँ के मक़बरे से दफ़न की। शाहआलम बाप की जगह तख़्तनशीन हुए। रामकुँवर बिरहमनी को इन ख़िदमात का सिला कि उसने रातको बादशाह की लाशकी हिफ़ाजत की, सरे दरबार ख़िलअत फ़ाख़िरः था। आज से रामकुँवर शाहआलम की बहन बनी। सलूनो के रोज़ बह बहन की हैसियत से सच्चे मोतियों की राखी, जिसमें सोने की घुंडियां होती थीं, बादशाहके हाथ में बाँधती, और बादशाह हक़ीक़ी बहन की तरह उसको ज़रो-जवाहर देकर घर से रुख़सत करते। शाहआलम के बाद अकबर सानी ने यह त्योहार बदस्तूर मनाया और रामकुंवर की बड़ी लड़की उसके हाथ पर राखी बाँधती रही। अकबरशाह के बाद बहादुरशाह ने भी सलूनो को उसी तरह मनाया और रामकुँवर के ख़ानदान को मालामाल किया।

बरसात का मौसम कुछ ऐसा दिलकश मौसम है कि गर्मीकी सिद्दत से परेशान व पज़मुर्दा छोटे-बड़े हर दिल में आसमान पर घटा आते ही उमंगें पैदा हो जाती हैं। सलूनो सावन में होता है, जो यों भी दिलचस्प महीना है, बशर्ते कि आज की तरह तीन-चार रोज़ की बारिश चारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तरफ़ सैलाब की मुसीबत न ढा दे। यह जिन दिनों की बातें हैं उन दिनों में पन्द्रह-पन्द्रह और बीस-बीस रोज़ मूसलाधार बरसता था। मौलाना मुहसन मरहूम अपने मशहूर क़सीदे में कहते हैं—

"रखियाँ लेके सलूनो की बिरहमन निकलीं;
नौजवानों का सनीचर है यह बुढ़वा मंगल!"

और फ़रमाया है—

"पन्द्रह रोज़ हुए पानी को मंगल-मंगल।"

यों तो सावन भर ही क़िला-मवल्ला और शहर भर में रँगरलियाँ मनाई जाती थीं, मगर सलूनो का इन्तज़ाम व एहतमाम क़िले में आठ-आठ दस-दस रोज़ पहले से होता था। झूले पड़ते थे और कसे तकल्लुफ के खम्भों पर सुनहरी-रुपहली पट्टियाँ जमी हुईं, रेशमी रस्सियाँ डली हुईं, गंगा-जमुनी पटरियाँ पड़ी हुईं। एक तरफ़ चूल्हे, एक तरफ़ चौके, कढ़ाइयाँ चढ़ी हुईं, सामान भरे हुए। हिन्दुओं का इन्तज़ाम अलग, मुसलमानों का अलग। इधर बादशाह नमाज़ से फ़ारिग़ होकर बाहर आकर बैठे, उधर बिरहमनी ने राखी बांधी। बिरहमनों ने असीस दी, दरबार में दुआओं के नारे बलंद किये और क़िला इस सदा से गूँज उठा—

"महाबली बादशाह सलामत!"

आसमान पर घटाटोप अँधेरा छाया हुआ है। हल्की फुहार पड़ रही है। लक्खी बाग़ में, जहां आम फुटबाल के साथ ख़ाक उड़ती फिरती है, आमों के बौर छाए हुए हैं, जामुनों के गुच्छे हवा में झूल रहे हैं, ककरौंदों की बहार, आसमान पर बगलों की क़तार दिल पार होती है। पपीहा अलाप रहा है। कोयल कूक रही है। नक्कारे पर चोट पड़ी। कढ़ाइयों में बड़े पड़े। नफ़ीरी और झूलनेवालियां झूले में गईं। पेंगें बढ़ रही हैं, मोती मिल रहे हैं। दोपहर तक झूले और पकवान होते रहे। खाना खाया और बादशाह सलामत ने अपने हाथ से जमुर्रदी चूड़ियां एक हाथ में पांच, एक हाथ में तीन अपनी हिन्दू बहिन के बांधी और साथवालियों को जोड़े अता हुए। नक़द रुपये दिये गये। मिठाइयों, पूरियों, कचौरियों के थाल अता हुए, और इस तरह यह बहन भाई के इनामों-एकराम से मालामाल शाही जोड़ा पहनकर ससुराल रवानः हुई।

[पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के सौजन्य से 'विशाल भारत' से]

# अल्लाहो अकबर!

श्री सुनीतिचन्द्र

प्रायः नित्य ही इस सौम्य और प्रशान्त ध्वनि के साथ नींद खुलती है। किन्तु इस ध्वनि की प्रतिक्रिया हृदय पर हमेशा एक सी नहीं होती। कभी यह अन्तर को छूती हुई मालूम होती है। जहाँ से अनायास ही इसकी प्रतिध्वनि उद्भूत होती है। किन्तु कभी इसका असर इससे बिल्कुल ही विपरीत होता है। उस समय हृदय को एक अवसाद घेर कर बैठ जाता है और चारों ओर से उस पर एक ऐसा दबाव डालता है मानो उसकी सत्ता को ही मिटा देगा। एक ही ध्वनि के प्रति मेरी प्रतिक्रिया का यह वैपरीत्य कितना विचित्र है!

उल्लास के समय भगवान् का यह पावन नाम जो प्रातः काल हवा की प्रशान्त लहरों में तैरता हुआ आता है, कानों में एक संगीत की तरह बज उठता है। चित्त विभोर होकर अपनी कल्पना के पंख फैलाता है और एक निमेष में कितनी ही शताब्दियाँ पार करके उस भव्य मूर्ति के सम्मुख जा उपस्थित होता है जिसने इस महामन्त्र का लोक कल्याण के लिये सर्व प्रथम उच्चारण किया था और चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है। कितनी कान्तिवान होती है वह मूर्ति मानों प्रकाश के एक पुंज ने ही अत्यन्त मनोरम आकार धारण कर लिया है। उनके मुख से प्रस्फुटित होता हुआ यह महा मन्त्र चारों दिशाओं को अपने आलोक से प्रकाशित करता हुआ प्रतीत होता है।

किन्तु इसके विपरीत दूसरे क्षण भी होते हैं, जब इस महामन्त्र की ध्वनि के साथ साथ चित्त भटक कर 'अल्लाह' के इन पुजारियों के दैनिक संघर्षमय जीवन के साथ जा टकराता है। कितनी विषमता है उनके जीवन में! एक ओर विलासिता का दौर है दूसरी ओर दैन्य तथा अभाव का निर्मम प्रहार। एक ओर दुर्भिक्ष और महामारियों से पीड़ित नर कंकाल हैं और दूसरी ओर अपने ऐश्वर्य के मद में इतराने वाले धनिक। ख्याल होने लगता है कितना व्यर्थ हुआ है उस दिव्य मूर्ति का यह महोच्चार इनके इस नारकीय जीवन के लिये? उषा के सुनहले प्रकाश के साथ मिल जानेवाला महामन्त्र का वह महा प्रकाश इनके निविड़ अन्धकारमय जीवन को छू भी नहीं सका!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कस्तूर बा शिक्षण शिविर में

आचार्य गुरुदयाल मल्लिक

कुछ महीने पहिले बम्बई के उपनगर बोरिविली के सुरम्य वातावरण में हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों की प्रतिनिधि महिलायें गांवों में समाज-सेवा की व्यावहारिक शिक्षा लेने के लिये इकट्ठा हुई थीं। एक मित्र के अनुग्रह से मुझे भी इस कस्तूर बा कैम्प को देखने का अवसर मिला।

आधे घण्टे के अन्दर कैम्प में एक बात मैंने बहुत साफ़ साफ़ देख ली कि जो ७८ बहिनें वहां शिक्षा लेने के लिये इकट्ठा हुई थीं, जिनमें एक सफ़ेद बालों वाली दादी अम्मा भी थीं! वे सबकी सब उत्साह से भरी हुई थीं। उनमें से कइयों के चेहरों पर अपने देश का उज्ज्वल भविष्य चमचमा रहा था। पर एक बात ने मुझे काफ़ी उदास किया और वह यह कि इनमें से अधिकांश बहुत सबल देह की नहीं थीं। कैम्प का कार्यक्रम सफ़ाई और स्नान से शुरू होता था। इसके बाद शिक्षार्थियों के छोटे छोटे समूह कैम्प के विविध कार्यक्रमों को सुचारु रूप से चलाने में लग जाते थे। फिर तिरंगे झण्डे की सामूहिक सलामी होती थी—तिरंगा झण्डा जो हमारी उम्मीदों और आज़ादी की कोशिशों का प्रतिरूप है। झण्डे की सलामी के बाद ग्रामीण अर्थशास्त्र पर किसी अनुभवी विद्वान का व्याख्यान होता था और इसके साथ सुबह का कार्यक्रम समाप्त हो जाता था। बीच में दो घण्टे का समय भोजन और आराम के लिए मुक़र्रर था और फिर तीसरे पहर का कार्यक्रम किसी ग्रामीण उद्योग धन्धे की व्यावहारिक शिक्षा के साथ शुरू होता था। साथ ही साथ उन्हें बच्चों और माओं के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जानकारी की बातें बताई जाती थीं। फिर शारीरिक व्यायाम का घण्टा आता था। शाम को फिर एक बार राष्ट्रीय झण्डे को सलामी दी जाती थी ताकि शिक्षार्थियों को अपनी मातृ-भूमि के प्रति ली हुई शपथ की याद रहे।

सूर्यास्त के समय शिक्षार्थी एक ऊँची सी जगह पर सामूहिक प्रार्थना के लिए इकट्ठा होती थीं। प्रार्थना गान्धी जी की सान्ध्य प्रार्थना के ढङ्ग पर होती थी। प्रार्थना समाप्त होने पर सब लोग सादे किन्तु पौष्टिक भोजन के लिए भोजनालय में इकट्ठा होती थीं। इसके बाद सांस्कृतिक मनोरंजन का घण्टा आता था और दिन का कार्यक्रम समाप्त होता था।

शिक्षार्थियों के रहने के लिए सीधी सादी झोपड़ियां बनी हुई थीं। इनमें से कुछ झोपड़ियां उन्होंने अपने हाथों से बनाई थीं। उनकी संचालिकाओं का कैम्प ज़रा थोड़ी दूर पर था और यह उचित ही था क्योंकि एकान्त और शान्तिमय वातावरण में उन्हें अगले दिन की कार्य-योजना बनाने में सुविधा होती थी। बच्चों का केन्द्र शिक्षण शिविर की ख़ास चीज़ थी। इनके अतिरिक्त शिविर में एक औषधालय, एक व्याख्यान भवन (जहां फर्श पर दरी बिछी हुई थी), एक पुस्तकालय, एक वाचनालय और एक कार्यालय था। ये सब शिक्षण शिविर के लिए दिली और दिमाग़ी प्रयोगशालाओं का काम देते थे। फिर भी दर्शक के मन में कैम्प को देखकर अनायास ही एक ज़ोरदार भावना पैदा होती थी कि यदि कैम्प को किसी गांव या गांवों के समूह के बीच क़ायम किया जाता तो शिक्षार्थी महिलाएं गांवों की सच्ची हालतों को अपनी आंखों से देख सकतीं और उसके मुताबिक़ व्यावहारिक शिक्षा ले सकतीं।

यह शिक्षण शिविर हमारी स्त्रियों और हमारे गांवों के भविष्य के लिए एक सुन्दर श्रीगणेश है। आख़िरकार इनको नए सिरे से गढ़ने का मौक़ा प्राप्त हुआ। इन शिक्षार्थियों का असली इम्तहान उस वक़्त शुरू होगा जब वह गांवों में अपने अपने केन्द्रों में जमकर बैठ जायेंगी और उन्हें तरह तरह की दिक़्क़तों और अड़चनों का सामना करना पड़ेगा। हमें पूरी आशा है कि वे अपने विश्वास के सहारे, कि जिस विश्वास के लिए उन्होंने अपना जीवन-अर्पण कर दिया है, इन मुसीबतों का सामना कर सकेंगी।

ये शिक्षार्थी बहिनें भारतीय राष्ट्रीय स्त्री-सेवा का केन्द्र होंगी और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के काम को पूरा करने में मदद देंगी। इसीलिए हम उनकी पूरी पूरी कामयाबी चाहते हैं।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हमारी स्त्रियों का स्वास्थ्य

श्री रामप्रताप गोंडल एम० ए०, साहित्यरत्न

पिछले कई सालों से हमारी बढ़ती हुई जन-संख्या शास्त्र के विशेषज्ञों के लिये चिन्ता का विषय हो रही है। गत ११-१२ वर्षों में १० करोड़ के लगभग व्यक्तियों की जन-संख्या की वृद्धि ने एक समस्या पैदा कर दी है।

हमारी जन-संख्या की यह वृद्धि, आर्थिक और औद्योगिक उन्नति तथा भोजन-सामग्री के उत्पादन के अनुपात में नहीं हो रही है। परिवार में जहां कमानेवाला एक आदमी रहता है वहां खानेवाले दस या बारह आदमी।

इस बढ़ती हुई जन-संख्या का एक परिणाम हमारा गिरता हुआ स्वास्थ्य है। हमारा भोजन दिन ब दिन अपौष्टिक होता जाता है। एक ओर खाद्य-सामग्री की कमी है तथा दूसरी ओर समाज में प्रचलित कुछ रीति-रिवाज ऐसे हैं जो स्त्रियों को पर्दे में रखकर, उनका मिलना जुलना, समाजोपयोगी कामों में लगना और धन कमाना वग़ैरह अनुचित समझते हैं और उन्हें घर की चहारदीवारी तक सीमित रखकर उनकी शारीरिक और मानसिक उन्नति को भी रोक देते हैं।

जब हम स्त्रियों के स्वास्थ्य के विषय में विचार करते हुए उनकी जन-संख्या पर दृष्टि डालते हैं तो हमें कई ख़ास बातें मालूम होती हैं। एक तो यह है कि दूसरे देशों के मुक़ाबले में हमारे यहां स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कम है। १९४१ की जन-संख्या के अनुसार ३८ करोड़ ९० लाख आबादी में केवल १८ करोड़ ८० लाख स्त्रियां हैं, अर्थात् स्त्रियां पुरुषों से १ करोड़ ३० लाख कम हैं। इस तरह प्रति १०० पुरुषों के मुक़ाबले में ९३.५ स्त्रियां हैं। सन् १९३१ में यह संख्या ९४ प्रतिशत थी।

इसमें सन्देह नहीं कि पैदायश को देखते हुए हमारे यहां लड़कियां लड़कों के अनुपात में कम पैदा होती हैं, परन्तु लड़कियों का लड़कों के मुक़ाबिले में कम पैदा होना सभी देशों की विशेषता है। हमारे यहां १०८ लड़कों के पीछे १०० लड़कियां पैदा होती हैं।

एक ओर स्त्रियों की पैदायश कम होती है दूसरी ओर पुरुषों की अपेक्षा उनकी प्रतिशत मृत्यु संख्या अधिक है। हमारे यहां १५ से ४० साल के अन्दर अन्दर अधिक स्त्रियां मरती हैं। यह वह समय होता है जब स्त्रियों पर बच्चे जनने का भार पड़ता है। आवश्यक डाक्टरी सहायता न मिलने के कारण तथा जन्म से ही औसतन् दुर्बल होने के कारण बहुत सी स्त्रियां प्रसव-काल में मर जाती हैं। अन्य उन्नतशील देशों की अपेक्षा हमारे यहां औसत आयु सबसे कम है अर्थात पुरुषों की २६.९ साल तथा स्त्रियों की २६.६ साल। दूसरे देशों में आयु का औसत इस प्रकार है- न्यूज़ीलैंड ६५.४ और ६७.९; अमरीका ५९.१ और ६२.६; जर्मनी ५९.९ और ६२.७; इङ्गलैंड और वेल्स ५८.७ और ६२.९ तथा जापान ४४.८ और ४६.५। इन आंकड़ों से यह साबित होता है कि हमारे यहां स्त्रियों की औसत आयु दूसरे देशों की स्त्रियों से कम ही नहीं, बल्कि हमारी स्त्रियों की औसत आयु यहां के पुरुषों से भी ४ महीने कम है जब कि दूसरे देशों में २ से ४ वर्ष तक अधिक!

हमने ऊपर लिखा है कि स्त्रियां १५ से ४० साल की उमर में अधिक मरती हैं। इस उमर में आकर स्त्रियों पर बच्चे जनने का पूरा भार पड़ता है। दूसरे सभ्य देशों में स्त्रियों की मृत्यु इस उमर में बहुत कम है। हमारे यहां १९२३ में कुछ आंकड़े इस सम्बन्ध में एकत्रित किये गये थे और उनके आधार पर प्रसव-काल में २४ प्रति हज़ार स्त्रियों की मृत्यु होती थी। उसके बाद बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में विस्तृत जांच की गई। स्वास्थ्य सम्बन्धी एक विशेष कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर, जिसकी रिपोर्ट १९३७ में प्रकाशित हुई, २० प्रति हज़ार में बीस के क़रीब स्त्रियां प्रसव-काल में ही मर जाती हैं। सर जान ने यह भी हिसाब लगाया कि लगभग २०,००० मातायें प्रति वर्ष जापे में मर जाती हैं अर्थात् एक घण्टे में २ स्त्रियां। इस काल में जो प्रसविनी स्त्रियां मरती हैं उनकी आयु ३० से नीचे ही अधिक होती है और १००० युवती माताओं में से १०० मातायें ऐसी होती हैं जो जापे में ही मृत्यु के मुख में चली जाती हैं। इङ्गलैंड में प्रसव-कालीन मृत्यु २.५ प्रति हज़ार है। अब आप इससे पूरा अन्दाज़ा लगा सकते हैं।

हमारे यहां स्त्रियों में इतनी अधिक मृत्यु के कई कारण हैं। छोटी उमर में लड़कियों का विवाह होने के कारण उनके स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। अंग-प्रत्यंग हृष्ट-पुष्ट होने से पहले ही वे मातायें बन जाती हैं। यद्यपि बाल विवाह भारत में सब जगह नहीं पाया जाता और सरकार की ओर से भी इस प्रकार के विवाहों पर प्रतिबन्ध है फिर भी छोटी उमर के लड़के-लड़कियों के विवाह उतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भारत में अधिक प्रचलित हैं। फलस्वरूप २॥ करोड़ लड़कियों की शादी १५ साल की उमर से पहले ही हो जाती है और वे अपरिपक्व अवस्था में मातायें भी बन जाती हैं।

दूसरा प्रमुख कारण हमारे यहां विवाह के बाद प्रति वर्ष अथवा प्रति दूसरे वर्ष बच्चे का पैदा होना है। इतना भार स्त्रियां सहन नहीं कर पातीं। उनका स्वास्थ्य, निकृष्ट भोजन, घर में २४ घण्टे की क़ैद, विवाह के बाद विवाहित जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने तथा पुरुष की उच्छृङ्खलता को दासी के रूप में पूरा करने के कारण वैसे ही गिर जाता है। इस पर भी औसतन छोटी आयु में बच्चों का होना और फिर अनिच्छा रहते हुये भी अपनी सामर्थ्य से अधिक बच्चों का पैदा करना और पालना उनके जीवन को नरक तुल्य बना देता है।

दूसरे उन्नतिशील देशों में, जिनमें स्त्रियों के स्वास्थ्य में अप्रातीत सुधार हुआ है, स्त्रियों को संतान-निरोध के उपायों को प्रयोग में लाने के कारण माताओं पर अत्यधिक सन्तानोत्पत्ति का भार नहीं पड़ता और वे अपने स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने में सफल भी हो जाती हैं।*

हमारे यहां पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों की संख्या भी कम नहीं है जो सन्तान-निरोध के उपायों का विरोध करते हैं। उनका विरोध कुछ पुराने संस्कारों के कारण, कुछ उचित समाजोपयोगी शिक्षा के अभाव के कारण और कुछ अपने प्रति निपट उदासीनता तथा जिस स्थिति में हैं उसीमें सन्तुष्ट रहने के कारण होता है। मुझे कई पढ़े-लिखे और यहां तक कि डाक्टरी पढ़े हुए युवक भी मिले हैं जिनको सन्तान-निरोध के उपाय प्रयोग में लाने में पाप दिखाई देता है। वे इसे गैर-कानूनी समझते हैं और समझते हैं कि सन्तान-निरोध और भ्रूण-हत्या में कोई अन्तर नहीं। जहां हमारे यहां पढ़े-लिखे युवकों का यह हाल है वहां केवल ३ प्रति शत लिखना-पढ़ना जानने वाली स्त्रियों से क्या आशा की जा सकती है।

ब्रह्मचर्य्य पर व्याख्यान सुनकर और पुस्तकें पढ़कर भी ब्रह्मचर्य्य साधनेवाले स्त्री-पुरुष १ प्रतिशत भी नहीं मिलेंगे। फिर ब्रह्मचर्य्य के भरोसे नियमित शिशुजनन (अर्थात प्रति तीसरे चौथे वर्ष शिशु का जन्म तथा एक कुटुम्ब का ३-४ शिशुओं तक सीमित रखना) हो सकेगा यह स्वप्न ही बना रहेगा*।

स्त्रियों की अस्वस्थता का तीसरा प्रमुख कारण उचित डाक्टरी प्रबन्ध का अभाव है। समस्त भारत में लगभग ७,००० अस्पताल तथा औषधालय हैं। शहर का अस्पताल लगभग १३,००० रोगियों की तथा गांव का लगभग ५३,००० रोगियों की दवादारू करता है। स्त्रियों के लिये २२६ अस्पताल हैं जिनमें से ८२ संयुक्त प्रांत में, ४० पंजाब में, ४२ मद्रास में, १२ सी० पी० में, १८ बङ्गाल में, १४ बम्बई में, ८ सिन्ध में, ५ बिहार में, ४ फ्रंटियर में और १ आसाम में है। औरतों के अस्पताल अधिकांश विदेशी मिशन द्वारा तथा डफ़रिन फण्ड द्वारा चलते हैं। डफ़रिन फण्ड स्त्रियों की डाक्टरी शिक्षा का भी प्रबन्ध करता है। मैटरनिटी और 'चाइल्ड वेलफेयर' का काम कुछ सरकारी सहायता द्वारा और कुछ संस्थाओं द्वारा होता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सरकार इससे कहीं अधिक सहयोग दे सकती है।

स्त्री-डाक्टरों की भी हमारे यहां बहुत कमी है। मैडिकल सरविस में लगभग ४० लेडी-डाक्टर हैं और अन्य ३००० डाक्टरों में से लगभग आधी हैं जो ग्रेजुयेट हैं। अधिकांश इनमें शादी कर लेती हैं और फिर डाक्टरी का नाम भी नहीं लेतीं। हमारे यहां 'वेलफेयर-सेण्टर' भी बहुत कम हैं। १९३८ में इङ्गलैण्ड में ३२६१ 'वेलफेयर सेण्टर' थे और उनमें २८७७ स्वास्थ्य निरीक्षकायें (health visitors) थीं। यह वहां की ४ करोड़ आबादी पर हैं। इसके विपरीत हमारे यहां १९३९ में इङ्गलैण्ड से नौगुनी आबादी पर १०२० ऐसे 'वेलफेयर सेंटर' थे जिनके यहां स्वास्थ्य-निरीक्षकायें थीं। रजिस्टर्ड दाइयों का भी हमारे यहां यही हाल है। भारत में कुल ६१३५ दाइयां हैं जो रजिस्टर्ड हैं। 'मेटरनिटी और चाइल्ड वेलफेयर' के काम में कुल ७५ या ८० लेडी डाक्टर हैं जिनमें ५० फीसदी ऐसी हैं जो किसी विषय की विशेषज्ञ हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहें और स्त्रियों के स्वास्थ्य की ओर से उदासीन रहकर अपनी सन्तानों के दिन ब दिन दुर्बल होने में सहायक हों। इसमें सन्देह नहीं कि दूसरे देशों में जहां सरकार ने स्वास्थ्य सुधार के लिये विशेष प्रबन्ध किये हैं, वहां हमारे यहां सरकारी प्रबन्ध बहुत ही कम हुआ है। फिर सरकार की

* पश्चिम के डाक्टरों का अब यह निश्चित मत है कि कान्ट्रासेप्टिव के इस्तेमाल से स्त्री के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। वे लोग भी सन्तान-निरोध का सर्वोत्तम उपाय ब्रह्मचर्य ही बताते हैं। —सम्पादक

* ९९ प्रतिशत व्यक्ति सच नहीं बोलते इसलिये झूठ का सिद्धान्त सर्वमान्य तो नहीं हो सकता। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ओर से सन्तान-निरोध सम्बन्धी शिक्षा का अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं हो सका। 'मैटरनिटी और चाइल्ड वेलफेयर सेण्टर' केवल जापे के समय बच्चा और जच्चा को आवश्यक सहायता देते हैं, परन्तु सन्तान-निरोध पर उनकी ओर से कोई प्रचारात्मक तथा प्रयोगात्मक प्रबन्ध नहीं होता। हमारी विदेशी सरकार यथासम्भव अपनी प्रजा के धार्मिक अधिकारों की रक्षा की ओट में उसके ह्रास का कारण बनी हुई है।

सरकार की ओर से इस प्रकार की उदासीनता कई साल तक बनी रहेगी। हमें चाहिये कि हम स्वयम् ही इस दिशा में प्रयत्न करें और डाक्टरी सहायता तथा सन्तान-निरोध सम्बन्धी सहायता देने के लिये संस्थायें बनावें। हमारे देश में रुपये की कमी नहीं, परन्तु उसका अभाव इस कारण है कि वह अयोग्य हाथों में है और धर्म के नाम पर अधिक अधर्म फैलाने के प्रयोगों में लाया जाता है। लूली-लंगड़ी गायों, बकरों, भिखारियों, साधु सन्यासियों को खिला कर मोटा बनाने के लिये अधिक धन सेठ साहूकारों की ओर से पहुँचता है, परन्तु समाज-सुधारक और उनके द्वारा संचालित संस्थायें रुपये के अभाव में पंगु बनी रहती हैं।

हमारा अपना विचार है कि अगर इस प्रकार की संस्थायें, जो स्त्रियों की स्वास्थ्य सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार की उन्नति से सम्बन्ध रखती हैं, पढ़ी-लिखी सुयोग्य स्त्रियों द्वारा चलाई जावें तो अधिक सफलतापूर्वक चल सकती हैं और परिणाम भी अधिक आशाजनक होगा। यूरोपियन देशों में इस प्रकार के सामाजिक कामों में स्त्रियों ने आगे बढ़कर काम किया है और ऐसे कामों के लिये धन भी मिला है।

हिन्दू तथा मुसलमान स्त्रियों की संख्या नर्सिङ्ग तथा मिडवाइफ़री में इतनी कम होना हमारा दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है? इसमें सन्देह नहीं जिन अस्पतालों में इस प्रकार की शिक्षा दी जाती है वहां पर अधिक संख्या क्रिश्चियन, एंग्लो-इण्डियन तथा यूरोपियन लड़कियों की दी जाती है परन्तु कोई कारण नहीं कि हिन्दू तथा मुसलमान लड़कियां वहां जाकर अपने लिये उचित सुविधा प्राप्त नहीं कर सकेंगी।

चिकित्सा सम्बन्धी कार्यों में अधिक लड़कियों का जाना बहुत ज़रूरी है परन्तु उससे ज़रूरी यह है कि शिक्षित महिलायें नर्सिंग, डाक्टरी, तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी परीक्षायें उत्तीर्ण कर चुकी हैं वे घर में बैठकर या केवल २–४ बच्चों को जन्म देकर और केवल पारिवारिक क्षेत्र तक अपने आपको सीमित कर अपने कर्तव्य की अवहेलना न करें। केवल धन के कमाने के लिये या विवाह में अच्छा वर पाने के लिये तो वे यह शिक्षा प्राप्त करती नहीं। समाज का उत्थान, उसका क्रियाशील अङ्ग बनना उससे कहीं अधिक श्रेयस्कर कार्य है और इसी में, वर्तमान स्थिति को देखते हुए, एक डाक्टरी व नर्सिंग की शिक्षा प्राप्त लड़की का चरित्र देखा जा सकता है। एक नर्स चिकित्सक या नर्स का केवल पत्नी अथवा माता रूप अपनी चिकित्सा-सम्बन्धी सेवाओं से स्त्री-जाति को वंचित रखना, चरित्र की दुर्बलता का सूचक है जिसे आज नहीं कुछ समय बाद सब विचारशील शिक्षित व्यक्तियों को स्वीकार करना पड़ेगा।

स्त्री-स्वास्थ्य-सम्बन्धी सुधार कार्य को सरकार के [illegible] छोड़कर और ऐसी सरकार के भरोसे जो जनता के उत्तरदायी नहीं हम अवनति की ओर ही बढ़ेंगे। भविष्य में हमें स्त्रियों के स्वास्थ्य को सुधारने के लिये अधिक त्याग का परिचय देना पड़ेगा।

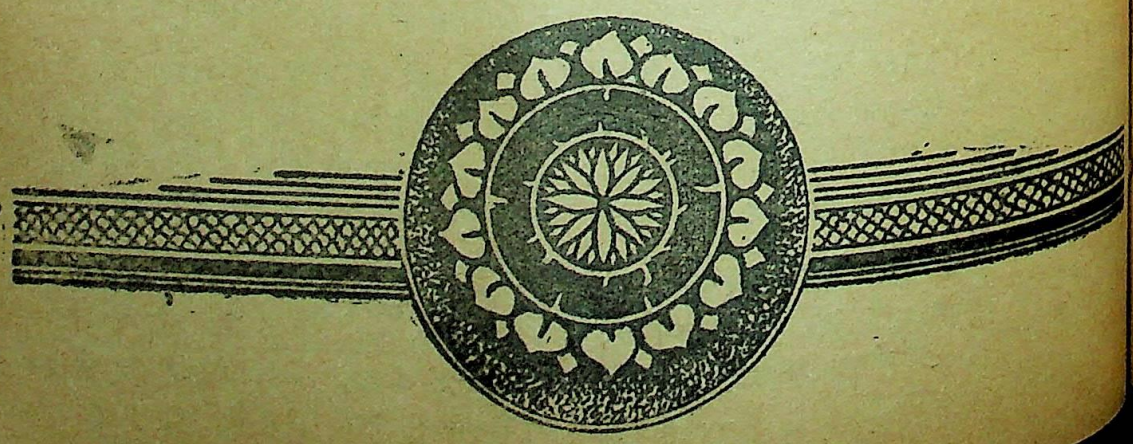

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मानव-धर्म

श्री टीकाराम 'विनोदी'

मानव-धर्म, मानव आत्मा का स्वाभाविक गुण है, बिना इस स्वाभाविक गुण के किसी भी मानव की कल्पना नहीं की जा सकती। धर्म, गुण का पर्यायवाची शब्द है। प्रत्येक आदमी अपनी आत्मा में इस गुण (धर्म) को स्पष्ट अनुभव कर सकता है। जिस प्रकार मातृत्व का सामान्य गुण (धर्म) प्रत्येक नारी के अन्दर मौजूद रहता है, उसी प्रकार मानव के हृदय में, मानव-धर्म एक सामान्य गुण के रूप में मौजूद रहता है।

सत्य, अहिंसा और प्रेम मानव धर्म के मूल प्रकार हैं। ये एक स्वाभाविक देन हैं। इसी देन के कारण मानव-समाज में समानता का प्रादुर्भाव हुआ। ये गुण मानव-समाज की एकता के द्योतक हैं, जिसके कारण हम एक दूसरे से कभी न टूटनेवाले आन्तरिक सम्बन्धों से बँधे हुये हैं। इन तीन महान् सिद्धान्तों की श्रेष्ठता सर्वमान्य है और दुनिया के किसी भी मुल्क के, किसी भी जाति के लोग इन सिद्धान्तों की महानता को अस्वीकार नहीं कर सकते। मानव-धर्म की स्थापना इन्हीं सिद्धान्तों को लेकर हुई है। मानव-धर्म का सम्बन्ध विश्व के सारे मानव-समाज से है। उसमें साम्प्रदायिकता और जातीयता के लिये कोई स्थान नहीं। प्रचलित धर्मों के अनुसार संकुचितता, पक्षपात और धर्मान्ध रूढ़ियों की उसमें गुन्जाइश नहीं। प्रत्येक वर्ग और जाति को उसमें प्रवेश पाने का पूरा अधिकार है।

साम्प्रदायिक आधार पर निर्मित धर्म जहाँ दुनिया में एक दूसरे के प्रति वैर, घृणा, द्वेष और पारस्परिक विरोध पैदा करते हैं, वहाँ मानव-धर्म मानव-मात्र में न्याय, एकता, समानता और प्रेम का प्रसार करता है। आज तक दुनिया में साम्प्रदायिक धर्मों के नाम पर जो अन्याय और रक्तपात हुये हैं उनका इतिहास बहुत विस्तृत है। उसे पूरी तरह लिखा नहीं जा सकता। वर्तमान युग में भी आये दिन दुनिया के बहुत से मुल्कों में हम धर्म की आड़ में अन्याय और अत्याचार की पुकारें सुना करते हैं। हमारे कान उन्हें सुनते-सुनते आदी से हो गये हैं। दुनिया के बहुत से लोग अब इनसे ऊब गये हैं और चाह रहे हैं कि किसी भी तरह इनसे मानव-समाज का छुटकारा हो। लेकिन सवाल यह है कि उनसे छुटकारा हो कैसे? और समाज को साम्प्रदायिक-धर्मों के अन्धविश्वास से किस तरह बाहर निकाला जाय!

यदि इन समस्याओं का हल दुनिया के समझदार लोगों द्वारा निकाला जा सके तो यह निश्चित है कि समाज का इसमें बहुत भारी उपकार होगा और समाज की उन्नति का प्रशस्त मार्ग सदा के लिये खुल जायगा। इन समस्याओं का हल मानव-धर्म के व्यापक और महान सिद्धान्तों द्वारा ही किया जा सकता है, और उसीके द्वारा विश्व-बन्धुत्व की रक्षा की जा सकती है।

सत्य, अहिंसा और प्रेम के व्यापक सिद्धान्तों पर ही मानव-धर्म की स्थापना हुई है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं जिसके हृदय में सत्य का अँश न पाया जाता हो। सत्य को अस्वीकार करने का साहस किसी भी मानव प्राणी को नहीं हो सकता। सत्य का केन्द्र बिन्दु मानव-आत्मा का सामान्य गुण है। उसे किसी समय उससे जुदा नहीं किया जा सकता। सत्य विश्व की प्रत्येक वस्तु के वास्तविक स्वरूप को प्रगट करता है और उसके सत्, असत्, प्रगट और अप्रगट स्वरूपों का प्रकाशन करता है। वस्तुओं की जानकारी की स्वाभाविक शक्ति आत्मा में मौजूद रहती है—वही शक्ति सहज ज्ञान है, अनुभूति है। आग और उसकी उष्णता जिस प्रकार एक दूसरे के भिन्न नहीं की जा सकतीं। उसी प्रकार अहिंसा और ज्ञान भी भिन्न नहीं किये जा सकते। सत्य के विषय में ऐसा कहा जा सकता है कि ज्ञान और सत्य दो भिन्न वस्तुयें नहीं हैं बल्कि एक ही हैं। पदार्थ का वास्तविक स्वरूप जिसके द्वारा जाना जा सके वही ज्ञान है और वस्तु का वास्तविक स्वरूप ही सत् (सत्य) है। आत्मा का सत् स्वरूप ज्ञान है और ज्ञान ही सत्य है। ज्ञान और सत्य वास्तव में कहने को दो शब्द हैं किन्तु ज्ञान और सत्य में कोई भेद नहीं है।

मानव-धर्म का दूसरा सिद्धान्त अहिंसा है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी रूप में अहिंसा का पालन करता है। उसीके आधार पर कौटुम्बिक और सामाजिक जीवन की स्थापना हुई है। बिना अहिंसा के न तो कौटुम्बिक जीवन की कल्पना की जा सकती है और न सामाजिक जीवन ही क़ायम रखा जा सकता है। मनुष्य प्राणी में अहिंसा के के बिना मानवोचित गुणों का भी होना सम्भव नहीं। क्रूर से क्रूर मनुष्य भी अपने कुटुम्ब और अपने साथियों के साथ अहिंसक रहता है और दैनिक व्यवहार में उनके साथ उसका पालन करता है। मानव-प्रकृति से यह सिद्ध



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होता है कि अहिंसा-तत्व मानव का आत्मिक-गुण है, किन्तु उस गुण को कभी-कभी उसकी आसुरी प्रवृत्तियां ढँक देती हैं। ज्यों-ही मनुष्य सात्विक प्रवृत्तियों की ओर अग्रसर होता है, उसका स्वाभाविक गुण लोक में प्रगट होता है और वह अधिक से अधिक अहिंसक बनता जाता है।

मानव-धर्म का तीसरा महान् तत्व है प्रेम। प्रेम के विषय में जितना अधिक कहा जा सके कहा जा सकता है। साधारण से साधारण व्यक्ति भी उसकी महत्ता को स्वीकार करता है। प्राणी-मात्र में प्रेम-तत्व का आविर्भाव पाया जाता है। कोई भी प्राणी उसके बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता। प्रकृति ने प्रेम का भाव बनस्पतियों तक में भर दिया है। विश्व की रचना के साथ ही प्रेम-तत्व का उद्भव हुआ है और जब तक विश्व क़ायम है उसे उससे भिन्न नहीं किया जा सकता। समाज की रचना का मूल आधार प्रेम है। समाज में जो मानवोचित कर्तव्य कर्म है, उन सबकी जड़ में प्रेम आधारभूत है। यदि मानव से इस स्वाभाविक गुण को जुदा कर दिया जाय तो मानव-आत्मा जड़वत् हो जायगी। प्रेम की महत्ता को मनुष्य अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक समझता है और समाज को क़ायम रखने में उसे मूल तत्व मानता है। प्रेम जीवन-मय है और जीवन प्रेममय, बिना प्रेम के जीवन नहीं है; प्रकृति ने अणु-अणु और परमाणु में प्रेम का जीवन-मय राग भर दिया है। दुनिया में कोई भी धर्म इसकी महानता को अस्वीकार नहीं कर सकता। मानव-धर्म तो प्रेम की नींव पर ही क़ायम है।

मानव-धर्म प्रकृति के नियमों और व्यवस्थाओं को पालन करने की आज्ञा देता है उसमें मानव-समाज के प्रत्येक अँग और श्रेणी को समानाधिकरण की व्यवस्था है। गीता धर्म के अनुसार उसमें कर्मयोग की प्रधानता है। प्रत्येक मनुष्य को विश्व की निस्पृह होकर सेवा करने से ही कर्मों से मुक्ति मिल सकती है, अनासक्ति का मूल-तत्व मानव-धर्म में निहित है। प्राणि-मात्र के कल्याण की भावना उसमें शामिल है।

दुनिया के सुख और शान्ति के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि, साम्प्रदायिक धर्मों के अस्तित्व को समाप्त से उठा दिया जाय और दुनिया में समानता और शान्ति क़ायम करने के लिये मानव धर्म का समाज में प्रचार किया जाय। अन्ध विश्वास और अन्ध परम्परा को दुनिया से ख़त्म करके ही मानव-धर्म की परम्परा क़ायम की जा सकती है।

मानव-धर्म के व्यापक सिद्धान्तों से समाज में लोक के कल्याण की एक सामूहिक भावना का उदय होगा और प्रत्येक व्यक्ति समाज के सुख में सुखी और समाज के दुख में दुखी होगा। मानव-समाज हमारा कुटुम्ब होगा। उसके कल्याण और विकास के लिये कार्य करना हमारा कर्तव्य होगा। जातीय और साम्प्रदायिक भावनाओं तथा राष्ट्रीय संकुचित विचारों को उसमें स्थान न होगा। विश्व प्रेम के व्यापक सिद्धान्तों पर व्यक्ति को अपने कार्यों और कर्तव्यों का निर्णय करना होगा और इन सिद्धान्तों के आधार पर ही विश्व बन्धुत्व की शृङ्खला क़ायम करनी होगी।

इस महान् धर्म में व्यक्ति और समाज की मुक्ति का द्वार खुला पड़ा है। निस्पृह कर्म द्वारा व्यक्ति, समाज को भौतिक और अध्यात्मिक पूर्णता की ओर ले जा सकता है। आज हम मानव-समाज की स्थापना करने जा रहे हैं। उसमें सबसे पहिले आधारभूत मानव-धर्म का विस्तार ज़रूरी और अनिवार्य है। बिना मानव-धर्म के विश्व-समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता और न उसे क़ायम ही रखा जा सकता है। उसी की नीव पर नवीन और व्यापक समाज की स्थापना सम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दारा शिकोह

कुमारी दिनेशनंदिनी चोरड्या एम० ए०

शाहजहाँ और मुमताज़ महल का लाड़ला बेटा दारा इतिहास के दुःखान्त पात्रों में से है। किसी भी साम्राज्य के उत्तराधिकारी को इतनी इज़्ज़तें नसीब नहीं हुई थीं। वह दिल्ली में रहकर अपने बाप को राज काज में मदद देता रहा। सल्तनत के उमरा में वह चालीस हज़ारी था। चालीस हज़ार घुड़ सवार उसके साथ रहते थे। 'शाह बुलन्द इक़बाल' उसका लक़ब था। सम्राट के नाम और उसकी मुहर का भी वह इस्तेमाल कर सकता था। दारा की सालाना आमदनी दो करोड़ थी। बादशाह को छोड़कर हिन्दुस्तान में किसी की भी उन दिनों इतनी आमदनी नहीं थी। शाहजहाँ की उमर ६७ साल की थी। उसकी तन्दुरुस्ती बिगड़ चुकी थी। मौत ने अपना काला साया उसके चेहरे पर डाल दिया था।

बूढ़ा शाहजहाँ चिन्ता में डूबा रहता था। उसकी मौत के बाद क्या होगा? वह ख़ुद अपने भाइयों के ख़ून में नहाकर तख़्त पर बैठा था। क्या प्यारी मुमताज़ महल की कोख से जन्म लेनेवाले चारों बेटे साम्राज्य पर क़बजा करने के लिये ख़ून की नदियाँ बहावेंगे? मुगल राजवंश की परम्परा यही चली आ रही थी। वे सब एक दूसरे से नफ़रत करते थे।

शाहजहां ने अपने तीन बेटों शुजा, मुराद और औरंगज़ेब को विविध सूबों के हाकिम बना कर दिल्ली से दूर भेज दिया था, इसलिये ताकि सबसे बड़े बेटे दारा के लिए तख़्त का रास्ता साफ़ रहे। बाप के इस मोह ने बेटे को फ़ायदे की जगह नुक़सान ज़्यादह पहुंचाया। लाड़ चाव और ऐशो इशरत में पला हुआ दारा, चापलूसों से घिरा रहता। वह एक ज़ोरदार कर्मठ नेता होने के बजाय तरह तरह के सपने देखता रहता। शाही दरबार में वह अपने बाप के बराबर होने के सिंहासन पर बैठता। हर वक़्त सम्राट की छत्र-छाया में रहता नतीजा यह हुआ कि वह सिपहगीरी और युद्ध के काम में पक्का न बन सका। कूटनीति में भी वह उतना ही कच्चा रह गया। आदमी की पहचान उसे कभी न हुई, दोलहार होकर ही रहा।

शाहजहां बीमार पड़ा। अब न वह दरबार में आता न शाही झरोखे से जनता को दर्शन देता। अफ़वाह फैल गई कि शाहजहां जन्नत को सिधार गया और दारा ने हुकूमत अमली से उसकी मौत को छिपा रक्खा है।

शुजा ने बङ्गाल में, और मुराद ने गुजरात में अलग अलग अपने आप ताज पहन लिये। अकेला औरंगज़ेब चुपचाप सब बातों को ग़ौर से देखता रहा।

उधर शाहजहाँ धीरे धीरे अच्छा हो गया। वह फिर झरोखे से दर्शन देने लगा। लोग फिर भी आपस में काना फूसी करने लगे कि शाहजहां मर गये, और उनका एक गुलाम, जिसकी शकल उनसे मिलती जुलती है, शाही कपड़े पहनकर बादशाह का पार्ट अदा कर रहा है। शाहजहाँ के दस्तख़ती ख़त अमीर उमरा के नाम बदस्तूर भेजे जाते थे। लेकिन ख़लकत में यह शोर था कि वे सब जाली हैं।

तीनों शाहज़ादों ने बाप के दर्शन के लिए दिल्ली आना चाहा। मुराद और औरंगज़ेब दोनों मिल गये। मज़हब की आड़ में साम्राज्य की चाह एकाएक दोनों में पनप उठी। शराबी मुराद इस्लाम का उद्धार करनेवाला बना। मशहूर कर दिया गया कि दारा बुतपरस्त है और बुतपरस्त दारा का नामो निशान मिटा देना मुराद के जीवन का मक़सद बताया गया। मगर मुराद भी कट्टर और चालाक औरंगज़ेब के हाथों का कठपुतला था। कहते हैं एक दिन औरंगज़ेब ने उसे खाने पर बुलाकर इतनी शराब पिलाई कि वह बेहोश हो गया। हथियारों की झंकार को सुनकर वह चौंका तो उसने अपने को संतरियों से घिरा पाया। उसके पैरों में सोने की बेड़ियां डाल दी गईं। तख़्त के लिए जो लड़ाइयाँ हुईं उनके बाद वह कीड़े की तरह पैरों तले कुचल दिया गया।

दारा का सुख स्वप्न टूटा। वह बाग़ियों का मुक़ाबला करने के लिए दिल्ली से निकला। लड़ाई नहीं एक क़त्ले-आम हुआ। सब हिन्दू और ख़ासकर राजपूत दारा के तरफ़दार थे। राजपूतों ने दिल खोलकर युद्ध किया, जीतने के लिए नहीं, बल्कि सिर्फ़ मरने के लिए। परन्तु औरङ्गज़ेब की कूटनीति के सामने हिम्मत और बहादुरी नहीं ठहर सकीं।

बाग़ी दिल्ली सर करने के लिए बढ़ते जा रहे थे। दारा ने आख़री युद्ध की तैयारी की। दुखी और भरे हुए दिल से उसने अपने बाप से बिदा ली। पीछे मुड़कर दारा ने देखा कि मक्के की तरफ़ मुँह करके शाहंशाह अपने प्यारे बेटे की जीत के लिये दुआ मांग रहे हैं। सामूगढ़ की लड़ाई में दारा के दस हज़ार सिपाही खेत रहे। शाहज़ादा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दोपहर की कड़ी धूप में जान लेकर भागा। औरङ्गज़ेब ने आगरे पर कब्ज़ा किया, लाल क़िले में शाहजहां को क़ैद किया, और खुद आलमगीर के नाम से तख़्त पर बैठा। दारा अब बेघरबार का भगोड़ा था। शाही फ़ौजें मुस्तैदी के साथ उसका पीछा कर रही थीं।

दिल्ली से लाहौर, मुलतान, सिन्ध नदी की घाटी, गुजरात राजपूताना भागते भागते वह सिन्ध के रेगिस्तान में पहुंचा। रास्ते में डाकुओं ने उसकी रही सही दौलत भी लूट ली। उसे एक पुराने साथी की याद आई। बोलन घाटी से ९ मील पूरब में एक बलूची सरदार रहता था जिससे नाराज़ होकर एक बार शाहजहाँ ने उसे हाथी के पैरों तले कुचलवा देने का हुक्म दे दिया था। दारा ने बीच में पड़कर बाप की मिन्नत खुशामद करके उसकी जान बख़्शवाई थी, और उसे बचाया था। इस मुसीबत में क्या वह दारा को पनाह न देगा?

इतिहास कार बरनियर लिखता है कि दारा के साथियों और कुटम्बियों ने डबडबाई हुई आँखों से उस बलूची का भरोसा न करने के लिये दारा से मिन्नत आर्ज़ू की। मगर क़ज़ा दारा के सर पर खेल रही थी। अहसान फ़रामोश बलूची सरदार ने दारा और उसके कुटुम्बियों सबको क़ैद कर लिया और फिर कूच दर कूच, उगते सूरज को उनका ख़ून जल चढ़ाने के लिये, दिल्ली भेज दिया। मुग़ल साम्राज्य के वारिस दारा को बेड़ियां डालकर अब दिल्ली की गलियों में घुमाया गया। बदनसीब शाहज़ादा अपने बेटे के साथ एक गंदे और ज़टियल हाथी पर बिठाया गया। कमख़ाब, ज़री और रेशम की जगह मोटी टाटबाफ़ी के चीथड़े उसे पहनाए गये। उसकी बेरौनक़ पगड़ी के चारों तरफ एक काश्मीरी शाल लिपटा हुआ था जिससे वह पूरा दहक़ानी लगता था। कैसी डरावनी और दर्दनाक सवारी थी! आख़िर तक दारा ने अपनी शराफ़त और दरयादिली क़ायम रखी। उसे देखकर रस्ते में एक फ़क़ीर ने कहा, "अय दारा! जब तू धनी मानी था मुझे हमेशा ख़ैरात देता था। आज मैं जानता हूं तेरे पास मुझे देने को कुछ नहीं है।" जवान शाहज़ादे ने फ़ौरन अपना मैला शाल उतार कर उसकी तरफ़ फेंक दिया।

आख़ीर में जल्लाद ने औरङ्गज़ेब के हुकुम से दारा का सर काटकर औरङ्गज़ेब के सामने पेश कर दिया।

दारा एक सभ्य और शकील जवान था। दिमाग़ उसका अकबर जैसा तेज़ नहीं था। पर दिल वैसा ही सच्चा और साफ़ था। सचाई की खोज की उसे लगन थी। शुरू में सूफ़ी विचारों ने उसे अपनी तरफ़ खींचा। मौलाना रूम की मसनवी का उस पर गहरा असर पड़ा। मिर्ज़ा मुहम्मद कासिम ने 'आलमगीर नामे' में लिखा है कि दिन ब दिन दारा का दिल हिन्दू धर्म की तरफ़ झुकता जाता था और वह अकसर ब्राह्मणों, योगियों और सन्यासियों के सत्संग में अपना समय बिताता था। वेदों को वह ईश्वरीय किताबें मानता था। एक हिन्दू योगीराज बाबा लालदास दारा का गुरु था। बाबा लालदास के चरणों में बैठकर दारा ने ज्ञान हासिल किया था। दारा और बाबा लालदास की बातचीत अभी तक अद्वैतवाद (वहदतुल वजूद) की ऊँची से ऊँची किताबों में गिनी जाती है। मुसलमान सूफ़ी फ़क़ीर सरमद से भी, जो चोटी का सूफ़ी कवि था, दारा ने उपदेश लिया। उसने काशी के पंडितों की मदद से उपनिषदों का फ़ारसी में तरजुमा कराया। उसका परदादा अकबर भी फ़तहपुर सीकरी के इबादत ख़ाने में सब धर्मों की छानबीन कर सचाई की खोज किया करता था। विवेक की कसौटी पर दुनिया के धर्मों को कसकर ही उसने दीने इलाही की बुनियाद डाली थी। अकबर के चलाए हुए रास्ते पर अगर मुगल सम्राट चलते रहते तो आज हिन्दू मुसलिम एकता का सवाल ही इस शकल में हमारे सामने न होता। हिन्दू और मुसलमानों को मिलाकर एक राष्ट्र एक क़ौम बनाने का महान् स्वप्न अकबर ने देखा, और इन दोनों धर्मों को पुल बांधकर जोड़ने की कोशिश शाहज़ादे दारा ने की। दारा ने "मजमउल बहरैन" (दो समन्दरों का मिलन) नामकी एक किताब लिखी जिसमें दोनों धर्मों की एकता पर ज़ोर दिया गया है। दुनिया की निगाह में, जहां बाहर की सफलता ही सब कुछ है, दारा असफल रहा। इतिहास के पन्ने पर उसका नाम एक कोने में उसीके ख़ून से लिखा हुआ है। पर जब कट्टरता का ख़ात्मा होगा और लोग अंध परम्परा को छोड़ कर बुद्धि और विवेक की रोशनी में अपने कारनामों को देखना सीखेंगे, आपस की फूट और नफ़रतों को भुलाकर आज़ादी के दीवाने हिन्दू और मुसलमान एक झंडे के नीचे खड़े हो अपने प्यारे मुल्क के लिये मर मिटेंगे, और हिन्दुस्तान पर आज़ादी के सूरज की नई किरनें फूटेंगी, तब राष्ट्र निर्माताओं, क़ौम के बानेवालों की पंगत में दारा शिकोह की जगह महान अकबर के पास और बहुत ऊँची होगी। इसमें भी शक नहीं कि अगर औरङ्गज़ेब की जगह दारा तख़्त पर बैठ गया होता और कुछ दिनों राज कर पाता तो हिन्दुस्तान की तारीख़ आज बिलकुल दूसरी होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दारा अपनी किताब 'मजमे-उल-बहरैन' में लिखता है—

"उस अद्वितीय (यगाना) ईश्वर की खूब स्तुति करनी चाहिए कि जिसने अपने बेमिसाल और बेनज़ीर (अनुपमेय) चेहरे के ऊपर इधर उधर दो सुन्दर जुल्फें बनाई जिनमें से एक को 'कुफ्र' और दूसरे को 'इसलाम' कहा जाता है। लेकिन दोनों में से किसी से भी उसने अपने सुन्दर चेहरे को छिपने नहीं दिया"।

इसे पढ़कर मशहूर सूफी हकीम सनाई का यह शेर याद आ जाता है:—

"ईमान और 'कुफ्र' दोनों उसी ईश्वर की राह पर दौड़े चले जा रहे हैं! और दोनों इसी बात का एलान कर रहे हैं—वह एक है और कोई दूसरा उसके बराबर या उसका साथी नहीं है।"

दारा आगे चलकर कहता है—

"सब सत्यों के अन्दर छिपे हुए एक सबसे बड़े सत्य को जानकर और सूफी धर्म के तत्वों और रहस्यों को पहिचानकर मैंने हिन्दुस्तान के दूसरे धर्मों के जानने की इच्छा की। और यहाँ के धर्मों के सच्चे जानकारों ज्ञाताओं से उसे समझने के बाद जिस सत्य को वे हमारे सामने रखते हैं उसमें और इसलाम धर्म में मुझे कोई फरक नहीं दिखाई दिया, फरक केवल शब्दों का है। इसलिए दोनों तरफ़ की बातें समझकर मैंने यह किताब मजमे-उल-बहरैन लिखी जिसमें दोनों धर्मों का निचोड़ दिया गया है। सत्य को जानने वाले इन दोनों धर्मों की बुनियादी बातों का इसमें संग्रह है।.....मेरी प्रवृत्ति (रुजहान) ख्वाजा उबैदल्ला अहरार की तरह है जो कहता है:—'अगर मुझे पता चलता है कि कोई काफ़िर (ग़ैर मुसलमान) पापों के बोझ से दबा हुआ भी उस एक परमेश्वर के गुणों का गान कर रहा है, तो मैं उसके पास दौड़कर जाता हूँ, उसकी बातें सुनता हूं और उसका एहसानमन्द होता हूँ।' और ईश्वर मुझे मदद देता है और मुझ पर दया करता है।"

जब कि ज्यादातर मुसलमान दुनिया की रचना चार तत्वों से मानते हैं, दारा शिकोह कहता है—

"जान लो कि तत्व पाँच हैं और इन्हीं पाँचों से सारे जड़ जगत की रचना हुई है—अर्श (आकाश), हवा, आग, पानी और मिट्टी। हिन्दू इन्हें पंचभूत कहते हैं। आकाश तीन प्रकार का है—भूताकाश, मनाकाश और—चिदाकाश। चिदाकाश अनादि है। उससे पहले प्रेम (इश्क) निकला। इसे भारतीय अद्वैतवादी माया कहते हैं। इश्क से रूहे अज़म (जीवात्मा) निकली। इसे इस्लाम वाले मुहम्मद की रूह मानते हैं और भारतीय अद्वैतवादी उसे हिरण्यगर्भ तथा अवस्थामन कहते हैं। इसके बाद (वायु) आती है। यह रहमान की सांस मानी जाती है और इसी हवा से निकली जिसे हम आज संसार में पा रहे हैं। (सांस निकलते समय) यह गरम हुई और इससे आग बनी। हवा में शीतलता थी। इससे पानी बना। कुछ लोग पानी को पहले मानते हैं। आग और पानी से आगे चलकर मिट्टी बनी जैसे आग पर दूध रख देने से अन्त में नीचे राख बच रहती है।.....हिन्दू लोग कहते हैं कि महा प्रलय (बड़ी क़यामत) के दिन पहले मिट्टी नष्ट होगी, यह पानी में गुम जायगी। पानी आग में, आग हवा में और हवा आकाश में और उसी में रूहे अज़म भी लय हो जाएगी।"

संसार में उसके (ईश्वर) सिवाय सब कुछ नाशवान है।

पाँच तत्वों की तरह पंच इन्द्रियाँ भी हैं:—शाम्मा (घ्राण), ज़ायका (रसना), बासरा (चक्षु), सामेआ (श्रोत) और लामसा (त्वच) और इनके गुण गन्ध, रस, रूप, शब्द और स्पर्श हैं। शाम्मा का सम्बन्ध मिट्टी से, जायका का जल से, बासरा का आग से, लामसा का वायु से और सामआ का आकाश से है।

'हमारी अन्तरेन्द्रियां भी पांच हैं, मुश्तरक (बुद्धि) मुतखरियला (मन), मुतफ़क्किरा (अहंकार), हाफिजा (चित) और वाहिमा (अन्तःकरण)।'

दारा आगे चल कर कहता है—

'हिन्दू तरह तरह से योगाभ्यास करते हैं पर सबसे बढ़ कर 'अजपा' को मानते हैं। कुरान भी उसे मानता है। कुरान की एक आयत में उसका ज़िक्र है।'

'हिन्दुओं के ब्रह्मा, विष्णु, महेश सूफियों के जिब्राइल, मिकाइल और इश्राफिल से साम्य रखते हैं।'

'आत्मा दो प्रकार की होती है; साधारण आत्मा और आत्माओं की आत्मा (अबुल अरवाह=परमात्मा)।'

'आदमी के शरीर में रहने वाली वायु पाँच जगहों पर रहती है—प्राण नाक से एड़ी तक रहता है, अपान—नाभि से नीचे जांघ से ऊपर रहता है, समान—छाती से नाभि तक रहता है, उदान—गले से सिर तक रहता है, व्यान—सब जगह।'

'सूफियों के अनुसार चार लोक हैं—नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत। हिन्दू इन्हें चार अवस्था कहते हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया।'


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन आवाज़ों को योगी अभ्यास करते हुए अपने अन्तर में सुनता है उन्हें हिन्दुस्तान के लोग तीन तरह की मानते हैं: (१) अनाहत—इसे सूफ़ी आवाज़े मुतलक कहते हैं; (२) आहत (३) शब्द। वह कहता है कि शब्द से 'इस्मे आज़म' (ईश्वर का नाम) निकला।

'रूयत' या ईश्वर के साक्षात्कार के विषय में वह कहता कि क़ुरान, वेद और बाइबिल तीनों में इसका ज़िक्र है। जो इसमें विश्वास नहीं करता वह अन्धा और मूढ़ है।

ईश्वर के नामों को दारा शिकोह अनगिनत बतलाता है। हिन्दू उसे असंग, चेतन, निरंजन, निरंकार, त्रिगुण, सत्व और चित्त कहते हैं। जिसे मुसलमान अलहक़, कादिर समी और बशिर कहते हैं उसे हिन्दू अनन्त, समर्थ, श्रोता और द्रष्टा कहते हैं। अल्लाह को वे ओम् कहते हैं। वे हु को सः, फरिश्ता को देवता, मजहर ए अतिम को अवतार, वही को आकाशवाणी और हूरों या परी को अप्सरा कहते हैं।

इसके बाद वह आकाश ब्रह्माण्ड आदि के हिन्दू सिद्धान्तों की विवेचना करता है। और एक एक चीज़ की मुसलिम विश्वासों के साथ तुलना करता जाता है।

अपनी एक हिन्दी कविता में वह लिखता है :—

आल पतंग मृग मीन गज एक स्वाद जिह दैन।
जामें के पांचों बसैं सो करिहे क्यों चैन॥
ब्राह्मन घर चंडाल घर दीप जोत उजियार।
मोहन मने पतंग के बसै जोत इकसार॥
मोहन लगन 'सनेह' की जाके अन्तर होय।
सुध न रहे बस इन्ह की कहाँ एक औ कोय॥
रोम रोम महं रमि रहा अजय दया कत थाह।
हौं नाहीं हौं, माहिं हौं, हौं माहीं हौं नाह॥

इस प्रकार दारा शिकोह ने हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों की समानता को दर्शा देने का पूरा जतन किया है। खेद है कि न तो इस मूल्यवान ग्रंथ मजमे-उल-बहरैन का कोई हिन्दी अनुवाद ही अब तक हुआ है और न इस प्रकार के ऊँचे स्वतंत्र मौलिक प्रयत्न ही फिर किए गए।

---

# भावी-विधान

डाक्टर बलदेव प्रसाद मिश्र एम० ए०, डी० लिट०

मनुज आवश्यकताएं पांच, न इनमें कभी कहीं से त्रास,
कि वह हो स्वस्थ और सज्ञान, मिलें शुचि अन्न, वस्त्र, आवास।
अनेकों हैं शासन के तंत्र, अनेकों फैले यहां स्वराज्य
त्याज्य वे जिनसे पंच न पांच प्राप्त कर पा जावें निज राज्य।

अभय हों सभी, शक्त हों सभी, न कोई कहीं दुखी हों लोग
राज्य से खुले रहें सब ओर अशक्तों की रक्षा के योग।
योग्यता भर सब ही श्रम करें और आवश्यकता भर प्राप्ति
राज्य का हो यह ही आदर्श 'राज्य ही की हो पूर्ण समाप्ति'।

विश्व बन्धुत्व व्यवस्था बने अवस्था की गति के अनुसार,
ऋषि-उरों में हो जिसका श्रोत वनचरों में हो वह रसधार।
उभय संस्कृतियों का कर मेल स्वतः हों "महा-देव" यों व्यक्त,
कि जिनके नर बानर ही नहीं, देव दानव भी होवें भक्त।

एक धन श्रम है, दूजा द्रव्य, रहें दोनों जनता के पास
सँभालें ब्राह्मण क्षत्रिय इन्हें न जो इन दोनों ही के दास।
एक की नीति अपर की क्रिया, एक की बुद्धि अपर के बाहु
रहे चतुरंग समुन्नत देश, न कोई ग्रसे केतु या राहु।

रहें भौतिक सुख सब के पास किन्तु जन बनें न उनके दास,
आर्य संस्कृति का उज्वल चिन्ह कमल की कहा गया है खास।
इमारी मानस विद्युत् करे जगद् विद्युत को हममें लीन,
हमारे योगों के विज्ञान रचें ऐसा विज्ञान नवीन।

मनुज का जीवन है अनमोल साधना है वह एक महान,
सभी निज संस्कृति के अनुकूल एक हो रचें राष्ट्र उत्थान।
इसलिये नहीं कि करें सशक्त निर्बलों को अपने में लीन,
इसलिये कि हों विश्वहित हेतु समुन्नति पथ पर सब स्वाधीन।

विश्व में फैले सुख औ शान्ति यही हो जीवन का आदर्श,
इसी में मानवता की शान्ति इसी में मानव का उत्कर्ष।
उचित है मनुज इसी के हेतु सँभालें अपने अपने काम,
जहां हैं भरत वहां हों भरत जहां हैं राम वहां हों राम।

( अप्रकाशित "साकेत सन्त" से )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शिमला-सम्मेलन के बाद

डाक्टर पट्टाभि सीतारामय्या

यह ऐसा समय है जब हम भविष्य के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कह सकते। शिमला की बैठक अतकल हो चुकी है। जुलाई १९४५ की शिमला की कहानी एक दुःस्वप्न है जो पिछले तीन वर्षों के स्वप्नों की भांति लम्बी नहीं क्षणिक थी। स्वप्न अधिकतर नींद की अरुचिकर स्निग्धता को भङ्ग करनेवाले होते हैं और कभी-कभी तो वे हमें मोह-निद्रा से भी जाग्रत करते हैं। वे समाप्त होते हैं और हमें हज़ारों कार्यों से परिपूर्ण संसार में पुनः अवतीर्ण कर देते हैं। हमारे सामने तात्कालिक समस्या यह है कि जहां आवश्यकता है वहां का नवनिर्माण हो, भारत की राष्ट्रीय धरोहर यदि कल नहीं तो परसों हमें उन लोगों से अवश्य मिलेगी जिन्होंने ज़बर्दस्ती उसपर अपना क़ब्ज़ा जमा रखा है। हमें इसका वाजिब अधिकार है और हमें अपने को इस योग्य बनाना चाहिए कि हम इसकी रक्षा कर सकें। जो वस्तु दूसरे के हाथ में चली गई है वह हमारे हाथ में अवश्य आवेगी और उस समय हमें उसके स्वरूप का नवनिर्माण करना होगा। इसलिए राष्ट्र के नेता इस समस्या को सुलझाने में अभी से लगे हैं। यह समस्या आसान नहीं है। इस समस्या को सुलझाने का महत्व उतना नहीं है जितना कि इसके सुलझाने के मार्ग और साधनों का निरूपण। क्या हमारे राष्ट्रीय-संकट का इञ्जन रेलवे इञ्जन की भांति इधर-उधर झुके बिना निश्चित स्थानों पर उतरता हुआ ही अग्रसर होकर अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंचेगा? ऐसा होने पर हम सामन्तशाही से पूंजीवाद की ओर अग्रसर होंगे। जनतन्त्र के बजाय एक ऐसे शासन की ओर बढ़ेंगे जिसका संचालन कुछ पूंजीपतियों के हाथ में होगा। इङ्गलैंड में आज इसी प्रकार का शासन है और कल तक फ्रांस में भी वही था। यदि ऐसा नहीं तो हम इधर-उधर चलते हुए सभी मार्गों का अनुभव प्राप्त करते आगे बढ़ें। हम यात्रियों को आने जाने का अवसर दें और इस प्रकार स्वतन्त्रता के साथ हम अपने ध्येय तक पहुंच सकें। यही चाल जनतन्त्र के उपयुक्त होगी। इसमें ग़रीबों, दुखियों, भूखे-नंगों, घर बार रहित सभी के प्रति सहानुभूति होगी।

अतएव हमारे सामने दो रास्ते हैं, एक तो गांधीवाद है, और दूसरा आधुनिक जनतन्त्र जो पश्चिम के समाजवादी आदर्शों से परिपूर्ण है। भारत इस समय ऐसे स्थान पर खड़ा है जहां उसे अपना मार्ग निर्धारित करना है। एक ओर महात्माजी की संरक्षकता है दूसरी ओर नयी-नयी योजनाओं और औद्योगिक साधनों का निर्माण हो रहा है। ये दोनों मार्ग परस्पर विरोधी हैं। प्रश्न यह है कि झील के प्रशान्त जल में यात्रा की जाय या लहराती हुई तूफानी नदी के वक्षस्थल पर। गांधी जी ने अक्सर कहा है कि जवाहरलाल उनके उत्तराधिकारी हैं; परन्तु वे किस बात के उत्तराधिकारी हैं? गांधीजी के पास लंगोटी, लटकती घड़ी और एक लाठी के अतिरिक्त क्या है! यह अच्छा ही है कि उत्तराधिकारी ने सदैव अपने इस अधिकार को अस्वीकार ही किया है। गांधी जी के उत्तराधिकारी को भौतिक निजी सम्पत्ति नहीं वरन् वास्तविक सम्पत्ति प्राप्त होगी।

यह सम्पत्ति गांधी जी के सिद्धांत और आदर्श हैं जिनका उन्होंने जीवन भर पालन किया है। इनके बिना गांधीवाद कुछ नहीं है। गांधी जी का मुख्य ध्येय है गांवों को भारतीय राष्ट्रीयता का केन्द्र बनाना। वे सम्पत्ति को ग्रामवासियों में वितरित करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि गांवों के लोगों का धन गांवों के लोगों में ही वितरित होता रहे। यही ग्रामीण अर्थशास्त्र है जिसके अनुसार केवल गांवों की सम्पत्ति ही गांवों में नहीं रहती वरन नगरों की सम्पत्ति भी वहां खिंच आती है। आजकल सम्पत्ति की नहर गांवों से नगरों की ओर और नगरों से बाहर को जा रही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि गांवों का कला-कौशल तक नष्ट कर दिया गया है, सहायक धंधों का विनाश हो चुका है और आवश्यकता से अधिक लोगों को खेतीबारी पर निर्भर रहना पड़ता है। हम उद्योगों के विरोधी नहीं, हमें मशीनों से भी दुश्मनी नहीं, परन्तु हम चाहते हैं कि इन उद्योगों और ग्रामोद्योगों के बीच स्पष्ट अन्तर रहे। आज जब देश में लाखों करघे और रुई का अपार ढेर मौजूद है तब महिलाएं वस्त्राभाव से आत्म-हत्या क्यों करें! जुलाहों को शिकायत है कि उन्हें सूत नहीं मिलता। अगर १० करोड़ की सम्पत्ति कताई बुनाई के लिए अलग रख दी जाती तो यह परिस्थिति न पैदा होती! दुःख की बात तो यह है कि सूर्य पूर्व में उदय होता है और हम पश्चिम की तरफ देखते हैं। केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों ने पिछले दिनों रेलों की ओर इतना ध्यान दिया कि सड़कों और नहरों की दशा दयनीय हो गई। अब साइकिलों, बसों और लारियों के निर्यात की सुविधा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए भारतीय सड़कों की चर्चा होती है। पहले हमें इन सवारियों की बिक्री बढ़ाना चाहिए तब सड़कों की वृद्धि होगी। हमें नहरों का जाल इतना फैलाना चाहिए कि गङ्गा और कावेरी को तथा झेलम और पद्मा को मिला दें, तभी यातायात के साधनों के अभाव में दुर्भिक्ष नहीं होगा। हमें सिंचाई के छोटे-बड़े साधनों को सुधारकर अधिक अन्न पैदा करना चाहिए। भूमि की छाती पर फैले हुए जङ्गलों और भूगर्भ में छिपी खानों की छानबीन करनी चाहिए और तब हमारी रसायनशालाएं स्थापित हों। ऐसी ही अनेक बातें नवनिर्माण की बाट जोह रही हैं, परन्तु हमें तो पहले समस्त भेदों को मिटाकर ऐक्य स्थापित करना है। विभिन्न वर्णों, ग्रामीण और नागरिक जनता, अवर्ण और सवर्ण को मिलाकर संगठित करना है तब इन सबको मिलाकर भारत का स्वरूप उपस्थित होगा। यह स्वरूप आत्म निर्भरता का परिचायक और भारत के ग्रामीण जनतन्त्र पर निर्भर होगा। दूसरे शब्दों में हमारा यह संगठन पश्चिम की प्रगतिवादिता से दूर नहीं होगा वरन् इसकी जड़ें भारतीय आदर्शों, नियमों और संस्थाओं पर निर्भर होंगी और इसके द्वारा पुनः भारत का राष्ट्रीय स्वरूप प्रकट होगा।

---

# मैं दिल के नग़मे गा न सका !

श्री देवेन्द्र एम० ए०

समझा था जिसको है बस्ती,
कुछ अपनों की इन्सानों की ;
उनमें दिल था पर पत्थर का
कुछ नीयत थी शैतानों की !
इस हैरत और परेशानी में अब तक राहत पा न सका !

पंडित मोमिन पादरियों ने
यह राज़ ख़ुदाई बतलाया ;
कुछ ने क़ुदरत का खेल और
उसके उसूल को समझाया !
समझाया सबने पर कोई कुछ बात सही समझा न सका ?

सदियाँ बीतीं इन्सान मगर
अब तक कुछ आगे बढ़ न सका ;
अपनी कमज़ोरी, बीमारी का
राज़ अभी तक पढ़ न सका !

किसने बतलाया क्यों ढलते
इतने सूरज हर सुबह यहां !
किसने बतलाया क्यों बुझते
जलते दीपक हर शाम यहाँ !

क्यों साँझ यहाँ आती उदास
हर रात यहां सूनी सूनी ?
हर सुबह नई फ़िक्रें लाती
हर दिन ग़म मायूसी दूनी ?
बस इसीलिये खुलकर अब तक मैं दिल के नग़मे गा न सका !

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अहिंसात्मक स्वराज और चरखा

महात्मा गान्धी

भाई भारतन कुमारप्पा, जो अभी दौरे पर हैं मुझे लिखते हैं :—"लोग पूछते रहते हैं गांधी जी ने यह क्या किया है? वे खादी को मार डालेंगे। और हमारे जैसे जिन्होंने उन्हींकी शिक्षा से खादी पहनने का प्रण किया वे क्या करें! हम कातना जानते नहीं और उसे सीखना भी नहीं चाहते। सूत देने के नियम से गांधी जी की सख़्ती ज़ाहिर होती है।"

भाई भारतन कुमारप्पा का ख़त अंग्रेज़ी में है। मैंने तो यहां उसका भावार्थ दिया है।

लोगों को समझना चाहिये कि यदि सूत के धागे पर स्वराज निर्भर है तो कातने की मेरी मांग में सख़्ती नहीं लगनी चाहिये, बल्कि सूत कातने में उन्हें ज़्यादा दिलचस्पी पैदा होनी चाहिये। जो इसे सख्ती समझते हैं वे अहिंसा कैसे काम करती है यह नहीं जानते। मैं जब से हिन्दुस्तान वापस आया तभी से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा हूँ कि अगर अहिंसा की मार्फ़त स्वराज हासिल करना है तो हमारी प्रवृत्ति में कातना तो होना ही चाहिये। मरहूम मौलाना मोहम्मदअली कहा करते थे कि चर्खा हमारी बन्दूक है और सूत की कोकड़ियां हमारी गोलियां हैं, और उन्हीं गोलियों के मार्फ़त हम स्वराज हासिल करेंगे। यह बात आज भी उतनी ही सही है।

यदि शहरों और देहातों में खादी आम फ़हम होनी है तो वह सूत से ही होनी चाहिये। आज तो रुपये में एक आने का ही सूत मांगा जाता है। यह तो शुरूआत है। जब लोग समझ लेंगे, सीख लेंगे, तब तो अपने काते हुए सूत से ही खादी दी जायगी। मुझे उम्मीद है कि लोग स्वयं आग्रह करके सूत से ही खादी लेंगे। यदि ऐसा न हुआ और लोग नाराज़गी से जैसे तैसे सूत देकर खादी लेंगे तो अहिंसा से स्वराज पाना मैं असम्भव मानता हूं। स्वराज के लिये प्रयत्न तो करना ही होगा। स्वराज भिक्षा से नहीं मिल सकता। बन्दूक से एक प्रकार की स्वतन्त्रता मिल सकेगी लेकिन वह स्वराज नहीं होगी और न उसमें मुझे कुछ रुचि होगी। पर गोला बारूद से स्वराज हासिल करने की कल्पना से ही मेरा सिर घूमने लगता है और मेरे सामने मुसीबतों का पहाड़ खड़ा हो जाता है। जो गोला बारूद द्वारा स्वराज हासिल करना चाहें उनके लिए यह लेख नहीं है। वे खादी क्यों पहिनें! उनकी दृष्टि से खादी निकम्मी वस्तु सिद्ध हो सकती है। पर यह लेख पढ़नेवाले यदि ऐसी मान्यता रखते हों कि खादी देहातों में बुनवाकर शहरवालों को पहुँचाई जा सकती है लेकिन देहाती स्वयं उसे पहनने वाले नहीं हैं, वे करोड़ों की संख्या में मिलों का कपड़ा ही इस्तेमाल कर सकते हैं, तो ऐसी हालत में खादी की शक्ति क्षीण हो जायगी। खादी गरीबों के घरों में दो पैसे पहुँचाये उतने से हमारा पेट थोड़े ही भर सकता है। ऐसी शंका उठी है कि इस तरह विचार करने से ग़रीबों की खादी तो मिट जायगी और वह शहरों के कुछ शौकीनों की चीज़ रह जायगी, क्योंकि वे ही लोग स्वयं कातकर खादी बनवा लेंगे। यह विचार अज्ञान ज़ाहिर करता है।

लोग ज़िन्दा रहने के लिये खाना खाते हैं न कि शौक के लिए। वे कपड़ा पहनते हैं शरीर ढांकने के लिए न कि शौक के लिए। इसलिए जिस प्रकार घर घर में चूल्हा है उसी प्रकार घर घर में चर्खा होना चाहिये। और हर एक तन्दुरुस्त व्यक्ति को कातना चाहिये। तभी सब खादी पहन सकते हैं और स्वराज ले सकते हैं। वास्तव में जो अपंग, अपाहिज हैं उनके लिए भी तन्दुरुस्त व्यक्तियों को कातना चाहिये।

लोग खेलने के लिए क्लब (खेल-घर) बनाते हैं और वहां अपना शरीर और पैसा दोनों बिगाड़ते हैं! क्या ऐसे स्वराज-घर या चर्खा-घर नहीं बन सकते जहां जाकर लोग पूनियां बना सकें, कात सकें और सूत के बदले खादी भी ले सकें? सीधी बात तो यह है कि जहां इच्छा नहीं वहां विरुद्ध पक्ष को कई दलीलें सूझती हैं और जहां इच्छा होती है वहां हमें उतनी ही अनुकूल दलीलें सूझती हैं। ऐसी प्रबल इच्छा होने पर लोग चर्खा छोड़ ही नहीं सकते जैसे वे खेल नहीं छोड़ते। क्या खेल के लिए जो इच्छा काम देती है वह स्वराज्य के लिए काम न देगी?

सूत देकर खादी लेने के विरुद्ध एक ज़बर्दस्त दलील यह दी जाती है कि अगर शहरवाले अपना ही सूत दें तो ग़रीबों की खादी मिट जायेगी। जो कुछ थोड़ा बहुत काम खादी के मार्फ़त होता है वह भी बन्द हो जायगा और देहातियों को खादी पहने हुए देखना निरा स्वप्न ही रह जायगा। यदि हम ऐसा मान भी लें कि शहरवासियों ने आलस्य से या ग़ुस्से में आकर खादी पहनना छोड़ दिया और इसलिये देहातियों ने मज़दूरी के अभाव में सूत कातना और बुनना बन्द कर दिया तो उससे मुल्क की कौन सी बड़ी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हानि हो सकती है ? इस प्रकार यदि उनका सूत का धंधा छूट जाय तो ग़रीब लोग दूसरा धन्धा करेंगे और किसी न किसी तरह अपना पेट भरेंगे। ऐसा लाखों भले ही कर लें, जैसा वे आज कर ही रहे हैं, पर करोड़ों तो ऐसा नहीं कर सकते।

आज बीड़ियां बनाने वाले मज़दूर सूत कातनेवालों से चौगुना या उससे भी ज़्यादा कमा लेते हैं। मिलों में जाने-वाले काफ़ी मज़दूर मालदार बन गये हैं। इसका अर्थ यह है कि जो आज भूखों मर रहे हैं वे और अधिक भूख की पीड़ा सहन कर मर जायेंगे और जो ग़रीब धन कमाते हैं वे भी उन पर सवारी करेंगे। बहुत-सी मिलें बनें और शहरों की वृद्धि हो जाय तो उससे सारा हिन्दुस्तान समृद्ध नहीं बनेगा, बल्कि करोड़ों लोग भूख से और भूख से पैदा होने वाले अनेक रोगों से मर जायेंगे। इसे यदि शहरवासी खुशी की बात मानें तो फिर मुझे कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। उस हालत में हिन्दुस्तान में हिंसा का राज्य होगा, अहिंसा और सत्य का नहीं और मैं क़बूल करूंगा कि उस हालत में खादी को कोई स्थान नहीं रहेगा और न रहना चाहिए। उस हालत में सबको मजबूरन या ख़ुशी से फ़ौजी तालीम ही लेनी होगी। लेकिन मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह तो भूख से मरनेवाले करोड़ों की बात है। उनको अगर ज़िन्दा रखना है, तगड़ा बनाना है, तो चर्खे को ही केन्द्र बनाना पड़ेगा और स्वेच्छा से सूत कातना होगा। अहिंसा का शस्त्र लोगों के हाथ में मजबूरी से न रखा जाय। इस-लिये मेरी दृष्टि से तो सूत का जो रिवाज शुरू हुआ है उसे जारी रखना ही है, इतना ही नहीं बल्कि बढ़ाना भी है। उपर्युक्त कारणों से अगर सब खद्दर भण्डार बेकार बैठ जायें और खादी पहननेवाले खादी छोड़ दें तो उसे सत्य की विजय मानूंगा; क्योंकि उस हालत में मैं समझूँगा कि लोग अहिंसा को वास्तव में मानते नहीं थे और अज्ञान के कारण खद्दर पहनते थे और अपनी तुष्टि कर लेते थे कि खादी से स्वराज पायेंगे। मैं जब मानता हूं कि ऐसी खादी से स्वराज नहीं मिल सकता तब मैं लोगों को धोखे में क्यों रहने दूं ! और यदि स्वराज मिला भी तो मिलने के बाद लोग ऐसी खादी को फेंक देंगे। उस हालत में स्व० चिंतामणि ने जो भविष्यवाणी की थी कि गांधी के मरने के बाद लोग खादी से और गांधी से इतनी नफ़रत करेंगे कि घरों से चर्खे निकालकर उनकी लकड़ियों से गांधी के शरीर को जला देंगे यह सच होगी। अगर हाथ के कते सूत में सचमुच अहिंसा का दर्शन है तो जीते-जी ही मैं अपनी भूल सुधार कर चर्खे की लकड़ियों को क्यों न बचा लूँ। लेकिन मैं उस पेशीनगोई को सत्य मानता ही नहीं। लोग समझ गये हैं कि हिन्दुस्तान के करोड़ों लोग हिंसा की मार्फ़त स्वतन्त्रता नहीं पा सकते। इस दुनिया में हिन्दुस्तान का जो बहुत बड़ा स्थान है या आगे होनेवाला है वह अहिंसा से ही हो सकता है। यदि यहां के करोड़ों लोग अहिंसा की उपयुक्तता का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते हैं तो उन्हें चर्खे को केन्द्र मानकर ही चलना होगा और चूँकि शहरवासियों में स्वतन्त्रता की भावना अधिक बढ़ी है, इसलिए उनका यह धर्म हो जाता है कि इस बात को समझकर अहिंसक स्वराज पाने के लिए खुद कातें और खादी पहनें।

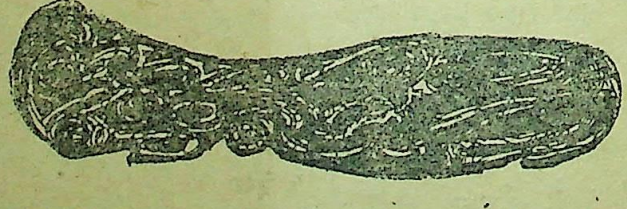

God honours me when I work,
he loves me when I sing.

—गुरुदेव रवीन्द्रनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# नयी व्यवस्था में एशिया का स्थान

आचार्य नरेन्द्रदेव

यूरोप के युद्ध में मित्र-राष्ट्र विजयी हुए। अब प्रश्न यह है कि क्या मित्र-राष्ट्र वास्तविक शान्ति की स्थापना कर सकेंगे? जैसा कि अनेक कुशल पर्यवेक्षकों ने बताया है, यदि वास्तविक शान्ति की स्थापना होनी है तो जिन सिद्धान्तों पर उसकी स्थापना होगी उनकी नींव निश्चित रूप से युद्ध के दौरान में ही पड़ जानी चाहिये।

यदि हम संसार को नये युद्ध के अग्निकुण्ड की लपटों से बचाना चाहते हैं तो हमें एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था का निर्माण करना होगा जो उत्तरोत्तर अधिकाधिक जनता का हित-साधन कर सके। साधारण जनता के हितों की दृष्टि से समाज की व्यवस्था का आयोजन न होने से प्रजातन्त्र सर्वत्र ख़तरे में पड़ जायगा। अतएव यदि हम प्रजातन्त्र तथा स्वतन्त्रता की दृष्टि से अपनी सभ्यता का नियमन और उसकी आयोजन करना चाहते हैं तो हम आर्थिक क्षेत्र में युद्ध पूर्व के 'मुक्त व्यवसाय' के सिद्धान्त की ओर नहीं लौट सकते। श्री हेरल्ड लास्की के शब्दों में 'नात्सीवाद पर सैनिक विजय प्राप्त कर लेने पर भी हमारे सामने स्वयं अपने ऊपर विजय प्राप्त करने की गम्भीरतर समस्या बनी ही रहती है।' आइये देखें, क्या इस प्रकार की विजय प्राप्त करने का यत्न किया गया है।

## शक्ति का बोलबाला

इसमें सन्देह नहीं कि मित्र सरकारों द्वारा व्यक्ति की मर्यादा और मानवता के हितों की दुहाई देनेवाले वक्तव्य समय-समय पर प्रकाशित किये जाते रहे हैं। अतलान्तक घोषणा और 'चार स्वतन्त्रताओं' की भव्य शब्दावली हमारे सामने है। सान्फ्रांसिस्को सम्मेलन द्वारा निर्धारित घोषणापत्र ने स्त्री-पुरुषों और छोटे-बड़े राष्ट्रों की समानता में अपना विश्वास दुहराया है और इस प्रकार के परस्पर मैत्री एवं शान्तिपूर्ण सम्बन्धों पर ज़ोर दिया है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा की स्थापना हो सके। ये विचार निस्सन्देह बड़े उत्तम हैं, किन्तु हम सभी जानते है कि व्यवहार में मित्रराष्ट्र इनका पालन नहीं कर रहे हैं। शक्ति के ज़ोर से अपना प्रभुत्व मनवाने की राजनीति का बोलबाला है और वर्तमान की आवश्यकताओं के आगे सिद्धान्तों की बलि दी जा रही है। ज्योंही यूरोपीय युद्ध का अन्त निकट आया श्री चर्चिल ने घोषणा कर दी कि युद्ध विचारधारा सम्बन्धी युद्ध नहीं रह गया है। मित्रराष्ट्रों के बीच मतभेद की खाई चौड़ी होती चली जाती है और युद्धपूर्व काल के सन्देह पुनः उभड़ रहे हैं। बार-बार यह बात देखने में आई है कि बड़े राष्ट्रों ने एकतरफा कारवाइयाँ की हैं।

## सारहीन सुरक्षा-योजना

संयुक्त-राष्ट्रों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा की जो योजना बनायी गयी है उसमें शासनादिष्ट प्रदेशों तथा शत्रु-राष्ट्रों से छीने गये प्रदेशों का संरक्षण-समिति द्वारा शासन करने की व्यवस्था की गयी है। किन्तु संरक्षण-समिति को किसी शासनादिष्ट प्रदेश के शासन-प्रबन्ध के सम्बन्ध में उसके शासक-देश की सम्मति प्राप्त करना आवश्यक होगा। जहाँ इस प्रकार का समझौता सम्भव नहीं है उन प्रदेशों के शासन का अधिकार संरक्षण समिति को न होगा। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्रों के सदस्यों द्वारा पराधीन देशों के शासन की देखभाल करने की भी कोई व्यवस्था नहीं की गई है और घोषणापत्र के अन्तर्गत जिन उद्देश्यों को वे स्वीकार करते हैं उनकी पूर्ति के लिए उन पर कोई दबाव नहीं डाला जा सकता। इंग्लैंड, फ्रांस और हालैंड अपने साम्राज्य का परित्याग करने के लिए तैयार नहीं है। चर्चिल के शब्द—'हम अपने आधिपत्य को बनाये रखना चाहते हैं' ('वी मीन टु होल्ड अवर ओन') आज भी हमारे कानों में गूँज रहे हैं। अपने आधिपत्य से चिपटे रहने की इस भावना के रहते शान्ति और आर्थिक सुरक्षा की स्थापना नहीं हो सकती।

यह बात सूर्य के प्रकाश की भाँति स्पष्ट है कि कोई भी संस्था शान्ति बनाये रखने में सफल नहीं हो सकती यदि उसके प्रमुख सदस्य ही ऐसा न चाहते हों। संसार के भविष्य का निर्णय नेताओं और उनकी नीतियों के द्वारा होगा न कि अन्तर्राष्ट्रीय घोषणापत्रों में दुहराई जानेवाली सुन्दर शब्दावली द्वारा।

ऐसा जान पड़ता है कि शान्ति स्थापना का कार्य असफल हो रहा और इस बार के रक्त-स्नान से भी संसार ने शिक्षा नहीं ग्रहण की। ऐसी परिस्थिति में स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र के प्रत्येक प्रेमी का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह जनमत को वर्तमान स्थिति की सम्भावनाओं का निर्देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


करे और शान्ति की पुनःस्थापना के उद्देश्य से प्रतिक्रियावादी शक्तियों से युद्ध करने के लिए जनता को सङ्गठित करे। आज जो कुछ हो रहा है यदि उसे ही स्वीकार कर हम बैठ जाँय तो यह निश्चय है कि पिछले महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् उपस्थित होनेवाली बुराइयाँ इस बार भी आ खड़ी होंगी।

## अपनी शक्ति का ही भरोसा

यदि उपर्युक्त विश्लेषण सत्य है तो एशिया के लिए निकट भविष्य शान्ति और सुख का नहीं है। हमें हमेशा सावधान बने रहने और राजनीतिक रङ्गमञ्च की शतरञ्जी चालों पर सजग दृष्टि रखने की आवश्यकता है। हम सभी क्षेत्रों की सहायता तथा सहानुभूति का स्वागत करेंगे किन्तु यह बात हमें हृदयङ्गम कर लेनी चाहिये कि मुख्यतः हमको अपनी शक्ति का ही भरोसा करना पड़ेगा। यद्यपि, अन्तर्राष्ट्रीयतावादी होने के नाते, एशिया को यूरोप के विरुद्ध लड़ाने की कल्पना मुझे घृणित-सी जान पड़ती है, किन्तु यदि साम्राज्यवादी शक्तियों की परम स्वार्थपरता और कट्टरपन के कारण पाश्चात्य साम्राज्य-वादी राष्ट्रों के विरुद्ध एशियाई देशों का शक्तिशाली संयुक्त मोरचा बनाने की आवश्यकता पड़ी तो यथार्थवादी होने के कारण मैं ऐसा करने में ज़रा भी न हिचकूंगा।

## अमेरिका आदि से आशा नहीं

अमेरिका की सदिच्छा और सहायता का हम निश्चित रूप से भरोसा नहीं कर सकते। कारण, सोवियत् रूस के प्रति अमेरिका और इङ्गलैण्ड दोनों का जो रुख है उसे देखते हुए रूस के विरुद्ध इङ्गलैण्ड के साथ अमेरिका की मैत्री के सुदृढ़ होने की आशा है। ऐसी अवस्था में ब्रिटेन के 'घरेलू मामलों में' हस्तक्षेप करने से अमेरिका इन्कार ही करेगा। इसके अतिरिक्त, लक्षण ऐसे दृष्टिगोचर होते हैं कि युद्धोत्तर-काल में अमेरिका स्वयं साम्राज्यवादी देशों की पंक्ति में होगा।

यह बता सकना दिनोंदिन अधिकाधिक कठिन होता जा रहा है कि स्थिति विशेष में रूस की नीति क्या होगी। पूर्व के पददलित राष्ट्रों को रूस से ज़बर्दस्त प्रेरणा मिलती रही है, किन्तु जान पड़ता है कि यूरोपीय परिस्थिति की कठोरताओं से विवश होकर रूस को अपने पुराने आदर्शवाद का अनेक अंशों में परित्याग करना पड़ा है। रूस भविष्य में अपने ऊपर आक्रमण के खतरे को सदा के लिए टाल देने की भरपूर व्यवस्था कर लेना चाहता है। उसकी नीति केवल एक इसी उद्देश्य को लेकर निर्धारित की जाती जान पड़ती है। वह स्पष्टतया आज के अपने कुछ मित्रों का भविष्य के लिए विश्वास नहीं करता। १९१७ की क्रान्ति से अब तक के इन वर्षों में उसके इन मित्रों का क्या व्यवहार रहा है यह बात रूस भूला नहीं है—विरोधी पूँजीवादी राष्ट्रों द्वारा चारों ओर से रूस को घेरकर बन्द रखने की कोशिश, आर्थिक अवरोध और हस्तक्षेप, रूस के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने से हमेशा इनकार इन बातों की याद रूस के शासकों के दिमाग में अब भी ताज़ा है। इन घटनाओं की पुनरावृत्ति फिर न होने पावे रूस इसके लिए सभी सम्भव प्रयत्न कर रहा है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए रूस ऐसे उपायों की शरण लेने से भी नहीं हिचकता जिनसे साम्राज्यवादी हथकण्डों की गन्ध आती है। किन्तु यह स्मरण रखने की बात है कि रूस की नीति के पीछे जो भी भावना हो इस प्रकार की नीति यदि वह बराबर बरतता रहा तो यह उसके स्वाभाविक व्यवहार का अङ्ग हो जायेगी और यही खतरे की बात है। ईरान के तेल के प्रश्न पर रूस की नीति सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती और उसके औपनिवेशिक प्रदेशों में रूस की प्रतिष्ठा को निस्सन्देह गहरा धक्का पहुंचा है।

## चीन और भारत का सम्बन्ध

चूंकि एशिया में रूस की स्पष्ट नीति का पता घटनाओं के घटित होने पर ही मिलेगा और पहले उसका अनुमान नहीं किया जा सकता इसलिए रूस को अननुमेय जानना समझना चाहिये। फिर भी मेरा यह विश्वास है कि वह साम्राज्यवादी मार्ग तबतक नहीं ग्रहण करेगा जबतक ऐसा करना उसकी आत्मरक्षा की दृष्टि से परमावश्यक न हो जाय। रूसके इरादे साम्राज्यवादी हैं ऐसा अभियोग मैं नहीं पर नहीं लगा सकता। चीन के प्रति रूस का क्या रुख यह प्रश्न निश्चय ही एशिया के लिए बड़े महत्व का एशिया के राष्ट्रों में चीन ही एक ऐसा देश है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ की सुरक्षा-समिति में स्थान मिला है। यद्यपि अब तक बड़े मित्र-राष्ट्रों का उसके साथ व्यवहार गरीब रिश्तेदार का सा रहा है, फिर भी अमेरिका समर्थन और एशियावासियों की सहायता एवं सद्भाव की बदौलत उसका भविष्य उज्ज्वल है। भारतवर्ष का भाग्य चीन के भविष्य के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। अतः अपने इस सच्चे साथी के दुःख-सुख में उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


देना हमारा कर्तव्य होगा। इस दृष्टि से हम यह जानने को अवश्य उत्सुक हैं कि चीन के प्रति रूस की क्या नीति होगी।

चीन की राष्ट्रीय महासभा कुओमिंताङ्ग और येनान के कम्युनिस्टों के पारस्परिक गृह-कलह के सम्बन्ध में रूस का क्या रुख होगा इस बात को लेकर अनेक कल्पनाएँ की जा रही हैं। हमें बड़ा सन्तोष होगा यदि रूस इस बात को पूर्णतः स्पष्ट कर दे कि उसे चीन के इस घरेलू प्रश्न पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी पक्ष का साथ नहीं देना है। मुझे आशा है कि कुओमिंताङ्ग के नेता धैर्य और आत्म-संयम से काम लेंगे और जनता के हित-साधन की दृष्टि से दूरदर्शितापूर्ण नीति अपनायेंगे। इससे अधिक इस समय कुछ नहीं कहा जा सकता।

चीन की सहानुभूति और सहायता अपनी स्वतन्त्रता के लिए युद्ध करने वाले एशिया के प्रत्येक देश को सदैव प्राप्त होती रहेगी, किन्तु संयुक्त राष्ट्रों के दूसरे सदस्यों के प्रति चीन की जो जिम्मेदारियाँ हैं उनका निर्वाह करते हुए ही वह कुछ कर पायेगा। भारतवर्ष इस प्रकार के किसी भी बन्धन से मुक्त होगा, किन्तु अपनी पराधीनता के कारण वह कोई वास्तविक सहायता पहुँचाने में असमर्थ रहेगा। भारतवर्ष एशिया की स्वतन्त्रता का प्रतीक बन गया है। उसका यह स्वरूप भङ्ग न हो पाये इस बात का ध्यान रखना हम सबका कर्तव्य है। युद्ध के सम्बन्ध में भारतवर्ष ने जो नीति ग्रहण की उसने उसे इस युग का प्रश्न-चिह्न बना दिया, संसार की चकित आँखें उसकी ओर लगी रहीं और एशिया के समस्त देश उसकी ओर आशाभरी दृष्टि से टकटकी लगाये हुए उस दिन की बाट जोह रहे हैं जब भारत स्वतन्त्र होगा क्यों—वे यह अनुभव कर रहे हैं कि भारत की स्वतन्त्रता में ही उनकी स्वतन्त्रता निहित है।

## पड़ोसियों के साथ मैत्री-सम्बन्ध

अपनी स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करते हुए भारतवर्ष को अपने उन पड़ोसियों को नहीं भूल जाना चाहिये जो भारतवर्ष की तरह भाग्यशाली नहीं हैं और दूसरी किसी दृष्टि से नहीं तो कम से कम आत्मरक्षा की दृष्टि से अच्छे पड़ोसी की नीति व्यवहार में लायेंगे और भविष्य में अपनी स्वतन्त्रता को सुरक्षित बनाने की दृष्टि से गैर-सरकारी तौर पर भारतवर्ष के साथ अनाक्रमण-सन्धि तथा पारस्परिक सहायता के उद्देश्य से मैत्री-सन्धि के लिए तैयार हैं। भारत को इस आशय की घोषणा कर देनी चाहिये कि राजनीतिक अथवा आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से अपने पड़ोसियों का शोषण करने का उसका कोई इरादा नहीं है। बर्मा और लङ्का में मिलनेवाले विशेषाधिकारों को हमें त्याग देने को तैयार होना चाहिये और विदेशों में अपने नागरिकों के लिए विशेष अधिकारों की माँग न करनी चाहिये।

हम बाहरी दुनिया से आँख मूदकर तटस्थ रहकर चलने की नीति पर नहीं चल सकते। भूतकाल में इस नीति ने हमें बड़ी हानि पहुँचाई है। प्राचीन काल में भारतवर्ष, चीन और दक्षिण-पश्चिमी एशिया के देशों में विचारों और वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था। हमें इस प्राचीन परम्परा का पुनः प्रचलन करना चाहिये।

## एशिया में नवीन जागरण

यद्यपि इङ्गलैण्ड, फ्रांस और हालैण्ड पूर्व में अपने साम्राज्य को बनाये रखना चाहते हैं किन्तु ऐसा करने में उन्हें दिनों-दिन अधिकाधिक कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। महायुद्ध ने पूर्व के निवासियों की राजनीतिक चेतना को तीव्र बनाया है। वे अपनी हीनता की भावना का त्याग कर चुके हैं। श्वेताङ्ग पुरुषों से अब वे भयभीत नहीं होते। श्वेताङ्गों की प्रतिष्ठा को बड़ा गहरा धक्का लगा है और अब उसे पुरानी अवस्था में नहीं लाया जा सकता। बर्मा, मलाया और हिन्द-चीन अपनी पुरानी अवस्था में वापस नहीं आना चाहते। साम्राज्यवादी देशों के इस प्रकार के प्रयत्नों का मुकाबला करने का वे भरसक प्रयत्न करेंगे। स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र के युद्ध में एशिया में भारतवर्ष को बहुत महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करना है। मुझे विश्वास है कि हममें ऐसी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, साहस और राजनीतिज्ञता होगी कि हम विदेशी चंगुल से अपने को तथा अपने पड़ोसियों को स्वतन्त्र करने और चीन तथा रूस की सहायता से पूर्व में सच्ची शान्ति तथा पूर्ण प्रजातन्त्र की स्थापना के शुभ मुहूर्त से लाभ उठा सकेंगे।

---



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पुस्तक परिचय

## कल्कि या सभ्यता का भविष्य

सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने 'कल्कि' नाम से अंग्रेज़ी में एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है, जिसमें आधुनिक क्षुब्ध और पीड़ित संसार की समस्याओं का दार्शनिक तथा बौद्धिक विवेचन किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक उसीका अनुवाद है। श्री लक्ष्मण नारायन जी गर्दे जैसे वयोवृद्ध अनुवादक की लेखनी-प्रस्तुत होने के कारण अनुवाद की उत्तमता में सन्देह नहीं होना चाहिये, फिर भी कहीं कहीं भाषा में शिथिलता रह गई है, और प्रेस की भूलें भी इतनी हैं कि प्रकाशकों के लिये अशोभन हैं।

पुस्तक मुख्यतया दो खण्डों में बंटी है। पहले प्रस्तावना है, जिसमें विज्ञान की विभीषिका को चित्रित किया है कि जिसके फलस्वरूप वर्तमान द्वितीय महायुद्ध जैसे दुःखान्त महानाटक का सूत्रपात हुआ। इसके पश्चात वर्तमान अराजकता का वर्णन है, जहां धर्म, अर्थ और काम तीनों क्षेत्रों में मानव समाज में बहुत अधिक गड़बड़ी मची हुई है। दार्शनिक होने के नाते धर्म के विषय में सर सर्वपल्लि के विचार कितने उदार हैं, यह उनके शब्दों से प्रकट होता है। "भविष्य का धर्म इतना व्यापक होने वाला है कि उसमें उन सबका समावेश होगा कि जिनके हृदय धार्मिक हैं।" पारिवारिक जीवन और सामाजिक समस्याओं की मूल गड़बड़ी तक भी विद्वान लेखक की पैनी दृष्टि पहुँची है, और उन्होंने एक महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित किया है कि "आधुनिकों का आग्रह ही है कि एक पतिव्रत या पत्नीव्रत निश्चय ही एक महान आदर्श है, पर यह विचार करने की बात है कि जिस व्रत से लाखों स्त्रियों को दाम्पत्य सुख से वंचित होना या वेश्यावृत्ति स्वीकार करना पड़ती है, वह व्यवहार में कहां तक ठीक है।" सम्भव है कि मत विशेष के पोषक सुधार के उन उपायों को पूर्ण न समझते हों, पर लेखक का प्रयत्न सराहनीय अवश्य है। उनका दृष्टिकोण सुलझा हुआ है, और समस्या की वास्तविकता को उन्होंने पहचानने का प्रयत्न किया है।

जहां तक आर्थिक समस्याओं का सम्बन्ध है, विद्वान लेखक ने यह तो स्वीकार किया है कि "आर्थिक व्यक्ति स्वातन्त्र्य ने एक छोटी उच्च श्रेणी उत्पन्न कर दी है, जिसका जीवन अतृप्तिकर स्वाद-लोलुपता और विलासिता से भरा हुआ है; और दूसरी एक विशाल निम्न श्रेणी उत्पन्न कर दी है जिसका जीवन दारिद्र्य और दुःख से भरा हुआ है।" इस प्रकार मार्क्स के श्रेणी संघर्ष के सिद्धान्त को स्वीकार तो किया गया है किन्तु उसके समाजवादी हल की ओर लेखक की दृष्टि शायद नहीं गई। मूल समस्या का वास्तविक समाधान तो उसीमें निहित है। संसार का वास्तविक पुनर्घटन इस बीसवीं सदी में आर्थिक पुनर्घटन के बिना असम्भव सा है। आर्थिक पुनर्निर्माण की वास्तविक रूपरेखा स्थिर करने के लिये कुछ निश्चित सिद्धान्तों का आश्रय लेना आवश्यक है।

राजनीति के क्षेत्र में लेखक ने इस युग में प्रजातन्त्र की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए स्वयं कहा है "जहां इतनी आर्थिक विषमता हो, वहां कोई राजनीतिक समता नहीं हो सकती।" अतः मुख्य समस्या आर्थिक है, राजनीतिक समस्या गौण है। लेखक ने राजनीति में अध्यात्मिक समावेश पर बहुत ज़ोर दिया है जो निश्चय ही महात्मा गान्धी का प्रभाव है। इसकी सफलता अभी भविष्य के गर्भ में है। राष्ट्रीयता के मद की भी लेखक ने निन्दा की है जो मिथ्या देशाभिमान के कारण युद्धों को उत्तेजना देता है। संसार में शान्ति और एकता के केवल दो मार्ग हैं, सार्वभौम राज्य या सार्वभौम प्रजातन्त्र। राज्य की कल्पना तो अब पुरानी हो चली, अब तो केवल सार्वभौम प्रजातन्त्र ही एक मार्ग है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सर सर्वपल्लि की चिन्ता धारा का यह परिणाम दार्शनिक नीति पर स्थित और बुद्धिवाद से अनुप्राणित है, किन्तु उसमें आध्यात्मिकता की छाप अधिक है। उनकी दृष्टि पैनी है, और समस्याओं के मूल को कुरेदती है, पर सम्भव है कि उनके प्रस्तावित समाधानों से कुछ विचारकों को मतभेद हो। हिन्दी में यह अपने ढंग की पहली पुस्तक है, किन्तु इसकी उपादेयता तभी सार्थक होगी, जब इस ढङ्ग की मौलिक और विचारोत्तेजक पुस्तकें निकलें जो वर्तमान महायुद्ध के पश्चात उत्पन्न हुई नवीन समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करें।

र० च० गोयल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**प्रेमचन्द : घर में**—(जीवनी) लेखिका : शिवरानी देवी प्रेमचन्द ; प्रकाशक : सरस्वती प्रेस बनारस ; मूल्य ५) पृष्ठ संख्या ३६८

पुस्तक में महान उपन्यासकार स्व० प्रेमचन्द जी की जीवन-झाँकी घरेलू संस्मरणों के रूप में स्वयं उनकी धर्म-पत्नी शिवरानी देवी द्वारा अङ्कित की गई है। जिन परिस्थितियों ने, जिस सामाजिक वातावरण और मानसिक द्वन्द ने प्रेमचन्द जी को महान रचनाकार के पद पर प्रतिष्ठित किया उसका राज़ इस पुस्तक के पन्नों में पाठकों को खुला हुआ मिल सकता है। हम शिवरानी देवी से पूरी तरह सहमत हैं जब वे यह कहती हैं कि "यह पुस्तक साहित्यिक आलोचकों को प्रेमचन्द-साहित्य समझने में मदद पहुंचायेगी क्यों कि उनकी आदमियत की छाप उनकी एक एक पंक्ति और एक एक शब्द पर है।" प्रेमचन्द जी साहित्य को अपनी कोई आत्मकथा नहीं दे गये। यह पुस्तक उस कमी को बहुत अंशों में पूरा करती है। जहाँ तक सम्भव हो सका है घटनाओं का उन्हींके शब्दों में वर्णन किया गया है इसलिये पुस्तक की रोचकता बहुत बढ़ गई है। जन्म और प्रारम्भिक जीवन से लेकर मृत्यु तक की सारी महत्वपूर्ण घटनाओं का समावेश पुस्तक में कर दिया गया है।

अपने बचपन का ज़िक्र करते हुये प्रेमचन्द जी कहते हैं—"पैसों की दिक़्क़त तो मुझे हमेशा रहती थी। बारह आने महीने में फ़ीस लगती थी। उन बारह आनों में मैं डेढ़ आना हर महीने खा जाता था। जिस मुहल्ले में मैं था उसमें छोटी जात के लोग थे। वे लोग मुझसे लेकर दो चार पैसे खा लेते थे। इसलिये फ़ीस देने में मुझे बड़ी दिक़्क़त होती थी। माँ मर चुकी थीं। चाची ही से माँगता। वे बुरी तरह झल्लातीं। पिता से कहने की हिम्मत न थी। इसलिये अपनी माता की याद मुझे बार बार सताती थी। झूठ बोलना भी एक फ़न है। सच कहने के ही कारण मैं मारा जाता। जिस घर में मैं था, वह एक अहीरिन का था। वह विधवा थी। उसमें और मेरी चाची में काफ़ी झक झक होता था। मैं भी सुनता! मुझे १३ साल की उम्र में ही उन बातों का ज्ञान हो गया था, जो कि बच्चों के लिये घातक हैं।"

बनारस में जब वे पढ़ने आये तो उन्हें खर्च के लिये कुल पाँच रुपये मिलते थे जिसमें दो रुपये फ़ीस के लिये निकल जाते थे। पढ़ाई के बारे में वे लिखते हैं—"ग़रीबी का घर था। एक कुप्पी के सामने रात को टाट बिछाकर बैठकर पढ़ता।" इसके बाद वे इलाहाबाद पढ़ने आये। वहाँ के सम्बन्ध में वे कहते हैं—"जब मैं इलाहाबाद गया तो मुझे दस रुपये (वजीफ़ा) मिलते थे। दस रुपये में सात रुपये घर भेजता था। पाँच रुपया का ट्यूशन करके आठ रुपये में अपना गुज़र करता था। सुबह उठकर हाथ मुँह धोकर रोटी पकाता। रोटियाँ सेंककर स्कूल जाता।"

पढ़ लिखकर प्रेमचन्द जी तालीमी मोहकमे में सब डिप्टी इन्सपेक्टर हो गये और महोबा सर्किल में तैनात कर दिये गये उस समय के वहाँ के जीवन का वर्णन करती हुई शिवरानी देवी लिखती हैं—"दौरे पर वे घोड़े पर जाते थे। जाड़े के दिन में ख़ुद आप कम्बल ओढ़ते थे, घोड़े को दुशाला ओढ़ाते थे। मैं तो उन्हें देखती थी कि वे प्राणि मात्र के प्रेम में हमेशा लगे रहते।"

महोबे के उस समय के सामाजिक जीवन के बारे में शिवरानी देवी लिखती हैं—"महोबे में स्त्रियाँ बरात के बिदा होने के बाद रात को हर एक के घर में बजाती गाती जाती हैं। और एक हाथ में आरती का थाल लिये रहती हैं, दूसरे हाथ में बेलन लिये रहती हैं। जो पुरुष बरात में नहीं जाता उसको बेलन से मारती हैं। एक बार मेरे यहाँ भी वे आईं। दरवाज़े पर आप सोये थे। चपरासियों को औरतों ने पीटा भी पर आप डर के मारे पहले ही कमरे में भाग आये थे।"

नौकरी से उन्हें कितनी अरुचि थी यह नीचे के उद्धरण से ज़ाहिर होता है—"कानपुर का 'प्रताप' निकला था गणेश शंकर के हाथों। उन्होंने लेख माँगा था। आपने लेख लिखकर उन्हें भेज दिया। एक बार जब कानपुर गये तो 'प्रताप' आफ़िस भी गये। वहाँ से लौटकर मुझसे बोले—विद्यार्थी जी बड़े मेहनती हैं। कार्यालय का बहुत काम अपने ही हाथों करते हैं...मुझे पूरी उम्मीद है विद्यार्थी जी अपने जीवन में सफल होंगे...मेरी भी यह इच्छा होती है कि मैं इस नौकरी को छोड़छाड़कर साहित्य की सेवा करूँ। क्या करूँ मेरा दुर्भाग्य है कि मेरे पास थोड़ी-सी ज़मीन भी नहीं। १० बीघे भी ज़मीन यदि होती तो अपने खाने भर का ग़ल्ला पैदा कर लेता और चुपचाप एकान्त में बैठकर साहित्य की सेवा करता।"

सन् १९२० में गोरखपुर में स्कूल में आप सरकारी नौकर थे। गान्धी जी के आदेशानुसार नौकरी छोड़ दी। १२५) रु० तनख़ाह मिलती थी। कई महीने से बीमार थे। खाने पीने का दूसरा जतन न था। हेडमास्टर ने बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


समझाया मगर आप एक न माने। नौकरी छोड़कर एक चरखे की दूकान खोल दी। फिर गणेश जी के आग्रह पर कानपुर के मारवाड़ी स्कूल के हेडमास्टर होकर कानपुर चले गये। किन्तु साहित्य सेवा की जो धुन थी इसलिये कानपुर से 'मर्यादा' के सम्पादक होकर काशी चले गये।

गाँव के जीवन से उन्हें कितना प्रेम था इसकी चर्चा करते हुये शिवरानी देवी लिखती हैं—"आप गाँव में रहते तो अपने दरवाज़े पर हमेशा झाड़ू लगाते। छोटे बच्चों को दरवाज़े पर बैठाकर ४ बजे शाम को उनके पास मिट्टी इकट्ठा कर देते, सिकटे इकट्ठा कर देते और लड़कों को खेलने का ढङ्ग सिखाते। उसके बाद जब गाँव के काश्तकार इकट्ठा होते, तो उनसे बातें करते, झगड़ा निपटाते, बच्चों से खेलते भी जाते। नये क़ायदे क़ानून बनते तो उन काश्तकारों को समझाते। उन सबके साथ वे बिल्कुल काश्तकार हो जाते। उम्र के लिहाज़ से जिसका जैसा सम्बन्ध होता सदा वैसा आदर देते। चाहते थे गाँव एक क़िला बन जाय। काश्तकारों की कमज़ोरी देखकर उन्हें बड़ा दुःख होता। काश्तकारों की स्त्रियों से भाभी, चाची, बहिन, बेटी का जैसा सम्बन्ध होता, सदा उसी तरह का व्यवहार वे करते।"

समाज, साहित्य और राजनीति पर अपनी राय प्रकट करते हुये वे कहते हैं—"साहित्य, समाज और राजनीति का अटल सम्बन्ध है। समाज में जो हानि-लाभ, सुख-दुख होता है वह आदमियों पर ही होता है। राजनीति का भी सुख-दुख आदमियों पर ही पड़ता है। साहित्य से लोगों को विकास मिलता है। साहित्य से ही आदमी की भावनायें अच्छी बुरी बनती हैं।" लेखकों की उन्नति की प्रेमचन्द जी को हमेशा चिन्ता रहती। हिन्दू मुसलिम प्रश्न और गान्धी जी के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी के विचारों को उन्हीं के शब्दों में शिवरानी देवी उद्धृत करती हैं—दुनिया में मैं महात्मा गान्धी को सबसे बड़ा मानता हूँ। उनका भी उद्देश्य यही है कि मजदूर और काश्तकार सुखी हों। वह इन लोगों को आगे बढ़ाने के लिये आन्दोलन मचा रहे हैं। मैं लिखकर इन लोगों को उत्साह दे रहा हूँ। महात्मा गान्धी हिन्दू मुसलमानों की एकता चाहते हैं तो मैं भी हिन्दी और उर्दू को मिलाकर हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ।

मैं बोली—आप कैसे बनाते हैं हिन्दुस्तानी?

आप बोले—जो कुछ मैं लिखता हूँ वह हिन्दुस्तानी में लिखता हूं।

मैं बोली—तो आप के लिखने से हिन्दुस्तानी हो गई?

आप बोले—जिसको हिन्दू-मुसलमान दोनों मानें, जिसको आम जनता समझे वह है हिन्दुस्तानी और मेरा ख़याल है राष्ट्र भाषा जब कभी भी बनेगी, तो वह हिन्दी-उर्दू को मिलाकर। हिन्दुस्तान में जब पहले मुसलमान आकर आबाद हुये तभी इसका नाम पड़ा था हिन्दुस्तान। नाम तो पड़ गया हिन्दुस्तान मगर भाषा के लिये अभी झगड़ा मचा हुआ है। यह झगड़ा तभी हटेगा जब हिन्दू मुसलमान ठण्ढे दिल से सोच लेंगे कि हम दोनों को साथ ही साथ रहना है और दोनों की भाषा मिलकर बने हिन्दुस्तानी। जब तक दोनों हिन्दू मुसलमान अपनी भाषा के लिये रोयेंगे तब तक इस मसले का सुलझना नामुमकिन है। भाषा आम बोल चाल की हो। फिर चाहे हिन्दी में फ़ारसी के शब्द आ गये हों और चाहे उर्दू में संस्कृत के। उनके लेने में किसी को एतराज़ न होना चाहिये। फिर जब मुल्क में कई क़ौमें आकर मिल गईं, तब शुद्ध तो मुल्क ही न रहा तब शुद्ध भाषा कैसी?

मैं बोली—अच्छा तो फिर कुछ दिनों में जब रोटी बेटी का भी सवाल आये, तो हिन्दू लोग इसको कैसे गवारा करें? आप बोले—वह भी बाक़ी थोड़े ही है। बादशाही ज़माने में तुम्हारे यहां के बड़े बड़े राजों ने मुसलमानों के साथ बड़ी ख़ुशी से अपनी बहिन और बेटियों की शादियां की हैं और वह इसमें बड़ा फ़ख़ समझते थे। हाँ, मुसलमानों की स्त्रियाँ तुम्हारे यहाँ नहीं आई हैं। अब भी तुम्हारे घर की जो स्त्रियाँ निकाली जाती हैं वह मुसलमानों के ही घर जाती हैं या चकले में जाती हैं।...मैं किसी का दुश्मन यती नहीं हूँ न किसी का दुश्मन हूँ। मेरे लिये राम, रहीम, बुद्ध, ईसा सभी श्रद्धा के पात्र हैं और मैं इन सबों को महा-पुरुष समझता हूँ। मेरे दोस्त अगर हिन्दू हैं तो मेरे कई दोस्त मुसलमान नहीं हैं और इन दोनों में मेरे नज़दीक कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं है। मेरे लिये दोनों बराबर हैं।

मैं बोली—कैसे दोनों बराबर हैं? मुसलमान गाय की क़ुरबानी करते हैं और उसी क़ुरबानी के पीछे हज़ारों हिन्दू मुसलमानों की जानें जाती हैं।

आप बोले—इसका दोषी एक ही वर्ग नहीं है। अगर मुसलमान द्वारा एक गाय की क़ुरबानी पर झगड़ा मचता है तो अंगरेज़ों के यहाँ सैकड़ों गाय और बछड़े मारे जाते हैं तब क्यों नहीं हिन्दुओं के खून में गरमी आती! कौन ऐसा देवी का मन्दिर है जहाँ बकरों की क़ुरबानी न होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हो? क्या बकरा जीव नहीं है? फिर क्यों बकरे की क़ुरबानी की जाती है।...स्त्रियों पर सबसे ज़्यादा ज़्यादती हिन्दू ही करते हैं। ज़रा सी भूल हुई कि उसे घर से बाहर किया। घर से निकालते हैं तब नहीं सोचते आख़िर यह जायगी कहाँ!...अपनी मरज़ी के माफ़िक़ क़ायदा क़ानून पुरुष ने बना रखे हैं। बहु-विवाह वृद्ध-विवाह पुरुष ही करते हैं...तुम्हीं सोचो स्त्रियों को घर से निकाल भी देंगे, फिर वह मुसलमान भी न हो।"

एक बार कहने लगे—मैं न हिन्दू हूँ, न मुसलमान! जिस धर्म में लोग रहकर दूसरे का छुआ पानी नहीं पी सकते उस धर्म में मेरे लिये गुंजाइश कहाँ!

एक बार प्रेमचन्द जी का एक लेख "आज" में छपा। उस पर शिवरानी जी लिखती हैं—"उस पर काशी के हिन्दू बहुत नाराज़ हुये। यहाँ हिन्दू सभा का उस समय ज़ोर था। कांग्रेसी भी हिन्दू सभा का पक्ष लेते थे। कई महाशय आये और बोले—आपने जो लेख लिखा है, उससे काशी के हिन्दू आपसे बहुत नाराज़ हैं। उन आने वालों में अधिकतर कांग्रेसी थे।

अन्दर आये तो मैंने पूछा—आख़िर मारने की धमकी क्यों दे रहे हैं? बोले—यह सब हिन्दू सभावालों का काम है। मैं बोली—ये तो सब कांग्रेसी थे। कहने लगे—ये लोग भी आज कल उसी के पक्षपाती हैं। मैं बोली, ऐसा लेख आप क्यों लिखते हैं जो लोग दुशमन बनें?...

बोले—लेखक को पब्लिक और गवर्नमेंट अपना ग़ुलाम समझती है! आख़िर लेखक भी कोई चीज़ है। वह सभी की मर्ज़ी के मुताबिक लिखे तो वह लेखक कैसा! लेखक का भी अस्तित्व है। गवर्नमेंट जेल में डालती है, पब्लिक मारने की धमकी देती है। क्या इससे लेखक डर जाय और लिखना बन्द कर दे?...लेखक किसी की परवाह किये बिना ही अपने विचार देगा।

एक बार घर में २५००) रु० की चोरी होगई। चोर का कहीं पता न चला। चोरी एक खाना पकानेवाले महाराज ने की थी। जब कुछ पता न चला तो शिवरानी जी से बोले—तुम ज़ेवरों का शोक तो करो न। वे तो तुम्हारे बक्स में रखे ही रहते थे। उस बेचारे की बीवी पहनकर ख़ुश होगी। हाँ; तुम्हें रुपयों का अफ़सोस होगा क्यों कि प्रेस के मज़दूरों का वेतन देना था। मगर वह भी कहीं न कहीं से वेतन दे ही दिया जायगा।

नौकरों के सम्बन्ध में उनके विचार उद्धृत करते हुये शिवरानी जी लिखती हैं—"उनका सिद्धान्त था नौकर को नौकर मत समझो। नौकर तो अपना एक मददगार होता है। तुमको नौकर की ज़रूरत होती है नौकर को तुम्हारी। दोनों को एक सी ज़रूरत होती है।"

पुस्तक में पचासों विषयों पर प्रेमचन्द जी के विचार हमें देखने को मिलते हैं। शिवरानी देवी जी ने इतने सरल और स्वाभाविक रूप में अपने संस्मरणों में इन्हें पिरोया है कि वे एक महान जीवन को अत्यन्त गहराई में जाकर व्यक्त कर सके हैं।

पुस्तक अत्यन्त सुन्दर है। हिन्दी में अपनी तरह की अनोखी चीज़ है। यदि एक बार पुस्तक का अच्छा सा सम्पादन हो जाय तो वह विश्व साहित्य में अपनी जगह बना लेगी। हम पुस्तक के समस्त भारतीय भाषाओं में अनुवाद देखने के उत्सुक हैं।

—विश्वम्भरनाथ

**दुपहरिया के फूल** (गद्य-काव्य संग्रह) लेखिका कुमारी दिनेशनन्दिनी चोरड्या एम० ए०; प्रकाशक, सुषमा साहित्य मन्दिर, १९२,१९५ जवाहर गञ्ज, जबलपुर; मूल्य १।); पृष्ठ संख्या ८० + ११ = ९१।

कुमारी दिनेशनंदिनी चोरेड्या से हिन्दी के पाठक अपरिचित नहीं हैं। 'दुपहरिया के फूल' उनकी एक अभिनवतम कृति है। लगभग सभी गीतों का विषय रहस्यवादी प्रेम है।

गद्य गीतों का प्रचलन हिन्दी में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि की नक़ल पर हुआ। 'छन्दों के बंध तोड़ने' की भावना ने इस धारा को और अधिक प्रश्रय दिया था। फलस्वरूप विकसित हुई यह धारा और भी पनपी। हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ में तो इसे सरल समझकर लेखकों ने अपनाया परन्तु धीरे धीरे इसका प्रचलन कम होता जा रहा है। जिस प्रकार हिन्दी रहस्यवादी-छायावादी कविता के गगन में एकमात्र नक्षत्र महादेवी वर्मा हैं उसी प्रकार आज गद्य-गीतों में दिनेशनन्दिनी चोरड्या हैं। वैसे डा० रामकुमार वर्मा का 'हिमहास' भी एक बड़ी सुन्दर कला-कृति है। परन्तु 'हिमहास' के पश्चात कोई रचना उनकी नई हमें नहीं मिली।

दिनेशनन्दिनी चोरड्या हिन्दी साहित्य को 'शबनम', 'मौलिक माल' एवं 'शारदीया' की देन दे चुकी हैं। 'दुपहरिया के फूल' के समस्त गीत दो भागों में बँट सकते हैं।

(१) वे गीत जो व्यक्तिगत सुख दुखों की अनुभूति संयुक्त हैं:



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



( २ ) वे गीत जो व्यक्तिगत सुख दुखों से अलग हैं। पहले प्रकार के गीत दो वर्गों में बंटते हैं :

( १ ) वे गीत जो शृङ्गार रस के हैं,

( २ ) वे गीत जो शृङ्गार रस के नहीं हैं,

शृङ्गार रस के गीतों में प्रणय की ऊँची और अध्यात्मिकता को छूने वाली पुकार है।

"खुदी की चहारदीवारी देखने पर दृष्टा और दृष्य का भेद लोप हो जाता है।

"पैमाना, सुरा और साथी को देखकर मैं अपना आपा भूल जाती हूँ,

"वस्ल की प्याली से सिर्फ़ एक घूंट मुझे पिला दे कि अनल हक़ का राज़ मेरी ज़बाँ पर उतर आए और मैं मन्सूर की शहादत की सबूत बन जाऊँ।

"खुदी की चहारदीवारी को तोड़!"

× × ×

मुहब्बत की आग में जब मेरा शरीर-काष्ट जलकर दहकता अंगारा बन गया तब मैंने अपने आप से कहा, 'मैं समझती हूँ मैं ही आफ़ताब हूँ।'

एक स्थल पर तो कवियित्री अपनी इस आध्यात्मिकता को और भी स्पष्ट करती है :

'मन तू काग़ज़ी फूलों के पीछे क्यों दीवाना बन रहा है जब कि गुलशन की परी-रानी गुलाब-गन्ध को सन्देशवाहक बनाकर तुझे अपने दरबार में बुला रही है।'

इन गीतों में कहीं कहीं अनुभूति की गहराई गीत को मार्मिक बना देती है :

'जब तुम प्याली से घूंट पिलाते हो तो न मालूम क्यों मेरे लब सूख जाते हैं!

'तुम चुम्बनों से मेरे अश्रु सुखाते हो तब न जाने क्यों मेरे नयन सजल मेघ बन जाते हैं।'

मध्ययुग के सूफी कवियों की भाँति कवियित्री गुरु महिमा को भी स्वीकार करती है :

'वक्षरूपी रत्नाकर से निकाल कर उसने अनमोल हृदय चिंतामणि मुझे सहज ही अर्पित कर दिया, किन्तु जब तक सद्गुरु जौहरी ने खराद पर चढ़ाकर उसके कोण नहीं निकाले तब तक उसका विद्युत सा निरंजनी प्रकाश सुप्त ही रहा—अब उसके हज़ार हज़ार पहलू रातदिन चमक चमक कर प्रेम के चिरन्तन आलोक से मेरा पथ प्रकाशित करते हैं, और मैं निर्द्वन्द्व होकर अपने ध्येय की ओर गतिमान होती हूँ।'

दूसरे प्रकार के अशृङ्गारिक वैयक्तिक गीतों का सुन्दर उदाहरण यह गीत प्रस्तुत करता है:—

'विद्या और अविद्या दिन और रात की तरह गले लग कर मिलें,

परा और अपरा का भेद लोप हो जाय, महाकाल के तृतीय नेत्र से प्रकटित प्रलयाग्नि प्राणीमात्र को दग्ध कर दे।

और रुद्र के डमरू की ध्वनि को सुनकर धूर्जटि के ताण्डव नृत्य से लड़खड़ाती हुई अवनी शून्य में गिरकर अपनी हस्ती को खो बैठे तब—

ए ज्योतिस्वरूप, मेरी आत्मा के अजेय प्रकाश कण को अपने प्रकाश पुञ्ज में मिला लेना!'

अवैयक्तिक गीत भी कहीं कहीं विशेष मार्मिक हैं :

'बल और शौर्य सम्पन्न पुरुष सिंह को ही भाग्य लक्ष्मी सदा नहीं वरण करती। गिद्ध और गरुड़ शव भक्षण करते हैं और मधुमक्खी फूल के कनक कटोरे में शहद!'

इस प्रकार अनुभूति एवं मार्मिकता इन गीतों का सर्वश्रेष्ठ विशेष गुण है। गीत पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि किसी सूफी संत के लिखे हुए हैं। इन गीतों में व्यक्त वेदना सुख-दुख से परे रसानुभूति के स्वर की है।

भाषा की दृष्टि से कवियित्री ने तत्सम तथा फ़ारसी दोनों को स्वच्छन्द रूप से अपनाया है। इससे गीतों की अभिव्यंजना कला विशेष सफल हो सकी है।

'मीरा' की रिसर्चस्कालर द्वारा लिखे गए इन रहस्यात्मक गीतों का हम स्वागत करते हैं। निस्सन्देह ये गीत हिन्दी साहित्य के शृङ्गार हैं।

**लाश पर** ( कहानी संग्रह ) लेखक, भगवतशरण उपाध्याय एम० ए०; प्रकाशक प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद; मूल्य १); पृष्ठ संख्या ९२।

प्रस्तुत संग्रह में लेखक की 'मौत की खोज में', 'दुनिया के बाद', 'पेंच', 'आत्मरक्षा', 'सदाचार का वज़न', 'होली', 'उलट फेर', 'लाश पर', 'अकाल' और 'जीवन' शीर्षक कहानियों का संग्रह है।

पहली कहानी में एक ऐसे व्यक्ति का चित्रण है जो अपना कफन और ढाई रुपए लिए मक्का जा रहा है। उस दीन पुरुष की श्रद्धा की कहानी में काफी ध्वन्यात्मक विवेचना की गई है। दूसरी कहानी में तूफान का वर्णन है जो कि मानसिक तूफान का प्रतिबिम्ब अधिक है। यह कहानी लेखक के श्रम करने पर भी निरर्थक ही रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। 'पैंच' में मा के मनोविज्ञान का विश्लेषण है और दिखाया गया है कि खून से ज्यादा बड़ा सम्बन्ध विश्वास का होता है। स्त्री जिसे अपना पुत्र समझ ले उसे पूरा प्यार करती है चाहे वह पुत्र उसका हो या न हो। 'आत्मरक्षा' पुरुष की कमज़ोरी की परिचायक है। एक मनुष्य अपने पुत्रों में एक को किसे दूसरे का पुत्र सुनकर कितना निःसहाय और बेबस हो उठता है यही इस कहानी का विषय है। 'सदाचार का वज़न' में एक अत्यन्त आदर्शवादी धर्मनिष्ठ व्यक्ति का पतन दिखलाकर लेखक ने साबित किया है कि वास्तब में सदाचार की वक़त कुछ भी नहीं होती। 'होली' में अमीरों की दुश्चरित्रता एवँ आमानुषिकता का चित्र है। 'उलट फेर' में दान देने की प्रथा का विरोध करते हुए लेखक ने जीवन में 'चांस' का मूल्य बतलाया हैं। 'लाश पर' में एक लेखक के परिश्रम और अध्यवसाय का चित्रण है जो अत्यधिक श्रम करने पर भी पैसे नहीं पाता और पत्नी की मृत्यु पर श्राद्ध (?) भी नहीं कर सकता। 'अकाल' और 'जीवन' हाल के बंगाल की दुर्दान्त कहानी से सम्बन्धित हैं। 'अकाल' में पिता पुत्र बच्चे के मांस पर लड़ते हैं और 'जीवन' में एक सिपाही की पत्नी वेश्यावृत्ति करती है परन्तु वह सिपाही मनोवैज्ञानिक पहलू को देखते हुए उस स्त्री को सरलता से क्षमा कर देता है।

संक्षेप में दसों कहानियों की यही रूप-रेखा है। सभी कहानियों का सम्बन्ध गरीबों एवं दुखियों से है। इसी कारण कहानी संग्रह 'साथी सीरीज़' में निकाला गया है। संग्रह वास्तव में सुन्दर एवं सराहनीय है। दूसरी कहानी को छोड़कर सभी कहानियां मार्मिक हैं। हम संग्रह का स्वागत करते हैं।

**तूलिका** ( कविता-संग्रह )—लेखक—श्री रामाधार त्रिपाठी 'जीवन'; प्रकाशक, मन्नन साहित्य मण्डल, गोरखपुर; मूल्य अजिल्द १॥), सजिल्द २); पृष्ठ संख्या १४८।

प्रस्तुत पुस्तक कवि की विविध गीतात्मक कविताओं का संग्रह है। अधिकतर गीत शृङ्गार रस के हैं।

सारी पुस्तक पढ़ने के बाद पाठक के हृदय में गीतों की मार्मिकता के विषय में एक सुन्दर सी धारणा बन जाती है जो कि कवि के वर्तमान की अपेक्षा भविष्य से अधिक सम्बन्ध रखती है। कुछ गीत वास्तव में अनुभूति की गहराई से निकले हैं :

आग लगे पानी भी बरसे
तुम ज्वाला में जलते जाओ।
सुख की केवल खोज
खोज की पीड़ाओं में पलते जाओ॥

इसी गीत में आगे कवि कहता है ;

भूलो दुनिया की तसवीरें केवल एक निशानी लेकर।
भूलो वर्तमान की बातें बीती हुई कहानी लेकर॥
तिनका बनकर बहो धार में
तुम तरंग तूफानी लेकर।
राजा बनो, दीनता छोड़ो
चिर पीड़ा की रानी लेकर।

इस दुनिया से दूर निराला एक नया संसार खुला है।
अरे बटोही चुप मत बैठो प्रेम नगर का द्वार खुला है॥
आना हो तो आओ, दिल में आग, दृगों में पानी लेकर।
भूलो दुनिया की तसवीरें केवल एक निशानी लेकर॥

इस प्रकार कविताओं में प्रवाह की मात्रा विशेष है। पुस्तक के अन्त में एक गीत वीर रस का है। वह विशेष स्वस्थ बन पड़ा है :

बिजली की तड़प बादलों की झड़प झड़ी हो,
मुंह बाए खड़ा काल कहीं मौत खड़ी हो,
शामत सवार सर पै कयामत की घड़ी हो,
आफत हजार हो मगर शुमार मत करो।
आगे बढ़ो जवानो इन्तजार मत करो॥
झुकता है हिमालय झुके, झुको न तुम कहीं,
दुनिया झुके झुके छिपो लुको न तुम कहीं,
चलती हवा रुके मगर रुको न तुम कहीं,
मंजिल है दूर बैठ के विचार मत करो।
आगे बढ़ो जवानो इन्तज़ार मत करो॥

इसमें उर्दू के वज़न पर ध्वनियां ह्रस्व एवं दीर्घ कर पढ़नी पड़ती हैं जिससे सङ्गीत बढ़ जाता है। विश्वास है कि कवि की प्रतिभा इस पथ पर विशेष अग्रसर होकर विश्व को जीवन एवं जागृति का संदेश सुनाएगी।

**निशीथ** ( गद्य-काव्य संग्रह ) लेखक, ब्रह्मदेव; प्रकाशक, भारती कुटीर मैगरा; मूल्य ।); पृष्ठ संख्या २४।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक के छोटे बड़े १५ गद्य गीतों का संग्रह है। गीतों के विषय हिन्दी कविता के छायावादी काल से सम्बन्ध रखते हैं। गीतों में मौलिकता एवं मार्मिकता का अभाव है। सभी गीत साधारण एवं एक से होने के कारण रुचिकर कम प्रतीत होते हैं। आशा है भविष्य में लेखक हमें कोई सुंदर कृति देगा।

—कमल कुलश्रेष्ठ एम ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार

## उचित स्मारक

किसी कौम में कितनी जान है इसका सच्चा अन्दाज़ा इस बात से किया जा सकता है कि वह क़ौम अपने यहाँ के महाकवियों और महान आत्माओं को कहाँ तक कितनी समझती है, कहाँ तक उनकी कद्र करती है और उनकी इज़्ज़त करती है, क्योंकि देश के बड़े बड़े कवि और महात्मा ही आदमी के स्वभाव को समझते हैं और इस बात को जानते हैं कि आदमी ऊंचे से ऊँचा कितना जा सकता है और नीचे से नीचा कितना गिर सकता है। आख़ीर में जाकर वे ही अपने लोगों के लिए इस तरह के नियम और क़ायदे कानून बना सकते हैं जो इस सारे विश्व को चलाने वाले ईश्वरीय नियम या कानूने ईलाही के मुताबिक हों। आम तौर पर हम यह भी कह सकते हैं कि किसी क़ौम के लोग अपने महापुरुषों की जितनी पूजा, उनका जितना आदर करते हैं उसीसे उस क़ौम की कलचर के ऊँचा या नीचा होने का पता चलता है।

इस ज़माने में हिन्दुस्तान ने रविन्द्रनाथ ठाकुर से बढ़ कर कोई क़वि पैदा नहीं किया। कोई चार साल हुए वे इस दुनिया से दूसरी दुनियाँ में चल गए। हमें अपने यहाँ के पढ़े लिखे लोगों की बेपरवाही को देख कर दुख के साथ यह कहना पड़ता है कि इस दुनिया से जाने के साथ रवीन्द्रनाथ शायद हमारी याद से भी निकल गए। शर्म और पछतावे के साथ हमें यह भी मानना पड़ता है कि क़रीब क़रीब चालीस बरस तक जिन आत्मिक या रूहानी उसूलों को क़ायम करने के लिए वे लड़ते और कोशिश करते रहे उन उसूलों की ठीक ठीक क़दर न हमने उनकी ज़िन्दगी में की और न उनके मरने के बाद की। इसका पता इस बात से चलता है कि उन उसूलों को क़ायम करने और फैलाने के लिए हमने अपने कामों से, अपनी बातों से, अपने दिल से और अपने पैसे से क्या मदद की?

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की संस्था शान्तिनिकेतन संसार भर में मशहूर है। कवि ने अपनी ज़िन्दगी के ये ऊँचे उसूल इसी संस्था के ज़रिये अमल मे लाने की कोशिश की है। शान्तिनिकेतन ही उन उसूलों का एक छोटा सा नमूना है। पच्छिम के विद्वानों और महात्माओं के आने और ठहरने के लिए शान्तिनिकेतन हिन्दुस्तान का मेहमान घर है। केवल इतना ही नहीं पुराने ज़माने में जंगलों के अन्दर जो ऋषियों के आश्रम हुआ करते थे, जिनमें सदियों तक हिन्दुस्तानी क़ौम की ऊँची से ऊँची कलचर फलती फूलती और पनपती रही, उन पुराने आश्रमों का शान्ति निकेतन एक नया आधुनिक रूप है। यह कहना बिलकुल सोलह आने सच है कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जब तक जिये तब तक उन्होंने हिन्दुस्तान के लिए अपना सब कुछ कुर्बान कर दिया, अब जब वे चल गए तो लोगों का यह सबसे बड़ा फ़र्ज़ है कि उस संस्था को आदर्श (मयार) की निगाह से भी और इन्तज़ाम साज़ सामान के ख़्याल से भी अच्छी से अच्छी हालत में रक्खा जावे।

सबसे बड़ी ज़रूरत यह है कि संस्था को अच्छी तरह चला सकने के लिए काफ़ी रुपया हो। कवि के मरने के बाद ही एक 'कुल हिन्द रवीन्द्रनाथ मेमोरियल' खोला गया। लेकिन रवीन्द्रनाथ शान्तिनिकेतन हैं और शान्ति निकेतन रवीन्द्रनाथ हैं। अभी तक इस फण्ड में केवल पाँच लाख रुपये जमा हुए हैं और ज़रूरत है कम के कम दस लाख की।

क्या हमारे देश में इस छोटी सी रक़म को पूरा कर सकने वाले ऐसे धनीमानी नहीं हैं जो अपने धन को निस्बत महाकवि और उनके आदर्शों की ज़्यादा क़द्र करते हों?

—गुरुदयाल मल्लिक

## शिमले का तमाशा

शिमले की कानफ़रेन्स पानी के एक बुलबुले की तरह उठी और फूट गई। देश भर ने उस पर तरह तरह की टीका टिप्पणी की। हमें उस कानफ़रेन्स से न कोई बड़ी उम्मेद थी और न उसका जिस तरह ख़ात्मा हुआ उस पर कोई बड़ा अचरज हुआ। लार्ड वेवेल ने आख़ीर में जो रुख़ लिया उससे यह बिलकुल साफ़ दिखाई दे गया कि यह सारा खेल ब्रिटिश सरकार की तरफ़ से एक राजकीय चाल थी और इस निगाह से इसमें भी शक नहीं कि चाल कामयाब रही। लार्ड वेवेल ने या उनके साथ किसी अंग्रेज़ या किसी हिन्दुस्तानी ने इस कानफ़रेन्स को शुरू करते वक्त देश को जो जो उम्मीदें दिलाई थीं उनमें वे कहाँ तक सच्चे थे और कहाँ तक नहीं इसमें हमें पड़ने की ज़रूरत नहीं। अच्छे या बुरे आदमी एक अलग चीज़ है और संस्थाएं सरकारें बिलकुल दूसरी चीज़। इतिहास एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बात की साफ़ गवाही देता है कि सरकारों, गवरमेंटों या इसी तरह की दूसरी संस्थाओं में दिल की सच्चाई की या लड़ाई की आशा करना भूल है। अख़बारों में यह बात भी आ चुकी है कि लार्ड वेवेल ने बिलकुल सीधे शब्दों में न सही तो कम से कम ज़रा हेर फेर के शब्दों में बड़े बड़े नेताओं को यह उम्मीद बँधा दी थी कि जितनी पार्टियों के लोग शिमला में जमा हुए थे उनमें से कोई एक पार्टी अगर राज़ी न भी होगी तब भी लार्ड वेवेल अपनी तजवीज़ को पूरा करके रहेंगे। हमें यक़ीन है कि अगर कुछ लोगों के दिलों में यह उम्मीद न होती तो शिमले की कानफ़रेन्स इतनी देर न लेती। बीच में एक बार यह भी सुनने में आया था—और वह ऐसे बड़े बड़े लोगों में, जो सरकार के भी ख़ास आदमी समझे जाते हैं, कि बाहर के इस तरह के जाने बूझे मुसलमान नेताओं को लीग वालों की जगह नई कैबिनेट में शामिल कर लेंगे जिनका मुसलमान जनता पर गहरा असर पड़ेगा। पर यह सब उम्मीदें और अफ़वाहें आख़ीर में झूठी साबित हुईं।

जहाँ तक कांग्रेस के नेताओं का सवाल है हमें मालूम है कि अगर देश की करोड़ों जनता इस समय दुख में डूबी हुई न होती, अगर करोड़ों मर्दों, औरतों और बच्चों को पेट भरने के लिए अन्न और ढकने के लिए कपड़े के लाले पड़े हुए न होते, अगर गाँव गाँव के अन्दर पुलीस और दूसरे कर्मचारियों के ज़ुल्मों से शोर न मचा हुआ होता, अगर बंगाल की तरह एक एक सूबे के सामने अकाल और महामारियों का भूत नाचता हुआ दिखाई न देता होता और अगर इस उम्मीद की किरन दिखाई न देती कि शायद लार्ड वेवेल की बात सुनकर और नई कैबिनेट में शामिल होकर कांग्रेस वाले जनता के इन दुखों को थोड़ा बहुत भी कम कर सकेंगे और जनता को साँस लेने का मौक़ा दे सकेंगे तो कांग्रेस लार्ड वेवेल की तजवीज़ की तरफ़ आंख उठाकर भी न देखती। नतीजे को देखकर जो हम बड़े अदब के साथ यही कहना पड़ता है कि कांग्रेस के महान नेता लार्ड वेवेल की दावत पर शिमले न गए होते तो अच्छा था।

अभी तीन बरस हुए कांग्रेस ने यह खुले एलान किया था कि जब तक ब्रिटिश सरकार जंग के अपने मक़सद को साफ़ न करदे और यह न कह दे कि जंग का मक़सद हिन्दुस्तान को और एशिया और अफ़्रीका के उन सब देशों को जो जर्मनों और जापानियों से लिए जावें या जो पहले से अंग्रेज़ों के मातहत हैं, आज़ाद कर देना है तब तक कांग्रेस जंग के किसी काम में मदद नहीं दे सकती, लार्ड वेवेल ने इस तरह का कोई भरोसा नहीं दिलाया था न कोई ऐसा एलान किया था।

पराधीन क़ौमें अपनी बेड़ियाँ गढ़नेवालों और पहननेवालों की बातों की तरफ़ जितना कम कान दें उतना ही अच्छा है। हमें यक़ीन है कि जितनी जल्दी हम रचनात्मक या तामीरी काम के ज़रिये अपनी गिरी हुई क़ौम को आज़ादी की अन्तिम लड़ाइयों के लिए तय्यार कर सकते हैं उतनी जल्दी विदेशी हुकूमत के रहते हुए किसी भी नेशनल (?) गवर्नमेंटों, असेम्बलियों, काउन्सिलों या किसी भी पार्लमेन्टरी प्रोग्राम के ज़रिये नहीं कर सकते। खेद है कि बहुत से पढ़े लिखे कांग्रेसवालों में भी इस तमीरी काम की तरफ़ उतनी लगन या उस पर उतना भरोसा नहीं है। इसीलिए हमारी आखें बारबार शिमला, दिल्ली और सूबे की वज़ारतों की तरफ़ दौड़ती रहती हैं।

हम इस नाज़ुक सवाल में और गहरा जाना नहीं चाहते, लेकिन इस मौक़े पर हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि हमारी आजकल की आधे से ज़्यादा कठिनाइयों और मुसीबतों की जड़ हमारा तामीरी काम में अविश्वास और पार्लमेंटरी प्रोग्राम की तड़क भड़क का मोह है। हिन्दू मुसलमानों के ज़्यादातर झगड़े उसी वक्त से चले जब से हमने शुद्ध आज़ादी की लड़ाई लड़ने से इधर उधर कतरा कर कौन्सिलों और बोर्डों की तरफ़ निगाह डालनी शुरू की। 'हिन्दू और मुसलमान दो अलग अलग राष्ट्र हैं' की आवाज़ और पाकिस्तान की मांग पिछले पाँच सात बरस के अन्दर की पैदाइश हैं और पार्लमेंटरी प्रोग्राम के पैदा किये हुए क़ुदरती नतीजे हैं। जिस तरह उस पहलवान के काम जो अपने किसी सामनेवाले को पछाड़ना चाहता है दो ही हो सकते हैं—डण्ड पेलकर और खा पीकर अपने को तय्यार करना और या अखाड़े में उतर कर दो दो हाथ आज़माना। उसी तरह पराधीन क़ौमों के लिए दो ही काम हैं—तामीरी काम, यानी देश में सङ्गठन और एकता पैदा करने का काम और या समय पर किसी अन्याय के लिए मर मिटने का काम। ये दो ही एक दूसरे के बाद अदलते बदलते पराधीन देशों को अपनी आज़ादी की आख़िरी मुहिम तक पहुँचा सकते हैं। बाक़ी सब चीज़ें इन्द्रजाल और भूल भुलैया हैं जिनमें पड़कर हम अपने को कमज़ोर और दुश्मन को मज़बूत ही कर सकते हैं। फिरकेवाराना संस्थाओं (साम्प्रदायिक संस्थाओं—लीग हो या हिन्दू महासभा) के ग़लत असर को मिटाने और देश में सच्ची


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


क़ौमियत या राष्ट्रीयता को जगाने का भी यही असली तरीक़ा है। शिमले का तमाशा जिस तरह से ख़त्म हुआ उससे अगर हमारे कुछ देश सेवकों का ध्यान भी इस ऊपर की सच्चाई की तरफ़ खिंच आवे तो हम समझेंगे कि जो तमाशा सिर्फ़ ब्रिटिश सरकार की ही तरफ़ से कामयाब नहीं रहा बल्कि हमारे देश की निगाह से भी कामयाब और अच्छा रहा।

## अगस्त आन्दोलन

आगामी ९ अगस्त को सन् ४२ के अगस्त आन्दोलन की तीसरी वर्ष तिथि है। लगातार डेढ़ बरस से इस बात पर बहस चल रही थी कि अगस्त आन्दोलन के लिये कौन ज़िम्मेवार है। गान्धी जी ने आगा ख़ाँ के महल से ही और उसके बाद बाहर निकलकर उस जन आन्दोलन के लिये सरकार को ही ज़िम्मेवार ठहराया था और उस आन्दोलन में हिस्सा लेने वालों की हिंसा की निन्दा करने से इनकार कर दिया था। किन्तु फिर भी कुछ कांग्रेस जन जनता को मतिभ्रम करने की कोशिश करते रहे। और उस वक्त जाकर यह प्रश्न बहुत साफ़ हुआ जब १४ जून को पंडित जवाहरलाल नेहरू अल्मोड़ा जेल से रिहा हुये। जेल से छूटने के बाद अपने कई वक्तव्यों और व्याख्यानों में जवाहरलाल जी ने अगस्त आन्दोलन की पूरी ज़िम्मेवारी अपने कन्धों पर ले ली। गत १७ जुलाई को लाहौर के अपने एक व्याख्यान में पंडित जी ने कहा—"१९४२ की घटनाओं की तुलना के लिये हमें ८८ वर्ष पीछे १८५७ की क्रान्ति की ओर मुड़ कर देखना चाहिये।"

पंडित जी ने कहा—"बेबस जनता का नैराश्य में बिना किसी नेता अथवा संगठन अथवा तैयारी के बग़ावत करना, एक महान दृश्य था। जनता ने अनेक कष्ट झेले, बहुतसी क़ुरबानियां कीं, वह शासकों के अपमान को अधिक सहन नहीं कर सकी।"

"आरामकुर्सी तोड़ते हुए जनता की बग़ावत में दोष ढूंढ़ना सरल है। हो सकता है कि बहुत सी ऐसी बातें हुई हों, जो औचित्यपूर्ण नहीं ठहराई जा सकतीं। पर जिन लोगों ने इन घटनाओं की आलोचना करके लोगों को गुमराह करने की चेष्टा की, वे कायर हैं। मैं यह साफ कर देना चाहता हूं कि मैं उन लोगों की निन्दा नहीं कर सकता, जिन्होंने १९४२ के आन्दोलन में भाग लिया।"

पंडित जी ने आगे कहा—"ग़रीब किसानों पर, जिनके हृदय में स्वाधीनता का अनुराग था, पुलिस तथा फ़ौज ने अत्याचार किये। पंजाब में कुछ नहीं हुआ, पर मेरे प्रान्त में बंगाल में तथा बिहार में तथा देश में अधिकांश जगह बहुत से काले कारनामे हुये।

"सैकड़ों गांव न केवल जला दिये गये, पर जहां झोंपड़े खड़े थे, उस ज़मीन पर हल चलवा दिये गये।"

पंडित जी ने कहा—"जनता ने ग़लतियां कीं, उसके पैर डगमगाये, फिर भी वह साहस से आगे बढ़ती गई। उसने भयानक अत्याचार के सामने सिर झुकाने से इनकार कर दिया। हज़ारों जगह पुलिस तथा फ़ौज ने गोली चलाई, पर उसने साहसपूर्वक सब का सामना किया। यह सच है कि जर्मनी के नाज़ी लोग बड़े क्रूर हैं, पर ब्रिटिश भारत में भी उनके कारनामों की मिसालें मिल सकती हैं।"

## सम्प्रदायवाद मध्ययुग की देन

लाहौर की एक प्रेस कान्फ्रेंस में साम्प्रदायिक परिस्थिति पर अपना वक्तव्य देते हुये पण्डित जवाहरलाल जी ने कहा—कांग्रेस की स्थिति को साफ़ करते हुये "कांग्रेस का साम्प्रदायिक-संस्थाओं के ठीक विपरीत विभिन्न समस्याओं पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों दृष्टिकोण से विचार करना है। उसको इस बात का भी ध्यान रखना है कि उन समस्याओं के हल का क्या सामाजिक तथा आर्थिक प्रभाव पड़ता है। मुस्लिम लीग को केवल मुस्लिम हितों का, तथा सिक्ख सम्प्रदाय को केवल सिक्ख हितों का ही विचार करना है, परन्तु कांग्रेस को तो सब का विचार करना है—न केवल भारतीयों का ही बल्कि उन तमाम अन्य जातियों का भी जो साम्राज्यवाद के बूट के नीचे कराह रही हैं। साम्प्रदायिक संस्थायें यदा-कदा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर भी वाद-विवाद करती हैं पर मुझे तो आश्चर्य होता है कि वास्तव में क्या वे उसे समझती हैं? कांग्रेस के सम्मुख सदा समग्र संसार का बृहत् चित्र रहता है।"

पाकिस्तान के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुये आपने कहा—"केन्द्रीय सरकार में हिन्दू बहुमत से जिन्ना साहब के डर की जड़ में मध्यकालीन विचार धारा है। पश्चिम के जनतन्त्रवादी देशों में कोई आदमी प्राटेस्टेण्ट या रोमन कैथलिक बहुमत की बात नहीं सोचता। हिन्दुस्तान में आजकल की साम्प्रदायिक समस्या की बुनियादी वजह पृथक निर्वाचन का तरीक़ा है। इसे हमें ख़त्म करना ही है पर यह ख़त्म तो राज़ी से ही होगा। फिर भी हमें अल्पसंख्यक वालों के लिये मुनासिब सेफ़गार्ड के क़ानून बनाने होंगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इस तरह के सेफगार्ड हर जनतन्त्रवादी प्रणाली के आवश्यक अंग हैं।"

मध्य युगीन चीज़ों की व्याख्या करते हुये पण्डित नेहरू ने कहा—"किसी धार्मिक समूह का राजनैतिक पार्टी की तरह काम करना ही मध्ययुगीन है। मुल्क का बटवारा ऐसी पुछल्लगी रियासतें पैदा कर देगा जो दूसरों पर निर्भर करेंगी। मेरा इरादा दूसरा इराक़ या ईरान बनाने का नहीं है जिस पर बड़ी ताक़तें एक दिन में क़ब्ज़ा कर सकती हैं। पाकिस्तान से भारत की साम्प्रदायिक समस्या हल न होगी। उससे और बढ़ ही सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि १९४२ के आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के बम्बई प्रस्ताव ने भौगोलिक क्षेत्रों को अलहदा होने का अधिकार इस बिना पर दे दिया है कि यदि वह क्षेत्र बहुमत से अलहदा होने की मांग करे। बाबू जगत नारायनलाल के इलाहाबाद के प्रस्ताव से यह सूरत नहीं बदलती। पाकिस्तान की मांग पश्चिमोत्तर और पूर्वोत्तर प्रदेश के लोग ही कर सकते हैं किन्तु पंजाब की समस्या तो उससे हल न होगी। यहां हिन्दुओं और सिखों की लगभग आधी आबादी है और पंजाब के पूर्वी ज़िलों में उनका बहुमत है और वे कभी पाकिस्तान में न शरीक होंगे। इसका नतीजा यह होगा कि पंजाब के भी टुकड़े हो जायंगे। इसके अलावा पंजाब एक सांस्कृतिक इकाई है और पंजाबी मुसलमान भी यह न चाहेंगे कि उनके प्रान्त के टुकड़े हो जायँ। यही हाल बंगाल का है। किन्तु जिन क्षेत्रों में बहुमत है और वे अलग होना चाहते हैं उन्हें दुनिया की कोई ताक़त अलग होने से नहीं रोक सकती। फिर अलग अलग राज्यों का बनना मुसलमानों के हितों में भी ठीक न होगा।"

## इंगलैंड की नई सरकार

इंगलैण्ड में पार्लिमेंट के मेम्बरों का नया चुनाव हो गया। वहां छोटी बड़ी नौ पार्टियां गिनी जाती हैं जिनमें दो ख़ास हैं—एक 'लेबर' यानी मज़दूर पार्टी और दूसरी 'कनज़रवेटिव' यानी पुराने ख़याल के लोग। दूसरी पार्टी में बहुत करके पूँजीपति और कारखानों के मालिक हैं। अब तक पार्लिमेंट में 'कनज़रवेटिव' पार्टी का ही ज़ोर रहा है। इंगलैण्ड के इतिहास में अब पहिली बार मज़दूर दल के लोग सबसे ज़्यादा तादाद में चुनकर आए हैं। पार्लिमेंट के ६४० मेम्बरों में से २८ जुलाई की शाम तक ६२७ चुनावों के फ़ैसले एलान किये जा चुके थे जिनमें ३९० सीटें मज़दूर दल को मिलीं और १७ ऐसे दल वालों को जो मज़दूर दल के साथ हैं।

मि० चर्चिल चुन लिए गए लेकिन उनके मंत्रिमंडल के नौ और मेम्बर जिनमें भारत मंत्री एमरी भी शामिल हैं चुनाव में हार गए।

पार्लिमेंट में जिस पार्टी के लोग ज़्यादा तादाद में चुन कर आते हैं उसी पार्टी का प्रधानमंत्री होता है जो नई सरकार बनाता है। कुदरती तौर पर मि० चर्चिल ने प्रधान मंत्री के ओहदे से इस्तीफ़ा दे दिया। एटली साहब नए प्रधान मंत्री बना दिये गए और उनका नया मंत्रिमंडल भी बन गया।

इङ्गलैन्ड के लिए यह तब्दीली कुछ न कुछ अच्छी ही है। आमतौर पर इङ्गलैण्ड दुनिया के पुराने ख़याल के कट्टर मुल्कों में गिना जाता है। इस तब्दीली से पता चलता है कि धीरे धीरे इङ्गलैण्ड के क़दम भी ज़माने के साथ साथ कुछ आगे को बढ़ रहे हैं। लेकिन जहां तक हिन्दोस्तान का वास्ता है एमरी साहब ने चलते चलते २६ जुलाई को साफ़ कहा है कि 'हिन्दुस्तान के मामले में जो नीति मैं बरत रहा था उसमें और मज़दूर दल की नीत में कोई फ़रक़ नहीं है, नई सरकार की तरफ़ से हिन्दुस्तान के बारे में जो कहा जा रहा है उसमें तीन बातें ख़ास हैं—

(१) लार्ड वेवेल ने जो कोशिशें की थीं वे जारी रहेंगी और आगे बढ़ाई जावेंगी (२) इण्डिया आफ़िस तोड़कर डोमिनियन आफ़िस में मिला दिया जावेगा और (३) हिन्दुस्तान की असेम्बिलियों और कौनसिलों का अक्टूबर-नवम्बर में नया चुनाव कराया जावेगा ताकि कांग्रेस, मुसलिम लीग, हिन्दूसभा और सब दलों के लोग अपनी अपनी ताक़त आज़मा सकें।

हिन्दुस्तान में आमतौर पर मि० चर्चिल के निकाले जाने और एमेरी साहब के हार जाने पर लोगों ने खुशी ज़ाहिर की है। यह ख़ुशी बिलकुल क़ुदरती है। लेकिन इसके साथ ही जिन जिन नेताओं ने इस मामले में अपनी राय ज़ाहिर की है इनमें शायद एक दो को छोड़ कर बाक़ी सबने यह भी साफ़ कहा है कि हिन्दुस्तान को नई सरकार से कोई नई उम्मीदें नहीं बांधनी चाहिये।

तिजारत और उद्योग धन्धों के मामले में मज़दूर दल ने अपनी जो कुछ नीति अभी तक ज़ाहिर की है उसका निचोड़ इन दो फ़िक़रों में बयान किया जा सकता है—

(१) इङ्गलैण्ड के कारखानों की उपज और बाहर देशों में उसकी खपत को बढ़ाकर इङ्गलैण्ड के मज़दूरों को ज़्यादा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुशहाल बनाना और (२) हिन्दुस्तान जैसे देशों के लोगों की ज़रूरतों को बढ़ाना जिससे इङ्गलैण्ड का ज्यादा से ज्यादा माल उनमें खप सके।

ज़ाहिर है कि इङ्गलैण्ड का मज़दूर दल अभी किसी भी रूप रंग के अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद से कोसों दूर है। हमें चर्चिल और एमेरी के चले जाने पर खुशी है इसलिए कि हम उनसे बेज़ार थे, पर हमें ध्यान रखना चाहिए कि हमारे लिए अमेरी और चर्चिल, एटली और क्रिप्स और लार्ड लिस्टोवेल सब बराबर हैं। विदेशी पराधीनता से अपने छुटकारे के लिए हमें केवल अपनी कोशिशों अपनी समझ और अपने बलबूते पर ही निर्भर रहना होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में जो उम्मीद दिलाई जा रही है वह यह है कि अरब ईरान वग़ैरह में रूस और इङ्गलैण्ड के बीच जो नित्य नए झगड़े खड़े होते जा रहे थे उनमें कुछ कमी होगी। कहा जाता है कि नई सरकार की नीति रूस के साथ ज़्यादा मेल मिलाप की नीति होगी। हम इस बारे में अभी कुछ नहीं कह सकते। आगे देखना है। सच यह है कि पश्चिम की सारी दुनिया ख़ासकर यूरोप और अमरीका जब तक एक बार उस तरह के गहरे परिवर्तन या उससे मिलते जुलते परिवर्तन में से नहीं निकलते जिस तरह का परिवर्तन सन् १९१७ में रूस ने देखा तब तक दुनिया की अन्तर्राष्ट्रीय उलझनें हमें सुलझती हुई दिखाई नहीं देतीं। इस तरह के परिवर्तन जल्दी या देर में किसी के टलाए टल भी नहीं सकते। हमारी केवल यह लालसा है कि दुनिया के यह भावी परिवर्तन जहाँ तक हो सके अहिंसात्मक हों।

## समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध

मुख़्तलिफ़ प्रान्तीय सरकारों और ख़ास तौरपर युक्त प्रान्त की सरकार की ओर से समाचार पत्रों के ऊपर जिस तरह के प्रहार हो रहे हैं वे नागरिक स्वाधीनता की दृष्टि से किसी भी शासन के लिये शर्मनाक हैं। पण्डित जवाहरलाल के शब्दों में "नागरिक स्वाधीनता का अर्थ ही यह है कि अपने से विपरीत विचारवालों को विचारों के प्रदर्शन की स्वाधीनता दी जाय।" किन्तु हमारे यहाँ के गवर्नरों का स्वेच्छा-शासन हिटलरी हुकूमत से किसी तरह अपने को कम नहीं रखना चाहता। 'नैशनल हेरल्ड' और 'सैनिक' इसके चमकते हुये उदाहरण हैं। 'आज,' और 'अभ्युदय' से भी ज़मानतें मांगी गईं और लोकयुद्ध ( अंग्रेज़ी उर्दू संस्करण ) पर जो प्रतिबन्ध लगाया गया वह केवल अनुचित ही नहीं बल्कि अन्यायपूर्ण है। इधर नागपुर के 'हितवादा' और बम्बई के 'फ्रीप्रेस' से भी ज़मानतें तलब की गई हैं। ग्वालियर से निकलने वाले 'जीवन' पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया है जिससे उसे अपना प्रकाशन स्थगित करना पड़ा है। जगह जगह समाचार पत्रों के ऊपर जो ये प्रहार किये जा रहे हैं वे इस बात के सूचक हैं कि विचारों को प्रकट करने की स्वाधीनता का इस देश में सर्वथा अभाव है। ये विशेषाधिकार युद्ध के प्रयत्नों को सफलता पूर्वक चलाने के लिये अधिकारियों ने लिये थे उनका मौक़े बे मौक़े बिल्कुल ग़लत और अँधाधुन्ध इस्तेमाल किया जा रहा है।

---


# विश्ववाणी का महान आयोजन

# अन्तर्राष्ट्रीय अङ्क

हम शीघ्र ही 'विश्ववाणी' के २०० पृष्ठों का एक अन्तर्राष्ट्रीय अङ्क प्रकाशित करने जा रहे हैं जिसमें इंगलैण्ड, अमरीका, सोवियत् रूस, चीन, तुर्की, ईरान, फ्रान्स और हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध विद्वानों के लेख रहेंगे। इस अङ्क से गत ३० वर्ष की घटनाएँ हिन्दी पाठकों के सामने साफ़ साफ़ आजायँगी और वे भावी दुनिया की सही सही तसवीर देख सकेंगे।

## विस्तृत जानकारी अगले अङ्क में देखिये


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारतीय चीनी मिट्टियां

लेखक

पं० मनोहरलाल मिश्र एम० एस-सी०

[ सिरेमिक विभाग काशी विश्वविद्यालय ]

बेहद खोज और परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी गई है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने में बदल सकते हैं यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। चीनी मिट्टी और मिट्टी का व्यवसाय करने वालों के लिये पुस्तक बहुत उपयोगी है। २६० पृष्ठ की सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है। डाक खर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## विश्व-संघ की ओर

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल

और

श्री भगवानदास केला

पृथ्वी के सब राष्ट्रों को मिला कर उनका एक संघ किन उसूलों पर क़ायम किया जा सकता है इस गम्भीर विषय पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विश्वव्यापी शान्ति चाहने वाले सब लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। २०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपया, डाकखर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## आरसी-रचनावली

| | | |
|---|---|---|
| आरसी ( कविताएँ ) | ... | ६) |
| कविता ( कविताएँ ) | ... | ५) |
| व्यापी ( कविताएँ ) | ... | २॥) |
| पाञ्चजन्य ( कविताएँ ) | ... | २) |
| नयी दिशा ( कविताएँ ) | ... | २) |
| पंचपल्लव ( कहानियाँ ) | ... | २) |
| नौटा सिक्का ( कहानियाँ ) | ... | १॥) |
| आँधी के पत्ते ( कहानियाँ ) | ... | १॥) |
| जीवन और यौवन ( कविताएँ ) | ... | १॥) |
| चंदा मामा ( कविताएँ ) | ... | १) |

**तारा मण्डल, मुजफ्फरपुर**

संस्कृति, साहित्य और कला की सन्देशवाहक

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

## विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

सम्पादक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य के ऊपर खोजपूर्ण गम्भीर निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक एक अंक संग्रहणीय—

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

**मैनेजर, विश्वभारती पत्रिका, हिन्दी भवन**

पो० शान्तिनिकेतन (बंगाल)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




बरसों की प्रतीक्षा के बाद आख़िर छप गई

## गीता और क़ुरान

### लेखक : पण्डित सुन्दरलाल

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, क़ुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर क़ुरान की ४०० से ऊपर आयतों का लफ़्ज़ी तर्जमा दिया गया है।

जो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्मों को समझना चाहें उनके लिये यह पुस्तक बहुत क़ीमती और बेमिसाल है।

२०० सफ़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल

**डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग**

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

पं० सुन्दरलाल जी की एक और नई पुस्तक

## हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

प्रकाशित हो गई

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म-भूमि फ़िलस्तीन की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के साथ साथ हिन्दुस्तान, चीन, ईरान इत्यादि दूसरे एशियाई देशों की उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक हालत के साथ हज़रत ईसा और उनके उसूलों का गहरा सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया गया है

मूल्य, डेढ़ रुपया, डाक ख़र्च छै आने अलग

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

## "विश्ववाणी का एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है"—गान्धी जी

महात्मा गान्धी जी ने कहा था—"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे।"

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सर तेज बहादुर सप्रू, आचार्य क्षिति मोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० महादेव देसाई, क्यूरेटर-ब्रिटिश म्यूज़ियम (लन्दन), प्रो० तान युन-शान आदि सैकड़ों देशी और विदेशी सर्वमान्य नेताओं और विद्वानों ने गान्धी जी की उपर्युक्त राय को ही दोहराया है।

**विश्ववाणी के पुराने अङ्कों में देश और विदेश के चोटी के विद्वानों के गम्भीर और महत्वपूर्ण लेख भरे पड़े हैं। विश्ववाणी के विशेषाङ्कों का तो कुछ पूछना ही नहीं।**

## क्या आप के पास विश्ववाणी के बहुमूल्य विशेषाङ्क हैं?

## क्या आप विश्ववाणी के महत्वपूर्ण पुराने अङ्क ख़रीदना चाहेंगे?

हमारे पास 'टैगोर अङ्क', 'संस्कृति अङ्क' पहला भाग 'बौद्ध संस्कृति अङ्क', 'चीन अङ्क', 'जैन संस्कृति अङ्क', और 'अकबर अङ्क' की थोड़ी सी प्रतियाँ बची हुई हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर अङ्कों की भी कुछ प्रतियाँ और सन् ४२ और ४३ की एक दर्जन पूरी फाइलें बची हुई हैं। जिन सज्जनों को चाहिये फौरन आज ही पत्र लिखें। जिस क्रम से आर्डर आवेंगे उसी क्रम से ग्राहकों को प्रतियाँ दी जाँयगी।

**मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**


सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक [illegible] साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विशाल भारत

संचालक : पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक : विश्वम्भरनाथ

पुस्तकालय-विभाग
कांगड़ी

सितम्बर १९४५

[ एक अङ्क का ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काशमीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत।

# विषय सूची

[ सितम्बर १९४५ ]

१—सब रंगों की क़ौमों का संघ—आचार्य गुरु दयाल मल्लिक ... ... १७७
२—ईरान पर यूनानी आधिपत्य के बाद—पं० सुन्दरलाल ... ... १७९
३—एक कविता ( कविता )—श्री कमल कुलश्रेष्ठ एम० ए० ... ... १८५
४—कस्तूर बा स्मारक-निधि की कार्य योजना—कुमारी मृदुला साराभाई ... ... १८६
५—विचारों की लुप्त कड़ी—महात्मा गान्धी ... १८७
६—अपराजिता—अनन्त की ओर ! ( कविता )—श्री छोटेलाल भारद्वाज ... ... १८८
७—शेष-पत्र—डा० एन० एस० वर्धन ... १८९
८—लंका में कुछ दिन—भदन्त शांति भिक्षु ... १९७
९—ज़रथुस्त्र ( कविता )—श्री० 'किंकर' ... २०३
१०—क्रांतिकारी महाकवि गुरुगोविन्द सिंह—प्रो० प्यारा सिंह 'पदम' ... ... २०५
११—महादेशीय संस्कृति के प्रसारणीय केन्द्र—श्री मलिन्द ... ... २०८
१२—स्त्री और पुरुष के कार्य क्षेत्र [ प्रवचन ]—गान्धी जी ... ... २११
१३—गीता में पदार्थवाद—श्री० रामचन्द्र जैन बी० ए०, एल० एल० बी० ... २१२
१४—दोनों एक वंश' के हैं [ प्रवचन ]—डा० सर्वपल्लि राधाकृष्णन ... २१५
१५—यदि राष्ट्रीय सरकार क़ायम हुई—डा० पट्टाभि सीतारामैया ... ... २१६
१६—मानव देवता [ प्रवचन ]—विनोबा भावे ... २१८
१७—मरघट ( कहानी )—डा० अख़्तर हुसैन रायपुरी डी० लिट० ( पेरिस ) ... २१९
१८—गाँवों की समस्या—प्रो० श्री नारायण अग्रवाल एम० ए०, बी० काम० ... ... २२२
१९—सम्प्रदायवाद और प्रमाणवाद—श्री रघुवीर शरण दिवाकर ... ... २२५
२०—मुद्रा आस्फालन की समस्या—श्री रमेश चन्द्र गोयल बी० काम ... ... २२६
२१—मनुष्य (कविता)—श्री विद्याधर कुलश्रेष्ठ 'कुसुम' २३०
२२—विनोबा भावे—श्री भारतन कुमारप्पा ... २३१
२३—महाकवि तुलसी के आध्यात्मिक विचार—श्रीमती चन्द्रकुमारी वर्मा एम० ए० ... २३३
२४—बड़प्पन या ख़ासियत—श्री० किशोरलाल घ० मशरुवाला ... ... २३८
२५—महात्मा गान्धी का हिन्दी साहित्य सम्मेलन से स्तीफ़ा [ पत्र-व्यवहार ] ... ... २३९
२६—स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दर दास जी—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय एम० ए०, डी० लिट० २४१
२७—नौ अगस्त सन १९४२ का दिन—राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ... २४५
२८—एटम बाम्ब—डा० के एस० कृष्णन् एफ़० आर० एस० ... ... २४९
२९—स्त्रियों के संगठन का बुनियादी क़दम—राजकुमारी अमृतकौर ... ... २५१
३०—पुस्तक परिचय ... २५२
३१—९ अगस्त सन् १९४२ (कविता)—श्री करील २५६
३२—सम्पादकीय विचार ... २५६-२६०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

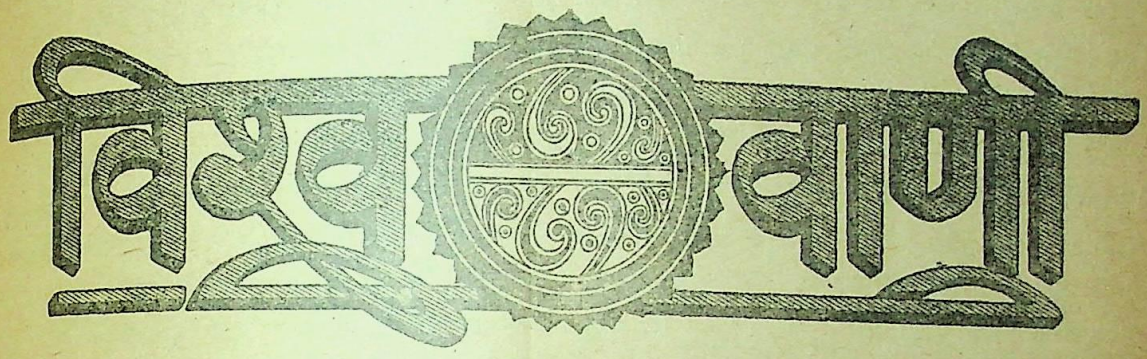


वर्ष ५, भाग १० ] सितम्बर : १९४५ [ अङ्क ३, पूरे अङ्क ५७

# सब रंगों की कौमों का सङ्घ

आचार्य गुरुदयाल मल्लिक

अमरीका के एक अखबार नवीस ने हाल में हिन्दुस्तान की राजधानी के एक मशहूर अंग्रेज़ी दैनिक अख़बार में लेख लिखते हुए तेहरान की कानफ़रेन्स के बारे में एक बहुत ही मार्के का किस्सा बयान किया है। इस अमरीकन अखबार नवीस को चीज़ों का जितना अच्छा पता रहता है और बहुत कम अख़बारवालों को रहता है। जिस तरह अगर कोई कानफ़रेन्स छिपकर बन्द कमरे के अन्दर की जावे तो उस कमरे की दीवारों के भी कान निकल आते हैं और बड़ी तेज़ी से काम करने लगते हैं उसी तरह इस अमरीकन अख़बार नवीस के कान भी गुप्त बातों का पता लगाने के लिए बहुत ही तेज़ हैं। तेहरान कानफ़रेन्स में जर्मनी को पूरी तरह हराने के लिए बड़े बड़े मार्के के फ़ैसले किए गए थे। यह अमरीकन अख़बार नवीस लिखता है कि वहां एक मौके पर स्तालिन और चर्चिल के बीच गरमा गर्मी हो गई। इस पर कहा जाता है चर्चिल ने कुछ घबराहट और हलके से ताने के साथ मार्शल स्तालिन से कहा—"मैंने देखा है कि जब कभी कोई आपके साथ बातें करता है तो उसके चेहरे पर हलकी सी सुर्खी आ जाती है।" इस पर सोवियत् राज के सरदार ने जवाब दिया—"मि० प्राइम मिनिस्टर, किसी भी अच्छे डाक्टर से आप पूछ लीजिये, हलकी सुर्खी तन्दुरुस्ती की सबसे अच्छी पहिचान है।" स्तालिन और चर्चिल दोनों दिल के बहुत मज़बूत हैं। फिर भी इस जवाब का नतीजा यह हुआ कि उन दोनों की नसें और भी ज्यादा तन गईं। रूज़वेल्ट जनतन्त्र के उसूलों के सबसे बड़े वकील थे। उन्होंने यह देखते ही बिल्कुल एक पक्के उपदेशक की तरह लेकिन दोस्ती और जोश दिखाते हुए कहा—"सज्जनो, मैं आपको याद दिला देना चाहता हूँ कि इन्द्रधनुष के सब रंगों से ज़्यादा सुन्दर दुनिया में कोई चीज़ नहीं है।"

अगर यह किस्सा सच्चा नहीं है तब भी इससे बहुत कुछ मतलब और नतीजा निकाला जा सकता है लेकिन अगर हम इसे सच मान लें तो ज़ाहिर है इससे कुछ ऐसे नतीजे निकलते हैं जिनका असर बहुत दूर तक जाता है और जिन नतीजों से हम किसी तरह बच नहीं सकते। पहली बात तो यह है कि एक दूसरे के साथी और मित्र होते हुए भी ब्रिटेन और रूस अभी तक कई ख़ास और बड़ी बड़ी बातों पर एक राय नहीं रखते हैं। वे दोनों चीज़ों को एक ही तरह नहीं देखते, न एक ही तरह उन पर सोचते हैं, फिर दिलों का मिलना तो और भी दूर की बात है। लेकिन बात बात में हम यह कहे बिना भी नहीं रह सकते कि हमें अचरज होता है कि दुनिया भर में और किसी को नहीं चर्चिल को हलके लाल रंग पर एतराज़ हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हलके लाल और लाल में बहुत फ़रक तो नहीं है। जिस साम्राज्य को टुकड़े टुकड़े होने से बचाने की चर्चिल ने इतनी ज़बरदस्त कोशिश की है उस साम्राज्य ने पिछली कई पीढ़ियों से अपनी सब नई आबादियों को और हिन्दुस्तान को भी नकशों में लाल रंग का दिखाया है और जब कभी किसी ऐसे आदमी ने जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय भावना हो यानी जो सब क़ौमों और सब देशों की आज़ादी चाहता हो इस बात के ख़िलाफ़ अपनी कमज़ोर आवाज़ उठाई कि ज़मीन के सब देशों और महाद्वीपों पर यह लाल मिर्चों का सा रंग, बल्कि लाल खून का सा रंग, क्यों बढ़ता और फैलता जा रहा है तो इस साम्राज्य को उसके इस एतराज़ में वैसी ही आफत दिखाई दी और वैसा ही गुस्सा आ गया जैसा किसी सांड़ को लाल रंग का चीथड़ा देखकर आ जाता है। नक़्शे का यह लाल रंग अभी हाल तक बढ़ता ही जा रहा है। दूसरी बात हम यह कहना चाहते हैं कि स्तालिन के शब्दों से यह सचाई चर्चिल की समझ में आ जानी चाहिये थी कि दुनिया की क़ौमों को तन्दुरुस्त रखने के लिए यह ज़रूरी है कि हम कम्यूनिज़्म यानी साम्यवाद के के बुनियादी और व्यापक उसूलों में से बहुत सों को अपना लें।

तीसरी बात यह नज़र आती है कि अमरीका दुनिया के एक आम इन्सान की इज़्ज़त, उसकी फ़िलासफ़ी और उसकी अमली ज़िन्दगी का जोशीला समर्थक और प्रचारक है।

लेकिन इन तीनों की इस बातचीत से आजकल के एक बहुत बड़े सवाल की तरफ़ हमारा ध्यान जाता है। यह सवाल रंग के घमंड और अलग अलग रंग के लोगों में टक्कर का सवाल है। अब तक के ज़माने में इस टक्कर से इन्सानों को काफी किरचें भोंकी गई हैं और लोगों का खून बहाया गया है। संयुक्त राज्य अमरीका की कुछ रियासतों में और ब्रिटिश साम्राज्य की कुछ नई आबादियों में निग्रो क़ौम के लोगों के साथ यही बर्ताव होता रहा है। सैन फ्रान्सिस्को में जो दुनिया की हिफ़ाज़त का पट्टा (सिक्योरिटी चार्टर) तय्यार किया गया है उसमें क्या कोई ऐसा पक्का इन्तज़ाम कर दिया गया है कि जिससे आगे के लिए दुनिया में अलग अलग रंगों के लोगों में इस तरह की आपसी टक्करें न हों और उनकी बिना पर फिर लड़ाइयाँ न छिड़ें? इस सवाल का जवाब समय ही देगा।

लेकिन क्या दुनिया की क़ौमें अब भी अकल के साथ और ठीक ठीक फ़ैसला करेंगी! उन्हें फैसला इस बात का करना है कि वे इन दोनों में से क्या चाहती हैं—क्या वे यह चाहती हैं कि कल फिर इन अलग अलग रंगों की बिना पर, गोरों की कालों से या गोरों की लाल रंगवालों से जंगें छिड़ें या वे समझ और हिम्मत से साथ इस बात का इन्तज़ाम करेंगी कि इस तरह के जंग की जगह सब रंग के लोगों का एक संघ या मेल-मिलाप का सुख दिखाई दे।

क्या अभी तक इस बात का वक्त नहीं आया है कि जिन देशों में रंग की बिना पर आदमी आदमी में वे शर्मनाक टक्करें होती हैं वे देश अपनी इस चाल को बिल्कुल बदल दें? वे एक दूसरे का मुक़ाबला करने और रंग की फ़रक की वजह से एक दूसरे को कुचल डालने की जगह इस तरह से मिलकर काम करने लगें कि गोया वे एक व्यापक मानव संघ या विश्व संघ के अंग प्रत्यंग हैं! इसका वक्त तो कई बार पहले भी आ चुका है लेकिन जिन देशों अपने रंग का घमंड है उन्होंने अभी तक इसे नहीं माना। अगर यह चीज़ हो जावे तो एक दूसरे की तरह तरह की लूट और एक दूसरे से बेजा फायदा उठाने का वह डरावना सपना, जो खत्म होता दिखाई नहीं देता, फिर हमेशा के लिए भूतकाल का एक बुरा सपना ही रह जावेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# ईरान पर यूनानी आधिपत्य के बाद

पण्डित सुन्दरलाल

समय के चक्र ने महान हखामनीषी सम्राटों के ईरान को भी दो तीन सदियों के अन्दर निस्तेज कर दिया। सिकन्दर की यूनानी फ़ौजों ने ईरान के ऐश्वर्य को पद दलित कर धूल में मिला दिया। ईरान के सरकारी ख़ज़ानों और महलों की लूट के बाद ईरानी कला की क़ीमती चीज़ें नष्ट कर दी गईं। इतिहास लेखक हुवार्ट के अनुसार अकेले सुस नगर की लूट में सिकन्दर को ७३९० मन सोना और ३२,८४५ मन चांदी मिली। आख़री हखामनीषी सम्राट दारा तीसरे को ३३० ई० पू० में किसी क्षत्रप ने हत्या कर डाली। नए यूनानी हाकिमों ने लड़ाई के सब पुराने क़ायदे तोड़ डाले और शासन की सारी नीति पलट दी। ईरानी बिना किसी भेद भाव के सब देशों के लोगों को सरकारी ओहदे और नौकरियां देते थे। यूनानियों ने सब ओहदे केवल यूनानियों से ही भरने शुरू कर दिये ईरानी अपने युद्ध के क़ैदियों के साथ नरमी का बर्ताव करते थे, यूनानियों ने नृशंसता के साथ अपने सब युद्ध के क़ैदियों का वध कर डाला। ईरानी शरणागत शत्रु के साथ दया का बर्ताव करते थे, यूनानियों ने किसी के प्रति कोई दया नहीं दिखाई। हज़ारों बरसों के सभ्य एशियाई ईरानियों और नए अर्धसभ्य यूनानियों बल्कि अर्धसभ्य यूरोपियन ग्रीस निवासियों के चरित्र में बहुत बड़ा फरक़ था।

## यूनानी और ईरानी

ये यूनानी अपने से उच्चतर ईरानी समाज के सम्पर्क में आए। केरशस्प लिखता है—"सम्राट क्षयर्ष से भी पहले ईरान का धार्मिक जीवन एक गुणातीत और निराकार परमात्मा की ज्योति से उज्ज्वल हो चुका था। दूसरी ओर यूनानी उस समय धर्म के जिस कलुषित और सदाचारहीन रूप की पूजा करते थे ईरानी धार्मिक उन्नति के पथ पर उनसे मीलों आगे निकल चुके थे।"

## यूनानियों पर ईरानी प्रभाव

यूनानी जब ईरानियों के ज्यादह नज़दीक आए तो वे ईरानी सभ्यता के और संस्कृति के ज़बरदस्त प्रभाव से न बच सके। ख़ुद सिकन्दर ने ईरानी पोशाक और ईरानी राज दरबार के तरीक़े अख़्तियार किये। अपने साम्राज्य को पक्का करने के ख़याल से ख़ुद अपने को उसने अहुरमज़्द का एक सेवक ऐलान किया। भारत के असफल हमले से लौटने के बाद ३२ साल की आयु में बाबुल के अन्दर १३ जून सन् ३२३ ई० पू० को नेबुकेनेज़्ज़र के महल में सिकन्दर की मृत्यु हुई। सिकन्दर की मृत्यु के बाद ही उसके चार ख़ास ख़ास सेनापतियों ने साम्राज्य को चार हिस्सों में बांट लिया। सिकन्दर का शव मसालों में लपेट कर बाबुल से मिस्र भेज दिया गया, जहां कहा जाता है मिस्र के खेदिव के क़बरिस्तान में दानियाल की मसजिद के नीचे यह अब तक दफ़न है।*

## सिकन्दर के उत्तराधिकारी

सिकन्दर के एशियाई इलाक़ों पर उसके सेनापति सेल्युकस का क़ब्ज़ा हो गया। सेल्युकस अपने मालिक की तरह महत्वाकांक्षी था। उसने फिर भारत को जीतने की तजवीज़ की। भारत में उस समय सम्राट चन्द्रगुप्त का ज़माना था। चन्द्रगुप्त से टकराकर सेल्युकस की भारत विजय करने की उमंगे चूर चूर हो गईं। फिर भी सुरिया और फ़िलस्तीन से लेकर बख़्तियार तक सेल्युकस का राज था। सेल्युकस के नाम पर यह नई यूनानी सल्तनत सेल्युकी कहलाने लगी। यह हकूमत ३१२ ई० पू० में क़ायम हुई और ईरान पर क़रीब १४० साल तक क़ायम रही। शुरू में इनकी राजधानी बाबुल में थी, बाद में दजला के किनारे उन्होंने नए यूनानी शहर सेल्यूसिया को अपनी राजधानी बनाया।

## पार्थी साम्राज्य

ईरानियों में अपनी ग़ुलामी पर बेचैनी और दुख बराबर बढ़ता गया। ईरानियों ही की एक और शाख़ पार्थी लोगों ने यूनानियों से लड़कर अपने प्रान्त पार्थि को सन् २५० ई० पू० यूनानियों से आज़ाद कर लिया।

एक नया ईरानी राजकुल क़ायम हो गया। इस कुल का क़ायम करनेवाला आर्श (Arsaces) सन् २४७ ई० पू० में ज़ाब्ते से पार्थिया के तख्त पर बैठा। इसके बाद ७३ साल तक पार्थियों और यूनानियों में लड़ाइयां होती रहीं। आख़िरकार १७४ ई० पू० में पार्थिया के राजा मिथ्रदत्त पहले ने यूनानियों को सारे ईरान से निकालकर बाहर कर दिया। असुरिया की सरहद से लेकर बख़्तियार तक पूरे ईरान पर मित्र दत्त का साम्राज्य क़ायम हो गया। पार्थी सम्राट आर्तबान् दूसरे के समय में १२४ ई० पू० में यूयेची

* "Ancient Persia & Iranian Civilization" by Clement Huart.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नाम की चीनी जाति ने पार्थिया पर हमला किया। ईरान और उसके पास के देशों पर यह एक मौसमी आंधी थी जो आई और चली गई। ईरान पर पार्थी सम्राटों की हकूमत जारी रही।

पार्थी सम्राटों ने चार सौ साल से ऊपर यानी २२६ ई० तक ईरान पर राज किया। इन सम्राटों के नाम बिल्कुल संस्कृत नाम थे। हिन्दुस्तान के साथ इनका आना जाना और गहरा सम्बन्ध था। ये अपने को अहुरमज़्द के सेवक या प्रतिनिधि भी कहते थे। इनके ज़माने में ईरान के अन्दर धर्म और संस्कृति की वह नई और ज़ोरदार लहरें चलीं जिनका शान्त और हितकर प्रभाव बौद्ध धर्म की तरह एक बार सारे पच्छिमी संसार यहां तक कि सारे यूरोप पर छा गया। लेकिन संस्कृति की इन लहरों को बयान करने से पहले उस ज़माने की कुछ राजनैतिक घटनाओं का ज़िक्र कर देना ज़रूरी है।

## रोमियों और ईरानियों में युद्ध

पार्थी सम्राटों के समय में ईसा से ५४ साल पहले ईरान पर एक नई आफ़त आई जिसका सिलसिला सात सौ साल तक जारी रहा और जिसने ईरान और ख़ासकर उससे पच्छिम के मुल्कों की हर तरह की ज़िन्दगी पर बहुत ही नाशकर असर डाला। सिकन्दर के कायम किये हुए यूनानी साम्राज्य का ख़ात्मा हो चुका था। यूरोप में रोम का दौर दौरा था! खुद यूनान पर रोम के सम्राटों का क़ब्ज़ा था। रोम का साम्राज्य उस समय अपनी पूरी ताकत पर था। रोम के सम्राट अपने को पिछले यूनानी साम्राज्य का वारिस समझते थे। उनकी कोशिश थी कि वे उन सब मुल्कों पर राज करें जो किसी समय सिकन्दर या उसके वारिसों के अधीन रह चुके थे। रोमी सेनाएं विजय के लिये एशिया की तरफ़ बढ़ीं। शाम और एशिया कोचक पर रोम का क़ब्ज़ा हो गया। फ़िरात नदी और सिन्धु नदी के बीच का वह हिस्सा जो कभी यूनानियों के आधीन रह चुका था और जिसमें ईरान शामिल है अभी तक रोमन साम्राज्य से बाहर था। ५४ ई० पू० में रोमी सेना ने ईरान पर चढ़ाई की। रोम को सफलता न मिल सकी। पूरे सात सौ साल तक रोम की ईरान को विजय करने की कोशिशें जारी रहीं। इन सात सदियों के अन्दर सैकड़ों लड़ाइयों से काफ़ी नुक़सान पहुंचा। लेकिन रोमियों की ईरान विजय करने की उमंग कभी पूरी न हो सकी। एक ख़ास नतीजा रोम की बेजा कोशिशों का यह हुआ कि आर्मीनिया, इराक़, शाम और एशिया कोचक जैसे बीच के देश कभी एक के कब्ज़े में आ जाते थे और कभी दूसरे के और लगातार सात सौ साल तक दोनों तरफ़ की सेनाओं से रौंदे जाते रहे।

## ईरान में धार्मिक परिवर्तन

रोम और ईरान की इन लड़ाइयों का और ज्यादह हाल किसी दूसरी जगह दिया जायगा। अब पार्थी सम्राटों के ज़माने की ईरान की उन धार्मिक और सांस्कृतिक लहरों को बयान करना ज़रूरी है जिनका ऊपर ज़िक्र आ चुका है।

वह ज़माना हिन्दुस्तान, चीन, ईरान, और सारे एशिया में जबरदस्त धार्मिक तब्दीली का जमाना था। हिन्दुस्तान में बौद्ध धर्म का जन्म हो चुका था। बौद्ध धर्म का अष्टांग मार्ग इसमें शक नहीं ज़रथुस्त्री धर्म के तीन बुरे कामों से बचकर तीन अच्छे काम की तरफ जानेवाले रास्ते का ही क़ुदरती फैलाव और उसी का विकास था। सचाई और पवित्रता पर दोनों में एकसा ज़ोर दिया गया था। दोनों में गहरा सम्बन्ध था। भारत, चीन और ईरान में आना जाना खूब जारी था। सक (सीदियन) क़ौम के लोग ईरान के पूरब से होते हुए हिन्दुस्तान के एक हिस्से में बसकर वहां अपना राज क़ायम कर चुके थे। मशहूर सम्राट कनिष्क इसी क़ौम का था। उसने बौद्ध धर्म को अपना धर्म मान लिया था। उसके सिक्कों पर बुद्ध का नाम और मूर्ति खुदी हुई मिलती है। साथ ही उसके सिक्कों पर मित्र (सूरज), माह (चांद) और अश्र (आग) इन ईरानी देवताओं के नाम और इनकी मूर्तियां भी मिलती हैं। कनिष्क के अपने मत में बौद्ध मत और ईरानी मत दोनों बड़ी सुन्दरता के साथ मिले हुए थे।

एशिया के अल्लाहवाले ईश्वर भक्तों, महापुरुषों और यहां की आम जनता में भी आमतौर पर शुरू से यह सम्मान रहा है कि वे सब धर्मों के अन्दर एक ही सचाई देखना चाहते हैं और सब के मेल और समन्वय के विश्वासी हैं और सर्वधर्म समन्वय की ही सदा कोशिश करते रहे हैं। इसीलिए अलग अलग धर्मों के ईश्वर के नाम को एक ही परमेश्वर के नाम समझने और दूसरे धर्मों के इष्ट देवों की पूजा करलेने या उनकी तरफ़ आदर प्रकट करने में उन्हें कभी ज्यादह कठिनाई नहीं हुई है। इस एशियाई तबियत ने हिन्दुस्तान में चन्द्रगुप्त, अकबर, दाराशिकोह, और ईरान में सम्राट दारा जैसों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


किया। इसी की वजह से चीन में आज तक करीब करीब हर चीनी एक ही साथ बौद्ध भी है, ताओ धर्म का मानने वाला भी, कन्फ्यूशियन धर्म का माननेवाला भी और साथ साथ अपनी चार हज़ार बरस की पुरानी पितृपूजा का माननेवाला भी। इससे एशिया के लोगों के पुराने और हानिकर रस्म रिवाजों का भी बदलना या उनकी समाजी ज़िंदगी को सुधारना हमेशा एक मुश्किल काम रहा है, लेकिन साथ ही हर तरह के ज़माने के उलट फेरों में एक शान्ति, सन्तोष, प्रेम और धीरज की ज़िन्दगी बसर कर सकना उनके लिए आसान रहा है, और मज़हब के नाम पर उस तरह के जुल्मों, हत्याओं, लाखों आदमियों के ज़िन्दा जलाए जाने, क़त्लेआमों, विद्या और विज्ञान की मनाही और आपसी द्वेष से वे ज्यादहतर बचे रहे हैं जिसका यूरोप के ज्यादहतर देशों को ईसाई धर्म के ज़ोर के दिनों में एक हज़ार साल से ऊपर तक सामना करना पड़ा।

इसके आलावा आम लोगों में यह एक कुदरती बात है कि वे बहुत दिनों तक केवल निराकार की उपासना से सन्तुष्ट नहीं रह सकते। उन्हें अपनी भक्ति के लिए किसी न किसी नाम और रूप दोनों की ज़रूरत होती ही है। यही वजह थी कि बुद्ध के मरने के दो तीन सौ साल के अन्दर ही बौद्ध आचार्यों ने बौद्ध धर्म के रूखे दर्शन और शुष्क सदाचार के साथ साथ बोधिसत्वों के नाम से बहुत से हिन्दू देवी देवताओं, उनकी पूजा, धूप दीप और घण्टे घड़ियाल तक को अपने मन्दिरों में दाखिल कर लिया। बौद्ध धर्म का यह सम्प्रदाय महायान सम्प्रदाय कहलाता है। यही बौद्ध सम्प्रदाय है जो चीन, जापान और एशिया के और मुल्कों में फैला। इसीने हज़ारों साल तक उन मुल्कों के करोड़ों बल्कि अरबों आदमियों की रूहानी प्यास को बुझाया। हिन्दुस्तान के अन्दर आहिस्ता आहिस्ता इसमें और पुराने हिन्दू धर्म में इतना कम फ़रक रह गया था कि उस फ़रक को न देख सकने की वजह से ही भारत को जनता इतनी आसानी से बौद्ध धर्म छोड़कर फिर से हिन्दू-धर्म स्वीकार कर सकी।

## मिथ् की प्रारम्भिक उपासना

जिस तरह बुद्ध के मरने के चन्द सदियों के अन्दर हिन्दुस्तान में बौद्ध धर्म का 'महायान' सम्प्रदाय चल पड़ा उसी तरह ज़रथुस्त्र के मरने के चन्द सदियों के अन्दर ही ईरान में ज़रथुस्त्री धर्म की एक मिथ्री सम्प्रदाय क़ायम हुआ और जिसने थोड़े ही दिनों के अन्दर सारे पच्छमी संसार पर अपना साम्राज्य कायम कर लिया। 'मिथ्र' या 'मित्र' एशिया के पुराने से पुराने देवताओं में से है। ऋग्वेद में मित्र का बड़ा ऊंचा स्थान है। मित्र और वरुण के नाम अकसर साथ साथ आते हैं। वरुण को "तेजोमय आकाश" और मित्र को "आकाश का तेज पुंज" कहा गया है। दोनों का साथ साथ नाम लिया जाता है और दोनों को सब जानदारों और वनस्पतियों में जान डालनेवाला बताया गया है।*

संस्कृत में 'मित्र' शब्द सूरज के माइनों में भी आता है। ईरान के पुराने देवताओं में भी मिथ्र का ख़ास रुतबा था। ज़रथुस्त्र ने जहां बहुत से पुराने देवताओं को अहरिमान के मददगार कहकर बुरा क़रार दिया। वहां 'मित्र' और 'वरुण' को अहुरमज़्द ही के अलग अलग नाम बताकर अहुरमज्द के साथ मिला दिया। उसने यह भी उपदेश दिया कि यह इतना बड़ा 'सूरज' और सबको खा जानेवाली 'आग' दोनों ईश्वर या अहुरमज़्द की जड़ प्रकृति यानी उसकी क़ुदरत की सबसे बड़ी अलामतें हैं। इसलिए इन पर ग़ौर करना या मनन करना आदमी के लिए फ़ायदेमन्द है। मनन करने और पूजा करने में मामूली आदमी के लिए ज्यादहतर फ़रक नहीं रह जाता। यह भी मालूम होता है कि ईरान में मित्र की पूजा ज़रथुस्त्र के बाद कभी पूरी तरह बन्द नहीं हुई थी। ख़ासकर पार्थिया में मित्र के उपासक बराबर रहे।

## अहुरमज़्द और मिथ्

ईरान के सम्राट उन दिनों अपने को मज़्दयस्नी धर्म के माननेवाले कहते थे। इस धर्म के फैलने से लेकर ४०४ ई० पू० तक सिवाय अहुरमज्द के किसी दूसरे की पूजा का सम्राटों के अन्दर ज़िक्र नहीं मिलता। ४०४ ई० पू० में सम्राट आर्तक्षत्र दूसरा तख़्त पर बैठा। इस सम्राट की पूजा में पहली बार अहुरमज्द की पूजा के साथ साथ मिथ् की पूजा का भी ज़िक्र मिलता है। उसी समय से ईरान भर में मिथ् और अहुर दोनों की साथ साथ पूजा होने लगी, और 'मिथ्री सम्प्रदाय' नाम से ज़रथुस्त्री धर्म का एक ख़ास और अलग सम्प्रदाय ईरान में चल पड़ा।

## ईरानी धर्म पर बाहरी प्रभाव

दूसरे देशों के धार्मिक विचारों का असर भी ईरानियों पर पड़ता था। पुराने ईरान में मिथ्र और सूरज दोनों दो

*Rig v. 5, -69, 1 ; 6, 51, 1 ; 6, 6,7,5 ; 7, 61, 3. from "Mithraism."


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अलग अलग देवता थे। लेकिन बाबुल में हजारों साल से 'सूरज' की पूजा होती थी, उसके बहुत से मन्दिर थे और पूजा के तरीक़े बड़े मनोरंजक और दिलचस्प थे। ईरानियों में बेहद धार्मिक उदारता थी। वे जिस देश को फतह करते थे या जिस देश में जाते थे वहां के धार्मिक रिवाजों का खण्डन करने या उन्हें बुरा कहने की जगह उनकी तरफ़ आदर ज़ाहिर करते थे। दूसरे देशों के देवताओं को वे अहुरमज़्द का मददगार कहकर अपने में मिला लेते थे।

## मिथ् अहुरमज़्द का प्रतिनिधि

मिथ् को आसानी से 'सूरज' के साथ मिलाकर एक कर लिया गया। धीरे धीरे सूरज ही के रूप में मिथ् की पूजा होने लगी। उसके सैकड़ों मन्दिर बन गए और दूसरे देशों की कई मनोरंजक रस्में उसकी पूजा के तरीकों में शामिल हो गईं। मिथ्र ही को अहुरमज़्द का प्रतिनिधि और सूरज को उसका सबसे ज्यादह शानदार और चमकदार रूप और जहूर मान लिया गया।

## मिथ् की पूजा का विस्तार

ईरान से पच्छिम के देशों में ज़रथुस्त्री धर्म का यह निहायत दिलचस्प सम्प्रदाय एक बार इस जोर के साथ फैला और उसका इतना जबरदस्त, इतना अच्छा और इतनी दूर तक असर पड़ा और सदियों तक पड़ता रहा कि उसकी दिग्विजय के मुक़ाबले में किसी भी सम्राट की राजनैतिक दिग्विजय फीकी मालूम होती है।

न सिर्फ उन मुल्कों में जिन पर ईरानियों की हकूमत थी, बल्कि उन देशों में भी जो बिल्कुल खुदमुख़्तार थे, यहां तक कि ईरानियों के दुश्मन रोमी साम्राज्य के अन्दर भी मिथ्र धर्म के शान्त और सच्चे उपदेशक रास्ते की सैकड़ों तरह की मुसीबतों को सहते हुए पहुँचते थे। न उनके दिलों में कोई राजनैतिक मतलब छिपा हुआ था और न किसी तरह का कोई स्वार्थ। केवल मनुष्य भाव से प्रेम उन्हें बहाए लिए चला जाता था। उनकी तपस्या, उनका आत्मबल और उनका चरित्र लाखों के दिलों को खींच लेता था। नतीजा यह हुआ कि इन सब देशों में मिथ्र धर्म फैलता चला गया। "एक समय था जब कि पच्छिम में स्पेन से लेकर पूरब में अनातोलिया (एशिया कोचक) तक और इङ्गलिस्तान की उस दीवार से लेकर जिस तक किसी समय रोमियों का राज था, दक्खिन में सिकन्दरिया और मेम्फ़ी (मिश्र की राजधानी) तक लातीनी (रोमी) दुनिया के हर कोने में मिथ्र की पूजा होती थी; और इससे भी बढ़कर बात यह थी कि रोमी साम्राज्य के सबसे नीचे की मामूली जनता ही नहीं बल्कि रोमी फ़ौज़ों के सेनापति, रोमी सूबों के गवरनर और ख़ुद रोम के सम्राट तक मिथ्र की पूजा करते थे।"*

## यूरोप में मिथ् की पूजा

"आज के दिन यूरोप में शायद कोई भी अजायबघर ऐसा नहीं है जिसमें इस ईरानी देवता का कोई न कोई चिन्ह, धातु या पत्थर में उभरा हुआ या खुदा हुआ कोई न कोई लेख या चित्र या कोई न कोई देखने के क़ाबिल यादगार मौजूद न हो।"†

हज़रत ईसा के जन्म से चार सौ साल पहिले से लेकर उनकी मौत के लगभग चार पाँच सौ साल बाद तक एक एक कर पच्छिमी एशिया, मिश्र और अफ़रीका के दूसरे उत्तरीय देशों के अलावा यूनान, बलकान, इटली, पोलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, आस्ट्रिया, हंगरी, स्विट्ज़रलैंड, स्पेन और इङ्गलिस्तान यानी सारे यूरोप में—जहां जहां थोड़े बहुत आदमी भी सभ्य या अर्धसभ्य कहला सकते थे, मिथ्र के बेशुमार मन्दिर थे और मिथ्र ही की पूजा होती थी। इङ्गलिस्तान में नार्थम्बरलैंड, रोचस्टर, कैम्बकफोर्ट, आक्सफोर्ड, यार्क, मैनचेस्टर और लन्दन में मिथ्र के मन्दिर और उसकी मूर्तियां भरी हुई थीं। रोम और बाकी इटली मिथ्र के उपासकों से ठसाठस था।×

## बौद्ध और मिथ्री दिग्विजय

जिस वक्त बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय प्रशान्त महासागर से लेकर मध्य एशिया तक की दुनिया को विजय करता जा रहा था, ठीक उसी वक्त और उन्हीं तरीक़ों से मज़्दयस्नी धर्म का मिथ्री सम्प्रदाय मध्य एशिया से लेकर अलांटिक महासागर तक की बाक़ी आधी दुनिया को जिसमें सारा यूरोप शामिल था विजय कर रहा था।

## रोमी सम्राट और मिथ्री धर्म

हज़रत ईसा के बाद की शुरू की सदियों में रोम के एण्टोनाइन सम्राट, जिनके सुन्दर शासन में रोम की इङ्गलिस्तान एक बार चमकी मिथ्री धर्म के ही माननेवाले थे। उनके समय तक यह धर्म सारे रोमी साम्राज्य में फैल चुका था।

* Mithraism by W. J. Phythiau Adams M. A. p. 34.
† Ibid p. 4.
× Ibid p. 21—26.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सम्राट कैम्मोडस (१८०-१९२ ईसवी) के समय में लिखा है कि यह धर्म साम्राज्य भर के अन्दर "ज्वाला की तरह चमक उठा।"* सम्राट डायोक्लीटियन (२४५-३१३ ईसवी) मिथ्र का बहुत बड़ा भक्त था। सम्राट जूलियन (३३१-३६३ ई०), जो अपनी पाक ज़िन्दगी अपनी नेकी, अपनी उदारता, अपने विश्व प्रेम, अपनी विद्वत्ता और प्रजा-पालकता के लिये मशहूर है रोम का आख़री मिथ्री सम्राट था। इस बीच ईसाई धर्म जिसने आख़ीर में मिथ्री धर्म की जगह ली रोम पहुंच चुका था। जूलियन के सौ साल बाद तक ख़ुद इटली के अन्दर और जगह जगह यूरोप देशों में मिथ्री धर्म के माननेवाले मिल सकते थे। आख़िरकार रोम ने मिथ्री धर्म के मिटने के साथ साथ रोमी सम्राटों के गुण, रोमी साम्राज्य की शान और रोमी प्रजा की सुख-समृद्धि तीनों का हमेशा के लिये ख़ात्मा हो गया।

मिथ्री धर्म की इस ग़ैर मामूली तरक़्क़ी और उसके इस तरह यूरोप में फैलने के तीन ख़ास सबब गिनाए जा सकते हैं—

## मिथ्री धर्म की सर्वप्रियता के तीन कारण

१—इतिहास से पता चलता है कि शुरू की इन्सानी क़ौमें जो क़ुदरत की किसी न किसी जड़ ताक़त के रूप में ही परमात्मा के दर्शन करना चाहती हैं और कर सकती हैं, किसी भी चीज़ से इतना असर नहीं लेतीं जितना तमाम रोशनी के भण्डार, सब जानदारों को जान और गरमी देने वाले चमचमाते हुए सूरज से। ख़ासकर यूरोप के ठंडे देशों के लिये सूरज और भी ज़बरदस्त बरकत था और वहाँ की अर्ध सभ्य क़ौमों के लिये इस नए धर्म के पहुँचते ही अपने पुराने देवताओं को छोड़कर या उनके साथ साथ मिथ्र की पूजा करने लगना और आख़ीर में मिथ्र को ही अपना सबसे बड़ा देवता मान लेना क़ुदरती था।

२—मिथ्र की पूजा के साथ साथ जो नए नए कर्मकाण्ड और कई नए त्योहार ईरान से यूरोप पहुँचे वे यूरोप के लोगों के दिलों को और भी ज़्यादह लुभानेवाले थे। हर रविवार को सूरज का लाल दिन है। इसलिए हर रविवार को मिथ्री लोग काम काज बन्द करके छुट्टी मनाते थे। इतवार की छुट्टी का रिवाज यूरोप में मिथ्री धर्म से ही शुरू हुआ। मकर संक्रान्ति को जिस दिन सूरज दक्षिणायन होने के बाद उत्तर की तरफ़ चलना शुरू करता है मिथ्री लोग सूरज की पैदाइश का दिन मानते थे और बड़े जोश से हर साल उसका त्योहार मनाते थे। २५ दिसम्बर को बड़ा दिन मनाने का रिवाज पड़ा। तीन महीने के बाद जब सूरज निरक्षांस (equator) को पार कर उत्तर में जाता था मिथ्रियों का दूसरा बड़ा त्योहार मनाया जाता था यह आजकल के ईस्टर का शुरू है। मिथ्री मन्दिरों की मूर्तियाँ, दो मशालों वाले चित्रों के साथ मिथ्र की अजीब त्रिमूर्ति, मन्दिर में पवित्र जल और पवित्र आग और उसका हर वक़्त जलाए रखना, और वहाँ की पूजा वग़ैरह सब बड़ी चित्ताकर्षक होती थी।

३—लेकिन जिस बात ने यूनान के फ़िलासफ़रों सिकन्दरिया के ज्योतिषियों और साइन्स दोनों और रोम के राजनीतिज्ञों को इस ईरानी धर्म की तरफ़ खींचा वह उसके ऊंचे आध्यात्मिक सिद्धान्त, उसका कठोर आत्म संयम और दूसरे धर्मों के साथ उसकी उदारता थी। ऐडेम्स लिखता है कि उस ज़माने का मिथ्री धर्म "एक ज़िन्दा और अमली धर्म था जो रूहानी ताक़त से भरा हुआ था और जिसमें बहुत सी ऊंची और रोशन ज्ञान की बातें या सच्चाइयां शामिल थीं।"*

## रोमी सैनिकों में मिथ्री धर्म

रोम की सेना के अन्दर यह धर्म बहुत ही ज़्यादह तेज़ी के साथ फैला, इसकी बजह बयान करते हुए ऐडेम्स मिलता है—"जिन लोगों को रोज जान ख़तरे में रहती थी, और जिनके उससे पहले के धार्मिक विश्वास के अनुसार मरने के बाद सिवाय नेस्त हो जाने के और कोई आशा न हो सकती थी, उन्हें इस धर्म ने मरने के बाद भी अनन्त जीवन की आशा दिलवाई।"†

और आगे चलकर यही लेखक उस ज़माने के यूरोप की ठीक ठीक हालत और उस पर मिथ्री धर्म के असर को बयान करते हुए लिखता है—

"रोमी साम्राज्य उस वक़्त एक ऐसी ज़मीन की तरह था जो बारिश न होने की वजह से सूखी और बंजर पड़ी हो। उस साम्राज्य में न किसी तरह का सदाचार पैदा हो सकता था* और न कोई मानसिक जीवन। ऐसे मौके पर मिथ्री धर्म एक ऐसी ज़ोरदार लहर की शक्ल में एशिया से चलकर सारे रोमी साम्राज्य के ऊपर बह निकला जिस लहर ने वहां की सोई हुई आत्माओं को फिर से जगा दिया और

* Mithraism p. 37.

* Ibid P. 81
† Ibid P. 36.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मरती हुई ज़मीन में जान डाल दी। जो आत्माएं सूखी और बंजर फ़िलासफ़ी की बहसों में कसकर सच्चे ज्ञान की प्यास से तड़प रही थीं, या जो ख़ाली निःशंक अज्ञान और जहालत के जंगल में सूखकर ख़त्म हो रही थीं उन सबको इस धर्म ने मानसिक और नैतिक आहार पहुंचाकर फिर से तरो ताज़ा कर दिया। इन सबके सामने उसने एक नई आशा रखी, उन्हें एक नई रोशनी दी, उन्हें एक सच्चा सन्देश सुनाया और उन्हें असली नई ज़िन्दगी का रास्ता दिखाया।"*

## मिथ्री धर्म से यूरोपवालों को लाभ

इससे पहले यूनानियों के ज़रिये पच्छिम एशिया के कुछ धार्मिक विचार, देवी देवता और पूजा पाठ के तरीक़े यूरोप पहुंच चुके थे। तिरहेनियों ने एशिया से इटली पहुंच कर वहां कुछ धर्म अधर्म के भेद की बुनियाद डाल दी थी। मिश्र के धार्मिक विचार भी यूरोप पर अपना असर डाल रहे थे। लेकिन एक बाज़ाब्ता धर्म की हैसियत से मिथ्री धर्म पहला धर्म था जो यूरोप पहुँचा। इसीने सबसे पहले लाखों यूरोपवालों को भलाई बुराई का फ़रक़, आत्मा के अमर होने, मरने के बाद की ज़िन्दगी, कर्मों के फल और निजात यानी मुक्ति की आशा का विश्वास दिलाया। उस वक़्त तक यूरोप के जन समाज को इन बातों की कोई कल्पना न थी।

सदाचार के सम्बन्ध में इस धर्म के असूल बिल्कुल सरल थे। रोम का आख़री मिथ्री सम्राट जूलियन लिखता है कि "इस तरह के बिलकुल साफ़ साफ़ नियमों की एक फ़हरिस्त थी जिन पर अमल करने से हर श्रद्धालु भक्त को परमानन्द यानी निजात हासिल करने का विश्वास हो सकता था।"†

## मिथ्री धर्म और आध्यात्मिक उन्नति

मिथ्री धर्म में मामूली लोगों के लिये सचाई नेकचलनी, एक दूसरे से प्रेम का व्यवहार और ऊंची रूहानी ज़िन्दगी की इच्छा रखनेवालों के लिये साधना यानी सलूक के दरजे व दरजे नियम और साधकों यानी सालिकों के एक दूसरे के बाद सात दरजे थे। हर दरजे की बाज़ाब्ता दीक्षा दी जाती थी। सबसे पहले साधक को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि मैं "ज़िन्दगी भर मिश्र के एक सिपाही की हैसियत से अन्याय और बुराई की ताक़तों के साथ लड़ता रहूँगा।" इसके बाद उसे १२ इमतहानों में से निकलना पड़ता था। उसे जलती हुई धूप और चीरती हुई सरदी में नंगे बदन खड़ा रहना पड़ता था, उसे लम्बे लम्बे सफ़र और निर्जल उपवास रखने पड़ते थे, उसे डूबने की तकलीफ़ का तजरुबा करने के लिये जल के अन्दर डुबाया जाता था। इन सब तपस्याओं की ग़रज़ होती थी उसे सख़्ती का आदी बनाना और इस क़ाबिल कर देना कि दुनिया की विषय वासना उसके मन को वश में न कर सके। इस तरह धीरज, इन्द्रिय संयम, (नफ़्सकुशी) और मिथ्र के नाम पर पूरे आत्म समर्पण (तवक्कुल) की शिक्षा लेने के बाद उसके माथे पर 'क्रूश' (या सतिये) का सा एक निशान बनाया जाता था, उसका नया 'बपतिस्मा' होता था जिसका मतलब यह था कि अपने सब पिछले पापों से उसे छुटकारा मिल गया। इस तरह साधकों के सात दरजों को एक दूसरे के बाद पार करते हुए आख़िरी में हर मिथ्री साधक की "जीवित मृत्यु" का एक संस्कार होता था जिसके बाद समझा जाता था कि साधक अब दुनिया की तरफ से मर कर दूसरी रूहानी ज़िन्दगी हासिल कर चुका और इस शरीर की मृत्यु के बाद अनन्त जीवन और नित्य सुख का हक़दार होगा।

बिला शुबह इस तरह का धर्म उस समय के यूरोप की समाजी और दिमाग़ी हालत में ग़रीब और अमीर, पढ़े और बेपढ़े सबकी आध्यात्मिक प्यास को बुझाने और उन्हें आध्यात्मिक तरक्की की तरफ़ ले जाने का सुन्दर ज़रिया था। यही वजह थी कि उसे यूरोप में इतनी ज़बरदस्त सफलता मिली।

## मिथ्री सम्राट जूलियन

दूसरे धर्मों के साथ मिथ्रियों का सलूक कैसा था इसका सबसे सुन्दर नमूना आख़री मिथ्री रोमी सम्राट जूलियन था।

सम्राट जूलियन से पहले ईसाइ मत रोम में पहुंच चुका था। कन्सटैण्टाइन पहला रोमी सम्राट था जिसने ३२४ ई० में ईसाई धर्म स्वीकार किया। कान्सटैण्टाइन के बाद रोम के तीन और सम्राट ईसाई हुए। कान्सटैण्टाइन और उसके ईसाई जानशीनों ने जिस तरह अपने पक्ष की अपनी अनुदारता और अपने जुल्मों के ज़रिये सारी प्रजा को सताया और रोमी साम्राज्य के नाश के बीज बोये उसकी कहानी दूसरी जगह बयान की जायगी। इसके बाद सम्राट जूलियन का ज़माना आया। जूलियन मिथ्री धर्म

* Ibid pp. 12-13.

† Emperor Julian, "Convivium" p. 336

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तथा भक्त था। कान्सटैण्टाइन से पहले के रोमी सम्राटों की सी हिम्मत, बहादुरी, मेहनत की आदत और बुद्धिमत्ता उसमें फिर से चमक उठीं। परहेज़गारी में, आत्म संयम पानी नफ़्सकुशी में और प्रजा की भलाई के लिये सदा तत्पर रहने में कोई दूसरा सम्राट उसके बढ़कर न पहले हुआ था न बाद में हो सका। इन सबके अलावा संस्कृति में, साहित्य की तरफ़ रुझान में और दार्शनिक जिज्ञासा में वह यूनानी फिलासफ़रों के बराबर था। उसकी पब्लिक ज़िन्दगी में यह एक बड़े तआज्जुब की बात थी कि जंग और मुल्की इन्तजाम की गहरी से गहरी चिन्ताओं के साथ वह निहायत सरल और कामयाब ढंग से साहित्य और दर्शन की तरक्की में लगा रहता था।"

"उसकी ज़िन्दगी एक सच्चे फ़िलासफ़र और सच्चे तपस्वी की सी कठोर ज़िन्दगी थी।" हुकूमत के तरीकों में से उसने बेशुमार बुराइयों को दूर किया। प्रजा के ऊपर टैक्सों का भार बेहद कम कर दिया। अपने इन्साफ़ और निष्पक्षता के लिये वह इतिहास में मशहूर है। तख़्त पर बैठते ही सबसे पहले उसने यह हुकुम दिया कि साम्राज्य भर में सब धर्म वालों के साथ एक सा उदारता और निष्पक्षता का व्यवहार किया जावेगा। इन सब बातों से बढ़कर उसने अपने दरबार के अन्दर सम्राट हर्षवर्धन, सम्राट अकबर और सम्राट दारा की तरह, सब धर्मों के विद्वानों को जमा करके यूनान के नये अफ़लातूनी दर्शन (Neo Platonic Philosophy) और दुनिया के उस समय के सब धर्मों की अच्छी अच्छी और हितकर बातों को लेकर एक समन्वय पैदा करने की वह कोशिश की जिसके बारे में कहा गया है कि "दुनिया के इतिहास में (धार्मिक) समन्वय की उससे ज़्यादह ज़बरदस्त कोशिश कभी नहीं की गयी।"*

## धर्म की कसौटी

किसी भी धर्म का उसके माननेवालों की रूहानी और इख़लाकी तरक़्क़ी में मददगार होना इतना ज़्यादह इस बात पर निर्भर नहीं होता कि वह धर्म परमेश्वर की किस रूप में पूजा करता है, जितना इन बातों पर कि उस धर्म के अन्दर दिल की सफ़ाई को कितना महत्व दिया जाता है, आत्म संयम और सदाचार का उसमें क्या स्थान है और और उसके माननेवाले मानव प्रेम से कहां तक ओत प्रोत हैं!*

इस लिहाज़ से ईरान का मिश्रीधर्म दुनिया के बड़े से बड़े धर्मों में से था। उसने कम से कम एक हज़ार साल तक जहालत में डूबे हुए करोड़ों इन्सानों का बड़े से बड़ा उपकार किया।†

---

* Encyclopeadia Brittanica, Article on Julian.

† पण्डित जी की शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तक "महात्मा ज़रथुस्त्र और ज़रथुस्त्री धर्म" नामक पुस्तक का कुछ अंश—सम्पादक

# एक कविता

श्री कमल कुलश्रेष्ठ एम० ए०

हज़ारों ही पतिंगे देखते ललची निगाहों से,
नहीं आती किसी की याद तितली को नहीं आती।
हज़ारों तितलियां आतीं, हज़ारों तितलियां जातीं
नहीं आती किसी की याद फूलों को नहीं आती।
हज़ारों फूल मुस्काते हज़ारों फूल मुरझाते
नहीं आती किसी की याद मधुवन को नहीं आती।
पहिनकर रंग बिरँगे पट हज़ारों बाग मुस्काते
नहीं आती किसी की याद मधुऋतु को नहीं आती।
हज़ारों इन्द्र-धनुषी मधुऋतें गातीं पिकी स्वर में
नहीं आती किसी की याद प्रलयों को नहीं आती।
हज़ारों ही प्रलय आते हज़ारों ही प्रलय जाते
नहीं आती किसी की याद सैनिक को नहीं आती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कस्तूरबा ग्राम सेवा मंडल की नयी योजना

कुमारी मृदुला साराभाई

अपने उद्देश्य पूर्ति के लिये और परिणाम तक पहुंचने के लिये यह ज़रूरी है कि कार्य 'सर्वदेशीय-प्लैनिंग-संयोजन से शुरू किया जाय। मैडिकल, वैद्यकीय या तालिमी योजनायें तो सिर्फ़ ध्येय सिद्धि के साधन हैं। 'स्त्री और बाल हित' की प्रवृत्तियों को आरम्भ करने का मतलब सिर्फ़ सहायता पहुँचाना ही नहीं है, बल्कि उन गुणों को पैदा करना है, जिससे वे अपनी और समाज-हित की रक्षा कर सकें। अर्थात् वे अपनी ज़रूरतों को स्वयम् ही पूरा कर सकें। वे स्वावलम्बी नागरित्व की सर्वशक्ति के लिये ज़रूरी गुणों का विकास कर लें। इन २५ वर्षों से पूज्य गांधी जी के नेतृत्व में जिन उसूलों पर जन-विकास का कार्य चल रहा है, और जिसे जनता ने अपनाया है, उसी में घुल-मिल जाँय, ऐसी रीति नीति से हमें कार्य करना चाहिए।

सामाजिक कार्य दो पहलुओं को ध्यान में रखकर किया जा सकता है। एक तो दुखी, पीड़ित, या संकट ग्रस्तों को सामयिक या स्थायी सहायता पहुँचाना और दूसरे दुख या संकट लानेवाली बातों को खोजकर, उन्हें दूर करने का उपाय सोचना। दूसरे में संशोधन कार्य दृष्टि की ज़रूरत है। इस बारे में गांधीजी ने कहा है कि "चर्खा अगर किसी विधवा ग़रीबिनी के हाथों चलता हो तो वह उसे रोज़ी देता है और अगर किसी जवाहरलाल जैसे के हाथों से चलता हो तो वह भारत की आज़ादी का ज़रिया हो सकता है।"

'स्त्री और बालहित' का कार्य आज वर्षों से कई जगहों पर चल रहा है। और इस बारे में लोगों के विचार भी बदल गये हैं। वे मैटरनिटी होम, प्रसूति-सहाय, विधवा-उद्धार वग़ैरह कार्य की ज़रूरत महसूस करते हैं। इसके लिये वे धन देने के लिये भी तैयार हैं। मगर आरोग्य संरक्षण के लिये व्यायाम-केन्द्र, आरोग्य-भवन, शिक्षा-कार्यालय और कार्यकारी तालीमी केन्द्र वग़ैरह की ज़रूरतों को समाज ने अभी पूरी तरह अनुभव नहीं किया है। समाज की कई ऐसी बातें हैं, जो नये सिरे से कार्य रूप में परिणित करनी पड़ेंगी। साथ ही साथ हमें चालू संस्थाओं की कार्य-नीति में, देहातों को फ़ायदा पहुंचाने के दृष्टिकोण से बहुत कुछ परिवर्तन करना पड़ेगा। जब तक जनसत्तात्मक राष्ट्रीय शासन देश में न हो, तब तक अपने कल्याण की प्रवृत्तियां जनता को ही अपने संगठन द्वारा चलानी होंगी। वर्षों से यही पाठ हमें पढ़ाया जा रहा है। इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर कुशलता और उत्तमता के तत्त्वों को क़ायम रखते हुए किस प्रकार किफ़ायत से ये प्रवृत्तियां चलाई जा सकती हैं, इसका हमें विचार करना है। छोटे से छोटे गांवों में किस प्रकार इन हितों की प्रवृत्तियों को चलायें, इसका मार्ग-दर्शन और प्रेरणा, उनको ट्रस्ट की प्रवृत्तियों से ही मिलना चाहिये।

आज तक हमारी जनसत्तात्मक प्रवृत्तियों के बीच समन्वय नहीं के बराबर रहा है। यही कारण है कि हम अपनी प्रवृत्तियों से पूरा पूरा फ़ायदा नहीं उठा पाये हैं। हमें ध्यान रखना चाहिये कि यही हालत दुहराने का मौक़ा पैदा न हो। तमाम प्रवृत्तियां एक दूसरे की पूरक और सहयोगी होनी चाहियें तभी हम अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये हरएक कमेटी को चाहिये कि अपना काम शुरू करने के पहले उन स्थलों का पता लगाने की कोशिश करे, जहां ये हो सकें।

जहाँ थोड़ा बहुत लोकमत तैयार हो और ट्रस्ट के उद्देश्यों से मिलता जुलता कार्य पहले से हो रहा हो ऐसे केन्द्र में कुछ पूर्ति करके कौनसा काम चालू कराना आसान होगा, यह भी देखना चाहिए—(१) मसलन आदिवासियों के सुभीते के लिये आश्रम चलते हों और उनमें लड़कों की पढ़ाई होती हो, तो वहाँ कन्या छात्रालय भी शुरू किये जा सकते हैं। (२) अगर सात से चौदह साल तक के छोटे बच्चे हों, तो वहाँ नई बुनियादी तालीम की योजना के मुताबिक शिक्षा-पद्धति (तालीमी तरीक़ा) आरम्भ की जा सकती है। किसी जगह नयी पद्धति के मुताबिक मदरसा चलता हो और लड़कियों की तादाद आवश्यकता से कम हो तो उसके कारण ढूंढ़े जा सकते हैं और उन्हें दूर किया जा सकता है। (४) यदि चर्खा संघ केन्द्र चलता हो तो प्रौढ़-शिक्षा, आरोग्य संरक्षण, जारी किया जा सकता है। (५) यदि बेकारी को लेकर स्त्रियों को मजदूरी के लिये दूर दूर भटकना पड़ता हो तो उस हालत को दूर करना ज़रूरी है। इसके लिये ग्राम-उद्योग संघ और इस तरह की दूसरी संस्थाओं की मदद से उद्योग-शिक्षण-केन्द्र सहयोगी उसूलों पर उत्पादन केन्द्र जारी किये जा सकते हैं। (६) साथ ही साथ यदि किसी गांव में छोटा-बड़ा अस्पताल हो तो उसके सहयोग से स्वास्थ्य सेवा का प्रश्न भी अमल में रखा जा सकता है (७) भुखमरी (फाकाकशी), महामारी और ऐसे दूसरे मौकों पर बच्चे और औरतें अगर असहाय अवस्था में हों तो उनके लिये आश्रय-गृह वगैरह खोलने की काफ़ी गुन्जायश है। ये कुछ उदाहरण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विचारों की लुप्त कड़ी

महात्मा गान्धी

"खादी सूत से क्यों ख़रीदना चाहिये, इस विषय में आपका लेख शायद लोगों के ठीक ठीक गले नहीं उतरा है। आपकी दलील का मुख्य ज़ोर आपकी इस राय पर है कि हर एक व्यक्ति को कातना अनिवार्य है और उसके बिना अहिंसक स्वराज्य पाना असम्भव है। आपकी ऐसी राय क्यों बनी यह मुद्दा कहीं भी समझाया नहीं गया है। अतिशु लोगों को वह राय स्वीकार है यह मानकर केवल बार-बार दुहराई गई है। जब तक आप यह नहीं बतलाते कि जिन्हें सूत कताई के बनिस्बत अधिक फ़ायदेमन्द व्यवसाय प्राप्त हैं उनको मिलाकर सभी लोगों को अपनी कपड़े की आवश्यकता का सूत कातने से और अहिंसक स्वराज्य से क्या ताल्लुक़ है, तब तक सूत कताई की बात उन्हें जँच नहीं सकती। इसलिए आपकी दलील की यह लुप्त कड़ी यदि आप आगामी अंक में प्रकट कर सकें और यह बतला सकें कि कताई द्वारा हम अहिंसक स्वराज्य कैसे पा सकेंगे तो ठीक होगा।"

इस बार मैंने अंग्रेज़ी में खुलासेवार लिखना उचित समझा है। अंग्रेज़ी न जाननेवालों में ऐसे बहुत कम लोग होंगे जो उपर्युक्त तथाकथित 'लुप्तकड़ी' को वास्तव में वैसा मानते होंगे, क्योंकि कताई का अहिंसक स्वराज्य पाने से क्या सम्बन्ध है इस विषय में मेरी दलील जानते हैं। स्वराज्य पाने के लिये कोई न कोई कोशिश तो करनी ही होगी, फिर वह चाहे हिंसक हो चाहे अहिंसक। हिंसक कोशिश कैसी होती है उससे हम परिचित हैं। उसके लिये हमें आधुनिक विनाशक तमाम शस्त्रास्त्रों का उपयोग सीखना और तदनुषंगिक कार्रवाई करना अपरिहार्य ही होगा। यह सहज त्याज्य मान ली गई है। वैधानिक आन्दोलन अहिंसक है लेकिन वह कई दिनों पहिले बेकार साबित हो चुका है। जहाँ हमारे विरोधी आधुनिक शस्त्रास्त्रों से पूर्ण सुसज्जित हैं वहाँ उपर्युक्त उपायों से स्वराज हासिल करने की कल्पना करना भ्रममूलक ही है। इसलिए अहिंसक कार्य ही स्वराज्य पाने का एकमात्र मार्ग है। वह कौन सी शिक्षा या कार्य है जिसके द्वारा हम अहिंसक रीति से स्वराज्य पाने के लायक बन सकेंगे? यह बात सिद्ध हो चुकी है कि जब हिन्दुस्तान के घोंघों में तैयार होनेवाले सूती कपड़ों के प्रमुख व्यापार का और उसके आश्रय में चलनेवाले अन्य व्यवसायों का नाश हुआ तभी हिन्दुस्तान की आज़ादी नष्ट हो गई। इसलिए स्पष्ट है कि उस व्यवसाय को और उसके आश्रय में चलनेवाले अन्य व्यवसायों को या अन्य कोई तत्सम अहिंसक व्यवसायों को पुनरुज्जीवित करने की ही कल्पना प्रधान थी। अंग्रेज़ी पद्धति या यों कहिये कि मनुष्य शक्ति के बदले यांत्रिक शक्ति इस्तेमाल करने की आधुनिक पद्धति की नक़ल की जाने लगी थी। मैंने उसमें हिंसा देखी इसलिये अपनी अन्तः प्रेरणा से उसे मैंने फेंक दिया और उसके बदले मनुष्य शक्ति का उपयोग करने का अहिंसक तरीक़ा क़ायम करने की कोशिश की। इन दोनों का संघर्ष अभी चालू है। मेरी राय में अभी ख़त्म होनेवाले जङ्ग ने हिंसा का दिवालियापन सिद्ध कर दिया है। अहिंसा की ख़ास अभिसिद्ध होने को है। पश्चिम की बनिस्बत कुछ अधिक साधन-परिपूर्णता हासिल कर यांत्रिक शक्ति द्वारा हिन्दुस्तान के प्रमुख व्यवसाय का पुनरुज्जीवन असम्भव नहीं। पर उस हालत में हिन्दुस्तान के लोगों की माली हालत आज से विशेष उन्नत न होगी। इस दलील के सिद्धयर्थ मैंने काफ़ी लिखा है जो इस समय पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुका है; यहाँ पर मैं उसे दोहराना नहीं चाहता।

इसलिये हिन्दुस्तान के प्रमुख व्यवसाय को उसके इर्द-गिर्द चलनेवाले अन्य व्यवसाय को पुनरुज्जीवित करने का अहिंसक तरीक़ा यही हो सकता है कि यहाँ के पुरुष, स्त्रियां तथा बच्चे अधिक से अधिक संख्या में सूत कातने लग जायें। इस दृष्टि से यदि सूत कताई को देखा जाय तो चरखा अहिंसा का सर्वोच्च प्रतीक साबित होगा। उसे यदि स्वराज्य पाने का साधन बनाना हो तो उसे सरकार की या अन्य किसी की छत्रछाया में नहीं पनपना चाहिये; बल्कि उसे सरकार का या धनिकों का विरोध सहन करते हुये भी पनपना चाहिये। धनिकों का विरोध इसलिए कि उनका स्वार्थ सूत तथा कपड़ों की मिलों में रहता है। चर्खा देहातों की आम जनता का प्रतिनिधित्व करता है और कपड़े की मिलें उनके मालिकों तथा उनके सदृश्य दूसरे वर्ग विशेषों का।

सम्पादक महाशय का सवाल यह है कि यदि हम मान भी लें कि चरखे द्वारा अहिंसक स्वराज्य मिल सकता है तो भी जो शख़्स उससे अधिक उपयुक्त कामों में व्यस्त हैं या जिसे कातने की अरुचि है उसे भी कातना लाज़िमी क्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना चाहिये ?" इसका जवाब यह है कि न केवल उपयुक्तता की दृष्टि से बल्कि मानस शास्त्र की दृष्टि से भी उसे कातना चाहिये। आज देहातों के ग्रामीण शहरवासियों का इस हद तक अनुकरण करने लग गये हैं कि अपने गाँवों में रहकर अपनी आदत सुधारने के बनिस्बत शहरों के गन्दे गलीकूचों में रहना अधिक पसन्द करते हैं। यदि हर-व्यक्ति अहिंसक तरीक़े से स्वराज्य पाने के लिये रोज़ाना निश्चित समय कताई को देना तय करे तो कताई के लिये अनुकूल वातावरण निर्माण हो जायेगा और आज जैसे खादी एक तिजारत की चीज़ बन गई है वैसी न रहकर वह यदि हरेक की ज़रूरत की चीज़ बन जाय तो फिर उसके मिल के कपड़े की या अन्य किसी कपड़े की स्पर्धा का सवाल ही न रह जायगा और ग़रीब से ग़रीब तथा अमीर से अमीर सभी लोग आसानी से खादी पहन सकेंगे और इस्तेमाल कर सकेंगे। पं० जवाहरलाल नेहरू ने खादी को 'आज़ादी की पोशाक" कहा है वह बिल्कुल यथार्थ है।

[ ग्रामोद्योग पत्रिका ]

# अपराजिता-अनन्त की ओर !

श्री छोटेलाल भारद्वाज

लो जीवन की जर्जर तरनी तूफानों में तैर चली !

(१)

नाविक ! सारे आस पास के कूल किनारे छूट चले,
रोम रोम से महाप्रलय के नव नव निर्झर फूट चले,
हाथों में जर्जर पतवार,
और सामने सिन्धु अपार,
किन्तु तुम्हारा पौरुष—मेरी लहर लहर पर गूँज चले,
लो जीवन की जर्जर तरनी तूफानों में तैर चले।

(२)

पछुताया तूफान उठाकर महासिन्धु ने भी माना,
दो दिन के जीवन में मानव ने न कभी रुकना जाना,
चलना जीवन का व्यापार,
क्या तूफान और क्या ज्वार,
इसी शक्ति पर मथ डाली इस अगम सृष्टि की गली गली,
लो जीवन की जर्जर तरनी तूफानों में तैर चली।

(३)

रवि की अटल-ज्योति शरमाती तरनी की जर्जरता से,
आंख छिपाये फिरती नभ की अनन्तता उस लघुता से।
कंपित रोम रोम कंकाल—
उर में खेल रहा वह व्याल,
जिसकी फुंकारों के बल पर अतल वितल को फोड़ चली,
लो जीवन की जर्जर तरनी तूफानों में तैर चली।

(४)

कौन जानता था यह इतना भय-भूकंप मचायेगी,
शेषनाग की छाती टूटे डंडों से दहलायेगी,
शशि-मुख तारों ने सविलास,
किया बहुत इसका उपहास,
उसके ही बदले में नभ से धूमकेतु बन टूट चली,
लो जीवन की जर्जर तरनी तूफानों में तैर चली।

(५)

नाविक ! सोच समझ कर खेना अब अन्तिम पहुँचाई है,
प्रतिदिन उठनेवाले तूफानों की बेला आई है,
मानव का है मानव-जग
इस भावी का निर्णय पग,
अपराजिता—बढ़ाती, निर्भय हो अनन्त की ओर चली,
लो जीवन की जर्जर तरनी तूफानों में तैर चली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शेष-पत्र

डाक्टर एन० एस० वर्धन

[ गतांक से आगे ]

## तीन

प्रिय.....,

कितनी प्रतीक्षा के बाद आज तुम्हारा पत्र मिला। जाने कितनी बार मैं उसे आद्योपान्त पढ़ गया। यद्यपि पास पास लिखे हुये कई सफ़े तुमने भर दिये हैं फिर भी एक भी शब्द उसमें ऐसा नहीं है जिससे यह ज़ाहिर हो कि एक साधारण परिचित के अतिरिक्त मैं तुम्हारे नज़दीक और कुछ हूँ। क्या जाने कब से मैं इस पत्र का रास्ता देख रहा था। मैंने तुमसे जो प्रश्न पूछा था उसके उत्तर पर मेरे जीवन की अत्यन्त महत्वपूर्ण योजनायें निर्भर करती थीं। तुम जानती हो कि तुम मेरी आशाओं और आकांक्षाओं की केन्द्र हो। तुम्हारी इच्छा में मेरे भविष्य को बना मिटा सकने की शक्ति है। मैंने अपने पिछले पत्र में तुमसे पूछा था—ख़ैर, जाने भी दो!—तुम जवाब देने न देने के लिये मजबूर न थीं। तुम यही जवाब दे सकती थीं कि तुम्हें दुख है, तुम कोई परामर्श नहीं दे सकतीं। लेकिन तुमने मुझे लिखा कि पढ़ना लिखना छोड़कर आजकल तुम्हें बाग़बानी का शौक हो गया है। हाल्म कुरेदते हुये तुमने यह भी लिखा कि बाग़बानी से स्वास्थ्य को बहुत लाभ पहुँच सकता है। क्या तुमने ज़ादिग की मशहूर स्पेनी लोक-कथा पढ़ी है? उसमें एक प्रसंग है कि ज़ादिग की पत्नी अज़ोरा ने जब एक सद्यः विधवा को बाग़बानी करते देखा तो वह आगबबूला होगई। मेरा इस तरह के मूढ़ विचारों पर कोई विश्वास नहीं और उस कहानी के परिणाम की तरह मेरे सेफ़्टी रेज़र से किसी की नाक को ख़तरे की आशंका नहीं। फिर भी इस मामले में मुझे तुमसे शिकायत है और तुम्हीं बताओ कि क्या मेरी शिकायत उचित नहीं है?

इससे यह तात्पर्य न निकालना कि जो कुछ तुम भूल जाना चाहती हो या भूल चुकी हो मैं तुम्हें उसकी याद दिलाना चाहता हूं। मैं केवल तुमसे असली और नकली का भेद जानना चाहता हूं। जानना चाहता हूँ कि वास्तविकता क्या है। और तुम्हीं इस भेद पर रोशनी डाल सकती हो। बोलो, क्या मैं तुमसे इतनी सी बात पूछ सकता हूं? इसका यह अर्थ नहीं कि मैं न्यायाधीश की हैसियत से तुम्हारा फ़ैसला करने बैठा हूं, न यही कि अपने किसी अनावश्यक कौतूहल को शान्त करना चाहता हूँ। मैं केवल इतना चाहता हूं कि वास्तविकता के विपरीत मैं कोई धारणा अपने हृदय में न रखूँ—और बस, वरना बाद में मुझे मानसिक पीड़ा होगी और तुम्हें भी क्लेश होगा। तुमने मुझे सैकड़ों ही पत्र लिखे हैं, प्यार से ओत-प्रोत और जब उन पत्रों से मैं तुम्हारे इस पत्र की तुलना करता हूँ तो स्थिति ही मेरी समझ में नहीं आती। इस परिवर्तन पर तुम्हीं प्रकाश डाल सकती हो। हो सकता है मैंने दो और दो को चार के बजाय बाईस समझ रखा हो। तुम केवल यही बता दो कि इसमें प्रार्थना का कोई प्रश्न नहीं और हर क्रिया के भिन्न भिन्न वाच्य होते हैं और सन्दिग्ध भूत और असन्दिग्ध वर्तमान में क्रिया के रूप बदल जाते हैं और भविष्य के ज्ञान का दावा सदा सच नहीं निकलता—तो मुझे अपने प्रश्न का उत्तर मिल जायगा।

तुमने मेरे ऊपर कितने ही आरोप और कितने ही अभियोग लगाये हैं। ईश्वर जानता है मेरे विचारों, मेरे प्रयत्नों, मेरे रोम रोम और रेशे रेशे में तुम्हारे लिये कितना आदर और कितना सम्मान है। यदि मैंने तुम्हारे पिछले पत्रों का ठीक ठीक आशय न समझा हो और तुम्हारे प्रेम-पूर्ण मीठे शब्दों ने मेरे हृदय में बेजा अभिमान भर दिया हो तो उसका सहज उपाय यह है कि मेरी ग़लती इशारे से बता दी जाय। अन्यथा मैं यह समझने के लिये स्वतन्त्र हूँ कि क्षणिक आवेग में तुमने यह पत्र लिखा है और मैं इसकी उपेक्षा करके बीते हुये दिनों की सुखमय घड़ियों की ही याद करूँ जब तुम अपनी बड़ी बड़ी नीली आँखों से प्यार भरी चितवन मुझ पर डालती थीं और अपनी पतली पतली कोमल उंगलियाँ मेरे बालों में फेरकर स्नेहपूर्ण मीठे स्वर में मुझे 'रिक्की' कहकर दुलराती थीं।

तुम बदल सकती हो, इसकी कल्पना, मैं स्वप्न तक में नहीं कर सकता। फिर भी कुछ व्यक्ति इस परिवर्तन में कोई अनुचित बात नहीं समझते। आज प्यार किया और कल को अजनबी बन गये—और इसमें उन्हें कोई अस्वाभाविक बात नहीं दिखाई देती। यह तो ऐसा ही हुआ कि चांदनी रात में नाचा किये और अंधेरी रात में ठोकरें खाईं। किन्तु बिरले ही व्यक्तियों का ऐसा स्वभाव होता है और वह भी अपवाद की तरह। यह मेरा दुर्भाग्य है कि पुरुषों की अपेक्षा मैंने स्त्रियों में इस तरह के उदाहरण अधिक पाये



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हैं। और तब ऐसा लगता है कि जिसकी सहज ही ट्रैजेडी में अन्त होने की सम्भावना हो ऐसे अभिनय में अभिनेता बनने की अपेक्षा दर्शक बनना ही कहीं अधिक श्रेयस्कर है।

मैं उदाहरण ही देकर क्यों न इसकी विवेचना करूँ। एक अत्यन्त आकर्षक महिला की कल्पना करो जो बहुत सुन्दर हो, जिसके अंग प्रत्यङ्ग खूब सुडौल हों, यौवन चरम उत्कर्ष पर हो, जो बुद्धिमती, मिठबोल और शीलवती हो, जिसमें साहस, विनोद और ऐश्वर्य की आकांक्षा हो और इन व्यक्तिगत गुणों पर चार चांद लगानेवाली अथाह धन सम्पत्ति हो। जिसके व्यवहार में मर्यादा हो और स्वभाव में गहराई के कारण पेचीदगी। विद्या, कला और संगीत आदि में बेहद व्यस्त रहने के कारण और उपयुक्त पात्र के अभाव में जो अविवाहित हो। अनेक व्यक्ति जिसके सम्पर्क में आते हों किन्तु सब उसकी चमक दमक से नतमस्तक और हतप्रभ। उसे उन पर करुणा और दया हो सकती है प्यार नहीं। नारी सगर्व पुरुष के सामने ही सर झुकाना पसन्द करती है। प्रत्येक नारी हृदय की प्रशस्त और प्रशान्त सतह के नीचे एक सरस और उत्कट आकांक्षा अन्दर ही अन्दर प्राणों को व्याकुल करनेवाले प्यार को किसी के चरणों पर न्योछावर करने के लिये मन को मथती रहती है। असंयमित परिस्थितियां उसकी इन्द्रियों को चंचल करती रहती हैं। व्यथा का बोझ उसे आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा देता रहता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रङ्ग, यौवन लोकाचार के बन्धनों को शिथिल करके उसके आवेग को उद्विग्न करने का निरन्तर क्रम बाँधते रहते हैं। स्वभाव में जितनी गम्भीरता होती है और लोकाचार के बन्धन जितने दृढ़ होते हैं संयम का बाँध कभी कभी यकायक उतने ही वेग के साथ टूट पड़ता है। नारी के असंयम के इस अथाह प्रवाह में दुनिया के समस्त पुरुष वर्ग को बहा ले जाने की शक्ति होती है। इस महिला के जीवन में भी किसी फूलती हुई सुनहली सन्ध्या के योग में अचानक एक नया अध्याय खुल जाता है—संयम का नहीं असंयम का! ऊषा की अरुणिमा के विस्तार में वह महिला अपनी रात की प्रगल्भता को जीवन का एक अनित्य पृष्ठ समझकर ग्लानि के साथ उलट देती है। उसमें उसकी जीत नहीं हार का लेखा होता है। जिस व्यक्ति के सम्मुख उसने अपनी हार का परिचय दिया है उससे उसे घृणा हो जाती है। किन्तु दूसरी ओर वह मन्द बुद्धि पुरुष सूर्य की किरणों के प्रकाश में रात में अनायास पाये हुये प्रेम के ख़ज़ाने का तख़मीना लगाकर हतबुद्ध और आश्चर्य चकित हो जाता है। उसका छोटा सा मन-प्राण कल्पना के पंख लगाकर सातों आसमानों की परिधि नापने लगता है। वह हर्षोन्माद से भर जाता है। उसके पैर ज़मीन पर नहीं पड़ते। सड़कों पर चलते फिरते मनुष्य उसे दरख़्तों की तरह लगते हैं। वह अपने मन में फूला नहीं समाता। उसकी पलकों के भीतर नयनों के अन्तर्तम में ऐसी मूर्ति आसीन होती है जिसने असीम प्रेम की ताली से उसके जीवन का द्वार खोल दिया है। पूर्व रात्रि की स्मृतियों से हतप्रभ जब वह दोबारा उस महिला के सामने जाता है तो हैरान रह जाता है। मानसिक आघात से वह उसी तरह सुन्न हो जाता है जिस तरह गरम पानी की झील में तैरता हुआ कोई व्यक्ति बरफ़ के ढेके से टकराकर सुन्न हो जाय। मैं तुम्हीं से पूछता हूँ प्रेम के इस पटाक्षेप पर तुम क्या उपसंहार लिखोगी?

कभी कभी दक्षिणी बातास हृदय को गुदगुदाकर पागल कर देता है। अगणित शताब्दियों के करोड़ों रोमांच अस्तित्व के मौन युग में नीरव बिखरे पड़े हैं। धरती पर जिस जगह हमारा पैर पड़ता है कौन कह सकता है कि उस जगह किसी का भग्न-प्यार उससे भरता नहीं पड़ा है और जो हमारी ठोकर से मसल उठता है और जिसकी कराह हमारी पद-चाप के साथ खो जाती है। इसीलिये मनीषी धरती पर हौले हौले पैर रखते हैं। दक्षिणी समीरण का झोंका यदा कदा इन बिखरे रोमांसों के किसी तार को छूकर झंकृत कर देता है जिसकी प्रतिध्वनि सहानुभूति और प्यार की भूखी किसी स्त्री की एकाकी आत्मा को तड़पा देती है। वह आत्मविह्वल हो जाती है और काग़ज़ क़लम लेकर लिखती है, "……मेरे पास आओ। मैं अपने प्यार से तुम्हें निहाल कर दूंगी" और इस पत्र को अपने गन्तव्य की ओर गये अभी २४ घण्टे भी नहीं बीतते कि इस स्त्री की भावना बदल जाती है। वह अपने निमन्त्रण की बात को उसका महत्व भूल जाती है। पत्र पानेवाला यदि निर्मूर्ख नहीं है तो उसे अपने उद्वेग को दबाकर कल्पना से लेना चाहिये कि उसके सौभाग्य का टिमटिमाता तारा उदय होकर सुबह की सुफ़ैदी में डूब चुका।

मानव हृदय के इस विलक्षण पहलू का, सम्भव है हमारे निकट कोई मूल्य न हो। मैं जानता हूं तुम्हें ऐसे पात्रों से कोई सहानुभूति नहीं। मुमकिन है ऐसे उदाहरणों द्वारा अपने मन्तव्य की पुष्टि करने की मेरी को तुम अनैतिक और अक्षम्य समझो। मैं यह भी जानता हूँ तुम कहोगी कि व्यक्ति के अन्दर इस तरह का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अकृत्रिम होता है और ऐसे पात्र वास्तविक कम काल्पनिक अधिक होते हैं। किन्तु क्या इस तरह के असंगत उदाहरणों का कोई मूल्य नहीं होता? मैं मानता हूं मानव स्वभाव के अन्दर यह आश्चर्यजनक कुटिलता केवल परस्पर विरोधी भाव की दृष्टि से ही हमें अमानुषिक लगती है और ऐसे व्यक्तियों के प्रति हमारे मन में केवल कौतूहल या नफ़रत की भावना होती है। किन्तु क्या यह सच नहीं है कि मानव प्रकृति के अन्दर यह निरन्तर द्वन्द्व सभ्यता के इस संघर्षकालीन मनोवैज्ञानिक युग में अधिकाधिक विस्तार और आकार ग्रहण कर रहा है? समाज की अग्रगण्य श्रेणी में क्या आज अधिकांश स्त्रियाँ और पुरुष flirtation की exchange value के क़ायल हैं?

इसी बात को ज़रा दूसरी तरह से समझने की हम कोशिश करें। कल्पना करो--आज किसी व्यक्ति के प्रेम में हम पागल हैं और कल उसी के प्रति हमारे मन में घोर उदासीनता छा जाती है। यह दूसरी बात है कि वह अपनी इन भावनाओं की नुमाइश न करे अथवा इस परिवर्तन का सन्धिकाल ज़रा लम्बा हो; किन्तु क्या यह उचित नहीं है कि हर व्यक्ति पहले अपने दिल और दिमाग़ की कैफ़ियत से परिचित हो? इसलिये नहीं कि परिवर्तन और चित्त की अनिश्चित वृत्ति से दुर्बल व्यक्ति को चोट पहुँच सकती है, बल्कि इसलिये कि कोई मूर्ख मनुष्य अनुभव की ख़रीदारी में अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व और अस्तित्व तक को नष्ट कर सकता है। उसके दिल को इतनी ठेस लग सकती है कि वह कोई संघातिक काम कर बैठे। और इसीलिये यह बेहतर है कि हर शख़्स पहले अपने दिल को टटोल ले कि प्रेम के सौदे में वह अधिक से अधिक क्या दे ले सकता है। अन्यथा भ्रम ही भ्रम में कोई व्यक्ति बहुत बड़ी क़ीमत आँककर उसके पीछे सर्वस्वहीन दिवालिया हो सकता है। क्या इसकी अपेक्षा यह कहीं अधिक अच्छा नहीं है कि हम क़दम उठाने से पहले अपने सम्बन्ध में यह फ़ैसला कर लें कि हम इससे अधिक मूल्य न दे सकेंगे। हमें अपनी दुर्बलता और अपनी परिमितता का बोध हो और हम यह निश्चय करलें कि हम अपनी कमज़ोरी से ही निमन्त्रित होंगे। अपने पथ-गामी को भी हम अपनी परिस्थिति साफ़ साफ़ बता देंगे। यदि हम ऐसा नहीं करते तो दूसरा व्यक्ति धोखा खा सकता है। वह हमारी सामर्थ्य का ग़लत अन्दाज़ा लगाकर हमारे लिये इतना बड़ा त्याग कर सकता है कि जिससे सारा जीवन अज्ञात भँवर में पड़ सकता है और यदि वह इस विश्वास में कोई महान त्याग करता है कि उससे हमें सन्तोष और अभिमान होगा तो हमारी परेशानी कितनी अधिक बढ़ सकती है?

यदि तुम किसी को अधिक से अधिक सुख दे सकती हो तो यह न भूलो कि तुम उसे अधिक से अधिक दुख भी पहुंचा सकती हो। तुम्हारी मरज़ी तुम किसी पर अनुग्रह करो या न करो। इसके लिये कोई तुम्हें दोष नहीं दे सकता और यदि इससे किसी को दुख पहुंचे तो मजबूरी है। उसमें तुम्हारा क्या अपराध! ऐसे व्यक्तियों से किसे सहानुभूति हो सकती है जो पहले तो युद्ध का आवाहन करें और फिर उसके बाद ज़ख़्मों को देख देखकर रोयें और सच तो यह है ज़रा सी चोट से पिनपिनाने वालों के घाव जल्दी ही भरते हैं, वे देर तक हरे नहीं रहते। लेकिन, हाँ, परिस्थिति उस समय बदल जाती है जब एक स्त्री अपनी मरज़ी से किसी को अबाध और अविरल प्यार देती है। वह अपने प्यार की देन में किसी दुनियावी भावना से प्रेरित नहीं होती बल्कि अपने दिल की मजबूरी से, अपनी रुझान से, अपनी स्वेच्छा से वह अपने प्रिय का सम्मान और संवरण करती है, उसकी कमियों और कमज़ोरियों को अपनी शक्ति और सद्भावना से ढँकती है, उसे धूल से उठाकर अपने समकक्ष खड़ा करती है, अपनी हृदय वीणा में उसके प्यार की मृदुल रागिनी को झंकृत करती है, उसकी आँखों में आंखें देकर मुसकाती है और कहती है—"प्रिय! प्रलय के दिन तक मैं तुम्हारी पथगामिनी हूँ! मैंने तुम्हें अपने हृदय पाश में बाँध लिया है तुम उसे तोड़ नहीं सकते!" और इसके बाद यकायक वह अपना प्यार वापस ले लेती है। नारी-सुलभ-चंचलता के अतिरिक्त इसे और क्या कहा जाय? 'चंचलता' के सिवाय कोई दूसरा शब्द तुम इसके लिये बता सकती हो? सच तो यह है कि उस नारी ने कभी प्यार दिया ही नहीं और जो वस्तु उसने दी ही नहीं उसकी वापसी का स्वांग कैसा? वह यह कह सकती है कि बरबस वह उस व्यक्ति के प्रभाव में आ गई थी। वह अपने अविचार, अदूरदर्शिता और दुर्बलता का रोना रो सकती है। वह यह भी कह सकती है कि वह अपनी ही भावनाओं से धोखा खा गई। किन्तु इस तरह का बहाना दिल को भले ही हल्की सी तसल्ली दे ले किन्तु उससे आत्मा अपने नैतिक अपराध से तो मुक्त नहीं हो सकती। स्त्री का मन अन्दर ही अन्दर अपने अपराध और अपनी हानि को स्वीकार करता रहता है किन्तु अपनी स्वामिनी के लिहाज़ और परिस्थिति से विवश रहता है।

मुझे ग़लत न समझना। अपने आप को दोषी स्वीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


करना बड़ी हिम्मत का काम है। जीवन के व्यावहारिक मामलों में हम अगणित ग़लतियाँ करते हैं। वैसी ही ग़लतियाँ हम अपनी भावनाओं के सम्बन्ध में कर सकते हैं। यदि हम समझें कि हम प्यार करते हैं और उसके बाद हमें पता चले कि हमें ग़लतफ़हमी थी तो उचित और सदय रास्ता यही है कि हम अपनी भूल का संशोधन कर लें। किन्तु यदि हम समझ बूझ कर प्यार दें, उस प्यार का पोषण करें, उसके लिये असीम त्याग करें और उसकी रक्षा में ज़मीन आसमान एक कर दें, वर्षों उसके लिये कष्ट सहन करें—तब फिर उस प्यार को हम कैसे वापस ले सकते हैं? जिस व्यक्ति के साथ दो दिन पहले नरक तक में जाने की तत्परता थी अब उसके साथ स्वर्ग-सृजन करने में भी घृणा! —ऐसी भावना को कोई क्या कहे?

तुम कहोगी ईसा का एक शिष्य पीटर था किन्तु पीटर को भी अपने आप से सन्तोष नहीं था और फिर अपने प्रभु के साथ विश्वासघात करने के अतिरिक्त वह कायरता का भी दोषी समझा जाता है।

## चार

प्रिय……,

तुम्हें पिछला पत्र लिखने के बाद मुझे नीचे लिखी पंक्तियाँ याद आईं—

"Overmuch of counsel—whereby Love
Grows stubborn, and recoiling unsuppress
Within, devours the heart within the breast."

और कवि की ये पंक्तियाँ अनेक अर्थों में सही हैं।

अपने मित्रों से इधर मुझे बहुत से ऐसे पत्र मिले हैं जिन्हें पढ़कर मुझे सचमुच अचम्भा हुआ है। मैंने अपने पिछले पत्र में तुम्हें इस बात का संकेत किया था कि स्त्रियों का दिमाग़ कुछ इस तरह काम करता है और उनके विचार कुछ इतनी जल्दी जल्दी बदलते हैं कि बाज़ दफ़ा बड़ी हैरत होती है और ऐसा लगता है कि मनु, ताओ, जरथुस्त्र और मूसा से लेकर शापनहायर और नीत्शे ने स्त्रियों की चलचित्तता का जो तख़मीना लगाया है वह कुछ बहुत नामुनासिब नहीं है। और यह भी एक संयोग की बात है कि जिस दिन मैंने वह पत्र तुम्हें लिखा उसी दिन मुझे तुम्हारा पत्र मिला। विश्वास करो यदि इस तरह का पत्र मैंने किसी अपने मित्र को लिखा होता तो उसके हाथों मैं फांसी पाने का अधिकारी होता। प्रिय का पत्र पाकर तबियत को जितनी प्रसन्नता होती है उसका अनुमान सहज नहीं। लिफ़ाफ़ा हाथ में लेते ही मन में उत्सुकता और झिझक दोनों पैदा होती हैं। उत्सुकता इसलिये कि पत्र के अन्दर प्रिय की कुशलता और प्यार के दो शब्द होंगे और झिझक इसलिये कि सम्भव है पत्र बेमन से लिखा गया हो और प्रिय के सम्बन्ध में कोई अप्रिय समाचार हो। झिझक और उत्सुकता के इस द्वन्द्व के पश्चात् जब मैंने तुम्हारा पत्र खोला तो मुझे उसके भीतर से मिले—पत्थर।

पत्र के प्रारम्भिक डेढ़ पृष्ठ क्या थे—ज़हर से बुझे हुये तीर! पढ़कर चेहरा तमतमा उठा! मेरी भर्त्सना के बाद तुमने यह लिखना भी आवश्यक समझा कि तुम्हारी ज़िन्दगी बड़े लुत्फ़ से कट रही है। पत्र के अन्तिम डेढ़ पृष्ठ क्या थे—एक एक शब्द थप्पड़ की तरह मुँह पर लग रहा था। मैं समझता हूँ पत्र के बीच का हिस्सा तुमने केवल इसीलिये जोड़ा है कि मैं तुम्हारी सुखमय स्थिति के साथ अपनी तुलना करके तुम्हारे गुस्से के वज़न को महसूस कर सकूँ। मैं नम्रतापूर्वक स्वीकार करता हूँ कि मैंने तुम्हारे गुस्से की मात्रा को महसूस कर लिया। ईश्वर जाने अब कब तुमसे प्रत्यक्ष मिलना हो सकेगा इसीलिये हृदय में जो बहुत सी भावनायें उठ रही हैं उनमें से कुछ को मैं तुम्हारे सामने रखने का साहस करूंगा।

इसके पूर्व भी मैं तुमसे कह चुका हूँ और यह हज़ारवीं बार तुमसे दोहरा रहा हूं कि मैं एक अत्यन्त अयोग्य व्यक्ति हूँ। मैंने सदा ही तुम्हारे जी को बहुत दुखाया है। शुरू शुरू में तुमने नम्रता से मुझे यह बताया कि मेरा व्यवहार नितान्त अनुचित है। फिर तुमने इशारतन् मुझे यह समझाने की कोशिश की कि मेरे बाज़ बाज़ अपराध तो बर्दाश्त की सीमा पार कर जाते हैं। अन्त में हारकर तुम यह लिखने के लिये विवश हुईं कि मेरी मित्रता ख़त्म कर देना तुम्हारे लिये कठिन नहीं है। मैं नम्रता के साथ तुम्हारे अभियोग और तुम्हारे फ़ैसले को स्वीकार करता हूं। यह बिलकुल उचित और न्यायपूर्ण है कि अपराधी को पहले सज़ा दे दी जाय और फिर उसे सफ़ाई पेश करने के लिये कहा जाय। मैं इतिहास से इसकी न्याय्यता की नज़ीरें पेश करके तुम्हें थकाऊंगा नहीं। मैं केवल अभियोग के सम्बन्ध में ही कुछ प्रार्थना करूंगा।

तुम्हीं बताओ मेरा जुर्म क्या है? अपने किसी पत्र में तुमने मुझसे एक प्रश्न पूछा था। मुझे विश्वास है प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पूछकर तुम उसे स्वयं भूल गईं और उसके याद दिलाने की अब ज़रूरत ही क्या है! किन्तु मैंने एक मूर्ख की तरह समझा कि तुम वास्तव में उसका उत्तर चाहती हो। मैंने अपना कर्तव्य समझा कि मैं तुम्हें उत्तर दूं। तुम्हारे प्रश्न से मुझे असीम प्रसन्नता हुई और अपनी मूर्खता में मैंने सोचा कि मेरे उत्तर का तुम स्वागत करोगी। मैंने उत्तर भेजा और उसके परिणाम में तुम्हारा यह पत्र है। तुम कहती हो तुम्हारे सम्मान को चोट पहुँची है और मेरे ऊपर तुम्हारा विश्वास नहीं रहा। मैं समझता हूं मेरी क्षमा याचना का भी इस समय कोई मूल्य नहीं।

सज़ा तो मुझे मिल ही चुकी है और मैं केवल सज़ा की कमी की याचना कर रहा हूं। तुम्हारा इलज़ाम है कि तुमसे मिलने का जो तरीक़ा मैंने बरता वह अनुचित था। तुम कहती हो मैंने अपराध किया और जानबूझ कर अपने वादे को तोड़ दिया। यह अफ़सोस की बात है और मेरे अन्दर भी आत्मसम्मान है जो मुझसे कहता है कि मैं अपने वादों पर क़ायम रहूँ। वादा पूरा करने के लिये ही किया जाना चाहिये, तोड़ने के लिये नहीं! इस सम्बन्ध में तुम्हें जो मनस्ताप पहुंचा है उसके साथ मेरी गहरी सहानुभूति है। किन्तु मुझे स्वप्न में भी इसकी कल्पना न थी कि अपने उत्तर से मैं तुम्हारी अत्यन्त कोमल भावनाओं पर आघात पहुँचाऊँगा। तुम कहती हो इस सम्बन्ध में तुम्हारी आत्मा अपराधी की तरह हो गई है और अपराधी आत्मा के बराबर कष्टकर और असहनीय साथी कोई दूसरा नहीं।

अपने इसी पत्र में, मुझे भला बुरा कहने के बाद, तुमने लिखा है कि तुम जीवन में खूब रस ले रही हो। मैं जानता हूं मेरे अपराध के प्रति तुम्हारी असहनीय भावना है और शायद यह रस लेने का पहलू तुम्हारे आहत सम्मान पर मलहम का काम कर रहा है। जान पड़ता है इससे तुम्हारी आत्मा को काफ़ी सन्तोष पहुँचा है। अन्यथा क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि जिस समय तुमने मुझे यह पत्र लिखा उस समय क्या तुम्हारे विवेक और तुम्हारी सद्भावना ने तुम्हारी आत्मा के सामने मेरे पक्ष में एक शब्द भी नहीं कहा? जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं यह कभी अधिक पसन्द करता कि इस तरह का पत्र लिखने से पहले मेरे दाहिने हाथ में लकवा मार जाता। मैंने तुम्हारी इच्छा की पूर्ति करने में ही तुम्हारा अनुग्रह खो दिया। मैं समझता हूं तुम्हारी ख़फ़गी और तुम्हारी लड़ाई मेरे साथ नहीं है; मेरी अपेक्षा वह तुम्हारी अपनी आत्मा के साथ अधिक है।

तुम कहती हो यह कोई बहुत उचित बात नहीं है कि कोई व्यक्ति किसी संदिग्ध मूल्य पर अपने जीवन के समस्त सुख की बाज़ी लगादे। मैं तुमसे बिलकुल सहमत हूँ। यह दूसरी बात है कि हम उस संदिग्ध मूल्य के फ़लसफ़े पर यह समझकर ग़ौर कर सकते हैं कि उसका मूल्य चुकाना सम्भव नहीं। खतरा तब होता है जब किसी समस्या का हल दिखाई देने लगे। बहुधा बिलकुल ग़लत बुनियादों और ग़लत दलीलों से हम ऐसे हल पर पहुंच जाते हैं। रेखागणित के प्राबलेम का हल निकालना बिलकुल एक भिन्न वस्तु है। रेखायें सीधी होती हैं और आकृतियाँ भी समकोण होती हैं। किन्तु देहधारी प्राणी निर्जीव नियमों से बँधे नहीं होते और इसीलिये उनका अध्ययन अधिक पेचीदा और उनका हल अत्यन्त आश्चर्यजनक होता है। उनके हल में सैकड़ों ही शाखायें-प्रशाखायें होती हैं। दूर से वह सब सीधा, समकोण और अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है। अपनी उत्सुकता में हम उसके ज़रा अधिक निकट पहुँच जाते हैं। निकटता हमारी विवेचना शक्ति को क्षीण कर देती है। हम महज़ ऊपर से देख कर ऐसे नतीजे निकाल लेते हैं जो सर्वथा विश्वसनीय नहीं होते और यह इसलिये होता है कि हमारी इन्द्रियां हमारे ज्ञान पर परदा डाल देती हैं। हमें ऐसे अणु-परिमाणुओं पर निर्भर करना पड़ता है जिनका कोई निश्चित मूल्य नहीं और जो हर घण्टे और हर क्षण बदलते हैं।

सम्भव है, तुम यह कहो कि जब मैं तुम्हें मात्रा, अणु, परिमाणु, रेखा और आकृति कहकर सम्बोधन करता हूँ तो फिर मुझे इस बात का ख़याल ही नहीं करना चाहिये कि तुम मुझसे प्रेम करती हो या नफ़रत। तर्क को वितण्डावाद तक पहुंचाने का तुम्हें अधिकार है किन्तु जीवन के सिद्धान्त सर्वथा तर्क से ही हल नहीं होते। तर्क से ऊपर भी एक तर्क है जिसे कहते हैं दया और यदि तुम्हारे अन्दर उसका कुछ भी अंश शेष हो तो मुझ पर, और मेरी परिस्थिति पर ज़रा ध्यान देना और जब मेरा यह पत्र तुम्हें मिले उस समय तक यदि अपने अभिमान और अपने विवेक के साथ तुम्हारा समझौता हो चुका हो, और जितनी सहानुभूति तुम्हें अपने अभिमान के प्रति है उसका शतांश भी तुम मुझ एकाकी अभागे के प्रति दिखा सको, तो मेरे जीवन की सारी समस्याएं ही हल हो जांय। क्या एक नम्र उपासक के लिये अपने उपास्य के प्रति अपनी अगाध और दृढ़ भक्ति का आश्वासन देना भी अपराध है! गुज़रे ज़मानों में तो ऐसी बात नहीं थी। तब तो मन के मन्दिर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


में भक्त अपने उपास्य की पूजा करते थे। किन्तु शायद आजकल मन्दिरों का नहीं मैख़ानों का युग है और शायद कवि की नीचे लिखी पंक्तियों में ही तथ्य हो—

"And this I know : whether the one
True Light
Kindle to Love, or Wrath consume me quite
One Flash of It within the Tavern caught
Better than in the Temple lost outright."

इतना छोटा सा जीवन और तूफ़ानों और इतनी परेशानियों से भरा हुआ कि किसी अनिश्चित और संदिग्ध बात पर अपने सर्वस्व की बाज़ी लगाने के लिये किसी पर ज़ोर नहीं दिया जा सकता, फिर चाहे वह संदिग्ध बात कितनी ही आकर्षक क्यों न हो। अत्यन्त रमणीक झील की चट्टानों से टकराकर चूर होने की अपेक्षा यह कहीं अधिक अच्छा है कि नौका पर सवार ही न हुआ जाय। ऐसी यात्रा में मज़बूत से मज़बूत नौका की धज्जियां उड़ जाती हैं जबकि झील की प्रफुल्लित तरंगें नौका के आश्चर्यजनक परिणाम पर कौतूहल से मुसकराती रहती हैं।

## पाँच

प्रिय.....,

मैं अपना हृदय तुम्हारे सामने खोलकर रख देना चाहता हूँ। मुझे आशा है न तो तुम इसे अपराध समझोगी और न इतना रुष्ट हो जाओगी कि मुझे क्षमा ही न करो। यदि मेरा यह पत्र किसी और के नाम होता तो या तो मैं इतना नापतोल कर लिखता कि मेरे हृदय की चुटीली भावनाओं को कोई शान्ति न मिलती और या मुझे पागल समझा जाता और मेरा नाम मित्रों की सूची से काट दिया जाता। इस समय मेरा जो आपे में नहीं है और तुम्हीं इसके लिये बहुत कुछ दोषी हो। सम्भव है तुम यह कहो कि सभी पुरुष इसी तरह स्त्रियों पर इलज़ाम लगाया करते हैं। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि तुम्हीं ने ज्ञान देकर मेरे मन को डांवाडोल किया है? यह मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरी ही प्रार्थना पर और मुझे ही अनुग्रहीत करने के लिये तुमने यह किया है। मेरा अनुमान है आदम के अनुरोध पर ही यही हव्वा ने किया होगा। आदम ने ही उसे पेड़ पर चढ़ाया था और चढ़ाकर फिर इस तरह दूसरी ओर देखने लगा था मानो उसे इसकी याद ही नहीं रही और जब उस नेक स्त्री ने दरख़्त से उतरकर अपने परिश्रम का फल आदम के सामने पेश किया तो उस अदि पुरुष ने आनाकानी शुरू की। आरोप का उत्तरदायित्व लेने से पुरुष वर्ग शायद सदा से इसी भाँति कतराता आया है।

जिस बात ने मेरे क्रोध को बढ़ाया वह तुम्हारा भेजा हुआ पुस्तकों का पारसल है। मेरे सूनेपन के भार को कम करने के लिये ही सम्भवतः तुमने ये पुस्तकें चुनकर भेजी थीं। चूंकि पुस्तकें मेरे पास सीधी पुस्तक विक्रेता के यहां से आईं इसलिये मैं कह नहीं सकता कि तुमने उन्हें पढ़ा है अथवा नहीं। पुस्तकें बिलकुल नई हैं। यहाँ इस तरह की सद्यः प्रकाशित पुस्तकें देखने तक को नहीं मिलतीं। पारसल खुलते ही मित्र लोग भूखे बाघ की तरह उनपर टूट पड़े। नये साहित्य की चाह दुनिया से अलहदा जितनी इस बस्ती में है उसकी तुम कल्पना तक नहीं कर सकतीं। मित्रों ने पढ़ने के बाद बिना किसी टीका टिप्पणी के जब पुस्तकें वापस कीं तो मैंने देखा कि कई पुस्तकों के पृष्ठ फटे हुये हैं। अपने बन्धुओं के इस व्यवहार पर मैं मनमार कर चुप हो गया। अवकाश मिलने पर मैंने भी इनमें से कुछ पुस्तकें पढ़ीं। सच मानो यदि इन पुस्तकों के लेखक मुझे मिल जाते तो मैं उनकी खूब ख़बर लेता, और चूंकि यह सम्भव नहीं है लिहाज़ा मैं सारा गुस्सा तुम्हीं पर उतार रहा हूँ। उक्त पुस्तकों में से एक उपन्यास पढ़कर तो मुझे बहुत आवेश आया। उपन्यास की लेखिका एक महिला है। एक विशेष शैली में उसने पुरुषों के स्वभाव का चित्रण किया है। उपन्यास पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि लेखिका को पुरुषों के सम्बन्ध में बहुत अधूरा ज्ञान है और या उसे पुरुषों से दुःखजनक व्यक्तिगत अनुभव हुये हैं और चन्द अशिष्ट पुरुषों के कारण वह सारी पुरुष जाति की भर्त्सना करने पर तुल गई है! हरबर्ट स्पेन्सर ने एक जगह लिखा है कि स्त्रियों में न्याय की भावना नहीं होती और यदि स्वयं स्पेन्सर में न्याय की भावना होती तो उसे लिखना चाहिये था कि पुरुषों में भी अपेक्षाकृत न्याय की भावना कम होती है। सच तो यह है पुरुषों ने स्त्रियों के सम्बन्ध में अनेक अप्रिय और असत्य बातों का प्रचार किया है, यह दुर्भाग्य की बात है कि आधुनिक नारी पर इस तरह की कटूक्तियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उपरोक्त उपन्यास में दो स्त्रियों की कथा है। दोनों ही उपन्यास की प्रधान पात्री हैं। लेखिका का प्रयत्न है कि पाठक दोनों ही पात्रियों की प्रशंसा करें। किन्तु चरित्र चित्रण दोनों ही पात्रियों को पाठकों की दृष्टि में निन्दनीय बना देता है। कहानी अधिकतर इन में से एक ही स्त्री के जीवन पर प्रकाश डालती है इसलिये मैं इसी एक को प्रमुख पात्री मानकर आलोचना को आगे बढ़ाऊँगा। लेखिका अपनी इस पात्री से अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट मालूम होती है। वह अपनी जान में एक ओर तो एक आदर्श स्त्री का चित्र पेश करती है और दूसरी ओर वह समाज की हर श्रेणी के पुरुषों की निन्दा करने का कोई अवसर नहीं खोती। लेखिका की उपरोक्त पात्री नवयुवती, सुन्दर, चतुर, ग्रेजुएट और फ़ैशन की पुतली है। सुरुचि और वैभव से उसका सम्पन्न जीवन रसपूर्ण है। इस तरह की तरुण महिला से यदि बहुत से व्यक्ति विवाह करने की आकांक्षा रखें तो इसमें न आश्चर्य की बात है न अपराध की। यूं तो पुरुषों के चित्त को लुभाने के लिये उपरोक्त समस्त विशेषताओं की कोई खास आवश्यकता नहीं। इनमें से एक ही विशेषता पुरुष वर्ग को भालू की तरह नचा सकती है। इतिहास में अनेकों उदाहरण ऐसे मिलते हैं जब साधारण से साधारण स्त्रियों ने अत्यन्त असाधारण पुरुषों के चित्त को लुभाया है। स्त्री अपने आपमें एक आकर्षण है। उपरोक्त पात्री इतनी सर्वगुण सम्पन्न होते हुये भी स्वार्थ की साकार प्रतिमा है। इसलिये यह ज़रा कुछ असमान्य बात मालूम होती है कि इस तरह की सर्वगुण सम्पन्न महिला का चित्रण निष्ठुर और स्वार्थी के रूप में किया जाय और फिर उसे परिपूर्ण स्त्री कहकर उसका प्रदर्शन किया जाय। उम्र में वह काफ़ी बड़ी है, स्वाधीन और समझदार है, उसे अपने भले बुरे का पूरा ज्ञान है किन्तु फिर भी वह सदा एक न एक पुरुष को अपनी ओर आकर्षित किये रहती है और इनमें से जब कोई उससे विवाह का प्रस्ताव करता है तो वह उसे स्पष्ट शब्दों में सूचित कर देती है कि उसके प्रस्ताव से उसने अपमानित अनुभव किया है। आश्चर्य यह है कि इस पर भी उसके ये तिरस्कृत प्रेमी अपने निरर्थक जीवन के अनेक वर्ष उसकी व्यर्थ और निष्फल आराधना में खोते रहते हैं। इस महिला को एक क्षण के लिये भी न तो इसका ग़म होता है और न अफ़सोस। उसे पुरुषों से कोई विशेष परहेज़ है ऐसी बात नहीं, बल्कि इसके विपरीत उसे उनका साथ अच्छा ही लगता है। पुरुषों के मुँह से अपनी सुन्दरता और बुद्धि-मत्ता की चर्चा सुनकर उसे आन्तरिक सन्तोष होता है और इसके लिये वह उन्हें अनेक अवसर देती है। उसके प्रेमी अनेकों और तरह तरह के हैं—सरकारी अफ़सर, एडवोकेट, सम्पादक और जाने कौन कौन। किन्तु उन सबका एक ही परिणाम होता है।

पुरातन ईरानी और रोमी समाज में शाही महलों की देख भाल का काम ख़्वाजासराओं ( eunuchs ) के हाथों में होता था। उक्त उपन्यास की नायिका भी पुरुषों को eunuchs से अधिक पद और प्रतिष्ठा नहीं देना चाहती। मैं तुम्हींसे पूछता हूं कि इस सर्वगुण सम्पन्न महिला को तुम कैसा समझती हो? तुम्हारी दृष्टि में क्या यह एक अपूर्व और आदर्श महिला का चित्रण है? क्षमा करना, हमारे देश में तो कम से कम ऐसी स्त्रियां कठिनता से मिलेंगी। इस महिला की मेखला में हर वर्ग, हर रंग और हर समाज के पुरुषों की खोपड़ियां जड़ी हुई मिलेंगी। उसकी दया में भी एक कुटिलता है। यदि किसी इनसान या पशु को वह अपनी दया का कुछ अंश देती है तो केवल अपनी चंचल भावना से विवश होकर, किसी स्थायी प्रभाव से वशीभूत होकर नहीं। और यदि घोड़ा या कुत्ता या भिखारी या रिश्तेदार उसकी मरज़ी के विपरीत कुछ करते हैं तो वह उनके प्रति भयङ्कर रूप से कठोर और विरक्त हो जाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि उसके व्यक्तित्व में सम्मोहक अंश नहीं किन्तु उसकी सम्मोहकता में न तो कर्तव्य और दया की भावना है और न स्थायित्व की। उसके तिरस्कृत प्रेमियों से किसे सहानुभूति हो सकती है जो दुतकार तो दिये जाते हैं किन्तु फिर भी आग्रह और याचना पर तुले रहते हैं।

बहुधा इस परिवर्तनशील दुनिया में यह होता है कि अटूट प्रेम के बन्धन में बंधे हुये स्त्री और पुरुषों में समय पाकर किसी एक का प्यार समाप्त हो जाता है। इस मांगलिक पुण्य-कथा का उपसंहार अत्यन्त दुःखद और विषाद पूर्ण होता है। परित्यक्त प्रेमी अपने खोये हुये प्यार को अधीरता के साथ हृदय के सम्पूर्ण बल से पकड़कर रखना चाहता है। आंधरे की लकुटिया की तरह उस टूटे हुये स्वप्न की मनहर स्मृति के सहारे वह अपना बचा हुआ निरर्थक जीवन काट देना चाहता है। प्रेयसी उसे प्यार करे न करे इससे उसका अपना प्यार तो समाप्त नहीं होता। वह प्रेम करता है, व्यापार नहीं। माँ के स्तन के दूध की तरह उसके प्यार को भी प्रदान से ही तुष्टि और निवृत्ति मिलती है और जितनी ही अधिक निराशा होती है उतना ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उसका प्यार तीव्रतर होता है। उसकी स्थिति एक ऐसे घायल की तरह होती है जिसे पानी के एक घूँट की भी आस किये बिना तड़प तड़पकर दम तोड़ना है किन्तु फिर भी जो अपने ज़ख़्म के सहारे ही जीना चाहता है। उसका प्यार उसके जीवन का चरम लक्ष्य बन जाता है। माना उसकी परिस्थिति दया और सहानुभूति के योग्य है फिर भी इसका यह अर्थ नहीं कि उस स्त्री से इस बात की याचना की जाय कि वह मौत के दिन तक अपनी क़िस्मत को, अपनी देह को, अपनी आत्मा को और हर तरह से अपने आपको एक ऐसे पुरुष को समर्पित करदे जिसके प्रति अब उसे तनिक भी नेह नहीं रहा। यह एक ऐसी बात है जिसे शब्दों में न प्रकट करना ही उचित है। यदि पुरुष के हृदय में प्यार की चाहना है तो स्पष्टतः वह उस स्त्री के प्यार की ही चाहना करता है। और उसकी वह जो निरुपमा प्रेयसी है, जो अब उसे प्यार नहीं करती फिर भी परिस्थितियों से विवश होकर अपना सम्पूर्ण जीवन उसे समर्पित करना चाहती है। यदि पुरुष को सचमुच उस स्त्री से प्रेम है तो उसका कर्तव्य है कि सबसे पहले वह उसकी भलाई की बात सोचे। वह प्रतिज्ञा करे कि अपनी प्रेयसी की उदारता अथवा परिस्थितियों की विवशता से वह कोई अनुचित लाभ न उठायेगा। किसी की विपन्नता से लाभ उठाने की भावना गर्हित है और उससे उस पुरुष का वास्तविक कल्याण भी नहीं हो सकता। इस आशा में कि विवाह के पश्चात् दोनों फिर पूर्ववत् अभिन्न हो सकते हैं इस अनिश्चित दाँव में जीवन की बाज़ी लगाना बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। पुरुष का यह दुराग्रह नारी को मानवी से दानवी बना सकता है। बार बार अस्वीकार करने पर भी किसी स्त्री से विवाह का आग्रह करना अनुचित है। यह तो जोंक की तरह उसके मन पर चिपटे रहने के समान है। इससे रक्त तो मिल सकता है प्रेम नहीं। ऐसा पुरुष उस क़साई की तरह है जो निरीह अबला को घर में नहीं बल्कि मक़तल में ज़िबह करने की योजना करता है। और यह भी नहीं कि वह पुरुष सर्वथा सहानुभूति का पात्र नहीं किन्तु बौना होकर चांद छूने की चेष्टा करना विकृत मस्तिष्क की निशानी है। इतना बड़ा दुर्भाग्य लेकर उसने क्यों जन्म लिया! और यह जो संसार है, इसमें ऐसे विकृत अभागों की संख्या थोड़ी नहीं है जो ऐसी वस्तुओं की चाहना करते हैं जो उनके भाग्य में लिखी ही नहीं। यह नहीं कि वे फल प्राप्ति के लिये कर्म नहीं करते; और तभी गोस्वामी तुलसीदास की यह उक्ति परिणाम-संगत नहीं मालूम होती कि—

"सकल पदारथ हैं जग माहीं,
कर्महीन नर पावत नाहीं;

और इसकी दूसरी पंक्ति में संशोधन की आवश्यकता प्रतीत होती है कि—

'भाग्यहीन नर पावत नाहीं'

यह सच है कि उक्त पुरुष कर्म से हीन नहीं है। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये उचित अनुचित हर काम करने के लिये तत्पर है; किन्तु फिर भी सफलता उसे छू नहीं निकलती। इस विषय को ज़रा दूसरे पहलू से हम सोचें। एक ऐसी स्त्री की कल्पना करो जो विवाह की याचना कर करके किसी पुरुष का जीवन असम्भव बना दे। पुरुष स्वभाव से ही दुर्बल होता है। ज़रा सी प्रशंसा में ही वह फूल उठता है। उसकी इन्द्रियों में ज़रा सी गुदगुदी पहुँची कि वह न्योछावर होने को तत्पर हो जाता है। किन्तु इस दुर्बलता के होते हुये भी उसमें इतनी चतुराई तो होती ही है कि वह सहज ही विवाह मण्डप के नीचे नहीं जाता। पंख समेटकर इतनी सावधानी से वह मधुपान करता है कि उसके पंखों में तनिक भी लेस नहीं लगता और इच्छा होते ही वह फुर्र से उड़ जाता है। बहुत थोड़े पुरुष ऐसे निकलेंगे जो बेसब्री या असावधानी से मधु के छत्ते पर ही बिछल कर बैठ जाँय और मधु जिनके जीवन का नहीं मृत्यु का निमित्त बने। इस तरह के पुरुष को यदि कोई स्त्री अग्नि के चारों ओर सात फेरों के लिये विवश करे तो परिणाम में वह अपने ही दुख का सृजन करेगी।

हज़ारों वर्षों तक आदि पुरुष और उसके बेटों के दिल में संसार की आदि स्त्री के प्रति ईर्षा और कटुता रही है कि उसी के लुभावने प्रस्ताव के फलस्वरूप आदि पुरुष और उसकी सन्तति को स्वर्ग से बाहर इस मर्त्यलोक में ढकेला गया।

किसी स्त्री को अपना प्यार स्वीकार करने के लिये बाध्य करना बहुत अच्छा नहीं है। उस पुरुष के प्रति घोर श्राप और उस स्त्री के प्रति यह घोर अपमान है। फिर उसे विवाह के लिये बाध्य करना मूर्खता की सीमा है और अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना है। प्यार की अचलता को साबित करने के लिये इतनी दूर जाना न तो न्यायसंगत ही है और न बुद्धिमत्तापूर्ण।

[ क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# लंका में कुछ दिन

भदन्त शान्तिभिक्षु

मैंने अब की बार यह न सोचा था कि मेरे गर्मी के दिन शान्ति-निकेतन में न बीतकर लंका के गांवों और नगरों में बीतेंगे; पर अप्रेल के मध्य में मेरे बन्धु और अब मेरे गुरु-भाई भदन्त पञ्ञासिरि ने मुझे तार दिया कि आप जल्दी आ जाइए। आचार्य पाद ( भदन्त धर्मानन्द नामक स्थविर ) के शिष्यत्व में आपकी उपसम्पदा हो सकेगी। मैंने जल्दी तो बहुत की फिर भी १८ मई से पहले लंका भूमि में न पहुंच पाया।

नारिकेल और पूवा (=सुपारी) के जंगलों से हरी भरी, ताम्बूली लता और विविध पुष्प फलों से सदा सुशोभित यह भूमि मुझे ऐसी जान पड़ी कि मानो प्रतिपल देवताओं को अर्घ्य दे रही हो। गांवों से लेकर नगर सभी तारकोल की पक्की सड़कों से मढ़े मिले, उन पर बसें और मोटरें फुरती से दौड़ती मिलीं, माल ढोने और सवारी के लिये जहाँ तहाँ भारी और हलकी बैलगाड़ियाँ भी रेंगती दिखाई पड़ीं। सड़कों के किनारे बसे गाँव मिले जो भारत के गाँवों से भिन्न ढङ्ग के दिखाई पड़े। वस्तुतः इन गांवों को गाँव या ग्राम (=समूह) कहना बहुत ठीक नहीं है। प्रायः हर एक घर अपने क़ब्ज़े की ज़मीन के साथ अलग अलग बसा मिला। भारत के गाँव केवल रहने की जगह हैं जहाँ लोग अपने बाल बच्चों और पशुओं के साथ रहते हैं तथा गांव के चारों ओर दूर तक फैली ज़मीन में दिन भर काम कर फिर शाम को घर लौट जाते हैं। इस प्रकार के गांव लंका में हैं पर बहुत कम और उन्हीं जगहों पर जहाँ जंगली जन्तुओं से सदा भय रहता रहा है और यह सम्भव नहीं हो सका कि लोग अपने क़ब्ज़े की ज़मीन के साथ अलग रह कर आत्मरक्षा कर सकें। भारत के गाँवों से यह गाँव अधिक साफ़ सुथरे मिले। क्या नगर, क्या गाँव, सभी जगह स्त्रियाँ, बच्चे युवक सभी पाउडर से पुते, सांवले चेहरों में हँसते हुए दिखाई पड़े। साबुन और क्रीम-पाउडर यहाँ बहुत अधिकता से बरता जाता है और यहाँ के जल वायु ने उनके प्रचार में कम सहायता नहीं दी है। सर्दी गर्मी, और वर्षा के दिन पूरब से पच्छिम प्रायः समूचे उत्तर भारत में बिल्कुल अलग होते हैं। भूमि भी ऋतुओं के अनुसार अलग अलग सी जान पड़ती है; पर यहां तो सदा ही एक ऋतु है। भारत में केवल वर्षा में दिखाई पड़ने वाली हरियाली यहाँ कभी भी आँखों से ओझल नहीं होती। शरीर में सदा पसीना आता रहता है। जल में शीतलता उतनी नहीं होती जितनी मध्य देश के जल में। वहाँ थोड़े जल से नहाने से शरीर शीतल हो जाता है पर यहां बाल्टियों पर बाल्टियाँ शरीर पर डालते रहिए नहाने से विरत होने की इच्छा नहीं होती। दैनिक चर्या में यहां स्नान का बहुत बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। शरीर को दिन भर में कई बार धोने की ज़रूरत यहां रहा करती है।

लंका की भूमि पर पहुँचते ही मुझे पहले यहाँ के भोजन से युद्ध करना पड़ा। भोजन में मांस-मछली का उपयोग सामान्यतया होता है और उससे बच निकलने की राह बहुत कम है; फिर भी भारतीय समझ कर मेरे परिचितों ने इस विषय में बहुत सहायता दी। सदा परोसनेवालों को सचेत कर देते कि मेरे पात्र में इन वस्तुओं को न डालें। इतना होते हुए यहां भोजन में मसाला इतना अधिक होता है कि वह ज़्यादा से ज़्यादा मसाला खाने वाले भारतीय के लिये भी कहीं अधिक ज़्यादा है। मसाले की तेज़ी से मुँह जल उठता, पर यहाँ मुँह से "सू सू" भी नहीं कर पाता क्यों कि "सू सू" करने से लोग अपने अधिक मसालेवाले भोजन को दोष न देकर यह ज़रूर कह बैठते कि भारतीयों को तरीक़े से खाना नहीं आता और मेरे लिये तो यह बात शायद पूरी फब जाती क्यों कि पिटक टीकाओं में टीकाकारों ने बौद्धसंघ में शामिल हुए पूर्वयुगीन ब्राह्मणों के खान पान विषयक "बेशऊरियों" का खूब ब्योरे से वर्णन किया है और मैं यहां के लोगों के लिये ठहरा "ब्राह्मण-हामिदरू"* सो मेरे लिये बहुत ज़रूरी था कि मैं सावधान रहता।

दो हज़ार वर्ष से कुछ ऊपर हुआ जब बौद्ध धर्म लंका आया तब से आज तक अनेकों विघ्न बाधाओं को सहते हुए वह बना हुआ है। बौद्ध धर्म ने ही लंका को साहित्य, वास्तु, मूर्ति एवं चित्र कला प्रदान की। अथवा यह कहिए कि यहां का साहित्य और कलाओं का उदय, और विकास बौद्ध धर्म से अनुप्राणित होकर हुआ। यहां के भिक्षुओं ने बड़े श्रम से धार्मिक साहित्य की रक्षा की और उसका फल भी उन्हें कम नहीं मिला। जनता में आज भी बौद्ध भिक्षु का

*भारत में जैसे साधुओं को 'स्वामी जी' कह कर पुकारते हैं वैसे यहां "हामिदरू" कहकर पुकारते हैं। हामिदरू शब्द स्वामिदारक का अपभ्रंश है। ब्राह्मण वंश से प्रव्रजित होने के कारण मुझे लोग ब्राह्मण-हामिदरू कहते थे।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बड़ा आदर है, रेलगाड़ी और बसों तक में भिक्षु को स्थान देने का लोग ख्याल रखते हैं। घरों में तो भिक्षु के सम्मुख कोई भी उच्च आसन पर नहीं बैठता, साधारणतया ज़मीन पर लोग बैठते हैं और भिक्षु को कुर्सी या ऊँची गद्दी सफ़ेद चादर से ढककर बैठने को देते हैं। सात जून को मैं अपनी उपसम्पदा के लिये कैण्डी गया। हमारे ठहरने का प्रबन्ध एक गृहस्थ ने किया था। हम सब पांच व्यक्ति थे। मकान छोटा सा दो तल्ले का था। ऊपर के तल्ले पर पांच चारपाइयां गद्दे और तकिये से हमें लैस मिलीं। हम सब सो रहे। मुझे दूसरे दिन पता चला कि स्त्री-बच्चे, पुरुष सभी निचले तल्ले में चटाइयों पर सोए। हमने दो रातें वहां बिताईं और सारे परिवार ने चटाइयों पर दोनों रातें काटीं। इस प्रकार की अथिति सेवा यहां बहुत साधारण है। पर भारत में बहुत विरल है। इस आदर और सत्कार के साथ भिक्षुओं को अपने भोजन, वस्त्र, पुस्तक तथा अन्य जरूरी चीज़ों की कोई चिन्ता नहीं करनी पड़ती। यहां भिक्षु जनता के आश्रय से सुखपूर्वक रह सकता है। कदाचित् यही बात है कि यहां के गृहस्थ प्रसन्नता के साथ छोटी आयु में ही अपने बच्चों को साधु बन जाने देते हैं। उन्हें यह विश्वास रहता है कि उनका बच्चा साधु बनकर भी सुखी जीवन बिताएगा। साथ में उनका धार्मिक विश्वास उन्हें ऐसा करने में मदद देता है। यहां के लोगों का ख्याल है कि जिसके वंश में एक भी आदमी बौद्ध भिक्षु हो जाता है उसकी सात सात पीढ़ियां तर जाती हैं। यही कारण है कि बौद्ध भिक्षुओं की परम्परा चलती जा रही है। इसके अतिरिक्त भारत के बड़ी बड़ी जागीरवाले महन्तों की तरह यहां बड़े बड़े जागीरदार मठधारी भिक्षु भी हैं। पर वे भिक्षु जो जनता के आश्रय पर निर्भर हैं तथा वे जिनकी बड़ी बड़ी सम्पत्तियां हैं उनमें बहुत भेद हो गया है। सम्पत्ति शाली मठों में ज्ञान और विद्या का ह्रास हुआ है। जनता के आश्रय पर रहनेवाले भिक्षुओं ने इस समय में बहुत लोकोपयोगी काम किए हैं। प्राचीन साहित्य की शिक्षा और प्रचार में इन लोगों का बहुत हाथ रहा है। मठधारी लोग प्रायः इस विषय में उदासीन रहे हैं और उदासीन होते भी क्यों नहीं? उन्हें जनता से अपनी जीविका चलाने की जब ज़रूरत नहीं तो फिर जनता के कार्य के लिये वे माथापच्ची क्यों करें? भारत में भिक्षु जीवन बिताने के लिये जिन कठिनाइओं का सामना करना पड़ता है उनसे यहां चिन्तित होने की कभी ज़रूरत नहीं पड़ती फलतः कितने ऐसे व्यक्ति भी भिक्षु संघ में आजाते हैं जिनका उसमें शामिल होना केवल जीवन सम्बन्धी कठिनाइयों से बच निकलना होता है।

लंका का बौद्ध संघ तीन निकायों में विभक्त है। स्यामी, बर्मी, और रामञ्ञ। इन तीन निकायों में से स्यामी निकाय का सम्बन्ध भारत से पिछले कितने ही वर्षों से हुआ। इस सम्बन्ध को कोलम्बू के पास केलानिया (कल्याणी) के विद्यालंकार परिवेण ने जोड़ने में बहुत सहायता दी है। इस परिवेण ने सदा विदेशियों का स्वागत किया है। विदेशी छात्रों और विद्वानों के लिये इसने एक छोटा सा होस्टल भी बनाया है। आनन्द कौसल्यायन, राहुल सांकृत्यायन, जगदीश काश्यप, नागार्जुन आदि भारतीयों को इसने सहायता दी। सन् ३९ की बात है कि मैं इस स्थान पर दोनों इच्छाओं से आना चाहता था—त्रिपिटक पढ़ने के लिये भी तथा प्रव्रज्या और उपसम्पदा लेने के लिये भी। आने का ब्यौंत जो न बैठा सो न बैठा। फिर भी मैं यह ज़रूर चाहता था कि यदि वहां रहने का सौकर्य मुझे प्राप्त न हो तो कम से कम दीक्षा तो मुझे वहीं से लेनी चाहिए। उसका भी मुझे सौकर्य न मिल पाया और ४३ ई० में मैंने एक चीनी भिक्षु भदन्त फ़ा-फ़ङ् से प्रव्रज्या (गुरु दीक्षा) ले ली और इस ख़्याल से कि उपसम्पदा (संघ दीक्षा) तो मैं लूंगा मैंने उपसम्पदा के लिये उस समय यत्न नहीं किया। जिस समय प्रव्रज्या ली थी उस समय यह सम्भावना नहीं कि लंका से उपसम्पदा ग्रहण करने में कोई बाधा भी होगी और यहां भी २४ मई तक मुझे किसी विघ्न बाधा की सम्भावना न थी।

चौबीस मई को मैं क्वैरेन्टाइन आफ़िस, कोलम्बू से लौटा तो मेरे चीनी गुरु ने जो आजकल यहीं प्रवास कर रहे हैं बुलाया और पूछा कि आपने कहा है कि जो मैंने दीक्षा दी है वह विनय के हिसाब ठीक नहीं है। मैंने कहा यह बात मैंने कभी नहीं कही और मैं कह भी नहीं सकता कि आपकी दीक्षा विनय-सम्मत नहीं है, प्रत्युत मैं उसे ठीक विनयानुकूल मानता हूँ। उसके बाद उन्होंने बहुत तो कहीं तब मुझे असली झगड़े का पता चला। बात यह थी कि २६ मई वैशाखी के दिन मेरी प्रव्रज्या होने का समाचार पत्रों में छपा था। और वह समाचार जिन व्यक्तियों ने भेजा था उन्होंने एक ग़लती की और वह यह कि उस समाचार में मुझे प्रव्रजित न लिखकर गृही लिख मारा। यद्यपि उस समाचार में न तो मेरा हाथ था और न इस परिवेण के पदाधिकारियों का फिर भी परिवेण के पदाधिकारियों का कर्तव्य था कि उसको परख लेते। मेरे गुरु जी की आलोचना परिवेण के पदाधिकारियों से भी कुछ कहा सुनी हुई होगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पर उन लोगों ने रास्ता निकाला कि यदि आप की अनुमति नहीं होगी तो प्रव्रज्या न होगी। मैंने भी गुरुजी से कहा कि देखिये संवाद में जो कुछ लिखा गया उसमें मेरा दोष नहीं अतः आपको इस पर नाराज़ न होना चाहिए। मैं यहाँ उपसम्पदा के लिये आया हूँ और इस समुदाय में तब तक उपसम्पदा न हो सकेगी जब तक कि इसी सम्प्रदाय में मेरी प्रव्रज्या न हो और इस दुबारा प्रव्रज्या के लिये यह ज़रूरी था कि मैं कुछ मिनटों के लिये फिर सफ़ेद वस्त्र पहनूं। यही नहीं, यहाँ आकर यह भी मालूम हुआ कि प्रव्रज्या के लिये नहीं प्रत्युत प्रव्रजित होकर जब उपसम्पदा लेनी होगी तब फिर कुछ मिनटों के लिये वस्त्र छोड़ना होगा और उस सम्पदा के लिये फिर से नई प्रव्रज्या लेनी होगी। लंका में दीक्षा देने की यही साम्प्रदायिक पद्धति है। मेरे गुरुजी को इस रस्म का पता न हो सो नहीं; पर उनका जो पारा चढ़ा था वह उतरता न दीखा और उन्होंने मेरी बात न मानी और प्रव्रज्या की अनुमति न दी। मैंने उनसे कहा कि आपकी दीक्षा के कारण मैं प्रव्रजित हूं आप अनुमति दें नहीं रहे फलतः इस बार और आगे भी दीक्षा तो यहाँ होगी नहीं और आपका आदर रखने के लिये यदि मेरी दीक्षा यहां कोई करना भी चाहे तो मुझे उस ओर न जाना चाहिए। पर उपसम्पदा मैं यहां चाहता हूँ, सो मुझे भारत में वस्त्र छोड़कर यहां दुबारा आना होगा, सफ़ेद वस्त्रों में आने पर आपकी अनुमति की ज़रूरत नहीं हो सकती। मेरे पास यही एक उपाय बचा है वही शायद करना पड़ेगा। गुरु जी जो अपनी ज़िद पर थे झट कह दिया—हाँ, यह आप कर सकते हैं।

मैं बहुत व्यथित हुआ। २४ मई से ३१ मई तक बड़ी कोशिश की परन्तु कुछ हाथ न लगा। अन्त में भारत के कितने ही मित्रों को इस 'दास्तान' की ख़बर दी। मैंने सभी मित्रों को लिखा था कि आश्रय मैं छोड़ना नहीं चाहता हूँ पर उपसम्पदा की प्राप्ति के लिये रस्म अदाई तो करनी ही पड़ेगी। यहीं पर देखिये कोई रास्ता निकलता है या नहीं। अच्छा हुआ, रास्ता यहीं निकल आया। पहली जून को बारह बजे रात का समय था मैं सोने जा रहा था। परिवेण के अध्यापकों में से एक ने आकर कहा, चलिये डिरेक्टर महोदय बुला रहे हैं। मैं गया। उन्होंने कहा अपने गुरु से एक बार आप और अनुमति माँगिए अब वे अनुमति दे देंगे, शायद उन्हें अब यह अनुभव हुआ है कि उन्होंने आपको सर्वथा निरपराध समझते हुए भी जो अनुमति उस समय नहीं दी सो क्रोध के कारण पर अब उन्हें अफ़सोस है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। दूसरे दिन मेरे गुरु जी ने स्वयं यहाँ के आचार्यपाद धर्मानन्द नामक स्थविर के सम्मुख जाकर अनुमति दी। आचार्यपाद ने गद्गद होकर कहा कि आपके शिष्यत्व को बनाये रखते मैं आपके शिष्य को प्रव्रजित करूँगा। ऐसा न समझिए कि मैं आपके शिष्य को आपसे छीन रहा हूं। भारतीय मित्र शायद इस बात को पूरा न समझ सकेंगे कि शिष्य पर गुरु के इस प्रकार के अधिकार की बात कैसे? एक मित्र ने लिखा भी कि बुद्धिवादी धर्म में यह गुरु-डम कैसे? बात यह है कि लंका में शिष्य गुरु की सम्पत्ति का अधिकारी होता है। गुरु शिष्य का सामाजिक एवं आर्थिक संबन्ध पिता-पुत्र की भांति होता है। सो जैसे व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पुत्र को बहका ले तो उसे उचित नहीं कहा जाता वैसे ही यहाँ यदि कोई किसी के शिष्य को बहका ले तो उसे भी उचित नहीं समझा जाता। इसी बात को ख़्याल में रखकर "जब तक मैं दूसरे का शिष्य हूं तब तक मुझे दीक्षा उसी हालत में मिल सकती है जब गुरु की अनुमति हो"। मेरी दीक्षा अनुमति के मिलने तक रुकी रही। ख़ैर, यह सब विवाद समाप्त हुआ और तीसरी जून को प्रव्रज्या तथा आठवीं जून को उपसम्पदा की विधि पूर्ण हुई।

उपसम्पदा कैण्डी में हुई। स्यामी निकाय का केन्द्र कैण्डी ही है। कैण्डी में उपसम्पदा के दूसरे दिन व्याख्यान देना पड़ा। लोग भारत में बौद्ध धर्म के बारे में जानना चाहते थे। मैंने सहज भाव से सच सच कहा कि भारतीय संस्कृति बौद्धधर्म की जानकारी के अभाव में नहीं जानी जा सकती और आज भारत में जो भी बौद्धागम की चर्चा है वह ज्ञान के लिये, न कि धर्माचरण के लिये; फिर भी भारतीय हिन्दू जनता जहाँ हिन्दू-धर्म के विविध साधुओं को ही नहीं मुसलमान साधुओं को भी भिक्षा आदि से सहायता देती है वैसे ही बौद्ध भिक्षुओं को भी भिक्षा तो ज़रूर दे सकेगी, रही बात धर्म की विचारधारा को ग्रहण करना, उसके विषय में मैं दो तीन बातों का संकेत करना चाहता हूँ। पहली बात यह है कि श्रमणों में बौद्धों का दर्शन आत्मवादी है। जैनियों का अनीश्वरवादी, तथा ब्राह्मणों में सांख्य अनीश्वरवादी है पर है आत्मवादी। दूसरे आत्मवादी भी हैं ईश्वरवादी भी तथा छोटे मोटे और भी अनेक भेद हैं पर यह सब बातें पण्डितों की बहस की हैं। अनात्मवादी दर्शन के होते हुए भी जैसे लंका की जनता में ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओं पर ही नहीं भूत प्रेत आदि पर भी अटूट विश्वास है वैसे ही भारतीय जनता में भी है। दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


देशों में जनता का स्वभाव और विश्वास बहुत कुछ समान हैं। देवी-देवता, परलोक, मुक्ति इत्यादि सब कुछ पर एक जैसा ही ख्याल है। अनात्मवादी दर्शन के होते हुए भी जब यह सब विश्वास ज्यों के त्यों हैं तब आत्मवादी दर्शन जहाँ है वहाँ यह सब विश्वास क्यों नहीं रहेंगे? हाँ एक बात बौद्धधर्म में विशेष है कि वह जन्म से किसी को ऊँचा नीचा नहीं मानता और धर्म में सबके समानाधिकार को स्वीकार करता है। ब्राह्मणधर्म में यह कमी है कि वहाँ धार्मिक समता नहीं है। ब्राह्मण धर्म के हिसाब से भारतीय जिन ऊँचे नीचे भेदों में विभक्त हैं वैसे भेद आप लोगों में नहीं हैं—यद्यपि कुछ भेद भाव आप लोगों में भी है पर उसका कारण बौद्ध धर्म नहीं है। इस धार्मिक समानता के कारण बौद्ध धर्म प्राचीन युग में समाज के निम्नस्तर को बहुत प्रिय हुआ था और उस निचले दर्जे के समाज में से भी बहुत से साधु सन्त और विचारक हुए थे। इसी कारण वह विदेशों में भी सरलता से फैल सका था। आज भी जो धर्म के जिज्ञासु हैं और जिन्हें सरल से सरल धर्म चाहिए वे बौद्ध धर्म के प्रति आकृष्ट हो सकेंगे। ईश्वर और आत्मा आदि के झंझट से रहित होने के कारण आज के भौतिकवादी को भी बौद्ध धर्म पर सद्भाव बना रहेगा। पुराने विचार के लोग जो देवी देवताओं के बिना अपना काम नहीं चला सकते उन्हें भी बौद्ध धर्म स्वीकार करने में बाधा नहीं होगी। पर आज आप लोगों और हम भारतीय लोगों के सामने धार्मिक प्रश्न की गांठें नहीं हैं। यदि सारी दुनिया में कोई एक धर्म हो जाए तो क्या हमारी ग़रीबी और ग़रीबों के कारण उत्पन्न सामाजिक हीनता दूर हो सकेगी? आज हम गुलाम हैं सो यह कह सकते हैं कि हमारी यह दुर्दशा विदेशी शासन के कारण है। पर जब हमारा शासन था तब क्या हमारे समाज में दरिद्र, दुःखी और भुखमरे लोग न थे? थे तो क्यों? क्या हमारे पास कोई रास्ता है कि हम सब सुखी हो सकें, समान हो सकें? क्या बौद्ध धर्म इस विषय में हमारी कुछ मदद कर सकता है? मुझे आशा है कि बौद्ध धर्म को आप इसी दृष्टि से सोचेंगे। यदि हमारे वर्तमान दुःखों से पार होने में वह कुछ सहायता देता है तब तो उसको साथ लेना होगा। और यदि सचमुच उसे जो विचार देने थे वह दे चुका और उसका सामयिक उपयोग नहीं है तो उसे प्राचीन काल की जानकारी के निमित्त ही सुरक्षित रखना होगा और इस समय हमें जो विचार धारा जो सहायता दे वही ग्रहण करनी पड़ेगी।

कैण्डी से मैं कुछ प्राचीन बौद्ध स्थानों को देख कर तब विद्यालंकार परिवेण लौटना चाहता था। सो वहाँ से मातले पहुँचा। यह वह स्थान है जहां प्रथम शती ई० पू० में वट्टगामिनी के शासन काल में त्रिपिटक लिखा गया। यहाँ अनुविहार की एक गुहा में प्राचीन चित्रकारी थी जिसकी रक्षा न हो सकी और जो कुछ बची खुची थी वह पुरानी चित्रकारी को पोत पात कर नए चित्र बनाकर ख़तम कर दी गई। मातले से दम्बुल्ल गया। बुद्ध के निर्वाण के ४१५ वर्ष बाद वलगम्बा ने विशाल गुहा में मूर्त्तियां और चित्र बनवाए थे। भारत में जो स्थान अजन्ता का है वही लङ्का में वलगम्बा का है। चित्रों को देखते हुए मुझे एक बड़ी विलक्षण बात मिली। हमारे साहित्य में मार या काम का जो चित्रण है उसके हिसाब से काम एक स्वरूपवान् देवता है। पर वलगम्बा के चित्रण में काम का चित्रण ठीक उसी ढङ्ग से हुआ है जैसे रूपवती वेश्याओं का कोई दढ़ियल भड़ुआ हो। चित्रण में मार सुन्दरियाँ अपनी अंगभंगियाँ दिखा रही हैं और दढ़ियल कामदेव बुद्ध को विचलित न होते देख उस तरह दुखी हो रहा है जैसे वेश्याओं का दलाल किसी चिड़िया को फँसते न देख खिन्न हो रहा हो। इस चित्र को देख कामदेव की विरूपता पर तरस आता है। दम्बुल्ल के पास ही असगिरिय भी बहुत दर्शनीय स्थान था पर यातायात सुविधाजनक न होने से इस इच्छा को रोकना पड़ा। उसके भित्ति-चित्रों के प्रतिरूपक कैण्डी के संग्रहालय में ज़रूर देखे थे। दम्बुल्ल से अनुराधपुर गया, जहां संघमित्रा की लाई बोधिवृक्ष की शाखा रोपी गई थी। अनुराधपुर से मिहिन्तले गया जहां महेन्द्र ने पहले पहल देवानांप्रिय तिष्य को बौद्धधर्म का अनुयायी बनाया।

अनुराधपुर में चैत्यों की प्रदक्षिणा कर रहा था। यहां पग पग पर प्राचीन काल के भग्नावशेष हैं। चैत्यों का अपना अपना इतिहास है। इन चैत्यों में मिरिसवटिय चैत्य का इतिहास बड़ा रोचक है। मिरिसवटिय को यदि हिन्दी में कहें तो मिर्चबटी कहना होगा। कहते हैं कि दुट्ठ गामिनी महाराज का नियम था कि सदा दान देकर भोजन करते थे। पर एक दिन जब दान करके भोजन कर रहे थे उन्हें बीच में मिर्च परोसी गई। दान देते समय भोजन में मिर्च न थी सो मिर्च दान में न दी गई थी। दुट्ठ गामिनी ने मिर्च तो खा ली पर उनके मन में यह बात लगी रही कि उन्होंने बिना दान दिए मिर्च खाई है। बाद में इस मानसिक अनुताप को दूर करने के लिये उन्होंने यह चैत्य बनाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अनुराधपुर से मैं सीधे परिवेण लौटा। आते ही मालूम हुआ कि आचार्यपाद मेरी कई दिनों से प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनकी तबियत कई दिनों से ख़राब रही है और वे बराबर मेरी याद करते रहे हैं। मैं हाथ-पैर धो आचार्य पाद के समीप गया। नमस्कार किया। उनके चेहरे पर मुसकान खिल उठी और बड़े गद्गद भाव से उन्होंने आशीर्वाद दिया। उस समय मैंने यह न सोचा था कि उनके चेहरे पर यह हँसी फिर देखने को न मिलेगी। आचार्यपाद की हालत दिन पर दिन बिगड़ती गई। मैं पहली जुलाई तक शान्ति निकेतन पहुँचने के लिये जल्दी से जल्दी लंका छोड़ना चाहता था। सत्रह जून की रात को मैं यहां के एक वृद्ध अध्यापक ( भदन्त ज्ञानानन्द ) से बात चीत कर रहा था, उन्होंने कहा मुझे जान पड़ रहा है कि आप ही आचार्यपाद के अन्तिम शिष्य हैं। आचार्यपाद का शरीर टिकते नहीं दीखता। बात मेरे दिल में बहुत चुभी। उसी दिन मैंने शान्तिनिकेतन में डा० बागची को पत्र लिखा और आचार्य पाद की चिन्ताजनक अवस्था का वर्णन किया। पत्र रात को लिखा था और उसी समय एक लड़के को पोस्ट करने के लिये दे मैं कुछ जल्दी सो गया। रात को एक बजे ही मुझे भदन्त पञ्ञासिरि ने जगाया और कहा कि आचार्यपाद शरीर छोड़ने की तयारी में हैं। आचार्यपाद का अन्तिम समय जान यहां के भिक्षुओं ने परित्राण देशना का पाठ किया और उनके अन्तिम श्वास तक सतिपट्ठान सुत्त का पाठ होता रहा। धीरे धीरे रात बीती और सूर्यदेव उस लोक से इस लोक आए तथा नायकपाद इस लोक से दूसरे लोक को प्रकाशित करने के लिये हम सब को छोड़ गए। १८ जून को सबेरे छः बजे वे निर्वृत हुए। तब से २३ जून तक उनके शरीर को वन्दना के लिये रख छोड़ा गया। दूर दूर से भिक्षु लोग उन्हें देखने आए। गृहस्थों की सदा भीड़ लगी रहती, सब एक एक कर आचार्यपाद के शरीर के समीप आकर वन्दना करते। कितने ही पुष्प आदि का उपहार करते। कितने आंसुओं का अर्घ्य दे चले जाते। छः दिन तक वन्दना होती रही। छठे दिन २३ जून को शरीर का दाह संस्कार करना था। पहले और लोगों को वन्दना का अवसर दिया गया। बाद में हम सब उनके शिष्यों ने कमरे के दरवाज़े और खिड़कियों को बन्दकर उनकी वन्दना की। वन्दना के समय सब बहुत भरे हुए थे। आंसुओं के उपहार को छोड़ ऐसी दशा में उन्हें अर्पण ही क्या कर सकते थे। अन्तिम वन्दना के बाद उनका शरीर कफ़न कफ़न में बन्द कर सजे हुए विमान पर रक्खा गया जिसे कार धीरे धीरे खींच रही थी। विमान के चारों ओर भिक्षु थे तथा उनके आगे गृहस्थ भाले और चँवर आदि लिये चल रहे थे। फिर उनके आगे पताका लिये गृहस्थों का जुलूस था। विमान के पीछे पंक्ति बद्ध भिक्षु चल रहे थे। सारा जुलूस डेढ़ मील से कम लम्बा नहीं था। साथ में पानक (=शर्बत) पिलाने के लिये एक मोटर वान चल रही थी। मार्ग में गृहस्थों ने जगह जगह शर्बत पानी का प्रबन्ध कर रक्खा था। मार्ग में आचार्य के शरीर पर "लाजा" की वर्षा हो रही थी। परिवेण से नगर को "कनत" नामक श्मशान भूमि छः मील थी। दो पहर के दो बजे चलचर छः बजे श्मशान भूमि पहुँचे। बीस हज़ार से ऊपर की भीड़ थी। त्रिशरण और पंचशील लेकर गृहस्थों ने आचार्य पाद को चिता पर रक्खा। चिता क्षण भर में धधक उठी। हम सब एक पीड़ा लिए हुए लौट आए।

इस तरह लंका में जब से आया तब से अन्त तक अपनी उलझनों में उलझता रहा। यहां पर एक एक दिन ही नहीं एक एक क्षण मेरी अपनी ही सुख दुःख की कहानी का क्षण रहा है। मुझे इतना अवसर न मिल पाया कि दूसरी बाहरी बातों पर ध्यान दे पाता। चलते समय कुछ मित्रों ने आग्रह किया था कि मैं लङ्का में रामायण की अनुभूति के कुछ चिन्ह पाऊँ तो ज़रूर नोट करूँ। मित्रों के इस आग्रह का मैं पूरे तौर पर तो पालन न कर पाया पर उसकी सर्वथा उपेक्षा न कर सका।

भारत की तरह लंका के विद्वानों में लंका की स्थिति के विषय में बड़ा मतभेद है। 'कल्याण' के रामायणांक में इस विषय में कुछ सामग्री हिन्दू पाठकों के सामने आई है पर यहां पर बैठे उस सामग्री की ओर संकेत नहीं किया जा सकता। यहाँ 'कल्याण' नहीं है। और होता भी तो भी उसकी ज़रूरत नहीं है। क्योंकि लंका की स्थिति कहाँ है? सीलोन या सिंहल ही लंका है या नहीं? इस प्रश्न से मुझे मतलब नही है। यदि मैं अपने वैदिक गुरु मधुसूदन ओझा ( जयपुर ) के अनुसार मानलूं कि सिंहल लंका नहीं प्रत्युत "लके दीप" और "माल दीप" प्राचीन लंका के अवशेष हैं तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि रामायण की अनुभूति का सिंहल की जन-परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं है। आज यहाँ विभीषण को बौद्ध मन्दिरों में स्थान दिया गया है। दान के बाद संकल्प पढ़ते भिक्षु लोग देवगणों के अनन्तर विभीषण का नाम आज भी लेते हैं। कल्याणी ( केलानिया ) में विभीषण देवालय आज भी उस स्मृति को जगा रहा है। कुडारावन कोट्टे और महारावन कोट्टे,


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जहां आज दो लाइट-हाउस हैं, आज भी रावण को भूलने नहीं दे रहे हैं।

सीता की याद तो बहुत से स्थानों में बच रही है। नुवरएलिय और हक्गल स्थानों के बीच सीता-तड़ाक, सीताएँल, सीतापोकुण, सीताकोविल नाम बहुत ध्यान देने योग्य हैं। इसी प्रदेश में जन साधारण को अशोक बन होने का विश्वास है। इस प्रदेश में काली मिट्टी पाई जाती है और लोग विश्वास करते हैं कि हनुमान ने जो आग लगाई थी उसी के कारण मिट्टी काली हो गई है। सचमुच मिट्टी का कालापन तो प्राकृतिक है। पर प्राकृतिक कालेपन के साथ हनुमान् के आग लगाने की कथा यह सूचित कर ही देती है कि रामायणी अनुश्रुति यहाँ थी और उसी को अमर बनाने के लिये हनुमान की कथा को उस प्रदेश की काली मिट्टी से जोड़ दिया है। इसी प्रदेश में कलु-गुलि ( =काली गोली ) अर्थात् काली मिट्टी के छोटे बड़े गोली और गोले पाए जाते हैं। मिट्टी के इन गोली गोलों को लोग खाते भी हैं और कहते हैं कि यह गोली गोले सीता के द्वारा फेंका वह भात है जिसे रावण ने उनके खाने को भेजा था। इसी प्रदेश में एक जगह है "दिवुरुम् पोल" अर्थात् शपथ-स्थान। इसी स्थान पर सीता की अग्नि परीक्षा होने का विश्वास है। इस प्रदेश में सीता से सम्बन्ध रखनेवाली और भी बहुत सी जनश्रुतियों के पाए जाने की आशा है पर यदि और न भी मिलें तो भी इतनी जनश्रुतियाँ यह बताए बिना नहीं रहतीं कि सीता की अनुभूति का सम्बन्ध इस प्रदेश से ज़रूर रहा है। यदि यह बात ठीक है तो रामसेतु (=सेतु बन्ध रामेश्वरम्) को उसी अनुभूति को बतलानेवाला मानने में सन्देह नहीं रह जाता। कुछ भी हो यह तो कहा ही जा सकता है कि रामायणी अनुभूति का इन स्थानों से सम्बन्ध है और चिरकाल से है।

लंका में पुराने साहित्य की शिक्षा और रक्षा का काम प्रायः बौद्धविहारों में होता है जिन्हें यहाँ परिवेण कहते हैं। विद्यालङ्कार परिवेण में अध्यापक लोग प्रायः सभी संस्कृतज्ञ हैं। इन सबको संस्कृत के विषय में राहुल जी से बहुत सहायता मिली है। फिर भी संस्कृत भाषा साहित्य के जिस विस्तृत परिचय की यहां अपेक्षा है उसके लिये यहाँ पर्याप्त श्रम नहीं किया जा रहा है। ज्ञान के प्रति सिंहल लोगों में उतनी जागरूकता नहीं है जितनी कि होनी चाहिए। बौद्ध भिक्षुओं का भी लगभग यही हाल है। यद्यपि विद्यालङ्कार परिवेण में मुझे जागरूकता अधिक दिखाई पड़ी और शायद वह भारतीय तथा दूसरे विदेशी विद्वानों के सम्पर्क का परिणाम है। मेरा यहां जिन विद्वानों से परिचय हुआ वे प्रायः भिक्षु ही मिले। यद्यपि उनमें से अधिक का आधुनिक शिक्षित मण्डली पर उसी तरह प्रभाव नहीं है जैसा कि भारत में पुराने ढर्रे के पण्डितों का। फिर भी इनमें से कितने ही काफ़ी जानकर मिले। यहाँ के बौद्ध गृहस्थ काफ़ी उदार हैं; भिक्षुओं में राष्ट्रगत संकीर्णता भी कम है जो कदाचित् बुद्ध की शिक्षाओं का प्रभाव है। फिर भी सामान्यतया जन साधारण की भावना "सिंहल" से ऊपर कभी नहीं उठ पाई। एक मात्र मानवता के समर्थक बौद्ध धर्म के अनुयायी होने का दावा करनेवालों के लिये यह संकीर्णता शोभा की बात नहीं कही जा सकती। यद्यपि मुझे इस राष्ट्रीय संकीर्णता से युद्ध नहीं करना पड़ा फिर भी एक दिन एक मित्र ने एक व्यक्ति का यह कहकर परिचय दिया कि आप हैं न्यायाचार्य अभयसिंह। न्यायाचार्य जी ने बहुत सी बातें पूछीं। बात चीत में एक यह बात भी निकल आई कि आपके चीनी गुरु ने आपको दीक्षा कैसे दी? मैंने कहा सर्वास्तिवाद विनय के अनुसार। न्यायाचार्य जी को यह से यह जानकारी हाथ लगी है कि सर्वास्तिवाद महायान अन्तर्गत है सो आप झट बोल उठे तो आपकी तो दीक्षा पहले महायान में हुई थी? मैंने कहा नहीं सर्वास्तिवाद हीनयान का ही सम्प्रदाय है, दीक्षा हीनयान के अनुसार हुई महायान के अनुसार नहीं। न्यायाचार्य जी मुझ बहुत बिगड़े। आचार्यपाद का देहान्त हो चुका था। मन से बहुत दुःखी हुआ। उनसे कहा खुदा के लिये जान छोड़िये पर आप भला कब दम लेनेवाले थे पड़े सिंहली और भारतीय के झगड़े पर। झट बोल आप लोग भारत से आकर हम लोगों पर हुकूमत चाहते हैं, आप समझते हैं हम लोग कुछ नहीं जानते सर्वास्तिवाद को अच्छी तरह जानता हूं कि वह महा है, आपको कोई अधिकार नहीं जो उसे हीनयान कहें सब जानता हूं, मैं तिब्बत के मठों में भी रह चुका सर्वास्तिवाद के सम्बन्ध में आपसे अधिक अधिकारपूर्वक सकता हूं। न्यायाचार्य जी के सामने मेरे तो होश गुम हो गए, भीतर भीतर उबाल तो बहुत आया पर ठीक न था। आचार्यपाद के अवसान का शोक था, चुप रह गया। यहां के एक छात्र ने मुझे दुःखी कर आश्वासन देते हुए कहा आप किस पर अफ़सोस हैं यह न्यायाचार्य जी तो सभी से लड़ते घूमते हैं। तक इनकी पटी ही किससे है? बाद में यहां के एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


धर्मरत्न जी ने, जो बहुत वर्षों से बंगलोर में प्रवास कर रहे हैं, मुझसे कहा शायद न्यायाचार्य जी ने थेरवाद को छोड़ सब को महायान समझ रक्खा है !

यहां सांस्कृतिक क्षेत्र में—जिसके अगुआ एक तरफ भिक्षु हैं तथा दूसरी ओर नए ढंग के विद्वान्—अब भी बहुत उदारता है। साहित्य आदि के क्षेत्र में आदान प्रदान की उत्सुकता जाग उठी है। आज यहाँ के बौद्ध विद्वान् धार्मिक संकीर्णता से उपर उठ रहे हैं। ब्राह्मण साहित्य के अध्ययन में अपनी रुचि प्रकट करने लगे है। इसी परिवेण के एक विद्वान् भदन्त सीवल जी ने गीता का सिंहली भाषा में अनुवाद किया है। यह पहला अनुवाद है जो कदाचित् शीघ्र प्रकाशित होगा। भारतीय साहित्य के एक रत्न गीता का अनुवाद भारत की ही एक आर्य भाषा सिंहली में इतनी देर से हो रहा है इसे गौरव की बात तो नहीं कह सकते पर यह प्रसन्नता की बात ज़रूर है। देर से ही सही, चेत तो हुआ।

सिंहल के इस प्रवास में मैं यह कभी न अनुभव कर पाया कि मैं विदेश में हूँ। जहाँ भी गया भिक्षुओं से स्नेह सम्मान मिला। गृहस्थों ने आदर सत्कार किया। भारतीय समझकर लोग काफ़ी ख़्याल रखते थे। यहाँ के असिस्टेंट हाईप्रीस्ट ( अब हाई प्रीस्ट ) भदन्त पञ्ञासार जी के प्रति तो मेरे हृदय में बहुत श्रद्धा और प्रेम ने स्थान बना लिया। विचित्र ही व्यक्तित्व ? अद्भुत सरलता !! यहां के लोगों ने तो बताया कि उन्हें आजतक किसी ने नाराज़ होते नहीं देखा। भीतर से कितने ही क्षुब्ध क्यों न हों चेहरे पर मुसकान खेलती ही रहती है। शायद ही किसी छात्र को उनसे ज़रा भी डाट-डपट सहनी पड़ी हो। आचार्यपाद के देहावसान के अनन्तर उन्होंने कई बार कहा—'आप आचार्यपाद के अन्तिम शिष्य हैं। सचमुच बड़े भाग्यशाली हैं। आचार्यपाद के स्नेह के आपही अन्तिम प्रतीक हैं।" एक दूसरे महावृद्ध भिक्षु ने कहा, "आचार्यपाद के आप ही अन्तिम प्रतीक हैं। आपके कन्धों पर बहुत बड़ा भार है। आपको बहुत कुछ करना है। यह कभी न भूलिये।" परिवेण के डिरेक्टर भदन्त पञ्ञाराम जी ने तो बड़े सहज भाव से मेरे यहां आते ही कहा था, "आयुष्मन्! हमारा आपसे स्वार्थ है और आपका भी हमसे कुछ स्वार्थ है। मेरी इच्छा है कि आप यहां आकर वर्ष दो वर्ष रहें। 'परस्परं भावयन्तः श्रेय पर मवाप्स्यथ'।" आज शोक ! आचार्यपाद का भौतिक शरीर नहीं रहा। पर उन्होंने अपना जीवन फूंक कर एक वस्तु प्रदान की, वह है उनकी यह सांस्कृतिक संस्था जहां सदा भारतीयों तथा दूसरे देशवालों का हार्दिक स्वागत होता रहा है, रहेगा भी। इस संस्था की सेवा करना सचमुच आचार्यपाद की सेवा होगी। मन में यह बात मैंने रख ली है कि समय और सुविधा मिलने पर चाहे कितने ही कम दिनों के लिये क्यों न हो जो मुझसे सेवा हो सकेगी अवश्य करूँगा। इससे अधिक भविष्य के बारे में और कहा ही क्या जा सकता है।

विद्यालंकार परिवेण,
केलानिया, लंका

# ज़रथुस्त्र

श्री 'किङ्कर'

[ प्राचीन ईरान का यह धर्म संस्थापक कब हुआ इसके सम्बन्ध में इतिहासकारों के विभिन्न मत हैं। पाश्चात्य विद्वान ज़रथुस्त्र का समय १००० ई० पू० मानते हैं। ज़रथुस्त्र और उनके धर्म ग्रंथ उतने ही प्राचीन हैं जितने ऋग्वेद की ऋचाएं। पैग़म्बर ज़रथुस्त्र का मत उनकी जन्म भूमि से निर्वासित होकर भारत के कुछ लाख पारसियों में बचा है, पश्चिमी भारत में उदवाड़ा नामक स्थान में प्रधान देवालय में उनकी पूजित अग्नि स्थापित है। प्राचीन ईरान और भारतीय संस्कृति में साम्य है। उसका मूल स्रोत एक ही है। ज़रथुस्त्र का ईरान अद्वैत का अनुयायी था। ईरान भक्ति कर्म में से ज़रथुस्त्र ने कर्म मार्ग चुना। विश्व की इस महान आत्मा की झाँकी इस कविता में है —ले०]

आज से सहस्रों वर्ष पहिले ईरान देश,
जिसमें असाम्य, घृणा, तीव्र अपमान के थे
दारुण दुखद दृश्य !
प्रेम, दया, करुणा, शान्ति, सुख और उदारता के
बदले, वहाँ था स्वार्थ, दम्भ और स्वेच्छाचार !
जनता निरापद न थी छाया था घनातङ्क,
शासक भी थे सशङ्क,
चारों ओर घोर अराजकता वहाँ फैली थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


निर्दय, निरंकुशता का निबिड़ साम्राज्य था,
वसुधा वह सारी थी तमसावृत हो उठी,
किन्तु उसी काल में रेखा एक दीख पड़ी—
क्षीण आलोक की,
लोगों की प्यासी सी, विस्मित उदासी सी
आंखें अचम्भित हुईं,
एक दीन दम्पति की कुटिया के कक्ष में
लौ थी नवीन वह, उसके कुल दीप की,
पाकर सुख, स्नेह, वात्सल्य निज माता का
लड़ता लड़खड़ाता सा तीव्र गतिशील रहा,
आख़िर किशोर हुआ, यौवन विभोर हुआ,
ब्याह हुआ, आई बधू,
उसके स्नेह अंचल में प्राण पर उलझे नहीं,
घर का असीम सुख उसको लुभा न सका,
जग का वह आल जाल तनिक भी न भाया उसे,
हो उठा अधीर वह।
एक ओर वैभव था,
रूप था, जवानी थी,
नवल वधू का नेह गेह में बुलाता था;
किन्तु दीन दुखियों की,
अनाथ असहायों की
कातर कराह उठी गूंज दिशि दिशि में।
जाग उठा प्रबल त्याग,
किसी अज्ञात प्रेरणा से
वह भाग चला छोड़ घर बार,
बार बार रही ताकतीं आँखें सतृष्ण बड़ी
दीन दुलहिन की।
जहाँ जहाँ जाता वह ठोकर ही खाता वह
पीछे पड़ा माया जाल खींच रखता था उसे;
बढ़ने न देता पग,
भरने न देता डग,
भूल अग जग लोक सेवा के मग में।
जीवन एक सपना है—वह भी कहां अपना है ?
जिसका है उसही की सेवा में अर्पित हो
प्राण यह समर्पित हो।
पाकर सन्देश यह सर्वोपरि शक्ति का—
हुआ संलग्न फिर कठिन तपस्या में।
बुद्ध सा प्रबुद्ध हुआ तनमन विशुद्ध हुआ
स्पितमा से ज़रथुस्त्र
—हेमकिरणों से युक्त—
सचमुच वह हो उठा।
सतेज मुख मण्डल पर झलकी वह दिव्य ज्योति
जिसका प्रकाश पुंज पाकर प्रोद्भासित सा
दिङ् मंडल हो उठा।
छोड़ दिया उसने फिर निर्जन वन प्रांतर को,
मोड़ दिया मुख निज गांव और घर की ओर
सब ने ही सोचा यह कि गृह से क्यों विराग हुआ
फिर क्यों अनुराग हुआ
कौन पर जान सका ?
जानना चाहता था कौन यह कि कुछ अन्तर था
तब के गृहस्थ से अब के गृहस्थ में।
कौटुम्बिक जीवन से मोह कुछ था नहीं
बस्ती से दुनिया से द्रोह कुछ था नहीं
रह कर गृहस्थ में घर के एक कक्ष में
चाहता था करना वह जीवन में मूर्त्तिमान
क्रिया में गतिमान ईश्वरीय ज्ञान को।
कौन मानता था पर एकाएक बातों को
निर्धन की, फक्कड़ की, साधन से हीन जो
विचलित सा किया उसे
पथ की विघ्न बाधा और विकट विरोधों ने
छांह सा रहे जो साथ सदा धूप छांह में
ऐसा कौन साथी था ?
किन्तु वह हारा नहीं
मन कभी मारा नहीं
अन्तर से आता था प्रकाश एक छन छन कर
उसका एक संबल था सच्चा जो अपने प्रति
लोक और प्रभु के प्रति
किस में फिर शक्ति भला उसको जो डिगादे कभी
उसके स्वर्ण पथ से।
उसके ही जीवन में,
उसके ही देश में उसकी प्रतिष्ठा हुई
उसने तन होम दिया
मिटा तम तोम दिया।
मानव धर्म विकसित कर स्वर्णिम वह प्रकाश पुंज
एक दिन सहसा
तिरोहित होगया,
करने को प्रकाशित
किसी अन्य लोक-मंडल को।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# क्रान्तिकारी महाकवि गुरु गोविन्दसिंह

प्रोफेसर प्यारासिंह पदम, सिख मिशनरी कालिज, अमृतसर

हरएक सदी किसी न किसी ख़ास कवि आत्मा के उपदेशों की मदद से जीवन की रात बिताती है। चाहे वह कवि केवल शब्दों में अपना साहित्य छोड़ जावे और चाहे अपनी जीवन प्रतिभा द्वारा उसका अरूप रूप में प्रचार कर जाये। भारत की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। इसे समय समय पर वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, तुलसीदास, गुरु गोविन्दसिंह, इक़बाल और रवीन्द्रनाथ जैसी कवि आत्मायें मिलती रही हैं। सोलहवीं सदी को गोस्वामी तुलसीदास जैसी शान्त कवि आत्मा के मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जिसने अपनी रचना 'रामचरितमानस' द्वारा सदियों से उदास पीड़ित समाज को धीरज और शान्ति दी थी और ख़ासकर उत्तर हिन्दुस्तान पर विशेष प्रभाव डाला था। सूरदास और मीराबाई के गीत भी नहीं भुलाये जा सकते, पर हिन्दी साहित्य में स्वर्णयुग लाने का सेहरा तुलसीदास के ही सर है।

तुलसीदास की साहित्यिक धारा जिसमें सगुण भक्ति भरी थी उनके बाद शीघ्र ही ख़त्म सी हो गई। सिर्फ़ एक दो मामूली कवि नरहर और नरोत्तमदास जैसे कुछ कुछ लिखते रहे। बात यह थी कि आत्मा के दृष्टिकोण से जो कुछ कहा जा सकता है वह कबीर, तुलसीदास और सूरदास जैसे कवि कह चुके थे। इसलिये साहित्य के मैदान में एक नई लहर उठी जिसमें पहले पहल भक्ति को शृङ्गार और अलंकारों के साथ खूब सजाकर वर्णन किया जाने लगा। इस लहर के शुरू करनेवाले केशवदास थे। इन्होंने अपनी रचना रसिकप्रिया और कवि प्रिया की तरह रामचन्द्रिका जैसे भक्ति रस पूर्ण काव्य में भी शृङ्गार को मुख्य स्थान दिया। पहले तो यह नाटक राधाकृष्ण के प्रेम के पर्दे में होता रहा। बाद में आम नायक नायिकाओं के रूप रंग भी बड़े मज़े से बयान किये जाने लगे। इस लहर के मुख्य कवि बिहारी, मतिराम, देव, पद्माकर और गुवाल आदि थे। सतरहवीं सदी इस विषैले स्त्रैणी साहित्य के असर से आखिरी साँस ले रही थी।

ऐसे समय में जब कि गन्दे शृङ्गार साहित्य की नदी भक्ति और सदाचार को विलीन करके हिन्दुस्तानी ख़ून को ठण्डा करती हुई आप भी मरुस्थल में सूख चुकी थी अठारहवीं सदी को एक महान कवि मिला, जिसको सिक्खों का दसवाँ गुरु गोविन्दसिंह कहा जाता है। जिस तरह उनके पिता गुरु तेगबहादर की शहादत ने हिन्दुस्तान में एक नये आन्दोलन को जन्म दिया। उसी तरह गुरु गोबिन्द सिंह जी ने उस जोश को उभारने में एक नये आन्दोलन को जन्म दिया उस उभार के लिये एक नई क़िस्म का साहित्य पैदा किया। उन्होंने हिन्दी साहित्य को शृङ्गार के गन्दे नाले से निकालकर वीर रस के साथ विभूषित किया। उनसे पहले भी नौ गुरु भक्ति साहित्य के श्रोत को प्रवाहित किये आते थे पर वह अधिकतर पंजाबी भाषा तक ही महदूद था। गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपनी नई तहरीक को हिन्दुस्तान भर में फैलाने के लिये हिन्दी भाषा को चुना।

भक्ति या शृङ्गार रस पूर्ण साहित्य में तलवार की लहर चलाना मामूली काम न था। उन्होंने भक्ति के राग को बन्द करना तो पसन्द न किया मगर उसकी सुरें बदल दीं। जहाँ यह राग बंसुरी की ध्वनि और मृदङ्ग की थाप पर गाया जाता था वहाँ उन्होंने तलवार की झंकार और नगारों की गुंजार में इस तान को छेड़ा। इस महाकवि ने अपनी रचना में अपने प्रीतम ईश्वर को गोपाल, बंशीधर और लक्ष्मीपति कहने की जगह खड्गकेत, अम्बुज, काल और सर्वलोह आदि नामों से याद किया। उसको कृपालु कहते हुये भी शस्त्रधारी रूप में उसे देखा--

नमो शस्त्र पाणे नमो अस्त्र माणे।
नमो कलह करता नमो शान्त रूपे।
नमो युद्ध युद्धे नमो ज्ञान ज्ञाने॥

ऐसी खड्गधारी ईश्वर से क्या माँगना है। उसके आगे कैसी प्रार्थना करनी है। यह गुरु गोविन्दसिंह जी के नीचे के प्रार्थना गीत से स्पष्ट है—

देह शिवा वर मोह यहै, शुभ कर्मन ते कबहुँ न टरौं।
न डरौं अरि सों जब जाय लरौं, निश्चय कर अपनी जीत करौं।
अरु सिक्ख हों अपने ही मनको यह लालच हों गुण तौ उचरौं।
जब आयु की अवधि निदान बने अति ही रण में तब जूझ मरौं।

इसके आगे उन्होंने माला फेरने वाले भक्तों की जगह ऊपर के कथन के अनुसार कर्म योगी बनकर लड़ने वालों के गीत गाये और उनके चरित्र लिखे। गुरु साहब फ़र्माते हैं—

धन्य जियो तिह को जग में, मुख ते हरि, चित्त में युद्ध विचारे।
देह अनित्त न नित्त रहे यश नाम चढ़े भवसागर तारे॥



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उन्होंने भक्ति साहित्य में एक परिवर्तन ला दिया। इस सम्बन्ध में उनकी रचना जापु, अकाल स्तुति और तैंतीस सवइये पढ़ने योग्य हैं। गुरु गोविन्दसिंह जी ने जनता की कमज़ोरी मिटाने के लिये उन्हीं की पूज्य देवियों को हीरोइन बनाकर 'चंडी चरित्रोंती विलास' नामक पुस्तक लिखी और शस्त्र नाम माता पुराण नाम का उन्नीसवां नया पुराण लिखा जिसे हम शस्त्रों का स्टोर कह सकते हैं। इसके पढ़ने से भीरु हृदय में भी शस्त्रों के लिये प्यार और उत्साह पैदा हो जाता है। इसी तरह उनकी पंजाबी रचना (भगौती दीवार) सुन्दर खण्ड-काव्य है जिसकी जंगी ध्वनि के मस्ताने किये हुये अब भी (सिक्ख पंथ में) निहँग सिंह हर दम निर्भय मालूम पड़ते हैं। इन कथाओं के अलावा उन्होंने हिन्दुस्तान के प्राचीन इतिहास को जो कि राम कृष्ण आदि अवतारों की जीवन कहानियों के साथ लिपटा चला आता है बीररस को प्रधानता देकर नये रंग में पेश किया ताकि इतिहास से भी आम जनता वीरता, निर्भयता की प्रेरणा प्राप्त कर सके। उन्होंने श्रीकृष्ण की कथा बयान करते हुये अन्त में लिखा है—

दशम कथा भागवत की भाषा करी बनाय।
अवर वासना नहीं कछु धर्म युद्ध के चाह॥

हमारे हिन्दी पाठकों को राम कृष्ण और चंडी की कथा लिखने के कारण यह भ्रम न रह जाय कि गुरु गोविन्द सिंह इन देवी देवताओं के उपासक थे। उन्होंने इसी भ्रम को मिटाने के लिये राम अवतार की कथा समाप्त करते हुये अन्तिम नोट दिया है—

पाँय गहे जब ते तुमरे तब ते कोई आँख तरै नहीं आन्यौ।
राम रहीम पुराण कुरान अनेक कहैं मत एक न मान्यौ॥

इसी तरह कृष्ण जी की कथा में गुरू जी ने फरमाया है—

मैं न गणेशह प्रथम मनावहुँ कृष्ण बिशन कबहुं नहिं ध्यावहुँ।
कान सुनै पहचान न तिनसौं नित लागी मोरी पग उनसौं॥

तो यह सब कहानी किस लिये लिखी गई। इसका उत्तर गुरु साहब साफ़ देते हैं :—

अवर वासना नहीं कछु धर्म युद्ध के चाह।

इसी महाकाव्य में २४ अवतारों के अतिरिक्त ११ रुद्र अवतारों और ७ ब्रह्मा के उप अवतारों का वर्णन है। इस पुस्तक का नाम विचित्र नाटक है, जो कि रचना के दृष्टि कोण से अपने आप में अद्भुत विचित्रता रखती है। इस पुस्तक के आरंभ में गुरु जी ने अपनी संक्षेप जीवन-कथा भी बयान की है।

गुरु गोविन्दसिंह तलवार के साथ नित नई कहानियों के प्लाट बनाते थे। साहित्य का काम उन्होंने कुछ तीन साल पौंटे में रह कर जहाँ कि आपने यमुना के किनारे काफ़ी साहित्य लिखा है और कुछ आनन्दपुर में लिखा। आपके पास ८० के लगभग कवि रख कर कई प्रकार की रचनायें और फ़ारसी संस्कृत पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद भी लिखवाये। इस लिखत का वजन १८ मन बताया जाता है जो कि जंग के कारण काफ़ी से ज़्यादा सरसा नदी में बह गया था। फिर भी आज बहुत से कवियों की रचना पुरानी लाइब्रेरियों में मिलती है। पटियाला लाइब्रेरी में काफ़ी पुराने मसौदे बताये जाते हैं। वीर साहित्य के अलावा उनका रसिक साहित्य भी पढ़ने योग्य है। उनके ठहरने के लिये चुने हुये स्थान यमुना का किनारा पौंटा साहब और सतलुज का किनारा आनन्दपुर और गोदावरी का किनारा नादेड़ उनके प्रकृति प्रेमी मन के प्रगट चिन्ह हैं। उनकी कविता में जगह जगह कुदरत का प्रभाव और सफ़ाई की स्पष्ट बयानी हमें नज़र आती है। मिल्टन ने अच्छी कविता के तीन गुण बताये हैं—(१) सादगी, (२) जोश, (३) वास्तविकता।

गुरु जी की भाषा में इतनी सादगी है कि कविता का प्रवाह बे रोक चला जाता है। कहीं भी कठिन भाषा या अलंकारों का गढ़ इसमें बाधा नहीं डालता। शायद यह यमुना और सतलज दरिया के वेग का असर हो जहां यह अमूमन साहित्य लिखते रहे थे। इस सम्बन्ध में विचित्र नाटक में गोपियों और कृष्ण का सम्वाद पढ़ने योग्य है। जोश उनकी कविता का विशेष अंग है। जिस तरह जोश भर बड़े उत्साह के साथ बाज़ उड़ाया और घोड़ा दौड़ाया उसी तरह उनकी कविता में भी कहीं आलस्य या ढिलाई देखने में नहीं आती। इसके अलावा वह कविता कल्पना निकालने की भी शक्ति रखती है। उदाहरण के लिये हम एक रण भूमि का बयान आपके सामने रखते हैं—

कागड़ दंग काती कटारी कड़ाकं।
तागड़ दंग तीरं तोपं तड़ाकं॥
चागड़ दंग चामड़ बागड़ दंग बीन।
गागड़ दंग गरज़ी महाराज गाजे॥
चागड़ दंग चौंपे बागड़ दंग बीरं।
मागड़ दंग मार तनं तच्छ तीरं॥

यह कोई सुगम बात नहीं कि कविता की उड़ान के लिये ना मिलते शब्द भी आप ही गढ़े जायें। यह ऐसी कठिनाई है कि ईंटें गढ़ना भी और साथ साथ जड़ना भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


तीसरे कविता का सबसे बड़ा गुण वास्तविकता है। गुरु साहब से पहले साहित्य इसी लिये कमज़ोर पड़ गया था कि उसमें कोई आदर्श नहीं रहा था। केवल शब्दबाज़ी थी जो कि विषयी रसिकों के मन को पल भर के लिये प्रसन्न कर सकती थी परन्तु देश या समाज को ऊँचा उठाने में असमर्थ थी। इसी लिये वह साहित्य अपनी मौत आप मर गया। गुरु गोविन्दसिंह जी ने भारत की दयनीय दशा को देखकर हर चीज़ किसी उद्देश के लिये लिखी। उनके सामने 'चंडी चरित्र' और 'शस्त्रनाम' 'मालापुराण' आदि लिखने का प्रयोजन राजनीतिक शक्ति पैदा करना था। इसी तरह 'अकाल स्तुति', सवैये, जाप, 'ज्ञान प्रबोध' आदि रचनाओं का भाव धार्मिक कमज़ोरियों को नेस्त व नाबूद करना था। इन रचनाओं के अलावा उन्होंने 'चरित्रोपाख्यान' नाम की एक पुस्तक भी लिखी जिसमें चार सौ चार कहानी दर्ज हैं। इन कहानियों में दुराचार को मिटाकर सदाचारी बनाने की स्थान स्थान पर प्रेरणा की गई है। यह रचना मंत्र इन सतरों से स्पष्ट हो जाता है:—

"शुद्ध जब ते हम धरी बचन गुरु दैय हमारे,
पूत येह प्रण तोहो प्राण जब लग घट थारे॥
निज नारी के संग नेह तुम नीत बढ़ाइओ।
पर नारी की सेज भूल सुपनेहुं न जाइयो॥"

उन्हें यह भरोसा था—

"पुत्र प्रतापन बाढ़ जयत ध्वनि, पापनि के बहु पुंज खपैंगे।
साध समूह प्रसन्न फिरैं जग, शत्रु सबै अवलोक चपैंगे॥"

हिन्दी साहित्यकारों और सिक्खों का कर्तव्य है कि वह गुरु गोविन्दसिंह जी की रचना को हिन्दी भाषा में प्रकाशित करें। गुरु गोबिन्दसिंह की "त्रुनी रचना" नाम की पुस्तक इसी लेख के लेखक द्वारा लिखी गई है।

'श्री दशम ग्रंथ' गुरु गोविन्दसिंह जी की तमाम रचनाओं का संग्रह है, जिसके संपादक गुरु जी के समकालीन भाई मनीसिंह जी ज्ञानी थे।*

---

*हम इस लेख को सिक्खों के दसवें गुरू गोविन्दसिंह जी के बारे में एक विद्वान सिक्ख के लेख की हैसियत से छाप रहे हैं। गुरु गोविन्दसिंह जी की कविताओं में वीर रस का ज़ोर शोर तो है ही लेकिन हमें उनमें वीर रस से भी कहीं ज़्यादह 'क्रान्तिकारी' और देश और भावी संसार के लिए कहीं ज़्यादा फ़ायदे की चीज़ उनका वह सर्व धर्म समभाव मालूम होता है जो उनकी नीचे लिखी कविता से ज़ाहिर होता है—

कोऊ भयो मुंड़िया सन्यासी कोऊ योगी भयो,
कोउ ब्रह्मचारी कोऊ जतियन मान बो।
हिन्दू तुरुक कोऊ राफ़ज़ी इमाम शाफ़ी,
मानस की जाति सबै इक्कै पहचान बो।
करता करीम सोई, राज़िक रहीम ओई,
दूसरा न भेद कोई भूल भ्रम मानबो!
एक ही की सेव सब ही को गुरुदेव एक,
एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो।

× × ×

देहरा मसीत सोई पूजा औ निमाज ओई,
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाव है।
देवता अदेव जच्छ, गन्धर्व तुरुक हिन्दू,
न्यारे न्यारे देसन के भेस को प्रभाव है।
एकै नेत एकै कान, एकै देह एकै बानि,
ख़ाक बाद आतिश औ आब को रलाव है।
अल्लह अभेद सोई पुरान औ कुरान ओई
एक ही सरूप सबै एक ही बनाव है।

—सम्पादक

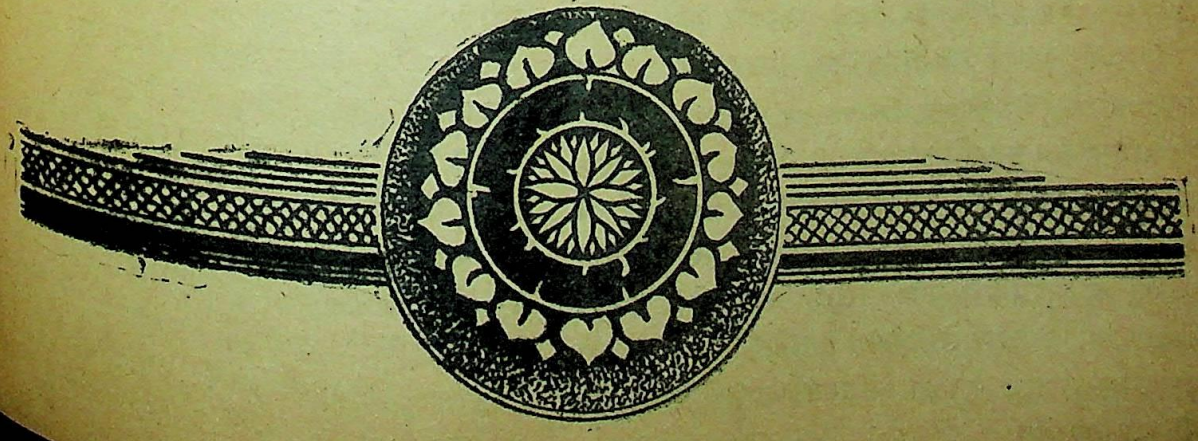

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# महादेशीय-संस्कृति के प्रसारणीय केन्द्र

श्री मलिन्द

बौद्ध-संस्कृति की मधुमयि रागिनी, उत्तर भारत में गङ्गा की घाटी से उठकर चीन और कोरिया के अलावा, जापान में भी अपनी सुरीली-तानों से जन-जन को हर्षोल्लादित करती हुई गूँज-भर छोड़ गयी है। महादेशीय-संस्कृति के विस्तार में जिन देशों ने सहायता पहुँचायी है उनमें से बर्मा और स्याम, तुर्किस्तान और तिब्बत जैसे केन्द्र बौद्धिक जागृति के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। हमें इन प्रसारणीय केन्द्रों की ही ओर दृष्टिपात करना है और यही हमारा विषय भी है।

यथार्थ में पूर्णतः बसे हुए, एशिया महादेश की ही भांति बर्मा में भी भौतिकता की प्राथमिक उपासना का अस्तित्व था। इसके प्रमाण हमें चीन और भारत में मिलते हैं जिनसे स्पष्ट पता चलता है कि उक्त भौतिकता ने विस्तृत जन-संख्या के प्रारंभिक, मानसिक एवं चित्त वृतात्मक साँचे को अन्य प्रकार से ढाल दिया जिसका विकास चीन के पश्चिमीय भागों में हुआ है। भाषातत्वज्ञ इन जातियों को 'इन्डो-चाइनीज़' कह कर पुकारते हैं। मानव-विज्ञान (Anthropology) में इनके लिए मंगोल-शब्द व्यवहृत हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि उनकी वाह्याकृति आर्य-सदृश न हो कर मंगोल-जैसी है और वे हिमालय एवं तिब्बत के उत्तरी भागों में बसनेवाले लोगों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। और अन्तस्थल में उनके, आर्यत्व के ही तार झंकृत हुआ करते हैं। वैज्ञानिकों का ऐसा अनुमान है कि चीन के पश्चिमीय भागों से, इरावती नदी की धारा से होकर, मानवता का भौतिक-रूप बर्मा पहुंचा और फिर समतल भूमि की ओर बढ़ता हुआ डेल्टा से होकर सागर-तट जा पहुंचा, जहाँ से, यदि पृथ्वी चपटी होती तो भारत नज़र आ सकता था। भौतिकता की दूसरी धारा ऊपर की ओर प्रवाहित हुई और आसाम एवं तिब्बत में सिमट कर रह गयी!

मानवता के इस आन्दोलन का प्रारम्भ कब हुआ, यह अज्ञात है। इतना तो मानना ही पड़ेगा कि बौद्धिक जागृति से पहले ही यह प्रारम्भ हो चुका था। बर्मा की जन-संख्या उस समय बहुत बढ़ी-चढ़ी थी जब भारतीय कलिका के पाटल दल खुले और एक नया धर्म और नयी कला अपनी सुगन्ध बिखेरने लगी। बर्मा की परम्परा गत स्मृति याद दिलाती है कि एक समय बङ्गाल की खाड़ी को पार कर भारत से, क्षत्रियों का झुण्ड परदेश जाया करता था। ऐसी ही एक और कथा है कि बर्मा का प्राचीन-राज्य-वंश, भारत के बौद्ध राज्य वंशों से मिलने गया था। सम्भव है, वंशागत-परम्परा के बीज इसी प्रकार फूटे हों। यह कथन, कि बर्मा की वर्णमाला, पाली-भाषा के द्वारा 'संस्कृत' से ली गई थी, इस बात की पुष्टि करता है कि भौतिक-माध्यमिकता के प्राथमिक विश्वास के ऊपर बहुत पहले ही बौद्ध संस्कृति ने अपना स्पष्ट प्रभाव अंकित कर छोड़ा था, जिसे मानव विज्ञान के मर्मज्ञ 'अन्ध-विश्वास' एवं 'भूत विद्या की पुस्तक' के नाम से पुकारते हैं चूंकि आध्यात्मिक मण्डली की यह एक अमदा कृति थी।

प्राचीन बर्मन साम्राज्य के विकास के साथ-साथ वहाँ की बौद्ध संस्कृति भी विकासोन्मुख सिद्ध हुई। ११ वीं १२ वीं एवं १३ वीं शताब्दियों में शिल्प एवं मूर्ति-कला में, बर्मा के कलाकारों की कुशलता एवं लगन कैसी निखरी थी इसका परिचय, पगु के प्राचीन राज नगर के अवशेषों से प्राप्त होता है। तेरहवीं शताब्दी के अन्त काल में, तार तार शक्ति-बटोर कर मंगोल कुबलाई खां ने वहां के राज्य को उलट दिया एवं राजनगर को तहस-नहस कर डाला। लेकिन भारत की प्राचीन संस्कृति पर आंच न आ पाई। आज बर्मा, नब्बे प्रतिशत बौद्ध है और उसका बुद्धत्व गौतम बुद्ध के साधारण नियमों से प्रतिपालित नहीं है अपितु उसने अपने आपको, एक उलझन वेदान्त आत्म-विद्या, एवं विधि-शास्त्र के रूप में विकसित किया है, एशियाई भौतिकता का आलंबन प्राप्त कर। बर्मा, 'पैगोडों का देश' कहा जाता है। इस प्रकार शिल्प कला बौद्ध शिल्प कला से अनूठी जान पड़ती है। बौद्धिक चैत्य या स्तूप की आकृति के ये पैगोडा कला के अनोखे आदर्श हैं। मुस्लिम-आदर्शों एवं चित्रकला के बौद्धिक विकासों से परे हट कर बर्मा चित्रकला ने अपने लिए एक सर्वथा नवीन ढङ्ग निर्माण कर लिया है जिसका एकांगी अध्ययन, स्थानाभाव के कारण यहाँ सम्भव नहीं है।

'रूपम्' (कलकत्ता से प्रकाशित कला पादिनक-में, प्रोफेसर एच० सी० चकलदार ने प्रसिद्ध जर्मन विद्वान E. A. Voretzsch के एक लेख का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करवाया था जिसका सारांश इस प्रकार है "स्याम में, एक राष्ट्रीय-कला का उदय हुआ है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अपने पड़ोसी देशों की कला से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है योंकि उसका मूलोद्भव भारतीय कला ही है। अन्य देशों की ही भांति स्याम की कला ने भी धर्म को अपनाया है। अशोक के राज्य काल से लेकर ईसा के प्रथम चरण तक स्याम में बौद्ध धर्म का प्रचार होता रहा होगा। यदि हम अशोक के राज्य काल को, स्याम में बौद्ध धर्म की लहर लाने का प्रथम अवसर मानें, तो निश्चित रूप से, गांधार काल, विकास के लिए दूसरा अवसर कहा जायेगा, गुप्त-काल तीसरा, और तेरहवीं सदी में आया हुआ लंका का अन्तरावाहन चौथा। जिन पथों से होकर ये धारायें बही हैं वे ये हैं—भूमि-मार्ग से आसाम और बर्मा होती हुई उत्तरी स्याम में मद्रास सागर-तट से, बंगाल एवं उड़ीसा के समुद्र द्वारा, मलाया प्रायद्वीप एवं मेनाम की घाटी होती हुई, लंका से। यह पता लगाना होगा कि स्याम की कला पर भारतीय-कला के किस प्रमुख-काल ने अपना स्पष्ट प्रभाव छोड़ा है और वह कौन सा विस्तृत पथ है जिससे होकर भारतीय कला, स्याम पहुँची, तो हम, निःसंदेहात्मक-रूपेण कह सकते हैं कि गुप्तकाल द्वारा प्रभावित स्याम की कला पर भारतीय-संस्कृति का स्पष्ट चिन्ह, स्थल-मार्ग से होकर आया था।"

हमें पूर्व-ज्ञात है कि लगभग ई० पू०—१३९ से ही, भारत के व्यापारी चीन के व्यावसायिक-पदार्थों को मध्य एशिया ले जाते रहे हैं और साथ-साथ भारतीय-धर्म भी क्रमशः जा पहुंचा। एशियाई ( और मुख्यतः भारतीय ) विचार एवं गति में, व्यवसाय और धर्म कन्धे से कन्धा मिला कर चलते हैं। जीवात्मा एवं परमात्मा के बीच धर्म ही व्यवसाय का रूप ले बैठा है। व्यवसाय स्वर्गोपमगति एक कार्य-प्रणाली है, इसीलिए घोर धार्मिक है। धर्म के साथ-साथ संस्कृति चलती है, उपन्यास की भूमिका नहीं, कहानी का प्लाट बन कर। इसमें आश्चर्य की इसलिए क्या बात है, यदि चीनी दूत ने, अपने देश के सामान को भारत के द्वारा पुनः मध्य-एशिया को भेजे जाते देखा, और अपने वर्णन में लिखा कि मध्य एशिया में न केवल भारतीय-धर्म एवं कला का प्रवेश हो चुका है अपितु, नवीन बौद्ध धर्म के साथ ही बौद्ध-शिल्प एवं मूर्ति कला का भी। तारिम-बेसिन से पाठक अपरिचित न होंगे। स्थान-निर्देश की आवश्यकता मैं नहीं समझा हूँ। गत कुछ वर्षों के अन्दर ही, उक्त-स्थान में, पुरातत्व-विषयक ढेरों पदार्थ, सुरक्षितावस्था में प्राप्त हुए हैं।

जिस स्थान की चर्चा हम कर रहे हैं, वह तारिम के रेगिस्तान के दक्षिण-पश्चिम भाग में, खोतान के नखलिस्तान में स्थित है और भारतीय दृष्टि कोण से, ठीक काराकोरम शेष-शृङ्ग के ऊपर, जहां हिन्दू कुश एवं क्वेनलुन की शैल-शृङ्खलायें आकर मिलती हैं। पूर्वी एवं पश्चिमी-एशिया के प्राचीन स्थल-मार्गों में ही यह ओएसिस स्थित है। चीन के सौदागर, कारवां की यात्रा से थक कर वहीं पर आराम किया करते थे। ईसा से डेढ़ शताब्दी पूर्व खोतान, और चीन में राजनैतिक-सम्बन्ध था। ऐसा कहा जाता है कि खोतान-राज्य के संस्थापक सम्राट अशोक के प्रजा-गण हैं जिन्हें, उसने, अपने प्रिय-पुत्र कुणाल को अंधा बना देने के जुर्म में देश-से निकाल बाहर कर दिया था। वह ईसा पूर्व तीसरी सदी की बात है।

पर, खोतान के निवासी इस ऐतिहासिक-सत्य से ही संतुष्ट नहीं हैं। वे अपने को, रावण के भाई कुबेर का वंशज घोषित करते हैं, जो यक्षों का राजा एवं सम्पत्ति का देने वाला कहा जाता है। यदि पाटलिपुत्र के निर्वासित आमात्यों के साथ बौद्ध धर्म खोतान नहीं गया तो यह निश्चित है कि कुछ ही समय बाद, सम्भवतः राजा विजयसम्भव के राज्य-काल में, यह धर्म वहां पहुँचा एवं राजनैतिक उथल पुथल के कारण संस्कृति एवं धर्म का प्रमुख-अंग बना रहा। कनिष्क ने अशोक की ही भांति बौद्ध-धर्म ग्रहण कर, खोतान को अपने राज्य में १०२ ई० में मिला लिया। खोतान, पूर्वी तुर्किस्तान के रूप में, मुस्लिम-शासन-काल से गुजरा साथ ही खोतान का बौद्ध-धर्म, पुरातत्व का विषय बन गया—लगभग ग्यारहवीं सदी के बाद ही!

एक प्रकार से सदियों तक, भारतीय-संस्कृति के इस प्राचीन-प्रसारणीय केन्द्र की गौरव-गरिमा तारिम के रेगिस्तान के रजकणों में विलुप्त रही। स्थानीय-परम्परा, इन धार्मिक-स्थानों की स्मृति-रक्षा करती रही, और यत्रतत्र, तूफानों के कारण स्पष्ट हो आये पुरातत्व-सम्बन्धी-पदार्थ, विलुप्त-सभ्यता की ओर इङ्गित करते रहे पर, मरुभूमि का भूला-भटका पथिक अपनी राह लगता गया। किसी ने ध्यान तक न दिया। सन् १८६६ में, नहर के निर्माण की आयोजना ने, इस वीरान नगर के ध्वंसावशेषों को लोगों के समक्ष, अनायास ही प्रकट कर दिया। इस प्रकटी-करण से पुरातत्ववेताओं ने लाभ उठाया। उक्त स्थान के प्रागैतिहासिक पन्ने उल्टे गये और लोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह खोतान के प्राचीन-राज्य का ही ध्वंसावशेष है। गौरव-ग्रन्थ पाये गये। पत्थरों एवं तांबे कांसे पर की गयी अलंकृति का पता चला। अजन्ता एवं गांधार-कालीन कला के प्रति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रूप, वेदियों, आभूषणों, एवं कीमती पत्थरों पर पाये गये। और ये संग्रहालयों में उठाकर रख दिये गये। जनता को उनसे कोई लाभ नहीं हुआ। तब सन् १९०७ में डा० एम. ए. स्टीन ने अपनी पुस्तक 'ऐंशेंट खोतान' में लिखा—

"यह निश्चित है कि तांग-राज्य-काल में, पश्चिम की ओर चीनी-शक्ति का प्रसार बौद्ध धर्म के लिए ही लाभ-दायक सिद्ध नहीं हुआ अपितु पश्चिमी-एशिया से अन्य धर्मों के चीन-आगमन की राह खुल गयी। ईसाई मत के अलावा, ज़ोरास्टर-मत का भी प्रसार पूर्व की ओर हुआ। सन् ६२७ में, प्रथम-अग्नि-मंदिर चांग-आन में बना और दस वर्ष बाद हो-लू नामक जादूगर ने चीन-साम्राज्य में, हुरमज्द (ORMAZD) के विश्वास का प्रचार किया। स्ही आन फू (प्राचीन चांग आन) के प्रसिद्ध शिला लेख में, ऐसा उल्लेख है कि सन् ६३५ में आलोपेन की संरक्षता में प्रथम 'क्रिश्चियन मिशन' पवित्र ग्रन्थों एवं प्रतिमाओं के सङ्ग, चीन आया और सन् ६३८ में, राज्य की ओर से धर्म प्रचार की उसे अनुमति प्राप्त हो गयी। शिलालेख का लेखन काल सम्भवत: ७२७ ई० है...।"

पूर्व एवं पश्चिम के स्थल मार्ग में स्थित होने के कारण खोतान, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक, आन्दोलनों से बच न सका। जे० एस० कज़िन्स का मत है कि "खोतान के खोदे गये अवशेषों से जो बौद्ध वेदिकायें प्राप्त हुई हैं उन पर फारस का प्रभुत्व है। साथ ही इसकी मूर्ति एव चित्र कला भी भारतीय कला द्वारा प्रभावित हो चुकी है।" कहते हैं कि उनकी धार्मिक कला पर ही केवल धर्म का अधिकार न था अपितु भारतीयता उनकी रगों में समा गई थी। तीसरी शताब्दी के लगभग, खोतान में, प्राकृत से मिलती जुलती भाषा का उपयोग होता था और इसका प्रचार बहुत अधिक था। खोतान की कला में हिन्दू एवं बौद्ध दोनों मतों का ऐसा सम्मिश्रण था कि खोतान की गुहाओं में, गणेश एवं बोधिसत्व के चित्र साथ साथ बने हुए हम पाते हैं। मूर्ति एवं चित्र कला विषयक बहुत से उपयोगी ग्रन्थ भी खोतान के अवशेषों में पाये गये हैं। बौद्ध धर्म की महायान शाखा पर लिखी गई हस्त लिखित टीकायें भी पाई गई हैं। एशियाई संस्कृति का पूर्वी राग चलता रहा एवम् बारहवीं सदी तक मरुभूमि के अन्तर्गत राग गूँजता रहा।—एक उदाहरण लीजिये—"किसी व्यक्ति का सच्चा मित्र वही है जो, धर्म के द्वारा उचित उपदेश दिया करे...।"

दजला और फ़िरात नामक नदियों के जल से सिंचित होकर मेसोपोटामिया की समतल भूमि से भारतीय संस्कृति के लिखित ग्रन्थों का खोतान के ग्रन्थावशेषों से सादृश्य है। सन् १९०७ में, मेसोपोटामिया स्थित (?) बोगाज़ कुई की खुदाई में, प्रोफेसर विंकलर के हाथ कुछेक मुद्रायें लगीं। इन मुद्राओं से पता चलता है कि फ़िरात की घाटी में, ऐसे लोगों का निवास था जो उन देवताओं की पूजा करते थे जिनकी उपासना आज भारत में होती है। इससे यह स्वयम् सिद्ध है कि एक समय विश्व के दो महान् धर्म हिन्दू एवं हत्ती एक ही सूत्र में बंधे थे।

भाषा तत्वज्ञ, एक निश्चय पर नहीं पहुँच सके हैं कि फ़िरात की घाटी से हिन्दू संस्कृति उदित हुई या भारत से ही। फारसी के विद्वान् प्रो० ई० मेयर का ऐसा मत है कि "वरुण एवं इन्द्र जैसे हिन्दू देवों की हस्ती हमें, आर्य जाति के प्रागैतिहासिक काल में ले जाती है।' प्रो० जैकोबी का मत है कि संधि पत्र के देवादिदेव ऋगवेद युगीन हैं।" नौवें के विद्वान लेखक डा० स्टेन कोनो ने एक लेख लिख कर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि ई० पू० १४०० के लगभग की मितानी सभ्यता के हिन्दू देव, एक ऐसी संस्कृति के स्पष्टीकरण थे जो भारत में प्रौढ़ हुई थी। ऋगवेद का काल, अवश्य १४०० ई० पू० से पहले रहा होगा जो इस कथन की पुष्टि का आधार है।"

हम देख चुके हैं कि पूर्वी एवं पश्चिमी एशिया के स्थल मार्ग में स्थित तारिम बेसिन, सांस्कृतिक धाराओं को मिलाये रहने के कारण, इतिहास का विषय बन चुका है। राज्यों की उथल-पुथल के क्रम में, चीन के राजनैतिक प्रभाव का जहाँ एक ओर तिब्बत कारण बना, वहीं दूसरी ओर तुर्कों के आक्रमण का विषय भी। तिब्बत ने भारतीय तन्त्र को भी अंगीकार किया जो लामा मत की ईन्द्रजा-लोपासना से मिल जुल कर एक हो गया। तिब्बत का यह विश्वास जिसे 'बौनिज़्म' या 'पवित्र मत' कहते हैं जापान के शिन्तो मत के प्रारम्भिक रूप के सदृश था। इसके उद्देश्य अनिश्चित एवं उत्सव विराट होते थे। आत्म विद्या, एवं शास्त्र से शून्य शिन्तो की ही भांति यह भी था जिसका सम्बन्ध केवल अलौकिक सत्ता से होता था। बौद्ध धर्म के पूर्व बौनिज़्म का अस्तित्व था, इसलिए इस मत में तांत्रिक विश्वास की प्रधानता थी और उत्तरी भारत की भौतिकता का इसमें समावेश भी था। ईसवी की सातवीं सदी में, तिब्बत के किसी राजा ने अपना एक दूत भारत भेजा था कि वह बौद्ध हिन्दू शास्त्र का अध्ययन करे एवं बौद्ध ग्रन्थों को अपने संग वापस लेता आये। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तुत अपने संग एक ही लेख ले जा सका जिसका अनुवाद तिब्बती भाषा में किया गया। बोनिज़्म को अपने प्रभाव से बौद्ध धर्म ने अंशतः सजीव ही बनाया। बौद्ध शास्त्रों को अपनाकर तब यह अनिश्चितता की गुहा में भटकता न रह सका। बौद्ध धर्म को इसने दिया भी, केवल लिया ही नहीं। मानवी प्रकृति के देवाकृत मानव की प्रवृत्ति का सामना बहुत दिनों तक बौद्ध धर्म द्वारा प्रस्तुत नैतिकता एवं अनुशासन की गूढ़ एवं भाववाचक प्रथा न कर सकी। स्वभावतः मानव जाति को विदित है कि जिस गुप्त पहाड़ के पीछे वह दौड़ रही है वह विचारधारा नहीं चेतना की यथार्थता है, सूत्र नहीं; अस्तित्व है। बौन ज्ञान ने बौद्ध नैतिकता पर प्रत्याक्रमण किया है। फलतः लामा मत का उदय हुआ जो धार्मिक संस्कृति के विनिमय के ही कारण सम्भव हुआ। बारहवीं सदी के अन्त में, खानाबदोश मंगोल जाति चंगेज़ ख़ाँ के नायकत्व में अपूर्व शक्ति बटोर चुकी थी। मंगोलिया से पच्छिम की ओर बढ़कर चंगेज़ ख़ाँ तिब्बत में जम गया। पर समय का रथ उलट गया आगे चलने के पूर्व। चंगेज़ ख़ाँ का एक उत्तराधिकारी पोता तिब्बत में बौद्ध हो गया। उसने देश का शासन-भार एक बौद्ध महन्त के ऊपर सौंप दिया जो आध्यात्मिक एवं सामयिक शक्ति के बल पर देश का भाग्य विधाता बन बैठा। और वही परम्परा आज तक चली आ रही है। तिब्बत और भारत का राजनैतिक सम्बन्ध जो भी हो पर तिब्बत की भावनायें भारत के प्रति बड़ी सुदृढ़ हैं। यह मानी हुई बात है कि तिब्बतवासी मंगोल जाति के हैं फिर भी वे अपने को अवलोकितेश्वर (बौद्ध-देवता) का वंशज बतलाते हैं। तिब्बत में इसी आधार पर एक दन्त कथा यह प्रचलित है कि अवलोकितेश्वर ने तिब्बत में एक बन्दर भेजा जिसने एक राक्षसी से ब्याह कर लिया। फलतः उसकी सन्तानों ने ही कालान्तर में मानव रूप धारण कर लिया।

तिब्बती कला में बौद्ध विश्वास के साथ साथ, चीनी एवं मुस्लिम कला का भी स्पष्ट प्रभाव हम पाते हैं। उक्त कला का मूलोद्गम निश्चय ही भारत है। अभी हाल में कला के समालोचक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जहाँ एक ओर भारतीय बौद्ध धर्म ने तिब्बती कला को आत्मा दिया वहां दूसरी ओर चीन एवं फारस ने उसे अलंकृत किया है।

## स्त्री और पुरुष के कार्य क्षेत्र

"स्त्री क्या है? साक्षात त्यागमूर्ति है। जब कोई स्त्री किसी काम में जीजान से लग जाती है तो वह पहाड़ को भी हिला देती है।" [ यं० इं० २५-१२-२१ ]

"स्त्री को अबला कहना उसका अपमान करना है। उसे अबला कहकर पुरुष उसके साथ अन्याय करता है। अगर ताकत से मतलब पाशवी ताक़त से है तो निस्सन्देह पुरुष की अपेक्षा स्त्री में कम पशुता है पर अगर इसका मतलब नैतिक शक्ति से है तो अवश्य ही पुरुष की अपेक्षा स्त्री कहीं अधिक शक्तिशालिनी है। क्या स्त्री में पुरुष की अपेक्षाकृत अधिक प्रतिभा नहीं है? क्या उसका आत्मत्याग पुरुष से बढ़कर नहीं है? क्या उसमें सहनशक्ति की कमी है? क्या उसमें साहस का अभाव है? अगर अहिंसा हमारे जीवन का ध्यान मन्त्र है तो कहना होगा कि देश का भविष्य स्त्रियों के हाथों में है।"

"स्त्री अहिंसा की मूर्ति है। अहिंसा का अर्थ है अनन्त प्रेम और अनन्त प्रेम का अर्थ है कष्ट सहने की अनन्त शक्ति। माँ की हैसियत से स्त्री से बढ़कर इस शक्ति का परिचय अधिक से अधिक मात्रा में और किसमें मिलता है? युद्ध से संत्रस्त दुनिया आज शान्ति का अमृत पान करने के लिये तड़प रही है। यह शान्ति-कला सिखाने का काम भगवान ने स्त्री ही को दिया है।"

"मेरी अपनी राय तो यह है कि जैसे मूल में स्त्री और पुरुष एक हैं ठीक इसी तरह उनकी समस्या का तत्व भी असल में एक ही है, दोनों में एक ही आत्मा विराजमान है। दोनों एक ही प्रकार का जीवन बिताते हैं। दोनों की एक ही भांति की भावनाएं हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक की असली सहायता के बिना दूसरा जी नहीं सकता।" [ ह० से० २४-२-४० ] —गान्धी जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गीता में पदार्थवाद

श्री रामचन्द्र जैन बी० ए०, एल-एल० बी०

भगवान वेदव्यास का श्रीमद्भगवत्गीता एक ऐसा अमर ग्रन्थ है जो सदियों से जीवन-विकास में प्रेरणा देता आया है और भारतीय समाज की आधुनिक दासता की दशा में भी इससे स्वातन्त्र्य की ओर प्रगति करने की प्रेरणा मिलती है। गीता में शाश्वत सिद्धान्तों का निरूपण है जो काल और देश से बाधित नहीं है। गीता पर हज़ारों विद्वानों ने लिखा है किन्तु मूल सत्य यह है कि गीता की वही टीका अधिकृत मानी जा सकती है जो समाज के आधुनिक जीवन को एक कदम आगे बढ़ावे, उसकी प्रगति में सहायक हो क्योंकि गीता इसी उद्देश्य से कही गई व लिखी गई थी। बाकी सब टीकाएं शुष्क, व्यर्थ और घातक हैं। गीता के विषय पर इसी दृष्टिकोण से इस लेख में विचार किया गया है।

गीता अद्वैतवाद का निरूपण करती है। किन्तु यह अद्वैतवाद क्या है? क्या यह निर्गुण ब्रह्माद्वैतवाद है या पदार्थाद्वैतवाद है? यह एकमात्र पदार्थ क्या है? भगवान वेदव्यास ने अध्याय १४ के श्लोक ३ व ४ में कहा है :

ममयोनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

यह आलंकारिक भाषा है। एक ही तत्व के गतिशील विकास का दिग्दर्शन कराने के लिए इस रूपक का प्रयोग किया गया है।

योनि और गर्भ—यह क्रिया करनेवाला तत्व एक है। उसके व्यक्त स्वरूप को प्रकृति कहा गया है और उसके अन्दर जो मूलभूत गति है वह शक्ति नाम से सम्बोधित है। प्रकृति पदार्थ का वह स्थूल रूप है जो निरन्तर परिवर्तित होता दिखाई देता है। वह इन्द्रियगोचर है। शक्ति पदार्थ का वह सूक्ष्म रूप है जो परिवर्तन होने पर अनुभव द्वारा ज्ञात होता है।

गर्भ के कारण जब योनि में क्रिया प्रारम्भ हो जाती है तो भविष्य का विकास प्रारम्भ हो जाता है अतः योनि भी सत्य और गर्भ भी। योनि में गर्भ रखनेवाला तत्व से भिन्न नहीं है। यह अद्वैतवाद है। यदि इस अद्वैतवाद को निर्गुण और निराकार ब्रह्म मानें तो निर्गुण ब्रह्म का निर्गुण प्रकृति में ही बीज रखना होगा। और निर्गुण योनि में निर्गुण बीज के रखे जाने से निर्गुण फल की ही यानी शून्य की अथवा सगुण के अभाव की उत्पत्ति या विकास होगा। यदि यह मानें कि प्रकृति मिथ्या है, इन्द्रियों का अध्यास मात्र है तो यह योनि मिथ्या होगी अर्थात् योनि का अस्तित्व ही न होगा अतः बिना किसी स्थान के बीज का स्थापित होना असम्भव है। यदि प्रकृति रूप योनि का अस्तित्व है और बीज का अस्तित्व अलग है तो यह द्वैत होगा। द्वैत का अर्थ है विभिन्नता। दो विभिन्न गुणोंवाली वस्तुओं का सम्बन्ध या संघर्ष हो नहीं सकता और न दोनों के सम्बन्ध या संघर्ष के फलस्वरूप समन्वयात्मक सम्वाद की ही उत्पत्ति हो सकती है। दो वस्तुओं के परस्पर सम्मिश्रण के लिए यह परमावश्यक है कि उन दोनों में कुछ गुण समान अवश्य हों। जिससे गुणात्मक प्रक्रिया प्रारम्भ तो हो सके। द्वैत न वेदान्त को मान्य है न पदार्थवाद को। अतः दो सत्ताओं के स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना मिथ्या और निराधार है।

अतः योनि और बीज को साकार वास्तविक सत्ता मानने से ही अर्थ युक्ति संगत हो सकता है। पदार्थ स्वयं गतिशील है। शक्ति से विहीन पदार्थ की कल्पना नहीं की जा सकती। योनि पदार्थ है, बीज पदार्थ है अतः दोनों के सम्मिश्रण से जो वस्तु उत्पन्न होगी वह भी पदार्थ ही होगी।

गीताकार जीवन को एक सत्य इकाई मानते थे। वे भी जीवन की व्याख्या करना चाहते थे। पदार्थ से निर्मित चराचर सृष्टि में इससे बाहर किसी तत्व की कल्पना स्वयं पदार्थ के गुण से ही असम्भव और अवैज्ञानिक है। कल्पना करनेवाला भी तो पदार्थ पिण्ड ही है। हमारा मन वह कैमरा है जिस पर बाह्य क्रिया कलापों का बिल्कुल हूबहू प्रतिबिम्ब पड़ता है। यह चिरन्तन सत्य है कि बुद्धि मन के साथ दौड़ में सर्वदा पीछे रहती है। जब हमारी बुद्धि का विकास उतना नहीं हो पाता जितना कि मन बाह्य सृष्टि से ग्रहण करता है तो जो कुछ मन ग्रहण करता है उसकी व्याख्या करने के लिए बुद्धि हमेशा कल्पनाएं किया करती है और यही भावी विकास की नींव है। बुद्धि कल्पित आधार पर मन की सामग्री को समझने का प्रयत्न करती है। प्रारम्भ में यह कल्पना देश और काल की परिस्थिति के अनुसार विकास पथ पर अग्रसर होती और बाल्यावस्था में रहती है अतः वह कल्पना प्रतिक्षण

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उसकी सत्यता का विश्वास नहीं दिला सकती। जब हम उस कल्पना की रोशनी में मन के ग्रहीत अनुभवों की व्याख्या नहीं कर सकते और कल्पना को अधूरी पाते हैं तो हमारी कल्पना में विकास होना प्रारम्भ हो जाता है किन्तु मन में जो तत्व संग्रहीत हो जाता है वही सत्य होता है। सत्य का अर्थ सापेक्षिक सत्य है जो देश और काल की परिस्थिति के अनुसार किन्हीं सिद्धान्तों को समाज के लिए उपयोगी सत्य मानकर विकास में सहायक हो सके।

गीताकार के हृदय में भी पदार्थ की वास्तविकता अंकित हो चुकी थी। किन्तु उस समय बुद्धि का विकास इतना नहीं हुआ था कि वे पदार्थ के सत्य को बिना किसी कल्पना के आधार के ही सुलझा लेते। जड़ कहे जानेवाले पदार्थ में ही चेतना है, यह आविष्कार बुद्धिगम्य तो प्रतीत होने लग गया था किन्तु अभी वह वैज्ञानिक श्रेणी में नहीं पहुंच पाया था। गीताकार भी निर्गुण ब्रह्म की कल्पना के दरवाज़े पर लुढ़क पड़े। कल्पना की आवश्यकता वहीं होती है जहाँ हम यह आभास करते हों कि कुछ अभाव है। कोई तत्व ऐसा है जो हमारे ज्ञान की सीमा के बाहर है। जो हमारे ज्ञान की सीमा से बाहर है वह सही भी हो सकता है और ग़लत भी। यदि वह सही होता है तो परम्परा की विचारधारा के अभ्यास से समूर्तीक भी हो सकता है, अन्यथा नहीं। गीताकार के समय की सचेतन बुद्धि जड़ और चेतन इनके एकत्व के विज्ञान का विकास न कर पाई थी अतः चैतन्य स्वरूप एक स्वतन्त्र तत्व की कल्पना किये बिना उस समय दार्शनिक संसार को सुलझती न थी। अद्वैतवाद बुद्धि का सहज और सुन्दर उत्कर्ष है अतः द्वैत के फेर में न पड़कर गीताकार की बुद्धि भी 'जगन्मिथ्या' की ओर प्रवृत्त हुई। इस श्लोक में 'निर्गुणाद्वैत' की पुट ज़रूर है। किन्तु मूलभाव पदार्थाद्वैत की ही ओर आकर्षित है। यह 'निर्गुणाद्वैत' की कल्पना अस्वाभाविक है किन्तु गीताकार के हृदय का क्रान्तिकारी मन्थन और उनके मन का चित्र जड़ चेतन की एकता आज बुद्धि के सामने समूर्तीक है क्योंकि विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि शक्ति (energy), पदार्थ (matter) में परिवर्तित होती रहती है और पदार्थ शक्ति में परिवर्तित होता रहता है।

श्री रामानुजचार्य ने भी अपनी टीका में 'ब्रह्म' का अर्थ प्रकृति किया है इसलिए उपर्युक्त श्लोकों का उपर्युक्त अर्थ यही है कि प्रकृति पदार्थ की ही योनि है और शक्ति रूप से पदार्थ ही उसमें बीज रखता है। सब योनियों में जो मूर्तियां पैदा होती हैं उनकी योनि प्रकृति और बीजदाता शक्ति है।

पदार्थ के विभिन्न अवयवों का निरूपण करते हुए गीताकार ने कहा है :—

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर॥ अ०८ श्लो० ३व४

अर्थात् सबसे परम अक्षर यानी कभी भी नष्ट न होने वाला तत्व पदार्थ है और प्रत्येक वस्तु का स्वभाव मूलशक्ति कहा जाता है। पदार्थ से भूतमात्रादि चर अचर पदार्थों की उत्पत्ति करनेवाला विसर्ग अर्थात् सृष्टि व्यापार कर्म है। उत्पन्न हुए प्राणियों की परिवर्तनशील स्थिति अधिभूत है। अधियज्ञ अर्थात् सब यज्ञों का अधिपति लोकसंग्रह का विकास सिद्धान्त है।

पदार्थ वह साकार वास्तविक सत्ता है जो अपनी मूल भूत शक्ति की गति से गुणात्मक परिवर्तन के हेतु क्रियाशील है और जिसके स्वरूप का प्रतिबिम्ब निरन्तर सचेतन बुद्धि पर पड़ता रहता है। मूलशक्ति पदार्थ का वह गुण है जो सदा सर्वदा अविच्छिन्न तौर पर अपना अस्तित्व पदार्थ में ही रखता हुआ दृश्य जगत् में पदार्थ की गति का बोध कराता है और जिसके प्रभाव से वास्तविक पदार्थ में अबाध परिवर्तन होता रहता है।

कर्म शक्ति का वह गुण है जो एक वास्तविक सत्ता का दूसरी वास्तविक सत्ता से सम्बन्ध स्थापित कर विकास के लिए अनुभव की उत्पत्ति करता है जिसके आधार पर व्यक्त पदार्थ निरन्तर क्रियाशील रहते हैं। अधिभूत वह साकार पिण्ड है जो देश और काल की परिस्थिति के अनुसार अपनी उपयोगिता समाप्त कर अपना स्वरूप परिवर्तित करता रहता है।

यज्ञ मनुष्य व वर्ग की वह क्रिया व क्रियाओं का समूह है जो सृष्टिक्रम के प्रगतिशील प्रवाह में सहायक हो। ये सब पदार्थ के द्रव्यांश हैं। व्यक्त सृष्टि के भिन्न भिन्न स्वरूपों को वास्तविक दृष्टि से समुचित समझने के लिए पदार्थ की व्याख्या की रोशनी में जीवन के विकास प्रवाह में इनके विशिष्ट अर्थों पर प्रकाश डाला गया है।

पदार्थ के गुण का विश्लेषण करते हुए गीताकार ने कहा है :—

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥अ० २ श्लो० १७



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्मरण रहे, जिस शक्ति ने यह जगत् विस्तृत किया है वह अविनाशी है। इस अन्वय तत्व अर्थात् पदार्थ का विनाश करने के लिए कोई भी समर्थ नहीं है।

पदार्थ अपने एक विशिष्ट रूप में सत्ताधारी होता है। उसका वह स्वरूप देश और काल की परिस्थिति के अनुसार परिसीमित होता है। उसकी जीवन शक्ति समय के बीतते जाने पर उसमें परिवर्तन उपस्थित करती रहती है और पदार्थ की वह सत्ता निरन्तर अपने परिवर्द्धित और विकसित रूप में स्थापित होती रहती है। पदार्थ का यह विकास 'सत्कार्यवाद' के सिद्धान्त के अनुसार होता रहता है। पदार्थ का नाश नहीं हो सकता, केवलमात्र परिवर्तन ही होता है। 'सत्कार्यवाद' के सिद्धान्त में जो मूल शक्ति विकास की गति को बढ़ाने में क्रियाशील है वह शक्ति नित्य है; वह अपने परिवर्तित रूप में विद्यमान अवश्य रहती है अतः वह अव्यय है। उस शक्ति के प्रवाह को रोकने या नष्ट करने में कोई समर्थ नहीं जो शत्रु-भाव से उसका विरोध करता है, शक्ति स्वयं उस विरोधी का समूल नाश कर देती है।

पदार्थ के विकास के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए गीता के अध्याय १३ के श्लोक १२ व १६ व १७ में कहा गया है :—

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादि मत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च यज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्य हृदि सर्वस्वधिष्ठितम्॥

अर्थात् जिसे जान लेने से परमगति मिलती है वह अनादि सब से श्रेष्ठ पदार्थ है। न उसे सत् कहते हैं न असत् ही। वह तत्वतः अविभक्त होकर भी सब भूतों में विभक्त हो रहा है और सब भूतों का पालन करनेवाला और ग्रसनेवाला भी वही है। उसे ही तेज का भी तेज और अन्धकार से परे कहते हैं। ज्ञान जो जानने के योग्य है और ज्ञेय जो ज्ञान से विदित होने वाला है वही है। सब के हृदय में वही अधिष्ठित है।

लोक संग्रह के लिए यज्ञचक्र का प्रवाह निरन्तर चलता रहता है। उसकी मूलभूत शक्ति को विकसित करना, उसमें लय हो जाना ही प्राणिमात्र का परम ध्येय, परम गति, मोक्ष और मुक्तावस्था है। व्यक्ति के जीवन का और कोई अर्थ नहीं है। यह शक्ति शून्य नहीं है। इससे संसार के प्रत्येक व्यक्ति की विकास-योजना में परिवर्द्धन होता है अतः मनुष्य जब शक्ति रूप हो जाता है तब वह सर्वव्यापी हो जाता है; उसकी शक्ति आनुवंशिक तौर पर प्राणीमात्र में विभक्त होजाती है जिससे यज्ञचक्र के प्रवाह का वेग बढ़ता है। यह एक ठोस साकार वास्तविकता है, निर्गुण निराकार रूप नहीं। प्रत्येक प्राणी की यही परम गति है।

'ब्रह्म' शब्द का अर्थ गीता टीकाकार रामानुज और तिलक ने भी प्रकृति या पदार्थ किया है। यहां पर भी 'ब्रह्म' शब्द का प्रकृति अर्थ ही उचित है। नवीन आविष्कारों से 'प्रकृति' शब्द के अर्थ में भी विकास हो चुका है। पहले प्रकृति उस सत्ता को समझा जाता था जिसमें चैतन्य नहीं था। अब चैतन्य ठोस सत्ता का ही एक अविभक्त गुण सिद्ध हो चुका है अतः चेतनयुक्त प्रकृति अर्थात् शक्तिमय पदार्थ ही 'प्रकृति' शब्द का शुद्ध विकसित अर्थ है, जिसका आधुनिक भाषा में अर्थ है—पदार्थ।

पदार्थ अपने व्यक्त और अव्यक्त दोनों स्वरूपों से बंधे अथवा परे है। अपने एक स्वरूप से यही ज्ञाता है तो दूसरे स्वरूप से यही ज्ञेय। वेदान्त एक प्रश्न उठाता है यदि प्रकृति ही सब कुछ है तो हमारे शरीर में जो ज्ञाता है वह कौन और क्या है? इस प्रश्न का उत्तर इन श्लोकों में ही अदृष्ट है। वे कहते हैं कि जैसे कोई हाथ अपने ही कन्धे पर नहीं चढ़ सकता वैसे ही प्रकृति स्वयं अपने को ही नहीं देख सकती। यदि प्रकृति में चैतन्य की खोज के सिद्धान्त को भी हम अलग रखें तो भी 'आत्मा' जो एक तरफ अकर्ता और अज्ञाता है वह दूसरी तरफ ज्ञाता और ज्ञेय कैसे हो सकता है। यह विरोध क्यों? अज्ञाता ज्ञेय नहीं बन सकता और अज्ञाता ज्ञाता नहीं हो सकता। यह प्रश्न ही द्वैत का है ब्रह्म अपने कंधे पर स्वयं कैसे चढ़े। प्रतिपाद्य केवल इतना ही है कि जो कुछ इन्द्रियगोचर वह एक ही तत्व का प्रभाव है।

पदार्थाद्वैत का चरम विकास करते हुए गीताकार ऊँचा हाथ उठाकर बोध देते हैं:—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्व दर्शिभिः॥अ० २ श्लोक

अर्थात् जो नहीं है वह हो नहीं सकता और जो है उसका अभाव नहीं होता। तत्वज्ञानी पुरुषों ने सत् असत् दोनों का अन्तर देखकर अद्वैत तत्व का [illegible] किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


संसार की इकाई सर्वदा अबाधित रहती है। संसार में किसी वस्तु का नाश नहीं होता केवल अवस्थावश नाम रूप का परिवर्तन होता है। संसार त्रिगुणात्मक है और इससे सर्वदा त्रिगुणात्मक नाम रूपों की उत्पत्ति और विकास होता रहता है। अखंड विश्व ही केवल सत्य है। इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जो इसमें है वही सत्य है, जो इसमें नहीं है वह असत्य है; वह वस्तुतः है ही नहीं। अतः यह सृष्टि और उससे विकसित उसी का स्वभाव रूप उसके मूल में प्रवाहित होने वाली शक्ति ही परम सत्य है। यदि परमात्मा है तो इस अखिल ब्रह्माण्ड के अन्दर। यदि आत्मा है तो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के व्यष्टिगत पिण्ड के अन्दर। इसके अभाव में आत्मा और परमात्मा की कल्पना नहीं हो सकती; उनका स्वयं का अभाव बेशक हो सकता है। विश्व के बाहर उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व हो ही नहीं सकता।

यह सृष्टि पदार्थ मात्र है और जीवन शक्ति उसी का एक गुण है। आत्मा और परमात्मा भी पदार्थ के आधार पर आश्रित हैं। उनकी कल्पना करता है तो पदार्थ। अपना बलिदान कर उनकी सत्य स्थापना करता है तो पदार्थ। यदि पदार्थ नहीं है तो 'आत्मा' और 'परमात्मा' भी नहीं हैं; इससे विभिन्न वे कुछ भी नहीं। यदि वे पदार्थ से भिन्न निर्गुण और निराकार हैं तो यह एक महान् असत्य है क्योंकि गुणों से ही गुणों की उत्पत्ति होती है। जो है उससे वही उत्पन्न हो सकता है जो है। यदि निर्गुण ब्रह्म केवल स्वानुभूति की कल्पना की वस्तु है तो वह इसी प्रकार के गुण धर्मवाली वस्तु से ही उत्पन्न या आश्रित हो सकती है। शून्य से ही शून्य उत्पन्न होता है। निर्गुण निर्गुण से ही उत्पन्न हो सकता है, सगुण से निर्गुण विकसित नहीं हो सकता। अतः निर्गुण की प्राप्ति एक महान् धोखा है।

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त के अनुसार जो सत्य है वह 'सत्' और 'असत्' दोनों से परे है यानी दोनों ही तथ्यों का समन्वय है। प्रकृति परिवर्तनशील है और परिवर्तन लाने वाली गति है किन्तु प्रकृति और शक्ति दोनों एक ही द्रव्य के द्रव्यांश हैं; व्यक्तिगत हैसियत से दोनों में से एक भी पूर्ण सत्य नहीं। यदि सत्य है, नित्य है, अजर और अमर है तो दोनों का समन्वयात्मक रूप। दोनों एक ही तत्व है। प्रकृति और शक्ति का समन्वयात्मक रूप पदार्थ है अतः पदार्थ ही अन्तिम सत्य है।

# दोनों एक वंश के हैं

[ प्रवचन ]

"हिन्दू और मुसलमान एक वंश के हैं। वे सारे देश में यद्यपि विषम रूप से फैले हुये हैं—वे एक भाषा बोलते हैं: बंगाल में बंगाली, गुजरात में गुजराती। वस्तुतः उन्होंने एक दूसरे की पूजा-विधि का सम्मान किया है और एक संस्कृति के विकास करने का जतन किया है, जो कि न हिन्दू है न मुसलिम है बल्कि भारतीय है। कला और स्थापत्य में, सङ्गीत और चित्रकारी में और धर्म तक में दोनों के विश्वासों का विष्कम्भक साफ दिखाई देता है। कबीर, नानक, दादू, चैतन्य और तुकाराम की शिक्षायें और सूफ़ी रहस्यवाद का विकास उस एकता की भावना को प्रकट करता है जिसमें कि धार्मिक नेता काम करते थे। भारत के लाखों गाँवों में हिन्दू और मुसलमान एक ही रीति से खुशियाँ मनाते हैं। उनके खेल और मनोरंजन की चीजें एक हैं। वे एक दूसरे के उत्सवों में भाग लेते हैं और ग्राम-जीवन के सामान्य उद्देश्य को पूरा करते हैं। राजनैतिक संग्राम में भी हिन्दू और मुसलमान साथ साथ लड़े हैं।"

—सर्वपल्लि राधाकृष्णन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# यदि राष्ट्रीय सरकार क़ायम हुई ?

डाक्टर पट्टाभि सीतारामैया

वर्तमान नौकरशाही में हुकूमत किसी के हाथ में क्यों न हो हर मामले पर ब्रिटिश-हित की दृष्टि से ग़ौर किया जाता है। किन्तु राष्ट्रीय सरकार देश की भलाई को ध्यान में रख कर ही सब बातों पर विचार करेगी। उदाहरण के लिए रेलों को ही लीजिए। इन रेलों की स्थापना भारत में कम्पनियों द्वारा इस शर्त पर हुई थी कि वे ४ या ५ प्रतिशत मुनाफ़ा अपने हिस्सेदारों को अवश्य देंगी। हानि होने पर भी सन् १९०० तक यह मुनाफा बराबर जमा होता रहा। उसके बाद में उन्होंने देना शुरू किया। बाद में इस प्रकार का समझौता केन्द्रीय सरकार के साथ हुआ कि रेलवे के नाम से ६ करोड़ रुपया सालाना सरकार को दिया जायगा। इस प्रकार रेलों की सरकार, सरकार के अंतर्गत सरकार है और इस वर्ष सरकारी आय में रेलों की आमदनी ४१* करोड़ है। इसका कारण युद्ध है। अब क्यों कि सब रेलें सरकार के अधिकार में हो गयी हैं इसलिए ब्रिटेन के लोगों को इनमें कोई दिलचस्पी नहीं है। हां, कम्पनियों द्वारा कुछ रेलों का प्रबन्ध होता है। अतएव ब्रिटिश पूँजीपतियों का ध्यान सड़कों की ओर आकर्षित हो रहा है। सड़कों का यह मोह इसलिए पैदा हुआ कि ब्रिटेन के लोगों को वहां की जनता के जीवन का स्टैंडर्ड क़ायम रखने के लिए निर्यात में कम से कम ५० प्रतिशत की वृद्धि करनी है। अतएव बाइसिकिल आदि सामान भारत आयेगा। मोटरें और बसें भी आयेंगी। राष्ट्रीय सरकार पहले सड़कों पर ध्यान नहीं देगी वह तो बाइसिकल, लारी और बसें तैयार करनेवाले बड़े बड़े कारखाने तैयार करेगी जिसमें सड़कों के सुधार के साथ साथ भारतीय वस्तुओं का उपयोग हो सके।

## नहरें

जर्मनी जैसे देश में नहरों का उपयोग रेलों की भाँति ही होता है; परन्तु भारत में नहरों की उन्नति पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया है। नौकरशाही नहरों की उन्नति पर ध्यान नहीं देती। बंगाल में जूट कम्पनियां विदेशियों के प्रभुत्व में हैं उन्होंने वहां नाव चलानेवाली विदेशी कम्पनियों से एक प्रकार का समझौता सा कर रखा है, जिसके कारण वहाँ का समस्त सन इन नावों द्वारा ही बिक्री के स्थानों पर पहुँचाया जाता है। इस प्रकार बसों और नावों की प्रतियोगिता को राष्ट्रीय सरकार प्रोत्साहन देगी।

## आबपाशी

भारत में सिंचाई के साधनों की बिलकुल उपेक्षा की गयी है। पुराने तालाब जो अंग्रेजों के आने के पहले सिंचाई के साधन थे क़रीब क़रीब नष्ट से हो गये और नदियों का पानी एकत्र करने का कार्य बहुत कम किया गया। यहाँ तक कि गोदावरी और कृष्णा का १० या ५ प्रतिशत पानी ही सिंचाई के काम में आता है। भारत की राष्ट्रीय सरकार का प्रथम कर्तव्य यह होगा कि समस्त भारत के लिए सिंचाई की एक योजना तैयार करे जिससे केवल नदियों के निकट की समतल भूमि में ही उनके पानी का उपयोग न होकर ऊँचे से ऊँचे स्थानों पर भी उनका उपयोग हो और जो पानी अभी व्यर्थ जाता है उसका उपयोग किया जाय।

## नालियां

सिंचाई के बाद जिस दूसरी बात की उपेक्षा की गयी है, नालियाँ हैं। सबसे बड़ी शरारत तो यह की गई है कि पूर्व में समुद्र के किनारे-किनारे रेलवे लाइन बनाई गई है जिससे पानी के बहाव के सभी क़ुदरती साधनों में बाधा पहुँची है। रेलवेवालों ने रेलवे लाइन के नीचे पानी के बहाव के जो साधन तैयार किये वे बहुत संकीर्ण हैं, छोटे और असुविधाजनक हैं। दामोदर नदी की बाढ़ का यही कारण है। इसीसे उड़ीसा और बंगाल के गांव बरबाद हुए हैं। यही वजह है कि पूर्वी किनारे पर विजगापट्टम से आसाम तक हर समय बाढ़ का भय बना रहता है। पानी के बहाव की दुरव्यवस्था होने से अनेक प्रकार की असुविधाएँ पैदा होती हैं, जैसे मकानों की असुविधा, खेती की अव्यवस्था और बीमारियों का फैलना। यही कारण है कि बंगाल मलेरिया का शिकार होता रहता है। और इसमें सुधार का कोई उपाय नहीं किया गया। केवल पिछले साल इस सवाल पर सरकार ने विशेष ध्यान दिया। अतएव राष्ट्रीय सरकार का पहला फ़र्ज़ यह होगा कि वह पूर्वी किनारों की बाढ़ों पर ध्यान देगी।

## खेती बाड़ी

क्या यह दुःख और लज्जा की बात नहीं है कि १५० वर्ष तक अंग्रेज़ी शासन में रहने के बाद भी देश अन्न भोजन समस्या नहीं हल कर पाया। जब तक शांति थी और बर्मा भारत में सम्मिलित था तब तक इस सम्बन्ध में शायद

* इस वर्ष के आँकड़े ५४ करोड़ के हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की त्रुटियां साफ़ नहीं नजर आयीं परन्तु बर्मा के अलग होते ही परिस्थिति का नग्न रूप प्रकट हो गया और आज समस्त देश में खाद्य-पदार्थों की कमी का सवाल सामने है। इसलिए इंगलैंड की तरह महज़ जंग के ज़माने के लिए ही अधिक अन्न पैदा करो की बात यहाँ ठीक नहीं जँचती। यहां तो केवल भविष्य में भी यही आन्दोलन होना चाहिए। खेती के सम्बन्ध में अङ्गरेज़ों की नीति सदैव काम चलाऊ रही है। पहिले युद्ध के समय २० लाख एकड़ नयी ज़मीन पर खेती की गयी, परन्तु युद्ध समाप्त होते ही वहां के लोग जङ्गलों में सैर-शिकार को चल दिये। इस युद्ध के बाद भी शायद यही होगा।

## तालीम

जब कि ४०० करोड़ रुपया सड़कों के लिए रखा गया है तालीम के लिए ३१७ करोड़ की ही व्यवस्था की गयी है और डाक्टर सारजेंट का कहना है कि उनकी योजना के पूरा होने में ५२ वर्ष लगेंगे। भारत को साक्षर बनाने में आधी सदी से अधिक लगना कुछ न होने के समान ही है। अतएव ठीक बात तो यह है कि ऐसे साधनों का उपयोग किया जाय जिसमें भारत में ५ या १० बरस के अन्दर निरक्षरता दूर हो सके। शिक्षक तैयार करने का सिद्धांत भले ही अच्छा हो, परन्तु जिस देश में ८ या १० प्रतिशत लोग ही शिक्षित हों वहां इसे उपयोगी और उचित नहीं माना जा सकता। राष्ट्रीय सरकार डाक्टर सारजेण्ट के उस विचार को कार्यरूप में परिणत कर सकती है जिसके अनुसार प्रत्येक 'ग्रेजुयट' को उपाधि लेने के पूर्व ५०० व्यक्तियों को साक्षर बनाना अनिवार्य हो। बच्चों की शिक्षा से लेकर एम० ए० तक की शिक्षा के लिये शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषाओं को ही होना चाहिये। अंग्रेजी भाषा का यह महत्व नहीं रहेगा। वह तो दूसरी भाषा की तरह पढ़ायी जायगी। धारा-सभाओं में भी विचार-विनिमय का साधन प्रान्तीय भाषायें होंगी। इस प्रकार स्वदेशी तत्वों को विशेष प्रोत्साहन दिया जायगा और जनता को देश को शासन-व्यवस्था में हाथ बंटाने का अवसर प्राप्त होगा।

## न्याय

न्यायालयों का नव-निर्माण अवश्य होना चाहिये। न्यायालय केवल न्याय ही नहीं करें वरन् वहां न्याय जल्दी और कम ख़र्च पर ज़रूरी तौर से प्राप्त हो सके।

## उद्योग-धंधे

उद्योग-धंधों को केवल शहरों तक ही सीमित नहीं रखना होगा। उन्हें गांवों में प्रवेश करना होगा और वहां नयी आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार हो कि गांव सम्पत्ति के चलन-चालन के मुख्य केन्द्र बन जांय। आज कल सम्पत्ति का प्रवाह ग्रामों से नगरों की ओर है और नगरों से विदेशों की ओर।

## सहकारिता-कार्य

आजकल सहकारिता कार्य सरकार के हाथों में है। उसे लोगों के हृदयों और भारतीय भूमि पर पनपना चाहिये। अभी तो यह एक दिखावटी कार्य है जो भूमि-कर वसूल करने के लिये किया जाता है। इसे नया रूप रंग अवश्य देना चाहिए। बहुउद्देशी ( multipurpose ) संस्थाओं का जन्म होना चाहिये जो ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन दें, दस्तकारों को आर्थिक सहयोग दें, जिससे देश की आर्थिक एवं कलात्मक सम्पत्ति में विकास हो।

## जंगल

सौभाग्यवश ब्रिटिश शासकों ने देश की वन-सम्पत्ति को नहीं छुआ है! युद्ध के कारण वनों की जो हानि हुई है, वह शीघ्र पूर्ण हो जायगी। इस सम्बन्ध में वनों में स्थित खानें, जिनका पूरा उपयोग नहीं हुआ है विशेष उपयोगी सिद्ध होंगी। हमारे देश में अनेक प्रकार की धातुएं उपलब्ध हैं और कच्चा लोहा तो काफी मूल्य का है। एक तो भारत के भूगर्भ-स्थित पदार्थों का पर्याप्त अन्वेषण ही नहीं हुआ है, जो हुआ है उसपर ब्रिटेन के लोगों का आधिपत्य है। गत वर्ष भूगर्भ-अन्वेषण के लिए जो रुपया मंजूर किया गया था उसका पूरी तरह से उपयोग भी नहीं हुआ। अङ्गरेजों द्वारा संचालित सरकार के लिये इससे अधिक लज्जा की बात क्या हो सकती है?

## विज्ञान

विज्ञान और अन्वेषण के क्षेत्र में भारत पीछे नहीं है। भारत के तीन व्यक्ति नोबुल-पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं और ६ एफ़० आर० एस० हैं। राष्ट्रीय सरकार को विस्तृत और महत्वपूर्ण वैज्ञानिक अनुसन्धान की योजना बनानी पड़ेगी जिससे हम लोगों की कल्पनाओं को कार्यरूप में परिणत किया जा सके।

## तन्दुरुस्ती

देश की जनता की तन्दुरुस्ती की बराबर उपेक्षा की



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गयी है। बच्चों की मृत्यु संख्या में बराबर वृद्धि हो रही है। कहीं-कहीं तो यह ४८० प्रति सहस्र तक पहुंच गयी है और मृत्यु-संख्या भी लगभग २५ से ३५ तक है। खाद्य वस्तुओं का अभाव मुख्य समस्या है। गर्भिणी स्त्रियों को सुविधाएँ नहीं मिलतीं। मध्यप्रान्त की खानों में काम करनेवाली महिलाओं की हालत देखें तो हम अपने मुल्क की नौकरशाही को आसानी से समझ सकेंगे।

## राष्ट्रीयकरण

कांग्रेस ने अपने कराची अधिवेशन में यह प्रस्ताव पास किया था कि बुनियादी और भारी उद्योग धन्धों का राष्ट्रीयकरण अवश्य किया जाय। वह समय आ गया है जब इस बात पर विचार हो सकता है कि उद्योग-धंधे सफलता के साथ सरकारी नियन्त्रण में लिये जा सकते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार रेलों को लिया गया है। यह साफ़ नहीं कि बैंक और बीमों पर भी सरकारी नियन्त्रण हो सकता है परन्तु यह निश्चित है कि वस्त्र-व्यवसाय, लोहा-इस्पात, सीमेंट, तेल, बिजली, मोटरकार, हवाई जहाज़ आदि अवश्य ही सरकार के अधिकार में हों। कुछ भी हो इसका आरम्भ होना चाहिये और इस प्रकार की योजना बनानी चाहिए कि मशीनों द्वारा संचालित उद्योगों के साथ-साथ ग्रामोद्योगों और ग्राम-दस्तकारियों को भी उचित महत्व मिले।

इस प्रकार ऐसे उपायों का समन्वय होना चाहिए जिससे राष्ट्रीय भावनाओं से परिपूरित देशी साधनों का राष्ट्रीय उत्पत्ति में उपयोग हो सके और दुर्भिक्ष, वस्त्राभाव, गृह-विहीनता का अन्त होकर घर-घर में नया प्रकाश दिखलाई पड़े! यह परिवर्तन अराष्ट्रीयता से राष्ट्रीयता की ओर अंग्रेजी भाषा से भारतीय भाषाओं की ओर, ब्रिटिश व्यापार से भारतीय उत्पत्ति की ओर होगा।

# मानव देवता

"हम झाड़ झंखाड़ में, पत्थर पाषाण में, भूत प्रेत में ईश्वर देखते फिरते हैं, परन्तु मानव के अन्तर में स्थित ईश्वर हमें नहीं दीखता। हमें तो चार मुँह और आठ हाथवाला देवता चाहिये। ऐसा देवता चाहिये जो मनुष्य से सब प्रकार भिन्न हो। हमारे पड़ोसी के मानव रूप में खड़ा परमेश्वर हमें नहीं दिखाई देता। हम मानव से झगड़ते हैं, मानव को दास बनाते हैं, मानव का खून बहाते हैं और देवता की पूजा किया चाहते हैं। ईश्वर हमारे इस कृत्य से स्तम्भित है। अरे पहले मनुष्य में बैठे हुये ईश्वर को पहचानो। यह बोलता डोलता ईश्वर है, इसका स्वरूप देखो और देखो कि इसे क्या चाहिये, क्या न चाहिये। पत्थर के देवता को क्या चाहिये यह हमने तै कर रखा है। गणेश को मोदक पसन्द है, विठोबा को माखन और खंडोबा को गरी चाहिये; परन्तु क्या हम कभी सोचते हैं कि मनुष्य को किस बात की आवश्यकता है। अपने सामने यह दो हाथों का मानव रूपी देव खड़ा है। उसके पेट में अन्न नहीं, उसकी देह पर वस्त्र नहीं। उसकी पूजा के लिये क्या कभी हम दौड़ते हैं? ऐसा कहा है कि देवता की प्रदक्षिणा करनी चाहिये। एक प्रदक्षिणा करके फिर देवता का रूप निहारना चाहिये। पर यह देवता है कहाँ? लाखों गाँव खेतों में यह देवता मौजूद है। इन ग्रामों की प्रदक्षिणा करो। वहाँ दरिद्र नारायण का स्वरूप तुम्हारे ध्यान में आयगा। उनकी क्या दशा है यह तुम्हें मालूम पड़ेगा—फिर तुम उनकी सेवा के लिये निकल पड़ोगे। उनकी सूखी हड्डियों पर तनिक मास चढ़ेगा। तुम भी सुखी होगे। यदि हम यह सोचकर कर्तव्य कर्म करें कि हमारे आस पास के लोग ही ईश्वर स्वरूप हैं तो वे काम कितने सुन्दर हो उठेंगे। उन कर्मों में एक प्रकार की तेजस्विता आयगी। हमारा कोई सामान्य मित्र आनेवाला होता है तो हम सभी कुछ कितनी चिन्ता पूर्वक, कितनी लगन से करते हैं और यदि हम यह मानें कि यह साक्षात देवता ही है तो हम कितनी दक्षता से, अपना कितना हृदय उंडेलकर काम करेंगे।" —विनोबा भावे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मरघट

डाक्टर अख्तर हुसेन रायपुरी डी० लिट० ( पेरिस )

मरघट नदी-किनारे था। छोटा सा मैदान जिसमें कभी कुछ न उगता था। और उसकी मिट्टी सियाह थी, जमे हुए लहू की तरह सियाह।

कगार के पेड़ों पर सदा पतझड़ रहती और उनकी डालियाँ अकाल-ग्रस्त किसानों के समान हमेशा बादलों का मुँह ताका करती थीं। उन पर गिद्धों और कौओं के सिवा और कोई बसेरा न करता था। दूर तक हड्डियों के टुकड़े बिखरे पड़े थे, और यहाँ वहाँ एकाध खोपड़ी जीवन के परिणाम पर बाछें चीरकर हँस पड़ती थी। नदी की धारा हौले हौले बहती चली जाती थी। कभी कोई मौज घाट से टकरा कर सिर उठाती, मरघट की उदासी को देखती और फिर सिर झुकाकर अपनी राह लग जाती थी।

वहां, उस शाम को शहरवाले किसी की अर्थी लेकर आये थे। चिता रच दी गई, लाश उस पर सजा दी गई। किसी ने उस पर घी छिड़का, किसी ने आग दिखाई और चिता, किसी ग़रीब की झोपड़ी की तरह पल भर में जल उठी।

मर्द एक तरफ़ शोक में डूबे हुए बैठ गये। औरतें दूसरी तरफ़ चुप चुप रोती रहीं।

चिता तेज़ी से जलने लगी। दो आदमी लम्बे लम्बे बांसों से लाश को इधर उधर लौटाने लगे। मांस के अधजले टुकड़े उड़ उड़कर ज़मीन पर गिर पड़ते थे; चर्बी जल-जलकर वहीं बैठ जाती थी और लपटें कुत्तों की तरह हड्डियों को जबड़े में दबाकर चबातीं और अपनी दृष्टिहीन आँखों से हर तरफ़ घूरती थीं।

अंधेरा हो चला था। बादलों के दो चार गुलाबी टुकड़े ऊपर उड़ रहे थे और एक दो तारे तीरों की नोक के समान आकाश में छिदे पड़े थे। चारों ओर सन्नाटा था। चिताग्नि के मर्मर के अतिरिक्त और कोई आवाज़ न आती थी।

अजबी लोहार ने अंगोछे के कोने से चिलम निकाली और उस पर चिता का एक अंगारा रखकर, दायें बायें किसी ऐसे संगी को ढूँढ़ने लगा जो उसी की तरह बातचीत करने को उतावला हो। मगर हवा में बोझलपन सा था और मौत की मौजूदगी में सब लोग खो से गये थे।

अजबी ने दोनों मुट्ठियों में चिलम थामकर इस ज़ोर से दम खींचा कि कई चिनगारियाँ ऊपर उछल पड़ीं। फिर उसने किसी अज्ञात व्यक्ति को सम्बोधन करके कहना शुरू किया। "हरिबोल !···राम जाने, गोली उसकी छाती में लगी। मैं मोरी में छिपकर सब देख रहा था। वह झंडा लिए हुए आगे आगे था। जब जुलूस चौक के पास पहुँचा, तो घुड़चढ़ी पुलिस के जवान रास्ता रोके खड़े थे। कप्तान ने डांटकर कहा, आगे जाना मना है। भय्या, और सब तो बगलें झांकने लगे। लेकिन इन छोकरों का कलेजा बड़ा है। उन्होंने कहा "हम आगे जायेंगे, आप रास्ता छोड़ दीजिये।···"

छोटू धोबी बात काटकर बोल उठा, "क्या बकते हो। इतनी बातचीत का मौक़ा कब था। पुलिस आंधी की तरह हम पर झपट पड़ी, भागने का मौक़ा कहाँ था। जैसे बेबादल बिजली गिर पड़े। कई भागते भागते गिरकर घोड़ों की टाप के नीचे आ गये। कई रपटकर मुँह के बल गिरे—कोई नाली में, कोई सड़क पर। लाठियों से जिनके हाथ पाँव टूटे, उनकी बात ही अलग है।"

अजबी—"अच्छा, यही सही। जो भी हो, वह था सूरमा—सामन्त। झंडा लिये हुए अपनी जगह पर डटा रहा। इतने में कोठों से पत्थर बरसने लगे और इधर बन्दूकों से गोलियाँ। भय्या, जैसे बवंडर में आम का हरा-भरा पेड़ गिर पड़े। बस, वैसे ही छिन भर में ऐसा पहाड़ सा जवान चलती होकर गिर पड़ा।"

सब चुपचाप आग में किसी निशान को घूर रहे थे। घटाटोप अँधेरे में दूर से वह चिता ऐसी लगती थी, जैसे धरती पर बिजली चमक रही हो।

नायक ने ज़ोर से कहा "राम नाम सत है! काल सिर पर खड़ा हो तो किसका बस चलता है। अगर यह अभागा वहाँ से भाग जाता तो क्या था। पर वह तो कहो कि भाग का बदा टलता नहीं।"

लक्खू मिस्तरी आंखें तरेरकर चीख उठा, "क्या कहा! भाग जाता!—अरे, मेरा बेटा और भाग जाता!···" उसने बेबस निगाहों से सब की तरफ़ देखा, "ऐसी बात न कहो। उसकी आत्मा को दुःख होगा। वह नादान सही, मगर दूसरों की तरह हेटा न था। उसे अपने देश के झंडे की लाज थी।"

"ऊँह। अजी, तीन बालिश्त कपड़े से कहीं देश की लाज आती जाती है। मैं तो तुम्हारा भला सोचकर कहता हूँ। क्या मुझे उसके मरने का दुःख नहीं। अरे, मैं तो इसलिए कहता हूँ कि इस बुढ़ापे में तुम्हें कौन पालेगा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जवान बेटा, घर का सिरमौर। उसके छोटे छोटे बच्चे, बूढ़े माँ बाप। यह सब कहां जायेंगे। क्या देश तुम्हें रोटियाँ देगा ?"

लक्खू ने एक गहरी सांस ली। उसका पड़ोसी सच कहता है। अब वह क्या करेगा। देश तो अमीरों के लिये था। ग़रीबों का देश कहां है। घर का किराया, पानी का महसूल, रोशनी का टेक्स, और जब मर जाओ तो मरघट के चौधरी की दक्षिणा। इन सबसे ज़्यादा, देवता का भोग। वह काना देवता, जो अफराये हुए मेंढक की तरह मन्दिर में बैठा अपनी दुम हिलाया करता है। कहां था वह जवान बेटे की मौत के वक्त !

लेकिन नहीं ! उसका बेटा क्या ऐसा अनैला था। उसने कुछ सोचकर अपनी जान दी थी—लक्खू के मन में विचारों का तार सा बँध गया।

शम्भू ने सिर हिलाकर कहा, "आज सुबह तक वह भला चंगा हथौड़े की एक एक मार से लोहे को पानी कर रहा था। लेकिन अब देखो, सीसे की एक छोटी सी गोली हवा में सनसनाती हुई आयी, और बिना कुछ कहे उसके सीने में घुस गई। हड्डी को तोड़कर सीने को चीरकर वह दिल के अन्दर बैठ गयी। और वह मर गया। हाय राम, जीना कितना कठिन है और मरना कितना सहज !"

अजबी लोहार ने धुएँ को मुँह के आगे से हटाकर कहा, "और जब आदमी मर जाता है, तो क्या छोड़ जाता है। नाम तो बड़े आदमियों का रहता है। गरीबों का नाम-धाम क्या। वह तो भाई-बन्धुओं के लिये अपनी याद छोड़ जाते हैं और यह याद जिन्दगी भर काँटे की तरह टहांके दिया करती है। दिनों की दूरी घाव पर मरहम का काम करती है; सब अपने अपने धन्धे में लग जाते हैं और कभी सोचो तो ऐसा लगता है कि पिछले जन्म की कहानी है।"

लक्खू का रोआं रोआं कांपने लगा। जिन लोगों ने उसके बेटे के हाथ में झंडा थमाया था, वे कहां थे। वे तो इस मरघट में न थे। वे सब बड़े लोग थे। वे शूद्रों के मरघट में कैसे आते !

लेकिन क्या उसके बेटे ने ग़लती की थी ? क्या समझ कर झंडा उसने अपने हाथ में लिया और वह गोलियों के सामने सीना ताने खड़ा रहा। क्या उसे किसी का ध्यान नहीं आया ?

औरतों का क्रन्दन धीमा पड़ गया था। वह अपनी सूजी हुई आंखों से चिता को ताक रही थीं जिस पर अब लाश का निशान तक न रहा था।

लक्खू के हृदय में विद्रोह की ज्वाला जलने लगी। संसार इतना कृतघ्न क्यों है ! उसके बेटे ने दूसरों के लिये जान दी थी। अपनों को भुलाकर वह दूसरों के लिये मर मिटा था। और ये लोग यहां बैठे बातें बना रहे थे।

नायक ने धीरे से कहा, "अजबी, देखो और कितनी देर है, भूख के मारे प्राण मुँह को आ रहे हैं।"

इतने में छोटू ने आंखें फाड़कर सब को इस अन्दाज़ से देखा, जैसे उसे कोई भूली हुई बात याद आ गयी हो, "करीम खां हवलदार कहता था कि जो लोग अर्थी के साथ मरघट जायेंगे, सरकार में उनकी रपट की जायेगी।"

"ऐं, यह क्यों ?"

"इसलिये कि वह सरकार का बैरी था। भाई, समझते नहीं। उसने गोली नहीं चलाई तो क्या, गोली खाई तो सही ? फिर वह बैरी हुआ या नहीं।"

"हूँ" नायक ने कपड़े झाड़ना शुरू किया "ठीक कहते हो। वह किसी ऐसे-वैसे की गोली से नहीं, सरकार की गोली से मरा। विकट मामला है, क्यों जी अजबी ?" अजबी अपनी झोली संभालने लगा, "टेढ़ी बात है और करीम खां हवलदार कोई मामूली आदमी है ? अजी, बड़े बड़े महाजन उसके नाम से थर्राते हैं। जिसके घर चाहे डाका डलवा दे, और जिसे चाहे चोरी के इलज़ाम में बँधवा दे ; आज शहर में इसी का राज है।"

सब लोग डरकर इधर उधर यों देखने लगे, जैसे करीम खां का भूत मुँह फाड़े हुए उन्हें निगलने को आ रहा हो।

तारों की छाया में पेड़ों के ठूंठ अपने सूखे हुए हाथ फैलाये अँधेरी रात से किसी चीज़ की भीख मांग रहे थे।

लक्खू घुटनों पर सिर रखे अर्ध चेतनावस्था में बैठा हुआ था। बहुतेरे लोग एक एक करके सटक गये थे। जब आग मद्धिम पड़ी, तो सिर्फ़ चार पांच आदमी रह गये।

लक्खू का दिल अन्दर से रोने लगा। यह देश कैसा देशवाले ! उन्होंने ऐसा क्यों किया ? मौत के आगे तो सब बराबर हैं। सबको एक दिन इसी आग में जाना है, इसी पानी में सबको बह जाना है। वह यह भी न कर सके, एक आन के लिये आयें और मरनेवाले की विधवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


आंसू पोंछ जायें, उसकी मां के टूटे हुए दिल पर सहवेदना का एक फाहा रख जायें।

सेठ छज्जूमल, कांग्रेस कमेटी के सभापति---क्या वह जवान बेटे की जान लेने के बाद भी उसका कर्ज़ माफ़ न करेंगे। कुंवर प्रतापसिंह, बड़े देश सेवक क्या करीम खां हवलदार के चुंगल से उसे नहीं बचायेंगे।

बरसात आ रही है। घर का छप्पर छाना है, दीवार को पम लगाना है, मट्टी को ठीक करना है। मगर उसकी बांह में वह पहिले की सी सकत कहां। मज़दूर का बेटा, एक ज़रा सी गोली से छिदकर—वह भी किसी लोहार की बनाई हुई—मर गया, और आग उसे ले गई।

चिता ठंडी पड़ने लगी। औरतों ने उसमें पानी का छींटा दिया, मर्दों ने उसमें आंसू झटके। "राम नाम सत है" की आवाज़ से मैदान गूंज उठा। दूर से गीदड़ों ने जवाब दिया, "हुआ, हुआ, हुआ...!!"

जब सब चलने लगे तो लक्खू ने देखा कि उसके पैरों के पास एक कपड़ा पड़ा हुआ है। यह वही फटा हुआ तिरंगा झण्डा था जिसे कलेजे से लगाये हुए उसका बेटा मर मिटा था। लेकिन यह झण्डा देखने में कितना बदसूरत था—घास फूस की तरह हरा, बुढ़ापे की तरह सफ़ेद, बीमारी की तरह पीला!

लेकिन अब खून में रङ्गकर वह लाल हो गया था। लाल—ज़िन्दगी और मौत का रङ्ग।

लक्खू ने उसे उठा लिया। इसमें ऐसा कौन सा जादू था, जो लोग उस पर सब कुछ वार देते हैं। कपास की खादी, जो करघे पर बुनी गई और रङ्गरेज़ के घर रङ्गी गई, इसमें रखा ही क्या था।

जो भी हो वह अब एक आदमी के लहू में रङ्ग चुका था। और यह लहू ताज़ा था नौबहार फूल की तरह, और गर्म था आग की तरह।

औरतें, एक के पीछे एक, टूटी हुई आवाज़ में सियापा गाती हुई घर की तरफ़ जा रही थीं। हवा हलकी थी, और रात का दामन ओस की बूंदों से भीगा हुआ था। दूर से नदी की धारा किसी घायल पंछी के समान कराह रही थी।

धरती की आग बुझ गई थी, लेकिन आकाश के दीपक जगमगा रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गाँवों की समस्या

प्रो० श्रीनारायण अग्रवाल एम० ए०, बी० काम०

९ जनवरी १९४५ का दिन था। बापू की आज्ञानुसार हर माह की इसी तारीख़ को 'राजबन्दी दिवस' मनाना तय हो चुका था। अतएव इस दिन भी कामर्स कालेज वर्धा के विद्यार्थियों ने निश्चय किया कि रोज़मर्रा की पढ़ाई के बजाय कुछ राष्ट्रीय एवं रचनात्मक कार्य किया जाय। और ग्रामोत्थान के प्रयत्न से बढ़कर राष्ट्रीय कार्य हो ही क्या सकता था? अतएव निश्चय किया कि हम दस की टुकड़ी बनाकर वर्धा के आस पास के गाँवों में तमाम विद्यार्थी एवं अध्यापक पहुँच जायँ। इससे एक साथ दो कार्य सधते थे। एक तो कालेज से अनुपस्थित रहकर सरकार के दमन के प्रति रोष ज़ाहिर होता था और दूसरे सफेद पोश सुशिक्षित नवयुवकों को ग्रामीणों के संपर्क में आकर उनकी स्थिति समझने का मौक़ा मिलता था।

विद्यार्थियों की टोली वर्धा से लगे हुये ही सिन्धी ग्राम में गई। और गाँवों की तरह यहाँ भी सब से ऊँचा और बड़ा मकान मालगुज़ार का ही था। एक दो को अपवाद की कोटि में डाल दिया जाय तो बाक़ी के झोपड़ों की हालत दयनीय थी। वे 'अब गिरूँ तब गिरूँ' कर रहे थे। हवा और प्रकाश देहातों में यथेष्ट होते हुए भी घरों के अन्दर आने की मानो उन्हें सख्त मनाही थी। दरवाज़े इतने तङ्ग और नीचे कि बग़ैर दोहरा हुए क्या मजाल कि कोई अन्दर घुस जाय। विनय का सबक सिखाने के लिए वे आदर्श गुरु थे! और खिड़कियाँ? वे तो यहाँ इस प्रकार गायब थीं जैसे गन्जे के सर पर से बाल! गलियाँ गटर का काम भी करती थीं। नहाने धोने का सारा पानी सड़कों पर बहकर सड़न पैदा करता था और मलेरिया के पिता मच्छरों का पोषक बनता था। झाड़कर कचरा अपने घर के सामने ही या पड़ोस में डाल देना नियम हो गया है और परोपकारी पवन भी उसी कचरे को पुनः घरों में भर देने में नियमित था। एक और कुरीति थी जो उपर्युक्त सारे दुर्गुणों को मात करती थी। वह थी स्त्री-पुरुषों की गाँव की गलियों के दुतर्फ़ा सुबह-शाम शौच के लिये बैठने की आदत। क्या मजाल कि कोई बिना नाक दाबे और शर्म से आँखें नीची किये उन रास्तों से गुज़र जाय। इसे हम चाहे जिस नाम से पुकारें। नासमझी कहें या अभद्रता या जङ्गलीपन, परन्तु हर देहात में यह सामान्य दृश्य हो गया है। इनके अलावा पचासों कुप्रथायें अखण्ड राज्य कर रही हैं। इसका मूल कारण क्या है? क्यों हमारे ग्राम इतने नीरस और पिछड़े हुए हैं? जब कि अङ्गरेजी देहात हरे भरे और साफ़-सुथरे हैं? इसका एक ही कारण है और वह यह कि हममें अज्ञान और जीवन के प्रति उदासीनता फैली हुई है। आपके ग्रामीण को यह कल्पना भी नहीं कि इससे भी बढ़कर जीवन हो सकता है। वह कुएँ के मेंढक की तरह अपने देहात को ही सारी दुनिया समझ बैठा है। बाहरी संसार से मानो उसका सम्बन्ध-विच्छेद ही हो गया है। परिणामस्वरूप उसका दिमागी विकास कुंठित हो गया है। जो कुछ अन्याय अत्याचार उस पर हुए और हो रहे हैं उनका प्रतिकार करने की क्षमता उसमें नहीं रही। सारांश, वह महत्वाकांक्षाशून्य, सामाजिक भावनारहित, जिन पशुओं की—गाय, बैल, भैंसों की संगति में जिंदगी बिताता है, उन्हींका सा हो गया है।

इस परिस्थिति का अन्त करने के लिये यह आवश्यक है कि उस तक विद्या के प्रकाश की रेखायें पहुंचाई जाएं; उसकी उदासीनता नष्ट की जाय, और उसकी जगह उत्साह और नवजीवन का सञ्चार किया जाय। उसे समझाय जाय कि जीवन वह जो कुछ समझता है, वह नहीं बल्कि, उससे कहीं ऊँचा, उत्कृष्ट और गौरवशाली है। वह जिस प्रकार उम्र काट रहा है उसे जीवन कहना जीवन शब्द का मख़ौल है; वह तो मृत्यु सदृश्य ज़िन्दगी है जो येन-केन प्रकारेण बिता दी जाती है। उसके जन्म जन्मांतर की निद्रा और आलस्य मिटाने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके दिल और दिमाग़ में वर्तमान परिस्थितियों के विरुद्ध असन्तोष और विद्रोह की ज्वाला प्रज्जवलित की जाय। यह विद्रोह, यह छटपटाहट इतनी तीव्र हो कि वह ज्वालामुखी की भाँति तमाम कचरे को, गुलामी की सारी गन्दगी को एक ही स्फोट में भस्म करदे की उग्रता रखे। और तब इस असन्तोष को सही मार्ग से संगठित करके उसका उपयोग सार्वजनिक प्रचार और क्रांति प्रसार की तरफ़ किया जाय। इस प्रकार किसानों और मज़दूरों में क्रांति की भावनायें जाग्रत होंगी। वे अपनी गई बीती परिस्थितियों से तिलमिला उठेंगे और एक ही झटके में अपनी उन दासता की बेड़ियों को तड़ाक से तोड़ देंगे जिनको वे आज तक चूमते आये हैं। इस प्रयत्न में उन्हें अध्ययन, मनन, संगठन, और चर्चा का इतना अवसर मिलेगा कि उनका बौद्धिक स्तर काफ़ी ऊँचा उठ आयेगा। वे संसार के अन्य पीड़ित और दलित वर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


से तादात्म्य प्राप्त करने की कोशिश करेंगे और महात्मा मार्क्स का "संसार के श्रमजीवियो, एक हो जाओ" वाला नारा जो आज तक स्वप्न मात्र ही था, सत्य हो जायगा। रूस के मज़दूरों ने यही किया। भारत के श्रमिकों को भी समय का तक़ाज़ा समझकर इस ओर क़दम बढ़ाना होगा। अन्यथा उनकी मुक्ति नहीं।

इस प्रचंड कार्य के लिये प्रयत्न भी आवश्यक है। और इसे शिक्षित युवक ही कर सकते हैं। कार्य काफ़ी कठिन है। सदियों के सड़े संस्कार मिटाकर उनकी जगह जागृति की नवीन लहरें फैलानी हैं। इसके लिये ऐसे आत्मविश्वासी नौजवान चाहिये जो चट्टानों से जूझने की तमन्ना रखते हों, जो समुद्र की लहरों से लोहा लेने को लालायित हों; जो जीवन को हँसते हँसते उत्सर्ग करने के लिये छटपटा रहे हों; और जो निराशा का नाम जानते भी न हों। काम जितना कठिन, प्रदान उतना ही प्रचंड। इस दृष्टि से हज़ारों की तादाद में प्रचारकों की ज़रूरत होगी और ऐसे प्रचारकों की जो अपना व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़कर, नौकरियों और आरामदेह शहरी जीवन को त्यागकर मिशनरियों की तरह भारत भर में टिड्डी दल की भांति पैदा हो जायँ। तब भारतीय किसान का मुर्दा दिल ज़िंदा हो उठेगा और आज का पिछड़ा भारत भी संसार को वह चमत्कार दिखाने की शक्ति प्राप्त कर लेगा जो चीन ने गत ८ साल में दिखाया है; जो रूस ने गत पाँच वर्षों में दिखाया है और जो छोटा सा किन्तु सङ्गठित आयर्लैण्ड दिखाता आ रहा है।

एक बात और। हममें महापुरुषों की कमी नहीं; हमारे देश में वीरों की और योद्धाओं की भी कमी नहीं। हमारे कट्टर दुश्मन भी हमारे सिपाहियों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। बहादुरी और बुद्धि में एक भारतीय एक अंग्रेज़ से किसी प्रकार कम नहीं। परन्तु यदि वे ही दस हिंदुस्तानी एक तरफ़ और दस अंग्रेज़ दूसरी तरफ़ हो जाँय तो अंग्रेज़ हर हालत में बाज़ी मार ले जायँगे। इसका एकमात्र कारण अंग्रेज़ों की शताब्दियों की 'टीम स्पिरिट' है। हममें एक हो कर, एक दूसरे को हार्दिक सहयोग देकर, एक का काम सब का काम और सबका काम एक का काम इस भावना से प्रेरित होकर सफलता साध्य करने की प्रवृत्ति नहीं है। मियां जी ढेढ़ ईंट की मस्जिद अलग बना रहे हैं तो चौबेजी की ढाई चावल की खिचड़ी अलग ही पक रही है। नौ कनबजिया तेरह चूल्हे वाली कहावत आज भी सत्य है और यह फूट और दुई का दोष चूल्हे चक्की तक ही सीमित न रहकर जीवन के सारे क्षेत्रों में सर्प-विष की तरह फैल रहा है और इसने हमारे सामाजिक जीवन को नष्टप्राय कर दिया है। 'अपनी अपनी डफली और अपने अपने राग' से कहीं बैंड का मधुर संगीत सुनने को मिला है? उससे तो कर्कश, कर्ण-कटु ध्वनियाँ ही निकलेंगी जो आनन्ददायी होने के बजाय सारे वातावरण को अशान्त बना देंगी।

अन्य राष्ट्र पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने में लगे हैं, चन्द्र तक पहुंचने के प्रयत्न में हैं परन्तु हम वही "नौ दिन चले अढ़ाई कोस" की गति से गिरते पड़ते किसी प्रकार जीवन क्रमण कर रहे हैं।

भारत किसी ज़माने में संसार का सिरमौर था। आज वह पतित और पिछड़ा हुआ है। उसे फिर अग्रणी बनना है और यह आज के ज्वलन्त आदर्शवादी युवकों और युवतियों पर उनकी समझ, शक्ति, साहस, और अथक प्रयत्नों पर निर्भर है।

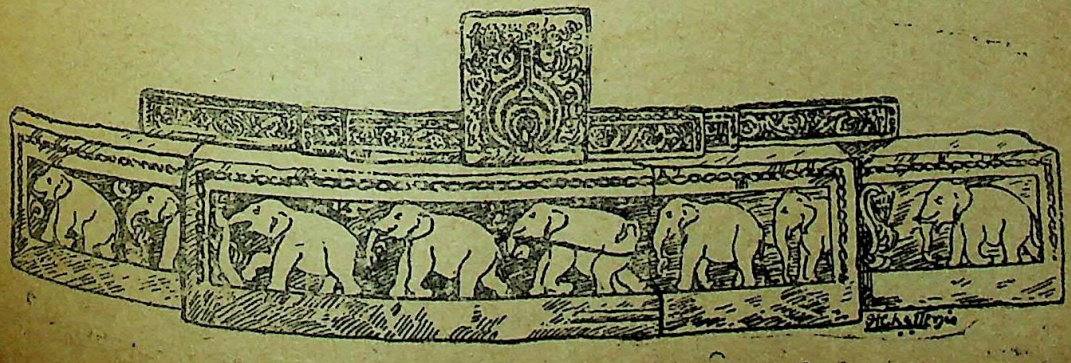

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्प्रदायवाद और प्रमाणवाद

श्री रघुवीरशरण दिवाकर बी० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यालंकार

यों तो सम्प्रदायवाद अपनी कई विशेषताएँ रखता है पर प्रमाणवाद उसका मूलाधार है।

सम्प्रदायवाद द्वारा सत्य ही पर कल्याण को निर्धारित न करने की भूल का कारण प्रमाणवाद है, अपरिवर्तन का रहस्य भी इसी की कार्य प्रणाली में निहित है तथा सम्प्रदायवाद की अन्य विशेषताओं का श्रेय भी इसीको है। विभिन्न सम्प्रदायों में अपने अलग अलग रूपों में यह विद्यमान है, जो बाहर से एक दूसरे से भिन्न या विरोधी दीखते हैं लेकिन जो सब वास्तव में उस अनेकता में भी एकता को लिये हुये हैं। कोई भी सम्प्रदाय हो, किसी न किसी रूप में प्रमाणवाद वहां है और वह भी गौण रूप में नहीं बल्कि शरीर में प्राण की तरह।

क्योंकि यह वेद-वाक्य है, क्योंकि यह पुराण, गीता, मनुःस्मृति में लिखा है, क्योंकि यह कुरान की आयत है, क्योंकि यह बाइबिल का उपदेश है, क्योंकि यह सूत्र या पिटक का कथन है, क्योंकि यह गुरु साहब का वचन है, क्योंकि कबीर ने ऐसा कहा है, क्योंकि स्वामी दयानन्द का ऐसा मत है, इसलिये यह प्रमाण है, ऐसी ही मानसिक दासता का नाम प्रमाणवाद है। इस तरह की गुलामी में फँसकर व्यक्ति अपनी पोथियों या अपने कुछ मान्य व्यक्तियों को ही सारे ज्ञान-विज्ञान का भंडार मान बैठता है और ऐसा समझने लगता है कि जिसके बाहर कुछ भी नहीं है जिसे जाना जाय या जानना जरूरी हो। कैसे कैसे महत्वपूर्ण आविष्कार आज हो रहे हैं, ज्ञान विज्ञान के हर विभाग में आज कितनी उन्नति हो रही है, मानव-जीवन की कैसी उलझी हुई समस्याओं को आज सुलझाया जा रहा है, प्रकृति पर कैसी असाधारण विजय प्राप्त की जा रही है, अब तक किस द्रुत गति से मनुष्य आगे बढ़ता रहा है और अब कहां तक आ गया है, इन सब बातों की तरफ से प्रमाणवादी व्यक्ति अपरिचित-सा ही रह जाता है। अपनी चहारदीवारी के भीतर ही उसकी सारी वृत्तियां-प्रवृत्तियां, आशायें-आकांक्षायें, सुख-दुख ग़रज़ यह कि उसका सारा व्यक्तित्व घिरकर रह जाता है और बाहर जाकर खुली हवा में सांस लेना तो दूर है, खिड़कियों और रोशनदानों से भी बाहर की हवा को अन्दर आने देना वह नहीं चाहता है। ऐसे व्यक्तियों के लिये अपनी पोथियों के मंत्र सूत्र श्लोक और उक्तियां रटना या अधिक से अधिक उन्हें समझना ही ज्ञान की चरम सीमा या मस्तिष्क का सर्वश्रेष्ठ उपयोग है। उनकी राय में उनमें रत्ती भर भी परिवर्तन या संशोधन की गुञ्जायश नहीं है, उनमें आंख मींचकर विश्वास रखना ही सम्यकत्व या पुण्य है, उनके विरुद्ध सम्मति देना तो दूर उन पर संदेह करना भी कुफ्र है, पाप या गुनाह है। यही कारण है कि जब भी किसी ने उनके मनोनीत प्रमाण पर या तद्विषयक चिर-बद्धमूल अन्ध-विश्वासों पर आक्रमण किया है तभी वे बेचैन हो उठे हैं यहां तक कि अपने धर्म या मजहब को—अपने सम्प्रदाय को—जहाँ वह प्रमाण जड़ पकड़े हुए है, रसातल में जाने से रोकने के लिये सहिष्णु बनकर अनेक दुष्कृत्यों को करने से भी नहीं चूके हैं।

प्रश्न—हम दुष्कृत्यों के लिये प्रमाणवाद को दोष कैसे दे सकते हैं जबकि प्रमाणवाद में अर्थात् अपने विचारों में किसी भी तरह की ग़लती या भूल की असंभावना में विश्वास रखते हुये भी दूसरों के प्रति असहिष्णु होना अनिवार्य नहीं है?

उत्तर—यह सच है कि प्रमाणवाद की मान्यता का अनिवार्य परिणाम सहिष्णुता नहीं है फिर भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि सहिष्णुता को कर्तव्य के ऊँचे आसन पर बैठाकर अर्थात् दुनिया को सत्य के दर्शन कराने और कल्याण-मार्ग पर चलाने की पुण्य-भावना का प्रेरक बनाकर इसे खूब उत्तेजना मिली है। जब अपने को सत्य का एक मात्र ठेकेदार समझ लिया जाता है और यह निश्चयपूर्वक मान लिया जाता है कि अपने विचारों में कभी किसी हालत में भी असत्य की संभावना नहीं है तब आगे चलकर इस हठाग्रह का परिणाम बहुधा यह होता है कि दूसरों को सुधारने (?) के लिए मन अधीर और उतावला हो जाता है तथा इस पुण्यकार्य (?) का संपादन करने के लिये छल-बल-कूटनीति का प्रयोग करना भी पुण्य कार्य के रूप में दिखायी देने लगता है। और यही मनःस्थिति ऐसे दुष्कर्मों के लिये ज़िम्मेदार है।

प्रश्न—क्या अपने विचारों में असत्य की संभावना मानते हुये भी अपने विचारों पर दृढ़ विश्वास रखा जाकर उसके अनुसार निर्भयता और निश्चिन्तता से आचरण किया जा सकता है? यदि हां, तब ऐसी हालत में भी अहिष्णुता हो सकती है। यदि नहीं तो क्यों?

उत्तर—इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है कि हर सबको अपने विचारों की सत्यता पर विश्वास होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चाहिये अन्यथा वे हमारे अपने विचार न रह जाएँगे लेकिन अपने विचारों की सत्यता में दृढ़ विश्वास होने और उनमें किसी भी तरह की ग़लती की संभावना न मानने में बहुत अन्तर है। जब कोई व्यक्ति अपने किसी मन्तव्य को देखे तब उसे यह अनुभूति होना संभव है कि उसमें कोई गलती नहीं हो सकती और किसी तरह अन्य विचारों को भी अलग-अलग वह अपने चिन्तन का विषय बनाये तो उसके सम्बन्ध में भी उसे ऐसी धारणा हो सकती है। लेकिन जब उन सबको सामूहिक रूप से वह देखेगा और यह विचारेगा कि पृथ्वी पर आज तक एक भी व्यक्ति ठीक उसके जैसे सब विचारों को रखनेवाला न हुआ है, न है और न हो सकेगा, तथा साथ ही जब वह भूतकाल के इतिहास और मानव समाज की वर्तमान परिस्थिति को याने भिन्न-भिन्न जातियों स्थानों व समयों के सिद्धान्तों को जो अब लुप्त हो गये हैं, व्यक्तियों व समुदायों के विचार करने की पद्धतियों को जो अब नष्ट हो चुकी हैं, तरह तरह की श्रेणियों, सभ्यताओं व संस्कृतियों में पले और पनपे हुये पक्षपातों और आदर्शों को जिनकी धज्जियां उड़ चुकी हैं, तथा सत्य के सच्चे खोजियों की सदा से होनेवाली बहस को जो अभी तक होती चली आ रही है, ग़ौर से देखेगा और साथ ही इस वस्तुस्थिति का दर्शन करेगा कि उसके चारों ओर सभी मनुष्य अपने अपने विचारों के प्रति उसकी तरह सन्मान व श्रद्धा रखते हैं तब उसे साधारणतः यही अनुभूति होनी चाहिये कि वह अपने सब विचारों में न सही पर कुछ विचारों में ग़लती पर हो सकता है। इस तरह अपने प्रत्येक विचार में अलग अलग दृढ़ विश्वास रखते हुये भी अपने विचारों में असत्यता की सम्भावना को वह मान सकता है। जहां यह दृष्टि या मनःस्थिति हो जाती है वहां विचारों में का तदनुकूल आचरण में कोई ढिलाई न होते हुये भी पूर्ण-परिपूर्ण-सम्पूर्ण सत्य का अधिकारी होने का अहंकार नहीं रह जाता है और फलतः वहां असहिष्णुता की उत्तेजना के लिए बहुत कम जगह रह पाती है।

सचमुच व्यक्तित्व व समाज के विकास व चिर-सुव्यवस्था के लिये सदैव समयोचित परिवर्तन होते रहने की ज़रूरत है, लेकिन प्रमाणवाद उसकी सबसे बड़ी रुकावट है। यों सम्प्रदायवाद के क्षेत्र में भी यहाँ तक कि प्रत्येक सम्प्रदाय के भीतर ही भीतर परिवर्तन होते हैं, सुधार किये जाते हैं लेकिन उनसे स्थायी लाभ नहीं हो पाता है। यहाँ जब किसी सुधार या परिवर्तन की आवाज़ उठायी जाती है तब प्रमाणवाद का सामना न करते हुये ही कोई मार्ग निकालने का प्रयत्न किया जाता है और जिसके लिये भी प्रमाणवाद का ही सहारा लिया जाता है। जिसके लिये प्रमाणवादी सुधारक की यह कोशिश होती है कि विरोध का सामना करने के लिये येन केन प्रकारेण यह ढूंढ़ निकाले कि प्रमाण माने जानेवाले ग्रन्थों या शास्त्रों में उपस्थित व्यवस्था से भिन्न या विरोधी अनुकूल व्यवस्था का उल्लेख है। जिसके लिये वह पोथियों को खोजता है और यदि सौभाग्य या दुर्भाग्य से वह ऐसी कोई बात पाने या खींचा-तानी करके ऐसी कोई बात बनाने में सफल हो जाता है तो फिर क्या कहने हैं, उसकी भी एक गुट बन जाती है, सैकड़ों उसकी हाँ में हां मिलाने लगते हैं, सारे देश के पंडितों मौलवियों पादरियों भिक्षुओं या मुनियों की दो पार्टियाँ हो जाती हैं, शास्त्रार्थ ( शास्त्र के अर्थ ) होते हैं, वाद-विवाद और वितण्डावाद होते हैं और यह सिलसिला बढ़ता ही चला जाता है। प्रमाणवादी सुधारक को कुछ तो प्रमाणवादजन्य अज्ञानता के कारण और कुछ उसके आतंक से भयभीत होकर यह साहस नहीं होता कि डंके की चोट पर यह घोषणा करे कि शास्त्रप्रणीत या शास्त्रानुमोदित होने से असत्य सत्य नहीं हो सकता, अकल्याणकारी कल्याणकारी नहीं बन सकता। पहिले कुछ भी हो पर अब यह होना चाहिये, ज़रूर होना चाहिये। यह सरल सत्य न तो वह समझ पाता है और न कहने की उसमें हिम्मत आ पाती है। इसी तरह प्रमाणवाद के चंगुल में विवेक-बुद्धि सत्यासत्य या शुभाशुभ का निर्णय करने के अयोग्य कर दी जाती है, उसे लूला-लंगड़ा या अपाहिज बना दिया जाता है। जिन बातों में व्यक्ति या समाज का हिताहित निहित है, जिन समस्याओं के हल होने पर व्यक्ति के वैयक्तिक व सार्वजनिक जीवन का उत्कर्ष-अपकर्ष निर्भर है, उसके लिये पोथियों में से इष्ट वचन-खण्ड खोजकर निकालना कहां तक ठीक है ? प्रमाणवाद के कार्य-क्षेत्र में इस भीतरी सुधार से मनुष्य समाज को कोई विशेष सुख मिला हो ऐसी कोई बात नहीं है। दकियानूसी हों या सुधारक ( ? ) चाहे इनमें भले-बुरे भी हों, पर ये सभी प्रमाणवादी अध्यात्मवाद के अंधेरे जंगल में बैठकर शिकार खेलते आये हैं और हमेशा ही यह दावा करते आये हैं कि सूर्य के प्रकाश में देखनेवाले केवल बाहरी चमड़े की आँखों से देखते हैं जबकि वे स्वयं जंगल के अन्धकार में हृदय की आँखों से सत्य का दर्शन करते हैं, पर हुआ यह है कि अंधेरे में टटोलते-टटोलते और ठोकरें खाते खाते ही उनका सारा जीवन बीत गया है और हाथों में कुछ नहीं आया है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# मुद्रा-आस्फालन ( Inflation ) की समस्या

श्री रमेशचन्द्र गोयल बी० काम०

महायुद्ध समाप्त हो चुका है। इस युद्ध ने बहुत सी नई नई समस्याओं को जन्म दिया है, किन्तु उनमें से मुद्रा के अत्यधिक आस्फालन की समस्या ने अर्थशास्त्रियों और विचारकों के मस्तिष्क को आजकल बुरी तरह उलझा रखा है। यद्यपि संसार के और देशों में यह समस्या उत्पन्न हुई है, किन्तु भारत में इसका परिमाण परिस्थिति विशेष के कारण अत्यन्त गुरु गम्भीर हो गया है।

किन्तु यह मुद्रा का आस्फालन है क्या वस्तु ? क्या मुद्रा कोई गुब्बारा है जो फूल गया है, और हवा के दबाव से अब फटना ही चाहता है ? यह प्रश्न यद्यपि है सरल किन्तु भारी भर कम शब्दों के प्रयोग से समझ में नहीं आता। प्रत्येक मनुष्य जिसे संसार से कुछ भी वास्ता है इस बात को समझता है कि आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु आजकल लड़ाई के पहले की अपेक्षा लगभग चौगुनी मँहगी हो गई है। यदि पहले रुपये का १ सेर घी आता था तो अब ¼ से मिलता है। इस बात को दो तरह से समझा जा सकता है, या तो यों समझिये कि घी मँहगा हो गया है या यों समझिये कि रुपये की क़ीमत, उसकी क्रय-शक्ति घट गई है, पारिभाषिक शब्दों में कहिये कि मुद्रा की क्रय-शक्ति कम हो गई है। लोग यह तो समझते हैं कि कुछ चीज़ों की लड़ाई में बहुत ज़रूरत पड़ती है, इसलिये वे मँहगी हो गई हैं किन्तु उनकी समझ में यह नहीं आता कि अन्य सभी चीज़ें क्यों मँहगी हो गई हैं। प्रसिद्ध प्राचीन अर्थ-शास्त्री रिकार्डो ने मुद्रा का एक परिमाणवादी सिद्धान्त स्थिर किया था, जिसके अनुसार यदि किसी देश में उपलब्ध वस्तुओं तथा सेवाओं के लिये जिस अनुपात से मुद्रा चलन में होगी, उसी अनुपात से वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य स्थिर होगा। अर्थात् यदि किसी देश में अलब्ध वस्तुएँ तथा सेवाऐं एक निश्चित परिमाण से आगे नहीं बढ़ी हैं, किन्तु चलन में मुद्रा का परिमाण बढ़ गया है, तो उनके मूल्य में उसी अनुपात से वृद्धि हो जायगी। यही सभी वस्तुओं के मँहगे होने का मुख्य कारण है।

इसी वस्तु को, अथवा यों कहिये कि आर्थिक जगत के इस परिवर्तन को, जहाँ पर चलन में मुद्रा की वृद्धि हो जाती है, किन्तु प्राप्य वस्तुओं तथा सेवाओं के परिमाण में उसी अनुपात से वृद्धि नहीं होती, अर्थ-शास्त्र की परिभाषा में आस्फालन ( Inflation ) कहते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन का मुख्य लक्षण वस्तुओं के मूल्य में अप्रायाशित वृद्धि है। हमारे देश में युद्ध काल में वस्तुओं के मूल्य में कितनी वृद्धि हुई है, इसका अन्दाज़ा नीचे की तालिका से हो जायगा। इसमें कलकत्ते में वस्तुओं की थोक दर के सरकारी तौर पर प्रकाशित इन्डेक्स नम्बर दिये गये हैं:—

| | | |
|---|---|---|
| सितम्बर | १९३९ | १०० ( जब युद्ध प्रारम्भ हुआ) |
| ,, | १९४० | १०४ |
| ,, | १९४१ | १३१ |
| ,, | १९४२ | १७४ |
| जनवरी | १९४३ | २२३* |

इसके पश्चात पिछले दो वर्षों में यह संख्या कम से कम १०० प्रतिशत तो अवश्य ही बढ़ गई है। अर्थात् वस्तुओं के मूल्य में कम से कम २०० प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। यह वृद्धि कैसे सम्भव हुई ? यह जानने के लिये हमको देखना होगा कि हमारे देश में मुद्रा के परिमाण में कितनी वृद्धि हुई है। हमारे देश में मुद्रा के प्रतीक रिज़र्व बैङ्क के नोट हैं। नीचे की तालिका से स्पष्ट हो जायगा कि उनमें कितनी वृद्धि हुई है :—

| | | चलन में नोट ( करोड़ रुपयों में )† |
|---|---|---|
| सितम्बर | १९३९ | १९६ |
| ,, | १९४० | २३२ |
| ,, | १९४१ | २८४ |
| ,, | १९४२ | ४८८ |
| जनवरी | १९४३ | ५८८ |
| २० जुलाई | १९४५ | ११५२ |

अर्थात ९५६ करोड़ की, अथवा लगभग ५½ गुनी वृद्धि हुई है।

---

* Inflation in India : Padma Publications Ltd. Bombay. p. 17.

† Ibid p. 17.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


१० जुलाई सन ४५ को रिज़र्व बैंक के इशू डिपार्टमेंट का तलपट निम्न प्रकार था—

( रुपयों में )

| | |
|---|---|
| बैंकिंग डिपार्टमेन्ट में नोट | १६,८६,३६,००० |
| चलन में नोट | ११,३५,२८,८९,००० |
| कुल नोट | ११,५२,१५,०,२५,०० |
| सोना ( भारत में ) | ४४,४१,४३,००० |
| स्टरलिंग सिक्युरिटीज़ | १०.३४,३२,८९,००० |
| योग | १०,७८,७४,३२,००० |
| रुपये | १५,५६,५७,००० |
| रुपी सिक्युरिटीज़ | ५७,८४,३६,००० |
| कुल योग | ११,५२,१५,२५,००० |

हम देख चुके हैं कि नोटों के चलन में, उनके परिमाण में लगभग ५½ गुनी वृद्धि हुई है। इस वृद्धि का वास्तविक असर क्या पड़ा है, इसे देखने के लिये हमें भारतीय मुद्रा के इतिहास की ओर लौटना होगा।

यह सब जानते हैं कि भारत सरकार ही, रिज़र्व बैंक के स्थापित होने के समय तक, रुपये के चलन के अधिकार का प्रयोग करती रही थी, और बहुत समय तक उसने महान असफलता के साथ जो उसकी क्रय शक्ति को बांधने का प्रयत्न किया था, तथा पिछले महायुद्ध के बाद और १९२९ की मन्दी के समय में उसकी मूर्खतापूर्ण नीति के कारण भारत को अपार आर्थिक हानि सहनी पड़ी थी, वह भी किसी से छिपी नहीं है। भारतीय मुद्रा के इतिहास के वे आंसुओं से लिखे गये अध्याय हैं, जिनको दुहराना कहीं अभीष्ट नहीं। १९३५ में रिज़र्व बैन्क आफ़ इण्डिया की स्थापना के पश्चात मुद्रा के चलन का अधिकार उसको सौंपा गया। रिज़र्व बैङ्क जितनी मुद्रा चलन में निकालता है, उसके लिये उसे करेन्सी रिज़र्व में कुछ निश्चित मात्रा में सोना इत्यादि रखना पड़ता है। भारत में रुपया ही एक-मात्र मुख्य सिक्का है, किन्तु पिछली लड़ाई के बाद से इसकी महत्ता कम हो गई थी। रुपये में चांदी तो पहले ही काफ़ी कम कर दी गई थी, किन्तु जुलाई १९४० में १ रुपये के नोटों के चलन में आने के बाद इसकी स्थित और भी खराब हो गई है। चांदी के सिक्के की बहुत कमी है, और इस समय लगभग ७५ प्रतिशत रुपया जो चलन में है, नोटों के रूप में है। हम ऊपर देख चुके हैं कि युद्ध के प्रारम्भ से लेकर अब तक नोटों के चलन में लगभग ९५६ करोड़ की वृद्धि हुई है, और आज चलन में नोटों की संख्या लगभग ११५२ करोड़ है। अब देखना यह है कि मुद्रा के इस महान प्रसार के पीछे वास्तविक आधार क्या है। ऊपर दिये हुए रिज़र्व बैङ्क के तलपट से यह बात है कि सोने का परिमाण केवल ४४ करोड़ जो युद्ध के पहले था—अब भी है उसमें कोई वृद्धि नहीं हुई है, चांदी का सिक्का लगभग १५ करोड़ है तथा भारत सरकार की रुपी सिक्युरिटीज़ लगभग ५७ करोड़ की है; किन्तु सबसे बड़ी वस्तु जो है, वह है १०३४ करोड़ की स्टरलिंग सिक्युरिटीज़ और यह स्टरलिंग सिक्युरिटीज़ हमारी थाती के रूप में ब्रिटेन के पास जमा है। मज़ा यह है कि स्टरलिंग का भी सोने के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, और कल को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा के बाज़ार में उसकी क्या हालत होगी, यह कौन जानता है। अतः यह स्पष्ट है कि हमारे इन काग़ज़ के नोटों के पीछे सोने का आधार तो केवल ३½ के लगभग है, और स्टरलिंग सिक्युरिटीज़ का अनुपात ९० प्रतिशत से भी अधिक। ऐसी दशा में रुपये की साख गिर जाना—उसकी क्रय शक्ति का कम हो जाना स्वाभाविक ही है, और इसी का नाम आस्फालन ( Inflation ) है।

किन्तु यदि परिमाणवाद के सिद्धान्त के अनुसार इस देश में उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं के परिमाण में भी इसी अनुपात से वृद्धि हुई होती तो आज परिस्थिति इतनी खराब न होती। यद्यपि भारत सरकार की कृपा से औद्योगिक उत्पादन तथा व्यापार के अङ्क उपलब्ध नहीं है, किन्तु फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि कुछ थोड़े से क्षेत्रों जैसे युद्ध का सामान बनानेवाले कारखानों इत्यादि को छोड़कर अन्य वस्तुओं के उत्पादन में कोई वास्तविक वृद्धि नहीं हुई है, और यदि हुई भी है तो वह किसी भी दशा में ५० प्रतिशत से अधिक नही आंकी जा सकती। इसके विपरीत हम देखते हैं कि चलन में नोटों की संख्या में प्रायः ५५० प्रतिशत की वृद्धि हुई है—इसका सीधा परिणाम यह हुआ है कि रुपये की क्रय शक्ति घटकर लगभग एक चौथाई रह गई है, जो प्रत्यक्ष है।

इस अत्यधिक आस्फालन के दुष्परिणामों और उनके निवारण के उपायों पर विचार करने से पहले संसार के अन्य देशों में जो मुद्रा के प्रसार में वृद्धि हुई है, और जिस तरह उसके दुष्परिणामों का निराकरण वहां की सरकारों द्वारा किया गया है, उस पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक है। ग्रेट ब्रिटेन तथा यूनाइटेड स्टेट्स आफ़ अमेरिका जैसे देशों में जहां युद्ध का बहुत अधिक सीधा प्रभाव पड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है, इतना अधिक आस्फालन नहीं हो पाया है। नीचे की तालिका में विभिन्न देशों के इन्डेक्स नम्बर दिये गये हैं :

| | भारत | यू० कि० | यू० स्टे० | आस्ट्रेलिया | कैनेडा |
|---|---|---|---|---|---|
| सितंबर १९३१ | १०० | १०० | १०० | १०० | १०० |
| ,, १९४० | १०४ | १३५ | ९९ | १०९ | १०६ |
| ,, १९४१ | १३१ | १४७ | ११६ | ११५ | ११८ |
| ,, १९४२ | १७४ | १५१ | १२४ | — | १२१ |

वास्तव में ये देश युद्ध के प्रारम्भ से ही इस समस्या के प्रति जागरूक थे, और उसी समय से इन्होंने उसकी रोक थाम के उपाय करके उसे सीमित रखने की चेष्टा की है। उदाहरण के लिये अमेरिका में जिस समय क़ीमतें केवल २० या २५ प्रतिशत ही बढ़ी थीं, उसी समय प्रेसीडेन्ट रूज़वेल्ट ने उनकी सीमाएं निश्चित कर दी थीं। कुछ समय पहले ही वहां एण्टी-इन्फ्लेशन क़ानून पास करके उन्हें यह अधिकार दे दिया गया था कि वे क़ीमतें और तनख़्वाहें तथा मज़दूरी १२ सितम्बर १९४२ के भावों पर क़ायम कर दें। इसी प्रकार कैनेडा, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका इत्यादि देशों में भी इसी प्रकार के उपाय काम में लाकर आस्फालन को अत्यन्त सीमित रखने की चेष्टा की गई है। किन्तु हमारी सरकार बार बार सुझाने पर भी यही कहती रही कि देश में कोई आस्फालन (Inflation) वास्तविक अर्थों में नहीं है, और अब कहीं जाकर बड़ी मुश्किल से उसने इस समस्या पर सोचने की तकलीफ़ उठाई है। यद्यपि, अन्य देशों का युद्ध से सीधा सम्बन्ध था और वहां पर आस्फालन की मात्रा कहीं अधिक होनी चाहियें, किन्तु भारी कर लगाकर, आमदनी को सीमा बद्ध कर, जनता का विश्वास प्राप्त कर तथा बैंकों से उधार लेकर उन्होंने युद्ध का ख़र्च चलाया। उसके विपरीत हमारे यहां डिफेन्स लोन्स के प्रति जनता में कोई विश्वास और आस्था नहीं है। लोग उनमें रुपया लगाने की अपेक्षा या पोस्ट आफिस सेविंग्ज़ बैंक में रखने की अपेक्षा बैंकों में रुपया रखना अच्छा समझते हैं, जहां उन्हें ब्याज भी नहीं मिलता। क्या यह जनता का सरकार के प्रति अविश्वास का खुला सार्टीफिकेट नहीं। इसके अतिरिक्त जितने भी कन्ट्रोल इत्यादि जारी हुए हैं, वे बहुत अंशों में असफल रहे हैं और चोर बाज़ार बढ़ते गये हैं। मूल्य-नियन्त्रण के द्वारा भारत में केवल वस्तुओं की कमी ही हुई है, लाभ कुछ भी नहीं हुआ। जनता के लिये वस्तुओं की अत्यधिक कमी रही है, और फलस्वरूप उनके मूल्य अप्रत्याशित रूप से ऊँचे हो गये हैं। यह मुद्रा के अत्यधिक प्रसार का प्रभाव है।

भारत की इस वर्तमान दशा में भी, जबकि मूल्य इतने बढ़े हुए हैं और मुद्रा का अत्यधिक प्रसार लोगों के दिलों में यह भय उत्पन्न कर रहा है कि कहीं इन नोटों का हाल पिछले महायुद्ध के बाद जर्मनी के मार्क जैसा न हो जाय कि ये बोतलों पर लेबिल लगाने के क़ाबिल हो जांय, कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि इस देश में आस्फालन जैसी कोई वस्तु नहीं हैं, और ११५२ करोड़ की वर्तमान करेन्सी तो बिल्कुल अपर्याप्त है, वरन् भारत के औद्योगिक विकास के लिये और भी ऊँची क़ीमतों की आवश्यकता है, और यदि करेन्सी का परिमाण बढ़ाकर १०,००० करोड़ रुपये भी कर दिया जाय तो कोई हानि नहीं। ऐसे लोगों की बुद्धि पर तरस आता है, किन्तु वास्तव में सत्य यह है कि वे पूंजीवादी दृष्टिकोण से औद्योगिक पूंजीपतियों के लाभ की बात सोचते हैं, उन्हें देश की करोड़ों की संख्या में नंगी भूखी जनता का कोई ख़याल नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि एक नवीन आर्थिक दृष्टिकोण को मद्दे नज़र रखते हुए, भारत की सारी भावी आर्थिक नीति आमूल परिवर्तित कर दी जाये, ताकि हमारी जनता मंहगाई के भयङ्कर भूत से त्राण पा सके और हमारे व्यापार और उद्योगों से प्राप्त रुपया पूंजीपतियों की जेबों में न जाकर देश हित के कार्यों में लगाया जा सके।

अतः इस आस्फालन के दुष्परिणामों से बचने के लिये हमारी युद्धोत्तर आर्थिक नीति की रूपरेखा क्या होनी चाहिए, इस विषय में हम पहले भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार की योजना* पर विचार करेंगे। सर थियोडोर ग्रेगरी के विचारानुसार युद्धोत्तर संसार की आर्थिक परिस्थिति में जो समस्या संसार को सबसे ज्यादा परेशान करेगी, वह है बेकारी की बला। इसको दूर रखने के लिये ब्रिटेन तथा अमेरिका को एक बहुत बड़े पैमाने पर अपना निर्यात व्यापार जारी रखना पड़ेगा, किन्तु भारत के लिये इसका प्रभाव अनिष्टकर ही होगा। लीग आव नेशन्स की ओर से हाल में ही एक पुस्तक† प्रकाशित हुई है, जिसमें

* Memorandum on Indian Monetary Policy in the Post War Period by Sir Theodore Gregory, Economic Adviser to the Govt. of India.

† Economic stability in the Postwar World League of Nations, India office, New Delhi

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बताया गया है कि "किसी भी सरकार की अपने देश में लोगों को खूब काम देने की प्रवृत्ति का फल होता है कि दूसरे देशों में लोग बेकार हो जाते हैं उनकी व्यापार वाणिज्य की राहें बन्द हो जाती हैं और उत्पादन में लगने योग्य धन का वहाँ चालान न होने से उस देश के साथ अन्य देशों की आर्थिक उन्नति को धक्का पहुँचता है।" युद्ध के पश्चात शान्तिकाल में मन्दी आदि अन्य कारणों के साथ यह भी भारतवर्ष में आर्थिक मन्दी लाने में सहायक हो सकता है। हमारे यहाँ की सरकार स्वयं इतनी समर्थ नहीं है कि इस देश में सब लोगों को काम दे सके और इस कार्य के उपयुक्त आर्थिक नीति का अवलम्बन कर सके। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार का मुँह ताकना पड़ता है, और जब रक्षक ही भक्षक बन जाये, तो फिर भगवान ही मालिक है। आम तौर पर यह आशा की जाती है कि युद्ध के ख़र्चे की बन्दी के साथ बाज़ारों की माँगें एकदम कम हो जायेंगी, और उसके साथ कीमतें भी गिर जायेंगी। कुछ वर्ष बाद सम्भव हो सकता है कि देश के भीतर ही इतनी मांग पैदा हो जाये कि कीमतें फिर ऊँची हो जायें किन्तु निकट भविष्य में ऐसी कोई सम्भावना दिखाई नहीं देती। अतः आवश्यकता इस बात की है कि सरकार इस विषय में दृढ़ता से काम ले, और उचित उपायों का प्रयोग करके कीमतों को एकबारगी नीचे गिरने से बचाये। इसके लिये भीतरी तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को कन्ट्रोल करने की भी आवश्यकता होगी। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक नीति के विषय में दो बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं एक तो विनिमय की दर और दूसरे उसकी दिशा। विनिमय की दर का रोना तो भारत के आर्थिक इतिहास में नया नहीं है—किस प्रकार संसार के बाजारों की प्रतियोगिता में आकर हमारी कृषि और उद्योगों का ह्रास हुआ* और किस प्रकार हमारी सरकार अपनी करतूतों को परदे में छिपाने का असफल प्रयत्न करती रही, वह सब यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं। अब भी यदि उसे निश्चित दर पर स्थिर रखने का प्रयत्न किया गया और स्टरलिंग के साथ बंधा रहने दिया गया, तो फिर उसी दुखद इतिहास की पुनरावृत्ति होगी। स्वयं सर थ्रेगरी के मत से या तो हमें अभी से उसके लिये रिज़र्व रखना चाहिये, या आनेवाली आर्थिक क्रान्ति के धक्के को सम्हाल सके। हमारे विचार से युद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रतियोगिता में ठहरने के लिये हमें रुपये का मूल्य कम करना होगा, और स्टरलिंग से गँठबन्धन छोड़कर उसे डालर अथवा सोने के साथ बांधना पड़ेगा। जैसी कि सम्भावना की जाती है, इस युद्ध के पश्चात हमारा व्यापार अमेरिका से अधिक होगा, और रुपये के स्टरलिंग से बँधे रहने पर हमें एम्पायर डालर पूल से बहुत ही कम मिलने की आशा है। दूसरा एतराज़ यह है कि स्टरलिंग तो स्वयं सोने से पृथक है, इसलिये उसके मूल्य का भी कोई भरोसा नहीं, और जैसा डर है, अगर कहीं स्टरलिंग की कीमत बुरी तरह गिर गई तो हमारे देश का तो दिवाला ही समझिये। हमारे यहाँ ११५२ करोड़ की करेन्सी के पीछे १०३४ करोड़ के स्टरलिंग की पूँजी है।

हमारी यह बृहद स्टरलिंग थाती किस प्रकार वसूल होगी, यह आज सबसे बड़ा प्रश्न हमारे सामने है। इसी के सही सलामत वापस आने पर हमारे देश की करेन्सी का भविष्य निर्भर करता है। इंगलैंड जैसे देश के लिये भी इतनी बड़ी रकम चुकाना आसान नहीं है, अतः यह अच्छा होगा कि वह इसका एक बड़ा भाग हमें डालर के रूप में दे दे, ताकि हम उन वस्तुओं को जिनकी हमें आवश्यकता है, अमेरिका तथा अन्य देशों से खरीद सकें। किन्तु अभी ब्रिटेन के इरादे इस विषय में साफ़ नहीं मालूम हो पाये हैं, और इसीलिये यह चिन्ता है। कुछ दिन पहले कलकत्ते के इण्डियन चेम्बर आफ़ कामर्स ने सरकार को सुझाया था कि इस स्टरलिंग पूँजी का एक भाग इस काम में लिया जाय कि ब्रिटिश कम्पनियों की जो पूँजी इस देश के बड़े बड़े उद्योग धन्धों में लगी हुई है उसे उन्हें वापस कर दिया जाए और वे उद्योग भारतीयों को सौंप दिये जायें। किन्तु स्वार्थ भावना के कारण ब्रिटिश पूँजीपति अपने अधिकार बेचने को तैयार नहीं हैं।

इस विषय में यह बात ध्यान देने लायक है कि १९४०-४१ में ही अमेरिका ने ब्रिटिश व्यापारिक स्वार्थों को स्टरलिङ्ग लेकर भुगतान कर दिया था, और उसके बाद जितना भी लड़ाई का सामान खरीदा गया, वह सब 'रुपया दो और ले जाओ' के सिद्धान्त पर रहा। यदि भारत भी इस विषय में स्वतन्त्र होता तो आज हमारे पास इतने अधिक स्टरलिंग की पूँजी न जमा होती, जो व्यर्थ में अटकी है और कौन जाने कब और कैसे वसूल होगी। यह वास्तव में एक प्रकार का उधार-पट्टा ( Lease-land ) ही है, किन्तु भारत के पराधीन होने के कारण इसके लिये कोई कानून भी पास न हुआ। हमारी इक्लेशन की समस्या

* The Economic Problem of India—By T. N. Ramaswami pp. 136 onwards



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की राह में यह स्टरलिंग सबसे बड़ा रोड़ा है। जब तक इसकी समस्या हल नहीं होती, मुद्रा की कीमत अपनी असली हालत में वापिस नहीं आ सकती। यद्यपि युद्ध-काल के इतिहास में पहली बार रिज़र्व बैङ्क को जुलाई मास में ८½ मिलियन पौण्ड* ( अर्थात् ११.३० करोड़ रुपये ) के स्टरलिंग के परिमाण में जिस अनुपात से वृद्धि हो रही है उसके आगे यह रक़म नगण्य है।

पहले एक जगह यह हम देख चुके हैं कि संसार के अन्य युद्ध-संलग्न देशों में किस प्रकार आस्फालन को रोका गया—अधिकतर कर-वृद्धि तथा लोगों में बचाने की प्रवृत्ति बढ़ाकर किन्तु वे पूँजीवादी देशों की बातें थीं। अब यह भी देखा जाय कि रूस जैसे समाजवादी देश में आस्फालन के दुष्परिणामों को किस प्रकार रोका जाता है। हाल ही में 'न्यूज़ रिव्यू' में एक विवरण प्रकाशित हुआ है, जिससे इस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। रूस में सरकार रूबल के मूल्य को किस प्रकार नियन्त्रण में रखती है, यह एक दिलचस्प मामला है। सरकार सभी वस्तुएँ बँधे भावों पर खरीदती है, और सेवाओं के बदले में बँधी हुई तनख़ाहें देती है इस प्रकार किसी के पास आवश्यकता से अधिक करेन्सी तो जमा हो ही नहीं पाती। किन्तु यदि हो भी जाय, तो उसके लिये दूसरा उपाय है। वितरण के लिये एक कठोर राशनिंग की नीति का अवलम्बन किया जाता है। इसके अनुसार 'आवश्यक वस्तुएं' तो मामूली कन्ट्रोल के भावों पर खरीदी जा सकती हैं, किन्तु यदि कोई उसके अतिरिक्त कुछ खरीदना चाहता है, तो उसे अत्यंत ऊँची 'व्यावसायिक दरों' के दाम देने होंगे। कभी कभी ऐसा होता है कि इस प्रकार की व्यवस्था में जहाँ सरकारी काम के लिए रेल के एक एंजिन का भाड़ा कुछ रूबल प्रति घंटा ही पड़ता है वहां मामूली ठेलागाड़ी का भाड़ा कई सौ रूबल भी हो सकता है। यह बात देखने में ऊपर से विचित्र जान पड़ेगी किन्तु इसका परिणाम यह है कि जनता की जेब में यदि १ लाख रूबल भी हों, तो भी उनकी क्रय-शक्ति बहुत सीमित होगी, जबकि सरकार के पास केवल १००० रूबल ही बहुत अधिक क्रय-शक्ति के प्रतीक हैं। इस प्रकार रूबल की कीमत सरकार के लिये बहुत अधिक है, और जनता के लिये बहुत कम, और अत्यधिक आस्फालन के दुष्परिणाम वहां दृष्टिगोचर नहीं होते। किन्तु हमारे देश में इस प्रकार की वस्तु का अभी स्वप्न भी नहीं देखा जा सकता।

अतः यह स्पष्ट है कि युद्धोत्तर आस्फालन की समस्या स्टरलिंग के भविष्य से बँधी हुई है। और स्टरलिंग की कीमत भी अनिश्चित है, और हमारे पावने की वसूली का टाइम और परिणाम भी अनिश्चित है, ऐसी दशा में निश्चयपूर्वक कुछ कहना दुःसाहस ही होगा, किन्तु फिर भी हमारे देश के व्यापारी और अर्थशास्त्री, एक्सचेंज डालर पूल और इंटरनेशनल मोनेटरी अरेंजमेंट की ओर आशाभरी दृष्टि लगाये हुए हैं।

* Reserve Bank of India—statistical summary.

---

# मनुष्य

श्री विद्याधर कुलश्रेष्ठ 'कुसुम'

मैं मनुष्य हूँ !
नर्क के अनेक दैत्य रक्त पी रहे,
देवता कृतघ्न स्वर्ग बीच जी रहे ;
नर्क और स्वर्ग का—
दैत्य-देव वर्ग का—
भूमि पर खिंचा हुआ अजीब दृश्य हूं !
मैं मनुष्य हूँ !

चाह जल रही, अधीर स्नेह जल रहा,
जल रहा शरीर, नष्ट गेह जल रहा ;
अज विश के लिए—
काल यज्ञ के लिए—
मृत्यु-थाल में सजा हुआ हविष्य हूं !
मैं मनुष्य हूं !

कालिमा अतीत की सँजो रहा हृदय,
वर्तमान का विषाद ढो रहा हृदय ;
जन्म-मृत्यु में बँधा—
शुष्क श्वास पर सधा—
अन्धकार से भरा हुआ भविष्य हूँ !
मैं मनुष्य हूं !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विनोबा भावे

श्री भारतन कुमारप्पा

जेल से बाहर पहली भेंट में विनोबा का प्रभाव हम पर अच्छा नहीं पड़ा। १० साल हुए मेरी एक बहिन वर्धा गई थी। हम दोनों से स्वर्गीय सेठ जमनालाल बजाज ने कहा कि हम विनोबा से ज़रूर मिलें। विनोबा अपने कमरे में बैठे चरखा कात रहे थे। हम दोनों को उनके सामने पेश किया गया। लेकिन वे हमसे एक शब्द भी न बोले। मुझे इससे बड़ी परेशानी हुई। मैंने समझा कि यह बड़ा दम्भी आदमी है इसमें इतना भी ज्ञान नहीं है; और एक महिला से जिसने उसके पास तक आने का कष्ट उठाया है, बात करने की शिष्टता भी नहीं दिखाई। मैंने निश्चय किया कि मैं इस आदमी से कोई वास्ता न रखूंगा।

लेकिन सरकार को बहुत सी योजनाएं उलटने का तरीका आता है। १९४२ में मैं गिरफ़्तार किया गया और नागपुर सेंट्रल जेल में रखा गया। वहीं विनोबा भी थे। मेरा बिस्तर उनके बिस्तर से तीसरे नम्बर पर था; और मैं चाहूँ या न चाहूँ मैं उनसे बच नहीं सकता था। मैं उन्हें दिन भर देखता था। उनका रूप रंग मुझे आकर्षित नहीं करता था। वे गांधीजी की तरह लुंगी लपेटे रहते थे। यह मुझे बहुत अखरता था। महीनों हजामत नहीं बनवाते थे और न अपने बाल ही छुँटवाते थे। नहाने के बाद वे सवेरे पांच बजे से ऊँची आवाज़ से क़ुरान की आयतें पढ़ने बैठ जाते थे। वे उन्हें हिफ़्ज़ कर रहे थे। उस वक्त जब कि एक आदमी सवेरे के सुहावने समय में आख़िरी नींद पूरी करने का इच्छुक हो, उनकी ऊँची आवाज़ बैरक में फैल जाती थी। लेकिन जब वे अपने सहयोगियों को सवेरे व शाम को गीता पर प्रवचन देते तो उनकी आवाज़ बहुत धीमी होती थी। मेरे ख़्याल में लुंगी की तरह यह भी गांधीजी की नकल करने का उनका सस्ता प्रयत्न था।

गांधीजी तेज़ आवाज़ में बोल नहीं सकते क्योंकि उनकी आवाज़ धीमी है। लेकिन विनोबा की आवाज़ में कोई ख़राबी नहीं थी। क्योंकि मुझे नित्य सवेरे पांच बजे अपनी नींद की बलि देकर यह अनुभव होता था। वह गांधीजी की नकल क्यों करते हैं? मैं नकलचियों से घृणा करता हूँ। लेकिन विनोबा के व्याख्यान की हरएक तारीफ़ करता था। इसलिये मैंने एक दो बार बैठकर उन्हें सुनने का प्रयत्न किया। लेकिन उनके प्रवचन सुन सकना बड़ा कठिन था, दूसरे वे हिन्दी में होते थे अतः मैं उन्हें समझ नहीं सकता था। मैं निराश हो गया और उनके बारे में मेरी धारणा उल्टी बन गई। क्योंकि मुझे उनके प्रयत्नों में लोगों पर अपनी महत्ता की छाप जमाने और गांधीजी के समकक्ष बनने की झलक आने लगी। मुझे अपने साथियों की बुद्धि पर भी आश्चर्य होता था जो प्रतिदिन उन्हें सुनते थे। सवेरे ये मराठी भाषा में ज्ञानेश्वरी पर, जो गीता पर एक मराठा सन्त ज्ञानेश्वर की टीका है, व्याख्यान देते और शाम को हिन्दी में गीता पर। गीता पर उनका अनन्त व्याख्यान मानों संसार में कोई दूसरी चीज अध्ययन के काबिल है ही नहीं, मुझे मध्य युग का प्रतीक और आधुनिक साहित्य से अपरिचय मालूम हुआ!

इस सबके बावजूद मैंने दो-एक बार, अपने साथियों के कहने से उनसे बात करने का प्रयत्न किया। लेकिन मैंने यही पाया कि वह बहुत कम बोलते और बोलने का सारा काम मुझे ही करना पड़ता। लेकिन खुद ही बोलते रहने में मुझे कोई रस नहीं आता था। अतः मैं निराश हो गया और उनके बारे में सोचना ही छोड़ दिया। इसके कुछ महीनों बाद उनका तबादला दूसरी जेल को हो गया। अब मुझे निराशा हुई कि मुझे ऐसे आदमी के बारे में जिसकी सब प्रशंसा करते हों, कुछ नहीं मालूम।

## सिवनी जेल

कुछ महीनों में मैं भी सिवनी जेल पहुँचा दिया गया जहां विनोबा भावे भी थे। हम वहां थोड़े ही आदमी थे। करीब ३६-३७ होंगे जबकि नागपुर में हम २०० के करीब थे। अतः मुझे दुबारा अपने परिचय को बढ़ाने का मौका मिला। सिवनी में उन्हें समय भी ज्यादा मिलता था, क्योंकि उन्हें यहां सवेरे-शाम लेक्चर नहीं देना पड़ता था। लेकिन फिर भी वे क़ुरान का पाठ करते, पढ़ते, फारसी सीखते और गीता के उपदेशों पर एक दो साथियों से बात-चीत करते। फिर भी यहां उन्हें काफी वक्त मिलता था। लोगों ने यह कह कर कि वे आदर्श शिक्षक हैं मुझे उनसे हिन्दी सीखने के लिए प्रेरित किया। मैंने इसका स्वागत किया। क्योंकि इससे मुझे उन्हें जानने का मौका मिलता। वे भी राज़ी हो गये। अतः हम दोनों रोज एक घण्टे के लिये मिलते। उन्होंने आश्रम भजनावली से कुछ हिन्दी भजन मुझे सिखाये। उनकी व्याख्या मुझे बड़ी जीवन-दायिनी और नवीन मालूम हुई। वे स्वयम् भी भक्ति भाव से भरे हुए थे। और इसलिये उन भजनों व प्रार्थनाओं की भावना को समझ सकते थे। इसके बाद हमने रामायण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पढ़नी शुरू की। उन्होंने कुछ अध्याय उसमें से छांट लिये। और इस प्रकार प्राचीन साहित्य के लिये मेरे हृदय में प्रेम उत्पन्न कर दिया। प्राचीन धार्मिक पुस्तकों के बारे में उनकी राय बहुमूल्य थी और यह कहा जा सकता है कि प्राचीन ग्रन्थों में सत्य का जो वर्णन किया गया था उसका उन्हें भी कुछ अनुभव था।

इस प्रकार जब हम एक-दूसरे के बहुत निकट हो गये, हमने अध्ययन बन्द करके विचार-विनिमय करना आरम्भ कर दिया, जिससे मुझे यह मालूम हुआ कि वे केवल भूत-काल में ही नहीं रहते या प्रत्येक प्राचीन वस्तु को ही आदर्श नहीं मानते, बल्कि आधुनिक विचारधारा से भी वे भली भांति भिज्ञ थे। आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों में उनका बहुत विश्वास है और दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं तथा शिक्षा, ग्राम-सुधार, गृह-उद्योग, महिलाओं, बच्चे, भोजन और काफी आदि विषयों का भूत और वर्तमान, दोनों के प्रकाश में बहुत गम्भीरता से उन्होंने मनन किया है। वे हमेशा कुछ नई और मौलिक चीज पेश करते और जिस किसी समस्या को लेते उस पर वे प्रत्येक दृष्टिकोण से बहुत ध्यानपूर्वक विचार करते थे। वे प्राचीन साहित्य की गहराई में पहुंचकर उसकी वर्तमान परिस्थितियों के प्रकाश में व्याख्या कर सकते हैं। वे ज्ञान और आध्यात्मिकता के अथाह भण्डार थे और मेरे ख्याल में यही कारण है कि लोग उनको सुनने के लिये इतने उत्सुक रहते थे। इतने पर भी उनमें अहंभाव बिलकुल नहीं था। उनका लजालू और नम्र स्वभाव उन्हें अन्य लोगों से खुलकर मिलने-जुलने में बाधक था। कुछ सूरतों में तो वे बिलकुल एक बच्चे की तरह प्रत्येक की सलाह सुनने को तत्पर रहते जिससे कोई भी यह सोच सकता था कि उनमें अहंकार, गर्व या किसी को धोखा देने वाली चीज लेशमात्र भी नहीं थी जैसा कि मेरा सबसे पहले उसके बारे में खयाल बना था। अब तक जितने व्यक्तियों से मैं मिला हूं उनमें वे निस्पृहता के आदर्श के सबसे निकट थे। अतः उनके द्वारा गांधीजी की तरह बनने की कोशिश करने का तो कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता। मैंने उनको बताया कि सभा में उनका कुछ धीमी आवाज में बोलना मुझे पसन्द नहीं, क्योंकि इससे सुननेवाले पर बहुत दबाव पड़ता था। इसके बाद आगे से उन्होंने अपना स्वर बदल दिया और शुरू से ही उनकी आवाज साफ तौर से सुनाई देने लगी। उनको यह खयाल नहीं होता था कि उनकी आवाज सुनाई नहीं देती। उनमें कृत्रिमता बिलकुल नहीं और कुछ कहने या करने का उनपर कोई प्रभाव नहीं होता। यही वजह है कि कई साल पहले जब मैं और मेरी बहिन उनसे मिले थे तो उन्होंने मौसम या राजनीति के बारे में कोई वार्तालाप नहीं किया जैसा कि 'सभ्य' लोग बहुधा किया करते हैं। केवल शिष्टाचार के नाते ही वार्तालाप करने में वे कोई अर्थ नहीं समझते। वे पूर्णतया ईमानदार थे।

## भाषा विशेषज्ञ

विविध भाषायें जानने की उनमें अद्भुत क्षमता है। जिन दिनों वे वेल्लोर जेल में थे, उन्होंने तमिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम का अध्ययन किया। संस्कृत, फारसी, अरबी, उर्दू, हिन्दी, गुजराती, बंगला, मराठी और अंग्रेजी उन्हें पहले से ही आती थीं। सिवनी जेल में हर सबेरे कोई भी उनको ज़बानी भारती के गायन गाते हुए सुन सकता था। दक्षिण भारत के महान कवि भारती को वे बहुत चाहते थे और तमिल के गानों को वे केवल संस्कृत से दूसरे नम्बर पर मानते थे।

बाइबिल उन्होंने कई साल पहले पढ़ ली थी, परन्तु उनकी याददाश्त इतनी अच्छी थी कि वे उससे अध्याय और नज़्म ज़बानी पढ़ सकते थे। रविवारों को मैं उनके कहने पर बाइबिल पढ़कर सुनाया करता था। ईसा के उपदेशों की अपनी इतनी गम्भीर जानकारी से उन्होंने मुझे आश्चर्य में डाल दिया। ईसा के वे बहुत प्रशंसक थे। मुझे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि अपनी रिहाई के बाद पहले रविवार को ही वे बाइबिल का पाठ जारी रखने की आशा से मगनवाड़ी, वर्धा में मेरे पास पहुंचे।

धर्म विनोबा के लिये जीवन-श्वास है। उनका सारा जीवन और विचार शक्ति इसमें लगी रहती है, परन्तु उस तरह का धर्म नहीं जिसे धर्मान्धता या कठमुल्लापन कहा जाता है। वे ऐसे धर्म को भी पसन्द नहीं करते जो कि सांसारिक जीवन से रहित हो। उनकी राय में सच्चा धर्म वास्तव में अहिंसा या प्रत्येक कार्यक्षेत्र में प्रेम है। उन्हें ईसा के ये शब्द "प्रेम ही ईश्वर है" उद्धृत करने की बहुत आदत थी और उनका सबसे अधिक प्रिय अनुयायी जान था जो स्वयं प्रेम का पुजारी था।

विनोबा हमारे देश की गहरी आध्यात्मिकता और धार्मिक अनुभव से पके हुये एक फल हैं। दिन-रात उनके साथ रहना और इतनी निकटता से उनको जानना मेरा एक सौभाग्य था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# महाकवि तुलसी के आध्यात्मिक विचार

श्रीमती चन्द्रकुमारी वर्मा एम० ए०

मध्ययुग का समस्त हिन्दी भक्ति-काव्य निर्गुण ब्रह्ममय है।

कबीर एवं जायसी तो सुप्रसिद्ध निर्गुण कवि हैं।[1] सूर ने भी स्वीकार किया है कि निर्गुण ब्रह्म की उपासना कठिन है इस कारण ही वे सगुण लीला के पद गा रहे हैं।[2] तुलसी के राम भी निर्गुण ब्रह्म के अवतार हैं :

एक अनीह अरूप अनामा।
अज सच्चिदानन्द परधामा॥
व्यापक विस्वरूप भगवाना।
तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥[3]

अमल अनवद्य अद्वैत निगुन
सगुन ब्रह्मसुमरामि नर भूपरूपं।[4]

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।[5]

निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी॥[6]

देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं।
कहहुँ सो कहां जहां प्रभु नाहीं॥[7]

वही चेतना के मूल स्रोत हैं गुण-धाम हैं, और ज्ञान-स्वरूप हैं—

विषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक ते एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति होई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।
मायाधीस ग्यान गुन धामू॥[8]

'जयति सच्चिदानन्द व्यापक यद्
ब्रह्म विग्रह व्यक्त लीलावतारी,
विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोच
बस बिमल गुण गेह नर देह धारी[9]

समस्त ब्रह्मांडों के संचालक ब्रह्मा, विष्णु महेश-त्रिदेव हैं—तुलसी के राम इन्हीं विष्णु के अवतार हैं। अतः प्रत्येक ब्रह्मांड के जो त्रिदेव हैं—उन विष्णु से इनके राम श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मा तथा शिव की भाँति वह प्रत्येक ब्रह्मांड के विष्णु भी राम के चरणों की वंदना और सेवा करते हैं—

देखे सिव विधि विष्नु अनेका।
अमित प्रभाउ एक ते एका॥
वन्दत चरन करत प्रभु सेवा।
विविध रूप देखे सब देवा॥[10]

'हरिहि हरिता बिधिहि बिधिता सिवहि सिवता जे दई
सोइ जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई।[11]

विष्णु परमात्मा हैं, अविनाशी, सर्वव्यापक और परमानन्द स्वरूप हैं। वे ही सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते हैं :

जय जय अबिनासी सब घट-
बासी व्यापक परमानन्दा।[12]

विस्वधृत विस्वहित अजित गोतीत शिव
विश्वपालन हरण बिस्वकर्ता।[13]

इन्हीं राम ने पहले भी बाराह, नृसिंह तथा वामन आदि अनेक अवतार धारण किये थे।

मीन कमठ सूकर नरहरी।
बामन परसुराम बपुधरी॥[14]

वामनाव्यक्त पावन परावर विभो[15]

यही राम अवतरित होकर अपने भक्तों के प्रेम और उनकी साधना को सफल करते हैं :

अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥'[16]

भक्त हित हरन संसारभारं[17]

---

१ संभव है यह मुस्लिम प्रभाव हो
२ सूरसुधा (१९९६) पृष्ठ १
३ मानस, बाल० १३
४ विनय० १५ ५०
५ मानस, बाल० १८५
६ मानस, बाल० १८५
७ मानस, बाल० ११०
८ मानस, बाल० ११७
९ विनय० ४३
१० मानस, बाल० ५४
११ विनय० १३५
१२ मानस, बाल० १८६
१३ विनय० ६१
१४ मानस, लंका० ११०
१५ विनय० ४९
१६ मानस, सुन्दर० ४८
१७ विनय० ४६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उनकी लीला का गानकर भक्त भवसागर से पार हो जाते हैं—

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं।
कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥[१८]

अवतार लेने का एक उद्देश्य दुष्कर्मियों का नाश कर सत्कर्मियों की रक्षा करना, और अधर्म का नाश कर धर्म की संस्थापना करना है—

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीत जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥[१९]

विकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध संकोचवश
विमल गुणगेह नरदेह धारी[२०]

विशिष्टाद्वैतवादी राम का अवतार अंशों सहित हुआ है—

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा।
लेहउं दिनकर बंस उदारा॥'[२१]

अवतार लेने में राम ने अपनी 'माया' के द्वारा ही मनुष्य शरीर धारण किया है—

माया मानुष रूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवतौ हितौ।[२२]

यह राम मायाधीश हैं। उनके इशारे पर माया नाचती है पर उनपर माया का कोई भी प्रभाव किसी रूप से नहीं है। अतः तुलसी के अनुसार ब्रह्म की व्याख्या अद्वैत वादियों के निराकार और निर्गुण ब्रह्म के ही सदृश है। किन्तु इन्होंने जो निर्गुण ब्रह्म का माया के साथ सगुण रूप में चित्रण किया है वही तुलसी को विशिष्टाद्वैतवाद की ओर ले जाता है। ब्रह्म का सगुणरूप मायापति राम के व्यक्तित्व में अंकित है जिनमें ब्रह्मत्व के सभी गुण वर्त्तमान हैं पर साथ ही मानवता का उच्चतम विकास भी है।

तुलसी के अनुसार जो माया के वश में ईश्वर का अंश है और जो स्वतः अपने रूप को नहीं जानता वही 'जीव' है:

माया ईस न आपु कहुं जान कहिअ सो जीव[२३]

'जीव' पंचभौतिक शरीर से भिन्न है। वह नित्य है और जन्म मरण के बंधन में नहीं पड़ता—

छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रहित यह अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य तुम्ह केहि लगि रोवा॥[२४]

द्वन्दात्मकज्ञान अज्ञान, हर्ष-विषाद जीव के धर्म हैं—

हरष विषाद ग्यान अग्याना।
जीव धरम अहमिति अभिमाना॥[२५]

ईश्वर और जीव में वस्तुतः कोई भेद नहीं है। भेद माया जनित ही है:

ग्यान अखंड एक सीतावर।
माया बस्य जीव सचराचर॥[२६]

हौं जड़ जीव ईस रघुराया।
तुम मायापति हौं बस माया॥[२७]

तुलसीदास जी ने जीव की व्याख्या करते हुये अनेक स्थलों पर उसे ब्रह्म का अंश भी कहा है—

ईस्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी॥
सो मायाबस बँध्यौ गुसाईं।
भयो कीर मरकट की नाईं॥[२८]

माया के अत्यधिक प्रभाव के कारण ही जीव अपने वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ है। न उसे माया का ज्ञात है और न उसे अपने यथार्थ स्वरूप 'सच्चिदानन्द' का ही ज्ञान है। वह सत् चित् से युक्त है किन्तु उसे आनन्द तिरोभूत है। इसी कारण वह दुःखी होकर उसे आनन्द की खोज में भटकता फिरता है और तरह तरह के दुःखों और क्लेशों को भोगता रहता है। उस आनन्द की प्राप्ति होने पर जीव 'सच्चिदानन्द स्वरूप' हो जाता है।

गोस्वामी जी के अद्वैतवाद और शंकराचार्य के अद्वैतवाद में भेद दिखाई देता है। शंकराचार्य माया का अस्तित्व ही नहीं मानते परन्तु तुलसीदास जड़ होते हुए भी राम के बल पर उसका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। उनकी कल्पना में सीता राम की शक्ति रूप माया है।

---

१८ मानस, बाल० १२१ २१ मानस, बाल० १८७
१९ मानस बाल० १२१ २२ मानस, किष्किन्धा० १
२० विनय० ४३ २३ मानस, अरण्य० १५
२४ मानस, किष्किंधा० ११ २७ विनय० १
२५ मानस, बाल० ११६ २८ मानस, उत्तर० १
२६ मानस, उत्तर० ७९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वे सारे जगत को ब्रह्म एवं मायामय अतः वंदनीय मानते हैं :

सीय राममय सब जग जानी।
करहुं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥[२९]

सीता वह 'आदिशक्ति' है जिससे विश्व की उत्पत्ति तीनों गुणों की सहायता से होती है—अतः वह त्रिगुणात्मिका है :

आदि सक्ति जेहिं जग उपजाया।
सोउ अवतरहि मोर वह माया ॥[३०]

यही माया मूलप्रकृति स्वरूप है और इसी से संसार की उद्भव, स्थित और नाश होता है—

'उद्भवस्थितसंहारकारिणीं सीतां नतोऽहं
रामवल्लभाम्'।[३१]

ब्रह्म की यह माया 'विद्या' रूप है और यह विद्या रूप माया ही राम की शक्ति 'सीता' है जो आदि नारायण राम की 'योग माया' है और वही परमात्मा की 'परम शक्ति' है।

माया का दूसरा स्वरूप 'अविद्या' रूप में मिलता है जो अत्यन्त विषम है। और यही माया जीव के दुःख का मूल कारण है। इसी के पाश में बँधकर जीव संसार की यातनायें भोगता रहता है। मोह, अविश्वास और अहंकार आदि इस माया के ही रूपान्तर हैं। मन्थरा, ताड़का, सूर्पणखा आदि कुटिल नारियाँ इसी 'अविद्या' माया की प्रतीक हैं। इसीलिये गोस्वामी जी ने लिखा है—

ढोल गंवार सूद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी ॥'[३२]

'विद्या' माया के वश में अखिल विश्व, ब्रह्मादि देवासुर हैं—

यन्मायावंशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा[३३]

इन्द्रियाँ और उनके विषय मायाजनित हैं—

गो गोचर जहं लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई ॥'[३४]

तुलसीदास जी ने सीता को भी राम की भाँति अपरिवर्तनशील माना है। सीता उन्हीं विष्णु की स्त्री हैं जिनसे अनेक ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न हुए हैं।

अतः इस आदि शक्ति सीता के अंश मात्र से अगणित उमा, लक्ष्मी और ब्रह्माणी उत्पन्न हुईं हैं।

जासु अंस उपजहिं गुनखानी।
अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥
भृकुटि विलास जासु जग होई।
राम बाम दिसि सीता सोई ॥[३५]

संसार की सभी वस्तुएँ माया से उत्पन्न होने के कारण मृषा हैं वे केवल राम का सत्व पाकर सत्य प्रतीत होती हैं—

यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौयथाऽहेर्भ्रमः[३६]

संसार में जितने भी भक्त हुए वे सब मोक्ष के इच्छुक रहे परन्तु तुलसीदास इन सब से भिन्न हैं—वह मुक्ति की इच्छा नहीं रखते वे इसी मनुष्य शरीर से अपने इष्टदेव राम की सेवा करना चाहते हैं। वह जब कभी भी अपने आराध्य देवता से कुछ वर मांगना चाहते हैं तो भक्ति ही माँगते हैं—

बार बार बर मागहुं हरषि देव श्रीरंग।
पद सरोज अनुपायनी भगति सदा सत्संग ॥[३७]

इनका विचार है कि भक्ति से जीव 'अविद्या' रूप माया के बंधनों से, मुक्त हो जाता है।

मुक्ति प्राप्त करने के लिये जो भक्ति अन्य के लिये साधन-रूप है—वही भक्ति तुलसीदास के लिये 'साध्य रूप' है :

सखा परम परमारथु एहू।
मन क्रम वचन राम पद नेहू ॥[३८]

इस 'भक्ति' की महत्ता इतनी है कि विमुक्त भी 'भक्ति' की इच्छा करते हैं—

सुनहिं विमुक्त विरत अरु विषयी।
लहहिं भगति गति संपति नई ॥[३९]

इस भक्ति के आधीन ज्ञान और विज्ञान दोनों ही हैं :

तेहि आधीन ग्यान विग्याना[४०]

---

२९ मानस, बाल० ८ ३२ मानस, सुन्दर० ६२ ३५ मानस, बाल० १४८ ३८ मानस, अयोध्या० ९३
३० मानस, बाल० १५२ ३३ मानस, बाल० १ ३६ मानस, बाल० १ ३९ मानस, उत्तर० १५
३१ मानस, बाल० १ ३४ मानस, अर० ३०७ ३७ मानस, उत्तर० ३२ ४० मानस, अरण्य० १६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यही भक्ति ज्ञानादिक समस्त साधनों का फल है—

जप तप निगम जोग निज धरमा।
श्रुति संभव नाना सुभ करमा॥
ज्ञान, दया, दम, तीरथ मज्जन।
जहँ लगि धरम कहत स्रुति सज्जन॥
आगम निगम पुरान अनेका।
पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरन्तर।
सब साधन कर यह फल सुन्दर॥[४१]

इस भक्ति के लिये रामभक्त मुक्ति को भी त्याग देते हैं—

अस विचारि हरि भगत सयाने।
मुक्ति निरादर भगति लोभाने॥[४२]

संसार के क्लेशों को नष्ट करने में ज्ञान और भक्ति दोनों समर्थ हैं—

भगतिहि ग्यानहिं नहि कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥[४३]

परन्तु फिर भी ज्ञान का पथ दुर्गम है—

'ज्ञान पंथ कृपान कै धारा।[४४]

और 'भक्ति' को ही श्रेयस्कर माना है—

धर्म तें बिरति जोग से ज्ञाना।
ज्ञान मोच्छ प्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत-सुख-दाई॥[४५]

मोक्ष भी भक्ति के बिना स्थायी नहीं रहता. जिस प्रकार जल बिना भूमि के नहीं टिकता—

जिमि बिनु थल जल रहि न सकाई।
कोटि भाँति कोइ करै उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई।
रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥[४६]

भक्ति ही एक मात्र ऐसा साधन है जिससे संसार के दुःखों से छुटकारा मिल सकता है। राम याज्ञवल्क्य काक-भुशुण्ड सभी भक्ति को श्रेष्ठ मानते हैं। गोस्वामी जी ने भक्ति के अनेक साधन बताये हैं। सबसे अधिक प्रधानता सत्संग को दी है :

बिनु सत्संग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।[४७]

बिनु सत्संग भगति नहि होई।[४८]

श्रीमद्भागवत की नवधा भक्ति के अन्तर्गत राम की कथा में प्रीति होना, कीर्तन करना, कथा श्रवण करने आदि पर भी तुलसी की पूर्ण आस्था है। उन्होंने अध्यात्म रामायण की नवधा भक्ति को स्वीकार किया है। उनके अनुसार भक्ति नौ प्रकार से की जाती है। प्रथम सन्तों की सेवा और संग, द्वितीय राम की कथा में प्रीति, तृतीय गुरु की पूजा, चतुर्थ गुण गान, पंचम नाम का जाप और राम पर विश्वास, षष्ठ दम, शील, कर्मों से वैराग्य, सप्तम समान दृष्टि होकर जगत् राम से व्याप्त देखना और संतों को श्रेष्ठ मानना, अष्टम सन्तुष्ट रहना, किसी के दोष न देखना और नवम सरलभाव से रहना न किसी बात से हर्ष और न दीनता है।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥[४९]

सुनि सीता पति सील सुभाउ।
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ[५०]

श्रवणादिक नव भगति दृढ़ाहीं।
मम लीला रति अति मन माहीं।[५१]

इस साधन पथ में गुरू की कृपा भी बहुत सहायता देती है:

श्री गुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू।
बड़े भाग उर आवइ जासू।[५२]

गुरु पद-पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।[५३]

तुम्ह ते अधिक गुरहिं जिय जानी।
सकल भाय सेवहिं सनमानी।[५४]
तुलसिदास हरि गुरू करुना बिनु
विमल विवेक न होई।[५५]

'गुण-गान' को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है—

जानकी जीवन की बलि जैहौं।
श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं रसना और न गैहौं[५६]

---

४१ मानस, उत्तर० ४९
४२ मानस, उत्तर० ११९
४३ मानस, उत्तर० ११५
४४ मानस, उत्तर० ११९
४५ मानस, उत्तर० ४६
४६ मानस, उत्तर० ११९
४७ मानस, उत्तर० ६१
४८ विनय० १३६
४९ मानस, अरण्य० ३५
५० विनय० १०२
५१ मानस, अरण्य० १६
५२ मानस, बाल० १
५३ मानस अरण्य० ३४
५४ मानस, अयोध्या० १२१
५५ विनय० १०५
५६ विनय १०५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मम गुन गावत पुलक सरीरा।
गद्गद् गिरा नयन बह नीरा ॥५७

नाम-जप तो तुलसी की दृष्टि से सर्वोच्च साधना है : इसके आधीन अनेक साधनों को बताया गया है—

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे
घोर भव नीरनिधि नाम निजु नावरे
एकहि साधन सब रिधि सिधि साधि रे,
बसे कलि रोग जोग संयम समाधि रे।५८
कहऊं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुन गाई।५९

कलियुग में समस्त आध्यात्मिक साधनों से अधिक प्रभावशाली 'नाम स्मरण' है

कलियुग केवल नाम अधारा।
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू।
राम नाम अवलम्बन एकू ॥६०

एक स्थान पर तो तुलसी राम नाम को स्वयं राम से बड़ा बतलाते हैं:

राम ब्रह्म तें नाम बड़ बरदायक बरदान।६१

दम, शील सौजन्य, बहुत से कर्मों से वैराग्य तथा सज्जनों के धर्म में निरत रहना भी महत्वशील है :

काम कोह मद मान न मोहा।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा।
जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया।
तिनके हृदय बसहु रघुराया।६२

तुलसी के अनुसार समान दृष्टि होकर संपूर्ण जगत को राममय देखने का अपना विशिष्ट स्थान है :

सरगु नरकु अपबरगु समाना।
जहँ तहँ देख धरे धनु बाना ॥
करम बचन मन राउर चेरा।
राम करहु तेहि के उर डेरा ॥६३

सब प्रकार से सन्तुष्ट रहना, दूसरों के दोषों को न देखना भी तुलसी आवश्यक मानते हैं :

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं।
बिप्र धेनु हित संकट सहहीं।

नीति निपुन जिन्ह कै जग लीका।
घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥६४

संसार के सुख में हर्ष विषाद अनुभव करते हुए अपने हृदय में राम के चरणों में दृढ़ विश्वास रखते हुए सबसे प्रपंच रहित होकर सरल भाव से व्यवहार करने का उपदेश कवि ने दिया है :

सरल सुभाव न मन कुटिलाई।
जथा लाभ सन्तोष सदाई ॥
मोर दास कहाइ नर आसा।
करइ तो कहहु कवन बिस्वासा ॥
बैर न बिग्रह आस न त्रासा।
सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥६५

भक्ति के अतिरिक्त अन्य साधनों में ज्ञान का महत्व पूर्ण स्थान है—

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।
ग्यान मोच्छ प्रद बेद बखाना ॥६६

ब्राह्मण सेवा का भी भक्ति की आवश्यक भूमिकाओं में स्थान है :

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम ॥६७

रामतीर्थों की यात्रा भी राम भक्ति का एक अन्य साधन है :

चरन राम तीरथ चलि जाहीं।
राम बसहु तिनके मन माहीं ॥६८

राम भक्ति के लिये शिव भक्ति को भी एक उच्च स्थान दिया गया है।

बिन तव कृपा राम पद पंकज, सपनेहु भगत न होइ।६९

संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरकु महँ बास।७०

सङ्कर भजन बिना नर भगति न पावे मोर।७१
जे रामेस्वर दरसन करिहहीं
ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहीं।७२

---

५७ मानस, अरण्य० १६ ६१ मानस, बाल० २५
५८ विनय० ६६ ६२ मानस, अयोध्या० १३०
५९ मानस, बाल० २६ ६३ मानस, अयोध्या० १३१
६० मानस, बाल० १६ २६

६४ मानस, अयोध्या० १३१ ६९ विनय, ९
६५ मानस, उत्तर० ४६ ७० मानस, लंका० २
६६ मानस, अरण्य० १६ ७१ मानस, उत्तर० ४५
६७ मानस, सुन्दर ४८ ७२ मानस, लंका० २
६८ मानस, अयोध्या० १२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी के आध्यात्मिक विचार शंकर एवं कबीर के अद्वैतवाद की भाँति शुष्क और नीरस नहीं है। तुलसी ने सगुण रूप राम की उपासना की है। उन्होंने माया सीता को उच्चतम स्थान दिया है। स्वयं तुलसी ने विनय पत्रिका पर राम की सही सीता की कृपा का फल बतलायी है। जीव भी ईश्वर से कोई पृथक सत्ता नहीं रखता वह भी ब्रह्म का ही अंश है। भगवान के लोक रक्षक रूप का चित्रण करने में तुलसी पूर्णतः सफल हुए हैं। इन्हीं भगवान के पास पहुँचने के लिये तुलसी ने 'भक्ति' का आधार लिया है। भक्ति को ही उन्होंने सर्वश्रेष्ठ माना है, आशु फलदायिनी और सुसाध्य आदि कहा है इसलिये वह सदैव भक्ति की ही इच्छा करते हैं।

# बड़प्पन या ख़ासियत ?

श्री० किशोरलाल घ० मशरुवाला

मेरी राय में सारी दुनिया में दो ही तरह के बड़प्पन ( संस्कृतियाँ, cultures) हैं। एक को मैं मज़बूती का बड़प्पन ( भद्र संस्कृति ) और दूसरे को भलाई का बड़प्पन ( संत संस्कृति ) कहता हूं।

मज़बूती के बड़प्पन में पंडिताई, विज्ञान, अमल, अधिकार, बहादुरी, पराक्रम, महल-मकान, मान, अकराम, शान-शोभा आदि में विश्वास होता है। उसमें माननेवाला खुद को और अपने लोगों को दूसरों से ऊँचे, आगे बढ़े हुये, बलवान, सब पर अपनी धाक जमानेवाले देखना चाहता है। सब मनुष्यों की बराबरी-समानता नहीं मानता। ऊँच-नीच और बड़े छोटे का फ़र्क़ मनुष्यों में क़ुदरती समझता है।

भलाई के बड़प्पन में अच्छे गुणों पर, मानवता-इन्सानियत पर ज़ोर दिया जाता है। उसे ज्ञान में विश्वास है, पर कोरी पंडिताई में नहीं; और पंडिताई से भी ज़्यादा यक़ीन उसे ऊँचे चरित तथा भलाई में, और सबकी बराबरी के सिद्धान्त में है। वह सुखचमन और धन-माली में कुछ हद होना और भोगों में संयम रखना ज़रूरी समझता है। उसका झुकाव ऊँच-नीच भाव और दुनिया में दिखाई पड़नेवाली नाबराबरी को मिटाने की ओर होता है। उसे आडम्बर पसन्द नहीं आता।

बड़प्पन के ऐसे दो विचार शुरू से चले आये हैं। वे सारी दुनिया में हैं। वे एक दूसरे से बिलकुल अलग नहीं किये जा सकते। कभी कभी उनकी सीमाएं बांधना मुश्किल होता है। लेकिन इन दो से अलावा कोई तीसरा मानव बड़प्पन ( संस्कृति ) मुझे मालूम नहीं।

मैं जानता हूँ कि भारतीय ( पुराने हिंदुस्तान का बड़प्पन ), आर्य संस्कृति, यूरोप या पश्चिम का बड़प्पन, इसलामी बड़प्पन आदि तरह तरह के बड़प्पनों का आजकल नाम लिया जाता है और उस पर अभिमान किया जाता है। मेरे विचार में इन्हें बड़प्पन के बजाय ख़ासियतें ( सभ्यताएं, Civilzation) कहना ज़्यादा अच्छा होगा।

इन तरह तरह की ख़ासियतों में मैं कोई क़ायमी तत्त्व मालूम नहीं करता। देश, ज़माना, सिखाई पढ़ाई, आदत-मुहावरा वग़ैरा के कारण जगह जगह के लोगों के रहन-सहन, ख्याल-विचार, पसन्दगी-नापसन्दगी, आचार और स्वभाव वग़ैरा के फ़र्क़ हैं। देश, काल, तालीम वग़ैरा में फ़र्क़ हो जाने से ये ख़ासियतें बदल जाती हैं। कभी कभी ऐसी ख़ासियतें पैढ़ी दर पेढ़ी उतरती हुई मालूम होती हैं सही। लेकिन यह लम्बी मुद्दत तक एकसी हालत बनी रहने का नतीजा है। सच में ये ख़ासियतें खून वंशिक ( ख़ून के साथ उतरनेवाली ) नहीं हैं।

इन ख़ासियतों-या माने हुये बड़प्पन ( संस्कृति ) के आचार-बर्ताव, ख्याल-विचार, आदत-स्वभाव अच्छे, बुरे और अगुण ( न बुरे-न अच्छे ) तीनों तरह के होते हैं। इनका कट्टर अभिमान या आग्रह रखना मैं अच्छा नहीं समझता। मैं नहीं मानता कि ऐसी जुदी जुदी ख़ासियतें टिकी ही रहनी चाहिएँ। ऐसी हर बात की हमें बिलकुल तटस्थ रहकर जांच करनी चाहिए, और मनुष्य के हित इनके जिन भागों को फेंक देना ज़रूरी हो, उन्हें हिम्मत फेंक देना चाहिए। मैं ऐसी ज़रूरत मालूम नहीं करता किसी को दूसरों से अलग ढङ्ग से दिख पड़ना ज़रूरी है। एक प्रजा में जो कोई ख़ास बात ऐसी हो, जो सारी दुनि के फ़ायदे की कहे, उसे ही निभाने लायक समझनी चाहिए निराला दिखाना ही सिद्धान्त है। यह विचार ठीक नहीं

भलाई का बड़प्पन सारी दुनिया में एकसा है। भलाई के बड़प्पन में ही बहुत प्रकार के रूप-रंग और झलकें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# म० गांधी का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से स्तीफा

*[हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के मंत्री श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने राष्ट्र-भाषा के प्रश्न पर महात्मा गांधी और श्री पुरुषोत्तमदास टंडन के बीच हुए निम्न पत्र-व्यवहार को प्रकाशित कराया है। 'विश्ववाणी' के पाठकों के लिए हम उसे नीचे दे रहे हैं। —सम्पादक]*

महाबलेश्वर
२८-५-४५

भाई टंडन जी,

मेरे पास उर्दू खत आते हैं, हिन्दी आते हैं और गुजराती। सब पूछते हैं, मैं कैसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन में रह सकता हूं और हिन्दुस्तानी सभा में भी? वे कहते हैं, सम्मेलन की दृष्टि से हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा हो सकती है जिसमें नागरी लिपि ही को राष्ट्रीय स्थान दिया जाता है, जब मेरी दृष्टि में नागरी और उर्दू लिपि को स्थान दिया जाता है, और जो भाषा न फारसीमयी है न संस्कृतमयी है। जब मैं सम्मेलन की भाषा और नागरी लिपि को पूरा राष्ट्रीय स्थान नहीं देता हूँ तब मुझे सम्मेलन में से हट जाना चाहिए। ऐसी दलील मुझे योग्य लगती है। इस हालत में क्या सम्मेलन से हटना मेरा फ़र्ज़ नहीं होता है? ऐसा करने से लोगों को दुविधा न रहेगी और मुझे पता चलेगा कि मैं कहाँ हूं।

कृपया शीघ्र उत्तर दें। मौन के कारण मैंने ही लिखा है लेकिन मेरे अक्षर पढ़ने में सब को मुसीबत होती है इसलिए इसे लिखवाकर भेजता हूँ।

आप अच्छे होंगे।

आपका
मो० क० गान्धी

१०, क्रास्थवेट रोड, इलाहाबाद
८-६-४५

पूज्य बापू जी,

प्रणाम।

आपका २५ मई का पत्र मुझे मिला। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के कामों में कोई मौलिक विरोध मेरे विचार में नहीं है। आपको स्वयं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सदस्य रहते हुए लगभग २७ वर्ष हो गये। इस बीच आपने हिन्दी-प्रचार का काम राष्ट्रीयता की दृष्टि से किया वह सब काम ग़लत था, ऐसा तो आप नहीं मानते होंगे। राष्ट्रीय दृष्टि से हिन्दी का प्रचार वांछनीय है यह तो आपका सिद्धान्त है ही। आपके नये दृष्टिकोण के अनुसार उर्दू शिक्षण का भी प्रचार होना चाहिए। यह पहले काम से भिन्न एक नया काम है जिसका पिछले काम से कोई विरोध नहीं है।

सम्मेलन हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानता है। उर्दू को वह हिन्दी की एक शैली मानता है जो विशिष्ट जनों में प्रचलित है।

स्वयं वह हिन्दी की साधारण शैली का काम करता है, उर्दू शैली का नहीं। आप हिन्दी के साथ उर्दू को भी चलाते हैं। सम्मेलन उसका तनिक भी विरोध नहीं करता। किन्तु राष्ट्रीय कामों में अङ्गरेज़ी को हटाने में वह उसकी सहायता का स्वागत करता है। भेद केवल इतना है कि आप दोनों चलाना चाहते हैं। सम्मेलन आरम्भ से केवल हिन्दी चलाता आया है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सदस्यों को हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के सदस्य होने में रोक नहीं है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से निर्वाचित प्रतिनिधि हिन्दुस्तानी ऐकेडमी के सदस्य हैं और हिन्दुस्तानी ऐकेडमी हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियाँ और लिपियाँ चलाती है। इस दृष्टि से मेरा निवेदन है कि मुझे इस बात का कोई अवसर नहीं लगता कि आप सम्मेलन छोड़ें।

एक बात इस सम्बन्ध में और भी है। यदि आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अब तक सदस्य न होते तो सम्भवतः आपके लिए यह ठीक होता कि आप हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का काम करते हुए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में आने की आवश्यकता न देखते। परन्तु जब आप इतने समय से सम्मेलन में हैं तब उसका छोड़ना उसी दशा में उचित हो सकता है जब निश्चित रीति से उसका काम आप के नए काम के प्रतिकूल हो। यदि आपने अपने पहले काम को रखते हुए उसमें एक शाखा बढ़ायी है तो विरोध की कोई बात नहीं है।

मुझे जो बात उचित लगी ऊपर निवेदन किया। किन्तु यदि आप मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं और आपका आत्मा यही कहता है कि सम्मेलन से अलग हो जाऊँ तो आपके अलग होने की बात पर बहुत खेद होते हुए भी नतमस्तक हो आपके निर्णय को स्वीकार करूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हाल में हिन्दी और उर्दू के विषय में एक वक्तव्य मैंने दिया था, उसकी एक प्रतिलिपि सेवा में भेजता हूँ। निवेदन है कि इसे पढ़ लीजिएगा।

विनीत,
पुरुषोत्तमदास टंडन

पुनः—इस समय न केवल आप किन्तु हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के मन्त्री श्रीमन्नारायण जी तथा कई अन्य सदस्य सम्मेलन की राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के सदस्य हैं। एक स्पष्ट लाभ इससे यह है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के कामों में विरोध न हो सकेगा। कुछ मतभेद होते हुए भी साथ काम करना हमारे नियन्त्रण का अंश होना उचित है।

—पु० दा० टंडन

पंचगनी
१३-६-४५

भाई पुरुषोत्तमदास टंडन जी,

आप का पत्र कल मिला। आप जो लिखते हैं उसे मैं बराबर समझा हूं तो नतीजा यह होना चाहिए कि आप और सब हिन्दी प्रेमी मेरे नए दृष्टिकोण का स्वागत करें और मुझे मदद दें। ऐसा होता नहीं है। और गुजरात में लोगों के मन में दुविधा पैदा हो गयी है। और मुझसे पूछ रहे हैं कि क्या करना? मेरे ही भतीजे का लड़का और ऐसे दूसरे, हिन्दी का काम कर रहे हैं और हिन्दुस्तानी का भी। इससे मुसीबत पैदा होती है। पेरीन बहन को आप जानते हैं। वह दोनों काम करना चाहती हैं। लेकिन अब मौका आ गया है कि एक या दूसरे को छोड़ें। आप कहते हैं वह सही है तो ऐसा मौका आना ही नहीं चाहिए। मेरी दृष्टि से एक ही आदमी हिन्दुस्तानी प्रचार सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन का मन्त्री या प्रमुख बन सकता है। बहुत काम होने के कारण न हो सके तो वह दूसरी बात है। और यह मैं कहता हूं वही अर्थ आप के पत्र का है, और होना चाहिए। तब तो कोई मत भेद का कारण ही नहीं रहता और मुझको बड़ा आनन्द होगा। आप का जो वक्तव्य आपने भेजा है मैं पढ़ गया हूँ। मेरी दृष्टि से हिन्दुस्तानी प्रचार सभा बिलकुल आप ही का काम कर रही है, इसलिए वह आप के धन्यवाद की पात्र है। और कम से कम उसमें आप को सदस्य होना चाहिए। मैंने तो आप से विनय भी किया कि आप उसके सदस्य बनें लेकिन आपने इन्कार किया है, ऐसा कह कर कि जब तक डाक्टर अब्दुल हक न बनें, तब तक आप भी बाहर रहेंगे। अब मेरी दरख्वास्त यह है कि अगर मैं ठीक लिखता हूँ और हम दोनों एक ही विचार के हैं तो हि० सा० स० की ओर से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। अगर इसकी आवश्यकता नहीं है तो मेरा कुछ आग्रह नहीं है। कम से कम हम दोनों में तो इस बारे में मतभेद नहीं है इतना स्पष्ट होना चाहिए। हि० सा० स० में से निकलना मेरे लिए कोई मजाक की बात नहीं है। लेकिन जैसे मैं कांग्रेस में से निकला तो कांग्रेस की ज्यादा सेवा करने के लिए, उसी तरह अगर मैं सम्मेलन में से निकला तो भी सम्मेलन की अर्थात् हिन्दी की ज्यादा सेवा करने के लिए निकलूँगा।

जिसको आप मेरे नए विचार कहते हैं वे सचमुच तो नए नहीं हैं। लेकिन जब मैं सम्मेलन का प्रथम सभापति हुआ तब जो कहा था और दोबारा सभापति हुआ तब अधिक स्पष्ट किया, उसी विचार-प्रवाह का मैं अभी स्पष्ट रूप से अमल कर रहा हूँ ऐसे कहा जाय। आप का उत्तर आने पर मैं आखिर का निर्णय कर लूँगा।

आपका
मो० क० गांधी

१०, क्रास्थवेट रोड, इलाहाबाद
११-७-४५

पूज्य बापू जी, प्रणाम।

आपका पंचगनी से लिखा हुआ १३ जून का पत्र मिला था। उसके तुरन्त बाद ही राजनीतिक परिवर्तनों और आपके पंचगनी से हटने की बात सामने आयी। मेरे मन में यह आया था कि राजनीतिक कामों की भीड़ से थोड़ी सुविधा जब आपके पास देखूँ तब मैं लिखूं। आज ही सवेरे मेरे मन में आया कि इस समय आपको कुछ सुविधा होगी। उसके बाद श्री प्यारेलाल जी का ९ तारीख का पत्र आज ही मिला जिसमें उन्होंने सूचना दी है कि आप मेरे उत्तर की राह देख रहे हैं।

आपने अपने २८ मई के पत्र में मुझसे पूछा था कि—मैं कैसे हि० सा० स० में रह सकता हूं और हि० प्र० स० में भी? इस प्रश्न का उत्तर मैंने अपने ८ जून के पत्र में आपको दिया। मेरी बुद्धि में जो काम हि० सा० स० कर रहा है उससे आपके अगले काम का कोई विरोध नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होता। इस १३ जून के पत्र में आपने एक दूसरे विषय की चर्चा की है। आपने लिखा है कि 'आप और सब हिन्दी-प्रेमी मेरे नए दृष्टिकोण का स्वागत करें और मुझे मदद दें'। मैंने मौखिक रीति से आपको स्पष्ट करने का यत्न किया था, और जिस वक्तव्य की नक़ल मैंने आपको भेजी थी उसमें भी मैंने स्पष्ट किया है, कि मैं आप के इस विचार से कि प्रत्येक देशवासी हिन्दी और उर्दू दोनों सीखें सहमत नहीं हो पाता। मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं करती कि आपका यह नया कार्यक्रम व्यावहारिक है। मुझे तो दिखाई देता है कि बंगाली, गुजराती, मराठी, उड़िया आदि बोलने वाले इस कार्यक्रम को स्वीकार नहीं करेंगे।

हिन्दी और उर्दू का समन्वय हो इस सिद्धान्त में पूरी तरह में मैं आपके साथ हूं। किन्तु यह समन्वय, जैसा मैंने आपसे बम्बई में निवेदन किया था और जैसा मैंने वक्तव्य में भी लिखा है, तब ही संभव है जब हिन्दी और उर्दू के लेखक और उनकी संस्थायें इस प्रश्न में श्रद्धा दिखायें। मैंने इस प्रश्न को प्रयाग में प्रान्तीय हिं० सा० स० के सामने थोड़े दिन हुए रखा था। मेरे अनुरोध से वहाँ यह निश्चय हुआ है कि इस प्रकार के समन्वय का हिन्दी वाले स्वागत करेंगे। आवश्यकता इस बात की है कि उर्दू की भी संस्थाएँ इस समन्वय के सिद्धान्त को स्वीकार करें। उर्दू के लेखक न चाहें और आप और हम समन्वय कर दें यह असंभव है। इस काम के करने का क्रम यही हो सकता है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी विद्यापीठ, अंजुमन तरक़्क़ी-ए उर्दू, जामिया मिलिया तथा इस प्रकार की दो एक अन्य संस्थाओं के प्रतिनिधियों से निजी बातचीत की जाय और यदि उनके संचालकों का रुझान समन्वय की ओर हो तो उनके प्रतिनिधियों की एक बैठक की जाय और इस प्रश्न के पहलुओं पर विचार हो। भाषा और लिपि दोनों ही के समन्वय का प्रश्न है, क्योंकि अनुभव से दिखाई पड़ रहा है कि साधारण कामों में तो हम एक भाषा चलाकर दो लिपि में उसे लिख लें, किन्तु गहरे और साहित्यिक कामों में एक भाषा और दो लिपि का सिद्धान्त चलेगा नहीं। भाषा का स्थायी समन्वय तभी होगा जब हम देश के लिए एक साधारण लिपि का विकास कर सकें। काम बहुत बड़ा अवश्य है, किन्तु राष्ट्रीयता की दृष्टि से स्पष्ट ही बहुत महत्व का है।

मेरे सामने यह प्रश्न १९२१ से रहा है किन्तु यह देख कर कि उसके उठाने के लिए जो राजनीतिक वायुमंडल



होना चाहिए वह नहीं है, मैं उसमें नहीं पड़ा और केवल राष्ट्र भाषा के हिन्दी रूप की ओर मैंने ध्यान दिया—यह समझकर कि इसके द्वारा प्रान्तीय भाषाओं को हम एक राष्ट्रभाषा की ओर लगा सकेंगे। मैं स्वीकार करता हूँ कि पूर्ण काम तभी कहा जा सकता है कि जब हम उर्दू वालों को भी अपने साथ ले सकें। किन्तु उस काम को व्यावहारिक न देख कर देश की अन्य भाषा-भाषी बड़ी जनता को हिन्दी के पक्ष में करना एक बहुत बड़ा काम राष्ट्रीयता के उत्थान में कर लेना है। अस्तु, इसी दृष्टि से मैंने काम किया है। उर्दू के विरोध का तो मेरे सामने प्रश्न हो ही नहीं सकता। मैं तो उर्दू वालों को भी उसी भाषा की ओर खींचना चाहूँगा जिसे मैं राष्ट्रभाषा कहूँ। और उस खींचने की प्रतिक्रिया में स्वभावतः उर्दू वालों का मत एक कर, भाषा के स्वरूप परिवर्तन में भी बहुत दूर तक कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर जाने को तैयार हूँ। किन्तु जब तक वह काम नहीं होता तब तक इसी से संतोष करता हूं कि हिन्दी द्वारा राष्ट्र के बहुत बड़े अंशों में एकता स्थापित हो।

आपने जिस प्रकार से काम उठाया है वह ऊपर मेरे निवेदन किए हुए क्रम से बिलकुल अलग है। मैं उसका विरोध नहीं करता किन्तु उसे अपना काम नहीं बना सकता।

आपने गुजरात के लोगों के मन में दुविधा पैदा होने की बात लिखी है। यदि ऐसा है तो आप कृपया विचार करें कि इसका कारण क्या है। मुझे तो यह दिखायी देता है कि गुजरात के लोगों (तथा अन्य प्रान्तों के लोगों) के हृदयों में दोनों लिपियों के सीखने का सिद्धान्त घुस नहीं रहा है किन्तु आपका व्यक्तित्व इस प्रकार का है कि जब आप कोई बात कहते हैं तो स्वभावतः इच्छा होती है कि उसकी पूर्ति की जाय। मेरी भी तो ऐसी ही इच्छा होती है; किन्तु बुद्धि आप के बताए मार्ग का निरीक्षण करती है और उसे स्वीकार नहीं करती है।

आपने पेरीन बहन के बारे में लिखा है। यह सच है कि वह दोनों काम करना चाहती हैं। उसमें तो कोई बाधा नहीं है। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के कार्यकर्ताओं में विरोध न हो और वे एक दूसरे के कामों को उदारता से देखें—इसमें यह बात सहायक होगी कि हिं० प्र० सभा और रा० प्र० समिति का काम अलग-अलग संस्थाओं द्वारा हो, एक ही संस्था द्वारा न चले। एक के सदस्य दूसरे के सदस्य हों किन्तु एक ही पदाधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दोनों संस्थाओं के होने से व्यावहारिक कठिनाइयाँ और बुद्धि-भेद होगा। इसलिए पदाधिकारी अलग अलग हों। आपको याद दिलाता हूँ कि इस सिद्धान्त पर आपसे सन् ४२ में बातें हुई थीं। जब हिन्दुस्तानी प्रचार सभा बनने लगी उसी समय मैंने निवेदन किया था कि रा० प्र० समिति का मंत्री और हिं० प्र० सभा का मंत्री एक होना उचित नहीं। आपने इसे स्वीकार भी किया था। और जब आपने श्रीमन्नारायण जी के लिए हिं० प्र० सभा का मन्त्री बनना आवश्यक बताया तबही आपकी अनुमति से यह निश्चय हुआ था कि कोई दूसरा व्यक्ति रा० प्र० समिति के मंत्री पद के लिए भेजा जाय। और उसके कुछ दिन बाद आनन्द कौसल्यायन भेजे गए थे। यही सिद्धान्त पेरीन बहन के सम्बन्ध में लागू है। जिस प्रकार श्रीमन्नारायण जी हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के मन्त्री होते हुए रा० प्र० समिति के स्तम्भ रहे हैं, उसी प्रकार पेरीन बहन दोनों संस्थाओं में से एक की मंत्रिणी हों और दूसरे में भी खुल कर काम करें। इसमें तो कोई कठिनता की बात नहीं है। यही सिद्धान्त सब प्रान्तों के सम्बन्ध में लगेगा। संभवतः श्रीमन्नारायण जी उन सब स्थानों में जहाँ रा० प्र० समिति का काम हो रहा है, हिं० प्र० सभा की शाखायें खोलने का प्रयत्न करेंगे। उन्होंने रा० प्र० समिति के कुछ पदाधिकारियों से हिं० प्र० सभा का काम करने के लिए पत्र-व्यवहार भी किया है। आपस में विरोध न हो इसके लिए यह मार्ग उचित है कि दोनों संस्थाओं की शाखाएँ अलग-अलग हों। और उसके मुख्य पदाधिकारी अलग हों। साथ ही मेल और समझौता रखने के लिए दोनों की सदस्यता सब के लिए खुली रहे। यह तो मेरी बुद्धि में ऐसा क्रम है जिसका स्वागत होना चाहिए।

आपने मेरे वक्तव्य को पढ़ने की कृपा की और उससे आपने यह परिणाम निकाला कि हिं० प्र० सभा बिलकुल मेरा ही काम करेगी और मुझे उसका सदस्य होना चाहिए। आपने यह भी लिखा कि आपने मुझसे सदस्य होने के लिए कहा था किन्तु मैंने यह कह कर इन्कार किया कि जब तक अब्दुल हक़ साहब उसके सदस्य न बनेंगे मैं भी बाहर रहूँगा। यह सच है कि मैं हिं० प्र० सभा का सदस्य नहीं बना हूं। इस सम्बन्ध में सन् ४२ में काका कालेलकर जी ने मुझसे कहा था और हाल में डा० ताराचन्द ने। आपने बम्बई में पंचगनी जाने से पहले एक लिफाफ़े में दो पत्र मुझे भेजे थे। उनमें से एक में आपने इस विषय में लिखा था। किन्तु मुझे बिलकुल स्मरण नहीं है कि कभी आपने मौखिक रीति से मुझसे हिं० प्र० सभा के सदस्य बनने के लिये कहा हो और मैंने अब्दुल हक़ साहब का हवाला देकर इन्कार किया हो। मुझे लगता है कि आपने एक सुनी हुई बात को अपने सामने हुई बात में स्मृतिभ्रम परिणत कर दिया है। सन् ४२ में काका जी ने जब चर्चा की उस समय मैंने उनसे मौलवी अब्दुल हक़ तथा उर्दू वालों को लाने की बात अवश्य कही थी। तात्पर्य वही था जो आज भी है अर्थात् यह कि जब तक हिन्दी और उर्दू लेखक हिन्दी-उर्दू के समन्वय में शरीक नहीं होते तब तक यह यत्न सफल नहीं हो सकता। हिं० प्र० सभा यदि इस काम में कुछ भी सफलता प्राप्त करेगी तो वह अवश्य ही धन्यवाद की पात्री होगी। आज तो हिं० प्र० सभा में शामिल होने में मेरी कठिनता इसलिये बढ़ गयी है कि वह हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाने के अतिरिक्त हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियों और लिपियों को अलग अलग प्रत्येक देश-वासी को सिखाने की बात करती है।

यह तो मैंने आपके पत्र की बातों का उत्तर दिया। मेरा निवेदन है कि इन बातों से यह परिणाम नहीं निकलता कि आप अथवा हिं० प्र० सभा के अन्य सदस्य सम्मेलन से अलग हों। सम्मेलन हृदय से आप सभी को अपने साथ रखना चाहता है। आपके रहने से वह अपना गौरव समझता है। आप आज जो काम करना चाहते हैं वह सम्मेलन का अपना काम नहीं है। किन्तु सम्मेलन जितना काम करता है वह आपका काम है। आप उससे अलग जो काम करना चाहते हैं उसे सम्मेलन में रहते हुए भी स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकते हैं।

विनीत
पुरुषोत्तम दास टंडन

सेवाग्राम
२५-७-४५

भाई टंडन जी,

आपका ता० ११-७-४५ का पत्र मिला। मैंने दो बार पढ़ा। बाद में भाई किशोरलाल भाई को दिया। वे स्वयं विचारक हैं आप जानते होंगे। उन्होंने लिखा है वही भेजता हूँ। मैं तो इतना ही कहूंगा, जहाँ तक हो सका आपके प्रेम के अधीन रहा हूँ। अब समय आया है वही प्रेम मुझे आपसे वियोग करायेगा। मैं मेरी बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समझा सका हूं। यही पत्र और सम्मेलन की स्थायी समिति के पास रखें। मेरा ख्याल है कि सम्मेलन ने मेरी हिन्दी की व्याख्या अपनायी नहीं है। अब तो मेरे विचार इसी दिशा में आगे बढ़े हैं। राष्ट्रभाषा की मेरी व्याख्या में हिन्दी और उर्दू लिपि और दोनों शैली का ज्ञान आता है। ऐसा होने से ही दोनों का समन्वय होने का है तो हो जायगा। मुझे डर है कि मेरी यह बात सम्मेलन को चुभेगी। इसलिये मेरा स्तीफा कबूल किया जाय। हिन्दुस्तानी प्रचार का कठिन काम करते हुए मैं हिन्दी की सेवा करूँगा और उर्दू की भी।

आपका
मो० क० गांधी

१० कास्थवेट रोड, इलाहाबाद
२-८-४५

पूज्य बापू जी,

आपका २५ जुलाई का पत्र मिला। मैं आपकी आज्ञा के अनुसार खेद के साथ आपका पत्र स्थायी समिति के सामने रख दूँगा। मुझे तो जो निवेदन करना था अपने पिछले दो पत्रों में कर चुका।

आपके पत्र के साथ भाई किशोरलाल मशरूवाला जी का पत्र मिला है। उनको मैं अलग उत्तर लिख रहा हूं। वह इसके साथ है। कृपया उन्हें दे दीजियेगा।

—विनीत
पुरुषोत्तमदास टंडन

---

# स्वर्गीय बाबू श्यामसुन्दर दास जी

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय एम० ए०, डी० फिल्०

बाबू श्यामसुन्दर दास जी के स्वर्गवास से हिन्दी संसार को जो क्षति पहुंची है उसकी पूर्ति होना अत्यन्त कठिन है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में उनका महत्वपूर्ण स्थान था और आगे भी रहेगा। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बाद हिन्दी भाषा तथा साहित्य की उन्नति के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रयत्न हुए, किन्तु जितने अच्छे, सुव्यवस्थित और चिरस्मणीय ढङ्ग से प्रयत्न स्वर्गीय बाबू साहब की अध्यक्षता में हुये वह अन्यत्र दुर्लभ हैं। हमारे विचार से यह कहना अत्युक्तपूर्ण न होगा कि हिन्दी साहित्य का जो भवन आज हमारे सामने है वह बाबू श्यामसुन्दर दास जी द्वारा ही निर्मित हुआ था। वास्तव में उनको और आज के हिन्दी साहित्य को अलग नहीं किया जा सकता।

बाबू साहब का जन्म १४ जुलाई, सन् १८७५ ई० में बनारस में लाला देवी दास खन्ना ( खत्री ) के यहां हुआ था। उनके पूर्वज पंजाब प्रान्त के निवासी थे। पचास वर्ष की आयु भोग कर उनके पिता जी का स्वर्गवास सितम्बर, सन् १९०० में हुआ। बाबू साहब का बाल्यकाल आनन्द से बीता। १८९० ई० में उन्होंने मिडिल की परीक्षा पास की। बाबू गदाधर सिंह द्वारा संचालित आर्य-भाषा पुस्तकालय में बाबू साहब के हिन्दी प्रेम की नींव पड़ी। प्रारम्भ ही से उन्हें तुलसीकृत रामायण से प्रेम था। सन् १८९२ ई० में एंट्रेंस पास कर वे क्वींस कॉलेज में भर्ती हुए। यहीं से उनके जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष प्रारम्भ होता है। सन् १८९७ ई० में बी० ए० पास कर, १८ वर्ष की अवस्था में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की। नागरी प्रचारिणी सभा और उनका जीवन घुलमिल कर एक होगया था। उसकी उन्नति के लिए वे सदैव चिन्तित रहते। बी० ए० पास करने के बाद वे ट्रेनिङ्ग कॉलेज, लखनऊ में भर्ती हुए। १८९९ में सेंट्रल हिन्दू कॉलेज में सहायक शिक्षक की हैसियत से काम करने लगे। उन्नति करते करते वे कॉलेज में अंग्रेज़ी के जूनियर प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए। १९०१ ई० में वे इरिगेशन कमीशन में सम्मिलित होकर शिमला गए। किन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण वे फिर कालेज चले आए।

स्वर्गीय बाबू साहब बड़े भारी विद्यानुरागी थे। उन्हें सदैव इतिहास, पुरातत्व, भाषा, साहित्य, राजनीति, कला आदि से विशेष रुचि रही। हिन्दी साहित्य की वर्तमान प्रगति में 'सरस्वती' का विशेष हाथ रहा है। १९०१ ई० में वे इस पत्रिका के प्रधान सम्पादक थे। नागरी प्रचारिणी सभा ने भी अपनी एक पत्रिका निकाली थी। १८९३ ई० के बाद कई वर्षों तक वे इस पत्रिका के भी सम्पादक रहे। इस प्रकार हिन्दी साहित्य की सेवा करते करते उनका ध्यान प्राचीन साहित्य तथा उसके प्रमुख प्रमुख ग्रंथों तथा ग्रंथकारों की ओर आकृष्ट हुआ। उस समय तक हिन्दी साहित्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक ग्रंथ-रत्न अन्धकार में पड़े हुए थे। उन्हें प्रकाश में लाने का तथा साहित्य सम्बन्धी सामग्री का प्रामाणिक विवरण तैयार करने का अभी तक कोई प्रयास न हुआ था। बाबू साहब ने साहित्यिक ग्रंथों के खोज का कार्य भी शुरू किया। उनकी इसी खोज के फलस्वरूप 'विनोद' तथा शुक्ल जी कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ये दो ग्रन्थ हमारे सामने आए। बाबू साहब के निरीक्षण में और सरकारी आर्थिक सहायता से यह कार्य अनेक वर्षों तक चला और अब भी चल रहा है। इसीसे हिन्दी साहित्य को कितना लाभ हुआ है, इस सम्बन्ध में भी कहने की आवश्यकता नहीं। लगभग इसी समय उन्होंने 'मनोरंजन पुस्तक माला', 'हिन्दी वैज्ञानिक कोष', 'हिन्दी शब्द सागर' आदि का सम्पादन भी किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर भी उन्होंने अपना ध्यान दिया। १९१३ ई० में वे कालीचरण हाई स्कूल, लखनऊ के हेडमास्टर नियुक्त हुए। १९१४ ई० में वे गुरुकुल काँगड़ी की अध्यक्षता में होनेवाले आर्यभाषा सम्मेलन और १९१५ ई० में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति हुए। इन सब कार्यों के साथ साथ उन्होंने अदालतों तथा सरकारी दफ़्तरों में हिन्दी प्रवेश के सम्बन्ध में आन्दोलन जारी किया। इसमें वे बहुत कुछ सफल भी हुए। इतना ही नहीं, विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी अध्ययन की नींव एक प्रकार से उन्होंने ही डाली। काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष भी वे कई वर्ष रहे। अध्यक्ष की हैसियत से आलोचना तथा भाषा-सम्बन्धी उत्कृष्ट कोटि के ग्रंथों का उन्होंने निर्माण किया। ये ग्रन्थ विश्वविद्यालयों में हिन्दी अध्ययन की दृष्टि से विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुए। उनकी हिन्दी सेवाओं पर विचार करते हुए सरकार ने उन्हें पहले 'राय-साहब' और फिर 'राय बहादुर' की उपाधि से भी विभूषित किया। हिन्दी-विभाग से अवकाश ग्रहण करने पर विश्वविद्यालय ने भी उन्हें डी० लिट्० की उपाधि प्रदान कर उनका तथा हिन्दी जगत् का अभिनन्दन किया था। अंतिम समय में बाबू साहब का गार्हस्थ्य जीवन सुखपूर्ण नहीं था।

बाबू साहब स्वभाव से बड़े ही मिलनसार और शील-संपन्न थे। अपने विद्यार्थियों के प्रति उन्हें विशेष अनुराग रहता था। नवयुवकों को हिन्दी साहित्यिक काम में कार्य करते देख उन्हें हार्दिक प्रसन्नता होती थी। साहित्य-सेवा के लिए वे दूसरों को सदैव प्रोत्साहन देते रहते थे। संगठन और वक्तृत्व शक्ति उनमें अद्भुत थी। जीवन में लाख विपत्तियां आने पर भी उन्होंने साहित्य-सेवा से मुख न मोड़ा। उनके जीवन का लक्ष्य भी था—मातृभूमि और मातृभाषा की सेवा।

उनके इस संक्षिप्त विवरण से पाठकों को यह ज्ञात हो गया होगा कि उनका कार्य-क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था। किन्तु इतने पर भी उन्होंने अनेक ग्रंथों का सम्पादन तथा निर्माण किया। इससे उनकी साहित्य-सेवा का अच्छा परिचय मिल जाता है। उनकी लिखी तथा सम्पादित पुस्तकें वैसे तो बहुत हैं किन्तु उनमें से प्रमुख ये हैं:—

'नागरी कैरेक्टर', 'खोज रिपोर्ट' (१९००-१९०८), 'हिन्दी कोविदरत्न माला' २ भाग, 'साहित्या-लोचन', 'भाषा विज्ञान', 'हिन्दी भाषा का विकास', हिन्दी भाषा और साहित्य', 'भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र', 'गोस्वामी तुलसीदास', 'रूपक-रहस्य', 'शब्द-सागर', 'हिन्दी वैज्ञानिक कोष', 'पृथ्वीराज रासो', 'छत्र प्रकाश', 'इन्द्रावती', 'चन्द्रावली', 'हम्मीर रासो', 'परमाल रासो', 'रानी केतकी की कहानी', 'दीनदयाल गिरि ग्रंथावली', 'कबीर-ग्रंथावली', 'घनिता-विनोद', 'अशोक की धर्म लिपियाँ', 'भारतेन्दु नाटकवली', 'तुलसी-सतसई', लक्ष्मणसिंह कृत 'मेघदूत' और 'शकुंतला', 'रामचरितमानस सटीक', 'हमारे साहित्य-निर्माता', 'मेरी आत्मकहानी', 'मनोरंजन पुस्तकमाला', 'रत्नाकर' 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ' आदि।

बाबू साहब के जीवन में ही उनकी कीर्ति कौमुदी हिन्दी प्रदेश के तथा देश के छोर तक फैल चुकी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य-सेवी सहयोगियों में से संभवतः वे अन्तिम ख्यातनामा साहित्यिक थे जिन्हें काल के कराल हाथों ने हमारे बीच से उठा लिया। नई-नई साहित्यिक धाराओं के चलने पर भी कोई ऐसा साहित्यिक व्यक्ति नहीं रहा जो उनकी धाक न मानता हो। आगे आनेवाले युग में उनके कार्य तथा रचनाओं को शीर्ष स्थान मिलेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। हिन्दी साहित्य के लिए उनका जीवन अक्षय निधि है। उनके महान् व्यक्तित्व के सम्बन्ध जो कुछ कहा जाय वही थोड़ा है।

हम स्वर्गीय आत्मा को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# ९ अगस्त सन् १९४२ का दिन

## राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

[ अहमदनगर के क़िले से लिखा हुआ राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद का एक पत्र ]

बिरादरे मुकर्रम,

कल सुबह तक बसअत-आबाद बम्बई में मुझे इतनी भी फ़ुरसत न थी कि सफ़र में लिखा हुआ ३ अगस्त का ख़त मैं अजमल ख़ाँ को दे दूं ताकि वे उसे तुम्हारे नाम रवाना कर सकें। लेकिन आज क़िला अहमदनगर के तङ्ग दायरे में मुझे इतना वक़्त है कि जी चाहता है कि दफ़्तर के दफ़्तर सियाह कर दूं।

नौ महीने हुये जब ४ दिसम्बर १९४१ को नैनी सेंट्रल जेल का दरवाज़ा मेरे लिये खोला गया था। कल ९ अगस्त १९४२ को सवा दो बजे अहमदनगर क़िले का पुराना फाटक मेरे पीछे बन्द कर दिया गया। दुनिया के इस हज़ारों रङ्ग के कारखाने में भी कितने ही दरवाज़े खोले जाते हैं ताकि बन्द हों और कितने ही बन्द किये जाते हैं ताकि खुलें। ९ महीने की मुद्दत ज़ाहिरा कोई बड़ी मुद्दत नहीं मालूम हुई–

दो करवटें हैं आलमे गफ़लत में ख़्वाब की !

लेकिन सोचता हूं तो मालूम होता है जैसे तारीख़ की एक पूरी दास्तान गुज़र चुकी। नई दास्तान जो शुरू हो रही है पता नहीं भविष्य उसे कब और किस तरह ख़त्म करेगा। ४ अगस्त को बम्बई पहुंचा तो इन्फ़्लुएंज़ा की हरारत और सर का दर्द भी मेरे साथ था। ताहम पहुंचते ही काम में मशगूल हो जाना पड़ा। तबीयत कितनी ही ख़राब हो लेकिन गवारा नहीं करती कि मुक़र्रर प्रोग्राम के इन्तज़ाम में ख़लल पड़े। ४ अगस्त से ७ अगस्त तक वर्किंग कमेटी के इजलास होते रहे। ७ अगस्त को दोपहर से आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी शुरू हुई। मामलात की नज़ाकत ऐसी थी कि कार्रवाई तीन दिन तक फैल सकती थी और मुक़ामी कमेटी ने तीन दिन का इन्तज़ाम भी किया था। लेकिन मैंने कोशिश की कि दो दिन से ज़्यादा बढ़ने न पाये। ८ अगस्त को दो बजे से रात के ११ बजे तक बैठना पड़ा लेकिन कार्रवाई ख़त्म करके उठा––

काम थे इश्क़ में बहुत, पर मीर
हम ही फ़ारिग़ हुये सितावी सहर



थका मांदा क़यामगाह पर पहुँचा तो साहिबे मकान को मुन्तज़िर और किसी क़दर मुतफ़िक्र पाया। ये साहब कुछ अरसे से बीमार हैं और एक तरह की दिमाग़ी परेशानी में मुब्तिला रहते हैं। मैं उनसे वक़्त के मामलात का ज़िक्र बचा जाना चाहता था ताकि उनकी दिमाग़ी उलझन और ज़्यादह न बढ़ जाये। वे वर्किंग कमेटी की मेम्बरी से भी स्तीफ़ा दे चुके हैं और अगरचे मैंने उनका अभी तक स्तीफ़ा मंज़ूर नहीं किया है लेकिन उन्हें कमेटी के जलसों में शिरकत के लिये कहा भी नहीं। वह कहने लगे––"फलाँ शख़्श शाम को आया था। कई घण्टे इन्तज़ार करके अभी अभी गया है और यह पयाम दे गया है कि गिरफ़्तारी की अफ़वाहें ग़लत न थीं। इसके लिये तमाम इन्तज़ामात कर लिये गये हैं। आज रात किसी वक़्त पर मामला ज़रूर पेश आयेगा।" दो हफ़्ते से गिरफ़्तारी की अफ़वाहें देहली से कलकत्ते तक हर शख़्श की ज़बान पर थीं। मैं सुनते सुनते थक गया था। फिर यह भी ख़याल था कि इस तरह की ख़बरों से उनकी बीमार तबियत को और ज़्यादा परेशान न होने दूं। मैंने झुँझलाकर कहा कि जिस तरह के हालात दरपेश हैं उनमें इस तरह की अफ़वाहें हमेशा उड़ती ही रहती हैं। ऐसी ख़बरों का एतबार क्या ? और फिर अगर वाक़ई ऐसा ही होने वाला है तो इन बातों में वक़्त ख़राब क्यों करें ? मुझे जल्द कुछ खाकर सो जाने दीजिये कि आधी रात जो अब बाक़ी रह गई है हाथ से न जाये और चन्द घण्टे आराम कर लूँ।

हस्ब मामूल चार बजे सुबह उठा लेकिन तबीयत थकी हुई और सर में सख़्त दर्द था। मैंने जेनएस्परीन की दो गोलियां मुँह में डालकर चाय पी और क़लम उठाया कि कुछ ज़रूरी ख़तों का मस्विदा लिख लूँ जो रात की तजवीज़ के साथ प्रेज़ीडेण्ट रूज़वेल्ट वग़ैरह को भेजना तै पाया था। सामने समुन्दर में भाटा ख़त्म हो चुका था। इसके ख़त्म होते ही रात भर की उमस भी ख़त्म हो गई थी। अब ज्वार की लहरें साहिल से टकरा रही थीं और हवा के ठण्ढे और नमआलूदा झोंके भेजने लगी थीं। कुछ तो जेनएस्परीन ने काम किया होगा और कुछ नसीम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सुबहगाही ( प्रातः पवन ) की इस सफ़ाबख़्श ( स्वास्थ्य प्रद ) चारा सरमाई ने। ऐसा महसूस होने लगा जैसे सर का दर्द कम हो रहा है और इस अचानक राहत ने फिर ग़नूदगी सी तारी कर दी—

नसी-म-ए सुबह तेरी मेहरबानी !

बेअख़्तियार होकर क़लम रख दिया और बिस्तर पर लेट गया। लेटते ही आंख लग गई। फिर अचानक ऐसा महसूस हुआ जैसे सड़क पर से मोटर कारें गुज़र रही हों। फिर क्या देखता हूँ कि जैसे कई कारें मकान के अहाते में दाख़िल हो गई हों और इस बंगले की तरफ़ जा रही हैं जो मकान के पिछवाड़े में वाक़े है और जिसमें साहब मकान का लड़का धीरू रहता है। फिर ख़याल हुआ कि मैं ख़्वाब देख रहा हूँ और इसके बाद गहरी नींद में डूब गया। शायद इस हालत में दस बारह मिनट सिर्फ़ गुज़रे होंगे कि किसी ने मेरा पैर दबाया। आँख खुली तो क्या देखता हूं कि धीरू एक काग़ज़ हाथ में लिये खड़ा है और कह रहा है—"दो फ़ौज़ी अफ़सर डिप्टी कमिश्नर पुलिस के साथ आये हैं और यह काग़ज़ लाये हैं—" गो इतनी ही ख़बर मेरे लिये काफ़ी थी। मगर मैंने काग़ज़ ले लिया कि देखूँ—

किस किस की मेहर है सरे महफिर लगी हुई ?

मैंने धीरू से कहा मुझे डेढ़ घण्टा तय्यारी में लगेगा, उनसे कह दो कि इन्तज़ार करें। फिर गुसल किया, कपड़े पहने चन्द-ज़रूरी ख़त लिखे और बाहर निकला तो पांच बजकर पैंतालीस मिनट हुये थे।

कार बाहर निकली तो सुबह मुसकरा रही थी। सामने देखा तो समुन्दर उछल उछलकर नाच रहा था। नसीम सुबह के झोंके अहाते के अन्दर फिरते हुये मिले। ये फूलों की ख़ुशबू चुन चुनकर जमा कर रहे थे और समुन्दर को भेज रहे थे कि वह अपनी ठोंकरों से फ़िज़ा ( वातावरण ) में फैलाता रहे। एक झोंका कार में से होकर गुज़रा तो बेअख़्तियार हाफ़िज़ की एक ग़ज़ल याद आ गई।

कार जब विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर पहुंची तो उसके पिछले हिस्से में फ़ौजियों का ज़बर्दस्त पहरा था और अगरचे लोकल ट्रेनों की रवानगी का वक़्त गुज़र रहा था लेकिन मुसाफ़िरों का रास्ता रोक दिया गया था। सिर्फ़ एक प्लेटफ़ार्म पर कुछ हलचल दिखाई देती थी क्योंकि एंजिन रेस्तरां कार को धकेल धकेलकर एक ट्रेन से जोड़ रहा था। मालूम हुआ यही कारावां ख़ास है जो मेहमानों के लिये तय्यार किया गया है। गाड़ियां कारीडोर क़िस्म की लगाई गई थीं जो आपस में जुड़ जाती हैं और आदमी एक सिरे से दूसरे सिरे तक अन्दर ही अन्दर चला जा सकता है। ट्रेन के अन्दर गया तो मालूम हुआ कि गिरफ़्तारियों का मामला पूरी वसअत ( विस्तार ) के साथ अमल में लाया गया है। बहुत से आ चुके हैं, जो नहीं आये वह आये जाते हैं—

बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तय्यार बैठे हैं !

बाज़ अहबाब जो मुझसे पहले पहुँचाये जा चुके थे उनके चेहरों पर बेख़्वाबी और नावक़्त की बेदारी बोल रही थी। कोई कहता था रात दो बजे सोया और चार बजे उठा दिया गया। कोई कहता था बमुशकिल एक घण्टा नींद का मिला होगा। मैंने कहा मालूम नहीं सोई क़िस्मत का क्या हाल है ? उसे भी कोई जगाने के लिये पहुँचा या नहीं ?

बहरहाल वक़्त की गरम जोशियों में ये शिकायतें नहीं हो सकती थीं चूँकि रेस्तरां कार लग चुकी थी और चाय के लिये पूछा गया था। गोकि चाय पी चुका था लेकिन फिर मंगवाई और इन नींद के मतवालों को दावत दी कि इस जामसब्ज़गाही से बादादोशीना का ख़ुमार मिटायें।

सिर्फ़ एक शाम और सुबह के अन्दर सूरत कितनी बदल गई ? कल शाम को जो बज़्मे कैफ़ सुरूर बे आरस्ता हुई थी उसकी बादा गुसारियां और सीनामस्तियों ने दोपहर रात तक तूल खींचा था—लेकिन अब सुबह के वक़्त देखिये तो !

नै वह सुरूरो सोज़ न जोशो ख़रोश है !

रात की तर दिमाग़ियों की जगह सुबह की सरगरानियों ने ली। और मजलिस दोशों की दस्त अफ़तानियों के बाद जब आंख खुली तो अब सुबह ख़ुमार की अफ़सुर्दा जम्हाइयों के सिवा कुछ बाक़ी नहीं रहा था।

रात की कैफ़ियतें जितनी तुन्दोतेज़ होती हैं सुबह का ख़ुमार भी उतना ही सख़्त होता है। रात की मस्तियों के बाद अब सुबह ख़ुमार की तलख कामियों से साबक़ा पड़ा था इसके लिये हमें शिकवा करने की ज़रूरत न थी। हाँ अलबत्ता हसरत इसकी रह गई कि जब होना यही था तो काश जी की हविस तो पूरी निकाल ली होती और नपे तुले पैमानों की जगह शीशों के शीशे लुँढा रहे होते। ख़्वाजा मीरदर्द क्या ख़ूब कह गये हैं—

कभी ख़ुश भी किया है जी किसी रिन्दे शराबी का
भिड़ा दे मुँह से मुँह साक़ी हमारा औ गुलाबी का

साढ़े सात बज चुके थे कि ट्रेन ने कूच की सीटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बताई। बम्बई में जो अफ़वाहें गिरफ़्तारी से पहले फैली हुई थीं उनमें अहमदनगर के क़िले और पूना के आगाख़ाँ पैलेस का नाम यक़ीन के साथ लिया जा रहा था। जब कल्याण स्टेशन से ट्रेन आगे बढ़ी और पूना की राह अख़्तियार की तो सबको ख़याल हुआ कि ग़ालिबन मंज़िले मक़सूद पूना ही है। लेकिन जब पूना क़रीब आया तो एक ग़ैर आबाद स्टेशन पर बाज़ लोग उतार लिये गये और बम्बई के मुक़ामी क़ाफ़िले को भी उतरने के लिये कहा गया मगर हमसे कुछ नहीं कहा गया और सदाये जर्स ने फिर कूच का ऐलान कर दिया।

अब अहमदनगर हर शख़्श की ज़बान पर था, क्योंकि अगर पूना में हम नहीं उतारे गये तो फिर उस रुख़ पर अहमदनगर के सिवा और कोई जगह नहीं हो सकती। एक साहब ने जो इसी तरफ़ के रहनेवाले हैं बताया कि पूना और अहमदनगर का फ़ासला ७०-८० मील से ज़्यादा नहीं; इसलिये ज़्यादा से ज़्यादा दो ढाई घन्टे का सफ़र और समझना चाहिये, मगर मेरा ख़याल दूसरी ही तरफ़ जा रहा था। अहमदनगर यक़ीनन् दूर नहीं है बहुत जल्द आ जायेगा। मगर अहमदनगर पर सफ़र ख़त्म कब होता है? अहमदनगर से तो सफ़र शुरू होगा।

यह अजीब इत्तफ़ाक़ है कि मुल्क के तमाम तारीख़ी मुक़ामात मैंने देखे हैं मगर क़िला अहमद नगर देखने का कभी इत्तफ़ाक़ नहीं हुआ। एक मर्तबा जब बम्बई में था तो क़स्द भी किया था मगर फिर हालात ने मोहलत न दी। यह शहर भी हिन्दुस्तान के उन ख़ास मुक़ामात में से है जिनके नामों के साथ सदियों के इनक़लाब की दास्तानें जुड़ी हुई हैं। पहले यहाँ भेङ्गर नामी नदी के किनारे एक इसी नाम का गाँव आबाद था। पन्द्रहवीं सदी के अख़ीर में जब दखन में बहमनी हुकूमत कमज़ोर पड़ गई तो मलिक अहमद निज़ामुल मुल्क भेरी ने अज़्म इस्तक़लाल बुलन्द किया और भेङ्गर के क़रीब अहमदनगर की बुनियाद डाली। फ़रिश्ता, जिसका ख़ानदान यहाँ आकर आबाद हो गया था, लिखता है कि चन्द बरसों के अन्दर इस शहर ने वह रौनक़ और वसअत पैदा कर ली थी कि बग़दाद और क़ाहिरा से होड़ करने लगा था।

मलिक अहमद ने जो क़िला तामीर किया था उसकी चहारदीवारी मिट्टी की थी। उसके लड़के बुरहान निज़ाम शाह अव्वल ने उसे पत्थर का बनवाया और नये सिरे से इस दरजे मज़बूत किया कि ईरान और मिस्र तक उसकी चर्चा पहुंची। तमाम दकन के क़िलों में सिर्फ़ देवगढ़ का क़िला ऐसा था जिसे मज़बूती के लिहाज़ से इस क़िले पर तरजीह दी जा सकती थी।

यही अहमदनगर का क़िला है जिसकी संगी दीवारों पर बुरहान निज़ाम शाह की बहन चाँद बीबी ने अपनी बहादुरी और शान की यादगारें ज़माना दास्तानें कुन्दा (अंकित) की थीं। और जिन्हें तारीख़ (इतिहास) ने पत्थर की सिलों से उतारकर अपने वर्क़ों पर लिख लिया है।

अहमदनगर के नाम ने याददाश्त के कितने ही भूले हुये नक़्शों को यकायक ताज़ा कर दिया। रेल तेज़ी के साथ दौड़ी जा रही थी। मैदान के बाद मैदान गुज़रते जाते थे। एक मञ्ज़र (दृश्य) पर नज़र जमने नहीं पाती थी कि दूसरा मञ्ज़र सामने आ जाता था और ऐसा ही मञ्जरा मेरे दिमाग़ के अन्दर भी गुज़र रहा था। अहमद नगर अपनी छै सौ बरस की दास्तानें कुहन लिये वर्क़ पर वर्क़ उलटता जाता—एक सफ़े पर अभी नज़र जमने न पाती कि दूसरा सामने आ जाता। मुझे ख़याल हुआ कि अगर हमारे क़ैदोबन्द के लिये यही जगह चुनी गई है तो इन्तख़ाब (चुनाव) के मौजूँ होने में कोई कलाम नहीं। हम ख़ुराफ़ातियों के लिये कोई ऐसी ही जगह होनी थी।

दो बजनेवाले थे कि ट्रेन अहमद नगर पहुँची। स्टेशन में सन्नाटा था—सिर्फ़ चन्द फ़ौजी अफ़सर टहल रहे थे। इन्हीं में मुक़ामी छावनी का कमाण्डिंग अफ़सर भी था जिससे हमें मिलाया गया। हम उतरे और फ़ौरन स्टेशन से रवाना हो गये। स्टेशन से क़िले तक सीधी सड़क चली गई है। राह में कोई मोड़ नहीं मिला। मैं सोचने लगा हमारे मक़सद के सफ़र का भी ऐसा ही हाल है। जब क़दम उठा दिया गया तो फिर कोई मोड़ मिलता नहीं। अगर मुड़ना चाहें तो सिर्फ़ पीछे ही की तरफ़ मुड़ सकते हैं। लेकिन पीछे मुड़ने की राह यहाँ पहले से बन्द हो जाती है।

स्टेशन से क़िले तक की मुसाफ़िरत मुश्किल से दस बारह मिनट की होगी। क़िले की चोटी पहले दूर फ़ासले पर दिखाई दी। फिर यह फ़ासला चन्द लम्हों में तै हो गया। अब इस दुनिया में जो क़िले से बाहर हैं और उसमें जो क़िले के अन्दर हैं सिर्फ़ एक क़दम का फ़ासला रह गया था। यह फ़ासला भी तै हो गया और हम क़िले की दुनिया में दाख़िल हो गये। ग़ौर कीजिये तो ज़िन्दगी की तमाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मुसाफ़िरत का यही हाल है। ज़िन्दगी और मौत का बाहमी फ़ासला भी एक क़दम से ज़्यादह नहीं है।

मस्ती से अदम तक नक़्शे चन्द की है राह
दुनिया से गुज़रना सफ़र ऐसा ही कहाँ का ?

क़िले की ख़न्दक़ जिसकी निस्बत अबुल फ़ज़्ल ने लिखा है कि चालीस गज़ चौड़ी और चौदह गज़ गहरी थी और जिसे सन् १८०३ में जनरल वेल्सली ने १०८ फ़ुट तक चौड़ा पाया था—मुझे दिखाई नहीं दी। ग़ालिबन् जिस रुख़ से हम दाख़िल हुए उधर पाट दी गई है। इसका किनारा जो खुदाई की मिट्टी से इस क़दर ऊंचा कर दिया गया था कि क़िले की दीवार छुप गई थी—वह भी इस रुख़ दिखाई न दिया। मुमकिन है वह सूरत अब बाक़ी न रही हो। क़िले के अन्दर पहले मोटर लारियों की क़तार मिली, फिर टैंकों की। इसके बाद एक अहाते के सामने—जो क़िले की आम सतह से चौदह-पन्द्रह फ़ुट बुलन्द होगा और इस लिये चढ़ाई पर वाक़े है—कारें रुक गईं और हमें उतरने के लिये कहा गया। वहाँ इन्सपेक्टर जनरल पुलिस बम्बई ने जो हमारे साथ आया था हमारे नामों की फेहरिस्त कमाण्डिङ्ग अफ़सर के हवाले कर दी। वह फेहरिस्त लेकर दरवाज़े के पास खड़ा हो गया। यह गोया हमारी सुपुर्दगी की बाज़ाब्ता रसम थी। अब हमारी हिफ़ाज़त की ज़िम्मेवारी हुकूमत बम्बई के हाथ से निकलकर फ़ौजी हुकूमत के हाथ आ गयी है और हम एक दुनिया से निकलकर दूसरी दुनिया में दाखिल हो गए। दरवाज़े के अन्दर दाखिल हुये तो एक समकोण अहाता सामने था—ग़ालिबन २०० फ़ुट लम्बा और १५० चौड़ा होगा। इसके तीनों तरफ़ बारक की तरह कमरों का सिलसिला चला गया है। कमरों के सामने बराम्दा है। और बीच में खुली जगह है। यह अगरचे इतनी वसीह नहीं कि इसे मैदान कहा जा सके ताहम अहाते के ज़िन्दानियों के लिये मैदान का काम ज़रूर दे सकती है। आदमी कमरे से बाहर निकलेगा तो महसूस करेगा कि खुली जगह में आ गया। कम-अज़-कम इतनी जगह ज़रूर है कि जी भर के ख़ाक उड़ाई जा सकती है।

सर पर हजूम दर्दे ग़रीबी का डालिये
वह एक मुश्ते ख़ाक कि सेहरा कहें जिसे !

सहन के बीचों बीच एक पुख़्ता चबूतरा है जिस पर झंडे का मस्तूल गड़ा था मगर झंडा उतार लिया गया है। मैंने मस्तूल की बुलन्दी देखने के लिये सर उठाया तो वह इशारा कर रहा था—

यहीं मिलेंगे तुझे नालए बुलन्द तेरे !

अहाते के उत्तरी कोने में एक पुरानी टूटी हुई क़ब्र है। नीम के दरख़्त की शाखें इस पर साया करने की नाकामयाब कोशिश कर रही हैं। क़ब्र के सिरहाने एक छोटा सा ताक़ है। ताक़ अब चिराग़ से खाली है मगर मेहराब की रङ्गत बोल रही है कि यहाँ कभी एक दिया जला करता था—

इसी घर में जलाया है चिराग़े आरज़ू बरसों !

मालूम नहीं यह किसकी क़ब्र है। चाँद बीबी की हो नहीं सकती क्योंकि इसका मक़बरा क़िले से बाहर एक पहाड़ी पर बाक़े है। बहरहाल किसी मामूली शख़्स की हो नहीं सकती वरना क़िले की और इमारतों के साथ इसे भी गिरा दिया गया होता। सुभान अल्लाह ! इस रोज़गार ख़राब की वीरानियाँ भी अपनी आबादियों के करिश्मे रखती हैं ! इस पुरानी क़ब्र को वीरान भी होना था तो इसलिये कि हम ज़िन्दानियाँ ख़ुराफ़ातियों के शोरो हङ्गामे से आबाद हो !

मग़रबी रुख़ के तमाम कमरे खुले। क़तार का पहला कमरा मेरे हिस्से में आया। मैंने अन्दर क़दम रखते ही पहला काम यह किया कि चारपाई पर लेट गया और मेरे साथ नौ महीने की नींद भी बिस्तर पर जा गिरी।

क़रीबन तीन बजे से छै बजे तक सोता रहा। फिर रात को नौ बजे तकिये पर सर रखा तो तीन बजे सुबह आँख खुली—

न तीर कमान में है न सय्याद कहीं है,
गोशे में क़फ़स के मुझे आराम बहुत है !

सुबह तीन बजे उठा तो ताज़ादम और चुस्तो चाक था, न सर में दर्द था न इन्फ्लूएंज़ा का नामोनिशान। फौरन बिजली के चूल्हे पर चाय गर्म की। अब जामे सुराही सामने धरे बैठा हूँ। आपको मुख़ातिब तस्वीर करता हूँ और यह दास्तान सुना रहा हूँ।

महीनों से ऐसी गहरी और आसूदा नींद नसीब नहीं हुई थी। ऐसा मालूम होता है कि कल सुबह बम्बई से चलते हुये जो दामन झाड़ना पड़ा था तो गर्द के साथ महीनों की थकान भी झड़ गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# एटम बाम्ब

डाक्टर के० एस० कृष्णन् एफ० आर० एस०

विज्ञान उतना ही पुराना है जितना कि मनुष्य। दुनिया का सबसे पहला वैज्ञानिक प्रयोग वह था जब आदम ने निषिद्ध फल चखा था। असल में उस पहले प्रयोग के अन्दर ही वह दुष्ट भावना थी जिसकी झांकी हमें बाद के वैज्ञानिक उपयोगों या दुरुपयोगों में मिलती है। विज्ञान का सबसे ताज़ा दुरुपयोग एटामिक बाम्ब है। किसी को उससे ख़ुशी नहीं है कम से कम वैज्ञानिक को तो नहीं है।

मौजूदा सदी के शुरू में भौतिक-तत्ववेत्ताओं के सामने जो प्रमुख समस्यायें थीं उनमें एक यह भी थी कि शून्याकाश में सूर्य और तारे जो शक्ति निरन्तर फेंकते रहते हैं या ग्रहों के अंश टूटकर निकटाकाश में एक दरजे तक जो रेडियो शक्ति पैदा करते हैं उसका क्या उपयोग होना चाहिये। सूर्य से कितनी अपार शक्ति निकलती है इसके लिये मैं कुछ आंकड़े देना चाहूँगा। जब आकाश निर्मल हो और सूर्य मध्याह्न के निकट हो तो सूर्य की किरणें जो शक्ति पृथ्वी के धरातल पर फेंकती हैं वह प्रति एकड़ ५,००० हार्स पावर की होती है। सूर्य की जो किरणें मोटरकार के हुड या छत पर गिरती हैं अगर उनका पूरा पूरा इस्तेमाल कर लिया जाय तो उसी शक्ति से मोटर चल सकती है, फिर मोटर चलाने के लिये पेट्रोल आदि की ज़रूर न रह जाय। धरती पर सूर्य की किरणें एक वर्ष में जितनी शक्ति पैदा करती हैं वह उस शक्ति से एक लाख गुना ज़्यादा है जो किसी साधारण वर्ष में हम कोयला, पेट्रोल, गैस, बिजली आदि से बनाते हैं और सूर्य की यह शक्ति जो हमारी पृथ्वी के हिस्से में पड़ती है सूर्य की उस सम्पूर्ण शक्ति का जो वह दिक् मण्डल में फेंकता है केवल दो सौ करोड़वां भाग है।

और यह शक्ति कैसे पैदा होती है? यदि सूर्य के अन्दर किसी प्रकार के घर्षण से यह शक्ति पैदा होती तो सूर्य की यह उत्पादक-शक्ति केवल कुछ ही हज़ार वर्ष तक क़ायम रह सकती थी। शुरू के भौतिक-तत्ववेत्ता इसके लिये केवल एक ही सम्भवनीय कारण बताते थे और वह यह कि सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति क्रमशः कम हो रही है। यह भी अगर मान लिया जाय की सूर्य की आकृति पहले बहुत बड़ी थी और उसके निरन्तर छीजने से यह शक्ति पैदा होती है किन्तु इस सिद्धान्त के अनुसार सूर्य का जो साइज़ है उससे मौजूदा उत्पन्न होनेवाली शक्ति का केवल $\frac{१}{१००}$ अंश ही पैदा हो सकता था।

ग्रहों के अंश टूटने से जो रेडियो शक्ति पैदा होती है वह भी बेशुमार है। रेडियम से जितनी शक्ति पैदा होती है वह उस क्षेत्र का पानी उबालने के लिये काफ़ी है। और यह क्रिया हज़ारों वर्षों से बराबर चलती आ रही है।

इस असीमित शक्ति के उद्गम का पता बिलकुल अकस्मात लगा। आइनस्टीन की "थियरी आफ़ रिलेटिविटी" की यह एक स्वाभाविक कड़ी थी जिसमें यह साबित किया गया था कि घन-द्रव्य ही शक्ति का रूप है और घन-द्रव्य और शक्ति दोनों को एक दूसरे में परिवर्त्तित किया जा सकता है और भौतिक तत्व के जिस छोटे से छोटे अंश को हम रसायनशाला में इस्तेमाल करते हैं इसमें भी अविश्वसनीय शक्ति छिपी हुई है। आइन्स्टीन की इस थियरी से यह बात भी सामने आई कि घन-द्रव्य की एक ख़ास मिक़दार को भी शक्ति में तब्दील किया जा सकता है। ज़ाहिर है कि घन-द्रव्य का यह परिवर्तन सूर्य और तारों में निरन्तर होता रहता है। यही परिवर्तन छोटे रूप में रेडियो जनित विश्रंखलता से भी होता है।

यह बात मानते हुये भी कि शक्ति का एक बड़ा ज़ख़ीरा साधारण घन-द्रव्य में बन्द है, उसे उपयोग के लिये प्राप्त कर सकना आसान नहीं। शुरू में तो ऐसा मालूम पड़ता था कि इस शक्ति का केवल उसी रूप में इस्तेमाल हो सकता है जिस रूप में प्रकृति अपने आप इसे सुलभ बनाये और कृत्रिम उपायों से इसे सुलभ बनाना असम्भव है।

प्रकृति इस शक्ति को रेडियो-तत्व के रूप में हमारे लिये सुलभ करती है। इसमें बिजली की ज़बर्दस्त शक्ति होती है और इसके स्वतः विश्रंखल परमाणुओं को एल-रेज कहा जाता है। स्वर्गीय लार्ड रदरफोर्ड ने यह पता लगाया कि इन अद्भुत शक्ति सम्पन्न परमाणुओं को यदि हम किसी साधारण घन-द्रव्य में धसायें तो उसकी कृत्रिम विश्रंखलता से यह शक्ति पैदा की जा सकती है। लार्ड रदरफोर्ड की यह खोज वैज्ञानिक दुनिया के लिये बड़े काम की थी। किन्तु इससे अणु शक्ति को क़ाबू में लाने में सफलता नहीं मिली। किसी भी अणु को तोड़ने के लिये जो भी चीज़ बाहर धँसाई जायगी उसकी टक्कर अणु के केन्द्र से होनी चाहिये क्योंकि केन्द्र में ही अणु की ९९.९ प्रतिशत शक्ति केन्द्रभूत होती है। किन्तु अणु के आकार की समता में इस केन्द्र का आकार बहुत छोटा होता है और चारों ओर वह इलेक्ट्रान से घिरा होता है। इसलिये अंधाधुन्ध धँसाई



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गई किसी चीज़ का अणु के केन्द्र से टकराना बहुत मुश्किल है। आइन्स्टीन के शब्दों में यह वैसा ही है जैसे—"किसी घोर अँधेरी रात में उड़ते हुये काले कउये पर ऊटपटाँग पत्थर फेंककर निशाना लगाना।" इस निशाना न लगने का एक और कारण भी है।

इस निशाने के लिये जो शक्ति इस्तेमाल की जायगी उसके परमाणुओं में गरम बिजली होगी और अगर ये परमाणु निशाने की ओर चलेंगे भी तो ये अणु को घेरे हुये उन कणों से पहले टकरायेंगे जिनके भीतर भी गरम बिजली होती है और इस तरह टकराकर व्यर्थ हो जायेंगे।

अणु शक्ति की खोज में दूसरा क़दम वैज्ञानिक चाडविक ने उठाया जिसने 'न्यूट्रान' नामक एक विद्युतहीन भारी कण का पता लगाया। अणु के केन्द्र में इस कण के प्रवेश की अधिक सम्भावना मालूम हुई क्योंकि अणु के गरम बिजली वाले परमाणु इसे विद्युतहीन होने के कारण व्यर्थ न कर सकते थे। इसमें अधिक गति नहीं थी। पर जितनी कम गति हो उतना ही अणु-केन्द्र में उसके धँसने की सम्भावना अधिक थी।

फिर भी एक कठिनाई बाक़ी रही। ये विद्युतहीन कण देर तक स्थिर न रहते थे और इन्हें रसायनशाला में भी न बनाया जा सकता था। गरम बिजली के कण से जब ठण्ढी बिजली के कण अपने आप अलग होते हैं तभी उनसे 'न्यूट्रान' बन सकते हैं और ये कण प्रकृति की रेडियो शक्ति के विश्रंखल होने से बनते हैं। इसलिये न्यूट्रान द्वारा अणु केन्द्र को तोड़ने के लिये प्रकृति के ऊपर निर्भर करना पड़ेगा कि जिसकी गति बहुत धीमी है।

अणु शक्ति के उपयोग करने के प्रयोग में सबसे बड़ा क़दम जर्मन वैज्ञानिक ओटो हैन (Otto Hahn) ने उठाया। विज्ञान में जिन्हें हम अणु कहते हैं और जो आँख से दिखाई नहीं दे सकते उनमें से एक एक अणु पूरे एक एक सौर जगत के समान होता है। इस अणु के अन्दर न्यूट्रान को धँसाकर एक अणु के अन्दर से नये नये अणु बना दिये गये जिनका एटामिक वज़न उतना ही था किन्तु जो मिक़दार में हाइड्रोजिन और हीलियम के अणुओं से भी हल्के थे। न्यूट्रान के धँसने से भारी अणु के दो टुकड़े होकर दो साधारण वज़न के ब्रोमाइन या क्रिप्टन की तरह के अणु बन गये। इस तरह अणु के टूटने से जो शक्ति पैदा हुई वह उस शक्ति से कहीं अधिक थी जो रेडियो शक्ति के विश्रंखल होने से होती है। इस तरह अणु तोड़कर न्यूट्रान ने न केवल एक बहुत बड़ी शक्ति पैदा की बल्कि इस क्रिया में उसके भी कई टुकड़े हो गये और उसके हर टुकड़े के अन्दर अणुओं को तोड़ने की ताक़त क़ायम रही। इस क्रिया में वह टूट टूटकर अगणित न्यूट्रान बनाता रहा और अपार शक्ति पैदा करता रहा। थोड़े समय के अन्दर मूल न्यूट्रान के अगणित न्यूट्रान बन गये और बराबर शक्ति पैदा करते रहे। यह क्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक विशाल अणु के अन्दर एक भी अणु बाक़ी है या जब न्यूट्रान इतने अधिक हो जाते हैं कि वे अणु के सौर जगत में समा नहीं पाते। उससे पैदा हुई शक्ति न केवल बहुत अधिक होती है बल्कि उसकी गति इतनी तीव्र होती है कि वह एक प्रलयंकरी विस्फोट खड़ा कर देती है।

साधारण यूरेनियम में दो तरह के अणु होते हैं। एक ज़रा भारी और अधिक होता है; दूसरा हल्का और कम। हल्का अणु भारी अणुओं के मुक़ाबले में कुल हज़ारहवां हिस्सा होता है। यूरेनियम का यह कठिनाई से प्राप्त अणु ही ऊपर लिखे मुताबिक़ न्यूट्रान द्वारा टूटता है। यूरेनियम का भारी अणु अधिकतर निश्चेष्ट होता है।

जब यह पता चल गया कि यूरेनियम का यह हलका अणु जिसका एटामिक वज़न २३५ है, न्यूट्रान इसके भीतर धँसकर न केवल इसे तोड़ देता है बल्कि रक्त बीज की तरह बढ़कर टूटे हुये टुकड़ों के अणुओं को बराबर तोड़ता रहता है तो अणु शक्ति को क़ाबू में लाने के लिये सिर्फ़ इतना सा काम बाक़ी रह गया कि किस तरह यूरेनियम के हलके अणुओं को भारी अणुओं से अलग किया जाय; अर्थात् किस तरह उसे काफ़ी मिक़दार में इकट्ठा किया जाय। जब १९४० में इस बात का ऐलान किया गया कि किसी अमरीकन भौतिक तत्त्ववेत्ता ने यूरेनियम के हलके अणुओं की उतनी मिक़दार इकट्ठा कर ली है जो एक ग्राम का सौ करोड़वां हिस्सा है तो वैज्ञानिक दङ्ग रह गये थे। यूरेनियम के हल्के अणु इकट्ठा कर लेना इतना मुश्किल काम नहीं है जितना उसे शुद्ध करना। किन्तु एक बार अणु शक्ति को क़ाबू में लाने की क्रिया सफल होगई है तो शान्तिकालीन उन्नति में उसके उपयोग की असीमित सम्भावनायें हैं।

आधुनिक सभ्यता पर यह बड़ी दुखकर टिप्पणी है कि अणु शक्ति का पहला प्रयोग नाशकर बातों के लिये हुआ।

---

* इण्डियन कौन्सिल आफ़ वर्ल्ड अफ़ेयर्स की मीटिंग में दिये हुये व्याख्यान का कुछ अंश "लीडर" से उद्धृत —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# स्त्रियों के संगठन का बुनियादी क़दम

राजकुमारी अमृतकौर

यह एक अप्रिय सत्य है कि देश की पढ़ी लिखी महिलाओं ने गलियों और गांवों में रहनेवाली स्त्रियों के साथ किसी तरह का कोई सम्पर्क क़ायम करने की कोशिश नहीं की है। हिन्दुस्तान की स्त्रियों की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिये पहल क़दम यह है कि देश की दुखी और पददलित बहिनों के साथ हम एक निकट सम्बन्ध क़ायम करें।

हममें से जिन लोगों ने गलियों और मुहल्लों में जाकर स्त्रियों के बीच में काम करने की कोशिश की है उनका तजरुबा यह है कि पहले पहल उन्हें सशंकित दृष्टि से देखा गया है मानो वे किसी दूसरे लोक की प्राणी हैं किन्तु धीरे धीरे और लगातार कोशिश से हमने उनकी दोस्ती का दरवाज़ा खोल लिया। अज्ञान, ग़लतफ़हमियों, शक और शुबहों को प्रेम और सेवा से ही दूर किया जा सकता है। इन लोगों के बच्चों को नहला धुला के साफ़ कर देना, गलियों और मकानों में झाड़ू बुहारी कर देना, ग़रीबों और बीमारों के लिये काम और दावादारू का इन्तजाम कर देना—ये ऐसे काम हैं तो सख़्त से सख़्त दिल पर असर डालकर क़ब्ज़ा कर लेते हैं। सच तो यह है कि ग़रीबों के दिल बड़े उदार होते हैं। अगर हमारी महिला कार्य कर्त्रियां लगातार किसी मोहल्ले में जाकर वहां के बच्चों और औरतों की सेवा करें तो तमाम पड़ोसी उनका स्वागत करने लगेंगे। एक बार काम चल पड़ता है तो वह संक्रामक होकर दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ने लगता है। फिर काम समेटते नहीं बनता।

शहर में रहनेवाली बहनों से मेरी प्रार्थना है कि वे अपनी फ़ुरसत की हर घड़ी ग़रीब स्त्रियों के सेवा में लगाया करें। उन्हें उस उम्मीद और सुख की ओर ले जायें जिसकी उन्हें सख़्त ज़रूरत है। शहर की पढ़ी लिखी महिलाओं का समय अपनी सामाजिक चहल पहल में इतना खर्च होता है कि उन्हें बिलकुल या कुछ भी वक्त दीन-दुखियों की सेवा के लिये नहीं मिलता। धनिक परिवार की सैकड़ों महिलाएं दावतों, सिनेमाघरों, क्लबों, बाज़ारों और सड़कों पर दिखलाई देती हैं, परन्तु वे हमारी उन बहिनों के नज़दीक शायद ही कभी पहुँच पाती हैं जो समाज की प्रमुख अङ्ग हैं और जिनका अज्ञान से उद्धार करना हमारी जिम्मेदारी है।

हम लोगों में उपेक्षा का यह भाव अवश्य कम होना चाहिए। और हमें सेवा के नये क्षेत्र में बढ़ना चाहिये। गहनों, कपड़ों और आमोद प्रमोद के साधनों पर बेकार खर्च करना दानवता है, खासकर ऐसे समय जब अधिकांश लोगों को एक समय भोजन भी दुर्लभ है, बच्चों को दूध नहीं मिलता तथा पहनने को कपड़े और रहने को मकान भी नहीं मिलते।

यह कहने से कोई फ़ायदा नहीं कि भारत की ज़बर्दस्त ग़रीबी और अज्ञान ही हमारी वर्तमान दुर्दशा का मुख्य कारण है। हम ग़रीबी से तब तक छुटकारा नहीं पा सकते जब तक उसके मूल कारण को नष्ट न कर दें और उससे मुक्त होने पर अपना निर्माण ऐसे आधार पर न करें जो भौतिक के स्थान पर नैतिक बल पर निर्भर हो। फिर भी हम इस समय उस ज़ुल्म को कम करने की कोशिश कर सकती हैं जो हमारे देश भर में चल रहा है। ऐसा करके हम अच्छे दिनों को लाने में मदद दे सकती हैं। इस कार्य को पूरा करने में हममें से हर एक को अपनी बुद्धि, शक्ति और साधनों का इस्तेमाल करना चाहिए।

हर एक शहर में उन महिलाओं का एक संगठन होना चाहिए जो सेवा करने की भावना रखती हों। इस संस्था के अन्तर्गत उपसमितियां हों जो अलग-अलग क्षेत्रों में सेवा का कार्य करें। हर एक मुहल्ले में कितने बच्चे हैं, कितने बीमार हैं, कितनी विधवाएं हैं, कितनी मजदूर स्त्रियां हैं, तथा साफ पानी, शिक्षा और औषधियों की कितनी आवश्यकता है, इन बातों के आंकड़े तैयार किये जांय। ऐसे घरों का भी पता लगाया जाय जो मनुष्यों के रहने योग्य नहीं। परिवारों की आमदनी तथा उनके काम करने के घण्टों का भी विवरण तैयार किया जाय, इत्यादि।

जब तक हम महिलाओं की ज़रूरतों से वाक़िफ़ नहीं होतीं हम उनकी मदद नहीं कर सकतीं। एक बार आपसी घरोबा क़ायम होने पर स्त्रियों की छोटी-छोटी सभायें की जा सकती हैं जिनमें सफाई, बच्चों की देख भाल, भोजन, वस्त्र, पड़ोसी भाव, रोग-निवारण, छूत-अछूत की बुराइयां, बाल-विवाह, ब्याह आदि समारोहों की फिज़ूल ख़र्ची आदि विषयों की चर्चा की जा सकती है। निरक्षता दूर करने, कताई-बुनाई, टोकरा बनाने, तथा दस्तकारी के अन्य काम सीखने के लिये मदरसों का भी धीरे धीरे आयोजन होना चाहिये। महिलाओं को इस बात का ज्ञान कराना चाहिए कि उनकी कितनी दयनीय दशा है और इससे मुक्त होने के लिये उन्हें क्या करना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पुस्तक-परिचय

**शिक्षा का माध्यम**—लेखक, आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल, प्रकाशक; शिवलाल एन्ड कं० लि० आगरा; १९४५; पृ० सं० ४६; मूल्य ।।।), अजिल्द

इस पुस्तक का मूल अंगरेज़ी में प्रकाशित हुआ था, उसका रूपान्तर आगरा निवासी श्री पद्मसिंह शर्मा ने किया है। आरम्भ में महात्मा गान्धी की लिखी हुई एक पन्ने की भूमिका है। विद्वान लेखक ने अपनी इस पुस्तक में इस बात पर शोक प्रकट किया है कि अपने इस अभागे देश में आज भी ऊँची शिक्षा का माध्यम अंगरेज़ी भाषा बनी हुई है। आपने उन सारी शंकाओं और कठिनाइयों का निराकरण किया है जो प्रान्तीय भाषाओं को माध्यम बनाने के मार्ग में सामने रक्खी जाती हैं।

भारतवर्ष में अब तो प्रायः सभी प्रान्तों में हाई स्कूल की अन्तिम परीक्षा तक शिक्षा और परीक्षा मातृभाषा के ही माध्यम से होती है। कहीं कहीं इन्टरमीडियट की परीक्षा भी मातृभाषा के माध्यम से होने लगी है, यथा संयुक्त प्रान्त के बोर्ड की। काशी विश्वविद्यालय और अलीगढ़ युनिवर्सिटी में भी शीघ्र ही स्वदेशी भाषा द्वारा इन्टर की शिक्षा और परीक्षा होगी। सवाल यह रह जाता है उच्च कक्षाओं (बी०ए०, एम० ए० आदि) का। यहां सभी प्रान्तों में अंगरेज़ी ही माध्यम बनी हुई है। केवल हैदराबाद (दक्खिन) की उस्मानिया युनिवर्सिटी में माध्यम उर्दू है, अंगरेज़ी नहीं। विद्यापीठों और गुरुकुलों में माध्यम हिन्दी है पर वे सरकार और सरकारी युनिवर्सिटियों द्वारा मान्य की हुई संस्थाएँ नहीं हैं। लेखक ने जो बहुमूल्य सामग्री अपनी पुस्तक में इकट्ठी की है उससे इतना तो पता चलता है कि माध्यम का सवाल सब युनिवर्सिटियों में इस समय विचार कोटि में है; पर प्रान्तीय भाषाओं को माध्यम बनाने में कठिनाइयों का अनुभव हो रहा है। सवाल हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों में ज़रा और भी टेढ़ा है। इसके दो कारण हैं। एक तो हिन्दी-उर्दू समस्या, दूसरे अहिन्दी भाषा भाषी अध्यापक वर्ग। इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा आदि की युनिवर्सिटियां एक तो हिन्दी-उर्दू के दलदल से बचना चाहती हैं, दूसरे इनका अध्यापक वर्ग खिचड़ी है और अहिन्दी भाषा भाषी अध्यापक हिन्दी या उर्दू या दोनों के माध्यम को स्वीकार करने के विरोध में कोशिश करते हैं। इसी कारण अधिकारी वर्ग इस प्रश्न को टालता चला आ रहा है। प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चैंसलर परिडत अमरनाथ झा ने अपने कार्यकाल के आरम्भ में ही शिक्षा का माध्यम क्या हो इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक उपसमिति नियत कराई थी पर दुर्भाग्यवश उसकी कभी कोई बैठक नहीं बुलाई गई। पिछले साल पं० देवी प्रसाद शुक्ल ने कोर्ट में एक प्रस्ताव पेश किया था कि प्रान्त की भाषा माध्यम बना दी जाय और अभिप्राय था कि १९४० की परीक्षाएं देशी भाषा के माध्यम से हों पर प्रस्ताव अब तक विभिन्न समितियों उपसमितियों के विचार के ही अधीन पड़ा हुआ है। आज से प्रायः दस बारह साल पहले मैंने प्रयाग युनिवर्सिटी में एक प्रस्ताव पेश किया था कि हिन्दी संस्कृत तथा उर्दू, अरबी फारसी की शिक्षा और परीक्षा का माध्यम हिन्दी और उर्दू बना दी जाय। इनमें हिन्दी-उर्दू समस्या का, पारिभाषिक शब्दावली के अभाव आदि का अथवा अन्य कठिनाइयों का अस्तित्व नहीं। यह प्रस्ताव भी अस्वीकृत हुआ और 'विश्ववाणी' के पाठकों को यह जानकर अचरज होगा कि विरोध करनेवालों में वे स्वर्गीय हिन्दी और उर्दू तथा संस्कृत के कुछ आचार्य। हिन्दी उर्दू वालों का कहना था कि सभी विषयों का माध्यम बदल जाय तब हमारा, अन्यथा हम हीन समझे जायँगे। संस्कृत के कुछ दूसरे सूबे वाले अध्यापकों को आशंका थी कि हिन्दी उर्दू को माध्यम बनाकर उनके प्रान्त वालों को इस प्रान्त के अध्यापक और परीक्षक के पद से दूर रखने के लिए यह षड्यन्त्र रचा जा रहा है। प्रान्तीय भाषाओं को माध्यम बनाने के विषय में सबसे दुखदायी बात जो सामने है वह है इसी प्रान्त के प्रमुख अध्यापकों की अवहेलना बुद्धि और अनुत्साह।

विदेशी नौकरशाही की छत्र छाया में पली हुई युनिवर्सिटियां तो तब तक इस विषय में निश्चेष्ट रहेंगी तक राष्ट्रीय सरकार इस ओर प्रेरणा न करेगी। मार्ग कठिनाइयां हैं पर एक बार उनको हटाने का निश्चय लिया जाय तो वे हट सकती हैं। आचार्य श्री मन्नारायण ने बहुमूल्य सुझाव पेश किए हैं। वे विचारणीय हैं। प्रस्ताव भी सामने आ सकते हैं पर जब निश्चय हो माध्यम बदलना है।

प्रस्तुत पुस्तक सामयिक और बड़े काम की है। है इस पर राष्ट्र प्रेमी विद्वान मनन करेंगे। केवल की किताब (और सो भी हिन्दी) की क़ीमत बारह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ज़्यादा मालूम होती है। प्रचारार्थ लिखी हुई किताबों का मूल्य जितना भी कम हो अच्छा है। पर प्रकाशक शायद लड़ाई के कारण सर्वत्र व्यापक महँगाई से लाचार रहे होंगे।

—बाबूराम सक्सेना डी० लिट्०

**विचार और अनुभूति**—लेखक, श्री नगेन्द्र एम० ए०; प्रकाशक, प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद; मूल्य ३); पृष्ठ संख्या १५६; सजिल्द।

प्रस्तुत पुस्तक श्री नगेन्द्र की आलोचनात्मक स्फुट रचनाओं का संग्रह है। ये रचनाएं निम्न वर्गों में विभक्त की जा सकती हैं :

( १ ) निबंध,
( २ ) नाटक,
( ३ ) कहानी,
( ४ ) प्रशस्ति,

पहले वर्ग के सुन्दर उदाहरण 'प्रसाद के नाटक', 'दीपशिखा', 'त्याग पत्र और नारी', 'अज्ञेय और शेखर' आदि हैं; द्वितीय के 'वाणी के न्याय मन्दिर में'; तृतीय के 'साहित्य की प्रेरणा' 'हिन्दी उपन्यास' आदि और चतुर्थ के 'कवीन्द्र के प्रति' हैं। लेखक ने नाटक एवं कहानी के रूप में अपने आलोचनात्मक विचारों को प्रगट किया है। कलात्मकता की छाप लग जाने के कारण इनमें प्रगट किए गए विचार अवश्य अधिक सुंदर लगने लगते हैं। किन्तु इस कलात्मकता के पीछे एक भ्रम भी छिपा है। लेखक ने लेखकों के मुख में कुछ अपनी बातें रख दी हैं और साधारण पाठक नगेन्द्रजी के उन विचारों को उन लेखकों के विचार मान लेता है। शायद यह उन लेखकों के प्रति नगेन्द्र जी की न्याय्यता नहीं कही जा सकती। इसमें सन्देह नहीं कि लेखक ने अपने उत्तरदायित्व को पूरी तरह समझकर लेखकों के मुख में शब्द रखे हैं परन्तु फिर भी वे पूरी तरह सही हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकेगा। सच तो यह है कि इस तरह का कोई भी प्रयत्न कभी भी पूरी ईमानदारी का नहीं हो सकता।

रवीन्द्रनाथ की प्रशस्ति भी विशेष महत्वपूर्ण नहीं। उसमें न तो कोई विशेष सजग एवं सफल विश्लेषण है और न कोई विशेष व्यंजनात्मक सम्बोधन। निबंध अवश्य ऊंची कोटि के हैं। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट होता है इन निबंधों में लेखक के विचारों एवं अनुभूतियों का संग्रह है। लेखक ने प्रत्येक लेखक को अनुभूति की गहराई पर जाकर देखा है और लेखक उन लेखकों की मूल साहित्यिक चेतना की प्रवृत्तियाँ पकड़ने का प्रयास कर रहा है। पश्चिमी ढंग से लिखे गए इन सारे निबंधों का सम्बन्ध आधुनिक हिन्दी साहित्य से है जिसके लेखकों से लेखक का व्यक्तिगत परिचय भी रहा है। इस व्यक्तिगत परिचय का लाभ आलोचक ने पूरा उठाया है। आलोचक की यह सच्चाई उसे ऊंचा उठने में सहायता देती है।

ये निबंध दो वर्गों में बंटते हैं :

( १ ) आलोचना के सिद्धान्त सम्बन्धी
( २ ) प्रयोगात्मक आलोचना

आलोचना के सिद्धांत सम्बन्धी लेखों में 'साहित्य की प्रेरणा', 'साहित्य और समीक्षा', 'साहित्य में कल्पना का उपयोग' आदि प्रमुख हैं। प्रयोगात्मक आलोचना सम्बन्धी निबंध दो वर्गों में विभक्त हो सकते हैं :

( १ ) हिन्दी साहित्य के इतिहास या प्रवृत्तियों का अध्ययन और
( २ ) लेखकों का अध्ययन

'आधुनिक काव्य के आलोचक', 'प्रगतिवाद और हिंदी साहित्य', 'हिंदी उपन्यास' प्रथम वर्ग के उदाहरण हैं और 'महादेवी की आलोचक दृष्टि', 'दीपशिखा', 'त्याग पत्र और नारी' आदि दूसरे वर्ग के। इनमें प्रगट किए गए विचार बिलकुल सही हैं या विवादास्पद हैं, यह तो विवाद का प्रश्न है परन्तु इतना सुनिश्चित सत्य है कि लेखक ने जो कुछ भी कहा है बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से कहा है। उसके विचार स्पष्ट हैं। कहीं पर भी वह पाठक को ग़लतफ़हमी में नहीं रखता, जो समझता है सच्चाई से कह देता है।

एक बात तनिक खटकती सी है—लेखक ने अपने व्यक्तित्व को बहुत उभार दिया है। आलोचक का अपना व्यक्तित्व इतना उभार देना कुछ अवैज्ञानिक सा लगता है। वैसे संग्रह सुन्दर एवं सुपाठ्य है। प्रस्तुत लेखक की दृष्टि से इतने सुन्दर संग्रह कम गुज़रे हैं।

—कमल कुलश्रेष्ठ एम० ए०

**प्रतिहिंसा ( खण्ड-काव्य )**—लेखक, श्री छोटे लाल 'भारद्वाज'; भूमिका लेखक, शिवमंगल सिंह 'सुमन'; मुद्रक, आलीजाह दरबार प्रेस, लश्कर, ग्वालियर; प्राप्ति स्थान, पं० रामगोपाल शर्मा, पहाड़गढ़ ( ग्वालियर स्टेट ); मूल्य ।।=); पृष्ठ संख्या ४१; अजिल्द।

'प्रतिहिंसा' एक काल्पनिक कथानक के आधार पर लिखा हुआ 'खण्ड-काव्य' है। प्रथम सर्ग में कवि कथानक की पृष्ठ भूमि के रूप में विन्ध्या-शिखर पर समाप्त होती हुई



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रात्रि तथा प्रातःकाल का वर्णन करते हुए बतलाता है कि यवनों से घिरे हुये दुर्ग का विश्वासपात्र सेनानी दुश्मनों से मिल गया है। उसकी प्रवंचना से दुर्ग रक्षक एकदम घबड़ा जाते और उदासीन भी हो उठते हैं। उन्होंने अपनी गर्भवती रानी की रक्षा करने का प्रबन्ध कर 'जौहर' किया। दूसरे सर्ग में रानी की विरह व्यथा और पुत्र होने का वर्णन है। शिशु से वह वीर और सुन्दर युवक होता है। मां से अपने कुल की कथायें सुनकर वह देश का गौरव याद करता है, और स्वतन्त्र करने का निश्चय भी। तीसरे सर्ग में वह वीर राजपुत्र युवकों का संगठन करता है और उनको युद्ध करने के लिये तैयार करता है। इसी में देश-गीत भी दिया गया है। वे युद्ध-यात्रा की प्रथम रात्रि पेड़ों के नीचे व्यतीत करते हैं। चौथे सर्ग में वीर राजपुत्र अपने सैनिकों को उत्साहित करता है। पंचम सर्ग में रात्रि में युद्ध का फिर वर्णन है जिसमें राजपुत्र 'बनवीर' सफल होता है। इस बदले के बाद रानी सती हो जाती है।

प्रत्येक स्थान पर कवि अपने ही भावों का आरोप करता दिखाई पड़ता है। पात्रों में न तो किसी स्वाभाविक भाव का उदय होता है और न उसका विकास ही। स्वभाव के वर्णन में कवि लिखता है :

किलकिला कभी वह गिरता, पड़ता, चलता।
प्रिय जननी से था कभी सप्रेम लिपटता।

इसमें वर्णन क्रम का दोष है। रानी के वियोग वर्णन में कवि कहता है :

ज्यों ही अदृश्य कल्पित निज प्रिय-ग्रीवा को
कस भुज-मृणाल में पाती सुख सीमा को।

यह अपने प्रसंग में असङ्गत और महाकवि कालिदास के एक श्लोक का भद्दा भावापहरण है। 'प्रतिहिंसा' में निरत रानी के लिये तो विरह में भी उत्तेजना की शक्ति होनी चाहिये थी।

प्रकृति वर्णन कई स्थलों पर है, परन्तु वह ऐसे अव्यवस्थित ढंग पर उपस्थित किया गया है कि चित्र का पूरा रूप नहीं उपस्थित हो सका। कुछ स्थल पर जो भाव सुंदर हैं उन पर हिन्दी के अन्य कवियों की छाया है।

दोनों युद्ध वर्णन भी स्थूल-भावों और वर्णनों के आधार पर हुये हैं और दूसरे में पहले की पुनरुक्ति भी हुई है।

भूमिका लेखक ने प्रस्तुत ग्रंथ पर कुछ भी विचार नहीं प्रकट किये हैं। पुस्तक अत्यन्त साधारण है।

—रघुवंश एम० ए०

**आधुनिक भारत**—मूल लेखक : आचार्य जावड़ेकर; रूपान्तरकार : श्री हरिभाऊ उपाध्याय; प्रकाशक, हिन्दी मन्दिर प्रयाग; मूल्य सजिल्द पाँच रुपया; पृष्ठ संख्या, ३३२।

आचार्य जावड़ेकर की मूल मराठी पुस्तक बेहद लोकप्रिय साबित हुई थी। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का जितना जीता जागता दिग्दर्शन इस पुस्तक में किया गया है वह अन्यत्र हमें नहीं दिखाई दिया। पुस्तक पढ़कर भारत के राजनैतिक आन्दोलन की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि अपने सर्वाङ्गीण रूप में पाठकों के सामने स्पष्ट खड़ी हो जाती है। श्री हरिभाऊ जी ने अपनी मँजी हुई क़लम से मूल मराठी पुस्तक का हिन्दी में बड़ा सुन्दर रूपान्तर किया है। पुस्तक १२ अध्यायों में बँटी है। पूर्वार्द्ध के छै अध्याय हैं : १—हिन्दुस्तान क्यों और कैसे जीता गया ?, २—अंगरेज़ी राज्य कैसे जमा ?, ३—सर्वाङ्गीण सुधार की आधुनिक ज्ञान ज्योति, ४—भारतीय राजनीति और अर्थनीति का पाया, ५—कांग्रेस का जन्म और प्रचार, ६—भारतीय संस्कृति का तत्व मन्थन। उत्तरार्द्ध के अध्याय हैं १—क्रान्तिकारी राजनीति, २—क्रान्तिकारी आध्यात्मिक राष्ट्रवाद, ३—राष्ट्रीय आपत् धर्म, ४—भारतीय सत्याग्रह संग्राम, ५—सत्याग्रही राष्ट्रीय क्रान्ति शास्त्र और ६—भारतीय संस्कृति का अमर तत्व।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत आने के समय यहां की जो सामाजिक और राजनैतिक परिस्थिति थी उससे फ़ायदा उठाकर किन कूटनीतिक उपायों और रिश्वत सितानियों से अंगरेज़ी राज क़ायम हुआ, किस प्रकार उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में सर्वाङ्गीण ज्ञान की भावना लोगों में पैदा हुई, किन परिस्थितियों ने कांग्रेस को जन्म दिया, कांग्रेस के नेतृत्व के लिये किस प्रकार नरम दल में संघर्ष हुआ, भारतीय संस्कृति के अन्दर उस समय किस तरह के सुधार पूर्ण और समन्वयात्मक आन्दोलन चले और किस प्रकार लोकमान्य तिलक ने राजनीति को क्रान्ति का जामा पहनाया और किस प्रकार उस समय की उग्र राजनीति को भयंकर दमन से दबाने का असफल प्रयत्न किया गया, किस तरह गान्धी जी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया और किस तरह देश ने उनकी सत्याग्रही क्रान्ति को अपनाया और किस तरह भारतीय संस्कृति के अमरतत्व इस सत्याग्रह का पोषण करते हैं—आदि बातें बड़ी सुन्दरता के साथ, जगह जगह महत्वपूर्ण उद्धरण देकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पुस्तक में बताई गई हैं। भारतीय राजनीति समझने के लिये पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। ऐसी अच्छी पुस्तक का सस्ता संस्करण हिन्दी मन्दिर को प्रकाशित करना चाहिये। इस सद् प्रयत्न के लिये हम हरिभाऊ जी को बधाई देते हैं।

—विश्वम्भरनाथ

**पूर्वी और पश्चिमी दर्शन**—लेखक : डाक्टर देवराज; सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली; मूल्य २।); पृष्ठ संख्या २००।

जिस समय हमने इस पुस्तक को हाथ में लिया उस समय हमने समझा था कि पूर्वी और पश्चिमी दर्शनों की एक सुबोध और सरल समन्वयात्मक व्याख्या हमें इस में देखने को मिलेगी। भारतीय, चीनी, अरबी, ईरानी दर्शनों की तुलना तथा यूरोपीय दर्शन के यूनानी युग से लेकर ह्यूम, काण्ट, हीगल और मार्क्सवादी दर्शन तक देखने के हम इच्छुक थे। किन्तु पुस्तक का कलेवर इतना छोटा है कि इन सब बातों का समावेश पुस्तक में असम्भव था। पुस्तक का उपयोग दर्शन के विद्यार्थी तो अवश्य कर सकते हैं पर साधारण पाठक नहीं। इस तरह के गहन विषय की विस्तृत विवेचना ही विषय को सरल बना सकती थी। फिर भी हिन्दी में इस तरह की समन्वयात्मक विवेचना की सम्भवतः यह पहली पुस्तक है और एम० ए० के विद्यार्थियों के लिये काम की हो सकती है।

—विद्यानन्द

# ९ अगस्त सन् १९४२

श्री 'करील'

१

अब आज जवानी जाग पड़ी हिल पड़ीं गुलामी की कड़ियाँ।
पददलित जाति के जीवन से बरसीं ज्वाला की फुलझड़ियाँ॥
स्वाधीन बनेगी मानवता आयी आज़ादी की घड़ियाँ।
बेड़ियाँ पगों में झनक उठीं खनकीं हाथों में हथकड़ियाँ॥
खौला अब खून जवानोंका मिटगयी शान्ति, छायी अशान्ति।
मन के वाणी के स्वर बोले, जीवे जागे यह महाक्रान्ति॥

२

यौवन में जागा आज क्रोध, मिलती न मौत को आज आड़।
यह पराधीनता का पिशाच गिर पड़ा आज खाकर पछाड़॥
निकली जब अपनी धाक लिये बलिदानी वीरों की दहाड़।
शासन के हिलते मंचों से शासक चिल्लाये कंठ फाड़॥
मिट गयी हृदय की कायरता मिट गयी हृदय की महाभ्रांति।
जनता ने जयजयकार किया आगई क्रान्ति यह महाक्रान्ति॥

३

फिर उठा हिमालय देख रहा सागर नव गति से लहराया।
घाटी में हँसती आज उषा लेकर अपनी मंगल माया॥
जागा प्राणों में महाबोध जन जन में नव जीवन छाया।
जनता ने आज जनार्दन के गीतों को उठ उठकर गाया॥
बोले कायर, अन्याय हुआ, मिट गई शान्ति, छाई अशान्ति।
जनता अपना सम्मान लिये भव की उद्धारक महाक्रान्ति॥

४

धरती में सेना दौड़ पड़ी घहराये नभ में वायुयान।
संहारक शस्त्रों की ज्वाला थी महा मृत्यु का अग्नि-गान॥
सर्वत्र भयंकरता व्यापी, भूली भूतल की आन बान।
संगठित प्रलय का अट्टहास प्राणों का निर्मम रक्त दान॥
वीरों ने गाया क्रान्ति गीत, मिट गयी विश्व की महाभ्रान्ति।
जनता ने जयजयकार किया आगयी क्रान्ति यह महाक्रान्ति॥

५

अंचल सूखे, सिन्दूर पुँछे, बरसी आँखों से जल धारा।
मायें रोयीं, बहिनें रोयीं, तरुणों ने घर घर ललकारा॥
वीरों के हम हैं वीर पुत्र हममें अक्षय रस की धारा।
यह सारा देश हमारा है हम मानेंगे कर निबटारा॥
उत्साह जगा नव बल आया मिट गई विश्व की महाभ्रान्ति।
जनता ने जयजयकार किया आगयी क्रान्ति यह महाक्रांति॥

६

यौवन के वैभव नव जवान सर्वत्र बढ़े छाती ताने।
दल केवल उभड़े ले लेकर पौरुष के बाने मर्दाने॥
जीवन ने पाया महामान गूँजे घर घर यश के गाने।
उल्लास हृदय में भरे हुये दौड़ी कविता भी रस पाने॥
नश्वर मानव की यह महिमा मेटे भव भर की महाभ्रान्ति।
जनता ने जयजयकार किया आगयी क्रान्ति यह महाक्रांति॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार

## स्व० सुभाषचन्द्र बोस

२३ अगस्त का जापानी न्यूज़ एजेन्सी का वक्तव्य है कि सुभाष बाबू १८ अगस्त को सिंगापुर से तोकियो आते हुये ताइहोकू हवाई अड्डे पर जहाज़ की दुर्घटना के फल स्वरूप घायल हुये और जापान के एक अस्पताल में आधी रात के समय उनकी मृत्यु हो गई !

२६ जनवरी सन् १९४१ को स्वाधीनता दिवस के दिन सुभाष बाबू यकायक अपने घर से पुलीस के सख़्त पहरे के होते हुये भी ग़ायब हो गये थे। उस समय तरह तरह के अन्दाज़े लोगों ने दौड़ाये और अन्त में तोकियो रेडियो द्वारा समाचार मिला था कि सुभाष बाबू बर्लिन होते हुए जापान पहुँच गये हैं। तबसे उनके कई वक्तव्य हमने सेगाँव के रेडियो स्टेशन से सुने जिनमें हर बार भारत की स्वतन्त्रता के लिये उनकी मार्मिक अपील होती थी। वे भारत की आज़ादी के लिये बेचैन थे और किसी भी क़ीमत पर उसे प्राप्त करने की आकांक्षा रखते थे।

किन्तु अपने देश की आज़ादी हासिल करने के लिये उन्होंने जो तरीक़ा बर्ता उससे हमारे अनेक देशवासी सहमत नहीं थे। वह इसलिये कि किसी भी ग़ुलाम देश को आज़ाद करना नात्सी और फ़ासिस्ती राजनीति के कार्य क्रम का अङ्ग नहीं था। फिर भी अगर नात्सी जर्मनी और फ़ासिस्ती जापान के साथ सोवियत् रूस की दोस्ताना सन्धि, सुभाष बाबू को बुरा कहने वाले हिन्दुस्तानी राजनीतिज्ञों की नज़रों में, गर्हित नहीं थी तो आज़ाद हिन्द प्रजातन्त्र का जापान के साथ समझौता कैसे बुरा कहा जा सकता है। असल में यह हर राष्ट्र का अपना अधिकार है कि वह यह फ़ैसला करे कि वह किसके साथ दोस्तियाँ करेगा और किसके साथ नहीं। और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में दोस्तियाँ नारों के उसूल पर नहीं होतीं, उनके लिये ठोस वाक़यात नज़रों के सामने रखने पड़ते हैं।

हम एक मिनिट के लिये भी इस बात पर विश्वास करने के लिये तय्यार नहीं हैं कि सुभाष बाबू ने जापान के साथ कोई ऐसा समझौता किया था जो भारत के आत्म-गौरव को नीचा करनेवाला हो। समझौते की जो शर्तें सेगाँव रेडियो से ब्राडकास्ट हुई थीं उनमें एक भी धारा भारतीय आत्मसम्मान के ख़िलाफ़ न थी।

सुभाष बाबू का सम्पूर्ण लक्ष्य अपने देश को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चुङ्गल से मुक्त करना था। उन्होंने जिस आज़ाद हिन्द सेना का सङ्गठन किया था उसके सभी जनरैल और सिपाही उत्कट देशभक्ति से भरे हुए थे। अपने स्वतन्त्र रवय्ये के कारण जापानी अधिकारियों के साथ उनकी न पट सकी और उनके सेक्रेटरी मोहनसिंह को जापानी अधिकारियों ने पता नहीं कहाँ ग़ायब कर दिया।

दुनिया में चाहे जिसे यह सन्देह हो कि सुभाष बाबू का रवय्या पाँचवें दस्ते का था किन्तु भारतवासियों को उनकी ज्वलन्त देश भक्ति, उनके शौर्य, उनके महान त्याग और उनके अनुपम बलिदान में अखण्ड विश्वास रहा है इसलिये जापान के आत्मसमर्पण के बाद सुभाष बाबू के भविष्य पर हर हिन्दुस्तानी के दिल में गहरी चिन्ता हो गई थी। पण्डित जवाहरलाल और देश के दूसरे नेताओं ने सुभाष बाबू और उनकी राष्ट्रीय सेना के भविष्य पर चिन्ता प्रकट की थी। देश इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार कर ही रहा था कि अचानक सुभाष बाबू की मृत्यु का संवाद हमें सुनाया गया। इस समाचार से सारे देश में ग़मगीनी शोक की लहर छा गई। देश भर में जिस तरह सुभाष बाबू की स्मृति में श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई वह यह प्रकट करता है कि देश अपने भूतपूर्व राष्ट्रपति से कितना प्रेम करता था। सुभाष बाबू देश के चमकते हुये उज्ज्वल नक्षत्र थे जो असमय में ही टूटकर विलीन हो गये।

वे सन् १९२१ में भारतीय राजनीति में आये और १९४१ में उसकी प्रमुख धारा से अलग हो गये। उनका प्रचण्ड साहस था, असीम शक्ति थी और ऊँचे थे। जितने उत्कट देशभक्त थे वे उतने ही बड़े कर्त्ता थे, उतने ही ज़बर्दस्त प्रबन्धकर्ता थे और बड़े नेता थे। वे अपने लिये कुछ भी नहीं चाहते उनके निकट देश की आज़ादी सब कुछ थी। सबसे दुःख तो यही है कि वे अपने देश को आज़ाद देखने सबसे बड़ी हसरत लिये हुये मरे।

सन् १९४२ में एक मर्तबा और ल्यान्स रेडियो ने उनकी मृत्यु की सूचना दी थी किन्तु बाद में वह ग़लत साबित हुई। हमारी दिली आकांक्षा है कि इस डोमेई न्यूज़ एजेन्सी की यह ख़बर झूठी साबित हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## राष्ट्रीय सेना का भविष्य

पण्डित जवाहरलाल जी ने इस बात पर चिन्ता प्रकट की थी कि सुभाष बाबू के नेतृत्व में जो राष्ट्रीय सेना बनी थी जापान के आत्म समर्पण के बाद उसका क्या भविष्य होगा। उन्होंने उसकी प्राण-रक्षा की अपील की थी। लाहौर हाई कोर्ट के भूतपूर्व जज श्री दलीपसिंह ने भी वैज्ञानिक नुक्तेनज़र से इस सेना को दण्ड देने की न्याय्यता पर शंका प्रकट की है।

सुभाष बाबू की जिस आज़ाद हिन्द सरकार के अन्तर्गत इस सेना का संगठन हुआ था उस सरकार को जापान, जर्मनी, फ्रान्स, इटली, मलाया, जावा, स्याम, मंचुकुओ आदि की सरकारों ने न्याय्य स्वीकार कर लिया था। वैसी सूरत में इस सेना की हैसियत बराबरी का रुतबा रखनेवाले दुश्मन राष्ट्र की सेना की हो गयी थी। इसे सज़ा देने का कोई वैधानिक अधिकार अङ्गरेज़ सरकार को नहीं है।

भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में जो विज्ञप्ति प्रकाशित की है उसमें कहा गया है कि उस सेना के सैनिकों को तो माफ़ कर दिया जायगा परन्तु अफ़सरों पर मुक़दमा चलाया जायेगा। हमें यक़ीन है कि सरकार की इस विज्ञप्ति पर सारा देश असन्तोष प्रकट करेगा और इस सेना के अफ़सरों की प्राण-रक्षा के लिये देशव्यापी आन्दोलन किया जायगा।

ऐसी अफ़वाह है कि इस सेना की 'झांसी की रानी रेजिमेंट' की अधिनायिका श्रीमती लक्ष्मी स्वामिनाथन को बर्मा में क़ैद करके दिल्ली के पुराने क़िले में लाकर रखा गया है। उस सेना के एडजुटेन्ट मेजर शाहनवाज़ को भी गिरफ़्तार कर लिया गया है। हमें इन सबकी प्राण-रक्षा के लिये बेहद चिन्ता है। यह बात हमारी समझ में नहीं आई कि जापानी सैनिकों और अफ़सरों को तो पकड़कर सुरक्षित रूप से जापान भेजा जा रहा है और हिन्दुस्तानी अफ़सरों को कोर्ट मार्शल करने की तजवीज़ हो रही है। हम अब भी आशा करते हैं कि भारत सरकार देश की आज़ादी के इन दीवानों को न केवल प्राण-रक्षा करेगी बल्कि बहादुरी की दृष्टि से उनका उचित सम्मान करेगी। कुँवर दलीपसिंह अपने इसी वक्तव्य में लिखते हैं—"बहुतों के साथ रहम की बात लोग भूल जायँगे लेकिन यदि एक आदमी के साथ भी सख़्ती की गई तो लोग उसे याद रखेंगे।" क्या हम आशा करें कि लार्ड वावेल की सरकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि कोण से आज़ाद हिन्द राष्ट्रीय सेना के अफ़सरों के अपराध को देखेगी और उन पर मुक़दमा चलाने के अपने निश्चय को त्याग देगी? क्योंकि हम उनके देशवासियों की नज़रों में उनका अपराध न केवल समझ में आनेवाला, बल्कि क़ुदरती और क्षम्य है।

## जीत किस क़ीमत पर?

अत्यन्त आशावादी लोगों की उम्मीदों से भी विपरीत यूरोपीय युद्ध के बाद जापानी लड़ाई इतने शीघ्र ख़त्म हो गई। २ सितम्बर को क़ानूनन् लड़ाई का अन्त हो गया। किन्तु जितनी ख़ुशी जर्मनी की हार पर लोगों को हुई थी उतनी ख़ुशी जापानी युद्ध की समाप्ति पर नहीं हुई। जिन उपायों से यह जीत हासिल की गई या इसके लिये जो साधन इस्तेमाल किये गये उन्हें सुनकर लोग सहम गये। इस युद्ध के दौरान में हमें जर्मन नात्सियों और फ़ासिस्ट जापान के ज़ुल्मों की बीसों कहानियां सुनाई गई थीं। हमें बताया गया था कि किस तरह सभ्य युद्ध के नियमों का इन मुल्कों ने उल्लंघन किया, किन्तु जो कुछ अमरीकी और ब्रिटिश सरकारों ने हिरोशिमा और नागासाकी में किया वह दानवता, पाशविकता, बर्बरता, क्रूरता और पैशाचिकता की सारी सीमाओं को उल्लंघन कर गया। पाँच लाख पुरुषों, स्त्रियों, बूढ़ों, बच्चों, और रोगियों को जिस निर्दयता के साथ ठण्डे दिल से मौत के घाट उतारा गया उसके आगे हिटलर, मुसोलिनी और तोजो के कठोर से कठोर ज़ुल्म हेच हैं। युद्ध की एक मर्यादा होती है। हम भारतवासियों ने कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध की एक पुनीत मर्यादा क़ायम की थी और इसीलिये जब हम हिटलर के उड़न बमों की बात सुनते थे तो हमारा हृदय क्षोभ से भर जाता था, पर जब हमने हिरोशिमा और नागासाकी की प्रलयंकरी कहानियाँ सुनीं तो उड़न बमों की बात हमारे निकट बच्चों का खेल मात्र रह गयी। दुख तो इस बात का है कि इस कलुषित अपराध पर बजाय शर्म से सर झुकाने के चर्चिल और ट्रुमन उस पर गर्व अनुभव करते हैं। वे भले ही आज अपनी जीत पर पुलकित हों किन्तु हमारी नज़रों में यह क्रूरता पर दानवता और कठोरता पर पैशाचिकता की विजय है। मित्रराष्ट्र भले ही जीत गये हैं पर उनके हाथ जिन लाखों अबोध जापानी बच्चों और निरीह स्त्रियों के ख़ून से रँग गये हैं उसके दाग़ बावजूद तमाम नैतिक डींगों के नहीं छूटेंगे! नहीं छूटेंगे!! कभी नहीं छूटेंगे!!!

## एटम बम

जिन एटम बमों से फ़ासिस्ट जापान को घुटने टेकने



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पर मजबूर किया गया उसकी प्रलयंकरी विस्फोटक शक्तियों का ब्योरा पाठकों ने समाचार पत्रों में पढ़ा होगा। इसी अङ्क में अन्यत्र पाठक उसके फटने की क्रिया का वैज्ञानिक ब्योरा डाक्टर कृष्णन् के लेख में पाएंगे। जो दावे किये जा रहे हैं उसके अनुसार उसके फटने की धमक ३०० मील के क्षेत्रफल तक जाती है। यानी अगर इलाहाबाद में एटम बम गिराया जाय तो पूर्व में पटना और पश्चिम में आगरा के मकानों के दरवाज़ों और खिड़कियों के शीशे टूट जायँगे। जिस जगह बम गिरेगा उसके इर्द गिर्द १० मील तक की तमाम इमारतें, पशु, पक्षी, मनुष्य, कीड़े-मकोड़े, साग-सब्ज़ी, घास-पात जल भुनकर नष्ट हो जायँगे। जिस समय अणु फटते हैं उस समय हवा की गति १,८६,००० मील प्रति सेकण्ड के हिसाब को हो जाती है और इतनी गर्मी पैदा होती है कि उसके तापमान में सख़्त से सख़्त धातु गलकर राख हो जाती है।

पिछले कई वर्षों से छोटे से अणु के अन्दर जो अथाह शक्ति छिपी हुई है उसे बाहर निकालने और उससे काम लेने में अथाह धन खर्च किया जा रहा था। दुनिया के बड़े से बड़े वैज्ञानिक मस्तिष्क इसमें लगे हुये थे। इस खोज का नतीजा भावी युद्धों पर कितना ज़बर्दस्त पड़ सकता था इसकी कल्पना करते हुये अमरीका की कारनेगी इन्स्टिट्यूट के प्रेज़ीडेण्ट ने सन् १९४२ में कहा था—"मैं आशा करता हूं कि इन लोगों को अणु की छिपी हुई शक्ति के पता लगाने में कभी कामयाबी न होगी, नहीं तो इन क्षुद्र-दृष्टि राजनीतिज्ञों के हाथों में यह शक्ति सभ्यता के लिये नरक की आग साबित होगी।"

किन्तु कारनेगी इन्स्टिट्यूट के प्रेज़ीडेण्ट की आकांक्षा उन्हींके देशवासी वैज्ञानिकों और 'क्षुद्र-दृष्टि राजनीतिज्ञों' ने झुठला दी। आज दुनिया के वैज्ञानिकों पर मानव विकास को अधोगति की ओर ले जाने की बहुत बड़ी ज़िम्मेवारी है। हमारी राय में इस युद्ध के सबसे बड़े मुजरिम गोअरिंग, रिबनट्राप और गावेल्स नहीं हैं बल्कि चाडविक और वे अज्ञरेज़, अमरीकी और कनाडी वैज्ञानिक हैं जिन्होंने एटम बम को ईजाद किया।

आज वैज्ञानिकों के सामने एक ज़बर्दस्त प्रश्न है। सर जे० सी० घोष लिखते हैं—"वैज्ञानिक लोग इन बुरे नतीजों की ज़िम्मेवारी से नहीं बच सकते। हर देश के शिक्षितों को अब यह समझ लेना होगा कि मानव जाति को केवल उन्नति के साधन दे देना ही काफ़ी नहीं है इससे कहीं ज़्यादा ज़रूरी यह है कि उन्हें इन साधनों का ठीक ठीक इस्तेमाल करना सिखाया जावे। हमारी पीढ़ी तक के वैज्ञानिक बुरी तरह नाकामयाब रहे। २५ वर्ष के अन्दर दो महायुद्ध हो चुके। तीसरे की सम्भावना की चर्चा शुरू हो गई है। इस छोटी सी पृथ्वी की सारी आबादी एक भयङ्कर तूफ़ान में फँसी हुई है। विवेक और बुद्धिमत्ता संसार से मिटती हुई दिखाई दे रही है। इन्सान दिन पर दिन दरिन्दा होता जा रहा है। इस आफ़त का कोई न कोई हल निकालना होगा। हमारे देश में महात्मा गान्धी इस आफ़त से निकलने के एक रास्ते की ओर संकेत कर रहे हैं। उनका कहना है कि अहिंसात्मक रहकर, जानबूझकर अपने ऊपर कष्ट लेना और कष्ट सहना ही इस आफ़त से बचने का एक मात्र उपाय है। इस तरह कष्ट सहन द्वारा ही दुनिया के सब आदमियों और सब क़ौमों में सामाजिक और राजनैतिक समता और न्याय क़ायम हो सकता है।"

आज दुनिया के बड़े से बड़े विचारक गम्भीरता के साथ तीसरे महायुद्ध की भयङ्करता की कल्पना मात्र से सिहर रहे हैं। ट्रुमैन और एटली भले ही इस धोखे में रहें कि एटम बम पर केवल एंग्लो-अमरीकन चौकी रहेगी पर विज्ञान का जो आविष्कार एक बार सफल हो जाता है उसे तक दूसरे वैज्ञानिकों के लिये एक नहीं तो दूसरे उपाय से पहुँच सकना अपेक्षाकृत बहुत सहल काम रह जाता है। सोवियत रूस के वैज्ञानिक सम्भव है एटम बम के और भी अधिक भयङ्कर रूप पर प्रयोग कर रहे हों। बक्तौल बर्नर्डशा के कोई ताज्जुब की बात न होगी कि किसी दिन हमारे ये प्रयोग हमारी पृथ्वी के इस ग्रह को ही सफ़ए हस्ती से उड़ा दें। क्या शैतानी क़ायनात के सिर्जनहार ये वैज्ञानिक समस्या की गभीरता पर एक दृष्टि डालेंगे?

## सुदूर पूर्व का भविष्य!

सुदूर पूर्व में एटम बम के घने कुहासे के बीच से अगर कोई आशा की प्रकाश-किरन हमें फूटती हुई दिखाई दी है तो वह सोवियत और चीन की दोस्ताना सन्धि है। सोवियत और चीन की स्थाई मैत्री सुदूर पूर्व की राजनीति में चीन को एक गौरवपूर्ण स्थान देने में समर्थ होगी और चीन एक दिन सुदूर पूर्व और एशिया के देशों से अमरीकन स्वार्थों को पूरी तरह हटाने में समर्थ होगा। सन्धि की शर्तों के प्रकाशन के बाद अब लोगों में सोवियत की नीयत पर किसी तरह का कोई सन्देह बाक़ी नहीं रह गया है, ज़ाहिर है सोवियत की ही मंत्रणा से उत्तरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की कम्यूनिस्ट सरकार के प्रधान माओ-त्से-तुङ जनरलिस्मो चियाङ्ग से सुलह की बातें करने चुङकिङ गये हैं। एक ज़माना था जब चियाङ्ग काइ-शेक ने माओ-त्से-तुङ के सर के लिये साढ़े सात लाख रुपये का इनाम रखा था पर आज वे उन्हें आदर के साथ चुङ्गकिङ्ग बुला रहे हैं। इस समय चीन का गृह युद्ध न केवल चीन के लिये बल्कि एशिया के लिए एक आत्मघाती क़दम होगा।

जहाँ एक ओर सोवियत इस उदार राजनीति से हमारे दिलों में एक विश्वास पैदा कर रहा है वहाँ ब्रिटेन बावजूद मज़दूर सरकार क़ायम होने के हाङ्ग-काङ्ग पर अपने क़ब्ज़े को दृढ़ रखने का फ़ैसला कर चुका है और शंघाई को भी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र बनाने की चर्चा कर रहा है। बर्मा, मलाया, सिंगापुर, डच हिन्द, फ्रेंच हिन्द-चीन, जावा आदि देशों पर फिर वही सड़ी हुई दकियानूसी ग़ुलामी की तौक़ पहनाये जाने की रसम पूरी की जा रही है। नतीजा यह है कि इन देशों की आबादी घोर असन्तोष से भर रही है। उनकी नज़रों में जापानी इतने अच्छे तो थे ही कि चाहे नाम मात्र को ही सही उन्होंने इन देशों की आज़ादी का ऐलान कर दिया था और युद्ध के अतिरिक्त तमाम शासन प्रबन्ध स्थानीय जनता को सौंप दिया था। रायटर समाचार एजेन्सी का कथन है कि इन देशों के लोगों की भावना यूरोप के देशों की पददलित भावना के विपरीत कहीं अधिक आत्म विश्वास की और स्वतन्त्र दिखाई दी। आज ये देश फिर से ग़ुलाम बनाये जा रहे हैं पर वह दिन बहुत दूर नहीं जब इन यूरोपीय साम्राज्य वादियों को ज़लील होकर वहां से निकलना पड़ेगा। अब तक हमारा नारा 'भारत छोड़ो' रहा है पर अब वह होगा—एशिया छोड़ो।

## कविवर मैथिलीशरण गुप्त की हीरक जयन्ती

११ अगस्त को देश के अनेक भागों में हिन्दी के महान कवि मैथिली शरण गुप्त की हीरक जयंती मनाई गई। कविवर मैथिलीशरण गुप्त १९१४ से हिन्दी की निरंतर सेवा करते आ रहे हैं। इनकी रचनाओं में 'भारत भारती', 'पञ्चवटी', 'जयद्रथ वध', 'साकेत', 'द्वापर', 'यशोधरा, 'नहुष' और 'कुणाल' प्रमुख हैं।

गुप्त जी आधुनिक हिन्दी काव्य की विविध धाराओं में अपनी काव्य प्रतिभा का उपयोग करते रहे हैं परन्तु उन्हें जितनी सफलता 'साकेत' तथा 'द्वापर' आख्यानक काव्यों में मिली उतनी अन्यत्र नहीं। आधुनिक गीत युग में वे प्रबन्ध काव्य लेखक हैं। उनकी भाषा उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही लोक भाषा से जीवन शक्ति लेने वाली सरल हिन्दी है। उन्होंने अपने राम को हिन्दुत्व के संकुचित वृत्त से निकालकर सब धर्मों एवं देशों के अनुरूप बनाया। हिन्दी काव्य की परम्पराओं में यह एक नवीनता है। उनकी 'भारत भारती' स्वयं तो विशेष ऊँचा काव्य नहीं है परन्तु उसमें वह शक्ति है जिससे बहुत से नवयुवक राष्ट्रीय कविता करने लगे। हिन्दी के इतने बड़े सेवी की रजत जयन्ती मनाई जाती यह सर्वथा आवश्यक था। आशा है गुप्त जी ने भाषा तथा राम के व्यक्तित्व में जिन नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया है हिन्दी विद्वान उनका समुचित अध्ययन और विकास करेंगे।

## स्वर्गीय श्यामसुन्दर दास

पिछली ७ अगस्त को हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डा० श्यामसुन्दर दास का देहावसान हो गया। मृत्यु के समय डाक्टर साहब की आयु ७० वर्ष की थी। श्यामसुन्दर दास की प्रतिभा चहुमुखी थी। वे सम्पादक, लेखक, रिसर्च स्कालर, अध्यापक और संस्थाओं के निर्माता थे। यदि उन्होंने हिन्दी की इतनी सेवा न की होती तो आज हिन्दी के रिसर्च स्कालर तथा साधारण विद्यार्थी अपने प्राचीन साहित्य के विषय में खोज करते हुए अँधेरे में फटफटाते होते। काशी नागरी प्रचारिणी सभा उनकी रिसर्च विषयक सेवाओं की प्रतीक है। यह संस्था आज भी हिन्दी की अमूल्य सेवा कर रही है। यों तो श्यामसुंदर जी ने हिंदी की सेवा विविध रूप से की है फिर भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा उनकी उज्ज्वलतम स्मृति है। पृथ्वीराज रासो पर उनकी खोज और शब्द सागर का उनका सम्पादन हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य निधि है।

डाक्टर श्यामसुन्दर दास ने अपनी आत्म कथा में भारत की प्रमुख भाषाओं का तुलनात्मक इतिहास लिखने की ओर संकेत किया है। आशा है निकट भविष्य में कोई विद्वान इस काम को पूरा कर एक महान राष्ट्र सेवी की इच्छा पूर्ति के साथ ही साथ राष्ट्र की भी सेवा करेगा।

ईश्वर दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

## देश की राजनैतिक परिस्थिति

शिमला सम्मेलन के भङ्ग होने के बाद हिन्दुस्तान के लोगों की यह मज़बूत धारणा बन गई थी कि अंगरेज़ सरकार मुसलिम लीग को शतरंज का मोहरा बनाकर देश की भावी प्रगति के तमाम रास्ते रोक रही है। एक खेल था ख़त्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हो गया पर यह स्थिति अंगरेज़ी कूटनीति के लिये भला कब सुखकर हो सकती थी ? अब फिर नई उम्मीदों का क्रम बांधा जा रहा है। मज़दूर भारत मन्त्री ने लाट वावेल को सलाह मशविरे के लिये लन्दन बुलाया है। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा और प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनाव क्रमशः नवम्बर और जनवरी में होने जा रहे हैं। मुसलिम लीग कमर कस कर मैदान में उतर चुकी है और कांग्रेस उतरने के उद्यम में है। हिन्दू सभा भी अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाने का उपक्रम कर रही है और राष्ट्रीय मुसलमान भी एक केन्द्रीय संगठन की ज़रूरत महसूस कर रहे हैं। कुछ प्रमुख कांग्रेसी मुसलमान मुसलिम जनता का रुख़ देखकर कांग्रेस से स्तीफ़ा दे रहे हैं। क्या करें बेचारे लोकमत से परेशान हैं। मुसलिम वोटरों से डर कर वे नया चोला बदलने पर तय्यार हैं—

क़द्र दानों का अजब रङ्ग है ज़माने में
बुलबुलों को ये तमन्ना है वे उल्लू न हुये !

मौलाना आज़ाद ने परिस्थिति को साफ़ करते हुये कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से भौगोलिक क्षेत्रों को हिन्दुस्तान से अलग होने के अधिकार की बात कही है। जवाहरलाल जी भी इसका समर्थन करते हैं। वे किसी भी धार्मिक जमात को अलग इकाई नहीं मानते। दुनिया में यह आज तक कभी नहीं हुआ। वैसी सूरत में हमारे यहां न केवल देश बल्कि हर प्रान्त, हर शहर, हर मुहल्ला पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में बँट जायँगे और सदा के लिये विदेशी साम्राज्यवाद का शिकंजा हमारे गले में पड़ा रहेगा। जैसे जैसे चुनाव क़रीब आता जा रहा है, हिन्दू मुसलिम फ़साद जो अब तक मुँह ढांपे पड़े थे अपना मनहूस सर उठा रहे हैं। इन दंगों से सब में ज़्यादा मदद हिन्दू सभा और मुसलिम लीग को मिलती है और तब मन में सन्देह होने लगता है कि—

कोई माशूक है इस परदए जिनगारी में।

हमारी नज़रों में सारा प्रश्न सिद्धान्त का है। वोटों का बहुमत किसी ग़लत बात को दुरुस्त नहीं बना सकता। ब्रिटिश साम्राज्यवाद आज अपने अन्तिम दाँव पेंच खेल रहा है पर उसकी यह कोशिश ज्यादा वक्त तक कारगर न होगी। ज़माने का ठेलमठेल हिन्दुस्तान को आज़ाद बनाकर रहेगा और साम्राज्यवाद की भ्रष्ट छाया के हटने पर देश के मुसलमान देखेंगे कि न सिर्फ़ हिन्दुस्तान की मुख़्तलिफ़ जातियों को यकजा होकर रहना है बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के मुक़ाबले में सारे एशिया के देशों को, फ़िलिस्तीन से लेकर कोरिया तक, एक ही झण्डे के नीचे खड़ा होना है। जो लोग उस महान दृश्य की कल्पना कर सकते हैं वे हमारी बधाई के पात्र हैं। पर जो अँधेरे में हड़बड़ा कर गिर रहे हैं उन पर हमें ग़ुस्सा नहीं बल्कि रहम करना चाहिये।

## तुर्की और सोवियत्

इधर अरसे से मध्य पूर्व की समस्या काफ़ी नाज़ुक और जटिल होती जा रही है। तुर्की और सोवियत की तनातनी बराबर गम्भीर रूप धारण कर रही है। एक ज़माना था जब तिरस्कृत और असहाय तुर्की को सोवियत सरकार ने सहारा देकर खड़ा किया और मज़बूत बनने में मदद दी थी। पर वह लेनिन का ज़माना था। मुस्तफ़ा कमाल जब तक जिये बराबर सोवियत की दोस्ती का दम भरते रहे। पर उनकी मृत्यु के बाद तुर्की की वैदेशिक नीति ने ब्रिटिश साम्राज्यशाही का दामन थाम लिया है। सोवियत और तुर्की के बीच झगड़े की जड़ दर्रे दानियाल, मार्मारा सागर और बासफ़ोरस की खाड़ी में सोवियत जहाजों का स्वच्छन्द प्रवेश है। तुर्की को सन् १९३६ के माण्ट्रू कन्वेन्शन में इन मुक़ामों पर शासन का अधिकार प्राप्त हुआ था। तुर्की इन मुक़ामों पर सोवियत के स्वच्छन्द आवागमन को पसन्द नहीं करता और परिणाम स्वरूप सोवियत् के जंगी जहाज़ काले सागर में क़ैद पड़े रह जाते हैं। जब रूस जर्मनी से ज़िन्दगी और मौत की लड़ाई लड़ रहा था उस समय भी तुर्की ने सोवियत की मदद के लिये लड़ाई के सामान को उस रास्ते से गुज़रने न दिया हालांकि वह जर्मनी को बराबर अपने यहाँ से क्रोमियम और दूसरी धातुएं देता रहा। सोवियत् उस कठिन परिस्थिति से बाहर निकल आया पर भविष्य के लिये वह तुर्की के इस रुख़ का एक बारगी ही फैसला कर लेना चाहता है। अंगरेज़ तुर्की को इसलिये उकसाये हुये हैं कि दर्रे दानियाल के खुल जाने से सोवियत को भूमध्यसागर में प्रवेश मिल जायगा जो अंगरेज़ी साम्राज्य के लिये कभी ख़तरनाक साबित हो सकता है।

हमें अफ़सोस है तुर्क राजनीतिज्ञ अब तक के समस्त इतिहास को भूल कर सोवियत के अहसानों और उसकी दोस्ती को ठुकरा कर ब्रिटिश कूटनीति के शिकार हो रहे हैं। हमारी नज़रों में तुर्की का लाभ सोवियत के साथ अटूट दोस्ताना सम्बन्ध क़ायम रखने में ही है वरना अङ्गरेज़ साम्राज्यशाही की वही कैफ़ियत होगी—

भुस में आग लगाय जमालो दूर खड़ी !

कहा नहीं जा सकता कि तुर्की के राजनीतिज्ञों की आँखें हुई अक़्ल जागेगी अथवा नहीं !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारतीय चीनी मिट्टियां

लेखक

पं० मनोहरलाल मिश्र एम० एस-सी०

[ सिरेमिक विभाग काशी विश्वविद्यालय ]

बेहद खोज और परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी गई है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने में बदल सकते हैं यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। चीनी मिट्टी और मिट्टी का व्यवसाय करने वालों के लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। २६० पृष्ठ की सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है। डाक खर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## विश्व-संघ की ओर

लेखक

**पण्डित सुन्दरलाल**

**और**

**श्री भगवानदास केला**

पृथ्वी के सब राष्ट्रों को मिला कर उनका एक संघ किन उसूलों पर क़ायम किया जा सकता है इस गम्भीर विषय पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विश्वव्यापी शान्ति चाहने वाले सब लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। ३०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपया, डाकखर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## आरसी-रचनावली

| | | |
|---|---|---|
| आरसी ( कविताएँ ) | ... | ६) |
| कविता ( कविताएँ ) | ... | ५) |
| लहरी ( कविताएँ ) | ... | २॥) |
| अनन्य ( कविताएँ ) | ... | २) |
| नई दिशा ( कविताएँ ) | ... | २) |
| किसलय ( कहानियाँ ) | ... | २) |
| खरा सिक्का ( कहानियाँ ) | ... | १॥) |
| पेड़ के पत्ते ( कहानियाँ ) | ... | १॥) |
| मन और यौवन ( कविताएँ ) | ... | १॥) |
| मेरा मामा ( कविताएँ ) | ... | १) |

**तारा मण्डल, मुजफ्फरपुर**

संस्कृति, साहित्य और कला की सन्देशवाहक

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

## विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

सम्पादक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य के ऊपर खोजपूर्ण गम्भीर निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक एक अंक संग्रहणीय—

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

**मैनेजर, विश्वभारती पत्रिका, हिन्दी भवन**

**पो० शान्तिनिकेतन (बंगाल)**


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बरसों की प्रतीक्षा के बाद आख़िर छप गई

## गीता और .कुरान

### लेखक : पण्डित सुन्दरलाल

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, .कुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर .कुरान की ४०० से ऊपर आयतों का लफ़्ज़ी तर्जुमा दिया गया है।

जो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्मों को समझना चाहें उनके लिये यह पुस्तक बहुत क़ीमती और बेमिसाल है।

२०० सफ़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल

**डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग**

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

पं० सुन्दरलाल जी की एक और नई पुस्तक

## हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

प्रकाशित हो गई

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म-भूमि फ़िलस्तीन की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के साथ साथ हिन्दुस्तान, चीन, ईरान इत्यादि दूसरे एशियाई देशों की उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक हालत के साथ हज़रत ईसा और उनके उसूलों का गहरा सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया गया है

मूल्य, डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

## "विश्ववाणी का एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है"—गान्धी जी

*महात्मा गान्धी जी ने कहा था—"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे।"*

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सर तेज बहादुर सप्रू, आचार्य क्षिति मोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० महादेव देसाई, क्यूरेटर-ब्रिटिश म्यूज़ियम ( लन्दन ), प्रो० तान युन-शान आदि सैकड़ों देशी और विदेशी सर्वमान्य नेताओं और विद्वानों ने गान्धी जी की उपर्युक्त राय को ही दोहराया है।

**विश्ववाणी के पुराने अङ्कों में देश और विदेश के चोटी के विद्वानों के गम्भीर और महत्वपूर्ण लेख भरे पड़े हैं। विश्ववाणी के विशेषाङ्कों का तो कुछ पूछना ही नहीं।**

**क्या आप के पास विश्ववाणी के बहुमूल्य विशेषाङ्क हैं ?**

**क्या आप विश्ववाणी के महत्वपूर्ण पुराने अङ्क ख़रीदना चाहेंगे ?**

हमारे पास 'टैगोर अङ्क', 'संस्कृति अङ्क' पहला भाग 'बौद्ध संस्कृति अङ्क', 'चीन अङ्क', 'जैन संस्कृति अङ्क', और 'अकबर अङ्क' की थोड़ी सी प्रतियाँ बची हुई हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर अङ्कों की भी कुछ प्रतियाँ और सन् ४२ और ४३ की एक दर्जन पूरी फाइलें बची हुई हैं। जिन सज्जनों को चाहिये फ़ौरन आज ही पत्र लिखें। जिस क्रम से आर्डर आवेंगे उसी क्रम से ग्राहकों को प्रतियाँ दी जाँयगी।

**मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# देशबन्धु

संपादक : पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक : विश्वम्भरनाथ

पुस्तकालय
कुल कांगड़ी

मूल्य ६) ]

अक्टूबर १९४५

[ एक अङ्क का ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बङ्गाल, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काश्मीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत।

# विषय सूची

[ अक्टूबर १९४५ ]


१—वन्दना ( कविता )—श्री 'करील' ... २६१

२—युग-पुरुष बापू ( कविता )—श्री रामकुमार चतुर्वेदी ... ... २६२

३—संस्कृत के राज्य का बादशाह—आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक ... ... २६३

४—चिर गौरव गांधी ( कविता )—श्री इन्द्रप्रताप तिवारी ... ... ... २६४

५—पिछली सहस्राब्दी में बङ्गाल का सांस्कृतिक सृजन—राय बहादुर ज्ञानशङ्कर प्रेमशङ्कर पड्या एम० ए०, एम० ओ० एल० ... २६५

६—भगवान महावीर और जैन धर्म—श्री जयभगवान जैन एडवोकेट ... ... २६९

७—जावा में प्राचीन भारतीय सभ्यता—श्री प्रकाशचन्द्र उपाध्याय एम० ए० ... २७७

८—शेष पत्र—डा० एन० एस० वर्द्धन ... २८१

९—गीत ( कविता )—कुमारी शैल रस्तोगी ... २९०

१०—महान ईरानी सम्राट अनुशीरवां—पं० सुन्दरलाल ... ... ... २९१

११—तूफ़ान चाहिए, मुझे तूफ़ान चाहिए (कविता)—श्री देवेन्द्र एम० ए० ... ... २९४

१२—सम्राट अकबर और जैन गुरु—श्री शिखरचन्द कोचर बी० ए० ... ... २९५

१३—क्रांति की पुकार ( कविता )—कुमारी लक्ष्मीदेवी गोयल ... ... २९७

१४—द्वन्दात्मक सत्कार्यवाद—श्री० रामचन्द्र जैन बी० ए०, एल-एल० बी० ... २९८

१५—प्रेम और कर्त्तव्य ( कविता )—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र एम० ए०, डी० लिट० ... ३०२

१६—फ़ाहियान की भारत यात्रा—श्री भगवती प्रसाद पांथरी एम० ए० ... ... ३०३

१७—गीत ( कविता )—श्री विद्याधर कुलश्रेष्ठ 'कुसुम' ... ... ... ३०६

१८—दश लक्षण पर्व—पं० गोविन्द राय शास्त्री ३०७

१९—साम्प्रदायिक समस्या : कारण और परिणाम—श्री० गार्गीशङ्कर मिश्र ... ... ३०९

२०—सम्प्रदायवाद और प्राचीनता की दुहाई—श्री रघुवीरशरण दिवाकर बी० ए० ... ३१३

२१—फ़रवरी सन् '४३ में बापू के अनशन पर ( कविता )—श्री शील चतुर्वेदी ... ३१५

२२—एक साधारण कहानी—श्री स्नेहांशु आचार्य ३१६

२३—याचना ( कविता )—श्री० उपेन्द्र ... ३१८

२४—खादी की कसौटी—आचार्य श्री विनोबा ... ३१९

२५—कविवर रसखान के अन्तिम दिन—श्री शम्भु प्रसाद बहुगुना एम० ए० ... ... ३२०

२६—कौन ( कविता )—श्री० जय जयराम टण्डन ३२२

२७—गांधी साहित्य के लिए एक योजना—श्री सिद्धराज ढड्ढा ... ... ३२३

२८—सेवाग्राम में एक क्रांतिकारी विवाह—प्रो० श्रीनारायण अग्रवाल एम० ए० ... ३२५

२९—दानी और याचक—श्री० लक्ष्मीनारायण भारतीय ... ... ३२९

३०—संस्कृति, कला और धर्म—कु० रज़िया नक़ी रायपुरी ... ... ... ३३०

३१—सुभाष ! ( कविता )—श्री नर्मदा प्रसाद अग्रवाल ... ... ... ३३

३२—दोस्ती—श्री राममूर्ति मेहरोत्रा एम० ए० ... ३३

३३—आज़ाद हिन्द सेना और आज़ाद हिन्द संघ— ... ... ३३

३४—चिट्ठी-पत्री ... ... ३४

३५—पुस्तक-परिचय ... ३४५

३६—सम्पादकीय विचार ...


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरी सन् १९४६ में

## विश्ववाणी का महान और बहुमूल्य ऐतिहासिक आयोजन

# अन्तर्राष्ट्रीय अङ्क

सन् १९१४ से लेकर सन् १९४५ तक दुनिया के राजनैतिक मञ्च पर जो महत्व पूर्ण घटनायें घटीं विश्ववाणी के पाठकों के लिये इस अङ्क में उनका सहज विवेचन और विश्लेषण किया जायगा और विविध राजनैतिक विचार धाराओं के अनुसार दुनिया के नव निर्माण के जो प्रयत्न हो रहे हैं उन पर प्रकाश डाला जायगा। इस अङ्क को पढ़कर दुनिया की विगत, वर्तमान और भावी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की जीती जागती तस्वीर पाठकों की आंखों के सामने खड़ी हो जायगी। हमारे इस महत्वपूर्ण और महान आयोजन में एशिया, यूरोप, अफ़रीका और अमरीका के प्रसिद्ध लेखकों, कवियों और विचारकों ने योग देने का आश्वासन दिया है। भारतीय समाचार पत्रों के इतिहास में, हमें विश्वास है, हमारा यह अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्न अद्वितीय साबित होगा।

## इस अङ्क के महत्वपूर्ण लेखक

| | | |
|---|---|---|
| प्रोफ़ेसर हैरल्ड लैस्की | प्रो० हीरेन्द्र मुकर्जी | प्रो० हचिन्सन |
| प्रो० जे० बी० एस० हाल्डेन | डाक्टर लतीफ़ दफ़री | डाक्टर लिन यू-ताङ्ग |
| प्रो० जा० कैटलिन | प्रो० नीरेन्द्र राय | श्रीमती एग्नेस स्मेडले |
| प्रो० मारिस डब्ब | प्रो० सुशोभन सरकार | श्री० अपटन सिनक्लेअर |
| श्री० किंग्सले मार्टिन | डाक्टर ताराचन्द | श्री० टामस मेन |
| श्री० फ़ेनर ब्राकवे | आचार्य गुरुदयाल मल्लिक | श्री० सम्पूर्णानन्द |
| श्री० एच० एन० ब्रेल्सफ़ोर्ड | श्री डी० एन० प्रिट | डाक्टर शशधर सिंह |
| श्री० जान स्ट्रेची | श्री० रेजीनिल्ड सोरेनसेन | प्रो० गोपाल हल्दार |
| श्री० विलियम गैलेचर | लार्ड बरट्रेण्ड रसेल | प्रो० तान युन शान |
| सरदार जे० जे० सिंह | श्री० हैरी पालिट | श्री० सत्येन्द्र मजुमदार |
| श्रीमती पर्ल बक | श्री० रजनी पाम दत्त | प्रो० सन्तोष वसु |
| श्री० रिचर्ड वाल्स | श्री० आइवर माण्टेगू | श्री० मंज़रअली सोख्ता |
| आचार्य नरेन्द्र देव | श्री० विलियम रस्ट | श्री० लैंग्सटन ह्यूजेज़ |
| डाक्टर मेघनाद साहा | प्रो० राय पासकल | कुमारी ज़ोरा नील हर्स्टन |

इनके अतिरिक्त और अनेक नेताओं और विद्वानों से लेखों की प्रार्थना की गई है। कागज़ के नियन्त्रण के कारण सीमित संख्या में ही यह अङ्क छप रहा है। ग्राहकों और एजेण्टों से प्रार्थना है कि वे ३० नवम्बर तक अपने लिये इस अङ्क की प्रतियां रिज़र्व करालें। एक बार जांच कर और चेक करके यह अङ्क ग्राहकों को रवाना किया जायगा। रास्ते में इसके खो जाने पर हम ज़िम्मेवार न होंगे। जो ग्राहक चाहते हों कि उनका यह अङ्क रास्ते में पोस्ट आफ़िस के भूत न चुरालें वे ≡॥) के टिकट हमारे पास भेज दें ताकि हम उनका यह अनमोल अङ्क रजिस्ट्री कराके भेज सकें।

**यह महत्वपूर्ण अङ्क हिन्दी साहित्य की अन्तर्राष्ट्रीय-निधि होगा**

**२०० पृष्ठों के इस विशेषाङ्क का मूल्य होगा २) रुपया**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## हमारे दो नये
## महत्वपूर्ण प्रकाशन

### "उन्मुक्त प्रेम"

लेखक—श्री गुरुदत्त एम० एस-सी०

'स्वाधीनता के पथ पर' और 'पथिक' के बाद लेखक का यह तीसरा उपन्यास है। इसमें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के असामाजिक रूप पर प्रकाश डालते हुए मज़दूरों व अन्य नागरिकों की वर्तमान सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक स्थिति को सुधारने के उपायों पर रोचक शैली में प्रकाश डाला गया है। पुस्तक में गम्भीर समस्याओं के विवेचन के साथ-साथ हास्य-रस का पुट भी जहाँ-तहाँ दे दिया गया है। पतले टाइप के लगभग पौने पांच सौ पृष्ठों के इतने बड़े सजिल्द उपन्यास का मूल्य केवल छै रुपये।

### "बच्चों की आदतों का विकास"

लेखक—श्री प्रो० राममूर्ति मेहरोत्रा एम० ए०

यह पुस्तक वर्षों के बाल-निरीक्षण, अध्यापन तथा अनुभव के बाद लिखी गई है। इसमें बच्चों के खेलों, सह-शिक्षा, काम शिक्षा, झूठ बोलना तथा चोरी करना आदि समस्याओं का सुन्दर विवेचन है। सभी अध्यापकों तथा बच्चों के अभिभावकों को यह पुस्तक एक सच्चे पथ-प्रदर्शक का काम देगी। मूल्य केवल दो रुपये

**विद्या मन्दिर लिमिटेड**

**कनॉट सरकस, नई देहली**



सामाजिक क्रान्ति का दिव्य शंख फूंकनेवाली और राष्ट्रवाद का प्रतिपादन करनेवाली अद्वितीय पुस्तक

मूल्य एक रुपया

## राष्ट्र धर्म

डाकख़र चार आ

जिसे हिन्दी के सुप्रसिद्ध और यशस्वी पत्रकार श्री पं० सत्यदेवजी विद्यालंकार ने जेल की चहारदीवारी में बैठे हुए अपनी लौह-लेखनी से लिखा था, उसका यह दूसरा परिवर्धित संस्करण अभी प्रकाशित हुआ है।

धार्मिक अन्ध-विश्वास और सामाजिक रूढ़ियों की मूढ़ता को जड़-मूल से नष्ट करने वाली इस अनोखी पुस्तक की आधी प्रति प्रकाशित होने के साथ ही बिक चुकी है। अतः आप शीघ्र ही अपने लिये एक प्रति मंगा लें।

**पुस्तक मिलने का पता—**

(१)—मंत्री, मारवाड़ी प्रगति संघ, ४०-ए, हनुमान रोड, नई दिल्ली

(२)—मंत्री, बुद्धिवादी संघ, ४६, स्ट्राण्ड रोड, कलकत्ता

(३)—किताब घर, जोधपुर (राजपूताना)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

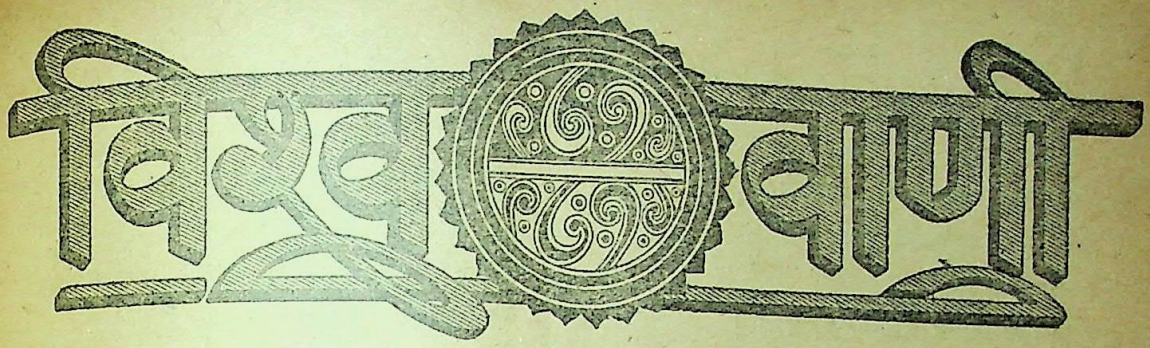


वर्ष ५, भाग १० ] अक्टूबर : १९४५ [ अङ्क ४, पूरे अङ्क ५८

# वन्दना

श्री 'करील'

( १ )

तुम जीवन के जागृत स्वरूप ! तुम नव यौवन के महायोग ।
तुम महामुक्ति के मंजु बोध ! तुम इस वसुधा के पुण्य भोग ॥
तुम पौरुष के पावन विकास ! तुम अक्षय रस के सुख सुयोग ।
तुमने आगे बढ़ पहचाना इस मानवता का मलिन रोग ॥
तुम विश्व वंद्य, तुम महाराध्य, तुम वीर व्रती, तुम यशोधाम ।
हम दीन, दुखी, दुर्बल, गुलाम कर रहे तुम्हें सादर प्रणाम ॥

( २ )

तुम आज़ादी के दिव्य दूत, परतंत्र देश के युद्ध-घोष ।
तुम समर शक्ति के चारु स्वप्न, चालीस कोटि के महारोष ॥
तुम रस के निर्झर महाप्राण, भारतमाता के परम तोष ।
तुम ममता के मंजुल प्रकाश, तुम मधुरामृत के सरस कोष ॥
हम आज तुम्हारे देशबन्धु, हम दीन, दुखी, दुर्बल, गुलाम ।
अपने ये निर्बल हाथ जोड़ कर रहे तुम्हें सादर प्रणाम ॥

( ३ )

जिस दिन तुमने था बजा दिया वह स्वतन्त्रता का दिव्यशङ्ख ।
भारत के आहत जीवन में उस दिन सहसा लग गये पङ्ख ॥
ये जाग पड़े सुख के साधन मिट गए भाग्य के दुष्ट अङ्क ।
दासत्व गिरा खाकर पछाड़ वह देख तुम्हारी दृष्टि बङ्क ॥
तुम अपनी माँ के वरद पुत्र, तुम त्यागमूर्ति, योगी अकाम ।
हम आज खड़े सब हाथ जोड़, स्वीकार करो सादर प्रणाम ॥

( ४ )

जीवन का करके महावरण नश्वर काया का मोह छोड़ ।
परतंत्र देश में जन्म प्राप्त जन जन से निज सम्बन्ध जोड़ ॥
पा परम तत्त्व की वर विभूति पाकर वैभव का वरद क्रोड़ ।
गरजे तुम लेकर रोष-कोष माँ के दृढ़ बन्धन तोड़ फोड़ ॥
तुम प्रलयङ्कर, तुम शिवशङ्कर, तुम मृत्युंजय, तुम शक्तिधाम ।
स्वीकार करो, स्वीकार करो, स्वीकार करो सादर प्रणाम ॥

( ५ )

हो गया तुम्हारे प्राणों से हे आर्यश्रेष्ठ, भव प्राणवान ।
बन गई तुम्हारी यशोराशि इस भूतल का सम्बल महान ॥
बरसी धरती में रस धारा पाकर तुमसे नव काव्य गान ।
हिल गये विश्व के रुद्ध हृदय, खुल गये विश्व के बधिर कान ॥
तुम वृद्ध सिद्धि के मुक्तयोग, तुम पूर्ण सिद्ध, तुम पुण्य काम ।
उन्मुक्त हृदय से हम सबका स्वीकार करो सादर प्रणाम ॥

( ६ )

ले आज करोड़ों की ज्वाला, ले आज करोड़ों की पुकार ।
ले आज करोड़ों की आशा ले आज करोड़ों के विचार ॥
उमड़े तुम बल-बलिदान लिये, जागा जागृति का सुप्रसार ।
यह भाग्य भरा पथ प्रगतिशील बन गया मनोरम निर्विकार ॥
सर्वत्र तुम्हीं जीवो, जागो, हे मानवेन्द्र, हे मुक्तकाम ।
हम कोटि-कोटि परतंत्र पुरुष करते तुमको सादर प्रणाम ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# युग-पुरुष बापू !

श्री रामकुमार चतुर्वेदी

जग के वसन्त ओ ! मेरे युग के निर्माता !

( १ )

युग-युग की गहरी रजनी की मूर्छा जागी,
नभ ने ऊषा से नवयुग की लाली मांगी ;
फिर नव भावों की विहग-बालिकाएं बोलीं,
फिर नए पात ले जीवन की लतिका डोलीं !
चल उठा पूरबी पवन नया संदेश लिए
स्वर उठा तुम्हारा रवि किरणों में लहराता !
जग के वसन्त०

( २ )

रे ! सहसा ही सागर का क्रन्दन शांत हुआ,
जग की ज्वाला का गान रुका, कुछ क्लांत हुआ;
विस्मित होकर देखने लगे भूडोल तुम्हें,
माँ की झोली के रत्न ! उठा युग तोल तुम्हें !
ले सके तुम्हारी थाह नहीं शत-शत मांझी,
तुम क्षीरसिंधु से हो जोड़े बैठे नाता !
जग के वसन्त०

( ३ )

तुम चले, घृणित अत्याचारों की नींव हिली,
तुम जले साधना में, शोषण की देह जली;
तुम हंसे, जगत के मुख पर तब मुस्कान खिली,
तुम दुखी हुए, जग में आंसू की धार मिली !
तुम बलिदानों के भिक्षु अभय-वर के दाता !
तुम पारस हो; जो छूता कंचन बन जाता !
जग के वसन्त०

( ४ )

तुम अडिग तपस्वी, अमर सङ्गठन के प्रतीक,
तुम खींच रहे हो देश-प्रेम की अमिट लीक;
तुम हंसे, हथकड़ीं और बेड़ियां टूट गईं,
कारागारों की दीवारें बन झूठ गईं !
तुम स्वार्थहीन, निर्भय, अपनी धुन के पक्के,
तुम सत्य-भक्त, निर्बल के बल, जग के भ्राता !
जग के वसन्त०

( ५ )

आंधियां चलीं, तूफ़ान उठे, कांपा अम्बर,
विद्रोह भरी लहरें लेकर उमड़ा सागर,
फिर दमन-चक्र चल उठा स्वयं निर्माता-सा,
तुमने अपना उर बढ़ा दिया ले क्षमता-सा !
साम्राज्यवाद का दुर्ग धंसकने लगा स्वयं;
दुश्मन के घर जयकेतु तुम्हारा लहराता !
जग के वसन्त०

( ६ )

तुम हम सब की ही भांति धूल में ही खेले,
तुमने भी जीवन भर हम-से ही दुख झेले;
पर जिस पथ पर हम एक बार भी बढ़ न सके,
तुमने उस ज्वालामय पथ पर निज चरण रखे !
जल-से निर्मल, तुम तरल-सरल सरसिज जैसे,
गा रहे अहिंसा गीत जिसे कण-कण गाता !
जग के वसन्त०

( ७ )

कवि की वाणी में शक्ति नहीं जो कुछ गाए,
कल्पना-विहग विस्तृत नभ में क्या उड़ पाए !
जीवन के धन ! तुम युग-युग तक जीते जाओ,
हो नीलकंठ घट-घट का विष पीते जाओ !
कवि देख रहा अपलक श्रद्धा का घट लेकर,
संसार तुम्हारे चरणों में झुकता जाता !
जग के वसन्त०

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# संस्कृति के राज्य का बादशाह !

[ मौलाना आज़ाद से एक भेंट ]

आचार्य श्री गुरुदयाल मल्लिक

अपने मुल्क की महान् आत्माओं के दरस-परस की साध हर इनसान को हुआ करती है। कारण यह है कि अपने चित्त के किसी अवचेतन कोने में वह इस सत्य में विश्वास रखता है कि नाम और शोहरत के कोलाहल से दूर, जहां आदमी सिर्फ़ इनसान ही हुआ करता है, वहां उस महान् आत्मा के दर्शन से वह बहुत कुछ सीख सकेगा; केवल इतना ही नहीं, वह दर्शन उसके भीतर ऐसी आकांक्षा जगा देगा जिसके प्रकाश में वह अपने भी जीवन की विशेषता को—अद्वितीयता को—थोड़ा-बहुत विकसित कर सकेगा। महानता का सार-धर्म ही तो इस अद्वितीयता का पूर्णतर विकास है। सोए हुए और ख़ामोश सत्य का जाग उठना—बोल उठना ही तो महानता का सच्चा परिचय है।

अतएव यह स्वाभाविक—वरन् अनिवार्य—ही था कि जब मैंने अपने हिमाचलवर्ती पड़ोस में राष्ट्रपति के आगमन का शुभ संवाद पाया तो भीतर की बड़ी पुरानी और संचित इच्छा ने उनके दर्शन के लिये मुझे बहुत उत्कंठित कर दिया। सो एक रोज़ गुलमर्ग ( काशमीर ) की किंचित् ऊंची सी पहाड़ी पर स्थित उस कुटीर की ओट में चल दिया, जहां जनाब मौलाना आज़ाद ठहरे हुए थे। वे मातृ भूमि की सेवा में न्यौछावर किए हुए जीवन के इतने लम्बे वर्षों के अस्वास्थ्य और थकान को किंचित् मिटाने की ग़रज़ से ही काशमीर आए हुए थे। उत्सुक और उत्फुल्ल भावों के साथ जब मैं कुटिया के द्वार पर पहुँचा तो उनके आरकेट सेक्रेटरी जनाब अजमल ख़ाँ साहेब ने बड़े प्यार से मेरा स्वागत किया। शान्तिनिकेतन में रहते हुए ही मैं ख़ाँ साहेब से घनिष्ट हो गया था। अरसा हुआ जब वे कविगुरु रवीन्द्रनाथ की विश्वभारती के विद्या भवन की इस्लामी-शाखा में शोध का कार्य कर रहे थे। इसलाम धर्म और संस्कृति के वे पण्डित हैं; उनकी मुस्कान में ही इसलाम की प्रजातांत्रिक भावना और उदार भ्रातृ-भाव का प्रकाश मिला। दीर्घ काल के बाद उनसे मिलते ही पुराने दिनों की स्मृतियां तेज़ी से जाग उठीं और गुरुदेव के सान्निध्य में बिताए हुए शांत दिनों की याद हमें बार बार आने लगी।

यह प्रसंग अभी चल ही रहा था कि कमरे में मौलाना साहेब तशरीफ़ ले आए। मुझे यह समझना बाक़ी न रहा कि इस तरह गौरव और शान से प्रवेश करनेवाला यह व्यक्ति सचमुच ही संस्कृति के राज्य का बादशाह है। हम दोनों ही स्वाभाविक श्रद्धावश उठ खड़े हुए। उन्होंने मेरी ओर अपना सुदीर्घ दाहिना हाथ बढ़ा दिया। मैंने उसे अपने दोनों हाथों में ग्रहण करके अपने अवनत मस्तक से लगा लिया। उनकी अंतरात्मा की धन्यता का मुझे संस्पर्श मिला, प्रसाद मिला। उन्हें सोफ़े पर बिठाकर मैं भी बैठ गया।

जब मौलाना साहेब कमरे में आए तब उनके विचार, वितर्क और अवकाश की सच्ची संगिनी—सिगरेट—उनके साथ थी। किन्तु धुएं के छोटे-छोटे घुमड़ते हुए मेघों से भी, यह सम्भव नहीं था कि उनके दीप्त कपाल को छुपा सकें। हिमालय की उत्तुङ्ग—शुभ्र शोभा को सघन श्यामल उपत्यकाएं भी आख़िर कहां छुपा पाती हैं!

इच्छा से हो अथवा अनिच्छा से, राजनीति ने अपना दुर्ग मुझमें कभी नहीं जमाया। ठोक-पीटकर भी मैं उस क्षेत्र का कविराज नहीं बन सका। अतएव शिमला कान्फ्रेंस और उसकी 'असफलता' का राग मुझसे नहीं छेड़ा गया। वे स्वास्थ्य-लाभ के लिये आए थे, अतएव किसी पंडिताऊ पंचायत या मज़हबी शास्त्रार्थ में उन्हें व्यस्त करने की अपेक्षा प्रकृति माता की मौन गोद में विश्राम करने के लिये छोड़ देना उचित जान पड़ा। अतएव मैंने उन्हें काशमीर का एक हाल का सुना हुआ लोक गीत सुनाकर उसका हिन्दी हिन्दुस्तानी में तर्जुमा किया। गीत का आशय यों था कि एक बार परमात्मा ने मनुष्य को अपने रू-ब-रू बुलवा भेजा। मनुष्य ने हाज़िर होकर नतमस्तक होकर भगवान् को प्रणाम किया। इस पर भगवान ने उसे आदेश दिया कि उसे सभी ओर मुँह करके प्रणाम करना चाहिए—उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम—चारों दिशाओं में अपना नमस्कार निवेदन करना चाहिए। मनुष्य ने ऐसा ही किया और तब उसके अन्तर में यह अनुभूति सत्य हुई कि परमात्मा सर्वव्यापी है।

सुनते-सुनते मौलाना साहेब का अन्तर स्पष्टतया भर आया। फ़ारसी काव्य के अपने अशेष भाण्डार से उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं भी मुझे एक छोटी-सी कविता सुनाई। अर्थ यह था कि परमोच्च के निकट हम जब अवनत होते हैं तो हमारे सिर की मुद्रा महत्वपूर्ण नहीं होती; होते हैं भीतर के भाव; हमारी आराधना का रूप चाहे जैसा हो, अन्तर का सार ही सबसे अधिक प्रगतिपूर्ण होना चाहिए। वे मुझे मरमी सन्त की तरह मर्म समझा रहे थे, मौलवी की तरह नहीं। मैंने जाना कि मौलाना साहेब केवल संस्कृति की आत्मा ही नहीं हैं वरन् अपनी आत्मा को उन्होंने खूब ही सुसंस्कृत किया है। रत्न को भागवत् जौहरी के चरणों में रखने के पूर्व उन्होंने मांज धोकर और भी चमका दिया है। यह जैसा-तैसा आत्म निवेदन नहीं है।

तभी अनायास ही मेरी दृष्टि खिड़की के बाहर समुच्च गिरि-शृङ्गों पर जा पड़ी। पाइन के लम्बे और शानदार दरख्तों को सुबह के सूरज की सुनहली रोशनी ने जादू का स्पर्श दान किया था। प्रकृति के राज्य में महाशिल्पी का सुकुमार हाथ हर घड़ी सौन्दर्य की नयी दौलत बखेर देता है। समय हुआ आता था। मैं विदा लेने के लिये उठ खड़ा हुआ। तभी सहसा मुझे अनुभव हुआ कि उनकी दीर्घायत लम्बी देह और महाशिल्पी माईकेल एंजलो के शुभ्र संगमर्मर की याद दिलानेवाले सफेद केशों से मंडित सुघड़ मुख के साथ बाहर के उन ऊंचे-ऊंचे वृक्षों की सुनहली आभा की कहीं गहरी दोस्ती है। दोनों पर एक उजाला फैला है जिसका पवित्र उत्स शायद एक ही है।

अस्तु। जब मैं चक्करदार पथ से अपनी कुटिया की ओर लौट रहा था, उस समय राजाधिराजों के दरबारों के मखमली क़ालीनों को लज्जित करनेवाली हरी दूब सुनहली की वनभूमि पर अपना दुलार फैलाए थी। मेरा हृदय खुशी से भरा हुआ था। मैंने अपने अवकाश का यह तनिक-सा समय उस व्यक्ति के संस्पर्श से धन्य किया था जिसका त्याग दो संप्रदायों के लिये सेतु और मुल्क की आज़ादी के लिये बुनियाद की तरह है। जो लोग जीवन संग्राम में जाने--अनजाने—कभी 'आत्मा' की दुहाई देकर तो कभी हिसाब-किताब की खतौनी करके--कायर रहना ही पसन्द करते हैं उनके लिये वे जीवित प्रेरणा के समान हैं। किसी मित्र के पूछने पर कि सेहत के ख़्याल से देश सेवा में कुछ संयत करना क्या ज़रूरी नहीं है, उन्होंने जो उत्तर दिया था वह भुलाए नहीं भूलता, "जब कर्तव्य का आह्वान आता है तब चैन और आराम की बात सोची नहीं जाती—तब बजूहातों को भुलाना ही होता है।" देश की आज़ादी की तरफ़ जानेवाले जहाज़ का कर्णधार जब ऐसा हो तब न चट्टानों का ख़ौफ़ रह जाता है और न बंधनों का डर!

"रात की क्या बात है, प्रहरी, बताना।
रात बीती जा रही है, भय न लाना।"

---

# चिर गौरव गाँधी !

श्री इन्द्रप्रताप तिवारी

ओ मूक राष्ट्र की अमर गिरा;
ओ आज़ादी के चिर सुहाग;
शत शत कड़ियों में बन्दी मां के सुभट लाड़ले !

पद-दलित देश के चिर गौरव
निष्प्राण जाति के अजर प्राण।

तुमने देखा, ओ डेढ़ पसलियों के तापस
अधमरी सिसकती जननी को !

तुमने देखा ओ भागीरथ
तुमने देखा, तुम गरज उठे—
फिर गूँज उठा चालीस कोटि का अभय नाद !

तुमसे दधीचि के प्राणार्पण से
निर्माणित यह राष्ट्र-चाप !
ओ अडिग पथिक !
तुमने इस असि-धारा पथ पर कितने दारुण दुख दर्द सहे
उत्ताप झकोरों में बढ़कर
जन हित कितने आघात सहे !
यह राष्ट्र रहेगा ऋणी तुम्हारा युग युग तक ओ अभिनायक
इस निविड़ तिमिर के ध्रुव प्रकाश;
ओ सत्य अहिंसा के नायक !
युग युग तक मानव ऋणी रहेगा।
चिर प्रकाश ! ओ चिर नवीन !

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पिछली सहस्राब्दी में बङ्गाल का सांस्कृतिक सृजन

रायबहादुर ज्ञानशङ्कर प्रेमशङ्कर पण्ड्या एम० ए०, एम० ओ० एल०

आजकल के इतिहास लिखनेवाले इस बात को मानने लगे हैं कि सभ्यता के किसी एक अङ्ग पर सही सही राय ज़ाहिर करने के लिये उस सभ्यता की पूरी पूरी जानकारी ज़रूरी है। संस्कृति की भिन्न भिन्न शाखाओं का तुलनात्मक अध्ययन यह बात साफ़ कर देता है कि लोग किन ख़ास ख़ास बातों में आगे बढ़े और किन ख़ास ख़ास बातों में पिछड़े रहे। बङ्गाल आजकल हिन्दुस्तान के सबसे अधिक आगे बढ़े हुये सांस्कृतिक प्रदेशों में गिना जाता है; किन्तु यदि हम बङ्गाल के पिछले इतिहास को ही लें तो पता चलता है कि बङ्गाल की संस्कृति का पूर्णता के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना तो दूर रहा उसके सब पहलुओं का अध्ययन भी अभी तक नहीं किया गया। बङ्गाल के लगभग सभी इतिहासकारों ने प्राचीन संस्कृति के केवल दो पहलुओं—राजनैतिक इतिहास और साहित्य की छानबीन की है। हमारे सभी विद्वानों ने केवल इन्हींकी शोध में अपनी सारी ताक़त लगा दी है।

## मुसलमानों से पहले का ज़माना

बङ्गाल का वास्तविक सांस्कृतिक इतिहास पाल साम्राज्य के साथ शुरू होता है। जब मौर्यों ने छोटे छोटे गण राज्यों की जगह एक पुख़्ता साम्राज्य क़ायम किया तो बाहरी दुनिया के साथ हिन्दुस्तान के कलचरल राहोरस्म के दरवाज़े खुल गये। इस कल्चरल आदान प्रदान का एक ख़ास नतीजा यह हुआ कि लोगों में निर्माण कला और मूर्ति कला की एक सृजनात्मक बाढ़ सी आ गई। इसके पहले राजगृह ही भारतीय संस्कृति का केन्द्र था जहां पर पत्थर की पुरानी दीवालों के अवशेष इस बात की गवाही देते हैं कि भारत में यहीं सबसे पहले पत्थर काटकर दिवाल बनाने का उद्योग शुरू हुआ। मौर्यों के ज़माने में ही अनेक स्तूप और विहार बने जिनकी चर्चा चीनी यात्रियों ने अपने भ्रमण-वृत्तान्तों में की है। वे पौण्ड्रवर्धन और समबात में भी अशोक के स्तूपों का ज़िक्र करते हैं किन्तु उनके कोई चिन्ह आज दिन नहीं पाये जाते। कौटिल्य ने बङ्गाल के रेशमी और सूती वस्त्रों का ज़िक्र अपने ग्रन्थों में किया है। समकालीन रचनाओं में बङ्गाल की अर्ध-मागधी नाटक पद्धति का भी ज़िक्र आता है किन्तु वह पद्धति क्या थी इसे निश्चित रूप से इस समय कोई नहीं बता सकता।

गुप्तों के उत्कर्ष से बौद्धधर्म की प्रगति को एक धक्का सा लगा, क्योंकि गुप्त कालीन ताम्र पत्रों को देखने से यह साफ़ हो जाता है कि गुप्त सम्राट विष्णु के उपासक थे। फिर भी बौद्ध धर्म उस समय बिलकुल नष्ट नहीं हो गया था क्योंकि नालन्द महाविहार ( महाविहार के लिये 'यूनिवर्सिटी' शब्द उपयुक्त पर्यायवाची नहीं है ) उसी समय क़ायम हुआ था और उस समय की गुप्तकालीन मूर्ति कला का सबसे सुंदर नमूना सुल्तानगञ्ज में पाई हुई बुद्ध की एक ताम्बे की मूर्ति है।

गुप्तकाल में ही पुराणों का नये सिरे से संशोधन हुआ, संस्कृत नाटकों की रचना हुई और भारतीय कला-परम्परा अजन्ता, बाघ, सिगरिया और सित्तनवासल के भित्ति-चित्रों में अपने सर्वोत्कृष्ट रूप पर पहुँची। कला का इनकी जोड़ का कोई उत्कृष्ट रूप हमें बङ्गाल में नहीं दिखाई देता। इसलिये ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में यदि हम बङ्गाल की पूर्व-मुसलिम संस्कृति को ८ वीं से १३ वीं सदी तक, फैले हुये पाल साम्राज्य के समय तक, यानी ५०० वर्षों तक सीमित मानें तो कोई बेजा बात न होगी। तेरहवीं सदी के बाद से बङ्गाल में स्वतन्त्र सुलतानी राज्य क़ायम हो जाता है।

मुसलमानों से पहले के बङ्गाल में दो अलग अलग सामाजिक और राजनैतिक वर्ग थे। एक वर्ग में शासन सूत्र चलानेवाले राजकीय भृत्य, अमीर उमरा और दरबारी सभासद थे, जो राजकीय अधिकार पाकर राजकीय नियमों के अनुसार शासन सञ्चालन में मदद देते थे। दूसरा वर्ग गांवों में रहनेवाला, बिरादरियों और ग्राम-पंचायतों द्वारा जात-पांत की मर्यादाओं और धार्मिक व्यवस्थाओं द्वारा शासित होता था। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि पाल साम्राज्य की बुनियाद सार्वजनिक सहमति के सिद्धान्त पर पड़ी। उसका पहला राजा गोपाल जनता द्वारा ही चुना गया था।

इस काल के सांस्कृतिक केन्द्रों का इतिहास भी काफ़ी दिलचस्प है। संस्कृत ही उस समय की दरबारी भाषा थी जिसमें बौद्धों ने भी अपने ग्रन्थ लिखे हैं। उस समय के बङ्गला साहित्य पर दरबारी असर का न होना यह ज़ाहिर करता है कि उस समय के अमीर-उमरा बङ्गला साहित्य को ओछी नज़र से देखते थे। बङ्गला भाषा बौद्ध भिक्खुओं और नाथ सम्प्रदाय के सन्यासियों के काम आती थी—जो जनता में अपने अपने मतों का प्रचार करते थे। निर्माण कला और मूर्तिकला उस समय शहरों में राजाओं और अमीर उमराओं के संरक्षण में बढ़ती थीं और चित्रकला



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पण्डितों और पुरोहितों के काम आती थी जो अपने ग्रन्थों को उससे सजाते थे और विहारों को उससे अलंकृत करते थे।

## निर्माणकला

बङ्गाल के उस समय के मन्दिरों की निर्माणकला की अपनी विशेषताएं थीं। हालांकि मन्दिरों का भवन-निर्माण साधारण होता था किन्तु उनमें संगतराशी और नक्काशी प्रचुर मात्रा में होती थी। ईंट और पत्थर दोनों ही इमारत बनाने के काम में आते थे और कभी कभी उनमें लकड़ी का काम भी होता था।

राजशाही ज़िले में पहाड़पुर की खुदाई में एक बहुत बड़ा बौद्ध मन्दिर निकला है जिसकी भीतरी और बाहरी दीवालों पर अनेक मूर्तियां बनी हुई हैं। उस ज़माने में पजावे की ईंटों का इस्तेमाल भी होता था। बाद में उनकी जगह इनैमल्ड ईंटों ने ले ली।

## शिल्पकला

तत्कालीन बङ्गाली शिल्पियों में धीमान और बितपाल के नाम प्रमुख हैं। उनके नाम के साथ एक नई शिल्प प्रणाली सम्बन्धित है। उस समय के जो कला-अवशेष मिलते हैं उनसे पता चलता है कि शिल्प-चातुर्य्य में बङ्गाल की अपनी ऊँचे दरजे की मौलिक विशेषतायें थीं। प्राचीन बङ्गाल के शिल्पियों के कौशल की मिसालें यदि देखनी हों तो शिवबाड़ी की बौद्ध मूर्ति, बघौड़ा और सागरदीघी की वासुदेव की मूर्तियाँ, विक्रमपुर की नटराज की मूर्ति और वारेन्द्र की चाँदी और मिट्टी की बनी बोधिसत्व की मूर्तियाँ देखनी चाहियें। वारेन्द्र चर्चिका और अट्टहास की चामुण्डा मूर्तियों को देखकर मन में भय और आतङ्क की भावना पैदा होती है। हालांकि कुछ अंशों में ये मूर्तियाँ कुरूप हैं पर वीभत्स नहीं हैं और उनसे शिल्पी की दृढ़ता और निश्चिन्तता टपकती है। व्यक्तिगत रूप से कलाकार को इस बात की स्वतन्त्रता थी कि वह शिल्प शास्त्र के नियमों और उसकी परम्परा से बाहर जा सके। इसकी मिसाल हमें विजयसेन की बनाई हुई देवपाद की प्रद्युम्नेश्वर शिव की प्रतिमा में मिलती है जिसे कलाकार ने कल्प-वेश (फैन्सी ड्रेस) से विभूषित किया है। बङ्गाल की अधिकांश नटराज की मूर्तियाँ नन्दी की पीठ पर नृत्य करती हुई मिलती हैं। दक्षिण भारत में इस रूप में शिव की मूर्तियाँ नहीं मिलतीं। राधिका और गोपाल की आलिंगन मयी मूर्तियाँ भी बङ्गाली कला की विशेषता हैं।

मन्दिर की निर्माणकला में कामुक दृश्यों का भी प्रचलन था। उस समय के प्रचलित बौद्ध दर्शन का गूढ़ रहस्यवाद देवताओं और देवियों को जोड़े के रूप में चित्रित करता था।

बङ्गाली वास्तुकला में कुछ तान्त्रिक मूर्तियों की आंखों में जो मङ्गोल प्रभाव ढूँढ़ा जाता है उसकी पूरी पूरी पुष्टि नहीं होती।

बङ्गाली शिल्पी तांबा, कांसा, लकड़ी आदि का काम भी उतना ही कलापूर्ण करते थे। सबसे प्राचीन तांबे की तख़्ती बङ्गाल में ही मिली है और बंगाल का कांसे का कलापूर्ण काम किसी दूसरे प्रान्त की अपेक्षा पिछड़ा हुआ नहीं है। "पवनदूतम्" में लकड़ी की खुदाई के काम का ज़िक्र आता है।

## चित्रकला

जैसा हम ऊपर कह आये हैं भारतीय चित्रकला का विकास बौद्ध भिक्खुओं द्वारा हुआ। चीनी उल्लेखों से पता चलता है कि नालन्दा में सूती वस्त्रों पर पताकायें चित्रित की जाती थीं। यह बात भी आम तौर पर स्वीकार की जाती है कि तत्कालीन नैपाली चित्रकला उस समय मागधी चित्रकला से ही प्रभावित हुई थी।

## बंगला साहित्य

बौद्धों ने कला में तो अपने को व्यक्त किया पर साहित्य में छुपाये रखा। बौद्ध ही अकेले ऐसे थे जिन्होंने बङ्गला भाषा को अपने साहित्य का माध्यम बनाया। किन्तु उनकी बंगला कृतियां साहित्य के रूप में इसलिये न फैल सकीं चूँकि वे दार्शनिक प्रचार के रूप में पेश की गईं थीं फिर उनमें संगीत भी न था। और इस तरह की बातें जैसे, जन्म नहीं, मृत्यु नहीं, प्रेम नहीं, जीवन नहीं, और दुनियवी बातों में तथ्य नहीं—कवियों को बहुत आकर्षित नहीं कर सकतीं। किन्तु फिर भी इस नकारात्मक अध्यात्म को बौद्ध लेखकों ने दुनियवी जामा पहनाकर पेश करने की कोशिश की। पर यह रसहीन बंगला-साहित्य बंगला चित्रकला की तरह पिछड़ा हुआ रह गया। इसी ज़माने में अन्य भारतीय भाषायें भी पहली बार सांस्कृतिक अखाड़े में आगे बढ़ रही थीं। बंगला भी इस क्षेत्र में नई थी। फिर भी बौद्धों की रसहीन रचनाओं की कमी उनके काव्य ग्रन्थों की भावुकता और संगीत से पूरी हो गई। फिर भी बौद्धों के गूढ़ रहस्यवाद को जो तुष्टि मूर्तिकला से मिली वह साहित्य से नहीं मिली।

## संगीत

जनता के दिलों और दिमाग़ों पर संगीत का जो अमल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बढ़ता है उसे देखकर महायानी, नाथ सम्प्रदायी, वैष्णव और शायद शैवों ने भी अपनी साहित्य रचनाओं में संगीत का समावेश किया। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने महायानियों के साहित्य से 'पदों' और 'गीतिका' मुक्त काव्य को खोजा है। बाद में संगीत की इन्हीं प्रणालियों को वैष्णवों ने अपनाया। नाथ सम्प्रदायी भी इसी तरह के काव्य गीतों में अपने भजन गाते थे। नाथ सम्प्रदायियों के वीर नेता गोपीचरण के नाम पर उनका लोकप्रिय बाजा 'गोपी-यन्त्र' कहलाता है।

## संस्कृत साहित्य

उस ज़माने के सभी बङ्गाली विद्वानों का माध्यम संस्कृत थी। राजदरबारों में संस्कृत का बहुत मान था। दर्शन, व्याकरण, आयुर्वेद, ज्योतिष, तर्क शास्त्र आदि की पुस्तकें और शिला लेख सब संस्कृत ही में होते थे। किन्तु उस समय के बङ्गाल में संस्कृत साहित्य में हमें नाटक, काव्य और कथा साहित्य का अभाव बेहद खटकता है। नाटक के नाम पर भट्टनारायण के 'वेणी संहारम्' की ओर इशारा किया जा सकता है और बस। 'रामचरित' नामक ऐतिहासिक काव्य का रचयिता अपने आपको कलियुग का वाल्मीकि कहता है किन्तु उसका यह दावा अगर अधार्मिक नहीं तो मूर्खतापूर्ण अवश्य है। कथा साहित्य के नाम पर एक भी उपन्यास का नाम नहीं लिया जा सकता। आधुनिक बङ्गाल यदि पौराणिक महत्ता का दावा नहीं कर सकता तो भी कम से कम अपने गीत काव्य की विशिष्टता साबित करने के लिये वह कई प्रतिष्ठित ग्रन्थों के नाम पेश कर सकता है। उस समय के बङ्गाल के संस्कृत काव्य ग्रन्थों में हम केवल गोवर्धनाचार्य की 'आर्य सप्तसती,' श्रीधरदास कृत 'सदुक्ति कर्णामृत' और धोयी के 'पवन-दूतम' का नाम ले सकते हैं।

संस्कृत साहित्य के समस्त क्षेत्र में उस समय का अत्यन्त अनुपम ग्रन्थ जयदेव का 'गीत-गोविन्दम्' है। बङ्गाल में मुसलमानों से पहले का वैष्णव साहित्य हमें नहीं मिलता। जयदेव के गीतों से हम इस नतीजे पर पहुंच सकते हैं कि बङ्गाल के बाद के नव वैष्णववाद में संस्कृतज्ञों ने रहस्यवाद से अमिश्रित राधा-गोविन्द की प्रेम लीला को अपना आधार बनाया होगा। यह देखकर बड़ा ताज्जुब होता है कि जयदेव के गीत गोविन्द के अत्यन्त मधुर और सरस गीतों, उसके अत्यन्त श्रेष्ठ काव्य-गुणों और उसकी चमत्कारपूर्ण कल्पनाओं से उस काल के शिल्पियों, भास्करों, और चित्रकारों ने प्रभावित होकर किसी तरह की कला कृतियां नहीं बनाईं।

गीत-काव्य का असर हमें स्तोत्र साहित्य पर भी दिखाई देता है। तेरहवीं सदी में भगवान बुद्ध की प्रशंसा में रामचन्द्र कवि भारती की रची हुई भक्ति शतकम् यद्यपि एक बङ्गाली की लिखी हुई थी किन्तु वह बङ्गालियों के लिए नहीं बल्कि सुदूर सिंहलवासियों के लिए लिखी गई थी।

## दर्शन और धर्म

हिन्दुस्तान में दर्शन का सम्बन्ध उसी तरह धर्म से रहा है जिस तरह कला और साहित्य का। शुद्ध धार्मिक कल्पना को यहां कभी भी प्रोत्साहन नहीं मिला। यहां तक कि दर्शन मार्गियों का ध्येय भी मुक्ति प्राप्त करना है। अत्यधिक धार्मिकता लोगों को रूढ़िवादी बना देती थी और रहस्यवाद बजाय उनमें गूढ़ता पैदा करने के उन्हें सम्प्रदायवाद से मुक्त रखता है। शंकर का अद्वैतवाद यद्यपि इसी काल का था फिर भी बङ्गाल के दार्शनिकों का उसमें कोई योग नहीं रहा। बंगाल के अधिकांश दर्शन शास्त्री बौद्ध धर्म के मुक़ाबले के लिए न्याय शास्त्र का प्रतिपादन करते थे।

धार्मिक सिद्धान्तों में बङ्गाल का हृदय महायान के साथ था। महायानी करुणा के उपासक थे और इस उसूल को मानते थे कि हर नश्वर प्राणी बुद्ध की दशा को प्राप्त कर सकता है। बङ्गाल अन्त में वज्रयान और सहजिया सम्प्रदाय का गढ़ बन गया कि जिनके सिद्धान्तों में धर्म-काय और महासुखवाद लोकप्रिय थे।

नाथ सम्प्रदायवाले भी पिछड़े हुये नहीं थे। उनके सिद्धान्त के अनुसार अमरत्व प्राप्त करने के लिये स्थूल भावनाओं को वश में करना ज़रूरी है। काया-साधन पर उनका अधिक विश्वास था। उनमें किसी तरह की कला पूर्ण-संस्कृति के विकास का हमें पता नहीं चलता।

शैव मत का प्रचार बङ्गाल में पाल-युग से चला आता है। उस समय भी पशुपत-समाज की स्थापना का ज़िक्र आता है।

बङ्गाल में तांत्रिकवाद का सबमें अधिक ज़ोर था। तांत्रिकवाद के प्रभाव से ही बौद्ध-धर्म समाप्त हुआ। मानव जाति शास्त्र के विद्वान हमें यह बताते हैं कि शक्ति की पूजा उस समय से बङ्गाल में शुरू हुई जब बौद्ध धर्म के प्रभाव से वहां मातृकुल समाज की स्थापना हुई। बाद के हिन्दू तांत्रिको ने अपने बौद्ध पूर्वगामियों के सभी विचार अपना लिये। हिन्दू तन्त्रों के अन्दर बोधिसत्वों, अक्षोभ्य और मञ्जुघोष का वर्णन मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह एक आश्चर्यजनक बात मालूम होगी कि बङ्गाल के अन्दर १७ वीं सदी तक एक वैदिक-धारा बराबर बहती आई है। यह बात कही जाती है कि प्राच्य समाज के प्रदेशों में बंगाल भी शामिल था। यजुर्वेद की वाजसनेयी शाख जो शुक्ल-यजु कहलाती है और जिसे याज्ञवल्क्य ने रचा और सामवेद की कौसुमि शाख बंगाल में प्रचलित थीं। प्रारम्भिक गौड़ ब्राह्मण 'आत्रि-वैदिक' कहलाते थे और उनके वंशज अब भी 'व्यास' या 'व्यासवैदिक' आड़ नाम इस्तेमाल करते हैं।

पुराणों का भी बंगाल में प्रभाव बढ़ने लगा था और उसने वासुदेव पूजा का रूप ले लिया था। बहुत से ब्राह्मण वासुदेव के रूप में विष्णु की पूजा करते थे। प्रसिद्ध विजेता राजा हरिवर्मन देव और ब्राह्मण मन्त्री भवदेव और वैद्यदेव वैष्णव थे।

## ग्रामीण संस्कृति

दरबारी वर्ग की कला और संस्कृति ने जनता में भी घुसने की कोशिश की किन्तु ग्रामीण जनता टोटेम को माननेवाली और इष्टदेवों की पूजा करनेवाली थी और उसमें अपनी निज की इतनी चेतना थी कि उसने हमेशा दरबारी संस्कृति को स्वीकार करने से इनकार किया। यदि उन्होंने कोई शहराती प्रभाव कुबूल भी किया तो उसे अपने रंग में रंग कर।

ग्रामीण कलाकार अपने तरीके से कला सृजन में लगे हुये थे। प्रकृति का उनपर गहरा प्रभाव था इसलिये उनके धर्म में भय का भी मिश्रण होता था। उन्होंने अपने देवताओं की श्रेणी में 'मनसा' (नागराज), 'शष्ठी,' 'शीतला,' 'दक्षिण राय,' 'निशानाथ,' 'पञ्चानन्द' आदि अनेकों अनार्य देवताओं को शामिल कर लिया है और स्थानीय 'ग्राम-देवताओं' को भी हिन्दू और बौद्धों की देव श्रेणियों में शामिल करना पड़ा।

## सारांश

पालों के पहले बंगाल नक़ल और प्रोत्साहन के लिये उत्तर भारत के कला केन्द्रों की ओर देखता था किन्तु इस काल में उसने अपनी ही कला और साहित्य का सृजन किया। न केवल बंगाल के मानस में संस्कृति केन्द्र स्थापित किये गये बल्कि भारत के दूसरे भागों और बाहर के देशों के लोग आ आकर बंगाल के संस्कृति केन्द्रों जैसे नालन्दा, विक्रम शिला औ जगद्दाल में इकट्ठा होने लगे। इस सांस्कृतिक सम्पर्क ने एक नये दृष्टि कोण को जन्म दिया। एक चीनी यात्री कि-ये, जो भारत में सन् ९६४ से ९७६ ई० तक था, लिखता है कि नालन्द के पास एक मठ काश्मीरियों ने बनवाया था और दूसरा चीनियों ने। बर्मा और सिंहल के लोगों के अपने अलग मठ थे। तिब्बती उल्लेखों से पता चलता है कि विक्रमशिला और जगद्दाल में बंगाली और विदेशी विद्वान बौद्ध ग्रन्थों की रचना, नक़लें और अनुवाद करते थे। इसके अलावा बंगाल के अन्दर सांस्कृतिक विजय और उपनिवेश बसाने की भावना भी दिखाई देती है। बंगाली श्रमण नैपाल, तिब्बत, चीन और एशिया के दूसरे देशों में गये। एक बंगाली श्रमण, जिसे चीनी उल्लेखों में पो-उ त्सि कहा जाता है सन् १०१० ई० में चीन गया। सन् १०३८ में अतिषा को तिब्बत आने का निमंत्रण दिया गया। रामचन्द्र कवि भारती सिंहल-नरेश के निमन्त्रण पर सिंहल गया जहां उसे 'गुरु' के पद पर आसीन करके सिंहल-नरेश ने 'सम्बुद्धागम चक्रवर्ती' की उपाधि दी। ब्राह्मण भी इस दौड़ में पीछे नहीं थे। सन् १२६१ ई० में विश्वेश्वर शिवाचार्य दक्षिण भारत में काकात्यी राजा के यहाँ गुरु के पद पर था और चोल, मालव और कल्चूरी राजा उसका बेहद सम्मान करते थे। उल्लेखों से पता चलता है कि उसकी अपनी एक कालोनी थी। बंगाल का एक दूसरा शैव सन्त पाञ्चाल में राष्ट्रकूट राजाओं के यहां गुरु के पद पर आसीन था।

यहां पर बौद्धों और ब्राह्मणों पर एक तुलनात्मक दृष्टि डाल लेना अनुचित न होगा। बौद्ध मठों और विहारों में लोगों से अलग रहते थे और इसलिये अपना सारा समय धार्मिक बातों में दे सकते थे। वे कलाकार और वैद्यक का काम भी करते थे। इसके विपरीत ब्राह्मण जनता के बीच में रहते थे। जब कि हिन्दू धर्म चारों ओर फिर से फैलने लगा बौद्ध धर्म बड़े बड़े विहारों और मठों में केन्द्रीभूत होने लगा। और जब इन विहारों और मठों को नष्ट कर दिया गया तो बौद्धों को अपने अस्तित्व के लिये कोई आधार नहीं रह गया। जहाँ तक बंगाल का सम्बन्ध है बौद्धों और ब्राह्मणों के सम्बन्ध में एक बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि बौद्धों के ज़माने में निर्माण कला, शिल्प कला और चित्रकला ने ख़ूब उन्नति की और ब्राह्मणों के ज़माने में साहित्य, संगीत और भास्कर्य का काफ़ी उत्कर्ष हुआ।*

* कतिपय बंगाली विद्वानों की खोजों के आधार पर। —लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भगवान महावीर और जैन-धर्म

श्री जयभगवान जैन, एडवोकेट

दुनिया के इतिहास में ईसा से ६०० वर्ष पहले का ज़माना आज के ज़माने से बहुत कुछ मिलता जुलता हुआ है इसलिये उस युग की परिस्थिति, प्रवृत्ति और उनके कारणों का अध्ययन करना हमारी आजकी कठिनाइयों को हल करने के लिये बहुत ज़रूरी है। यह वह ज़माना था, जब इन्सान की ज़िन्दगी मानसिक, धार्मिक, और सामाजिक रूढ़ियों से जकड़ी हुई थी। उसके विकास का स्वाभाविक सोता बहते बहते रुक गया था। वह अनेक देवी-देवताओं की पूजा-प्रार्थना करते करते ऊब चुका था और जाति, वर्ण तथा धर्म के नाम पर लड़ते झगड़ते उसका मन थक गया था और आज़ादी की भावनायें उठ उठकर उसे बेचैन बना रही थीं। उसका मन किसी ऐसे सत्य और हक़ीकत की तलाश में घूम रहा था, जिसे पाकर वह सहज सिद्ध शिव शान्ति और सुन्दरता का आभास प्राप्त कर सके; तब वह किसी ऐसी दुनिया की बात सोचने में लगा था, जहाँ वह सबके साथ मिल जुलकर सुख का जीवन बिता सके।

यह ज़माना दुनिया के इतिहास में मानसिक जागृति, धार्मिक क्रान्ति और सामाजिक उथल-पुथल का ज़माना था। उस ज़माने ने पूर्व और पश्चिम के सभी देशों में अनेक महापुरुषों को जन्म दिया था। यूरोप में पाइथागोरस और एशिया में कन्फ्यूसिअस, लाओत्ज़े जैसे महात्माओं ने जन्म लिया था। उस ज़माने में हिन्दुस्तान में महावीर और भगवान बुद्ध ने इस जागृति में विशेष भाग लिया।

उस समय भारत में तीन बड़ी बड़ी विचारधारायें काम कर रही थीं, जिन्हें हम आज देवतावाद, जड़वाद और अध्यात्मवाद के नाम से पुकार सकते हैं। पहली धारा वैदिक ऋषियों की उस हैरत भरी निगाह से पैदा हुई थी जो प्राकृतिक दृश्यों और चमत्कारों को देख देखकर उनमें मनुष्योत्तर दिव्य शक्तियों का भान कर रही थी। दूसरी धारा व्यवहार कुशल लोगों की उस दुनियवी दृष्टि की उपज थी, जो मनुष्य के ऐहिक-जीवन को सुखी और सम्पन्न देखना चाहती थी। तीसरी धारा वीतरागी श्रमणों के उन भरे पूरे हृदयों से निकली थी, जो इस निस्सार दुःख मय जीवन से परे किसी अक्षय अमर सच्चिदानन्द जीवन का आभास पा रहे थे। इन्हीं तीनों धाराओं के संगम पर भगवान महावीर का जन्म हुआ।

यद्यपि उस समय ये तीनों विचारधारायें अपनी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थीं—देवतावाद में "एकमेव अद्वितीय ईश्वर" का भान हो चुका था, जड़वाद अपने लौकिक अभ्युदय के लक्ष्य को चक्रवर्तियों की निर्बाध समृद्धि सम्पन्न एकछत्र राष्ट्रीयता की ऊँचाई तक उठा चुका था, और अध्यात्मवाद "निर्विकल्प कैवल्य" जैसे आत्मा के सर्वोच्च आदर्श को छूकर परमात्मपद की सिद्धि कर चुका था, वह 'सोऽहम्' और 'तत्त्वमसि' के मन्त्रों की दीक्षा देकर सर्वसाधारण में आत्मा और परमात्मा की एकता को मान्य बना चुका था—परन्तु कालदोष से बिगड़कर उस समय ये तीनों धारायें अपने अपने सल्लक्ष्य, सद्ज्ञान और सत्पुरुषार्थ को छोड़कर केवल ऊपरी चमत्कारों, मौखिक वितण्डावादों और रूढ़िक क्रियाकाण्डों में फंस गई थीं। अहंकार, विमूढ़ता और दुराग्रह इन्हें तीन-तेरह किये हुए थे। इनके पोषक और उपासक किसी तरह का रचनात्मक कार्य न करके केवल अपनी स्तुति और दूसरों की निन्दा करने में ही संलग्न रहते थे। पक्षपात इतना बढ़ गया था कि सभी सच्चाई के उसी एक पहलू को देखते थे जो उन्हें मान्य था, अन्य सभी पहलुओं की वे अवहेलना करते थे—सब एकान्तवादी बने हुये थे। इनकी बुद्धि कूटस्थ हो चली थी। तब इनमें न दूसरों के विचारों को सुनने और समझने की सहनशीलता थी न दूसरों को अपनाने की उदारता थी, न ज़माने की परिस्थिति के साथ बदलने सुधरने और आगे बढ़ने की ताक़त थी। तब इनके दिलों में संकीर्णता; ज़बान में कटुता और बर्ताव में हिंसा भरी थी।

ऐसे वातावरण में जांत-पाँत और वर्ण व्यवस्था के संकीर्ण भावों को फलने फूलने की ख़ूब आज़ादी थी। जन्म के आधार पर छुटाई बड़ाई की कल्पनाओं ने भारतीय जनता को अनेक टुकड़ों में बांट दिया था। भारत की मूल जातियों की दशा पशुओं से भी बुरी थी। उन्हें अपने विकास के लिये धार्मिक, राष्ट्रीय और सामाजिक कोई भी अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त न थीं। धर्म के नाम पर सब ओर हिंसा, विलासिता और शिथिलाचार बढ़ रहा था। मांस, मदिरा, मैथुन, व्यसन ख़ूब फैल रहे थे। स्त्री गोया स्वयं मनुष्य न होकर मनुष्य के लिये भोग वस्तु बनी हुई थी। व्यर्थ के अन्ध विश्वासों क्रियाकाण्डों और विधि-विधानों में समाज के धन, समय और शक्ति का ह्रास हो रहा था। तब धर्म सीधे सादे आचार की चीज़ न रहकर जटिल आडम्बर की तिजारती चीज़ बन गया था, जो यज्ञ-हवन कराकर देवी-देवताओं से, दान-दक्षिणा देकर पुरोहित



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पुजारियों से ख़रीदा जा रहा था।

उस समय भारत के श्रमण साधु भी विकार से खाली न थे। उनमें से अनेकों तो ऋद्धि-सिद्ध के चमत्कारों में पड़कर हठयोग के अनुयायी बने हुये थे। बहुत से साधुओं के बाने में ही अपने को सिद्ध मानते थे। बहुत से तन की बाहरी शुद्धि को ही अधिक प्रधानता दे रहे थे। बहुत से सुख-शीलता में पड़कर थोथी सैद्धान्तिक चर्चाओं और वाक् संघर्ष में ही अपना समय बिता रहे थे। बहुत से दम्भ और भय से इतने भरे थे कि वे दूसरों को अध्यात्म-विद्या देने में अपनी हानि समझने लगे थे।

धर्म के नाम पर मानवता का खून और आत्मा का शोषण हो रहा था। लोगों में प्रचलित विश्वासों, मान्यताओं और प्रवृत्तियों के विरुद्ध एक विद्रोह की लहर जाग रही थी। विचारों में उथल-पुथल मची हुई थी। स्थितिपालकों और सुधारकों में संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष के फल-स्वरूप सभी धाराओं के विद्वान अपने अपने सिद्धान्तों की संभाल, शोध और उनके इकट्ठा करने में लगे थे। एक तरफ वैदिक परम्परा की रक्षा के लिये भास्कराचार्य, शौनक और आश्वलायन जैसे विद्वान पैदा हो रहे थे; दूसरी तरफ वैदिक संस्कृति को मिटाने और भौतिक संस्कृति को फैलाने के लिये जड़वाद के प्रसिद्ध आचार्य अजितकेशकम्बली और बृहस्पति मैदान में आ रहे थे। तीसरी तरफ भौतिक-वाद की निस्सारता दिखाने के लिये अक्षपाद गौतम जैसे न्याय दर्शन को जन्म दे रहे थे। इनके साथ मस्करी गौशाल, संजय, प्रकुद्ध कात्यायन और पूर्ण कश्यप जैसे कितने ही आध्यात्मिक तत्ववेत्ता अपने अपने ढंग से जीवन और जगत की गुत्थियों को सुलझाने में लगे थे।

## जैन धर्म का उद्धार

ऐसे वातावरण में लोगों के दिलों में समता, मन में उदारता, बर्ताव में सहिष्णुता और जीवन में संयम-सदा-चार भरने के लिये भगवान महावीर ने अपने आदर्श जीवन और उपदेश द्वारा जिस श्रमण संस्कृति का पुनरुद्धार किया था वह उनके पीछे जैन धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुई। भगवान महावीर इस धर्म के कोई मूल-प्रवर्तक न थे, वह उसके उद्धारक ही थे; क्योंकि यह धर्म उनसे बहुत पहले वैदिक आर्य गण के आने से भी पहले, यहां के मूलवासी द्रविड़ और नाग लोगों में अर्हत, यति, व्रात्य, जिन, निर्ग्रन्थ अथवा श्रमण संस्कृति के नाम से बराबर जारी था और पीछे से विदेह और मगध देशों में बसनेवाले सूर्य वंशी आर्यगण से अपनाया जाकर आर्य धर्म में बदल गया था। यह धर्म भारत-भूमि की ऐसी ही मौलिक उपज है, जैसे कि यहां के शैव और शाक्त नाम के प्राचीन धर्म। इस ऐतिहासिक सच्चाई को मानने के लिये गो शुरू-शुरू में इतिहासज्ञों को बड़ी कठिनता उठानी पड़ी, किन्तु आज प्राचीन साहित्य और पुरातत्व की नई खोजों से यह बात दिन पर दिन अधिक प्रमाणित होती जा रही है कि जैन धर्म भारत के मूलवासी द्रविड़ लोगों का धर्म है।[1] और महावीर से भी पहले इस धर्म के प्रचारक ऋषभदेव आदि २३ तीर्थङ्कर और हो चुके हैं। इनमें से अरिष्टनेमि और पार्श्वनाथ तो आज बहुत अंशों में ऐतिहासिक व्यक्ति भी सिद्ध हो चुके हैं।

श्रमण-संस्कृति सदा ही जीवन-विकास के लिये सात तत्वों को प्रधानता देती रही है—आत्मविश्वास, मानसिक उदारता, संयम, अनासक्ति, अहिंसा, पवित्रता और समता। भगवान महावीर ने इन्हें ही साधना द्वारा अपने जीवन में उतारा था और इन्हींकी सबको शिक्षा-दीक्षा दी थी। यही सात आध्यात्मिक तत्व आज जैन दार्शनिकों की बौद्धिक परिभाषा में जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष के नाम से प्रसिद्ध हैं।

## वर्ण व्यवस्था और मानवता—

महावीर ने सामाजिक क्षेत्र में जन्म के आधार पर बने हुए मानवी भेद-भावों का घोर विरोध किया। उन्होंने बताया कि जन्म की अपेक्षा सभी मनुष्य समान हैं—सब ही एक समान गर्भ में रहते हैं, एक समान ही पैदा होते हैं। सबके शरीर और अंगोपाङ्ग भी एक समान हैं। किन्हीं दो वर्णों के समागम से मनुष्य ही उत्पन्न होता है। इस लिये मनुष्यों में जन्म की अपेक्षा विभिन्न जातियों की कल्पना करना कुदरती नियमों के ख़िलाफ़ है। जन्म से कोई भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, शिल्पी और चोर नहीं होते। वे सब अपने कर्म, स्वभाव और गुणों से ही ऐसे होते हैं।

---

१ (अ) Prof. Belvalkar—Brahma Sutra p. 107.

(आ) Prof. Hermann Jacobi—S. B. E. vol. XLV. Jain Sutras Part II. 1895—Introduction, pp. XIV-XXXVI.

(इ) R. B. Ramprasad Chanda—Survival of the Prehistoric Civilisation of the Indus Valley—pp. 25-33.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मनुष्यों में श्रेष्ठता और नीचता उनके अपने आचार-विचार पर ही निर्भर है। जो लोग कुल, गोत्र, वर्ण आदि लोक-व्यवहृत संज्ञाओं के अभिमान से बँधे हुए हैं, वे कल्याण के मार्ग से बहुत दूर हैं। इन अभिमानों को छोड़े बिना मनुष्य न अपना हित कर सकता है, न दूसरों का।

## देवतावाद और अध्यात्मवाद

धर्म-क्षेत्र में तो यहां की आम जनता पुरानी रूढ़ियों की अनुयायी होने से अजीब अन्ध-विश्वासों और मूढ़ प्रथाओं में फँसी हुई थी। अनार्य लोग रोग, मरी, दुर्भिक्ष, जलबाढ़, आंधी-तूफान, भूकम्प, ज्वालास्फोट, टिड्डीदल, चूहे और सांप आदि के भयानक उपद्रवों को अनेक क्रूर-कर्मा रुद्रस्वभाव देवी-देवताओं की शक्तियां कल्पित करते थे। और उनकी शान्ति के लिये अनेक प्रकार के घिनावने तान्त्रिक विधान, पशुबलि और नरमेध का प्रयोग करते थे। वैदिक आर्यों के देवता यद्यपि इनकी अपेक्षा सौम्य और सुन्दर थे, परन्तु दृष्टि वही आधिदैविक थी। ये इन्सानी ज़िन्दगी को सुख-सम्पत्ति देनेवाले इन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण सूर्य आदि देवताओं को मानते थे। इसलिये धन-धान्य की प्राप्ति, पुत्र-पौत्रों की उत्पत्ति, दीर्घायु, आरोग्यता की सिद्धि, शत्रु-विजय आदि की भावनाओं से उन देवताओं को यज्ञों-द्वारा खूब सन्तुष्ट करते थे। इन यज्ञों में वनस्पति, घी आदि सामग्री के अलावा पशुओं की भी ख़ूब बलि दी जाती थी। इस तरह के विश्वासों ने मनुष्य को आत्म-विश्वास और पुरुषार्थ से हीन बनाकर देवताओं का दास ही बना दिया था। इस हालत से उभारने के लिए महावीर ने बताया था कि मनुष्य का दर्जा देवताओं से बहुत ऊँचा है। मनुष्य अपने बुद्धिबल और योगबल से न केवल देवताओं को अपने आधीन कर सकता है, बल्कि ऐसे काम भी कर सकता है, जो देवताओं के लिये असम्भव हैं। मनुष्य योगसाधना से अणिमा, गरिमा आदि अनेक सिद्धियों को हासिल कर सकता है और अपने को परमात्मा तक से मिला सकता है।

मनुष्य का सुख दुःख देवताओं के अधीन नहीं है। वह स्वयं अपनी ही वृत्तियों और कृतियों के अधीन है—जो जैसा कर्म करता है वह वैसा ही फल पाता है। कर्म से ही स्वर्ग और कर्म से ही नरक मिलता है। इसलिये मनुष्य को कर्म करने में बड़ा सावधान होना चाहिये। संसार के सभी जीव स्वभाव से सौम्य और श्रेष्ठ हैं, ऊर्ध्वगामी हैं। सभी में परमात्मत्व ओत-प्रोत है—अन्तर केवल उनके विकास में है। जीवों का यह विकास जहां उनके भावों पर निर्भर है वहाँ बाहर के द्रव्य, क्षेत्र और काल पर भी निर्भर है। इस भीतर और बाहर की स्थिति का आपस में बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। एक का प्रभाव दूसरे पर निरन्तर पड़ता रहता है। इन स्थितियों की प्रतिकूलता में जीव का पतन होता है और इनकी अनुकूलता में उसका उद्धार होता है। इसलिये मनुष्य को उचित है कि वह अपने भावों के सुधार के साथ अपने देश-काल का भी सुधार करता रहे। वास्तव में लोक का सुधार अपना ही सुधार है। और पर की सेवा अपनी ही सेवा है। संसार में जीव को जितनी मात्रा में स्वतन्त्रता, सुविधा, सहायता, और नेक सुझाव मिलते चले जाते हैं, उसका जीवन उतना ही विकसित होता चला जाता है। इसलिये मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म यह है, कि वह सब जीवों को अपने समान समझे और अपने समान ही उनके साथ मैत्री का व्यवहार करे। जो जीव दुखी और भयभीत हैं, पराधीन और असहाय हैं, उनके साथ दया का व्यवहार करे। जो अपने से गुणों की अपेक्षा बड़े हैं उनके प्रति श्रद्धा और प्रमोद का बर्ताव करे। जो जीव विपरीत बुद्धि व दुर्व्यवहारी हैं, उनसे भी क्षुभित होकर हिंसा का व्यवहार न करे, बल्कि उन्हें रोग और विकार ग्रस्त समझकर उनके साथ मध्यस्थवृत्ति से रहकर चिकित्सक के समान बर्ताव करे।

## एकान्तवाद और अनेकान्तवाद

विचारकों के हठाग्रह, पक्षपात और एकान्त-पद्धति के कारण लोगों में जो अहंकार, संकीर्णता, मनोमालिन्य, कलह, क्लेश बढ़ रहे थे उन्होंने महावीर का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। महावीर ने इस एकान्त पद्धति को ही ज्ञान-अवरोध, मानसिक संकीर्णता, हार्दिक द्वेष, और मौखिक वितण्डों का कारण ठहराकर इसकी कठोर समालोचना की थी और बतलाया था कि सत्य, जिसे जानने की सबमें जिज्ञासा बनी है, जिसके सम्यक् ज्ञान से मुक्ति की सिद्धि होती है, बहुत ही गहन और गम्भीर है, वह अनेक अपेक्षाओं का पुंज है, अनेक विरोधों का संगम है, वह भीतर और बाहर सब ओर फैला हुआ है, वह अनादि और अनन्त है, वह हमारी सारी बौद्धिक मान्यताओं और विधि-निषेध रूप सारे शब्द—वाक्यों से बहुत ऊपर है। वह अनेकान्तमय है, इसलिये उसके अध्ययन में हमें बहुत ही उदार होना चाहिये और तत्सम्बन्धी सभी विचारों को समझने और अपनाने की कोशिश करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

## महावीर के प्रति लोगों की श्रद्धा

इस तरह महावीर का जीवन इतना तपस्वी, त्यागपूर्ण, दयामय, सरल और पवित्र था; उनके विचार इतने उदार, व्यापक और समन्वयकारक थे, उनके सिद्धान्त ऐसे आशा-पूर्ण, उत्साहवर्धक और शान्तिदायक थे कि वह अपने जीवन काल में ही अर्हन्त, सर्वज्ञ, तीर्थङ्कर आदि नामों से प्रसिद्ध हो चले थे। केवल ज्ञान प्राप्ति के पीछे वह भारत के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, मध्य और दक्षिण के प्रदेशों में जहाँ कहीं भी गये, सभी राजा और रंक, पतित और प्रतिष्ठित, ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, पुरुषों और स्त्रियों ने उनका खूब स्वागत किया, सभी ने उनके उपदेशों को अपनाया और सभी उनके मार्ग के अनुयायी बने। इनमें वैशाली के राजा चेटक, अंग देश के राजा कुणिक, कलिंग के राजा जितशत्रु, वत्स के राजा शतानीक, सिन्धु सौवीर के राजा उदयन, मगध के सम्राट श्रेणिक बिम्बसार, दक्षिण के हेमांगद के राजा जीवंधर विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त सम्राट श्रेणिक के अभयकुमार, वारिषेण आदि २३ राजकुमार और नन्दा, नन्दमती आदि १३ रानियाँ तथा उपरोक्त राजाओं में से उदयन और जीवंधर तो उनके समान ही जिन-दीक्षा ले जैन श्रमण बन गये। इनके अलावा वैदिक वाङ्मय के पारंगत विद्वान इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति और स्कन्दक जैसे अपनी सैकड़ों की शिष्य मंडली सहित तथा शालिभद्र, धन्यकुमार, प्रीतंकर, आदि मगध के धन कुबेर, विद्युच्चर, अंजन जैसे डाकू और चण्डक कौशिक जैसे महाघातक भी उनके द्वारा दीक्षित हो जैन मुनि हो गये।[1] उस समय उनकी मानता इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि वह सभी के लिये एक अनुपम आदर्श, धर्म अवतार हो गये थे। सभी के लिये परमशान्ति, परमज्ञान, परमानन्द, और विश्वकल्याण के प्रतीक बन गये थे। उस जमाने के लोग उनके आदर्श जीवन को ही दूसरे श्रमण अर्हन्तों की पूर्णता और सर्वज्ञता जांचने के लिये मापदण्ड की तरह काम में लाते थे।[2]

उस समय के लोगों की महावीर के प्रति कितनी श्रद्धा और भक्ति थी, इस बात का अन्दाज़ा लगाने के लिये इतना कहना ही काफ़ी होगा कि भारत के ऐतिहासिक युग में सबसे पहला सम्वत् जो क़ायम हुआ वह इन्हीं के निर्वाण की शुभ स्मृति में क़ायम हुआ[1]। यह संवत् आज भी वीर के नाम से जैनों में प्रचलित है। कुछ विद्वानों का मत है कि द्वापर युग में महाराज युधिष्ठर के राज्यारोहण की स्मृति में भी एक संवत् भारत में जारी हुआ था, परन्तु इसका ऐतिहासिक युग से कोई सम्बन्ध नहीं है। महावीर के तपस्या काल की बङ्गाल प्रान्तर्गत वह पर्यटन-भूमि जो कभी राढ़ अथवा लाढ़ नाम से प्रसिद्ध थी, इन्हीं के वीर अथवा वर्धमान नामों के कारण आज तक वीरभूम, सिंह भूम और बर्दवान के नामों से प्रसिद्ध है।[2]

## भारत के धर्मों में जैन धर्म का स्थान

भगवान ने अपने जीवन काल में जिस धर्म की देशना की थी, वह उनके निर्वाण के बाद उनके अनुयायी अनेक त्यागी और तपस्वी महात्माओं के प्रभाव के कारण और भी अधिक फैला। यद्यपि इस धर्म के माननेवालों की संख्या आज केवल २० लाख के लगभग है और यह धर्म आज कल अधिकतर वैश्य जातियों में ही फैला हुआ दिखाई देता है परन्तु इससे यह भ्रान्ति कदापि न होनी चाहिए कि यह धर्म सदा से लघुसंख्यक लोगों द्वारा ही भारत में अपनाया गया अथवा यह धर्म सदा से वैश्य लोगों में ही सीमित रहा है। साहित्य, शिलालेख, पुरातत्व और स्मारकों के अगणित प्रमाणों से यह बात पूरे तौर पर सिद्ध है कि यह धर्म भारत के उत्तर-दक्षिण में काम्बोज, गान्धार और बलख से लेकर सिंहलद्वीप तक और पूर्व-पश्चिम में

---

१—(अ) बा० कामताप्रसाद—भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध—पृ० ९५-९६

(आ) पं० कल्याण विजय—श्रमण भगवान महावीर, तीसरा परिच्छेद

२—( अ ) Dr. B C. Law—Historical Gleanings p. 78

( आ ) Buhler--Indian Sect of the Jainas p. 132.

( इ ) मज्झिम निकाय—१४ वां सुत्त; अङ्गुत्तर निकाय १ – २२०

१—(अ) महा० हीराचन्द ओझा—भारतीय प्राचीन लिपि माला। पृ० २,३

(अ) लोकमान्य तिलक—सन् १९०४ में जैन कान्फ्रेंस में दिया हुआ भाषण।

२—( अ ) N. L. Dey Ancient Indian Geographical Dictionary p. 164

( अ )—नगेन्द्रनाथ वसु—बंगला विश्व-कोष १९११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग बंग से लेकर सिन्धु, सुराष्ट्र तक सभी स्थानों और जातियों में फैला था, और इसके माननेवालों की संख्या ईसा की १६ वीं सदी अर्थात् मुग़ल सम्राट अकबर के शासन काल तक एक करोड़ से अधिक रही है। वास्तव में इस धर्म का उद्भव-क्षत्रिय वीरों की योग साधना से हुआ है और उन्हीं के राजवंशों की संरक्षता में ईसा की १६ वीं सदी तक इसका उत्कर्ष होता रहा है। भारत के ऐतिहासिक युग में ईसा पूर्व की छठी सदी से लेकर अर्थात् भगवान महावीर काल से ईसा की पहिली सदी तक हम इस धर्म को लगातार विदेह देश के लिच्छवी और मल्ल जाति के क्षत्रियों के शिशुनाग, नन्द और मौर्य राजवंशों में, मध्यभारत के काशी, कौशल, वत्स, अवन्ति, मथुरा के राज्य शासकों में, कलिंग के ऐल-वंशी सम्राट खारवेल आदि के राज घरानों में, सुराष्ट्र राजपूताना के लोगों में, उत्तर में गान्धार, तक्षशिला आदि के देशों में, दक्षिण के पाण्ड्य, पल्लव, चेर, चोल आदि तामिल देशों में हम इसे एक आदरणीय धर्म के रूप में सर्वत्र फैला हुआ देखते हैं। मौर्य साम्राज्य के बिखर जाने के उपरान्त, ईसा पूर्व की दूसरी सदी में जो यूनानी इण्डो सीदियन अर्थात शक जाति के लोग एक दूसरे के बाद उत्तरीय देशों से आकर भारत के पश्चिम-उत्तर के पंजाब, सिन्ध, मालवा आदि प्रान्तों के अधिकारी हो गये थे, वे भी जैन धर्म से काफी प्रभावित हुये थे।[1] भारत के प्रसिद्ध यवन राजा मनेन्द्र (Menander) जो जैन श्रमणों के प्रति श्रद्धा रखते थे—अपने अन्तिम जीवन में जैन धर्म में दीक्षित हो गए थे।[2] क्षत्रप नहपान भी जैन धर्म के बड़े प्रेमी थे। उनके सम्बन्ध में विद्वानों का विचार है कि वह जैन धर्म में दीक्षित होकर भूत बलि नाम के एक दिगम्बर जैन आचार्य बन गये थे, जिन्होंने षट् खण्डागम शास्त्र की रचना की थी।[3] मथुरा के प्रसिद्ध जैन पुरातत्व से सिद्ध है कि कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव शक राजाओं के शासन काल में जैन धर्म की मान्यता बहुत फैली हुई थी। मध्यकालीन युग में भी यह धर्म राजपूताने के राठौर, परमार, चौहान, गुजरात और दक्षिण के गंग, कदम्ब, राष्ट्रकूट, चालुक्य, कलचूरि और होयसल आदि राजवंशों का का राजधर्म रहा है, गुप्त, आन्ध्र, और विजयनगर साम्राज्य काल में भी इस धर्म को राज्य शासकों की ओर से सदा सम्मान मिलता रहा है। यह इन्हीं की संरक्षता और प्रोत्साहन का फल है कि जैन धर्म मध्ययुग में श्रवण बेल गोल और कारकल की विशालकाय गोम्मटेश्वर की मूर्तियों और आबू पहाड़ के देलवाड़ा मन्दिर, चित्तौड़गढ़ के जैन कीर्तिस्तम्भ जैसे लोक प्रसिद्ध स्मारकों का निर्माण कर सका है। और समन्तभद्र, सिद्धसेन दिवाकर, सिद्धसेन गणि, पूज्यपाद-देवनन्दी, अकलंक देव, विद्यानन्दी, वीरसेन, जिनसेन, सोमदेव, माणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्र, हेमचन्द्र, हरिभद्रसूरि, नेमिचन्द्र सि० चक्रवर्ति आदि अनेक विद्वान आचार्यों द्वारा रचित अनेक साहित्य और दर्शन शास्त्र के अमूल्य रत्नों को जन्म दे सका है।

## जैन धर्म और बाहर के देश

जैन धर्म को न केवल भारत में बल्कि भारत के बाहर के देशों से भी संपर्क रखने, वहाँ पर सम्मान पाने और वहाँ के संस्कृति-प्रवाह को प्रभावित करने का सदा गौरव प्राप्त रहा है। महावंश[1] नामक बौद्ध ग्रन्थ से साबित है कि ४३७ ई० पू० में सिंहलद्वीप के राजा ने अपनी राजधानी अनिरुद्धपुर में जैन मठ बनवाये थे जो ४०० साल तक क़ायम रहे। इतना ही नहीं भगवान महावीर के समय से लेकर ईसा की पहिली सदी तक मध्य एशिया और लघु एशिया के अफ़ग़ानिस्तान, ईरान, इराक़, फिलिस्तीन, सीरिया आदि देशों के साथ अथवा मध्य सागर से निकटवर्ति यूनान, मिश्र, इथियोपिया (Ethiopia) और एबीसीनिया आदि देशों के साथ जैन श्रमणों का सम्पर्क बराबर बना रहा है। यूनानी लेखकों के कथन से जहाँ यह सिद्ध है कि पाएथागोरस, पाइरो, डायजिनेस जैसे यूनानी तत्ववेत्ताओं ने भारत में आकर जैन श्रमणों से शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की थी वहां यह भी सिद्ध है कि यूनानी बादशाह सिकन्दर महान के साथ भारत से जानेवाले जैन ऋषि कल्याण के समान सैकड़ों जैन श्रमण समय समय पर उक्त देशों में जाकर अपने धर्म का प्रचार करते रहे हैं और उन

१—Dr. B. C. Law: Historical Gleanings P. 74.

२—'वीर' वर्ष २, पृ० ४४६-४४७

३—बा० कामता प्रसाद—दिगम्बरत्व पृ० १२०

१—Prof. Buhler An Indian Sect of the Jainas p. 37.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



देशों में अपने मठ बनाकर रहते रहे हैं।[1] जैन साहित्य से भी विदित है कि मौर्य सम्राट अशोक के पोते सम्राट सम्प्रति ने ईसा की तीसरी सदी में बहुत से जैन श्रमणों को जैन धर्म प्रचारार्थ अनार्य देशों में भिजवाया था[2]।

## जैन धर्म और ईसाई धर्म

कितने ही विद्वानों का मत है कि ईसा ने इन्हीं श्रमणों से, जो बहुत बड़ी संख्या में फ़िलिस्तीन के अन्दर अपने मठ बनाकर रहते थे, अध्यात्म विद्या के रहस्य को पाया था। और इन्हीं के आदर्श पर चलकर उसने अपने जीवन की शुद्धि, अर्थ, आत्म-विश्वास, विश्व प्रेम, जीव-दया, मार्दव, क्षमा, संयम, अपरिग्रह, प्रायश्चित, समता आदि धर्मों की साधना की थी।[3] इससे भी आगे बढ़कर अनेक प्रामाणिक युक्तियों के आधार पर अब विद्वानों का यह निश्चय होता जा रहा है कि ईसा जब १३ साल के हुए और घरवालों ने उनकी शादी की सलाह करनी शुरू की तो वह घर छोड़कर कुछ सौदागरों के साथ सिन्ध के रास्ते हिन्दुस्तान चले आए। वह जन्म से ही बड़े विचारक और सत्य के खोजी थे और दुनिया के भोग विलासों से उदासीन थे। यहां आकर वे बहुत दिनों तक जैन श्रमणों के साथ रहे। बौद्ध भिक्षुओं के साथ भी रहते रहे, फिर वे नैपाल और हिमालय होते हुए ईरान चले गये और वहां से अपने देश में जाकर उन्होंने अहिंसा और विश्व प्रेम का प्रचार शुरू किया[4]। प्रभु ईसा ने अपने आचार-विचार के मूल तत्त्वों की शिक्षा श्रमणों से पाई थी, यह इस बात से भी सिद्ध है कि उन्होंने अपने उपदेशों में जिन तीन विलक्षण सिद्धान्तों पर ज़ोर दिया है वे देवता प्रधान यहूदी संस्कृति से सम्बन्ध नहीं रखते, वे भारत की श्रमण-संस्कृति के ही मूल आधार हैं—वे हैं आत्मा और परमात्मा की एकता, आत्मा का अमरत्व, आत्मा का दिव्य जीवन। ईसा सदा अपने को ईश्वर का बेटा कहा करते थे।[1] जब आदमी उनसे पूछते कि ईश्वर कहां है तो वह अपनी ओर संकेत करके कहते कि वे स्वयं ईश्वर के साक्षात् रूप हैं, जो उसे देखते और जानते हैं[2] वे ईश्वर को देखते और जानते हैं चूँकि वह और ईश्वर दोनों एक हैं[3]। वह अपने उपदेशों में पुनर्जन्म और अमर जीवन के सिद्धान्तों पर भी काफी प्रकाश डाला करते थे। वह कहा करते थे कि यह मेरा पहिला जन्म नहीं है मैं अब से पहले भी मौजूद था, हजरत अब्राहम के समय में भी मौजूद था[4]। जो जीवन की अमरता और पुनर्जन्म में यक़ीन करेगा वह कभी नहीं मरेगा[5]। बिना पुनर्जन्म के सिद्धान्त को माने दिव्य साम्राज्य की भी प्राप्ति नहीं हो सकती[6]। दिव्य साम्राज्य ( Kingdom of Heaven ) से उनकी मुराद जीवन की उस अवस्था से थी जब मनुष्य अपनी समस्त इच्छाओं, वासनाओं, कषायों को विजय करके अपना स्वामी हो जाता है, जन्म-मरण के सिलसिले को ख़त्म करके अक्षय सुख और अमृत का मालिक हो जाता है।

ये सिद्धान्त फिलिस्तीन में बसनेवाली यहूदी जाति की प्रचलित मान्यताओं से बिल्कुल भिन्न थे। यहूदी लोग इनके प्रचार को नास्तिकता समझते थे और इन सिद्धान्तों के प्रचार को रोकने के लिये वे ईसा को ईंट-पत्थर से मारने को तैयार रहते थे। इन्हीं सिद्धान्तों के प्रचार के कारण ईसा को पकड़कर उनके विरुद्ध अभियोग चलाया गया था और उन्हें सूली की सज़ा मिली थी।[7] ईसा

---

१—( अ ) Dr. B. C. Law—Historical Gleanings p. 42.

( आ ) पं० सुन्दरलाल—विश्ववाणी, अप्रैल १९४२, पृ० ४९४

( इ ) Sir William James—Asiatic Researches Vol. III, p. 6.

(ई) Megasthenes—Ancient India (?) p. 104.

(उ) बा० कामताप्रसाद—दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि, पृ० १११—११३, २४३

२—श्री हेमचन्द्राचार्यकृत परिशिष्ट पर्व—श्लोक ९६-१०२

३—पं० सुन्दरलाल—हजरत ईसा और ईसाई धर्म पृ० २२

४—पं० सुन्दरलाल—हजरत ईसा और ईसाई धर्म; पृ० १६२

१ Bible—St. John 5—18
२ ,, ,, 8—19
३ ,, ,, 10—30
४ ,, ,, 8-56-59
५ ,, ,, 10—25
६ ,, ,, 3— 3

७—पं० सुन्दरलाल—हजरत ईसा और ईसाई पृ० १३३—१४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने जिन आध्यात्मिक आचार-विचारों के कारण उमर भर अपने देशवासियों से पीड़ा और यन्त्रणा सहनी पड़ी वे पीछे से देशवासियों की सत्बुद्धि द्वारा अपनाये जाकर और देश की पुरानी यहूदी संस्कृति की अनेक मान्यताओं और प्रथाओं से मिलकर ईसाई धर्म के रूप में प्रकट हुए। वास्तव में ईसाई धर्म श्रमण संस्कृति का ही यहूदी संस्करण है।

## भारत और जैन संस्कृति

जहां तक भारत का सवाल है उसके जीवन पर तो जैन संस्कृति ने बहुत ही गहरा प्रभाव डाला है। जैसा कि लोकमान्य तिलक का मत है—इसके अहिंसा तत्व ने तो भारतीय रहन-सहन पर एक अमिट छाप लगाई है। पूर्व काल में यज्ञों के लिये जो असंख्य पशुओं की बलि होती थी वह जैन अहिंसा के प्रचार से ही बन्द हुई[1]। इस धर्म ने यहां के खान-पान में भी बहुत बड़ा सुधार किया है। भारत की जो जो जातियां इसके प्रभाव में आईं सभी मांसाहार को छोड़कर शाक भोजी होती चली गईं। इस तत्व ने भारत के फ़ौजदारी कानून के दण्ड विधान को भी काफ़ी नरम बनाया है। इससे सज़ाओं की अमानुषिक सख़्ती में बहुत कमी हुई। इस धर्म के कारण दण्डविधान की जगह प्रायश्चित विधान को विशेष स्थान मिला।[2] यह धर्म लोगों के जीवन में उतरते उतरते इतना गहरा घर कर गया कि इसके विरुद्ध चलने से सभी को लोक-निन्दा का भय होने लगा। इसी कारण से महावीर के उत्तर काल में हिन्दू स्मृतिकारों और पुराणकारों ने जितना आचार सम्बन्धी साहित्य लिखा है, उन सबमें उन्होंने नरमेध, अश्वमेध, पशुबलि और मांसाहार को लोक विरुद्ध होने से त्याज्य ठहराया।[3]

जैन धर्म के आध्यात्मिक विचारों का भी भारतीय संस्कृति पर कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा है। पशुबलि और मांसाहार के बन्द होने से याज्ञिक क्रियाकांड को भी बहुत धक्का पहुंचा और होते होते वह भी सदा के लिये भारत से विदा हो गया। उसके स्थान में सदाचार को बड़ी मान्यता मिली। यम, नियम, व्रत, उपवास, दान, संयम ही लोगों के जीवन के अंग बन गये। ज्ञान, ध्यान, सन्यास और तपस्वी, त्यागी, वीर महापुरुषों की भक्ति के पुराने आध्यात्मिक मार्गों का पुनरुत्थान हुआ। महावीर के उपरान्त वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों और श्रौत सूत्रों जैसे क्रियाकांडी साहित्य के बजाय हिन्दुओं में उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता, योगवासिष्ठ, रामायण जैसे आध्यात्मिक और भक्ति पूरक ग्रन्थों को अधिक महत्व मिला। इस सम्बन्ध में बहुत से विद्वानों का मत है कि हिन्दुओं में जो २४ अवतारों की कल्पना पैदा हुई, उसका श्रेय भी जैनियों की २४ तीर्थङ्करों वाली मान्यता को ही है।[1] खैर कुछ भी हो इतनी बात तो प्रत्यक्ष है कि इन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण सरीखे प्राक्प्रिय मनोकल्पित देवताओं के स्थान में जो महत्ता भगवान कृष्ण और भगवान राम कर्मठ ऐतिहासिक क्षत्रिय वीरों को मिली है उसका श्रेय भी भारत की उस प्राचीन श्रमण संस्कृति को ही है, जो सदा महापुरुषों को साक्षात् देवता अथवा दिव्य अवतार मानकर पूजती रही है।

## भारतीय कला और साहित्य में जैन धर्म का स्थान

इन अध्यात्मवादी श्रमणों के उपासकों में अपने माननीय वीर पुरुष और तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ और मन्दिर बनाने, उनकी पूजा भक्ति करने और उत्सव मनाने की जो प्रथाएँ प्राचीन काल से जारी थीं उनसे महावीर के उत्तर काल में—याज्ञिक क्रिया कांडों के उत्सव बन्द हो जाने पर—भारत के अन्य धर्मवाले बड़े प्रभावित हुए। ईसा की पहली और दूसरी सदी के क़रीब हम देखते हैं कि जैनियों के समान बौद्ध और हिन्दू भी अपने अपने माननीय महापुरुषों की मूर्तियां और मन्दिर बनाने,—उनकी भक्ति करने में लग गये। उस समय शुरू में बौद्धों ने भगवान बुद्ध हिन्दुओं ने भगवान कृष्ण की मूर्तियाँ निर्माण कीं। पीछे तो इस प्रथा ने इतना ज़ोर पकड़ा और मूर्तिकला ने इतनी उन्नति की कि भारत में ब्रह्मा, शिव पार्वती, गणेश, लक्ष्मी सरस्वती, कृष्ण के अतिरिक्त विष्णु के अन्य अवतारों बोधिसत्व आदि अनेक प्रकार की सौम्य मूर्तियों की एक बाढ़ सी आ गई। फिर क्या था जैन, बौद्ध, और हिन्दू सभी धर्मवालों ने अपने अपने महापुरुषों की मूर्तियां और मन्दिर बनाकर सारे भारत को ढंक दिया।

भगवान महावीर ने अपने ज़माने के विभिन्न विचार

---

१—लोकमान्य तिलक—१९०४ ई० में जैन कान्फ़रेंस में दिया हुआ व्याख्यान।

२—ओझा—मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ० ३४

३—याज्ञवल्क्य स्मृति १-१५६, वृहन्नारदीय पुराण, २२, १२-१६, ओझा मध्यकालीन भा० संस्कृति पृ० ३४।

१—ओझा, मध्यकालीन भा० संस्कृति पृ० १७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मान्यताओं में एकता लाने के लिये जिस अनेकान्त-वाद अथवा स्याद्वाद ( Relativity ) के सिद्धान्तों को जन्म दिया था. उसने भारतीय विचारकों में सत्य को अनेक पहलुओं से देखने और जानने के लिये एक विशेष स्फूर्ति पैदा कर दी। इससे भारत को धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त सभी प्रकार का साहित्य सृजन करने में बड़ी प्रगति मिली। महावीर के उपासकों ने तो इस दिशा में ख़ास उत्साह दिखलाया। उन्होंने भारत के साहित्य और कला का कोई क्षेत्र भी ऐसा न छोड़ा जिसे अपनी स्वतन्त्र रच-नायें और टीकाओं द्वारा ऊँचा न उठाया हो। इसलिये हम देखते हैं कि अन्य धर्मों की तरह जैन साहित्य केवल दार्शनिक, नैतिक और धार्मिक विचारों का ही भण्डार नहीं है बल्कि वह इतिहास, पुराण, कथा, व्याख्यान, स्तोत्र, काव्य, नाटक, चम्पू, छन्द, अलंकार, कोष, व्याकरण, भूगोल, ज्योतिष, गणित, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, आयुर्वेद, वनस्पति विद्या, मृगपक्षि विद्या, वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्र कला, शिल्पकला और सङ्गीत कला आदि के अनेक लोको-पयोगी ग्रन्थों से भी भर पूर है।[1] इतिहासज्ञों के लिये तो जैनियों के साहित्य में इतनी अधिक और प्रामाणिक सामग्री भरी हुई है कि इसके अध्ययन से भारतीय इतिहास की अनेक गुत्थियां आसानी से सुलझ सकती हैं।

न्यायशास्त्र के क्षेत्र में तो जैन विद्वानों की सेवायें भारत के लिये भी मूल्यवान हैं। ईसा पूर्व की छठी सदी में अक्षपाद गौतम ने बुद्धिवाद द्वारा भौतिकों के जड़वाद का निराकरण करने के लिये जिस न्याय शास्त्र को जन्म दिया था, उसे गहरे शोध और अनुसन्धान द्वारा पूरी ऊंचाई तक उठाना और उसका अध्यात्म-विद्या के साथ मेल करना जैन नैयायिकों का ही काम था। इसके लिये सतीशचन्द्र विद्याभूषण जैसे प्रकाण्ड विद्वान ने जैन न्याय की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। उनका कहना है कि ईसा की पहली सदी में होनेवाले जैनाचार्य उमास्वाति जैसे अध्यात्म-विद्या विशारद तथा छठी सदी के सिद्धसेन दिवाकर और आठवीं सदी के अकलङ्कदेव जैसे नैयायिक इस भूमि पर बहुत कम हुए हैं[2]।

१—Dr. Winternitz, History of Indian Lit. vol II—pp. 594, 595.

२—महा० सतीशचन्द्र द्वारा १९१३ में स्याद्वाद विद्यालय काशी में दिया हुआ व्याख्यान।

## भारतीय भाषाओं को जैन धर्म की देन

भगवान महावीर की दृष्टि बहुत ही उदार थी और उनका उद्देश्य प्राणिमात्र का कल्याण था; वह अपने सन्देश को सभी तक पहुंचाना चाहते थे, इसीलिये उन्होंने ब्राह्मणों की तरह कभी किसी भाषा को ईश्वरीय भाषा होने का आग्रह नहीं किया। उन्होंने भाषा की अपेक्षा भावों को अधिक महत्ता दी। उनके लिये भाषा का अपने आप कोई मूल्य न था, उसका मूल्य इसी में था कि यह भावों को प्रकट करने का माध्यम है। जो भाषा अधिकतर लोगों के पास भावों को पहुँचा सके वही श्रेष्ठ है। भाषा की श्रेष्ठता उपयोगिता पर निर्भर है, जातीयता पर नहीं इसलिये उन्होंने अपने उपदेशों के लिये संस्कृत को माध्यम न बनाकर अर्द्धमागधी को माध्यम बनाया, जो उस समय हिन्दुस्तानी भाषा की तरह भारत के सभी पूर्वीय और मध्य देशों में आम लोगों द्वारा बोली और समझी जाती थी। इस भाषा में न केवल मगध देश की बोली ही शामिल थी, बल्कि विदेह, काशी, कोसल, मालवा, कोसाम्बी जैसे आसपास के सभी इलाक़ों की बोलियाँ शामिल थीं। भगवान की इस उदार परिणति से भारत की सभी बोलियों को अपने उत्कर्ष में बड़ी सहायता मिली है। इसी कारण जैन धर्म भारत के जिन जिन देशों में फैला अथवा जिन जिन कालों में से गुजरा, यह सदा उन्हीं की बोलियों में ज्ञान देता और साहित्य सृजन करता चला गया। इसीलिये जैन साहित्य की यह विशेषता है कि यह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी, तामिल, तैलगु, कन्नड़ी, आदि भारत के उत्तर और दक्षिण की, पूर्व और पश्चिम की सभी पुरानी और नई भाषाओं में लिखा हुआ मिलता है। यही एक साहित्य ऐसा है, जिससे कि हम भारतीय भाषाओं के क्रमिक विकास का भली भांति अध्ययन कर सकते हैं।

इस तरह भगवान महावीर ने अपने आदर्श जीवन और उपदेशों से जिस संस्कृति का पुनरुद्धार किया था उसने भारतीय सभ्यता, साहित्य, कला और भाषाओं के विकास और उत्थान में बहुत बड़ा भाग लिया है।

१ Winternitz—History of Indian Lit. vol. II, pp. 594, 595.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# जावा में प्राचीन भारतीय सभ्यता

श्री प्रकाशचन्द्र उपाध्याय एम० ए०

भारतवर्ष की प्राचीन धार्मिक पुस्तकों में जावा का नाम सबसे पहले श्रीमद्वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड में उस स्थल पर आता है जब वानर राजा सुग्रीव सीता जी की खोज में अपनी सेना भूमंडल की चारों दिशाओं में भेजता है। वह अपनी सेना से यव द्वीप (जावा) में भी सीता जी को खोजने को कहता है, और यव द्वीप का वर्णन करते समय कहता है :—

"रत्नवन्तं यवद्वीपं सप्तराज्योपशोभितम्।"

अर्थात् सात राज्यों से सुशोभित रत्नवान यवद्वीप में भी जाओ।

'स्वर्णरूप्यकं चैव सुवर्णाकरमंडितम्'

अर्थात् इस द्वीप में सोने की खानें होने से लोग इसे सोने चाँदी का भी द्वीप कहते हैं।

दूसरी शताब्दी के अन्त में सिकंदरिया में टालेमी (Ptolemy) नामक प्रसिद्ध रोमी विद्वान ने संसार का एक नक़शा बनाया था, उसमें उसने यवद्वीप (जावा) का नाम अबादिऊ (Iabadiou) लिखा है। इसका मतलब होता है 'जौ' या 'यव'। यह माना जा सकता है कि उस विद्वान को इसका नाम यवद्वीप ही मालूम था और उसने उस शब्द का अनुवाद करके उसका नाम 'अबादिऊ' अपने नक़शे में बनाया।

पाँचवी शताब्दी के अन्त में उज्जैन नगरी के प्रसिद्ध विद्वान आर्य भट्ट ने यवद्वीप के बारे में लिखा है, "जब लंका में सूर्य उदय होता है तब यवकोटि (यवद्वीप वा जावा) में दोपहर रहती है और रोमन लोगों के देश में अर्ध रात्रि रहती है।" तमिल भाषा की एक पद्य पुस्तक मनी मेग्लाइ (Manimegalai) में यवद्वीप के लिये तमिल शब्द सावक नाडू (Savak-nadu) लिखा हुआ है। तिब्बत में कल्याण मित्र ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि दसवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में बंग देश का दिपांकर (अतिषा) नामक साधु स्वर्ण द्वीप गया था। इतिहासकार शरत चन्द्र दास ने अपनी पुस्तक 'तिब्बत में भारतीय पंडित' में अतिषा साधु की यवद्वीप यात्रा का पूरा वर्णन किया है। अतिषा यवद्वीप में बारह वर्ष तक रहा और फिर व्यापारियों के जहाज़ से लौटकर भारत वापस आया। गुजराती महाकाव्य 'रासमाला' में लिखा है कि 'जो जावा जाता है वह लौटकर नहीं आता, अगर भाग्यवश लौटकर आया भी तो वह अपने साथ दो पीढ़ियों के लिये चाँदी लेकर आता है'। ग्यारहवीं शताब्दी की एक सचित्र नैपाली पुस्तक में भी जावा (यवद्वीप) का उल्लेख किया गया है।

## जावा में रामायण और महाभारत

जावा में आज दिन भी रामायण सजीव है और उसका प्रमाण जावा के छाया-नाट्य (Shadow-plays) से मिलता है जिनमें रामायण की कथा का अभिनय दिखलाया जाता है। यह सच है कि जावा की वर्तमान रामायण तथा वाल्मीकि रामायण में बहुत अन्तर पाया जाता है। जावा की रामायण में श्रीराम के जीवन के तीन मुख्य भाग से बन गये हैं। शुरू में श्रीराम को सिर्फ एक महात्मा माना गया, मध्यकालीन समय में श्रीराम को पूर्णरूप से विष्णु भगवान का ही अवतार मान लिया गया, परन्तु वर्तमान काल में श्रीराम को प्रत्यक्ष में भगवान का स्वरूप समझा जाता है और यह विश्वास किया जाता है कि मानव जाति के प्रति प्रेम होने के ही कारण उनको मनुष्य रूप धारण करना पड़ा। जावा की तरह स्याम में भी भारतीय महापुरुषों के जीवन को अधिक महत्व दिया गया है। स्याम के शासक हमेशा अपने आपको राम का ही अवतार मानते चले आये हैं। स्याम के राजा राम (छठवें) ने अपनी राजधानी का नाम भी अयुध्या (Ayudhia) ही रक्खा था।

सन् १८८९ में मध्य जावा में प्राम्बनान (Prambanan) के मंदिर में देखा गया कि रामायण की कथा के कई प्रसंगों को शिला चित्रों में दिखलाया गया है। जावा में कई पुस्तकें पाई गई हैं जो पूरी नहीं हैं और जिनमें रामायण की कथा खंडित रूप में मिलती है। यह एक आश्चर्यजनक बात है कि सीरत काण्ड (Serat Kandas) नामक पुस्तक की कथा का प्रारम्भ मक्का में बाबा आदम से होता है। उसमें उसके दो पुत्रों (अबील तथा कबील) का भी वर्णन है। फिर उस पुस्तक में नूह (Noah) तथा उमा (Uma) का भी उल्लेख आता है। उसके पश्चात उस पुस्तक में विष्णु तथा वासुकि के जन्म का वर्णन आता है और फिर मुसलमानी बातों का अन्त हो जाता है। रामायण की कथा का प्रारम्भ इस पुस्तक के बाईसवें अध्याय से शुरू होता है, और छयालीसवें अध्याय में श्रीराम के जन्म का वर्णन मिलता है। अध्याय तेईस से लेकर पैंतालीस तक सिर्फ राम और रावण के पूर्वजों का ही वर्णन है। इस पुस्तक में श्रीराम का नाम 'भार्गव', लक्ष्मण का 'मुर्धक'



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


(Murdhaka) तथा 'सीता' का 'सिन्ता' लिखा हुआ है। राजा जनक का नाम 'काला', जटायु का 'जिन्तायु' तथा हनुमान का 'अनुमान' लिखा हुआ है। जिस समय पुस्तक में लङ्का पर चढ़ाई का वर्णन आता है, उसी समय लेखक महाभारत के पांडवों का वर्णन करने लगता है। सत्तरहवें परिच्छेद में फिर राम का वर्णन आ जाता है। रावण की मृत्यु के बाद लिखा है कि उसे एक पर्वत में दफनाया गया। उसके बाद पंखे का वर्णन है, जिस पर कि रावण का चित्र था! तथा जिसको सीता ने भूल से उठा लिया था।[1] तब राम तथा सीता के मतभेद का वर्णन है फिर जनक के आश्रम में उनमें सुलह हो जाती है। अन्त में सीता जी के देहान्त का वर्णन है जहाँ पर वे अगले जन्म में श्रीराम की बहिन बनने को तैयार हो जाती हैं।

'सीरत काण्ड' के अतिरिक्त 'राम किलंग', 'रामायण ससक', तथा 'राम निटीस', पुस्तकें हैं, जिनमें रामायण की कथा का वर्णन मिलता है। मलाया में भी रामायण की कथा मिलती है। मलाया में रामायण की कथा का वर्णन 'हिकायत श्रीराम' नामक पुस्तक में मिलता है। जावा की सबसे पहली पुस्तक जिसमें रामायण की कथा का वर्णन मिलता है 'ककाविन' (Kakavin) है। 'सीरत काण्ड' और वाल्मीकि रामायण में बहुत अन्तर है। 'सीरत काण्ड' के तीसरे अध्याय में शिव को आदम का वंशज बताया गया है। मलाया और जावा की रामायण में भी बहुत अन्तर है। मलाया की पुस्तक में लिखा है कि राजा दशरथ की पहली पत्नी बांसों के झुंड में पाई गई थी और 'सीरत काण्ड' के अनुसार दशरथ की दूसरी पत्नी भी बाँसों के कुञ्ज में पाई गई थी। मलाया की रामायण तथा 'सीरत काण्ड' में सीता को रावण की पुत्री लिखा गया है। जैसे ही सीता का जन्म होता है उसे एक सन्दूक में रखकर समुद्र में फेंक दिया जाता है और राजा जनक जो प्रातःकाल समुद्र तीर पर प्रक्षालन कर रहे थे, सीता को सन्दूक से बाहर निकालते हैं और पालन पोषण करने लगते हैं। स्याम की रामायण में भी सीता को रावण की ही पुत्री बताया गया है। लंका की एक रामायण के अनुसार, रावण ने जो मुनियों का रक्त संग्रह किया था, सीता का जन्म उससे हुआ। सीता के जन्म की यह कहानी कांगड़ा घाटी में भी प्रसिद्ध है। जैन धर्म की पुस्तक 'उत्तर पुराण' में भी सीता को रावण की ही पुत्री लिखा गया है। गुजरात में भी एक कथा प्रचलित है जिसमें एक मनुष्य की पुत्री एक सन्दूक में बन्द करके समुद्र में फेंक दी जाती है और फिर बाद में उसका पिता ही उससे विवाह करना चाहता है[2]। बाल्मीकि रामायण में वर्णित कुकुश की जन्म कथा मलाया की रामायण तथा बङ्गाली पुस्तकों में भी उसी प्रकार लिखी हुई हैं। सीरत काण्ड में सीता का रावण की पुत्री होने के विषय में एक विद्वान का मत है कि जिस प्रकार तत्कालीन सामाजिक सभ्यता के आधार पर वाल्मीकि ने रामायण की कथा में संशोधन किया उसी प्रकार जावा के लेखकों ने अपनी सामाजिक सभ्यता के अनुसार रामायण की कथा में उलट फेर कर लिया। यह मानना पड़ेगा कि जावा में जो रामायण की कथा है, उसकी कुछ बातें गुजरात, बङ्गाल तथा पंजाब की कथाओं में मिलती हैं। यह तो मानी हुई बात है कि तेरहवीं शताब्दी में गुजरात के मुल्लाओं (व्यापारियों) तथा नाविकों का एक समूह जावा में जाकर बस गया था।

डा० वोगल (Vogel) नामक विद्वान का कथन है कि रामायण तथा महाभारत की कथा को जावा निवासियों ने अपना लिया है और वहाँ के अधिकतर लोग राम तथा पांडवों को अपने देश के राष्ट्रीय महात्मा मानते हैं। वर्तमान काल में अब भी जो 'छाया नाट्य' (व्यंग) का प्रदर्शन होता है, उसमें राम, कृष्ण तथा अर्जुन का अभिनय दिखलाया जाता है।[3]

## जावा में हिन्दू मन्दिर

मध्य तथा पश्चिमी जावा में पुराने मन्दिरों के बहुत से खंडहर मिले हैं। प्रम्बनान (Prambanan) में जो मन्दिर मिले हैं, वे सब हिन्दू धर्म के थे। लौरा जोंगरोंग (Laura Jongrong) में बौद्ध मन्दिरों का एक समूह है परन्तु वहाँ पर भी, बीच में तीन मन्दिर हैं जिनमें ब्रह्मा विष्णु तथा शिव की पूजा होती थी। उसी समूह के एक मन्दिर में रामायण की कथा को शिल्पकला की सहायता से दीवारों पर बनाया गया है, और उनमें रावण के जीवन की कई घटनाओं का वर्णन है। विष्णु के मन्दिर में श्रीकृष्ण के जीवन की कुछ घटनाओं को शिल्पित किया गया है।

१—'चन्द्रवली' नामक बङ्गला पुस्तक में भी इस पंखे की कथा का वर्णन है।

2 Indian Antiquary, XXII, पृष्ठ ३१५

3 Influences of Indian Art, पृष्ठ ४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इन शिल्प चित्रों में गरुड़ का भी एक चित्र है। विष्णु को शेषनाग पर विश्राम करते हुये दिखलाया गया है। एक विद्वान लेखक का कहना है कि इस शिल्प चित्र का आधार जावा की रामायण नहीं हो सकती तथा उनका कहना है कि इस शिल्प चित्र का आधार महाकवि कालिदास का 'रघुवंश' है। अन्य चित्रों में विश्वामित्र का राजा दशरथ के पास आना, ताड़का वध, सीता स्वयंवर, परशुराम, तथा एक स्त्री का हाथ में ढाल तथा तलवार लेकर युद्ध नृत्य दिखलाया गया है। राम की वन यात्रा, राम का भरत को अपने खड़ाऊ देना, शूर्पणखा अभिनय, राम का मृग मारना, तथा रावण जटायु युद्ध के चित्र मन्दिर की दीवार पर अंकित किये हुये हैं।

## जावा के शिलालेख

पश्चिमी जावा में चार महत्वपूर्ण शिलालेख मिले हैं। इन शिलालेखों की भाषा, उत्तर भारत की नागरी संस्कृत है। सबसे पुराने शिलालेख में जावा के एक राजा पूर्ण-वर्मन का नाम तीन शिलालेखों में आया है और विद्वानों का मत है कि तीनों शिलालेखों में एक ही व्यक्ति का नाम है। सी-अरुटान (Ci-Aruton) तथा जम्बू के शिलालेखों में पूर्ण वर्मन के पद चिन्ह भी हैं और यह अनुमान किया जाता है कि किबौन कोपी के शिलालेख में भी पूर्ण वर्मन के हाथी का ही यह चिन्ह है। सी-अरुटान के शिलालेख में पूर्ण वर्मन के पद चिन्ह की समानता विष्णु के पद चिह्न से की गई है।

किबोन कोपी के शिलालेख में पूर्ण वर्मन के हाथी के पद चिन्हों की समानता ऐरावत हाथी के पद चिन्हों से की गई है :—

जय विशालस्य तारुमे (न्द्र) स्य ही (स्त) नः
(ऐरा) वताभस्य विभातदिम्पदद्वयम्

तुगू के शिलालेख में 'चन्द्रभागा' नाम की नहर का वर्णन है। स्वच्छ जल की 'गोमती' नाम की नदी भी उसने खुदवाई थी, जिसकी लम्बाई ६,१२० धनुष थी! इस नदी का खोदना फाल्गुन कृष्ण पक्ष में अष्टमी को शुरू हुआ था और यह चैत्र में शुक्ल पक्ष की तेरस को समाप्त हो गया था।

मध्य जावा में कंगल (जंगल) नामक स्थान पर एक शिलालेख मिला है, उसमें संजय नामक एक राजा ने शाके ६५४ में कार्त्तिक के महीने में शुक्ल पक्ष की तेरस को, भद्रा नक्षत्र में, कुम्भ लग्न में, राजा ने एक पहाड़ी पर शिव लिंग की स्थापना की थी। कंगल का शिलालेख बहुत बहुत ही बड़ा है। इसमें शिव जी की बड़ी प्रशंसा की है। उसमें उनको तीन नेत्रवाला, कमल के समान पैरोंवाला तथा अँधेरे का सूर्य कहा गया है। (श्री लक्ष्मी) के पति विष्णु की भी आराधना की गई है। इस शिलालेख की भाषा तो संस्कृत है परन्तु उसकी लिखावट दक्षिण भारत की लिपियों से मिलती जुलती है।

कुछ विद्वानों का मत है कि अगस्त्य मुनि का प्रभाव जावा में अधिक था। रामायण से यह पता चलता है कि उनका आश्रम दक्षिण भारत में था। परन्तु दिनया के शिलालेख से यह भी मालूम पड़ता है कि जावा के हिन्दू शासक अगस्त्य मुनि का अधिक आदर सत्कार करते थे। पुराने हिन्दू राजाओं का विश्वास था कि अगस्त्य मुनि के ही वंशज जावा में जाकर बस गये थे और वहाँ के कुछ राजा तो अपने को अगस्त्य मुनि का ही वंशज मानते थे। गजयन नामक राजा ने अपने शासन काल में अपने वंशजों के समय की देवदारु लकड़ी की बनाई हुई अगस्त्य मुनि की मूर्ति के आधार पर काले पत्थर की मूर्ति बनाने की आज्ञा दी थी। अगस्त्य मुनि की यह मूर्ति ६८२ शाके में बनी थी।

जिन जिन शिलालेखों का ऊपर वर्णन किया गया है उनकी खोज सत्रहवीं, अट्ठारहवीं तथा पूरी तरह से उन्नीसवीं शताब्दी में हुई थी। शिलालेखों को ठीक अवस्था में नहीं पाया गया है, इस कारण कहीं कहीं शब्दों का ठीक पता नहीं चलता। परन्तु जावा के शिलालेखों से ही हमको जावा में प्राचीन भारतीय सभ्यता के चिन्ह मिलते हैं।

## जावा में बौद्ध धर्म

यह कहना कठिन है कि किस सन में जावा में बौद्ध धर्म का प्रचार किया गया! परन्तु फिर भी विद्वानों को चीनी, तिब्बती, फ्रांसीसी विद्वानों के लेखों तथा हालैंड के व्यापारियों की सहायता से अब यह पता चलता जा रहा है कि पाँचवीं शताब्दी के शुरू में बौद्ध धर्म का प्रचार पूर्ण रूप से जावा में शुरू हो गया था। कुछ विद्वानों का मत है कि सन् ४२३ में गुण वर्मन नामक एक काश्मीरी क्षत्रिय राजकुमार ने जावा में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। तीस वर्ष की अवस्था में वह राज के झंझटों से भाग कर लंका गया। फिर वह जावा गया। उसके जावा पहुँचने की पहली रात को जावा की रानी ने स्वप्न में देखा कि एक धार्मिक पुरुष उसके देश में आ रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


गुणवर्मन ने जावा पहुंच कर सबसे पहले रानी को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी। फिर उसका लड़का जो जावा का शासक था बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया। उसके कुछ दिन बाद पास के एक राजा ने जावा के राजा पर चढ़ाई कर दी परन्तु गुणवर्मन की आज्ञानुसार जावा के राजा ने हथियार न उठाये फिर भी दुश्मन की फौज भाग गई। जावा के राजा ने गुणवर्मन की यादगार में एक बौद्ध मठ बनवाया। जावा में धर्म का प्रचार करने के बाद गुणवर्मन चीन चला गया। तिब्बत की एक पुस्तक के अनुसार अतिषा नामक बौद्ध साधु भी जावा गया था और वहाँ जाकर उसने तांत्रिक धर्म के माननेवाले लोगों को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी थी। जावा में उस समय धर्मकीर्ति नाम का बौद्ध धर्म का एक महापंडित था और अतिषा ने उससे भी भेंट की थी। अतिषा ने जावा में धर्मकीर्ति के पास बारह साल रहकर धर्म का अध्ययन किया।

सैलेंद्र वंश के राजा जब जावा में थे, तब बुद्ध धर्म की बहुत उन्नति हुई! बालपुत्र देव ने, बंगाल तथा मगध के पाल वंश के राजा धर्मपाल देव से, नालान्दा में एक बौद्धमत या विहार बनाने की आज्ञा मांगी थी। चोल राजा राजराजा के समय में भी सैलेन्द्र वंश के जावा के राजा मरविजयो तुङ्ग वर्मन ने नागा पदम में एक बौद्ध विहार बनाने की आज्ञा मांगी थी! जावा में सैलेन्द्रवंश के राजाओं ने सारे देश में बौद्ध मठ बनवाये। बौद्धधर्म के अध्ययन के ही हेतु बौद्ध विहारों में बौद्ध पंडित भिक्षुओं से शास्त्रार्थ किया करते थे। बौद्धधर्म के ही हेतु सैलेन्द्र वंश के शासक हमेशा चीन देश के राज दरबार तथा राजा के पास हमेशा अपने दूत भेजते थे, और बाहर से आये दूतों का आदर करते थे! सन् ४१३ में फ़ाहियान लङ्का से जावा गया था और वहाँ के सम्बन्ध में वह लिखता है कि उस समय वहाँ बौद्ध धर्म का पूर्ण रूप से प्रचार नहीं हुआ था। नवीं शताब्दी तक सैलेन्द्र वंश वहाँ का शासक था। श्री विजय वंश के राजा बौद्ध थे। बोरोबुदुर का बौद्ध स्तूप एक पूरी पहाड़ी को काटकर बनाया गया है। स्तूप की दीवारों पर 'ललितविस्तर' के प्रसंगों के चित्र बने हैं।

## जावा में हिन्दू राज्य

दसवीं शताब्दी में जावा में फिर से हिन्दू राज्य आ गया था। उस वंश में विजय एक प्रभावशाली शासक हुआ है। जब चीन सम्राट कुबलैखाँ ने जावा की विजय के लिये सेना भेजी, उसको विजय ने परास्त किया। विजय के बाद उसकी पुत्री जयविष्णुवर्धनी, ने राज किया। पन्द्रहवीं शताब्दी में मजापहित का हिन्दू राज्य बड़ा शक्तिशाली था। राजा श्याम बूरूक के समय में जावा का राज्य सुमात्रा, बाली, फिलीपाइन द्वीप समूह, बोरनियो, तथा गाथनी के कुछ भाग तक फैल गया था। हयाम बूरूक के राज कवि ने 'नगरकातिगाय,' में राज्य की राजधानी मजापहित का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। उस समय के धर्म के बारे में हमें 'कासदाय विकन' नामक पुस्तक से पता चलता है कि शैव, बौद्ध तथा तांत्रिक धर्म का जनता में प्रचार था। सन् १५१३ में अलबुकर्क जावा में एक हिन्दू राजा का नाम बताता है। उसके बाद से जावा में हिन्दू राज्य का अन्त हो गया।

यह बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि जावा में सोलहवीं शताब्दी तक हिन्दू व बौद्ध धर्म था। और उस समय तक भारतीय संस्कृति तथा भारतीय सभ्यता ही जावा में प्रचलित थी। जावा के राजाओं ने हमेशा या तो शैव धर्म या बौद्ध धर्म को ही अपनाया था। जावा के शिलालेखों से पता चलता है कि जावा के समाज पर भी भारतीय समाज का प्रभाव था। देश में शक संवत प्रचलित था। वर्ष के महीने भी हिन्दू महीनों की ही तरह थे। भारतीय ज्योतिष के ही आधार पर जावा में लोग समय का ज्ञान रखते थे। जावा की नदियों में चन्द्रभागा और गोमती थीं, जिनका जल स्वच्छ तथा गङ्गा की तरह स्वच्छ था। विष्णु, ब्रह्मा, तथा शिव की पूजा होती थी। श्रीराम तथा श्रीकृष्ण से ही जावा के हिन्दू राजा अपने वंश की परम्परा मानते थे। अगस्त्य मुनि का प्रभाव बहुत था। जावा के राजा मनु महाराज के बताये हुये नियमों के अनुसार ही देश का राज करते थे। ऐरावत हाथी, शंख, चक्र, गदा, पद्म, स्वस्तिका शेषनाग, उमा, रामायण तथा महाभारत के सब वीरों का उनको पूरा ज्ञान था। जावा में सोलहवीं शताब्दी तक पूर्ण रूप से भारतीय सभ्यता का प्रभाव था, उसके बाद इसलाम धर्म का प्रचार हुआ, फिर डच तथा फ्रान्सीसियों ने ईसाई धर्म का प्रचार किया। फिर भी आज तक जावा में भारतीय सभ्यता के चिन्हों के प्रमाण मिलते हैं। पूर्व काल में जावा की भाषा संस्कृत ही थी। जावा के राजा हमेशा चोल राजा तथा बङ्गाल के पाल वंशीय राजाओं से सम्बन्ध रखते थे। भारत तथा जावा के व्यापार की कथा यूरोप के व्यापार से बहुत अधिक पुरानी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शेष-पत्र

[ गताङ्क से आगे ]

डाक्टर एन० एस० वर्धन

छै

प्रिय...,

मैं तुमसे पूरी तरह सहमत हूं कि बहुत कम बातें इतनी विस्मयजनक हैं जितनी मां-बाप और बच्चों के बीच सहानुभूति की कमी। अपने जिन बच्चों के लिये मां-बाप को स्वभावतः बहुत अधिक प्यार होता है, या कम से कम ऐसा वे ज़ाहिर करते हैं, अपने उन्हीं बच्चों की इच्छाओं, और आकांक्षाओं से वे बिलकुल अनभिज्ञ और अपरचित होते हैं। ज़्यादातर घरों में हमें यही बात देखने को मिलती है। मेरी समझ में इसके दो मुख्य कारण हैं :

पहला कारण है मां-बाप और बच्चों के बीच उम्र का फ़र्क़। उम्र के चढ़ाव के साथ साथ बहुत सी बातें बच्चों के दिल को डांवाडोल करना शुरू करती हैं। ऐसी बातों की तरफ से मां-बाप की दिलचस्पी ख़त्म हो चुकी होती है। बच्चे इसे सहज भाव से ताड़ जाते हैं। इसलिये वे अपेक्षाकृत अजनबी आदमियों से अपने मन की बात कह देंगे लेकिन मां-बाप से नहीं, क्योंकि वे जानते हैं कि मां-बाप उनकी बात सुनकर पहले तो नाराज़ होंगे, फिर मज़ाक़ उड़ायेंगे, उसके बाद भर्त्सना करेंगे और अन्त में हतोत्साह करेंगे।

मां-बाप और बच्चों के बीच इस दुराव और परायेपन का दूसरा कारण यह है कि मां-बाप अपने बच्चों को जब तक उनकी शादी नहीं होती और कभी कभी उसके बहुत बाद तक उन्हें अबोध और नातजरुबेकार ही समझते हैं। वे हुक्म देने और फ़रमाबरदारी के इतने आदी होते हैं कि विचार स्वातन्त्र्य की बात ही नहीं सोच सकते। उनके बच्चे उनकी नज़रों में सदा बच्चे रहते हैं। जो कुछ उनसे कहा जाय निर्विवाद उन्हें करना चाहिये। जब तक उनके मां-बाप जीवित हैं उनकी अपनी मरज़ी का कोई सवाल ही न उठना चाहिये। और यदि वे मां-बाप की सपूत और कुलतारन सन्तान हैं तो उन्हें सबसे पहले आज्ञाकारी बनना चाहिये। उनकी अपनी पसन्द-नापसन्द, इच्छा-अनिच्छा का मतलब ही न पैदा होना चाहिये। मां-बाप की राय ही उनकी अपनी राय होनी चाहिये। मां-बाप की सीख वेद वाक्य समझकर उन्हें ग्रहण करना चाहिये और उनकी चलाई हुई लीक पर ही चलना चाहिये। जर्मनी के प्रसिद्ध पक्षी-विशेषज्ञ ईवान हरमैन ने लिखा है—"कउए के बच्चों को पहले कांव-कांव करना सिखाया जाता है और जब तक वे पुराने कउओं की तरह कांव-कांव नहीं करने लगते उन्हें पंक्ति में नहीं बैठने दिया जाता।" इसी तरह यदि मां-बाप की लायक़ सन्तानें जीवन में सम्मान और अपना स्थान चाहती हैं तो उन्हें भी मां-बाप के स्वर में स्वर मिलाना आना चाहिये।

सुनने में यह बातें कितनी बेतुकी और बेकार मालूम होती हैं फिर भी हम रोज़मर्रा यही देखते हैं। हर घर में ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जो और सब बातों में तो समझदार होंगे लेकिन अपने बच्चों के मामले में मानो उनकी बुद्धि घास चरने लगती है। जिस बात पर उन्हें लज्जा लगनी चाहिये उसी पर वे अभिमान अनुभव करते हैं। औरों की आंखों का तिल उन्हें दिखाई देता है किन्तु अपनी आंख का लट्ठा नहीं दिखाई देता। वे यह समझ ही नहीं पाते कि वे कितने क्रूर और अक्षम्य अपराध के दोषी हैं। अपने बेटों की और ख़ासकर अपनी बेटियों की इच्छाओं की वे तबियतन् क़द्र ही नहीं कर सकते। नतीजा यह होता है कि उनके बच्चे हर तरह की चोरी-छुप्पा और गोपनीयता सीख जाते हैं। सारी दुनिया को छोड़कर वे अपने मां-बाप से ही झूठ बोलते हैं, चालें चलते हैं और उन्हें धोखा देते हैं। लड़कों की तो घर से बाहर भी एक दुनिया होती है, पर बीतती है लड़कियों पर। घर के वातावरण में लड़कियों का दम घुटने लगता है। उन्हें घर से नफ़रत हो जाती है और जब बेबसी बढ़ जाती है तो वह मां-बाप से और घर से नाता तोड़ने पर तुल जाती हैं और अपना सारा जीवन मटियामेट कर लेती हैं।

यदि कोई बाहरी हितेच्छु मां-बाप से यह फूहड़ सत्य बताने का साहस करे तो ग़ुस्से से उस भद्र दम्पति का दम घुटने लगेगा। यह सुझाव ही उन्हें क्रोध से पागल बना देगा कि अपनी लड़की के शोकजनक आचरण के लिये किसी तरह और किसी भी अंश में वे भी ज़िम्मेवार हैं। मां-बाप अपने बच्चों को और विशेषकर अपनी सयानी बेटियों को समझदार प्राणी ही नहीं समझते। वे यह भूल जाते हैं 'कि वह जो उनकी



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दुहिता है उनसे पृथक एक स्वतन्त्र व्यक्ति है,' उसके पास भी हृदय नाम की वस्तु है कि जिसके अन्दर इच्छाओं, उत्कण्ठाओं और भावनाओं का दिन रैन सृजन होता है और उनकी यह तरुण बेटी जड़ प्राणी नहीं है। उसकी धमनियों में भी रक्त बहता है कि जिस रक्त के अन्दर उष्णता होती है। उसके भी हाड़-चाम के भीतर मांस-पेशियां हैं और उन मांस-पेशियों के भीतर शिरा ग्रन्थियां हैं कि जो उसके दिल के अन्दर टीस पैदा करती हैं—ऐसी टीस जो उसके मन को झकझोर कर विह्वल और विस्मृत कर देती हैं। किन्तु अपनी लड़कियों के प्रति मां-बाप के व्यवहार में इस तरह की कोई समीक्षा नहीं होती। लगभग हर घर में अलग बैठाकर मांएँ बेटियों के सामने यही रोना रोती हैं—"तुम्हें निश्चित रूप से यही करना चाहिये क्योंकि बचपन में मुझसे भी यही कराया गया था। तुम्हें अमुक बात नहीं करनी चाहिये क्योंकि मुझे भी उसके करने की अनुमति नहीं थी। मेरी बात तुम्हें आंख मूँद कर माननी चाहिये क्योंकि इसी में तुम्हारी भलाई है। मैं तुम्हारी माँ हूँ, तुम मेरी बेटी हो। मैं बूढ़ी हुई तुमने अभी दुनिया नहीं देखी और मेरे बचपन में बेटियां कभी अपनी माँओं से ज़बान न लड़ाती थीं!"—ये और इस इस तरह की बहुत सी बातों की हम प्रशंसा कर सकते हैं किन्तु इनसे परिस्थिति तो नहीं सुधर सकती। सम्भव है इस तरह के उपायों से कभी कभी समस्या सुलझ भी जाय मगर वह बधाई नहीं अपवाद की बात होगी। इन उपायों से बहुधा असफलता ही पल्ले पड़ती है; मगर मां-बाप से यह कौन कहे कि इस विषम परिस्थिति की तह में उनके अपने दक़ियानूसी तरीके हैं। मां-बाप को जब कभी इस सच्चाई का पता चलता है कि उनके अपने कोख-जाए बच्चे उनसे नफ़रत करने लगे हैं तो उन्हें वे ठण्डी सांस भर कर कपूत और नालायक समझते हैं और यह आशा करते हैं कि इस कलजुग में भी किसी तरह धरती फटेगी और बाइबिल के कोरा की तरह उनकी ये विश्वासघातक फ़रामोश सन्तानें ज़मीन में समा जायेंगी। मांएँ सोचती हैं कि कपूती होने से उनका निपूती होना अच्छा था।

देखने वालों के लिये परिस्थिति ज़रा असह्य हो जाती है और वे यह समझ कर उसमें दखल नहीं देते कि इससे समस्या और जटिल न बन जाय। मां-बाप के निष्ठुर और अतार्किक शासन के फलस्वरूप यदि सन्तानें विद्रोह करती हैं तो लोकमत को उससे आश्चर्य नहीं होता। दुनिया आज अद्भुत गति से प्रगति कर रही है। ग़लत या सही आज चारों तरफ कर्तव्य की नहीं बल्कि अधिकारों की चर्चा है। आज समाज के स्तर स्तर पर मानव अधिकारों की रूपरेखा अपनी छाप लगा रही है। समान अधिकारों की मांग का नारा आज चारों ओर बुलन्द हो रहा है। हमारे देश में आमतौर पर बच्चे मां-बाप के ज़ुल्मों की शिकायत नहीं करते और वे विद्रोह भी यदा कदा ही करते हैं लेकिन फिर भी इस बात पर वे अपना तीखा रोष प्रकट करते हैं कि बालिग़ हो जाने पर भी उन्हें दस वर्ष का बच्चा ही समझा जाता है। वे समझते हैं कि २०-२२ तक उनकी काफ़ी शिक्षा दीक्षा हो जाती है और दुनिया के सम्बन्ध में उन्हें काफ़ी अनुभव हो जाता है और वे अपनी स्वतन्त्र राय बना सकते हैं और उसे प्रकट कर सकते हैं। उन्हें अपना, अपने कुल का और अपनी जाति के आत्म सम्मान का पूरा पूरा बोध होता है। माँ-बाप अगर चाहें तो अपनी इन सन्तानों को अपने सहानुभूति पूर्ण व्यवहार से उच्चादर्श पर क़ायम रख सकते हैं। उन्हें अबोध और अनुभवहीन समझ कर उनके इरादों को हमेशा सन्देह की दृष्टि से देखना बहुत बुद्धिमानी की बात नहीं है। उठती जवानी की उमङ्गों के साथ साथ बहुधा श्रेष्ठ विचार-धारायें बच्चों के मन के भीतर हिलोरें मारती हैं। आगे चलकर जीवन के कटु अनुभव उन्हें कुण्ठित कर देते हैं। बच्चों के इन श्रेष्ठ विचारों को प्रोत्साहन मिलना ही चाहिये। आदरणीय गुरुजनों की सहानुभूति के सहारे यह काम सरलता से हो सकता है। किन्तु जब तक बच्चों को अपने विचार प्रकट करने का पूरा अधिकार न हो उपहास के डर से वे कभी उन्हें प्रकट न करेंगे। बेहूदे कारणों से जो असमता का दरजा उन्हें दिया जाता है उसका वे मन ही मन तीव्र प्रतिवाद करते रहेंगे।

मानव जाति कम से कम तीस हज़ार वर्ष से इस पृथ्वी पर रह रही है। व्यक्ति क्षण भंगुर होता है किन्तु मर कर भी वह जाति को जीवन दान देता रहता है। आदम और हव्वा से मानव का जो विकास-क्रम शुरू हुआ था उसमें आज तक कोई व्यतिक्रम नहीं आया। इनसान को अपने पुरखों से विरासत में न केवल सभ्यता और संस्कृति ही प्राप्त होती है बल्कि त्वचा, मांस, मज्जा के साथ साथ उन्हें अपने पूर्वजों से विचार-क्रम, स्वभाव और ख़सलतें भी मिलती हैं।

माँ-बाप के तरल रज-वीर्य से गर्भाशय में जो मांस-पिण्ड ठोस आकार ग्रहण करता है उसे सृष्टि के उस अद्भुत कारख़ाने में जीवन के साथ साथ वंश परम्परा भी मिलती है। अक्सर यह देखने में आता है कि बच्चों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पिता के अपनी माँ के वंश के गुण मिलते हैं और दो-तीन पीढ़ी बाद उनमें फिर पितृ-कुल की परम्परा की प्रधानता दिखाई देने लगती है। कभी कभी बच्चों में मातृ-कुल और पितृ-कुल के गुणों का आश्चर्यजनक सम्मिश्रण पाया जाता है। माँ-बाप अपने बच्चों के सम्बन्ध में राय क़ायम करने के समय यह बात बिलकुल भूल जाते हैं कि गुण, कर्म, स्वभाव पर उत्तराधिकार की भी अमिट छाप होती है। एक ही माँ-बाप की सन्तानें भाँति-भाँति की निकलती हैं। लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा के एक से तरीक़े सब में एक ही नतीजे नहीं पैदा करते। जिन आधे दर्जन बच्चों को माँ-बाप अदृश्य के अन्धकार से जीवन के प्रकाश में लाते हैं यह ज़रूरी नहीं कि वे अपने माँ बाप की ही पुनरावृत्ति हों। वीर्य की उस छोटी सी बूँद में एक हज़ार एक पुरखों की ख़सलतें भरी होती हैं और उनमें से किसी की भी छाप बच्चों पर पड़ सकती है।

मेरा यह मूर्खता पूर्ण दावा नहीं है कि सभी माँ बाप ज़िद्दी और विचार-शून्य होते हैं। इसके अनेक अपवाद मिलेंगे; किन्तु हमारे देश में अधिकतर पढ़ी लिखी लड़कियों को माँ-बाप की आज्ञाओं के सामने विवश होकर सर झुकाना पड़ता है। लड़कियों के जीवन की सब में महत्वपूर्ण घटना विवाह होती है और उसी के निर्णय का उन्हें कोई अधिकार नहीं होता। जो पढ़ी लिखी लड़कियाँ संघर्ष करके अपनी रुचि का विवाह करती हैं उनमें अधिकांश सफल विवाहित जीवन बिताती हैं। कम-से-कम माँ बाप को तो यह आशा करनी ही चाहिये, किन्तु यह भी एक दुःखद सत्य है कि माँ बाप की आन्तरिक इच्छा यह होती है कि उनकी उस कुलबोरन ज़िद्दी लड़की को यदि किसी तरह अपने कर्मों का फल मिल सकता तो अच्छा होता। अनेक माँ-बाप लड़कियों को कुआँरी रखना कहीं अधिक पसन्द करेंगे बजाय इसके कि वे अपनी पसन्द का विवाह करें। विवाह को लेकर माँ-बाप और लड़कियों के विचारों में अब तक कोई सन्तुलन पैदा नहीं हो पाया। जिन लड़कियों को भाग्य हाथों हाथ उठा लेता है उनकी कोई बात नहीं किन्तु भाग्य सब पर तो सदय नहीं होता। साधारणतया विवाह के प्रारम्भिक वर्ष तो सुख चैन से बीतते हैं किन्तु बाद में अपनी त्रुटियों या अपने पतियों की कमियों अथवा क्रूर परिस्थितियों के कारण उनके दाम्पत्य की नौका मँझधार में डूबने लगती है। विवाहित जीवन—जिसमें स्त्री और पुरुष को एक दूसरे के लिये हार्दिक सहानुभूति हो, जिसमें परस्पर प्यार और प्रशंसा की भावना आत्म त्याग को सुख की वस्तु बना दे, जिसमें एक दूसरे के लिये कष्ट उठाने में वास्तविक आत्म-सन्तोष का बोध हो—कोई सहज मार्ग नहीं है। विवाह वेदी से चिता तक उस मार्ग पर समान भाव से चलने वाले लोग बिरले ही मिलते हैं। बहुत से व्यक्ति किसी भी क़ीमत पर विवाहित जीवन की नापी हुई दूरी से वापस लौटने को तय्यार खड़े रहते हैं किन्तु वापस भी कैसे लौटा जाय? निरुपाय और विवश उन्हें बाक़ी रास्ता भी तै करना ही पड़ता है। ज़िन्दगी की आख़िरी घड़ी तक उन्हें दिखाने के लिये ही सही, पति-पत्नी बने रहना पड़ता है। इस निरर्थक और बोझिल यात्रा में कुछ के पैरों में छाले पड़ जाते हैं, कुछ बेहोश हो जाते हैं, और कुछ भीषण गृह-कलह के बीज बोते हैं जिसके फल वे ज़िन्दगी भर काटते रहते हैं। कुछ होनी को इस तरह स्वीकार करते हैं कि उनकी ज़िन्दगी में कोई रस ही बाक़ी नहीं रहता। कुछ रास्ता खोकर अटपटे मार्ग में ठोकरें खाते हैं और दिल तोड़ बैठते हैं।

विवाहित व्यक्तियों के गले में चक्की के पाट की तरह पड़ी हुई अनेक विपदाओं का कारण, मेरी समझ में, स्त्रियों के सम्बन्ध में पुरुषों का घोर अज्ञान है। यह एक ऐसा विषय है जिसकी शिक्षा हमें किसी भी विश्व-विद्यालय में नहीं मिलती। अभिमानी से अभिमानी पुरुष भी इस सम्बन्ध में थोथे ज्ञान से अधिक का दावा नहीं कर सकता। बड़े से बड़े भारतीय विचारक इस सम्बन्ध में यही कहते आये हैं—

स्त्रीश्चरित्रं निहितम् गुहायाम
दैवो न जानाः कुतो मनुष्याः ॥

पश्चिम की भौतिक दुनिया समान अधिकारों की चर्चा के बावजूद स्त्रियों के सम्बन्ध में और विशेषकर पत्नियों के सम्बन्ध में उसी शेक्शपीरियन आदर्श की दाद देती है जो "The Taming of the Shrew" में शेक्शपीयर का एक पात्र कहता है—

"Thy husband is thy Lord, thy Life, thy Keeper, thy Head, thy Sovereign; one who cares for thee, and for thy maintenance commits his body to painful labour both by sea and land, whilst thou liest warm at home, secure and safe; and craves no other tribute at thy hands but love, fair looks, and true obedience; too little payment for so great a debt. And when

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

she is forward, peevish, sullen, sour, And not obedient to his honest will, what is she but a foul, contending rebel and graceless traitor to her loving Lord ?"

किन्तु पश्चिम में भी इधर बहुत से लेखकों—फ्रायड, हैवलाक ऐलिस, ईवान ब्लाख़, एडवर्ड कारपेण्टर, टाल्सटाय, बर्नर्डशा, आइन्सटाइन आदि ने विस्तार के साथ स्त्रियों के चरित्र की विवेचना की है। लेकिन इनका दृष्टि-कोण हमारे दृष्टि-कोण से उसी तरह भिन्न है जिस तरह उनके देशों की आबहवा, उनका धर्म, उनका स्वभाव, उनकी आदतें और उनका सदाचार। उनकी जो सामाजिक पृष्ठ-भूमि है वह हमारी नहीं है और इसीलिये विवेचना के बाद वे जिन परिणामों पर पहुँचते हैं वे हमें स्वाभाविक नहीं दीखते। उनके समाज से हमारा मेल नहीं बैठता। इधर हाल में एक प्रसिद्ध फ्रान्सीसी विद्वान मिशेल की लिखी हुई इस विषय की एक सुन्दर पुस्तक मेरी नज़रों से गुज़री। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने लेखों और अपने पात्रों में स्त्रियों के चरित्र का जो सुन्दर और नैसर्गिक विश्लेषण किया है मिशेल उसका क़ायल है। गोरा में आनन्दमयी का जो चरित्र है मिशेल उसे पूर्वीय और पश्चिमीय परम्पराओं का एक आदर्श समन्वय मानता है। मैं समझता हूं तुमने इस पुस्तक का अंगरेज़ी अनुवाद पढ़ा होगा। इसे पढ़कर हम स्त्री जैसे वशीकरण मंत्र का थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जो व्यवधान के थोड़े से हेर फेर में जीवन-दायिनी होने के बजाय महामरण का निमित्त बन जाती है।

स्कूल में पढ़ने वाला लड़का शुरू शुरू में आम तौर पर लड़कियों से कतराता है। वह उनके सम्बन्ध में केवल एक बात जानता है कि वे शक्ति और सहिष्णुता में उसका मुक़ाबला नहीं कर सकतीं। उनकी शारीरिक दुर्बलता के कारण वह उनका तिरस्कार करता है। किन्तु जैसे जैसे वह वयस्क होता जाता है वैसे वैसे उसे उनसे लाज लगने लगती है। जवानी आने पर उसकी यह लाज भाग जाती है और उसे पोडशी तरुणियों के प्रति एक विशेष आकर्षण शुरू होता है। उनके साथ उठने बैठने में उसे लुत्फ़ आने लगता है और एक गुलाबी नशे का आलम उस पर तारी हो जाता है। इस उम्र में जिन अल्हड़ लड़कियों के संसर्ग में वह आता है उनके सम्बन्ध में उसके हृदय में एक धारणा बन जाती है जो बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती। यही धारणा आगे चलकर उसकी अपनी पत्नी के दुर्भाग्य का सृजन करती है।

नारी-जागरण और नारी-प्रगति के आन्दोलनों में दिल-चस्पी लेने वाली कोई दानशीला महिला अथवा बहु-विवाह अनुभव-युक्त कोई दानवीर पुरुष क्या इस तरह का एक विद्यालय खोलने का पुनीत कार्य न करेंगे जिसमें नातज़ुरबेकार युवक विवाह से पूर्व स्त्री-स्वभाव का काफ़ी अध्ययन कर सकें। लोग विवाह करके घर बसाने के इच्छुक होते हैं और ज़िन्दगी से मौत तक अपने लिये एक साथी वरण करते हैं, पर जिसके परिष्कृत सहज-ज्ञान, जिसकी कोमल भावनाओं, जिसकी निर्बन्ध प्रवृत्तियों, जिसकी आश्चर्यजनक अभिलाषाओं जिसकी परिवर्तनशील चित्त वृत्तियों, जिसके प्रबल कौतूहल, जिसकी रहस्यपूर्ण मनोदशा, जिसकी कोपभवन की मर्यादा, जिसकी रूठने मनाने की सम्भावनाओं आदि के सम्बन्ध में उन्हें उतना ही ज्ञान होता है जितना दलाई लामा के सम्बन्ध में। इस विद्यालय में स्त्री की आधुनिकतम प्रगति के सम्बन्ध में पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त करने की सुविधा होगी। यहाँ स्त्री अध्यापिकायें सफलता के साथ अपने विचारों की छाप पुरुषों की नई पीढ़ी पर लगा सकेंगी, उन्हें अपनी मरज़ी के अनुकूल (स्त्रियोपयोगी) बना सकेंगी, या कम से कम उनके दिलों में स्थिरता और पत्नीव्रत भावना के बीज बो सकेंगी। इस विद्यालय में शिक्षा पाकर पुरुष मानसिक दृष्टि से इस योग्य हो सकेंगे कि अपनी पत्नी के स्नेहमय अंचल की छाया में नेक और निर्दोष जीवन बिता सकें। पुरुष की वर्बर प्रवृत्तियाँ यहाँ नारी सुलभ कोमलता के पारस-संयोग से दीप्त मान स्वर्ण में परिवर्तित की जा सकेंगी। यदि इस विद्यालय का सुचारु रूप से संचालन हो सके तो निश्चय ही एक दिन हमें देश के समस्त समाचार-पत्रों में नीचे लिखी सूचना छपी हुई देखने को मिलेगी—

## विवाह-विद्यालय का वार्षिक विवरण

"मानव-कल्याण के निमित्त ही इस विद्यालय की स्थापना हुई है। यह विद्यालय विस्तृत और सुन्दर उपत्यका में बना हुआ है। विद्यालय का सारा वातावरण शान्त, स्निग्ध और उत्साह-वर्धक है। यहाँ शिक्षा देने का कार्य महिला अध्यापिकायें ही करती हैं जो तरुण सुन्दरी और अत्यन्त अनुभवी हैं। अपने तारुण्य को उद्देश्य के अनुरूप विद्यालय का अनुशासन बेहद सख़्त है। विद्यार्थियों को इस तरह के व्यायाम की भी शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जाती है जिससे हर प्रकार से उनका आकर्षण बढ़ सके। ४० वर्ष से ऊपर के सज्जन जिन विशेष शर्तों पर विद्यालय में भरती हो सकते हैं वे प्रधानाचार्या से लिखकर पूछी जा सकती हैं। हर व्यक्ति के लिये ये शर्तें अलग अलग होंगी। विद्यालय के पिछले कार्यकाल में २५ विद्यार्थियों ने शिक्षा पाकर अत्यन्त सफल विवाहित जीवन में प्रवेश किया। अपने पिछले विद्यार्थियों की पत्नियों से विद्यालय के संचालकों को बहुत ही उत्साहप्रद प्रशंसापत्र मिल रहे हैं। बहुत थोड़ी सी जगहें खाली रह गई हैं। जो लोग भरती होना चाहें उन्हें शीघ्र ही अपने आवेदन पत्र प्रिन्सिपल के नाम भेजने चाहियें।"

क्या तुम्हारी कोई ऐसी महिला मित्र हैं जो इस महान और अत्यन्त आवश्यक योजना को अपने हाथों में ले सकें? आर्थिक दृष्टि से यह योजना कभी असफल न होगी; अनेक भावी पतियों का आशीर्वाद मिलेगा वह अलग। यदि तुम्हारी नज़रों में कोई ऐसी महिला हों तो उन्हें मेरा यह सुझाव देना किन्तु मेरी ओर से उन्हें यह चेतावनी भी दे देना कि अध्यापिकाओं की नियुक्ति में वे बड़ी ही सावधानी और सतर्कता से काम लें। इस विद्यालय की अध्यापिकाओं को सीप की तरह चतुर और बतख़ की तरह विनम्र होना चाहिये अन्यथा अनेक भावी पति, बनने के क्रम में ही, बिगड़ सकते हैं।

## सात

प्रिय...,

तुम कहती हो स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में मेरी धारणायें नितान्त अशास्त्रीय हैं और प्रेम की दृढ़ता और स्थिरता के बारे में मेरे विचार अत्यन्त कुटिल हैं। तुम्हारी दृष्टि में ऐसी सन्तानें हरगिज़ सहानुभूति की अधिकारी नहीं जो स्वेच्छा से अपने मां-बाप के आदेशों के प्रतिकूल चलें। मेरी सम्मतियों को तर्क-पूर्ण मानते हुये भी तुम उनसे सहमत नहीं हो और अब तुमने जो राय बनाई है, माफ करना और ख़फ़ा न होना, मेरे पत्रों को बिना ध्यान से पढ़े ही बनाई है। यदि तुम कहती हो कि तुमने उन्हें ध्यान से पढ़ा है तब विवश हो कर मुझे यह कहना पड़ेगा कि तुम्हारी न्याय-भावना पर परदा पड़ गया है। मैं फिर एक बार साहस करके तुमसे प्रार्थना करूँगा कि मेरे पत्रों को दोबारा पढ़ने का कष्ट करो और तब मुझे बताओ कि मेरा अपराध किस जगह है? मैं अब भी इस विचार पर दृढ़ हूं कि प्रेम की अचलता में आधुनिक नारी उतनी दृढ़ नहीं है जितनी सावित्री, अनुसुइया, हेलन, गुइनीअर, और मे-तुन थीं। कम-अज़-कम पौराणिक उपाख्यान इनकी इसी रूप में चर्चा करते हैं। जहां तक तुम्हारा सम्बन्ध है तुमने मेरे प्रश्न को अव-हेलना से टाल दिया है इसलिये बिना व्यक्तिगत चर्चा किये ही मैं विवेचना करना उचित समझूँगा।

मां-बाप और बच्चों के भेद-भाव पर मैंने जो दुख प्रकट किया है उसका कदापि यह अर्थ नहीं कि मैं उन्हें विद्रोह के लिये उत्तेजित करना चाहता हूँ। वह तो केवल रोग का निदान मात्र था। शोचनीय परिस्थिति की एक जीती जागती तस्वीर खींचने की ही मैंने कोशिश की थी। इसके अतिरिक्त मेरी और कोई मन्शा न थी। तुम कहती हो सत्य बहुधा सुखद नहीं होता और इसलिये उसे न कहना ही उचित है। सिद्धान्त रूप से मैं तुम्हारी बात मानता हूं। किन्तु मेरे विश्लेषण में तुम्हारा सिद्धान्त कहां प्रयुक्त होता है, यह मैं नहीं समझ सका। न मैं तुमसे इसी बात में सहमत हूँ कि इस तरह की समस्याओं में लोगों को दिलचस्पी नहीं है। रेखाओं की किसी आकृति की काल्पनिक बहस, सम्भव है, बहुत दिलचस्प न हो, किन्तु एक शिल्पी, जो निर्माण-कला के सिद्धान्तों को जानता है, तर्क से नहीं अपितु निर्माण से अपनी कला की पुष्टि करता है। उसे देखकर दर्शकों की आँखें प्रशंसा से भर जाती हैं और वे यह तक नहीं पूंछते कि रेखा-गणित के किन सिद्धान्तों के आधार पर शिल्पी ने अपनी कला का यह स्मारक खड़ा किया। तुम्हारे प्रतिवाद की भी तर्क से नहीं बल्कि निर्माण से ही पुष्टि हो सकती है।

तुम्हारी अनुमति से मैं विवाद को एक नये मुद्दे से आगे बढ़ाना चाहूँगा। यह न समझना कि तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति ज़रा भी डांवा-डोल हुई है अथवा मेरी वफ़ादारी में कोई शिकन आई है। जब मैं पुरुषों की वकालत में दो शब्द कहता हूं तो इसका यह अर्थ नहीं कि उनके विरुद्ध युगयुगान्तर से चले आये फैसले पर मैं कोई उंगली उठा रहा हूँ। पुरुषों की अस्थिर और चंचल प्यार-भावना की अगणित भग्न-गाथायें प्रकृति के स्मृति-पट पर संचित हैं—ऐसी गाथायें जिनकी करोड़ों पुनरावृत्तियां होती रहती हैं। पुरुष पर यह लांछन लगाया जाता है कि वह स्त्री को Individual के नाते नहीं महज़ Sex के नाते प्यार करता है। इसलिये प्यार करता है कि वह स्त्री है, रूपवती है और



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तरुणी है। पुरुषों को भौंरे की उपमा दी जाती है और कहा जाता है कि उसका मन हर खिली कलिका को देखकर चंचल हो उठता है और किसी एक कली के मकरन्द से उसे सन्तोष नहीं होता। फूलों का रंग बिरंगापन और उनकी भीनी भीनी महक उसके मन में विह्वलता भरती रहती है। कहा जाता है कि किसी एक स्त्री का पवित्र प्यार और सीधा सादा ठोस मूल्य पुरुष को कभी अपने से बांधे रखने में समर्थ नहीं हो सकता।

ये सार्वजनिक विश्वास की बातें हैं और इन पर टीका टिप्पणी व्यर्थ है। किन्तु मैं नम्रता के साथ तुमसे प्रार्थना करूँगा कि दुनिया ने बेचारे पुरुष पर यह अभियोग लगा कर सर्वथा न्याय नहीं किया है। आओ, सहानुभूति के साथ इस अभियोग का ज़रा हम निराकरण करें। अविवाहित युवक को स्त्री के पवित्र प्यार को परखने के बहुत थोड़े अवसर मिलते हैं। मित्रों के अनुभव उसे अधिक प्रोत्साहित नहीं करते। प्रारम्भिक जीवन में उसे कालेज और युनिवर्सिटी की शिक्षा और अपना भावी Career गढ़ने की चिन्ता होती है। वह इसी में ख़ासा व्यस्त रहता है। यदि इस कच्ची उम्र में उसका विवाह हो चुकता है, जैसा कि हमारे देश में बहुधा होता है, तो पत्नी के प्रति उसके मन में उत्साह तो होता है किन्तु उसके तर्ज़-तरीक़ों, उसकी प्रवृत्तियों, उसकी नाज़ुक-मिजाज़ी और उसकी झिझक से वह सर्वथा अनभिज्ञ होता है। पग पग पर उसे लगता है कि वह फ़ाश ग़लतियां करता है, किन्तु अपनी पत्नी के प्रति उसके प्यार में एक उन्माद और एक गहरी सच्चाई होती है। वह अपनी पत्नी से अपने प्यार की दृढ़ता की शपथ खाता है और यह कोई अपराध की बात नहीं। फिर वह अपने मादक प्रेम का प्रत्युत्तर चाहता है; किन्तु उसकी वह शोडषी दुलहिन बावजूद अपनी ननदों और जिठानियों की सीख के निपट अजान रहती है और इस विद्यार्थी-प्रियतम को सन्तुष्ट नहीं कर पाती। शरम उसका पीछा नहीं छोड़ती और लोकाचार उसे आत्म-विस्मृत नहीं होने देते; यही नहीं बल्कि उसके मनमें एक गोपनीय अरुचि भर देते हैं। जब उसका अबोध प्रियतम यह देखता है तो उसके हाथ पैर फूल जाते हैं, वह हताश हो जाता है, उसका उत्साह मन्द पड़ जाता है और उन्माद ठण्डा पड़ जाता है। वह अपनी उमंगों को कुचल कर अपनी पत्नी के प्रति उदासीन हो जाता है। अपने ही घर में अपनी असफलता की भावना पहले उसमें विरक्ति पैदा करती है और फिर बाद में उसे निर्दय बना देती है। इस चित्र पट के युग में स्क्रीन पर वह देखता है—ग्रीटा गार्बो, मार्लिन दीत्रिख़, एलिज़बेथ बर्गनर, बारबेरा स्टेनविक, नार्मा शेअरर, देविकारानी, लीला देसाई, काननबाला, माया बैनर्जी और लीला चिटणीस आदि के प्रेम के अपूर्व अभिनय। वह मन ही मन सोचता है काश उसकी पत्नी भी उसे इसी तरह अपने मुक्त प्यार से निहाल कर सकती। और तब वह अपने भाग्य को कोसता है और इसके बाद सहसा उसकी निगाहें युनिवर्सिटी की अपने छात्रा मित्रों या अपने मित्रों की ग्रैजुएट पत्नियों या मासूम बहिनों पर पड़ती हैं। वहां उसका यथेष्ट स्वागत-सत्कार होता है और वह कौतूहल से भर जाता है और फिर धीरे धीरे flirtation की कला में निपुण हो जाता है और तब उसे हँसी आती है कि एक ज़माना था कि वह प्रेम की constancy ( स्थिरता ) में विश्वास करता था। उसकी अपनी पत्नी का जो हश्र होता है उसके परिणाम की कल्पना यद्यपि बहुत सुखकर नहीं किन्तु सहज है।

तुम देखती हो मैं यह स्वीकार करके चलता हूँ कि पुरुष के प्यार की अस्थिरता के सम्बन्ध में जो आम धारणा बन गई है वही ठीक है। मैं केवल उसकी बदनामी के कारणों में से कुछ की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। पहला कारण उसका पौरुषोचित स्वभाव है जिसका उत्तरदायित्व सर्वथा उसके कन्धों पर नहीं। पुरुष की प्रकृति नारी प्रकृति से भिन्न होती है। नारी को परखने की जो कसौटी है उस पर यदि हम पुरुष को कसें तो यह उसके साथ अन्याय होगा। उसकी शिक्षा-दीक्षा, उसका रहन-सहन हर प्रकार नारी से भिन्न होता है। दुनिया में उसके अनुभव भी और तरह के होते हैं। कौमार्य अवस्था में ही अपनी शक्ति और मांसल-दृढ़ता के कारण वह बिना किसी मार्ग प्रदर्शक के चाहे जहाँ जाने और निकट से चाहे जो कुछ देखने का अधिकारी समझा जाता है। वह अबोध फेंक दिया जाता है—जीवन की भँवर में डूबने उतराने के लिये! गहरे पानी में पैठकर उसे निकलना पड़ता है। केवल उसके अपने अथक प्रयत्न ही उसे डूबने से बचा सकते हैं। इस संघर्षमय प्रारम्भिक जीवन में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो डूबकर जान गँवा बैठते हैं, गीले तो सभी हो जाते हैं। कुछ कीचड़ लपेटे बाहर निकलते हैं, कुछ उबरने की क्रिया में चोट खाकर विकृत हो जाते हैं। पुरुष का जीवन अपेक्षाकृत इस अनुपात में प्रारम्भ होता है। मैं समझता हूँ तुम यह स्वीकार करोगी कि थोड़े से अपवादों को छोड़कर प्रारम्भिक जीवन में ही अधिकांश पुरुषों की मौलिक शुचिता के मलिन हो जाने सम्भावना अधिक होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पढ़ लिखकर प्रत्येक युवक अर्थ अथवा कीर्ति उपार्जन की दृष्टि से जीवन में जुट जाता है। जीवन के उस प्रारम्भिक संघर्ष में वह संसार के सर्वश्रेष्ठ वरदान नारी के असाधारण और रहस्यपूर्ण चरित्र के अध्ययन का बहुत कम अवकाश पाता है। व्यस्त जीवन में जवानी का झोंका यदि उसे किसी लड़की पर निछावर कर देता है तब और बात है और यदि यह नहीं होता तब वह ठण्ढे दिल से ऐसी लड़की की तलाश करता है जो घर चलाने में कुशल, काम काज में चतुर और व्यवहार में दक्ष हो। जो उसकी पत्नी बनकर उसके घर की सजावट को बढ़ा सके और अपने बनाव सिंगार से उसके मन में निरन्तर यौन-वृत्तियों का सँचार कर सके। पहिली स्थिति में वह दया का पात्र है। लोग समझते हैं उसका दिमाग़ फिर गया है। भला प्रेम भी कोई बात होती है! शापनहायर ने एक जगह लिखा है—"काम प्रवृत्तियाँ जिससे तृप्त हो सकें ऐसे साधन का नाम नारी है।" "सूज़ेर क्रोनाता" में भी टाल्सटाय ने आधुनिक स्थिति में नारी की यह दयनीयता स्वीकार की है। तब फिर किसी विशेष लड़की के प्रति दीवाना होने का क्या अर्थ? देखने वाले प्रेम के इस दीवाने पर दया करते हैं और समझते हैं कि इस पागलपन की औषधि उस लड़की के साथ इसका विवाह है। साधारणतया इस पागलपन का यही इलाज होता है। किन्तु यह इलाज उस रोग की औषधि है निदान और निमित्त नहीं। पुरुष तो प्रेम में अन्धा होता है किन्तु उसकी स्वयंवरा प्रेयसि हज़ार कारणों से इस सौदे में शरीक़ होती है; कम से कम उसके निश्चय में प्रेम की बहुत ऊंची जगह नहीं होती। पुरुष की व्यग्रता उसके अपने विवेक और उसकी समीक्षा को नष्ट कर देती है। वह अपने लिये गढ़ा खोदता है और उसमें गिर जाता है। वह लक्षणों से ग़लत अर्थ निकालता है और इसीलिये ग़लत परिणाम पर पहुंचता है। वह अपने दिल की क्यारी में असन्तोष के बीज बोता है जिनमें आगे चलकर केवल कड़ुए फल ही लग सकते हैं।

दूसरी ओर यदि वह ठण्ढे दिल से शादी के बाज़ार में प्रवेश करता है और उसी तरह नाप तोल कर अपने लिये पत्नी चुनता है मानो वह कमीज़ या पाजामे का कपड़ा हो तो इसमें असन्तोष का ख़तरा कम रहता है। किन्तु इस सौदे के दूसरे पक्ष यानी उसकी पत्नी को उचित अवसर पर अपनी शोचनीय परिस्थिति पर पश्चात्ताप होने लगता है। वह यह महसूस करने लगती है कि रिश्ते में जो पुरुष उसका पति लगता है उसे पत्नी की उतनी चाहना न थी जितनी कुशल गृहणी की, अतिथियों का सत्कार करने वाली गृह-स्वामिनी की, और वंश चलाने वाली सन्तान प्रसविनी की। सभी स्त्रियाँ देर सवेर सच्ची बात ताड़ जाती हैं और उलाहने और उपालम्भ में उसे प्रकट भी करने लगती हैं। धीरे धीरे उनकी गृहस्थी में ऐसी आग सुलग जाती है जिसका बुझाना नामुमकिन हो जाता है। पति और पत्नी दोनों की तबियतें घर से उचट जाती हैं। उनके मन भटके भटके फिरने लगते हैं और जितना ही अधिक पति को गृहस्थी की चक्की में पिसना पड़ता है उतनी ही भीषण प्रतिक्रिया उसके मन में होती रहती है!

लो, इस बहस में तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो रह ही गया। तुमने अपने पिछले पत्र में मुझसे पूछा है कि उस व्यक्ति का क्या हुआ जो बहुधा हमें एक्ज़ीबीशन पार्क में एक महिला के साथ बैठा हुआ मिलता था। ज़ाहिरा तौर पर वह महिला उस व्यक्ति के साथ खुश दिखाई देती थी और वे हमारे जीवन के भी गुलाबी दिन थे जब तुम्हें भी मेरी संगति में असीम सुख मिलता था।

वह व्यक्ति जब उस महिला के साथ पार्क में न होता तो गङ्गा के सुनसान तट पर गुमशुम बैठा दिखाई देता था। मैं ठीक नहीं कह सकता पर एक अरसे बाद मैंने सुना कि उस व्यक्ति की सगाई हो गई है। उसकी मँगेतरी उन दिनों रङ्गून के सेण्ट मेरी कालिज में अध्यापिका थी। वास्तव में वह उसी महिला की छोटी बहिन थी जो हमें उसके साथ पार्क में बैठी मिलती थी। सगाई के तीन चार महीने बाद अपनी मँगेतरी से मिलने वह रङ्गून के लिये रवाना हुआ। साथ में उसकी भावी साली भी थी। कलकत्ते पहुंच कर डलहौज़ी स्क्वायर के ग्रेट ईस्टर्न होटल में वे लोग ठहरे।

वह बरसात का मौसम था। उस दिन मेघ फूट फूट कर बरस चुके थे। फुहारें मौसम के आँसू पोंछ रही थीं और वायु दक्षिणी वातास के प्रबल आलिंगन में छटपटा रही थी।

उसी दिन घण्टे दो घण्टे में जहाज़ ऊटरम घाट से रङ्गून जाने को तय्यार था, किन्तु उन दोनों ने उस दिन के बोट से यात्रा न करने का निश्चय किया। कारण मैं नहीं जानता। या तो महिला बेहद थकी हुई थी और आराम करना चाहती थी, या मौसम की भयानकता से डरकर उन्होंने यात्रा स्थगित की, या यात्रा का स्थगित करना उनके कार्यक्रम का एक निश्चित अङ्ग था—जो भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात रही हो, और इस तरह की विस्तृत टिप्पणी कुछ अधिक महत्व भी नहीं रखती, बहरहाल उन दोनों ने दो रातें और उस होटल में बिता कर तीसरे दिन जहाज़ पकड़ने का फ़ैसला किया।

* * *

उषा की लाली अन्धकार से दामन बचाती प्रभात से भेंट करने जा रही थी। रात की गश्त से थक कर जम्हाइयाँ लेता हुआ एक उनींदा सिपाही लाल बाज़ार थाने से घण्टे की छै टंकारें सुनने के लिये बेचैन डगमग पैरों से गश्त लगा रहा था। अचानक वह डलहौज़ी स्क्वायर के पूर्वी फुट-पाथ पर ईस्टर्न होटल के नीचे एक सफ़ेद बण्डल से टकरा गया। ग़ौर से देखने पर वह सन्न रह गया। नाइट गाउन पहने किसी आदमी की चूर चूर हड्डियों का वहाँ एक ढेर पड़ा था। इतना भयानक दृश्य था कि सिपाही सिहर कर चीख उठा। बेड-टी बनाने पर तत्पर होटल के कुछ बेयरे चीख़ सुन कर बाहर निकल आये। उनसे पूछ ताछ करने पर मालूम हुआ कि एक दिन पहले रङ्गून जाने के लिये वह भद्र पुरुष एक महिला के साथ उस होटल में आकर ठहरा था।

* * *

शायद यह एक आकस्मिक घटना थी कि जिस जगह उस भद्र पुरुष की लाश पड़ी हुई थी उसके ठीक तीन मंज़िल ऊपर उसके अपने कमरे की नहीं बल्कि उसकी भावी साली के कमरे की खिड़कियाँ थीं।

मुझे नहीं मालूम कि दूसरे दिन वह महिला रङ्गून के लिये रवाना हुई अथवा नहीं। यदि वह रङ्गून पहुँची होगी तो अपनी बहिन के साथ उसकी भेंट अवश्य बड़ी त्रासदायक रही होगी!

## आठ

प्रिय...,

वैशाख-जेठ की असहय तपिश से परेशान होकर इस बार मैं फिर इसी हिल-स्टेशन पर आया। जगह जगह झरने फूट कर बह रहे थे और चारों ओर सब्ज़ा निखर रहा था। रंग बिरंगे फूलों की भीनी भीनी खुशबू हवा में डोलती फिरती थी। आश्चर्यजनक रंगों में भाँति भाँति की तितलियाँ फूलों से मन-चीती कहती फिर रही थीं। अपरिवर्तनशील होते हुये भी ये पहाड़ियाँ अपने नित नवीन सौन्दर्य से परिवर्तन का भास कराती रहती हैं। पहाड़ियों के शिखर पर बादल दिन में दर्जनों बार वस्त्र बदलते हैं और कई हज़ार फुट नीचे यमुना की लहरें नाचती इठलाती अनन्त सौन्दर्य के मन-भावने चित्र प्रकृति के कैनवास पर खींचती हुई बहती रहती हैं।

जब से मैं यहाँ आया हूं सारा दिन पहाड़ियों और खड्डों में घूमते फिरते ही कटता है। एक दिन मेरी दृष्टि अचानक एक अत्यन्त सुन्दर गुलाब के फूल पर पड़ी। इतना अन्यून, इतना निर्दोष और इतना परिपूर्ण था वह गुलाब कि तुमसे क्या कहूँ। मालूम होता था कि बुनकर से उसकी क़लम लाकर लगाई गई है। रङ्ग गहरा रतनार—मादकता का बोधक, मख़मली रेशों का ताना-बाना देख बुनी हुई पङ्खुड़ियाँ। इस गुलाब को देखकर एक अतीत स्मृति के फीके रङ्ग मेरे मानस-पटल पर यकायक चमक उठे।

कई बरस पहले की बात है—एक बार तुमने भी अपने जूड़े में इसी तरह के एक गुलाब का फूल खोंस रखा था! याद है तुम्हें? और उस दिन के पीछे एक इतिहास फैला हुआ पड़ा है। इस फूल को देखकर तुम अपनी सम्पूर्णता के साथ मेरे दृष्टि-पथ पर घूम गईं। इस फूल में और तुममें कुछ समान विशेषताएं हैं। इसी की तरह तुम भी शेक्सपीयर के शब्दों में 'दुर्बोध, यथार्थ' और कोमल हो। इसी के समान तुम में भी एक मादकता है। इस गुलाब की तरह तुम्हारे दिल में भी एक उमँग—तन्द्रिल और अलसाई पड़ी हुई है, जिसे किसी का सजग स्पर्श एक दिन जगा देगा और तुम्हारे जीवन में भी अनन्त सुख अथवा भयङ्कर दुख का सृजन करेगा।

तुम्हें याद है ट्रेन में मुझे विदा करते समय अचानक तुम्हारे जूड़े से वह गुलाब का फूल गिर पड़ा था। तुम्हारे चरणों से उठाकर मैंने तुम्हारी अनुमति से उसे अपने पास रखना चाहा। तुमने उस पर चुम्बन छाप लगाकर अपने रूमाल में लपेट कर मुझे दे दिया। वह अब तक उसी तरह तुम्हारी रूमाल में लिपटा यत्न पूर्वक मेरे पास रखा हुआ है। वर्ष, एक के बाद एक, उस पर इतिहास के तार बुनते चले जाते हैं। लोहित हेअर पिन के कठोर पाश में आबद्ध उसकी पंखुड़ियाँ ख़स्ता और जर्जर होगई हैं। मैंने उसे विरुदाचलम के बने हुये आइवरी के एक छोटे से सुन्दर बक्स में सहेजकर रख रखा है। कभी कभी मैं सोचता हूँ कि मुमताज़ भी ताजमहल के शानदार आवरण में इसी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ख़स्ता और जर्जर पड़ी होगी और रावी के दाहिने तट पर सलीम की स्वामिनी नूरजहाँ भी केवल अस्थिमाल का एक पिंजर मात्र रह गई होगी। काल की लपलपाती जीभ उसका अनुपम रूप और निर्दोष सौन्दर्य चट कर गई होगी और उसकी बड़ी बड़ी स्निग्ध और मोहक आँखों के कोटरों में दीमकों ने घर बना लिया होगा और तब अचानक मेरे मन में एक टीस उठी कि अपने हृदय के आवरण में मेरे जिस प्यार को अनुपम कहकर तुमने यत्न पूर्वक सहेज कर रखा था शायद विकास-क्रम की स्वाभाविक अवस्था में वह भी इसी तरह जर्जर हो चुका होगा। गुलाब की इन सूखी पंखुड़ियों का रहस्यमय सन्देश अब कुछ कुछ मेरे सामने स्पष्ट होता जाता है। कौन जाने मन की उस अचेतन अवस्था में मैं मूढ़ था या भ्रम-शंशोधन के बाद अब! इन पंखुड़ियों ने तुम्हारे हाथों के और तुम्हारे ओठों के कोमल स्पर्श को अनुभव किया है। मेरे निकट तुम्हारे रूप, रस, गन्ध की ये वाहन हैं। मौन भाव से मुझे ये सदा तुम्हारे प्यार की अनित्यता की साक्षी देती रहती हैं, मानो इनके कोमल गात में तुमने अपना शब्द मंत्र फूंक दिया है और अब मैं इनसे बार बार पूछता हूँ तुम्हारे हृदय परिवर्तन की बात! पर ये पंखुड़ियाँ बोलती नहीं, अथवा ये बोलती हैं और मैं कदाचित इनके भाव नहीं समझ पाता? मेरे अनुरोध पर तुमने कितनी ही वर्ष-तिथियों पर अपने प्रेम की प्रतिनिधि इन पंखुड़ियों पर अपने मधुमय चुम्बनों की पुनरावृत्ति की है और यह याद करते करते मेरा मन बोझिल हो उठता है और अपने इस एकाकी-जीवन की तपती हुई गर्म गर्म सिकता-राषि से झुलस कर काल और स्थान की सीमा लाँघते हुये प्रेम के उस सरोवर की ओर लपकता है है जिसकी झांकी तुमने अपने नयनों के भीतर एक दिन मुझे दिखाई थी। चेतना कहती है पागल! वह सरोवर तो जाने कब का सूख गया और बालू की अखण्ड राषि से तुझे मृग-मरीचिका का भ्रम हो रहा है; पर मन कहता है यह चेतना—यह चेतना भी तो भ्रम हो सकती है! तुमने जो ज्योति मेरे जीवन में जगाई है उसे मैं तुम्हारी ही अकृपा के थपेड़ों से बुझने न दूँगा। प्रिय श्री! मैं तुम्हारा कृतज्ञ, हूं और यदि मैं गर्वपूर्ण कल्पनाओं का शिकार हूँ तो मुझे क्षमा करना पर यह बात ध्यान में रखना कि मैंने चपलता और प्रगल्भता के वश अपने सुख का महल नहीं उठाया और मेरा अखण्ड विश्वास है कि उसकी बुनियादें खोखली नहीं हैं।

* * *

पिछली रात जब मैं चीनी कहानियों के एक संग्रह में मायामृग की एक हैवतनाक कहानी के सबसे अनोखे हिस्से के पढ़ने में मशगूल था तो मैंने रेडियो के पीछे गुनगुन ध्वनि सुनी। इसके बाद मैंने सर उठाकर देखा कि दो चमकदार आँखें कभी बढ़ती हैं और कभी पीछे हटती हैं। जलते हुए कोयले की तरह थीं वे आँखें—बेहद चमकती हुईं। रह रहकर उनसे पाटलवर्णी ज्योति निकलती थी। मैंने अनुमान किया कि वे आंखें किसी ऐसे परवाने की हो सकती हैं जो अद्भुत गति से अपने पङ्ख हिला रहा है।

सामने टेबुल पर वाज़ में मादक सुगन्ध फैलाते हुए सौसन के फूल रखे थे। सफ़ेद सौसन, केसरिया हृदय वाले। रह रहकर परवाना फूलों के पास जाता था, फिर हवा में ठहरकर सौसन की किसी कली की तरफ निर्निमेष देखता रहता था। बिजली के प्रकाश में मैंने उस परवाने को ग़ौर से देखा। उसके पङ्खों का स्फुरण एक क्षण के लिये भी न रुकता था और उनकी गति की द्रुतता के कारण मैं उसकी आकृति और रँग के सम्बन्ध में निश्चित धारणा न बना पाता था। फिर मैंने देखा एक फूल के पास झुककर परवाने ने अपने माथे से एक पतले तार जैसी कोमल शलाका निकाली और उसे कली के हृदय में चुभा दिया। देख रहा था कि कली के मानस को भेदकर वह शलाका रसनाल तक पहुँच गई। मैं समझता हूं वह शलाका कम से कम तीन इंच लम्बी रही होगी। जैसी शलाका डेण्टिस्ट इस्तेमाल करते हैं वैसी ही पुरस्कृत फौलाद की तरह चमकती हुई। मधु से बोझिल उस शलाका को परवाने ने फिर अपने माथे के भीतर खींच लिया। थोड़ी थोड़ी देर के बाद इसी तरह वह हर कली का मन भेदता था। रात के ढाई बज गये और परवाने की गुंजन अब भी जारी थी। अनेक सौसन कलियों के दिलों को टटोलकर वह परवाना एक बार सीधा मेरे मुंह के पास उड़कर आया। अच्छा होता यदि मैं उसे पकड़ कर उसकी परीक्षा करता पर मैं आश्चर्य और घबराहट से भर गया। दूसरी बार मैं सावधान होकर बैठा पर अब वह कलियों से हटकर अँधेरे कोने की तरफ़ चला गया था जहाँ से छत से उड़ता टकराता एक लोहे के हुक पर जाकर ठहर गया। मैंने देखा उस हुक पर बैठा बैठा ही वह ग़ायब हो गया। मैंने सोचा उस हुक के भीतर कोई छेद होगा जिसमें परवाने का घर होगा। टार्च लेकर मैंने उस हुक की खूब छान बीन की पर उसमें या उसके आस



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास कहीं भी किसी सूराख़ या छेद का निशान तक न था।

थोड़ी देर पहले चीनी कहानी में मैं पढ़ रहा था कि किस तरह एक माया-मृग की फटी हुई आंखें एक व्यक्ति का पीछा कर रही थीं। मैंने सोचा यह परवाना भी माया मृग की ही तरह रहा। क्या इसकी जलती हुई आँखें मेरा भी पीछा करेंगी? क्या इसके पंखों का अनवरत संचालन और इसका गुंजन सदा मेरे कानों को कुरेदता रहेगा? और क्या इसकी लम्बी सम्पर्क-शलाका मेरे माथे में भी इसी तरह सूराख़ बनायेगी? उस चीनी कहानी में इसी तरह की बातें थीं। इतने बड़े आकार का परवाना तो मैंने आज तक देखा न था और उसकी आँखें इस तरह क्यों जलती थीं? परवाने की आँखें तो इस तरह नहीं जला करतीं और फिर एक आश्चर्य और था—परवानों को अब तक दीपक पर निसार होते देखा था, उनका फूलों पर इस तरह आसक्त होना तो सुना भी न था। सब से बड़ा कौतूहल तो उसकी शलाका थी। इतनी लम्बी शलाका को वह अपने माथे में किस तरह रखता होगा? सम्भव है भीतर जाकर वह गुड़मुड़ाकर लिपट जाती हो।

कोई बीस वर्ष पहले की बात है, बम्बई में मैंने एक चीनी जादूगर के खेल देखे थे। दिन-दहाड़े वह समूची तलवारें निगल जाता था। एक तलवार तो इतनी लम्बी थी कि उसके मुँह से घुटने तक आती थी और मैंने देखा कि एक गटके में वह उसे मूँठ तक निगल गया। इसके बाद मैंने देखा वह छाते की कड़ियाँ और खञ्जर भी आसानी से डकार गया। यह सब देखकर आश्चर्य तो मुझे ज़रूर हुआ पर साथ ही साथ मन में कुछ उससे घृणा भी हो गई! और यह शलाका परवाने से कम से कम तिगुनी लम्बी होगी। सम्भव है वह उसे घड़ी के स्प्रिङ्ग की तरह अपने भेजे में कहीं लपेट कर रखता हो। जब वह सौसन के स्नायु-केन्द्रों में उसे चुभाकर उनका रसपान करता था तो उसके पङ्खों से तीव्र सरसराहट निकलती रहती थी और जाने क्यों चुपचाप बैठकर वह अपना काम क्यों नहीं करता था।

कितनी ही बातें सोच रहा हूं और रात बीती जा रही है। शायद हैवतनाक चीनी कहानी पढ़ने का यह असर है और अब मुझे सोना चाहिये क्योंकि पास किसी सन्तरी ने अपने घण्टे पर सुबह की तीन टङ्कारें लगा दी हैं।

क्या गुलाब की सूखी पंखुड़ियों के सन्देश के बारे में मेरा अनुमान सत्य नहीं है? तुम्हीं देखो, तुम्हारी आज्ञा मानने की मैं कितनी तत्परता से चेष्टा करता हूं।

[ क्रमशः ]

# गीत

कुमारी शैल रस्तोगी

आज आँधियों के साये में
जीवन का लघु दीप, रहा जल!

चारों ओर भरा सूनापन, मेरा मीत पन्थ दुर्गम है,
प्राणों की आशा को रह रह, सिहराता तम का विभ्रम है,
आज निराशा की बेला में
मन का पन्थी मौन रहा चल।
आज आँधियों के साए में
जीवन का लघु दीप रहा जल॥

दूर दूर तक फैल रही हैं, मुस्काते दीपक की किरणें,
मेरे सजल दृगों को छू छू, जाग रहे फिर स्वप्न अनगिने,
आज निशा के नीराजन से
भरा नींद रानी का आँचल।
आज आँधियों के साए में
जीवन का लघु दीप रहा जल॥

साथ सभी थे, साथी सङ्गी, जब था हँसता स्वर्ण सवेरा,
अब कोई भी साथ नहीं है, मैं हूँ, मेरा सघन अँधेरा,
तारों की छाया देती भर
मेरी निर्बलता में सम्बल।
आज आँधियों के साए में
जीवन का लघु दीप रहा जल॥

घिरें बदलियाँ, गिरें बिजलियाँ, दीपक का निर्वाण न होगा,
अरे कौन कहता है, मेरी आहों में तूफान न होगा!
मैं नवयुग की नवल साधना
श्वासों में भर लायी हलचल।
आज आँधियों के साए में
जीवन का लघु दीप रहा जल॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# महान ईरानी सम्राट अनुशीरवाँ

पण्डित सुन्दरलाल

जिस समय ईरानी समाज और ईरानी साम्राज्य दोनों बेतरह गिरावट की तरफ़ जा रहे थे, एक ऐसा आदमी ईरान के तख़्त पर बैठा जो अपने इन्साफ़ और रिआया परवरी के लिए दुनिया के बड़े से बड़े सम्राटों में गिना जाता था। यह कवद का बेटा अनुशाक रवन या अनुशीरवां (नौशेरवां) था जिसने ५३१ से ५७९ ई० तक ईरान पर हकूमत की। ईरान के सम्राटों को रोमवाले खुसरो और अरब कसरा कहते थे।

## अनुशीरवाँ की योग्यता

अनुशीरवां एक बहादुर सिपाही और होशियार सेनापति था। रोम के सम्राटों से वह लगातार युद्ध करता रहा और एक बार को छोड़कर वह रोम से हमेशा जीता। उसने इथियोपिया पर, तुर्कों पर और एक दर्जन दूसरी कौमों पर विजय हासिल की। अपनी ८० साल की उमर में उसने खुद मैदान में उतरकर एक बार रोमी सेना को तितर बितर किया। बीसों लड़ाइयों में उसने खुद हिस्सा लिया। सासानी राजकुल अनुशीरवां के ज़माने में ही तरक्की की चोटी पर पहुंचा। अरब का 'यमन' प्रान्त उसी के ज़माने में इथियोपिया के साम्राज्य से निकलकर ईरान के साम्राज्य में शामिल हो गया। उसका साम्राज्य सिन्धु नदी से लेकर रोम सागर तक, लाल सागर से लेकर कास्पियन झील तक और यूक्लिन नदी से लेकर सीर दरिया तक फैला हुआ था।* राजनीति में वह योग्य और उदार था। उसके हकूमत के तरीके बीसवीं सदी ई० के तरीकों से कई बातों में ऊँचे थे।

## अनुशीरवाँ की सम्राट बनने में शर्त

ईरान के सरदारों ने मिलकर उससे तख़्त पर बैठने की दरख़्वास्त की। अनुशीरवां ने इन्कार कर दिया। सरदारों ने जब उसे मजबूर किया तो उसने जवाब दिया—

"मगर मैं सम्राट बनकर अपना फ़र्ज़ पूरा करूँगा तो हकूमत के तर्ज़ में मुझे बहुत से सुधार करने पड़ेंगे। मुमकिन है इसकी वजह से ख़ून ख़राबी हो। मुमकिन है आप लोगों में से कुछ की तरफ़ मेरे भाव बदल जाएं और जिन खानदानों का मैं लिहाज़ और इज़्ज़त करता हूँ उन्हीं को मुझसे नुकसान पहुँचे। इसलिये मुझे इस सब की कोई ख्वाहिश नहीं।"

तख़्त पर बैठने के बाद उसने अपने सरदारों से कहा—

"सम्राट की हैसियत से मुझे तुम्हारी देह पर तो अधिकार मिल गया, लेकिन तुम्हारे दिलों पर मेरा कोई क़ाबू नहीं। परमात्मा ही आदमियों के दिलों में घुस सकता है। मेरा अधिकार तुम्हारे काम पर होगा तुम्हारी ज़मीर या अन्तरात्मा पर नहीं। मैं हर बात का फैसला हमेशा इन्साफ़ के असूल पर करूँगा। मेरी ज़ाती मरज़ी या इच्छा कोई चीज़ न होगी। इस तरह जब मैं राज के इन्तज़ाम से सब बुराइयों को निकालने में कामयाब हो सकूंगा तो साम्राज्य की ताक़त बढ़ेगी और आनेवाली नसलें मेरी तारीफ़ करेंगी।"

## अनुशीरवाँ के सुधार

उसने न्यायालयों से पक्षपात दूर करने की पूरी कोशिश की। जजों और राज के बड़े बड़े अफ़सरों के चुनने में वह ख़ानदान का ख़याल न करके सिर्फ़ क़ाबलीयत और चरित्र को देखता था। वह सिर्फ़ उन लोगों को ज़िम्मेवारी के ओहदों पर मुक़र्रर करता था जिनके दिल में ग़रीबों के लिये दर्द हो। उसने सारे राज भर में इस तरह के इन्सपेक्टर मुक़र्रर कर रखे थे जिनका फ़र्ज़ था कि वे साम्राज्य भर के ग़रीबों के दुख और सरकारी अफ़सरों के अत्याचारों की रिपोर्ट सम्राट तक पहुँचाते रहें। रिश्वती या ज़ालिम अफ़सरों की जांच के लिये कमीशन मुक़र्रर होते थे जो मौक़े पर जाकर जांच करते थे और गवाहियां लेते थे। वह खुद राज के एक कोने से दूसरे कोने तक फिर कर प्रजा की हालत देखता था। तालीम का उसने इतना अच्छा इन्तज़ाम किया कि कोई बच्चा बिना तालीम के न रह जावे। हर शहर में उसने तालीम और खेती के मोहकमे खोले। ग़रीब और अनाथ बच्चों की परवरिश और तालीम दोनों राज के ख़र्च पर होती थी। राज भर की ग़रीब और अनाथ लड़कियों की शादी वह धर्म-पिता बनकर रईसों के लड़कों के साथ करवा देता था।

## किसानों के साथ व्यवहार

किसानों में जानवर, बीज, हल और खेती के दूसरे औज़ार वह मुफ़्त बंटवाता था। आबपाशी के लिए उसने पुरानी नहरों को साफ़ करवाया और कई नई नहरें खुदवाईं। उसके राज में भीख मांगने की सख़्त मनाही थी और हट्टे कट्टे बेकारों को सज़ा मिलती थी। बेकारों को अपनी बेकारी का एक टैक्स देना पड़ता था जिससे सिर्फ़

* Studies in Ancient Persian History by P. Kershasp.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


स्त्रियां, २० साल तक के लड़के और ५० साल से ऊपर के बूढ़े माफ़ थे। किसानों के चुने हुए पंचों को बुलाकर उनकी सलाह से उसने ज़मीन का लगान मुक़र्रर किया। यह लगान "हम दास्तान" कहलाता था। हम दास्तान के अनुसार जितनी ज़मीन एक हल से जोती जा सकती थी उसका लगान एक दिरहम नक़द और फ़सल पर एक बोझ पैदावार होता था। हर ज़मीन का लगान बंधा हुआ था। ख़लीफ़ा उमर बाद में कहा करता था कि इस "हम दास्तान" से ज़्यादह इन्साफ़ का फ़ैसला दूसरा नहीं हो सकता और उसने उसे बढ़ाने से इनकार कर दिया।

## साहित्य को प्रोत्साहन

अनुशीरवां ने इल्मों और फ़नों को ख़ूब तरक़्क़ी दी। रोम के सम्राट जस्टीनियन ने जब यूनान के अन्दर दर्शन और विज्ञान, फ़लसफ़े और साइन्स के विद्यालय बन्द करवा दिये और यूनानी विद्वानों को तकलीफ़ें देना शुरू किया तो बहुत से यूनानी विद्वानों ने भागकर अनुशीरवां के यहां पनाह ली। अनुशीरवां ने उन्हें इज़्ज़त के साथ रखा, उनके मदरसे खुलवा दिये और साइन्स की नई नई खोजों के लिए उन्हें हर तरह की सुविधाएं दीं। उसने ज़ुन्दे शाहपूर में एक तिब्बी मदरसा क़ायम किया जहां फ़िलासफ़ी, व्याख्यान कला, और कविता भी पढ़ाई जाती थीं। संस्कृत और यूनानी की मशहूर किताबों को उसने हिन्दुस्तान और यूनान से मंगवाकर उनका पहलवी ज़बान में तर्जुमा कराया। ईरानी सम्राटों का एक इतिहास भी उसने तय्यार कराया। ऐसे ही उसने अवस्ता का भी उस समय की बोल चाल की ज़बान में तरजुमा कराया।

## ग़ुलामों के साथ व्यवहार

जनता के फ़ायदे के लिये उसने कई अच्छे अच्छे क़ानून बनाए। लड़ाई के क़ैदियों को वह ईरान लाकर बसा लेता था। 'रूमिया' नाम से उसने एक नया शहर आबाद किया जिसमें सिर्फ़ यूनानी क़ैदी बसे हुए थे। जो भी यूनानी ग़ुलाम कहीं से आकर उस शहर में पनाह ले लेता था वह ग़ुलामी से छुटकारा पा जाता था। साम्राज्य भर के दूसरे देशों के अच्छे अच्छे रीत रिवाजों को भी उसने मानना शुरू कर दिया।

सेम के साथ ५४१ ईसवी की सुलह के बाद त्रिबुनु (Tribunus) नाम के एक यूनानी हकीम को उसने साल भर तक अपने यहाँ रखा। उसकी विदाई के समय अनुशीरवां ने उससे इनाम मांगने को कहा। हकीम ने कुछ रोगी क़ैदियों के छोड़ दिये जाने की प्रार्थना की। अनुशीरवां ने फ़ौरन उन क़ैदियों को और उनके साथ तीन हज़ार और क़ैदियों को छोड़ दिया।

५४१ ईसवी में लाज़ी नाम की एक ईसाई क़ौम ने जो रोम के ज़ुल्मों से बेज़ार थी अनुशीरवां से पनाह मांगी। अनुशीरवां ने उन्हें रोम से छुड़ा कर अपने यहां इज़्ज़त और प्रेम के साथ रखा और उन्हें पूरी मज़हबी आज़ादी दी।

## अनुशीरवाँ पर सम्मतियां

इतिहास लेखक रालिन्सन के शब्दों में सम्राट अनुशीरवां—"बहादुर, मेहनती, संयमी और उदार था।" मशहूर इतिहास लेखक गिबन लिखता है कि अनुशीरवां की हकूमत "निष्पक्ष, मज़बूत और जीवनपद थी।" मोहम्मद साहब फ़ख्र के साथ कहा करते थे कि "मैं इन्साफ़ पसन्द अनुशीरवां के ज़माने में पैदा हुआ हूं।" मीरख़ोंद लिखता है कि सम्राट अनुशीरवां ने ८० तहसीलदारों को इसलिये फांसी पर लटकवा दिया क्यों कि वे प्रजा से मुक़र्रर लगान से ज़्यादह वसूल कर लेते थे।

## अनुशीरवाँ की धार्मिक उदारता

जब कि ईसाई रोम में हर ईसाई सम्प्रदाय को अपने धर्म पर चलने की इजाज़त न थी अनुशीरवां के राज में हर सम्प्रदाय के ईसाइयों को अपने धर्म का प्रचार करने, अपने गिरजे बनाने और अपने पादरी चुनने का पूरा अधिकार था। आर्मीनिया के एक ईसाई पादरी की शिकायत पर अनुशीरवां ने अपने एक क्षत्रप तेन शाहपूर को इसलिये उसके ओहदे से हटा दिया चूंकि क्षत्रप (गवरनर) ने हैसियत से उसने ज़रथुस्त्री धर्म का प्रचार करने की कोशिश की थी। अनुशीरवां सब धर्मवालों को इस बात के लिए समझाया और मदद दिया करता था कि वे सब एक साथ बैठकर एक दूसरे की किताबों और असूलों को पढ़ें और सुनें और प्रेम के साथ एक दूसरे को समझें और समझावें। अनुशीरवां ने एक ईसाई रानी से शादी की और इस शादी से नौशज़ाद नाम का जो लड़का पैदा हुआ वह अपनी मां की इच्छा के मुताबिक़ ईसाई ही रहा।

अनुशीरवां बहैसियत सेनापति, हाकिम और राजनीतिज्ञ के महान था। प्रजा की भलाई का उसे सदा ध्यान रहता था। साहित्य की तरफ उसे खास रुचि थी। इन्साफ़ का ग़ज़ब का प्रेमी था। उसने साइन्स और फ़िलासफ़ी को तरक़्क़ी दी जिससे बाद के ज़माने के यूरोप ने बेहद फ़ायदा उठाया। कीर्ति और यश के इतिहास में इनसानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


के बड़े से बड़े उपकारकों में उसका रुतबा बहुत ऊँचा है।

## अनुशीरवाँ का महल और बुढ़िया की झोपड़ी

कहते हैं अनुशीरवां ने अपना एक महल बनवाया। महल के बाहर एक कोने में एक बुढ़िया की झोपड़ी आ गयी। झोपड़ी के धुएं से महल की दीवार काली होने लगी। महल की शोभा में भी फ़र्क़ आता था। बुढ़िया से कहा गया कि वह झोपड़ी के बदले में दूसरी जगह एक पक्का मकान ले ले। बुढ़िया ने अपने पुरखों की झोपड़ी को छोड़ने से इनकार किया। कर्मचारियों ने उसे ज़बरदस्ती निकालना चाहा। अनुशीरवां ने उन्हें रोक दिया। उसने कहा "झोपड़ी की वजह से भले ही महल की दीवार काली हो, लेकिन इस झोपड़ी के रहने से मेरे इन्साफ़ में फ़र्क़ न आवेगा।"

## अनुशीरवाँ का मृत्यु के समय ऐलान

मरने से पहले उसने अपने वज़ीरों को एक ऐलान लिखकर दिया और उन्हें यह हिदायत कर दी कि मेरे मरने के बाद इसे शाया किया जाय। यह ऐलान सोने के अक्षरों में लिखने के योग्य है। ऐलान यह है—

"ज्यों ही रूह मेरे जिस्म से निकल जावे तुम मेरा यह सिंहासन इस्फ़हान ले जाना और मेरे जिस्म को दफ़न करने के बाद ऊँची आवाज़ से लोगों से कहना—ऐ लोगो! पाप से बचो और अपने को अच्छे कामों में लगाओ। इस दुनिया की दौलत किसी काम न आवेगी। मेरा यह वही जिस्म है जो कल तक चलता फिरता था, लोग जिसकी इज़्ज़त करते थे और तीन क़दम दूर से ताज़ीम करते थे, जिसने क़ौम को ख़ुशहाल बनाया और धर्म की भावना को बढ़ाया। लेकिन आज अगर कोई मेरे इस जिस्म को छू दे तो वह नापाक हो जाय और उसे स्नान वग़ैरह कई चीज़ें करके फिर से पाक होना पड़े। जो वह ऐसा न करे तो न तो लोग उसे यज्ञ हवन करने देंगे और न वह दूसरे लोगों से मिल जुल सकेगा। कल तक मेरा हाथ किसी दूसरे को देखकर नहीं उठता था चूँकि मैं सम्राट था, और आज नापाक हो जाने के डर से कोई मुझे हाथ तक नहीं लगाता। ऐ दुनिया के लोगो! अपनी ज़िन्दगी इस तरह बिताओ कि लोग तुम्हें दुआएं दें। तुम्हारा हर काम सचाई से भरा हो। तमाम इन्सानों के भले के लिये जोश और मिहनत के साथ कोशिश करो। अपने कामों में इन्साफ़ और विवेक का ख़याल रखो। धार्मिक बातों में तुम उदार और सच्चे लोगों के साथ रहो। ग़रीब आदमियों के साथ ग़रूर और निरादर का बर्ताव मत करो। याद रखो दौलत और ख़ुशहाली दो दिन की चीज़ें हैं। ताक़त और अख़्तियार दो दिन के अन्दर रंज, आफ़तों और ग़रीबी में बदल सकते हैं। इस दुनिया की ज़िन्दगी बहुत थोड़ी है और परलोक का रास्ता बहुत लम्बा है। हम सबका दुश्मन (काल) बहुत भयङ्कर है और दूसरी दुनिया में जज (धर्मराज) बड़ा सख़्त है। वहां नेकी या भलाई क़र्ज़ नहीं मिलती। इसलिये इस ज़िन्दगी में छल और बेईमानी से काम न लो। इस देह को आत्मा न समझ बैठो।..... नाम हासिल करने के पीछे चिन्तित और परेशान न हो। लेकिन अच्छा बनना हर आदमी के अपने हाथ में है। छोटी से छोटी हैसियत से रहकर भी आदमी नेकी कर सकता है। याद रखो यह दुनिया दो दिन की है।..... हर आदमी को गहराई से सोचना चाहिये कि आख़िर—मैं कहां से आया हूं, क्यों आया हूँ, मुझे कहां जाना होगा और वहां मुझसे क्या क्या पूछ ताछ होगी? मैं जानता हूँ कि मैं यहां अपने बनानेवाले अहुरमज़्द के पास से आया हूँ, मैं यहां बुराई से लड़ने के लिये आया हूँ और मुझे लौटकर अपने बनानेवाले अहुरमज़्द के पास जाना है।"*

## सासानी साम्राज्य की प्रगति

अनुशीरवां के ज़माने में सासानी साम्राज्य ने ख़ासी तरक़्क़ी की, गिरते हुए ईरानी साम्राज्य को एक बार फिर से सहारा देकर खड़ा कर दिया। क्लीमेंट हुवार्ट लिखता है—

"सासानी साम्राज्य दुनिया की तीन बड़ी ताक़तों यानी चीन, हिन्दुस्तान और कुस्तुनतुनिया के रोमी साम्राज्य, इन तीनों के बीच में रहकर चार सदी तक इन्सान के ऊँचे से ऊँचे इल्मों और अच्छे से अच्छे ख़यालों के एक दूसरे से लेने देने का केन्द्र था।... सासानी साम्राज्य ज़रथुस्त्री, बौद्ध और ईसाई तीनों धर्मों का रोशन और जगमगाता हुआ समन्वय था।"†

ऊपर का फिक़रा असल में अनुशीरवां के ज़माने की ठीक ठीक तस्वीर है।×

---

* Andarz-i Khusru-i Kawlan as quoted in Zoroastrian Civilization by M. N. Dhalla.

† Ancient Persia and Iranian Civilizaion.

× विश्ववाणी कार्यालय से शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पण्डित सुन्दरलाल जी की पुस्तक "ज़रथुस्त्री धर्म और ईरानी संस्कृति" का कुछ अंश—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# तूफ़ान चाहिये मुझे, तूफ़ान चाहिये !

श्री० देवेन्द्र एम० ए०

मैं चाहता नहीं चलूं प्राचीन राह पर,
मैं चाहता नहीं जियूँ जग की निगाह पर,
मैं अपने मील और अपने कोस चाहता,
मंज़िल पै अपनी चलने का मैं जोश चाहता,
अपनी खुशी रुकूँ सदा अपनी खुशी चलूँ,
है स्वर्ग-पथ स्वतन्त्रता यदि नित्य ही जलूँ,
मैं अपनी चाल पर न कोई रोक चाहता,
मैं अपनी भूल पर न कभी शोक चाहता,
मैं सीख चाहता, न कि पछतावं चाहता,
जो चिह्न छोड़ दे न मैं वह घाव चाहता,
यदि पर दया से सुख की राशि भी मुझे मिले !
उसके बजाय अग्नि-पथ अभियान चाहिये !!

माना कि ये चलाव और लोक रीतियां,
सीमायें, रूढ़ियां, तमाम लोक नीतियां,
पिछले भ्रमों, परिश्रमों की एक शृङ्खला,
मानव जो आज तक सदैव जोड़ता चला,
जब वे ही गति प्रगति की आज बेड़ियाँ बनीं,
जब वे ही लक्ष्य तक पहाड़-श्रेणियाँ बनीं,
तो आज उनको एक साथ क्यों न तोड़ दूँ ?
फिर आज उनको एक साथ क्यों न छोड़ दूँ ?
वे पथ तमाम और जब पगडंडियाँ वही,
ऊँचे निशान उन पै और झंडियाँ वही,
गुमराह करके आज वे उत्थान रोकतीं,
औ' भ्रम में डाल के मुझे हैरान छोड़तीं,
तो क्यों न अपनी राह अलग मैं निकाल लूँ ?
अपने भविष्य को न भला क्यों सभाल लूं ?
औ' जग को उन पथों की वे आसानियाँ रहें,
मुझको क़बूल हर क़दम हैरानियाँ रहें,
सुन जिस पुकार को चले कितने अतीत में
बस उस पुकार का मुझे भी ज्ञान चाहिये !!

मैं चाहता न फूल मिलें अपनी राह में,
हमदर्द जग न साथ रहे अपनी राह में,
मैं पथ में छाँव चाहता न, धूप चाहता,
जो तप के भी निखर सके वह रूप चाहता,
होवें न चाँद तारे, मिलें वह मुझे निशा,
उल्कायें आसमान की हों पथ-प्रदर्शिका,

जब मैं कभी कभी उम्मीद खो उदास हूं,
कमज़ोरियों से अपनी कभी मैं हताश हूं,
तो उनकी याद चाहता जो पहले चल चुके,
मैं उनके चिन्ह चाहता जो पहिले जल चुके।
शङ्कर की भांति आज विप्लवी प्रयाण में,
अमृत न चाहिये मुझे विषपान चाहिये !!

मेरे कदम बढ़ें सदैव उस दिशा की ओर,
मिल सके जहां मनुष्य के दुखों का छोर,
निर्देश चाहिये नहीं पण्डित-पुरान का,
आदेश चाहिये नहीं मुझको क़ुरान का,
हर शाम नाउमीदियां मेरी सुला सके,
जो स्वप्न मर रहे हों उन्हें फिर जिला सके,
सहास प्रात की किरन सन्देश दे नया,
कुछ प्रेरणा नई मिले, आवेश दे नया,
क़दम नये, औ' पथ नया, मंज़िल नई रहे,
औ' अपने में विश्वास सदा ही सही रहे,
फिर भी न अपने देश को मैं पा सकूं अगर !
मंज़िल न अपनी फिर भी कहीं जा सकूं अगर !
तो लक्ष्य-प्राप्ति के अटूट शुभ-प्रयास में,
मुझको अगण्य जन्म का वरदान चाहिये !!

मैं चल रहा नहीं कि लोक में सुनाम न हो,
या भविष्य में मुझे कभी प्रणाम हो,
शायद न मैं समाज की कुछ गति बदल सकूं,
सम्भव न मैं विरोध में खुद ही संभल सकूं,
पर विश्व-भ्रम में एक लीक मैं भी छोड़ता,
मुमकिन यहां समाज के बन्धन को तोड़ता,
कोई पथिक अगर कभी आराम पा सके,
मिट्टी शरीर की मेरी कुछ काम आ सके,
तो धन्य इस शरीर,—ज़िन्दगी को मान लूं,
अपने अकिंचनत्व को महान जान लूं,
जो जग की रूढ़ियों में फँस के चार हो रहे,
उस धूलि की समाधि में ये कण भी मिल कहें—
जो आ रहे हों उनसे मौन झूम के कहें—
जो डर रहे हों उनके चरण चूम के कहें—
इस विश्व की विभीषिका के चिर विनाश को
कुछ और खून चाहिये, बलिदान चाहिये !!

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्राट अकबर और जैन गुरु

साहित्य-शिरोमणि महता श्री शिखरचन्द्र कोचर, बी० ए०, एल-एल बी०, साहित्याचार्य्य

इस देश के मुसलमान बादशाहों में सम्राट् अकबर सब से अधिक उदार तथा सहृदय सम्राट हुआ है। धर्मान्धता का सङ्कीर्ण मार्ग ग्रहण न कर उसने धार्मिक-सहिष्णुता का राज-मार्ग ग्रहण किया। वह समस्त धर्मों का समुचित आदर करता था और परम-पद-प्राप्ति के लिये विभिन्न मतों को केवल भिन्न भिन्न मार्ग समझता था। उसकी तीव्र इच्छा थी कि एक ऐसा मत चलाया जाय, जिसे सब लोग स्वीकार कर सकें। इसी लक्ष्य को सामने रखकर उसने 'दीने इलाही' नामक एक स्वतन्त्र मत की स्थापना की थी। उसने सर्वधर्म समभाव चर्चा के लिये एक नया 'इबादतख़ाना' भी स्थापित किया था, जिसमें विभिन्न मतों के आचार्य सम्मिलित होते और अपने मतों का प्रतिपादन किया करते थे। सम्राट अकबर पर जैन धर्म के गुरुओं का विशेष प्रभाव पड़ा। जिन जैन गुरुओं का प्रभाव उस पर मुख्यतः पड़ा, उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है :—

(१) हरिविजय सूरि : सन् १५८२ ई० में काबुल विजय करने के बाद सम्राट अकबर ने जैनाचार्य श्री हरिविजय सूरि की प्रशंसा सुनी। उसने गुजरात के गवर्नर साहिबख़ां को इस आशय का फ़र्मान भेजा कि वह सूरि जी से दर्बार में आने के लिये निवेदन करे। सूरि जी उन दिनों गान्धार में थे। साहिबख़ां की प्रार्थना पर वे अहमदाबाद गए। वहां साहिबख़ां ने उन्हें सम्राट की इच्छा बताई और यात्रा के लिये सवारी तथा रुपये देने चाहे परन्तु सूरिजी ने इसके लिये सधन्यवाद असमर्थता प्रकट की और कहा कि नियमानुसार जैन साधु ऐसी वस्तुओं का प्रयोग नहीं कर सकते। अतः वे पैदल ही आगरा के लिये रवाना हो गये। आगरा पहुँचने पर उनका राजसी ठाटबाट के साथ स्वागत हुआ। सूरिजी पहले अबुल फ़ज़ल से मिले जिस पर उनका अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा। तत्पश्चात् वे अबुल फ़ज़ल के साथ सम्राट से मिले। सम्राट पर भी गहरा असर पड़ा। सम्राट ने सूरिजी को "पद्मसुन्दर" नामक स्वर्गीय तपागच्छीय जैन साधु का ग्रन्थ संग्रह देने के लिये अपनी उत्कट कामना प्रकट की। सूरिजी ने पहले तो इसके लिये अपनी असमर्थता प्रकट की और कहा कि हम जितने ग्रन्थ स्वयं उठा सकते हैं उतने ही अपने पास रख सकते हैं। परन्तु सम्राट के अधिक आग्रह करने पर उन्होंने आगरा में 'अकबरीय भांडागार' नाम से ग्रंथ-भंडार स्थापित करके वे ग्रन्थ रखवा दिये और उनके निरीक्षण का कार्य भार थानसिंह नामक जैन गृहस्थ को सौंप दिया। सूरिजी के सदुपदेश से सम्राट ने पर्य्यूषण के आठ दिनों में समस्त साम्राज्य में जीवहिंसा निषेध की घोषणा करवा दी, जिसका उल्लेख विजय प्रशस्ति महाकाव्य में है, चातुर्मास समाप्त होने के पश्चात् सूरिजी सम्राट से फिर मिले। उनके उपदेश से सम्राट ने फतहपुर सीकरी के १२ योजन लम्बे विशाल सरोवर "डाबर" में मछलियों का मारा जाना बन्द करवा दिया। तत्पश्चात् सम्राट ने सूरिजी के सदुपदेश से पर्य्यूषण के दिनों में अपनी ओर से ४ दिन और जोड़ कर कुल १२ दिनों के लिये (अर्थात् भाद्रपद कृष्णा दशमी से भाद्रपद शुक्ल षष्ठी तक) राज्य भर में जीव हिंसा बन्द करवा दी। कुछ समय बाद नौरोज़ के दिन भी जीव हिंसा बन्द की गई। सन् १५८४ ई० में सम्राट ने सूरिजी को "जगद्गुरु" की उपाधि प्रदान की। सम्राट के अनुरोध से सूरिजी ने अपने शिष्य शान्तिचन्द्र जी को "उपाध्याय" पद पर प्रतिष्ठित किया फिर सूरिजी ने शान्तिचन्द्रजी को सम्राट के पास छोड़कर स्वयं गुजरात की ओर प्रस्थान किया। सूरिजी का विशेष वृत्तान्त जानने के लिये "हीर सौभाग्य महाकाव्य", "जगद्गुरु काव्य", "कृपारस कोष", "सूरीश्वर अनेसम्राट" आदि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये। "आईने अकबरी" में लिखा है कि सम्राट अकबर ने अपने दर्बार के विद्वानों को पांच श्रेणियों में विभक्त किया था। उनमें से प्रथम श्रेणी के विद्वानों में हरिविजय सूरिजी का नाम अङ्कित है, तथा पांचवी श्रेणी में भानुचन्द्र तथा विजय सेन सूरि का वर्णन आगे किया जायगा।

(२) शान्तिचन्द्र उपाध्याय : सम्राट अकबर पर इनका भी बहुत प्रभाव पड़ा था। इन्होंने सम्राट के लोकोपयोगी सत्कार्यों का वर्णन अपने "कृपा रस कोष" नामक सुन्दर संस्कृत काव्य में किया है, जिसमें १२८ श्लोक हैं। इन्होंने सम्राट अकबर को उपदेश देकर वर्ष भर में लगभग छः मास हिंसा बन्द करवाई थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने सम्राट से "जज़िया" नामक कर बन्द करवाने के के लिये भी फ़र्मान जारी करवाया था। तत्पश्चात वे सम्राट की अनुमति लेकर गुजरात चले गये और अपनी जगह भानुचन्द्र को छोड़ गये।

(३) भानुचन्द्र : ये और इनके शिष्य सिद्धिचन्द्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राट अकबर के पास उसके शेष जीवन तक रहे और बाद में सम्राट जहांगीर के पास भी रहे। सम्राट जब कभी आगरे से बाहर जाता, भानुचन्द्र को अपने साथ ले जाया करता था। एक बार भानुचन्द्र सम्राट के साथ काश्मीर भी गये। ये सम्राट अकबर के समक्ष प्रति रविवार "सूर्य सहस्र नाम" का पाठ किया करते थे। एक बार इन्होंने सम्राट अकबर को शत्रुंजय-तीर्थ से यात्रियों पर लगने वाला कर उठा देने के लिये कहा, जिस पर सम्राट ने सन् १५९२ ई० में शत्रुंजय पर्वत का दान-पत्र लिख कर हरिविजय सूरि को दिया। इन्हें भी "उपाध्याय" पद से अलंकृत किया गया था। इनका विशेष वर्णन जानने के लिये इनके शिष्य सिद्धिचन्द्र द्वारा लिखित "भानुचन्द्र चरित्र" नामक ग्रन्थ का अवलोकन करना चाहिये।

( ४ ) सिद्धिचन्द्र : ये संस्कृत एवं फारसी के प्रकांड विद्वान थे। इन्होंने "भानुचन्द्र चरित्र" नाम के एक उत्तम ऐतिहासिक संस्कृत काव्य ग्रंथ की रचना की है, जिससे इनके गुरु भानुचन्द्र एवं इनकी जीवनी पर विशेष प्रकाश पड़ता है। यह उच्चकोटि का विशुद्ध ऐतिहासिक ग्रंथ है। मुनि जिनविजय जी के कथनानुसार यह ग्रन्थ "राजतरङ्गिणी", "पृथ्वीराज-विजय", "हम्मीर-महाकाव्य", "कुमारपाल चरित्र", "प्रबन्ध चिन्तामणि", "वस्तुपाल चरित्र" आदि उत्तम ऐतिहासिक ग्रंथों की श्रेणी में रखा जाना चाहिये। यह ग्रंथ सिंघी जैन ज्ञानपीठ द्वारा संवत् १९४० में प्रकाशित हो चुका है। सिद्धिचन्द्र जी शतावधानी थे। सम्राट अकबर ने इन्हें प्रसन्न होकर "खुश फ़हम" की उपाधि प्रदान की थी।

( ५ ) विजयसेन सूरि : ये हरिविजय सूरि के प्रधान शिष्य थे। सम्राट ने इनकी प्रशंसा सुनकर इन्हें लाहौर से आमन्त्रित किया था। चातुर्मास समाप्त होने पर इन्होंने राधनपुर से प्रयाण किया और लगभग छः मास पश्चात् ये लाहौर पहुँचे। इनके शिष्य नन्दविजय ने अष्टावधान का साधन किया जिससे प्रसन्न होकर सम्राट ने उन्हें भी "खुश फ़हम" की उपाधि प्रदान की। इनका भी सम्राट पर अमित प्रभाव पड़ा था। इससे कुछ ईर्ष्यालु व्यक्तियों ने सम्राट को बहकाना शुरू किया कि जैन लोग नास्तिक होते हैं। जब सम्राट ने इस बात की चर्चा सूरिजी के समक्ष की तो सूरिजी ने सम्राट से कहा कि इस बात का निर्णय करने के लिये आपकी अध्यक्षता में विद्वानों की सभा बुलाई जानी चाहिये। सूरिजी की इच्छानुसार सम्राट ने विद्वानों की सभा आमन्त्रित की। उसमें सूरिजी ने अपनी अकाट्य युक्तियों तथा अनुपम तर्क शैली से जैनों की आस्तिकता सिद्ध की, जिससे समस्त विपक्षी निरुत्तर हो गये। सम्राट अकबर ने सूरिजी के उपदेश से अपने राज्य भर में गाय, बैल, भैंस और भैंसों का वध निषिद्ध करवा दिया। लावारिस लोगों की ज़ायदाद ज़ब्त करने तथा मनुष्यों को बन्धक में रखने की प्रथायें भी सम्राट ने सूरिजी के कहने से बन्द करवा दीं। इन्हें सम्राट ने "सवाई हीर विजय सूरि" की उपाधि दी थी। लाहौर में दो चातुर्मास करके इन्होंने गुजरात के लिये प्रस्थान किया। इनके विशेष वर्णन के लिये "विजय-प्रशस्ति काव्य", "विजय देव सूरि माहात्म्यम्" आदि ग्रंथों का अनुशीलन करना चाहिये।

उपर्युक्त पांचों महानुभाव तपागच्छीय जैन साधु थे। इनके अतिरिक्त खरतरगच्छ के जिनचन्द्र सूरि एवं जिन सिंहसूरि का भी सम्राट् अकबर पर गहरा प्रभाव पड़ा था, जिनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है:—

जिनचन्द्र सूरि तथा जिनसिंह सूरि :—सन् १५९१ ई० में जब सम्राट अकबर लाहौर में था, तब उसने जिनचन्द्र सूरि की प्रशंसा सुनकर मंत्री कर्मचन्द्र से उनका वृत्तान्त पूछा। फिर सम्राट ने सूरिजी को आमंत्रित करने के लिए फ़र्मान भेजा। सूरिजी को खंभात में फर्मान मिला। तुरन्त ही वहां से चलकर वे लाहौर में सम्राट से मिले। मन्त्री कर्मचन्द्र उनके साथ था। सूरिजी के दर्शन कर सम्राट को बहुत प्रसन्नता हुई। सूरिजी ने सम्राट के अनुरोध से लाहौर में ही चातुर्मास किया। सूरिजी के उपदेश से सम्राट ने जैन तीर्थों तथा मन्दिरों की रक्षा के लिए फर्मान जारी किए तथा आषाढ़ शुक्ला ९ से आषाढ़ शुक्ला १५ तक जीव-हिंसा का निषेध किया। सम्राट ने इन्हें "युग प्रधान" तथा इनके शिष्य मानसिंह को "आचार्य" की उपाधियां प्रदान कीं। मानसिंह का नाम "जिनसिंह सूरि" रखा गया। सम्राट अकबर जिन सिंह सूरि को अपने साथ काश्मीर भी ले गया था। इन्होंने सम्राट को सदुपदेश देकर अनेक स्थानों में जीवहिंसा बन्द करवाई। इन दोनों जैनाचार्यों का वृत्तान्त जानने के लिए श्री अगरचन्द जी तथा भँवर लालजी नाहटा द्वारा लिखित "युगप्रधान श्री जिन चन्द्रसूरि" नामक ग्रन्थ देखना चाहिए।

उपर्युक्त जैन गुरुओं के अतिरिक्त निम्न लिखित जैन गुरुओं का भी सम्राट अकबर पर प्रभाव पड़ा था :

(१) पद्मसुन्दर : ये तपागच्छ सम्प्रदाय के थे। इनका सम्राट अकबर पर विशेष प्रभाव था। इनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उत्तम ग्रंथ "अकबरशाही शृङ्गार दर्पण" हाल ही में गंगा ओरियेण्टल सीरीज़ बीकानेर से प्रकाशित हुआ है। इन्होंने सम्राट अकबर को अपना विशाल ग्रंथ संग्रह दिया था, जिसे सम्राट ने इनकी मृत्यु के उपरांत हरि विजय सूरि को सौंप दिया।

इन्होंने काशी के एक ब्राह्मण पंडित को भी शास्त्रार्थ में पराजित किया था।

(२) नन्दविजय : ये विजयसेन सूरि के शिष्य थे। इनको सम्राट अकबर ने "खुश फ़हम" उपाधि प्रदान की थी। इस बात का उल्लेख "भानु चन्द्र चरित्र" तथा "विजय-प्रशस्तिं काव्य" में है। जब विजय सेन सूरि ने लाहौर से प्रस्थान किया, तब उन्होंने इनको सम्राट अकबर के पास रखा था।

(३) समय सुन्दर : ये युग प्रधान जिनचन्द्र सूरि के प्रसिद्ध विद्वान् शिष्य थे। इन्होंने सम्राट अकबर के समक्ष अपना "अष्ट लक्षी" नामक ग्रंथ पढ़ा, जिसमें "राजानो ददते सौख्यम्" इस पद के आठ लाख से अधिक अर्थ किए थे। जब सम्राट ने जिन चन्द्र सूरि को "युग प्रधान" उपाधि प्रदान दी तब इन्हें तथा गुण विनय को "उपाध्याय" पद पर प्रतिष्ठित किया गया था।

(४) हर्ष सार : ये खरतर गच्छ के थे। इन्होंने भी सम्राट अकबर से भेंट की थी।

(५) जयसोम : ये भी खरतर गच्छीय थे। इन्हें "पाठक" उपाधि मिली थी। इन्होंने सम्राट अकबर की राज-सभा में एक शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की थी।

(६) साधुकीर्त्ति : इन्होंने भी सम्राट अकबर की राज सभा में शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की थी, जिससे प्रसन्न होकर सम्राट ने इन्हें 'यादीन्द्र" की उपाधि प्रदान की थी।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे स्पष्ट है कि सम्राट अकबर पर जैन गुरुओं का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। जैन गुरुओं के प्रभाव से ही सम्राट ने मांसाहार का परित्यागकर समग्र साम्राज्य में लगभग छ मास पर्य्यंत जीव हिंसा बन्द करवा दी थी। पिनहिरो नामक पोर्चुगीज़ पादरी ने (जो सम्राट अकबर का समकालीन था) तो यहां तक लिखा है कि सम्राट अकबर व्रती-धर्म (जैन-धर्म) का अनुयायी था। डा० विन्सेन्ट स्मिथ, डा० ईश्वरी प्रसाद आदि आधुनिक इतिहासकारों ने भी यह बात मुक्तकंठ से स्वीकार की है कि जैन गुरुओं का सम्राट अकबर पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा था तत्कालीन विशाल ग्रंथ संग्रह एवं अनुपम कला कौशल प्रपूर्ण देवालय तथा नाना प्रकार के फर्मान शिला-लेख आदि इस बात की पूर्ण रूप से पुष्टि करते हैं। खेद है कि इस दिशा में अभी तक पूरी तरह खोज नहीं की गई है। आशा है कि विद्वानों का ध्यान शीघ्र ही इस ओर आकृष्ट होगा और इस विषय पर विशेष प्रकाश पड़ेगा।

# क्रांति की पुकार

कुमारी लक्ष्मी देवी गोयल

आज एकाकी न छोड़ो !

कोटि युग के प्यार का बल ही रहा है एक सम्बल,
आज मेरे प्राण-तरु के फल रहे, से फल न तोड़ो !
आज एकाकी न छोड़ो !

जन्म भर की साधना से तृप्त होकर नेत्र प्यासे,
झर रहे सानंद, धारा को न दुःख की ओर मोड़ो !
आज एकाकी न छोड़ो !

जब सघन तममय निशा थी ढूँढ़ पाया एक साथी,
छोड़ मुझको राह में ही मत पतन का स्वर्ण जोड़ो !
आज एकाकी न छोड़ो !



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# द्वन्द्वात्मक सत्कार्यवाद

श्री रामचन्द्र जैन बी० ए०, एल-एल० बी०

संसार के विकास का नियम क्या है? जीवन किस नींव पर आगे बढ़ता है? यह प्रश्न व्यावहारिक दर्शनों का आधार रहा है। जीवन-विकास का नवीनतम सिद्धांत मार्क्स का डाइलेक्टिकल मेटीरियलिज़्म (Dialectical Materialism) माना जाता है जिसे श्री सम्पूर्णानन्द ने "द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद" कहा है। किन्तु दार्शनिक दृष्टि से यह सिद्धान्त अदोष नहीं है और यह जीवन-विकास की मुख्यतम शक्ति का अपने में समावेश नहीं करता। मेरे पिछले लेख "गीता में पदार्थवाद" में पदार्थ की परिभाषा और गुण पर विचार किया गया है। इस सिद्धान्त को "द्वन्द्वात्मक पदार्थवाद" कहना भी पूर्णतया संयुक्त नहीं है। गीता में इस सिद्धान्त का पूर्णतया विवेचन हुआ है और इसे "द्वन्द्वात्मक सत्कार्यवाद" कहना उचित होगा।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोक त्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

गीता: अध्याय १५, श्लोक १६-१८

[संसार में क्षर और अक्षर दो पुरुष यानी तत्व हैं। सब भूतों को क्षर और इन सब भूतों के मूल में रहनेवाली शक्ति को अक्षर कहते हैं; परन्तु उत्तम तत्व इन दोनों से भिन्न है। उसे पदार्थ कहते हैं। वही अव्यय पदार्थ त्रैलोक्य में व्याप्त होकर पोषण करता है। जबकि वह क्षर से भी परे और अक्षर से भी उत्तम है, लोक-व्यवहार में और वेद में यानी शुद्ध ज्ञान की दृष्टि में उसे पुरुषोत्तम अर्थात् उत्तम पदार्थ कहा है।]

व्यक्त वस्तु परिवर्तनशील है; अतः क्षर है। उसका स्वरूप सदैव एकसा नहीं रहता। व्यक्त वस्तु के मूल में एक शक्ति है जो स्वयं वस्तु का गुण है। वह परिवर्तन लाने में वस्तु को गतिशील बनाती है, वह शक्ति 'अक्षर' है। यह एक ही वस्तु की सत्ता को दो दृष्टिकोणों से देखने का निष्कर्ष मात्र है। हाइड्रोजन व आक्सीजन को रसायन विधि से मिलाने से पानी बनता है। हाइड्रोजन व आक्सीजन का रूप परिवर्तित होकर नया स्वरूप पानी हुआ, अतः वे दोनों 'क्षर' हुए किन्तु इन दोनों के गुण पानी में विद्यमान हैं। वे नये और श्रेष्ठ रूप को प्राप्त हो चुके हैं अतः उनका गुणात्मक परिवर्तन सः१ है। नवीन पदार्थ का अस्तित्व है और उसकी मूलभूत शक्ति का भी, अतः शक्ति अक्षर रूप में मौजूद है; वह नष्ट नहीं हुई है। इसी प्रकार पदार्थ और शक्ति का गुणात्मक समुच्चय ही पदार्थ है अतः वह इन दोनों से परे और उत्तम है।

यहाँ 'क्षर' और 'अक्षर' दोनों को ही पुरुष कहा है। एक को प्रकृति और दूसरे को पुरुष या आत्मा नहीं कहा। दोनों को एक ही संज्ञा देने का तात्पर्य यह है कि दोनों एक ही कोटि व श्रेणी की वस्तुएँ हैं और दोनों के गुणात्मक समुच्चय से जो वस्तु निर्मित होती है, वह भी उसी श्रेणी की है। यह शुद्ध अद्वैतवाद है।

'अक्षर ब्रह्म' तो 'क्षर' को अपने साथ नहीं मिलाता, उसके लिए तो 'क्षर' अस्पृश्य है किन्तु 'पदार्थ' दोनों को अपने में मिला लेता है। अतः पदार्थ ही पुरुषोत्तम है, दोनों में श्रेष्ठ है। 'क्षर' और 'अक्षर' दोनों ही पदार्थ के दो रूप हैं; सत्य है एकमात्र पदार्थ।

गीताकार ने अध्याय ७ के श्लोक ४ से ७ में कहा है—

भूमिरापोऽनलो वायुः एवं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

यहाँ एकमात्र पदार्थ का विश्लेषण करते हुए गीताकार ने कहा है:—

[पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, इन आठ प्रकारों में पदार्थ की अपरा प्रकृति विभाजित है। पदार्थ की दूसरी परा प्रकृति इससे भिन्न जगत् को धारण करने वाली शक्ति है। इन्हीं दोनों से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। सारे जगत् के मूल और प्रलय का यही सिद्धान्त है। इससे परे और कुछ नहीं है। सारा पिरोये हुए मणियों के समान सब कुछ इसी 'प्रकार' में गुंथा हुआ है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परा प्रकृति उसे कहते हैं जो जीवन के मूल में प्रवाहित हो रही है। उसके सहयोग में अपरा प्रकृति वह है जो जीवन की मूलशक्ति का व्यक्त शरीर है। यह जीवन की व्याख्या करने की एक रीति है। जीवन तो अविभाज्य है किन्तु वैज्ञानिक विश्लेषण करते समय एक ही वस्तु के भिन्न भिन्न अवयवों को, उसकी एकरूपता का सर्वदा ध्यान रखते हुए, भिन्न भिन्न गुणों के साथ निरूपण करने की आवश्यकता है। शक्तिमय पदार्थ से ही सम्पूर्ण संसार बनता है और अलहदा अलहदा दिखते हुए भी भिन्न भिन्न स्वरूप इस एकरूप पदार्थ में ही गुंथे हुए हैं।

'अहंकार' क्या वस्तु है? यह वह तत्व है जो अभिन्नता को भिन्नता में विभाजित करता है। यह विभाजक शक्ति है। जो सिद्धान्त प्रतिलोमक्रमी हैं वहाँ 'अहंकार' की सहायता के बिना आगे का विस्तार नहीं हो सकता। यह प्रतिक्रियावादी पद्धति का एक आवश्यक अंग है। जो सिद्धान्त अनुलोमक्रमी अर्थात् विकासवादी है उन्हें भिन्नता स्थापित करने की आवश्यकता नहीं होती। भिन्न भिन्न वस्तुओं के अस्तित्व को सत्य मानकर ही विकासवादी आगे बढ़ता है। वह भिन्नता से अभिन्नता की ओर विकास करता है, अतः इस प्रणाली में अहंकार नामक किसी शक्ति की न आवश्यकता है और न उपयोगिता।

मूल और प्रलय क्या है? आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्धान्त निश्चित कर दिया है कि पदार्थ शक्ति में और शक्ति पदार्थों में निरन्तर परिवर्तित हो रहे हैं। और यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। अव्यक्त का व्यक्त और व्यक्त का अव्यक्त होना ही मूल और प्रलय है। मूल का अर्थ किसी नवीन वस्तु का उत्पन्न होना नहीं है और न प्रलय का अर्थ समूल नाश ही है, केवल अवस्थान्तर होने की क्रिया चलती रहती है। जिसे वेदान्त में ब्रह्मरात्रि के समय सृष्टि का प्रलय काल कहा है, उसमें भी सम्पूर्ण प्राणियों के कर्मों का सूक्ष्म रूप विद्यमान रहता है और जब ब्रह्मदिवस प्रारम्भ होता है तो उन प्राणियों के कर्म फिर स्थूल रूप पाकर जहाँ तक वे कार्य स्थिर कर चुके थे वहाँ से नूतनता से प्रारम्भ करते हैं। निष्कर्ष यह है कि सृष्टि का सम्पूर्ण विकास नहीं होता, केवल अवकाशमात्र होता है और दिन व रात भी तो निरन्तर क्रम से चलने वाली प्राकृतिक क्रिया ही तो है। यह क्रिया 'सत्कार्यवाद' के सिद्धान्त के अनुसार निरन्तर चलती रहती है।

इस प्रकार गीता में पदार्थ के गुणों का विश्लेषण हुआ है। अब इस विषय पर विचार करना है कि 'गुणों का विकास' किस प्रकार होता है और जीवन विकास के सिद्धान्त पर गीताकार का क्या मत है। गीता के अध्याय ३ के श्लोक २७-२८ में निम्न वर्णन आया है:—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्म विभागयोः।
गुण गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते॥

गीता के ये परमोत्कृष्ट श्लोक प्रतिपादित करते हैं कि—[ प्रकृति के गुणों से सब कर्म हुआ करते हैं पर अहंकार से मोहित अज्ञानी पुरुष समझता है कि मैं कर्ता हूं। 'गुण और कर्म दोनों ही मुझसे भिन्न हैं' इस तत्व को जानने वाला ज्ञानी पुरुष यह समझकर इनमें आसक्त नहीं होता कि गुणों से ही गुणों का विकास हो रहा है। ]

यदि 'नासति विद्यते भावो' वाला श्लोक केवल पदार्थ के सिद्धान्त के प्रतिपादन करने की नींव मात्र है तो ये श्लोक 'द्वन्द्वात्मक सत्कार्यवाद' सिद्धान्त के आधारभूत हैं।

प्रकृति के तीन गुण हैं—सत, रज, तम। इन तीनों गुणों के परस्पर संयोग और संघर्ष से ही प्राणिमात्र का विकास होता है। शरीर में सात इन्द्रियाँ हैं। स्थूल, भूतात्मक पांच व मन। पञ्च महाभूत, मन और बुद्धि का समुच्चयात्मक सप्तभङ्गी शरीर ही जीवन कहलाता है। विकास की इस प्रक्रिया में प्रकृति के मूल में रहने वाला चैतन्य विकसित होता है और सृष्टि का व्यापार व्यक्त रूप धारण कर पारस्परिक सम्बन्धों से क्रियाशील होता है। पञ्चमहाभूत तामस है, मन राजस है और बुद्धि सत्व है। एक दूसरे के प्रभाव की न्यूनाधिकता सर्वदा चलती रहती है। प्रत्येक जीवन में ये गुण अवश्य विद्यमान रहते हैं। इन गुणों से ही गुणों का विकास होता रहता है। जब गुण व्यक्तरूप से गतिशील होते हैं तो वह कर्म या व्यापार या वेदान्त की भाषा में 'माया' कहलाता है। संसार में जो यह भिन्न भिन्न वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं वे सब इन गुणों से ही भिन्न भिन्न परिस्थिति और अनुपात को पाकर बनी हैं।

गुणों के इस विकास की प्रक्रिया इस प्रकार है:—

प्रथम—किसी एक वस्तु के अस्तित्व को लीजिए। प्रत्येक वस्तु दूसरी वस्तुओं के सम्पर्क में आती है। प्रारम्भ के सम्पर्क अनुकूल होते हैं अतः उस वस्तु का स्वतः विकास होता रहता है। यह सत्ता का स्वतः विकास है।

द्वितीय—एक स्थिति ऐसी आ जाती है जब दूसरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुओं के प्रभाव से स्वयं उसमें विकास नहीं होता और प्रतिकूल विरोध उत्पन्न होने लगता है। वह विरोध प्रबल नहीं होता किन्तु वस्तु की सत्ता पर आक्रमण करता रहता है। यह विरोध का आविर्भाव है।

तृतीय—वस्तु की सत्ता और विरोध में सक्रिय संघर्ष शुरू हो जाता है। विरोध प्रतिद्वन्द्वी के रूप में खड़ा हो जाता है और सत्ता में परिवर्तन करने का आग्रह करता है। यह सत्ता विरोध का समागम है।

चतुर्थ—संघर्ष से सत्ता के कुछ गुण नष्ट हो जाते हैं और विरोध के कुछ गुण भी नष्ट हो जाते हैं। दोनों के कतिपय गुणों का रसायनिक सम्मिश्रण होता है और दोनों के स्थान में एक नवीन वस्तु उन दोनों का नाश कर (तद्भव रूप को परिवर्तित कर) उत्पन्न होती है। यह गुणात्मक परिवर्तन दोनों वस्तुओं के प्रगतिशील गुणों का समुच्चय है।

पञ्चम—इस गुणात्मक परिवर्तन स्वरूप नवीन वस्तु की सत्ता स्थापित होती है। पूर्व सत्ता का निषेध हो जाता है। वह पूर्व सत्ता भी किसी अपने से पूर्व सत्ता का प्रतिषेध कर स्थापित होती है अतः प्रतिबंध का प्रतिषेध कर प्रगतिशील सत्ता की स्थापना होती है।

गुणों के परिवर्तन की यह वैज्ञानिक प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यह विकास का मूल मन्त्र है, प्रगति का मूल सिद्धान्त है। संसार में कोई वस्तु स्थिर नहीं, कोई गुण अपरिवर्तनशील नहीं। यह परिवर्तन वैज्ञानिक नियमों के अनुसार होता है। सम्पर्क और संघर्ष दोनों ही क्रान्तिकारी प्रणालियाँ हैं। सम्पर्क और संघर्ष का यह द्वन्द्व ही प्रगति का मूल है। यह न तो अनियन्त्रित रूप से चलता है और न यान्त्रिक रूप से ही; किन्तु कार्य कारण परम्परा के प्राकृतिक सिद्धान्त के अनुसार चलता है। यह सिद्धान्त 'द्वन्द्वात्मक सत्कार्यवाद' है।

दर्शन में 'अन्तिम गति' का सिद्धान्त बहुत ही प्रचलित है। 'गति' कभी 'अन्तिम' नहीं होती। यह सिद्धान्त ही भ्रमात्मक है। किन्तु प्रत्येक परिवर्तन का ध्येय होता है और वह प्राप्त हो जाने पर उसकी 'अन्तिम गति' प्राप्त हो जाती है किन्तु उसी क्षण अग्रिम प्रक्रिया फिर प्रारम्भ हो जाती है और फिर 'अन्तिम गति' की ओर अग्रसर हो जाती है। जीवन-विकास के इस पहलू पर गीताकार का मत निश्चित रूप से वैज्ञानिक है। गीता के अध्याय ८ के श्लोक १७ से २२ में कहा है:—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जनाः॥
अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वाप्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥
परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तो व्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥
पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यांतःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥

[ अहोरात्रि को तत्वतः जाननेवाले पुरुष समझते हैं कि हजार युगों का समय ब्रह्मदेव का एक दिन है और हजार युगों की एक रात्रि है। दिन के आरम्भ होने पर अव्यक्त से सब व्यक्त निर्मित होते हैं और रात्रि होने पर उसी पूर्वोक्त अव्यक्त में लीन हो जाते हैं। भूतों का यही समुदाय बार बार उत्पन्न होकर अवश होता हुआ यानी इच्छा हो या न हो रात होते ही लीन हो जाता है और दिन होने पर फिर जन्म लेता है किन्तु इस प्रकार ऊपर बताये हुए, अव्यक्त से परे गुणात्मक परिवर्तन के नवीन स्वरूप में दूसरा सनातन अव्यक्त पदार्थ है कि जो सब भूतों के नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता जिस अव्यक्त को 'अक्षर' कहते हैं जो परम उत्कृष्ट या अन्त की गति कहा जाता है जिसे पाकर फिर जन्म में लौटते नहीं। उसे पाना ही जीवन का आदर्श है। जिसके भीतर सब भूत हैं और जिसने इन सबको व्याप्त कर रखा है वह श्रेष्ठ पुरुष या शक्ति निरन्तर अभ्यास से ही प्राप्त होती है। ]

यह पदार्थ का शक्तिरूप और शक्ति का पदार्थ रूप होने की वैज्ञानिक क्रिया है। समय का निर्धारण तो एक आधार मात्र है जो ज्योतिष के सिद्धान्तों के अनुसार कल्पना करने और काम चलाने के लिए निश्चित किया हुआ है। वास्तव में 'समय' की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं। यहाँ विशेष तौर पर ध्यान देने की बात है कि इस प्रक्रिया में "परमात्मा" का कोई स्थान नहीं। उसका कहीं भी हस्तक्षेप नहीं, किसी स्थान पर भी उसकी आवश्यकता नहीं। यह प्रक्रिया 'सत्कार्यवाद' के सिद्धान्त के अनुसार स्वतः ही होती रहती है।

अव्यक्त का अर्थ है एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होना। जब कोई वस्तु एक स्थिति में होती है, तब आगे आनेवाली स्थिति अव्यक्त रहती है। वह प्राप्त होने पर ही व्यक्त होती है। पूर्व व्यक्त स्वरूप के गुण इस अव्यक्त अवस्था में निहित रहते हैं अतः वह सत्ता सूक्ष्म रूप से अस्तित्व में है अतः वह क्षर नहीं अक्षर है। सब व्यक्त भूत विलीन हो जाते हैं पर उनके गुण सूक्ष्म रूप में मौजूद रहते हैं अतः विकास की इस प्रक्रिया में मूलभूत शक्ति सदा अक्षर रूप में प्रवाहित होती रहती है।

वेदान्त प्रकृति के अव्यक्त स्वरूप से स्वतन्त्र एक और 'अव्यक्त' निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप की कल्पना करता है। शंकर टीका में ऐसा ही हुआ है। यह विरोधात्मक है। निर्गुण ब्रह्म भी 'अव्यक्त' है और सगुण प्रकृति भी 'अव्यक्त' है फिर सगुण सृष्टि के निर्माण में व्यक्त माया की क्या आवश्यकता है? यदि माया अव्यक्त को व्यक्त करती है और निर्गुण ब्रह्म को प्रकृति रूप सगुणत्व प्रदान करती है तब प्रकृति को व्यक्त ही मानना होगा, वह 'अव्यक्त' कदापि नहीं हो सकती। यदि उपर्युक्तानुसार प्रकृति के भी एक 'अव्यक्त' स्वरूप को माना जावे तो निर्गुण अव्यक्त ब्रह्म और उसे व्यक्त करनेवाली माया का अस्तित्व नहीं ठहरता। माया के अस्तित्व बिना सगुण सृष्ट परमात्मा से स्वतन्त्र स्वयम्भू सत्ता हो जाती है। यदि माया नहीं तो माया मूल भी नहीं; अतः निर्गुण ब्रह्म की कल्पना मिथ्या हो जाती है। यदि माया का अस्तित्व है तो 'अव्यक्त' प्रकृति की कल्पना सम्भव है किन्तु 'अव्यक्त' प्रकृति का होना तो स्वयं सिद्ध है और प्रत्येक दर्शन—वेदान्त सहित—इसके अस्तित्व को स्वीकार करता है; अतः 'अव्यक्त' प्रकृति के अस्तित्व में आने पर 'अव्यक्त' निर्गुण ब्रह्म की सत्ता नष्ट हो जाती है। अतः निर्गुण ब्रह्म और माया तत्व की कल्पना अज्ञानमूलक, कपोल कल्पित और मिथ्या है।

विकास की मात्रा किन किन अवस्थाओं में किस किस प्रकार की होती है इसका निरूपण गीता के अध्याय १४ के श्लोक ५ से ९ में हुआ है।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥
तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुख संगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ॥
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम्।
तन्नि बध्नाति कौंतेय कर्मसंगेन देहिनम्॥
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्व देहिनाम्।
प्रमादालस्य निद्राभिस्तन्नि बध्नाति भारत॥
११

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत॥

[ प्रकृति से उत्पन्न हुए सत्व, रज और तम गुण देह में रहनेवाली अव्यय शक्ति को देह में बाँध लेते हैं अर्थात् शक्ति के शरीर रूप होने का यह कारण है कि शरीर सत्व, रज और तम गुणों से बँधा हुआ है। इन गुणों में निर्मलता के कारण प्रकाश डालनेवाला और निर्दोष सत्वगुण सुख और ज्ञान के साथ प्राणी को बांधता है। रजोगुण का स्वभाव रागात्मक है, इससे तृष्णा और आसक्ति की उत्पत्ति होती है; वही प्राणी को कर्म करने के प्रवृत्ति रूप संग से बांधता है। तमोगुण अज्ञान से उपजता है; वह सब प्राणियों को मोह में डालता है। वह प्रमाद, आलस्य और निद्रा से प्राणी को बांधता है। सत्वगुण सुख में, रजोगुण कर्म में आसक्ति उत्पन्न करते हैं। तमोगुण ज्ञान को ढककर प्रमाद में आसक्ति उत्पन्न करता है। ]

सत्व, रज और तम तीनों गुणों का समुच्चयात्मक नाम ही प्रकृति है। यहां पर तीनों गुणों के भिन्न भिन्न प्रभाव का वर्णन किया गया है। जिससे मनुष्य जीवन की स्थिति विशेष निर्धारित होती है और जिसके कारण वह भिन्न भिन्न प्रकार से जीवन के कार्यों का सम्पादन करता है। तमोगुण विकास की प्रवृत्तियों का शत्रु है और सतोगुण मित्र। रजोगुण जिस समय में जिस गुण की प्रबलता होती है उसी का सहायक है। इन गुणों का पारस्परिक सम्पर्क व संघर्ष ही नवीन गुणात्मक शक्तियों को जन्म देता है।

इन गुणों के पारस्परिक प्रभाव का वर्णन गीता के अध्याय १४ के निम्नालिखित श्लोक १० से १३ में किया गया है:—

रजस्तमश्चाभिभूय सत्वं भवति भारत।
रजः सत्वं तमश्चैव तमः सत्वं रजस्तथा॥
सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्वमित्युत॥
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्यतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन॥

[ रज और तम को दबाकर सत्व अधिक होता है, इसी प्रकार सत्व और तम को दबाकर रज और सत्व व रज को हटाकर तम अधिक हुआ करता है। जब इस देह के सब द्वारों में प्रकाश रहता है तो समझना चाहिए कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


सत्व गुण बढ़ा हुआ है। रजोगुण बढ़ने से लोभ, कर्म में प्रवृत्ति और उसका आरम्भ अतृप्ति एवं इच्छा उत्पन्न होती है। तमोगुण की वृत्ति होने पर अंधेरा, कुछ भी न करने की इच्छा, प्रमाद और मोह उत्पन्न होता है। ]

प्रत्येक प्राणी में सर्वदा तीनों ही गुण विद्यमान रहते हैं। ऐसी स्थिति कभी नहीं आती जब कोई प्राणी इन तीनों गुणों में से किसी एक से रहित हो। सत्व गुण प्रगति शील है, रजोगुण सत्ता रक्षण का पोषक है और तमोगुण प्रतिगामी है। जब जिस गुण की अधिकता होती है तो मनुष्य समाज या वर्ग की मानसिक स्थिति व भौतिक व्यापार भी उसी के अनुकूल होते हैं। जब सब तरफ ज्ञान की ज्योति प्रकाशित हो, कहीं पर भी अज्ञानान्धकार न हो, कोई भूखा न मरता हो, प्रत्येक का अधिकार रक्षण समुचित रूप से होता हो तो सत्व गुण की प्रधानता होती है। जब अधिकार शोषण होता हो, समाज का बड़ा अंग पीड़ित हो और मानवता कुचली जाती हो तब तमोगुण का एक छत्र अधिकार होता है। इन दोनों के मध्य का मार्ग रजोगुण की सत्ता है। रजोगुण की सत्ता स्थिर कम रहती है। वह एक ऐसा डांवाडोल गुण है जो कभी तमोगुण और कभी सतोगुण की ओर आकर्षित होता रहता है। तमोगुण प्रवृत्तियों के आधिपत्य के समय वह अधिकार शोषण में सहायता देता है और सतोगुणी प्रवृत्तियों के सत्ता धारी होने पर अधिकार-रक्षण में सहयोग देता है। यह सफेद शीशा है। जिस पर किसी भी रंग का प्रतिबिम्ब पड़ सकता है।

इन गुणों का पारस्परिक संघर्ष निरन्तर चलता रहता है और एक वस्तु की सत्ता दूसरी वस्तु की सत्ता के संघर्ष में आकर नित नूतन वस्तुओं का निर्माण करती रहती है। अतः किसी भी जीवित समस्या को समझने के लिए और तदनुसार क्रियाशील होने के लिए "द्वन्द्वात्मक सत्कार्यवाद" के सुवर्ण सिद्धान्त को तत्वतः हृदयंगम कर लेना ही सफलता को प्राप्त कराता है।

# प्रेम और कर्तव्य

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र एम० ए०, डी० लिट्०

प्रेम ही न हो कहां हो कर्म, प्रेम ही से उनका सारस्य
प्रेम के बिना अनाथ प्रवृत्ति, प्रेम है जीवन का स्वारस्य।
किन्तु है यही ज्ञान का काम मिलादे प्रेम और कर्तव्य
रसायन जिसकी पाकर मनुज प्राप्त करले नव जीवन भव्य।
उदधि की तुङ्ग तरंगों बीच सके जो स्थिर आसन से बैठ
भाव की ज्वालाओं में आप गए प्रह्लाद सदृश जो पैठ।
आंधियों के चक्कर भी जिसे अचल ही समझ सकें भरपूर,
शिवा-शिव पर साधक शिव-तुल्य, प्रेम-विजयी वह ही नर शूर।
मनुज निश्चय प्रतिमा पाषाण कि जिसमें भावों का न उभार,
और वह कूलहीन है स्रोत न जिसका भावों पर अधिकार।
यही वांछित है अक्षत रहें क्रियामय अपने दोनों हाथ,
प्रेम भी हो प्रति उर में किन्तु नियन्त्रण का बल भी हो साथ।
व्यक्ति का प्रेम, व्यक्ति का ज्ञान, व्यक्ति ही तक बँध ले उस काल,
छहरते हों जब रख स्वातन्त्र्य विश्व में सुख सम्पदा सुकाल।
देश जब पड़ा अभावों ग्रस्त कर रहा जन-जीवन की मांग
कौन वह प्रेम, कौन वह ज्ञान करे नर व्यक्तिवाद की मांग?
मिलेगा किस उर गृह में सौख्य लगी हो जब घर घर में आग,
न इतना सँकरा ही है कर्म न इतना सँकरा है अनुराग।
"स्व" का जग मङ्गलमय विस्तार क्षात्र जीवन का एक उपाय,
प्रेम का अनुचर बने न कर्म, कर्म का होवे प्रेम सहाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# फ़ाहियान की भारत-यात्रा

श्री भगवतीप्रसाद पान्थरी एम० ए०

तथागत के यश का पश्चिमी समीर करुणा की लहरों में बहता हुआ चीनी हृदयों को छठवीं शताब्दी ई० पू० से ही स्पन्दित करने लगा था। चीनी इतिहासकार फ़ान लीन का कहना है कि कन्फूसियस और लाओत्ज़े दोनों बुद्ध के विषय में वार्त्तालाप किया करते थे। कहते हैं कि जब किसी ने कनफूसियस से प्रश्न किया कि क्या आप "पवित्र पुरुष हैं?" उन्होंने सिर हिलाया और उत्तर दिया कि "पश्चिमी प्रदेश (भारतवर्ष) में केवल एक पवित्र आत्मा (बुद्ध) है।" लाओत्ज़े के अनुयायी तो शाक्यमुनि को ही अपना गुरु मानते हैं।

परन्तु ऐतिहासिक वृत्तों के अनुसार बौद्ध-धर्म प्रथमतः हान युग में चीन पहुँचा था। कहते हैं इस वंश के मिङ-ति सम्राट को स्वप्न में भगवान बुद्ध ने दर्शन दिये थे। मिङ-ति ने इस स्वप्न को भगवान का सन्देश समझा। फलतः उसने भारतवर्ष से बौद्ध-धर्म के आचार्यों को निमन्त्रित किया। निमन्त्रण पाने पर ६४ ई० में बुद्ध का सन्देश लेकर सबसे पहले कश्यप मातंग और धर्मानन्द चीन गये थे।

बौद्ध धर्म मूलतः प्रचारात्मक रहा है। भगवान बुद्ध ने स्वयं अपने शिष्यों को अपने सन्देश का प्रचार करने इधर उधर भेजा था। उनके पवित्र आदर्श का अनुशीलन करते हुए मौर्य सम्राट प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहते हैं कि उनके धर्म प्रचार के फलस्वरूप-भारतवर्ष ही नहीं अपितु विदेशी राष्ट्र जैसे मैसीडोनिया, इपिरस, कैरिन, मिस्र तिब्बत तथा लंका आदि मृत प्रदेश उनके यश का अनुकरण करने लगे हैं।" निसन्देह बौद्ध धर्म के द्वारा यह भारतवर्ष की सांस्कृतिक विजय थी।

किन्तु उत्तरी मंगोल जातियों में फिर भी बौद्धधर्म नहीं पहुंच पाया था। यह काम यूनानियों ने किया। १६५ ई० पू० में जब सकों ने बख़्तियार के यूनानी राजाओं को हरा कर निकाल बाहर किया, तब इधर उधर भटकते हुए उन्होंने आख़िर पञ्जाब में शरण ली, यूनानियों ने पञ्जाब पहुँचकर इस पर अपना अधिकार जमा लिया। पञ्जाब का यह यूनानी राज्य मिलिन्द के समय में अपने वैभव की सीमा पर पहुंच गया था। मिलिंद बौद्ध था। भारतवर्ष की राजनैतिक शक्तियों में उसका विशिष्ट स्थान है। किन्तु यूनानियों की भीतरी कमज़ोरी ने धीरे धीरे उनके राजतन्त्र को ढीला कर दिया। उनकी इस भीतरी दुर्बलता से कुशानों ने खूब लाभ उठाया। कुशानों ने मरती हुई यवन ताक़त पर आख़री हमला किया। यवनों की शक्ति ख़तम हुई और कुशानों का भाग्य जागा। कनिष्क के समय कुशानों की शक्ति अपनी सीमा को पहुँच गई। यह कुशान सम्राट बौद्ध था। बौद्ध गाथायें कनिष्क की अशोक के समान ही प्रशंसा करती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कनिष्क ने बौद्ध धर्म के प्रचार और प्रसार के लिये काफ़ी कोशिश की। बौद्ध धर्म उसी के समय में पहले पहल चीन पहुँचा। कनिष्क की चीन के सीमान्त प्रदेशों—काशगर और खोतान की विजय का एक नतीजा चीनी सीमान्त प्रदेशों से बौद्ध धर्म का सम्पर्क भी हुआ। इसी समय से तिब्बत और खोतान में बौद्ध मठ और बौद्ध विहार खुलने शुरू हुए।

चीन ख़ुद बुद्ध के उपदेशों का स्वागत करने को तय्यार था। यद्यपि कन्फूसियस और लाओ-त्ज़े सरीखे तत्ववेत्ताओं की चीन में कमी न थी किन्तु अभी तक उनका कोई निजी धर्म मूर्त्त रूप लेकर पैदा न हुआ था, इन दार्शनिकों ने समाज और धर्म के कुछ नियम को बनाकर ही सन्तोष कर लिया था। अतः बौद्ध धर्म कन्फूसियस के समय से ही चीन के आकर्षण का विषय बन रहा था।

किन्तु रास्ते की क़ुदरती बाधाओं और भाषा की असुविधा के कारण बहुत दिनों तक चीनियों का बौद्ध धर्म से कोई सम्बन्ध क़ायम न हो सका।

यह सब होते हुए भी थोड़े से निडर चीनी विद्वानों ने भारतवर्ष तक आने की कोशिश की। पथ की बाधायें उनको न रोक सकीं। इन विद्वानों ने गौतम के सन्देश को भारतवर्ष से चीन पहुंचाने में अदम्य उत्साह और साहस से काम लिया। मार्ग की बाधाओं की अवहेलना कर ये लोग समय समय पर भारतवर्ष आने जाने लगे। रास्ते की अनेकानेक कठिनाइयों, जलते रेगिस्तानों और बर्फ़ीले पहाड़ों में अपने जीवन की बाज़ी लगाकर भी वे यहाँ आने से रुके नहीं। श्री बील का कहना है कि—"धर्म के लिये ऐसा त्याग संसार में कहीं देखने को नहीं मिल सकता, जैसा कि चीन के वीर विद्या प्रेमियों में था।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इन महान यात्रियों के लेख हमारे इतिहास के लिये बड़े काम की वस्तु हैं। क्योंकि वे तत्कालीन भारतीय समाज के दर्पण हैं, जिनमें उस युग का प्रतिबिम्ब झलकता है।

उन कतिपय चीनी यात्रियों में जिन्होंने हमारे देश का पर्यटन लिया था फ़ाहियान का नाम पहले आता है। फाहियान गुप्तों के समय चौथी शताब्दी में यहाँ आया था। उस समय हमारे यहां चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का राज्य था।

४०० ई० में फ़ाहियान चीन से भारत के लिये रवाना हुआ। उसके साथ पाँच और साथी थे। उसके यहाँ आने का मुख्य आशय पुस्तकों और बुद्ध की मूर्तियों का संग्रह करना था।

चीन से भारत आते हुए उन्हें बड़ी भयानक आपत्तियों का सामना करना पड़ा। पहले इन यात्रियों ने टूंग वांग, चरचेन और तारिम रेगिस्तान को पार किया। फिर उन्हें 'मुजरत की पहाड़ियों' को लांघते हुए खोतान और यारक़न्द से होकर भारतवर्ष की उत्तरी पहाड़ियों पर चलना पड़ा। यहां 'स्वात की घाटी' में कुछ समय विश्राम करके वे फिर आगे बढ़े। रास्ते की कठिनाई के कारण कई साथी मार्ग में ही परलोक सिधार गये। पेशावर आते आते फ़ाहियान का कुल एक ही साथी रह गया था।

जिस समय ये चीनी यात्री भारत पहुंचे उस समय गुप्त साम्राज्य का गरुड़ध्वज अपने ऐश्वर्य की सीमा पर फहरा रहा था। फ़ाहियान के विवरण में गुप्त युग का सुन्दर चित्र अंकित है।

फ़ाहियान के समय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य गुप्त सिंहासन पर थे। विक्रमादित्य अपने पराक्रमी पिता सम्राट समुद्रगुप्त की भांति ही एक महान विजेता और कुशल शासक तथा कला-मर्मज्ञ था। उसके यशस्वी राज दरबार के नव-रत्न इतिहास में बहुत प्रशंसित हैं। चन्द्रगुप्त अपने पिता की भांति स्वयं अच्छा संगीतज्ञ और दक्ष साहित्यिक था।

फ़ाहियान ने यद्यपि विक्रमादित्य का उल्लेख तो नहीं किया किन्तु उसने उस समय के न्याय और सुशासन की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। उस समय की सामाजिक, आर्थिक अवस्था का वर्णन करते हुए चीनी यात्री लिखता है—"यहाँ ( भारतवर्ष ) के निवासी समृद्धिशाली तथा खुशहाल हैं। उनके ( किसान ) लोगों को, जो राजा की भूमि पर काश्त करते हैं, उपज का केवल कुछ अंश राजा को कर के रूप में देना पड़ता है।" नौक के अनुसार सिंहल में भी इसी प्रथा का प्रचलन था।

शासन की प्रशंसा में फ़ाहियान लिखता है—

"सम्राट किसी को भी प्राण-दण्ड नहीं देते। अभियुक्तों को केवल जुर्माने की सज़ा दी जाती है। केवल विद्रोहियों के बार बार विद्रोह करने पर दाहिना हाथ काट दिया जाता है।"

प्राण-दण्ड को रोककर गुप्त सम्राट ने जिस रहमदिली का परिचय दिया इतिहास में उसकी समानता पाना कठिन है। इस दिशा में वे महान मौर्य सम्राट अशोक से भी बढ़कर थे। जिस चीज़ को अशोक पूर्ण अहिंसा व्रती होकर भी न रोक सके उसको रण प्रिय क्षात्रेय सम्राट ने करके दिखला दिया।

## सामाजिक आदर्श

गुप्त कालीन समाज उच्च आदर्शों पर स्थित था। जैसा कि फ़ाहियान कहता है:—"भारतवासी किसी मादक द्रव्य का सेवन नहीं करते हैं। भोजन के लिये पशुओं को नहीं मारा जाता। केवल चण्डाल, जिन्हें पैरिया भी कहते हैं मांस, प्याज़ और लहसुन खाया करते हैं। पैरिया लोग नगर के बाहर रहते हैं। नगर में प्रवेश करते समय ढोल पीटते हैं जिससे अन्य जातीय लोग उन्हें छुएं नहीं।"

"भारतवासी सुअर, मुर्ग़ी आदि जानवरों को नहीं पालते और न जानवरों का व्यापार करते हैं। बाज़ार में शराब की दुकानें नहीं मिलतीं। व्यापार में विनिमय के लिये कौड़ियों का चलन है।"

मालूम होता है छोटे मोटे व्यापारिक व्यवहार में ही कौड़ियाँ लाई जाती होंगी क्योंकि गुप्त राजाओं में सोना और चाँदी तथा तांबे के सिक्कों का काफी प्रचलन था। केवल सम्राट समुद्रगुप्त के सिक्के सोने के मिलते हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने पश्चिमी क्षत्रियों की विजय के बाद चांदी के सिक्के भी ढलवाये थे। पश्चिमी भारत में उस समय चांदी के सिक्कों का अधिक प्रचलन था। साथ ही विक्रमादित्य के कुछ तांबे के सिक्के भी मिले हैं जिससे उनका प्रचलन भी साबित होता है।

## गुप्त और बौद्ध धर्म

गुप्त काल में ब्राह्मण धर्म उन्नत अवस्था में था। गुप्त राजा स्वयं परम भागवत थे। परम भागवत महाराजाधिराज कहलाते थे। श्रीकृष्ण के उपासक होने के कारण ही गरुड़ध्वज गुप्त राजाओं का राजकीय चिन्ह था। इसी प्रकार उनकी कुल देवी 'लक्ष्मी' थी। किन्तु ब्राह्मण धर्म के होने के कारण वे दूसरे सम्प्रदायों के प्रति कभी भी अत्याचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नहीं रहे। सबके प्रति समभाव और समदृष्टि भारतीय संस्कृति का उच्चतम आदर्श रहा है। यहां के उदार चरितों का विश्व ही कुटुम्ब रहा है। भारतीय धर्म ने अन्य विदेशी और पश्चिमी मत-मतांतरों की भांति साम्प्रदायिक उन्माद का कभी प्रचार नहीं किया। हमारे धर्म का सर्वश्रेष्ठ उपदेश था कि ईश्वर सर्व भूतों में समान रूप से विद्यमान है (स्वयं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्); फिर भारतीय किस प्रकार किसी अन्य प्राणी, सम्प्रदाय अथवा जीवों के प्रति अनुदार हो सकते थे? इन्हीं सिद्धान्तों पर चलते हुए सम्राट अशोक ने ढाई हज़ार वर्ष पहले ये शब्द उच्चारित किये थे—"कटिवय मेत ही में सर्व लोक हिते।" अतः दूसरे सम्प्रदायों की भी वे अपने धर्म की ही भांति पूजा करते थे। (सर्व पाषंडेषु में पुजिता)।

यही आदर्श गुप्तों के चरित्र में भी देखने को मिलता है। फ़ाहियान लिखता है—

"भगवान बुद्ध के निर्वाण काल से लेकर राजाओं, सामन्तों तथा गृहस्थियों ने अनेकानेक विहार बनाये हैं। और उनके व्यय के लिये खेत, मकान, बागीचे, नौकर तथा जानवर आदि दान दिये हैं। ये विहार-धन ताम्रपत्रों द्वारा मंज़ूर किए गये हैं जो उन (विहार वालों) के पास युग युगों से चले आते हैं और कोई इनको रद करने का साहस नहीं कर सकता। विहार में रहनेवाले स्थायी भिक्षुओं को बिस्तरा, चटाई, भोजन और पेय (मुफ्त) दिये जाते हैं। इन भिक्षुओं का समय लोकोपकार करने, अध्ययन तथा समाधि लगाने में व्यय होता है।

"जब कोई परदेशी भिक्षु विहार में आता है तो विहार का सर्वश्रेष्ठ भिक्षु उसकी अगवानी को आता है और स्वयं आगन्तुक भिक्षु के वस्त्र और भिक्षा पात्र को लेकर उसे अतिथिशाला तक पहुँचा देता है। आगन्तुक के कुछ देर विश्राम कर लेने के पश्चात् उसके भिक्षुपद के बारे में पूछा जाता है और पदानुसार उसे बिस्तरा तथा कमरा दिया जाता है।

"वर्षा ऋतु के बाद धर्मी लोग भिक्षु संघ को संयुक्त दान देते हैं और बदले में भिक्षु लोग उन्हें सभा में धर्म की व्याख्या सुनाते हैं। गृहपति तथा ब्राह्मण लोग भिक्षुओं को विभिन्न प्रकार की पोशाकें और अन्य आवश्यकीय वस्तुएँ दान में देते हैं। भिक्षु भी आपस में एक दूसरे को दान दिया करते हैं।

"इस प्रकार भगवान बुद्ध के निर्वाण काल से लेकर भिक्षु संघ का व्यापार निर्विघ्न चलता रहा है।"

फ़ाहियान के उपरोक्त वर्णन से साफ़ है कि गुप्त युग में बौद्ध और ब्राह्मणों में आपस में प्रीति सम्बन्ध मौजूद था। एक दूसरे का सम्मान करता था। अतिथि सत्कार एक बहुत ऊंचा आदर्श समझा जाता था।

किन्तु फ़ाहियान का यह कहना कि संघ का आचार निर्वाण काल से निर्विघ्न चलता रहा है, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सत्य नहीं उतरता। अशोक के सांची, सारनाथ तथा कौसाम्बी के शिलालेखों एवं बौद्ध गाथाओं से स्पष्ट है कि संघ में तभी से विभेद होना आरम्भ होगया था। इस भेद को दबाने के लिये यद्यपि मौर्य सम्राट ने यथेष्ट प्रयत्न किये। किन्तु सफल न हो सके और कनिष्क के युग में आकर बौद्ध धर्म की दो भिन्न शाखायें (महायान और हीनयान) हो गईं। इस भेद के फलस्वरूप संघ के मूल आचार तथा व्यवहार में परिवर्तन आने अवश्यंभावी थे।

यह सब होते हुए भी गुप्त युग भारत वर्ष का निर्विवाद रूप से आदर्श, ऐश्वर्य और उत्कर्ष का युग रहा है। गुप्त सम्राट जो बिना फाँसी और दण्ड की कड़ाई के शासन कर सकता था निसन्देह असीम शक्तिशाली रहा होगा जिसने इस ध्येय में अशोक को भी जीत लिया। विश्व का इतिहास बहुत कम इतना आकर्षक है जितनी भारतीय स्वर्ण युग की यह झाँकी, जिसने धर्म के अमूर्त सिद्धान्तों को सच्चे जीवन की वास्तविकता प्रदान की।

फ़ाहियान लिखता है—"पाटलीपुत्र में कई सार्वजनिक औषधालय हैं जिनका व्यय देश के पूंजीपतियों द्वारा चलता है। इन औषधालयों में बीमार तथा निराश्रयों को आश्रय दिया जाता है। यहाँ पर परिचर्या तथा दवाई मुफ़्त दी जाती है।"

पाटलीपुत्र में अशोक के राजप्रसादों को देखकर फाहियान आश्चर्यान्वित हो उठा था। प्रासाद के बारे में वह कहता है—

"यह आदमी के हाथों की कारीगरी नहीं हो सकती। इसे बनानेवाले देव थे जिन्हें अशोक ने आह्वान करके बुलाया था। ये देव बड़े बड़े शिला-खंड लाये जिनसे दीवारें बनाई गईं।"

वस्तुतः इमारतों को बनाने में मौर्य सम्राट हिन्दू शाहजहाँ थे किन्तु मुग़ल सम्राट से कई गुना अधिक इमारतें बनाने का श्रेय इनको प्राप्त है। कहते हैं अशोक ने ८४,००० विहार बनवाये थे। अशोक ने शिल्प-वास्तु-



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


निर्माण-कला में पत्थर का इस्तेमाल सबसे पहले किया था। इसके पहले पत्थर के बजाय लकड़ी पर ही काम होता था।

फ़ाहियान के समय में राजकीय केन्द्र पूर्व से पश्चिम की ओर हटता जा रहा था। पाटलीपुत्र के स्थान पर गुप्त राजा साकेत को अपनाने लगे थे। यही कारण है फ़ाहियान के समय में मगध के कई नगर उजाड़ हो चुके थे। बौद्ध धर्म का केन्द्र भी वहाँ से हट रहा था। बौद्ध गया जिसमें भगवान बुद्ध को पहली बार सत्य का आलोक प्राप्त हुआ था उजड़कर जङ्गल हो चला था। यात्रीगण इन वन्य-पथों पर अब बहुत कम आते थे। किन्तु आने जाने के विशिष्ट मार्ग बहुत सुरक्षित थे। इन मार्गों में धर्मशालायें बनी थीं जिनमें यात्रियों को मुफ़्त भोजन दिया जाता था।

फ़ाहियान बौद्ध गया से होता हुआ दक्षिण में 'एलोरा' गया और फिर पाटलीपुत्र लौट गया। पाटलीपुत्र आकर उसने बौद्ध ग्रन्थों को इकट्ठा करना शुरू किया। अब उसे घर की याद सताने लगी। वह अब चीन जाने की तैयारियाँ करने लगा। किन्तु उसके बचे हुये अकेले साथी ने चीन जाने से इनकार कर दिया। भारत का मोह उसे जकड़े था।

अपने साथी के बारे में फ़ाहियान कहता है:—"वह भिक्षुओं की धार्मिकता और माया मोह का त्याग देखकर उनकी तरफ़ पूरी तरह आकर्षित हो गया था।" इसलिये वह भारतवर्ष में ही बस गया। साथ ही उसने यह प्रार्थना भी की—'बुद्ध की प्राप्ति तक मेरा जन्म किसी और देश में न हो।'

फ़ाहियान अकेले ही रवाना हुआ। पहले वह लङ्का गया। लङ्का उस समय बौद्ध धर्म का केन्द्र था। अनिरुद्धपुर में पहुँचकर चीनी यात्री ने बुद्ध के 'दन्त-अवशेष' के दर्शन किये। साथ ही अशोक के पुत्र के लगाये हुये 'बोधि वृक्ष' के भी दर्शन किये।

अनिरुद्धपुर में वह अधिक दिन नहीं ठहरा। घर का मोह उसे बेचैन कर रहा था।

अब वह घर के मार्ग पर था। मार्ग में उसे कई विकट आपत्तियों का सामना करना पड़ा किन्तु इन सम्पूर्ण कठिनाइयों को लांघते हुये आख़िर वह सकुशल चीन पहुंच गया।

---

# गीत

श्री० विद्याधर कुलश्रेष्ठ 'कुसुम'

मन, तुम स्वीकार उसे करना।

जब यौवन की मधु-गलियों में
चिर अमृत-सिन्धु लहराता हो;
उस समय तुम्हें यदि कोई दे
सस्नेह मृत्यु विष का प्याला।
मन, तुम स्वीकार उसे करना।

जब जग में मधुरितु छाई हो
वन-वन में फूल खिलें अगणित;
उस समय अगर हँसकर कोई
पहना दे शूलों की माला।
मन, तुम स्वीकार उसे करना।

जब जीवन-वन में मचल उठे
शीतल सुगन्धि से पूर्ण पवन;
तब कोई तुमको दे आकर—
यदि अपनी साँसों की ज्वाला।
मन, तुम स्वीकार उसे करना।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दश लक्षण पर्व

विद्याभूषण पं० गोविन्द राय शास्त्री काव्यतीर्थ

जैनियों का सबसे बड़ा पर्व दश लक्षण पर्व है। इसको कहीं पजूसण पर्व कहते हैं और कहीं व्रत। इस पर्व के उपलक्ष्य में जैनों को प्रसन्न करने के लिए प्रसिद्ध बादशाह जहांगीर ने एक फर्मान निकाला था कि मेरे साम्राज्य में कहीं भी इस पर्व के दिनों में जीव हिंसा न हो। मालवा की रियासतें अब भी इसका पालन करती हैं। ये पर्व दस दिन तक होते हैं और प्रति वर्ष भाद्रपद सुदी पंचमी से प्रारम्भ होकर अनन्त चतुर्दशी को समाप्त हो जाते हैं। इन दस दिनों में आत्मा के क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य इन दस धर्मों का पूजन, वन्दन, चिन्तन और मनन किया जाता है। इन व्रतों के द्वारा हमारे पूर्वजों का लक्ष्य मनुष्य को सभ्य बनाना था। धर्म अन्ध विश्वास नहीं है बल्कि एक विज्ञान है जिसको दीर्घकाल की तपस्या के बाद जनहित के लिए ऋषियों ने निश्चित किया है। आत्मा को स्वाधीन (स्वतंत्र) तथा शुद्ध करने का जो उपाय है उसको ही धर्म कहते हैं। वह धर्म व्यवहार नौ से दस प्रकार का है। इन दस धर्मों को पूर्णरीत्या मन, वचन, काया से वीतरागी तथा परिग्रह त्यागी यति गण ही पालते हैं और आंशिक रूप में गृहस्थ। इन धर्मों के पालने से आत्मिक धर्म प्रगट होता है।

(१) क्षमा—गृहस्थ का धर्म है कि वे दीन, अनाथ, स्त्री, बालक, नौकर व अपने आधीनों के साथ क्षमा बरतें। गृहस्थ के लिये विधान है कि वे कम से कम उतना ही क्षमा का पालन करें जिससे न्याय तथा धर्म का घात न हो। परिणामों में क्रोध भाव न लाकर शांति भाव रखना ही क्षमा है।

(२)—मार्दव—कर्म के निमित्त से यदि राज, धन, परिवार, रूप, बल, विद्या और अधिकार मिला है तो उसके अभिमान से दूसरों का अपमान न करना चाहिए। ग़रीबों पर दया रखनी चाहिए और सबसे आदर के साथ मिलना चाहिए। मार्दव का अर्थ है कोमलता। कोमल स्वभाव मनुष्य की बड़ी भारी पूँजी है। दुष्टों से अपमानित होने पर परिणामों में मलिनता न आने देना इस धर्म के आराधन का सार है।

(३) आर्जव—सीधा सच्चा व्यवहार मनुष्य को प्रतिष्ठित बनाता है। संसार में सबसे कठिन काम दूसरों का विश्वास भाजन बनना है और दूसरों का विश्वास भाजन निरछल व्यवहार से ही बना जा सकता है। सरलता से किसी को कष्ट नहीं पहुँचता। छल कपट करके किसी को सताना न चाहिए यही इस धर्म का उद्देश्य है।

(४) सत्य—स्वयं सत्यवादी होने के साथ सत्य के श्रोता बनो। यदि कोई सच्ची बात कह दे तो उसके सब अपराध क्षमा कर दो। हम सत्य के श्रोता नहीं हैं इसीलिए लोग झूठ बोलते हैं। सबसे हित, मित और प्रिय वचन बोलो। मिष्ट और हितकारी वचनों का दान महान् दान है। साधुजन शास्त्र विरुद्ध वचन नहीं बोलते और प्रतिज्ञा के वचनों को पूरा करते हैं। हितकारी सत्य सिद्धान्तों का सोचना, सत्य बोलना, सत्य बर्तन ही सच्चा धर्म है। स्याद्वाद अर्थात अपेक्षावाद से विचारना सत्य है। बात ज्यों की त्यों कहना अर्थात् काने को काना कहना इस धर्म का लक्ष्य नहीं है बल्कि लोक हितकारी सभ्य वचन बोलना ही इस धर्म का ध्येय है। जिस झूठ में सरासर दूसरे के प्रति भलाई समाई होवे वह सत्य की कोटि में ही शामिल है।

(५) शौच—का अर्थ है पवित्रता। लोभ को त्याग कर भावों में संतोष लाने से पवित्रता आती है, लालच से आत्मा मलिन तथा उच्चता से गिर जाती है। इन्द्रिय विषयों में न ललचाना ही शौच है। मुनिगण नित्य आत्मानुभव करके ब्रह्मानन्द रूपी अमृत में स्नान कर सुखी तथा पवित्र बनते हैं। गृहस्थ को भी अन्याय से इन्द्रिय सुख न भोगना चाहिए। लालच में फँसकर धर्माचरण के समय व्यापार न करना चाहिए। धन की तृष्णा से धर्म को न छोड़ बैठना चाहिए। शारीरिक शुद्धि के साथ मानसिक शुद्धि ही इस धर्म का लक्ष्य बिन्दु है।

(६) संयम—का अर्थ है इन्द्रिय और मन को वश में करके दूसरे जीवों को पीड़ा देने से परहेज़ करना। ऐसा करने से हम चराचर को अपना मित्र बनाते हैं। इसके विपरीत हम जिसको कष्ट देते हैं उसको और उसके बन्धु बान्धव सभी को अपना शत्रु बनाते हैं। यदि हम किसी मनुष्य की हत्या करते हैं तो सरकार हमको प्राण दण्ड देती है पर यदि हम किसी पशु-पक्षी की हत्या करते हैं तो सरकार हमको इसके बदले में कुछ सज़ा नहीं देती और इस तरह क्रूरता हमारे हृदय में किसी न किसी प्रकार जमी ही रहती है। फोड़ा इधर से न निकला उधर से निकला, बात एक ही है। हमारी क्रूरता मनुष्य के लिए प्रगट न हुई तो पशु के लिए प्रगट हुई। पर-स्त्री के साथ बलात्कार करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर मनुष्य को दण्ड मिलता है लेकिन वही बलात्कार हम अपनी स्त्री-पत्नी के साथ करते हैं तो इसके लिए समाज व राज्य कोई सज़ा नहीं देता। यदि असली माल में हम नक़ली माल मिलाते हैं तो इसके जुर्म में सरकार हमारे ऊपर अभियोग लगाती है, पर सरकार जब स्वयं अपने सिक्कों में असली धातु के साथ नक़ली धातु मिलाती है तो उस नियम को भूल जाती है। वही लालच चोर के दिल में भी काम करता है। राजा ऐसे कामों से तो तभी बच सकता है जब वह सोचे कि सबसे बड़ा शासन धर्म का शासन है, मैं तो उसका प्रतिनिधि मात्र हूं, मुझे भी प्रजा की तरह धर्म की आज्ञायें माननी चाहिएँ। व्यक्ति को, चाहे वह शासक हो या शासित मन में यह विचारना चाहिए कि चाहे मैं सबके समक्ष पाप करूं या एकांत में मुझे कर्म-बन्धन में फँसकर अवश्य दुःख भोगना पड़ेगा, भले बुरे भाव ही मेरा हित अहित करनेवाले हैं, जो आज मैं कष्टकर क़ानून दूसरों के लिए बना रहा हूं कल उन कानूनों से मुझे ही दुःख भोगना पड़ सकता है। पर-स्त्री के साथ बलात्कार करके यदि मैं बलात्कारी और लम्पट बनता हूं तो संयम धर्म यह भी सिखाता है कि स्व-स्त्री के साथ भी यदि बलात्कार किया जावे, तो पर-स्त्री के समान ही मनुष्य पाप का भागी होता है, क्योंकि हृदय में लालसा दोनों अवस्थाओं में समान है। चोर लोभवश दूसरे के घर चोरी करने जाता है और धन चुराकर उस घर को दरिद्री बनाता है, उसकी चोरी का कुफल सबको भोगना पड़ता है। पशु पक्षियों को धान्य के ढेर पर छोड़ दीजिये तो वे उतना ही खायँगे जितना कि खा सकते हैं, कल के लिए न बांधेंगे, पर आश्चर्य है कि मनुष्य अपने को बुद्धि, सामर्थ्य और पुरुषार्थ में अधिक मानता हुआ भी आज पैदा होकर सौ वर्ष के लिए चीज़ों को इकट्ठा करता है। यदि उसे दस मन गेहूँ की ज़रूरत हो तो हज़ार मन गेहूँ पर अधिकार जमा बैठता है। यदि उसे दो मकान निर्वाह के लिए पर्याप्त हैं तो पचास मकानों के ऊपर क़ब्ज़ा कर लेता है। एक नदी बहती है उसमें इतना जल है कि सारा गांव पानी पी ले, पर एक आदमी यदि उसका इजारा करके बैठ जावे तो इसका अर्थ होगा सारे गांव को प्यासा मारना। इसी प्रकार आज विश्व व्यापी दरिद्रता का कारण ज़रूरत से ज्यादा चीज़ों का जमा करना है। समुद्र ही जब प्यासा हो तो संसार में पानी कहाँ मिले। चोर एक घर का चोर है पर हम संसार के चोर हैं। दोनों के दिलों में तीव्र लोभ काम कर रहा है। हम इस तत्व को भूल गये हैं इसीलिए दुःखी हैं। संयमी पुरुष परिग्रह का परिणाम करके बाकी द्रव्य को संसार की सेवा के लिए अर्पण कर देता है। संयमी पुरुष अहिंसक भाव रखकर सबकी प्रीति का पात्र बनता है। संयमी मनुष्य समाज का भूषण है और असंयमी जन समाज का रोग है।

(७) तप—अर्थात् इच्छाओं का दमन करना। इच्छायें चार हैं—आहार, भय, मैथुन और परिग्रह। संसार भर की सब इच्छाओं का समावेश इन्हींमें है। तप से ही आत्मा निर्मल बनती है। प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्त (लोक सेवा), स्वाध्याय, वितसर्ग (ममता-मोह का परित्याग) ये अन्तरंग तप हैं। उपवास, एक बार भोजन, भोजन विषयक कुछ नियम लेना, भोजन में रसों का त्यागना और काया क्लेश को सहना बाह्य तप हैं। मुनि और गृहस्थ दोनों ही यथाशक्ति तप कर सकते हैं।

(८) त्याग—अर्थात् विकार युक्त भावों को त्याग कर निर्विकार बनना। आत्मा में जो जो बुराइयाँ हैं उनको समझकर आत्मा से जुदा करना ही त्याग धर्म का लक्ष्य है। दयालु होकर परोपकार बुद्धि से जात-पाँत का विचार न कर जीव मात्र को आहार, औषधि, विद्या और अभय दान देना त्याग धर्म है।

(९) आकिंचन्य—अर्थात् ऐसा मन में विचारना कि न मैं किसी का हूं और न कोई मेरा है। मेरा और मेरी की कल्पना केवल भ्रम मात्र है। अतएव इष्ट और अनिष्ट के संयोग वियोग में समता का भाव रखना चाहिए। यही आकिंचन्य धर्म का प्रयोजन है। जितना ही परिग्रह होता है उतनी ही चिन्ता बढ़ी रहती है। ममता हटाने के लिए साधुजन परिग्रह को त्याग देते हैं। श्रावकजन (गृहस्थ) उसकी सीमा बनाकर सन्तोषी बनते हैं। परिग्रह अविश्वास रूपी अन्धकार के लिए रात्रि है और लोभ रूपी अग्नि के लिए घी की आहुति है तथा आरम्भ (हिंसा प्रचुर धन्धे) रूपी मगर के लिए समुद्र के समान है।

(१०) ब्रह्मचर्य—अर्थात् काम स्वरूप विकारों से हटकर रूप आत्मा में लीन होने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। गृहस्थ अशुभ इच्छाओं का दमन कर नीति समर्थित इच्छाओं की ओर प्रवृत्ति बढ़ाकर इस धर्म का पालन करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# साम्प्रदायिक समस्या : कारण और परिणाम

श्री गार्गीशङ्कर मिश्र

धर्म का सम्बन्ध मनुष्य की आत्मा और शरीर दोनों से होता है। इसीलिये धार्मिक प्रतिबन्धों को वह सहर्ष स्वीकार करता है। यही कारण है कि शासकों और राजनीतिज्ञों ने, अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये हमेशा ही धर्म को शोषण का साधन बनाया है।

पश्चिमी साम्राज्यवाद ने अपने साम्राज्यों के विकास के साथ साथ पराजित देशों की जनता को समूल नष्ट करने के लिये पराधीन देशों के धर्मों के ख़िलाफ़ घृणोत्पादक भावनाएं भर देने की अपेक्षा दूसरा सरल मार्ग न पाया। परिणाम स्वरूप अमरीका, अफ़्रीका, आस्ट्रेलिया आदि के मूल निवासियों की एक बड़ी संख्या नर-भक्षी कहकर सरेआम लिंच ( Lynch ) करके मार डाली गयी। तथा जो थोड़े से बच रहे उनके सब अधिकार छीनकर उन्हें ग़ुलामों से भी बदतर बनाकर गोरी जातियों ने उनके देश में अपने उपनिवेश बसा लिये।

जब पश्चिमी साम्राज्यवाद का यह ज़हर हिन्दुस्तान आया, तब यहाँ की शक्ति, वैभव और ऊंची सभ्यता को देखकर वह दब गया। मसालों के व्यापार और मिशनरियों के इतिहास में ही शताब्दियां बीत गईं। यदि उसने कभी कुछ उत्पात किया भी तो सूरत की कोठी जैसी सज़ायें भुगतनी पड़ीं।

दुनियावी हुकूमत के लिये, बाप को क़ैद करनेवाला और भाइयों की हत्या करनेवाला औरङ्गज़ेब मुग़ल सल्तनत की नींव हिलाकर मरा। केन्द्रीय शक्ति के कमज़ोर होते ही राज की इमारत के पुरज़े टूट-टूटकर गिरने लगे। विदेशियों को मौक़ा मिला और यहीं के धन और यहीं की फ़ौजों के बल अंग्रेज़ यहां के बादशाह बन गये। हम लोग अपनी ही राजनीतियों और अपनी ही फूट के कारण विदेशी सत्ता के ग़ुलाम बन गये।

सुसंस्कृत तथा घनी और बड़ी आबादी के कारण हम लोगों की दशा मूल अमरीकनों के सदृश नहीं हो सकी। हम बस गए लेकिन हमें कम अत्याचार नहीं सहने पड़े। हितचिन्तक ग्राम-पञ्चायतें गईं, ठोस न्याय प्रणाली गई, देहातों की भी एकता गई, उद्योग-धन्धे नष्ट किये गये, हमारा वैभव गया, तब हमें होश आया। और तब, सन १८५७ में अन्तिम मुग़ल बादशाह बूढ़े बहादुरशाह के लिये, अवध की नवाबी के लिये, पेशवाई साम्राज्य के लिये हम लड़े और ख़ूब लड़े। सैनिक, स्त्रियां, बच्चे, ग़रीब, अमीर सभी लड़े। देहात और शहर सबने उस लड़ाई में योग दिया, पर फिर भी हम हार गए।

सन् १८५७ से अंग्रेज़ों ने सीख लिया कि पुलिस और फ़ौज के ही बल पर हिन्दुस्तानियों को ग़ुलाम बनाकर नहीं रखा जा सकता। उसके लिये और भी किसी चीज़ की ज़रूरत है और वह है साम्प्रदायिक अनैक्य, ताकि भारतीय अपनी शक्ति को आपसी लड़ाइयों में नष्ट कर दें और वे इससे लाभ उठावें। इस बात को अंग्रेज़ नीतिज्ञ १९ वीं सदी के आरम्भ से ही सोचने लगे थे। किन्तु इसकी आवश्यकता तीव्र रूप से सन १८५७ के बाद ही उन्हें महसूस हुई।

सन १८५१ में कर्नाटिकस नाम से लिखनेवाले एक अंग्रेज़ आफ़िसर ने "एशियाटिक रिव्यू" में लिखा था—"फूट डालो और राज्य करो ही हमारे भारतीय शासन का उद्देश्य होना चाहिए, चाहे वह शासन राजनैतिक हो या दीवानी या फ़ौज़ी।"

यही बात, बम्बई के गवर्नर लार्ड एलीफिन्स्टन द्वारा सन १८५० में और भी साफ तरीक़े से कही गई थी—"भारतीयों में, आपस में जो विरोधी भावनाएं मौजूद हैं, वे भारत में हमारी राजनैतिक हैसियत के लिये एक ख़ास मजबूती की बात हैं।"

सन १८५७ में यह नीति कितनी आवश्यक हो गई थी यह मुरादाबाद के कमान्डेन्ट लेफ्टिनेन्ट कर्नल जान कोक के शब्दों से ज़ाहिर हो जाती है :—"पूरी ताक़त के साथ हमारी यही कोशिश होनी चाहिये कि जो जातीय और साम्प्रदायिक भेद ( हमारे सौभाग्य से ) भारतीयों में मौजूद हैं, उन्हें सहायता देकर जारी रखना चाहिये, उन्हें मिटाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये। फूट डालना और राज्य करना ही हमारे भारतीय शासन का मुख्य आधार होना चाहिये।"

बीसवीं सदी भी शुरू होगई लेकिन अंग्रेज़ों को जैसी चाहिये वैसी सफलता न मिली। उपाधियां बाँटी गईं, मिशनरियों द्वारा ईसाइयों की तादाद बढ़ाने की कोशिश हुई लेकिन विरोधी वर्ग तैयार न हो सके। स्वराज्य और स्वदेश की भावनाएं जनता में पुष्ट होने लगीं। यही कारण था कि बंगभंग का प्रयोग न सिर्फ़ असफल ही रहा किन्तु प्रतिक्रिया स्वरूप लार्ड हार्डिञ्ज पर बम फेंका गया। और वही समय था जब कि अमरगीत "वन्देमातरम्"



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का सृजन हुआ। यह समय ब्रिटिश शासकों के लिये "भारतीयों में स्वराज्य की भावनाओं के रोकने के नीति" का था। इस बात की पुष्टि लार्ड मिण्टो के इन विचारों से हो जाती है—"मैं कांग्रेस के उद्देश्यों को निष्क्रिय बना सकनेवाली बातों पर ख़ूब विचार कर रहा हूं।" लार्ड मिन्टो को इसका तोड़ भी मिल गया। १ अक्टूबर सन ९९०६ को सर आगा ख़ाँ के नेतृत्व में एक मुस्लिम डेलीगेशन उनसे मिला और उसने वायसराय के सामने जो वक्तव्य पेश किया वह इस प्रकार था :—"हम यह सूचित करना चाहते हैं कि हर हालत में स्थानिक सरकारों में क़ायम म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सीटों के लिये हिन्दू और मुसलमानों की संख्या घोषित कर दी जानी चाहिये। इस तरह की संख्या, सामाजिक व्यवस्था, महत्व और प्रत्येक सम्प्रदाय की ख़ास ज़रूरतों को मद्देनज़र रखते हुए निश्चित करनी चाहिये। इस तरह यदि एक मर्तबा यह अनुपात अधिकारपूर्ण रूप से निश्चित कर दिया जाय तो हम तजवीज़ करना चाहते हैं कि प्रत्येक जाति अलग अलग चुनकर अपने निर्वाचित सदस्य भेजे।" वायसराय ने इस प्रार्थना का यह उत्तर दिया था :—"आपके निवेदन का सारांश, जैसा कि मैंने समझा है, वह भाग है कि प्रतिनिधित्व की प्रणाली चाहे वह म्युनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या धारा सभा की हो—जहां निर्वाचित प्रतिनिधियों को भेजा जाना विचाराधीन हो, या जहाँ उन्हें बढ़ाए जाने की सम्भावना हो वहाँ मुसलमान सम्प्रदाय को सम्प्रदाय के ही रूप में प्रतिनिधित्व देना चाहिये। आपकी यह मांग उचित है कि आपकी हैसियत, सिर्फ आपकी संख्या पर ही तै न की जाय बल्कि आपके राजनैतिक महत्व और साम्राज्य की आपने जो सेवा की है उस पर आंकी जाय। मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ।"

यह घटना ब्रिटिश नीति की "एक (ऐसी) शानदार कृति" थी, (A command performed) जिसके बारे में लेडी मिण्टो ने उसी दिन की डायरी में लिखा था "हिन्दुस्तान के इतिहास की (यह) एक महत्वपूर्ण घटना (है)" (A very eventful epoch in Indian History)।

और उसी दिन इसी घटना के महत्व को दर्शाने के लिये एक अंग्रेज़ आफ़िसर ने लेडी मिण्टो को लिखा था:—"युअर एक्सिलेंसी! एक पंक्ति लिखना ही पड़ता है कि आज एक बहुत बड़ी घटना हुई है जिसका हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान के इतिहास पर बहुत वर्षों तक प्रभाव रहेगा। हमने एक तरह से छै करोड़ बीस लाख लोगों को बाग़ियों के दल में शामिल होने से रोक लिया।" यह सन १९०९ के मार्ले-मिन्टो सुधार की बुनियाद है।

इस पयोमुख विषकुम्भ का भारत पर क्या असर पड़ा इसी पर विचार करना है। इसके मुताबिक़ जनता जनतन्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार पूरे राष्ट्र के नागरिकों की हैसियत से अपने प्रतिनिधि नहीं चुन सकती। संयुक्त राष्ट्र अमरीका, कनाडा, ब्रिटेन तथा अन्य गणतन्त्रवादी राष्ट्रों में जनता नागरिक की हैसियत से पूरे राष्ट्र की तरफ से अपने प्रतिनिधि चुनती है। इसके विपरीत यहां जनता सम्प्रदाय, जाति, उपजाति, रंग भेद, सामाजिक व्यवस्था आदि के अनुसार वर्गों में बांट दी गई है। और वह अपने ही सम्प्रदाय या टुकड़े से अपने ही सम्प्रदाय या टुकड़े के नुमाइन्दे चुन सकती है; जो सत्तारूढ़ होने पर अपने ही वर्ग या सम्प्रदाय के हानि लाभ का विचार करते हैं। राष्ट्रीय भावनाएँ धीरे धीरे निर्बल होती जाती हैं तथा संकुचित स्वार्थ की भावनाओं को बढ़ावा मिलने के कारण पूरे राष्ट्र के हित अनहित की बातों पर दृष्टि ही नहीं जाती। लोग पूरे राष्ट्र के नागरिक की हैसियत से अपनी राष्ट्रीय स्थिति को नहीं देखते। परिणाम स्वरूप हम लोगों की राष्ट्रीय एकता नष्ट होकर साम्प्रदयिक, जातीय तथा प्रान्तीय संकुचित तय्यार हो गए हैं—जो सदा अपने अपने स्वार्थों के लिये आपस में लड़ा करते हैं और अंग्रेजी सत्ता हमें इन्हीं वर्गों में विभाजित कर हम पर सुगमता से राज्य कर लेने के लिये सदैव साम्प्रदायिक स्वार्थों की रक्षा के लिये उन्हीं को प्रोत्साहन देती रहती है। यही है साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का अर्थ। और इसी से आज पाकिस्तान व हरिजनों का प्रश्न उठ खड़ा हुआ है।

अंग्रेज़ों ने ही इस विष-वृक्ष का रोपण किया है और वे ही उसकी रक्षा कर रहे हैं। स्वराज्य की हमारी मांग पर यही कहते हैं-तुममें फूट है-पहले एक बनो तब स्वराज्य मांगना। हमारे यहां से हमारे हटते ही तुम लोग आपस में कट मरोगे।

लार्ड मिण्टो के इस रिफार्म के बारे में सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने लिखा था :—

"हिन्दुस्तान को धारा सभाओं में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली के जाल से छुटकारा पाने के लिये अनेक वर्ष लगेंगे।"

इस रिफार्म के देने का मकसद बताया गया था कि हिन्दुस्तानियों को गणतन्त्र के अनुसार स्वशासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लिये शिक्षित किया जा रहा है। यह कितना बड़ा राजनैतिक धोखा था। यह सुधार के शब्दों से ही ज्ञात हो जाता है—

'धर्म और जाति के अनुसार बँटवारा करने का मतलब होता है विरोधी साम्प्रदायिक हितों की सृष्टि, जो एक दूसरे का विरोध करने के लिये ही सङ्गठित किये जाते हैं; लोगों को परस्पर विरोधी हितों की शिक्षा ही इनसे मिलती है। समान हितवाले नागरिकों की हैसियत से सोचने की शिक्षा इनसे नहीं मिलती। यह कह सकना मुश्किल है कि इस प्रणाली से राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व की प्रणाली में तबदीली कब हो सकेगी। ब्रिटिश सरकार हमेशा राज्य करने के लिये जनता में फूट डालने की कोशिश में रही है। किन्तु यदि वह अकारण ही जनता में तब फूट डाले जब वह उसे स्वशासन की राह पर चलाने का विचार और दावा करती हो तो वह अदूरदर्शिता या दग़ाबाज होने के इल्ज़ाम से नहीं बच सकती।'

इस प्रणाली को क़ायम रखने के लिये अल्पमत का सहारा जरूरी था, अन्यथा वे इसके दोषों को समझ कर बहुमत से मिलकर इसका विरोध करते। अतः उन्हें गणना से ज्यादा प्रतिनिधित्व, ( सरकारी ) नौकरियां और ख़िताब आदि देकर उनके प्रति ख़ास तरफदारी बर्ती जाने लगी। अल्पमत में मुसलमान ही सबसे ज्यादा थे इसलिये उन्हें ही इस ख़ास तरफदारी का सौभाग्य प्राप्त हुआ। एक तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर ने मुसलमानों को 'दिलरुबा बीबी' कहा था। रैमसे मेकडोनल्ड ने अपनी किताब 'अवेकनिंग आफ इण्डिया' में लिखा है :—'शक के साथ कहा जाता है कि एक दुष्ट शक्ति ब्रिटिश सरकार की ओर से काम कर रही थी और कर रही है, जिससे मुसलमान नेता ब्रिटिश आफ़िसरों द्वारा प्रेरणा पाते थे और पाते हैं। तथा वे आफ़िसर शिमला और लन्दन में बैठे तार खींचा करते थे और खींचते हैं। तथा इसी कारण पूर्वनिर्धारित नीति के अनुसार हिन्दू मुसलमानों में, मुसलमानों का खास पक्षपात कर फूट डाली जा रही।

रैमसे मैकडोनल्ड के कार्यकालीन भारत सचिव लार्ड ओलिवर ने स्वीकार किया था—"कोई भी व्यक्ति जो हिन्दुस्तान के सवालों से परिचित है कभी भी इनकार नहीं करेगा कि ब्रिटिश आफ़िसरों का झुकाव पूरी तरह से और मुख्यतः मुसलमानों के पक्ष में है। इसमें हमदर्दी का तो सवाल नाम है। असल में इसका उद्देश्य है हिन्दू राष्ट्रीयता के ख़िलाफ़ एक मोरचा तय्यार करना।"

ब्रिटेन के साथ हिंदुस्तान का सम्बन्ध भक्षक और भक्ष्य जैसा रहा है। यहां की अर्थनीति, वाणिज्य और मुद्रा प्रसार पर अंग्रेज़ी राज का पूरा नियन्त्रण है। इतनी बड़ी आबादी का इतना बड़ा देश उसके व्यापार प्रसार के लिये बग़ैर किसी प्रतियोगिता के सदा खुला हुआ है। हिन्दुस्तान में रेलों, जहाज़ी कम्पनियों, तेल खदानों तथा उद्योग धन्धों में हिन्दुस्तान की सरकार के संरक्षण में पूंजी लगाकर अंग्रेज़ व्यापारी सुख की नींद सो रहे हैं। सस्ती मज़दूरी, मजदूरों को ग़ुलाम बना देनेवाले क़ायदे तथा भारतीय हितों की उपेक्षा करके अपने व्यापार के लिये संरक्षण, और उन्हें कहां मिल सकता था? तनख़्वाहों और पेन्शनों के रूप में अपरिमित धन भारत से ब्रिटेन पहुंच रहा है। सस्ते से सस्ते फ़ौजी सिपाही, जिन्होंने कई मर्तबा ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की, भारत को छोड़कर और कहां मिल सकते हैं? यही कारण है कि किसी भी सूरत में ब्रिटेन हिन्दुस्तान को अपने क़ब्ज़े से छुटकारा देना नहीं चाहता। हिन्दुस्तान ही के कारण ब्रिटेन आज फल फूल रहा है। लार्ड रादरमियर ने कहा था:—"हिन्दुस्तान ब्रिटिश साम्राज्य की धुरी की कील है। यदि हम हिन्दुस्तान को हाथ से निकल जाने दें तो पहले आर्थिक दृष्टि से और फिर राजनैतिक दृष्टि से हमारा साम्राज्य नष्ट हो जावेगा।"

इतनी बड़ी कड़वी सचाई हम भूल जाते हैं और ब्रिटेन से आशा करते हैं कि वह सहज ही में हमारा देश हमें दे देगा।

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में ब्रिटेन के प्रोपेगेण्डा आफ़िसर सर फ़ेड्रिक पकल के साथ जो वादविवाद हुआ था उसमें वहां के कांग्रेसमैन सेलर ने चर्चिल के उद्गारों का हवाला दिया था। चर्चिल के ये उद्गार लार्ड रादरमियर की बात की पुष्टि करते हैं। उनके शब्द इस प्रकार हैं—"मिस्टर चर्चिल ने कहा था, 'एक अन्तिम काल्पनिक उद्देश्य के अलावा औपनिवेशिक स्वायत्तशासन हिन्दुस्तान को निकट भविष्य में नहीं मिलेगा। हिन्दुस्तान का हाथ से निकल जाना साम्राज्य को नष्ट कर देनेवाला होगा। यदि हिन्दुस्तान हमारे क़ब्ज़े से निकल जाता है तो बीस लाख अंग्रेज़ों की रोटी छिन जायगी और वे सड़कों पर मारे मारे फिरेंगे।"

ब्रिटेन के स्वार्थ हमारी ग़ुलामी के साथ इतने घुल मिल गए हैं कि आज वे किसी हालत में हमें स्वतन्त्र नहीं कर सकते। इसीलिये परतन्त्र रखने के लिये हममें फूट डाले रखना भी उनकी नीति का एक खास अङ्ग है। भारत में शासक की हैसियत से रहने ने उनके हक़ को नैतिक जामा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहनाने में यह फूट अत्यन्त उपयोगी है। एक अंग्रेज़ ने कहा है:—"हम अंग्रेज़ अपना असली रूप, सद्विवेक के आवरण में ढंककर भारतीयों से कहते हैं—भारतीयो, तुम स्वशासन चाहते हो, ठीक है, हम तुम्हें उसे पाने योग्य बना रहे हैं और एकता होते ही तुम उसे पाओगे। उससे पहले किसी तरह नहीं और तब फिर हम शैतान के समान हंसी हंसते हुये अपनी ओर मुख़ातिब होकर कहते हैं कि हमने उन्हें (भारतीयों को) अपने क़ब्ज़े में कर लिया है, तथा ईश्वर की क़सम खाकर कहते हैं कि उन्हें कभी भी एकता के सूत्र में न बंधने देंगे चाहे पानी पहाड़ों पर उलट कर चढ़ जाय, चाहे सूर्य पश्चिम में उदय होने लगे।"

आज भी अंग्रेज़ अफ़सरों का सम्पर्क जहाँ कम है वहां की जनता शान्तिपूर्वक रहती है। उदाहरण के लिये देशी रियासतों में और शहरों से दूर के लगभग सब गांवों में जहां कभी भी साम्प्रदायिक दंगे नहीं होते।

अमरीकन लेखक लुई फिशर का गान्धी जी के साथ जो सम्भाषण हुआ उसका कुछ अंश महत्वपूर्ण है। वह इस प्रकार है। फिशर कहते हैं—"वायसराय के परराष्ट्र विभाग के सिक्रेटरी केरो और सप्लाइ विभाग के एक उच्च पदाधिकारी जेनकिन्स ने मुझसे कहा था कि देहातों में मज़हबी फूट क़तई नहीं पाई जाती और मैंने दूसरों से भी सुना था कि देहातों में दोनों धर्म के लोगों का आपसी सम्बन्ध शांतिमय है और यदि ऐसा है तो यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है। क्योंकि लगभग २० प्रतिशत भारतीय जनता देहातों में रहती है।

यह फूट और उससे उत्पन्न हुई पाकिस्तान आदि की समस्याएं कृत्रिम हैं इसे गान्धी जी के इन उद्गारों से साफ़ समझा जा सकता है। वे कहते हैं—"हमें दो राष्ट्रों में विभाजित करना असम्भव है। हम दो राष्ट्र नहीं हैं। प्रत्येक मुसलमान यदि अपने वंश के (पुराने) इतिहास को देखे तो उसका एक हिन्दू नाम हो सकता है। हर मुसलमान एक हिन्दू है जिसने इसलाम धर्म ग्रहण कर लिया है। इससे अलग राष्ट्रीयता क़ायम नहीं हो सकती। यदि कोई प्रभावशाली पादरी हमें ईसाई बना लेता है तो हम एक राष्ट्र नहीं हो सकते, यदि पहले दो राष्ट्र थे। इसलिये भारत में दो धर्म होने के कारण ही दो राष्ट्रीयताएं नहीं हो सकतीं। यूरोप ईसाई है, लेकिन जर्मनी और इङ्गलैण्ड धर्म में समानता रखते हुए भी आज एक दूसरे का गला काटे डाल रहे हैं।"

अपनी इसी नीति के अनुसार ब्रिटिश नीतिज्ञ कांग्रेस जैसी राष्ट्रीय संस्था को छोटा दिखाने के लिये, मुसलिम लीग आदि साम्प्रदायिक संस्थाओं को कितना महत्व देते हैं यह शिमला कान्फरेन्स के परिणाम से समझा जा सकता है। मिस मार्गरेट पोप ने लिखा था कि—"साम्प्रदायिक संस्थाएं बनाई रखी जाती हैं, और जानबूझकर कांग्रेस जैसी सच्ची राष्ट्रीय संस्था के साथ उन्हें समानता का पद दिया जाता है, इसलिये कि साम्राज्यशाही के ख़िलाफ़ संयुक्त मोर्चा न बन पाए।"

इङ्गलैण्ड के चुनाव ने चर्चिल और उनके अनुदार दल की जगह मज़दूर दल को चुनकर सत्तारूढ़ करा दिया है। हो सकता है कि पिछले भारतमन्त्री एमरी के ज़माने में भारत में बर्ती जानेवाली नग्न नीति अब मज़दूर भारतमन्त्री पैथिक लारेन्स के कार्यकाल में न बर्ती जाय। लेकिन हिन्दुस्तान के प्रश्न का कोई निपटारा ये करेंगे, तथा हमें स्वराज्य दे देंगे यह सर्वथा ग़लत और भ्रमपूर्ण है। चाहे टोरी पार्टी हो चाहे लेबर पार्टी हो, अपने स्वार्थों को तथा स्वार्थजन्य ज़िम्मेदारियों को और भारत को स्वतन्त्र कर देने के उपरान्त ब्रिटिश हितों के ख़िलाफ़ आनेवाले परिणामों को ये सब अच्छी तरह समझते हैं। अतः ये भी प्रयत्न करेंगे कि भारत में फूट क़ायम रहे और भारत का शोषण जारी रहे।

शीघ्र ही इसी वर्ष जाड़ों में हिन्दुस्तान में चुनाव होने जा रहा है। इस चुनाव में यदि साम्प्रदायिक संस्थाओं की ओर से प्रतिनिधि ज़्यादा संख्या में चुनकर आते हैं तो दुनिया में ब्रिटिश प्रोपेगेण्डा शुरू होगा कि कांग्रेस केवल एक जातीय संस्था है और मुसलमानों पर उसका कोई असर नहीं है। और तब खुले आम युद्ध पश्चात योजना के नाम पर भारत का शोषण होगा। ब्रिटेन की मशीनें आवेंगी, विशेषज्ञ आवेंगे, ब्रिटिश कम्पनियों को ठेके मिलेंगे और इन खर्चों को पूरा करने के लिये हम पर नए नए टैक्स लगेंगे। और तब हमारे देश के घर खँडहर बनेंगे और ब्रिटेन के खँडहर गगन चुम्बी प्रासाद।

आज सब समय से ज्यादह हमें एकता की ज़रूरत है। और हर देश भक्त का यह कर्तव्य हो जाना चाहिये कि वह एकता के लिये तन-मन-धन से प्रयत्न करे। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि एकता ही में शक्ति है। और सदा हमें जागते यही ख्याल रहना चाहिये कि चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान, ब्रिटिश राज्य हमारे हितों के लिए नहीं बल्कि अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये यहां क़ायम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्प्रदायवाद और प्राचीनता की दुहाई

रघुवीरशरण दिवाकर बी० ए०, एल-एल० बी०, साहित्यालंकार

सुख-दुख, पुण्य-पाप, वरदान-अभिशाप सृष्टि के प्रारम्भ से और यदि यह जगत अनन्त है तो अनादि काल से चले आ रहे हैं। मानव जीवन के साथ या मनुष्य की नैसर्गिक वृत्तियों के साथ इनका अनिवार्य सम्बन्ध है और रहेगा। मनुष्य ने धीरे धीरे विकास किया है। समाज के रूप में संगठित होने में भी उसे हज़ारों वर्ष लगे हैं और संगठित समाज के विकास में भी सदियां लग चुकी हैं, और लगेंगी। प्राकृतिक अवस्था से सामाजिक अवस्था में आने के क्रम में मनुष्य की प्रच्छन्न पर नैसर्गिक वृत्तियों व भावनाओं के बाह्य रूपों में काफ़ी परिवर्तन हुआ है। अज्ञान, अन्ध-विश्वास, भय, आतंक, लोभ, मोह, दौर्बल्य, स्वार्थ, अहंकार साथ ही दया, प्रेम, वात्सल्य, सहयोग, सेवा, भ्रातृत्व-भावना आदि विविध वृत्तियों व भावनाओं की अपेक्षा मिल-मिलाकर और अदल-बदलकर बाहरी परिस्थितियों व आवश्यकताओं की अपेक्षा ने संगठन के अनेक प्रकारों को जन्म दिया है। दाम्पत्य, वंश, परिवार, जाति आदि इसी तरह के संगठन हैं, और सम्प्रदाय भी उनमें से ही एक है।

कोई भी संगठन हो उसका अपना एक आधार होता है, उसका अपना एक ध्येय होता है और साथ ही उसकी अपनी एक फ़िलासफ़ी होती है। वह फ़िलासफ़ी विभिन्न बाह्य रूपों में आकर अपने मूल आधार को पुष्ट करे या अपने मूल ध्येय की ओर अग्रसर हो पर वह फ़िलासफ़ी मूल रूप में स्थिर व स्थायी हो तब सभी परिवर्तनों के बावजूद भी वह सङ्गठन बना रहता है। यही कारण है कि इतिहासातीत काल से आज तक दाम्पत्य, वंश, परिवार, जाति, राष्ट्र, आदि सङ्गठन चले जा रहे हैं और सम्प्रदाय-सङ्गठन भी सैकड़ों पलटे खाकर, अनेक परिवर्तनों और क्रान्तियों को अतिक्रम व्यक्तिक्रम करके आज तक जीवित है।

सम्प्रदाय सङ्गठन की फ़िलासफ़ी का नाम ही सम्प्रदायवाद है। वह सम्प्रदाय-सङ्गठन न कोई एक सम्प्रदाय है और न सम्प्रदायों के पारस्परिक संघर्षों का ही दूसरा नाम है, वह तो एक फ़िलासफ़ी है, एक थ्योरी है, एक ढांचा है, जो समय समय पर विभिन्न सम्प्रदायों के रूपों में मनुष्य-समाज के जीवन में प्रवेश करता रहा है। यह फ़िलासफ़ी उतनी ही पुरानी है जितना पुराना यह मनुष्य-समाज है पर सम्प्रदायवाद की फ़िलासफ़ी की यह विशेषता है कि प्रायः हर सम्प्रदाय-सङ्गठन को नहीं बल्कि अपने को ही अर्थात सम्प्रदाय-सङ्गठन के एक मात्र रूप को ही तरह तरह से प्राचीन बल्कि प्राचीनतम कहता आया है। बहुत प्राचीन-काल में जंगली मनुष्य वृद्ध व्यक्ति के मरने पर वर्षों तक उसकी लाश को रखते थे और उसकी पूजा किया करते थे। पूर्वजों के प्रति सम्मान व श्रद्धा के भाव रखना मनुष्य हृदय की नैसर्गिक वृत्ति है पर यह भी मनुष्य की एक नैसर्गिक विशेषता है कि वह सहज ही अपनी वृत्तियों को अच्छाई से बुराई की ओर ले जाता है। उसकी इसी त्रुटि ने प्रेम को मोह के रूप में और श्रद्धा को अन्ध श्रद्धा के रूप में पतित किया है। मृत वृद्ध की पूजा भी इसी मोह व अन्ध श्रद्धा का ही एक कार्य है और सम्प्रदायवाद का अपरिवर्तनवाद या रूढ़िवाद भी इसी तरह का मोह व अन्ध-श्रद्धाजन्य एक निषेधात्मक विधान है। हर सम्प्रदाय ने अनिवार्य रूप से रूढ़िवाद का सहारा लिया है और इसी के बल पर वह मरकर भी जीवित रह सका है, इन अर्थों में कि सम्प्रदाय के प्राण चले जाते हैं पर उसकी लाश बनी रहती है। यहाँ मनुष्य की कमज़ोरी से सम्प्रदायवाद ने पूरा पूरा लाभ उठाया है।

रूढ़िवादी समझते हैं कि हमारे पूर्वज ऐसा करते चले आये हैं, हमारे पुरखों ने यह रूढ़ि चलाई है इसलिये यह ठीक ही है। उनके लिये पुराना ज़माना बड़ा अच्छा था और तब की बातें जैसी की तैसी ही अब तक चली आ रही हैं, जब कि ये दोनों ही विचार सत्य से दूर हैं, क्योंकि न तो हर दृष्टि से पुराना ज़माना अच्छा ही हो सकता था, और न तब की परिस्थिति, नियम, विधान, व्यवस्था आदि अभी तक वैसे ही चले आ सकते हैं। समय के परिवर्तन के साथ सभी में परिवर्तन होता है। प्रत्येक क्षण कण कण में अविराम परिवर्तन होता रहता है। लेकिन वे इस प्राकृतिक नियम की ओर से आंखें मूँदकर अतीत के विरह में लम्बी-साँसें लिया करते हैं, मानों भूत को प्राप्त करना ही उनके वर्तमान का ध्येय हो। उन्हें स्वकाल में प्राचीन काल के अन्धानुकरण के अतिरिक्त कोई गुण ही दिखाई नहीं देता है।

प्रश्न.—जो कुछ प्राचीन अभी तक चला आया है वह अनेक अच्छी बुरी परिस्थितियों में से गुज़र चुका है, अनेक संकटों का सामना कर चुका है, अनेक विरोधों पर



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विजय प्राप्त कर चुका है, इसलिये जो नवीन है उसकी अपेक्षा उसे मानने-मनवाने के लिये ज़्यादह गुञ्जायश है।

उत्तर:—पहिले तो यह ही ग़लत है कि प्राचीन अभी तक उसी रूप में चला आया है। जिस आज की चीज़ को हम प्राचीन की चीज़ कहते हैं वास्तव में वह उसका बदला हुआ रूप ही है। दूसरी बात यह है कि यदि कुछ हद तक प्राचीन अब तक जैसे का तैसा चला भी आया है तो इसका कारण यही है कि सम्प्रदाय-सङ्गठन के अनुशासन की कड़ाई के कारण, प्रमाणवाद के ज़हरीले इन्जेक्शनों के प्रभाव से तथा अन्य बाहरी कारणों से वह बाह्य रूप में टिके रहने में समर्थ हुआ है। और जहाँ तक वह समर्थ हुआ है वहाँ तक उसने जनसमाज का कल्याण ही किया है।

प्रश्न:—तो क्या प्राचीन नवीन से अच्छा नहीं है?

उत्तर:—वास्तव में न नवीन प्राचीन से अच्छा ही है और न बुरा ही। कहीं नवीन अच्छा है, कहीं प्राचीन अच्छा है। नवीनता प्राचीनता का सत्यता असत्यता अथवा असत्यता सत्यता से कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। जो लोग प्राचीनता की दुहाई देकर पुरानी गई बीती चीज़ों से चिपके रहते हैं और अच्छी से अच्छी चीज़ छूते भी नहीं हैं, वे जितना भूलते हैं उतना ही भूलते हैं वे लोग जो नवीनता के उपासक बनकर हर पुरानी चीज़ को देखकर नाक मुँह सिकोड़ते हैं और पुरानी अच्छी चीज़ों को छोड़कर तथा नई ख़राब चीज़ों को भी ग्रहण करके अपना अहित व अकल्याण कर बैठते हैं।

प्रश्न:—नवीन में प्राचीन की अपेक्षा दो गुण विशेष होते हैं। एक तो यह कि उसके पीछे प्राचीन के मुक़ाबले में अनुभव ज्ञान ज्यादह होता है, दूसरे यह कि नवीन वर्तमान काल के ज्यादह समीप होने से ज्यादह समयानुकूल होता है। ऐसी हालत में क्यों न नवीन को प्राचीन से श्रेष्ठ माना जाय?

उत्तर:—प्राचीन की अपेक्षा नवीन के पीछे ज्यादह अनुभव होना स्वाभाविक है लेकिन आज की जिस चीज़ को प्राचीन कहा जाता है उस पर यह बात लागू नहीं होती। हाँ, हज़ार डेढ़ हजार साल पहिले के प्राचीन के मुक़ाबले में आज के नवीन को इस दृष्टि से कुछ विशेष महत्व दिया जा सकता है। आज का प्राचीन वास्तविक प्राचीन का एक बदला हुआ रूप है जो असंख्य परिस्थितियों आपदाओं और तूफ़ानों में से गुज़रते हुए और उनसे जल्दी जल्दी न सही धीरे धीरे प्रभावित तथा परिवर्तित होते हुए आज का रूप धारण कर सका है। एक तरह से यहाँ प्राचीन के पीछे ज़्यादह अनुभव मिलता है। रहा दूसरा गुण, सो वर्तमान काल के समीप होने से ही कोई चीज़ समयानुकूल अर्थात वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल हो यह ज़रूरी नहीं है। अनेक प्राचीन बातें आज की अनेक नवीन बातों से ज्यादह अनुकूल सिद्ध हो सकती हैं ठीक जैसे कि आज की बहुत सी योजनायें वर्तमान युग की अपेक्षा सुदीर्घ भविष्य के लिये ज्यादह काम की हो सकती हैं। अतः हम नवीन को प्राचीन से श्रेष्ठ नहीं कह सकते।

प्रश्न:—जब नवीनता और प्राचीनता एक ही सतह पर हैं तब सत्यासत्य के निर्णय करने के लिये प्राचीनता के मोह को ही दूर करने पर ज़ोर क्यों दिया गया?

उत्तर:—इसलिये नहीं कि नवीनता का मोह सत्यासत्य के निर्णय में कम बाधा पहुँचा सकता है बल्कि इसलिये कि प्राचीनता के मोह से ही ज्यादह नुक़सान हुआ है और हो रहा है। मनुष्य-स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि कुछ को छोड़कर प्रायः सब को प्राचीनता के प्रति एक तरह का मोह हो जाता है। कहावत है कि दूर के ढोल सुहावने होते हैं। यह कहावत जहाँ स्थान की अपेक्षा से ठीक है वहाँ समय की अपेक्षा से भी उतनी ही ठीक है।

प्रश्न:—प्रत्येक सम्प्रदाय कभी न कभी जन्म लेता है, कभी न कभी वह नवीन होता है इसलिये प्राचीनता की दुहाई को सम्प्रदायवाद के एक अंग के रूप में कैसे मान्य किया जा सकता है?

उत्तर:—नये नये सम्प्रदायों की स्थापना होने पर भी सम्प्रदायवाद ने प्राचीनता की दुहाई को नहीं छोड़ा है और इसका कारण है उसमें नैतिक बल का अभाव। नया सम्प्रदाय को तो वह समयोपयोगी और कल्याणकारी घोषित करने की भी हिम्मत कर सकता है लेकिन जब सम्प्रदाय पुराना हो जाता है और परिस्थिति-परिवर्तन के फलस्वरूप वह भार-स्वरूप या दुखदाई बन जाता है तब यह प्राचीनता की दुहाई ही उसकी हिमायत में दी जाती है और मनुष्य की दुर्बलता से फ़ायदा उठाया जाता है। जब यह समस्या उसके सामने आती है कि परम्परा की प्राचीनता पर प्रामाणिकता की छाप लगाने से जनता समय की उसकी स्थिति का प्रश्न पेचीदा हो जायगा, तो वह अपनी प्राचीनता को ढकेल-ढकेल कर भूतकाल के अन्धकार में ले जाना चाहता है जहां न तो इतिहास की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


प्रकाश-किरण पहुँच सके और न अनुमान से ही कुछ काम लिया जा सके। कभी कभी तो बल्कि प्रायः अपने अपने सम्प्रदाय को अनादिकालीन तक कहने का साहस किया गया है। उदाहरणार्थ, जैन सम्प्रदाय ने महावीर को जैन-धर्म का संस्थापक न मानकर उन्हें चौबीसवाँ तीर्थङ्कर माना है और पहिले के तेईस तीर्थङ्करों के सच्चे-झूठे नाम जोड़-कर और कल्पना-शक्ति से अरबों-खरबों वर्षों बल्कि युगों की अवधि को पार करके तथा आगे चलकर हर एक कल्पित महाकाल में चौबीस ही तीर्थङ्करों का अस्तित्व मान कर अपने ढाई हज़ार वर्ष के छोटे से सम्प्रदाय को सार्व-भौम, अनादि, अनन्त कहने में संकोच या लज्जा का अनुभव नहीं किया है। बौद्धों ने भी चौबीस बौद्ध और हिन्दुओं ने भी चौबीस अवतार माने हैं। इसलाम ने भी एक लाख चौबीस हज़ार पैग़म्बर मानकर यह असर डालने की कोशिश की है कि इसलाम कोई नई चीज़ नहीं है, बल्कि ख़ुदावन्द-करीम के अनादि-अनन्त कालीन संदेश का तेरह चौदह सौ वर्ष पहिले का संस्करण है। अन्य सम्प्रदायों ने भी इसी नीति का पालन किया है और यही कारण है कि प्राचीनता की दुहाई सम्प्रदायवाद की एक विशेषता बन कर रह गई है।

---

# फरवरी सन् '४३ में बापू के अनशन पर !

श्री शील चतुर्वेदी

शासक समाज हो सावधान ;
अन्धेर राज हो सावधान !

उज्ज्वल चादर से ढके गात,
लाठी छोटी-सी लिये हाथ,
माथे की सिकुड़न पर अङ्कित
युग-युग का है सन्देश साथ !

हैं महापुरुष जग के महान,
युग-निर्माता, भावी-विधान !

जीवन की नव परिभाषा के,
माँ की मङ्गल अभिलाषा के,
भारत में बसनेवाले हम
चालीस कोटि की आशा के

तुम ही हो बापू शब्द-मान,
फूलों में सौरभ के समान !

ज़ालिम, ले भोजन-वसन छीन,
तू बना हमें अति दीन हीन,
पर तपःपूत ने ली समाधि
जब सहनशीलता हुई क्षीण !

जागेगा आहत स्वाभिमान,
छेड़ेगी जनता घमासान !

मच जाय न फिर दुर्धर्ष कहीं,
छिड़ जाय न फिर संघर्ष कहीं,
आ जाय न फिर से भारत में
सन सत्तावन का वर्ष कहीं,

अग-जग की अनुनय-विनय मान,
शासक समाज हो सावधान !

यदि कुछ से कुछ होगया कहीं,
यदि काल-चरण धो गया कहीं,
भारत माँ का अनमोल रतन—
यदि अकस्मात खो गया कहीं !

चालीस कोटि तब कर देंगे,
अपने न्योछावर प्राण-दान !
शासक समाज हो सावधान,
अन्धेर राज हो सावधान !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# एक साधारण कहानी !

श्री स्नेहांशु कान्त आचार्य

कड़ाके का जाड़ा था। शहर बिलकुल सफेद हो गया था। सुबह बिस्तर से उठते ही देखा, आधी खिड़की बर्फ़ से ढँक गई है। सोचा, महा अनर्थ हुआ। इसी जाड़े में शहर के दूसरे छोर पर जाना पड़ेगा। फिर दोपहर को ही इसन्ब्रुक जाना होगा एक कम उम्र लड़की के साथ। उससे मेरा परिचय भी तो घनिष्ट नहीं है। न जाने क्या बदा है ? किसी तरह नाश्ता ख़तम करके ओवरकोट और दास्ताने पहनकर सड़क पर निकला। ट्राम नदारद ! लाइन अभी तक साफ़ नहीं की गई थी। दो बसें बदलने के बाद घुटने घुटने बर्फ़ को पार करता अपने मन्तव्य की ओर बढ़ा।

न जाने क्यों कलेजा धक धक कर रहा था। आज जिस काम से बाहर निकला हूँ वैसा पहिले कभी नही किया है। एक अपरिचित लड़की को इन्सब्रुक ले जाना होगा। वहां कई दिनों तक होटल में इस तरह से रहना पड़ेगा जिसमें लोग समझ लें कि हम प्रेम के समुद्र में गोते लगा रहे हैं। पूर्व राग के शेष होते ही हमारा ब्याह होगा। भारतीय होने के कारण लोग सन्देह भी कम करेंगे, कुछ दिनों में लोग जब इसे सह लेंगे तो यहां से स्विट्ज़रलैण्ड चला जाना होगा। वहाँ कुछ लोगों से इन्तज़ाम करके फिर सीमान्त के किसी निर्दिष्ट स्थान पर लौटकर इस तरह से चिट्ठी लिखना होगा कि अपरिचित लड़की के सिवा और कोई उसे समझ न सके। इस चिट्ठी के पाने के बाद वह लड़की किसी तरह सीमान्त पार करेगी। इसके बाद उसे उसके मित्रों के पास पहुंचाकर मुझे छुट्टी मिलेगी।

वह एक साधारण सी लड़की है, देखने में बिल्कुल छोटी सी, बात बात में हँस देती है। आँख, मुँह, सारे शरीर में मन और देह की अदम्य कामना की छाप है और स्वास्थ्य निखर आया है। फिर भी इसके लिये अपना सर्वस्व छोड़कर चला जाना पड़ेगा। इससे मेरा परिचय हुआ था जर्मनों के आस्ट्रिया पर क़ब्ज़ा करने के बाद जब ब्रातिस्लावा शहर में आई। तब चेकोस्लोवाकिया मध्य यूरोप का नख़लिस्तान था। ब्रातिस्लावा बहुत कष्ट में तो नहीं, पर किसी तरह अपने 'विसा' की मियाद बढ़वाकर वाम पक्षियों के साथ काम करके किसी तरह अपने दिन काट रहा था। लेकिन अब वह रास्ता भी बन्द हो गया। बहेतू जानवर की तरह वह छिपकर फिर वियेना वापिस चली आई, किसी तरह स्विट्ज़रलैण्ड भाग जाने के लिए। आगे क्या होगा—इसे जान लेने पर शायद ज़िन्दा रहने की स्पृहा नहीं होती।

एक बार मन में आया, मैं इस झमेले में क्यों पड़ने जा रहा हूँ। लेकिन उसी क्षण अपनी स्वार्थपरता पर लज्जा आई। जीवन में कितने ही बार बहुत सी अद्भुत घटनाएं घटित हुई हैं। उनमें से कुछ मन पर इतनी गहरा छाप रख गई हैं कि कभी कभी आज भी सपने में डर से चौंक पड़ता हूं। फिर लम्बी सांस लेकर सोचता हूं, नहीं, सभी जीवन में इस प्रकार के दुःख कष्ट आ ही नहीं सकते।

हां—जो बात मैं कह रहा था कैसी विचित्र मानुष होती है, एक आदमी, हमारी तरह उसका भी नाम है, परिचय है, सुख दुःख है, वेदना है, आनन्द है, भविष्य है—लेकिन, एक दिन अचानक उसके पास कुछ भी नहीं रह जाता। मनुष्य ने ही एक सीमा-रेखा खींच दी, उसी ने एक क़ानून बना दिया, और उसी दम-सैकड़ों, हज़ारों लोगों का नाम, धाम, परिचय, आशा, आकांक्षा लुप्त हो गई। विचित्र ! कैसा भीषण सत्य है ! नक़्शे पर एक रेखा के इधर उधर हो जाने के कारण उसके जीवन का सब कुछ बदल गया। उसे चोरों की तरह रहना पड़ेगा। जिसके जीवन का प्रारम्भ प्रकाश से जगमग होना चाहिए था, उसका संगी होगा केवल रात्रि का अन्धकार। वह प्राणों की पूर्णता से दिल खोलकर गाती थी, उसके ओठों पर सदा हास्य नाचता रहता था। अनायास, उसे आज म्लान होना, घर के कोने में रहना पड़ेगा, दबी ज़बान में बोलना पड़ेगा, जीवन के प्राचुर्य को ध्वंस करना पड़ेगा।

ठीक समय पर यथास्थान पहुँचा। घर आदमियों से भरा हुआ था। लड़की के सम्बन्धी, मित्र, सभी विदा कर रहे हैं, हँसी-खुशी से क्योंकि इनमें से बहुतेरे ऐसे हैं जिन्हें कहीं भी जाने की सुविधा नहीं। न जाने कितने दिनों तक इन्हें घर पर और अत्याचार सहना पड़ेगा। मुझे देखकर सभी ने आदर से बैठाया। ऊँची आवाज़ में वे मेरे स्वार्थ-त्याग की बातें करने लगे। लड़की के भावी पति ने मेरा हाथ पकड़कर अगिनित धन्यवाद दिये। उसने कहा कि, इसका यह बोझ अपने कन्धों पर लेकर उसे चिर ऋणी कर दिया। अगर लड़की सकुशल पहुंच जाती है तो वह भी जाने की चेष्टा करेगा। शायद फिर मेरी या मुझे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किसी दूसरे आदमी की ज़रूरत होगी। क्या मैं फिर उस समय आ सकूँगा? कायर दिल, ज़बानी राज़ी होने पर भी मन ही मन सोचने लगा इस क़िस्से को यहीं ख़तम करो, अब आगे नहीं। लड़की चुप बैठी हुई थी। उसका मुँह बेहद लाल था और आंखें सूजी हुई थीं। कारण समझने में मुझे देर न लगी। फिर मामले को ज़रा हल्का करने के लिए मैंने पूछा—तुम्हारा चेहरा लाल क्यों है? क्या डर, दुःख या उत्तेजना से? लड़की ने उत्तर दिया कि इसी वियेना में उसके पिता १९३४ में फासिस्त डालफस के गुण्डों द्वारा मार डाले गए थे। ऐसे पिता की पुत्री को डर या दुःख का क्या कोई कारण है ही नहीं? कुछ उत्तेजित ज़रूर हुई हूँ लेकिन मुँह और आँखें लाल हुई हैं विदाई के समय सबसे 'ब्रुडार शाफ़्ट' अन्तिम नमस्कार की वजह से। सभी ने चिल्लाकर कहा—ब्रेवो! अचानक मामला इतना हल्का होते देख मुझे भी खुशी हुई। मन ही मन वियेना की 'गेमुएटलिखकाइट' सौहार्द की की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सका।

शाम को इन्सब्रुक पहुंचा। होटल में सामान रखकर एक आदमी से मिलने चला गया। उसे सभी रास्ते और तरकीबें मालूम हैं। लेकिन उसकी बातें सुनकर जोश ठंडा हो गया। आजकल सीमान्त में जबर्दस्त कड़ाई है। पार होना एक प्रकार असम्भव सा ही है। लेकिन रास्ता है। फेल्ड कोर्स और बुख्स के पास एक पहाड़ी नदी है, गहरी कम पर धार बहुत तेज़ है। इसीलिए अभी तक उस पर बर्फ़ नहीं जमी है। उसे पार कर लेने से खतरा दूर हो जाएगा। यह नदी जर्मनी में है, अतएव नदी का दूसरा किनारा जर्मनी में होने पर भी पहरा नदी के इसी पार रहता है, नदी के जम जाने के पहिले तक भागने का रास्ता बहुत कुछ आसान है, क्यों कि नदी जम जाने पर सिपाही पहरा देते हुए नदी के इस पार से उस पार जाते आते रहते हैं। नदी पार करके दो सौ गज़ की दूरी पर स्विट्ज़रलैंड की सरहद आती है। वहां भी पहरा पड़ता है। आजकल ज़रा कड़ाई बढ़ गई है। फिर भी इस आदमी ने यहां से एक दो आदमियों को पार किया है, स्विस पहरेदारों में एक हमदर्द भी है। उससे मुलाक़ात होने पर इन्तज़ाम हो सकता है। लेकिन मुझे यह बात बिलकुल नहीं जंची। कहा जाता है कि स्विस सीमान्त पार कर लेने के बाद भी जर्मनों को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने कितने ही लोगों को अपनी बन्दूकों का निशाना बनाया। अतएव स्विस सीमान्त पार भर कर लेने से ही ख़तरा दूर नहीं हो जाता। उस पार अगर इन्तज़ाम हो भी जाय तो भी नदी पार कैसे की जाए। इस कड़ाके की सर्दी में नदी में पैर रखते ही वह जम-सी जायगी। होटल में आकर मैंने उस लड़की को लौट जाने के लिए कहा। भागने की ज़रूरत नहीं। यहां की तरह स्विट्ज़रलैंड में भी राक्षसों से छुटकारा नहीं मिलेगा, तब यहीं रहना अच्छा है। लड़की ने पहले मेरी बात को हंसी में ही उड़ा दिया। इसके बाद स्त्रियों की तरह रोना शुरू किया। पर जब मैं इससे भी नहीं पिघला तो उसने कहा कि अगर आज वह किसी भी तरह जर्मनी से बाहर जा सकती है तो दक्खिन अमरीका जाने का इन्तज़ाम कर सकती है। उसके मामा वहीं हैं, अच्छा कारोबार है, हालत भी अच्छी है। वहां पहुंचकर वह अपने भावी स्वामी को भी लाने की कोशिश करेगी। इसमें शायद उसे सफलता भी मिल जायगी क्योंकि उसके खिलाफ पुलिस कुछ भी नहीं जानती है। वह आज भी वहीं काम कर रही है। उस पार जाने पर राष्ट्र संघ की तरफ से दक्खिन अमरीका जाने की व्यवस्था हो जायगी। पर यहाँ रहने से तो कुछ भी नहीं होगा।

मैंने कहा—ये सारी बातें कोरी कल्पना हैं, राष्ट्र संघ कुछ भी नहीं करेगा।

उसने कहा—अगर ज़िन्दगी में कोई आशा है तो वह नदी के उस पार है, इस पार कुछ भी नहीं है। इस पार रहने से फायदा क्या?

मुझे राज़ी होना ही पड़ा।

मुझे जो कुछ इन्तज़ाम करना था वह सात दिन में हो गया। आगे के सारे कामों को बड़ी सावधानी से करना पड़ेगा। सब कुछ करके मैंने पहिले के संकेत के अनुसार 'सुरि' के नाम चिट्ठी लिख दी।

'मेरी प्यारी नन्हीं सी रमणी, यहां आने के बाद से तुम्हारी ही बात याद आती है और कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है, लेकिन करूँ क्या? बहुत सा काम पड़ा है, उसे तो पूरा करना ही पड़ेगा। तुम्हें याद करके ही चार दिन में ख़तम कर रहा हूँ। परसों रात को यहां के एक बड़े व्यापारी ने मुझे न्योता दिया है! सुना है वह मेहमानवाज़ी के लिए सारे स्विटज़रलैण्ड में मशहूर है। खाने के बाद नाच गाने भी होंगे। आमतौर से ऐसे दिनों में जलसा रात दिन साढ़े तीन बजे ख़तम होता है। लेकिन इससे मेरा क्या? सिर्फ मैं ही इस जलसे में मुँह लटकाए चुपचाप बैठा तुम्हें याद किया करूँगा। अब तुम्हारे पास पहुंचने के दिन दूर नहीं।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


"मेरा प्यार स्वीकार करना।"

चिट्ठी लिखने के दो दिन बाद मैंने किराए पर एक गाड़ी ली। रात का खाना खाकर बुख्स के सीमान्त के सन्तरी के घर गया। सीमान्त पार करने की रात को यह आदमी अपने एक मित्र के साथ पहरे पर रहेगा। लड़की के सीमान्त पार होते ही उसे वह अपने घर लावेगा। पहुंचने के साथ ही ब्रैण्डी पीकर और गरम पानी से पैरों को सेंककर सम्भव हो तो भोर के पहले ही सुरिक की ओर चला जाना होगा।

× × ×

बैठे बैठे कब सो गया, याद नहीं। आंख खुलते ही देखा पाँच बज रहे हैं। सावधानी के समस्त निर्देशों को भूलकर जल्दी से बाहर निकला। चारों ओर कुहासा और अँधेरा था। इतनी देर क्यों हो रही है, समझ में नहीं आया। धीरे धीरे सात बज गए, आकाश साफ होने लगा। अब रहा नहीं गया, पासपोर्ट जेब में डालकर बाहर निकल पड़ा। नदी के किनारे किनारे चलने लगा। देखा कुछ दूर पर एक भीड़ बहस कर रही है। नज़दीक पहुंचा। जर्मन और स्विस पहरेदार किसी चीज़ को घेरे खड़े हैं। अभी कुछ देर पहले उनमें से एक पानी में से एक गठरी उठा लाया था। देखा गया कि वह एक अल्प वयस्का महिला है। शायद चुपचाप नदी पार करके भाग रही थी। धार तेज़ होने के कारण पैर फिसलकर बर्फ़ीले पानी में गिर पड़ी और एक बड़े ढेके से टकरा जाने से बेहोश होगई। धार के बीच में वहीं ढेकों में अटककर रह गई। पानी से बाहर नहीं निकल सकी और भयङ्कर सर्दी में ठिठुरकर मर गई!

---

# याचना

श्री उपेन्द्र

( १ )

अपने उर की ज्वाला दे दो,
ओ निशिदिन जलनेवाले, तुम अपने उर की ज्वाला दे दो!

आज शिथिल इस जग जीवन में
कर दो प्रलय-वह्नि संचारित;
निर्वाणोन्मुख क्रांति-मूर्ति यह
कर दो शौर्य-दीप्ति उद्भासित!

वह ज्वाला दो, एक बार ज्वाजल्यमान त्रिभुवन हो जाए;
वह ज्वाला दो, महाकाल का सिंहासन भय से थर्राए;
वह ज्वाला दो, एक लपट में झुलस भानु भू पर गिर जाए;
वह ज्वाला दो, चीख की जिसमें जगका विभव ध्वंस हो जाए;
सूख जायँ सागर जगती के, अपने उर की वह ज्वाला दो!

( २ )

अपने उर की करुणा दे दो,
ओ असीम कारुण्य-मूर्ति! तुम अपने उर की करुणा दे दो!

हिंस - प्रकृति मानव में अक्षय
करुणा का संचार करो हे;
रक्त - पिपासित विश्व-हृदय में
दुर्दम हाहाकार भरो है!

वह करुणा दो, आज गलित हो पानी बन जाए पाषाण;
वह करुणा दो, चिर प्रचण्ड दिनकर हो जाए मृदुल हिमानी;
वह करुणा दो, फूट पड़े पत्थर-उर से भी निर्झर-धारा;
वह करुणा दो, किसलय बन लोटे चरणों पर प्रखर दुधारा;
मरण दीप्त जीवन बन जाए अपने उर की वह करुणा दो!

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# खादी की कसौटी

आचार्य श्री विनोबा भावे

खादी के विषय में मैं कुछ लिखूँ ऐसी मांग भाई कृष्णदास ने की तो मैं सोच में पड़ गया। खादी को अब तक प्यार तो बहुत किया, पचीस वर्ष उसकी सेवा की, लेकिन तृप्ति नहीं हुई।

फिर भी मुझे क़बूल करना चाहिए कि जिस क़िस्म की खादी-चरखा संघ आदि द्वारा उत्पन्न होती रही उससे मैं कभी एकरूप नहीं हो सका। मेरे मित्र इसको जानते हैं। सात-आठ साल पहले का ज़िक्र है, मैंने वर्धा की सब संस्थाओं के प्रतिनिधियों को और दूसरे मित्रों को बुलाकर उनके सामने खादी सम्बन्धी अपने विचार रक्खे थे। उस वक्त मैंने सुझाया था कि वर्धा का खादी भण्डार जो कि हिन्दुस्तान भर का माल बेचता है, बन्द कर दिया जाय और उसके बदले में वस्त्र स्वावलम्बन को प्रोत्साहन देनेवाला एक खादी भण्डार खोला जाय, जिसमें बेचने के लिये सिर्फ़ स्थानिक याने वर्धा ज़िले में तैयार हुई खादी रखी जाय और कातना-बुनना आदि सिखाने की, चरखा दुरुस्त करने आदि की व्यवस्था रहे। इस सुझाव पर भी काफ़ी बहस हुई। आख़िर बाक़ायदा वोट भी लिये गये और सुझाव नामंजूर किया गया। मेरे पक्ष में जहाँ तक मुझे याद है, पौनार गाँव के एक भाई ने हाथ उठाया था। लोगों ने विनोद में कहा, धर्मराज को आख़िर एक कुत्ते का साथ तो मिला। लोगों ने मेरी दलील तो मानी थी लेकिन उसे "अव्यवहार्य" समझा था। मुझे आश्चर्य नहीं हुआ और रंज भी नहीं हुआ। मैंने रवि ठाकुर की भाषा में मन में गाया—"एकला चल! एकला चल!"। रवि बाबू ने आगे जोड़ा था—"ओरे ओरे ओ अभागा!" मैंने उसको बदलकर गाया, "ओरे ओरे! ओ भाग्यवान्!"।

गान्धीजी के अनुयायी कहलानेवाले हम लोगों में एक आदत सी पड़ गई है कि अक्सर हम किसी चीज़ पर स्वतंत्र रूप से सोच नहीं सकते। गान्धीजी जब कोई बात बताते हैं तब हम उसे मानते हैं। इतना ही होता तो भी ख़ैरियत थी लेकिन दुख तो और ही है, और वह यह है कि गान्धीजी का कहा हुआ भी हम मानते हैं तो एक तरह की श्रद्धा से मानते हैं। लेकिन उसे जब हम अमल में लाने की सोचते हैं तो वह बात भी हमें कुछ अव्यवहार्य सी लगती है। मैं जब यह सुनता हूं तो अव्यहार्य शब्द के लिये ही मेरे मन में आदर पैदा होता है और मुझे उन ऋषियों की याद आती है जिन्होंने ब्रह्म का गौरव 'अव्यवहार्य एकात्म प्रत्ययसाम्' ऐसे शब्दों से किया था। हरएक क्रांतिकारी कार्य-क्रम के नसीब में अव्यवहार्यता का आरोप बदा ही है।

क्रांतिकारी आन्दोलन शुरू होता है। सरकार का गुस्सा खादी पर उतरता है तो खादी का काम बन्द हो जाता है। जहां उसकी अकृपा नहीं वहां पर चलता रहता है। यह खादी कैसी? कुछ खादीवाले कहते हैं, हमारा तो भूत दया का कार्य है, हमें तो ऐसे आन्दोलन से अलिप्त रहना चाहिये। अलिप्त रहके क्या करोगे? खादी के शरीर की रक्षा करोगे और आत्मा को खोओगे? यह बात अब तक ध्यान में नहीं आई, तो माफ़ है। लेकिन इसके आगे माफी नहीं मिल सकती। इसके आगे खादी को अपना तेज प्रगट करना है, या मिट जाना है।

१९३८ में मैं शारीरिक विश्रान्ति के लिए पौनार जाकर बैठा था। वहां वानप्रस्थ वीर कौटी बाबा ने एक परिश्रमालय खोल रखा था। वहां मैं रोज घंटा-दो-घंटा जाने लगा। परिश्रमालय में चुन चुनकर नौजवान और उत्साही लड़कों को शामिल किया। उनकी मज़दूरी कैसे बढ़े इसके प्रयोग उनको बताये। उनके साथ अनेक आर्थिक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक चर्चाएँ कीं। वे सब चर्चाएँ उनके काम से सम्बन्धित थीं। लड़के दोनों हाथ से कातना सीख गये और जो मुश्किल से दो आने कमाते थे वे चार आने कमाने लगे। वहीं नई तुनाई का आविष्कार हुआ। लड़के निष्ठावान और ज्ञानवान बन गये। गांव की ओर से उन्हीं लड़कों में से एक को त्रिपुरी कांग्रेस की चर्खा इरीफाई (दङ्गल) में भेजा गया। वहां से वह जीतकर आया। गाँववालों ने महसूस किया, हमारी प्रतिष्ठा बढ़ी।

लड़कों को अच्छी मज़दूरी मिलती थी और पूरी मज़दूरी के तत्व के व्याख्यान मैं लड़कों को देता था। गाँव की मजदूर औरतें खेतों में जाकर काम करती थीं। और निंदाई के घास के बोझ अपने साथ वापिस लाती थीं और बाज़ार में बेचती थीं। लोग उनसे पूछते बाई, कितने पैसे में घास दोगी? वह कहती, एक आने में, तो यह मांगते दो पैसे में। और बेचारी को उतने में घास देनी ही पड़ती थी। मैंने लड़कों से चर्चा चलाई कि स्त्रियां इतना कष्ट करके घास लाती हैं, उसे सस्ते में ख़रीदने की बात कैसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है ? वे तो हमारी ही माताएँ और बहनें हैं। उनसे हम पूरे दाम में घास क्यों खरीदें ? वे तो डरते डरते चार पैसे मांगती हैं। वास्तव में उनकी मेहनत का हिसाब करें तो घास की क़ीमत उससे भी ज़्यादा होगी। एक लड़के को यह बात जँच गई। उसने सोचा मुझे सूत कातने में ठीक मजदूरी मिलती है मैं क्यों पूरे दाम में घास न खरीदूं ? उस दिन शाम को बाज़ार में जाकर वह खड़ा हुआ। उसने पूछा, कितने पैसे में घास देोगी, बाई कहती है—एक आने में। लड़का बोलता है, नहीं तुम्हारी मेहनत ज़्यादा है, मैं पांच पैसे में लूँगा। उस बाई को क्या लगा होगा यह तो वह जाने। लेकिन यह सुनकर मेरा दिल नाचने लगा।

अनेक चर्चाओं में एक चर्चा ऐसी भी निकल पड़ी कि लड़के जो अपने-अपने काम के मुताबिक़ अलग अलग मज़दूरी पाते हैं वह सब मज़दूरी एकत्र करके उसको बराबर बराबर क्यों न बांटे ? क़रीब दो हफ़्ता यह चर्चा चली। कई पहलुओं से बहस हुई। अर्थात् यह सब बहस कातते कातते ही होती थी। देहाती लड़कों का दिमाग़ कितना ताज़ा होता है उसका अनुभव उस चर्चा में मुझे हुआ। आखिर लड़कों ने बराबर बंटवारे का तत्व स्वीकार कर लिया। और मैं आश्चर्य में डूब गया। अब उसका अमल होना था। मैंने सोच लिया था कि इतने अच्छे निश्चय के लिए मज़दूरी १० फी सदी बढ़ाई जाय लेकिन उसमें मैं जेल चला गया और साम्ययोग का यह प्रयोग वैसा ही रह गया।

अगस्त '४२ के आन्दोलन में यह परिश्रमालय टूट गया लेकिन फिर भी वह ज़िन्दा रहा। क्योंकि उसके से आधे से अधिक लड़के किसी न किसी राष्ट्र सेवा के काम में लग गये हैं और कोटि बाबा के प्रेम के पात्र बने रहे।

यह मैंने पौनार के प्रयोग का गौरव गाने के लिए नहीं लिखा हैं क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह प्रयोग बहुत अधूरा था और उसमें काफी सुधार की ज़रूरत थी। लेकिन खादी की शक्ति का कुछ दर्शन मुझे उसमें से हुआ। इसलिए मैंने उसका उल्लेख किया है। अब तो उसे बहुत आगे बढ़ना है और गाँवों को सब तरह से स्वावलंबी बनाने में खादी का प्रयोग करना है। उसके बारे में फिर कभी लिखूंगा। "साम्ययोग सिद्धि और स्वराज्य सिद्धि यह खादी की कसौटी है। उसकी सूचना मात्र करते आज इरादा था।

[ "खादी जगत"

---

# कविवर रसखान के अन्तिम दिन

श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना, एम० ए०, डिप० साइ०

प्रेम और सौन्दर्य के दिव्य रसमय स्रोत में बहनेवाले रसखान मुसलमान होते हुए भी मुसलमान नहीं थे और हिन्दू भावनाओं को अपनाते हुए भी हिन्दू नहीं थे। वे इन भेदभावों की दुनिया से दूर प्रेम का अजस्र स्रोत बहाने वाले थे। रसखान की रचनाओं के अध्ययन से उनकी जीवन कथा पर काफ़ी रोशनी पड़ सकती है।

सामान्यतः रसखान की जीवन-अवधि सन् १५५९ से सन् १६२३ तक मानी जाती है और १५८३ के आस पास उनके वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने तथा विट्ठलनाथ जी के शिष्य होने की बात कही जाती है। 'प्रेमवाटिका' ( सम्वत १६७१ वि०, सन् १६१४ ई० ) के रचनाकाल के आधार पर उनका मृत्यु काल सन् १६२३ के आस पास अनुमान किया जाता है। मृत्यु उनकी कहाँ और किस तरह हुई इस बात की चर्चा, जहाँ तक मुझे पता है अभी तक किसी लेख में नहीं हुई है।

'माधुरी' ( जून १९४५ ) में डा० भवानी शंकर याज्ञिक ने रसखान का समय ( जन्मकाल ) जिस से दिया है वह मुझे अधिक युक्तिसंगत और प्रामाणिक जँचता है। इससे पहिले की 'साहित्य-सन्देश' की संख्या में मैंने रसखान पर कुछ अपने विचार प्रकट थे जिसमें रसखान के सन् १५३० के आस पास होने तथा सन् १६२० ई० के आस पास स्वर्गवासी होने सम्भावना के साथ यह भी बतलाने का यत्न किया वल्लभ सम्प्रदाय की परम्परा में रसखान का होना सा है।

वेणीमाधवदास के 'मूल गोसाईं-चरित' में नन्दकाल के शिष्य सुदास से तीन वर्ष तक रसखान 'मानस' सुनने का उल्लेख आता है। इस घटना हमने अन्यत्र १५८४ ई० के लगभग होना और यह भी बतलाया है कि यदि विट्ठलनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रसखान हुए ही थे तो इसी समय से पूर्व हो गये होंगे क्योंकि 'प्रेम वाटिका' में सम्भवतः इब्राहीम से रसखान होने की बात दिल्ली छोड़कर वृन्दावन में गोवर्धन धाम में आ बसने के अवसर पर आई है और मूल गोसाईं चरित में रसखान नाम आया है। कल्याण मानसांक में रसखान के नाम से 'मानस' तथा गोसाईं जी की प्रशंसा में जो कवित्त छपा है यदि वह रसखान का ही है तो उससे सुदास से मानस सुनने की ही पुष्टि होती है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि रसखान जीवन पर्यंत वृन्दावन में ही नहीं रहे, इधर उधर भी तीर्थ स्थानों में घूमते रहे और कदाचित् उन्होंने अपने अन्तिम दिन काशी में गङ्गा जी के तट पर रुग्णावस्था में बिताए। गङ्गा में उनका अटल विश्वास था। सम्भवतः उसीका जल वे काम में लाते थे और वैद्य का उपचार भी उन्होंने कदाचित् नहीं किया। गङ्गा की प्रशंसा में लिखे उनके इस सवय्ये में मैंने यह संकेत पाया है :—

वेद की औषधि खात कछू न करै कछु संजम री सुनि मोसें।
तेरोई पानि पियै रसखानि सजीवन जानि लहै सुख तोसें।
ए री सुधामयी भागीरथी सब पथ्य कुपथ्य बनै तोहि पोसें।
आक धतूरे चबात फिरैं विष खात फिरैं सिव तेरे भरोसें॥

शिव कोई संयम नहीं करते, पथ्य कुपथ्य की भी चिन्ता नहीं रखते, केवल तेरा जल पीते हैं, तेरे भरोसे आक धतूरे जैसी विषैली चीज़ों को पचा जाते हैं। मुझे तेरे जल का विश्वास है, पथ्य कुपथ्य तथा वैद्य की औषधि का नहीं। उनमें मेरा विश्वास ही नहीं है।

इस सवय्ये की रचना उस समय होनी चाहिए जब रसखान बीमार हों और गङ्गा के तीर बस रहे हों और गङ्गा का तट भी शायद घर से दिखलाई पड़ रहा होगा।

गङ्गा के तीर किस स्थान पर इस समय कवि को होना चाहिए इस प्रश्न के उत्तर के लिए शिव का उल्लेख संकेत करता है ऐसे स्थान की ओर जहाँ गङ्गा भी हो और शिव की प्रधानता भी। शिव की प्रधानतावाली गङ्गा के तीर की नगरी जो रसखान को कृष्ण भक्त प्रेमी बनाए रखते हुए भी अपनी ओर खींच ले, काशी ही हो सकती है। काशी में रहते हुए ही सम्भवतः रसखान ने शिव की प्रशंसा में गाया होगा—

यह देख धतूरे के पात चबात सुगात में धूरि लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा अटकीं लटकैं शुभ सीस फनी फहरावत हैं।
रसखानि जोई चितवै चित दै तिहि के दुख द्वन्द भजावत हैं।
गजखाल कपाल की माल धरे हर गाल बजावत आवत हैं॥

कृष्ण की दिव्य मूर्ति को रसखान भूले नहीं हैं और इधर शिव ने उन्हें अपनी ओर खींचना शुरू कर लिया है। संकीर्णता तो उनमें थी नहीं जो उन्हें कृष्ण और शिव में भिन्नता दिखलाई पड़ती। सामान्य बुद्धिवाले अवतारवादी अद्वैत भक्तों की भांति उन्हें एक ही सत्ता दो रूपों में दिखलाई दी और उनके प्रेम प्रवण हृदय ने दो रूपों की भी एक सत्ता बना डाली —

इक ओर किरीट लसैं दुसरी दिसि नागन के गन गाजत री।
मुरली मधुरी धुनि ओंठन पै तुरही कल नाद सों बाजत री।
रसखानि पितंबर एक कँधा पर एक बघम्बर छाजत री।
अरी देखहु संगम लै बुड़की निकसे बर वेष विराजत री॥

काशी में रुग्ण अवस्था में होने की संभावना की ओर तो ऊपर संकेत किया गया है किन्तु अब यह भी देखना है कि यह अवसर रसखान के जीवन के अन्तिम दिनों का हो भी सकता है या नहीं।

प्रेम वाटिका का रचना काल रसखान ने 'विधु सागर रस इंदु शुभ' दिया है जिससे कुछ लोग १६४१ वि० भी निकालते हैं किन्तु १६७१ वि० (१६१४ ई०) ही अधिकतर माना गया है और है भी (क्यों कि समुद्र चाहे चार माने गये हों 'चतुःसमुद्रान' पर 'सागर' शब्द सात ही के अर्थ में मेरे देखने में आया है—'सप्त सागरा मेखला'—मानस)। इसके बाद ही रसखान की मृत्यु सम्भव है।

सन् १६१६ से सन् १६१४ ई० तक भारत में जहाँगीर के समय में प्लेग का प्रकोप हुआ था जिसके शिकार गोस्वामी तुलसीदास जी भी बने थे और सन् १६२३ ई० में उनका काशी में शारीरांत ही हो गया था। काशी में प्लेग विशेष उग्र रूप से था। रसखान जो कि काशी में रुग्ण अवस्था में थे, संभवतः इसी समय गङ्गा के तट पर दिन बिता रहे होंगे और सुदास से सुनी 'मानस' की भावना ने उन्हें तुलसीदास जी के समीप रहकर मानस सुनने अथवा उनके सत्संग में रहने का अवसर दिया होगा। तुलसी की प्रशंसा में लिखा कवित्त हो सकता है रसखान द्वारा ही बनाया गया हो और इसी अवसर पर बना हो।

क्या आश्चर्य तुलसी के साथ ही रसखान को भी सन् १६२३ में प्लेग लेकर चल बसी हो? यदि ऐसा ही अवसान रसखान का हुआ हो तो उनकी ठीक-ठीक जीवन अवधि ९० या ९५ वर्ष की होनी चाहिए और उनका समय सन् १५२५-३० ई० से सन् १६१८-२३ ई० तक होना चाहिए।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कौन ?

[ अन्तर्वाणी देशभक्त ( Political Absconder ) का एक सजीव चित्रण ]

श्री जयजय राम टण्डन

आज यह निकला करने कौन,
दोस्त औ' दुश्मन की पहिचान ?

दबे पैरों से बगलें झांक,
खोलकर आँख लगाकर कान,
आज यह निकला करने कौन,
दोस्त औ' दुश्मन की पहिचान ?

दूध में पानी की पहिचान,
आज दिखलाने आया कौन ?
सशंकित स्वर से कह कुछ बात
और फिर हो जाता जो मौन,
दिवालों के भी होते कान,
लौट फिर फिर आता कुछ ध्यान,
खींचकर नभ से लम्बी साँस
जरा हलके कर लेता प्राण !
सहारा उसका केवल एक,
दोस्त औ' दुश्मन की पहिचान !
आज यह निकला करने कौन ?

हवाई चेहरे पर उड़ रही
और रूखे हैं जिसके केश,
छुट पड़ी घुटनों तक चढ़ धूल,
नयन में घूमे देश - विदेश !
बँधा सिर कफ़न, हाथ पर प्राण,
साध का पथिक आश का यान !
निराशा, भय, शङ्का के बीच,
भँवर में नाव और तूफान,
किसी को हो जायेगी आज,
दोस्त औ' दुश्मन की पहिचान !
आज यह निकला करने कौन ?

लपेटे है भय की चादर,
समेटे हुए कर्म की बाँह,
धूप की तेजी से बच कहीं,
खोजता फिरता ठण्डी छाँह !
छोड़कर साफ़ खुले मैदान
गली की खाक रहा है छान !
ओट में होता, चलते जिधर
ढूँढ़ती दृष्टि - किरन के बान !

काठ की हाँड़ी नीचे आग !
दोस्त औ' दुश्मन की पहिचान !
आज यह निकला करने कौन !

फूँक कर रखता है हर पाँव,
चरण-चिह्नों को देता मिटा !
झांकने को जो उठते भाव
उन्हें बरबस देता है बिठा !
न कोई ऐसा रहे निशान,
कि जिससे लें दुश्मन पहिचान !
गुफा में जब वह जाकर छिपा,
दिया मकड़ी ने जाला तान !
कौन किसका होता मेहमान ?
दोस्त कितने बनते अनजान !
आज यह निकला करते कौन !

कभी जब धधक उठी थी आग
फैल सब तरफ़ गया था धुआँ !
राख में छिपी हुई सी आग,
खँडर से ढँका हुआ सा कुआँ !
धूल में छिपी कनी की खान,
जौहरी को ही है पहिचान
छिपा गुदड़ी में मैली एक
बचा फिरता हीरा अनजान !
कौन कर सकता यह अनुमान
कि मैले भेष छिपे भगवान ?
आज यह निकला करने कौन !

जला बुझते दीपक से दीप,
ओट में अंचल - पट के छिपा,
थपेड़ों से आँधी के आज
बचाता फिरता है वह दिया !
एक जंगल है बीयाबान,
अँधेरी रात और तूफान
बनाई थी जो उसने कुटी
कहां वह जीने का सामान ?
आज वह जान गया है खूब,
दोस्त औ' दुश्मन की पहिचान,
परखने जो कल निकला स्वयं
दोस्त औ' दुश्मन की पहिचान !
आज यह निकला करने कौन !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गांधी-साहित्य के लिये एक योजना

श्री सिद्धराज ढड्ढा

आगामी गांधी जयन्ती के मौक़े पर हिन्दी संसार का ध्यान मैं एक महत्वपूर्ण विषय की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ।

गांधी जी की विचार धारा से हम सहमत हों या असहमत, यह तो निर्विवाद है कि समाज शास्त्र के क्षेत्र में—समाज की रचना किन तत्वों पर, किन उसूलों की बुनियाद पर क़ायम हो, सामाजिक व्यवस्था का क्या रूप हो, इस बारे में—गांधी जी ने दुनिया के सामने एक नया दृष्टिकोण रक्खा है। उनका बतलाया हुआ रास्ता चाहे कितना ही पुराना या सनातन क्यों न हो, पर शायद इसीलिये आज की दुनिया को जो सवाल परेशान कर रहे हैं उनके बारे में उन्होंने हमें एक ऐसे नुक्ते-नजर से सोचने को मजबूर किया है जो आज की हमारी सब प्रचलित धारणाओं और मूल्यों के खिलाफ़ है। हमें वह रास्ता पसन्द हो या नापसन्द, हम उस पर चल सकने की ताक़त और हिम्मत अपने में पाते हों या न पाते हों, पर यह तो मानी हुई बात है कि आने वाली पीढ़ियों और सदियों में उस रास्ते की चर्चा काफ़ी होगी और 'नई दुनिया' की रचना में उस विचार धारा का काफ़ी ऊँचा स्थान रहेगा।

गांधी जी ने अपनी इस नई दृष्टि को पिछले चालीस-पचास बरसों में ज्यादातर फुटकर लेखों के रूप में जनता के सामने रक्खा है। इतना ही नहीं, पर जैसा हर युग प्रवर्त्तक के बारे में होता है, उनकी हर बात में—चाहे वह पत्र व्यवहार के रूप में हो, प्रवचनों वा भाषणों के रूप में हो, सन्देश वक्तव्य आदि के रूप में हो, प्रश्नोत्तर के रूप में हो या बातचीत के रूप में ही हो—हरएक में उस नए रास्ते की कुछ न कुछ झलक मौजूद है, हरएक में युग परिवर्तन की सूचना और उसके लिये सन्देश है। इसलिये यह जरूरी है कि गांधी जी द्वारा इस प्रकार निर्मित किया हुआ सम्पूर्ण साहित्य एक सिलसिलेवार पुस्तकमाला के रूप में प्रकाशित और उपलब्ध हो जिससे न सिर्फ़ साधारण लोगों तक गांधी जी का युगान्तरकारी सन्देश आसानी से पहुँच सके बल्कि समाज शास्त्र के विषयों का गम्भीर अध्ययन करने वाले पंडितों और विशेषज्ञों को भी उनके सब विचार एक जगह एक ही सिलसिले में मिल जाँय।

यों तो गांधी जी के लेखों के कुछ फुटकर संकलन, खासकर अङ्गरेज़ी में, समय समय पर कितनी ही जगहों से निकले हैं। अलग अलग विषयों पर उनके विचारों के कुछ संग्रह हाल में छपे हैं। पर अभी तक एक भी ऐसी सिलसिलेवार पुस्तकमाला नहीं निकली है जिसके बारे में अधिकारपूर्वक यह कहा जा सके कि उसमें गांधी जी की सारी रचनाएँ या एक ही विषय पर अब तक उनके द्वारा कही हुई सब बातें एक जगह—एक ही माला ( Series ) में उपलब्ध हैं। इस तरह की पुस्तकमाला की बात तो दूर, हिन्दी में तो गांधी जी के लेखों के अधिकारपूर्ण फुटकर संग्रह भी बहुत कम हैं।

इस प्रकार की पुस्तकमाला की ज़रूरत और उसकी उपयोगिता के बारे में तो कोई शंका शायद नहीं की जा सकती। पर इस बारे में दो बातें महत्व की हैं। पहली बात तो यह है कि इस प्रकार की जो भी पुस्तकमाला निकले उसकी प्रामाणिकता के बारे में पूरा ख़याल रखा जाना चाहिये और जनता को इस प्रकार की प्रामाणिकता का भरोसा होना चाहिये। दुर्भाग्यवश पुस्तक प्रकाशन का काम भी आजकल एक साधारण दर्जे के व्यापारों की कोटि में आ गया है और कितने ही अविवेकी प्रकाशकों ने गांधी जी की रचनाओं की बढ़ती हुई मांग का नाजायज़ फायदा उठाकर केवल पैसा कमाने की गरज़ से उनके लेखों आदि के ऐसे संग्रह और अनुवाद छापे हैं जिनमें गांधी जी के शब्दों और भावों का उद्धरण या अनुवाद सही न होने से अर्थ का अनर्थ हुआ है। इस तरह के अप्रामाणिक प्रकाशन ख़ासकर गांधी जी जैसे व्यक्ति की रचनाओं के जिनसे लाखों आदमी प्रेरणा लेते हैं—कितने ख़तरनाक साबित हो सकते हैं यह तो साफ़ ज़ाहिर है। शुरू शुरू में गांधी जी के लेखों का 'कापीराइट' न होने से भी प्रकाशकों को इस प्रकार के अनधिकृत प्रकाशनों को छापने और बेचने का मौक़ा आसानी से मिल गया। अब तो नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद के पास गांधीजी के लेखों का सर्वाधिकार आ जाने से इस प्रकार की सम्भावना कुछ कम हो गई है। प्रामाणिकता की दृष्टि से यह ज़रूरी है कि जो पुस्तकमाला निकले उसके सम्पादन में न सिर्फ अंग्रेज़ी और गुजराती के अच्छे जानकर हिन्दी के विद्वानों का, बल्कि गांधी जी के निकट रहनेवाले कुछ अधिकारी व्यक्तियों का भी सहयोग हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


दूसरी महत्व की बात इस प्रस्तावित पुस्तकमाला के सम्बन्ध में इसकी पूर्णता की है। जैसा ऊपर बतलाया गया है गाँधी जी के लेखों और रचनाओं के फुटकर संग्रह तो बहुत से हैं, पर एक पुस्तकमाला ऐसी होनी चाहिये जिसके बाहर उनकी कोई कृति न रह जाय। किसी भी व्यक्ति को गांधी जी के विचार जानने के लिये इस माला से बाहर किसी पुस्तक या सामग्री की खोज न करनी पड़े। इस तरह का आश्वासन समाज शास्त्र के गम्भीर विद्यार्थियों के लिए बहुत महत्व का होगा। अतः गांधीजी द्वारा अब तक निर्मित, और आगे निर्माण होनेवाला सम्पूर्ण साहित्य एक ही माला में प्रकाशित हो यह ज़रूरी है। इसके लिये माला में गांधीजी की रचनाएँ रचनाकाल के क्रम से प्रकाशित हों और भविष्य की रचनाएँ भी इस शृङ्खला में जुड़ती रहें। किसी अमुक विषय पर गांधीजी के विचारों को जानने की सहूलियत के लिये माला में ही माला की सब पुस्तकों की एक विषयानुक्रमणिका की जिल्द भी हो और एक जिल्द ऐसी हो जिसमें गांधी जी तथा उनकी विचार धारा के सम्बन्ध के, जहां तक हो सके सारे साहित्य की सूची, मय उसके मिलने के पतों के रहे।

ऊपर की बातों को ध्यान में रखते हुए हिन्दी में गांधी साहित्य माला की एक योजना नीचे दी जा रही है। मैं इस सम्बन्ध में कुछ नम्र प्रयत्न कर रहा हूँ और विद्वानों से प्रार्थना है कि वे इस विषय में अपने जो सुझाव व सूचनायें हों वह मुझे भेजने की कृपा करें।

## गांधी साहित्य माला का रूप

'माला' में नीचे लिखे क्रम से गांधीजी द्वारा निर्मित साहित्य का प्रकाशन किया जाय :—

(१) गांधीजी द्वारा लिखी हुई पुस्तकें (या पुस्तक रूप में लिखे हुए लेख)।

—जैसे 'हिन्द-स्वराज्य', 'आत्म कथा' आदि।

(२) 'इण्डियन ओपीनियन', 'यंग इण्डिया,' 'हरिजन' आदि पत्रों में प्रकाशित गांधीजी के लेख।

(३) गाँधी जी के भाषणों का संग्रह।

(४) उपरोक्त पत्रों में तथा अन्य समाचार पत्रों में (प्रामाणिक रूप में) प्रकाशित गांधीजी द्वारा दी गई 'मुलाक़ातों' (Interviews) और बयानों (Statements) का संग्रह।

(५) उपरोक्त पत्रों में छपे हुए 'प्रश्नोत्तर' का संग्रह।

(६) गांधीजी का पत्र व्यवहार—

(क) सार्वजनिक और राजनैतिक,

(ख) व्यक्तियों से—व्यक्तिगत पत्र व्यवहार जितना प्रामाणिक उपलब्ध हो सके।

(७) गांधी जी के साथियों और सहयोगियों (जैसे, एन्ड्रयूज़, केलनबाश, महादेव भाई वगैरह) के द्वारा लिखी हुई पुस्तकों और लेखों में गांधी जी के साथ की प्रामाणिक बातचीत वग़ैरा के उल्लेखों का संग्रह।

(८) उपरोक्त आधार पर गांधी जी के जीवन सम्बन्धी अन्य प्रसङ्गों का संग्रह।

(९) उपरोक्त सम्पूर्ण साहित्य की ब्यौरेवार विषयानुक्रमणिका।

(१०) गांधी जी और उनकी विचारधारा के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न भाषाओं में लिखी हुई प्रामाणिक पुस्तकों और लेखों आदि की यथासम्भव व्यापक सूची।

उपरोक्त माला के सभी वर्ग 'समयानुक्रम' से होने से गांधी जी की न केवल अब तक की प्रकाशित रचनाएं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की रचनाएं भी इसी शृङ्खला में जुड़ती रहेंगी।

इस योजना के सिलसिले में जो सामग्री—पुस्तकें, अखबारों की फाइलें, गांधी जी के पत्र आदि—इकट्ठी हो उसे केन्द्र (nucleus) बनाकर एक स्थायी 'गांधी संग्रहालय' का रूप दिया जा सकता है। इस प्रकार के संग्रहालय के साथ 'गांधी साहित्य व समाज शास्त्र' का अच्छा पुस्तकालय जोड़कर एक उपयोगी अध्ययन और अनुशीलन केन्द्र (Research Institute) बनाया जा सकता है। इस केन्द्र से अन्य महत्वपूर्ण साहित्य भी, जैसे गांधी जी की प्रामाणिक जीवनी, उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों के इतिहास की प्रगति, तथा अलग अलग विषयों पर गांधी विचारधारा के आधार पर उपयोगी किताबें आदि को प्रकाशित किया जा सकता है।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सेवाग्राम में एक क्रांतिकारी विवाह

प्रो० श्रीनारायण अग्रवाल एम० ए०, बी० काम०

१९ अगस्त की बात है। बरसात की सुहावनी सुबह चारों तरफ मनोहारिणी हरियाली। खेतों में ज्वार, अरहर और कपास के पौधे लहरा रहे थे। नीला आकाश बादलों से साफ़ था। मन्द मन्द सुगन्धित वायु परमार्थी की तरह परिश्रम जनों को स्फूर्ति और उत्साह प्रदान कर रही थी; मानो सेवाग्राम की सात्विक प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर उसने सेवा भाव अंगीकृत किया हो। ऐसे ही शुभ समय में, प्रकृति के मधुर हास्य और संपूर्ण सहयोग में, छोटे छोटे तितलियों से उछलते, कूदते, किलकते बालकों की हँसी खुशी में, विश्ववन्द्य बापू की उपस्थिति में और उन्हीं के वरद् हस्तों द्वारा एक क्रांतिकारी एवं आदर्श विवाह संपन्न हुआ।

रूढ़ियों को तोड़कर क्रांतिकारी बापू ने कई दृष्टियों से इस सम्बन्ध को नवीनता दी। गुरु और पुरोहित का स्थान हरिजन को दिया गया। आँध्र के श्री प्रभाकर ने (जो एक हरिजन बन्धु हैं) पुरोहित का पार्ट अदा किया। यह ब्राह्मणत्व और अस्पृश्यता दोनों पर एक साथ ही सीधा हमला था। आज तक जिस क्षेत्र में नामधारी ऊँची जाति का एकाधिपत्य था वह उनसे छीनकर दलितों को समर्पण किया गया। आज तक जिनको हम दूर दूर करते आये, अस्पृश्य और दलित मानते आये, उसी समाज के एक व्यक्ति को यह अधिकार देकर बापू ने छुआछूत के मूल में ही आघात किया। जिन युवक युवतियों का सम्बन्ध हरिजन पंडित द्वारा हुआ है वे हरिजनों को निम्न कोटि का कभी भी न मानेंगे। जैसे जैसे ये घटनाएं अधिकाधिक संख्या में घटित होंगी वैसे ही वैसे हरिजनों को हिन्दू समाज में बराबरी का दर्जा मिलता जायेगा और निकट भविष्य में ही छुआछूत का काला धब्बा हमारे दिलों और दिमाग़ों से धुल जाएगा।

दूसरी बात है स्त्री और पुरुष में बराबरी का व्यवहार। आज भी, चाहे वह शिक्षित समाज ही क्यों न हो, स्त्री को पुरुष की दासी माना गया है। उसे कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिया जाता, उसकी कोई अलग हस्ती नहीं मानी जाती। कहने के लिए वह सहधर्मिणी, अर्धाङ्गिनी है; परन्तु व्यवहार में उसके साथ विशेष सम्मानपूर्ण बर्ताव नहीं होता। उपरोक्त सम्बन्ध में वर ने संकल्प किया है कि वधू की स्वतंत्रता और अधिकारों का वह हामी है और उनका हमेशा आदर करेगा।

आज की हमारी हालत चिन्ताजनक है। किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कितने प्रयास की ज़रूरत होती है, कितने त्याग और बलिदान की आवश्यकता है, इसकी हमें कल्पना भी नहीं। वर्तमान युद्ध में प्रदर्शित अन्य राष्ट्रों की क़ुरबानी से हम जरूर कुछ कुछ प्रभावित हुये से मालूम देते हैं। इसको अधिक गम्भीरता से महसूस करने की आवश्यकता है। अतः बापू ने ऐलान किया कि हमारा विवाह सम्बन्ध भी सामाजिक या राष्ट्रीय कल्याण को मद्देनजर रखकर हो। विवाह भोग का लायेंसस नहीं बल्कि सेवा की साधना है। एक के बजाय दो मिलकर सेवा और बलिदान अधिक प्रभावोत्पादक ढंग से कर सकते हैं। अतः विवाह वांछनीय है। यदि विवाह इसमें सहायक नहीं तो वह असफल है, प्रगति के मार्ग में रोड़े के समान है। बापू के मुताबिक़ भारत में आज ग़ुलाम संतानों की उत्पत्ति की आवश्यकता नहीं। अतएव प्रत्येक वरवधू को पूर्ण ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेनी चाहिये और इस तरह से संग्रहित शारीरिक और मानसिक शक्तियों को देशोत्थान में लगाना चाहिये। वे चाहते हैं कि यह विचारधारा सारे राष्ट्र को ओत प्रोत कर दे।

चौथी बात थी संस्कृत की जगह हिन्दुस्तानी में सारी कार्रवाई। आज संस्कृत को कितने लोग समझते हैं? संस्कृत के श्लोक महज़ एक रस्म अदाई है। उनका अर्थ समझनेवाले अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। अतः आवश्यकता है आम लोगों की ज़बान में, साधारण लोगों की भाषा में कार्य करने की, ताकि उसे अच्छी तरह समझ कर लोग उस पर अमल कर सकें।

पुरानी सप्तपदी को भी तिलांजलि दे दी गई। उसकी जगह नवीन वातावरण एवं नूतन परिस्थितियों की माँग का ध्यान रखकर निम्न दस प्रश्नों को स्थान दिया गया है—

(१) क्या शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से तुम अपने आपको विवाह के सर्वथा योग्य समझते हो?

(२) क्या तुमने सात यज्ञ किये हैं? (गो पूजा, जल-पूजा आदि)



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(३) क्या तुम मानते हो कि विवाह सिर्फ भोग वृत्तियों को तृप्त करने के लिए ही नहीं है ?

( ४ ) क्या तुम विवाहित जीवन में 'धर्म भाव' "त्याग भाव" और "सेवा भाव" से प्रवेश कर रहे हो ?

( ५ ) इसलिए क्या तुम प्रतिज्ञा करते हो कि सेवा के मिशन में एक दूसरे के मार्ग में बाधक न होकर, मन, वचन, कार्य से एक दूसरे के सहायक होगे ?

( ६ ) जब तक हिन्दुस्तान स्वतन्त्र नहीं हो जाता तब तक क्या तुम प्रजोत्पादन न करने का सचाई से प्रयास करोगे ?

( ७ ) क्या तुम तथा-कथित अछूतों के साथ भोजन और विवाह में विश्वास रखते हो ?

( ८ ) स्त्री और पुरुष की समता में क्या तुम विश्वास रखते हो ?

( ९ ) मालिक और दास की भावना त्यागकर मित्रवत् व्यवहार में क्या तुम्हारा विश्वास है ?

( १० ) क्या तुम मानते हो कि "सप्तपदी" की जगह सप्तयज्ञों ने ले ली है ?

युगल जोड़ी से सन्तोषप्रद उत्तर पाकर बापू ने कहा, "अपने हाथ से कते सूत से मैं तुम दोनों को इस बन्धन में बाँध रहा हूँ। तुम इस माला को पूरी सावधानी से रखना। याद रखो कि तुम अपना वादा कभी न तोड़ोगे। भविष्य में ईश्वर से प्रार्थना करते रहना कि वह तुम्हें इन संकल्पों को निबाहने में और इन संस्कारों को स्मरण रखने में सहायता और शक्ति प्रदान करे !"

उपस्थित जनता को सम्बोधित कर महात्मा जी ने कहा—"ईश्वर को साक्षी मानकर मैं तेंदुलकर और इन्दुमति का विवाह करवा रहा हूँ। उपस्थित जनसमूह इन्हें इस संकल्प को शुद्ध रखने में और उसे सम्पूर्ण करने में सहायता करे।"

श्री काका कालेलकर एवं सन्त प्रवर आचार्य विनोबा भावे इस अवसर पर महात्मा जी के सहायक थे। बापू आजकल ऐसे किसी विवाह में हिस्सा नहीं लेते जिसमें पुरानी रूढ़ियां और जांत पांत क़ायम हों। परन्तु यह सम्बन्ध बहुत पहले निश्चित हो चुका था और बापू ने इन्हें आश्वासन भी दे दिया था कि वे इनके विवाह को सम्पन्न करेंगे और आशीर्वाद देंगे।

डा० तेंदुलकर पहले साबरमती आश्रम में थे। बाद में जर्मनी जाकर उन्होंने इन्जीनियरिङ्ग में डाक्टरी प्राप्त की और वहीं पर एक प्रसिद्ध पत्र के सहायक सम्पादक हो गये। यहां आने पर सन् १९४० में वे गिरफ्तार कर लिए गये और थोड़े दिनों पहले तक वे सरकार के मेहमान थे। यदि आल इण्डिया एडिटर्स कान्फ्रेंस इस दिशा में प्रयत्न न करती तो शायद अभी बन्धन मुक्त न होते। श्रीमती इन्दुमती कवें विश्वविद्यालय की स्नातिका हैं और जुलूस निकालने के अपराध में १९४२ में एक वर्ष की सज़ा भुगत चुकी हैं।

यह विवाह हर दृष्टि से आदर्श है। विवाह का समारोह स्वर्गीय माता कस्तूर बा की कुटिया में सम्पन्न हुआ। उनकी सूक्ष्म और अदृष्ट आत्मा यह अनोखा दृश्य देखकर खुश हो रही होगी। इस विवाह में उनका मूक सहयोग तो था ही। तब इसके सफल होने में, समयोचित संकल्पों को कार्यान्वित करने में क्या सन्देह है ? क्या आशा की जाय कि अन्य युवक-युवतियां भी इस नूतन विधि का अनुकरण कर क्रांति की धारा को अधिकाधिक बलवान और गतिशील करने में सहयोग देंगे ?

बापू के जीवन में आज असंतोष और बेचैनी का भूचाल आया हुआ है। वे प्रत्येक क्षण चिन्तन में व्यतीत करते हैं। हिन्दू धर्म की समस्त अधार्मिक रूढ़ियां और कुरीतियां निकालना चाहते हैं। उनके अन्दर का मानव उन्हें तीव्रता से झकझोर रहा है। रोम के जलते समय नीरो वीणा बजा सकता था इसीलिए उन्होंने ज़ाहिर किया था कि उनके सामने आमरण उपवासों का तांता बंधा हुआ है। कब और कौन से अन्याय के विरुद्ध वे जेहाद पुकारेंगे और अपने अनुयायियों सहित सर्वस्व को होम देंगे यह अभी अनिश्चित है। इस सम्भावना को टालने का एक ही मार्ग है; और वह है सतर्क होकर उनके मिशन को, उनके ध्येय को एक क़दम और आगे बढ़ाना।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दानी और याचक

[ ख़लील जिब्रान के विचारों पर एक चिन्तन ]

श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय

जीवन में दान देना रिक्तता को आमंत्रित करना नहीं, पूर्ति का स्वागत करना है। दान देने से कंगालियत नहीं होगी अपितु जिसको दान दिया जाता है, तुम अपने में उसकी भी पूर्ति करते हो, दान देकर अधिक धनवान बनते हो। जीवन में त्याग कितनी पवित्रतम एवं प्रेरक वस्तु है। उसका फल तो तुम्हें मिलकर ही रहेगा। दोगे और बदले में दुगना लोगे। रिक्त करोगे और पूर्ति में उससे ज़्यादा लोगे! त्याग का आनन्द मुनाफे में अलग से रहा! यह तिगुना लाभ क्या कुछ कम है? हृदय दान दोगे, उतना ही प्राप्त भी करोगे, देने के त्यागानन्द के साथ। विद्या-दान दोगे, अधिक विकसित होगी, दान का श्रेय भी साथ रहेगा। प्रेम दान दोगे, तुम तो प्रेममय रहोगे ही साथ साथ उसकी भी प्रेम वृत्ति को पा लोगे। परमात्मा की दी हुई चीज़ को वापस कर दोगे—उसका विशाल स्वरूप भी पा लोगे एवं देने की भावना साथ में रहेगी। जीवन में लाभ ही लाभ है। हृदय की विशालता की वृद्धि करने का मौक़ा है। संकुचितता को मेटने की सुसंधि है। समष्टि मय होने का स्वच्छ पथ है। ऊर्ध्वागमन है। विकास की तरफ़ मुड़ना है। यह दान वृत्ति तुममें हो, तुम इस शक्ति को देख सको तो सांसारिक दान वृत्ति भी सहज ही में प्राप्त होगी। असंग्रह वृत्ति, त्याग वृत्ति की वृद्धि होगी, मोह हटेगा। हृदय की विशालता का भास होने पर, समष्टि गत भावना होने पर भौतिक धनादि का दान देना तुम्हारे लिये सहज लाभ होगा, जो मुक्ति की ओर अग्रसर करेगा।

तुम्हें दान दूँ या न दूँ—यह मोह नहीं रहेगा, तुम्हें भय नहीं रहेगा, कि 'दिया तो मुझे क्या बचेगा?' तुम उससे अधिक एवं उच्च वस्तु पा लोगे। क्योंकि तब तुम अपने तक ही सीमित नहीं रहोगे। अपनी व्यष्टि को समष्टिमय करने लगोगे, इसीलिये मोह नहीं होगा। दान-वृत्ति अधिक विकसित होगी। क्षुद्र वस्तु से हटकर उच्चता की राह लोगे। जो क्षुद्र होते हुए भी अधिकाधिक पंजर बद्ध करती है, उसी वस्तु की ओर तुम अक्सर आकृष्ट होते हो। पर यह दान वृत्ति पा लोगे तो फिर तुम्हारा खिंचाव उच्चता की तरफ़ होगा और तुम साथ में ही लाभ में रहोगे!

जिब्रान ने कहा है, सच्चा दान दो! याने जीवन को! संग्रह में से छोड़ देना यह दान थोड़े ही है? यह तो बचाकर चलना है। तब तुम तिगुना पैसा प्राप्त कर सकोगे? अपने लिये रखकर दोगे तो क्या वह सही देना होगा? उस देने से तुम्हें क्या चोट बैठी? तुम्हें क्या देने का आनन्द मिला? तुम्हारी आवश्यकता पूर्ति में कहां कमी पड़ी? वह तो तुम्हें भय संकुचितता, मोह में अधिक लिप्त करेगा साथ साथ जिसको देने का तुम गर्व करते हो, उसे भी पतित करने का मौक़ा लाओगे। वस्तुतः यह देना सही देना नहीं! यह तो स्वांग है, प्रदर्शन है। ढोंग है। तुम कल के लिये रखना चाहते हो! 'कल' तुम्हारे जीवन में आवेगा, इसका तुम्हें भरोसा है? फिर न 'कल' आयगा, न त्याग का आनन्द मिलेगा, न दान का परिणाम मिलेगा मौक़ा चूकने का पछतावा जाएगा।

तुम्हें अभाव का भय है। रिक्तता का डर है! अभाव तो न देने से क़ायम ही रहेगा। तुम केवल एक तरफ़ ही देखते हो! दान देना—वस्तु दान देना यह कोई महत्व पूर्ण नहीं, पर उसके पीछे की मनोवृत्ति जागृत करना, उदार वृत्ति पाना यह महत्वपूर्ण है। यह उदार वृत्ति क्या लाभ नहीं? अभाव की पूर्ति नहीं?

तब तो तुम्हारी तृष्णा सदा क़ायम रहेगी! तुम देना नहीं, लेना चाहोगे। लेना जानोगे पर न तो कुछ प्राप्त करोगे, व्यर्थ की अशांति मोल लोगे!

१—बहुत में से थोड़ा दान देकर कीर्ति एवं प्रशंसा की लालसा रखनेवाले,

२—थोड़े में से सब कुछ देकर कोई भी अपेक्षा न रखने वाले,

३—कुछ देकर पर खुशी से नहीं,

४—सब कुछ देकर न सुख, न दुख, न हर्ष, न शोक न किसी प्रकार की अपेक्षा रखनेवाले—ऐसे चार दानी के प्रकार हैं! सर्व सामान्य पहले से ही अधिक ग्रसित हैं। यह धोखा है, अभाव है—वही सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु क्या वह 'दान' को स्पर्श भी करता है? वह तो दान की विडम्बना है। उससे तो न देना भला!

दूसरे प्रकारवाले सच्चे दानी हैं। वे वस्तुतः 'जीवन-दानी' हैं! जीवन का ही यह दान है? न जाने ऐसा दान देकर वे कितना अधिक प्राप्त कर लेते हैं! क्या यही दया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्वाभाविक एवं आदर्श नहीं है? इन्हें विश्वास है कि दान से वे कहीं अधिक प्राप्त कर लेंगे।

तीसरे एवं पहले में कौन ज्यादा फर्क है? इन्हें लालसा भले ही न हो, पर हर्ष भी तो नहीं! यह तो दुगना पाप है! कष्ट के साथ देना एवं देय को हीन बनाना, उसके प्रति उदारता के भाव को खतम करना यही दुगना पाप है? लालसा न होते हुए भी सुख से नहीं देना, खुशी से दान न करना यह लाचार वृत्ति दोनों को हीन बनाती है! दोनों को हीन बनानेवाला दान किस काम का है? इससे क्या न देना अच्छा नहीं? खुद को अधिक संकुचित एवं दूसरे को हीन बनानेवाला ऐसा दान कितनी भयंकर विडंबना है! इस प्रकार दान करने के बजाय अदानी ही बनना बहुत ठीक है!

चौथा दान निसर्ग-दान है। यह स्थित प्रज्ञ का दान है। प्रकृति जैसा दान लुटाती है, वही यह दान है। प्रकृति जितना लुटाती है, उतना ही प्राप्त करती है—पर प्राप्ति की अपेक्षा से नहीं लुटाती! यह सच्चा, उच्चतम, आदर्श एवं भरपूर करनेवाला दान है! इस प्रकार के दानी में और प्रकृति में कोई फ़र्क़ नहीं! प्रकृति के समान ही दानी पवित्र, शुद्ध, उच्च, उदार और निर्लेप है! उसके पास सिर्फ़ दया ही दान है, और कुछ नहीं।

प्रकृति के समान दान करनेवाला परमात्मा का दूत है। यह दूत बनने का सौभाग्य जिसे प्राप्त हो, वह धन्य है। यह महान आदर्श है। इसे सभी प्राप्त कर सकते हैं, सबको अधिकार है!

संसारी के लिये दान आवश्यक है पर खेद एवं तिरस्कार से देना बुरा है। सब कुछ दे डालना भी सम्भव नहीं। तब, जो कुछ वह दे सकता है, जो कुछ संसारी वस्तु दे सकता है एवं जितना कुछ दे सकता है, निरपेक्ष होकर दे—यही उसकी उज्ज्वलता है, उसकी आत्मा का विकास है। खुशी से प्रसन्न चित्त होकर दे, यही उसको सुख की वस्तु है।

हृदय-दान, प्रेम-दान, विद्या-दान आदि जैसे दान तो सम्पूर्ण देने में ही सच्चा दान है। मनुष्य होने के कारण सिर्फ़ उसी की अपेक्षा करें तो वह स्वाभाविक ही है, पर न करें तो वह सच्चादान है—उच्चतम दान है।

और समष्टि-जीवन की प्राप्ति के लिये समष्टि को सब कुछ अर्पण करना याने परमात्मा की दी हुई वस्तुएँ उसी को अर्पण करने के समान है। यह दान जो कर सके, वह महान है। दान की व्याख्या वहाँ ख़त्म हो जाती है।

दान का केन्द्र बिन्दु है हृदय की विशालता! वस्तुएँ तो साधन मात्र हैं। मूल वस्तु की प्राप्ति हो गई तो सब कुछ प्राप्त हो गया। असीम आकाश के समान, विशाल समुद्र के समान हृदय की विशालता एवं उदारता प्राप्त हो, यही ध्येय क्या ऊँचे से ऊँचा ध्येय नहीं है?

जो मांगे, उसे तो दोगे ही—पर जो मांगना चाहता है पर मुँह से कहता नहीं; जिसे आवश्यकता है पर जो प्रकट करता नहीं, ऐसों को दो, तो वह हार्दिक उदारता को मूर्तिमय बनाने के समान है। जिसे अभाव है, उसको खोज करके उसे देने में अधिक संतोष है, अधिक आनन्द है, एवं यही सच्ची दानवृत्ति है।

और, जीवन में कुछ लेकर आये नहीं, लेकर जाना नहीं, किसी पर अधिकार नहीं, तब सँभालने भर के लिये, उपयोग के लिये जो कुछ मिला है उसे दे क्यों नहीं डालते? शुभस्य शीघ्रम्। थाती है, उसे दे डालो। न मालूम कब चल बसोगे और फिर "पछताए क्या होत है, जब चिड़ियां चुग गईं खेत।"

जीवन के अंत तक तुम्हारी आवश्यकताएं तो रहेंगी ही एवं जीवन है तो उनका रहना भी स्वाभाविक है। आवश्यकता-पूर्ति के पश्चात् जितना कर सको, उतना तो दान करो। पूर्ति न हो तो भी दान करो, तो निर्माता तुम्हें वंचित व दीन नहीं रखेगा। और सांसारिक वस्तुओं के अलावा और भी तो ऐसी अनेक चीज़ें तुम्हारे पास हैं जिनका तुम अविलंब संपूर्ण दान कर दो तो, और वह भी किसी की याचना के बग़ैर, न तो तुम्हारी हानि होगी, और न रिक्तता।

भला किसी को इतना हीन क्यों बनाते हो, कि तुम्हारे पास वह याचना करे? कोई याचना करे ऐसा ही क्यों करते हो? याचना करना हीनता प्राप्त करना है। याचक गर्व से याचना नहीं करता। स्वाभिमान नहीं मानता। याचक में क्षुद्रता का अहसास रहता है, लाचारी रहती है। अभाव के कारण शर्म रहती है। तुम्हारे पास जो है, वह तुम्हारी ही वस्तु नहीं है, तो किसी को हीन दीन लाचार एवं शर्मिन्दा बनाने का तुम्हें क्या अधिकार है। तब यह तुम्हारा सच्चा दान बल्कि दिखावटी दान होगा उससे सच्चा आनन्द, ऊँचे आनन्द नहीं मिलेगा। याचना करने पर देने में तुम सर्व साधारण के से ही माने जाओगे। तुममें विशेषत्व क्या रहा? तुम्हारी अपर प्रवृत्ति का तकाजा है याचक को पहचानकर उसकी याचना के बिना तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अभाव की पूर्ति कर दो। न इसमें सिर्फ़ महत्ता है, अपितु याचक को तुम जीत लोगे। वह तुम्हारा प्यारा बन जायगा, श्रद्धावान बन जायगा, सच्ची मनुष्यता का दर्शन तुममें पायेगा, उसको भी तुम अपने साथ साथ ऊँचा उठा लोगे। क्या तुम्हें अकेले उठने में मज़ा है? नहीं। अपने साथ दूसरों को भी लेकर उठो। दानी के साथ याचक-अभाववान भी उठे, तो वही दान की यथार्थता व महत्ता है। अन्यथा उसमें दया यानी 'घृणा' आ जाने से महत्ता को कलंक लग जायगा। ओह! तुम सुपात्र देखकर दान देना चाहते हो न! और 'सुपात्र' नापने का मापदंड तुम्हारा अपना ही है न! याने तुम दान क्या देते हो, मानो किसी पर उपकार करते हो। इसीलिये कहते हो—पात्र देखूंगा तब दूंगा! इतना भेद! जिसकी चीज़ उसे देने में, महाशक्ति से प्राप्त वस्तु महाशक्ति के एक बन्दे को ही देने में इतना अभिमान! तुम्हारी अपनी ही कोई वस्तु हो तो तुम सातवें आसमान पर चढ़ोगे। तुम्हारा अधिकार ही कितना जो तुम किसी को इतना ही न लेखो! पहले तो तुम देखोगे कि वह मांगता है या नहीं। फिर देखोगे कि यह मांगनेवाला सुपात्र है या नहीं और बाद में मानों बड़ा उपकार का बोझ लादकर तुम उसे दोगे और उपकार जनाओगे। दूसरों को इतना पतित बनाने का तुम्हें क्या अधिकार? वह दान नहीं, पाप है। किसी के भी स्वाभिमान को इस प्रकार धक्का लगाना अपने आपको गिरा देना है। जिसका दान तुम्हें करना है, वह वस्तु न तो तुम्हारी है, न तुम्हारे पास रहेगी। तब अपने को 'दानी' समझकर किसी को इतना पतित बनाने का तुम्हें कोई हक़ नहीं। दान की अपेक्षा रखने वाला, अभावग्रस्त है, यही बहुत बड़ी बात है। अपनी अभाव वेदना बताकर ही उसने स्वाभिमान को संकुचित कर देने की हिम्मत की है। इससे अधिक तुम उसे और कितना ज़लील करोगे? उसने तो तुम पर उपकार ही किया है तुम्हें 'दानी' बनाकर। तुम्हें वह ऋण मुक्त करने आया है? इससे ज़्यादा उसका तुम पर क्या उपकार हो सकता है?

उस प्रकृति की ओर भी तो देखो! वृक्षों ने फल फूल का दान करते समय क्या याचना चाही है? पात्र देखा है? रत्नाकर ने कभी अपेक्षा रखी है कि कोई योग्य हो तो ही दूं! नदियों ने पानी देने से क्या कभी इन्कार किया है? भूमि ने अनाज व कपड़ा देने से क्या अपने को रोका है कि—"नहीं, अपात्र है!" वर्षा ने क्या कभी ऐसा आग्रह किया है? वायु ने क्या कभी तुम्हारी परीक्षा ली है कि तुम कैसे हो? सूर्य-चन्द्र ने क्या कभी तुम्हें इस कसौटी पर कसा है कि तुम कैसे हो? कौन हो? क्यों हो? याचना करते हो या नहीं? और परमात्मा ने कभी चाहा है कि अमुक को जीवन दान दूं—अमुक को न दूँ? तब फिर तुम ही क्यों इतने इठलाते हो? अपने अथाह जीवन का अधिक से अधिक अंश देने में तुम्हें क्यों सङ्कोच होता है? सूर्य, चन्द्र, समुद्र, वृक्ष, पौधे, वायु आदि ने जितना दिया है, क्या वे उसमें नष्ट हो चुके? रिक्त हो चुके? क्या वृक्षों में फिर फूल-फल नहीं आये! नदियाँ क्या ख़ाली हो गयीं? सूर्य चन्द्र क्या अंधेरे में बस गये। प्रकृति का इतना जीता जागता चित्र, इतनी तेजस्वी मिसाल, इतना उच्च आदर्श, इतना स्पष्ट मार्ग प्रदर्शन, इतनी महानता व वास्तविकता देखकर भी क्या तुम सोचोगे कि कौन योग्य-अयोग्य है? कौन याचना करता है? किसको अभाव है? बस देने चलो—बिना देखे, बिना याचना किये, बिना योग्यता परखे और बिना फल की अपेक्षा से देते चलो, इसीमें तुम्हारी और तुम्हारे दान की शोभा है, सार्थकता है? और याचक! तुम हीन-दीन बन कर याचना क्यों करते हो? देनेवाले को इतना महत्व क्यों देते हो? तुममें अभाव है, यह तुम्हारी कमी नहीं; स्वाभाविकता है। उसके लिये तुम्हारे पास कोई चारा नहीं। तुम जिससे लेते हो, वह स्वयं उसकी नहीं, बल्कि वह केवल धरोहर-रक्षक है और तुम जैसों के अभावों की पूर्ति का कार्य-भार उसके सिर पर है। तुम याचना करते हो, इसलिये कि दाता में बिना किसी के कहे मांगे पहचानने की शक्ति नहीं है। तुम योग्यता-अयोग्यता की कसौटी पर इसलिये नहीं कसे जा सकते क्यों कि तुम्हारा अभाव स्वाभाविक है। तुम जो दान लेते हो वह दाता पर उपकार-सा करते हो, क्यों कि उससे कर्तव्य करवाने का श्रेय तुम्हें है! उसे धरोहर हड़प लेने से बचाने का उपकार तुम्हारा है। उसकी सद् प्रवृत्तियों को ऊँचा उठाने में तुम सहायता करते हो! तुम्हारा अभाव, तुम्हारा अपना नहीं, जिसने तुम्हें निर्माण किया उसी ने अभाव को भी निर्माण किया। इसलिए हे याचक! तुम क्यों शर्म के बोझ से दबे से हो? क्यों अपने को दीन हीन मानते हो? ऐसा करके क्या तुम दानी के प्रति अन्याय नहीं करते? क्या दानी के प्रेरक के प्रति अविश्वास नहीं ज़ाहिर करते दानी को अभिमान करने का यानी उसे पतित होने का क्या मौक़ा नहीं देते? क्या ऐसा करके तुम अपने आपको भी अधिक दीन हीन नहीं बना लेते? इसलिये हे याचक! दानी का दान कर्तव्य जान कर लो! शिष्टतावश कृतज्ञ बनो, और उपकार के बोझ से परेशान न हो।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# संस्कृति, कला और धर्म

कुमारी रज़िया नक़ी, रायपुरी

जीवन में एक उद्देश्य होता है और वह भी केवल मनुष्य वर्ग में ही पाया जाता है। पशुओं का एक तो कोई क्रमबद्ध जीवन नहीं होता और यदि इसकी सम्भावना भी हो तो उस जीवन में उद्देश्य का होना तो असम्भव है। जीवन का महालक्ष्य क्या है तथा उसकी पूर्ति किन कार्यों तथा उपकरणों से हो सकती है इसका पता लगाकर उस लक्ष्य की प्राप्ति तथा उद्देश्य की पूर्ति में तन-मन से संलग्न हो जाना ही मानव वर्ग की विशेषता है।

अनन्त कालीन अनुभवों से यह सिद्ध हो चुका है कि जीवन का परम ध्येय ऐहिक तथा पारलौकिक सुख और शान्ति प्राप्त करना है। आत्मा का परिष्कार हुए बिना यह कदापि सम्भव नहीं। धर्म, विज्ञान और सभ्यता की जड़ संस्कृति ही आत्मपरिष्कार की कुंजी तथा उपकरण है। सुसंस्कृत आत्मा "सर्वभूत हितेरतः" रहती है। जीवन में परमानन्द की प्राप्ति संस्कृति के विकास के बिना कदापि सम्भव नहीं। संस्कृति का प्रौढ़तम रूप वह है जिसमें वैमनस्य, विभेद दृष्टि, ईर्षा नष्ट होकर प्रेम और भ्रातृ स्नेह अंकुरित तथा पल्लवित होते हैं। संस्कृति के सरसता सिंचित आंगन में जाति, सम्प्रदाय तथा धर्म के भेद भाव प्रवेश ही नहीं कर पाते।

संस्कृति सभ्यता का न तो दूसरा नाम ही है और न दोनों एक वस्तु ही हैं। संस्कृति सभ्यता की जननी है। उत्तम संस्कृति से उत्तम सभ्यता उत्पन्न होती है। संस्कृति यदि आत्मा की शृङ्गार है तो सभ्यता लौकिक व्यवहार। संस्कृति में विकृति न होने पर भी सभ्यता में विकृति हो सकती है, क्योंकि सभ्यता वाह्याचरण है। जननी जननी ही रहती है सन्तति भले ही कुसन्तति हो जावे। अतः संस्कृति की रक्षा अपेक्षणीय है और इससे सभ्यता की रक्षा स्वाभाविक तथा अनिवार्य हो जाती है। यद्यपि संस्कृति की ही रक्षा तथा परिष्कार आवश्यक है और सभ्यता की रक्षा अपने आप हो जाती है तथापि सभ्यता की उपेक्षा कदापि वांछनीय नहीं। सभ्यता या वाह्य आचरण की रक्षा भी संस्कृति के निर्माण में हाथ बँटाती है। विशेषतः कला का विकास संस्कृति को विकसित करता है। कला संस्कृति को अग्रसर करती है और स्वयं संस्कृति के द्वारा अग्रसर होती है।

कला की परिभाषा कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव है। कला की परिभाषा की उलझन में न फँसकर कलाकार तथा कला की वस्तुओं पर विचार करने से ही इष्ट उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। यह स्पष्ट हो जाता है कि कला तथा संस्कृति एक दूसरे के परिपूरक हैं। सर्वोत्तम भावनाओं को सर्व सुन्दर स्वरूप में प्रकट करना ही कला है। सदाचरण की प्रवृत्ति, धृति, क्षमा, शान्ति, स्नेह ही उच्च भाव हैं जो एक ओर तो संस्कृति के मूल में व्याप्त हैं और दूसरी ओर सौंदर्य के सम्मिश्रण से प्रकट होकर कला का निर्माण करते हैं। संस्कृति की ये मूल भावनाएं जितनी ही प्रबल होती हैं कला का विकास उतना ही अधिक होता है और कला की उत्तरोत्तर उन्नति होने से संस्कृति नित्य प्रति पुष्ट तथा विकसित होती है।

कला के उपासकों की दो श्रेणियाँ हैं। एक वर्ग के कला प्रेमी कलाकार होते हैं। ये बनाये नहीं जा सकते, उत्पन्न होते हैं। दूसरे वर्ग के व्यक्ति कला मर्मज्ञ होते हैं जो कला की परख कर उसे प्रोत्साहन देते हैं। कलाकारों की जितनी आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता कला पारखियों की भी है। कलाकारों तथा कला मर्मज्ञों से सकुंलित होने पर ही समाज में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की स्थापना होती है। भर्तृहरिजी ने "साहित्य संगीत कला विहीनं साक्षात पशु नर पुच्छ विषाण हीनं" कहकर समाज के सुसभ्य प्राणियों को कलाप्रिय तथा कला मर्मज्ञ होने की ओर इंगित किया है। कलाकार का निर्माण इस प्रकार के संकेत द्वारा असम्भव है तो ऐसे इंगितों के द्वारा कला प्रिय, सौजन्य पूर्ण हृदय निर्मित कर देना कहीं अधिक सरल है।

कला का संकुचित स्वरूप संस्कृति का प्रसार सीमित कर देता है। कला की व्यापकता में ही संस्कृति की प्रभात रश्मियाँ प्रस्फुटित होकर जीवन को सार्थक कर देती हैं। कला के व्याप्त मंडल के अन्तर्गत साहित्य, संगीत, सदाचरण, धर्म, वास्तु, स्थापत्य, चित्र, शिल्प, काव्य सन्निहित हैं। कला के इन सम्पूर्ण स्वरूपों की सर्वाङ्ग उन्नति ही संस्कृति का निखरा हुआ स्वरूप है। कला का प्रयोजन ही संस्कृति तथा सौजन्य का परिष्कार करना है। जिस देश में कला की सर्वाङ्ग उन्नति हुई वही देश ब्रह्मांड में सर्वोत्तम, श्रेष्ठ तथा सर्वपूज्य रहा है। विक्रमादित्य तथा कालिदास की छत्रछाया में कला तथा संस्कृति ने जो महानता प्राप्त की उसीने पतनोन्मुख भारत में ऐक्य की प्रखर धारा प्रवाहित की। प्रत्येक धर्म के मूल में धर्म की भित्ति—संस्कृति समान रूप से बिद्यमान है। संस्कृति की उन्नति से सांस्कृतिक ऐक्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साधना सहज ही में हो जाती है।

कला प्रियता समभाव से प्रत्येक प्राणी में स्फुरणा पाती है। धर्म कला के सौन्दर्य का परमोज्ज्वल और निखरा हुआ स्वरूप है। संस्कृति मूलक होने से सब धर्मों का मूल तत्व एक है इसीलिये सांस्कृतिक तथा कलात्मक प्रसार से वैमनस्य का मूलोच्छेदन सहज है। ऐक्य का सरलतम स्वरूप इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? भारतीय कला के अन्तर्गत जिस प्रकार हिन्दू कला तथा मुगल कालीन कला दुग्ध जलवत एकाकार हो गई हैं उसी प्रकार कुरान तथा पुराण में पल्लवित, पुष्पित तथा फलित होने वाली महान संस्कृति तथा कला में एकाकार हो जाने के लिये उदारतापूर्वक दोनों का अध्ययन, प्रचार तथा व्यवहार नितान्त आवश्यक है। जो कार्य राजनीति के पेचीदे मस्तिष्क युग युगान्तर तक भी कर सकने में निरी असमर्थता का ही अनुभव करते रहेंगे वही महान कार्य सम्पन्न कर डालना कला तथा संस्कृति के लिये न तो असम्भव ही है और न कठिन ही।

जीवन की सार्थकता संस्कृति के प्रस्फुटन में है। और संस्कृति का विकास कला की सर्वव्यापिनी समुन्नति में है। क्यों न हम कला की कठिन साधना से सुसंस्कृत आत्मा का निर्माण कर जीवन में शान्ति, ऐक्य तथा सरलता की निर्मल धारा प्रवाहित कर दें!

# सुभाष !

श्री नर्मदा प्रसाद अग्रवाल

करती जननी पुकार—
मेरे इस भूतल का
तू था उज्ज्वल प्रकाश
कहाँ गया तू सुभाष !
चिन्ता थी तेरी जब
तेरे देश बन्धुओं को
होगा अब क्या तेरा ?
दुश्मन सब कहते हैं
'तू था बाग़ी सुभाष'
तेरी आज़ाद हिन्द सेना वह
जिसका तू सेनानी
प्राणों की बाज़ी ले
तेरे हर इङ्गित पर लड़ती थी;
अपनी आज़ादी पर
जीवन-बलि करती थी
किन्तु स्वप्न भङ्ग हुआ।
जीवन से असमय में रूठ तू
चला गया निर्मम सा बिखराकर
अपनी चिर उमङ्गों को
कर निराश !
याद तुझे करता है
आज यहां जन जन
मातृ-भूमि भारत का
अणु-अणु, कण-कण
रहरह कर उठता है स्पन्दन विद्रोह का
चिर विद्रोही सुभाष !
तेरा प्रण था प्रलय
तेरी ही वाणी वह वीरों के प्राणों को
करती थी स्थिर अभय
युग का वरदानी तू चला गया
साहस भी किसमें था
तुझको जो रोकता ?
किन्तु आज जननी को दुःख यही—
आता यदि एक बार
हाँ, हाँ, बस एक बार
अपने ही नयनों से
तेरा उत्सर्ग महल
देख यदि पाती वह
जननी स्नेहाश्रु भर
गर्वित हो रख लेती
पुत्र की समाधि को
अपने वक्षस्थल पर।
रच रचकर कुछ पत्थर।
वे पत्थर ढाढ़स-सा बंधाते जो
जननी जन्मभूमि को
कष्टों की बेला में।
आया नहीं तू निठुर अन्तिम विदा लेने भी
कहाँ गया तू सुभाष !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



# दोस्ती !

श्री राममूर्ति मेहरोत्रा एम० ए०, बी० एड०

( दृश्य पहला )

[ चित्तौड़ हाथ से निकल जाने पर जंगल में चित्तौड़ महिषी गुणवती और राजकुमारी चम्पा आपस में बातें कर रही हैं ]

चम्पा—माँ ! क्या आज खाना नहीं बनेगा ?

गुणवती—बनेगा बेटी, अवश्य बनेगा ।

चम्पा—तो कब बनेगा ?

गुणवती—बेटी ! आज तो एकादशी है ।

चम्पा—एकादशी ! एकादशी को क्या होता है ?

गुणवती—बेटी, एकादशी को व्रत रक्खा जाता है ।

चम्पा—व्रत से क्या होता है ?

गुणवती—व्रत रखने से भगवान प्रसन्न होता है ।

चम्पा—न खाने से !

गुणवती—हाँ ।

चम्पा—परन्तु मैंने तो कई दिन से कुछ नहीं खाया फिर भी भगवान प्रसन्न नहीं हुआ !

गुणवती—यह तूने कैसे जाना ?

चम्पा—माँ, जब तुम प्रसन्न होती हो, तो जंगल के फल-फूल देती हो, भगवान प्रसन्न होता, तो क्या सूखी रोटी भी न देता ? ला मां, खाना दे, मुझे बड़ी भूख लगी है। अब मुझसे नहीं रहा जाता ।

गुणवती—कहां से दूं बेटी ? ( दिल भर आता है और रोने लगती है ) ।

चम्पा—माँ रोती क्यों है ?

गुणवती—कहाँ बेटी ।

[ इसी समय राणा प्रतापसिंह आते हैं ]

प्रताप—क्यों देवी, क्या है ?

गुणवती—कुछ नहीं स्वामी ।

प्रताप—आग नहीं, धुआँ नहीं, आखिर रोती क्यों हो ?

गुणवती—रोना तो यही है कि घर में धुआं नहीं है। बच्ची भूख से तड़प रही है और घर में एक दाना तक नहीं है ।

चम्पा—पिता जी ! भूख के मारे दम निकला जा रहा है। ( रोती है ) ।

प्रताप—ओह ! भगवान को यह दिन भी दिखाना था। अच्छा ठहरो मैं अभी कुछ प्रबंध करता हूँ। ( जाते हैं ) ।

[ थोड़ी देर बाद घास के बीज लेकर आते हैं ]

प्रताप—लो महारानी (घास के बीज हाथ में देते हुए)।

गुणवती—महाराज, यह तो घास के बीज हैं।

प्रताप—आज इन्हीं से काम चलाओ।

गुणवती - यह भी तो बहुत थोड़े हैं।

प्रताप—बच्ची को एक दो रोटी बनाकर दे दो। हम लोग आज की रात यों ही रह जायेंगे।

[ रानी थोड़ी देर के बाद रोटी बनाकर लाती है और लड़की को देती है ]

गुणवती—ले बेटी, खा।

चम्पा—माँ, पानी तो दे।

गुणवती—अभी लाती हूँ बेटी। (पानी लेने जाती है। इतने में एक बन बिलाव उसकी रोटी छीन ले जाता है।)

चम्पा—( चिल्लाकर ) पिता जी, बिल्ली रोटी ले गई ( रोती है ) ।

प्रताप—( ठंडी सांस भरकर ) हाय रे दुर्भाग्य। तुझ से बच्चे की घास की रोटी खाना भी न देखा गया।

( दृश्य दूसरा )

[ कुछ वर्ष पश्चात, चट्टान पर चम्पा और उसका छोटा भाई बैठे हैं। बहिन कहानी कहकर भाई की भूख टाल रही है ]

चम्पा—एक राजा था।

अमर—हाँ।

चम्पा—वह एक बार यात्रा करने गया।

अमर—हाँ

चम्पा—जब चलते चलते थक गया,

अमर—तो !

चम्पा—तो उसे बड़ी जोर की भूख लगी।

अमर—फिर क्या हुआ !

चम्पा—उसके पास एक रोटी थी।

अमर—तो फिर ?

चम्पा—जैसे ही उसने रोटी निकाली एक कौवा आया और उसकी रोटी लेकर उड़ गया।

अमर—तो फिर राजा भूखा रह गया और रोने लगा।

चम्पा—नहीं, तुम बड़े मूर्ख हो, कहीं कोई खाने के लिए भी रोता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


अमर—और जब भूख लगे तो ?

चम्पा—धैर्य्य से काम लेना चाहिए।

अमर—मुझे तो भूख लग रही है। (रोने लगता है)

चम्पा—(दिल भर आता है और भाई को छाती से लगा लेती है) भाई रो नहीं, भगवान खाना भी देगा।

[ दृश्य तीसरा ]

[ महाराणा प्रताप और महारानी गुणवती उदास बैठे हुये बातें कर रहे हैं ]

प्रताप—मैं महाराजा हूँ और एक आदमी को खाना नहीं खिला सकता। आज जीवन में पहला दिन है कि फ़क़ीर मेरे द्वार से भूखा जायगा। हाय रे दुर्भाग्य !

गुणवती-स्वामी ! इतने दुखी मत हो। सदा दिन किसी के भी एक से नहीं रहते। भगवान यह दिन भी काट देगा।

प्रताप—देवी, राज गया, परवाह नहीं, घर छूटा, सह लिया, मैं भूखा रहूं चिन्ता नहीं, परन्तु फ़क़ीर का भूखे लौटना मुझसे नहीं देखा जायगा। हे भगवन् ! जब वह घूमकर इधर आयगा, तो मैं उसे क्या खिलाऊंगा ?

चम्पा—( आकर ) पिता जी, उठिए। आप इसकी चिन्ता न कीजिए, उसको खाना मैं खिलाऊंगी।

प्रताप—तुम !

चम्पा—हाँ मैं !

प्रताप—कैसे ? तुम खाना कहाँ से लाओगी ?

चम्पा—पिता जी, मैं अभी लाती हूं। ( वह बाहर जाती है और थोड़ी देर बाद दो रोटियां लेकर लौटती है )

प्रताप—बेटी, तू रोटियां कहां से लाई ?

चम्पा—पिता जी ये मेरे हिस्से की रोटियां हैं, मुझे भूख नहीं है, मैं नहीं खाऊँगी। ये फ़क़ीर को खिलाऊँगी।

प्रताप—शाबाश बेटी ! तू क्षत्रिय कुल की नाक है। (उसे छाती से लगा लेता है फिर उसी समय किसी आवश्यक कार्य से बाहर चला जाता है।)

[ दृश्य चौथा ]

(गेरुआ कपड़े पहने हुए फ़क़ीर के वेश में अकबर आता है)

फ़क़ीर—जो दे उसका भी भला, न दे उसका भी भला, कोई भूखे फ़क़ीर की भी खबर लेगा ?

चम्पा—बाबा जी, इधर आओ।

फ़क़ीर—अच्छा बच्चा।

चम्पा—बाबा जी, तुम भूखे हो ?

फ़क़ीर—हां बेटी, तीन दिन से मुँह में दाना तक नहीं गया।

चम्पा—तीन दिन से !



फ़क़ीर—हां बेटी।

चम्पा—अच्छा तो लो, यह लो ( दोनों रोटियां दे देती है )।

फ़क़ीर—जुग जुग जियो, भगवान तुम्हारा भला करे।

चम्पा—बाबा जी, हम बड़े गरीब हैं, नहीं तो तुमको घास फूस की रोटी न खानी पड़ती।

फ़क़ीर—नहीं बेटी, भूख में गूलर भी पकवान होते हैं ( जाता है )

[ दृश्य पांचवां ]

( आधी रात का समय—प्रताप और रानी बैठे हैं बच्चे लेटे हैं )

प्रताप—बादशाह ने लिखा है, 'मुझे तुम्हारे बच्चों की हालत देखकर बहुत तरस आया। मैं तुम्हें इससे अधिक तकलीफ देना नहीं चाहता। तुम मुझ से मेल कर लो और जहां चाहे वहां जाकर रहो।' लेकिन बादशाह ने बच्चों को कहां देखा ?

[ इतने में पत्तों की खड़खड़ाहट की आवाज होती है ]

प्रताप—( चौंककर ) कौन ?

गुणवती—कोई नहीं हवा से पत्ते हिले होंगे।

चम्पा—( सहसा आंखें खोलकर ) पिता जी, आप बादशाह की बातों में न आइए। जान जाय तो जाय पर आन न जाने पाए। हमको सुख नहीं चाहिए। आप भूल कर भी बादशाह से दोस्ती न करें।

प्रताप—शाबाश बेटी ! जिसके तुम जैसी संतान हो वह भला क्यों झुकने लगा है। मैं बादशाह से दोस्ती न करूँगा और जीते जी चित्तौड़ के लिए लड़ूंगा।

( नैपथ्य से आवाज आती है ) शाबाश प्रताप ! शाबाश !

प्रताप—( चौंककर ) कौन ?

[ अकबर अन्दर आता है ]

चम्पा—अरे यह तो वही फ़क़ीर है।

अकबर—हां हां बेटी, वही जिससे तूने अभी अभी बाप से दोस्ती करने के लिए मना किया है।

चम्पा—अरे क्या यही अकबर बादशाह हैं ?

अकबर—राना मैं तुम्हारी और तुम्हारे बच्चों की किन शब्दों में प्रशंसा करूँ। इस दशा में भी तुम सब दान, दया और देश-प्रेम की मूर्ति हो। मैं अब तुम्हें दुखी नहीं देख सकता। ( अकबर राणा को छाती से लगा लेता है और दोनों अपनी अपनी शत्रुता भूल जाते हैं ) राना, आज इस छोटी सी लड़की ने हम दोनों को घनिष्ट मित्र बना दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आजाद हिन्द-सेना और आजाद हिन्द-सङ्घ

[ फ्री प्रेस जर्नल बम्बई से सङ्कलित ]

## ब्रिटिश विरोधी के होने कारण

मलाया में जापानियों ने अंग्रेजों पर हमला किया तो उस समय क़रीब वहां ७ लाख हिन्दुस्तानी थे। इस घटना को लेकर जो प्रतिक्रिया पैदा हुई उसका ठीक ठीक पता उन्हें नहीं था। हां, मलाया से हटते समय ऐसी बातें हुईं जिनका असर भारतीय प्रवासियों के दिलों पर बहुत बुरा पड़ा। अंग्रेजों की नीति से वहां के भारतीय पहले से ही असन्तुष्ट थे। भारतीय मज़दूरों ने मज़दूरी बढ़ाने के लिए जब मांग की तो उनपर गोली चलाकर उन्हें कुचला गया। हिन्दुस्तानियों द्वारा जो पत्र प्रकाशित होते थे उन पर बहुत से प्रतिबन्ध लगे हुए थे किन्तु अंग्रेज़ों द्वारा जो पत्र प्रकाशित होते थे उनपर कोई पाबन्दी नहीं थी। भारतीयों के अखबारों में जो खबरें छपती थीं उन्हें अधिकारियों को दिखलाना पड़ता था। मज़दूरों के साथ बुरा व्यवहार, समाचार पत्रों पर लगी पाबन्दी तथा इसी प्रकार और दूसरे कारणों के फलस्वरूप मलाया में रहनेवाले हिन्दुस्तानियों में अंग्रेजों के विरुद्ध भावना पहले से ही मौजूद थी। मलाया से हटते समय हिन्दुस्तानियों को हटाने का प्रबन्ध तो नहीं किया गया किन्तु अंग्रेजों को वहां से हटाने का समुचित प्रबन्ध किया गया इससे भी हिन्दुस्तानी बहुत नाराज़ थे। रंग-विभेद के कारण भारतीय फौजों के हिन्दुस्तानी अफसर भी बहुत असन्तुष्ट थे। सिंगापुर के तैरनेवालों के क्लब की ओर से तैरने के लिए जो तालाब था उसमें हिन्दुस्तानी अफसर नहीं तैर सकते थे। बहुत आन्दोलन करने के बाद भारतीय अफसरों को भी तैरने की इजाज़त मिली। इन सब बातों का असर भारतीय सैनिकों, अफसरों और प्रवासी भारतीयों पर बहुत बुरा पड़ा, फलतः वे ब्रिटिश विरोधी हो गए।

## जापानियों का प्रस्ताव

१५ फरवरी १९४२ को सिंगापुर जापानियों के हाथ में चला गया। जापानी सदर मुकाम के अफसर मेजर फूजिवारा ने थोड़े से हिन्दुस्तानियों को निमंत्रित किया। उक्त मेजर ने कहा कि अब ब्रिटिश ताक़त ख़त्म हो रही है इसलिए हिन्दुस्तानियों को आजादी प्राप्त करने के लिए यह अच्छा मौका है। उसने कहा कि जापान हिन्दुस्तानियों को इस काल में पूरी मदद देना चाहता है। उक्त मेजर ने यह भी बतलाया कि हिन्दुस्तानी अंग्रेजों के आधीन हैं। इसलिए उन्हें शत्रु नागरिक समझना चाहिए। किन्तु जापान ऐसा नहीं करना चाहता। इसका कारण यह है कि जापानी सरकार इस बात को समझती है कि अंग्रेजों ने जबर्दस्ती हिन्दुस्तानियों को गुलाम बना रक्खा है। उसने यह भी कहा कि प्रवासी हिन्दुस्तानियों को आजाद हिन्द संघ की स्थापना करनी चाहिए और हरेक हिन्दुस्तानी को इसमें शामिल भी होना चाहिए। उसने आश्वासन दिया कि जापान इस तरह से मदद देने को तैयार है। भारतीय नेताओं ने कहा कि वे इस प्रस्ताव पर विचार करेंगे और पुनः मिलकर उत्तर देंगे।

## सिंगापुर में प्रथम बैठक

९ और १० मार्च, १९४२ को मलाया स्थित हिन्दुस्तानियों की एक सभा सिंगापुर में हुई। इसी समय श्री रासबिहारी बोस ने मलाया और स्यामस्थित भारतवासियों के प्रतिनिधियों को टोकियो आने के लिए निमंत्रित किया और निमन्त्रण-पत्र में यह भी इच्छा प्रकट की कि वहां एक कानफ्रेंस करके आजाद हिन्द संघ के संगठन के विषय में निश्चय किया जाय। मलाया में हिन्दुस्तानियों की जो बैठक हुई उसमें स्याम के भी प्रतिनिधि मौजूद थे। उस बैठक में यह निश्चय हुआ कि एक शिष्ट-मंडल टोकियो भेजा जाय। यह निश्चय जापानी अधिकारियों की राय के विरुद्ध था क्योंकि वे चाहते थे कि सरकारी प्रतिनिधि मंडल जाय। किन्तु इस राय से प्रकट होता है कि हिन्दुस्तानी केवल भारतीय स्वतंत्रता के प्रश्न पर ही सोचना चाहते थे।

## टोकियो सम्मेलन

श्री रासबिहारी बोस की अध्यक्षता में हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन २८ से ३० मार्च, १९४२ तक टोकियो में हुआ। उक्त शिष्ट मण्डल के सिवाय इस सम्मेलन में हांगकांग, शंघाई, और जापान के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। अभाग्यवश स्याम के भारतीय प्रतिनिधि की मौत वायुयान दुर्घटना में हो गई अतः वहां का कोई प्रतिनिधि सम्मेलन में मौजूद नहीं था।

सम्मेलन ने निश्चय किया कि पूर्वी एशिया में भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन को चलाने के लिए वह अच्छा अवसर है। विदेशी शासन खत्म करके भारतवर्ष को पूर्ण स्वाधीनता दिलाना ही इस आन्दोलन का ख़ास मकसद निश्चय किया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


एक प्रस्ताव के द्वारा सम्मेलन में यह तय हुआ कि "भारतवर्ष के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई करने का अधिकार केवल आज़ाद हिन्द सेना को प्राप्त होगा। इस सेना के अफ़सर भी हिन्दुस्तानी होंगे। इस कार्य को संचालित करने के लिए आज़ाद हिंद संघ की स्थापना होगी और उसकी कार्यकारिणी के निर्णय से जापान सैनिक अधिकारियों से यदि आवश्यकता पड़ी सैनिक, हवाई और नौ सेना सम्बन्धी सहायता ली जायेगी।"

## बैंकाक सम्मेलन

टोकियो सम्मेलन के निर्णय के अनुसार बैंकाक में १५ जून से २३ जून, १९४२ तक पूर्वी एशिया के भारतीय प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई। जापान, मंचूकुओ, हांगकांग, बर्मा, फ़ीलिपीनो, जावा, मलाया, स्याम और ब्रिटिश फ़ौजों के हिन्दुस्तानी युद्ध बन्दियों के प्रतिनिधियों की कुल संख्या इस सम्मेलन में १००० थी। इस सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि इन देशों में किस प्रकार तथा किस आधार पर आज़ाद हिन्द संघ की स्थापना की जाय।

## कार्यक्रम

बैंकाक सम्मेलन में निम्नलिखित बातें तय हुईं :—

(१) भारतीय स्वतन्त्रता के लिए पूर्वी एशिया में रहने वाले हिन्दुस्तानियों को संगठित करना ज़रूरी है अतः इस काम के लिए आज़ाद हिंद संघ की स्थापना की जाय।

(२) पूर्वी एशिया स्थित भारतीय फ़ौजों तथा हिन्दुस्तानी नागरिकों में से चुने हुए सैनिकों को लेकर आज़ाद हिन्द सेना का संगठन किया जाय।

(३) आज़ाद हिंद संघ के तत्वावधान में ही भारतीय स्वतन्त्रता का कार्यक्रम पूरा किया जाएगा तथा इसके अनुशासन में ही काम करना पड़ेगा।

(४) जापानी सरकार से अनुरोध किया जाएगा कि वह इस आन्दोलन के प्रति अपनी नीति को पुनः स्पष्ट करे।

इस प्रकार बैंकाक सम्मेलन के बाद आज़ाद हिन्द संघ की स्थापना हुई। इसका सदर मुकाम सिंगापुर में था। श्री रासबिहारी बोस इसके अध्यक्ष चुने गए। एक केन्द्रीय कार्य समिति भी बनाई गई। इस संघ की शाखाएं पूर्वी एशिया के प्रत्येक देशों में संगठित की गईं।

## केन्द्रिय कार्य समिति और जापानी अधिकारियों में मतभेद

किन्तु इसके बाद जापानी अधिकारियों तथा आज़ाद हिन्द संघ की केन्द्रीय कार्य समिति में मतभेद पैदा हो गया। फलतः भारतीय प्रतिनिधियों और जापानी अधिकारियों का आपसी सम्बन्ध कटु हो गया। इस कटुता के निम्नलिखित कारण थे :—

(१) बैंकाक सम्मेलन के प्रस्तावों का समुचित उत्तर टोकियो सरकार की ओर से प्राप्त नहीं हुआ। बार-बार जापानी सरकार यही दुहराती रही कि वह भारतवासियों की स्वाधीनता की माँग का समर्थन करती है और उसकी प्राप्ति के लिए सहयोग प्रदान करना चाहती है। जापानी सरकार यह भी चाहती थी कि वह भारत के किसी भाग को अपने अधिकार में नहीं करना चाहती। किन्तु केन्द्रीय कार्य समिति को इन उत्तरों से संतोष नहीं हुआ।

(२) जापानी सरकार ने आज़ाद हिन्द सेना तथा आज़ाद हिन्द संघ में सम्पर्क स्थापित करने के लिए जिस विभाग की स्थापना की थी उसका व्यवहार अच्छा नहीं था। यह विभाग सङ्घ और आज़ाद हिन्द सेना के कामों में बेकार दखल देना चाहता था। केन्द्रीय कार्यसमिति इस बात से बहुत नाराज़ थी। इस विभाग का नाम था इवाकुरो किकन और इसके अफ़सर संघ में अपना प्रभाव स्थापित करना चाहते थे।

## महान संकट नहीं

१९४२ के दिसम्बर में यह स्थिति नाज़ुक हो गई। मलाया में आज़ाद हिन्द सेना की जो टुकड़ियां संगठित हुई थीं उनको जापानी बर्मा भेजना चाहते थे। किन्तु केन्द्रीय कार्य सभा का यह कहना था कि जब तक सारे प्रश्न को हल नहीं कर लिया जाता तब तक आज़ाद हिन्द संघ के सैनिक बर्मा नहीं भेजे जा सकते। इसमें एक महान संकट उपस्थित हो गया। इसी बीच ७ दिसम्बर ११४२ को जापानियों ने कर्नल एन० एस० गिल को गिरफ़्तार कर लिया। कर्नल गिल आज़ाद हिन्द सेना के योग्य अफ़सर थे। जापानियों ने यह बहाना किया कि वे ब्रिटिश जासूस थे। इसमें केन्द्रीय कार्य समिति की सलाह भी नहीं ली गयी। इस पर कार्य समिति के सदस्यों ने इस्तीफ़ा दे दिया।

## असन्तोषजनक परिस्थिति

श्री रासबिहारी बोस ने कहा कि मैं टोकियो जाकर इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय में जापानी सरकार का स्पष्ट उत्तर प्राप्त करने की चेष्टा करूँगा और तब तक संघ की जो शाखाएं भिन्न भिन्न जगहों में स्थापित हैं अपना काम चालू रखें। यह मान लिया गया। मलाया स्थित आजाद हिन्द संघ की शाखा ने इस बात को मानते हुए कहा कि, "भारतीय स्वाधीनता के आन्दोलन के सम्बन्ध में टोकियो सरकार अपनी नीति का स्पष्टीकरण करे। श्री रासबिहारी बोस से प्रार्थना की जाती है कि वे टोकियो जाकर शीघ्र इस मामले पर जापानी सरकार का निर्णय प्राप्त करें। यद्यपि सङ्घ का काम चालू रखा जायगा किन्तु टोकियो वार्ता के फलस्वरूप जो सरकारी वक्तव्य प्रकाशित होगा उसके बाद ही इस दिशा में हम लगन के साथ काम कर सकेंगे।"

इवाकुरा किकन ने आजाद हिन्द संघ के मुकाबिले का एक दूसरा संघ स्थापित करने का षड्यन्त्र रचना शुरू किया। एक युवक आन्दोलन चलाकर छिपे छिपे आजाद हिन्द संघ के नेताओं को बदनाम करने की कोशिश की गई। १९४६ की फरवरी में सङ्घ की मलाया स्थित शाखा ने निश्चय किया कि संघ के अध्यक्ष श्री रासबिहारी बोस को एक मैमोरेन्डम भेजते हुए इन कठिनाइयों को बतलाया जाय। उक्त कमेटी ने यह भी तय किया था कि यदि स्थिति में सुधार नहीं होता तो सारे सदस्य इस्तीफा दे देंगे।

इस मैमोरेन्डम का ज्ञान जापानियों को श्री रासबिहारी बोस के पहुँचने से पूर्व ही हो गया। उन्होंने श्री बोस पर दबाव डालना शुरू किया कि मलाया शाखा के अध्यक्ष श्री एन० राघवन को त्याग-पत्र देने के लिए कहा जाय। श्री राघवन ने त्याग-पत्र दे दिया। जापानी अधिकारियों की इस निरंकुशता से उक्त शाखा के सदस्य बहुत रुष्ट हो गए। उन्होंने श्री राघवन के अपमान को अपना अपमान समझा। इसका अर्थ तो साफ यह था कि सङ्घ में जापानी अपनी इच्छा के अनुकूल व्यक्तियों को चाहते थे ताकि वे उनके इशारों पर नाच सकें। किन्तु यदि उन्होंने इस्तीफा दे दिया होता तो स्थिति और नाजुक हो जाती। उन्होंने सोचा कि अभी संघ में कायम रहना ही उचित है।

## श्री सुभाषचन्द्र बोस का आगमन

१९४३ के अप्रेल में पूर्वी एशिया में रहनेवाले हिन्दुस्तानियों के नए प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन सिंगापुर में हुआ।

उक्त सम्मेलन में श्री रास बिहारी बोस ने बतलाया कि अब संघ के अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस होंगे और उन्हींके नेतृत्व में संघ का काम होगा।

२ जुलाई, १९४३ को श्री सुभाषचन्द्र बोस सिंगापुर पहुंचे। ४ जुलाई को भारतीय प्रतिनिधियों की जो बैठक हुई उसमें श्री सुभाषचन्द्र बोस आजाद हिन्द संघ के अध्यक्ष चुने गए। आजाद हिन्द संघ और आजाद हिन्द सेना का फिर से संगठन हुआ। ५ जुलाई, १९४३ को श्री सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द सेना के सङ्गठन की घोषणा की और उसी दिन दुनिया को ज्ञात हो गया कि अब आजाद हिन्द सेना नाम की भी एक फौज सङ्गठित हो गई है जो हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए लड़ना चाहती है।

श्री सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में संघ और सेना का कार्य जोरों से चलने लगा।

महिलाएं भी आजाद हिन्द सेना में सम्मिलित हुईं। उनके दस्ते का नाम था "झांसी की रानी की सेना"। रेडक्रास में भी महिलाएं सम्मिलित हुईं। सिंगापुर और रंगून में सैनिक शिक्षा शिविर खोले गए। सैनिकों और अफसरों को शिक्षा दी गई।

१९४२ में आजाद हिन्द सेना में सैनिक भर्ती किए गए तथा भारतीय युवकों को भर्ती होने के लिए कहा गया। जापानियों द्वारा कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न की गईं इसलिए भर्ती का काम ज़ोरों से १९४२ में पूरा नहीं हुआ। किन्तु अब यह काम जोरों से शुरू हुआ। मलाया में एक ही समय ७,००० रंगरूट भर्ती किए गये।

युद्ध बन्दियों तथा नागरिकों में से चुने हुए लोगों को सैनिक शिक्षा दी गई। इस सेना की आर्थिक सहायता के लिए प्रवासी भारतवासियों ने चन्दे दिए। बहुत सी आवश्यक वस्तुएं तो उन्हें मुफ्त में मिल गईं।

## भारत के लिये स्वतन्त्रता आन्दोलन

भारत के स्वातन्त्र्य आन्दोलन को सफल बनाने के लिए स्वतन्त्र भारत की एक अस्थायी सरकार की २१ अक्टूबर १९४३ को क़ायम हुई। श्री सुभाषचन्द्र बोस इस सरकार के प्रधान चुने गए। इस सरकार ने इङ्गलैण्ड और अमेरिका के विरुद्ध बाकायदा २३ अक्टूबर १९४३ को युद्ध घोषित किया। संयुक्त राष्ट्रों के विरुद्ध जो देश लड़ रहे थे उन्होंने भारत की इस स्वतन्त्र सरकार को स्वीकार कर लिया। यह भी उचित समझा गया कि आजाद हिन्द संघ और आजाद हिन्द सेना का सदर मुकाम भारतवर्ष के निकट बर्मा में स्थापित किया जाय। ७ जनवरी १९४४ को यह योजना कार्यरूप में परिणत की गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारत में प्रवेश

४ फरवरी १९४४ को आजाद हिन्द सेना ने अपने कार्यक्रम के मुताबिक कार्रवाई शुरू की। १८ मार्च, १९४४ को बर्मा-भारत सीमा पार करके इस सेना के सैनिक भारत-भूमि पर पहुँच गए।

इम्फाल के क्षेत्र में जापानी दस्तों के साथ आजाद हिन्द सेना के सैनिकों ने भी ब्रिटिश फौजों का सामना किया। किन्तु हवाई शक्ति की कमी तथा भयानक जल वृष्टि के कारण रसद पहुंचाने की कठिनाई के कारण आजाद हिन्द सेना को पीछे हटना पड़ा।

जब ब्रिटिश फौजों ने बर्मा पर आक्रमण करना शुरू किया तो आजाद हिन्द सेना ने रक्षात्मक लड़ाइयाँ लड़नी शुरू कीं।

बर्मा की लड़ाई में आजाद हिन्द सेना के बहुत से अफसर ब्रिटिश फौजों के पक्ष में आ गए। किन्तु बाकी अफसर आजाद हिन्द सेना के भक्त बने रहे। ब्रिटिश फौजों की प्रगति जब तीव्र हो गई तो रंगून से सदर मुकाम का दफ्तर हटा लिया गया और रंगून खाली कर दिया गया।

## रंगून से हटना

२४ अप्रेल १९४५ को श्री सुभाषचन्द्र बोस और उनके साथियों ने रङ्गून छोड़ दिया। वे लोग रङ्गून से बैंकाक चले गये। जापानी सेनापति और बर्मा सरकार २३ अप्रेल को ही वहाँ से हट गई थीं। मेजर जनरल लोकनाथन के नेतृत्व में ६,००० आजाद हिन्द सेना के सैनिक रंगून में इसलिए छोड़ दिए गए ताकि वे रंगून स्थित भारतवासियों के जान-माल की हिफाजत कर सकें। आजाद हिन्द संघ के उपाध्यक्ष श्री जे० एन० बहादुरी भी वहीं छोड़ दिए गए।

श्री सुभाषचन्द्र बोस ने रंगून छोड़ने के पूर्व ही भारत की अस्थायी सरकार के नाम पर जो खर्चे हुए थे उनका हिसाब साफ कर दिया था।

रंगून शहर पर जब तक आजाद हिन्द-सेना का अधिकार स्थापित था तब तक न तो वहाँ कोई डाका पड़ा और न कोई ऐसी घटनाएं हुईं जिससे इस सेना को लज्जित होना पड़े। बर्मा में जो भारतीय थे उनकी भी रक्षा की गई।

## अंग्रेजों के आने के बाद

५ मई १९४५ को ३६ वीं भारतीय पैदल सेना के ब्रिगेडियर लाउदर ने आजाद हिन्द संघ के उपाध्यक्ष श्री जे० एन० बहादुरी को बुलाया। उक्त ब्रिगेडियर की प्रार्थना पर उन्होंने अपने सङ्गठन के विषय में बतलाया और उसके उद्देश्यों पर भी प्रकाश डाला।

लाउदर ने कहा कि संघ गैर राजनीतिक कामों को करता रहे। श्री बहादुरी ने इसे स्वीकार कर लिया। आजाद हिन्द संघ के तत्वावधान में ५ अस्पताल रंगून में स्थापित किए गए थे जहां मुफ़्त दवाएं दी जाती थीं। इनका काम पुनः शुरू हो गया।

आजाद हिन्द की ओर से एक नेशनल बैंक भी स्थापित किया गया था। उसका काम १९ मई १९४५ तक चलता रहा। इसके पश्चात ब्रिटिश सैनिक अधिकारियों ने इस बैंक को अपने अधिकार में कर लिया। २८ मई, १९४५ को आजाद हिन्द संघ भी तोड़ दिया गया और सैनिक सुरक्षा विभाग के अफसरों ने श्री बहादुरी तथा उनके साथियों को गिरफ़्तार कर लिया।

## आजाद हिन्द संघ को आर्थिक सहायता

आजाद हिन्द संघ को भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम चलाने के लिए प्रवासी हिन्दुस्तानियों ने आर्थिक सहायता प्रदान की थी। पूर्वी एशिया में जितने भी भारतीय थे उन्होंने मिलकर इस कार्य में हाथ बँटाया था। केवल बर्मा में इस संघ को करीब ८ करोड़ रुपये मिले। जनवरी १९४५ में नए वर्ष के उपहार स्वरूप केवल दो सप्ताह में उक्त संघ को मलाया से ४० लाख रुपये प्राप्त हुए थे। आजाद हिन्द सेना की सारी आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध आजाद हिन्द संघ भारतीयों द्वारा प्राप्त हुए चन्दे के रुपये से करता था। आजाद हिन्द सेना के हथियारों का प्रबन्ध अलग से होता था।

—



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चिट्ठी-पत्री

## हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी

वास्तव में हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी कहने से एक ही भाषा का बोध होता है। संज्ञाओं में अन्तर है चीज़ वही है। मैं इन तीन शब्दों को लगभग पर्यायवाची समझता हूं। सबसे पहले भारत में हिन्दी थी। मुसलमानों के आने के पश्चात उर्दू की सृष्टि हुई। उर्दू कोई नई भाषा नहीं थी। हिन्दी का रूपान्तर मात्र थी। हिन्दी का शब्द कोष बढ़ा और उसमें कुछ विदेशी शब्द (अरबी और फ़ारसी) आ मिले। ऐसी बात नहीं है कि वे विदेशी शब्द केवल हिन्दी में आकर मिले हों वरन् भारत की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में किसी न किसी मात्रा में उनका सम्मिश्रण हुआ। 'सलाह' मराठी का 'सल्ला' बन गया। 'अलहदा' बङ्गला का 'आलादा' बन गया। यह बात ज़रूर है हिन्दी में और भाषाओं की अपेक्षा उन विदेशी शब्दों ने अधिक स्थान पाया और आज ऐसा कौन हिन्दी भाषी है जो 'इस्तेमाल', 'तारीख़', 'दरअसल', 'दरख़्त', 'दिवाला', 'जूता', 'किताब', 'ख़त', 'ज़रूरत' वगैरह की ज़रूरत न महसूस करता हो!

आज देश के सामने राष्ट्र भाषा का प्रश्न है और देश के दिग्गज नेता, विद्वान तथा शिक्षा शास्त्री इस प्रश्न को हल करने में जुटे हुए हैं। देश के लिए एक ऐसी भाषा हो जिसमें भिन्न भिन्न प्रान्तों के लोग परस्पर अपने विचार प्रकट कर सकें तथा अदालती कार्रवाई भी उसी में की जा सके इसमें किसी को आपत्ति नहीं होगी। और अब करीब करीब यह भी निश्चय हो चला है कि राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन होने काबिल हिन्दुस्तानी ही है।

लेकिन आज इस 'हिन्दुस्तानी' को लेकर एक बहुत बड़ा विवाद चल पड़ा है। और अंग्रेज़ी, हिन्दी और उर्दू के पत्रों के पृष्ठ के पृष्ठ इन वाद विवादों से रँगे रहते हैं। वर्धा कान्फ़रेन्स के फैसलों को लेकर भी आज देश में भाषा क्षेत्र में एक हलचल सी मच गई है। उसके मुख्य दो फैसले हैं—पहला—हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाकर एक आम ज़बान बनानी चाहिए।

दूसरा—हमारे देश के हर एक आदमी को हिन्दी और उर्दू दोनों ज़बानें और अलग अलग लिपियें सीखना चाहिए।

उपर्युक्त दोनों फैसलों में पारस्परिक विरोध है। पहले कहा गया है एक आम ज़बान बनानी चाहिए फिर कहा गया है प्रत्येक को दोनों ज़बानें सीखना चाहिए। अगर यह कहा गया होता कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी प्रचारक को दोनों ज़बाने सीखना चाहिए तो भी उचित था।

भाषाएँ बनाने से नहीं बनतीं। उनका स्वाभाविक विकास होता है। बनावटी ज़बानें टिकाऊ भी नहीं होतीं। प्रश्न है कि इस्तेमाल और प्रयोग, आवश्यकता और ज़रूरत, दृष्टि और नज़र, पुस्तक और किताब, पत्र और ख़त, विद्या और इल्म, वृक्ष और दरख़्त, प्राप्त करना और हासिल करना, लाभ और फायदा, नुकसान और हानि, ज़मीन और पृथ्वी, पहाड़ और पर्वत, आकाश और आसमान, दाख़िल और प्रवेश, शक्ति और ताक़त शिक्षा और तालीम, स्वामी और मालिक, सत्य और सच्चाई, सेना और फ़ौज, दुश्मन और शत्रु, ख़ास और मुख्य, प्रसिद्ध और मशहूर, वक्त और समय, ऋतु और मौसम, लड़ाई और युद्ध, कौम और जाति, बदन और शरीर, दुनिया और संसार, स्त्री और औरत में से अपनी हिन्दुस्तानी में किसको स्थान दें क्योंकि दोनों प्रकार के शब्द आसानी से समझे जाते हैं। अगर उपर्युक्त दोनों प्रकार के पर्यायवाची शब्दों को हिन्दुस्तानी के शब्दकोष में शामिल किया जायगा तो वह सहल हिन्दी और सहल उर्दू के ज्ञान के बराबर ही होगा। अगर हिन्दी और उर्दू को आप दो भाषाएँ मानते हैं तो एक हिन्दुस्तानी भी दो भाषाएँ बनी रहीं। उसमें एकपन कहाँ से आया इसीलिए मैंने प्रारम्भ में कहा था कि हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी में कोई फ़र्क नहीं है! जो सरल हिन्दी है अथवा जो सरल उर्दू है वही हिन्दुस्तानी भी है। हिन्दुस्तानी भाषा बनाने का जो प्रयास चल रहा है वह निरर्थक सा ही है क्योंकि हिन्दुस्तानी पहले से ही जीवित भाषा है। इससे अच्छी कि राष्ट्रभाषा के लिए साधारण हिन्दी-उर्दू ज्ञान करा दिया जाय वह काफी होगा। अगर कुछ नए शब्द आसानी से गढ़े जा सकते हों तो गढ़ लिए जाएँ वरना हिन्दी और उर्दू दोनों के शब्द प्रचलित रहें।

दूसरे फैसले में प्रत्येक देशवासी को हिन्दी और उर्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दोनों लिपियाँ सीखने की नसीहत दी गई है। पहले वह अपनी मातृ भाषा की लिपि सीखे फिर हिन्दी और उर्दू की लिपि सीखे। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के मन्त्री श्री सत्यनारायण जी भले ही कह सकते हैं कि दो लिखावटों के सीखने की कठिनाई कम से कम दक्षिण भारत के लोगों के लिए कोई कठिनाई न होगी। लेकिन शायद सत्यनारायण जी को बच्चों की मानसिक स्थिति का पता नहीं है। उन्हें शायद अपने बचपन के दिन भूल गए जब उन्हें केवल 'अ' का अक्षर बनाने में महीनों प्रयास करना पड़ा होगा। फिर थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि अहिन्दी भाषी प्रान्तों के बच्चों ने दो लिपियाँ सीखीं तो देश की शक्ति का कितना अपव्यय होगा। मेरी समझ में दोनों लिपियाँ ऐच्छिक कर दी जाएं। जिसको जो लिपि पसन्द हो वह सीखे। नागरी लिपि सीखना दूसरे प्रान्त के लोगों के लिए भी बहुत आसान है। मराठी देव नागरी लिपि में ही लिखी जाती है। दूसरे वर्णमाला के अक्षरों के नाम भारत की सभी भाषाओं में एक हैं। वही स्वर हैं, वही व्यञ्जन हैं। गुजराती, मराठी, बङ्गला, तामिल, तेलगु सभी बालक अ, इ, उ, क, ख, ज सीखते हैं। अक्षरों के नाम वही रहेंगे। उनकी शकलों में ज़रूर कुछ अन्तर पड़ जायगा। भारत की किसी भी भाषा की जिसने लिपि सीख ली उसे नागरी लिपि सीखने में ज्यादा समय नहीं लगेगा। एक दिन का काम है। मेरे एक सहपाठी एफ० ए० में बङ्गाल से आए थे। नागरी लिपि नहीं जानते थे। उन्होंने संस्कृत ले रखी थी। अजमेर यू० पी० बोर्डों में संस्कृत देवनागरी लिपि में लिखाई जाती है। वे एक दिन में संस्कृत को नागरी लिपि में लिखने लगे। मैं गुजराती लिपि नहीं जानता था। अपने कालेज में एक गुजराती पैंफ्लेट पड़ा था उसको उठाकर देखने लगा। अक्षर पहिचानने में देर नहीं लगी। बहुत से अक्षर नागरी लिपि से मिलते जुलते थे। ख, व, ज भर कुछ भिन्न थे। यही हाल बङ्गला लिपि का है उसके ज, ल, क, ध, म, ब, ष, ड, न, म, उ, वगैरह हिन्दी लिपि जाननेवाले आसानी से समझ सकते हैं।

यदि भारत से लिपियों की विभिन्नता दूर हो जाए और सब भाषाएँ नागरी लिपि में लिखी जानी लगें तो भारत की भाषा समस्या बहुत कुछ हल होजाय। क्योंकि भारत की भाषाओं में आपस में बहुत एकता है। वे बहिनें (Sister Languages) कहलाती भी हैं क्योंकि संस्कृत उनकी जननी है। बङ्गला और गुजराती वगैरह की किताबें यदि नागरी लिपि में छपा करें तो बहुत से हिन्दी जाननेवाले उनका आशय समझ सकते हैं। यही हाल उर्दू के साथ है। बहुत से हिन्दी साहित्य के पण्डित उर्दू साहित्य का अलिफ वे नहीं जानते। यदि उर्दू की किताबें नागरी लिपि में छपा करें तो हिन्दी जाननेवालों को उनको समझने में ज़रा भी कठिनाई न हो।

जब तक हिन्दुस्तानी की एक लिपि नहीं होगी वह एक भाषा भी नहीं हो सकती। एक भाषा की अभी तक दो लिपियां नहीं देखी सुनी गईं। फिर हिन्दुस्तानी के भी दो टुकड़े हुए बिना न रहेंगे एक हिन्दी हिन्दुस्तानी और एक उर्दू हिन्दुस्तानी।

बहुत हो हिन्दी के विद्यार्थी उर्दू लिपि और भाषा का ज्ञान प्राप्त करें और उर्दू के विद्यार्थी हिन्दी लिपि और हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करें। जैसा कि Second Language के रूप में हम लोग करते आए हैं।

यू० पी० में बचपन से ही बच्चे हिन्दी उर्दू दोनों के शब्द कोष से परिचित हो जाते हैं। वही उचित भी है। हिन्दुस्तानी भाषा संकीर्ण नहीं होनी चाहिए। उसका शब्द कोष हिन्दी और उर्दू के शब्दों से भरा जाना चाहिए।

अदालती भाषा हिन्दी और उर्दू दोनों हो सकती हैं। कचहरी और दफ़्तरों में काम करनेवालों को हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए। अगर कोई हिन्दी में दरख़ास्त करे या उर्दू में करे तो उसको कोई अड़चन नहीं होना चाहिए।

हिन्दुस्तानी के शब्द चयन में भी कई कठिनाइयां हैं। आप बदला और प्रतिशोध में से कौन सा शब्द पसन्द करेंगे। आपको बदला सीधा जँच सकता है लेकिन एक बङ्गाली के लिए प्रतिशोध ही सीधा पड़ता है। एक बार मैं 'बदला' के लिए शुद्ध हिन्दी शब्द ढूँढ़ रहा था। झुँझलाहट हो रही थी कि संस्कृत में तो एम० ए० पास किया और बदला की शुद्ध हिन्दी नहीं जानता। एक मुसलमान बङ्गाली मित्र थे। वे बदला का तात्पर्य ठीक नहीं समझे। मैंने कहा Revenge, बोल पड़े तुम्हारा आशय प्रतिशोध से है। मैंने उनको धन्यवाद दिया और अपने अज्ञान पर लज्जा भी हुई।

—महेन्द्रकुमार 'मानव' एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पुस्तक-परिचय

**मरुकुञ्ज** ( क्षयरोग का निवारण )—लेखकः श्री मथुरादास त्रिकम जी; प्रकाशकः नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; पृष्ठ संख्याः १८०, मूल्यः सवा रुपया।

गान्धी जी द्वारा संस्थापित नवजीवन प्रकाशन मन्दिर ने पिछले अनेक वर्षों में जो साहित्य जनता के लिये सुलभ बनाया है उसने राष्ट्र के नवनिर्माण में बड़ी मदद पहुंचाई है। ऊपर लिखी पुस्तक मूल गुजराती पुस्तक के तीसरे संस्करण का हिन्दी अनुवाद है। लेखक स्वयं क्षयरोग के शिकार हो गये थे। और जैसा कि वे लिखते हैं—"जब मुझे राजरोग यानी तपेदिक़ की विलक्षण बीमारी लगी और इस बीमारी के सिलसिले में एक अरसे तक पञ्चगनी रहना पड़ा तो वहाँ रहते हुये राजरोग के अनेक रोगियों से जान पहचान हुई और इस रोग पर लिखी गई पुस्तकें भी पढ़ने को मिलीं। तब मन में यह विचार आया कि इस विषय का सामान्य और उपयोगी ज्ञान सरल गुजराती में लिखा जाय तो अच्छा हो।...मेरा यह निबन्ध किसी पुस्तक का भाषान्तर नहीं है—अपने निज के वाचन, अनुभव और निरीक्षण का परिणाम है।" इस कारण यह पुस्तक बेहद उपयोगी है।

पुस्तक छोटे बड़े ३१ अध्यायों में बँटी हुई है और अन्त में २३ पृष्ठ में शस्त्र क्रिया द्वारा तपेदिक़ के इलाज के नए तरीक़ों का वर्णन है। पुस्तक में बहुत सरल तरीके से क्षय के उत्पादक कारण, क्षय के प्रकार, क्षय के लक्षण, क्षय का स्वरूप, क्षय की चिकित्सा, क्षय में आराम, ताज़ी हवा, प्रकाश, आहार, वस्त्र, क्षय में ज्वर की अवस्था, नाड़ी और श्वासोच्छ्वास, अन्य लक्षण, औषधि और अन्य उपचार, सफ़ाई, नियम निष्ठा, मनोदशा, उपचार में समय, क्षय से अच्छे होने के बाद का जीवन, रतिदान, रोकथाम आदि बातों को समझाया गया है।

लेखक शुरू में अपने 'उद्देश्य' शीर्षक अध्याय में लिखता है—"तपेदिक़ के इलाज में दवा का उपयोग बहुत ही कम, नाम मात्र को ही होता है। असल चीज़ आहार विहार की योजना है। बीमार को अपने लिये एक नई और हितकारी दिनचर्या बना लेनी चाहिये। बीमारी से छुटकारा पाने के लिये स्वावलम्बन की जितनी ज़रूरत इस रोग में है, उतनी किसी दूसरे रोग में शायद ही हो।... चूँकि इस बीमारी में इलाज की सफलता का सारा दारोमदार रोगी की मनोवृत्ति और प्रवृत्ति पर रहता है, इसलिये रोगी को रोग के स्वरूप से अनजान रखने में उसका नुक़सान ही है।...यह बहुत ज़रूरी है कि रोगी को अपने रोग का ज्ञान हो और उससे बचने के तरीक़ों का ठीक ठीक ज्ञान हो।" सारी पुस्तक इसी उद्देश्य की पूर्ति में लिखी गई है।

अपने पूर्णाहुति नामक अध्याय में लेखक लिखता है—"क्षय जल्दी से परख लिया जाय, तुरन्त उसका इलाज शुरू हो जाय और वह पर्याप्त समय कराया जाय तो रोग साध्य रहता है। विलम्ब, असावधानी और चिकित्सा के आवश्यक साधनों का अभाव साध्य क्षय को भी असाध्य बना देता है।

"क्षय रज और क्षय-ग्रन्थियां तो बेशुमार लोगों की देह में पाई जाती हैं लेकिन क्षय के शिकार बहुत थोड़े ही लोग होते हैं।"

लेखक के अनुसार सम्पूर्ण आराम, हज़म होने लायक़ पुष्टिकारक ख़ूराक़, ताज़ी हवा और प्रकाश में निवास, नियम पालन, निश्चिन्त मनोदशा और बाहरी लक्षणों के लुप्त होने पर क्रमानुसार व्यायाम पर निर्भर है।

एक बार जागा हुआ क्षय बार बार जागता है। इसके सम्बन्ध में लेखक लिखता है—"क्षय की पुनर्जागृति को रोकने के लिये बाद के जीवन में आवश्यक हेर फेर के साथ क्षय पर विजय पानेवाली दिनचर्या को ही जारी रखना चाहिये। श्रम में मर्यादा का पालन करने से रोग की जागृति रुकती है।...मर्यादित श्रम की महत्ता को स्वीकार करके तदनुकूल आचरण भी करना चाहिये।"

हितैषियों के बारे में चर्चा करते हुये लेखक लिखता है—"अगर रोगी के मित्र उसे रात दिन घेरे रहें, उसके सामने उसके दुख की सन्तापभरी चर्चा किया करें, उस पर तरस खायें, उसे अपने भले बुरे अनुभव सुनायें, उसकी मौजूदगी में उसके रोग के लक्षणों की चर्चा करें, उसे भांति भांति की सलाहें दें और रोज़ रोज़ उनका व्यवहार बना रहे तो बताइये कि बीमार अपना दुख कैसे भूले? कैसे वह चित्त को भ्रान्त होने से रोके? किस तरह निश्चिन्त रहकर शान्ति प्राप्त करे? ऐसी अवस्था में ज़रूर उकता उठेगा, मन ही मन जलेगा, कुढ़ेगा, और हैरान हो रहेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ऐसे हितैषियों को सम्बोधन करते हुये लेखक लिखता है—"क्या ही अच्छा हो यदि मिलने जुलनेवाले रोगी को उसके सम्बन्ध का अपना दुःख न सुनायें, बल्कि दो मीठी बातों द्वारा उसका मनोरञ्जन करके उसकी उत्तम सेवा करें।"

पुस्तक की भूमिका प्रसिद्ध डाक्टर जीवराज मेहता की लिखी हुई है। लेखक के प्रयत्न को सराहनीय बताते हुये वे लिखते हैं—"जिस तेज़ी से यह बीमारी देश में फैल रही है उसके अनेक कारण हैं। ख़ास कारणों में एक कारण हमारी दिन बदिन बढ़ती हुई ग़रीबी है। गाँवों से हर साल इतना अनाज बाहर चला जाता है कि गाँव वालों के लिये खाने को काफ़ी नहीं रहता। इधर देश में एक के बाद एक इतने अकाल पड़े हैं कि उनकी वजह से ढोरों की हालत बेहद ख़राब होगई है—दूध, दही और घी जो पहले सस्ता और काफ़ी मिक़दार में मिलता था, ग़रीबों के लिये भी सुलभ था, वह आज सिर्फ अमीरों की चीज़ बन गया है। इस तरह पर्याप्त पौष्टिक खूराक के अभाव में आज लोगों की तपेदिक़ से लड़ने की ताक़त कम हो गई है।

"हमारे देशवासियों की कई गन्दी आदतों के कारण भी क्षय का ज़ोर बढ़ रहा है; जैसे हमारे यहाँ के लोगों में जहाँ तहाँ थूकने की आदत है।..."

क्षय के बीमारों को आशाजनक सन्देश देते हुये डाक्टर जीवराज लिखते हैं—"आम तौर पर तपेदिक़ या क्षय का नाम सुनते ही बीमार और उसके रिश्तेदारों का दिल दहल उठता है। लेकिन सच तो यह है कि अगर शुरू से मरीज़ की ठीक ठीक संभाल की जाये तो यह बीमारी असाध्य नहीं रहती।"

व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर लिखी हुई यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी, महत्त्वपूर्ण और काम की है। हम इस पुस्तक का अधिक से अधिक प्रचार चाहते हैं। नव-जीवन प्रकाशन मन्दिर ऐसी लाभप्रद पुस्तक छापने के लिये हमारे धन्यवाद का पात्र है।

—विश्वम्भरनाथ

**माँ और मुन्ना**—लेखकः श्री हरिश्चन्द्र एम० ए०; प्रकाशकः मलहोत्रा ब्रदर्स; ९६, दरियागञ्ज, दिल्ली; मूल्यः दो रुपया; पृष्ठ संख्याः १४३

उपरोक्त पुस्तक में गर्भ धारण करने के समय से गर्भिणी का जीवन, उसका भोजन और नियम; जापे की व्यवस्था, बच्चे की पैदायश, माँ की देख भाल, प्रसव के बाद के चालीस दिन, छातियों से दूध पिलाने की विधि, शिशु का छठे मास तक का जीवन, दाँत निकलना, पहले साल की प्रगति आदि बातों पर बड़े रोचक और सरल ढङ्ग से लेखक ने प्रकाश डाला है।

हमारे मध्यवर्गीय समाज की अधिकांश स्त्रियों के लिये बच्चा जनने की स्वाभाविक क्रिया पूर्ववर्ती उपचार और बाद की सार-संभाल के अभाव में ज़िन्दगी और मौत का सवाल बनती जा रही है। प्रजनन का कार्य माता का नैसर्गिक धर्म है किन्तु हमारी आधुनिक अधकचरी सभ्यता ने उसे इस योग्य नहीं रखा कि वह सहज भाव से अपने इस धर्म का पालन कर सके। नतीजा यह है कि हमारी पढ़ी लिखी ग्रैजुएट और अण्डरग्रैजुएट स्त्रियाँ एक समस्या बन रही हैं। पुराने ज़माने की स्त्रियों का 'घटोदरी' का आदर्श अब 'कमर पतली सुराहीदार गर्दन' बनता जा रहा है। कालेज की अधिकांश लड़कियों की कैफ़ियत यह है कि Slim (दुबला) होना उनका आदर्श बन गया है।

उपरोक्त पुस्तक इस तरह की शहरीली और साधन सम्पन्न औरतों के लिये बड़े फायदे की है किन्तु गांवों में रहनेवाली डाक्टरनियों से कोसों दूर ग़रीब देहाती कुलशीला भारतीय महिलायें इससे अधिक लाभ न उठा सकेंगी। और ईश्वर को हज़ार धन्यवाद है कि गांवों की महिलाओं को परम्परा से जो नुसखे मिले हैं उनका वे समुचित उपयोग करके बच्चा और जच्चा दोनों को कहीं अधिक स्वस्थ रखने की कोशिश करती हैं। उनका गर्भकाल का ब्रह्मचर्य और नियमित काम, वंशलोचन और इलायची का प्रयोग, जापे के बाद अजवाइन का गरम किया पानी पीने की विधि, हरीरा, सोठोरा, मालिश, खाने पीने का परहेज़ आदि उन्हें साल भर बाद ही दूसरे जापे के लिये फिट कर देता है। बच्चे की मालिश, धूप में लिटाना, दोनों वक्त की घुटी, खुली आबहवा, माँ का पुष्ट दूध और धरती माता का स्वास्थ्यप्रद स्पर्श उन्हें तन्दुरुस्त रखता है। यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि हमारी ग़रीब बहिनों को और शिशुओं को पर्याप्त मात्रा में दूध घी नहीं मिलता, किन्तु यह उनका नहीं हमारी गुलामी का दोष है जिस पर उनका कोई वश नहीं।

एक बात और—बावजूद लम्बी चौड़ी डींगों के आज कल की डिगरीधारी डाक्टरनियाँ और सनदयाफ़्ता दाइयाँ उतनी अच्छी तरह बच्चे नहीं जना पातीं जितनी हमारी


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण कुशल और अनपढ़ दाइयाँ। कहने का तात्पर्य यह है कि हज़ारों वर्ष के अपने अनुभवों को ताक पर रखकर एकदम विदेशी तरीक़ा अपनाने से काम नहीं चलेगा। जनने की क्रिया को छोड़ दीजिये वरना हमारा दावा है कि गर्भिणी की हिफ़ाज़त और बच्चे की सार-संभाल जितनी अच्छी हमारे पुराने देश में होती थी उतनी आज कहीं भी नहीं होती। किन्तु यह भी सत्य है कि पढ़ी लिखी, असंयत, कामाचारी, फ़ैशनेबुल तितलियाँ भी हमारे देश में पहले कभी नहीं होती थीं और न दो बच्चे जनकर २५ वर्ष में बुढ़िया होनेवाली देशदीपक स्त्रियाँ ही यहाँ पहले कभी होती थीं। पर इस पतित पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क की क़ीमत तो हमारे देश को चुकानी ही पड़ेगी।

**युद्ध के बाद हिन्दुस्तान के शिक्षा सम्बन्धी विकास की योजना** (शिक्षा सम्बन्धी केन्द्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट का संक्षिप्त भाषानुवाद)—अनुवादक : श्री बैजनाथसिंह एम० ए०; प्रकाशक : एन० आर० अग्रवाल एण्ड को०, एम० के० गार्डन, आगरा; मूल्य : एक रुपया।

उपरोक्त पुस्तक में हिन्दी में सर जान सार्जेण्ट की कमेटी की रिपोर्ट संक्षेप में दी गई है। रिपोर्ट की विस्तृत आलोचनायें समाचार पत्रों में निकल चुकी हैं। सुनने में बड़बोल किन्तु प्रभाव में भारत को साक्षर बनाने की यह ५५ साला योजना है। पढ़ लिखकर जो लड़के निकलेंगे उनका क्या हश्र होगा यह सार्जेण्ट कमेटी के क्षेत्र का विषय नहीं था। प्रश्न यह है कि हम भारत को शिक्षित बनाने के लिये क्या ५५ वर्ष तक प्रतीक्षा करेंगे जबकि वही काम सोवियत् रूस ने २० वर्ष में पूरा कर लिया है। और हज़ारों करोड़ रुपया ख़र्च कर जो ये लाखों व्यक्ति निकलेंगे उनका अनुपयोग क्या हम सब सहेंगे?

अनुवादक ने अपनी भूमिका में भारत में अङ्गरेज़ी शिक्षा की दुर्भावना और उसके ज़हरीले प्रभाव का ज़िक्र किया है और फिर वे लिखते हैं—"राष्ट्रनिर्माण का जो साधन हमारे सामने रखा जा रहा है उसको अपूर्ण या दोषपूर्ण कहकर उपेक्षित कर देने से हम एक अच्छा अवसर खो देंगे। अपनी निरक्षरता और ग़रीबी को दूर करने का जो अस्त्र हमें मिल रहा है, उसको दूसरों के हाथ में छोड़ देना और आँख मूँदकर बैठ जाना घोर मूर्खता और कायरता होगी।"

अनुवादक की इस सम्मति पर टिप्पणी करना व्यर्थ है क्यों कि वे उस योजना को उल्टे तरफ़ से देख रहे हैं। देश के पूजनीय नेताओं पर कायरता का आरोप लगाना अपनी क्षुद्र बुद्धि का परिचय देना है। पता नहीं अनुवादक ने हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के कार्य विवरण की रिपोर्टें पढ़ी हैं या नहीं? पता नहीं उन्होंने इस सम्बन्ध में गान्धी जी की मनोव्यथा पर दृष्टिपात किया है या नहीं। पता नहीं उन्होंने काँग्रेस मंत्रि मण्डलों के शिक्षा सम्बन्धी उद्योगों का अध्ययन किया है या नहीं? यदि यह सब कुछ उन्होंने किया होता तो वे यह न लिखते कि—"आशा है जनता अपने निर्माण की इस सुन्दर योजना (!) पर अधिकाधिक विचार करेगी और इसको पूर्णतः सफल बनाने के लिये सरकार और समाज को बाध्य करेगी।"

—विद्यानन्द सन्यासी

**बन्दी के गान**—(काव्य-संग्रह) लेखक, श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'; प्रकाशक, श्री जे० शांडिल्य, माडर्न बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली; मूल्य १॥); पृ० सं० १०९।

'बन्दी के गान' में नवयुवक कवि की '४३-'४४ में लिखित ५६ कविताओं का संग्रह है। वे गीत हैं और कवि के कारावास में लिखे गए थे—वह भी अत्यधिक मानसिक तथा शारीरिक कठिनाइयों के रहते हुए। अतएव प्रस्तुत संग्रह पर उनके इस जीवन का प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी था।

आधुनिक संसार में 'सत्' और 'असत्' का अत्यन्त प्रबल संघर्ष छिड़ा हुआ है। यह संघर्ष राजनीति, धर्म, अर्थ, समाज आदि सभी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर हो रहा है। किन्तु जीवन की वर्तमान परिस्थितियों में राजनीति ने कुछ ऐसा प्रमुख रूप धारण कर लिया है जिसकी प्रतिच्छाया से बचना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। उसीके साथ आर्थिक जीवन की विभीषिकाओं ने मनुष्य जीवन को और भी जटिल और दुरूह बना दिया है। मानव-जीवन का ध्येय सदैव सुख सम्पत्ति की ओर रहा है। किन्तु प्रतिकूल साधनों के प्रयोग से वह अभीष्ट ध्येय की प्राप्ति में असफल सिद्ध हो रहा है।

भारतवर्ष इस दृष्टि से कोई अपवाद नहीं है। किन्तु इस नवयुगीन चेतना के साथ-साथ राजनीतिक तथा आर्थिक कारणों से यहाँ जीवन पर अब भी निराशा और अन्धकार की काली चादर पड़ी हुई है। यहाँ की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जनशक्ति में अभी इतनी प्रबलता उत्पन्न नहीं हुई जो अपनी भीषण हुंकार मात्र से अन्धकार के अणु अणु में विस्फोट उत्पन्न कर जीवन को प्रकाशमय बना दे। 'बन्दी के गान' का कवि इसी ओर प्रयत्नशील है। स्वयं कवि के शब्दों में 'बन्दी-जीवन की पीड़ा, वेदना तथा उन्मुक्त कसकन से अनुप्रेरित' 'दाहक क्षणों' में 'रक्त तथा प्राणों के कण कण से इन गीतों की सृष्टि हुई है।' इनमें 'जकड़ी पड़ी मानवता का शत शत रुदन है। और रुदन भी ऐसा है जो दूसरों को रुला दे, क्योंकि उनके पीछे जीवन की सच्ची अनुभूतियों की वेदना है, उसमें हृदय स्पर्श करने की शक्ति है। कवि कहता है :

'आज बन्दी हो गये हैं, स्वप्न सब मेरे पुराने !

× × ×

पूछते क्या, आज मेरा,
सब सुभग संसार खोया,
वेदना से तप्त जग ने,
दग्ध उर का घाव धोया ॥

प्राण, कब इस यातना का, अन्त होगा राम जाने !
आज बन्दी हो गये हैं, स्वप्न सब मेरे पुराने !!

अथवा—

हमारा चिर यौवन सुकुमार
उठाता नव-आशा का भार।
मृदुल-मानव किसके हित हाय,
अरे यह करता है मनुहार ॥

उठी मानस में प्रबल तरङ्ग, तड़प कर मचले फिर से गान।
जलन के स्वर में क्यों अनजान, छले कोकिल ने आकर प्राण !

इतना सब कुछ होते हुए भी कवि अपने वर्तमान जीवन की विभीषिकाओं से अनभिज्ञ नहीं है। परिस्थिति ने कवि को एक मार्ग-निश्चित करने में सहायता नहीं पहुँचाई, यही बात हमें कवि के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रकट करने के लिए प्रेरित करती है। किन्तु कवि में आगे बढ़ने का साहस भी है।

अपने जीवन की धूप छांह चित्रित करने में कवि ने काव्य-कौशल का अच्छा परिचय दिया है। छंद, भाषा-प्रवाह, सच्ची अनुभूति की उपयुक्त शब्दों में अभिव्यक्ति की दृष्टि से कवि की सफलता सराहनीय है। उसकी रचनाओं में उसके जीवन की तड़प का स्पन्दन है।

छापे की अशुद्धियों का अभाव भी इस संग्रह की एक विशेषता है।

अन्त में—

फिर सच्चे मानव कहलावें !
आज मचा है महानाश का,
कैसा यह संघर्ष भयङ्कर !
आग लगी है धू धू करके,
मानव के अणु-अणु प्रलयङ्कर ॥

× × ×

इसीलिए प्रण ठानें हम सब,
उठकर कर्म-क्षेत्र में आवें।
सत्य, अहिंसा व्रतधारी बन,
फिर सच्चे मानव कहलावें ॥

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी कवि ने आशापूर्ण वाक्य कहे हैं। कवि की यह आशा पूर्ण हो।

—लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय डी० फिल०

**धारा**—(काव्य-संग्रह) लेखक; श्री बैजनाथ सिंह, 'विनोद'; प्रकाशक, किताब महल, प्रयाग।

प्रस्तुत पुस्तक श्री विनोद जी के गीतों का संग्रह है। श्री विनोद जी से हिन्दी संसार अपरिचित नहीं है। कवि, आलोचक और सम्पादक के रूप में वे हिन्दी के पत्रों में लिखते रहे हैं। उन्हीं की कविताओं का संग्रह किताब महल ने प्रकाशित करके गौरव लाभ किया है। अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए वे स्वयं कहते हैं कि वे कवि नहीं हैं और संग्रह की बहुत सी कविताओं को पढ़कर पुराने ढर्रे के साहित्यिक लोग उन्हें कविता कहने में भी संकोच करेंगे। किन्तु यदि हम यह स्वीकार करें कि युग के साथ हमारे मूल्यांकन, बदल गये हैं, तो हमें इन रचनाओं में काव्य के दर्शन होंगे। बहुत सम्भव है कि विनोद जी की तत्वदर्शिता में कुछ लोगों को सन्देह हो, और वे उन्हें तत्वदर्शी मानने से इनकार करें, किन्तु उनके नवयुग के आह्वान में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। प्रगतिवादी वे भले ही न हों किन्तु गतिवादी होने का दावा उन्होंने स्वयं ही किया है और वे आगे की दुनिया के लिये पथ प्रशस्त करना भी चाहते हैं, अतः इसके अतिरिक्त प्रगतिवादी होना और किसे कहते हैं, यह समझ में नहीं आता।

यह तो हुई कवि की बात। अब कविता को देखें। यों तो वे स्वयं ही तत्व दर्शन, श्रेणी-संघर्ष और अन्य सामाजिक उलझनों को कविता का विषय बनाने का प्रण किये बैठे हैं, किन्तु उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं उनके हृदय का चिन्तन कवि झाँक रहा है--

मेंट कर व्यक्तित्व अपना प्रेम मय अब हो चुका हूँ,
मधुर चिन्तन जलधि में, अस्तित्व तरणी खो चुका हूं,
शून्य नयनों में बसाकर वेदना का राज सूना,
आज तक के कलुष-कल्मष नयन-जल से धो चुका हूँ,
पाद पंकज इधर कर दो, आज जीवन देवता हे
तव चरण नख ज्योति पर, यह मन्द जीवन-दीप वारूँ।
वास जिसका प्राण में, उसको भला कैसे बिसारूँ?

किन्तु हृदय की इन कोमल अनुभूतियों का शीघ्र ही अवसान हो जाता है, और कवि को इस संसार का भान होता है, जहाँ--

चिथड़ों में लाल लपेटे, माता की ममता खोई।
रोटी के दो टुकड़ों पर, जीवन की समता रोई।

और इस दैन्य, दुख, और वैषम्य का कारण वह श्रेणी संघर्ष को मानता है। उसे मानवता का प्रसार करना है, उसके लिये प्रलय की साज सज्जा वह चाहता है:

रे अग्नि पुत्र भूखे मानव! इस दैत्य सिन्धु को सोख आज,
कंचन निर्मित वैषम्य पुरी के, दहन हेतु सज अनल साज।

और उसे विश्वास है कि--

धीर धरा अब सह न सकेगी, सेवक, चाकर, स्वामी।

हम चाहे उसकी प्रलय-हुंकार से आतंकित और उसके श्रेणी संघर्ष-विहीन-संसार के स्वप्न से प्रभावित न हों, किन्तु उसकी कलम में ओज भी है, प्रसाद भी है। उसके चिन्तन में तत्व दर्शन हो या न हो, किन्तु उसकी भावना धारा युग-दर्शन से अवश्य प्रभावित है, और यदि उसकी रचना में हमें इस युग की भावना धारा, और आनेवाले युग की ऊषा का आह्वान सुन पड़ता है, तो हमें सहृदयता के नाते उसे मानना होगा। उसका प्रगतिवाद जीवन की गति है—

जीवन में गति, गति में जीवन, जीवन का सतत प्रवाह रहा
रुक रुक आगे आगे बढ़ना, जीवन में सबल उछाह रहा।

और उसके जैसे लोग जो—

जो मृत्यु अमरता दोनों से नित आँख मिचौनी खेल रहे।
अपने प्राणों के दीप जला जो पवन-थपेड़े झेल रहे।
पीड़ा जिनकी सहचरी, बुभुक्षा से जिनका अपना नाता।
आंखों में अजब खुमारी ले, जिनको हँस हँस मरना भाता
उन अग्निपूत अवधूतों को कब मलिन कर सकेगी धारा?
अम्बर-चुम्बी जीवन-गति को कब रोक सकी भीषण धारा?

क्या नवयुग के अग्रदूत नहीं हैं?

विनोद जी की कविता में गति है और भाषा में शक्ति। भावों को कभी तो वे सीधे सीधे कह देते हैं और कभी कहीं द्वारा। दोनों ही शैलियों का प्रयोग वे सोच समझकर करते हैं। कहीं भी रूपक न तो भङ्ग हो गए हैं और न भग्न। गीत काव्य की कला को उन्होंने जाना और परखा है। भावों के विकास-क्रम में कहीं पर तारतम्यहीनता नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने व्यंजना पक्ष पर अपना पूरा ध्यान रखा है। हिन्दी के आधुनिक कवियों में यह सजगता दुर्लभ है। इस दुर्लभ सजगता के साथ उनके स्वास्थ्यप्रद जीवन सन्देश को देखकर हमें विश्वास हो उठता है कि हिन्दी साहित्य के वृहत् नीलाकाश में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र आ रहा है।

—रमेशचन्द्र गोयल

**'मातृ-वंदना'**—पं० भगवत प्रसाद शुक्ल, साहित्य शास्त्री, भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज इलाहाबाद; मूल्य ।=); पृष्ठ ४२।

मातृ वन्दना भारत-माता के अभिनन्दन में लिखे गए आठ गीतों का संग्रह है, सभी गीत गाँवों में होने वाले राष्ट्रीय जलसों में गाने योग्य हैं। यह पुस्तक का तीसरा संस्करण है, इससे प्रतीत होता है कि वह विशेष रूप से लोक-प्रिय रही है।

**हमारी राष्ट्रीय समस्याएँ**—लेखक: भगवान दास केला; प्रकाशक, भारतीय ग्रन्थमाला, दारागञ्ज, इलाहाबाद; मूल्य १); पृष्ठ १३६।

यह पुस्तक का सातवां संस्करण है। प्रथम संस्करण सन् १९१८ में प्रकाशित हुआ था। समय समय पर प्रकाशित होनेवाले संस्करणों में सुधार और संशोधन किए जाते रहे हैं। प्रस्तुत संस्करण में लेखक ने नयी तालीम, हिन्दुस्तानी भाषा, पाकिस्तान और लार्ड वैवल की योजना आदि के सम्बन्ध में भी विचार किया गया है। इस प्रकार पुस्तक पूर्णतः आधुनिकतम समस्याओं का विश्लेषण करती है। पुस्तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथमा तथा संयुक्त प्रान्तीय शिक्षा विभाग की हाई स्कूल परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी है।

—विश्वनाथ मिश्र एम० ए०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार

## गान्धी जयन्ती

जब गत २ अक्तूबर १९४४ को देश ने धूम धाम से गान्धी जी की ७५वीं वर्ष गांठ मनाई थी तो गान्धी-जी ने ५० वर्ष और जीवित रहने का निश्चय प्रकट किया था। उनके उस निश्चय की यह पहली वर्ष-तिथि है। हम सब उनके चालीस कोटि देशवासी आश्वास, स्नेह और भक्ति के साथ उनके चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

राजनैतिक क्षेत्र में सत्याग्रह—गान्धी जी की दुनिया को सब से बड़ी देन है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक गान्धी जयन्ती के उत्सव में कहा था—"यद्यपि ईसामसीह ने यह घोषणा की थी कि जो लोग नम्र तथा सहिष्णु होंगे वही पृथ्वी के राज्य के अधिकारी होंगे फिर भी ईसाई लोग आज निश्चयपूर्वक यह कह रहे हैं कि जो बलवान होंगे और दूसरों पर आक्रमण करेंगे वही विजयी होंगे। हज़रत ईसा की इस अनोखी बात की सत्यता सिद्ध करने के लिये एक दूसरे पैग़म्बर की ज़रूरत थी जो यह बताये कि यह नम्रता और सहिष्णुता ही सत्याग्रह के रूप में प्रेम और सहनशीलता की भावात्मक और निश्चित रूप से काम करने वाली शक्ति है। इस नम्रता या सहिष्णुता का यह मतलब नहीं कि यदि कोई हमारे साथ बुराई या अन्याय करे तो हम केवल निष्क्रिय होकर चुपचाप वे सब बुराइयाँ और अन्याय सहते चले जाएं। इस प्रकार चुपचाप अन्याय सहना तो सर्वथा कायरतापूर्ण होगा और चाहे जान बूझ-कर न सही पर फिर भी अनजान में मानो उन बुराइयों और अन्यायों के साथ सहयोग करना होगा। परन्तु गान्धी जी ने इस सहिष्णुता या अहिंसा को वीरता का सब से बढ़िया रूप दिया है।

"अभी यह कहना कठिन है कि इन दोनों परस्पर विरोधी सिद्धान्तों में से अन्त में किस सिद्धान्त की जीत होगी। बात यह है कि जिस समय हम लोग अपने आस पास की और अपने अन्दर की दुष्ट शक्तियों के साथ युद्ध कर रहे हों उस समय सत्य की जिज्ञासा करना और उसकी सिद्धि का प्रयत्न करना बहुत कठिन है। परन्तु एक बात है। चाहे हममें से कोई पूर्ण अहिंसा का पालन करने में समर्थ हो सके या न हो सके, परन्तु फिर भी हमें अहिंसा के सिद्धान्त को अवश्य ही मानना और उस पर विश्वास करना पड़ेगा। क्या इस समय हमारे सामने एक ऐसा आदमी मौजूद नहीं है जो आधुनिक युग के बीच रहकर भी स्वयं अपने जीवन और आदर्श से हमें इसका महत्व बतला रहा है और इस अहिंसा का झण्डा ऊँचा उठाकर हमसे उसकी छाया में आने के लिये कह रहा है? और जब हम इस मार्ग पर चलते रहेंगे, फिर वह हमारा चलना कितनी भी मन्द गति से क्यों न हो, तब महात्माजी का यह सन्देश धीरे धीरे वास्तविक रूप धारण करता जायगा। इसलिये आज का दिन बहुत ही महत्वपूर्ण और स्मरणीय है और आगे हर साल जब जब यह दिन आवे—और हम चाहते हैं कि बहुत वर्षों तक यह दिन आते रहें—तब तब ज्यों ज्यों वर्ष पर वर्ष बीतते जांय, हमें उस महात्मा का यह सन्देश बराबर स्मरण करते रहना चाहिये।"

आज इस दूसरे महायुद्ध की पैशाचिक विभीषिका ने दुनिया के सामने यह बात स्पष्ट कर दी है कि हिंसा का मार्ग सभ्यता, संस्कृति और स्वयं इस दुनिया के नाश का मार्ग है और आज नहीं तो कल दुनिया को गान्धी जी के बताये हुये अहिंसात्मक मार्ग का अवलम्बन करना ही पड़ेगा। इस दृष्टि से स्व० गुरुदेव का उपरोक्त कथन बहुत महत्वपूर्ण है।

—विश्वम्भरनाथ

## साम्प्रदायिक और सांस्कृतिक एकता की अग्रदूत

सदियों पहले एक महान और युग-दृष्टा उपदेशक ने कहा था कि एक विद्वान की क़लम एक सैनिक की खड्ग से कहीं अधिक शक्तिशाली साबित होती है।

अपनी खुदी के अँधेरे से आत्मा के उजाले में मनुष्य अपनी घड़ियों और कैलेण्डरों को देखते हुये चींटी की चाल आता है। किन्तु असीम की पार्श्वभूमि में उसकी यह मन्द गति भी एक अर्थ रखती है और पहले से संयोजित मालूम होती है। जब अध्यात्मिक रहस्य अपने आप को प्रकट करता है तो उसके विकास के नियम की अपनी गति और अपना अनुपात होता है और सदियों का समय भी एक क्षण की तरह मालूम होता है। सभ्यता की सौजन्य-भावना और संस्कृति के नियम इसी क्षेत्र की चीज़ें हैं। मध्यकालीन भारत के एक सन्त ने क्या ही अच्छा कहा है—एक इमारत का निर्माण शिल्पी के फुटों के हिसाब से होता है और एक अदृश्य किन्तु सार्थक आल्हाद पेड़ों को फूलों और पत्तियों से लाद देता है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लाखों बरस से मनुष्य ने मुल्कों को जीतने के लिये तलवार उठाई है। क़लम का इस्तेमाल तो उसने केवल कुछ हज़ार वर्षों से दुनिया में सद्भावना फैलाने के लिये किया है। इसलिये यह मुनासिब नहीं कि बमों की विशेषता से बाइबिल की तुलना की जाय। सद्भावना का मोती बड़ा कीमती होता है और उसे समुद्र से बाहर लाकर उसके प्रकाश से दुनिया को जगमग करने के लिये बड़ा लम्बा और गहरा ग़ोता लगाना पड़ता है।

पिछली तीन या चार दशाब्दियों से विज्ञान ने क़लम को पर लगा दिये हैं। इसलिये अब यह उम्मीद की जाती है कि क़लम का दायरा और प्रभाव कई गुना बढ़ जाना चाहिये। किन्तु इस बात का बेहद ख़याल रखना पड़ेगा कि क़लम से घाव भरने की आशा का सन्देश देने और एकता प्रचार का काम लिया जाय और उसे फूट, अनैक्यता और नाश का साधन बनने से बचाया जाय।

इसी उद्देश्य से सन् १९२१ में लन्दन में एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की बुनियाद डाली गई, जिसका उद्देश्य उन सब लोगों को एक झण्डे के नीचे लाना था जो एक दूसरे के साहित्य को समझते और उसकी खूबियों को परखते हैं और इसी के ज़रिये दुनिया में शान्ति स्थापित करने के लिये अपनी क़लम को इस्तेमाल करते हैं। इस संगठन की प्रशंसा में यह बात कही जा सकती है कि एक मर्तबा भी यह अपने उद्देश्य से विचलित नहीं हुआ।

यह अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जो पी० ई० एन० कहलाता है कवियों, नाटककारों, निबन्ध लेखकों, सम्पादकों और औपन्यासिकों का एक बिरादराना सङ्गठन, राष्ट्रीय क्षेत्र में भी काम करता है। हिन्दुस्तान में इसकी एक शाखा सन् १९३३ में बम्बई में खुली थी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर इसके पहले सभापति थे और श्रीमती सोफ़िया वाडिया इसकी निर्माता-सङ्गठन कर्त्री थीं। पिछले १२ वर्षों में इसने अपने मेम्बरों के ज़रिये, जिनकी तादाद २५० से ऊपर पहुंच चुकी है, प्रान्तीय साहित्यों को एकता के सूत्र में बाँधे रखने की कोशिश की। इस तरह इसने साम्प्रदायिक और सांस्कृतिक एकता के बीज बोये। जब जब साहित्य में पृथकता की भावना ने सर उठाया तब तब पी० ई० एन० ने आगे बढ़कर सांस्कृतिक एकता के हित में और साहित्य की पवित्रता के नाम पर इस पृथकता को दूर करने की प्रार्थना की। उसने हमेशा अपने पहले अन्तर्राष्ट्रीय सभापति जान गाल्सवर्दी द्वारा निर्धारित इस आदर्श को पूरा करने की कोशिश की—

"हम पी० ई० एन० के लेखक उन उपायों से समस्त मानवता की सेवा करना चाहते हैं कि जिन उपायों से साहित्य और उसके निर्माता मानवता की सेवा कर सकते हैं यानी साहित्य द्वारा एक देश को दूसरे देश से जोड़ते हुये और भूखी और ठिठुरी हुई दुनिया में मित्रता का वातावरण पैदा करते हुये।"

अपने इसी आदर्श को पूरा करने के लिये पी० ई० एन० के भारतीय केन्द्र ने जयपुर में आगामी २० से २२ अक्तूबर तक एक अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन का आयोजन किया है। इस मौके पर विविध प्रान्तों के प्रख्यात विद्वान और विदेशी शाखाओं के भी कुछ सदस्य एकत्रित होकर एक दूसरे से परिचय प्राप्त करेंगे। बहस की मुख्य धारा होगी—"भारतीय साहित्य की उन्नति इस प्रकार हो कि वह एकता की शक्ति बन जाय।"

इस प्रकार भारतीय संस्कृति और साम्प्रदायिक एकता की सच्चाई विविध विचारों के व्यक्तियों द्वारा साहित्यिक आदर्श और प्रयत्न के माध्यम से दोहराई और मज़बूत की जायगी। इसलिये पी० ई० एन० उचित रूप से ही, समस्त नम्रता के साथ, देश और विदेश में क़लम के द्वारा शान्ति की स्थापना का दावा पेश कर सकती है। क्योंकि वह भाईचारे की अग्रदूत है और क्रियाशील होने के नाते उसका ज़बरदस्त प्रचार भी है।

—गुरुदयाल मल्लिक

## गांधी जी और वर्ण व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था को लेकर गान्धी जी के भक्तों में काफ़ी ग़लतफ़हमी फैली हुई थी। इधर हाल में 'वर्ण-व्यवस्था' के ऊपर गान्धी जी के लेखों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। उसकी भूमिका में गान्धी जी लिखते हैं—"व्यक्ति या तो आगे बढ़ता है या पीछे हटता है, वह एक जगह स्थिर नहीं रहता। यह एक सार्वभौम सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त के अनुसार मैं जहां कल था वहां आज नहीं हूँ और जहां आज हूं वहां कल न होऊँगा। मैंने वर्णों और आश्रमों को हिन्दू धर्म की दुनिया को विशेष भेंट कहा है। मेरी आज भी वही राय है किन्तु मेरे आदर्श के वर्ण और आश्रमों का आज कहीं अस्तित्व नहीं है। 'आश्रमों' का तो हमारे बीच से लोप हो गया है और 'वर्ण' विशेषाधिकार के तौर पर केवल कुछ वर्गों की बपौती रह गये हैं। जन्म भावना चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य किसी में हो अहंकार ज़ाहिर करती है और धर्म और अहंकार का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


साथ नहीं होता। इस वर्गीकरण में ग़रीब शूद्र की जगह कहां है? ठेठ नीचे। और 'अतिशूद्र' की जगह कहां है? वह कमीन से भी कमीन समझा जाता है। यह धर्म नहीं है, यह अधर्म है।"

गान्धी जी आगे चलकर लिखते हैं—"गीता के चारों वर्ण आज कहां हैं। वर्ण और जाति दोनों अलग अलग चीज़ें हैं। जाति अगणित हैं। जाति के ऊपर कोई व्यवस्था न तो मैंने गीता में देखी है और न अन्य किसी ग्रन्थ में। गीता ने गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार चार वर्ण बताये हैं। यह संख्या मिसाल के तौर पर है। इसको घटाया बढ़ाया जा सकता है। मेरा विश्वास है कि आज केवल एक ही वर्ण है और वह है 'शूद्र', 'अतिशूद्र' या 'हरिजन' यदि हिन्दू समाज मेरे विचार का हो जाय तो उसकी समस्त आन्तरिक समस्याएं हल हो जांय। मुसलमानों के साथ साम्प्रदायिक कटुता भी समाप्त हो जाय और दुनिया में हिन्दुस्तान की एक गौरवपूर्ण जगह बन जाय।"

जातिगत फ़र्क़ों के बारे में गान्धी जी कहते हैं—"जिस तरह छोटे बड़ों का फ़र्क़ धर्म नहीं अधर्म है उसी तरह रङ्ग-भेद भी अनैतिक है। यदि कोई धर्मग्रन्थ जाति भेद, वर्ण भेद या रङ्ग भेद का समर्थन करता है तो वह धर्मग्रन्थ नहीं है। किसी भी धर्म ग्रन्थ के अध्ययन का बुनियादी उसूल यह होना चाहिये कि वह किसी भी ऐसी बात का समर्थन न करे जो नैतिक दृष्टि से अनैतिक हो।

"जातीय भेद भावों ने हमारे अन्दर इतनी गहरी जड़ें जमा ली हैं कि उसका असर मुसलमानों, ईसाइयों और भारत के दूसरे धर्मों के अनुयायियों में भी दिखाई देता है। यह सही है कि दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी कम या ज्यादा अंशों में वर्ग भेद है और इसका यही अर्थ है कि यह मानव जाति की एक समान बुराई है। यह बुराई तभी दूर हो सकती है जब वास्तविक अर्थों में लोगों को धर्म की शिक्षा दी जाय। धर्म की दृष्टि में सभी मनुष्य बराबर हैं। विद्या, बुद्धि या धन किसी को दूसरों पर बड़प्पन नहीं देते।...आजकल की स्थिति हमसे यह अपेक्षा रखती है कि हम अपनी मर्ज़ी से 'अतिशूद्र' बनें। हम अपने को अपनी सम्पत्ति का स्वामी नहीं बल्कि ट्रस्टी समझें और अपनी मेहनत के हिसाब से मेहनताना लें। इस नीति पर अमल करने से न तो कोई ग़रीब रह जायगा न अमीर। सब वर्ग बराबर समझे जायंगे और धार्मिक, जातीय या आर्थिक झगड़े दुनिया की शान्ति को भङ्ग न करेंगे।"

गान्धी जी भारत की पराधीनता की रोशनी में वर्ण-व्यवस्था की बहस करते हुये कहते हैं—"यहां यह कह देना ज़रूरी है कि किसी भी गुलाम देश के लिये विदेशी बन्धनों को तोड़ना सबसे पहला धर्म है। एक गुलाम चाहे उसका कैसा ही ख़िताब क्यों न हो, चाहे वह जज हो या जज का अर्दली हो, एक राजा हो या भिखमंगा हो वह मजबूरी दरजे 'अतिशूद्र' है।"

गान्धी जी के इस स्पष्टीकरण से हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। यह जात पांत का कलुष जितनी जल्दी हिन्दू समाज से दूर हो उतना ही हिन्दू समाज का और हिन्दुस्तान का कल्याण है। गुलामों का केवल एक धर्म है और वह है 'आज़ादी के लिये प्रयत्न'।

## अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के फैसले

लगभग तीन बरस के बाद पिछले २१, २२ और २३ सितम्बर को बड़ी धूमधाम के साथ बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का इजलास हो गया। बड़ी बड़ी लम्बी चौड़ी तक़रीरें हुईं, दर्जनों प्रस्ताव पास हुये और पचासों हज़ार आदमियों ने तालियां पीटीं। पर कांग्रेस में लगातार २५ वर्ष से काम करनेवाले एक नम्र कार्य कर्त्ता के नाते हम इस बात को सोचते ही रहे कि क्या अपने इस इजलास में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने कोई ऐसा क़दम उठाया है जिसे हम ठोस कह सकें और जो 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के अधिक निकट ले जानेवाला, कांग्रेस के संगठन को अधिक मज़बूत करनेवाला और सन् '४२ की जनता की अनुपम क़ुरबानी की याद में वास्तविक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेवाला कहा जा सके? यह सही है कि एक अलग प्रस्ताव और ऊपरी तक़रीरों में जनता की बेहद प्रशंसा की गई, 'क्विट इण्डिया' की चुनौती को दोहराया गया और आज़ादी के आनेवाले भीषण संघर्ष की कल्पना की गई। पर हमारी शिकायत तो यही है कि जो कुछ प्रस्तावों में था वह तक़रीरों में नहीं दिखाई दिया और जो कुछ तक़रीरों में था वह प्रस्तावों में नहीं दिखाई दिया।

हमें यह बात न भूलनी चाहिये कि अगस्त सन् '४२ की महान क्रान्ति के बाद आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का यह पहला इजलास था। उस क्रान्ति में कांग्रेसी नेतृत्व के अभाव में भी जनता ने जो शौर्य, जो पराक्रम, जो साहस और प्राणों पर जूझकर त्याग की जो असीम भावना दिखाई उसकी कल्पना तक सिवाय गान्धी जी के किसी दूसरे कांग्रेसी नेता को नहीं। जनवरी सन् '४२ में व्यक्तिगत सत्याग्रह की समाप्ति से लेकर जुलाई सन १९४२ तक वर्धा की वर्किङ्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


कमेटी की मीटिंग तक वर्किंग कमेटी के सदस्यों ने गान्धी जी के हाथों से तमाम शक्ति अपने हाथों में ले ली थी। जवाहरलाल, मौलाना और पटेल अपने व्याख्यानों में मित्र-राष्ट्रों के साथ हथियार उठाकर फ़ासिस्टी जापान के विरुद्ध लड़ने की कामना प्रकट करने लगे थे। क्रिप्स के आने के वक्त तक कांग्रेस के नेताओं को बड़ी बड़ी उम्मीदें बंधी हुई थीं। क्रिप्स के असफल लौटने के बाद भी पण्डित नेहरू ने कलकत्ते की एक प्रेस कान्फ्रेंस में गुरिल्ला फ़ौजें तय्यार करके जापानी फ़ौजों का मुक़ाबला करने की ख़ाहिश प्रकट की थी। आज पण्डित नेहरू आज़ाद हिन्द सेना को देश-भक्तों की सेना समझते हैं पर उस समय उनकी नज़रों में वह जापान-परस्त सेना थी। आज पण्डित जी की आँखें सुभाष बाबू की याद में सजल हो जाती हैं पर अगस्त सन् '४२ से पहले उन्होंने सुभाष बाबू के मुक़ाबले का ऐलान किया था। पर जिस ब्रिटिश साम्राज्यशाही और मित्रराष्ट्रों के गुट को सुनाकर पण्डित जी ने ये बातें कहीं थीं उसने घले भर भी कांग्रेस की परवाह नहीं की। उसके बाद पण्डित जी ने साफ़ साफ़ ऐलान कर दिया कि उन्हें मार्ग नहीं सूझ रहा है। देश की उस दारुण स्थिति में गान्धी जी ने अपने बूढ़े कन्धों पर फिर नेतृत्व का भार लिया और उनके दो जादू भरे शब्दों 'भारत छोड़ो' ने देश में भूचाल ला दिया, करोड़ों मिट्टी के पुतलों में जान डाल दी, ब्रिटिश साम्राज्यशाही के अस्तित्व को डिगा दिया और सर्वहारा जनता को उसकी अपनी शक्ति के दर्शन करा दिये। हम निःसंकोच यह कह सकते हैं कि यदि जवाहरलाल नेहरू तरुण वर्ग के नेता हैं और गान्धी जी बूढ़े वर्ग के तो सन् '४२ की क्रांन्ति तरुणों पर बुढ़ापे की विजय थी, और यदि अन्तर्राष्ट्रीयता ही भारत के लाभ की वस्तु है तो उस अन्तर्राष्ट्रीयता का अगस्त सन् '४२ के पहले बिलकुल दिवाला पिट गया था। कम्यूनिस्ट आज देश घातकता के दोषी हैं पर कम्यूनिस्ट बहुत से वही नारे लगा रहे थे और अनेक वही भावनायें व्यक्त कर रहे थे जिनका प्रचार अगस्त सन् '४२ के छै बरस पहले से पण्डित नेहरू देश भर में कर रहे थे। इस अन्तर्राष्ट्रीयता ने कांग्रेस को जाने अनजाने मित्रराष्ट्रों के पक्ष में एक ऐसी जगह लाकर बैठा दिया था कि जहां से निकलना उसके लिये मुश्किल हो गया था।

९ अगस्त सन् '४२ को देश भर में कांग्रेस के प्रमुख नेता और कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार कर लिये गये। फिर भी कांग्रेस एक जन तन्त्रात्मक संस्था थी। उसकी हज़ारों बड़ी छोटी कमेटियाँ थीं, ८० लाख के क़रीब साधारण और पचासों हज़ार विविध कार्यकारिणियों के सदस्य थे। पर कांग्रेस का यह सारा तामझाम उस क्रान्तिकारी सप्ताह में छूमन्तर होगया। एक हवाई महल था जो वास्तविक क्रान्ति के एक प्रबल झोंके से धराशायी होगया। इस तरह सन् '४२ के संकटपूर्ण समय में हमने दो बातें देख लीं—(१) गान्धी जी को अलग करके कांग्रेस की नेताशाही अस्पष्ट, उलझी हुई और निकम्मी साबित हुई और, (२) क्रान्ति का भार उठाने में कांग्रेस का संगठन थोथा, लचर और कमज़ोर-बुनियाद निकला! उस शोकपूर्ण परिस्थिति में केवल दो बातें आशाजनक थीं—(१) गान्धी जी का महान नेतृत्व और (२) जनता का साहस और आत्मविश्वास। सच तो यह है उस दारुण परिस्थिति में जनता ने कांग्रेस और देश दोनों की लाज रखली।

हमें विश्वास था कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों ने इन सब बातों पर अहमदनगर के क़िले में ठण्डे दिल से ग़ौर किया होगा। पर बन्धन मुक्त होते ही शिमला सम्मेलन में उनका जो रुख़ रहा वह न तो 'क्विट इण्डिया' के प्रस्ताव के साथ मेल खाता था और न जनता की असीम क़ुरबानियों पर ही वह कोई स्वास्थ्यप्रद टिप्पणी थी। ब्रिटिश साम्राज्यशाही के साथ इतना सौ फ़ी सदी सहयोग यह प्रकट करता था कि अगस्त सन् '४२ की क्रांति इन नेताओं की नज़रों में केवल एक आकस्मिक घटना थी कि जिसका उपयोग केवल ब्रिटिश साम्राज्यशाही को हउआ की तरह डराना भर रह गया है।

अगस्त सन् '४२ की क्रान्ति ने हमें राजनैतिक प्रगति की जिस चोटी पर पहुंचा दिया था यदि वहाँ कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य दृढ़ता के साथ खड़े हो जाते तो अहमद-नगर से निकलने के बाद उनका कुछ दूसरा ही रवय्या होता! वे ब्रिटिश साम्राज्यशाही के मायाजाल में पड़ने से पहले अपनी ताक़त का तख़मीना लगाते। अगस्त क्रांति स्वराज्य दिलाने में पूरी तरह सफल क्यों नहीं हुई इस पर विचार करते, कांग्रेस के दुर्ग को और अधिक मज़बूत बनाते, जनता के सम्पर्क को और अधिक विस्तृत करते, कांग्रेस के लाखों सैनिकों को अहिंसक क्रांति के लिये पूरी तरह तैयार करते, देश के सात लाख गांवों का रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा ज़बर्दस्त सङ्गठन करते, आज़ादी के मार्ग के बाधक छुआ-छूत के कलंक को दूर करने का ठोस प्रयत्न करते, मुसलिम जनता के साथ वास्तविक सम्पर्क क़ायम करते और अपने व्यवहार से यह साबित करते कि कांग्रेस का उद्देश्य अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


लिये शक्ति हथियाना नहीं है बल्कि ४० करोड़ बेज़बानों को अपने अधिकारों पर आरूढ़ करना है। हमारा दावा है कि अगर इस तरह का प्रयत्न उन्होंने छै महीने भी कर लिया होता तो बजाय राष्ट्रपति और वर्किंग कमेटी के सदस्यों के शिमला जाने के वायसराय और उनकी कार्यकारिणी के सदस्य स्वयं स्वराज्य-भवन या सेवाग्राम में दिखाई देते। हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के प्रस्तावों में इस विस्फोटक कार्यक्रम का हमें आभास तक नहीं मिला!

मोटे तौर पर कमेटी के प्रस्तावों को हम तीन श्रेणियों में बांट सकते हैं—(१) ब्रिटेन के प्रति कांग्रेस की नीति (२) अल्पमतों और ख़ासकर मुसलमानों के प्रति उसका रुख़, और (३) कांग्रेस का आन्तरिक सङ्गठन और अनुशासन।

## ब्रिटेन के प्रति काँग्रेस की नीति

पिछले युद्ध के बाद जलियानवाला बाग़ के भयंकर अत्याचारों को देखकर सन् १९२० में कांग्रेस ने अपने इतिहास में पहली बार सरकार के साथ सहयोग की नीति छोड़कर असहयोग की तरफ़ क़दम उठाया था। उस समय ड्यूक आफ़ कनाट ने भारत आकर अपने ऐलान में कहा था—"भारत के एक पुराने मित्र के नाते मैं आप सबसे अपील करता हूँ कि पुरानी बातों को भूल जाइये और बीते हुये ज़माने के साथ पिछली ग़लतियों को भी क़ब्र में दफ़ना दीजिये और कन्धे से कन्धा भिड़ाकर एक साथ काम कीजिये जिससे उन सब आशाओं की पूर्ति हो जो आज के दिन पैदा हो रही हैं।" मण्टेगू-चेम्सफोर्ड सुधार, उसी समय हुए थे। किन्तु कांग्रेस ने कौन्सिलों और असेम्बली में जाने से इन्कार कर दिया और असहयोग का एलान कर दिया। २५ वर्ष बाद आज भी ठीक वही परिस्थिति है। दूसरा महायुद्ध समाप्त हो चुका है। सन् '४२ के अत्याचारों के मुकाबले में जलियानवाला बाग की कहानी पानी भरती है। वही सन् १९१९ की असेम्बली है। वही 'भूल जाओ' वाली नीति का वावेल का एलान है। वही साथ मिल कर काम करने की अपील है। सरकार का रुख़ २५ वर्ष बीत जाने पर भी बिल्कुल वही है। किन्तु कांग्रेस आज कहां है? 'प्रतियोगी सहयोग' की जिस नीति के कारण जयकर, केलकर और मुंजे आदि को कांग्रेस से निकाला गया था उसी नीति को आज कृपलानी के प्रस्ताव द्वारा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने स्वीकार कर लिया। बावजूद वल्लभ भाई और जवाहरलाल की लनतरानियों के आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के इस प्रस्ताव ने कांग्रेस को ढकेलकर फिर २५ वर्ष पीछे कर दिया। गांधी जी आज मौन हैं! काश कि देश जान सकता कि इस सम्बन्ध में उनके क्या विचार हैं पर उन्होंने अपने क़ानूनी उत्तराधिकारी और अनुयायियों को इतनी छूट तो दे ही रखी है कि वे एक बड़े राष्ट्र के गौरव और आत्मसम्मान को लेकर समझौता कर सकें। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के उपस्थित सदस्यों में इतनी भी आत्मचेतना न थी कि वे इस 'प्रतियोगी सहयोग' वाले प्रस्ताव पर एक संशोधन तक पेश करते। सन् '४२ के ३५,००० शहीदों की स्मृति में कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी के प्रस्ताव द्वारा यह कितनी शानदार श्रद्धाञ्जलि थी!!!

## मुसलमानों के प्रति कांग्रेस का रुख़

किसी सोनेवाले को जगाकर उठाना आसान है किन्तु बहाना करके सोनेवाले को जगाना बहुत कठिन है। इसीलिये जब हमने मियां इफ़्तख़ारुद्दीन के जवाब में पण्डित नेहरू की तक़रीर में यह पढ़ा कि—"डाक्टर अशरफ़ और मियां साहब आकर मेरे युक्त प्रान्त के दौरे में देखें कि कितने अधिक मुसलमान कांग्रेस के साथ हैं," तो हम अपना आश्चर्य न रोक सके। हमारे लिये तो यह एक समाचार है कि जिसके लिये हम पण्डित नेहरू के शुक्रगुज़ार हैं! उनका यह व्याख्यान अगर हम न पढ़ते तो इतनी बड़ी सच्चाई का राज़ हम पर न खुलता। ख़ैर जाने भी दीजिये युक्तप्रान्त की बात। यहां सौ फ़ी सदी मुसलमान कांग्रेस के साथ हैं। किन्तु और प्रान्तों की क्या कैफ़ियत है? कितने मुसलमान कांग्रेस के चवन्नी सदस्य हैं? कितने मुसलमान कार्यकर्त्ता कार्यकारिणियों में हैं? इसका हरगिज़ यह अर्थ नहीं कि सब मुसलमान लीग में हैं और मुसलिम लीग कोई बेहतर संस्था है। हम ये दो बातें मानकर चलते हैं—

(१) मुसलिम लीग प्रतिक्रियावादी संस्था है। उसका पाकिस्तान का प्रस्ताव अपघाती है। ग़रीब मुसलमानों का मुसलिम लीग में कोई प्रतिनिधित्व नहीं। मुसलिम लीग की नीति ब्रिटिश साम्राज्यशाही की पोषक है और

(२) यह ग़लत है कि मुसलिम लीग सौ फ़ी सदी मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करती है।

किन्तु इन दोनों बातों से यह कैसे साबित होता है कि मुसलमान कांग्रेस के साथ हैं। यदि पिछले दस बरसों में हमने कांग्रेस कार्यक्रम को मुनासिब बुनियादों पर चलाया होता तो निस्सन्देह आज ९० फ़ी सदी मुसलमान कांग्रेस के साथ होते। पर दिक़्क़त यह है कि अहिंसा पर जिस तरह हम


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नीति के रूप में विश्वास करते हैं हिन्दू मुसलिम एकता पर हमारा वैसा भी विश्वास नहीं है। जो क़ौम ७ करोड़ अछूतों के साथ जघन्य, पाशविक और अमानुषिक बर्ताव कर सकती है और अपने इस गलित अङ्ग को मलहम पट्टी तक करना उचित नहीं समझती वह हिन्दू मुसलिम एकता का झूठा बहाना भी क्यों करे? जाने दीजिये सामाजिक पहलू को! हम समाजवादियों के प्रिय आर्थिक दृष्टिकोण से ही इस पर विचार करें तो दो बातें बहुत साफ़ होकर हमारे सामने आजायेंगी—

(१) बङ्गाल में और ख़ासकर पूर्वी बङ्गाल में ७० फ़ी सदी किसान मुसलमान हैं और ९५ फ़ी सदी ज़मीदार हिन्दू हैं। इस्तमरारी बन्दोबस्त फांसी की तरह किसानों के गले में लटका हुआ है। बङ्गाल प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी ने पिछले बीस वर्षों में इन किसानों को कोई हितपद आश्वासन नहीं दिया। कुछ राष्ट्रीय मुसलमानों ने कृषक प्रजा पार्टी क़ायम की। उसके नाम पर चुनाव लड़ा गया और जीता गया। सच तो यह है बङ्गाल के करोड़ों मुसलमान किसान काँग्रेस के आश्वासन के अभाव में काँग्रेस से विमुख हुये।

(२) पंजाब में रय्यतवाड़ी प्रणाली है। वहाँ मुसलमान और जाट किसानों का बहुमत है और ये ग़रीब लोग हिन्दू और सिख साहूकारों के चुङ्गल में फँस हुये थे। कांग्रेस ने इन्हें मुक्त करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। यूनियनिस्ट पार्टी ने साहूकारा बिल पेश किया जिसके पहले वाचन में कांग्रेसी सदस्यों ने बेशर्मी के साथ उसका विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि पंजाब के मुसलमान किसान कांग्रेस की हमदर्दी न पाकर कांग्रेस से उदासीन हुये।

फिर यही बङ्गाल और पंजाब मुसलिम लीग के पाकिस्तानी स्वर्ग की रीढ़ बन गये। पण्डित जवाहरलाल ने अपने व्याख्यान में कहा है—"मुसलिम लीग से हमारे समझौते का दरवाजा बन्द हो गया। अब हम सीधे मुसलिम जनता के पास जायँगे और उनसे पूछेंगे कि उन्हें क्या तकलीफ़ें हैं।"

हम इस निश्चय का स्वागत करते हैं। मुसलिम जनता की शिकायतें और ज़रूरतें बहुत साफ़ हैं। ९० फ़ी सदी मुसलमान उसी कोटि के हैं जिस कोटि के ९९ फ़ी सदी हरिजन। दिन भर मेहनत करते हैं तब शाम को उन्हें खाना नसीब होता है। जिस दिन काम न हो उस दिन फ़ाके करने पड़ते हैं। व्यक्तिगत सम्पत्ति के नाम पर उनके पास मिट्टी के चार बर्तनों और फटी गुदड़ियों के सिवा कुछ नहीं होता। भयङ्कर रूप से अज्ञान, अविद्या और निर्धनता के चुङ्गल में वे फँसे हुये हैं। फिर वे देखते हैं कि जो लोग उनका शोषण करते हैं उनमें ९५ फ़ी सदी ज़मीदार, ९५ फ़ी सदी साहूकार, ९५ फ़ी सदी कारख़ानेदार और ९५ फ़ी सदी दलाल हिन्दू होते हैं। वे यह भी देखते हैं कि सामान्यतया हिन्दू की नज़रों में वे केवल विधर्मी म्लेच्छ हैं जिनका पानी उनसे छूकर ग़लीज़ बन जाता है। ग़रज़ यह कि आर्थिक दृष्टि से, राजनैतिक दृष्टि से, सामाजिक दृष्टि से, और सांस्कृतिक दृष्टि से मुसलमान एक बेहद चुगी हुई, गिरी हुई और पिछड़ी हुई क़ौम हैं। बेहद ग़ुस्सीले, बेहद भावुक मगर बेहद प्रेमी। एक बार उन्हें आपकी हमदर्दी और प्रेम का अहसास भर हो जाय फिर वे आप पर निसार हो जायँगे।

काँग्रेस के कार्यकर्त्ता और मुसलमान जनता के बीच में आज एक ज़बर्दस्त खाई है। गत २८ जून को इलाहाबाद में काँग्रेस कार्यकर्त्ताओं की सभा में पण्डित जवाहरलाल जी ने बोलते हुये कहा था—"बहुत जल्दी हमें हुकूमत की बागडोर सम्हालनी पड़ेगी पर हमारे पास ऐसे आदमी तक नहीं जो दुनिया के विविध मुल्कों में जाकर राजदूतों का काम सम्हाल सकें। इसके लिये हमें हज़ारों आदमियों की ज़रूरत पड़ेगी जो संसार भर की ज़बानें जानते हों, विविध देशों के रीति रिवाज, उनके इतिहास और उनकी संस्कृति से वाक़िफ़ हों। हज़ारों आदमियों को हमें डिप्लोमेटी की तालीम देनी होगी। कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं को बिलकुल यही दिक़्क़त मुसलमान जनता के बीच काम करने में होती है। अधिकांश कांग्रेसी कार्यकर्त्ता, मुसलमानों के धर्म, उनकी तहज़ीब, उनकी संस्कृति, उनके इतिहास और सामाजिक प्रवृत्तियों से बिलकुल अपरिचित होते हैं। दोनों में ज़बान का भी फ़र्क़ है। परिणाम यह है कि दोनों एक दूसरे के साथ वास्तविक सम्पर्क क़ायम नहीं कर पाते और एक दूसरे से शीघ्र ही बरगश्ता होने लगते हैं। मुसलमान जनता में काम करने के लिये हमें कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं को ख़ास तौर पर ट्रेन करना पड़ेगा। हमारा यह दावा है कि उचित ट्रेनिंग पाकर मुसलमानों के बीच में जितना वा असर काम हिंदू कार्यकर्त्ता कर सकता है उतना मुसलमान नहीं।

मुसलमान जनता की इस समय की परिस्थिति को देखकर राष्ट्रपति आज़ाद ने श्रीनगर से 'आत्म निर्णय' पर जो वक्तव्य दिया था वह भी कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी के नीचे नहीं उतरा, यहाँ तक कि उस प्रस्ताव को आगामी चुनाव में हिन्दू मत दाताओं के डर से आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी तक में नहीं पेश किया गया। माना कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रहते हैं कि मुसलिम लीग से हमें कोई समझौता नहीं करना है पर क्या वर्किंग कमेटी के सदस्यों ने जमैयत-उलउलेमा, मजलिसे अहरार, कृषक प्रजा पार्टी, मोमिन कान्फ्रेंस, मुसलिम मजलिस आदि राष्ट्रीय संस्थाओं के मुसलमानों की मांगों और उनके प्रस्तावों पर कोई ग़ौर किया है? इनकी मांगों को बिना पर ही कांग्रेस को मुसलिम जनता के नाम आत्म निर्णय का ऐलान करना चाहिये था। पर आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने यह सब कुछ नहीं किया। अपनी इस निःसम्मी नीति से उसने एक ओर हिन्दू सभा के दावे को मज़बूत किया और दूसरी तरफ़ राष्ट्रीय मुसलमानों के काम को ज़रा मुशकिल कर दिया।

## कांग्रेस का आन्तरिक संगठन

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने अगस्त क्रान्ति की रोशनी में अपने सङ्गठन में सुधार करने के कोई फ़ैसले नहीं किये। आगा ख़ां के महल से निकलकर गान्धी जी व्यग्रता के साथ इस बात को सोच रहे हैं कि कांग्रेस में जनता को अधिक से अधिक संख्या में किस तरह लाया जाय। इसके लिये उन्होंने ऐलान किया है कि वास्तविक शक्ति जब भी आयेगी जनता के हाथों में जायेगी। और उस शक्ति पर अधिकार करने के लिये वे किसानों, मज़दूरों और विद्यार्थियों का दृढ़ और व्यापक सङ्गठन चाहते हैं। कांग्रेस आज लाखों निकम्मे सदस्यों की भारी भरकम जमात बन गई है। उसे अधिक क्रियाशील बनाने के लिये क्रियाशील कार्यकर्त्ताओं की बुनियाद पर उसका सङ्गठन करने की ज़रूरत है। हम उत्सुकता से देखेंगे कि आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने इस सम्बन्ध में जो उपसमिति बनाई है वह कांग्रेस को ठोस आधारों पर स्थित करने के लिये कौन से सुधार पेश करती है। कम्यूनिस्टों के सम्बन्ध में भी आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने कोई फ़ैसला नहीं किया। यह काम एक छोटी उपसमिति के सुपुर्द कर दिया गया है। वह उपसमिति चार्ज शीट बनाकर अपराधी व्यक्तियों से जवाब तलब करके तब फ़ैसला देगी।

## कमेटी के अन्य प्रस्ताव

अपने अन्य प्रस्तावों में कमेटी ने वावेल के ऐलान से असन्तोष प्रकट किया है। चीन को बधाई भेजी है। बर्मा, मलाया, जावा, हिन्दचीन और दूसरे एशियाई देशों की स्वतन्त्रता का समर्थन किया है। अगस्त क्रान्ति के लिये जनता को बधाई दी है और उसके त्याग की प्रशंसा की है और गान्धी जी के प्रति दिखावटी भक्ति दर्शाने के लिये १५ धाराओंवाले रचनात्मक कार्य क्रम का भी एक प्रस्ताव में उल्लेख किया है। सच तो यह है लीडर पेशा कांग्रेसमैन को रचनात्मक कार्यक्रम में कभी कोई दिलचस्पी रही ही नहीं। इसीलिये कमेटी ने प्रस्ताव पास कर लेने के अतिरिक्त उसे अमल में लाने के लिये कोई योजना नहीं बनाई।

## आत्मनिर्णय की बात

जो प्रस्ताव केवल वर्किंग कमेटी में ही पास होकर रह गये उनमें आत्म निर्णय का प्रस्ताव सब में मुख्य था। प्रस्ताव के शब्दों से प्रस्ताव का आशय साफ़ नहीं होता। उसके शब्द हैं—"कांग्रेस किसी भी राजनैतिक या भौगोलिक इकाई को भारतीय संघ या फेडरेशन से अलग होने की आज़ादी देकर हिन्दुस्तान के टुकड़े करने के किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकती किन्तु कांग्रेस किसी भी भौगोलिक क्षेत्र को उसकी ऐलान की हुई निश्चित मरज़ी के ख़िलाफ़ भारतीय संघ में रहने को मजबूर भी नहीं कर सकती।" इस प्रस्ताव के दोनों हिस्से एक दूसरे को काटते हैं। शायद इसका आशय यह है कि कांग्रेस स्वयं देश के टुकड़े करना पसन्द नहीं करती पर जो टुकड़ा अलग होना चाहे वह अलग होने को स्वतन्त्र है। आत्मनिर्णय का यह सिद्धान्त भारतीय संगठन विधान का अङ्ग न होगा और एक बार शामिल होकर कोई भौगोलिक क्षेत्र भारतीय संघ से अलग न हो सकेगा।

## पाकिस्तान की परिभाषा

कायदे आज़म जिन्नाह से जब जब पाकिस्तान की परिभाषा करने के लिए कहा गया तब तब वे टालते रहे। इधर हाल में मुसलिम लीग के जनरल सेक्रेटरी नवाबज़ादा लियाक़त अली ख़ाँ ने पाकिस्तान की परिभाषा और व्याख्या करने की कोशिश की है। अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के अपने एक व्याख्यान में उन्होंने बताया कि—"पाकिस्तान का अर्थ है उन क्षेत्रों में स्वतन्त्र, स्वाधीन गणतांत्रिक राज्य स्थापित करना जहां मुसलमान बहुमत में हैं। भारत के पश्चिमोत्तर में आजकल की सीमाओंवाले पंजाब, सरहद, बलूचिस्तान और सिन्ध और भारत के पूर्वोत्तर में बङ्गाल और आसाम पाकिस्तान की सीमाएं होंगे।

इस पर आलोचना करते हुये बम्बई की प्रेस कान्फ्रेंस में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने पाकिस्तान की सीमाओं पर बोलते हुये कहा—"दक्षिणी पञ्जाब और पश्चिमी बङ्गाल पाकिस्तान में शामिल नहीं किये जा सकते चूँकि वहाँ की आबादी में हिन्दू और सिखों का बहुमत है। यह एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



निहायत बेहूदा बात है कि एक सम्प्रदाय के लिये तो आत्मनिर्णय की बात कही जाय और दूसरे सम्प्रदायों को ज़बर्दस्ती पाकिस्तान की सीमा में शामिल रखने का ऐलान किया जाय। पाकिस्तान के पहले पंजाब और बङ्गाल का बटवारा ज़रूरी है। इस बटवारे के बाद पञ्जाब का पश्चिमी-उत्तरी हिस्सा आर्थिक दृष्टि से बहुत ग़रीब हो जायगा। दूसरी बात यह है कि कोई पंजाबी या बङ्गाली चाहे वह हिन्दू हो या सिख या मुसलमान अपने प्रान्तों के टुकड़े किये जाना पसन्द न करेगा। इन दोनों प्रान्तों में प्रान्तीयता की इतनी ज़बर्दस्त भावना है कि वहाँ के मुसलिम लीगी भी अपने प्रान्तों का बटवारा पसन्द न करेंगे।"

नवाबज़ादा लियाक़त अली के पाकिस्तान की कुल आबादी लगभग बारह करोड़ है जिसमें सन् १९४१ के आँकड़ों के मुताबिक़ मुसलमानों की संख्या छै करोड़ पचास लाख है और ग़ैर मुसलमानों की पांच करोड़ पचास लाख। यानी कुल ५४ फ़ी सदी आबादी के लिये पाकिस्तान की माँग की जा रही है। पंजाब में मुसलमानों की तादाद कुल ५३.४ फ़ी सदी और आसाम में ३४ फ़ी सदी है। इन आँकड़ों को देखते हुये आबादी के इतने कम फ़र्क़ में जहाँ दो ज़िलों के हेर फेर में २-३ फ़ी सदी का बहुमत ग़ायब हो सकता है, पाकिस्तान की माँग करना ज़रा भी न्याय संगत नहीं।

## इनसे हुकूमत को मदद मिलती है

जिस वक्त से लड़ाई के ख़ात्मे का ऐलान हुआ है उसी वक्त से हिन्दू मुसलिम फ़साद यके बाद दीगरे मुल्क के विविध हिस्सों में सर उठाते नज़र आ रहे हैं। देवबन्द, कालपी, कामटी और हाल में बम्बई इसके ताज़े उदाहरण हैं। जब तक लड़ाई चलती रही तब तक पूरे छै वर्षों तक सरकार बहादुर की लाड़ली पुलिस गुन्डे बदमाशों को अपने काबू में किये रही। उस वक्त दङ्गों से लड़ाई के प्रयत्न में धक्का जो लगता, किन्तु अब दङ्गों से देश के राष्ट्रीय आन्दोलन को धक्का लगेगा, हिन्दू सभा और मुसलिम लीग की चाँदी रहेगी और विदेशों में ब्रिटिश साम्राज्यशाही इन खबरों के प्रचार से अपनी नैतिक शाख क़ायम रखने का प्रयत्न करेगी। हितों का विश्लेषण इतना साफ़ है कि एक अन्धा भी यह बता सकेगा कि इन दङ्गों की जड़ कहां है। पर ये दंगे अब इतने घिस गये हैं कि इनसे ज़्यादा गहरी रक़म नहीं बनाई जा सकती।

## भारत की ग्रामीण अर्थनीति

पंडित जवाहरलाल ने जेल से निकलने के बाद टाटा-बिड़ला योजना की काफ़ी प्रशंसा की है और भारत के औद्योगीकरण के प्रयत्न के साथ अपनी पूरी हमदर्दी ज़ाहिर की है। बम्बई के हाल के अपने वक्तव्य के अनुसार एक कपड़े के उद्योग को छोड़कर, जिसे गान्धी जी के सिद्धान्त से वे मिलों और चरखा केन्द्रों में बाँटना चाहते हैं, बड़ी उद्योगों के लिये वे बड़े बड़े कारख़ाने ही पसन्द करते हैं। और ऐसा सोचने में, हमारी नम्र राय में, जवाहरलाल जी वास्तविकता से दूर हट जाते हैं। १७ सितम्बर को बेजवाड़ा आर्थिक पुनर्निर्माण सम्मेलन में सभापति के आसन से भाषण देते हुये प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी ने कहा कि—"आर्थिक योजनाओं को वास्तविकता से मेल खाना चाहिये। युगों से हिन्दुस्तान के आर्थिक जीवन की पहली, प्रमुख और बुनियादी सच्चाई यह है कि हिन्दुस्तान सात लाख गांवों का देश है। यहां कुल सात शहरों की तादाद चालीस से ज़्यादा नहीं है। इसलिये भारत की अर्थनीति शहरी नहीं बल्कि ग्रामीण है। यहां जो भी आर्थिक योजना बने उसे करोड़ों बेकार आदमियों को गाँवों में रोज़ी देने की व्यवस्था करनी पड़ेगी। यह काम औद्योगिक योजना और भारी कारख़ानों की नहीं बड़ी बातें करने से नहीं होगा चूँकि भारी कारख़ाने हिन्दुस्तान के कुछ ही शहरों में खुल सकते हैं। उदार से उदार तख़मीने के मुताबिक ये औद्योगिक योजनायें २५ वर्ष में भारत की आबादी के कुल ५ फ़ी सदी आदमियों को खपा सकती हैं। किन्तु हमें इन करोड़ों आदमियों को रोटी देनी है। महज़ भविष्य की योजनाओं की आशा से इनके पेट नहीं भरे जा सके।"

## आज़ाद हिन्द सेना के अफ़सरों का मुक़दमा

आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने अपने बम्बई अधिवेशन में आज़ाद हिन्द सेना के भविष्य पर चिन्ता प्रकट की और सर तेजबहादुर सप्रू, डाक्टर कैलासनाथ काटजू, भूलाभाई देसाई, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, श्री आसफ़ अली और श्री रघुनन्दन शरण की एक कमेटी बना दी है जो सेना के अफ़सरों के मुक़दमों की पैरवी करेगी। खबर है कि लगभग १,००० अफ़सरों पर मुक़दमा चलेगा। मुक़दमा नवम्बर से दिल्ली में शुरू होंगे और पहले जाये के अभियुक्त कर्नल पी. बी. सहगल, मेजर जनरल मोहम्मद शाहनवाज़ खाँ और कर्नल सरदार प्रतापसिंह धिल्लन हैं। दूसरे और तीसरे सज्जन लाहौर हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज के पुत्र हैं और अङ्गरेज़ी सेना में ऊँचे पदों पर आसीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिख, सभी इस सेना के अङ्ग थे, किन्तु इसके अधिकतर अफ़सर पञ्जाबी हैं।

कोर्ट मार्शल की आधी दर्जन फ़ौजी अदालतें दिल्ली में इनके मुक़द्दमे करेंगी जिनमें हर एक में पांच फ़ौजी अफ़सर जज होंगे। इन जजों में चार यूरोपियन होंगे और एक हिन्दुस्तानी। इन अभियुक्तों के विरुद्ध यह इलज़ाम है कि वे जान बूझकर दुश्मन की फ़ौज में शरीक हुये और अपनी फ़ौज के खिलाफ़ लड़ते रहे। इस अपराध की सज़ा मौत है।

देश के लगभग सभी दलों के लोगों ने इन देशभक्त अफ़सरों की प्राण रक्षा के लिये अपील की है, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यशाही के दिल में तो भारतीय जनमत का कभी कोई मूल्य रहा ही नहीं। जजों का बहुमत यूरोपियन होना बहुत खटकता है। 'चिमूर आष्टी केस' में हम इसकी कैफ़ियत देख चुके हैं। इन अभियुक्तों की भावनाओं को हिन्दुस्तानी जज ही ठीक ठीक समझ सकते हैं।

इस सम्बन्ध में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का क़दम बहुत ही उपयुक्त और सराहनीय है।

## बरेली सेन्ट्रल जेल अभिशाप

युक्त प्रान्त में बरेली सेण्ट्रल जेल अपने भयङ्कर अत्याचारों के लिये नात्सी कनसनट्रेशन कैम्पों को भी मात करता रहा है। यहां तरह तरह के अमानुषिक अत्याचार सम्मानीय राजनैतिक कैदियों पर किये जाते रहे हैं। सबसे हाल की मिसाल उस जेल में नैनीताल के राजबन्दी ठाकुर दीवान सिंह की आकस्मिक मृत्यु है। मृत्यु के बाद जो ख़बरें छपीं उनसे मालूम हुआ कि हफ़्ते भर के अनशन में ठाकुर साहब की मृत्यु हो गई और अनशन गीता की पुस्तक छीन लेने के कारण किया गया था। हफ़्ते भर के उपवास में मृत्यु का होना बड़े आश्चर्य की बात है। फिर उसी जेल के दूसरे राजबन्दी श्री धर्मेन्द्र कुमार और सरजू की गवाहियों से यह प्रकट हुआ कि मृत्यु से पहले स्व० ठाकुर दीवान सिंह को ख़ूब पीटा गया था। जब बहुत शोर हुआ तो हैलट की सरकार ने बरेली के कमिश्नर को जांच का काम सौंपा। कमिश्नर साहब ने यह पता लगाया कि ठा० दीवान सिंह की न्युमोनिया से मृत्यु हुई। इस सम्बन्ध के सरकारी वक्तव्य के शब्द हैं कि—"कैदी को २२ अगस्त को अस्पताल ले जाया गया जहां २३ अगस्त को उसकी मृत्यु हो गई।" ग़ौर कीजिये कि ठाकुर दीवान सिंह की न्युमोनिया में ही मृत्यु हुई तो इतने भयङ्कर बीमार को केवल एक दिन पहले ही अस्पताल क्यों ले जाया गया?

हैलेट की सरकार में इतनी हिम्मत न थी कि वह कोई निष्पक्ष जांच समिति इस मामले में मुक़र्रर करती। शायद इससे उसके लाड़ले जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट पर कोई आंच आती। अमरीकी, अङ्गरेज़ और रूसी पत्र नात्सी कैम्पों की बर्बरता की कहानी छापा करते थे पर यही बातें बर्तानियां के भारतीय जेलों में भी साधारण रूप से होती रहती हैं। युक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी से हमारी दरख़ास्त है कि इस मामले को वह तब तक न छोड़े जब तक शहीद दीवान सिंह के हत्यारों को मुनासिब सज़ा न मिल जाय।

## लाहौरी क़िले का नरक

श्री सुभाष बोस के भतीजे श्री द्विजेन बोस हाल में साढ़े चार वर्षों की नज़रबन्दी के बाद लाहौरी क़िले से मुक्त हुये हैं। लाहौर के क़िले में उनके साथ जो बर्ताव किया गया उसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सेल के अन्दर भी उन्हें हथकड़ियाँ पहनाई जाती थीं। हथकड़ियों की एक ज़ञ्जीर उनके पैर से बाँध दी जाती थी और दूसरी सेल के दरवाज़े से। हफ़्तों उन्हें सोने नहीं दिया जाता था और यदि वे ऊँघने लगते थे तो उन्हें घूसा मारकर जगा दिया जाता था। उनके सेल में भट्टी जलाकर सेल का तापमान १६० डिगरी तक कर दिया जाता था और उन्हें तब तक वहाँ रखा जाता था जब तक कि वे बेहोश न हो जाते थे। उनसे दिन रात जिरह की जाती थी और उनके इनकार करने पर उन्हें पीटा जाता था और उन्हें बराबर गोली से उड़ा दिये जाने की धमकी दी जाती थी।

ये सारी बातें अत्यन्त जघन्य और शर्मनाक हैं। फिर भी इन सब नृशंस अत्याचारों के बावजूद ब्रिटिश सरकार सभ्य होने का दावा पेश करती है।

## जो कुछ बनारस में हुआ

कहा जाता है कि मुहम्मद तुग़लक जब अपनी राजधानी दिल्ली से देवगढ़ ले गया तो दिल्ली के हर बाशिन्दे के लिये वहाँ जाना ज़रूरी कर दिया गया। एक अन्धा और लङ्गड़ा आदमी मजबूरी दरजे वहाँ न जा सका। इस पर कुछ इतिहासज्ञ कहते हैं कि उसे घसीट कर वहाँ ले जाया गया। रास्ते में, ज़ाहिर है, उसकी मृत्यु हो गई। यह क़िस्सा तुग़लक के ज़ुल्मों का दिग्दर्शन कराने और भारतीय शासकों को जघन्य अत्याचारी साबित करने के लिये इतना उपयुक्त समझा गया कि हर अङ्गरेज़ इतिहासकार ने इसे ऐतिहासिक पुस्तकों में दर्ज करना ज़रूरी समझा।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बनारस के गोरे या अधगोरे इन्सपेक्टर ट्वीसडेल ने बचपन में इस क़िस्से को अवश्य पढ़ा होगा और अभी उस दिन तुग़लक की पुनरावृत्ति द्वारा उसने भी एक ऐतिहासिक पुरुष बनने का प्रयत्न किया। तीन बेड़ी पड़े हुये राजनैतिक अभियुक्तों के मीलों पैदल चलकर कचहरी पहुंचने की बात थी। इन देशसेवक ने बेड़ियां पड़े हुये इतनी दूर पैदल चलने में अपनी असमर्थता प्रकट की। इस बीसवीं सदी का यह तुग़लक ट्वीसडेल उन्हें मीलों सड़क पर घसीटते हुये कचहरी ले गया। क़ैदियों का सारा बदन लहूलोहान हो गया और उनकी हालत बड़ी ख़तरनाक बताई जाती है। हम पूछना चाहते हैं हिमलर और तोजो से—"मूजियो! बहुत ज़ालिम बनने की डींगें तुमने हांकी! दे सकते हो अपनी कोई ऐसी मिसाल?" हैलट को सन्तोष होना चाहिये कि उसका ट्वीसडेल हिमलर से सोलहो आने बाज़ी लेगया।

जवाहरलाल जैसे लोग तो राजनीतिज्ञ हैं। इस घटना से उन्हें बड़ा ग़ुस्सा आया है। वे पूछते हैं—देखनेवालों ने इसे बर्दाश्त कैसे कर लिया?" अगर हिन्दुस्तानियों में यही बर्दाश्त की क्षमता न होती तो क्या बरेली, लाहौर और बनारस में ऐसी घटनाएं घटतीं? तब प्लासी के मैदान में ही अङ्गरेज़ी कहानी का उपसंहार लिख गया होता।

## राजा महेन्द्रप्रताप

प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन के संस्थापक और महान भारतीय देशभक्त राजा महेन्द्रप्रताप सन् १९१४ में भारतीय आज़ादी की प्रबल आकांक्षा लेकर इस देश से बिदा हुये थे। सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के समय उन्होंने सरदार अजीतसिंह, लाला हरदयाल, रासबिहारी बोस, बरकत उल्लाह और सैकड़ों अन्य भारतीय देशभक्तों के साथ मिलकर हिन्दुस्तान ग़दर पार्टी के ज़रिये भारत को आज़ाद करने का अथक प्रयत्न किया था। वह प्रयत्न असफल रहा और तभी से भारत की विदेशी सरकार ने उनके सर पर क़ीमत लगा रखी थी। हम सब उनके देशवासी चिन्तित थे कि आख़ीर राजा साहब का क्या हश्र हुआ। पर इधर हाल में एसोशियेटेड प्रेस आफ़ अमरीका ने यह सूचना दी है कि अमरीकी कमाण्डर इन चीफ़ डगलस मैकआर्थर ने राजा साहब को युद्ध अपराधी क़रार देकर जापानी सरकार द्वारा उन्हें गिरफ़्तार करके अपने क़ब्ज़े में कर लिया है। अब उन पर मुक़दमा चलनेवाला है। हम अमरीकी सरकार को चेतावनी दे देना चाहते हैं कि वह राजा साहब को चाहे जो कुछ समझे किन्तु हमारी नज़रों में भारतीय आज़ादी के शैदा राजा महेन्द्र प्रताप विश्वबन्धुत्व के एक ज़बर्दस्त प्रचारक महान त्यागव्रती और सच्चे देश भक्त हैं। उनकी आर्यन सेना भारतीय संस्कृति की प्रचारक और भारतीय आज़ादी की इच्छुक थी। हम भारतीयों की नज़रों में उनके व्यक्तित्व की बेहद क़द्र है। ऐसी सूरत में हम यह चाहेंगे कि राजा साहब को सम्मान सहित अविलम्ब मुक्त कर दिया जाय वरना भारतीय सूची में डगलस मैक आर्थर का नाम भारतीय आज़ादी के अपराधियों में अङ्कित किया जायगा।

## अरब और पाकिस्तान

अरब मुल्कों के फ़ेडरेशन के लन्दन के दफ़्तर के इन्चार्ज अ० र० अत्तिया बे ने यूनाइटेड प्रेस आफ़ इण्डिया के प्रतिनिधि से अपने एक वक्तव्य में कहा है—"हमारा भारतीय मुसलमानों के साथ अरब मुल्कों के मुसलमानों का एक अध्यात्मिक एकता है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हम पाकिस्तान या पैन-इसलाम के समर्थक हैं। हम अरब दुनिया के लोग निकट पूर्व, मध्यपूर्व और हिन्दुस्तान का एक सम्मिलित संघ बनाने के पक्ष में हैं।"

क्या क़ायदे आज़म बतायेंगे कि इस संघ के साथ उनके पाकिस्तान का क्या रिश्ता होगा?

## लन्दन में जातीय दंगे

श्री दुर्गादास अपने १५ सितम्बर के लन्दन से भेजे गये समाचार में कहते हैं—"लन्दन के बीचों बीच [illegible] मोहल्ले में निग्रो सैनिकों पर बार बार जो छुरी से हमला किया जाता है उसने गम्भीर परिस्थिति पैदा कर दी है। कुछ दिन पहले एक निग्रो सैनिक को छुरा भोंक कर मार डाला गया। १२ सितम्बर की शाम को चेयरिङ्ग क्रास पर अमरीकी और कनाडी सैनिकों और महिलाओं ने निग्रो लोगों पर धावा बोल दिया। पुलिस इन दङ्गों को रोकने का विशेष प्रबन्ध कर रही है।"

क्या इङ्गलैण्ड के होम मिनिस्टर मिस्टर हरबर्ट [illegible] सन इन साम्प्रदायिक दङ्गों के कारण अमरीका, [illegible] और इङ्गलैन्ड को अब भी स्वतन्त्रता के योग्य समझते उनके पास तो हिन्दुस्तान की आज़ादी की केवल यह कसौटी है न!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## हम बदले के इच्छुक नहीं

चीन के वैदेशिक मन्त्री डाक्टर वाङ शिह-निह ने रायटर के सम्वाददाता को एक विस्तृत वक्तव्य देते हुये और बातों के अलावा यह भी कहा—"हाला कि जापान के ख़िलाफ़ चीन के मुनासिब दावे का तख़मीना नहीं लगाया जा सकता फिर भी चीन किसी प्रकार के बदले की नीति का पालन नहीं करेगा।"

चीन में मुश्किल से कोई मुहत्वपूर्ण शहर, फैक्टरी, कारख़ाना या रेलवे लाइन होगी जिसे जापान के हाथों क्षति न पहुंची हो। लगभग ५ करोड़ चीनी जनता को जापानी अत्याचारों के कारण अपना घर बार छोड़ना पड़ा था। पूरे आठ वर्षों तक चीनी जनता को अमानुषिक अत्याचार सहने पड़े थे—जापानियों के हाथों और अपने ही जापानी क्रीतिदास देशवासियों के हाथों। पर आज चीन ने मुक्त हृदय से सब को क्षमा कर दिया। जड़वादी, स्वार्थी पश्चिमी सभ्यता के पोषक चीन की इस क्षमा शीलता को न तो समझ सकेंगे और न उसका आदर कर सकेंगे, पर यही तो पूर्व और पश्चिम का मौलिक मतभेद है। गान्धी जी का अहिंसात्मक सत्याग्रह इसी भावना की परम ज्योति है। २५०० वर्ष पूर्व गौतम ने उपदेश दिया था—"क्रोध का अक्रोध से, वैर का अवैर से और घृणा का प्रेम से ही शमन हो सकता है।" चीन और भारत की आत्मा सदा से इसी सनातन पथ की पथिक रही है।

## विदेशी मन्त्रियों का सम्मेलन

लन्दन के लंकास्टर हाउस में चीन, अमरीका, फ्रान्स, रूस और ब्रिटेन के वैदेशिक मन्त्रियों का एक सम्मेलन सुलह की शर्तें तय करने के लिये लगभग महीने भर से हो रहा है। दिखाई ऐसा दे रहा है कि बिना किसी निश्चित नतीजे पर पहुँचे सम्मेलन भङ्ग हो जायगा। मतभेद के विषय हैं—फ़िन्लैण्ड और बलकान के देशों के साथ सन्धि, इटली के उपनिवेशों का बटवारा, दर्रे दानियाल और भूमध्य सागर में रूस की आकांक्षायें और सुदूरपूर्व के प्रबन्ध में रूस की हैसियत। जब कि इङ्गलैण्ड-अमरीका भूमध्य सागर पर अरब मुल्कों के तेल के कारण अपना एक क्षत्र प्रभुत्व रखना चाहते हैं रूस भी भावी युद्ध में दक्षिणी हमलों से सोवियत् को सुरक्षित रखने के लिये उत्तरी अफ़रीका, लाल सागर, भूमध्यसागर और दर्रेदानियाल में मुक़द्दार चाहता है। सोवियत् मन्त्री मोलोतोफ़ ने लन्दन की प्रेस कान्फ्रेंस में हाल में कहा था—"रूस इस बात को नहीं छिपाना चाहता कि इरीट्रिया में उसका स्वार्थ है और अम रीकी समाचार पत्रों के इस समाचार में भी कुछ सचाई कि ट्रिपोलिटानिया का ट्रस्टी बनने के लिये सोवियत् अपन हक़ पेश कर रहा है।" मोलोतोफ़ ने यह भी कहा कि ज सम्मिलित ट्रस्ट में विश्वास करते हैं वे उसे इटली उपनिवेशों को छोड़कर अन्य कहीं उसका प्रयोग क सकते हैं।

रूस के इन दावों ने अमरीका और इङ्गलैण्ड शासकों को चिन्ता में डाल दिया है, पर जर्मनी और इटल की पराजय के बाद यूरोप की सर्वश्रेष्ठ सत्ता के नाते भूमध सागर की सुविधाओं से रूस अपने को वंचित नहीं रखन चाहता। अपने इस दावे को वह ज़ोरदार तरीके से पेश कर रहा है।

भिन्न भिन्न आदर्श लेकर लूट के माल का जो लो बटवारा करने बैठे हैं वे अपने हितों में कोई सन्तुलन पैद कर सकेंगे या नहीं इसका अगले सप्ताह में पता चल जायगा

## हिन्द एशिया के देशों की आज़ादी

जापानी आत्मसमर्पण के बाद हिन्द-एशिया के देश और ख़ासकर जावा और अनाम की जनता फिर से डच की ग़ुलामी स्वीकार करने को तय्यार नहीं है। हिन्द-ची की जनता भी खुशी से फ्रान्सीसियों के सामने सर झुका को उत्सुक नहीं दिखाई देती। ब्रिटेन की मज़दूर सरका डचों और फ्रान्सीयों के दलाल की हैसियत से फिर से इ मुल्कों में यूरोपीय साम्राज्यवाद का झण्डा फहराते देख चाहती है, क्योंकि इन मुल्कों के आज़ाद होते ही मलाय सिंगापुर और बर्मा की जनता भी ब्रिटेन की ग़ुलामी पट्टे को तोड़ने के लिये जीजान से सचेष्ट हो जायगी। ऊपर से ब्रिटेन तटस्थता का दम भरता है पर सिंगापुर अङ्गरेज़ कमाण्डर मेजर जनरल सर फ़िलिप क्रिस्टीसन कहना है कि "यदि अंगरेज़ी फौजें इन डच उपनिवेशों पुलीस का काम करेंगी तो उन्हें मजबूरन एक दल का प लेना पड़ेगा।" इस बीच इन डच उपनिवेशों में डाक्ट आर० आइ० शिवकर्ण के मातहत सब दलों और सब दर्ज की एक जनतन्त्रात्मक राष्ट्रीय सरकार क़ायम होगई है। आरज़ी तौर पर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने भी स्थानीय इन्तज़ा के लिये इस सरकार को मान लिया है पर रायटर के सम्वा दाता के अनुसार ब्रिटेन की नीति इन देशों के प्रति यह कि यहां शीघ्र से शीघ्र डच और फराँसीसी सरकारें क़ाय हो जायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


डाक्टर शिवकर्ण के अनुसार इन देशों का राष्ट्रीय आन्दोलन गान्धी जी के बताये अहिंसात्मक उपायों पर अवलम्बित है और वहां की जनता एक राय से अपनी मांगों पर डटी हुई है। आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, अमरीका आदि के मज़दूरों ने इन देशों की आज़ादी की मांग के साथ हमदर्दी ज़ाहिर की है। आस्ट्रेलिया के जहाज़ी मज़दूरों ने डच जहाज़ लादने तक से इनकार कर दिया है। आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने भी इन मुल्कों के साथ हमदर्दी ज़ाहिर की है। दुनिया का मज़दूर वर्ग इन देशों की आज़ादी की कामना करता है किन्तु इस मामले में असली मूजी तो ब्रिटेन है और उसका रवय्या स्पष्ट है। भारतीय जनता उत्सुकता के साथ वृहत्तर भारत के इन प्रदेशों के आज़ादी के संग्राम की प्रगति को देखेगी। उसकी हमदर्दी पूरी तरह इन देशों के साथ है।

## दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की रजत जयन्ती

राष्ट्र भाषा के काम को आगे बढ़ाने के लिये आज से २५ वर्ष पहले मद्रास में गान्धी जी ने दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना की थी। निस्पृह सेवकों का सहयोग पाकर सभा ने अपनी इस छोटी सी ज़िन्दगी में बहुत काफ़ी काम किया है। इस समय दक्षिण के चारों प्रान्तों में सभा के २५,००० केन्द्र अपना काम कर रहे हैं। हर साल अहिन्दी बोलनेवाले हज़ारों विद्यार्थी राष्ट्र भाषा के इम्तहान देते हैं। लाखों भाइयों और बहिनों को सभा ने राष्ट्र भाषा का ज्ञान कराया है। अब अगले दिसम्बर में दक्षिण भारत की इस हिन्दी प्रचार सभा का रजतजयन्ती समारोह होने जा रहा है। पूज्य गान्धी जी इस अवसर पर मद्रास में उपस्थित रहेंगे।

सभा ने आगे के काम के लिये दस योजनायें बनाई हैं, जिनमें दक्षिण भारत में हिन्दुस्तानी साहित्य का प्रचार, दिल्ली में दक्षिण भारत संस्कृति केन्द्र की स्थापना, हिन्दुस्तानी पत्रिका का प्रकाशन, केन्द्रीय पुस्तकालय भवन की स्थापना आदि बातें शामिल हैं। इस सब कार्यक्रम के लिये पांच लाख रुपये की अपील की गई है। इसमें मद्रास से बाहर के प्रान्तों से भी दो लाख रुपये की मांग शामिल है। अपील करनेवालों में चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य और डाक्टर पट्टाभि सीतारामय्या के भी नाम हैं। महात्मा गांधी ने भी इस अपील का समर्थन किया है और आशा प्रकट की है कि ये रुपये इकट्ठा हो जायंगे।

सभा ने यह भी तय किया है कि अगले तीन महीनों के अन्दर २५ हज़ार विद्यार्थियों को प्रान्तीय लिपि द्वारा पहले हिन्दुस्तानी पढ़ाई जायगी फिर नागरी और उर्दू दोनों लिपियां सिखाई जायंगी। हम सभा के रजतजयन्ती समारोह की दिलो जान से सफलता चाहते हैं और विश्वास करते हैं कि 'विश्ववाणी' के पाठक दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, त्यागरायनगर, मद्रास के पास धन भेजकर एक महान पुण्य कार्य में योग देकर पुण्य के भागी होंगे।

—विश्वम्भरनाथ

## श्री सत्यपाल धवले

कलकत्ता के यशस्वी नवयुवक जन सेवक श्री सत्यपाल धवले मार्च १९४४ में भारत रक्षा विधान के अन्तर्गत कलकत्ते में गिरफ़्तार कर लिये गये थे, अक्तूबर १९४४ में बङ्गाल सरकार का हुक्म रद्द होकर श्री धवले बिहार सरकार के हुक्म से गिरफ़्तार कर लिये गये। उसी महीने एक आकस्मिक दुर्घटना से श्री धवले की धर्म पत्नी का शरीरान्त हो गया और उनके तीन छोटे बच्चे अनाथ और असहाय हो गये। जब तक श्री धवले अलीपुर सेन्ट्रल जेल में रहे बच्चे उनसे नियम पूर्वक जेल में मुलाक़ात कर सकते थे। किन्तु अप्रेल १९४५ में उनका सेन्ट्रल जेल हज़ारी बाग़ तबादला कर दिया गया। अब इसी अगस्त महीने में वे छोड़ भी दिये गये पर उन पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि वे बङ्गाल की सरहद में प्रवेश न कर सकेंगे। ऐसी सूरत में जबकि श्री धवले पिछले १५ वर्षों से कलकत्ता में रहकर अपनी जीविका उपार्जन कर रहे थे उन पर यह प्रतिबन्ध लगाना एक बेहूदापन और ज़्यादती है। क्या हम आशा करें कि श्री धवले पर लगाया गया यह प्रतिबन्ध बहुत शीघ्र रद्द कर दिया जायगा?

—वैजनाथ सिंह 'विनोद'

## भूल सुधार

आदरणीय श्री किशोरलाल भाई मशरूवाला लिखते हैं—"विश्ववाणी के अगस्त १९४५ के अङ्क में पृष्ठ १५६ पर दूसरे कालम में नीचे से पांचवीं लाइन में दो बार 'बना' के बजाय 'बना' छपा है और "अे"कारान्त के बजाय "ए"कारान्त। "घाड़े ने" को तृतीया विभक्ति बताने में मैंने गुजराती व्याकरण का अनुकरण किया है और हमें विभक्ति के सब रूप देना मेरे लिये ज़रूरी न होते हुये छोड़ दिये थे।"

आदरणीय मशरूवाला के इस लेख में अनजाने भूलें रह गईं उनके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारतीय चीनी मिट्टियां

लेखक

पं० मनोहरलाल मिश्र एस० एस-सी०

[ सिरेमिक विभाग काशी विश्वविद्यालय ]

बेहद खोज और परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी गई है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने में बदल सकते हैं यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। चीनी मिट्टी और मिट्टी का व्यवसाय करने वालों के लिये पुस्तक बहुत उपयोगी है। २६० पृष्ठ की सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है। डाक खर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## विश्व-संघ की ओर

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल

और

श्री भगवानदास केला

पृथ्वी के सब राष्ट्रों को मिला कर उनका एक संघ किन उसूलों पर क़ायम किया जा सकता है इस गम्भीर विषय पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विश्वव्यापी शान्ति चाहने वाले सब लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। २०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपया, डाकखर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## आरसी-रचनावली

| | | |
|---|---|---|
| आरसी ( कविताएँ ) | ... ... | ६) |
| कविता ( कविताएँ ) | ... ... | ५) |
| कल्पना ( कविताएँ ) | ... ... | २॥) |
| पुष्पधन्वा ( कविताएँ ) | ... ... | २) |
| नयी दिशा ( कविताएँ ) | ... ... | २) |
| विश्वबन्धुत्व ( कहानियाँ ) | ... ... | २) |
| सोना सिक्का ( कहानियाँ ) | ... ... | १॥) |
| आँधी के पत्ते ( कहानियाँ ) | ... | १॥) |
| जीवन और यौवन ( कविताएँ ) | ... | १॥) |
| चंदा मामा ( कविताएँ ) | ... ... | १) |

**तारा मण्डल, मुजफ्फरपुर**

संस्कृति, साहित्य और कला की सन्देशवाहक

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

## विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

सम्पादक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य के ऊपर खोजपूर्ण गम्भीर निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक एक अंक संग्रहणीय—

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

**मैनेजर, विश्वभारती पत्रिका, हिन्दी भवन**

पो० शान्तिनिकेतन (बंगाल)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




बरसों की प्रतीक्षा के बाद आख़िर छप गई

## गीता और क़ुरान

### लेखक : पण्डित सुन्दरलाल

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, क़ुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर क़ुरान की ४०० से ऊपर आयतों का लफ़्ज़ी तर्जुमा दिया गया है। जो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्मों को समझना चाहें उनके लिये यह पुस्तक बहुत क़ीमती और बेमिसाल है। २०० सफ़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल

**डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग**

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

पं० सुन्दरलाल जी की एक और नई पुस्तक

## हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

प्रकाशित हो गई

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म-भूमि फ़िलस्तीन की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के साथ साथ हिन्दुस्तान, चीन, ईरान इत्यादि दूसरे एशियाई देशों की उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक हालत के साथ हज़रत ईसा और उनके उसूलों का गहरा सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया गया है

मूल्य, डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

## "विश्ववाणी का एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है"—गान्धी जी

महात्मा गान्धी जी ने कहा था—"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे।"

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सर तेज बहादुर सप्रू, आचार्य क्षिति मोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० महादेव देसाई, क्यूरेटर-ब्रिटिश म्यूज़ियम ( लन्दन ), प्रो० तान युन-शान आदि सैकड़ों देशी और विदेशी सर्वमान्य नेताओं और विद्वानों ने गान्धी जी की उपर्युक्त राय को ही दोहराया है।

**विश्ववाणी के पुराने अङ्कों में देश और विदेश के चोटी के विद्वानों के गम्भीर और महत्वपूर्ण लेख भरे पड़े हैं। विश्ववाणी के विशेषाङ्कों का तो कुछ पूछना ही नहीं।**

**क्या आप के पास विश्ववाणी के बहुमूल्य विशेषाङ्क हैं ?**

**क्या आप विश्ववाणी के महत्वपूर्ण पुराने अङ्क ख़रीदना चाहेंगे ?**

हमारे पास 'टैगोर अङ्क', 'संस्कृति अङ्क' पहला भाग 'बौद्ध संस्कृति अङ्क', 'चीन अङ्क', 'जैन संस्कृति अङ्क', और 'अकबर अङ्क' की थोड़ी सी प्रतियाँ बची हुई हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर अङ्कों की भी कुछ प्रतियाँ और सन् ४२ और ४३ की थोड़ी सी पूरी फाइलें बची हुई हैं। जिन सज्जनों को चाहिये फ़ौरन आज ही पत्र लिखें। जिस क्रम से आर्डर आवेंगे उसी क्रम से ग्राहकों को प्रतियाँ दी जाँयगी।

**मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**


सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76211

# देवनागरी

संरक्षक : पण्डित सुन्दरलाल
सम्पादक : विश्वम्भरनाथ

स० सम्पादक : वैजनाथ सिंह 'विनोद'
कमल कुलश्रेष्ठ

मूल्य ६) ]

नवम्बर १९४५

[ एक अङ्क का ॥=)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तप्रान्त, पञ्जाब, बम्बई, मद्रास, मध्यप्रान्त और बरार, होलकर राज्य, मेवाड़, जोधपुर, मैसूर और काश्मीर आदि के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूल और कालेज लाइब्रेरियों के लिये स्वीकृत।

# विषय सूची

[ नवम्बर १९४५ ]

१—मेरे निर्वासन के इक्कीस वर्ष—प्रेमयोगी राजा महेन्द्रप्रताप ... ... ३५७
२—हिन्दुस्तानी कल्चर—सर मिर्जा इस्माइल के० सी० आई० ई० ... ... ३६२
३—जो कुछ सच है वह तो सामने रखें—डा० सैयद महमूद एम० ए०, पी-एच० डी०, बार-एट-ला ३६५
४—वृहत्तर भारत की संस्कृति—रा० ब० ज्ञानशंकर पंड्या एम० ए० ... ... ३६७
५—पंच स्कंध और बौद्ध दर्शन—भिक्षु धर्म रक्षित धर्म शास्त्री ... ... ३६९
६—शेष-पत्र—डा० एन० एस० वर्द्धन ... ३७५
७—चीनी अदब (साहित्य) पर एक सरसरी नजर—डा० लतीफ दफ़री एम० ए०, डी० फिल० ३८३
८—युग मानव (कविता)—श्री० उपेन्द्र ... ३८८
९—उगते सूरज के देश की स्त्रियां—डा० ता० नाकनूरा ३८९
१०—गुलमुहर (कविता)—श्री० प्रभाकर माचवे ३९०
११—सिख और उनका जातीय संगठन—प्रो० तेजासिंह एम० ए० ... ... ३९१
१२—विद्याः समस्ताः तव देवि भेदाः—डा० भगवानदास ... ... ३९७
१३—गीत (कविता)—श्री० महेन्द्र बी०ए०, विशारद ४००
१४—राष्ट्रभाषा का रूप—श्री० काका कालेलकर ४०१
१५—भावना! (कविता)—कुमारी लक्ष्मी देवी गोयल ४०५
१६—अनेकता में एकता—प्रो० विश्वनाथ प्रसाद एम० ए० साहित्याचार्य ... ... ४०६
१७—अपने पथ की धूलि से (कविता)—श्री० छोटेलाल भारद्वाज ... ... ४१२
१८—भाषा में ध्वनि-परिवर्तन के कारण—श्रीमती चंद्रकुमारी वर्मा एम० ए० ... ४१३
१९—गीत (कविता)—श्री० शीतला सहाय श्री वास्तव ... ... ४१६
२०—दिल्ली सम्राट के फ़िदवि-ए-ख़ास—पं० सुन्दरलाल ४१७
२१—प्रलय पर्व (कविता)—श्री० विद्याधर कुलश्रेष्ठ 'कुसुम' ... ... ... ४२०
२२—भारतीय नृत्यकला का मौलिक विकास—श्रीमती ईनाक्षी रामराव ... ... ४२१
२३—इन्डोनीशिया में डच साम्राज्यवाद—श्री० प्रकाश नारायण सप्रू ... ... ४२३
२४—मज़लूम (कविता)—श्री इन्द्रप्रताप तिवारी ४२५
२५—हिन्दू-मुसलमान—महात्मा भगवानदीन ... ४२७
२६—पुस्तक-परिचय ... ... ४२९
२७—सम्पादकीय विचार ...

# विश्ववाणी के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से विश्ववाणी नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्ववाणी' भेजते हैं। हम अपने रजिस्टर में विश्ववाणी भेजने की तारीख़ तक दर्ज करते हैं। किन्तु डाकखाने के भूत बीच में छापा मार कर कई प्रतियाँ ग़ायब कर देते हैं। हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस बात की शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण रूप से भेजी हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर सकने में विवश हैं। विश्ववाणी हर महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है और पाँच तारीख़ तक सभी ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन जब हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक नम्बर लिखना भूल जाते हैं। विश्ववाणी सम्बन्धी जाँच के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब के लिये या तो जवाबी कार्ड या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत
नित्यानन्द चैटर्जी
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व वाणी

वर्ष ५, भाग १० ] नवम्बर : १९४५ [ अङ्क ५, पूरे अङ्क ५९

# मेरे निर्वासन के इक्कीस वर्ष

प्रेमयोगी राजा महेन्द्रप्रताप

भारत के प्रसिद्ध निर्वासित नेता राजा महेन्द्रप्रताप आज अमरीकन सेनापति डगलस मैकआर्थर के बन्दी हैं। उन्हें युद्ध अपराधी घोषित किया गया है और उनका कोर्ट मार्शल किया जायगा। प्रस्तुत लेख अमरीकन पत्रों के लिये संक्षिप्त आत्म कथा के रूप में स्वयं राजा साहब द्वारा सन् १९३५ में लिखा गया गया था। राजा साहब के जीवन के उद्देश्य और उनके कार्यक्रम पर इससे काफ़ी प्रकाश पड़ता है। हमारे पुराने मित्र और सहपाठी डाक्टर मङ्गलमूर्त ने वाशिङ्गटन से "अटलाण्टा मैगज़ीन" की यह पुरानी कटिंग हमारे पास भेजी है और यह इच्छा प्रकट की है कि भारत को अपने इस निर्वासित देश भक्त की प्राणरक्षा के लिये घनघोर आन्दोलन करना चाहिये। —सम्पादक

यह कोई बहुत तारीफ़ की बात नहीं है कि कोई अपना ही आत्म-विज्ञापन करे, पर मैं अपने देश से निर्वासित हूं। कहीं घरबार नहीं। आज यहां तो कल वहां, खानाबदोश की तरह यात्रा में ही दिन बिताने पड़ते हैं और जो निरन्तर यात्रा करते हैं वे जानते हैं कि नये नये देशों में, जहाँ किसी से परिचय न हो, स्वयं अपने परिचय में दो शब्द कहने के लिये विवश होना पड़ता है।

अमरीका का संयुक्तराज्य मेरे लिये एकदम अपरिचित नहीं है। मैं यहां पहिली बार सन् १९०७ में अपनी पत्नी के साथ आया था। तब मैं पृथ्वी प्रदक्षिणा के लिये निकला था। किन्तु उस बात को एक युग बीत गया और अपनी उस यात्रा में मैं अनेक कारणों से इस महाद्वीप की जनता के सम्पर्क में न आ सका। तेरह वर्ष बाद अपनी इस तीसरी पृथ्वी प्रदक्षिणा के समय मैंने यह निश्चय कर लिया है कि मैं अमरीकन जनता के सम्पर्क में आऊँ। इस सम्पर्क के पीछे मेरी कोई व्यक्तिगत भावना नहीं है। मेरा जो महान उद्देश्य है उसीकी पूर्ति के लिये मैं बरबस यह सम्पर्क स्थापित करना चाहता हूं। संयुक्तराष्ट्र की अपनी इस यात्रा के पीछे मेरा एक निश्चित उद्देश्य है। मैं यहां मज़हबे इश्क, प्रेम के धर्म, Religion of Love के प्रचार के लिये आया हूँ। किन्तु जब तक आप इस प्रेम के पुजारी, इस प्रेम के प्रचारक के व्यक्तिगत जीवन के बारे में कुछ नहीं जानते तब तक आप उसके प्रचार को विशेष महत्व न देंगे। इसी विचार से आज मुझे अपने सम्बन्ध में कुछ कहना पड़ रहा है। अपने जीवन के सम्बन्ध में, अपने ध्येय के सम्बन्ध में, अपनी मातृभूमि की दासता के सम्बन्ध में और विश्व की संस्कृति में भारत के भावी योगदान के सम्बन्ध में अपने व्यक्तिगत प्रयत्नों की पृष्ठभूमि में मैं आपसे दो शब्द कहना चाहूँगा।

## जन्म

भारत में युक्तप्रान्त, की मुरसान रियासत में पहली दिसम्बर सन १८८६ को मेरा जन्म हुआ था। मैं मुरसान के राजा घनश्याम सिंह बहादुर का तीसरा पुत्र था किन्तु शीघ्र ही शास्त्रीय विधि से हाथरस के राजा हरनारायण सिंह साहब ने मुझे गोद लेकर अपना पुत्र और उत्तराधिकारी बनाया। स्थानीय शिक्षा समाप्त कर मैं मोहम्मेडन एङ्गलो ओरियण्टल कालिज, अलीगढ़ में भरती हुआ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वहां के सुयोग्य प्रोफेसरों द्वारा मैंने शिक्षा पाई। अवसर पाकर महाराजा झींद की छोटी बहिन के साथ मेरा विवाह हुआ। इस तरह मुँह में सोने का चम्मच लेकर मैं पैदा हुआ, ऐशो इशरत में पला, योग्यतम शिक्षा पाई, धन-जन मान-सम्मान के साथ साथ एक सुन्दर प्रियतमा पत्नी को मैंने जीवन सहचरी के रूप में प्राप्त किया, पर अपने चारों ओर के वातावरण को देखकर मुझे मानसिक तृप्ति और आनन्द कभी नहीं मिला। अपने देश की अपढ़ और बेबस जनता को देखकर, असीम ग़रीबी और नङ्ग को देखकर मेरा हृदय उदासी से भरा रहता था। मैं सोचता था क्या अपने देश की इस निरीह जनता के प्रति मेरा कोई कर्तव्य नहीं है? क्या दुख और दर्द के इस समुन्दर के बीच मेरा हास विलास उचित है? क्या देश के इन अज्ञ नरनारायणों को विज्ञ बनाना मेरा परम धर्म नहीं है? जब मन की भावना असह्य हो उठी तो मैंने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया।

सन् १९०८ में मैंने गम्भीरता के साथ यह सोचना शुरू किया कि जो ज़मीन जायदाद, धन सम्पत्ति मेरे पास है वह सब मेरे लिये व्यर्थ है। क्यों न वह सब मैं अपने देशवासियों की सेवा में अर्पित करदूं? अपने और अपने परिवार के निर्वाह के लिये हर महीने महज़ एक छोटी सी रक़म ले लिया करूँ? वह सब कितना अनुपम और सुखद होगा जब मैं अपने देशवासियों के साथ अपने को आत्मसात कर दूँगा। किन्तु उत्तराधिकार के नियम मुझे केवल इस बात की अनुमति देते थे कि मैं अपनी आधी सम्पत्ति दरिद्रनारायण को अर्पित कर सकूँ क्यों कि मेरी आधी सम्पत्ति पर क़ानूनन मेरी सन्तति का अधिकार था। इसलिये मैंने अपनी आधी सम्पत्ति जिसमें अनेक गाँव और मकानात शामिल थे जनार्पण कर दिया और वृन्दावन में 'प्रेम महा विद्यालय' नाम से एक औद्योगिक शिक्षण संस्था की बुनियाद डाली। मानव प्रेम की वेदी पर मेरी यह तुच्छ सी भेंट थी। बड़े सन्तोष की बात है कि यह संस्था अब भी चल रही है।

उसके बाद मैंने मानव प्रेम के प्रचार के निमित्त दो भारतीय पत्रों का प्रकाशन और सम्पादन शुरू किया। फिर मैं प्रेम महा विद्यालय को आधुनिक संस्था बनाने की ग़रज़ से यूरोपीय टेकनिकल संस्थाओं का अध्ययन करने के निमित्त यूरोप गया।

## भारतीय स्वतन्त्रता के लिये

सन् १९१४ में जब यूरोपीय महायुद्ध शुरू हुआ तो मैंने सोचा कि इस मौक़े से लाभ उठाकर क्यों न हम ब्रिटेन की ग़ुलामी का जुआ अपने कन्धों से उतारकर फेंक दें? हम पैंतीस करोड़ देशवासियों के लिये यह एक बड़ी लज्जा की बात है कि एक महान और समृद्ध देश के अधिवासी होते हुये भी हम ग़ैरों के ग़ुलाम हैं। मैंने सोचा यदि जर्मनी हमें मदद दे सके तो हम अपने को ब्रिटेन की ग़ुलामी से छुड़ा सकते हैं। मैंने अपने ये विचार अपने मित्रों के सामने रखे और काफ़ी विचार विमर्श के बाद यह निश्चित हुआ कि पहले मैं यूरोप जाकर युद्ध की परिस्थिति का अध्ययन करूँ। इस फ़ैसले के बाद मैं यूरोप के लिये रवाना होगया।

जब मैं स्वीट्ज़रलैण्ड पहुँचा तो मुझे बर्लिन की भारतीय समिति की मार्फ़त जर्मन सरकार का निमन्त्रण पत्र मिला। इस निमन्त्रण को पाकर जब मैं जर्मनी गया तो क़ैसर ने बड़े आदर सत्कार के साथ मुझसे भेंट की। जर्मनी के वैदेशिक विभाग के लोगों से भी मेरी लम्बी बातचीत हुई। अन्त में यह निश्चय हुआ कि मैं हिन्द-जर्मन-तुर्की मिशन के साथ अफ़ग़ानिस्तान जाऊँ। अपने मित्रों और साथियों के साथ पहले मैं कुस्तुनतुनिया पहुंचा। वहाँ तुर्की सुलतान बड़े प्रेम से मुझसे मिले। मैंने अनवर पाशा और तालत पाशा आदि से देर तक बातें कीं और भारत के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण समझा। फिर बग़दाद होते हुये हमने ईरान को पार किया। सारा सफ़र गाड़ियों और घोड़ों पर ही तय किया गया। ऊँचे हज़ारा पर्वत को पार करके हम २ अक्तूबर सन् १९१५ को अफ़ग़ानिस्तान की राजधानी काबुल पहुँचे। हमारा मक़सद यह था कि अफ़ग़ानिस्तान भारत में अङ्गरेज़ों के उपर युद्ध का ऐलान कर दे। अफ़ग़ानिस्तान के अमीर हमारे मिशन के प्रति बड़े मेहरबान थे किन्तु उन्होंने अपनी परिस्थिति को देखते हुये अङ्गरेज़ों पर युद्ध का ऐलान करना मुनासिब नहीं समझा। फिर उन्होंने यह भी मजबूरी ज़ाहिर की कि तुर्की और जर्मनी के साथ उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है।

मैं फ़रवरी सन् १९१८ तक अफ़ग़ानिस्तान में ठहरा रहा। बीच में मैंने बदख़्शाँ और वाखान की घाटी की भी सैर की और दुनिया की छत पामिर को भी देखने गया।

अपने अफ़ग़ानिस्तान के आवास में मैंने अत्यन्त निकट से इसलाम, इसलामी संस्थाओं और इसलाम के अनुयायियों का अध्ययन किया। मैंने व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव किया कि इसलाम में कोई ऐसी बात नहीं है जो उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अन्य सम्प्रदायों के साथ समन्वय करने में रुकावट साबित हो। असल में हिन्दुस्तान की साम्प्रदायिक समस्या अनेक कृत्रिम कारणों का परिणाम है और ख़ुदग़रज़ लोग उसे अपने व्यक्तिगत या वर्गगत हित साधन के लिये इस्तेमाल करते हैं और इन सबका पृष्ठपोषण करता है ब्रिटिश साम्राज्यवाद। अफ़ग़ानिस्तान में रहते हुये अनगिनत अफ़ग़ान मेरे निकट सम्पर्क में आये और मेरे मित्र बन गये।

## सोवियत् रूस में

सन् १९१८ के शुरू में रूसी इनक़लाब की ख़बरें विद्युतगति से चारों ओर फैल रहीं थीं। क्रांति के इस नये प्रकाश में मुझे भी अपने देश के लिये आशा की एक किरण दिखाई दी। मैं मार्च सन् १९१८ के प्रारम्भ में रूस के लिये रवाना हो गया। यह सोवियत देश की मेरी पहली यात्रा थी। पेत्रोगाद पहुंचकर मैं सबसे पहले लिआन ट्राट्स्की से मिला, फिर रूसी क्रान्ति के अन्य नेताओं से बातें करके मैंने उनके क्रान्तिकारी सङ्गठन का अध्ययन किया। कोटि कोटि जनता के उस मुक्ति-प्रयास को देखकर मेरा मन श्रद्धा और आदर से भर गया। मैं उस दिन का स्वप्न देखने लगा जब मेरा धराशायी देश भी इसी तरह अँगड़ाई लेकर एक दिन उठ खड़ा होगा।

रूस से मैं फिर जर्मनी के लिये रवाना हुआ। बोल्शेविक सरकार ने जर्मन सीमा तक पहुंचने की मुझे पूरी सुविधायें दीं। मैं फिर एक बार विलियम क़ैसर से मिला और उन्हें अमीर अफ़ग़ानिस्तान का पत्र दिया जो क़ैसर के पत्र के जवाब में अमीर ने मेरी मारफ़त लिखकर भेजा था। जर्मनी से मैं फिर तुर्की गया। मैं फिर दोबारा तुर्की के सुलतान से मिला। मैंने उन्हें भी उनके पत्र के उत्तर में अमीर अफ़ग़ानिस्तान का पत्र दिया।

अपनी इस बार की जर्मनी और यूरोप के दूसरे देशों की यात्रा में मैंने एक बात स्पष्ट देख ली कि एशिया के पूर्वीय देशों के सम्बन्ध में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के विचार जितने पतित और कलुषित हैं जर्मनी आदि देशों के विचार भारत, चीन आदि देशों के सम्बन्ध में उससे कुछ कम पतित और कलुषित नहीं हैं। यूरोप के छोटे बड़े सभी राष्ट्र एशिया और अफ़रीका के देशों को अपनी साम्राज्यवादी लिप्सा की पूर्ति का साधन, अपने उद्योगवादी विस्तार का प्रसाधन और अपनी शोषक वृत्ति की पूर्ति का क्षेत्र समझते हैं। जिन बोल्शेविक नेताओं से मेरी बातें हुईं वे भी एशियाई देशों के लिये यूरोपीय मुल्कों का सम्पर्क कल्याणकारी ही समझते थे। मार्क्सवादी विवेचना के अनुसार भारत के ऊपर ब्रिटिश आधिपत्य जितना हानिकारक रहा उससे कम कल्याणकारी नहीं साबित हुआ। पर बोल्शेविकों के सम्बन्ध में अपनी अन्तिम राय बनाने के पूर्व मैंने लेनिन से मिलने का निश्चय किया। परन्तु यूरोपीय राष्ट्रों की जो मनोवृत्ति मैंने निकट से देखी उससे मैं एक निश्चित नतीजे पर पहुंच गया कि मानव कल्याण के लिये जब तक एक विश्व-संघ की स्थापना नहीं होती तब तक ये युद्ध और यह कटुता बराबर जारी रहेगी और हम इस धरती पर स्वर्ग का राज्य स्थापित नहीं कर सकते। इस प्रस्तावित विश्व-संघ के अन्दर हर राष्ट्र और हर जाति को समान अधिकार होंगे, उत्पादन और उद्योग की हर राष्ट्र को समान सुविधायें होंगी और अपनी शोषण की प्रवृत्ति-राष्ट्र राष्ट्र के बीच और मनुष्य मनुष्य के बीच—हमें ख़त्म करनी होगी और इस सबके आध्यात्मिक नियन्त्रण के लिये हमें प्रेम के धर्म का प्रचार करना होगा। हमारे साम्प्रदायिक धर्मों ने हमें सभी पाठ पढ़ाये पर प्रेम का पाठ नहीं पढ़ाया और जब तक मनुष्य अपनी हर क्रिया को मानव प्रेम की, मज़हबे इन्सानियत की महती सम्भावनाओं की दृष्टि से नहीं देखता तब तक दुनिया को बेहतर बनाने के उसके सुख स्वप्न निरर्थक साबित होंगे। इसलिये मैंने राजनैतिक कार्यक्रम को स्थगित करके प्रेम-धर्म और विश्व-बन्धुत्व के प्रचार का ही फ़ैसला किया। इसके लिये मैंने बुडापेस्ट को केन्द्र बनाकर अपना काम शुरू कर दिया। यह सन् १९१८ की गर्मियों की बात है।

किन्तु मैं अधिक दिनों तक इस प्रचार को जारी न रख सका। यूरोप के मुल्क उस समय क्रान्ति के झकोरे में झूल रहे थे। लगभग प्रत्येक देश में क्रान्ति की लहरें रह रहकर उठ रहीं थीं। मैं थोड़े दिनों के लिये स्वीटज़रलैण्ड चला गया। वहाँ मुझे समाचार मिला कि अमीर अफ़ग़ानिस्तान की हत्या कर दी गई है और और उनके तीसरे बेटे अमीर अमानुल्लाह ख़ाँ शासनरूढ़ हुये हैं।

यह समाचार सुनकर मैं फिर जर्मनी आया। वहाँ मुझे यह पता चला कि अफ़ग़ानिस्तान ने इङ्गलैण्ड के ख़िलाफ़ युद्ध का ऐलान कर दिया है। यह ख़बर सुनकर मैं फिर अफ़ग़ानिस्तान की ओर रवाना हो गया। कभी घोड़ा गाड़ी पर और कभी रेल और हवाई जहाज़ पर सफ़र करके पहले मैं मास्को पहुंचा। वहाँ मैं लेनिन से मिला और एशियाई देशों के सम्बन्ध में उनसे विस्तृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बातें कीं। भारत की राजनैतिक स्थिति के सम्बन्ध में भी उनसे देर तक विचार विमर्श हुआ। फिर मैं अफ़ग़ानिस्तान के लिये रवाना हो गया और मंज़िल दर मंज़िल तय करके भागा भाग मैं १२ दिसम्बर सन् १९१९ को अफ़ग़ानिस्तान पहुंचा। इस बीच अफ़ग़ान युद्ध समाप्त हो चुका था। अङ्गरेज़ अफ़ग़ानिस्तान की सम्पूर्ण स्वाधीनता स्वीकार करने के लिये मजबूर हो गये थे। अफ़ग़ान जो कुछ चाहते थे वह उन्हें हासिल हो गया था और अब उन्हें भारत के पड़ोसी ब्रिटिश राज्य से दुशमनी बनाये रखने का कोई कारण न रह गया था।

## अफ़ग़ानों के बीच में

अफ़ग़ानिस्तान के नये बादशाह अमानुल्लाह ख़ाँ से मेरा घनिष्ट परिचय था और वे मेरे मित्र थे। जब मैं पिछली बार अफ़ग़ानिस्तान आया था तभी मेरी उनकी घनिष्टता बढ़ गई थी। इसलिये वे मेरे प्रति बड़े मेहरबान साबित हुये। उन्होंने एक स्पेशल मिशन के साथ अफ़ग़ान सरकार की ओर से चीन, तिब्बत, जापान आदि देशों में जाने का मुझसे आग्रह किया। मैं उनके आग्रह को न टाल सका। मिशन में मेरे साथ एक और अफ़ग़ान अफ़सर थे। हम पामिर होते हुये ताशकुरग़ान गये। यह चीन का सरहदी शहर है और यह उस केन्द्र बिन्दु के निकट है जहां भारत, रूस, अफ़ग़ानिस्तान और चीन इन चारों देशों की सीमायें मिलती हैं। काशग़र के ब्रिटिश कौन्सेल जनरल ने मेरे विरुद्ध हर तरह का आरोप लगाया और मेरी यात्रा में पग पग पर दिक़्क़तें पैदा करने की कोशिश की। उसका अनुमान था कि अफ़ग़ान युद्ध का बानी मुबानी, कर्ताधर्ता मैं ही था। चीनी मेरे प्रति बड़े उदार थे। उन्हें मुझसे बड़ी सहानुभूति थी पर अङ्गरेज़ों के विरोध के कारण वे मेरी कोई सहायता करने में अपने को असमर्थ पाते थे। मैंने चीन के सरहदी अफ़सरों को चीनी राष्ट्रपति के नाम शाह अफ़ग़ान का शाही ख़त दे दिया और स्वयं अफ़ग़ानिस्तान लौट आया। इस बीच मैं चीनी सरकार से ख़त किताबत करता रहा कि मुझे तिब्बत जाने की अनुमति और यात्रा में संरक्षण मिले। इसी ग़रज़ से मैं फिर सन् १९२० में तिब्बत जाने के उद्देश्य से पामिर के लिये रवाना हुआ। पामिर पहुँचकर मैंने तिब्बत का रास्ता पकड़ा। अब की बार ब्रिटिश अधिकारियों ने मुझे मुर्दा या ज़िन्दा पकड़ने के लिये अपनी एक फ़ौजी बटेलियन भेजी। यह फ़ौज तमाम अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का उल्लंघन करती हुई चीनी सीमा में घुस आई, हालांकि चीनी क्षेत्र में आने का उसे कोई अधिकार न था। पर चीनियों ने मुझे समय रहते सावधान कर दिया थ और मेरे सौभाग्य से एक रूसी बटेलियन पामिर से ताशकन्द जा रही थी। मेरी प्रार्थना पर रूसियों ने फ़ौरन मुझे अपने संरक्षण में ले लिया। अङ्गरेज़ कमाण्डर निराश दांत पीसकर रह गया और अपने फ़ौजी दस्ते के साथ अपना सा मुँह लिये वापस लौट गया। रूसियों से छेड़ख़ानी करने की उसकी हिम्मत न हुई। हमने काराकुल होते हुये पामिर की तमाम चोटियों को पार किया। रास्ते में हमें कई बार हथियार बन्द डाकुओं का मुक़ाबला करना पड़ा। एक बार ग़लतफ़हमी में दूसरे रूसी दस्ते के साथ हमारे साथियों की मुठभेड़ हो गई और दोनों तरफ से जब सैकड़ों कारतूस चल चुके तब दोनों को अपनी ग़लती महसूस हुई।

इस बीच शाह अफ़ग़ान ने जो काम मेरे सुपुर्द किया था उसे हिज़ एक्सिलेन्सी जनरल वली ख़ाँ पूरा कर चुके थे। अब मेरे मिशन की कोई ज़रूरत न रह गई थी और मैं चुपचाप यूरोप लौट आया। किन्तु थोड़े बाद दिनों फिर एक डिप्लोमेटिक मिशन पर हंगरी सरकार के पासपोर्ट से मैं मेक्सिको होता हुआ जापान और चीन पहुँचा। जापान एक शक्तिशाली महत्वाकांक्षी एशियाई राष्ट्र है किन्तु ब्रिटिश साम्राज्यशाही उसे बढ़ावा देकर एक ओर चीन को दबाने की चेष्टा करती है और दूसरी ओर उसे रूस के ख़िलाफ़ प्रोत्साहन देती है। मैंने जापानियों को ब्रिटिश साम्राज्य शाही की यह गर्हित नीति समझाने की कोशिश की। समझदार जापानी मुझसे सहमत थे पर सरकारी तबके पर ब्रिटिश कूट नीतिज्ञों का असर था। मैं मन ही मन सोचता था कि एक दिन अपनी इस नीति के लिये ब्रिटेन को पाई पाई सय ब्याज़ के चुकानी पड़ेगी। चीन में मैंने देखा कि मध्यवर्ग के लोग अपने सङ्कट को समझ गये है पर चीनी जनता अभी उसी तरह नीरब और निश्चेष्ट पड़ी हुई है जिस तरह कि भारतीय जनता। मैंने इन देशों में कुछ विशेष व्यक्तियों के सामने एशियाई देशों के आपसी प्रीति सम्बन्ध को क़ायम करने की योजना रखी। मैंने समझाया कि एशियाई देशों की दोहरी जिम्मेवारी है। एक ओर उन्हें अपनी गुलामी और शोषण से मुक्ति पाना है और दूसरी ओर मानव प्रेम और विश्व-बन्धुत्व के एशियाई आदर्शों पर ऐसी नई विश्व व्यवस्था की रचना करनी है जिसमें औद्योगिक शोषण, राजनैतिक गुलामी और सशस्त्र हमलों की कोई जगह शेष न रहे। अनेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जापानी मित्रों ने मुझे सलाह दी कि मैं जापान को अपना केन्द्र बनाकर एक ऐसी शान्ति-सेना का संगठन करूँ जो भगवान बुद्ध, और हज़रत ईसा के बताये हुए आदर्शों पर प्रेम और शान्तिमय तरीक़ों से संसार की युद्ध त्रस्त जनता को जीत सके।

## पीकिंग से मास्को

सन् १९२३ की गर्मियों में मैं पीकिङ्ग से रवाना होकर उर्गा, साइबेरिया, मास्को होता हुआ फिर एक बार काबुल पहुँचा। सन् १९२५ तक मैं काबुल में रहा। यहां मैंने अफ़ग़ान सरकार को जो सरकारी कामों में योग दिया उसके उपलक्ष में शाह अमानुल्लाह ने मुझे अफ़ग़ान सरकार की ओर से मेरे ख़र्च के लिये दस हज़ार रुपये दिये। काबुल में भी मैं धर्म, राजनीति और समाज के बारे में जो मेरे विचार हैं, उनका प्रचार करता रहा। लोगों में यह एक बड़ी ग़लत फ़हमी है कि अफ़ग़ान बड़े खूंख़ार और कट्टर तास्सुबी होते हैं। वास्तविकता बिल्कुल इसके विपरीत है। वे स्वभाव में बालकों जैसे सरल, अपने निश्चयों में फ़ौलाद जैसे कठोर और व्यवहार में बड़े मिलनसार होते हैं। मेरे धार्मिक और सांस्कृतिक समन्वय को वे बड़े ध्यान से सुना करते थे। मेरे मज़हबे इश्क़ के वे बड़े क़ायल थे। सैकड़ों अफ़ग़ान मेरे प्रेम धर्म के अनुयायी बने।

अफ़ग़ानिस्तान से फिर मैं यूरोपीय देशों की ओर रवाना हुआ। पिछले महायुद्ध से जो आशा थी वह व्यर्थ साबित हुई। दुनिया ने उससे एक भी सबक़ नहीं लिया। रह रहकर मेरी यह भावना दृढ़ होती जाती है कि दुनिया को प्रेम की अज़हद ज़रूरत है। अस्त्र शस्त्रों के फिर बड़े बड़े कारख़ाने मुख़्तलिफ़ देशों में बन रहे हैं पर इनसे पीड़ित मानवता का दुख थोड़े ही दूर हो सकता है। युद्ध भले ही एक वर्ग विशेष के शोषण को सहज कर दे और कुछ राजनीतिज्ञों की अहंमन्यता को तुष्ट कर दे पर उससे जनता का कल्याण नहीं हो सकता। यूरोप के विविध मुल्कों में ख़ानाबदोश की तरह दर दर फिर कर मैं अपने इन्हीं विचारों का प्रचार करने लगा।

अब मैं मानवता की राह में प्रेम के गीत गानेवाला एक अदना सा फ़क़ीर हूं। मेरे जीवन का उद्देश्य मानव मात्र की सेवा है। इसी उद्देश्य से मैं अमरीका आया हूं। मेरी दृष्टि में दुनिया एक वृहत कुटुम्ब है। विविध देश इस कुटुम्ब के सदस्य हैं। तब क्या यह कुटुम्ब एक सम्मिलित कुटुम्ब नहीं हो सकता? क्या भाई चारे पर इसी कुटुम्ब की बुनियादें नहीं क़ायम हो सकतीं? क्या प्रेम के अस्त्र शस्त्र और शान्ति की सेना हमारे हृदयों को नहीं जीत सकती? राजनीतिज्ञ मुझे स्वप्न-दृष्टा समझते हैं पर देशों और महाद्वीपों की सीमायें पारकर विविध देशों की जनता से जब मैं अपनी बात कहता हूँ तो उनकी द्रवित आँखें मुझे आश्वासन देती हैं कि—"महेन्द्रप्रताप! तेरा मार्ग ठीक है!" जिस उद्देश्य से आज मैं अमरीका में हूँ उसी उद्देश्य को लेकर कल मैं जापान जाऊंगा। आगे की बात केवल वही परमपिता ईश्वर जानता है। अपने प्यारे देश से निर्वासित हुए मुझे २१ वर्ष हो चुके पर मैं उन्हीं आदर्शों की आराधना कर रहा हूँ जो मेरे देश की नस नस में समाये हुये हैं।

मैंने हिन्दू नाम के अतिरिक्त अपने ईसाई और इसलामी नाम भी रख लिए हैं जिससे वृहत मानव परिवार के सदस्य के नाते मेरा जन्मगत धर्म मेरे प्रेममय सम्मिलन के रास्ते में बाधक न हो। मेरे वे नाम हैं—मोज़ेज़ पीटर, मोहम्मद पीर आदि।

---

पृष्ठ ३६४ से आगे

जाने का, फ़र्द से संघ का, आसानी से पेचीदगी का और यह क़ुदरती क़ानून उस वक़्त तक अमल में रहेगा जब तक कुल दुनिया और कुल इनसानों का एक समाज न बन जायगा। जो ताक़त इस क़ानून की इस तरक़्क़ी (प्रगति) को रोकने की कोशिश करेगी वह बरबाद हो जायगी। अगर हमने अब तक यह सबक़ नहीं सीखा तो जो लड़ाई अभी ख़त्म हुई है वह फ़िज़ूल लड़ी गई। अगर इस जङ्ग ने कोई एक सबक़ सिखाया है तो वह यह सिखाया है कि इनसानों के छोटे छोटे गिरोह चाहे उन्हें नेशन कहो, चाहे क़ौम कहो, अलग अलग रहकर ज़िन्दा नहीं रह सकते—और सारी दुनिया के एके से ही इनसान को निजात मिलेगी।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दुस्तानी कल्चर

सर मिरज़ा इस्माइल के० सी० एस० आइ०

हिन्दुस्तान की मुख़्तलिफ़ (विविध) क़ौमों के बीच कल्चरल (सांस्कृतिक) एकता और आपसी मोहब्बत के प्रचार का काम बहुत ही ऊँचा काम है। ज़िन्दगी भर मेरा रुझान हिन्दुस्तान के इसी एके की तरफ़ रहा है। और मुझे इस काम से दिली हमदर्दी है। मैं समझता हूँ कि ऐसा हर हिन्दुस्तानी जो यह चाहता है कि दुनिया के मुल्कों के बीच उसके मुल्क की एक आलातर (उच्चतर) जगह हो और उसकी शान बान बढ़े इस कल्चरल एके और आपसी मोहब्बत का तरफ़दार और हामी होगा।

मेरे इस कहने का यह मतलब नहीं कि हिन्दुस्तान की क़ौमी और समाजी ज़िन्दगी में आपसी लड़ाई की कोई मुस्तक़िल (स्थायी) जगह थी। मेरा ऐसा फ़र्ज़ करना तारीख़ी (ऐतिहासिक) नुक़्तेनज़र (दृष्टिकोण) से बिल्कुल ग़लत होगा। मेरे कहने की मन्शा यह है कि आजकल की तकलीफ़देह हालत में जब कि आपस में फ़रक़ पैदा करने वाले रुझान मुल्क की क़ौमी ज़िन्दगी की बुनियादें खोखली करने की लगातार कोशिशें कर रहे हैं, जब कि सम्प्रदायी नफ़रत ने भलाई और समझदारी के चश्मे को गँदला कर दिया है तो अपने मुल्क से मुहब्बत रखने वाले हर हिन्दुस्तानी का यह फ़र्ज़ है कि वह देश की ज़हरीली हवा को पाक करने और मोहब्बत के चश्मे को साफ़ करने की जी तोड़ कोशिश करे।

हिन्दुस्तान में तरह तरह की जातियाँ हैं, तरह तरह की बोलियाँ हैं और तरह तरह के मज़हबी एतक़ाद (विश्वास) हैं, यहां मुख़्तलिफ़ खान्दानों ने हुकूमतें कीं, बने और बिगड़े मगर इस सबके होते हुये भी इस देश में सदा एक बुनियादी एकता और कल्चर का एक अटूट सिलसिला क़ायम रहा। इस कल्चर की जड़ें जनता की आत्मा की गहराई में जमी हुई हैं। आज सियासी (राजनैतिक) तास्सुब के बादल भले ही थोड़ी देर के लिये हमारी मत हरलें और हमें परेशान करें लेकिन कोई आन्दोलन उन बुनियादों को नहीं हिला सकता जिन्हें सैकड़ों बरस के दौरान में सैकड़ों करोड़ आदमियों के मिले जुले डर और उम्मीदों, खुशियों और रञ्जों, मुहब्बतों और नफ़रतों ने मज़बूत किया है।

तारीख़ (इतिहास) पर अगर कोई एक सरसरी निगाह डाले तो एक बात उसके सामने साफ़ हो जायगी कि हमारा यह मुल्क हिन्दुस्तान तरह तरह की कल्चरों और तरह तरह की क़ौमों के मिलाप और जमघट की जगह रही है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इसे अपनी 'महामानवेर मेला' नाम की एक सुन्दर नज़्म में बड़ी खूबसूरती के साथ ज़ाहिर किया है। वे लिखते हैं—

हे थाय आर्य, हेथा अनार्य
हे थाय द्राविड़ चीन—
शक, हूणदल, पाठान, मोग़ल
एक देहे होले लीन।
पश्चिमे आज खुलिया छे द्वार
से था हते सब आने उपहार,
दिबे आर निबे, मिलाबे मिलिबे
जाबे न फिरे—
एइ भारतेर महा मानवेर सागर तीरे।
ऐसो हे आर्य, ऐसो अनार्य
हिन्दू मूसलमान।
ऐसो ऐसो आज तुमि इंगराज
ऐसो ऐसो खीष्टान।
ऐसो ब्राह्मण शुचि कर मन
धारो हात सबाकार।
ऐसो हे पतित, होक अपनीत
सब अपमान भार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


भार अभिषेके ऐसो ऐसो त्वरा
मङ्गल घट हय निजेभरा।
सबार परशे पवित्र करा तीर्थ नीरे।
आजि भारतेर महा-मानवेर सागर तीरे।

रवीन्द्रनाथ ने हिन्दुस्तान के इस वसीअ (विस्तृत) इनसानी समुन्दर में आर्यों-अनार्यों, द्राविड़ों-चीनियों, सकों-हूणों, पठानों-मुग़लों को एक देह में घुलते मिलते देखा था। जो लोग यहाँ फ़ौज और तीरो तुफ़ंग लेकर आये, मस्त होकर जीत के गीत गाते हुये—रेगिस्तानों और पहाड़ी दर्रों को पारकर—वे सब यहाँ रहकर हिलमिलकर एक हो गये और मुल्क की रग रग में उनके तराने एक होकर गूँजने लगे।

एक नौजवान हिन्दुस्तानी आलिम ने इन्हीं बातों को ज़रा दूसरे तरीके से लिखा है। वह लिखता है—"तीन हज़ार बरस पहले यहां आर्य आये और अपने साथ एक क़ुदरती मज़हब लाये जिसे उन्होंने वेदों की ऋचाओं में ज़ाहिर किया, दो हज़ार बरस पहले यूनानी अपना फ़लसफ़ाना स्टोइक मज़हब लाये, सत्रह सौ बरस पहले सीरियावाले ईसाई मज़हब लाये, बारह सौ बरस पहले अरब लोग इसलाम लाये और हज़ार बरस पहले ईरानी ज़रथुस्त्री मज़हब लाये और यहां इन सब मज़हबों का सङ्गम बना।"

हिन्दुस्तान के इस मिलापगाह (मिलन केन्द्र) में क़ौमों और तहज़ीबों की लगातार मिलावट होती रही और उससे एक ऐसी कल्चर पैदा हुई जो अपने क़िस्म की अनोखी, भरी पूरी, खूबसूरत, हर पहलू को छूनेवाली और रङ्गीन है लेकिन जिसमें एक गहराई है, एक पुख़्तगी है और जो तमाम दुनिया के लिये एक हैरत की चीज़ है। बाहर से आनेवाली क़ौमों और यहां की आबाद तहज़ीब में हर क़दम पर झगड़े और झगड़ों से पैदा होनेवाली मुसीबतें लाज़मी थीं मगर हर बार ये झगड़े एकता में तब्दील हो गये। आख़िर बच्चे के जन्म के वक़्त मां को दर्द तो सहना ही होता है।

हिन्दुस्तान की इस क़ौमी ज़िन्दगी के रङ्ग बिरंगेपन से हमें न तो मायूस होने की ज़रूरत है और न हमें ऐसे नतीजे निकालने की ज़रूरत है जिनकी तारीख़ से ताईद (समर्थन) न हो। मुहज़्ज़ब (सभ्य) ज़िन्दगी के लिये इख़्तलाफ़ (विभिन्नता) एक ज़रूरी चीज़ है। लार्ड आकलैण्ड ने एक जगह कहा है—

"एक ही हुकूमत के मातहत बहुत सी क़ौमों का रहना यह एक इम्तहान भी है और आज़ादी का पक्का बीमा भी। एक ही हुकूमत के मातहत बहुत सी क़ौमों का मिलकर रहना यह मुहज़्ज़ब और शायस्ता ज़िन्दगी की एक वैसी ही शर्त है जैसी समाजी ज़िन्दगी में मुख़्तलिफ़ इनसानों का मिलकर रहना एक ज़रूरी शर्त है। पिछड़ी हुई क़ौमें अगर एक ही सियासी यूनियन में ज़्यादा अक़्लमन्द क़ौमों के साथ रहें तो लाज़मी तौर पर उनकी भी तरक़्क़ी होगी। थकी हुई और बूढ़ी क़ौमों में नई और जवान क़ौमों के साथ से फिर से नई जवानी आ जाती है। लेकिन यह तरक़्क़ी और नई जगमगाहट तभी हासिल हो सकती है जब ये क़ौमें एक ही सरकार के मातहत रहती हों। सल्तनत के कढ़ाव में तरह तरह की क़ौमों के मुतज़ाद (परस्पर विरोधी) गुणों की मिलावट से एक नया और बेहतरीन गुण बन जाता है। इसी खिल्त मिल्त से इन्सानों का एक गिरोह दूसरे गिरोह से क़ूवत, अक़्ल और क़ाबलीयत हासिल करता है।"

वेण्डेन विल्की अपनी मशहूर किताब 'वन वर्ल्ड' में अमरीका के बारे में लिखता है—"मेरे ख़याल से हमारे तहज़ीब की उँचाई की वजह हमारी सेनटें, हमारी ईजादें या हमारे गढ़े हुए आलीशान कल कारख़ाने नहीं हैं बल्कि मुख़्तलिफ़ मज़हबों और मुख़्तलिफ़ क़ौमियतों के होते हुये भी इस संयुक्त राज्य अमरीका में एक दूसरे को समझते हुये, एक दूसरे का लिहाज़ करते हुये और एक दूसरे को मदद करते हुये हमारे लोगों की एक साथ मिलकर रहने की क़ाबलीयत है।"

जहां तक हिन्दुस्तान का ताल्लुक़ है सभी इस सचाई से वाकिफ़ हैं कि यहां की मुख़्तलिफ़ जातियां अभी हाल तक एक दूसरे को समझते हुये, एक दूसरे की मदद और एक दूसरे की इज़्ज़त करते हुये साथ साथ रह रहीं थीं। अब इधर कुछ दिनों से बेशक हमने शायद अनजान में अपनी अक़्ल पर सियासी जज़बात (राजनैतिक भावनाओं) का परदा पड़ जाने दिया और अपनी वह पुरानी रहन सहन की रीत छोड़ दी।

हिन्दुस्तान में मुग़लों का राज, उनकी बढ़ती और उनका अन्त लार्ड आकलैण्ड की ऊपर लिखी बात को साबित करता है। पहली मर्तबा मौर्य और गुप्त साम्राज्यों के वक़्त पूरा या क़रीब क़रीब पूरा हिन्दुस्तान एक सरकार के मातहत आया। हमने देखा इसलामी हुकूमत में नई इसलामी कल्चर हिन्दुस्तान के बूढ़े बदन में फिर से जवानी ले आई और यहां की क़ौमी ज़िन्दगी के तमाम सीग़ों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



( अङ्गों ) को उसने मालामाल किया। उस यकजाहत और ख़िल्त मिल्त के शानदार अजीबो ग़रीब नतीजे हमें फ़ने तामीर ( निर्माणकला ), तसवीरसाज़ी ( चित्रकला ), शायरी ( कविता ), संगीत, ज़बान और मज़हब में भी आज तक देखने को मिलते हैं। जो बातें तारीख़ ( इतिहास ) के तुलना ( विद्यार्थियों ) को अच्छी तरह मालूम हैं उनकी तफ़सीर ( विस्तार ) में मुझे यहां जाने की ज़रूरत नहीं। मुग़ल इमारतों के अन्दर हमें इसलामी और हिन्दू कला की मिलावट साफ़ नज़र आती है। राजपूत चित्रकला पर हमें बहुत साफ़ ईरानी असर दिखाई देता है। यह सारी मिलावट ख़ुद मुग़ल दरबार के साये में हुई। अमीर ख़ुसरो और कबीर जैसे मुसलमान शायरों और सूफियों ने हिन्दी कविता को और नसीम, चकबस्त जैसे हिन्दू शायरों ने उर्दू शायरी को मालामाल किया। ख़ुद उर्दू बोली जिसे उत्तर भारत के हिन्दू और मुसलमानों ने मिलकर अपनाया हिन्दी और फ़ारसी के मेल से बनी। मुग़लों के वक़्त से भारत के सङ्गीत के सबसे बड़े प्रचारक मुसलमान ही हुए हैं जिनके बनाये हुये ख़याल, होली और भजन अब भी हर तबक़े के लोगों में पसन्द किये जाते हैं। अब भी ख़याल के उस्तादों में मुसलमानों की तादाद ज़्यादा है। मज़हबी दायरे में भी इसलाम की छाप हम श्री चैतन्य जैसे हिन्दू सन्त और हिन्दू मज़हब की छाप कबीर और दादू जैसे मुसलमान सूफी सन्तों की सीख में देख सकते हैं सूफीवाद के अन्दर हमें हिन्दू वेदान्त और भक्तिवाद की मिलावट साफ़ नज़र आती है।

ऊपर यह सरसरी नज़र महज़ इसीलिये डाली गई कि अपने हज़ार बरस के लम्बे तारीख़ी दौर में हिन्दू और मुसलमानों ने साथ साथ रहने की कला अच्छी तरह सीख ली थी। इनसानी ज़िन्दगी में जो कुछ भी अच्छा है और जो बातें ज़िन्दगी में रस पैदा करती हैं उन सबको हिन्दू मुसलमानों ने एक दूसरे के एतबार, मदद और सहारे से पूरा किया और एक ऐसी मिली जुली हिन्दुस्तानी कल्चर की तामीर की जिसने दोनों को मोहब्बत की एक कड़ी में बांध दिया।

मुख़्तलिफ़ जातियों को क़रीबी रिश्ते में मज़बूती से बांधनेवाली चीज़ तो आपसी शादी ब्याह हैं लेकिन उससे उतरकर अगर तिजारत या धन्धों के ज़रिये साथ साथ पैसा कमाया जाय तब भी लोग काफ़ी एक दूसरे के क़रीब आ जाते हैं और मज़हबी, सम्प्रदायी और दूसरे फ़रक़ भूल जाते हैं। मिली जुली तिजारत और कामधन्धे भी एक बड़ी हद तक परायेपन और मज़हबी निफ़ाक़ ( अनैक्य ) को दूर करने में मदद देते हैं।

साथ साथ मिलकर रहने की जिस रीत को हमारे बुजुर्गों ने खोज निकाला था और जिसे हज़ार बरस तक तरक़्क़ी दी क्या उस पुरानी रीत को हम भूल गये? मेरा जवाब है—नहीं, हम नहीं भूले। मेल मोहब्बत का वह सोता अब भी ज्यों का त्यों है। खाली हमारे दिमाग़ी फितूर ने उसकी सतह को परागन्दा कर दिया है। सात लाख गांवों में हिन्दुस्तान के दिल में मुहब्बत की वही पुरानी धड़कन अब भी होती है। मौजूदा ज़माने से गुज़रने में कुछ दिक्क़तों का सामना लाज़मी था। चीजों को अपनाना और पचाना हिन्दुस्तान की ख़ासियत रही है। इस काम में भी अनगिनत मुशकिलों के बीच से गुज़रना पड़ता है। आज हिन्दुस्तान को पच्छिमी कल्चर को भी उसी तरह अपनाना है। वह पहले आजादी, बराबरी, भाईचारे और अक़्ली कसौटी का ख़याल लेकर यहाँ दाख़िल हुई। इनसान के ज़ाती हक़ूक ( व्यक्तिगत अधिकारों ) का एक मुबालग़ा ( अतिशयोक्ति ) से भरा हुआ नारा भी उसने लगाया। सन् १९१४-१८ की यूरोपियन जङ्ग के बाद उसने सेल्फ़ डिटर्मिनेशन ( आत्म निर्णय ) का नारा और जोड़ लिया। नये ख़यालातों ने जो नशा हम पर तारी किया है आज हमारे सियासी जिस्म पर उसका असर है। जब यह नशा उतर जायगा और इसका उतरना लाज़मी है तो हिन्दुस्तान फिर उसी पुरानी आलातर मञ्जिल का सफ़र शुरू करेगा और मुल्क की जिन्दगी फिर भरी पूरी और ख़ुशगवार हो जायगी।

तारीख़ के पुराने सबक़ पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि यही होना है और यही होकर रहेगा।

टेनीसन की कुछ सतरें हैं—

Yet I doubt not through the ages one
increasing purpose runs
And the thoughts of men are widened
with the process of the suns.

अगर हम इनसानी समाज की तरक़्क़ी पर एक नज़र डालें तो दिखाई देगा कि शुरू ज़माने में इनफ़रादी ( व्यक्तिगत ) दौर था, फिर खानदान बने, फिर कुटुम्ब ( कुल ) बने, फिर क़बीले बने, तब क़ौमें बनीं और फिर संघ बने। हमें इसमें कोई शुबहा न होना चाहिये कि इस तरक़्क़ी के पीछे एक पुख़्ता क़ुदरती क़ानून ( नियम ) है और वह क़ानून है मिलावट ( समन्वय ) का, नीचे से ऊपर

[ शेष ३६१ सफ़े पर ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# जो कुछ सच है वह तो सामने रखें !

डाक्टर सैयद महमूद एम० ए०, पी-एच० डी, बार-एट-ला

हिन्दुस्तान की दो बड़े सम्प्रदायों के बीच कल्चर की बुनियादों पर एकता क़ायम करने का ख़याल बड़ा लुभावना है और अगर राजनैतिक समझौते के सारे रास्ते बन्द हो गये हैं तो बाअसर मदद के सहारे कल्चरल एकता की ही कोशिश करनी चाहिये। लेकिन पुरअसर नतीजे हासिल करने के लिये महज़ ख़याल का लुभावना होना ही काफ़ी नहीं है। हमें यह देखना होगा कि इस वक़्त मुल्क के सामने जो पेचीदा मसले हैं उनके हल में अमली तरीके से यह कल्चरल प्रोग्राम कहाँ तक मदद दे सकेगा। अगर हम कल्चर को एकता क़ायम करने की बुनियाद बनायें तो मुझे इसमें कोई शक नहीं कि हमारे रास्ते में वे तमाम अनगिनत और बड़ी बड़ी रुकावटें आयेंगी कि जिन्हें उन लोगों ने पैदा किया है कि जो दोनों सम्प्रदायों के बीच के तफ़रक़े और क़िजिये को ज़्यादा से ज्यादा बढ़ाना चाहते हैं। हमें यह सचाई न भूल जानी चाहिये कि एक बड़ी हद तक फ़िरकेवाराना (साम्प्रदायिक) मसला उस ज़हरीले प्रचार का नतीजा है जो लोगों ने शायद समझ बूझकर नहीं पर बड़ी कामयाबी के साथ अपनी ज़ाती ग़रज़ को पूरा करने के लिये किया है। यह दूसरी बात है कि हमें आज कल्चर की बिना पर साम्प्रदायिक एकता के माननेवाले मिलें या न मिलें लेकिन इसमें कोई शुबहा नहीं कि कि बीते दिनों में लोगों ने बिल्कुल उल्टी दिशाओं में कल्चर की बिना पर ही आपसी तफ़रक़ों को कामयाबी के साथ बहुत हद तक बढ़ाने की कोशिश की है।

इसके सुबूत के लिये इस मुल्क के स्कूली लड़कों की हिन्दुस्तान के इतिहास की किताबों पर एक नज़र डालना काफ़ी होगा। हिन्दुस्तान के इन इतिहासों की किसी टेक्स्ट बुक के वरके उलटकर सरसरी निगाह से यूँ ही अगर आप देख जायें तो आप पर यह असर पड़ेगा कि हिन्दुस्तान के हज़ार बरस के इतिहास में सिवाय इसके कुछ भी नहीं है कि लोगों ने राजगद्दी हासिल करने के लिये राजनैतिक हत्यायें कीं। इस तरह के हत्यारों की एक लम्बी सूची आप को इन इतिहासों में मिलेगी। जहाँ तक हिन्दुस्तान के मँझले ज़माने के इतिहास का ताल्लुक़ है उसमें न सिर्फ़ इन हत्याओं की चर्चा है बल्कि उसे पढ़कर यह बात सामने आती है कि हिन्दू मन्दिरों को गिराना और हिन्दुओं का क़त्लेआम करना मुसलमान बादशाहों के लिये महज़ एक दिल बहलाव की चीज़ थी।

मेरा यह सुझाव पेश करना शायद न्यायसङ्गत न हो कि इतिहास की पुस्तकों पर यह रङ्ग जानबूझकर चढ़ाया गया है या इतिहास लिखनेवाले के दिमाग़ पर इसका ऐसा असर था जिसका उसे पता था। मुमकिन है इन लेखकों को अपनी ग़लत बयानियों पर दिमाग़ी यक़ीन हो। मगर इसमें भी कोई शुबहा नहीं कि हिन्दुस्तान के इतिहास के अङ्गरेज़ लेखक कमोबेश इस बात से पूरी तरह वाक़िफ़ थे कि हिन्दुस्तान के इतिहास के इस पहलू से और उस पर ज़ोर देने से हिन्दुस्तान में अङ्गरेज़ी हुकूमत को फ़ायदा पहुंच सकता है।

मैं यह नहीं कहता कि हिन्दुस्तान के इतिहास के मुख़्तलिफ़ ज़मानों में मज़हबी तास्सुब की घटनाएं नहीं हुईं। इसे इनकार करने से कोई फ़ायदा नहीं। मगर ऐतिहासिक ज़रूरतों के लिये उन पर मुनासिब रोशनी डालना एक बात है और नामुनासिब तरीक़े से खूब चमकाकर उनका ज़िक्र करना और दूसरी कहानी साबित करनेवाले प्रेम और धार्मिक सहिष्णुता के वाक़यात को छिपाना बिलकुल दूसरी बात है। मगर इतिहास लिखने वालों ने मन्दिर को तोड़ने या हिन्दुओं के साथ बदसलूकी की घटनाओं की हर मिसाल को जिस तरह लपककर पेश किया है यदि उन्होंने अपने दिमाग़ी रुझान को अपनी न्याय बुद्धि पर हावी न होने दिया होता तो उन्हें इस तरह की घटनायें और ऐसी मिसालें भी मिलतीं जो यह साबित करतीं कि बावजूद मज़हबी और राजनैतिक मतभेदों के मुसलमान राजाओं और उनकी हिन्दू रिआया के बीच मोहब्बत और भाईचारे का सम्बन्ध था।

ज़रा सा सोचने पर हमें मालूम हो जायगा कि इसके अलावा उनके ताल्लुक़ात और कुछ हो ही नहीं सकते थे। यह एक बिलकुल नामुमकिन क़यास मालूम होता है कि मुसलमान हुक्मराओं ने, जो इतनी लम्बी चौड़ी सल्तनत पर हुकूमत करते थे, महज़ लोहे और खून को अपनी हुकूमत चलाने का मुनासिब ज़रिया समझा। क्योंकि मंझले ज़माने के मुसलमान शासकों को अपनी रिआया के ऊपर वह सुविधा हासिल न थी जो ब्रिटिश सरकार को आजकल हासिल है, यानी अङ्गरेज़ सरकार के पास बेहतरीन हथियार हैं और जनता के पास मामूली तरह के भी हथियार नहीं। इसके विपरीत मुसलमान शासकों के पास जो हथियार थे उसी क़िस्म के हथियार उनकी रिआया भी रख सकती थी। तो अक़्ल यह कहती है कि हिन्दुओं को सतानेवाले धर्मान्ध



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


मुसलमान शासकों को अपने किये का भयानक नतीजा भुगतने का ख़दशा हो सकता था। फिर मुसलमान शासक इतने तहज़ीबयाफ्ता तो थे ही और हिन्दू धर्म में इतनी सहिष्णुता तो थी ही कि जिससे एक दूसरे की भावनाओं की ओर दोनों काफ़ी आदर दिखा सकते थे।

पण्डित सुन्दरलाल ने अभी हाल में मुझे इत्तला दी थी कि उन्होंने उज्जैन के महाकाल मन्दिर के एक पुजारी पण्डित लक्ष्मीनारायण मालवीय के पास मुग़ल बादशाहों के असल फ़रमानों का एक बण्डल देखा है। मैं उस वक्त सेवाग्राम में था। मैंने पुजारी पण्डित लक्ष्मीनारायण से प्रार्थना की कि वे उन फरमानों को लेकर सेवाग्राम आने का कष्ट करें! पण्डित पुजारी जी ने मेहरबानी करके मेरी प्रार्थना कुबूल कर ली और उन फ़रमानों के बण्डल को लेकर वे सेवाग्राम पहुंचे। उन फ़रमानों को प्रकाशित करने के उनके जोश को देखकर मैं दङ्ग रह गया। उन फ़रमानों को देखकर मुझे पता चला कि अकबर से लेकर औरङ्गज़ेब तक के फ़रमान उनके पास हैं जिनके ज़रिये उज्जैन के उन मन्दिरों को जागीरें अता की गई हैं या उन जागीरों को बहाल रखा गया है, जिनके पुजारी लक्ष्मीनारायण जी के पूर्वज थे। इन फ़रमानों में कुछ ऐसे हैं जिनमें जागीरों के मुख़्तलिफ़ दावेदारों के मुक़दमे हैं और कुछ में 'रोज़ीना' ( पुजारी के दैनिक भत्ते ) का हिसाब है।

मैंने पुजारी जी से कहा है कि वे इन फरमानों को लेकर डाक्टर ताराचन्द और पण्डित सुन्दरलाल जी के पास इलाहाबाद जायें। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के डाक्टर बनारसी प्रसाद इन फरमानों की बारीकी से जाँच कर रहे हैं और जो उनकी टिप्पणियों और भूमिका के साथ जल्द ही 'हिन्दुस्तानी कल्चर सोसायटी' प्रकाशित करने की तजवीज़ कर रही है।

मैंने सिर्फ़ दो या तीन फरमानों की नक़ल की थी। इनमें एक शाहजहाँ के वक्त का है और उस पर औरङ्गज़ेब के भाई मुराद के भी दस्तख़त हैं। मुराद उन दिनों गुजरात और मालवे का सूबेदार था। इस दस्तावेज़ के मुताबिक़ देवनारायण की प्रार्थना पर हकीम मोहम्मद मेंडी ने बादशाह से दरख़ास्त की है कि 'महाकाल के देवल' में जलाने के लिये घी की कुछ मिक़दार अता फ़रमाई जाय। इस पर सुलतान मुराद बक्स ने हुक्म दिया है कि अकबरी नाप से चार सेर 'पक्का घी' मन्दिर को रोज़ाना दिया जाय। असल दस्तावेज़ की एक नक़ल उज्जैन भेजी गई और इस नक़ल से एक सरकारी हुक्म पुजारी की इत्तला को भेजा गया।

एक दूसरे दस्तावेज़ में मन्दिर से ३६० रुपये की चोरी की जाँच की रिपोर्ट है। रुपया मिल गया और मन्दिर को लौटा दिया गया और चोर से बतौर जुरमाना मन्दिर को आठ रुपया दिलाये गये। मामला फ़ैसले के लिये हुज़ूर में भेजा गया था। इस दस्तावेज़ के दूसरे हिस्से में एक दूसरी रपट है कि १८०० मन ग़ल्ला, जिसकी क़ीमत १२२ रुपया थी, कुछ लोग ज़बर्दस्ती मन्दिर से उठा ले गये। ग़ल्ला मन्दिर को लौटा दिया गया गया और चोरों को मुक़दमे के लिए आला अदालत के सामने भेजा गया।

मुख़्तसिर (संक्षेप) में यह तीनों दस्तावेज़ों का ख़ुलासा ( सार ) है। इनपर टीका टिप्पणी करने की ज़रूरत नहीं। पिछले दोनों दस्तावेज़ औरङ्गज़ेब के ज़माने के हैं।

मेरे पास ख़ुद बहुत से बादशाहों के कुछ ऐसे दस्तावेज़ हैं, जिनमें औरङ्गज़ेब के दस्तावेज़ भी शामिल हैं, जिनसे यह ज़ाहिर होता है कि बिहार, बङ्गाल, मथुरा और दूसरी जगहों के मन्दिरों को जागीरें अता की गईं और पुजारियों को 'रोज़ीना' दिया गया।

इससे एक बात साफ़ हो जाती है कि मन्दिरों को जागीरें देना एक नियम था अपवाद नहीं। आज भी हैदराबाद में, जहाँ मुग़ल परम्परा पर अमल किया जा रहा है, मन्दिरों और ठाकुरद्वारों को बड़ी बड़ी जागीरें दी गई हैं। हैदराबाद में एक मुसलमान फ़क़ीर की दरगाह है जिसका इन्तज़ाम पिछले सौ बरस से एक हिन्दू ख़ानदान के हाथों में है। इस दरगाह की सारी आमदनी इसी ख़ानदान को मिलती है।

मंझले ज़माने के हिन्दू और मुसलमानों में इस तरह का सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध था। इन सब बातों की हमारे स्कूली इतिहासों में कोई चर्चा नहीं मिलती जब कि लड़ानेवाली चीज़ें बच्चों के कानों में बराबर डाली जाती हैं।

अगर हम साम्प्रदायिक मसले को संस्कृति की बुनियादों पर हल करना चाहते हैं तो हमें हिन्दुस्तान के इतिहास की अपनी पाठ्य पुस्तकों को दोबारा लिखना होगा। मेरी यह मुराद नहीं है कि हम हिन्दू रिआया और मुसलमान शासकों के प्रेम सम्बन्ध को बढ़ा चढ़ाकर और ग़लत बयान करें लेकिन जो कुछ सचाई है वह तो सामने रखें। सचाई हमेशा एक मेहरबान मददगार साबित होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# बृहत्तर भारत की संस्कृति

रायबहादुर ज्ञानशङ्कर पण्ड्या एम० ए०, एम० ओ० एल०

जावा, सुमात्रा, बाली और कम्बोडिया किसी समय बृहत्तर भारत के ही अङ्ग थे। २० वीं सदी के प्रारम्भ में ही फ़्रांसीसी और डच विद्वानों ने इन देशों के सांस्कृतिक इतिहास की छानबीन शुरू की और चूँकि लगभग २० वर्षों तक यह सारी खोज डच और फ्रेञ्च भाषाओं तक ही सीमित रही इसलिये भारतीय विद्वानों को इस सदी के पहले चरण तक इन देशों की सभ्यता का विशेष ज्ञान न हो सका।

इस बात के ठोस ऐतिहासिक सुबूत मिले हैं कि पहली सदी ईसवी में ही जावा में हिन्दू संस्कृति मौजूद थी। रामायण में यवद्वीप का वर्णन आता है और दूसरी सदी ईसवी के टालेमी के नक़्शे में भी यवद्वीप के संस्कृत नाम का उल्लेख मिलता है। चीनी पुरावृत्त रचनाओं (क्रानिकल्स) में 'देववर्मन' नामक भारतीय राजा का वर्णन आता है जिसने सन् १३४ ईसवी में चीन में अपने राजदूत भेजे। पश्चिमी जावा में जो सबसे प्राचीन संस्कृत उल्लेख मिला है वह सन् ४०० ईसवी का है। उसमें राजा 'पूर्णवर्मन' के राज्यकाल की घटनाओं का वर्णन है। उसी उल्लेख में राजा पूर्णवर्मन को विष्णु का अवतार कहा गया है। मध्य जावा के दो उल्लेखों के अनुसार, जिनमें एक सन् ७३२ ई० का है और दूसरा सन् ७६० ई० का है, जावा की जनता ऋषि अगस्त्य की भक्त थी। ८ वीं सदी ईसवी के मध्य से ९ वीं सदी ईसवी तक जावा पर श्री विजय द्वीप (सुमात्रा) के शैलेन्द्र राजाओं का आधिपत्य था। राजा बौद्धधर्म की महायान शाखा के कट्टर अनुयायी थे और इनके शासन काल में श्री विजय बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध केन्द्र रहा। श्री विजय में इन्हीं राजाओं के शासन काल में लगभग सन ८५० ईसवी में बोरो-बुदुर के मशहूर मन्दिर का निर्माण हुआ। दसवीं सदी के प्रारम्भ में मध्य जावा में फिर से हिन्दू हुकूमत क़ायम हो गई। रामायण के दृश्यों को अङ्कित करने वाले प्रमबानन के प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर इसी हिन्दू हुकूमत के समय बनाये गये हैं! दीवालों पर अङ्कित उसके प्रस्तर चित्र प्राचीन कला की सर्वोत्तम कृतियों में से समझे जाते हैं। थोड़े समय के बाद मध्य जावा के बजाय पूर्वीय जावा शक्तिशाली हिन्दू राजघरानों का केन्द्र हो गया। राजा एरलङ्ग (सन् १०१०-१०४२ ई०) और केदरी के राजाओं (सन् १०४२-१२२० ई०) के मध्य में जावा के कवि-साहित्य की खूब उन्नति हुई। यह कवि-साहित्य संस्कृत और जावा की स्थानीय भाषाओं के समन्वय का परिणाम है। रामायण और महाभारत के संस्कृत से कवि-भाषा में अनुवाद किए गए। इस कवि भाषा में अनेक मौलिक काव्य ग्रन्थों और ऐतिहासिक पुस्तकों का भी सृजन हुआ। 'नगर कीति गाम' और 'परारातों' नामक ऐतिहासिक कवि-ग्रन्थों में १३ वीं सदी के बाद का जावा का इतिहास पाया जाता है।

सन् १२२७ के लगभग एक सिद्धान्तहीन साहसी व्यक्ति 'केन आरोक' पदवी धारणकर एक ब्राह्मण की मदद से शृङ्गसारि में एक शक्तिशाली हुकूमत क़ायम करने में कामयाब हुआ। वह अपने को देवताओं का अवतार बताता था। इस समय जावा की शिल्पकला अपने शिखर पर थी। अन्तिम शृङ्गसारि राजा के दामाद विजय ने सन १२९३ ई० में 'मजापहित' नगर की बुनियाद डाली। संस्कृत में मजापहित का अर्थ 'बिल्वतिक्त' है। मजापहित एक महान साम्राज्य की राजधानी बना। विजय की रानी गायत्री और उसकी राजकन्या विष्णुवर्धनी के नेतृत्व में दीवन गजमद ने आसपास के समस्त द्वीप समूहों पर अपना आधिपत्य जमा लिया। रानी गायत्री के वंशज ह्याम वुरुक के समय न्यूगिनी बोर्नियो, सेलेबी, सुमात्रा और समस्त मलाया प्रायद्वीप के देश मजापहित साम्राज्य के अङ्ग थे। मजापहित राजाओं के पास एक अत्यन्त शक्तिशाली जल-सेना भी थी जो आस पास के सागरों में अपना अक्षुण्ण प्रभुत्व क़ायम रखती थी। इस समय के धनीवर्ग में बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार था किन्तु इस बौद्धधर्म में बङ्गाल के तन्त्रवाद के सिद्धान्तों का भी समावेश हो चुका था।

किन्तु १४ वीं सदी के शुरू में मजापहित राजवंश में आपस में ज़बर्दस्त लड़ाई शुरू हो गई और १५८० ई० में मजापहित से रानी गायत्री के राजवंश का अन्त हो गया। उसके बाद से जावा पर इसलाम की हुकूमत क़ायम हो गई और अब जावा की अधिकांश आबादी मुसलमान है।

## कम्बोडिया की संस्कृति

पुराने ऐतिहासिक उल्लेखों में कम्बोडिया को सुवर्ण-भूमि के नाम से पुकारा गया है। वहां के राजा अपने को चन्द्रवंशी कहते थे। कम्बोडिया का संस्कृत नाम 'कम्बुज' पड़ने से पहले कम्बोडिया को फुनान कहा जाता था। फुनान भी एक शक्तिशाली राज्य था। चीनी उल्लेखों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पता चलता है कि फ़ुनान के राजा फानशान ने सन् २४० ई० में भारत में अपना प्रतिनिधि मण्डल भेजा था। इस प्रतिनिधि मण्डल के साथ वापसी में जो एक भारतीय फ़ुनान गया था वह इसके बारे में लिखता है—

"इस देश में लोग बुद्ध की शिक्षाओं पर अमल करते हैं। यहाँ के रहने वाले उदारचेता और स्पष्टवक्ता हैं। यहाँ की ज़मीन बहुत उपजाऊ है। यहाँ ये राजा 'मुरुण्ड' कहलाते हैं? यहाँ से पूर्व और पश्चिम में 'कपिलवस्तु' और 'श्रावस्ती' के राज्य हैं। दूर दूर बसे हुये राजा भी 'मुरुण्ड' नरेशों को अपना अधिराज स्वीकार करते हैं क्यों कि वे समझते हैं कि मुरुण्ड का राज्य पृथ्वी का केन्द्र है।"

चौथी सदी ईसवी के अन्त में दूसरे कौण्डिन्य राजा ने फ़ुनान के राजकीय नियमों को बदलकर उन्हें भारत में प्रचलित नियमों के अनुसार कर दिया। फ़ुनान नरेश ने पाँचवीं सदी ईसवी के अन्त में भिक्षु नागसेन को बहुमूल्य उपहारों सहित चीनी सम्राट के दरबार में भेजा था। सम्राट से नागसेन ने कहा—

"मेरे देशवासी महेश्वर के धर्म का पालन करते हैं। वहाँ मोतान श्रङ्ग में परमेश्वर का निवास है जहाँ बहुमूल्य पेड़ बहुतायत के साथ उगे हुये हैं। इस पवित्र शृङ्ग से परमात्मा की कृपादृष्टि धरती पर पड़ती है और जनता सुखी और सम्पन्न है।"

इस पर चीनी सम्राट ने उत्तर दिया था—

"हाँ! महेश्वर—की अनन्य कृपा से ही फ़ुनान का देश धन-धान्य से पूर्ण है। हालाकि वहां विदेशी रीति रिवाज प्रचलित हैं फिर भी मैं हृदय से फ़ुनानवासियों की प्रशंसा करता हूँ।"

कुछ वर्षों के बाद चीनी सम्राट ने एक शाही फ़रमान जारी किया, जिसके शब्द हैं—

"फ़ुनान नरेश कौण्डिन्य जयवर्मन समुद्र के परले सिरे पर राज्य करते हैं। उनके पूर्वजों की एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी ने सुदूर दक्षिणी देशों पर राज्य किया है। यह उचित जान पड़ता है कि फ़ुनान नरेश को एक गौरवपूर्ण पदवी दी जाय। इसके लिये उन्हें 'प्रशान्त दक्षिण के सेनापति फ़ुनान नरेश' की पदवी दी जाती है।"

इसी समय के लगभग धर्मग्रन्थों का तर्जुमा करने के लिये दो बौद्ध भिक्षु फ़ुनान से चीन गये। चीनी त्रिपिटक में उनके अनुवाद अब भी देखे जा सकते हैं।

लगभग छठवीं सदी के मध्य में फ़ुनान का पतन हो गया। फ़ुनान के खण्डहरों पर 'चीनिया' ( कम्बुज का चीनी नाम ) नामक एक प्रतापी सामन्त सरदार ने अपना झण्डा फहरा दिया। कम्बोडिया के इतिहास का आधार वहाँ पर पाये गये वे ६०० शिलालेख हैं जो लगभग सब शुद्ध संस्कृत में लिखे गये हैं। फ़ुनान की सत्ता को हथियाकर कम्बुज की स्वाधीनता को स्थापित करने वाले यशस्वी भववर्मन के सम्बन्ध में एक शिलालेख में लिखा है—

"राजाधिराज श्री भववर्मन मेरु के समान अजेय, महान और यशस्वी था। चन्द्रवंश में जन्म लेकर उसकी प्रतिभा चन्द्र-ज्योत्स्ना की तरह समस्त दक्षिणी सागर में प्रदीप्त हो रही थी। समरक्षेत्र में उसका सामना करनेवाला कोई वीर दिखाई न देता था। जब शरीर में वास करने वाले छहों अदृश्य दुश्मनों को जो इन्द्रियों के रूप में मनुष्य को दबाये रखते हैं, भववर्मन ने परास्त करके अपने वश में कर लिया तो फिर बाहरी दुश्मन की क्या बिसात? जब वसन्त ऋतु में वह अपनी समस्त शक्ति के साथ सूर्य की तरह दुश्मनों को जीतने निकल पड़ा तो उसके विरोधी मुक़ाबले में न ठहर सके। समुद्र की मेखला पहने हुये धरती के इस भूभाग को उसने शारीरिक बल से विजय किया और फिर दोबारा अपने नम्र और क्षमाशील शासन से उसने जनता के हृदय को जीता।"

भववर्मन के भतीजे ईषाणवर्मन ने चीन के साथ समस्त राजनैतिक सम्बन्ध तोड़ दिया। वह एक युद्ध प्रेमी राजा था। हुएनत्साङ्ग जब दक्षिणी बङ्गाल में भ्रमण कर रहा था तब उसने इस राजा की राजधानी ईषाणपुर के बारे में सुना था। आठवीं सदी का कम्बुज का इतिहास बहुत कम मिलता है। किन्तु ९ वीं सदी में जावा के राजा जयवर्मन दूसरे के गद्दी पर बैठने के बाद कम्बुज के इतिहास का सबसे गौरवपूर्ण काल शुरू होता है। यह जयवर्मन बहुत बड़ा निर्माणकार था और कम्बुज की शिल्पकला उसीके राज्यारोहण के साथ साथ शुरू होती है। जैसा कि उसकी बनवाई हुई अवलोकितेश्वर की मूर्तियों से पता चलता है जयवर्मन पहले महायान बौद्धमत का माननेवाला था किन्तु बाद में जनपद से आये हुये तांत्रिक ब्राह्मण हिरण्यदाम ने उसे शैवमत में दीक्षित किया। इस ब्राह्मण ने कम्बुज में देवराज की पूजा प्रचलित की जो एक सदी तक वहां चलती रही। किन्तु राजा यशोवर्मन कम्बुज का सबसे बड़ा निर्माता कर्त्ता था जो सन् ८८९ ईसवी में गद्दी पर बैठा। राजा यशोवर्मन के शासनकाल में ही बेयान में अङ्गकोर थाम या नगर-धाम का अत्यन्त सुन्दर मन्दिर बना जिसे तेरहवीं सदी में भी चीनी यात्री आश्चर्य चकित होकर देखा करते

[ शेष ४१५ सफ़े पर ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

# पञ्चस्कन्ध और बौद्ध दर्शन

भारतीय भिक्षु धर्मरक्षित 'धर्मशाखी' ( महामतिन्द कालेज, मातर, लंका )

'व्यक्ति' किन किन हेतु प्रत्ययों पर अवलम्बित है ?— यह प्रश्न जितना पेचीदा है उतना ही सरल भी। पेचीदा है उन नैयायिकों के लिये जिन्होंने व्यक्ति विश्लेषण में एड़ी चोटी का पसीना एक कर दिया है किन्तु सम्यक दृष्टाभाव से सफल मनोरथ न होते हुए अपनी दौड़ती हुई प्रज्ञा को तदाभाव मंजूषा में संकुचित कर लिया है, ताला लगा दिया है। सरल है उन तथागत सम्यक सम्बुद्ध हमारे शास्ता भगवान् शाक्यसिंह को, जिन्होंने 'व्यक्ति' को अनित्य, दुःख अनात्म रूप में देखा और खोलकर, उघाड़कर सामने रख दिया, और सरल है उनके श्रावकों को। धर्मराज के व्यवबादों को सुनकर, पढ़कर, धारणकर जो तदानुगामी बहुश्रुति हैं—उन्हें भी अपने ज्ञानानुसार व्यक्ति के विश्लेषण में सरलता है।

समुद्र जल की महानता की उपमा भी सुन्दर नहीं, तथापि सभी जलवाहक समुद्र तीर जा अपने अपने पात्र को जल से भर लेते हैं और तत्प्रयोजनीय कार्यों में यथा-स्थान, यथा जल प्रयुक्त होते हैं। ऐसे ही जिन्होंने अपने ज्ञान-पात्र को एतद् सम्बन्धी बुद्ध व्यवबादोदक से भरा है वे चाहे कोई हों, उसकी भित्ति, उसके आधार पर व्यक्ति विश्लेषण उन्हें आत्म-शक्ति भर सरल है। वे भ्रमाशङ्कित नहीं। फिर भी यह इतना गम्भीर है कि भगवान को भी कहना पड़ा—मा हेवं आनन्द अवच मा हेवं आनन्द, अवच, गम्भीरो चायं आनन्द, पटिच्चसमुप्पादो गम्भीरावभासो च, एतस्स आनन्द, अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमयं पजा तन्ताकुलकजाता गुलागण्ठिकगाता मुञ्जपब्बजभूता अपायं दुग्गतिं विनिपातं संसारं नातिवत्तति।*

अर्थात् "आनन्द, ऐसा मत कहो, आनन्द ऐसा मत कहो (कि यह सरल है)। आनन्द, यह प्रतीत्यसमुत्पाद (हेतु प्रत्यय का नियम) गम्भीर है और है गम्भीर रूप में दिखलाई देनेवाला। आनन्द, इसके अननुबोध और अप्रतिवेध से ही ऐसी यह जनता अझुराई तांत हो गई है। बँधी गाँठ-सी हो गई है। मूँज-भाभड़ सी हो गई है, नर्क दुर्गति में बार-बार पड़ने के चक्कर को नहीं त्यागती।"

अस्तु स्पष्ट है कि जिसने इस 'पञ्चस्कन्ध' को जान लिया है, वे संसार मुक्त हैं, कहते हैं उनके लिए दुःखवर्त्त का स्थान नहीं और वही इसके विवेचन में समर्थ हैं। पृथक् जन उनके उदाहृत युक्त शब्दों द्वारा यदि विवेचन करने का प्रयत्न करे तो किसी हद तक समर्थ हो सकता है तथा उसके विवेचन में सर्वथा रसाभाव की गुञ्जाइश है। कारण ? वह स्वयं तो जानता नहीं, बिना अर्थ जाने बिल्लू के मन्त्र को पढ़ने के समान उसका कथन होगा।

( २ )

हम ध्यानपूर्वक देखें और अवलोकन करें तथागत के वचनानुसार सम्यक दृष्टि से तो यह 'व्यक्ति' दो अवस्थाओं का पुञ्ज सा दीख पड़ेगा। वे अवस्थाएँ हैं शारीरिक तथा मानसिक। इन्हीं दोनों अवस्थाओं को बौद्ध दर्शन में क्रमशः रूप और नाम कहा गया है। यहाँ जो कुछ स्थूल-पुञ्ज है, वह सब रूप है और जो सूक्ष्म है, वह सब नाम है। नाम की प्रधानता तथा सहूलियत के लिए 'नामरूप' कहकर पुकार सकते हैं। मानसिक अवस्था अर्थात् नाम, चार विभिन्न अवस्थाओं में बँटा है। वे अवस्थाएँ हैं—

वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान। इस प्रकार 'व्यक्ति' की अवस्थाओं के साधारणतः पांच पुञ्ज, समूह अथवा स्कन्ध दीख पड़ते हैं, इन्हीं को बौद्ध-दर्शन 'पञ्च-स्कन्ध' के नाम से प्रज्ञप्त करता है। यथा—

"कतमे पञ्चक्खन्धा ? रूपक्खन्धो, वेदनाक्खन्धो, सञ्ञाक्खन्धो, संखारक्खन्धो, विञ्ञाणक्खन्धोति।"*

अर्थात्-पञ्चस्कन्ध कौन से हैं ? (१) रूप स्कन्ध (२) वेदना स्कन्ध (३) संज्ञा स्कन्ध (४) संस्कार स्कन्ध (५) विज्ञान-स्कन्ध।

इन्हीं पञ्च स्कन्धों के योग से यह 'व्यक्ति' निर्मित है, इसकी स्थिति है, इनके अतिरिक्त यहां अन्य कुछ नहीं। इनके एकीभाव में ही 'व्यक्ति' का प्रादुर्भाव है, अन्यथा 'व्यक्ति' का सर्वथा अभाव।

जैसे डण्डों, धुरों, चक्कों, रस्सियों, रथ-खजानों के योग से रथ की प्रज्ञप्ति होती है, उनके अन्योग में रथ की प्रज्ञप्ति का सर्वथा अभाव है, ऐसे ही नाम तथा रूप के योग से, एकीभाव से व्यक्ति का प्रादुर्भाव सम्भव है। कहा है—

"यमकं नामरूपञ्च, उभो अञ्ञोञ्ञनिस्सिता।
एकस्मिं भिज्जमानस्मिं, उभो भिज्जन्ति पञ्चया॥

* दीघनिकायो २, १

* दीघनिकायो ३,१०



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अर्थात् नाम और रूप दोनों जोड़े अन्योन्याश्रित हैं, एक के नाश होने पर दोनों के प्रत्यय नष्ट हो जाते हैं। नामञ्च रूपञ्च इधत्थि सञ्चतोति आदि वचनों से भी यहां केवल नाम और रूप मात्र की ही स्थिति है, इन्हें छोड़ और कोई भी नित्य, अपरिवर्तनशील सत्व, मनुज, अथवा वैसी एशिका के समान एक स्थायी आत्मा नहीं। जो नाम रूप हैं यह भी क्षण क्षण परिवर्तनशील हैं, नाशमान् हैं, अनित्य हैं, दुःख हैं, अनात्म हैं, ये आश्वासन योग्य नहीं, इनका विश्वास नहीं कि कब नष्ट हो जांय ? सत्व के विश्लेषण में वजिरा भिक्षुणी द्वारा भी उदाहृत यह गाथा है—

"यथा हि अङ्ग सम्भारा होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु होति सत्तोति सम्मुति॥

जैसे रथाङ्गों के मेल से 'रथ' नाम होता है, ऐसे ही स्कन्धों के भाव में ही 'सत्व' है—यह प्रज्ञप्ति होती है।

जैसे नौका मल्लाह के सहारे नदी तैरती है और मल्लाह नौका के अवलम्ब से सरिता के इस पार से उस पार हो पाता है, ऐसे ही नाम रूप का अन्योन्य सम्बन्ध है। जिस प्रकार अन्धे का लँगड़े के योग तथा लँगड़े का अन्धे के आश्रय से उनकी कार्य-सिद्धि अभिलक्षित है, उसी प्रकार नाम रूप का योग 'व्यक्ति' का हेतु है, प्रत्यय है, इनकी भिन्नता में उसका नाश और एकीभाव में स्थिति सम्भव है। यदि नाम अर्थात वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान नहीं, तो रूप नहीं और यदि रूप नहीं तो विज्ञान के साथ उसकी अन्य तीन अवस्थाएँ ( वेदना, संज्ञा, संस्कार ) नहीं। ऐसे भी विभिन्नाकार में इनका आपतनाभाव है जैसे कि हम कह सकें नाम के प्रत्यय से रूप होता है और रूप के होने से नाम। कारण ? एक क्षण, एक साथ, असमयानन्तर भावोत्पत्ति। नाम रूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है और विज्ञान के प्रत्यय से नाम रूप—ऐसा कहना ही समुचित है। यदि कहो कि नाम स्कन्ध के अन्तर्गत हो तो विज्ञान है, फिर नाम रूप के प्रत्यय से होनेवाला यह विज्ञान कौन सा ? शंका समाधान यों है—नाम स्कन्ध में प्रधान भूत विज्ञान है और शेष तीन उसकी ही अवस्था विशेष हैं तथा एकोत्पाद, सहनिरोध का इनका सम्बन्ध है एवं रूप की भी उत्पत्ति में कालान्तराभाव है, इसलिए यह कहा जाता है कि नाम रूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है और विज्ञान के होने से नाम रूप। अधिक स्पष्टता के लिए इस प्रकार जानना चाहिए—पूर्व आत्म भाव में जो नाम रूप था और उससे जो कुछ कुशलाकुशल किया गया, उसके विपाक से इस वर्तमान आत्मभाव का प्रतिलाभ हुआ अर्थात् 'व्यक्ति' बना। इस प्रकार दोनों आत्मभावों के बीच परिवर्तनशील अच्छे कर्मों से अच्छे तथा बुरे कर्मों से बुरी होनेवाली, पूर्व संस्कार वाहक जो चित्त सन्तति है उसी के भाव में नाम रूप का भाव है अन्यथा अभाव। जिस परिवर्तनशील, क्षणिक, अनित्य कर्मवाहक चित्त-सन्तति से प्रतिसन्धि होती है, उसीका नाम विज्ञान है। अस्तु विज्ञानाभाव में नामरूप का सर्वथा अभाव सिद्ध है।

यों भी समझना चाहिए कि तीन के एकत्रित होने से गर्भ धारण होता है—( १ ) माता और पिता एकत्र होते हैं, किन्तु माता ऋतुमती नहीं होती और उत्पन्न होनेवाली चित्त-सन्तति अर्थात् गन्धर्व उपस्थित नहीं होता तो गर्भ धारण नहीं होता, ( २ ) माता पिता एकत्र होते हैं, माता ऋतुमती होती है किन्तु गन्धर्व उपस्थित नहीं होता तो भी गर्भ धारण नहीं होता, ( ३ ) जब माता-पिता एकत्र होते हैं, माता ऋतुमती होती है और गन्धर्व उपस्थित होता है, तब इस प्रकार तीनों के एकत्रित होने से गर्भ धारण होता है। धर्मराज सर्वज्ञ शास्ता के ही वचनों में—

"विञ्ञाण पच्चया नामरूपन्ति इति खो पनेतं वुत्तं तरहानन्द इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं यथा विञ्ञाणं पच्चया नामरूपं। विञ्ञाणं चहि आनन्द, मातुकुच्छिस्मिं न ओक्कमिस्सथ अपि नु खो नामरूपं मातुकुच्छिस्मिं समुच्चिस्सथाति ? नो हेतं भन्ते। विञ्ञाणं चहि आनन्द मातु कुच्छिस्मिं ओक्कमित्वा ओक्कमिस्सथ, अपि नु खो नामरूपं इत्थत्ताय अभिनिब्बत्तिस्सथाति ? नो हेतं भन्ते। विञ्ञाणं चहि आनन्द, दहरस्सेव सतो वोच्छिज्जिस्सथ कुमारकस्स वा कुमारिकाय व कुमारिकाय वा अपि नु खो नामरूपं बुद्धि विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जिस्सथाति ? नो हेतं भन्ते। तस्मातिहानन्द, एसेव हेतु, एतं निदानं, एस समुदयो एसपच्चयो नामरूपस्स यदिदं विञ्ञाणं। नामरूप पच्चया विञ्ञाणन्ति इति खो पनेतं वुत्तं, तदानन्द, इमिनापेतं परियायेन वेदितब्बं...विञ्ञाणं चहि आनन्द नामरूपे पतिट्ठं न लभिस्सथ, अपि नु खो आयतिं जाति जरामरणं दुक्ख समुदसम्भवो पञ्ञायेथाति ? नो हेतं भन्ते। तस्मातिहानन्द एसेव हेतु, एतं निदानं, एससमुदयो, एस पच्चयो, विञ्ञाणस्स यदिदं नामरूपं। एत्तावता खो आनन्द, जायेथ वा जीयेथ, वामीयेथ वा चवेथ वा उपपज्जेथ या एत्तावता अधिवचनं पथो, एत्तावता निरुत्ति पथो, एत्तावता पञ्ञावचरं एत्तावता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वट्टं वदति इत्थत्तं पञ्ञापनाय, यदिदं नाम रूपम् सह-विञ्ञाणेन, अञ्ञमञ्ञपच्चया पवत्तति।" (दीघनिकायो १,२)

भावार्थ—"विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप होता है—यह जो कहा गया है, तो आनन्द, इसे इस प्रकार जानना चाहिए जैसे कि विज्ञान में प्रत्यय से नाम रूप होता है। आनन्द, यदि विज्ञान माता के पेट में न उतरे तो क्या नाम रूप माता के पेट में एकत्रित होगा?"

"नहीं भन्ते।"

"और यदि आनन्द, विज्ञान माता के पेट में उतरते हुए उतरे, तो क्या यहाँ नामरूप उत्पन्न होगा?"

"नहीं भन्ते।"

"और यदि आनन्द, बचपन में ही बच्चे अथवा बच्ची का विज्ञान नष्ट हो जाय, तो क्या नामरूप की वृद्धि होगी, बढ़ेगा, विपुल भाव पायेगा?"

"नहीं भन्ते।"

"इसलिए आनन्द, यही हेतु है, यही कारण है, यही समुदय है, यही प्रत्यय है, जो कि नामरूप का विज्ञान। नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है—यह जो कहा गया है, इसे आनन्द, इस प्रकार जानना चाहिए—यदि आनन्द, विज्ञान नामरूप में प्रतिष्ठा न पाये तो क्या आगे जाति जरा मरण दुःख का उत्पन्न होना दिखाई देगा?"

"नहीं भन्ते।"

"इसलिए आनन्द; यही हेतु है, यही कारण है, यही समुदय है यही प्रत्यय है, जो कि विज्ञान का नामरूप। इस तरह आनन्द, विज्ञान के साथ नामरूप अन्योन्य प्रत्यय से प्रवर्तित है, इसीसे पैदा होना, जीना, मरना, च्युति, उत्पत्ति, अधिवचन (=नाम), निरुक्ति, निरुक्ति-पथ, प्रज्ञाचरण, संसार चक्र में चक्कर काटना अथवा इस आत्मभाव की प्रज्ञप्ति होती है।"

इस प्रकार विज्ञान के प्रत्यय नामरूप होते हैं। और नामरूप के प्रत्यय से विज्ञान होता है। ऐसा पूछनेवालों के लिए कि "नामरूप' को कौन बनाता है?" भगवान् धर्मराज के ही वचनों में उत्तर है—"नकल्लोयं पञ्हो" अर्थात् यह प्रश्न ही समुचित नहीं।

( ३ )

रूप-स्कन्ध अपने स्थूलाकार से प्रगट है और उसका विश्लेषण किसी हद तक सरल है, तथापि जो सूक्ष्म हैं, अरूप है, मानसिक अवस्था सम्बन्धी वेदना स्कंध, संज्ञा-स्कन्ध, संस्कार स्कन्ध और विज्ञान-स्कन्ध इनका विवेचन बड़ा ही दुष्कर है। वे उद्देश्य हैं, केवल स्वभाव मात्र से जाने जा सकते हैं। राजा मिलिन्द ने भदन्त नागसेन से पूछा

"भन्ते, क्या एक में मिले हुए इन धर्मों को अलग अलग करके बतलाया जा सकता है कि यह स्पर्श है, यह वेदना है, यह संज्ञा है, यह चेतना है, यह विज्ञान है, यह वितर्क है, यह विचार है?"

"महाराज, ऐसा नहीं किया जा सकता।"

"उपमा द्वारा हमें समझायें।"—मिलिन्द ने कहा।

"जैसे महाराज, बावरची राजा के लिए यूश तैयार करे अथवा रस। वह उसमें दही को भी डाले, नमक को भी डाले, अद्रा को भी डाले, जीरा को भी डाले, मिर्च को भी डाले, तथा अन्य प्रकार की चीज़ों को भी डाले। तब राजा उसे ऐसा कहे—दही का रस ला, नमक का रस ला, अद्रा का रस ला, जीरे का रस ला, मिर्च का रस ला और सभी के मिले रस ला; तो क्या महाराज, एक में मिले हुए उन रसों को वह अलग अलग करके ला सकता है कि यह खट्टा है, यह नमकीन है, यह तीता है, यह कड़ुवा है, यह कसैला है अथवा यह मीठा है?"

"भन्ते, एक में मिले हुए रसों को वह अलग अलग करके नहीं ला सकता कि यह खट्टा है, यह नमकीन है। यह तीता है, यह कड़ुवा है, यह कसैला है अथवा यह मीठा है, अपितु वे अपने अपने लक्षण से जाने जा सकते हैं।"

"ऐसे ही महाराज, इन एक में मिले हुए धर्मों को अलग अलग करके बतलाया जा सकता है कि यह स्पर्श है, यह वेदना है, यह संज्ञा है, यह चेतना है, यह विज्ञान है, यह वितर्क है, यह विचार है।" (मिलिन्द पञ्हो २,२,५५)

सम्यक् सम्बुद्ध समन्तचक्षु भगवान् ने इनका अलग अलग करके जो प्रज्ञापन किया, बड़ा ही दुष्कर कार्य्य किया, नाना प्रकार के जलों को अथवा नाना प्रकार के तेलों को एक बर्तन में डालकर दिन भर मथने के पश्चात् वर्ण, गन्ध, रस का नानापन देखकर, सूँघकर अथवा चखकर यदि जाना भी जा सके तो भी वह दुष्कर कहा जाता है, तथागत द्वारा इन अरूपी ( वेदनादि ) धर्मों को भी अलग अलग करके दिखाकर, जतलाकर, बतलाकर—महादुष्करतम कार्य किया गया।

अस्तु, केवल अपने अपने स्वभाव, लक्षण से पहचाने जाने वाले—वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान का विवेचन प्रथम आकांक्ष्य है।

## १—वेदना-स्कन्ध

इन्द्रियों और विषयों के संयोग से दुःखात्मक, सुखात्मक और न-दुःख-सुखात्मक, किसी भी प्रकार की अनुभूति को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वेदना कहते हैं। हम रोते हुए व्यक्तियों को देख स्वयं भी रोने लगते हैं, आक्रोपन को सुन तेवरी चढ़ा लेते हैं, दुर्गन्ध के आते ही नाक पर हाथ लगा लेते हैं, जिगुप्सा करते हैं। मीठी चीज़ों के खाने में आनन्द समझते हैं, चित्त-सौमनस्यता का अनुभव करते हैं। इस प्रकार विभिन्न चैतसिक अवस्थाओं में विभिन्न वेदना भी होती है। चाहे कोई भी वेदना हो—कामावचर की, रूपावचर की, अरूपावचर की अथवा इनसे मुक्त लोकोत्तर—सभी वेदन लक्षण हैं।* और वे चाहे भूतकाल की हों, चाहे वर्तमान काल की, चाहे आध्यात्मिक हों अथवा बाह्य इष्टानिष्ट जितनी भी हों, वे सब वेदना-स्कन्ध के अन्तर्गत हैं। यहाँ यह विज्ञेय है कि पञ्चस्कन्धों को ही 'व्यक्ति' की अवस्था में पञ्च-उपादान-स्कन्ध कहते हैं क्योंकि इन्हींके हेतु-प्रत्यय को लेकर 'व्यक्ति' इनसे मुक्त नहीं होता।

वेदना नाना प्रकार की होती हैं। किसी पर्याय से होगी, तीन भी, पाँच भी, अठारह भी, एक सौ आठ भी,† तथापि साधारणतः तीन वेदनाओं के अन्दर ही सभी का समावेश हो सकता है। वे हैं (१) सुखा वेदना, (२) दुःखा वेदना और (३) अदुःख-असुखा वेदना। सुखा तथा दुःखा—ये दो वेदनायें भी कही जाती हैं। सुख, दुःख सौमनस्य, दौर्मनस्य तथा उपेक्षा के विभाजन से पाँच प्रकार की भी होती हैं। इस प्रकार अनेकों भेद किए जा सकते हैं। विशाख गृहपति के यह पूछने पर कि "आर्ये, कितनी वेदनायें हैं?" धम्मदिन्ना भिक्षुणी ने उत्तर दिया—

"आवुस, विशाख! यह तीन वेदनायें हैं—(१) सुखा वेदना, (२) दुःखा वेदना, (३) अदुःख असुखा वेदना।" ×

हम जो काय तथा मन से शान्त अनुकूल अनुभव करते हैं वह सुखा (=सुखमय) वेदना है, जो अशान्त, प्रतिकूल अनुभव करते हैं, दुःखा (=दुःखमय) वेदना है और जो अनुभव शान्त भी नहीं, अशान्त भी नहीं, अनुकूल भी नहीं, प्रतिकूल भी नहीं, वह अदुःख-असुखा वेदना है।

'व्यक्ति' में जो इन नाना अनुभूतियों का पुञ्ज है, नाना वेदनाओं का उत्पाद है, क्षण-क्षण चक्कर काते आलात की भाँति इनका जो परिवर्तनमय क्षणिक स्कन्ध दीख पड़ता है, वही वेदना-स्कन्ध है।

यह वेदना-स्कन्ध शेष धर्मों के साथ राजा के समान है। जैसे बावरची नाना-रस-सम्पन्न भोजन तैयार कर मंजूषा में रख बन्दकर राजा के पास ले जाए, यहाँ ताला खोल मंजूषा को उघाड़कर सभी सूप-व्यञ्जनों को भली भाँति एक बर्तन में निकालकर सदोष-निर्दोष भाव को जानने के लिए पहले थोड़ा थोड़ा स्वयं चखकर राजा को दे और तब राजा उन्हें इच्छानुरूप खाए। ऐसे ही बावरची की भोजन-मीमांसा मात्र के समान अवशेष धर्म हैं, वे किसी भी आलम्बन के थोड़े से अंश का ही अनुभव करते हैं, राजा के रसाग्र भोजन के खाने के तुल्य वेदना है। क्योंकि यह किसी भी आलम्बन में आवर्ज, दर्शन, सम्परिच्छन, संतीरण, व्यवस्थपन के पश्चात ही जवन-क्षण में उत्पन्न होती है तथापि अनुभूति इसीके मत्थे होती है अर्थात् इसी क्षण वेदना कृत्य दीखता है।

## २—संज्ञा-स्कन्ध

नाना आलम्बनों के नीलादि भेद का परिचय युक्त ज्ञान ही संज्ञा है। पहचानना इसका लक्षण है। यथा—

"आवुस, 'संज्ञा' 'संज्ञा' कही जाती है, किस कारण से संज्ञा कही जाती है?"

"चूँकि आवुस, यह संजानन (=पहचान) करती है, इसलिए संज्ञा कहते हैं। क्या संजानन करती है? नीले को भी संजानन करती है, पीले को भी, लाल को भी, सफेद को भी, इसलिए संज्ञा कहते हैं।"*

जिसको हम अनुभव करते हैं उसी का संजानन भी। जितनी भी संज्ञा हैं, चाहे भूतकाल की हों, चाहे वर्तमान की, चाहे भविष्यत् की, चाहे आध्यात्मिक हों या बाह्य, वे बुरी हों अथवा भली—सभी संज्ञा-स्कन्ध के अन्तर्गत हैं। और सभी का लक्षण है संजानन हो। अभिज्ञान संज्ञा का कृत्य है। जैसे बढ़ई लकड़ी के ऊपर प्रथम चिन्ह करता है, पुनः उस चिन्ह के प्रत्याभिज्ञान से उसे चीरता है। हम किसी पुरुष के काले तिलकादि को देखकर कालान्तर में भी उसी अभिज्ञान से यह 'अमुक' है—जान लेते हैं।

इस प्रकार क्षण-क्षण उत्पत्ति, स्थिति, विनाश के क्रमानुसार परिवर्तनशील 'व्यक्ति' में जितना भी आलम्बन

---

*"वेदना वेदनाति वुच्चति कित्तावता नुखो आवुसो वेदनाति उच्चति? वेदेति वेदेतीति……"। विस्तार के लिए देखो मज्झिम निकायो १।५।३

† देखो मज्झिम निकायो २-१-९

× मज्झिम निकायो १-५-४

* मज्झिम निकायो १।५।३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


के पहचानने का ज्ञान है, वह सब संज्ञा-स्कन्ध है। अस्तु, नवासी ( ८९ ) चित्तों का संग्रह ही संज्ञा-स्कन्ध विज्ञेय है।

## ३—संस्कार-स्कन्ध

कहा है—"सङ्खरोन्तीति संङ्खारा, लोकिय कुसलाकुसल चेतना।" अर्थात् संस्करण करने के कारण संस्कार कहे जाते हैं। लौकिक कुशल-अकुशल चेतना ही संस्कार है। कुशलाकुशल कर्मों की राशिकरण इसका कृत्य है। जितने भी संस्कार हों—चाहे भूत काल के, चाहे वर्तमान काल के, चाहे भविष्यत् के; आध्यात्मिक हों अथवा बाह्य, कुशल हों या अकुशल—वे सब संस्कार-स्कन्ध के अन्तर्गत हैं।

स्पर्श, मनसिकार, जीवित, समाधि, वितर्क, विचार, वीर्य, प्रीति, छन्द, अधिमोक्ष, श्रद्धा, स्मृति, ही, अपत्रया (=संकोच), अलोभ अव्यापाद, प्रज्ञा, उपेक्षा, काय-प्रश्रब्धि, चित्त-प्रश्रब्धि, काय की लघुता, चित्त की लघुता, काय-मृदुता, चित्त मृदुता, काय-कर्मण्यता, चित्त कर्मण्यता, काय-प्रागुण्यता, चित्त प्रागुण्यता, काय-ऋजु कृत्यता, चित्त ऋजु कृत्यता, करुणा, मृदुता, सम्यक् वाक्, सम्यक कर्मान्त, सम्यक आजीव।

लोभ, द्वेष, मोह, दृष्टि, औद्धत्य, अ-ह्री, अनप-अपत्रया, विचिकित्सा, मान, ईर्षा, मात्सर्य, कौकृत्य, स्त्यान-मृद्ध—ये सभी धर्म चेतना के साथ पचास ( ५० ) पुञ्जार्थ रूप में संस्कार स्कन्ध कहे जाते हैं। जो काय, वाक्, मन द्वारा ही साध्य हैं, इस प्रकार संस्कार का विभाजन दो प्रकार से यों होता है—( १ ) काय संस्कार, वचन-संस्कार, चित-संस्कार और (२) पुण्य, अपुण्य, आनेञ्ज (अकम्य)। अधिक स्पष्टता के लिए—

"आर्ये, ! संस्कार कितने हैं ?"

"आवुस, विशाख ! यह तीन संस्कार हैं—(१) काय-संस्कार (२) वचन संस्कार (३) चित्त संस्कार।"

"आर्ये, क्या है काय संस्कार ? क्या है वचन संस्कार ? क्या है चित्त संस्कार ?"

"आवुस, विशाख ! आश्वास प्रश्वास काय संस्कार है, वितर्क विचार वचन संस्कार हैं, संज्ञा और वेदना चित संस्कार है।"

"क्यों आर्ये, आश्वास-प्रश्वास काय संस्कार हैं ? क्यों वितर्क विचार वचन संस्कार हैं ? क्यों संज्ञा, वेदना चित्त संस्कार हैं ?"

"आवुस, विशाख ! आश्वास-प्रश्वास काया से संबद्ध कायिक धर्म हैं, इसलिये आश्वास-प्रश्वास काय संस्कार हैं। आवुस, विशाख पहले वितर्क करके, विचार करके पीछे वचन निकलता है, इसलिये वितर्क विचार वचन संस्कार हैं। आवुस, विशाख ! संज्ञा और वेदना चित्त से संबद्ध चैतसिक धर्म हैं इसलिये संज्ञा और वेदना चित्त संस्कार हैं।"*

काय, चित्त, वाक्—इन्हीं के द्वारा आदमी 'पुण्य अपुण्यादि का संचयन करता है, जिनसे सुगति-दुर्गति विज्ञेय हैं और इन्हीं संस्कारों के कारण हमारा संसार-भ्रमण लगा हुआ है जैसे कि अविद्या के प्रत्यय से संस्कार होते हैं + और क्रमशः जन्म, जरा मरण, दुःख, दौर्मनस्यादि सभी दुःखों का आपतन हो जाता है।

## ४—विज्ञान स्कन्ध

विजानन लक्षण विज्ञान है। जैसे नगर रक्षक द्वारपाल मध्य चौरास्ते में बैठकर पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर—सभी दिशाओं से आते लोगों को देखे, ऐसे ही आँख से रूप देखकर, श्रोत्र से शब्द सुनकर, प्राण से गन्ध सूँघकर, जिह्वा से रसास्वादन कर, काय से स्पर्श कर—उन्हें जानता है, जो विजानन लक्षण है, वही विज्ञान है।

"आवुस, 'विज्ञान' 'विज्ञान' कहा जाता है, किस कारण से विज्ञान कहा जाता है ?"

"चूँकि आवुस, वह जानता है, इसलिये विज्ञान कहा जाता है ?"

"क्या जानता है ?"

"यह सुख है—इसे जानता है। यह दुःख है—इसे जानता है। यह अदुःख-असुख है—इसे जानता है, इसलिये आवुस विज्ञान कहा जाता है।" ×

संज्ञा, वेदना और विज्ञान ( जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है ) यह तीनों धर्म मिले जुले हैं, विलग नहीं। और इन तीनों पदार्थों को विलग विलग करके इनका भेद नहीं जतलाया जा सकता क्योंकि जिसका हम अनुभव करते हैं उसीका संजानन और विजानन भी। मधुर अथवा तिक्त कोई चीज़ खाते समत स्वादाभिभूति मात्र का ज्ञान वेदना है, वस्तु का परिचायक ज्ञान संज्ञा है तत्पश्चात् यथार्थ ज्ञान की अवस्था विज्ञान है।

उपयुर्क्तानुसार विज्ञान के ही आगमन से 'व्यक्ति' की

---

*मज्झिमनिकायो १।५।४

+ अविजा पचया सङ्खारा—उदान १।१

× मज्झिम निकायो १।५।३



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्थिति का प्रादुर्भाव होता। यह विजानन लक्षण वाला स्कन्धों के योग से उत्पन्न एक ऐसा धर्म है, जो क्षण क्षण उत्पन्न तथा विलीन होता है, जब तक यह इस शरीर में रहता है, तब तक शरीर सजीव कहा जाता है। बौद्ध-दर्शन में विज्ञान, चित्त, मन, तथा आत्मा एक ही के पर्याय हैं। हम कह सकते हैं कि 'व्यक्ति' केवल रूप और विज्ञान का पुञ्ज है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति में ही शेष त्रय की उत्पत्ति सम्भव है किन्तु उसकी अवस्था त्रय से ही उसका विजानन कार्य होता है, इसलिये हमें उन्हें भी प्रज्ञापन कहना लाज़िमी होता है। बिना त्रय अवस्था विशेष के 'नाम-स्कन्ध' सम्भव नहीं। अस्तु, सम्पूर्ण ( ८९ ) चित्त की, मन की, आत्मा की जो अवस्थायें हैं, वह प्रत्येक विज्ञान हैं और पुञ्जार्थ रूप मे वही सब 'विज्ञान-स्कन्ध' हैं।

## ५—रूप स्कन्ध

'व्यक्ति' में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, ये चारों महाभूत तथा इनसे उत्पन्न अन्य जितने भी रूप हैं, वह सब रूप स्कन्ध कहे जाते हैं। चाहे भूत काल के हों, चाहे वर्तमान के, चाहे भविष्यत् के। वे अध्यात्मिक हों अथवा बाह्य, स्थूल हों या सूक्ष्म, बुरे हों वा भले; चाहे दूरस्थ हों अथवा समीपस्थ।

जैसे काष्ठ, वल्ली, तृण तथा मिट्टी से घिरा आकाश घर कहा जाता है, ऐसे ही हड्डी, स्नायु, मांस और चर्म से घिरा आकाश रूप कहा जाता है।

चारों महाभूतों तथा उनके कारण उत्पन्न सभी रूपों का जो इन दो भागों में बँटे हैं, ग्यारह (११) प्रकार से संग्रह होता है और सब रूप अट्ठाइस २८ तरह के होते हैं। यथा—

१—पृथ्वी[1] धातु, आप[2] धातु, तेज[3] धातु, वायु[4] धातु भूत रूप।

२—चक्षु[5], श्रोत्र[6], घ्राण[7], जिह्वा[8], काम[9] प्रसाद रूप।

३—रूप[10], शब्द[11], गन्ध[12], रस[13], जल धातु को छोड़ तीनों धातुओं से उत्पन्न स्पर्श गोचर अथवा विषम रूप।

४—स्त्रीत्व[14], पुरुषत्व[15]—भावरूप।

५—हृदयवस्तु[16]—हृदय रूप।

६—जीवितिन्द्रिय[17]—जीवित रूप।

७—कवल कवल करके[18] खाने योग्य अहार—आहार रूप।

१—यह अठारह प्रकार के रूप स्वभाव, स्वलक्षण, निस्पन्द रूपादि कहे जाते हैं।

१—आकाश[1] धातु—परिच्छेद रूप।

२—काम[2] विज्ञप्ति, वची[3] विज्ञप्ति—विज्ञप्ति रूप।

३—रूप[4] की लघुता, मृदुता[5], कर्मण्यता[6] और दोनों विज्ञप्ति—विकार रूप।

४—रूप[7] का उपचयन, सन्तति[8], जरता[9], अनित्यता[10], —लक्षण रूप। जन्म रूप ही यहाँ उपचय सन्तति नाम से पुकारा जाता है।

२—यह एक प्रकार के रूप अनिस्पन्द कहे जाते हैं।

इन अट्ठाइस प्रकार के रूपों का अतीत, अनागत, वर्तमान, आध्यात्मिक, बाह्य, स्थूल, सूक्ष्म, दूरस्थ, समीपस्थ, हीन, प्रणीत आदि क्रमों से नाना रूप-भेद होते हैं। इन रूपों के केवल चार समुत्थान कहे जाते हैं—कर्म के द्वारा, चित के द्वारा, ऋतु के द्वारा तथा आहार के द्वारा और इक्कीस प्रकार के एकोत्पाद, एक निरोध, एक निश्रय, सह वृतिवाले रूप कलाप होते हैं। इनका प्रवर्त्तन भी काम रूप असंज्ञी इन तीन स्थानों में प्रतिसन्धि जनित दो प्रकार से होता है। कहा है—

फेणपिण्डूपमं रूपं वेदना बुब्बुलूपमा।
मरीचिकूपमा सञ्ञा संखारा कदलूपमा।
मायूपमञ्च विञ्ञाणं देसितादिञ्च बन्धुना॥

धर्मराज तथागत आदित्य बन्धु ने रूप को फेन ( गाज ) के समान बतलाया है। वेदना को पानी के बुलबुले के समान। संज्ञा को मरीचि के समान। संस्कार को कदलि के समान और विज्ञान को माया के समान।

बौद्ध दर्शन में यह बतलाया गया है किसी सत् का भान केवल पञ्च-स्कन्ध पर अवलम्बित है, और उस 'सत्' के भान की स्थिति में आदमी की मुक्ति हो जाय यह सम्भव नहीं।

"आर्ये, सत्काय, सत्काय कहा जाता है, आर्ये, भगवान ने किसे सत्काय कहा है?"

"यह जो रूप उपादान स्कन्ध है, वेदना उपादान स्कन्ध है, संज्ञा उपादान स्कन्ध है, संस्कार उपादान स्कन्ध है, विज्ञान उपादान स्कन्ध है, आवुस, विशाख, इन्हीं पञ्च उपादान स्कन्धों को भगवान ने सत्काय कहा है।"

'सत्काय' की भावना को त्याग अनित्य, दुःख और अनात्म की दृष्टि से ही शील, समाधि, प्रज्ञा की पूर्तिकर हम सुख शान्ति निर्वाण की अवस्था को पा सकते हैं। अस्तु—

पञ्चकवन्ध विजानित्वा, कत्वा साधु विनिच्छयं।
भावनं अनुब्रूहन्तो, पत्वा निब्बानमुत्तमं॥
संब्बा पजा सुखी होतु, विनस्सन्तु भवाभवं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शेष-पत्र

[ गताङ्क से आगे ]

डाक्टर एन० एस० वर्धन

## नौ

प्रिय...,

तुम्हारा पत्र क्या था लगता था मानो बवण्डर आ गया। मैं तुम्हीं से पूछता हूँ—क्या तुम्हारा क्रोध उचित था? क्या सचमुच तुम्हारे इस क्रोध के लिये मुनासिब वजह थी? अपने पिछले पत्र में मैंने तुमसे कुछ प्रश्न किये थे। प्रश्नों का उत्तर देना न देना तुम्हारी मरज़ी की बात थी; किन्तु तुम मुझ पर बरस पड़ीं और तुमने जवाब में मुझे लिखा कि न तो तुम इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका हो और न रेफ़रेन्स लाइब्रेरी। तुमने यह भी लिखा है कि मेरे जटिल तर्कों और असम्बद्ध क़िस्से कहानियों में तुम्हें कोई दिलचस्पी नहीं।

देवी! मैं समझता हूं इस उपालम्भ के बाद तुम्हारा जी हल्का हो गया होगा। लेकिन चूँकि मेरा ख़याल है कि तुमने मुझ पर अनावश्यक हमला किया है इसलिये मुझे अपनी आत्मरक्षा में दो शब्द कहने ही चाहियें। मैं बड़ी नम्रता से तुमसे कहना चाहता हूँ कि तुम बिला वजह मुझ पर बरस पड़ीं। तुम्हें याद है अपने जीवन में सम्मिलित अध्याय खोलने से पहले-हम दोनों एक दूसरे से अपरिचित नहीं थे। कम से कम मेरी ऐसी धारणा है। परिस्थितियों और स्वभाव ने हमें एक दूसरे का मित्र बना दिया। मैंने मन ही मन सोचा यदि तुम्हारी सुखद मैत्री के साथ साथ मैं तुम्हारे प्रेम का भी थोड़ा सा अंश पा सकता तो कितना अनुपम होता। कल्पना ने मुझे सुझाया कि मैं असम्भव के ऊपर विजय पा सकता हूं और तुम्हारी दया के वरदान से अपने लिये एक दुर्लभ स्वर्ग की रचना कर सकता हूं। किन्तु—

अपने मन कछु और है कर्ता के कछु और!

एक ओर हम जीवन की महती सम्भावनाओं के सपने देखते हैं और दूसरी ओर छोटी छोटी सी घटनायें हमारी दिशा को ही मोड़ देती हैं। एक दूसरे के इतना निकट लाकर भी परिस्थितियों ने हमें जुदा कर दिया। मैं उस बीते हुये स्वर्णिम युग की याद तुम्हें नहीं दिलाना चाहता क्योंकि मैं जानता हूं कि स्त्री बहुत कम बातों के याद दिलाने से इतनी हार्दिक घृणा करती है जितनी इस बात से कि जिस व्यक्ति के प्रति अब उसे दिली नफ़रत है उसे कभी उसने मन-क्रम-वचन से प्यार किया था।

मुरादाबाद में तुम्हारी बिदाई का वह दिन मुझे याद है। तुम चली गईं और मैं रह गया। चलते चलते तुमने ढाढ़स दिया और धीरज बँधाया। उत्सुकता से मैंने तुम्हारे पत्रों की प्रतीक्षा की। अपने पत्रों में तुमने मुझे विश्वास दिलाया कि तुम्हारा प्यार अक्षय है और जुदाई उस पर कोई असर नहीं डाल सकती। मैंने तुम्हारी बात पर विश्वास किया। बिदा के समय बहुत से सन्देह और बहुत सी सम्भावनाएं मेरे मन को बोझिल कर रही थीं। तुमसे मैं सब कहना चाहता था पर तुमने मना कर दिया कि मैं व्यर्थ सन्देह करके तुम्हें टीस न पहुंचाऊँ। मैंने पत्र लिखे और तुमने तत्परता से उनके उत्तर दिये। शुरू शुरू में तुम्हारे पत्र अत्यन्त सन्तोषप्रद होते थे। उन्हें पढ़कर मेरे मन का सारा भार उतर जाता था। तुम्हारी जुदाई का ग़म तुम्हारे पत्र भुला देते थे। मुझे मन ही मन तुम पर गर्व था। मेरा हृदय तुम्हारे प्रति आभार से भर गया। प्रत्युत्तर में मैंने अपना मन तुम्हारे सामने खोलने का साहस किया। अपनी समस्त श्रद्धा तुम्हारे चरणों पर अर्पित की। मेरा उत्साह देखकर तुम सहम गईं। तुम्हारा प्यार उसी तरह सिमट गया जिस तरह ज्वार के बाद सागर की लहरें सिमट जाया करती हैं। तुम्हारे पत्रों से तुम्हारे हृदय की ठण्ढक टपकने लगी। तुम्हारी ठण्ढक ने मुझे क्रूर और कुटिल बना दिया। मेरा व्यवहार मूर्खतापूर्ण होने लगा। तुम मेरी नासमझी और बदक़िस्मती से खीझ उठीं। तुम्हारी सहनशीलता की सीमा पार कर गई। तुम्हें इस कष्टकर परिस्थिति तक पहुंचाने के लिये, मैं कैसे न कहूँ, शत प्रति शत मैं ही ज़िम्मेवार हूं। अब याद आता है तुम्हारी उदारता ने इस विपत्ति को सम्भव अवधि तक टालने की चेष्टा की। तुमने कभी मुझे अपनी पीड़ा का भान न होने दिया। केवल तुम्हारे पत्रों से मुझे परिस्थिति का थोड़ा आभास मिलता रहा। तुम मुझमे अपना कष्ट छुपाती रहीं। मैंने हवा के रुख को पूरी तरह नहीं पहचाना। मेरे मन में जो कामना थी उसकी अपूर्ति ने क्रोध को जन्म दिया। क्रोध से सम्मोह और सम्मोह से मेरी स्मृति विभ्रम हो गई और स्मृति के भ्रमित होने से मेरी बुद्धि का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नाश हो गया। मैंने ख़फ़ा होकर तुम्हें जाने क्या क्या बातें लिखीं। काश मैं अपने उन पत्रों को वापस बुला सकता! इसके बाद जो होना था वही हुआ। तुम मुझसे रुष्ट हो गईं। तुमने मुझे आज्ञा दी कि मैं साधारण बातों के अतिरिक्त तुम्हें और कुछ न लिखा करूँ। मैंने शक्ति भर तुम्हारी आज्ञा पालन का प्रयत्न किया। मेरे तुच्छ दैनिक जीवन की बातें ही साधारण श्रेणी में आ सकती थीं किन्तु इन छोटी छोटी बातों से तुम्हें परेशान करना या बेकार व्यक्तियों की अपने पत्र में चर्चा करना मुझे कुछ उचित नहीं जान पड़ा। पत्रों के इस सीमित क्षेत्र के बाद यह स्वाभाविक था कि मेरे पत्र समस्त व्यक्तिगत भावनाओं से निर्बन्ध होते। अपने सम्बन्ध में लिखने का अर्थ यह होता कि मैं तुम्हारे सम्बन्ध में लिखता और यदि यह करता तो फिर मेरे सर पर तूफ़ान बरस पड़ता। मेरी दशा उस जले हुए बच्चे के समान थी जो आग की लौ देखकर डरता है। मुझमें साहस न था कि मैं तुम्हारे निमन्त्रण को स्वीकार करता। तुम्हारी अनिश्चित मनोदशा ने तब भी और अब भी तुम्हें किंकर्तव्यविमूढ़ बना रखा है। आये दिन तुम अपना निश्चय बदला करती हो। फ़र्ज़ करो तुम्हारे आदेश के अनुसार मैं तुम्हें पत्र लिखूँ और इसके पूर्व कि मेरा पत्र तुम्हारे पास पहुँचे तुम मुझे सूचना दो कि वे आदेश तो तुम यों ही आवेश में दे गई हो। इस मानसिक परिवर्तन के बाद यदि तुम्हें मेरा पत्र मिले तो मैं कल्पना कर सकता हूं कि तुम्हारे माथे पर बल पड़ जायँगे और तुम्हारी लम्बी पतली नाक फूल जायेगी। अच्छा क्रम बाँध रखा है तुमने न रोने देती हो और न हँसने देती हो। ईश्वर के लिये अपना क्रम एक बार निश्चित कर लो। मैं तुम्हें अन्तिम चेतावनी देता हूँ। तुम्हें सोचने का अवसर देता हूँ। जब तक तुम मुझे अपने अन्तिम निश्चय की सूचना न दोगी बावजूद तुम्हारे आदेश के मैं उसी प्रकार तुम्हें लिखता रहूंगा जिस प्रकार अब तक लिखता आया हूं। और इसके पश्चात् तुम्हारा खून तुम्हारे सर पर!

यदि तुम्हारे जन्मभूमि की कीच सनी सड़कें, किनारे बहने वाली का उफनती हुई गोमती का गटमैला पानी, बादलों से प्रच्छन्न आकाश और सांस थामे हुई हुमस तुम्हारे ऊपर वह प्रभाव पैदा करे जिससे तुम सारहीन भावुक बातों से ऊपर उठकर आत्मा के कर्तव्य का अनुभव करो और किसानों के कष्टों और फ़सलों की हालत की ही चर्चा करना उपयुक्त समझो तो तुम विश्वास करो मैं तुम्हें अकाल, कालरा, टेनेन्सी एक्ट, अनावृष्टि पौएड-पावना और आयात निर्यात के सम्बन्ध में ही लिखा करूँ। इसके अतिरिक्त यदि तुम समस्त बन्धनों को तोड़कर दम घुटनेवाले वातावरण से निकलकर सूर्य की सुनहली रश्मियों के दर्शन करना चाहो, अग्नि की भयङ्कर लपटों को दूर से देखना चाहो और झींगुर और मेंढकों के कर्कश स्वर के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा को तृप्त करना चाहो तब भी तुम्हें मेरी सहायता मिलेगी। अन्यथा इसके विपरीत मैं तुम्हें ऐसे प्रेम पत्र लिखने को स्वतन्त्र हूं जिनकी तुलना मेरे उन आतप्त शब्दों से नहीं हो सकती जो बीते युग में तुम्हारे हृदय को प्रेम विह्वल करके तुम्हारे ओठों को बरबस मेरे ओठों के समीप खींच लाते थे।

सुनो! मैं यहाँ से देख रहा हूँ कि तुम नई दिल्ली के अपने मनहूस फ्लैट में बैठी मुसकरा रही हो और फिर अपनी बड़ी बड़ी नीली आंखें टेनीसन के काव्य संग्रह पर गड़ाये हुये कह रही हो—"रिक्की! लिखो अच्छा ऐसा ही पत्र लिखो।" और मैं समझता हूँ कि संकुचित जीवन की अनन्त एक-रसता का भङ्ग होना शायद हम दोनों के लिये ही लाभप्रद साबित हो!

## दस

प्रिय,.....,

जैसी मुझे आशा थी तुमने वैसा ही उत्तर भेजा। तुम कहती हो मेरे पत्रों पर जो तुम्हारा प्रतिबन्ध है उसमें संशोधन हो सकता है और केवल एक शर्त के साथ मैं तुम्हें प्रेम पत्र लिख सकता हूँ—वह यह कि मेरे प्रेम पत्रों में प्रेम का एक भी शब्द न हो। तुम्हारा अभियोग है कि मैं शब्दों को प्रेम का वाहन बनाता हूँ, भावों को नहीं और इसीलिये मेरे प्रेम में एक उथलापन होता है। तुम यह भी कहती हो कि मैं अपने प्रेम के चारों ओर शब्दों की एक प्राचीर खड़ी कर देता हूँ जिससे तुम मेरे प्रेम का निकट स्पर्श अनुभव नहीं कर पातीं। मैं काँच के टुकड़े को शब्दों का मुलम्मा पहना कर हीरे की तरह चमका देता हूं और तुम बहुधा धोखे में आ जाती हो। और तुम नहीं चाहतीं कि इस तरह की स्थिति अधिक दिनों चले और इसीलिये तुम्हारा यह आदेश मान है। किन्तु तुम्हीं बताओ कि मैं किस तरह ऐसा प्रेम पत्र लिखूं जिसमें प्रेम का एक भी शब्द न हो?

मुझे मालूम नहीं तुमने "चौर पंचाशिका" पढ़ी है या नहीं। प्रेम के इस खण्ड-काव्य में राजा सुन्दर की बन्दी बनी कन्या और एक ब्राह्मण कवि की प्रेम-गाथा की वर्णन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। राजा सुन्दर को यह अत्यन्त अपमानजनक प्रतीत हुआ कि एक क्षुद्र ब्राह्मण एक राजकन्या के प्रेम का दावा करे। निर्धन ब्राह्मण ने निराश होकर अपनी विरह-व्यथा को काव्य के पचास चौरों में व्यक्त किया। कविता का एक एक शब्द कवि के हृदय रस से डूबकर निकला है। उसकी वाणी ने शब्दों में असीम शक्ति भर दी। स्वर-लहरी शब्दों के स्पर्श से झूम झूमकर लास्य करने लगी। कवि की करुणा ने जनता के हृदय को विषाद से भर दिया। विरह की यह प्रतिध्वनि क़िलों की ऊँची ऊँची दीवारों को चीरकर राजा के अभिमान को झकझोरने लगी। कवि के शब्दों के प्रचण्ड प्रकाश में राजा का सारा ऐश्वर्य फीका पड़ गया। उसकी ठसक विगलित होकर बह गई। राजा का हृदय पसीज गया और कवि को मुंह माँगा वरदान मिला। तुम्हीं बताओ मैं कैसे अपने शब्दों में वह शक्ति पैदा करूँ जिससे तुम्हारे हृदय को जीत सकूँ? शायद दो हज़ार वर्ष पूर्व के राजा सुन्दर की अपेक्षा हमारी भौतिक सभ्यता ने आज हमें कहीं अधिक क्रूर बना दिया है। इस रेफ्रीजरेटर के युग में हमारे हृदय जमकर बर्फ़ हो गये हैं। तुम्हीं बताओ क़लम और स्याही से काग़ज़ पर कैसे वह शक्ति और आग्रह पैदा किया जाय जो ब्राह्मण कवि की "चौर पंचाशिका" में है। आधी पृथ्वी का विस्तार हमारे तुम्हारे बीच में है। इस विस्तार में मेरे शब्द अपना वेग (Velocity) खो देते हैं और परिणाम यह होता है कि मन जिन भावनाओं को व्यक्त करना चाहता है वे अव्यक्त और अज्ञेय ही रह जाती हैं।

जब प्रिय की आँखें अपने सम्पूर्ण अनुराग से प्रेयसी की आँखों में देखती हैं, जब कोमल स्पर्श उसमें सिहरन पैदा करता है, जब उन्माद का भावुकता के साथ आदान प्रदान होता है और जब मौन भावना हृदय के तारों को झंकृत करके अवर्णनीय प्रेम रागिनी पैदा करती है तब आत्मविस्मृत होकर हम अपने को जाने किस लोक का प्राणी समझने लगते हैं। मन कल्पना के आकाश में पङ्ख फैलाये विचरण करता है और मनहूस से मनहूस दिन निखर उठता है। जीवन प्रतीक्षा और वास्तविकता में झोंके खाता है। दिवस ख़ुशी से भर जाते हैं और रात प्रसन्नता से खिल उठती है। आल्हाद सपनों में नाचने लगता है और क्षणों के पङ्ख लगाकर समय उड़ने लगता है। तब मिलन की ख़ुशी और विरह की घड़ियों का दुख शेष नहीं रहता।

फिर इसके बाद यकायक वास्तविक जुदाई की घड़ी आती है और तब खोये हुये अवसरों का हिसाब किया जाता है और हानि की भावना दिल को मथने लगती है। यदि हम स्थायित्व का दावा करते हैं तो हमें अपनी लघुता को भी न भूलना चाहिये। शायद अपराध सब हमारा ही नहीं है। किसी ने लिखा है—

"Alas for those who, having tasted once
Of that forbidden vintage of the lips,
That press'd and pressing, from each other draw
The draught that so intoxicates them both,
That, while upon the wings of Day and Night
Time rustles on, and, Moons do wax and wane,
As from the very well of Life they drink,
And, drinking, fancy they shall never drain.
But rolling Heaven from His ambush whispers,
So in my licence is it not set down:
Ah for the Sweet Societies I make
At Morning, and before the Night fall break;
Ah for the bliss that coming Night fills up,
And Morn looks in to find an empty cup!"

तुम जानती हो मेरे विचार उस श्रद्धालु प्रेमी के विचार नहीं हैं जो थोड़े दिनों की एप्रिण्टिसी के बाद जीवन भर के लिये ग़ुलामी के पट्टे पर दस्तख़त करने के लिये तय्यार हो जाता है। प्रेम के इस व्यापारिक पहलू के साथ भी सहानुभूति होनी चाहिये किन्तु परिणाम हमें अधिकतर यह नहीं करने देता। विवाह की सीमा में पैर रखते ही प्रेम की भावना पर अधिकार की भावना हावी हो जाती है। और प्रेम की क्षणिकता का यही प्रधान लक्षण है। दूसरी ओर अविवाहित प्रेम की ज्योति को विरह के थपेड़े धूमिल करते रहते हैं। मैं तुम्हींसे पूछता हूँ जब सैकड़ों नदियाँ और पहाड़ दो बिछुड़ों के बीच में हों तब प्रेम की दिव्य ज्योति को कैसे प्रदीप्त रखा जाय? प्रतीक्षा, विरह, विश्वास और अपने उपासना भाव को टूटे फूटे शब्दों में कैसे व्यक्त किया जाय? रह रहकर उठनेवाले मन के सन्देह को कैसे परे रखा जाय? हर प्रकार की प्रतिक्रियाओं से अपने अमूल्य और अमर प्रेम की कैसे रक्षा की जाय?

इस जर्जर और बुढ़िया दुनिया में ज़िन्दगी का बोझ ढोते हुये अनेक ऐसे स्त्री और पुरुष मिलेंगे जिनके जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का सुख और दुख तराजू की तोल रहता है और माशा-रत्ती में जिसके पलड़े इधर या उधर झुक जाते हैं! समाज में कौन सा ऐसा व्यक्ति है जो दूसरों से सहानुभूति का इच्छुक नहीं होता? करोड़ों व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपनी असह्य किन्तु निराश विपदायें औरों को सुनाकर ही सन्तोष पा जाते हैं। कुछ लोग हँसते हँसते अपने भाग्य का सामना करते हैं, कुछ क़िस्मत की मेख को औरों से अधिक अनुभव करते हैं। जो बलवान हैं वे अपनी मुसीबतों से युद्ध करते हैं, जो दुर्बल हैं वे सर झुका देते हैं। जो उथली तबियत के होते हैं वे थोड़ी-सी पीड़ा को भी बहुत समझते हैं। किन्तु ऐसे व्यक्ति शीघ्र ही अपना समस्त दुख भूल जाते हैं। इस तरह के व्यक्ति से सहानुभूति दिखाना व्यर्थ है। उनका दुख कितना ही गहरा क्यों न हो उनके आंसू जल्दी ही सूख जाते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों के सम्बन्ध में किसी ने कहा है—"हर सुबह उनके लिये एक नई ख़ुशी का पैग़ाम लाती है।"

कभी कभी अव्यक्त प्यार के बोझ से भीतर ही भीतर दम घुटने लगता है। मन अधिक से अधिक स्वाधीनता के लिये संघर्ष करता है। जो सूरत दिल में बस जाती है उसके बिना सारी दुनिया सूनी लगती है। जिन मीठी मीठी बातों का ख़ुमार तबियत में छा जाता है उनके बग़ैर दुनिया की सभी बातें फीकी लगती हैं। दिन मौत से लम्बे हो जाते है और रातें काटे नहीं कटतीं। किसी बात में जी नहीं लगता और जी लगने का बहाना करने की भी रुचि नहीं रहती। अँधेरे में पलंग पर पड़े पड़े हाथ फैलाकर पुकारने का जी होता है—"प्रिय! मुझे भूलीं तो नहीं?" पर शब्द शून्य में लय होकर असीम में खो जाते हैं और उन कानों तक नहीं पहुँचते जिनके लिये कहे जाते हैं! कितने अनोखे और अस्वाभाविक प्राणी हैं हम लोग? हम अपनी आत्मा की पुकार का गला घोंट देते हैं और अपने दारुण कष्ट पर हम गर्व अनुभव करते हैं। हमें सन्तुष्टि होती है कि हम प्रेम की मर्यादा निबाह रहे हैं। और अचम्भा यह है कि इस मर्यादा को हम कभी तर्क की कसौटी पर कसने का साहस नहीं करते। मानव स्वभाव भी कैसा विचित्र है? जैसा कि स्वाभाविक है इतने परिश्रम से बनाया हुआ हमारे स्नेह का यह क़िला, जिसकी हम हर समय मरम्मत करते रहते हैं, हर हमले को रोकने की सामर्थ्य नहीं रखता। कभी कभी संकट की पैनी घड़ियाँ आ जाती हैं, जब ध्वंस सामने खड़ा दिखाई देता है, या जब मादक भावनाओं का तूफ़ान हमें झकझोर देता है, या जब विरह की ऐसी घड़ी आती है कि मिलन की आशा ही शेष नहीं रहती तब परिश्रम से बनाया हुआ भक्ति का यह क़िला बालू की भीत की तरह भरभरा कर गिर पड़ता है।

"When a beloved hand is laid in ours,
A bolt is shot back somewhere in the heart,
And a lost pulse of feeling stirs again,
The eye sinks inward and the heart lies plain,
And what we meen we say,
And what we would we know."

आश्चर्यजनक सुन्दरता में रंगी हुई हर्ष और आल्हाद की प्रशान्त घड़ियों पर निश्चित जुदाई की मनहूस परछाहीं घनी होती रहती है। फिर यकायक ज़िन्दगी का वह अभागा क्षण आता है। किस्मत जिन दो हृदयों को अनोखे ढङ्ग से मिलाकर प्रेम की मिठास में पाग देती है वे जुदा हो जाते हैं और ऐसे जुदा होते हैं कि फ़िर से मिलने की कोई सम्भावना नहीं रहती। तुम्हें याद है जब उस दिन सुबह हम लोग घूमने निकले थे? दूब पर ओस के मोती टँके हुये थे। सूरज माघ-पूस की शीत से काँप रहा था और दूर हिमालय के पार्श्व में गौराङ्गी नन्दा अपने हिम-श्वेत सौन्दर्य को मौन साधे निहार रही थी। शहर से बाहर लाल मुरमीली चोटियों को तै करके हम लोग एक पहाड़ी गाँव के पास पहुँचे जहाँ रास्ते फट जाते थे और नीचे खड में नीलम सा झलझलाता एक पहाड़ी चश्मा किलकारी मारता बह रहा था। तुम्हें याद है वहीं बांई तरफ़ जल के एक कुण्ड में कुछ पहाड़ी बच्चे ऐसे खेल रहे थे मानो जल-कमल खिले हों। उस कुण्ड में नीले आसमान की परछाहीं पड़कर सिहर उठती थी और पास सर उठाये बड़े बड़े शाल और बकुल वृक्ष बच्चों के साथ धूप-छांह खेल रहे थे। उस दिन तुम थीं, असीम सुख था और सुनहला दिन था।

दिन भर घूमने के बाद जब हमारी सैर समाप्त हुई तो क्या तुम्हें आश्चर्य नहीं हुआ? उस घने वन के बीच वह सुहावना कुंज यदि उस एक दिन के लिये केवल बिलकुल हमारा होता तो क्या तुम्हें और अधिक सुख न होता? भला इतने बड़े जीवन में एक दिन की क्या बिसात! फिर भी जो कुछ हमें मिला उसके लिये ईश्वर को हज़ार धन्यवाद। तुम्हें याद है जब हम लोग लौट रहे थे डूबता सूरज अपनी सुनहली किरणें चारों ओर बिखेर रहा था

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पगडंडी के किनारे गेंदे, गुलशब्बो और बनप्सा के फूल सर उठाये हुए कांस की आपबीती सुन रहे थे। नीचे खड में दूर तक फैला हुआ कंकरीला मैदान विरक्ति, निर्जनता और एकान्त की साकार तसवीर बना पड़ा था। खड के उतार में जहां तहां समतल भूमि पर हरी खेतियाँ लहलहा रही थीं और पश्चिमी क्षितिज जगह जगह गढ़ों के एकत्रित जल में केसर और गुलाल घोल रहा था। अन्धकार पेड़ों की फुरमुट से कानाफूसी कर रहा था और जब हम लौटकर वापस आये तो धरती ने अँधियाली चादर ओढ़ ली थी। वह सुनहला दिन राई राई समाप्त हो चुका था और उसके साथ साथ समाप्त हो चुका था मेरे हृदय का सारा अविश्वास और सन्देह।

उस दिन तुमने मेरे प्राणों में जो अमर तत्व फूँक दिया था वह तो कई जीवन के लिये पर्याप्त होगा। हमारे हृदय उस दिन अमूल्य सहानुभूति और प्रसन्नता से भरे हुये थे। हमने उस मानव आकांक्षा को प्राप्त कर लिया था जो मनुष्य को सांसारिक बन्धनों से निकालकर दैवी ज्ञान देती है। लौटते समय रास्ते भर हमने बहुत थोड़ी बातें कीं--

प्रेम का व्यवधान कैसे भङ्ग होता बोलकर ?

प्रेम की धारा दो हृदयों के दुकूलों के बीच से बहती है। जब हृदय एक होते हैं समझने के लिये शब्दों के माध्यम की आवश्यकता नहीं रह जाती। और सहसा हमारी जुदाई का समय आया तो तुमने भाग्य के सामने सहज समर्पण नहीं किया। तुमने उसके साथ गहरी लड़ाई लड़ी। सप्ताह में सात दिन होते हैं और पृथ्वी का निर्माण इन्हीं सातों दिनों में हुआ है; किन्तु इस निर्माण काल के बाद भी तुम अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहीं। आज असीम वियोग की घनी परछाहीं में वह एक दिन मेरे अन्धकार पूर्ण जीवन का सबसे प्रकाशवान दिन है। सन्दिग्धता मुझसे प्रश्न करती है—हमारी जुदाई के बाद दिन ठहरे हुये हैं या बीतते जा रहे हैं ? परिस्थितियों के अवरोध लाँघ कर क्या हम फिर उस दिन को वापस पहुँच सकते हैं ? एक बात पूछूँ प्रिय श्री ! क्या हमारे पुनर्मिलन के दिन भी तुम इतनी ही कटु और क्रूर रहोगी जितनी आज हो ? क्या उस दिन भी तुम प्रेम को धक्का देकर बाहर निकाल दोगी ? वेदना की जो टीस तुम्हारे हृदय में उठेगी क्या तुम उस दिन भी उसे दबाये रखोगी ? मैं समझता हूं प्रेम की इस प्रतिक्रिया के साथ तुमने भयङ्कर लड़ाई लड़ी। यह सही है तुमने अपने उद्वेग को दबाकर रखा किन्तु फिर भी तुम उस मानसिक संघर्ष की छाप को न दबा सकीं। तुम्हें खिन्न और क्लान्त देखकर मेरे मन को बड़ी चोट लगती थी। सोचा करता था—काश ! मैं किसी तरह तुम्हें वास्तविक सान्त्वना दे सकता !!

उसके बाद के दिनों की मेरे मन में बड़ी धुंधली स्मृति रह गई है। वह संक्रान्ति की अवस्था थी। क्षणिक मिलन और उसके बाद जुदाइयाँ। अपनी क्षणिक विदाइयों में हज़ार बहाने निकालकर तुम्हें पत्र लिखने की इच्छा होती थी। जब तुमसे फिर मिलता था यह सोचकर मिलता था कि सैकड़ों बातें तुमसे कहनी हैं किन्तु मिलने पर कह एक भी न पाता था। मन में घोर निराशा और निरुपायता भर जाती थी। एक तो समय कम मिलता था फिर घड़ी की सुई तुम्हारी जुदाई का क्षण इंगित करती रहती थी। उल्लास और व्यथा मन को डगमग किये रहतीं। मन की बात मन ही में रह जाती। फिर अनेक काले दिन काटकर तुम्हारे दर्शन पाता। मिलन की उत्कण्ठा और जुदाई का सदमा दोनों पर एक दूसरे की प्रतिक्रिया होती रहती। हृदय बोझिल बादलों की तरह बरसने को उतावला रहता पर आशंका की घड़ियाँ मुँह से एक शब्द न निकलने देतीं। भाग्य के विरुद्ध असफल विद्रोह की भावना मेरी सोचने की सारी शक्ति नष्ट कर देती। मन में रह रहकर उठता क्या न कर डालूँ। पर तुम्हारे प्रति मेरी श्रद्धा रोक देती।

फिर यकायक दिन बदले, मन बदला और मेरा भाग्य भी ढह गया। मन के कोने कोने में अँधेरा छा गया। आशायें धुन्ध हो गईं। तुम मुझसे सदा के लिये रुष्ट हो गईं और मेरे तुम्हारे बीच में एक समुन्दर आ गया। किन्तु मन यह विश्वास नहीं करता कि तुम्हारी सदय भावना कभी जाग्रत न होगी। रह रहकर वह मुझे ढाढ़स बँधाता है कि--

मौत का भी यक़ीन कर उनका भी एतबार कर
कोई तो आयगा ज़रूर दोनों का इन्तज़ार कर।

किन्तु यह अवहेलना की अवस्था अधिक देर तक नहीं रहती और यह आशंका प्रबल हो उठती है कि मैंने तुम्हें सदा के लिये खो दिया।

सोचता हूं भाग्य ने हमें किस तरह मिलाया था ! हमें कितने समीप लाकर खड़ा कर दिया था ! हम एक दूसरे से कितने अभिन्न हो गये थे ! हमने निसंकोच हृदय से अपने जीवन का एक मार्ग चुन लिया था। तुम मेरी सहगामिनी थीं और मैं तुम्हारा विश्वस्त साथी। और इसके बाद यकायक प्रतिकूल परिस्थितियों के धक्के ने हमें इस तरह विलग कर दिया मानों हम एक दूसरे के निकट कभी कुछ थे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नहीं। अब रह रहकर मन में एक कड़ुआ प्रश्न उठता है—"यह क्या हुआ और कैसे हुआ ? क्या जीवन में कभी हमारी यह दूरी व्यक्तिक्रम हो सकती है ? क्या भाग्य के व्यवधान को उलटने में हम समर्थ हो सकते हैं ?" काल और वस्तु की दूरी, सैकड़ों प्रलोभन तथा अनेकों दुश्मन आज हमारे तुम्हारे बीच में हैं। एक दूसरे पर हमारा प्रभाव घटता जा रहा है और स्मृति धुंधली पड़ती जा रही है। पहले जो हमें जोड़नेवाले प्रेम-सूत्र थे वही अब हथकड़ियों की तरह हो गये हैं। प्रिय श्री ! यह सब कैसे सम्भव हुआ ? न आश्वासन रह गया है और न भक्ति की शपथ का कोई मूल्य ! रह गया है केवल ज्ञान और सो भी खोजा हुआ नहीं बरबस पाया हुआ !

तुम स्वाधीन हो ! अपना दिया हुआ प्यार यदि तुम वापस लेती हो तो वह तुम्हारे अधिकार की बात है। तुम कहोगी—'रिक्की ! इसके लिये अनेकों उचित कारण हैं।" मैं उन सबको स्वीकार करता हूँ। मुझ पर चाहे जो बीते ईश्वर तुम्हें सुखी रखे। मेरी दृष्टि में समूची दुनिया के प्यार का वह मूल्य नहीं जो तुम्हारे प्यार का है। जो कुछ तुम मुझे दे सकती हो वह सारी दुनिया मुझे नहीं दे सकती। मैं जानता हूं याचना करने से तुम मुझे निराश न करोगी किन्तु मैं याचना से तुम्हारे प्यार को दूषित करने की कुचेष्टा न करूँगा।

## ग्यारह

प्रिय.....,

प्रतिबन्ध हटा सकना यदि सम्भव न हो तो जाने दो। मैंने तो अन्तिम फ़ैसला तुम्हारे हाथों में ही छोड़ दिया है। मेहरबानी करके तुम केवल अपनी कठिनाइयाँ सोचो, मेरा ख़याल न करो। यदि मेरा अधिकार होता तो क्या आज यह स्थिति होती ? तुम कहती हो मैं तुम्हें कोई पत्र न लिखूँ। अच्छा होता यदि मैं न लिखता किन्तु फिर भी मैं लिखूँगा और यदि तुम्हें लिख लूँगा तो ऐसा क्या हो जायगा और फिर शायद इसकी आवश्यकता ही न रह जाय। हमारे अपने हृदय के भीतर जो परस्पर विरोधी भाव काम करते रहते हैं उन्हें समझ सकना सहज नहीं। हम अपने हृदय की तह में एक दूसरे से काफ़ी अपरिचित होते हैं किन्तु फिर भी हम यही कहते रहते हैं कि हमारा एक दूसरे से घनिष्ट परिचय है। जब हम पत्र लिखते हैं और पत्र लिखना ज़बानी बात करने से कहीं अधिक सरल होता है तो और भी अधिक आश्चर्य होता है। दो या तीन पृष्ठ का पत्र जो सीधा हमारे हृदय से निकलता है और जो पुकार पुकारकर कहता है कि कोई मुझे समझे उस सीधे सादे पत्र के अन्दर हम कितनी ही अनबूझ पहेलियाँ खड़ी कर देते हैं।

एक ही इच्छा हमारी रहती है कि जिसे हम प्यार करते हैं वह हमें जान सके और समझ सके। इसके लिये हम बड़ी से बड़ी कुरबानी कर सकते हैं। सारे जीवन सूली पर टंगे रहने को तैयार हो सकते हैं। अपनी बड़ी से बड़ी आशा को ठुकरा सकते हैं। अपनी अन्यतम इच्छा को कुचल सकते हैं। जीवन के राज-द्वार पर ताला लगाकर ताली दरिया में फेंक सकते हैं। ज़िन्दगी जो कुछ भी है उसे हंसते हुये स्वीकार कर सकते हैं। यह एक इतनी बड़ी साधना है जिसकी कल्पना से ही दिल दहल उठता है। ईश्वर ही जान सकता है कि यह कितना कड़ुआ त्याग है और जिसके लिए यह त्याग किया जाय जब उसी को ग़लतफ़हमी हो तो सहनशीलता की सीमा को तोड़कर दुख बाहर निकल पड़ता है।

तुम्हारे आदेश स्वीकार करके यदि मैं तुम्हें कोई पत्र न लिखूँ तो मुझ पर जो बीत रही है उसका तुम अनुमान तक नहीं कर सकतीं। इसके उपरान्त यदि विपरीत परिस्थितियों में हमें एक दूसरे से मिलने का संयोग भी हो तो उस समय तुमसे बातें करना भी नामुनासिब होगा—और इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि मेरे लिये तुम्हारे भ्रम निवारण का रास्ता बिलकुल बन्द ! मैं अपनी सफ़ाई नहीं दे रहा और न कभी दूँगा। अनेकों बार मैंने तुम्हारे चरणों के पास बैठकर अपनी सचाई की शपथ खाई है। जो वस्तु बिना माँगे दी जाय वही उपहार है और सबमें अमूल्य उपहार प्रेम है। वह इसीलिये अमूल्य है चूंकि स्वेच्छा से दिया जाता है। न उसे ज़ंजीर पहनाई जा सकती है और न ताले में बन्द किया जा सकता है। न कोई यही कह सकता है कि—"यह प्यार मेरा है, सदा सदा के लिये मेरा है।" प्यार आता है तो जीवन ख़ुशी से जगमगा जाता है और प्यार जाता है तो उदासी का आलम छा जाता है। अपनी इस हानि पर प्रलाप करना वैसा ही है जैसा बादल की गरज पर घूँसा दिखाना। यदि मैंने प्रेम पाया था तो मैं अत्यन्त भाग्यशाली था और यदि मैंने उसे खो दिया है तो अपराध मेरा ही है। कम से कम मैं उसके मूल्य को तो पहचानता हूँ। मुझे उसका ज्ञान है। उन सुखमय घड़ियों की स्मृति को ईश्वर भी अब मेरे हृदय से नहीं मिटा सकता। कदाचित तुम मेरे जी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



तब जान पातीं। यदि तुम पास होतीं तो मुझे विश्वास है तुम यह अवश्य कहतीं—"रिक्की! कह डालो" और चूंकि तुम यहाँ नहीं हो इसलिये मौन ही उचित है। शायद मैं तुम्हारे दिल की बातें ठीक ठीक नहीं समझता। किन्तु जो कुछ समझता हूँ क्या वह सर्वथा भ्रमपूर्ण है? वेदना जब असह्य हो जाती है तो निस्तब्धता छा जाती है। मैं न कहूंगा, कुछ न कहूँगा। मुझे कुछ कहने का अधिकार भी तो नहीं है। फिर तुम्हींने तो कहा है कि मैं कुछ न कहूँ। यह दूसरी बात है कि तुम मन ही मन खूब जानती हो कि मैं क्या कहूंगा। तुम्हें याद है एक दिन शाम को हम लोग केमेल्स बैक का चक्कर लगा रहे थे। डूबते हुये सूरज की परछाईं से दरख्तों की छांव लम्बी और घनी हो रही थी। पक्षी अपने नीड़ों में अपने आत्मजों को दुलरा रहे थे। दिन भर का थका मांदा एक कपोत अपनी गर्भिणी प्रेयसी से कुछ रहस्य की बात कह रहा था। झिपकली और झींगुर कर्कट स्वर में सान्ध्य-प्रार्थना कर रहे थे। तुम टामस हार्डी के एक उपन्यास की पात्री टेस के अनुपम त्याग और प्रेम का विश्लेषण मुझे सुना रहीं थीं। मैंने देखा उसे समाप्त करके तुमने एक ठण्डी साँस भरकर मुझसे कहा—"सुँदरू! क्या मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम भी इतना ही अनुपम रहेगा?" तुम्हें याद है मैंने तुम्हें क्या उत्तर दिया था, और आज मैं उस उत्तर को कहीं अधिक दृढ़ता और विश्वास के साथ दोहरा सकता हूं। मैं जानता हूँ मेरे उस उत्तर को सुनने के लिये आज तुम्हारे पास अवकाश नहीं है और न है रुचि; फिर भी विश्वास करो मैं अपने जीवन के अन्तिम दिवस तक अपना वह उत्तर दोहराने के लिये धैर्य के साथ तुम्हारी अनुमति की प्रतीक्षा करता रहूँगा!

केवल मुझे इतना ही कहना है। मैंने तुम्हारे प्रत्येक पत्र का उत्तर दिया है। उन उत्तरों में तुम मेरे हृदय की जिज्ञासा का आभास पा सकती हो। हर बात का अन्त होता है। कष्ट का ही नहीं सुख का भी। यह मानव स्वभाव है कि अपने बीते हुये सौभाग्य को वह हसरत की निगाह से देखता है। सम्भव है तुम कहो पिछली यादगारें दुर्भाग्य की निशानी हैं। मुमकिन है यही बात हो, कम से कम मैं ऐसा नहीं समझता। तुमने मुझे मौन साधन का आदेश दिया है किन्तु वर्ड्सवर्थ के शब्दों में "मौन बहुत बड़ा व्यवधान है, और चूँकि मृत्यु का रूप भी मौन है इसलिये वह सबमें बड़ा व्यवधान है। किन्तु जीते जागते व्यक्ति का मौन मृत्यु से भी बड़ा व्यवधान है। मृत्यु के मौन में तो एक दया है, एक मधुरता है जब कि जीवित जागृत मौन में असहनीय कठोरता और क्रूरता है। प्रिय श्री! मौन, अटूट मौन हृदय की सारी भावनाओं को नष्ट कर देता है।

मुझे विश्वास है तुम्हारा पिछला पत्र तुम्हारा अन्तिम पत्र नहीं है; किन्तु इस पत्र का उत्तर न मिलने पर मुझे निश्चित रूप से मालूम हो जायगा कि तुम्हारा मौन प्रारम्भ हो गया और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि मैं उसे भङ्ग नहीं करूंगा। उसके पूर्व केवल मैं तुमसे यह प्रार्थना करूँगा कि इतनी कठोर सज़ा मुझे न दो। मेरा ऐसा ख़याल है कि इससे कहीं कम सज़ा में तुम्हारा आशय पूरा हो जायगा। क्या मेरा अपराध सचमुच इतना गुरुतर है कि तुम मेरे निकट अपने को जीवन्मृत बना दो? क्या इतनी बड़ी सज़ा सुनाना ज़रूरी है प्रिय श्री? कुछ तो मेरे लिये आशा की किरन बाक़ी रखो। मृत्यु से पहले इस जीवन में ही मृत्यु की सज़ा तो न दो। तुम कहोगी मैं तिनके के सहारे समुद्र पार करना चाहता हूं। यह न समझना कि मैं बड़ी बातें कर रहा हूं। जो वस्तु दुर्लभ और अप्राप्य है उसका वास्तविक मूल्य तो मैं अब आँक पाया हूं। अपनी हानि की अपरमितता का ज्ञान तो अब मुझे हुआ है।

मेरे तुम्हारे बीच में एक अलंघ्य दीवार है। मैं उसके इधर; तुम उधर। तुम दीवार से बहुत दूर थीं और मैं ज़रा निकट। अपनी निकटता के कारण मैं दीवार के उस पार की वस्तुएं देख पाता था। तुम दीवार से दूर थीं और इसलिये तुम्हें दीवार ही दीवार दिखाई देती थी। तुम मुझे देख न पाती थीं। मैं तुम्हारी कठिनाई समझ रहा था। मैंने सोचा मैं क्यों न तुम्हारे लिये सुलभ बनूँ। उत्साह और आवेग में मैंने तुम्हारे अधिक निकट आना चाहा। दीवार की टक्कर लगी और अब चोट से पड़ा कराह रहा हूँ। इस तरह टकराकर स्वभावतः हर एक को चोट लगेगी। किन्तु आकस्मिक प्रवृत्ति या चपलता के कारण मैंने ऐसा नहीं किया। वह तो तुम्हारे प्रति मेरा बन्धन-मुक्ति का प्रदर्शन था। किन्तु परिणाम उसका विपरीत ही रहा—मुझ पर तुम्हारा भरोसा नहीं रहा। तुमने दोनों के लाभ के लिये सोचा कि एक और अधिक ऊँची और दृढ़ दीवार बना दी जाय। मैं कितना गिड़गिड़ाया पर तुमने कहा—"अधीर न होओ, हम लोग दीवार के ऊपर से बात कर लिया करेंगे।" किन्तु क्या मेरी अधीरता न्याय्य नहीं निकली? यह सही है तुमने अपनी योजना के पालन करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है और जब मैं तुम्हारी कठोरता की ओर संकेत करता हूँ तो तुम मौन-उत्तर देती हो—



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



"कठोरता का नाम जीवन है"। तुम कहती हो इतनी असहनीय पीड़ा जिस बात में हो उसमें कुछ न कुछ लाभ की बात अवश्य होनी चाहिये।

विधि का भी कैसा विधान है—कठिन से कठिन दुख सहकर भी जिस व्यक्ति को हम सुख पहुंचाना चाहें अपनी अवचेतना में हम उसीके लिये दुख का सामान जुटा देते हैं। तुम्हारा थोड़ा सा दुख बँटा सकूँ इससे बड़ी मेरी कोई चाहना नहीं और तुम्हें थोड़ा सा सुख पहुंचा सकूँ इससे अधिक मेरी कोई आकांक्षा नहीं। तुमने कई बार मुझसे कहा है कि मेरे बराबर निपट स्वार्थी व्यक्ति तुमने दूसरा नहीं देखा। सम्भव है स्वार्थ मेरे स्वभाव का प्रमुख अङ्ग हो किन्तु मेरी इस बात पर विश्वास करो कि—तुम्हारी इच्छा में ही मुझे अपेक्षाकृत सुख है। तुम्हारे मन में कोई भ्रम न रह जाय इससे बड़ी चिन्ता मुझे कोई नहीं। समर्पण करना मेरा काम है स्वीकार करना तुम्हारा। यदि मैं अपने अस्तित्व को मिटाकर भी तुम्हें सुख पहुँचा सकूँ तो इसमें अपना सौभाग्य समझूंगा। यदि मेरे मौन-साधन से तुम्हारे जीवन का कंकरीला रास्ता कुछ डगों के लिये भी सुगम हो जाय तो मैं अखण्ड मौन साधूंगा। तुमसे भेंट करना तो दूर कभी तुम्हारी दृष्टि में भी नहीं पड़ूंगा। तुम उचित न समझोगी तो एक शब्द भी मैं तुम्हें नहीं लिखूंगा। मैं समझता हूं इतना विश्वास तो मेरा अवश्य करोगी। प्रिय श्री, मुझ पर चाहे जो अभियोग लगाओ विश्वासघात का अभियोग न लगाना। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं तुमसे अन्तिम विदा ले रहा हूँ। अन्तिम नमस्कार मैं तुमसे न कहूँगा, कभी न कहूँगा, जीवन की अन्तिम घड़ी में भी नहीं; लेकिन तुम्हारे दृष्टि-पथ पर भी कभी न पड़ूंगा। सम्भव है अपने अखण्ड मौन में ही किसी बासन्ती दिन तुम टीस के साथ बीते हुये दिनों की याद करो। इस समय तो तुम यही कह रही हो कि—"ज़िन्दगी भर मुझे इसका रंज न होगा" रंज न होगा—किस बात का? जो बीत चुकी है, या जो बीत सकती थी, या जो बीतेगी? और इस प्रश्न के उत्तर पर ही तो सारी बात निर्भर करती है। तुम लिखती हो—मैं कभी कभी·····" और वाक्य को अधूरा ही छोड़ देती हो। 'कभी कभी' क्या? इस अधूरे वाक्य को तरह तरह से पूरा किया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि तुम्हें "कभी कभी आश्चर्य होता है कि तुम्हारे प्रेम के एवज़ में जो कुछ मैं दे सकता हूं उसका भी क्या कोई मूल्य है।" बोलो, क्या तुम्हारे अधूरे वाक्य का यही उत्तरार्ध नहीं है?

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मेरा सर्वस्व भी तुम्हारे प्यार का पासङ्ग नहीं। प्रेम की प्यास गागरों पानी से भी नहीं बुझती। अपना सब कुछ देकर भी प्रेम को खरीदा नहीं जा सकता। दुनिया की बड़ी से बड़ी निधि भी प्रेम के सामने तुच्छ है। सन्त कबीर ने कहा है—

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जिहि रुचे, सीस देय लै जाय॥

और यदि इस उक्ति में सत्य है और सत्य अवश्य होना चाहिये, क्योंकि यह एक महान सन्त की वाणी है, तो इन दो पंक्तियों में प्रेम का सार भरा हुआ है। हम सबको इससे सीख मिल सकती है।

बस मुझे और कुछ नहीं कहना। मेरी कथा बरबस मेरे मुँह से निकल गई। सम्भव है इससे तुम्हें कष्ट पहुंचे। तुम्हीं बोलो मैं कैसे उसका शमन करूँ? क्या देकर तुम्हें तुष्ट करूँ? जो कुछ मेरे पास था वह पहले से ही तुम्हारा है। यदि मेरे वश में होता तो मैं तुम्हें इतना सुख पहुंचाता कि तुम दुख शब्द का अर्थ ही भूल जातीं। जिन्हें प्यार करते हैं उन्हींको सुख पहुँचाने में हम कितने असमर्थ हैं? जिस व्यक्ति को हम प्यार करते हैं, जिसकी भलाई में हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा सकते हैं, जिसकी कल्याण-कामना में हम अपने को मिटा सकते हैं, जिसकी रग रग रेशे-रेशे के साथ हमारा मेल है, जिसके दिल के साथ हमारे दिल में धड़कन होती है, यह कितने आश्चर्य की बात है कि इस तरह के अभिन्न प्रेमियों के बीच परस्पर विपरीत स्वभाव एक ऐसी खाई खोद देता है, लोकाचार एक ऐसी विभाजक रेखा खींच देता है कि अभिन्नता भिन्नता में और एकता अनैक्यता में परिवर्तित हो जाती है। ऐसा मालूम होता है समस्त परिस्थिति इन्हीं दो पंक्तियों के अन्दर वर्णित है—

Some little talk awhile of Me and Thee
There was and then no more of thee and Me.

यदि मुझमें साहस होता तो मैं तुमसे इन पंक्तियों का वास्तविक तात्पर्य पूछता। सम्भव है तुममें मुझसे अधिक साहस हो और तुम यह लिखो कि—"मैं यह कभी न बताऊँगी।" काश मैं बाइबिल में वर्णित साल का यह वाक्य दुहरा सकता—"सारी दुनिया छूट जाय पर तुम न छूटो" और बावजूद इस प्रबल आकांक्षा के मैं जानता हूँ कि तुम हमेशा हमेशा के लिये मुझसे छूट चुकी हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# चीनी अदब (साहित्य) पर एक सरसरी नज़र

डाक्टर लतीफ़ दफ़्तरी एम० ए०, डी० फिल० (आक्सन)

पिछले १५ बरस से एशियाई मुल्कों के लोग चीन की सियासी (राजनैतिक) उथल-पुथल, उसके घरेलू झगड़ों और जापान के साथ उसकी ज़िन्दगी और मौत की लड़ाई को हमदर्दी के साथ देखते रहे हैं। चीनी आज़ादी की जङ्ग के साथ हम पूरबवालों ने हमेशा से एक अपनापा महसूस किया है। सन् १८५७ में चीन की टीएटज़िन की सुलह, हिन्दुस्तान की इनक़लाबी बग़ावत और ईरान में नेहेवद की साज़िशें साम्राज्यवादी ज़ंजीर की मुख़्तलिफ़ कड़ियाँ थीं जिससे समूचे एशिया को ग़ुलामी के बन्धनों में बाँध लिया गया। इस बन्धन को तोड़ने के लिये हिन्दुस्तान, चीन और ईरान को ज़रा गहराई में जाकर एक दूसरे को समझने की ज़रूरत है। तीनों ही मुल्क हज़ारों बरस पुरानी तहज़ीब के दावेदार हैं। तीनों ने ही हज़ारों बरस तक एक दूसरे के साथ कल्चरल लेन-देन किया है। मैंने 'विश्ववाणी' के पिछले नम्बरों में हिन्दुस्तान की तहज़ीब पर अपने लेखों में एक सरसरी निगाह डालने की कोशिश की थी। आज इस लेख में मैं चीनी कल्चर, चीनी अदब (साहित्य), चीनी जनता और चीनी इल्म के भण्डार पर एक वसीअ (विस्तृत) नज़र डालना चाहूंगा। एक एशियाई और ईरानी होने के नाते मेरा यह एतक़ाद (विश्वास) है कि हिन्दुस्तान, चीन और ईरान की एकता एशियाई कल्चरों की वह त्रिवेनी है कि जिसकी धारा में न सिर्फ़ एशिया को बल्कि झुलसी हुई दुनिया को राहत मिलेगी। आज दुनिया की कल्चरल (सांस्कृतिक) बागडोर पच्छिम के ख़ुदग़रज़ साम्राजी देशों के हाथों में चली गई है पर हमें यह न भूलना चाहिये कि हज़ारों बरस तक हिन्दुस्तान, चीन और ईरान दुनिया के अरबों खरबों आदमियों को रास्ता दिखाते रहे हैं, कि जो रास्ता एटम बम का नहीं बल्कि आत्मा को शान्ति देनेवाला रूहानी रास्ता था। चीन के साथ आज हमें टूटी हुई कल्चरल कड़ी को फिर से जोड़ना है और उसकी तहज़ीब की वसअतआमेज़ शक्ल (विराट रूप) के दर्शन करने हैं।

## चीनी बोली और लिखावट

एशियाई ज़बानों में चीनी उस गिरोह की ज़बान है कि जिसका हर हरूफ़ एक अलग माने रखता है और एक ही झटके में बोला जाता है। चीनी ज़बान दो साफ़ अलग अलग हिस्सों में बँटी हुई है। बोलने की अलग, लिखने की अलग। चीनी बोली कोई अपने आप अलग पूरी बोली नहीं है बल्कि कई सूबों की बोलियों की मिलावट है, हालाकि इन सभी बोलियों का निकास एक ही सोते से हुआ है।

दक्खिन चीन में क्वानतुङ्ग के सूबे में 'कैएटनी' बोली बोली जाती है। उसके पड़ोसी सूबे में लोग 'हाका' बोली बोलते हैं। जैसे जैसे हम उत्तर की तरफ़ बढ़ते हैं हमें 'अमाय', 'फ़ुचाओ' और 'निङ्गपो' बोलियाँ बोलनेवाले लोग मिलते हैं। और ज़्यादा उत्तर में ८० फ़ी सदी चीनी 'मण्डारिन' ज़बान बोलते हैं। मण्डारिन की दो ख़ासियतें हैं—(१) यह कि १५ वीं सदी से यह चीनी राजधानी की ज़बान रही है और (२) सरकारी ख़तो किताबत में यह ज़बान इस्तेमाल की जाती रही है।

अपने पुरानेपन के लिहाज़ से कैएटनी ज़बान बहुत अहम है। लेकिन सरकारी ज़बान रहने की वजह से मण्डारिन ने बेहद तरक़्क़ी कर ली है। यह बात ग़ौर करने लायक़ है कि कैएटनी ज़बान उस बहुत शुरू की बाबा आदम के ज़माने की चीनी ज़बान से निकली है कि जिसने मौजूदा ज़माने की बोलचाल की और लिखी जानेवाली चीनी को जन्म दिया। चीनी ज़बान में पहले हर ख़याल को ज़ाहिर करने के लिये अलग अलग हरूफ़ थे। कन्फ़्यूसिअस के ज़माने में यह कोशिश की गई कि लिखावट (लिपि) की एक छोटे दायरे में हदबन्दी की जाय। उसी ज़माने में किताबी ज़बान के बीज बोये गये। लेकिन इससे असल मक़सद पूरा नहीं हुआ। इस कोशिश से एक ऐसी भारी भरकम लिखावट निकली कि जिसमें रचे गये धर्म ग्रन्थ पोथे के पोथे बन गये। मगर फिर भी चीनी अदब (साहित्य) की तरक़्क़ी में कन्फ़्यूसिअस के ज़माने की यह कोशिश बड़े काम की साबित हुई।

लिखावट की इस तरक़्क़ी के बाद और चीन में छपाई के लिये लकड़ी के छापों की ईजाद के बाद अदब (साहित्य) बामुहाविरा हो गया, उसमें एक फैलाव और चुस्ती आ गई मगर उसके साथ ही साथ धर्म ग्रन्थों की तरफ़ लोगों की इज़्ज़त (श्रद्धा) इस क़दर बढ़ी कि साहित्य और मामूली बोलचाल की ज़बान में कोई वास्ता ही नहीं रह गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## अलिफ़-बे (वर्ण माला)

चीनी लिखावट बावजूद अपने नपे तुले निशानों और लगातार सुधार के एक तसवीरी लिखावट ही कही जा सकती है। किसी हरूफ़ के ठीक मायने तभी बताये जा सकते हैं जब उसे बाद के हरूफ़ के साथ जोड़कर पढ़ा जाय। विदेशियों को यह एक बड़ी दिक़्क़त की बात मालूम होती है कि बहुत से हरूफ़ों की बिलकुल यकसाँ आवाज़ें हैं पर उनके मतलब अलहदा हैं। इस तरह के लफ़्ज़ों की तादाद पचास हज़ार है और तलफ़्फ़ुज़ (उच्चारण) में ही उनके मतलब में फ़रक़ आता है। मोटे तौर पर चीनी हरूफ़ों को हम छै हिस्सों में बांट सकते हैं—( १ ) ख़यालों को ज़ाहिर करने वाले, (२) आवाज़ों को ज़ाहिर करने वाले, ( ३ ) जिनसे ख़ुद मतलब ज़ाहिर हो, ( ४ ) तसवीरों वाले हरूफ़, (५) ऐसे हरूफ़ जो उसी धुनिधारा के दूसरे लफ़्ज़ों से अलग हों।

क़रीब २५ बरस पहले इन हज़ारों चीनी हरूफ़ों के जंगल को हटाकर उनकी जगह धुनियों के हिसाब की नपी तुली वर्ण माला जारी करने की ज़ोरदार कोशिश शुरू हुई, मगर वह इस वजह से कामयाब न हो सकी क्योंकि चीनी लफ़्ज़ों की आवाज़ की बिना पर जो हरूफ़ बनाये जाते उनकी तादाद बजाय कम होने के और भी बेशुमार हो जाती। चीन के फैले हुये हर हिस्से के निशान इन हरूफ़ों में शामिल हैं और जिनकी वजह से उन हिस्सों में आपसी एका है। यही वजह है कि जापानियों ने भी चीनी लिखावट छोड़कर रोमन लिखावट को नहीं अपनाया।

## चीनी अदब ( साहित्य )

और दूसरे पूरबी अदब ( साहित्य ) की तरह चीन के अपने साहित्य की भी कोई तारीख ( इतिहास ) नहीं है। लेकिन अदबी तारीख़ और तनक़ीद ( आलोचना ) को छोड़कर चीनी साहित्य ने हर जानिब ( दिशा ) तरक्की की है। चीनी साहित्य को हम छै हिस्सों में बांट सकते हैं। मसलन शायरी ( कविता ) जिसमें रिव्यू ( समालोचना ) फ़लसफ़ा (दर्शन) और मज़हबी चीज़ें शामिल हैं, इतिहास जिसमें हर तरह का इतिहास सरकारी और गैर सरकारी, सवाने उमरी ( आत्म कथा ) और भूगोल शामिल हैं, आर्ट (कला) और साइन्स ( विज्ञान ) तथा ज़बान का इल्म ( भाषा शास्त्र ) जिसमें इनसाइक्लोपीडिया ( विश्वकोष ) और लुग़त ( शब्द संग्रह ) आदि शामिल हैं। अब हमें इस पर एक सरसरी निगाह डालकर यह देखना है कि चीनी आलिम और साहित्यिकों ने इस मैदान में किस दर्जे तरक्की की।

## शायरी (कविता)

दूसरी पुरानी ज़बानों की तरह चीनी साहित्य में भी गीत और गानों का ख़ज़ाना भरा पड़ा है। यह एक बड़ी अजीबो ग़रीब बात है कि चीनी तहज़ीब हज़ारों बरस पुरानी होने पर भी चीनी ज़बान में कोई गीतों का पोथा (महाकाव्य) नहीं हैं। फिर भी छोटे छोटे गीतों के अलावा लम्बी लम्बी नज़्में (कवितायें) भी, जिन्हें हम मसनवी ( खण्ड काव्य ) कह सकते हैं चीनी ज़बानमें मिलती हैं। क़ुदरती नज़ारों की तसवीर खींचनेवाली बहुत सी नज़्में चीनी काव्य में मिलती हैं जिनमें मुसकान और आंसू दोनों की छवि दिखाई देती है। चीनी अदब की यह एक ख़ास बात है कि सेक्स से ताल्लुक रखनेवाली शायरी में भी उसमें कहीं भद्दापन देखने तक को न मिलेगा। एक दूसरी ख़ास बात यह है कि मज़हबी शायरी चीनी ज़बान में बिलकुल नहीं है। बेतुकी शायरी ( अतुकान्त कविता ) भी चीनी ज़बान में नहीं मिलती। छन्दों के क़ायदों को तोड़कर जो शायरी लिखी जाती थी वह ठीक नहीं समझी जाती थी।

जिस ज़माने में शायरी ने जन्म लिया और तरक्की करके बालिग़ ( प्रौढ़ ) हुई वह ज़माना सन् १८०० ई० पू० से लेकर ६०० ई० पू० तक का है। छठवीं और पाँचवीं सदी के क़रीब कनफ्यूसिअस ने ( ५५१ ई० पू०—४७९ ई० पू० ) अपने ज़माने तक के क़रीब ३००० गीत इकट्ठे किये जिन्हें शिह्-चिङ कहा जाता था और उनमें से छाँटकर ३११ गीतों का एक सुन्दर मज़मुआ ( संग्रह ) तय्यार किया। लेकिन शायरी की असली तरक़्क़ी आठवीं सदी ईसवी से शुरू हुई। इस ज़माने के दो सबसे मशहूर शायर लि-ताइ-पो ( ७०५ ई०—७६२ ई० ) और तु-फु ( ७१२ ई०-७७० ई० ) समझे जाते हैं। लि-ताइ-पो को लोग उसकी बहुतसी आला शायरी की वजह से और उसके राज से निकाले जाने के सबब से 'जलावतन फ़रिश्ता' ( निर्वासित स्वर्गदूत ) कहते थे। इन दोनों शायरों के उतरकर पो-चु-इ ( ७७२-८४९ ई० ) समझा जाता है सरकारी हुकुम से इसकी बहुत सी नज़्में पत्थरों ( शिला लेखों ) पर उतारी गईं।

सुङ्ग हुकूमत में राजाओं का बाढ़ावा पाकर शायरी ने बहुत ज़्यादा तरक़्क़ी की। यह ज़माना ९६० ईसवी से शुरू होकर क़रीब ३०० बरस रहा। यह सही है कि इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की शायरी हर रंग और हर ढङ्ग की है मगर फिर भी इस वक्त शायरी के जो कड़े क़ायदे क़ानून बन गये थे उनकी वजह से उसमें जिद्दत पसन्दी ( मौलिकता ) की कमी दिखाई देती है।

क़द्रदानों के लिहाज़ से सुङ्ग-तुङ्ग-पो सबमें ज़्यादा पसन्दीदा ( लोकप्रिय ) चीनी कवि हुआ है। वह जितना चमकता हुआ कवि था उतना ही दिल फ़रेब ( आकर्षक ) मज़मून निगार ( निबन्ध लेखक ) था। मंगोल और माञ्चू बादशाहों के ज़माने से इनक़लाबी दौर के पहले तक कोई ख़ास ख़ूबी वाले ( प्रतिभा सम्पन्न ) शायर नहीं हुये हालाकि माञ्चू बादशाहों में क्याङ्ग-हि और चिएन-लुङ्ग औसत दरजे के शायर थे। हाँ, बेशक इस ज़माने में शायरी काफ़ी मिक़दार में लिखी गई।

## अफ़साने ( उपन्यास )

शाइस्तगी चीनी साहित्य की ख़ासियत है मगर जहाँ तक अफ़सानों ( उपन्यासों ) का ताल्लुक़ है उनमें इस गुण की बिलकुल कमी है। अफ़सानों में घरेलू ज़िन्दगी का सच्चा ख़ाका दर्ज होता है जिनमें नफ़रत और नफ़सी मुहब्बत ( वासनायें ) अपनी नङ्गी शक्ल में दर्ज (चित्रित) मिलती हैं। बावजूद चीनी अदब की क़दामत (प्राचीनता) के उसमें अफ़सानों ( उपन्यासों ) का लिखा जाना तेरहवीं सदी से शुरू होता है। १७ वीं सदी में अफ़साना नवीसी अपनी चोटी पर पहुंची जब 'हुङ लोअ मेङ' और 'लिआओ चल' जैसे मशहूर अफ़साने लिखे गये। इनमें से पहले उपन्यास के लिखनेवाले का पता नहीं चलता मगर वह कला के लिहाज से अच्छा लिखा गया है। प्रेम और षड्यन्त्र, दौलत और ग़ुरबत, सादगी और कमीनेपन आदि मुख़्तलिफ़ कैफ़ियतों की इतनी ख़ूबसूरती के साथ कहानी में झलक दिखाई गई है कि पढ़कर लेखक की क़लम चूमने को तबियत होती है। उपन्यास में क़रीब ४०० पात्र हैं जिनके चरित्र को बड़ी ख़ूबसूरती के साथ पेश किया गया है। उपन्यास में जगह जगह सतही रंगइयत (ग्रामीणता) ज़रूर दिखाई देती है पर आजकल के उपन्यासों में जो एक जानलेवा सुझाव ( घातक व्यंजना ) होता है वह उनमें न मिलेगा। 'लिआओ चल' का लेखक पु सुन लिङ है जिसने उसे सन् १६७९ ई० में लिखा। साहित्यिक लोग इसे साहित्यिक स्टाइल के लिये एक अक्लली चीज़ ( विचार कृति ) समझते हैं। इसमें देहाती पात्रों की लौकिक ज़िन्दगी का सुन्दर और सही (वास्तविक) ख़ाका है।

## नाटक

चीन में उपन्यासों के साथ साथ ही नाटकों का लिखा जाना भी शुरू हुआ। नाटकों का दौर मङ्गोलों का वक्त ( १२६०–१३६८ ई० ) समझा जाता है हालाकि मामूली रूप में नाटक पुराने अदब ( प्राचीन साहित्य ) में भी मिलते हैं। एक बात यह कही जाती है कि चीनी साहित्य में मङ्गोल बादशाहों ने नाटकों का रिवाज डाला और इसलिये चीनी नाटकों की मध्य एशियाई बुनियाद है। लेकिन इस वक्त चीनी जनता नाटकों को बेहद पसन्द करती है। शायद दुनिया में चीनी जनता के बराबर दूसरी जनता नाटकों को इतना पसन्द नहीं करती। मङ्गोलों के ज़माने के लिखे हुये क़रीब १०० नाटकों का एक मज़मुआ सन् १६१५ ई० में शाया हुआ था। एक दूसरा बड़ा ( वृहत ) संग्रह सन् १८४५ में निकला जिसमें नाटकों को तरतीबवार ( वर्गीकरण ) करके उन्हें शाए किया गया।

## तारीख़ (इतिहास)

क़दीम ( प्राचीन ) ज़माने के लिखे हुये चीनी इतिहासों में सबमें ख़ास कन्फ्यूसिअस का लिखा हुआ इतिहास है। वह पौराणिक राजा याओ ( २३५७ ई० पू०—२२०५ ई० पू० ) से शुरू होता है। यह बात क़ाबिले ग़ौर है कि उस वक्त भी चीन में लोग सिर्फ़ एक अल्लाह ( एकेश्वरवाद ) को मानते थे। याओ के आठ बरस बाद इमारत बनाने वाला राजा यु हुआ जिसने ज़बर्दस्त बाढ़ आने के कारण राज भर में हज़ारों मील के दायरे में जो पानी भर गया था उसे बड़ी तरतीब से बाहर निकाला। पच्छिमी लेखक इस क़िस्से को बाइबिल के Deluge ( प्रलय ) की कहानी से मिलाते हैं।

## सवाने उमरी ( जीवनी )

दूसरी ज़बानों से मिलती जुलती जीवनियाँ चीनी में भी लिखी गई हैं। सरकारी और ग़ैर सरकारी लोगों ने जीवनियों पर बड़े बड़े पोथे लिखे हैं। चीनी जीवनियों में पैदायश की तारीख़ और सन् का अक्सर ज़िक्र नहीं होता। मौत की तारीख़ से पैदायश का वक्त निकालना पड़ता है। चीनी जीवनियों की ख़ासियत यह है कि उसमें अपने बुज़ुर्गों और सरकारी ज़िन्दगी का मुफ़स्सिल बयान होता है।

## जुगराफ़िया ( भूगोल )

जुगराफ़िया पर चीनी में बहुत सी किताबें हैं लेकिन बाहरी मुल्कों का बयान बहुत कम पाया जाता है। १६ वीं



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सदी में पहली बार जुगराफ़िया पर चीनी में ऐसी किताब लिखी गई जिसमें दुनिया के मुल्कों की सरहदों का बयान है। सन् १७४५ में भूगोल पर एक बहुत बड़ी किताब लिखी गई जिसमें फैलाव ( विस्तार ) के साथ दुनिया का बयान मिलता है। इसके बाद सन् १७९४ में एक दूसरी किताब लिखी गई जिसमें मौसम, समुद्री रास्ते, आबोहवा वग़ैरह का ज़िक्र है।

## यात्रा वृत्तान्त

मुल्की हैसियत से चीनी हमेशा से यात्रा के शौकीन रहे हैं। इस क़ौमी ख़ाहिश को सबमें ज्यादा बढ़ावा उस वक्त मिला जब कुछ बौद्ध भिक्खुओं के मन में अपना मज़हबी वतन देखने की उमङ्ग उठी। इस उमङ्ग को पूरा करने की ग़रज़ से सन् ३९९ ई० में फ़ाहियान गोबी के रेगिस्तान को पार करता, मध्य एशिया के सुनसान बियाबान से गुज़रता, हिन्दुकुश पहाड़ को लाँघता हुआ हिन्दुस्तान के ख़ास ख़ास शहरों में ठहरता, एक दो बरस लङ्का में रुककर चीन के लिये रवाना हुआ और बहुत सी किताबें, तसवीरें और मूर्तियाँ लिये हुये सन् ४१४ ई० में जहाज़ी रास्ते से चीन वापस पहुँचा।

हिन्दुस्तानियों के नुक़्ते नज़र से हुएनत्साङ्ग की यात्रा कहीं ज़्यादा पुरअसर थी। वह चीन से सन ६२९ ई० में रवाना हुआ और १५ बरस के बाद सन ६४५ ई० में चीन वापस पहुँचा। अपने साथ वह यहाँ से ७०० बौद्ध ग्रन्थ, मूर्तियाँ, तसवीरें और यादगारें ले गया। वापस पहुँचकर वह उन तमाम बौद्ध ग्रन्थों का चीनी में तर्जुमा करने में लग गया और अपनी दिलचस्प यात्रा को उसने 'पच्छिमी मुल्कों का बयान' के नाम से शाये ( प्रकाशित ) किया।

## राजनैतिक अर्थशास्त्र

सन् ७०० ई० पू० में चि राज्य के वज़ीरे आज़म कुआन चुङ्ग का ध्यान देश के इक़्तसादी (आर्थिक) सवालों की तरफ़ गया। उसने राज के २१ हिस्से किये जिनमें १५ हिस्से सरकारी अफ़सरों और किसानों के हवाले करने की बात थी और छै हिस्से व्यापारियों और काम धन्धे वालों के। उसकी इस अर्थनीति की पुख़्तगी इस बात में थी कि एक ख़ालिस खेतिहर मुल्क के सामने हमेशा ग़रीबी का मसला ( समस्या ) रहता है जबकि एक कारख़ानेदार मुल्क को सिर्फ़ लड़ाई के वक्त में ही ग़ल्ले की कमी हो सकती है। फिर भी वह इस बात के ख़िलाफ़ था कि खेतिहर मुल्कों में बाहर से बने माल के आने पर किसी क़िस्म की बन्दिश लगाई जाय। उसकी इस दरियादिली की वजह यह थी कि उसे अपने देश के बने माल की उम्दगी पर पूरा यक़ीन था।

चौथी सदी ईसा पूर्व के आख़ीर में मेन्सिअस नामक एक मशहूर चीनी फ़िलासफ़र हुआ है। उसने हुकूमी तिजारत पर टैक्स लगाने की सलाह दी। लेकिन इससे उसकी मुराद कुछ राज की आमदनी बढ़ाना नहीं था बल्कि लोगों की काहिली हटाकर उनकी नैतिक और आर्थिक हालत को सुधारना था।

पुराने ज़माने के चीनी दार्शनिकों में लाओत्से का नाम सबसे पहले आता है। वह ग़ालिबन छठवीं सदी ईसा पूर्व में हुआ है। उसकी कहावतों और उपदेशों का एक बड़ा संग्रह कर दिया गया है मगर यह कहा जाता है और ग़ालिबन सही कहा जाता है कि उसमें यहाँ वहाँ काफ़ी चीज़ें बाद में जोड़ दी गईं। अमल ( कर्म ) उसके फ़लसफ़े की बुनियाद थी और वह इस बात का भी प्रचार करता था कि अगर कोई तुम्हारे साथ बुराई करे तो तुम उसका जवाब भलाई से दो। मेन्सिअस के बाद जो अनगिनत चीनी दार्शनिक हुये उनमें कन्फ़्यूसिअस ( कुङ-फू त्ज़े ) का नाम सबसे ख़ास है। उसका लिखा हुआ 'लु राज्य का इतिहास' ही उसे इतिहासकार की हैसियत से अमर बना देने के लिये काफ़ी था। लेकिन कन्फ़्यूसिअस इतिहासकार के मुक़ाबले में एक धर्मोपदेशक की हैसियत से ज़्यादा मशहूर है। अपने शिष्यों को दिये हुए उसके सुन्दर उपदेश और उसकी निजी ज़िन्दगी के वाक़यात कन्फ़्यूसिअस के धर्म की चार किताबों में से एक में दर्ज हैं। कन्फ़्यूसिअस के उसूलों के मुताबिक़ हर इनसान बुनियादी तौर पर अच्छा होता है और उसके चारों तरफ़ की हालत उसमें बुराई पैदा कर देती है। अपने उपदेशों के मुताबिक़ वह विश्वासी के मुक़ाबले एक नास्तिक ज़्यादा लगता है। उसका उपदेश था इस दुनिया के या बहिश्त के लालच में नेक चलन न बनो बल्कि इसलिये अच्छी चालचलन रखो कि वह ख़ुद अपने आप में एक इनाम है। वह कहता था कि माँ-बाप की ख़िदमत और पड़ोसी के दुःखों को बँटाना इनसान की सबसे बड़े ख़ूबी है।

## तिब (वैद्यक)

चीनी साहित्य में वैद्यकशास्त्र के ऊपर बहुत सी किताबें हैं। इन तमाम किताबों का मज़मुआ ( संग्रह )

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



'सुन पेन' के नाम से सन् २६९८—२५९८ ई० पू० के बीच में किया गया। चीनी में नब्ज़ बाज़ी ( नाड़ी परीक्षा ), व सफ़रा, सौदा, बलग़म ( वात, पित्त, कफ़ ) आदि गुणों, मुख़्तलिफ़ तरह के बुख़ारों ( ज्वरों ) और दिल की हरकत (हृदयगति) पर बहुत सी पुस्तकें हैं। चीनी आयुर्वेद शास्त्र 'मेटीरिया मेडिका' इतना पुराना है कि लोग उसे तारीख़ से भी पुराना ( प्राग् ऐतिहासिक काल का ) मानते हैं। २६ वर्षों की लगातार अनथक मेहनत के बाद उसका मौजूदा एडीशन सन् १५७८ ई० में 'पेन-त्साओ' के नाम से प्रकाशित हुआ। यह एक क़ाबिले ग़ौर बात है कि चीनी पेन-त्साओ में असल (मौलिक) दवाएं ३६५ हैं और इनमें एक एक दवा साल के ३६५ दिनों में से एक एक दिन के साथ मन्सूब (सम्बन्धित) है। इनमें १२० विषादि ( संखिया, कुचला आदि ज़हरीली दवाएं ) हैं, १२० स्वर्णादि (सोना, चाँदी, तांबा, मोती, मूंगा आदि की भस्म) और १२५ काष्टादि (जड़ी बूटियां) हैं।

## खेती

हालाकि राजनैतिक अर्थ शास्त्र के उसूलों पर चीन में हज़रत ईसा की पैदायश से सदियों पहले चर्चा होती थी पर खेती के ऊपर चीनी साहित्य में कोई मुस्तनद ( प्रामाणिक ) किताब १२०० ई० से पहले नहीं निकली। सन् १२०० ई० में चेन फु ने पहली बार खेती, जानवरों का पालन और रेशम के कीड़ों के ऊपर एक बड़ी सी किताब लिखी। पर खेती पर वैज्ञानिक और स्टैन्डर्ड किताब भिक्खु-सम्राट हुकु आङ चि ( १५६२—१६३४ ) ने लिखवाई। इस पुस्तक का नाम नुङ-चेङ-चुआन-शु है और यह छै हिस्सों में बंटी हुई है।

## चित्रकला

बहुत शुरू ज़माने से ही चीनी चित्रकला के नमूने मिलते हैं। ख़ुश ख़ती ( शोभनलेखन ) की भी चित्रकला के साथ ही साथ तरक्की हुई। चित्रकला पर जो किताबें हैं उनमें ख़ुशख़त पर भी अध्याय हैं। सन् १११९ और ११२६ ई० के बीच चीनी सम्राट ने चित्रकला के ऊपर एक 'हुआन हो हुआ पु' नामक ग्रन्थ लिखवाया। इसके मुसन्निफ़ ( लेखक ) के नाम का पता नहीं चलता लेकिन इसमें २३६ चीनी चित्रकारों का ज़िक्र है और उनके ६००० चित्रों का इसमें संग्रह है।

## विश्वकोष

चीनी साहित्य की चौतरफ़ा तरक्क़ी ने यह ज़रूरी कर दिया कि हवाले ( उल्लेख ) की किताबें और इनसाइक्लोपीडिया ( विश्वकोष ) की रचना की जाय। 'ताइ पिङ यु लान' एक इसी तरह का विश्वकोष है ( हालाकि पहला नहीं ) और वह १००० ई० में लिखा गया। क़रीब चार सौ बरस के बाद एक दूसरा विश्वकोष 'यु आन लो ता तिएन' सन १४०८ ई० में शाही हुक्म से लिखा गया। इसमें कन्फ़्यूसियस के उपदेशों, इतिहास, दर्शन और आम साहित्य पर मुफ़स्सिल (विस्तृत) हवाले मिलते हैं। तीसरा बड़ा विश्वकोष 'तु शि चि चाङ' सम्राट काङ हि ने तय्यार कराया पर उसके वारिस ( उत्तराधिकारी ) सम्राट युङ चेङ ( १७२३—१७३६ ई० ) ने उसे शाया ( प्रकाशित ) किया। इसमें हर तरह के इल्मी हवाले देने की कोशिश की गई है, जैसे—तारा मण्डल, पृथ्वी, मनुष्य, कला, विज्ञान, फ़लसफ़ा ( दर्शन ), सियासत ( राजनीति ) वग़ैरह।

## एक सरसरी नज़र

चीनी साहित्य पर एक सरसरी नज़र डालने से ही चार बातें ख़ास तौर पर दिखाई देंगी (१) उसकी क़दामत ( प्राचीनता ), ( २ ) इख़्तलाफ़ ( विभिन्नता ), ( ३ ) मुस्तनद होना (प्रामाणिकता) और (४) ऊँचे उसूल ( उच्च सिद्धान्तवादिता )। चीन में साहित्य की हज़ारों बरस के दौर में जो लगातार तरक्की हुई है, मुख़्तलिफ़ विषयों पर जिस वैज्ञानिक तरीके से किताबें लिखी गई हैं, ऐतिहासिक वाक़यात को जिस सही सही तरीके से बयान किया गया है और हर तरह के साहित्य को नष्ट होने से जिस तरह बचाया गया है—ये सब ऐसी बातें हैं जिनकी मिसाल दूसरे देशों की अदबी तारीख़ ( साहित्यिक इतिहास ) में नहीं मिलती।

इस लेख को ख़त्म करते हुये एक ज़रूरी बात यह कहनी है कि चीनी विद्वानों और दार्शनिकों ने जो इतनी ज़बर्दस्त तरक्की की उसकी एक बहुत बड़ी वजह यह है कि सन् १०५ ई० में ही चीनी लोगों को काग़ज़ बनाना आ गया था और दसवीं सदी में छापे की कला से भी चीन वाले वाक़िफ़ हो गये थे और यह वह ज़माना था जब यूरोपीय तहज़ीब अंधेरे में ही पड़ी हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# युग-मानव

श्री उपेन्द्र

( १ )

युग-युग के बन्धन तोड़ फोड़ चिर रूढ़िवाद को दे ठोकर
बहु जातिभेद की चिता सजा साधना, अर्चना लिये अमर;
रे मिटा युगों की घोर अमा लेकर हाथों में नव प्रकाश
चल पड़ें आज ये कोटि-कोटि युग मानव पुलकित, नवोल्लास;
युग से उनके शीतल शोणित में आज उष्णता, चिर उबाल
आया, नस-नस में स्पंदित प्राणों में झंकृत ध्वन्स-ताल;
भालों पर ले शोणित-चन्दन, बलिदानों की अविरल पुकार
अधरों पर चिर रक्तिम आभा, ले गले मुण्ड रक्ताभ-हार।

( २ )

पद-चिह्नों में उनके अङ्कित युग परिवर्तन, युग-नाश-ह्रास
हुंकरित स्वरों में युगवाणी, नयनों में नवयुग की पियास;
निष्प्रभ, नीरव, चिर मौन, क्षुब्ध वाणी उनकी मुखरित गुंजित;
शून्यता भरे उनके उर में तूफान विकट, झंझा चालित;
उनके हासों में महाकाल का होता प्रतिपल अट्टहास
चिर दैन्य जर्जरित, विषण्ण मन, अपने घर में कैसा प्रवास ?
अधरों पर ले नीरव रोदन ये कोटि-कोटि सन्तान नग्न
पदमर्दित, अपलक, नत चितवन, कुंठित मन भयकंपित निर्धन।

( ३ )

ये अर्द्धक्षुधित, शोषित, निरस्त्र भय, भ्रम को तजकर जाग उठे
सदियों से लांछित, चिर विस्तृत ले नवल स्फूर्ति, पौरुष विहंसे
तन में भूचाल लिये अगणित, श्वासों में शत शत झंझानिल
पांवों में शत शत विद्युत्-गति, नयनों में शतसागर उर्मिल,
लेकर अजेय, पौरुष विराट, दर्शन-हित उनके सुर उन्मन
प्रतिध्वनित, क्वणित अम्बर में उनकी अग्निवाणियां, आलोड़न;
अणु-अणु में, मन में एक भाव है उद्वेलित विप्लव-धारा
अत्याचारों से वे पीड़ित, क्या हार-जीत ? सब कुछ प्यारा!

( ४ )

उर-उर में प्रतिपल अग्नि ज्वलित है दह्य मान आकुल अंतर
फूंकने विश्व में चिनगारी करने विध्वन्स सृष्टि जर्जर;
जग-कारा की दीवार सबल कर तोड़-फोड़, प्रलयङ्कारी
ये रचने को संसार एक नूतन, मानव के हितकारी;
बलिदानों से, अरमानों से, निज प्राणों की कुर्बानी से
फूंकने विश्व में नव जीवन निज जागरूक जयगानों से;
कर खंड खंड दासता बन्ध, शत-शत कण्ठों से जयोच्चार
कर मृत्यु-पाश को छिन्न भिन्न बढ़ते उर में ले एक प्यार!

( ५ )

जीना न चाहते रो-रोकर, दे प्राण मरेंगे ये हँस हँस
जीवन के सूने मन्दिर में निज बलिदानों के दीप विहंस
ये जला अहर्निशि, ज्योतिर्मय कर देंगे तममय भव का पथ
जिस पथ पर ज्योतित ढलता है इति में जाकर जीवन का अथ;
ये बढ़े, ध्वनित जयगान स्वरों को सुन जग के कण कण जागे
उनके स्वर में अपना स्वर दे वन उपवन के पँछी जागे;

देखा प्रभात आया जग में कुछ नूतनतर सन्देश लिये
नूतन जग, नूतन सृष्टि और नूतन युग, नूतन देश लिये,
उल्लसित विश्व के सब जन जन आती नव मानव की टोली
आनन्द मनाती, हर्षाती, स्वर में मुखरित नवयुग बोली!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उगते सूरज के देश की स्त्रियाँ

डाक्टर ता० नाकनूरा

प्राचीन जापान में एक से ज्यादा शादियों का बहुत आम रिवाज था। पुरुष चाहे जितनी स्त्रियों से विवाह कर सकते थे। ये पत्नियां अलग अलग घरों में रहती थीं और पति बारी बारी से उनके घरों में जाता था। बहुत सी पत्नियों को तो यह भी नहीं मालूम रहता था कि उनके पति की और कितनी पत्नियां हैं। न पति ही उन्हें कभी बताता था कि उसकी और कितनी पत्नियां हैं। किन्तु सातवीं सदी ईसवी में पहली बार यह रिवाज पड़ा कि एक परिवार एक ही घर में रहे।

बावजूद बहुपत्नीवाद के जापानियों में पहिली पत्नी का विशेष आदर होता था। उसे आमतौर पर 'मुकाहिमे' कहा जाता था। उसकी दूसरी पत्नियाँ 'ओननामे' कहलाती थीं। जापानी भाषा में स्त्री को 'ओन्ना' कहते हैं और ओननामे शब्द का विकास शायद इसी ओन्ना से हुआ है। पहिली पत्नी का लड़का ही जायदाद का उत्तराधिकारी होता था। अन्यथा विविध पत्नियों के रुतबे में कोई अन्तर न था। इन सौतेली स्त्रियों में बहुधा आपस में काफ़ी प्रेम होता था। पति सब पत्नियों के साथ बराबरी का बर्ताव करता था। फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि कुछ पत्नियाँ उसकी ख़ास चहेती होती थीं।

पति चाहे जितनी पत्नियाँ रखने को स्वतन्त्र था पर पत्नी को केवल एक ही पति से सन्तुष्ट रहना पड़ता था। उससे आशा की जाती थी कि वह अपने सतीत्व से न डिगे और पराये पुरुषों से किसी भी परिस्थिति में आँख न मिलाये। पत्नियाँ आमतौर पर पति को जी जान से प्यार करती थीं और सदा उसकी कल्याण कामना की चाहना करती थीं।

एक जापानी सरदार ओकुनि नुशीनो-मिलकोटो को बहुत सी लड़कियों से शादी करने की धुन थी। देश के चारों हिस्सों से वह अपने लिये पत्नियाँ लाया था। एक दिन उसने सुना कि यमातो के प्रान्त में एक बहुत ही सुन्दर लड़की है। बस, उसका मन उससे विवाह करने को बेचैन हो उठा। वह घोड़ा कसकर यमातो जाने के लिये तय्यार हो गया कि इतने में उसकी पहली पत्नी सुसेरि-हिमे विलाप करते हुये बाहर निकल आई और कहने लगी —'प्राणाधार! तुम्हीं मेरे लिये एक मात्र पति हो, एक मात्र पुरुष हो, हालाकि तुम्हारे लिये अनेक पत्नियाँ और अनेक स्त्रियाँ हैं!" पत्नी की बात उसके दिल को इतनी लगी कि उसने यमातो जाने का विचार छोड़ दिया।

जापानी स्त्रियों में चूँकि दृढ़ पति भक्ति होती थी इसलिये वे अपने सतीत्व पर किसी तरह का आक्षेप नहीं बर्दाश्त करती थीं। निनिगिनो मिकोतो ने ओवामाजुमिनो मिकोतो की बेटी कोनोहान साकीयानो हिमे से विवाह किया। चूँकि शीघ्र ही उसके गर्भ के दिन पूरे हो गये तो पति को उसके सतीत्व पर सन्देह हुआ। कोनोहान इस सन्देह पर आगबबूला हो गई। उसने अपने पति से अपनी सचाई साबित करने का प्रस्ताव किया कि—"यदि मेरे गर्भ का बालक तुम्हारा है तो यह अच्छे से अच्छा भाग्य लेकर पैदा होगा वरना इसे भयङ्कर अभिशाप मिलेगा।" यह कहकर वह ख़ास तौर से बनाई गई प्रसूति कुटी के भीतर गई। जापे के बाद ही उसने कुटी का दरवाज़ा भीतर से बन्द करके उसमें आग लगा दी। कुटी धू-धू करके जल उठी पर आग की लपटों ने न तो माँ को छुआ और न बच्चे को। इस अग्नि परीक्षा द्वारा उसने अपना सतीत्व साबित किया। पति पारायणता और सतीत्व जापानी स्त्रियों का अनुपम आदर्श था जिस पर चलना वे अपने लिये गौरव की बात समझती थीं। किन्तु उस समय के जापान में हमें अनेक ईर्षालु स्त्रियों के भी चरित्र मिलते हैं। ईवानो हिमे चौथी सदी ईसवी में सम्राट निनतोकु की अर्धाङ्गिनी थी। वह बड़ी ईर्षालु थी। जो भी तरुण और रूपवती लड़की महल में नौकर रखी जाती थी वह उसे मारपीट कर निकाल देती थी। पर आमतौर पर जापानी स्त्रियां ख़ुशी ख़ुशी अपनी सौतों को सह लेती थीं। जिस परिस्थिति में वे रखी जाती थीं उसी में ऊपर उठकर उन्होंने जापानी इतिहास की परम्परा क़ायम करने में पुरुषों का हाथ बंटाया। जापान की ऐतिहासिक स्त्रियों में हमें सबसे पहला नाम कोगो (सम्राज्ञी जिङ्गु) का मिलता है जिसने क़रीब दो हज़ार वर्ष पहले अपनी सेनायें लेकर कोरिया प्रायद्वीप पर धावा किया था। पुरुष का वेश धारण कर अपनी फ़ौज का सञ्चालन करते हुये उसने चोसेन की खाड़ी पारकर शिरागि (दक्षिण कोरिया) पर हमला किया और उस पर जापानी आधिपत्य का ऐलान कर दिया।

कोगो के बाद होजो तोकिमासा की बेटी मसाको का नाम बहुत प्रसिद्ध है। मसाको कामाकुरा शोगुनाते के



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



संस्थापक मिनामोतो योरितो की पत्नी थी। मिनामोतो जापान के सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में से एक समझा जाता है। दोनों पति-पत्नी सामुराइ युग के प्रारम्भ में हुये हैं और सैकड़ों वर्ष तक जापान के धुँधले आकाश में ज्वाजल्यमान नक्षत्र की तरह चमकते रहे हैं। मसाको के बाद और बहुत सी जापानी स्त्रियों ने प्रसिद्धि पाई है। सामन्ती युग में होजो योशितोकी, अशिकागा ताकाउजी, अशिकागा योशिमित्सु, ओदा नोबुनागा, तोयोतोमि हिदेयोशि आदि स्त्रियाँ काफ़ी प्रतापवान और विदुषी हुई हैं। किन्तु मसाको इन सबमें श्रेष्ठ थी।

जिन अनेक स्त्रियों के नाम जापानी इतिहास के साथ सम्बद्ध हैं उनमें मसाको सबमें प्रमुख है। उसके व्यक्तित्व में अनेक विपरीत गुणों के कारण काफ़ी विरोधाभास नज़र आता है। वह दृढ़ भावनाओं और शक्तिशाली हृदय की स्त्री थी। किन्तु जितनी ही वह दृढ़ और कठोर थी उतनी ही उदार और दयाशीला भी थी। उसके अन्दर पुरुषोचित और स्त्रियोचित दोनों गुणों का समावेश था। आत्माभिमान और आत्म विश्वास उसमें ग़ज़ब का था। यूँ तो उस ज़माने के सभी स्त्री-पुरुषों में आत्माभिमान की भावना होती थी लेकिन १२ वीं और १३ वीं शताब्दी में यह भावना उस समय की समस्त स्त्रियों में बहुत अधिक थी। अपने विवाह से लेकर ६९ वें वर्ष में अपनी मृत्यु तक आत्माभिमान की मात्रा उसमें ज्यों की त्यों बनी रही। वही उसका सबसे बड़ा शस्त्र था। अपने आत्माभिमान की तुष्टि में उसे अपने पति योरितोमो से भी बहुत बड़ी मदद मिली। शत्रुओं के साथ युद्ध करते हुये उसका पिता, उसके दो पुत्र और चार प्रपौत्र मारे गये पर उसके माथे पर शिकन तक न आई। उसकी सारी वंशबेलि समाप्त हो गई और अपने पति की मृत्यु के बाद अपने शोगून ( ज़मीदारी ) का कारबार चलाने के लिये कुटुम्ब में केवल वही बच रही। इसके बाद जापान की शाही फ़ौजों ने उसकी स्वतन्त्र ज़मीदारी पर क़ब्जा कर लेना चाहा पर उसने स्वयं युद्ध क्षेत्र में उपस्थित होकर अपनी फ़ौजों को प्रोत्साहन दिया। खूब भयङ्कर युद्ध हुआ जिसमें शाही फौज बुरी तरह पराजित हुई और तीन शाही सेनापति जान से मारे गये। मसाको अपनी कामाकुरा ज़मीदारी की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने में कामयाब हुई। उसके आत्माभिमान ने उसे इस युद्ध को जीतने में मदद दी।

मसाको के बाद ताशिबाना मिस्रियो उसकी पुत्री सम्राज्ञी कोम्यो फूजीवाश राजकुल की विशिष्ट स्त्रियाँ हुई हैं। हि आन राजकुल के दरबार में शेशोनागान, कोशीकिब्न-नोनाजी, और शिकिबू आदि स्त्रियां साहित्यिक विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध थीं।

जापान की वीर रमणियों में रोमन कैथलिक गैलेसिया होसोकावा का नाम काफ़ी प्रसिद्ध है। कनसाई की फ़ौजों के साथ लड़ते हुये गैलेसिया मृत्यु को प्राप्त हुई।

नागामासा की पत्नी असाई भी अपनी वीरता के लिये काफ़ी मशहूर है। इसने अपने पति के साथ हाराकिरी करके अपना जीवन वीरता के साथ समाप्त किया। उसके पति ने बहुत चाहा कि शत्रु से बचने के लिये असाई रात को किले से निकलकर भाग जाय पर असाई ने भागकर जीवन बचाने की अपेक्षा पति के साथ मरना ही श्रेष्ठतर समझा।

---

# गुल्मुहर

श्री० प्रभाकर माचवे एम० ए०

चिलचिलाता ज्येष्ठ का यह द्विपहर,
खिलखिलाता श्रेष्ठ वर्णी गुल्मुहर।

केशरी रतनार गहरा देख चीनांशुक
हरसिङ्गारों के अलक्तांकित चरण
ये जसौंदी और दाड़िम, चंचु-पिक,
लाज से तेरी हुये सिन्दुर-वरण।
पढ़ रहा हूँ लाल परचम की विजय,
गढ़ रहा हूं मृत्तिका से रक्तमय
कल्पना की प्राणमय यह मूर्ति पट!
लोचनों में कोटिशः हो इक सुरूर
सोचने में एक ही राष्ट्रीय नूर!
वेश केसरिया, जवानी, स्फूर्ति प्रद,
भाल कुंकुम-अक्षता-चर्चित, (क़हर!)
खिलखिलाता ज्यों शहर में गुल्मुहर!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सिख और उनका जातीय सङ्गठन

प्रो० तेजासिंह एम० ए० (खालसा कालिज, अमृतसर)

एक बार जब योगियों ने गुरु नानक से कुछ चमत्कार करके दिखाने को कहा तो गुरू जी ने जवाब दिया कि मेरा चमत्कार तो ये मेरे उपदेश और यह मेरी सङ्गत है।[1] जहाँ जहाँ गुरु नानक जाते थे वे अपने पीछे अपने शिष्यों की एक सङ्गत छोड़ आते थे जो गुरुद्वारा बनाकर वहाँ एकत्रित होकर गुरु के भजन गाया करते थे और नाम का जप किया करते थे। थोड़े ही समय में सारे मुल्क में सिख गुरुद्वारों का एक जाल सा बिछ गया। जूनागढ़ (काठियावाड़), कामरूप (आसाम), सूरत (गुजरात), कटक (उड़ीसा), वेहार, जोहर, नानक मठ (कुमायूँ) में गुरु नानक के मिशन के केन्द्र खुल गये। खाटमण्डू, ईरान की खाड़ी, काबुल, जलालाबाद और दूसरी दूर दूर की जगहों में गुरु नानक के उपदेशों का प्रचार करने वाली सङ्गतें क़ायम हो गईं। सूरत में नानक बाड़ा और कुमायूं में नानक मठ केन्द्र अब तक ज्यों के त्यों क़ायम हैं। हाला कि यह दूसरी बात है कि इन मठों के अधिकांश लोग सिख ग्रन्थों और सिख विचार धारा से पूरी तरह वाक़िफ़ नहीं है। गुरु तेग़ बहादुर या पटना के दीवान माहनसिंह के स्थापित किये हुये सिख केन्द्रों के अवशेष कोलम्बो, रामेश्वरम्, मद्रास, सतूर, कजली वन, आदिला बाद (हैदराबाद, दकन) मिरज़ापुर, चटगाँव, धुबरी (आसाम) आदि जगहों में अब भी बाक़ी हैं। गुरु ग्रन्थ साहब की बहुत पुरानी प्रतियाँ और विविध सङ्गतों के नाम गुरु तेग बहादुर और गुरु गोविन्दसिंह के दस्तखती पत्र अब भी इन केन्द्रों में सुरक्षित हैं। पांचवें सिख गुरू के समय के एक सिख प्रचारक भाई गुरुदास के ११वें भजन में हमें उन प्रमुख सिखों की सूची मिलती है जो उस समय काबुल, काशमीर, सरहिन्द, थानेश्वर, दिल्ली, फ़तहपुर सीकरी, आगरा, उज्जैन, बुरहानपुर, गुजरात, सुहन्द, लखनऊ, प्रयागराज, जौनपुर, पटना, राजमहल, ढाका आदि जगहों में रहते थे। गुरु गोविन्द सिंह की धर्म पत्नी माता साहिब कौर के एक दस्तखती पत्र में, जो अब भी बनारस के सिख गुरुद्वारे में सुरक्षित है, बनारस के शहर को 'गुरु का दुर्ग' कहा गया है। सन् १६७५ की लिखी हुई ग्रन्थ साहिब की एक हस्तलिखित प्रति में एक सिख की दक्षिण यात्रा का वर्णन है, जिसका शीर्षक है 'हकीकत राहे मुक़ाम', उससे दक्षिण भारत और लङ्का में जहाँ तहां फैली हुई सिख सङ्गतों का पता चलता है।

हर सङ्गत गुरु के द्वारा मुक़र्रर एक नेता के अधीन होती थी। सन् १५८८ में भाई सेवादास द्वारा लिखी हुई गुरु नानक की एक जीवनी से पता चलता है कि इन नेताओं को 'मञ्जी' कहा जाता था चूंकि ये लोग मञ्जी (चारपाई) पर बैठकर उपदेश दिया करते थे। भाई लल्लो उत्तर में और शेख़ सज्जान दक्षिण पश्चिम पंजाब में गुरु के उपदेशों का प्रचार करते थे। अन्य प्रचारकों में गोपालदास बनारस में, झण्डा बाड़ी बुशायर में, बुद्धनशाह कीरतपुर में, माही महीसर में, कलजुग जगन्नाथ पुरी में, देवजुत लुशाई (तिब्बत) में, सालिसराय पटना और बिहार में, राजा शिवनाथ सिंहल में और अनेक अनगिनत कार्यकर्ता हिन्दुस्तान में और हिन्दुस्तान के बाहर, जहां जहां गुरु नानक गये थे, प्रचार कार्य में लगे हुये थे। चूँकि समस्त प्रचारक और इनके द्वारा दीक्षित सिख बराबर गुरु के दर्शनों को आया करते थे इसलिये इन समस्त सङ्गतों का सम्बन्ध केन्द्र के साथ बराबर क़ायम रहा।

गुरु नानक के बाद प्रचार कार्य को अधिक सङ्गठित रूप देने के लिए २२ मञ्जी और ५२ पीरा मुक़र्रर किये गये। किन्तु पञ्जाब में जो परिस्थिति पैदा होगई थी उसके कारण गुरु को निरन्तर पञ्जाब में ही रहना पड़ता था। शुरू शुरू में सिखों के सङ्गठन की तरफ़ किसी का ध्यान ही नहीं गया और वह बराबर उन्नति करता रहा किन्तु गुरु अर्जुन के समय वह एक शक्तिशाली सङ्गठन बन गया।[2]

---

१—गुरुदास का 'भजन-संग्रह', १—४२।

२—उस ज़माने में सिख यह प्रार्थना किया करते थे—"हर शहर में सैकड़ों और हज़ारों सिख हों और हर मुल्क में लाखों सिख हों और दुनिया में गुरु के सिख करोड़ों बल्कि अनगिन हो जायँ और हर जगह एक सिख गुरुद्वारा सुशोभित हो।"—भाई गुरुदास का 'भजन संग्रह'; १३-१९ और २३-२

ख़फ़ी ख़ां सिखों के बारे में लिखता है—"उनके गुरु लाहौर के निकट फ़क़ीरों की तरह रहते थे। शुरू से ही सिखों ने सन्तों की देख रेख में हर क़सबे और शहर में अपनी सङ्गतें और गुरुद्वारे बना लिये थे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हर ज़िला एक 'मसन्द[3]' के मातहत होता था जिसका काम अपने ज़िले में धर्म प्रचार करना होता था और वह गुरू की ओर से ज़िले के सिख सङ्गठन के लिये ज़िम्मेवार होता था। साल में एक मर्तबा वैशाखी के दिन वह ज़िले के सिखों के साथ गुरू की सेवा में उपहार लेकर हाज़िर होता था और अपने प्रचार का ब्योरा देता था। अपने स्वर्ण मन्दिर और गुरु ग्रन्थ साहब की प्रतिष्ठा के कारण अमृतसर सिखों का केन्द्र बन गया। गुरू के व्यक्तित्व को केन्द्र बनाकर सारा सङ्गठन खड़ा किया गया। हालाकि एक के बाद एक कई गुरु गद्दी पर बैठे किन्तु वे सब एक ही गुरु नानक के अन्तर रूप समझे गये।[4]

धीरे धीरे गुरु के चारों तरफ इकट्ठा होने वाली मण्डली को पवित्रता की दृष्टि से देखा जाने लगा। फिर धीरे धीरे तमाम अध्यात्मिक अधिकार उन्हें दे दिये गये। यह गुरु गोविन्द सिंह के बाद हुआ जब सिखों का पन्थ के रूप में सङ्गठन शुरू हुआ और पन्थ ने गुरू की सभा अपने हाथों में ले ली। वैसे इस का आभास पहले से ही मिलता है। भाई गुरुदास ने एक बार कहा था—"एक शिष्य एक अकेला सिख है, दो सिख पवित्र मण्डली बन जाते हैं लेकिन जहां पांच सिख होते हैं वहां ख़ुद परमेश्वर होता है।" गुरु रामदास ने अपने बहुत से वचनों में अपने सिखों के लिये बड़ा आदर दिखाया है। उन्होंने ऐलान किया—"गुरु सिख (शिष्य) है और जो सिख गुरू के शब्दों पर चलता है वह गुरू के साथ एकाकार हो जाता है।"[5] गुरु अर्जुन हमेशा संगतों में शामिल होने के अध्यात्मिक फायदे की बात दोहराया करते थे। लोग भी इन सङ्गतों में ज्यादा से ज्यादा तादाद में जाया करते थे। उनमें दोनों भावनाएं होती थीं। कुछ तो भक्ति भाव से वहां जाते थे और कुछ अरज़ी दरख़्वास्त लेकर। उस ज़माने का यह एक आम रिवाज था कि जो लोग ईश्वरीय दया चाहते थे वे संगत के सामने अपनी मुराद रखते थे और सारी संगत उनकी मुराद के पूरा होने की प्रार्थना करती थी।[6]

गुरु गोविन्दसिंह पन्थ का अधिकार देने से पहले भी सिखों का बड़ा आदर करते थे। वे इन शब्दों में उनका ज़िक्र करते थे—"उन्हींके द्वारा मुझे अपने अनुभव हुये। उन्हीं की मदद से मैंने दुशमनों को दबाया। उन्हींकी मेहरबानी से मुझे रुतबा मिला वरना मेरी तरह के लाखों आदमी हैं जिन्हें कोई नहीं पूँछता।" हालाकि गुरु गोविन्द सिंह जनता के नेता थे पर वे अपने को जनता का सेवक समझते थे। वे कहते थे—"उनकी सेवा करके मेरे दिल को ख़ुशी होती है। मेरी आत्मा को इससे ज़्यादा कोई सेवा नहीं भाती। मेरी तमाम दौलत यहाँ तक कि मेरी आत्मा और मेरी देह सब उनकी सेवा के लिये हाज़िर है।"

ख़ालसा गुरु के तमाम अधिकारों के साथ सामने आये। गुरु ने सिखों को इजाज़त दी कि वे अपने बीच से साधारण प्रबन्ध के लिये पाँच प्रतिनिधि चुनें। चुनाव के वक्त उन्होंने ख़ुद मौजूद रहने का वचन दिया। सिखों का यह सारा जमाव सरबस ख़ालसा कहलाता था। इसीके नाम पर प्रार्थनायें की जाती थीं और सार्वजनिक फ़ैसले किये जाते थे। पन्थ के हित के तमाम सवालों पर सालाना जल्सों में अकाल तख़्त में ग़ौर किया जाता था। हर सिख इस जल्से में भाग ले सकता था। स्थानीय सवाल स्थानीय जल्सों में, जिन्हें सङ्गत कहा जाता था, हर जगह तय किये जाते थे। लोगों के दुराचरण पर इन्हीं सङ्गतों में विचार किया जाता था। चाहे कोई कितना ही उच्च पद वाला आदमी क्यों न हो उसे इन सङ्गतों की हुकूमत माननी पड़ती थी। एक मर्तबा अपने अनुयायियों की परीक्षा लेने के लिये गुरु गोविन्द सिंह ने एक सन्त की समाधि के सामने आदर प्रकट करने के लिये अपना तीर झुका दिया। इस पर सङ्गत में गुरू गोविन्द सिंह की तलबी हुई और गुरु जी पर १२५ रुपया जुर्माना हुआ। यदि कोई सिख कुछ दुराचरण करे तो उसे यह उम्मीद की जाती थी कि वह नज़दीक की किसी सङ्गत में जाकर जूते रखने की जगह खड़ा होकर दोनों हाथ जोड़ कर सङ्गत से अपने अपराध को स्वीकार करे। सङ्गत यानी चुने हुये आदमियों के सामने उसका मामला रखती थी और पञ्च लोग आपस में सलाह करके अपना फ़ैसला सङ्गत से

---

३—'दबिस्ताने मज़ाहिब' से पता चलता है कि ये 'मसन्द', जैसा कि कहा जाता है टैक्स उगाहनेवाले नहीं थे बल्कि धर्म प्रचारक थे। साल में वह जो भेंट गुरु को लाकर चढ़ाते थे वह सिख चेलों की अपनी मरज़ी से दी हुई भेंट होती थी। असल में यह ग़लत फ़हमी इसलिये हुई कि 'भेंट' को 'बाज' (टैक्स) समझ लिया गया हालाकि उपरोक्त पुस्तक के लेखक ने 'भेंट' के लिये 'नज़र' शब्द इस्तेमाल किया है।

४—Supra pp. 26-27.

५—Asa chhaut, IV.

६—Dabistan-i-Madhahib.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सामने रखते थे। संगत सत श्री अकाल के नारे के साथ पञ्चों के फ़ैसले पर अपनी मोहर लगा देती थी। जो कुछ सज़ा मिलती थी अपराधी उसे ख़ुशी ख़ुशी स्वीकार करता था और अभिमान के साथ उसे इनामो अकराम कहता था। सज़ा से उसके मन में कोई कड़ुआहट न होती थी। क्योंकि सज़ा समस्त सङ्गत की दी हुई होती थी जिसमें कोई दुश्मन नहीं बल्कि पाँच प्यारे पञ्च होते थे।

सिखों के इस परिपूर्ण सङ्गठन ने ही मुग़ल सल्तनत को उनके ख़िलाफ़ कर दिया और उनके इसी सङ्गठन ने उन्हें सन् १७१६ और १७६३ ईसवी के बीच, उन पर जो अत्याचार हुये, उनसे उन्हें बचाया। जब उनके सर पर क़ीमतें रख दी गई थीं और लम्बे केश रखना जुर्म क़रार दिया गया था,[७] जब शहरों में आना ग़ैर क़ानूनी क़रार दिया गया था और जब उन्हें जत्थे बनाकर उत्तरी पञ्जाब के जङ्गलों या राजपूताने के रेगिस्तान में घूमने के लिये मजबूर होना पड़ा था उस समय की सिखों की प्रार्थना थी—"ख़ालसा के अनुयायियों की जहाँ भी वे हों, ईश्वर रक्षा करे।"

सिखों के गणतांत्रिक संगठन 'मिसल' ने उनमें एक संघ शासन का तरीक़ा पैदा कर दिया था। हर सिख स्वतन्त्र था और 'ख़ालसा' का सदस्य था लेकिन उनकी हैसियतें अलग अलग थीं और उनकी क़ाबलीयत में भी फ़र्क़ था। इसलिये यह समझकर कि उनमें से हर एक व्यक्ति नेता नहीं बन सकता उन्होंने ख़ुशी ख़ुशी एक संघ बनाकर और नेताओं को चुनकर उनके नेतृत्व में चलना स्वीकार किया। जिस तरह उनकी तमाम साधारण कार्रवाइयाँ 'गुरमत' से तै होती थीं उसी तरह उनके राजनैतिक फ़ैसले भी सरदार और मिसल अकाल तख़्त के सामने इकट्ठा होकर किया करते थे।

स्वर्ण मन्दिर के चारों तरफ़ ठहरने की जगहें, जिन्हें 'बुंगह' कहा जाता था, बनी हुई थीं। इन्हीं में सरदार और मिसल आकर ठहरते थे। जत्से के वक़्त वे अकाल तख़्त के सामने खुले मैदान में इकट्ठा होते थे। अनुयायी अपने अपने नेताओं के पीछे बैठते थे और नेता ही उनकी ओर से बोलता था। जब भी किसी को कोई नई बात सूझती थी वह अपने सरदार से जाकर कहता था और केवल सरदार ही उनकी तरफ़ से बोलता था। इस तरह से कुल बारह सरदार ही उस सभा में बोलनेवाले होते थे। प्रस्तावों पर न तो व्यक्तिगत मत लिये जाते थे और न वे बहुमत से पास होते थे। वे सब एक राय से पास होते थे। न तो कभी कोई सरदार अड़ङ्गा लगाकर कार्रवाई रोकता था और न कभी कोई गतावरोध ही पैदा होता था। इसकी वजह यह थी कि फ़ैसले तादाद के मुर्दा बोझ से नहीं किये जाते थे बल्कि माने हुये नेताओं की सम्मिलित राय से किये जाते थे कि जिनके सामने सदा पन्थ के जीवन मरण का प्रश्न रहता था। पन्थ का 'गुरुमत' कोई रोज़मर्रा की चीज़ न थी। वह तभी लिया जाता था जब किसी बाहरी हमले का ख़तरा हो या पन्थ की धार्मिक पवित्रता किसी भीतरी ताक़त से ख़तरे में हो। ख़ालसा के विधान में एक बात और ऐसी थी कि जिससे कभी ज़िच पैदा न होने पाती थी। कोई प्रस्ताव ख़ालसा की सभा में उस वक़्त तक नहीं लाया जा सकता था जब तक उपस्थित नेता इस बात की प्रतिज्ञा नहीं करते थे कि गुरु की शरण में वे सब एक हैं। यदि उनमें से किसी के पुराने आपसी झगड़े होते थे तो वे अलग हटकर पहले उन झगड़ों को सुलझाते थे और जब वे आकर कहते थे कि अब हमारे कोई आपसी झगड़े नहीं रहे और हमने सुलह कर ली और अब हम सब निष्पक्ष होकर 'गुरुमत' में भाग ले सकते हैं तब अकाल तख़्त का सभापति ऐलान करता था कि गुरु की राह में ख़ालसा फिर से एक हैं और तब उनके सामने 'गुरुमत' रखा जाता था। उसके बाद प्रस्ताव के शब्द पढ़े जाते थे और उस पर बहस होती थी।

पन्थ के इस तरह के अधिकार की तीन जगहें हिन्दुस्तान में और थीं। एक आनन्दपुर, केशरगढ़ में जहाँ सबसे पहले गुरु गोविन्द सिंह ने पूर्वीय पञ्जाब के लिये खालसा को न्यायाधिकार दिये थे। दूसरी पूर्वीय भारत के लिये पटने में जो गुरु गोविन्द सिंह का जन्म स्थान भी था। तीसरी दक्षिण में नान्देर (हैदराबाद दकन) में जहाँ गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु हुई थी। इन तीनों जगहों के तख़्त धार्मिक अधिकारों के केन्द्र थे। रूढ़ियों के उचित रूप को निश्चित करने की अपील यहाँ की जा सकती थी। अकाल तख़्त को राजनैतिक और धार्मिक दोनों तरह के अधिकार हासिल थे। वह पन्थ के नियन्त्रण का सबसे बड़ा केन्द्र था। अकाल तख़्त के सामने ही विदेशी शक्तियों से सुलहनामे तय किये जाते थे। यह स्थिति सन् १८०९ ईसवी तक रही जब आख़री गुरुमत लिया गया। इसके बाद महाराजा रणजीत सिंह ने राजनैतिक फ़ैसलों के लिये गुरुमत की प्रथा ही उठा दी और सिखों और ग़ैर सिखों दोनों की सलाह से काम करना शुरू किया।

७—A Sketch of the Sikhs by Malcolm.



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एक पुराने सिख रिवाज को इस तरह नष्ट करने के लिये सिख लेखक महाराज को अक्सर दोष देते हैं। किन्तु यदि हम ठीक तरह से सिख धर्म के आदर्शों का अध्ययन करें तो हमें पता चलेगा कि राजनैतिक क्षेत्र में इस गुरुमत की पृथा का अन्त करना सिख आदर्शों के अनुकूल ही हुआ। सिखों का लङ्गर सिख विशेष के लिये नहीं होता। वहाँ हर जाति और हर कौम के लोग आकर भोजन कर सकते हैं। अमृतसर में गुरु के बाजार में चौथे और पांचवें गुरुओं के समय से हिन्दू, मुसलमान, सिख सब को तिजारत की इजाज़त मिल गई थी। गुरु हर गोविन्द ने अनेक शहर आबाद किये और अपने ख़र्च से मन्दिर और मसजिद बनवाईं। महाराज रणजीत सिंह इन्हीं गुरुओं के चरण चिन्हों पर चल रहे थे जब उन्होंने केवल सिख अधिपति की हैसियत से शासन करने के बजाय हिन्दू, मुसलमान और सिख सभी के महाराज की हैसियत से शासन की बागडोर हाथ में ली। एक ज़माना था जब मुसलमान अपने को विदेशी समझते थे। उन दिनों सिखों में ही सच्ची राष्ट्रीय जाग्रति थी और वे ऐलान करते थे—"राज करेगा खालसा।" जब रणजीत सिंह तख़्त पर बैठे तो वे चाहते थे कि हिन्दू और मुसलमान अपने को उसी तरह देश भक्त समझें जिस तरह सिख समझते थे और इस दृष्टि से राजकाज में उन्होंने उनकी सलाह उतनी ही आवश्यक समझी जितनी सिखों की। इसलिये रणजीत सिंह ने, जहां तक राजनैतिक शासन का सम्बन्ध था, अकाल तख़्त की हुकूमत उठा दी और अपने मन्त्रियों से, जिनमें सभी सम्प्रदायों के लोग थे, राजकाज के बारे में सलाह लेने लगे। इस तरह की शुद्ध दुनियवी योजना में गुरुमत की जगह न थी। यदि सिखों के मक्के से धार्मिक हुकुमनामों के ज़रिये रणजीत सिंह हुकूमत करने की कोशिश करते तो उनके प्रति हिन्दू और मुसलमानों की वफ़ादारी भी शायद उतनी दृढ़ न रह पाती।

रणजीत सिंह ने सिख 'मिसलों' के पदों को भी तोड़ दिया। मिसल सिख शक्ति के बोधक थे। उनके नेता सदा सिख होते थे और उनके फैसले हमेशा गुरुमत से होते थे। यह पृथा उस वक्त तक ज़रूरी थी जब तक हिन्दू दबे हुये थे और मुसलमान विदेशी थे, अब जबकि हिन्दू और मुसलमानों को नागरिकता का अधिकार दे दिया गया और वे पञ्जाब-राष्ट्र के सम्माननीय अङ्ग बन गये तो उनके ऊपर एक साम्प्रदायिक संघ का शासन बेमौजूँ था। उसकी जगह यदि एक ऐसी सरकार का शासन कर दिया गया जो सब की सरकार थी तो उचित ही हुआ। मिसलों के द्वारा सिखों के सर्वोत्तम गुणों का विकास हुआ और उस ज़माने में सिख संगठन की खूबियाँ उसके ज़रिये प्रकाश में आईं पर रणजीत सिंह के समय उनकी पुरानी खूबियाँ नष्ट हो गई थीं और ख़ुदग़रज़ी और आन्तरिक झगड़ों ने उनके गणतांत्रिक पहलू को बिलकुल मज़ाक़ बना दिया था।

[ २ ]

राजनैतिक 'गुरुमत' के बन्द कर देने के बाद धार्मिक 'गुरुमत' जारी रहे किन्तु चूँकि उनके लिये सार्वजनिक जोश रह नहीं गया था इसलिये वे अपढ़ धर्मान्धों या गुरुद्वारों के ग़ैर ज़िम्मेवार महन्तों के हाथों में चले गये कि जिन्होंने उसे बिलकुल पतित बना दिया।

सिखों का प्रचार कार्य और पन्थ की ताक़त गणतांत्रिक भावना के नष्ट हो जाने से बिलकुल दब गई। सिख धर्म को फ़रुख़सियर के राजकाल में चौतरफ़ा अत्याचारों से उतना नुक़सान नहीं पहुंचा जितना गणतंत्र की भावना के नष्ट होने से पहुंचा। सिखधर्म का विकास उस समय सबसे ज़्यादा हुआ जब बराबरी के दरजे के भिन्न भिन्न व्यक्तियों ने एक होकर संगठित रूप से काम किया। वह उद्घोष सबके लिये था और सबका था। यहाँ तक कि सिखों की प्रार्थना भी किसी एक व्यक्ति की नहीं बल्कि जमात की प्रार्थना है। अपनी प्रार्थना में सिख ईश्वर के अतिरिक्त दसों गुरुओं का आह्वान करता है और उन सब महान सिखों के कामों को याद करता है जिन्हों ने पन्थ के लिये कुर्बानियाँ कीं। सिखों की प्रार्थना उसके सामने सम्प्रदाय के सम्मिलित जीवन की और हर जगह फैली हुई उसकी विविध समितियों और उनके सत्सङ्ग की जगहों की तसवीर पेश करती हैं और इस तरह वह उन लोगों के संगठन में आता है जिन्हों ने पन्थ के पुरातन और आधुनिक इतिहास को बनाया है और बना रहे हैं। कोई दूसरा शब्द ऐसा नहीं है जिसकी आवाज़ पर अन्य सम्प्रदाय सर्वाङ्गीण रूप से इकट्ठा होसकें। कैथालिक ईसाइयों के पास 'चर्च' शब्द है पर वह ऐसा नहीं है कि राष्ट्र के सभी कामों, न केवल उनके इतिहास बल्कि उसके फ़ौजी, दुनियवी, और मज़हबी हिस्सों के लिये इस्तेमाल किया जा सके। किन्तु 'खालसा' शब्द के अन्दर सिखों की सभी संस्थायें और उनके सभी काम आजाते हैं। जब तक सिखों में 'खालसा' की भावना होगी वे बड़े से बड़ा काम कर सकते हैं। महाराजा रणजीत सिंह ने सिखों से सफलता पूर्वक काम लेने के लिये 'खालसा' के सभी उपाङ्गों और कर्मकाण्डों को इस्तेमाल करना था। रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद जब कोई एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शासन की बागडोर न सम्हाल सका तो चुने हुये प्रतिनिधियों की पञ्चायतों ने किसी तरह शासन की एक रूपरेखा क़ायम रखी।

हिन्दुस्तान से बाहर मलाया, चीन, या कनाडा में यदि आप सिखों के कामों पर नज़र डालें तो आपको उनकी सङ्गठन-प्रियता का सुबूत मिलेगा। वे सामाजिक प्राणी हैं। जब भी दो या तीन सिख इकट्ठा होंगे तो मिल बैठकर भजन गायेंगे। यदि उनकी तादाद क़ाफी हो तो वे फ़ौरन गुरुद्वारा की बुनियाद डाल देंगे और सङ्गत बनाकर इकट्ठा होने लगेंगे। उनकी जो यह संघ-भावना है उसके कारण जब भी वे मिलते हैं तो अपने 'जत्थे या दीवान' (समिति) बनाकर प्रचार कार्य शुरू कर देते हैं।

[ ३ ]

यह पुनरुत्थान का ज़माना है। अपने पतन के ज़माने से सिख जो अपने को भूले हैं तो आजतक नहीं जाग पाये। आज उन्हें अपने को और नये सिरे से अपनी तमाम संस्थाओं को जगाना है। वैसे पुरानी परम्परा की स्मृति कुछ कुछ बाकी है। अमृतसर, आनन्दपुर, पटना और नान्देर के चारों तख़्तों का इतिहास 'राहतनामा' और दूसरी ऐतिहासिक पुस्तकों में दर्ज है पर जो सामग्री उपलब्ध है वह काफी नहीं और सिखों को पुरानी कल्पना क़ायम करने के लिये अपनी कल्पना से काम लेना पड़ेगा। सिखों में चूँकि शिक्षा की बहुत कमी है इसलिये उनकी कल्पना का भी समुचित उपयोग नहीं किया जा सकता। सिखों की कोई ऐसी केन्द्रीय संस्था भी नहीं है जो उनके धार्मिक फैसलों में एक एकता और बुद्धिमत्ता पैदा कर सके। नतीजा यह है कि कुछ बेचैन सुधारक खालसा की उदार भावना के बिलकुल विपरीत आश्चर्यजनक रिवाज और अनोखी संस्थायें क़ायम कर रहे हैं। किन्तु समझदार नेता जल्दबाज़ी का क़दम उठाने से अपने को बचा रहे हैं और अपनी सारी शक्ति सिखों में सार्वजनिक रूप से शिक्षा देने और गुरुद्वारों का सुधार करने में लगा रहे हैं और एक ऐसी केन्द्रीय संस्था की बुनियाद डाल रहे हैं जिसके फैसले सबके लिये मान्य होंगे। उन्होंने अधिकांश गुरुद्वारों पर क़ानूनी अधिकार पालिया है और बाक़ी गुरुद्वारों पर भी अधिकार करने की कोशिश कर रहे हैं। इस सब प्रबन्ध के लिये उन्होंने बालिग़ मताधिकार में हर सिख स्त्री पुरुष द्वारा चुनी हुई शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी बना ली है। स्त्रियों को वोट का अधिकार देकर उन्होंने एक क्रान्तिकारी क़दम उठाया है जिससे स्त्रियों को सम्प्रदाय के हर फैसले, मन्दिरों और धार्मिक आचार विचारों तक को तय करने में हिस्सा लेने का अधिकार हासिल होगया है। किन्तु शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी का दायरा अभी छोटा है और वह पन्थ की हर कार्रवाई में नेतृत्व नहीं कर सकता। सिख अभी तक यह फैसला नहीं कर सके कि उन्हें गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अतिरिक्त पन्थ के लिये कोई और संस्था बनानी है या नहीं।

पन्थ के लिये इस तरह की संस्था बनाने का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु के समय निरंकुश सत्ता की जगह पन्थ को अध्यात्मिक होमरूल मिल गया था। शुरू शुरू में उन्होंने पन्थ के फैसलों के लिये यूनानी तरीक़ा अपनाया था कि जिसके अनुसार हर व्यक्ति को पन्थ के फैसलों में हिस्सा लेने का अधिकार था। इस काम के लिये अकाल तख़्त में 'सरबत खालसा' का अधिवेशन साल में या छै महीने में एक बार हुआ करता था। जब सिखों पर अत्याचार होने लगे तो इस तरह के अधिवेशन असम्भव हो गये और अकाल तख़्त को ख़ुद ही सारे फैसले करने पड़ते थे। मिसलों के शासन के समय अकाल तख़्त की कार्रवाई भारी भरकम होगई और सत्ता की ख़्वाहिश ने ख़ुदग़रज़ लोगों के हाथों में ताक़त दे दी। यह कैफ़ियत रणजीत सिंह ने आकर दूर की। रणजीत सिंह की आकांक्षा मुग़लों की तरह ही एक सार्वभौम सत्ता स्थापित करने की थी। इसी लिये उन्होंने सर्वजातीय प्रतिनिधात्मक संस्था की बात सोची। उनके ज़माने में अकाल तख़्त एक निर्जीव संस्था बनकर रह गया। रणजीत सिंह के बाद जब अङ्गरेज़ी शासन कायम हुआ तो सिखों के नेता इतने पजमुर्दा और पतित हो चुके थे कि वे निर्वाचित संस्थाओं की बात भी न सोच सकते थे। जब पश्चिमी सभ्यता का संसर्ग हुआ और पश्चिमी शिक्षा और संस्थाओं से लोगों का परिचय हुआ तो सिखों ने भी 'दीवान' बनाकर शिक्षा, सामाजिक और धार्मिक सुधार का काम अपने हाथों में ले लिया। किन्तु सिखों में घोर अशिक्षा होने के कारण यह प्रगति पूरी तरह सम्भव न हो सकी। पर सन् १९२१ से १९२६ तक उन पर जो गुरु के बाग़ आदि में भयंकर जुल्म हुये उन्होने इस तरह उन्हें संगठित कर दिया जैसे वे पहले कभी न थे। गुरुद्वारों के प्रबन्ध के लिये उनकी शिरोमणि प्रबन्धक कमेटी क़ानूनी संस्था बनगई है किन्तु जैसा मैंने ऊपर बताया है कि वह अभी तक ऐसी सर्वाधिकारी संस्था नहीं बन पाई जो सारे पन्थ को अधिकार के साथ कह सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



[ ४ ]

क्या सिखों को इस काम के लिये किसी अलग संस्था की ज़रूरत है ? इस उद्देश्य को प्राप्त करने में कुछ दिक़्क़तें हैं। सब से ख़ास दिक़्क़त यह है कि इसके दायरे में राजनीति को शामिल किया जाय या न किया जाय। इस दिक़्क़त को ठीक-ठीक समझने के लिये हमें सिखों के राजकीय सम्बन्ध पर एक दृष्टि डालनी होगी। गुरु गोविन्द सिंह ने शान्ति के समय सिखों पर जोर दिया था कि वे बाबर के राजकुल को उसी तरह सार्वभौम दुनियवी सत्ता स्वीकार करलें जिस तरह उन्होंने गुरु नानक की गद्दी को सार्वभौम धार्मिक सत्ता स्वीकार किया है। किन्तु सिखों के ३०० वर्षों की प्रगति के इतिहास को देखने से पता चलता है कि सिखों ने इस सिद्धान्त को कभी स्वीकार नहीं किया। वे या तो शासकों के साथ युद्ध करते रहे या खुद शासन करते रहे। केवल गत ८० वर्षों से उन्होंने ब्रिटिश सरकार के मातहत काम करना शुरू किया है। किन्तु फिर भी वे कोई अपनी राजनैतिक हैसियत नहीं बना पाये। हाल में इधर पन्थ में नवीन जाग्रति हुई है किन्तु उसके साथ ही साथ पुराने संघर्ष भी फिर शुरू होगये हैं। सिखों को यह सचाई हिम्मत के साथ स्वीकार कर लेनी चाहिये कि यदि उनका संगठन फिर पुरानी परिपाटी पर चला तो वे सरकार के साथ या ग़ैर सिखों के साथ निश्चय ही संघर्ष में आयेंगे। इसलिये क्योंकि हर सिख पहले पन्थ की तरफ़ वफ़ादार होगा और दूसरों के सामने सर झुकाने का अर्थ गुरु गोविन्द सिंह के झण्डे को नीचा करना होगा! हालांकि यही चीज सिखों को अपरमित शक्ति देती है और उन्हें मुसीबतों का सामना करने के लिये तय्यार करती है, लेकिन उनकी यही भावना ग़ैर सिखों से उनका समझौता नहीं होने देती। वे अपना ही बोलबाला चाहते हैं। धार्मिक मामलों में तो यह ठीक है किन्तु राजनीति या दूसरे दुनियवी मामलों में सबके साथ मिलकर काम करना होता है। वहाँ दूसरे सम्प्रदायों का सहयोग ज़रूरी हो जाता है। राजनीति में असहयोग की भावना सफल नहीं होती। वहाँ दूसरों की सुविधाओं और रायों का ख़याल रखना पड़ता है। दूसरों के साथ सुलह करने में तत्पर रहना पड़ता है। पिछले कई बरस पहले सिखों ने 'गुरुमत' से यह तय किया था कि वे गुरुद्वारा बिल पर उस वक्त तक सरकार से समझौते की कोई बात न करेंगे जब तक सब सत्याग्रही कैदी पहले रिहा न कर दिये जाँय। इसे लेकर मतभेद पैदा होगया। सिख नेता इस प्रस्ताव की व्यर्थता को समझते थे पर गुरुमत के खिलाफ जाने की उनमें हिम्मत न थी। नतीजा यह हुआ कि बहुत तकलीफें उठाने के बाद सिख नेताओं ने दूसरों की मारफ़त समझौते की बात शुरू की। सरकार से जो चुपके चुपके सुलह की गई वह गुप्त रखी गई। सुलह की शर्तें नेताओं को तो मालूम थीं पर जनता को वे इसलिये नहीं बताई गईं कि उनके गुरुमत के विरुद्ध नेताओं ने सुलह की थी। सिख नेताओं में इतनी हिम्मत न थी कि वे जनता का खुल्लमखुल्ला सामना करते।

इस दिक़्क़त से निकलने का अब एक यही तरीका है कि मौजूदा हालत में सिर्फ़ धार्मिक मामलों में गुरुमत लिया जाय और राजनैतिक मसलों को सुलह सफ़ाई से हल किया जाय। इस फ़ैसले के लिये दो साफ़ वजहें हैं। एक यह कि जिन दिनों पन्थ कायम हुआ था तब से अब राजनैतिक दृष्टिकोण बिलकुल बदल गया है। तब खालसा आज़ाद थे। ऊपर ईश्वर था और नीचे पन्थ था, दोनों के बीच में दखल देने वाली कोई दुनियवी ताक़त न थी। आज कुछ सिख ब्रिटिश हुकूमत पसन्द करते हैं और बहुत से स्वराज चाहते हैं। किन्तु स्वराज का मतलब ख़ाली सिखों का राज न होगा बल्कि समस्त हिन्दुस्तानियों का राज होगा जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और सिख होंगे। उस ज़माने में किसी भी क़िस्से पर हिन्दू, सिख या मुसलमान आज़ादी से हुकूमत कर सकते थे लेकिन आज राष्ट्रीयता का अर्थ बदल गया है जिसके अनुसार अपने सम्प्रदाय के अलावा दूसरे सम्प्रदायों को भी अधिकार दिलाने के लिये संघर्ष करना है। आज बहुत से सवाल ऐसे हैं जो महज़ सिखों के नहीं रहे बल्कि सभी सम्प्रदायों के बन गये हैं। मिसाल के तौर पर पञ्जाबी भाषा का प्रश्न जिसकी हिफ़ाज़त के लिये आज हिन्दू, मुसलमान सिख सबको सम्मिलित प्रयत्न करना चाहिये। एक बार एक ब्राह्मण ने शिकायत की कि उसकी बीवी कुसूर का नवाब हर ले गया। इस पर अकाल तख्त पर सिसल इकट्ठा हुये और उन्होंने इस अन्याय का बदला लेने और ब्राह्मण को वापस लाने के लिये एक जत्था भेजा। आज अगर कोई ऐसी बात हो तो मामला पुलिस के सुपुर्द करना होगा। इस तरह के मामले यदि पन्थ हाथ में लेता तो सरकार के साथ उसके निरर्थक संघर्ष होंगे। लिहाज़ा नेताओं का यह फ़र्ज़ है कि वे सिख जनता को बतायें कि अब ज़माना बदल गया है और राजनैतिक आदर्श भी बदल गये हैं। इसलिये इस परिवर्तन के अनुसार सिख जनता को अपने पन्थ के संगठन में भी परिवर्तन करने की ज़रूरत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विद्याः समस्ताः तव देवि भेदाः

डाक्टर श्री भगवानदास

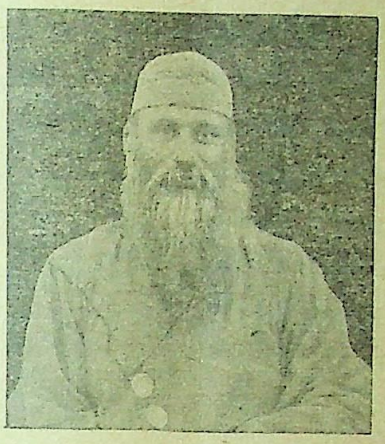

मुन्शी महेशप्रसादजी, एम० ए०, मौलवी-फ़ाज़िल, अरबी फ़ारसी के पंडित, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी में फ़ारसी के प्रोफ़ेसर हैं। जो फ़ारसी इस समय ईरान देश में बोली जाती है उसका रूप, पुरानी पुस्तकी फ़ारसी की अपेक्षा कैसा है, इस को जानने के लिये, कुछ वर्ष हुए, आप ईरान भी गये थे। इनकी बेटी श्री कल्याणी देवी की यह श्रद्धा हुई कि पिताजी ने अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी पढ़ी, घर में संस्कृत भी होनी चाहिये, मैं संस्कृत पढ़ूं, और संस्कृत का जो उद्गम स्थान वेद है उसको देखूं। काशी के गवर्मेंट संस्कृत कालिज की प्रथमा परीक्षा, वेद में, 'प्राइवेट स्टडी' से, अपने घर ही पर पढ़कर, अभी पिछली परीक्षा, मार्च-अप्रैल, १९४५ ई०, के समय इन्होंने भी दी, और उसमें उत्तीर्ण हुईं। परीक्षा में विविध विषयों के विद्यार्थी सब मिलकर, प्रायः पांच सहस्र बैठे थे; वेद के केवल पैंतीस थे, और उनमें कन्या परीक्षार्थिनी केवल एक ही, कल्याणी देवी थीं। पैंतीस में केवल तेरह पास हुए, और उनमें भी कल्याणी देवी थीं। इससे इस बेटी की विद्या, श्रद्धा, परिश्रम और बौद्धिक योग्यता का अनुमान किया जा सकता है।

वेद में मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण होने से उत्साह बढ़ना स्वाभाविक था। पर पाठ्यक्रम कुछ कठिन था, 'प्राइवेट स्टडी' से सुसाध्य नहीं था, इसलिये इनकी इच्छा हुई कि काशी-हिंदू-विश्व-विद्यालय के 'धर्म-विज्ञान-विभाग' नामक 'कालेज आफ़ थियालाजी' में, जहां नियम से वेद पढ़ाया जाता है, नाम लिखाऊं और पढ़ूँ। किन्तु उस विभाग के अध्यापकों ने निश्चय किया कि स्त्री मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है; ब्राह्मणों, क्षत्रियों को भी नहीं, कि पुनः कायस्थ को। (श्री महेशप्रसादजी, 'जात्या' कायस्थ हैं, यद्यपि 'जीविका कर्मणा वर्णः' के सिद्धांत को माननेवालों के मत से, अध्यापकी वृत्ति के हेतु वे 'ब्राह्मण' होते हैं) 'धर्म विज्ञान विभाग' में पढ़ने के लिये, कल्याणी देवी के प्रार्थना-पत्र का प्रतिक्षेप हुआ। श्री महेशप्रसाद ने ऊँचे अधिकारियों से लिखा-पढ़ी की, किन्तु वह प्रतिक्षेप बना ही रहा।

यह कथा सुझसे श्री महेशप्रसादजी ने कही। मैं काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय का सर्वथा शुभचिन्तक हूँ, इसलिये समझता हूँ कि पत्रों में इस वृत्त का प्रकाश होना आवश्यक है। जिन हिन्दू पुरुषों और स्त्रियों ने दो-ढाई करोड़ रुपया देकर इस काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को बनवाया और खड़ा किया है, और जो अब भी उसका भरण-पोषण कर रहे हैं; तथा अन्य हिन्दू स्त्री-पुरुष जो धन से नहीं तो अन्य आवश्यकीय प्रकारों और सामग्रियों से इसको ज्ञानदान, प्राणदान, कर रहे हैं; वा शुभचिन्तन और प्रशंसा और कीर्त्ति विस्तारण से ही सहायता कर रहे हैं, इन सब सज्जनों को इस विषय पर गम्भीर विचार करना चाहिये कि यह विश्वविद्यालय, हिन्दू-समाज और हिन्दू धर्म के उत्कर्ष के लिये बनाया गया या नहीं, और यदि इसी आकांक्षा से बनाया गया, तो हिन्दू स्त्री मात्र का इस प्रकार से तिरस्कार और अपमान होने से, धर्म का उत्कर्ष होगा या अपकर्ष; स्त्रियों के लिये वेद के अध्ययन का निषेध उचित है या नहीं।

स्त्री ऋषियों ने वेद के कतिपय सूक्त बनाए हैं; यथा—रोमशा ब्रह्मवादिनी, लोपामुद्रा, विश्ववारा आत्रेयी, शश्वती आंगिरसी, अपाला आत्रेयी, श्रद्धा कामायनी, प्रभृति। वाल्मीकिजी ने रामायण में लिखा है कि रामजी की माता कौसल्या देवी, दैनन्दिनि अग्निहोत्र में स्वयं वेद मन्त्रों का उच्चारण करके आहुति देती थीं। उपनिषदों में, महाभारत में कई ब्रह्मवादिनी स्त्रियों के नाम आये हैं। इसी विश्वविद्यालय के ही ('प्राच्य विद्या विभाग' के पूरक) 'अर्वाच्य विद्या विभाग' में जिसमें बी० ए०, एम० ए०, डाक्टर आदि पदवियों के लिये शिक्षा दी जाती है, संस्कृत के पाठ्य विषयों में वेदों के भी कुछ भाग रहते हैं; और इनको स्त्री अध्येत्रियां भी पुरुष अध्येताओं के साथ पढ़ती ही हैं। और भी, दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिकाओं में जो लेख निकलते हैं, उनमें, संस्कृतज्ञ विज्ञ लेखक अक्सर वेदों के एक दो मन्त्रों का भी उद्धरण करके उनकी समयोचित उपयोगिनी व्याख्या भी करने लगे हैं। इन



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लेखों को साक्षर स्त्रियाँ भी पढ़ती ही हैं; और इस सबसे वेद की चर्चा, उसके शब्दों की उचितानुचित व्याख्याओं पर विचार, उसकी महिमा, देश में फैलती ही है, जो सर्वथा अनुमोदनीय है।

जहाँ तक मुझे विदित है, किसी श्रुति स्मृति में स्पष्ट शब्दों में नहीं लिखा है कि स्त्री को वेद पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार नहीं है। केवल एक श्लोक इस सम्बन्ध में, मनु के प्रचलित पाठ में मिलता है। दैव जाने वह कब पीछे जोड़ा गया। क्योंकि आदि मनुस्मृति में तो कदापि रहा ही न होगा, जब स्त्री-ऋषियां वेद के मंत्र बनाती थीं। वह श्लोक यह है,—

अमंत्रिका तु कार्या इयं
स्त्रीणां आवृद् अशेषत;
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां
संस्कारो वैदिकः स्मृतः।

"स्त्रियों के संस्कार, जातकर्म, नामकरण, अन्न-प्राशन आदि, वैदिक मन्त्रों के बिना किये जायं, केवल एक संस्कार, विवाह, मंत्रों सहित हो"। स्पष्ट ही आपद्धर्म है, और स्त्री शिक्षा के उच्छिन्न प्राय हो जाने के समय में, स्मृति में जोड़ दिया गया होगा।

यों तो प्रचलित स्मृति पाठ में यह भी आज्ञा मिलती है कि यदि किसी शूद्र के कानों में वेद की ध्वनि अचानक भी पड़ जाय तो उन अभागे कानों में तत्काल गला कर खौलता सीसा या लोहा भर देना चाहिये! क्या कोई भी भद्र पंडित-जन इस राक्षसी आज्ञा का समर्थन करता है? जहाँ वेद पाठ होता है वहाँ शूद्र भृत्य आदि भी परिचर्या के लिये फिरते ही रहते हैं। ऐसे श्लोकों को क्षेपक ही समझना चाहिये। कवश ऐलूष नामक शूद्र के भी बनाये हुए वेद मंत्र हैं।

अब, अवसाद की अवस्था की इन उक्तियों से ध्यान हटाकर, मनु के दूसरे उदार, उदात्त, उद्दाम, उदग्र शब्दों पर सु-ज्ञ, वि-ज्ञ सत पंडितों को ध्यान देना चाहिये, जिसमें आपत्काल हटे, और सम्पत्काल और सम्पद्धर्म पुनः आवें।

उपाध्यायान् दश आचार्यः,
शताचार्यान् तथा पिता,
सहस्रं तु पितॄन् माता,
गौरवेण अतिरिच्यते।

जामयो यानि गेहानि
शपन्ति अप्रेतिपूजिताः,
तानि, कृत्याहतानि इव
विनश्यन्ति समन्ततः।

"दश उपाध्यायों से बढ़कर आचार्य, सौ आचार्यों से बढ़कर पिता, हजार पिताओं से बढ़कर माता, गौरव में, गुरुत्व में, आदरणीयता में भी, और बालकों के जीवन के आदिम वर्षों की शिक्षकता में भी, होती है। जिस घर को अ-प्रति-पूजित, अधिक्षिप्त, अवमानित स्त्रियाँ शाप देती हैं वह सर्वथा नष्ट हो जाता है"। क्या किसी को इसमें सन्देह है कि इधर सैकड़ों वर्ष से भारत की दुर्दशा जो बढ़ती ही गयी है, उसमें एक मुख्य हेतु स्त्रियों का तिरस्कार, और उनके साथ घोर अनाचार और दुराचार है? क्या यह स्त्री-जाति का घोर अपमान नहीं है कि वेद छूने का अधिकार उनसे छीन लिया जाय?

हनुमानजी से, पहिले समागम में, उनकी बातें सुनकर, आश्चरित होकर रामजी ने लक्ष्मणजी से कहा—

बहु व्याहरता अनेन
न किंचित् अपशब्दितं;
न अन् ऋग्वेद-विनीतस्य,
न अ-यजुर्वेद-धारिणः,
न अ-सामवेद विदुषः,
एक्यं एवं प्रभाषितुं।

"इन्होंने बहुत सी अच्छी-अच्छी बातें कहीं; एक भी शब्द अशुद्ध नहीं कहा; बिना ऋक्, यजुः, सामवेदों को अच्छी तरह जाने, कोई ऐसा बोल नहीं सकता"।

'बानर' को तो वेद का पंडित होने का अधिकार है, किन्तु 'नर' की स्त्री 'नारी' को नहीं! इस क्षुद्र बुद्धि को क्या कहा जाय! इसी का फल यह है कि 'वैदिक तो पण्डित नहीं, पण्डित तो वैदिक नहीं'; आभाणक प्रसिद्ध हो गया है,

यत्र पंडिताः तत्र वैदिकाः,
यत्र वैदिकाः तत्र पंडिताः
यत्र चोभयं तत्र नोभयं,
यत्र नोभयं तत्र चोभयं।

केई बहुत चतुर होशियार धूर्त लोग कहते हैं, "जहाँ पण्डित उपस्थित हो वहाँ हम शुष्क वैदिक बन जाते हैं, जहाँ वैदिक हों वहाँ पण्डित बन जाते हैं; जहाँ दोनों न हों वहां हम अनपढ़ बन जाते हैं; जहाँ दोनों न हों वहाँ पण्डित भी वैदिक भी दोनो बन जाते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इस प्रकार से भूले भुलाये, 'पण्डितों' से ही तिरस्कृत 'वैदिकों' के मृतप्राय वेद को दयानन्द स्वामी ने पुनः प्राण दान दिया। उन दयानन्द का, इसी काशी में, प्रायः पैंसठ-सत्तर वर्ष हुए दुर्गाकुण्ड के पास एक उद्यान में उस समय के राग-द्वेष-अंध-'पण्डितों' और उनके विद्यार्थियों अनुयायियों ने, ढेला, पत्थर, ईंटों की वर्षा से सत्कार किया। 'गोपनीय और लोपनीय और मारणीय वेदों की रक्षा इन्होंने क्यों की, इसको नया प्राण क्यों दिया', स्यात् इसी क्रोध में इनको ढेला-वर्षा का दण्ड दिया गया। ऐसों ही के लिए उपनिषत् में कहा है।

अविद्यायां अन्तरेवर्त्तमानाः,
स्वयं धीराः पंडितम्मन्य मानाः,
जंघन्यमानाः परियंति मूढाः,
अन्धेनैव नीयमानाः यथान्धाः।

"घोर अविद्या में गिरे हुए, अपने को धीर वीर बड़ा पंडित मानते हुए, पराये विदेशियों विधर्मियों से मदर्थित और आहत होते हुए, स्वयं अन्धे होकर दूसरों को अन्धा बनाकर उनको इधर-उधर चला कर गड्ढों में गिरा रहे हैं।"

काशी-हिंदू-विश्वविद्यालय के हितैषियों को यह अधिकार, यह 'हक' प्राप्त है कि वे उस विद्यालय से आशा करें कि उसमें से दिन-दिन विविध सद्ज्ञान का प्रकाश और सद्भावों और ऊँचे आदर्शों की प्राणमयी ऊष्मा चारों ओर हिन्दू समाज की उन्नति में उत्तम सहायता देने के लिए फैले। न यह दीपक के नीचे अन्धकार, और दीपक के सिर पर, "धूम्र-धियां", धूमिल बुद्धिवालों की बुद्धि के धुएँ का बादल हो, और हिन्दू समाज को अधिकाधिक भटकावे और गड्ढों में गिरावे। 'विश्वविद्यालय' का अर्थ है सब विद्याओं का वास स्थान; वह भी 'हिन्दू', वह भी काशी में प्रतिष्ठित; जो काशी कम से कम पांच सहस्र वर्ष से भारत की मुख्य विद्याधानी हो रही है; वहां से भी यदि सद्ज्ञान और सद्बुद्धि का प्रचार नहीं हुआ तो कहां से होगा?

जो भी कोई मुसलमान लड़की कुछ भी साक्षर है; वह कुरान की कुछ 'आयतें' (मन्त्र) अवश्य ही जानती है; कितनी ही मुसलमान स्त्रियां तो 'हाफ़िज़' होती हैं, अर्थात् समग्र कुरान (मुसलमानों का वेद) उनको 'हिफ़्ज़'; (कंठस्थ) होता है; और 'नमाज़' (उनकी गायत्री) को तो सभी मुसलमान, क्या स्त्री, क्या पुरुष, जानते हैं और प्रतिदिन कई बेर पढ़ते हैं। ईसाइयों में, पुरुषों से अधिक स्त्रियां 'बाइबिल' (ईसाई वेद) को पढ़ती हैं, और मिशनरियों, (ईसाई धर्म प्रचारकों) में कितनी ही विदुषी स्त्रियां काम कर रही हैं। ऐसी ही बातों का फल है कि इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म का दिन दिन विस्तार, और हिन्दू धर्म का संकोच होता जा रहा है। हिन्दू जनता को, हिन्दू-विद्यालय के सहायकों, शुभचिन्तकों को, इस ओर सावधान होना चाहिये, और चाहिये कि इस विश्व विद्यालय के पंडितों को समझायें कि समय को पहचानिये और समयानुसार भारत के हितकर कार्य कीजिये। हिन्दू पुरुष ही ऐसे कितने हैं जो वेदों को पढ़ने की इच्छा करते हैं? स्यात् दो-चार लाख में एक कभी कदाचित्। बीसियों लाख में कन्या ने इस ओर उत्साह किया, तो उसका तो बहुत हर्ष से स्वागमन और प्रोत्साहन करना चाहिये, बहुत प्रीति और प्रसन्नता से उससे कहना चाहिये, "आओ बेटी!, निश्चय वेद पढ़ो, वेदांग पढ़ो, जितना चाहें; वह दिन फिर से आवे भी तो, कि इस देश में पुनः लोपामुद्रा, अरुन्धती, गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, अपाला देख पड़ें!"

काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय की मुद्रा (मुहर) में 'सरस्वती' देवी का चित्र बना है; सरस्वती देवी को वेद पढ़ने का अधिकार है या नहीं? 'सरस्वती' तो 'वेदमाता' कहाती हैं; वेदों को छूने का उनका अधिकार है या नहीं? हिन्दुओं के ज्ञान की देवता सरस्वती स्त्री; धन-सम्पत्ति शोभा-ऐश्वर्य की देवता लक्ष्मी स्त्री; अन्न प्राण-बल सौन्दर्य पराक्रम-शौर्य की देवता गौरी अन्नपूर्णा-दुर्गा स्त्री; फिर हिन्दू पण्डित, स्त्रियों की अवमानना क्यों करें? जापान और रूस की स्त्रियों का यश आपके कानों तक क्या नहीं पहुंचा? विगत महायुद्ध में उन्होंने पुरुषों से अधिक शौर्य वीर्य के कार्य किये। क्या आपके मनमें यह वाञ्छा कभी नहीं उठती कि भारत में भी ऐसी स्त्रियां उत्पन्न हों? नवरात्र में बड़े चाव बड़े भक्ति-भाव से आप चण्डी पाठ करते होंगे; वह पाठ तो स्त्री की ही महिमा का वर्णन है न? जिस वेद को पढ़ने का निषेध आप स्त्रियों को करते हैं, वह वेदत्रयी स्वयं स्त्री 'भगवती' है,

शब्दात्मिकां सुविमर्ग्यजुषां निधान उद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नां, देवि! त्रयी भगवती, भवभावनाय; वार्त्ताऽसि सर्वजगतां परमार्त्तिहंत्री। और स्मरण कीजिये; दुर्गापाठ करते हुए आप स्वयं बहुत नम्र भाव से पढ़ते होंगे कि सब विद्या, सब कला और सब स्त्रियां देवी की ही विभूतियां हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विद्याः समस्ताः तव देवि !, भेदाः,
स्त्रियः समस्ताः सकलाः जगत्सु;
त्वया एकया पूरितं अम्बा एतत्;
का ते स्तुतिः स्तव्य परा परोक्तिः ।

'हे देवि ! सब विद्या, सब कला, और सब स्त्रियां आप ही की विभूतियां हैं; आपसे जगत् व्याप्त है; स्तुति तो तब की जाती है जब स्तव्य से स्तोता और स्तोत्र भिन्न हों 'पर' हों, जब आप ही सब कुछ हो, और आप से भिन्न कुछ है ही नहीं, तो क्या स्तुति, किसकी कौन करे !'

## स्त्रियों का वेद पाठ

ऋग्वेद में आठ ऋचाओं का देवी सूक्त (१० म, सूक्त १३५) जैसा ओजस्वी है वैसा ओजस्वी स्यात् ही कोई दूसरा सूक्त हो। इस 'सु उक्त' को किसने कहा ? अंभृण महर्षि की दुहिता वाक् नाम की ब्रह्मविदुषी ने, परमात्म शक्ति से अपने तादात्म्य का, ऐक्य का अनुभव करती हुई, महाभाव से भावित होकर कहा—

ॐ अहं रुद्रेभिः वसुभिः चरामि,
अहं आदित्यैः उत विश्व देवैः,
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्मि,
अहं इन्द्राग्नी, अहं अश्विनोभा ।१।...
अहं एवं वात इव प्रवामि,
आरभमाणा भुवनानि विश्वा;
परो दिवा पर एना पृथिव्या
एतावती महिना सम्बभूव ।८। ॐ'

ॐ 'मैं ही रुद्र, वसु, आदित्य, विश्वेदेव, मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि दोनों अश्विनी, सबका रूप धारण करके विचरती हूं। मैं ही वायु के रूप से बहती हुई सबके प्राण का पोषण करती हूं। मैं ही सब भुवनों, जगतों, विश्वों को रचती (और मिटाती) हूँ। और यह सब करती हुई भी, इस पृथ्वी और आकाश से और इन दोनों में जो कुछ है उस सबसे परे भी हूं।'

इन सब प्राचीन सिद्धान्तों का स्मरण कीजिये और बेटियों को आदर से, दया से, प्रीति से, प्रसन्नता से वेद पढ़ाइये।

[ साप्ताहिक 'संसार' के सौजन्य से ]

---

# गीत

श्री० महेन्द्र बी० ए०, विशारद

स्नेह की मधुधार हूं मैं !

जो निकट आए न मेरे देख कर ही रह गए बस,
व्यर्थ जाना, भ्रान्ति होगी मौन उर से कह गए बस,
जान पाए वे भला कब
प्रेम पारावार हूँ मैं !
स्नेह की मधुधार हूँ मैं !

एक ही लघु दृष्टि से जो देख मुरझाया शिथिल मुख,
देह को दुर्बल समझकर मुड़ गए आए न सम्मुख,
जान पाए वे भला कब
शक्ति का संसार हूँ मैं !
स्नेह की मधुधार हूँ मैं !

जो लगा अनुमान मेरा शुष्क, नीरस, एक पल में,
मौन मुझको देखकर जब था दुखी पीड़ित विकल में,
जान पाए वे भला कब
बीन की झंकार हूँ मैं !
स्नेह की मधुधार हूँ मैं !

जो उपेक्षा की नज़र से देख मुझको; नाव लेकर,
ज्वार में जा फंस गए, अब हंस रहा है सिंधु जिन पर
जान पाए वे भला कब
मुक्ति की पतवार हूँ मैं !
स्नेह की मधु धार हूं मैं !

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# राष्ट्रभाषा का रूप

आचार्य श्री काका कालेलकर

राष्ट्रभाषा के आन्दोलन से कई लोग घबरा गए हैं। काफी मुसलमान भी घबरा गये हैं। और जिनके बीच राष्ट्र-भाषा का प्रचार हो रहा है उन प्रान्तीय भाषा भाषी लोगों में से चन्द लोग अपनी अपनी प्यारी मातृभाषा पर खतरा देखकर घबरा उठे हैं। इसलिए फिर से एक बार उनकी शंका निवृति करनी चाहिए।

हम जो राष्ट्र भाषा का प्रचार करनेवाले हैं उनकी भी अपनी अपनी जन्मभाषा यानी स्वभाषा है। उसे शुद्ध रखने का, उसकी परम्परा संभालने का और उसका साहित्य समृद्ध करने का हम भी प्रयन्त करते रहते हैं। मराठी का ही उदाहरण लीजिये। ब्रिटिश राज के प्रारम्भ के दिनों में जब मिशनरियों ने मराठी द्वारा अपना धर्म प्रचार करने के लिए उस भाषा में बोलना और लिखना शुरू कर दिया तब उन्होंने मराठी का स्वरूप बहुत कुछ बिगाड़ा। उस समय हम लोगों ने मिशनरियों का ऐसा घोर विरोध किया कि उन्होंने फिर से मराठी के प्रति वैसा अपराध करने की हिम्मत नहीं की।

गुजराती में भी जब कभी किसी ने गुजराती की शैली बिगाड़ी है तब गुजरात के लोगों ने अपनी भाषा शुद्धि के लिए कुछ न कुछ आवाज़ उठाई है।

अतः हम लोग हिन्दी की स्वाभाविक शैली को बिगाड़ने का प्रस्ताव हरगिज़ नहीं करेंगे। हिन्दी साहित्य की जो परम्परा तुलसीदास, सूरदास, कबीर, भूषण, रसखान, रहिमन आदि लेखकों के द्वारा प्रवृत्त हुई है, उसे तोड़ने का प्रयत्न हमारा कभी न होगा। भाषा हर एक जाति का आत्मिक धन है। भाषा शुद्धि का आग्रह चरित्र्य शुद्धि के आग्रह के समान ही है। हिन्दी साहित्य की परम्परा अक्षुण्ण रखने के लिए जो लोग प्रयत्न करते हैं उनके प्रति हमारे मन में हमेशा आदर रहा है। फुटकर बातों में उनका हमारा मत-भेद हो सकता है। हम अपनी दृष्टि उन्हें समझाने की कोशिश करेंगे। किन्तु उन्हें हम शत्रु तो नहीं समझेंगे। जब तक उनका और हमारा उपास्य देवता एक है तब तक उनके और हमारे बीच मनोमालिन्य कभी भी पैदा नहीं हो सकता। किसी रामभक्त से अगर मेरी न बने तो उसको फिर से जीत लेने का मेरे पास एक ही अच्छा उपाय है। वह यह कि मैं अपनी रामभक्ति और राम सेवा बढ़ाऊँ और विश्वास रक्खूँ कि रामकृपा से सब रामभक्त मेरे अनुकूल हो जायेंगे।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के शिमला-अधिवेशन में साहित्यक हिन्दी के स्वरूप की जो व्याख्या की गई उसे मैंने सच्चे हृदय से स्वीकार किया था, मैंने उसे समझौते के तरीके पर स्वीकार किया था नाराज़ी से नहीं। मैं यह समझाने की कोशिश करता था कि जो वस्तु स्वयं सिद्ध है उसकी व्याख्या करने की ज़रूरत नहीं। राष्ट्रभाषा की शैली और साहित्यिक हिन्दी की शैली में जो भेद रहना स्वभाविक है उसे हम समझ ज़रूर लें किन्तु उस पर ज़ोर देकर दोनों के बीच नाहक विरोध का वायु मण्डल न पैदा करें। उससे तो अन्तर बढ़ेगा। ख़ैर शिमला में दो व्याख्यायें स्पष्ट तो हुईं, किन्तु हम एक दूसरे से दूर न गये, कुछ निकट ही आये।

मराठी, गुजराती, बंगाली आदि भाषायें जैसे संस्कृत कुटुम्ब की हैं, उसी प्रकार हिन्दी भी संस्कृत कुटुम्ब की ही है। संस्कृत भाषा संस्कार, समृद्धि और विकास की क्षमता की दृष्टि से दुनिया की प्राचीन या अर्वाचीन किसी भी भाषा से कम नहीं है। जो विरासत हमें मिली है उस पर हमें अभिमान है। संस्कृत का द्रोह हम से कभी न होगा। अगर हमने मध्य-काल में अन्धे बनकर देववाणी का प्रचार न रोका होता तो हमारे देश की आज जैसी दुर्गति हुई है वैसी न हुई होती। प्राचीन ब्राह्मणों ने जब सामान्य जनता को संस्कृत से वंचित रक्खा, और उस भाषा को कृत्रिम रूप दिया तभी लोक सेवकों को लोकभाषाओं का सहारा लेना पड़ा। संस्कृत वाणी जब से देववाणी हो गई तभी से वह दिवंगत भी हो गई।

मनुष्य जिस प्रकार अपने पुत्रों के द्वारा नया जन्म और नया यौवन प्राप्त करता है उसी प्रकार हिन्दी, बङ्गला, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलगु, मलयालम आदि भाषाओं में संस्कृत को हम पुनर्जीवित देख सकते हैं। किन्तु इन भाषाओं ने संस्कृत से संस्कार तो प्राप्त किये परन्तु अपनी लोक सुलभता नहीं छोड़ी। यों देखा जाय तो हाथ, पांव, कान, नाक, आग, पानी आदि नित्य व्यवहार के शब्द संस्कृत से ही आए हुये हैं। हिन्दी तो क्या, सच्ची उर्दू भी संस्कृत जन्य शब्दों से भरी हुई है। जिन मुसलमानों ने और हिन्दुओं ने उर्दू से रूढ़ देशी शब्द हटाकर उनके स्थान पर अरबी फ़ारसी के शब्द बढ़ा दिये, उन्होंने उर्दू भाषा की और समाज की सेवा नहीं की है। उर्दू शुद्ध स्वदेशी भाषा होते हुए भी उसे स्वदेश के लोगों के लिए ही दुर्बोध बनाकर उन लोगों ने उर्दू की अनुपयोगिता



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और राष्ट्रीयता घटा दी। भाषा का सामर्थ्य दो तरह से व्यक्त होता है—उसकी संस्कार समृद्धि से और उसके प्रचलन के विस्तार से। हिन्दीवाले और उर्दूवाले अगर अपनी अपनी भाषा दिन पर दिन कठिन बनाते जायेंगे तो शायद ही इन भाषाओं की संस्कार समृद्धि बढ़े। (भाषा कठिन करने से उसकी संस्कार समृद्धि बढ़ती ही है ऐसा तो अभी सिद्ध नहीं हुआ है। अत्यन्त संस्कारी भाषा भी बहुत हद तक लोक सुलभ बनायी जा सकती है।) किन्तु भाषा जैसे जैसे कठिन होती जाती है वैसे वैसे उसका प्रचलन अवश्य ही कम होने लगता है।

भाषा का प्रचलन बढ़ाने के लिए दो सिरों से प्रयत्न होना आवश्यक है। एक तरफ़ से भाषा अत्यन्त सुलभ हो और दूसरी तरफ से लोग उसे भक्ति पूर्वक सीखने का प्रयत्न करें तभी भाषा का प्रचलन बढ़ सकेगा। आज कुछ लोगों की यह वृत्ति देख पड़ती है कि "राष्ट्रभाषा सार्वभौम बनाने के लिए हम तो एक भी नया शब्द नहीं सीखेंगे। जो भाषा हमें आती है उसी के अन्दर राष्ट्रभाषा को बिठा दो।" वे कहने लगे हैं कि साफ हिन्दी या उर्दू ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा है। 'जो मुसलमान हिन्दी, मराठी, गुजराती या बंगला सीखे हुये हैं वे जानते हैं कि साफ उर्दू से राष्ट्रभाषा का पूरा काम नहीं हो सकता। किन्तु ऐसे मुसलमान बहुत कम हैं। उत्तर भारत के मुसलमानों ने फ़ारसी, अरबी और अंग्रेज़ी के सिवाय दूसरी कोई भाषा सीखना ही मानो छोड़ दिया है। इसमें शायद उन्हींका सारा दोष नहीं है। ब्राह्मणों ने जहाँ अपने वैश्य, शूद्रों को भी संस्कृत से वंचित रखा वहाँ मुसलमानों के बारे में हम यह शिकायत कैसे कर सकते हैं? जिस तरह अंग्रेज़ लैटिन और ग्रीक सीखते हैं, पारसी झेंद भाषा सीखते हैं, बहुत से हिन्दू अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच, पोर्तगीज़ अथवा जर्मन सीखते हैं, उसी तरह मुसलमानों को चाहिये कि वे संस्कृत सीखें। अलीगढ़ में अथवा दक्षिण हैदराबाद में चन्द मुसलमान संस्कृत सीखते तो हैं किन्तु उनकी संख्या अभी बहुत थोड़ी है।

संस्कृत की बात छोड़ दीजिये। कम से कम हिन्दुस्तान की प्रान्तीय भाषायें तो मुसलमानों को अच्छी तरह सीखनी चाहियें। तिजारत करनेवाले, मिहनत, मजदूरी, खेती और हुनर पर गुजर करनेवाले मुसलमान प्रान्तीय भाषा सीखते हैं। क्योंकि उनकी जड़ें समाज के अन्दर पैठी हुई हैं। किन्तु जो लोग अंग्रेज़ी के सहारे और तनख़्वाह, पेन्शन, फ़ीस के सहारे समाज से अलग रह सकते हैं उन्होंने तो अंग्रेज़ी से ही अपना सारा व्यवहार चलाना सीखा है। स्वाभिमान को सन्तोष देने के लिये अरबी फ़ारसी से लदी हुई उर्दू को वे आश्रय देते हैं और अपने जैसे लोगों में ऐसी उर्दू का व्यवहार करते हैं। पंडिताऊ हिन्दी का भी क़रीब क़रीब यही हाल है।

ऐसे लोगों को जब तक समाज की पर्वाह नहीं है, लोक-सेवा की और लोक जागृति की चाह नहीं है, तब तक अंग्रेज़ी उनके लिये काफी है। साहित्य विकास के लिए भले ही वे हिन्दी के या उर्दू के भक्त हों उनसे राष्ट्र का या राष्ट्रभाषा का निर्माण होना नामुमकिन है। राष्ट्रभाषा की चर्चा अगर इतनी कठिन और कटु हो गई है तो उसका एक कारण ये लोग भी हैं।

हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा के बारे में आजतक हम चर्चा ही चर्चा करते रहे हैं। अब वह समय आ गया है जब कि अमली रूप से राष्ट्रभाषा का निर्णय करना पड़ेगा। इसलिए राष्ट्रभाषा के स्वरूप निर्णय के चन्द सिद्धान्त यहां पर इकट्ठे किये जाते हैं।

सबसे पहली बात यह है कि राष्ट्रभाषा के सङ्गठन पर देश के सब प्रभावशाली तत्त्व अपना अपना असर कर सकते हैं, तो भी इसमें किसी की ज़बरदस्ती नहीं चलेगी। कोई भाषा चलाने न चलाने की ज़बरदस्ती दुनिया भर के लोगों ने करके देखी है, लेकिन उसमें कोई कामयाब नहीं हुए। रोम के बादशाह और उनके कुटुम्बी लोग अपने गुलामों के सामने अपनी पवित्र लैटिन भाषा बोलते ही नहीं थे। अपनी श्रेष्ठ भाषा का उच्चारण अपवित्र लोगों के कानों में जाने से भाषा अपमानित होती है। यहूदियों में और हमारे देश के ब्राह्मणों में भाषा के बारे में यही वृत्ति थी कि हमारी भाषा दूसरा कोई न सुने, न सीखे, न पढ़े, न लिखे।

इसके बाद वह ज़माना आया जब अपनी अपनी ज़बान का साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा आदमियों को होने लगी। तुम अपनी भाषा छोड़ो और हमारी ही भाषा बोलो। ऐसा आग्रह लोगों से किया जाने लगा। बहिष्कार और अंगीकार दोनों नीतियां मनुष्यों ने चलाकर देखीं। दोनों नीतियों में गुण भी हैं और दोष भी हैं। किन्तु दोनों व्यर्थ सिद्ध हो चुकी हैं।

भाषा का प्रवाह प्रधानतया नदी जैसा है। उसके प्रवाह पर हम असर ज़रूर डाल सकते हैं किन्तु नहीं बना सकते। आइन्दा शायद बना भी सकें। अभी वे दिन नहीं आये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



राष्ट्रभाषा का सङ्गठन करने से पहले भाषा की दृष्टि से इस देश के इतिहास को देखना चाहिए। भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों का ख़याल करनेवाले जो त्रिकालज्ञ समाज शास्त्री हों वे ही राष्ट्रभाषा का निर्णय और निर्माण कर सकेंगे।

हमारे देश में प्रान्त प्रान्त में भिन्न भिन्न बोलियां अलग अलग चलती आई हैं। सारे देश में एक ही भाषा कभी थी इसका सबूत हमारे पास नहीं। इन सब प्रान्तीय भाषाओं को कुदरती, स्वाभाविक अथवा प्राकृत कहते थे। इन प्राकृत भाषाओं के जो निजी शब्द थे उनके लिए पुरुखाओं की संज्ञा थी 'देश्य'! (आज हिन्दुस्तान की सरकार ने वर्नाक्युलर के लिए एक स्वदेशी शब्द मांगा है। वर्नाक्युलर के लिए प्रान्तीय भाषाओं के लिए हमारा शब्द है 'देश्य' अथवा 'देशी'। जो भाषा परदेशी नहीं है अथवा संस्कृत, अरबी, फारसी जैसी क्लासिकल नहीं है, वह भाषा हिन्दुस्तान की देशी अथवा देश्य भाषा है।

इन सब प्रांतीय भाषाओं में एकता लाने की चेष्टा देश के संस्कारी नेताओं ने की। इस एकता लानेवाली संस्कार सम्पन्न सुसंस्कारित भाषा का नाम था "संस्कृत"।

संस्कृत भाषा नियम बद्ध थी, स्थिर थी, सर्वत्र चलती थी और उन दिनों वह आसान भी थी। वही हमारी राष्ट्रभाषा थी।

एक महत्व की बात हमें नहीं भूलनी चाहिये। संस्कृत जब तक आसान थी तब तक उसका असर हमारी सब प्रान्तीय भाषाओं पर हुआ। पुराण, धर्म शास्त्र, ज्योतिष, वैदिक और भक्ति-साहित्य—इन सब पर संस्कृत ने असर डाला है। संस्कृत ही हमारी स्वयं, सनातन और असली राष्ट्रभाषा थी। अगर हम संस्कृत के अथवा संस्कृत से बने हुए तमाम शब्दों को हिन्दुस्तान की भाषाओं से निकाल डालें तो हमारी सब भाषायें इतनी दरिद्र बन जायेंगी कि सारा राष्ट्र गूंगा हो जायगा। संस्कृत हमारे ही देश की भाषा है। हमारे ही पुरुखाओं ने इसे अपनाया और बढ़ाया। आज भी हिन्दुस्तान में संस्कृत का असर आबोहवा जैसा है। संस्कृत के शब्द अगर किसी भी भाषा से, सिर्फ इसलिये कि वे संस्कृत से आए हैं, निकाल डालने की कोशिश की जाय तो वह भाषा स्वदेशी नही रहेगी। देश के करोड़ों मुसलमान जिन शब्दों को जानते हैं और दिन रात बोलते हैं उनको हटाकर उनकी जगह अरबी फारसी के शब्द ला ला कर धर देने से मुसलमानों ने उर्दू का और समाज का कितना नुकसान किया है यह वे आज नहीं समझ सकेंगे। लोगों को जिनका परिचय नहीं है, ऐसे संस्कृत के शब्द भाषा में लाने का प्रयत्न जितना सदोष है उतना ही सदोष अरबी फारसी के शब्द लाकर देशी शब्दों को हटाना है। हिन्दुओं को हम कहते हैं कि आपको भूलना नहीं चाहिए कि हमारे देश में हमारे ही भाई करोड़ों मुसलमान हैं जिनके साथ जिसे वे समझ सकें ऐसी भाषा में आपको बोलना पड़ेगा। भाषा कोई ऐसा पीताम्बर नहीं है जिसका व्यवहार हम केवल धर्म-विधि में और पूजा के समय ही अपने लोगों के बीच कर सकें। भाषा तो जीवन विनिमय का साधन है। इसमें आदान प्रदान तो चलता ही रहेगा। मुसलमानों से भी हम नम्रता के साथ कहना चाहते हैं कि आप केवल देशी प्रत्यय, सर्वनाम और ऐसे थोड़े शब्द रखकर बाकी सबकी सब अरबी फ़ारसी अपनी उर्दू में भर देंगे तो फिर वह देशी बोली नहीं रहेगी। अंग्रेज लोगों ने अपनी अलग ही भाषा चलाई है क्यों कि उन्हें इस देश में बसना नहीं है। वे हमेशा यहाँ से जाने की तैयारी में ही रहते हैं। आपकी बात वैसी नहीं है। आपमें से बहुत से लोग कभी परदेश से यहां आये ही नहीं, यहीं के हैं। ईसाई लोगों के लिए जैसा यहूदी शास्त्र, ओल्डटेस्टामेण्ट है वैसा आपके लिये हिन्दू संस्कृति ओल्डटेस्टामेण्ट है। हिन्दू संस्कृति के पेड़ पर आप इस्लाम की क़लम लगा सकते हैं। अगर आप देशी संस्कृति को बिल्कुल छोड़ने की बात करेंगे तो वैसा करने का आपको अधिकार तो है किन्तु आप कर नहीं सकेंगे। यह मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध है। मानव संस्कृति का प्रवाह उस ढंग से कभी बहा नहीं है। स्वदेशी संस्कृति का पोषण लेकर ही आप इस्लाम को परिपुष्ट कर सकेंगे और हिन्दुस्तान में अपना जीवन समृद्ध और दृढ़ मूल कर सकेंगे। उर्दू आपमें से बहुत से लोगों की जन्म भाषा है। बाकी इतर प्रान्तीय मुसलमानों के लिए उन उन प्रान्तों की प्रान्तीय भाषा ही उनकी जन्म भाषा है। उस को हटाकर वह स्थान आप उर्दू को देने की कोशिश कर सकते हैं किन्तु वैसा करने के लिये बहुत बड़ी मिहनत करनी होगी और उतना करने के बाद भी आप यह महसूस करेंगे कि उससे आपने कुछ नहीं कमाया।

संस्कृत और फ़ारसी दोनों भाषाओं की संस्कार शक्ति अजीब है। पढ़े लिखे लोगों को चाहिये कि वे दोनों के साहित्य से लाभ उठावें। ये दोनों भाषायें एक दूसरे की दुशमन नहीं हैं, बल्कि दोनों बहनें हैं। जब यहां मुसलमानों का राज्य था तब बड़े बड़े लोग दोनों भाषाओं का अध्ययन करते थे। आज उर्दू और फ़ारसी का अध्ययन करनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


हिन्दू उत्तर हिन्दुस्तान में बहुत से पाये जाते हैं। किन्तु हिन्दी और संस्कृत का अभ्यास करनेवाले मुसलमान कितने हैं? और जो हैं वे इन भाषाओं से कितना लाभ उठा रहे हैं?

एक बात स्पष्ट है। हम किसी पर किसी क़िस्म की ज़बरदस्ती नहीं करना चाहते। जिनको भाषा का प्रवाह जिस तरफ़ खींचना हो खींच सकते हैं। भाषा तो राष्ट्र हृदय का प्रतिबिम्ब है। अगर हम अलग अलग ही रहना चाहते हैं और केवल अपनी ग़ुलामी के बन्धन से ही बँधे रहना पसन्द करते हैं, तो हमारी भाषायें आप ही आप हो जायेंगी और सारे देश का व्यवहार अंग्रेज़ी की ग़ुलामी क़ुबूल करके ही चलेगा।

मैंने अक्सर देखा है कि जो लोग राष्ट्रभाषा निर्माण में समझौता करना नहीं चाहते और अपनी ही तरफ़ खींचना चाहते हैं उनको अंग्रेज़ी भाषा की ग़ुलामी कम अखरती है। अथवा यों कहिये कि कुछ प्रिय ही लगती है। ऐसे लोग अक्सर प्रान्तीय भाषाओं को ख़तरा बताकर अपनी अंग्रेज़ी परायणता ढांकना चाहते हैं।

हम इतना देख चुके हैं कि हमारी राष्ट्रभाषा और हमारी प्रान्तीय भाषायें असल में संस्कृत कुटुम्ब की हैं। इसलिए दोनों में आसान और लोकरूढ़ संस्कृत शब्दों की बहुतायत है। जिनको यह बहुतायत क़ुबूल न हो उन्हें या तो हिन्दुस्तान में रहना ही क़ुबूल नहीं और अगर वे रहें भी तो जैसे अंग्रेज़ लोग जहाज़ पर सवार होने की तैयारी में ही हिन्दुस्तान में रहते हैं वैसा ही वे भी रहना चाहते हैं। हिन्दुस्तान में रहनेवाले लोगों का काम एक या अधिक प्रान्तीय भाषायें सीखे बिना चलेगा ही नहीं। हिन्दुस्तान के ऐंग्लो इंडियन लोगों ने आज तक यह बात स्वीकार नहीं की थी। अब वे भी वस्तु स्थिति समझने लगे हैं और अपना रुख़ बदलने लगे हैं।

हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि इस देश में हिन्दू संस्कृति को जैसा स्थान है वैसा ही इस्लामी संस्कृति को भी है। फ़ारसी, यहूदी, ईसाई आदि छोटी मोटी सब संस्कृतियों का भी इस देश में हिन्दू और मुसलमान संस्कृति जैसा ही स्थान है। इसके मानी ये होते हैं कि इन सब संस्कृतियों को विराट भारतीय संस्कृति का अङ्ग बनकर अथवा कुटुम्बीज़न बनकर रहना मंजूर है।

जो रोज़ उठकर आपस में लड़ना ही पसन्द करते हैं वे इस देश के बाशिन्दे नहीं। किन्तु देश के लिये शाप रूप हैं। हिन्दू और मुसलमान, शिया और सुन्नी, प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक, हिन्दू और ईसाई जैसे झगड़े हिन्दुस्तान में जो लोग चलाते हैं वे देशद्रोही हैं। भारतीय संस्कृति की दृष्टि से वे पाप करते हैं। उनका जीवन उनके लिए और देश के लिये एक अभिशाप है।

प्यारी राष्ट्रभाषा में हिन्दी के लोक रूढ़ सब के सब शब्दों का स्थान होना ही चाहिये। जनता जिन शब्दों को जानती है उनको राष्ट्रभाषा में रहने का पूरा पूरा हक़ है। फलाना शब्द उर्दू में नहीं पाया जाता इसलिये राष्ट्र भाषा में उसका प्रयोग नहीं करना चाहिए, चाहे हिन्दुस्तान के करोड़ों लोग उसे क्यों न जानते हों, ऐसा करने वाले आदमी ने राष्ट्रभाषा को पहचाना ही नहीं। राष्ट्रीय एकता तो वह चाहता ही नहीं।

उसी तरह उत्तर में अरबी फ़ारसी के जो शब्द लोगों में रूढ़ हो चुके हैं वे हिन्दी में आज कल नहीं लिखे जाते अथवा, वे परदेशी हैं इसलिये जो उनका बहिष्कार करना चाहते हैं वे भी राष्ट्रभाषा का रहस्य नहीं समझ पाये हैं। अरबी फ़ारसी के जो शब्द लोग आसानी से समझ सकते हैं वे सब शब्द राष्ट्रभाषा में आने के हक़दार हैं। हिन्दुओं को और ख़ासकर अहिन्दी प्रान्त के लोगों को बहुत से अरबी, फ़ारसी शब्द सीखने पड़ेंगे। मुसलमानों को सब को सब देशी भाषाओं में जो नये नये शब्द रूढ़ होने लगे हैं सीखने पड़ेंगे। यहाँ कायरपन नहीं चलेगा। हम चूँकि नहीं जानते हैं इस वास्ते फलाँ शब्द राष्ट्रभाषा में नहीं आ सकता ऐसा कहकर राष्ट्रभाषा का क्षीण और दुर्बल बनाने का किसी को अधिकार नहीं। भाषा के शब्द किसी को एक दिन में नहीं सीखने पड़ते। जीवन व्यवहार जैसे जैसे समृद्ध होता जाता है वैसे वैसे शब्द संग्रह भी बढ़ता है।

अब एक बात दक्षिण की ओर से हमें कहनी है। अगर राष्ट्रभाषा सारे देश की भाषा है, और सब के व्यवहार के लिये है, तो उत्तर भारत के लोगों को हमारी सहूलियत भी देखनी होगी। असमिया, बंगला और उड़िया भाषा का एक संघ है। सिंधी, गुजराती और मराठी का दूसरा संघ है। कन्नड़, तेलगु, मलयालम् का तीसरा संघ है। तामिल को भी इसीमें शुमार कर सकते हैं। इन भाषाओं में ऐसे बहुत से शब्द हैं जो उर्दू में पाये जाते हैं और कई से ऐसे भी शब्द हैं कि जो हिन्दी में पाये जाते हैं। लोगों के लिये ऐसे समान शब्द एक बड़ा सहारा है क्योंकि वे हमें सीखने नहीं पड़ते। उर्दू का अच्छा शब्दकोष और हिन्दी का अच्छा शब्दकोष लेकर इन दो से जो शब्द हमारी भाषा के लिये नज़दीक के हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridw

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हम अधिक संख्या में राष्ट्रभाषा में देखना चाहते हैं। क्योंकि हमारी दृष्टि से और देश की दृष्टि से भी इन शब्दों का राष्ट्रीयत्व ( सार्वदेशीय व्यवहार ) स्वतः सिद्ध है। राष्ट्रभाषा आपकी उत्तर भारतीय ही सही; हिन्दी-उर्दू का शब्द संग्रह लेकर हमें चलाना है यह भी सही है; इनमें से जो शब्द हमारे नज़दीक के हैं, परिचित हैं, और राष्ट्रीय हैं उन्हें ज़्यादा पसन्द करने का अधिकार भी तो हमारा है न?

अगर आप इसके विपरीत चलेंगे, और राष्ट्रभाषा को केवल उत्तरी स्वरूप देंगे तो हमारी और आपकी बनेगी नहीं। जिसे राष्ट्रभाषा के तौर पर हमारे सामने पेश करेंगे उसे हम प्रान्तीय या प्रादेशिक भाषा कहेंगे। हिन्दी को और उर्दू को आपस में समझौता करना पड़ेगा। उत्तरी भारत के हिन्दू मुसलमानों को यह ध्यान में रखना होगा कि उनके उत्तरी झगड़े हम दक्षिण में नहीं लाना चाहते उनको आज हम यह भी कह देना चाहते हैं कि सौ दो सौ वर्षों के अन्दर, अथवा उससे भी पहले राष्ट्रभाषा में वे ऐसे भी शब्द घुसे हुये पायेंगे जो दक्षिण की चार भाषाओं में सर्वसाधारण हैं। 'पानी' और 'जल' के साथ साथ राष्ट्र भाषा में नीरा शब्द भी चलेगा। 'सुपारी' और 'कसेली' के साथ 'अडक्की' भी आपको कहना पड़ेगा। हिन्दी में जिस तरह अरबी फ़ारसी के शब्द घुस गये, ब्रिटिश राज्य के कारण जैसे अंग्रेज़ी के शब्द हमारी सभी भाषाओं में घुस रहे हैं, वैसे ही हमारे बन्धुतापूर्ण सहयोग के कारण थोड़े बहुत द्राविड़ी शब्द भी राष्ट्रभाषा के अन्दर प्रवेश पा लेंगे। और लाचारी से नहीं केवल प्रेम से आप उनका स्वागत करेंगे।

एक तरफ़ राष्ट्रभाषा को सब प्रान्तीय भाषाओं के कर भार से हमें समृद्ध करना होगा और दूसरी तरफ से राष्ट्र व्यवहार सुलभ करने के लिये ऐसा एक शब्द संग्रह देश के सामने पेश करना होगा जो बुनियादी अंग्रेज़ी की तरह सब जगह चल सके और सब प्रकार के व्यवहारों में किसी भी प्रकार की कठिनाई न हो इतना वह समृद्ध हो।

भाषा का यह पींड या धड़ चाहे जितना पतला क्यों न हो, परन्तु मज़बूत हो। इसीमें से सब शाखाओं और प्रशाखाओं का विस्तार बढ़नेवाला है। यह बुनियादी हिन्दुस्तानी अथवा राष्ट्रभाषा का धड़ न तो उर्दू प्रधान बनाने से काम चलेगा न हिन्दी प्रधान बना देने से। बुद्धिमानी तो इसमें होगी कि बुनियादी हिन्दी और बुनियादी उर्दू के हज़ार हज़ार शब्द हम चुन लें और राष्ट्र से कहें कि समझने के लिये हर एक भारतवासी को ये दोनों शब्द संग्रह जानने होंगे। इस्तेमाल के लिए हर एक को अपनी अपनी सहूलियत के मुताबिक़ शब्द बरतने की आज़ादी होनी चाहिये। हर एक हिन्दुस्तानी का यह अनुभव है कि वह अंग्रेज़ी के जितने शब्द समझ सकता है उतने सब शब्दों का व्यवहार नहीं कर सकता। इसी तरह राष्ट्रभाषा के बुनियादी चार हज़ार शब्द अच्छी तरह जानते हुये भी मैं अपनी लिखा पढ़ी में हजारेक शब्द बिलकुल इस्तेमाल ही नहीं कर सकूँगा। इसमें किसी का नुक़सान नहीं। बुनियादी राष्ट्रभाषा की भी दो शैलियाँ होंगी। किन्तु सहूलियत यह रहेगी कि हर एक का दोनों शैलियों से समझने लायक परिचय अवश्य रहेगा। इसलिए एक का लिखना पढ़ना दूसरे के लिए समझना मुश्किल नहीं होगा। अपनी रीडरें और अन्य पाठ्य पुस्तकें हम ऐसी बनाएंगे कि दोनों शब्द समुदायों से तालिबइल्मों का अच्छा परिचय हो जाय और उनके लिये दोनों का व्यवहार भी आसान हो जाय।

राष्ट्रभाषा का सवाल हल करना हमारे लिये आसान होना ही चाहिए। जहाँ हमने ज़बरदस्ती छोड़कर वस्तु स्थिति को स्वीकार कर लिया वहाँ सुगम रास्ता निकल आएगा। [ लोकवाणी ]

---

# भावना !

कुमारी लक्ष्मीदेवी गोयल

जितने कण्टक हों जीवन के, पल भर में हों वे छिन्न मूल, जो है अशांति का ज्वार, मिले उसको सागर का शांत कूल;
वे सब पथ पर आ जायें जो, युग युग से निज गति गये भूल जो उलझ गये ये काँटों से, वे खिले रङ्ग में रँगे फूल।
मानव, जग के कण कण में बन प्रेम - ज्योति छाए! मानव, अपने मुखरित स्वर में, विजय गीत गाए!

---



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अनेकता में एकता

प्रो० विश्वनाथ प्रसाद, एम० ए०, बी० एल०, साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

[ १ ]

बहुत से फूलों को गूँथकर हम एक माला बना लेते हैं। फूल अनेक रहते हैं, पर माला एक। एक पतले धागे के द्वारा हम अनेक फूलों को एक कर देते हैं। इसके विपरीत यदि हम फूलों को एक करने के लिए उनकी पँखुड़ियों को मसलकर उन्हें छिन्न-भिन्न करके एक में मिला दें तो फूलों के दल तो एक साथ इकट्ठे हो जायँगे, पर माला तैयार नहीं हो सकेगी। माला के लिए फूलों का अस्तित्व मिटा देने की ज़रूरत नहीं। उनका विध्वंस करके एक करने की चेष्टा विफल होगी। ठीक यही बात जातीय जीवन के सम्बन्ध में भी है। जाति में सच्ची एकता स्थापित करने के लिये मालाकार की प्रतिभा चाहिये, जाति की सारी विभिन्नताओं को एक सूत्र में पिरोने की कुशलता चाहिए। आज हममें इसी चातुरी का लोप हो गया है। इसीलिए आज हमारे यहाँ इतनी अशांति, इतने उपद्रव हैं। हिन्दू-मुसलमान, शिया-सुन्नी, ब्राह्मण-क्षत्रिय, सवर्ण-अछूत आदि सभी परस्पर लड़ते-भिड़ते नज़र आते हैं। अतः इस संघर्षमय परिस्थिति में आज हमें यह समझने की ज़रूरत है कि हमारे पूर्वजों ने किस खूबी से हमारी बाहरी अनेकता में भीतरी एकता स्थापित की थी और हम भी किस तरह उसी तरीके से आज की समस्याओं का समाधान तथा देश की आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं।

शरीर सङ्गठन के अनुसार हिन्दुस्तान में प्रायः सात-आठ प्रधान जातियाँ पाई जाती हैं। चौदह-पन्द्रह ऐसी जातियां हैं जिनकी भाषा और साहित्य सब पृथक-पृथक हैं। डाक्टर कस्ट के अनुसार इस देश में कुल मिलाकर ५३१ भाषाएं और उपभाषाएं हैं। इतनी अधिक विभिन्नताओं के रहते हुए भी आप देश के जातीय जीवन के किसी भी पहलू को लें, आपको सभी के बीच एक मूलभूत एकता का दर्शन होगा। धर्म, समाज, साहित्य, सङ्गीत, कला, भाषा, वेश-भूषा आदि सभी क्षेत्रों में अनेकों भेदों के शोरगुल को चीरती हुई "एकोऽहं बहु स्याम्" की एक मधुर ध्वनि गूँजती हुई सुनाई पड़ेगी। इस ध्वनि को हमें अपनी संस्कृति का मूल-मन्त्र समझना चाहिये। इसके द्वारा हम सारी वसुधा को कुटुम्बवत् एक कर लेते थे। भारतवर्ष में शत्रु या मित्र के रूप में शक, हूण आदि कितने विदेशी लोग आए। फ़ारस, यूनान, सीरिया आदि जगह-जगह के लोग आए। पर आज वे सब क्या हुए? किसी का कुछ पता नहीं। जैसे सभी नदियाँ समुद्र में जाकर एक हो जाती हैं, उसी तरह ये सभी जातियाँ अपनी विशेषताओं को लिए हुए यहां आकर एक-रूप हो गईं। सब पर एक ही रंग चढ़ गया। आर्य-अनार्य सभी मिल गए। इसके फल-स्वरूप अनेक वर्ण बन गए, अनेक जातियाँ हो गईं। पर, मनस्वियों की दृष्टि में सभी वर्ण एक ही विराट पुरुष के भिन्न-भिन्न अङ्ग थे। ब्राह्मण को उसका सिर, क्षत्रिय को वक्षस्थल, वैश्य को उदर तथा शूद्र को पैर माना गया। जैसे किसी मनुष्य के लिए सभी अङ्ग आवश्यक हैं वैसे ही मानव-समाज रूपी विराट पुरुष के अस्तित्व के लिए इन सभी अङ्गों की एक समान आवश्यकता है। सभी का अपना अपना महत्व है; कोई किसी से कम नहीं। समाज सङ्गठन की दृष्टि मे इस बात को दृढ़ता के साथ स्वीकार किया गया। हिन्दुओं के किसी भी धार्मिक संस्कार के अनुष्ठान में इस सामाजिक साम्य भाव का दृष्टान्त मिलता है। नाई के बिना कोई विवाह सम्पन्न ही नहीं हो सकता। शव-दाह के लिए जो पवित्र आग जलाई जाती है वह किसके द्वारा? एक अछूत डोम के द्वारा। डोम के बिना अन्त्येष्टि-क्रिया नहीं हो सकती। इस तरह सामाजिक सङ्गठन में सबका महत्व कायम करके ऊँच-नीच का भेद-भाव दूर करने के लिए समदर्शिता का आदर्श उपस्थित किया गया। स्वयं भगवान् कृष्ण ने हमें बतलाया—

विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

पर आज अपनी नासमझी से भ्रम में पड़कर हम इस दिव्य उपदेश को भूल जातीय घृणा का बीज बोने लगे हैं।

इस विशाल देश की एक ओर से दूसरी छोर तक के प्रदेशों के अन्न-जल, जल-वायु आदि के प्राकृतिक भेदों को तो हम मिटा नहीं सकते, पर उनके निवासियों के हृदय से प्रान्तीयता की संकीर्ण दुर्भावना को दूर करने का उपाय हमने सोच लिया था। हमने सभी प्रदेशों की नदियों को पवित्र समझा और सभी प्रदेशों में ऐसे तीर्थों की स्थापना की जिनके दर्शन के बिना जीवन सार्थक नहीं हो सकता। अगर उत्तर की गङ्गा पवित्र नदी है, तो दक्षिण की नर्मदा कुछ कम नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

जब तक भिन्न-भिन्न तीर्थों का जल इकट्ठा नहीं हो तब तक किसी सम्राट का अभिषेक असम्भव था। इसी प्रकार देश के सभी पर्वत माने गए हैं, चाहे वे पूर्व के हों चाहे पश्चिम के, उत्तर के हों चाहे दक्षिण के।

"महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥"

सारे देश के प्रधान नगरों को एक समान पावन समझा गया।

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः॥

इस तरह प्रान्तों की अनेकता के बीच हममें मूलभूत एकता की भावना स्थापित हुई, जो आज भी अपने पुनीत प्रभाव के साथ हमारी तीर्थ यात्रा की धार्मिक प्रवृत्ति में बद्धमूल है। ऋषिकेश से रामेश्वरम् तक एक ही सांस्कृतिक तथा साहित्यिक भावना की अखण्ड धारा प्रवाहित है।

भाषा के सम्बन्ध में भी हम यही बात पाते हैं। भिन्न-भिन्न सुदूर प्रान्तों की भाषाओं में भेद होना स्वाभाविक ही है। पर चाहे काश्मीर का निवासी हो चाहे बङ्गाल का, चाहे मद्रास का पण्डित हो चाहे काशी का, देववाणी संस्कृत सभी के लिए एक समान आदरणीय हुई। शिल्प, संगीत, काव्य और जातीय उत्सव सब में कुछ ऐसी ही एकता की भावना पाई जाती है। प्रायः सभी कलाओं में देश में बसी हुई भिन्न-भिन्न जातियों की कलात्मक भावना का सुन्दर सामञ्जस्य है।

धर्म या मजहब के क्षेत्र में तो इस एकता के मन्त्र का इस अद्वैत भाव का प्रभाव और अधिक स्पष्ट है। बिना किसी खून खराबी के सबको एक उदार धर्म के स्नेह सूत्र में आबद्ध कर दिया गया है।

जब अपने ही देवता की बहु संख्या की ओर आर्य ऋषियों का ध्यान गया, तो उनके सामने स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि किस देवता की पूजा की जाय—"कस्मै देवाय हविषा विधेम।" ऋषियों ने चिन्तन करके इस शङ्का का समाधान किया। इन अनेक देवताओं को उन्होंने एक का ही भिन्न भिन्न रूप और नाम समझा—"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"। आर्यों के विष्णु एक प्रधान प्रकर्षशाली देवता थे। अनार्यों में कोई वाराह की पूजा करता था तो कोई नाग की। ऋषियों ने सहृदयता से विचार करके देखा कि अहा! उनके विष्णु भगवान् ही तो अनार्यों के बीच आकर वाराह भगवान् बन गए हैं। इस प्रकार वाराह भगवान् विष्णु के ही अवतार सिद्ध हुए। और प्राचीन नागदेव तो अपनी उदार प्रेम मणियों से समन्वित होकर विष्णु के परम प्रिय आधार शेषनाग ही बन गए।

जब भगवान बुद्ध ने वैदिक हिंसा का विरोध करके कुछ नए विचार उपस्थित किए तब धर्म की एक नई शाखा निकल पड़ी। पर हमने सोच-विचार कर उसे अपने ही विशाल धर्म-वृक्ष की एक डाल समझा। इतिहास-प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्द्धन शिव की भी पूजा करते थे बुद्ध की भी। मनीषियों ने दस अवतारों में बुद्ध की भी गणना करके भेद-भावना बिलकुल दूर कर दी। "केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे।" हमारी इसी नीति के कारण हमारे यहां के बौद्ध हमसे भिन्न नहीं रह सके, बल्कि अपने सारे सिद्धान्तों के साथ हममें ही दूध और मिश्री की तरह घुल-मिल गए। इस देश में उनकी स्वतन्त्र पृथक् सत्ता के लोप का वास्तविक कारण यही है।

जिस समय मुसलमानों से हमारा सम्पर्क हुआ उस समय भी हमारी वस्तु-भेद के भीतरी तत्व को पहचानने तथा उनके समीकरण की प्रतिभा निराप्राण नहीं हो गई थी। माना कि उस समय अज्ञान के कारण हमारी वह पुरानी शक्ति बहुत कुछ जीर्ण-शीर्ण हो चली थी। विदेशी मुसलमानों की बात कौन कहे, हम तो आपस में ही लड़ रहे थे। पर ऐसे दुर्दिन में भी हमारी वह पवित्र भावना अनेक साधु संतों की वाणी में फूट पड़ी। उनकी सूक्तियां भारतीय-साहित्य की अनुपम विभूति हैं। इस सम्बन्ध में कबीर और तुलसी, इन दो महात्माओं का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महात्मा कबीर ने निर्भय होकर बाहरी आडम्बरों का बेतरह खण्डन किया और बतलाया कि न हिन्दू सीधी राह पर थे, न मुसलमान—'दोनों जन राह बिगारिन भाई।'

यदि कबीर ने हिन्दू मुसलमानों के सांस्कृतिक समन्वय के लिये अथक प्रयत्न किया तो तुलसीदास ने रूढ़िग्रस्त हिन्दू समाज को एक उदार इकाई बनाने की चेष्टा की। हिन्दुओं के कलुषित कलह को उन्होंने एकीकरण की पुरानी नीति से दूर कर दिया। तुलसी ने हमारे मुँदे हुए मानस चक्षुओं को खोल दिया और हमें बतलाया कि जो शिव हैं वही राम हैं। राम के सेवक शिव के और शिव के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सेवक राम के हैं। इस तरह सदियों के झगड़े को तुलसी ने बड़े कौशल से बराबर के लिए तय कर दिया।* आज एक ही घर में माता को वैष्णव, तो पिता को शैव पाते हैं। इस विषय में सभी को अपनी-अपनी रुचि का अनुसरण करने की स्वतन्त्रता है। किसी में तनिक भी विरोध नहीं। सबमें प्रेम भाव पाया जाता है; क्योंकि यह सभी अभिन्न हैं। आज तुलसीदास जी आदि महात्माओं की चलाई हुई यह उदार धार्मिक भावना ही हिन्दू परिवारों में व्याप्त है।

मुसलमानों के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ अंशों में हम यही एकत्व-भाव पाते हैं। उधर सूरदास की प्रतिभा से कृष्ण के रूप में सौन्दर्य का समुद्र उमड़ पड़ा तो इधर मलिक मुहम्मद जायसी सरीखे सूफ़ी कवियों के प्रताप से साधारण जनता के दिलों में भी 'प्रेम की पीर' प्रदीप्त हो उठी। धीरे-धीरे करके हिन्दुओं और मुसलमानों का विद्वेष बिल्कुल दूर होगया। मुसलमानों में कई भावुक कृष्ण के भक्त बन गए। साहित्य में रहीम और रसखान ऐसे ही प्रेम के माते भक्त मुसलमानों के प्रतिनिधि हैं। ताज खुले शब्दों में गा उठी, "हौं तो तुरकानी हिन्दुआनी ह्वै रहौंगी मैं।" इस तरह इन दोनों धर्मों के अनुयायियों में एक ऐसी मौलिक एकता का भाव उमड़ उठा जिसका ध्यान करके हृदय से अनुरागमय उद्गार निकल पड़ता है—

"इन मुसलमान हरि जनन पर कोटिन हिन्दुन वारिए"।

इसी प्रकार भारतीय काव्य-क्षेत्र में हम आज पूर्वी भावना के स्रोत के साथ पाश्चात्य भावना का भी सुन्दर संगम देख सकते हैं। हमारे युग के सर्वश्रेष्ठ भारतीय कवि विश्व-वन्द्य रवि बाबू की कला स्वयं इस बात का प्रमाण है। हमारी इस समीकरण शक्ति, इस पवित्र समन्वय-भावना की जय हो!

[ २ ]

आज हमारे देश के किसी भी शुभचिन्तक और विचारक को यह देखकर अपार दुःख होगा कि हम हिन्दू और मुसलमान अपनी शताब्दियों से अर्जित एकता तथा समीकरण की परिपुष्ट भावना को भूले जा रहे हैं। आज हमारी दशा उस कस्तूरी मृग के समान हो रही है जो [illegible] कस्तूरी को भूलकर यतस्ततः चक्कर काटता हुआ म्रियमाण अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

कस्तूरी मृग-नाभि वसतु है
द्रुम तृन सूंघि मर्‌यो।

हम भूल जाते हैं कि आज हिन्दू-मुस्लिम समस्या का जो समाधान हम कभी इस कानफ्रेंस में तो कभी उस कानफ्रेंस में तरह-तरह की शर्तबन्दियों में तथा निरर्थक राजनीतिक छल-छन्दों में ढूँढ़ते-फिरते हैं वह युगों से हमारी समीकरण-शक्ति तथा समन्वय भावना के रूप में हमारी अन्तरात्मा में बसा हुआ है। सदियों से हिन्दू-मुसलमानों की जीवन-धारा एक ही महासमुद्र की ओर प्रवाहमान है। हिन्दुओं-मुसलमानों के बीच कुछ कागज के मानचित्रों पर जबर्दस्ती देश-प्रदेशों की कृत्रिम रेखाएँ खींचकर कोई उस चिरस्थायी अन्तरात्मा के सम्मिलन में भेद नहीं उपस्थित कर सकता। आज अशिक्षा और मोह के कारण इस अटल सत्य को भूलकर हम झूठ-मूठ मजहब की कट्टरता, भाषा भेद, अधिकार-प्राप्ति, नौकरी आदि के लिए बात-बात पर लड़-झगड़ पड़ते हैं और अपने इस पर-प्रेरित मनगढ़न्त कलह को ही जीवन की वास्तविक स्थिति मानकर अपनी-अपनी अलग दुनिया पृथक् पृथक् देश-प्रदेश बसाने के लिए—अपने विशाल देश को खण्ड-खण्ड कर देने के लिए—उसकी अक्षत देह को कुट्टी कुट्टी काट डालने को लालायित हो जाते हैं! सदियों के घनिष्ट संसर्ग से हमारे बीच अलक्ष्य रूप से जिस मौलिक एकता की उद्भावना होती आई है उसकी हम अवहेलना करने को तैयार हो जाते हैं। हम यह नहीं समझते कि हमारी संस्कृति, समाज और भाषा सब में समन्वय-भाव का अपरिमित प्रभाव पड़ चुका है। आज न तो हमारे देश में हिन्दुओं की सभ्यता विशुद्ध आर्य-सभ्यता है, न मुसलमानों की सभ्यता निखालिस मुस्लिम सभ्यता है, बल्कि दोनों की संस्कृति ने सम्मिलित होकर हिन्दुस्तानी सभ्यता को जन्म दिया है जिसके वर्तमान रूप-निर्माण में अब तो ईसाइयों का भी कुछ भाग स्वीकार करना ही पड़ेगा। हमारी बोल-चाल की भाषा में मुसलमानों के लाए हुए बहुत से शब्द हैं जिनके बिना हमारा काम एक दिन भी नहीं चल सकता। कलाओं में चित्रकारी का ही उदाहरण ले लीजिए। हिन्दू प्रभाव से ही मुसलमानों ने चीनी तथा मुग़ल रूपाकृति के स्थान में देशी रूप-सौंदर्य को अंकित करना सीखा। उसी प्रकार मुगल-काल में मुसलमानों के प्रभाव से हिन्दू-चित्रकार ने भी देशी चित्र-पद्धति में ईरानी कला की छाया [illegible]

*शिव और राम का एकत्व तुलसी से पहले सूर और सूर से भी पहले रामानन्द की अध्यात्म रामायण में मिलता है। शैव विद्यापति ने भी कृष्ण के गीत गाए हैं।

—सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कर ली, जो किसी न किसी रूप में आज तक चलती आई है। हमारे यहाँ के श्रेष्ठ चित्रकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर महाशय के "शाहजहाँ की मृत्यु" आदि कई चित्रों में ईरानी प्रभाव स्पष्ट है। भारतीय साहित्य, संगीत, शिल्प, आदि के सम्बन्ध में भी यही बात पाई जाती है।

हिन्दी साहित्य का तो आधा गौरव ही नष्ट हो जाय यदि उसमें से मुसलिम लेखकों और कवियों को निकाल दिया जाय। 'यदि हिन्दी साहित्य की वेदी पर हिन्दुओं ने तुलसी को समर्पित किया तो मुसलमानों ने कबीर के द्वारा हिन्दी साहित्य की अनमोल सेवा की। यदि सूरदास हिन्दू थे तो जायसी का जन्म मुसलमान वंश में हुआ था। यदि मीराबाई हिन्दू थी तो ताज मुसलमान थी। यदि बिहारी ने हिन्दू वंश में जन्म लिया था तो रहीम, रसखान और रसलीन ने इसलाम की गोद में शिक्षा पाई थी। यदि हिन्दी-साहित्य गगन में से हिन्दू कवियों को निकाल दिया जाय तो सूर्यास्त हो जाता है और उसमें से मुसलिम कवियों का बहिष्कार कर दिया जाय तो चंद्रोदय नहीं हो पाता।*

मुसलिम काल की कई प्रसिद्ध इमारतों से भी यह पता चलता है कि हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से कितना अधिक घुल-मिल चुके थे। उदाहरणार्थ फ़ीरोज़ शाह तुग़लक द्वारा स्थापित जौनपुर में बाहर का द्वार पट तथा बड़ी दालानें तो मुस्लिम ढङ्ग की हैं, पर भीतर का बैठक खाना और चौकोर खम्भे हिन्दू ढङ्ग के हैं। बङ्गाल की शिल्प-कला में भी हिन्दू मुसलिम शैलियों के सम्मिश्रण के उदाहरण पाए जाते हैं। गुजरात के सम्बन्ध में भी यही बात है। वहाँ मुस्लिम काल की कई इमारतों पर हिन्दू शैली के गुम्बज हैं। अहमद खाँ की जुम्मा मस्जिद और मुहाफिल खाँ की मस्जिद सम्मिलित हिन्दू-मुस्लिम शिल्प-कला के सुन्दर नमूने हैं। दक्षिण में भी हम यही बात पाते हैं। वहाँ के मुस्लिम शासकों ने जिस प्रकार देशी भाषा को अपना लिया उसी प्रकार वहाँ के देशी कला कौशल को भी खुले दिल से प्रोत्साहन दिया। सैयद और लोदी वंश के राज्य काल तक हिन्दू और मुस्लिम शिल्प कला के सम्मिश्रण की यह परंपरा चलती रही। बाबर की चढ़ाई के बाद इस प्रक्रिया को थोड़ा आघात पहुंचा। पर बाद में पुराना सिलसिला जारी हो गया। शेरशाह के समय की शैली में भी हम हिन्दू मुस्लिम दोनों शैलियों के प्रभाव पाते हैं। अकबर तो समीकरण की इस प्रक्रिया के संरक्षक ही नहीं, प्रगति-विधायक भी थे। उनके समय की शिल्प-कला में ईरानी कला का वर्ण-चमत्कार तथा अलंकरण है, पर साथ ही हिन्दू कला की नाप जोख तथा सन्तुलित कारीगरी भी है।

आधुनिक भारतीय संगीत में भी हम प्राचीन हिन्दू सिद्धान्तों के साथ कुछ ईरानी, तुर्की और अरबी तर्ज़ भी पाते हैं। अकबर के समय में हिन्दुस्तानी (उत्तरी) तथा दक्षिणी संगीत का सम्मिलन हुआ, क्योंकि अकबर और बीजापुर के इब्राहीम आदिल दोनों ही अच्छे संगीतज्ञ थे। दोनों के दरबार में अच्छे अच्छे गवैये थे। अकबर के दरबार के प्रसिद्ध गवैये तानसेन का नाम कौन नहीं जानता। टट्टी सम्प्रदाय के प्रवर्तक और निम्बार्क मत के प्रसिद्ध सन्त स्वामी हरिदास जी तानसेन और स्वयं अकबर के भी संगीत गुरु थे। अकबर के दरबार से बहुत से हिन्दू गवैये सम्बद्ध थे। अकबर के अतिरिक्त इब्राहीम आदिल ने भी हिन्दुओं की भाषा और संगीत का अध्ययन किया था और हिन्दू रीति रिवाजों को अपनाया था। इब्राहीम तो स्वयं सरस्वती के पूजक भी थे। बादशाह शाहजहाँ भी संगीत के संरक्षक थे। उनके गवैयों में से कविराज रामदास तो एक बार सोने से तौल दिए गए थे। रामदास को एक बार हिन्दी के प्रसिद्ध कवि अबदुर्रहीम खानखाना ने भी एक लाख रुपए का पुरस्कार दिया था।

पोशाक के विषय में भी हम यही बात पाते हैं। अकबर और उनके साथ अन्य मुगल बादशाह भी कुछ तो ईरानी ढंग के और कुछ हिन्दू ढङ्ग की पोशाक पहनते थे। हिन्दू पद्धति के अनुसार माथे पर तिलक भी लगाते थे। आज कुर्ता, पाजामा, पगड़ी, मुरेठा, अचकन, शेरवानी, रूमाल, धोती, लुङ्गी आदि हिन्दू और मुसलमान दोनों की ही पोशाक में दाखिल हैं। देहातों में हिन्दू और मुसलमान दोनों की ही पोशाक बिल्कुल एक है। नगरों में हिन्दू मुसलमान दोनों की पोशाक के ऊपर अब तो युरोपियन प्रभाव भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। हिन्दू भी कोट कमीज़ पहनते हैं, मुसलमान भी। आज की हिन्दुस्तानी पोशाक इन सभी का सम्मिश्रण है। आज न तो हिन्दुओं के प्राचीन वस्त्राभूषण अपने विशुद्ध हिन्दू रूप में सुरक्षित हैं, न मुसलमानों की ही पोशाक मुस्लिम देशों की पोशाक से मेल खाती है। आज मुस्लिम स्त्रियाँ हिन्दू स्त्रियों के समान ही साड़ी पहिनती हैं, चूड़ी पहिनती हैं और कहीं कहीं माथे में सिन्दूर भी लगाती हैं।

* पं० सूर्यकांत शास्त्री : हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हमारे तौर तरीक़े, रीति रिवाज भी बहुत कुछ अंशों में एक हो चुके हैं। आदाब, बन्दगी और सलाम हिन्दू मुसलमान दोनों ही करते हैं। ईरान और मध्य एशिया में त्यौहारों के अवसर पर इबादत के बाद बच्चे माँ बाप के हाथ चूमते हैं, पर हिन्दुस्तान में हिन्दू प्रभाव से वे आदर के साथ माँ बाप के पैर छूते हैं। विवाहादि कृत्यों में भी बहुत कुछ समरूपता देखने में आती है। हिन्दू युवक हो या मुसलमान दोनों को ही विवाह के अवसर पर 'जोड़ा जामा' पहनकर 'नौशा' बनना पड़ता है। और 'नौशी' के लिए भी दोनों जगह वही लहँगा, वही साड़ी है, वही ओढ़नी, वही दुपट्टा है। बारात की सजधज भी दोनों में प्रायः एक ही समान होती है। प्रायः एक ही गीत हिन्दू और मुसलमानों के घर गाए जाते हैं। वही शामियाना, वही शहनाई—दोनों जगह। हमारे देश के मुसलमान भाइयों की वैवाहिक प्रथा विदेशों में प्रचलित मुस्लिम प्रथा से सर्वथा भिन्न है। वास्तव में विवाह के बहुत से रीति रस्म हिन्दुओं से मुसलमानों ने और मुसलमानों से हिन्दुओं ने लिए हैं।

हमारा राजनैतिक इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि हिन्दू और मुसलमानों का जीवन अटूट सम्बन्ध में जुड़ा हुआ है। हमारे देश का इधर सात सौ वर्षों का इतिहास हिन्दू मुसलमानों का सम्मिलित इतिहास है। उनमें दोनों का पृथक्करण असम्भव है। तथाकथित मुस्लिम काल में से यदि आप मानसिंह, बीरबल, यशवन्त सिंह, टोडरमल आदि को निकाल देते हैं तो क्या उस समय के इतिहास की कोई रूप रेखा खड़ी हो सकती है? इसी प्रकार अँगरेजों के आने पर देश के राजनीतिक जीवन पर जो गहरा आघात लगा, उससे हिन्दू मुसलमानों की आहें एक ही साथ निकलीं। उनका खून एक ही साथ बहा। इस तरह हम देखते हैं कि उत्थान पतन, सुख दुख सभी अवस्थाओं में हिन्दुस्तान के हिन्दू मुसलमानों का इतिहास अभिन्न है। उसे आप अलग अलग करके अविकल नहीं रख सकते। लगभग सात सौ वर्षों के पारस्परिक सम्बन्ध के आधार पर निर्मित उस समीकृत इतिहास के दुर्ग को रेगिस्तान के रेत के किले के समान क्षणभर में स्वयं ही ढह जानेवाली कोई कपोल कल्पित विकृत भावना नहीं भेद सकती।

धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू मुसलमानों के सम्मिलित प्रभाव के प्रतीक कबीर, नानक, दादू, जायसी, रहीम, रसखान आदि तो हैं ही, पर इनके अतिरिक्त और भी कई सन्तों द्वारा सञ्चालित सम्प्रदाय हैं, जिनमें हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति का सङ्गम स्पष्ट है। उदाहरणार्थ हुसैनी ब्राह्मण हैं, और मुहम्मद साहब के पौत्र इमाम हुसैन के भक्त हैं, सतनामी सम्प्रदाय है, छज्जू पन्थी हैं और खोजा लोग हैं।

इस समय से बहुत पहले एक ईरानी मुस्लिम धर्म प्रचारक ने 'दशावतार' कथा लिखी थी, जिसमें विष्णु के दसों अवतारों को स्वीकार किया गया है, और लिखा है कि चौथे खलीफा अली विष्णु के आगामी दसवें अवतार हैं। बादशाह अकबर तो स्वयं सूर्य की पूजा करते थे और हिन्दू त्योहार मनाते थे। उनके अन्तःपुर में जो अनेक राजपूत रमणियाँ थीं वे राजमहल के भीतर स्वच्छन्दता पूर्वक हिन्दू देवी देवताओं का पूजा पाठ किया करती थीं और हिन्दू रीति रिवाजों का पालन करने में स्वतन्त्र थीं। चैतन्य सम्प्रदाय में एक से एक मुसलमान वैष्णव संत हो गए हैं। मुसलमान भक्तों के बनाए हुए भजन हिन्दू भक्तों द्वारा आज भी प्रेम से गाए जाते हैं। आज भी बहुत से ऐसे मन्दिर हैं, जिनके निक्षेपधारी (Trustees) मुसलमान हैं और बहुत सी ऐसी मस्जिदें हैं, जिनके ट्रस्टी हिन्दू हैं। 'इंडियन सोशल रिफ़ार्मर' नामक पत्रिका की पिछले जून, १९४५ ई० की संख्या में एक लेख निकला है, जिसमें लेखक ने पालनी पहाड़ियों पर अवस्थित हिन्दू मन्दिर में हिन्दू और मुसलमानों के एक ही साथ पूजा करने के अपनी आँखों देखे मनोहर दृश्य का विवरण दिया है। ऐसा ही एक दृश्य मैंने स्वयं भी अपने नगर छपरे में गोवर्द्धनदास के पोखरे पर के शिवालय के द्वार पर देखा था जहां एक मुसलमान मजदूर श्रद्धासहित मन्दिर के प्रवेश द्वार की ओर मुँह किए नमाज़ पढ़ रहा था।

देहातों में बसनेवाले हिन्दू मुसलमानों में आज भी पारिवारिक सम्बन्ध-सा स्नेह भाव क़ायम है। एक हिन्दू बच्चा अपने पड़ोस के मुस्लिम बुजुर्ग को काका या चाचा कहता और समझता है। वैसे ही एक मुस्लिम एक हिन्दू पड़ोसी को अवस्था के अनुसार भैया, काका या चाचा कहता है। इतिहास से पूछिए कि आज हमारे देश में ऐसे कितने मुसलमान हैं जिनकी नसों में हिन्दू रक्त प्रवाहित नहीं हो रहा है। रक्त वीर्य का वह सम्बन्ध कभी दबाए दब सकता है? मजहब की भममयी कट्टरता उस अटूट सम्बन्ध को, धमनियों के खून के प्रवाह को रोके बिना अर्थात् प्राणान्त किए बिना नहीं तोड़ सकती। वह सम्बन्ध सदियों से अपना प्रभाव दिखाता आया है, अनन्तकाल तक दिखाता जायगा। अङ्गरेज़ी की उस कहावत में अतिरञ्जन सत्य है कि 'खून पानी से कहीं अधिक गाढ़ा होता है'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(Blood is thicker than water)। पानी मात्र का जिनसे सम्बन्ध है वे अपने कुचक्र से खून के सुदृढ़ सम्बन्ध को विच्छिन्न नहीं कर सकते। असम्भव है।

हमारा सारा इतिहास हमारी एकता का प्रमाण है। रक्त वीर्य का सम्बन्ध हमारे अभेद का पोषक है। हम हिन्दुस्तानियों की एक ही जाति है जिसकी विशेषता अनेक विभेदों के होते हुए भी हमें संसार के अन्य लोगों से पृथक करती है। हमारा एक ही भौगोलिक आधार है, जो संसार से हमारे देश को अलग करके प्राकृतिक संरक्षण का काम करता है। बहुत दिनों से हमारा राजनैतिक जीवन भी समय समय पर एक ही छाया प्रकाश में विकसित होता आया है। सदियों से हमारी भाषा भी एक ही रही है।

इस प्रकार जीवन की प्रत्येक दिशा में बद्धमूल हमारी यह सुदृढ़ समन्वय भावना हमारे ऊपर के तथा दृष्ट क्षणिक क्षोभ लोभ के व्यापार भेद पर मजबूत सीमेन्ट चढ़ाती आई है। वस्तुतः हमारे इस सुदृढ़ समन्वय भाव के प्रताप से हमारे यहां मजहबी कट्टरता कभी टिक ही नहीं पाई। अभी कुछ ही साल पहले असंख्य हिन्दू शौक से ताजिए के समारोह में शामिल होते थे, ताजिए बनवाते थे और उस अवसर पर व्रत आदि किया करते थे। इसी प्रकार बहुतेरी मुसलमान स्त्रियाँ श्रद्धा से विधिपूर्वक 'छठ' का व्रत करती थीं। ये दोनों बातें अब भी देखने में आती हैं, पर भेद नीति से काम लेनेवालों की करतूतों के कारण पहले से कम। एकता की भावना हमारे घरों में भी प्रवेश कर चुकी थी। दूर की बात जाने दें, मेरे ही घर में मेरी दादी हिन्दू होते हुए भी सूफीमत को मानती थीं और मेरी मां वैष्णव हैं। पर दोनों में यथेष्ठ प्रेम रहा।

परन्तु इधर शिक्षित कहे जानेवाले मजहब के कुछ बिगड़ैदिल अन्धभक्तों ने हमारी इस समन्वय शक्ति को बड़ा धक्का पहुंचाया है फिर भी वह हमारी चिरकालीन प्रवृत्ति कब तक दबी रह सकती है? राजनैतिक दांव पेंच के उन्मादी उस्ताद चाहे जितना भी हो हल्ला मचा लें, पर हमारी मूलभूत एकता की भव्य भावना अन्त में विजय प्राप्त करके ही रहेगी। हमें इस समय उसे सजग करने की आवश्यकता है। उचित शिक्षा द्वारा समन्वय की उस प्राचीन प्रतिभा को अनुप्राणित करके जनसाधारण में सांस्कृतिक एकता की ज्योति जगमगा देने की ज़रूरत है। मैं समझता हूँ कि वर्त्तमान समय में हमारे नवयुवकों के लिए इससे बढ़कर और कोई सन्देश या कर्त्तव्य नहीं हो सकता।

जिस हिन्दू धर्म में तैंतीस करोड़ देवी देवताओं के लिए, नागनाथ और सांपनाथ सबके लिए स्थान है, उसमें क्या देश की लगभग ग्यारह करोड़ जनता के अराध्य पैगम्बर के लिए कोई जगह नहीं हो सकती, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। देश के इतिहास का जिन्हें सच्चा ज्ञान है तथा जो जाति की चिरन्तन प्रवृत्तियों को ठीक ठीक समझते हैं उन्हें इस विषय की तनिक भी शंका नहीं हो सकती।

यदि भारत के प्राचीन महर्षियों की अनेकता में एकता स्थापित करने की, मजहबी मत परिवर्तन करने पर भी अपने भाइयों को रोटी बेटी के सम्बन्ध से वंचित, जाति, भ्रष्ट, तथा समाज बहिष्कृत न करके समान संस्कृति के स्नेह सूत्र में उपनिबद्ध किए रखने की दिव्य परम्परा को अपनी गरिमा उद्भासित करने को पूरा अवसर दिया जाता, तो आज की सी दशा नहीं होती। मुहम्मद साहब आज कभी के विशाल हिन्दू धर्म के कोई प्रमुख अवतारी पुरुष, महात्मा या देवता बन गए होते। जिस हिन्दू धर्म ने सारे विश्व को* एक नीड़ बना लेने का उज्वल आदर्श स्थापित किया है, उसका इससे कुछ बिगड़ नहीं जाता और न मुसलमानों का ही कुछ अनिष्ट हो जाता। मन्दिर मस्जिद बन जाते और मस्जिदें मन्दिर।

मैं समझता हूं कि आज यदि हम उस परम्परागत एकीकरण की भावना को उद्दीप्त करने पर तुल जायं तो हमारे सारे दंगे फ़साद धीरे धीरे करके दूर हो जायँ। फिर न तो मुसलमानों को हिन्दू बनने के लिए शुद्धि कराने की जरूरत हो और न हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिए तबलीग़ की। फिर न तो हिन्दुस्तान से अलग किसी पाकिस्तान की ज़रूरत हो और न पाकिस्तान से भिन्न कोई हिन्दुस्तान ही हो। तमाम हिन्दुस्तान खुद ही पाकिस्तान या पवित्र स्थान हो जाय जिसमें इस्लाम भी सुरक्षित रहे और हिन्दुत्व भी। फूल अपनी स्वतन्त्र सत्ता खोए बिना एक साथ गुँथकर एक मनोहर माला के रूप में परिणत हो जाय। एक ही घर में आज जैसे कोई राम की तो कोई कृष्ण की, कोई शिव की तो कोई शक्ति की उपासना करते हुए प्रेम से, सुख-चैन से दिन बिताते हैं उसी तरह एक ही परिवार में राम के भी उपासक हों और रहीम के भी। एक ही

* "यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।" (अथर्व)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


घर में बाप हिन्दू हो, तो मा मुसलमान, बेटा वैष्णव हो, तो बहू ईसाई। मजहब केवल व्यक्तिगत विचारों का विषय हो। जिसे पूरब जाना हो वह पूरब जाय, जिसे पच्छिम जाना हो वह पच्छिम जाय—निर्विघ्न, निर्भय, बेरोकटोक। पर देश एक रहे, राम एक रहे—अखंड, अविच्छिन्न! इस तरह आज की एक विकट समस्या सदा के लिए हल हो जाय तथा कोटि कोटि कण्ठों से अमीर मिनाई का वह अमर गीत निनादित हो उठे:—

खुदा खुदा न सही राम-नाम कह लेंगे।
अथवा उसी तर्ज़ पर
न राम-नाम सही हम रहीम कह लेंगे।

---

# अपने पथ की धूलि से!

श्री छोटेलाल भारद्वाज

मेरे पथ की धूलि! कहो तुम मेरा भार संभाल सकोगी?

मेरे रोम रोम में जब
ज्वाला-कण विगल क्षार होंगे,
पग पग पर नश्वर जग की
नश्वरता के प्रहार होंगे,
विचलित होंगे चरण कहो—
तब तुम पदचार संभाल सकोगी?

कण कण शूलों के ब्यूहों से
आहत मन निराश होगा,
घोर घटा के घन गर्जन में
क्षण तम, क्षण प्रकाश होगा,
सूझ पड़ेगा अंधकार, मन
का संचार संभाल सकोगी?

शान्ति दूर कर महा क्रांति
वीणा में झूम रही होगी,
कुचले उर में ज्वाल जला—
मां सुत को चूम रही होगी,
कम्पित होगा कवि का स्वर
तब कहो सितार संभाल सकोगी?

आगे कवि, कवि के पीछे मैं
मेरे पीछे जग होगा,
मिट जायेंगे सारे मग
बस यह एकाकी मग होगा,
कोटि कोटि मन कण कण पर
होंगे तब भार संभाल सकोगी?

चलता होगा जगत निरंतर
अमित संघर्ष मचा होगा,
हार जीत के अविरल क्रम से
जीवन-क्षेत्र रचा होगा,
अजित विजित के प्रलय काल में
रचना - द्वार संभाल सकोगी?

युग युग के उड़ते पंछी
इस क्रांति काल में क्षत होंगे,
तलवारों की झनकारों से
नत—उठ उठ उन्नत होंगे,
दोनों का जब संगम होगा
तब संहार संभाल सकोगी?

जीवन क्षेत्र, जगत के पथ का
आदि और अवसान नहीं,
मानव दानव के संघर्षों
का कोई परिमाण नहीं,
तुम पर अंतिम भार पड़ेगा
कहो प्रहार संभाल सकोगी?

तुम पर चरण चढ़ाऊंगा मैं
जब परिवर्तन का वाहक बन,
एक भुजा से युग-गाहक बन
एक भुजा से युग-दाहक बन।
तब ज्वाला शीतलताओं का
संगम-प्यार संभाल सकोगी!

मेरे पथ की धूलि! कहो तुम मेरा भार संभाल सकोगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Hari

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भाषा में ध्वनि-परिवर्तन के कारण

श्रीमती चन्द्रकुमारी वर्मा एम० ए०

भाषा में ध्वनि-परिवर्तन क्यों होता है, भिन्न भिन्न देशों में इस परिवर्तन के अलग अलग नियम क्यों हैं, किसी काल विशेष में ये परिवर्तन कम और धीरे धीरे क्यों होते हैं और कभी अधिक और शीघ्र क्यों होते हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर मात्र से ही हमें भाषा में ध्वनि-परिवर्तन के कारणों का समुचित ज्ञान हो सकता है।

ध्वनि-परिवर्तन में जलवायु का प्रभाव :—प्रायः यह कहा जाता है कि जिस देश की जैसी जलवायु होती है वैसा ही प्रभाव ध्वनि पर पड़ता है—यदि कोई देश पहाड़ी है तो उसके जलवायु के अनुसार ध्वनि में कठोरता आ जावेगी, उसी प्रकार ठंडा या समतल देश होने से ध्वनि कोमल हो जावेगी। इसके उदाहरण भी दिये जाते हैं। कहा जाता है कि लेकोनिया की पहाड़ी जलवायु का प्रभाव डोरिक भाषा की ध्वनि की कठोरता में दिखाई पड़ता है जब कि एशिया-माइनर के समुद्रतट की सम जलवायु का प्रभाव आइनोनियन भाषा की कोमलता में पाया जाता है। इसी प्रकार हमें यह भी बतलाया जाता है कि ग्रेट ब्रिटेन में कोहरे की अधिकता के कारण वहां के निवासी अपनी भाषा के स्वरों के उच्चारण में अपना मुंह बहुत कम खोलते हैं। इससे उनकी भाषा की ध्वनियां अन्य देशों की भाषा की ध्वनियों से कुछ बदली हुई हैं।

परन्तु जलवायु के प्रभाव स्वरूप यह ध्वनियों में परिवर्तन होने का नियम सब कहीं लागू नहीं होता। यह प्रायः देखा जाता है कि समान जलवायु वाले प्रान्तों में ध्वनियों का नितान्त विपरीत विकास होता है और ऐसे भी उदाहरण पाये जाते हैं जहाँ जलवायु भिन्न होने पर भी एक ही सा ध्वनि परिवर्तन होता है।

इसलिये ऊपर दिये हुए नियम में अपवाद आ जाते हैं। यदि भाषा में ध्वनि-परिवर्तन का कारण मुख्यतः जलवायु ही होती तो अँग्रेजी भाषा में अनेकों क्लिक (click)* ध्वनियाँ आ जातीं। परंतु सचाई यह नहीं है अतः यही प्रतीत होता है कि जलवायु और ध्वनियों के विकास में मूलतः कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

## उच्चारण-अवयव की विभिन्न बनावट के कारण ध्वनि परिवर्तन

कुछ विद्वानों का विचार है कि उच्चारण-अवयव की विभिन्न बनावट के ही कारण ध्वनि परिवर्तन होता है परन्तु यह बात भी पूर्णतया ठीक नहीं। यद्यपि कभी कभी यह भी देखा जाता है कि अवयव में कोई विशेषता आ जाने के कारण ध्वनि में परिवर्तन आ जाता है, जैसे दाँतों, ओठों और जीभ की विशेषता से तत्सम्बन्धी ध्वनियां परिवर्तित हो जाती हैं। असभ्य जातियों में लोग सामने के दांत तुड़वा डालते हैं, ओठ कठवा देते हैं या उनमें ज़ेवर लटका लेते हैं जिससे इन अवयवों से सम्बन्धित ध्वनियों में परिवर्तन आ जाता है जो इस रिवाज के हट जाने पर भी बचा रह जाता है।

उच्चारण परिवर्तन भी ध्वनि परिवर्तन का एक कारण है :—केवल यही नहीं है कि बहुत से व्यक्तियों के ही उच्चारण में भिन्नता होती है बल्कि एक ही व्यक्ति के उच्चारण में उसकी मनोदशा और काल के अनुसार अन्तर आ जाता है। धीरे धीरे यह अन्तर स्थायी रूप धारण कर लेता है और पीढ़ी दर पीढ़ी चला जाता है। जैसे आरम्भ में बच्चे उच्चारण करने का प्रयत्न करते हैं और इस प्रयत्न में वह बहुत से अशुद्ध उच्चारण भी करने लगते हैं। यद्यपि बहुत से शुद्ध कर दिये जाते हैं परन्तु फिर भी जो थोड़े से बच जाते हैं वे उसी रूप में कुटुम्ब और समाज में प्रचलित हो जाते हैं। प्रायः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक यह अन्तर इतना कम रहता है कि पता ही नहीं चलता; लेकिन कई पीढ़ियों बाद यही अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

उपर्युक्त बात अंशतः माननीय है। बहुत सी भाषायें ऐसी भी होती हैं जिनमें ध्वनियाँ वर्षों क्या शताब्दियों तक एक ही रूप में चलती हैं और उनमें परिवर्तन नहीं होता। दूसरी बात यह है कि व्यक्ति के ध्वनि-विकार का प्रभाव समाज पर बहुत कम पड़ता है। इससे सामूहिक रूप से भाषा में कोई परिवर्तन नहीं आता।

---

* हम साधारण बोल चाल में फेफड़ों से हवा बाहर निकालने के समय ध्वनि उत्पन्न करते हैं। परन्तु फेफड़ों में हवा ले जाते समय भी ध्वनि उत्पन्न हो सकती है। इस प्रकार की ध्वनि को 'क्लिक' कहते हैं। क्लिक के उदाहरण संसार की भाषाओं में बहुत ही थोड़े हैं, निग्रो जातियों में ये मिलते हैं। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


ध्वनि परिवर्तन में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रभाव

यह प्रभाव कहां तक पड़ता है इसका अन्दाज़ा लगाना कठिन है। ऐसी भाषा जो अन्य भाषाओं के सम्पर्क में नहीं आती है अपनी विशेषता सदैव बनाये रहती है किन्तु ऐसी भाषा जो दूसरी भाषाओं के सान्निध्य में आती है वह उसके गुण दोषों से प्रभावित हो जाती है और उसकी ध्वनियां परिवर्तित हो जाती हैं।

एक पराजित देश पर अवश्य विजयी देशों की भाषा का प्रभाव पड़ता है—अतः ध्वनियाँ भी प्रभावित होती हैं और क्रमशः परिवर्तन आता जाता है जो कुछ समय पश्चात् भली भांति दिखलाई पड़ने लगता है।

भारत में अंग्रेज़ों एवं मुसलमानों के आने के कारण हिन्दी पर उनकी भाषा का अवश्य प्रभाव पड़ा है—अतः भारतवासियों की ध्वनियों में भी वही असर दिखाई पड़ता है। दिल्ली के निकट के लोग ज़ फ़ क़ ग़ आदि व्यंजन अब साधारण रूप से प्रयोग करने लगे हैं।

स्पेन और पुर्तगाल के बिल्कुल पास पास होते हुए भी जितना प्रभाव पुर्तगाल पर लैटिन भाषा का पड़ा उतना स्पेन पर नहीं। यह भी सांस्कृतिक सम्बन्ध का एक उदाहरण है।

## कई भाषाओं का सम्मिश्रण

ध्वनि-परिवर्तन में इसका अधिक प्रभाव पड़ा है। कभी कभी समाज और संस्कृति का जिस प्रकार विकास होता है ठीक उसी तरह भाषा का भी विकास होता रहता है। और क्रमशः ध्वनियों के परिवर्तन में असर पड़ता रहता है। जनता के सामाजिक और संस्कृतिक जीवन को प्रभावित करने वाली शक्तियां बहुत-महत्व की हैं किन्तु भाषा सम्बन्धी इन शक्तियों का महत्व बहुत स्पष्ट नहीं है।

जैसे हिन्दी भाषा की ध्वनियों में अरबी, फारसी, अँग्रेजी आदि के सम्मिश्रण का अधिक प्रभाव पड़ा है और उर्दू एक नई भाषा ही चल पड़ी है जिसकी कुछ ध्वनियां हिन्दी भाषा की होती हुई भी हिन्दी से कुछ विभिन्न हैं।

## वंश क्रमानुसार

आयु के साथ ही किसी बच्चे के उच्चारण अवयव भी विकसित और प्रौढ़ होते हैं। इस कारण इसका प्रभाव ध्वनि के वज़न (Timbre) पर आवश्यक रूप से पड़ता है। जिससे बड़ों का उच्चारण स्वर बच्चों के स्वर से सुनने में भिन्न हो जाता है। बड़ों को सुनकर बच्चे भी अनुकरण करते हैं पर अवयव कोमल और भिन्न होने से उनसे ठीक वही ध्वनि नहीं निकलती। अतः उनमें अपने अवयवों पर ज़ोर देना पड़ता है।

एक पीढ़ी की ध्वनियां जितनी कठोर हैं उनका प्रभाव बच्चों की ध्वनियों पर आता है। बच्चे प्रारम्भ से ही उन कठोर ध्वनियों के अनुकरण का प्रयत्न करते हैं फलतः दूसरी पीढ़ी में कठोरता पहली पीढ़ी की 'शिशु' अवस्था से अधिक आ जाती है। यह दूसरी पीढ़ी जब प्रौढ़ावस्था को प्राप्त करती है तो उसकी ध्वनियां पहली पीढ़ी की प्रौढ़ावस्था की ध्वनियों से कठोरतर हो जाती है क्योंकि एक तो वह कठोरता का अनुकरण कर रही थी दूसरे उसके ध्वनि अवयव स्वयं आयु के कारण अधिक कठोर होते जा रहे हैं। तीसरी पीढ़ी की ध्वनियां और कठोर हो जाती हैं। इस प्रकार संसार की सारी भाषाएँ प्रारम्भ में जितनी कोमल थीं आज वे उतनी कोमल नहीं बची हैं—और क्रमशः अपनी कोमलता को खो रही हैं।

## परिश्रम की कमी

जब मनुष्य कठिन और संयुक्त अक्षरों को जोड़ने की चेष्टा करता है या व्यर्थ की ध्वनियों को हटाने का प्रयत्न करता है या अपने उच्चारण अवयवों से आराम से कार्य लेता है तब भी ध्वनि परिवर्तन हो जाता है।

ध्वनि परिवर्तन के परिश्रम की कमी महत्व की बात है। पाणिनि इसे 'मुख-सुख' की संज्ञा देते हैं परन्तु इस प्रवृत्ति के साथ ही साथ यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि उससे बात शीघ्र और सरलता से समझ में आ जाय।

यदि यह कारण बिल्कुल ठीक समझा जाय तो कभी भाषा एक ऐसे स्थान पर पहुंच जायेगी जहां परिश्रम की कमी के कारण उसका विकास स्थगित हो जायेगा।

## स्वभाव

एक व्यक्ति विशेष या व्यक्तियों के स्वभाव से उच्चारण की रफ़्तार, आवाज़, लय और कठोरता पर प्रभाव पड़ता है। शीघ्र बोलनेवाले के उच्चारण में अशुद्धियाँ भी होंगी और बात छूट भी जाएगी जो दूसरे व्यक्ति अनुकरण कर लेगें और आगे चलकर यही परिवर्तन का कारण हो जायेगा।

परन्तु स्वभाव ऐसा अस्थिर रहता है कि उसके ऊपर कोई नियम बनाना उचित नहीं है। फिर हम यह भी देखते हैं कि प्रायः एक तरह के और समान स्वभाववाले मनुष्यों की ध्वनि का विकास भिन्न तरह होता है उसी तरह एकदम भिन्न स्वभाववाले देश में परिवर्तन के नियम पूर्णतया एक समान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



### अनुकरण-प्रवृत्ति

जिस प्रकार नये फैशन या नये कपड़ों को या नये रीति-रस्म को देख कर अनुकरण करने की इच्छा होती है उसी प्रकार भिन्न या नये उच्चारण को सुनकर वही इच्छा या प्रवृत्ति जागृत होती है। एक समाज में या समूह में जो उच्चारण एक रोब दाब वाले व्यक्ति या व्यक्तियों का रहता है उसके अनुकरण करने की चेष्टा अन्य लोग करते हैं। यदि सफल हो जाते हैं तो अन्य लोग भी नक़ल करते हैं। अतः परिवर्तित ध्वनियों का समावेश हो जाता है।

परन्तु बहुत से विद्वान इस कारण को भी ठीक नहीं मानते। उनका कथन है कि कई देशों से जहां अनेकों सामाजिक समूहों में कोई भी सम्बन्ध नहीं है वहां भी एक ही से विकास करीब करीब एक साथ ही दिखाई देते हैं क्योंकि यह सुधार तथा तबदीली मूल से ही है फैशन की तरह अनुकरण द्वारा नहीं। और यह तबदीली समान कारण से प्रत्येक व्यक्ति को साथ साथ अनुभव होती हैं। इसके अतिरिक्त यह भी प्रश्न उठता है कि उन अगुआ व्यक्तियों या समूहों को कहां से यह ज्ञान विशेष प्राप्त हुआ जो अन्य व्यक्तियों द्वारा अनुकरणशील हुआ।

### कुटुम्ब परम्परा

ध्वनि परिवर्तन और उसकी प्रवृत्ति कुटुम्ब के वंश गत भी हो सकती है अर्थात् शारीरिक बनाव और स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातें जो एक व्यक्ति अपने पूर्वजों से लेता है वे ही उसमें आती जाती हैं।

वंश परम्परा पर निर्धारित समानता सदा पूर्ण नहीं होती इससे सम्बन्धित परिवर्तनों के मुख्य तीन कारण हैं—

### बाह्य प्रभाव

प्रत्येक व्यक्ति का उच्चारण स्थान मूल-ध्वनियों से कुछ अलग सा होता है। यह अलगाव प्रायः उसके माता पिता के उच्चारण के अनुकूल ही होता है क्योंकि माता पिता के उच्चारण को वह बचपन से ही बराबर सुनता रहता है। उसका झुकाव जिस ओर होता है यदि उसी ओर आगे बढ़कर उच्चारण करने की प्रवृत्ति उसके अधिक सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों में हो तो वह झुकाव और बढ़ जाता है। इसका प्रभाव उसके वंश पर फिर पड़ता है और ध्वनि में परिवर्तन स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगता है।

जैसे 'इ' का उच्चारण सदा अपने मूल-स्थान से हट-कर होता है। बच्चा देखेगा यदि उसे कोई ऐसा व्यक्ति मिल गया जो 'इ' का उच्चारण कुछ आगे बढ़ा कर करता है तो बच्चे का झुकाव आगे को बढ़ जायेगा फिर यही 'इ' उच्चारण करने का प्रभाव उसके वंश पर पड़ेगा।

### मुख सुख

बहुत से व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपने को सुख देना चाहते हैं। वह जीवन की अनेक बातों के साथ साथ उच्चारण में भी मुख को सुख देना चाहते हैं।

जैसे समस्त 'ट' करिय ध्वनियों का उच्चारण जीभ की नोक को उलट कर उसके नीचे के हिस्से को कठोर तालु

---

पृष्ठ ३६८ से आगे

थे। मन्दिर में एक के ऊपर एक तीन भाग थे जिनपर शिव की मुखाकृति के कई ऊँचे शिखर बने हुये थे। इसके बाद की सदियों में यहां की सबमें महत्वपूर्ण बात बौद्धधर्म की महायान शाखा का बढ़ता हुआ प्रभाव था। पहले उसे कविन्द्रारिमातान जैसे राजमन्त्रियों की आस्था प्राप्त हुई किन्तु बाद में कम्बुज के राजा भी उसके अनुयायी बन गए। कम्बुज का सबसे पहला बौद्ध शासक सूर्यवर्मन पहला (११ वीं सदी के प्रारम्भ में) था। किन्तु सूर्यवर्मन के बौद्ध धर्म में शिव की भी जगह थी। उसका गुरू प्रसिद्ध शैव मतावलम्बी योगीश्वर पण्डित था। सूर्यवर्मन दूसरा जो १२वीं सदी के प्रारम्भ में गद्दी पर बैठा दुनिया के सर्वश्रेष्ठ धर्मस्थानों में से एक 'अङ्गकोर वाट' नामक मन्दिर का निर्माता था। यह 'नगर मन्दिर' विष्णु का मन्दिर है और इसमें रामायण के भित्त-चित्र भी बने हुये हैं। कम्बुज का अन्तिम महान शासक जयवर्मन सातवां था जो १२ वीं सदी के आख़ीर में कम्बुज पर हुकूमत कर रहा था। इस नरेश ने अनाम, बर्मा और मलाया प्रायद्वीप के उत्तरी भाग को अपने अधिकार में कर लिया था। किन्तु बाद में जब कम्बुज पर एक ओर से सायम वालों ने और दूसरी ओर से अनामियों ने हमले शुरू किये तो कम्बुज की सत्ता घटने लगी।

तमाम उल्लेखों से पता चलता है कि कम्बुज में पूरी तरह हिन्दूधर्म फैला हुआ था। राजा, रानी, सामन्त और पुरोहित सबके संस्कृत नाम थे और दरबारी पण्डित संस्कृत में ही मिसलें लिखते थे। ब्राह्मण पण्डित राजकुमारों को संस्कृत में ही गणित, ज्योतिष, अष्टाध्यायी, षटदर्शन और धर्मशास्त्रों की शिक्षा देते थे। यशोवर्मन के उल्लेखों में भीम, कुरु और विशालाक्ष जैसे संस्कृत नामों का भी ज़िक्र आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


के मध्य भाग के निकट छू कर किया जाता है। परन्तु सुख और आराम चाहने वाले व्यक्ति इसमें कष्ट का अनुभव करते हैं और जीभ को पीछे से हटा कर ज़रा आगे लगा कर जीभ को बिना उल्टे ही 'ट' कहते हैं। जो व्यक्ति और ज्यादा आरामतलब है वह और आगे की तरफ जीभ लगायेगा अतः 'ट' की ध्वनि में परिवर्तन आता जायेगा और यही उसके वंश में चलेगा। इसी प्रकार अन्य ध्वनि भी बदल जाती हैं।

## विभिन्न देश के माता पिता

बच्चों पर उनके माता-पिता के स्वभाव का, रोगों का, रहन-सहन का, बोलने आदि का प्रभाव बहुत पड़ता है। यदि किसी बच्चे की मां एक देश की हुई और पिता दूसरे का तो उस बच्चे पर दोनों का प्रभाव पड़ेगा—इसी प्रकार उच्चारण पर भी प्रभाव पड़ेगा और बच्चे की ध्वनि दोनों से भिन्न रहेगी।

जैसे यदि किसी बच्चे का पिता भारतवर्ष का है और मां इंगलैंड की—तो उस बच्चे पर दोनों का प्रभाव पड़ेगा—और वह हिन्दी की कुछ ध्वनियों का ठीक से उच्चारण नहीं कर सकेगा जैसे हिन्दी के 'त्र' को वह 'तर' कहेगा—और ध्वनि परिवर्तित हो जावेगी।

इसी तरह यह ध्वनि परिवर्तन उसके वंश में चलता रहेगा।

संक्षेप में ध्वनि परिवर्त्तन के ये ही संभावित प्रमुख कारण हैं। इन कारणों का क्रियात्मक प्रभाव भाषा पर धीरे धीरे पड़ता है। भाषा धीरे धीरे बदलती है। उसके भौगोलिक परिवर्तन तो देश-विदेश की यात्रा करने से स्पष्ट हो जाते हैं परन्तु ऐतिहासिक परिवर्तन बहुत ही धीमे होते हैं। उनके निश्चित परिवर्तनों में लगभग ५०० वर्षों से ७५० वर्षों के बीच का समय लगता है। इतनी शताब्दियों के पश्चात कुछ ध्वनियां परिवर्तित दिखलाई पड़ने लगती हैं। जैसे वैदिक 'औ' आज के उच्चारण से भिन्न 'आउ' की ध्वनि देता था। अब वह स्पष्ट दूसरा हो गया है। ऐतिहासिक परिवर्तनों का अध्ययन बड़ा ही कठिन है क्योंकि भाषा का ध्वन्यात्मक रूप ठीक ठीक पहले लिखा नहीं जा सकता था। लिपि के अक्षर ध्वनि से बहुत ही अलग होते हैं। वे तो ध्वनि के एक सामान्य रूप के द्योतक हैं। जैसे वैदिक 'औ' और आज के 'औ' के लिपि चिन्ह दो नहीं बनाए जा सकते। इस कारण ऐतिहासिक परिवर्तनों का अध्ययन बड़ा कठिन है! वैदिक प्रातिशाख्य ग्रंथों में उस समय की ध्वनियों का विवरण मिलता अवश्य है परन्तु उससे ध्वनि परिवर्तन का इतिहास पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो पाता।

आज के विज्ञान ने एक मशीन 'कीमोग्राफ' बनायी है। इससे अवश्य 'ध्वनि' का अंकन बिल्कुल सही ढंग से कागज़ पर हो जाता है। परन्तु ध्वनि परिवर्तन के इतिहास का अध्ययन इस यन्त्र की सहायता से जितना आगे आने वाली पांच शताब्दियों बाद की पीढ़ियां कर सकती हैं उतना हम नहीं कर सकते।

---

# गीत

श्री शीतलासहाय श्रीवास्तव

लोहित है प्राच्य गगन।

अरुण प्रखर रश्मि हुई,
प्रतनु भीति भस्म हुई,
कर चुका विषाद गमन।
लोहित है प्राच्य गगन।

जाग उठी कली - कली,
ज्योतिर्मय गली - गली,
खुलते निस्तन्द्र नयन।
लोहित है प्राच्य गगन।

अमा - चिन्ह अस्त - व्यस्त,
दुर्विचार हुये ध्वस्त,
अमल धवल सकल भुवन।
लोहित है प्राच्य गगन।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Harid

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दिल्ली सम्राट के "फ़िदवि-ए-ख़ास"

पण्डित सुन्दरलाल

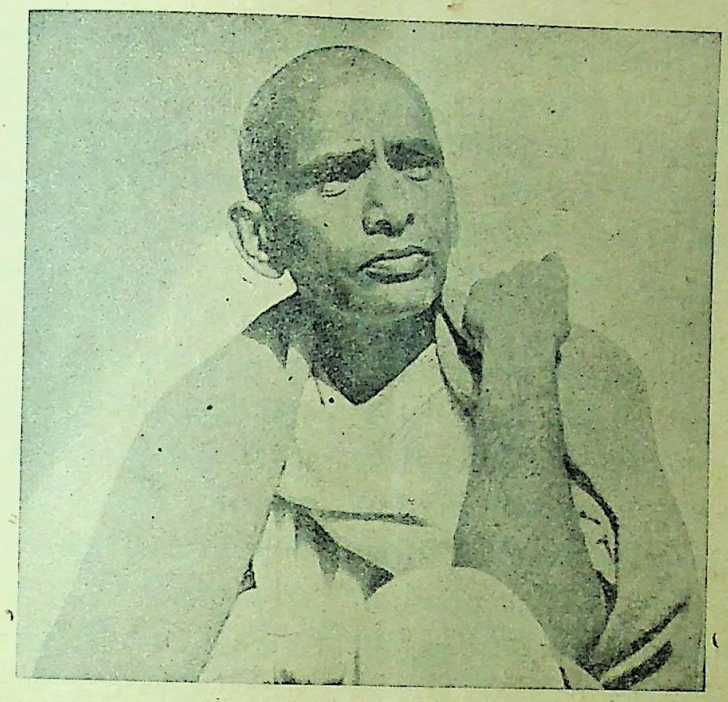

आज़ाद हिन्द फ़ौज के अफ़सरों के मुक़दमे के सिलसिले में पिछले महीने दिल्ली से एसोशियेटेड प्रेस के नुमाइन्दे ने जो बयान भेजे हैं उनमें इस बात का भी ज़िक्र किया है कि—"आज़ाद हिन्द फ़ौज के अफ़सरों का यह मुक़दमा अपनी मिसाल में उस मुक़दमे से मिलता है जो सन् १८५७ में बहादुरशाह के बग़ावत करने के बाद दिल्ली के बादशाह बनने पर चलाया गया था और जिसमें उसे जनम भर की सज़ा देकर रङ्गून भेज दिया गया था।" एसोशियेटेड प्रेस का यह बयान इतिहास की निगाह से बिलकुल ग़लत है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ दिल्ली के किसी भी बादशाह का एक भी ऐसा सुलहनामा नहीं हुआ जिसमें दिल्ली के किसी सम्राट ने अपने को कभी कम्पनी की प्रजा कहा हो या कभी अङ्गरेज़ों को अपना अधिराज स्वीकार किया हो।

मुग़ल सम्राट के फ़र्मानों द्वारा ही अङ्गरेज़ कम्पनी को अपनी तिजारती कोठियाँ बनाने के लिये कलकत्ता, मद्रास, सूरत वग़ैरह में जागीरें मिलीं थीं। उन जागीरों के लिये अङ्गरेज़ दिल्ली दरबार को बराबर ख़िराज़ देते थे और गवरनर-जनरल से लेकर छोटे से छोटा तक जो अङ्गरेज़ मुग़ल सम्राट के दरबार में जाता था वह बाक़ी दरबारियों के समान आदाब बजा लाता था, सम्राट को नज़र पेश करता था और अपनी जगह पर अदब के साथ खड़ा रहता था। कम्पनी के हर गवरनर-जनरल की मुहर में "दिल्ली के बादशाह का फ़िदवि-ए-ख़ास" (यानी खास नौकर) ये शब्द खुदे रहते थे। शाहआलम ने सबसे पहले सन् १७६५ में क्लाइव को बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार दिये। इसके बाद तरह तरह की साज़िशों और स्लानेजङ्गियों द्वारा अङ्गरेज़ों ने दिल्ली सम्राट के दरबार में अपनी ताक़त को बढ़ाना शुरू किया। हाला कि हिन्दुस्तान में रहने वाले कुल अङ्गरेज़ अपने तईं दिल्ली सम्राट की प्रजा कहा करते थे पर वे सम्राट को अपनी मुट्ठी में रखना चाहते थे। सम्राट शाह आलम ने इन परदेशियों की गुस्ताख़ी से आज़िज़ आकर माधोजी सींधिया से मदद चाही। माधोजी ने दिल्ली आकर फिर से अङ्गरेज़ों के बल को घटाकर दिल्ली सम्राट की अमली हुकूमत क़ायम की। उसने राजधानी तथा आसपास के इलाक़े की फ़ौजी हिफ़ाज़त का भार मराठे सैनिकों के सुपुर्द किया। सम्राट शाहआलम ने इस मौक़े पर माधोजी की तारीफ़ में एक फ़ारसी नज़्म में लिखा था—

माधोजी सींधिया फरज़न्द जिगर बन्दे मन
हस्त मसरूफ तलाफ़ी ए-सितमगारिए मा।

कम्पनी ने मराठों की इस बढ़ती हुई ताक़त को अब कुचलना ज़रूरी समझा। यह दूसरे मराठा युद्ध का वक्त था। जनरल लेक ने कम्पनी की ओर से एक इक़रारनामा लिखकर अपने दस्तख़तों से शाहआलम के सामने पेश किया, जिसमें कम्पनी ने शाह आलम से यह वादा किया कि हम पूरे मुल्क पर आपकी पुरानी अमली हुकूमत क़ायम करने में मदद देंगे अगर आप मराठों को दिल्ली से बिदा कर दें। अभागा, निर्बल और अदूरदर्शी शाहआलम फिर अंग्रेज़ों की चालों में आ गया। और शाहआलम की इज़ाजत और मदद से ही अङ्गरेज़ों ने सन् १८०४ में मराठों को दिल्ली से बिदा कर दिया। इस पर अङ्गरेजों ने अपने तईं सम्राट की वफादार और फ़रमाबरदार प्रजा ज़ाहिर किया और सम्राट को निजी ख़र्च के लिये बारह लाख रुपये सालाना ख़िराज़ देते रहने का वादा किया। उस समय तक अङ्गरेज़ दिल्ली सम्राट के देश भर में मान, मराठों और अफ़ग़ानों की



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ताक़त और उनके मुक़ाबले में अपनी कमज़ोरी की वजह से दिल्ली सम्राट और उसके ऊपरी मान को क़ायम रखना और अपने को सम्राट की प्रजा ज़ाहिर करना ज़रूरी समझते थे।

दिल्ली सम्राट और उसके भला चाहने वालों को सबसे पहले अङ्गरेजों की नीयत पर शक तब हुआ जब लार्ड वेल्ज़ली ने यह तजवीज़ की कि सम्राट अपनी राजधानी लाल क़िले से हटाकर मुङ्गेर के क़िले में ले जायें। बूढ़ा शाह आलम इस तजवीज़ को सुनते ही ग़ुस्से से भर गया। लार्ड वेल्ज़ली को अपनी तजवीज़ वापस ले लेने में ही कुशल दिखाई दी। इसके बाद ही सन् १८०६ में शाहआलम चल बसा।

शाह आलम के बाद अकबर शाह दिल्ली के तख़्त पर बैठा। इससे पहले सीटन दिल्ली में कम्पनी के रेज़िडेन्ट की हैसियत से रहा करता था। सीटन जब कभी दरबार में जाता था तो नीचे दरजे के एक हिन्दुस्तानी दरबारी की तरह सम्राट के सामने बाक़ायदा 'तसलीम, कोरनिश और मुजरा' किया करता था और शाही खानदान के हर शख़्श की तरफ़ मुनासिब इज़्ज़त दिखाता था। सीटन के बाद चार्ल्स मेटकाफ़ रेज़िडेण्ट मुक़र्रर हुआ। मेटकाफ़ ने फ़ौरन अपने अङ्गरेज़ मालिकों के हुक्म से सम्राट अकबरशाह की ओर अपना रुख़ बदल दिया और कुछ ऐसी हरकतें करनी शुरू कर दीं जिससे सम्राट और उसके वफ़ादार दरबारियों के दिलों में अङ्गरेज़ों की तरफ़ नफ़रत बढ़ गई।

जनरल लेक ने सम्राट शाहआलम को जो इक़रारनामा लिखकर दिया था उसकी शर्तों को अब तक पूरा न किया गया था। सम्राट अकबरशाह ने उस इक़कारनामे की शर्तों को पूरा कराना चाहा लेकिन उसे कामयाबी न मिली तब उसने राजा राममोहन राय को अपना एलची बनाकर इङ्गलिस्तान भेजा। वहाँ भी राजा राममोहन राय की किसी ने न सुनी। इस बात की ख़बर जब दिल्ली पहुंची तो वहाँ के लोगों को अङ्गरेज़ों की तरफ से दिल्ली के शाही ख़ानदान के लिये गहरे शक होने लगे।

सम्राट बहादुर शाह ने अपने अङ्गरेज़ 'फ़िदवि-ए-ख़ास' से इक़रारनामे की शर्त के मुताबिक़ ख़िराज की रक़म तलब की। इस बीच दिल्ली के आस पास के इलाके पर कम्पनी का पञ्जा कसता जाता था और उस दिल्ली सम्राट को, जो हिन्दुस्तान के सब ख़ज़ानों का मालिक समझा जाता था, अब अपने दरबार के लिये भी ख़र्च की दिक़्क़त होने लगी। बहादुरशाह ने गवरनर-जनरल से नज़राने और ख़िराज की रक़म की मांग की पर [illegible] बहाने से उसे टालते रहे।

प्रत्येक ईद, नौरोज़ और सम्राट की सालगिरह के दिन गवरनर-जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़ दोनों ख़ुद सम्राट के दरबार में हाज़िर होकर या रेज़िडेण्ट के मार्फ़त सम्राट के सामने नज़रें पेश किया करते थे।। सन् १८३७ में बहादुर शाह की तख़्त नशीनी के वक्त भी ये नज़रें पेश की गईं थीं। उसके बाद भी ये नज़रें बराबर बहादुरशाह को दी जाती रहीं और उस वक्त बन्द की गईं जब लार्ड एलेनब्रु ने गवर्नर जनरली का भार संभाला।

सन् १८५४ में बहादुर शाह के बेटे और जानशीन मिर्ज़ा फ़ख़रू की मृत्यु हुई। रेज़िडेण्ट टामस मेटकाफ़ बहादुर शाह के दरबार में मिलने गया। बहादुर शाह के उस समय ९ बेटे थे जिनमें सबसे होनहार और होशियार मिरज़ा जवाँबख़्त समझा जाता था। बहादुर शाह ने आठों शहज़ादों की रज़ामन्दी से जवाँबख़्त को युवराज मुक़र्रर किया। यह ख़बर सुनकर गवरनर-जनरल लार्ड हार्डिञ्ज ने रेज़िडेन्ट को लिखा—

"सम्राट की शान और दबदबे की बहुत सी अलामतें उतर चुकी हैं जिससे उस शानशौकत की पहली सी चमक दमक नहीं रहीं और सम्राट के वे अधिकार जिन पर तैमूरी खानदान को घमण्ड था, एक दूसरे के बाद ख़त्म होरहे हैं। अब ऐसा दिखाई देता है कि बहादुरशाह के मरने के बाद क़लम के एक डोबे में बादशाही को ख़त्म कर देना कुछ मुशकिल न होगा। बादशाह की वह नज़र जो गवरनर-जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़ देते थे हमने धीरे धीरे बन्द कर दी। बादशाह के नाम से जो कम्पनी का सिक्का ढाला जाता था वह भी अब हमने बन्द कर दिया। गवरनर-जनरल की मुहर में कुछ साल पहले तक जो "बादशाह का फ़िदवि-ए-ख़ास" लफ़्ज़ रहते थे वे भी हमने निकाल दिये। अब सिर्फ़ मुग़ल सम्राट की शहन्शाहियत की पदवी रह गई है जिसे बहादुर शाह की मौत के बाद ख़त्म करना हमारे लिये उतना मुशकिल न होगा।"

इस बीच सन् १८५६ के आख़ीर में बहादुर शाह के एक दूसरे बेटे मिरज़ा क़ोयाश से गवरनर-जनरल ने चुपके से सुलह कर ली और उससे यह शर्त तय हुई कि बहादुरशाह के बाद उसे 'बादशाह' की जगह सिर्फ़ 'शहज़ादा' कहा जाया करेगा और उसे दिल्ली का लाल क़िला ख़ाली करना पड़ेगा।

इस ख़बर को पाते ही सम्राट बहादुर शाह [illegible] दिल्ली निवासियों के दिलों में ग़ुस्से की आग भड़क उठी

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वे अङ्गरेज़ कम्पनी के पञ्जे से देश को आज़ाद करने की तदबीरें सोचने लगे और कुछ ही महीने बाद सन् १८५७ में हिन्दुस्तान के इस छोर से उस छोर तक आज़ादी के जङ्ग की आग सुलगती हुई दिखाई दी।

इस तरह सन् १८५७ के स्वाधीनता युद्ध के दिनों तक सम्राट बहादुर शाह क़ानूनी निगाह से, इख़लाक़ी या नैतिक निगाह से और सचाई की बिना पर हिन्दुस्तान का ख़ुदमुख्तार बादशाह था। अङ्गरेज़ों ने उसके साथ वफ़ादारी का सुलहनामा किया था। उसे उन्होंने ख़िराज और नज़राना देना क़ुबूल किया था। दिल्ली दरबार में अङ्गरेज़ों की हैसियत मराठों और राजपूतों की तरह सिर्फ़ एक बाजगुज़ार मन्सबदार की थी, जो मन्सबदार गुस्ताख़, चालाक, शहन्शाह के नाम पर रिआया से टैक्स वसूल करके हड़प जानेवाला, और बेईमान साबित हुआ था। धीरे धीरे वह बग़ावत पर अमादा हो गया, उसने अपने को दिल्ली सम्राट का "फ़िदवि-ए-ख़ास" लिखना छोड़ दिया था, उसने बेजा तरीके से अपने सिक्कों से बादशाह का नाम निकाल दिया और बादशाह की रिआया को हर तरह से नोचने खसोटने लगा। यह सही है कि बादशाह कमज़ोर था, दिल्ली दरबार की ताक़त ढोली पड़ गई थी, वह विदेशी ज़ालिमों से अपनी रिआया को बचाने में असमर्थ थी, पर इससे उसकी हुकूमत, उसकी Sovereignty, हिन्दुस्तान के सरताज की उसकी क़ानूनी हैसियत कैसे बदल सकती है? जिसे सन् ५७ की बग़ावत कहा जाता है वह क़ानूनी निगाह से बाग़ी कम्पनी के लोगों को, जो तीन सूबों की दीवान थी, दबाने और सज़ा देने की जोरदार कोशिश थी। पेशवा धुन्धपन्त, रानी लक्ष्मी बाई, बेगम हज़रत महल, राजा सतारा वग़ैरह का सम्राट बहादुर शाह के नाम पर सलामी देना एक सही क़ानूनी चीज़ थी क्योंकि उस वक़्त तक किसी सुलहनामे के ज़रिये, ख़ुद अङ्गरेज़ों के किसी ऐलान के ज़रिये दिल्ली सम्राट की क़ानूनी शहन्शाहियत ख़त्म नहीं हुई थी। बहादुर शाह को नये सिरे से भारत का सरताज बनाने की बात नहीं थी वह तो बना बनाया हक़ीक़ी सरताज था ही; इसके ख़िलाफ़ अङ्गरेज़ बाग़ी थे और उन्हें सज़ा देने की जो भी कोशिश की गई वह इन्साफ़ और क़ानून के मुताबिक थी।

इसीलिये जब अङ्गरेजों के ख़िलाफ़ सन् ५७ की वह आज़ादी की लड़ाई शुरू हुई तो फिर एक बार हिन्दुस्तान भर में मुग़ल सम्राट की हरी पताका फहराने लगी, सारे भारत की फ़ौज ने शाही ख़ज़ाने ला लाकर सम्राट बहादुरशाह के क़दमों पर रखना शुरू किया कि जिस ख़ज़ाने को अङ्गरेज़ कम्पनी के नौकरों ने ज़बरदस्ती हथिया लिया था। मुग़ल बादशाहों ने अपनी ख़ुशी से अङ्गरेज़ों को कई सूबों की दीवानी और सूबेदारी दी थी। उन्होंने अमानत में ख़ायानत किया, शाही ख़ज़ाने को ख़ुद हड़प लिया। सन् १८५७ में बहादुरशाह ने कम्पनी को दीवानी से बरख़ास्त कर दिया। इसका उसे पूरा हक़ था। उसके इस क़ानूनी हक़ से कौन इनकार कर सकता है? दिल्ली सम्राट का राज भारत-वासियों के लिये 'स्व'-राज था।

उस जङ्ग में सिख राजाओं ने बाग़ी अङ्गरेजों का साथ दिया। जब बहादुर शाह ने उन्हें अपनी तरफ़ वफ़ादार रहने का फ़रमान देकर ताजुद्दीन को भेजा। तो ताजुद्दीन ने उनसे बातें करके दिल्ली सम्राट को जो ख़त लिखा उसमें अङ्गरेज़ों को बाग़ी लिखा है और सिख राजाओं ने सम्राट को अपना सम्राट माना है। उस ख़त के लफ़्ज़ हैं—

"पञ्जाब के सिख राजा सुस्त और बुज़दिल हैं। वे फ़िर-ङ्गियों के हाथों के खिलौने बने हुये हैं। मैंने उनसे बातें कीं। उनके सामने अपना कलेजा पानी कर दिया। मैंने उनसे कहा कि आप झूठे और ग़द्दार फ़िरङ्गियों का क्यों साथ देते हैं? आप मुल्क की आज़ादी के साथ क्यों दग़ा करते हैं? क्या आप अपने स्वराज्य में इससे अच्छे न रहेंगे? आपको कम से कम अपने फ़ायदे के लिये ही अपने सम्राट का साथ देना चाहिये। इस पर उन्होंने जवाब दिया—'देखिये, हम सब मौक़े के इन्तज़ार में हैं। ज्योंही हमें अपने सम्राट का हुक्म मिलेगा हम एक दिन के अन्दर इन बाग़ी काफ़िरों को मार डालेंगे।' कहने को तो ये राजा ऐसा कहते हैं मगर मेरा ख़याल है कि हम उन पर बिल्कुल एतबार नहीं कर सकते।"

बहादुर शाह की यह क़ानूनी हैसियत एक दूसरे मौक़े पर जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, अलवर, ग्वालियर वग़ैरह के देशी राजाओं के नाम बहादुरशाह के लिखे हुये उस ख़त से भी ज़ाहिर होती है जिसे सर टी० सेटकाफ़ ने अपनी पुस्तक "नेटिव नैरेटिव्ज़" के सफ़े २२६ में नक़ल किया है। सम्राट बहादुर शाह के उस ख़त का मज़मून है—

"मेरी यह दिली ख़ाहिश है कि जिस ज़रिये से भी और जिस क़ीमत पर भी हो सके, फिरङ्गियों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। मेरी यह ज़बर्दस्त ख़ाहिश है कि तमाम हिन्दुस्तान को फिरङ्गियों से आज़ाद किया जाय। लेकिन इस मकसद को पूरा करने के लिये जो इनक़लाबी जङ्ग शुरू कर दिया गया है वह उस समय तक फ़तहयाब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नहीं हो सकता जिस समय तक कि कोई ऐसा शख़्श जो इस तमाम तहरीक के भार को अपने ऊपर उठा सके जो क़ौम की मुख्तलिफ़ ताक़तों को सङ्गठित करके एक ओर लगा सके और जो अपने तईं तमाम क़ौम का नुमाइन्दा कह सके, मैदान में आकर इस अजीमुश्शान कोशिश की बागडोर अपने हाथों में न ले ले। अङ्गरेजों के निकाल दिये जाने के बाद मुग़ल ख़ानदान के ज़ाती फ़ायदे के लिये हिन्दुस्तान पर हुकूमत करने की मुझमें जरा भी ख़ाहिश नहीं है। अगर मेरे आप सब सरदार दुश्मन को निकालने की ग़रज़ से अपनी तलवार खींचने के लिये तय्यार हों तो मैं इस बात के लिये राज़ी हूँ कि हिन्दुस्तान पर हुकूमत करने के अपने ख़ानदान के तमाम शाही अख़्तियारात और पुश्तैनी हक़ूक़ देशी नरेशों के किसी ऐसे गिरोह के हाथों में सौप दूं जिसे इस काम के लिये चुन लिया जाय। मैंने बीस बरस तक हिन्दुस्तान की शहन्शाहियत की और अब कोई ज़ाती ख़ाहिश मेरे दिल में बाक़ी नहीं है।"

बहादुर शाह के इस खत से बिलकुल साफ़ है कि सन् १८५७ के आजादी के जङ्ग के वक्त वह हिन्दुस्तान का न्याय्य सम्राट था। अङ्गरेजों ने उस वक्त तक बहादुरशाह की इस क़ानूनी हैसियत, इस Constitutional Position से इनकार नहीं किया था। दिल्ली के ख़ात्मे के बाद जब कप्तान हडसन ने बहादुरशाह के जवान बेटों और पोतों के सर काटकर एक तश्त में रखकर, ऊपर से कपड़ा ढककर जब सम्राट के सामने लाल क़िले में पेश किया तो यह कह कर पेश किया था—

"जहाँपनाह ! कम्पनी की ओर से यह आपकी 'नज़र' है जो बरसों से बन्द थी।"

इसके बाद लाल क़िले में एक फ़ौजी अदालत के सामने सम्राट बहादुर शाह पर मुक़दमा चला। सम्राट ने शान के साथ उसमें किसी तरह का कोई हिस्सा लेने से इनकार कर दिया। सम्राट के 'फिदवि-ए-ख़ास' ख़ुद सम्राट पर मुक़दमा चलायें, ऐसे फ़िदवी जो उसके देश के नहीं थे, उसकी प्रजा नहीं थे, जो विदेशी थे और आजकल के अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून के मुताबिक जिन्हें इस देश में साज़िश करने के लिये कड़ी से कड़ी सजा मिलनी चाहिये थी। इस देश में अङ्गरेजों हुकूमत ही बिलकुल ग़ैर क़ानूनी है। अङ्गरेजों को न तो इस देश की प्रजा ने कभी राजा क़ुबूल किया है और न मुग़ल बादशाहों ने उन्हें अपना कभी उत्तराधिकारी या वारिस बनाया है। यह कितने मज़ाक़ की बात है कि जिन विदेशियों का १००१ जायज़ वजहों के लिये लाल क़िले में कोर्टमार्शल होना चाहिये था वही आज उल्टे इस देश के वासियों पर उसी लाल क़िले में बग़ावत का मुक़दमा चला रहे हैं।

---

# प्रलय-पर्व

[ ९ अगस्त सन् १९४२ ]

श्री विद्याधर कुलश्रेष्ठ 'कुसुम'

हँस रहा है भाग्य और रो रही है बेबसी।
काँपते हैं स्वप्न भीरु, काँपती है बेकसी।
काँपता समीर, मूक आसमान काँपता।
डोलती प्रकृति निरीह, सब जहान काँपता।

हम बढ़े युगों की लौह-शृंखला को तोड़ने।
हम बढ़े थे दासता की अर्गला को खोलने।
हम बढ़े थे आग में सुवर्ण को निखारने।
हम बढ़े थे स्वर्ग को ज़मीन पर उतारने।

देह है ग़ुलाम और प्राण भी ग़ुलाम हैं।
भावना ग़ुलाम हाय, ज्ञान भी ग़ुलाम है।
साँस क़ैद, हास क़ैद, गान भी ग़ुलाम है।
है न हक़ कि बोल दें, ज़बान भी ग़ुलाम है।

क्षात्र-धर्म को यहाँ निबाहना गुनाह है।
हर शहीद की अरे सराहना गुनाह है।
दर्द है तो बोल मत कराहना गुनाह है।
देश की स्वतन्त्रता की चाहना गुनाह है।

फूल पर शयन करें न प्यास थी हमें तनिक।
मोतियों से घर भरें न आस थी हमें तनिक।
हम स्वदेश-गर्व को बुला रहे थे उस दिवस।
हम प्रलय के पर्व को बुला रहे थे उस दिवस।

तोड़ने को बेड़ियाँ चली ग़ुलाम फ़ौज थी।
गाती क्रान्ति गीत को बढ़ी तमाम फ़ौज थी।
काँप उठी थी रूढ़ियाँ, कुरीतियाँ, परम्परा।
काँप उठा था आसमान काँप उठी वसुंधरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



याद था हमें नहीं कि देश तो गुलाम है।
भूल हम चुके थे हाय वेश तो गुलाम है।
ध्यान था नहीं ग़रीब प्राण भी गुलाम हैं।
है न हक़ कि बोल दें, ज़बान भी गुलाम है।

क्षात्र-धर्म को यहाँ निबाहना गुनाह है।
हर शहीद को अरे सराहना गुनाह है।
दर्द है तो बोल मत कराहना गुनाह है।
देश की स्वतन्त्रता को चाहना गुनाह है।

याद है हमें अमर प्रताप की स्वतन्त्रता।
याद है हमें शिवा की शौर्य धैर्य धीरता।
हम न भूल पायँगे जननि की उर व्यथाओं को।
हम न भूल पायंगे गुलामी की कथाओं को।

याद क्यों रहे न जालियाना बाग़ हर घड़ी।
याद क्यों रहे नहीं ग़दर का दाग़ हर घड़ी।
रहती याद उसको है कि जिसपै मुश्किलें पड़ीं।
जिसकी आँख से न बन्द होती अश्रु की झड़ी।

हमने स्वर सुनाया था स्वतन्त्रता का उस समय।
हमने गीत गाया था स्वतन्त्रता का उस समय।
हमने पग उठाया था स्वतन्त्रता का उस समय।
क्रांति-पर्व आया था स्वतन्त्रता का उस समय।

क्षात्र-धर्म को यहाँ निबाहना गुनाह है।
हर शहीद को अरे सराहना गुनाह है।
दर्द है तो बोल मत, कराहना गुनाह है।
देश की स्वतन्त्रता को चाहना गुनाह है।

हमने अपने दिल में लाल शोले भी छिपाए थे।
हमने अपने कन्धों पर पहाड़ भी उठाये थे।
हमने अपने हाथ से ख़ज़ाने भी लुटाए थे।
अपने खड्ग से ही अपने शीश भी कटाए थे।

अपनी दासता का भाव साथ में लिए हुए।
निज अतीत का प्रभाव साथ में लिए हुए।
सुख-समृद्धि का अभाव साथ में लिए हुए।
आर्य जाति का स्वभाव साथ में लिए हुए।

इनक़लाब बोलते हुये बढ़े थे युद्ध में।
मद-प्रमत्त डोलते हुए बढ़े थे युद्ध में।
ग्रन्थियों को खोलते हुये बढ़े थे युद्ध में।
अपना पथ टटोलते हुए बढ़े थे युद्ध में।

क्षात्र-धर्म को यहां निबाहना गुनाह है।
हर शहीद को अरे सराहना गुनाह है।
दर्द है तो बोल मत, कराहना गुनाह है।
देश की स्वतन्त्रता को चाहना गुनाह है।

हम बढ़े जिधर, उधर विकाश-हास हँस उठा।
उठ गए चरण वहीं प्रकाश-पाश हँस उठा।
दासता का अन्धकार मिट गया निमेष में।
'नौ अगस्त' पर्व था स्वतन्त्रता का देश में।

निशि का रंग धुल गया चली प्रभात की हवा।
चल पड़े थे क़ाफ़िले, निकल पड़ा था कारवां।
क्रांति-सूर्य मेटता था अन्धकार नैश का।
जग उठा था एक-एक कण गुलाम देश का।

किन्तु शीघ्र वैरियों के अस्त्र-शस्त्र चल पड़े।
और बन्द जेलों के दुरूह द्वार खुल पड़े।
कह रही थीं दुश्मनों की टोलियां पुकारकर
कह रहीं पुलिस की क्रूर गोलियां पुकारकर—

'क्षात्र धर्म को यहां निबाहना गुनाह है।
हर शहीद को अरे सराहना गुनाह है।
दर्द है तो बोल मत, कराहना गुनाह है।
देश की स्वतन्त्रता को चाहना गुनाह है।'

हमने उनकी गोलियों को सीने से लगा लिया।
हमने अपने दिल में प्रेम-भाव को पगा लिया।
हमने छूके शान्त सुप्त जेलों को जगा दिया।
हमने अपने ख़ून से ज़मीं को जगमगा दिया।

ले रहीं थीं गोद में चिताएँ सब शहीदों को।
दे रहीं थीं दावतें समाधियां मुरीदों को।
अब न बुझ सकेगी आग अब न बुझ सकेगी लव।
गूँजेगा स्वतन्त्रता के मन्त्र का गँभीर रव।

जल उठी थी देश में स्वतन्त्रता की होलियां।
क्रांति का गुलाल और विप्लवों की रोलियां।
भर चुकीं थीं क्रूरता से दुश्मनों की झोलियां।
आ रही समाधियों-चिताओं से ये बोलियां—

'क्षात्र-धर्म को यहां निबाहना गुनाह है।
हर शहीद को अरे सराहना गुनाह है।
दर्द है तो बोल मत, कराहना गुनाह है।
देश की स्वतन्त्रता को चाहना गुनाह है।'



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भारतीय नृत्य-कला का मौलिक विकास

श्रीमती ईनक्षी रामराव

सृष्टि-सृजन के समय से ही मनुष्य के सामने हमेशा एक आदर्श रहा है और वह आदेश है अपने को पूर्ण बनाना। अपने पूर्णत्व की भावना को सामने रख कर ही उसने तरह तरह की योजनाएं बनाईं। मानव के अन्दर इस कल्पना ने जो कला भावना पैदा की उससे उसने देवों और अमरों को काँसे, पत्थर और दूसरे पदार्थों की मूर्तियों के रूप में गढ़ा। हिन्दू जाति की लगातार बढ़ती हुई युगों की संस्कृति की तस्वीर हमें उसके कला के खज़ाने में दिखाई देती है। पहिले उसने इस बात की कल्पना की कि इन पार-लौकिक विभूतियों की कितनी सुडौल आकृति होगी, उनका अंग संचालन कितना आकर्षक होगा और वे कितने मधुर स्वरों में अपने को व्यक्त करते होंगे? कलाकार मानव ने अपनी इन्हीं कल्पनाओं को पहले अपने चित्रों और मूर्तियों में उतारा और फिर उन्हें सत्यं, शिवं, सुन्दरं मानकर उनकी पूजा करने लगा। उसकी कला कृतियों की इस सांस्कृतिक परम्परा से नृत्य-कला का विकास हुआ। उसकी इस नृत्य-कला में भाव भङ्गी और मुद्राओं को सजीव रूप मिला। अति प्राचीन नृत्यकार शरीर की पूर्णता, हाथों की मुद्रा, तालमय पग-ध्वनि और भाव प्रदर्शन पर बहुत ज़ोर देते थे। यही कारण है कि भारतीय पौराणिक नृत्य इतने अध्ययन पूर्ण हैं और उसमें भाव भङ्गिमा, अंग संचालन और मुद्राओं को इतना महत्व दिया जाता है। यहां तक कि देवताओं और देवियों, राम और लक्ष्मण, अर्जुन और भीम, राजाओं और रानियों, अप्सराओं और गन्धर्वों की कहानियों को नृत्य-नाट्य में परिवर्तित कर लिया गया है। नृत्य समारोहों में मानव भावनाओं को व्यक्त करने का स्रोत धर्म कथाओं और पुराणों को बनाया गया।

युगों की सांस्कृतिक परम्परा के साथ साथ भारतीय दर्शन ने भी नृत्य को प्रभावित किया। भले और बुरे की, क्रोध और उदासी की, सुख और वासना की, त्याग और वैराग्य की और दूसरी अन्य नैतिक भावनाओं को नृत्य मुद्राओं में व्यक्त किया गया है। नृत्यकार एक विशेष भावना को व्यक्त करने के लिये जिस मुद्रा को प्रयुक्त करता था वह मुद्रा सुरक्षित रख ली जाती थी और फिर उस विशेष भावना को व्यक्त करने का उसे साधन बनाया जाता था। मूर्तियों और चित्रों में, कि जिनके आदर्श देवी और देवता होते थे, तांडव (रुद्र नृत्य) और लास्य (कोमल नृत्य) के आकारों को अंकित किया जाने लगा। शिव ब्रह्माण्ड के नर्तक, जिनकी भृकुटि में नाश और निर्माण की शक्ति निहित है, शक्तिपूर्ण पौरुष के रूप समझे गये, जिनके माथे पर दूज का चन्द्रमा, हवा में उड़ती हुई जिनकी घुँघराली केश राशि, जिनका एक पग बामन पर और ज्वाला जिन्हें घेरे—तांडव नृत्य के पैटर्न थे, जब कि अपनी कोमल भावनाओं के सहित पार्वती और अप्सराएं लास्य की प्रतिमूर्ति थीं। कालिदास ने लिखा है कि शकुन्तला इतनी मर्यादा के साथ अंग संचालन करती थी कि जब वह फूलों के पौधों में पानी सींचती थी तो उसके विविध पोज़ नृत्य करती हुई ऐसी मूर्तियों की तरह लगते थे जो एक दूसरे में पिघल कर एकाकार हो रही हों।

भारतीय नृत्य कला अपने इस प्रोत्साहन और पार्श्व भूमि में संसार की नृत्य कलाओं में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। अपने नाट्य शास्त्र में भरत ने लिखा है कि अर्थपूर्ण मुद्राओं और आकृतियों के मेल से भारतीय नृत्य कला की रचना हुई। देह और पदों के संचालन और मुद्राओं के प्रवाह से जो सुभाव व्यक्त होते हैं उन्हें अलग करके ख़ाली नृत्य कोई अर्थ नहीं रखता। तरह तरह की भावनाओं और उद्वेगों को मौन रूप से व्यक्त करना ही भारतीय नृत्य की विशेषता है। पौराणिक नृत्यों में मुद्राओं द्वारा ही भावनाओं को व्यक्त किया जाता है और इसमें सिर गर्दन और भौहों, आंखों, देह और पैरों के सञ्चालन से मदद ली जाती है। भारतीय नृत्य में नपे-तुले पद-चाप स्वर ताल से बंधी हुई मन्द से तीव्र और तीव्र से मन्द पद-झंकारें उसकी विशेषता हैं। पौराणिक नृत्यों में शक्ति की प्रधानता के कारण शिव मन्दिरों में देवदासियों की एक संस्था ही बन गई। ये कुमारी नर्त्तकियाँ देवता की वधुएं बनकर शिव मन्दिरों में देवता की भक्ति के गीत गाती थीं, उसकी उपासना करती थीं और उसे प्रसन्न करने के लिये लास्य करती थीं; यहाँ तक कि उनके अंग प्रत्यंग, उनकी समस्त देह और उनकी पूरी मुखाकृति अपने देवता के साथ उनका तादात्म्य प्रकट करने लगती थी। उनकी अँगुलिएं, उनकी दृष्टि, उनकी कांपती हुई भौंहें और उनकी मुद्राएं उनकी अन्तर आत्मा की भावना को पूरी तरह प्रकट करती थीं। इन्हीं पवित्र स्वाभाविक और धार्मिक नृत्यों को पौराणिक नृत्य कहा जाने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# इण्डोनीशिया में डच साम्राज्यवाद

श्री प्रकाशनारायण सप्रू

तीन सदी से ज़्यादा से डच लोग इण्डोनीशिया पर हुकूमत कर रहे हैं। सन् १८०८ में तो एक मरतबा ऐसा मालूम पड़ रहा था कि डच साम्राज्य डचों के हाथ से निकलकर अङ्गरेजों के हाथों में आ जायगा। ब्रिटेन के एक साम्राज्य निर्माता रैफ़ल ने डच उपनिवेशों पर ब्रिटेन का आधिपत्य जमाना भी चाहा था।

किन्तु सन् १८१५ की वियना की कांग्रेस ने डचों को जावा फिर से वापस दिला दिया। उसके बाद से इण्डोनीशिया की हुकूमत को लेकर डचों और अङ्गरेजों की प्रतिद्वन्दिता बन्द हो गई। यह बात उल्लेखनीय है कि सन् १८१५ में अङ्गरेजों की भारतीय सेना ने डचों के पञ्जे से जावा को मुक्त किया था। अगर वियना कांग्रेस ने जावा डचों के हवाले न किया होता तो आज वहाँ अङ्गरेजी हुकूमत होती। हालाकि अङ्गरेजी हुकूमत कहाँ तक उनके लिये लाभप्रद होती यह एक दूसरी बात है। मलाया में अङ्गरेजी हुकूमत के जो कारनामे हैं उससे जाहिर होता है कि जावा अङ्गरेजी हुकूमत में किसी तरह बेहतर न रहता। साम्राज्यवाद का स्वभाव ही शोषण है फिर चाहे वह साम्राज्यवाद किसी देश और जाति का क्यों न हो। डचों और अङ्गरेजों में सिर्फ एक फर्क है। अङ्गरेज अपने ज़ुल्मों और शोषण के लिये एक नैतिक बहाना ढूँढ़ लेते हैं जब कि डच इण्डोनीशिया में खुला नङ्गा नाच नाचते हैं।

उन्नीसवीं सदी के पूरे वक्त में डच अपनी सारी शक्ति एक ऐसे तरीके को अमल में लाने में बरत रहे थे जिसके जरिये जावा की तमाम दौलत खिंच खिंचकर हालैण्ड के ख़ज़ाने में पहुंच रही थी। इस तरीके को वे 'कल्चर सिस्टम' कहते थे। इसके अनुसार डच सरकार जावा में नियति क्षेत्र का एक खास रक़बा और जावी मजदूरों की एक ख़ास तादाद को अपने मातहत कर लेती थी। फिर इस क्षेत्र को हर तरह से चूसने में वह कोई कोताही नहीं करती थी। जावा के लोग भूखों मरते थे पर देश का धन लूट लूटकर हालैण्ड भेज दिया जाता था। मुनाफ़े की कोई हद नहीं रखी गई थी। नतीजा यह होता था कि जावा का सामाजिक ढाँचा छिन्न-भिन्न होता जाता था जावियों की हैसियत महज ग़ुलामों की सी हो गई। सन् १८५१ में डच सरकार ने अपने ख़रीते में इस बात का ऐलान किया कि शोषण के लिये ही जावा डचों के सुपुर्द किया गया था और उसमें जावा के डच अफ़सरों को किसी तरह की ढील नहीं देनी चाहिये।

बीसवीं सदी के शुरू में संगठित सरकारी शोषण की जगह व्यक्तिगत व्यापार ने ले ली। डच लोगों ने अन्तर्राष्ट्रीय नियति के लिये टिन, रबर और दूसरी चीनी पर व्यापार का एकाधिकार अपने हाथ में ले लिया। एक तरह से अङ्गरेजों और डचों के हाथ में ही दुनिया के चीनी के व्यापार का एकाधिकार था। जावी मजदूरों को गिरमिटिया बनाकर जबर्दस्ती पास के दूसरे द्वीपों सुमात्रा, सेलेबी आदि में भेज दिया जाता था या उन्हें बालिकपापन या तारकन के तेल के कुओं में काम करने के लिये विवश किया जाता था। एक मर्तबा लीग आफ़ नेशन्स में अमरीकनों ने इस बात पर बड़ा शोर गुल मचाया था कि डच सुमात्रा की अपनी खेतियों में ग़ुलाम मजदूरों से काम लेते हैं। डचों की पैदा की हुई तम्बाकू का बहिष्कार करने की भी उन्होंने धमकी दी थी पर डचों पर उसका कोई असर नहीं पड़ा।

सन् १८३० से सन् १८८० तक ५० वर्ष के अन्दर जावा से ८३, ५०,००,००० पौण्ड की रक़म हालैण्ड गई। व्यक्तिगत व्यापार से धन का जावा से हालैण्ड जाना रुका नहीं बल्कि और बढ़ गया। आज जावा के आर्थिक ढांचे में दो बातें ख़ास तौर पर ग़ौर करने के क़ाबिल हैं—(क) आबादी का बेहद बढ़ जाना और (२) गवर्मेण्ट के रेवेन्यू और विदेशी व्यापार का विस्तार। सन् १८१५ में जावा की आबादी ५० लाख थी। १९३० में वह बढ़कर ४ करोड़ होगई और इस समय उसकी आबादी लगभग ४ करोड़ ८० लाख है। इस तरह एक ओर वहां की आबादी बेतहाशा बढ़ रही है और दूसरी ओर विदेशी व्यापार और डचों का शोषण भी अनाप शनाप हो रहा है। इण्डोनीशिया का समस्त वैभव हालैण्ड के लिये विस्तार पा रहा था और जावा निवासियों क पेट काटकर डचों को मोटा बनाया जा रहा था।

डचों ने जावानिवासियों में शिक्षा के प्रचार का कोई उद्योग नहीं किया। जावा के ६ से ९ वर्ष तक के बच्चों में सिर्फ़ २९८ प्रतिशत और ६ से १३ साल तक के बच्चों में १४ प्रतिशत को साधारण शिक्षा दी जाती थी। डच सरकार सरकारी खर्च पर जावावालों को किसी प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हाईस्कूल या यूनिवर्सिटी की तालीम देना ज़रूरी नहीं समझती थी। दो तरह के स्कूल इण्डोनीशिया में मौजूद थे—(१) जिनमें ग्रामीण जावी बच्चे मामूली शिक्षा पाते थे और (२) जिनमें ग्राम पाठशालाओं के शिक्षकों को और डचों की नौकरी करनेवाले जावियों या व्यापार करनेवालों को तालीम दी जाती थी। जब कि हालैण्ड में कैबिनेट मिनिस्टर को डच माली की तनख़ाह से केवल १२ गुनी ज्यादा तनख़ाह मिलती है जावा के सरकारी बागीचे के डाइरेक्टर को जावी माली की तनख़ाह से १२० गुना ज्यादा तनख़ाह मिलती थी। डच सरकार के तख़मीने के मुताबिक १० व्यक्तियों के जावी परिवार की सालाना औसत आमदनी २०० रुपया थी।

डचों ने जावा में हमेशा से किसी क़िस्म के भी राष्ट्रीय आन्दोलन को सहन नहीं किया। हर राष्ट्रीय आन्दोलन को उन्होंने निर्दयता से कुचलने की कोशिश की। इण्डोनीशिया के डच गवरनर-जनरल ने सन् १९४२ में जापानियों को आत्मसमर्पण करने के कुछ वर्ष पूर्व जावी देशभक्तों को सम्बोधन करते हुये अपने एक बयान में कहा था—"हम डच यहाँ ३०० बरस से हैं और अभी ३०० बरस हमें और रहना है, उसके बाद हम तुम्हारे अधिकारों की बात सुनेंगे।

## जावा में राष्ट्रीयता का विकास

पहले महायुद्ध के कुछ वर्ष पूर्व से जावा में राष्ट्रीयता के नारे लगने शुरू हुये। उस समय जो राष्ट्रीयता समिति बनी उसमें जावा के चन्द पढ़े लिखे लोग थे। उसके बाद इसलाम के झण्डे के नीचे एक विस्तृत सर्व जावी राष्ट्रीय समिति का सङ्गठन किया गया। उसमें जावा के सभी धर्मावलम्बी शामिल थे। इसके बाद सन् १९१२ में डच-जावी करणटों और जावियों ने मिलकर एक Insulinde Party क़ायम की। डच शासक उसे एक ख़तरनाक संस्था समझते थे। पहले महायुद्ध से जावा में राष्ट्रीयता को काफ़ी प्रोत्साहन मिला और डचों को मजबूर होकर एक सलाहकार असेम्बली क़ायम करनी पड़ी कि जिसे किसी तरह की कोई ताक़त नहीं दी गई थी। बहुत थोड़े डच अफ़सर जावी देशभक्तों को ख़ुश करने में विश्वास करते थे। उन्हें अङ्गरेज़ों द्वारा भारतीय जनता को थोड़े बहुत भी अधिकार देने से बड़ी घृणा थी। दूसरी ओर जावी देश भक्त इण्डियन नेशनल कांग्रेस को अपना आदर्श बना कर चल रहे थे।

किया जाता है। सन् १९२३ में बटाविया में एक ज़बरदस्त राष्ट्रीय क्रान्ति हुई पर उसे बुरी तरह कुचल दिया गया। लोगों को कन्सनट्रेशन कैम्पों में बन्द कर दिया गया जहां से निकल भागना असम्भव था। जिसने भागने की कोशिश की उसको पापुअन नरभक्षी मनुष्यों ने खा लिया। इन सब देश भक्तों का क्या हश्र हुआ यह आज तक कोई नहीं जानता। इन अत्याचारों के कारण उस युद्ध के पहले जावी राष्ट्रीय नेता गुप्त रूप से काम करते थे। जावा से डच शासन के अन्त और उसके बाद सहसा जापानी सत्ता के समाप्त हो जाने से जावी देश भक्तों को अपने देश को आज़ाद करने का यह सुनहला अवसर मिला है।

डच शासन प्रणाली को हम एक भारी भरकम नागरी या ग़ैर फ़ौजी स्वेच्छा शासन कह सकते हैं। इण्डोनीशिया हालैण्ड के औपनिवेशिक विस्तार का अङ्ग है और सब जगह एक ही नागरिकता है। डचों के मातहत २३९ रक्षा-राज्य ( Protective States ) हैं। इनमें चार जावा में हैं बाक़ी बाहरी द्वीपों में छितरे हुये हैं जिनमें हरएक की आबादी पौने दो लाख से साढ़े तीन लाख तक है। १ करोड़ २० लाख आदमी संरक्षित हुकूमत में रहते हैं और चार करोड़ अस्सी लाख पर हालैन्ड की सीधी हुकूमत है। डच रक्षा राज्यों और हिन्दुस्तान के देशी राज्यों में एक मौलिक फ़र्क़ है। डच रक्षा-राज्यों को बहुत नाम मात्र को स्वायत्त शासन प्राप्त है। उनकी प्रजा डच प्रजा कहलाती है। आर्थिक शोषण की ग़रज़ से ये सब रक्षा राज्य एक केन्द्रीय डच सरकार के मातहत हैं। डच औपनिवेशिक शासन और नीति एक पिछड़ी हुई और प्रतिक्रियावादी नीति है। पश्चिम के उदार गणतांत्रिक शासन का उस पर कोई असर नहीं है। डच कहते ज़रूर हैं कि हम अपने औपनिवेशिक शासन का अन्त कर देंगे पर वे महज़ थोथे शब्द हैं। उनके पीछे कोई तत्व नहीं। कुछ वर्ष पूर्व एक अमरीकन लेखक हन्स कोहन ने उपनिवेशों के लोगों को जीवित रखने के लिये कुछ आवश्यक शर्तें गिनाई थीं। वह लिखता है—"पहली शर्त यह है कि लोगों की रहाइश का स्तर ऊँचा बनाया जाय। उनमें स्वतन्त्रता की भावना को जाग्रत किया जाय ताकि जीवन में एक पूर्णता, एक समृद्धि और एक उत्तरदा आये। जो भी सरकार अपने उपनिवेशों की जनता के वास्तविक सम्पर्क महसूस करती है उसे ये आवश्यक पूरी करनी चाहियें।" सीधे सादे शब्दों में इण्डोनीशिया या किसी भी दूसरी क़ौम के आर्थिक और सांस्कृतिक [illegible] के लिये स्वराज्य एक ज़रूरी शर्त है। परम्परा से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



राजनैतिक दृष्टि से डच एक ऐसी क़ौम है जो इण्डोनीशियन जनता की इन बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में असमर्थ है।

## ज़ालिमाना हुकूमत

हमने सरसरी तौर पर इस लेख में यह बताने की कोशिश की है कि इण्डोनीशिया पर डचों की हुकूमत एक ज़ालिमाना हुकूमत रही है। यह सही है कि डच रानी विलहेल्मिना ने ६ दिसम्बर सन् १९४२ को यह ऐलान किया था कि लड़ाई के बाद हालैन्ड और उसके साम्राज्य का ढांचा तय करने के लिये एक गोलमेज कान्फ्रेंस बुलाई जायगी। लेकिन क्या इसकी कोई गारन्टी है कि डच, जो हमेशा से कुशासन करते रहे हैं, उस कान्फ्रेंस में इण्डोनीशिया की आज़ादी और उद्धार के प्रश्न पर उदारता से विचार करेंगे? क्या मित्रराष्ट्र जिन्होंने फ़ासिज़्म के ख़िलाफ़ जीत हासिल की है, इस जीत में इण्डोनीशियनों को भी कोई हिस्सा देंगे? क्या उन्हें आज़ादी हासिल करने के इस मौके से वञ्चित रखा जायगा? इङ्गलैण्ड के उदार दल के समाचार पत्र "मैनचेस्टर गार्जियन" ने डच साम्राज्यवाद के साथ हमदर्दी ज़ाहिर की है। इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं। अङ्गरेज़ चाहे लिबरल हों, कंज़रवेटिव हों, सोशलिस्ट हों तमाम यूरोपीय साम्राज्यवादी ताक़तों के साथ दोस्ती रखते हैं और अपनी जिस न्याय-भावना के लिये उन्हें फ़ख्र है, उनकी वह न्याय भावना जब ग़ुलाम देशों का प्रश्न आता है तो ग़ायब हो जाती है। हिन्दुस्तान को आज अपनी बेबसी पर बहुत दुख है कि शान्ति क़ायम रखने के नाम पर आज उसकी फ़ौजों को इण्डोनीशिया की जनता के विरुद्ध इस्तेमाल किया जा रहा है। हिन्दुस्तानी देश भक्त इसे इण्डोनीशिया की पीड़ित जनता को दबाने की एक नापाक हरकत समझते हैं और इसके लिये उन्हें दिली अफ़सोस है।

---

# मज़लूम !

श्री इन्द्रप्रताप तिवारी बी० ए०

बिछी रात निस्तब्ध दिशायें सांय सांय चलती पुरवाई,
छाये आसमान पर बादल लेता माघ पूस अँगड़ाई।
चमक रहीं सरसों से लटकी रोशनियों में टप टप बूँदें,
कांप रहा इन्सान घरों में नीड़ों में पक्षी मुँह मूँदे।

किन्तु 'चचर चूं' की धुनि कैसी, कैसी 'टक टक' की आवाज़ें
रह रह उठता है किसका स्वर किस पर डण्डे की बौछारें।
सोच रहा था मैं कमरे में आकुल था उत्सुक थीं आँखें
कौन मुसीबतज़द सड़कों पर ऐसी जब घनघोर घटायें?

मैलागाड़ी के जूये पर उकरू मारे बैठा लथपथ,
बदन काँपता दाँत बोलते ऊपर बूँदे गिरतीं टपटप।
सरपर सड़े चीथड़े ढांपे लटकी टूक टूक अधबाहीं।
घुटनों तक जाँघिया लपेटे फटे झँगौछों की गलबाहीं।

चीर रात के सन्नाटे को गूँज रहा उसका स्वर उठ उठ।
जब अकेलेपन पर अपने पीट रहा भैंसे को रुक रुक।
जलती बीड़ी के हर कश में उसके जर्जर तन की आहें,
बुझती इस कँपती सर्दी में उसके जीवन की चिर चाहें

कहीं शहर के गन्दे कोने में बीवी बच्चों को छोड़े
रात काटता है सड़कों पर अपने जज़्बों से मुँह मोड़े।
इसी तरह कट गया लड़कपन ऐसे ही कट रही जवानी
राग रंग क्या कैसी मस्ती उसका जीवन एक रवानी।

एक ख़बर उसको देती हैं दुनियाँ की हलचल औ बातें
इसी सफ़र पर ले चलने को जाती सोई संगिनि रातें!
मनमारे ढो रहा अकेले सड़ती बमपुलिसों की बदबू
अपने इस हक़ीर पेशे पर शिकन न खाती उसकी अबरू!

सहता है मज़लूम अबतरी को पुश्तैनी पेशा कहकर
ढोता है इन्सानी मैला अपने को नाचीज़ समझकर!
वह मुर्दादिल दो टुकड़ों पर सहता है यह जुल्म कलुषता
बेंच चुका है अपना तन मन लूट रही उसको निर्दयता।

थर थर काँप रही है धरती आज मनुजता भरती आहें
एक बार करवटें बदल लो फड़का लो आजानु भुजायें!
एक बार बस एक बार तुम जाग सको अतुलित बलवाले
ढह जायेंगी ये दीवारें तुम हो महा अडिग प्रणवाले!



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हिन्दू-मुसलमान ?

महात्मा भगवानदीन

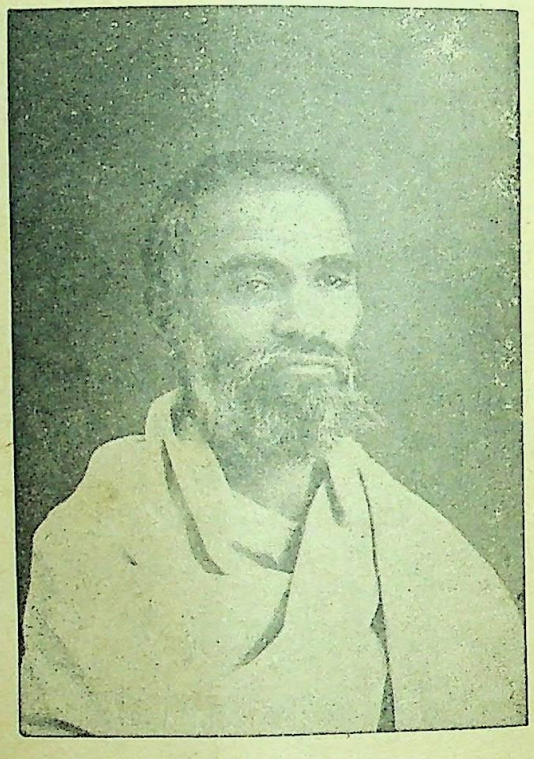

हिन्दू मुसलमान होकर किसी एक मुसलमान का नहीं क़रीब क़रीब सारे मुसलमानों का दिल हासिल कर सकता है; मुसलमान हिन्दू होकर किसी एक हिन्दू का भी दिल पूरा पूरा नहीं पा सकता।

हिन्दू मुसलमान होकर दुनिया के सारे धर्मों का दुश्मन बन जाता है। मुसलमान हिन्दू होकर धार्मिक कट्टरता से बहुत कुछ हलका हो जाता है।

हिन्दू मुसलमान होकर सब से नहीं तो बहुत से मुसलमानों से ऊँचा उठ जाता है और हिन्दुओं की नज़रों में बिलकुल गिर जाता है। मुसलमान हिन्दू होकर खुद तो सब हिन्दुओं से नीचा रहता ही है कभी कभी पीढ़ियों उसे इस मर्ज़ का शिकार होना पड़ता है। हिन्दुओं की छोटी से छोटी जाति भी उसको पूरे तौर से नहीं अपनाती। हाँ, यह बात ज़रूर है वह कुछ आम मुसलमानों की नज़रों में ऊँचा उठ जाता है। जिस तरह कोई भी हिन्दुस्तानी सर्कारी नौकरी पाकर अंग्रेज़ों की बराबरी नहीं कर सकता हां, बहुत से हिन्दुस्तानियों की नज़रों में ऊँचा हो जाता है।

आम हिन्दू की नज़र में अरब, ईरानी, मिस्री, यहां तक कि बिलोची मुसलमान लफ़्ज़ के लिए दूसरे लफ़्ज़ हैं। पर कोई मुसलमान हिन्दुस्तानी के माने हिन्दू नहीं समझता।

हिन्दू भी सारे धर्मों के खिलाफ़ तो होता है पर ढिंढोरा नहीं पीटता फिरता। हिन्दू पैदायशी हिन्दू होता है और उसकी कुछ आदतें भी पैदायशी होती हैं। मुसलमान के लिए पैदायशी होना ज़रूरी नहीं। कुछ मुसलमान हिन्दू की तरह रहते मिलेंगे पर ये अपवाद होने से हमारी बात को और मज़बूत करते हैं।

बहुत दिन नहीं हुए जब हिन्दू मुसलमान एक हो गए थे। दिल्ली की जामा मसजिद के मिम्बर से कट्टर आर्य समाजी तक़रीर कर सकता था। उन्हीं दिनों पानीपत में मैंने देखा एक बड़े मशहूर और नेक मौलवी को जैनों ने अपनी मूर्ति की पालकी को कन्धा नहीं लगाने दिया था, मन्दिर के चौक तक ज्यों त्यों उनकी रसाई हो पाई थी।

मुसलमान हिन्दू को खुले दिल से खींचता है; हिन्दू हिम्मत करता है, खींचता है पर झिझकता है।

हिन्दू अपने धर्म में फ़ैयाज़ है, उदार है, पर मिलने जुलने में कञ्जूस है, कांप जाता है, मुसलमान मिलने जुलने में फ़ैयाज़ है, उदार है, पर धर्म में कट्टर है।

हिन्दू छुआछूत छोड़े और मुसलमान कट्टरता तो कल हिन्दुस्तान एक! ईसाई पारसी सब साथ देंगे। साफ़ लफ़्ज़ों में मुसलमान हिन्दू को ऐसे ही गले लगाये जैसे मुसलमान को और हिन्दू मुसलमान के साथ ऐसे ही रहे जैसे सगे भाई के साथ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पुस्तक परिचय

**गान्धी जी के साथ सात दिन**—मूल लेखक, श्री लुई फ़िशर, अनुवादक श्री सुदर्शन और श्री कुलभूषण; प्रकाशक, वोरा एण्ड कम्पनी, पब्लिशर्स लिमिटेड, ६ राउण्ड बिल्डिङ्ग, कालबादेवी रोड, बम्बई २; मूल्य दो रुपये; पृष्ठ संख्या १३० ।

क्रिप्स मिशन के आने के समय भारत की राजनैतिक परिस्थिति पर प्रसिद्ध अमरीकन पत्रकार लुई फ़िशर ने एक सप्ताह गान्धी जी के पास रहकर उनसे जो बातें की थीं उन्हें उसने A week with Gandhi नाम से पुस्तकाकार छपवा दिया था। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने गान्धी जी के सम्बन्ध में सन् '४२ और उसके बाद जिस झूठ का प्रचार किया है उन सबका जवाब इस पुस्तक में मिलेगा। लेखक के लफ़्ज़ों में यह हिन्दुस्तान के महापुरुष के साथ गुज़ारे हुये आनन्दभरे समय का सच्चा बयान है जिसे एक पत्रकार ने अपनी तर्ज़ में लिख दिया है। लुई फ़िशर की यह पुस्तक अङ्गरेज़ी में बड़ी सर्वप्रिय साबित हुई थी। असल में यह पुस्तक सन् '४२ के आन्दोलन की पार्श्वभूमि का काम दे सकती है। हमें विश्वास है हिन्दी पाठक इसे अपने पास रखना पसन्द करेंगे। पुस्तक की भाषा सरल हिन्दुस्तानी है जिसे साधारण पढ़े लिखे पाठक भी अच्छी तरह समझ जायँगे।

पुस्तक का मूल्य निश्चय ही अधिक है।

**नये एशिया के निर्माता**—( सुनयात सेन, लेनिन और गान्धी का जीवन और उनके कार्य )—लेखक श्री विजय वर्मा; प्रकाशक, नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर ( राजपूताना ); मूल्य, दो रुपया; पृष्ठ संख्या, १७६।

प्रस्तुत पुस्तक प्रसिद्ध पत्रकार और उपन्यासकार श्री विजय वर्मा की नवीनतम रचना है। आज जब यूरोपीय साम्राज्यवादियों के विरुद्ध एशिया के संयुक्त मोरचे की चर्चा चारों तरफ़ हो रही है उस समय इस पुस्तक का प्रकाशन अत्यन्त सामयिक है। लेखक ने बड़े गहरे अध्ययन के साथ एशिया के तीन महापुरुषों सुनयात सेन, गान्धी और लेनिन के जीवन कार्य और साथ ही साथ चीन भारत व सोवियत् की आज़ादी की तहरीक पर प्रकाश डाला है। सोवियत् के व्यापक एशियाई प्रभाव और एशियाई द्वीप की अग्रणी शक्ति होने के कारण लेनिन को भी एशिया के निर्माताओं में शरीक किया गया है। पुस्तक बड़े रोचक ढङ्ग से लिखी गई है। निश्चय ही इससे पाठकों को ज्ञान वृद्धि होगी।

**हिन्दी गीता**—[श्री मद्भगवद्गीता का समश्लोकी भाषान्तर] भाषान्तरकार, श्री हरिभाऊ उपाध्याय; प्रकाशक, हिन्दी मन्दिर, प्रयाग; मूल्य, आठ आना।

श्री हरिभाऊ उपाध्याय से हिन्दी जगत पूरी तरह परिचित है। गीता का यह प्रस्तुत समश्लोकी अनुवाद उन्होंने गीतापाठ की सुविधा के लिये हाल में किया है। अनुवाद करते समय उन्होंने श्री विनोबा भावे की 'गीताई', गान्धी जी के 'अनासक्तियोग', लोकमान्य के 'गीता रहस्य' और श्री किशोरलाल मश्रूवाला की गुजराती 'गीता-ध्वनि' से भी मदद ली है। साधारण पाठकों के लाभ के लिये टिप्पणियां भी दी हुई हैं।

—विद्यानन्द सन्यासी

**उन्मुक्त प्रेम**—लेखक, श्री गुरुदत्त; प्रकाशक, विद्या मन्दिर लिमिटेड, नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या, ४५८; मूल्य, छः रुपये।

उन्मुक्त प्रेम के सम्बन्ध में जो मत 'संसार की नवीन विचार-धारा से हिन्दुस्तान में भी जा पहुंचा है'—जैसा कि लेखक ने पुस्तक की भूमिका में माना है—वह समाज में किन रूपों में व्यावहारिक होकर कितनी अच्छाई और कितनी बुराई कर सकता है, इसीको इसके लेखक ने इस उपन्यास में अपने विशेष ढंग से दिखलाया है। बिहारी लाल उन कम्यूनिस्ट लोगों के प्रतिनिधि के रूप में रखा गया है जो विषय-वासना की पूर्ति को वैसा ही मानते हैं जैसे प्यास लगने पर पानी पी लेना और भूख लगते ही खाना खा लेना, जो इस विषय में संयम सम्बन्धी नीति-नियमों को 'अवैज्ञानिक' कहकर उनकी हँसी उड़ाते हैं, नैतिक लहरों का अस्तित्व नहीं मानते और भगवान का सहारा लेना 'निरर्थक नपुंसक और बेकार की वस्तु' समझते हैं और यह चाहते हैं कि अपनी इन बातों का प्रचार कार्य रूप में करके दिखा दें। बिहारीलाल पहले सुन्दरी स्त्री विमला देवी के रहते हुए एक पूंजीपति डाक्टर खन्ना की एकमात्र सन्तान प्रेम देवी से, जो उसके साथ कम्यूनिस्ट पार्टी में काम करती है, उन्मुक्त प्रेम का सबंध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जोड़ता है, फिर अपनी स्त्री पर यह सन्देह करके कि उसका गुलाम रसूल से छिपा हुआ सम्बन्ध हो गया है, उसे अपने घर से निकाल देता है। प्रेम देवी भी उन्मुक्त प्रेम को माननेवाली हैं, वस्तुतः उन्हींका गुलाम रसूल से जो कम्यूनिस्ट पार्टी का एक शक्तिशाली कार्यकर्ता है, ऐसा सम्बन्ध हो गया है कि वह उसीसे गर्भवती होती हैं। बिहारीलाल अपनी नौकरी के कारण सरहद में बन्नू से आगे एक निर्जन स्थान ढक्की में गया तो वहां डाका पड़ने पर मुसलमान हकीम के परिवार द्वारा घायल बेहोशी की अवस्था में पाये जाने और उस हकीम के यहां लाने पर हकीम की लड़की नरगिस से निकाह कर लेता है। यह हकीम गुलाम रसूल के पिता, एक समृद्ध सरदार के दिये हुये गाँव में रहते थे, इसलिए वह इस विवाह की हालत में अपने सरदार को बुलाता है। गुलाम रसूल भी अपने पिता के साथ आता है और नरगिस को अपनी बीवी के मुकाबले में कहीं सुन्दर देखकर उसके मार्ग में खड़ा होकर कहता है 'मेरी जान! क्यों हलाक कर रही हो। एक नज़र इधर भी देख लो। आखिर उस हिन्दू लौंडे में क्या खूबी देखी है हुजूर ने?" और नरगिस के 'हट जाओ' कहने पर उसे 'अपनी प्रबल भुजाओं में दबोच" लेता है। इस पर नरगिस उसके पेट में छुरा घुमेड़ देती है। बिहारीलाल नरगिस के साथ वहाँ से भागकर फिर अपने यहां, लाहौर आता है तब देखता है कि डाक्टर खन्ना ने मरते समय अपनी जायदाद विमला देवी के नाम लिख दी है, केवल १५०) मासिक प्रेम देवी के लिए मिलते जाने का प्रबन्ध कर गये हैं और प्रेम देवी गुलाम रसूल के बच्चे को पेट में लिये हुए वृद्ध सेठ धन्नाराम जी के यहाँ जाकर उनकी स्त्री की भांति रहने लगी। इन सेठ साहब की दो सन्तानों में से लड़का तो अपना विवाह एक मुसलमान बैरिस्टर की, जिसका दिवाला निकल चुका है, लड़की से कर लेता है और बदले में अपनी अँगूठी बेंचकर उसे बीस हज़ार रुपये का चेक देता है और लड़की एक प्रोफ़ेसर पंडित के लड़के से एक बाग़ में 'चिड़िया चिड़वे' की तरह विवाह कर लेती है और बालिग़ हो जाने तक 'गौने' का इन्तज़ार करना चाहती है, फिर उसके पिता उसका विवाह एक बड़े धनी सेठ के ऐसे लड़के से कर देते हैं जिसकी आयु उससे कम है। अन्त में ये सेठ जी अछूता पछूता कर इन पंडित जी के लड़के के साथ ही विवाह को ठीक मानते हैं और पांच लाख का चेक प्रेम देवी की प्रेरणा से भेजते हैं। विमला को जो जायदाद मिलती है उसे वह न लेकर 'नागरिक अधिकार रक्षा समिति' की स्थापना और उसकी योजना पूर्ति में लगाती है और प्रेम देवी भी अपने ज़ोर से अपनी मिल को मज़दूरों के लिए सब तरह आदर्श बनाती हैं और कहती हैं कि इसलिए उन्होंने 'संसार की दृष्टि में नीच, पतित, ठग और छिनार' बनना स्वीकार किया है। बिहारीलाल लौटकर दूसरों से उन्मुक्त प्रेम करता है और अन्त में उसके सब प्रयत्नों के बावजूद उसे कोई नहीं अपनाता। बहुत ही संक्षेप में यही इस उपन्यास का मुख्य प्लाट है। लेखक ने 'हिन्दुओं के उन वैज्ञानिक नियमों का समान विमला से करवाया है जिनसे वासना की तृप्ति सामाजिक और आयुर्वेदिक नियमों के अधीन रहती है'। वस्तुतः ये नैतिक नियम सभी धर्मों में प्रायः एक से ही हैं। अगर नरगिस के ज़रिये मुसलमानों के धर्म के नैतिक तत्वों की हिन्दू धर्म के ऐसे तत्वों के साथ समानता और एकता दिखलायी गयी होती तो इसमें और भी उत्कृष्टता आ गई होती। जो प्रेम देवी वासना को ही प्रेम मानती है और वासना की तृप्ति को प्रेम की पराकाष्ठा समझती है उसका सेठ धन्ना राम के कल्याण की इच्छा से रहना वैसा ही अस्वाभाविक चित्रण हो गया है जैसा सेठ जी के कारखानों और रक्षक समिति के उस विकास का जो देश की इस पराधीन अवस्था में किसी तरह सम्भव नहीं रह गया, जबकि खाने पहरने की चीज़ों के नियन्त्रण में भी विदेशी-व्यापार को संरक्षण देने का विशेष ध्यान है और यहां की आधी जनता के आधे पेट रह जाने और दस करोड़ के भूखों की सी ही अवस्था में पड़े रहने की ओर यहाँ की गवर्नमेंट अपनी वैसी तनिक भी ज़िम्मेदारी नहीं समझती जैसी ब्रिटेन की गवर्नमेंट अपने देश के सभी अङ्गरेज़ों के प्रति। अगर स्वाधीन देशों की गवर्नमेंटों की ऐसी ज़िम्मेदारी की तुलना जिससे उनके यहां कोई भूखा और वस्त्रहीन और बेकार नहीं रह पाता पराधीन देशों की लुटेरी गवर्नमेंटों से कर दी जाती जो पराधीन देशों को शोषण से ही अपनी शान और विलासिता क़ायम रखना चाहती हैं, तो ये अस्वाभाविकतायें न आ पातीं। फिर भी कुल मिलाकर उपन्यास सफल रहा है। लाहौर सामाजिक बन्धनों के तोड़ने में अग्रगामी स्थानों में से एक है। वहां कम्यूनिस्ट लोगों में से अनेक में जैसी उच्छृङ्खल भावनायें उठ रही हैं उनका चित्रण समाज कल्याण के भाव से विशेष आवश्यक हो गया है। लेखक को ऐसे चित्रण में कुछ सफलता मिली है। भाषा में कहीं कहीं पंजाबी है। पुस्तक का दाम अधिक है।

—विजय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**बच्चों की आदतों का बढ़ना** —लेखक, राममूर्ति मेहरोत्रा एम० ए०; प्रकाशक, विद्या मन्दिर लिमिटेड, नई दिल्ली; मूल्य दो रुपया; पृष्ठ संख्या ११०।

प्रस्तुत पुस्तक जैसा उसके शीर्षक से ही स्पष्ट है, बाल मनोविज्ञान से संबन्धित है। प्रारम्भ में दो पृष्ठों की भूमिका है जिससे ज्ञात होता है कि इस पुस्तक के लिखने में लेखक का उद्देश्य बच्चों के अध्यापकों तथा अभिभावकों को उनके मानसिक विकास से परिचित कराना है। उसको समझे बिना किस प्रकार की भूलें हो जाया करती है और उनका कितना भयंकर परिणाम होता है उसका भी लेखक ने उल्लेख किया है "प्रायः अध्यापक शारीरिक-दंड-निषेध नियम से जान बचाने के लिए छोटे छोटे बच्चों को घंटों बेंच पर खड़ा कर देते हैं अथवा उनसे सैकड़ों बार उठक-बैठक कराकर कनपकड़ी कराते हैं। यह दृष्टि के लिए बड़ा अहितकर है।"

स्वतः पुस्तक में बारह अध्याय हैं: मानव-जीवन और उसकी अवस्थाएँ, जीवन-विकास, बच्चों के रोग और उनके उपचार, बच्चों की शारीरिक वृद्धि, आंख तथा दृष्टि, श्रवण-शक्ति, संवेदनात्मक विकास, बच्चों के खेलों का विकास, झूठ बोलना, चोरी करना, भगोड़ापन। इन शीर्षकों के अवलोकन मात्र से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक ने बाल्य-काल से सम्बन्धित प्रायः सभी वस्तुओं पर विचार किया है। विचार विनिमय में लेखक ने पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों तथा भारतीय जीवन-विज्ञान-वेत्ताओं दोनों के ही मतों को सम्यक रूप से लिया है। उनके द्वारा निर्धारित सत्य की व्याख्या उसने अपने जीवन के अनुभव के आधार पर की है। विशेष रूप से "बच्चों की शारीरिक वृद्धि" तथा "संवेदनात्मक विकास" शीर्षक अध्याय लेखक की अध्ययनशीलता का परिचय देते हैं। बच्चों के खेलों से सम्बन्धित अध्याय लेखक ने अपने अनुभव के आधार पर लिखा है और वह विशेष संपन्न है। अंतिम तीन अध्यायों में लेखक ने बालकों के दोषों का निरूपण किया है और उनके परिहार बताए हैं।

इस ११० पृष्ठ की पुस्तक में लेखक ने बच्चों के मनोवैज्ञानिक विकास के सम्बन्ध में ठोस सामग्री दी है। अध्यापकों तथा अभिभावकों के साथ जिनके लिए यह पुस्तक विशेष रूप से लिखी गई है, उच्च कक्षा के विद्यार्थी भी इसके अध्ययन से लाभ उठा सकते हैं। हिन्दी में इतनी अध्ययनपूर्ण तथा उच्च कोटि की पुस्तक उपस्थित करने के लिए लेखक बधाई के पात्र हैं।

—विश्वनाथ मिश्र एम० ए०

**इंगलैंड का शासन और औद्योगिक क्रांति**—लेखक श्री दयाशंकर दुबे तथा श्री ओमप्रकाश केला; प्रकाशक, भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज प्रयाग; प्रथम संस्करण; मूल्य एक रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी भाषा में इंगलैंड की, शासन व्यवस्था तथा औद्योगिक क्रांति की रूप रेखा हमारे सामने रखती है जो कि समय को देखते हुए आवश्यक है।

हिन्दी भाषा में पारिभाषिक शब्दावली की कठिनाइयां हैं। जहाँ अंग्रेज़ी शब्दों का लिखना अन्य लेखकों के लिये आवश्यक हो जाता है, वहाँ पर भी इस पुस्तक के लेखकों ने सरल अनुवादित शब्दों का ही प्रयोग किया है। इस विषय पर हिन्दी भाषा में कुछ इनी गिनी ही पुस्तकें हैं। पुस्तक इसी कमी को पूरा करने की दृष्टि से लिखी गई है।

लेखकों ने सारे विषय को उपयोगी पुस्तकों से अध्ययन करने के बाद करीब १२५ पृष्ठों में लिख दिया है। अंग्रेजी शासन विधान के मुख्य विषय, राजा, लार्ड सभा तथा कामन्स सभा हैं। पुस्तक में इन विषयों का पहले इतिहास संक्षिप्त रूप से दिया है, उसके बाद उनकी वर्तमान अवस्था का वर्णन किया गया है जोकि आवश्यक है। व्यवसायिक क्रान्ति (Industrial Revolution) का भी उल्लेख उपयोगी एवं अध्ययनपूर्ण ढंग से किया गया है। जिन जिन परिस्थितियों ने औद्योगिक क्रान्ति को लाने में सहायता दी उनका भी वर्णन किया गया है। पं० दयाशङ्कर दुबे अर्थशास्त्र के विद्वान हैं, इसी कारण पुस्तक के अन्त में उन्होंने 'औद्योगिक क्रान्ति और भारत' एक अलग परिशिष्ट लिखकर अपने विचार प्रगट किये हैं जो कि पुस्तक की उपादेयता को बढ़ा देते हैं।

हम पुस्तक का स्वागत करते हैं।

—प्रकाश चन्द्र उपाध्याय एम० ए०

**कर्त्तव्य**—(कहानी) लेखक, गिरीशचन्द्र मिश्र; प्रकाशक सहित्यकता-केन्द्र; कलकत्ता; मूल्य ।=); पृष्ठ २१।

'कर्तव्य' एक कहानी है। एक भारतीय नवयुवक भू परिक्रमा के लिए अपने घर से निकलकर, एक पर्ण कुटी में पहुँच जाता है, जिसमें एक महात्मा भारतेश्वरी के चित्रपट के सामने ध्यानावस्थित बैठे हैं। यह महात्मा उस नवयुवक को भारत के जन साधारण की दासता के बन्धनों में दीन-हीन हुई परिस्थिति से परिचित कराते हैं, भारत के



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


पूर्व गौरव का स्मरण दिलाता है और उसे कर्तव्य पथपर चलने के लिए प्रतिज्ञा बद्ध करता है। यही 'कर्तव्य' की सम्पूर्ण कथा है। २१ पृष्ठों की एक कहानी का मूल्य ।=) अधिक प्रतीत होता है। साथ ही यदि लेखक अपनी रचना को प्रकाशित रूप में देखने की आकांक्षा को संयमित रख सका होता तथा इस प्रकार देश-प्रेम सम्बन्धी अन्य कहानियाँ लिखकर उनका संग्रह प्रस्तुत करता तो अच्छा था।

**भारतीय-जागृति**—लेखक, भगवान दास केला; प्रकाशक, भारतीय ग्रंथमाला, दारागंज, इलाहाबाद; मूल्य २); पृष्ठ १९१।

यह पश्चिम के सम्पर्क से भारतीय जीवन के समस्त क्षेत्रों में होने वाली जागृति का एक अध्ययन है। पश्चिम के सम्पर्क में आकर एक बार हम उसकी भौतिक उन्नति देखकर मंत्र मुग्ध से हो गए थे। ईश्वरचंद्र विद्यासागर मनीषी भी कहते थे : "खेते, बोरते, शुते, बेड़ाते सब विषयेई इंग्राज श्रेष्ठ।"( पूरातन प्रसङ्ग पृष्ठ ५० ) और वास्तव में जहाँ तक जीवन यापन को भौतिक सुविधाएँ उत्पन्न करने का प्रश्न है अंगरेज लोग हमसे आगे अवश्य थे। इसीलिये उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के दिनों में जब अंगरेजी राज्य अपनी जड़ भारतीय भूमि में भली प्रकार नहीं जमा पाया था विचारवान अंगरेज अधिकारियों का कहना था कि भारतीय दासता को दूर रखने के लिए यह आवश्यक है कि भारतीयों को पश्चिम की औद्योगिक तथा सांस्कृतिक उन्नति से परिचित न कराया जाय नहीं तो वे एक दिन हमसे स्वतन्त्रता मांगने के लिए तत्पर हो जायँगे। सर चार्ल्स मेटकाफ़ जैसे उदारमना अगरेज जिन्होंने अंगरेजी साम्राज्य के मिट जाने का भय होते हुए भारतीय जनता को पश्चिमी ज्ञान विज्ञान से परिचित कराना आवश्यक समझा तथा स्वयं शासन सञ्चालन की आवश्यकता के कारण हम पश्चिम की सांस्कृतिक उन्नति के सम्पर्क में आए और जागृति के पथ पर अग्रसर हुए। श्री भगवान दास जी ने इस पुस्तक में धर्म, समाज, खेती, उद्योग-धंधा, शिक्षा, भाषा और साहित्य, विज्ञान तथा राजनीति सभी क्षेत्रों के जागरण का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की 'प्रथमा' तथा 'मध्यमा' परीक्षाओं के विद्यार्थी प्रधानतः तथा साधारण पाठक इस पुस्तक में अपने अध्ययन के लिए सामग्री प्राप्त कर सकते हैं।

—विश्वनाथ मिश्र मिश्र एम० ए०

**सहयोगियों के विशेषांङ्क**—पिछले महीने "प्रभात" ( जयपुर ), "प्रजा सेवक" ( जोधपुर ), "अभ्युदय" ( इलाहाबाद ) और "प्रकाश" ( रीवा ) ने अपने विशेषाङ्क निकाले हैं।

जयपुर का 'प्रभात' इधर यशस्वी पत्रकार और नेता पण्डित सत्यदेव जी विद्यालङ्कार के संचालन में एक उत्कृष्ट साप्ताहिक विचार पत्र के रूप में निकल रहा है। सहयोगी का प्रस्तुत अङ्क 'देशी राज्य शासन सुधार विशेषाङ्क' के रूप में निकाला गया है। आज जब रियासती प्रजा अंगड़ाई लेकर उठ बैठी है तो उसका उचित मार्ग प्रदर्शन एक बड़ी ज़िम्मेवारी की चीज़ है। श्री विद्यालङ्कार जी देशी राज्यों की समस्या से बहुत अच्छी तरह परिचित हैं इसलिये उनके संचालन में यह विशेषाङ्क गम्भीर विचार सामग्री से ओत प्रोत है। इस अङ्क के विशेष लेखों में—सन्धियां सिर्फ एक बहाना ( श्री जयनारायण व्यास ), उत्तर दायी शासन का स्वरूप ( श्री कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार ), प्रजा की जागृति ( चांद करण शारदा ) आदि मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों की आधुनिक समस्या पर भी अङ्क में प्रकाश डाला गया है।

जोधपुर के 'प्रजा सेवक' ने हाल में अपना आज़ाद हिन्द अङ्क निकाला है। इस अङ्क में आज़ाद हिन्द सरकार और आज़ाद हिन्द सेना का विस्तृत वर्णन दिया गया है। अनेक बहुमूल्य चित्रों के कारण अङ्क की उपयोगिता बेहद बढ़ गई है। ऐसा काम का अङ्क निकालने के लिये श्री अचलेश्वर प्रसाद शर्मा धन्यवाद के पात्र हैं।

इधर इलाहाबाद का 'अभ्युदय' अदम्य उत्साह और नई शान बान लेकर अपने नये रूप में जब से प्रकट हुआ है साप्ताहिक जगत में उसने अपनी एक आदरणीय जगह बना ली है। हाल में सहयोगी ने अपना एक 'सुभाष अङ्क' प्रकाशित किया है। जिसमें अनेक बहुमूल्य लेखों और पचासों चित्रों का समावेश है। सुभाष बाबू के व्यक्तित्व की नवीन और महानता को समझने के लिये यह अङ्क बड़ा उपयोगी है।

रीवां से निकलनेवाले 'प्रकाश' ने भी १२५ पृष्ठों का अपना एक शान्ति 'अंक' निकाला है। इस अंक में विश्व शान्ति पर प्रकाश डालनेवाले कई महत्वपूर्ण लेख हैं।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार

## चुनाव के भँवर में

कहते हैं जब ख़ून का स्वाद डाढ़ों को लग जाता है तो वह आसानी से नहीं छूटता। इसीलिये जब हमने यह पढ़ा कि बम्बई में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने सेण्ट्रल और सूबे की असेम्बलियों और कौन्सिलों का चुनाव लड़ने का फ़ैसला कर लिया है तो हमें कोई ताज्जुब नहीं हुआ। हालाकि तक़रीरों में यह बताया गया कि सेण्ट्रल असेम्बली बिलकुल निकम्मी, सन् १९१९ के सुधार के मुताबिक़ क़ायम एक पुरानी खूसट संस्था है और उससे देश का बिलकुल कोई फ़ायदा नहीं हो सकता पर फिर भी चुनाव लड़ने की यह वजह बताई गई कि इस चुनाव के ज़रिये दुनिया पर यह रोशन हो जायगा कि मुल्क कांग्रेस के साथ है। यह भी डर दिखाया गया कि अगर कांग्रेस वाले वहाँ न पहुंचे तो प्रतिक्रियावादी ( रजत पसन्द ) लोग वहां जाकर मुल्क को नीचा दिखायेंगे। सूबा असेम्बलियों के लिये यह बताया गया कि सन् १९३५ के रिफ़ार्म के मुताबिक़ उनसे जनता के फ़ायदे की कोई असली बात नहीं हो सकती। सेक्रेटेरियट के आइ० सी० एस० अफ़सरों के आगे कांग्रेसी मिनिस्टरों का कोई वश न चलता था। पर फिर भी इन प्रान्तीय असेम्बलियों में जाना इसलिये ज़रूरी समझा गया कि दुनिया कांग्रेस की ताक़त को जान जायेगी और फिर यह असेम्बलियाँ बक़ौल बड़े लाट के ऐलान के एक कान्स्टिटुएण्ट असेम्बली ( क़ानूनी मजलिस ) चुनेंगी जो मुल्क के लिये हुकूमत का नया साँचा बनायेगी।

हमने इस प्रस्ताव के शब्दों को और उस पर लोगों की तक़रीरों को बड़े ग़ौर से पढ़ा पर अफ़सोस है हमें आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का यह फ़ैसला ज़रा भी कायल नहीं कर सका। सन् १९२२ से, गया कांग्रेस के वक्त से, असेम्बलियों के प्रेमी बिलकुल वही एकसी दलीलें देते चले आ रहे हैं। सन् १९३० में स्व० पण्डित मोतीलाल नेहरू यह कहकर असेम्बली से बाहर निकले थे कि "अपने गहरे तजरुबे के बाद मैं दावे के साथ यह कह सकता हूँ कि असेम्बलियों और कौन्सिलों में आज़ादी की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती।"

सन् ३० में लाहौर कांग्रेस ने जब पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया तो डाक्टर पट्टाभी के 'कांग्रेस के इतिहास' के शब्दों में—"पहला काम उसने कौंसिल बहिष्कार के निश्चय पर अमल करवाने का किया। इसके लिये उसने मतदाताओं से अनुरोध किया कि जो सदस्य कांग्रेस की अपील पर ध्यान न दें उन्हें मतदाता मजबूर करें कि वे इस्तीफ़ा दें और नये चुनाव में शामिल न हों।" इसके परिणाम स्वरूप असेम्बली और विभिन्न कौंसिलों के १७२ सदस्यों ने अपने अपने इस्तीफे दे दिये थे।

लाहौर कांग्रेस ने जिस ग़रज़ से कौंसिलों के बायकाट का ऐलान किया था वह कांग्रेस प्रस्ताव के शब्दों में यह था—"....कांग्रेस आशा करती है कि अब समस्त कांग्रेसवादी अपना सारा ध्यान भारतवर्ष की पूर्ण स्वाधीनता को प्राप्त करने पर ही लगायेंगे। चूँकि स्वाधीनता का आन्दोलन सङ्गठित करना और कांग्रेस की नीति को उसके ध्येय के अधिक से अधिक अनुकूल बनाना आवश्यक है, इसलिये यह कांग्रेस निश्चय करती है कि कांग्रेसवादी और राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेनेवाले दूसरे लोग भावी निर्वाचनों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई भाग न लें और कांग्रेस कौंसिलों और उसकी कमेटियों के मौजूदा कांग्रेसी मेम्बरों को इस्तीफ़ा देने की आज्ञा देती है। यह कांग्रेस अपने रचनात्मक कार्यक्रम को उत्साह पूर्वक पूरा करने के लिये राष्ट्र से अनुरोध करती है और महासमिति को अधिकार देती है कि वह जब और जहां चाहे आवश्यक प्रतिबन्धों के साथ सविनय अवज्ञा और कर बन्दी तक का कार्यक्रम आरम्भ कर दे।"

लाहौर कांग्रेस का यह प्रस्ताव निहायत मुनासिब प्रस्ताव था। पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय के साथ असेम्बलियों और कौंसिलों में जाना कोई मायने नहीं रखता। लाहौर कांग्रेस ने यह फ़ैसला पण्डित मोतीलाल नेहरू जैसे दिग्गज पार्लिमेण्टेरियन के व्यापक तजरुबों की बिना पर किया था। आज पूर्ण स्वाधीनता की लड़ाई सन् ३० से पचासों मंज़िल आगे है। आज 'क्विट इण्डिया' और 'क्विट एशिया' का नारा लगाया जा रहा है। सभी स्वीकार करते हैं कि असेम्बलियों और मिनिस्ट्रियों के तजरुबे भी बिलकुल हूबहू वही हैं। तब फिर पुराने बेकार तजरुबों को दोहराने का अब कैसे सवाल पैदा हुआ? क्या हमारे कांग्रेस के देशभक्त यह मामूली सा सिद्धान्त भूल गये कि क्रान्ति का शोला ठोस रचनात्मक कार्यक्रम से जनता के सम्पर्क में भड़कता है और असेम्बली की गद्देदार कुरसियां उसकी लौ को धीमा कर देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आज़ादी के हर कठिन मोरचे के बाद देश भक्त थक जाते हैं और यह असेम्बली का कार्यक्रम उस थकान की प्रतिक्रिया है, किन्तु यहीं पर हमारा कौंसिल वादियों के साथ वैधानिक मतभेद है। सत्याग्रह संग्रामों के बाद अगली मोरचा बन्दियों के लिये असेम्बलियों में नहीं किन्तु रचनात्मक कार्यक्रम को लेकर गांवों में जाना चाहिये। दो सत्याग्रह संग्रामों के बीच का समय उसी तरह सत्याग्रही सैनिक की ड्रिल और तय्यारी का समय होता है जिस तरह दो सशस्त्र संग्रामों के बीच का समय नये नये हथियार बनाने और सैनिकों को अपनी बन्दूकें और अस्त्र शस्त्र ठीक रखने, ड्रिल करने और मैनुवर ( व्यूह रचना ) सीखने का समय होता है। सत्याग्रही सैनिक की ड्रिल उसका रचनात्मक कार्यक्रम है। किन्तु इसे छोड़कर हम बार बार के आज़मूदा असेम्बलियों के निरर्थक प्रोग्राम को फिर फिर दोहराने में वक़्त ज़ाया करते हैं।

आज यह कहा जा रहा है कि इन चुनावों में जीतने से दुनिया जानेगी कि मुल्क कांग्रेस के साथ है। हमें इन मन्द बुद्धिवालों पर तरस आता है। मानो सन् ४२ की अगस्त क्रान्ति से दुनिया ने यह नहीं जाना कि कांग्रेस के पीछे करोड़ों जनता की शक्ति है। फिर कई बातें ऐसी हैं जिनसे कांग्रेस को असेम्बलियों के फेर में अपना वक़्त ज़ाया न करना चाहिये। मसलन्—

( १ ) पृथक निर्वाचन ( फ़िरक़ेवाराना चुनाव ) अभी ज्यों का त्यों क़ायम है, जिसने असेम्बलियों के २५ वर्ष के कार्यक्रम में मुल्क के हिन्दू मुसलमानों के बीच एक ज़बर्दस्त खाई खोद दी है, जिसने दोनों सम्प्रदायों के सम्बन्ध को ज़हरीला बना दिया है और जिसने पाकिस्तान की बुनियाद रखी है।

( २ ) लार्ड वावेल या इङ्गलैण्ड की मज़दूर सरकार ने आज तक यह आश्वासन नहीं दिया कि कांस्टिटुएण्ट असेम्बली में तय किये गये विधान को इङ्गलिस्तान की सरकार मान लेगी। और

( ३ ) कांस्टिटुएण्ट असेम्बली में साम्प्रदायिक मतभेद पैदा होने की सूरत में ब्रिटिश सरकार क्या रुख़ अख़्तियार करेगी इसका अब तक कोई ऐलान नहीं किया गया है। विधान परिषद एक दुधारा तलवार होगी। एक ओर जहाँ वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय मोरचे को पुख़्ता कर सकती है वहाँ वह हिन्दू और मुसलमानों के दिलों को और अधिक फाड़ने में भी सहायता दे सकती है।

सच्ची आज़ादी का इच्छुक आज एक भी देशभक्त ऐसा नहीं है जो मिनिस्ट्रियों को आज़ादी हासिल करने का रास्ता समझता हो, इसके ख़िलाफ़ इस अखाड़े में उतरे हुये सैकड़ों ऐसे तजरुबेकार मौजूद हैं जो इन असेम्बलियों को आज़ादी के रास्ते से लोगों को गुमराह करनेवाला समझते हैं।

राजनैतिक गुमराही के अलावा इनसे जो नैतिक हानि पहुंचती है उसका कोई शुमार नहीं। पिछली दो बार की मिनिस्ट्रियों ने कई सूबों में तो कांग्रेस के संगठन को खोखला कर दिया था। हम व्यक्तिगत बातों में नहीं जाना चाहते पर यह एक प्रकट सत्य है कि कांग्रेसी मिनिस्टरों में बहुत कम लोग ऐसे थे जिनपर अधिकार मद की छाप न आगई थी। वह कूचा ही ऐसा है जहां दामन में दाग़ लग ही जाता है।

इसीलिये जब अबकी बार सरहद की सूबा कांग्रेस कमेटी के सदर ने सरहदी गान्धी ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां से सरहद में चुनाव आन्दोलन की बागडोर अपने हाथों में लेने को कहा तो उन्होंने जवाब दिया—"मैं इन चुनावों की ज़िम्मेवारी लेने के लिये तय्यार नहीं। मैं मतलबी आदमी हूँ। मेरे सामने किसी तरह की शान का सवाल नहीं। मेरा यह एतक़ाद है कि जो भी हक़ हमें मिलें उन्हें जनता की सेवा में इस्तेमाल करना चाहिये। महज़ दबदबे के लिये हक़ हासिल करने से तो आखीर में जनता का शोषण होने लगता है। यह बड़े अफ़सोस की बात है कि असेम्बली के कांग्रेसी मेम्बर, जो जनता की ख़िदमत का वादा करके असेम्बली में गये थे, अपना वादा भूल गये और अपनी ख़ुदगर्ज़ियों में पड़ गये..."

जो कमज़ोरी सरहद गान्धी को सरहदी असेम्बली के कांग्रेसी मेम्बरों में दिखाई दी वही कमोबेश हिन्दुस्तान के दूसरे सूबों की असेम्बलियों के कांग्रेसी सदस्यों में भी मौजूद थी। व्यक्तिगत बातों की चर्चा यहां बेमौजूँ होगी। इसमें व्यक्ति का कोई दोष नहीं। वह तो दुश्मन का फन्दा है। अभिमन्यु की तरह ग़रीब देशभक्त वहां जाकर बेक़ाबू होजाते हैं और मारे जाते हैं। उनके अपने छोटे छोटे स्वार्थ उनकी जनता का निस्पृह सेवक बने नहीं रहने देते। आपस में संघर्ष वहां इतने तीव्र हो उठते हैं कि इसका असर हमारे संगठन पर पड़ने लगता है।

तभी गत २८ अक्तूबर को विद्यार्थी कांग्रेस के सेवकों को उपदेश देते हुये आचार्य कृपलानी ने कहा था—"महात्मा गान्धी देश के सामने बराबर रचनात्मक कार्यक्रम पर ज़ोर दे रहे हैं। मरीज़ के मना करने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



डाक्टर उसे बारबार वही कड़वी दवा बताता है क्यों कि वह जानता है कि मरीज़ एक मात्र उसी कड़वी दवा से रोगमुक्त हो सकता है। लोग आज रचनात्मक कार्यक्रम को एक कड़वी दवा समझते हैं। बावजूद लोगों के उसे ठीक से न मानने पर भी गान्धी जी बराबर उसी कड़वी दवा को दोहराते हैं। चूँकि वे जानते हैं कि वही एक कारगर दवा है। असेम्बली के चुनावों की प्रचार की दृष्टि से भले ही कोई वक़त हो पर उनसे स्वराज नहीं मिल सकता। असेम्बली के चुनाव बजाय संगठित करने के लोगों में आपस में हसद और होड़ पैदा करते हैं और एक को दूसरे से फाड़ देते हैं जब कि गान्धी जी का रचनात्मक कार्यक्रम लोगों को मिलाता है, उनमें सङ्गठन की भावना पैदा करता है और उन्हें साथ मिलकर काम करना सिखाता है।"

पर बावजूद इस सचाई के कांग्रेस आज चुनाव के भँवर में है। बावजूद पंडित जवाहरलाल के इस ऐलान के कि इस चुनाव के पीछे ऊँची और उसूली बातें है जेली कांग्रेस जन अपने व्यक्तिगत त्याग का चेक भुनाने में ज़ोरों से व्यस्त फिर रहे हैं। काश देश की यह सारी शक्ति रचनात्मक कार्यक्रम में सर्फ़ होती जिसमें देश दो-एक वर्ष के भीतर 'एशिया छोड़ो' आन्दोलन के लिये सन ४२ की अपेक्षा सैकड़ों गुना ज़्यादा तय्यार दिखाई देता, पर चुनाव की मृग मरीचिका के सामने आज गान्धी जी के रचनात्मक कार्य की बात कौन सुनता है! हम बड़े अदब से कांग्रेस के सेण्ट्रल पार्लिमेण्टरी बोर्ड से यह कहना चाहते हैं कि—"ऐ राही! तू जिस रास्ते जा रहा है वह रास्ता काबा को नहीं बल्कि तुर्किस्तान को जाता है।"

## आज़ाद हिन्द फ़ौज का मुक़दमा

जिस शोचनीय परिस्थिति में अङ्गरेज़ी फ़ौज दक्षिण पूर्व एशिया के अधिवासियों को निरीह छोड़कर अपनी जान लेकर भागी थी वैसी लज्जा जनक घटना इस युद्ध में कोई दूसरी नहीं हुई। भागते हुये अङ्गरेज़ों ने हिन्दुस्तानी अफ़सरों और सिपाहियों को उनकी क़िस्मत पर बर्मा, मलाया, सिंगापुर आदि में जापानियों के अत्याचार सहने के लिये छोड़ दिया था। इन निरीह और बेबस हिन्दुस्तानियों ने अपना संगठन बनाया, पचास हज़ार की एक फ़ौज खड़ी की और अपने देश भारत को आज़ाद करने का अभिमानपूर्ण फ़ैसला किया। इस फ़ौज के दो स्पष्ट उद्देश्य थे—

(१) जापानी अत्याचारियों से हिन्दुस्तानी जनता के मालोमाल की हिफ़ाज़त करना और

(२) ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से अपने प्यारे देश हिन्दुस्तान को आज़ाद करना।

जैसे जैसे असलियत पर प्रकाश पड़ रहा है वैसे वैसे पता चल रहा है कि जिन भयंकर परिस्थितियों में आज़ाद हिन्द फ़ौज ने मलाया, सिंगापुर और बर्मा की लाखों हिन्दुस्तानी जनता की जापानी फ़ासिस्टों से रक्षा की उसकी उन देशों की हिन्दुस्तानी जनता आज भूरि भूरि प्रशंसा कर रही है। दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लोहा लेने की उनकी जो योजनाएँ आज प्रकट हो रही हैं उनसे आज़ादी के लिये उनकी क़ुरबानी की असीम भावना ज़ाहिर होती है। पग पग पर इन देशभक्तों को यह चिन्ता थी कि उनकी क़ुरबानी से जापानी फ़ासिस्ट कोई फ़ायदा न उठा सकें। इस प्रयत्न में वह इतने सतर्क थे कि थोड़े दिनों बाद जापानी फ़ौजी आज़ाद हिन्द सेना के कट्टर दुश्मन हो गये; किन्तु आज़ाद हिन्द सेना का सङ्गठन इतना दृढ़ था कि जापानी अपना ग़ुस्सा पीकर रह गये। इसके सिवाय कोई दूसरा चारा था ही नहीं।

इससे हम इनकार नहीं करते कि इन लोगों से छोटी मोटी ग़लतियां नहीं हुईं। पर सब लेकर यह आज़ाद हिन्द फ़ौज स्तालिनग्राद के रूसी सैनिकों से अपनी देशभक्ति में किसी तरह पीछे नहीं थी। जिस तरह अपने रक्त से उन्होंने आज़ादी के प्रतिज्ञापत्र भरे, जिस तरह समरक्षेत्र में उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी, भारतीय जनता ने जिस तरह करोड़ों रुपया इस आज़ाद हिन्द फ़ौज को चन्दा दिया, जिस तरह हमारी बहिनों ने सैनिक वेश धारण कर रणक्षेत्र में अपने वीर भाइयों का साहस पूर्वक साथ दिया उस पर आज सभी को गर्व है और इसीलिये उनके 'दिल्ली चलो'! और 'जयहिन्द'! नारे सारे हिन्दुस्तान के वायुमण्डल में गूँज रहे हैं, इसीलिये क्या कांग्रेस, क्या लिबरल, क्या हिन्दू सभा, क्या लीग, क्या नरम, क्या उग्र विचार वाले सभी दल और सभी सम्प्रदायों के लोग इन बहादुरों की जीवन-रक्षा के लिये चिन्तित और बेचैन हैं।

आज उन पर यह इलज़ाम लगाया जा रहा है कि उनकी पुश्त पर फ़ासिस्टी जापानी थे और जापान के साथ उनका मैत्री सम्बन्ध था। जवाब में हम पूछना चाहते हैं कि क्या रूस ने जानते बूझते युद्ध शुरू होने के बाद नात्सी जर्मनी से सुलह नहीं की? क्या जर्मनी ने सन् १९३९-४० में रूसियों को लड़ाई के सामान से मदद नहीं दी? क्या लड़ाई के दौरान में ही सोवियत और जापान की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



क्रूड आयल नहीं दिया और क्या दोनों देशों के बीच लड़ाई के दौरान में ही कच्चे और बने माल का विनिमय नहीं हुआ ? आज़ाद हिन्द फ़ौज आज़ाद हिन्द सरकार की स्वतन्त्र सेना थी। आज़ाद हिन्द सरकार को अपनी मरज़ी के मुताबिक़ चाहे जिस देश से सुलह करने और सम्बन्ध रखने का हक़ था। यदि रूस को मौक़ा और महल देखकर जर्मनी और जापान से सुलह करने का हक़ था तो वह हक़ आज़ाद हिन्द सरकार को क्यों नहीं होना चाहिये ?

सारे देश ने एकमत से इन सैनिकों पर से मुक़दमा हटाये जाने की मांग की थी पर विदेशी सरकार ने उसे ठुकरा दिया। अगर आज़ाद हिन्द फ़ौज कामयाब होती तो बक़ौल जवाहरलाल के वह उसी लाल क़िले में इन मुक़दमा चलाने वालों पर मुक़दमा चलाती पर असफलता से उनकी हैसियत थोड़े ही बदल जाती है। वे एक आज़ाद हिन्द सरकार के सैनिक थे इसलिये उनपर गद्दारी का दोष नहीं लगाया जा सकता।

इन देशभक्त और बहादुरों के बारे में इधर जो राय ज़ाहिर की गई हैं उनमें युक्तप्रान्त के गवर्नर सर मारिस हैलट और कम्यूनिस्ट साप्ताहिक 'लोकयुद्ध' में हमें आश्चर्य जनक समानता दिखाई दी। पता नहीं हम इसके लिये किसे बधाई दें ? सर मारिस इन्हें "ग़द्दार, ज़ालिम और फ़ासिस्ट जापान का पैरोकार" कहते हैं। 'लोकयुद्ध' भी यही सवाल करता है कि—"क्या हम आज़ाद हिन्द फ़ौज को आज़ादी की फ़ौज कह सकते हैं ?···क्या हमारे लिये यह ज़रूरी है कि हम उसकी प्रशंसा करें और उनके ग़लत रास्ते का समर्थन करें ?···आज यदि हमने यह ग़लती की तो हमारे छोटे भाई और हमारे बच्चे इससे क्या सीखेंगे ? क्या हम यह चाहते हैं कि वे बड़े होकर आज़ाद हिन्द फ़ौज के रास्ते पर चलें···?" हम सर मारिस हैलट को "लोकयुद्ध" जैसा समर्थक पाने के लिये बधाई देते हैं। हम नम्रता से यह पूछना चाहते हैं कि क्या हमारे कम्यूनिस्ट बन्धुओं ने यह मुस्तक़िल फ़ैसला कर लिया है कि वे किसी भी राष्ट्रीय प्रश्न पर देश के विचारों के साथ सहमत न होंगे ?

## जनता का स्तर

अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ के मन्त्री श्री जे० सी० कुमारप्पा ने जनता के स्तर को ऊँचा उठाने के संबंध में यूनाइटेड प्रेस के प्रतिनिधि से बात करते हुये कहा—"हमें अपने अन्दर की सर्वोत्तम भावनाओं को प्राप्त करने के लिये अपनी ज़िन्दगी को ऐसी [illegible] बनाने की ज़रूरत नहीं। गान्धी जी की ज़िन्दगी का स्तर बहुत ऊँचा है किन्तु बहुत सादा है जबकि एक ब्रिटिश टामी का स्तर बहुत नीचा किन्तु बहुत पेचीदा है। टामी को सिगरेट की, बीअर शराब की, दर्जनों जोड़े पोशाक की और बहुतसी ऐसी चीज़ों की ज़रूरत होती है जो गान्धी जी को नहीं है। किन्तु इन कारणों से उसके जीवन का स्तर कोई बहुत ऊँचा नहीं हो जाता। हमें इन मायनों में ज़िन्दगी का स्तर ऊँचा नहीं करना है। हमें ऐसी योजना बनानी है जिसमें जीवन को भरा पूरा बनाने के लिये लोगों को आवश्यक चीजें मिल जाँय और उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास होजाय। भौतिक वस्तुओं का अम्बार लगाने से कोई लाभ नहीं। उससे जनता की शक्ति का दुरुउपयोग होगा और वर्ग विशेष ऐशो इशरत की ज़िन्दगी बसर करेंगे। हमें अपनी जनता के लिये उचित और सन्तुलित भोजन का प्रबन्ध करना चाहिये लेकिन जब तक जनता भूखों मर रही है तब तक टेबुल, कुरसी, छुरे, काँटों आदि की ज़रूरत नहीं है। जब जनता नंगी फिर रही है तब हमें गद्दे और परदे बनाने की ज़रूरत नहीं है।"

पत्र प्रतिनिधि के यह पूछने पर कि देश के लिये ग्रमोद्योग संघ कौन सी भावी योजना बना रहा है इस पर श्री कुमारप्पा ने जवाब दिया—"व्यवहार में हमारी एक ही योजना है और वह है गान्धी जी की रचनात्मक योजना। हमारे लिये आजकल इससे अच्छी कोई दूसरी योजना नहीं है। यदि हम इसके गहरे नतीजों और इसकी पूर्णता को समझ लें तो फिर इससे अधिक व्यापक कोई दूसरी योजना नहीं है। यह पूरी तरह एक समाजवादी योजना है और बिना किसी सरकार की मदद के या मुखालफ़त के भी यह चल सकती है। इस योजना की जड़ें जनता की सद्भावना और उनके चरित्र के अन्दर प्रतिष्ठित हैं।"

जब उनसे यह पूछा गया कि क्या मुनाफ़ा घटाकर लोगों की आमदनी को बढ़ाया जा सकता है तो श्री कुमारप्पा ने जवाब दिया—"मुद्रा की अतीमित वृद्धि के कारण हमें यह समझ लेना चाहिये कि चाहे हमारी तिगुनी आमदनी हो क्यों न हो जाय उससे कोई विशेष लाभ नहीं। जहां लोगों की इन्सानी ज़रूरतें भी न पूरी होती हों वहाँ सारी शक्ति जनता के भोजन, वस्त्र, मकान, स्वास्थ्य और शिक्षा की ज़रूरत को जुटाने में लगाना चाहिये।"

## पी० ई० एन० सम्मेलन

पिछले २०,२१ अक्तूबर को जयपुर में पी० ई० एन० की भारतीय शाखा का सम्मेलन शाखा की प्रधान [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सरोजिनी नायडू के सभापतित्व में हुआ सर मिरज़ा इस्माइल ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुये कहा—"आज दुनिया को दुःखान्त अन्त से बचाने का एक ही उपाय बाक़ी रहा है और वह है विद्वानों और बुद्धिमानों की दृढ़ इच्छा शक्ति। इस शक्ति का अब तक न तो शोध किया गया है और न प्रयोग और सम्भव है रक्षा के वास्ते यह शक्ति उतनी ही शक्तिशाली साबित हो जितनी अणुशक्ति विनाश के लिये साबित हुई है।"

श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अपने अभिभाषण में कहा—"आज पहली बार हिन्दुस्तान की मुख़्तलिफ़ ज़बानों के प्रतिनिधि एक जगह इकट्ठा हुये हैं। हम सब क्यों इकट्ठा हुये हैं? चूँकि हिन्दुस्तान एक है और अखण्ड है। चाहे हमारी भाषाओं में कितने ही फ़र्क़ क्यों न हों और वे कितनी ही तरह से क्यों न लिखी जाती हों उन सब में और सबको जोड़ने वाली एक ही विचार धारा है। जब दुनिया के मुख़्तलिफ़ मुल्क एक दूसरे को चीर फाड़ रहे थे दुनिया के लेखक इस जघन्य काम में शरीक नहीं हुये।"

पण्डित नेहरू ने विविध भारतीय भाषाओं के साहित्य की मौलिक एकता को वर्णन करते हुये कहा—"कि आज प्रान्तीय भाषायें और प्रान्तीय साहित्य इसलिये ज़्यादा जानदार है चूँकि वह जनता के जीवन से प्रोत्साहन लेता है। किसी भी साहित्य की महानता इस बात में होती है कि वह अनुभवों के स्रोत से अपना जीवन रस ले कि जो जीवन रस चाहे जिस भाषा में व्यक्त किया जाय एक ही होता है।"

सर सर्वपल्लि राधाकृष्णन ने साहित्य के नैतिक मूल्य पर बोलते हुये कहा—"साहित्य मनुष्य के एकान्त क्षणों का परिणाम है। आज साहित्य का मापदण्ड केवल बौद्धिक है। साहित्य को लोग सैनिकवाद की प्रशंसा में लगा रहे हैं। मनुष्य आज अपने को मशीनरी बना रहे हैं। यह सही है कि हिटलर पराजित हो चुका है पर उसकी फ़िलासफ़ी आज भी अपराजित है। जब तक हम महान दृष्टा नहीं हैं हम महान साहित्य नहीं रच सकते। वाल्मीकि के अनुसार जो मनुष्य त्याग और कष्टों के बीच से निकलता है और जिसका दिल कठोर नहीं हो गया है वही दृष्टा है। हमें विश्व के आन्तरिक महत्व को समझने की ज़रूरत है।...आज दुनिया के बौद्धिक लोगों पर एक ज़बर्दस्त ज़िम्मेवारी है। उन्होंने अपने मिशन के साथ विश्वासघात किया है, उन्होंने आदमियों को बढ़ाया है और मानवता के बजाय सेनाओं की प्रशंसा की है। विद्वानों का यह फ़र्ज़ था कि वे बुद्ध, सुकरात, ईसा और गान्धी के बताये हुये महान आदर्शों पर क़ायम रहते।"

हज़ारों वर्ष तक साहित्य के निर्मल झरने से मानवता ने जीवन रस का पान किया है किन्तु आज उस झरने से साहित्य के नाम से जो द्रव पदार्थ निकलता है उसे गरल कहना ही अधिक उपयुक्त होगा—सस्ता, निरुद्देश्य, सिद्धान्त हीन साहित्य। आशा है पी० ई० एन० सम्मेलन ने जिस अजस्र धारा की ओर लेखकों का ध्यान आकर्षित किया है भारतीय लेखक उससे प्रोत्साहन लेने की चेष्टा करेंगे।

## भारत और सुदूर पूर्व

जापानी आत्म समर्पण के बाद से दक्षिण पूर्व एशिया के देशों—जावा, हिन्द चीन, अन्नम, इण्डोनीशिया आदि में क्रान्ति की आग धधक उठी है। जो फ्रेञ्च और डच साम्राज्यवाद अब तक नात्सी बर्बरता के शिकञ्जे में जकड़े हुए कराह रहे थे वही आज साम्राज्यवादी स्वरों में हिन्द-चीन और जावा की जनता को चेतावनी दे रहे हैं। इण्डोनीशिया की ७ करोड़ जनता को वे आज अपने पञ्जे से मुक्त करने के लिये तय्यार नहीं हैं। इण्डोनीशिया में किसी बीते ज़माने में भारतीयों ने ही उपनिवेश बनाये थे। वहाँ की संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप आज भी दिखाई देती है। किन्तु आज वहाँ की अधिकांश जनता इसलाम की अनुयायी है। पर जावा का इसलाम संकीर्ण नहीं, वह एक समन्वयात्मक भावनाओं वाला धर्म है। जावा जनतन्त्र के प्रधान डाक्टर सोइकार्नो (शिक्षकर्ण) मुसलमान नहीं हैं किन्तु जनतन्त्र के उप प्रधान डाक्टर मोहम्मद हत्ता मुसलमान हैं। आज जावा के मुसलमान और ग़ैर मुसलमान जिस जाँ फ़िशानी के साथ अपने मुल्क की आज़ादी के लिये संघर्ष कर रहे हैं वह अत्यन्त स्तुत्य है। न वहां पाकिस्तान का नारा है, न आज़ादी के आन्दोलन से विरक्ति। आज इण्डोनीशिया वालों के जीवन मरण का प्रश्न है और इस स्वर्णिम अवसर को वे हाथ से नहीं जाने देना चाहते। उन्होंने इस बात का ऐलान कर दिया है कि अपने देश की आज़ादी के लिये एक एक जावी स्त्री पुरुष अपने प्राण न्योछावर करने के लिये तय्यार है! उधर ब्रिटेन की मज़दूर सरकार भी इस बात पर कटिबद्ध है कि वह जावा को फिर से डचों के हवाले करदे। इस सारी कहानी का जो सबसे घृणित पहलू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है वह यह है कि अङ्गरेज़ अपने इस गर्हित काम के लिये भारतीय गुरखा सेनाओं को जावियों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल कर रहे हैं। भारतीय देशभक्तों को अपनी सेनाओं के इस जघन्य उपयोग के लिये हार्दिक लज्जा है।

हम जानना चाहते हैं कि अङ्गरेज़ों को इन मुक्त देशों को ग़ुलाम बनाने का कौनसा नैतिक अधिकार है? हमारे कम्यूनिस्ट मित्र जापानियों की कितनी ही बुराइयां करें किन्तु उन्हें यह मानना पड़ेगा कि जापानियों ने बर्मा, मलाया, जावा, हिन्द चीन आदि की जनता को आन्तरिक मामलों में पूरे अधिकार देदिये थे। हम जानना चाहते हैं कि बर्मा और मलाया की जनता को फिर से ग़ुलाम बनाने के लिये अङ्गरेज़ों ने क्या कोई प्लेबीसाइट ली है? अपनी अनैतिक हुकूमत को न्याय्य ठहराने के लिये अङ्गरेज़ आज यूरोप के टुच्चे देशों के साम्राज्यवाद को एशिया में फिर से पुख़्ता करना चाहते हैं। किन्तु उनका यह प्रयत्न बालू का क़िला बनाने की तरह है जिसमें उन्हें कभी सफलता नहीं मिल सकती। जावी देशभक्त आज दृढ़ता के साथ यूरोपीय साम्राज्यवादों से मोरचा ले रहे हैं और अपनी आज़ादी के लिये बड़ी से बड़ी क़ुरबानी करने को तय्यार हैं। हम हृदय से इन बहादुरों की आज़ादी के ख़ाहां हैं। जो कुछ जावा में हो रहा है वही हिन्द चीन में भी हो रहा है। आज फ्रेञ्च, डच और ब्रिटिश साम्राज्यवादी लगभग दस करोड़ जनता को फिर से ग़ुलाम बनाने की ज़बर्दस्त कोशिश कर रहे हैं और आश्चर्य तो यह है कि वे अपने इस काम में जापानी सेनाओं से भी मदद ले रहे हैं। और तब हमें सचमुच उन लोगों की अक़्ल पर हैरत होती है जो दूसरे महायुद्ध को जनता का युद्ध कह रहे थे।

## तीसरा महा-युद्ध

अमरीका की प्रशान्त सेना के प्रधान सेनापति एडमिरल चेस्टर निमित्ज़ ने जब हवाई विश्वविद्यालय के प्रेज़िडेण्ट ग्रेग सिन्क्लेअर के दफ़्तर में महात्मा गान्धी के चित्र को टँगा देखा तो यकायक उसके मुँह से ये शब्द निकल पड़े—"ओहो गान्धी! क्या ही अच्छा होता कि हममें से हर शख़्श गान्धी जी का अनुयायी होता और तब युद्ध की गुञ्जाइश न रह जाती।"

जब पहला महायुद्ध लड़ा गया था तो मित्र-सेनापतियों ने हमें यह बताया था कि "वह युद्ध युद्ध को समाप्त करने के लिये लड़ा जा रहा है ताकि हमेशा के लिये जनतन्त्र सुरक्षित होजाय। पर बीस बरस के अन्दर ही एक उससे कहीं अधिक भयंकर और खौफनाक रूप में [illegible] होगई। इस युद्ध में एंग्लो-अमरीकन साम्राज्यवाद और रूसी साम्यवाद जर्मन नात्सीवाद का विरोध कर रहे थे। पहले तो वह साम्राज्यवाद और नात्सीवाद के बीच का ही युद्ध था पर बाद में साम्राज्यवाद और साम्यवाद ने एका करके नात्सीवाद को समाप्त कर दिया। अब जब फ़ासीज़्म और नात्सीवाद मैदान से हट गये तो साम्राज्यवाद और साम्यवाद के पुराने झगड़े फिर ताज़ा हो उठे। पूर्वीय यूरोप, निकटपूर्व एशिया और सुदूर पूर्व में दोनों दल कूटनीतिक लड़ाई लड़ने में इस वक़्त व्यस्त हैं। जो युद्ध में कल तक मित्र थे वे शान्ति में आज प्रतिद्वन्दी हैं।

किन्तु क्या इस दूसरे युद्ध ने शान्ति को ज़र्रा भर भी सुरक्षित किया है? हमें युद्ध के शुरू में बताया गया था कि मित्र राष्ट्र शान्ति, जनतंत्र और न्याय के लिये लड़ रहे हैं। पर क्या इनमें से एक भी वादा पूरा किया गया? क्या उसके पूरा होने की कोई आशा है?

सान फ्रान्सिसको सम्मेलन से कुछ दिन पूर्व गान्धीजी ने मित्र राष्ट्रों से अपील की थी कि जर्मनी के साथ एक सम्माननीय पराजित योधा का सा बर्ताव किया जाय, उसे ज़लील न किया जाय। गान्धी जी जानते हैं कि प्रतिशोध की भावना प्रतिहिंसा की भावना पैदा करती है। पर मित्र राष्ट्रों ने अपने गर्वमद में भरकर गान्धी जी की अपील पर कोई ध्यान नहीं दिया। आज प्रेज़िडेण्ट ट्रूमेन कह रहे हैं कि—"हम पर्लहार्बर को नहीं भूल सकते।" स्तालिन कहते हैं कि "हम पोर्ट आर्थर को नहीं भूल सकते।" बोलशेविक रूस जापान द्वारा पराजित ज़ारशाही रूस के अपमान को नहीं भूल सका। तो फिर क्या जर्मनी वारसाई को भूल सका था या पॉट्सडैम को भूल सकेगा? जापानी क्या नागासाकी और हिरोशिमा को भूल सकेंगे? यह बदले की भावना और गर्वमद आज तीसरे युद्ध की बुनियाद डाल रहा है। रूसी और अमरीकी सैनिकों को तत्पर रहने की स्थायी आज्ञा मिल गई है और मन ही मन लोग ख़ूब समझ रहे हैं कि तीसरे युद्ध की योजनाएँ विविध राष्ट्रों ने बनानी शुरू कर दी हैं। ट्रूमेन आज इस ग़लतफ़हमी में हैं कि अणु बम शान्ति क़ायम रखने में मदद देगा पर इतिहास का वर्क़ जब उलटेगा तो दुनिया को ट्रूमेन की भूल दिखाई दे जायगी। दुनिया में शान्ति एटम बाम्ब से नहीं, वह तो गान्धीजी के बताये हुए सत्य और अहिंसा के तरीक़े से ही हो सकती है। पर दुनिया की आत्म-चेतना अभी इतनी नहीं जागी है कि वह दृढ़ता के साथ इस मार्ग का [illegible] सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारतीय चीनी मिट्टियां

लेखक

पं० मनोहरलाल मिश्र एस० एस-सी०

[ सिरेमिक विभाग काशी विश्वविद्यालय ]

बेहद खोज और परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी गई है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने में बदल सकते हैं यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। चीनी मिट्टी और मिट्टी का व्यवसाय करने वालों के लिये पुस्तक बहुत उपयोगी है। २६० पृष्ठ की सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है। डाक खर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## विश्व-संघ की ओर

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल

और

श्री भगवानदास केला

पृथ्वी के सब राष्ट्रों को मिला कर उनका एक संघ किन उसूलों पर क़ायम किया जा सकता है इस गम्भीर विषय पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विश्वव्यापी शान्ति चाहने वाले सब लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। २०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपया, डाकखर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## आरसी-रचनावली

| | | |
|---|---|---|
| आरसी ( कविताएँ ) | ... ... | ६) |
| संचयिता ( कविताएँ ) | ... ... | ५) |
| कलापी ( कविताएँ ) | ... ... | २॥) |
| पाञ्चजन्य ( कविताएँ ) | ... ... | २) |
| नयी दिशा ( कविताएँ ) | ... ... | २) |
| पंचपल्लव ( कहानियाँ ) | ... ... | २) |
| खोटा सिक्का ( कहानियाँ ) | ... ... | १॥) |
| आँधी के पत्ते ( कहानियाँ ) | ... | १॥) |
| जीवन और यौवन ( कविताएँ ) | ... | १॥) |
| चंदा मामा ( कविताएँ ) | ... ... | १) |

**तारा मण्डल, मुजफ्फरपुर**

संस्कृति, साहित्य और कला की सन्देशवाहक

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

## विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

सम्पादक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य के ऊपर खोजपूर्ण गम्भीर निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक एक अंक संग्रहणीय—

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १॥)

**मैनेजर, विश्वभारती पत्रिका, हिन्दी भवन**

पो० शान्तिनिकेतन (बंगाल)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


बरसों की प्रतीक्षा के बाद आख़िर छप गई

## गीता और .क़ुरान

### लेखक : पण्डित सुन्दरलाल

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, .क़ुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर .क़ुरान की ४०० से ऊपर आयतों का लफ़्ज़ी तर्जुमा दिया गया है।

जो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्मों को समझना चाहें उनके लिये यह पुस्तक बहुत क़ीमती और बेमिसाल है।

२०० सफ़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल

**डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग**

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

पं० सुन्दरलाल जी की एक और नई पुस्तक

## हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

प्रकाशित हो गई

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म-भूमि फ़िलस्तीन की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के साथ साथ हिन्दुस्तान, चीन, ईरान इत्यादि दूसरे एशियाई देशों की उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक हालत के साथ हज़रत ईसा और उनके उसूलों का गहरा सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया गया है

मूल्य, डेढ़ रुपया, डाक ख़र्च छै आने अलग

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

## "विश्ववाणी का एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है"—गान्धी जी

महात्मा गान्धी जी ने कहा था—"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे।"

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सर तेज बहादुर सप्रू, आचार्य क्षिति मोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० महादेव देसाई, क्यूरेटर-ब्रिटिश म्यूज़ियम ( लन्दन ), प्रो० तान युन-शान आदि सैकड़ों देशी और विदेशी सर्वमान्य नेताओं और विद्वानों ने गान्धी जी की उपर्युक्त राय को ही दोहराया है।

**विश्ववाणी के पुराने अङ्कों में देश और विदेश के चोटी के विद्वानों के गम्भीर और महत्वपूर्ण लेख भरे पड़े हैं। विश्ववाणी के विशेषाङ्कों का तो कुछ पूछना ही नहीं।**

## क्या आप के पास विश्ववाणी के बहुमूल्य विशेषाङ्क हैं ?
## क्या आप विश्ववाणी के महत्वपूर्ण पुराने अङ्क ख़रीदना चाहेंगे ?

हमारे पास 'टैगोर अङ्क', 'संस्कृति अङ्क' पहला भाग, 'बौद्ध संस्कृति अङ्क', 'चीन अङ्क', 'जैन संस्कृति अङ्क', और 'अकबर अङ्क' की थोड़ी सी प्रतियाँ बची हुई हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर अङ्कों की भी कुछ प्रतियाँ और सन् ४२ और ४३ की थोड़ी सी पूरी फाइलें बची हुई हैं। जिन सज्जनों को चाहिये फ़ौरन आज ही पत्र लिखें। जिस क्रम से आर्डर आवेंगे उसी क्रम से ग्राहकों को प्रतियाँ दी जाँयगी।

**मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**


सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7621

# विश्ववाणी का अन्तर्राष्ट्रीय अङ्क

'विश्ववाणी' का यह अत्यन्त उपयोगी और बेहद महत्वपूर्ण अङ्क हमने जनवरी १९४६ में प्रकाशित करने का आयोजन किया था। इस अङ्क के लिये अब तक केवल विदेशी विद्वानों के तीस लेख भी हमें प्राप्त हो चुके हैं। किन्तु अपने कतिपय चीनी, रूसी और अमरीकन मित्रों के आग्रह से तथा कुछ और अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त करने के लिये इस अङ्क का प्रकाशन कुछ महीनों के लिये हम स्थगित कर रहे हैं। अब यह अंक बजाय

**जनवरी १९४६ के अप्रैल १९४६ में प्रकाशित होगा**

संरक्षक : पण्डित सुन्दरलाल
सम्पादक : विश्वम्भरनाथ

स० सम्पादक : बैजनाथ सिंह 'विनोद'
कमल कुलश्रेष्ठ

दिसम्बर १९४५

[ एक अङ्क का ॥=)

क मूल्य ६) ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बरसों की प्रतीक्षा के बाद आखिर छप गई

# गीता और कुरान

## लेखक : पण्डित सुन्दरलाल

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, कुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर कुरान

पं० सुन्दरलाल जी की एक और नई पुस्तक

# हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

प्रकाशित हो गई

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म-भूमि फ़िलस्तीन की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के [illegible] ईसाइ धर्म इत्यादि

२—दक्षिण भारत का [illegible]
डा० वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार ... ४३९
४—दक्षिण भारत का स्वर्ण युग : राजराजा चोल का शासन काल—श्री० टी० के० वेंकटरमण ४४३
५—दक्षिण भारत की प्रमुख लिपि तमिल में प्रस्तावित सुधार—श्री० एस० आर० वेंकटरमण ४४५
६—दक्षिण भारत के आदिवासी पनियन—श्री० अमृतलाल वी० ठक्कर ... ४४७
७—कम्बोडिया में प्राचीन भारतीय सभ्यता—श्री प्रकाश चंद्र उपाध्याय ... ... ४५९
८—अन्तर (कविता)—श्री ईशदत्त शास्त्री 'ईश' ४५६
९—शेष पत्र—डा० एन० एस० वर्द्धन ... ४५७
१०—लोक लिपि—श्री० वेंकटराव शास्त्री ... ४६१
११—मुक्ति बोध ( कविता )—श्री० करील ... ४७०
१२—हमारे राष्ट्रीय पत्र और पत्रकारी—श्री० विश्वम्भरनाथ ... ... ४७१
१३—एक सवाल (कविता)—श्री० चन्द्रिका प्रसाद सिंह 'करुणेश' ... ... ४८०
[illegible]
कुलश्रेष्ठ 'कुसुम' ... ... ४८१
१७—पूर्वी कवि अत्तार—श्री० ऋषिकुमार ... ४९१
१८—चल चल रे यौवन उद्दाम ( कविता )—श्री० श्रीपाल सिंह 'क्षेम' ... ४९७
१९—डाक्टर मोण्टीसोरी और उनकी बाल शिक्षण पद्धति—श्री गुरुदेव विद्यालंकार ... ४९८
२०—सपूत बार बार मां तुझे निहारती (कविता)—श्री० देवनाथ पांडेय 'रसाल' ... ५०२
२१—श्रीमती सोफिया वाडिया से भेंट—श्री कैमरामैन ... ... ५०३
२२—पहली कुल हिन्द लेखक कान्फ्रेन्स—एक दर्शक ... ... ५५०
२३—यशस्वियों की पृथ्वी ( कविता )—श्री० चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ... ... ५०७
२४—दिल्ली चलो ( कविता )—श्री कुमार हृदय ५०८
२५—पुस्तक-परिचय ... ... ५०९
२६—सम्पादकीय विचार ... ... ५१२

# विश्ववाणी के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

हमारे कार्यालय में बराबर इस बात की शिकायतें आती रहती हैं कि ग्राहकों को ठीक से विश्ववाणी नहीं मिलती। जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है हम ग्राहकों को तीन तीन बार चेक करके हर महीने 'विश्ववाणी' भेजते हैं। हम अपने रजिस्टर मे विश्ववाणी भेजने की तारीख़ तक दर्ज करते हैं। किन्तु डाकख़ाने के भूत बीच में छापा मार कर कई प्रतियाँ ग़ायब कर देते हैं। हमने बारहा पोस्टल अधिकारियों से इस बात की शिकायत की पर उनका कहना है कि वे केवल रजिस्टर्ड प्रति की ही गारण्टी कर सकते हैं साधारण रूप से भेजी हुई प्रति की नहीं। ऐसी सूरत में पाठक हमसे सहमत होंगे कि हम इस मामले में कुछ कर सकने में विवश हैं। विश्ववाणी हर महीने की पहली तारीख़ को प्रकाशित हो जाती है और पाँच तारीख़ तक सभी ग्राहकों को रवाना कर दी जाती है। हमारी ओर से इसमें ज़रा भी कोताही नहीं होती। अनेक सज्जन जब हमारे कार्यालय से पत्र-व्यवहार करते हैं तो वे अपना ग्राहक नम्बर लिखना भूल जाते हैं। विश्ववाणी सम्बन्धी जाँच के लिए ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर लिखना न भूलना चाहिये। और अपने पत्र के जवाब के लिये या तो जवाबी [illegible] या तीन पैसे का टिकट अवश्य भेजना चाहिये।

विनीत
नित्यानन्द चैटर्जी
जनरल मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7621

# विश्ववाणी का अन्तर्राष्ट्रीय अङ्क

'विश्ववाणी' का यह अत्यन्त उपयोगी और बेहद महत्वपूर्ण अङ्क हमने जनवरी १९४६ में प्रकाशित करने का आयोजन किया था। इस अङ्क के लिये अब तक केवल विदेशी विद्वानों के तीस लेख भी हमें प्राप्त हो चुके हैं। किन्तु अपने कतिपय चीनी, रूसी और अमरीकन मित्रों के आग्रह से तथा कुछ और अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त करने के लिये इस अङ्क का प्रकाशन कुछ महीनों के लिये हम स्थगित कर रहे हैं। अब यह अंक बजाय

## जनवरी १९४६ के अप्रैल १९४६ में प्रकाशित होगा

प्रत्येक हिन्दी प्रेमी के हाथ में इस अङ्क की प्रति होनी चाहिये

**मूल्य २) रुपया : पृष्ठ संख्या २००**

---

देश की आजादी के लिये जान पर खेलनेवालों की

*सचित्र अमर कहानी*

# जय हिन्द

पृष्ठ संख्या १५०, मूल्य १॥) रु०, डाक व्यय के साथ १॥।) रु०.

लेखक

**सुप्रसिद्ध हिन्दी पत्रकार श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार**

आजाद हिन्द फौज और आजाद हिन्द संघ का देश में अपूर्व जागृति पैदा करनेवाला पूरा इतिहास, भारत की वीर ललनाओं की झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की परम्परा को जीवित रखनेवाले जौहरों की अलौकिक गाथा, महान क्रान्तिकारी देशभक्त सुभाषचन्द्र बोस के वीरतापूर्ण तेजस्वी जीवन की स्फूर्तिपद झांकी, १८५७ से १९४२ तक की लाल क्रान्ति की विप्लवी प्रवृत्तियों का मुर्दा नसों में खून का संचार करनेवाला पूरा ब्योरा, भारत के अन्तिम सम्राट बहादुरशाह के साथ किये गये कमीने विश्वासघात की रोमांचकारी कहानी और नेताजी की वीरतापूर्ण ललकार उन्हींके शब्दों में पढ़िये।

१॥।) मनीआर्डर से भेजकर तुरन्त अपने लिये एक प्रति मंगा लें: पुस्तक विक्रेताओं व एजेण्टों आदि को कम से कम २५ प्रति मंगाने पर कमीशन और पोस्टर भी भेजे जायेंगे।

पुस्तक मिलने का पता

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद या ४० ए, हनुमान रोड, न्यू दिल्ली**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सान्ध्य प्रार्थना

[ 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' के सौजन्य से ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व वाणी

वर्ष ५, भाग १० ] दिसम्बर : १९४५ [ अङ्क ६, पूरे अङ्क ६०

# सान्ध्य-प्रार्थना

श्री गोपाल शर्मा बी० ए०

दिन सिमटकर जब क्षितिज पर था इकट्ठा हो गया,
मार्ग-अधरों पर मुखर सङ्घर्ष का स्वर सो गया,
दो मशालों से जले तब मंच पर गांधी, ग़फ़ार,
और शोलों से चमक उट्ठे नयन तब बेशुमार।
गूँजने नभ में लगी 'जय हिन्दमाता' की पुकार!

आँख फिर सबकी मुँदी, गर्दन झुकी, मुट्ठी बँधी,
एक ही बस साधना सबके दिलों में थी सधी,
पेट में सबके जलन थी, घाव पीठों पर हज़ार,
हिम्मती कङ्काल थे चुपचाप हिलते बार बार!
गूँजती नभ में रही 'जय हिन्दमाता' की पुकार!

एक था स्थित-प्रज्ञ कछुए सा समेटे सब बदन,
दूसरा बैठा नियत में बाँध मग़रिब की लगन,
दो दिलों में आ गया दो नाम से परवर दिगार,
हिन्द बन कर सिर्फ उसने कण्ठ के खोले दुआर!
गूँजती नभ में रही 'जय हिन्दमाता' की पुकार!

बन गया तिरशूल उस पल चाँद पर जमकर कलश,
एक ताक़त बन गए दो, भूल क़ौमी कशमकश,
शान्ति था उनका तरीक़ा और मंज़िल स्वाधिकार,
रूह से कब तक लड़ेगा हो तमंचा या कटार?
गूँजती नभ में रही 'जय हिन्दमाता' की पुकार!

खून से भरकर नहीं इनने भजा परमात्मा,
औ' दुआ मांगी न कर उसके सुतों का ख़ात्मा,
बर्दियों के विश्व में लेकर अनोखा सा सिंगार,
फूटते बम किन्तु चिल्लाते रहे ये प्यार प्यार!
गूँजती नभ में रही 'जय हिन्दमाता' की पुकार!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गङ्गा का जल

डा० बलदेव प्रसाद मिश्र एम० ए०, डी० लिट्०

लघु लघु लहराती लहर लहर
छल छल छवि छाती छहर छहर।
रवि कर रंजित झलमल झलमल
आलोक भरा गंगा का जल।

जल पर नावों की चहल पहल
हलका कुलकुल कलकल प्रतिपल।
पल पल पतवारों की कल मल
मल रहित मधुर गंगा का जल।

इस पार सलिल सुखमय शीतल
उस पार पहुँचने का संबल।
दो पार बँधा छवि पूर प्रबल
मंगल का स्थल गङ्गा का जल।

मिलते जिसमें पर और अपर
देता जो दर्शक को दो पर।
दर्शन ही से शीतल हृत्तल
दिव्यौषध सा गङ्गा का जल।

जड़ के जीवन की मूर्ति यही
पत्थर से उर की स्फूर्ति यही।
प्राकृत चेतन की धार धवल
भू प्यार मृदुल गंगा का जल।

भारत माता का वक्षस्थल
संतान-स्नेह-संसिक्त सरल।
जननी उर का पय अमल धवल
अवनी उर पर गंगा का जल।

दूरी से संगम की झांकी
कल्पना दिखाती थी बांकी।
भिन्नत्व और एकत्व तरल
यमुना का जल गङ्गा का जल।

संगम था या कि भरत अविकल
तन एक दूसरा मन निर्मल।
वह गुह यह मुनिवर सित-कुंतल
यमुना का जल गङ्गा का जल।

दो बाहों का मृदु आलिंगन
मिलते थे मरण और जीवन।
दोनों हरिहर श्यामल उज्वल
यमुना का जल गङ्गा का जल।

बढ़ जीव ब्रह्म में लीन हुआ
खोकर अस्तित्व अदीन हुआ।
घुल गया श्याम होकर निर्मल
रह गया एक गंगा का जल।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दक्षिण-भारत की सामाजिक संस्कृति

डाक्टर वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार

हिन्दू धर्म के व्यवस्था ग्रन्थों को आमतौर पर 'धर्म सूत्र' या 'धर्म शास्त्र' कहा जाता है और परम्परा से यह धारणा चली आई है कि इनका आधार श्रुति और वेद हैं। प्राचीन भारत में राजा लोग क़ानून नहीं बनाया करते थे बल्कि ऋषियों और मुनियों के बनाये हुये क़ानूनों पर ही अमल करते थे। यद्यपि राजा और पंचायतें क़ानून न बना सकती थीं तब भी ज़माने के साथ साथ क़ानूनों के स्रोत भी बढ़ते गये। इन स्रोतों में श्रुति, स्मृति और शिष्टाचार मुख्य थे। इनके अतिरिक्त क़ानूनी फ़ैसले, न्याय, मीमांसा, शाही फ़रमान, नज़ीरें और स्थानीय रूढ़ियां भी क़ानूनी व्यवस्था की अङ्ग बन गईं।[1] क़ानूनी विधानों की इस उत्तरोत्तर बढ़ती से ज़ाहिर होता है कि समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं और सामयिक परिवर्तनों से भारतीय समाज के प्राचीन नेता पूरी तरह परिचित थे और क़ानूनी विधानों में संशोधन और परिवर्द्धन की आवश्यकता को वे पूरी तरह समझते थे। नये नये परिवर्द्धनों को निश्चय ही देश के शिक्षित जनों ने पसन्द किया होगा। इसीलिये ये नियम शिष्टाचार या सदाचार के नाम से प्रसिद्ध हुये। इनके अतिरिक्त स्मृतिकारों ने स्थानीय रूढ़ियों को भी मान्य व्यवस्था के अन्तर्गत शामिल कर लिया।[2] दूसरे शब्दों में समाज के चित्र-विचित्र नियमों को क़ानूनी मान लिया गया और उनका पालन करना समाज के लिये लाज़मी हो गया। उनके विरुद्ध आचरण करने पर समाज अभियुक्त को दण्ड देता था। प्राचीन स्मृतिकारों को इस बात का ज्ञान था कि भारत जैसा विशाल देश अनेकों सम्प्रदायों और उनके भिन्न भिन्न आचार-विचारों का केन्द्र बनेगा, इसीलिये इन भारतीय स्मृतिकारों ने यह बात साफ़ कर दी कि जो आचरण एक समुदाय या सम्प्रदाय के लिये मान्य होगा दूसरे सम्प्रदाय उसका पालन करने के लिये बाध्य न होंगे।[3] स्मृतिकारों ने इस बात को बिलकुल साफ़ कर दिया है कि दाक्षिणात्यों के आचार-विचार का पालन दक्षिण के लोग करेंगे और उत्तर के आचार विचारों का पालन उत्तर भारत के लोग। माधव द्वारा उद्धृत देवल नामक स्मृतिकार के अनुसार केवल उन्हीं आचार विचारों का पालन करना चाहिये जो 'न्याय-दृष्ट' और कल्याण प्रद हों।[4] 'विषय' के अनुसार ही 'व्यवस्था' का नियम था और ये व्यवस्थाएँ समय और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार ही दी जाती थीं। इस तरह विविध स्मृतिकारों ने स्मृतियों की रचना के समय स्थानीय रीति रिवाजों को ध्यान में रखा और ऐसे सभी रीति रिवाज मान्य समझे गये जिनका मूल 'धर्म' में था। भृगु कहते हैं कि किसी भी देश, पुर, नगर, ग्राम आदि में जिस धर्म का भी पालन होता है उसका उसी रूप में पालन करना चाहिये।[5]

पाँचवी सदी ई० पू० के स्मृतिकार बौधायन भारत के अति प्राचीन स्मृतिकारों में समझा जाता है। यह तैत्तिरीय शाखा का था और आप स्तम्भ से भी पहले हुआ है। बौधायन ने स्थानीय रीति-रिवाजों का आदर करते हुये उसी के अनुसार अपनी स्मृतियां रचीं। बौधायन ने उत्तर भारत और दक्षिण भारत के रीति रिवाजों के साफ़ फ़र्क़ का

---

१—देखो मेरी पुस्तक Hindu Administrative Institutions, pp. 216-17.

२—गौतम ११-१९,२६, मनु० ८-४१,४६, याज्ञवल्क्य १—३ और ७

३—इतरदितरस्मिन् कुर्वन् दुष्यति इतर इतरस्मिन्।
तत्र तत्र देशप्रामाण्यमेव स्यात्।
—बौद्ध धर्म सूत्र १. २१.

इस पर माधवाचार्य की टिप्पणी है—

इतरो दाक्षिणात्या इतरस्मिन् उत्तर देशे मातुल-सम्बन्ध कुर्वन दुष्यति। न स्वदेशे। तथेतर उदीच्य इतरस्मिन दक्षिण देशे सीधुपानादिकं कुर्वन दुष्यति। न स्वदेशे। कुतः? देशप्रामाण्यात्।

४—यस्मिन देशे य आचारो न्यायदृष्टः सुकल्पितः।
स तस्मिन्नेव कर्तव्यो न तु देशान्तरे स्मृतः॥

५—यस्मिन देशे, पुरे, ग्रामे त्रैविद्यं नगरेऽपि वा।
यो यत्र विहितो धर्मस्तं धर्मं न विचालयेत्॥
[माधव के अनुसार]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उल्लेख किया है और दोनों को अपने अपने रीति रिवाजों के अनुसार आचरण करने की अनुमति दी है।[६] बौधायन अपने 'धर्म सूत्र' में दक्षिण-भारत में प्रचलित पांच रिवाजों का उल्लेख कर अपनी व्यवस्था के द्वारा उनका पालन न्याय्य ठहराता है। ये पांचों रिवाज ये हैं—[७]

(१) अदीक्षित के साथ भोजन करना (अनुपानितेन सहभोजनम्)।

(२) अपनी पत्नी के साथ भोजन करना (भार्याय सहभोजनम्)।

(३) बासा भात और भात की कांजी खाना (पर्युषित भोजनम्)।

(४) ममेरी बहिन के साथ विवाह करना (मातुल दुहित्र गमनम्)।

(५) फुफेरी बहिन के साथ विवाह करना (पितृस्वसृदुहित्र गमनम्)।

इनमें से हम हर रिवाज की यहाँ ज़रा विवेचना करके देखें। इनके अनुसार उन अदीक्षितों के साथ खाने का निषेध है जो समय पर दीक्षित नहीं हुये। ब्राह्मणों के सम्बन्ध में विष्णु ने कहा है कि उनकी पैदायश के ८ वें वर्ष में उनका यज्ञोपवीत संस्कार कर देना चाहिये और किसी भी सूरत में यह संस्कार १६ वर्ष की उम्र तक हो ही जाना चाहिये।[८] १६ वर्ष तक जिसका यज्ञोपवीत नहीं हुआ फिर वह 'व्रात्य' समझा जाता है। और व्रात्य कहते किसे हैं? व्रात्य उसे कहते हैं जो वैदिक धर्मशास्त्र के अनुसार संस्कारों का पालन न करके जातिच्युत हो जाता है (व्रातात् समूहात् व्यवति यत्)। द्विज के लिये यज्ञोपवीत संस्कार बहुत महत्वपूर्ण है। उपनयन संस्कार का आज जितना महत्व है पहले भी इतना ही था। स्मृति कहती है कि जिनका जनेऊ नहीं हुआ वे जातिच्युत समझे जाँय और इसलिये उनके साथ सहभोज नहीं करना चाहिये।[९] मालूम होता है कि यह रिवाज बौधायन के समय दक्षिण भारत में प्रचलित था। भाष्यकार गोविन्द स्वामी के अनुसार दक्षिण भारत का क्षेत्र नर्मदा से कन्या अन्तरीप तक माना जाता था जहाँ अदीक्षितों के साथ भी, जो जाति में होते हुये भी जातिच्युत थे, सहभोज का रिवाज था।[१०] दूसरे शब्दों में दक्षिण भारत में, बौधायन के समय, वर्ण धर्म और आश्रम धर्म का सख़्ती के साथ पालन नहीं होता था। यह हालत चौथी सदी ईसा पूर्व और शायद उससे पहले भी थी।[११]

पत्नी के साथ सहभोज का रिवाज, बौधायन के अनुसार, केवल दक्षिणात्यों में ही प्रचलित था। स्मृतियों के अनुसार स्त्रियों को चाहिये कि वे अपने पति को देवता और स्वामी समझें। जो स्त्री ऐसा नहीं समझती वह सच्चे पातिव्रत धर्म से गिर जाती है।[१२] जब यह विधान है कि पत्नी पति के बाद खाये तो पत्नी का यह कर्तव्य है कि अपने स्वामी और देवता को वह पहले खिलाये और उसकी ज़रूरतों और उसके आराम की ओर ध्यान दे।[१३] यानी पति को प्रेमपूर्वक अपने हाथ से परोसकर पहले भोजन कराये और तब उसी जूठी थाली या पत्तल में स्वयं भोजन करे। यह रिवाज आज दक्षिण भारत में आमतौर पर प्रचलित है, हालाकि स्मृतियों में इसका कहीं उल्लेख नहीं है कि पत्नी पति की जूठी थाली या पत्तल में भोजन करे। किन्तु बौधायन ने अपने समय में पति को अपनी पत्नी के साथ बैठकर सहभोज करते हुये देखा था। एक अच्छे स्मृतिकार की हैसियत से बौधायन ने इस रिवाज को बुरा नहीं समझा और उसे दक्षिण-भारत की विशेषता कहकर उसने स्वीकार कर लिया। इससे एक बात का पता चलता है कि सातवीं सदी ई० पू० में दक्षिण भारत की स्त्रियाँ अपनी उत्तर भारत की बहिनों की अपेक्षा कहीं अधिक

---

६—उत्तर भारत के पाँच रिवाज ये हैं—(१) ऊन का व्यापार करना, (२) मदिरा पीना, (३) जिनके ऊपर और नीचे के जबड़ों में दांत हैं ऐसे पशु बेचना, (४) अस्त्र-शस्त्र बेचना और (५) समुद्र यात्रा करना—१.१. २०, बौधायन धर्म सूत्र।

७—1. 1. 19 Mysore Oriental Series.

८—S. B. E., Vol. VII, ch. XXVII, 15, 26 and 27.

९—विष्णु स्मृति, अ० ५६, २-५.

१०—Op. cit., p. 7 (Mysore Oriental Series).

११—P. T. S. Ayyangar, History of the Tamils, pp. 116-18.

१२—मनु के अनुसार पति को चाहिये कि न तो वह पत्नी के साथ सहभोज करे न उसे खाते हुये, छींकते हुये, जम्हाई लेते हुये या आराम से बैठे हुये देखे—

नाश्नीयाद्भार्यया सार्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम्।
क्षुवतीं जृम्भमाणां वा न चासीना यथासुखम्॥

१३—विष्णु स्मृति, अ० ५७, ३८, ४८, ४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाधीन थीं। वे दक्षिण भारत के सामाजिक जीवन में एक आदरणीय स्थान रखती थीं।

तीसरा रिवाज पर्युषित भोजन या बासी खाना खाने का था। आम तौर पर यह किया जाता है कि रात को भात राँधकर हंड़िया में रखकर उसमें ठण्ढा पानी भर देते हैं और रात भर भात फूलता रहता है। दूसरे दिन सुबह यह भात खाया जाता है और भात की कांजी पी जाती है। शंकर पर्युषित भोजन के सम्बन्ध में कहते हैं—पक्वं सद् रान्ययन्तरितं च यत्।[१४] एक दूसरा भाष्यकार श्रीधर इसे दिनान्तर पक्वं कहता है। भाष्यकार मधुसूदन और नीलकण्ठ ने भी शंकर की उक्ति का ही समर्थन किया है। दक्षिण भारत जैसे गरम स्थान में सुबह सुबह यह भोजन लोगों को बड़ा लाभदायी मालूम होता है। यह दुख की बात है कि यह रिवाज अब धीरे धीरे नष्ट होता जा रहा है। बौधायन ने तन्दुरुस्ती के लिये इसके लाभ को अवश्य देखा होगा अन्यथा वह इसे निषिद्ध रिवाजों की श्रेणी में रखता। पर्युषित भोजन के रिवाज का ज़िक्र वैषानस धर्म शास्त्र में भी मिलता है।[१५]

दाक्षिणात्यों के जिन चौथे और पाँचवें रिवाजों को बौधायन ने न्याय्य स्वीकार कर लिया था वह ममेरी और फुफेरी बहिनों के साथ विवाह का रिवाज था। इस तरह के सम्बन्ध अब भी दक्षिण भारत में प्रचलित हैं। डाक्टर जी० बहलर मातुल दुहितृ गमनम् का अर्थ ममेरी फुफेरी बहिनों के साथ विवाह करते हैं जब कि स्व० पी० टी० श्रीनिवास अय्यङ्गर ने उसे केवल ममेरी फुफेरी बहिनों के साथ प्रेम सम्बन्ध करना बताया है। यह सरीहन ग़लत भाष्य है और कोई भी समझदार स्मृतिकार इस तरह की बातों का समर्थन नहीं कर सकता था। डाक्टर बहलर का समर्थन और अनेक भाष्यकारों की टीकाओं से हो सकता है। गोविन्द स्वामी 'गमनम्' का अर्थ सम्बन्ध करते हैं। सम्बन्ध का विशेष अर्थ होता है। आज दिन भी लोग विवाह के लिये सम्बन्ध शब्द का प्रयोग करते हैं। विवाह के लिए 'सम्बन्ध' शब्द कालिदास ने भी प्रयुक्त किया है।[१६] महाकवि भास ने भी इस शब्द को इसी रूप में इस्तेमाल किया है।[१७] 'उत्तर रामचरित' के छठवें अंक में भवभूति ने भी विवाह के लिये 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग किया है।[१८] माधवाचार्य ने 'पाराशर धर्म संहिता' में विस्तृत रूप से इस पर टिप्पणी की है। उन्होंने गमनम् के बजाय परिणयनम् शब्द इस्तेमाल किया है।[१९] माधवाचार्य ने विस्तारपूर्वक मनु, याज्ञवल्क्य आदि के उद्धरण देकर यह बताया है कि माँ की ओर से पाँचवीं पीढ़ी और पिता की ओर से सातवीं पीढ़ी तक विवाह सम्बन्ध वर्जित है।[२०] मनु के अनुसार सपिण्ड विवाह निषिद्ध हैं।[२१] यदि कोई व्यक्ति अपनी ममेरी बहिन से विवाह करता है तो उसे प्रायश्चित्त के रूप में 'चान्द्रायण' व्रत करना चाहिये।[२२] मालूम होता है कि यह एक वैदिक रिवाज था जो धर्मशास्त्रों के प्रचलन के पहले लुप्त हो गया था। ऋग्वेद संहिता में इन्द्र को सम्बोधन करके कहा गया है कि—"हे इन्द्र! तू यज्ञ की बलि उसी तरह सहर्ष स्वीकार कर जिस तरह कोई मामा और बुआ की लड़की को विवाह में स्वीकार करता है।" इस उद्धरण से यह बात साबित होती है कि इस तरह के रिवाजों का वैदिक काल में आम प्रचलन था।[२३] पौराणिक काल में भी इस तरह का रिवाज अपवाद नहीं बल्कि आम था जैसा कि महाभारत और भागवत से ज़ाहिर होता है। कृष्ण ने भी अपनी एक ममेरी बहिन रुक्मणी

---

१४—यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।
१७-१०

१५—कुमारसम्भव, ६, २९-३०

१६—प्रतिज्ञायउगन्धरायन, पृष्ठ-६५

१७—सम्बन्धस्यृहणीयता प्रमुदितैर्जुष्टेवसिष्ठादिभिः
दृष्ट्वापत्यविवाहमङ्गलमहे तन् तातयोः सङ्गतम्।
पश्यन्नीदृशमीदृशे पितृसखं वृत्ते महावैशसे
दीर्घे किं न सहस्रधाहमथवा रामेण किं दुष्करम्॥
१८—P. 67, Bombay Sanskrit Series, Vol. I, Pt. II

१९—P. 67, Bombay Sanskrit Series, vol. I, pt. II.

२०—Op. cit., p. 60 sq.

२१—मनु० ३-५

२२—Satatapa quoted by Madhava charya op. cit. p. 63

२३—आयाहीन्द्र पथिभिरीकितेभिर
यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व।
तृप्तां जहर्मातुलस्येव योषा
भागस्ते पैतृष्वसेयि वपामिव॥ VII. 55. 8 (khila)
और देखिए Nirukta, Parishishta 14. 31. ed. by L. Sarup, P. 241.


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और अर्जुन ने अपनी ममेरी बहिन सुभद्रा से विवाह किया था।[२४] फुफेरी बहिनों से विवाह की भी अनेक मिसालें भागवत में मिलती हैं। कहा जाता है कि कृष्ण ने अवन्ती की मित्रविन्दा और केकैय की मद्रा से विवाह किया और ये दोनों राजकुमारियाँ कृष्ण की फुफेरी बहिनें थीं।[२५] हालाकि वैदिक काल के बाद ये विवाह सम्बन्ध निषिद्ध ठहराये जाने लगे किन्तु फिर भी तामिल देश में वे इतने ज़ोरों से रायज़ थे कि बौधायन जैसे स्मृतिकार उन्हें निषिद्ध न कह सके। कुमारिल भट्ट के तंत्रवार्तिक में लिखा है कि दाक्षिणात्यों में लोग बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने मामा की लड़की से विवाह करते हैं।[२६] दक्षिण भारतीयों के कुर्सी पर बैठकर भोजन करने के रिवाज का भी ज़िक्र कुमारिल भट्ट के ग्रंथ में मिलता है। इनके अतिरिक्त कुमारिल कुछ ऐसी पृथाओं का भी ज़िक्र करता है जो कि उत्तर और दक्षिण दोनों जगह प्रचलित थीं किन्तु स्मृतियों में जिनका विधान नहीं है। वे प्रथाएं ये हैं—

(१) अपने मित्रों और सम्बन्धियों को खिलाकर तब बचा हुआ भोजन करना।

(२) सब जातियों के छुये हुये पान खाना।

(३) भोजन के बाद कुल्ला न करना।

(४) धोबी के धुले हुये कपड़ों को बिना घर में धोये पहन लेना।

(५) ब्रह्म हत्या के अपराधियों के अतिरिक्त अन्य बुरे से बुरे अपराधियों को शरण देना।[२७]

लोगों में यह एक आम धारणा है कि हिन्दू धर्म कट्टर और अपरिवर्तनशील है किन्तु सचाई इसके बिलकुल विपरीत है। धर्मशास्त्रों के रचयिताओं ने तरह तरह की व्यवस्थायें दी हैं—ऐसी व्यवस्थायें जो विविध सम्प्रदायों के लिये सुविधाजनक हों। इन महान स्मृतिकारों ने पारिवारिक नियमों और स्थानीय रीति रिवाजों में कोई दख़ल नहीं दिया। वे जानते थे कि धर्म का मार्ग वैयक्तिक स्वतन्त्रता से ही प्रशस्त होगा। जो भी प्रथा अच्छी थी वह स्वीकार कर ली गई और 'मानव धर्म शास्त्र' के प्रणेता ने उसे बढ़ावा दिया।[२८] एक दूसरे महान स्मृतिकार नारद कहते हैं कि प्रचलित रिवाज पवित्र समझी जानेवाली व्यवस्थाओं से भी ऊँचे समझे जाने चाहिए।[२९] वास्तव में हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में काफ़ी विशालता थी और प्राचीन स्मृतिकारों ने प्रचलित रस्म रिवाजों को अपनाने में कोई कट्टरता नहीं दिखाई। इस तरह हम देखते हैं कि दक्षिण भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक परम्परा को हिन्दू सामाजिक संहति में स्वतन्त्रता के साथ बढ़ने और फैलने का अवसर मिला।

---

२४—कुमारिल भट्ट के समय यह रिवाज निषिद्ध हो चुका था—तंत्रवार्तिक, पृष्ठ १९२-९४

२५—१०, अध्याय—५१, ३१ और ५६ कुम्भकोनम संस्करण

२६ बनारस संस्कृत सीरीज़ १-३, सूत्र ७, पृष्ठ १२९, डाक्टर गङ्गानाथ झा द्वारा सम्पादित और एशियाटिक सोसायटी आफ़ बेङ्गाल द्वारा प्रकाशित।

२७—वही पृष्ठ १२८

२८—मङ्गलाचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः।
मङ्गलाचारयुक्तानाम् नित्यं च पयतात्मनाम्
जपतां जुह्वतां चैव विनिपातो न विद्यते॥
५—१४५-४६

२९—१-४०

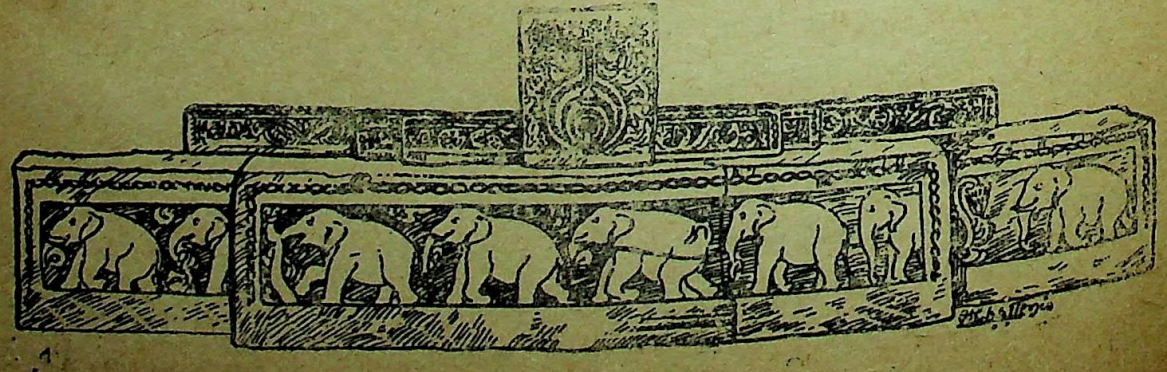

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दक्षिण-भारत का स्वर्ण-युग : राजराजा चोल का शासन-काल

श्री टी० के० वेङ्कटरमण एम० ए०, एल० टी०

इतिहास के विद्यार्थी आमतौर पर उत्तर भारत के ही महान सम्राटों और शासकों का और उनके साम्राज्यों का ज़िक्र करते हैं किन्तु दसवीं सदी के दक्षिण भारत के महान सम्राट राजराजा चोल की तुलना उत्तर भारत के बड़े से बड़े प्रतापी सम्राट से की जा सकती है। जिन परिस्थितियों में राजराजा चोल ने दक्षिण भारत की बागडोर अपने हाथों में ली वे ऐसी थीं जब कि वहां के सभी राजकुल छिन्न-भिन्न हो रहे थे। पहली सदी ईसवी में पहले चोल सम्राट कारिकल ने चोल राज्य को प्रशस्त किया किन्तु बाद में उत्तर में पल्लवों ने कारोमण्डल में और दक्षिण में पण्ड्यों ने अपनी शक्ति का विस्तार कर लिया। नवीं सदी में जब ये दोनों शक्तियां क्षीण हुईं तो विजयालय और उसके प्रतापी बेटे आदित्य के समय चोल शक्ति ने फिर से प्रभुत्व हासिल किया।

आदित्य के उत्तराधिकारी परान्तक ने अपने चालीस वर्ष के शासन में चोल राज्य को काफ़ी दृढ़ बनाया और अपने राज्य की सीमाओं को विस्तृत किया। परान्तक की मृत्यु के समय चोल राज्य दक्षिण पेन्नार से कुमारी अन्तरीप तक फैला हुआ था।

किन्तु परान्तक के शासन काल में ही राष्ट्रकूट राजा जो दक्षिण भारत के सार्वभौम राजा थे, चोल राज्य को समूल नष्ट करने के उद्योग में लग गये। राष्ट्रकूट राजाओं की राजधानी इस समय के निज़ाम राज्य में स्थित मान्यखेट थी। चालुक्यों को हटाकर राष्ट्रकूटों ने दक्षिण भारत का नेतृत्व अपने हाथों में लिया और अब वे दक्षिण और उत्तर भारत दोनों पर हुकूमत करने की आकांक्षा करने लगे। और यह स्वाभाविक था कि राष्ट्रकूट राजा चोलों की बढ़ती हुई शक्ति को आशंका से देखते। परान्तक के बाद पांच चोल राजाओं के संक्षिप्त शासन काल में राष्ट्रकूटों ने चोलों की बढ़ती हुई शक्ति को मिटाने की जी तोड़ कोशिश की। राष्ट्रकूट राजा कृष्ण ने कांची के महत्वपूर्ण नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया और चोलों की राजधानी तंजोर तक को घेर लिया।

राजराजा चोल के गद्दी पर बैठने के थोड़े समय पहले ही भाग्य ने चोलों की इस मुसीबत को दूर कर दिया। सन् ९७३ ई० में चालुक्य राजकुल के एक वंशज तैल ने राष्ट्रकूट राजकुल को हटाकर फिर से चालुक्यों का शासन कायम किया। यह चालुक्य वंश अपनी राजधानी के नाम से कल्याणी चालुक्य कहलाते थे।

सन् ९४५ ई० में परान्तक का प्रपौत्र राजराजा तंजोर की गद्दी पर बैठा। उस समय परिस्थिति उसके अनुकूल नहीं थी। किन्तु राजराजा बुद्धिमान और चतुर नरेश था और उस समय की परिस्थिति से पूरी तरह परिचित था। न केवल उस समय उसे अपनी हुकूमत को मज़बूत करना था बल्कि दक्षिण भारत में उसे सर्वोपरि बनना था। राजराजा ने अत्यन्त चतुराई, दूरदर्शिता और योग्यता से इस काम को पूरा किया। उसने शुरू के कुछ वर्ष अपनी स्थिति को मज़बूत करने में लगाए और फिर अपनी महान विजय यात्रा पर निकल पड़ा। अनेक शिलालेखों से हमें उसकी इन विजयों के विस्तृत समाचार मिलते हैं। अपने शासन के आठवें साल में उसका सबसे बड़ा काम वह समुद्री विजय थी जो त्रिवेन्द्रम के निकट कंडलूर-सलाई में केरली के ऊपर उसने प्राप्त की। अपनी इस विजय में उसने केरलों की चेरा जल-सेना को नष्ट कर दिया। इस समुद्री विजय से यह पता चलता है कि चोल राजाओं के पास स्वयं बड़ी शक्तिशाली जलसेना थी। इसके बाद उसने कुडाकुमलाइ नाडु (कुर्ग) और कोल्लम (क्विलन) पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस तरह सबसे पहले उसने पश्चिमी घाट में केरल शक्ति को क़ाबू में किया। फिर उसकी फ़ौजें मैसूर के ऊपर टूट पड़ीं और उन्होंने धीरे धीरे समस्त मैसूर को अपने अधिकार में कर लिया। इसके बाद दकन और दक्षिण भारत का ज़बरदस्त युद्ध शुरू हुआ। एक तरफ़ शक्तिशाली चालुक्य थे और दूसरी तरफ प्रतापी चोल। चालुक्य नरेश सत्याश्रय के शिलालेखों से पता चलता है कि राजराजा ने हिम्मत के साथ चालुक्य राज्य पर हमला करके रन्तपाडी पर कब्ज़ा कर लिया। इसके बाद उसने चोल राज्य की उत्तरी सीमा से मिले हुए पूर्वीय चालुक्य राज्य पर धावा किया। पहले ये पूर्वीय चालुक्य चालुक्य राजकुल के ही थे, बाद में ये स्वतंत्र नरेश हो गये। राजराजा ने न केवल इन्हें विजय किया बल्कि पूर्वीय चालुक्य नरेश विमलादित्य के साथ अपनी कन्या कुंदव का विवाह करके उससे सामाजिक सम्बन्ध भी क़ायम कर लिया। पूर्वीय चालुक्यों के देश से उत्तर में बढ़कर कलिङ्ग (उड़ीसा) पर महानदी तक कब्ज़ा कर लिया।

दक्षिण में पंड्या नरेश पराजित हो चुके थे। राजराजा ने अब सिंहल की तरफ़ रुख़ किया और अपने शासन के बीसवें वर्ष में सिंहल के उत्तरी भाग पर क़ब्ज़ा कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Coll...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह राजराजा के आधीन उत्तरी सिंहल आजकल की पूरी मद्रास प्रेसिडेन्सी, मैसूर, त्रावणकोर, कोचिन, तुङ्गभद्रा तक निज़ाम का हिस्सा और महानदी तक उड़ीसा का प्रदेश हो गया था। हमें एक बात याद रखनी चाहिये कि जब राजराजा सिंहासन पर बैठा तो चोलों के आधीन केवल तंजोर तथा त्रिचनापल्ली के ज़िले थे और इस दृष्टि से राजराजा का यह साम्राज्य विस्तार अत्यन्त महान है।

किन्तु राजराजा केवल सफल विजेता ही नहीं था। वह जितना महान विजेता था उतना ही महान शासक भी था। चोलों का शासन अत्यन्त उदार शासन था और जनता के हितों का उन्हें बेहद ध्यान था। शासन प्रबन्ध में राजा को मदद देने के लिये एक मन्त्रि मण्डल था जिसका प्रधान ओलैनायकम् कहलाता था। कई शिलालेखों से पता चलता है कि महल के एक ख़ास हिस्से में बैठकर राजा राजमन्त्री को फ़रमान लिखाता था जो ओलैनायकम् की रज़ामन्दी के बाद लोगों के पास रवाना किये जाते थे। ओलैनायकम शब्द से ऐसा मालूम होता है कि शाही हुक्मनामे ताड़ के पत्तों पर दर्ज किये जाते थे क्योंकि 'ओलै' शब्द का अर्थ 'ताड़' होता है। ऐसा पता चलता है कि शासन प्रबन्ध के लिये बहुत ज़्यादा केन्द्रीय कर्मचारी नहीं रहते थे, शासन के बहुत से महत्वपूर्ण विभाग स्थानीय पञ्चायतों के आधीन ही होते थे। केन्द्रीय सत्ता का काम केवल देखरेख करना रहता था। स्थानीय पञ्चायतें ही चोल शासन की ज़रूरी अङ्ग थीं। ये पञ्चायतें जनता द्वारा चुनी जाती थीं। स्त्रियाँ भी पञ्च बन सकती थीं और बनती थीं। हर पञ्चायत का कार्यकाल केवल एक वर्ष होता था। यह आश्चर्यजनक गणतांत्रिक प्रणाली राजराजा की कोई ईजाद नहीं थी। उसने केवल इन पञ्चायतों को अधिक से अधिक अधिकार देकर शक्तिशाली बनाया और उन पर अपनी स्पष्ट छाप लगाई।

अन्य भारतीय राजाओं की तरह राज राजा ने भी किसानों की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया। उस ज़माने में लगान ही राज्य की मुख्य आमदनी थी। किन्तु लगान खेत की पैदावार के हिसाब से लगाया जाता था। ज़मीन की अच्छी बुरी क़िस्मों को ध्यान में रखकर लगान का निर्ख़ मुक़र्रर किया जाता था। लगान आमतौर पर पैदावार का छठवाँ हिस्सा लिया जाता था और किसान उसे रुपया या ग़ल्ला किसी भी शक्ल में अदा कर सकता था।

जहाँ तक धर्म का सम्बन्ध है राजराजा शैव धर्म का अनुयायी था। तञ्जोर में उसने भगवान शिव का वृहतेश्वर नाम का एक बहुत बड़ा मन्दिर बनवाया। अनेक मन्दिरों में उसने अपने ख़र्च से शिव की नित्य पूजा आराधना का आयोजन किया। राजराजा के समय में ही शिव के सम्बन्ध में तमाम भजनों ( तेवरमों ) का संग्रह 'तिरमुराई' नाम से किया गया। किन्तु अन्य हिन्दू राजाओं की तरह यह महान चोल राजा भी अन्य धर्मों के प्रति बेहद उदार था। मलाया प्रायद्वीप के शैलेन्द्र राजकुल के एक बौद्ध राजा को सहायता देकर उसने नेगापट्टम में एक बौद्ध मन्दिर का निर्माण कराया। उसके अपने तञ्जोर के मन्दिर में गोपुरम् की सारी मूर्तियाँ वैष्णव धर्म की हैं और अहाते की मूर्तियाँ शैव धर्म को चित्रित करनेवाली हैं। वह अपने समस्त धार्मिक व्यवहार में पूरी तरह सहिष्णु और उदार था।

राजराजा का शासनकाल कला की दृष्टि से दक्षिण भारत का स्वर्ण-युग था। उसका बनवाया हुआ तञ्जोर का मन्दिर दक्षिण भारत के मन्दिरों के लिये एक माडेल के रूप में इस्तेमाल होता था। मन्दिर के प्रधान गुम्बज पर बड़ी सुन्दर नक्काशी की गई है। मन्दिर का प्रवेश गुम्बज भी दक्षिण भारत में अपने तरह की पहली चीज़ थी। प्रधान गुम्बज लगभग २०० फुट ऊँचा है। गुम्बज का हिस्सा एक ही ग्रैनाइट पत्थर को काटकर बनाया गया है और २५ वर्ग फुट का है। इस पत्थर का वज़न लगभग ८० टन होगा। इतने बड़े पत्थर को मन्दिर के १७५ फुट ऊँचे गुम्बज तक चढ़ाने के लिये मन्दिर से चार मील दूर तक ढलान बनाई गई होगी। हाल में पता चला है कि इस गुम्बज के अन्दर दीवाल पर शैव धर्म को चित्रित करने वाली अत्यन्त सुन्दर और कलापूर्ण चित्रकारी बनी हुई है।

युद्ध पर विजय प्राप्त करना उतना स्थायी महत्व नहीं रखता जितना शान्तिकालीन उन्नति। राजराजा का स्थापित किया हुआ महान चोल राज्य आज अतीत के गर्त में छुप गया है किन्तु तञ्जोर में उसका बनवाया हुआ 'राजराजेश्वरम्' का महान मन्दिर इस प्रतापी चोल राजा की धवल स्मृति के रूप में पिछले एक हज़ार वर्ष से उसकी कीर्ति गाथा गाता हुआ ज्यों का त्यों खड़ा है। जिन जिन देशों में उसने राज किया वहां वहां के शिला लेख उसकी उदारता और उसके सुन्दर शासन प्रबन्ध की कथा कहते हैं। यदि हम आज उसे राजराजा महान के नाम से पुकारते हैं तो वह उसकी महान विजयों के लिये नहीं बल्कि उसके उदार शासन प्रबन्ध, सहिष्णु धर्म नीति, और साहित्य और कला की महती उन्नति के लिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दक्षिण-भारत की प्रमुख लिपि तमिल में प्रस्तावित सुधार

श्री एस० आर० वेङ्कटरमण

आज इस सांस्कृतिक पुनर्जागरण के युग में और बातों के साथ साथ लिपि के सुधार का प्रश्न भी लोगों के सामने आ रहा है। लोग अनेक लिपियों की जगह एक ही लिपि के इस्तेमाल पर अधिक ज़ोर दे रहे हैं। दक्षिण भारत में भी लिपि समस्या पर काफी विचार विनिमय हो रहा है। लोग इस बात की चर्चा करते हैं कि हर तरह के आधुनिक विचारों को प्रकट करने के लिये तमिल लिपि को और अधिक सुगम, हल्की और सहल बनाने की ज़रूरत है ताकि अधेड़ों और बच्चों दोनों को तमिल लिपि के द्वारा भाषा सीखने में सहूलियत और आसानी हो और वह बग़ैर अपने पर ज़ोर डाले जल्द से जल्द भाषा सीख लें। हमें अनेक आवाज़ों को व्यक्त करने के लिये कुछ ऐसे नये अक्षर भी तमिल लिपि में जोड़ने होंगे जो इस समय तमिल वर्णमाला में नहीं हैं। फिर छपाई और टाइप राइटर आदि की दिक़्क़तों को ध्यान में रखकर भी हमें कुछ सुधार करने की ज़रूरत है।

तमिल लिपि में कोई भी सुधार करने के लिये दो सिद्धान्त हमें ध्यान में रखने ज़रूरी हैं: १—यह कि जो भी सुधार किये जाएं वे स्थायी हों। यह लेखकों और प्रकाशकों की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। और दूसरा यह कि जो भी सुधार किया जाय वह इतना अधिक क्रान्तिकारी न हो कि भाषा का सीखना आज से कहीं ज्यादा मुश्किल करदे। तमिल लिपि के अपने प्रस्तावित सुधारों में मैंने इन्हीं दोनों सिद्धान्तों पर अमल किया है। तमिल लिपि में इस समय नीचे लिखे अनुसार ३१३ अक्षर हैं—

| | | |
|---|---|---|
| स्वर | ... | १२ |
| व्यञ्जन | ... | १८ |
| स्वर-व्यञ्जन १२×१८ | ... | २१६ |
| ग्रन्थाक्षर | ... | ५ |
| ग्रन्थ-स्वर-व्यञ्जन १२×५ | ... | ६० |
| औयुतम् | ... | १ |
| श्री | ... | १ |
| | | ३१३ |

यद्यपि तमिल भाषा में ३१३ अक्षर हैं फिर भी उसमें दीर्घ ग, घ, ब, और द को व्यक्त करने वाले कोई अक्षर नहीं हैं। फिर अङ्गरेज़ी के F और Z अक्षरों की ध्वनियों को व्यक्त करने वाले भी कोई अक्षर नहीं हैं। किसी भी अधेड़ या बच्चे को, जो भाषा सीखना चाहता है, इन ३१३ अक्षरों में से नीचे लिखे ८८ बुनियादी अक्षर सीखने ज़रूरी हैं—

| | | |
|---|---|---|
| स्वर | ... | १२ |
| व्यञ्जन | ... | १८ |
| औयुतम् | ... | १ |
| स्वर-चिह्न | ... | ६ |
| स्वर-व्यञ्जन | ... | ७ |
| | कुल | ४४ |

| | | |
|---|---|---|
| १८ व्यञ्जनों की अलग अलग लिखी हुई वु और वू बाराखड़ी | ... | ३६ |
| ५ ग्रन्थाक्षर | | ५ |
| ग्रन्थाक्षरों के लिये वु और वू स्वर चिह्न | | २ |
| ग्रन्थाक्षर श्री | ... | १ |
| | कुल | ४४ |

हालाकि तमिल में दूसरी भारतीय भाषाओं के मुक़ाबले में कहीं कम अक्षर हैं फिर भी ये ८८ अक्षर ज़्यादा ही हैं। मुझे यह सन्देह है कि भारत में निरक्षता की एक यह भी वजह है कि भारतीय भाषाओं में बहुत ज़्यादा अक्षर हैं। यूरोपीय भाषाओं में जिनमें अङ्गरेज़ी भी शामिल है भारतीय भाषाओं की अपेक्षा कहीं कम अक्षर हैं और इसी-लिये पश्चिम में साक्षरता फैलाने में कहीं अधिक सहूलियत होती है।

तीन दृष्टियों से तमिल लिपि को सुधारा जा सकता है: (१) अधिकाक्षरों की छंटती की जाय, (२) स्वर चिह्नों का पुनर्प्रबन्ध और (३) कुछ नये अक्षरों की ईजाद।

तमिल लिपि में ऐ और औ को मिलाकर पांच ह्रस्व-स्वर हैं और सात दीर्घ स्वर। मेरी राय में सातों दीर्घ स्वरों को हम निकाल सकते हैं। ह्रस्व स्वरों के साथ दीर्घ अ जोड़कर उन्हें दीर्घ स्वर बनाया जा सकता है।

अब हम व्यञ्जनों के साथ जिन स्वर-चिह्नों का प्रयोग करते हैं ज़रा उनपर ग़ौर करें। कुछ व्यञ्जनों के साथ बुनियादी स्वाधीन स्वर चिह्न इस्तेमाल किये जाते हैं और कुछ



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के साथ स्वर चिह्न व्यञ्जनाक्षर के अङ्ग होते हैं। यदि हम यकसां बुनियादी स्वर-चिह्न इस्तेमाल करने लगें तो इसकी ज़रूरत न रह जाय। फिर कै और कौ भी बजाय तीन अक्षरों के दो अक्षरों से ही लिखे जा सकते हैं और इसमें ध्वनि परिवर्तन भी न होगा। तमिल में बहुत सी ऐसी ध्वनियां हैं जिन्हें तीन अक्षरों को मिलाकर ही प्रकट किया जा सकता है, इन्हें बग़ैर भाषा को बिगाड़े दो अक्षरों से ही प्रकट किया जा सकता है। मिसाल के तौर पर कों और कौ को व्यक्त करने के लिये तीन अक्षरों की मदद लेनी पड़ती है, यदि निश्चित स्वर चिह्न हों तो दो ही अक्षरों से यह काम लिया जा सकता है। इस तरह तमिल में फिर किसी भी ध्वनि के लिये तीन अक्षरों की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

स्वर-चिह्नों का इस्तेमाल यकसां तरीके से होना चाहिये। इससे बच्चों और अधेड़ों को भाषा सीखने में सुविधा होगी। मेरा सुझाव है कि जब भी हम व्यञ्जन के साथ किसी स्वर चिह्न को इस्तेमाल करें तो व्यञ्जन के बाद करें जैसे क+ा=का।

अब रहा प्रश्न नये अक्षर जोड़ने का। इस सुधार की ज़रूरत आज पहले से लोग कहीं अधिक महसूस कर रहे हैं। आज हाई स्कूल में मातृभाषा में ही बच्चों को सभी विषय पढ़ाये जाते हैं। दूसरे और तीसरे दरजे के लड़के जब अपनी पाठ्य-क्रम की पुस्तकों को पढ़ते समय मनुष्यों और जगहों के नाम पढ़ते हैं तो उसे सुनकर मन उदास हो जाता है। तमिल में लिखे हुये लार्ड रिपन शब्द को बच्चे लार्ड रिबन पढ़ेंगे। तमिल में लिखा हुआ 'टोरी' शब्द 'डोरी' पढ़ा जायगा। इस तरह की अनगिनत मिसालें दी जा सकती हैं। इसलिये ज़रूरत इस बात की है कि कुछ नये शब्द जोड़े जाएं जिससे गोदवरी में ग, धर्मपुरम में ध, बेलूर में ब, डेनियल में ड, फ्रान्स, फर्डीनेण्ड और फ्रान्सिस में फ़ और ज़ंज़ीबार, ज़ेटलैण्ड आदि में ज़ का बोध हो सके। इससे तमिल भाषा भी समृद्ध होगी।

किन्तु नये शब्द गढ़ने में यह बात ध्यान में रखनी होगी कि जो शब्द गढ़े जाँय वह तमिल लिपि के ही आकार प्रकार के हों और उस वर्ग के अक्षरों से मिलते जुलते हों। इससे विद्यार्थियों को भी इन अक्षरों के सीखने में कोई असुविधा न होगी।

इन सुधारों को अमल में हमें उदार भावना और खुले दिमाग़ से काम लेना होगा और जो भी सुधार हो वह इतना क्रान्तिकारी न हो कि उससे तमिल भाषा या साहित्य में कोई विशेष अन्तर पड़ जाय। यदि इन सुधारों का असर तमिल व्याकरण पर पड़ता हो तो व्याकरण के नियमों को इस दरजे परिवर्तन कर लिया जाय कि जिससे ये सुधार सहज और सम्मत हो सकें।

इन प्रस्तावों के अनुसार किसी भी अधेड़ या बच्चे को नीचे लिखे अक्षर सीखने होंगे—

| | | |
|---|---|---|
| स्वर | ... | ५ |
| स्वर-चिह्न | ... | ९ |
| व्यञ्जन | ... | १८ |
| ग्रन्थाक्षर | ... | ६ |
| नये अक्षर | ... | ६ |
| | | कुल ४४ |

इस तालिका को देखने से पता चलेगा कि ६ नये अक्षर जोड़कर भी तमिल लिपि में बुनियादी अक्षर ८८ के बजाय ४४ ही रह गये यानी ५० फ़ीसदी कम हो गये।*

*टेकनिकल होते हुये भी इस लेख से हिन्दी पाठकों को तमिल लिपि के सम्बन्ध में ख़ासी जानकारी हो जायगी और उन्हें यह भी पता चलेगा कि लिपि को अधिक से अधिक लोकोपयोगी बनाने की ओर भारत की सभी भाषाओं के भाषा शास्त्रियों का ध्यान जा रहा है। —सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दक्षिण भारत के आदिवासी पनियन

श्री अमृतलाल बी ठक्कर ( बापा )

मलाबार का नाम लेते ही दक्षिण भारत की उस महान विभूति शंकराचार्य की तस्वीर आँखों के सामने फिर जाती है। शंकराचार्य ने अपनी असीम विद्वत्ता, अपनी दूरदर्शिता, अपने निर्मल चरित्र और भारतीय दर्शन की अपनी उदार आलोचना से भारतीय समाज पर अपनी अमिट छाप लगाई है। शंकर के अतिरिक्त मलाबार अनेक महान विभूतियों की जन्मभूमि रह चुका है। मलाबार में ही गुरुवथूर मन्दिर है जहाँ अनेक वर्ष हुये श्री केलाप्पन ने हरिजनों के मन्दिर प्रवेश के लिए लम्बा उपवास किया था। देश में जहां जहाँ मलयाली जाते हैं वे अपनी योग्यता की छाप लगा देते हैं।

मलाबार अत्यन्त रमणीक प्रदेश है। नारियलों के असंख्य झुरमुट, कलकल नाद करते हुये झरने और जल प्रपात और सामुद्रिक दृश्य मलाबार को अद्भुत सौन्दर्य प्रदान करते है।

किन्तु—और यह "किन्तु" ही तो मलाबार के दामन के ऊपर एक काला धब्बा है। क्या मलाबार के बाहर के लोग मलाबार के पनियनों के बारे में जानते हैं? बाहर की बात जाने दीजिये क्या दक्षिण भारत के तमिल प्रान्त के लोग इन पनियनों के अस्तित्व के बारे में कुछ जानते हैं? पनियन नाम ही हमारे कानों के लिये अपरिचित सा लगता है। इसके मुक़ाबले में मलाबार के दूसरे आड़नाम जैसे नय्यर, मेनन, पन्निकर, नम्बूद्रि और नम्बियर से हम पूरी तरह परिचित हैं। मलाबार के बाहर तो क्या मलाबार के भीतर भी बहुत से लोग ऐसे मिलेंगे जिन्होंने शायद पनियन आड़नाम न सुना हो।

अपनी जनता के सम्बन्ध में हमारा अज्ञान लज्जाजनक है। हम यह तक नहीं जानते कि कौन सी जाति और कौन सा कबीला देश के किस हिस्से में रहता है, उन जातियों और क़बीलों की क्या विशेषताएं हैं और उनका ज़िन्दगी में क्या वसीला है। यह दूसरी बात है कि विविध जातियों, धर्मों और सम्प्रदायों के होते हुये भी भारतीय जीवन के अवचेतन मस्तिष्क में एक अखण्डता और एक अविभिन्नता है फिर भी इस ज़ाहिरा एकता के होते हुये भी भारतीय जीवन में तरह तरह के दृश्य दिखाई देते हैं। भिन्न भिन्न जातियां और क़बीले चुपचाप युगों के पुराने पेशों का पालन करते चले आ रहे हैं। ज़िन्दगी उनके लिये चाहे कितनी ही कष्टकर क्यों न हो वे उसे चुपचुप बर्दाश्त करते हैं। इसलिये हमें इन त्याज्य क़बीलों को अज्ञान के अन्धकार से बाहर निकालना है और उनके प्रति हमने अब तक जो लापरवाही दिखाई है और उनकी उम्मीदों और उनकी ज़रूरतों को जिस तरह ठुकराया है, उसकी अब हमें पूर्ति करनी है, उसका मुआविज़ा चुकाना है।

कई वर्ष पूर्व जब मैं दक्षिण भारत का दौरा कर रहा था मुझे इन पनियनों से भेंट करने का अवसर मिला। मैं मलाबार में कालीकट से ६५ मील दूर पश्चिमी घाट की तराई में नीलाम्बुर नगर के पाँच मील परे एक ग्रामीण पाठशाला के वार्षिकोत्सव में गया था। यह पाठशाला भारत सेवक संघ के तत्वाधान में स्थापित हुई थी और साल भर की मेहनत के बाद स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के उद्योग से उसमें पनियन क़बीले के तीन लड़के और दो लड़कियाँ भरती हो सके थे। यह कोई बुरी शुरुआत न थी। पनियन पश्चिमी घाट के ऊपर भी रहते हैं और घाट की तराई में भी। बहुत से गाँववाले वहाँ इकट्ठा हो गये थे जिनमें अनेक पनियन भी थे। वे शब्दशः अपने बदन पर चिथड़े लपेटे हुये थे। बहुत समझाने बुझाने पर उनकी स्त्रियां उत्सव में शामिल हुईं और वहां उन्होंने अपना जातीय नृत्य दिखाया।

उत्सव समाप्त होने पर हम पाठशाला से कुछ फरलांग दूर एक पनियन की झोंपड़ी में गये। सक्षेप में वहाँ ग़रीबी, दुःख और मुसीबतों की तस्वीर खिंची हुई थी। १०फुट × १० फुट की उस छोटी सी झोपड़ी में तीन पुरुष, तीन स्त्रियाँ और चार बच्चे रहते थे। मर्द काम करने गये हुये थे। औरतें अपने तन पर केवल चिथड़ा लपेटे हुए थीं और बच्चे नंगे, गन्दे, कमज़ोर और अधभूखे थे। हमें देखकर वे घबरा गये और बड़ी मुश्किल से हमसे बातें करने पर राज़ी हुये।

पनियन जाति के लोग मुख्यतः मलाबार के वायनाद और एरनाद तालुके के बाशिन्दे हैं और उनकी तादाद क़रीब ५० हज़ार है। उनका रंग गहरा सांवला है, कद छोटा नाक चौड़ी और केश घुँघराले होते हैं। वे कुछ नाक दबाकर मलयालम के अपभ्रंश रूप को बोलते हैं। तमाम दूसरे आदिवासियों की तरह लोगों के सम्पर्क में आने में इन्हें शर्म मालूम पड़ती है।

अपनी सामाजिक आदतों में पनियन लोग काफ़ी खुले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दिल के होते हैं। जङ्गली जानवरों का पीछा करने और शिकार करने का उन्हें ख़ास शौक होता है। हिन्दू देवी देवताओं के अलावा वे हर तरह के और हर आकार प्रकार के भूत प्रेतों में भी विश्वास करते हैं। आम तौर पर लोगों की एक ही व्याहता बीवी होती है। किन्तु थोड़े बहुत इसके अपवाद भी मिलते हैं। जिस तरह से सभ्य समाज में लोग अपनी मंगेतरी प्रियतमा के लिये फूलों के गुच्छे भेजते हैं उसी तरह पनियनों में भी युवकों की सगाई के बाद युवक को अपनी भावी पत्नी के लिये छः महीने तक प्रतिदिन एक गट्ठा जलाने की लकड़ी भेजनी पड़ती हैं। स्त्री और पुरुष दोनों के लम्बे घुँघराले बाल होते हैं। स्त्रियां अपने बालों की वेणी नहीं बनातीं। स्त्रियों के कान काफ़ी चौड़े छिदे होते हैं, जिनमें ताड़ के पत्रों की कुण्डली पड़ी होती है। कुछ औरतें नाक छिदवाकर उसमें लकड़ी की पोंगी पहनती हैं। बच्चे की पैदायश पर पनियनों में ख़ुशी मनाने का रिवाज नहीं है। पनियन अपने मुर्दों को जलाते नहीं बल्कि दफ़नाते हैं।

अधिकांश पनियन खेतिहर ग़ुलाम हैं जो जिमीदार की खेती में, कि जिन्हें 'जन्मी' कहा जाता है, खेती करने के लिए बाध्य होते हैं। असल में मलयालम भाषा में पनियन शब्द का अर्थ ही मज़दूर होता है। हर "जन्मी" के पास खेत जोतने के लिये कई कई पनियन होते हैं जो पुश्त दर पुश्त उसके ग़ुलाम होते हैं और जिन पर उसका सर्वाधिकार होता है। थर्स्टन लिखता है—"इनकी हालत किसी ग़ुलाम से बेहतर नहीं होती। हर पनियन किसी न किसी ज़िमीदार का 'आदमी' होता है। हाला कि उसे अपने मालिक की नौकरी छोड़ने का हक़ होता है फिर भी व्यवहार में उसके नौकरी छोड़ने पर उसका पता लगा लिया जाता है और कहीं भी कोई दूसरा आदमी उसे अपनी नौकरी में नहीं रखता।" थर्स्टन ने यह बात सन् १९०८ में लिखी थी लेकिन हालत आज भी वही है। मैंने मलाबार में अनेक ज़िम्मेवार लोगों को यह कहते हुए सुना है कि कुछ जिमींदार अपने पनियन जनों को और उनके परिवार के स्त्री बच्चों को किराए पर भी देते हैं। थर्स्टन ने भी यही बात लिखी है—"चेट्टी और मापिल्ला ( मोफ़ला ) भी कभी कभी कुछ पनियनों को किसी 'जन्मी' से चार से आठ रुपए सालाना तक प्रति परिवार के हिसाब से भाड़े पर ले लेते हैं।" जब कोई जिमीदार अपना खेत बेचता है तो उसके साथ साथ उसे पनियन परिवारों को भी बेचना पड़ता है। थर्स्टन लिखता है कि—"जब पिछली सदी में सन् १८५० के बाद प्लाण्टर लोग वायनाद तालुक़ में आकर बसे तो उन्होंने जो ज़मीनें ख़रीदीं उसके साथ साथ उन ज़मीनों पर बसे हुये ज़मींदारों के क़रीब क़रीब ग़ुलाम पनियन परिवारों को भी उन्होंने ख़रीद लिया।" ज़मीन की ख़रीद फ़रोख़्त के पुराने बैनामों में ज़मीन की बिक्री के साथ साथ पनियन परिवारों के ख़रीदने का भी ज़िक्र आता है। आजकल यद्यपि सरकारी काग़ज़ों में पनियनों की बिक्री नहीं दर्ज की जाती पर असलियत अभी तक वही है। "हालाकि वायनाद तालुका में हज़ारों टन धान पनियन ही पैदा करते हैं फिर भी उनके पास अपनी कोई ज़मीन नहीं है।"

जबसे पश्चिमी घाट में काफ़ी की पैदावार शुरू हुई है तब से पनियन लोग काफ़ी के खेतों में भी काम करने लगे हैं। नीलाम्बुर शहर के आस पास कुछ पनियन परिवार सागौन की लकड़ी काटने के लिये आराकश का भी काम करते हैं।

मलाबार के इन आदिवासियों की आज सबसे बड़ी ज़रूरत यह है कि उन्हे ज़मीनें देकर किसान की हैसियत से बसा दिया जाय और अतिरिक्त धन्धे के रूप में उनसे बांस आदि का काम लिया जाय। जिस वक्त वे अपनी ज़मीन पर बसे हुये खेती करेंगे तो उनका एक सामाजिक रुतबा हो जायगा और उनमें आत्मविश्वास पैदा होगा। इससे ग़ुलामी का बहुत बड़ा बोझ उनके सर पर से उतर जायगा। जब तक हम उनकी ग़ुलामी दूर नहीं करते उनकी कोई उन्नति नहीं हो सकती। सन् १९४० में मद्रास की सरकार ने रेगुलेशन नम्बर तीन के अनुसार पूर्वी गोदावरी और विज़ग एजेन्सियों में प्रचलित 'गोठी सिस्टम' या गिरमिटिया खेतिहर मज़दूर प्रथा को ख़त्म किया था। उसी तरह के किसी क़ानून से पनियनों की यह ग़ुलामी भी ख़त्म करनी चाहिये।

दूसरी ज़रूरी चीज़ यह है कि पनियनों के लिये उनकी पहाड़ी जगहों और जङ्गलों में प्रारम्भिक पाठशालाएं खुलवानी चाहियें। पनियनों के बच्चों के बग़ैर शिक्षित बने उनकी तरक्क़ी की कोई उम्मीद नहीं। शिक्षित पनियन ही अपने प्रति होनेवाले दुर्व्यवहार और शोषण को बन्द कर सकते हैं।

मैं मलाबार और मद्रास के कार्यकर्त्ताओं और मद्रास सरकार से अपील करता हूँ कि वह पनियनों की शिक्षा देने और उनके वास्ते खेती का प्रबन्ध करने के लिये प्रयत्नशील हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# कम्बोडिया में प्राचीन भारतीय सभ्यता

श्री प्रकाशचन्द्र उपाध्याय एम० ए०

आधुनिक विद्वानों का मत है कि भारतीय सभ्यता ने एशिया के अन्य भागों के आदि निवासियों में सभ्यता का संचार किया। प्राचीन भारतीय सभ्यता का प्रचार लंका, ब्रह्मदेश, सायम, कम्बोडिया ( कम्बुज ), अन्नम ( चम्पा ), मलाया, जावा (यवद्वीप), सुमात्रा (सुवर्ण द्वीप) बोरनियो, बाली, अफ़ग़ानिस्तान, तुर्किस्तान, चीन, जापान, कोरिया, मैडागास्कर तथा मध्य एशिया में हुआ था। भारतीय सभ्यता की यह विजय, सत्य और न्याय की विजय थी। इस सभ्यता ने नये देशों में नया धर्म, नई संस्कृति तथा सच्चे आचार विचार वाले समाज की स्थापना की। बौद्ध साधु तथा ब्राह्मण पंडित इन स्थानों में गये और सच्चाई के बल पर उन्होंने अपनी सभ्यता का प्रचार किया। सभ्यता ने चंगेज़ खाँ, तैमूर लंग तथा सिकन्दर महान की तरह नये स्थानों की प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति को नष्ट नहीं किया परन्तु उसमें नये जीवन का संचार किया, और जहां पर मानव जाति स्पष्ट रूप से असभ्य थी, उसे अपनी नई सभ्यता से मानवता का महत्व समझाया।

वर्तमान कम्बोडिया हिन्द-चीन के दक्षिणी भाग का नाम है। प्राचीन भारतीय पुस्तकों में इसका नाम कम्बुज ही मिलता है। कम्बोडिया का विस्तार क्षेत्र पुराने काल में आज कल का सा न था, परन्तु वर्तमान सायम का कुछ भाग भी उसमें शामिल था तथा प्राचीन कम्बोडिया के दक्षिणी भाग में फुनान नामक भाग था, जिसका कि विस्तार पहले अधिक बतलाया जाता है। वर्तमान कम्बोडिया के पूर्व में चीन का समुद्र तथा पच्छिम में सायम की खाड़ी है। मेकांग कम्बोडिया की मुख्य नदी है। पहाड़ों पर घने जंगल हैं, जिनमें बाँस तथा सागौन की लकड़ी अच्छी होती है। खेती के लिये देश का जो भाग उपयोगी है उसमें चावल, तम्बाकू, रबर तथा नारियल की पैदावार अधिक होती है। आजकल भी वहां बौद्ध धर्म है, परन्तु मुसलमानों की भी आबादी काफ़ी है।

विद्वानों में इस बात पर अभी मतभेद है कि भारत वर्षीय आर्यों के कम्बोडिया में उपनिवेश बनाने के पूर्व, वहाँ किस जाति के लोग बसते थे और उनकी सभ्यता क्या थी? श्मित (Schmidt) नामक विद्वान का कथन है कि आदिकाल में ईसा से कई शताब्दी पूर्व हिन्दचीन, तथा इन्डोनीशिया में वही जाति बसती थीं, जिनकी नस्ल के लोग मध्य भारत तथा उत्तर-पूर्वीय भारत में मुण्डा ( Munda ) कहलाते हैं, इसके अतिरिक्त उसी प्रकार की जाति के लोग और थे।[1] उस विद्वान के कथानुसार भारतवर्ष ही कम्बोडिया के उस काल में बसनेवाली जातियों का आदि देश था, और यहीं से ये जातियाँ पूर्व तथा दक्षिण पूर्व के भागों में जाकर बस गईं। अन्त में उसका यह भी कहना है कि इन्हीं जातियों के लोग न्यू गाइना तथा आस्ट्रेलिया में भी जाकर बस गये थे।[2] इन जातियों के लोगों की विशेषता बताते हुए एक लेखक लिखता है कि वे काले रंग के, भद्दे बालों वाले, चौड़ी नाक, कमजोर ठोड़ी तथा लटकते होठवाले और साधारण नाटे कद के थे। विज्ञान के पंडितों ने इस जाति का नाम प्रोटो-औस्ट्रेलाइड ( Proto-Australiod ) रख लिया है।[3] इस जाति

---

1. Dr. R. C. Majumdar—Suverndvipa, p. 15.

2. Oxford Pamphlets on Indian Affairs No. 22, p. 10,11. में भी Schmidt के ही मत का अनुकरण किया गया है। मुन्डा जाति के विषय में हिन्दी विश्व भारती भाग २ के पृष्ठ २४० में कुछ जानने योग्य बातें दी गई हैं।

३. महाभारत के शान्ति पर्व के ५९ वें अध्याय में एक कथा का वर्णन है, जिसमें लिखा है कि देश तथा समाज की अराजकता, अत्याचार तथा व्यभिचार दूर करने के लिये देवताओं ने विष्णु से कहा कि हमें एक राजा चाहिये। विष्णु ने विरजा नामक मानस पुत्र उत्पन्न किया। उसी विरजा के वंश में पाचवीं पीढ़ी में वेन नामक अधर्मी और राग द्वेष से भरा राजा हुआ। ऋषियों ने उसको मंत्रयुक्त कुशों से मार डाला; उसके बाद ऋषियों ने उसकी दाहिनी जांघ मथी, तो लाल आंखों वाला, कोयल की नाईं काला कलूटा और नाटा मनुष्य उत्पन्न हुआ। ब्रह्मवादी ऋषियों ने उससे कहा—निषीद ( बैठ )। इससे वन पर्वतों में रहने वाले क्रूर स्वभाव के निषाद और जो विन्ध्या पर्वत में रहे, वे एक लाख म्लेच्छ हुये। श्लोक इस प्रकार है;—

दग्ध स्थूण प्रताकाशो रक्ताक्षः कृष्ण मूर्द्धजः
निषीदेत्ये वमूचुस्तमृषयो ब्रह्मवादिनः ॥ ९६ ॥
तस्मान्निषादाः सम्भूताः क्रूराः शैलवनाश्रयाः
ये चान्ये विन्ध्यनिलया म्लेच्छाः शतसहस्रशः ॥९७

इस श्लोक के आधार पर यह माना जा सकता है कि मुण्डा जाति की यही उत्पत्ति थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


में पुराने समय के निषाद भी शामिल थे, इन निषादों को 'अनाष' (Anash) तथा बिना नाकवाला भी कहा गया है, क्योंकि उनकी नाक चपटी होती थी।[४] भारतवर्ष के लोगों ने इन देशों में जाकर क्यों उपनिवेश बनाये, इस पर भी विद्वानों में मतभेद है, परन्तु बहुमत से यही बात मानली गई है कि भारतवर्ष से जानेवाले लोगों ने किसी लालच से इन स्थानों को आबाद नहीं किया, बल्कि जैसाकि कौटिल्य का कथन है कि अन्य देशों में उपनिवेष बनाना या अन्य जातियों को अपने देश में बसाना यह मानवता का कर्म है, समाज का उत्थान इसीसे होता है। यह तो अब मानी हुई बात है कि अति प्राचीन काल से ही भारत तथा पूर्वीय देशों में व्यापार होता था। एक विद्वान का मत है कि भारतवासियों का इन देशों में जाकर बसने का कारण उन स्थानों से कोई आर्थिक लाभ या ईश्वरीय ज्ञान का लोभ न था, परन्तु असभ्य जातियों को अपनी संस्कृति और सभ्यता का सच्चा स्वरूप दिखाकर उन्हें मानवता का महत्व समझाना था।[५]

## फुनान राज्य की स्थापना

सम्पूर्ण उत्तरीय भारत में आर्य जाति के फैलने के हजारों वर्ष बाद तक भारतवर्ष का पूर्वीय देशों से व्यापारिक सम्बन्ध था। ईसा की पहली शताब्दी के बाद से कम्बोडिया में भारतीय राजनीति का भी प्रभाव पड़ने लगा था। पुराने समय में कम्बोडिया के दक्षिणी भाग का नाम फुनान था! विद्वानों का मत है कि पहले कम्बोडिया के देश का विस्तार दक्षिण की ओर अधिक था और अब प्रकृति ने देश के आकार को छोटा कर दिया है। इस फुनान का नाम हमको चीनी भाषा की पुस्तकों में मिलता है।[६]

(Finot) फ़िनात तथा पेलिआत (Peliot) नामक लेखकों ने फुनान की स्थापना के विषय में चीनी पुस्तकों में लिखी एक रोचक कथा का वर्णन दिया है, जिससे पता चलता है कि फुनान राज्य की स्थापना किस प्रकार हुई। कथा का मूल तत्व यह है कि कौदन्य नामक ब्राह्मण ने स्वप्न में देखा कि किसी देवता ने उसको एक धनुष दिया है और कहा है कि समुद्र यात्रा करो। प्रातःकाल कौदन्य देव मन्दिर में गया और उसे सपनेवाला धनुष मिला, वह उसको लेकर समुद्र यात्रा को चल दिया और फुनान आया। फुनान में उस समय लीइन-ई (Lieon-ye) नामक रानी राज्य करती थी। कौदन्य से उसने विवाह कर लिया और चूंकि उसके पास कोई वस्त्र न था, इसलिये उसे वस्त्र दिये।[७] चम्पा में ६५८ का एक शिलालेख मिला है, जिसमें कम्बुज की राजधानी भावपुर की स्थापना का वर्णन है। उसमें यह भी दिया है कि कम्बोडिया पर ब्राह्मणों में सबसे उच्च कौदन्य ने द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा का दिया हुआ भाला गाड़ा था और सोम नामक नाग राजा की कन्या थी, जिसने कि भूमण्डल के उस भाग पर एक राजवंश स्थापित कर दिया था। कौदन्य ने धार्मिक क्रियाओं को पूरा करने के लिए उससे विवाह कर लिया।[८]

कम्बोडिया की प्राचीन पुस्तकों में राज्य की स्थापना की एक और कथा प्रसिद्ध है। इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के राजा आदित्य वंश ने अपने एक पुत्र को जिसका नाम प्रहथुङ्ग (Prah Thong) था, अप्रसंन्न होकर देश से निकाल दिया। वह राजकुमार कम्बोडिया आया, जहाँ पर चाम राजा राज्य करता था। इन्द्रप्रस्थ के राजकुमार ने उसको सरलता से सिंहासन से अलग कर दिया। एक दिन शाम को अकस्मात ज्वारभाटा आजाने से राजकुमार को समुद्र के किनारे ही रात बितानी पड़ी। उसी रात को एक अति सुन्दर नागी (नाग कन्या) तट पर क्रीड़ा करने आई। राजकुमार उसके प्रेम में लीन होगया और फिर उसने उससे विवाह कर लिया। नागी के पिता (नाग-राज) ने समुद्र के जल को पी लिया, अपने दामाद के लिये उस स्थान पर एक राजधानी बना दी। अन्त में उसी भूमि का नाम कम्बुज (कम्बोडिया) रख दिया। ऐतिहासिक खोज से मालूम हुआ है कि कम्बोडिया की राजधानी, अंगकोर का नाम भी प्राचीन काल में इन्द्रप्रस्थपुर था। सिकन्दरिया के प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य टालेमी (Ptolemy)

---

४. Oxford Pamphlets on Indian Affairs No. 22, पृष्ठ १६.
R. C. Chanda, The Indo-Aryan Races (1916), पृष्ठ ४—८.

५. Amrita Bazar Patrika Puja Number (1945) पृष्ठ २३७.

६. B. R Chatterjee 'Indian Influence in Cambodia', पृष्ठ १—२.

७. Amrit Bazar Patrika (Puja Number 1945), पृष्ठ २४१.
The Curltural Heritage of India, vol. III. पृष्ठ ९७—९८.

८. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ ३.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संसार के नक़शे में मध्य हिन्दी-चीन के उत्तर में एक जाति के बसने की कथा लिखी है, जिसका नाम 'इन्द्रप्रथाई' लिखा है।[९]

## कम्बोडिया की नाग प्रथा

नागवंश का परिचय कम्बोडिया के अतरिक्त भारतवर्ष तथा सुमात्रा में भी मिलता है। बारहवीं शताब्दी की व्यापार की एक चीनी पुस्तक में लिखा है कि सुमात्रा के राजा नाग लौंग-त्सिंग (Long Tsing) थे। इस शब्द का मतलब नाग का बीज (the seed of the Nag) होता है।[१०] कोएडस (Coedes) नामक विद्वान का कथन है कि "कम्बोडिया की नाग प्रथा हमको पल्लव वंशीय राजाओं के दरबार में ले आती है।"[११] नवीं शताब्दी के एक शिलालेख से मालूम पड़ता है कि महाभारत के द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा ने एक नागी से विवाह कर लिया था। उनका पुत्र स्कन्दशिष्य था। काञ्ची के पल्लव वंशीय राजा अपने आपको इसी का वंशज मानते हैं। पल्लव राजा अपने नाम के अन्त में 'वर्मन' शब्द जोड़ देते थे, और सुमात्रा, जावा तथा कम्बोडिया के राजा भी अपने नाम के बाद 'वर्मन' शब्द लगाते थे।[१२] कम्बोडिया में यह नाग प्रथा तेरहवीं शताब्दी तक चलती रही, क्योंकि चीनी सम्राट कुबले-ख़ाँ के राजदूत के साथ चीउँ-ता'कौउन (Cheon-ta-Kouon) अंगकोर, कम्बुज की राजधानी गया था, और उसने नाग प्रथा के विषय में यह वर्णन लिखा है—"राज महल में एक स्वर्ण स्तम्भ है, जिसके ऊपर राजा का शयनागार है। निवासियों (कम्बोडिया के निवासियों) का कथन है कि उस स्तम्भ पर शेष नाग की आत्मा रहती है, जोकि सारी भूमि का मालिक है। प्रत्येक रात्रि को वह स्त्री रूप में दिखलाई देती है। अगर वह दिखलाई न दे तो, यह समझा जाता है कि राजा की मृत्यु शीघ्र होनेवाली है।"[१३] भारतवर्ष की तरह कम्बोडिया में आज तक पत्थरों पर शिल्प की हुई शेष नाग की मूर्तियाँ मिलती हैं। श्री चमनलाल जी ने भी अपनी पुस्तक में बताया है कि अमरीका में भी शेषनाग के मन्दिर थे।[१४]

ईसा की पहली शताब्दी में फुनान एक शक्तिशाली राज्य था और आस पास के राजा उसकी आधीनता मानते थे! फुनान पर पेलिआत नामक लेखक ने एक सुन्दर पुस्तक लिखी है, जिसमें फुनान के आधीन समस्त राज्यों का पूरा वर्णन है।[१५] उस समय फुनान के राजदूत भारतवर्ष तथा चीन भी जाया करते थे। फुनान का एक राजदूत (२४०-२४५ ई० में) भारतवर्ष आया बतलाया जाता है। फुनान के राजदूत की भारतवर्ष यात्रा का वर्णन ही पेलिआत ने ही लिखा है।[१६] २२२-२५१ ई० में फुनान में चीनी राजा का राजदूत भारतवर्ष के राजदूत से मिला और उसने भारतीय राजदूत से उसके देश के बारे में पूछा। भारतीय राजदूत ने भारत का पूरा वर्णन दिया तथा यह भी बतलाया कि भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का प्रचार है। वहाँ के राजा के अधीन बहुत से राज्य हैं। और वे अपने राज्य की राजधानी को भूमंडल के मध्य में स्थित समझते हैं।[१७]

लिअङ्ग के इतिहास में एक कथा प्रसिद्ध है जिसमें लिखा है कि कौदन्य नामक एक भारतीय ब्राह्मण ने किस प्रकार एक दैवी सन्देश के आधार पर चलकर कम्बोडिया (कम्बुज) में आकर अपना राज्य बनाया। उसने कम्बोडिया के सारे नियमों को भारतवर्ष के नियमों के आधार पर बदल दिया था।[१८] कौदन्य के वंश के राज्य के विषय में दक्षिणीत्सि (Southen Tsi ४७९-५०१) में लिखा है कि कम्बोडिया के राजा पिछले क़रीब ५०० वर्ष तक अपने आपको कौदन्य का ही वंशज मानते आये, ठीक बात तो यह है कि वहाँ के उस समय के राजा का

---

९. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ ३—४.

१०. G. Ferrad, L' Empire Sumatranis de Crivijaya, पृष्ठ ११.

११. B.E.F.E. O.,t XI, पृष्ठ ३९३.

१२. The Cultural Heritage of India, पृष्ठ ९८.

Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ ५.

१३. B.E.F.E.O., t ii. पृष्ठ १४५.

१४. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ ६—७.

Chamanlal : Hindu America पृष्ठ ७९.

१५. Pelliot, Le Faunan, पृष्ठ २७९.

१६. Pelliot, Le Founan, पृष्ठ २७१.

१७. Sylvain Levi : Melanges, Charles de Harlez', पृष्ठ १७६—१८५

१८. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ २१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


नाम जयवर्मन था ! उसी समय नागसेन नामक शाक्य को जयवर्मन ने चीनी सम्राट के यहाँ राजदूत बनाकर भेजा था। उसी वंश में जयवर्मन नामक कम्बोडिया का प्रतापी राजा हुआ, उसने आस पास के कई राजाओं को जीता ! उसकी एक बहिन थी, जिसका विवाह उसने सोम सर्मन ब्राह्मण से कर दिया था। वह अपने पति की सेवा वाशिष्ट की स्त्री अरुन्धती के समान करती थी। सोमसर्मन महाभारत, रामायण तथा पुराणों का नित्य प्रति पाठ कराया करता था।[१९] भववर्मन के बाद उसका भाई महेन्द्र वर्मन राजा हुआ। महेन्द्र के उत्तराधिकारी इशान वर्मन ने एक मंदिर में एक मूर्ति की स्थापना कराई जोकि आधी विष्णु तथा आधी शिव की थी ! यह इस बात का प्रमाण है कि कम्बोडिया में हरिहर सम्प्रदाय का भी प्रचार था, क्योंकि अन्य स्थानों में भी इसी प्रकार की मूर्तियां मिली हैं।[२०]

अरब के सुलैमान सौदागर के कथनानुसार सुमात्रा के राजा ने कम्बोडिया राज्य पर चढ़ाई की, परन्तु उस भाग को अपने राज्य में नहीं मिलाया। उसी का कथन है कि जब भारतवर्ष तथा चीन के सम्राटों को सुमात्रा के राजा के इस व्यवहार का पता लगा तब वह उनकी दृष्टि में और ऊँचा उठ गया।[२१] नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जयवर्मन नामक राजा ने फिर से कम्बोडिया के राज्य को संभाला। डा० विजनराज चटर्जी का कथन है कि इन नये शासकों का धर्म तांत्रिक था, जोकि शैव धर्म की ही एक शाखा थी। जयवर्मन प्राचीन कम्बोडिया का अन्तिम शक्तिशाली राजा था, क्योंकि उसके बाद फिर कम्बोडिया में दूसरे वंश का राज्य हो गया था।

नये वंश में यशोवर्मन ( ८८९-९१० ) बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने यशोधरपुर ( अंगकोर ) को अपनी राजधानी बनाया। यशोवर्मन के पिता इन्द्रवर्मन के समय का गुरू वामशीव जोकि उपाध्याय ( अध्यापक ) था, उसका भी गुरू था। लौले (Loley) के मन्दिर पर जो शिलालेख खुदा मिला है, उस पर यशोवर्मन की शासन-प्रणाली, तथा उनके न्याय का वर्णन मिलता है।[२२]

यशोवर्मन के वंश में जयवर्मन पांचवां राजा हुआ। उसके समय में महायान बौद्ध धर्म ने अधिक उन्नति की। सन् १००२ ई० का एक शिलालेख मिला है जिसमें लिखा है कि सूर्यवर्मन प्रथम ने किस प्रकार यशोवर्मन वंश से कम्बोडिया का राज्य लिया। सूर्यवर्मन की प्रभुता का वर्णन भी उसी शिलालेख में है, "उसके चरण पातंजलि भाष्य हैं। उसके हाथ काव्य हैं। उसके छै अङ्ग अर्थशास्त्र की छै शाखाओं के समान हैं।"[२३] सूर्यवर्मन के उत्तराधिकारी ने १०५२ ई० तक राज्य किया। उसका नाम सदयादित्य द्वितीय था। वह धर्म का अच्छा ज्ञाता था। उसने जयेन्द्र पंडित से ज्योतिष, गणित, व्याकरण, तथा धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया था। तांत्रिक धर्म के आधार पर उसने महोत्सव-पूजा भी की थी।[२४]

अन्त में जयवर्मन सप्तम कम्बोडिया का सबसे प्रतापी राजा हुआ। उसने पुन्य के लिये औषधालय भी बनवाए थे। उसने आस पास के राजाओं को हराकर अपने राज्य का विस्तार बढ़ाया था। मलाया प्रायद्वीप का कुछ अंश भी उसके राज्य में मिला लिया गया था। अन्नम ( चम्पा ) तथा पगू को भी उसने जीत लिया था। बयोन में उसने शिव का एक मन्दिर बनवाया था। तेरहवीं शताब्दी के मध्य तक कम्बोडिया में हिन्दू राजाओं का राज्य था। यहाँ पर हिन्दू शब्द का अर्थ, हिन्दू, बौद्ध, तथा अन्य सब जातियों के लिये लगाया जाता है, जोकि भारत से वहां जा कर बस गईं थीं।[२५]

## कम्बोडिया में शैव धर्म

ईसा की आठवीं शताब्दी तक कम्बोडिया में 'महेश्वर' धर्म का ही प्रचार था, क्योंकि चीनी भाषा की पुस्तकों से मालूम हुआ है कि जयवर्मन ने चीन के सम्राट के पास शाक्य नागसेन को अपना राजदूत बनाकर भेजा था। शाक्य नागसेन ४८४ ई० में चीनी सम्राट के दरबार में था ! जब उससे कम्बोडिया के विषय में पूछा गया,

१९. Inscriptions Sanscrites de Campe et tudu Cambodge, पृष्ठ ३०.

२०. The Cultural Heritage of India Vol. III, पृष्ठ १०३.

२१. The Cultural Heritage of India Vol III, पृष्ठ १०३.

22. I. S. C. C. पृष्ठ ३२५.

२३. The Cultural Heritage of India Vol. III, पृष्ठ १०७.

२४. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ १७७.

२५. The Cultural Heritage of India Vol. III, पृष्ठ १०९

Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ २१४—२२५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उसने कहा "महेश्वर देवता के धर्म का वहाँ प्रचार है। उस देवता का आदि निवास मोटान पर्वत (Mount Motan) पर है, जहाँ पर शुभ वृक्ष अधिक संख्या में हैं।"[२६] चीनी इतिहासकार के कथनानानुसार यह सुनकर चीनी सम्राट ने कहा, "हाँ महेश्वर अपनी अद्भुत शक्ति प्रदर्शित करता है, और फुनान (कम्बोडिया) पर अपनी सौगातों की वर्षा करता है। यह बातें सुदूर देश की हैं, फिर भी मैं दूर से खुशी से उनकी प्रशंसा करता हूँ।"[२७] कम्बोडिया के राजा पहले शिव की पूजा करते थे। फोऊ लोखौन (Phou Lokhon) के शिला लेख से मालूम हुआ है। कि चित्रसेन सामक राजा ने माकंग नदी के तट पर शिव-लिंग की स्थापना की थी।[२८] वर्तमान अंग चूमनिक (Ang Chumnik) में जिसका कि प्राचीन नाम अध्यापुर था, सिंहदत्त ने एक शिव मन्दिर बनवाया![२९] पोनहीयर होर (Ponhear Hor) के शिलालेख में भी एक धनिक के शिवलिंग के स्थापित करने का वर्णन मिलता है। शिवलिंग के साथ साथ उसने दुर्गा, शम्भु तथा विष्णु की प्रतिमाओं की भी स्थापना कराई थी! उसके बाद उसी स्थान पर त्रैलोक्येश्वर (विष्णु) की एक दूसरी प्रतिमा की स्थापना कराई गई।[३०] भववर्मन राजा के समय का फनोम वाचे (Phnom Bachey) नामक स्थान पर एक शिलालेख मिला है उससे मालूम हुआ है, कि उस स्थान पर एक शिवलिंग की स्थापना की गई, और उसका नाम "भदरेश्वर" रक्खा गया।[३१] महेन्द्रवर्मन ने भी अपनी जीत की खुशी में फौऊ मोखोन (Phou Makhon) में एक गिरीश (शिव) की लिंगायत मूर्ति की स्थापना कराई थी।[३२] वयांग के शिलालेख में जिसपर कि ६०४ ई० तथा ६२४ ई० की तारीख खुदी हुई है, एक शम्भूपद का वर्णन आया है। शिव जी के पदों की पूजा तो भारतवर्ष में नहीं होती, परन्तु कम्बोडिया में 'शम्भू पद' का यह उल्लेख आश्चर्यजनक है।[३३]

कम्बोडिया में शिव मन्दिर बहुत संख्या में खुदाई के बाद मिले हैं। यशोवर्मन राजा ने अपनी राजधानी यशो-धामपुर (वर्तमान अंगकोर थोम) में शिव लिंग की स्थापना की थी, और उसका नाम 'देवराज' रखा था। कम्बोडिया के प्राचीन राजाओं के समय में शिवधर्म ही राजधर्म था। यशोवर्मन ने यशोधामपुर में एक विशाल शिवमन्दिर का निर्माण कराया। उस मन्दिर की विशालता का परिचय आज भी उसके खंडहरों से मिलता है। यशोधामपुर के मध्य में वेयोन (Bayon) नामक स्तम्भ है, वहीं पर शिव की मूर्ति की स्थापना की गई थी! स्तम्भ के मध्य की उँचाई १५० फीट है, इसके अतरिक्त ४० और भी छोटे छोटे स्तम्भ हैं, जिनपर चार मुंहवाले मनुष्यों की प्रतिमायें हैं। दीवारों पर युद्ध के चित्र भी गढ़े गये हैं, परन्तु वे स्पष्ट नहीं हैं। उन चित्रों में हाथी पर धनुष बाण लिए सेनापति दिखलाई देता है। तथा साधारण सैनिक भाले तथा ढालों के साथ दिखलाई पड़ते हैं। दूसरी जगह एक ब्राह्मण डाढ़ी के साथ एक वृक्ष के नीचे बैठा दिखाया गया है। इनके अलावा कुश्ती के चित्र, संगीत के चित्र तथा जादूगरों के भी चित्र बने मिलते हैं। शिल्पकला अति स्पष्ट तथा सुन्दर है। एक जगह राजा सिर्फ धोती पहने दिखलाया गया है। रथ, पालकी, जल युद्ध, शिव अपने तीसरे नेत्र से कामदेव को जलाते दिखलाये गये हैं। मन्दिर की शिल्पकला अच्छी तथा साफ है।[३४]

## कम्बोडिया में महायान बौद्ध धर्म

छठी शताब्दी के पूर्व में फुनान से संघपाल तथा मन्द्र नामक बौद्ध साधु चीन गये थे, और वहाँ उन्होंने धार्मिक पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। चीनी त्रिपिटकों में अब तक वे अनुवाद मिलते हैं। इ-त्सिङ्ग (I-tsing) नामक चीनी विद्वान सातवीं शताब्दी

---

२६. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ २२—२३.

२७. The Cultural Heritage of India, Vol. III, पृष्ठ १००.

२८. B. E. F. E. t. III, पृष्ठ १७५५.

२९. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ ३२

३०. I. S. C. C, पृष्ठ २४.

३१. वही, पृष्ठ १३—१४.

३२. B. E. F. E. O. t III, पृष्ठ ४४५

३३. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ ४६-४७.

३४. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ १३४—१४२

The Cultural Heritage of India, vol. III, पृष्ठ १०६.

M. Finot, Etudes Asiatiques, t i, पृष्ठ २४६—२४७.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के अन्त में कम्बोडिया गया था और वह लिखता है कि "प्राचीन काल में लोग अनेकों देवताओं की उपासना करते थे। उसके बाद महात्मा बौद्ध के नियमों का प्रचार हुआ" नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब जयवर्मन द्वितीय ने कम्बोडिया को जीत लिया तब उसी के साथ ही महायान बौद्ध धर्म भी आया।[३५] जयवर्मन ने हरीहरल्य, अमरेन्द्रपुर तथा महेन्द्रपर्वत नामक नगर बसाये थे। हरीहरल्य में उसने 'अव्लोकितेश्वर' का मठ भी बनवाया था। वर्तमान वैन्ती-आय चमर (Benteai Chmar) का ही नाम प्राचीन काल में हरीहरल्य था![३६] वेयोन में जो शिव मन्दिर मिला है, उसके विषय में फिनआत (Finot) नामक विद्वान का कथन है कि सबसे पहले यह बौद्ध मन्दिर था, परन्तु फिर बाद में उसका शिव मन्दिर कर दिया गया। उसी विद्वान का कथन है कि वर्तमान अंगकोर थौम ( Angkor thom ) का ही नाम हरीहरल्य था, क्योंकि आजकल जो भी खुदाई अंगकोर थौम में हुई है, उससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि प्राचीन काल में नगर उत्तर पूर्व की ओर हट कर था।[३७]

आधुनिक विद्वानों का मत है कि बङ्गाल से बौद्ध धर्म जावा और सुमात्रा में पहले गया, उसके बाद सुमात्रा से महायान बौद्ध धर्म का प्रचार कम्बोडिया में भी फैल गया। परन्तु कुछ समय बाद बौद्ध धर्म के साथ साथ तांत्रिक धर्म भी प्रचलित हुआ, और बुद्ध की मूर्ति के साथ साथ शिव की भी मूर्ति रहने लगी। बंगाल में भी उस समय 'लोकेश्वर' और 'तारा' 'शिव' और 'उमा' का रूप ले रहे थे! कम्बोडिया के अंगकोर थौम की शिव मूर्ति में अब भी बुद्ध की मूर्ति मिलती दिखलाई पड़ती है। कम्बोडिया में एक स्थान पर एक ही मूर्ति में ब्रह्मा, विष्णु तथा बुद्ध बने हुये मिले हैं, इससे क्या यह माना जा सकता है कि बुद्ध को लोग शिव का ही अवतार मानने लगे थे, या सब समान थे? नैपाल में एक हस्तलिखित पुस्तक मिली है, उसमें लिखा है कि "बुद्ध की पूजा करना, शिव की पूजा करने के समान है।" 'स्वयंभु पुराण' नामक बौद्ध पुस्तक 'पशुपति' ( नैपाल के शिव जी ) की पूजा करने को उत्साहित करती है।[३८]

## कम्बोडिया में संस्कृत भाषा

कम्बोडिया में जो प्राचीन शिलालेख मिले हैं, उन सब की भाषा संस्कृत ही है। भववर्मन तथा पूर्णवर्मन के शिलालेख तो शुद्ध संस्कृत भाषा के ही हैं। संस्कृत के इन शिलालेखों की समानता भारतवर्ष के प्राचीन शिलालेखों से की जा सकती है। नवीं शताब्दी में यशोवर्मन के शासनकाल में शिलाओं पर लेखों को शिल्प करना एक कला थी! सफाई तथा सुन्दरता में चम्पा ( अन्नम ) तथा जावा के शिलालेख भी इनकी समानता नहीं कर सकते।[३९] यशोवर्मन से पहले जो शिलालेख मिले हैं, उनकी भाषा दक्षिण भारतीय संस्कृत की सी थी। परन्तु यशोवर्मन के समय के शिलालेखों की भाषा उत्तर भारत की नागरी के समान हैं। जावा की एक मूर्ति ब्रिटिश म्यूज़ियम में है, जिस पर जो अक्षर खुदे हैं, वे नागरी संस्कृत भाषा में हैं, परन्तु अक्षरों की बनावट अधिक मात्रा में बंगाली भाषा से मिलती जुलती है।[४०] बरनैल ( Burnell ) नामक लेखक का कथन है कि कम्बोडिया की नागरी भाषा, देव नागरी की तरह नहीं है, परन्तु वह बंगाली भाषा के समान है। कम्बोडिया में पाणिनि तथा पातंजलि के व्याकरण, तथा वात्सायन के 'कामसूत्र' से भी लोग परिचित थे। शास्त्रार्थों में पुरुषों के साथ स्त्रियां भी बैठती थीं। रामायण, महाभारत, वेदान्त तथा पुराणों का भी लोगों को ज्ञान था।

## कम्बोडिया का कला कौशल

एम० ऐमानिअर (M. Aymonier) नामक विद्वान ने प्राचीन कम्बोडिया की भवन निर्माणकला (Architecture) तथा शिल्प कला (Sculpture) का पूरा अध्ययन किया है। उसका कथन है कि इमारतों की सजावट की बारीकी दक्षिण भारतवर्ष के पल्लव राजाओं के समान थी।[४१] दूसरे विद्वान एम० जार्ज ग्रासलिअर ( M.

३५. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ २४८—२५१.

३६. B. L. F. E. O., T, XXV, ( 1925 ) No. 3—4 पृष्ठ २९४.

३७. M. Finot, Etudes Asiatiques, 1925, Vol. I., पृष्ठ २२७—५६.

३८. Sir Charles Elliot, Hinduism, and Buddhism II, पृष्ठ ११८.

३९. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ

४०. Burnell, South Indian Paliography, पृष्ठ ५४.

४१. Histoire de 1' Ancient Cambodge, पृष्ठ ५०.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



George Groslier) का कथन है कि नवीं शताब्दी के पूर्व की भवन निर्माणकला तथा शिल्प कला शुद्ध रूप से भारतीय ही थी। फुनान के ईंटों के स्तम्भ की बनावट भारतीय ही थी! फुनान की पुरानी कला पूर्ण रूप से द्रविड़ ही थी और महाबलीपुरम की कला को तो पूरा अपनाया ही गया था। बौद्ध मूर्तियाँ जो मिली हैं, वे स्पष्ट रूप से गांधार कला के ही आधार पर बनी मालूम होती हैं। भारतीय कला का प्रभाव कम्बोडिया में पूर्णरूप से रहा।[४२] कुछ विद्वानों का मत है कि कम्बोडिया में दक्षिण भारतीय भवन निर्माण कला को बौद्ध गया की कला को स्थान देना पड़ा, क्यों कि बौद्ध गया के ही आधार पर बेमोन तथा अंगकोर थोम के भवनों, मठों तथा मन्दिरों का निर्माण किया गया था! कम्बोडिया के प्राचीन अमरेन्द्रपुर ( वर्तमान Banteai Chma ) का जो विशाल जलाशय था, वह नालान्दा के जलाशय के ही आधार पर बनाया गया था।[४३]

## कम्बोडिया का समाज

कम्बोडिया के समाज में वर्णाश्रम का प्रचार था। क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा वैश्यों का समाज में वही स्थान था, जोकि प्राचीन भारतवर्ष में माना जाता था! समाज में ब्राह्मणों को उच्च स्थान मिला था, और ब्रह्माण हत्या का दंड से सबसे कठोर था। क्षत्रिय राजा ब्राह्मणों की कन्या से विवाह करते थे।[४४] जयवर्मन द्वितीय की रानी ब्राह्मण ही थी! परन्तु उसका पुत्र क्षत्रिय वंश का ही था। मंदिरों में राजा, ब्राह्मण तथा राजपरिवार के लोग बिना आभूषण उतारे ही जा सकते थे। साधारण मनुष्यों को तो मंदिर के आंगन में भी आने की आज्ञा न थी! (यह प्रथा दक्षिण भारत के ही समान थी)। बालक, वृद्ध, अपाहिज तथा भिखारियों को राज्य की ओर से भोजन तथा औषधि बांटी जाती थी। एक चीनी भाषा की पुस्तक से मालूम हुआ है कि नवीं सदी में भी पुरुष, प्रातः काल शौच आदि से निवृत होकर, स्नान कर धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करते थे, उनके खाने में दूध, मक्खन, दाल, चावल तथा रोटी ही होती थी। वे सोने चांदी के आभूषण पहनते थे। स्त्री शिक्षा का प्रचार था, ब्राह्मणों की स्त्रियाँ शास्त्रार्थ में पतियों के साथ बैठती थीं। राजा लोग यज्ञ भी करते थे। मुर्दे जलाये जाते थे, मृतक के सम्बन्धी मुन्डन कराते थे।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मुसलमानों के आने के पूर्व तक भारतीय सभ्यता का पर्याप्त प्रभाव कम्बोडिया के समाज पर रहा।[४५]

---

४२. B. E. F. E. O. ( 1923 ) पृष्ठ ४१८, तथा XXXIV. पृष्ठ ५८३.

४३. Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ २७५—२७८.

४४ इस प्रकार के विवाह अलबेरूनी के समय तक भारतवर्ष में भी होते थे।

४५ Indian Influence in Cambodia, पृष्ठ ६२-६५, ११५-१२२, २३९-२४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अन्तर !

श्री ईशदत्त शास्त्री 'ईश' साहित्यदर्शनाचार्य, साहित्यरत्न

तुम में वसन्त लहराता है, मुझमें तूफान गरजता है !

तुम एक बूंद हो शबनम की
मैं हूँ चढ़ते नद का पानी !
तुम सजी हिमानी-रानी हो
मैं ज्वालाओं का अभिमानी !
तुममें वर्षा-रिमझिम, मुझमें—
झंझा का गान गरजता है !
तुममें वसन्त लहराता है,
मुझमें तूफान गरजता है !

हे शिशिर-प्रात की किरन-परी !
तुम हो स्वर्णिम-संसार लिये !
मैं अपनी संसृति पर अपने ही
हाथों में अंगार लिये !
तुम में अलि का गुञ्जन, मुझमें—
युग का आह्वान गरजता है !
तुम में वसन्त लहराता है,
मुझमें तूफान गरजता है

तुम नूपुर की, तुम वीणा की
रुनझुन-रुनझुन झनझन-झनझन !
मैं हूं सावन का वह बादल
जो उमड़ रहा हो घनन सघन !
तुमको मिल गई सुधा, मुझमें—
हालाहल व्याल ! लरजता है
तुम में वसन्त लहराता है,
मुझमें तूफान गरजता है !

तुम एक नरम नादान कली
जिसमें सम्भ्रम जिसमें सिहरन !
मैं लोहित-सुमन-समुच्चय हूँ
होता जिस पर ताण्डव नर्तन !
तुम में शैशव सोया मुझमें
यौवन उत्तान गरजता है
तुममें वसन्त लहराता है,
मुझमें तूफान गरजता है !

तुम 'पिया' 'पिया' की हो पुकार
मैं जहर भरा तेगा दुधार !
तुम कवि के भावों की रानी
मैं हूँ उस पर युग का प्रहार !
तुममें शशि का आगम, मुझमें—
रवि का उत्ताप उभरता है
तुममें वसन्त लहराता है,
मुझमें तूफान गरजता है !

तुम पत्थर को पानी-पानी
करनेवाली हो करुण तान !
मैं घन गर्जन सुनकर नभ में
मृगपति की उच्छृङ्खल उड़ान !
तुममें प्रिय परिरम्भण, मुझमें
जौहर-बलिदान गरजता है
तुममें वसन्त लहराता है,
मुझमें तूफान गरजता है !

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# शेष-पत्र

[ गताङ्क से आगे ]

डाक्टर एन० एस० वर्धन

## बारह

प्रिय.....,

भाग्य का व्यवधान बहुधा अमंगलकारी ही होता है। अबकी बार एक साथ मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले। एक उनमें से ज़हर था और दूसरा था ज़हर का तोड़। मैंने लिफ़ाफ़ों की मोहर पर तारीख़ें देखीं और पहले ज़हर ही को हाथ लगाया। पत्र समाप्त करने में मुझे अधिक देर नहीं लगी। पत्र पढ़कर आकस्मिक प्रवृत्ति तो मेरी यही हुई कि तुम्हारे स्पष्ट आदेश की मैं अवहेलना करूँ और तुम्हें तत्काल कह दूं कि उन पंक्तियों के एक भी शब्द पर मुझे विश्वास नहीं। यदि तुम्हारी मन्शा मुझे आघात पहुंचाने की थी तो तुम्हें बधाई। तुम सफल हुईं। पत्र का एक एक शब्द ज़हर से बुझा हुआ था। पत्र के अन्त में तुम्हारा 'पुनश्च!' (Post script) तो सचमुच गर्हित था। बुरा न मानना वह तुम्हारे उपयुक्त न था। प्रिय श्री! थोड़ा बहुत तो तुम मुझे जानती ही हो। यदि स्वर्ग का राज्य विजेता की हैसियत से प्राप्त कर सकना मेरे लिये सम्भव नहीं तो याचक की तरह दया की भीख स्वीकार करना भी मेरे लिये असम्भव है। किन्तु तुम्हारा दूसरा पत्र पढ़कर मुझे थोड़ा बहुत आश्वासन मिला। तुमने मुझे यह बताया कि मेरी मंज़िल बड़ी कठिन है और यह तुम्हारी दया है कि जो तुम कहती हो कि इस मंज़िल में मैं अकेला नहीं हूं। मैं यह भी जान पाया हूं कि मेरी मंज़िल निरर्थक नहीं, उसका एक उद्देश्य भी है। तुमसे मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि मंज़िल में मेरी प्रगति उत्कर्ष की ओर ही है।

यह सही है कि मेरा मार्ग सरल नहीं है। किन्तु हमारे इस अपूर्ण जीवन में कि जहाँ है—

"Infinite passion
And the pain of finite hearts that yearn!"

पथ में जो कुछ भी सुगमता है उसके लिये ईश्वर को कोटि कोटि धन्यवाद। इस पथ पर चलते हुये मृत्यु भी ऐसी है जिसमें कोई डंक नहीं।

यदि भविष्य मेरा नहीं है तो कम से कम अतीत तो मेरा है। और उस अतीत में मैंने तुम पर दृढ़ विश्वास करना सीखा है। उस समय दया करके तुमने मुझे अपने अन्तरतम की झलक दिखाई थी। तुम्हारी महानता की झांकी मैंने देखी है। और इस समय यदि तुम्हारा व्यवहार तुम्हारे वास्तविक चरित्र के साथ मेल नहीं खाता तो मैं उसकी उपेक्षा के साथ अवहेलना करूँगा। तुम कहती हो मैं तुम्हें भूल जाऊँ। प्रिय श्री! मैं विवश हूं। चेष्टा करने पर भी तुम्हें नहीं भूल सकता। क्या तुम्हारा विश्वास है कि आदम और हव्वा इस बात को भूल सके थे कि कभी वे स्वर्ग के अधिवासी थे? उन्हे सदा अपने पूर्व-वैभव का ज्ञान बना रहा। उनके इस ज्ञान और पूर्व स्मृति ने ही पृथ्वी में वेदना और व्यथा को जन्म दिया! यदि तुम्हारे प्रेम के नन्दनवन में मेरे प्रवेश पर अब प्रतिबन्ध लग गया है तो यह तो मुझे याद ही है कि मैंने उसका द्वार देखा है। और यह भी मुझे मालूम है कि अखिल विश्व में बस केवल एक ही नन्दनवन है और यह भी मैं जानता हूँ कि उसका कौन सा मार्ग है और कैसे उस तक पहुँचा जा सकता है। इस ज्ञान में ही मेरे लिये अनुपम सन्तोष है। इसका प्रमाण यह है कि मेरे दुख में अब कोई कटुता शेष नहीं रही। तुम्हें याद है तुम्हारे सत्ताइसवें जन्म-दिवस पर मैंने तुमसे एक बात कही थी। भोज समाप्त होने पर अतिथियों को बिदा करके हम लोग खुले बरामदे में आकर खड़े हो गये थे। कार्तिकी द्वादशी का चाँद धरा को ज्योत्स्ना से नहला रहा था। सामने हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियां क्षितिज के कान में कुछ राज़ की बात कह रहीं थीं। आस पास के बागों की तन्द्रिल अधखिली कलियों से उत्तरी वातास छेड़खानी कर रहा था। मैं समझता हूं तुम मेरी वह बात भूली न होगी। तुम्हीं ने मुझे सिखाया है कि विश्वास की क्यारी में द्वेष कभी जड़ें नहीं पकड़ता। तुम यह भी कहती हो कि अपवाद महान हो सकता है। तुम यह भी कहती हो कि तुमने अपने लिये एक मार्ग चुन लिया है और तुम अब पथ-भ्रान्त नहीं होना चाहतीं! मुबारक। मेरी समस्त शुभ कामनायें तुम्हारे साथ हैं। ईश्वर करे तुम सफलता के साथ इस रास्ते पर चल सको।

इन्हें मेरे अन्तिम शब्द न समझना। मुझे विश्वास है जब भी तुम्हें मेरी सेवाओं की आवश्यकता होगी तुम पिछली मित्रता के नाते मुझे अवसर देने में न झिझकोगी। प्रेम का व्यवहार हमारे बीच में नहीं रहा, न सही; मित्रता



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के नाते तो हम एक दूसरे के काम आ ही सकते हैं। कम से कम तुमने एक बार ऐसा ही कहा था। परस्पर प्रेम और विश्वास का यदि हमारा वह सुनहला स्वप्न टूट चुका है तो हमें साहस के साथ भाग्य का निर्देश स्वीकार करना चाहिये। किन्तु बावजूद इसके अतीत की सुखद स्मृतियों की श्रंखला हममें मित्रता के भाव तो बनाए रख ही सकती है। हम एक दूसरे की अब भी सहायता कर सकते हैं। हम एक दूसरे से अब भी सहानुभूति पा सकते हैं। और यदि आगे चलकर हम यह अनुभव करें कि हम मैत्री भाव भी नहीं बनाये रख सकते और हमें अपने मार्ग सर्वथा विपरीत करने पड़ें और हमें एक दूसरे से अन्तिम नमस्कार ही कहना पड़े तो विश्वास करो दुनया हमारे अलग अलग रास्तों के लिये काफ़ी से ज़्यादा चौड़ी है।

## तेरह

प्रिय····· !

यह मेरा अन्तिम पत्र है। मैं जानता हूँ तुम स्वर्ग में हो और तब भी मैं तुम्हें लिख रहा हूँ। किन्तु क्या सचमुच तुम वहां हो ? यदि हो तो क्या मज़े में हो ? क्या तुम्हें हर इच्छित वस्तु वहां प्राप्त है ? क्या सचमुच वहां कोई कष्ट नहीं ? सच तो यह है कि तुम्हारी जगह इतनी दूर और इतनी अगम्य है कि आने जाने का कोई साधन ही नहीं। वहां के सम्बन्ध में सुने सुनाये समाचारों पर ही हमारी धारणायें अवलम्बित हैं। अपने अनिश्चित ज्ञान के कारण यदि मैं वहां के सम्बन्ध में कोई शंका प्रकट करूँ तो मुझे विश्वास है तुम क्षमा करोगी। संसार के विविध देशों के ऋषियों और पैग़म्बरों ने स्वर्ग के सम्बन्ध में जो सूचनायें हमें दी हैं वे ईश्वरकृत होते हुये भी तरह तरह की हैं, परस्पर विरोधी हैं और अधूरी हैं। हम नाशवान प्राणियों के लिये अमरत्व की कल्पना ही बड़ी कठिन है। हमारा ज्ञान परिमित और सीमाबद्ध है। दुर्बल इन्द्रियां हमारी जिज्ञासा-पूर्ति की साधन हैं। मानव कल्पना कितनी ही ऊँची उड़ान भरे स्वर्ग का वास्तविक चित्र वह नहीं खींच सकती। करोड़ों व्यक्ति आये दिन जन्म लेते रहते हैं। वे कैसे आते हैं और क्यों आते हैं इस प्रश्न पर हममें आपस में मतभेद हो सकता है, पर एक बात बिना अपवाद हमें माननी ही पड़ती है कि जो आता है उसे जाना ही पड़ता है। ईश्वरीय सन्देशों में लेन देन करने वाले लोग कहते हैं कि इनमें से कुछ लोग स्वर्ग जाते हैं और कुछ दूसरी जगह। मानव प्राणी नित्य हैं, क्षणिक हमारा जीवन है और हमारे इस मर्त्यलोक में काल सीमाबद्ध है। इसके विपरीत कहा जाता है स्वर्ग में सब कुछ अनादि, अनन्त और शाश्वत है। यह भी कहा जाता है कि इस लोक के कर्मों का फल परलोक में भुगतना पड़ता है। कहा जाता है कि परलोक का सुख-दुख हम इसी लोक में गढ़ते हैं। यहां एक छोटे से जीवन के हम स्वामी हैं और वहां जीवन अनन्त और अनादि है और तब हमारे मन में यह शंका उठती है कि यदि परलोक में हमें अनन्त काल तक दुख ही दुख भोगना पड़े—तब ?

मैं चाहता हूँ इस सम्बन्ध में तुम मेरे अज्ञान को दूर करो। तुमतो वहाँ की वास्तविक स्थिति से अब तक परिचित हो चुकी होगी। क्या वहां के सम्बन्ध में तुम मुझे ठीक ठीक बातें बता सकोगी ? मैं सचमुच जानना चाहता हूं कि वहां की वास्तविक स्थिति कैसी है, वहाँ के लोग कैसे हैं और उनका रहन सहन कैसा है ? यदि तुम मेरे मूर्खतापूर्ण प्रश्नों से, मेरे उल्टे सीधे विस्तार-वर्णन से खीझ उठी हो और उस बृहत्तर और महती दुनिया के वैभव और ऐश्वर्य की तुलना में मेरी निरर्थक कल्पनायें और तुच्छ मानव आकांक्षायें तुम्हें फीकी और निकृष्ट लगें तो क्षुद्र समझकर मुझपर दया करना। मेरी कल्पना लालायित है तुमसे यह जानने के लिये कि उस अमरपुरी का भव्य-जीवन कैसा है ? क्या वहां सदा नृत्य की पदचाप और संगीत की तरङ्ग-ध्वनि गूँजती रहती है ? क्या वहाँ भक्तों और भक्तिनों को अनन्त यौवन सम्पन्न अप्सरायें और गन्धर्व मिलते हैं ? सुना है परलोक अनेक लोकों के वृहत समूह का नाम है; जैसे—ब्रह्मलोक, इन्द्रलोक, गोलोक, वैकुण्ठ आदि ! मेरे लिये तो यह भी जानना असम्भव है कि तुम किस विशेष लोक में हो। तुमने अपने भौतिक जीवन की कोई डायरी भी नहीं छोड़ी अन्यथा उसीसे तुम्हारे निवास का मैं अन्दाज़ लगाता।

ईश्वर न करे, किन्तु यह भी सम्भव हो सकता है कि तुम स्वर्ग के इस लोक समूह में कहीं भी न हो। और यह भी सम्भव हो सकता है कि तुम इस छोटी सी दुनिया को और यहां के रहनेवालों को बिल्कुल भूल चुकी हो। शायद वहां देवताओं के बीच में तुम्हें अधिक अनुरूप मित्र मिल गये हों। यह स्वाभाविक बात है और इसके लिये मैं तुम्हारा तिरस्कार न करूँगा। तुम जहां भी हो वहीं मेरा इच्छित स्वर्ग है और यदि मैं तुम्हारे प्रति अपनी भक्ति और उपा- में सफल और दृढ़ हूँ तो सम्भव है, मृत्यु के स्वामी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ग्राम, किसी वासन्ती प्रातःवेला में मुझे तुम्हारे निकट पहुंचने का प्रबन्ध कर दें।

यदि तुम इस दुनिया में होतीं और तुम्हारे नाम मेरे ये पत्र तुम्हारी असावधानी से तुम्हारी बूढ़ी उम्मी चाची के हाथ पड़ जाते तो बात का बतङ्गड़ बन जाता और तुम भी मेरी पूजा आर्चा से उसी तरह मुँह मोड़ लेतीं जिस तरह विश्वामित्र ने मोड़ा था—मेनका-जनित शकुन्तला से। वास्तव में बूढ़ी चाचियां समस्त दुनियवी बदनामियों की केन्द्र होती हैं। मैं समझता हूं वहां तुम्हारे पास कोई बूढ़ी चाची न होगी और इसलिये वहां बदनामी की भी पहुंच न होगी। जब निमित्त ही नहीं तब परिणाम कैसा? कितना सुन्दर स्वर्ग होगा वह? किन्तु हमारी इस दुनिया में ऐसे भी व्यक्ति हैं जिन्हें बदनामी में ही वास्तविक आत्म-सुख मिलता है, वैसा ही आत्म-सुख जो शिकारी को ख़तरे में मिलता है। जितना ही ख़तरा अधिक होता है शिकार में उसे उतना ही अधिक सुख मिलता है। अंग्रेज़ी साहित्य में मार्टिन का उदाहरण दिया जाता है कि उसने इसी सुख की प्राप्ति के निमित्त यार्क मिनिस्टर में आग लगा दी थी।

असीम और अनन्त आकाश के बीचों बीच तुम्हारी उस अनुपम नगरी में सम्भवतः न तो मन्दिर होंगे न मस्जिद, न पति होंगे न पत्नी, न व्यथा होगी न पीड़ा, न साड़ियां होंगी न ब्लाउज़—ओह! क्षमा करना प्रिय श्री! क़लम की उच्छृङ्खलता को—बेशक तुम्हारे पास साड़ियां भी होंगी और ब्लाउज़ भी होंगे! किन्तु तुम्हारे पास और क्या क्या है? सच कहना क्या जीवन की एकरसता (monotony) वहां जीवन को नीरस नहीं बना देती? यहां जीवन की अवधि इतनी थोड़ी है कि मौत का एटेम बाम्ब कब सर पर गिर पड़े कहा नहीं जा सकता; किन्तु ठीक ठीक बताओ क्या अनन्त जीवन की भावना नितान्त सुखकर है? क्या उससे जी नहीं ऊबता? लेकिन शायद स्वर्ग के रहनेवाले न तो कुछ सोचते हैं और न किसी की याद करते हैं। जब सोच विचार ही नहीं तो फिर याद किसकी? और जब याद ही नहीं तो फिर दुख कैसा? स्वर्ग में—जहां हज़ारों वर्ष का एक दिन होता हो—केवल इसी योजना के अनुसार जीवन बिताया जा सकता है। अन्यथा हम नाशवान प्राणियों का सा सोच विचार लेकर यदि स्वर्ग में जीना पड़े तो इतनी व्यथा जाग जाय कि जिसे सात लाख नक्षत्रों में घूम घूमकर भी शमन न किया जा सके। आत्मा अमर है और मानव 'स्व' के नष्ट होने पर भी उसका अस्तित्व बना रहता है। किन्तु जब स्मृति और विवेक ही न रहे तो आत्मा के अस्तित्व का क्या मूल्य? किसी कवि के शब्दों में—

"Oh threats of Hell and hopes of Paradise!
One thing is certain—this life flies;
One thing is certain, and the rest is lies;
The flower that once has blown for ever dies.'

ये पंक्तियां कैसे सुन्दर हैं किन्तु निराशा से भरी हुई। जीवन इतना निरुद्देश्य तो नहीं हो सकता। उसका कोई उद्देश्य और कोई लक्ष्य तो अवश्य होना चाहिये। यह गूढ़ जिज्ञासा ज्ञान से सन्तुष्ट नहीं हो सकती, बड़े से बड़े तपस्वी इसकी तुष्टि के लिये प्रेम और भक्ति की शरण गहते हैं। वे अपने शरीर, इन्द्रिय, मन और प्राण से प्रियतम में एकरूप होने के लिये तड़पते रहते हैं। उनकी आत्मा अपने प्रिय के लिये बेकल रहती है। सात्विक कम्प और रोमांच से उनका अङ्ग सिहरता रहता है। जब तक परम प्रिय के साथ एकाकार होकर नहीं मिला जाता तब तक प्रेम की तपन नहीं बुझ सकती! अपने ध्येय पर अखंड विश्वास ही इस प्रेम की कुञ्जी है। यह प्रेम वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल है। इसमें हार भी जीत है, जीत भी जीत है। किन्तु इस तरह के प्रेम की भावना गहरी खोज और व्यथा के बाद मानव के मन में जागती है और तब वह कसक के साथ कह उठता है—

"yet ah! that Spring should vanish with
the rose!
That youths sweet scented manuscript
should close!
The Nightingale that in the branches sang,
Ah whence and whither flown again who
Knows?

Would but the desert of the fountain yield
One glimpse if dimly, yet indeed revealed,
To which the fainting traveller might spring,
As springs the tramlped herbage of the field

Would but some winged Angle, ere too late,
Arrest the yet unfolded roll of Fate,
And make the stern Recorder otherwise
Enregister, or quite obliterate!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



Ah Love, could you and I with Him conspire
To grasp this sorry scheme of things entire,
Would not we shatter it to bits-and then
Re-mould it nearer to the Heart's Desire"

और यह नूतन प्रियतम बड़ा ही कठोर है। कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ के शब्दों में वह दुख की रात का, अँधेरे घर का राजा है। इसी में उसे सुख मिलता है। जब दुख की आंधी और बिजली की कड़क होती है वह प्रिय की छिन्न भिन्न शयनसेज पर हठात् आ विराजता है। उसका रास्ता दुख का है, संकट का है, विपत्ति का है। उसके स्वागत में आत्मा कहती है—

ओरे दुयार खुले देरे—
बाजा शंख बाजा।
गम्भीर राते एसेछे आज
आँधार घरेर राजा
वज्र डाके शून्य तले
विद्युतेरि झिलिक झले
छिन्न शयन टेने एने
आङिना तोर साजा
झड़ेर साथे हठात् ऐलो
दुःख रातेर राजा ( खेया )

द्वार खोल दे, शंख ध्वनि कर, रात में आज अंधेरे घर का राजा आया है। शून्यतल में बादल गरज रहे हैं। बिजली चमक रही है। बिछादे अपनी टूटी खाट। आज हठात् दुख की रात का राजा आंधी पानी के साथ आ पहुँचा है।

परम प्रियतम इसी दुख के मार्ग से आता है, आंसू के झरनों में तैरकर। सुख की उसे चाहना नहीं। यही आदर्श प्रेम है। सिर उतार कर ही किसी को इस प्रेम मन्दिर में पैठने का अधिकार मिलता है।

कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नांहि।
सीस उतारे भुँइ धरे, सो पैठे घर मांहि॥

प्रिय श्री! मेरा विश्वास है अपने उस स्वर्ग में तुमने इसी तरह के प्रेम के दर्शन पाये होंगे। तुम्हारे मनभावने प्रियतम की नगरी में दिन रात मोती बरसते होंगे। प्रिय की मधुर मुरली से दिक दिगन्त गूँजते होंगे। वहां बारहों महीने बसन्त रहता होगा। वहाँ सदा प्रेम की निर्झरनी बहती होगी। वहां सदा अमृत कलश भरा रहता होगा। अपूर्व होगा तुम्हारा वह देश!

प्रिय श्री, ऐसे देश की तुम वासी हो। तुमसे कुछ कहना भी वृथा है। परम तत्व को पाकर तुम्हें अब दुनियवी प्रपंचों में क्या रुचि होगी! मेरी सारी बातें अब तुम्हारे निकट निरर्थक होंगी। प्रिय श्री! इसीलिये मौन होकर तुम्हारी दया के प्रकाश में मैं भी इसी पथ पर चलने का उद्योग करूँगा। मेरा आदर्श महान है और मुझे सफलता यदि न भी मिली तो उससे न तो मेरे प्रयास के महत्व में कोई कमी आयेगी और न मेरे आदर्श की महत्ता ही घटेगी। मेरी यात्रा प्रारम्भ हो गई है और अपनी शक्ति के शेषांश तक, मैं इस मार्ग पर निरन्तर चलने का उद्योग करता रहूँगा।

[ समाप्त ]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# लोक-लिपि

श्री वेंकटराव शास्त्री

भाषा का सवाल अभी पूरी तरह हल भी नहीं हुआ, फिर यह लिपि का सवाल क्यों ? ऐसी शंका बहुतों के दिलों में उठ सकती है। इसलिए सबसे पहले यह स्पष्ट कर देना ठीक होगा कि अगर सवाल कोई असली है तो वह लिपि का है, भाषा का नहीं। भाषा तो आप से आप पैदा होती और फलती-फूलती है। उसमें कृत्रिमता से काम कम चलता है, बल्कि चलता ही नहीं। भाषा करोड़ों की जबानों पर चलती-फिरती अपना स्वाभाविक रूप ले लेती है। भाषा का सवाल भी उठाया जा सकता है, मगर उसका रूप एकदम भिन्न है। लिपि की ऐसी बात नहीं। यह हमेशा किसी खास आदमी के दिमाग की उपज रही है। लिपि एकदम कृत्रिम वस्तु है। भाषा में भी जो कृत्रिमता आ जाती है, वह इसी लिपि की कृत्रिमता का फल है। भाषा और लिपि परस्पर विरोधी वस्तुएं हैं। भाषा प्रवाह को पसंद करती है, बल्कि प्रवाह ही उसका स्वभाव है। लिपि उसे बांध रखने की चेष्टा करती है। इसी से भाषा में कृत्रिमता आ जाती है। बेशक, कृत्रिमता भारी दोष है, मगर है वह अनिवार्य दोष। अच्छा तो यह होगा कि जिस प्रकार भाषा के लिए कुछ कृत्रिमता अनिवार्य है, उसी प्रकार लिपि को भी, जहां तक बन पड़े, स्वाभाविक रूप दे दें। मानव मात्र को सामने रखकर और उसके स्वभाव पर ध्यान देकर लिपि में भी स्वाभाविकता लाई जा सकती है।

## भाषा तथा लिपि के प्रश्नों में अन्तर

भाषा की स्वाभाविकता भिन्न भिन्न भाषाओं की जननी तथा पोषणकर्त्री है। इसीलिए देश भर के लिए एक भाषा का सवाल उठने पर भिन्न भिन्न भाषाओं के अस्तित्व को स्वीकार ही नहीं किया जाता बल्कि उनके फलने फूलने की पूरी गारंटी दी जाती है। इसके विपरीत लिपि में शेष सभी लिपियों को मिटाने का संकल्प होता है। भाषा के विषय में विद्वानों को जन साधारण के सामने झुक जाना पड़ता है, और लिपि के सम्बन्ध में जनता विद्वानों की सम्मति का आदर करती है। इसलिए लिपि के सवाल को उठाना और उसे हल करना विद्वान, विशेषज्ञ और देश के जिम्मेदार व्यक्तियों का सार्वजनिक कर्तव्य है।

## देश भर में एक लिपि

इसकी आवश्यकता को सदा से स्वीकार किया जाता रहा है। कम से कम अशोक के काल तक की मिसाल हमारे सामने है ही। महाराज अशोक ने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक अपने शिला-लेखों के द्वारा एक लिपि का प्रचार किया। और यह भी साबित है कि उन दिनों भारत में दूसरी लिपियां भी थीं। मगर केवल तमिलनाड को छोड़ कर सारे देश ने अशोक की लिपि को अपनाया था (महत्व यहां लिपि का है, अशोक का नहीं)। बङ्गला, गुरुमुखी, गुजराती, मराठी, तेलुगू और कन्नडी, सभी की वर्णमाला एक है और वह देव नागरी है। अंतिम दो लिपियों यानी तेलगू और कन्नड़ी के सम्बन्ध में देव नागरी से नाता जोड़ने में लोगों को हिचक होती है। मगर इन सभी वर्णमालाओं के प्रायः सभी अक्षरों के सम्बन्ध में यह साबित किया जासकता है कि सभी—तेलुगू और कन्नडी भी—देव नागरी के ही रूपान्तर हैं। (तामिल और मलयामल भी, जिन्होंने देवनागरी के मुकाबिले में यद्यपि अपने अस्तित्व को कायम रखा, उसके प्रभाव से पूर्णतया बच न सकीं) बहर हाल अशोक के काल में देशभर में एक लिपि का प्रभुत्व रहा, यह बात साबित है। देश में केन्द्रीय व्यवस्था के अभाव और लोगों की प्रांतीय संकीर्णता के परिणामस्वरूप हमारे सामने आज इतनी सारी लिपियां मौजूद हैं। एक कारण और है जो बहुत ही महत्वपूर्ण है। शीघ्र-लेखन तथा सुंदर लेखन को लेकर लिपि में जब तब सुधार होते रहे। मौर्य साम्राज्य के बाद एकछत्र राज्य के अभाव के कारण देश के अंदर कभी किसी और कभी किसी प्रान्तीय शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। और उन्होंने अपने अपने साम्राज्य के अंदर उन सुधारों को कार्यान्वित किया। इस तरह अपने अपने ढंग पर स्वतंत्र रूप से, या एक दूसरे की नकल से कालांतर में हिन्दुस्तान के अन्दर इतनी सारी लिपियां हो गईं। इन सब लिपियों के पीछे छोटे-मोटे साम्राज्यों के उत्थान-पतन का इतिहास छिपा हुआ है। ब्रिटिश राज में अंग्रेजी लिपि का भी उसी तरह प्रचार करने की चेष्टा की गई, मगर अपनी विदेशीयता के कारण हिन्दुस्तान में रोमन-लिपि अपनी जड़ न जमा सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



राष्ट्रीय जागरण के साथ देश के अन्दर एक भाषा के सवाल ने ज़ोर पकड़ा। उसके बाद ही एक लिपि का प्रश्न भी उठना चाहिए था। मगर इस दिशा में रफ़्तार सदा ही सुस्त रही है और वह स्वाभाविक भी है। अन्य तात्कालिक प्रश्नों के सामने लिपि को वह महत्व प्राप्त हो नहीं सकता था। लिपि-सुधार शान्ति काल में अधिक होते हैं, मगर उसके बीज बहुत पहले ही बोये जा चुके रहते हैं।

लिपि-सुधार के क्षेत्र में लोग एकदम चेष्टा विहीन नहीं रहे। कुछ ने तो इस पर बहुत गम्भीरता से विचार किया है।

## सुधार की सीमायें

हमारे राष्ट्रीय जागरण में हिन्दू-मुसलिम और अंग्रेजी राज के गुण-दोष हम पर अपना अपना काम कर रहे हैं। हमारे लिपि-सुधारक उनके प्रभाव से बच न सके। यही कारण है कि अब तक के किये गये सुधारों में किसी को भी सर्वमान्यता प्राप्त न हो सकी। कोई देवनगरी की वैज्ञानिकता का गीत गाता है, कोई फारसी की जूद-नवीसी ( शीघ्र लेखन ) पर फिदा है, और कोई रोमन की अन्तर्राष्ट्रीयता पर लट्टू है। परिणाम यह है कि उन्हीं पुरानी चीज़ों में, जो आज की आवश्यकताओं को देखते हुए एकदम निकम्मी साबित हो चुकी हैं, थोड़ा बहुत हेर-फेर करके रह जाते हैं। लोगों पर इसका यह प्रभाव पड़ता है कि हमारी लिपियां इतनी गई गुज़री हैं कि इनके सुधार से भी कुछ नहीं होने का। बस, रोमन के लिए रास्ता और भी प्रशस्त हुआ जाता है। यह कोई रोमन-पक्ष की विजय नहीं है। लोग रोमन लिपि पर आकर इस लिए रुक जाते हैं कि इसमें उन्हें अधिक माथा पच्ची नहीं करनी पड़ती। जहां-तहां थोड़े-बहुत नुकते और डाट देकर वह रोमन लिपि की अपूर्णता को दूर करने की सस्ती दवा खोजते हैं।

अंग्रेजी के २६ अक्षरों से हिन्दुस्तानी भाषाओं के ५०-६० अक्षरों के बनाने में उन्हें एक ओर रोमन को हिंदुस्तानी जामा देना पड़ेगा और दूसरी ओर भारतीय साहित्य को रोमन के रंग में रङ्गना पड़ेगा। नतीजा यह होगा कि आधा तीतर और आधा बटेर होकर रह जयेगा।

## मौलिक दृष्टिकोण

सचमुच अपनी लिपि को सर्वांग-सुन्दर बनाना हो तो हमें सब बन्धनों से मुक्त होकर इस समस्या पर मौलिक तथा स्वाभाविक ढङ्ग से विचार करना होगा।

लिपि ध्वनियों की सूचक है। ध्वनि गले से निकलती है, ठीक उसी तरह जैसे बांसुरी से सुर। बांसुरी में हवा फूंकने और फिर उसके छेदों पर उंगली देकर उस हवा की रोक-थाम करने से भिन्न भिन्न सुर निकलते हैं। ठीक उसी तरह मनुष्य अपने गले की राह हवा को बाहर निकालता है और फिर जीभ की मदद से उस हवा का नियंत्रण कर अलग-अलग आवाजें निकालता है। इस बुनियादी बात को ध्यान में रखते हुए यदि कोई लिपि तैयार की जाय तो उसमें अधिक सफलता की आशा है। ऐसी लिपि अधिक स्वाभाविक तथा वैज्ञानिक होगी। देव नागरी की वैज्ञानिकता केवल उच्चारण तक ही सीमित है, यह भी पूर्णतया नहीं। लिपि में तो उस वैज्ञानिकता का कहीं नाम व निशान भी नहीं है। उसमें खींचा-तानी है।

अक्षरों का स्वाभाविक रूप क्या हो सकता है, इसके विषय में मैं अपने बचपन की ओर जाना चाहता हूँ। मुझे कुछ बड़ी अवस्था के बाद पाठशाला में बैठाया गया। उससे पहले भी मैं रोज पाठशाला जाकर अन्य बच्चों को लिखते पढ़ते देखता था। लिखनेवालों पर ही ध्यान अधिक रहता था। घर लौटकर मैं भी अपनी तख़्ती भर देता था। मुझे अच्छी तरह याद है कि सब लकीरें गोलही-गोल होती थीं। अभी वर्धा के मेरी रात की पढ़ाई में बच्चे बड़े सभी आते थे। एक तीन वर्ष का बच्चा भी आकर मेरी गोद में बैठ जाता था। एक दिन मैंने उसके हाथ में तख़्ती धरा दी। उसने भी गोल, गोल लकीरें खींच दीं। दर असल यही लिपि का स्वाभाविक रूप है।

## लोक-लिपि

गले और जीभ की बनावट और हाथ की स्वाभाविक गति को ध्यान में रखते हुये यह नयी लिपि बनाई गई है। इसलिए इसका "natural script" या "कुदरती खत" नाम रखा गया है। इस लिपि के बनाने में सदा यह ध्यान रहा है कि वह भारत की करोड़ों जनता को साक्षर बनाने में सफल सिद्ध हो। इस लिपि से हमारी साक्षरता का मसला हल हो जाता है। इसलिए इसे 'लोक-लिपि' कहना अधिक अच्छा होगा।

लोक-लिपि के नकशे को देखने से मालूम होगा कि उसे चार अलग अलग हिस्सों में बांटा गया है, नक़शे I में वह सब अक्षर हैं जो व्याकरण में "हल" कहलाते हैं। नकशा II, III में वह हैं जो "स्वर" कहलाते हैं। नकशा IV का मूल वर्णमाला से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह अक्षर नहीं, बल्कि अक्षरों के टुकड़े हैं जिन्हें आपस में जोड़कर छापे या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



टाइप राइटर पर आसानी से अक्षर बना लिये जा सकते हैं। अब हम एक एक नक़शे पर तफ़सील से विचार करें। आसानी के लिए हर नकशे के सब अक्षरों को अलग अलग खानों में रखकर खानेवार नम्बर दिये गये हैं। आगे जहां जहां गिनती लिखी जावे, वहां वहां उस नक़शे के अन्दर उस खाने का अक्षर मान लिया जावे।

ऊपर जैसा बताया गया है, और जिसे अक्षर-विज्ञान के साधारण विद्यार्थी भी जानते हैं, "अक्षर" दो प्रकार के हैं—स्वर और व्यंजन। स्वरों का दूसरा नाम "प्राण" है। इसी तरह व्यंजनों को "धड़" कहा जा सकता है। "प्राण" के योग से धड़ बोलता—चालता है। प्राण के अलग हो जाने से धड़ के बोलने चालने की शक्ति नष्ट हो जाती है। हां, निष्प्राण बल्कि नीम जान व्यंजन भी दूसरे प्राण या प्राणयुक्त अक्षरों के साथ मिलकर बोलने-चालने के योग्य हो जाते हैं। नक़शे में आप यह भी देखेंगे कि व्यंजनों के अलग अलग रूप हैं, किन्तु स्वरों की शकल एक-सी है। नक़शा IV के चिन्हों को ग़ौर से देखने पर मालूम होगा कि स्वरों के चिन्ह सभी अक्षरों पर लगाये जा सकते हैं। मानो व्यञ्जन रूपी धड़ में स्वर रूपी प्राण प्रवेश कर जाते हैं और बोलते-चालते 'प्राणी' बन जाते हैं।

पीछे कहा जा चुका है कि बांसुरी के सुरों की तरह मनुष्य के मुँह से भी स्थान और प्रयत्न की भिन्नता से अलग अलग ध्वनियाँ निकलतीं हैं। इसी भिन्नता को सामने रख कर सब ध्वनियों को शास्त्र रीति से अलग अलग वर्गों में बांटा गया है। इस वर्गीकरण में मैंने व्याकरण के पितामह भगवान पाणिनि के ही पद चिन्हों पर चलने की चेष्टा की है। फिर भी मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि अक्षरों का यह वर्गीकरण प्राचीन वर्गीकरण से अनेक अंशों में भिन्न है। और फिर यह मेरा आंशिक अनुकरण भी केवल उच्चारण तक ही सीमित है। लिपि के निर्माण में मैंने किसी आचार्य या लिपि को अपना आदर्श नहीं माना है। उच्चारण के सर्वमान्य सिद्धांत को सामने रखकर अक्षरों का स्वतन्त्र रूप निश्चय किया है। इन्हें मैं "वर्ण" कहूँगा। यों समझिये, अक्षर का मतलब ध्वनि से है और 'वर्ण' का मतलब उस ध्वनि के लिए लिया हुआ रूप। अक्षरों के वर्गीकरण में जो सिद्धांत बरते जाते हैं उन्हीं सिद्धांतों के आधार पर वर्गों के रूप में क्रमागत विकास किया गया है। समूचे वर्णमाला के प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक अक्षर के उच्चारण में जिस प्रयत्न-विशेष की आवश्यकता होती है, उसकी झलक भिन्न भिन्न अक्षरों की आकृति से साफ टपकती है। स्वर-चिन्हों के निर्माण में भी ध्वनियों की गति का पूरा ध्यान रखा गया है और व्यंजनों और स्वरों के बीच परस्पर जो सम्बन्ध है, उसे वर्गों के अन्दर भी लाने की चेष्टा की गई है।

सारांश यह है कि अक्षरों के 'उच्चारण' मात्र से वर्णों की आकृति दिमाग़ के सामने आ जाती है। वर्तमान लिपियों में पूर्णतया स्मरण शक्ति पर निर्भर करना पड़ता है। लोक लिपि में उससे एकदम छुट्टी सी मिल जाती है और अक्षराभ्यास के आरम्भ से ही कल्पना शक्ति को उत्तेजना मिल जाती है, जो शिक्षा का मूल उद्देश्य है।

## वर्णमाला का वर्गीकरण

स्थान भेद और प्रयत्न भेद, इस प्रकार प्रत्येक अक्षर को दो दृष्टियों से देखना होगा। पहले हम स्थान-भेद की दृष्टि से अक्षरों का वर्गीकरण करेंगे। फिर उन्हीं अक्षरों का प्रयत्न-भेद से विभाजन करेंगे। अक्षर न देकर यहां पर नक़शों में दिये गये नम्बरों का ही हवाला दिया जायगा। गले से लेकर ओठों तक भिन्न भिन्न स्थानों पर शब्द का जो नियन्त्रण होता है, उसीको यहाँ "स्थान-भेद" कहा गया है। इसी स्थान भेद के अनुसार अक्षरों को पांच वर्गों में बांटा गया है—

### देखो नक़शा—1

( अ ) जीभ के गले से छू जाने से नं० १, ६, ११, १६, २१, २६, ३१ के अक्षर बोलते हैं। यह सब कंठ्य या Gutterals हैं।

( आ ) जीभ के तालु ( मूर्धा ) में छू जाने से नं० २, ७, १२, १७, २२, २७, ३२ के अक्षर बोलते हैं। यह सब मूर्धन्य या Palatials हैं.

( इ ) जीभ के दांतों के पीछे मसूड़ों से छू जाने पर नं २, ३, ८, १३, १८, २३, २८, ३३ के अक्षर बोलते हैं। यह सब Ginguals हैं।

( ई ) जीभ के दांतों से छू जाने पर नं० ४, ९, १४, १९, २४, २९, ३४ के अक्षर बोलते हैं। यह सब दंत्य या Dentals हैं।

( उ ) ओठों की सहायता से नं० ५, १०, १५, २०, २५, ३०, ३५ के अक्षर बोलते हैं, यह सब ओष्ठ्य या Labials हैं।

ऊपर के क्रम में क्या नवीनता है, इसके समझने के लिए यहाँ पर चन्द बातों को स्पष्ट कर देना अच्छा होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

I

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| K 1 क ک | G 6 ग گ | Q 11 क़ ق | Gh 16 ग़ غ | 21 ङ | H 26 ह ہ | 31 ख़ خ |
| T 2 ट ٹ | D 7 ड ڈ | 12 ड़ ڑ | Zu 17 झ़ ژ | 22 ण | R 27 र ر | Sh 32 ष ش |
| Ch 3 च چ | J 8 ज ج | 13 च़ ڈ | Z 18 ज़ ز | 23 ञ | Y 28 य ے | 33 श |
| Th 4 त ت | Th 9 द د | 14 त़ ط | 19 द़ ض | N 24 न ن | L 29 ल ل | S 34 स س |
| P 5 प پ | B 10 ब ب | F 15 फ़ ف | V 20 व و | M 25 म م | 30 ळ | 35 क्ष |

II

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 अ A | 2 ع | 3 Ā | 4 Ō | 5 ऋ | 6 अं Uń |

III

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| A 1 अ | i 2 इ | U 3 उ | E 4 ए ॆ | O 5 ओ ॊ | Ai 6 ऐ | Au 7 औ |
| Á 8 आ | Í 9 ई | U 10 ऊ | É 11 ए ॆ | Ó 12 ओ ॊ | Oi 13 | Ou 14 |

IV

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जिन लिपियों में इस प्रकार का शास्त्रीय वर्गीकरण न हो, उनकी बात छोड़िये, मगर जिन भारतीय लिपियों में इसका ध्यान रखा गया है, उसमें भी एक ओर तो कुछ अशास्त्रीयता है और दूसरी ओर कुछ अपूर्णता। मुँह के अन्दर गले, तालू, मसूड़े, दाँत और ओठ, इस प्रकार पांच जगह शब्द का नियन्त्रण होता है। इन्हीं को अक्षरों का उत्पत्ति-स्थान कहा गया है, जो पूर्णतया ठीक नहीं है। दूसरे मसूड़ों पर नियंत्रित होने वाले नं० ३, ८, १३ आदि अक्षरों को तालव्य यानी दाढ़वाले अक्षर कहा गया है। यह सरासर भूल है। दाढ़ों से इन का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। उनका सम्बन्ध मसूड़ों से है। गले और मसूड़ों के बीच तालू पड़ता है। इस हिसाब से वर्तमान वर्गीकरण में 'क' वर्ग के बाद 'ट' वर्ग रखा गया है—'च' वर्ग नहीं। दर असल अक्षरों को 'क' वर्ग आदि नामों से पुकारना भी गलत है। इसी का परिणाम है कि नं० २६ से ३५ तक के अन्तस्थ तथा ऊष्म अक्षरों का सम्बन्ध शेष अक्षरों से टूट सा गया, फिर वर्णमाला का वर्गीकरण अधूरा सा हो गया। इस नये क्रम में सब अक्षरों को—अन्तस्थ और ऊष्म को भी—गले, तालू, मसूड़ों, दाँत तथा ओठ आदि पाँच वर्गों के बाँट कर वर्गीकरण को मुकम्मिल तथा शास्त्रीय बना दिया गया है।

## प्रयत्न-भेद से अक्षरों का वर्गीकरण

ऊपर का वर्गीकरण आड़ा था। यह उन्हीं अक्षरों का खड़ा वर्गीकरण है। आड़े वर्गीकरण में जिस एक खाने के अन्दर जो अक्षर दिये गये हैं उन सब का उच्चारण एक ही स्थान से होता है, जैसे चौथे खाने में नं० ४, ९, १४, १९, २४, २९, ३४, इन सब का सम्बन्ध दांतों से है। फिर भी उनकी ध्वनियों में अन्तर है। यह अन्तर उनके उच्चारण के प्रयत्न-भेद से पैदा होता है। इसी तरह नं० १, २, ३, ४, ५ सब के उत्पत्ति स्थान अलग अलग है फिर भी उनमें आपस में एक प्रकार का साम्य है। यह बात ऊपर के पांचो खानों के सभी अक्षरों के साथ है। उन्ही पांच खानों में समान प्रयत्न से उत्पन्न होने वाले सब अक्षरों को इस खड़े वर्गीकरण में एक खाने में रखा गया है। यह खड़ा वर्गीकरण बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसे ठीक से समझ लेने पर आज-कल के बहुत सारे उच्चारण सम्बन्धी दोष आप ही आप मिट जायेंगे। कुछ खास खास शब्द (ध्वनियां) कुछ खास भाषाओं में ही होती हैं। इस प्रकार की विशिष्ट ध्वनियाँ प्रायः एक ही खाने के अन्दर आ जाती हैं। इससे एक फायदा यह होगा कि जिस खास खानों के शब्द जिस खास भाषा में न हों, शुरू में उन्हें अछूता छोड़ा जा सकेगा। इस वर्गीकरण के न होने से दोष भी है। कुछ विचित्र सी बात है कि खड़े वर्गीकरण के तीसरे तथा चौथे खानों के नं० ११ से २० तक के अक्षरों का भारतीय लिपियों में एकदम अभाव है। हालाकि महाराष्ट्र गुजरात से लेकर दक्षिण की सभी भाषाओं में इन में से कुछ अक्षरों का बहुत ही अधिक प्रयोग पाया जाता है। फिर भी वर्णमाला में उनके लिए जगह नहीं मिली है। तेलुगू में और अब देवनागरी में नुक्ते, बिन्दी आदि देकर जो थोड़े-बहुत वर्ण बना लिये गये हैं उनमें कोई क्रम या शास्त्रीयता नहीं है। लोक-लिपि में इन सबकी समान ज़रूरत को महसूस करके उच्चारण विधि पर पूरा ध्यान देते हुए इन वर्गों का शास्त्रीय रूप निर्धारित किया गया है और उन्हें वर्णमाला के अन्दर उचित स्थान में रखकर उसे क्रमबद्ध कर दिया गया है।

हिन्दीवालों के लिए यहां कुछ तफ़सील से बताना ज़्यादह अच्छा होगा। हिन्दी में क, ग, ख, ज, ड, फ के नीचे बिन्दी देने का चलन हो गया है। मगर यह बिन्दी कुछ के रहे और कुछ के न रहे; यह बात कुछ खलती है। और फिर जो कुछ है उसके लिए कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। उदाहरण के लिए—

ट़, ड़—आजकल "ड़" से उर्दू के अक्षर "ड़" का काम लिया जाता है, जो वास्तव में 'क़' 'ग़' के वजन पर 'ड़'=होना चाहिए। रहा ड़=इस का सम्बन्ध वास्तव में 'ट' से है, जिसके नीचे बिन्दी देने से यह अक्षर बन जाना चाहिए। यही ठीक जंचता है, क्योंकि संस्कृत के 'वट' से 'बड़' और 'पठ' से 'पढ़' आदि बने हैं।

त़, द़—यह दोनों अक्षर उर्दू के ص, ط के लिए बनाए गये हैं। अरबी में इन अक्षरों का विलक्षण उच्चारण होता है। हम लोग गलती से इन्हें त, ज़, पढ़ जाते हैं। इस नये वर्गीकरण के बाद ऐसी गलती नहीं होने पवेगी।

प़, घ़—यह दोनों अक्षर क्रमेण फ़=F और 'व' के लिए बना लिये गये हैं। अन्य महाप्राणों के नीचे बिन्दी देकर अक्षर नहीं बनाये जाते हैं। तब अकेले 'फ' से यह काम लेना उचित नहीं मालूम होता। शब्द "पारसी" से भी इस की पुष्टि होती है। बंगाल से अवध तक, बल्कि सारे उत्तर भारत में 'व' की जगह 'ब' बोला जाता है। गुजराती में 'ब' की जगह 'व' का प्रयोग भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इन दोनों बातों को देखते हुए उचित यही मालूम होता है कि 'फ़' से 'फ़' का और ब़ से 'व' का काम लिया जाय।

अन्तस्थ और ऊष्म—आज कल वर्णमाला में 'क' से 'म' तक बताने के बाद य, र, ल, व, श, ष, स, ह अलग से बताये जाते हैं। दर असल यह अक्षर शुरू में बताये गये 'कंठ्य' आदि वर्गों के अन्दर ही आते हैं। इसी लिए नये वर्गीकरण में इसका क्रम बदल दिया गया है और खड़े वर्गीकरण के आखीर के दो खानों में इसीलिए उन्हें 'ह, र, य, ल' करके पुराने-क्रम को बदल दिया गया है। नं० ३१ में 'ट़' दिया गया है। आज कल 'ख़' के नीचे बिन्दी देकर इस का काम लेते हैं। जिस प्रकार 'F' का 'फ' से कोई सम्बन्ध नहीं है उसी प्रकार 'ख' का भी 'ट़' से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध ऊष्माक्षरों से अधिक है। संस्कृत में जो "शुष्क" है वही फ़ारसी में खुश्क हो गया है।

( II )

इस नकशे में 'अ' के भिन्न भिन्न उच्चारणों के लिए भिन्न भिन्न रूप दे दिये गये हैं। फ़िलहाल दुहरी लकीर मे 'ऋ' और 'अं' को अलग किया गया है। इन सब अक्षरों का सही स्थान कौनसा है, इसके सम्बन्ध में थोड़ी सी शोध बाकी है। इसलिए इसे यहीं तक छोड़ दिया गया है।

(III)

इसमें स्वरों को ह्रस्व और दीर्घ में बाँट कर प्रत्येक स्वर के दोनों रूप नीचे-ऊपर दिये गये हैं, अगल बगल नहीं। स्वरों की संख्या बढ़ाकर सभी भारतीय तथा भारतेतर शब्दों को, जिस तरह वह बोले जाते हैं, ठीक उसी तरह उनका लिखना भी संभव बना दिया गया है। यह शास्त्रीय दृष्टि से अनुचित नहीं है और शिक्षा की दृष्टि से बहुत ही लाभदायी है।

( IV )

इन बीस पचीस चिन्हों से प्रेस और टाइप राइटर के सारे मतलब हल हो जाते हैं। अनुभव पर आवश्यकता जँचे तो इनमें कमी बेशी की जा सकती है। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि संसार भर में यह सब से अच्छा टाइप सिद्ध होगा।

## संयुक्ताक्षर

( अ ) नकशा IV की आकृतियों को देखने से साफ़ मालूम हो जायेगा कि इस लिपि में जोड़ाक्षरों की झंझट एकदम दूर हो जाती है। मूल अक्षर से सटी हुई खड़ी रेखा को हटा देने से प्रत्येक अक्षर अर्धाक्षर बन जाता है।

( आ ) मूल वर्णमाला में ख, घ आदि महाप्राण नहीं दिये गये हैं। यह वास्तव में संयुक्ताक्षर हैं जो भारतेतर भाषाओं की तरह प्रत्येक वर्ग के पहले और दूसरे अक्षरों में 'ह' को जोड़ कर बना लिये जा सकते हैं।

यह है "लोक-लिपि" की छोटी सी कैफ़ियत। विस्तार से साथ लिखने की यहां गुञ्जायश नहीं है। अक्षरों के आकार को निर्धारित करने में उच्चारण शास्त्र का यथा सम्भव ध्यान रखा गया है। कई एक अन्य दृष्टियों से भी यह लिपि मुकम्मिल और स्वाभाविक है। संसार की सभी भाषाओं को जैसी वह बोली जाती हैं, ठीक उसी तरह लिखी जा सकेंगी। भाषा न जानने पर भी उसका सही उच्चारण सम्भव हो सकेगा। इन सब बातों को देखते हुए इसे शास्त्रीय-लिपि' या Scientific script कहना अनुचित न होगा। फिर भी इसे हिन्दी में "लोकलिपि", उर्दू में "कुदरती ख़त" और अङ्गरेज़ी में Scientific script कहना मुझे अधिक अच्छा लगता है।

## सत्यम्, शिवम्, सुंदरम्,

यह आर्योक्ति जो ईश्वर के लिए प्रयुक्त होती है, संसार की प्रत्येक वस्तु के साथ सुन्दरता से घटित होती है। प्रत्येक वस्तु में ईश्वर के दर्शन करने चाहिएं। पूर्णता ईश्वर का लक्षण है। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् पूर्णता के तीन भिन्न भिन्न अंग हैं। यह लक्षण जिस वस्तु में जितनी अधिक मात्रा में पाये जायें उतना ही उसे पूर्ण माना जाय। साधारणतया इस आर्योक्ति के अर्थ यों किये जा सकते हैं। सत्यम् स्वाभाविक, शिवम् उपयोगी, सुन्दरम् देखने में मुकम्मिल—वस्तु के लिए उसका स्वाभाविक, उपयोगी, और सुन्दर होना लाज़िमी है। ऐसी वस्तु ही दुनिया में स्थायी हो सकती है। नकली, बेकार और भद्दी चीज़ों के लिए इस दुनिया में जगह नहीं है। लिपि पर भी यह बात पूरी तरह लागू होती है। इन तीनों में से एक भी गुण के अभाव या न्यूनता में उसके सर्वमान्य होने में सन्देह है। स्वयं प्राचीन तथा आधुनिक लिपियों का इतिहास इसका प्रमाण है। किसी लिपि को संसार में अपना स्थान अक्षुण बनाये रखने के लिए उसे इस कसौटी पर खरे उतरने की ज़रूरत है।

ऊपर के तीन गुणों में से "स्वाभाविकता" के बारे में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



काफ़ी कहा जा चुका है, "सुन्दरता" के सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। अब रही "उपयोगिता" इसके बारे में कुछ विस्तार से समझ लेना अच्छा होगा, क्योंकि दुनिया प्रत्यक्ष फल से अधिक प्रभावित होती है।

## तीन उपयोगितायें

(१) सीखना-सिखाना, (२) लिखना-पढ़ना, और (३) प्रेस और टाइप रायटर। लिपि की उपयोगिता को इस प्रकार तीन भागों में बांटा जा सकता है। इन पर अलग अलग विचार करते समय हम ठीक उल्टे चलेंगे। अन्तिम को पहले लेंगे और प्रथम को सबके बाद।

## प्रेस और टाइप रायटर

यह चीज़ें आज-कल जीवन के प्रत्येक अंग पर अपना भारी प्रभाव डाल रही हैं। प्रेस और टाइप रायटर की सुविधाओं का ध्यान रखे बिना आज किसी नई लिपि की कल्पना नहीं की जा सकती। अधिकाधिक लोगों का रोमन लिपि की ओर झुकने का कारण यही है कि उसमें यह दोनों सुविधायें अधिक हैं। "लोकलिप की" बनावट ऐसी है कि इसमें वह सुविधायें सबसे अधिक हैं। साथ ही रोमन लिपि के सारे दोषों से वह एकदम मुक्त है। अक्षरों की तख़्ती में नक़शा नं० ४ में दिये गये २०, २५ चिन्हों से प्रेस और टाइप रायटर का लगभग सारा मतलब हल हो जायगा। अक्षरों की बनावट ऐसी है कि अंग्रेजी से भी बारीक अक्षर होने पर आंखों पर उससे कहीं कम भार पड़ेगा। और थोड़ी सी जगह में अधिक मसाला (Matter) आ जायगा। इससे राष्ट्रीय धन की जो बचत होगी और समूचे राष्ट्र का जो उपकार होगा उसका अनुमान लगाना कठिन है।

## लिखना-पढ़ना

मोटर, हवाई जहाज़ वगैरह चल पड़ने से पैदल का चलना बन्द नहीं हुआ। प्रेस और टाइप रायटर से हाथ की लिखाई बन्द नहीं होने की। लिपि में प्रेस और लिखाई के दोनों गुण बराबर पाये जाने चाहिएं। कुछ लिपियां ऐसी हैं जो तेज़ लिखी जा सकती हैं, मगर जितनी तेज़ वह लिखी जा सकती हैं उनके पढ़ने में उतनी ही अधिक कठिनाई होती है। उर्दू और मुड़िया की बहुत सारी कहावतें प्रसिद्ध हैं ही। मगर जिस अंग्रेज़ी की इतनी प्रशंसा की जाती है उसकी लिखाई कम भयंकर नहीं है। उर्दू और मुड़िया की अपेक्षा अङ्गरेज़ी (रोमन) घसीट का पढ़ना कहीं अधिक कठिन है। जो अगर आसानी से पढ़ी जाय तो वह लिखनेवाले की ख़ूबी है, न कि "रोमन" की। सो वह सभी लिपियों के साथ है। मगर यह कह कर यहां शीघ्र लेखन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। लिपि में यह गुण होना चाहिए कि वह शीघ्रता से लिखी भी जाय और साफ़ पढ़ी भी जाय। लोक लिपि में यह दोनों गुण पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं।

## सीखना-सिखाना

इसे अन्त में रखने का कारण यह है कि हम इसके महत्व पर गम्भीरता से विचार करेंगे। लिपि की सृष्टि से लेकर, आज तक किसी ने कभी भी इस दृष्टि से विचार नहीं किया। कम से कम किसी के सफल विचार हमारे सामने नहीं हैं। जो लिपि जैसी भी है लोगों को उसे सीखना पड़ता है। सीखने में आसानी हो, इस विचार से कोई लिपि बनी ही नहीं। यहीं लिपि की कृत्रिमता उसकी चरम सीमा पर पहुंच जाती है। वैसे न सीख सकें तो मार-पीट कर सिखाओ, फिर भी न सीख सकें तो मूर्ख कहकर सारी जनता के मुंह पर कालिख पोत दो, यही अब तक के लिक्खाड़ों और उस्तादों की नीति रही है। पढ़े लिखों ने अपनी कमज़ोरी को छिपाने के लिए करोड़ों-अरबों को बुद्धि-हीन कहने का दुस्साहस किया है। जिन लोगों में थोड़ी सी सहृदयता है, उन्होंने सुनने-गुनने का उपदेश देकर पढ़ने-लिखने की कमी को पूरा करने की चेष्टा की—"महात्माओं के उपदेश सुनो, बस, तर जाओगे"। दर असल यह अपनी कमज़ोरी को छिपाने का ढोंग मात्र है। यह किसी से छिपा नहीं है कि महात्मा लोग साधारण जनता को जिस प्रकार उपदेश सुनने के लिए कान प्रदान करना चाहते हैं, उसी प्रकार पढ़ने-पढ़ाने के लिए आंख भी देना चाहते हैं। वह चाहते हैं कि जिस प्रकार कथा-पुराण सुनकर जनता का उद्धार हो जाय उसी प्रकार, अगर हो सके तो, धर्म ग्रन्थों को स्वयं देख भी डालें। मगर उन्हें इस योग्य बनाने में वे अपने को असमर्थ पाते हैं। उन उपदेशकों का भी क्या दोष? बेचारे वे यही माने बैठे हैं कि पढ़ना लिखना सब के मान की चीज़ नहीं है। एक ओर तो यह हुआ। दूसरी ओर, जो लिपियां जैसी भी हैं उन्हें सीखने में इतने ज़्यादह लोग असमर्थ क्यों हैं, इसके कारण भी विचित्र हैं। आसान तरीक़ों के नाम पर भी पढ़ाई में आजकल जो बहुत सी पेचीदगियां बढ़ाई जाती हैं, उसे देखकर मुझे अकसर झुंझलाहट होती है। पढ़ाई के नाम पर कोमल बच्चों पर प्रायः आज भी जो ज़ुल्म ढाये जाते हैं, वह दुनिया के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किसी भी अत्याचारी राज से कहीं अधिक क्रूर और कठोर कहे जा सकते हैं, सच तो यह है कि आज भी विद्या का श्रीगणेश अविद्या से होता है।

तीसरे लिपि और बोली, इन दोनों में लिपि कहीं सरल है। लिपि में कुछ इने-गिने चिह्न सीखने होते हैं, जब कि बोली में हज़ारों शब्द रट लेने पड़ते हैं। फिर भी हम देखते हैं कि लोग परदेश जाकर वहाँ की बोलियों को दो चार महीनों में सीख जाते हैं, मगर मरते दम तक अपने दस्तख़त भी नहीं कर पाते। लोगों को पढ़ने लिखने में रुचि न हो, यह बात क्षण भर के लिए भी मानने योग्य नहीं है। सच तो यह है कि वर्तमान लिपियाँ इतनी कठिन और कठोर हैं कि रुचि को चौखट से ही लौटा देती हैं।

आख़िर, लिपियाँ इतनी कठिन बनी ही क्यों? इसका एक कारण यह है कि लिपियों के आविष्कारकों ने उसे इस दृष्टि से बनाया ही नहीं कि सारी जनता को शीघ्र और सरलता के साथ साक्षर बनाया जाय।

लोक लिपि का जन्म ही इस उद्देश को लेकर हुआ है कि "सारा संसार साक्षर हो जाय," और इसी कारण इसका नाम "लोक-लिपि" रखा गया है।

## सफल प्रयोग

इस लिपि पर मैंने कई जगह सामूहिक प्रयोग किये। सेवाग्राम के तालीमी संघ में सभी प्रान्तों के विद्यार्थी थे। उनका मैंने एक दिन क्लास लिया। ठीक ६ बजे शाम को दिनभर के काम से थकने के बाद—लोक लिपि सिखानी शुरू की। ६-३० पर ठीक ३० मिनिट में पढ़ाई खतम हुई। उसके बाद सबको अपनी-अपनी भाषा में लोक लिपि में चाहे जो लिखने की आज़ादी दी गयी। सबने लिखा और उस पर अपना संतोष प्रकट किया। कुछ दिन बाद वर्धा में महिला-आश्रम में भी यही प्रयोग किया। उसी तरह ठीक ३० मिनिट में पढ़ाई समाप्त होने पर बाकायदा परीक्षा ली गयी। सबने, जिनमें एक अनुभवी अध्यापक भी थे, कागज़ पर कुछ वाक्य लिखे। किसी भी बहिन को ७५ प्रतिशत से कम नम्बर नहीं मिले। बहुतों को ८० प्रतिशत से अधिक नम्बर मिले। एक बहिन ने इतना अच्छा लिखा था कि मैंने उन्हें १०० प्रतिशत नम्बर दिये। इसमें सन्देह नहीं, सबके सब शिक्षित थे। मगर वह जो आधा घन्टा लगा वह मेरे लेकचर में लगा। इधर मेरा लेकचर समाप्त हुआ, उधर वह 'लोक-लिपि' में लिखने-पढ़ने के योग्य थे। सच तो यह है कि सीखने में उन्हें कुछ भी समय नहीं लगा।

माना, अपढ़ों को एक घंटा, नहीं तो, एक दिन लगेगा, और क्या! गोया सुबह संकल्प किया और शाम तक साक्षर होगये!

## साल भर के अन्दर सौ सैकड़ा साक्षरता

साक्षरता के सम्बन्ध में संसार में सैकड़ों प्रयोग हुए। रूस ने सबसे अधिक काम किया तो २५ साल में लगभग ७० फीसदी लोगों को पढ़ा पाया। मगर "लोक-लिपि के प्रयोग से हिन्दुस्तान की ४० करोड़ जनता राष्ट्रीय सरकार की देख रेख में सालभर के अन्दर सारी की सारी साक्षर हो सकती है।

शिक्षित लोग एक घंटे के अन्दर लोक-लिपि पर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। एक पढ़ा-लिखा दूसरे एक अपढ़ को, बल्कि कई एक को, एक दिन के अन्दर लिखने पढ़ने के योग्य बना सकेगा। शिक्षित समाज अगर हफ़्ते में केवल एक दिन—रविवार को—साक्षरता का काम करे तो साल समाप्त होते होते लोगों को पढ़ाने के लिए अपढ़ों का मिलना असम्भव हो जायगा। यह कोई मेरी मधुर कल्पना या सुख स्वप्न नहीं है, मैं अपनी एक एक बात को अपने प्रयोग और अनुभव के आधार पर कहता हूं।

## अनुमानित आक्षेप

यों तो आलोचक किसी को न छोड़ेंगे, फिर भी ऐसी आलोचना का मूल्य ज़रूर है, जो ईमान्दारी से की जाय, और जिसकी तह में सेवा की भावनायें काम कर रही हों। ऐसे हृदयों में आक्षेप की अपेक्षा शंकायें—जो वास्तविक भी होती हैं—उठा करती हैं। एक शङ्का यह हो सकती है कि "लोकलिपि" सरल भी है और सुन्दर भी, मगर अक्षरों में एकरूपता इतनी अधिक है कि सीखने वालों को भ्रम हो जायगा। पूज्य आचार्य नरेन्द्र देव की ज़बानी एक बार सुना था—"अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तानियों के सब चेहरे एक से लगते हैं, भीड़ में किसी को पहचान लेना उनके लिए कठिन है।"

फिर अपने बचपन की याद आती है। मुझे हिंदुस्तान के सबसे पिछड़े इलाके में भीलों के बीच में पैदा होने और बड़े होने का सौभाग्य या दुर्भाग्य प्राप्त है, एक गरीब का बेटा होकर। गांव में दूसरे बच्चों के घर घोड़े-टट्टू होते थे, जो दिनभर जंगल में चरते, और शाम को लड़के उन्हें अपने अपने घर ले जाते थे। मेरे दिल में उठता था,

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मेरे घर भी घोड़ा होता ! फिर परेशानी होने लगती कि मैं अपने घोड़े को पहचानूंगा कैसे ? सबका रङ्ग-रूप एक सा होता है। कुछ दिन बाद मेरे घर भी घोड़ा आ गया। मैंने उसे चरने को छोड़ दिया। उसे पहचानने के लिए मैं दिन भर कई बार जाता, मगर उसे पहचानने में मुझे कभी कोई दिक्कत हुई ही नहीं। शङ्का का क्या इलाज ? जब तक हम चीजों को अपनाते नहीं तक ऐसी शङ्काओं का होना स्वाभाविक है।

**अन्त में मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि अक्षरों की एकरूपता वैज्ञानिक भी है और सुविधा जनक भी।**

## अंग्रेज़ी लिपि की अन्तर्राष्ट्रीयता

रोमन लिपि के पक्ष में सबसे बड़ी दलील उसकी अन्तर्राष्ट्रीयता है। उसे संसार की लिपि कहा जाता है। इसके विपरीत नई लिपियों पर संकीर्णता का आरोप किया जाता है। मैं यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि "लोक लिपि" की कल्पना में संकीर्णता का लेश भी नहीं है। लगभग एक दर्जन भाषाओं और लिपियों को प्रेम से सीखने के बाद लोक-लिपि की कल्पना उठी है। और फिर मानव मात्र के कल्याण की भावना इसमें काम कर रही है। इसे यहीं तक रखकर फिलहाल हमें रोमन पर विचार करना है। रोमन की अपूर्णता को पाश्चात्य भी मानते हैं। इसीलिए पश्चिम में भी कुछ विचारकों ने नई लिपि की कल्पना की थी। किन्तु पश्चिम की संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण इस दिशा में उन्हें कोई सफलता मिल न सकी। जहाँ तक उसकी अन्तर्राष्ट्रीयता का सम्बन्ध है, पिछले तीन सौ साल के अन्दर पूर्वी जगत में Bible ( ईसाई धर्म ग्रंथ ), Bottle ( शराब की बोतल ) और Battalion ( फ़ौज ) के "ब" कार त्रय के समूचे बल से भी रोमन को नाम मात्र सफलता न मिल सकी। यह उसकी अस्वाभाविता का ज्वलंत उदाहरण है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि आज भारत नई लिपि की आवश्यकता को ज़ोरों से महसूस कर रहा है।* चीन व जापान को उसकी आवश्यकता कहीं ज़्यादह है। भारत से चीन तक के पूर्व जगत में दुनिया की आधी से अधिक आबादी बसी हुई है।

* लेखक के इस विचार से अनेक लोगों को अभी मतसाम्य नहीं है।

निश्चय ही "लोक-लिपि" जैसी कोई सुन्दर लिपि सारे पूर्वी जगत की एक लिपि होकर रहेगी। पूर्व का सूर्य बाद में पश्चिम में भी अपना प्रकाश फैलावेगा।

## यही समय है

भारत जाग चुका है। एशिया करवट बदलने को है। अब युगांतरकारी परिवर्तन होने ही वाले हैं। नई दुनिया का निर्माण होगा। नयी दुनिया की चीज़ें भी नई होंगी। नाकारा और निकम्मी चीज़ों को हमें छोड़ना पड़ेगा। साधन भी नये होंगे। दकियानूसीपन प्रगतिशील संसार के लिए बाधक जानकर अभी से उसका सफ़ाया होने लगा है। ऐसे-वैसे नहीं, भारत के बड़े बड़े विद्वान इसके लिए कटिबद्ध हो चुके हैं कि रोमन लिपि का एक छत्राधिपत्य स्थापित हो जाय। हमारी कुटिल सरकार ने इस दिशा में कम काम नहीं किया है। बीस लाख भारतीय फ़ौजियों को रोमन का भक्त बनाया जा चुका है। यह फ़ौजी देश भर में बिखरने ही वाले हैं। उनकी मदद के लिए उनसे भी अधिक तादाद में पुलिस मौजूद है जिसने रोमन के इश्क में शायद फ़ौज को भी मात कर दिया है। इस तरह रोमन साम्राज्य की (लिपि की) स्थापना होने जा रही है। रोमन से घबराने की बात नहीं है। हमें तो डर है उसकी बुराइयों से दब जाने का। साथ ही उस अच्छाई से भी वंचित रह जाने का भय है जो लोक लिपि जैसी किसी स्वाभाविक लिपि को अपनाने से सम्भव हो सकती है।

इस नयी लिपि के अपनाने में जिस महान राष्ट्रीय शक्ति की बचत होगी, जिस अपूर्व स्फूर्ति की प्राप्ति होगी, और उससे जिस लोकोत्तर सम्पत्ति की उत्पत्ति हो सकेगी, उन सब की आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

मैं कोई विद्वान नहीं हूं। लिपि क्या मैंने किसी भी विषय का कोई विशेष अध्ययन नहीं किया है। एक अकिंचन की तरह राष्ट्र की सेवा में जीवन ज़रूर बिताया है। मेरे दिल में अक्सर बड़ी बड़ी उमंगें उठा करती हैं। फिर उनमें से किसी एक की धुन सवार हो जाती है। लिपि के मसले ने इसी तरह मेरे दिल में घर कर लिया। कितना सोचा, कितने प्रयोग किये, इसका कोई ठिकाना नहीं। अक्सर ऐसा हुआ है कि भयंकर भीड़ के बीच मैं अपने धुन में मस्त था। और कभी कभी गङ्गा के तट पर निस्तब्ध रातों में विचरा किया। कितने ही नमूने बनाये, और कितने ही बिगाड़े। मगर हर बिगाड़ के बाद मुझे खुशी ही हुई है, क्यों कि उसने मुझे एक कदम और आगे बढ़ाया। "लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लिपि" लगभग चौदह साल की मिहनत का फल है। मैंने कहीं भी अपनी भावुकता में विषय की वैज्ञानिकता को हाथ से नहीं जाने दिया। उसूल व अमल को एकरूप देने की कोशिश की है और लिपि के विषय में एक समग्र दृष्टि ग्रहण करने की चेष्टा की है। फिर भी यह मेरा दावा कदापि नहीं है कि यह लिपि एकदम मुकम्मल है। सच तो यह है कि अभी बहुत कुछ करना बाकी है। यह एक नमूना मात्र है।

विद्वान, विशेषज्ञ और देश के ज़िम्मेदार व्यक्ति इस ओर ध्यान दें और देश के लिए एक सर्वाङ्ग सुन्दर लिपि जल्द से जल्द तैयार करें ताकि कम से कम अगली मरदुम शुमारी से पहले सारे देश को साक्षर बनाकर संसार के सामने एक सुन्दर नमूना पेश कर सकें, यही मेरा विनम्र निवेदन है।

---

# मुक्ति बोध

श्री 'करील'

( १ )

महामुक्ति की सिंह-सपूतों ने रणभेरी आज बजा दी।
माई के लालों ने अपनी चिर अभिलाषा आज जगा दी॥
आज हमारे शुद्ध बोध ने कायरता की रीति मिटा दी।
आज जगी नव यौवन लेकर जीवन का वैभव आज़ादी॥
आज परस्पर हम मिल गाते मुक्ति मन्त्र सारी वसुधा का।
जाते हैं हम आज उड़ाने स्वतन्त्रता की विजय पताका॥

( २ )

आज हमारा झण्डा घर घर मुक्त पवन में है लहराता।
हृदय हृदय में नूतन जीवन आज सबल सङ्कल्प जगाता॥
आज प्रकृति की सुन्दरता में शक्ति भरा सन्देश सुहाता।
आज पढ़ाती मर मिटने का पाठ हमारी भारत माता॥
आज प्रसाद मिला है हमको इस जीवन की मधुर सुधा का।
जाते हैं हम आज उड़ाने स्वतन्त्रता की विजय पताका॥

( ३ )

आज हिमालय सिर ऊँचाकर करता है सम्मान हमारा।
आज सिन्धु सुख से लहराता ले उद्भव अभिमान हमारा॥
जीवन जागा यौवन जागा जाग पड़ा बलिदान हमारा।
हम चालीस कोटि नर नारी सारा हिन्दुस्तान हमारा॥
आज कीर्ति के पथ में हम सब शुभ सन्देश सुनेंगे मां का।
आज उड़ाने हम जाते हैं स्वतन्त्रता की विजय पताका॥

( ४ )

एक हमारा भव्य भाग है भव भर को स्वाधीन बनाना।
एक हमारा पुण्य राग है स्नेह भरा भ्रातृत्व जगाना॥
एक हमारा निश्चित मत है जीवन में नव जागृति लाना।
एक हमारा अनुपम व्रत है स्वतन्त्रता पर बलि बलि जाना॥
आज उदय है निज गौरव का आज भाग्य ने हँस कर झाँका।
स्वतन्त्रता के समरांगण में चलो उड़ाने विजय पताका॥

( ५ )

तन में, मन में, प्राणों में भी बनकर प्रबल पराक्रम जागा।
आज विश्व में मङ्गलमय हो सर्वार्पण का संयम जागा॥
पूर्ण सिद्धि की अभिलाषा से अपना दिव्य नियन्त्रण जागा।
भव के पाप मिटाने को यह यौवन का आमन्त्रण जागा॥
दिन ने आज सुहास बिखेरा रजनी भी बैठी बन राका।
स्वतन्त्रता के समराङ्गण में चलो उड़ाने विजय पताका॥

( ६ )

आज हमारी शुभाराधना जागे अपना अन्तर्यामी।
आज हमारी सतत साधना हम होवें अपने अनुगामी॥
आज हमारी नम्र भावना हम सब हों पौरुष के हामी।
आज हमारी एक कामना धरती से उठ जाय गुलामी॥
आज हमारी आज़ादी का यह आया, देखो दिन बांका।
स्वतन्त्रता के समरांगण में चलो उड़ाने विजय पताका॥

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# हमारे राष्ट्रीय पत्र और पत्रकारी

विश्वम्भरनाथ

सन् १८५७ से लेकर सन् १९३० तक भारत के राष्ट्रीय पत्रों की प्रगति का इतिहास क्रमोवेश भारतीय राष्ट्रीयता की प्रगति का इतिहास समझा जा सकता है। इस लम्बे काल में एक ओर भारतीय पत्रकारों को अगर घोर आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा तो दूसरी ओर भयंकर सरकारी दमन का भी; फिर भी जिस निर्भीकता के साथ त्यागमय सेवाभाव लेकर भारतीय पत्रकारों ने नागरिक स्वाधीनता, विचार स्वातन्त्र्य और राजनीतिक आजादी के भावों का प्रचार किया वह संसार की पत्रकार-कला के इतिहास का गौरवपूर्ण अध्याय है। देशव्यापी प्रयत्नों से स्वतन्त्रता का जो भव्य भवन आज हम अपने देश में निर्माण कर रहे हैं उसकी नींव में शहीदों के साथ साथ पत्रकारों के भी अस्थि-पञ्जर पड़े हुए हैं। सन् १९०५ से लेकर सन् १९२० ई० तक भारतीय पत्रकारी भारतीय राष्ट्रीयता की पर्यायवाची-सी रही है।

## 'पयामे-आज़ादी'

सच्चे अर्थ में जो सबसे पहला राष्ट्रीय पत्र हमारे देश में प्रकाशित हुआ वह 'पयामे आज़ादी' था। यह फरवरी १८५७ में दिल्ली से प्रकाशित हुआ। यह नागरी और उर्दू दोनों लिपियों में टाइपों पर छपा करता था। पर इसके प्रकाशन का कोई निश्चित क्रम न था। कभी सवेरे छपता या तो कभी शाम को, कभी रोज छपता या तो कभी एक दिन के अंतर पर। इस पत्र के प्रकाशन की योजना नाना साहब धुन्धपन्त के मन्त्री और सलाहकार तथा सन् १८५७ की महान् क्रांति के संयोजक अज़ीमुल्ला ने बनाई थी। सितम्बर सन् १८५७ में झाँसी से 'पयामे आज़ादी' का एक मराठी संस्करण भी प्रकाशित होने लगा था किन्तु उसकी केवल एक ही प्रति ब्रिटिश संग्रहालय में प्राप्य है।

सन् १८५४ में अज़ीमुल्ला पेशवा नानासाहब के वकील की हैसियत से विलायत गये थे, पर उनका वास्तविक उद्देश्य यूरोप के जनमत को भारतीय स्वाधीनता का समर्थक बनाना था और रूस तथा इटली से विशेष रूप से क्रान्ति के निमित्त अस्त्र शस्त्रों और सैनिकों की सहायता प्राप्त करना था।* अपनी इसी यात्रा में अज़ीमुल्ला ने यूरोपीय भाषाओं के कतिपय पत्रों द्वारा भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न को यूरोपीय जनता के सामने रखा था। सम्भवतः इसी यात्रा में उन्होंने 'पयामे आज़ादी' के लिए प्रेस आदि का प्रबन्ध भी किया था।

'लन्दन टाइम्स' के विशेष प्रतिनिधि सर विलियम हावर्ड रसल से अज़ीमुल्ला की भेंट क्रीमिया के युद्ध क्षेत्र में हुई थी। उन्होंने अपनी पुस्तक 'दि वार इन क्रीमिया' में अज़ीमुल्ला के प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व का रोचक ढंग से वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि "भारत में राजनीतिक पत्र के अभाव से अज़ीमुल्ला चिन्तित थे।" उनकी कुछ विज्ञप्तियों की चर्चा करते हुए सर विलियम ने लिखा है कि "अनेक यूरोपीय और एशियाई भाषाओं से परिचित भारतीय आजादी के इस सन्देशवाहक में पत्रकार के वे सभी गुण मौजूद थे जो उन्हें यूरोप की किसी प्रमुख भाषा का श्रेष्ठ और लोकप्रिय पत्रकार बना सकते थे।"

ऐतिहासिक क्रम की वे कड़ियां टूट गई हैं जो यह बतातीं कि भारत वापस आकर अज़ीमुल्ला ने कौन सा विशेष कार्य-क्रम अपने हाथों में लिया, पर 'पयामे आज़ादी' के जो अंक ब्रिटिश संग्रहालय में (सन् १९३६ तक) सुरक्षित थे उनसे पता चलता है कि 'पयामे आज़ादी' के तीसरे अंक में भारतीय नरेशों की एकता के सम्बन्ध में अज़ीमुल्ला का एक बयान छपा था। इन्हीं अङ्कों से यह पता चलता है कि भारत के इस सबसे पहले और सच्चे राष्ट्रीय पत्र का प्रकाशन फरवरी सन् १८५७ के करीब शुरू हुआ था और मिरज़ा बेदारबख्त (सम्भवतः सम्राट बहादुरशाह के पौत्र) के दस्तख़ती परवाने से यह छपा करता था। यानी आजकल के अर्थों में बादशाह के हुक्म से मिरज़ा बेदारबख्त इस पत्र के 'सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक' थे।

'पयामे आज़ादी' के उद्धरणों से सन् १८५७ के स्वाधीनता संग्राम पर खासी अच्छी रोशनी पड़ती है। सन् १८५८ में लन्दन से छपी हुई 'दि नैरेटिव आफ़ दि इण्डियन रेबोल्ट' नामक पुस्तक में 'पयामे आज़ादी' का एक उद्धरण दिया

---

* इटली को स्वतन्त्र बनानेवाले महान् सेनापति और देशभक्त गारिबाल्डी भारतीय क्रान्ति की सहायता के लिए तीन जहाज सैनिक और अस्त्र-शस्त्र भरकर भेजने ही वाले थे कि उन्हें खबर मिली कि क्रांति असफल हो गई, इससे दुःखी होकर उन्हें अपनी सारी तैयारी रद कर देनी पड़ी।

—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हुआ है जिसमें रुहेलखण्ड की पल्टनों से आज़ादी की जङ्ग में शामिल होने की अपील की गई थी। उसमें लिखा है—

"भाइयो, दिल्ली में फिरंगियों के साथ आज़ादी की जङ्ग हो रही है। अल्लाह की दुआ से हमने उन्हें जो पहली शिकस्त दी है उससे वह इतना घबरा गये हैं जितना किसी दूसरे वक्त वह दस शिकस्तों से भी न घबराते। बेशुमार हिन्दुस्तानी बहादुर दिल्ली में आन आनकर जमा हो रहे हैं। ऐसे मौके पर अगर आप वहाँ खाना खा रहे हैं तो हाथ यहाँ आकर धोइये।...हमारे कान इस तरह आपकी ओर लगे हुए हैं जिस तरह रोजेदारों के कान मुअ-ज़्ज़िन की अजान की तरफ लगे रहते हैं। हम आपकी तोपों की आवाज सुनने के लिए बेचैन हैं। हमारी आँखें आपके दीदार की प्यासी सड़क पर लगी हुई हैं। आपका फ़र्ज़ है कि फौरन आइये। हमारा घर आपका घर है। बिना आपकी आमद के बहार के गुलाब में फूल नहीं आ सकते।'

## बहादुरशाह का घोषणा-पत्र

'लन्दन टाइम्स' ने सर विलियम रसल को ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम की रिपोर्ट देने के लिए अपना विशेष संवाददाता बनाकर यहाँ भेजा था। उन्होंने 'लन्दन टाइम्स' के सम्पादक जान डिलेन के नाम लखनऊ से अपने एक पत्र के साथ 'पयामे आज़ादी' में प्रकाशित सम्राट बहादुर-शाह का एक ऐलान भी भेजा था जिसे पढ़कर इसमें जरा भी शुबहा नहीं रह जाता कि सन् '५७ का युद्ध भारत की स्वाधीनता का संग्राम था और 'पयामे आज़ादी' उस युद्ध का मुख पत्र था। वह घोषणा इस प्रकार है—

"हिन्दुस्तान के हिन्दुओ और मुसलमानो, उठो! भाइयो, उठो! खुदा ने इनसान को जितनी बरकतें अता की हैं इनमें सब से कीमती बरकत आज़ादी की है। वह ज़ालिम नाकस जिसने धोका दे देकर हमसे यह बरकत छीन ली है क्या हमेशा के लिए हमें उससे महरूम रख सकेगा? क्या खुदा की मरज़ी के खिलाफ इस तरह का काम हमेशा जारी रह सकता है? नहीं, कभी नहीं। फिरंगियों ने इतने जुल्म किये हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज़ हो चुका है...। खुदा अब नहीं चाहता कि तुम खामोश रहो क्योंकि उसने हिन्दुओं और मुसलमानों के दिलों में अंग्रेजों को अपने मुल्क से बाहर निकालने की ख़्वाहिश पैदा कर दी है और खुदा के फज्ल और तुम लोगों की बहादुरी से जल्द ही अंग्रेजों को इतनी कामिल शिकस्त मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दुस्तान में उनका जरा भी निशान न रह जायगा। हमारी इस फौज में छोटे बड़े की कोई तमीज न होगी। सब के साथ बराबरी का बर्ताव किया जायगा। इस पाक जंग में शरीक होनेवाले सब आपस में भाई-भाई हैं। उनमें छोटे बड़े का कोई फर्क नहीं। मैं अपने तमाम हिन्दी भाइयों से दरखास्त करता हूं कि वह खुदा के बताये हुए इस पाक फर्ज को पूरा करने के लिए मैदाने जंग में कूद पड़ें।"

जी० बी० मालेसन ने अपनी पुस्तक 'दि रेड पैम्फलेट' में 'पयामे आज़ादी' की एक सम्पादकीय टिप्पणी उद्धृत की है। उसमें लिखा है—

"हिन्द के बाशिन्दो! अरसे से जिसका इन्तजार था आजादी की वह पाक घड़ी आन पहुंची है...हिन्दुस्तान के बाशिन्दे अब तक धोके में आते रहे और अपनी ही तल-वारों से अपने ही गले काटते रहे। अब हमें मुल्कफरोशी के इस गुनाह का कुफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) करना चाहिये। अंगरेज़ अब भी अपनी पुरानी दगाबाज़ी से काम लेंगे। वे हिन्दुओं को मुसलमानों के खिलाफ और मुसलमानों को हिन्दुओं के खिलाफ उभारने की कोशिश करेंगे। लेकिन भाइयो, उनके जाल और फरेबों में न फँसना। हिन्दू और मुसलमान भाइयो! अपने छोटे-छोटे तफरकों को भूल जाओ और मैदाने जंग में एक झण्डे के नीचे खड़े हो जाओ। जो भी शख्स इस कौमी जङ्ग की मुखालफत करेगा वह खुद अपने सर पर कुल्हाड़ी मारेगा और खुद-कुशी का गुनाह करेगा।"

इस टिप्पणी से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश की राज-नीतिक समस्या उस समय भी लोगों के सामने उतनी ही साफ थी कि जितनी आज है।

दिल्ली के घेरे के दिनों में क्रान्ति के नेताओं में आपस में प्रबल मतभेद हो गये थे। इसका संकेत 'पयामे आज़ादी' में प्रकाशित सम्राट बहादुरशाह 'ज़फर' की एक कविता के इस शेर से मिलता है—

कफस में है क्या फ़ायदा शोरो गुल से;
असीरो करो कुछ रिहाई की बातें।

## पाठक फांसी के तख्ते पर

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि 'पयामे आज़ादी' निस्सन्देह भारत का सर्वप्रथम राष्ट्रीय पत्र था। सर विलियम हावर्ड ने अपनी डायरी के दूसरे भाग में लिखा है कि "दिल्ली पर क़ब्ज़ा करने के बाद 'पयामे आजादी' के सम्पादक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मिरजा बेदारबख़्त के बदन पर सुअर की चरबी मलकर उन्हें फांसी दे दी गयी।" सर हेनरी काटन अपनी पुस्तक 'इण्डियन ऐण्ड होम मेमायर्स' में लिखते हैं कि "अंग्रेज़ों के दिल्ली पर क़ब्ज़ा करने के बाद वे सभी लोग फांसी पर लटका दिये जाते थे जिनके घरों में 'पयामे आज़ादी' का कोई अंक मिलता था।" दुनिया के अखबारी इतिहास में शायद किसी भी पत्र के पाठकों को पाठक होने के अपराध का ऐसा अमानुषिक दण्ड न मिला होगा!

जिस दिन हिन्दुस्तान आजाद होगा उस दिन वह मिरज़ा बेदारबख़्त और 'पयामे आज़ादी' की स्मृति रक्षार्थ समुचित प्रबन्ध करेगा।

× × ×

यों सन् १८५७ से पहले बङ्गला, गुजराती हिन्दी, उर्दू में अनेक समाचार पत्र प्रकाशित हो चुके थे। श्रीरामपुर से 'समाचार-दर्पण' (बङ्गला) सन् १८१८ ई० में, बम्बई से 'मुम्बई समाचार' (गुजराती) सन् १८२२ में, कलकत्ते से 'उदन्त मार्तण्ड' (हिन्दी) सन् १८२६ में, कलकत्ते से 'बंगदूत' (बङ्गला) सन् १८२९ में, दिल्ली से 'उर्दू अखबार' (उर्दू) सन् १८३३ में, बनारस से 'बनारस अख़बार' (हिन्दी) सन् १८४५ में और लाहौर से 'कोहनूर' (उर्दू) सन् १८५० में प्रकाशित हुए पर इन सबकी नीति केवल 'कम्पनी बहादुर' के अधिकारियों का यशोगान मात्र थी। देश की आजादी की तड़प से ये उतनी ही दूर थे जितना धरती से ध्रुवतारा। इनका काम अंग्रेजी साप्ताहिक 'इंगलिशमैन' से (जो बाद में दैनिक हो गया था) निरर्थक खबरें लेकर उनके भोंडे अनुवाद प्रकाशित कर देना भर था।

## बीसवीं सदी का आरम्भ

उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में कांग्रेस के जन्म के साथ साथ अनेक अंग्रेज़ी और देशी भाषा के पत्र प्रकाशित हुए। इनमें 'हिन्दू', 'अमृतबाजार पत्रिका' (जो पहले बंगला में निकलती थी, एक दिन रातोंरात चोला बदलकर अंग्रेजी में निकलने लगी), 'ईवनिंग स्टैंडर्ड' आदि मुख्य थे। स्वर्गीय बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी प्रदीप' का प्रकाशन भी सन् १८८४ में प्रारम्भ हुआ। पहले यह सामाजिक क्रान्ति का प्रचारक था पर सन् १९०५ की बनारस कांग्रेस के बाद गरमदल की नीति का समर्थक हो गया। किसी ने भट्टजी से विनती की थी कि 'हिन्दी प्रदीप' के जीवन रक्षार्थ वे ज़रा 'सबुर' से काम लें। इस पर वयोवृद्ध भट्टजी ने तत्क्षण जवाब दिया था—'करेजवा मा आग लागी बा सबुर काहे करी!" इसी काल में हिन्दी में 'भारतमित्र', 'बिहार-बन्धु', 'सत्यादर्श', 'भारतबन्धु', 'मित्रविलास' और उर्दू में 'अवधपञ्च', 'अवध-अखबार' आदि पत्र प्रकाशित हुए जो कभी-कभी नरम राजनीति की ड्योढ़ी से उग्र राजनीति की खिड़की में झाँक लेते थे, पर जो ज्यादातर अपने 'होश हवास दुरुस्त रखकर' हुजूर कलेक्टर साहब से लेकर बादशाह सलामत तक के प्रति अपनी राजभक्ति दर्शाया करते थे।

बंग भंग (१९०५) और कलकत्ता कांग्रेस (१९०६) के बाद, जिसके सभापति स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी थे, भारतीय राजनीति के साथ साथ भारतीय पत्रकारी ने भी करवट बदली। इस समय के दिग्गज पत्रकारों में स्वर्गीय लोकमान्य तिलक, शिशिरकुमार घोष, अरविन्द घोष, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सुब्रह्मण्डम् अय्यर, बिपिनचन्द्रपाल, लाला लाजपत राय आदि नाम अधिक प्रमुख हैं। १९०६ से लेकर सन् १९१३ तक यानी बंग भंग से लार्ड हार्डिञ्जवाले बमकांड तक देश में उग्र या गरम राजनीति का बोलबाला था। उस समय अनेक राष्ट्रीय पत्रों ने देश के आगे बढ़े हुए क़दम को बल और सहारा दिया। उस समय उग्र राजनीति और राष्ट्रीय पत्रकारों में होड़ सी चल रही थी और इतिहास इसका साक्षी है कि राष्ट्रीय पत्र उग्र राजनीति से एक इञ्च भी पीछे नहीं रहे। उस समय जिन तीन समाचारपत्रों ने बंगाल के नवयुवकों को देश पर मर मिटने के लिए पागल बना दिया था वे थे—स्वर्गीय ब्रह्मबान्धव उपाध्याय द्वारा सम्पादित 'सन्ध्या', स्वर्गीय श्यामसुन्दर चक्रवर्ती द्वारा प्रेरित 'युगान्तर' और स्वर्गीय विपिनचन्द्र पाल तथा श्री अरविन्द घोष द्वारा सम्पादित 'वन्देमातरम्'। पहले दो पत्र बंगला में निकलते थे और तीसरा अंग्रेज़ी में। यह बात निर्विवाद है कि इन्हीं तीनों पत्रों ने बंगाल की राष्ट्रवादी राजनीति का निर्माण किया। सन् १९०८ में ये तीनों पत्र सरकार के हुक्म से बन्द कर दिये गये और इनके सम्पादकों पर मुकदमा चला। 'सन्ध्या' के सम्पादक ब्रह्मबान्धव की मुकदमे के दौरान में जेल में ही मृत्यु हो गयी। स्वर्गीय विपिनचन्द्र पाल ने भी इन्हीं दिनों अंग्रेजी में 'स्वराज्य' नामक मासिक पत्र निकला। इसके १९०८ के किसी अंक में प्रकाशित उनके एक लेख—'दि जेनेसिस आफ़ दि बाम्ब' (बमका मूल) ने देशव्यापी ख्याति पायी। इस लेख में विपिन बाबू ने उस समय के बमविस्फोटों को नैतिक दृष्टि से न्याय्य ठहराया था। उनका कहना था कि



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सरकार की दमन नीति और नवयुवकों की आकांक्षाओं को कुचलने की प्रवृत्ति ही इन बमकांडों के लिए उत्तरदायी है। 'स्वराज्य' के इस अंक को देश भर के नवयुवकों ने बड़े चाव से पढ़ा था।

उस समय के तीन महान नेता लाला लाजपतराय, लोकमान्य तिलक और श्री अरविन्द घोष अपने क्षेत्रों से शक्तिशाली पत्रों द्वारा राष्ट्रीयता की बुनियादों को सुदृढ़ बना रहे थे। लालाजी ने अंग्रेजी में 'पंजाबी' और उर्दू में 'वन्देमातरम्' पत्र का प्रकाशन शुरू किया। ये दोनों पत्र पंजाब में उग्र राजनीति के समर्थक थे। लोकमान्य तिलक अंग्रेजी में 'मराठा' और मराठी में 'केसरी' का सम्पादन कर रहे थे। बाद में स्वर्गीय पण्डित माधवराव सप्रे के अध्यवसाय से 'केसरी' का हिन्दी संस्करण भी 'हिन्दी केसरी' के नाम से प्रकाशित होने लगा। अरविन्दो बाबू का 'कर्मयोगिन्' अंग्रेजी और बंगला दोनों में प्रकाशित होता था। उनमें उग्र राजनीति की गहरी दार्शनिक और अध्यात्मिक विवेचना होती थी। यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि 'कर्मयोगिन्' में जिस राजनीतिक अध्यात्म का प्रतिपादन किया जाता था उसीने भारतीय राष्ट्रीयता की जड़ों को गहरे में ले जाकर जमाया। आज अरबिन्दो बाबू की राजनीति से भले ही कोई असहमत हो किन्तु उस समय की उनकी मूल्यवान देन से कौन इनकार कर सकता है?

## उर्दू 'पेशवा'

पंजाब में इसी जमाने में सरदार अजीत सिंह ( स्वर्गीय सरदार भगतसिंह के चाचा ) और सूफी अम्बाप्रसाद मिलकर 'पेशवा' नामक उर्दू पत्र निकाल रहे थे। उस जमाने की उग्र भारतीय राजनीति के आकाश के ये दोनों चमकते हुए सितारे थे। दोनों को सन् '१२-१३ के करीब अपने प्यारे स्वदेश से सदा के लिए विदा लेनी पड़ी! सरदार अजीत सिंह पिछले दिनों तुर्की में थे और सूफी अम्बाप्रसाद ने १९१५ में किसी भारतीय जेल में फाँसी के फन्दे से लटकने की अपेक्षा ईरानी हवालात में ही प्राण त्यागना अधिक अच्छा समझा। वे ब्राह्ममुहूर्त में समाधि लगाकर बैठ गये। जिस समय अंग्रेज अधिकारी ईरानी पुलिस से उनका चार्ज लेने पहुँचे तो सूफी जी बद्ध पद्मासन लगाये समाधि मुद्रा में स्थित थे। उनके प्राण कुण्डलिनी का चक्कर काटकर ब्रह्मरंध्र में प्रवेश कर चुके थे। उनकी लाश हमदान के पास दफन कर दी गयी। उनके मज़ार पर इकट्ठा होकर ईरानी मुसलमान आज भी उर्स किया करते हैं। उन बेचारों को नहीं मालूम कि उस समाधि के भीतर भारत का एक चोटी का पत्रकार और प्रमुख देशभक्त चिरनिद्रा में सोया हुआ है। इन दोनों देशभक्तों का पत्र 'पेशवा' राष्ट्रीय पत्रों की दुनिया में लासानी था। जिन लोगों को 'पेशवा' की पुरानी फाइल उलटने का मौका मिला है वे दावे के साथ कह सकते हैं कि उसके चुभते हुए कटाक्षों और मीठी चुटकियों के मुकाबले की कोई चीज आजतक भारत का कोई पत्र नहीं पेश कर सका।

सूफी अम्बाप्रसाद जितने बड़े सम्पादक थे उतने ही सुयोग्य संवाददाता भी थे। उनका दाहिना हाथ किसी दुर्घटना की भेंट चढ़ गया था, लेकिन अपने बाँएँ हाथ से वे नौ लिपियों में बड़ी आसानी से लिख लेते थे। १९१० ई० की बात है, अम्बाला डिवीजन का कमिश्नर लोगों पर तरह तरह के अत्याचार कर रहा था। सूफीजी 'अमृतबाजार पत्रिका' के विशेष संवाददाता बनकर अम्बाला पहुंचे। गूँगे और बहरे आदमी का स्वाँग भरकर उन्होंने कमिश्नर के यहाँ खाने की मेज पर से मक्खियाँ उड़ाने की नौकरी कर ली। कमिश्नर के पास बहुत से मातहत अफसर सलाह मशविरे के लिए आते थे जिनसे 'डाइनिंग टेबुल' पर गुप्त परामर्श होता था। एक गूँगे, बहरे, बिलल्ले आदमी के सामने बात करने में किसीको क्या हिचकिचाहट हो सकती थी! इधर इनकी बातें होती थीं उधर उनकी विस्तृत रिपोर्ट 'पत्रिका' में छपती थी। कमिश्नर हैरान था। महीने भर तक सूफी साहब ने 'पत्रिका' के विशेष संवाददाता का कार्य किया। अपना यह दिलचस्प किस्सा वे बड़ा लुत्फ लेकर लोगों को सुनाया करते थे। कमिश्नर महोदय का महीने भर के बाद अम्बाला से तबादला कर दिया गया।

सूफी अम्बाप्रसाद और सरदार अजीत सिंह की त्रिमूर्ति में तीसरा नाम राजा महेन्द्रप्रताप का है। राजा महेन्द्रप्रताप सन् १९१२-१४ में वृन्दावन से 'प्रेम' नामक पत्र का सम्पादन कर रहे थे। 'प्रेम' भी अपने समय के उग्र राजनीति का सन्देश सुनानेवालों में प्रमुख माना जाता था। राजा साहब के अपने विशेष राजनीतिक दर्शन की उस पर छाप रहती थी।

## हिन्दी 'कर्मयोगी'

यों तो हिन्दी पत्रों में इस समय हिन्दी 'केसरी', 'अभ्युदय', हिन्दी 'बंगवासी', 'भारतमित्र' आदि प्रमुख थे, पर उग्रतम राजनीति के प्रचार में हिन्दी 'कर्मयोगी' का स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अभूतपूर्व और गौरवपूर्ण रहा है। स्वर्गीय लाला लाजपत-राय, लोकमान्य तिलक और अरविन्द बाबूके प्रोत्साहन से पण्डित सुन्दरलालजी ने प्रयाग से सन् १९०८ में 'कर्मयोगी' का प्रकाशन आरम्भ किया। शुरू में यह पाक्षिक रूप में निकला, पीछे साप्ताहिक हो गया। पहला अंक कुल ५०० ही छपा था, किन्तु तीसरे अंक तक ग्राहक संख्या आठ हजार से ऊपर पहुंच गयी और पहले दो अंकों का दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। हिन्दी जगत में शायद 'कर्मयोगी' से अधिक लोकप्रिय पत्र उस जमाने में दूसरा नहीं था। उसके लेखकों में स्वर्गीय बालकृष्ण भट्ट, राजा महेन्द्रप्रताप, श्री अरविन्द घोष, मौलाना हसरत मोहानी आदि थे। उस समय देश के राष्ट्रीय पत्रों में मराठी 'केसरी' को छोड़कर शायद 'कर्मयोगी' की ही ग्राहक संख्या सबसे अधिक थी। स्वर्गीय गणेश शंकरजी विद्यार्थी कहा करते थे—"मास्टरजी ने ( गणेशजी सुन्दरलालजी को इसी नाम से सम्बोधित करते थे ) 'कर्मयोगी' के द्वारा हजारों हिन्दी-भाषियों को कट्टर देशभक्त बना दिया।" स्व० भट्टजी का 'हिन्दी प्रदीप' भी उन दिनों कर्मयोगी प्रेस से ही छपने लगा था। सरकार 'कर्मयोगी' के बढ़ते हुए प्रभाव को सहन न कर सकी और यकायक सन् १९१० के शुरू में 'कर्मयोगी', कर्मयोगी प्रेस और 'हिन्दी प्रदीप' तीनों से तीन-तीन हजार की जमानत यानी कुल ९०००) की जमानत तलब की गयी। जमानत अदा करने का अर्थ या तो अपनी आवाज को नरम कर देना होता या जमानतें जब्त कराना, अतः दोनों पत्र और प्रेस बन्द कर देने का ही निर्णय करना पड़ा। अब तक अनेक पुराने लोगों के पास 'कमयोगी' की फाइलें सुरक्षित पड़ी हुई हैं और वे उन्हें अपनी बहुमूल्य संपत्ति समझते हैं।

## उर्दू 'स्वराज्य'

उसी ज़माने याने सन् १९०८-१९०९ में प्रयाग से 'स्वराज्य' नामक उर्दू साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह तेजस्वी पत्र लगभग साल भर ही जीवित रहा, पर इस नन्हीं-सी आयु में ही उसने भारत के राष्ट्रीय पत्रों में सम्भवतः सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया।

'स्वराज्य' के संस्थापक और सबसे पहले सम्पादक श्री शान्तिनारायण थे। कुल आठ अंकों का सम्पादन अभी उन्होंने किया था कि राजद्रोहात्मक लेख लिखने के अभियोग में वे गिरफ़्तार कर लिये गये और पाँच साल कड़ी कैद की सज़ा देकर अन्दमान भेज दिये गये। शान्ति नारायण जी के बाद ८-१० महीने 'स्वराज्य' जीवित रहा। सम्पादक के बाद सम्पादक आते और गिरफ़्तार होते रहे। श्री बाबू राम, श्री मुन्शीराम सेवक, महात्मा नन्दगोपाल श्री राम-चरण आदि आठ सज्जन 'स्वराज्य' सम्पादक की कुरसी पर बैठे। चार-चार, छै छै अंकों का सम्पादन करने के बाद ही वे गिरफ़्तार कर लिये जाते थे और जो सजाएं दी जाती थीं उन्हें सुनकर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आठ सम्पादकों में से दो को ७-७ साल, दो को १०-१० साल और चार को आजीवन कारावास की सजा मिली। फिर भी 'स्वराज्य' इसलिए नहीं बन्द हुआ कि उसके लिए सम्पादकों की कमी थी बल्कि सरकार ने प्रेस ही ज़ब्त कर लिया और दफ़्तर पर ताला लगा दिया। पत्रकारी की प्रतिष्ठा को क़ायम रखने के लिए जितनी कुर्बानी 'स्वराज्य' के सम्पादकों ने की वह भारत की राष्ट्रीय पत्रकारी के इतिहास की बेजोड़ घटना है। आजन्म कारावास की सजा पाये हुए उसके दो नवयुवक सम्पादकों की समाधियाँ अन्दमान में ही बनानी पड़ीं।

## 'बेंगाली'

उस जमाने के पत्रकारों में सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का नाम उल्लेखनीय है। उनके 'दि बेंगाली' नामक अङ्गरेज़ी पत्र ने अपने शैशव में उग्र राजनीति की उँगली पकड़कर चलने की कोशिश की थी पर सर सुरेन्द्र की राजनीति में परिवर्तन होने के साथ-साथ 'बेंगाली' भी टोडी दल का पत्र बन गया।

सूरत की कांग्रेस के बाद देश का गरम दल कांग्रेस से अलग हो गया था और उस पर फीरोजशाह मेहता, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सर शंकर नायर, श्री गोपालकृष्ण गोखले सर सत्येन्द्र प्रसन्न सिंह ( बाद में लार्ड सिनहा ) आदि नरम दली नेताओं की कांग्रेस का कार्य-विवरण 'बेंगाली' में इन शब्दों में प्रकाशित हुआ था—"दूसरे दिन के अधिवेशन में श्री सुब्बाराव पन्तुलु सैनिक सुधार सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करते हुए भाषण कर रहे थे कि खबर मिली कि गवर्नर महोदय अधिवेशन में तशरीफ ला रहे हैं। फौरन ही एक बड़ी कुर्सी सभापति डाक्टर भूपेन्द्रनाथ वसु के बराबर डलवा दी गयी। गवर्नर के आने पर सारा मजमा आदर प्रकाश के लिए खड़ा हो गया। डाक्टर वसु ने टैरिफ के प्रस्ताव को मुलतवी करके सर सुरेन्द्र को राज भक्ति का प्रस्ताव पेश करने की आज्ञा दी।"

प्रस्ताव पर बोलते हुए सर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'योर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



एकसिलेन्सी, फारमरली दि मोटो आफ़ दि इण्डियन पीपुल वाज़ दिल्लीश्वरोवा जगदीश्वरोवा ! नाउ दि इंडियन पीपुल हैव चेंज्ड इट टु लन्दनेश्वरोवा जगदीश्वरोवा ।' ( श्रीमन्, पहले भारतीय जनता का सिद्धान्त सूत्र 'दिल्लीश्वरोवा जगदीश्वरोवा था, अब उसे बदलकर 'लन्दनेश्वरोवा जगदीश्वरोवा' कर दिया है ।

कहते हैं कि सर सुरेन्द्र का व्याख्यान समाप्त भी न हो पाया था कि गवर्नर महोदय उठे और चल दिये । सर सुरेन्द्र की यही नीति 'बेंगाली' में भी प्रतिबिम्बित होती थी ।

## प्रथम महायुद्ध काल

पहले महायुद्ध के दरमियान और विशेषकर लखनऊ की कांग्रेस के बाद ( सन् १९१६ ) राष्ट्रीय पत्रों का तापक्रम फिर एक बार ऊपर चढ़ने लगा । यह जमाना होमरूल लीग के आन्दोलन का था । नये नये पत्र विद्युत गति से देश के वातावरण को विकम्पित करने लगे । स्वर्गीय मौलाना मुहम्मद अली अपना 'हमदम' और 'कामरेड' लेकर आये और मौलाना अबुलकलाम आजाद ने अपना 'अलहिलाल' निकाला, इन तीनों पत्रों ने मिलकर मुसलिम जनमत में एक तूफ़ान पैदा कर दिया । सन् '५७ के भयंमर दमन और नौकरशाही के विषाक्त प्रचार के कारण मुसलमानों में देश की राजनीति के प्रति जो एक उपेक्षा और उदासीनता की भावना आ गयी थी वह छिन्न-भिन्न हो गई और मुसलिम जनता एक अंगड़ाई लेकर उठ बैठी ।

भारतीय राजनीति के इस दौर में मिसेज़ बेसेन्ट का बोलबाला था । उनका पत्र 'न्यू इण्डिया' उस समय सचमुच नवीन भारत के निर्माण में तल्लीन था । स्वर्गीय श्री विपिनचन्द्र पाल ने 'न्यू इण्डिया' में एक बड़ी जोरदार लेखमाला लिखी थी जो बहुत पसन्द की गयी । किन्तु दिल्ली कांग्रेस के बाद ज्यों-ज्यों मिसेज बेसेन्ट और लोकमान्य में मतभेद बढ़ता गया त्यों-त्यों 'न्यू इण्डिया' का ध्येय केवल लोकमान्य का विरोध करना मात्र रह गया और लोकमान्य की मृत्यु के बाद वह प्रबल स्वर से गान्धी जी की राजनीति का विरोध करने लगा । तभी व्यंग से महाकवि अकबर ने लिखा था—

अब मिसेज़ बेसेन्ट नज़्मों में कहानी बन गईं,
राज हम पायें न पायें वो तो रानी बन गईं ।

भारतीय पत्रकारी क्षेत्र में सर फीरोजशाह मेहता और पण्डित मदनमोहन मालवीय का भी प्रमुख भाग रहा है । मालवीय जी ने 'लीडर' की और सर फीरोज ने 'बाम्बे क्रानिकल' की स्थापना की । दोनों का उद्देश्य इस समय भारत की उग्र राजनीति को नरमदली शिकञ्जे में कसवाना था । मालवीयजी को सहयोग मिला सर यज्ञेश्वर चिन्तामणि का और 'बाम्बे क्रानिकल' का उद्धार किया श्री० बी० जी० हार्निमैन ने । चिन्तामणि निर्भीक, साहसी और अपने सिद्धान्तों के पक्के थे । वे स्वभाव से हठी और ज़िद्दी थे, इसीलिये उनके जीवन की अन्तिम झांकी जरा कटु हो गई । श्री चिन्तामणि यदि धनी वर्ग की राजनीति को छोड़कर किसान मज़दूर वर्ग की राजनीति का समर्थन करते तो देश को कितना लाभ पहुँचता । वे ऐसा कर पाते तो भारतीय राष्ट्रीयता पत्रकारी की बेहद ऋणी होती । 'बाम्बे क्रानिकल' और 'लीडर' दोनों की क़िस्मत में राष्ट्रीयता का समर्थन करने का श्रेय तो बदा था, पर 'बाम्बे क्रानिकल' जिस रास्ते पर पांच वर्ष में पहुँच गया उसी रास्ते पर पहुंचने में 'लीडर' को ३५ बरस लग गये; फिर भी सुबह का भूला यदि शाम को भी घर पहुंच जाय तो उसे भूला हुआ नहीं कहते ।

इस युग के राष्ट्रवादी हिन्दी पत्रों में स्वर्गीय गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा संस्थापित एवं संपादित 'प्रताप', पण्डित सुन्दरलाल जी द्वारा संस्थापित संपादित 'भविष्य' और' पण्डित कृष्णकान्त मालवीय द्वारा सम्पादित 'अभ्युदय' प्रमुख थे । विद्यार्थी जी ने हिन्दी की राष्ट्रीय पत्रकारी को जो प्रतिष्ठा, परम्परा और गौरव प्रदान किया, जिस सेवा और कर्तव्य की भावना से अनेक कष्टों और अत्याचारों का स्वागत किया वे उन्हें निस्सन्देह हमारे राष्ट्रीय पत्रकारों में आदरणीय स्थान दिलाते हैं । उनकी निर्भीकता ने 'प्रताप परिपाटी' को जन्म दिया जिस पर 'सैनिक', 'नवशक्ति', 'कर्मवीर' आदि अनेक पत्र आत्मसम्मान के साथ चल रहे हैं । पण्डित सुन्दरलालजी का 'भविष्य' तिलक और गान्धी के सन्धियुग का प्रतीक था । उसने निर्भीकता के साथ साप्ताहिक और दैनिक रूप में ज्वलन्त राष्ट्रीयता का प्रचार किया और कई बार ज़मानतें देने के बाद अन्त में कानूनी शिकंजे का शिकार हो गया ।

## गांधी-युग

इसके बाद देश की राजनीति ने गान्धी-युग में प्रवेश किया और राष्ट्रीय प्रेम के मद से छके हुए अनेक पत्र सुनहला भविष्य लिये कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण हुए । इनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्वर्गीय बाबू शिवप्रसाद गुप्त द्वारा संस्थापित 'आज', पण्डित अम्बिका प्रसाद वाजपेयी द्वारा संस्थापित 'स्वतन्त्र', श्री मूलचन्द अग्रवाल द्वारा संस्थापित 'विश्वमित्र', स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा संस्थापित 'अर्जुन' आदि प्रमुख थे।

स्वर्गीय बाबू शिवप्रसाद गुप्त 'आज' के धनीमानी संस्थापक थे पर उनमें आजकल के पत्र स्वामियों जैसी अवसरवादिता या शोषण की प्रवृत्ति छू तक न गई थी। वे सिद्धान्तों के पक्के, कर्तव्यनिष्ठ, उदार चेता, त्यागवृती और संचालक होते हुए भी सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय पत्रकार थे। उनके संरक्षण और मार्ग प्रदर्शन में 'आज' ने विवेक पूर्ण, निष्पक्ष, निर्भीक और साथ ही संयत पत्रकारी की जो मर्यादा स्थिर की उसने हिन्दी पत्रकारी को एक अलब्ध गौरव और यश से मंडित कर दिया। यों आज हिन्दी जगत में पचासों समाचार पत्र दिखाई दे रहे हैं जो धन बल से यश और गौरव कमा रहे हैं, पर 'आज' अपने २५ वर्ष के विगत जीवन पर सन्तोष की दृष्टि डालकर दावे के साथ यह कह सकता है कि उसके गौरव के पीछे सेवा-बल है और उसके यश के पीछे है विवेक-बल।

'स्वतन्त्र' के संस्थापक-सम्पादक अम्बिका प्रसाद वाजपेयी निस्पृह सेवा भावना के ज्वलन्त प्रतीक हैं। 'स्वतन्त्र' उनके व्यक्तित्व की साख से चला, बढ़ा और चमका, किन्तु यह ब्राह्मण तपस्वी सिद्धान्तों का सौदा करना न जानता था। उसने निर्भीकता के साथ राष्ट्रीयता के यज्ञ में अपनी आहुति डाली। अन्त में तिजारती पत्रकारी के वरुण पाश में फंसकर दिवंगत हो गया।

श्री मूलचन्द अग्रवाल ने हिन्दी पत्रकारी को व्यवसायिक स्तर पर पहुँचाया। देर सबेर सभी पत्रों को उसी दिशा में जाना था, पर उसके श्रीगणेश करने का श्रेय श्री मूलचन्द जी को ही प्राप्त हुआ। 'विश्वमित्र' न केवल पनपा और चमका, बल्कि उसके तीन संस्करण प्रकाशित होने लगे।

होमरूल लीग, खिलाफत और असहयोग के जमाने के अन्य पत्रों में 'महाराष्ट्र', 'लोकमान्य', 'नवाकाल', 'सांझ वर्त्तमान', 'आन्ध्र पत्रिका', 'वसुमती', 'आनन्द बाजार पत्रिका', 'उर्दू प्रताप', 'उर्दू मिलाप', 'बन्देमातरम्', 'तेज', 'मदीना', 'जमीदार' आदि प्रमुख थे। ये समस्त समाचार पत्र एक विशद और व्यापक राष्ट्रीय पत्रकारी की नींवें पुख्ता कर रहे थे।

## अंग्रेजी 'इण्डिपेंडेण्ट

तिलक गान्धी सन्धि-युग के समय नई उठती हुई राष्ट्रीय उमंगों के पथ-प्रदर्शन के लिये स्वर्गीय पण्डित मोतीलाल नेहरू ने प्रयाग से अंगरेजी में 'इण्डिपेंडेंट' नाम का दैनिक पत्र आरम्भ किया। पण्डित जी के व्यक्तित्व और संरक्षण ने शीघ्र ही 'इण्डिपेंडेण्ट' को राष्ट्रीय विचारवालों का सर्वाधिक प्रिय पत्र बना दिया। अपने जमाने में वह समस्त उत्तर और मध्य भारत में पढ़ा जाता था। उसका छोटा सा जीवन काल और बलिदान पत्रकारी के इतिहास में अपनी अनोखी कहानी लिख गया है। जार्ज जोज़फ, रंगा अय्यर, देवदास गान्धी उसका सम्पादन करते हुए 'यकेब ददीगरे' पकड़े गये और जेल में ठूंस दिये गये। आकाश से टूटे हुए तारे की तरह 'इंडिपेंडेंट' क्षण भर चमककर अन्तर्धान हो गया और अपने पीछे छोड़ गया निर्भीकता, स्पष्टवादिता और बलिदान की एक उज्ज्वल परम्परा।

## गान्धी जी के पत्र

किन्तु राष्ट्रीय पत्रकारी को गान्धीयुग की सब से बड़ी देन 'यंग इण्डिया', 'हिन्दी नवजीवन' और 'गुजराती नवजीवन' हैं। गान्धी जी द्वारा सम्पादित इन पत्रों ने राष्ट्रीय पत्रकारी की दिशा ही बदल दी। इन्होंने राष्ट्रीय पत्रकारी को अन्तर्राष्ट्रीयता का गौरव दिलाया। दुनिया का कोई ऐसा देश और कोई ऐसा कोना न था जहां 'यंग इंडिया' के अङ्कों की अत्यन्त उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा न की जाती रही हो। गान्धीजी ने हमारी राष्ट्रीय पत्रकारी को सिद्धान्त की दृढ़ भावना, ईमानदारी, सचाई, विवेक, संयम, परख आदि अनेक गुणों से विभूषित किया। उन्होंने पत्रों के अन्दर समाचार और विचार—इन दोनों धाराओं का समन्वय किया। जब हमारे अच्छे से अच्छे समाचार पत्र केवल विदेशी पत्रों की नकल करने में ही 'स्टैन्डर्ड' की ऊंचाई समझते थे, गान्धी जी ने उक्त पत्रों के कलेवर में भारतीय आत्मा की प्रतिष्ठा की। उसे नये मूल्य और नयी कसौटियाँ दीं। उन्होंने अखबारनवीसी को विज्ञापनबाज़ी के दूषित संसर्ग से मुक्त करने की चेष्टा की। भारत की राष्ट्रीय पत्रकारी के लिए इससे अधिक गौरव की बात और क्या हो सकती थी कि पत्रकारी के आदर्शों की रक्षा करते हुए ही महात्मा गांधी ने जेल-यात्रा की। १२ मार्च १९२२ को वे 'यंग इण्डिया' में प्रकाशित अपने तीन लेखों के लिए गिरफ्तार किये गये और १८ मार्च को उन्हें ६ वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के कारावास का दण्ड मिला।

देश के अन्य प्रमुख राष्ट्रीय पत्रों में मद्रास का 'हिन्दू' नरम-गरम संयत नीति का प्रतिपादक रहा है। उसके पहले सम्पादक श्री सुब्रह्मण्य अय्यर, कांग्रेस के प्रारंभिक काल के प्रतिभावान नेता थे। पहली कांग्रेस में पहला प्रस्ताव पेश करने का गौरव उन्हींको प्राप्त है। पर 'हिन्दू' देश की गरम विचार धारा का साथ न दे सका और १९२१ तक उसकी नीति स्वाधीन पत्रकार की तटस्थ नीति रही। बाद में श्री कस्तूरी रंगा अयंगर के सम्पादन में उसमें कांग्रेस के पंच बहिष्कारों की भी संयतरूपेण चर्चा होने लगी। उनकी मृत्यु के बाद स्वराजदली रंगस्वामी अयङ्गर उसके सम्पादक हुये। रङ्गस्वामी कांग्रेस के ठेठ दक्षिणामुखी पुरोहित थे और उसी नीति का पालन 'हिन्दू' भी करता रहा।

## असहयोग काल के अन्य पत्र

असहयोग-कालके अन्य पत्रों में स्वर्गीय श्री श्यामसुन्दर चक्रवर्ती का 'सर्वेण्ट', स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरंजन दास का 'फारवर्ड', स्वर्गीय श्री टी० प्रकाशम् का 'स्वराज्य', बाटलीवाला का 'वायस आफ इण्डिया', स्वर्गीय जे० एम० सेनगुप्त का 'एडवान्स', श्री राजेन्द्रप्रसाद की प्रेरणा से प्रकाशित होनेवाला, 'सर्चलाइट' और 'देश', श्री सदानन्द का 'फ्री प्रेस जर्नल', हार्निमेन का 'बाम्बे सेण्टिनल', श्री घनश्यामदास बिड़ला का 'हिन्दुस्तान टाइम्स' आदि अपने अपने क्षेत्र और अपने अपने वक्त में अत्यन्त प्रमुख रहे हैं और हैं। इन सब पत्रों के सम्पादकों में स्वर्गीय श्यामसुन्दर चक्रवर्ती निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ और पत्रकारी के आदर्शों के उज्वल प्रतीक थे। वयोवृद्ध श्यामबाबू में त्याग, सहिष्णुता और बलिदान के वे सभी गुण मौजूद थे जो आजादी को सर्वोपरि समझनेवाले किसी भी गुलाम देश के पत्रकारों में होने चाहियें। यह हमारे लिए कितनी ग्लानि और लज्जा का विषय है कि अपने ही विरोधी मतवाले देश भाइयों के षड्यंत्र से श्यामबाबू को 'सर्वेण्ट' का प्रकाशन बन्द कर देना पड़ा और स्वयं दारुण निर्धनता में प्राण त्यागने पड़े। राष्ट्रीय पत्रकारी के आकाश में श्याम बाबू अपने असीम त्याग के बल से ध्रुवतारे के समान स्थित रहेंगे। उनका समस्त जीवन ऋषि सुलभ त्याग और तपस्या का जीवन रहा। श्री बी० जी० हार्निमेन ने विदेशी होते हुए भी भारत की राष्ट्रीय पत्रकारी के लिए जो कष्ट उठाये और जितना त्याग किया उसके लिए हमारा मस्तक सदैव इस वृद्ध तपस्वी पत्रकार के चरणों में झुकेगा।

इसके बाद लाहौर (कांग्रेस सन् १९३०) से लेकर रामगढ़ कांग्रेस (सन् १९४०) तक का समय राष्ट्रीय पत्रकारी के इतिहास में फलने फूलने और फैलने का समय है। इस काल में शब्दशः हजारों पत्र हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, बंगला, गुजराती और भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं में दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्रों के रूप में प्रकाशित होने लगे। देशी राज्यों से भी दर्जनों पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हो गया। इस युग में गान्धी जी के तीन पत्र 'हरिजन', 'हरिजन बन्धु' और 'हरिजन-सेवक', 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' की कमी पूरा करने के लिए प्रकाशित होने लगे। स्वर्गीय महादेव देसाई इनके सम्पादक थे।

यह चर्चा अधूरी रह जायगी यदि हम 'माडर्न रिव्यू' का जिक्र न करें। संसार के मासिक साहित्य में 'मार्डन रिव्यू' का स्थान बहुत ऊँचा है। ऊँचे से ऊँचे देशी और विदेशी लेखकों, कवियों, इतिहासकारों, दार्शनिकों का जितना सहयोग 'मार्डन रिव्यू' को प्राप्त हुआ उतना हिन्दुस्तान के किसी दूसरे पत्र को कभी नसीब नहीं हुआ। रामानन्द बाबू की सम्पादकीय टिप्पणियां अनोखी चीज होती थीं। हजारों नवयुवक उन टिप्पणियों को पढ़ पढ़कर पक्के राष्ट्रवादी बन गये।

कांग्रेस ने जब अपने मन्त्रिमंडल बनाये तब से राष्ट्रीय पत्रकारी ने दो निश्चित दिशायें पकड़ ली हैं—

(१) थोड़े से पत्र, जिन्हें विविध राष्ट्रीय दल या पार्टियों का संरक्षण प्राप्त है, प्रकाश में आये हैं और प्रमुख बने हैं।

(२) पत्रकारी का क्षेत्र, जिसमें प्रमुख राष्ट्रीय पत्र भी शामिल हैं, बहुत कुछ 'कमर्शलाइज्ड' (तिजारती) हो गया है। इन पत्रों के सम्पादकों को अपने धनी मालिकों के आदेशों के अनुसार सम्पादकीय नीति का संचालन करना पड़ता है।

अब समाचार पत्र केवल प्रचार के साधन नहीं रहे, न आदर्श और सिद्धान्तों के प्रतिपादक ही रह गये हैं। वे अब शक्ति (पावर) हथियाने के औज़ार बनाये जा रहे हैं फिर चाहे वे उपर्युक्त पहले समूह के पत्र हों या दूसरे समूह के। राष्ट्रीय पत्रकार, जिन्हें पहले तपस्वियों का पद प्राप्त था और त्याग जिनके जीवन का आदर्श था, अब केवल दिमागी मजदूर रह गये हैं। दूसरों की आजादी के लिए प्रयत्न करनेवाले स्वयं गुलामी के बन्धन में बँध गये हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पत्रकारी पूंजीवाद के पाश में फँसती जा रही है। लार्ड बीवरब्रुक और विलियम हार्स्ट की तरह भारतीय सेठ साहूकार भी पत्रों की दुनिया पर अपनी विजय-पताका फहराते जा रहे हैं। हमारी राष्ट्रीय पत्रकारी, जिसकी संस्थापना और संवर्धना में सैकड़ों त्यागव्रतियों ने अपने जीवन की आहुति डाली थी आज पूँजीपतियों के चरणों पर नत मस्तक है। जो थोड़े से स्वाभिमानी पत्रकार अपने पैरों पर खड़े होने की हिम्मत करते हैं वे या तो होड़ का शिकार हो जाते हैं या उन्हें विवश होकर गन्दे, भद्दे और अश्लील विज्ञापन छापकर आमद खर्चे का मीजान मिलाना पड़ता है।

व्यवसायी समाचार पत्रों की यह विशेषता है कि जब सरकारी आतंक होता है तो लाट साहब के चरणों में सर झुकाते हैं और जब कांग्रेस की जय ध्वनि सुनाई देती है तो गांधीजी और जवाहरलालजी को माला पहनाते हैं। मिशनरी पत्रकार राष्ट्रीयता की जिस भावना को देश के निम्न से निम्न स्तर वर्ग तक पहुंचाना चाहते थे उसे भी बड़े कौशल के साथ इन्होंने रोक दिया है। जनता को ये लोग उसी हद तक उठाना चाहते हैं जिस हद तक इनके व्यक्तिगत और श्रेणीगत स्वार्थ सुरक्षित रहें। पत्रों का स्तर भी, बावजूद जबर्दस्त व्यापारिक लाभ के, ऊँचा करने का सच्चा उद्योग ये पूँजीपति नहीं कर रहे हैं। पण्डित जवाहरलालजी के शब्दों में—"देश में जिस वक्त जिन्दगी और मौत की लड़ाई चल रही थी उस समय हमारे समाचार पत्र सरकारी विज्ञापन छापने में लगे हुए थे।...इस युद्ध में सबसे ज्यादा मुनाफा या तो चोर बाजारवालों ने कमाया या फिर उनसे उतरकर अखबारवालों ने। हमारे पत्रों में अब तक निम्न श्रेणी की दलित जनता के लिए कोई बात नहीं होती वे केवल मध्यवर्ग की आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं।...हमारे पत्रों का स्तर विलायती पत्रों की तुलना में चौथे-पांचवें ग्रेड का होता है।' (इलाहाबाद जर्नलिस्ट एसोशियेशन के सामने २८ जून सन् ४५ का भाषण)

आज सती पत्रकारी कुलटा व्यावसायिकता के पंजे में फँसी छटपटा रही है। है पत्रकारों में साहस कि वे इस सती का उद्धार कर सकें? इस प्रश्न का जो उत्तर हमें मिलेगा उसे सुनकर मिरजा बेदारबख्त, सूफी अम्बा प्रसाद, ब्रह्मबान्धव उपाध्याय, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती और गणेशशंकर विद्यार्थी की स्वर्गस्थ आत्माएँ ग्लानि और लज्जा से क्षुब्ध हो जायँगी।

कारण स्पष्ट है। आज पत्रकारी के क्षेत्र में लोग रोजी की तलाश में आते हैं सेवा की भावना से नहीं। देश की आजादी नहीं कुटुम्ब का पालन उनका लक्ष्य होता है। पर हम यह मानते हैं कि इन अबोधों को भी एक दिन अपनी शक्ति का बोध होगा। जगह जगह पत्रकारों के संघटन स्थापित हो रहे हैं। ये संघटन शक्तिशाली बनते जायँगे और जिस तरह देश की दूसरी शक्ति श्रमिक वर्ग के हाथों में देर-सवेर आयेगी उसी तरह पत्रकारी के क्षेत्र पर भी सच्चे पत्रकारों की सत्ता स्थापित होगी। पर उस दिन को निकट लाने के लिए पत्रकारों को अपना संघटन अधिक से अधिक दृढ़ बनाना होगा।*

---

*सन् १९३७-४५ के राष्ट्रीय पत्रों की हमने विस्तृत चर्चा करना उचित नहीं समझा कारण यह चर्चा जरा कटु हो जाती और वह इस लेख के प्रसंग के बाहर होती। सन् '४२ के अगस्त आन्दोलन के बाद राष्ट्रीय पत्रों ने जबर्दस्त दमन का सामना किया। उनमें 'नेशनल हेराल्ड', 'सैनिक', 'प्रजा-सेवक', 'फ्री प्रेस जर्नल' आदि मुख्य हैं। गान्धीजी का आदेश मानकर जिन कतिपय राष्ट्रीय पत्रों ने अपना प्रकाशन स्थगित किया उनमें 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'प्रताप', 'नैशनल हेराल्ड', 'राष्ट्रवाणी', 'सारथी' आदि पत्र प्रमुख थे।

—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# एक सवाल ?

श्री चन्द्रिकासिंह 'करुणेश'

( १ )

कँपकँपी-ठिठुरन लेकर साथ
आ रही थी जाड़े की रात,
और फिर वह जाड़ा भी माघ,
माघ में वह उमड़ी बरसात।

( २ )

कई दिन के बरसे कुछ मेघ,
थके से करते थे आराम,
खुल रहा था कुछ कुछ आकाश
मुझे बाहर लाई थी शाम।

( ३ )

अकेला मैं था मेरे साथ—
अकेलापन-हरदम का मीत,
गुनगुनाते जाते थे प्रान-
यही अपने कुछ अटपट गीत।

( ४ )

अचानक अंधकार को चीर,
दृगों में चुभा ज्योति का तीर,
और उस तक जाने के लिये,
प्राण, पग दोनों हुये अधीर।

( ५ )

ले गई बेचैनी तत्काल,
वहाँ का था हर चित्र विचित्र,
खुले बन्दी भावों के पंख,
कल्पना उठी नवीन पवित्र।

( ६ )

नयी सी कब्र, कब्र पर दीप,
दीप पर फैला अञ्चल जीर्ण-
बचे चिथड़े से तन को ढँके,
वहीं थी कोई अबला शीर्ण।

( ७ )

नयन में ज्वाल, ज्वाल में नीर,
नीर में उमड़ा था अनुराग,
राग भी कौन, कि सचमुच अरे !
धरे हों मानो रूप विहाग।

( ८ )

लग रहा था कुछ ऐसा मुझे.
कि अब होगा जग डाँवाडोल,
परिस्थिति थी कुछ ऐसी विषम,
सका मैं वहाँ ज़बान न खोल।

( ९ )

बिना पूछे ही वह कह उठी,
"इसी में सोया पूत सईद—
पुलिस से निज गृह रक्षा हेतु
बयालिस में यह हुआ शहीद।"

( १० )

एक घर की रक्षा के लिए,
दिया इस माँ ने एक जवान"
कह रहा था कोई उर-बीच—
"देश अपना विस्तीर्ण महान"

( ११ )

दृगों में भारत माँ का चित्र,
खिंचा मैंने पूछा तत्काल,
"बता माँ ! आज़ादी के लिये
चाहिये तुझको कितने लाल ?"

यही है कवि का एक सवाल।

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# गान्धीजी से महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

## बुद्धियुक्त अहिंसा का अर्थ

प्रश्न—कांग्रेस की आ० इं० समिति ने रचनात्मक कार्य के बारे में यह प्रस्ताव पास किया है :—

"हिन्दुस्तान के लोगों में राजनैतिक जागृति पैदा करने के लिए, उन्हें आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी और आज़ाद हिन्दुस्तान का राजकाज चलाने के लायक बनाने के लिए उनका जीवन के सभी क्षेत्रों में बड़े-से-बड़े पैमाने पर संगठन होना ज़रूरी है। यह सङ्गठन महात्मा गांधी के पन्द्रह विभागोंवाले रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा और अहिंसा के बुद्धियुक्त स्वीकार के द्वारा परिणामकारण रीति से आगे बढ़ सका है। इसलिए यह कमेटी अपनी सभी मातहत कमेटियों और कांग्रेसजनों को हिदायत देती है कि वे रचनात्मक कार्यक्रम करते रहें और उसपर अमल करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करें।"

इसमें 'अहिंसा के बुद्धियुक्त स्वीकार' या 'अहिंसा की ज्ञानयुक्त दृष्टि' के बारे में अनेक तर्क किये जा रहे हैं। कहा जाता है कि "अहिंसा को व्यवहार्य बनाने के लिए उसे प्रगतिशील और ज्ञानयुक्त बनाना होगा। ऐसी प्रगतिशील और ज्ञानयुक्त अहिंसा में कई बातें आ सकती हैं, जैसे कि मिलकियत का नाश करना, सरकारी मुलाजिमों या और किसी को पकड़कर कोठरी में बन्द कर देना, भूमिगत रहना, फरार होना वगैरा। अगर हमने किसी की जान न ली और किसी को चोट न लगने दी, तो अहिंसा का पूरी तरह पालन हो जाता है।" यह भाव सुधारने के लिए आ० इं० कां० क० ने विधायक कार्यक्रम के बाद 'और अहिंसा के बुद्धियुक्त ( ज्ञानयुक्त ) स्वीकार' ये शब्द हेतुपूर्वक जोड़ दिये हैं।

यह तर्क कहां तक सही है ?

उत्तर—मेरी दृष्टि में आल इन्डिया कांग्रेस समिति का अर्थ स्पष्ट है। रचनात्मक कार्य अगर अहिंसा की दृष्टि से अहिंसा के ज्ञान के साथ न किया जाय तो उसका स्वराज दिलाने का जो बड़ा नतीजा है वह हिन्दुस्तान को नहीं मिल सकता। ऐसे तो हमारे देहातों में काफी काम होते आये हैं। लेकिन उनके करने में न तो अहिंसा का ज्ञान था और न अहिंसा की दृष्टि ही। इसलिए नतीजा इतना ही निकला कि हम एक हद तक पैसे की दृष्टि से बिलकुल कङ्गाल नहीं बने थे—जैसे कि आज हैं। लेकिन जब विदेशी हमला शुरू हुआ तब हम देहाती धन्धों को एक के बाद एक छोड़ने लगे और अस्पृश्यता निवारण, आदिवासियों की तरक्की करना, स्त्रियों का हक पुरुषों जितना ही होना, तालीम लेना, गरीब और धनी का भेद मिटाना वगैरा तो करते ही नहीं थे। अहिंसा की दृष्टि जब पैदा हुई और मुल्क को सचमुच स्वतन्त्र बनाने का एक ही राजमार्ग अहिंसा और सत्य को स्वीकार किया गया तब हमारी दृष्टि की मर्यादा हिन्दुस्तान तक या कहो जगत तक चली गई ; और हिन्दुस्तान परतन्त्र होते हुए भी हिन्दुस्तान की प्रतिष्ठा सारे जगत में फैल गई। मेरा अचल विश्वास है कि अगर हम ऊपर के सवाल में जो बताया गया है उसके मुताबिक मनुष्य के नाश को छोड़कर दूसरी सब अहिंसा की मर्यादा भूल जायं तब अहिंसा अहिंसा ही नहीं रहेगी, उसमें से सत्य चला जायगा, उसकी व्यापकता मिट जायगी और स्वराज्य कभी मिल नहीं सकता। अहिंसा के अर्थ में अगर दूसरों की मिलकियत का नाश करना, सरकारी मुलाज़िमों से परहेज करना, ज़मीन के भीतर छिप जाना वगैरा आ सकता है तो करोड़ों लोगों को हम न तो जगा सकते हैं, न उनको निर्भयता की सच्ची तालीम ही दे सकते हैं। अगर हम अहिंसा से काम करना चाहते हैं तो मेरी मर्यादा को स्वीकार करना अत्यन्त आवश्यक है। अगर हम उस मर्यादा को फेंक देते हैं तो हमारे लिए अहिंसा को छोड़ना और लोगों को हिंसा के लिए तैयार करना यही एक रास्ता है। वह रास्ता निकम्मा है ऐसा तो इस दारुण युद्ध ने साबित कर दिया है। हिंसा का मार्ग खुले तौर से लेकर हम लोगों को और जगत को धोका देने से बच जाते हैं इतना तो फायदा पाते हैं।

## नई तालीम में स्वावलंबन

नई तालीम का अर्थ है उद्योग के मार्फत तालीम देना। वह मूलोद्योग आस-पास के वातावरण, उपज इत्यादि को देखकर चुनना होगा। उदाहरणार्थ, जहाँ कपास नहीं उगती वहाँ बाहर से कपास लाकर खादी को तालीम का जरिया बनाना ठीक न होगा।

अगर खादी का उद्योग लेकर नई तालीम स्वाश्रयी सिद्ध की जा सके तो वही चीज दूसरे उद्योगों पर भी लागू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



की जा सकती है। तालीम स्वाश्रयी बनाने का अर्थ यह है कि जैसे आज के सरकारी स्कूलों में लड़के घर से खाना खाते हैं, कपड़े पहनते हैं उसी तरह नई तालीम के स्कूलों में भी लड़कों के खाने-पहनने का भार माता-पिता पर रहेगा। आजकल के स्कूलों में किताबों पर और फीस इत्यादि पर जो खर्च होता है वह बच जावेगा।

नई तालीम में तो किताबों को स्थान ही न होगा, रूई, धुनकी, तकली इत्यादि सामान पर शुरू में थोड़ा खर्च करना पड़ेगा उसके बाद तो जो खर्च निकालना होगा वह केवल शिक्षकों की तनख़्वाह और आवश्यक स्टेशनरी तथा कोई चपरासी इत्यादि जो भी रखना पड़ें बस उनका ही होगा।

फ़र्ज़ कीजिये कि एक स्कूल में ३० लड़के हैं। वे खेत में कपास लाने से लेकर सूत निकालने, कपड़ा बनाने तक की सब क्रियायें अपने हाथों से करेंगे। हर एक क्रिया के मार्फत शिक्षक उन्हें ज्ञान देगा जिससे कि उनकी बुद्धि दिन प्रति दिन अधिक तेजस्वी होती जावेगी। परिणाम में वह लड़के खादी की क्रियाओं में नित्य नई शोधें किया करेंगे जिससे कि खादी का उद्योग अधिक उपजाऊ और मूल्यवान बनता जाएगा।

लड़कों का बनाया हुआ कपड़ा उनके माता पिता मुँह-माँगे दाम पर ले जावेंगे। शिक्षक का यह काम होगा कि लड़कों के द्वारा वह उनके माता-पिता में जागृति पैदा करे जिससे कि वे विदेशी और मिल के कपड़ों को छुएँ भी नहीं। वस्त्र-स्वावलम्बन और खादी का वातावरण पैदा हो। हमें अपना वातावरण पैदा करना ही होगा। आज जहां खादी पहुंची है उसके लिए हमें वातावरण पैदा करना ही पड़ा था। परिणाम में आज खादी को कोई उखाड़कर फेंक नहीं सकता। वही चीज नई तालीम के बारे में भी कही जा सकती है। शिक्षक अगर आवश्यक वातावरण पैदा नहीं कर सकता तो नई तालीम स्वाश्रयी नहीं बन सकती, नई तालीम चल ही नहीं सकती। अगर वह वातावरण बनाने में, लड़कों की बुद्धि को तेजस्वी करने में सफल होता है तो शुरू से लेकर आखिर तक का नई तालीम का सारा-का-सारा खर्च लड़कों के बनाए कपड़ों की कीमत में से निकल आवेगा।

लड़के हमारे स्कूलों से निकलने के बाद कमाई करने के लायक होंगे। हम उन्हें काम देने का वचन नहीं देते। सरकारी स्कूलों में बड़ा खर्च करके तालीम पानेवालों को भी सरकार नौकरी देने का वचन नहीं देती। मगर हमारे लड़के सरकारी स्कूलों से निकले हुए लड़कों की अपेक्षा अधिक तेजस्वी होंगे और आसानी से अपने लिए धन्धा ढूंढ़ लेंगे।

याद रखना है कि सरकारी मदरसों के लिए जब वातावरण पैदा करना पड़ा था तब तो रास्ता होते हुए भी कुछ कष्ट करना पड़ा था। हमें जो वातावरण पैदा करना है वह पुनरुद्धार है। जो मिटाया गया है उसको नए सिरे से और नए ढङ्ग से उठाना है और उसको हम स्वराज्य पाने का शान्तिमय तरीका समझते हैं। इस तरह से करना हमें आसान होना चाहिए। आसान नहीं लगता है क्योंकि हमने गांवों में सही दृष्टि से और सच्चा प्रयोग ही नहीं किया। अब नई तालीम मिली है। उसमें यदि यह चमत्कार और शक्ति नहीं है तो है क्या?

बचपन से लड़के लड़कियाँ हमारे हाथों में आवें और सात वर्ष तक या उससे भी अधिक साल तक हमारे मार्फत उद्योग के जरिए शिक्षण पाएँ इसका अर्थ हम पूरा ग्रहण नहीं कर पाते। आधुनिक शिक्षण हमें दिया जाता है कि शिक्षण स्वावलम्बी हो ही नहीं सकता। उसीसे हमारे मन में दुविधा पैदा होती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि नई तालीम अगर स्वावलम्बी न हो तो शिक्षकवर्ग उसे नहीं समझते। मेरे नजदीक दूसरे लक्षणों में से स्वावलम्बिता नई तालीम का एक बड़ा अंग या लक्षण है।

अगर यह बात लड़के लड़कियों के लिए सही है तो प्रौढ़-शिक्षण में तो स्वावलम्बिता होनी ही चाहिए। ऐसा मानना कि प्रौढ़ को शिक्षण की बात ही समझाना मुश्किल है तो फिर मुझे कहना पड़ेगा कि यह पुरानी भ्रमणा (भ्रान्ति) है। हमारी नई तालीम में तीन आर (3 R's) का सिखाना प्रौढ़ तालीम का लक्षण भी नहीं है। प्रौढ़ तालीम का अर्थ है कि प्रौढ़ों को उनकी भाषा के मार्फत हम उन्हें शुद्ध और सामाजिक जीवन का सब शिक्षण देंगे। अगर यह स्वावलंबी आसानी से न बनें तो मेरी दृष्टि में उस शिक्षण में बड़ा दोष है। यह भी भूलना नहीं चाहिए कि नए शिक्षण में सम्पूर्ण सहयोग आरम्भ में ही अमल में लाना चाहिए। सहयोग का पूरा अर्थ जो जानते हैं उनके मन में स्वावलंबिता का प्रश्न उठ ही नहीं सकता।

इसके बाद नीचे के प्रश्नों के बापूजी ने उत्तर दिए—

प्रश्न—आज सरकारी मदरसों में वे ही बच्चे पढ़ने जाते हैं जिनके माता-पिता उनके खाने पहनने का भार उठा सकते हैं। नई तालीम के बारे में हमारी यह अपेक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है कि गाँव के सब बच्चे स्कूल में आएँ। उनमें से बच्चे ऐसे भी होंगे जिनके घर में ज़रूरी खाना या कपड़ा नहीं है। इस बारे में नई तालीम की क्या जिम्मेदारी है?

उत्तर—मैंने आदर्श बताया है कि खूराक और कपड़े मां-बाप देंगे। आज लड़के खाते हैं, कपड़े भी पहनते हैं। जितना मां-बाप खर्चते हैं उतना देंगे। हम जो खूराक देंगे उसमें शास्त्र होगा। उसमें दूध के कारण खर्च बढ़ेगा। वह खर्च हमारी पाठशाला पर चढ़ेगा। लेकिन जब हम माता-पिता को विद्यार्थी की खूराक का खर्च उठाना सिखाते हैं तो वे दूध भी देंगे। जो बिलकुल ग़रीब हैं ऐसे कम होंगे लेकिन सचमुच हैं तो हम सब खर्च उठा सकते हैं।

कपड़ों के बारे में मैं तो निश्चिन्त रहूँगा क्योंकि लड़कों लड़कियों के लिए मेरा आदर्श कपड़ा लंगोटी या जैसा कपड़ा बेबी पहनती है वह है—वह चाहे छोटा सा कच्छ ही हो। हम उसे आराम से बना सकते हैं। जब लड़की की छाती उमड़ती है तब उसके लिए छाती का कुछ करना पड़ेगा। यह है दक्षिण का छाती का रूमाल। जाड़े के दिनों में अलग बात है। उसके लिए ओढ़ने का नहीं दें लेकिन पहनने का दें। यह सब हमारी मिल्कियत होगी और उसे उसी उम्र के लड़के-लड़कियाँ पहनते होंगे। याद रखा जाय कि ये लड़के-लड़कियाँ करीब करीब हमारे ही पास रहेंगी। यह सब खर्च हम आराम से उठा सकते हैं। और धनिक के कपड़े हमारी दृष्टि से एक ही होंगे। साफ और शरीर में ठीक बैठें ऐसे कपड़े होंगे तो सुशोभित भी लगेंगे जैसे स्वच्छ और सुघड़ बिलकुल नंगे बच्चे लगते हैं।

प्रश्न—( क ) वस्त्र-स्वावलंबन का वातावरण तैयार हुआ तो कपड़े ज़्यादा प्रमाण में खरीदे जायेंगे क्या?

( ख ) माँ-बाप अगर खरीदना भी चाहें तो मुँह मांगे दाम पर ले लेने की आर्थिक योग्यता उनमें है क्या?

उत्तर—मुँह मांगे दाम का अर्थ अपने स्थान से बाहर नहीं करना। उसका अर्थ इतना ही है कि आज उसे लोग छूते भी नहीं लेकिन अपने लड़कों के बनाए सिलाए कपड़े हम जो योग्य दाम रखें उससे उठा लेंगे। बड़ा नफा करने की बात तो कहीं भी नहीं आवेगी। एक-एक चीज़ के दाम जुदा-जुदा होंगे लेकिन सेर राश तो हमारी दोनों बाजू करीब-करीब एकसी होंगी। शौक़ के माल का दाम ज़्यादा रहेगा तो भी प्रमाण में वह सस्ता होगा। जो देंगे वे खुशी से देनेवाले होंगे। जब वस्त्र स्वावलंबन आएगा तब तो सब खादी-मय होंगे और खुशी से खादी मय होंगे। उस युग में तो नई तालीम पराकाष्ठा को पहुंच चुकेगी। मुझे कोई कुछ पूछेगा भी नहीं अगर मेरे ही जीते यह समय आ गया।

मेरे सब उत्तर चालू समय के लिए, चालू स्थिति के लिए हैं।

प्रश्न—नई तालीम के लिए शिक्षकों को तैयार करने का जो बड़ा क्षेत्र आज हमारे सामने है उसमें किस दिशा में हमें स्वावलंबिता का प्रयोग करना है।

उत्तर—तुम्हारा प्रश्न है जो शिक्षक बनने आए हैं वे कैसे स्वावलंबी बनें?

अगर छोटे-छोटे विद्यार्थी स्वावलम्बी बन सकते हैं तो बनना ही है। प्रश्न सिर्फ अपने खाने-पीने और शिक्षण का खर्च उठाने का है। मेरा कहना है कि शिक्षक यदि खुद स्वावलम्बी नहीं बनेंगे तो विद्यार्थियों को कैसे बनाएँगे? सीधी बात है कि बड़े आदमी जो वेतन के कारण नहीं सेवा भाव से ही आए हैं वे तो कोई निरीक्षण नहीं माँगेंगे—सब धन्धे एहतियात से—सावधानी—से सीखेंगे। कुछ बिगाड़ असावधानी से नहीं करेंगे। ऐसे लोग तो जो उद्यम करेंगे उसमें से अपना पूरा खर्च उठा लेंगे। तुम्हारा शिक्षण-क्रम ऐसा होना चाहिए जिससे शिक्षक-विद्यार्थी अपना खर्च उठा सकें। ऐसा क्रम बनाने में तुम्हारी भी परीक्षा होगी। इसलिए मुझे तो यह प्रश्न बहुत प्रिय लगता है क्योंकि यह अच्छा सुयोग है कि तुमने आरंभ में ही यह प्रश्न उठाया है। आर्यम् ने लिखा—"मैं तो समझ गया और मानता हूँ।" उसका अर्थ यह है कि उसके मन में जो है मेरे मन में भी वही होना चाहिए।

इस दृष्टि से अगर तुम्हारा क्रम नहीं बना है तो मुझे बताओ शायद तुम्हारी मदद से मैं बनाऊंगा। इसलिए मैं तो कहूँगा कि लकड़ी भी मुफ़्त नहीं होनी चाहिए। याद रखो कि हम सहयोग से काम लेना चाहते हैं। सही सहयोग भी सीखना चाहते हैं। इसलिये सबकी बुद्धि सबके चातुर्य की उपज एक ही थैली में जाना चाहिये। जैसे-जैसे मैं लिखता जाता हूँ; मुझे ज्यादा रस आता है, मेरा वचन ज्यादा सिद्ध होता जाता है कि स्वावलंबन हमारी सिद्धि की कुंजी है। पुरानः प्रमाण (Evidence) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## कैसे काम करना

अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ ने अपेक्षित प्रगति नहीं की है। इसका क्या कारण हो सकता है यह सवाल कई बार मेरे मन में उठा है। आज मैं उसकी जाहिरा तौर पर चरचा करना चाहता हूँ ताकि मेरे सहकारी भी इसके बारे में सोचें और अपनी राय दें।

हमें काँग्रेस की नकल करने की लत पड़ गई है और हम समझते हैं कि समितियां बनाने से हम ग्राम उद्योगों का प्रचार तथा उनकी प्रगति कर सकेंगे। ऐसा करने में हम भूल जाते हैं कि काँग्रेस एक प्रतिनिधिक संस्था है, इसलिये उसे अपने सदस्यों में से बनी हुई कमिटियों द्वारा ही काम करना जरूरी है। पर आ. भा. ग्रा. उ. संघ या तत्सम संस्थाएँ ये स्वयंभू हैं, उनका अपना एक खास मक़सद है और उनके काम के लिये ऊँचे दर्जे के शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता होती है। ये संस्थाएँ अपने कार्य के लिये उन लोगों से द्रव्य इकट्ठा करतीं हैं जो उनके खास मक़सद को पसंद करते हैं और उसी कार्य में उसे खर्च करने के लिये ट्रस्टी भी बनते हैं। हम उस विषय का साहित्य इकट्ठा कर उसका अभ्यास करते हैं। उस विषय के तज्ञों को ढूंढ निकालते तथा उनको कार्य में लगाते हैं और यदि ऐसा कोई न मिले तो स्वयम् ही तज्ञ बनने की कोशिश करते हैं। हमारी उद्योगशीलता के प्रमाण में उस विषय की प्रगति होगी। वह काम स्वयम् लोगों को शायद अज्ञात हो या लोग उसकी हेठी भी करते हों। हमारा फर्ज़ होगा कि हम लोगों को उसका ज्ञान करावें और उसके प्रति उनमें रुचि पैदा करें। देश चाहे एकतन्त्री राजसत्ता के मातहत हो या प्रजासत्ता के मातहत हो हरएक देश में उपर्युक्त किस्म की संस्थाओं का अस्तित्व तो रहेगा ही। फिर वे चाहें उस सत्ता के संरक्षण में चलें चाहे उसका विरोध सहते हुए चलें। दोनों हालतों में कार्य की पद्धति एकसी ही होगी। हमारी अ. भा. च. संघ; अ. भा. ग्रा. उ. संघ; हिन्दुस्तानी तालिमी संघ आदि संस्थायें यद्यपि वैसी स्वतंत्र हैं फिर-भी कांग्रेस द्वारा ही निर्मित हैं। इसलिये सारे काँग्रेसजनों का और जिस हद तक काँग्रेस सारे देश का प्रतिनिधित्व करती है उस हद तक सारे देश का उन्हें सहयोग मिलना चाहिये। पर ऐसा होने के लिये हमें सारे देश में अभीष्ट किस्म के तज्ञ बिखेर देना चाहिये। इसलिये पहली आवश्यकता प्रामाणिक तज्ञों की एक केन्द्रीय संस्था की है। कार्य सिद्धि के लिये अन्य कोई आसान रास्ता कहीं है। यदि कमिटियों के सदस्य या एजन्ट स्वयम् उस विषय के जानकार न हों तो वे कुछ भी प्रगति नहीं कर सकेंगे। एम० ए० का कितना ही होशियार विद्यार्थी क्यों न हो वह ग्रामीणों में चर्खे का, ताड़गुड़ बनाने का और गोबर तथा मल-मूत्र की खाद बनाने का प्रचार नहीं कर सकेगा। इसके लिये तो उन विषयों के विशेष जानकार होने चाहिये। यदि हमारी अपनी कितनी भी निकम्मी क्यों न हो—सरकार होती तो हमने ऐसी कलाशालाएँ चलाई होतीं जिनमें हिन्दुस्तान के ७ लाख देहातों में चलनेवाले या जो कुछ रोज पहले तक चल रहे थे ऐसे सारे उद्योगों की शिक्षा का प्रबन्ध रहता। दुर्भाग्य से आज वैसी हालत नहीं है। इसलिये हमारे संघों को प्रचार का ज़रिया बनने के अलावा इस किस्म के शिक्षा केन्द्र भी बनना पड़ता है। और हम अच्छे प्रचारक तभी बन सकते हैं जब हम अच्छी शिक्षा दीक्षा से लैस हों। यदि मेरा यह निदान सही है तो हमें चाहिये कि हम अब भी सही रास्ता—फिर वह कितना भी कठिन और अपने बड़प्पन को ठेस पहुँचाने वाला क्यों न हो—अख्तियार करें।

[ खादी जगत ]

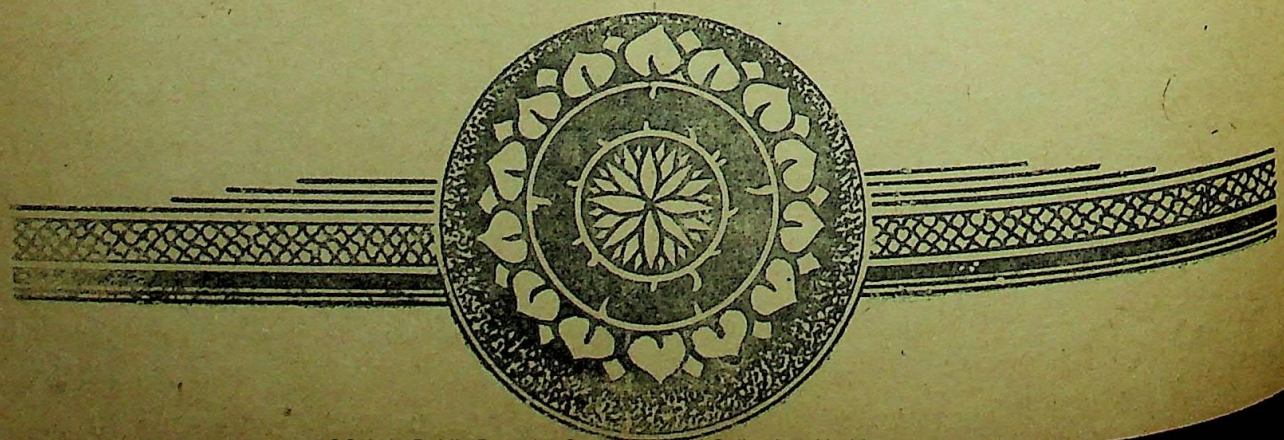

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# उपवास के नियम

डाक्टर लिओनार्ड विलियम्स एम० डी०

दो सौ साल से ऊपर हुए इङ्गलैण्ड के मशहूर विद्वान बेकन ने एक छोटी सी किताब लिखी थी जिसका नाम 'Of the Regimen of Health' है। इस फ़िकरे के माने हैं "तन्दुरुस्ती के क़ायदे"। बेकन कोई डाक्टर नहीं था फिर भी उसकी किताब डाक्टरी की निगाह से क़ीमती समझी जाती है और समझा जाता है कि उसमें "अक़्लमन्दी के और बिलकुल आजकल के ज़माने की समझ की बातें भरी हुई हैं।" उस किताब में एक यह फ़िकरा भी आता है—

"केलसस ( Celsus ) ने तन्दुरुस्ती और उपवास के बड़े बड़े असूलों में से एक यह बताया है कि आदमी इस मामले में दोनों तरह की आदतें रक्खे और कभी कभी दोनों तरह से बरतता रहे बल्कि थोड़ा सा अपने साथ नरमी करने की तरफ़ ज़्यादा झुके। कभी उपवास करे तो कभी खूब डटकर खावे भी, और डटकर ज़्यादा दफ़े खावे। कभी रतजगा करे तो कभी सोवे भी, बल्कि सोवे ज़्यादा। कभी बैठा रहे तो कभी चले फिरे भी, और चले फिरे ज़्यादा। ऐसा करने से प्रकृति यानी क़ुदरत ख़ुश रहेगी और आदमी को अपने ऊपर क़ाबू रखना आवेगा। यह बात केलसस के मुँह से डाक्टर की हैसियत से नहीं निकल सकती थी लेकिन वह डाक्टर होने के साथ साथ एक मामूली समझदार आदमी भी था।" आजकल लोगों में यह एक फैशन सा हो गया है कि लोग काफ़ी बदपरहेज़ी के साथ डटकर खाते हैं। बाद में कभी कभी उपवास भी करते हैं पर उस उपवास से डटकर खाने के सब बुरे नतीजे दूर नहीं हो पाते। बेकन के वक्तों में भी उपवास का रिवाज था और शायद आजकल से कुछ ज़्यादा था। शेक्सपियर की किताबों में उपवास के रिवाज का कई जगह ज़िकर आता है। सबसे दिलचस्प ज़िकर शायद उसकी किताब 'The Two Gentlemen of Verona' में है जहाँ पर स्पीड नामक नौकर अपने मालिक से कहता है—"आपने उपवास करना बिलकुल उस आदमी की तरह सीख लिया है जो किसी डाक्टर के कहने पर परहेज़ कर रहा हो।" उन दिनों 'To diet' यानी डाक्टरी परहेज़ और 'To Fast' यानी उपवास करना दोनों के एक ही माने समझे जाते थे। फ्रान्सीसी भाषा में और फ्रान्सीसी डिक्शनरियों में अभी तक इन दोनों के एक ही माने हैं यानी उन दिनों इलाज के लिए परहेज़ करने का मतलब ही उपवास करना होता था।

## तीन दिन का उपवास

पहले लोग उपवास करने को धर्म का एक अंग मानते थे। अब लोगों ने इस प्रथा को बहुत पुरानी हो जाने की वजह से भुला दिया है, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि धर्म गुरुओं द्वारा लगाए गए और तमाम क़िस्म के शारीरिक अनुशासनों के साथ साथ उपवास कराने का मंशा भी तन्दुरुस्ती को ठीक रखना ही था। लेकिन उपवास करने की प्रथा को बुरे दिन देखने पड़े। अभी कुछ दिन पहले तक अपने बाप दादों के इस यक़ीन को कि मेदों को हलका रखना चाहिये जंगली समझा जाता था यहाँ तक कि उसे नफ़रत की निगाह से देखा जाता था। अब हाल ही में यह कोशिश की जा रही है कि उपवास करने की प्रथा को फिर से चलाया जाय। कुछ साल पहिले न्यूयार्क के एक डाक्टर ऐलन ने बहुमूत्र रोग को उपवास से ठीक करने का दावा किया था। इसको सब देशों ने स्वीकार किया, और उपवास को एक जाना माना और समझा हुआ इलाज स्वीकार किया जाने लगा। ऐलन ने अपने मरीजों को तीन दिन तक उपवास कराया और यह अजीब बात थी कि वे मरे नहीं। उनमें से बहुतों की हालत सुधर गई और बहुत से तो बिलकुल अच्छे हो गए।

## पन्द्रह दिन का उपवास

हमें हाल ही में मालूम हुआ है कि प्रोफ़ेसर कार्लसन ने जो कि शिकागो के मशहूर मनोवैज्ञानिक हैं, पता लगाया है कि उपवास करना बुढ़ापे को दूर करने के लिए एक ख़ास तरीक़ा है। इसके दो मतलब निकाले जा सकते हैं लेकिन प्रोफ़ेसर साहब का असली मतलब यह है कि बुढ़ापे की झलक और कमज़ोरियों को दूर करने के लिए उपवास एक बहुत अच्छा साधन है। सचमुच बेवक्त बुढ़ापे को आने से रोकने के लिए उपवास करना ख़ास तौर से मदद देता है। अगर यह चीज़ साफ़ तौर से नहीं कही जाती तो बड़ी बड़ी तोंदवाले अमीर आदमी, विद्वानों के आधार पर, ज़ोर देकर कहेंगे कि उपवास करना बुढ़ापे को दूर करने के लिए एक ख़ास तरीक़ा है। ऐसे सैकड़ों आदमी हैं जिन्होंने कभी भी उपवास नहीं किया और जिन्हें पक्का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विश्वास है कि महज़ एक दिन का उपवास ही आत्म हत्या करने का साधन हो सकता है। प्रोफ़ेसर साहब १५ दिन तक उपवास करने की सलाह देते हैं इसलिए यह साफ़ है कि हमारा यह ठोस माँस इतनी जल्दी नहीं पिघलता जैसा कि कुछ लोग समझते हैं।

## फिर से नौजवान होना

फिर से नौजवान होने का ख़्याल इस वक़्त लोगों के दिमाग़ में है। डा० स्तेनाख़ (Steinach's) के आपरेशन और डाक्टर वोरनाफ़ (Vornoffa) के बारे में जो बहस चली उससे आदमियों को इस बात की काफ़ी जानकारी हो गई कि बुढ़ापे को भी दूर करने के अमली तरीक़े हैं। ज़ाहिर है कि इस सवाल ने लोगों में बहुत दिलचस्पी पैदा कर दी है। यह सब जानते हैं कि प्रत्येक जाति में औरतें ही ऐसी होती हैं जो अपनी बढ़ती हुई उमर को कम बताने और छिपाने के लिए बड़ी उत्सुक रहती हैं लेकिन बदक़िस्मती से इनमें से कोई भी आपरेशन औरतों के लिए नहीं हैं। अभी तक तो सिर्फ़ चीर फाड़ के ही तरीक़े प्रचलित थे, इसलिए फिर से नौजवान होने के लिए कार्लसन का १५ दिन का उपवास करने का तरीका आपरेशन वगैरह के तरीक़े से निश्चित रूप से बेहतर है। कार्लसन का इलाज सीधा सादा है, खर्चीला भी नहीं है और मर्द व औरत दोनों ही इसे कर सकते हैं।

इस इलाज का सिर्फ़ सीधा साधा होना ही एक ऐसा गुण है कि इसकी जाँच के लिए कोई लम्बा चौड़ा प्रयोग करने की ज़रूरत नहीं है। जब पैग़म्बर एलाइजाह ने नामेन्स (Naamans) के कोढ़ के लिए यह दवा बतलाई कि मरीज़ को सात दफ़े अपने सारे बदन को जोरडन नदी के पानी में धोना चाहिये तो कोढ़ी बहुत नाराज़ हुआ और वह वापिस चला गया। लेकिन उसके नौकरों ने, जो कि इस मामले में उससे ज़्यादा अक़्लमन्द थे, उससे कहा—"अगर पैग़म्बर ने आपसे कोई बड़ा काम करने को कहा होता तो क्या आप उसे न करते? तो फिर क्या हुआ जो उन्होंने आपसे अपना बदन धोने और साफ़ कर लेने की सलाह दी!" बिलकुल यही बात कार्लसन ने कही है कि—"उपवास करो और नौजवान बनो।" बड़े बड़े चीर फाड़ के आपरेशन तो लोग सह लेते हैं लेकिन उपवास करने और अपना बदन साफ़ करने जैसी मामूली बातें, बहुतों के मुताबिक़ ख़तरनाक हैं। यह पागलपन और कायरता की बात है।

## उपवास के क़ायदे

जहां तक प्रोफ़ेसर कार्लसन के नुसख़े का ताल्लुक़ है इस बात का कोई अंदेशा नहीं कि लोग उस पर बहुत जोश के साथ अमल करने लगेंगे, लेकिन फ़र्ज़ करो कि किसी की तबियत उस पर अमल करने को चल ही पड़े तो मैं सफल उपवास के क़ायदों को समझा देना चाहता हूं। सबसे पहिली और निहायत ज़रूरी चीज़ यह है कि उपवास करने से पहिले पेट को साफ़ कर लेना चाहिये। इस बात को न नज़र अन्दाज़ करना चाहिये, न इससे बचना चाहिए और न इसमें बेजा दख़ल ही देना चाहिए। यह पक्की तौर से जानने के लिए कि पेट साफ़ है या नहीं एक बहुत आसान तरीक़ा है। इसके लिए कैस्टर आइल एक सीधी सादी, निर्दोष और ज़बरदस्त चीज़ है। इसका मक़सद इस बात को पक्की तौर से जान लेना होता है कि ऐसी कोई चीज़ पेट में न रह जाय जिसे कि उपवास के दौरान में हमारा शरीर फिर से अपने अन्दर जज़्ब करले। दूसरी चीज़ भी पहिली ही की तरह निहायत ज़रूरी है। वह यह है कि उपवास के दौरान में किसी भी तरह का खाना क़तई न खाया जाय। सिवाय पानी के और कोई चीज गले के नीचे न उतारी जाय। अगर इन दोनों कायदों को सख़्ती के साथ नहीं बरता जाता तो उपवास करना बहुत ही ख़तरनाक साबित हो सकता है और अगर इनका कड़ाई के साथ पालन किया जाय तो उपवास करना आसानी से बरदाश्त किया जा सकता है। पहले दिन आमतौर पर खाना खाने के मुक़र्रर वक़्त पर भूख लगती है। लेकिन वह बहुत जल्दी ही दब जाती है और आने वाले हर एक दिन कम मालूम होती जाती है। तीसरी चीज यह है कि उपवास तोड़ने के समय बहुत ही हलका खाना सिर्फ़ नाममात्र को खाना चाहिये उदाहरण के तौर पर सेव का रस या मूँग का रस या गरम पानी में चतुर्थांश दूध। अगर इस तरह से सावधानी से काम लिया जावे तो ऐलन द्वारा प्रतिपादित शरीर को कुछ शुद्ध करने वाला तीन दिन का उपवास बहुत ही आसानी से किया जा सकता है और वह अधेड़ आदमियों के लिए तो बहुत ही फ़ायदेमन्द है। जहाँ तक ऐलन के बताए हुए उपवास का ताल्लुक है मैं अपने तजरुबे से इसके क़ायदे और इसे अच्छी तरह निभाने की बाबत बतला सकता हूँ। लेकिन कार्लसन के 'फिर से नौजवान बनाने वाले' उपवास के बारे में मेरा कोई अपना तजरुबा नहीं है। मैं ऐसे बहुतेरे आदमियों को जानता हूं जो कि मुझे पूरी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विश्वास है, इस तरह के लम्बे उपवास से बहुत बड़ा फ़ायदा उठायेंगे और मुझे ज़रा भी शक नहीं कि इस तरह से उनमें फिर से नई स्फूर्ति आजायगी। लेकिन मैं ऐसे भी बहुत से ख़ासे तन्दुरुस्त आदमियों से वाकिफ़ हूं जिन्हें इस तरह का प्रयोग करने की सलाह देने से मैं हिचकूँगा।

## उपवास और चरित्र

उपवास करने से चरित्र और दिमाग़ के ऊपर जो असर पड़ता है वह ध्यान देने योग्य है। शरीर के ऊपर भी इसका गहरा असर पड़ता है। शारीरिक अनुशासन का चरित्र और दिमाग़ पर जो गहरा और ज़बरदस्त असर पड़ता है इसको ईसाई धर्म गुरुओं ने बहुत जल्दी ही मान लिया था और जो नियम शुरू में महज़ बदन को साफ और तन्दुरुस्त रखने के लिए बनाये गये थे वही बाद में आदमी को नैतिक दृष्टि से ऊँचा उठाने के काम में इस्तेमाल किए जाने लगा। जहाँ तक हमें मालूम है मोजेज़ (Moses) उन सबमें सबसे आगे है जिन्होंने बदन की सफ़ाई और तन्दुरुस्ती बढ़ाने के अमली तरीक़े बताए हैं। शरीर को क़ाबू में रखने के लिये और ऊँचे से ऊँचा चरित्र गढ़ने के लिये बहुत पहिले से ईसाई धर्म गुरुओं ने कुछ नियम जारी किए थे। ये नियम ज्यादातर लेविटिकस (Leviticus) की किताब के आधार पर गढ़े गए थे। अपनी शारीरिक इच्छाओं को क़ाबू में रखना हमें इन्द्रिय निग्रह का पाठ सिखाता है और इस तरह धार्मिक उपदेश देने की निस्बत यह चीज़ चरित्र को ऊँचा उठाने में ज़बरदस्त मदद करती है। उपवास करना धर्म के आदेशों की निस्बत कई गुना अधिक अच्छा है।

नीति शास्त्र की सब शाखाओं का झुकाव, बुनियादी तौर पर चरित्र गठन के ऊपर ही है। अच्छी भावनाओं को ज़ाहिर करने की निस्बत मुनासिब अपरिग्रह चरित्र गठन में निश्चय ही मदद करता है। श्रीमती पोजर (Mrs. Poyser) का कहना है कि "भावनाएं ही आदमी से ठीक काम कराती हैं, उसके ख़्यालात नहीं।" ईसाई धर्म के गुणों को अपने अन्दर पैदा करने में उपवास करना बहुत मदद देता है। दिल के अन्दर की कटुता मिटाने में उपवास बड़ी मदद देता है। नतीजा यह होता है कि अधीरता और चिड़चिड़ेपन की जगह पर गम्भीरता और नम्रता आ जाती है। इस तरह प्रकृति यानी कुदरत भी खुश रहती है और आदमी को अपने ऊपर काबू रखना भी आता है।

## बरसात का मौसम

पिछले बीस बरस में मौसम विज्ञान ने बहुत बड़ी उन्नति की है और मौसम के बाद में जो भविष्यवाणी रोज़ बरोज़ निकाली जाती है उस पर आम तौर से २४ घण्टे तक विश्वास किया जा सकता है। मेरा ख़याल है कि वक्त आयगा जब कि अगले आने वाले हफ्ते के लिए काफ़ी हद तक ठीक भविष्यवाणी की जा सकेगी और फिर इसी तरह की भविष्यवाणी एक महीने पहले से और फिर आखीर में साल भर पहिले से भी की जा सकेगी।

आजकल ज्यादा से ज्यादा हम यह कर सकते हैं कि पिछली हालत पर अच्छी तरह ग़ौर करके ऐसे नतीजे निकालें जो कि हमें आगे के लिए मुफ़ीद साबित हों। सन १९२४ में बारिश की वजह से मृत्यु संख्या में जो कमी हो गई थी उसके बारे में हाल ही में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। हमसे कहा जाता है कि इन चीज़ों से हम यह सबक लें कि बीमारी क्यों कम फैलती है।

कहा जाता है कि धूल में बहुत छोटे छोटे नुक़सानदेह कीड़े होते हैं, बारिश की वजह से धूल अच्छी तरह ज़मीन पर बैठ जाती है, धूल के साथ साथ कीड़े भी नीचे दब जाते हैं, नतीजा यह होता है कि ये कीड़े हवा में इधर उधर उड़ नहीं पाते और इसलिए बीमारी कम फैलती है। मैं मानता हूँ कि इस दलीलों में कुछ ज़ोर ज़रूर है लेकिन मेरा ख़याल है कि इन दलीलों से असल चीज़ पूरी तौर से समझ में नहीं आ सकती।

## छोटे छोटे नुकसानदेह कीड़े

हमें आदत सी पड़ गई है कि दवा से ताल्लुक रखने वाली हर एक चीज़ में हम छोटे छोटे कीड़ों के बारे में तो बहुत ज़्यादा सोचते हैं लेकिन साथ की और तमाम बातों पर ग़ौर नहीं करते। इस पर ख़ास तौर से हम उस समय सोचते हैं जब कि अपने चारों तरफ़ की हवा के बारे में जांच पड़ताल करना शुरू करते हैं। जिस हवा में हम सांस लेते हैं उसको जो जो चीज़ें भयानक रूप से गन्दा कर देती है उसमें छोटे छोटे नुक़सानदेह कीड़ों का हिस्सा बहुत कम रहता है। सब जानते हैं कि छोटा सा तपेदिक़ का कीड़ा हमारे बदन के सांस लेने वाले हिस्से के लिए, ख़ास तौर से बहुत ही ख़तरनाक है लेकिन वह भी फेफड़ों में शरीर के उन रास्तों से नहीं पहुँचता जिनसे कि हवा आ जा सकती है बल्कि खाना हज़म करने वाले हिस्से के ज़रिये पहुंचता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वह हमारे खाने में मिल जाता है, फिर हमारे ख़ून में आ जाता है और आख़िर में कम फैले हुए, सँकरे फेफड़ों के पीछे धीमी चाल से चलकर पानी में ठहर जाता है। इसके अलावा तमाम और छोटे छोटे नुक़सानदेह कीटाणु, जो अक्सर हम पर हमला कर देते हैं, हमारे बदन के उन हिस्सों में बाक़ायदा रहते हैं, जिनसे कि हवा आ जा सकती है।

यह छोटे छोटे कीटाणु हमारे अनिमंत्रित मेहमान होते हैं और ये हमारे सांस लेने के रास्तों के ऊँचे नीचे हिस्सों में इस चालाकी से अपने को अच्छी तरह छिपा लेते हैं कि इनको अगर हटाने की कोशिश की जाय तो जहाँ ये होते हैं उस हिस्से को बेहद नुक़सान पहुँचने का अंदेशा रहता है। जब इनको मौक़ा मिलता है ये हम पर हमला कर देते हैं। यह मौक़ा ख़ास तौर से उस समय इनको मिलता है जब हम, इनके बसनेवाले हिस्से की रक्षा करने के उपाय कम कर देते हैं। बदन की रक्षा करनेवाले सफ़ेद कीटाणु किसी और जगह इकट्ठा हुई ज़हरीली चीज़ों का मुकाबला करने में व्यस्त हो सकते हैं जिससे कि वे बहुत थक जाते हैं और इस तरह उन अनिमंत्रित कीटाणुओं को हमला करने का मौक़ा मिल जाता है। या उस समय इन्हें मौक़ा मिलता है जब कि आदमी उस गन्दी और ज़हरीली हवा में सांस लेते हैं जो कि बग़ैर रोशनदान वाली बन्द जगहों में होती है।

हमारे बड़े बड़े अच्छे शहरों की आबहवा हमारे सांस लेने के लिए ठीक नहीं होती है। अगर लन्दन की हवा का असर वहां की पत्थर की बनी हुई इमारतों पर देखा जाय तो मालूम होगा कि वह किस क़दर गन्दी और ख़तरनाक़ है। इसलिए बदन के अन्दर हवा के आने जाने के नाजुक रास्तों की हिफ़ाज़त करने की गुन्जाइश बहुत कम रह जाती है। हवा के बिलकुल बन्द होने की हालत में और ख़ास तौर पर जब इसके साथ साथ हवा में नमी भी हो तब यह थोड़ी सी गुन्जाइश भी जाती रहती है। इस तरह से बदन में छाई हुई झिल्ली* ( Mucons Membrane ) में जब गड़बड़ पैदा हो जाती है और वह बिलकुल निकम्मा हो जाता है तब इन छोटे छोटे नुक़सानदेह कीटाणुओं को शिकार के लिए बहुत अच्छा मौक़ा मिलता है।

यह ठीक है कि बारिश से धूल बैठ जाती है और छोटे छोटे नुक़सान देह कीटाणु उसमें दब जाते हैं लेकिन बीमारियों को दूर करने में यह चीज़ इतना मदद नहीं करती जितना कि वह हवा जो कि बारिश होने से साफ़ और शुद्ध हो जाती है। छोटे छोटे कीटाणुओं के ज़रिये जो गन्दगी फैलती है वह बहुत ही कम होती है असल चीज़ तो कोयले का गन्दा धुआं, ज़हरीली कारबोनिक एसिड गैस और तमाम और नुकसानदेह चीज़ें होती हैं जो कि बदन के दुश्मनों की मदद के लिए अन्दर ही अन्दर तय्यारी करती रहती है इसलिए अगर हम जलनेवाले नरम कोयलों को रसोई घर से हटा दें तो हमें अपनी तनदुरुस्ती सुधारने के लिए और बीमारियों को दूर करने के लिए बारिश का इन्तज़ार न करना पड़े।

ठीक यही कैफ़ियत उपवासों से भी पैदा की जा सकती है। लम्बे उपवास हमारे शारीरिक ढांचे को ग़ैरज़रूरी विदेशी द्रव्य और नुक़सान देह कीटाणुओं से मुक्त कर देते हैं और शरीर की मशीन के जगह जगह रुके हुये कल पुरज़ों को फिर से सुचारु रूप से चलने लायक बना देते हैं। उपवास से एक प्रकार से शरीर का ओवरहाल हो जाता है और वह नये सिरे से मरम्मत ( रीबिल्ड ) हो जाता है।

[ अनु० श्री पुरुषोत्तम त्रिपाठी ]

---

* The membrane lining the varnous channels of the body which communicate with the outside.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दिल्ली चलो

श्री विद्याधर कुलश्रेष्ठ 'कुसुम'

( १ )

हमारे पैर में ज़ंजीर रोती है।
लहू में डूबकर शमशीर रोती है।
अधर पर स्वर, नयन में पीर रोती है।
ग़ुलामी से रँगी तस्वीर रोती है!

इधर पृथ्वी उधर आकाश का क्रन्दन।
प्रपीड़ित प्राण के हर श्वास का स्पन्दन।
हमारे हाल पर जग आह भरता है।
हृदय में अश्रु का सागर लहरता है।

हमारी सांस में नव प्राण बन्दी हैं।
जिगर में सैकड़ों तूफ़ान बन्दी हैं।
हृदय-नभ में प्रखर दिनमान बन्दी हैं।
असंख्यों नाश औ' निर्माण बन्दी हैं।

बदलने को धरा हमने उठाया सिर!
बदलने को प्रकृति हमने बढ़ाया कर।
जिगर के घाव तत्क्षण बह उठे ग़म से।
हमारे श्वास सहसा कह उठे हमसे—

"दिलों में यदि अभी कुछ रोष बाक़ी है।
रुधिर में ताप, पग में जोश बाक़ी है।
प्रबल तूफ़ान सा बढ़ते चलो दिल्ली।
प्रखर दिनमान सा चढ़ते चलो दिल्ली।"

( २ )

हज़ारों लुट चुके परिवार अब तक हैं।
हज़ारों मिट चुके संसार अब तक हैं।
करोड़ों फूल मिट्टी में मिले, खोए।
असंख्यों प्राण कब्रों के तले सोए।
चिताएँ साक्ष्य भरती हैं शहीदों का।
धरा गुणगान करती है सुरीदों का।
मगर हम क्या करें?—असहाय मानव हैं।
प्रवाहित सांस, जीते-जागते शव हैं।

हृदय ने और कुछ तूफ़ान मांगे हैं।
धरा ने और कुछ बलिदान मांगे हैं।
गगन ने और कुछ रण-गान मांगे हैं।
जगत् ने और कुछ इन्सान मांगे हैं।

लहू की बह रही धारें बुलाती हैं—
मचलकर नग्न तलवारें बुलाती हैं—
क़िले की लाल दीवारें बुलाती हैं—
हमारी जीत की हारें बुलाती हैं—

"दिलों में यदि अभी कुछ रोष बाक़ी है।
रुधिर में ताप, पग में जोश बाक़ी है।
प्रबल तूफ़ान सा बढ़ते चलो दिल्ली।
प्रखर दिनमान सा चढ़ते चलो दिल्ली।"

( ३ )

प्रभंजन ने कभी रुकना न सीखा है।
हिमालय ने कभी झुकना न सीखा है।
हमारी फ़ौज ने बढ़ना सदा जाना।
रणस्थल में अथक लड़ना सदा जाना।

हमें निज शत्रु को बरबाद करना है।
हमें निज देश को आज़ाद करना है।
जगत् में गर्व से मस्तक उठाना है।
करों से मणि, रजत, कंचन लुटाना है।



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हृदय के सिन्धु में नव ज्वार उमड़े लो।
नयन-आकाश में शत मेघ घुमड़े लो।
हमारी सांस के पथ से चली आँधी।
रुधिर में सूर्य की गर्मी गई बाँधी।

निशा की कालिमा धुल सी उठी सहसा।
उषा की लालिमा खिल सी उठी सहसा।
नयन के तप्त पानी ने कहा हमसे—
हमारी ही जवानी ने कहा हमसे—

"दिलों में यदि अभी कुछ रोष बाक़ी है।
रुधिर में ताप, पग में जोश बाक़ी है।
प्रबल तूफ़ान सा बढ़ते चलो दिल्ली।
प्रखर दिनमान सा चढ़ते चलो दिल्ली।"

( ४ )

सिसकते शिशु अनेकों गोद में मां की।
दिखाते मृत्यु की करुणामयी झांकी।
बिकल मांएँ लुटातीं अश्रु के मोती।
दुखी बहिनें हजारों देश में रोतीं।

अरे इस ज़िन्दगी पर मौत हँसती है।
अरे इस मौत पर दुनिया विहँसती है।
विकल वैधव्य रोता है यहां ग़म से।
मगर करते न कुछ बनता यहां हमसे।

लगा दो आग इस साम्राज्यशाही को।
बुला दो शत्रु पर सहसा तबाही को।
हटा दो देश से खल-क्रूर कामी को।
मिटा दो हिन्द की जर्जर ग़ुलामी को।

जननि के बन्धनों को काट दो वीरो।
रुधिर से सब धरा को पाट दो वीरो।

पिता का प्रेम दुख में चूर कहता है।
बहिन की मांग का सिन्दूर कहता है—

"दिलों में यदि अभी कुछ रोष बाक़ी है।
रुधिर में ताप, पग में जोश बाक़ी है।
प्रबल तूफ़ान सा बढ़ते चलो दिल्ली।
प्रखर दिनमान सा चढ़ते चलो दिल्ली।"

( ५ )

नयन में अश्रु की लड़ियां सिहरती हैं।
'भगत' के जेल की कड़ियां सिहरती हैं।
बिजलियां कौंधती आकाश में अक्सर।
उसी क्षण याद हो आता हमें 'बक्सर'।

न हम भूले 'पलासी' की निशानी भी।
'ग़दर' की रक्त सरिता की रवानी भी।
'मुग़ल-साम्राज्य' की ढलती जवानी भी।
'बहादुर शाह' की जलती कहानी भी।

हृदय में पूर्व स्मृतियों का विकल स्पन्दन।
हमारे प्राण में 'बंगाल' की धड़कन।
हमारी आंख में 'जलियां' सिहरता है।
हमारे ख़ून में 'बलिया' लहरता है।

दबे इस वक्ष में शोले भड़कते हैं।
जिगर के घाव रह-रहकर तड़कते हैं।
यहां 'लक्ष्मी' प्रलय-शृङ्गी बजाती है।
वहां से 'बोस' की आवाज़ आती है—

"दिलों में यदि अभी कुछ रोष बाक़ी है।
रुधिर में ताप, पग में जोश बाक़ी है।
प्रबल तूफ़ान सा बढ़ते चलो दिल्ली।
प्रखर दिनमान सा चढ़ते चलो दिल्ली।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सूफ़ी कवि अत्तार

श्री० ऋषिकुमार

ईरान के सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी सूफ़ी सन्त कवि जलालुद्दीन रूमी ने बाल्यकाल में ही जिससे 'असरार नामा' के रूप में प्राप्त आशीर्वाद अथवा दीक्षा के कारण उसे अपना गुरू माना हो और स्वयं को उस सूर्य्य के चारों ओर भ्रमित एक नक्षत्र मात्र; रूमी की मसनवी, जिसे 'सूफ़ी दर्शन' के नाम से सम्बोधित किया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी, जो उसकी प्रेरणा का प्रसाद मात्र है तथा जिसको रूमी ने सूफ़ी सिद्धान्त की आत्मा स्वीकार करते हुये अध्यात्म प्रेम के सातों नगरों को छाने हुये बतलाया हो जबकि स्वयं को उसी प्रेम के प्रथम नगर की केवल एक ही गली में भटकने वाला ही समझा हो—उस महान आत्मा ( अत्तार ) के महत् व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कुछ जानने की जिज्ञासा प्रत्येक साहित्यप्रिय को होना स्वाभाविक ही जान पड़ती है।

'अत्तार' शब्द का वाच्यार्थ है अतर बेचनेवाला, विशेष रूप से गुलाब का अतर। ये अपने इसी पैतृक व्यवसाय द्वारा जीविका उपार्जन करते थे। इनका पूरा नाम था फ़रीदुद्दीन अबू मुहम्मद बिन इब्राहीम अत्तार। इनका जन्म ११५० ई० के लगभग हुआ था[1]। शैशव में ही पितृ वियोग हो जाने के कारण इनके जीवन का गठन इनकी माता की संरक्षता में—जिन्हें अत्तार ने 'धार्मिक क्षेत्र में ख़लीफ़ा' कहकर सम्बोधित किया है—हुआ तथा अत्तार में धार्मिक प्रवृत्ति की जागृति भी उन्हीं से हुई।

अतर के व्यवसाय के साथ साथ अत्तार वैद्यक[2] का कार्य भी करते थे। प्रतिदिन पाँच सौ रोगियों की नाड़ी देख, चिकित्सा कर उन्हें अपनी तैयार की हुई औषधि भी देते। इतनी कार्य व्यस्तता में भी उनकी कवि-प्रतिभा को पल्लवित होते देख एक क्षण के लिये चकित हो जाना पड़ता है। अत्तार के मुसीबतनामा एवं इलाहीनामा नामक दो प्रसिद्ध काव्यों का रचनास्थान इनका यह औषधालय ही था।

किन्तु एक दिन वैद्य की वैद्यक कसौटी पर कसी जाने लगी। जो दूसरों की नाड़ी देखा करता, उसके रोगों का निदान करता, आज उसकी नाड़ी परखनेवाला भी आ पहुंचा—एक गुदड़ी लपेटे साधु ( दरवेश )। अत्तार के इस औषधालय की बहुमूल्य संपदा देख उसकी आँखों में करुणा छलक उठी, उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखा और एक गहरी साँस ली। कदाचित् कुछ कहा भी किन्तु कार्यव्यस्त अत्तार को इस ओर भ्रूक्षेप करने का अवकाश कहाँ? बिना देखे ही कह दिया "बाबा! अपना रास्ता लो।" साधु ने मर्मान्तक शब्दों में कहा, "ख़्वाजा! सो उसमें तो कोई आपत्ति नहीं होगी। मेरा बोझ तो हलका ही है। संसार हाट से जाते मुझे विलम्ब नहीं होगा···है ही क्या? एक बहत्तर पैबन्द की गुदड़ी! किन्तु अपनी ओर देखो—बहुमूल्य बूटियों से भरे इतने भारी भारी बोरे। इनको लेकर तुम्हारा प्रयाण किस प्रकार हो सकेगा? इनमें फँसे तुम्हारे प्राण कैसे निकलेंगे?"

अत्तार ने प्रत्युत्तर में कहा—"ठीक जिस प्रकार तुम्हारे।"[3] इस पर साधु ने प्रश्न किया—"क्या तुम मेरी तरह मर सकते हो?" इसका भी उत्तर अत्तार ने 'हाँ' में ही दिया। एतद्पश्चात साधु अपने काठ के खप्पड़ को शिर के नीचे रखकर लेट गया एवं दीर्घस्वर में अल्लाह के एक नामोच्चारण के साथ ही उसके प्राण का हंस उड़ चला। इस घटना ने अत्तार के जीवन में एक नवीन पृष्ठ का उद्घाटन कर दिया—उसने कुश्ते जैसा कार्य किया। दूकान उठा दी गयी। अब अत्तार सत्य की खोज में प्रेम मार्ग के पथिक दरवेश ( सन्यासी ) बन गए। उन्होंने

---

[1] जन्म समय के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। ब्राउन सन् ११५७ मानता है जब कि अन्य लोगों के अनुसार १११९-२० होना चाहिए।

[2] 'रियाज़ुल-आर्फ़ीन' के रचयिता रज़्ज़ाक़ुल खां के अनुसार अत्तार ने वैद्यक की शिक्षा बग़दाद निवासी शेख़ मजदूदुद्दीन के शिष्यत्व में प्राप्त की। [ Brown's Literary History of Persia. P. 508 ]

अत्तार शब्द का औषधि तैयार करके बेचने वाले के रूढ़ अर्थ में प्रयोग इन्हीं अत्तार के इस प्रकार के व्यवसाय के बाद से हुआ जान पड़ता है।

[3] इस घटना में इससे आगे के वर्णन का उल्लेख दौलतशाह एवं उनके उत्तरकालीन जीवनीकारों की कृतियों में प्राप्य है किन्तु Brown और Margaret-Smith, Literary History of Persia vol. II P 511 और The Wisdom of the East series की The Persian Mystics : Attar p. 13 में केवल इसी स्थल तक के वर्णन को स्वीकार करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सुप्रसिद्ध जिज्ञासु शेख़ रुक्नुद्दीन अक़्क़ाफ़ के शिष्यत्व में यम नियम एवं भक्ति भावना द्वारा अपने जीवन को मँजीठे रंग में रँगना आरम्भ कर दिया। अनेकों सूफ़ी साधुओं की भांति अत्तार ने भी, ज्ञात होता है, इसी समय पर्याप्त पर्यटन किया। उन्होंने रे, कूफ़ा, मिश्र, दमिश्क, मक्का, भारतवर्ष, तुर्किस्तान इत्यादि देशों का भ्रमण किया इस समय की उनकी मानसिक अवस्था, साधन की परिपक्वता और निश्चियात्मक विचार धारा का सजीव चित्र उन्हींके शब्दों में इस प्रकार मिलता है, "हृदय की पीड़ा[४] ने मुझमें कुछ भी अवशेष नहीं छोड़ा है और मेरे चतुर्दिक अवस्थित ये गँवार किञ्चित भी विचलित नहीं होते हैं। अतएव मेरे लिए केवल पीड़ा ही एक नितान्त आवश्यक वस्तु है। मैं दस्तरख़्वान पर अपनी सूखी रोटी को अपने आँसुओं से ही गीला करता हूं।[५] हृदय का दुःख ही मेरा खाद्यमांस ( आमिष अहार ) है किन्तु इस पर भी तो कभी कभी जिब्राइल[६] मेरे पाहुने हो जाते हैं। जब मुझे स्वयं दिव्यात्मा का साहचर्य प्राप्त है तो भला मैं किसी अन्य निम्नवर्गी व्यक्ति के साथ क्यों भोजन करूँ। यह मेरी सूखी रोटी मेरे पोषण के लिए पर्याप्त है। सन्तुष्ट हृदय ही मेरी आत्मा में नवजीवन का संचार करता है। सत्य मेरी निधि है और वास्तव में इसी सम्पत्ति का अधिकारी तो धनवान भी होता है। किसी पामर का मैं क्यों आभारी बनूं अथवा अपने हृदय को क्यों उसका गुलाम बनने दूँ ? मैंने किसी भी आततायी का दिया भोजन नहीं किया है[७] और न अपनी किसी पुस्तक को उन्हें समर्पित किया है। मैं केवल 'उच्च हेतु' ( high purpose ) की ही प्रशंसा करता हूँ एवं वही मेरी आत्मा की शक्ति है जिसके सहारे मेरा यह शरीर चलता है।"

पर्यटन के समय अत्तार अनेकों "यार के दीवानों" प्रभु प्यारों, सूफ़ी साधुओं एवं मननशील जिज्ञासुओं के सम्पर्क में आये। उनसे उन्होंने साधना के व्यावहारिक अङ्गों का ज्ञान अर्जन किया। इसके अतिरिक्त सूफ़ी साधुओं की वाणी एवं सूफ़ी साहित्य के अध्ययन में भी अत्तार ने कुछ कम समय व्यतीत नहीं किया। पूरे ३९ वर्ष उन्होंने सूफ़ी रहस्यों एवं मर्मों के तत्त्वज्ञान की खोज में व्यय किए। इतने विशद अध्ययन, विचार एवं इन सबको अपने जीवन में घटित कर लेने के कारण ही ईरान के सूफ़ियों में अरब के इब्नुल-फ़रीद जैसा स्थान पाने वाले जलालउद्दीन रूमी ने 'अत्तार' को अपना गुरू स्वीकार किया है। अत्तार अपने समय के सूफ़ी सिद्धान्तों के सबसे बड़े ज्ञाता थे। उनके उपदेश साधकों को चाबुक की तरह ज्ञान एवं परम अनुभूति की ओर ठेलकर ले जाते हैं तथा उनका ईश्वर प्रेम[८] ज्ञान सागर से तत्व रूपी मोती खोज निकालनेवाले ग़ोतेख़ोरों को एक अति उज्ज्वल प्रकाश का कार्य करता है।[९]

पर्यटन के पश्चात् अत्तार नीशापूर में ही स्थित हो गये। उनका समय आत्मतत्व-चिन्तन में ही व्यतीत होता था। उनका द्वार केवल परमार्थ संबंधी विषय पर बात करनेवालों के लिए खुला करता था। वे इस चिन्तन द्वारा अत्यन्त गहन आध्यात्मिक रहस्यों का अनुभूति के द्वारा अन्वेषण करते और इसी प्रकार उन्होंने परम आध्यात्मिक पद को प्राप्त भी किया। दौलतशाह के अनुसार अत्तार ने परमात्म-ज्ञान-महासागर में गहरी डुबकी लगाई और उस तात्कालिक दिव्य अनुभूति के समुद्र में एक लम्बी छलांग। अत्तार, कातिबी, के शब्दों में वास्तव में नीशापूर का गुलाब था।

---

[४]यह हृदय की पीड़ा प्रत्येक प्रेमी की अनुभूति है। यही भाव मीरा के 'हे री मैं तो दरद दीवानी' एवं कबीर के "तुम बिनु दुख पावै मेरी देही···दुखित तुम बिन रटत निसि दिन ···अन्न न भावै···अथवा···बिबिध बिधि हम भई ब्याकुल, बिन देखे जिव न रहै, तपन तन जिव उठत झाला, कठिन दुख अब को सहै" तथा अन्य कवियों की वाणी में भी मिलता है।

[५]मीरा की 'अँसुअन जल सींचि सींचि प्रेम बेल बोई' पंक्तियों का स्मरण हो आता है।

[६]स्वर्ग का दूत, जिसके द्वारा मुहम्मद साहब पर क़ुरान उतारी गयी।

[७]इस विषय पर कबीर का भी कहना है:—

जैसा अन जल खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिए, तैसी बानी सोय॥

[८] परशियन मिस्टिक्स—"अत्तार" पृ० १५

[९] अत्तार के इस प्रधान गुण का वर्णन करते हुये सुप्रसिद्ध सूफ़ी कवि जलालउद्दीन रूमी लिखते हैं:— अत्तार में मन्सूर का आत्मिक प्रकाश घनीभूत हुआ था। उन्होंने सूर्य के हाथों प्रेम का प्याला पिया था। इस स्थल पर हमें कबीर की यह पंक्ति स्मरण हो आती है:—

"सुरत कलारी भइ मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।"

हि० लि० हि० आ० परशिया ब्राउन, देखिए पृष्ठ ५०६-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अत्तार ने केवल अध्ययन ही नहीं किया बल्कि अपने विचार, अपना मत एवं अपनी पहुंच प्रकट करते हुये लिखा भी बहुत कुछ है। उनकी ख्याति उनकी रचनाओं की बाहुल्यता के कारण और भी अधिक है। शुस्तर के क़ाज़ी नूरुल्लाह के अनुसार अत्तार की रचनाएँ क़ुरान के सूरों के बराबर अर्थात ११४ हैं जिनमें से तीस अब भी प्राप्य हैं। किन्तु इनमें सबसे प्रसिद्ध केवल तीन हैं—(१) पंदनामा (The book of counsels–उपदेश) यह कठोर तपस्या की ध्वनि लिए एक शिक्षात्मक काव्य ग्रंथ है। यह शिक्षाएँ केवल रहस्यवादी सैद्धान्तिक उपदेश ही से भरी नहीं हैं बल्कि साधक के लिए अनुभव-गम्य और व्यवहार में आने वाली वास्तविक उक्तियाँ हैं।

(२) दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ है "तज़किरात-अल-औलिया" [ The Memoirs of the Saints—संतों के संस्मरण ]। अत्तार की समस्त रचनाओं में केवल यही एक ग्रंथ है जो गद्य में लिखा गया है। इस ग्रंथ का वर्ण्य विषय उन सूफ़ी संतों की जीवनी एवं उनकी वाणी है जिनका अध्ययन अत्तार ने उन ३९ वर्षों के बीच किया था अथवा जो उन्हें पर्यटन के समय मिले थे और जिन्होंने उन्हें प्रभावित किया था।

(३) अत्तार की तीसरी महत्वपूर्ण काव्य रचना जो अपने काव्य कौशल, सारत्त्व तथा रहस्यवादी गम्भीर दार्शनिक मर्मों के अत्यन्त सरल विवेचन एवं स्पष्टीकरण के लिए ईरानी अथवा फ़ारसी ही नहीं बल्कि समस्त सूफ़ी साहित्य में गर्वान्वित पद प्राप्त कर सकती है। इसका नाम है "मन्तक़ुलतायर" जिसका अर्थ है पक्षियों का कथोपकथन" (The Discourse of the Birds)। इस काव्य में ४,६०० अश्आर हैं और रूपक के चमत्कार का प्राधान्य है। ग्रंथ के आरम्भ में 'खुदा', 'रसूल' और चार ख़लीफ़ाओं की स्तुति व गुणगान हैं। ख़लीफ़ाओं की स्तुति व गुणगान से यह स्पष्ट होता है कि इस समय तक अत्तार सुन्नी मत को भुला न सके थे। मुख्य विषय ५९३ वें शेर से आरम्भ होता है तथा ४२ मक़ालों ( कथोपकथनों ) में उसी का विस्तार है। इसके पश्चात् अन्त में ख़ातमा निष्कर्ष के रूप में दिया गया है। इस स्थल पर इस रचना के विषय वस्तु की एक रूप रेखा दे देना कुछ अधिक संयत प्रतीत होता है। इसके रचयिता ने आत्मा को परमेश्वर की खोज में व्यस्त दिखलाया है। सूफ़ी यात्री की उपमा एक पक्षी से देकर परमात्मा को सीमुर्ग़ माना है। पक्षीगण एकत्रित होते हैं और क्यों कि उन्हें सीमुर्ग़ से, जो उनके अत्यन्त निकट है परन्तु वे जिससे अत्यन्त दूर हैं—मिलन प्राप्त करने की अभिलाषा है, उस प्रियतम के मार्ग पर अग्रसर होना है; इसी हेतु एक सरदार एक पथप्रदर्शक की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। जो अपने वक्षःस्थल में ज्ञान गरिमा द्योतक चिन्ह धारण किए रहता है और तप व आन्तरिक शुद्धि के पुरस्कार में ताज जिसके सिर पर सुशोभित हो है, उस शेबा की रानी को सुलेमान द्वारा भेजी हुई दूतिका को जिसका इसी हेतु मुसलमानों में अधिक आदर भी है, पथप्रदर्शक चुना गया। हुदहुद अब सीमुर्ग़ का बहुत संक्षिप्त परिचय देता है कि वह ऐसा है जिसे शब्दों द्वारा व्यक्त करना सम्भव नहीं और यद्यपि उस तक पहुँचने का मार्ग खोजना भी अत्यन्त कठिन कार्य है किन्तु फिर भी उसके अभाव में किसी को चैन भी नहीं मिलता। किन्तु उसके निवास-स्थान 'कोहक़ाफ़' की खोज में जानेवाले जिज्ञासु को मार्ग में अनेक प्रकार की बाधायें व कठिनाइयाँ पड़ती हैं जिनको पार करने के लिए अदम्य उत्साह, अक्षुण्ण साहस और पूर्ण आत्म त्याग की आवश्यकता होगी। उस पर्वत तक पहुंचने से पहले सात घाटियाँ पार करनी पड़ेंगी और इन घाटियों का मार्ग आपत्तियों एवं असुविधाओं से परिपूर्ण है। इस मार्ग पर चलना अपनी आहुति देना है क्योंकि—'यह ख़ाला का घर नहीं,

इश्क़ नहीं आसाँ बस इतना ही समझ ले,
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।

इस प्रकार मार्ग के कण्टकों का थोड़ा विस्तार देते ही प्रत्येक पक्षी अपनी इन्द्रिय-जनित कठिनाई को स्मरण कर हतउत्साहित सा ज्ञात होने लगा। बुलबुल ने गुलाब से विरक्त होकर जीवन असह्य हो जाने की बात कही, मुर्गे ने पिंजड़े का दुखड़ा रोया, मोर ने इतनी ऊँची उड़ान न भर सकने की उसांस ली, बत्तख़ जल-विहीन होने का विचार आते ही आंखों में जल भर लाई, बगुले ने छोटे छोटे जलाशयों की मछलियों का स्वाद न छोड़ सकने की दुहाई दी. बाज़ ने शाही कलाई को छोड़कर अन्यत्र कहीं जाना पददलित होना समझा···इसी प्रकार सभी ने इस मार्ग का अवलम्बन लेने में कुछ असमर्थता सी प्रकट की। पथिक पक्षी अथवा जीव की इन दुर्बलताओं को दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार की कथाओं, उदाहरणों और रूपकों द्वारा हुदहुद ने उपदेश दिया और इस भौतिक आसक्ति की निन्दा की। भौतिक आसक्ति के कारण कितने महान तपस्वियों को भी असफलता के दर्शन करने पड़ जाते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



उदाहरण अत्तार ने शेख़ सन्आं की कहानी से दिया है जो 'पीर अहदे ख़ेश बूद' अपने समय के एक बहुत बड़े भक्त थे। और 'दर कमालश ऊ चे गोयम बेश बूद' उनके चमत्कार के विषय में जितना भी कहा जाय थोड़ा है। जो ऐसे शेख़ थे कि 'बूद अन्दर हरम पंजाह साल' काबे की मस्जिद में पचीस बर्ष तक फेरी लगाई थी और बामुरीदां चार सद साहब कमाल' चार सौ योग्य साधु जिनके शिष्य थे। जिन्होंने "कुर्व पंजह हज बजा आवुरदा बूद। उमरा उमरे ऊ तमामें करदा बूद"—पचास हज किए थे बल्कि छोटे हज में सारी आयु ही व्यतीत कर दी थी। जो "हम सलातो सोम बेहद दाश्त ऊ। हेच सुन्नत रा फ़रो न गुज़ाश्त ऊ" रोज़ा (व्रत और उपवास) भी बहुत अधिक रखते थे और किसी भी व्रत को योंही ख़ाली नहीं जाने देते थे। और पेशवाया ने कि दर पेश आमदन। पेशे ऊ अज़ ख़ेश बे ख़ेश आमदन॥" और बड़े बड़े त्यागी उनके पास आने पर अपने आपको (उनका तप देखकर) भूल जाते थे। जो अनेक प्रकार के चमत्कार भी दिखा सकते थे 'दर करामातो मुक़ामात आमदी।' जिनमें यह शक्ति विद्यमान थी कि "हर के बीमारी व सुस्ती याफ़्ते। अज़ दमे ऊ तन्दुरुस्ती याफ़्ते॥' रोगी मनुष्य उनकी फूंक से अच्छा हो जाता था तो इतने उच्च कोटि के साधक भी युसुफ़ की भांति कुएँ में गिर जाते हैं केवल इसी भौतिक आसक्ति के कारण। यही शेख़ सनआं इस उम्र में रूम की यात्रा करते समय एक ईसाई बाला के प्रेम में पड़कर उसे रिझाने के लिए उसकी इस आज्ञा को कि 'मुफ़्त काबीनम कनूँ ऐ तातमाम! ख़ूक बानी कुन मरा साले मुदाम', पूरे एक वर्ष तक रोज़ाना मेरे सुअर चराया कर···स्वीकार करते हैं। यहां पर हमें मीरा का पद स्मरण हो आता है:—

कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिए करवट कासी।
कहा भयो है भगवा पहरियां, घर तज भये संयासी।
जोगी होय जुगत नहिं जानी, उलट जनम फिर आसी।"

तो हुदहुद ने इस भौतिक आसक्ति की निन्दा करके उन्हें इस प्रकार की दुर्बलताओं का दास होने के लिए धिक्कारा। हुदहुद ने कहा—

गुफ़्ए दर बन्द सूरत मांदा तू।
पाए ता सर दर कुदूरत मांदा तू॥

सांसारिक वस्तुओं के प्रति इच्छा में मोह उत्पन्न होने के कारण तू संसार का गुलाम हो गया है अतएव तू सिर से पैर तक अपवित्रता से भर गया है। क्योंकि

इश्क़े सूरत नेस्त इश्के मारफ़त।
इश्क़े शहवत बाज़िए हैवाँ सिफ़त॥

केवल चेहरे पर (आकृति अर्थात सांसारिक सौंदर्य्य पर) मुग्ध हो जाना ईश्वर के प्रति प्रेम करना नहीं है वरन् वह तो पशुओं की वासना के समान है (क्योंकि वासनामय प्रेम ईश्वर के प्रति प्रेम में बाधक होता है)

साथ ही साथ हुदहुद ने यह भी बतलाया कि तुम्हारा स्थायी सम्बन्ध तो सीमुर्ग़ से है जिसके एक बार चेहरे से नक़ाब उतार देने पर जो द्युति चारों ओर बिखरी वही तुम सब पक्षी हो गये। इस प्रकार' तत्वतः उसमें और तुम में कोई भेद भी नहीं है।

वह उन्हें वीर के समान अपने मार्ग में आगे बढ़ने को कहता है—

पाए दर नेह हम चो मर्दानो मतर्स।

क्योंकि—

चन्द तरसी दस्त अज़ तिफ़ली बेदार।
बाज़ शौ चूँ शेरे मरदाँ दर शिकार॥

तू कब तक भय खाता रहेगा, इस बालकपन के स्वभाव को छोड़ दे। वीरों के समान आखेट करने में अपनी धुन में मस्त हो जा।

गर तुरा सद उक़बा नागह ओफ़तद।
बाक न बुवद चूँ दरीं रह ओफ़तद"॥

अर्थात् तेरे मार्ग में यकायक कठिनाइयाँ आ पड़ें तो भी तू उनका भय मत कर।

इसके पश्चात् हुदहुद ने मार्ग की सात घाटियों का वर्णन किया है जिनको सीमुर्ग़ तक पहुंचने के लिए प्रत्येक पक्षी को अवश्य ही पार करना है।

इन सातों घाटियों के वर्णन में सूफ़ी साधना के सात स्तरों की विशद व्याख्या और उनका सुन्दर चित्र स्पष्ट किया गया है। प्रथम घाटी है 'तलाश' अथवा खोज की (The Valley of Search), जिसमें पथिक को अगणित कठिनाइयों विपत्तियों और परीक्षाओं का सामना करना पड़ता है। इस अवस्था में उसे सांसारिक आकर्षणों से अपने को हटाना पड़ेगा। प्रायः इसी अवस्था में प्रत्येक सूफ़ी साधक को सांसारिक वस्तुओं की नश्वरता, उनमें निस्सारता और सम्भवतः उनसे बलपूर्वक हट सकने के कारण उनके प्रति एक हेच एवं घृणित भाव पोषित करते देखा जाता है; साथ ही साथ उस आसक्ति को दूसरी ओर प्रेरित करने का संकेत भी होता है। सन्त काव्य के कवियों की इसी प्रकार की वाणी को 'चेतावनी' नाम से सम्बोधित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



किया गया है। अत्तार भी उस घाटी में खड़े होकर कहते हैं:—

हर जमाले रा कि बाशद बा ज़वाल।
कुफ्र बाशद मस्त गश्तन ज़ाँ जमाल॥

क्षण भंगुर वस्तु पर मर मिटना ठीक नहीं है। नाशवान् सौन्दर्य पर मुग्ध होना कुफ्र ( नास्तिकता ) के समान है।

दोस्तीए सूरती ऐ मुख़्तसर।
दुश्मनी गरदद हमा बा यक दिगर॥

सूरत पर आशिक़ होने को अपने आप से दुश्मनी करना समझ।

फिर आसक्ति किस पर हो?

आँ कि ऊरा दोस्तीए ग़ैबी अस्त

उस अदृश्य से मित्रता करना ही सच्ची मित्रता है और—

हर चे जुज़ ईं दोस्ती रहगीरदत।
बस पशेमानी कि नागह गीरदत॥

इस मैत्री के अतिरिक्त यदि कोई मनुष्य अन्य पथ का अनुगामी होगा तो वह केवल एकायक पशेमानी ( आपत्तियों ) में पड़ जायेगा किन्तु सांसारिक आसक्ति के संपूर्ण त्याग के उपरान्त समस्त सांसारिक स्नेह-बन्धनों से मुक्त हो जाने पर पथिक को दिव्य ज्योति का प्रकाश मिलेगा और मार्ग में फिर उसे एक ही नहीं वरन् अनेक पगडंडियां इस पथ से फूटती और इसमें मिलती दृष्टिगत होंगी [वास्तव में यह विभिन्न मत पंथ एवं स्मृतियों द्वारा निर्धारित साधना के अङ्ग हैं जिनके बीच अपने आपको उपस्थित देखकर साधक एक बार तो हतबुद्ध सा रह जाता है कि किसको ग्रहण करे और किसका त्याग करे ], किन्तु हताश होने की आवश्यकता नहीं क्योंकि इसी समय वह "अलबेला साक़ी" स्वयं अपने हाथ से एक जाम ऐसा पिला देता है कि कबीर के शब्दों में 'सुरत कलारी भइ मतजारी मदवा पी गई बिन तोले' का सा छकाव आ जाता है जिससे पथिक निश्शङ्क भाव से पथारूढ़ होता चला जाता है।

यही प्रतीति प्रीति में परिणत हो जाती है और इसी अवस्था को इन पक्षियों के मार्ग की दूसरी घाटी का 'प्रेम घाटी' ( The Valley of Love ) नाम दिया है जिसमें पथिक प्रिय को प्राप्त करने की इच्छा रूपी ज्वाला में ठीक उसी प्रकार सुलगता रहता है जिस प्रकार अग्नि से दग्ध होने पर। अत्तार तो ललकार कर कह रहा है कि:—

कस दरीं वादी बजुज़ आतश मबाद।
ज़ां के आतश नेस्त इश्क़श ख़ुस मबाद॥

इस घाटी में केवल वही प्रवेश करे जो अन्तर में ज्वाला लिए हो और जो अग्नि के समान नहीं जलता उससे उसका प्रेम प्रसन्न ही नहीं होता अर्थात प्रेम प्रगाढ़ता को प्राप्त नहीं होता। और

ता नसोज़ी ख़ेश रा यक बारगी।
कै तवानी रस्त अज़ ग़मख़्वारगी॥

जब तक तू अपने को बिल्कुल न जला डालेगा तब तक क्लेश अथवा दुःख से छुटकारा नहीं हो सकता।

और इस प्रकार स्वयं को जलाने में उसे कुछ भय भी नहीं लगता क्योंकि जो सच्चा प्रेमी होता है वह 'नयंदेशद ज़ जाँ' प्राणों की चिन्ता नहीं रखता। वह समझता है कि:—

सद्रेह जानस्त जाँ ईसार कुन्।
पस बरक़गन परदओ दीदार कुन्॥

यही प्राण उसके मार्ग की रुकावटें हैं। इनको उस प्रियतम पर वार दे और फिर पर्दा उठाकर उसका दर्शन कर।

और इस प्रेम-साधक की साधना के अंग क्या हैं?

प्राणों का मोह तो उसने निवारण कर ही दिया। अब उसे 'नेको बद दर राहे ऊ यकसाँ बुवद' अर्थात भलाई बुराई उसकी आँखों में समान जँचे। यही नहीं बल्कि 'ख़ुद जो इश्क आमद न ईं नो आँ बुवद' विश्वास और संदेह का भी विचार उसे नहीं होना चाहिये। 'आक़बत अंदेश न बुवद यक ज़मां। बर कुशद ख़ूनश बआतश सद जहाँ', उसे अपनी आक़बत की चिन्ता न हो…क्षण भर के लिए भी नहीं, अपना भी ज्ञान न रहे, मस्त हो और उसका रक्त सैकड़ों मानवों को उसी अग्नि में डालने की सामर्थ्य रखता हो। उसी ज्वाला में धर्माधर्म के विवेक को भी भस्म कर डाल.—'तर्के ईमां गीरो जाँ रा बर फ़िशां' अर्थात् धर्म भी छोड़ दे और प्राण भी जाने दे। क्यों कि प्रणय का लाल ( पक्षी ) शास्त्रीय परिपाटी में पिंजड़े में एक क्षण भी नहीं ठहर पाता।

चूँ तुरा ईं कुफ्र ओ ईं ईमां न मांद।
ईं तने तू गुम शुदो ईं जां न मांद॥

प्रणय और नास्तिकता में घनिष्ट सम्बन्ध है। वास्तविक प्रेमी वही है जो नास्तिक है अर्थात शास्त्रीय परिपाटी की जकड़बन्दियों से परे है। कारण भी तो है। प्रणय के सामने ज्ञान ठहरता ही कब है? वह तो प्रणय का भूत सवार होते ही लुप्त हो जाता है।

अत्तार ऐसे ही प्रगाढ़ प्रेम के अत्यन्त गहरे छकाव में जिसमें इतनी तीव्र जलन है कि दूसरों को जला दे, उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



साक़ी के हाथों से बिन तोले ही पीने चले जाते हैं और तिस पर भी जब नहीं अघाते तो कहते हैं कि—

साक़िया ख़ूने जिगर दर जाम कुन।
गर नदारी दुर्द अज़ मा वाम कुन॥

ऐ साक़ी! अब प्याले में हृदय का रक्त भर दे। यदि तेरे पास तलछट नहीं है तो हमसे उधार ले ले।

यहाँ कवि की कल्पना ने साधक को भावना से युक्त होकर कितना सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है।

और तलछट भी कैसी हो? ठीक ऐसी जो सम्पूर्ण अस्तित्व को प्रिय में लय करदे। पर्दे को जला डाले और मार कर जिला दे :—

इश्क़ रा दर्दे बेबायद पर्दा सोज़।
गाह जां रा परदा दर गह परदा दोज़॥

प्रेम के लिए, लगन के लिए ऐसा तलछट होना चाहिये जो पर्दे को ही जला डाले। कभी 'जीवन के पर्दे को फाड़ डाले, कभी फिर सी दे'।

तीसरी घाटी 'ज्ञान घाटी' है (The Valley of Knowledge) जिसका कोई ओर छोर नहीं है। यहाँ रहस्यवाद के सूर्य्य का प्रकाश हो रहा है और प्रत्येक पथिक को उसकी सूझ के बल पर अर्थात अध्यात्मिक योग्यता के अनुसार उस ज्योति के उतने प्रकाश की प्राप्ति होती है जितना वह सहन कर सकता है। इसका सुन्दर उदाहरण गीता में है जहाँ श्रीकृष्ण ने अपने विराट रूप के दर्शन अर्जुन को दिव्य चक्षु प्रदान करने के बाद ही दिये। यही वह घाटी है जहाँ जन्मगत संस्कार के सन्देह का समाधान एवं रहस्यादि का स्वयं ही उद्घाटन होता है। अब भिन्न भिन्न वस्तुओं में यार का जलवा नज़र आने लगता है। 'जित देखूँ तित स्याममयी' की सी बात लगती है।

इस अनुभूति के साथ साथ साधक चौथी घाटी में भी प्रवेश करता जाता है जिसका नाम है स्वतन्त्रता की घाटी अथवा अनासक्ति की घाटी (The Valley of Detachment) प्रेम का परिपाक और रहस्यवाद के प्रकाश प्राप्त करने पर ही प्राकृत रूप से सांसारिक वस्तुओं से अनासक्ति आती है। प्रथम घाटी में तो केवल स्थूल रूप से स्थूल पदार्थों से हटना हुआ था किन्तु उसका हृदय में अवशिष्ट संस्कार जो अत्यन्त सूक्ष्म होता है वह इसी घाटी में दूर होता है। अथवा भारतीय साधना के अनुसार यह कहना उपयुक्त होगा कि साधक की कर्म-ग्रन्थि साधना की इसी अवस्था में खुलती है। यहाँ स्थूल और सूक्ष्म माया, का समाधान होता है। इसी घाटी में परमात्मा की अनन्तता और उसके दिव्य ऐश्वर्य्य की जो समस्त वस्तुओं को परिवेष्टित किए हुये है अनुभूति होती है।

पांचवीं घाटी संकलन (The Valley of Unification) की है जहां प्रत्येक वस्तु का सम्मिलन हो रहा है यहां गिनती, गुण, काल, देश, मृत्यु, जीवन कुछ नहीं रहते। यहाँ यार की वास्तविक सत्ता व्यक्त होती है। और ज्ञात होता है वह एक सत्ता को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं है। उसका न कोई आदि है न कोई अन्त। यहां पूर्ण रूप से मौन हो जाना पड़ता है क्योंकि बोलने के लिए न 'मैं' है और न 'तू'।

किन्तु यह अनुभव अत्यन्त आश्चर्य्य में डालनेवाला होता है। इसी कारण इस अगली घाटी को आश्चर्य की घाटी (The Valley of Bewilderment) कहा गया है। गीता में भी दूसरे अध्याय में 'आश्चर्य्यवद्ध पश्यति' कहा है। अपना अस्तित्व लय होते देखकर अत्यन्त आश्चर्य्य होता है और यदि इस समय साधक से पूछा जाए कि 'तुम्हारी' स्थिति है या नहीं? तुम बाहर हो या भीतर? व्यक्त हो या अव्यक्त? संज्ञा पूर्ण हो या संज्ञा रहित? तो वह कुछ भी न कह सकेगा। जानता है अथवा नहीं, यह भी नहीं बता सकता। कदाचित् ऐसा ज्ञात होता है कि प्रायः बुद्धदेव से परमात्मा की स्थिति के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने पर वे तत्क्षण इसी अवस्था में लीन होकर चुप रह जाते थे, जिसके मनचाहे अर्थ ले लिए गये हैं। इस समय वह यह भी नहीं बता सकता कि वह प्रेम करता है या नहीं, मुसलमान है या नहीं। तब वह है क्या? उसका हृदय वास्तव में एक ही समय में प्रेम से परिपूर्ण भी है और रिक्त भी।

अन्तिम और सातवीं घाटी है संज्ञाहीनता की (the Valley of Self annihilation) जिसका वर्णन अक्षर के अनुसार सम्भव नहीं। वह वर्णन से परे की बात हो जाती है। वह तो बस बिन्दु के सदृश अनन्त सागर में लुढ़क कर सदैव के लिए अपनी संज्ञा को खो बैठता है अब वह है भी और नहीं भी है।

जितने पक्षी गणों ने यात्रा आरम्भ की थी उसमें से केवल ३० पक्षी ऐसे निकले जो सातों घाटियों को पार कर सके और उनके प्रलोभनों में नहीं फँसे और तदुपरान्त सीमुर्ग़ के निवास स्थान तक पहुंच सके।

इस साधना और अनुभव से उनके शरीर अत्यन्त श्रान्त हो चुके थे। किन्तु जैसे ही वे सीमुर्ग़ के राजभवन के द्वार पर पहुंचे वैसे ही ड्योढ़ीवान ने उन्हें लौट जाने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

76211



आदेश दिया क्योंकि वे उस महाराजा के दर्शन प्राप्त करने के लिए अत्यन्त क्षुद्र थे। किन्तु उन पक्षियों ने कहा कि विरह की ज्वाला से वे इतने तप्त हैं कि अब लौटकर जाना सम्भव नहीं वरन् वे वहीं अपने प्राण त्याग कर देंगे। तब अन्त में दया का उद्रेक हुआ और उनको महाराजा सीमुर्ग के सम्मुख उपस्थित किया गया। दिव्य प्रकाश हुआ। एतद्पश्चात् प्रत्येक को उसके कर्मों का लेखा सुनाया गया। यहां पर यह लक्ष्य करने की बात है कि यह भाव कितना अधिक भारतीय है। बुद्धदेव ने अपने सभी जन्मों को अपने सम्मुख चित्रित सा देखा था। इसके पश्चात उनकी मृत्यु हो गई और शरीर राख के ढेर बन गये। मृत्यु के बाद ही उनमें पुनः जीवन आया और सम्पूर्ण पार्थिव तत्त्व से रहित होकर उस सनातन सूर्य्य के प्रकाश में वे भी रश्मियां बनकर चमकने लगे उन्होंने अपने रूपों में सीमुर्ग को देखा और अन्त में अपने आप व सीमुर्ग को एकरूप देखा। सीमुर्ग ही तीस पक्षी थे और तीस पक्षी ही सीमुर्ग।

अत्तार की मृत्यु १२२९-३९ में दौलतशाह के अनुसार मंगोलों के हाथों हुई जब कि उन्होंने नेशापूर का क़ब्ज़ा कर लिया था। अत्तार को एक मंगोल सरदार ने क़ैद कर लिया और मार डालने को प्रस्तुत ही था जब कि दूसरा मंगोल अत्तार के प्राणों की माफ़ी के बदले कुछ धन देने को तैयार हुआ। सरदार स्वीकार कर रहा था कि अत्तार ने कहा कि वह काफ़ी बड़ा आदमी है और यह बहुत सम्भव है कि कोई दूसरा व्यक्ति कुछ और अधिक धन दे दे। इस पर वह सरदार किसी अन्य ग्राहक की खोज में अत्तार को लेकर चल दिया। चलते चलते थक जाने पर वह फिर इन्हें मार डालने को उद्यत हुआ ही था कि एक व्यक्ति आ पहुँचा और उसने अत्तार के प्राणों के बदले एक बोरा भूसा देना स्वीकार किया। इस पर अत्तार ने सरदार से कहा "इसी को स्वीकार करो। यही उपयुक्त मूल्य है मेरा।" इस उत्तर से मंगोल सरदार अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने तलवार के एक हाथ में अत्तार के सिर को धड़ से अलग कर दिया।

---

# चल रे चल यौवन उद्दाम !

श्री० श्रीपालसिंह 'क्षेम'

घिरने दे पवि-गर्भित बादल
होने दे घनघोर विगर्जन,
स्फूर्जन करने दे कौंधा को
चलने दे फुंकरित प्रभंजन,
आज प्रलय की इस बेला में मत कर तू विश्राम।

उठने दे उत्तुंग तरंगें
गर्जन करने दे सागर को,
बूँद-बूँद को नद बनने दे,
सागर बनने दे निर्झर को,
अभ्रंकश, उदग्र लहरों से सदा तुझे है काम।

होने दे मानव को दानव
रचने दे प्राणों की होली,
आज तुझे तूफ़ान बुलाता
ले मस्तक पर शोणित रोली,
प्रलय प्रभात तुहारा, रुकना आज तुहारी शाम।

झुक जाएंगे शैल स्वयं ही
झंझा तेरी श्वास बनेगी,
ओ लपटों पर हंसनेवाले
दामिनि तेरा हास बनेगी,
सागर चरणों में लोटेगा, ध्वंस बनेगा धाम।

झंझा में जागेगा जय-स्वर
नव-ध्वनि तेरी गूँज बनेगी,
तेरे स्नेहिल नयन-पुटों से
वह प्रलयंकर ज्वाल उठेगी,
ध्वंस-पत्र पर अंकित होगा तेरा सृजन ललाम।

---



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# डाक्टर मोण्टीसोरी और उनकी बाल-शिक्षण पद्धति

श्री गुरुदेव विद्यालंकार

## 'जिन खोजा तिन पाइयां'

सन् १९०६ की बात है। सीन्योर एडवर्ड टालमो अपने कमरे में बैठा अपने देश के मज़दूरों की शोचनीय स्थिति पर विचार कर रहा था। उस समय इटली में मज़दूर वर्ग की वही बुरी स्थिति थी, जो आज हमारे देश में है। थोड़ी आमदनी, जिससे मुश्किल से गुज़ारा होता था; तिस पर ज़रूरत से ज्यादा बच्चों का भार और संकुचित घर, जिनमें बारहों मास गन्दगी रहती। भौतिक दृष्टि से गन्दे और दूषित वातावरण का प्रभाव मन और आत्मा पर पड़े बिना नहीं रहता। मज़दूर वर्ग के ये लोग आत्मिक दृष्टि से पतित हो रहे थे। नैतिकता उनमें लेश मात्र भी नहीं रही थी। पतनोन्मुख मज़दूर वर्ग के उद्धार करने का संकल्प टालमो ने किया। उनके लिए सब से पहली ज़रूरत थी खुली हवा और प्रकाश वाले मकानों की। टालमो स्वयं रोमन स्थापत्य मण्डल का प्रमुख अधिकारी था। उसने इस समस्या को हल करने के लिए खूब छान-बीन की और आखिर मज़दूर वर्ग के लोगों के जीवन को सुखमय बनाने के लिए एक रचनात्मक योजना बनाने में वह सफल हुआ।

टालमो ने योजना तो तैयार कर ली; परन्तु उसे क्रियान्वित करने में एक कठिनाई थी और वह यह कि जब मज़दूर मां-बाप अपनी आजीविका कमाने के लिए सारे दिन बाहर रहेंगे, तब स्कूल में न जा सकने वाले बालक अकेले हो जाने पर घर में बे-रोक-टोक विचरेंगे और साफ़ तथा सुथरे मकानों की दीवारों, दरवाजों और फर्श पर कोयले से लकीरें खींच कर उन्हें बिगाड़ देंगे। प्राणवान बालक और किसी सहेतुक-प्रवृत्ति के अभाव में शक्ति और स्फूर्ति की मस्ती में आकर किस प्रकार मकानों को खराब कर देते हैं,—यह बात किसी से छिपी नहीं है। टालमो के मन में एक विचार स्फुरित हुवा कि इस प्रकार मकानों के खराब हो जाने पर, उनको सुधारने के लिए किरायेदारों से पैसा वसूल करने की अपेक्षा उतना ही धन व्यय करके यदि बालकों को सारे दिन खेल-कूद और सहेतुक तथा उपयोगी प्रवृत्ति में रोके रखने के लिए यदि किसी योग्य-व्यक्ति के हाथों में सौप दिया जाया करे, तो कैसा हो? यह विचार पैदा होते ही टालमो ने अपनी योजना को अमली रूप दे दिया और प्रत्येक मोहल्ले में बालकों के लिए एक पृथक मकान भी बनवाया। अब वह किसी योग्य व्यक्ति की खोज करने लगा। इसके लिए उसे ज्यादा परेशान न होना पड़ा। डाक्टर मोण्टीसोरी ने उसकी यह समस्या हल कर दी।

## वे कौन हैं?

डाक्टर मोण्टीसोरी इटली की एक महिलारत्न हैं। शिक्षण के इतिहास में यह एक अनोखी बात है कि आज तक कोई स्त्री प्रखर शिक्षण-शास्त्रिणी नहीं हुई। प्रकाण्ड शिक्षण शास्त्रियों की नामावली को उठाकर देखिये, उसमें आप किसी स्त्री का नाम नहीं पायेंगे। सर्व प्रथम स्त्री शिक्षण शास्त्री को पैदा करने का श्रेय इटली को मिला है। डाक्टर मोण्टीसोरी न केवल शिक्षण शास्त्रिणी ही हैं; बल्कि मानव वंश शास्त्रिणी (Anthropologist), शरीर शास्त्रिणी ( Physician ), मानस-शास्त्रिणी ( Psychologist ) और तत्ववेत्री ( Philosopher ) भी हैं। बालमानस शास्त्र की तो वे अद्वितीय पण्डिता हैं। वे स्वयं अविवाहित हैं; लेकिन, माताओं की माता और विश्व के बालकों की मातामही हैं। बाल जगत् में वे नवीन युग का प्रवर्तन करने वाली हैं। अत्युक्ति न होगी यदि कहें कि वे बालकों के कल्याण के लिए अवतीर्ण हुई देवी शारदा हैं।

## जन्म और बालपन

मैडम मोण्टीसोरी का जन्म मध्यम स्थिति के एक ऊंचे कुल में ई० सन् १८७० में हुआ था। वे अपने माता पिता की इकलौती बेटी हैं। यह वह समय है, जब इटली अपनी स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहा था। अन्य देशों की तरह उस समय की इटालियन जनता बहुत ही संकीर्ण विचारों की थी। स्त्री शिक्षा का प्रचार अभी वहां नहीं हुवा था, क्योंकि सामाजिक बन्धन इसमें बाधक थे। इसलिए जिन बिरले परिवारों की कन्याएं ही उस समय स्कूलों में पढ़ने जाती थीं उनकी गिनती समाज सुधारकों में होती थी। मोण्टीसोरी विश्व के बालकों के लिए स्वातन्त्र्य का जो पैग़ाम लायी हैं, उसका बीज हमें उस विरोध में दिखाई देता है, जो उन्होंने स्कूल में दाखिल होकर सामाजिक बन्धनों के खिलाफ किया। मोण्टीसोरी बचपन से ही स्वातंत्र्य की पुजारिणी हैं और वयस्कों के मताग्रह से उन्हें सख्त नफरत है। इसके साथ-ही साथ लोकमत का विरोध

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## शिक्षा

ग्यारह वर्ष तक तो उन्होंने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की उसके बाद उन्होंने प्राथमिक शाला में शिक्षिका होने का विचार किया। उस समय के इटली के समाज में स्त्री का पद बहुत नीचा समझा जाता था। शिक्षित स्त्रियां यदि किसी काम के योग्य समझी जाती थीं; तो वह था शिक्षिका होना। लेकिन, उस समय की प्रचलित शिक्षण प्रणाली उन्हें अपने लिए योग्य न जँची। उनके लिए तो सामान्य शिक्षिका होने के स्थान पर कुछ और ही होना लिखा था। वे फिर स्कूल में दाखिल हुईं और इंजिनीयरिंग का अभ्यास शुरू किया। इस स्कूल में वे अकेली ही विद्यार्थिनी थीं। इसीलिये विद्यार्थियों के साथ पढ़ने में उन्हें अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ा। सुबह उनकी माता उन्हें स्कूल में छोड़ने जातीं, तो सायं पिता उन्हें स्कूल से वापिस लेने को जाते। कक्षा में उन्हें दूसरे विद्यार्थियों से बिलकुल अलग बैठना पड़ता। भोजन या आधी छुट्टी के समय उन्हें स्कूल के किसी कमरे में बन्द होकर बैठना पड़ता और उसके बाहर दरवाजे पर पुलिस का पहरा रहता। किसी आत्माभिमानी व्यक्ति के लिए यह कितने अपमान की बात है? मुक्तभोगी ही इसे समझ सकते हैं। लेकिन, मैडम मोण्टीसोरी ने इन सब को भी सहन किया; क्योंकि गणितशास्त्री बनने के बाद उनकी इच्छा वैद्यक का अभ्यास करने की हुई। मोण्टीसोरी ने इस दिशा में भी सबसे प्रथम कदम उठाया। उस समय का इटली का लोकमत स्त्रियों को डाक्टर होने देने के पक्ष में न था; लेकिन, ऊखल में सिर देने वाले को मूसल का क्या डर? मोण्टीसोरी मैडिकल कालिज में दाखिल हुईं और सुदीर्घ काल के अध्ययन के अनन्तर उन्होंने रोम के विश्वविद्यालय से सम्मानपूर्वक एम० डी० की उपाधि प्राप्त की।

## कार्य क्षेत्र में प्रवेश

अब डाक्टर मोण्टीसोरी ने कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया। उनकी बुद्धि और प्रतिभा की धाक तो सब पर बैठ ही चुकी थी, इसलिए उन्हें योग्य स्थान मिलने में देर न लगी। १८९७ में वे रोम के मानसिक रोगियों के हास्पिटल में असिस्टैंट डाक्टर के तौर पर नियुक्त की गईं। यहाँ आकर डाक्टर मोण्टीसोरी ने आश्चर्य और दुःख के साथ देखा कि हास्पिटल में जहां पागल लोगों को रखा जाता है, वहीं मन्द बुद्धि बालकों को भी रखा जाता है और जिस प्रकार की दवाइयों के प्रयोग से पागलों का इलाज किया जाता है, उसी तरह से मन्दमति बालकों का भी औषधोपचार किया जाता है। डाक्टर मोण्टीसोरी ने बालरोगों का विशेष अध्ययन करके इसमें कुशलता प्राप्त की थी। उन्होंने अधिकारियों की इस भूल को ढूँढ़ निकाला कि मन्द बुद्धि बालक किसी भी मानसिक रोग से ग्रस्त नहीं हैं और उनके बुद्धि मांद्य का कारण योग्य शिक्षण का अभाव है। तो फिर मन्दमति बालकों के अनुकूल शिक्षा कौन सी हो सकती है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए डाक्टर मोण्टीसोरी ने फ्रेंच शिक्षा विशारद सेगुइन द्वारा मन्द बुद्धि बालकों के लिए नियोजित शिक्षण पद्धति का अभ्यास शुरू किया। जब उन्हें इस बात का निश्चय होगया, तो उन्होंने १८९८ में ट्यूरीन की शिक्षा परिषद् में अपने इन विचारों को प्रगट किया। उनके भाषण से शिक्षण जगत् में नवीन प्रकाश की किरणें पड़ीं और नवीन-शिक्षण के इस सूर्य के उदय से शिक्षण विशारदों की नींद टूट पड़ी। उन्हे अपनी धारणाएं भ्रांत प्रतीत होने लगीं। मन्द बुद्धि बालकों की समस्या को किस प्रकार हल किया जाय और उन्हें किस प्रकार शिक्षित किया जाय, इस विषय पर व्याख्यान देने के लिए डाक्टर मोण्टीसोरी को रोम की युनिवर्सिटी से आमन्त्रण आने लगे। उनकी इस योग्यता को स्वीकार करके सरकार ने उन्हें मन्द बुद्धि बालकों की संस्था का प्रमुख बनाया।

अब तक डाक्टर मोण्टीसोरी इन प्रवृत्तियों के साथ-साथ अपना डाक्टरी का धंधा भी करती रहती थीं। इस पेशे में उनका अपने रोगियों के साथ व्यवहार आदर्श कहा जा सकता है। भयंकर रोगों से पीड़ित अनेक रोगियों को वे अपने घर पर ही रख कर उनका इलाज करतीं और जरूरत पड़ने पर आधी रात को भी उठ कर बिना किसी भय के वे बीमारों को देखने जातीं। रोगियों की सेवा और चिकित्सा करने में वे अपने स्वास्थ्य की सुध भी भूल जातीं। किन्हीं-किन्हीं रोगियों की ग़रीबी से उनका चित्त दयार्द्र हो जाता और उनके लिए सब प्रकार की संभव सहायता अपने पास से कर डालतीं। उनका यह स्वभाव आगे जाकर उनके स्कूल के बालकों के लिए बहुत ही प्रभावोत्पादक सिद्ध हुआ।

अब डाक्टर मोण्टीसोरी ने अपने डाक्टरी के धन्धे को छोड़ कर शिक्षण के क्षेत्र में प्रवेश किया और इसमें भी उन्होंने अनुपम तन्मयता तथा असाधारण कार्य क्षमता का परिचय दिया। सुबह के आठ बजे से सांझ के सात बजे तक वे मन्दबुद्धि बालकों के शिक्षण में लगी रहतीं। [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भर उन दया के पात्र बालकों के उद्धार के लिए अपनी बुद्धि तथा शक्ति का व्यय करने के बाद रात सच्चे वैज्ञानिक की तरह सारे दिन के अपने कार्य की पर्यालोचना करतीं, अवलोकनों के नोट रखतीं और उनके परिणाम का वर्गीकरण करतीं। फिर इस विषय पर लिखी हुई समस्त पुस्तकों का परायण करके उनपर सूक्ष्म विचार करतीं और उनसे अपने परीक्षणों में कहाँ तक सहायता मिल सकती है, यह ढूँढ़ निकालतीं। मोण्टीसोरी की सफलता का रहस्य उनकी इस कार्य पद्धति में छिपा हुआ है।

इटली के एक कोने में बैठी हुईं वे शांतिपूर्वक अपने परीक्षण करती रहीं। संसार उन्हें जानता न था। इस लिए कोई उनकी अपूर्व शांति को भंग भी नहीं करता था। इस बीच वे लन्दन एवं पेरिस हो आईं और वहाँ पर मूढ़ तथा मन्द मति बालकों के लिए प्रचलित पद्धतियों से परिचय प्राप्त कर उन्होने अपने ज्ञान की वृद्धि की। फिर इटार्ड तथा सेगुइन के ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने मन्द-मति बालकों को शिक्षित करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के साधन भी बना डाले, जो उनके कार्य में अपूर्व सहायक सिद्ध हुए।

## आश्चर्यजनक परिणाम

जिन बालकों को मन्द बुद्धि समझा जाता था, उन्हीं में से जब एक बालक सर्वसामान्य बालकों की पाठशाला में परीक्षा देने पर अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक नम्बर लेकर सरलता से उत्तीर्ण हो गया और परीक्षक को उसके मन्द मति होने की खबर तक न पड़ी, तब डाक्टर मोण्टीसोरी को अपनी सफलता पर प्रसन्नता हुई। फिर तो इन परिणामों का पुनरावर्तन होने लगा। जिन मन्दमति बालकों को डाक्टर मोण्टीसोरी ने अपनी पद्धति से शिक्षित किया था, वे सबके सब सामान्य बुद्धिवाले बालकों से परीक्षा में अधिक सफलता प्राप्त करते गये। जब लोगों को यह हाल मालूम हुआ, तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही। जिसने यह समाचार सुना, उसे विश्वास न हुआ और देखने वालों को दृष्टिभ्रमसा प्रतीत होने लगा। वे इसमें जादू का भ्रम करने लगे।

लेकिन डाक्टर मोण्टीसोरी इस विचार में पड़ीं कि मन्दमति बालक साधारण बुद्धिवाले बालकों की अपेक्षा परीक्षा में अधिक नम्बरों से पास कैसे हो गये? उन्होने सोचा कि यदि यह पद्धति मन्दमति बालकों पर इतनी कारगर हो सकती है तो साधारण बुद्धिवाले बालकों पर तो इसका और भी अधिक अच्छा प्रभाव होगा, इसमें सन्देह नहीं। अपनी पद्धति का सूक्ष्म विश्लेषण करके उन्हों ने यह भी पता लगाया कि इस पद्धति में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो केवल मन्दमति बालकों के लिए ही खोजी गई हो। इसमें जो कुछ भी था, वह शिक्षण के साधारण सिद्धान्तों के ही अनुसार था। इस विचार ने डाक्टर मोण्टीसोरी के कार्य की दिशा ही बदल डाली। उन्हें अब शिक्षण के कार्य से प्रेम हो गया। जिस शिक्षण के क्षेत्र मे उन्हें पहले अरुचि हुई थी, अब उनका जीवन स्वतः ही उस धारा में बहने लगा। अब वे शालाओं तथा उनमें प्रचलित पद्धतियों का सूक्ष्म अवलोकन करने लगीं। रोम के विश्वविद्यालय में वे फिर से तत्वज्ञान के विद्यार्थी के तौर पर प्रविष्ट हुईं। प्रायोगिक मानस शास्त्र उनका प्रिय विषय रहा। बालमानस शास्त्र का उन्होंने विशेष अध्ययन किया। आखिर शिक्षण और मानववंश शास्त्र में वे स्नातक हुईं। अब वे मानस शास्त्र की कसौटी पर शिक्षण पद्धतियों को आँकने लगीं। उन्हें प्रतीत हुआ कि इनमें आपस में बिलकुल भी सामंजस्य नहीं है। शिक्षण पद्धतियां एक दम सड़ी हुई हैं। एक वैज्ञानिक की तरह वे इनकी परीक्षा करने लगीं और शिक्षण शास्त्र के ग्रंथों का परिशीलन भी उन्होंने शुरू कर दिया। विविध शिक्षण विशारदों के ग्रन्थों का अध्ययन मनन और चिन्तन करने के बाद उन्हें शिक्षण के दोष और अपूर्णताएं हस्तामलकवत् दिखाई देने लगीं। इस काम में उन्होंने अपने सात वर्ष बिता दिये। फ्रेंच शिक्षण शास्त्री इटार्ड तथा सेगुइन के विचारों का उन पर बहुत असर पड़ा। सेगुइन के विचार तो डाक्टर मोण्टीसोरी को इतने पसन्द आये कि उसके ग्रंथों की आत्मा को संपूर्णतया समझने तथा उन्हें अपनाने के लिए उन्होंने उनका अपनी इटालियन भाषा में अक्षरशः अनुवाद कर डाला। इतना कर चुकने पर अब वे प्रचलित शिक्षण प्रणाली से बालकों को मुक्त करने के लिए एक आदर्श शिक्षण प्रणाली की कल्पना करने लगीं। अपने विचारों को क्रियान्वित करने के अवसर की वे खोज कर ही रही थीं कि सीन्योर टालमो से उनकी भेंट हुई। दोनों ने एक दूसरे को अपनी योजना सुनाई। टालमो को डाक्टर मोण्टीसोरी सी सहायक मिलीं और मोण्टीसोरी को अपनी आदर्श शिक्षण-पद्धति के अनुसार प्रयोग करने के लिए योग्य विधेय मिल गये। डाक्टर मोण्टीसोरी ने राज्य की नौकरी छोड़ दी और मजदूर वर्ग के बालकों की शिक्षा का काम अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## कासा डी बाम्बिनी

जनवरी १९०७ में सर्व प्रथम कासा डी बाम्बिनी ( Casa de Bambini ) अर्थात् बालगृह का उद्घाटन हुआ। इटली के एक कोने में शिक्षण जगत् में क्रांति करने वाली एक योजना का सूत्रपात् हुआ। डा० मोण्टीसोरी गरीब बालकों पर अपने अनुपम प्रयोग करके सफलता पर सफलता प्राप्त करती गईं और किसी का उस तरफ़ ध्यान तक न गया। पूर्ण सफलता पा चुकने के बाद मोण्टीसोरी ने अगले वर्ष दूसरा बालगृह खोल दिया। अब वे लोगों से छिपी न रह सकीं। उनकी अपूर्व सफलता ने उन्हें जनता के समक्ष ला खड़ा किया। दूसरे बालगृह का उद्घाटन बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। इस समय डा० मोण्टीसोरी ने जो व्याख्यान दिया, वह उनकी अंग्रेजी की पुस्तक "मोण्टीसोरी की योजना" ( The Montessori Method ) में प्रारम्भिक व्याख्यान के नाम से दिया गया है।

वायु वेग से उनकी ख्याति सर्वत्र फैल गई। लोग आश्चर्यचकित होकर शिक्षण के इन नवीन तथा अद्भुत चमत्कारों का साक्षात्कार करने के लिये देश-विदेश से इटली में आने लगे। शिक्षण प्रेमी जनता का यह तीर्थ स्थान बन गया। ढाई-तीन साल के नन्हे नन्हे बालकों को अपने कामों में योगियों की-सी एकाग्रता और वयोवृद्धजनों के-से दायित्व के साथ सब काम अपने हाथों से करते देख, गद्गद् हो, आनन्दाश्रु बहाते पिता और माता मोण्टीसोरी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वापिस जाते। मोण्टीसोरी पद्धति उस समय अभी अपने बाल्यकाल में थी। यह परीक्षण काल में से गुज़रने के कारण अपूर्ण भी थी। आज वह अपनी पूर्ण युवावस्था में है और देश-विदेश में उसका प्रचार हो चुका है।

## मोण्टीसोरी पद्धति का प्रचार

डाक्टर मोण्टीसोरी की मूल पुस्तक इटालियन भाषा में है, जिसका नाम है साइण्टिफ़िक पैडागोगी ( Scientific Pedagogy )। यह सर्व प्रथम १९०९ में प्रकाशित हुई। १९१२ में यह "मोण्टीसोरी मेथड" (The Montessori Method) के नाम से अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हुई। आज तो उनकी पुस्तक का अनुवाद बीस भिन्न-भिन्न भाषाओं में हो चुका है। उनकी पुस्तक तथा पद्धति की लोकप्रियता का प्रमाण देने के लिए यही पर्याप्त है। योरुप तथा अमेरिका में तो इसका प्रचार है ही और जापान ने भी इसको मान दिया है। हमारे देश में गुजरात और काठियावाड़ के कतिपय हिस्सों में पिछले बीस वर्षों से काम हो रहा है। यह कहना कि दूसरे प्रान्त वाले तो अभी तक इससे पूरी तरह परिचित नहीं है, अत्युक्ति न होगी।

## मोण्टीसोरी पद्धति क्या है ?

पाठक के मन में यह प्रश्न होना स्वाभाविक है। परन्तु इसका उत्तर देना सरल नहीं। इस छोटे से लेख में उक्त प्रश्न का उत्तर दिया भी नहीं जा सकता। स्वर्गीय श्री आचार्य गिजु भाई ने इसे स्वतंत्र बाल शिक्षण का नाम दिया है। इसे अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें तो यों कहेंगे, कि बालक को स्वतंत्ररूपेण उसके जीवन के स्वाभाविक-विकास के लिए अनुकूल परिस्थिति तथा योग्य वातावरण के पैदा करने वाली पद्धति को मोण्टीसोरी-पद्धति कहा जा सकता है। मोण्टीसोरी पद्धति की योजना बालमानस के सुदीर्घ और अतिसूक्ष्म अभ्यास के बाद की गई है। डा० मोण्टीसोरी की मान्यता है कि मनुष्य जीवन के आदर्श विकास के लिए यह आवश्यक है कि बचपन से ही उसके लिए अनुकूल परिस्थिति पैदा कर दी जाय।

मोण्टीसोरी पद्धति में बालविकास से बालक के सुन्दर तथा सुदृढ़ शरीर का विकास ही अभिप्रेत नहीं है। मोण्टीसोरी मानती हैं कि बालक माता पिता के समक्ष खा-पीकर और खेल-कूद कर बढ़ते हुये हृष्ट पुष्ट शरीरमात्र हो नहीं हैं। सुन्दर शरीर के गठन में ही बालकों के भावी जीवन की सफलता की परिसमाप्ति नहीं हो जाती। यदि कोई ऐसा मानता हो तो फिर उसके बालकों तथा उसके उपयोग के लिए पल रहे प्राणियों में क्या भेद रहा ? अतः स्पष्ट है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य इस से कुछ भिन्न है।

मोण्टीसोरी एक जगह लिखती हैं—"शरीरवर्धन के महान् कार्य के लिए जिस प्रकार बाल शरीर के लिए बाह्य वातावरण से पोषण तथा प्राणवायु की आवश्यकता अनिवार्य है, उसी प्रकार इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि उसके आध्यात्मिक विकास के लिए उसकी आत्मा को अभीष्ट पोषण बाह्य परिस्थिति में से मिलना ही चाहिए। यह विकास आन्तरिक है। यह स्वतः होता रहता है और कभी बन्द नहीं होता। बालक को क्रिया तन्तुओं Motor nerves) का व्यवहार सीखना है, क्रियातन्तुओं तथा ज्ञान तंतुओं के बीच समन्वय सिद्ध करना है तथा अपनी बुद्धि का विकास भी करना है। बालक को ये काम क्रमशः सिद्ध करने हैं। मोण्टीसोरी पद्धति में बालविकास से यही अभिप्रेत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बालक के स्वयं विकास के लिए सर्वोत्तम परिस्थिति कौन सी हो सकती है, इस विषय में डा० मोण्टीसोरी का कहना है कि "प्रत्येक व्यक्ति को स्व विकास के लिए जिन चीज़ों की आवश्यकता है, वे सब जिस वातावरण से उसे मिल सकें, वही वातावरण उसके जीवन के विकास के लिए सर्वोत्तम है। डा० मोण्टीसोरी ने अपनी पद्धति में इस सब की व्यवस्था कर दी है। उन्होंने अपनी पद्धति को तीन भागों में विभक्त किया है:—

(१) क्रियातंतुओं की शिक्षा,

(२) इन्द्रियों की शिक्षा,

(३) भाषा शिक्षण।

बालकों के विकास के लिए उपयोगी वातावरण पैदा करने के लिए ही मोण्टीसोरी ने बालगृह खोले; क्योंकि उनके शब्दों में वह स्थल, जिसमें इस प्रकार का वातावरण उपस्थित किया गया हो कि बालक को अपनी शक्तियों को विकसित करने का अवसर प्राप्त हो, बालगृह है। डा० मोण्टीसोरी ने अपनी पद्धति के योग्य बालकों की उम्र तीन से सात वर्ष तक मानी है; क्योंकि यही वह उम्र है जिस समय बाल जीवन या समग्र मनुष्य जीवन गढ़ा जाता है। डाक्टर मोण्टीसोरी का अटल विश्वास है कि मनुष्य जीवन के रहस्य को समझने के लिए हमें प्रारम्भिक बालजीवन का अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि यही वह समय है कि जिसमें हम रहस्यमय मनुष्य जीवन का सुराग़ पा सकते हैं। आख़िर बालक भावी मनुष्य ही तो है।

( श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार द्वारा प्रेषित )

---

# सपूत, बार बार माँ तुझे निहारती !

श्री देवनाथ पाण्डेय 'रसाल' बी० ए०

नौनिहाल, मातृभूमि शीश चाहती !

अश्रु का न आज काम,
अश्रु से चुका न दाम,
रो चुके बहुत—इसे
करो बिदा, करो प्रणाम,
अश्रु-माल वह न, शीश-माल माँगती !

कर गजेन्द्र सी चिंघाड़,
दो, मृगेन्द्र की दहाड़,
काँप यह उठे समुद्र,
हिल उठे खड़ा पहाड़,
गूँज जाय विश्व में स्वतन्त्र भारती !

लौह - शृङ्खला कटें,
विपत्तियाँ सभी मिटें,
डगर-डगर, दिशा दिशा—
तमिस्र - राज्य घन फटें
उठो हिमाद्रि से स्वतन्त्रता पुकारती !!

माल ले उषा खड़ी,
विजय प्रसून से जड़ी,
दिगन्त हँस रहा प्रवीर
देख क्षिप्र गति बड़ी,
प्रकृति रही उतार आज देख आरती !

स्वतन्त्रता - बिगुल बजा,
नृशंस देश को लजा,
प्रशस्त व्योम, सूर्य-रथ—
अरे खड़ा हुआ सजा,
अपार रत्न-राशि मातु आज वारती !

बढ़ चले, बढ़े चरण,
चरण कि जो अभय वरण,
विहँस गले लगा, मिले—
सुलक्ष्य - पन्थ पर मरण,
सपूत, बार बार माँ तुझे निहारती !

---

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# श्रीमती सोफ़िया वाडिया से भेंट

श्री 'कैमरामैन'

जयपुर में गत अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में जब से पहला अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन हुआ है, कि जिसमें देश के विविध साहित्य क्षेत्रों में काम करनेवाले अनेक सज्जन इकट्ठा हुए थे, तब से लोग अखिल भारतीय केन्द्र की पी० ई० एन० शाखा की संस्थापक और संगठन कर्त्री श्रीमती वाडिया की चर्चा करने लगे हैं। पी० ई० एन० के ही तत्वावधान में यह सम्मेलन हुआ था। जो लोग आज श्रीमती सोफ़िया वाडिया की चर्चा करते हैं उनमें से अधिकांश अब तक केवल उनके नाम से ही परिचित थे और उस परिचय के पीछे वे भावनायें नहीं थीं जो किसी भी परिचय को महत्वपूर्ण बनाती हैं। किन्तु आज कम से कम उन लोगों के लिये जिन्होंने श्रीमती वाडिया को सम्मेलन में देखा था वे भावनाओं से पूर्ण एक ऐसी व्यक्तित्व हैं कि जो भावनाएं परिचय के बाद प्रकट होती हैं। पाठक आयें और श्रीमती सोफ़िया का परिचय प्राप्त करें।

बम्बई में एक सुन्दर उद्यान के बीच में स्थित एक आलीशान मकान की पहली मंज़िल की चढ़ती हुई सीढ़ियों पर जैसे ही आप क़दम रखेंगे वैसे सामने टाइप राइटर पर काम करता हुआ एक चुस्त नवयुवक आपको देखकर उठेगा और बिजली की घण्टी का दो बार बटन दबायेगा और फिर आदरपूर्वक नमस्कार करके आपकी अभ्यर्थना करेगा। यह अनुमतिसूचक अभ्यर्थना आपको ऊपर आने का निमन्त्रण है। जैसे ही आप देहलीज़ में पैर रखेंगे वैसे ही किसी रहस्यपूर्ण उद्यान के प्रमुदित वसन्त की तरह एक महिला हल्के रङ्ग की साड़ी और सैण्डल पहने हुये आपका स्वागत करेंगी। नमस्कार के लिये उनके दोनों हाथ बँधे होंगे, शुद्ध पवित्रात्मा का द्योतक उनका मस्तक ऊँचा होगा और उनका गौर वर्ण मुख आपको निमन्त्रण देगा कि आप उनके विस्तृत ड्राइङ्ग रूम में पधारें। इस तरह श्रीमती सोफ़िया आपका स्वागत करेंगी और उनके नमस्कार का प्रत्युत्तर देकर आप उनके साथ उनके ड्राइङ्ग रूम में प्रवेश करेंगे।

ड्राइङ्ग रूम में आप एक नीले रङ्ग के गद्दों की कुरसी पर बैठे होंगे। भव्य मेज़बान निकट ही एक दूसरे सोफ़े पर होंगी। दीवाल पर अंकित चित्रों में भगवान बुद्ध आप से मूक भाषा में आग्रह के साथ बतायेंगे कि किस तरह उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था। जहाँ आप बैठे होंगे उससे थोड़ी दूर एक छोटे टेबुल पर 'आर्यन पाथ' और 'इण्डियन पी० ई० एन०' की कुछ प्रतियाँ पड़ी होंगी। 'आर्यन पाथ' का पीला कवर आपको भगवान बुद्ध के पीले वस्त्रों की याद दिलायेगा और अध्यात्म पथ पर बढ़ने के लिये आप को आह्वान करेगा और आप में प्रोत्साहन और आकांक्षा पैदा करेगा। उसके भीतर एक सरसरी दृष्टि डालने से आपको विश्व साहित्य की पृष्ठ भूमि में भारतीय साहित्य की मासिक उन्नति की तसवीर दिखाई देगी और शब्द के आवरण में भारतीय साहित्य के महामन्त्र विश्व बन्धुत्व का सन्देश सुनने को मिलेगा।

इसके बाद आप श्रीमती सोफ़िया से कहेंगे—"मैडम! अरसे से मैं इच्छुक था कि आपसे स्वयं मिलकर आपके काम के सम्बन्ध में व्यक्तिगत जानकारी प्राप्त कर सकूँ। इस अवसर पर आज आपसे मिलकर मुझे बेहद ख़ुशी है।"

वे इस भूमिका को सुनकर ज़रा सा चौंक पड़ेंगी, इसलिये नहीं कि वे आप से मिलकर उतना ही प्रसन्न नहीं हैं जितना कि आप उनसे मिलकर, बल्कि इसलिये कि उन्हें स्वयं अपने मुँह से अपने काम के सम्बन्ध में कुछ कहने में हमेशा संकोच होता है। हो सकता है कि उन्होंने अपना जीवन एक महान गुरू की उस शिक्षा के अनुसार इस तरह ढाल लिया है कि जिसमें यह कहा गया है कि—तुम्हारे व्यक्तित्व का प्रकाश इस तरह लोगों के सामने चमके जिसमें वे तुम्हारे नेक कामों को देख सकें और ईश्वर की स्तुति कर सकें। किन्तु जैसा कि वे जानती हैं कि काम करने वाले से काम का महत्व अधिक होता है, उनकी आँखें चमक उठेंगी और १६ वर्ष पूर्व जब उन्होंने भारत की पूण्यभूमि में पहली बार अपने चरण रखे थे तब से अब तक के अपने काम के सम्बन्ध में वे आपसे बातें करने लगेंगी।

उनके काम का सम्बन्ध दो बातों से है। एक तो थियासाफ़िकल आन्दोलन से कि जो अध्ययन और आत्म प्राप्ति के द्वारा उस आदर्श को पूरा करने के लिये सचेष्ट करता है कि जो इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—"सच्चा थियासफ़िस्ट न तो किसी धर्म विशेष का होता है और न किसी सम्प्रदाय विशेष का फिर भी वह सभी धर्मों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और सभी सम्प्रदायों का होता है।" यह काम प्रौढ़ों, महिलाओं और बच्चों के लिये अध्ययन वर्ग खोल कर किया जाता है। बम्बई के एक सघन व्यापारी मोहल्ले में एक बड़े हाल में ये अध्ययन वर्ग हर सप्ताह लगते हैं। वहीं इतवार के दिन व्याख्यानों द्वारा उच्च जीवन के दार्शनिक और मौलिक सिद्धान्तों की विवेचना की जाती है। 'दि थियासाफ़िकल मूवमेण्ट' नामक एक मासिक बुलेटिन द्वारा इन दोनों बातों का प्रचार किया जाता है। हाल के साथ एक पुस्तकालय भी है जिसमें धर्म, दर्शन, सदाचार, साहित्य आदि पर ११,००० पुस्तकें हैं कि जिनका आस पास के कालिजों के बहुत से विद्यार्थी उचित इस्तेमाल करते हैं।

उनका दूसरा काम साहित्यिक है हालाकि उसका मूल्य साहित्य से कहीं अधिक है। वे मासिक 'आर्यन पाथ' की सम्पादिका हैं कि जिसमें पूर्व और पश्चिम के उत्तमोत्तम लेखकों की रचनायें होती हैं। सम्पादकीय दृष्टि से यह पत्र एक आदर्श और नमूने का पत्र है। इसके अतिरिक्त दूसरा मासिक पत्र 'इण्डियन पी० ई० एन०' है जिसकी सम्पादिका भी श्रीमती सोफ़िया वाडिया हैं। यह भारत के विविध प्रान्तीय साहित्यों के लिये केन्द्र का काम देता है और इसमें उनके सम्मान और उनकी कीर्ति का सही सही लेखा जोखा रहता है।

आप श्रीमती सोफ़िया की बातें इतने ध्यान से सुन रहे थे कि कब एक व्यक्ति सोफे के पास एक ट्रे में दो गिलास नारङ्गियों का रस रखकर चला गया कि आपको पता ही नहीं चला। (नारङ्गी रङ्ग का यहां प्राधान्य है—भीति चित्र में बुद्ध के वसन, 'आर्यन पाथ' का कवर पृष्ठ, स्टेशनरी के कागज़ आदि सभी नारङ्गी रङ्ग के दिखाई देंगे)। शरबत का एक गिलास उठाकर मेज़बान आपके सामने पेश करेंगी। खुद भी दूसरा गिलास लेकर आपका साथ देंगी। नारङ्गी का रस पीते पीते अपने काम में श्रीमती सोफ़िया की त्याग वृत्ति और भक्ति भावना देखकर आप मन ही मन जानना चाहेंगे कि प्रकाश के किस विशेष मन्दिर में उन्होंने अपने जीवन की दीप शिखा जलाई है।

फिर यकायक आप महसूस करेंगे कि आपको वहाँ अब अधिक नहीं ठहरना चाहिये। ऐसा करके आप उनके महत्वपूर्ण कामों में व्यस्त समय को ज़ाया करेंगे। इसलिये आप खड़े होकर उनसे बिदा लेंगे। वह भी खड़ी होकर आपसे नमस्कार करते हुये कहेंगी—"मेरे यहाँ सदा आपका स्वागत होगा, इसलिये जब भी आप चाहें आयें।" वे देहलीज़ तक आपको पहुँचाने आयेंगी। किन्तु जैसे ही आप सीढ़ियों से नीचे उतरना चाहेंगे आपको एक लम्बे, चश्मा लगाये हुये, दाढ़ीवाले भद्र पुरुष सीढ़ियों से ऊपर आते हुये दिखाई देंगे। उनके चेहरे पर प्रसन्नता की झलक होगी। फौरन आपसे उनका परिचय कराया जायगा।

श्रीमती सोफ़िया वाडिया कहेंगी—"ये मेरे पति हैं।" और आप प्रत्युत्तर में नमस्कार करेंगे। किन्तु क्या आपने इस बात पर ग़ौर किया कि जिस समय वे—"मेरे पति"—कह रही थीं उनकी आवाज़ में एक ख़ास ध्वनि थी? अपने विविध और महत्वपूर्ण कामों के साथ साथ अपने जीवन साथी के प्रति वह गहरी भक्ति की ध्वनि थी।

इस तरह की हैं श्रीमती सोफ़िया। जैसा कि एक दाढ़ी वाले सज्जन ने एक बार कहा था—"श्रीमती सोफ़िया हर बात में दक्ष हैं और ख़ास कर तीन बातों में—समझने की कला में, चाहे वह मानवी हो और चाहे धार्मिक (और जो सबमें बड़ी कला है), सम्पादकीय कला में और वक्तृत्व-कला में।" अब आप उनके विविध कार्यों के बारे में थोड़ा बहुत जान गये हैं। किन्तु जब भी आपको कोई मौक़ा मिले उन्हें मञ्च पर से अवश्य सुनें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि उनका व्याख्यान आप पर वह आलम तारी कर देगा कि आप अपने को उस समय की एथेन्स की एकडेमी में पायेंगे कि जब वहाँ अफ़लातून व्याख्यान दिया करता था और उसके श्रोता एकटक उसके ओठों को देखते रहते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पहली कुल हिन्द लेखक कान्फ्रेन्स

"एक दर्शक"

सब आदमियों के अन्दर एक ही आत्मा काम कर रही है। आत्मा की निगाह से दुनिया के सब आदमी एक हैं। इस सच्चाई को लोगों के सामने पूरी तरह ज़ाहिर करने, उसे दर्शा देने और उस पर लोगों से अमल कराने का काम जो शक्तियाँ कर सकती हैं उनमें एक बहुत बड़ी शक्ति कलाकारों की बिरादरी है। कलाकार औरों की तरह सिर्फ़ ज़मीन पर ही नहीं चलते बल्कि उनके दिलों और दिमाग़ों में एक तरह के पर लगे होते हैं। उन परों की मदद से वे उस हवा में उड़ सकते हैं जो सचमुच शान्ति और सब की आज़ादी की हवा है। अपने इन्हीं परों की मदद से वे अपने दूसरे भाइयों और बहनों को भी कुछ देर के लिए उड़ाकर उन रास्तों पर लेजा सकते हैं। यह आज़ादी ही आदमी की ज़िन्दगी का असली मक़सद है।

बम और आग से बरबाद दुनिया को नए सिरे से बनाने में कलाकार ( जिनमें लेखक भी शामिल हैं ) जो पार्ट अदा करता है उसकी अहमियत को लगभग बीस बरस पहले ही से महसूस करके सब राष्ट्रों की P.E.N. लन्दन में क़ायम की गई थी, जिससे दुनिया भर के लेखक एक साथ एक ही मंच पर आकर सोच विचार कर सकें। इन्हें इन्सान के एक नए निज़ाम में नेताओं की हैसियत से, अगुवा बनकर हिस्सा लेना है। हम श्रीमती सोफ़िया वाडिया के बड़े मशकूर हैं कि उन्हीं के उत्साह और सोच विचार से कुछ बरस बाद हिन्दुस्तान भी इस संस्था में शामिल हो गया। तब से बराबर उनकी देख रेख में P.E.N. की कुल हिन्द शाख़ ने लगातार मेहनत करके, शान्ति और मज़बूती के साथ अलग अलग भाषाओं में काम करनेवाले लेखकों के अन्दर एक दूसरे को समझने और एक दूसरे का आदर करने का उत्साह बढ़ाया है। सबकी सच्ची सेवा करते रहने के उद्देश को बढ़ाने के लिए ही 'पहिली कुल हिन्द लेखक कानफ़रेन्स' बुलाई गई थी। यह कानफ़रेन्स २० अक्तूबर सन '४५ से २२ अक्टूबर तक, जयपुर में हुई। इसकी सदर श्रीमती सरोजनी नायडू थीं जो P.E.N. की 'कुल हिन्द शाख़' की आजकल अध्यक्ष हैं।

जयपुर के टाउन हाल में कानफ़रेन्स का इजलास तीन दिन तक रहा। हाल जनता से खचाखच भरा था। हिन्दुस्तान की अखण्ड एकता के सच्चे समर्थक, जयपुर राज्य के प्रधान मन्त्री सर मिर्ज़ा इस्माइल ने कानफ़रेन्स को खोला। कानफ़रेन्स के क़रीब दो सौ डेलीगेट्स सर मिर्ज़ा इस्माइल के मेहमान थे। आजकल की नाज़ुक हालत में लेखकों को जो फ़र्ज़ अदा करना है उस पर ज़ोर देते हुए उन्होंने कहा—

"ऐसे मौक़े पर जबकि एक तरफ़ क़यामत की लपटों में हमें अपनी क़िस्मत का फ़ैसला होता हुआ दिखाई दे रहा है दूसरी तरफ़ कला, साहित्य या अदब की वह सुन्दर चमकती हुई मीनारें जो हमें दूर से रास्ता दिखातीं, हिलती हुई कमज़ोर, अँधेरी और भद्दी मालूम होती हैं। मुझे इस बात का भरोसा है कि जो बड़े बड़े क़ाबिल विद्वान भाई और बहिन यहाँ पर जमा हैं वे इस बात को पूरी तरह समझते हैं कि कम से कम इस नाज़ुक ज़माने में उन्हें ज़माने की हालत और ज़रूरतों की तरफ़ निगाह रखनी चाहिये। उन्हें देखना चाहिये कि आम लोगों का दिल और दिमाग़ किधर जा रहा है और किधर जाना चाहिये। आप लोग अपनी ख़ास दौलत से मालामाल हैं। साथ ही आपको अपने देश भाइयों का भारी क़र्ज़ा अदा करना है। आपको न सिर्फ़ अपना सब कुछ ही बल्कि अपने आपको भी इस कर्ज़े के अदा करने में दे डालना चाहिये।"

इस तरह देश के लेखकों के कन्धों पर एक भारी और पाक ज़िम्मेवारी रख दी गई।

जब सर मिर्ज़ा अपनी बात कह चुके तब P.E.N. की कुल हिन्द शाख़ की आनरेरी सेक्रेटरी ने कुछ संदेश पढ़कर सुनाये जिनमें एक संदेश महाराजा जयपुर का था। इसके बाद कानफ़रेन्स के सदर ने क़रीब क़रीब सब प्रान्तों से आए हुए लेखकों को जोशीली भाषा में याद दिलाया कि "हिन्दुस्तान में तरह तरह के साहित्य हैं फिर भी हिन्दुस्तान एक है। ब्रह्मपुत्र के निकास से रास कुमारी तक हिन्दुस्तान का संगीत, उसके पुराने क़िस्से और उसकी ज्ञान की बातें सब एक तरह की हैं।"

उनके बाद सब राष्ट्रों की P.E.N. के मंत्री श्री हरमन ओल्ड ( Mr. Hermon Ould ) ने अपने छोटे से भाषण में इस संस्था के पिछले कारनामों का ज़िक्र किया। उन्होंने यह बताया कि मौजूदा हालात में इस संस्था से क्या क्या आशाएं हैं और आगे उसे किस तरह सफलता की उम्मीद है। इसके बाद डा० मुल्कराज आनन्द ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हिन्दुस्तान के महाकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को श्रद्धाञ्जलि देते हुए उनके बड़प्पन और उनके ख़ास ख़ास गुणों पर रोशनी डाली। इस तरह २० अक्टूबर के सुबह का इजलास ख़त्म हुआ।

दोपहर के बाद के इजलास में हिन्दुस्तान की सोलह ख़ास ख़ास भाषाओं हिन्दी, उर्दू बङ्गाली वगैरह में लोगों ने अपनी अपनी रचनाएं पढ़ीं। इस बैठक की ख़ास बात यह थी कि पं० जवाहरलाल नेहरू ने कानफ़रेन्स की असली समस्या "हिन्दुस्तान भर के लोगों को एक डोर में बाँधने की गरज़ से हिन्दुस्तानी साहित्य का विकास करना" इस पर बहस शुरू की। वह इस बारे में पूरी पूरी आज़ादी देने की तरफ़ थे कि लोग जिस तरह चाहें अपने अपने साहित्य का अपने अपने ढङ्ग से विकास करें बशर्ते कि उनका साहित्य दुनिया की बदलती हुई हालत को अपनी निगाह के सामने रक्खे। पं० जी को विश्वास है कि लोगों में अलहदगी के साथ साथ, मिलने की भी एक ज़बरदस्त ताक़त होती है जो उन सब का एक ही सा तजरबा है। यह तजरबा हर भाषा के साहित्य में मिलता है और इसी पर सब साहित्यों की रचना होती है। पं० नेहरू के बाद क़रीब आधे दर्जन लोगों ने इस बहस में हिस्सा लिया। पहिले दिन के इजलास के बाद शाम को महाराजा जयपुर की तरफ़ से सब डेलीगेटों को एक पार्टी दी गई और उसके बाद रात को सर मिर्ज़ा की तरफ़ से उन सबको खाने की दावत दी गई। इन दो दावतों ने लोगों को एक दूसरे को जानने और मेल मिलाप बढ़ाने का अच्छा मौक़ा दिया।

दूसरे दिन के इजलास में इस बात पर चर्चा हुई कि हिन्दुस्तानी साहित्य को दूसरे देशों में किस तरह फैलाया जाय। यह चर्चा श्रीमती इमरसन सेन (Mrs. Gertrude Emerson Sen) ने शुरू की। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि अच्छे अच्छे तरजुमा करने वालों की एक संस्था बनाकर हिन्दुस्तानी साहित्य की अच्छी से अच्छी चीज़ों का दुनिया की ज़बानों में तरजुमा कराना चाहिये। उनकी इस बात का कुछ और डेलीगेटों ने भी समर्थन किया। इसके बाद सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने करीब आध घंटे तक "साहित्य में सदाचार की ज़रूरत" पर एक बहुत ही गहरी तक़रीर की, जिसे सबने बड़े ध्यान से सुना। उनकी तक़रीर का असली मतलब यह था कि अगर चीज़ों के अध्यात्मिक पहलू को सामने न रक्खा जाय तो आदमियों की तरह देश भी मिट जाते हैं और साथ ही साथ वहाँ के ज्ञान का भी ख़ात्मा हो जाता है। उन्होंने कहा कि—

"जब तक आपकी अपनी निगाहें दूर तक जाने वाली और गहरी न होंगी तब तक आप ऊँचे दर्जे का साहित्य या अदब पैदा नहीं कर सकते.....साहित्य के ज़रिये जो सदाचार की तालीम दी जाती है वह तो एक ऊपर की चीज़ है, वह तो आही जाती है पर हम लोग सदाचार पर किताबें नहीं लिखते। आप लोग सच्चाई यानी हक़ को लोगों तक पहुंचाते हैं। इस तरह आप लोगों को और आदमी के स्वभाव को ही बदल डालते हैं।" सर राधाकृष्णन की बात का समर्थन करते हुए आचार्य क्षितिमोहन सेन ने हिन्दुस्तान के बीच के ज़माने के सन्त महात्माओं रज्जब, दादू, कबीर वगैरह के उपदेशों को अच्छी तरह बयान किया। उन्होंने कहा कि इन सन्त महात्माओं ने ही असली सच्चाई की खोज करते हुए आपस में उदारता और मेल मिलाप की नींव डाली। उनकी इस उदारता और एकता की नींव आत्मा की एकता पर क़ायम थी, क्योंकि उन्हें सब प्राणियों के अन्दर एक ही आत्मा नज़र आती थी।

इसके बाद कानफ़रेन्स में लेखकों के असली सवाल पर कुछ देर के लिए विचार किया गया। वह यह था कि "हिन्दुस्तानी कापीराइट क़ानून में सुधार की ज़रूरत है जिससे सारे हिन्दुस्तान में एक ही क़ानून चले"। सर मारिस गायर जो इस विषय पर चर्चा शुरू करने वाले थे, बीमारी की वजह से नहीं आसके, इसलिए श्री एम० आर० मसानी ने यह तजवीज़ पेश की कि इस सवाल को एक सब कमेटी के ज़िम्मे कर देना चाहिये जिसके सदर सर मारिस गायर हों। यह कमेटी मौजूदा कानून में मुनासिब तबदीली करने की राय दे और एक बड़ी रिपोर्ट तय्यार करे। यह तजवीज़ मंज़ूर करली गई। इस तरह दूसरे दिन का सबेरे का इजलास ख़तम हुआ।

दोपहर के बाद के इजलास में अलग अलग भाषाओं के साहित्य की चर्चा जारी रही। डा० राधाकुमुद मुकर्जी के "पुराने हिन्दुस्तानी साहित्य और नए साहित्य के विकास" पर बोलने के बाद यह चर्चा ख़तम की गई। डा० मुकर्जी ने कहा कि जहाँ तक भावों की गहराई और थोड़े से शब्दों में चीज़ को अच्छी तरह समझाने का सवाल है, इसकी एक अच्छी मिसाल वेद हैं। रात को जयपुर के बड़े व्यापारी श्री राजरत्न केमानी ने सब डेलीगेटों की खाने की दावत दी।

तीसरे दिन के इजलास में डा० के० आर० श्रीनिवास आयंगर ने "मौजूदा हिन्दुस्तानी साहित्य की विचारधारा पर चर्चा की। इस चर्चा में और भी डेलीगेटों ने हिस्सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लिया। यह तय हुआ कि जो कुछ साहित्य प्रकाशित किया जाय उस सबकी समय समय पर फ़ेहरिस्त निकलती रहे। मौजूदा साहित्य की क़ीमती चीज़ों को एक भाषा से दूसरी भाषा में तर्जुमा किया जाय और एक कुल हिन्द अब्द कोष तय्यार किया जाए जिसके लिए सरदार के० एम० पन्निकर ने बहुत ज़ोरदार शब्दों में अपील की।

"सबसे अच्छा क्या है" इसे बताते हुए श्री एन० सी० मेहता ने "साहित्य के सौन्दर्य" पर चर्चा की और लेखकों का ध्यान इस बात पर दिलाया कि 'सत्य ही सुन्दर है और सुन्दर ही सत्य है' की भावना को उन्हें अपने में पैदा करना चाहिये। श्री गुरदयाल मल्लिक ने इस ख़याल का एक दूसरी तरह समर्थन करते हुए कहा कि सचमुच लेखक का बुनियादी ताल्लुक़ आदमी की आत्मा से है। इस सम्बन्ध को उसे मज़बूती से पकड़े रहना चाहिए और इसके मुक़ाबले में राष्ट्र या किसी भी और सवाल को तरजीह नहीं देना चाहिये। इस दिन के प्रोग्राम की ख़ास बात यह थी कि श्री० ई० एम० फ़ार्स्टर (Mr. E. M. Forster) ने "दोनों महायुद्धों के बीच के साहित्य" पर अच्छी तरह रोशनी डाली। उन्होंने इंगलैण्ड के लेखकों के दिमाग़ की उलझनें और उनकी अनिश्चित माली हालत का ज़िकर किया। उन्होंने बताया कि इन कठिनाइयों के रहते हुए भी लेखकों को अपना आज़ाद दृष्टिकोण रखने, अपनी आज़ाद राय क़ायम करने और अपने आज़ाद ख़्यालातों को ज़ाहिर करने में कोई रुकावट न होगी क्योंकि ये लेखकों के जन्म सिद्ध अधिकार हैं। इसके बाद प्रोफ़ेसर ए. एस. बोखारी ने दूसरी तरह से यह बतलाया कि आजकल के उर्दू के लेखकों की भी करीब करीब यही हालत है। उर्दू का लेखक किसी ऐसी सच्चाई की खोज में है जिसपर खड़ा होकर वह ज़िन्दगी की बुनियादी एकता को महसूस कर सके। इस तरह सुबह का इजलास ख़त्म हुआ।

दोपहर के बाद के इजलास के पहिले हिस्से में तरह तरह के साहित्य की चर्चा पूरी की गई। इजलास के दूसरे हिस्से में बड़े उत्साह और जोश के साथ जयपुर राज्य को, कानफ़रेन्स में आए हुए डेलीगेटों की ख़ातिरदारी के लिए और स्वागत समिति को कानफ़रेन्स का सब इन्तज़ाम करने के लिए धन्यवाद दिया गया। इसके बाद कानफ़रेन्स को ख़तम करते हुए श्रीमती सोफ़िया वाडिया ने थोड़े से शब्दों में P.E.N. की 'कुल हिन्द शाख़' के कारनामों का ज़िक्र किया और लेखकों से बड़े ज़ोरदार शब्दों में अपील की कि वे शान्ति, प्रेम और एकता के दूत बनें। कानफ़रेन्स में आए हुए डेलीगेटों को लगातार बैठकों में हिस्सा लेने की वजह से जो थकान मालूम हो रही थी उसे दूर करने के लिए महाराजा कालेज के विद्यार्थियों ने रात के वक़्त नाच और गाने का प्रदर्शन किया।

इस तरह कुल हिन्द लेखक कानफ़रेन्स ने देश के लेखकों का ध्यान उनकी कुछ बड़ी बड़ी समस्याओं की तरफ़ दिलाया है। अब यह आशा की जा सकती है कि एक तरफ़ तो वे हिन्दुस्तान की अखण्ड एकता को फिर से क़ायम रखने में सफल साबित हो सकेंगे और दूसरी तरफ़ मानव आत्मा के असली रूप, उसके सच्चे विकास और उसके इस ज़मीन पर जन्म लेने के असली मक़सद को फिर से दुनिया के सामने रख सकेंगे।

---

# यशस्वियों की पृथ्वी

श्री चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

यह यशस्वियों की पृथ्वी है—यह वीरों की—
कर्म भूमि है। इन दुर्गम शिखरों के ऊपर
कौन वास कर सकता है जिसने अपने को—
न देवता बना लिया है? वज्रों से हिलते
मेघों को चीर सूर्य की दीप्त कांति को
कौन देख सकता है, जिसके दृढ़ पंखों में
हो न बाज़ सी शक्ति? अरे, इस अन्धकार से
और मरण से ढंकी हुई पृथ्वी में—
अपने पथ को कौन देख सकता, जिसके नयनों में
न खेलता हो आत्मा का चिर-उज्जवल प्रकाश?
जीवन के छिद्रों-छिद्रों से फूट आ रहा
सघन निराशा का कलुषित प्रवाह, प्राणों के
दीपक को विलीन कर देने अन्धकार में!
इन उत्पातों की बाढ़ों से अपने उर की
ज्योति बचाए रख सकता जो—उसी रत्न को
धारण करती है पृथ्वी मस्तक पर अपने!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दिल्ली चलो !

श्री 'कुमार हृदय'

आज 'दिल्ली चलो'—राष्ट्र का मंत्र हो !
और 'जय हिन्द'—अब फिर न परतंत्र हो !

आज दिल्ली वतन की कहानी बने,
और जय-हिन्द की राजधानी बने,
देश में कूच का यह तराना बने,
देश अपना नया आशियाना बने !

आज दिल्ली चलो अर्चना के लिए,
आज दिल्ली चलो कामना के लिए,
आज दिल्ली चलो साधना के लिए,
आज दिल्ली चलो वन्दना के लिए !

आज दिल्ली चलें—सामने हो नज़र,
आज दिल्ली चलें आख़िरी हो सफ़र,
आज मंज़िल हमारी ख़तम हो वहीं,
और पहुँचें कि लें आख़िरी दम वहीं !

आज अंधे शहंशाह की क़ब्र से,
दूर रंगून में जो ढंकी अब्र से,
दर्द-सा उठ रहा है कि दिल्ली चलो,
कौन उफ़ कह रहा है कि दिल्ली चलो !

आज देखें हुमायूँ का वह मक़बरा,
ख़ून से शाहज़ादों के जो है भरा,
औ' शपथ लें शहीदों के बलिदान की,
देश के नाम पर वेद कुरआन की !

आज बदनाम ख़ूनी क़िला देख लें,
क़र्बला जा रहा—क़ाफ़िला देख लें,
बंद हैं जो वतन के मसीहा वहाँ,
आज फिर से चमन में खिला देख लें !

आज जय हिन्द की है क़सम बढ़ चलो,
आज सर हिन्द की है क़सम बढ़ चलो,
आज बङ्गाल की है क़सम बढ़ चलो,
आज इम्फ़ाल की है क़सम बढ़ चलो !

आज भूलें न प्लासी का मैदान हम,
आज भूलें न झांसी का अपमान हम,
आज भूलें न क्लाइव के फ़रमान हम,
आज भूलें न डायर के ऐलान हम !

मीर क़ासिम बुलाता है दिल्ली चलो,
शाह आलम बुलाता है दिल्ली चलो,
याद जाफ़र दिलाता है दिल्ली चलो,
हाथ टीपू जगाता है दिल्ली चलो !

आज दिल्ली वतन की सुहागिन बने,
आज जमुना उमड़ नील नागिन बने,
आज फिर से कुरुक्षेत्र आबाद हो,
आज कह दे कुतुब—हिन्द आज़ाद हो !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पुस्तक-परिचय

**गीता हृदय**—श्री विनोबा भावे का नाम हिन्दी संसार ने काफ़ी सुन रखा है। धूलिया जेल में उन्होंने गीता पर मराठी भाषा में अठारह प्रवचन दिये, हर अध्याय पर एक। श्री साने गुरु जी ने उन्हें अपने नोट्स से मराठी में लिख डाला। पं० भवानीप्रसाद जी ने मराठी से हिन्दी में किया। 'गीता हृदय' नाम की पुस्तक भवानी प्रसाद जी के हिन्दी अनुवाद का ही नाम है।

विनोबा जी विद्वान, विचारक और साधक तीनों हैं। उनका दिल और दिमाग़ दोनों राष्ट्रीय विचारों से ओत प्रोत हैं। हिन्दुस्तान की बहुत सी ज़बानों और संस्कृत के अलावा वह फ़ारसी और अरबी के भी अच्छे जानकार हैं। वह काफ़ी उदार ख़्याल के हैं। हिन्दू धर्म ग्रन्थों के वे पूरे पंडित हैं। इस छोटी सी किताब पर उनके इन सब गुणों की छाप दिखाई देती है।

गीता क्या है, इसे बताते हुए विनोबा जी ने कहा है—"व्यास जी ने अठारह पुराण लिखे, महाभारत लिखी, उनका साहित्य समुद्र के समान अगाध और अनन्त है, पर...क्या उन्होंने अपना संदेश थोड़े से और आसान शब्दों में किसी एक जगह कह रखा है? सैकड़ों कथाओं, व्याख्यानों, उपाख्यानों, और उपदेशों में जो कहा गया है उसका सारांश, उसका नवनीत...व्यास जी का सारा संदेश श्री मद्भगवद्गीता में है। व्यास जी की सारी शिक्षा का सार ही गीता है।"

विनोबा जी गीता को एक दरजे तक रूपक मानकर चलते हैं—"व्यास को कृष्ण द्वैपायन भी कहते हैं। अर्जुन का भी नाम कृष्ण है। ...अर्जुन शब्द का अर्थ क्या है? जो ऋजु है वह अर्जुन है। ऋजु यानी सरल...जिसका मन सरल और निर्मल है वह हृदय के श्रीकृष्ण की शरण जाता है। कृष्ण का अर्थ है कर्षण करने वाला, खींचने वाला, इन्द्रियों को ठीक रास्ते पर लगानेवाला। जो ज्ञान स्वरूप अन्तरात्मा है वही कृष्ण है...इस शुद्ध विचार की वाणी को (अपने अन्दर) कौन सुन सकता है? वही जो ऋजु है, शुद्ध वृत्ति का है...हर आदमी अपने कर्त्तव्य कर्म के धर्म क्षेत्र और कुरुक्षेत्र पर खड़ा है। मोह और आसक्ति उसके रास्ते की रुकावटें हैं। उनसे जूझना पड़ता है। मोह को कैसे जीतें, आसक्ति कैसे दूर करें, यह हमें गीता बताती है।" इसी तरह विनोबा जी ने एक एक अध्याय का इत्र निकालकर रख दिया है।

बीच बीच में उपनिषदों, पुराणों, महाभारत, बौद्ध धर्म, पारसी धर्म, ईसाई धर्म, इसलाम, साम्यवाद, कबीर, तुकाराम, एकनाथ, विवेकानन्द, गांधी जी, रवीन्द्रनाथ और फ्रेंच और जर्मन साहित्य से छोटी छोटी कहानियां और चुटकले मोतियों की तरह जड़े हुए हैं।

हर अध्याय में और जगह जगह विनोबा जी ने यह बताने की कोशिश की है कि आजकल हमारे मुल्क के सामने जितने सवाल हैं उन सब पर गीता हमें क्या तालीम देती है। इस निगाह से गीता के ऊपर 'गीता हृदय' अपने ढंग की बिल्कुल एक नई और अपूर्व टीका है। दूसरे अध्याय का मतलब समझाते हुए विनोबा जी ने कहा है—"संसार में जो दुःख है, अन्याय है, स्पर्धा है, मारपीट है, युद्ध है, इन सबका कारण क्या है? इन सबका एक ही कारण है, और वह यह है कि हमने बहुत से झूठे भेद बना रखे हैं। सब जगह भरित पूरित आत्म तत्व की ओर हम देखते भी नहीं। नदी बह रही है। अगर उसे जगह जगह बांधकर हम डबरे बनालें तो कल यह होगा कि हम बुखार के शिकार होंगे। मच्छर पैदा होंगे और हम मरेंगे। संसार में आज हम मर ही तो रहे हैं, कारण हमने डबरे बना लिए हैं—ये गोरे, ये काले, ये हिन्दू, ये मुसलमान, ये ब्राह्मण, ये ब्राह्मणेतर, ये स्पृश्य, ये अस्पृश्य, ये देशस्थ, ये कोकणस्थ, ये महाराष्ट्र, ये गुजराती, सब डबरे, अपने अपने डबरे में बैठकर सभी मेंढकों की तरह अहंकार से टरटराते हैं, सभी मरण का अभिषेक कर रहे हैं। जिस हिन्दुस्तान ने गीता दी, उपनिषद दिये, उसमें आज भेद अभेद बिल-बिला रहे हैं...हमें ये सब भेद के डबरे मिटाना चाहिये... हम परतन्त्र हिन्दुस्तान में पैदा हुए हैं, इसलिए हरेक का आज़ादी के लिए आन्दोलन करना ही धर्म है...स्वधर्म का अर्थ हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म, ऐसा नहीं है...हमारा झुकाव किस ओर है उसे देखकर उसके अनुरूप ही सेवाकर्म हम हाथ में लें, उसीके लिए जियें और उसीके लिए मरें।"

इस अनमोल पुस्तक की एक झलक दे देने के लिए इतना बस है। गीता से ज़्यादह सर्वप्रिय संस्कृत की कोई किताब नहीं। साथ ही गीता की सच्ची शिक्षा के बारे में हममें जो भ्रांति है उससे बढ़कर भ्रांति इस देश में किसी किताब के बारे में नहीं। इसलिए हम चाहते हैं कि हर गीता प्रेमी और हर हिन्दी प्रेमी इस छोटी सी किताब को मँगाकर पढ़ें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सार और फिर सार का अनुवाद होने की वजह से भाषा कुछ ज़रूरत से ज़्यादह क्लिष्ट और बेमहावरा हो गई है। फिर भी समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। पृष्ठ संख्या ९६, क़ीमत एक रुपया, पता सुषमा साहित्य मन्दिर, १९२, ९५ जवाहरगंज, जबलपुर।

**हमारा स्वाधीनता संग्राम**—लेखक पण्डित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल; प्रकाशक, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा; मूल्य डेढ़ रुपया; पृष्ठ संख्या १२९।

प्रस्तुत पुस्तक में सत्याग्रह संग्रामों और देश की स्वाधीनता के प्रयत्नों का विवरण दिया गया है। शुरू में ३३ पृष्ठों के सिंहावलोकन में गत १९४२ के आन्दोलन पर तीखी और स्पष्ट टिप्पणियाँ हैं और चूँकि ये एक ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखी गई हैं जो युक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति हैं इसलिये बहुत अधिक महत्व रखती हैं। पालीवाल जी कांग्रेसजनों को सम्बोधन करते हुये कहते हैं—"हमारे प्रान्त के कितने कांग्रेस जनों ने 'करो या मरो' के आदेश का पालन किया? प्रान्त में मण्डल कमेटियों को मिलाकर चालीस हज़ार से ऊपर ही कार्यकारिणियों के मेम्बर होंगे, इनमें से चार हज़ार से ज़्यादा नज़रबन्द नहीं हुये। बाक़ी क्या करते रहे? और तो और 'करो या मरो' के आदेशानुसार सत्याग्रह, शुद्ध अहिंसात्मक वैयक्तिक सत्याग्रह भी कितनों ने किया?" पालीवाल जी का प्रश्न चुभता हुआ पर सच्चा और ठेठ है। जो लोग जेल में थे उनके सम्बन्ध में पालीवाल जी लिखते हैं—"कांग्रेस जनों की पतित और पराजय मनोवृत्ति का जैसा कटु अनुभव मुझे इस बार हुआ वैसा पहले कभी नहीं हुआ था। १९४३ के शुरू तक बरेली सेण्ट्रल जेल में २५० से ऊपर राजबन्दी हो गये थे। इनमें प्रान्त के अधिकांश ज़िलों के लोग थे और उनमें बड़े बड़े योद्धा, क्रान्तिकारी, पदाधिकारी, एम० एल० ए०, अग्रगामी आदि शामिल थे। परन्तु फिर भी कायरता, खालबचाऊ मनोवृत्ति, अनुशासनहीनता, किंकर्तव्य विमूढ़ता, और इन सबके साथ एक 'लज्जा परित्यज्य त्रैलोक्य विजयी भवेत्' की भावना का पूरी और परले सिरे की बेहयाई का साम्राज्य था।" जेल से बाहर छूटकर जो लोग आये उनके सम्बन्ध में पालीवाल जी लिखते हैं—"गोपीनाथ श्रीवास्तव सरकार को किस प्रकार जेल से पत्र लिखकर छूटे और जेल से छूटकर उन्होंने क्या क्या किया यह किसे नहीं मालूम? फिर बाबू श्रीप्रकाश के साथ कांग्रेस असेम्बली से स्तीफ़ा देकर दोनों ने किस प्रकार कांग्रेस को तिरस्कृत किया यह भी सबको मालूम है।...बाबू सम्पूर्णानन्द जिस तत्परता के साथ गवर्नर की बुलाई हुई बेक़ायदा परिषद में सम्मिलित हुये वह क्या हमारी कमज़ोरियों का परिचायक नहीं?"

इसके बाद १९३२-३३ के बाद से देश में और विशेष कर युक्त प्रान्त में 'आइडियालाजी' को लेकर जो दलबन्दी हुई उसपर विचार व्यक्त करते हुये पालीवाल जी लिखते हैं—"इस दलबन्दी के दो दुष्परिणाम यह हुये कि श्रद्धा और अनुशासन के जिन दो पहियों पर कांग्रेस का प्रगतिरथ चलता था वे दोनों चकनाचूर हो गये। दलों की चढ़ा ऊपरी में उच्छृङ्खल तथा अवांछनीय अनुशासनहीन व्यक्तियों की बन आई। यदि उनपर अनुशासन की कार्यवाही करने का प्रयत्न किया जाता तो वे झट दूसरे दल में जा मिलते।"

गत महायुद्ध के समय कांग्रेस की स्थिति पर विचार करते हुये लेखक लिखते हैं—"सन् १९३६ में राष्ट्रपति के पद से जिन पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने यह घोषणा की थी कि—'साम्राज्यवादी राष्ट्रों में जितने युद्ध होंगे वे सब साम्राज्यवादी युद्ध होंगे...हमें हर हालत में उनसे अलग रहना चाहिये। वे ही जवाहरलाल थे कहते फिरते थे कि यह कहना कठिन है कि यह युद्ध लोकयुद्ध है या साम्राज्यवादी युद्ध। उन्हीं जवाहरलाल नेहरू के वक्तव्यों के आधार पर अमेरी यह कहते थे कि हिन्दुस्तान युद्ध में हमारे साथ है तथा उन्हीं जवाहरलाल के भाषण के अंश छापकर सरकारी प्रकाशन विभाग युद्ध में सहायता करने की अपील करनेवाले पोस्टर चिपकाते थे। युद्ध के सम्बन्ध में जवाहर लाल जी की हैमलेट जैसी मनोवृत्ति से ही जनता सुभाष बाबू की ओर झुकी...सच बात यह थी कि अन्तर्राष्ट्रीयता के फेर में पड़कर हम युद्ध विरोधी होने के बजाय फ़ासिस्ट विरोधी अधिक होगये थे। सन् १९४०-'४१ के वैयक्तिक सत्याग्रह की सारी शक्ति इसी धारणा को दूर करने में व्यय हुई। १९४१ के अन्त तक इस मनोवृत्ति ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा। उस साल के अन्त में कार्यकर्त्री कमेटी का बारदोली वाला लज्जाजनक प्रस्ताव इसी मनोवृत्ति का कुफल था और देश में, कांग्रेस में, उस प्रस्ताव के विरुद्ध इतना रोष था कि जनवरी १९४२ में वर्धा में होनेवाली अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की बैठक में यदि महात्मा गान्धी यह अपील न करें कि मेरे विचारों के लोग इस प्रस्ताव के विरुद्ध वोट न दें, निष्पक्ष रहें और यदि उनके निष्पक्ष रहने से भी यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो तो वे इसके पक्ष में वोट दें, तो यह प्रस्ताव भारी बहुमत से गिर जाता।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सन् '४२ में समाचार पत्रों के रवय्ये पर पालीवाल जी लिखते हैं—"बड़े से बड़े क्रान्तिकारी पत्र सब प्रकार के बन्धनों के सामने सर झुकाकर युद्ध के ठेकेदारों की तरह सरकारी ख़बरें बेचने तथा युद्ध समर्थक विज्ञापन छापकर सानन्द पैसा कमाते रहे।"

इसके बाद कांग्रेस की मौजूदा स्थिति पर पालीवाल जी कहते हैं—"यदि कांग्रेस को हमारे अन्तिम स्वाधीनता संग्राम का कारगर हथियार बनना है तो उसमें से निर्भय होकर उन सब लोगों को निकाल देना होगा जो वैधानिक दाँव पेचों और स्वार्थ लिप्सा को ही राजनीति का सर्वस्व समझते हैं...गोपीनाथ श्रीवास्तवों की पुरानी कांग्रेस मर गई। १९४२ के शहीदों के ख़ून से नई कांग्रेस का जन्म हुआ है...नई कांग्रेस ज़िन्दाबाद!"

इसके बाद के अध्यायों में 'विरोधियों को मुँहतोड़ उत्तर', 'आख़री मञ्ज़िल के चौराहे पर—अब किधर?' और 'नई कांग्रेस, नया कार्यक्रम' में पालीवाल जी ने गाँधी जी के आदेशों और निर्देशों और उनके बताये हुये रचनात्मक कार्यक्रम में अपनी आस्था प्रकट की है। उसमें वे देश के लिये ज़बर्दस्त विस्फोटक शक्ति देखते हैं। आदर्श कार्य कर्त्ताओं के बारे में वे कहते हैं—"अभी तो हमारे बहुत से अग्रगामी, क्रान्तिकारी, साम्यवादी और समाजवादी नेताओं तक की यह दशा है कि वे महात्मा जी की बताई न्यूनतम शर्तों तक का पालन नहीं कर सकते। नेताजी साम्यवादी और समाजवादी हैं और पत्नी परदा करती हैं। प्रसिद्ध कांग्रेस कार्यकर्त्ता साथी मुसलिम कार्यकर्त्ता से सहयोग करने से इसलिये इनकार करते हैं कि कहीं उनकी श्रीमती जी नाराज़ न हो जायँ।...अभी हमारे कार्यकर्त्ताओं ने चार्ल्स डिकिन्स की बात हृदयङ्गम नहीं की है कि 'देशभक्त के परिवार नहीं होता और जिसके परिवार होता है वह देश-भक्त नहीं होता'।...नई कांग्रेस को ऐसे देह पातक पराजय और पलायन की मनोवृत्तिवाले दूध पीनेवाले मजनुओं से शुद्ध और मुक्त होना पड़ेगा। उसमें ऐसे ही कार्यकर्त्ता रह सकेंगे जो सर्वस्व समर्पण करने को सर्वस्वंस्वाहा कहकर पूर्णाहुति देने को तय्यार हों...वे क़ौमी एकता के लिए भरसक प्रयत्न करेंगे। उसके लिये बड़ी से बड़ी क़ुर्बानी करने के लिये सदैव सहर्ष तय्यार रहेंगे...।"

पालीवालजी की ये सारी सम्मतियाँ सुनने में बड़ी कटु लगेंगी पर कटुता हमें झकझोर कर सोचने के लिये विवश करती है। गत '४२ के आन्दोलन में कांग्रेस का भारी भरकम संगठन बिलकुल थोथा साबित हुआ। अगर कांग्रेस को क्रान्ति का वाहन बनाना है तो कांग्रेस के प्रेमियों को गम्भीरता के साथ बैठकर उसके लिये समुचित मार्ग खोज निकालना है। पालीवालजी की अनेक टिप्पणियाँ कटु और एकांगी हैं पर वे हमें सोचने के लिये चाबुक मार कर विवश करती हैं। प्रत्येक कांग्रेस जन को यह पुस्तक पढ़नी चाहिये।

**किसान राज्य**—लेखक: श्री श्रीकृष्णदत्त पालीवाल; प्रकाशक: उपर्युक्त, मूल्य; ढाई रुपया; पृष्ठ संख्या २३०।

पुस्तक के चार अध्याय हैं (१) किसान गुण गाथा, (२) कष्ट कथा, (३) सङ्कट मोचन योजना, (४) मुँह दर मुँह। पहले अध्याय में किसानों के श्रेणी जन्म व्यावहारिक गुणों को गिनाया गया है और इस बीसवीं सदी में दुनिया के विविध देशों के किसान आन्दोलनों पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्याय में किसानों की कष्ट कथा का वर्णन है। अनेक प्रामाणिक लेखकों की पुस्तकों से उद्धरण देकर लेखक ने भारतीय किसानों की दयनीय अवस्था का सच्चा वर्णन किया है। तीसरे अध्याय में प्राचीन भारत और विशेषकर मुग़ल कालीन भारत के ख़ुशहाल किसानों के साथ आज के धनहीन किसान की तुलना करके यह दिखाया गया है कि राजकीय नियम इस आज के किसान की दुर्दशा का कारण हैं। इसी अध्याय में किसानों की हालत बेहतर बनाने के लिये लेखक ने एक योजना पेश की है। योजना के मुख्य अङ्ग ये हैं—(१) किसानों को ज़मीन पर पूरा हक़ दे दिया जाय, (२) लगान मौजावारी सामूहिक रूप से पंचायत के द्वारा वसूल किया जाय और कम से कम १५०) रु० तक मुनाफ़े की प्रत्येक जोत को लगान से मुआफ़ किया जाय, (३) किसानों के ऐसे सब क़र्ज़े माफ़ किये जावें जिन पर लगातार दस साल ब्याज मिल चुका हो या मूल से दुगना रुपया पहुंच चुका हो, (४) किसानों के घरों की बनावट में स्वास्थ्य सौन्दर्य की दृष्टि से तब्दीली की जाय और (५) किसानों के लिये पोषक भोजन, पीने का पानी, जापे, शिक्षा, अखाड़े, खेल कूद और मनबहलाव आदि का प्रबन्ध किया जाय। गाँवों में ग्रामोद्योगों को भी प्रोत्साहन दिया जाय। अनेक ज़िम्मेवार अर्थ शास्त्रियों के लेखों से इस सम्बन्ध में चरखे की महत्ता लेखक ने दर्शाई है। घरेलू धन्धों में काग़ज़, घानी तेल, धान कूटना, ईख, खजूर, ताड़ी आदि से गुड़ बनाना, मधु मक्खी पालना, बढ़ई और लोहार के काम विस्तृत करना आदि शामिल किये गये हैं। किसानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के लिये हिन्दुस्तानी तालीमी संघ द्वारा निर्धारित बुनियादी तालीम को आदर्श बताया गया है। विषय को ठीक ठीक समझाने के लिये बम्बई योजना और अग्रवाल योजना को तुलनात्मक रूप में पेश किया गया है। चौथे अध्याय में भारतीय स्वराज्य के अन्दर किसानों की स्थिति पर ग़ौर किया गया है।

किताब बड़े परिश्रम और अच्छे ढङ्ग से लिखी गई है और प्रत्येक कांग्रेस जन के पढ़ने योग्य है।

—विश्वम्भरनाथ

**वह**—लेखकः राजाराम रावत 'पीड़ित'; प्रकाशक भारतीय-प्रकाशन मन्दिर, लश्कर; मूल्य २॥); पृष्ठ १५१।

'वह' एक कथा-काव्य है। यह एक ऐसे व्यक्ति के तीन जन्मों की कहानी है जो अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए, अपना जीवन तक दे देता हैं। पहले जन्म की कथा में वह उस देश का अधिराज है। विदेशियों के आक्रमण की आशंका देखकर, वह शस्त्रों से सुसज्जित होकर तथा अपनी सेना को लेकर आक्रमणकारियों से युद्ध करता एवं आपसी फूट के कारण हारता है। देश पराधीन हो जाता है तथा 'वह' घायल होकर एक गांव में किसी साधारण व्यक्ति के यहाँ पड़ा हुआ जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिनकर मृत्यु की ठंढी गोद में सो जाता है और उसकी पत्नी भी आत्मघात कर लेती है। ग्रामीण जन तथा उनके अन्य परिचित प्रातः काल दोनों को ही चिता की लपटों को समर्पित कर देते हैं। 'वह' के हृदय में अपनी मातृ-भूमि को स्वतन्त्र करने की आकांक्षा इतनी दृढ है कि वह फिर अपने उसी देश में जन्म लेता है और फिर देश के लिए होनेवाले स्वातंत्र्य संग्राम में अपने जीवन की बलि देता है। अभी उसकी अपने देश को स्वतन्त्र करने की मनोकामना पूरी नहीं हुई है इसलिए वह फिर जन्म ग्रहण करता है। अपने पूर्व जन्मों के हिंसा के माध्यम द्वारा देश को स्वतन्त्र करने के लिए किए गए प्रयत्नों की असफलता को देखकर इस जन्म में वह अहिंसा पथ को ग्रहण करता है। राज्य का अधिकारी वर्ग उसके बढ़ते हुए प्रभाव को देख-कर उसे कारागृह का दंड देता है। वहीं उसकी मृत्यु हो जाती है; किन्तु इस बार उसकी अपनी मातृभूमि को स्व-तन्त्र करने की अभिलाषा भी पूर्ण हो जाती है। उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर उसके देश में जागरण की लहर सी फैल जाती है और उसके देशवासी उसीके बताए हुए अहिंसा पथ पर चलकर अधिकारी वर्ग में हृदय-परिवर्तन करने में सफल होते हैं। वह भूभाग स्वतन्त्र हो जाता है।

कवि ने पहले जन्म की कथा में अपने नायक की माता बहन तथा पत्नी तीनों की ही उसके प्रति तथा उसके उद्देश्य के प्रति सहानुभूति दिखाई है। उसकी पत्नी उसके प्रति विशेष अनुरक्त है और वह किसी प्रकार उससे मार्ग में बाधक नहीं होती वरन् उसे अपने उद्देश्य के प्रति सचेष्ट करती रहती है। दूसरे जन्म में कवि ने उसकी पत्नी तथा पुत्र का उल्लेख किया है तथा तीसरे जन्म में भी कारागार में उसे अपनी पत्नी तथा पुत्र का स्मरण आता है। इस प्रकार 'वह' की देश भक्ति की भावना उसके पारिवारिक सम्बन्धियों के प्रति उसकी भावना के साथ चित्रित की गई है जिससे उसमें विशेष सजीवता आ गई है।

समस्त पुस्तक पढ़ने से यह लगता है कि कवि ने अपने विषय को देश तथा काल की सीमाओं से मुक्त रखने का प्रयत्न किया है। पुस्तक साधारण है। यदि कवि ने ग्रंथ के प्रारम्भ में भूमिका भाग और जोड़ दिया होता तथा एक एक जन्म की कथा को एक एक खंड में विभक्त कर दिया होता तो सम्भवतः पुस्तक का मूल्य बढ़ जाता। भाषा भी कहीं कहीं पर कवि ने बहुत संस्कृत गर्भित कर दी है, जो उसकी देश भक्ति की भावना के प्रचार के दृष्टिकोण से अनुपयुक्त है। साधारण कागज पर छपी हुई १५१ पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य २॥) बहुत अधिक है।

—विश्वनाथ मिश्र एम० ए०

**नया साहित्य**—( दोमाही पत्रिका ), कीमत एक रुपया; पता, जन प्रकाशन गृह राजभवन, सैण्डहर्स्ट रोड, बम्बई ४।

'देश की नयी साहित्यिक चेतना के प्रतिनिधि' स्वरूप श्री नरेन्द्र शर्मा, श्री अमृतलाल नागर और श्री रमेश सिन्हा के सम्पादन और लगभग आधे दर्जन कम्यूनिस्ट मित्रों के सम्पादक मण्डल के सहयोग से यह नया प्रकाशन शुरू हुआ है। सम्पादकों की घोषणा के अनुसार "नया साहित्य में संग्रहीत कहानियों, उपन्यास के अंश, लेखों, कविताओं, आलोचनाओं, नाट्य संगीत सिनेमा कला विवेचन और शोध सन्धानों के विवरण, कला चित्र और स्केचों में पाठकों को देश और विदेश की नयी सांस्कृतिक चेतना का आभास मिलेगा।" पहले अङ्क में लेखों में प्राचीन भारत में राशनिङ्ग, आदि काव्य, उर्दू साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चीन का नया साहित्य, कहानियों में वफ़ादारी की सनद, कायापलट, एक आदमी की क़ुर्बानी, कविताओं में जोश, नवीन, निराला आदि की कविताएँ और अन्य विषयों के संक्षिप्त सङ्कलन आदि उद्धृत किये गये हैं। पहला अङ्क देखकर यह पता चलता है कि लेखादि का चयन एक विशेष दृष्टिकोण को सामने रखकर किया गया है। पर हम आशा करते हैं आगे चलकर 'नया साहित्य' हिन्दी साहित्य को उसके सम्पूर्ण रूप में पाठकों के सामने रखेगा। प्रगतिशील के नाम से आज भारत में जो साहित्य प्रचलित है उसमें भारतीय राष्ट्रीयता को जो निम्नस्तर प्राप्त है वह प्रगतिशील साहित्यिकों के लिये कुछ गौरव की बात नहीं है। देश में जो सांस्कृतिक आन्दोलन चल रहे हैं उनका भी पत्रिका में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता। फिर भी सम्पादक मण्डल में डाक्टर रामविलास शर्मा और श्री शिवदान सिंह का नाम देखकर पत्रिका के आगामी जीवन से हम बहुत कुछ आशा कर सकते हैं। पत्रिका के अन्त में सिनेमा और सिगरेट के भोंडे विज्ञापन दिये हुये हैं।

**पारिजात**—( त्रैमासिक )—सम्पादक श्री रामखेलावन पाण्डेय; मूल्य प्रत्येक संख्या का दो रुपया, वार्षिक छै रुपया; पता—ग्रन्थमाला कार्यालय, बाँकीपुर ( पटना )।

पिछले सितम्बर मास से यह पत्रिका प्रकाशित होनी शुरू हुई है। पहले अङ्क में लेखों का चयन सुन्दर हुआ है। पत्रिका का उद्देश्य साहित्यिक और सांस्कृतिक विचारों का प्रचार है। लेखों में छायावाद की प्रारम्भिक पृष्ठभूमि, प्रारम्भिक युग की चीनी संस्कृति, प्रगतिवाद—समकालीन व्याख्या, संस्कृति का आर्थिक आधार, शिक्षा और स्वतंत्र इच्छा शक्ति और कला का मूल्यांङ्कन आदि लेख सुन्दर और ऊँचे दरजे के हैं। हमें विश्वास है पत्रिका के अगले अङ्क भी इसी स्तर के निकलेंगे।

**आज** ( दैनिक ): रजतजयन्ती अङ्क; मूल्य डेढ़ रुपया, पृष्ठ संख्या १९५।

दैनिक 'आज' ने अपने गौरवपूर्ण जीवन की रजतजयन्ती के अवसर पर साप्ताहिक आज की साइज़ का यह वृहत अङ्क प्रकाशित किया है। प्रारम्भ में राष्ट्रपति आज़ाद, महामना मालवीय, पंडित नेहरू, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद और वयोवृद्ध डाक्टर भगवानदास के इस अवसर पर शुभ सन्देश छपे हैं। इसके बाद 'हमारे २५ वर्ष' शीर्षक से 'आज' की प्रगति का ब्योरा दिया गया है। लेखों में श्री सम्पूर्णानन्द का भारत के पिछले २५ वर्ष, श्री परमेश्वरीलाल गुप्त का पत्र और पत्रकारी, श्री शङ्कर सहाय सकसेना का भारतीय आर्थिक जीवन के पिछले २५ वर्ष, सन्त निहालसिंह का अमेरिका के दैनिक पत्र, श्री हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का हिन्दी साहित्य के गत २५ वर्ष, श्री राजाराम शास्त्री का मज़दूर आन्दोलन के २५ वर्ष, श्री के० पी० विश्वनाथ अय्यर का राज्य और अख़बार, आचार्य नरेन्द्रदेव का कांग्रेस समाजवादी पार्टी आदि लेख मुख्य हैं।

**हुंकार, योगी, देशदूत** साप्ताहिकों ने दीपावली के अवसर पर अपने अपने विशेषाङ्क निकाले हैं। इन सभी अङ्कों में सुन्दर कविताएँ और उपयोगी लेख हैं। 'हुङ्कार' के पहले पृष्ठ पर श्री दिनकर की "दिल्ली और मास्को" शीर्षक कविता है। लेखों में श्रीकृष्णसिंह का सामाजिक विकास की एक धारा, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी का 'बुधिया' शीर्षक स्केच, स्वामी सहजानन्द का भारत का भविष्य, श्री मोहन सिंह सेंगर का भारत के ये राजनैतिक वाममार्गी आदि लेख मुख्य हैं। 'योगी' के कवर पर 'देवसेना की युद्ध यात्रा' शीर्षक एक सुन्दर कलापूर्ण तिरंगा चित्र है। मुख पृष्ठ पर 'विज्ञान, युद्ध और मनुष्य' शीर्षक श्री 'दिनकर' की एक सुन्दर रचना है। अङ्क में अनेक कविताओं के अतिरिक्त बहुत सी कहानियाँ और लेख भी हैं। देशदूत श्री ज्योति प्रसाद 'निर्मल' के सम्पादन में निकलनेवाला इण्डियन प्रेस का साप्ताहिक पत्र है। देशदूत के इस दीपावली अंक में डाक्टर कैलाशनाथ काटजू का आज़ाद हिन्द सेना के वह बन्दी, श्री सम्पूर्णानन्द का हिन्दी समाचार पत्रों की भाषा, कुँवर सुखवीर सिंह का मीरा की जन्म तिथि—एक निर्णय शीर्षक लेख अच्छे और उपयोगी हैं।

**अभ्युदय** ( आज़ाद हिन्द अंक ); मूल्य १); पृष्ठ संख्या ६४।

सहयोगी अभ्युदय का यकेबाद दीगरे यह दूसरा विशेषाङ्क है। आज़ाद हिन्द फ़ौज के सम्बन्ध में जब सभी हिन्दी पाठक पूरा समाचार जानने के लिये व्यग्र थे अभ्युदय ने यह विशेषाङ्क निकालकर उनकी बड़ी सेवा की है। अनेक चित्रों, कविताओं और महत्वपूर्ण लेखों से परिपूर्ण यह अङ्क हिन्दी पाठकों के लिये समयोचित और बहुत उपयोगी है। अपनी इस सेवा के लिये अभ्युदय हिन्दी पाठकों की बधाई का पात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सम्पादकीय विचार

## गांधी जी और हिन्दुस्तानी

*उर्दू सीखना ही होगा और उससे प्रेम करना होगा।*

१९ नवम्बर सन् '४५ को बम्बई से हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के कुछ काम करनेवालों ने गांधी जी से सवाल किया कि जो आदमी उर्दू लिखावट को पसन्द नहीं करता और सिर्फ़ देवनागरी लिखावट से ही क़ौमी ज़बान सीखना चाहता है उसके ऊपर उर्दू लिखावट क्यों लादी जाय? गांधी जी ने जवाब दिया—

पसन्द करने या नापसन्द करने का सवाल नहीं है अगर आप उर्दू लिखावट को पसन्द नहीं करते तो मैं इससे यह नतीजा निकालता हूँ कि आप हिन्दुस्तानी को पसन्द नहीं करते। उर्दू लिखावट तो सीखनी ही चाहिये। बिना मेहनत किये और बिना क़ुरबानी किये हम आज़ादी हासिल करने का सपना नहीं देख सकते। जहाँ तक बम्बई, गुजरात और महाराष्ट्र प्रान्तों की बात है वहाँ के लोगों के नागरी लिखावट सीखने का तो सवाल ही नहीं उठता। नागरी लिखावट तो वहाँ हर आदमी जानता ही है। तो फिर इसमें हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का क्या काम रह गया?

"दूसरी लिखावट के सीखने में यह न समझें कि आप किसी पर अहसान कर रहे हैं यह तो आपको अपना कर्तव्य मानना चाहिये। यह काम राष्ट्रीय काम है और हर आदमी को इसे करना चाहिये। दोनों लिखावटों को सीखकर आप इस ज़बान के दोनों बढ़े हुए रूपों हिन्दी और उर्दू को ज़्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे। मैं संस्कृत भरी हिन्दी समझ सकता हूँ, पर आम लोगों का क्या होगा? दोनों लिखावटों का सीखना आप लोगों का फ़र्ज़ है, केवल तभी हम नम्रता और ईमानदारी के साथ देश की सेवा कर सकते हैं।

"मैं तो यह कहता हूँ कि जो आदमी उर्दू लिखावट से प्रेम नहीं करता उसे स्वराज्य की भी चाह नहीं है। आम लोग शुद्ध हिन्दी या शुद्ध उर्दू नहीं समझते। इसलिए हमें हिन्दुस्तानी को इस तरह का रूप देना चाहिये कि आम अनपढ़ लोग भी उसे समझ सकें।

"सिर्फ़ नारे लगाकर ही हम अपने आज़ादी के मेहनत करने से जहाँ तक हो सकेगा बचते रहेंगे और अपनी दुनियावी तरक़्क़ी पर ही निगाह रक्खेंगे तो आपका स्वराज्य सदा एक सपना ही बना रहेगा। मुझे नागरी और उर्दू दोनों एक बराबर प्यारी हैं। इसलिए जब मैं यह कहता हूँ कि आप उर्दू लिखना सीखें तो नागरी लिपि से मुझे कोई दुश्मनी नहीं है। हमारा स्वराज्य कोई दूसरा हमें भेंट के तौर पर नहीं दे सकता। हमें ख़ुद अथक कोशिशें करके उसे जीतना होगा।"

गान्धी जी से फिर पूछा गया कि क्या लिखावट को भी उतनी ही अहमियत देनी चाहिये जितनी ज़बान को? गान्धी जी ने जवाब दिया—

"व्यवहार में ज़बान और लिखावट दोनों की ज़रूरत है। नहीं तो फिर जो मुसलमान भाई उर्दू लिखावट ही जानते हैं उन्हें चिट्ठी पत्री लिखने के सवाल को हम कैसे हल करेंगे? अगर आप इसके जवाब में यह कहें कि हमें उससे क्या लेना है, तो फिर मैं कहूँगा कि आप स्वराज्य के लिए भी परेशान क्यों होते हैं? मैं देश की पूरी तेरह लिखावटें सीखना चाहता हूँ और उन सबको अच्छी तरह जानना चाहता हूँ। उर्दू लिखावट सीखना मुश्किल नहीं है। यह काम बड़ी आसानी से और बिना परेशानी के हो सकता है।"

गान्धी जी से पूछा गया कि पहले नागरी अच्छी तरह सिखाकर फिर उर्दू क्यों न सिखाई जावे? उन्होंने जवाब दिया—

"अगर मैं सिखानेवाला होता तो मैं तो चार या पाँच लिखावटें साथ साथ सिखाता। उर्दू सीखने में मुझे आठ दिन भी नहीं लगे। कम से कम चार या पाँच ऐसे सिखानेवाले होने चाहियें जो दोनों लिखावटों को अच्छी तरह जानते हों और दोनों अच्छी तरह सिखा सकें। यह बात सिखानेवाले की मरज़ी पर छोड़ देनी चाहिये कि वह दोनों में साथ साथ सिखावे या पहले एक और फिर दूसरी। पर विद्यार्थियों को सर्टीफ़िकेट देने से पहले मैं उनका दोनों में इम्तहान लूँगा!

गांधी जी ने यह भी कहा कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



स्वराज्य हासिल करने के लिए हमारे देश के लोगों को उस थोड़ी सी मेहनत से नहीं बचना चाहिये जो इस देश की दो सबसे बड़ी लिखावटों 'नागरी और उर्दू' को सीखने के लिए उन्हें करनी पड़े। किसी बात को सचाई से निबाहने के लिए आदमी को सौ फीसदी सच्चा होना चाहिये। यह कोई रोटी नहीं है जिसके टुकड़े टुकड़े किए जा सकें। किसी भी क़ौम की ज़बान के टुकड़े नहीं किए जा सकते। क़ौमी ज़बान उसी तरह एक और अखण्ड होती है। जिस तरह सच्चाई इसलिए आप पसन्द करें या न करें आपको उर्दू सीखना ही होगा और उससे प्रेम करना होगा।"

आख़ीर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन और बाबू पुरुषोत्तम दास टंडन के बारे में एक सवाल का जवाब देते हुए गांधी जी ने कहा—

"टंडन जी मेरे दोस्त हैं, मैं उन्हें प्यार करता हूँ। बहुत दिनों तक हम साथ साथ रहे हैं। लेकिन अब इस सवाल पर हम दो अलग अलग रास्तों पर चल रहे हैं; पर हम एक दूसरे के रास्ते में रुकावट नहीं डालते। जहाँ तक मेरा सवाल है मैं गङ्गा और जमना यानी हिन्दी और उर्दू के सङ्गम से सरस्वती हिन्दुस्तानी के दर्शन करना चाहता हूँ।"

## स्वर्गीय पेरी सेरीसोल

स्वीज़रलैण्ड से प्रोफ़ेसर एडमण्ड प्रिवाट ने गान्धी जी के पास तार से सूचना भेजी है कि गत २५ अक्तूबर को श्री पेरी सेरीसोल का देहावसान हो गया। स्वर्गीय पेरी सेरीसोल संसार के गिनेमाने अहिंसावादियों में से थे। वे गांधी जी के भक्त और भारत के परम मित्र थे। संसार भर के विचारवान लोग उनके अहिंसात्मक सिद्धान्तों की दृढ़ता के कारण उनका आदर करते थे। उनका विश्वास था कि युद्ध मानव जाति का एक घृणित अभिशाप है और स्वयं उन्होंने कभी किसी युद्ध का समर्थन नहीं किया। उनके पिता स्विस प्रजातन्त्र के चैम्बर आफ़ डेपुटीज़ के प्रेज़ीडेण्ट थे। स्वयं वे एक अच्छे इञ्जीनियर थे। पिता से विरसे में उन्हें २०,००० फ्रांक की रक़म मिली थी जो उन्होंने सबकी सब स्विस सरकार को वापस कर दी। युद्ध विरोधी भावों के प्रचार के लिये उन्होंने एक अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-सेना का सङ्गठन किया। इस सेना के प्रचारकों ने हर देश में जाकर दुखी मानवता की सेवा में हिस्सा लिया। उसके निकट कोई पीड़ित शत्रु या मित्र नहीं था। बिहार भूकम्प के दिनों में उन्होंने बिहार के क्षतिग्रस्त स्थानों का दौरा करके राजेन्द्र बाबू को बहुमूल्य सहायता पहुंचाई। उनमें सङ्गठन की ज़बर्दस्त शक्ति थी। स्वभाव से वे अत्यन्त नम्र थे। इन पंक्तियों के लेखक को भूकम्प पीड़ित क्षेत्रों में उनके साथ जाने का अवसर मिला था और यह देखकर उसे बेहद आश्चर्य होता था कि दो चार दिन में ही स्व० पेरी सेरीसोल बिहार की जनता के साथ हिल मिलकर एक बनने में सफल हो गये। थोड़े ही अरसे में उन्होंने सैकड़ों कार्यकर्त्ताओं का प्रेम प्राप्त कर लिया।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की इस अहिंसात्मक विभूति के निधन से सारी दुनिया की हानि हुई है। स्वर्गीय पेरी सेरीसोल की स्मृति में हमारी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित है।

## अहिंसा ही हमारा बल है

पिछले महीने पटने में बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सामने सन् '४२ के आन्दोलन की अहिंसात्मक दृष्टि से विवेचना करते हुये डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने कहा—

"जब हम इस बात पर ग़ौर करते हैं कि सरकार ने कितने ज़ुल्म किये तो जनता की ज़्यादती फीकी दिखाई देने लगती है। अकसर जनता ने जो कुछ भी किया है वह सरकार के ज़ुल्मों की प्रतिक्रिया के रूप में।"

आगे चलकर राजेन्द्र बाबू ने ऐसे लोगों को आगाह किया जो यह समझते हैं कि कांग्रेस अपने अहिंसा के ध्येय से हट गई कि—

"कांग्रेस अपने अहिंसा के ध्येय पर ज्यों की त्यों दृढ़ है। वह एक इञ्च भी उससे नहीं हटी है। गत आन्दोलन में जिस हद तक भी लोग अहिंसा से विमुख हुये हैं उसी हद तक उन्होंने आन्दोलन को कमज़ोर बनाया है। यदि वह पूरी तरह अहिंसात्मक तरीक़ों से चलाया गया होता तो वह बेहिसाब शक्तिशाली होता। पिछले आन्दोलन से और जो कुछ दुनिया में इस समय हो रहा है हमें एक सीख लेनी चाहिये कि हिंसा के ज़रिये कुछ प्राप्त करने की बात सोचना ख्याली पुलाव पकाना है। यदि हमें कुछ विदेशी मुल्कों की मदद से हथियार इकट्ठा करने में कामयाबी भी हो जाय तब भी उनके इस्तेमाल से कामयाबी की उम्मीद करना पागलपन है। सर से पैर तक हथियारों से लदे मुल्क अपने से बड़ी ताक़त के सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



धराशायी हो गये। यह अहिंसा ही हमारा एकमात्र तरीक़ा और बल है।"

पिछले २५ वर्ष के अनुभव ने यह अच्छी तरह साबित कर दिया है कि राजेन्द्र बाबू के इस बयान में बहुत बड़ी सचाई है।

## रचनात्मक कार्य का महत्व

कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी आचार्य कृपलानी ने गत १३ नवम्बर को हिन्दू विश्व विद्यालय के विद्यार्थियों के एक जत्थे के सामने रचनात्मक कार्य के सम्बन्ध में बड़े काम की चर्चा की। उन्होंने बताया कि आज देश के सामने तीन कार्यक्रम हैं —(१) सत्याग्रह, (२) असेम्बलियों का कार्यक्रम और (३) रचनात्मक कार्यक्रम। सत्याग्रह के सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि वह लम्बे अरसे के बाद कभी कभी किया जाता है। वह एक लगातार की जानेवाली चीज़ नहीं है। चुनाव थोड़ी देर के लिये लोगों में जोश पैदा कर देते हैं पर उससे नुकसान भी होते हैं। वे हमारे बीच में फ़र्क डाल देते हैं। चुनाव के सहारे हर तरह के प्रतिक्रियावादी लोग हमारी संस्था में घुस आते हैं जो सत्याग्रह के समय बड़ी रुकावट साबित होते हैं। इसके विपरीत रचनात्मक कार्यक्रम के लिये एक दूसरे प्रकार के गुणों की ज़रूरत होती है। उसके लिये धैर्य, बरदाश्त, अनुशासन की अज़हद ज़रूरत है। रचनात्मक कार्यक्रम सेवा की राजनीति है। उसके लिये नम्रता, सादा ज़िन्दगी और कड़ी मेहनत की ज़रूरत होती है। रचनात्मक काम करनेवाले न एक दूसरे की बुराइयाँ करते हैं और न एक दूसरे के रास्ते में आते हैं। उन्हें आत्मसंयम सीखना पड़ता है, तभी वे साथ काम कर सकते हैं।

रचनात्मक कार्यक्रम के संगठन के बारे में उन्होंने बताया कि हिन्दुस्तान जैसे बड़े मुल्क का ऊपर से सङ्गठन नहीं किया जा सकता। हर गाँव का अपना अलग सङ्गठन होना चाहिये। आज हमें अपने देश का सङ्गठन नीचे से करना होगा। उसके लिये हमें लाखों कार्य-कर्त्ताओं की ज़रूरत है जो एक एक गाँव को रचनात्मक कार्यक्रम की बिना पर सङ्गठित करें। इन्हींसे फिर एक मज़बूत और अखण्ड भारतीय सङ्गठन पैदा होगा कि जिन्हें नीचे से जनता बल देगी और ऊपर से जिन्हें पथ-प्रदर्शन और प्रोत्साहन मिलेगा।

हमें दुख के साथ कहना पड़ता है कि कांग्रेस का सङ्गठन आज ठोस रचनात्मक कार्यक्रम का रास्ता छोड़कर सस्ते और भावुक नारों और असेम्बलियों के कार्यक्रम में उलझता जाता है। असेम्बलियों द्वारा प्राप्त किया हुआ बल क्रान्ति के लिये उतना सहायक नहीं होता जितना जनता द्वारा दिया हुआ बल। जिस तरह हिंसात्मक आन्दोलन के लिये लगातार परेड और ड्रिल की ज़रूरत होती है उसी तरह अहिंसात्मक आन्दोलन के लिये भी एक तय्यारी ज़रूरी है। अहिंसात्मक परेड रचनात्मक कार्यक्रम है जिसके द्वारा जनता के साथ सच्चा सम्पर्क क़ायम हो सकता है। उसी के द्वारा जनता में आत्मविश्वास और अनुशासन भी पैदा किया जा सकता है। इस रचनात्मक कार्यक्रम से हम जितनी ही दूर हटेंगे उतनी ही दूर मुल्क की आज़ादी भी हमसे हटती जायगी।

## अन्याय का प्रतिकार करो

पिछली १५ नवम्बर को जबलपुर में मध्यप्रान्त के विद्यार्थी परिषद का उद्घाटन करते हुये आचार्य विनोबा भावे ने तरुण विद्यार्थियों से बड़े काम की बातें कीं। उन्होंने हिंसात्मक और अहिंसात्मक तरीक़ों की विवेचना करते हुये अहिंसा की उत्तमता पर ज़ोर दिया और विद्यार्थियों को सलाह दी कि वे हमेशा अन्याय का प्रतिकार करने के लिये तय्यार रहें। अपने व्याख्यान में उन्होंने कहा—

"यदि समाज में अन्याय होता है, कुटुम्ब में अन्याय होता है, या राष्ट्र में अन्याय हो रहा है तो सिर मत झुकाओ। अन्याय का प्रतिकार करो। क्यों कि यदि हम अन्याय को सहन करते हैं तो मानवता को छोड़ते हैं। आज जो लड़ाई होती है उसमें कहा जाता है कि बिना शर्त शरण आओ और जब हार हो जाती है तो बिना शर्त आत्मसमर्पण किया जाता है। हारनेवाला प्रतिकार नहीं करता। इसका कारण शस्त्र है। शस्त्र के बिना हम लड़ नहीं सकते। लड़नेवाले कहते हैं कि आख़ीर तक लड़ेंगे। पर वे आख़ीर तक नहीं लड़ते। जब तक लड़ाई चलती है तभी तक लड़ते हैं। सामने एटम बम है। फिर महत बम बनेगा। और इस प्रकार तरह तरह के बम बनेंगे। पर अन्याय का प्रतिकार होना ही चाहिये और वह इन परिस्थितियों में अहिंसा से ही हो सकता है। कई लोग यह सोचते हैं कि हिन्दुस्तान हिंसा से आज़ाद हो सकता है। पर यदि हम हिंसा से स्वतन्त्रता लेने की बात सोचें तो उसकी तैयारी के लिये हमें सौ दो सौ वर्ष और लग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जायेंगे। अहिंसा के बल पर ही हिन्दुस्तान टिक सकता है। क्रांति करो। पर विध्वंसक शक्ति से काम-याबी नहीं मिलेगी क्योंकि जिनका तुम्हें मुक़ाबला करना है वे इस क्रिया में बहुत होशियार हैं। एक बात और है कि विध्वंसक शक्ति के प्रयोग के समय जिनके पास शस्त्र नहीं हैं, वे बेकार हैं। पत्थर फेंकना, रेल की पटरी उखाड़ना, यह सब क्रांति नहीं है। गांव गांव में जाकर सेवा करो; कांग्रेस की आज्ञाओं को हर गांव में ले जाओ। सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा था कि हम सरकार को सात दिन में समाप्त कर सकते हैं। और ऐसा हो सकता है। पर इसके लिये हमें संगठन करना चाहिए। मुझे व्याख्यानों पर विश्वास नहीं है। आत्मा प्रवचनों से नहीं जागा करती। सुनो कम; शब्दों की शक्ति कम करके चिन्तन करो। कर्म करो।"

आचार्य विनोबा जी के बताये हुये मार्ग से ही भारत को मुक्ति मिल सकत है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग सम्भव ही नहीं है।

## बदले का ब्योरा

अगस्त १९४२ में बङ्गाल के मेदिनीपुर ज़िले में जनता ने बहादुरी और दिलेरी के साथ 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में हिस्सा लिया था। जिस समय आन्दोलन अपनी प्रखर गति पर था उसी समय वहाँ ज़बर्दस्त तूफ़ान आगया जिसमें २५ हज़ार से अधिक लोगों की जानें गईं, ५० हज़ार से अधिक पशु नष्ट हुये और दस हज़ार से अधिक मकानों को नुक़सान पहुँचा। पर बङ्गाल की सरकार जनता के ऊपर पड़ी हुई इस दैवी विपत्ति से नहीं पसीजी। उसने '४२ के आन्दोलन का जनता से जो भीषण बदला लिया उसके कुछ आँकड़े हाल में बङ्गाल प्रान्तीय हिन्दू महासभा ने प्रकाशित किये हैं। एसोशियेटेड प्रेस के २९ नवम्बर के वक्तव्य के अनुसार उनका ब्योरा इस प्रकार है—

"मेदिनीपुर के कण्टाइ और तामलुक सबडिवीज़न में अगस्त १९४२ और जनवरी १९४३ के बीच ७८ आदमी सरकारी गोलियों के शिकार बनाये गये और २३० ज़ख्मी हुए। २७४ बहिनों पर सरकारी आदमियों द्वारा बलात्कार किया गया। १६१५ आदमियों को शारीरिक पीड़ा दे देकर सताया गया और ९०४४ आदमियों को गिरफ़्तार किया गया। अकेले कण्टाइ सबडिवीज़न में जिन मकानों को लूटा या गिराया गया उनके नुक़सान की रक़म ८,७९,००० रु० होती है। जिन लोगों के मकान फ़ौज या पुलिसवालों ने जलाये उनकी तादाद १०८० है।"

जिस समय तूफ़ान की दैवी विपत्ति में लोग परेशान थे उस समय फ़ौज और पुलिस की हरकतों को बयान करते हुये हिन्दू महासभा की इस रिपोर्ट में लिखा है—

"फ़ौजी आदमी सारे गाँव को घेर लेते थे। मरदों को गिरफ़्तार करके ज़बरदस्ती गाँव से बाहर ले जाते थे और उसके बाद लोगों के घरों में घुसकर गाँव की बहु संख्यक स्त्रियों के ऊपर बलात्कार करते थे। फिर घरों की चीज़ों को तोड़ फोड़ डालते थे और ज़ेवर और रुपया पैसा लूटकर चम्पत हो जाते थे।"

इस पर क्या सम्पादकीय टिप्पणी की जाय? जो नारकीय ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस तरह की चीज़ों के लिये ज़िम्मेवार है उसे नष्ट करने के लिये जीजान से कोशिश करना ही इसका एकमात्र जवाब है।

## बहादुर सिखों के ये नेता

शेखूपुरा में सिखों के प्रसिद्ध गुरुद्वारा नानकाना साहब में २० नवम्बर को एक लाख जनता के सामने व्याख्यान देते हुये पंडित जवाहर लाल नेहरू ने सिखों को अपने शानदार अतीत की याद दिलाते हुये कहा कि किस तरह उनके नेताओं ने उन्हें ग़लत रास्ता दिखाकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का समर्थक बना दिया। धर्म की दोहाई देदेकर अकाली नेताओं ने सिखों को पथभ्रष्ट किया। पण्डित नेहरू ने बताया कि एक ग़ुलाम का सबसे बड़ा धर्म अपनी ग़ुलामी के ख़िलाफ़ विद्रोह करना है और यह बिलकुल मुनासिब था कि भारतीय जनता ने सन् १९४२ में उसी तरह विद्रोह किया जिस तरह उन्होंने सन् १८५७ में किया था। अकाली दल की आलोचना करते हुये पण्डित जी ने कहा—

"अकाली नेता अपने सिद्धान्तों से गिर गये हैं। वे सिखों को गुमराह करके उनके हितों को नुक़सान पहुंचा रहे हैं। इन नेताओं ने सर स्टेफर्ड क्रिप्स को याद दिलाया कि किस तरह सिख सन् १८५७ में अङ्गरेज़ों के प्रति वफ़ादार रहे थे। उन्होंने यह कितनी कमीनी और नामुनासिब बात कही। वे इस तरह का बर्ताव करके बहादुर सिखों के नाम पर कालिमा लगा रहे हैं।"

पण्डित जी की बात कड़वी हो सकती है पर है वह अक्षरशः सही। यदि मुसलिमलीग के नेता ब्रिटिश साम्राज्यवाद को क़ायम रखकर साम्प्रदायिक लाभ के लिये



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मुसलिम जनता को बेंचने पर तत्पर हैं तो मास्टर तारासिंह और उनके साथी सिखों को ब्रिटिश साम्राज्यशाही का पृष्ठ पोषक बनाये हुये हैं। जिस तरह हिन्दू जनता आज सावरकर के फन्दे में फँसकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का समर्थन करने को तय्यार नहीं उसी तरह मुसलमान और सिख जनता को भी गुमराह करनेवाले इन नेताओं से सावधान रहना चाहिये।

## वे भारत की आज़ादी चाहते थे उसे बेचना नहीं

दिल्ली में जो इस समय कोर्ट मार्शल हो रहा है उसमें अबतक कई सरकारी गवाहों के बयान हो चुके हैं। पूरे तीन बरस तक हमारे कम्यूनिस्ट मित्र बराबर इस बात का प्रचार करते रहे कि नेताजी की फ़ौजें भारत को जापानियों के सुपुर्द करने की कोशिश कर रही हैं और वे वास्तव में जापान की पिट्ठू फ़ौजें हैं। इतनी कमीनी, झूठी और घृणित बात तो सरकारी गवाहों को भी कहने की हिम्मत नहीं पड़ी। गत २८ नवम्बर को सरकारी गवाह सिपाही दिलासा ख़ां ने कोर्ट मार्शल के सामने गवाही देते हुए कहा—

"कप्तान शाहनवाज़ ने कहा कि ऐसा न हो कि हम लड़ाई में जापानियों के पिछलगुए हो जाँय। ऐसा करके हम अपने देश का अपमान करेंगे। अपने देश पहुंचकर हम भारतीय स्त्री पुरुषों से मिलेंगे। जो स्त्रियाँ हमसे बड़ी होंगी उन्हें हम अपनी माँ समझेंगे, जो छोटी होंगी उन्हे हम अपनी बहिन और बेटी समझेंगे। जो शख़्स इसके ख़िलाफ़ काम करेगा वह गोली से उड़ा दिया जायगा। जब हिन्दुस्तान आज़ाद हो जायगा तो आज जो जापानी हमें मदद कर रहे हैं यदि वे उसे दबाना चाहेंगे तो हमें उनसे लड़ना पड़ेगा। आज भी अगर कोई जापानी तुम्हें एक तमाचा मारे तो तुम उसे तीन तमाचे मारो क्योंकि हमारी सरकार जापानियों की सरकार की तरह आज़ाद सरकार है और हम किसी भी तरह जापानियों के मातहत नहीं हैं। हिन्दुस्तान पहुंचकर यदि हम देखेंगे कि कोई जापानी हमारी बहिनों के साथ बुरा बर्ताव कर रहा है तो पहले हम उसे आगाह करेंगे और अगर वह न मानेगा तो हम उसे बेशक गोली मार देंगे।"

गवाह ने यह भी बताया कि कप्तान शाहनवाज़ ने यह भी कहा कि वे जापानियों के फ़ायदे के लिये नहीं बल्कि हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिये लड़ रहे हैं।

उपरोक्त शब्द किसी आज़ाद हिन्द फौज के गवाह के नहीं बल्कि सरकारी गवाह के हैं। क्या इसके बाद भी भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी अपने झूठे और गलत इलजामों को बराबर दोहराती रहेगी?

## टेनेन्सी एक्ट या बेदख़ली का क़ानून

युक्त प्रान्त में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल ने किसानों के लिये जो क़ानून बनाया था उसका उनकी ग़ैरहाज़िरी में इतना ज़बर्दस्त दुरुपयोग किया गया कि किसानों में त्राहि त्राहि मच गई। क़ानून का असली मन्शा किसानों को फ़ायदा पहुँचाना था और यदि उस मन्शे के ख़िलाफ़ क़ानून में कोई कमी रह गई थी तो गवर्नर हैलेट का कर्तव्य था कि वह उसे अपने विशेषाधिकार से पूरा करते किन्तु इस तरह की कोई चीज़ नहीं की गई। सन् '४४-४५ के जो आँकड़े युक्त प्रान्तीय सरकार ने प्रकाशित किये हैं उनके अनुसार टेनेन्सी एक्ट के अनुसार चलने वाले मुक़दमों की तादाद इस साल ७,०७,००० थी। किसानों को एक साल में २६,७४५ एकड़ ज़मीन से बेदख़ल किया गया। दफ़ा १७१ के मुताबिक़ ग़ैर मौरूसी किसानों पर ४६,६१० मुक़दमे दायर किये गये। टेनेन्सी एक्ट की १८० दफ़ा के मुताबिक़ बेज़ाप्ता क़ब्ज़े के लिये ८८,०२९ मुक़दमे चलाये गये। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस पूरे अरसे में ज़मींदार सीर की ज़मीनों पर कब्ज़ा करने के लिये बराबर तत्पर रहे।

ये आँकड़े साफ़ बता रहे हैं कि टेनेन्सी एक्ट में बड़ी ज़बर्दस्त ख़ामियाँ रह गई थीं और अगर उनका फ़ायदा उठाकर ज़मींदार किसानों पर ज़ुल्म कर रहे हैं तो किसानों के दिल इससे और ज्यादा दुखेंगे और यह कैफ़ियत ज़मींदारी प्रथा का अन्त बहुत निकट लायेगी। अपने आरज़ी फ़ायदे के लिये ज़मींदार अपने व्यापक हितों को बहुत बड़ा नुक़सान पहुंचा रहे हैं।

## सेन्ट्रल असेम्बली के चुनाव

शिमला कान्फ्रेंस के बाद से ही मुसलिम लीग और आज़ादी पसन्द मुसलमानों की जमातों में ज़ोरदार संघर्ष चल रहा है। पिछले ८ वर्षों से क़ायदे आज़म जिन्नाह का जो रुख़ रहा है उसके कारण लीग के साथ किसी प्रकार का समझौता मुमकिन नहीं हो सका। शिमले के बाद से तो आपसी सुलह की बात भी नामुमकिन होगई है। जिन्नाह साहब का यह दावा था कि १०० प्रतिशत मुसलमान लीग के साथ हैं और किसी दूसरे को लीग का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार नहीं। कोई भी आज़ादीपसन्द मुसलमान लीग के इस दावे को कैसे स्वीकार कर सकता था? लीग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



मुल्क के टुकड़े करना चाहती है जो दुनिया की राजनीति देखते हुये एक घातक क़दम है। वह हिन्दुस्तान के गाँव गाँव और गली गली में अपनी पाकिस्तान की स्कीम से हमेशा के लिये हिन्दू मुसलिम फ़साद के बीज बोना चाहती है जिसे कोई भी समझदार आदमी कैसे स्वीकार कर सकता है। बम्बई की आल इण्डिया कमेटी के बाद ८ आज़ादी-पसन्द मुसलमान जमातों ने अपना संगठन किया और अक्तूबर के चौथे हफ़्ते में सेन्ट्रल असेम्बली का चुनाव लड़ने का फ़ैसला भी कर लिया। वोटरों की जिस सूची पर यह चुनाव लड़ा गया है और जिस तरह २५ प्रतिशत वोट राष्ट्रीय मुसलिम उम्मीदवारों को मिले हैं उससे मि० जिन्नाह का १०० प्रतिशत मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का दावा झूठा साबित हो गया। और यह फ़ैसला केवल ६० प्रतिशत वोटरों ने दिया है। ४० प्रतिशत वोटर तो वोट देने ही नहीं आये। यदि यही अनुपात उनपर भी लागू किया जाय तो राष्ट्रीय मुसलमानों का प्रतिनिधित्व ३५ प्रतिशत हो जाता है। हमें विश्वास है प्रान्तीय असेम्बली में यह प्रतिनिधित्व का अनुपात लीग के पक्ष में और भी कम हो जायगा।

इस चुनाव में मुसलिम लीग के कार्यकर्त्ताओं ने जो हुल्लड़ और दङ्गा किया वह किसी भी सभ्य जमात के लिये शर्म की बात है। वह कमजोरी की निशानी है। दङ्गों के सहारे लीग अपनी बात नहीं मनवा सकती। अगले तीन महीने मुसलमान जनता के लिये शिक्षा के महत्वपूर्ण महीने हैं। पाकिस्तान के प्रश्न पर उसे खुलकर सोचने का मौक़ा मिलेगा और जो भी फ़ैसला वह करेगी मुनासिब ही होगा।

एक बात हम कांग्रेस जनों से भी कहना चाहते हैं कि मुसलिम सम्पर्क का जो कार्यक्रम उन्होंने उठाया है वह यदि केवल चुनाव के लिये नहीं है बल्कि मुसलमान जनता को आज़ादी की लड़ाई में शामिल करने की सच्ची और ईमानदारी की कोशिश है तो वह निश्चय ही कामयाब होगी पर इसके लिये हिन्दू कांग्रेस जनों को ख़ुद भी अपने दिल से साम्प्रदायिक अहंमन्यता के समस्त भाव मिटाने पड़ेंगे, उन्हें हिन्दी उर्दू के झगड़ों से ऊपर उठना होगा और उन्हें हिन्दू मुसलमानों के अन्दर एकसी भारतीयता के दर्शन करने होंगे। और यदि वे अपने दिलों को साम्प्रदायिक रूढ़ियों से मुक्त कर लेंगे तो मुसलमान जनता के दिलों को वह पूरी तरह जीत सकेंगे। प्रश्न अपने को शुद्ध करके मुसलमानों के दिलों को जीतने का है।

## अग्नि स्नान

आज़ाद हिन्द फ़ौज दिवस मनाने के सिलसिले में देश में जगह जगह विद्यार्थियों के जुलूसों पर लाठियाँ और गोलियाँ बर्साई गईं। लाहौर, अमृतसर, लखनऊ, मदुरा, बम्बई, ढाका और कलकत्ता में बेकार पचासों क़ीमती जानें गईं। यह एक आकस्मिक संयोग की बात नहीं हो सकती कि उधर लेबर पीअर लार्ड स्ट्राबोल्गी का बयान निकला कि पंडित नेहरू की तक़रीरें हिंसा का वातावरण फैला रही हैं और इधर देश में दसियों जगह लाठियाँ और गोलियाँ बरस गईं। भला लेबर पीअर की बात कैसे मिथ्या जा सकती थी! इन गोलीकाण्डों को न्याय्य ठहराने के लिये जो बयानात सरकार ने प्रकाशित किये हैं वे बिलकुल लचर, काल्पनिक और बेबुनियाद हैं। इन बयानात के पीछे एक बात बिलकुल साफ़ झलकती है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नज़रों में हिन्दुस्तानियों की जान की न कोई क़ीमत है और न वक़त। वरना गोलियों के बजाय टीअर गैस बाम्ब या पानी के होज़ इस्तेमाल किये जा सकते थे। जाँच पड़-ताल के बाद अब तो और बहुत से रहस्य खुलते जा रहे हैं। कलकत्ते के गोलीकांड पर अमृत बाज़ार पत्रिका में एक प्रत्यक्षदर्शी का बयान है कि—"विद्यार्थियों को घेरे हुये भीड़ जब छँटने लगी तब भी पुलिस विद्यार्थियों पर गोलियाँ चलाती रही।" शहीद रामेश्वर बैनर्जी के पिता प्रोफ़ेसर सैलेन्द्रमोहन बैनर्जी के बयान के अनुसार अधिकतर गोलियाँ जानबूझकर हत्या करने की ग़रज़ से चलाई गईं। गोली काण्ड के तीन घण्टे बाद जब गवर्नर कैसी घटनास्थल पर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि बावजूद कई विद्यार्थियों के मरने और घायल होने के हज़ारों विद्यार्थी शान्ति के साथ सड़क पर बैठे हुये थे। उनका व्यवहार पूरी तरह अहिंसात्मक था। दर्शक बेशक उत्तेजित थे और यदि उनमें से किसी अज्ञातनामा ने पुलिस पर ईंट पत्थर फेंकी भी तो पुलिस ने जवाब में शान्त विद्यार्थियों के ऊपर गोलिया चलाईं। आख़िर विद्यार्थियों का क़ुसूर क्या था? यही न कि वे डलहौज़ी स्क्वायर जाना चाहते थे। दूसरे दिन जब दो लाख आदमियों का जुलूस डलहोज़ी स्क्वायर से होकर गुज़रा तो गवर्नर कैसी के ऊपर कोई बिजली नहीं टूट पड़ी। अद्भुत शान्ति और अहिंसात्मक तरीक़े से पूरा जुलूस डलहौजी स्क्वायर का चक्कर लगाकर निकल गया और किसी पुलिस वाले पर आंच तक न आई।

हम जानना चाहते हैं कि आख़िर इस कलकत्ते के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



गोलीकाण्ड में जो ३२ आदमी शहीद हुये, कि जिनमें हिन्दू और मुसलमान सब शामिल थे, उन्हें क़त्ल करने की कोई न्याय्य वजह थी ? यदि उन्होंने मोटरें जलाई थीं तो उनपर मुक़दमा चलाया जाता। आग लगाने की सज़ा मौत तो नहीं हो सकती ? यदि ये विद्यार्थी अङ्गरेज़ या अमरीकन होते तो क्या उनपर इसी तरह गोलियां चलाई जातीं ? पर ग़ुलाम हिन्दुस्तानी की जान की कोई कीमत नहीं। न सही ? पर इस तरह के अग्नि स्नान भारतीय तरुण की जवानी को और अधिक निखार देते हैं। वह इस आंच में तपकर सोना होकर निकलता है। कलकत्ते के विद्यार्थियों ने जिस असीम शान्ति और बहादुरी के साथ गोलियों का सामना किया उससे देश का मस्तक ऊँचा ही उठा है।

पर विद्यार्थियों को राष्ट्रपति आज़ाद की चेतावनी भी न भूल जानी चाहिये। उन्हें अपनी शक्ति ज़ाया नहीं करनी है बल्कि स्वतन्त्रता के अगले और अन्तिम युद्ध के लिये उसे सुरक्षित रखना है। उन्हें पूरी शक्ति रचनात्मक कार्य-क्रम में लगानी है। तूफ़ान से पहले एक अपूर्व शान्ति छाई रहती है। और शान्ति जितनी प्रबल होती है तूफ़ान में भी उतनी ही प्रबलता आती है। इसलिये बजाय सभा जुलूसों और नारों के विद्यार्थियों को अपनी सम्पूर्ण शक्ति रचनात्मक कार्य में ही लगानी चाहिये।

## बर्मा का आज़ाद मोर्चा

गत १८ नवम्बर को रंगून के ऐतिहासिक शोदागाक पागोदा के मैदान में पचास हजार जनता के सामने व्याख्यान देते हुये बर्मा की जन स्वातन्त्र्य लीग के सभापति जनरल औङ्ग सान ने कहा—"हम एक राष्ट्रीय आरज़ी सरकार की मांग करते हैं। हमें गवर्नर की कार्यकारिणी से सन्तोष नहीं...।" स्वातन्त्र्य लीग की मांग थी कि १५ सदस्यों की एक्ज़ीक्यूटिव कौन्सिल में ११ सदस्य उसके रहें और गृहमन्त्री भी उसीका सदस्य रहे। पर बर्मा के गवर्नर ने यह शर्त मानने से इनकार कर दिया। जनरल औङ्ग के वक्तव्य के अनुसार बर्मा के गवर्नर सर रेजिनल्ड डार्मन स्मिथ ने यह कहा कि एक्ज़ीक्यूटिव बनाने की उनके ऊपर कोई नैतिक ज़िम्मेवारी नहीं है और न किसी को कौन्सिल में प्रतिनिधित्व का हक़ है।

बेशक, जब तक बर्मा जपानियों के क़ब्ज़े में था तब तक बर्मनों को सच्ची स्वाधीनता दिये जाने और बर्बर जापानियों को निकालने की बात की जाती थी पर अङ्गरेज़ शहन्शाहियत के एक बार वहाँ फिर से क़ायम हो जाने के बाद अब बर्मनों को किसी भी राजनैतिक अधिकार की कौन सी नैतिक वजह हो सकती है ? जनाब जनरल साहब ! ये ब्रिटिश साम्राज्यवादी आपकी मामूली बर्मी ज़बान नहीं समझते। ये जो ज़बान समझते हैं है आपकी बर्मी जनता में उस ज़बान में समझाने की ताक़त ? या बर्मियों ने अपनी सारी बहादुरी केवल ग़रीब हिन्दुस्तानियों पर ही उतारना सीखा है ? इण्डियन नैशनल कांग्रेस आज २५ वर्ष से आज़ादी हासिल करने के लिये त्याग और क़ुरबानी का रास्ता पकड़े हुये है। बर्मा केवल उसी रास्ते पर चलकर अङ्गरेज़ों से अपने अधिकार पा सकता है—किसी दूसरे रास्ते से नहीं।

## मिश्र खाली करो

काहिरा से १५ नवम्बर का एसोशियेटेड प्रेस आफ़ अमेरिका का समाचार है—"काहिरा में वफ़र पार्टी के अनुयाइयों ने ज़बर्दस्त ब्रिटिश विरोधी प्रदर्शन किये। उन्होंने माँग की कि अङ्गरेज़ फ़ौरन मिस्र ख़ाली करें और सूडान को वापस करें।" एक वक्ता ने यह भी कहा—"अङ्गरेज़ सिर्फ़ ताक़त से डरते हैं। आओ सूडान वापस लेने के लिये हम अपना ख़ून बहायें।" श्री नहस पाशा ने अपने व्याख्यान में कहा कि—"या तो हम सूडान विजय करें या इस प्रयत्न में जान दे दें।"

हमें अपने बहादुर मिस्री भाइयों से पूरी हमदर्दी है। पर यह एक मानी जानी बात है कि मिस्र की आज़ादी हिन्दुस्तान की आज़ादी से कोई अलग स्वतन्त्र चीज़ नहीं है। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इस बात का ऐलान कर चुकी है कि हिन्दुस्तान की फ़ौजी सरहद कराची या अदन नहीं बल्कि सिकन्दरिया है। जब तक हिन्दुस्तान ग़ुलाम रहेगा तब तक सिकन्दरिया की अङ्गरेज़ों को ज़रूरत रहेगी और जब तक सिकन्दरिया की अङ्गरेजों को ज़रूरत रहेगी तब तक मिस्र को ग़ुलामी से मुक्त न होने दिया जायगा। और हिन्दुस्तान उस वक्त तक ग़ुलामी से छुटकारा न पायगा जब तक मुसलमानों की नुमाइन्दगी क़ायदे आज़म जिन्नाह के हाथों में होगी पर हम अपने मिस्री भाइयों को यक़ीन दिलाते हैं कि वह दिन बहुत दूर नहीं जब भारतीय मुसलमान कांग्रेस के साथ मिलकर न सिर्फ़ हिन्दुस्तान को बन्धनमुक्त करेंगे बल्कि उस फौलादी कड़ी को चूर चूर कर देंगे जिसमें ४० करोड़ हिन्दुस्तानियों के साथ साथ मध्यपूर्व और मिस्र के १५ करोड़ अरब और ईरानी मुसलमान बंधे हुये हैं।

आमीन !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



## फ़िलिस्तीन की समस्या

१९१७ में बालफ़ोर डिक्लेरेशन के समय से फ़िलिस्तीन की समस्या बराबर उलझी हुई चल रही है। अरबों के दिल में उससे सख़्त गुस्सा था। उस गुस्से को कम करने के लिये अङ्गरेज़ सरकार ने पील कमीशन और वुडहेड कमीशन मुक़र्रर किये और आख़ीर में लड़ाई सर पर देखकर उन्होंने १९३९ में फ़िलिस्तीन के सम्बन्ध में श्वेत पत्र प्रकाशित किया। इस श्वेत पत्र में अरबों को दस वर्ष में आज़ाद करने का वादा किया गया था और मार्च १९४४ के बाद फ़िलिस्तीन में यहूदियों का प्रवेश बिल्कुल बन्द कर देने का ऐलान किया गया। यहूदियों को इससे बड़ी निराशा हुई क्योंकि फ़िलिस्तीन को वे अपना राष्ट्रीय वतन बनाने की योजना बना रहे थे और यह तभी सम्भव था जब उन्हें असीमित रूप में वहाँ बसने दिया जाता।

किन्तु जैसे ही लड़ाई ख़त्म हुई प्रेज़ीडेण्ट ट्रुमेन ने एटली को पत्र लिखा कि एक लाख यहूदियों को फ़िलिस्तीन में जाकर बसने की इजाज़त दी जाय। अब अरबों के नाराज़ होने की बारी आई। बहरहाल आख़ीर में अङ्गरेज़-अमरीकनों में यह समझौता हो गया कि पूरे मामले की जाँच के लिये एक अङ्गरेज़-अमरीकनों का सम्मिलित कमीशन बैठाया जाय और तावक्के कि कमीशन किसी नतीजे पर पहुंचे हर महीने १५०० यहूदियों को बाहर से फ़िलिस्तीन में आने और बसने की इजाज़त दी जाय।

इस फ़ैसले से अरब और यहूदी दोनों नाराज़ हैं। अरब इसलिए कि मार्च '४४ के बाद भी यहूदियों का आना बराबर जारी है और अङ्गरेज़ों ने अपना वादा पूरा नहीं किया और यहूदी इसलिए कि महीने में १५०० की तादाद इतनी थोड़ी है कि फ़िलिस्तीन को यहूदियों का देश बनते बनते युग बीत जायगा।

और अङ्गरेज़ ख़ुश हैं कि यहूदी और अरब दोनों उसकी बन्दरनीति के शिकार हो रहे हैं।

## फ्रान्स की नई सरकार

आख़िर हफ़्तों की खींचातानी के बाद फ्रान्स में दे गाल ने नई सरकार क़ायम कर ही ली। वहाँ की तीन प्रमुख पार्टियों में कम्यूनिस्ट १४२, सोशलिस्ट १४० और उग्र कैथलिक १३२ हैं। इन्हीं तीनों का एक सम्मिलित मन्त्रि मण्डल बनाया गया है। जनरल दे गाल रिपब्लिक के प्रेज़िडेण्ट, प्रधान मन्त्री और रक्षा मन्त्री होंगे। कम्यूनिस्टों को शस्त्र निर्माण, राष्ट्रीय अर्थनीति, औद्योगिक उत्पादन और मज़दूरों का मुहकमा सुपुर्द किया गया है। ज़ाहिर है ये सब के सब महत्वपूर्ण मुहकमे हैं। कम्यूनिस्टों के नेता थोरेज़ मन्त्रिमण्डल के सदस्य बनाये गये हैं। इस मन्त्रिमण्डल का काम घरेलू इन्तज़ाम के अलावा फ्रान्स की इस चौथी जनतन्त्र सरकार के लिये एक नया विधान बनाकर देना है और इसके लिये ४२ आदमियों की एक असेम्बली भी बना दी गई है। फ्रान्स के इन उग्र राजनीतिक दलों की सरकार का रुख़ सोवियत् के साथ मित्रता का होगा या शत्रुता का, यह एक दूर की बात है। फ़िलहाल हम एशियावालों को फ्रान्स की साम्राज्यवादी नीति से अभी सरोकार है। दे गाल लेबनान और सीरिया को लेकर अपनी बदनाम साम्राज्यवादी नीति का परिचय दे चुके हैं। हिन्द चीन में उनका जो रवय्या रहा है वह एक बुरे साम्राज्यवादी को भी शर्मिन्दा कर सकता है। हमें देखना है कि फ्रान्स के ये कम्यूनिस्ट सरकारी मन्त्री कहां तक फ्रान्स की साम्राज्यवादी नीति को बदलने में सफल होते हैं। पर एक तस्वीर हमने इङ्गलिस्तान के मज़दूर दल की देखी है जो चर्चिली सरकार से भी बुरा साम्राज्यवादी दल साबित हुआ है। फ्रान्स के कम्यूनिस्ट अङ्गरेज़ मज़दूर दल से बेहतर साबित हो सकेंगे इसमें हमें सौ फ़ी सदी सन्देह है।

## ये गुरखे भी हिन्दुस्तानी हैं!

हिन्द चीन में सेगाँव से "लीडर" के विशेष संवाददाता ने गुरखा सैनिकों के व्यवहार के बारे में नीचे लिखा समाचार भेजा है—"२५ अक्तूबर की शाम को गुरखों ने एक चीनी को पकड़कर उसकी सोने की घड़ी और सोने की अंगूठी छीन ली। २६ अक्तूबर को तीन गुरखों ने एक घर में घुसकर एक चीनी स्त्री के साथ बलात्कार करने की कोशिश की। उसी दिन रात को गुरखों ने २०० घरों में आग लगा दी और लोगों का सोना और रुपया लूट लिया और १२ चीनी औरतों को पकड़कर उठा ले गये जिनका आज तक पता नहीं लगता। एडोरल फोअर मोहल्ले में गुरखे १५ मकानों में घुसे और अनामियों की क़ीमती चीजें उन्होंने लूट लीं और उनकी औरतों के गुप्त स्थानों को ज़बर्दस्ती छुआ।"

यदि इन समाचारों में दसवां हिस्सा भी सच्चाई है तो हमारा सर शर्म से ज़मीन में गड़ जायगा। हमें हैरत है कि आख़िर इन गुरखों को हो क्या गया है? और हमें अफ़सोस है कि जिन गुरखों ने सन् १८२० में अमरसिंह थापड़ और बलभद्रसिंह के नेतृत्व में अङ्गरेज़ी फ़ौजों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ीन बार हराकर भारतीय आज़ादी और अपने सदाचार
ा झण्डा ऊँचा किया था वही आज दुनिया भर को
ुलाम बनाते फिर रहे हैं और अपने व्यवहार से सारे
ंसार में भारतीयों की गर्दनें नीची कर रहे हैं। नैपाल के
ंदू महाराजा को अपने इन पतित देशवासियों के नाम
र क्या ज़रा भी लज्जा महसूस नहीं होती? क्या उसने
पने आपको बिलकुल अङ्गरेज़ों के हाथों बेंच दिया है?
या गुरखों में एक भी ऐसा ज़िम्मेवार व्यक्ति नहीं है जो
निया से अपने गुरखे सिपाहियों के कुकृत्यों के लिये माफ़ी
ांगता? सन् १८५७ से लेकर अब तक गुरखों ने ब्रिटिश
ाम्राज्यवाद के साथ मिलकर जितने जघन्य अत्याचार
ये हैं उन्हें सुनकर कोई भी सभ्य कौम कांप उठेगी।
ाज हमें ज़िल्लत के साथ यह स्वीकार करना पड़ रहा है
ये गुरखे भी हिन्दुस्तानी हैं।

## हां साम्प्रदायिक समस्या नहीं

इण्डोनीशिया की समस्या अब तक ज्यों की त्यों बनी
ई है। ब्रिटिश हवाई जहाजों से हजारों जावी स्त्री, पुरुष
ौर बच्चे बमों के शिकार बना दिये गये हैं, सोरबाया और
ाविया पर अङ्गरेजी फ़ौजों ने कब्जा भी कर लिया है पर
ङ्गरेज जावा का आजादी का आन्दोलन दबाने में अब
क सफल नहीं हो सके हैं। ईश्वर को हजार धन्यवाद कि
वा में कोई सावरकर, तारासिंह और जिन्नाह नहीं हैं और
ां आपस में हिन्दू, मुसलमान और बौद्धों में बेहद प्रेम
। "लीडर" के विशेष प्रतिनिधि के अनुसार वहाँ साम्प्रदा-
क समस्या है ही नहीं। वहां गो मांस और सुअर का
स दोनों निषिद्ध हैं। डाक्टर शिवकर्ण की हिन्दू मां और
ौर मुसलमान पिता थे। वे और उनकी पत्नी फ़ातिमा
नों एकता के अवतार हैं। हम भारतवासी हमदर्दी और
ेनी के साथ जावा की आज़ादी की लड़ाई को यहां से
ब रहे हैं।

## टम बाम्ब की विस्फोटक शक्ति

एटम बाम्ब की प्रकट शक्ति तो लोगों ने हिरोशिमा
र नागासाकी में देखी थी पर उसकी गुप्त शक्ति लोग अब
ख रहे हैं। पांच हजार मील दूर अमरीका में कारखाने में
ा रखे ही उसने अमरीका, ब्रिटेन और रूस जैसे तीन बड़े
ों के आपसी प्रेम सम्बन्ध के टुकड़े टुकड़े कर दिये।
मासुर का वरद-हस्त आख़िर घूमकर अपने उपर ही तो
ेगा।

मोलोटोव, ट्रुमेन, चर्चिल और बेविन के जो बयान पिछले महीने छपे हैं उनसे यह स्पष्ट है कि रूस के खिलाफ़ इङ्गलैण्ड-अमरीका ने अपने कूटनीतिक मोरचे खोल दिये हैं। यूरोप में हालैण्ड बेल्जिअम, फ्रान्स, पुर्तगाल और स्पेन को लेकर ब्रिटेन रूस के खिलाफ़ एक पश्चिमी मोरचा बना रहा है, भूमध्य सागर में वह तुर्की, यूनान और इटली को रूस का मद्दे मुक़ाबिल बना रहा है, दक्षिण में ईरान, सीरिया और लेबनान में अङ्गरेज रूस के खिलाफ अपनी गोटियां बैठा रहा है और चीन में कुओमिन ताङ्ग और कम्यूनिस्टों के झगड़े सुलझाने के बहाने अमरीका रूस के खिलाफ अगले युद्ध की भूमिका बना रहा है। दुनिया भर के षड़यन्त्र रूस को चारों ओर से घेरकर किये जा रहे हैं। एटम बाम्ब के ज़ोर पर आज एंग्लो-अमरीकन दुनिया की बागडोर हाथ में लेना चाहते हैं और वे यह जानते हैं कि उनका यह दुःस्वप्न उस समय तक पूरा न होगा जब तक रूस में मुकाबले की ताकत है। रूस पर हावी होते ही वे सारी दुनिया पर हावी हो जायँगे। इसके लिये रूस से युद्ध अवश्यम्भावी है। उस युद्ध का कूटनीतिक सूत्रपात हो गया है और देर सवेर सैनिक संघर्ष भी होगा ही। केवल एक सूरत इस युद्ध के बचने की है और वह है सोवियत् रूस ने भी यदि एटम बाम्ब बना लिया। मार्शल स्तालिन इसे खूब समझते हैं और इसीलिये वे सारे काम धन्धे छोड़कर एटम बाम्ब के प्रयोगों का व्यक्तिगत निरीक्षण कर रहे हैं।

## चीन में अमरीकन नीति

चीन के अमरीकन राजदूत मेजर जनरल हरले ने अपने पद से स्तीफ़ा देते हुए यह बयान दिया है कि—"एशिया में और विशेषकर चीन में अमरीकन नीति साम्यवादी साम्राज्यवाद के खिलाफ औपनिवेशिक साम्राज्यवाद का साथ देना हो गई है। हमें इन युद्ध फैलानेवाले गिरोहों का साथ छोड़कर संयुक्त राष्ट्रों के जनतांत्रिक ऐलानों का समर्थन करना चाहिये।" हरले की जगह अमरीका के भूतपूर्व प्रधान सेनापति मार्शल चीन के अमरीकी राजदूत नियुक्त हुये हैं। इतने छोटे से पद के लिये मार्शल की नियुक्ति सन्देह पैदा करती है। क्या इस बहाने चीन को केन्द्र बना कर सोवियत रूस के साथ आगामी युद्ध की योजना का नक्शा नहीं बनाया जायगा? क्या जनरलिस्मो चियाङ्ग और जनरल चूतेह चीन को सोवियत के खिलाफ़ ऐसा केन्द्र बनाने में मदद देंगे!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# विश्ववाणी

भाग १० अङ्क ५५-६०

जुलाई - दिसम्बर १९४५

संरक्षक
पण्डित सुन्दरलाल

सम्पादक
विश्वम्भरनाथ

सहायक सम्पादक
बैजनाथसिंह 'विनोद'
कमल कुलश्रेष्ठ

प्रकाशक
विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# लेखकवार विषय सूची


डाक्टर अख़्तर हुसेन रायपुरी डी० लिट०
१—सिपाही की टाँग ( कहानी ) ... ५९
२—मरघट ( कहानी ) ... २१९

राष्ट्रपति अबुल कलाम आज़ाद
१—नौ अगस्त सन् ४२ का दिन ... २४५

श्री अम्बालाल पुराणी
१—अगम्यवाद ... १२८

राजकुमारी अमृत कौर
१—स्त्रियों के सङ्गठन का बुनियादी क़दम... २५१

श्री अमृतलाल वी ठक्कर
१—दक्षिण भारत के आदिवासी पनियन... ४४७

श्री अलबर्ट आइन्सटीन
१—जीवन दर्शन ... १०३

श्री आरसी प्रसाद सिंह
१—निमि ( एकांकी ) ... ४७

श्री इन्द्र प्रताप तिवारी एम० ए०
१—चिर गौरव गान्धी ( कविता ) ... २६४
२—मज़लूम ( कविता ) ... ४२५

प्रो० ई० जे बिङ्गले एम० ए०
१—नई हिस्ट्री ... १११

श्रीमती ईनाक्षी रामराव
१—भारतीय नृत्यकला का मौलिक विकास ४२२

श्री ईशदत्त शास्त्री
१—अन्तर ( कविता ) ... ४५६

श्री उपेन्द्र
१—याचना ( कविता ) ... ३१८
२—युग मानव ( कविता ) ... ३८८

श्री 'एक दर्शक'
१—पहली कुल हिन्द लेखक कान्फ्रेंस ... ५०५

कमल कुलश्रेष्ठ एम० ए०
१—एक कविता ( कविता ) ... १८५

श्री करील
१—ज्ञानलाभ ( कविता ) ... ४
२—ममता ( कविता ) ... ११०
३—९ अगस्त सन् '४२ ( कविता ) ... २५५
४—वन्दना ( कविता ) ... २६१
५—मुक्ति बोध ( कविता ) ... ४७०

श्री काका कालेलकर
१—राष्ट्रभाषा का रूप ... ४०१

श्री 'किङ्कर'
१—ज़रथुस्त्र ( कविता ) ... २०३

श्री किशोरलाल घ० मश्रूवाला
१—आर्थिक योजना के कुछ बुनियादी उसूल ६२
२—आकारान्त पुल्लिङ्ग शब्द ... १४६
३—बड़प्पन या ख़ासियत ... २३८

श्री 'कुमार हृदय'
१—दिल्ली चलो ( कविता ) ... ५०८

श्री कुसुमलता
१—क्षितिज पर क्या है ( कविता ) ... १४

डाक्टर के० एस० कृष्णन् एफ़० आर० एस०
१—एटम बाम्ब ... २४९

श्री 'कैमरामेन'
२—श्रीमती सोफ़िया वाडिया से भेंट ... ५०३

महात्मा गान्धी
१—अहिंसात्मक स्वराज और चरखा [प्रवचन] १६१
२—विचारों की लुप्त कड़ी ... १८७
३—स्त्री और पुरुष के कार्यक्षेत्र [ सङ्कलन ] २११
४—महात्मा गान्धी का हिन्दी साहित्य सम्मेलन से स्तीफ़ा [ पत्र-व्यवहार ] ... २३९
५—गान्धी जी से महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर [सङ्कलन] ४८१

श्री गार्गीशङ्कर मिश्र
१—साम्प्रदायिक समस्या, कारण और परिणाम ३०९

श्री गिरीश
१—वटवृक्ष ( कहानी ) ... ९१

आचार्य गुरुदयाल मल्लिक
१—कस्तूर बा शिक्षण शिविर में ... १४९
२—सब रङ्गों की क़ौमों का संघ ... १७७
३—संस्कृति के राज्य का बादशाह ... २६३

श्री गुरुदेव विद्यालङ्कार
१—डाक्टर मोण्टीसोरी और उनकी बाल शिक्षण पद्धति ... ४९८

श्री गोपाल शर्मा बी० ए०
१—सान्ध्य प्रार्थना ( कविता )

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



श्री गोविन्दराय शास्त्री
१—दश लक्षण पर्व ... ३०७
श्री चन्द्रिका सिंह 'करुणेश'
१—एक सवाल ( कविता ) ... ४८०
श्रीमती चन्द्रकुमारी वर्मा एम० ए०
१—महाकवि तुलसी के आध्यात्मिक विचार २३३
२—भाषा में ध्वनि-परिवर्तन के कारण ... ४१३
श्री चन्द्रकुँवर बर्त्वाल
१—यशस्वियों की पृथ्वी ( कविता ) ... ५०७
श्री छोटेलाल भारद्वाज
१—अपराजिता अनन्त की ओर (कविता) १८८
२—अपने पथ की धूल से (कविता) ... ४१२
श्री जगन्नाथ एम० ए०
१—संवेदना के अश्रु (कविता) ... ५८
श्री जय जयराम टण्डन
१—कौन (कविता) ... ३३२
श्री जयभगवान जैन
१—भगवान महावीर और जैन धर्म ... २६९
श्री जे० सी० कुमारप्पा
१—हिन्दुस्तान के लिये आर्थिक योजना... ६४
श्री टीकाराम विनोदी
१—मानव धर्म ... १५३
श्री टी० के० वेङ्कट रमण
१—दक्षिण भारत का स्वर्ण युग—राजराजा चोल का शासन काल ... ४४३
डाक्टर ता० नाकनूरा
१—उगते सूरज के देश की स्त्रियाँ ... ३८९
प्रोफ़ेसर तेजासिंह एम० ए०
१—सिख और उनका जातीय सङ्गठन ... ३९१
श्रीमती दिनेशनन्दिनी चोरड्या एम० ए०
१—दारा शिकोह ... १५५
श्री देवनाथ पाण्डेय 'रसाल' बी० ए०
१—सपूत बार बार माँ तुझे निहारती (कविता) ५०२
श्री देवेन्द्र एम० ए०
१—गीत (कविता) ... ६५
२—मैं दिल के नग़मे गा न सका (कविता) १६०
३—तूफ़ान चाहिये मुझे तूफ़ान चाहिये (कविता) २९४
भिक्षु धर्मरक्षित
१—पञ्च स्कन्ध और बौद्ध दर्शन ...
आचार्य नरेन्द्रदेव
१—नयी व्यवस्था में एशिया का स्थान ... १६३
डाक्टर एन० एस० वर्धन
१—शेष पत्र (घटना चित्र) ... १२३
२— ,, ,, ... १८९
३— ,, ,, ... २८१
४— ,, ,, ... ३७५
५— ,, ,, ... ४५७
श्री नर्मदा प्रसाद अग्रवाल
१—सुभाष (कविता) ... ३३१
सन्त निकोलस रोरिक
१—शान्तिदायिनी मां जगदम्बिके ... १
डाक्टर पट्टाभि सीता रामय्या
१—शिमला सम्मेलन के बाद ... १५९
२—यदि राष्ट्रीय सरकार क़ायम हुई ... २१६
प्रो० प्यारासिंह पदम
१—क्रान्तिकारी महाकवि गुरु गोविन्द सिंह २०५
श्री प्रकाश चन्द्र उपाध्याय एम० ए०
१—जावा में प्राचीन भारतीय सभ्यता ... २७७
२—कम्बोडिया में प्राचीन भारतीय सभ्यता ४४९
श्री प्रकाश नारायण सप्रू
१—इण्डोनीशिया में डच साम्राज्यवाद ... ४२३
श्री प्रभाकर माचवे एम० ए०
१—गुलमुहर (कविता) ... ३९०
श्री पलायन वादी
१—हिन्दी काव्यधारा में राष्ट्रीयता का विकास १३१
फ्री प्रेस जर्नल
१—आज़ाद हिन्द सेना और आज़ाद हिन्द संघ ३३४
पण्डित बनारसी दास चतुर्वेदी
१—चार आंसू ... ७६
डाक्टर बल्देव प्रसाद मिश्र डी० लिट०
१—भावी विधान (कविता) ... १५८
२—प्रेम और कर्तव्य (कविता) ... ३०१
३—गंगा का जल (कविता) ... ४३८
श्री बी० एम० बड़ुआ
१—आज की दुनिया और बौद्ध धर्म ... ८
श्री भगवती प्रसाद पान्थरी एम० ए०
१—फ़ाहियान की भारत यात्रा ... ३०३
डाक्टर भगवानदास
१—विद्याः समस्ताः तव देवि भेदाः ... ३९७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



महात्मा भगवान दीन
१—हिन्दू मुसलमान ? ... ४२६
श्री भारतन कुमारप्पा
१—श्री विनोबा भावे ... २३१
डाक्टर भूपेन्द्रनाथ दत्त
१—सामाजिक आचार और निषेधाज्ञाएं ... ५१
कुमारी मृदुला साराभाई
१—कस्तूरबा स्मारक निधि की कार्य योजना १८६
श्री मलिन्द
१—सांस्कृतिक एकता की रङ्गभूमि चीन और भारत ... ३३
२—महादेशीय संस्कृति के प्रसारणीय केन्द्र २०८
श्री महेन्द्र बी० ए०
१—गीत (कविता) ... ४००
श्री महेन्द्रकुमार 'मानव' एम० ए०
१—हिन्दू, उर्दू, हिन्दुस्तानी ... ३३८
प्रेमयोगी राजा महेन्द्रप्रताप
१—मेरे निर्वासन के २१ वर्ष ... ३५७
सर मिरज़ा इस्माइल
१—हिन्दुस्तानी कल्चर ... ३६२
डाक्टर मेघनाद साहा
१—आनेवाला हिन्दुस्तान ... ५
श्री ऋषिकुमार
१—सूफ़ी कवि अत्तार ... ४९१
श्री रघुवीर शरण दिवाकर बी० ए०, एल-एल० बी०
१—सम्प्रदायवाद और प्रमाणवाद ... २२५
२—सम्प्रदायवाद और प्राचीनता की दुहाई ३१३
कुमारी रज़िया नक़वी
१—अमर कवि तुलसीदास की जै (कविता) १३८
२—संस्कृति कला और धर्म ... ३३०
श्री रमेशचन्द्र गोयल बी० काम०
१—भारत की आर्थिक उन्नति के लिये गान्धीवादी योजना पर एक दृष्टि ... ६६
२—मुद्रा आस्फालन की समस्या ... २२६
सय्यद रहमअली अलहाशमी
१—मामूली अक़्ल की कसौटी पर दो नेशन्स का उसूल ... ३९
श्री राजनाथ पाण्डेय एम० ए०
१—हिन्दुस्तानी की ओर ... ८८
व्योहार राजेन्द्र सिंह
१—वीर शैव पन्थ ... १४३
श्री रामकुमार चतुर्वेदी
१—युग पुरुष बापू (कविता) ... २६२
श्री रामचन्द्र जैन बी० ए०, एल-एल० बी०
१—गीता में पदार्थवाद ... २१२
२—द्वन्द्वात्मक सत्कार्यवाद ... २९८
श्री रामप्रताप गोंडल एम० ए०
१—हमारी स्त्रियों का स्वास्थ्य ... १५०
श्री राममूर्ति मेहरोत्रा एम० ए०
१—दोस्ती (एकांकी) ... ३३२
अल्लामा राशदुल ख़ैरी
१—सलूनो (कहानी) ... १४७
श्रीमती लता देसाई एम० ए०
१—ये नापाक विवाह ... ७०
डाक्टर लतीफ़ दफ्तरी एम० ए०, डी० फ़िल०
चीनी अदब पर एक सरसरी नज़र ... ३८३
कुमारी लक्ष्मी देवी गोयल
१—क्रान्ति की पुकार (कविता) ... २९७
२ भावना (कविता) ... ४०५
श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय
१—दानी और याचक ... ३२७
डाक्टर लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
१—स्वर्गीय डाक्टर श्यामसुन्दर दास ... २४३
डाक्टर लिओनर्ड विलियम्स
१—उपवास के नियम ... ४८५
श्री विद्याधर कुलश्रेष्ठ 'कुसुम'
१—गीत (कविता) ... २२
२—मीनार (कविता) ... ११९
३—मनुष्य (कविता) ... २३०
४—गीत (कविता) ... ३०६
५—प्रलय पर्व (कविता) ... ४२०
६—दिल्ली चलो (कविता) ... ४८९
श्री विनोद बिहारी मुकर्जी
१—जापान की चित्रकला ... ७८
आचार्य विनोबा भावे
१—मानव देवता ... २१८
२—खादी की कसौटी ... ३१६
श्री विष्णु
१—वे दोनों (कहानी) ... १३६

CC-0. In Public Domain. Gurukul K...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




प्रो० विलफ्रिड ह्वाइटहाउस
१—जापान में बौद्धधर्म ... १२०

विश्वम्भरनाथ
१—नैनीजेल में कविता सुन्दरी के विछोह पर (कविता) ... ७४
२—मूल्याङ्कन (कविता) ... १०५
३—अहल्याबाई होल्कर ... १३६
४—हमारे राष्ट्रीय पत्र और पत्रकारी ... ४७१

श्री विश्वनाथ प्रसाद एम० ए०
१—अनेकता में एकता ... ४०६

प्रो० वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार
१—दक्षिण भारत की सामाजिक संस्कृति ... ४३६

श्री वेंकटराव
१—लोक लिपि ... ४६१

श्री शङ्कर गणपति कोकणे
१—जर्मनी और सुलह की शर्तें ... ८१

श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना एम० ए०
१—घनानन्द का विरह निवेदन ... २७
२—कविवर रसखान के अन्तिम दिन ... ३२०

श्री शान्ति भिक्षु
१—लङ्का में कुछ दिन ... १६७

श्रीशिखर चन्द कोचर
१—सम्राट अकबर और जैन गुरु ... २६५

प्रो० श्रीरञ्जन एम० ए०
१—युद्ध के बाद विश्वशान्ति की समस्या १०६

श्री शीतला सहाय श्रीवास्तव
१—गीत (कविता) ... ४१६

प्रो० श्रीनारायण अग्रवाल एम० ए०
१—रोग क्यों ? ... ८४
२—गांवों की समस्या ... २२२
३—सेवाग्राम में एक क्रांतिकारी विवाह ... ३२५

श्री श्रीपालसिंह 'क्षेम'
१—चल रे चल यौवन उद्दाम (कविता) ... ४६७

श्री शील चतुर्वेदी
१—फ़रवरी सन '४३ में बापू के अनशन पर (कविता) ... ३१५

कुमारी शैल रस्तोगी
१—गीत (कविता) ... २६०

डाक्टर सदाक़त समरक़न्दी
१—बङ्गला उपन्यास की भूमिका ... ३३

श्री स्नेहांशु आचार्य
१—एक साधारण कहानी ... ३१६

श्री एस० आर० वेङ्कटरमण एम० ए०
१—दक्षिण भारत की प्रमुख लिपि तमिल में प्रस्तावित सुधार ... ४४५

डाक्टर सय्यद महमूद
१—जो कुछ सच है वह तो सामने रखें ... ३६५

सर सर्वपल्लि राधाकृष्णन
१—दोनों एक वंश के हैं [प्रवचन] ... २१५

श्री सिद्धराज ढड्ढा
१—गान्धी साहित्य के लिये एक योजना ... ३२३

श्री सुनीति चन्द्र
१—कवि और दार्शनिक ... ६६
२—अल्लाहो अकबर ... १४८

पण्डित सुन्दरलाल
१—शैख़सादी की करीमा ... १५
२—ईरान पर यूनानी आधिपत्य के बाद ... १७६
३—महान ईरानी सम्राट अनुशीरवाँ ... २६१
४—दिल्ली सम्राट के फ़िदविए ख़ास ... ४१७

श्री सुशील कुमार
१—हिन्दुस्तानी ... ८६

श्री एच० जी० वेल्स
१—युद्ध और शान्ति ... १०१

रायबहादुर ज्ञानशङ्कर पण्डया एम० ए०, एम० ओ० एल०
१—सम्राट बाबर का गुप्त वसीयतनामा ... ४६
२—पिछली सहस्राब्दी में बङ्गाल का सांस्कृतिक सृजन ... २६५
३—वृहत्तर भारत की संस्कृति ... ३६७

समालोचना ६३
१—महर्षि दयानन्द का जीवन दर्शन ... "
२—चित्तौड़ (काव्य) ... "
३—'लोकमान्य - लोकमत', 'रामराज्य,' 'विक्रम,' 'आजकल,' 'बाल हत' ... ६४
४—बाल प्रश्नोत्तरी ... १६६
५—कल्कि या सभ्यता का भविष्य ... १६७
६—प्रेमचन्द घर में ... १६६
७—दुपहरिया के फूल (गद्य काव्य) ... १७०
८—लाश पर (कहानी संग्रह)


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri




९—तूलिका (कविता संग्रह) ... १७१
१०—निशीथ (कविता संग्रह) ... ,,
११—शिक्षा का माध्यम ... २५२
१२—विचार और अनुभूति ... २५३
१३—प्रतिहिंसा (खण्ड काव्य) ... ,,
१४—आधुनिक भारत ... २५४
१५—पूर्वी और पश्चिमी दर्शन ... २५५
१६—मरुकुञ्ज (क्षयरोग का निवारण) ... ३४०
१७—माँ और मुन्ना (जनन विज्ञान) ... ३४१
१८—युद्ध के बाद हिन्दुस्तान के शिक्षा सम्बन्धी विकास की योजना ... ३४२
१९—बन्दी के गान (काव्य संग्रह) ... ,,
२०—धारा (काव्य संग्रह) ... ३४३
२१—मातृ वन्दना ... ३४४
२२—हमारी राष्ट्रीय समस्याएँ ... ,,
२३—गान्धी जी के साथ सात दिन ... ४२७
२४—नए एशिया के निर्माता ... ,,
२५—हिन्दी गीता ... ,,
२६—उन्मुक्त प्रेम ,,
२७—बच्चों की आदतों का विकास ४२९
२८—इङ्गलैण्ड का शासन और औद्योगिक क्रान्ति ... ,,
२९—कर्त्तव्य (कहानी) ... ,,
३०—भारतीय जाग्रति ... ४३०
३१—गीता हृदय ... ५०९
३२—हमारा स्वाधीनता संग्राम ... ५१०
३३—किसान राज्य ... ५११
३४—वह (कथा काव्य) ... ५१२
३५—पत्र पत्रिकाएं ... ५१३


## सम्पादकीय विचार


जुलाई

१—नेताओं की रिहाई
२—नई समस्याएँ
३—वावेल नोजना
४—शिमला सम्मेलन
५—फ्रिस्को सम्मेलन का घोषणापत्र
६—भारत और दक्षिण अफ़रीका
७—सिकियांग के चीनी कम्यूनिस्ट
८—जापानी शहरों की बमवारी
९—आभार प्रदर्शन

अगस्त

१०—उचित स्मारक
११—शिमले का तमाशा
१२—अगस्त आन्दोलन
१३—सम्प्रदायवाद मध्ययुग की देन
१४—इङ्गलैण्ड की नई सरकार
१५—समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध

सितम्बर

१६—सुभाष चन्द्र बोस
१७—राष्ट्रीय सेना का भविष्य
१८—जीत किस क़ीमत पर
१९—एटम बम
२०—सुदूर पूर्व का भविष्य
२१—कविवर मैथिलीशरण गुप्त की हीरक जयन्ती
२२—स्वर्गीय श्यामसुन्दर दास
२३—देश की राजनैतिक परिस्थिति
२४—तुर्की और सोवियत

अक्तूबर

२५ गान्धी जयन्ती
२६—साम्प्रदायिक और सांस्कृतिक एकता की अग्रदूत
२७—गान्धी जी और वर्ण व्यवस्था
२८—अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के फैसले
२९—ब्रिटेन के प्रति कांग्रेस की नीति
३०—मुसलमानों के प्रति कांग्रेस का रुख़
३१—कांग्रेस का आन्तरिक सङ्गठन
३२—कमेटी के अन्य प्रस्ताव
३३—आत्म निर्णय की बात
३४—पाकिस्तान की परिभाषा
३५—इनसे हुकूमत को मदद मिलती है
३६—भारत की ग्रामीण अर्थनीति
३७—आज़ाद हिन्दसेना के अफ़सरों का मुक़दमा
३८—बरेली सेण्ट्रल जेल का अभिशाप
३९—लाहौरी किले का नरक
४०—जो कुछ बनारस में हुआ
४१—राजा महेन्द्र प्रताप
४२—अरब और पाकिस्तान
४३—लन्दन में जातीय दङ्गे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



४४—हम बदले के इच्छुक नहीं
४५—विदेशी मन्त्रियों का सम्मेलन
४६—हिन्द एशिया के देशों की आज़ादी
४७—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की रजत जयन्ती
४८—श्री सत्यपाल धवले
४९—भूल सुधार

नवम्बर

५०—चुनाव के भँवर में
५१—आज़ाद हिन्द फौज का मुक़दमा
५२—जनता का स्तर
५३—पी० ई० एन० सम्मेलन
५४—भारत और सुदूर पूर्व
५५—तीसरा महायुद्ध

दिसम्बर

५६—गान्धी जी और हिन्दुस्तानी
५७—स्वर्गीय पेरी सेरीसोल
५८—अहिंसा ही हमारा बल है
५९—रचनात्मक कार्य का महत्व
६०—अन्याय का प्रतिकार करो
६१—बदले का ब्योरा
६२—बहादुर सिखों के नेता
६३—वे भारत की आज़ादी चाहते थे उसे बेचना नहीं
६४—टेनेन्सी एक्ट या बेदख़ली का क़ानून
६५—सेन्ट्रल असेम्बली के चुनाव
६६—अग्नि स्नान
६७—बर्मा का आज़ाद मोर्चा
६८—मिश्र खाली करो
६९—फ़िलिस्तीन की समस्या
७०—फ्रान्स की नई सरकार
७१—ये गुरखे भी हिन्दुस्तानी हैं !
७२—वहां साम्प्रदायिक समस्या नहीं
७३—एटम बाम्ब की विस्फोटक शक्ति
७४—चीन में अमरीकन नीति

762
080290

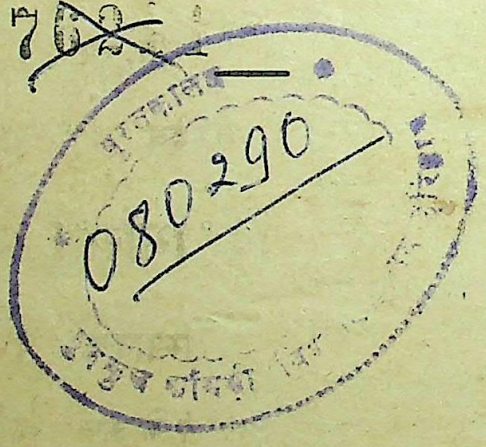

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


## भारतीय चीनी मिट्टियां

लेखक

पं० मनोहरलाल मिश्र एम० एस-सी०

[ सिरेमिक विभाग काशी विश्वविद्यालय ]

बेहद खोज और परिश्रम के साथ यह पुस्तक लिखी गई है। अपने देश की मिट्टी को हम किस तरह सोने में बदल सकते हैं यही इस पुस्तक का उद्देश्य है। चीनी मिट्टी और मिट्टी का व्यवसाय करने वालों के लिये पुस्तक बहुत उपयोगी है। २६० पृष्ठ की सचित्र और जिल्द पुस्तक का मूल्य केवल डेढ़ रुपया है। डाक र्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## विश्व-संघ की ओर

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल

और

श्री भगवानदास केला

पृथ्वी के सब राष्ट्रों को मिला कर उनका एक संघ किन उसूलों पर क़ायम किया जा सकता है इस गम्भीर विषय पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विश्वव्यापी शान्ति चाहने वाले सब लोगों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। ३०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपया, डाकखर्च अलग।

**विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

## आरसी-रचनावली

| | | | |
|---|---|---|---|
| आरसी ( कविताएँ ) | ... | ... | ६) |
| संचयिता ( कविताएँ ) | ... | ... | ५) |
| कलापी ( कविताएँ ) | ... | ... | २॥) |
| पाञ्चजन्य ( कविताएँ ) | ... | ... | २) |
| नयी दिशा ( कविताएँ ) | ... | ... | २) |
| चपल्लव ( कहानियाँ ) | ... | ... | २) |
| खोटा सिक्का ( कहानियाँ ) | ... | ... | १॥) |
| आँधी के पत्ते ( कहानियाँ ) | ... | ... | १॥) |
| और यौवन ( कविताएँ ) | ... | ... | १॥) |
| चंदा मामा ( कविताएँ ) | ... | ... | १) |

**तारा मण्डल, मुजफ्फरपुर**

संस्कृति, साहित्य और कला की सन्देशवाहक

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के विचारों की प्रतीक

## विश्वभारती पत्रिका (त्रैमासिक)

सम्पादक : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी

साहित्य के ऊपर खोजपूर्ण गम्भीर निबन्ध और गुरुदेव की रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद इसमें मिलेगा। साहित्य के विद्यार्थियों के लिये एक एक अंक संग्रहणीय—

वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति का १।)

**मैनेजर, विश्वभारती पत्रिका, हिन्दी भवन**

**पो० शान्तिनिकेतन (बंगाल)**


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बरसों की प्रतीक्षा के बाद आखिर छप गई

## गीता और क़ुरान

### लेखक : पण्डित सुन्दरलाल

इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और इसलाम की मिलती-जुलती बातें, गीता का महत्व, गीता के एक एक अध्याय का निचोड़, क़ुरान का महत्व और लगभग १५ ख़ास ख़ास विषयों पर क़ुरान की ४०० से ऊपर आयतों का लफ़्ज़ी तर्जुमा दिया गया है।

जो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के धर्मों को समझना चाहें उनके लिये यह पुस्तक बहुत क़ीमती और बेमिसाल है।

२०० सफ़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल

**डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग**

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

पं० सुन्दरलाल जी की एक और नई पुस्तक

## हज़रत ईसा और ईसाई धर्म

प्रकाशित हो गई

पुस्तक के अन्दर हज़रत ईसा की जन्म-भूमि फ़िलस्तीन की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक हालत, ईसा के जन्म, उनके धर्म प्रचार और कष्ट सहन के साथ साथ हिन्दुस्तान, चीन, ईरान इत्यादि दूसरे एशियाई देशों की उस समय की धार्मिक और सांस्कृतिक हालत के साथ हज़रत ईसा और उनके उसूलों का गहरा सम्बन्ध अच्छी तरह दिखाया गया है

मूल्य, डेढ़ रुपया, डाक खर्च छै आने अलग

आज ही आर्डर भेजकर अपनी प्रति ख़रीद लीजिये

## "विश्ववाणी का एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है"—गान्धी जी

महात्मा गान्धी जी ने कहा था—"विश्ववाणी तो बहुत अच्छी निकल रही है। उसका एक एक अङ्क पुस्तक की तरह है। मुझे उसके विशेषाङ्क बहुत प्रिय लगे।"

राष्ट्रपति मौलाना आज़ाद, सर्वपल्लि राधाकृष्णन, सर तेज बहादुर सप्रू, आचार्य क्षिति मोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, स्व० महादेव देसाई, क्यूरेटर-ब्रिटिश म्यूज़ियम (लन्दन), प्रो० तान युन-शान आदि सैकड़ों देशी और विदेशी सर्वमान्य नेताओं और विद्वानों ने गान्धी जी की उपर्युक्त राय को ही दोहराया है।

**विश्ववाणी के पुराने अङ्कों में देश और विदेश के चोटी के विद्वानों के गम्भीर और महत्वपूर्ण लेख भरे पड़े हैं। विश्ववाणी के विशेषाङ्कों का तो कुछ पूछना ही नहीं।**

**क्या आप के पास विश्ववाणी के बहुमूल्य विशेषाङ्क हैं ?**

**क्या आप विश्ववाणी के महत्वपूर्ण पुराने अङ्क ख़रीदना चाहेंगे ?**

हमारे पास 'टैगोर अङ्क', 'संस्कृति अङ्क' पहला भाग 'बौद्ध संस्कृति अङ्क', 'चीन अङ्क', 'जैन संस्कृति अङ्क', और 'अकबर अङ्क' की थोड़ी सी प्रतियां बची हुई हैं। इनके अतिरिक्त फुटकर अङ्कों की भी कुछ प्रतियाँ और सन् ४२ और ४३ की थोड़ी सी पूरी फाइलें बची हुई हैं। जिन सज्जनों को चाहिये फौरन आज ही पत्र लिखें। जिस क्रम से आर्डर आवेंगे उसी क्रम से ग्राहकों को प्रतियाँ दी जाँयगी।

**मैनेजर, विश्ववाणी कार्यालय, इलाहाबाद**

सम्पादक, मुद्रक और प्रकाशक—विश्वम्भरनाथ, विश्ववाणी प्रेस, साउथ मलाका, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

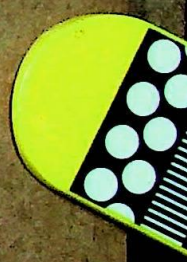

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri